

लाल बहादुर शास्त्री प्रशासन अकादमी
Lal Bahadur Shastri Academy of Administration

मुसूरी
MUSSOORIE

पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या
Accession No.

15 116241

वर्ग संख्या

R

Class No.

039.914

पुस्तक संख्या

Book No.

Enc

v. 5

हिन्दी विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक
श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,
सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, एन. आर. ए. एस.,
तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित ।

पञ्चम भाग

[कुकील—खाड़ायनीय]

THE ENCYCLOPÆDIA INDICA VOL. V.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārṇava,

Siddhānta-vāridhi, Śabda-ratnākara, M. R. A. S.,

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Bangliya Śāhitya Parishad
and Kāyastha Patrikā ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayura-
bhanja Archaeological Survey Reports and Modern Buddhism ;
Hon. Archaeological Secretary, Indian Research Society ;
Member of the Philological Committee, Asiatic
Society of Bengal ; &c. &c. &c.

Printed by H. C. Mitra, at the Vīśvakosha Press.

Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9, Vīśvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

1922

हिन्दी विषयकोष

(पञ्चम भाग)

कुकील (सं० पु०) कुः पृथिवी तस्याः कील इव,
उपमि० । पर्वत, पहाड़ ।

कुकीर्ति (सं० स्त्री०) कु कुक्षिता कीर्तिः, कर्मधा० ।
निन्दा, हिकारत, बदनामी । कुकीर्ति मृत्युके पीछे
भी नहीं मिटती ।

कुकुट (सं० पु०) कु ईषत् कुक्षितं वा यथा स्यात् तथा
कुटति, कु-कुट-क । १ सितावरणप, सिरियारी ।
२ शास्त्रालोचन, सेमरका पेड़ ।

कुकुटम्बिनी (सं० स्त्री०) कु कुक्षिता कुटम्बिनी,
कर्मधा० । निन्दित आत्मोपरिवारकी गृहिणी ।

कुकुटी (सं० स्त्री०) १ ऋषभक । २ शास्त्रालो वृक्ष ।

कुकुया (सं० स्त्री०) सिंहलकी एक नदी । वह पावा
और कुशिनगरके बीच बहती है । सिंहलके बीच-ग्रन्थमें
उसका वर्णन मिलता है । बुद्धदेवने उसमें स्नान और
अलपान किया था । ब्रह्मदेशके बीचग्रन्थमें उक्त नदीका
नाम 'ककुया' लिखा है । आज कल उसे 'वागी' कहते
हैं ।

कुकुत्सन्द (सं० पु०) बुद्धविशेष, एक बुद्ध । वह गौतम-
से पूर्व आविर्भूत हुए थे ।

कुकुद (सं० पु०) कु कृ इत्यव्ययं अलङ्कारता कन्या तां
सत्कार्य पात्राय ददाति, कृ-कृ-दा-क । सत्कार पूर्वक
अलङ्कारता कन्या सम्प्रदानकारी ।

कुकट्ट (सं० पु०) कुक्कुरद्रुम, कर्करोधा ।

कुकन (सं० पु०) कट्टका गर्भजात एक सर्प ।

कुकन्द, कुकन्दर देखो ।

कुकुन्दनी (सं० स्त्री०) ज्योतिष्यती जता, रतम-
जीम ।

कुकुन्दर (सं० स्त्री०) स्कन्धते कामिना चत, निपात-
नात् साधुः । १ मेरुदण्डके निम्नभागमें नितम्बस्थान-
स्थित गर्त इव, रीडके नीचे चतुर्धों पर पड़नेवाले दो
गड्ढा । कुकुन्दर मर्मस्थानमें है । किसी रूपसे पाहत
होने पर उसमें अशुभज्ञान नहीं रहता और हाथ-पैर
भी नहीं चलता । (सुश्रुत) (पु०) कुं भूमिं दरति दार-
यति वा, कु-ह अन्तर्भूत स्थानात् अण् निपातनात्
साधुः । २ कुक्कुरद्रु, कर्करोधा ।

कुकुन्दरमिचक (सं० पु०) गोरक्षतण्डुली, एक भाङ्गी ।

कुकुन्ध (वे० पु०) भूतयोनिविशेष, । (पञ्चरत्न, ८। १। ११)

कुकुभ (सं० पु०) १ कुक्कुभपक्षी, जंगली सुरगा ।

२ छन्दोविशेष । वह मात्रिक होता है । उसके प्रत्येक
पादमें सोलह और चौदहके ठहरावसे ३० मात्रा
लगती हैं । चरणके अन्तमें २ गुरु आना चाहिये ।

कुकुभा (सं० स्त्री०) कु ईषत् कु पृथिव्यधिष्ठात्री देवता
इव भा यस्याः । एक रागिणी । ककुभ देखो ।

कुकुर (सं० पु०) कु कुक्षितं कुरति शब्दायते, कु-कुर-

अच्। १ कुकुर, कुत्ता। कुक्-उरच्। २ यदुदंशीय अंधक-
राजके पुत्र। ३ सर्पविशेष। ४ अन्विपर्णी नामक
कोई वृक्ष, गंठियना। कुकुराः स्वनामख्याताः चतुर्या-
स्तेषां जनपदः। ५ देशविशेष, एक मुष्क। कोई कोई
राजपुतानाके बालमिर नामक स्थानमें उक्त जनपदकी
अवस्थित समझते हैं। फिर किसीके मतानुसार उसका
अवस्थान जैसलमिरमें है।

“जठरा कुकुराश्चैव सदृशाश्च भारत।” (भारत, भीष्मपर्व २।४२।)

६ कुकुर जनपदवासी। यह शब्द नित्य बहुवचनान्त
रहता है।

कुकुरपालू (हिं० पु०) लताविशेष, एक बेल। वह
नेपाल, भूटान, आसाम, छोटा नागपुर प्रभृतिके वनमें
उपजता है। उसका कन्द खाया जाता है।

कुकुरखासी (हिं० स्त्री०) कासरोगविशेष, किसी
किम्मी सूखी खांस। उसमें कफ नहीं आता।

कुकुरजिह्वा (सं० स्त्री०) कुकुरस्व जिह्वा इव जिह्वा
यस्याः। १ मत्स्यविशेष, एक मछली। २ सुदृढ वृक्षवि-
शेष, एक पेड़।

कुकुरदन्त (हिं० पु०) १ दन्तविशेष, एक दांत। वह
साधारण दन्तोंके अतिरक्त नीचेकी भाड़ा आता और
पीठकी कुछ ऊपर उठता है। २ छाटके पासका पैना
दांत। कड़ी चीज उसीसे कटती है।

कुकुरदन्ता (हिं० वि०) कुकुरदन्त रखनेवाला, जिसके
नीचेकी भाड़ा दांत रहें।

कुकुरभंगरा (हिं० पु०) भंगरेया, काला भंगरा।

कुकुरमाछी (हिं० स्त्री०) मच्छिकाविशेष, एक मछली
वह कुत्तो, गायों, बैलों, भैंसों वगैरहके लगती है।
उसका रंग लाली लिये भूरा रहता है। वह एक बार
चिपट जानेसे फिर कठिनासे छूटती है। घोड़ा उससे
बहुत डरता है। एक भी कुकुरमाछी आ जानेसे वह
पूँछ चलावे और चारों पैर उछालने लगता है।

कुकुरमुत्ता (हिं० पु०) कुकुरी देखो।

कुकुराधिनाथ (सं० पु०) कुकुराणां यादवानां अधि-
नाथः, इ-तत्। १ यादवोंके अधिपति। २ शोकथा।

कुकुरी (सं० पु०) कुकुर जातित्वात् ङोष्। कुकुरी,
कुतिया।

कुकुरी (हिं० स्त्री०) कुकड़ी।

कुकुरन्द (सं० पु०) कुकुरन्दम्, कुकुरीधा।

कुकुरौंड़ी, कुकुरमाछी देखो।

कुकुरवाक (सं० पु०) कुकुरवाची, एक चिड़िया।

कुकुरी (हिं० स्त्री०) १ कुकुर, वनसुर्गी। २ बाजरीका
एक रोग। उससे बाजरीकी मच्छरों पर सूक्ष्म सूक्ष्म
असितचूर्ण लग जाता और दाना नहीं आता।

कुकूट (सं० स्त्री०) मयूरपुच्छ, मोरपंख।

कुकूटी (सं० स्त्री०) कोः पृथिव्याः कूटोऽस्त्यस्याः, कु कूट-
अच्-ङोष्। शास्त्रालीवृक्ष, सेमरका पेड़।

कुकूण, कुकूणक देखो।

कुकूणक (सं० पु०) १ शिशुवैका नेत्रवर्त्मगत रोग, कुटु, कु
बच्चोंकी आँखके पोंटेमें होनेवाली एक बीमारी।
वह चौरदोषसे उत्पन्न होता है। फिर चक्षु खुजलाने
लगते हैं। शिशु ललाट, पक्षिकूट और नासाको प्रघ-
र्षण किया करता है। वह चर्कप्रभा देख नहीं सकता
और न चक्षु ही खोलता है। (माधवनिदान)

२ पादरोगभेद, पैरकी एक बीमारी।

कुकूनन (वे० त्रि०) कुङ् शब्दे अत्यर्थं कुर्वन् शब्दं
कुर्वन् नमति प्रज्ञोभवति पृषोदरादित्वात् साधुः।
अत्यन्त शब्दके साथ पतनशोक, बड़ी आवाजसे गिरने-
वाला।

“त्रे शीनां त्वा पवन्नाधू नोमि कुकूनानां त्वा पवन्नाधू नोमि।”

(युक्त यजुर्वेद, ८। ४८)

‘अत्यर्थं’ कुर्वन् शब्दं कुर्वन्ना नमति प्रज्ञो भवति कुकूनना निषस्वा
आपः तासां पतने त्वा कल्पयामि।’ (महोपर)

कुकूरभ (वे० पु०) भूतयोनिविशेष।

कुकूल (सं० स्त्री०) कोः भूमिः कूलम्, इ-तत्। शम्भ
गङ्गा। २ वर्म, बखतर। (पु०) कू-जल्च् कुगागमश्च
इ तुषानम्, भूमीको आग।

“विशेषाःपि सदृशो जेयमायतलोचना।

अयं कश्च ककुलापि नकोमो मदमानलः॥” (उदभट)

कुक्त्य (सं० स्त्री०) कु कुक्षितं क्त्यम्, कर्मधा०। कुक्षित
कार्य, खराब काम।

“किमेतद्वदता ककुक्षममुक्षितम्।” (पद्मनभ)

कुकोल (सं० स्त्री०) कुक्षितं कोसति, कु-कुल-अच्।
कोलावृक्ष, बेरो।

कुक्कुट (सं० पु०) कुक् सम्प्रदादित्वात् क्तिप्, कुका पादानेन कुटति, कुक्-कुट्-क । १ पक्षिविशेष, सुरगा । उसका संस्कृत पर्याय—ऊकवाकु, ताम्रचूड़, चरणायुध, कालज, नियोडा, विष्किर, मखरायुध, ताम्रशिखी, रात्रिवेद, उषाकर, वृताक्ष, काङ्कल, दक्ष, यामनादी और शिखण्डिक है ।

उक्त पक्षिजातिके प्रधानतः मस्तक पर मांसल चूड़ा होती है । जबड़ेके नीचे मांसका टङ्गनी (कण्ठ) और पुच्छमें १४ पर रहते हैं । पुरुष अधिक सुन्नी लगता है । पर घन होते हैं । मत्थे की चोटी बड़ी और बहुत चिकनी रहती है । पुरुषके पदमें बड़े बड़े तीक्ष्ण नख होते हैं । युव काल वही अस्त्रस्वरूप व्यवहार किये जाते हैं । यह स्नेह्याचारी और बहुपत्नीक है । भारत-वर्ष और भारतमहासागरीय द्वीपपुञ्ज ही उसका प्रधान जन्मस्थान है । यहींसे वह यूरोप गया है । किन्तु यह आज भी स्थिर नहीं हुआ कब वह यूरोप पहुँचा था । प्राचीनग्रीक (यूनानी) लोग उसे पारस्य-देशीय पक्षी समझते थे । उससे अनुमित होता कि पारस्यदेशसे वह घीस गया होगा । यह अपोलो, मार्करी और मार कई रोमक देवताओंकी अत्यन्त प्रिय है । उसीसे पहले ग्रीक और रोमक उसको बड़े यत्नसे रखते थे । ग्रीकों और रोमकोंकी सुझा तथा रक्षादिमें इसकी मूर्ति अर्पित देख पड़ती है ।

भारत, ग्रीस, रोम, चीन, मलय प्रभृति देशोंके अधिवासियोंकी बहुत कालसे कुक्कुटयुव (सुरगीकी लड़ाई) देखना अच्छा लगता आया है । उसीसे ग्राम्य कुक्कुट पाला जाता है । हम समझते कि पूर्वकाल सुनिष्ठवि ग्राम्यकुक्कुटको खेड़के चबूसे देखते थे । उसीसे मनु प्रभृति धर्मशास्त्रमें ग्राम्यकुक्कुटभक्षण निषिद्ध माना गया है ।

कोई कोई कहता कि वन्यकुक्कुटसे ग्राम्यकुक्कुट उपजा है । किन्तु वन्य और ग्राम्य उभयविध कुक्कुटका गठनादि परिदर्शन [करके] वह भिन्नजातीय जैसा समझ पड़ते हैं । यवद्वीपमें 'वड्डिव' नामक एकजातीय कुक्कुट मिला है । वह भारत महासागरीय सकल द्वीपोंमें वास करता और देखनेमें ग्राम्यकुक्कुट जैसा ही

रहता है । किसीके मतानुसार उक्त वड्डिव ही ग्राम्य कुक्कुटोंका पादिपुरुष है । उसको चूड़ा बड़त् होती है, वर्ण उज्ज्वल नील और बादाम जैसा रहता है । रोमा-वली स्वर्णानार लगती है । पक्षके किसी किसी स्थान पर नाना वर्णका सम्मेलन हो जाता है । भारतवर्षमें भी स्थान स्थान पर वैसा ही कुक्कुट होता है । किन्तु गठनमें वह कुछ बड़ा पड़ता है । सुमात्राद्वीपमें भी उसी प्रकारका हरा और गुलाबी लिये हुए ताम्रचूड़ (Bronzed fowl) मिलता है । उसके अतिरिक्त वहाँ यगी वा कलम तथा वृद्धाकार एक भिन्न जातिके कुक्कुट भी वास करते हैं ।

वन्यकुक्कुट भारतके जंगलोंमें बहुत है । उसकी चूड़ा बहुत बड़ी होती है । वर्ण उज्ज्वल और देखनेमें अति सुन्दर लगता है ।

ग्राम्यकुक्कुट भी नानाप्रकारका होता है । नेपो कुक्कुट (Gallus moris) का गात्रवर्ण स्याही जैसा काला रहता है । चीन और जापानके रेशमी कुक्कुट (Gallus lanatus) का मांस स्वच्छ चमकता हुआ, चूड़ा गुलाबी और दूसरे रोम बिलकुल रेशमकी भाँति मृदु और उज्ज्वल होते हैं । अपर एक जातीय कुक्षितलोभ कुक्कुट (Gallus crispus) है । शिथिल तीनों कुक्कुट भिन्नजातीय कहलाते हैं । पालित कुक्कुटोंमें निम्न लिखित ८ प्रकार प्रधान हैं :—१ खर्व-काय कुक्कुट । अंगरेजोंमें उसे गेम फाउल (Game Fowl) अर्थात् लड़ाईका सुरगा कहते हैं । वह अतिप्रिय कलहप्रिय होता है । किसी समकक्ष दूसरे कुक्कुट-को सामने पाते ही उसे लड़नेकी पड़ती है । बहुतसे लोग उसे पालते हैं । उसका मांस और डिम्ब अति सुखादु होता है । अन्य प्रकारके कुक्कुटमें छोट देनसे लड़ाईका सुरगा ही प्रधान बन बैठता है । २ वण्टम कुक्कुट ३ कोचोन-चोनका वृद्धाकार कुक्कुट, ४ हामधर्गका सुदृग्ध कुक्कुट—मांस और डिम्बके लिये उसका मूल्य अधिक होता है । ५ मलयका वृद्धकाय कुक्कुट—बहुत लड़ता है । ६ स्पेनका कुक्कुट । बड़े बड़े डिम्ब देनेसे मूल्यवान् होता है । ७ पालेण्डका कण्ठकाय कुक्कुट । काला हाँते भी उसका मस्तक सफेद रहता

है। वह बहुत अच्छे होता है। ८ विलायती मुरगा-
इङ्गलेण्डके सरे प्रदेशमें वह अधिक मिलता है। (Dor-
king fowl) देखनेमें उसे सफेद पाते हैं। पैर छोटे
होते हैं। मांस प्रति सुस्वादु लगता है। अंडे अधिक
देनेके कारण लोग उसे प्रायः पाल लेते हैं। किसीके
मतानुसार रोमकीके आक्रमण समय अमध्य अंगरेज
सक्त मुरगसे खेल करते थे।

दूसरे भी अनेक प्रकारके कुक्कुट होते हैं। देश
और जलवायुके भेदसे उनका वर्ण तथा शरीरका गठन
भी नहीं मिलता।

साधारणतः ग्राम्य और वन्य भेदसे कुक्कुट दो प्र-
कारका होता है। उभयविध कुक्कुटका मांस विशेष
बलकारक है। चरकसंहितामें लिखा है कि याव-
तीय बलकारक मांसके मध्य वन्यकुक्कुटका मांस श्रेष्ठ
पथ्य है। भावप्रकाशमें द्विविध कुक्कुटके मांसका गुण
इस प्रकार कहा है :— ग्राम्यकुक्कुटका मांस कषाय,
स्निग्ध, उष्णवीर्य, गुरुपाक, पुष्टिकारक, चक्षुके लिये
हितकर और वायु, कफ, शूल तथा बलवर्धक है। वन्य
कुक्कुटका मांस स्निग्ध, पुष्टिकारक, श्लेष्मवर्धक, गुरु और
वायु, पित्त, क्षय, वमि तथा विषमज्वरनाशक होता है।
२ ताम्बिक आसन भेद।

“पद्मासनं तु संस्थाय जातुपूर्वाकरं करी।

निवेश्य भूमौ संस्थाय व्योमस्यं कुक्कुटासनम् ॥ (तन्त्रसार)

प्रथमतः पद्मासन लगा दोनों हाथ उभय जानुके
मध्यसे भूमिपर जमाते हैं। फिर दोनों हाथों पर भर
जास शरीरको शून्यस्थ करनेसे कुक्कुटासन होता है।
३ स्फुटिङ्ग, चिनगारी। ४ शूद्रके औरस और निषादीके
गर्भसे उत्पन्न एक जाति।

कुक्कुटक (सं० पु०) कुक्कुट संज्ञायां स्त्रायें वा कन्।
१ कुक्कुभपत्नी, वनमुरगा। २ शूद्रके औरस और निषा-
दीके गर्भसे उत्पन्न एक जाति।

“शूद्रगती निषाद्यां तु स वं कुक्कुटकः स्मृतः।” (मनु, १०।१८)

३ कुक्कुट, मुरगा।

कुक्कुटध्वनि (सं० पु०) कुक्कुटस्य ध्वनिः, ६-तत्। कुक्कुट-
का इन्द्र, मुरगीकी बांग।

कुक्कुटनाडी (सं० स्त्री०) यन्त्रविशेष, एक टेढ़ी
नली। उसके द्वारा पूर्ण पात्र वा स्थानसे कुछे पात्र
स्थानमें पानी आदि पहुँचाते हैं।

कुक्कुटपाद (सं० पु०) बौद्धशास्त्रोक्त एक पर्वत। चीन-
परिव्राजक युयेन चुयाङ्ग बोधिद्रुम दर्शन कर नैर-
ञ्जन और महीनदीके पूर्व प्रायः ८ कोस (१०० मील)
वन्य पथ अतिक्रम कर कुक्कुटपादगिरि (किउ-किउ-
च-पो-तो-घन्) पर पहुँचे थे। उन्होंने लिखा है कि
उसका अपर नाम ‘गुरुपादगिरि’ (किउ-लिउ-पो-तो-
घन्) रहा। बुद्धदेवके निर्वाणके पीछे महाका-
श्यप सक्त गिरि पर जाकर बसे थे। निर्वाणके २० वर्ष
पीछे वहाँ उन्होंने सुक्ति लाभ किया। युयेनचुयाङ्गके
बहुत पहले (ई० की ५वीं शताब्द) फाहियान नामक
दूसरे चीनपरिव्राजक कुक्कुटपाद देखने गये थे। उन्होंने
लिखा है—“महाकाश्यपके कारण यह गिरि एक प्रधान
बौद्धतीर्थके रूपसे प्रसिद्ध है। प्रतिवर्ष बौद्ध तीर्थयात्री
यहाँ आकर काश्यपकी पूजा करते हैं। उसी समय
अर्चत् पा और धर्मापदेश सुना उनका सन्देश मिटाते
हैं। इस पहाड़ पर प्रति सावधान होकर घाना पड़ता
है। चारों ओर निविड़ वन है। सिंह, व्याघ्रादि हिंस्र
जन्तु विचरण करते हैं।”

युयेनचुयाङ्गके भ्रमणवृत्तान्तमें पढ़ते हैं—“कुक्कुट-
पादके निकट ही त्रिशूङ्गपर्वत है। सम्यकालको
दूरसे इस त्रिशूङ्गपर्वतमें (स्रभावनतः) उज्ज्वल आलोक
हुवा करता है। किन्तु पहाड़पर चढ़नेसे कुछ देखनेमें
नहीं आता।”

कुक्कुटपादका वर्तमान नाम ‘कुरकीहार’ है। वजीर-
गंजसे डेढ़ कोस उत्तरपूर्व और गयासे भी ८ कोस
उत्तरपूर्व वह अवस्थित है। वर्तमान कुरकीहार नामक
स्थानसे पाव कोस उत्तर पास ही पास ३ पहाड़ देख
पड़ते हैं। उसपर कई बौद्धस्तूप और बुद्ध-मूर्तिका
भग्नावशेष विद्यमान है।

कुक्कुटपादप (सं० पु०) कुक्कुटपादी द्वयोः।

कुक्कुटपादौ (सं० स्त्री०) देवसर्पप, किसी किन्नरका
सरसाँ। वह सर, मूलमें रक्त, हृत्पादा, गन्धमें अथ

और सन्निपात, कफ एवं वातनाशक होती है।

(वेद्यक निघण्टु,)

कुक्कुटपुट (सं० पु०) इसप्रमाण खातमें दशवर्ग करौष क्षत औषधका पुट। मतान्तरमें किसीने उसे वितस्ति-
मात्र, किसीने घोडशांशुल और किसीने षडङ्गुल
प्रमाण घन खात कहा है।

कुक्कुटपुटभावना (सं० स्त्री०) मिलित पल्लव्य रससे
भावना दे कुक्कुटपुटद्वारा शोषण करना चाहिये।

कुक्कुटपेटक (सं० पु०) कुक्कुटपिच्छ, सुरगीकी पूँक।

कुक्कुटमञ्जरो (सं० स्त्री०) चविका, चाव।

कुक्कुटमण्डप (सं० पु०) काशीस्थ मुक्तिमण्डप। उसके
उक्त नाम होनेका कारण इस प्रकार लिखा गया
है—कोई ब्राह्मण स्त्रीय पत्नी और दो पुत्रोंके साथ
चण्डालसे दान लेनेपर कुक्कुटयोनिकी प्राप्त हुवा था।
फिर वह लोग कुक्कुटयोनिमें उत्पन्न हो काशीकी
प्रान्तसीमा पर रहने लगे। उस जन्ममें उनके जाति-
स्मरण हो गया। किसी दिन कई तीर्थयात्री उक्त स्थान
पर पहुँच परस्पर काशीतीर्थका माहात्म्यादि वर्णन
करते थे। कुक्कुटविशेष मनोयोगसे कथा सुन उनके साथ
काशीमें जाकर उपस्थित हुवे और मुक्तिमण्डपमें रह
नियत रूपसे यथानियम स्नान एवं काशीकथाश्रवणादि
पुण्य कार्य करने लगे। उस पुण्यफलसे वह सभी स्थान
समुदाय पापशून्य हो देह परित्याग कर विमानमें
आरोहणपूर्वक शिवलोकको चले गये। इसी प्रकार
कुक्कुटोंके मुक्तिलाभ करनेसे यह मुक्तिमण्डप कुक्कुट-
मण्डप नामसे विख्यात हुवा है। (काशोखण्ड, २८५ च०)

कुक्कुटमर्दका (सं० स्त्री०) आरामशीतला, एक खुश-
बूदार सली।

कुक्कुटमस्तक (सं० स्त्री०) कुक्कुटस्यैव मस्तकं शिखा
यस्य, बहुव्री०। १ चव्य, चाव। २ मरिचभेद, किसी
किस्मकी मिच।

कुक्कुटव्रत (सं० स्त्री०) कुक्कुट इत्याख्यं व्रतम्, मध्यप-
दको०। एक व्रत। सन्तानकी कामनासे स्त्री उक्त व्रत
पालन करती है। उसे कालितासप्तमीव्रत भी कहते
हैं। भाद्रमासकी शुक्ला सप्तमीको यथाविधि स्नान और
शिवदुर्गाकी पूजा कर कुक्कुटव्रत आचरण करना पड़ता
है।

“भाट्टे मासि सिते पक्षे सप्तम्यां नियमेन या।

खात्वा शिवं लेखयित्वा मण्डले च सङ्गान्वितम् ॥

पूजयेच्च तदा तस्या दुष्प्राप्यं नैव विद्यते।” (त्रियादित्वा)

कुक्कुटशिख (सं० पु०) कुक्कुटस्य शिखेव शिखा यस्य,
बहुव्री०। कुसुम्भवृत्त, कुसुमका पेड़।

कुक्कुटा (सं० स्त्री०) पीतकिण्टो, पीली भाङ्गी।

कुक्कुटागिरि (सं० पु०) कुक्कुटप्रधानो गिरिः, किंशुल-
कादित्वात् दोर्घः। वनगिर्योः संज्ञायाम् कोटरकिंशुलकादीनाम्।
पा ६। १। ११०। अधिक परिमाणमें कुक्कुटविशिष्ट पर्वत,
सुरगांका पहाड़।

कुक्कुटाण्ड (सं० स्त्री०) कुक्कुट्याः अण्डः, पुंवद्भावः।
कुक्कुटडिख, सुरगीका अण्डा। २ धान्यविशेष, किसी
किस्मका धान।

कुक्कुटाण्डक (सं० पु०-स्त्री०) १ त्रोटिधान्यविशेष,
किसी किस्मका धान, दुब्बी। उसका तण्डुल अण्ड
तुल्य होता है। २ सुरगीका अण्डा।

कुक्कुटाण्डमम (सं० पु०) कुक्कुटाकार वर्णं वार्ताकी,
सुरगीक अण्डे-जैसा बैंगन या भाँटा।

कुक्कुटाभ (सं० पु०) कुक्कुट इव आभाति कुक्कुट-
भा-क। १ कुक्कुट सदृश वर्णरव सर्पभेद, सुरगीकी
तरङ्ग रंग और चाल रखनेवाला साँप। उसे कुक्कुटाङ्गि
भी कहते हैं।

कुक्कुटाराम—एक बौद्धविहार। राजा अशोकने बौद्ध-
धर्म अवलम्बन कर सर्वप्रथम उक्त आराम बनाया था।
वह पाटलिपुत्रके दक्षिणपूर्व पार्श्वपर अवस्थित रहा।

कुक्कुटामं (सं० स्त्री०) देशविशेष, एक मुक्त या
जगह।

कुक्कुटासन (सं० स्त्री०) एक आसन। नाड़ी निर्मल
करनेके लिये उक्त आसन लगा वायु रोकना पड़ता
है। कुक्कुट देखो।

कुक्कुटाङ्गि, कुक्कुटाभ देखो।

कुक्कुटि (सं० पु०-स्त्री०) कुक्कुट इव आचरति, कुक्कुट
आचारे कृप् ततः इन्। दम्भाचरण, गुरुरका इज-
हार।

कुक्कुटो (सं० स्त्री०) कुक्कुटि-ङीष्। १ मिथ्याचरण,
भ्रूँटी चाल। २ क्षुद्र गृहगोधिका, छिपकली। ३ कोट-

विशेष, कोई कीड़ा। ४ स्त्रीविशेष, कोई औरत। ५ कुक्कुटपक्षी, सुरगी। ६ शाल्मलिपक्ष, सेमरका पेड़। ७ कुक्कुट, सुरगा। ८ कक्कभपक्षी, जंगली सुरगी या सुरगा। ९ कुक्कुटाण्डाकार कन्द, सुरगीके चण्डे-जैसा एक लता। १० शितिवारक, एक सजी। ११ उत्कट पक्ष, एक पेड़। १२ उच्चटामूल, चेंचकी जड़।

कुक्कुटीमूल (सं० क्ली०) शाल्मलिमूल, सेमरकी जड़ या सुसरा।

कुक्कुटीव्रत, कुक्कुटव्रत देखो।

कुक्कुटीरग (सं० पु०) गीणससर्प, एक सांप।

कुक्कुभ (सं० पु०) कुक्कु शब्द भाषते, कुक्कुभाष बाहुलकात् उ यद्वा कुक्कु इत्यव्यक्तं कौत्ति शब्दायते, कुक्कु कु बाहुलकात् भक्। १ पक्षिविशेष, कोई चिड़िया। २ वन्यकुक्कुट, जंगली सुरगा।

कुकुर (सं० क्ली०) १ ग्रन्थिपण, गंठोला। (पु०) कोकते आदत्ते, कुक्कु क्षिप; कुक्कु किञ्चिदपि गृह्णन्तं जनं दृष्ट्वा कुरति शब्दायते, कुक्कु कुर-क। २ जगत्तुविशेष, कुत्ता। इसका संस्कृत पर्याय—कौलेयक, सारमेय, मृगदंशक, शुनक, भषक, खा, शुन, शुनि खान, भषण, भक्षुक, वक्रलाङ्गुल, ठकारि, रात्रिजागर, कालेयक, ग्राम्य-मृग, मृगारि, शूर और शयालु है। वह स्तन्यपायी मांसाशी चतुष्पद पशु है। मृगाल और ठक (भेड़िया) के इसकी गठनभङ्गिमा और कङ्कालादिका सादृश्य है। उसीसे प्राणितत्त्वविद् उक्त तीनों श्रेणीके पशुको 'कुक्कुर जातीय' (Canidae) कहते हैं। गृहपालित और वन्य भेदसे यह नानाप्रकारका होता है। गृहपालित यह नाना श्रेणियों में विभक्त है। उसी प्रकार वन्यका श्रेणीभेद भी खलप नहीं।

कुकुरजातीय पशुओंके मध्य भेड़ियों, कई तरहके जंगली कुत्तों और लोमड़ियोंमें इतना सौसादृश्य रहता कि उनका पहचानना मुश्किल पड़ता है। इसीसे प्राणितत्त्वविद्ने खिर किया है कि कुक्कुर होनेसे उसका कांशुल वाम दिक्को लिपट चक्राकार बन जाता और चलते समय पीठ पर उठ जाता है।

कह नहीं सकते मनुष्यके कितने कार्य पशुसे निकलते हैं। कुत्ता सर्वापेक्षा मनुष्यका वशीभूत और

विश्वासी हो जाता है। उसे मनुष्यके साथ रहना भी बहुत अच्छा लगता है।

सकल देशमें यह लोगोंके घर आश्रय पाता है। हिन्दू उसे अस्पृश्य मानते हैं। फिर भी वह कुत्तेकी खेहदृष्टिसे देखते और आशारादि प्रदान करते हैं।

कक्कुर विश्वासी, प्रभुभक्त और इङ्कितज्ञ होता है। दोष हो जानेसे वह क्षमाप्रार्थनाका भाव दिखाता है। किसी कार्यमें आदिष्ट होनेपर पालित कुक्कुर प्राणपणसे उसे पालन करता है। साध्यातीत होने पर अक्षमताके लिये वह प्रभुके निकट लज्जित होनेके भयसे उस कार्यमें प्राण पर्यन्त दे देता है। कुक्कुर क्रोध, लज्जा, घृणा, मनोकष्ट इत्यादि भाव सुस्पष्ट व्यक्त कर सकता है।

जिन गुणोंसे निकट पशु मनुष्यका मनोयोग आकर्षण कर सकता, उन सबका समावेश कुक्कुरमें मिलता है। यह सर्वदा साहस बल और बुद्धिबलके साथ प्राणपणसे पालकके उपकारमें नियुक्त रहता है। वह प्रतिपालकके निकट स्वीय मनोभाव प्रकाश कर परामर्श ले सकता, पूँछ कर कार्य कर सकता, अन्याय काय होनेसे क्षमा माँग सकता और स्वीय बुद्धिसे प्रभुकी इच्छा, आदेश इत्यादि स्पष्ट समझ सकता है। उसकी आन्तरिक वृत्ति प्रति सतेज होती है। मनुष्यकी भांति स्वार्थपरताके बदले उसकी विश्वस्तता और प्रभुभक्ति इतनी अधिक एवं दृढ़ रहती कि देख कर विस्मित होना पड़ता है। उसे लोभ, स्वार्थपरता, प्रतिहिंसनेच्छा वा प्रभुकार्यमें विरक्ति नहीं होती। वह सर्वदा दृढ़प्रतिज्ञ, अध्यवसायी एवं वशीभूत रहता और प्रभुकी दया तथा आदर पर बिकता है। प्रतिपालकका सदय व्यवहार वा आदर वह जितना खरब रखता उतना उसके दुर्व्यवहार पर ध्यान नहीं करता। यह पालित होने पर प्रभुकी इच्छा वा आदेश के बिना कोई कार्य करनेसे हिचकता है। यदि ठठातू कुक्कु हो जाता, तो तत्क्षणत् निकट जाकर मृदु मृदु शब्द कर पूँछ जिसा कातरदृष्टिसे प्रभुके मुखको और देख पैर पर मस्तक रगड़ वह क्षमा माँगता है। कोई पाषण्ड प्रभु यदि उस पर भी क्षमा न कर मारने लगता, तो यह उसे मोरव सहन

करता और उसके लिये प्रभुकी कोई क्षति करनेसे दूर रहता है।

वह सहजमें वशीभूत और प्रतिपालित होता है क्षति अल्प समयमें ही पालकका स्वभाव समझ उसके अभिप्रायानुसार चलना सीखता है। वह जैसे संसर्गमें रहता, उसीके अनुरूप उसकी प्रकृतिका भाव भी बनता है। इसलिये प्रभु धनो हो या निर्धन, वह सबके प्रति समान भावसे अनुरक्त हो सकता और प्रभुकी अवस्था बदलते भी उसका वह अनुराग नहीं छूटता बढ़ता। क्या पक्षीघाम, क्या नगर—जिस घरमें पालित होकर वह रहता, उसमें सहसा दुष्ट मनुष्य प्रवेश कर नहीं सकता। फिर गृहाल, वृक्ष प्रभृति हिंस्र जन्तु भी वहाँ कोई अपकार कैसे कर सकते हैं। यह रात-को जाग प्रभुके भवनको चारों ओर घूम फिर अपनी इच्छासे पहरा देता है। यदि चौरादि प्रवेश करता, तो वह तत्क्षणतात् उस पर झपटता और अपहृत द्रव्य उधार कर उसे छोड़ चलता है। यदि दुष्ट पशु होता, तो यह उस पर आक्रमण कर खण्ड खण्ड नोच डालता है। दूसरी ओर वह इतना शान्त-स्वभाव रहता, कि प्रभुका अपहृत द्रव्य पानेसे चोर को छोड़ देता और हिंस्र पशुको भी आक्रमण नहीं करता। यदि अपनी क्षमतासे वह उनको बाधा नहीं दे सकता, तो उत्तरवसे प्रभुको जगाने लगता है। कोई कोई कुत्ता इतना संयमी और निर्भीक रहता कि लुधासे मर जाते भी प्रभुके असाक्षात् वा उनके विना दिये खाद्य ग्रहण नहीं करता। उक्त स्थितिमें ३१ दिन तक वह अनाहार रहते देखा गया है। वह बहुत शीघ्र शिक्षित होता है। शिक्षित हो यह पाछेट (शिकार) में आनन्दित और युद्धमें उत्कृष्ट पड़ जाता है। वह शिकारीका सामान्य इङ्गित भी समझ सकता है। समय समय पर शिकारी कुत्तोंके दलमें जो सर्वापेक्षा पुरातन और शिक्षित रहता, वह अपने दलमें नेतृत्व करता है। वह अपने दलको शिकारीका अभिप्राय समझ लेता और रीत्यनुसार चलना कर प्रबोध सेनापतिकी भांति कार्यकुशलता दिखा देता है। कार्य हिंसा-जनक होते भी शिकारी कुत्ता बड़े बड़े वीरोंकी भांति

उदारहृदय और इसका शान्त स्वभाव रहता है। उपस्वभाव भी पाया जाता है। किन्तु विना कारण उस उपताका प्रकाश देखनेमें कम आता है।

पुत्र भी प्रलोभनमें पड़ पिताको मार सकता, किन्तु यह इतना विश्वासो रहता कि सहस्र सहस्र प्रलोभन और प्रलोचनासे भी प्रभुका विन्दुभाव अनिष्ट नहीं करता। वह पालित होनेसे ही अनुरक्त, अनुगत, विश्वस्त एवं अक्रान्त वस्तु और दासकी भांति व्यवहार रखता है।

यह तो उसके साधारण स्वभावसिद्ध गुणका विवरण हुआ। इसके निवा सकल गुणा और कई असाधारण गुणोंके प्रमाणस्वरूप अनेक इतिहास प्रचलित हैं। इसको खेती और जाति-विभाग नानाविध है। उक्त सकल विभागको इतनी अधिक संख्याका कारण केवल विभिन्न देशीय मौलिकजातिक साथ संयोग-सङ्करता है।

भारतवर्षमें आज भी किसी देशीय व्यक्तिद्वारा जीवतत्वके सम्बन्धमें आलोचना की नहीं गयी। इसीसे यह स्थिर करना असम्भव है—किस जातीय कुक्कुरकी मौलिक समझ सकते हैं। युरोप और अमेरिकामें उक्त विषय पर अनुसन्धान द्वारा स्थिर हुआ है—जिस कुत्ते-को गड़रियेका कुत्ता (Shepherd's Dog) कहते, वही सम्भवतः समुद्रय जातिका जनक है। उक्त विषयमें वह लोग इस प्रकार मीमांसा करते हैं :—

युरोपसे एक बार कई कुत्ते अमेरिकाके जंगलमें छोड़े गये थे। १५०२०० वर्ष पीछे परीक्षा करने पर मालूम हुआ कि वंशधरके आकारादि और स्वभावसे अनेक भेद पड़ते भी उनको गठनभङ्गो अधिकांश आम्य कुक्कुरसे मिलती थी। वह बिलकुल धूसरवर्णके शिकारी कुत्ते देख पड़ते थे, किन्तु गड़रियेके कुत्तोंसे विशेष भिन्नाकार न रहे। उनसे विवेचना की गयी—अमेरिकाके उक्त निर्वासित कुत्तोंका वंश ग्रे-हाउण्ड (Grey-hound) यानी धूसरवर्णके शिकारी कुत्ता की अपेक्षा गड़रियेके कुत्तोंसे निकट सम्बन्ध विद्यमान है।

एतद्विषय विभिन्न देशका प्रमाणवृत्तान्त पढ़नेसे समझ पड़ता कि शीतप्रधान देशके कुक्कुरका नासिकाग्र लम्बा और कर्णद्वय उभयमुख होता है। सापेक्षके

कुत्तेकी आकृति लुट्ट, नासिकाय सूक्ष्म और कर्ण ऊर्ध्व-मुख रहता है। साइबेरियाके कुत्तेका (जिसे लुफ़ डाग (Wolf Dog) अर्थात् भेड़ियाकुत्ता कहते हैं) कान सोधा, लोम कर्कश और नासाय सूक्ष्म होता है। किन्तु आकृतिमें वह लापलेण्डके कुत्तेसे बड़ा बैठता है। आइसलैण्डके कुत्ताकी आकृति अधिकतर साइबेरियाके कुत्तासे मिलती है। उत्तमाशा अन्तरीपादिमें उक्त आकारके कुत्ते देख पड़ते हैं। फिर गड़रियेके कुत्तोंकी भी आकृति अनेक अंशमें वैसी ही होती है। सुतरां युरोपीय अनुमान बहुत कुछ सत्य समझ पड़ता है।

‘गड़रियाका कुत्ता’ कुक्कुर जातिकी मौलिक भित्ति है। उत्तरदेश (लापलेण्ड, साइबेरिया, आइसलैण्ड, कामस्काटका प्रभृति स्थान) की भेजा जानीसे कालक्रम पर समके जो सन्तान उपजते वही तत्तद्देशके जनवायुके गुणसे तत्तद्देशीय कुक्कुर बनते हैं। इस प्रकारके अनुमानका कारण पड़ले ही कह चुके हैं कि उक्त सकल देशोंके कुक्कुर ‘गड़रियेके कुत्तों’की भांति कर्ण नासा और वन्य आकृतिविशिष्ट हैं। गाचरोम सबके कर्कश होते हैं, केवल देशके शीततापके परिमाणसे वह दीर्घ या लुट्ट और घन वा विरल रहते हैं। फिर गड़रियेका कुत्ता ही समशीतोष्ण प्रदेश (इङ्गलैण्ड, फ्रांस, तिब्बत, तातार प्रभृति)में रहकर माष्टिफ (बड़े कुत्ते), हाउण्ड (शिकारी कुत्ते) या बुलडाग (गुलडाक) का आकार धारण करता है। कारण माष्टिफ और बुलडाग अर्णीमें उसके कानका अर्धांशमात्र लटक पड़ता है, किन्तु स्वभाव विशेष नहीं बदलता। शिकारी कुत्ता आकृति और स्वभावमें गड़रियेके कुत्तेसे सम्पूर्ण विभिन्न-जैसा मालूम पड़ते भी वस्तुतः वैसा नहीं होता। शिकारी कुत्तियाँ गर्भसे और माष्टिफ, बुलडाग या शिकारी कुत्तेके औरससे सेंटिङ्गडाग, टेरियर तथा हाउण्डकी उत्पत्ति है। उक्त सकल कुक्कुर स्पेन तथा बार्बरीमें प्रेरित होनेसे स्पेनियल और बारबेट नामक अर्णी उत्पादन करते हैं। कृष्णवर्ण स्पेनियल इङ्गलैण्ड जाकर खेतवर्ण ‘विगल’ निकालता है। अनुमान किया जाता

कि टेरियर भी उक्त कृष्णकाय विगलसे उत्पन्न हुआ है।

गड़रियेका कुत्ता रुम, डेनमार्क प्रभृति स्थानोंमें जा कर ‘बृहत्काय डेन’ (Large Dane) नामक कुक्कुर और दक्षिण जाने पर (भूमध्यसागरके तीर) बृहत्काय धूसरवर्णका हाउण्ड उत्पादन करता है। फिर धूमर हाउण्डसे इङ्गलैण्डमें लुट्टकाय धूसर हाउण्ड निकलते हैं। ‘बृहत्काय डेन’ आयरलैण्ड, तातार और अलबानियाका ‘बृहत्काय आयरिश कुत्ता’ (Large Irish Dog) उत्पादन करता है। वही सर्वापेक्षा दीर्घच्छन्द कुक्कुर है।

बुलडाग (गोमुखकुक्कुर) इङ्गलैण्डसे डेनमार्क जानेपर ‘लुट्टकाय डेन’ (Small Dane) और ‘लुट्टकाय डेन’ अपेक्षाकृत पोष प्रदेशमें पहुँच ‘तुर्की कुत्ता’ (Turk Dog) उत्पादन करता है। उक्त तुर्की कुत्तेके गात्रमें अति सूक्ष्म रोम होते हैं।

उक्त कई जातीय कुक्कुर केवल मौलिक जातिसे उत्पन्न हैं। भिन्न भिन्न देशके जनवायु और आहारके तारतम्यसे वह भिन्नाकार प्राप्त होते हैं। एतद्विन्न जितने प्रकारके कुत्ते देख पड़ते, वह वर्णमङ्गर ठहरते हैं।

वर्णमङ्गर कुक्कुर नानाविध हैं। उनमें कई जाति निर्णीत होने पर विशेष आख्यासे अभिज्ञित होते हैं। यथा—

धूसर हाउण्डके साथ गड़रियेके कुत्तेके मिलनसे जो शावक निकलता, उसका नाम ‘मङ्ग्रेल ग्रे हाउण्ड’ (Mongrel Grey-hound) पड़ता है। वह व्याघ्रचर्मवृत्त धूसर हाउण्ड जैसा अनुमित होता है। उसका मुखाग्र धूसर हाउण्डकी भांति लम्बा नहीं रहता।

बृहत्काय स्पेनियलके साथ बृहत्काय डेनका सहवास होने पर ‘कालब्रिया कुत्ता’ (Calabrian Dog) उत्पन्न होता है। वह देखनेमें अच्छा रहता है। उसके गात्रमें बहुत घन रोम रहता और आकारमें वह बृहत् माष्टिफकी अपेक्षा भी बड़ा निकलता है।

स्पेनियल और टेरियरके संयोगसे ‘बरगण्डी स्पेनियल’ (Burgundy Spanial) उत्पन्न होता है।

स्योनियल और लुट्रकाय डेन मिल कर सिंह कुत्तर (Lion Dog) उत्पादन करते हैं। उक्त कुत्तर देखनेमें सम्पूर्ण सिंह-जैसा होता है। गात्रमें अति लुट्र लोम रहते हैं। किन्तु मुख, कण्ठके पश्चात्देश, गले और सामनेके पैरके बाल सम्पूर्ण केशरवत् लम्बे लम्बे होते हैं। लांगुल भी सिंहकी भांति लोमश और कटिदेश अधिक चौण रहता है। उक्त जातिका कुत्ता बहुत कम उपजता है।

बड़े स्योनियल और बारबेटसे 'बरगस' (Dog of Burgos) उत्पन्न होता है। उसका आकार लुट्रकाय बारबेटसे मिलता है। गात्रमें कुञ्चित कुञ्चित लम्बे चिकण लोम रहते हैं। लुट्र स्योनियल और बारबेटके मिश्रणसे लुट्र बारबेट (Little Barbet Dog) उत्पन्न होता है।

इङ्गलेण्डके बुलडाग और लुट्र स्योनियल संश्लेषसे 'पग' (Pug) नामक कुत्तर निकलता है।

उक्त कुत्तर प्राथमिक सङ्कर (Single Mongrel) है। किन्तु कितने ही उक्त सङ्करवर्ण और लुट्रजातिके मिश्रणसे उत्पन्न हुये हैं। वह द्वैतीयिक वा 'डबल भंगेल' (Double Mongrel) कहलाते हैं। यथा—पग और लुट्रडेनके मिलनेसे शॉक (Shock Dog)-का जन्म है। वह लोमसे आवृत और लुट्रकाय होता है। उसे इस देशमें 'भबरा' कहते हैं। पग और लुट्रकाय स्योनियलके संयोगसे आलिकाण्ट (Dog of Alicant) उत्पन्न होता है।

लुट्र स्योनियल और बारबेटके सङ्गवाससे 'माल्टीज' (Maltese) माल्टाईपीय वा 'लैप-डॉग' (Lap Dog) कुत्ते का जन्म है।

साधारणतः लोग उक्त सकल कुत्तर पालते हैं। एतद्विना एस्कुइमो प्रभृति कई प्रकारके दूसरे कुत्ते भी होते हैं।

१। एस्कुइमो—अमेरिकाके तुषारावृत स्थानकी अधिवासी आदिम जातिकी एस्कुइमो कहते हैं। उन लोगोंके देशमें एक प्रकारका कुत्ता होता है। वह देखनेमें कुछ गड़रियेके कुत्ते और कुछ भिड़िये—जैसा रहता है। उसके कान छोटे और सीधे होते हैं। गात्र घनलोमसे

आवृत रहता है। वह लोमश लांगुल वक्रभावसे पीठ पर उठाये रखता है। उसकी जंघाई २ फीट और लम्बाई लांगुलमूलसे मस्तक पर्यन्त २१ फीट होती है। उसका वर्ण पिङ्गल, श्वेत, कृष्ण और उक्त तीनों वर्ण-विशिष्ट रहता है। एस्कुइमोने हरिण, मकर और भाबुक-का शिकार करते समय उससे साहाय्य लेते हैं। घोषकाल को वह ७, ७१ सेर बोझ ले जाता और ले पाता है। शीतकालको बर्फसे ढकी राहपर उससे चक्रविहीन नौका खिंचानेका काम लेते हैं। ७८ कुत्ते ५१६ लोगोंको पनायास घण्टेमें ७८ मील चल ६० मील तक पहुँचा सकते हैं। एस्कुइमो उनसे बहुत प्रसन्न रहते हैं। वह भी प्रभुके बहुत अनुगत होते हैं। शीतकालको उन्हें कम खानेकी मिलता है। किन्तु फिर भी वह प्रभुके लिये परिश्रम उठानेमें तृप्ति नहीं करते। नौका चलानेके लिये उन्हें चाबुककी मार सहना पड़ती है। उसपर भी वह अन्यथा व्यवहार नहीं करते। एस्कुइमो कुत्ते कभी कभी भूकते हैं। बर्फसे सारी राह ढक जाते भी वह घ्राणबलसे ठीक पथ पहचान चले जाते हैं।

२। कामस्काटकाउंडस और साईबेरियाका कुत्ता वह आकृतिमें एस्कुइमो कुत्तेसे अधिक बड़ा रहता है, किन्तु देखनेमें एकरूप समझ पड़ता है। वर्ण ईशत् धूसराभ श्वेत है। एस्कुइमोकी पपेचा भी वह बलवान् और कार्यक्षम होता है। लोम दीर्घ और लाङ्गल लम्बा लगता है। क्या बर्फ क्या जमीन् पर वह डोंगो और एकपड़िया गाड़ी खींच ले जाते हैं। उनमें इतना ही बल है कि सारथि व्यतीत गाड़ी पर दूसरे दो लोगोंके अपना अपना सामान लेकर बैठते भी ५ कुत्ते लच्छन्दमें ६० मील चल सकते हैं। गाड़ीमें एक आगे और उसके बगलमें दो ३ कुत्ते जुगतते हैं। सम्मुखका कुत्तर पथप्रदर्शककी भांति भूमि सूँघते सूँघते आगे बढ़ता है। वह बहुत द्रुत दौड़ते हैं। कहते हैं किसी समय साढ़े तीन दिनमें वह २७० मील एक गाड़ी खींच ले गये थे।

कामस्काटकामें मई मासकी उन्हें छोड़ देते हैं। उस समय वह इधर उधर खाते फिरते और ठीक नहीं

कहा रहते हैं। किन्तु शीतकाल लगते ही वह अपने अपने प्रभुके निकट लौट आते हैं। उन्हें खानेकी बहुत कम मिलता, जिससे उनका पेट नहीं भरता। फिर भी वह प्रभुके इतने वशीभूत रहते, कि लोग देख देख कर विस्मय करते हैं।

उक्त तुषारावृत देशसमूहमें उन्हें ही परमेश्वरकी दयाके परिस्फुट लक्षणस्वरूप मानना पड़ता है।

किसी किसी प्राणितत्वविद्के मतमें एस्कूडमो, कामस्काटकाडेल और साइबेरियाके कुत्तेका वन्य-भाव आजभी सम्पूर्णमें गया नहीं है। वह मनुष्यके पूरे वशमें कैसे रह सकते हैं। उनकी बिखरता भी वैसी दृढ़ नहीं। कभी कभी वह अवाध्य हो जाते और प्रभुके पालित पशुपक्षी पकड़ पकड़ खाते हैं। शिकार उनके मुँहसे मुश्किलमें छूटता है। उक्त सकल कारणोंसे अनेक लोग समझते कि पालू कुत्ते और मेडियेके सहयोगसे उनकी उत्पत्ति है। उसीसे वह वन्यभावको मनुष्यका सहवास होते हुये भी छोड़ नहीं सकते। इस अनुमानमें सत्य हो या न हो, किन्तु यह बात सब प्राणितत्वविद् स्वीकार करते हैं कि उनकी पालति और प्रकृति मेडियेसे मिलती है।

३। आइसलैण्ड और लापलैण्डका कुत्ता (The Iceland and Lapland Dogs)-भी पूर्वोक्त जातीय ही है। परन्तु वह एस्कूडमो और पालू कुत्तेसे आकृतिमें छोटे होते हैं, गात्रवर्ण साधारणतः श्वेत और तरल पाटल रहता है।

४। चीनदेशका कुत्ता (China Dog)-भी उसी जातिका होता है। उसका गात्रवर्ण सर्वदा कृष्ण रहता है, फिर कोई छोटा और बड़ा निकलता है।

५। पोमेरेणिय कुक्कुर (The Pomeranian Dogs)-भी साधारणतः उत्तर युरोपमें कुत्ता कहाते हैं। उनमें बड़े लहत्काय मेडियेकुत्ते (Large Wolf Dogs) और छोटे स्पिज (Spitz) नामसे प्रसिद्ध हैं। वह भी पूर्वाक्त श्रेणिके ही अन्तर्गत हैं। उनकी घ्राणशक्ति अति तीव्र होती है। वह सम्पूर्णरूपसे मनुष्यको वशता स्वीकार करते हैं। पोमेरेणिय प्रहरितामें अति दक्ष और अति विश्वस्त होते हैं।

पूर्वोक्त कई प्रकारके कुत्तोंसे आकारगत विलक्षण भिन्नताविशिष्ट कुक्कुरका श्रेणी विभाग आगे लिखा जाता है। उन्हें शिकारी कुत्ते कहते हैं।

१ हाउण्डकी—हिन्दीमें मृगदंशक (शिकारी कुत्ता) कहते हैं। उक्त जातीय कुक्कुरकी नामा भेद है। मृगदंशक जातीय कुक्कुरकी घ्राणशक्ति और दृष्टिशक्ति अति तीव्र होती है। वही उन्हीं दानों शक्तियोंके साहाय्यसे आखेट (शिकार)-को सम्पन्न और अनुधावन करता है। उक्त शक्तियोंके अनुसार वह दो भागमें विभक्त किये जा सकते हैं। उनमें घ्राणशक्तिका प्रावण्यविशिष्ट कुक्कुर आखेटमें सर्वापेक्षा पटुता प्रकाश करता है। उक्त दानों श्रेणियोंमें भी नानारूपविभाग लगे हैं।

(क) घ्राणशक्तिके प्रावण्यविशिष्ट कुक्कुरोंमें—बीगल (Beagle) वा सुदृग्शक-आखेटिक, रक्त-पिपासु मृगदंशक (Blood-hound), शृगाल-आखेटिक (Hoose-hound), हरिण-आखेटिक (Stag-hound), उद्दिडाल आखेटिक (Otter-hound), शूकर-आखेटिक (Boar-hound or Great Dane), शक-आखेटिक (Rabbit hound or Harrier), पक्षी-अनुसन्धानकारी (Retriever), निर्देशक (Pointer) और अफरीक-देशीय मृगदंशक (African Blood hound.) प्रधान है।



अफरीकाका शिकारी कुत्ता।

(ख) दृष्टिशक्तितीव्रताविशिष्ट कुक्कुरोंमें—धूमर गृगदंशक (Grey hound) अथवा ताजी कुत्ता सबसे बड़ा होता है।

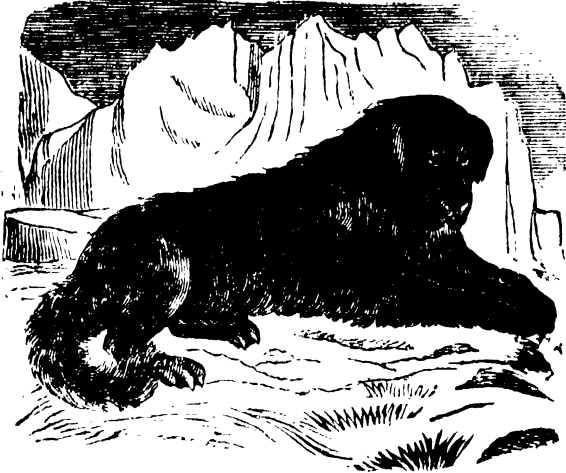
२। स्पेनियल (Spaniel) जातीय कुक्कुर घ्राणशक्ति अति प्रबल रखते भी अपनी प्रभुभक्ति और मनुष्य की वश्यताके लिये विख्यात है। उक्त जातिमें जलचर स्पेनियल (Water-Spaniel), स्पेनियल (Spaniel), चार्लस राजाका यन्त्रोत्पादित कुक्कुर (King Charles' Dog.) ब्लेनहिम स्पेनियल (Blenheim Spaniel), न्यूफाउण्डलेण्ड देशीय कुक्कुर (Newfoundland Dog), २ लक्ष्यकारी (Setter), हारबेट (Harbet), क्लम्बरी (Clumber), कुक्कुरपाखेटिक (Cocker), स्प्रींगर (Springer) प्रभृति कुत्ते अच्छे होते हैं।

३। टेरियर (Terrier) जातीय कुक्कुर पक्षीके आखेटमें बहुत दक्ष रहता और प्रभुकी भी प्रिय लगता है। वह अपेक्षाकृत कुछ लुद्धकाय होता है। उक्त जातीय कुक्कुर प्रधानतः दो भागमें विभक्त है। एकजातीय कुक्कुर कोमल-लोमविशिष्ट और अपरजातीय कर्कशलोम-विशिष्ट रहता है। कर्कश-लोमविशिष्ट टेरियर लुद्ध-मुख, खर्वपद, कष्टसहिष्णु, ईषत् उग्रस्वभाव और क्षणाभ श्वेतवर्ण होता है। उसे स्कॉटलेण्डीय टेरियर (Scotch Terrier) कहते हैं। फिर कोमल टेरियर उन्नतमस्तक, ईषत् दीर्घमुख, लज्जल घूर्णमान चक्षु, सुगठित देह, ऊर्ध्वकर्ण, (कभी कभी कर्णका ऊर्ध्व-भाग उलटा भी होता है) और सरलपद हुवा करता है। उसे साधारण या विलायती टेरियर (Common or English Terrier) कहते हैं। वह बुद्धिबलसे नाना कौतुकजनक क्रीड़ा सोख सकता और अतिग्रय प्रभुभक्त रहता है। उक्त जातिके सहयोगसे नानाविध सङ्गरवर्ण कुक्कुर उत्पन्न होते हैं, जो हम पढ़ने का बता चुके हैं। टेरियर मूसे, पक्षी और लोमही मारनेमें अतिग्रय पटु होता है। इसीसे उसे नानाविध नाम प्राप्त हैं। जैसे मृगालहन्ता टेरियर (Fox-terrier), जो कोमल और कर्कश लोम (Smooth and Rough) दो प्रकारका है, मूषकहन्ता (Rat-catch

er) और खिलोना (Toy-terrier)। एतद्विना उसके दूमे भी कई श्रेणीभेद हैं। यथा ग्रायरलेण्डोय टेरियर (Irish terrier), योर्कशायरीय टेरियर (Yorkshire terrier), स्काईटेरियर (Sky-terrier, कर्नेल स्काईके नामपर), डण्डी डिमोंट (Dandie Dimont व्यक्तिके नामानुसार)। बुलडागके सहयोगसे टेरियर एक प्रकारका शावक उत्पादन करता है। उसका नाम बुलटेरियर (Bull-terrier) है। उक्त सङ्करजातीयकी भांति दृढ़प्रतिष्ठ कुक्कुर आज भी कहीं देख नहीं पड़ता। टेरियर कुत्ता गर्तके जीवसे शिकारको निजाल लेता है। भारतवर्षमें मृगाल, भेड़िये और हाथनेके शिकार पर उसको ले जाते हैं। वह बुद्धि और साहस जहां बुलडाग पागे नहीं बढ़ता वहां भी भपट पड़ता है।

४। मास्टिफ (Mastiff)—सर्वापेक्षा मनुष्यके वशीभूत, प्रभुभक्त और विश्वस्त होता है। वह शान्त स्वभाव भद्र, गम्भीर, पसीमन्नमताशाली, तृहस्यस्तक, विस्तृतमुखमण्डल, स्थूल श्रोत्रशाली, वेष्टितकर्ण, विस्तृतकपाल, लामश, दीर्घलांगुन और सुगन्धित दीर्घ देह रहता है। रक्षणवेक्षणमें रखनेसे मास्टिफ कोई वस्तु प्राण रहते नष्ट या अपहृत होने नहीं देता। प्रभुकी द्रष्टरक्षाके लिये मृत्यु निश्चित समझ कर भी व्याघ्रसे लड़ने लगता, किन्तु विना कारण कम विगड़ता और चमत्ताका अपव्यवहार करनेसे हिचकता है। ग्रेट हटेन उक्त कुक्कुरके लिये चिर-विख्यात है। रोमक जब इङ्गलेण्डके राजा रहे, उक्त कुक्कुरको जातिगत विशुद्धतारक्षक, प्रतिपानन और शिष्टादानके लिये एक स्वतन्त्र राजकर्मचारी नियुक्त करते थे। मास्टिफ भी प्रबल घ्राणशक्तिविशिष्ट होता है। द्रावी बताते कि गलजातीय (Gaul.) लोग उक्त कुक्कुरको लड़ना सिखाते और स्वयं लड़ते समय उसे भी युद्धमें लगाते थे। उसको जमताका परिमाण अमोम है। यह परीक्षा करके निरूपित हुवा है कि ३ मास्टिफ युद्धमें भक्तुक और चार सिंहको परास्त कर सकते हैं। उनमें ३ श्रेणी मिलती हैं—विलायती मास्टिफ (English Mastiff), क्यूबीय मास्टिफ (Cuban Mastiff.)

धीर तिब्बतीय वा मोलासीय कुत्तर (Thibetan Mastiff or Molossean Dog)। रामपुरके राजाने पारस्यदेशीय (ईरानी) सूर हाउण्ड (ताजो कुत्ते)



तिब्बतीय वा मोलासीय कुत्तर।

धीर तिब्बतीय माष्टिकके सहयोगसे एक प्रकारका मिश्र कुत्तर उत्पादन किया है।

५। बुलडाग (Bull Dog, गोमुखकुत्तर)-का मुख मण्डक वन्ध वृषभ की भांति गम्भीर, भयजनक और कर्कश लगता है। इसीसे उसको उक्त नामपर अभिहित करते हैं। उसका निम्नोष्ठ कुछ दीर्घ, मस्तक बृहत्, मांसल, कर्कश एवं गुहभार, मुख छुद्र अथवा विस्तृत, थोड़ा स्थूल, कान टेढ़े, पद छुद्र, काय दृढ़, कण्ठ छुद्र और स्त्रभाव क्रूर होता है। वह देखनेमें व्याघ्र जैसा भयानक लगता और स्त्रभाव भी भयानक व्यक्त रहता है। बुलडाग बड़ी मुश्किलसे द्रिस्तता है। द्रिस्त जानेसे पालकको कोई भय तो नहीं रहता, किन्तु उसका स्त्रभाव और रूप देख सब कोई अत्यन्त सावधानतासे व्यवहार करता है। पहले युरोपमें सांडकी लड़ाई देखनेके लिये बुलडाग सिखाया जाता था। लोग उसे सांडकी भूमिपर गिरानेका कौशल उसे बताते रहे। अति सामान्य कारणसे वह क्रूर और हिंस्रक बन जाता है। उससे शिकारियोंका कोई बड़ा काम नहीं निकलता। फिर भी अनेक लोग शिक्षित कर बुलडागको भूकूके आखेटपर ले जाते हैं। बाइसन (जंगली भैंसे)-के शिकारमें उससे बड़ा काम निकलता है। उसका दंशनविषम अत्यन्त भयानक और

साहस प्रसीम है। वह अनायास सिंह, भूकू और व्याघ्रादिसे युद्ध करता है। सन्तरणमें भी बुलडाग सातिशय पटु होता है। न्यूफाउण्डलेण्डके कुत्ते जलमें सन्तरणकाल मर जाते हैं। किन्तु बुलडाग अति भीषण तरङ्गमें सन्तरण करता है। फिर भी न्यूफाउण्डलेण्डके कुत्तेकी भांति वह सन्तरण-कौशल धीर द्रुत सन्तरणमें पटु नहीं होता।

६। गडेरियेका कुत्ता (Shepherds' Dog) युरोपीय ग्राम्यकुत्तारोंका प्रधान है। आधुनिक जीव-तत्त्वविदके मतमें उक्त जातिसे ही समुदाय कुत्तर उत्पन्न हैं। किन्तु इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (अंगरेजी विश्वकोष) तुर्कीकुत्तेकी ही कुत्तर जातिका आदिजनक बताती है। स्काटलेण्डमें गडेरियेका कुत्ता सर्वापेक्षा विमिश्र अवस्था पर देख पड़ता है। उक्त देशमें उसका प्रयोजन भी बहुत अधिक रहता है। वहां अधिकांश लोग मेषपालकका व्यवसाय अवलम्बन करते हैं। इसीसे वे उसका बड़ा आदर रखते हैं कारण उक्त जातिके दो एक कुत्तेकी से कर बृहत् मेषपाल स्वच्छन्द रखपावेक्षण कर सकता है। वह शिक्षित होनेपर मेषोंको खड़हरसे (चारणभूमिसे) सावधानता सहकार हांक कर ले जाता है। भ्रूण (पाल)-से किसी मेषको छूट जानेपर वह खदेर लाता है। यदि मेषपाल विपथ हो जाता, तो वह उसे खदेर सुपथपर ले आता है। उसको बुद्धि और दृष्टिशक्ति इतनी तीव्र रहती कि पालके मध्य प्रत्येक मेषको पहचान रखता है। यदि अपर दलका मेष आ कर दलमें घुस पड़ता, तो उसे देखते ही वह पहचान सकता और निकाल बाहर करता है। वह अपरिसीम बुद्धिप्रभावसे मेषपालकी संख्या ठहरा सकता है। यदि उठात् कोई मेषपालसे छूट जाता, तो तत्क्षणात् वह मैदान, सड़क और गली घूम घूम उसे ढूँढ़ लाता है। वह प्रभुका इक्षित समझ सकता और पाल लेजाते समय घूम घूम प्रभुका आदेश ग्रहण करता है। चाहे माष्टिककी भांति दृढ़ प्रभुभक्त वा रक्षाकार्यनिपुण न हो, अनेक नियमकी भांति प्रभुके आदरका पात्र न हो, न्यूफाउण्डलेण्डके कुत्तेकी भांति सुदृष्ट वा सभ्य न हो, किन्तु वह सबसे बुद्धिमान और

वशतापन्न होता है। उक्त गुणमें उसकी तुल्यजीव अभी तक दूसरा आविष्कृत नहीं हुआ। डार्विन कहते कि मेघपालक उसे बाध्यकालसे भेड़ोंके बाड़ेमें रख भेड़ोंका स्तन्यपान करा प्रतिपालन करते हैं। कुछ बढ़ने पर उसे अन्य कुत्तर वा पशुमें मिलने नहीं देते और प्रायः अण्डच्छेद कर लेते हैं। उक्त सकल कारणसे वह मेघपालक प्रति विशेष अनुरक्त हो जाता और पाल छोड़कर कहीं नहीं जाता। शिशु रहते समय वह मेघपावक (मेमने) के साथ खेला करता है। पाल लेकर घरसे यातायातके समय वह क्रीड़ाच्छलसे मेघके ऊपर कूद फांद और ठोकर लगा खेलने लगता है। इससे उसकी स्नेहप्रवणता भी अनुमित होती है।

ये देखनेमें लोमड़ीके समान होते हैं। इनकी गर्दनमें लंबे २ बाल होते हैं। शीत प्रधान देशमें ये बाल टेढ़े और कड़े एवं उष्णताप्रधान देशमें अतिकोमल हो जाते हैं। इनके कान सीधे, सुख पतला, नाखदार और पैरमें एक अधिक अंगुलि होती है जिसको तुषाराङ्गुलि (Dew-claw) कहते हैं। उनकी पूंछ भवरी और ऊपरकी टेढ़ी होती है।

उसके निम्नलिखित कई एक श्रेणी भेद हैं—

(क) व्यापारोका कुत्ता (Drover's dog) डाट बाजारमें विक्रीय पशुपक्षी रक्षा करता है।

(ख) कोली (Colly or Colie) स्काटलैण्डमें अधिक दृष्ट होता है। वह १२ इंचसे अधिक ऊँचा नहीं रहता। पूर्वकालको उसके लांगुलका अर्धभाग छेदन कर डालनेकी प्रथा अति प्रचल थी। आजकल उसकी संख्या बहुत घट गयी है। अनेकोंके अनुमानमें अर्ध लांगुलसे उसे सन्तान उत्पादन करने पर असुविधा पड़ती है। कोली कुत्ता कोमल और कर्कश भेदसे दो प्रकारका होता है।

(ग) विलायती मेघरक्षक (English sheepdog)

(घ) जर्मन मेघका रक्षक (German sheep dog)

(ङ) चीनदेशीय मेघरक्षक (Chinese sheepdog)

मृगदंशक (Hound) और स्पेनियल (Spanial) कुत्तोंकी कई प्रधान विभिन्न श्रेणियोंके सम्बन्धमें संक्षेप कुछ कहना आवश्यक है।

७। हाउण्ड (शिकारी कुत्ते) के मध्य—

(क) शयक आखेटिक (Beagle) पूर्वकालको शयक मारनेके लिये शिक्षित और नियुक्त होता था। उसकी घ्राणशक्ति अति प्रबल है। कण्ठस्वर मानो कुछकुछ गीतस्वर की भांति उच्च-नीच-गमक-मूर्छना-विशिष्ट होता है। वह दो तीन घण्टे तक किसी पलायित मृगको अनुसन्धान कर बिना निकाले शान्त नहीं रहता। अन्यान्य हाउण्डकी भांति शयका-खेटिक दीढ़ नहीं सकता। वह निम्नलिखित कई श्रेणियोंमें विभक्त है,—

दक्षिण युरोपीय बीगल (Southern rough Beagle), द्रुतगामी वा विडालहन्ता (Fleet or Cat-Beagle), कर्कश (Rough Beagle), कोमल (Smooth Beagle), उसमें एक प्रकारका सुद्रकाय विभाग भी होता है। उसे 'क्रोडविहारी' (Smooth Lapdog Beagle) कहते हैं।



शयकाखेटिक।

(ख) रक्तपिपासु आखेटिक (Blood-hound) तीव्रघ्राणशक्ति और अप्रतिहत अभ्यवसाय गुणसे शिकारीके लिये बहुत ही कार्यकारी है। पूर्वकालको युरोपीय शिकारी उसका बड़ा आदर करते थे। कारण आहत अथवा पलायित मृगका अनुसन्धान वा राजाकी सुरक्षित मृगयाभूमिसे विनष्ट वा अपहृत पशुका सन्धान करनेमें उसकी अपेक्षा पटु कुत्तर दूसरा देख नहीं पड़ता। पहले वह पलायित अपराधी, शत्रु, चोर,

इत्यादिके अनुसन्धानमें भी नियुक्त किया जाता था। उस समय युद्धावसानको पलायित शत्रुके अनुसरणमें रक्तपिपासु छोड़ते थे। वालेस एवं ब्रूमके युद्धमें अष्टम इंगरीकी फरामीसी लड़ाईमें और एलिजाबेथके आयर-लेण्ड-समरमें उक्त जातीय कुक्कुर सैन्य-सामन्तके मध्य गिना जाता था। एलिजाबेथके सैन्याध्यक्ष अल फव एसेक्सकी सेनामें ८०० रक्तपिपासु आखेटिक कुक्कुर रहे।

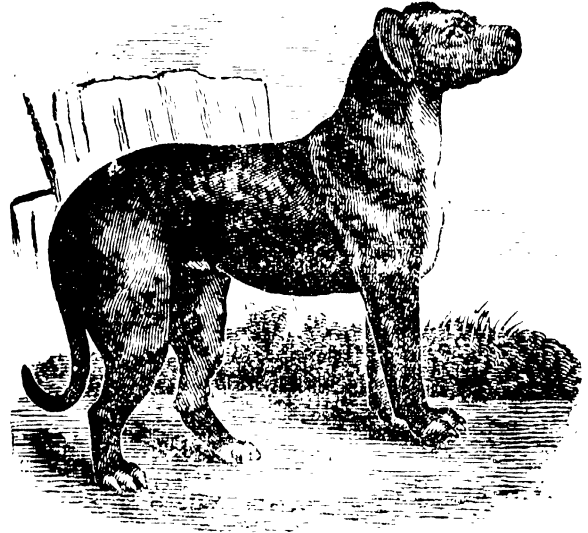


रक्तपिपासु आखेटिक

उक्त कुक्कुरके घपेटसे बचनेकी पहली दुष्टलोग भी अच्छे अच्छे उपाय अवलम्बन करते थे। वह जिस पथ-से भागते, उस पर अन्य जीव वा मनुष्यका रक्त छिड़-कते थे। कुक्कुर अनुसन्धानमें पड़ अन्य रक्तके गन्धसे लच्छभ्रष्ट हो जाता था। किन्तु सब कुत्तोसे फिर भी निस्तार न रहा। आज कल यह प्रथा उठ गयी है।

उसका देह दीर्घ एवं दृढ़, मांसपेशी सुस्थल, वक्ष विशाल, पीठ वेष्टित, आकृति शान्त तथा गम्भीर, वण गाढ़ पिङ्गल और भ्रूहयका उपरिभाग कृष्णवर्ण होता है। आपाततः विशुद्ध रक्तपिपासु कुक्कुरकी संख्या इतनी अल्प है कि नहीं हो कहना पड़ता है। वह क्यूबा द्वीप, इङ्ग्लैण्ड, अफरीका, एशिया और युरोपमें वास

करता है। क्यूबाका कुत्ता अमितपराक्रम होता है। उसको जंचाई २८ इंच देठती है। किसी किसीके कथ-नानुसार वह मृगदंशक (Stag-hound) और दक्षिण युरोपीय आखेटिक (Southern-hound) के मध्ययोगसे उत्पन्न है।



क्यूबा द्वीपका रक्तपिपासु।

(ग) मृगालाखेटिक (Fox-hound) —मृग-दंशक कुक्कुरके मध्य सर्वापेक्षा द्रुतगामी है। किन्तु वह कुछ लुदकाय होता है। जंचाई २२-२३ इंच रहती है। उसका पदद्वय सरल, स्कन्ध पूर्ण, वक्ष गम्भीर होते प्रशस्त, पृष्ठ विस्तृत, मस्तक तथा गलदेश किञ्चित् स्थूल और लाङ्गुल लोमश होता है।

(घ) मृगदंशक (Stag-hound) —जातीय आखेटिक अन्यान्य आखेटिकों अर्थात् विशेष विशेष पशुकी मृगयामें पारदर्शी और उस उस नामसे प्रसिद्ध कुक्कुरोंकी अपेक्षा कुछ दीर्घाकार पाया और विशेष विशेष पशुकी मृगयाके लिये सिखाया जाता है।

(ङ) नव्य शशकाखेटिक (Harrier) —प्राचीन शशकाखेटिक और मृगालाखेटिकके मध्ययोगसे उत्पन्न है। वह प्रतिपालकके दृष्टानुसार द्रुतगामी और मृदुगतिशील हो सकता है। प्राचीन शशकाखेटिकके साथ यदि हरिणखेटिकका संयोग लगता, तो मृदु-गतिशील हरियर निकलता है। उक्त नव्यजातीय कुक्कुर उत्पादित होनेसे आजकल कोई शिकारी प्राचीन शशकाखेटिक व्यवहार नहीं करता।

(च) निर्देशक आखेटिक (Pointer)—निम्न लिखित कई श्रेणियोंमें विभक्त है—स्पेनीय-निर्देशक (Spanish pointer), नूतन विलायती निर्देशक (Modern English pointer), पोर्तुगालका निर्देशक (Portuguese pointer), फ्रांसीसी निर्देशक (French pointer) और डेनमार्कका कुत्ता (Danish or Dalmatian or Coach dog)। आखेटोपयोगी पशुका आवास ढूँढने या गुलिका इन पक्षी संग्रह करनेमें वह प्रतिशय पटु होता है। निर्देशक पशु वा पक्षीका सन्धान मिलनेसे उसी स्थान पर स्थिरभावमें खड़ा रहता और शिकारीके जा पहुँचने तथा उसके इङ्कित करने पर मृगया मारनेको चेष्टा करता है। वह पीछा कर पक्षीको मार सकता है। उसको घ्राण शक्ति और दृष्टिशक्ति समान तात्पर्य होता है। वह स्पेन का आदिमवासो है। स्पेनीय निर्देशक कुक्कुर कुक्क स्थूल और देहभङ्गी सामञ्जस्यहीन लगती है। पोर्तुगालका निर्देशक कुक्क हलका रहता और फ्रांसीसीके मुखमें दोनों चक्षु तथा नासिकाके निकट एक जोड़ा सादा डोरा पड़ता है। मृगालाखेटिक और स्पेनियल वा स्पेनीय निर्देशक कुक्कुरके सहयोगसे विलायती नव्य निर्देशककी उत्पत्ति है। वह अति शीघ्र शिक्षित होता और एकबार सीख जानेसे फिर कभी नहीं भूलता। प्रायः उसके पदस्फुटमें अतः हुवा करता है। कोई कोई उसके गलेमें चण्टी बांध देता है। निर्देशक कुक्कुरके साथ चिह्नक (Setter) का संयोग लगा कर भी एक जातीय निर्देशक उत्पादन किया जाता है। किन्तु वह वैसा कार्यक्षम नहीं होता। डेनमार्कके कुत्तेमें घ्राणशक्ति कम रहती है। उसीसे वह अस्तबलकी शोभा बढ़ानेको पाला जाता और पालककी गाड़ीके साथ दौड़ लगाता है। उसके गात्र पर काले काले धब्बे होते हैं।

(क) स्पेनियलकी मध्य न्यूफाउण्डलेण्डका कुत्ता अति विख्यात है। वह जैसा ही मृगयापटु रहता वैसा ही प्रभुभक्त, विश्वासी, सुदर्शन और शांत स्वभाव होता है। उत्तर अमेरिकाके पूर्वकुलवर्ती न्यूफाउण्डलेण्ड द्वीपके नामपर उसका नामकरण हुवा है। आजकल युरोपमें

उसकी विशुद्ध जाति प्रायः नहीं मिलती। मौलिक न्यूफाउण्डलेण्डकी और वर्णसङ्कर न्यूफाउण्डलेण्डकी कुक्कुर बिलकुल विलायती माष्टिककी भांति सदगुणशाली है। अधिकन्तु उसकी घ्राणशक्ति और दृष्टिशक्ति प्रबल होती है। सन्तरणमें भी वह बहुत अच्छा रहता है। इसीलिये वह जल स्थल सकल स्थानपर मृगयामें पटु पड़ता है। न्यूफाउण्डलेण्ड द्वीपमें वह अधिवासियोंका बड़ा उपकार करता है। किसी चक्रविहीन वा एकचक्र काष्ठशकट तीन चार कुत्त जोत और उसपर ज्वलानेको लकड़ी लाद देनेसे अनायास बहुत दूर तक खोंव ले जाते हैं। वन्य अधिवासी इसी प्रकार उन्हें शकटमें जोत ग्रामादिमें काष्ठ बेचने पहुँचते हैं।

उसके पदकी अङ्गुलि जलचर जीवकी भांति पतले चर्मखण्डसे जुड़ी रहती है। वह जलमें डूबकी लगा समुद्र वा नदीतलसे पतित वस्तुको उद्धार कर सकता है। उसे स्थलकी अपेक्षा जलमें रहना और खेलना अच्छा लगता है। वह इतना तीव्रदृष्टिशक्तिविशिष्ट और द्रुतकार्यकारी रहता कि वस्तु ही जलमें गिरते ही साथ साथ कूदकर उद्धार करता है। उक्त सकल गुणोंके कारण अनेक नाविक एवं पोताध्यक्ष जहाज और नावमें उसे पालते हैं। वह उक्त गुणसे अनेक समय जलपतित आसन्नमृत्यु नाविक वा भारोद्दीके प्राण बचाता है।

न्यूफाउण्डलेण्डके निकट लब्राडर नामक स्थानमें उक्त जातीय कुक्कुर अपेक्षाकृत बड़ा होता है। उसे लब्राडरका कुत्ता (Labrador Dog) कहते हैं। उसके कई श्रेणीविभाग हैं—सङ्कर न्यूफाउण्डलेण्ड कुक्कुर (English or European Newfoundland or Labrador dog), विशुद्ध न्यूफाउण्डलेण्ड कुक्कुर (True Newfoundland Dog), लेण्डशियर न्यूफाउण्डलेण्ड कुक्कुर (Landsheer Newfoundland Dog), लब्राडरका सङ्कटजान कुक्कुर (St. John's Dog of Labrador)।

आखेटिक (हाउण्ड) जातीय दृष्टिशक्तिप्रधान कुक्कुरांमें धूसरआखेटिक (Grey-hound) या ताजीकुत्ता बहुत विख्यात है।

युरोपमें उक्त जातीय कुक्कुरका व्यवहार बहुकालसे प्रचलित है। ख्रिष्टीय पञ्चम शताब्दीको गल लोग शशक (खरगोश)-के शिकारमें उसे व्यवहार करते थे। इङ्ग्लैण्डमें केनूटके राज्यशासन काल राजाधीन मृगया-कानूनके पशुकी निरापदरक्षा करनेके लिये व्यवस्था रही—जो व्यक्ति राजकीय कानूनसे एक कोसके बीच रहता, वह धूसराखेटिक (ताजीकुत्ता) पाल नहीं सकता। यदि कोई मान्यगण्य भद्र पुरुष उसे पाल लेता, तो व्यवस्थानुसार बाध्य हो उसके सम्मुख पदकी दो प्रधान अङ्गुलि कटा देता था। तृतीय राजा एडवर्ड ऐसेकके वनमें उक्त कुक्कुर इतने अधिक रखते कि लोग उस वनको कुक्कुरद्वीप (Island of dogs) कहते थे। उस समय उनके साहाय्यसे हरिण मारा जाता था।

इसका देह पतला, एवं सीधा, मुखभाग लम्बा तथा सूक्ष्म, पदचतुष्टय अति दीर्घ, उदर लुद्र, कटि क्षीण, वक्ष पूर्ण गंभीर और गलदेश लम्बा होता है। पहले लोगोंने स्थिर किया था—घ्राणशक्तिके साहाय्यसे यह भी पशुका शिकार करता है। किन्तु आपाततः यह ठहर गया कि उसमें घ्राणशक्ति यत्सामान्य होती है। उससे कोई कार्य बन नहीं पड़ता। किन्तु उसको दृष्टिशक्ति अति तीव्र है। निमेषमात्र जिसे वह एकबार देख पाता, इस जन्ममें फिर उसे कभी नहीं भुलाता। एकवत्सर वयससे ही वह मृगया मारना सीखता है। अन्यान्य सकल जातीय कुक्कुरकी अपेक्षा धूसरा खेटिक (ताजी कुत्ता) अधिक दिन जीता है। ५। ६ वत्सर वयस पर्यन्त उसका साहस और बल सतेज रहता, फिर घटने लगता है। वह आजकल शशकके आखेटपर भी नियुक्त होता है। किन्तु देहकी दीर्घता और द्रुतगमनके प्रधान लक्ष्यसे अनेक समय शशककी चातुरीमें पड़ उसे अपनी लक्ष्यका स्मरण नहीं रहता। उसमें निम्नलिखित त्रैलोक्यविद्यमान है—परिष्कार विज्ञायती धूसराखेटिक (The Smooth English Greyhound), हरिणखेटिक तथा कर्कश धूसराखेटिक (Deer-hound and Rough Greyhound), आयर-लेण्डिय (Irish Greyhound or wolf dog) (उस

समय उसको भेड़िया-कुत्ता कहते थे), तीक्ष्णदृष्टि आखेटिक (Gaze-hound) और अलबानीय आखेटिक (Albanian Greyhound)। वह अमित साहसमें सिंह से लड़ता है।

रूसी (Russian Greyhound) और तुर्कीकुत्ता या नाकिद (Nakid or Turkish hound)—अपेक्षाकृत लुद्रकाय, हिंस्र और अनिष्टकारी है। फिर भी पालनेसे वह हिल जाता है। तुर्क उसे गृहकी रक्षामें नियुक्त करते हैं। पारस्य (ईरान)-देशीय आखेटिक (Persian Greyhound)—देखनेमें अतिसुन्दर होता है। उसके गात्र, कर्ण और पुच्छमें बड़े बड़े लोम निकलते हैं। वह विज्ञायती ताजी कुत्तेसे बलवान् होता है। शिकारीका घोड़ा भगनेसे वह दौड़कर गतिरोधकी चेष्टा लगाता और लगाम मूँहसे पकड़ उसके साथ बड़ा चला जाता है। अन्तकी मनुष्य जाकर उसे पकड़ लेता है। इटलीका धूसराखेटिक (Italian Greyhound)—लुद्रकाय और मृगयामें प्रसन्न रहता है। वह स्वदेशके शीत भिन्न अन्य किसी स्थानका शीत सह नहीं सकता। उसे इटलीमें क्रीड़ाका एक द्रव्य समझते हैं। परबी ताजीकुत्ता (Arabian Greyhound)—देखनेमें पारस्य (ईरान)-के धूसराखेटिक-जैसा होता है। वह बहुत चतुर और शीघ्रगामी है।



परबी ताजी कुत्ता।

(ख) अलपाइन पर्वतके ऊपर अलपाइन कुक्कुर

वा 'सेण्ट बरनार्ड कुक्कुर' (St. Bernard's Dog) पाया जाता है। उसे कोई कोई रखवालेका कुत्ता या रुसी कुत्तेकी एक जाति कहता है। किन्तु बहुतसे लोगोंने मतमें वह न्यूफाउण्डलैण्डके कुक्कुरका स्वजाति है। वह बड़े माष्टिककी भांति उच्चदेह और शान्तस्वभाव होता है। उसका कर्ण वेष्टित रहता है। गात्रमें बड़े बड़े लोम होते हैं। शरीरमें भसुरकी भांति बल रहता है। वह सेण्ट बरनार्ड गिर्जाके धर्मयाजकीको शिक्षासे चिरतुषाराच्छन्न पर्वत पर विपन्न पथिककी प्राणरक्षा करता है। जिस समय शीतकालको पार्वत्य पथ बर्फसे ढंक जाता, उस समय परित्रान्त पथिक गतिविहीन देखाता और बर्फसे आच्छन्न हो प्राण गंवाता है। धर्म-याजक उस समय उक्त शिक्षित कुक्कुरका एक एक जोड़ा छोड़ देते हैं। वह दिवारात्र पार्वत्य पथमें घूम घूम शीताभिभूत, मृतप्राय, तुषाराच्छादित सुसुप्त लोगोंका अनुसन्धान किया करता है। उसके गलमें शराबकी बोटल, थोड़ासा खाद्य और अति उष्ण वस्त्रका परिच्छेद बांध देते हैं। वह पूर्वोक्त प्रकारके विपन्न पथिकको देख उसके निकट खड़ा हो जाता और पथिक उक्त सकल द्रव्य मिलनेसे पुनर्जीवन पाता है। यदि कोई बर्फसे ढंक अचेतन देख पड़ता, तो एक कुत्ता वहीं खड़ा रहता और दूसरा गिर्जा जाकर धर्म-याजकको सूचना करता तथा उसको साथ लेकर पथिकके पास वापस पहुँचता है। किसीके बर्फमें फस जाने पर वह नखसे बर्फ हटा उसे उधार करता है। कातर, शान्त और पथभ्रष्ट पथिक उसके साथ आश्रम जा आश्रय लेता है। वह घ्राणशक्तिके प्रभावसे सम्पूर्ण तुषारावृत व्यक्तियोंको ढूँढ़ कर निकाल सकता है। वह बालकादिकी पाने पर सुखसे ठठा पीठ पर लाद लेजाता है। उसके इस गुणपर अनेक गण्य प्रचलित हैं।

(ग) लक्ष्यकारी कुक्कुर (Setter) — प्राखेटिक जातीय निर्देशक (Pointer) की अपेक्षा घ्राणशक्तिमें हीन होते भी अधिक प्रभुभक्त और कष्टसहिष्णु है। वह देखनेमें सुन्नी और श्वेतवर्ण रहता है। आकार

कुछ कुछ स्फेनियल और निर्देशक हाउण्ड (प्राखेटिक) की भांति होता है। कोई कोई कहता कि वह उक्त दोनों जातिके संयोगसे उपजता है।

(घ) छलांग मारनेवाला कुत्ता (Springer) — स्फेनियल जातीय कुक्कुरोंके मध्य छुद्रकाय और सुदर्शन है। उसका गात्रवर्ण साधारणतः लाल और सफेद होता है। नासिका और तालुको काला पाते हैं। उसका कान जितना लम्बा और मस्तक जितना छुद्र होता, उतना ही उसमें गुणाधिक्य पाया जाता है। शिक्षित होनेपर वह छलांग मार ईषत् उल्लोयमान पक्षीका शिकार कर सकता है। इसीसे उसको छलांग मारनेवाला कुत्ता कहते हैं। फिर जिसके पद और भूपर लाल धब्बा होता, वह पाइरेम (Pyrame) कहता है।

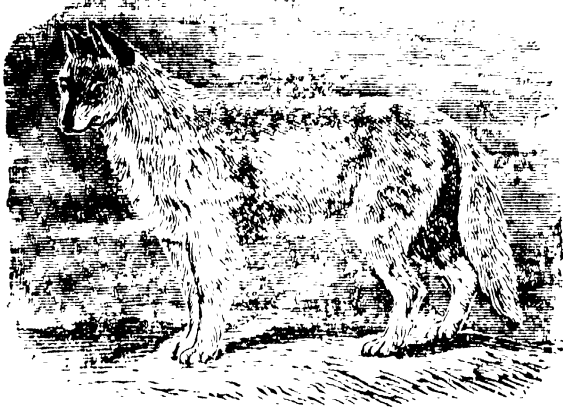
(ङ) राजा चार्ल्सका यत्रोत्पादित कुक्कुर (King Charles' Dog) — भी सुदर्शन और छुद्रकाय होता है। उसका मस्तक छोटा, सुखाप गोलार्कार खर्व-सूक्ष्म, सुखभाग पत्यल्य छुद्रनेत्रविशिष्ट, देह दीर्घ एवं घन तथा कुक्षित लोमविशिष्ट, कर्ण लम्बिन, पदांगुलि संयुक्त और लांगुल लोमश रहता है। वह लांगुलको कभी नहीं छुँताता। राजा चार्ल्सके यत्र-से उक्त कुक्कुर उत्पन्न हुआ था। उनके सर्वदा अपने साथ रखनेसे उसका वह नाम पड़ गया।

(च) झोड़विहारो कुक्कुर (Lap Dog) — प्रति छुद्र सुदर्शन, शान्त और भीनस्वभाव होता है। उसे मनुष्यके पास रहना अच्छा लगता है। गात्रवर्णके भेदसे वह नानाविध और भला बुरा रहता है। माल्टा होपका कुक्कुर (Maltese Dog) और राजा चार्ल्सका कुत्ता (King Charles' Dog) भी उक्त जातीय कुक्कुरकी भांति आदरके पशुत्वे व्यवहृत होता है।

उक्त सकल कुक्कुर लोकालयमें या मनुष्यके निकट रहनेसे पालित कहाते हैं। वय कुक्कुरोंमें अष्ट्रेलियाके डिङ्गो (Dingo), अमेरिकाके मेक्सेको, दक्षिण अफ्रीकाके हायना और भारतवर्षके कुछ एत कुक्कुर ही प्रधान हैं।

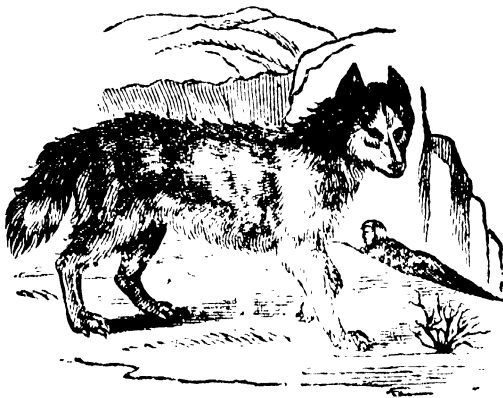
(क) डिङ्गो (Dingo) — दल बांध कर वन वन

धूमता और कङ्कड़, छागल प्रभृति मार मार खाता है। वह बलिष्ठ, वृद्धकाय, विस्तृतमस्तक, शुद्धकर्ण, ईषत् रक्तवर्ण, लोमश लांगुल और चतुर है। वह पर्वत-की गुहामें रहता और सावधान शायककी रक्षा करता है। डिङ्गो समय समय पर लोकालयमें घुस छागल, गो मेष, बक्स प्रभृति मार क्षति पहुँचाता है। अति शुक्तर प्रहारसे भी वह नहीं मरता। सुतरां विना अस्त्राघात या गोलीके उसे विनाश करना भी कठिन है।



डिङ्गो कुत्ता।

(ख) मेकेन्सी कुत्ता (Dogs of River Mackenzi in America)—भूकता नहीं। उसके गात्रमें बड़े बड़े लोम होते हैं। वह शीतमें रक्त वा धूसरवर्ण और शीतकालको श्वेत पड़ जाते हैं। उसका कर्ण लम्बा अथवा सीधा और पद मोटा रहता है। वह बर्फ पर चल सकता है। मेकेन्सी स्वदेशमें मिल जाता, किन्तु बुलडागकी भांति अस्थिर और क्रोधनस्वभाव दिखाता है। क्रोध होने पर वह हुक (भेड़िये)-की भांति शब्द करता है।



मेकेन्सी कुत्ता।

(ग) यव और सुमात्रा द्वीपका वन्य-कुक्कुर (Canis Sumatrensis)-के साथ, कहना पड़ता है, हुकका आकारगत वैलक्षण्य नहीं रहता। फिर भी उसका आकार कुछ शुद्ध पड़ता है। उसका कर्ण छोटा और वर्ण पिङ्गल होता है।

(घ) बलूचिस्थान और पारस्य (ईरान)-के 'बेलुक' नामक जङ्गली कुत्तेका वर्ण लोहित और स्वभाव उग्र रहता है। वह २०।३० कुत्तोंके दल बांध बांध धूमता और सम्मिलित भावसे महिष पर्यन्त मार डालता है।

(ङ) सीरिया प्रदेशका 'सीर' नामक जङ्गली कुत्ता—चीतेकी भांति उछल पशुहत्या करता है। देशीय लोग उसे हुककी भांति विवेचना करते हैं। उसके काटनेसे मनुष्य पागल होकर मर जाता है।

(च) मिसरदेशका 'भौव' नामक एक प्रकार उग्रस्वभाव वन्य कुक्कुर।

(छ) उत्तर अमेरिकाके मेक्सिको देशका अवि-कल हुककी भांति एक प्रकार वन्य कुक्कुर—'कोटि' कहाता है। वह वस्त्रके मध्य ऋतुविशेषको हुकीके साथ विचार करता, किन्तु अन्य समय फिर वही हुकीका प्रिय भोज्य बनता है।

एतद्भिन्न पृथिवीके नाना स्थानमें नानारूप वन्य कुक्कुर विद्यमान हैं। उनको सविशेष वर्णना की जा नहीं सकती।

भारतीय कुक्कुरका विवरण—युरोप या अमेरिकामें कुक्कुरका जैसा यज्ञ और आदर रहता, भारतवर्षमें उसके सह-स्त्रांशका एकांश भी देख नहीं पड़ता। इसलिये इस देशीय कुक्कुरके गुणागुण सम्बन्धमें अति अल्प ही लोगों-को ज्ञान है। भारतवर्षमें एकाग्र असभ्य दो-एक जातिको छोड़ किसी सभ्य समाजमें उसका व्यवहार नहीं होता। उसीसे प्रायः समस्त कुक्कुर वन्य बन गये हैं। जिन सकल कुक्कुरद्वारा असभ्य जातिको उपकार पहुँचता, उन्हें किसी प्रकार पालित कहा जा सकता है। इस स्थान पर ग्राम्य कुक्कुरोंकी भी वन्य बताना ही युक्तिसङ्गत है। कारण वह अस्त्रात्मिक और अयज्ञ-रहित होते हैं। जो हो, पालित, वन्य वा ग्राम्यभेदसे

भारतीय कुक्कुरोंका विशेष सूक्ष्मरूपसे श्रेणी विभाग हम नहीं करते। सूक्ष्मरूपसे उस सम्बन्धमें जो मालूम हुआ, वही भाग लिखा गया है। भारतीय वन्य कुक्कुर भी भी शब्द कर नहीं भूँकता, केवल घण्ट गुरु-गभीर स्वरसे गरजता है। वह दल बांध कर वन और पर्वतमें घूमा करता है। सिंहल, मलय उपद्वीप, भारतवर्ष और पूर्वभारतसागरीय द्वीपवासीमें उक्त कुक्कुर देख पड़ता है। चिरतुषारावृत अत्युच्च हिमालय पर भी वह मिल जाता है।

(१) हिमालयका कुक्कुर (Himalayan Dogs) देखनेमें युरोपके उत्तरप्रदेशीय कुत्ते-जैसा होता है। उसका भी कान खड़ा रहता है। श्रेष्ठतम प्रतिपालन करनेसे वह हिल जाता और आखेट करनेकी शिष्टाई मन लगाता है।

(२) डोल कुत्ता (The Dhole or Wild dogs of Nepal Hills)—नेपालके अन्तर्गत पार्वत्यप्रदेशमें वन्य रूपसे मिलता है। वह ५०से २०० पयन्त दल बांध घूमा करता है। डोल पार्वत्य अधिवासियोंके गा, छागल, भेड़ इत्यादि मार डालता है। हरिणके आखेटमें वह अतिशय पटुता प्रकाश करता है। जिस कोशसे बुद्धि लड़ा डोल हरिण मार गिराता, उसे विचारकर आश्चर्य होता है। उक्त जातीय कुक्कुर आक्रांतिमें भारतीय साधारण शृगालको अपेक्षा बहुत उच्च नहीं रहता, देव्यमें कुछ अधिक बैठता है। उसका गात्रवर्ण लज्जल रक्ताभ पाटल होता है। घ्राणशक्ति अति प्रबल रहती है। ठीक सन्ध्याके समय उक्त जातीय एक दल कुक्कुर कियत्काल भूँका करते हैं। फिर दो-दो तीन तीन मिल किसी और हरिण अन्वेषणको चले जाते हैं। जो दल प्रथम आखेटका सन्धान पाता, वह अन्य सकलको चीत्कार कर संवाद पहुँचाता है। दलके समस्त कुक्कुर एकत्र होने पर मिलित भावसे भयानक चीत्कार करते हैं। इससे हरिण सन्ध्या ही भगनेका उद्योग लगाता है। उस समय वह इधर उधर सरक हरिणके भागनेके भिन्न भिन्न पथ रोक खड़े हो जाते हैं। हरिण किसी और भगने पर आक्रान्त होता है। अन्ततः सब मिल कर उसे मार खाते हैं। उसके

पेछे वह पूर्वीत प्रकारसे फिर नूतन आखेटका अनुसन्धान करते हैं। उनके द्वारा मनुष्य कभी आक्रान्त होते नहीं देखा गया। हरिण न मिलने पर वह भालुकको भी आक्रमण करते हैं। व्याघ्रके साथ डोल कुत्ताको प्रबल शत्रुता है। व्याघ्रको देखते ही वह अन्य आखेट छोड़ आक्रमण किया करते हैं। राजपूतानेके भोलीवे सुनते हैं कि तत्स्थानीय पर्वतमें उक्त कुक्कुर व्याघ्र पर भपटते, व्याघ्र आत्मरक्षार्थ वृक्षपर चढ़ जाते भी उनसे निस्तार नहीं पाता। बाघ वृक्ष पर चढ़ बैठ जाता और कुक्कुरका दल उसके लिये नीचे खड़े घात लगाता है। किन्तु उही समय यदि कोई मनुष्य वहाँ पहुँचा, तो कुक्कुरदल भीत हो भागने लगता और बाघ भी वृक्षसे नीचे उतर चुपके चुपके पलायन करता है।

(३) बखान कुत्ता (Vakhan Dog)—चित्रलमें रहता है। स्टाटलेण्डके कोली कुत्ते (Collie Dog)के साथ उसका यथेष्ट सादृश्य है। उसका बल और द्रुत गमन अति प्रसिद्ध है। बखानका कान सोधा, लाङ्गून लोमश और गात्रवर्ण काला, रक्ताभ पाटल वा हरिताभ नील होता है।

(४) पहाड़ी कुत्ता (Hill Dog)—हिमालयमें होता है। उसके गात्रमें अति दीर्घ और काल लोम पाते हैं। वह अपरिचितके पक्षमें बहुत भयानक है। किन्तु अपने देशवासियोंसे पहाड़ी कुत्ता हिल जाता और गी, छागल प्रभृतिके रक्षाार्थ शिष्टा पाता है। चीता उसे सर्वेदा आक्रमण करता है। उसीसे पालू कुत्तेके गलेमें लीडपेटिका बांध देते हैं।

(५) कुनावाड़का कुत्ता (Kunawar Dog) बहुत हिंसक होता है। उसके गात्रमें भी बड़े बड़े काल लोम होते हैं। वह अपरिचित व्यक्तिको देखते ही खदेर कर काटता और एकवारगी हो छिन्न भिन्न कर डालता है। ग्रामके लाग उसे पालते और दिनकी शृङ्खलसे बांधते हैं। उक्त जातीय कुक्कुरशावकके गात्र-लोम अति कोमल रहते और जिन छागलोमांसे शाख बनते, उन्हींको भाँति उत्कृष्ट लगते हैं। इसीसे बहुतसे लोग उक्त लोमको शालमें मिला देते हैं।

(६) बिसेहर कुत्ता (The breed of Beseh-

ur in the Himalaya) हिमालयमें होता है। वह वृद्धावृत्ति और कष्टसहिष्णुताके लिये विख्यात है। बिसेहर देखनेमें सम्पूर्ण माष्टिक-जैसा लगता है। उसका गात्रवर्ण साधारणतः श्वेत एवं कृष्ण, लोम घन तथा काल और लांगुल लोमश एवं दीर्घ रहता है। किन्तु सुव्हावृत्ति माष्टिक-जैसी नहीं होती। अधिकतर रखवालेके कुत्ते जैसा होते भी वह परिमाणमें बहुत कुछ भारी और गम्भीर पड़ता है। उसके गात्रमें दीर्घ लोमके नीचे पक्षीके कोमल परकी भांति नुन्र कोमल लोम निकलते हैं। वही लोम शीतकालको अपने आप गिर जाते हैं। उक्त नुन्र कोमल लोम भी उत्कृष्ट होते हैं। वह अपने देशवासियोंके छागादिकी रक्षा करने और पाखेटके व्यवहारमें लगनेकी सिखाया जाता है। बिसेहर भी पक्षीको खदेर खदेर उछल कर पकड़ लेता है। उक्त जातीय कुङ्कुर बहुमूल्यमें विकता है।

(७) बामियान प्रदेश का ताजी कुत्ता (Greyhound of Bamian)—अपने पद और गात्रमें बड़े बड़े लोम रखता है। वह प्रतिशय द्रुतगामी और देखनेमें ठीक पारस्य (ईरान)-के ताजी कुत्ते-जैसा होता है।

(८) नेपाली कुत्ता (Nepal Dog)—कहाने-वाला प्रकृत पक्षमें तिब्बतीय कुङ्कुर है। वह देखनेमें वृद्धावृत्ति विलायती न्यूफाउण्डलेण्डके कुत्ते-जैसा होता है। उपलब्धता होते भी नेपाली कुत्ता हिल जाता है। वह रातको नहीं सोता और माष्टिककी अपेक्षा वृद्धावृत्ति के साथ प्रतिपालकके द्रव्यादिका रक्षण-वेक्षण रखता है।

(९) कुमायूँ का शिकारी कुत्ता (The Shikari Dog of Kumaun) दक्षिणात्यके 'पारिया कुत्ता'-जैसा लगता, किन्तु पाखेट (शिकार)-में पति पट, पड़ता है।

पूर्वीय कुङ्कुर हिमालय प्रदेश और आर्यावर्तके अन्यान्य पार्वत्यस्थलमें मिलता है। दक्षिणात्यमें भी कई प्रकारके कुत्ते होते हैं। यथा—

(१) वृद्धावृत्ति कुत्ता—दक्षिणात्यमें वृद्धावृत्ति नामक

एक जातीय पसभ्य लोग रहते हैं। उनका गृहादि या ग्राम, देश और नगरादि कहीं भी नहीं होता। वह स्त्री, पुत्र, कन्या, धन, रत्न और गोमेषादि ले दल दल घूमा फिरा करते हैं। वृद्धावृत्ति वन वनमें छावनी डाल समय बिताते हैं। उनके साथ द्रव्यादि रक्षणार्थ एकदल कुङ्कुर रहते, उन्हें भी लोग वृद्धावृत्ति ही कहते हैं। उक्त जातीय कुङ्कुर ठीक पारस्यके ताजी-कुत्ते-जैसा रहता और अपेक्षाकृत बलवान् पड़ता है। वृद्धावृत्ति वृद्धावृत्ति शिकारके लिये सर्वदा लाक्षायित हो घूमा करता है। वह जितना प्रभुभक्त, विश्वासी, बुद्धिमान् और धनरक्षाकारी रहता, उतना उसे यत्न तथा आदर नहीं मिलता।

(२) पल्लिगार कुत्ता—पल्लिगार जातीय लोगों-द्वारा प्रतिपालन किया जाता है। इसीसे उसको पल्लिगार कहते हैं। वह भी क्षमतावान् और वृद्धावृत्ति होता है, किन्तु उसके गात्रमें इतना नुन्र लोम रहता कि नहींके बराबर लगता है।

जोड़ापुर और घुरघुण्टाके बिन्दर जातीय लोग उसको लेकर वन्य शूकर मारते हैं।

(३) पारिया कुत्ता—पारिया जातीय लोगों द्वारा प्रतिपालन किया जाता है। इसीसे वह उक्त नाम पर ख्यात है। वह देखनेमें वृद्धावृत्ति-जैसा लगता है। आज कल अधिकांश वृद्धावृत्ति लोग भी उसे पालते हैं। वृद्धावृत्ति और पारिया कुत्तेमें आकृतिगत वैलक्षण्य भी विशेष देख नहीं पड़ता। किसी किसी स्थलमें उभयजातीय कुङ्कुर इतने मिल गये हैं, कि उनको पहचान लेना अत्यन्त दुःसाध्य है। युरोपमें क्रीडविहारी कुङ्कुर जिस प्रकार आदरका वस्तु ठहरता, पारिया कुङ्कुर भी नीच जातीयोंके निकट वैसा ही रहता है। उसका गात्रवर्ण श्वेत होता है। वह लासटेन लेकर चलना सीखता है।

(४) कोलशुन—प्राणित्वविद् द्वारा दक्षिणात्य कुङ्कुर या दक्षिणी कुत्ता कहाता है। किन्तु महाराष्ट्र उसे कोलशुन ही कहते हैं। उसका गात्रवर्ण पीताभ-लोहित, उदरभाग अपेक्षाकृत तरलवर्णविशिष्ट, लांगुल लोमश और कर्ण वेष्टित होता है। चक्षुकी तारका गोलाकार

रहती है। चण्डकोटर वक्रभावसे गठित रहता है। मस्तक दबा हुआ किन्तु दीर्घाकार होता है। देखनेमें वह बहुत कुक्कुर ईरानके ताजा कुत्तेसे मिलता है। बहुतसे लोगोंके मतमें देशभेदमें उक्त जातीय कुक्कुर ही नेपाली कुत्ता कहाता है। दक्षिणी कुत्तोमें कितने ही 'बुयनशु' नामसे ख्यात है। सम्भवतः बुयनशु कुत्ता ही कोलशुनोका प्रादिजनक है।

हिन्दुस्थानमें आज कल नामा जातीय कुक्कुर देख पड़ते हैं। उनमें ग्राम्यकुक्कुर ही प्रधान है। उसे घाटका कुत्ता कहते हैं। वह भी हिल जाता, प्रभुभक्ति दिखाता और आखेट करनेकी शिखा पाता है। उनमें कोई कोई भयकारी निकलनेसे प्रतिपालक भिन्न अपर प्रतिवासीके हंस, विडाल, छागल इत्यादि मार डालता है। पक्षी ग्राममें गृहस्थ लोगोंके घरके पास अपरिष्कृत स्थानमें दो-एक ऐसे कुत्ते रहते हैं। वह वास्तवमें पालून होते भी गृहस्थोंके निकट उच्छिष्ट भन्नादि पा जाते हैं। इसीसे वह गृहस्थोंके प्रति कृतज्ञता दिखाते और रातको शृगालादिसे घर बचाते हैं। पक्षीग्राममें दो कुत्ते गृहस्थके घर पर दो दरवानोंका काम कर सकते हैं। शृगालके साथ उनका चिरविवाद देखनेमें आता है। उभय उभय जातिको देखते ही आक्रमण करते हैं। फिर शृगालीके साथ सङ्गत हो वह शावक भी पैदा करते हैं। (इस प्रकारके विजातीय सङ्कर कुक्कुरको अंगरेजीमें Dog and fox or Jackal Cross कहते हैं।) शृगालके आक्रमणसे उक्त जातीय जो कुक्कुर चत विद्यत हो जाता, वह 'हन्ता' कुत्ता कहाता है। फिर रोगसे पागल होने-वाले वा अन्य चत होनेसे उग्र-स्वभाव पड़ जानेवालेको पागल कुत्ता (बेलान कूकुर किरहा कूकुर) कहते हैं।

कुक्कुरका प्राचीनता—प्रति प्राचीनकालसे हिन्दुओंको कुक्कुरके गुणकी कथा अवगत थी। उनके मतमें कुक्कुर अस्पृश्य होते भी यह स्वीकार नहीं कर सके कि कार्य-विशेषमें कुक्कुरका काम नहीं पड़ता था कारण रामायणमें लिखा है—“जिस समय भरत मातामहालयसे स्वराज्यको चले, उस समय केकयराजने अति यत्नसे अन्तःपुरमें प्रतिपालित व्याघ्रतुल्य बलवान् दो

कुक्कुर उन्हें पादपूर्वक उपहार दिये थे।’ यथा—

“सत्कथ केकयो राजा भरताय ददौ धनम् ॥ १८ ॥

अन्तःपुरेऽति संवृष्टान् व्याघ्रबीजबलोपमान् ।

दंष्ट्रायुधान् महाकायान् यनयोपायनं ददौ ॥ २० ॥

(रामायण, अष्टाध्यायः, ७० सर्ग)

महाभारतमें भी कुक्कुरका उल्लेख बहुस्थल पर मिलता है। उसके मध्य पादिपूर्वके (पौष्पपर्वाध्याय) प्रथम अध्यायपर जनमेजयके यज्ञस्थलमें कुक्कुर की कथा कही है—जनमेजय यज्ञ करनेवाले थे। समस्त आयोजन हो गया। उसी समय देवकुक्कुरी सरमाके कई पुत्रोंने उक्त यज्ञस्थलमें प्रवेश किया था। जनमेजयके भ्राता श्रुतसेन, उग्रसेन और सोमसेनने उनको मारकर इस भयसे भगा दिया कि पीछे वह यज्ञद्रव्य अवलोकन पार अवलोकन करते। सारमियोंने निरपराध प्रहारित होने पर माताके निकट जाकर सब कथा कही थी। देवशुनो सरमा पुत्रोंके दुःखसे क्रुद्ध हो तत्क्षण मन्त्रिवेष्टित जनमेजयके निकट पहुँच बोल उठे ‘महाराज ! निरपराध हमारे पुत्र क्या मारे गये ? उन्हींने हविः नष्ट करना दूर रखा, उसे अवलोकन भी नहीं किया।’ जनमेजयने प्रश्नका उत्तर दिया न था। इसीसे क्रुद्ध हो निम्नलिखित अभिशाप प्रदान दे वह चला गयीं—‘महाराज ! आपने जैसे निरपराध हमको क्षेप पहुँचाया है, वैसेही आप भी इस यज्ञमें किसी घट्ट और अभावनीय भयसे भीत होंगे। जनमेजयने कुक्कुरीके शापसे उद्धारके लिये हो सोमशवाको पुरोहित नियुक्त करनेकी चेष्टा की। सरमाके शापका घट्ट भय यज्ञमें आस्तीकागमन था। उसीसे यज्ञ परिपूर्ण न हुआ। (महाभारत)

उसके पीछे जब युधिष्ठिरने स्वर्ग गमन किया, तब इन्द्रने उनसे कहा—‘महाराज ! रथ प्रस्तुत है। आप इस पर चढ़ कर स्वर्गको पधारिये।’ युधिष्ठिर प्रत्युत्तरमें बोल उठे—‘देवराज ! यह कुक्कुर हमारा पूरा भक्त है। इसे हमारे साथ रहते बहुत दिन हो गये। अतएव आप अनुग्रहपूर्वक इसे हमारे साथ स्वर्ग जानकी अनुमति प्रदान कीजिये। इसको छोड़ जानेसे हमारे ऊपर निष्ठुर व्यवहार करनेका दोष

लगेगा।' युधिष्ठिरके इस प्रकार अनुरोध करने पर इन्द्रने कहा था—'धर्मराज ! इस समय पाप अतुल ऐश्वर्य, परमसिद्धि, अमरत्व और हमारी स्वरूपताको प्राप्त होगी। अतएव इस कुत्तेको छोड़ अतिशौघ, स्वर्ग जाना आपका परम कर्तव्य है। इसको परित्याग करनेसे आप पर नृशंस व्यवहार करनेका दोष आरोपित न होगी।' युधिष्ठिरने उत्तर दिया—'शतक्रतो ! अकार्य का अनुष्ठान शिष्ट जागीरोंकी करना न चाहिये। इस समय यदि स्वर्गीय ऐश्वर्य लाभकी आशासे हमें इस परमभक्त अनुगत कुकुरकी छोड़ना पड़े, तो हम स्वर्ग जाना नहीं चाहते।' इन्द्रने कहा—'महाराज ! जो व्यक्ति कुत्तेके साथ एकत्र अवस्थिति रखता, वह कभी स्वर्गमें रह नहीं सकता। कुत्तेकी साथ ले जानेसे क्रोध-परवश नामक देवगण आपके समस्त यज्ञदानादिका फल विनष्ट कर डालेंगे। इसलिये आप शौघ ही कुत्तेको छोड़ दीजिये।'

युधिष्ठिर प्रत्युत्तरमें कहने लगे—'देवराज ! भक्तकी परित्याग करनेसे ब्रह्महत्याके तुल्य महापापमें लिप्त होना पड़ता है। अतएव हम आत्मसुखके निमित्त कभी इसे छोड़ न सकेंगे। भौत, भक्त, अनन्यगति, क्षीण और शरणागत व्यक्तियोंकी हम प्राणपणसे रक्षा किया करते हैं।'

इन्द्रने उत्तर दिया—'धर्मनन्दन ! कुकुरके यज्ञ, दान होम प्रभृति क्रिया दर्शन करनेसे क्रोध-परवश नामक देवगण समस्त कार्यका फल बिगाड़ देते हैं। कुकुर अति अपवित्र जन्तु है। अतएव आप अचिर इस कुकुरकी परित्याग कीजिये। इससे आप अनायास स्वर्ग जा सकेंगे। जब आप द्रौपदी और भ्रातृगणकी छोड़ स्वीकृत्य उत्तम कर्मवृत्तिसे स्वर्ग लाभके अधिकारी हुवे, हैं, तब इस कुकुरकी परित्याग न करनेका क्या कारण है। आप सर्वत्यागी हैं। आप क्यों इस प्रकार व्यामोहमें अभिभूत हो रहे हैं।'

युधिष्ठिरने कहा—'देवराज ! इसलोकमें किसीको किसीके साथ मृतव्यक्ति मिलानेका सामर्थ्य नहीं। हमारे भ्रातृगण द्रौपदीके साथ मृत्युमुखमें निपतित हुवे हैं। हम उन्हें जिला नहीं सकते। इस

विषयको विवेचना करके ही हमने उन्हें अगत्या परित्याग किया है। उनके जीवित रहते हमने उन्हें नहीं छोड़ा। हमारी विवेचनामें भक्तका छाड़ने, शरणागत व्यक्तिको भय देखाने, स्त्रीको मारडाने, ब्रह्मसुरान और मित्रद्रोह लगानेके बराबर दूसरा पाप जनककार्य निःसन्देह नहीं होता।'

पीछे कुकुररूपी धर्मन युधिष्ठिरका आत्मपरिचय प्रदान किया। (महाप्रस्थानिक पर्व ३ पृ ७०)

चाणक्यनीतिमें लिखा है—

“वह्नाशो स्वल्पसन्तुष्टः सुनिद्रः शोत्रधेतनः।

प्रभुभक्तश्च शूरश्च पक्षेते व शुनो गुणाः॥”

बहुत भोजन कर स्वल्प पाह्यारसे सन्तुष्ट रहना, भली भांति सोना, शोत्र जागना, प्रभुभक्त होना और शूरता दिखाना, ये छह गुण कुकुरके हैं। समुदाय गुणमध्य कुकुरकी प्रभुभक्त ही विशेष प्रसिद्ध है।

भोजराजकृत युक्तिकल्पतरुग्रन्थमें गुणानुसार कुकुर के तीन भेद कथित हैं।—“सात्विक, राजसिक और तामसिक। जो कुत्ता बहुपरिश्रम कर भी आन्त वा क्षीण नहीं दिखता, पल्प खाता और पवित्रभावसे अवस्थान लगाता वह सात्विक कहाता है। ऐसा कुत्ता बहुत कम देखनेमें आता है। जिस कुत्तेका आकार दोघ, वक्षःस्थल विस्तृत, उदर क्षीण, जङ्घादेश परिपुष्ट, स्वभाव अत्यन्त क्राधी और भोजन अधिक रहता, वह राजसिक ठहरता है। उक्त कुकुर जङ्गलमें रहता है। फिर अल्पपरिश्रमसे ही आन्त होनेवाला और सर्वदा लोलजिह्वा निकालने वाला कुत्ता तामसिक है। उसका पेट बहुत बड़ा होता है।” उक्त पुस्तकमें ही जातिभेदके अनुसार पांच प्रकारका कुत्ता बताया गया है। यथा—“ब्रह्म, क्षत्र, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज। जिस कुत्तेका वर्ण श्वेत, आकार दोघ, कर्ण उच्च, पुच्छ शीर्ष, उदर क्षीण और दन्त श्वेत एवं तीक्ष्ण रहता, वह ब्रह्मजाति ठहरता है। लोहितवर्ण, सूक्ष्म लोम, प्रसम्बितकर्ण, क्षीण उदर और दोघ नखदन्त कुकुर क्षत्रजाति है। जा कुत्ता पीतवर्ण, सूक्ष्म एवं मृदु लोम, क्रोधन-स्वभाव और लोलजिह्वा रहता, उसका नाम वैश्य-

जाति पड़ता है। कण्ववर्ण, शीर्णमुख, दीर्घलोम, अल्पक्रोध और अधिक आत्मबोधयुक्त कुकुर शूद्र-जाति है। फिर जिस कुत्तेका आकार लुट्ट रहता, उदर बृहत् पड़ता, लांगुल दीर्घ लगता, दन्त लुट्ट एवं शीर्ण निकलता और जो अपवित्र द्रव्य भोजन तथा एक समयमें अधिक सन्तान उत्पादन करता, उसे प्राणितत्वविद् अन्त्यज कहते हैं। उक्त सकल-जातिके लक्षण मध्य जिस कुत्तेमें दोजातिका लक्षण देख पड़ता, उसका नाम द्विजाति ठहरता है। वह अतिशय भयानक होता है। तीन जातिका लक्षण रहनेसे त्रिजाति कुकुर भय, धननाश और शोक-जनक है।”

इसके अतिरिक्त कुत्तेके दूसरे भी कई शुभाशुभ लक्षण निर्दिष्ट हैं। वराह-मिहिरने लिखा है --“समुदायमें पांच पांच किन्तु केवल सम्युखके दक्षिण पदमें छह नख तथा ओष्ठ एवं नासाका अग्रभाग ताम्रवर्ण रहनेवाला, सिङ्की भांति गमन करते समय मट्टी सूंघ सूंघ चलनेवाला, पुच्छमें जटासदृश लोम लटकनेवाला, व्याघ्रकी चक्षु चमकानेवाला और दीर्घ एवं मृदु कर्ण दिखानेवाला कुत्ता जिसके घर पाला जाता, अवि-लम्ब ही उसकी सम्पत्तिका अभ्युदय पाता है। इसी प्रकार जिस कुकुरीके भी केवल सम्युखस्य वाम पदमें छह तथा अपर तीनमें पांच पांच नख पाते, चक्षु मझिका पुष्पकी भांति सुझाते, पुच्छ वक्र पाते और कर्ण पिङ्गल वर्ण एवं दीर्घ दिखाने, उसके प्रतिपालकको वृद्धिके भी दिन आजाते हैं। इहत्संहिता)

चिकित्सा—पूर्वकालको भारतवर्षमें अश्वगजादिकी भांति कुकुरकी चिकित्सा-पद्धति प्रचलित थी। शाक्यधर पद्धतिमें इस प्रकार लिखा है* —

*“मलके तु चति जाते दधि तव प्रदाय च ।

लेहयेत् कुकुरेभ्यः समाहात् सिद्धाति प्रुवम् ॥

बलणस्य फलाज्जलपौ कृतात् गलितो रसः ।

सत्रये पूरिते शीथं कृमिजालं निपातयेत् ॥

अङ्गारः शाक्यधरस्य चर्णितः सघृतेऽस्त्राहम् ।

दत्तेन श्वस्यतीसारसो वा पानोपचारभात् ॥

कर्णिका-रसनी वीरगुप्ता त्रिकटुनाथवी ।

कुकुरके मस्तकमें चत जोनेसे उस पर दधि डाल अन्य कुकुरसे सात बार चटाना चाहिये ।

बलणफल हाथसे दबा उसका रस व्रणस्थानमें लेपन करनेसे शीथ और कृमि नष्ट होता है ।

शाक्यधर (सागवन)-का अङ्गार (कोयला) चूर्ण कर घृतके साथ तीन दिन पिलानेसे अतिसार मिट जाता है। औषधसेवन काल पर्यन्त कुत्तेको पानी न पिलाना चाहिये ।

फिर मत्त कुकुरके काटने पर कर्णिका, रसुन (लहसुन), वीरगुप्ता, त्रिकटु (सांठ, मिर्च, पीपल), माधवी, षष्ठीधान्य, गुड़ और दुग्ध एकत्र कर कुत्तेको पिलाते हैं ।

श्यामालता और सुरभिजिह्वा मधुके साथ पीस प्रलेप लगानेसे प्राणिमात्रके नख-दन्ताघातका विष नष्ट होता है ।

कुत्तेको जुलाब देनेके लिये १ से २ ड्राम तक सुसन्धर, रेवाचीनी, सोनामुखी अथवा जायफलका तेल काममें लाना चाहिये ।

कण्डू (खुजली) और पिच्छट (चमड़ेकी बीमारी) होनेसे कुत्तेको घीस (मट्ठा) पिलाते हैं ।

कर्णरोग लगनेसे प्रथम कोष्ठपरिष्कारके लिये कुत्तेको जुलाब देना चाहिये। फिर ४ औंस गुलाब जलमें आधे ड्रामको बराबर ‘शूगर अव लेड’ मिलाकर बाह्य प्रयोग किया जाता है ।

ज्वररोगमें रेचन (जुलाब), मृगौरोगमें दो दो घण्टे पाछे १० से २० बूंद तक टिङ्गचर डिजिटेलिस और सदरामयमें एक चम्मच एरण्डतेल १ या २ ड्राम लडेनम मिलाकर दो एक दिनके अन्तर प्रयोग किया जा सकता है ।

कुत्तेका जलातङ्कुरीग बहुत भयानक होता है। उस अवस्थामें कुत्ता उन्मत्त हो जिसे काट खाता, उसके भी बहुधा जलातङ्कुरीग होता जाता है । जलातङ्कुरीग

षष्ठीधान्यं गुरुचोरं दष्टो मत्तगुणा पिबेत् ॥

श्यामासुरभिजिह्वा च निःशेषं प्राचिसम्भवम् ।

नखदन्तविषं हनि मधुना सह लेपतः ॥”

(शाक्यधर-पद्धति पण्डितच च तथा पण्डितकिन्ता, ८४)

मांस—पुराण पढ़नेसे समझा गया है कि ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने दुर्भिक्ष काल कुक्कुरका पृष्ठमांस प्राहार किया था। काले कुत्तेका मांस चीनजातिमें पति सुखायकी भांति आदृत होता है।

पुराणमें लिखा है—यमराजके निकट कई कुत्ते रहते। उनका नाम सारमेय था। संस्कृतवित् पाश्याय्य पण्डितोंके मतसे 'सारमेय' यूनानियों (ग्रीकों)-के प्राचीन पुस्तकमें 'हारमेयस्' वा 'हारमेस्' नामसे वर्णित हुआ है। वह ग्रीक (यूनानी) देवगणके दूत हैं।

सरमा और सारमेय देखो।

पहले हिन्दू 'वसिष्ठ' नामके कल्पानुष्ठान काल यमके कुक्कुरको पिण्ड प्रदान करते थे।

“वानो वो यामसवली वे वसतकुलोद्भवौ।

ताभ्यां पिण्डं प्रयच्छामि स्यातामेतावहिंसकौ॥”

३ मुनिविशेष। ४ राजविशेष, एक राजा। वह अजक राजके पुत्र थे।

कुक्कुरह (सं० पु०) कुक्कुरस्तदगन्धयुक्तः दुः, मध्यप-
दलो०। मृदुच्छद, कुकरोधा। उसका संस्कृत पर्याय—
कुकुन्दर, पोतपुष्प, कुक्कुरहम, मृदुच्छद और ताम्र-
चूड़ है।

मदनविनोदनिघण्टुके मतमें वह कटु, तिक्त और ज्वर, रक्त तथा कफनाशक है।

भावप्रकाशके मतानुसार उसकी कच्ची जड़ सुखमें धारण करनेसे सुखशोष मिट जाता है। अपर वैद्यक मतमें कुक्कुरह सङ्कोचक, वेदनानिवारक और घाम-
रक्त, उदरामय, ग्रहणी, अग्नि, रक्तातिसार, ज्वर तथा रक्तदोषनाशक होता है। कुकरोधा देखो।

कुक्कुरमेषुका (सं० स्त्री०) गोरक्षतण्डुलो, गुलशकरी, गंगेरन।

कुक्कुरमेषुक (सं० पु०) कुक्कुरमेषुका देखो।

कुक्कुरी (सं० स्त्री०) कुक्कुर जातित्वात् डीष्। कुक्कुर जातिकी स्त्री, कुतिया। उसका संस्कृत पर्याय—
सरमा, श्वानी, सारमेयो, श्वनी और भषी है।

कुक्कुरवाक् (सं० पु०) कुक्कुरस्य वाक् शब्द इव शब्दो
यस्य, बहुव्री०। सारङ्गमृग, किसी किसकका हिरण।

कुक्कोक—रतिरहस्य नामक ग्रन्थप्रणीता।

कुक्रिय (सं० त्रि०) कुक्कुक्षिता क्रिया यस्य, बहुव्री०।
कुक्कर्मन्वित, बदफेल, खराब काम करनेवाला।
कुक्रिया (सं० स्त्री०) कुक्कुक्षिता क्रिया, कर्मधा०।
दुःकार्य, बुरा काम।

कुक्ष (सं० पु०) कुष् निष्कर्षं स किञ्च। उन्दिगुषिकुषिभ्यश्च
उष् १। १८। जठर, पेट, कोख।

कुक्षि (सं० पु०) कुष्-क्वि। प्रुषिकुषिप्रुषिभ्यः क्विः। उष् १। १५५।
१ जठर, पेट, कोख। २ दानवविशेष।

“कुक्षिस्तु राजन् विख्यातो दानवानां महाबलः।”

(भारत, १।६०।५०)

३ मध्यभाग, बीचका हिस्सा

“ततः सागरमासाद्य कुक्षौ तस्य महोर्मिभ्यः।”

(भारत, वन, ७८ च०)

४ पुत्र और कन्या, भीलाद। ५ बालिका नामा-
न्तर। ६ राजविशेष, एक राजा। ७ प्रियव्रत और
काम्यका नामान्तर। ८ इक्ष्वाकुके पुत्र और विकुक्षिके
पिता। (रामायण, अयोध्या० ११० सर्ग)

९ गुहा, खोह। १० रामायणोक्त एक जनपद (वसती)

“पुत्रागगहनं कुक्षिं वकुलोद्वालकाकुलम्।”

(किष्किन्ध्या, ४२। ७)

मध्यभारतमें मासवेके अन्तर्गत कुक्कुसी नामक एक
नगर है। सम्भवतः वही अक्षल पूर्वकालको कुक्षि
जनपद नामसे प्रसिद्ध था। वर्तमान कुक्कुमी नगर
चारों ओर मूलमय प्राचीर एवं गभीर गड़-खातसे
वेष्टित और अक्षा० २२° १६' ३०" तथा देशा० ७४°
५१' ५०" पर अवस्थित है।

कुक्षिभेद (सं० पु०) ग्रहणका एक मोक्ष। वराह-
मिहिरने अपनी बृहत्संहितामें ग्रहणमोक्षके
७ भेद लिखे हैं। कुक्षिभेद भी दो प्रकारका होता है
दक्षिण और वाम। दक्षिण ओरसे मोक्ष होना दक्षिण
कुक्षिभेद और वाम ओरसे मोक्ष होना वामकुक्षिभेद
कहाता।

कुक्षिभरि (सं० त्रि०) कुक्षिं विभर्ति, कुक्षि-भृ-खि-
मुम् च। आत्मभरि, पेट पालनेवाला।

कुक्षिरम्भ (सं० पु०) कुक्षौ रम्भं क्तिद्रं यस्य, बहुव्री०।
मल, चींगा।

कुक्षिशूल (सं० स्त्री०-पु०) शूलरोगविशेष, कोष्ठका दृष्टं । सुश्रुतमें उसका लक्षणदि इसप्रकार लिखा है—
'वायुके कुपित हो जठराग्नि दूषित करने पर भुक्त द्रव्यका भली भाँति परिपाक नहीं होता । निःश्वास निकालनेमें कष्ट समझ पड़ता है । अपक्व मलमेद हो जाता है । कुक्षिमें अत्यन्त वेदना बढ़ती है । कुक्षिशूल ऐसे ही रोगका नाम है ।'

कुक्षेषु (सं० पु०) भागवतोक्त रुद्राश्वके पुत्र ।

(भागवत, २।२०।४)

कुखा—पार्वतीय जातिविशेष, एक पहाड़ी जाति । पञ्जाब प्रदेश, काश्मीर और सिन्धुके मध्यस्थित पर्वत पर कुखा लोग रहते हैं ।

कुखेत (हिं० पु०) कुक्षित क्षेत्र, बुरी जगह, कुठाँव ।
कुख्यात (सं० त्रि०) कु कुक्षित-रूपेण ख्यातः, ३-तत् ।

निन्दित, बदनाम, जिसे सब कोई बुरा बताये ।

कुख्याति (सं० त्रि०) कु कुक्षिता ख्यातिः, कर्मधा० ।
निन्दा, बदनामी, हँसौवा ।

गठन (हिं० स्त्री०) कुक्षित रूप, बुरी बनावट ।

कुगणी (सं० त्रि०) कु कुक्षितः गणः समूहो यस्य, बहुव्री० । कुसङ्गी, बुरे आदमियोंकी साथ रख-नेवाला । कु कुक्षित-रूपेण गणः गणना यस्य । कुक्षित लोगोंमें गिना जानेवाला, जो बुरे आदमियोंमें समझा जाता हो ।

कुगति (सं० स्त्री०) दुर्दशा, बुरी हालत ।

कुगहनि (हिं० स्त्री०) कुक्षित ग्रहण, बुरी चड़ ।

कुगो (सं० पु०) कु कुक्षितः गोः वृषभः कर्मधा० । दुष्ट-गो, बुरा बैल ।

कुपञ्च (सं० पु०) कु अशुभकारी ग्रहः कर्मधा० । अशुभ फल प्रदान करनेवाला या खराब ग्रह ।

कुग्राम (सं० पु०) कु कुक्षितः ग्रामः, कर्मधा० ।
कुक्षित ग्राम, खराब मौजा, बुरा गाँव ।

“कुग्रामवासः कुत्रनख सेवा ।” (चरित)

कुघा (हिं० स्त्री०) दिक्, तरफ, ओर ।

कुघात (हिं० स्त्री०) १ अशुभ अवसर, बुरा मौका ।
२ कपट, बुरा दाँव ।

घोषण (सं० स्त्री०) कु कुक्षितं घोषणं ख्यातिः, कर्मधा० । कुख्याति, बदनामी ।

Vol. V. 7

कुङ्कुम (सं० स्त्री०) कुक्षते पादोयते असी, कुक्-उमक् निपातनात् सुमृच । १ गन्धद्रव्यविशेष, जाफरान, केशर । उसका संस्कृत पर्याय—काश्मीरजम्ब, अग्निशिख, वर, वाञ्छीक, पीतन, रक्त, सङ्घोष, पिशुन, धीर, लोहित-चन्दन, चारु, वरवाञ्छिक, रक्तचन्दन, अग्निशेखर, असृक्, काश्मीरज, पीतक, काश्मीर, रुचिर, शठ, शोणित, सुसृण, वरेण्य, अरुण, कालेयक, जागुड़, काम्त, वज्रशिख, केशर-वर, गौर, केसर, हरिचन्दन, खल, रज, दोपक, लोहित, सौरभ और चन्दन है ।

वेद्यकमतसे वह—सुगन्ध, तिक्त एवं कटुरस, उष्ण-वीर्य, रुचिकारक, कान्तिवर्धक और कास, वायु, कफ, कण्ठरोग, उर्ध्वशूल तथा विषदोषनाशक है । (राजनि)
कुङ्कुम—विरेचक और विषर्णता तथा कण्ठ-नाशक है । (राजवल्लभ) वह स्निग्ध, वनशकारक और शिरोरोग, क्षमि, व्यङ्ग एवं चिदोषनाशक होता है । (भावप्रकाश) कुङ्कुम त्वकदोषनिवारक हैं । (रत्नावली)

वेद्यकग्रन्थ भावप्रकाशमें लिखा है—‘देशभेदसे कुङ्कुम तीन प्रकारका होता है । जिसका केशर सूक्ष्म, रक्तवर्ण एवं पद्मकी भाँति गन्धविशिष्ट पाया जाता, वह सर्वापेक्षा उत्तम कहाता है । वाञ्छीकदेश-जात कुङ्कुम सूक्ष्मकेशर रहता है । फिर भी उसका वर्ण पाण्डु, और गन्ध केतकी पुष्पकी भाँति होता है । वह मध्यम है । पारसीक (ईरानी) कुङ्कुम स्थूल-केशर, ईषत् पाण्डुवर्ण और मधुकी भाँति गन्धयुक्त होता है । वह सर्वापेक्षा निकृष्ट है ।’ केशर देखो ।

२ कुङ्कुमवृक्ष, केशरका पेड़ । ३ बौद्धशास्त्रवर्णित बोधिद्रुमका पार्श्ववर्ती एक स्तूप ।

कुङ्कुमताम्र (सं० त्रि०) कुङ्कुमवत् ताम्रं ताम्रवर्णम्, उपमि० । १ कुङ्कुमकी भाँति रक्तवर्णयुक्त, जाफरान जैसा सुखे, केशरकी तरह लाल । (स्त्री०) २ कुङ्कुमकी भाँति रक्तवर्ण, जाफरान-जैसी सुखी, केशरकी तरह लाल रंग ।

कुङ्कुमपाण्डुर—एक पाण्डुराज । वह चैतन्यशाली पाण्डुके पुत्र थे ।

कुङ्कुमरेण (सं० पु०) कुङ्कुमानां रेणुः, ३-तत् । कुङ्कुम-गुणक, केशरकी धूला ।

कुङ्कुमशालि (सं० पु०) शालिधान्यविशेष, केसरिया धान । बड़ मधुर, शीतल और रक्तपित्तातिसारघ्न होता है । (राजनिघण्टु)

कुङ्कुमा (सं० स्त्री०) शाल्मलिपत्र, सेमरका पेड़ ।

कुङ्कुमाक्त (सं० त्रि०) कुङ्कुमेन अक्तं लेपितम्, १-तत् ।

कुङ्कुमानुलेपनयुक्त, केसर लगाये हुआ ।

कुङ्कुमागुरुक (सं० पु०) पीतरक्त हरिचन्दन । बड़ शीत, तिक्त, स्वर्गिभोग्य, मनुष्यों को दर्लभ और पित्त, अम और शोषनाशक होता है । (वैद्यकनिघण्टु)

कुङ्कुमाङ्क (सं० स्त्री०) कुङ्कुमस्य अङ्कं चिह्नम्, १-तत् ।

१ कुङ्कुमका चिह्न, जाफरानका दाग, केसरका धब्बा ।

(त्रि०) २ कुङ्कुम चिह्नयुक्त, जाफरानका दाग रखने-वाला ।

कुङ्कुमायतैल (सं० स्त्री०) तैलविशेष, केसरका तेल । उसमें १ शरावक तेल और कायार्थ—कुङ्कुम, रक्त चन्दन, लाक्षा, मञ्जिष्ठा, यष्टिमधु, कण्ठागुरु, वीरणमूल, पद्मकाष्ठ, नीलोत्पल, वटाङ्गूर, पर्कटशङ्खा, पद्मकेशर और दशमूल एक एक पल पड़ता है । उक्त द्रव्यों को १६ शरावक जलमें डबाल ४ शरावक शेष रहनेसे उतार लेना चाहिये । उक्त तैलको लगानेसे नीलिका पिड़कादि रोग हटता और शरीर काष्ठीनापम निकलता है ।

(रसरत्नाकर)

कुङ्कुमाद्रि (सं० पु०) कुङ्कुमस्य आकारी अद्रिः, मध्य-पदलो० । काश्मीर देशका एक पर्वत । वहाँ बहुत कुङ्कुमवृक्ष उत्पन्न होते हैं ।

कुङ्कुमाङ्क कुङ्कुमताव देखो ।

कुङ्कुमी (सं० स्त्री०) कुङ्कुमवर्णा स्त्रियस्याः, कुङ्कुम-अप्-ङीष् । महाज्योतिषती लता, रतनजीत ।

कुङ्कुनी (सं० स्त्री०) कुङ्कुमवर्णा स्त्रियस्याः, कुङ्कुम-अप्-ङीष् षोढरादित्वात् साधुः । कुङ्कुमी देखो ।

कुच (सं० पु०) कुचति सङ्कुचति, कुच-क । १ स्तन, पिप्ता । स्त्रियोंके यौवनके प्रारंभ होनेसे कुचकी वृद्धि होती है । किसी किसी स्मृतिशास्त्रमें कुचोद्गमनसे पहले ही स्त्रीको व्याह देनेका विधि कहा है । बारह वर्ष तक ही कुच उद्गमनका पूर्व काल सामान्यतः लिया जाता है । जग देखो ।

२ जातिविशेष, कोई कौम । कोच देखो । (त्रि०)

३ सङ्कुचित, सिकुड़ा हुआ ।

कुचकलिका (सं० स्त्री०) कुचः कलिका इव, उपमि० । पद्मादि सुकुल तुल्य कुच, गुलाब बगैरहके गुच्छे-जैसे पिप्ता ।

कुचकार (हिं० पु०) मेघभेद, कुलज्जा भेद । बड़ गिल-गिटके उत्तर कुलज्जामें मिलता और पामोरमें भी देख पड़ता है ।

कुचकुङ्कुम (सं० स्त्री०) कुचानुलिप्तं कुङ्कुमम्, मध्य-पदलो० । कुच पर अनुलिप्त कुङ्कुम, पिप्ता पर लगा हुआ जाफरान् ।

कुचकुचवा (हिं० पु०) पेवक, उल्लू, कुचकुच बोलने-वाली चिड़िया ।

कुचकुचाना (हिं० स्त्री०) १ छेदने रहना, बार बार कोचना । २ अधिक न कुचलना ।

कुचकुम्भ (सं० पु०) कुचः कुम्भ इव, उपमि० । कल-सङ्गी भांति उच्च कुच, सेव, जैसे पिप्ता ।

कुचकोरक (सं० पु०-स्त्री०) कुचः कोरक इव, उपमि० । पद्मादि सुकुलकी भांति कुच, गुच्छे-जैसे पिप्ता ।

कुचक्र (सं० पु०) कु कुक्षितः चक्रः, कमंडा० । कुमन्त्रणा, बुरा फेर ।

कुचक्री (सं० त्रि०) कुक्षितचक्री चक्रोऽस्यास्ति, कुचक्र-इति । १ कुमन्त्रणाकारी, बुरे फेरमें पड़नेवाला । २ दूसरोंको कुमन्त्रणा देनेवाला, जो औरोंको बुरे सलाह देता हो ।

कुचण्डिका (सं० स्त्री०) कुक्षिता चण्डिका विकारका-रित्वात् कोपना इव, उपमि० । मूर्खा नामक लतावि-शेष, एक वेल ।

कुचण्डी, कुचण्डिका देखो ।

कुचतट (सं० स्त्री०) कुचस्तटमिव विशालत्वात्, उपमि० ।

१ विस्तृत कुच, बड़े पिप्ता । २ कुचका कोई स्थान ।

कुचतटाय (सं० स्त्री०) कुचतटस्य अयम्, १-तत् । कुचाय, चूचक, टिभनी ।

कुचना (हिं० स्त्री०) १ सङ्कुचित होना, सिकुड़ना ।

२ छिदना, लगना ।

कुचनी (हिं० स्त्री०) कोचजातीय स्त्री, कोचीकी औरत ।

कुचनीपाड़ा—कोचविहार, कोचजातीय स्त्रियों के रहने का स्थान। प्रवाद है कि कुचनीपाड़ा की स्त्रियों के साथ शिव अभिचार में लिप्त थे।

कुचन्दन (सं० स्त्री०) कु गन्धहोनत्वात् कुक्षितं चन्दनम् कर्मधा० । १ रक्तचन्दन । २ पत्राङ्ग, बकम । ३ कुङ्कुम, जाफरान, केशर । ४ वृक्षविशेष, एक पौदा ।

कुचफल (सं० पु०) कुच इव फलं यस्य, बहुव्री० । १ दाडिमवृक्ष, अनारका पेड़ । २ कपित्थवृक्ष, केथेका पेड़ । (स्त्री०) कुववत् फलम्, कर्मधा० । १ दाडिमफल, अनार ।

कुचमर्दन (सं० पु०) शणभेद, किसी किस्मका पट्टा । वह रज्जु बनाने में व्यवहृत होता है ।

कुचमुख (सं० स्त्री०) कुचस्य मुखं अग्रभागः, इ-तत् । कुचका अग्रभाग, पिप्तांका अगला हिस्सा ।

कुचर (सं० त्रि०) कु कुक्षितं चरति, कु-चर-अच् । १ परकी निन्दा करते घूमनेवाला, जो दूसरे को बुराई करता फिरता हो । २ कुक्षितकर्मकर्ता, बुराकाम करनेवाला ।

“म तद्विषः सवते नो यं च गौ न भीमः कुचरो गिरिजाः ।”

(अक् १।१५११२)

‘कुचराः मनुष्यादि कुक्षितकर्मकर्ताः’ (सायण)

१ कुक्षान में विषरणकारी, बुरी जगह में फिरनेवाला ।

“दृष्ट्वा त्वादित्यमुद्यन्तं कुचराणां भयं भवेत् ।”

(भारत, १४।१८११)

कुचरा (हिं० पु०) भाड़ू, बदमी ।

कुचर्या (सं० स्त्री०) कुक्षिता चर्या पाचरणम्, कर्मधा० । १ निन्दनीय पाचरण, बुरी चाल । २ नीच पुरुषसेवा, कमीने शब्दको छिदमत ।

“शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनाजं वम् ।

द्रीडभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मयुरकल्पयत् ॥” (मयु, ८।१७)

कुचल—वङ्गदेशवासी बाह्यजाति-स्त्रियों का एक गोत्र ।

कुचलना (हिं० त्रि०) १ रौंदना, दबाना

कुचला (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पौदा । (Strychnos colubrina) इसे मलय में मोदीरकनीरम, बम्बे में गोवागरी लकड़ी, माह्वारो में कजारबल

और तेलगु में नागमुसदि कहते हैं । वह पश्चिम-दक्षिण प्रायद्वीप में एक लता है । कोष्ठसे कोचिन तक कुचला प्रायः पाया जाता है । उसके पत्र पान-जैसे हरिद्वर्ण और आभाविशिष्ट होते हैं । पुष्प दीर्घ, सूक्ष्म और श्वेतवर्ण लगते हैं । पुष्प पतित होने पर नारङ्गी जैसे रक्त और पीतवर्ण फल आते हैं । उनमें पीतवर्ण सार और बीज रहता है । सिंहल में कुचला की जड़ पानी और शराब में कुचलकर अन्तर्ज्वर के रोगों को खिनायी जाती है । वह प्रत्येक विष और रोगका महोषध है । अपने आक्रमण में सर्पद्वारा दष्ट होने पर नकुल कुचले की जो जड़ को खाता है । कुचले की लकड़ी बलप्रद होती है । उसमें विष रहता है । इसलिये कुचले को बड़ी सावधानता से व्यवहार करना चाहिये । विषाक्त कीट के काटने पर कुचला बड़ा उपकार करता है । उसका काष्ठ बहुत सुदृढ़ रहता और उसमें घुष नहीं लगता । उससे शकट, हन आदि बनाये जाते हैं । कुचले का बीज गाल और चपटा होता है । उसपर घूसरवर्ण सूक्ष्मत्व चढ़ी रहती है । वह हिदल है । अधिक कठोर रहने से उसको तोड़ना या पीसना सरल नहीं ।

कुचली (हिं० स्त्री०) दन्तभेद, एक दाँत । वह राजदन्त और डाढ़ के बीच होती है । नोकदार और बड़ी रहने से कुचली खाद्य को कुचल डालती है ।

कुचविहार, कोचविहार देखो ।

कुचाय (सं० स्त्री०) कुचस्य अग्रम् इ-तत् । स्तनका अग्रभाग, टिंभनी ।

कुचाङ्गेरी (सं० स्त्री०) कुक्षिता चाङ्गेरी, कर्मधा० । चुक, चूका, किसी किस्मका खट्टा साग ।

कुचान (हिं० स्त्री०) कुक्षित पाचरण, बुरी आदत ।

कुचाली (हिं० वि०) कुक्षित पाचरणयुक्त, बदचलन, बुरी चाल चलनेवाला ।

कुचावन—राजपूताना के जयपुर राज्य की एक जागीर और नगरी । वह अक्षा० २७° ६' ३०" और देशा० ७४° ५७' ५०" पर सांभर जिले में अवस्थित है । योधपुर-प्रदेश कुचावन से दमील उत्तर लगता है । लोकसंख्या दशहजार से ऊपर है । वहाँ बन्दूकों और तलवारों

बनती हैं। किला खूब मजबूत है। उसके भीतर कई प्रासाद खड़े हैं। नगरसे दक्षिण घोर दो स्थानमें सेम्भव स्वयं जम जाता है। किन्तु परिमाण अल्प रहनेसे लोग संघट्ट नहीं करते। जागीरमें १५ गांव हैं। ५४०००) रु० वार्षिक आमदनी होती है। कुचावनके ठाकुर मरतिया राठौर हैं, यहाँ सेठ चैनसुख गम्भीरमलजीकी तरफसे जिनेश्वर पाठशाला स्थापित है, जिसमें विना शुल्क शिक्षा और परदेशी छात्रोंकी भोजनादि व्यय भी दिया जाता है।

कुचाह (हिं० स्त्री०) अशुभ विषय। खराब बात।
कुचि (सं० पु०) अष्टसृष्टिपरिमित मान, आठ मूठकी नाप।

कुचिक (सं० पु०) कुच बाहुलकात् इकन् । मत्स्य-विशेष, एक मछली। उसके काटनेसे गाय मर जाती है। २ ईशान दिक्भागका देशविशेष, एक सुल्क। कुचिक सम्भवतः कोचविहार समझ पड़ता है।

“भक्षान्पल्लव-जटामुर-कुनठ-खस-चोष-कुचिकाद्याः ।” (इहत्संहिता)

कुचिकर्ण (सं० पु०) कर्णरोगभेद, कानकी एक बीमारी। उसमें वातसे अभ्यन्तर पर झुकुली सङ्घ-सित हो जाती है।

कुचिकित्सक (सं० पु०) कु कुत्सितः चिकित्सकः, कर्मधा०। निन्दित चिकित्सक, बुरा इकीम।

कुचिन्ता (सं० स्त्री०) कु कुत्सिता चिन्ता, कर्मधा०। बुरी चिन्ता, छोटी फिक्र।

कुचिया (हिं० स्त्री०) छुद्रखण्ड, छोटी टिकिया।

कुचिया दांत (हिं० पु०) दंष्ट्रा, डाँठ, कुचलनेवाला दांत।

कुचिरा (सं० स्त्री०) नदीविशेष, एक दरया।

(भारत, भोज, ८।२६)

कुचिन (सं० पु०) कुचेल, कुचला।

कुचिलना, कुचलना देखो।

कुचिला, कुचला देखो।

कुचील (हिं० वि०) मलिनवस्त्रधारो, मला कपड़ा पहने हुवा।

कुचुटक (सं० पु०) जलशकविशेष, पानीमें होने-वाली एक सजी।

कुचुमार—एक प्राचीन कामशास्त्रप्रणेता। वात्स्यायनने

अपने कामसूत्रमें इनका वचन उद्धृत किया है।

कुचेल (सं० त्रि०) कुत्सितं चेलं वस्त्रं यस्य, बहुव्री०।

१ कुत्सित वस्त्र पहने हुवा, जो मैला कपड़ा पहने हो। (स्त्री) कुत्सितं चेलम्, कर्मधा०। २ जीर्ण वस्त्र, मैला या पुराना कपड़ा।

“कपालं वस्त्रमूलानि कुचेलममहायता।

समता चेन्न सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम्॥” (मनु, ६।४४)

३ कनकफलवृक्ष, कुचला।

कुचिला (सं० स्त्री०) कुचा सङ्घचा इला भूमिर्निद्रा वा यस्याः, बहुव्री०। १ विह्वकर्णी। २ कनकटिया, चाकनादि।

कुचेलिका, कुचेली देखो।

कुचेलो (सं० स्त्री०) कुचेल-डीप्। पाठा, चाकनादि।

कुचेष्ट (सं० त्रि०) कुत्सिता चेष्टा यस्य, बहुव्री०। निन्दित कार्यकारक, बुरा फिराक रखनेवाला।

कुचेष्टा (सं० स्त्री०) कु कुत्सिता चेष्टा, कर्मधा०। १ दृष्ट चेष्टा, बुरा फिराक। २ दुष्ट कार्य, खराब काम।

कुचेल (हिं० स्त्री०) कष्ट, तकलीफ।

कुचला (हिं० वि०) १ मलिन वस्त्र रखनेवाला, जो मैला कपड़ा पहने हो। २ मलिन, गन्दा।

कुचीय (हिं० पु०) असम्बद्ध प्रश्न, जट पटांग सवाल।

कुची (हिं० स्त्री०) पात्रविशेष, छोटा कूजा, कप्यौ।

कुची महीकी लम्बी लम्बी बनती है। तेली उसे तेल नापनेमें व्यवहार करते हैं।

कुच्छ (सं० स्त्री०) कोः पृथिव्याः दुःखं, यति दर्शन-प्राणादिना लुनाति, कु-छो-क। १ कमुद पुष्प, कोका-बेली, बघाला। २ श्वेतपद्म, सफेद कंवल।

कुच्छाय (सं० स्त्री०) शरीर, जिस्मा।

कुच्छुट (सं० पु०) बम्बूल वृक्ष, बम्बूलका पेड़।

कुच्छ (हिं० वि०) १ क्लिप्त, थोड़ा। (सर्व०) २ क्लिप्त, कोई। (स्त्री० वि०) ३ ईषत् परिमाणमें, किसी कदर।

कुज (सं० पु०) कोः पृथिव्याः जायते, कु-जन-ड।

१ मङ्गल ग्रह, मिरीख। २ नरकासुर। ३ वृक्ष, पेड़।

(स्त्री०) ४ पद्म, कंवल।

कुजन (सं० पु०) कुः कुक्षितो जनः, कर्मधा० । दुष्ट
व्यक्ति, खराब आदमी ।

कुजननी (सं० स्त्री०) कुक्षिता जननी, कर्मधा० ।
कुमाता, अपनी बौलादपर मुहब्बत न रखनेवाली मा ।

कुजप (सं० द्वि०) कुक्षितं जपति, क्-जप-अच् ।
कुक्षित जपकारक, उलटी माला फेरनेवाला ।

कुजम्भन (सं० पु०) कोः पृथिव्या जम्भनमिव अत्र, बहु-
व्री० । सन्धिचौर, सेंध लगाकर चोरी करनेवाला चोर ।

कुजम्भल (सं० द्वि०) कोः पृथिव्याः कौ वा जम्भलः,
६ वा ७-तत् । कुजम्भन देखो ।

कुजम्भ (सं० द्वि०) कुक्षितो जम्भो दन्तोऽस्य । १ कुक्षित
दन्त्युक्त, बुरे दांतवाला । (पु०) २ असुरविशेष, वह
प्रजादके पुत्र थे ।

कुजम्भल (सं० द्वि०) सन्धिचौर, सेंध लगानेवाला ।

कुजा (सं० स्त्री०) कोः पृथिव्या जायते, कु-जन-उ-टाप् ।
१ सीतादेवी, जानकी । कालिकापुराणमें उनका
जन्म-विवरण इस प्रकार लिखा है—

‘राजर्षि जनकने पुत्रकामनासे गौतम और शता-
नन्द ऋषिको पौरोहित्यमें नियुक्त कर एक यज्ञानुष्ठान
किया । उसके द्वारा यज्ञस्थलसे दो पुत्र और एक कन्या
ने जन्म लिया । किन्तु कन्या भूमिमें ही अन्तर्हित हो
रही । उस समय देवर्षि नारदने उक्त यज्ञस्थलको दृष्ट
हारा कर्षण करानेका उपदेश दिया था । तदनुसार
भूमि कर्षण कर राजर्षि जनकने सखोजाता सीतादेवी-
को प्राप्त किया ।’ (कालिकापु० २७ अ०)

कुजाः पृथिवीजाः वृक्षा आश्रयत्वेन सन्ति अस्याः ।
२ कात्यायनीदेवी । नवपत्रिका आश्रयरूप कल्पित
होनेसे कात्यायनी देवीका कुजा नाम पड़ा है ।

कुजाति (सं० स्त्री०) नीच जाति, कमीना कौम ।

कुजाष्टम (सं० पु०) कुजो मङ्गलग्रहो अष्टमो यत्र, बहु-
व्री० । ज्योतिःशास्त्रोक्त जन्म लग्नसे अष्टम स्थानस्थित
मङ्गलग्रहरूप योगविशेष, पाठवें मङ्गलका योग ।
कुजाष्टम योग आनेसे अन्यान्य समस्त शुभयोग भी
विनष्ट हो जाता है । किन्तु मङ्गलग्रह यदि अन्तर्गत,
पीचगत वा शत्रु स्थान-गत रहता, तो कोई दोष नहीं
लगता ।

“सर्वगुणान् निवृत्त्याय बिलपादृष्टमः कुजः ।

अन्तर्गे नीचर्गे भीमे शत्रु चेवगतेऽपि वा ।

कुजाष्टमोऽथो दोषो न किञ्चिदपि विद्यते ।” (ज्योतिष)

कुजिया (द्वि० स्त्री०) पाचविशेष, छोटा कुजा या
घरिया ।

कुजून (द्वि० स्त्री०) १ कुसमय, बुरा वक्त । २ अति-
काल, देर ।

कुज्झटि (सं० स्त्री०) कोजति अपहरति सूर्यप्रकाशम्
कुज्झटि न कुत्वम्; भट् सङ्घाते इन् भटिः, कुज्
चासौ भटिश्चेति, कर्मधा० । कुज्झटिका, कुहासा ।
उसका संस्कृत पर्याय—धूममहिषी, रतान्धी, कुह-
लिका धूमिका और नभोरेणु है । राजवल्लभके मता-
नुसार वह—रुक्म, तमोगुण-बहुल और कफ तथा
पित्तजनक है ।

कुज्झटिका (सं० स्त्री०) कुज्झटि स्त्रायं कन् टाप् ।
कुज्झटि, कुहासा ।

कुज्झटो कुज्झटि देखो

कुज्झटिका, कुज्झटि देखो ।

कुज्झिका, कुज्झटि देखो

कुल्या (सं० स्त्री०) सिद्धान्तशिरोमणिकथित गोलाकार
अर्धचंद्रके अर्धभागरूप चापकी साधनाङ्क रूप पञ्च-
क्याके अन्तर्गत एक जीवा । जीवा देखो ।

“कुल्या भुजोऽयाकथं इत्यचक्षेदवयं प्रसिद्धम् ।

(सूर्यसिद्धान्त टीका)

कुञ्ज—युक्त प्रान्तके आगरा विभागका एक नगर । वह
अक्षा० २६° १७' और देशा० ७८° ४५' पर अवस्थित
है । कुञ्ज जिला ब्रिटिश गवर्नमेण्टके अधिकारमें रहते
भी १८०५ ई०को सन्धिके अनुसार होलकरकी कन्या
भीमा बाईको जागीरमें दिया गया था । तदवधि वह
भीमा बाईके उत्तराधिकारियोंके ही हाथमें है । वही
राजस्व आदि भी लेते हैं । किन्तु शासनकर्तृत्व ब्रिटिश
गवर्नमेण्टके ही अधीन है । उसे कौंच भी कहते हैं ।

कुञ्चन (सं० स्त्री०) कुञ्चति अनेन, कुञ्च करणे क्युट् ।
१ नेत्ररोग विशेष, आँखकी एक बीमारो । उक्त रोग
नेत्रवर्कमें होता है । वातादि दोष कुपित होनेसे चक्षु
वर्क सङ्कुचित हो जाता और रोगी अपनी दृष्टिशक्ति
गंवाता है । (नाथवनिदान)

२ पादरोगभेद, पैरकी एक बीमारी। ३ सङ्कोच, सिकोड़।

कुक्षफला (सं० स्त्री०) कुक्षं कुक्षितं फलं यस्याः, बहुव्री०। कृष्णाली लता, कुम्हिड़ा।

कुक्षि (सं० पु०) कुन्च-इन्। अष्ट मुष्टि परिमाण, चाठ मूँठकी नाप।

कुक्षिका (सं० स्त्री०) कुन्च-ण्वुल-टाप् इत्वम्। १ गुच्छा, घुँघची। २ कुक्षि, बाँमकी डाल। ३ चाबी। ४ कण्ण जोरक, काला जोरा। ५ मेथिका, मेथी। ६ मत्स्यविशेष, एक मछली। ७ वचा, वच।

कुक्षित (सं० त्रि०) कुन्च-क्त। १ संकुचित, सिकुड़ा हुआ। २ वक्त, टेढ़ा। ३ घुँघर वाला। ४ अनादृत, बेइज्जत। (स्त्री०) ५ तगर पुष्प। ६ पिण्डीतगर।

कुक्षी (सं० स्त्री०) १ जोरक, जोरा। २ छठजोरक, बड़ा जोरा।

कुञ्ज (सं० पु० स्त्री०) की जायते कुञ्जन् उ एषोदगादि-त्वात् साधुः। १ लता गुल्मादि द्वारा आच्छादित पर्वत गङ्गार, बेलोंसे ढकी हुई पहाड़ी जगह। २ चारो ओर लतादि-वेष्टित स्थान, बेलोंसे घिरी हुई जगह।

‘कुञ्जमि खंजनकी बेलनि बिलोकत छी।’ (देवकीनन्दन)

३ हनु, नीचेका जबड़ा ४ इस्तिदन्त, हाथी दाँत। ५ ऋषि विशेष।

कुञ्जकुटीर (सं० पु०) कुञ्ज इव कुटीरः। निकुञ्जमें लता-पत्रादि द्वारा निर्मित गृह, बेलोंसे घिरी हुई जगहमें पत्तांका बनाया हुआ घर।

“मधुकरनिकरकरिन्मतकीकिलजुजितकुञ्जकुटीरे।”

(गीतगोविन्द)

कुञ्जकेलि (सं० पु०) कुञ्ज केलिः, ७-तत्। निकुञ्ज मध्य क्रीड़ा, बेलोंसे घिरी जगहका खेला।

कुञ्जगोपी—अयपुरके एक गौड़ ब्राह्मण। इन्होंने हिन्दी में शृङ्गार रसकी कविता लिखी हैं।

कुञ्जपुर—एक प्राचीन नगर। यह २८° ४३' ३०" और देशा० ७७° ५' पू० पर अवस्थित है। पंजाबके कर्नाल नगरसे कुञ्जपुर ३ कोस उत्तरपूर्व पड़ता है।

कुञ्जप्रिय (सं० पु०) जवावृक्ष, गुड़ इसका पेड़

कुञ्जर (सं० पु०) व्रशस्तः कुञ्जः हनु दन्तो वा यस्या-

स्ति, कुञ्ज-र। रप्रकरणे खसुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम् पा ५।१।१०७ वार्तिक। १ इस्ती, हाथी। २ सर्व विशेष, एक साथ। ३ केश, बाल। ४ कोई राजा। ५ पर्वत-विशेष एक पहाड़। उसका वर्तमान नाम अनुमलय है। ६ माताप्रस्तार विषयमें पञ्च माता प्रस्तारके मध्य प्रथम प्रस्तार। (हन्दःशा०) ७ इस्तानचक्र, इथिया। ८ अंजनाके पिता और हनुमानके मातामह। (रामायण, ४।६।१०) ९ कोई वृक्ष शुकपक्षी। ओङ्कारतौर्यमें कुञ्जर शुकका वास था। उसने महर्षि च्यवनको बहु विध उपदेश दिया। (पद्मपुराण) १० अश्वत्थ वृक्ष, पीपलका पेड़। किसी शब्दके पीछे ‘कुञ्जर’ लगा देनेसे अष्ट अर्थ निकलता है।

“सुबन्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः।

सिंहशार्ङ्गलनागायाः पुंसि ये ह्यर्थवाचकाः ॥” (अमरकोष)

उत्तरपद रूपमें व्याघ्र, पुङ्गव, ऋषभ, कुञ्जर, सिंह, शार्ङ्ग और नाग प्रभृति शब्द, व्यवहृत होनेसे पूर्व-वर्ती पदका अष्टताबोधक है। जैसे—राजकुञ्जर खेठ राजा और पुरुषकुञ्जर अष्ट पुरुष इत्यादि।

कुञ्जरकणा (सं० स्त्री०) कुञ्जरनाम्नी कणा पिप्पली, मध्यपदस्त्री०। गजपिप्पली, बड़ी पीपल।

कुञ्जरकर (सं० पु०) कुञ्जरस्य करः, ६-तत्। इस्ति-शृण्ड, हाथीकी सूँड।

कुञ्जरचारमूल (सं० स्त्री०) कुञ्जरस्य कुञ्जरपिप्पल्या इव चारं उपरं मूलमस्य, बहुव्री०। मूला, मूलौ।

कुञ्जरगड—ओरङ्गाबादके अन्तर्गत चारो ओर पर्वत वेष्टित एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० १८° २३' ३०" और देशा० ७४° ५' पू० पर अवस्थित है।

कुञ्जरग्रह (सं० पु०) कुञ्जरस्य ग्रहः ग्रहणम्, ६-तत्। इस्तिपालक, महावत।

“नाश्वन्तोऽथमाजानत्र गजं कुञ्जरग्रहः।” (रामायण, २। ८। ५०)

कुञ्जरच्छाय (सं० स्त्री०) कुञ्जरस्य छाया यत्, बहुव्री०। ज्योतिःशास्त्रोक्त एक योग। त्रयोदशी तिथिकी मघा नक्षत्र आनि अथवा सूर्य वा चन्द्रके मघा नक्षत्रसे मिल जाने पर उक्त योग होता है।

मनु-व्याख्याकार कुञ्जकभट्टने अन्य तिथिकी भी कुञ्जरच्छाय योगका विषय लिखा है—

“अपि नः स क्ली जायात् यो न दद्यात् वयोदशौम्।

पायसं मधु सर्पिर्भां पाक् क्षायि कुञ्जरस्य च ॥” (११।७४)

‘मञ्जतायां वयोदय्यां तथा तिथ्यान्तरैःपि इतिनः पूर्वा विभं गतायां
क्षाययां मधुसूतसंयुक्तं पायसं दद्यात् ।’ (कुञ्ज. क)

कुञ्जरदरी (सं० स्त्री०) दक्षिणस्य देशविशेष, एक
मुष्क । उसका वर्तमान नाम ‘अशुकलय’ है ।

“कण्ठोऽयं कुञ्जरदरी स तावपर्थोति विज्ञेया ।” (वृहत्संहिता)

कुञ्जरपादप (सं० पु०) कुन्दरुक् वृक्ष, एक पेड़ ।

कुञ्जरपिप्पली (सं० स्त्री०) कुञ्जरनाम्नी पिप्पली,
मध्यपदलो० । गजपिप्पली, गजपीपल । गजपिप्पली देखो ।

कुञ्जरपुट (सं० पु०) गजपुट, १० हाथ गहरा और
१ हाथ चौड़ा गढ़ा ।

कुञ्जररूपी (सं० त्रि०) कुञ्जरस्यैव रूपमस्यास्ति,
कुञ्जर-इति । इस्तीकी भांति रूपयुक्त, हाथो-जैसी
सूरत शकल रखनेवाला ।

कुञ्जरा (सं० स्त्री०) कुञ्जः इतिदन्त इव पुष्पं अस्ता-
स्याः, कुञ्जर-घट्-टाप् । १ धातकी वृक्ष, धायके फलका
पेड़ । उसका संस्कृत पर्याय—धातकी, धातुपुष्पी,
ताम्रपुष्पी, सुभिन्ना, बहुपुष्पी और वज्रज्वाला है ।
धातकी देखो । २ पाटल वृक्ष, परलका पेड़ । ३ इस्तिन
इतिनी ।

कुञ्जराराति (सं० पु०) कुञ्जरस्य अरातिः शत्रुः, ६ तत् ।

१ सिंह, शेर । २ शरभ, बाघ पंरवाला एक जानवर ।

कुञ्जरालुक् (सं० लो०) कुञ्जरसंज्ञकं आलुकम्,
मध्यपदलो० । आलुकविशेष, एक आलू ।

कुञ्जराशन (सं० पु०) कुञ्जरेण अश्यते, कुञ्जर-अश
कर्मणि ल्युट् । अश्यत्यवृत्त, पापलेका पेड़ । अश्व देखो ।

कुञ्जरासन (सं० लो०) कुञ्जरस्यैव आसनं अत्र,
बहुव्री० । आसनविशेष, एक बैठक । इस्तद्वय, पदद्वय
और मस्तक भूमिसे लगा शरीरका मध्यभाग शून्यमें
रखनेसे कुञ्जरासन बनता है—

“अथ वचो महाकालकुञ्जरासनमुत्तमम् ।

करद्वयेन प्रादाभां भूमौ तिष्ठेत् शिरः करः ॥” (रुद्रशामन)

कुञ्जरिका (सं० स्त्री०) सज्जकोवृत्त, एक पेड़ ।

कुञ्जर (सं० लो०) कुक्षितं जलमिव जलं यत्र, बहुव्री० ।

१ काञ्चिक, कांजी । २ रसुनभेद, किसी किसका
सहसुन ।

कुञ्जबाल—हिन्दी भाषाके एक कवि । इनका जन्म

१८५५ ई० की बूंदेलखण्ड भांसी जिलेके मऊ रानी-
पुरामें हुआ था । यह जातिके भाट रहे । इनकी कुछ
फुट कर कविता मिलती है ।

कुञ्जवज्जरी (सं० स्त्री०) कुञ्जाकारा वज्जरी, मध्यप-
दलो० । निकुञ्जिकाम्बुवृत्त, एक पेड़ ।

कुञ्जविहारी (सं० पु०) १ श्लोकावली । २ उड़ीसा देशके
कोई कवि ।

कुञ्जा (हिं० पु०) १ मृगमय पात्रविशेष, मट्टीका कुजा
पुरवा । २ जमी हुई मिसरीकी गोल डली ।

कुञ्जादि (सं० पु०) पाणिनि व्याकरणोक्त शब्दविशेष,
लफजोंका एक जखोरा । यथा—कुञ्ज, वृक्ष, शङ्ख,
अस्मन्, गण, लोमन्, शर, शाक, शण्डा, शुभ, विपाश,
स्नान्द, स्नाम्भ, ये कई शब्द कुञ्जादिके अन्तर्भूत हैं । उक्त
सकल शब्दोंके उत्तर गोत्र अर्थमें चक्रञ् प्रत्यय
लगता है । (पा ४।१।८८)

कुञ्जिका (सं० स्त्री०) कुन्ज-ग्वल्-टाप् इत्वम् ।
१ लण्यजीरक, कालाजीरा । २ निकुञ्जिकाम्बुवृत्त,
एक पेड़ ।

कुञ्जिलवार मलक्रिया—कात्यायनगोत्रीय मैथिल ब्राह्मणों
का एक मूल ।

कुञ्जिश (सं० पु०) कुङ्जिशमत्स्य, एक मछली । राज-
निघण्टुके मतमें वह—मधुर एवं कषायरस, रुचि-
कारक, अग्निदोषक, बलकारक, स्निग्ध, गुरु, मलरोधक
और वायुरोग पर हितकारक है । स्थान स्थान पर
कुञ्जभिश नामका प्रयोग भी देख पड़ता है ।

कुट (सं० पु० लो०) कुट्-क । १ कलश, गगरा ।
२ कोट, गढ़, किला । ३ शिलाकुट्ट, पत्थर तोड़नेका
घन, हथोड़ी । ४ वृक्ष, पेड़ । ५ पर्वत, पहाड़ । (वे०)
६ जत, कार्य, काम ।

“पिता कुटस्य चार्षणिः ।” (ऋक् १।४।६।४)

‘कुटस्य चार्षणि कर्मणो द्रष्टा ।’ (सायण)

‘पिता कृतस्य कर्मण्ययितादित्यः ।’ (याज्ञ, ५।२४)

७ गृह, घर ।

कुट (हिं० स्त्री०) १ कुठ, एक मोटी झाड़ी । वह
काश्मीरके निकटवर्ती पर्वतों पर ८०००से ८०००
फीटतक ऊँचे उपजती है । कुट चनाव और भोजनके

जंघे कटारोंमें भी पायी जाती है। काश्मीरवासी उसके मूलको खण्ड खण्ड कर बम्बई कलकत्ते भेजते हैं। वहां वह यूरोप और चीनको रफतनी की जाती है। काश्मीरराज कुटका मूल कर स्वरूप लेते और लवक ला ला कर देते हैं। उसका गन्ध बहुत मनोहर होता है। चीनवासी उससे धूप बनाते हैं। वह केश धोनेके भी काम आती है। कहते हैं कुट लगनेसे श्वेतकेश क्षणवर्ण हो जाते हैं। दुर्गालीकी तरमें उसे रखनेसे कीड़ा नहीं लगता। वह तीन प्रकारकी होती है। एक मधुर, लघु, सुगन्धि और पोताभ रहती है। द्वितीय—कटु, कषाभ और गन्धविहीन होती है। तृतीय—रक्त वर्ण और आस्वादशून्य है, वह घीकार भांति महकती है। कष्ट देखो।

(पु०) २ खण्ड, कूटा हुआ टुकड़ा।

कुटक (सं० पु०) दक्षिणस्थ जनपदविशेष, दक्षिणकी एक बसती। (भागवत, ५। ६। ८) २ उक्त देशके अधिपति जिनाचार्य। ३ कुटीर, भोपड़ा। ४ तसलतागहन।

कुटका (हि० स्त्री०) १ शुद्ध खण्ड, छोटा टुकड़ा। २ कृत्रिमपुष्प भेद, कसीदेका तिकोना बूटा, सिंघाड़ा।

कुटकाचल (सं० पु०) कुटकदेशीयः अचलः, मध्यपदको०। कुटकदेशीय पर्वतविशेष, एक पहाड़।

कुटकारिका (सं० स्त्री०) कुटं गृहकर्मादिकं करोति, कुट-कृ-गल्-टाप्-इत्वम्। परिचारिका, टहलुई।

कुटकी (हि० स्त्री०) कटुका, एक पौदा। वह पश्चिमी तथा पूर्वी घाटों तथा अन्य पार्वत्य प्रदेशमें भी उपजती है। पत्र दीर्घाकार, खचित और ऊर्ध्वको प्रशस्त रहते हैं। मूल ग्रन्थियुक्त रहता और औषधमें पड़ता है। कटकी देखो। २ मूलविशेष, एक जड़ी। वह शिमलेसे काश्मीर तक पहाड़ों पर होती है। ३ शुद्ध पत्रविशेष, एक कीटी चिड़िया। वह भारतके सघन वनमें रहती और ऋतुके अनुसार वर्ण बदलती है। उसका देह पांच इंच है। कुटकी १-४ इंच देती है। ४ बादिये के पंचांका एक हिस्सा। वह लोहेकी कील और ऊड़से बनता है। ५ कीटविशेष, एक कीड़ा। वह बहुत छोटी रहती और कुकुर विहास आदिके रुयोंमें घुस काटा करती है।

कुटह (सं० पु०) कुः गृहभूमिः टह्यते आच्छाद्यते अनेन, कु-टह-घञ्। गृहच्छादन, छानी, छपर।

कुटङ्ग (सं० पु०) स्थानविशेष, एक जगह।

कुटङ्गक (सं० पु०) कुटस्थ अङ्गलिः, शकम्बादित्वात् साधुः। १ वृक्ष लताद्वारा आच्छादित गहन स्थान, पेड़ों और बेलोंसे भरी हुई जगह। २ गृहच्छादन, छपर। ३ गृहविशेष, एक घर।

कुटच (सं० पु०) कुटे गिरौ चीयते उत्पद्यते, कुट-चि-ङ। कुटज देखो।

कुटज (सं० पु०) कुटे पर्वते जायते, कुट-जन्-ङ।

१ खनामख्यात वृक्ष, कुरेया या कुर्चाका पौदा। (*Holarrhena antidysenterica*) उसका संस्कृत पर्याय—शक्र, वत्सक, गिरिमल्लिका, कोटज, वृक्षक, काही, कालिङ्ग, मल्लिकापुष्प, प्रवृष्टा, शक्रपादप, वर-तिलक, यवफल, संग्राही, पाण्डुरद्रुम, प्रावृषेष्ठा, महा-गन्ध, पाण्डुर, कूटज, कोट और शक्रशाखी है। फिर उसे इन्द्रके किसी नामसे अभिहित कर सकते हैं। साधारण बोलीमें इन्द्रयव नाम चलता है। कुटजके बंगलामें कुड़ची, तामिलमें वेप्पल और तेलगुमें कोड़ग कहते हैं। वह कटु, तिक्त एवं कषायरस और अति-सार तथा कफनाशक है। रक्त कुटज रक्त पित्त और त्वक्दोषको निवारण करता है। (भावप्रकाश)

कुटजका वृक्ष छोटा होता है। उसकी त्वक् पीत-वर्ण रहती है। वह हिमालय पर चनावसे पश्चिम ३५०० फीट ऊंचे तक उपजता है। फिर भारतके शुष्क वनमें वह मलाका त्रिवांकर पर्यन्त विस्तृत है।

कुटजके पत्र कुछ दीर्घाकृति और प्रशस्त होते हैं। सफेद लम्बे फूलमें बहुत सुगन्ध रहता है। पंजाबके कांगड़ा जिलेमें उसकी पत्तियां पशुओंको खिलायी जाती हैं। कुटजके ही फलको इन्द्रयव कहते हैं।

इन्द्रयव देखो।

कुटजका काष्ठ श्वेतवर्ण, और मृदु होता है। उसमें बराबर दाने पड़े रहते हैं। मलाशौके जिले वह संहारनपुर और देहरादूनमें अधिक व्यवहार होता है। आसाममें उससे तरह तरहकी चीजें बनायी जाती हैं। आसामवासी कुटजकी माला अभिचारकी भांति पहना करते हैं।

कुटजके बीज और वल्कलका व्यवसाय चलता है। बीजसे हरा पोला तेल निकलता है। सन्ताल लोग उक्त तेलको औषधकी भांति व्यवहार करते हैं।

छोटानागपुरमें काष्ठभस्म रंगमें काम देता है।

कुटजका वल्कल और मूल यङ्गणी प्रभृति रोग निवारणके लिये बहु प्रकार व्यवहृत होता है। अंगरेजों में उसकी छालको कोनिसी छाल (Conissi bark) कहते हैं।

कुटात् घटात् जातः । २ द्रोणाचार्य । कुटज देखो । (स्त्री०) ३ इन्द्रयव । ४ कमल ।

कुटजगति (सं० स्त्री०) त्रयोदशाक्षरी छन्दोविशेष, १३ अक्षरोंका एक छन्द । यथाक्रम नगण, जगण, सगण, तगण, सगण, तगण और तगण, सगण एवं तगण रहनेसे उक्त छन्द बनता है।

‘कुटजगतिर्नाम सप्तमो गुरुः ।’ (उत्तरवाकर-टोका)

कुटजत्वक् (सं० स्त्री०) कुटजके मूलका वल्कल, कर्चीकी जड़वाली छाल ।

कुटजफल (सं० स्त्री०) इन्द्रयव, कुटजका फल ।

कुटजपुटपाक (सं० पु०) औषधविशेष, एक दवा । इसके बनानेकी प्रणाली इस प्रकार है—३२ तोना कुटज मूलत्वक् तण्डुलोटकसे अच्छी तरह पास गोला बनाते हैं। उसे जम्बूपत्रमें लपेट सूत्रसे बांध दिया जाता है। फिर गोधूम लगा और मृत्तिका लेपन चढ़ा उसको करीषाग्निमें पकाना चाहिये। लेपके रक्तवर्ण हो जाने पर गोला अग्निसे निकल रसको टपका लेते हैं। मधुके साथ उक्त रस यथा-मात्र सेवन करनेसे अतिसार रोग पारोग्य होता है। (भावप्रकाश)

कुटजमल्ली (सं० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक पेड़ ।

कुटजरस (सं० पु०) वैद्यकीय अर्शरोगनाशक औषधविशेष, बवासीरकी एक दवा । कुटजत्वक् १०० पल अष्टगुण वृष्टिके जलमें पका कर १ भाग अवशिष्ट रहनेसे उतार कर छान लेते हैं। फिर उक्त काथको मोचरस, वराहक्रान्ता, प्रियंगु और इन्द्रदव प्रत्येकका १ पल चूर्ण डाल पकाना चाहिये। पाक काल सकल द्रव्य घनीभूत होने पर उतार लेते हैं। कुटजरसके सेवनसे अर्शरोगके अतिरिक्त रक्तातिसार, शूल, रक्त

पित्त प्रभृति रोग भी पारोग्य हो जाते हैं। [चक्रदत्त]

कुटजरसक्रिया (सं० स्त्री०) कुटजरस देखो।

कुटजलेह (सं० पु०) वैद्यकीय अतिसार रोगनाशक अवलेहविशेष, दस्तकी बीमारीमें दी जानेवाली एक चटनी। कुटजत्वक् १२॥ शरावक ६४ शरावक जलमें पाक कर ८ शरावक रहनेसे उतार लेना चाहिये। फिर वस्त्रपूत काथ पुराने गुड़ (३ पल) के साथ पका कर लेड़ीभूत बनाते और उसमें रक्तचन्दन, विडङ्ग, त्रिकटु, त्रिफला, रमाञ्जन, चित्रक-मूल, इन्द्रयव, वषा, पतिविषा तथा विष्वपेशी प्रत्येकका १ पल चूर्ण मिलाते हैं। (चक्रदत्त)

कुटजवोज (सं० स्त्री०) कुटजस्य बीजं फलम्, ६-तत् । इन्द्रयव । इन्द्रयव देखो।

कुटजसुधा (सं० स्त्री०) कुटज-चूर्ण, कर्चीका चूरण।

कुटजा (सं० स्त्री०) त्रयोदशाक्षरी छन्दोविशेष। उसका लक्षण इस प्रकार कहा है—

“सजसा भवेदिह सगौ कुटजाखाम् ।” (उत्तरवाकर)

सगण, जगण, सगण, सगण और गगण रहनेसे कुटजा छन्द होता है।

कुटजादिकाथ (सं० पु०) रक्तातिसारका औषधविशेष, खूनी दस्तोंकी एक दवा। कुटजत्वक्, पतिविषा, मुस्ता, बालक, लोध्र, चन्दन, धातकी, दाडिम और पानका काथ मधुके साथ पीनेसे अतिसार, दाह एवं शूल प्रशान्त हो जाता है। दूसरा कुटजादि काथ कुटज, दाडिम, मुस्ता, धातकी, विष्व, बालक, लोध्र, चन्दन और पाठाको पाक कर बनाते हैं। उसे भी मधुके साथ पीने पर रक्तातिसारादि रोग मिटते हैं।

(भेषज्यरत्नावली)

कुटजाद्यघृत (सं० स्त्री०) अर्शरोगनाशक घृतविशेष, बवासीरकी बीमारी पर दिया जानेवाला घी। घृत ४ शरावक, कल्कद्रव्यका समष्टि ८ पल और ४ शरावक वारि एकत्र पाक करना चाहिये। भली भांति पक जाने पर उक्त घृत सेवन करनेसे अर्शरोग विनष्ट होता है। कल्कद्रव्यमें कुटजत्वक्, इन्द्रयव, नागेश्वर, नीलोत्पल, लोध्रकाष्ठ और धातकी प्रत्येक १॥ तोला डालते हैं। (चक्रदत्त)

कुटजावलेह (सं० पु०) अतिसारका एक अवलेह दस्त पर दी जानेवाली कोई चटनी । १२॥ शरावक कुटज मूलत्वक् ६४ शरावक पानीमें उबाल १६ शरावक रहनेसे उतार कर छान लेना चाहिये । इस काथको पाक कर लेहन तुल्य होने पर सोवचल, यवचार, विट्, सेन्धव, पिप्पली, धातकी, इन्द्रयव और जोरकचूर्ण एकत्र १६ तोले डाल उतार लेते हैं । एक तोला मात्रामें मधुके साथ उक्त अवलेह सेवन करनेसे अतिसार रोग आरोग्य होता है । (चक्रपाणिदत्त)

कुटजारिष्ट (सं० पु०) अग्निदीपक और ज्वरनाशक एक अरिष्ट । १२॥ सेर कुटज मूलत्वक् ६॥ सेर किशमिश और मउफल तथा गांधारी प्रत्येक १। सेर ६ मन १६ सेर जलमें सिद्धकर १॥ सेर रहने पर उतार कर छान लेते हैं । फिर उनमें १२॥ सेर गुड़ २॥ सेर छायाके फूल मिला किसी मृत्पात्रमें दृढ़ रूपसे मुख बांध एक मास पर्यन्त रख छोड़ना चाहिये । पीछे उक्त अरिष्ट व्यवहार करनेसे सर्वविध ज्वर कूट जाता और धनञ्जय नामक जठराग्नि बढ़ जाता है ।

(शार्ङ्गधर)

कुटजाष्टक (सं० स्त्री०) अतिसारका एक औषध, दस्तकी कोई दवा । १०० पल कुटजमूलत्वक् ६४ शरावक जलमें उबाल १६ शरावक शेष रहने पर उतारकर छान लेना चाहिये । फिर शाल्मली आदि प्रत्येक १ पल एकत्र पीस उक्त काथमें डाल देते हैं । उसके पीछे काथको पाक कर गाढ़ होनेपर उतार लेनेसे औषध बन जाता है । प्रक्षेप्य द्रव्य यह हैं—पाकनादि, वराहक्रान्ता, अतीस, मुस्ता, विष्वशुण्ठी, धातकी और मोचरस उक्त द्रव्यमें प्रत्येक ८ तोले लिया जाता है ।

कुटजाष्टकावलेह (सं० पु०) अतिसार रोगनाशक औषधविशेष, दस्तकी एक दवा । ५ पल कुटजमूलत्वक्को ६४ शरावक जलमें उबाल १६ शरावक शेष रहनेसे उतार लेना चाहिये । काथको छान पुनः पाक कर गाढ़ होने पर लज्जालुका, धातकी, विष्वशुण्ठी, पाठा, मुस्तक, मोचरस और अतिविषा प्रत्येक द्रव्य का १ पल चूर्ण डालनेसे उक्त औषध प्रस्तुत होता है ।

(भावप्रकाश)

कुटजाव (सं० पु०) पुत्रजीव वृक्ष, एक पेड़ ।

कुटजोद्भव (सं० पु०) इन्द्रयव ।

कुटजोद्भवा (सं० स्त्री०) कुटजोद्भव देखो ।

कुटनई (हिं० स्त्री०) १ कूटनेका काम । २ नायक और नायिकाके बीच संवाद पङ्चचानिकी क्रिया, कुटनपन ।

कुटनपन (हिं० पु०) १ दूतीकर्म, औरतोंकी बिगाड़ने का काम । २ पिशुनता, चुगलखोरी ।

कुटनपेशा (हिं० पु०) १ दूतीकर्म द्वारा जोविकोपाजने, औरतोंको बिगाड़ रोजी कमानेका काम । २ दूतीकर्म द्वारा जोविका उपाजने करनेवाला, जो औरतोंको बिगाड़ कर खाता हो ।

कुटनहारी (हिं० स्त्री०) धान कूटनेवाली स्त्री०, जो औरत धान कूट कर अपना काम चलाती हो ।

कुटना (हिं० पु०) १ स्त्रीकी परपुरुषसे मिलानेवाला, जो शयन औरतोंको दूसरे मर्दानसे मिलाता हो । २ वञ्चक, चुगलखोर ।

(क्रि०) १ मारा जाना, मार खाना । ४ कूटा जाना ।

कुटनाना (हिं० क्रि०) १ व्यभिचारा बनाना, खराब करना । २ बहकाना, भड़काना ।

कुटनापन, कुटनपन देखो ।

कुटनापा, कुटनपन देखो ।

कुटनी (हिं० स्त्री०) १ दूती, औरतोंकी दूसरे मर्दानसे मिलानेवाला । २ चुगलीखानेवाली, भगड़ा लगानेवाली ।

कुटनी (सं० स्त्री०) महाज्योतिष्मती लता, रतनजोत ।

कुटनीपन, कुटनपन देखो ।

कुटन्नक, कुटन्न देखो ।

कुटन्नट (सं० पु०-स्त्री०) कुटन् सन् नटति, कुटन्-नट्-अच् । १ भद्रमुस्ता, नागरमोथा । २ केशराज, केशर । ३ विकङ्कतवृक्ष, बंसोका पेड़ । ४ श्याणकवृक्ष, एक पौधा । ५ केवतमुस्तक । केवतमुस्तक देखो । ६ वितुस्तक वृक्षकी त्वक् ।

कुटन्नटा (सं० स्त्री०) पालङ्क शाक, एक सब्जी ।

कुटप (सं० पु०) कुटात् विपञ्जालात् पाति रक्षति,

कुट-पा-क। १ मुनि। २ चैत्रविशेष, कोई जगह।
गृहके निकटका उपवन, घरके पासका बाग। ४ परि-
माणविशेष, ३२ तोलेकी एक तौल। (क्लो०) ५ पद्म,
कंवल।

कुटपिनो (सं० स्त्री०) पद्मिनी, छोटा कंवल।

कुटम्बक (सं० क्लो०) सुगन्ध रोहिषवृक्ष, एक खुशबू-
दार घास।

कुटर (सं० पु०) कुट बाहुलकात् करन्। १ मन्थान
दण्ड बांधनेका स्तम्भ, मथाने लगानेका खम्भ। २ सप्त-
विशेष, एक सांप।

कुटर कुटर (हिं० पु०) अव्यक्त शब्दविशेष, कोई कड़ी
चीज चबानेसे कुटर कुटर शब्द निकलता है।

कुटरणा, कुटरणी देखो।

कुटरणी, कुटरणी देखो।

कुटरवाहिनी (सं० स्त्री०) खेतविहृत।

कुटरिणा कुटरणी देखो।

कुटरिणी, कुटरणी देखो।

कुटर (सं० पु०) कुट-प्रत्ययः क्लिप्तः। कुटः क्लिप्तः। उ० ४। ८०।
पटगृह, कनात।

कुटरणा (सं० स्त्री०) कुटेषु प्ररुणा, शकम्बादित्वात्
साधुः। १ विहृता। २ प्ररुणमूल, विहृत। ३ शूल-
विहृत।

कुटल (सं० क्लो०) कुटति आच्छादयति अनेन, कुट
करणे कलप्। पटल, छानो छप्पर।

कुटवाना (हिं० क्लि०) कुटनेमें लगाना, कुटाना।

कुटहारिका (सं० स्त्री०) कुटं कलशं हरति जलाद्या-
नयनार्थं गृह्णाति, कुट-ह-ण्वल्-टाप् इत्वम्। दासी
टहलुइ।

कुटाई (हिं० स्त्री०) १ कुटनेका काम। २ कुटनेके
कामकी मजदूरी।

कुटामोद (सं० पु०) गन्धमार्जारारुह, भवरीले बिलाव
का अण्डा।

कुटास (हिं०) ताड़ना, कड़ी मारपीट।

कुटि (सं० पु०-स्त्री०) कुट् गृहं पृ कुटिमिदि द्विदिभाष। उ०
४। १४२। १ गृह, घर। २ शरीर, जिस। ३ वृक्ष, पेड़।
४ मुरमांसी।

कुटिक (सं० त्रि०) कुटिल, टेढ़ा।

“शिरसां सुषमादापि न स्थानकुटिकासनात्।” (भारत, वनपर्व)

(पु०) २ मृत्फल। ३ कुष्ठ, कुट।

कुटिका (सं० स्त्री०) नदीविशेष, एक दरया।

(रामायण, २। ७१। १५)

कुटिकोष्ठिका (सं० स्त्री०) नदीविशेष, एक दरया।

(रामायण, २। ७१। १०।)

कुटिचर (सं० पु०) कुटि कुटिलं यथास्यात् तथा जले
धरति, कुटि-चर-ट। जलशुकर, दरवायो सूवर।

कुटिचर (सं० पु०) पत्रशाक विशेष, जङ्गली बधुवा।

वह स्वादुपाक, चार, रुश, शीतल, गुरु, मलस्तम्भकर
और दोषोत्पादनकारी है। (वैद्यकनिघण्टु)

कुटित (सं० त्रि०) कुटं कौटिल्यं जातमस्य, कुट-इतच्
क्लिप्तः। कुटिल, टेढ़ा।

कुटिया (हिं० स्त्री०) छुद्र कुटि, छोटा घर या भापड़ा।

कुटिर (सं० क्लो०) कुण्यते निर्माप्यतं यत् कुट-इरन्।
छुद्रगृह, कुटिया।

कुटिल (सं० त्रि०) कुट् कौटिल्यं बाहुलकात् इतच्।

१ वक्र, टेढ़ा। उसका संस्कृत पर्याय—प्रसल, हजिन,
जिह्वा, कर्मिमत्, कुक्षित, नत, आविह, भुग्न, वेक्षित,
वक्र, भंगुर, वैकु, विनत और उन्दुर है। (क्लो०) २
वनवास्तूक, जङ्गली बधुवा। ३ पिण्डीतगर, तगर
पादुका। उसका संस्कृत पर्याय—कालानुशारिवा, वक्र,
तगर, शठ, महोरग, नत, जिह्वा, दीन और तगरपा-
दिक है। ४ छन्दोविशेष, किसी किसको बहुर।

“युगदिगभिः कटिल-मिति नतं आ लो गी। (उचरबाकर)

चार अक्षर तथा दश अक्षर पर यति, सगण,
मगण, नगण, पगण और दो गुरुवर्ण रहनेसे छन्द
छन्द होता है। (पु०) ५ कुटिलप्रकृति, टेढ़े मिजाज-
वाला। ६ खस, पाजी। ७ देवनागराक्षरभेद, एक
प्रकारके ह्रस्व। भारतके माना स्थानों पर खड़ीय
अष्टमसे एकादश शताब्दपर्यन्त खोदित मिलालिपिमें
कुटिल अक्षर बहुत मिलते हैं। वर्णमाला देखो। ८ शङ्ख।
९ शम्भूक, घोंघा।

कुटिलकौट (हिं० पु०) सप, सांप।

कुटिलग (सं० त्रि०) कुटिलं यथा तथा गच्छति,

कुटिल-गम-ड। १ वक्रगामो, तिरछा चलनेवाला।
(पु०) २ सर्प, साँप।

कुटिलगति (सं० त्रि०) कुटिला वक्रा गतिर्यस्य, बहु-
त्रो०। १ वक्रगमनकारो, तिरछा चलने वाला। (पु०)
२ सर्प, साँप। (स्त्री०) ३ उत्पत्तिनी।

कुटिलता (सं० स्त्री०) १ कौटिल्य, तिरछापन। २ छल,
धोका।

कुटिलपन (हिं० पु०) कुटिलता देखो।

कुटिलपुष्पिका (सं० स्त्री०) तगरपादिका, तगरका
फूल। २ स्रुका नामक गन्धद्रव्य।

कुटिला (सं० स्त्री०) कुटिल टापू। १ सरस्वती नदी।
२ स्रुका नामक गन्धद्रव्य, एक असवरग खुशबूदार
बीज। ३ राधिकाकी मनन्दा और अयानघोषकी
भगिनी। चनकी माताका नाम कुटिला था। ४ तगर-
पादिका, तगरका फूल।

कुटिलाई (हिं० स्त्री०) कुटिलता, टेढ़ापन। २ छल,
धोका।

“पोछे अनहित मन कुटिलाई।” (तुलसी)

कुटिहा (हिं० वि०) कुटोत्ति करनेवाला, जो सुवम्हा
बोलता हो।

कुटी (सं० स्त्री०) कुटि-डीपू। १ गृह, कुटीर, भोपड़ा
“ब्रह्महा हादय समाः कुटीं कृत्वा वने वसेत्।” (मनु, १।१०९)

२ कुम्भदासो, कुटनी। ३ सुरानामक गन्धद्रव्य।

४ चित्रगुच्छक। ५ मन्त्र-वक्ता वृक्ष, मन्त्रवाका पेड़। ६
खेत कुटजवृक्ष, मफेद कचेकि पेड़। ७ अन्नादि-रहित
सिक्थ।

कुटीका (सं० स्त्री०) भूशय-मृग, एक हिरना।

कुटीकृत (सं० स्त्री०) कुटि-चवि-कृत। गृहीकृत
वस्त्र, तम्बू या कनातका कपड़ा।

“कर्णश्च शङ्खवच्चैव कौटजं पट्टजं तथा।

कुटीकृतं तथैवात्र कसलाभं सङ्क्षयः।” (भारत, समापर्व)

कुटीचक (सं० पु०) कुट्यां पर्णकुटीरं चकते तद्व्रोति
वसतीत्यर्थम्, कुटी-चक-अच्। एक संन्यासी। उक्त
श्रेणीके संन्यासी कर्म-निष्ठ होते हैं।

“अतिनिष्ठा भिक्षुको कुटीचकबहुद्वयो।

हंसः परमहंसश्च योऽत्र पश्चात् स उत्तमः” (भारत, अनुशासनपर्व)

संन्यासी चार प्रकारके होते हैं—कुटीचक, बहु-
दक, हंस और परम-हंस। उनमें कुटीचकसे बहु-
दक, बहुदकसे हंस और हंससे परमहंस अच्छे हैं।

स्कन्दपुराणोक्त सूतसंहितामें इस प्रकार लिखा है—

“कुटीचकश्च संन्यासः स्वे स्वे वैश्रमि नित्यशः।

मित्रामादाय भुञ्जीत स्वभक्ष्यं न गृहेऽप्यग्रा ॥ १ ॥

शिवो यज्ञोपवीतो स्यात् त्रिदण्डो कमण्डलुः।

सपवित्रश्च कषायो गायत्री च जपेत् सदा ॥ ४ ॥

सर्वाङ्गोत्थनं कुर्यात् विपुण्ड्रं च विसन्धिषु।

शिवलिङ्गाचमं कुर्यात् अन्नयेव दिने दिने ॥ ६ ॥”

(सूतसंहिता, श्रामयौग खण्ड, ६ अ०)

कुटिचक संन्यास लेकर अपने अथवा अपने
बन्धुके गृहमें रहना और भिक्षाकर भोजन करना
चाहिये। शिखा, यज्ञोपवीत, त्रिदण्ड और कमण्डलु
धारण करना योग्य है। कषाय वस्त्र पहन और
पवित्र रह सर्वदा गायत्री जपते हैं। त्रिसन्ध्याका
सर्वाङ्गमें भस्म लगाना, सलाट पर त्रिपुण्ड्र चढ़ाना
और प्रतिदिन अहापूर्वक शिवलिङ्गकी पूजा करना
चाहिये।

कुटीचर (सं० पु०) कुट्यां चरति, कुटी-चर-ट। यति-
विशेष, एक संन्यासी।

कुटीचरक (सं० पु०) कुटीचर स्वर्य कम्। यति
विशेष, एक संन्यासी।

कुटीप्रावेशिक (सं० स्त्री०) कुटीप्रावेशयोग्य, द्विविध
रसायनमें अन्यतम रसायन।

कुटीमय (सं० त्रि०) कुट्यां विकारः अवयवो वा, कुटी-
मय-ट। नित्यं वृक्षरादिभ्यः। पा ४।३। १४४। कुटीका अवयव-
रूप, घरवाला।

कुटीमुख (सं० पु०) कुटीव मुखमस्य, बहुव्री०।
महादेवके एक पारिषद।

“वाङ्मः कुटीमुखी हनौविजया च तपोऽधिका।

(भारत, समा, १० अ०)

कुटीर (सं० पु०) कुटी अर्थार्थ र। १ छुद्रगृह, भोपड़ा
(त्रि०) २ केवल। ३ रत।

कुटीरक (सं० पु०) कुटीर स्वर्य कम्। कुटीर, भोपड़ा।
कुटीरखेद (सं० पु०) कुट्यां छुद्रगृहे खेदः, ७-तत्।

वेद्यकोक्त स्वेदविधिविशेष, छोटे घरमें बैठकर पसीना निकालनेकी तरकीब ।

कुटुम्बक (सं० पु०) कुटुम्ब स्वार्थ कन् । १ वृत्तलताच्छादित गहन, दरख्तों और बेलोंसे भरी हुयी जगह । २ वंशादिनिर्मित पात्रविशेष, बांसकी कोठी । ३ छानो छप्पर । ४ वृत्तलता प्रभृति, दरख्त बेल वगैरह । ५ कुटी, भोपड़ा ।

कुटुम्बी (सं० स्त्री०) कुटुम्ब कन्-डोप् । कुटुम्बी, कुटुम्बी ।

कुटुम्ब (हिं०) कुटुम्ब देखी ।

कुटुम्ब (सं० पु०-स्त्री०) कुटुम्बयते पासयति, कुटुम्बयत् । यद्वा कुटुम्बयते पासयते सम्बध्यते वा, कुटुम्ब कर्मणि घञ् । १ कुल, खानदान । २ परिवारकी चिन्ता, खानदानकी खबरगोरी । ३ नाम । ४ ज्ञाति, जाति । ५ बान्धव, भाईवन्द । ६ सम्बन्धो, रिश्तेदार । ७ पोष्यवर्ग, बालबच्चे ।

“तस्य भव्यजनं शालास कुटुम्बान् महीपतिः ।” (मनु, ११/२२)

कुटुम्बक (सं० पु०-स्त्री०) कुटुम्ब स्वार्थ कन् । १ कुटुम्ब, खानदान, घराना । २ भूदण, एक खुसबूदार घास ।

कुटुम्बकलह (सं० पु०-स्त्री०) कुटुम्बेन सह कलहः, १ तत् । ज्ञातिके साथ विवाद, खानदानो भगड़ा ।

कुटुम्बव्यापृत (सं० त्रि०) कुटुम्बभरणाय व्यापृतः निधुक्तः । १ कुटुम्बके पोषणमें पासता, बालबच्चोंकी परवरिशमें लगा हुवा । २ बहुपरिवारविशिष्ट, बड़े खानदानवाला ।

कुटुम्बिक (सं० त्रि०) कुटुम्बोऽस्यास्ति, कुटुम्ब ठन् । कुटुम्बादि-परिवृततश्च गृहस्थाश्रमी, खानदानकी लेकर घरमें रहनेवाला ।

कुटुम्बिता (सं० स्त्री०) कुटुम्बोऽस्त्यस्य कुटुम्बो तस्य भावः, कुटुम्ब-ठन्-तल्-टाप् । १ कुटुम्ब-विशिष्ट व्यक्तिका कार्य, खानदानवाले शख्सका काम । २ पारिवारिक-सम्बन्ध, खानदानो रिश्ता । ३ कुटुम्बके प्रति व्यवहार, घरानेके साथ किया जानेवाला बरताव । ४ परिवार-विशिष्टता, बड़ा खानदान होनेकी हालत ।

कुटुम्बिनी (सं० स्त्री०) कुटुम्बः पतिशयेन पश्यत्याः, कुटुम्ब-इनि-डोप् । १ कुटुम्बविशिष्टा, खानदान रखनेवाली औरत । २ पतिपुत्रकन्या प्रभृति आत्मीय-

विशिष्टा स्त्री, बलबच्चेवाली । उसका संस्कृत पर्याय—पुरन्धी, पुरन्धि और पुरन्धिका है । ३ खानामखानत महाजुप, कोई जुद्ध गुल्म । उसका संस्कृत पर्याय—पयस्या, चौरिन्धी, जलकामुका, वक्रशब्दा, दुराधर्षा, क्रूरकर्मा, सिरिण्टका, शोता, प्रहरकुटुम्बी, शीतला और जखेरुहा है । राजनिघण्टु के मतमें वह मधुररस, संधाहक, रसायन और कफ, पित्त, त्रण, रक्तदोष तथा कण्डूनाशक होती है ।

कुटुम्बी (सं० पु०) कुटुम्बः पस्यास्ति, कुटुम्ब-इनि । १ गृही, घरानेवाला । (त्रि०) २ कुटुम्बविशिष्ट, खानदान रखनेवाला । ३ जपक, किसान ।

कुटुम्बीकः (सं० स्त्री०) कुटुम्बानां भोक्तः वासस्थानम् । कुटुम्बीयोंका वासस्थान, खानदानवाले लोगोंके रहनेकी जगह ।

कुटुम्बा (हिं० पु०) १ कुटुम्बा, कुटुम्बेवाला । २ वृषभ वा महिषको बधिया बनानेवाला, जो बेल या भैंसेको बधिया बनाता हो ।

कुटुम्बी (हिं० स्त्री०) कुत्सित हठ, खराब जिद ।

कुटुम्बी (सं० पु०) कुटुम्बी, भोपड़ा ।

कुटुम्बी (हिं० स्त्री०) कुत्सित स्वभाव, बुरी पादत ।

कुटुम्बी, कोटेशन देखी ।

कुटुम्बीनी (हिं० स्त्री०) १ कुटुम्बी, कुटुम्बेका काम । २ कुटुम्बीको मजदूरी ।

कुटुम्बी (सं० पु०) कुटुम्बीः भाष्यभाजकादिगणनं यत्र, बहुव्री० । १ पदविशेष, जरब करनेवाली पदद ।

“भाजो हारः सेपकचापवर्गः केनाद्यादो सम्भवेत् कष्टकार्यम् ।” (लीलावती)

२ पानीयकाज । (त्रि०) कुटुम्बीति उपलदण्डादिभिर्भिनन्ति क्षिन्ति वा, कुटुम्ब-लृप् । १ छेदनकारक, कुटुम्बी-पीटनेवाला । ४ चूर्णकारक, चूर कर डालनेवाला ।

“दन्तोलूखलिकः काल-पलायो वायुकुटुम्बीः ।” (वाचस्पत्या, १/४८)

कुटुम्बी (सं० स्त्री०) कुटुम्बी कुटुम्बीने भावे क्यट् । १ छेदन, काट छांट । २ कुटुम्बी, कुटुम्बीनी । ३ कुत्सन, कोसाई । ४ तापन, तपाई । ५ नृत्यसुद्राविशेष, नाचकी एक चाल । उसमें वृद्ध वयसके कारण दांतोंका बजना दिखाया जाता है ।

कुटनी (सं० स्त्री०) कुटयति क्षिप्ति नाशयति इत्यर्थः स्त्रीणां कुलमिति शेषः कुट् स्वार्थे णिच्-ङ्यट्-ङोप् यद्वा कुटते क्षिद्यते स्त्रीणां कुलमनया, कुट् करणे ण्यट्-ङोप् । १ नायक-नायिकाका संयोग लगानेवाली स्त्री, कुटनी । उसका संस्कृत पर्याय—शम्भली, कुटनी, शम्भली, माधवी, रङ्गमाता, पशुनी, कुम्भदासी और गणेशका है ।

कुटनी (सं० स्त्री०) कुट्-घट्-ङोप् । छेदन-कारिणी, कुटनेवाली औरत ।

कुटमित (सं० स्त्री०) स्त्रियोंकी दश प्रकार शृङ्गार चेष्टाके अन्तर्भूत चेष्टाविशेष, पारामके वक्त औरतोंका तत्कालीन देखाना । अलङ्कारशास्त्रीक उसका लक्षण इस प्रकार है :—

“केशसनाधरादीनां यद्देवेषुऽपि सम्भ्रमात् ।

प्राहुः कुटमितं नाम शिरः करविधूतम् ॥” (साहित्यदर्पण, ३।११)

स्त्रियोंका केश, स्तन वा अधर धारण करनेसे छुट जाते भी समभ्रम मस्तक और हाथ झुका बाधा छाननेकी चेष्टा करती हैं, वही चेष्टा कुटमित कहलाती है ।

हेमचन्द्रने कुटमितको स्त्रियोंकी स्वाभाविक दश प्रकार अलङ्कारोंका अन्तर्भूत बताया है ।

“कीला बिलासो विच्छिन्नि विन्ध्योः किलकिञ्चितम् ।

मोट्टावितं कुटमितं ललितं विवृतं तथा ॥

विषमचोत्पन्नद्वारः स्त्रीणां स्वाभाविका दश ॥” (हम, ३।१०१-१०२)

कुटल (सं० स्त्री०) नीकोत्पन्न ।

कुटा (हिं० स्त्री०) १ कपात-विशेष, पर-कट्टा केबूतर । २ कुटनेवाला ।

कुट्टक (सं० त्रि०) कुट्ट-वाकन् । अल्पमिच्छकुट्टलुब्धकः वाकन् । पा ३।३।५५। छेदक, काट कुट करनेवाला ।

कुटापरान्त (सं० पु०) महाभारतमें जनपदविशेष, एक पुरानी बसती । उक्त शब्द मित्वा बहुवचनात् है ।

“कुटापरान्ता नाडिया कथाः सासुद्रनिष्कृताः ।”

(भारत, भोष, २७०)

कुठार (सं० पु०) कुट्यते भिद्यते हन्यते वा पश्चिन् पतिते सति शेषः, कुट्-भारन् । १ पर्वत, पहाड़ । (स्त्री०) २ कम्बल । ३ धनुराग, सुहृद्वत् । ४ केवल ।

कुटित (सं० त्रि०) कुट्ट-त्त । १ क्षिप्त, काटा हुआ ।

२ चूर्णीकृत, कूटा हुआ । ३ खण्डीकृत, टुकड़े किया हुआ ।

कुटितमांस (सं० स्त्री०) मांसव्यञ्जनभेद, कीमा ।

कुटिनो (सं० स्त्री०) कुटं स्त्रीणां कुलनाशः कर्तव्यतया अस्यस्त्राः, कुट्-इनि-ङोप् । कुटनी, कुटनी ।

कुटितम् (सं० पु०-स्त्री०) कुट् भावे घञ् कुट्टेन निष्पन्नः, कुट्-इमप् । १ मणिसहित स्थान, जवाहरातमें जड़ी हुयो जगड़ । २ बहभूमि, कूटी पोटी जमीन् । ३ कुटीर, भोपड़ा । ४ दाडिम्बवृक्ष, अमारका पेड़ ।

कुटमित (सं० स्त्री०) कुटमित देखी ।

कुट्टहारिका (सं० स्त्री०) कुट्टिं मत्स्यमांसादिकं हरति कुट्टि-ङ्-ण्वल्-टाप् अतइत्वम् । दासी, टहलुई ।

कुठर (सं० पु०) कुटते पश्चिन्, कुट्-ईरन् । पर्वत, पहाड़ ।

कुट्टी (हिं० स्त्री०) १ कटाई, काटकूट । २ कटिया, गडांससे काटा हुआ चारा । ३ किसी किसका कागज । वह कूटा और सड़ाया जाता है । उससे पुष्टे और कलमदान बनाते हैं । ४ मैत्रीभङ्ग, तर्क दोस्ती । इस शब्दको प्रायः बालक प्रयोग करते हैं । ५ परकटा कबूतर ।

कुठर (सं० पु०) कुटते पश्चिन्, कुट्-ईरन् । पर्वत, पहाड़ ।

कुठरीक (सं० पु०-स्त्री०) कुठर स्वाद्य कन् । १ सुद-पर्वत, छोटा पहाड़ । २ कुटीर, भोपड़ा । “चित्तीयन तस्मा अस्थानि तद्वत्थ व प्रमथाने कुट्टीरकं जला रक्षितानि ।” (वितालपु० १०।१२)

कुञ्जल (सं० पु०-स्त्री०) कुटते नारिकेल्यो यन्त्रणा दायते यत्र, कुट् वषादित्वात् कलच् मुट्च । ३ग-दिभ्यश्चिन् । उण् १। १०८ । १ नरकविशेष, कोई दोलन । वहाँ पापियोंको रज्जु द्वारा पीड़न करते हैं । कुटति ईषत् विकासोन्मुखी भवति । २ सुकुल, फूलकी कुछ खिली हुई कल्लो । ३ काष ।

कुञ्जलित (सं० त्रि०) कुञ्जलोऽस्य सञ्जातः, कुञ्जल-इतच् । सुकुलित, कलादार ।

कुठ (सं० पु०) कुट्यते क्षिद्यतेऽसौ, कुठ छेदने कर्मणि घञर्थे क । १ वृक्ष, पेड़ । २ चित्रकण्ठ, चोतकी झाड़ी ।

कुठर (सं० पु०) कुठ बाहुलकात् करन् । १ मत्स्यनदस्थ

वाधनेका स्तम्भ, मथानी घटकानेका खंभा। उसका संस्कृत पर्याय दण्डविष्कम्भ है। २ सर्पविशेष, एक सर्प।

कुठाला (हिं० पु०) १ मृत्-पात्रविशेष, मट्टीका एक बरतन। इसमें अनाज रखते हैं। २ घूनीकी भट्टी।

कुठाव (हिं० पु०) कुत्सित स्थान, खराब जगह।

कुठाकु (सं० पु०) कोठति आहन्ति भिनन्ति वा काष्ठम् कुठ्-आकुन् किञ्च। पक्षिविशेष, कठफोड़वा।

कुठाट (हिं० पु०) १ कुत्सित सज्जा, बुरा ठाट। २ कम्पवन्ध, बुरा इन्तजाम।

कुठाटङ्क (सं० पु०) कुठारटङ्क इव पृषोदरादित्वात् साधुः। कुठार, कुल्हाड़ा।

कुठार (सं० पु०) कोठति अनेन, कुठ करणे भारन्। १ अस्त्रविशेष, तखर, एक हथियार। उसका संस्कृत पर्याय—सुधिति, परशु, परश्वध, कुठारो, पशु, पश्वध, कुठाटङ्क और हुचन है।

“यदि कण्ट कुठार न दौन्हा। तो में कडा कोप करिकी-ना॥” तुलसी

हेमाद्रिके परिशेषखण्डमें कुठारका लक्षणदि इस प्रकार लिखा है,—‘कुठार दो प्रकारका है। एकसे किसी वस्तुको हाथ पर रख और दूसरेसे उसको हाथसे छोड़ कर काटते हैं। उक्त दोनों प्रकारके कुठार परिमाणमें ५० पल दैर्घ्यमें १५ अङ्गुलि और विस्तारमें ५॥ अङ्गुलि रहनेसे श्रेष्ठ समझे जाते हैं। इसी प्रकार परिमाणमें ४० पल दैर्घ्यमें १३॥ अङ्गुलि एवं विस्तारमें ४॥ अङ्गुलि होनेसे मध्यम और परिमाणमें ३० पल, दैर्घ्यमें १२ अङ्गुलि तथा विस्तारमें ३॥ अङ्गुलि रहनेसे निम्नष्ट कुठार कहाता है। उक्त सकल कुठार शाल, धव, धन्वन, शाक, पशुन, शिरीष, शिंशप, असन, राजवृक्ष, इन्द्रवृक्ष, तिन्दुक, सोमवल्क और श्वेताशुन काष्ठ पर चलाये जाते हैं।’

कुठ्यते ह्य्यते ऽसौ कुठ कर्मणि भारन्। २ कुठेरक-वृक्ष, एक पेड़।

कुठार—पंजाबके शिमला जिलेका एक पहाड़ी राज्य। यह अक्षा० ३०° ३५' एवं ३१° १' ७०' और देशा० ७६° ५७' तथा ७७° १' पू० के मध्य सवायू से पश्चिम अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल २० बर्गमील है। लोक-

संख्या प्रायः ४१८५ होगी। ४७ पौठियां होती हैं कि जम्बू-राजौरीके एक राजपूतने इसे स्थापन किया जो मुसलमान आक्रमणकारियोंसे बचकर निकल पाये थे। १८१५ ई० को गुरखोंके दूरोभूत होने पर अंगरेजोंने फिर राजाको सिंहासन पर बैठा दिया। राज्यका आय ११०००) रु० है। इसमें १०००) रु० कर देना पड़ता है।

कुठारक (सं० पु०) कुठार अर्थात् स्त्राय वा कन्। १ कुठार कुल्हाड़ा। २ छद्म कुठार, कुल्हाड़ी।

कुठारकतैल (सं० स्त्री०) शरीरव्रणादिका तैलविशेष, जख्म पर लगाया जानेवाला एक तैल। १०० पल कुठारक तैल्य जलमें उवाले पादावशेष रहनेसे तैल-प्रस्थको पाक करना चाहिये। कल्कके लिये कुठार, अपामार्ग, प्रोष्ठिका और मन्थिकाका चूर्ण डालते हैं।

(रसरत्नाकर)

कुठारण्डिका (सं० स्त्री०) कन्दगुडूची, कुरैया। कुठारपाणि (सं० पु०) १ परशुराम। (त्रि०) २ कुठार हाथमें लिया हुआ, जो हाथमें कुल्हाड़ी लिये हो। कुठाराघात (सं० पु०) कुठारका आघात, कुल्हाड़ेकी चोट।

कुठारिका (सं० स्त्री०) कुठारी-कन्-टाप् पूर्वस्य क्लृप्ताः। १ कुठाराकृति अस्त्रविशेष, कुल्हाड़ी-जैसा एक नश्वर उससे शिरावेध किया जाता है। उक्त अस्त्र वाम हस्त द्वारा वेध शिरापर रख दक्षिण हस्तका अङ्गुष्ठ और मध्यम अङ्गुलि एकत्र कर उसकी ठेल लगा व्यवहार करते हैं। (सङ्गत) २ कुठार, कुल्हाड़ी।

कुठारी (सं० स्त्री०) कुठार-ङीप्। कुठार, कुल्हाड़ी। कुठाव (सं० पु०) कुठ-आव। १ अस्त्रकार, हथियार बनानेवाला। २ वृक्ष, पेड़। ३ वानर, बन्दर। ४ कौश, सङ्कर।

कुठालो (हिं० स्त्री०) धरिया, सोना चांदी गलानेका छोटा बरतन।

कुठालर (हिं० पु०) १ कुत्सित स्थान, कुठौर।

कुठि (सं० पु०) कुठ्-इन्-किञ्च। कुठि कम्पिर्बलापय। उ० ५। १ पर्वत, पहाड़। २ वृक्ष, पेड़।

कुठिक (सं० पु०) कुठ-इकन्-किञ्च। कुठौषधि, कुट।

कुठिया (हिं० स्त्री०) पात्रविशेष, एक बरतन। वह मट्टीकी बनती है। कुठियामें बनाज रखा जाता है।

कुठिन्नक (सं० पु०) रत्नपुनर्नवा।

कुठी (सं० स्त्री०) वृक्ष-विशेष, एक पेड़। वह एक प्रकारका कुसुम है। उससे बङ्गालमें रङ्ग बनता है।

कुठेर (सं० पु०) कुण्डति तापयति वैकल्यं करोति वा, कुठि-एरक् वाङ्मलकात् तुमोऽभावः। पतिकठिक, ठि-नहि-गुहि इति भा एरक्। उच्यते १। ५२। १ अग्नि, आग। २ तुलसी। ३ सितार्जकवृक्ष, बबई। ४ पर्णस, कासी तुलसी। ५ नन्दीवृक्ष, एक पेड़।

कुठेरक (सं० पु०) कुठेर इव कायति प्रकाशते, कुठेर-के-क। १ तुलसी। २ श्वेततुलसी। ३ सितार्जक, बबई। उसका संस्कृत पर्याय—श्वेततुलसीके पथमें अर्जक, श्वेतपर्णस एवं गन्धपत्र और सितार्जक तुलसीके पथमें ववरी, तुवरी, तुली, खरपुष्पा, अज-गन्धिका और पर्णस है। ४ नन्दीवृक्ष।

कुठेरज (सं० पु०) कुठेर इव जायते, कुठेर-ज-ज। श्वेततुलसी, सफेद तुलसी।

कुठेर (सं० पु०) कुठ-एरक्। चामरवात, सुरङ्गलकी हवा।

कुठोर (हिं० पु०) १ कुस्मित स्नान, बुरी जगह। २ अनुचित अवसर, बेमौका।

कुड़ (हिं० पु०) १ कुड़, कुट। २ अकराशि, कूरा। (स्त्री०) ३ जांचा, अगवासी।

कुड़कुड़ (हिं० पु०) अव्यक्त शब्दविशेष, एक बीमानी लफ्ज। उसको उच्चारण कर पशुपक्षी आदि जैवसे निवारण करते हैं।

कुड़कुड़ाना (हिं० क्रि०) १ बुरा मानना, कुड़ना। २ पक्षी उड़ना, बिड़िया भगाना।

कुड़कुड़ी (हिं० स्त्री०) बुभुक्षा वा अजीर्णके समय उदरमें होनेवाला शब्द, गुड़गुड़ाहट।

कुड़प (सं० पु०) कुड़-कपन्। १ परिमाणविशेष, एक नाप। कुड़प—३२ तोली या ८ पलका होता है।

कुड़पना (हिं० क्रि०) जोतना। वितस्ति परिमाण कंगनी बड़ आने पर खेतका जोतना कुड़पना कहा जाता है।

कुड़वकल—बम्बई प्रान्तके धारवाड़ जिलेकी एक लिङ्गा-यत श्रेणी। उक्त जिलेमें इनकी संख्या प्रायः ८५०० है।

कुड़कुड़ाना (हिं० क्रि०) कुड़कुड़ाना, भीतर कुड़ना।

कुड़री (हिं० स्त्री०) १ कुण्डली, गेंडरी। २ भूमिविशेष, एक जमीन। नदीके घुमावसे तीन घोर घिर जानेवाली भूमि कुड़री कहाती है।

कुड़ल (हिं० स्त्री०) शरीरकी ऐंठन, जिसका खिचाव। वह रक्त गर्म या ठण्डा पड़नेसे हो जाती है।

कुड़ली (सं० पु०) काश्चनारभेद, किसी किसका कचनार।

कुड़व (सं० पु०) कुण्डति परिमाति अनेन अस्मिन् वा कुड़-कवन्। १ परिमाणविशेष, एक नापजोख। लीलावतीके मतमें उक्त परिमाण प्रस्थका चतुर्थींश है। किन्तु वैद्यकमतसे वह ३२ तोलिका होता है। उसका संस्कृत पर्याय—अञ्जलि, अष्टमार और शरावार्ध है।

कुड़ा (हिं० पु०) कुटजवृक्ष, कुरैया।

कुड़ालक—कोङ्कणदेशकी एक ब्राह्मणश्रेणी। किसी संस्कृत ग्रन्थमें इन्हें षट्कर्मरहित कहा है।

कुड़ालदेशकर—गौड़ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी। वह बम्बईके कोङ्कण जिलेमें अधिक रहते हैं।

कुड़ाली (हिं० स्त्री०) कुठारी, कुल्हाड़ी।

कुड़ि (सं० पु०) कुण्डरते दह्यते, कुड़ि-इन्। शरीर, जिस।

कुड़िश (सं० पु०) कुड़रते भक्ष्यते ऽसौ, कुड़ वाङ्मलकात् श-इट्। मत्स्यविशेष, एक मछली। वह मधुर, हृद्य, कषाय, अग्निदीपन, लघु, स्निग्ध, वातमें पथ्य, रोचन, बल्य और कोष्ठवन्धकर होता है। (राजनिषध)

कुड़क (हिं० पु०) १ वाद्यविशेष, एक बाजा। (स्त्री०) २ वन्ध्याकुङ्कुटो, अण्डा न देनेवाली सुरंगी। ३ निरर्थक, फजूल।

कुड़प (सं० पु०) कुङ्कुल, चारका ताला।

कुड़कुड़ी (सं० स्त्री०) कुड़ी कुद्रा कुड़ी कारवेळी, कर्म-धा०। कुद्रकारवेळक, खोटा करेला। उक्त लताका फल—कटु, उष्ण, अतिदृक्, दीपन और वातरक्तकर होता है। फिर उसका कन्द—अर्शोहर, मलशोधन और शोनिदोषक है। (राजनिषध)

कुडेर (हिं० स्त्री०) एक माली । वह कुरियामें राव
या शीरा निकालनेको प्रस्तुत की जाती है ।
कुडेरना (हिं० क्रि०) रावकी जसा बहाना ।
कुडील (हिं० वि०) कुत्सित आकृतिविशेष, भद्दा ।
कुडमल (सं० पुं०-स्त्री०) कुड वाख्ये कलच-मुट्च ।
हवादिभ्यित् । उण् १ । १०८ । १ मुकुल, खिलती कली ।
२ नरकविशेष, कोई दोजख । ३ कुशस्थलीका निकट-
वर्ती कोई तीर्थ ।

“रामकण्ठं कपालं प्राचीसिद्धं गुणोपमम् ।

एवं सेतुं महादेवि भार्गवेण विनिर्मितम् ॥” (सङ्गाद्विखण्ड, २ । १ । १८)

४ नीलोत्पल ।

कुडमलदन्ती (सं० स्त्री०) कुडमलवत् दन्तः अस्याः,
बहुव्री० । मुकुलवत् दन्त-विशिष्टा स्त्री, कली-जैसे
दांतवाली औरत ।

कुडमलित (सं० वि०) कुडमलः सञ्जातोऽस्य, कुडमल
इतच् । मुकुलित, कलियाया इवा ।

कुडर (सं० स्त्री०) कुडी साधुः कुडि-यत् । यद्वा कौ
अघ्न्यादित्वात् यक् ङगागमश्च । १ भित्ति, दीवार ।
२ विलेपन । ३ कौतूहल, ताज्जुब ।

कुड्यक (सं० स्त्री०) कुड्य स्वार्थं कन् । भित्ति, दीवार ।

कुड्यकीटक (सं० पुं०) गृहगोधिका, छिपकली ।

कुड्यच्छेदी (सं० पुं०) कुड्यं भित्तिं किमिति विदारयति,
कुड्य-छिद्-णिनि । चौरविशेष, सेंध लगानेवाला चोर ।

कुड्यक्षेय (सं० स्त्री०) कुड्यस्थितं कुड्यस्य वा क्षेयम् ।
भित्तिका गतं, दीवारका गड़्हा । अपर संस्कृत नाम—
खानिक है ।

कुड्यमत्सी (सं० स्त्री०) कुड्ये मत्सी इव, मत्स्यजातित्वात्
छीष् यलोपः । गृहगोधिका, छिपकली ।

कुड्यमत्स्य (सं० पुं०) कुड्ये मत्स्य इव । छिपकली ।

कुटंग (हिं० पुं०) कुत्सित, आचरण, बुरा तरीका ।
(वि०) २ कुटंगा, अमभिन्न ।

कुटंगा (हिं० वि०) कुत्सित आचरण वा कर्मविशिष्ट,
बुरे ढंगवाला ।

कुटंगी, कुटंगा देखो ।

कुटन (हिं० स्त्री०) १ परिताप, जलन । २ परकष्ट-
दर्शनजन्य दुःख, दूसरेकी रफा न होनेवाली तक-
लीफकी देख कर पैदा होनेवाला रफा ।

कुटना (हिं० क्रि०) परिताप करना जलना ।

कुटव (हिं० वि०) १ बैठव, खराब । २ कठिन,
मुश्किल ।

कुटाना (हिं० क्रि०) परितापित करना, चिढ़ाना ।

कुण (सिं० पुं०) कुण-घच् । १ अश्वत्यवृक्ष, पीपलका
पेड़ ।

कुणक (सं० पुं०) कुण्यते उपक्रियते, कुण कर्मणि
उज्यर्थे क ऋकम्पायां कन् । सद्योजात शिशु, हालका
पैदा हुआ बच्चा ।

“तं तेषां कुणकं कपचं कीतसामयुवाङ्गमानसवेद्या ।” (भागवत, ५ । ८)

‘एषकुणकं हरिचवानकम् ।’ (शोधर)

कुणञ्ज (सं० पुं०) कुणं शब्दकारकं स्वरभेदं जरयति
कुण-ञ् अन्तर्भूतस्यर्थे ङ मुच् च । वनवास्तुकविशेष,
किसी निम्नता जङ्गली बधुवा । वह—मधुर, रुच्य,
दीपन और पाचन होता है । उसका शाक—त्रिदोषघ्न,
मधुर, रुच्य, दीपन, ईषत् कषाय, संग्राही और लघु
है । (रात्रनिघण्टु)

कुणञ्जर (सं० पुं०) कुणं जरयति, कुण-ञ् बाहुलकात्
खच् । कुणञ् देखो ।

कुणञ्जा (सं० स्त्री०) कुणंजर स्तूप, जङ्गली बधुवा ।
कुणञ्जा कुणञ्जा देखो ।

कुणटी (सं० स्त्री०) मनः-शिक्षाविशेष ।

कुणल (सं० स्त्री०) कुण-ल्यट् । शब्द, आवाज ।

कुणप (सं० पुं०) कृषि-क्षपन् सम्प्रसारणश्च । १ शव,
लाश । २ शूक्रदोष, आतं वदोष । १ शवकी भांति
चेतनाशून्य देह, मुरदेकी तरह जंघा हुआ जिसका ।
४ अस्त्रविशेष, भाला, बरछो । उक्त अस्त्रके लक्षणदि-
हेमाद्रिपरिशेषखण्डमें इस प्रकार लिखे हैं—परिमा-
णमें १० पल और विस्तारमें २४ अंगुलि रहनेसे कुणप
श्रेष्ठ होता है । फिर परिमाणमें २५ पल एवं विस्तार-
में २२ अंगुलि मध्यम और परिमाणमें २० पल तथा
विस्तारमें २० अंगुलि कुणप निम्न है । अल्पवयस्की
लिये परिमाणमें २० पल एवं विस्तारमें २० अंगुलि
मध्यम और परिमाणमें १२ पल तथा विस्तारमें १६
अंगुलि कुणप निम्न रहता है ।

(वि०) ५ पूति शवकी भांति दुर्गन्ध, सड़ी लाशकी
तरह बदबू देनेवाला ।

कुणपगन्ध (सं० पु०) कुणपवत् गन्धः । शवगन्ध, लाशकी बदबू ।

कुणपा, कुणो देखो ।

कुणपाण्ड्य (कुनपाण्ड्य)—दक्षिणाप्रदेशके एक पाण्ड्य-राज । नामान्तर कुज वा सुन्दर-पाण्ड्य था । उन्होंने चोलराजको युद्धमें जीत उनको कन्या वनितेश्वरीसे विवाह किया । प्रथम बहू जैन रहें । किमी समय पीड़ित होनेपर उनकी रानीने प्रसिद्ध शिवोपासक ज्ञानमन्थम्भमूर्तिस्वामीकी बुलाया था । स्वामीजीने राजाको आरोग्य किया । उसीसे कुणपाण्ड्याने शंभु-धर्म ग्रहण कर आदेश निकाशा था—‘हमारे राज्यमें कोई जैन रह न सकेगा । जो रह जायेगा, वह शिर-च्छेदका दण्ड पायेगा ।’ फिर उन्होंने चोलराज्य ध्वंस और तंजौर तथा उरैयूर नगर भस्मसात् किया । उन्होंने चोलराजपुत्रका बलवत् पाण्ड्य नाम रखा था । उन्होंने आदेशसे चोलमन्त्री मदुराके प्रधान मन्त्री पदपर नियुक्त हुये । पाण्ड्य-राजके समय भरव मदुरा नगर पंहुचे थे ।

मार्कपोलोके मदुरा जाते समय कुणपाण्ड्य विद्यमान रहे । उन्होंने अपने ग्रन्थमें ‘सुन्दरबन्दो’ नामसे सुन्दर नामधारी कुणपाण्ड्यका उल्लेख किया है ।

कुणपाण्ड्यके ज्येष्ठपुत्र वीरपाण्ड्यबोल थे । वह १०६४ ई० की राजेन्द्र कुलोत्तुङ्ग चोलकटक पराजित हुये ।

कुणपायो (सं० त्रि०) कुणपभक्षक, सुर्दाखोर ।

कुणपी (सं० स्त्री०) कुणप गौरादित्वात् ङौष् । विट-शारिका, एक चिड़िया ।

कुणरवाड़व (सं० पु०) एक प्राचीन वैयाकरण ।

‘कुणरवाड़वस्त्राह नेष वहीनरः कस्तर्हि विहीनर एव ।’ (महाभाष्य)

कुणवीरपण्डित—दक्षिण देशके एक विख्यात पण्डित । बिक्रमपत्त जिलेमें उनका जन्म हुवा था । उन्होंने नेमिनाथ और वेषपापत्तियल नामक दो काव्य रचना किये ।

कुणारी (सं० स्त्री०) कुष्ठरोगविहित भक्ष्यद्रव्य, यव-पर्पटी ।

कुणार (सं० त्रि०) कुण शब्दने बाहुलकात् भाव सम्प्रसारणश्च । कुणनशोल, बालनेवाला ।

‘सहस्रानुं पुरस्तत चियन्त महसामिन्द्र संविषक कुणारम् ।’

(अथक् १।१०।८)

‘कुणार’ कणनशोलम् (साधव)

कुणाल (सं० पु०) कण-कालन् सम्प्रसारणश्च । पीयूष-निर्मा कालन् इत्यः सम्प्रसारणश्च । उच्यते १।७६। १ देशविशेष, एक मुल्क । २ अशोकराजपुत्र एक बौद्ध । कुणाल देखो । ३ पक्षिविशेष, एक चिड़िया ।

कुणि (सं० पु०) कुण-इन् । १ तुल्यवत्, तुलका पेड़ । २ मर्मस्थानविशेष, कूर्पर, जिस्मकी एक माजुक जगह । कल और पक्षके मध्यवर्ती स्थानको कुणि कहते हैं । (वाभट)

३ राजविशेष, कोई राजा । उनके पिताका नाम जय और पुत्रका नाम युगन्धर था । ४ मुनिविशेष । ५ कोई धर्मशास्त्रप्रणीता ।

‘कुणेष कुणितारिष विश्वामिवकृताश्च ये ।’ (पराशरमाधव)

६ विदेहराजवंशीय सत्यध्वजके पुत्र । (विष्णुपुराण ४।५। ७) ७ कोई प्राचीन वैयाकरण ।

‘कुणिना प्रायश्चित्तमाचार्यनिर्देशार्थम् ।’ (महाभाष्यप्रदीपे केयट १।१। ६०)

(त्रि०) कुकर, वक्र वा अकर्मस्थ हस्ताविशष्ट, टेढ़े हाथवाला । गर्भिणीका अभिलाष पूर्ण न होनेसे गर्भस्थ शिशु कुज, कुणि, पङ्गु, जड़, वामन प्रभृति होता है । (सुश्रुत)

कुण्डक—कोई धर्मशास्त्रप्रणीता । आपस्तम्बधर्मसूत्रमें उनका नाम उद्धृत हुवा है । (आपस्तम्बसूत्र, १।१८। ७)

कुणितारि (सं० पु०) कोई धर्मशास्त्रप्रणीता ।

कुणित् (सं० पु०) कुण शब्दे किन्द् च । कुणि पुल्लिङ्गः किन्द् च । उच्यते ४।८५ । शब्द, आवाज ।

कुणिपदौ (सं० स्त्री०) कुणिरिव ; कुणितशक्तिः पादोऽस्याः, कुणि-पाद-ङौष् पद्मावयव । अल्पगमनशक्ति-विशिष्टा स्त्रा, कम चल सकनेवाली औरत ।

कुणिबाहु (सं० पु०) एक मुनि ।

कुणी (सं० पु०) कणभजातीय कीट, एक कीड़ा ।

कणभ देखो ।

कुण्ट (सं० स्त्री०) १ अजंक, सफेद तुलसी । २ गुण्ट-तण, एक घास ।

कुण्टक (सं० त्रि०) कुटि वैकल्ये खल । अथ, मोटा ।

कुण्डकुरण्ड (सं० पु०) भिण्टी, भाड़ी ।

कुण्ड (सं० नि) कुण्डति क्रियासु मन्दीभूतो भवति, कुठि-अच् । १ अकर्मण्य, निकम्मा । २ मूर्ख, बेवकूफ । ३ सङ्कुचित, सिकुड़ा हुआ । ४ प्रतिबद्ध, बंधा हुआ ।

कुण्डक (सं० त्रि०) कुण्डति कुण्डयति वा आत्मानं जङ्गीभूतं करोति, कुण्डि-ण्वल् । १ मूर्ख, बेवकूफ । २ सङ्कोचविशिष्ट, सकुचनेवाला ।

कुण्डता (सं० स्त्री०) कुण्डस्य भावः, कुण्ड-तल् । १ अक्षमता, नाताकता । २ मूर्खता, बेवकूफी । ३ सङ्कोच, सकुच ।

कुण्डित (सं० त्रि०) कुठि कर्तरि क्त । १ सङ्कुचित, सिकुड़ा हुआ । २ लज्जित, शरमाया हुआ । ३ अप्रतिभ, बेरोव । ४ अक्षम, नाकाबिल ।

कुण्ड (सं० स्त्री०) कुण्डति, कुण्ड-ड । अमलात् कः । उ० १ । १११ । १ परिमाणविशेष, एक नाप या तोल । कुण्डयते रक्षति जलं यत्र, कुण्ड अधिकरणे षण् । २ देवतात जलाशय । ३ जलाधारविशेष । दैवकर्मतसे उसका जल अग्नि एवं कफवर्धक, रुक्म, रुधु और मधुररस होता है । (राजव०) ४ पात्रविशेष, एक बरतन ।

“ भु० कीर्णं न कुण्डोभो मेयो नावभतादपि । ” (रघु. १ । ८४)

५ स्थाली, हाड़ी । ६ होमके लिये अग्निधार स्थान-विशेष । हेमाद्रि-दानखण्डमें उसका लक्षणादि इस प्रकार लिखा है—वेदिसे पदान्तर दूरवर्ती स्थानमें नौ या पांच चतुष्कोण कुण्ड बनाना पड़ते हैं । (भविष्यपुराण) आन्नायरहस्यमें गोलाकार और नासाकार कुण्ड बनानेका विधान है । नौ कुण्ड बनानेमें आठ दिक् आठ और ईशान तथा पूर्व दिक्के मध्यस्थानमें एक कुण्ड बनाते हैं । पांच बनानेमें प्रधानतः चार दिक्में चार और ईशान दिक् एक कुण्ड रखा जाता है । कामिकके फलकामनासुसार कुण्ड बनानेकी दिक् और उसका आकार पृथक् पृथक् निर्दिष्ट है । यथा—पूर्वदिक् चतुष्कोण, अग्निर्कोणमें योनि—जैसा आकृतिविशिष्ट, दक्षिणमें अर्धचन्द्राकार, नैऋतमें त्रिकोण, पश्चिममें गोलाकार, वायुकोणमें षट्कोण, उत्तरदिक् पद्माकार और ईशानदिक् षट्कोण

कुण्ड बनाना चाहिये । भविष्यपुराणमें होमके अनु-सार कुण्डका हस्त-परिमाण इस प्रकार लिखा है—शताध होम करनेके लिये सृष्टिबद्ध एक हस्त, एकशत होम करनेको एक भरत्नि, सङ्ख्य होम करनेको एक-हस्त, अयुत होम करनेको दो हस्त, लक्ष होम करने-को चार हस्त और कौटि होम करनेको आठ हस्त कुण्डका परिमाण रखना उचित है ।

उक्त सकल कुण्डके मध्य भागमें पद्माकृति नाभि निर्माण करना पड़ता है । उसका परिमाण सृष्टि, भरत्नि और एकहस्त परिमित है । कुण्डमें तीन अङ्गुलि उच्च और चार अङ्गुलि विस्तृत नाभि बनाना चाहिये । परिमाणको ठीकके अनुसार नाभिका परि-माण भी यथाक्रम दो यव बढ़ाना पड़ता है । पाँछे उक्त नाभि तीन भागमें बाँट उसके मध्यभागमें एक कणिका बनाते और कुण्डके वहिर्भागमें आठ दल निर्माण करना आवश्यक बताते हैं । पञ्चराव देखो ।

कुण्डके दोष इस प्रकार कहे हैं—कुण्डका खात अधिक होनेसे रागी होना पड़ता है । खात अल्प रहनेसे धेनुचय और धनचय होता है । कुण्ड वक्र होनेसे सन्ताप सहते हैं । छिन्नमण्डल होनेसे मृत्यु आता है । मेखलाशून्य रहनेसे शोक उठाते हैं । मेखला अधिक लगानेसे विस्तनाश होता है । योनि-शून्य होनेसे भार्यानाश होता है । फिर कुण्डशून्य रहनेमें पुत्रनाश हुआ करता है । (विश्वकर्मा)

(कुण्डके सम्बन्धमें विस्तृत विवरण ज्ञानको निम्नलिखित संस्कृत ग्रन्थ द्रष्टव्य है—माधवयज्ञ-रचित कुण्डकल्पद्रुम, तृणद्विराज-रचित कुण्डक-ल्पलता, भट्टलक्ष्मीधर-विरचित कुण्डकारिका, विश्वनाथको कुण्डकौस्तुभे, रामानन्दतोष प्रणीत कुण्डतत्त्वप्रकाश, बलभद्रसुत कालिदासरचित कुण्डप्रबन्ध, विश्वनाथ देवकृत कुण्डमण्डपकौस्तुभे, नारायणरचित कुण्डमण्डपदण्ड, नरहरि भट्टको कुण्डमण्डपप्रकाशिका, रामचन्द्राचार्यका कुण्डमण्डपलक्षण, अनन्तभट्ट एवं नीलकण्ठभट्टका कुण्डमण्डपविधान, लक्ष्मणदेशिकेन्द्र और रामवाजपेयीको कुण्डमण्डपविधि, रामकृष्णका कुण्डमण्डपसंग्रह, बिट्टलदालित और विश्वेश्वरकी कुण्डसिद्धि, विश्वप्रणीत कुण्डमरौचिमाला, गोविन्दभट्टकृत कुण्डमार्तण्ड, विश्वनाथका कुण्ड-रत्नाकर, नीलकण्ठरचित कुण्डोद्योत, अनन्तदेवरचित कुण्डोद्योतदर्शन, कृष्णाचार्यका कुण्डार्कः, परधरामपर्वति, तत्त्वसार और अर्धबेदका १५५ परिशिष्ट)

(पु०) कुण्डयते दह्यते कुं भनेन, कुडि दाह

कमयि चञ्। ७ पतिके वर्तमान रहते उपपतिजात पुत्र, दोगला लडका ।

“परदारैव जयित सो सुतो कुण्डगोलकी ।

पत्नी जीवति कुण्डः स्यात् सते भर्तुरि गोलकः ॥” मनु १। १७४।

‘पति जीवित रहते उपपतिके औरससे उत्पन्न होनेवाले पुत्रको कुण्ड और पतिके मरने पोछे उपपतिसे जन्म लेनेवाले पुत्रको गोलक कहते हैं।’

सहादिवखण्डमें भी लिखा है:—

“गोलकं कुण्डगोलकं द्विविधं परिकीर्तितम् ।

ब्राह्मणो विधवा नारी व्यभिचारेण गर्भिणी ॥ १८ ॥

गोलकं तस्यां पुत्रो वै शूद्रवत्पि केवलम् ।

ब्राह्मणस्य यटापुत्री जाता द्वादशवर्षिकी ॥ २० ॥

अविवाहिता च तस्यां वै जातसेवानुगोलकः ।

ब्राह्मणो विधवा चैव पुनर्विवाहिता कृता ॥ २१ ॥

तत्पुत्रः कुण्डगोलकः सर्वधर्मबाह्यकृतः ।”

(सहादिवखण्ड, उत्तरार्ध ४ पृ०)

गोलक और कुण्ड-गोलक दो प्रकारके जारन पुत्र होते हैं। विधवा ब्राह्मण-कन्या व्यभिवार द्वारा जो पुत्र उत्पादन करती, उस विद्वन्मण्डली गोलक कहती है। उसका आचरण शूद्रवत् होता है। ब्राह्मण-कन्या द्वादशवत्सर उत्तीर्ण होते भी यदि अनूठा रहे और उसी अविवाहित अवस्थामें किसी पुरुषके संस्रवसे पुत्रोत्पादन करे तो उस पुत्रका नाम अनुगोलक पड़ेगा। विधवा ब्राह्मण पुनर्विवाहिता होनेसे कुण्डगोलक संस्तान उत्पादन करती है। वह सकल धर्मकर्मवहिर्भूत है।

ब्राह्मणों प्रभृतिके गर्भमें ब्राह्मणादि सर्वर्ण उपपत्तिसे उत्पन्न होनेपर कुण्डको उपनयनादि संस्कारका अधिकार है। किन्तु ब्राह्मण होते भी उसे आद्यादिमें अन्नदान कर्तव्य नहीं। (अ. तिस०)

८ सर्पविशेष, एक सांप ।

“कण्डपथाय कुण्डश्च तच्चकच महोरगाः” (भारत, १।२२१।६८)

कुण्डक (सं० पु०) १ छतराष्ट्रके कोई पुत्र । (भारत, चादि, १८४ पृ०) कुण्ड स्वार्थ कन् । २ कुण्ड ।

कुण्डकर्ण (सं० पु०) मुनिभेद । (लिङ्गपुराण, ७४८)

कुण्डकीट (सं० पु०) कुण्डे नरककुण्डे स्थितः कीट इव चार्वाकसंस्पृष्टत्वात् । १ चार्वाकमतावलम्बी,

नास्तिक । कुण्डे योनि कुण्डे कीट इव । २ दासकामुक, टडलुईके साथ बुरा काम करनेका स्नाहिमन्द ।

कुण्डकील (सं० पु०) १ दुष्ट व्यक्ति, पाजी शस्त्र, बुरा पादमो । २ पतित ब्राह्मणोंका पुत्र ।

कुण्डगोलक (सं० लो०) कुण्डे पात्रविशेष गोलकं कं जलं यत्र । १ काष्ठीक, कांजी । (पु०) कुण्डश्च गोलकश्च तो, इन्द्र ! विधवा ब्राह्मणीजात पुत्र इव ! कुण्ड देखो ।

कुण्डङ्क (सं० पु०) कुण्डं तटाकारं गच्छति प्राप्नोति, कुण्ड-गम बाहुलकात् ख-ङिच् । कुञ्ज, पेड़ोंसे घिरी हुई जगह । प्रकृत पाठ कुडङ्क है ।

कुण्डङ्कक, कुण्ड देखो ।

कुण्डज (सं० पु०) छतराष्ट्रके एक पुत्र ।

(भारत, चादि, ६७ पृ०)

कुण्डजठर (सं० त्रि०) कुण्डमिव जठरं यस्य, बहुव्री० ।

कुण्डकी भाति उदरविशिष्ट, गङ्गे-जैसे पेटवाला ।

(पु०) २ मुनिविशेष ।

“पात्रे यः कुण्डजठरो विजः कालवटस्तथा ।” (भारत, चादि, ५१ पृ०)

कुण्डधार (सं० पु०) कुण्डं कुण्डाकारं धारयति, कुण्ड-धृ-णिच्-घण् । १ सपविशेष । (भारत, समा, ८ पृ०) २ छतराष्ट्रके कोई पुत्र । (भारत, चादि, ११०।११)

कुण्डपाय (सं० पु०) सोमलता ।

कुण्डपायिनामयन (सं० लो०) कुण्डपायिनां अयनम्, अलुक् समा० । एकविंशति रात्रि दीक्षित रहनेसे होता है। उसके पोछे १ मास जानेसे सोमसंघर्ष करना पड़ता है। फिर यथानियम यज्ञारम्भ कर्तव्य है (आश्वलायन श्रौतसूत्र १।१।४।६०, कात्यायन-श्रौतसूत्र २४।४।११)

कुण्डपायिनामयनन्याय (सं० पु०) जैमिनिकथित न्यायविशेष । उक्त न्याय कुण्डपायिनामयन नामक यज्ञके अग्निहोत्रविधानमें प्रकृत अग्निहोत्रकी अपेक्षा अन्य कर्मका प्रतिपादक है ।

कुण्डपायी (सं० पु०) कुण्डेन कुण्डाकारचमसेन पिबति सोमम्, कुण्ड-पा-णिनि । कुण्डद्वारा सोमपानकारी, उक्त शब्द प्रायः बहुवचनान्त प्रयोग किया जाता है।

कुण्डपाय्य (सं० पु०) कुण्डेः चमसेः पोयतेऽस्मिन् सोम इति शेषः, कुण्ड-पा अधिकरणे स्थित् युगागमश्च । कर्त्तृ कुण्डपाय्यसच्चावी । पा १। १। १११। एक यज्ञ ।

“यस्य २३३० मपात् प्रणपात् कुण्डपायः ।” (चक्र, ८, १०११)

“कुण्डपायः क्रतुः ।” (महाभाष्य, १, १६)

कुण्डपुर—दक्षिणापथके कनाडाका एक नगर ३६° २७' २५" उ० और देशा० ७५° १५' ५०" पू० पर अवस्थित है।

कुण्डप्रस्थ (सं० पु०) नगरविशेष, एक शहर।
(काशिका० ६।१।७)

कुण्डमेदी (सं० पु०) धृतराष्ट्रके एक पुत्र। (भारत, भादि. ११७१२)

कुण्डल (सं० स्त्री०) कुण्डलते रच्यते, कुण्डि वृषादित्वात् कलच् यद्वा कुण्डं तथाकारं लाति गृह्णाति, कुण्डना क । १ कर्णालङ्कारविशेष, कानका कोई गड़ना ।

“कानन-कुण्डल-कुञ्चित केशाः ।” (हनुमान् चालीसा)

२ पाश, फांस । ३ वलय, बाला । ४ वलय सदृश बन्धनी । ५ समूह, ढेर । (पु०) ६ कौरव्य कुल-जात सर्पविशेष, कोई सांप । (भारत, भादि ५७५०)

७ रक्त काष्ठन वृक्ष, लाल कचनार ।

“रक्तपुष्पः कोविदारो युष्मत्तसु कुण्डलः ।” (रत्नमाला)

कुण्डलना (सं० स्त्री०) कुण्डलं वेष्टनं करोति, कुण्डल-णिच् भावे युच्-टाप् । वेष्टनकार्यं, घिराव ।

“विषमा कुण्डलनामवापिता ।” (नैषध)

कुण्डलपत्र (सं० पु०) वृक्षविशेष, देवनाका पेड़।

कुण्डलपाण्ड्य—एक पाण्ड्यवराज । वह कुवल्लयानन्द पाण्ड्यके पुत्र थे।

कुण्डला (सं० स्त्री०) १ नदीविशेष, कोई खास दरया । (भारत, भौग, ८।११)

२ त्रिपुरा जिलाके अन्तर्गत कोई प्राचीन ग्राम।

वह अक्षा० २३° १२' ८०" और देशा० ८१° १८' ५०" पू० पर अवस्थित है। ३ अजमेरके अन्तर्गत एक नगर। वह अक्षा० २७° ३५' ८०" और देशा० ७५° १५' ५०" पू० पर अवस्थित है।

कुण्डलाकार (सं० त्रि०) कुण्डलवत् आकारो यस्य, बहुव्री०। कुण्डलको भांति आकारविशिष्ट, बाला जैसा।

कुण्डलिका (सं० स्त्री०) मात्राछन्दोविशेष, कुण्डलिन्या । उसका लक्षण इस प्रकार है:—

“कुण्डलिका सा कथ्यते प्रथमं दोहा वन ।

वोला चरचरतुष्टयं प्रभवति विमलं तव ॥

प्रभवति विमलं ततः पदमतिमुल्लसितयमकम् ।

अष्टपदौ सा भवति विमलकविकौशल्यमकम् ॥

अष्टपदौ सा भवति सुखित-रनितमण्डलिना ।

कुण्डलीनायकमभिता विबुधकणैः कुण्डलिकेति ॥”

हिन्दीमें गिरिधरदासको कुण्डलिका (कुण्डलिन्या) प्रसिद्ध है। कुण्डलिनो देखो।

कुण्डलिनायक (सं० पु०) पिङ्गलसर्प, भूसा सांप।

कुण्डलिनो (सं० स्त्री०) कुण्डलं अस्य स्यात्, कुण्डल-इनि-ङीप् । १ कुलकुण्डलिनो नाम्ना शक्ति । तन्व-सारमें लिखा है—

“ध्यायेत् कुण्डलिनं” सूक्तं मूलाधारनिवासिनीम् ।

तामिष्टदेव १६पां सध विबन्धयान्त्वताम् ॥

काटिसोऽंशमनोभासां स्वयम्भूलिङ्गवेष्टनाम् ।

तासुत्याग मङ्गादेवो प्राणमन्त्रं च साधकः ॥

उद्यद्दिनकर योतां यात्रक वसं दृढ मनः ।

अशेषाद्यभशास्त्राय समाहितमनायकम् ॥

तत्प्रभापटन्यासं शरीरमापि चिन्तयेत् ॥”

सूक्तं मूलाधारनिवासिनी, इष्टदेवतास्वरूपिणी, सार्धत्रिचल्यद्वारा वेष्टिता, काँट विद्युत्की भांति ङ्ङ्वलकान्तिविशिष्टा, स्वयम्भूलिङ्गकी वेष्टनकारिणी और उदयोन्मुख सूर्य सदृश प्रभासम्पन्ना कुण्डलिनोको ध्यान लगा प्राणमन्त्र द्वारा उत्थापित करना चाहिये। फिर यावन्तीय अशुभकी शान्तिके लिये समाहित मन एवं दृढ़भावसे उपविष्ट हो जितने क्षण श्वासरोध कर रख सकते, उतने क्षण पर्यन्त उसकी चिन्ता करते हैं। अपने शरीरमें भी इस प्रकार चिन्ता करने पड़ती, कि वह अपने प्रभासमूह द्वारा उनमें व्याप्त रहती है।

२ मिष्टान्नविशेष, जलेबी। भावप्रकाशमें उसकी प्रस्तुतप्रणाली और गुणादि इस प्रकार लिखते हैं—
‘किसी नयी चाँडोमें अर्धप्रस्थ-परिमित दधिका लेप लगा २ प्रस्थ मेदा, १ प्रस्थ प्रक्षत दधि और भाव सेर घृत मिला रख छोड़ना चाहिये। फिर किसी छिद्रयुक्त पात्रमें उक्त द्रव्य भल्ल भल्ल उठा कर रखते और हाथ घुमा घुमा कर उत्तम घृ-में उसे चक्काकार डाल कर तलते हैं। किसी दूसरे पात्रमें शर्कराका रस (जलाव) रखना पड़ता है। घाँमें तलनेसे लाल होते ही जलेबी निकाल कर जलावमें डबाया जाती है। इसी प्रकार वह बनती है। कुण्डलिनो (जलेबी) पुष्टिकर, अग्नि-

कर, वलकर, धातुवर्धक, शुक्रवर्धक, रुचिकर और वसिजनक है। ३ गुडूची, गुर्व।

कुण्डली (सं० पु०) कुण्डलं अस्यास्ति, कुण्डल-इति। १ सर्प, सांप। २ वरुण। ३ मयूर, मोर। ४ चित्रमृग, एक हिरन। ५ विष्णु। ६ आरग्वधवृक्ष, अमलतासका पेड़। (त्रि०) ७ कुण्डलयुक्त।

कुण्डली (सं० स्त्री०) कुण्डल जाती छोड़। १ मिष्टान-विशेष, जलेबी। २ कुलकुण्डलिनी शक्ति। षष्ठयोग-दीपिकामें उसके कई पर्याय लिखे हैं—कुटिलाङ्गी, कुण्डलिनी, भुजङ्गी, शक्ति, ईश्वरी और अरुन्धती। सन्तोहनतन्त्रमें कहते हैं—

‘त्रिकोणं तत्, विज्ञेयं शक्तिपीठं मनोहरम्।

तद्गङ्गहरे कामवायुजिह्वपीठं त्रिचलः॥

अधोमुखस्तत्र लिङ्गं स्वयम्भूतं न चाप्यन्ये।

नीवारयुक्तवत्तन्त्रो कुण्डली परदेवता॥

शङ्खतुल्यनिभा देवी साधं त्रिवन्यान्विता।

सुखेनाच्छाद्य ब्रह्मास्त्रं तथा संवेष्टितः प्रभुः॥

ताकिनी इव वसति हाराली सगणिका।

यः साधकोऽत्र रमते स दिव्यो देव मानवः॥”

‘मनोहर शक्तिपीठ त्रिकोणाकार है। उसके गङ्गहरे जीवहृपी अति चञ्चल कामवायु अवस्थित है। फिर उसमें अधोमुख लिङ्गरूपी स्वयम्भू अवस्थान करते हैं। उक्त स्वयम्भूकर्टक नीवारधाम्यके अग्रभागकी भांति सूक्ष्म, शङ्खवर्ण और साठे तीन वलययुक्त श्रेष्ठदेवता कुण्डली आसित होती है। वह मुख द्वारा ब्रह्मसुख आच्छादन कर प्रभुकी लपेटे है। फिर उक्त स्थानमें यहिहस्त पर हारपाली ताकिनी रहती है। सुतरां जो साधक उक्त स्थानकी अधिकार कर सकता, वह मानव नहीं—देवता ठहरता है।’ (सन्तोहनतन्त्र)

३ गुडूची, गुर्व। ४ काञ्चनवृक्ष, कचनार। ५ सर्पिणी वृक्ष, एक पेड़। ६ कपिकच्छु, केवांच। ७ कुमारी, लीकवार। ८ जम्बपत्रिका।

कुण्डलीकृत (सं० त्रि०) कुण्डल-चि-कृत-कृत। कुण्डल-रूपमें परिणत, गिंडरी बनाया हुआ।

कुण्डलीवाहन (सं० पु०) सर्पिणीवृक्ष, एक पेड़।

कुण्डलीभूत (सं० त्रि०) कुण्डल-चि-भू-कृत। कुण्डल-रूपमें परिणत, गिंडरी बना हुआ।

कुण्डाशी (सं० पु०) छतराएके एक पुत्र।

(भारत आदि, ११७। ८)

कुण्डा—विहारप्रान्तके हजारीबाग उपविभागका एक टूटा दुर्ग। यह अक्षा० २४° १३’ ३०” और देशा० ८४° ३८’ ५०” पू० पर अवस्थित है। कुण्डा समान्तर चतुर्भुजकी आकृतिका बना और प्रायः २८० फीट लम्बा तथा १७० फीट चौड़ा है। पश्चिमकी ओर दरवाजे पर एक केन्द्रीय बुर्ज बना है। जिसमें कोनोंके चोकोर ४ बुर्ज प्रायः ३० फीट ऊँची छेददार दीवारसे लगे हैं। यह किला बचावके लिये बहुत अच्छा है। इसकी प्रायः चारो ओर पहाड़ घिरे हैं।

कुण्डा—युक्तप्रदेशके प्रतापगढ़ जिलेकी पश्चिमी तहसील।

यह अक्षा० २५° ३४’ एवं २६° १’ ३०” और देशा० ८१° १८’ तथा ८१° ४७’ पू०के मध्य अवस्थित है। इसमें विहार, धौगवास, रामपुर और मानिकपुर परगने लगते हैं। भूमिका परिमाण ५४३ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३२३५०८ है। यह तहसील गंगाके उत्तरपूर्व पड़ती जिसकी सीमापर उपजाऊ चिकनी मट्टी मिलती है। भीतरी भागमें कितने ही भील हैं, जिनसे धानकी खेतोंको पानी पहुँचता है।

कुण्डामि (सं० पु०) स्थानविशेष, एक खास जगह।

कौण्डप्रक देखो।

कुण्डाचल—नीलगिरि जिलेके अन्तर्गत एक पर्वत।

वह अक्षा० ११° ८’ से ११° २१’ ४१” ३०” और देशा० ७६° २७’ ५०” से ७६° ४६’ ५०” पर्यन्त नीलगिरि अधि-त्यकाके पश्चिम प्राचीरकी भांति अवस्थित है। कुण्डा-चलसे ही भवानी नदी निकली है।

कुण्डाशी (सं० त्रि०) कुण्डं योनिकुण्डं तदुपलक्ष्यो-

क्तस्य अत्राति जीवनयात्रां यापयति, कुण्ड-अशु-णिनि। १ कुटना, भड़वा। कुण्डस्य जारजातस्य अश्वं अशना-ति। कुण्डका अश्वभोजी, दोगलेकी रोटी खानेवाला।

“रक्षोपजीवी कैवर्तः कुण्डाशी नरदत्तया।

सुखी साहिबकयेव पर्वकारी च यो विजः॥

आमारदाहो निवृत्तः शाकुनि रामयाजकः।

बहिराभ्ये पतन्त्ये ते सीमं विक्षोभते च ये॥” (विष्णुपुराण, २। ६। २१)

नाटकादि अभिनयकार्यद्वारा जीवनयात्रा चक्षाने-

वाला, मत्स्यजीवी, कुण्डाशी, विषदाता, खल, माहि-
षिक, पर्वकारी, अपर्व दिनको पर्वप्रवर्तक, गृहदाहक,
मित्रनाशक, व्याध, ग्रामयाजक और सोमसता-विक्रता
पतित होता है।

कुण्डिक (सं० पु०) कुरुवंशीय अपर धृतराष्ट्रके एक
पुत्र। (भारत, भाद्र, ८४५०)

कुण्डिका (सं० स्त्री०) कुण्ड स्त्राय कन्-टाप् अत
इत्वम्। १ कमण्डलु। २ पिठर, कूजी। ३ ताम्र-कुण्ड।
४ स्थाली, झांडी। ५ सामवेदान्तगत उपनिषदविशेष।

“अथ कौकाचरं पूर्णं सूर्यावाध्यात्म कुण्डिका।” (सुक्तिकोपनिषत्)

कुण्डिन—नगरविशेष, एक शहर।

उक्त नगरके वर्तमान अवस्थिति-सम्बन्धमें मतभेद
लक्षित होता है। किसीके मतानुसार युक्तप्रदेशमें
बुलन्द-शहर जिलाके अन्तर्गत अनूपशहर तहसीलमें
अहार नामक जो एक नगर पड़ता, उसीका प्राचीन
नाम कुण्डिन ठहरता है। वहाँ भीष्मकदुहित
रुक्मिणीने बाण्यकाल प्रतिवाहित किया था। वह
श्रीकृष्णसे मिलनके लिये जिस अश्विका-मन्दिरमें
देवीको प्रार्थना करती थीं, वह मन्दिर अद्यापि
‘अहार’ नगरमें विद्यमान है।

फिर अवध प्रदेशके खेरी जिलेमें खीरोगढ़ नगरके
पार्श्वपर कुण्डिलपुर या ‘कुण्डनपुर’ नामक एक
प्राचीन ग्राम है। वहाँ बहुतसो खोदित प्रस्तरमूर्ति-
का भग्नावशेष और सुहृत् मूर्तिका स्तूप दृष्ट होता
है। उक्त स्थानके लोगोंको विश्वास है कि कुण्डिनपुरमें
राजा भीष्मक राजत्व करते थे, वहीसे श्रीकृष्ण
रुक्मिणीको हरण करके ले गये।

पासम प्रदेशके सदिया जिलेमें प्रवाद है कि उक्त
जिलेके कुण्डिलपुर नामक स्थानसे ही श्रीकृष्ण
रुक्मिणीको भगा ले गये थे।

फिर किसी पाश्चात्य प्रज्ञतत्वविद्के मतमें—वर्त-
मान वेरार प्रदेशका प्राचीन नगर कोण्डवीर भीष्म-
ककी राजधानी कुण्डिनपुर था।

ऊपर जो कई मत उद्धृत हुये हैं, उनमें कोई ठीक
नहीं। हरिवंश, विष्णुपुराण और भागवत पाठसे
समझ पड़ता कि भीष्मक विदर्भके राजा और कुण्डिन
विदर्भकी राजधानी था। यथा—

“विदर्भं तु कुण्डिनम्।” (हरिवंश, १। ४५)

“मातुष्य कुण्डिनगरे भीष्मकस्याङ्गनोदरे।

जायेत्स्व विपुलशायि प्रत्यवेचस्व केशवम्॥” (हरिवंश, १०८। १८)

“भागतोऽनिधिदपेय विदर्भनगरौ हरिः।” (हरिवंश, १०८। २२)

“भागताः कुण्डिनगरे कन्याङ्गतोर्गधिपाः।” (हरिवंश, १०८। २८)

“भीष्मकः कुण्डिने राजा विदर्भं विषयेऽभवत्।” (विष्णुपुराण, ५। २६। ६)

“पत्यश्चसङ्गुलैः सैन्धोः परीतः कुण्डिनं ययौ॥”

तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्यभिपूज्य च।” (भागवत, १०। ५२। १६)

विदर्भराजकन्या हर्निसे रुक्मिणीका अपर नाम
वेदर्भी था। विदर्भका वर्तमान नाम बिंदर है। आजकल
वह हैदराबादके अन्तर्गत है। वर्तमान हैदराबादका
अधिकांश प्राचीनकालमें ‘विदर्भ’ नामसे विख्यात था।
विदर्भ देखो।

भागवतके पाठसे समझते हैं कि कृष्ण एक रात्रिमें
प्रान्तदेशमें विदर्भराज्य पहुँचे थे।

“आरुह्य स्यन्दनं शीरिर्दिग्गमाराध्य तूर्णैः।

प्रान्तदेशिकरात्रेण विदर्भानगमन्धरेः॥ ६।

राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रश्च हवशानुमः॥” (भागवत, १०। ५२)

प्राचीन प्रान्तदेश वर्तमान गुजरात, काठियावाड़
और सूरतका कियदंय था। उसीमें थोड़ी दूर पूर्वकी
विदर्भराज्यकी सीमा रही। यन्त्रराज नामक संस्कृत-
ज्योतिषके मतमें कुण्डिनपुर २६। २८ देशीय अक्षांश-
पर अवस्थित है।

वर्तमान बिंदर नगरके ५४’ ५४” अक्षांश उत्तर
गोदावरी नदीके दक्षिण कूलसे ठाई कोस दूर (अक्षा०
१८° ४८’ उ० और देशा० ७७° ४५’ पू० के मध्य)
कुण्डिलवती नाम्नी एक प्राचीन नगरी है। आजकल
उसकी अवस्था नितान्त मन्द होती भी भूतत्त्व पर्या-
लोचना करनेसे किसी समय उसके समृद्धिशासी
होनेके अनेक प्रमाण मिलते हैं। उक्त कुण्डिलवती ही
विदर्भराज्यकी प्राचीन राजधानी ‘कुण्डिन’ नगर
समझ पड़ती है।

कुण्डिन (सं० पु०) कुण्डि रक्षायां दाहे च दूनच
क्रियते। वृहत्समवापि। उष् २। ४८। १ सुनिविशेष। २ कुरु-
वंशीय कोई राजा

• कुण्डिलवती हैदराबाद नगरसे १६ कोस उत्तर पश्चिम अवस्थित है
वहाँ लोग उसे कुण्डिलवती कहते हैं।

“इसी वितर्कः कायस कुण्डनीचापि पश्यतः ।” (भारत, चादि, २४। १६)

३ कृतिकारविशेष ।

कुण्डनी (सं० स्त्री०) कुण्डिन्-डीप् । रत्नभांडवि-
शेष, जवाहरातका कोई बरतन ।

“सन्नि निष्कसहस्राणि कुण्डनी भरिताः शुभाः ।”

(भारत, सभा, ५६ अ०)

कुण्डी (सं० पु०) कुडि-णिनि, यद्वा कुण्ड इत्यर्थे
इनि । १ कुण्डयुक्त । (पु०) २ शिव । ३ अश्व, घोड़ा ।
कुण्डी (सं० स्त्री०) कुडि-इन्-डीप् यद्वा कुण्ड
संज्ञायां डीप् । १ कमण्डलु । २ खाली, छोड़ी ।
३ शुक्लयजिका, सफेद जूही ।

कुण्डोर (सं० पु०) कुण्डाते दह्यते संसारानलमस्ता-
पेन, कुडि ईरन् । १ मनुष्य, आदमी । २ धरणी, जमीन ।
(त्रि०) कुण्डाते रक्ष्यते बलवान् येन । ३ बलवान्,
ताकतवर ।

कुण्ड—(कुण्ड) एक उपाधि । कायस्थ, चागरी, गन्धव
णिक् जूलाहा, कैवर्त, तेजी, वसेरा, सूतधार प्रभृति
जातिके मध्य ब्रह्मानमें सक्त उपाधि दृष्ट होता है ।

कुण्डणाची (वे० स्त्री०) कुटिलगति, तिरछी चाल ।

“पतति कुण्डणाया ।” (अरु, १। १८। ६०)

‘कुण्डणाया वक्रया गत्या ।’ (सायण)

कुण्डोद (सं० पु०) महाभारतोक्त एक पर्वत ।

“कुण्डोदः पर्वतो रम्यो बहुमूलफलोदकः ।

नैवधस्त्रविनो यत्र जलं शर्म च लभ्यते ॥” (भारत, वन, ८० अ०)

कुण्डोदर (सं० पु०) कुण्ड इव उदरमस्य, बहुव्री० ।
१ संप्रविशेष, एक साँप । (भारत, चादि, १५ अ०) २ जनमे-
जयके पुत्र और धृतराष्ट्रके भ्राता । ३ धृतराष्ट्रके कोई
पुत्र । (त्रि०) ४ कुण्डकी भाँति उदरयुक्त, कूँडे जैसे
पेटवाला ।

कुण्डोप्री (सं० स्त्री०) कुण्डवत् सधाः यस्यः, बहुव्री० ।
१ कूँडे-जैसे आसनवाली गाय । २ पीनपयोधरा, चढ़ो
छातीकी औरत ।

कुत (सं० पु०) सूर्यके एक पारिपाश्विक ।

कुतः (सं० अ०) १ किस स्थानसे, कहाँसे । २ किस
हेतुसे, क्यों । ३ कैसे । ४ क्योंकि । ५ क्या ।

“परमात्मनि गोविन्दे मिदामिबकथा कुतः ।” (विष्णुपुराण, १। १८। १०)

कुतक (सं० स्त्री०) रसाञ्जन, ।

कुतका (हिं० पु०) १ गतका, खेलनेका कोई उँडा ।
२ सोंटा ।

कुतमय (सं० पु०) कुचासी तनयश्चेति, कर्मधा० ।
कुपुत्र, कपूत ।

कुतना (हिं० क्रि०) कूता जाना, गणनामें आना ।

कुतनु (सं० पु०) कुत्सिता तनुयस्य, बहुव्री० । १ कुवेर ।
(त्रि०) २ कुत्सित शरीर, बुरे जिस्मवाला ।

कुतन्त्री (सं० स्त्री०) कुनिन्दता तन्त्री, कर्मधा० ।
कुत्सितवीणा, बुरी बोन ।

कुतप (सं० पु०) कुत्सितं पापं तपति, यद्वा कु भूमिं
तपति, कुतप-पञ्च अथवा कुत-कपन् । १ सूर्य, सूरज ।
२ अग्नि, चाग । ३ ब्राह्मण । ४ अतिथि, मेहमान ।
५ गो, गाय । ६ भागिनिय, भागजा । ७ कुश । ८ छाग-
लामका कन्दन, बकरीके रूयें की कमरो । ९ दिनमा-
नका अष्टमांश । १० वाद्यविशेष, कोई बाजा ।
११ दौड़ित, लड़कीका लड़का, नाती । १२ लुद्रघट,
छाटा घड़ा । (त्रि०) १३ ईषदुष्ण, कष्ट गर्म ।

कुतपकाल (सं० पु०) कुतपस्यामौ कालश्चेति, कर्मधा०
दिनमानका अष्टमांश, दिनका आठवाँ हिस्सा । १५
मुहूर्तमें विभक्त कर दिनमानकी अष्टम भागको कुतप
काल कहते हैं ।

“अत्रो मुहूर्तार्थं विख्याता दश पञ्च च सर्वदा ।

तस्याष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतपो रम्यतः ॥” (मत्स्यपुराण)

कुतपकालको ही एकोद्दिष्टिआह आरम्भ करना पड़ता
है ।

“आरम्भ कतपे आहं कुर्यादारीह्विषं बुधः ।

विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिषं तु न लङ्घयेत् ॥” (आहतस्य)

कुतपकालमें आरम्भ करके नवम मुहूर्त पर्यन्त
आह करना चाहिये । विधिज्ञ व्यक्तिके लिये उक्त रौहि-
णकाल उल्लङ्घन करना कदापि कर्तव्य नहीं ।

कुतपसप्तक (सं० स्त्री०) १ आहविशेष । २ क्षणातिल,
काला तिल । ३ रौप्य, चाँदी । ४ जर्णवस्त्र, जनी
कपड़ा ।

कुतपस्त्री (सं० पु०) कुत्सितः तपस्वी, कर्मधा० ।
निन्दित तपस्वी, अच्छी तपस्या न करनेवाला ।

कुतवार—खालियरराज्यका एक प्राचीन नगर । वह
खालियरके दुर्गसे ८॥ कोस उत्तर आसन नदीके

दक्षिणकुल पर प्रवर्धित है। देशी लोगोंके विष्णुसा-
नुसार कुन्तिदेवीके पालक-पिता कुन्तिभोज वहाँ रहते
थे। कोई कुतवारका प्राचीन नाम कुमन्तलपुरी वा
कुन्तलपुरी बताते हैं। फिर किसी किसीके मतमें
उसका पौराणिक नाम कान्तिपुरी है।

हमारी समझमें कुतवार और उसका चतुर्दिग्ध्य
जनपद पूर्वकालको 'कुन्तिराष्ट्र' वा 'कुन्तिभोज' नामसे
प्रसिद्ध था।

“कुन्तिराष्ट्रं च विपुलं सुगच्छं वन्यस्यथा।” (भारत, विंश १। १२)

सहदेवके दिग्विजयमें लिखा है—

“नवराष्ट्रं च निर्मिथं कुन्तिभोजसुपाद्रवम्।

मोतिपुर्णं च तस्यासी प्रतिजयाह शासनम् ॥

सतयमंभवतीकुली जम्भकस्यात्मजं नृपम्।

ददर्श वासुदेवेन सेवितं पूर्वं वैरिणा ॥” (भारत, सभा, १०। ६-७)

उन्होंने नवराष्ट्र जोत कुन्तिभोजको विध्वस्त किया
था। फिर चर्मखतो नदीतीर जम्भकसे उनका साक्षात्
हुवा।

चर्मखतोका वर्तमान नाम चम्बल है। वह खालियर
राज्यके पूर्व सीमा-रूपमें वर्तमान कुतवार
नगरसे १० कोस पश्चिम प्रवाहित है। कुन्ति और कुन्तल देखो।

उस समय कुतवार विशेष समृद्धिवाली था। आज
भी वहाँ विस्तर प्रस्तरमूर्ति और प्राचीन गृहादिका
ध्वंसावशेष पड़ा है। कुतवारसे तोमर राजावोंकी दी
और नागराक्षरोंमें लिखी हुई कई शिलालिपि
निकली हैं।

कुतरन (हि० पु०) खंडित वस्त्र, कटाहुआ कपड़ा।

कुतरना (हि० क्ति०) १ थोड़ा थोड़ा दांतसे काटना।
२ काट लेना, निकालना।

कुतर्क (सं० पु०) कुत्सितः कर्मधा०। निन्दनीय तर्क,
बुरी दलील।

“व्यासवाक्यज्ञोचेन कुतर्कतद्वहारिणा।” (मार्कण्डेयपुराण, १। १०)

कुतर्कपथ (सं० पु०) कुतर्कस्य पथ्या, ६-तत्। कुत-
र्कका पथ वा उपाय, बुरी दलीलकी राह।

कुतर्की (सं० पु०) कुतर्क-इति। १ कुत्सित तर्क उपा-
स्थित करनेवाला, जो बुरी दलील लगाता हो। (क्ति०)
२ कुतर्कविशिष्ट, जिसमें बुरी दलील रहे।

कुतला (हि० पु०) हंसिया, काटनेका एक हथियार।

कुतवार (हि० पु०) १ फसल कूटनेवाला। २ कोत-
वाल। ३ एक प्राचीन नगर। कुतवार देखा।

कुतवारो (हि० स्त्री०) १ कातवाल का काम। २ कोत-
वालेका काम करनेकी जगह।

कुतस्व (सं० चि०) कुतेः भवः, कुतस्-त्त्वप्। कहासे
आया हुआ, कैम गुजरा हुआ।

“कुतस्व भोव यत्तेभ्यो द्रुवाद्वाऽपि चमामहे।” (भट्टि, १५)

कुतापस, कुतप्सा देखो।

कुतार (हि० पु०) १ असुविधा, अड़चन। २ कुप्रबन्ध,
बदहन्तिजामी।

कुत्सिति (सं० पु०) कुत्सितः तित्सिः, कर्मधा०।
१ निन्दित तित्सिपन्नो, खराब तोतर। २ तित्सि-
पन्नावशेष, किसी किस्म का तोतर। उसका मांस-मधुर
पद कषायरस, कष्टु, शोथवीर्य और त्रिदोष नाशक है।

(सुश्रुत)

कुतिया (हि० स्त्री०) १ कुकुरी, कुत्तकी मादा।
२ कुत्सितस्त्री, बुरी औरत।

कुतिया—युक्तप्रदेशके फतेहपुर जिलेकी कच्चाणपुर
तहसीलका एक गांव। वह फतेहपुर नगरसे ५॥ कोस
उत्तर-पश्चिम अवस्थित है। प्रजननविद् कनिङ्गहाम
साहबके मतमें उक्त ग्रामकी चोन-परिव्राजक युयेन
चुयाङ्ग-वर्णित ‘यो-यु-तो’ नामक स्थान है। कुतिया
१०० वर्ष पूर्व अपनी पूषपाख्य उच्च भूमि पर बसा
था। आज कल उसे बडागांव कहते हैं। वहाँ नोमके
नीचे कई प्राचीन भग्न प्रस्तर-मूर्ति मिली हैं।

कुतोपाद (सं० पु०) सामवेदोक्त एक ऋषि।

कुतोर्थ (सं० पु०) कुत्सितः तोर्थः, कर्मधा०। १ निन्दित-
तोर्थ, खराब तोरथ। २ कु आचार्य।

कुतु, कुतुप देखो।

कुतुक (सं० स्त्री०) कुत् बाहुलकात् उकञ्। १ कोतुक,
तमाशा। २ कोतुहल, ताज्जवा।

कुतुको (सं० त्रि०) कुतुकमस्यास्ति, कुतुक-इति।
कातुहल-युक्त, सुताज्जव, अचम्बेमें पड़ा हुआ।

“कामावगलितपुच्छैरभिमलनासां बधेन किं शिखिनः।

कुतुकिनि। पुनर्न लाभी विषधर-विषमं वमं भवता ॥” (उष्टर)

कुतुप (सं० पु०-स्त्री०) कुतप पृषादरादित्वात् साङ्गः

- १ पञ्चदश भागमें विभक्त दिनमानका पष्टमांश । ३५५
रैको । इसका कुतुब-उप् पृषोदरादित्वात् अकारागमः ।
२ चर्मनिर्मित तैलादिका छुद्रपात्र, चमड़ेकी छोटी

कुतुब (अ० पु०) १ ध्रुवतारा । २ पुस्तक ।

कुतुब-आलम—१ एक विख्यात मुसलमान फकीर ।
उनका प्रकृत नाम सेयद शेख तुरहान्-उद्-दीन था ।
उनके पितामह भी एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे । उनका नाम
मखदूम-जहानियां सेयद जलाल बोखारी रहा । कुतुब
आलम गुजरातमें रहते थे । वहाँ वह १४५३ ई० की
८ वीं दिसम्बरको मर गये । गुजरातमें अहमदाबाद-
से ६ मील दूर बतुह नामक स्थान पर उनका समाधि-
मन्दिर है । उक्त समाधि-मन्दिर (कब्र)-के द्वारमें एक
पत्थर लगा है । ठीक नहीं कहा जा सकता कि—वह
वास्तवमें प्रसार, लाह वा काष्ठ है ।

२ कोई दूसरे मुसलमान फकीर । उनका प्रकृत
नाम शेख नूर-उद्-दीन् अहमद था । लाहौरमें उन्हें
जन्म मिला । १४४४ ई० की विहारके पिण्डा नामक
स्थानमें वह मर गये । वहाँ उनकी कब्र भी बनी है ।
कुतुब-उद्-दीन ऐबक—दिल्लीके एक बादशाह । वह
दिल्लीवाले दास-राजवंशके प्रतिष्ठाता रहे । कुतुब-उद्-
दीन पहले गजनी और गोरके राजा शहाब-उद्-दीन्
मुहम्मद गोरीके क्रीतदास थे । पीछे वह उनके सेना-
पति हो गये । शेषमें ११८२ ई० की अजमेरके राजा
पृथ्वीरावके पराजित होने पर शहाब-उद्-दीन
उन्हें अजमेरमें स्वीय प्रतिनिधि शासनकर्ताको भांति
छोड़ गये । कुतुब-उद्-दीन्ने उसी वर्ष मिरठ तथा
दिल्ली जीत बङ्गाल तक राज्य विस्तार किया था ।
१२०६ ई० की शहाब-उद्-दीन गोरी मर गये । उनके
भ्रातृपुत्र गियास-उद्-दीन गोरीने राजा हो कुतुब-
उद्-दीन ऐबकको राजावित चन्द्रातप, सिंहासन,
राजमुकुट और सुलतान उपाधि दिया था । उसी वर्ष
२७ वीं जूनको उन्होंने राजा बन दिल्लीमें राजधानी
स्थापनपूर्वक सिंहासन अधिरोहण किया । ४ वर्षमात्र
उनका प्रताप अशुभ रहा । किन्तु वह २० वर्षसे भी
अधिक सिंहासन पर बैठे थे । १२१० ई० की कुतुब-

उद्-दीन् लाहौरमें अस्त्रमै गिर मर गये । उनके पोष-
पुत्र आराम शाह राजा बूबे ।

पुरानी दिल्लीमें कुतुब-मीनारके निकट 'कुव्वत्-उल-
इसलाम' नामक एक विख्यात सुमा-मसजिद है ।
वही पहले एक बड़ा देवमन्दिर रहा । कुतुब-उद्-दीन्
ऐबकने ही उक्त मन्दिर तोड़ मसजिद बनायी थी ।
पीछे उनके वंशके शम्स-उद्-दीन अलतमास और
खिलजी वंशके अला-उद्-दीनने उसका बहुत संस्कार
करा नूतन गृहादि निर्माण कराये ।

कुतुब-उद्-दीन खां—एक मुसलमान अमीर । सुगल-
मन्नाट अकबरके समय वह एक पाँच हजारों अमीर
या मनसबदार थे । अकबरने उन्हें भड़ोचका शासन-
कर्ता बनाया । १५८३ ई० की गुजरातके नवाब सुल-
तान मुजफ्फरने विद्रोहघातकता करके उन्हें मार
डाला ।

कुतुब-उद्-दीन खान्—अकबरके एक पालकपुत्र । वह
सन्नाट अकबरके माननीय मुसलमान फकीर शेख
सलीम चिस्तीके भागिनेय (भागजा) रहे । उनका
प्रकृत नाम शेख खूबन था । जहाँगीरके राजत्वकालमें
वह पाँच-हजारों मनसबदार बने और १६०६ ई०
की बङ्गालके शासनकर्ता नियुक्त बूबे । १६०७ ई० की
वर्धमानमें शेर अफगानके हाथ कुतुब-उद्-दीन् खान्
मर गये । फतेहपुरसीकरीमें उनकी कब्र बनी है ।

कुतुब-उद्-दीन् सुनव्वर—होसनिवासो एक विख्यात
मुसलमान फकीर । वह शेख जलाल-उद्-दीन अह-
मदके पुत्र थे । दिल्लीके सुलतान फीरोजशाह बरक-
कके समय सुनव्वर शेख विद्यमान रहे । वह दिल्ली-
वाले तदानोम्नन विख्यात फकीर नासिर-उद्-दीन
चिरागके सतीर्थ अर्थात् शेख निजाम-उद्-दीन औलि-
याके शिष्य थे । उक्त दोनों व्यक्ति १३५६ ई० की मर गये ।

कुतुब-उद्-दीन मुहम्मद गोरी—ईक-उद्-दीन गोरीके
पुत्र और फीरोजाको नामक नगरके स्थापयिता ।
उन्होंने गजनोराज बहुरामशाहकी कन्यासे विवाह
किया था । किसी समय उन्होंने गजनो आक्रमण-
को भी चेष्टा लगायो । सुलतान बहुरामने समझ
सकनेपर उन्हें गोपनमें मार डाला । इसीसे गजनी
और गोर राज्यमें चिरशत्रुता हो गयी ।

कुतुब-उद्-दीन मुहम्मद लङ्का—सुलतानके लङ्काजातीय द्वितीय सुलतान। दिल्लीवाले सम्राट् बहलोख लोदीके समय उन्होंने अपने पूर्ववर्ती (जामाता) सुलतान शीख यूसफको पकड़ दिल्ली भेज दिया और स्वयं सिंहासन अधिकार किया था। वह पतिव्रत प्रजारक्षक रहे। उनका राजत्व १६ वर्ष चला। १४६८ ई० को मरने पर उनके पुत्र हुसैन लङ्का राजा हुवे।

कुतुब-उद्-दीन सुलतान—गुजरातराज मुहम्मदशाहके पुत्र। १४५० ई० को राजा हो १४५८ ई० में वह मर गये। मरने पीछे उनके पित्रव्य राजा हुवे।

कुतुब-उद्-दीन सूर—घोरके एक राजा। इन्होंने गजनीके सुलतान बहरामकी कन्यासे विवाह किया था, परन्तु सुलतानकेही हाथों मरि गये। इनके भाई सैफ-उद्-दीनने इस वधका बदला लिया और गजनीको अधिकार किया। बहराम भागे थे, परन्तु शीघ्र ही एक फौज कर लौट पड़े। उन्होंने सैफ-उद्-दीनको कैद कर कुचल कुचल कर वध किया। फिर इनके तीसरे भाई अलाउद्-दीनने बहरामको हरा गजनीमें लूटमार मचायी और भाग लगायी थी। अलाउद्-दीन ११५६ ई० को चल बसे।

कुतुब-उल्-मुल्क—गीलकुण्डारान्यस्थापयिता। सुलतान कुनी कुतुबके पिता। वह जातिमें तुर्क रहे, दाक्षिणात्यकी कर्मकी चेष्टामें गये थे। शेषको कुतुब-उल्-मुल्क मुहम्मद शाह बाहमनीके सैन्यदलमें प्रविष्ट हुवे। क्रमशः उच्चपद पा उन्होंने कुतुब-उल्-मुल्क उपाधि धारण किया और तैलङ्गका तरफदारी पद भी ले लिया। १४८३ ई० को वह जामकुण्डाका दुर्ग अधिकार करने गये थे। वहीं शराघातसे विनष्ट हुवे।

कुतुबखाना (फा० पु०) पुस्तकालय, किताब रखने का घर।

कुतुबनुमा (फा० पु०) गन्धविशेष, एक आला। उससे दिक्-ज्ञान होता है। वह छोटी डबिया-जैसा बना रहता है। उसमें एक लोहसूची लगती, जो पथस्त्वान्त लोहकी शक्तिसे अपना मुख सदा उत्तरकी ओर रखती है। समुद्रमें चलनेवाले जहाजों पर उसे अधिक व्यवहार करते हैं।

कुतुबफरोश (फा० पु०) पुस्तकविक्रेता, किताब बेचनेवाला।

कुतुबमीनार—दिल्लीका एक उच्च स्तम्भ। दिल्लीकी जुमा मसजिदके दक्षिण-पूर्व कोणमें वह अवस्थित है। उसमें कुछ मनजिलें विद्यमान हैं। गठनभङ्गिमा, हरक मनजिल और बरामदेका कादमाय चूड़ा इत्यादि देख उसे विना हिन्दूकीर्ति कहे कैसे रह सकते हैं। किन्तु अधिकांश प्राचीन सुसलमान ऐतिहासिक और पाश्चात्य प्रव्रतस्वविद् उसे सुसलमानराजकीर्ति बता गये हैं। किसी किसी सुसलमान ऐतिहासिकने उक्त विवाद भञ्जनके लिये कुतुबमीनारको हिन्दुओंके यज्ञसे आश्रय और सुसलमानोंके हाथ समाप्त होनेवाला जैसा अभिमत प्रकाश किया है। फिर किसी किसी पाश्चात्य पुरावित्ने उक्त मीमांसाको युक्तिसङ्गत भी मान लिया है।

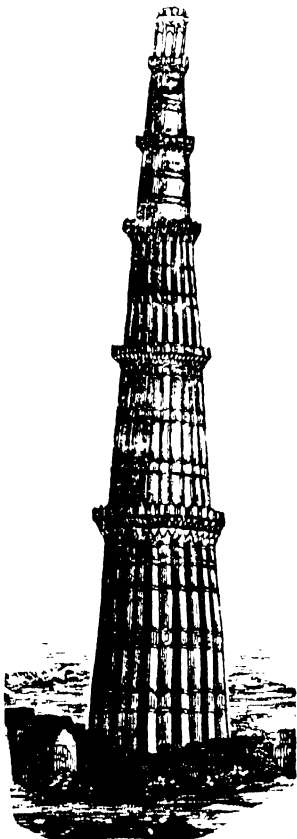
कुतुबमीनारको हिन्दूकीर्ति बतानेवाले कहा करते हैं कि उसका नाम यमुनास्तम्भ है। दिल्ली और अजमेरके शिवराजा पृथ्वीराजकी कन्याने प्रत्यह यमुना वा यमुनातीरस्व स्वीय गुरुके आश्रय दर्शनको उक्त उच्च स्तम्भ बनाया था। किसी किसीके कथनानुसार पृथ्वीराजने स्वयं प्रत्यह गङ्गादर्शनाभिलाषो हा उक्त स्तम्भ निर्माण कराया, किन्तु उक्त उद्देश्य सिद्ध न होने पर द्विगुण उच्च दूमरा गङ्गा-स्तम्भ बनाने लगे। उसके संपूर्ण होते न हाते सुसलमानोंने उन्हें रान्यच्युत कर दिया।

कनिङ्गहाम साहबने विशेषरूपसे पर्यवेक्षण कर अपना १८६२।६३ ई० की पारकियासाजिकल रिपोर्टमें लिखा है कि वह कोई हिन्दूकीर्ति नहीं। उसको भित्ति पर्यन्त सुसलमानाने स्थापन की है। कनिङ्गहामके अनुमानमें तदानीन्तन सुसलमान सन्यासी कुतुब-उद्-दीन उशीरके नाम पर जुमा मसजिदकी कुतुब-उद्-इसलाम और आजान लगानेके स्तम्भको कुतुब मोनार कहते हैं। अनुसन्धानसे उसके कब और किसके द्वारा स्थापित होनेके विषयमें यह मालुम हुवा है—

शमस-श्रीराजने (१३८० ई०) अपने ग्रन्थमें लिखा है कि—दिल्लीकी जुमामसजिदका उद्देश्यस्तम्भ सुलतान शमस-उद्-दीन अल्तमासने बनाया था।

अबदुलफिदा (१३०० ई० को वर्तमान) ने उल्लेख किया है कि दिल्लीकी जुमामसजिदका मीनार रक्त वर्ण प्रस्तर-निर्मित और अति उच्च है। उसमें ३६० सिङ्गी चटना पड़ता है। (कनिङ्गहाम साहब उसमें ३७८ सिङ्गी कहते हैं)

फतुहात-फौरोजशाहीनामक इतिहासमें फौरोज शाह (१३६८ ई०)-का एक वाक्य उद्धृत है। उससे मालूम पड़ता कि सुलतान सुईज-उद्-दीनका मीनार वज्राघातसे टूट गया था, फौरोजशाहने उसको संस्कार करा अति उच्च उठा दिया। अबदुलफिदाके समय वजूहत मीनारमें ३६० सिङ्गीका होना कुछ विचित्र नहीं शेषोक्त ग्रन्थसे यह भी विदित होता है—अस्तमासके समय मीनार जितना ऊँचा था, फौरोजशाहने उससे कितना जो बढ़ा दिया।



कुतुब-मीनार।

कुतुब मीनारकी वर्तमान उच्चता २३८ फीट १ इंच है। उसके तलभागका व्यास ४७ फीट ३ इंच बैठता है। ऊर्ध्व भागका व्यास ८ फीट है। भूमिसे भित्ति २ फीट उठी है। चूड़ाको छोड़ भित्तिके ऊपर-से स्तम्भकी उच्चता २३४ फीट १ इंच है। चूड़ा २ फीट

ऊँची है। भित्तिके ऊपरसे चूड़ाके नीचे तक स्तम्भ (मीनार) पाँच तलमें विभक्त है। सबसे निम्नतल ८४ फीट ११ इंच, द्वितीय तल ५० फीट साढ़े ८ इंच, तृतीय तल ४० फीट साढ़े ८ इंच, चतुर्थ तल २५ फीट ४ इंच और पञ्चम वा सर्वांश तल २२ फीट ४ इंच ऊँचा पड़ता है। सर्वान्तर एवं सर्वांश तलको उच्चता समग्र मीनारकी ऊँचाईसे ठीक आधी है। चतुर्थ तल भी उच्चतामें द्वितीय तलसे आधा आता है। एतद्विना उसक परिमाणमें दूसरा भी एक कौशल देख पड़ता है। निम्नतलके व्यासकी परिमाण ४७ फीट ३ इंच है। चूड़ाको छोड़ समग्र स्तम्भका परिमाण उक्त व्यासके पञ्चगुणसे २ इंच मात्र अधिक है।

कुतुबमीनारका तलदेश चौबीस पड़ता है। पर-स्पर १ तलके स्तम्भगात्रमें उसी प्रकार पड़लू बने हैं। किन्तु चतुर्थ तल सम्पूर्ण गोलाकार है। नीचेकी ओर-से प्रथम ३ तल काल मरमरके बने हैं। प्रत्येकमें अरबी भाषाकी शिलालिपि खुदी है। फिर प्रत्येक तलमें अति सुन्दर कारुकार्य-शोभित बरामदा है। चतुर्थ तलके ऊर्ध्वभाग और पञ्चम तलके मध्य दो स्थल खेत मरमर पत्थरसे जड़े हैं। उसकी मध्य ऊपर चढ़नेकी घुमावदार जीना है।

१८०१ ई० को भूमिकम्पसे कुतुबमीनारकी चूड़ा टूट गयी और पन्थान्य स्थल पर भी विशेष क्षति हुई। लोगोंके सुननेसे सुनते कि उस समय चूड़ा चार स्तम्भों पर मन्दिराकार गुम्बज लगा थी। भूमिकम्पके पीछे तत्कालीन गवर्नर जनरलने मरम्मत करनेका आदेश दिया। बहुयत्नमें अनेक स्थल पर (१८२८ ई०) मरम्मत हुई। टूटे पत्थर निकाल बिलकुल उसी तरहके दूसरे पत्थर काट कर लगाये गये थे। किन्तु पुराने पत्थरोंमें जो सूक्ष्म कारुकार्य था, वह अति व्ययसाध्य होनेसे छोड़ दिया गया। फिर भी मरम्मतमें २२०००) रु० लगा था। बरामदेके सारा कटहरा (रेलिङ्ग) और सर्वनिम्नतलका प्रवेशद्वार भी टूट गया था। उसकी बदले वर्तमान कारुकार्यज्ञोंन बरामदा और विलायती कारुकार्यविशिष्ट प्रवेशद्वार लगा है।

कुतुबमीनारके गात्रमें अनेक शिल्पलिपि खुदी

हैं। उनसे मीनारका इतिहास मिलता है। सबसे निम्न तलमें पेटिकाकी भाँति छह स्थानों पर खुदाई हुई है। उनमें सबसे ऊपर कुरान्की आयतें हैं। दूसरेमें भगवान्‌के ८८ अरबी नाम हैं। तृतीयमें सुईज-उद्-दीन, अबुल मुजफ्फर और सुहम्द-बिन-शामका नाम तथा यशोगान लिखा है। चतुर्थमें फिर कुरान्की आयतें हैं। पञ्चममें सुहम्द-बिन-शामका नाम और यशोगान मिलता है। षष्ठमें सब खीख नष्ट हो गया है। केवल 'अमोर उस सम्राट' पढ़ा जाता है। प्रवेशद्वारके मस्तकपर लिखा है—“सुलतान शम्स-उद्-दीन अलतमासका यह मीनार टूट गया था। वहलोलके पुत्र सिकन्दर शाहके राजत्व काल खवासखान्‌के पुत्र फतेहखान्‌ने ८०८ हिजरी (१५३६ ई०) को उसकी मरम्मत करायी।” द्वितीय तलमें ३ गिला लिपियाँ हैं। सबसे निम्न फलकमें कुरानका बचन, बीचवालेमें अलतमासका यशोगान और द्वारके मस्तकवालेमें मीनारका निर्माणकार्य शेष करने-केलिये अलतमासका दिया हुआ आदेश खुदा है। चतुर्थ तलमें द्वारके मस्तक पर अलतमासके मीनार निर्माण करानेके आदेश और पञ्चम तलमें द्वारके मस्तक पर ७७० हिजरी (१३६८ ई०) को बल्खाघातसे मीनारका कुछ अंश टूट जाने पर फीरोजशाहके मरम्मत करानेका विवरण दिया गया है। एतद्विषय कारुकार्यके मध्य मध्य भी कई लिपि लगी हैं। उनसे भी अनेक बातें मालूम पड़ती हैं। सर्वनिम्नतलमें एक स्थान पर प्रधान मुक्ता अबुल मवालीके पुत्र फाजिलका नाम खुदा है। एक स्थान पर अष्टालिकामें सुहम्द अमोरचोर नाम और दूसरे किसी स्थान पर नागरी (हिन्दी) में ‘सुलतान सुहम्द संवत् १३८२’ (१३२५ ई०) लिखा है। उक्त वक्तर जो सुहम्द तुगलकके राजत्वका प्रथम वर्ष था। चतुर्थ तलकी दीवार (भित्ति) पर नागरी अक्षरोंमें ‘फीरोज शाह संवत् १४२५’ (१३६८ ई०) खुदा है। चतुर्थ तलके द्वारपाश्वर्य पर मर्मर पत्थरकी एक नागरी लिपि है। उसमें भी फीरोज-शाहका नाम और संवत् १४२६ (१३६९ ई०) देख पड़ता है। उक्त नागरी लिपि सर्वापेक्षा प्रयोजनीय है।

किन्तु कालके दौरात्प्राप्ते उसका अधिकांश नष्ट हो गया है। उसमें ऊपरके एक चरणसे समझ पड़ता है—“अविश्वकर्मप्रसादे रचितः।” फिर शेषकी ओर अष्टालिकाके शिल्पी सहदेवपालके पुत्रका ‘सल्हन्’ नाम मिलता है। मालूम पड़ता कि उन्होंने फीरोज-शाहके समय मरम्मत की होगी। मध्यस्थलमें कई परिमाणसूचक पढ़े हैं। उनसे कनिष्कहाम साहबने अनुमान किया है—फीरोजशाहके समय किस प्रकार और कैसे संस्कार हुआ वह इसी बातके कोई सूचक होगी। सर्वनिम्नतलके सर्वनिम्न स्थान पर एक सुमनमान उपाधि खुदा है। वह उपाधि कुतुब-उद्-दीन ऐबकका है। शुभामसजिदके पूर्व द्वार पर कुतुबकी जो लिपि लगी है, उसमें उनके नामके साथ उक्त उपाधि देख पड़ता है।

उक्त सकल खोदित लिपिसे स्थिर हुआ है कि गजनौराज मुहम्दबिन शामके राजत्वकाल कुतुब-उद्-दीन ऐबकने प्रायः १२०० ई० को मीनारका निर्माण कार्य चलाया और अलतमासने उसे १२२० ई० को सम्पूर्ण बनाया था। चतुर्थपक्षके प्रवेशद्वार पर सिकन्दर लोदीके समयकी लिपि है। उससे समझ पड़ता कि मीनार अलतमासके आदेशसे बना था। उसका अर्थ सम्भवतः चतुर्थतलके निर्माणकार्य पर लगाया जा सकता है। नतुवा द्वितीयतलकी लिपि-वर्णनाके साथ उसका विरोध आता है। उक्त विषयमें फीरोजशाहकी बात ही प्रमाणकी भाँति गण्य है। फीरोजशाहने मीनार संस्कार करते समय लिखा है—“हमने सुईज-उद्-दीन शामके मीनारकी मरम्मत करानेकी आदेश दिया।” किसी किसीके कथनानुसार एक काल ७ तल रहे। किन्तु यह बात ठीक नहीं। कारण सिद्धियोंकी जो संख्या है, उसमें पड़तलसे अधिक रहना कभी सम्भव नहीं। अनेकोंके अनुमानमें स्तम्भागत साधारण स्थूल कार्यसे शोभित रहते भी बरामदा और पेटिया प्रति उत्कृष्ट कारुकार्यविशिष्ट हैं। इससे मालूम होता है कि किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा संयोजित हैं। अमोर खुगुरुके लिखे विवरणसे समझ पड़ता कि अलाउद्दीन खिलजीने कुतुबमीनारके

संस्कार और फीरोजकी बनायी भग्नप्राय चूड़ाके निर्माणको पाटेश दिया था। सम्भवतः उन्हींके द्वारा वह संयोजित हुये हैं। कुतुबमोहम्मदकी गायब लिपिका मूल और चम्पार विभाग समझनेके लिये Cunningham's Arch. Survey Reports 1862-63, Vol. I; Edward Thomas' Chronicles of the Pathan Kings of Delhi; Dowson's Edition of Sir H. M. Elliot's Muhammdan Historians; Travel's by Docter Lee; Robert Smith's Report in Journal Archaeological Society Delhi; Asiatic Researches of Bengal, II; Rajasthan Vol II; Hand-book for Delhi; Sleeman's Rambles of an Indian official etc द्रष्टव्य हैं।

कुतुबशाही—गोलकुण्डके सुलतानों का एक उपाधि। इस वंशके राजाओंने १५१२ से १६८७ ई० तक राजत्व रखा। १६३८ ई०के समय उन्हींने समय दक्षिण भारतको आक्रमण किया था।

कुतुम्बा (सं० स्त्री०) द्रोणपुष्पीशुप, एक झाड़ी।

कुतुम्बिका कुतुम्बा देखो।

कुतुम्बक (सं० स्त्री०) कुक्षिततिन्दुकीफल, तेंदूका खराब फल।

कुतुरभा (हिं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया। उसका वर्ण हरित और चक्षु, पृष्ठ तथा पद रक्तवर्ण होता है।

कुतुबी (हिं० स्त्री०) मृदङ्गिकाफल, हमलीका मुलायम फल। उसे कंटिया भी कहते हैं।

कुतू (सं० स्त्री०) कुत्तमितं तन्वते, कुतन् बाहुलकात् कृटिस्तोपच। चर्मनिर्मित तैलादिका पात्र, कुप्पी।

कुतूषक (सं० पु०) कु ईषत् तूषयति सङ्कोचयति अच्युयः, कुतूष सङ्कोचे खल्। बालकोंका एक चक्षुरोग बच्चोंकी आँखोंमें होनेवाला एक बीमारी। उसका चलित नाम कुथुवा है।

कुतूषकका वैद्यकीय लक्षण यह है—स्नानदुग्धके दोषवशतः शिशुओंकी पलकों पर कुतूषक रोग लग जाता है। उसमें चक्षुसे अनवरत जल गिरता और वह झुजलाने लगता है। उक्त रोगमें शिशु अपना ललाट, नासिका और चक्षु सर्वदा वर्षण करता तथा सूर्यकिरणको और देख नहीं सकता। (भाष्यकर)

कुतूषकोग पर झुन्डी, झुंकराज एवं हरिद्रा पीस

और पटपाकमें जलाकर सैन्धवके साथ अञ्जन करना चाहिये।

विडङ्ग, हरिताल, मनःशिला, दाहहरिद्रा, लाजः और गेरिक मृत्तिकाको अम्लपानीयसे घिस अञ्जन लगाते हैं। (चक्रदन)

वाग्भटने उक्त रोगका नाम कुकूषक लिखा है।

कुतूहल (सं० स्त्री०) कुतू चर्ममयतैलादिपात्रवत् अम्ललहति सोल्ल, कं करोति, कुतूहल्-प्रच्। १ कोई वस्तु देखने या सुननेके लिये अत्यन्त इच्छा, गहरी खादिश। २ नायिकाका अलङ्कार विशेष।

“रस्यवस्तु समालोकी लोलता स्यात् कुतूहलम्।” (साहित्यदर्पण, १।१।२)

मनोहर वस्तु दर्शन करनेके लिये प्रतिशय आकाङ्क्षाका नाम कुतूहल है।

३ कोतुक, तमाशा। ४ कौड़ा, खेल। ५ आश्चर्य, ताज्जुब।

कुतूहलवान् (सं० त्रि०) कुतूहलं पस्यास्ति कुतूहलमनुपमस्य वः। कौतूहलविशिष्ट, किसीके देखने या सुननेकी गहरी खादिश रखनेवाला।

कुतूहलित (सं० त्रि०) कुतूहलमस्य सञ्ज्ञातम्, कुतूहल-इतच्। कौतूहल-युक्त, सुताज्जिब, अचञ्चलमें पड़ा हुआ।

कुतूहली (सं० त्रि०) कुतूहलमस्यास्ति, कुतूहल-इनि। कौतूहलाक्रान्त, खेल देखने या करनेवाला।

कुटूण (सं० स्त्री०) कुक्षितं छणमिव, उपमितसं०। १ काटण। २ कुम्भी। उभिका देखो।

कुतोनिमित्त (सं० त्रि०) कुतः किं निमित्तं यस्य, किं प्रथमार्थं तसिन्। किस निमित्तवाला, कौन मतलब रखनेवाला।

कुतोमूल (सं० त्रि०) किं मूलमस्य, किं-तमिन्। किस मूलवाला, कौन इबतिदा रखनेवाला।

“कुतोमूलमिदं दुःखम्।” (भारत आदि)

कुता (हिं० पु०) खान, एक जन्तु। उग्र देखो।

कुत्तो (हिं० स्त्री०) कुकुरी, कुतिया।

कुत्त—ज्योतिषोक्त पञ्चदश यागविशेष।

कुत्र (सं० अव्य०) कस्मिन्, किम् त्रल्। सर्वव्याख्य। पाश।

१०। कहाँ, कब, कहाँ को, किस अवस्था या हालतमें।

“कुत्राशिवः यत्तिमुखा समदृष्टिः।” (भाष्यकर, ७।२।२५)

कुत्रचित् (सं० अथ०) कुत्र च चित्त, हन्तः। किसी अनिर्दिष्ट स्थानमें, किसी एक जगह पर।

“विशिष्टं कुत्रचित्तो जं स्त्रीयोनित्वे व कुत्रचित् ।” (मनु, ८। १४)

कुत्रचन (सं० अथ०) कुत्र च चन च, हन्तः। कहीं भी, किसी भी जगह पर।

कुत्रत्य (सं० त्रि०) कुत्र भवः, कुत्र-त्यप्। अन्वयान्त्यप्। पा ४। २। १०४। कहाँसे उत्पन्न होनेवाला, कहाँ रहनेवाला।

कुत्स (सं० पु०) कुत्सयते संसारम्, कुत्स-प्रच्। १ ऋषिविशेष। आपस्तम्बधर्मसूत्रमें सनका मत उद्धृत हुआ है। (आपस्तम्बधर्मसूत्र, १। १८। ७)

२ स्तवक, गुच्छा। ४ द्वार, मेहरा। (त्रि०) क-स। पृथोदरादित्वात् साधुः। ५ करनेवाला।

“कुत्सा एते ह्येवाव।” (चक्र, ७। १। ६५)

कुत्सकुशिकिका (सं० स्त्री०) कुत्सानां कुशिकानाञ्च मैथुनम्, कुत्स कुशिक-वुन्। वन्ता वृत् वेरमेयुः निकयोः। पा ४। १। १२५। कुत्स और कुशिकगोत्रीय स्त्री-पुरुषका मैथुन।

कुत्सन (सं० स्त्री०) कुत्स भावे ण्यट्। १ निन्दा, बद-गोई। २ निन्दाका उपाय, बदगोईकी तदबीर। (त्रि०) ३ निन्दित, बदनाम।

कुत्सपुत्र (सं० पु०) कुत्सस्य पुत्रः, इ-तत्। कुत्स ऋषि-के पुत्र।

कुत्सला (सं० स्त्री०) कुत्सं क्रयविक्रययोर्निषिद्धतया निन्दा लाति, कुत्स-ला-क-टाप्। नीलीवस्त्र, नीलका पेड़।

कुत्सशिखी, कुत्सा देखो।

कुत्सा (सं० स्त्री०) कुत्स निन्दने भावे ण्यट्। १ निन्दा, बदगोई। इसका संस्कृत पर्याय—अवर्ण, आक्षेप, निर्वाद, परीवाद, अपवाद, उपक्रोश, जुगुप्सा, निन्दा, महंण, गर्हा, निन्दन, कुत्सन, परिवाद, जुगुप्सन, अपक्रोश, भ्रमंन, अपवाद, उपराग, अव-ध्वंस, घृणा, धिक् और सामि है।

“शुक्लकुत्सामतिथयः।” (भारत, अतुलान)

२ शिखीभेद, एक फली

कुत्सित (सं० स्त्री०) कुत्स कर्मणि क्त। १ कुष्ठ, कुट।

२ दीर्घरोहिण, एक खम्बी शुश्रूदार घास। (त्रि०)

३ निन्दित, बदनाम।

कुत्सितशास्त्रलो (सं० स्त्री०) कृष्णाशास्त्रलो, काला सेमर।

कुत्सिताम्ब (सं० पु०) कदम्बवृक्ष, कदमका पेड़।

कुत्स्य (सं० त्रि०) कुत्स-यत्। १ निन्दनीय, धिक्कारके काबिल। २ कुपरीचक, अच्छी जाँच न करनेवाला।

कुथ (सं० पु०) कुड्शब्दे थक्। १ कन्या, कथरी। २ करिकम्बल, हाथीकी भूल।

“कुथेन नागैर्निवेन्द्रवाहनम्।”—(माघ)

३ कीट, कीड़ा। ४ प्रातस्त्रायो द्विज। ५ कुशटण।

६ शुक्ल दर्भ, सफेद कुस।

कुथा (सं० स्त्री०) कुथ देखो।

कुथारु (हिं०) कुत्सक देखो।

कुथित (सं० त्रि०) पूतियुक्त, सड़ा गया।

कुथुपा (हिं०) कुत्सक देखो।

कुथुम (सं० पु०) सामवेदकी किसी शाखाका नाम।

कुथुमि (सं० पु०) एक मुनि। (लिङ्गपुराण, ७। ४६) वह पौष्टिष्ठा मुनिके शिष्य थे। उन्होंने सामवेदकी कौथुमि शाखाका प्रचार किया है। कुथुमिने बदरि-काश्रममें जन्म लिया और गान्धारमें जाकर वास किया था। वहाँ उन्होंने अपने गुरुके निकट यह शिक्षा पायी कि चात्मा अविनाश्वर और दुःख कर्मका सहचर है। उनके पिताका नाम नारायण और पुत्रका नाम कुत्स था। कौथुमो देखो।

कुथुमि नामक कोई धर्मशास्त्रकार भी रहे।

रघुनन्दनके मलमासतत्त्वमें कुथुमिस्मृति उद्धृत हुयी है।

कुथुमी (सं० पु०) कुथुमं वेत्ति, कुथुम-इति। साम-वेदकी कौथुमी शाखा समझने और पढ़नेवाला।

कुथोदरी (सं० स्त्री०) कुथं हिंसात्मकं उदरं यस्याः सा कुथ-उदर स्त्रीलिङ्गे ङीष्। एक राजसी। वह कृष्ण-कर्णकी पौत्री, कीलकस्त राजसकी पत्नी और विकस्त राजसकी माता थी। कल्किपुराणमें लिखा है—“मुनि-यानि कल्किदेवकी देख विनयपूर्वक कहा—‘हे विष्णु-यशः-पुत्र। कृष्णकर्णकी पौत्री और कीलकस्तकी महिषी कुथोदरी, नान्नी राजसी इस स्थानमें रहती है। उसका शरीर आकाश पर्यन्त विस्तृत है। वह शयन-कालको हिमालय पर मस्तक रख और निषधावल

पर पद फैलाकर सेटती है। उसके निश्वास-वायुसे आकर्षित हो हम यहाँ आये हैं। भाग्यबलसे आपका साक्षात् लाभ हुआ है। आप इस विपत् समयमें हमको बचाइये।' सुनियोंकी उक्त प्रार्थना सुन शत्रुविजयी कल्किदेवने सैन्यपरिवृत हो कुयोदरीको विनाश करनेके लिये हिमालयके अभिसुख यात्रा की। वह सो रही थी। समैन्य कल्किदेवको आते देख महाक्रोधसे चीखार करके कुयोदरी उठ बैठी। उसने निश्वास-वायुसे हस्ती-धनु-रथके साथ कल्किदेवको खींचा था। वह समस्त सैन्यसहित कुयोदरीके उदरमें प्रविष्ट हुवे। देव और मुनि उल्टा व्यापार देख हाहाकार करने लगे। उसके पीछे कल्किदेव तलवारसे उसका उदर फाड़ निकले थे। उसीसे कुयोदरी मर गयी।"

कल्कि देवी

कुदई (हिं० स्त्री०) धान्य विशेष, कीदो।

कुदकना (हिं० स्त्री०) १ पानन्दमें उछलना, खुशीसे कूदना। २ धीरे धीरे कूदना।

कुदका (हिं० पु०) १ कूद-फाँद। २ कूदनेवाला।

कुदण्ड (सं० पु०) कुक्षितो दण्डः । अनुचित दण्ड, नामुनासिब सजा।

कुदरत (अ० स्त्री०) १ प्रकृति, माया, दुनियाको बना-नेवाली ताकत। २ शक्ति, इशतियार। ३ रचना, बनावट। ४ स्वभाव, आदत।

कुदरती (अ० वि०) १ प्राकृतिक, अपने आप होने-वाला। २ दैवी।

कुदरा (हिं० पु०) कुदाल, कुदाली।

कुदर्शन (सं० त्रि०) कुरूप, बदसूरत, देखनेमें खराब।

कुदलाना (हिं० क्ति०) कुदकना, उछलना-कूदना।

कुदलि, कुदाल देखो।

कुदाव (हिं० पु०) १ विश्वासघात, धोका। २ सङ्कटा-पक्ष स्थिति, बुरी हालत। ३ भयङ्कर स्थान, खराब जगह।

कुदाई (हिं० वि०) विश्वासघाती, बुरादाँव लगानेवाला।

कुदान (सं० स्त्री०) कुत्सित दान। १ शय्यादान, गज-दान आदि कुदान हैं। २ अपात्रको दिया जानेवाला दान।

कुदान (हिं० स्त्री०) १ उछल कूद, कुदाई। २ छलांग। ३ कूदनेकी जगह।

कुदाना (हिं० क्ति०) १ कूदनेमें लगाना। २ दौड़ाना।

कुदाम (हिं० पु०) छोटा पैसा।

कुदाय, कुदाव देखो।

कुदार (सं० पु०) कुं भूमिं दारयति, कु-इ-णिच्-अण्।

कुदान, जमोन् खोदनेका एक औजार।

कुदारकोट—युक्तप्रदेशके इटावा जिलाका एक प्राचीन नगर। वह इटावा नगरसे १२ कोस उत्तर-पश्चिम और सङ्खिश (प्राचीन साङ्गाश्वनगरी)-से १७ कोस दक्षिण-पूर्व अवस्थित है।

पतञ्जलिने महाभाष्यमें लिखा है—

“गवीधूमतः साङ्गाश्वं चत्वारि द्योजनानि।”

गवीधूमन्से साङ्गाश्व चार द्योजन पर्यात् १६ कोम है। उक्त स्थानीय भूतत्व और प्राविष्कृत शिला-लिपिसे समझ पड़ता है—किसी समय कुदारकोट समृद्धिशाली था। पतञ्जलिके समय सम्भवतः कुदार-कोट और उसका निकटवर्ती स्थान ‘गवीधूमत्, नामसे प्रसिद्ध रहा।

वहाँ एक अति प्राचीन दुर्ग था। अवधके नवाब आसफ-उद-दौलाके बड़े वजीरने उक्त प्राचीन भग्न दुर्ग पर फिर नूतन दुर्ग बनाया था।

कुदारी, कुदार देखो।

कुदाल (सं० पु०) कुं भूमिं दालयति, कुदल् भेदने णिच्-अण्। १ कुदाल, कुदाली। २ पार्वतीय वृक्ष-विशेष, कोई पहाड़ी पेड़।

कुदाली (हिं०) कुदाल देखो।

कुदाव (हिं० पु०) कुदाई, कुदान।

कुदास (हिं० पु०) खड़ा पठान, जहाजकी पतवारका खम्भा।

कुदिन (सं० स्त्री०) कीः पृथिव्या भ्रमणेन दिनम्, कर्मधा०। १ सावन दिन, सूर्यके उदयावधि पुनरुदय, सूरज निकलनेके पीछे फिर सूरज निकलने तकका समय।

“इनीदशयामरं तदकंसावनं दिनम्।

तदेव नेदिनीदिनं भवासरसु भवनः ॥” (विद्वान्-शिरोमणि)

सूर्यके दोबार उदित होनेमें जो अन्तर आता, वही भर्कसावनदिन, मेदिनीदिन (कुदिन), भवासर और भस्त्रम कहा जाता है। २ निन्द्यदिन, बुरा दिन। ३ मेघाच्छन्न दिवस, पानी बरसनेका दिन। सावन देखो। कुदिष्ट (हिं० स्त्री०) कुदष्टि, बुरी नजर। कुदिष्टि (सं० स्त्री०) वितस्ति अपेक्षा अल्प और दिष्टि अपेक्षा दीर्घतर परिमाण, वित्तेसे छोटी और चौवेस सड़ो नाप।

कुदृश्य (सं० त्रि०) कुत्सितं दृश्यम्, कर्मधा०। कुत्सित दृश्य, देखनेके नाकाबिल।

कुदृष्टि (सं० स्त्री०) कुत्सिता दृष्टिः, कर्मधा०। १ मन्द-दृष्टि, बुरा नजर। २ असत् तर्कसंस्पृष्ट मत।

“या वेदाद्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।

सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठाहिताः स्मृताः ॥” (समु, १२।८५)

जेन मतानुसार तीर्थंकर सर्वज्ञके उपदिष्ट तत्त्वों पर नहीं ज्यादा करनेवाला, जो जेन शास्त्रों पर यकीन न रखता हो।

कुदेव (सं० पु०) १ भूदेव, ब्राह्मण। २ दैत्य, दानव। ३ जैनमतानुसार—धन धान्य स्त्री आदि ममत्व बढाने-वाले पदार्थोंको रखनेवाले, रागी द्वेषी मायावी देव। कुदेश (सं० पु०) कुत्सितो देशः, कर्मधा०। निन्द्यदेश, बुरा मुल्क।

“कुदेशमासाद्य कुतोऽर्थसम्पद्यः।” (चाणक्य)

कुदेह (सं० पु०) १ कुत्सित देह, खराब जिस्म। २ महाशालवृक्ष, एक पेड़। (त्रि०) कुत्सितो देहो ऽस्य, बहुव्री०। ३ जिस्मवाला।

कुदेहक, कुदेह देखो।

कुहल (सं० पु०) गिरिकाश्वन, पहाड़ी कचनार।

कुहार (सं० पु०) कुं भूमिं दारयति, कु-दृ-णिच्-प्रण-पृषोदरादित्वात् साधुः। १ कोविदारवृक्ष, कचनारका पेड़। २ भूमिदारण अस्त्र, कुदारी।

कुहाल (सं० पु०) कुं भूमिं दालयति, कु-दल-णिच्-प्रण-पृषोदरादित्वात् साधुः। १ कोविदार वृक्ष, कचनारका पेड़। २ भूमिखननयन्त्र, कुदाल। वह लोहे-का बनता है। कुहाल एक हस्त दीर्घ एवं चार अङ्गुलि प्रशस्त रहता है। उसको ऊपरी और एक छेद बनाते,

जिसमें लकड़ीका बेंट लगाते हैं। वह भूमि खोदने और खेत गोड़नेमें चलता है।

“कुहालेन्द्रयुक्तं येन समुद्रं यवमास्थिताः।” (महाभारत, ३।१०।१२३)

कुहालूर (कडेलूर)—मन्द्राज विभागके दक्षिण आर्क-टका एक नगर। वह पक्षा० ११° ४२' ४५" उ० और देशा० ७८° ४८' ४५" पू० पर अवस्थित है। पुरातन कडेलूर सुन्नकुप और सेण्टडेविड दुर्गको लेकर उक्त नगर स्थापित हुआ है। १६८४ ई० के समय शम्भूजीने अंगरेजोंको वहां दुर्गनिर्माणके लिये अनुमति दी थी। १७०२ ई० को उक्त दुर्ग पुनर्निर्मित हुआ। १७४६ ई० को लाबुरदोनीने मन्द्राज आक्रमण किया था। उस समय अंगरेज गवर्नमेण्टका राजकीय कार्यालय कुहालूरको ही उठ गया। उसी वर्ष फरासीसी सैन्य उसके अभिमुख अग्रसर हुआ, किन्तु महफूज खानसे हारकर लौट पड़ा। फरासीसी सेनानायक डुप्रेने उसको एक बार अवरोध किया था। किन्तु वह कुछ बना न सके। उस समय अंगरेज-सेना-नायक मेजर कारिन्सने वहां अपना प्रधान शिविर लगाया था। १७५८ ई० को फरासीसी योद्धा लालीने कडेलूर अधिकार किया। फिर २ रो लूनको सेण्ट-डेविड दुर्ग आक्रान्त हुआ। १७६० ई० को कर्नल कुटने उसे फिर अधिकार किया था। किन्तु १७८२ ई० को बूसीके कौशल और हैदरअलीके साहाय्यसे फरासीसियोंने कडेलूर जीत लिया, जिसे ३ वर्ष पीछे अंगरेजोंको लौटा दिया।

उक्त नगर लहत् और समृद्धिशाली है। वहां बहुतसे लोग रहते हैं। कुहालूरका जलवायु स्वास्थ्यकर है।

कुशल (सं० स्त्री०) कुड-कल-स्थित् पृषादरादित्वात् साधुः। कलच्छपथ। उण्, १।१०६। वषादिभ्यश्चि। उण्, १।१०८। विकाशोन्मुख पुष्पमुकुल, खिलनेवाली फूलकी कली। कुशि (तामिल) शिखा, चाटी। दक्षिण देशमें हिन्दू माच शिरपर शिखा रखते हैं। उसी शिखाका नाम कुदमि है। पूर्वकालकी अधिकांश भारतीयोंको भांति यौक (यूनानी), रोमक और मिसरवासी मस्तक पर बालोंका एक गुच्छा रखते थे। बाइबिलमें बालोंका वह गुच्छा ‘शिसीएन’ नामसे वर्णित हुआ है। शिखा देखो।

कुट्ट (सं० स्त्री०) कुट्ट-क्यप् । भित्ति, दीवार ।

कुट्टक (सं० पु०) कुट्टं मिथ्येव कायते अनित्यत्वात्
क्षणभङ्गत्वाच्च, कुट्ट-कै-क निपातनात् साधुः । गृह-
विशेष, मन्थानके ऊपरकी मडैया

कुट्टक (सं० पु०) कु ईषत् उन्नतो रज्जः रज्जनं यत्न,
कु-उत्-रज्ज-घञ् । मन्थोपरिस्थित मण्डप, मन्थानके
ऊपर रखी मडैया ।

कुट्टव (सं० पु०) कुं भूमिं द्रावयति कु-दु अन्तर्णिच्-
घञ् । कोटव, कोदी ।

कुट्टव (हिं० पु०) तलवार चल्नानेके ३२ हाथोंमें एक हाथ,
कुट्टवल, कुट्टव देखी ।

कुधर (सं० पु०) १ पर्वत, पहाड़ । २ शेषनाग ।

कुधातु (सं० पु०) कुक्षित धातु, लोहा ।

“सठ सुधरहिं सत सङ्गति पायो । पारस परिस कुधातु सुहायो ।” (तुलसी)

कुधान्य (सं० स्त्री०) कुक्षितं धान्यम्, कर्मधा० । लण-
धान्य, कुट्टधान्य, घासका धान । जोरदूषक, श्यामाक,
नीवार, शान्तनु, तुवरक, उहालक, प्रियङ्गु, मधु-
लिका, नान्दीमुख, कुशविन्द, गवेधुक, वारुण, उदपर्णी,
सुकुन्दक, वेणुयव प्रभृतिको कुधान्य कहते हैं । वह
उष्ण, कषाय, मधुर, रुक्ष, कटु, विपाकी, श्लेष्मण-
सावरोधक और वातपित्तप्रकोपक होता है । (चरक)
कुधारा (सं० स्त्री०) कुत्सिता धारा, कर्मधा० । निम्न
नियम, कुचाल ।

कुधी (सं० त्रि०) कुक्षिता धीरस्य, बहुव्री० । १ निर्वीध
बेवकूफ । २ निर्लज्ज, बेशर्म ।

“स्त्रायन्तु तव कुधियोऽपर ईश कुरुः ।” (भागवत, ८.२१.२०)

कुध्र (सं० पु०) कुं भूमिं धारयति, कु-धृ-क । पर्वत,
पहाड़ ।

कुनक (सं० पु०) एक जनपद और उसके अधिवासी ।
भीष्मपर्वके किसी किसी पुस्तकमें कुनट और कुनट
पाठान्तर मिलता है ।

कुनकुना (हिं० वि०) ईषत् उष्ण, गुन-गुना, कुछ गर्म ।

कुनख (सं० पु०) कुक्षिताः नखो यत्न । १ रोग विशेष,
नाखूनमें होनेवाली एक बीमारी । उसमें नख पककर
गिर जाते हैं । (त्रि०) २ कुक्षित नखयुक्त, बुरे नाखून-
वाला ।

कुनखी (सं० त्रि०) कुनख इति तन्नामको रोगः प्रस्था-
स्ति, कुनख-इति । १ कुनखरोगविशिष्ट, नाखूनकी
बीमारीवाला ।

“नखेन कुनखो चैव काष्ठेन व्याधिमिच्छति ।” (गृह्यसंघ, १.४८)

जो पुरुष पूर्वजन्ममें स्वर्ण अपहरण करके उसका
प्रायश्चित्त नहीं करता, उसको उसी भोगावशिष्ट
पापके चिह्नस्वरूप कुनख रोग लगता है । (विष्णु-हिता)

कुनखीकी प्रायश्चित्तके लिये हादशरात्र व्रत करके
नख परित्याग करना चाहिये । (श्रुतिलेख) सुश्रुतके
मतमें मातृदोषसे उक्त रोग लग सकता है । रजस्वला
अवस्थामें स्त्रीके नखच्छेदन करने पर गर्भसे कुनखी
सम्भान निकलता है । २ सङ्कुचित-नख, सिकुड़े नाखून
वाला । (पु०) ३ कोई नटपि । ४ अथर्ववेदकी एक
शाखा । (अथर्व, ७.६५.२)

कुनट (सं० पु०) कु-नट पचादित्वात् घञ् । १ श्लोवाक्ष-
वृक्ष, सनईका पेड़ । इसकी प्राकृति शण्णुष्पकी
भांति रहती है । शण्णुष्पकी देखी । २ पीतलोध्र, पीला
लोध्र । ३ निन्दनार्थक, खराब खेलाड़ी । ४ कोई जन-
पद और उसके अधिवासी ।

कुनटो (सं० स्त्री०) कुनट गौरादित्वात् ङोष् । १ मनः-
शिला । २ धान्यक, धनिया । ३ कुनर्तकी
कुनदिका (सं० स्त्री०) कुत्सिता नदिका, कु-नद
अल्पार्थे कन् स्त्रियां टाप् । कुट्टनदी, छोटा दरया ।

कुनना (हिं० स्त्री०) १ खरादना । २ छीलना ।

कुनन्म (वै० स्त्री०) अपरिवर्तनीय, अबाध्य ।

“वायुरक्षा उपामंथत् पिनष्टि वा कुनन्म ।” (ऋक्. १०. १. १६. १०)

कुनवा (हिं० पु०) कुट्स्व, खानदान, घराना

कुनबी—क्षत्रिकर्मोपजीवी एक जाति, खेती करनेवाली
एक हिन्दू कौम । प्रायः उक्त जातिके लोगोंको कुनबी
भी कहते हैं । वह युक्तप्रदेश, बिहार, छोटानागपुर
और उड़ीसामें रहते हैं । बिहार और युक्तप्रदेशके
कुनबी ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी भांति अधिक सुश्री
न होते भी अच्छे रहते हैं । उनका देह सुगठित एवं
नातिदीर्घ और नातिखूब होता है । अङ्गप्रत्यङ्ग
अनेक चीजमें सुसभ्य आर्योंसे मिलते हैं । वर्ण काला
होता है । आचार-व्यवहार साधारण हिन्दुओंके समान
है ।

किन्तु छोटानागपुर और उड़ीसाके कुनबी वैसे नहीं होते। वहाँ देखनेमें असभ्य सन्ताओं-जैसे समझ पड़ते हैं। वर्ण और आचार-व्यवहार भी असभ्य लोगोंसे मिलते हैं विहारके कुनबियोंमें गराहन और काश्यपगोत्र प्रचलित है। उनका उपाधि—बौधरी, मण्डल, मरार, महतो, महन्त, महाराय, मुखिया, प्रामाणिक, रावत, सरकार और सिंह हैं। जैसवार कुनबी कृषिकर्ममें विशेषण पटु होते हैं। वह प्रधानतः कृषिकार्यसे ही अपनी जीविका चलाते हैं। शराब पीने और विधवा विवाह करनेवाले कुनबी भ्रष्ट और निम्न श्रेणीके मध्य गण्य हैं।

मानभूमवाले कुनबी अपनेको सबसे श्रेष्ठ बताते हैं। उनके मतमें दूसरे लोग शराब पीने और सुरगो खानेसे अधम हो गये हैं।

युक्तप्रदेशमें प्रधानतः खरीविन्द, पतरिया, बौड़-चढ़ा, जैसवार, केवत और भुनैया कुनबी रहते हैं। अधिक दिन नहीं चुरे, अवधमें दर्शनसिंह नामक किसी व्यक्तिने स्वजातीय कुनबियोंको राजा उपाधि प्रदान किया था। युक्तप्रदेशमें बहुत धनाढ्य देख पड़ते हैं।

गुजरात, महाराष्ट्र, खानदेश, बरार प्रभृति स्थानों में भी खेतोकरनेवाले कुनबी विद्यमान हैं। सुप्रसिद्ध संधियाराज कुनबी ही जातिसम्भूत हैं। संधिया और रणजी देखो।

उनमें स्त्री पुरुष उभय बलवान्, कष्टसहिष्णु और अधिक परिश्रमी होते हैं। स्त्रियां स्वामीको कृषिकार्यमें सहायता करती हैं। एक प्रवाद है—

“भलीजाति कुरमिनकी खुरपी हाथ। खेत निरावे अपने पीके साथ ॥”

विहार और युक्तप्रदेशके कुनबियोंमें बाल-विवाह प्रचलित है। विवाहप्रणाली हिन्दूधर्मानुसार सम्पन्न होती है। विवाह स्थिर होनेपर वर कन्याकर्ताको ३ से ८, ६० तक पण देता है। ब्राह्मण लग्न विचारते हैं। विवाहके दिन प्रातःकाल कुलप्रथाके अनुसार वर अपने गृहमें प्रथम आम्नवृक्ष और कन्या मधुबके पेड़से विवाह करती है। सन्ध्याको वर बरातके साथ कन्याके पिछ्छट्टा जाता है। फिर शाकवृक्षके चन्द्रातपमें

वर कन्या दोनों मिलते हैं। वहाँ एक मृगमय पात्रमें दीपक जला करता है। दम्पती उक्त आर्क्षिकको सात बार प्रदक्षिण करते हैं। फिर वह एक स्थान पर जाकर बैठते हैं। वर कनिष्ठाङ्गुलिके रत्नसे कन्याका वक्षःस्थल स्पर्श करता है। कुनबियोंमें रत्नदान ही सिन्दूरदान समझा जाता है। उसके पीछे कन्याके हाथमें लोहेका कङ्कण पहनाते हैं। वही कङ्कण कुनबियोंके विवाहका प्रतिभू स्वरूप है। पति पत्नी उभयका मन न मिलने या एक दूसरेका गुरुतर दोष देख पड़नेसे विशाहभङ्ग हो सकता है। उसी स्त्री वही कङ्कण स्वामीको खोलकर दे देती है। स्वामी भी आदरका कङ्कण वापस ले सवन्धविच्छेदज्ञापक एक पत्र फाड़कर दो खण्ड कर डालता है।

उक्तप्रदेश और विहारमें ब्राह्मण ही विवाहके मन्त्रादि उच्चारण करते हैं।

उड़ीसाके कुनबियोंमें बहुविवाह निम्ननीय है। किन्तु छोटानागपुरमें उसे कोई दोष नहीं समझते।

युक्तप्रदेश और विहारमें कुनबीके हाथका जल-ग्रहण ब्राह्मण करते हैं। किन्तु छोटानागपुर और उड़ीसाके ब्राह्मण उनके हाथका छूवा पानी नहीं पीते। शेषोक्त दोनों स्थानोंके कुनबी मुर्गी और चूहा खाने तथा शराब पीनेसे दूसरे हिन्दुओंको आंखोंमें गिरे हैं।

कुनबियोंमें शैव, शाक्त और वैष्णव तीन सम्प्रदाय देख पड़ते हैं। ब्राह्मण उनका परोक्षित्य करते हैं। हिन्दुओंकी प्रधान उपास्य देव देवीको छोड़ विहारके कुनबियोंमें ‘मोकिनी महतो’ नामक एक ग्राम्य देवकी भी पूजा होती है। उनके उद्देशसे शूकरगावक-वलि दिया जाता है।

छोटानागपुरके कुनबी गोसाईंराय, घाट, गारा-यार, ग्रामेश्वरी, किशुकेशरी, बोरमदेवी, मातवाहिनी, दकुमचुड़ी और महामायाको पूजते हैं। दशहराके दिन हलकी पूजा होती है। पौषपार्थण उनके बड़े उत्साहका दिन है। पौषसंक्रान्तिको वह लोग ‘अखन-यात्रा’ कहते हैं। ग्राम्य बालक किसी कुक्कुटको उड़ा उसके लक्ष्यतीर चलाते हैं। उस पक्षीको जो मार लेता, उसको सब कोई अधिक आदर देता है।

वसःप्राप्तके मरनेसे कुनवियोंमें शवदेह जलाया जाता है। उत्तम श्रेणीके कुनबी १२ दिन अशौच ग्रहण और १३ दिन आशु करते हैं। किन्तु औसवारोंमें ३१ वें दिन मृतकके उद्देश आवादि करनेका विधान है। कोटानागपुर और उड़ीसामें जैजे या चेचकसे मरनापर शवदेह भूमिमें गाड़ दिया जाता है।

यह कृषिकर्ममें विलक्षण पटु होते हैं। गेहूँ आदि प्राथ्य उत्पादनमें वह जैसी कार्यकारिता दिखाते वसी दूसरोंमें कम पाते हैं।

भारतमें प्रायः ७५ लाख कुनबी रहते हैं। पहले लोग उन्हें शूद्र समझते थे। किन्तु आज कल कुनबी अपनेकी कूर्मवंशीय क्षत्रिय बताते हैं।

कनलई (हिं० स्त्री०) वृक्ष-विशेष, एक पेड़। वह कण्टकाकीर्ण और क्षुद्र होती है। उसमें कितनी ही पतली पतली टहनियाँ निकलती हैं। त्वक्का वहिर्भागी सफेद रहता है। पत्र ३।४ अङ्गुलि परिमित होते हैं। शीतकालको कुनलई फूलती है। पुष्प क्षुद्र और पीतवर्ण होते हैं। काष्ठ बहुत कठिन रहता है। जसके प्रायः खूँटे बनाये जाते हैं।

कुनली (सं० पु०) कुतसित ईषत् वा नलोऽस्यास्ति, कुनल-इति। वहवृक्ष, अगस्त्यके फलका पेड़।

कुनवा (हिं० पु०) खरादी, बरतन वगैरह खरादनेवाला। कुनवार (कुनवार) पञ्जाब प्रदेशके मध्यवर्ती बशा-हिर राज्यका एक उपविभाग। वह अक्षा० ३१° १६' से ३२° ३८' और देशा० ७७° ३३' से ७८° २' पू० पर्यन्त अवस्थित है। उसके उत्तर सीता, पूर्व चीनराज्य, दक्षिण बशाहिर तथा गढ़वाल और पश्चिम कूलू है। कुनवा पर्वतमय है। वह ऊर्ध्व और अधः दो भागोंमें विभक्त है। शतद्रु नदीको उपरितन अववाहिकासे अगस्त्य अधिकांश स्थान शीतप्रधान और ५००० से १०००० फीट पर्यन्त उच्च है। दूसरे शतद्रु उपत्यकाके निम्नतम स्थानमें शीतके समय प्रस्तर अधिक उष्ण पड़जाते हैं। उसके अधोभाग और दक्षिण-पश्चिममें आबण तथा भाङ्ग मास वृष्टि होती है। शीतकालको विलक्षण वर्षा गिरती है। किसी किसी स्थानमें वह जल जाती है।

कुनवारके अधिवासियोंके आचार-व्यवहार और धर्म-मतमें स्थानभेदसे पार्थक्य देख पड़ता है। उत्तरांशमें अधिवासी बौद्ध और तिब्बतके लामाका मत मानने वाले हैं। उनके देहका गठन तूरानियों जैसा लगता है। दक्षिणांशमें सभी हिन्दूधर्मावलम्बी हैं। फिर कुनवारके मध्यस्थलमें हिन्दू और बौद्ध दोनोंका एकत्र सम्मिलन है।

कुनवारी सुगठित, बलिष्ठ, सृष्टत् और कृष्णकाय होते हैं। उनमें प्रायः सभी अतिशिप्रिय, सत्यवादी, विनीत और साहसी हैं। उनमें बाहुबल भी अधिक है। एकबार गोरखोंने कुनवार अधिकार करनेको बहुसंख्यक एकत्र हो कुनवारियोंके विपक्ष अस्त्र धारण किया था। कई बार युद्ध हुआ। कुनवारियोंने अन्तको कई सेतु तोड़ डाले। अन्त, उससे विफल मनोरथ हो सन्धि करने पर बाध्य हुवे। उस समय शान्तिप्रिय कुनवारियोंने प्रति वर्ष ७५०० रु० कर देना स्वीकार किया था।

महाभारतमें एक द्रौपदीके पञ्चस्वामी रहनेकी कथा है। किन्तु कुनवारमें द्रौपदीका दृष्टान्त बहुत मिलता है। ब्राह्मणोंसे लेकर चमारों तक उक्त नियम प्रचलित है।

कुनवारमें तातार लोग भी रहते हैं। किन्तु वह अपने पूर्वदेशवासियोंको भाँति बलिष्ठ नहीं होते। निम्नप्रदेशके कुनवारी उन्हें झड़, भोटिया और भोटानी कहते हैं।

कुनवारी अति नृत्यगोतप्रिय हैं। वर्षके मध्य वहाँ अनेक महोत्सव होते हैं। कहते हैं कि सकल महोत्सवोंमें वह मतवाले बन अनुपम अपार आनन्द अनुभव करते हैं।

आखिरीके प्रारम्भ कुनवारमें मेन्तिक (हैमन्तिक ?) नामक महोत्सव होता है। उस समय युवक युवती बालक बालिका घर-बार छोड़ निकटवर्ती गिरिभृङ्ग पर चढ़ अभिनव पुष्पसज्जासे सज नृत्यगीत और वाद्य किया करते हैं। उसी पर्वत पर सब लोग खाते पीते भी हैं। जिस समय सब कुनवारी मिल कर ताल ताल पर नाचने लगते, उस समय सङ्गीत लहरी और वाद्य

ध्वनिमे गिरिगङ्गार प्रतिध्वनित हो जाते हैं। वस्तुतः उस समय मनमें अभूतपूर्व भाव उठता है। विशेषतः पर्वत पर वैसा अच्छा वाद्य दूसरे स्थानमें कहीं सुन नहीं पड़ता।

कुनवारके प्रत्येक गिरिपथ, गिरिसङ्घट और तुषार-मय स्थानमें चतुष्कोण प्रस्तरराशि मिलता है। कुन-वारी उसे सुघर कहते हैं। लोगोंके विश्वासानुसार 'सुघर'में पर्वतकी अधिष्ठातृ-देवता अधिष्ठान करती हैं। उक्त प्रस्तर पर बहुतेको भीति, भक्ति और श्रद्धा रहती है।

आचार-व्यवहार और धर्मभेदानुसार कुनवारके उत्तरांशमें भोटानो और दक्षिणांशमें संस्कृतका अपभ्रंश हिन्दीभाषा प्रचलित है। उस हिन्दीको कुनवारी 'मिलचन' कहते हैं। मिलचन भाषामें लुबकम वा कनुम, लिदुम वा लिप्पा इत्यादि भेद विद्यमान हैं।

कुनवारमें स्थानभेदसे अति उत्तम फल होते हैं। सुंगमाका सेव, आकपाका अङ्गूर और पल्ली नामक स्थानका जायफल प्रसिद्ध है। कुनवारके अङ्गूरसे बहुत अच्छी शराब बनती है।

२ मध्यप्रदेशका एक प्राचीन ग्राम। वह रायपुरसे ७ कोस उत्तर बिलासपुर और रत्नपुर जानेकी बड़ी राहके बायें अवस्थित है। वहाँ लोगोंमें प्रवाद है कि राजा कुनवतने उक्त ग्राम पत्तन किया था। उनकी रानीने एक स्रष्टृ जलाशय खुदाया उसे आजकल 'रानी तलाव' कहते हैं। कुनवार ग्राममें अद्यापि अनेक हिन्दू एवं जैनमन्दिर, अनेक सरोवर और अनेक पुरा-तन सतीस्तम्भ विद्यमान हैं।

कुनह (सं० पु०) १ ईशानकोणस्थ कोई जनपद और उसके अधिवासी । (बृहत्संहिता, २४।३०) (त्रि०)

२ कुत्सित बन्धनकार, बुरा फन्दा डालनेवाला।

कुनह (हि० स्त्री०) १ ह्वेज, कौना, मनमौटाव।

२ पुरातन बैर, पुरानी दुश्मनी।

कुनही (हि० वि०) ह्वेजयुक्त, कौनावर, कुढ़नेवाला।

कुनाई (हि० स्त्री०) १ चूर्ण, बुरादा बुकनी। वह किसी चीजको खरादने या खुरचनेसे निकलती है।

२ खरादनेका काम। ३ खरादनेकी मजदूरी।

कुनाय (सं० पु०) कुत्सितो नायः, कुगतिः । १ निन्द्य-स्वामी, बुरा शौहर।

“इताञ्चाहं कुनायिन नपुंसा वोरमानिना ।” (भाववत, ८।१४।२८)

२ निन्द्य अधिपति, खराब मालिक।

(भागवत, ५।१४।२)

कुनादिका, कुनदिका देखो।

कुनाभि (सं० पु०) कु ईषत् नाभिरिव, आवर्तवस्त्रात्, कर्मधा० । १ वातमण्डली, डकूर। २ कुवेरका निधि-विशेष।

कुनाम (सं० त्रि०) कुत्सितं प्रातःस्मरणार्थं नामास्त्र ।

१ अतिक्षपण वा अति पापकारी, बदनाम। (स्त्री०)

२ पश्याति, बदनामी।

कुनायक (सं० त्रि०) कुत्सितो नायकोऽस्त्र । १ मन्द परिचालकवाला, जिसके अच्छा मालिक न रहे।

“यस्यामिने वप्नरदेव दस्यवः सार्धं” विलुप्यन्ति कुनायकं वलात् ।”

(भागवत, ५।१२।२)

(पु०) निन्द्यनायक, बुरा शौहर या मालिक।

कुनायका (सं० स्त्री०) निन्द्य प्रणयपात्रवाली स्त्री, जो औरत खराब शौहर रखती हो।

कुनाल (सं० पु०) कुत्सितं नालमस्य । १ कोकिल, कोयल। २ राजा अशोकके कोई पुत्र। अशोकके अनेक पत्नी रहीं। उनमें रानी पद्मावतीके गर्भसे कुनालने जन्मग्रहण किया। उनके दोनों चक्षु अति सुन्दर और मनोहर थे। उन्हीं अनुपम चक्षुके सौन्दर्यसे उनकी विमाता तिष्यरक्षा विमुग्ध हो गयीं। अन्तको एक दिन उन्होंने कुनालसे अपना 'कु-अभिप्राय प्रकाश किया था। वह परम धार्मिक रहे। उन्होंने विमाताका उक्त असङ्गत अभिप्राय देख दुःख और घृणासे प्रार्थना न सुनी। उस समय तिष्यरक्षाके हृदयमें अमल जल उठा। उस पापिनीने प्रतिज्ञा की थी—‘जो सुकुमार नयन-युगल हमेरी लज्जा और मनस्तापका कारण हुवा है, उसे निन्द्य नाग कहूँगी।’

उसो समय तक्षशिला नगरके शासनकर्ता विद्रोही हुये थे। पिताके आदेशसे कुनाल विद्रोहियोंको निवारण करनेके लिये तक्षशिला चले गये। इधर प्रियपुत्र की भेज अशोक अति चिन्तित हुये। चिन्तासे कातर

होते पर क्रमशः उनकी दाहण रोग लगा था। उस समय वेवल तिष्यरक्षिताके यज्ञसे ही उन्हो'ने आरोग्यलाभ किया। इसलिये राजा उनके प्रति बहुत सन्तुष्ट हो गये। तिष्यरक्षिताने भी समय देख अशोक-से ७ दिन साम्राज्यशासन करनेको अनुमति ली थी। उक्त सात दिनोंके मध्य ही उस दुर्घटनाके तत्पश्चात् शासनकर्ताको लिख भेजा—‘हमारे आदेशके अनुसार कुनालकी दोनों आंखें निकाल लो।’ घटनाक्रमसे कुनालके हाथ बड़ पड़ गया। उन्हो'ने अधी-क्षरीकी आज्ञा अघाह्य न कर अपनी अमूल्य कमल जैसी आंखें निकाल डालीं। पत्नी काञ्चनमाला अन्ध-पतीके ली राजधानी पहुँची थीं। उक्त दुर्घटना राजा अशोकके कर्णगोचर हुयी। राजा शोकसे बहुत घबरा-उठे। फिर बड़ क्रोध हो तिष्यरक्षिताको मारने चले-ये। कुनाल पिताको निरस्त कर कहने लगे—‘आप स्त्रीहत्या मत कीजिये। मैं विमाताके आचरणसे बहुत ही सन्तुष्ट हुवा हूँ। मेरे असारदर्शी चतु तो चले-गये, किन्तु सुभी मानसचतु मिले हैं।’ कुनालके उक्त मन्त्रचरित्रसे सभास्य सभी लोग उनका यशोगान करने-लगे। देखते देखते सर्वसमय उन्हो'ने पूर्वापिच्छा ससु-ज्ज्वल नयन लाभ किये।

(दिव्यावदान-कुनालवदान, २७ अ० और बोधिसत्त्ववदानकल्पलता, ४८ अ०)

कुनालिक (सं० पु०) कुलितं नालमस्येति, कु-नाल-ठञ्। वज्रपू-पूर्वपदात् ठञ्। पा ४।३।६४। कोकिल, कोयल।

कुनाशक (सं० पु०) ईषत् नाशयति रूपर्शने, कु-नश-णिच्, ण्वल्। दुरालभा, जवासा। उसका संस्कृत पर्याय—यास, यवास, दुःस्पर्श, धन्वयास, दुरालभा, रोदिनी, गान्धारी, कण्डू, अनस्ता, कषाया और हर-विषहा है।

कुनास (सं० पु०) छट्, खंट।

कुनित (हिं०) कथित देखो।

कुनिन्द—भारतका पुराणोक्त उत्तरदिग्वर्ती जनपद और जातिविशेष। यथा—

“अका द्रुणाः कुनिन्दाय पारदा दारद्रुणाः।”

(ब्रह्माण्डपुराण, अनुवपदाद, ४८ अ०)

महाभारत और वामनपुराणमें उक्त जातिविशेष

और उसके रहनेका जनपद ‘कुलिन्द’ नामसे वर्णित हुवा है।

“असा एकासना द्वाहीः मदरा दीर्घवेचवः।

पारदाय कुलिन्दाय तद्रुणाः परतद्रुणाः॥” (भारत, सभा, ५२।१)

“शातद्रवा कुलिन्दाय पारावतसमूषकाः।” (वामनपुराण, १।१।२८)

ब्रह्माण्डपुराणके किसी किसी स्थलमें उक्त जनपद और जातिविशेषका नाम ‘कुणिन्द’ और वराहमि-हिरकी ब्रह्मत्संहितामें ‘कौणिन्द’ लिखा है।

“ब्रह्मपुरदाव कामरवनराज्यकिरातचौनकोणिन्दाः।”

(ब्रह्मत्संहिता, १४।२०)

पाश्चात्य भौगोलिक टलेमिने कुनिन्दको किलि-न्द्रिने वा कालिन्द्रिने (Kylandryne) नामसे वर्णन किया है। उनके मतमें उक्त जनपद विवसिस (विपाशा) और गङ्गानदीका मध्यवर्ती है। कुनिन्द वा कुलिन्द कोर्गोको आजकल ‘कुनेत’ कहते हैं। शतद्रु-प्रवाहित कुनवार और विपाशा-प्रवाहित कूलू-राज्यमें वह प्रधानतः रहते हैं। वही अष्टल पुराणोक्त ‘कुनिन्द’ वा ‘कुलिन्द’ समझ पड़ता है। किन्तु महा-भारतमें अर्जुनके दिग्विजयप्रसङ्गपर ‘कुलिन्दविषय’ भारतका (उत्तर) पूर्ववर्ती बताया है। यथा—

“पूर्वः कुलिन्दविषये वशि चक्रे महीपतोन्।

धनस्यो महाबाहुर्नैति तोत्रेण कर्मणा॥

परशान् कालकूटांश्च कुलिन्दाश्च विजित्य सः।”

(भारत, सभा, १६।१)

अथच उक्त जनपद भारतवर्षके उत्तर-पश्चिम हिमालयपर अवस्थित है। सुतरां वर्तमान अवस्थान देख अर्जुनके दिग्विजयका कुलिन्द स्वतन्त्र जनपद समझ पड़ता है। किन्तु वास्तवमें यह बात ठीक नहीं। ब्रह्मत्संहितामें गान्धार और काश्मीरादि जनपद भारतके ईशानकोण अर्थात् उत्तर-पूर्वको अवस्थित लिखे जाते भी जैसे भारतके उत्तर-पश्चिम पड़ते हैं, उक्त कुलिन्द जनपदका अवस्थान भी वैसे ही समझ सकते हैं।

प्रकृतत्ववित् कनिङ्गहाम साहबके मतमें “चौन-परिव्राजकने कौनिन्द जनपदका उल्लेख नहीं किया

है। किन्तु इनके 'कुल्ल' नामसे उसका बोध हो जाता है।" उन्होंने विष्णुपुराणमें उक्त स्थानका प्रयोग "कुलिन्दोपत्यका" नामसे पाया है।

चीन-परिव्राजक युयेनचुयाङ्गसे कुछ पूर्व ई० पष्ठ शताब्दका वराहमिहिर कौलिन्द और सुन्न दो भिन्न जनपदोंका वर्णन लिख गये हैं। यथा—

"सुन्नोदिच्छविपासाशतदुरसठशाखाः ।" (बृहत्संहिता, १६।११)
चीनपरिव्राजकके पङ्क्तते सुन्नकी भग्नावस्था थी। इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता—उस समय कुनिन्द सुन्नके अन्तर्गत रहा या नहीं।

विष्णुपुराणमें 'कुलिन्द, अथवा 'कुलिन्दोपत्यका' शब्दका कहीं प्रयोग देख नहीं पड़ता। महाभारतमें उक्त दोनों जनपदोंका उल्लेख है। वह दोनों भिन्न भिन्न स्थानमें अवस्थित हैं। (भारत, भाग ८। ५६।६९ स्त्री०)

अतिपूर्वकालसे कुनिन्द एक स्वाधीन राज्य गिना जाता है। वर्तमान ज्वालामुखीके निकट कुनिन्द-राज अमोघभूतिका प्राचीन मुद्रा मिली है।*

वहाँ पूर्वतन अधिवासी विलासपुरके ६ कोस पूर्व शतद्रु नदीके दक्षिणकुल आज भी 'कुनिन्द' नामसे प्रसिद्ध हैं। तिब्बतके लोग उनको 'मन' कहके पुकारते हैं।

शिमला-शैलसे गढ़वालके उत्तरांश पर्यन्त नाना स्थानोंमें कुनिन्द वा कुनेत जातिका वास है। उन लोगोंका आचार-व्यवहार पार्वतीय खसोंसे मिलता है। खस देखो। इसलिये बहुतसे लोग उक्त जातिको खस जातिकी एक श्रेणीमें गणना करते हैं। फिर किसीके मतमें यह खसजातिसम्भूत हैं। किन्तु हमारी विवेचनापर आचार-व्यवहारमें कितनाही सीसाट्टख रहते भी अति पूर्वकालसे कुनिन्द और खस दो भिन्न जाति प्रसिद्ध हैं। महाभारतादि प्राचीन ग्रन्थमें उक्त सम्बन्ध पर विस्तर प्रमाण मिलता है। आज भी योषीमठके उत्तर कुनिन्द लोग रहते हैं। वह अपनेको क्षत्रिय-जाति बताते हैं। उक्त सकल स्थानमें कुनिन्द लोगोंकी अवस्था अधिकतर स्वाधीन है। यहाँतक कि पवर उप-

त्यकाके शिकादेश नामक स्थानमें वह बराबर स्वाधीन रहे। अधिक दिन नहीं बीते, बिसहरके राजाने उक्त स्थान आक्रमण कर कुनिन्दोंको कितनाही भयानक किया था।

कुनवार प्रभृति स्थानोंके कुनेत कहते हैं कि मुसलमानों कर्तृक भारत आक्रमणसे पूर्व वह सर्वत्र स्वाधीन रहे। पोछे ब्राह्मणों और राजपूतों ने जा उनकी कितनीही स्वाधीनता हरण की है। वह राजपूत लोगोंको अपनी अपेक्षा हीन समझते और उन्हें सङ्ग-जमें अपनी कन्या देनेसे हिचकते हैं।

उक्त जातिके मध्य तीन गोत्र प्रचलित हैं—मङ्गल, चौहान और राव। उनमें दूसरे श्रेणी भेद भी हैं। यथा—पद्मेक, अडैक, कडैक और भण्वेक।

कुनिन्द जातिकी भाषामें हिन्दी और हिमालयकी पहाड़ी भाषा मिली है। विपाशासे तोनस (तमसा) नदीके मध्यवर्ती प्रदेश पर्यन्त प्रायः ४ करोड़ कुनेत रहते हैं। उनसे शिमला शैलकी चारो ओर सैकड़ों पोछे ६७, कूलूविभागमें सैकड़ों पोछे ५८ और कुनवारमें सैकड़ों पोछे ६२ लोग रहते हैं।

कुनिया (हिं० पु०) १ खरादेनेवाला, जो कुनता हो।

२ अनुमानसे गचना करनेवाला, कमकृत लगानेवाला।

कुनीति (सं० स्त्री०) १ कुश्ववहार, बदसलूकी। २ कुत्सितनीति, बुरा तरीका।

कुनोली (सं० स्त्री०) तेरफ, एक पौदा।

कुनेड़ा—एक जाति। यह शब्द संस्कृत कुण्डशारका अपभ्रंश है। कुनेड़े कहा करते हैं—'हम बैसराजपूत हैं और राजपूतानेसे आकर भिर्जापुर जिलेमें बसे हैं। जब भारतवर्षमें यज्ञादिका अधिक प्रचार था, हम कुण्ड बनाते थे, परन्तु मुसलमानोंके समय यज्ञ आदि उठ जानेसे हम लोग हुका, निगाली आदि बनाने लगे, कितने ही लोग इन्हे शूद्र कहते, परन्तु कुनेड़ोंके क्षत्रियत्वके भी कहीं कहीं प्रमाण मिले हैं।

कुनेतक (सं० पु०) एक मुनि।

कुनेन (अ० Quinine) औषध विशेष, एक दवा।

वह खरके रोगीको देनेसे बड़ा उपकार करता है। कुनेन सिनकीना नामक वृक्षकी त्वग्का सार है।

* कनिङ्गहाम साहबने उक्त सकल मुद्राको ईसा अन्धके १५ शताब्दकी पूर्ववर्ती माना है। Arch. Sur. Repts. Vol. XIV. p. 13b.

उक्त वृक्ष प्रथम दक्षिण अमेरिकामें ही उपजता था। किन्तु अब वह भारतवर्षके नीलगिरि, मडिसुर और सिकिम प्रभृति उच्च पार्वत्य स्थानोंमें भी देख पड़ता है। उसका बीज और कलम दोनों लगते हैं। बीज घने बोये जाते हैं। सिंचाई बहुत होती है। पेड़ पर छाया भी कर देते हैं। प्रायः ६ सप्ताहमें अङ्कुर फूटता है। चार-छह पत्र निकल जानेसे वृक्ष अन्यत्र लगाये जाते हैं। उक्त क्रिया कई बार करना पड़ती है। वृक्षोंके बीज चार या छह फीटका अन्तर रहता है। सितकोना धूसर, रक्त एवं पीतवर्ण कई प्रकारका होता है। रक्तवर्ण सर्वोत्तम, धूसर वर्ण मध्यम और पीतवर्ण गुण्यजैसा होता है। ४ वर्ष पीछे वृक्ष कार्योपयोगी होता है। किन्तु ७ वर्ष पीछे उसका चार फ़ास होने लगता है। अधिकांश चार मूलमें रहता है। इसीसे उसका मूल्य भी अधिक है।

कुन्तेके सेवनसे सर्वप्रकार ऊपर आरोग्य होता है। किन्तु भारतीय वैद्य उसे हानिकारक समझ विषवत् त्याग करते हैं। वह अति उष्ण है।

कुन्त (सं० पु०) कुं भूमिं उन्नतिं क्लियति, यद्वा कुं शरीरं उन्नतिं, भिनत्ति, कुं उन्द् बाहुलकात् तः शकन्वा-दित्वात्। १ गेवेधुक, एक धान। २ क्षुद्रजन्तु, छोटा जानवर। ३ कोपनभाव, जोश। ४ भक्त, भाला बरछो।

धनुर्वेदमें कुन्तास्त्रका लक्षण और निर्माणप्रणाली इस प्रकार लिखी है—‘वंश, वेतस्, विख, चन्दन, वर्धन, शिंशपा, खदिर, देवदारु विंवा घण्टारोड काष्ठ द्वारा उसका दण्ड बनाया पड़ता है। वह सात हाथ लम्बा रहनेसे उत्तम, छहसे मध्यम और पांचसे निम्न होता है। फल लौहनिर्मित रहेगा। उक्त फलका आकार दो प्रकारका है—प्रथम पुष्कलावर्तक, द्वितीय बीजजात। लौह पुष्कलावर्तक होनेसे कोमल और बीजोत्थित होनेसे तीक्ष्ण रहता है। जिस लौहसे आघात करने पर शब्द निकलता, वह तीक्ष्ण ठहरता है। फिर जिससे आघात करने पर शब्द नहीं निकलता, उसे विद्वान् मृदु कहते हैं। गिर पड़नेसे जो फल टूट जाता, वह तीक्ष्णलौह-निर्मित कहाता है। फिर गिरनेसे न टूटनेवाला फल पुष्कलावर्त लौह-

निर्मित है। फलनिर्माण विषयमें चोत्रजात लौह प्रयोज्य है। उक्त कार्यकेलिये पुष्कलावर्त लौह ही अच्छा रहता है। कुन्तका फलक मृदुलौह द्वारा एवं तोष्णधार लौह द्वारा बनाया चाहिये। उक्त उभय लौह अप्राप्य होने पर किसी अच्छे लोहोसे संशोधनपूर्वक फलको बनाते हैं। खजूर, बेत, बांस आदि वृक्षोंके पत्र सङ्ग्रह फलका अग्रभाग भली भाँति पतला रहेगा। शुभ्र, सुन्दर, तीक्ष्ण, षोडश अङ्गुलिपरिमित फल ही प्रशस्त है। वह चौदह अङ्गुलि रहनेसे मध्यम और बारह अङ्गुलि रहनेसे निम्न होता है। विस्तार दो अङ्गुलिसे क्रमशः घट एक अङ्गुलि रह जाना चाहिये। मोटाई दो, डेढ़ या एक चावल होती है। सुशब्द, मृदुगन्ध, सुपीन, उत्तमवर्ण और परिष्कृत होनेसे फल कष्टका है। शब्दसे उसका गुणागुण समझा जाता है। घण्टाकी भाँति शब्द निकलनेसे फलक अच्छा रहता है। भस्मपात्रकी भाँति शब्द निकलनेसे समझना पड़ेगा कि वह अच्छा नहीं। देखनेमें फलक यदि चन्द्र किंवा नीलाकाशकी भाँति परिष्कार लगता, तो उस प्रकारके फलकका कुन्त लेनेमें प्रशस्त पड़ता है। फलको मल्लिका-जैसा वर्ण न होनेसे परित्याग करना चाहिये। प्रसृत कुन्त क्रय करनेमें भी लक्षण देख लेते हैं। जिस कुन्तमें हंस, मयूर, मत्स्य प्रभृति चिह्न रहता उसको धारण करनेसे मङ्गल बढ़ता है। शकुनि, काक, शृगाल प्रभृति अमङ्गल चिह्नयुक्त कुन्त लेना न चाहिये। सुलि-का और व्याघ्र नखकी बुकनी समभावमें मिला उसे परिष्कार करते हैं। उससे कुन्त जलद मैला नहीं होता।

अन्यान्य अस्त्रकी भाँति उसे भी म्यानमें रखना चाहिये। साधारणके पक्षमें कुन्तास्त्र धारण करना उचित नहीं। सत्पुरुष वीर व्यक्तिको भाला बांधना चाहिये। शक-नीतिमें लिखा है—

“दशहस्तितः कुन्तः फलायः शङ्ख उन्नतः।”

कुन्तमें १० हाथ लम्बे बासकी छड़के ऊपर लोहेका तीक्ष्ण फल लगता है। मूलमें सूक्ष्म और तीक्ष्ण लौह-शलाका रहती है। फलके नीचे और मूलमें रेशमका स्तवक शोभित होना चाहिये।

उक्त वर्णनासे कुन्त और फरसा समान समझ पड़ता है। कल्याणके चौलुक्खराजाओंका राजसम्मान परिचायक कुन्तल ही था।

कुन्तल—प्रतिलोम वर्णसङ्कर जातिविशेष। वैश्यके औरस और ब्राह्मणोंके गर्भसे उक्त जातिकी उत्पत्ति है। स्त्रियोंके निकट नौकरी करना और नर्तकी तथा वेश्या बुलाना ही कुन्तल लोगोंका प्रधान कार्य है।

कुन्तल (सं० पु०) कुन्तं लुट्कोट् लाति. कुन्त-ला-क, यद्वा कुन्तस्य अघाकारमिव लाति। १ केश. बाल।

“कापि कुन्तलसंन्यासं यमपदेशतः।” (साहित्यदर्पण, १।२२४)

२ क्रीडेर, बाला। ३ यव, जी। ४ चषक, पीनेका बर्तन। ५ डल। ६ भ्रूवकविशेष, किसी किस्मका धुरपद।

“वर्णः षोडशभिः कार्यः कुन्तलो लघुशेखरे।

शङ्करे च रसे प्रोक्ते आनन्दफलदायकः॥” (सङ्गीतदामोदर)

७ जनपदविशेष, कोई सुक्क या सूबा। महाभा-

रतमें तीन कुन्तलराज्यके नाम मिलते हैं। यथा—

१ म “मत्स्याः सुकुट्याः सोढव्याः कुन्तलाः काशिकोशलाः।” (भौषपर्व, २।२८)

२ य “दुर्गलाः प्रतिमास्याः कुन्तलाः कुशकास्तथा।” (भौषपर्व, ८।४२)

३ य “जिल्लिका कुन्तलाश्चैव सोढवाः मल्लकाननाः।

कोकुशकास्तथा चोलाः कौडवाः मालवानकाः॥” (भौषपर्व, ८।६०)

प्रथम भारतके उत्तरांशमें मध्यदेशके मध्य*, द्वितीय दक्षिण-कोशजके निकट वर्तमान गोण्डवनके मध्य और तृतीय कोङ्कणके पार्श्व पर दक्षिण-महाराष्ट्रके मध्य अवस्थित है।

दक्षिणापथसे कई शिलालिपि पाविष्कृत हुयी हैं। उनसे समझ पड़ता है कि कुन्तलराज्य किसी समय पहिले आदनी जिलाके पश्चिमांशमें कुशगोदसे† दक्षिण महाराष्ट्रके अन्तर्गत सांगली राज्य पर्यन्त विस्तृत था। उक्त सांगली राज्यके अन्तर्गत तेरडाल ग्रामसे प्राप्त १०४५ शककी खोदित एक शिलालिपि द्वारा समझ

पड़ता है कि उस समय कुन्तलराज्य चौलुक्खराजाओंके अधीन था और ‘कल्याणपुर’ उक्त राज्यकी राजधानी रहा। कल्याण देखो।

वराहमिहिरकी बृहत्संहितामें कोङ्कण, कुन्तल, केरल, दण्डक प्रभृति जनपद एकत्र उक्त हुये हैं।

(बृहत्संहिता, १६।१९)

दशकुमारचरितमें कुन्तल विदर्भराज्यके अधीन और अन्तर्गत कहा गया है। कृष्ण और विदर्भ देखो।

दक्षिण-महाराष्ट्रके ‘तेरडाल’ ग्रामका खोदित शिलालेख* पढ़नेसे कोङ्कणगिरा† कुन्तलराज्यका निकटवर्ती समझ पड़ता है।

विजयनगरके गानिगिन्ती नामक जैनमन्दिरके प्रस्तरस्तम्भकी खोदित प्राचीन शिलालिपि† पढ़नेसे समझा जाता है कि कुन्तल-विषय कर्णाटराज्यके अन्तर्गत आता है;—

“अस्मि विस्तीर्णं कर्णाटधरामण्डलमध्यगः।

विषयः कुन्तलो नाम्ना भूकालात्कुन्तलोपमः॥”

उक्त प्रमाणसे अनुमित होता—किसी समय प्राचीन कुन्तलजनपद वर्तमान कोङ्कणप्रदेशके पूर्व, कोल्हापुरके उत्तर तथा हैदराबादके पश्चिम कृष्णा नदीके उभय पार्श्व एवं मालपूर्वा और वर्धा नदीके मध्यस्थल उत्तरमें कल्याणपुरसे दक्षिण-पूर्व आदनी जिला तक विस्तृत था।

दक्षिणमहाराष्ट्र ‘अखवा’ विभागके मध्य की रेल-पथ सगा, उसमें आठरोडके उत्तर कृष्णानदीके दक्षिण ‘कुन्तलरोड’ नामक एक स्थान है। सम्भवतः उसीके पास महाभारतोक्त दक्षिण कुन्तलकी राजधानी कुन्तलनगरी रही।

कुन्तलवर्धन (सं० पु०) वर्धयति, वृध्-णिच्-ञ्यः नन्दि-विपचादिभ्यः। पा १।१।२२। भृङ्गराजवृक्ष, घमिराका पेड़। उक्त वृक्षका रसवालोंकी बड़ा देता। इसीसे उसे कुन्तल वर्धन (बलोंको बढ़ानेवाला) कहते हैं।

* “मत्स्याः किराताः कुल्याः कुन्तलाः काशिकोशलाः॥१५॥

मध्यदेश जनपदाः प्रायशः परिकीर्तिताः॥१६॥” (महापुराण, ११२।१६)

† Asiatic Researches, Vol. IX. p. 429, Colebrooks Miscellaneous Essays, Vol. II. p. 272 n.

‡ Indian Antiquary, Vol. XIV. p. 14-25.

* Indian Antiquary, Vol. XIV. p. 23-26.

† कोङ्कणगिरिका वर्तमान नाम कोल्हापुर है। वरु कोङ्कणके दक्षिणपूर्व अवस्थित है।

‡ E. Hultzsch, South Indian Inscriptions, Vol. 1, p. 8.

कुन्तलिका (सं० स्त्री०) कुन्तलापाकारो जाङ्गलाया-
कारो विद्यते अस्याः, कुन्तल-ठन्-टाप् । १ दध्यादि-
च्छेदनी, दही वगैरह काटनेका औजार । उसे पालिका
भी कहते हैं । २ बालानामक औषध । वह शान्तन,
रक्त, दोषन एवं पाचन और विसर्प, हृद्दोग, अरुचि
तथा आमोतिसार रोगनाशक है । (भावप्रकाश)

कुन्तलाका, कुन्तलिका देखो ।

कुन्तलोशीर (सं० स्त्री०) कुन्तल इव उशीरम् । क्रोशिर,
वासा ।

कुन्ताप (वे० पु०) १ अथर्ववेदका सूक्तभेद । (स्त्री०)
२ उदरकी एकविंशति नाड़ी, पेटकी कोई ईकोसवीं
नाड़ी ।

“चिर्गतिर्वा अमरुदरे कुन्तापानि ।” (शतपथब्राह्मण १२।२।४।१२)

“अथ यत् कुन्तापमासात् यो मज्जा ।” (१२।४।४।८)

कुन्ति (सं० पु०) कम-भ्रूच-मुक्ती भिष । उण् २।५० ।
१ कोई जनपद और उस जनपदवासी स्त्रियजाति-
विशेष । महाभारतमें स्थान स्थान पर उक्त जनपद
कुन्तिराष्ट्र और कुन्तिभोज नामसे वर्णित हुआ है ।
हरिवंशके मतसे कुन्तिविषयमें कृष्णके पिता वसुदेव
और पाण्डवमाता कुन्तिदेवीने जन्मग्रहण किया था—

“वसोऽस्य कुन्तिविषये वसुदेवः सुतो विभुः ।

ततः संजगयामास सुप्रभे ह्ये च हरिके ।

कुन्तीषु पाण्डोर्मांश्चिषीं देवतामिव भूषणम् ॥”

(भारत, २५।५।१।)

स्त्रालियरके अन्तर्गत कुतवारमें एक प्राचीन प्रवाद
है कि वहीं कुन्तिदेवी कुन्तिभोज-कट्टक पालित
हुयीं । कुतवार देखो । वेदका कठसूत्र पढ़नेसे समझ
पड़ता—पूर्वकालकी कुन्ति लोगोके साथ पञ्चालोका
एक बार घोरतर विवाद हुआ था । २ हैहयके पौत्र
और धर्मनेत्रके पुत्र । (विष्णुपुराण, ४।११।२) भागवतके
मतमें वह धर्मके पौत्र और नेत्रके पुत्र थे । (भागवत, २।
२१।२१) २ क्रथके पुत्र और हृषिके पिता । (विष्णुपुराण,
४।१२।१५।) ४ विदभके पुत्र और धृष्टके पिता ।
(हरिवंश, १८।८८) ५ पक्षिराज गरुडके प्रपौत्र और
चम्पातिके पुत्र । (मार्कण्डेयपुराण, २।२)

कुन्तिभोज (सं० पु०) कुन्तिनामा भोजः भोजदेशाधिपः ।

भोजदेशके अधिपति कुन्ति । वही पृथाके पालक
पिता थे ।

कुन्तिक (सं० पु०) किसी देशके अधिवासी ।

कुन्तो (सं० स्त्री०) कुन्ति-ङोष् । इती मनुष्यजातेः । पा ४।
१।१५। १ कुन्तिदेशीय स्त्री । २ गुग्गुलुहृत्त, गुग्गुलुका
पेड़ । ३ शङ्खकाहृत्त । ४ यदुवंशीय शूरराजकी कन्या
और वसुदेवकी भगिनी ।

शूरसेनकी पिटस्वसके पुत्र कुन्तिभोज अपुत्रक थे ।
उनसे शूरसेनने प्रतिज्ञा की—‘हम अपना सन्तान
आपको देंगे ।’ इसीसे कुन्तिभोजने शूरसेनकी प्रथमा
कन्या पृथाकी ले पुत्रकी भांति लालन पालन किया
था । कुन्तिभोज-कट्टक पालित होने पर ही पृथा
‘कुन्तो’ नामसे विख्यात हुयीं ।

किसी दिन महर्षि दुर्वास कुन्तिभोजके भवनमें
अतिथि रहें । उस समय कुन्ति महर्षि की परिचर्यामें
नियुक्त हुयीं । उससे ऋषिवरने कुन्तोकी अतिसन्तुष्ट
हो एक मन्त्र प्रदान किया । उस मन्त्रके प्रभावमें सकल
देवता भृत्यकी भांति मन्त्रोच्चारणकारोके वशीभूत हो
जाते थे ।

एक बार कुन्तिने मन ही चिन्ता की—‘महर्षिने
हमें जो मन्त्र दिया है, उसको एकबार परीक्षा करके
देखना चाहिये ।’ इसी प्रकार साच रही थीं, कि कन्या-
वस्थामें अपने ऋतुलक्षण देख वह अतिशय ललित
हुयीं । मनोभाव गापन कर शय्या पर बैठ नवोदित
दिवाकरके प्रति एक बार उन्होंने ताका था । क्या हो
पाखण्ड ! उनका मन उस दिन कैसा चञ्चल हुआ । वह
सूर्यकी दिव्यमूर्ति देख मुग्ध हो गयीं । उसी समय
ऋषि-प्रदत्त मन्त्रका बलाबल परीक्षा करनेको उन्हें
कौतूहल लगा । उन्होंने मन्त्र पढ़ दिवाकरको आह्वान
किया था । सूर्यदंष्ट्र अपना देह दो भागमें बांट एक
मूर्ति द्वारा पूर्ववत् ताप पहुँचाते रहें और अङ्गद एवं
सुकुट-मण्डित अपर मूर्ति बना कुन्तोके पाखण्ड पर
जाकर कहने लगे—‘सुन्दर ! हम एकान्त आपके
वशीभूत हैं । कहिये, अब क्या करें ?’

कुन्तोने ससम्भ्रम कहा था—‘देव ! कौतूहलसे
आपको आह्वान कर हमने अनर्थक कष्ट दिया है ।
हमें क्षमा कर आप प्रस्थान कीजिये ।’

उस समय सूर्यदेव बोल उठे—‘देवताको वृथा आह्वान करना उचित नहीं। आप हमें आत्मदान कीजिये। हम आपको कवचकुण्डलधारो एक दिव्य पुत्र देंगे। यदि आप हमारी बात पर सन्मत न होगी, तो हम आपको, आपके पिता कुन्तिभोजको और अयोध्यापादके लिये मन्त्रदाता उस ब्राह्मणको भस्म कर डालेंगे।’ कुन्तीने लज्जित और भीत हो करके कहा था—‘देव! हम बालिका हैं। हमें आत्मदेह दूसरों को देनेका अधिकार नहीं। हमें क्षमा कीजिये। हमारे साथ इसप्रकार अवैधरूपसे सहवास करने पर हमारी कुलकीर्ति नष्ट हो जायेगी।’

सूर्यदेवने सादर उत्तर दिया—‘तुम्हें पाप न लगेगा। यहाँ तक कि तुम्हारा कन्याभाव भी कलङ्कित होनेसे बच जायगा। आपका गर्भभाव धात्री भिन्न दूसरा कोई जान न सकेगा। हमें आत्मदान कीजिये।’

कुन्तीने देखा कि सूर्यके हाथसे कूटना उनके लिये असह्य था। उन्होंने सूर्यसे कहा—‘यदि ऐसा प्रकृत हो, तो वह पुत्र आपका कुण्डलहय और अभेद्य वर्म लाभ कर सके।’

सूर्य बोले—‘वह होगा।’ फिर वह कुन्तीका गर्भाधान कर अन्तर्हित हुवे। उसी गर्भसे कर्णने जन्म लिया। कर्ण देखो। (भारत आदि, ६७ अ०; वन, १०१—१०७ अ०)

कुछ दिन पीछे कुन्तिभोजके यज्ञसे उनका स्वयम्बर हुआ। उन्होंने स्वयम्बर-सभामें कुरुराज पाण्डुको माता पहनायी थी। कुछ दिन पच्छे सुखमें प्रतिवाहित हुवे। पाण्डुराजने कुन्ती और अपनो कनिष्ठा भार्या मातृको सङ्ग ले वनविहारको यात्रा की थी। उसी वनविहारमें कुन्ती पतिहीना हो गयीं। पाण्डु देखो।

पतिके आदेश पर क्षत्रजपुत्र लाभके लिये कुन्ती देवीने धर्मके औरससे युधिष्ठिरको, वायुके औरससे भीमको और इन्द्रके औरससे अर्जुनको पाया था। फिर उन्हींके मन्त्रप्रभावसे माद्रीने अश्विनीकुमारद्वयके औरससे नकुल और सहदेवका गर्भमें धारण किया। माद्री भी पतिके पीछे चल बसी। माद्री देखो।

कुन्ती शतशृङ्गवासी ऋषियोंके साहाय्यसे पञ्चपुत्र और दोनों मृतदेह सङ्ग ले हस्तिनानगरमें भीष्मके

निकट उपस्थित हुयीं। सपुत्रा कुन्तीदेवी हस्तिनामें पहुँचते भी स्वच्छन्द न रहीं। धृतराष्ट्रके पुत्र विशेषतः दुर्योधन सर्वदा ही पाण्डुपुत्रोंका अनिष्टाचरण करते थे। भीम देखो। एकवार उन्हींने वारणावत नगरके जल-गृहमें उन्हीं जला देनेके लिये साजिश की थी। किन्तु विदुरके परामर्श पर सपुत्रा कुन्तीदेवी उस दारुण विपत्तसे बच गयीं। विदुर देखो।

उस समय हस्तिना वा धार्तराष्ट्रोंके निकट रहना उचित न देख कुन्तीने अरुण्यपथसे अनेक कष्ट उठा एकचक्रा नगरीको गमन किया। फिर वहाँ वह कश्यपेश्वरके किसी ब्राह्मणके गृहमें रहने लगीं। कुछ दिन पीछे उन्हींने किसी ब्राह्मणके मुखसे द्रौपदीके स्वयम्बरकी बात सुनी थी। इसलिये कुन्तीने पाञ्चाल जा किसी कुम्भकारके गृहमें आश्रय लिया और धौम्यकी पुगेहितके पदपर नियुक्त किया। धौम्य देखो।

स्वयम्बर-सभामें अर्जुनने लक्ष्यभेद करके द्रौपदीको पाया था। भीमार्जुन उभी कुम्भकारके द्वार पर जा माताको पुकार कहने लगे—‘मातः! आज एक अपूर्व द्रव्य मिला है।’ कुन्ती गृहके मध्य रहीं। वह प्राप्त द्रव्यको बिना देखे ही बोल उठीं ‘वत्स! जो मिला हो, उसे समभागमें बँटवण करो।’ पीछे द्रौपदीका देख उन्हींने कहा था—‘राम! राम! हमने क्या कुकर्म कर डाला।’ किन्तु धर्मभीरु पाण्डुवने माताको आश्वासन न करके पाँचोंने द्रौपदीसे विवाह कर लिया।

द्रौपदी देखो

उसी समय धृतराष्ट्रने उनके पाञ्चालगणसे मिलनेकी बात सुनी। उससे उन्हींने भोत हो विदुरको पाण्डुवके निकट भेजा और उन्हीं हस्तिना बुला राज्यका अंश प्रदान किया। पीछे जब शकुनि और दुर्योधनके हलसे पाण्डुवने द्यूतक्रीडामें हार वनको गमन किया, तब कुन्तीको विदुरके गृहमें रहना पडा। कुरुक्षेत्रके युद्धावसानमें धृतराष्ट्र पुरनारोगणके साथ मृत पुत्रपरिजनादिके उद्देश जलप्रदान करनेको समरपाण्डव पहुँचे थे। उसीसमय कुन्तीने भी जाकर प्रियपुत्रोंको दर्शन दिया। फिर मृत वीरगणका शोचोद्देशिक कार्य सम्पन्न होते कुन्तीने पुत्रोंको सम्बोधन करके कहा था

‘जो महावीर अर्जुनके हाथ निहत हुआ और जिसे तुमने राधागर्भ-सम्भूत समझ रखा, वही महावीर कर्ण तुम्हारा ज्येष्ठभ्राता रहा है। उसने सूर्यके औरससे हमारे गर्भमें जन्मलाभ किया था।’

माताके मुखसे कर्णका वृत्तान्त सुन युधिष्ठिर फूट फूट कर रोने लगे। फिर भीष्मके उपदेशसे राज्य अर्पण करके उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था। उक्त यज्ञ शेष होनेपर कुन्तीदेवी और धृतराष्ट्रने गान्धारी प्रभृति-के साथ वानप्रस्थका आश्रय लिया और वनमें टावानल-से उनका मृत्यु हुआ।

जैन शास्त्रानुसार—पांडुने एक विद्याधरसे कामरूपिणी मुद्रिका प्राप्त की थी और उसके प्रभावसे वह गुप्त रूप बना कुन्तिके पास गमनागमन करते थे। कालक्रमसे अविवाहित अवस्थामें एक पुत्र उत्पन्न हुआ, और उसे एक पेटोमें बंद कर नदीमें बहा दिया। बालक अपना काम पकड़े उत्पन्न हुआ था अतः उसका नाम कर्ण रक्खा गया। इसके बाद मातापिताने कुन्ति का पांडुसे गुप्त सम्बन्ध जान विवाह कर दिया और फिर युधिष्ठिर आदि पुत्र उत्पन्न हुये।

माकंदौ नगरीके स्वामी राजा द्रुपदने अपनी पुत्री द्रौपदीका गांडीवधनुष चढानेका पणकर स्वयम्बर रचा और समस्त देशोंके राजा एकत्र किये। उनमें अर्जुन ही गांडीव धनुष चढा सके अतः द्रौपदीने उनके ही गलेमें वरमाला डाली। उस समय पवन बड़े जोरोंसे चल रहा था। उसलिये माला टूट जानेसे पाममें बैठे अन्य भाइयोंके ऊपर भी फूल उड़कर बिखर गये और वहां बैठे लोगोंने ‘पांचोंकी वरा है’ ऐसा प्रवाद उड़ा दिया। असलमें द्रौपदीके एक ही पति था, शेष ज्येष्ठ देवर थे। (हरिवंशपुराण)

कुन्त्य (सं० पु०) “कुः पृथ्वी तस्यां स्थितिवानिति कुन्त्यः तथा गर्भे भगवती जननी रत्नानां, कुन्त्यं राशिं दृष्टवतीति कुन्त्यः” इति जैनसम्मतम् । जनोंके सप्तदश तोर्थद्वार। उन्होने सर्वार्थसिद्धि नामक विमानसे चय कर सूर्यराजाके औरस और ओमतीके गर्भसे जन्म लिया था। इस्तिनापुर नगरमें वैशाखकी शुक्लप्रतिपद् तिथि को वृषराशि पर उनका जन्म हुआ। उनका शरीरमान

३५ धनु, आयुमान ८५००० वर्ष और शरीर सुवर्ण वर्ष था। उनसे ८६००० स्त्री रहों। वह इस्तिनापुर नगरमें वैशाखसुदि पडिवाकी १००० साधुओंके साथ दीक्षित हुये। अपराजितके घर दो दिन उपवास करके पारण किया। इस्तिनापुरमें सोलह वर्ष बाद तिलक-वृक्षके नीचे चैत्रशुक्ल-तृतीयाको उन्होने ज्ञानलाभ किया।

कुन्द (सं० पु०) कु-दत् कौतेनुंम् । अष्टादश्या । उष्ण । १ विष्णु । २ पुष्पजाति, कोई फूल । उसका पर्याय—शुक्लपुष्प, मकरन्द और सदापुष्प है। वह दन्त और शुभ्र शरीरकान्तिकी लपमामें अधिक व्यवहृत होता।

“कुन्द इन्दु सम दीप्त उमारमण करुणा यतन ।” (तुलसी)

भावप्रकाशके मतसे वह—शीतल और लघु है। उसके व्यवहारसे शिरोरोग और विषपित्त नष्ट हो जाता है। किन्तु उसका पुष्प शिवकी पूजामें व्यवहृत नहीं होता। ३ करवीरवृक्ष, कनेरका पेड़। ४ पद्म, कमल । ५ वर्षपर्वतभेद ६ कुवेरका एक निधि। ७ संख्याके सङ्केतमें नौ। ८ काष्ठ और धातु खोदनेका कोई यन्त्र। ९ मदन वृक्षविशेष।

कुन्दक (सं० पु०) कुन्द स्त्रार्थे कन् । १ कुन्दरुवृक्ष, कंदरुका पेड़। २ गन्धद्रव्यविशेष, कोई खुशबूदार चीज।

कुन्दकर (सं० पु०) काष्ठ एवं धातुद्रव्यखोदक जाति-विशेष, खरादनेवाला। कुन्दकर लोग काष्ठके नानाविध द्रव्य खराद पर चतारा करते हैं। वह प्रधानतः सुसलमान हैं।

कुन्दकुन्दाचार्य—एक विख्यात जैन ग्रन्थकार। उन्होने प्राकृतभाषामें षट्प्राभृत, प्रवचनसार, समयसार, रयणसार, हादशानुप्रेक्षाभूति ग्रन्थ प्रणयन किये हैं। अभिनवपम्प, वालचन्द, अतसागर प्रभृति जैन पण्डितोंने उक्त ग्रन्थसे किसी किसीकी टीका संस्कृत भाषामें रचना की है। अभिनवपम्पने षट्प्राभृत वा प्राभृत-सारकी टीकाके प्रारम्भमें लिखा कि कुन्दकुन्दाचार्यका अपर नाम पद्मनन्दी था। फिर अतसागरने उसी ग्रन्थकी ‘मोक्षप्राभृत नाम्नी’ टीकाके शेषमें पद्मनन्दी और कुन्दकुन्दाचार्य उभयकी भिन्न व्यक्ति बताया है—

“इति श्रीपद्मनन्दी-कुन्दकुन्दाचार्येणैवाचार्येणैवकवीवाचार्थे-नृप्रविष्ठाचार्ये-
नामपञ्चकविराजितेन चतुरङ्गलुकासगमधिना ।” *

अभिनवपम्पके मतमें वह शिवकुमार महाराजके गुरु थे। कोई कोई उक्त शिवकुमार महाराजको ही दक्षिणापथके कदम्बरराज शिवनृगेन्द्रवर्मा समझता है।

हेमचन्द्र-रचित प्राकृतव्याकरणकी १५१८ ई० की लिखी एक हस्तलिपिके शेषपर संस्कृत भाषामें कुन्द-कुन्दाचार्यकी वंशावली है। उसके पाठसे समझ पड़ता है—

“कुन्दकुन्द मूलसङ्घ सरस्वतीगच्छ और बलात्-कारणके अन्तर्भूत थे। उनके पट्टपर भट्टारक श्रीपद्म-नन्दिदेव, फिर देवेन्द्रकीर्तिदेव, फिर विद्यानन्दिदेव और फिर मल्लिभूषणदेव हुए। मल्लिभूषणके शिष्यका अमरकीर्ति और उनके शिष्यका नाम मेवाड़ जातीय श्रेष्ठ लाइन था।”

दक्षिणमहाराष्ट्रके सांगली राज्यान्तर्गत तेरडाल ग्राममें १९०४ शककी एक खोदित शिलाफलक आविष्कृत हुआ था। उसमें लिखा है—

“स्वस्ति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्योन्मयद-श्रीमूलसङ्घद-देशीयगणदपोलक-गच्छद-श्रीकोलापुरद-निम्बदेवसामलमाडिसिद-श्रीरुपनारायण देशर ।”

वीरनन्दीने आचारसारकी टीकामें कहा है कि १०७६ शककी वह और भिन्नचन्द्रके पुत्र विद्यमान रहे। भिन्नचन्द्रका कनाडी भाषामें लिखित समाधि शतक पढ़नेसे समझते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य अभिनव-पम्पके समसामयिक थे। फिर ११०४ शककी उनके वंशोद्भव सामन्तनिम्बदेवका भी नाम मिलता है। उक्त प्रमाण द्वारा अनुमान करते हैं कि वह ई० एकादश शताब्दीकी विद्यमान थे।

श्वेताम्बर और दिगम्बर उभय दल कुन्दकुन्दा-

* विजयनगरके गणगिति नामक देवालयके स्तम्भपर उक्त पाँचो शब्द कुन्दकुन्दाचार्यके नामान्तरकी भांति वर्णित हुए हैं—

“श्रीमूलसङ्घ उज्जिनि नन्दिपङ्कसखिन् बलात्कारणोऽतिरमाः ।

तवापि सारस्वतनाभि गच्छे स्वच्छाशयोभुदिह पद्मनन्दी ॥ (१)

आचार्यः कुन्दकुन्दाख्यो वक्रप्रोवो महामतिः ।

एताचार्यो नृप्रविष्ठा इति तन्नाम पञ्चधा ॥” (४)

E. Hultzsch, South Indian Inscriptions, vol. 1. p. 158

चार्यका बड़ा सम्मान करते और उनका बहुविध धर्मी-पदेग सादर ग्रहण करते हैं। श्वेताम्बर जैनोंके मतमें उपयुक्त धर्माचरण करनेसे स्त्री भी निर्वाण वा मोक्ष पा सकते हैं। किन्तु दिगम्बर उसको स्वीकार नहीं करते। कुन्दकुन्दाचार्यने भी ‘प्रवचनसार’में बताया है—
“चित्ते चिन्ता माया तमसा तामिं न निष्ठा ॥”

‘हृदयमें माया चिन्ता रहनेसे स्त्रीको निर्वाण नहीं मिलता।’

उक्त वचनसे समझ सकते हैं कि कुन्दकुन्द अपने आप भी दिगम्बर रहे। उनका समयसार पढ़नेसे समझ पड़ता है जिस देशमें उन्होंने वास किया वहाँ उनके रहते समय जैनधर्म विशेष प्रवृत्त पड़ा न था, अधिकांश लोगोंमें विष्णुकी पूजाका प्रचार रहा।

कुन्दनकवि—बुंदेलखण्डके एक हिन्दी कवि। १६८५ ई० की वह विद्यमान थे। उनकी रचित आदिरसघटित कविता ही प्रधान है।

कुन्दम (सं० पु०) कुन्देन मीयते शुभ्रवर्णत्वात्, कुन्द-मा-कः । आतोऽनुपसर्गे । पा २ । २ । १ । मार्जार, बिलाव ।

कुन्दमाला (सं० स्त्री०) १ कुन्दपुष्पकी माला । २ ग्रन्थ-विशेष, एक किताब । साहित्यदर्पणमें कुन्दमाला उद्धृत हुयी है।

कुन्दर (सं० पु०) कुं भूमिं दारयति वराहकूपेणेत्यर्थः, कु-इ-अच् । १ विष्णु । २ दृषविशेष, कोई घास । उसका संस्कृत पर्याय—कण्डूर, भिण्टो, दोर्घपत्र, खर-च्छद, रसाक, चेतसम्भूत, सुदृष और सुगवत्तम है। उसका मूल शीत, पित्तातिसारानुत्, शोधनो में प्रशस्त और बलपुष्टिवर्धन होता है। (राजनिघण्टु)

कुन्दरिका (सं० स्त्री०) सक्ती, एक खुसबूदार चीज ।

कुन्दलकेशरी—उड़ीसाके एक राजा। श्रीचैतकी मादला-पञ्जीके मतानुसार ७३३ से ७५१ शक पर्यन्त उन्होंने राजत्व किया।

कुन्दसाक्षा (सं० स्त्री०) श्वेतयुथिका, सफेद लूही ।

कुन्दा, कुन्दसाक्षा देखो।

कुन्दाक (सं० पु०) महारम्बवृक्ष, बड़े अमलतासका पेड़।

कुन्दिनी (सं० स्त्री०) कुन्दानां पद्मानां समूहः, कुन्द-

इति स्त्रियां ङीप्। पुष्करादिभ्यो देशे। पा ५।२।१५२। पञ्च-
समूह, पद्मिनी।

कुन्द (सं० पु०) कुं भूमिं दृणाति, कु-द बाहुलकात्
ङ। १ मूषिक, चूहा। (स्त्री०) २ कुन्दर नामक
गन्धद्रव्य, कोई खुशबूदार चीज।

कुन्दकुन्दक (सं० पु०) कुन्दरखोटी, एक खुशबूदार
चीज।

कुन्दखोटी (सं० स्त्री०) कुन्दकुन्दक देखो।

कुन्दर (सं० पु०) कुं भूमिं दृणाति, कु-द-रन्।
१ सप्तमी। २ धूपभेद। ३ कुन्दर-दण, एक घास।
४ गन्धद्रव्यविशेष, एक खुशबूदार चीज। उसका संस्कृत
पर्याय—पानङ्गा, सुकुन्द, कुन्द, कुन्दर, कुन्दरक,
तौष्णगन्ध, सौराष्ट्र, शिखरी, गोपुरक, बहुगन्ध,
पालिन्द, भीषण और बली है। भावप्रकाशके मतानु-
सार वह मधुर, तिक्त, कफपित्तनाशक, पान एवं लेपन
करनेसे शीतल और प्रदरामय-शान्तिकर होता है।

कुन्दरक, कुन्दर देखो।

कुन्दर (सं० पु०-स्त्री०) कुन्दर देखो।

कुन्दरक, कुन्दर देखो।

कुन्दरकी (सं० स्त्री०) कुन्दरक-ङीप्। १ शलकीवृक्ष।
२ शलकीनिर्यास। ३ लताभेद, एक वेल। उसका संस्कृत
पर्याय—विम्बी, रताफला, तुण्डी, तुण्डिकेरा, विम्बिका,
भोष्ठोपमा, फला और पीलुपर्णी है। भावप्रकाशके
मतानुसार वह खादु, शीतल, गुरु, रक्तपित्तशान्ति-
कर, वायुनाशक, स्तम्भन, लेखन, रुच्य, विवन्ध और
आधानकारक होती है। कुं-र देखो।

कुन्दरखोटी (सं० स्त्री०) खनामख्यात गन्धद्रव्य, एक
खुशबूदार चीज।

कुप (सं० पु०) भारद्वाजपत्नी, एक चिड़िया।

कुपट (सं० पु०) कुत्सितः पटः। १ क्लृप्त वस्त्र,
चिथड़ा, फटा-पुराना कपड़ा।

“कुपटावतः कटिः उपवृत्तिर्नोदमसिना जिज्ञातिरिति।” (भागवत, ५।७।१०)

२ दानवभेद। (भारत, आदिपर्व)

कुपट (हिं० वि०) अशिक्षित, नाखुदा, जो पढ़ा
न हो।

कुपत्यो (हिं० वि०) कुपय्य करनेवाला, बदपरहेज।

(पु०) २ कुपत्य करनेवाला, परहेजसे न रहनेवाला
आदमी।

कुपथ (सं० पु०) कुत्सितः पथः। १ निम्नपथ, बुरी
राह। पाणिनिके मतसे केवल ‘कापथ’ होता है।
क्रिन्तु गोपदेव ‘कापथ’ और ‘कुपथ’ दोनों शब्दोंको
ठीक समझते हैं।

“स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपावण्यमसमञ्जसम् निजमनो-
वशा मन्दः प्रवर्तयिष्यते।” (भागवत, ५।६।८)

२ असुरभेद। उक्त असुरने पृथिवी पर सुपाश्व-
राजाके रूपमें जन्म लिया था। (भारत, १।६७।२८)

३ जनपदविशेष, कोई बसती। (मार्कण्डेयपुराण ५०।५६,
वामन १२ च०, मत्स्य ११२।५५)

कुपथ (हिं०) कुपथा देखो।

कुपथ्य (सं० स्त्री०) कुत्सितं पथ्यम्। अस्वास्थ्यकर पथ्य,
तन्दुरुस्ती बिगाड़नेवाला खाना।

कुपन (सं० पु०) असुरभेद। उक्त असुर दैत्यराज
हिरण्याक्षका एक सेनाना था। (हरिवंश, ४२ च०)

कुपनस (सं० पु०) पनसवृक्ष, कटहलका पेड़।

कुपय (वै० त्रि०) गोपनीय, छिपाने लायक।

“प्राचा जित्वा धसयन्तं विपुण्यतमा साचा” कुपयं वर्धनं पितुः”

(ऋक् १।१४०।२) ‘कुपयं गोपनीयम्।’ (सायण)

कुपरीक्षक (सं० पु०) कुत्सितः परीक्षकः, कर्मचा०।
विचारकाल उचितानुचित विवेचना और गुणकायथो-
पयुक्त सम्मान न करनेवाला, जो जांचके वक्त भले
बुरीकी पहचान न करता हो।

कुपाक (सं० पु०) कुपौलु, कुचिला।

कुपाठ (सं० पु०) कुत्सित पाठ, बुरा सबक।

कुपाठी (सं० त्रि०) कुत्सित पाठ करनेवाला, जो
बुरा सबक पढ़ता हो।

कुपाणि (सं० त्रि०) कुत्सितः पाणिरस्य, बड़व्री०। वक्र-
हस्त, टेढ़े हाथवाला।

कुपात्र (सं० पु०) १ कुत्सित पात्र, बुरा जर्फ। (त्रि०)
२ अयोग्य, नालायक। ३ दानके लिये निषिद्ध।

कुपार (हिं० पु०) समुद्र, बहर।

कुपिञ्जल (सं० पु०) कुत्सितः पिञ्जलः इव पुञ्छोऽस्य।
पञ्चविशेष, एक चिड़िया।

कुपित (सं० त्रि०) १ कृष, गुस्सासे भरा हुआ । २ अप्रीत, नाखुश ।

कुपिनी (सं० स्त्री०) कुम्प्यते रक्ष्यते मस्योऽत्र धातु-
नामनेकार्थत्वात् कुप् बाहुलकात् इति नान्तात् डोप् ।
मस्यधार, मछली रखनेका बरतन ।

कुपिनी (सं० पु०) कुपिनी मस्यधानी अस्यास्तीति
इति । मस्यधारक, कैवर्त, मछली रखनेवाला ।

कुपिन् (सं० पु०) कुम्पयति विस्तारयति सूत्राणि,
कुप-किन्च् । कुपेर्वाच । उच्यते । तन्तुवाय, जुलाहा,
कपड़ा बुननेवाला ।

कुपिलु, कुपोलु देखो ।

कुपोलु (सं० पु०) कुक्षितः पोलुः । कुक्षितिप्रादयः । पा २।२।२८
कारस्करवृक्ष, कविलेका पेड़ । उसका संस्कृत पर्याय—
जलज, दीर्घपत्रक, कुक्षक, कालतिन्दुक, कालपोलुक,
काकेन्दु, विषतिन्दु और मर्कटतिन्दुक है । भावप्रका-
शके मतमें कुपोलु व्यथानाशक, कफघ्न, रक्तपित्तप्रश-
मक, मूत्रकारक, अग्निवर्धक और कामोद्दीपक होता
है । उसको खेवन करनेसे शूल, पक्षाघात, शुक्रमेह,
अपस्मार, अङ्गुली, अतिसार, शुद्धभ्रंश, मदास्रव, सर्वाङ्ग
कम्प और दौर्बल्य छूट जाता है । कुपोलुका बीज
ग्रहणीय है ।

कुपुत्र (सं० पु०) कुत्सितः पुत्रः । १ मातापिताका
अवाध्य पुत्र, माबापके कहनेपर न चलनेवाला लड़का ।
कोः इयिव्या पुत्रः । २ मङ्गलग्रह । ३ नरकासुर ।
४ चैत्रज पुत्र ।

“तादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रः सन्तः समः ।” (मनु २।११६)

‘कुपुत्राः चैत्रजादयः ।’ (मेधातिथि)

कुपुत्र्य (सं० पु०) कुत्सितः पुत्र्यः । कापुत्र्य, बुरा
शस्त्र, दुनियामें कोई भला काम कर न सकनेवाला
आदमी ।

“यथं कुपुत्रो नष्टो भिक्तः साधुमर्यादा ।” (भाववत, अ० ५२)

कुपुत्र्यजनिता (सं० स्त्री०) छन्दोविशेष, एक बहुर ।

“कुपुत्र्यजनिता ननौ नौगः ।” (वसरवाकर)

प्रथम छह वर्ण ऋक्ष, उसके पीछे एक दीर्घ फिर
एक ऋक्ष और तत्पर तीन दीर्घ ग्यारह अक्षरसे उक्त
छन्द बनता है ।

कुपूय (सं० त्रि०) कुत्सितं पूयते, कुपूय-अच् ।
कुत्सित, जाति एवं आचारनिन्दित, बुरा ।

कुप्यक (हिं० पु०) अश्वरोगविशेष, घोड़ेकी एक बी-
मारी । उसमें अश्वको ज्वर चढ़ता और उसकी नासा-
से जल गिरता है ।

कुप्यल (हिं० पु०) रक्तवर्ण शाकविशेष, जिसमें किस्म-
की सुखं सज्जो । उसका कलम पतला और लुकीला
होता है । बरारकी सोनार भोलका जल शोधण कर
उसी वृद्धिगंत करते हैं ।

कुप्या (हिं० पु०) चर्मनिर्मित पात्रविशेष, चमड़ेका
एक बरतन । उसका आकार घटतुल्य रहता है ।
कुप्यामें घी तेल वगैरह रखा जाता है ।

कुप्यासाज (हिं० पु०) चर्मपात्र निर्माता, कुप्या तैयार
करनेवाला ।

कुप्यो (हिं० स्त्री०) लुद्र चर्मपात्रविशेष, चमड़ेका
एक छोटा बरतन । उसमें तेल-फूसेल रखते हैं ।

कुप्यशास्त्री—परिभाषाभास्कर नामक व्याकरण-प्रणेता ।

कुप्य (सं० स्त्री०) गुप्-कृष्, कुत्स्यच् । राजसूयसंस्मरण-
याज्ञिककृतेति । पा २।१।१४ ।

१ सुवर्णरजतभिन्न धातु, सोना चांदीकी छोड़
करके दूसरा धातु । २ जस्ता, सोसा और रांगा मिला
हुवा धातु ।

“हिरण्यं कुप्यभूमिष्ठं मित्रं चीयमथो वलम् ।” (भारद्वाज, १५।६।११)

पाठ प्रकारके जिन धातुसे देवमूर्ति निर्माणका
विधान बताते, उनमें कुप्यका भी नाम पाते हैं—

“सुवर्णं रजतं तावत् लोहं कुप्यश्च पारदम् ।

वज्रश्च सीसकश्चैव चट्टेते देवसम्भवाः ॥”

कुप्य अपहरण करनेसे उपपातक लगता है ।

(मनु ११।६०)

कुप्यक, कुप्य देखो ।

कुप्यघोत (सं० स्त्री०) रौप्य धातु, चांदी या रूपा ।

कुप्यलवण (सं० स्त्री०) लवणविशेष, एक नमक ।

कुप्यशाला (सं० स्त्री०) कुप्यानां कुप्यनिर्मितानां
पात्रादीनां शाला गृहम् । १ धातुद्रव्यनिर्माणशाला,
धातुकी चीजें बनानेका कारखाना । २ बरतनकी
दूकान ।

कुप्रावरण (सं० त्रि०) कुत्सितं छिन्नं मलिनं वा प्राध

रणं यस्मिन् । मलिन पथवा द्विज परिच्छेदयुक्त, मैलो या फटी पोशाकवाला ।

कुप्रिय (सं० त्रि०) अप्रिय, नागवार ।

कुप्लव (सं० पु०) कुक्षितरुटणादिनिर्मितः प्लवङ्गपुष्पः ।
टणादिनिर्मित सङ्घ, घासफूसका बना पेड़ या चौबड़ा ।

“यादृशः फलमाप्नोति कुप्लवैः सत्तरन् जलम् ।” (मनु ८ । १६१)

कुफुर (हिं०) कुफ देखो ।

कुफेन—कुभा, काबुल नदी ।

कुफ (अ० पु०) १ अधर्म । २ सुसज्जमान धर्मसे विरुद्ध मत ।

कुफल (अ० पु०) तालयन्त्र, ताला ।

कुवडा (हिं० पु०) कुजक, भुकी पीठका शखस ।
२ भुकी मूठकी बड़ी छड़ी । (वि०) १ टेढ़ी पीठ-
वाला ।

कुवडो (हिं० स्त्री०) १ भुकी मूठकी छड़ी । २ कुजिका,
टेढ़ी चौठवाली । ३ कुजा । कुजा देखो ।

कुवण्ड (हिं० पु०) १ कोदण्ड, कमान । (वि०)
२ विजिताङ्ग, खोड़ा, खराब भजावाला ।

कुवत (हिं० स्त्री०) १ कुवाक्य, बुरी बात । २ कुपथा,
कुनाल । ३ कुवत, ताकत ।

कुवरी (हिं० स्त्री०) १ कुजा, कंसकी एक दासी ।
२ भुकी मूठकी छड़ी । ३ मत्स्यविशेष, किसी किसी की
धकली । वह चीन, भारत और सिङ्गलमें होते हैं ।

कुवली (हिं० स्त्री०) कुवलय, गोला ।

कुवाक (हिं०) कुवाक्य देखो ।

कुवाद—सम्मानजातीय पारस्वराज फीरोज शाहके पुत्र ।
ग्रीक (यूनानी) ऐतिहासिकोंने उन्हें कवदेस (Cava-
des) नामसे उल्लेख किया है । पिताके अवर्तमानमें
प्रथम वही सिंहासन पर बैठे थे । किन्तु भ्राता पलाश-
के उत्तराधिकार रहते सिंहासन ग्रहण करने पर
कुवाद खाकान राज्यको भाग गये । नैसापुरके बीचसे
जाते समय एक दिन निशाकाल उन्होंने किसी सुन्दरी
रमणीके गृह यापन किया था । फिर चार वर्ष पोछे
वहुसंख्यक सैन्य सह वह वहां वापस पहुंचे थे । उस
समय उसी रूपसेमें उन्हें एक पुत्ररत्न प्रदान किया ।
वह उभयके हिलमेलका फल था । जिस समय कुवाद्ने

पुत्रको गोदमें लेनेके लिये उठाया, उसीसमय भ्राता
पलाशके कालग्राममें पतित होनेका संवाद आया—
पारस्वराज सुकुट उनके लिये प्रस्तुत रहा । उस समय
कुवादको धारणा हुयी—‘इस सुलक्षण पुत्रके गुणसे
ही आज हमने यह शुभ संवाद सुना है ।’ उन्होंने
आदरपूर्वक कुमारका नाम नौशेरवान् रखा था ।
४८८ ई० की वह पारस्य (ईरान)-के राजा हुवे ।
उसके पीछे उन्होंने रोमकसम्राट् पनस्तसियसको
युद्धमें पराजय किया । ४९ वत्सर राज्यभोग पीछे
५२१ ई० की वह मर गये । उसके पीछे कुमार नौशे-
रवान् राजा हुवे ।

कुवानि (हिं० स्त्री०) दुःस्वभाव, बुरी आदत ।

कुवाहुल (सं० पु०) चट्ट, कंट ।

कुबुद (हिं० पु०) वकमेद, किसी किसीका बगला ।

कुबुद्धि (सं० त्रि०) १ कुक्षिता बुद्धिर्यस्य, बहुब्रू० ।
मन्दबुद्धि, बदतमीज, ठीक समझ न रखनेवाला ।
(स्त्री०) कुक्षिता बुद्धिः, कर्मधा० । २ कुक्षित बुद्धि,
गलतफहमी, खराब समझ ।

कुवेर (सं० पु०) कुम्भति प्राच्छादयति धनम्, कुबि-एरक्
नलोपस्य । यद्वा कुक्षितं वेरं शरीरं यस्य । कुम्भलोपस्य ।
वर्ण० १ । ४० । १ विश्ववाके पुत्र यक्षाधिपति ।

“कुक्षायां किति यन्वीर्यं शरीरं वेरमुच्यते ।

कुवेरः कुशरोरत्नान् नाम्ना तेनायमकृतः ॥” (वायुपुराण)

महासुनि विश्वदाने भरद्वाज मुनिको कन्या हल-
बिलाका पाणिग्रहण किया था । हलबिलाके गर्भ और
विश्ववाके औरससे कुवेरने जन्म लिया । पितामह ब्रह्माने
उनका सुबिधातुयं देखे और समुष्ट हो कहा था—
‘हम आशीर्वाद देते हैं तुम धनपति बन सबके पूजित
हो ।’ ब्रह्माके इस आशीर्वादसे कुवेर धनके अधि-
पति बन गये । वह किसी दिन तपोवन देखनेको
उत्सुक हुवे और वहां जाकर कुछ दिन रहे । फिर
उन्हें तपस्या करनेकी इच्छा हुयी । वह बहुविध
शारीरिक कष्ट सह तपस्या करने लगे । इन्द्रियगणको
नियन्त्रित और मनको संयत कर उसी विजय विपिनमें
कभी घनाहार रह तथा कभी गलित पत्र एवं वायु
भक्षण कर उन्होंने सहस्र वत्सर तपस्या की थी । ब्रह्मा

कठोर तपस्यासे समुष्ट हो समस्त देवगणके साथ उनके निकट उपस्थित हो कहने लगे—‘वत्स ! तुम्हें हम वर देने आये हैं; जो चाहते हो, मांग लो।’ कुवेरने कहा—‘यदि आप दासके प्रति समुष्ट हुये हैं, तो ऐसा वर दीजिये जिसमें, लोकपाल बन जाऊँ।’ ब्रह्माने कहा—‘तुम्हें हम यह पुण्यकरय प्रदान करते हैं। इस पर आरौहण कर तुम यथेच्छा गमन कर सकोगे और आजमे एक लोकपालकी भांति प्रतिष्ठित होगे।’ कुवेरने ब्रह्मासे वर पाकर अपने पिता विश्रवाके निकट जाकर कहा था—‘पितः ! मैंने तपस्याकर ब्रह्मासे वर पाया है। आप अनुग्रह कर मेरा आवासस्थान निरूपण कीजिये।’ उनकी प्रार्थनाके अनुसार महासुनि विश्रवाने समुद्रमध्यस्थित हेमप्राकारवेष्टित लङ्कापुरी उनकी रहनेके लिये बताया थी। कुवेरने प्रथम लङ्कापुरीमें राजत्व किया। पीछे वह रावणके भयसे उसको छोड़ कैलासपर्वतके सन्निधानको चले गये।

(रामायण, उत्तर, ३ सर्ग)

कुवेरकी पुरीका नाम अलका है। वह यक्ष, किन्नर प्रभृतिके अधीश्वर हैं। उनका देह श्वेतवर्ण है। दन्त आठ। और चरण तीन हैं। इस प्रकार विकृत शरीर होनेसे ही उन्हें कुवेर कहते हैं।

एक समय कुशावती नगरीमें देवताओंकी सभा हुयी। कुवेर उसमें बुलाये गये। वह अपने अनुचर-वर्गकी साथ ले सभामें उपस्थित होनेके लिये जा रहे थे। पथमें उनके सखा मणिमान् यक्षने अगस्त्य मुनिको मस्तक पर निछीवन (थूक) त्याग किया। इससे अगस्त्यने कोपात्कृत हो शाप दिया था—‘मनुष्यके हाथ तुम्हारा यावताय सैन्य नष्ट हो जायगा।’ वह भी उक्त मनुष्यको देख सङ्करूप पापमें पड़ गये। पीछे भीमसेनने उन्हें उस पापसे छोड़ा दिया। भीम देखो।

कुवेरने अपने तपस्याबलसे शतयोजन दीर्घ और ७० याजन विस्तीर्ण श्वेतवर्ण सभा बनायी थी। उक्त सभाका नाम वैश्रवणी है। उसमें सर्वदा नृत्यगीत हुआ करता है। प्रसरा किन्नरी प्रभृति स्तर्गीय नर्तकी सर्वदा वहाँ उपस्थित रहती हैं। कुवेरके पुत्रका नाम मलकुबेर है। उनके प्रिय पारिषद विश्रावसु, हाहा

हुहु, तुम्बुरु, पर्वत, चित्रासन, चित्ररथ और चक्रधर्मा सर्वदा उक्त सभामें समासीन रहते हैं। (भारत, समा, १० अ०)

अथर्ववेद (८।१०।२८), शतपथब्राह्मण (१३।४।३।१०) आश्वलायनश्रौतसूत्र (१०।७), और शांखायनश्रौतसूत्र (११।२।१७)-में कुवेरके वैश्रवणका नाम मिलता है—

“कुवेरो वैश्रवणो राजा तस्य रक्षांसि विभः ।”

कुवेरका नामान्तर—श्रीद, सितोदर, कुह, ईशसख पिशाचको, इच्छावसु, विशिर, ऐलविज, एकपिङ्ग, पीलस्य, वैश्रवण, रत्नकर, यक्ष, नरधर्मन्, धनद, नरवाहन, यक्षेश्वर, धनेश्वर, निधीश्वर, किम्पुषेश्वर, हर्यक्ष, अलकाधिप और जटाधर है। प्राचीन योकी (यूनानियों) के भी एक धनेश्वर रहे। उनका नाम प्लुटस (Plutus) है।

२ नन्दोष्ठ, एक पेड़। (त्रि०) कुक्षितं वेगं शरीरं यस्य। ३ कुशरोर, बुरे निष्कवाला। (स्त्री०) ४ निन्दित देह, बुरा निष्क।

कुवेर उपाध्याय—दत्तकचन्द्रिका नामक धर्मशास्त्रसंग्रहकार। रघुनन्दनने शुद्धितत्त्व और आद्यतत्त्वमें उनका नाम उद्धृत किया है।

कुवेरक, कुवेर देखो।

कुवेरनलिनी (सं० स्त्री०) एक तीर्थ।

कुवेरनेत्र (सं० पु०) १ पाटलवृक्ष। २ सताकरञ्ज।

कुवेरबान्धव (सं० पु०) कुवेरस्य बान्धवः, १-तत्। शिव, महादेव।

कुवेराक्ष, कुवेरनेत्र देखो।

कुवेराक्षी (सं० स्त्री०) १ पाटलावृक्ष। २ काष्ठपाटला।

३ सितपाटला। ४ पेटिका, पिटारी। ५ सताकरञ्ज।

कुवेराचल (सं० पु०) कुवेरका पर्वत, कैलास।

कुवेरिण (सं० पु०) सङ्करजातिविशेष, एक मिला हुयी कौम।

कुबोलनी (हिं० स्त्री०) कुक्षितवादिनी, खराब बात कहनेवाली।

कुब्ज (सं० त्रि०) कुजतेर्वाजतेर्वा उकारस्य लोपः। १ उजतपृष्ठ, खमीदा पुष्ट, कुबड़ा। (पु०) २ वन-चटक, जङ्गली चिड़ा। ३ अपामार्ग, लटकीरा। ३ वात-

व्याधिविशेष, एक बीमारी। वायु कुपित होनेसे पृष्ठ-देश क्रमशः ठठ जाने पर कुंजरोग उत्पन्न होता है। वह दो प्रकारका है—अन्तरायाम और वहिरायाम। अन्तरायाम कुंज सम्मुख और वहिरायाम कुंज पश्चात् दिक् गत होता है।

कुंजक (सं० पु०) कौ पृथिव्यां उज्जति, कु-उज्ज ग्वल् उकारलोपः। १ पुष्पवृक्षविशेष, कोई फूलदार पेड़। उसका संस्कृत पर्याय—भद्रनक्षणी, वृक्षपुष्प, अति केशर, महासह, कण्टकाढ्य, खर्व, अलिकुल, सङ्कुल और वारिकण्टक है। हिन्दीमें उसे हरसिंघार कहते हैं। भावप्रकाशके मतानुसार वह—सुरभि, स्वादु, ईषत् कषाय, त्रिदोषशान्तिकर, बलकारक और शीतनाशक है। २ मृङ्गाटक, सिंघाड़ा। ३ पीतभिण्टी। ४ तीर्थविशेष। (गृह्यसुत्र, ६५। १५)

कुंजकण्टक (सं० पु०) श्वेतखदिर, पापडी खैरका पेड़। उसका संस्कृत पर्याय—श्वेतसार, वादर और सोमवल्कल है। भावप्रकाशके मतमें वह विशदवर्ण-जनक होता है। कुंजकण्टकके सेवनसे सुखरोग, कफ और रक्तदोष निवारित होता है। खदिर देखो।

कुंजकण्ठ (सं० पु०) त्रिदोषभेद, सरशामकी एक हालत। इसमें कण्ठ फूल जानेसे गोगो पानी पी नही सकता। कहते हैं कुंजकण्ठ सन्निपात आनेसे रोगी १३ दिनमें मर जाता है।

कुंजका (सं० स्त्री०) कुंजक वृक्ष, सेबती।

कुंजकिरात, कुंजवानन देखो।

कुंजत्व (सं० स्त्री०) १ वायुरोगभेद, पीठ टेढ़ी पड़ जानेकी बीमारी। २ कुबड़ापन।

कुंजपाण्ड्य, कुबपाण्ड्य देखो।

कुंजपुष्प (सं० पु०) पीतभिण्टीशुप, पीले फूलकी भाड़ी।

कुंजप्रसारणीतैल (सं० स्त्री०) वातव्याधिका तैल-विशेष, बाईकी बीमारीका एक तैल। १०० पल प्रसारणी ६४ शरावक जलमें काय कर १६ शरावक रह जानेसे उतार लेते हैं। फिर उसको १६ शरावक तिल-तैल, १६ शरावक दधि, १६ शरावक काष्ठीक और ३२ शरावक दुग्धके साथ पाक कर चित्रकमूल

पिप्पलीमूल, यष्टिमधु, सैन्धव, वचा, शुलफा, देवदारु, रास्ना, गजपिप्पली, गन्ध मादनीमूल, जटामांसी और भलक (अभावमें रक्त चन्दन) का दो दो पल कण्ठ डाला जाता है। सुगन्धद्रव्य यथासाम्य देना चाहिये।

(चक्रवर्त)

कुंजराल—एक पाश्चीन कवि। सूक्तिशर्णासृतमें उनेकी कविता उद्धृत हुयी है।

कुंजवामन (सं० पु०) कुबड़ा और बीना, खमीदापुश और पञ्चाकद।

कुंजविष्णुवर्धन—चालुक्यराज कीर्तिवर्मा पृथिवीवल्गभके पुत्र, सत्याश्रय पृथिवीवल्गभके ज्येष्ठ भ्राता और पूर्व-चालुक्यराजवंशके प्रतिष्ठाता। उन्होंने पूर्व उपकुलमें शाल-ङ्कायन राजवंशकी निपातित कर (६०५ ई०) बैङ्गीका सिंहासन आधिकार किया था। फिर ६१० ई० को कुंजविष्णुवर्धनने अपने भ्रातासे स्वीय राज्यको पृथक् कर लिया।

कुंजा (सं० स्त्री०) कुंज-टाप्। १ कैकयीकी कोई दासी, उसका अपर नाम मन्यरा था। पूर्वकालकी उसे गन्धर्वकन्या और दुन्दुभी कहते थे। उसने ब्रह्माके पादशेषसे मन्यरा नाम पर मानवी हो जन्मपरिग्रह किया। (रामायण, आदि, और अयोध्याकाण्ड; भारत, वन, १७५ अ०)

२ कंसकी सैरिन्धी। उसका अपर नाम त्रिवक्रा रहा। कृष्णने कंसवधोद्देशसे मथुरा जाते समय राज-पथमें उसको देख परिचय पूछा और हस्तस्थित अनु-लेपन मांगा था। कुंजाने कृष्णका भुवनमोहन रूप देख उभय भ्राताको अनुलेपन दान किया। उससे कृष्णने उसको कुंजता दूर कर पत्नी बनाया था। उस समयसे कुंजा प्रकृत सुन्दरी बन गयीं।

३ कुंजयुक्त स्त्री, कुबड़ी औरत। ४ वनचटका, जङ्गली चिड़ी।

कुंजासक (सं० स्त्री०) एक तीर्थ। वह युक्तप्रदेशके वर्तमान कुमायूं जनपदमें अवस्थित है। महाभारतमें लिखते हैं—

“भद्रकर्मैव गन्ता देवमर्च्यं यथाविधि।

न दुर्गं तिमवाप्नोति नाकष्टं च पुन्यते ॥

ततः कुंजासके गच्छे तीर्थं सेवी भराधिप।

गोसहस्रमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥” (वन, ८४। १२-४०)

‘भद्रकर्णेश्वर जाकर यथाविधि देवार्चन करनेसे मानव कभी दुर्गति नहीं पाता। वह देवलोकेमें पूजित होता है। भद्रकर्णेश्वरसे तीर्थयात्रीको कुञ्जाम्बरक जानेसे सहस्र गोदानका फल मिलता और अन्तको वह स्वर्ग-लोक पहुँचता है।’ नृसिंहपुराणके मतसे कुञ्जाम्बरकमें ह्योक्तेषु विराज करते हैं। (नृसिंहपुराण, ६५।११।)

मत्स्यपुराणको देखते वहाँ त्रिसंध्या देवी अवस्थित है।

“कुञ्जाम्बरके त्रिसंध्या तु गङ्गाहारे रविप्रिया।”

स्कन्दपुराणके हिमाद्रिखण्डमें उक्त तीर्थका विस्तृत विवरण लिखा है। नीचे उसका सारांश उद्धृत करते हैं—

‘कुञ्जाम्बरक क्षेत्रमें अनेक तीर्थ विद्यमान हैं। उनमें प्रधान कुमुद तीर्थ है। उसके दक्षिण यज्ञेश्वर नामक शिवका मन्दिर है। उसके निकट सार्वभौमतीर्थ पड़ता है। प्रति रविवारको सूर्यदेव मधुमन्त्रिकारूपसे वहाँ सलिलमें स्नान करते हैं। उसके आगे पूर्णमुखतीर्थ है। वहाँ सोमेश्वरलिङ्ग विराज करता है। पूर्णमुख तीर्थमें सकल उष्ण और शीतल उत्स उत्पन्न हुवे हैं। उक्त पूर्णतीर्थके निकट ही करवीर और अग्नितीर्थ है। आगे चल कर गायवतीर्थ, अश्वत्थतीर्थ और वासवतीर्थ मिलता है। वहाँ गणपतिभैरवका अवस्थान है। चन्द्रिका नाम्नी श्रोतस्वती प्रवाहित होती है। उसके आगे बहुविध वापीशोभित वाराहीतीर्थ और समुद्र-तीर्थ हैं। कुञ्जाम्बरकके उत्तर ऋषिशृङ्ग खड़ा है। गङ्गाके पश्चिम तपोवन है। वहाँ रामचन्द्रने तपस्या की थी। उसके नीचे शेषनागका प्रियस्थान विमलतीर्थ है। कुञ्जाम्बरकके निकट गङ्गाहारेसे उत्तर-पश्चिम रामक्षेत्र अवस्थित है।

कुञ्जालोढ़—सम्प्रदायप्रवर्तक एक व्यक्ति।

कुञ्जिका (सं० स्त्री०) कुञ्जक स्त्रियां टाप् इकारादेशश्च।

प्रत्ययस्थान् कात् पूर्वस्थात् इत्याप्य सुपः। पा० १।१।४४।१ देवीविशेष, दुर्गा। कुञ्जिकातन्त्रमें उनकी पूजापद्धति लिखी है। २ अष्टमवर्षीया कन्या, आठ सालकी लड़की।

“सप्तमिर्नामिनी साषादष्टवर्षा च कुञ्जिका।” (अन्नदाकल्प)

कुञ्जिकातन्त्र (सं० स्त्री०) कुञ्जिकायाः देव्यास्तन्त्र अर्च-नादिप्रकाशकं शास्त्रम्, इतत्। स्वनामस्थान्त तन्त्र-

विशेष। उक्त तन्त्रमें—स्त्रीदोषलक्षण, रक्तमातृ सापूजा, षष्ठीदेवीपूजा, डाङ्गुरकुमारपूजा, जयकुमारपूजा, नाडो-शुद्धि, धर्म्यात्वप्रशमन, स्नानविधि प्रवृत्ति वर्णित हुवा है। कुञ्जित (सं० त्रि०) कुञ्जः सञ्जातोऽस्य, कुञ्ज-इतच्। वक्र, नत, टेढ़ा, झुका हुवा।

कुञ्जा (हिं० पु०) कुञ्ज, कुवड़ा, डिक्का।

कुञ्ज (सं० स्त्री०) कुञ्जि आच्छादने न रम लोपः निपातनात्। अच्चेन्द्रायवचविप्रकुवादि। उच० १।१८।१ वन, अरण्य, जङ्गल। २ यज्ञकुण्ड। ३ शरण, पनाह। ४ कुण्डल, वाक्ता। ५ शकट, गाड़ी। ६ अङ्गुरीयक, अंगूठी, छल्ला।

कुञ्जद्वय (सं० पु०) कुक्षितो ब्रह्मा, कु-ब्रह्मन्-टच्। कुनद्वय-भ्यामन्तरस्याम्। पा० ५।४।१०५। कुक्षित ब्राह्मण, शूद्रयात्री ब्राह्मण।

कुम्भ (दे० स्त्री०) उदक, जल, पानी।

कुम्भम् (वै० वि०) जलार्थी, उदकप्रार्थी, पानी मांगने-वाला।

“इन्द्र-सुभः कुम्भम् उत्समा कोरिषो दतः।” (अथर्व, ५।५२।१२)

‘कुम्भम् उदकेष्वयं।’ (सायण)

कुम्भा (वै० स्त्री०) १ नदी-विशेष, कोई दरया। वह सिन्धु-नदीकी उपनदी है। आजकल कुम्भाको काबुल नदी कहते हैं। यौक-भौगोलिकोंने कोफेन (Kophen) नामसे वर्णना की है।

“मा की रसानितभा कुम्भा तसुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमतः।” (अथर्व, ५।५३।६)

कोः पृथिव्याः भा छाया, इ-तत्। २ पृथिवीकी छाया, जमीनकी परछाईं।

“राहुः कुम्भामन्त्रलगः शशाङ्कम्।” (ज्योतिःशास्त्र)

कुम्भिता भा दीप्तिः, कर्मधा०। १ कुत्सित दीप्ति, बुरी चमक। (त्रि०) ४ मन्ददीप्तियुक्त, कम चमकने-वाला।

कुम्भार्य (सं० पु०) कुत्सिता भार्या यस्य, ब्रह्मघ्नो गौण-कृतः। दुस्वरिच अथवा कुत्सिता स्त्रीका पति, खराब या बदमाश औरतका शीहर।

“तत् सङ्गम्यते नद्यं स सरणं कुम्भार्यम्।” (भागवत, ६।१५।१५)

कुम्भार्या (सं० स्त्री०) कुत्सिता भार्या, कुगति-समा०। निन्द्यस्त्री, बुरी औरत।

कुभि—एक जेनाचार्य। चाकिराजके कहनेसे मालखेड़ा (खम्बर) के राष्ट्रकूट राजा श्य गोविन्दने इनके चेलेके चेले अर्ककीर्ति नामक एक जैन अध्यापकको इदिगूर विषयमें जलमङ्गल नामक ग्राम (शक ७२५, ज्यैष्ठ शुक्ल नवमी) मायापुरके जैन-मन्दिरका व्यय चलानेकी प्रदान किया था।

कुभुज (सं० स्त्री०) कुत्सितं भुजं भोज्यम्, भुज-क्त। कुत्वाद्य, खराब खाना।

कुम्भत् (सं० पु०) कुं पृथिवीं विमर्ति, सृ-क्षिप् तुगाग मध्य। १ पर्वत, पहाड़। २ गणनामें सात संख्या।

‘कुम्भट्टे विक्रं सप्तशलाकाचक्रम ।’ (कोटिःशास्त्र)

३ शेषनाग।

कुम्भत्य (सं० पु०) कुत्सितो मृत्यः, सृ-क्षप् तुगागमः। निन्द्य मृत्य, बुरा नौकर।

कुम् (सं० अव्य०) पास्य, परे।

कुमंठो (हिं० स्त्री०) सूक्ष्म और सच जानेवाली टहनी।

कुमक (तु० स्त्री०) साहाय्य, मदद, सहारा।

कुमकी (हिं० वि०) १ साहाय्यसम्बन्धीय, मददके सुताक्षिक। (स्त्री०) २ शिष्टित हथिनी। वह हाथियोंकी पकड़नेमें साहाय्य पहुँचाती है।

कुमकुम (हिं० पु०) १ कुङ्कुम, केसर। २ कुमकुमा।

कुमकुमा (तु० पु०) वसुविशेष, एक चीज। वह जाह्नासे निर्माण किया हुआ एक अन्तःशून्यगोलक है। होलीकी कुमकुमामें अवीर या गुलाल डाल कर लोगों पर चलाते हैं। २ पात्रविशेष, एक लोटा। उसका आकार लुट्ट और मुख सङ्गीर्ण रहता है। ३ यन्त्रविशेष, किसी किस्मकी टाँकी। उससे स्पर्णकार आककार्यवृत्तित आभूषणोंके सठे हुवे दाने बैठाकर अनावर कर देते हैं। ४ काच निर्मित अन्तः-शून्य गोलक, आँचका बना हुआ पोला गोला। वह शोभाके लिये कतमे बांधकर लटका दिया जाता है।

कुमकुमी (हिं० पु०) छोटा और तन्त्र सुँडका लोटा।

कुमति (सं० स्त्री०) कुत्सिता मतिर्वृद्धिः, कुगतिःसमा०।

१ कुप्रभिप्राय, बुरा मतलब। कु ईषत् मतिः। २ अपबुद्धि, थोड़ी समझ। ३ मूर्खता, बेवकूफी। (त्रि०) कुत्सिता मतिर्यस्य, बड़बोली। ४ कुबुद्धियुक्त, बदतमीज।

‘भूतेः पचमिरारब्धे देहे देहावधोऽसकृत् ।

यच्च ममेत्यमदयाहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥’ (भागवत, १।१।१०)

कुमनीष (सं० त्रि०) कुत्सिता पत्न्य वा मनीषा बुद्धिर्यस्य, बड़बोली। दुष्टबुद्धि, अपबुद्धि, बदतमीज, कम अकल।

‘न चास्य कथिप्रिपुणेन धातुरवैति जन्तुः कुमनीषकृतीः ।’

(भागवत, १।१।१०)

कुमनीषी (सं० त्रि०) कु-मनीषा-इति। कुत्सित बुद्धियुक्त, बदतमीज।

कुमन्त्र (सं० पु०) कुत्सितो मन्त्रो मन्त्रणा, कर्मधाः।

१ कुमन्त्रणा, बुरी सलाह। २ कुत्सित मन्त्र।

कुमन्त्रणा (सं० स्त्री०) कुमन्त्र देखो।

कुमन्त्री (सं० पु०) कुत्सितो मन्त्रो, कर्मधा०। निन्द्य-मन्त्रो, बुरा वजीर।

कुमरिच (सं० पु०) मरिचवृक्ष विशेष, लाल मिर्चका पेड़। हिन्दीमें उसे ‘मिर्चा’ कहते हैं।

कुमरिया (हिं० पु०) इस्तिभेद, किसी किस्मका हाथी, वह बहुत दीर्घ एवं प्रशस्त तथा उत्कृष्ट होता है उसका पूछ देश अधिक कुब्जित नहीं रहता।

कुमरी (अ० स्त्री०) पक्षिविशेष, चिड़िया। वह कपोतिका-जातीय एक पक्षी है। कुमरी कपोत और पण्डुकके सहयोगसे उत्पन्न होती है। उसका वर्ण श्वेत रहता है। कण्ठमें हंसली बनी होती है। कुमरीका पद लोहित वर्ण और रव गम्भीर रहता है। वह बहुधा निर्जन स्थानमें वास करती है। उल्लूकी तरह कुमरी की भी बोली अशुभ समझी जाती है। हिन्दीमें उसे ‘पिढ़की’ भी कहते हैं।

कुमसुम (हिं० पु०) वृक्ष विशेष, एक पेड़। उसका काष्ठ धूसरवर्ण एवं सुहृद रहता और गृहनिर्माणादि कार्यमें लगता है। आसाममें उससे नौका प्रसृत करते हैं। कुमसुम वृक्ष बहुत उच्च रहता और बीजसे उपजता है। माघ-फाल्गुन मास उसका बीज वपन किया जाता है। कुमायूँ और पश्चिमी घाटमें कुमसुम अधिक उत्पन्न होता है।

कुमाच (हिं० पु०) पट्टवस्त्र भेद, किसी किस्मका रेशमी कपड़ा। उसे परबीमें ‘कुमाय’ कहते हैं। २ गंजीकेका

एक रङ्ग । ३ कच्छ, केवाँच । ४ भही रोटी ।
कुमायूँ—युक्तप्रदेशका एक उत्तर विभाग । वह अक्षा० २८° ५१' एवं ३१° ५' उ० और देशा० ७८° १२' तथा ८१° ३' पू० के मध्य तिब्बतकी सीमासे लेकर तराई प्रान्त पर्यन्त अवस्थित है । कुमायूँके उत्तर तिब्बत पूर्व नेपाल, दक्षिण बरेली-विभाग तथा रामपुरराज्य और पश्चिम टेहरीराज्य एवं देहरादून जिला है । युक्तप्रान्तका बहुत बड़ा विभाग होते भी उसकी लोकसंख्या अधिक नहीं । उसमें साढ़े बारह लाखसे कुछ ज्यादा आबादी है । कमिशनरका हेड कार्टर नैनीतालमें है । उसमें नैनीताल, अलमोड़ा और गढ़वाल तीन जिले शामिल हैं । विभागमें १००४१ ग्राम और २० नगर हैं । उनमें नैनीताल, काशीपुर और अलमोड़ा बहुत बड़े हैं । काशीपुर, हलद्वानी, तनकपुर, श्रीनगर, कोठहार और हारहाट व्यवसायके प्रधान स्थान हैं । बदरीनाथ और केदारनाथका मन्दिर प्रसिद्ध है । सहस्र सहस्र तीर्थयात्री वहाँ दर्शन करने जाते हैं ।

कुमायूँ-विभाग हिमालयपर अवस्थित है । उसका दक्षिणांश भावर है । वहाँ कोई स्रोतस्त्रती नहीं । बीच बीच निर्भर और प्रस्नवण दृष्ट होते हैं । १८५० ई० तक कुमायूँ निविड़ वनसे परिपूर्ण रहा । उसको लोग जस्ती और नानाविध हिंस्र जन्तुका निवास समझते और निविड़ काननमें जानिको साहस न करते थे ।

कुमायूँ नाम अधिक प्राचीन नहीं । फीरोज शाह तुगलकके समय यहिया-बिन अहमदके लिखे इतिहासमें उक्त नामका प्रथम उल्लेख मिलता है । अनेक लोग उसे सुसलमानोंका रखा हुआ अनुमान करते हैं । किन्तु कुमायूँ अति प्राचीन कालसे पुष्पास्थानकी भाँति प्रसिद्ध है । त्रिशू लम्बुङ्ग-शोभित विख्यात वर्तमान पञ्च-बुलि-गिरिमाला ब्रह्माण्डपुराणमें पञ्चकूट नामसे वर्णित है । (ब्रह्माण्डपुराण, ४०।१२) पद्म और ब्रह्मपुराणके मतसे वहाँ देवगणका आवास है ।

अकबर बादशाहके समय कुमायूँ एक सरकारके मध्य गण्य और २१ मजलमें विभक्त था ।

राजकल कुमायूँमें वारमण्डल, छह खाता, चौगरखा,

दानपुर, दारमा, धनियाकोट, धनिरज, गङ्गोली, जोहार, कालीकुमायूँ, कोटपाली, फलदाकोट, रामगढ, सीरा, मोर, असकत, कुतोली, और महरगुरी परगना लगता है । समस्त विभागका भूपरिमाण ६०० वर्गमील है ।

काली-कुमायूँ परगनेमें बहुत दिनसे प्रवाद है—
“चम्पावतके पूर्व चारालके मध्य कूर्माचल नामक एक गिरिशृङ्ग है । कूर्मावतारकाल विष्णु इसी गिरिशृङ्ग पर तीनवर्ष रहे थे । इसी कूर्माचलसे स्थानका नाम ‘कुमायूँ’ पड़ गया । त्रेतायुगमें रामने कुम्भकर्ण राजसकी मार उसका ह्रिस्मण्ड हनुमान्के हाथ प्रदान किया था । हनुमान्ने उसे कूर्माचल पर फेंक दिया । जहाँ कपाल गिरा था, वहाँ चार कोस परिमाण एक ऋद बन गया । घटोत्कचने एक बार कुमायूँ जय किया था । अङ्गराज कर्णके हाथ उसके मारे जाने पर भीमसेनने वहाँ पुत्रकी सदनतिके लिये दो देव-मन्दिर बनवा दिये । इस समय चम्पावतके पूर्व पुञ्जरके निकट ‘घटका देवता’ और उसके अनतिदूर दक्षिणांशकी पर्वत पर ‘घटकू’ नामक देवमन्दिर है । यह दोनों भीमसेनके स्थापित किये हुवे हैं । * भीमसेनने कुम्भकर्ण ऋदका तीर तोड़ डाला था । उससे यह ऋद गण्डकी (वर्तमान गिधिया) नदीके नामसे प्रवाहित हुवा ।”

भारतके अपरापर स्थानोंकी भाँति कुमायूँका भी इतिहास नहीं मिलता । लोगोंके मुखसे जो प्राचीन कथा सुनी जाती, उसके अधिकांशमें अलौकिक घटना भरी दिखाती है । सुतरां पूर्वोक्त प्रवादकी भाँति उससे ऐतिहासिक सत्य आविष्कार करना कठिन है । पूर्व-कालकी कुमायूँ सुदृ सुदृ राज्योंमें विभक्त था । कत्युरी, खस प्रभृति नाना जातियोंका अधिकार रहा ।

नदबाल देखो ।

फरिस्ता नामक सुसलमान-इतिहासमें लिखते हैं कि ई० अष्टम शताब्दकी ‘पुर’ (पुर वा पौरव) नामक कोई प्रवल पराक्रान्त राजा कुमायूँमें राजत्व करते थे ।

* उक्त दोनों मन्दिरकी वर्तमान अवस्था देखनेसे बहुत प्राचीन समझ पड़ते हैं ।

उन्होंने दिल्लीख़ानकी पराजय कर समुद्रतटपर वङ्ग-भूमिपर्यन्त सकल देश जीत लिया था। उस वंशके दूसरे किसी राजाका नाम नहीं मिलता।

ई० १० वें शताब्दके प्रारम्भकाल सोमचंद नामक किसी राजपूतने कुमायूँ जा चम्पावत नामक स्थानकी राजकन्याका पाणिग्रहण किया था। उसमें उन्हें खशुरने यौतुकस्वरूप राजदुर्ग (वर्तमान चम्पावत) दे डाला। कालक्रमसे उक्त व्यक्तिने प्रबल पराक्रान्त हो कुमायूँमें अपना आधिपत्य फैलाया था। उन्होंने तरांग-वंशीयोंके साहाय्यसे रावतराजाओंकी पराजय कर अपनेकी राजचक्रवर्ती घोषणा किया और कुमायूँके प्रधान प्रधान सामन्तोंका सभामें आह्वान कर मर्यादनुसार पद पर बैठा दिया। सोमचंदने कुमायूँकी प्राचीन शासनप्रणाली बदल डाली थी। उनके समय जोशी, विषन और सुदक्षिय प्रधान प्रधान राजकर्मचारी बनाये गये। उनसे राजनीतिक एवं सामरिक विभागमें जोयो और युद्ध, पुरोहित, पौराणिक, वैद्य प्रभृतिके कर्ममें विभक्त और पन्था न्याय नियुक्त हुये। सोमचंदके पीछे कुमायूँमें उनके जिन वंशीयोंने राजत्व किया, उनका नाम प्रागे दिया है—

राजाका नाम	राजाकाल
• सोमचंद	... १००६ ई०
आत्मचंद	} ... १०१० ११२१
• पुराचचंद (पूराचंद)	
इंद्रचंद	
• संसारचंद	
सुधाचंद	
हथोरचंद	}
सोनचंद • (सोरचंद)	
(द्विधिया अधिकार)	
• सोरचंद	११२१
हपचंद	११००
लक्ष्मोचंद	११५०
धर्मचंद	११७०
कर्मचंद	११७८
कल्याणचंद	११८७
निर्मलचंद	१२०६
नरचंद	१२२७
नानकोचंद	१२३४

रामचंद	...	१२५१ ई०
भीमचंद	...	१२६२
मिश्रचंद	...	१२८३
ध्यानचंद	...	१२८०
परंतचंद	...	१२०८
थोहरचंद	...	१२१८
कल्याणचंद	...	१२३२
• तिलोहीचंद	...	१२५२
दमरचंद	...	१२६०
धर्मचंद	...	१२७८
अभयचंद	...	१४०१
• गहड़ आनचंद	...	१४२१
हरिहरचंद	...	१४७६
उद्यानचंद	...	१४७७
आत्मचंद	...	१४७८
हरिचंद	...	१४७८
विक्रमचंद	...	१४८०
भारतीचंद	...	१४८४
रत्नचंद	...	१४९८
किरातीचंद	...	१४९४
प्रतापचंद	...	१५६०
ताराचंद	...	१५७८
भाणिकचंद	...	१५८०
कालीकल्याणचंद	...	१५८८
पूरणचंद	...	१६०८
भीमचंद	...	१६१२
• बालकल्याणचंद	...	१६१७
• बहचंद	...	१६२५

चंद नामधारी राजा समस्त कुमायूँ राज्य शासन कर न सके। एक और जिस प्रकार वह स्वाधीन भावसे राजत्व करते, उसी प्रकार पालो और बारमण्डल परगनेमें काछी तथा कत्थूरी राजा भी स्वाधीन रहते थे। कार्तिकेयपुर (वर्तमान वैद्यनाथ)-से आविष्कृत कत्थूरी राजाओंके ताम्रशासनमें उदयपाल, चरणपाल, अगपाल, महीपाल, अनन्तपाल (११२२ ई०), सोनपाल, अजयपाल प्रभृति और इन्द्रदेव राजवार (युवराज) कई सोगोका नाम पाया जाता है। गढ़वाल देखो।

पूर्वोक्त चंद नामधारी राजाओंमें गहड़, आनचंद

को साक्षात् करनेपर दिल्लीके बादशाहसे समस्त कुमायूँ राज्यकी सनद मिली थी। राजा उद्यानचंदके समय उत्तरकी सरयू, दक्षिणकी तराई और पश्चिमकी कालीसे कोशी तथा सुवाल पथान्त तकके अधिकार-भुक्त रहा। उस समय सरयूका उत्तरांग गङ्गोलीके महोती-राजा, गौर, सोर, असकत, जुहार तथा दार्म दौती-महाराज, विर्वास एवं चौदान जूमल

* दौतीकी राजावली।

१ शालिवाहनदेव।	२८ गौराजदेव।
२ शक्तिवाहनदेव।	२९ सोयमजदेव।
३ हरिचंददेव।	३० इलराजदेव।
४ श्रीरामदेव।	३१ नीलराजदेव।
५ राजदेव।	३२ फाटकशौलराजदेव।
६ विक्रमादित्यदेव।	३३ पुष्कराजदेव।
७ धर्मपाल देव।	३४ धामदेव।
८ नीलपालदेव।	३५ ब्रह्मदेव।
९ सुवराजदेव।	३६ तिलाकपालदेव।
१० भोजदेव।	३७ निरंजनदेव।
११ समरसिंहदेव।	३८ नागमजदेव।
१२ आशकदेव।	३९ रजुंगशाही।†
१३ सारङ्गदेव।	४० भूपतिशाही।
१४ गजुलदेव।	४१ हरिशाही।
१५ जयसिंह।	४२ रामशाही।
१६ अनिलदेव।	४३ पद्मशाही।
१७ विद्याराजदेव।	४४ चंद्रशाही।
१८ पुष्कोत्तरदेव।	४५ विक्रमशाही।
१९ लुनपालदेव।	४६ माताशाही।
२० अग्रान्तिदेव।	४७ रघुनाथशाही।
२१ बासन्तदेव।	४८ हरिशाही।
२२ कतारमजदेव।	४९ कृष्णशाही।
२३ सिंहमजदेव।	५० दौतीशाही।
२४ फकिमजदेव।	५१ विष्णुशाही।
२५ निधिमजदेव।	५२ प्रदोपशाही।
२६ निलयरायदेव।	५३ संभवजशाही।
२७ दयव.हुदेव।	

राजवार-प्रदत्त असकतकी राजवंशावलीके अन्तर्ग—

१ शालिवाहन।	५ ब्रह्मदेव।
२ संवयदेव।	६ शकदेव।
३ कुमारदेव।	७ दयदेव।
४ हरिदेव।	८ ब्रह्मजय।

† राजा रजचंदके समसामयिक।

राजा, कत्यूर, खूनार तथा कछणपुर कत्यूर-राजा, रामगार एवं कोटा खसिया और फरदाकोट काशी-

८ विक्रमाजित्।	४३ उदकशौल।
१० धर्मपाल।	४४ प्रीतम।
११ शाङ्गधर।	४५ धामदेव।
१२ निलयपाल।	४६ ब्रह्मदेव।
१३ भोजराज।	४७ तिलाकपालदेव।
१४ विनयपाल।	४८ अभयपालदेव।*
१५ भुवजदेव।	४९ निर्भयपालदेव।
१६ समरसिंह।	५० भारतीपाल।
१७ आशक।	५१ भेरवपाल।
१८ आशक।	५२ भूपाल।†
१९ सारङ्ग।	(?) ५३ रजपाल।
२० राज।	५४ ग्रामपाल।
२१ कामजय।	५५ शाहीपाल।
२२ शालीमजल।	५६ सुंदपाल।
२३ गणपति।	५७ भोजपाल वा भद्र।
२४ जयसिंहदेव।	५८ शिवरजपाल।
२५ शकेश्वर।	५९ अक्षपाल।
२६ शनोश्वर।	६० तेलोक्षपाल।
२७ क सिद्धि।	६१ सुन्दरपाल।
२८ विश्वनाथ।	६२ जगदीपाल।
२९ पूषिबीर।	६३ पितृजपाल।
३० बालकदेव।	६४ रायपाल।
३१ अग्रान्ति।	६५ महेंद्रपाल।
३२ बासन्ती।	६६ अवन्तपाल।
३३ कतारमज।	६७ गौरवलपाल।
३४ सोतदेव।	६८ समरसिंहपाल।
३५ सिन्धुदेव।	६९ अभयपाल।
३६ कौनदेव।	७० उत्तवपाल।
३७ रजिंदेव।	७१ विजयपाल।
३८ नीलराज।	७२ महेंद्रपाल।
३९ गौर।	७३ हिमनथपाल।
४० सादिलदेव।	७४ दलजितपाल।
४१ इतिमराज।	७५ बहादुरपाल।
४२ तिलकराज।	७६ पुष्करपाल।

* १९८८ ई० को यह कत्यूर छोड़ असकत चले गये थे।

† असकतकी राजवारकी तात्कालिक अनुसार भूपालकी पीढ़ी २८ पुखी-का नाम नहीं मिलता। उसकी पीढ़ी रजपाल राजा हुवे। चंद्रदत्त पन्थकी सुगृहीत वंशावलीके अन्तर्ग भेरवपालकी पीढ़ी रजपालकी राज्य मिला। सम्भवतः यही मत ठीक है।

राजपूतके अधिकारमें थी। राजा उद्यानचंदने कुमायूँ-के प्रसिद्ध आलेश्वर नामक शिवमन्दिरका संस्कार करा वहाँ गुजराती ब्राह्मणको पौरोहित्यमें नियुक्त किया। राजा कल्याणचंदके समय अलमोड़ा नगरमें राजधानी स्थापित हुयी। आजकल भी अलमोड़ा कुमायूँका प्रधान नगर है। कल्याणचंदके पुत्र रुद्रचंदने लाहौर जा अकबरसे साक्षात् किया था।

१७४४ ई० को अली मुहम्मद खान रुहेला सेना ले कुमायूँ जीतने गये। उस समय चंद नामधारी राजावों की चमत्ता कितनी ही घट गयी थी। सुतरां वह रुहेलोंका आक्रमण सह न सके। रुहेलोंने अलमोड़ा लूट लिया। कुमायूँ राज्यमें अति अल्पकाल सुसलमानोंका अधिकार रहा। किन्तु उस अल्प कालमें उन्होंने कुमायूँ पर जो दारुण अत्याचार किया, वह नाना स्थानोंमें भग्न देवालय और अङ्गहीन देवमूर्ति देखनेसे समझा जा सकता है। कुमायूँका जलवायु नव-विजेतावोंके पक्षमें अच्छा न ठहरा। अलीमुहम्मदके प्रधान कर्मचारियोंने सात मास रह लाख रुपये राजासे रिश्वत ले उक्त स्थान परित्याग किया था। किन्तु अलीमुहम्मद कर्मचारियोंके व्यवहारसे विरक्त हो फिर १७४५ ई० को कुमायूँके अभिमुख चल पड़े। इस बार वह कुमायूँ राज्यमें घुस न सके, बारखेड़ीके निकटस्थ गिरिपथमें पराजित हुवे। सुसलमानोंमें अलीमुहम्मदने ही सर्वप्रथम कुमायूँ अधिकार किया था। उन्होंने सुसलमान शासन शेष भी हो गया। ई० अष्टादश शताब्दीके मध्यभाग पृथ्वीनारायण नामक गोर्खा-दलपतिने अपने बाबुबलसे नेपाल राज्यका अधिकांश जीता था। फिर उनके उत्तराधिकारी १७८० ई० को कुमायूँ जय करनेके अभिप्रायसे गोर्खासेन्यके साथ काली नदी पार कर अलमोड़ा नगरमें जा उपस्थित हुवे। उस समय दुर्बल चंद्रराज राजधानी छोड़ भागे थे। उनका अधिकृत राज्य अवाध गोरखोंके हाथ लग गया। २४ वर्ष मात्र उनका अधिकार रहा। उसी बीच क्षूरप्रकृति गोरखोंने कुमायूँके लोगों पर घोर-तर अत्याचार किया था।

१८१४ ई० को अंगरेजोंने गोरखावोंके हाथसे

कुमायूँ निकाललेनेकी चेष्टा की थी। उस समय चंद नामधारी राजावोंका कोई उत्तराधिकारी न रहा। हर्षदेव जांशी नामक एक मन्त्री जीवित थे। उन्होंने अंगरेजोंका पक्ष अवलम्बन किया। गोर्खा देखे।

१८१५ ई० को गोर्खे सेन्यने कुमायूँ छोड़ा था। तदवधि कुमायूँराज्य अंगरेजोंके अधिकारभुक्त हुवा। एक कमिश्नर शासनकायं निर्वाह करते हैं।

कुमायूँमें अनेक समुच्च गिरिशृङ्ग विद्यमान हैं। उनमें नैतिपथ १६५७०, मानपथ १८००० और लुहार वा मिनमपथ १७२७० फीट जंचा है। त्रिशूलाद्रिमें त्रिशूलकी भांति तीन शृङ्ग हैं। उसका पूर्वशृङ्ग २२३४१, मध्यशृङ्ग २३०८२ और पश्चिम शृङ्ग २३३८२ फीट बैठता है। त्रिशूलाद्रिसे उत्तर नन्दादेवी नामक शृङ्ग २५६६२ फीट जंचा है।

कुमायूँमें अनेक हिन्दू देवालय हैं। उनमें ३५० स्थान प्रधान हैं। २५० शैव, ३५ वैष्णव और ६४ शाक्त मन्दिर बने हैं। मन्दिरोंमें यागेश्वर, वाघेश्वर, सोमेश्वर और त्रिशूलाद्रिका मन्दिर सबसे अच्छा हैं स्कन्दपुराणके हिमाद्रिखण्डमें त्रिशूलाद्रि और उसके निकटस्थ तीर्थसमूहका माहात्म्य विस्तृत भावसे लिखा है।

कुमायूँमें नाना जातीय व्याघ्र, द्विविध भालूक, शृगाल, वारा, नानाविध हरिण, चमरी गो, एवं नाना-प्रकार पार्वतीय पक्षी होते हैं। भावर नामक अरण्य प्रदेशमें जायों बहुत हैं।

कुमायूँमें स्वर्ण, ताम्र, लौह, जस्ता, गन्धक, सोडागा, शिलाजतु प्रभृति खनिज द्रव्य मिलते हैं।

कुमार (सं० स्त्री०) कुमारयति नन्दयति, अच्। १ निर्मल स्वर्ण, खालिस सोना। २ नेत्रतारक। (पु०) कसु कान्तो, पारन् कित्स्यादुकारशोपधायाः। कर्तः किङ्-शोपधायाः। उष् १। १२८। १ पञ्चवर्षीय बालकी, पाँच सालका लड़का। २ पुत्र, बेटा। ३ युवराज, राजाका बड़ा लड़का। नाटकादिमें युवराजको कुमार सम्बोधन करते हैं। ४ कार्तिकेय। ५ शुक। ६ अश्ववारक, सहीस। ७ अम्बिके एक पुत्र। उन्होंने कितने वैदिक मन्त्र प्रकाश किये हैं। ८ सप्तहसे तीस व

पर्यन्त पुरुष। ११ वरुणवृक्ष। १२ समुद्रवृक्ष। १३ भव-
सर्पिणीके १२वें जिन। १४ सिन्धुनद। १५ सनक,
सनन्द, सनातन, सनत्कुमार कई ऋषि। उक्त ऋषि
श्रेष्ठसे ब्रह्मचारी रहने पर कुमार कहलाते हैं।

“अनेकानि सङ्ख्याणि कुमारव्रजचारिणाम्।

दिवं गतानि विप्राणामज्ञत्वा कुलसन्ततिम् ॥” (मनु, ५। १५८)

१६ मङ्गलग्रह।

“कुमारं शक्तिहस्तं च लोहितारुं नमाम्यहम् ।” (नवग्रह-स्तोत्र)

१७ शाकद्वीपाधिपतिके कोई पुत्र। उनके अधिकृत
वर्षका नाम कुमारवर्ष है। (विष्णुपुराण, २। ४। ५८-६०)

१८ मन्त्रविशेष। (तन्त्रसार) १९ ग्रहविशेष। उसका
उपद्रव बालकों पर ही होता है। उसे स्कन्द भी कहते
हैं। महादेव कर्तृक वह सृष्ट हुवा था। (समुद्र)
२० प्रजापतिविशेष। २१ मन्त्र, श्री देव। २२ भारत-
वर्ष।

“कुमाराख्यः परिक्रान्ते हीयेऽयं दक्षिणोत्तरः।

पूर्वे क्षिप्रता बलान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः ॥”

(वासनपुराण, १३। ११)

२३ अग्नि।

“कुमारं माता युवतिः ।” (ऋक्, ५। २। १)

सायणाचार्यने उक्त ऋक्के ‘कुमार’ शब्दका
ब्राह्मणकुमार वा अग्नि दो प्रकार अर्थ लगाया है।

शास्त्रायण-ब्राह्मणमें उक्त ऋक्का इतिहास
लिखा है—‘इक्ष्वाकुवंशीय राजा वरुण अपने पुरोहित
वृथके साथ रथपर बैठे जा रहे थे। पुरोहित सारथिके
कार्य पर रहे। उसी रथके चक्रमें पड़ एक ब्राह्मण-
कुमार मर गया। उससे सन्देह हुवा—पुरोहित और
रथस्वामी राजा दोनोंमें किसकी ब्रह्महत्याका अपराध
लगा। इक्ष्वाकुगणने पुरोहितको बड़ी अपराधी ठह-
राया था। कारण वह उस समय सारथ्यमें नियुक्त रहे।
पुरोहितने मन्त्रबलसे ब्राह्मणकुमारको फिर जिंदा
दिया। इसी इतिहाससे कुमार अर्थमें रथचक्र-निहत-
ब्राह्मणकुमार अर्थ लगता है।

२४ जनपदविशेष और उसके अधिवासी।

“काशीराज कुमाराय चोरका संसकायनाः ।”

(भारत सभा, ५१। १४)

“ततः कुमारविषये चे चिन्तनमवाजयत् ।

कीमत्तापिपतिर्चै व वृक्षपुष्पपरिहसः ॥” (भारत सभा, ५१। १४)

Vol. V. 2I

उक्त जनपद पाश्चात्य भौगोलिक टलेमि-वर्णित
कम्बेरिखोन (Kamberikhon) अनुवृत्त होता है।

२५ सुनिभेद। (लिङ्गपुराण, ७। ५०) २६ पर्वतविशेष।

“कुमारपतस्याय वे च पम्पानिवासिनः ।” (शृङ्गिपुराण, १। ५)

२७ तौथविशेष। कुमारचैव द्वौ।

“कुमाराख्य प्रभासश्च तथा धन्या सरस्वती ।” (बृहन्नारतन्त्र, ५। ५०)

२८ कर्णाट-राजवंशीय मुकुन्दके पुत्र। वह शत्रुके
भयसे वङ्गदेश चले गये। २९ विजयनगरके मुकु-
रायवंशीय राजविशेष। वह कुम्भयके पुत्र थे।
१४१७ से १४२१ ई० तक उन्होंने राजत्व किया।
३० निम्नवङ्गमें प्रवाहित कोई नदी। वह अक्षा० १३° ५०'
३० और देशा० ८८° ५८' पू० की माथाभागासे
विभक्त हो पटना तथा यशोर जिलेकी भागकर अक्षा०
२३° ३२' उ० तथा देशा० ८८° २८' पू० पर नवगङ्गामें
जा मिली है। ३१ असभ्य जातिविशेष, कोई जंगली
कौम। (त्रि०) ३२ सुन्दर, खूबसूरत। ३३ अविवा-
हित, कुम्भार। ३४ एक जैन कवि। ये गोविन्दभट्टके
सबसे बड़े पुत्र और हस्तिमङ्गके बड़े भाई थे। ईस्वी
सन् १२८० (वि० सं० १३४७) में यह विद्यमान थे।
आत्मप्रवाद नामक ग्रंथ इनका बड़ाही सुन्दर और
सुपाठ्य है।

कुमारक (सं० पु०) कुमार संज्ञायां कप्। १ वरुण-
वृक्ष, एक पेड़। स्मार्थे कन्। २ बालक, लड़का।
३ राजकुमार, शाहजादा। ४ कौरव्यवंशीय नागविशेष।

(भारत, पालीक, ५७। १९)

५ अक्षिगोलक, पाण्डका ठेला।

कुमारकल्पद्रुम (सं० पु०) वैद्यकोक्त छतविशेष, एक बी।
वह स्त्रारोगका महीष है। गर्भावस्थामें उसकी खेदन
करनेसे गर्भदोष नष्ट हो जाता और बलिष्ठ पुत्र जन्म
पाता है। प्रसुत करनेका निम्नलिखित नियम
कहा है—कुङ्कुम, लवङ्ग, गुडत्वक्, वचा, अगुद,
कांचको, नीलमूल, कल्पाय कुष्ठ, शटी, मेदा, महा-
मेदा, जोरक, ऋषभक, प्रियङ्गु, त्रिफला, देवदाह,
तेजपत्र, एला, शतमूली, गांधारीफल, यष्टिमधु,
बीरकाकोली, सुस्ता, पद्म, जीवन्ती, रत्नचन्दन,
काकीली, श्यामासता, अनन्तमूल, श्वेतवाट्यालकमूल,

शरपुष्कामूल, कुशाण्ड, भूमिकुशाण्ड, मञ्जिष्ठा, चक्र-कुष्मा, शाकपर्णी, नागेश्वर, देवदाह, हरिद्रा, रेणुक और कटभीमूल समभाग दो दो तोली डालना चाहिये। काथ प्रसृत करनेमें ६। मन छागमांस, ६। मन दशमूल और २५। मन जल पड़ता है। २५। सेर शेष रहनेसे काथको उतार लेते हैं। शेषको उक्त काथ शीतल होनेसे भस्त्र, गन्धक तथा पारद दो दो तोला और मधु २ सेर मिलाने पर कुमारकल्पद्रुम बनता है।

(भेषज्यरत्नावली)

कुमारकल्याण (सं० स्त्री०) आयुर्वेदीय घृतविशेष, एक घी। शङ्खुष्यो, वचा, ब्राह्मी, कुष्ठ, त्रिफला, द्राक्षा, शर्करा, शुण्ठी, जीवन्तो, जीरक, बासा, शटी, दुर्गन्धभा, विष्व, दाहिम, सुरस पुष्कर-मूल, सूक्ष्म ला तथा गज-पिप्पली समभागमें डाल घृत प्रसृत करना चाहिये। उक्त घृतसे बालकोंके सकल प्रकार रोग आरोग्य होते हैं। विशेषतः दन्तोद्गमके लिये वह अधिक फलप्रद है।

(चक्रवर्त)

कुमारकल्याण—दाक्षिणात्यमें मदुराराज्यके एक नायक। १५६३में १५७३ ई० तक उन्होंने मदुराराज्य शासन किया। उनके समय पल्लिवार दम्बिचि-नायक विरोधी हुए। किन्तु कल्याणके यत्नसे वह मारे गये।

कुमारक्षेत्र—१ मलवारके उपकुलमें तुलुव राज्यका एक पवित्र स्थान। कुमारक्षेत्रमाहात्म्य नामक संस्कृत ग्रन्थमें उक्त तीर्थका विवरण वर्णित हुआ है। २ कुमारपर्वत। मचिसुरके उत्तर-पश्चिम सौंदर विभागमें 'कोडाचल' नामक एक पर्वत है। उसीको कुमारपर्वत वा कुमारक्षेत्र कहते हैं। कोडाचलमाहात्म्यके मतानुसार कुमारस्वामीके मन्दिरके लिये वह स्थान पुण्य-तीर्थ समझा जाता है।

"कुमारक्षेत्री कीमती प्रभासे सुरपूजिता।" (इन्द्रलीलतन्त्र, ५म पटल)

कुमारग (हिं०) कुमार देखो।

कुमारगुप्त—गुप्तवंशीय एक महाराजाधिराज, द्वितीय चन्द्रगुप्तके पंच और भुवदेवीके गर्भजात थे। उनका अपर नाम भट्टेन्द्रादित्य था।

मङ्गवार, गङ्गा, बिससङ्ग, मन्दसौर प्रभृति स्थानोंसे १५ कुमारगुप्तके समयकी खोदित शिलालिपि मिली

है। उससे समझ पड़ता है कि कुमारगुप्तने ८६ गुप्त-संवत्से १३१ गुप्तसंवत् (४१६ से ४५१ ई०) पर्यन्त राजत्व किया था।

यमुमानदीतीरस्थ मङ्गवार नामक ग्रामसे १२८ गुप्तसंवत्के खोदित शिलालिपिकमें कुमारगुप्त केवल 'मङ्गाराज' नामसे वर्णित हुए हैं। इससे अनुमान लगता कि उनके जीवनकी शेष अवस्थामें पृथ्विमित्र अथवा क्षण लोगोंने प्रबल हो गुप्तसम्राट् का पराक्रम खर्व कर डाला था।

२५ कुमारगुप्त भी गुप्तवंशीय एक महाराजाधिराज रहे। वह नरसिंहगुप्तके पुत्र और श्रीमतीदेवीके गर्भजात थे। २५ कुमारगुप्त १५ कुमारगुप्तके प्रपौत्र रहे। किसी किसी पुराविद्के मतानुसार गुप्तसम्राटोंकी जो मुद्रा मिली हैं, उनमें किसी किसीमें द्वितीय कुमारगुप्तका नाम क्रमादित्य लिखा है। उन्होंने अनुमान ५३० से ५५० ई० तक साम्राज्य शासन किया था। उनके समय मालवराज यशोधर्मने प्रबल हो गुप्तराज्य पर अपना प्रभुत्व जमाया। यशोधर्म देखो। कुमारगोपाल—टिकारीके एक राजा। इनका पूरा नाम महाराज कुमारगोपालशरण नारायण सिंह था। महाराजो राजकुंवरीकी दुहिता राधेश्वरी कुंवरीने इन्हें गोद लिया था। इनकी नाबालिगीमें वार्डस्कोर्टने इनके हिस्सेकी ८ आना रियासतका प्रबन्ध किया। १८०४ ई० की इन्हें राज्यका उत्तराधिकार मिला था। इनके समयमें ८ नई नहरें निकाल विंचाईका सुभीता किया जाने पर राज्यकी आमदनी ५० हजार बढ़ गयी।

कुमारघाती (सं० त्रि०) कुमारं हन्ति, कुमार-हन्-णिनि। कुमारक्षेत्री हनिः। पा ३।२।५१। शिशुमारक, लङ्-कोंकी मार डालनेवाला।

कुमारचन्द्र—दाक्षिणात्यके एक पाण्ड्यराज। वह वीर-गुणराजपाण्ड्यके पुत्र थे।

कुमारजीव (सं० पु०) कुमारं जीवयति, कुमार-जीव-णिच्-प्रण्। १ पुत्रजीवकवृक्ष, एक पेड़। २ कोई विख्यात चीनपण्डित। उन्होंने तिब्बत जा बहुतेरे संस्कृत-बौद्धग्रन्थ संग्रह किये थे। ४०५ ई० की चीन-

सन्नाट के आदेश पर पाठ से बौद्धायनकी साहाय्य से संस्कृत बौद्धशास्त्र प्रज्ञापरमिता और दशभूमिप्रकरण की भाषा में अनुवाद उतारा ।

कुमारतनययोगी—एक विख्यात ज्योतिर्विद् । उन्होंने बृहत्संहिता की एक टीका बनायी है ।

कुमारतन्त्र (सं० स्त्री०) रावणकृत बालरोगप्रबन्ध, रावणका बनाया हुआ बालकी की चिकित्साका एक शास्त्र । प्रथम दिवस, मास वा वर्ष नन्दा, द्वितीय दिवस, मास वा वर्ष सुनन्दा, तृतीय दिवस, मास वा वर्ष पूतना, चतुर्थ दिवस, मास वा वर्ष सुखमुष्टिका, पञ्चम—कटपूतना, षष्ठ—गङ्गुनिष्ठा, सप्तम—शुक्ल रेवती, अष्टम—पार्यका, नवम—सूतिका, दशम—निकृता, एकादश—पिलिपिच्छिका और द्वादश दिवस मास वा वर्ष कामुका नाम्नी माहका शिशु की रक्षण करती है । उस समय बालक को ज्वरादि रोग लग जाता है । (चक्रदत्त)

कुमारदत्त (सं० पुं०) निधिपतिके एक पुत्र ।

कुमारदास—एक विख्यात प्राचीन कवि । उन्होंने 'जानकी हरण' प्रभृति कई काव्य बनाये हैं । हेमिन्द्र, श्रीधरदास, रायमुकुट प्रभृति के ग्रन्थ में कुमारदास की कविता उद्धृत कियी है ।

कुमारदेव—१ कोई कवि । उन्होंने शालिवाहनसप्तशती बनायी है । २ दक्षिणात्यवासी कोङ्कदेश (चेरराज्य) के कोई राजा । वह चतुर्भुजदेवके पुत्र थे ।

कुमारदेवी (सं० स्त्री०) समुद्रगुप्त की माता ।

कुमारदेव्य (वे० पुं०) कुमारानां देव्य दाता, कुमार-दा, बाहुलकात् इत्यच् । कुमारदाता, लङ्का देनेवाला ।

‘कुमारदेवा जयतः पुनर्युधः ।’ (अक, १०।३४।०)

‘कुमारदेवाः कुमारानां दातारः ।’ (आश्व)

कुमारधारा (सं० स्त्री०) नदीविशेष, एक दरया । कुमारधारा नदी मानसरोवरसे निकली है । उसमें स्नान करने से मनुष्य जन्तुताय हो संसारके बंधन से छूट जाता है ।

(भारत, वन, ८१ पं०)

कुमारपाल—चनवलके एक राजा । इसी शताब्दी के प्रथम भाग राजपूताने की किसी अज्ञात कविने कुमारपाल-चरित्र नामक वीररसपूर्ण वंश कथा लिखी है, जिसमें

ब्रह्मासे लेकर चनवलके बौद्ध राजा कुमारपाल तक सबका वर्णन है । यह ११५० ई० की विद्यमान है ।

कुमारपाल—चालुक्यवंशीय गुजरातके एक पराक्रान्त राजा । वह दक्षिणकोणपुरके भीमदेवपुत्र हेमराजके पौत्र, देवप्रसादके पुत्र, जयसिंह-सिद्धराजके भागिनिय और रत्नसिंहादेवी (कश्मीरादेवी) के गर्भजात रहे ।

उन्होंने जयसिंहके निकट रह दक्षिणकोणमें राज्य-शासन और प्रसिद्ध जेनाचार्य हेमचन्द्रसे सदा सद्बुद्धि प्राप्त किया । जयसिंहने कुमारपालके भ्राता त्रिभुवन-पालकी गोपनमें मार डाला था । फिर वह उनकी भ्राताका अनुवर्ती बनानेकी चेष्टा में रहे । कुमारपाल उक्त व्यापार अवगत होने पर सतर्क हो गये । वह सर्वदा मन्त्रीके गृहमें लुकायित रहते थे । एक दिन जयसिंहका नियुक्त चर संधान पाकर वहाँ जा पहुँचा । किन्तु हेमचन्द्रने मिथ्याज्ञा में चरको बहला कुमारकी रक्षा की थी । उसी दिन वह भृगुकच्छ भाग गये । फिर कैलम्बपत्तनमें उपस्थित होने पर कैलम्बराजने उन्हें अपने राज्यका अर्धांश दिया था । अन्तकी प्रतिष्ठानपुर और उज्जयिनी प्रभृति स्थानोंमें कुछ दिन रह नगिन्द्रपत्तन जाकर अपने भगिनीपति (बहनोंई) श्रीकल्याणदेवके गृहमें उन्होंने अवस्थान किया । भगिनीका नाम प्रेमलदेवी था ।

संवत् ११८८ के मार्गशीर्ष मास कैलम्बराजके साहाय्यसे कुमारपालने सिद्धराजकी दमन कर पुनर्वार राज्य प्राप्त किया । उस समय उनका वयःक्रम ५० वत्सर रहा । उसके पीछे उन्होंने सुराष्ट्र, ब्राह्मणवाहक, पञ्चनद, सिन्धुसौवीर प्रभृति नानास्थान जय किये । दिग्विजय काल कुमारपालने सिन्धुके पश्चिम पारस्थ पञ्चपुर नगरकी राजकन्या पद्मिनीकी व्याहारा था । मूलस्थानमें मातृवनचके साथ उनका घोर युद्ध हुआ ।

कुमारपाल प्रथम हिन्दू रहे । उसके पीछे हेमचन्द्रके उपदेशसे उन्होंने जैनधर्म ग्रहण किया । इनका श्वकी ।

उन्होंने सकल विजित स्थानोंमें अहिंसा-धर्म फैलाया था । जैनोके पुण्यतीर्थ शत्रुजयपर्वत पर कुमारपालने पार्श्वनाथका एक बृहत् मन्दिर और १२११ संवत्की हेमचन्द्रसूरि द्वारा ‘त्रिभुवनपालविहार’

स्नान किया। प्रसिद्ध चालहारिक वाग्भट्ट उनके मन्त्री रहे।

हेमचन्द्रके मृत्युसे ६० वर्ष पीछे उनके भ्रातृपुत्र (भतीजे) अजयपालने विषदानसे उन्हें मार डाला। कुमारपालने ३० वर्ष ८ मास २७ दिन राजत्व किया था। उनके पीछे महीपालके पुत्र अजयपाल ही राजा हुए।

अनेक जैनग्रन्थोंमें कुमारपालकी कथा लिखी है। उनमें कुमारपाल-चरित, कुमारपालप्रबन्ध, हर्षावराय (१५, १६ सर्ग), उदयसामर-विरचित बाह्यपञ्चाशिका (१११ अध्याय) प्रभृति द्रष्टव्य हैं।

कुमारभट्ट, कुमारभट्ट देखो।

कुमारभास्करवर्मा—कामरूपके एक राजा। प्रायः ६४० ई० की चीनपरिव्राजक आसाम प्राये थे। उन्होंने लिखा है—‘आसाममें सुद्रकाय, भोषण आकृति, अध्वसायी, सखी और पीतवर्ण जाति रहती है। उनके राजाका नाम कुमारभास्करवर्मा है। सब लोग ब्राह्मण मतावलम्बी हैं।’

कुमारभृत्या (सं० स्त्री०) कुमाराना भृत्या भरणं पालनम्, कुमार-भृ भावे क्य-टाप्। स'शायां समननिवदिनपत-मनविदसुलशील, भूषिणः। पा १।१।८८।१ कुमारपालन, बच्चेकी परवरिश। गर्भसे निर्विघ्न सन्तान वृद्धिकरण प्रभृति कार्यको कुमारभृत्या कहते हैं। २ गर्भिणीकी परिचर्या, हामिलाकी देखभाल। धात्रीविद्याका नामान्तर कुमारभृत्या है।

“कुमारभृत्या कुशलेरनुष्ठिते भिषग्भिरासेरथ गर्भमर्मेभिः।” (रघु०, २।१२)

सुश्रुतने कुमारभृत्याका नियमादि इस प्रकार लिखा है—‘प्रसूति किंवा धात्री नियम पालन न कर अहिताचरण वा अशीचाचार कर मङ्गलाचार न करने अथवा बालक भीत, अति द्रष्ट वा तर्जित होने किंवा अतिशय रोनेसे स्नानघृह, स्नानापस्नार, शकुनी, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, सुखमण्डिका और नेगमेय वा पितृघृह—नवग्रह बालकके शरीरमें आश्रय करते हैं। बालकके शरीरमें ग्रहका लक्षण प्रकाशित होनेसे सामान्यनावाक्य प्रयोग करना उचित है।

स्नानघृह-पीड़ित बालकमें निम्नलिखित लक्षण देख पड़ते हैं—नेत्रद्वयकी स्कीतता, देहमें रक्तका गन्ध,

स्तन्यपानमें अनिच्छा, सुखकी वक्रता, नेत्रके एक पक्षकी स्थिरता, अपर पक्षकी चञ्चलता, उद्दिग्गता, चक्षुर्द्वयका चाक्षुष्य, पल्प पल्प रोदन और हस्तकी सकल अङ्गुलि वक्र कर दृढ़ सुष्टिकरण।

स्नानापस्नारघृह-कट्टक पीड़ित होने पर बालक कभी अचेतन तथा कभी सचेतन हो जाता, कभी उत्साहितकी भांति हस्त-पाद चलाता, मलमूत्र गिराता, शब्दके सहकार जम्भण लगाता और मुखमें फेन लाता है।

शकुनीघृह-पीड़ित बालकका लक्षण—अङ्गकी शिथिलता, भयसे चौंक पड़ना, शरीरमें पक्षीका गन्ध और सावविशिष्ट व्रण एवं दाहपाक विशिष्टस्फोट द्वारा सर्वाङ्ग पीड़ा है।

रेवतीघृह-कर्तृक पीड़ित होनेपर बालकका सुख रक्तवर्ण पड़ जाता, मल हरितवर्ण आता, शरीर अतिशय पाण्डुवर्ण वा श्यामवर्ण दिखाता, ज्वर सताता, सुखमें शुष्कता तथा सर्वशरीरमें वेदनाका वेग बढ़ जाता और वह संज्ञा नासिका एवं कर्ण खुजलाता है।

पूतनाघृहकी पीड़ामें अङ्गकी शिथिलता, दिन किंवा रात्रिकी स्वच्छन्द निद्राका अभाव, तरल मलका निःसरण, देहमें काकका गन्ध, वमन, लोमहर्षण और अतिशय दृष्ट्याका लक्षण प्रकाशित होता है।

अन्धपूतनाघृहकट्टक पीड़ित होने पर बालक अतिसार, कास, डिक्का, स्तन्यपानमें अनिच्छा, वमन, ज्वर, शरीरकी विवर्णता और रक्तके गन्धसे कष्ट पाता है।

शीतपूतनाघृहकी पीड़ामें शिशु मध्य मध्य चौंक उठता, अतिशय कांपता, बहुत रोदन करता, अवसन्न-भावसे सो रहता, गन्धदेशसे अव्यक्त शब्द निकाला करता, अङ्ग शिथिल रहता और अतिसारका कष्ट सहता है।

सुखमण्डिकाघृह-पीड़ित होने पर शरीरकी ज्ञानता, हृद्द, पद एवं सुखकी रक्तवर्णता, अधिक आहार, उदरका कलुषित गिरा द्वारा आहत होना और देहमें मूत्र-गन्ध लक्षण प्रकाशित होता है।

नेगमेयघृहकी पीड़ामें फेनवमन, देहके मध्य-भागका विनम्रितभाव, उद्देग, विलाप, कर्णहृदि, ज्वर,

शरीरमें वसागन्ध और मध्य मध्य संज्ञाहीनताका लक्षण बालकमें देख पड़ता है।

बालकके स्तब्धभावापन्न, स्तब्धपानमें अनिच्छा, एवं मध्य मध्य संज्ञाहीन होने किंवा रोगका सम्पूर्ण लक्षण लग जानसे रोग प्रसाध्य होता है। रोगका सम्पूर्ण लक्षण देख न पड़ते ही सावधान हो चिकित्सा करना उचित है।

स्कन्दप्रहपोद्धित शिशुको देवदारु, रास्ना तथा मधुश्च सक्लका क्वाथ और दुग्धके साथ घृत पाक कर खिलानेसे प्रतीकार पहुँचता है। स्कन्दापस्मार रोगाक्रान्त बालकको औरुक्ष तथा काकाख्यादिगणके क्वाथके साथ घृत वा दुग्ध पिलाना और वचा एवं चिंकु मिला उसके अङ्ग पर प्रलेप लगाना चाहिये। उससे बालक अचिर ही आरोग्यलाभ कर सकता है।

शकुनोपहाक्रान्त बालकके लिये यष्टिमधु, वेणामूल, बाला, शैलज, श्यामाक्षता, उत्पल, पद्मकाष्ठ, लोभ्र, प्रियङ्गु एवं मष्णिष्ठाका प्रलेप अत्यन्त उपकारो है। फिर उक्त रागमें वृषरागका विहित चूर्ण और पथ्य प्रयोग करना चाहिये।

यव, अश्वगन्धा, अर्जुन, धातकी, तिन्दुक, कुष्ठ वा सर्जरसके साथ पाक कर तैल लगाने और काकोल्या दिगणके साथ पाक किया हुआ घृत पिलानेसे रेवतीग्रह पीडित बालक प्रतीकार पाता है। कुलत्थ, शङ्खचूर्ण और सर्वगन्ध सकल द्रव्यका प्रलेप उसपर विशेष उपकारी है।

वचा, हरोतकी, गोलोमी, हरिताल, मनःशिला, कुष्ठ वा सर्जरसके साथ पाक कर तैल और तुगाचौर, मधुरक, कुष्ठ, तालिश, खदिर एवं चन्दन समस्त द्रव्यके साथ पाक कर घृत व्यवहार करनेसे पूतनारोग अच्छा हो जाता है।

सुरा, काष्ठी, कुष्ठ, हरिताल, मनःशिला तथा धूनक सकल द्रव्यके सहयोगमें पाक कर तैल लगाने और पिप्पलीमूल, मधुरवर्ग, मधु, शालपर्णी एवं छहतीके साथ पाक कर घृत खिलानेसे अन्धपूतनारोग-पीडित बालक अचिर ही प्रतीकारलाभ करता है।

‘बालकको शीतपूतना-प्रहाक्रान्त होने पर कपित्थ

सुवहा, विम्बोफल, विष्ण, प्रचीवल, नन्दो और भस्मातकका परिषेवन देना चाहिये। छागमूत्र, गोमूत्र, मुस्ता, देवदारु, कुष्ठ और सर्वगन्धा सकल द्रव्यके योगसे तैल पाक कर बालकके शरीर पर मलनेसे प्रतीकार पहुँचता है।

भृङ्गराज, अश्वगन्धा एवं हरिगन्धके रसमें पाक किया हुआ तैल और मधुरिका, दुग्ध, तुगाचौर, अक्कना, मधुर तथा स्वल्प पञ्चमूल सकल द्रव्यके साथ पाक किया हुआ घृत मुखमण्डिका रोग पर विशेष उपकारी एवं फलप्रद है।

बालक नैगमेयरोगाक्रान्त होनेसे प्रियङ्गु, सरसकाष्ठ, अनन्तमूल, शूलफा, कुटबट, गोमूत्र, दधिमण्ड और अक्षजाखी सकलके योगसे पाक किया हुआ तैल व्यवहार कराते हैं। दशमूलका क्वाथ, दुग्ध, मधुरागण और खर्जूरमस्तक सकलके योगसे पाक किया घृत खिलाना चाहिये। वचा और चिंकुको मिलाकर प्रलेप देनेसे विशेष उपकार होता है।

(सुसुत, उत्तरतन्त्र, २७-२९ पं०)

कुमारमणिभट्ट—व्रज-गोकुलके एक भाट। १७४६ ई० को इन्होंने जन्म लिया था। यह हिन्दीके सुकवि रहे। इन्होंने रसिक-रसाल नामक साहित्य ग्रन्थ लिखा है। कुमारमित्र—ऋतू-प्रातिशाख्यभाष्य-रचयिता। उनका अपर नाम विष्णुमित्र था। वक्कटके पुत्र उवटने कुमारमित्रका भाष्य देख संक्षिप्त ऋतू-प्रातिशाख्य की रचना किया है।

कुमारशु (सं० पु०) कुमार याति, कुमार-या-वृग-व्यादित्वात् कु। नगप्रादयः। उषः १।२८। राजपुत्र, शाहजादा।

कुमाररक्ष (सं० क्री०) कुमारानां रक्षणं जन्मावधि लाक्षणोपवादिक्तम्, इ-तत्। सन्तानका लाक्षणपालन, बच्चेका बचाव। सन्तानके भूमिष्ठ होनेके समयसे ही कितने ही शास्त्रविहित कार्य करना पड़ते हैं। चरकके मतानुसार—जन्मप्राप्तसे ही कर्णमूल विसना या मुखमें जलसेक करना चाहिये। उससे निष्कास-प्रश्वास-चारम्भ होता है। निष्कास चलने पर शिशुका तालु, ओष्ठ, कण्ठ और जिह्वा परिष्कार कर देना

चाहिये। परिष्कारकालका अङ्गुलिमें रुई लपेट लेते हैं। अङ्गुलिमें नख रहना न चाहिये। क्योंकि उससे किसी स्थान पर चत हो जानेकी सम्भावना है। उससे पीछे शिशुका मस्तक और तालु रुईसे पाच्छादन कर देते हैं। मधु, घृत, अमृत, ब्राह्मोरस और सुवर्णचूर्ण अनामिका अङ्गुलि द्वारा अल्प परिमाणमें उसे चटाना चाहिये। शुष्क निरापद एवं मृषिकरहित गृहमें प्रसूतिकी और परिष्कार शय्या पर बालककी सुलाते हैं, दुर्गन्ध पथरा अशुचि स्थानमें उन्हें रखना उचित नहीं। प्रसूतिकी सर्वदा सावधान रहना चाहिये, जिसमें बालक निद्रित अवस्थामें स्तन्यपान न करे। बालक को तर्कन गर्जन करके भय नहीं दिखाते। बालकके हाथमें कोई ऐसा खिलौना नहीं देना चाहिये, जिसे वह अपने मुखमें डाल सके। दीपशिखासे बालककी सर्वदा सावधान रखते हैं। वयस बढ़नेके साथ साथ उसे नीति, विनय प्रभृति सिखाते हैं। यहाँके अत्याचारसे बालककी बचानेमें सर्वदा यत्नवान् रहना चाहिये। (चरक, शरीरस्थान, ८८ व०)

कुमारराम—विजयनगर-निकटवर्ती छोसदुर्गके राजा काम्पिलरायके पुत्र। सुसलमानोंका इतिहास फरिश्ता पढ़नेसे समझ पड़ता है कि १३३८ ई० को शय सुहृन्नादने कर्णाटक जयके समय 'कम्पूला' नामक किसी राजाको आक्रमण किया था। ज्ञात होता है कि उन्हींका प्रकृत नाम काम्पिलराय रहा। मगनन्द कवि-रचित कुमारराम-चरितमें कहा है—

कर्णाटकी वनभूमिमें शृङ्गेरिनायक नामक एक जमीन्दार रहते थे। उन्होंने देवगिरिराज रामरायकी सभामें जाकर उनके अधीन कर्मको स्वीकार किया। रामरायने वासस्थान निर्माणार्थ उन्हें एक सनद दी थी। उससे पीछे रामरायके दिक्षुके सुलतानसे परास्त होने पर शृङ्गेरिनायक जम्बाभूमिकी लौट गये। वहाँ मल्लराजके निःसन्तानावस्थामें बृहन्निक परित्याग करने पर शृङ्गेरिनायक राजा हुवे। उन्हींके औरमसे काम्पिलरायने जम्बा लिया था। उन्होंने अनेक सामन्त परास्त कर कर्णाटका अधिकार अधिकार किया। काम्पिलरायके ही पुत्र कुमारराम रहे।

कुमाररामने द्वादशवर्ष वयःक्रमकाल पिता-कट्टक प्रेरित हो ससेन्य गुतिराजकी पराजय कर पकड़ लिया था। जयसैन्य द्रव्यसमूहके मध्य उन्होंने केवल १० घोड़े अपने लिये रखे। उन घोड़ोंपर उनके वैमात्रेय भ्रातृगणकी लोभ लगा था। घोड़ा मांगने पर कुमारराम कहते रहे—'भाई! आपभी मेरो भाँति घोड़ा ला सकते हैं।' उक्त कथासे दुःस्मित हो उन्होंने अपनी माताके निकट कुमारके विपन्नमें अभियोग लगाया था। विमात्रावोंके कौशलसे राजाने उन्हें सङ्कटमय स्थानकी भेजना चाहा। कुमारने प्रतिज्ञा की '७० राजावोंकी पराजय न कर मैं राज्यकी न लौटूँगा'। अनन्तर वह वरहलके राजा प्रतापरुद्रकी सभामें पहुँचे थे। वहाँ लिङ्गनृपतिके साथ उनकी बन्धुना हो गयी। उन्हीं बन्धुके यत्नसे वह प्रतापरुद्रके निकट परिचित हुवे। किन्तु कुमारके वीरत्वकी बात सुन प्रतापरुद्रको विद्वेष लगा था। कुमारने लिङ्गनृपतिके साथ ही वरहल राज्य परित्याग किया। उनको पकड़नेके लिये प्रतापरुद्रने सैन्य भेजा था। बहुसंख्यक सैन्यने कुमारके बाहुबलसे रणमें पीठ दिखायी। उसके पीछे वह कोण्डपिड्डीके रैड्डो और मुदुगलके राजा प्रभृतिकी जय करके पिताके निकट जा उपस्थित हुवे। उनकी वीरगाथा चारो ओर गायी जाने लगी। एकदिन कुण्डन्न देवताने उन्हें स्वप्नमें दर्शन दिया था। उन्होंने उक्त देवताके आदेशसे महासमारोहमें 'शूलोत्सव' किया। दाक्षिणात्यके राजा और सामन्त उस उत्सवमें सम्मिलित हुवे। उसी समय काम्पिलरायकी कनिष्ठा रानी रत्नाङ्गी वातायन (भगेखे)-से कुमारका अनुपम रूप देख काम-पीडित हुयो। एक दिन खेलते समय कुमारका गेंद रानी रत्नाङ्गीके घर जाकर गिरा था। वह किसी अनुचरकी न भेज स्वयं गेंद लेने चले गये। अपने घरमें पाकर रत्नाङ्गीने उनका हाथ पकड़ प्रवृत्ति चरितार्थ करनेके लिये अभिप्रायकी प्रकाश किया। कुमार उनकी कथामें प्रसन्न हो हाथ छोड़ा कर चल दिये। उससे रत्नाङ्गीके मनको बड़ा हो आघात लगा। उन्होंने राजासे जाकर कहा कि 'कुमार उनका सतीत्य नष्ट करने गये थे।' राजाने छोटी रानी

की बातपर विश्वास कर साधियों के साथ उनको वध करनेका आदेश दिया। राजमन्त्रीने कुमार प्रभृति को छिपा कई कैदियोंके सुख राजाके निकट भेजे थे। उसी समय दिल्लीके सुलतानने उनका राज्य आक्रमण करनेके लिये सैन्य रवाना किया था। राजसैन्य सुसल मानोंसे परास्त हो गया। फिर राजा अपने वीरपुत्र के लिये अनेक प्रकार विलाप करने लगे। समय देख कर कुमारने रणक्षेत्रमें पहुँच सुसलमानोंको पराजय किया। राजा मन्त्रीके सुखसे प्रियपुत्र द्वारा उक्त कार्य होनेकी बात सुन बार बार उनकी प्रशंसा करने लगे। रजाकुने लज्जा और खेदसे आत्महत्या की उसके पीछे दिल्लीखानने मातङ्गी नाम्नी किसी स्त्रीको युद्धमें भेजा था। स्त्रियोंसे लड़ना वीरका धर्म नहीं। उसीसे कुमारने मातङ्गीके साथ युद्ध नहीं किया। मातङ्गीके राजसैन्यको परास्त करने पर राजा भगे थे। शेषकी मातङ्गीने बन्दी बना कुमारका मस्तक दो टुकड़े कर डाला।

कुमारललिता (सं० स्त्री०) १ छन्दोविशेष, कोई बहार। प्रथम एक छल्ल एवं एक दीर्घ और उसके पीछे तीन छल्ल तथा दो दीर्घ, सप्त मात्रामें उक्त छन्द होता है। उसमें चार पाद लगते हैं।

“कुमारललिता ज स्त्रीः” (उत्तरतनाकर)

२ बालककी क्रीड़ा, बच्चेका खेल।

कुमारललिता (सं० स्त्री०) छन्दोविशेष, एक बहार। उसमें आठ आठ मात्राके चार पाद होते हैं।

कुमारवन (सं० स्त्री०) कुमारस्य कार्तिकेयस्य वनं विहारभूमिः, इ-तत्। कार्तिकेयका विहारवन।

कुमारवाची (सं० पु०) कुमारं वदति, कुमार-वच् पोतः पुन्ये णिनि । बहुलमाभीष्मो । पा १।२.८२। मयूर, कार्तिकेयका वाहन मोर।

कुमारसम्भव (सं० स्त्री०) कुमारस्य कार्तिकेयस्य सम्भवो वर्णितो यत्नः। महाकवि कालिदास-प्रणीत एक उत्कृष्ट काव्य।

कुमारसम्भव एक महाकाव्य है। उसका खूब छत्तान्त इस प्रकार है—तारक नामक कोई दुर्दान्त असुर रहा। उसने ब्रह्मा प्रदत्त वरके प्रभावसे अति

गर्वित हो देवताओंको सब सब अधिकारसे हटा कर स्वर्गराज्य पर अधिकार किया। देवता दुर्दशा-ग्रस्त हो ब्रह्माके शरणापन्न हुये। उन्होंने देवता-ओंको यह कह कर आश्वस दिया कि वह असुर कार्तिकेयसे पराजित होगा और उस समय उनकी दुर्दशा मिट जायेगी। तदनुसार देवताओंने उद्योग किया था। हरगौरीका परिणय सम्पादित होने पर कार्तिकेयने जन्म लिया। अनन्तर उन्होंने देवसैन्यके साथ समरमें भवतीर्ण हो दुष्ट तारकासुरका प्राण संहार किया। कुमारसम्भवमें उक्त छत्तान्त सर्वाक्षर वर्णित है।

कुमारसम्भव सप्तदश सर्गमें विभक्त है। उनमेंसे प्रथम सात सर्गका इस देशमें अनुशीलन है। (दाक्षि-णात्यमें अष्टम सर्गयुक्त पुस्तक मिली है) अवशिष्ट दश सर्ग एकबारगी ही अप्रचलित हैं। उक्त दश सर्ग कालिदासकी अलौकिक कवित्वशक्तिके लक्षणाक्रान्त होते भी देख नहीं पड़ते। उसका कारण अष्टमसर्गमें हरगौरीके विहारकी वर्णना है। वह अत्यन्त अस्त्रीक है। सामान्य नायक-नायिकाकी भांति उक्त विषय वर्णित हुआ है। नवममें हरगौरीके कैलासगमन और दशममें कार्तिकेयके जन्मछत्तान्तका वर्णन है। उक्त दोनों सर्गोंमें भी हरगौरीघटित अनेक अस्त्रीक वर्णना मिलती है। भारतवर्षीय लोग हरगौरीको जगत्पिता और जगन्माता मानते हैं। जगत्पिता और जगन्माता-संक्रान्त अस्त्रीक वर्णना पाठ करना अत्यन्त अनुचित समझ कुमारसम्भवके शेष दश सर्गोंको अनुशीलनरहित कर दिया गया है। आसङ्गारि-कोंने भी हरगौरीके विहारकी वर्णनाको अत्यन्त अनुचित निर्देश किया है। एकादश अवधि सप्तदश पर्यन्त सात सर्गमें कार्तिकेयकी बाण्यलोला, सेनापत्य-ग्रहण, तारकासुरके साथ संग्राम और तारकासुरका निपात समस्त छत्तान्त वर्णित हुआ है। उक्त सात सर्गोंमें अस्त्रीक वर्णनाका लेशमात्र भी नहीं। किन्तु मालूम पड़ता है कि अष्टम, नवम और दशम तीन सर्गके दोषसे ही अवशिष्ट सर्गोंभी अप्रचलित हो गये हैं।

सुननेमें पाता है कि एक कुम्भकार कालिदासका परम मित्र था। कालिदास कुमारसम्भव रचना कर उसको दिवानेके लिये ले गये। कुम्भकारने पढ़ कर उसको सन्म, खवर्ती अपक्व शराव पर रख दिया। उससे कालिदासने समझा कि उक्त पुस्तक कच्चा रहा था। उन्होंने तत्क्षणात् ग्रन्थको हाथमें उठा फाड़ कर खण्ड खण्ड कर डालीं। कुम्भकार उक्त व्यापार देख सातिशय सङ्कचित हुवा और बड़ी चेष्टासे सात सगं मात्र सङ्कलन कर सका। अवशिष्ट दश सगं विलुप्त हो गये।

कुमारसम्भवका शेषभाग इस देशमें नहीं मिलता। बङ्गालमें कुमारसम्भवका अन्यविध शेषभाग देख पड़ता है। उसके पढ़नेसे प्रतीति होती की वह कालिदासका रचित नहीं। किसी आधुनिक कविने उसे बनाया है।

कुमारसम्भवका वर्णित वृत्तान्त शिवपुराणमें भी पाया जाता है। उक्त दोनों ग्रन्थोंके इतिवृत्तकी भांति अनेक श्लोकोंका भी ऐक्य है। शिवनक्षत्रपुराण, ज्ञानचरिता, १०-१८ अध्याय और शिवउपपुराण, उत्तरखण्ड द्रष्टव्य है। योगवाशिष्ठाका भी कोई कोई श्लोक कुमारसम्भवके श्लोकसे मिल जाता है—

“.....आकाशमवा सरस्वती। शफरीं ब्रह्मविद्विषां प्रथमादृष्टि-
रिवान्वक्तव्यतः ॥” (कुमारसम्भव ४। १८, योगवाशिष्ठ ५। ११)

कुमारसम्भवके प्रथम सप्त अध्यायकी अनेक टीका है। उनमें निम्नलिखित कई प्रधान हैं—

१ श्रीकृष्णपति रचित अम्बयक्षापिका। (इस टीकामें पूर्ववर्ती जगद्धर और दिवारककी दो टीका उद्धृत हुयी है।

- २ गोपालनन्दनकृत सारावली।
- ३ गोविन्दरामकृत धीररञ्जनिका।
- ४ चरित्रवर्धनरचित शिशुहितैषिणी।
- ५ जिनभद्रनुरिक्त बालबोधिनी।
- ६ भरतमल्लिक रचित सुबोधा।
- ७ भीष्ममित्र-भैषिक-रचित सरसा।
- ८ मङ्गिनाथ-विरचित सञ्जीवनी।
- ९ सुनि मणिरत्नकृत भवचुरि।

१० रघुपतिव्रत व्याख्यासुधा।

११ विन्ध्येश्वरी-प्रसादकृत कथम्भूतिका।

१२ व्यासवत्सकृत शिशुहितैषिणी।

१३ हरिचरणदासकृत देवसेना।

एतद्विन्न मरहुरि, नारायण, प्रभाकर, लक्ष्मणति, वल्लभदेव प्रभृति विरचित भी कुमारसम्भवकी टीका मिलता है।

कुमारसम्भवके अनुकरणमें जैनाचार्य जयशेखर-सूरिने ‘कुमारसम्भव’ नामक एक काव्य बनाया है। उसमें प्रथम जैन-तीर्थङ्कर ऋषभदेवकी लीला वर्णित है। उक्त काव्यकी वर्णना ठीक कालिदासके कुमारसम्भवसे मिलती है। श्रीकृष्ण कविने तत्पुत्रराज शरभोज्ञकी परितुष्टिके लिये ‘कुमारसम्भवचम्पू’ नामक एक चम्पूकाव्य रचना किया है।

कुमारसू (सं० पु०) कुमार सूते, कुमार-सू-क्षिप्।
१ कार्तिकेयके पिता अग्नि। (स्त्री०) २ कार्तिकेयकी माता, दुर्गा। ३ गङ्गा।

कुमारसेन (सं० पु०) उत्तर-भारतकी शतद्रु नदीके पूर्व उपकुलमें अवस्थित एक राज्य। उसके उत्तर-पश्चिम शतद्रु, पूर्व बसाहिर और दक्षिण-पश्चिम भिरजी है। उसका प्रधान नगर कुमारसेन अक्षा० ३१° १८' ७० और देशा० ७७° २६' ५० पर समुद्रतटसे ५७८४ फीट ऊँचे अवस्थित है। वहाँ नदीके किनारे लोगोकी बसती अधिक है। उनमें बहुतसे नदीसे स्नानकृष्णकी आहरण करते हैं। वहाँ ३००० फीट ऊँचेसे नदी नीचे पतित होती है। कुमारसेन राजपूतोंके अधीन है। १८१६ ई०की ७ वीं फरवरीकी स्थानीय राजा और-सिंह ठाकुरने अंगरेज गवर्नमेण्टसे सनद पायी थी। कुमारस्मृति—एक प्राचीन धर्मशास्त्र। नृसिंह, नीलकण्ठ प्रभृति स्मार्तगणने कुमारस्मृतिका वचन उद्धृत किया है।

कुमारस्वामी (सं० पु०) १ कुमारिखभट्ट। २ मङ्गिनाथ-के पुत्र। उन्होंने ‘प्रतापहस्तभूषण’ नामक ग्रन्थकी रत्नापण टीका रचना की थी। ३ भास्करमिश्रके पिता। कुमारहट्ट—बङ्गालका एक गण्डायाम (कसबा) उसका अपर नाम हालिसहर या हवेली शहर है। वह

कलकत्तेसे १२ कोस उत्तर अवस्थित है। दिक्षीश्वर अकबरके समय डालीसहर परगनेके विद्यमान रजने का प्रमाण मिलता है। अकबरके पहले भी उक्त स्थान कुमारहट्ट नामसे प्रसिद्ध था। महाप्रभु चेतन्यदेवके दोहागुरु महात्मा ईश्वरपुरीने वहाँ जन्मग्रहण किया। फिर महाप्रभुके प्रिय पारिषद श्रीनिवास भी वहाँ प्रादुर्भूत हुये।

वङ्गविख्यात बलराम तर्कसिद्धान्त, कामदेव न्याय वाचस्पति प्रभृति पण्डितोंने कुमारहट्टमें ही जन्म लिया था। किसी समय वहाँ संस्कृत भाषाका बड़ा अनुशीलन हुआ। प्रवाद है—एक दिन नवहोपाधिपति राजा कृष्णचन्द्र कलकत्ता जाते कुमारहट्टके नीचे नौका लगा प्रातःस्नान करते थे। उन्होंने देखा कोई व्यक्ति नारिकेलकी मालासे विशुद्ध भावमें मन्त्रीधारण कर तर्पण करता था। राजाने विशेष कौतुकाविष्ट हो उससे पूछा—‘इस स्थानका क्या नाम है ? उसने कहा—‘कुमारहट्ट’। कुछदिन पीछे यह कृष्णचन्द्रके हाथ लगा था। उन्होंने रजकके वासस्थानका नाम खासवाटी रखदिया। रजकके वंशधर आज भी कुमारहट्टमें राजा कृष्णचन्द्र प्रदत्त प्रसाद भोग करते हैं। कुमारहट्टसे अनतिदूरवर्ती जगह्न ग्राममें एक अरण्यमय स्थान राजमहल कहलाता है। उसमें राजापुरकर नामक एक पुष्करिणी भी दृष्ट होती है। कहते हैं वह राजा प्रतापादित्यके गङ्गावासकी अन्तःपुरस्थित पुष्करिणी रही। साधकोत्तम कविरत्न रामप्रसाद सेनका भी जन्म कुमारहट्टमें ही हुआ था। रामप्रसाद

घरके पास आजगोसाईं नामक एक हाथ्यरसो-दुर्दोषक कवि रहते थे।

कुमारहट्टके मध्य अति प्राचीन दो शक्तिमूर्ति हैं। उनमें सिद्धेश्वरी सावर्णबीधरी वंश और श्यामासुन्दरी तान्त्रिका कुलाचारी एक अकिञ्चन ब्रह्मचारीकी प्रतिष्ठित हैं। वहाँ सुप्रसिद्ध चांचड़ा राजवंशके रहनेका भी चिह्न मिलता है। उसके निकटवर्ती कोला नामक ग्राममें नवाबकी हस्तीशालाके अध्यक्षके दुर्गमय प्रसादका भग्नावशेष देख पड़ता है। पहले कुमारहट्टके पार्श्वसे भागीरथी प्रवाहित होती थी। किन्तु वर्तमान ग्रामको दुर्दशा देख मानो वह हट गयी है।

कुमारहारित (सं० पु०) १ कोई दम् शास्त्रकार
२ यजुर्वेद सम्प्रदायप्रवर्तक ऋषिविशेष।

(शतपथब्राह्मण १४।५।५।२२)

कुमारा (सं० स्त्री०) त्रिसन्धिपुष्प वृक्ष, एक फूलदार पेड़।

कुमाराभिषेक (सं० पु०) कुमाराणामभिषेकोऽभिषेचनम् इ-तत्। राजपुत्रोंका आभिषेक कार्य, शाहजादोंकी तख्तनशीनी।

कुमारिका (सं० स्त्री०) कुमारी-ठन्-टाप्। मोहादिभाष। पा ५।२।१।६। १ अविवाहिता बालिका, अनन्याही लड़की। २ अनागतार्तव कन्या, जिस लड़कीको हैज आता न हो। ३ कुमारी, लड़की। ४ नवमङ्गिका, चमेली। ५ स्थूलैका, बड़ी इलायची। ६ घृतकुमारी, व्रीकुवार। ७ चतुर्का अभ्यन्तर गोलक, पाखका भीतरी देला। ८ कीटविशेष, कोई कीड़ा। ९ तीर्थविशेष। (महाभारत ३।८२।७७) ११ सेवती। १२ आयुर्वेदोक्त वर्तिविशेष। वह नेत्ररोगका औषध है। उसको ८० तिलपुष्प, ६० पिप्पली तथा तण्डूल, ५० जातीपुष्प और १६ मरिच एकत्र मर्दन कर बत्ती-जैसा बना लेते हैं। (मेघनगरवाली) ११ भारतखण्ड।

“वर्धम्यवस्थितिरिव कुमारिकायां

शिवे चान्यत्रजना निवसन्ति सर्वे।” (सिद्धान्त शिरोमणि, नीलाभाष)

१४ शतशृङ्ग राजाकी कन्या। उन्हींके नाम पर भारतवर्षका कितना ही अंश कुमारिकाखण्ड कहलाता है।

स्कन्दपुराणके कुमारिकाखण्डमें ‘कुमारिका’ नामके सम्बन्ध पर विस्तृत विवरण दिया है—

‘नारदने कहा—ऋषभकर्तृक नानाविध पाषण्ड कल्पनाकी सृष्टि की गयी थी। हे पार्थ ! वही समस्त कल्पना कलिकालमें सबको मोहित करेगी। उनके पुत्रका नाम भरत था। भरतके पुत्र शतशृङ्ग रहे। शतशृङ्गके आठ पुत्र और एक कन्या हुयी। सत्त आठ पुत्रोंका नाम इन्द्रद्वीप, कसेव, ताम्रद्वीप, गभस्तिमान्, याम्य, सौम्य, गान्धर्व तथा वाङ्मय और कन्याका नाम कुमारिका था। कुमारिकाके सुखकी आकांक्षित मेष-

शावकके मुख-जैसी रही। हे पाय ! तुम इसका कारण सुनो, वह अतिशय आश्चर्यजनक है।

'माना'वध वृक्षराजि-परिश्रमिन् और जानकी भाँति लता यत् गुल्म द्वारा वेष्टित महासामरसङ्गममें स्वप्न नामक एक तीर्थ है। एतदा कीर्ति मेघो यूथभ्रष्ट हो उनी दुर्गम देगमें जा पहुँची। वह आत्मा जो इतस्ततः भ्रमण करते करते जानके मध्य गिर पड़ी, फिर उसे निःशक्ति की शक्ति न रही। क्रमशः कुछ दृष्टान्तों से अत्यन्त व्याकुल हो उसने जानके मध्य ही प्राण त्याग दिया। देव क्रमसे कुछ दिन पीछे मस्तक भिन्न उसका समस्त शरीर उक्त महासागरसङ्गममें पतित हुआ, मस्तक जानगुल्म-आवृत्त रहनेसे वहाँ पहुँच न सका। महासागरसङ्गम तीर्थके माहात्म्यसे उस मेघोने सिंहलेश्वर शम्भुजीके कन्यारूपमें जन्म ग्रहण किया था। उसका मुख मेघोके मुखकी भाँति रहा। अन्य सकल अवयव अनुपम स्वर्गीय कामिनीकी भाँति सुन्दर थे। अप्रत्यक्ष राजाके कन्या होनेसे सब लोग आनन्दित रहे किन्तु पुरवासी कुमारोका मुख मेघोके मुख जैसा देख विस्मयमें पड़ गये। राजा कुमारीका मुख अवलोकन कर अत्यन्त दुःखित हुये। सकल अन्तःपुरवासो कहने लगे—वहाँ ही आश्रय है। ऐसा कभी देखा नहीं गया। राजकुमारोने क्रम क्रम वाक्य काल अतिक्रम कर यौवनमें पदार्पण किया था। देव-कन्याकी भाँति उनका अलौकिक सौन्दर्य दिन दिन बढ़ने लगा। एक दिन दर्पणमें अपना मुख अवलोकन करते समय पूर्व वृत्तान्त स्मरण राजकुमारीको आ गया। उन्होंने माता पिताको सम्बोधन कर कहा था,— मातः ! आप भी हमारे लिये शोक न कीजिये, यह हमारा पूर्वजन्मार्जित कर्मफल है। फिर राजकुमारोने अपना पूर्व वृत्तान्त सुना दिया। उन्होंने पूर्वजन्मका शरीर देख उस तीर्थ देशको जानके लिये पिता माता-से कहा था—“तान ! हम महासागर-सङ्गम की जयेंगे और वहाँ वास करेंगे, आप उसका विधान कर दीजिये।” राजा कुमारीके प्रस्तावमें सन्मत्त हो गये राजकुमारी बहुविध रत्नयुक्त अर्णवपोत पर आरोहण कर स्वप्नतीर्थमें उपस्थित हुईं। उस तीर्थमें उन्होंने

बहुविध दान कर दक्षिणा दी थी। जान गुल्मके मध्य अन्वेषण करनेसे अश्विचर्माविशिष्ट अपना मस्तक उन्हें देख पड़ा। अनन्तर उक्त मस्तक महासागर सङ्गमके निकट दण्ड कर सकल अश्वि सागरमें उन्होंने निक्षेप किये। उक्त तीर्थके प्रभावसे उनका मुख चन्द्रमा की भाँति मनोहर बन गया। मत्स्यलोककी किसी रमणीके मुखसे उनके मुखकी उपमा लगती न थी। सुरासुर मनुष्य सभी रूपसे माहित हो उनका प्रार्थना करने लगे। किन्तु वह किसीको चाहती न थी। फिर राजकन्याने दुष्कार तपस्या करना आरम्भ किया। एक वत्सर पूर्ण होने पर देवदेव महादेव उन्हें वर देनेके लिये उपस्थित हुये और कहने लगे—हम तुम्हें वर देनेको पाये हैं। राजकुमारो यथा विधि उनकी पूजा कर बोल उठों—देवदेव ! यदि आप सन्तुष्ट हुये हैं और हमें वर देना अपना कर्तव्य समझते हैं, तो आप इस स्थान पर सकल समय अपने रहनेका विधान कीजिये। महादेव उसी बात पर सन्मत्त हो गये। राजकुमारो भी सन्तुष्ट हुईं। हे कुम्भेश्वर ! उन्होंने राज-कुमारोने वर्करेश नामक शिवको स्थापन किया था। हमारे मुखसे उक्त वृत्तान्त सुन स्वस्तिक नामक नागिन्द्र उन्हें देखने गये।

मस्तक द्वारा गमन करते करते जो स्थान स्वस्तिक-कट्टक छलित हुआ था, वर्करेश्वर शिवके ईशान कोण उनी स्थानमें स्वस्तिक नामक एक कूप बन गया। उक्त कूप गङ्गाजलसे परिपूर्ण है। जो उस कूपको अवलोकन करता, उसको सर्वतीर्थदर्शनका फल मिलता है।

महादेवने शिवलिङ्ग स्थापित हुआ देख सन्तुष्ट हो वर दिया था—जिसका मृत शरीर यहाँ जनाया और अश्वि सञ्चय कर सागर जलमें बहाया जावेगा, वह अश्वय गति और बहुकाल स्वर्गमें वास कर सम्पूर्ण प्रजापशालो राजा की मत्स्यलोकमें जन्म पावेगा। जो भक्तिपूर्वक वर्करेश्वर की पूजा कर महासागरसङ्गममें स्नान करेगा, उनका सकल मनोरथ पूर्ण पड़ेगा। कार्तिक मासकी छत्त चतुदशो तिथिकी जो उक्त कूपमें स्नान कर भक्तिपूर्वक पिङ्गलोककी तरफ और वर्क-

रेश्मरको पचन करेगा, वह सकल पापसे मुक्त रहेगा। राजकुमारोने इसप्रकार वर लाभ कर सिंहलको गमन और सकल वृत्तान्त पिताको निवेदन किया। उनका वृत्तान्त सुन राजा और पुरवामा सभी विस्मयाविष्ट हो तीर्थकी प्रशंसा करने लगे। अनन्तर सब लोग उस महातीर्थमें जा उपस्थित हुये और जानादि तथा वकर्षर शिवकी पचन कर पुनर्वार सिंहल लौट पड़े। सिंहलेश्वरने भारतवर्षकी नव भागोंमें विभक्त कर अपने सन्तानोंको एक एक भाग दिया था। उन्हींमें एक भाग कुमारोखण्ड भी है। सकल देशोंके मध्य कुमारोखण्ड ही श्रेष्ठ है। उसमें चतुर्वर्ग सिद्ध होता है। कुमारोखण्डके मध्य गुप्तक्षेत्र ही प्रशस्त है। उक्त गुप्तक्षेत्रमें अवस्थान कर कुमारिका कुमारीश शिवकी पचन और स्नान करने प्रति दिन स्नान करती थीं। कालक्रमसे स्नान-निर्मित शिवमन्दिर जीर्ण हो गया था। कुमारिकाने पुनर्वार एक स्वयंमय शिवमन्दिर बनवा दिया। महादेवने उनकी भक्ति पर सन्तुष्ट हो कुमारलिङ्गसे निकल कर कहा था—भद्रे ! हम तुम्हारी भक्ति और दिव्यज्ञानसे सन्तुष्ट हुये हैं। तुमने यह जीर्ण मन्दिर पुनरुद्धार किया है, अतएव हम तुम्हारे नामसे विख्यात होंगे। मन्दिर निर्माण और उद्धार करनेवाला दोनों समान फलभागी हैं। अतएव आजसे कुमारीश और कुमारोश हमारे, दो नाम हुये। हे वरवर्षिणि ! तुम्हारा शेष समय प्रायः या पड़ुंचा है। किन्तु अभय का नारोको मरनेसे अग्न और माघ दोनों एक भी नहीं मिलता। हमारे आदेशसे तुम महाकालकी पतित्वमें वरण करो। कुमारिकाने रुद्रके वाक्यसे महाकालकी पतित्वमें वरण किया था। फिर वह महाकालके साथ रुद्रलोकको चली गयीं। पार्थिवोंने उन्हें आलिङ्गन कर कहा था—भद्रे ! तुमने यष्टमें प्रतिमुद्र प्रतिमूर्तिको चित्रित किया है। तुम्हीं पृथिवीकी श्रेष्ठ लक्षणा हो। आजसे तुम हमारी सखी बनो। तुम्हारा नाम चित्रलेखा होगा। वह महाकाल की वल्लभा और सकल योगिनोक मध्य श्रेष्ठा हैं। हे पार्थ ! कुमारोने इसी प्रकार शिवलिङ्गको स्थापन किया था। उसी शिवलिङ्गको वकर्षर कहते हैं।

कुमारिकाखण्ड वर्णित महीसागरसङ्गमके निकट काश्यंनगर अवस्थित है। उसीका प्राचीन नाम काश्यंतीर्थ है। काश्यं देखो। उसकी गुप्तक्षेत्र वा कुमारोतीर्थ भी कहते हैं। प्राचीन पाश्चात्य भौगोलिक पेरिप्लसने उक्त स्थानको ही पुण्यतीर्थ 'कोमार' बताया है। भारत खण्डकी दक्षिण सोमा कुमारिका है। यथा—

“अथानु नवमसोपा होपः सागरसंभतः ।

योजनानां सङ्गमो होपीत्यं दक्षिणोत्तरम् ॥

आयत्तीहाकुमारिकादागङ्गाप्रमवाच वै ।”

(ब्रह्माण्डपुराण ४० च०)

ब्रह्माण्डपुराण-वर्णित उक्त कुमारिका भारतके दक्षिण प्रान्तमें अवस्थित कुमारिका अन्तरीप समझ पड़ती है। पाश्चात्य प्राचीन भौगोलिक टलेमि और पेरिप्लसने लिखा है कि वारिगजसे कुमारी अन्तरीप पर्यन्त 'कोमारिया' स्थान है। वारिगजका वर्तमान नाम भडोच है। वह काश्यं नगरसे दक्षिण काश्यं सागरके तटपर अवस्थित है। इससे अनुमान करते हैं कि स्नानपुराण-वर्णित महीसागरसंगमसे ब्रह्माण्डपुराण वर्णित कुमारी अन्तरीप पर्यन्त विस्तृत भूभाग ही कुमारिका खण्ड है।

कुमारिकाक्षेत्र (सं० लो०) तीर्थविशेष।

कुमारिकाखण्ड (सं० लो०) १ स्नानपुराणका अंश-विशेष।

दानप्रशंसा, दानमाहात्म्य, स्वर्गादिकी अवस्थिति, पृथिवीकी उत्पत्ति, गन्ध तथा लज्जका उपाख्यान, इन्द्रायुध राजाका विवरण, महीसागरका विवरण एवं माहात्म्य, तारकासुरकी उत्पत्ति, तपस्वा और ब्रह्मासे वरलाभ, तारकासुरकर्तृक देवतागणका पराजय, तारकासुरकर्तृक स्वर्गाधिकार, शिवका विवाह, कार्तिकेयकी उत्पत्ति, कार्तिकेय-कर्तृक तारकासुरका संहार तथा कुमारीश्वर शिवका स्थापन, कुमारीश्वर शिवका माहात्म्य, पञ्चमङ्गलोपाख्यान, भुवनस्थिति, ज्योतिर्निर्णय, भुवनकोष, वकर्षर-माहात्म्य, महाकाल प्रादुर्भाव एवं माहात्म्य, युगव्यवस्था, वासुदेवमाहात्म्य, आदिश्वरमाहात्म्य, दिव्यवर्णन, नन्दभद्रादित्य-माहात्म्य, देव्युपाख्यान, हाटकेश्वर-माहात्म्य, प्रेतकल्प, जयादित्य

माहात्म्य, महाविद्यासाधन, वर्करिकोपाख्यान, काय-
सिद्धि, कीशलेखरी वत्सेश्वरीका उपाख्यान, गुप्तक्षेत्रका
माहात्म्य आदि कुमारिका खण्डमें वर्णित है। (पु०)
२ देशविशेष। कुमारिका देखी।

कुमारिकावर्ति (सं० पु०) नेत्ररोगमें रोपिणीं वर्ती,
आंखकी बीमारीकी एक सलाई। कुमारिका देखी।

कुमारिल भट्ट—ख्यातनामा मीमांसावार्तिकप्रणेता।
वह तूतात, तीतातित, भट्ट, भट्टपाद और कुमारिल
स्वामी प्रभृति नामसे भी प्रसिद्ध हैं। उन्होने आश्वला-
यनश्रुतपद्धतिकारिका, मीमांसातन्त्रवार्तिक, मानव-
श्रुतसूत्रभाष्य, श्लोकवार्तिक, लघुवार्तिक वा टुप्टीका,
हृहटीका प्रभृति ग्रन्थ रचना किये हैं।

कुमारिलने जैमिनिसूत्रके श्रवरभाष्यमें प्रथम
अध्यायके प्रथम पादका जो वार्तिक बनाया, वही
श्लोकवार्तिक कहाया है। उक्त श्लोकवार्तिककी अनेक
टीका हैं। यथा—पार्थसारथिमिश्ररचित 'न्यायरत्ना-
कर', विश्वेश्वर-कृत 'शिवार्कदीप', सुचरितमिश्र-रचित
'काशिका', इत्यादि।

श्रवरभाष्यके १म अध्यायके २य पादसे ४य
अध्याय पर्यन्त जो वार्तिक लिखा गया, उसीका नाम
तन्त्रवार्तिक वा मीमांसातन्त्रवार्तिक पड़ा है। पार्थ-
सारथि मिश्र, कमलाकर, कबीन्द्राचार्य, गोपालभट्ट,
भवदेव, सोमेश्वर प्रभृति पण्डितोंने तन्त्रवार्तिककी
टीका रचना की है।

जैमिनिसूत्रके पञ्चमसे १२ य अध्याय पर्यन्त
कुमारिलकी प्रणयन की हुयी संक्षिप्त टीकाकी टुप्टीका
टुबूझी वा लघुवार्तिक कहते हैं। वेङ्कटेश्वर दीक्षितने
'वार्तिकभरण' नाम्नी लघुवार्तिककी एक टीका
लिखी है।

अब लोग पूछ सकते हैं—कुमारिल भट्ट किस
समय और कहाँ विद्यमान थे, उनको जीवनीके सम्ब-
न्धमें कुछ मालूम हुआ है या नहीं।

शानन्दगिरिका शङ्करविजय और माधवाचार्यकृत
संक्षेप शङ्करजय पढ़नेसे समझते कि कुमारिल शङ्क-
राचार्यके समसामयिक रहे। शङ्करविजयमें* लिखा

है—कि शङ्कराचार्य मल्लिकार्जुनको देवीके दर्शनार्थ
गये थे। वहाँ एक मास रह वह बद्रपुरभट्टसे साक्षात्
करने पहुँचे। इतिपूर्व ही भट्टने जैनगुरुसे उपदेश
लाभ कर उनका मत अवलम्बन किया। अन्तको शङ्क-
राचार्यने जैन गुरुको दवा वेदमार्ग चला दिया।
उन्होंने जाकर देखा कि भट्ट अपने गुरुवध-प्रायश्चित्तके
लिये होमान्निमें जलते थे। कुमारिल भट्ट सर्वशास्त्र-
विद् मण्डनमिश्रके भगिनौपति (बहनोई) थे।

संक्षेप-शङ्कर विजयमें* माधवाचार्यने लिखा है—
“पुण्यतोयं प्रयागमें शङ्कराचार्यको भट्टपादका दर्शन
मिला। उस समय मीमांसक-प्रधान अपने किये
पापका प्रायश्चित्त करनेको तुषानलके मध्य अवलम्बन
करते और उनके प्रभाकरादि प्रिय शिष्य अनुपूर्णनयन
पार्श्वमें खड़े थे। शङ्कराचार्य उनके निकट उपस्थित
हुये। उन्होने इस प्रकार अपना परिचय प्रदान
किया है—

“बीहोके जगत्की आक्रमण करनेसे वैदिक मार्ग
एक काल विरलप्रचार हो गया। वेदमार्गरक्षा के
बोधपराजय करनेको हम पड़सि आगे बढ़े। उस समय
सशिष्य बौद्ध राजाओंके गृहमें प्रवेश कर कहने लगी—
राजन् ! हमारा शास्त्ररूप विषय आन्ध्र्य कीजिये,—
वेदपद्यको कभी न पकड़ियेगा।’ हमने बीहोसे विवाद
किया था सही, किन्तु उनका सिद्धान्त समझा न रहने
से हम उन्हें हरा न सके। शेषको उनका आन्ध्र्य ग्रहण
कर बौद्ध सिद्धान्त समझनेको हम बाध्य हुवे। एक दिन
किसी तीक्ष्णबुद्धि बौद्धने वैदिक मार्ग पर दोषारोपण
किया था उसको बात सुन हमारी आंखोंसे आंसू
टपक पड़े। पार्श्वस्थ सभी लोग हमें ताड़ गये। शेषको
क्षतनिश्चय अहिंसावादो बौद्धोंने हमें उच्चतर प्रासा-
दसे मोचे गिरा दिया। हमने कहा—‘यदि वेद सकल
सत्य हैं, तो निश्चय इस पतनसे हम न मरेगे।’ उस
पतनसे केवल हमारी एक आंख फूट गयी है।”

शङ्कराचार्य भट्टपादसे बातचीत करने लगी—
“हम आपको अपना शारीरिक भाष्य दिखाने आये

हैं। आप इसका एक वार्तिक प्रणयन कर दीजिये।” भट्टपादने उत्तर दिया—“शङ्कर! बहुतकाल हुआ हम पञ्चत्व पा चुके हैं। आप विश्वरूप मण्डनमित्रके निकट गमन कीजिये। वह आपके भाष्यका वार्तिक बना देंगे।”

उसके पीछे शङ्कराचार्यने भट्टपादको तारक ब्रह्म नाम सुनाया था। उन्होने भी संसारके सकल बन्धनसे मुक्त हो वैष्णव धाम लाभ किया।

आनन्दगिरि और माधवाचार्यकी वर्णनासे कुमारिल-भट्टके सम्बन्धमें इतना ही पता लगता है। किन्तु इस विषयमें कितना ही सन्देह है—उभयने जो लिखा वह ठीक है या नहीं। प्रथमतः उक्त दोनों ग्रन्थ शङ्कराचार्यका कई शताब्दी पीछे लिखे गये हैं। द्वितीयतः दोनों ग्रन्थोंमें ऐसी अनेक चटनाओं और व्यक्तियोंका उल्लेख मिलता, जो किसी प्रकार शङ्कराचार्यका समसामयिक माना जा नहीं सकता। शङ्कराचार्य ग्रन्थमें विखत विवरण देखो।

मध्य-भारतके अन्तर्गत इन्दौरमें मालतीमाधवकी एक हस्तलिपि मिली है। उसके छठीय पङ्क्तिके शेषमें ‘इति कुमारिलशिष्यकृते’ और छठ पङ्क्तिके शेषमें ‘इति कुमारिल स्नानीप्रसादप्राप्तवान् भवभूतिविरचिते मालतीमाधवे वृत्तोऽङ्कः’ लिखा है। फिर दशमके शेषमें ‘इति भवभूतिविरचिते मालती-माधवे दशमोऽङ्कः’ पाया जाता है। इससे किसी किसी पण्डितने भवभूतिको कुमारिलका शिष्य मान लिया है।* किन्तु भवभूतिका अपर नाम उम्मेकाचार्य किसी ग्रन्थ द्वारा प्रमाणित नहीं होता। कुमारिलके भगिनीपति मण्डनमित्रका एक नाम उम्मेकाचार्य भी था। मण्डनमित्र देखो। सुतरां एक अप्राचीन पुस्तक पर निर्भर कर भवभूतिको कुमारिका शिष्य कैसे मान सकते हैं।

शङ्कराचार्यने शारीरकभाष्य (१।१।३ सूत्रके शेष) में कुमारिलका मत उद्धृत किया है।†

पाश्चात्य पण्डितोंके मतसे ‡ “तिब्बतीय तारनाथने

अपने ‘भारतीय बौद्धधर्मके इतिहास’ में कहा है कि कुमारलील (कुमारिल) प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक धर्म-कीर्तिके समसामयिक रहे। धर्मकीर्ति भोटमें ‘सोन्-सन्-गम्-पो’ राजाके राजत्वकाल विद्यमान थे। उक्त राजाने ६२८-६३८ ई० की राज्य शासन किया। सुतरां कुमारिल भी उसी समयके लोग रहे। उसके पूर्ववर्ती वह हो नहीं सकते।”

तिब्बतीय-देशीय तारनाथ ई० १६ वें शताब्दिके लोग थे। उन्होने अपने ग्रन्थमें जो ऐतिहासिक कथा लिखी, वह झ्रमसे भरो हैं। विशेषतः उनसे बहुत शताब्द पूर्व कुमारिल आविर्भूत हुये थे। तारनाथ देखो। फिर इस पक्षमें भी धोरतर सन्देह है—उनके वर्णित ‘कुमारलील’ और ‘कुमारिल’ एकही व्यक्ति थे या नहीं। ऐसे स्थलमें तारनाथ और उक्त मतानुवर्ती पाश्चात्य विद्वानोंका मत भ्रमशून्य कैसे माना जा सकता है।

शङ्कराचार्य जब कुमारिलभट्टका मत उद्धृत करते, तब शङ्कराचार्यसे पहले उनके विद्यमान रहनेमें हम कोई सन्देह नहीं समझते।

शङ्कराचार्य-विरचित माण्डूक्य-कारिका-भाष्य पढ़नेसे समझते कि गौड़पाद उनके परमगुरु अर्थात् गुरुके गुरु रहे। उन्हीं गौड़पादने ‘सांख्यकारिका-भाष्य’ प्रणयन किया था। इन वंशवाले चीनसम्प्राटके राजत्वकाल (५५७-५८८ ई०)के बीच परमार्थ (चनृति) नामा किसी पण्डितने चीन भाषामें (गौड़पादके) सांख्यकारिका-भाष्यका अनुवाद उतारा। ऐसे स्थलमें अनुमान किया जा सकता है कि अनुवादित होनेसे अन्ततः शतवर्ष पूर्व मूलग्रन्थ बना था, सम्भवतः गौड़पाद कोई ४५७ ई० को विद्यमान रहे। गौड़पाद देखो।

उसी समय अथवा उसके कुछ पीछे कुमारिल आविर्भूत हुये। कुमारिलका मीमांसावार्तिक पढ़नेसे अनुमित हो जाता कि उन्होने दक्षिणापथमें वास किया था।* केरलोत्पत्ति नामक ग्रन्थमें कहा है—

* S. Pandurang's Gaudavaho, Intro. p. 206

† उक्त सूत्रके टीकाकार आनन्दने भी यही स्वीकार कर लिखा है—“माहमतमुपसंहरति।”

‡ Dr. Burnell's Samavidhana-Brahmana, Vol. I. p.

Vol. V. 24

VIN; Max Muller's India, what can it teach us ? p. 308N; Weber's Sanskrit Literature, p. 68N.

* (१) तथावा द्राविडादिभाषायामिव । तथावा द्राविडादि भाषायामिदं सत्यम् । (मीमांसावार्तिक १।१।८) (२) “वचिः”

“कुमारिलभट्ट नामक एक उत्तर देगवासी ब्राह्मणने मलयवर जाकर वहाँके जौहोंको पराजय किया।” मडिसुरके प्रवादानुसार कुमारिल ई० पू० ५ वें शताब्दीके लोग थे। शङ्कराचार्य पूर्ववर्ती कुमारिलके गौड़पादका समकालीन होनेसे मडिसुरका प्रवाद प्रकृत माना जा सकता है।

भारतमिह बौद्ध-जैनमतोच्छेदकारो मीमांसावा-
र्तिककार भट्ट कुमारिलने समस्तभट्टरचित आप्त-
मीमांसामें प्रतिष्ठापित स्याद्वाद मतका खण्डन किया है।
उनके उत्तरमें परवर्ती दिगम्बराचार्योंने जैनश्लोक-
वार्तिक और अपरापर विस्तार ग्रन्थ लिखके कुमारिल
पर यथेष्ट आक्रमण लगाया। इनमकल प्रतिवादका-
रियोंके मध्य आप्तमीमांसाकी अष्टसहस्री नाम्नी टीका
बनानेवाले विद्यानन्दका नाम प्रथम मिलता है।
प्रमिह जैन पण्डित माणिक्यनन्दीने अपने ‘परीक्षामुख’
नामक ग्रन्थमें आप्तमीमांसाके टीकाकार अकलङ्क और
विद्यानन्दका नाम उद्धृत किया है। फिर प्रमिह जैन
कवि और दिगम्बराचार्य प्रभावन्दने भी ‘प्रमेयकमल-
मार्तण्ड’ नामक परीक्षामुखटीकामें अकलङ्क, विद्या-
नन्द और माणिक्यनन्दीका प्रसङ्ग उल्लेख किया है।

दिगम्बरोंके सरस्वतोगण्यकी पण्डितकी देखते
माणिक्यनन्दी ५८५ विक्रम-संवत् अर्थात् ५२८ ई०को
पण्डित हुये। पण्डित बननेसे पहले अर्थात् ६४ शता-
ब्दीके प्रथम भाग माणिक्यनन्दीने ‘परीक्षामुख’ बनाया
था। हम पूर्व ही बता चुके हैं कि माणिक्यनन्दीने
विद्यानन्द पात्रकेशरीका नाम और उनकी आप्तमीमांसा
टीका अष्टमकी है। ऐसे स्थान पर विद्यानन्द
माणिक्यनन्दीके पूर्ववर्ती और ५म शताब्दीमें किसी
समयके लोग ठहरते हैं।

प्रभावन्द और जैन श्लोकवार्तिककार विद्यानन्द
दोनोंने कुमारिलभट्टका मत खण्डन किया है।

कुमारिलने वेद-मन्त्र ब्राह्मण, स्मृति महाभारत
और पुराण अतीत निम्नलिखित ग्रन्थों और ग्रन्थ-
कारोंका नाम भी उद्धृत किया है—पूर्वाचार्य ब्रह्मा-

चार्य, भाष्यकार (सम्भवतः शबरस्वामी), ब्राह्मणभाष्य-
कार, शारितभाष्यकृत, सूत्रकार, * यजुर्भाष्यकार,
वेदभाष्यकार इत्यादि।

भारतवर्ष बौद्ध धर्मसे प्रभावित होने पर वेदोक्त
क्रियाकाण्ड एक प्रकार विलुप्त हो गया था उसी, दारुण
समयमें कुमारिल, गौड़पाद प्रकृति महात्मावीने जन्म
ग्रहण किया।

माधवाचार्यने कुमारिलके सम्बन्धमें लिखा है—

‘गिरेश्वरस्य गतिः सती यः प्रामाण्यमाचार्य गिरामरादीत्।

तस्य प्रसादात् त्रिदिकसोऽपि प्रपेदिरे प्राकलयन्नाभागान्॥

अथ इत्येतादिकविदमन्तः कृत्वाकालोद्धृतसर्वतन्त्रः।

नितान्तदूरीकृतदुष्टतन्त्रस्वे लोकविश्रामितकोर्तिरस्य॥ ७६॥”

(संक्षेप शङ्करजय, ८ पृ०)

जिन्होंने गिरिसे अवतीर्ण हो वेदवचनको प्रामाण्य
ठहराया और जिनके प्रसादसे स्वर्गवासो देवतावाँने
भी पालन यज्ञभाग पाया, उन्होंने निम्नलिखित वेदमंत्रको
पढ़ा-पढ़ाया है। नटीकी भाँति समय शास्त्र अवगाहन
कर उन्होंने दुष्टतंत्रको निकाल डाला है। वहीं
महापुरुष त्रैलोक्य-परिभ्रमणशील कीर्तियंत्रस्वरूप हैं।

वास्तविक कुमारिल भट्ट ही प्रथम जौहोंको उच्छेद
करनेकी इच्छामें उनका धर्म निराकरण कर वैदिक
धर्म प्रचारमें यत्नवान् हुये थे। उनके अलग कीर्ति-स्वर-
ूप तंत्रवार्तिकपाठसे उक्त सम्बन्धमें विस्तार प्रमाण
मिलता है। संक्षेपमें उसका कुछ परिचय दिया जाता
है उन्होंने किस प्रकार बौद्धादिका मत निराकरण
किया था। पूर्वपक्षमें उन्होंने कहा है—

“अकर्तृकतया नापि कर्तृदीपिषु दृश्यति।

वेदवद्वैवाक्याविकर्तृकारणवर्जनात्॥

बुद्धवाक्यसमाख्यापि प्रवक्तव्यनिवन्धना।

तद्वद्वैवाक्यानिमिषा वा काठकाङ्गिरसादिवत्॥

यावदेवाहितं किञ्चिद्वैदप्रामाण्यमिदमेव।

तत्सर्वं बुद्धवाक्यानामिति दिशेन गम्यते॥

तेन प्रयोगशास्त्रत्वं यथा वेदस्य सप्रत्ययम्।

तथैव बुद्धवाक्यादि वक्तुं मीमांसकोऽर्हति॥”

(तन्त्रवार्तिक, १। १। १०)

“वेदका कोई कर्ता नहीं कहनेसे ही कर्तृदोषमें वेद दृष्ट हो नहीं सकते। उसी प्रकार बुद्धवाक्य भी कर्ता न कहनेसे अदृष्ट हैं। काठक और चाङ्गिरस प्रभृतिकी भांति बुद्धवाक्योंका भी धर्मीपदेश ही निमित्त है और वह प्रत्यक्षसिद्ध हैं। वेदकी प्रामाण्य सिद्धिके लिये जो कहा गया है, बुद्धवाक्यका प्रामाण्य भी उस समस्तके द्वारा हो सकता है। अतएव जिस प्रकार वेदका प्रयोग शास्त्रत्व सब लोग स्वीकार करते, बुद्धशास्त्रकी भी उसी प्रकार स्वीकार करना मोमां सकका कर्तव्य है।

“येय मानवादि स्मृतोनामप्युत्पन्नवेदमूलकत्वमुपगतम् । तान् प्रति सुतरां शास्त्रादिभिरपि शक्यं तन्मूलकमेव वक्तुं । कीदृशं शक्यं, यादुत्सन्नानां वाक्यविषये इयत्तानिष्ठमं कर्तुं ततश्च यावत् किञ्चित् किञ्चित्तमपि कालं कैश्चिद्वाङ्मयमार्गं प्रसिद्धिगतं तत्र प्रत्यक्षशास्त्राविसंवादेऽप्युत्पन्नशास्त्रावमूलकत्वमनन्यमुपपन्नमप्युक्तमिति प्रतिभातीति ।” (१ । ३)

जो मानवादि स्मृतिका भी लुप्त वेदमूलकत्व स्वीकार करते, उनके निकट सुतरां शास्त्रादि सभी अपनी स्मृतिकी वेदमूलक प्रमाणित कर सकते हैं। कोई व्यक्ति लुप्तशास्त्राके वाक्यमें इयत्तानिरूपण कर नहीं सका है। ऐसा होने पर कोई विषय किसी व्यक्ति-कर्तृक संशुद्धीत हो कुछ काश्चकेलिये प्रसिद्ध होनेसे प्रत्यक्ष शास्त्राके विरुद्ध रहते भी प्रकीर्णशास्त्रामूलक प्रमाणित हो सकता है। दोनों पक्षमें अनुभव तुल्य रहता है। (मन्वादि १ । १ । १०)

अपर पक्षमें कुमारिलने इस प्रकार प्रतिवाद किया है—

“यदि तु प्रकीर्णशास्त्रात्मकता कल्पेत ततः सर्वासां बुद्धादिस्मृतोनामपि तद्वत्तारं प्रामाण्यां प्रसज्यते । अस्मिन् च सदमिदं स एव तत्प्रकीर्णशास्त्रात्मकनिश्चिद्य प्रमाणोक्त्या । अयं विद्यमानशास्त्रात्मता एव नैऋतकाद्यापि मन्वादय एव सर्वे पुर्ववाक्यत एवोपलक्ष्यन्ते । (.....मन्वादीनां चाप्रत्यक्षवाङ्मयमूलकत्वमुपगतं किञ्चिद्व्यक्तं कल्पनीयम् ।सर्वत्रैव चादृष्टकल्पनायां तादृशमदृष्टं कल्पयितव्यं यत् दृष्टं न विद्यमानं न चादृष्टान्तरमात्मकवति । तत्र भाग्यं तावन्मन्वात् निबद्धशास्त्रवर्गैर्न विरोधापत्तिः । सर्वलोकाभास्यपक्षतद्वत्प्रामाण्यवशेन तदानीन्तनैः पुर्वैरेवैव चानिमन्वादीनामिच्छा-निष्ठादृष्टकल्पना ।”

“लुप्तशास्त्रामूलक स्मृतिकल्पना करनेसे बुद्धादि-प्रणीत स्मृतिसमूहका भी प्रामाण्य हो सकता और

प्रत्येक अन्यकार अपने अभिप्रेतकी प्राचीन शास्त्रामूलक जैसा प्रमाण कर सकता है। यदि कहिये जो समस्त शास्त्रा विद्यमान है, उन्हींमें यह समस्त विषय निरूपित है, तो मनु प्रभृतिकी भांति सभी उन शास्त्रावीसे यह समस्त विषय समझ सके होंगे। मनु प्रभृतिका सकल विषय प्रत्यक्ष सम्भव है। अतएव तादृग विज्ञानका कारण किसीप्रकार अदृष्ट मानना पड़ता है। यदि सर्वत्र अदृष्टकल्पना करना पड़े, तो ऐसी अदृष्ट कल्पना करना चाहिये जिसमें किसी दृष्ट विषयके साथ विरोध न हो और दूसरे अदृष्टान्तर उसका कारण न ठहरें। उस विषयमें भ्रान्ति स्वीकार करनेसे जो शास्त्र सम्यक् निबद्ध प्रतीयमान होने, उनपर भी विप्रतिपत्ति उपस्थित हो सकती और सबलोग जिसका प्रामाण्य मानते, उसमें भी बाधा लग सकती है। तदानीन्तन पुरुषोंने भी मनुप्रभृतिकी भ्रान्ति का अनुवर्तन किया है। फिर उसका परिहार भी मनुप्रभृतिकी मानना पड़ता है। अतएव अपनेक अदृष्टकल्पना न करनेसे काम विगड़ जाता है।

“अतस्त्वादिप्रमाणवद्वाच्यं प्रकीर्णशास्त्रात्मकत्व-कल्पनायां यत्ने यदो-च्यते स तत् प्रमाणो कुर्यात् । ये तावन्मन्वादिभ्योऽन्यैः पुर्ववाक्यैर्वा यज्ञज्ञानं तत्तावदनवगतपूर्वार्थत्वात् स्मृतिः । मन्वादोनामपि यदि प्रथमं किञ्चित् प्रमाणं सम्भवैत् ततः अरब्धं भवैत्तत्तत् । अस्मात् पुनः पुनः दुहितरं व्यति-कल्प्य मन्वादोद्विष्टोदाहरणं कृतम् । स्थानतुल्यत्वात् पुत्रादिस्थानाभ्यं हि मन्वादिः पुनः विज्ञानदीप्तिस्थानीयकारणमस्य यथा दुहितरभावं परावृत्त्य दीप्तिवत् स्मृतिं भानि मन्यते तथा मन्वादिभिः प्रत्यक्षायमन्वयपरामर्शदृष्टका-दिस्वरणं मिथोति मन्यम् ।”

स्मृत साक्षीका साध्य यथार्थ समझ जिस प्रकार कोई विचार हो नहीं सकता, उसी प्रकार लुप्त शास्त्रा-मूलक स्मृतिकल्पना भी युक्तिसङ्गत नहीं ठहरती। ऐसा होनेसे जो जिसे चाहेगा उसीकी वह वेदमूलक वता प्रमाण कर सकेगा। जिन्होंने मनुप्रभृतिके पीछे जमा लिया है, उनकी स्मृति ही नहीं सकती। कारण वह पूर्व वृत्तान्त नहीं जानते। मनुप्रभृतिके भी प्रथम यदि कोई प्रमाण सम्भव हो, तो कारण था सकता है। किन्तु न होनेसे कैसे हो सकेगा। किस कारणसे पुत्र और दुहितेकी जोड़ वन्वादीप्तिवत्ता उदाहरण दिया गया है। मनुप्रभृतिका पुत्रादिस्थानीय पुत्रज्ञान और

दौहित्रस्थानीय स्मरण रखा। अतएव जिसप्रकार दुहितेके अभावकी हेतु बना दौहित्र स्मृति भ्रान्ति ठहरती, उसी प्रकार मनुप्रभृतिका प्रत्यक्ष असम्भव होनेसे अष्टकादिकी स्मृति मिथ्या पड़ती है।”

कुमारिल भट्टने कहा है—बुद्धशास्त्र सकल मानव कल्पित है। उसे बौद्ध स्वयं स्वीकार करते हैं। सुतरां वेदकी भांति बौद्धशास्त्र निश्चय ही नहीं सकता। इस सम्बन्धमें उन्होंने इस प्रकार युक्तिको उत्पादन किया है—

“पारतन्त्र्या तादृशं अर्थमाशुपुद्गलविशेषप्रचोतत्वात् तेरेव प्रतिपन्नम्। शब्दकृतकत्वादि प्रतिपादनाच्च पार्थक्यैरपि जायते। वेदमूलत्वं पुनरपि तुल्यकचमूलत्वाच्चमयेव सम्भवाच्च मातापित्रे विदुष्टपुत्रवन्नाभापु-गच्छन्ति। अन्त्यश्च स्मृतिवाक्यमेकमेकैर्न श्रुतिवचनेन विरुद्धयते शास्त्रादि-वचनानि तु कतिपयदमदानादिवर्जं सर्वाण्येव समसत्त्वमुदश्रियद्यास्यान-विद्वद्भिरपि तथैवागम्यं व्यक्तित्वविद्वद्भावरण्येषु बुद्धादिभिः प्रचोतानि यथैवावृ-भास्य चतुर्ष्वेव निरवमित्प्रमाणेभ्यो व्यामुदं भूः समर्पितानोति न वेदमूलत्वे न सम्भाव्यते। स्वधर्मातिक्रमैश्च येन चतिथेन सता प्रवक्तृत्वप्रतिपत्तौ प्रतिपत्तौ स धर्ममविष्टं तमुपदेष्टातीति कः समानासः। उक्तञ्च परलोकविद्वद्भिरपि कुर्वाणं दूरतस्माज्ज्ञेयं। आत्मानं योमिसन्त्यतः सोऽन्यत्वेऽस्मात् कथं हित इति। बुद्धादिः पुनरयमेवातिक्रमोऽलङ्घ्यारवृत्तौ स्थितः।.....शेनैवमाह-कलि-कलुषकृतानि यानि लोके मयि निपतन्तु विमुच्यतां लोक इति। स किल लोकहितार्थं चतुर्विधमतिक्रममा ब्राह्मणवृत्तं प्रवक्तृत्वं प्रतिपद्य प्रतिवेधाति-प्रमासमर्थं ब्राह्मणैरनगुष्टं धर्मं वाङ्मज्जनाशासत् धर्मयोक्ता यथात्मनोऽङ्गी-कृत्य परानुवर्तयन्तस्मान्निवेन विधेरेव गुणैः स्रूयते।”.....

“न च शास्त्रान्तरोच्छेदः कदाचिदपि विद्यते।

प्रागुक्ताह दैनित्यत्वाच्च तेषां दृष्टमूलता ॥”

“न ह्येषां पूर्वोक्तेन न्यायेन श्रुतिप्रतिबद्धानां स्मृत्युत्पत्त्यनुमानसाम-वांसि।”

‘इनका अप्राधान्य उन्होंने ही स्वीकार किया है। कारण यह सकल स्मर्यमाण पुरुष-कट्टक प्रणीत हैं। उन्होंने शब्दकी अनित्यता मानी है। सुतरां इनका अप्राधान्य अन्य भी बनायास समझ सकते हैं। किन्तु सत्त्वावयवतः उन्होंने पित्र-मातृ-हृषी पुत्रकी भांति इनका वेदमूलत्व अस्वीकार नहीं किया। दूसरोंका कहना है कि सम्भवतः एक स्मृतिवाक्य किसी श्रुति-वाक्यके विरुद्ध हो सकता है। किन्तु दमदनादि कतिपयकी छोड़ शास्त्रादि सकल वाक्य चतुर्दश विद्या-स्थानोंके विरुद्ध हैं। वेदविद्वद्भावारो बुद्धादिप्रचोत शास्त्रकलाप शूद्रजातिसे भी निरुद्ध मूढतम व्यक्ति-

योंकी समर्पित हुआ है। अतएव उस सारे शास्त्रके वेदमूलत्वकी सम्भावना भी नहीं। जिस चतुर्विधने अपना धर्म परित्याग कर धर्मोपदेष्टृत्व और दूसरेका प्रतिषेध स्वीकार किया है, उसके यथार्थ उपदेश देनेका विज्ञास किसके हृदयमें आ सकता है। अतएव जो परलोकविरुद्ध कार्य अनुष्ठान करते, उनको दूरसे ही परित्याग करना उचित है। कारण जो अपना ही अनिष्ट आचरण कर सकते हैं, उनको दूसरेका मङ्गला-काङ्क्षी होना किसी प्रकार सम्भव नहीं। बुद्ध प्रभृति सब लोग इस प्रकारके परलोकविरुद्ध कार्यानुष्ठान-की ही अपेक्षा समझते हैं। अतएव बुद्ध कहा करते थे—‘जो समस्त कर्म कलमें कलुषित हुआ है, वह सब हममें उपस्थित हो जावे। संसारमें अन्य सकल लोग उसे परित्याग करें।’ बुद्धदेवने लोकहितके लिये ही अपना प्रशंसित चरित्रधर्म छोड़ ब्राह्मणवृत्ति धर्मोपदेष्टृत्व अवलम्बन कर प्रतिषेध अतिक्रम कर न सकनेवाले ब्राह्मणोंके कट्टक अप्रकाशित धर्म साधारणका उपदेश किया है। उन्होंने स्वीय धर्मका उत्पीड़न करके भी दूसरे पर अनुग्रह रखा है। ऐसे ही नाना-विध वाक्यद्वारा बौद्ध उनका स्तव करते हैं।...शास्त्रा-न्तरका उच्छेद कदाचित् हो नहीं सकता। कारण पक्षी ही प्रतिपादित हो चुका है कि वह नित्य है। अतएव इनकी दुष्टमूलता भी सम्भव नहीं होती।... प्रतिविरुद्ध रहनेसे बौद्ध शास्त्र द्वारा श्रुतिको अनुमान कैसे हो सकता है।

“यथैव विपरोतासं बह्वदृष्ट्योभादि प्रत्यक्षानुमानोपमानार्थापत्तिप्राययुक्ति-मूलनिबद्धानि सांख्ययोगपाञ्चरात्रपाण्डपतशाकनिर्णयपरिग्रहीतधर्माधर्म-निबन्धनानि विषयविकल्पावशीकरणीयाटमोन्मादनादिसमर्थकानि प्रवक्तव्यवि-काशचित्कसिद्धिनिर्दग्गनवर्तमानास्मृत्यवचनदमदानादयश्चिन्तित्वात् तिसंवादि-साकार्थगन्धवासितजोविकाराप्रायार्थान्तरोपदेशीयानि च वाङ्मज्जनादि केषां-चारनिश्चयकोजनाचरणनिबन्धनानि तेषामेवैतच्छ्रुतिविरोधहेतुदर्थनामानन-पेक्षणीयत्वं प्रतिपादयते न चेत्तत् विद्वद्भिरनन्तरे निरूपितं न चावलम्बनीयं शास्त्रादिशब्दवाचकत्वमुज्ज्वलप्रतिपत्तिवत्त्वात्।

यदि ब्रह्मादरेषां न कथं ताप्रमाणता।

अथर्ववेति मन्त्राभ्ये भवेयुः समदृष्टयः।

शेभावे कथं हेतुर्निकलिकावयवे न वा।

यथैव पश्यन्ति सादिवागव्यक्तिसमाप्रयुः।

ब्राह्मणचरित्रप्रचीतत्वाविशेषे च मानवादिबदेवश्रुतिमूलकमाश्रित्य
सचेतसोऽपि श्रुतिसंस्मृतिविहितैः सह विरुद्धमेव प्रतिपद्येत् ।

“तेन यद्यपि लभ्यते तत्तुः क्षात्रिचिरोचिनि ।

मन्वाद्युक्ता तथाप्यस्मिन् तदेवोपयुज्यते ।

यद्योमांसस्य सिद्धस्य ये ह्यव्यक्तविरोचिनः ।

अनिर्वाक्यं तान् सर्वान् धर्मसंविद्विन् लभते ।”

“विरुद्ध प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, पर्याप्तति और बहुततर युक्ति द्वारा निश्चय साध्य, योग, पञ्चरात्र, पाश-पत तथा शाक्य नियन्त्र प्रभृति जो समस्त धर्माधर्मके निमित्त परिगृहीत और विषविकित्ता, वशीकरण, उच्चाटन, उन्मादादिके कारण जो समस्त औषध एवं मन्त्र निरूपित हुवे हैं, उनकी कभी कभी सिद्धि देख पड़ती है। अहिंसा, मत्स्यवाक्य, दम, दान और दया प्रभृति जो दो-एक विषय श्रुतिस्मृतिके अविरुद्ध प्रति-पादित हुवे हैं, वह भी जीविकानिर्वाहके निमित्त ही कल्पना किये गये हैं। स्नेह्याचार, मित्रक भोजन और आचरणके पथ जो निरूपित हुवा है, वह क्या प्रमूलक नहीं! श्रुतिके विरोध हेतु यह समस्त अना-दरणीय हैं। ऐसा भी कह नहीं सकते, किस अधिक-रणमें निमित्त निरूपित हुवा है। प्रसिद्ध पदार्थवाचक बुद्धिकी भांति अतिप्रसिद्ध जैसा कुछ भी कहा जा नहीं सकता। यदि अनादर कर इनकी अप्रमाणता न बताया जाये, तो सभी समझ सकते हैं कि उनका अप्रामाण्य स्थिर करना असाध्य है। ऐसा होनेसे वह समदृष्टि भी रह सकते हैं। शोभा, सौकर्य, हेतुकथन और कलिकालवशतः- यज्ञके विहित पशुहिंसादि भी अवैधेय स्थिर कर छोड़ सकते हैं। ब्राह्मण किंवा क्षत्रियप्रचीत कह विशेष स्थिर न कर मानवादिकी भांति इन्हें भी भ्रान्तिमूलक मान पण्डित श्रुतिस्मृति-विषयमें सन्दिहान हो सकते हैं। यदि मन्वादि प्रचीत कोई स्मृति वेदविरोधिनी हो, तो उसका मत छोड़ इस (वेद) में जो विहित है, उसीको अवलम्बन करना चाहिये। प्रसिद्ध वेदिक मतके विरुद्ध जो समस्त धर्म हैं, उसे न छोड़नेसे कैसे धर्म शुद्ध हो सकती है।

कुमारिलके मतमें कोई शास्त्र एककाल ही शास्त्रकी

भांति प्रतिपन्न हो नहीं सकता। उन्होंने लिखा है—

“असाधुशब्दभूयिष्ठाः शाक्यजैनागमादयः ।

असन्निवन्धनत्वाच्च शास्त्रत्वं न प्रतीयते ॥”

“शाक्य और जेनागम प्रभृतिमें अनेक अपभ्रंश शब्द हैं और समस्त ही विपरीत हैं। अतएव वह शास्त्र जैसा समझ नहीं पड़ता ।”

यदि कहिये—किसी किसी स्मृतिशास्त्रमें भी बौद्धशास्त्रादिकी भांति वेदविरुद्ध कथा है, तो उसके उत्तरमें कुमारिल भट्टने लिखा है—

“तेन वेदविरुद्धानां स सुतीनामप्रमाणता ।

बह्व्युत्पन्नमानत्वा न्यूना हि ता यतः ॥”

“वेदविरुद्ध स्मृतिका प्रामाण्य नहीं। अपने विरुद्ध श्रुति रक्षनेसे वह श्रुतिमूलक हो सकती है।”

“वेदे यद्योपलभ्यते नैवं शाक्यादिभाषिते ।

प्रयोग नियमाभावादतोपास्य न शास्त्रता ॥”

वेदमें जो प्रकार प्रयोगनियमादि उपलब्धित होता, शाक्यादि-वर्णित ग्रन्थमें वह देख नहीं पड़ता। अत एव उसका शास्त्रत्व कैसे माना जा सकता है।

कुमारिलके समयमें भी बौद्धोंके प्रवल रहनेका प्रमाण मिलता है—

“शाक्यादयश्च सर्वे व कुबौषा धर्मदेशनाम् ।

हेतुशालविनिर्मुक्ता न कदाचन कुर्वन्ते ॥”

न च तेर्वेदमूलत्वमुच्यते गीतमादिवत् ।

हेतवशाभिधीयन्ते धर्माद दूरतरं स्थिताः ॥”

“शाक्य सर्वत्र धर्मोपदेश प्रदान करते हैं। वह जो उपदेश देते, उसके भी अनेक हेतु दिखलाते हैं। शाक्य लोग गीतमादिकी भांति अपने शास्त्रकी वेदमूलक नहीं कहते और धर्मविरुद्ध हेतुसमूहका उल्लेख करते हैं।”

कुमारिलके समय बौद्ध और शैविक प्रभृति सभी मीमांसकसे डरते थे—

“अथा मीमांसकास्त्रयोः शास्त्रवैशिष्ट्यादयः ।”

उनके समय अनेक बौद्धोंने वेदमाग अवलम्बन किया था—

“तत्र शाक्यैः प्रसिद्धाऽपि सर्वेष्वधिकवादिता ।

अन्येते वैदविद्याशास्त्रकस्त्रिनिं नानामम् ॥”

शाक्योंने प्रसिद्ध अधिकवाद छोड़ा है और वह

वेदकी सिद्धान्तसे आगमकी नित्यता मानने लगे हैं।

कुमारिलके मतमें वेद ही नित्य और अपौरुषेय है। वेदमूलक शास्त्र ही प्रकृत शास्त्रपदवाच्य होता है। अन्यथा उसे अशास्त्र समझना चाहिये। वे कहते हैं—

“वेदः पुनः सविशेषः प्रत्यक्षगमः। तत्र घटादिवद्वैतपुरुषान्तरस्य सुप-
लभ्य भवन्ति तैरपि स स्मृतसुपलभ्यान्वेऽपि आस्तोऽन्वे भासते व समर्थयन्तोऽ-
भादिता। सर्वस्य आलोच्यकारणान् पूर्वसुपलब्धिः सम्भवतीति न निर्मूलता
शब्दसम्बन्धन्यत्पत्तिमात्रसिद्धेः ह्यहंवाच्यद्वाराधीनम्। प्रागपि हि वेद-
शब्दादन्वेषवस्तुविलक्षणं वेदान्तरविलक्षणं बाध्यत्वस्य सत्त्वे दादि रूपं मन्त्र-
ब्राह्मणादिरूपाणि चान्वेषविलक्षणान्युपलभ्यन्ते सर्वेषां चानादयः संज्ञाः।”

वेद प्रत्यक्षगम्य है। घटादिकी भांति पुरुषान्तरस्य वेद श्रवण कर सभी पुनर्वार उसका स्मरण करते हैं। उनकट्टक स्मृत वेद श्रवण कर दूसरे स्मरण कर सके और उनसे श्रवण कर अन्य लोग भी वेद स्मरण कर सकते हैं। इसी प्रकार सभीके स्मरण पूर्व अनुभव सम्भव होता है। अतएव निर्मूलता नहीं हुयी। शब्दके सम्बन्धमें व्युत्पत्तिमात्र ह्यहं व्यवहारके अधीन है। पहले भी वेद शब्दसे अन्य वस्तुविलक्षण वेदान्तरविलक्षण बाध्ययनकारीके सुस्थित ऋग्वेदादि रूप पदार्थ और अन्य वस्तुविलक्षण मन्त्रब्राह्मणस्वरूप पदार्थ ही समझ पड़ता था। सभीकी संज्ञा अनादि है।”

“अपि च वेदाऽऽदिनो धर्ममूलम्। न सर्वोऽभिहितो वेद इति च स्वयमे-
व शब्दभिरात्मा वद्वा समर्पितस्तत्त्वतः प्रयोगतस्तत्त्वज्ञानेः शब्दभिरुद्दिष्टपूर्व-
कारित्वादुपलब्धमतः सिद्धं वेदस्य प्रामाण्यम्।”

दूसरी जगह भी उन्होंने कहा है—“समस्त वेद धर्मका मूल है और स्मृतिमें समस्त वेद कथित हुये हैं। इसे स्मृतिकर्तावीने अयं कहा है। अतएव उनके वाक्यानुसार भी कर्ताका बुद्धिपूर्वक निर्माण करना प्रतीत होता है। इस प्रकार वेदद्वारा ही उसका प्रामाण्य निश्चित हुवा।”

यदि कोई किसी मिथ्या ग्रन्थकी बना वेदकी किसी गुप्त शाखाकी भांति प्रचार करे, तो उसका निरूपण किस प्रकार किया जा सके—इस सम्बन्धमें कुमारिल भट्टने कहा है कि—‘केवल वाक्यकी देख उसका वेदत्व मान नहीं सकते। उसे ऋग् वेदादि त्रयीग्रन्थसे मिलाना पड़ेगा। यदि त्रयीसे न मिले और उसमें लौकिक

वाक्यका प्रयोग रहे, तो वह कब और कैसे वेद हो सकता है। जैसे—

“यावद्विद्विषयानाहं ददं न हृष्यते।

ऋक्सामादिसंख्ये तु दृष्टे भान्तिनिवर्तते॥

आदिमावमपि नृत्वा वेदानां पौरुषेयता।

न शक्याध्यवसातुं हि मनागपि सचेतनैः॥

दृष्टाव्यवहारेषु वाक्यैर्लोकानुसारिभिः।

पदैर्य तद्विधैरेव नरः काव्यानि कुर्वते॥”

“अतएव दूर अवस्थान कर वेद अवलोकन नहीं करते, तब तक भ्रान्ति रहती है। ऋक् साम प्रभृति वेद अवलोकन करनेसे भ्रान्ति छूट जाती है। कोई सचेतन व्यक्ति केवल आदिको श्रवण कर वेदकी पौरुषेयता अवधारण कर नहीं सकता। मनुष्य लोकानुसार वाक्य और पदसमूह द्वारा ही लोगोंके प्रत्यक्ष व्यवहारोपयोगी काव्यकी रचना करते हैं।”

कुमारिलके मतमें ऋक्, यजुः इत्यादि वेदका ही भेद है। प्रत्येक वेदकी भिन्न भिन्न मुनि-प्रचारित शाखा होते भी सकल शाखा मूल ग्रन्थसे मिल जायेंगी और अनेक्य न लायेंगी। उन्होंने स्पष्ट ही कहा है—

“यदि प्रतिशाखं कर्मभेदः स्यात् तत् एकमूलाभावादित एवारम्भ भिन्न-
मानत्वात् समस्तकर्माख्यफलान्तरत्वात् इत्यान्तरवेदान्तराख्ये वीच्ये रन् न
शाखान्तराणि।”

यदि प्रत्येक शाखामें कर्मभेद हो, तो एक मूलके अभावमें प्रथमसे भिन्न ही समस्त कर्मफल अलग अलग हो सकता है। इत्यान्तरकी भांति वेदका भेद भी कथित होता था, शाखाभेद कहा जाता न था।

उनके मतसे जो जिस शाखाका अवलम्बी रहता वह उसी शाखाको अध्ययन करनेसे समस्त वेदका पढ़नेवाला हो सकता है। उसे भिन्न शाखा पढ़ना आवश्यक नहीं। कारण शाखान्तर नाममात्रकी है। उसमें वस्तुभेद वा कर्मभेद लक्षित नहीं होता। इसीसे कुमारिलने भिन्न शाखापाठेच्छावीके प्रति विद्रुप कर लिखा है—

“समाखाविहितेषां शाखान्तरगतान्विधीन्।

कल्पकारा निवर्धन्ति सर्वेऽप्येव विकल्पितान्॥

सर्व शाखोपसंहारो केमिनेषां सक्तः।”

“न च समकाराणामपि कश्चित् समाखोपसंहारमात्रे चावहितः।”

“तेन सर्वं स्मृतौर्ना प्रयोगजन्यत्वप्रामाण्ययोः सिद्धिः । तत्र तु यावद्दर्मसं-
सृज्यन्ति तत्रैदमवयवं यत्तथैवोद्भवविषयं तन्नोक्तव्यवहारमिति विवेक्यत्वम् ।
एषे वेतिहासपुराणयोरेवैदग्ध्यपदेनैव गत्यानां गतिः । अद्याव्यानां त्वर्थवादेन
व्याख्यातानि । यत्तु पृथिवीविभागकथनं तदधर्माधर्मसाधनफलपमोग्रप्रदेश-
विवेकाय किञ्चिद्वर्णपूर्वकं किञ्चिददमूलम् । वर्णानुक्रमणमपि ब्राह्मण-
चरित्रयातिगोवक्षणाद्यं दर्शनखरचमूलम् देशकालपरिमाणमपि लोकाज्योति-
स्मास्त्वव्यवहारसिद्ध्यर्थं दर्शनमन्यतिसम्प्रदायानुमानपूर्वकम् । भविष्यत् कथ-
नमपि त्वनादिकालप्रवृत्तयुगस्य धर्माधर्मानुष्ठानफलविपाकवैचित्र्यान्वितव्यवहारस्य
वैदमूलम् । अत्रविद्याभामपि कृत्यं पुत्रवार्थं प्रतिपादनं लोकवेदपूर्वत्वेन
विवेक्यत्वम् । तत्र शिखायां तावद्वर्णकरणस्वरकालादिप्रविभागकथनं तत्
प्रत्यक्षपूर्वकम् । यत्तु तथा विद्यानात् प्रयोगे फलविशेषखरणं ‘मन्वी ङीम-
खरतो वर्णतो वेति’ च प्रत्यक्षाय स्मृतिसिद्धेदमूलकम् । कल्पसूत्रे पृथ-
क्वादिदिनशशास्त्र-विप्रकौशल्यायलभविष्णुपञ्चरारफलमर्धं निषेधक-
तत्तत् प्रमाथमज्ञोक्त्यै कृतं लोकव्यवहारपूर्वकाच्च कैचित् षष्ट्यादिवाच्यवहारः
सुखार्थं हेतुत्वे नाश्रिताः । वाकरणेऽपि शब्दोऽप्यशब्दविभागज्ञानं व्याख्यातवादि-
विभागावत् प्रत्यक्षनिमित्तम् । साधुशब्दप्रयोगात् फलसिद्धिः अपश्यन् न तु फलवै-
कल्याणं भवतीति वैदिकम् । अन्धोविचित्र्यामपि गायत्र्यादिविवेको लोकवेदयोः
पूर्ववदेव प्रत्यक्षः । तत्तन्ज्ञानपूर्वकप्रयोगात् फलमिति श्रौतम् । तथा ‘आनिष्ट’
मयति योऽ वा विदितापेयं कन्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण यजति याजयति
वा इत्यादि । अजोतिःशस्त्रेऽपि युगपरिवर्तपरिमाणव्यवहारं चन्द्रादित्यादिगति-
विभागज्ञानेन तिथिगणनज्ञानं सर्वविच्छिन्न सम्प्रदायगणितानुमानमूलं यद्वैदिक-
होष्यनिमित्तपूर्वकृतशुभाशुभकर्मफलविपाकसूचनम् तदगतशान्त्यादिविधान-
व्यवहारं वैदमूलम् । एतेन सासुद्रवाङ्मय विद्यादिवाङ्मयम् । ईदृशं वा विषयः
कव्यं तानुमानव्याः । ईदृशं गृह्यश्रीरादिसन्निवेशे सत्ये तदेतच्च प्रतिपत्तव्यमिति
मीमांसा तु लाकादेव प्रत्यक्षानुमानादिभिरविच्छिन्नसम्प्रदायपञ्चितव्यवहारैः
ब्रह्मा । नहि किञ्चिदपि प्रथममेतावन्तं युक्तिक्लापसुपसं हेतुं चमः । एतेन
आविशारं व्याचक्षीत ।

इसके द्वारा सञ्जल स्मृतिके प्रामाण्यका भी प्रयोजन है, यह निश्चित हुआ। किन्तु जो समस्त विषय धर्म और सुत्तिका उपयोगी है, वही वेदसे वहिर्गत हुआ है। जो केवल अर्थ और ऐहिक सुखका कारण है, उसका मूल लोकव्यवहार है, वह वेदसे नहीं निकला। ऐतिहासिक और पौराणिक उपदेश वाक्य की भी इसी प्रकार सङ्गति करना पड़ेगी। अर्थवादके प्रस्तावमें उपाख्यान व्याख्यान हुआ है। धर्म तथा अधर्मका साधन और फलभोगका स्थान निर्देश करनेकी पृथिवीके विभाग निरूपित हुये हैं। उसका कोई अंश प्रत्यक्षसिद्ध और कोई अंश वेदमूलक है। ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी जाति तथा गोत्र बतानेके लिये वंशका अनुक्रम कहा गया है, यह प्रत्यक्षसिद्ध और स्मृतिमूलक है। लौकिक और ज्योतिःशास्त्रके व्यवहारकी निष्पत्तिकी देश और कालका परिमाण बंधा है, यह प्रत्यक्ष और गणित सम्प्रदायके अनुमानसे सिद्ध है। अनादि कालप्रवृत्त युगभेदसे धर्म और अधर्मके अनुष्ठानमें नानाविध फल होता है, यह वेदमें निरूपित हुआ है। अतएव भविष्यत्कालकी वर्णनाकी भी वेदमूलक हो कहना पड़ेगा। व्याकरण प्रभृति वेदाङ्ग क्रतुसम्पादक और पुस्त्यायंसाधक प्रतिपादित हुआ है, यह लौकिक और वेदमूलक है। वेदका प्रथम अङ्ग शिक्षा है। इसमें वर्णकी उत्पत्ति, स्वर और कालविभाग कहा है। यह प्रत्यक्षसिद्ध है। ज्ञात हो यथाविधि उच्चारण करनेसे फलाधिक्य और अयथावर्णोच्चारण करनेसे प्रत्यवाय बताया गया है, यह वेदमूलक है। कल्पसूत्रमें वही प्रमाण अङ्गीकार कर अर्थवादादिमिश्रित शास्त्रान्तर-प्रकीर्ण न्यायसम्बन्ध विधि और उपसंहार निरूपित हुआ है, यह लौकिक, व्यवहारसिद्ध और अनायास बोधगम्य होनेसे अनेक ऋत्विक्-व्यवहार भी कहे गये हैं। व्याकरणमें १

साधु शब्द और अपभ्रंश शब्दका विभाग निरूपित हुआ है। यह वृक्ष शाखादिके विभागकी भांति प्रत्यक्ष सिद्ध है। साधु शब्द प्रयोग करनेसे फल सिद्ध होता है। अपभ्रंश प्रयोग करनेसे फलवैगुण्य लगता है। यह वेदमूलक है। छन्दःशास्त्रमें लौकिक और वैदिक गायत्री प्रभृति छन्दः कहे गये हैं। यह भी व्याकरण की भांति प्रत्यक्षसिद्ध है। इसका ज्ञानपूर्वक प्रयोग करनेसे फल मिलता है। यह अति सिद्ध है। अतएव अतिने सुना दिया है—‘कृषि, छन्दः, देवता और ब्राह्मणकी न समझ जो यज्ञ करता या कराता, वह कोई फल नहीं पाता। ज्योतिःशास्त्रमें युगपरिवर्तन और परिमाण द्वारा तथा चन्द्र सूर्य प्रभृति ग्रहगति-के विभाग द्वारा तिथिनक्षत्रका ज्ञानोपाय बताया गया है। यह अविच्छिन्न गणित सम्प्रदायका अनुमान सिद्ध है। इसी प्रकार ग्रहका सौख्य और दौख्य निमित्त पूर्व-अनुष्ठित धर्म तथा अधर्मका फल कहा गया है। वेदमें ग्रहकी शान्ति निरूपित होनेसे यह वेदमूलक है। इसीके द्वारा सामुद्रिक और वास्तुविद्या भी व्याख्यात होती है। इस प्रकार विधिकी सर्वत्र अनुमान करना पड़ेगा। यह और शरीरादिका ऐसा सन्निवेश रहनेसे ऐसा ही फल मिलेगा। मोमांसा लौकिक प्रत्यक्ष और अनुमान तथा अविच्छिन्न पण्डित-सम्प्रदायके व्यवहार द्वारा संगृहीत हुआ है। कोई व्यक्ति यह समस्त युक्तिकलाप प्रथम संग्रह कर न सका था। इसीके द्वारा न्यायविस्तरकी व्याख्या करना चाहिये। पदार्थ द्वारा वेदवाक्यका विषय प्रतिपादित हुआ है। जात्यादिभेदमें बहु प्रकार पदार्थ ही लोकव्यवहार सम्पन्न करता है। परीक्षकोंने प्रत्यक्षादि द्वारा विभिन्न लक्षण स्थिर किये हैं। इसीसे समस्त पदार्थ पृथक् पृथक् रूपमें समझा जा सकता है। ऐसा न होनेसे

क्षुब्धः । प्रतिशब्दोः पुनर्बेदसंज्ञिताभ्यामनुगतस्वरसन्धिप्रकृति-विभक्तिपूर्वकः पराङ्गाद्यनुसरणाद्दाहत्वमाशङ्क्यम् ।” (तन्त्रवार्तिक, १।१।११)

पाणिनीयादि यथैव जिन समस्त पदोंका प्रयोग वेदमें नहीं, उनका भी संस्कार निरूपित हुआ है। किन्तु प्रातिशाखासमूहमें केवल वेदसंज्ञिताके अन्वयनोपयोगी स्वर, सन्धि, प्रकृति, विभक्ति, पूर्वाङ्ग और पराङ्गका निरूपण किया गया है। अतएव वही वेदका अङ्ग है।

कोई व्यक्ति स्वयं कुछ समझ न सकता। अति विप्रकीर्ण वेद भी प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा व्यवधारित होने पर ही स्वरार्थ साधन करनेकी समर्थ होता है। यह न्याय विस्तरसे सम्पन्न हुआ करता है।

“सर्वप्रलयेपवर्णनमपि देवपुरुषकारप्रभावपरिमाणप्रदर्शनाय” सर्वत्र हि हि तद्वर्णनं तत्प्रवर्तते तदुपरमे चोपरमतीति । विज्ञानमात्रवचनमश्रुतेरात्म्यादिवादानामप्युपनिषदर्थवादप्रभवत्वं विषयेत्यात्यन्तिकं रागं निवर्तयितुमित्युपपन्नं सर्वेषां प्रामाण्याम् । सर्वत्र च यत्कालान्तरफलत्वादित्येव ननु भवासम्भवस्तत्र अतिमूल्यता । सांकेतिकफले तु वृत्तिकविद्यादौ पुराणान्तरव्यवहारदर्शनादिव प्रामाण्यामिति विवेकसिद्धिः ॥”

सर्ग और प्रलयकी वर्णना भी अष्टष्ट एवं पुरुषकारका नानाविध प्रभाव दिखानेके लिये निरूपित हुई है। सर्वत्र देव और पुरुषकारवशतः सृष्टि होती है। फिर उसका अभाव होनेसे प्रलय पड़ जाता है। विज्ञानवाद, अणुभङ्गुरवाद और नैरात्म्यवाद प्रभृति सकल मत उपनिषद्के अर्थवादसे निकले हैं। यही समस्त मत विषयका आत्यन्तिक अभिलाष निवर्तित करते हैं। इसके द्वारा इन समस्त मतोंका प्रामाण्य स्थापित होता है। सर्वत्र कालान्तरमें जो समस्त फल मिलता, वर्तमान समयमें उसका होना असम्भव रहनेसे अति ही उसका प्रमाण है। जिसका फल तत्क्षणत्वे देख पड़ता, इस प्रकारके वृत्तिक तथा सर्पादि-निवारक मन्त्रादिका प्रामाण्य, पुरुषान्तर अर्थात् विषय-प्रभृतिका व्यवहार देखनेसे ही समझ पर चढ़ता है।

जिनका चरित्र हिन्दू धर्मका आदर्श रहा, जिनके वाक्यका विश्वास कर हिन्दू धर्म चलता था, बौद्धादि हिन्दू धर्म विद्वांसों उन्हीं समस्त देवताओं और मुनियोंके चरित्र पर दोषारोपण करते थे। वह जो समस्त कुतर्क उपस्थित करते, कुमारिलने उनको भी शास्त्रीय युक्तिसे खण्डन किया है। उस समय हिन्दू धर्मविद्वांसों यह समस्त कुतर्क उपस्थित करते थे—

“सदाचारिणु दृष्टो धर्मव्यक्तकर्मः साहसं च महतां प्रजापतीन्द्र-वशिष्ठ-विश्वामित्र-पुत्रिष्ठिर-कृष्णदेवायन-भीमधृतराष्ट्र-वासुदेवाजु-नमप्रभृतीनां ब्रह्मनामघतनाम् । प्रजापतेस्तात् ‘प्रजापतिवचनसमेतं सां दृष्टित्वं इति’ अतस्मान्नमन्यदपादधनचरणाद् धर्मव्यक्तिजनः तत्पदव्यवस्य च ननुवस्य पदरे-दाभिधीगोह चरंवातिजनः । वशिष्ठस्य पुत्रकीर्तयेत्येव जलप्रवेशात्तत्वादा

साहसं विनामित्तस्य चाण्डालयाजनम् । वशिष्ठवत् पुनरवः प्रयोगः कृच्छ्रपास-
वनम्.....विचित्रवीर्यदारैः पुत्रोत्पादनम् । भीष्मस्य सर्वधर्मव्यतिक्रमेचा-
वस्थानं अपमौलस्य च रामवत् कतुप्रयोगः । अन्धस्य धृतराष्ट्रस्य इज्या ।
युधिष्ठिरस्य कनीयोर्जितमात्रमाशारिचयम् चाचार्यशास्त्रावधार्यमनुमानवचनम् ।
कृष्णार्जुनयोः प्रसिद्धमातुल-दुहित-वन्निषी-सुमद्रापरिचयम् सुरापानम् ।”

जो सदाचारी कहे गये, उन्होने भी धर्मका प्रति-
क्रम और हिन्दू-शास्त्रनिषिद्ध दुष्कर्म किया है । प्रजापति,
इन्द्र, वशिष्ठ, विश्वामित्र, युधिष्ठिर, कृष्णदेवायन, भीष्म,
धृतराष्ट्र, वासुदेव, अर्जुन प्रभृति प्राचीन और इदानी-
न्तन हिन्दुओं सबका धर्मातिक्रम लक्षित होता है
ब्रह्माने कन्यागमन किया । वह इसी शास्त्रीय वाक्यसे
प्रमाणित होता—ब्रह्माने प्रत्यक्षमें कन्यागमन किया
था । वशिष्ठ सुनि पुत्रशोकसे कातर हो आत्महत्या
करनेको जलमें डेढ़ पड़े । इस प्रकारका साहसशास्त्र-
निषिद्ध है । इन्द्रकागु रूपङ्गीगमन, इन्द्रपद पर प्रतिष्ठित
नहुषका परदारामियोग, विश्वामित्रका चाण्डाल याजन,
वशिष्ठको भीति पुनरवका भी व्यवहार, कृष्णदेवाय-
नका विचित्रवीर्यकी भार्यासे पुत्रोत्पादन, भीष्मका स-
धर्म परित्यागकर अवस्थान, रामका पत्नीव्यतीत यज्ञानु-
ष्ठान, अन्ध धृतराष्ट्रका यज्ञानुष्ठान, आचार्य द्रोणके
वचनके निमित्त युधिष्ठिरका मिथ्या व्यवहार एवं कनिष्ठ
भ्राताकण्टक अर्जित भार्याका परिचय, कृष्ण तथा
अर्जुनका मातुलकन्या वन्निषी एवं सुमद्राका विवाह
और सुरापान सभी शास्त्रविषय हैं ।

कुमारिलने इसके उत्तरमें कहा है—प्रजापतिने
अपनी कन्याको गमन किया है, इन्द्र ‘अहल्याजार’
है—इन सब वाक्योंका तात्पर्य दूसरा है । इससे ब्रह्मा
किंवा देवराजका परस्त्रीगमनरूप व्यभिचार प्रतिपा-
दित नहीं होता ।

“प्रजापतिश्चाथ प्रजापालनाधिकारादादित्य इवोच्यते । स चादधीत्य-
वैलाबासुचसमुद्येनमेति सा तदामननाद्विपजायत इति तद्विद्वत्वेन स प-
दिश्यते । तस्मात् आदधकिरचास्वीकृतमिषेपणम् स्त्रीपुत्रवसंवीमनुपचारः ।
एवं सप्ततैजः परमेश्वरत्वनिमित्तं नृमण्डवायां सवितेवाहनि लीयमान-
तया रात्रेरहल्याशब्दवाचायाः अवाप्तकजरव इत्युत्पत्तीर्यैत्यकादमेन
वीहितेन वैश्वदेव्या जारः इत्युच्यते न परस्त्रीव्यभिचारम् ।”

प्रजापालनका अधिकार रहनेसे प्रजापति शब्द
आदित्यका ही बोधक है । वह अहलोदयकाल दिनके

प्रारम्भमें उदित हो क्रमशः गमन किया करते हैं ।
उनके आगमनसे क्रमशः बढ़ने पर वेला उनको
दुहिता कहलाती है । उसी वेकामें अहल्याका किरण-
स्वरूप वीज निक्षिप्त होता है । वही स्त्रीपुत्रवसके संयो-
गकी भांति वचन किया गया है । सप्ततैजः पदार्थ
ऐश्वर्य है । अतएव तैजःपुच्छको ही इन्द्र नामसे
उल्लेख करते हैं । दिनमें लौन हो जानेसे अहल्या
शब्दका अर्थ रात्रि है । सूर्य ही रात्रिके अयस्वरूप
जरणका कारण है । अहल्या रात्रि जिनसे जीर्ण होती
किंवा जिनके उदित होनेसे अहल्या जीर्ण हो जाती,
उन्हें ही अहल्याजार कहते हैं अर्थात् अहल्याजार
शब्दका अर्थ सूर्य है । परस्त्रीव्यभिचार दोबरी वह
अहल्याजार नहीं कहाये है ।

“ननुवेच पुनः परस्त्रीप्रार्थननिमित्तानन्तकावाजगरत्व-प्रार्थनावाक्यो
दुराचारत्वं प्रख्यापितम् ।....

वशिष्ठस्यापि यत् पुनश्चोक्तव्यामोहचेष्टितम् ।

तस्याप्यन्यनिमित्तत्वात् न धर्मत्वसंशयः ॥

यदि सदाचारः पुराणवृद्धा ज्ञियते स धर्मादमूलं प्रतिपद्येत । यच्च
कामकीचलीमोहयोः कादितुल्येन उत्पद्यते स ‘यथावत् विधिपतिविधे’ परि-
च्यते ।.....देवायनस्यापि मुदनिशोनात् ‘अतिरपमणिसुदेवराहनुव-
मेरिताहनुमतीयात्’ इत्येवमागमान्तावसम्बन्धात् प्रावापुनजननम् ।....
रामनीकपोषु च इतिवन्निषयात् ।.....धृतराष्ट्रोऽपि व्यासानुपवादाश-
यंयच्च पुनरुद्वेगवत् कतुकादिषु दृष्टवान् ।.....

या चोक्ता शास्त्रपुमाचामिषयविविधता ।

सापि वै पावनमेव व्युत्पाद्य प्रतिपादिता ॥

वीरनखे व कृष्ण वि विदमभ्यान् ससुखिना ।

सा च श्रीः श्रीच भूमीमिष्टं ग्यमाना न दुष्यति ॥

श्रीचवचाङ्ग भूतावतवादप्रायश्चित्तं.....अनोऽपि अचमिषः प्रायश्चित्त-
त्वेन कृत एवेति न तस्य सदाचारत्वाभावात्पनमः ।.....यत्, ‘वाहृद्विवाङ्ग-
योः यवानमातुलदुहितनमनं कृतिविचरं’ तन्नात्र विचारपुराणामस्य वेच-
धिकारानां प्रतिषेधः सप्रसीज्योऽयं वेच अविद्यवीजं प्रतिषेधः ।

यसुदेवाज्जाता च लीने यस्य विदधते ।

वेत सव्यवप्रमये तद्विद्वता

.....एतेन वन्निषीपरिचयनं व्याख्यातम् ।”

‘नहुषने परपत्नी-व्यभिचार पापका अनुष्ठान कर
बहुकाल पर्यन्त पजगर हो पापका फल भोग किया
था इसके द्वारा उनका वह दुराचार ही प्रतिपादित
हुवा है ।

युधिष्ठिरने भी पुत्रशोकमें मोहित हो जो अनुष्ठान किया था, उसका कारण मोड़ रहा। इसलिये वह जर्म जैसा परिणत नहीं होता। जो सदाचार पुण्य समझकर अनुष्ठान किया जाता, वही धर्मादर्श कहता है। मान, क्रोध, लोभ, मोह वा शोक प्रभृति जिस आचरणका कारण ठहरता, उसे विद्वान् सदाचार कव समझता है। शास्त्रविहित रहनेसे वह भी अनुष्ठेय होता है। 'पुत्रहीना पुत्राभिलाषिणी रमणो ऋतु-मती होनेसे गुरुकलंक आदिष्ट देवरसे पुत्रयज्ञ कर सकती है—भागमके इस विधिके अनुसार कण्वहोपा-यनने गुरुके आदेशसे माटरूप भ्रातृजायसे पुत्रोत्पा-दन किया था। राम और भीष्मने खेड तथा पित्रभक्ति वशतः विरुद्धाचरण किया है। वह सदाचार जैसा माना नहीं जाता। धृतराष्ट्र व्यासके अनुग्रहसे यज्ञका समय देख सकते थे, जिस प्रकार आश्वयं पर्वमें उन्होंने अपने पुत्रोंको व्यासके अनुग्रहसे ही देखा था।

पञ्च पाण्डवकी एक पत्नी पर विरुद्धाचरणका जो उल्लेख हुआ है, कण्वहोपायनने स्वयं उसका विरोध भूक्तन कर दिया है। पूर्णयौवना कण्वा वेदिमध्यसे उल्लिखित हुयी थीं। मानवीसे यह किसी प्रकार बनना सम्भव नहीं। वह सृतिमती लक्ष्मी थीं। लक्ष्मीको बहुत लोगोंके उपभोग करनेसे किसी प्रकारका दोष लग नहीं सकता।...युधिष्ठिरने द्रोणवधके निमित्त जो अमृत व्यवहार किया था, उसका उसी समय उन्होंने प्रायश्चित्त कर डाला। युधिष्ठिरने पीछे भी प्रायश्चित्त करनेके मन्त्रसे पञ्चमिधका अनुष्ठान किया।

ब्राह्मदेव तथा अर्जुनके मङ्गलपान और मातृकुक्षिता के विवाहको विरुद्धाचरण कहा गया है। इसका उत्तर यह है कि सुरा—बोड़ी, पेड़ी और माध्वी तीन प्रकारको होती है। इसमें पेड़ी पीना ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके लिये निषिद्ध है। गौड़ी तथा माध्वी क्षत्रिय एवं वैश्यकेलिये निषिद्ध नहीं।...सुभद्रा यदि वसुदेवकी कन्या रहती तो उनसे विवाह करने पर अर्जुन-को दोष लगता। किन्तु वैसा नहीं है।...सुभद्रा जातिसम्पर्कसे बलरामकी भगिनी थीं। वह वसुदेवकी औरसजाता कन्या न रही। इसके द्वारा रत्निकीका

परिणय शास्त्रविहित प्रतिपादित नहीं होता।'

अवशेषको यह बात पाती है, कुमारिका ईश्वर मानते थे या नहीं। संक्षेपशब्दरजयप्रणेता माधवाचार्य-के मतमें कुमारिकने वेदप्रचारक होते भी मीमांसा-वार्तिकमें ईश्वरका नास्तित्व प्रमाण किया है। *

किन्तु उनका वार्तिक और टुप्टीका पढ़नेसे ऐसा बोध नहीं होता कि उन्होंने नास्तिकताका प्रचार किया था। उन्होंने तन्त्रवार्तिकमें लिखा है—

“नहि येन प्रमाणत्वं लब्धपूर्वं कदाचन।

तेन तत् सर्वदा लभ्यमित्याद्याप्यतीत्यरः॥”

जिसके द्वारा कभी प्रामाण्य मिला है, सर्वदा उसीके द्वारा प्रमाण करना पड़ेगा—ईश्वरने इस प्रकार आदेश नहीं किया है।

“प्रधानपुरुषेश्वरपरमाण्वकारणादिप्रक्रियाः सृष्टिप्रलयविरूपेण प्रतीतास्ताः सर्वा मकार्थवादशानादिव ह्यस्मान्मनुष्याणां जडव्यप्रभृतिविकारभावद्वयमेव च द्रष्टव्याः।”

प्रकृति, पुरुष, ईश्वर, परमाणु आदि क्रियादि प्रक्रिया, सृष्टि-प्रलय द्वारा प्रतीयमान होती है। यह समस्त विषय मन्त्र, पर्यवाद खल तथा सूक्ष्म द्रव्य प्रभृति और विकार देख कर समझना पड़ेगा।

तन्त्रवार्तिकके उक्त दोनों स्थानों में स्पष्ट हो ईश्वर-का अस्तित्व स्वीकृत हुआ है।

कुमारी (सं० त्रि०) कुमारी विद्यतेऽस्य, कुमार-इति । जोशादिभ्यश्च । पा ५ । २ । ११६ । प्रायः षोडशवर्षीय पुत्रयुक्त, जिसके कोई १६ सालका झड़का रहे।

“पुत्रिणा ता कुमारिका विद्यमानायुर्भवतः” (अक, ८ । ११ । ८)

कुमारी (सं० स्त्री०) कुमार स्त्रियां स्त्रीप् । वयसि प्रवर्धे । पा ४ । १ । २० । १ अविवाहिता कन्या, ब्याही लड़की । २ कन्या, लड़की । ३ परीक्षितपुत्र भीमसेनकी पत्नी ४ सीता । ५ दुर्गाका नामभेद । ६ आमापत्नी । ७ द्वादश वर्षीया कन्या, बारह सालकी लड़की । ८ नवमङ्गिका, चमकी । ९ घृतकुमारी । १० मोदिनीपुण्य, कोई फूल । ११ अपराजिता । १२ खूबसा, बड़ी इलायची । १३ वन्ध्याकर्कोटकी । १४ तद्वीपुण्य, कोई फूल । १५ वर्तमान कुमारिका अन्तरीप ।

* “जेनिम्ब पन्ने ऽभिनिविष्टेताः शोके निराश्व” परमेश्वर ।”

(संक्षेपशब्दरजय, ७ । १०१)

वह भारतको दक्षिण प्रायद्वीप-सीमापर समुद्रके उप-
कूल भक्षा० ८° ५' ३०" और देशा-७७° ३७' ५०" में
अवस्थित है। १२८५ ई० की मार्कपालो उक्त स्थान
देखने गयी थी। कुमारीका देखो।

१६ होप, जजोरा टापू। पृथिवीका मध्य भाग, जमी-
न का दरमियानी हिस्सा। भारतखण्डको कुमारी कहते
हैं। १७ शाकद्वीपान्तर्गत सप्तनदी मध्य एक नदी।
(विष्णुपुराण, २। ४। ६५) १८ कन्दोविशेष, एक बहर। वह
घोड़शास्त्रसे बनती और ४ पाद रखती है। १९ वैद्यक
वटिकाविशेष, किसी किस्मकी गोलियां। वह स्नायुरोग-
की महीषध है। कुमारीवटिका खानेसे अग्नि बढ़ता है।

कुमारीवटिका इस प्रकार बनती है—स्वर्ण, रौप्य
हरिताल तथा स्वर्णमाक्षिक समभाग से १०० भावना
देना चाहिये। फिर १ रत्नी प्रमाण वटिका बना लेते
हैं। अनुपान आमलकीका रस है।

कुमारीकन्द (सं० पु०) कुमारीका कन्द, वीकुवारको
जड़।

कुमारीक्रीडनक (सं० स्त्री०) कुमारीभिः क्रीडतेऽनेन,
कुमारी क्रीड करषि षट् स्वार्थे कन्। वाचस्पतिः। प।
५। ४। २८। कुमारीका क्रीडाद्रव्य, लड़कीका खिलौना।

कुमारीतन्त्र (सं० स्त्री०) कुमार्याः पूजादिप्रकाशकं
तन्त्रम्, इ-तत्। एक तन्त्र। उसमें कुमारी पूजा प्रकृति
की कथा लिखी है।

कुमारीपाल (सं० पु०) कुमार्याः पालः पालकः, इ-तत्।
अविवाहिता कन्या अथवा वाग्दत्ता कन्याका अभि-
भावक, लड़कीकी परवरिश करनेवाला।

कुमारीपुत्र (सं० पु०) कुमार्याः अपरिणीतायाः पुत्रः
विवाहात् प्रागेव जातः इत्यर्थः, इ-तत्। १ कन्याका
सुको उत्पन्न पुत्र, बैयाकी लड़कीका लड़का। २ पुत्र-
जीव, एक पेड़। उसका संस्कृत पर्याय—गर्भकरी,
पेड़ीपुत्र और अयसाधक है।

कुमारीपुत्री (सं० स्त्री०) पुत्रजीव, एक पेड़।

कुमारीपुर (सं० स्त्री०) कुमारीणां पुरमवस्थानग्रहम्,
इ-तत्। अन्तःपुर, जनानखाना, लड़कियोंके रहनेकी
जगह।

कुमारीपूजन (सं० स्त्री०) कुमारी पूजा देखो।

कुमारीपूजा (सं० स्त्री०) कुमार्याः पूजनं पूजा,

इ-तत्। कन्याकी पूजा, लड़कीकी परस्तिथ। तन्त्र
मतसे ऋतुमती न होते जोड़श वर्ष पर्यन्त अविवाहित
कन्याकी पूजा कर सकते हैं।

तन्त्रमें एक वत्सर वयस्का कन्याको सन्ध्या, दिव-
र्षाकी सरस्वती, तीन वत्सर वयस्काको त्रिधामूर्ति,
चतुर्थवर्षाकी कालिका, पञ्चवर्षाकी सुभगा, छह वत्सर
वयस्काकी उमा, सप्तवर्षाकी मालिनी, अष्टवर्षव-
यस्काकी कुलका, नववर्षवालीकी कालसङ्कर्षा, दश-
वर्षवालीकी अपराजिता, ग्यारह वर्षवालीकी रुद्राणी,
बारह वर्षवालीकी भैरवी, त्रयोदशवर्षाकी महालक्ष्मी,
चतुर्दशवर्षाकी पीठनायिका, पञ्चदश वर्षवालीकी
सेतना और षोडशवर्षाकी पीठनायिका कहते हैं।
कुमारीपूजाके लिये वह सभी प्रशस्त हैं।

“एकवर्षा भवेत् सन्ध्या दिवर्षा सा सरस्वती।

त्रिवर्षा च त्रिधामूर्तिसप्तवर्षा च कालिका॥

सुभगा पञ्चवर्षा तु षड्वर्षा च उमा भवेत्।

सप्तभिर्मालिनी साचाष्टवर्षा तु कुलिका॥

नवभिः कालसङ्कर्षा दशभिः अपराजिता।

एकादशे च रुद्राणी द्वादशस्था च भैरवी॥

त्रयोदशे महालक्ष्मी चतसृषु पीठनायिका।

षोडशा पञ्चदशभिः षोडशे चाम्बिका तथा॥

एवं क्रमेण सन्ध्या गङ्गा यावत् पुष्यं न वयति।” (यामज)

कुमारीपूजाप्रयोग इस प्रकार है—सुन्दरी कुमारी-
को आसनपर कर नानाविध फलद्वारासे सजाना चाहिये।
भक्तिपूर्वक वाग्भव बीजमुक्त कुमारीके सन्ध्यादि नाम
उच्चारण कर प्रथम जलप्रदान करते हैं। अनन्तर उसकी
देवी भावना कर भक्तिभावमें पाद्य अर्घ्य प्रभृति उपचार
द्वारा पूजा करना चाहिये। कुमारीके सन्ध्यादि नामों-
में मायाबीज योगसे पाद्य, लक्ष्मीबीज योगसे अर्घ्य,
कूर्चबीज योगसे चन्दन, मायाबीज योगसे पुष्प और
सदाशिवमन्त्रसे धूप एवं दीप प्रदान कर षडङ्गन्यास
करते हैं। उसका विधान है—प्रथम तेजोमय शुभ-
वर्ण मन्त्रचिन्ता कर षडङ्गन्यास करना चाहिये।
मन्त्र यह है—ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं कुमारिके हृदयाय
नमः, इं हुं वैं ह्रीं श्रीं ह्रीं स्वाहा शिरसे स्वाहा, ऐं
कुलवागीश्वरकवचाय हुं ऐं भूरिकल्पेश्वरि नेत्रत्रयाय
वीषट् ह्रीं अस्त्राय फट्। तदनन्तर “ऐं सिप्रजयाय
पूर्ववक्त्राय नमः, ऐं जयाय उत्तरवक्त्राय नमः”

मन्त्र पढ़ परिवार पूजा करते हैं। परिवार देवताका नाम—भास्कर, चन्द्र, दशदिक्पाल, सन्ध्यादि, वीर-भद्रा, कौसिनी, अष्टादशभुजा, काली और चण्डदुर्गा है। परिवारपूजा समापन कर नानादिष्व नैवेद्य, दुग्ध, चीर, पक्वान्न, सुरस पञ्चफल और समय समय पर प्राप्त उत्कृष्ट द्रव्य चढ़ाना चाहिये। भक्तिपूर्वक पञ्चतत्त्व और कुलद्रव्य प्रदान कर यथाशक्ति महामन्त्र जपते हैं। कुमारीप्रणामका मन्त्र है—

“नमामि कुलकामिनीं परमभाष्यसन्दायिनीं

कुमाररतिचातुरीं सकलसिद्धिमानन्दिनीम्।

प्रशस्तश्रुतिवाचनं रत्नतरागवस्त्राभितां

विश्वतुल्यभूषणां भुवनवाक् कुमारीं भजे।”

उक्त मन्त्र पाठ कर नमस्कार करना और कुमारीको दक्षिणा देना चाहिये। कुमारीपूजासे निम्नलिखित फल मिलता है—

“कुमारीपूजनफलं वक्तुं नार्हामि सुन्दर।

जिह्वाकोटिसहस्रं च वक्त्रकोटिद्वयैरपि॥

तत्प्राप्तां पूजयेद्वाचां सर्वजातिसमुद्भवाम्।

जातिभेदो न कर्तव्यः कुमारीपूजने शिवे॥” (तन्त्रसार)

शतकोटि वक्त्रमें सहस्रकोटि जिह्वा द्वारा भी कुमारीपूजाका फल कहा जा नहीं सकता। सब जातिकी कुमारी पूजनीय हैं। कुमारीपूजामें जाति भेद नहीं करना चाहिये।

कुमारीभोजन (सं० क्ली०) कुमार्याः भोजनम्। कुमारी कन्यावर्गको पूजन कर आहार करानेका विधान।

कुमारीश्वर (सं० पु०) कुमार्यां श्वरः, इ-तत्। कन्याकाकल उपभुक्ता स्त्रीके स्वामीका पिता।

कुमार्ग (सं० पु०) कुक्षितो मार्गः, कर्मधा०। कुपथ, नीतिविरुद्ध कार्य, बुरी चाल।

कुमार्गगामी (सं० त्रि०) कुपथ जानेवाला, जो बुरी राह चलता हो।

कुमार्गी, कुमार्गगामी देखो।

कुमासक (सं० पु०) कुमार संज्ञायां कन् गुल्ग, वा। १ सौवीर जनपद। २ सौवीर जनपदके अधिवासी।

कुमासा (हिं० पु०) वृक्ष विशेष, एक पेड़। कुमासा प्रायः सुहृद्प्रदेश, बम्बई, दक्षिणभारत और छोटेनाग-पुरमें उत्पन्न होता है। उन्नता प्रायः १० फीट रहती है,

पत्र चार-पाँच इंच लम्बे लगते हैं। पुष्पित होनेका समय ज्येष्ठ आषाढ़ मास है। कुमासाका फल लोग खाते हैं।

कुमि—पाराकानवासी एक जाति। कुमि लोग ब्रह्म-जातिके ही भिन्न शाखाभुक्त हैं। वह देखनेमें सुन्दर, सुमुख, खर्वाकृति और परिश्रमी होते हैं। कुमि प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हैं—कमि और कुमि। पाराकानी उन्हें आवाकुमि और आफकुमि कहते हैं। उनकी संख्या प्रायः १२००० है। कुमियोंकी भाषा कुछ कुछ ब्रह्मभाषासे मिलती है। वह कहते हैं—आजकल जहाँ ख्येन लोग रहते हैं, पहले उसी पहाड़ पर वह भी वास करते थे।

कुमित्र (सं० क्ली०) कुक्षितं मित्रम्। अपकारी बन्धु, खराब दोस्त। “बस कुमित्र परिहरि मलाई।” (तुलसी)

कुमिना—त्रिपुरा जिखेका एक नगर। वह अक्षा० २३° २८' ४०" और देशः ८०° ४३' पू० में टाकास २६ कोस दूर अवस्थित है। कुमिनासे तीन कोस पश्चिम रहत राजप्रासाद और दुर्गादिका भग्नावशेष दृष्ट होता है। किसी समय उक्त सकल प्रासादमें त्रिपुराके राजा रहते थे। निपुण देखो।

कुमुल (सं० पु०) कुक्षितं मुखं यस्य। १ शूबर, सूरर। २ रावचका दुर्मुख नामक कोई योद्धा। (त्रि०) ३ कुक्षित मुखविशिष्ट, बुरे मुँहवाला।

कुमुत् (सं० क्ली०) कौ पृथिव्यां मोदते कु-मुद-जिप्। १ कैरव, कोका, कुई। २ रत्नोत्पल, काल कमल। (त्रि०) ३ जपण, कच्छूस। ४ अमीत, नाराज। ५ निर्दय, बेरहम।

कुमुद (सं० पु०-क्ली०) कौ पृथिव्यां मोदते, कु-मुद-मूलवि-भुजादित्वात् कः। अमरके अनुसार इन्द्र उपसंख्यानम्। पा १। १०। (वार्तिक) १ कैरव, कोका, कुई। कुमुदका संस्कृत पर्याय—कैरव, चन्द्रकांत, गर्दभ, कुमुत्, चवकात्पल, कङ्गार, शीतलक, शशिकान्त, इन्दुकमल, चन्द्रिकाञ्जल, गन्धसोम और श्वेतकुवलय है। भावप्रकाशके मतमें वह पिच्छिल, सिन्ध, मधुर, आश्वादनजनक और शीतल होता है। २ रत्नपत्र, काल कंबल। ३ रौप्य, चाँदी।

४ पद्म, कंवल । ५ कपूर, काफूर । ६ शारुमल
हीपस्थ वर्षपर्वतभेद । ७ दक्षिणदिग्गज । ८ विष्णु ।
९ वानरभेद । १० विष्णुके कोई पारिषद ।

“ते विष्णुपर्वदाः सर्वे सुमन्दकुमुदादयः ।” (भागवत, ७।८।१८)

११ मेरुके उपष्टम्भका पर्वतभेद । १२ संपराज
विशेष । १३ दैत्यभेद । १४ कृष्णके कनिष्ठ भ्राता गदके
पुत्र । १५ राजा उन्मत्तावन्तिके कोई विश्वस्त बन्धु ।
१६ कोई क्षुद्र हीप । १७ किसी प्रकार गुग्गुलु ।
१८ वायुका तालभेद ।

“एकविंशतिवर्णाङ्गं भवेत् ग्रहणके रसे ।

कुमुदोऽभोजदश्चैव तस्मिन् तुरङ्गलोचने ॥” (सङ्गीतदामोदर)

१९ गान्धारी वृक्ष । २० कुमुदकन्द । २१ कुम्भिका ।
२२ कटफल वृक्ष । २३ कोई केतु । वह कुमुदाकार
रहता और एक ही रात पश्चिममें निकलता है । कुमु-
दकी शिखा पूर्वकी पड़ती है । उसके उदित होनेसे
दश वर्ष पर्यन्त दुर्भिक्ष चलता है ।

कुमुदक (सं० पु०) प्रपौण्डरीक, पुण्डरिया ।

कुमुदखण्ड (सं० स्त्री०) कुमुदानां समूहः, कुमुदकम-
लादित्वात् खण्डः । कमलादिभाः खण्डः । पा ४।२।४१ । (काशिका)

१ कुमुद समूह । २ कुमुदांश ।

कुमुदगन्धा (सं० स्त्री०) कुमुदगन्धयुक्ता स्त्री ।

कुमुदघ्नी (सं० स्त्री०) १ स्थावर विष विशेष, किम्वा
किष्किका जहर । २ सविष क्षीरयुक्त वृक्ष, जहरीले
दूधवाला पेड़ ।

कुमुदचन्द्र—एक जैन धर्मकार । उन्होंने कल्याणमन्दिर-
(पार्श्वनाथ) स्तोत्र पद्यतिकी रचना किया है ।

कुमुदचन्द्र—एक दिगम्बर जैनाचार्य । चालुक्यराज
सिद्धराज जयसिंहने (१०८४-११४३ ई०) इनका
और श्वेताम्बर जैनाचार्य भट्टारक देवसूरिका शास्त्रार्थ
सुननेको एक सभाको आह्वान किया था । यह कर्णा-
टकसे अजमदाबाद पहुँचे । परन्तु देवसूरिने इनसे
कहा कि आप पाटन चलिये, वहाँ हमारा और आप-
का वाद होगा । नन्वावस्थामें पाटन पहुँचने पर सिद्ध-
राजने इनका बड़ा आदर किया । परन्तु सभामें इनके
यह कहने पर कि ‘कोई स्त्री मुक्ति नहीं पा सकती’
महाराजाका अपमान हुआ और मन्त्रो भी इनकी इस

बातसे अपमानित हुए कि कपड़े पहननेवाले जैन मुनि
मुक्तिसे वञ्चित रहते हैं । अतएव शास्त्रार्थमें इनको
पराजित और इनके प्रतिपक्षी देवसूरिको विजयी
स्वीकार किया गया ।

कुमुदनाथ (सं० पु०) चन्द्र, चांद ।

कुमुदपान—पङ्कराज देवपानके पुत्र ।

(भविष्यव्रजखण्ड, १०।४०)

कुमुदप्रिय (सं० पु०) चन्द्र, चांद ।

कुमुदबन्धु, कुमुदप्रिय देखो ।

कुमुदबान्धव कुमुदप्रिय देखो ।

कुमुदरागा (सं० स्त्री०) धातकी वृक्ष, एक पेड़ ।

कुमुदवती (सं० स्त्री०) कुमुदानि सन्ति अस्याम् कुमुद-
मतपुं मस्य वः । १ कुमुदिनी, कोई । २ अनेक कुमुद-
युक्त स्थान, कोकासे भरी हुयी जगह ।

कुमुदवीज (सं० स्त्री०) सितोत्पलवीज, कोकाका तुल्यम् ।
कुमुदवीजको लाई बनानेकी प्रणालीसे भूजने पर अच्छी
लाई निकलती है । बहुतसे लोग निरम्ब, उपवासमें
असमर्थ होनेसे उसको (रविरश्मि-जात न होनेके
कारण) खाया करते हैं । कुमुदवीजका संस्कृत पर्याय—
कुमुदनीवीज और कैरविणीफल है । भावप्रकाशके
मतमें वह स्वादु, रुच, हिम और शुद्ध होता है ।

कुमुदा (सं० स्त्री०) कुमुद-टाप् । १ कुम्भिका, जलकुम्भी ।
२ गान्धारी वृक्ष । ३ शालपर्णी । ४ धातकी वृक्ष ।
५ कटफल । ६ देवी विशेष ।

कुमुदाकर (सं० पु०) कुमुदानां आकरः, ६ तत् ।
अनेक कुमुदका उत्पत्तिस्थान, बहुतसे बघोले पैदा
होनेकी जगह ।

कुमुदाक्ष (सं० पु०) १ नागविशेष । २ विष्णुके कोई
पार्षद ।

कुमुदादि (सं० पु०) कुमुद आदौ घेषाम्, बहुव्री० ।
पाणिनिका कहा हुआ एक शब्दगण । उसमें कुमुद,
शर्करा, न्यग्रोध, इकट, सङ्कट, कङ्कट, गर्त, गर्तवीज,
परिवाप, निर्यास शकट, कच, मधु, शिरीष, अश्व,
अश्वत्थ, वल्गज, यवास, कूप, विकङ्कट और दयशाम
शब्द सम्मिलित हैं । उक्त शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय
आता है ।

कुमुदानन्द—एक ख्यातनामा पण्डित । उन्होंने भट्टि काव्यकी सुबोधिनी नाम्नी एक सुन्दर टीका बनायी है । कुमुदाभिख्य (सं० स्त्री०) कुमुदस्यैवाभिख्या शोभा यस्या । रौप्य, चांदी ।

कुमुदाली (सं० पु०) महर्षि पण्यके शिष्य । उन्होंने अथर्व वेदकी कोई शाखा प्रचार की है ।

कुमुदावास (सं० पु०) कुमुदानामावासः, इ-तत् । १ कुमुदप्राय देश, कोकासे भरा हुआ मुष्क । २ कुमुदाधारस्थान, कोकाके रहनेकी जगह ।

कुमुदिका (सं० स्त्री०) कुमुद-ठच्-टाप् । १ कटफल । उसका संस्कृत पर्याय—कटफल, सोमवल्क, कैटयं, कुम्भिका, श्रीपर्णी, भट्टा और भद्रवती है । २ सुद्र वृक्ष विशेष, कोई छोटा पेड़ । उसका बीज सुगन्धयुक्त होता है । ३ कुम्दिनी, कोई ।

कुम्दिनी (सं० स्त्री०) कुमुदानि सम्यक् देशे, कुमुद-पुष्करादित्वात् इनि-ङीप् । पुष्करादिभ्यो द्विगे । पा ४।२।१५ । १ कुमुदयुक्त पुष्करिण्यदि, कोकाका तनाव । २ कुमुद-समूह, कोकाका ढेर । ३ कुमुद पुष्प, कोकाका फूल । उसका संस्कृत पर्याय—कुमुदलता, कुमुदती और सत्पलिनी है ।

“अलिरीसी नलिनीकुलवल्गवः कुमुदिनीकुलकेलिकलारसः ।” (समराटक)

४ रघुदेवकी माता । ५ चन्द्रप्रिया, चांदनी ।

कुमुदिनीनायक (सं० पु०) चन्द्र, चांद ।

कुमुदिनीपति, कुमुदिनीनायक देखो ।

कुमुदिनीवनिता (सं० स्त्री०) सुन्दरी स्त्री, खूबसूरत औरत ।

कुमुदिनीबीज, कुमुदबीज देखो ।

कुमुदी (सं० स्त्री०) १ कटफलवृक्ष, एक पेड़ । २ गाम्भारी वृक्ष ।

कुमुदेश, कुमुदनायक देखो ।

कुमुदेश्वररस (सं० पु०) यक्षमाधिकारका रसविशेष, तपेदिककी एक दवा । मृत ताम्र २ भाग और वङ्ग भस्म १ भाग यष्टीमधुके क्वाथमें भावना दे और शोषण कर माषार्ध सेवन करना चाहिये । (रसेन्द्रसारसंग्रह)

कुमुदत् (सं० स्त्री०) कुमुदानि सन्तश्मिन् कुमुदैर्नि-र्वाप्ती वा, कुमुदानां भव इति वा, कुमुद-ङमत्तुप् मस्य वः

कुमुदनकृतेसिन्धो ङमत्तुप् । पा ४।२।८० । कुमुदयुक्त, कोकासे भरा हुआ ।

“हंसशैलीषु तारासु कुमुदसु च वारिषु ।” (रघुवंश)

कुमुदती (सं० स्त्री०) कुमुदत् स्त्रियां ङीप् । १ बहु-पद्मयुक्त जलाशय, कंवलसे भरा हुआ तलाव । २ कुमुदिनी, कोका ।

“म्लवयति यथा शशाङ्गी कुमुदती न तथाहि दिवसः ।” (शाकुन्तल)

३ पद्मका वृक्ष । ४ वृक्ष विशेष, कोई पेड़ । उसका फल विषाक्त होता है । ५ नागराज कुमुदकी भगिनो और कुशकी पत्नी । ६ विमर्षणकी पत्नी । ७ कोई नदी । ८ षड्ज स्वरकी चारमें द्वितीय अति ।

कुमुदतीश (सं० पु०) कुमुदतीनां ईशः पतिः, इ-तत् । चन्द्र, चांद ।

कुमुदतीबीज, कुमुदबीज देखो ।

कुमेडिया (सं० पु०) सुद्र वृक्ष विशेष, एक छोटा झाड़ी ।

कुमेध (सं० पु०) कुत्सिता ईषत् मेधा यस्य, कुमेधा-असिच् । नित्यमसिच्-प्रजामेधयोः । पा ५।४।१२ । मन्दमेधायुक्त, बदतमोज ।

“अति रुम्भान्य विप्रभात् पर्यृच्छन् कुमेधसः ।” (भागवत, २।२०।११)

कुमेरु (सं० पु०) पृथिवीका दक्षिण प्रान्त, ध्रुव ताराके ठीक नीचेकी जगह । पौराणिक मतमें पाताल वा देवोंके वासस्थानको कुमेरु कहते हैं ।

कुमेरुसमुद्र (सं० पु०) दक्षिणमेरुका पार्श्ववर्ती समुद्र, कुतुब-जनूबीकी बगलका बहर ।

कुमेड (हिं० पु०) प्रतारण, धोका ।

कुमेडिया (हिं० वि०) प्रस्तारक, धोकाबाज ।

कुमेद (हिं०) कुमुद देखो ।

कुमोदक (सं० पु०) कं पृथिवीं मोदयति तस्या भार-विनाशनेनेत्यर्थः, कु-मु-णिच्-ण्वल् । विष्णु ।

कुम्प (सं० पु०) कुपि अच् । बाहुकुण्ठ, काठकी मोंगरी ।

कुम्फा—चीनावीकी एक आराध्य देवी । सन्तान कामनासे चीना रमणी उनको पूजा करती हैं ।

१४६५ ई० को चीनके कान्टन नगरमें कुम्फा नाम्नी एक धार्मिक रमणी आविर्भूत हुयी थीं । वह सर्वदा मन्दिर जाती और देवार्चना कर आती

थीं। लोगोंने विश्वासानुसार कुम्भा प्रेतात्माओंसे कथा वार्ता कर सकती थीं। एक समय उन्होंने संसारको असार समझ जलमग्न हो प्राण त्याग किया। पीछे शवदेहको तैर आने पर लोगोंने उठाकर पवित्र भावसे रक्षा किया और उसके बदले चन्दनकाष्ठकी मूर्तिको बना कर जला दिया। कान्ठनके पार्श्वस्थ हेनाना नामक स्थानमें कुम्भाका प्रधान मन्दिर विद्यमान है।

कुम्भ (सं० पु०) १ बाहुकुण्ठ, मोंगरी। २ मस्तकका आच्छादन वस्त्र, सर ठाँकनेका कपड़ा।

“कुरोरमस्य शोर्षणि कुम्भं चाधिनिदध्मसि।” (अथर्ववेद, ६। १२८)

कुम्भा (सं० स्त्री०) कुवि वेष्टने अङ्-टाप्। चिकित्सकवि कुम्भचर्चय। पा १। २। १०५। १ उत्तमरूप आच्छादन, चम्दा तौरका परदा। जिस वेष्टनके लगानेसे अस्पृश्य वा अयत्नीय यज्ञको देख नहीं सकते, उसे कुम्भा कहते हैं।

“तस्मिन् दीचीनकुम्भा शस्या निदधाति।” (तेजरोयसंहिता)

२ स्थूलशकट, स्थूल अङ्गरक्षिणी, मोटी चंगरखी।

कुम्भिक (सं० पु०) जनपदविशेष, एक मुक्त।

कुम्भिया (सं० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक पेड़।

कुम्बी—पञ्जाबवासों जातिविशेष, एक पञ्जाबी कौम।

कुम्बी लोग प्राचीन कम्बोज जातिको एक शाखा समझ पड़ते हैं।

कुम्ब्या (सं० स्त्री०) कुवि-यत्-टाप्। एकाग्रप्रतिपादक विध्यर्थयुक्त वैदिक ब्राह्मणका वाक्यभेद।

“साम वा गाथा वा कुम्ब्या वा अभिव्याहारे दुवतस्वाध्यायस्यवच्छेदाय।”

(शतपथब्राह्मण, ११। ५। ७। १०)

कुम्भ (सं० पु०-स्त्री०) कुं भूमिं उन्मति, कु-उन्भ पूरणे अच् शकम्बादिवत् साधुः। १ त्रिवृत् वृक्ष। २ गुग्गुलु। ३ मृत्तिकानिर्मित जलपात्रविशेष, मट्टीका घड़ा।

“शत्रुं कुम्भा अमिच्छतं सुगयाः।” (ऋक् १। १२६। ७)

४ मृतव्यक्तिके अस्थिसंग्रहका पात्र, मुर्देकी ढङ्कियां इकट्ठा करनेका बरतन। ५ मेषादि द्वादश राशिके मध्य एकादश राशि। (Aquarius) धनिष्ठाका शेषार्ध और शतभिषा तथा पूर्व भाद्रपदका पादत्रय

उसके रहनेका स्थान है। राशिचक्रके ३०० अंशोंके पीछे १० अंश कुम्भके हैं। उसकी अधिष्ठात्री देवता कलसधारी पुरुष हैं। कुम्भ चरणरहित, कर्षुरवर्ण, वायुपित्त कफप्रकृति, शुद्धवर्णा, स्निग्ध, स्रग्ध, अर्धस्त्र और पश्चिमदिक्स्वामी है। वह स्थिर राशि और शनिका क्षेत्र है। कुम्भराशि हिपद है। उसके बाहुका मूल त्रिकोण है। उसके उदरमें कुम्भ नामक लग्न रहता है। कुम्भ लग्नमें जन्म लेनेसे मनुष्य चञ्चलचित्त, धनवान्, अलस, परदाररत, महाबलशाली और सुखी होता है। कुम्भराशिका मान १ दण्ड ५८ पल है।

६ परिमाणभेद, कोई तौल। दो द्रोण अथवा ६४ सेरमें एक कुम्भ होता है। ७ हस्तीके मस्तकका सम्मुख भाग, हाथीके सरका सामनेवाला हिस्सा। कुम्भ स्थानसे ही हस्तीका मस्तक दोनों ओर विभिन्न हो ऊर्ध्वको उत्थित होता है।

“मध्यो न तनुमध्या मी मध्यं जितवतीत्ययम्।

इमकुम्भा भिनक्तुम्याः कुचकुम्भनिभो हरिः॥”

(साहित्यदर्पण, १० पं०)

८ योगकी कोई प्रक्रिया। ९ वृक्षमूल विशेष, किसी पेड़की जड़। वह औषधार्थ व्यवहृत होता है। १० वेश्याका पति, रणछोका खाविन्द। ११ अगस्त्य मुनिके पिता। १२ कोई देख। वह दानवश्रेष्ठ प्रह्लादके पुत्र और निकुम्भके भ्राता थे। १३ राजसविशेष, कुम्भकर्णके पुत्र। १४ वर्तमान अवसरिणीके १८श अर्हत्। १५ वानरभेद। १६ बुद्धके २४ जन्मोंमें कोई एक जन्म। १७ कोई रागिणी। सरस्वती और धामश्रीके योगसे उत्पन्न रागिनी उत्पन्न हुयी है। (सङ्गोतदामोदर) १८ मेवाड़के एक राणा। कुम्भराणा देखो। १९ जैपालवृक्ष, जायफलका पेड़। २० कटफल वृक्ष। २१ पृथ्विपर्णी। २२ पाटला वृक्ष।

कुम्भक (सं० पु०) कुम्भ इव कायति प्रकाशते निखलत्वात् वायुरोधात् स्फीतोदरत्वात् वा, कुम्भ-कै-क। प्राणायामका एक अङ्ग। कुम्भक करनेका नियम निम्नलिखित है—

दक्षिण हस्तके अङ्गुष्ठ द्वारा दक्षिण नासापट धारण करके वाम नासापट द्वारा वायु पूरण करनेका

नाम पूरक है। फिर दक्षिण हस्तके अङ्गुष्ठ द्वारा दक्षिण नासापुट और अनामिका तथा कनिष्ठा द्वारा वाम नासापुट धारण करनेकी धारक वा कुम्भक कहते हैं। अनन्तर अनामिका तथा कनिष्ठासे वाम नासापुटको धारण करके दक्षिणनासापुट द्वारा वायुके निःसारणसे रेचक होता है। यह साधारण विधि है। ऋग्वेदीको अङ्गुष्ठ एवं तर्जनी द्वारा, सामवेदीको अङ्गुष्ठ तथा अनामिका द्वारा, यजुर्वेदीको अङ्गुष्ठ एवं अनामिका द्वारा और अथर्ववेदीको सकल अङ्गुलि द्वारा प्राणायाम करना चाहिये।

“कुम्भकः पूरको रेचः प्राणायामस्त्रिलक्षणः ।

पूरकं पूरणं वायोः कुम्भकं स्थापनं कश्चित् ॥

वह्निर्निःसारणं तस्य रेचकः परिकीर्तितः ।

दक्षिणे रेचयेद् वायुं वामेन पूर्तिं तोदरः ॥

कुम्भेन धारयेन्नित्यं प्राणायामं विदुर्बुधाः ।

अङ्गुष्ठेन पुटं याह्यं नासाया दक्षिणं पुनः ॥

कनिष्ठानामिकाभ्याश्च वामं प्राणस्य संगृहे ।

अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यास्तु ऋग्वेदी सामगायनः ॥

अङ्गुष्ठानामिकाभ्याश्च याह्यं सवयवर्चमिः ।” (याज्ञवल्क्यः)

जितने क्षण पर्यन्त वायु पूरण करते, उन्नीस चतुर्शुण समय कुम्भकमें रखते हैं। फिर कुम्भकके अर्ध समयमें रेचक करना उचित है।

पतञ्जलिके मतमें श्वास-प्रश्वासके गतिविच्छेदको प्राणायाम कहते हैं। आसनसिद्ध होने पीछे प्राणायाम करना चाहिये—

“तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोगंतिविच्छेदः प्राणायामः ।”

(योगसूत्र, साधन ४८)

वाह्य वायुके आकषमन अर्थात् वाम नासापुट द्वारा आकषण करनेका नाम श्वास और कोष्ठस्थित वायुके नासापुटसे निःसारणका नाम प्रश्वास है। इसी श्वास-प्रश्वासके गतिविच्छेदको प्राणायाम कहते हैं। यह प्राणायामका सामान्य लक्षण है। कोष्ठस्थित वायुको निःसारण कर धारणा करते समय, वाह्य वायुको पूरण कर धारणा करते समय और धारणाकर कुम्भकमें श्वासप्रश्वासका गतिविच्छेद पड़ता है। उपरि-उक्त सूत्रके व्याख्यावसरमें भाष्यकार और भाष्यशाख्यानमें वाचस्पतिने इस प्रकार प्रतिपादन किया है—

“सत्यासनजघ्ने बाह्यस्य वायोराचमनं श्वासः कोष्ठस्य वायोनिःसारणं

प्रश्वासः तथोगतिविच्छेद उभयाभावः प्राणायामः । रेचकपूरककुम्भकेष्वपि श्वासप्रश्वासयोगीतिविच्छेद इति प्राणायाम सामान्यलक्षणमेतदिति । तथाहि यत्र बाह्यवायुराचम्य अन्तर्धत्ते पूरके तत्रापि श्वासप्रश्वासयोगीतिविच्छेदः । यत्रापि कोष्ठवायुविरिच्य वह्निः धातते रेचके तत्रापि श्वासप्रश्वासयोगीतिविच्छेदः एवं कुम्भकेऽपि इति ।”

प्राणायाम त्रयका विशेष लक्षण भी पतञ्जलमें उक्त हुआ है—

“बाह्याभ्यन्तरसम्भ्रजितदशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घः सूक्ष्मः ।”

(योगसूत्र, साधन ४०)

प्रश्वास पूर्वक गतिके अभावको वाह्यवृत्ति अर्थात् रेचक, श्वासपूर्वक गतिके अभावको आभ्यन्तर अर्थात् पूरक और श्वास तथा प्रश्वास उभयके अभावको स्थम्भ-वृत्ति अर्थात् कुम्भक कहते हैं। अमृतविन्दूपनिषद्में दो प्रकारका कुम्भक कहा है—

“वक्तृषोत्पलनाम्निन वायुं कृत्वा निराश्रयम् ।

एवं वायुर्यद्दीप्तम्यः कुम्भकस्येति लक्षणम् ॥” (अमृतविन्दूपनिषत्, १२)

मुख पद्मनालके तुल्य बना वायुको निःसारण करके अवरोध करना चाहिये। इसको एक प्रकारका कुम्भक कहते हैं। इसी प्रकार वायुको आकर्षण करके अवरोध करनेका नामभी कुम्भक ही है। प्राणायाम शब्द देख।

प्राणवायुको आकर्षण पूर्वक स्तम्भनस्वरूप स्तम्भ-वृत्तिको कुम्भक कहते हैं। कुम्भक कहनेका कारण यह है कि कुम्भमें जलके निखन रहनेकी भाँति कुम्भकमें भी प्राण वायु स्थिरभाव अवलम्बन करता है—

“आन्तरसम्भ्रजतिः कुम्भकः । तस्मिन् जलमिव कुम्भे निखलतया प्राणो अवस्थापको इति कुम्भकः ।” (भोजवृत्ति)

कुम्भकभट्ट—आहसागर नामक स्मृतिसंग्रहकार ।

कुम्भकरचना (सं० स्त्री०) जैपालवृक्ष, जायफलका पेड़ ।

कुम्भकर्ण (सं० पु०) कुम्भोद्भव कर्णों प्रस्य, बहुव्री० ।

१ राक्षसविशेष। कुम्भकर्ण रावणका मध्यम भ्राता रहा। विश्रवा मुनिके औरससे राक्षसकी कन्या कैकसीके गर्भमें उमने जन्म लिया था। रामायणमें इस प्रकार वर्णित हुआ है—

महामुनि विश्रवा तपस्या करते थे। पिताके आदे शसे कैकसी जाकर उनके निकट उपस्थित हुयी। मुनिने उसे देख कर कहा था—

‘भद्रे ! तুম किसकी कन्या हो ? फिर हमारे निकट

किस कारण आकर उपस्थित हुये हो।' केकसीने अधोमुखी होकर उत्तर दिया—'मेरे पिताका नाम सुमानो है। उनके आदेश प्रतिपालन करनेको ही मैं आपके निकट आयी हूँ। आप अन्तर्यामी हैं। आप अपने आप समझ जायेंगे—मैं किस कारण आयी हूँ।' कियत् काल पीछे मुनि बोल उठे—'तुम्हारे तीन पुत्र और एक कन्या होगी। प्रथम दो पुत्र अतिभय दुष्ट-रित्र निकलेंगे, केवल कनिष्ठ पुत्रको धर्ममें मति रहेगी।' राजसी वर पाकर चली गयी। क्रमशः उसके तीन पुत्र और एक कन्या हुई। उसीके द्वितीय पुत्रका नाम कुम्भकर्ण था। कुम्भकर्ण वाण्यकालमें ही अति-शय दुष्ट हो गया। उसके अमित पराक्रमसे सकल देवता सर्वदा सशङ्कित रहते थे। मातामहके उपदेशसे उक्त तीनों भ्राताओंने घोरतर तपस्या आरम्भ की। उन की तपस्यासे सन्तुष्ट हो ब्रह्मा वर देने चले थे। उस समय देवगण भीत होकर उनसे कहने लगे—'वर न पाने पर भी कुम्भकर्ण अत्यन्त दुर्दान्त हो गया है। यदि उसे आपने वर दे दिया, तो फिर त्रिभुवनका निस्तार नहीं।' ब्रह्माने चिन्ताकर सरस्वतीको कुम्भकर्णके निकट भेजा था। पीछे ब्रह्मा उपस्थित हो कर कहने लगे—'राक्षस! हम वर देने को आये हैं। जो अभीष्ट हो, प्रार्थना करो।' कुम्भकर्णने कहा—'आप ऐसा विधान कीजिये, जिससे मैं सर्वदा निद्रामें अचेतन रह सकूँ।' ब्रह्मा 'तथास्तु' कह कर चले गये। अनन्तर रावणने उक्त संवाद सुना था। उसने जाकर ब्रह्मासे बहुत प्रार्थना की उन्होंने सन्तुष्ट होकर कहा था—'छह मास पीछे एक दिन कुम्भकर्ण जागरित होगा। किन्तु अकाल निद्रा भङ्ग होनेसे निश्चय उसका मृत्यु हो जायगा।' पीछे दुष्टमति रावणने श्रीराम-चन्द्रजीके साथ प्रथमवार युद्धमें पराजित हो कुम्भकर्ण को अकाल जगाया था। इसीसे कुम्भकर्णने श्रीराम-चन्द्रजीके साथ युद्ध करके प्राण परित्याग किया।

(रामायण, उत्तरकाण्ड)

जैन पञ्चपुराणमें लिखा है—

कौतुकमंगल नगरके राजा व्योमविन्दुके नन्दवती नामक रानीके गर्भसे कौशिकी और केकसी ये दो

कन्या उत्पन्न हुई। जिसमें पहली यज्ञपुरके अधिपति राजा विश्वको व्याही गई और उसके वैश्ववर्ण पुत्र हुआ। दूसरी केकसी, पाताल लंकाके स्वामी सुमानो-का पुत्र रत्नश्रवा जब विद्या सिद्ध करने पुष्पक नामा वनमें गया तब उसको परिचर्या करने पिताने रख दी और जब विद्या सिद्ध हो गई तब उसके साथ व्याही गई।

एक दिन केकसीने रात्रिके अंतिम प्रहरमें तीन स्वप्न देखे—गर्जता हुआ सिंह, चमकता सूर्य, और पूर्ण चंद्रमा। फल स्वरूप उसके यथाक्रमसे मानी रावण, तेजस्वी कुम्भकर्ण और शांतस्वभाव विभौषण ये तीन पुत्र हुये। तीनों भाईयोंने भीमनामक वनमें जाकर मंत्र जाप द्वारा अनेक विद्यायें सिद्ध कीं। और उनमें कुम्भकर्णको सर्वहारीणी, अतिसंवर्धिनी अम्भिनी, व्योमगामिनी और निद्राणो ये पांच विद्या हाथ लगीं। कुम्भकर्ण धार्मिक, शूरवीर, जैनशास्त्रप्रव्यक्ति था और उसका गोत्र राक्षस था। विजयार्ध पर्वत पर जो मनुष्य रहते हैं, वे विद्याधर कहलाते हैं और विद्या द्वारा वे आकाशमें चल फिर सकते हैं। उनहीमेंसे एक कुम्भकर्ण था। (सातवां पर्व)

महाभारतके मतानुसार पुष्पोत्कटाके गर्भसे कुम्भकर्णने जन्म लिया और रामानुज लक्ष्मणसे युद्ध करके प्राण त्याग दिया था। (भारत, वनपर्व)

कृत्तिवास-रामायणमें कुम्भकर्णको माताका नाम निकषा उक्त हुआ है। उसके कुम्भ और निकुम्भ नामक दो पुत्र रहे।

२ मेदपाटके राजा। वह प्रसिद्ध वासुशास्त्रकार मण्डनके प्रतिपालक थे। कुम्भरावा देखो।

३ 'पाठ्यरत्नकोष' नामक ग्रन्थके रचयिता।

कुम्भकर्ण महेन्द्र—एक विख्यात सङ्गीतशास्त्रज्ञ। उन्हो-ने संस्कृत भाषामें सङ्गीतमीमांसा, सङ्गीतराज और गीतगोविन्दकी 'रसिकप्रिया' नाम्नी टीका रचना की है।

कुम्भकामला (सं० स्त्री०) १ कामलाभेद, किसी प्रकार का पाण्डुरोग। कालाधिक्यसे खरीभूता कामला कुम्भकामलामें परिणत हो जाती है। वमि, परोचक,

घोर और प्वरादिक रहनेसे कुम्भकामला असाध्य है।

(माधवनिदान)

कुम्भकामलाका सृष्टियोग यह है—बहेड़े काष्ठके अग्निसे मण्डूरकी जला क्रमशः द्वार गोमूत्रमें निक्षेप करते हैं। पीछे उसे चूर्ण कर मधुके साथ सेवन करना चाहिये। पाण्डुरोग देखो।

कुम्भकार (सं० पु०) जातिविशेष, एक कौम। ब्रह्मवैवर्त-पुराणके मतमें—

“विश्वकर्मा च यद्राया वीर्याधानं चकार सः।

ततो बभूवुः पुत्राश्च नवैते शिल्पकारिणः ॥ १८ ॥

मालाकारकर्मकारशङ्करकुम्भकाराः।

कुम्भकारः कांस्यकारः बहेते शिल्पिनां वराः ॥ २० ॥”

(ब्रह्मखण्ड, १०म अध्याय)

विश्वकर्माके शूद्रस्त्रीमें वीर्याधान करनेसे नौ प्रकारके शिल्पकारी उत्पन्न हुये थे। मालाकार, कर्मकार (लोहार), शङ्कर, कुम्भकार और कांस्यकार (कसेरा) इह अेषो अपर शिल्पियोमें श्रेष्ठ हैं।

कसेरा देखो।

भागवतसंस्कृत जातिमात्राका देखते—

“पट्टिकात् गोपकन्यायां कुलाजो जायते ततः।”

पट्टिकासे गोपकन्याके गर्भमें कुम्भकार जातिकी उत्पत्ति है।

परशुरामपद्धतिमें भी कुम्भकार जातिकी उत्पत्ति इसी प्रकार लिखित हुयी है। रुद्रयामसंस्कृत जाति-मालाके मतमें—

“पट्टकाराश्च तैलका कुम्भकारो बभूव ह।”

पट्टकारसे तैलकी (तैलन)के गर्भमें कुम्भकार उत्पन्न हुवा है। फिर निम्नलिखित वचन भी मिलता है—

“वैश्यायां विप्रतथैरात् कुम्भकार स उत्पत्ते।”

वैश्याके गर्भमें विप्रसे उत्पन्न होनेवाली जातिकी कुम्भकार कहते हैं। किन्तु उक्त विषय पर मतभेद दृष्ट होता है।

युक्तप्रदेशमें ऐसे भी पृथक् मत मिलता है कि ब्राह्मणसे क्षत्रियाके गर्भमें कुम्भकार उत्पन्न हुवा है।

प्राचीन ग्रन्थादिमें इन सकल जातियोंके उत्पत्ति-सम्बन्ध पर एक मत प्रायः देख नहीं पड़ता।

इन जातियोंके उत्पत्ति-सम्बन्ध पर एक अच्छा प्रवाद प्रचलित है। कुम्भकारोंके कथनानुसार महादेवके विवाह समय कुम्भका प्रयोजन पड़ा। किन्तु उस समय कुम्भ बनाना कोई जानता न था। उसी अभावमें पड़ महादेवने अपने गलदेशकी रुद्राक्ष-मालासे दो रुद्राक्ष निकाल एकसे एक पुरुष और दूसरेसे एक स्त्री को बनाया था। उन्होंने महादेवके विवाहका घट प्रस्तुत कर दिया। उक्त स्त्रीपुरुषसे ही कुम्भकार जाति चली है। इसीसे बोध होता कि कुम्भकार अपने चक्र पर महादेवकी मूर्ति प्रतिष्ठा कर पूजा करते और अपना उपाधि ‘रुद्रपाल’ लिखते हैं। जातिविभागके मध्य वह नव शाखाके ही अन्तर्गत कहे जाते हैं।

कुम्भकार सृष्टिकाके जलपात्र, रत्ननपात्र, पुस्तल प्रभृति बनाते और उन्हींको बेव कर अपनी जीविका चलाते हैं। स्थानभेदसे उनके भिन्न भिन्न सम्प्रदाय पाये जाते हैं। उनकी उपासना, आचार-व्यवहार और सामाजिक अवस्था भी स्थान भेदसे भिन्न भिन्न हो गयी है।

युक्तप्रदेश और भारतके अन्यान्य स्थानमें कनौजिया, हथेलिया, सुवारिया, बरधिया, गदहिका, कस्तूर और चौहानी कुम्भार मिलते हैं। उनमें बरधिया बेल और गदहिया गंधे पर मड़ी लादते हैं। चौहानी अपनेको ब्राह्मण और क्षत्रिय उभय जातिके सम्मिश्रणसे उत्पन्न बताते हैं। युक्तप्रदेशमें प्रायः ५ लक्ष कुम्भकार रहते हैं। अकेले गोरखपुर जिल्लामें ही ठाई लाखसे कम कुम्भार न मिलेंगे।

दाक्षिणात्यके बम्बई प्रभृति स्थानमें भी कुम्भकार जातिका वास है। हिन्दी भाषामें उन्हें कुम्हार कहते हैं। उनका आचार-व्यवहार भी कुछ स्वतन्त्र है।

वङ्गदेशके भिन्न भिन्न स्थानोंमें २० प्रकारकी विभिन्न कोणोंके कुम्भकार मिलते हैं। उनमें बड़भगिया, कासी और छोटभगिया लाल रंगके बरतन बनाते हैं। राजमहलियोंकी भाषा बंगला और हिन्दी मिश्रित है। ठाकामें बहुतसे नानकशाही कुम्हार रहते हैं। कुम्भकारोंमें वेशाखमास महादेवकी पूजा होती है।

आठ एकादश दिवस किया जाता है। मगहिया कुम्हार पन्थान्द हिन्दू कुम्भकारों से पृथक् हैं।

पावना पञ्चलमें चौरासी कुम्भार रहते हैं। उनका जल ब्राह्मण व्यवहार नहीं करते। चौरासी श्रेणीके सम्बन्धमें एक प्रवाद प्रचलित है। किसी दिन मुर्शिदाबादके नवाब उनके निवासस्थानको घूमने गये थे। उसी समय कुम्भकारों ने उन्हें मृत्तिकाके कितने ही फल और पुष्प उपहार दिये। वह ऐसे सुन्दर बने थे, कि नवाबने प्रीत हो कुम्भारोंकी ८४ ग्राम पुरस्कार दे डाले। तदवधि वह चौरासी नामसे ख्यात हैं।

कहते हैं कि मुर्शिदाबाद और हुगलीके वारेन्द्र कुम्भकार आदि रुद्रपालके पुत्रोंमें किसी एकसे उत्पन्न हुये हैं। किन्तु वह व्यक्ति अपना भगिनोके साथ कुकार्यमें लिस था। मुर्शिदाबादमें दासपाड़ा श्रेणीके भी कुम्हार रहते हैं। प्रवादानुसार वह रुद्रपालके दासीगर्भ-सम्भूत पुत्रसे उत्पन्न हैं। कह नहीं सकते—उक्त प्रवाद कहाँ तक सत्य है।

उड़ीसाके जगन्नाथी कुम्हार अपने गोत्रके अद्भुत अद्भुत नामोंके सम्बन्धमें पूछने पर बताते हैं—“हमारे गोत्रके सकलपादिपुरुष मुनि रहे। उन्होंने दक्षयज्ञमें जाकर महादेवके भयसे यही समस्त रूप धारण कर पलायन किया।” वह स्व स्व गोत्रके नामानुसारी जीवके प्रति प्रभूत दया तथा भक्तिप्रकाश करते और उनका वध अथवा कोई अनिष्ट करनेसे सदा क्रूर रहते हैं।

पूर्व वङ्गके कुम्भकार स्वगोत्रमें विवाह करते हैं। किन्तु मगहियों और विहारके अधिकांश पन्थान्द कुम्हारोंके मध्य स्वगोत्र, मातुल्लगोत्र, पित्रमातुल्ल गोत्र अथवा मातृ-मातुल्ल गोत्रमें विवाह प्रचलित नहीं।

जगन्नाथी कुम्हार परस्पर आदान प्रदान करते हैं। उनमें शाल मत्स्यकी पूजा भी होती है।

धर्म सम्बन्धमें प्रवादानुसार महादेवसे उत्पन्न होते भी अनेक कुम्भकार वैष्णव सम्प्रदायभुक्त हैं। बङ्गालके कुम्हार अपर शिल्पकारोंकी भांति विश्वकर्माकी पूजते हैं। जगन्नाथियोंमें राधाकृष्ण और जगन्नाथकी पूजा होती है। नानकपन्थी गुरु नानक साहबकी अर्चना

करते हैं। जगन्नाथी कुम्हार अपना आदिपुरुष होनेसे रुद्रपालकी मूर्ति निर्माण कर पूजा करते हैं। वह रुद्रपालकी मूर्तिकी राधा और कृष्णकी मूर्तिके मध्य-स्थलमें रख देते हैं। अग्रहायण मासकी शक्ता षष्ठीकी उक्त देवताकी पूजा होती है। चैत्र मासमें कुछ कुम्भकार विन्ध्यवासिनीकी पूजते हैं। विहारके कुम्भकारोंमें सर्पोंके देवताओंकी पूजा प्रचलित है। छोटा नागपुरके कुम्भकार भार्य और अनार्य देवताओंकी पूजते हैं।

सकल कुम्भकार मृत व्यक्तिका दाह करते हैं। कहीं एक मास, कहीं दश दिन और बारह दिन अथोच रह पीछे आह किया जाता है।

लखनऊवासी कुम्हार मटोके अच्छे अच्छे बरतन और खिलौने बनाते हैं।

कुम्भकार (सं० पु०) १ सर्प विशेष, कोई साँप। २ कुकुभपत्नी, किसी किसानका जंगली मुरगा। ३ कोई प्राचीन कवि। हेमिन्द्रने औचित्यविचारचर्चामें कुम्भकारके नामसे उनकी कविता उद्धृत की है।

कुम्भकारक (सं० पु०) कुकुभपत्नी, एक जङ्गली मुरगा। कुम्भकारकुक्कुट (सं० पु०) छुद्रकुक्कुट विशेष, एक छोटा मुरगा।

कुम्भकारिका (सं० स्त्री०) १ कुलत्याञ्जन, काला सुरमा। २ वनकुलत्या, जङ्गली कुलद्यो। ३ मनःशिला, मेनसिल।

कुम्भकारी (सं० स्त्री०) कुम्भकार-कीपू। टिप्पण—एक-ज०। पा० ३। ११। १ कुम्भकारपत्नी, कुम्हारिन। २ कुल-त्याञ्जन, काला सुरमा। ३ वनकुलत्या, जङ्गली कुलद्यो। ४ मनःशिला, मेनसिल।

कुम्भकालुक (सं० स्त्री०) चोल, मट्टा।

कुम्भकेतु (सं० पु०) एक असुर। कुम्भकेतु सम्बन्ध-सुरके शत पुत्रोंके मध्य एक पुत्र रहे। सम्बन्धसुरके युद्धमें कृष्णपुत्र प्रद्युम्नने उन्हें मार डाला।

(हरिवंश, विष्णुपर्व, १६१ पं०)

कुम्भकोण (सं० पु०) १ कुम्भका कोण, चङ्केका कोना। २ जनपद विशेष, कोई सुक्क। कुम्भकोण कुम्भघोषम् नामसे विख्यात है। कुम्भकोणम् देखो।

कुम्भघोणम्—मन्दाजके अन्तर्गत एक तीर्थ। उक्त तीर्थ कावेरी नदीके तीर तञ्जापुर (तञ्जोर) से उत्तरपूर्व २३ मील दूर अवस्थित है। प्रसिद्ध चिदम्बर तीर्थसे रेलपथ पर जानेमें पांच घण्टेसे कुछ कम समय लगता है। कुम्भघोणम् बराबर तञ्जापुरवाले राजाओंके अधीन था। स्कन्दपुराणके मतमें 'प्रलयके समय शिख (शिखर)में रह एक कुम्भ (घडा) अमृत महामेरु पर लटका करके रख दिया गया था। प्रलयका जल बढ़ते बढ़ते शिख पर्यन्त पहुँचा और कुम्भ डूब गया। फिर वह बहते बहते दक्षिण दिक्को चला था। शेषको प्रलयान्तमें इसी स्थान पर वह आ गिरा और उसकी नासा (टोंटी) टूट जानेसे अमृत निकल पड़ा। भगवान् शङ्करने देखा कि अमृत गिरनेसे उक्त स्थल पवित्र हो गया था। वह इस स्थानको तीर्थभूमि समझ लिङ्गरूपसे आविर्भूत हुवे। यज्ञो लिङ्गदेव इस स्थानके प्रधान देवता कुम्भेश्वर हैं। * कुम्भकी नासा (टोंटी) से तीर्थका नाम कुम्भघोण पड़ा है।

कुम्भघोण किसी समय चोल राजाओंकी राजधानी-था। करिकाल राजा उक्त स्थानके शासनकर्ता रहे। चिदम्बरके ब्राह्मण दीक्षित कहलाते और संख्यामें तीन सहस्रमात्र पाये जाते थे। क्षैत्रमाहात्म्यके मतानुसार उक्त तीन सहस्र दीक्षित पद्मयोगिके आदेशसे बाराहसीमें जाकर रहे। स्वल्पपुराणको देखते जब पञ्चम मनुके पुत्र गौडराज श्वेतवर्ण वा हिरण्यवर्ण चिदम्बरमें थे, तब वह चिदम्बरके आकाशरूपी शङ्कर चिदम्बररहस्य देवके आदेशसे उक्त तीन सहस्र दीक्षित स्वदेशकी ले गये। उनमें प्रत्येक स्वतन्त्र शकट पर बैठ वहाँ पहुँचा था। उनके समवेत होनेके स्थानको कनकसभा कहते हैं। स्वल्पपुराणोक्त मधुराके सुन्दर पाराक्व उक्त कनकसभामें उपस्थित होते समय कुम्भ-कोण देख गये। फिर किसीके मतमें ई० दशम शता-

ब्दके मध्यकाल चोलराज वीरचोल रायने कनकसभाको निर्माण किया।

कुम्भघोणमें छह प्रसिद्ध मन्दिर हैं—१म कुम्भेश्वर, २य सोमेश्वरस्वामी, ३य नागेश्वरस्वामी, ४य शार्ङ्ग-पाणिस्वामी, ५म चक्रपाणिस्वामी, और ६ष्ठ रामस्वामी।

अष्टादश खृष्टाब्दके शेषभागमें तञ्जापुरके नायक-वंशीय शिवप्पा नायकके पौत्र रघुनाथ नायकने राम-स्वामीका मन्दिर बनवाया था। नायक राजा वेष्णव रहे। सुतरां अनुमान होता है कि शार्ङ्गपाणि और चक्र-पाणिका मन्दिर भी उन्हींके हाथ बना था। चोलराजा शैव रहे। इसलिये सम्भव है कि खृष्टीय सप्तम शता-ब्दको उन्होंने दूसरे ३ शिवमन्दिर बनवाये हों। न्यूनाधिक ५ शत वत्सर पूर्व लक्ष्मीनारायणस्वामी नामक एक व्यक्तिने शिवमन्दिरोंका संस्कार तथा परिवर्धन कराया और सेवानिर्वाहके लिये निष्कर भूसम्पत्तिको क्रय करके लगाया था। स्वर्गीय लक्ष्मी-नारायणस्वामीकी प्रस्तरमूर्ति अद्यापि देवालयमें विद्य-मान है। पूजक प्रत्यह उसकी भी पूजा करते हैं।

भगवान् शङ्कराचार्यके प्रसिद्ध शृङ्गेरि मठका एक शाखामठ कुम्भकोणमें वर्तमान है। मठाध्यक्ष भी शङ्कराचार्यही कहते हैं।

कुम्भघोणका सुष्ठवत् गोपुर भारत विख्यात है। उसमें शिल्प और कारुकार्यकी पराकाष्ठा प्रदर्शित हुयी है।

कुम्भघोण नगर अधिक जनाकीर्ण है। उसमें ५० हजारसे कम लोग नहीं रहते। हिन्दुओंमें सैकड़ों पीछे २० ब्राह्मण हैं। प्रति वर्ष देवालयमें अनेक उत्सव होते हैं—मेषमासमें चैत्रोत्सव, २ ऋषभ मासमें १० दिन पर्यन्त वसन्तोत्सव (इस समय भगवान् वसन्त वायुके सेवनको वह्निर्गत होते हैं), ३ कर्कटमास ७ दिन तक पवित्रोत्सव, ४ कन्यामास नवरात्रोत्सव, ५ तुलामास १० दिनतक भूलनोत्सव, ६ धनुमास २० दिन पर्यन्त वेदाध्ययन एवं रथोत्सव, मकरमास जलक्रीडोत्सव (तेय्यन) और मीनमास पुङ्गवोत्सव। एतद्व्यतीत प्रति १२व वर्ष माघ मासका महा-कुम्भका मेला लगता है।

* नेपाली बीहर्षी स्वयम्भुपुराणमें उक्त कुम्भेश्वर देवका उल्लेख मिलता है। फिर कुम्भघोष स्थान भी कुम्भतीर्थ नामसे वर्णित हुआ है। (स्वयम्भु पुराण, ४२ प०)

कुम्भेश्वर शिव लिङ्गाकार हैं। चक्रपाणि दण्डायमान विष्णुकी मूर्ति हैं। शङ्खपाणि शेषनागकी शय्या पर अर्धशायित विष्णु हैं। उनकी नाभिसे प्रस्रुत शक्ति बुवा है। रामस्वामीके मन्दिरमें धनुर्वाण-हस्त श्रीराम, लक्ष्मण और सीताकी मूर्ति विराजित है।

कुम्भघोषमें एक कालेज और अनेक संस्कृत विद्यालय विद्यमान हैं। एतद्विषय जेलखाना और पाठशाला (सराय) भी बना है।

कुम्भचक्र (सं० पु०) एक चक्र। चक्र देखो।

कुम्भज (सं० पु०) कुम्भे जायते, कुम्भ-जन्-ड।

१ अगस्त्य मुनि। "कहं कुम्भज कहं सिंधु अपारा।" (हनुमत्)

२ द्रोणाचार्य। ३ वक्रवर्ण, अगस्त्यका पेट। (त्रि०)

४ कुम्भजात, घड़ेसे पैदा।

कुम्भजन्मा (सं० पु०) कुम्भ जन्म उत्पत्तिर्यस्य। अगस्त्य मुनि।

कुम्भडिका (सं० स्त्री०) कुम्भाण्डशालि, किसी किष्किका धाम।

कुम्भतुम्बी (सं० स्त्री०) कुम्भ इव तुम्बी, कर्मधा०।

१ लङ्गत् तुम्बी, गलकटू। उसका संस्कृत पर्याय—

कुम्भालावु, गोरक्षतुम्बी, गोरक्षी, नागालावु, घटा-

भिधा और घटालावु है। वैद्यक निघण्टुके मतमें—

वह मधुर, शीतल, तर्पण, शुद्ध, रुच्य, पुष्टिकर, शुक्र-

वर्धन, वलप्रद, पित्तनाशक और गर्भपोषक होती है।

कुम्भदासी (सं० स्त्री०) कुम्भस्य वैष्णोपदेर्दासी,

६-तत्। १ कुटनी, कुटनी। २ कुम्भिका।

कुम्भनदास—हिन्दी भाषाके एक ब्रजवासी कवि।

१५५० ई० को यह विद्यमान रहे। कुम्भनदास वक्ता-

भाषायेकी शिष्य थे। कविताका नमूना यह है—

"बसुने रस खानिकी सोस नवाक"।

ऐसी मज्जा जानि भक्तिकी सुखदानि जोइ मांगि सीरै पाक" ॥

पतिप्रापन करण नाम लौन्हें तरण हृद करि गछे चरण कहूं न जाऊँ
कुम्भनदास गिरिधरण सुख निरखते एही चाहत नहीं पलक लगाऊँ ॥

"तुम नीके दुष्ट जानत गैया

बलिधे कुंवर रसिक नंदनवन लानों तिहारो पेया ॥"

तुमहि जानिकर कनकदीहिनी घरसे पठई मेया।

निबटहि है यह खरकि हमारी नामर लेउ' बरैया ॥

दखियत परम सुदेश लरकर चित चुह्यो सुंदरैया ॥

कुम्भनदास प्रभु मान लई रति गिरि गोवर्धन गैया ॥"

कुम्भनाभ (सं० पु०) कुम्भरव नाभिरस्य, कुम्भ-नाभि-अच्। देखराज वलिके पुत्र।

कुम्भपतिया—उपासक सम्प्रदाय-भेद। सम्बलपुर जिले-से उक्त सम्प्रदायका प्रधान पण्डा है। इसको छोड़ मध्य-प्रदेशके भी ३० गांवोंमें कुम्भपतिया लोग रहते हैं। वह कहते कि (प्रायः १८६४ ई०) अलेखस्वामी नामक एक देवपुरुषने उनके मतको प्रवर्तन किया था। उनके रूपको वर्णना लिखकर को जा नहीं सकते। वह हिमालयको भांति उच्च रहे। अलेखस्वामीने ही प्रथम ६४ व्यक्तियोंको दीक्षित करके अपना मत सिखाया था।

कुम्भपतिया अलेखस्वामीकी भांति उक्त ६४ व्यक्तियोंको भी देवभावसे पूजते हैं।

वह सकल हिन्दू देवताओंको विश्वास करते, किन्तु किसीकी मूर्तिका अस्तित्व नहीं मानते। और मूर्तियोंको नहीं पूजते। कुम्भपतिया कहते कि सकल देवता ईश्वर-स्वरूप हैं। किन्तु किसीने ईश्वरके स्वरूपको नहीं देखा। बिना देखे कोई कैसे उस मूर्तिकी कल्पना कर सकता है!

रोग होनेसे कुम्भपतिया औषध सेवन न करके ईश्वर पर निर्भर करते हैं। रुग्णावस्थामें केवलमात्र जल और मृत्तिकाको ग्रहण किया जाता है।

उनमें ३ शाखा हैं। तन्मध्य २ शाखा तो एककाक ही संसारनिर्लिप्त वैरागी हैं। केवल एक शाखा गृहस्थ देख पड़ती है।

कुम्भपतिया वैरागी नग्न रहते, केवल कटिमें वस्त्रपरिधान करते हैं। दूसरे सम्प्रदायका उनको बड़ा आक्रोश रहता है। एक बार कुम्भपतियोंके कोई प्रधान गुरु आपनी सुन्दरी शिष्या पर आसक्त हुवे। उसमें किसी किसीने उनसे खानि की थी। गुरुने उक्त संवाद पाकर कहा—'तुम लोगोंके लिये कोई भावना नहीं। विधर्मी लोगोंको दमन करनेके लिये इस रमणीके गर्भसे महावीर अर्जुन जन्मग्रहण करेंगे।' यथा-काल उस रमणीके एक कन्या हुयी थी। प्रथम पूजा करके किसीने उस शिशुको ग्रहण न किया। गुरुने सबको पुकार कर कहा था—'तुम्हारे लिये चिता

करनेकी कोई बात नहीं। यही बालिका मन्त्रबलसे विधर्मों लोगोंको ध्वस्त करेगी। इसको ले लो।' गुरुकी बातसे सब ठण्डे पड़े। किन्तु उनके दुर्भाग्य क्रमसे बालिकाने रहस्योक्त परित्याग किया। फिरभी उसके ऊपर कुम्भपतियोंकी जो विश्वास हुआ था, वह कम न पड़ा। गुरु जहां प्रणयिनोके साथ बैठते थे, वहाँ एक वेदी बनायी गयी। उनके शिष्य प्रत्यह प्रातःकाल उसकी देव-देवी समझ पूजने लगे।

उसी समय किसी दूसरे दलने अपर गुरुका आश्रय लिया था। उनमें अतिकठोर नियम निष्काला गया— जो व्यक्ति अपने धर्म प्रतिपालनसे विमुख होगा और जो मिथ्याभाषा किंवा कोई गुरुतर अपराध करेगा, उसको शिरच्छेदका दण्ड मिलेगा।

कई वर्ष हुए, उक्त समाजके १२ पुरुष १५ स्त्रियोंके साथ जगन्नाथ देवकी मूर्ति जला देनेके लिये पुरी पधंचे थे। शेषकी दूसरे यात्रियोंने मालूम होने पर उनका गतिरोध किया। उस समय एक कुम्भपतिया मारा गया और दूसरे छत हो १ मासके लिये कारागारकी भेज दिये गये। मणिमाधर्मों देखो।

कुम्भपद्यादि (सं० पु०) पाणिनि उक्त शब्दगण विशेष। इसमें निम्नलिखित शब्द सम्मिलित हैं—कुम्भपदी, एकपदी, जालपदी, मुनिपदी, शूलपदी, गुणपदी, सूत्रपदी, गोधापदी, कलशोपदी, विपदी, द्विपदी, त्रिपदी, षट्पदी, दामोपदी, वृषपदी, शितिपदी, विष्णुपदी, सुपदी, निष्पदी चार्द्रपदी, कुण्ठिपदी, कृष्णपदी, शुचिपदी, द्रोणीपदी (द्रोणपदी), द्रुपदी, शूकरपदी, शक्तपदी, अष्टापदी, खण्णपदी, अपदी चार सूचीपदी इत्यादि।

कुम्भपर्णी (सं० स्त्री०) कुम्भाण्ठीलता, कुम्हड़ेकी वेल।
कुम्भपाद (सं० त्रि०) कुम्भ इव मध्यस्थकः स्कीतः पादा यस्य, बहुव्री०। स्कीतपाद, मोटे पैरोंवाला।

कुम्भपुटा (सं० स्त्री०) श्वेतत्रिवृता, सफेद निसीत।

कुम्भपुष्पी (सं० स्त्री०) रक्तपाटलवृक्ष, एक पेड़।

कुम्भफला (सं० स्त्री०) महाकुम्भाण्ठी, बड़ा कुम्हड़ा।

कुम्भमण्डूक (सं० पु०) कुम्भे मण्डूकः, पात्रे समितादित्वात् तत्पुरुषनिपातः। पात्रे समितादयः। पा २। १। ४८।

कुम्भमण्डूक, खल्य ज्ञानविशिष्ट, प्रदूरदर्शी, कुयंका मेंडक, कम-पल्ल, नादान्। कुम्भस्थित भेक जिस प्रकार कुम्भातिरिक्त स्थानकी जा नहीं सञ्चता, उसी प्रकार क्षुद्र पायतनमें संबद्ध ज्ञानवाला व्यक्ति उससे अतिरिक्त विषयको धारण करनेमें असमर्थ रहता है। इसीसे कुम्भमण्डूकका अर्थ खल्यज्ञानविशिष्ट है।

कुम्भमुष्क (सं० पु०) कुम्भ इव मुष्कोऽण्डो यस्य। एक वैदिक दैत्य। उसका अण्ड कुम्भकी भांति बृहत्तरा।

कुम्भमुद्रा (सं० स्त्री०) एक तान्त्रिकमुद्रा।

कुम्भमूर्धा (सं० पु०) हरिवंशवर्णित एक दानव।

कुम्भमेला—कुम्भ वा पुष्कर योगके उपलक्षमें लगनेवाला मेला। कुम्भयोगका अपर नाम पुष्करयोग है। स्थानविशेषमें १२ वर्षके प्रन्तरसे उक्त योग आता है।

स्कन्दपुराणमें लिखा है—

“मकरस्थो यदा भागुक्तदादेव गुरुर्ददि।

पूर्णिमायां गुरोर्गारे गङ्गा पुष्कर ईरिता।

गङ्गाधारे प्रयागे च कोटिसूर्ययुतः समः॥”

मकर शशिमें बृहस्पति और सूर्य मिलित होने पर यदि पूर्णिमातिथि पड़ती, तो प्रयाग और गङ्गाधारे (गङ्गोत्तरी) में गङ्गा पुष्कर तुल्य हो जाती है। वह कोटिसूर्य ग्रहणके समान है।

“सिंहसंख्ये दिनकरे तथा जीवेन संयुते।

पूर्णिमायां गुरोर्गारे गोदावरीस्य पुष्करः॥

मेषसंख्ये दिवानाथे दिवानाथ पुरोहिते।

शनिवारि चिताष्टमां कावेरीं पुन करो मतः॥

कर्कटसंख्ये दिवानाथे तथा जीवेन्दुगारि।

अमायां पूर्णिमायां वा कृष्ण पुष्कर उच्यते॥”

(स्कन्दपुराण, पुष्करखण्ड)

सूर्य और बृहस्पति सिंह राशिमें मिलित होने पर बृहस्पति वारकी यदि पूर्णिमा तिथि पड़ती, तो गोदीवरीमें पुष्करयोग लगता है। इसी प्रकार कृष्णपक्षीय अष्टमी तिथिकी मेषराशि पर सूर्य एवं बृहस्पतिके मिलित होनेपर कावेरीमें और श्रावण मास बृहस्पति किंवा शनिवारकी प्रभावस्था वा पूर्णिमाके दिन कृष्णा नदीमें पुष्करयोग होता है।

कुम्भयोगि (सं० पु०) कुम्भो योनिरुत्पत्तिस्थानं यस्य, बहुव्री०। १ अगस्त्य मुनि।

२ वशिष्ठ मुनि । ३ द्रोणाचार्य । ४ द्रोणपुत्रो वृद्ध (स्त्री०) ५ एक अप्सरा । (महाभारत, १।४१। १०) ६ वक वृद्ध, अगस्त्यका पेड़ ।

कुम्भयोनिक्का (स० स्त्री०) १ द्रोणपुत्रो वृद्ध, एक भाइ । २ वक वृद्ध, अगस्त्यका पेड़ ।

कुम्भराणा—चित्तौरके एक राजा । वह मुकुलजीके पुत्र रहे । कुम्भराणाने १४१८ ई०को अपने मातुल मारवाड़के राजाको विशेष सज्जानुभूति मिलनेपर देहक सिंहासन पर आरोहण किया । मेवाड़का घट्ट बदला था । धर्मविहीन शत्रु, उनके पराक्रमसे पराहत हो क्रमशः अवनत हुये । परिणामदर्शी कुम्भराणाने अपनी असाधारण प्रतिभाके बल और विपद् पड़नेकी संभावना समझ पूर्वसे ही तदुपयोगी आयोजन लगा रखा था । उसी समय मालव और गुज्जर राज्यके दोनों नृपति दिन दिन चित्तौरकी समधिक श्रेष्ठि देख ईर्ष्यापरतन्त्र हो कुम्भको पराजय करनेके अभिप्रायसे प्रतिज्ञासूत्रमें आवद्ध हुये और १४४० ई० को ससैन्य चित्तौर नगरको आक्रमण करने लगे । महाराज कुम्भने लक्ष अश्व एवं पदातिक और चतुर्दश शत हस्ती से प्रबल प्रतापसे उभयको पराजय किया और अवशेषमें मालवराज मुहम्मद खिलजीको बांध लिया ।

अनुल फजलने अपने प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थमें उक्त घोर संघामकी वर्णना की है । उन्होंने विजातीय होते भी कुम्भकी उदारताकी प्रशंसा कर लिखा है—‘कुम्भकी सुहृद्दने निष्कृति दान की थी । किन्तु उन्होंने सुन्निके विनिमयमें कुछ भी ग्रहण नहीं किया वरन् मालवराजको विपुल उपहार दे सम्मान सहकारसे उनके राज्यमें पहुँचा दिया । भट्ट ग्रन्थमें लिखा है कि मुहम्मद खिलजी कुछ मासकाल चित्तौरमें अवलंब रहे राणाने विजित सुहृद्दके मुकुट और जयसम्ब अम्याभ्यद्रव्यकी जयनिदर्शनस्वरूप अपनी राजधानीमें रखा था । बादरने आत्मजीवनके वृत्तान्तमें उल्लेख किया है कि उक्त मुकुट उन्हें राणा सांगाके पुत्रने उपहार दिया ।

विजयनामके ११ वर्ष पीछे राणा कुम्भने एक

विजयस्नान बनाया था । उसमें विजयनामका समस्त विषय लिखा है । भट्टग्रन्थ पाठसे यह बात समझ पड़ती कि मालवराजने परिशेषको कुम्भराणाके साक्षबन्धुता संस्थापन की थी ।

कुम्भ नगर अधिकार कर इन्मान् देवकी प्रतिमूर्तिके साथ कई विशाल कपाट खो गये थे । इन्मान् देवकी उक्त प्रतिमूर्ति चित्तौरके एक द्वार पर अवस्थित है । चित्तौरका वह ठहत् द्वार ‘इन्मान्-द्वार’ कहलाता है । मेवाड़की रक्षाके लिये जो ४० दुर्ग स्थान स्थान पर विराजमान थे, उनमें वत्तीस कुम्भराणाके बनवाये रहे ।

आबू पर्वतके शिखरदेशपर परमारोंका एक दुर्ग था । कुम्भराणाने जीर्ण संस्कार करा उसमें दूसरा एक कोठ बनवा दिया । उक्त दुर्ग उनको अतिशय प्रीतिप्रद था । वह अनेक समय उसमें रहा करते थे । उक्त दुर्गमें कई प्रस्तरमन्दिर हैं । एक मन्दिरके अन्तर्भागमें कुम्भ और उनके पिताकी पाषाणनिर्मित दो प्रतिमूर्तियाँ हैं । जिस स्थान पर वर्तमान सिरोंही अवस्थित है, वहीं राणाने वासन्ती नामक दुर्ग बनाया था । तन्निष्ठ शिरोमणि और देवगढ़ सुरक्षित रखनेको उन्होंने माचिन नामक दूसरा दुर्ग भी निर्माण कराया ।

इसकी छोड़ करके अपर दो कीर्तियोंका भी विवरण मिलता है । उनमें एकका नाम कुम्भश्याम है । वह आबू पर्वत पर संस्थापित है । दूसरी कीर्ति मेवाड़के उच्च प्रदेशसमूहके पश्चिम प्रान्तमें सद्दि-गिरिपथके मध्य अवस्थित है । कहा जाता है कि उक्त कीर्तिनिकेतन निर्माण करनेमें १० करोड़से अधिक रूपया लगा था । कुम्भने अपने कोषागारसे ८ लाख रूपया दिया, अवशिष्ट प्रजाने साहाय्य किया ।

कुम्भराणा एक सुकवि रहे । उनकी कविता सकल आध्यात्मिक भावोंसे परिपूर्ण है । उन्होंने गीतगोविन्दका एक परिशिष्ट बनाया था ।

मालवराजकी जनेक राठौर-सामन्तकी कन्या मीरा बाईके साथ राणाका विवाह हुआ । मीरा बाईने कुम्भसे कविता-रचना सीखी और धर्मविधायिणी बहुत सी कविता रचना भी की थी । मोरारि देखी ।

भालावाड़के सरदारकी एक दुहितাকে साथ भार-
वाड़के राजाका विवाह-सम्बन्ध स्थिर हुआ था। किन्तु
विवाहसे पहले ही कुम्भराजा उसे हर ले गये। उससे
राठोरो और सिंसोदियोंका प्रशमित विद्रोहजनल
उमड़ उठा था। किन्तु किसी प्रकार कोई राणाका
कुछ बना न सका। कुम्भने प्रबल प्रतापसे ५० वर्ष
राजत्व रखा था। कालकी कुटिल गति अचिन्तनीय
है। उनके पुत्र छुटाने गुप्तभावमें कुरिकाप्रहारसे उन-
का प्राण संहार किया।

कुम्भराशि (सं० पु०) द्वादश राशिके मध्य एकादश
राशि। कुम्भ देखी।

कुम्भरी (सं० स्त्री०) दुर्गा, पार्वती।

कुम्भरिता. (सं० पु०) कुम्भे रिताः कारणमस्य,
बहुव्री०। १ अगस्त्य। २ अग्नि।

“हविषा यो द्वितीयेन सोमेन सङ्ग पूज्यते।

रथप्रभू रथाणां च कुम्भरिताः स उच्यते॥”

(भारत, वन, २१८-४०)

कुम्भलग्न (सं० स्त्री०) कुम्भस्य कुम्भराशिर्लग्नमदय-
कालः, ६-तत्। कुम्भराशिका उदय काल।

कुम्भला (सं० स्त्री०) मुण्डरी, गोरखमण्डी।

कुम्भवाक्यी (सं० स्त्री०) मुण्डिरि भेद, कोई एक
मुण्डी।

कुम्भबीज, कुम्भबीजक देखी।

कुम्भबीजक (सं० पु०) कुम्भ इव बीजमस्य, कुम्भ-बीज
स्वार्थे कः। परिष्टफल वृक्ष, रोठेका पेड़।

कुम्भशाका (सं० स्त्री०) कुम्भस्य शाका निर्माणग्रहम्।

६-तत्। कुम्भनिर्माणस्थान, मट्टीके चड़े बननेकी
जगह।

कुम्भशाकि (सं० पु०) खनास-ख्यात धान्यविशेष,
एक धान। बड़मधुर, खिन्ध और वातपित्तजन होता है।

(राजनिचन्द्र)

कुम्भसन्धि (सं० पु०) कुम्भयोः सन्धिर्मिलनस्थानम्,
६-तत्। हस्तीके कुम्भद्वयका मिलनस्थान।

कुम्भसंभव (सं० पु०) कुम्भः सगभवोऽस्य, कुम्भ सं-
भू अपादाने अप्। १ अगस्त्य मुनि। २ वशिष्ठ मुनि।
३ द्रोणाचार्य। ४ विश्व।

“आपवः स विमुर्भूत्वा कारवानास वे तपः।

हादयित्वात्मनो देहनात्मना कुम्भसम्भवः॥” (हरिवंश, २०१।१)

कुम्भसर्पिः (सं० स्त्री०) एकादशोत्तर शतवार्षिक
पुराण पृत, १११ सालका पुराना घी। वह रक्षोघ्न
होता है। (संस्कृत)

कुम्भजनु (सं० पु०) एक राक्षस। (रामायण, ६।३२।१५)

कुम्भा (सं० स्त्री०) कुक्षितवत्या कुम्भा उदरपूर्ति-
र्यस्या। १ वेश्या, रण्डी। २ उखा, भरतिया, बटलोई।
३ कटफल वृक्ष। ४ पृश्निपर्णी। ५ पाटला वृक्ष।
६ द्रोणपुष्पी। ७ श्वेत त्रिवृता। ८ तुम्बी, तीवी।

कुम्भाख्या (सं० स्त्री०) रक्तपाटल, एक पेड़।

कुम्भाट (सं० पु०) कुम्भकेका पेड़।

कुम्भाण्ड (सं० पु०) कुम्भ इव अण्डोऽस्य, बहुव्री०।

१ दैत्यजातिविशेष। उनका अण्डकोव कुम्भकी भांति
वृक्षत्रहा। २ वाणासुरके कोई मन्त्रो। (हरिवंश,
१०५-४०) (स्त्री०) ३ कुम्भाण्ड, कुम्भड़ा।

कुम्भाण्डक (सं० स्त्री०) कुम्भाण्डा एव, कुम्भाण्ड-
कम्। कुम्भाण्ड, कुम्भड़ा।

कुम्भाण्डी (सं० स्त्री०) कुम्भाण्डो, कुम्भड़ा।

कुम्भाधिप (सं० पु०) कुम्भस्याधिपः, ६-तत्। कुम्भ-
लग्नका अधिपति, शनिग्रह।

कुम्भारी (सं० स्त्री०) कुम्भाण्डी, कुम्भड़ेका पेड़।

कुम्भार्दी, कुम्भारी देखी।

कुम्भाभाबु (सं० स्त्री०) कुम्भकारमलाबुः। महा-
दुग्धाभाबु, गोक कद्।

कुम्भासिन्धेय—दक्षिण कनाड़ाका एक पुष्प स्थान।
बड़ कोण्डपुरके उत्तर पश्चिम स्थित है। कोटीखर सिङ्गके
कारण कुम्भासिन्धेय दक्षिणापथमें पवित्र तीर्थ माना
जाता है। कुम्भासिन्धेयनाशान्ना नामक संस्कृत बन्धमें उल्लेख विस्तृत
विवरण द्रष्टव्य है।

कुम्भाजय (सं० पु०) कुम्भनामला, यरकान, कांवल-
बाई।

कुम्भिक, कुम्भीक देखी।

कुम्भिका (सं० स्त्री०) १ वारिपर्णी, उसका संस्कृत
पर्याय—वारिपर्णी, श्वेतपर्णी, प्रश्नकुम्भी, पानीय, पुष्पक
आकाशमूली, कुठार, जलवस्त्रक, कुम्भी, वारिमूली,

खमूलिका, पर्णी, पुत्री, खमूलि, खमूली, वारिकर्णिका कुमुदा और दलादक है। २ रक्तपाटला। ३ नेत्रवर्जज रोगविशेष, पांखकी पलकमें पैदा होनेवाली एक बीमारी। वह कुम्भीका बीजके सदृशकार रङ्गनेसे उक्त नाम द्वारा पुकारी जाती है। कुम्भिका प्रान्तज एवं विदोर्ण रहती और बहती तथा फिर भरती है। माधवनिदानमें लिखा है—‘वर्त्मके अन्तर्में जो पिड़का पड़ कर फूटती और बहती है, वही कुम्भिका है। कुम्भिका कुम्भीक बीज सदृश और सन्निपातज होती है।’ ४ पाटल वृक्ष। ५ द्रोणपुष्पी। ६ गुग्गुलु। ७ शूकदोषविशेष, एक बीमारी।

कुम्भिकाद्यतैल (सं० स्त्री०) नाडीग्रणाधिकारका तैल विशेष, जखम पर लगाया जानेवाला एक तैल। तैल ४ शरावक, काथार्थ कुम्भीका (जलकुम्भीकी जड़), खजूरी, कपित्थ, विस्व तथा उदुम्बरादि पुष्पफल वृक्षोंका फल गलाट (कच्चे फल) कल्क ४ शरावक और वारि ३२ शरावक महीके कोरे बरतनमें भली भांति उबाल ८ शरावक बचनेसे उतार लेना चाहिये। बस्त्रसे छान कर उक्त काथको सुस्तक, सरसकाष्ठ, प्रियङ्गु, त्वक्, एसापत्र, नागकेशर, मोचरस, जातीकोष, लोध्र और धातकीपुष्पका १ शरावक कल्क डाल करके फिर तैलको पकाते हैं। (रसरत्नाकर)

कुम्भितित्तिर (सं० पु०) तित्तिरपश्चिमेद, एक प्रकार का तीतर।

कुम्भिनरक (सं० स्त्री०) कुम्भीपाक नरक।

कुम्भिनी (सं० स्त्री०) मृगेर्वावृक्ष, सौभिनी, खुशबूदार कचेसिया। २ जैपाक वृक्ष, जायफलका पेड़। ३ पुष्पिणी, जमीन।

“नीरिका कुम्भिनी चना।” (मत्तिन’ष, साघटीका, १०।५४)

४ कुम्भयुक्तस्त्री, चढ़ेवाली औरत। “तासे विष विजभिर उदकं कुम्भीरिव।” (चक्र १।१२१।१४)

कुम्भिनीफल, कुम्भिनीबीज देखो।

कुम्भिनीबीज (सं० स्त्री०) कुम्भिनी बीजम्, ६ तत् जैपाक, जायफल।

कुम्भिपाकी (सं० स्त्री०) कटफलवृक्ष, एक पेड़।

कुम्भिमद (सं० पु०) कुम्भिनी इक्षिनी मदः, ६-तत्। इक्षीका मद।

कुम्भिल (सं० पु०) १ लिपिचोर, सखुन पुरानेवाला। २ खालक, मासा। ३ अपूर्ण गर्भका सन्तान, मासु-कम्भिल उन्न या हमलका लड़का। ४ शालमखर, एक मछली।

कुम्भी (सं० पु०) कुम्भोऽस्यास्ति, कुम्भ-इति। १ हस्तो, हाथी। २ बालकोंका शत्रु उपदेवताविशेष। ३ कुम्भीर, मगर, चड़ियाल। ४ मत्स्यविशेष, कोई मछली। ५ सविष पतङ्गभेद, कोई उड़नेवाला जहरीला कीड़ा। ६ अग्निप्रकृति कीटभेद, कोई जहरीला कीड़ा। ७ गुग्गुलु अथवा गुग्गुलुवृक्ष, गुग्गुल या गुग्गुल-का पेड़।

कुम्भी (सं० स्त्री०) कुम्भ अल्पायं डीप्। १ लुद्र-कुम्भ, छोटा घड़ा। २ पाटला वृक्ष। ३ वारिपर्णी, जलकुम्भी। ४ कटफल वृक्ष। ५ दन्तीवृक्ष। ६ शलकी, कोई खुशबूदार चीज। ७ कुम्भीपुष्पवृक्ष, कोई फूल-दार पेड़। वह कोष्ठमें प्रसिद्ध है। उसका संस्कृत पर्याय—रोमालु, विटपी, रोमश और पर्पटदुम है। भावप्रकाशके मतानुसार कुम्भी कटु, कषाय, उष्ण, घ्राही और वात तथा कफनाशक है। ८ गणिकारी वृक्ष। ९ अग्निप्रकृति कीटभेद, एक जहरीला कीड़ा। उसके काटनेसे पित्तज रोग उत्पन्न होते हैं।

(संयुत)

कुम्भीक (सं० पु०) कुम्भीव कायते प्रकाशते, कुम्भी, के कः। १ पुष्पागपुष्पवृक्ष। २ कुम्भिका, जलकुम्भी। ३ सप्तपर्णवृक्ष। ४ भूर्जवृक्ष। ५ पाटलवृक्ष। ६ वल्क-विशेष, हिजड़ा। विद्वत-मेथुनकारीकी कुम्भीक कहते हैं।

कुम्भीकपिड़का (सं० स्त्री०) एक वैदिक देवताति।

कुम्भीका (सं० स्त्री०) शूकरोगका उपद्रवभेद। वह रक्त पित्तसे उत्पन्न होता है। १ नेत्ररोगविशेष, पांखकी कोई बीमारी।

कुम्भीकी (सं० पु०) कुम्भीक बीज सदृश एक बीज।

कुम्भीधान्य (सं० स्त्री०) कुम्भीपरिमित धान्य-मस्य। कुम्भसञ्चित धान्य, चढ़ेमें रखा हुआ अनाज। मनु, याज्ञवल्क्य प्रभृति संहिताकारोंके मतानुसार चात्कीय कुटुम्बको पालन करनेके लिये अन्ततः एक

वर्षका धान्य सञ्चय कर रखना उचित है। धान्यागार पथवा कुम्भमें धान्य भर कर रखनेका विधि मनु-संहितामें देख पड़ता है। (मनु, ४।७) मिधातिथिने भाष्य में लिखा है—

“कुम्भी उड्डिका । धान्यासिको निचय एतेन प्रतिपाद्यते इति चरणि ।”

कुम्भी एक मृदाण्ड है। उसमें कुछ मासके उप-युक्त धान्य सञ्चय किया जा सकता है। इसलिये कुम्भीधान्य ६ मासका पाहारीपयोगी सञ्चित धान्यादि है। किन्तु कुल्लूकभट्ट कहते हैं—

‘वर्षं निर्वाचितधान्यादि धनं कुम्भीधान्यम् ।’

जो एक वर्षके व्यवहारको उचित रहता, वही सञ्चित धान्यादि कुम्भीधान्य है। कुल्लूकने अपने कथनके प्रमाणमें याज्ञवल्क्यका वचन उद्धृत किया है। (मनुभाष्य और टीका, ४।७)

कुम्भीनस (सं० पु०) कुम्भीव नासिकास्य, कुम्भी-नासिका-प्रच् नसादेशः। अज् नासिकायाः संश्रायां नसम्। पा ५।४।११८। १ क्रूरसर्प, खोफनाक सांप। २ वात-प्रकृति कीटभेद, एक जहरीला कीड़ा। उसके काटने-से वातनिमित्तज रोग उत्पन्न होते हैं। (संस्कृत)

कुम्भीनस नाथ—एक संस्कृत ग्रन्थकार। उन्होंने शब्द-दीपिका नामक एक अभिधान और एक संस्कृत व्याकरण रचना किया है।

कुम्भीनसी (सं० स्त्री०) कुम्भीनस स्त्रियां ङीष्। १ अङ्गारवर्णं गन्धर्वकी पत्नी। २ रावणकी भगनी और लवण देवकी माता।

कुम्भीपाल (सं० पु०) १ नरकभेद।

“करवावास्तुकातापान् कुम्भीपाकां च दावयान् ।” (मनु १२।७६)

जो व्यक्ति स्वदेह परिपोषणके निमित्त पशु-पक्षी मारके खाता, वह यमदूतों द्वारा कुम्भीपाकके तप्त तैलमें डाला जाता है। (भागवत, ५।२६।१९) २ सन्निपात ऊपर भेद। कुम्भीपाक ऊपरमें नाकसे लोहितवर्ण धन रक्त गिरता और मस्तक घूमा करता है। (भावप्रकाश)

कुम्भीपुट (सं० पु०) गजपुट। गजपुट देखो।

कुम्भीफल (सं० पु० स्त्री०) १ जेपाल वृक्ष, जायफल-का पेड़। २ जेपालबीज, जायफल।

कुम्भीमुख (सं० पु०) कुम्भीव स्थूलमध्यं मुखं यस्य । चरकोक्त एक व्रणरोग।

कुम्भीर (सं० पु०) कुम्भः स्रोतः कुम्भीरके जले उभ्यते मनीषादित्वात् कस्य को वलोपे कुम्भः स इव प्राचरति कुम्भ-ईरन् । (उणादिकोषे रामशर्मा १।३७१) १ जलजन्तुविशेष, मगर, चड़ियाल। उसका संस्कृत पर्याय—नक्र, कुम्भील, गिलग्राह, महाबल, बाभंट, प्रख्यकिरात, प्रख्य कण्टक, कुम्भी, जलशूकर, तालुजिह्वा, द्विधागति, पिङ्गमुख, महामुख, शङ्खमुख और जलजिह्व है।

प्राणितत्त्वविदोंके मतानुसार कुम्भीर सरीसृप श्रेणीमें गण्य है। वह देखनेमें अधिकतर बृहदाकार गोह-जैसा होता है। फिर गोहकी भांति कुम्भीर जलचर और भूमिचर भी है। उसके गात्रमें एक प्रकार का अस्थिमय शल्क (खाल) रहता है। वह इतना कठिन पड़ता कि तीर, बरछी या बन्दूककी गोलीसे भी नहीं छिदता। गात्रका उपरि भाग ईषत् रक्ताभ कृष्ण वर्ण होता है। उदर और उसके दोनों पाश्वर्क का चर्म श्वेतवर्ण रहता है। उसपर घन काल दिन्दूके चिह्न पड़ जाते हैं। कुम्भीर चतुष्पद है। सम्मुखके दोनों पाद मनुष्यके दोनों जुड़े हाथों—जैसे होते हैं। किन्तु पीछेके पाद अपेक्षाकृत खर्व रहते हैं। सम्मुखके पादोंमें चार और पश्चात्के पादोंमें पांच अङ्गुलि रहती हैं। किन्तु प्रत्येक पादकी तीन ही अङ्गुलियोंमें नखर (पंखे) होते हैं। उक्त अङ्गुलि एक खण्ड सूक्ष्म चर्मसे कुछ दूरतक जुड़ी रहती हैं। उसकी जिह्वा मांसल होती है। वह कपोलके मध्य निम्न दिक्को प्रायः समस्त जुड़ी रहती है। इसलिये वह जिह्वा हिला डूला करके कुछ खा नहीं सकता। कुम्भीर प्रथम खाद्य वस्तुको दाँतसे पकड़ ऊपरकी ओर फेंक देता है। शेषको मुख फेंका इस प्रकार उसे उठा लेनेकी वह श्रेष्ठ करता, जिसमें उक्त वस्तु ठोक उसके मुँहमें जा पहुँचे। कुम्भीर खाद्यको निगल जाता है, चबाता नहीं। मुखके दोनों पाश्वर्क चमड़ेसे जुड़े नहीं होते। इसीसे विशाल तीक्ष्ण दन्त-पंक्ति सर्वदा देख पड़ती है। उसके दन्त करपत्र

(घारा)के दन्तकी भांति होते हैं। वह इस प्रकार बनते कि नीचेके दो दांतोंके बीच ऊपरका एक दांत बैठ सकता है। दांत सीधे, किन्तु तोष्णाप होते हैं। प्रत्येक दन्तका मूलदेश गङ्गारविशिष्ट रहता है। उक्त गङ्गारकी मेड़ पर छोटे दांतोंकी एक ठकनी-जैसी लगी होती है। यदि किसी कारण बड़े दांत गिर पड़ते या टूट जाते, तो उक्त छुद्र दन्त उनका स्थान अधिकार करते बड़ भांति और उनके मूलमें दूसरे छुद्र दन्त निकलते देखाते हैं। कुम्भीरका पुच्छ दोनों पाश्वर्य पर चपटा होता है। पुच्छके प्रति ग्रन्थि पर एक बृहत् मांसपिण्ड रहता है। उसका मध्य स्थान उच्च हो कर ठीक कांटा जैसा बन जाता है। स्थलसे किसी जीवजन्तुको जलमें फेकनेके लिये कुम्भीर जब पुच्छसे झपट्टा मारता तो उक्त कांटा उसके कार्यमें बड़ा साहाय्य लगाता है। कुम्भीरके गात्रमें भी मांसके बड़े बड़े चतुष्कोण पिण्ड रहते हैं। वह भी मध्य स्थलमें ईषत् सञ्चताविशिष्ट (अनन्नासकी जगरी पांखकी भांति) होते हैं। उदरका शल्क चतुष्कोण, किन्तु अपेक्षाकृत कोमल और मृदु रहता है। कुम्भीरके कर्णका अधिक अंश मस्तककरोटीके गङ्गारमें अवस्थित होता है। फिर कर्णका जो अंश बाहर रहता वह अतिरिक्त दो खण्ड चर्मसे इच्छानुसार ढांक सकता है। मालूम पड़ता है कि कुम्भीर जलमें घूमते समय कर्णको उक्त अतिरिक्त चर्मखण्डसे ढांक लेता है। चक्षु उज्ज्वल, बृहत् और गोलाकार होते हैं। उनमें क्रोध भरा रहता है। चक्षुकी पलकों तीन होती हैं। गलदेशके नीचे स्तनके कुञ्जलकी भांति दो छुद्र मांसखण्ड निकलते हैं। वह सक्रिद्र रहते हैं। उनसे कस्तूरीगन्ध-विशिष्ट रस निर्गत होता है। यही कुम्भीरके यौवनका लक्षण है। अपने घाट (कण्ठका पश्चात् देश) की गठमझकी कारण वह शीघ्र देह घुमा दिक्परिवर्तन करके दीढ़ नहीं सकता। कुम्भीरसे खदेरे जाने पर घूम-फिर तिरछा चलने पर रक्षा मिलना सम्भव है। अन्धान्ध सरीसृपकी भांति उसका आसयन्त्र (फुस फुस, फेफड़ा) उदरपर्यन्त विस्तृत नहीं होता। इसलिये उसका रक्त भी सरीसृपकी भांति शीतल कसे

होगा। कुम्भीरका शरीर मूखापसे लाङ्गलाप पर्यन्त २० हाथ लम्बा और १४ हाथ चौड़ा होता है। उक्त जन्तु अतिशय हिंस्रस्वभाव और भयानक है।

पुष्करणी, नदी, नाले प्रभृतिमें, जिन स्थानोंमें स्रोतः प्रवह नहीं होता, कुम्भीर वास करता और तीर पर जा धूप लेता है। जलके मध्य और तीर पर भी कुछ दूरतक वह प्रायः आखेट (शिकार)-की चेष्टामें घूमा करता है। स्थल पर घूमते समय दा धूप लेते समय मनुष्य पथवा व्याघ्रादि पशुको, जल पीने जानेपर, कुम्भीर पकड़के जलमें प्रवेश करता है। उसका बल असीम है। एक पूर्णवयस्क कुम्भीर स्वच्छन्द बृहत्काय मछिषको भी जलमें खींच करके ले जा सकता है। जब वह जलमें रहता, तो मनुष्यकी जलमें उतरते देख जलके मध्यसे जाकर उसे भलो-भांति पकड़ता है। यदि दैवात् आखेटको पकड़ नहीं पाता, तो लाङ्गल द्वारा जल आसोड़ित कर कुम्भीर महा आस्त्रालन लगाता है। कभी कभी नौकाकी और मंड़ डबा वह रुपके छिप जाता और जलमें किसीके हाथ डालने पर उसकी पकड़ जलमें डूबकी लगाता है। इसी प्रकार कुम्भीर अपने शिकारको जलके मध्य किसी स्थल पर रख देता और शेषको कुछ सड़ने पर उसे खा लेता है। जब मनुष्य वा पशु नहीं पाता, तब वह मत्स्य पकड़ पकड़ खाता है। खानेको कुछ न मिलने पर भी कुम्भीर अनेक दिन जी सकता है। वह स्थल पर जा एककाल ही दो सी डिम्ब प्रसव करता और उन्हें मट्टीमें दबा कर रखता है। उन्हें सेना नहीं पड़ता। सूर्यके उत्तापसे यथाकाल डिम्ब फूटने पर शवक निकलते हैं। कुम्भीरके डिम्ब नकुल-शकुनि, मूषक और गृगाल नाश किया करते हैं। शवक होने पर कुम्भीरिणी भी अपने आप कितनोंको खा जाती है। फिर भी कुम्भीरको संख्या कम नहीं पड़ती।

प्राणितत्त्वविदोंके मतमें कुम्भीर प्रातीय जीव प्रधानतः दो भागमें विभक्त हैं—साधारण कुम्भीर (Crocodilidae) और आलौगीटरादि (Alligatoridae)।

१ कुम्भीरादिक नीवी मेड़के आदन्तके लिये

ऊपरी मेड़ में प्रविष्ट होनेकी गत रहता और पिछले पैरोंकी पिछली और कुछ शक्कमय कठिन मांस निकलता है। अन्यान्य दन्त एक प्रकार आकारविशिष्ट होते हैं। पुरुष जातीय कुम्भीरकी नाक बहुत बड़ी और चपटी रहती है। ऊपरका नवम और एकादश संख्यक दन्त आदन्तकी भांति दीर्घ होता है।

कुम्भीरादिके निम्नलिखित कई श्रेणीविभाग हैं।

(क) नक्र जातीय (Gavialis)—की चौं बहुत दीर्घ तथा घंघोलाकार होती है। घाट और पृष्ठके मध्य कोई अन्तर नहीं। नक्र (Gavialis Gangeticus) की नाकपर कुछ गोलाकार मांस उभर आता है।

(ख) मेसिष्टोप्स (Mecistops) की चौं पायताकार सरल तथा चपटी और पीछेके पैरकी अंगुली उंसकी भांति जुड़ी रहती है। घाट उपर्युक्त प्रकारका हो जाता है।

(ग) सामान्य कुम्भीर (Crocodilus) की चौं मेसिष्टोप्सकी चौं-जैसी होती है। घाट और पृष्ठके मध्य अल्प शक्कयुक्त स्थान रहता है।

(घ) मेसिष्टोपीय नक्र (Mecistops gavialis) के सकल दन्त समान नहीं होते। अङ्गुलि नखपर्यन्त जुड़ी रहती हैं। नाक पर मांस नहीं भरता। अत्यं विशिष्ट समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग, मेसिष्टोप्ससे मिलते हैं।

(च) मेसिष्टोपीय बेनेट (M. Bennettii)

(छ) मेसिष्टोपीय काटाफ्राक्टस (M. Cataphractus) कृत्रिम नक्र नामसे ख्यात है।

(ज) भारतीय कुम्भीर (Crocodilus porosus)

(झ) बम्बय भारतीय कुम्भीर (C. Bombifrons)

(ट) एकुर पलिन कुम्भीर (C. rhombifer—the Aquel palin.)

(ठ) अमेरिकाका कुम्भीर (C. Americanus)

(ड) कर्म्मित मांस कुम्भीर (C. marginatus—the margined crocodile)

(ढ) मिसरीय कुम्भीर (C. vulgaris)

(त) मगर (C. Pulustris, the Maggur or Goa crocodile)

(य) चपटे सुँहवाला कुम्भीर (C. Trigonops—Wideaced crocodile)

(द) प्रवका आविष्कृत कुम्भीर (C. Planiros' tris Graves, crocodile)

(ध) श्यामदेशीय कुम्भीर (C. Siamensis.)

२ आलिगीटरादिकी निम्न मेड़के आदन्त ऊपरी मेड़में प्रविष्ट होनेके लिये गत रहता और मुखमण्डलका तलभाग कुछ विस्तृत पड़ता है। वह अमेरिकाका जीव है। प्रधानतः आली गीटर तीन भागमें विभक्त है—

(क) जाकार (Jacare), (ख) आलिगीटर (Alligator) और (ग) केमान (Caiman)

(क) जाकारका मस्तक पायताकार और चपटा होता है। अङ्गुलके सम्मुख मुखकी चारो ओर एक गोलाकार चिह्न रहता है। दन्त असमान होते हैं। पैरकी अङ्गुलि प्रायः जुड़ी नहीं रहतीं। अस्थान मांसल और लुद्र अस्थिविशिष्ट होता है। नाकके दोनों छिद्र केवल मांस द्वारा विभक्त रहते हैं। विस्तृतमस्तक जाकार (J. Flissipes—the broad headed Jacare), साधारण जाकार (J. sclerops—common Jacare), काल जाकार (J. nigra—the black Jacare), कबरा जाकार (J. punctulata—the spotted Jacare) और नाटररका जाकार (J. vallifrons—natierer's jacare.) कई श्रेणी हैं।

(ख) आलिगीटरकी—चौं पायताकार और बहुत चपटी होती है। दन्तपंक्ति प्रायः समान्तराक्षर होती है। सम्मुखका भाग गोलाकार होता है। कपालमें तिरछा गोलाकार चिह्न पड़ जाता है। दन्त असमान रहते हैं। पैरोंके पीछे शक्कमय मांसकी भाकर-जैसी उंगलियोंके मध्य जोड़ होता है। मुखमण्डल वयोवृद्धिके साथ लम्बा पड़ते जाता है। उसकी दो श्रेणी हैं—मिसिसिपीका आलिगीटर (A. mississippiensis) और साधारण (A. Lucius, the common.)

(ग) केमान—की चौं पायताकार, चपटी और कीन्हा कार होती है। फिर वह मुखके शेष भागमें

जाकर मिल जाती है। कपाल चपटा और समतल रहता है। भ्रूयु तीन अखिलखण्डों से घाच्छादित हो जाता है। अंगुलियां प्रायः जुड़ी नहीं रहतीं। केमान मध्य अमेरिकामें रहता है। उसमें विस्तृतमुख (C. Trigonatus) दीर्घभू (C. palpebrosus—eyebrowed) और चपटे मत्तेवाला (C. gilbiceps—swollenheaded.) इत्यादि भेद हैं।

एतद्विषय बहुत कालके प्राचीन सृष्टि में निहत कुम्भीरास्थिके मध्य C. Steneosaurus, C. Teleosaurus, C. Toliapicus, C. Champsoides, C. Hastingsæ, A. Hantoniensis, Gavialis Dixoni प्रभृति श्रेणियों का अस्तित्व मिलता है। उनका अस्थि इङ्ग्लैण्डके कृतिश म्यूजियममें रखा है।

यूरोप और अफ्रेलियामें आज भी कुम्भीर देख नहीं पड़ता। अफरीकामें अलीगेटर या घड़ियाल का अभाव है, किन्तु साधारण कुम्भीरको कभी नहीं। नीलनदका कुम्भीर बहुत भयानक होता है। सुतरां अंगरेजीमें ईजिप्त् वा उप खभावकी उपमा देनेको Crocodile of the Nile (नीलनदका कुम्भीर) कहा जाता है। अमेरिकामें एशियाकी अपेक्षा बहुत श्रेणिके कुम्भीर मिलते हैं। C. acutus, (छुद्रकाय कुम्भीर) सेण्ट डोमिंगो द्वीपमें और C. rhombifer क्यूबा द्वीपमें पाया जाता है। अमेरिकाके द्वीप व्यतीत महादेशमें प्रकृत कुम्भीर देख नहीं पड़ता। महादेशमें ५१ प्रकारके अलीगेटर होते हैं। अलीगेटरका मस्तक कुम्भीरकी भांति चतुष्कोण नहीं रहता। फिर उसके मुखमें तीन बड़द दन्त भी होते हैं। कुम्भीर वेशाख-ज्येष्ठ मास डिम्ब (अण्डे) देता है। समस्त डिम्ब एक ही दिन प्रसव किये नहीं जाते। फिर सकल कुम्भीर डिम्बोंको ढाँक कर भी नहीं रखते। डिम्बसे प्रायः ४० दिन पीछे श्रावक निकलते हैं। वह डिम्बसे निकलने पर अपने आप बाजार करना सीख जाते हैं। कुम्भीरिणी उन्हें पक्ष्य जलमें ले जाकर पध जीव खाद्य उद्धार करके खिलाती है।

भारतकी प्रत्येक बड़द नदीमें कुम्भीर विद्यमान है। फिर सिन्धु, फलिपाइन और मलयद्वीपमें भी

वह पाया जाता है। मलयद्वीपवासी कुम्भीर को प्रधानतः तीन श्रेणियोंमें विभाग करते हैं—लाबु (कहू), कुटक (मैंडक) और ताम्बागा (ताम्बागात्र)। सुन्दरवनकी प्रत्येक नदी, नाले और भीलमें १ वित्तसे २५।२६ फीट तक लम्बे कुम्भीर सर्वदा देख पड़ते हैं। वह प्रायः कृष्णवर्ण कर्दमके ऊपर लेट धूपमें सोया करते हैं। वह जब सोते हैं, तो अपनेसे डेढ़ हाथ दूर किसी जहाजके सीटी बजा कर चले जाते भी नहीं जागते। दर्शक की दृष्टिमें दूरसे वह कर्दमाक्ष काष्ठकी बड़द कुदाल जैसे लगते हैं। किन्तु शेषको जब कठिन चतुष्कोण शल्क और कण्टाविविशिष्ट लाङ्गल रोड्रमें चमकने लगता, तब उनकी भीषणताका परिचय मिलता है।

सुन्दरवनमें गान्धर्व घड़ियाल नहीं होते। उनको स्थलविशेषमें 'नाकू' (नक) कहते हैं। कारण उनका मुखभाग अतिशय दीर्घ और ठालू होता है। अन्यथा कुम्भीरोंकी भांति उनका मस्तक और मुख चपटा और कुछ कुछ मण्डिष मुख-जैसा नहीं रहता। घड़ियालका मस्तक पक्षाके मस्तक जैसा रहता और चतुर्के पार्श्वसे समस्त मुखमण्डल लम्बा पड़ता है। घड़ियालको निर्मल जल और बालूकामय स्थानमें रहना अच्छा लगता है। वह प्रायः रेतमें निकल कर मुख फैला धूप सेवन करता है। मुख फैला कर धूप लेनेका एक आश्चर्यजनक कारण है। उसके दाँतोंको जड़ और गलेमें एक प्रकार रक्तवर्ण सूत्रवत् कोड़ा रहता है। वह धूप लगनेसे अपने आप नीचे उतर और तप्त बालूकामें पड़ मर जाता है। कभी कभी एक आतीय छुद्र पत्नी जाकर निद्रित कुम्भीरके मुख पर बैठता और उसके गलेमें अपनी चोंच डाल कीड़ेको निकास कर खा लेता है। मोठे पानीके कुम्भीरसे खारे पानीका कुम्भीर अधिक भयानक और उग्रस्वभाव होता है।

गङ्गाके व द्वीपकी नदियोंमें घामके प्रत्येक घाटके दोनों पार्श्व खूँटे गाड़ कुम्भीरका पथ रोक दिया जाता है। किन्तु कुम्भीर आखेट (शिकार) का अभाव होने पर स्वल्पायाससे खूँटे उखाड़ डाल घाटमें जाकर छिप रहता और लोगोंको स्नानादि करनेके लिये उतरते ही पकड़कर चले बगता है।

कुम्भीर पालनेमें कुछ कुछ दिल जाता है। पाण्डु-यामें पोरपुकर नामकी एक बड़ी पुष्करिणी है। वह ४० फीट गभीर और प्रायः ५०० वत्सरकी प्राचीन है। उसमें एक बड़ा पालतू कुम्भीर है। उसकी फतेहखान कहते हैं। उक्त खानके अधिवासी एक फकीरके फतेहखान नाम लेकर पुकारते ही वह जल पर तैर आता था। कराची नगरकी एक पुष्करिणीमें किसी फकीरने ३० कुम्भीर पाले थे। फकीरके पुकारते ही वह जलसे निकल उसके पैरोंके पास कुत्तेकी तरह कतार लगा कर बैठ जाते रहे। उदयपुर और जगन्नाथमें भी ऐसे ही पालतू कुम्भीर हैं। वह यात्रीके निकट जाकर खाद्य ग्रहण करते हैं। काशीकी मणिकर्णिकामें एक कुम्भीर है। वह प्रति मङ्गलवारको उतराते घूमता और मध्य मध्य मस्तक ठठा तीरकी ओर टकटकी बांध कर देखता है। प्रवादानुसार उक्त कुम्भीर पापघस्त कोई राजा है। वह प्रति मङ्गलवार निकल करके विश्वनाथके दर्शन करता है। हिन्दुस्थानमें छुद्र कुम्भीरको 'गोह' कहते हैं।

शिवालिक पर्वत और ब्रह्मदेशकी मट्टीमें कुम्भीरका अस्थिपञ्जर देख पड़ता है।

मिसरमें कुम्भीर टाइगन और पेपरिमिस नामक देवताका प्रिय होनेसे सम्मानित हुवा करता है। किन्तु स्थान स्थान पर मिसरीय कुम्भीरमांस खाते हैं। खानेवाले उतना सम्मान नहीं दिखाते। ब्रह्मदेशके बाजारोंमें कुम्भीरमांस विक्रीत होता है। सिंहलमें श्रीलङ्काकी किसी जलाशयका जल सूखनेपर कुम्भीर रात्रिकाल राह राह अन्य जलाशयमें जा पहुंचते हैं। पथरीली और कंकरीली जगहमें चलनेसे उसकी विशेष कष्ट पड़ता, यहां तक कि बहूतोंका प्राण भी निकलता है। कुम्भीरमात्र क्रीड़ाखल वा पाखेटकी पायत्त न कर सकने पर पिछले पैरोंसे पत्थर या डीले फेंकते हैं। वह बड़ी दूर तक पहुंचते और मनुष्य, हागल वा गौकी लगनेसे बहुत आहत करते हैं।

कुम्भीर समय समय पर दल बांध करके पाखेटकी शिकारमें घूमते और छुद्र नौका मिलने पर उनके मला-होंको आक्रमण करते हैं। जो एक बार उसके हाथ

लग जाता, वह किसी प्रकार अव्यावृत्ति नहीं पाता।

भावप्रकाशके मतसे कुम्भीरका मांस पाकमें खादु, वायुघ्न, स्निग्ध, शीतल, पित्तनाशक, मलवहकारक और स्नेहवृद्धिकारक है।

महाभारतके मतानुसार जो पुत्र पिता अथवा माताको अवमानित करता, उसे मृत्युके पीछे दश वर्ष गदंभ और एक वर्ष कुम्भीरयोनिमें जन्म लेना पड़ता है। (भागवत, अष्टाध्याय, १११। ५८)

२ कीटभेद, कोई कीड़ा। ३ यन्त्रविशेष। ४ कुम्भी-वृक्ष, कोई पेड़।

कुम्भीरक (सं० पु०) चौर, चोर।

कुम्भीरमलिका (सं० स्त्री०) कुम्भीरोपपद्युक्ता मलिका, शाकपार्थिवसमा०। कणा, एक मकड़ी।

कुम्भीरवस्त्र (सं० पु०) कायफलवृक्ष, कायफरका पेड़।

कुम्भीरासन (सं० स्त्री०) योगाङ्गका एक आसन। मट्टी पर सट करके समानभावसे लेट एक पैर दूसरे पर चढ़ा दोनों हाथ मथ्ये पर रखनेसे कुम्भीरासन लगता है।

कुम्भीर (सं० पु०) सुरपुत्राग, एक पेड़।

कुम्भील (सं० पु०) कुम्भीर, मगर, घड़ियाल।

कुम्भीलक (सं० पु०) कुम्भीर संज्ञायां कन् रस्य लः। चौर, चोर।

कुम्भीवीज (सं० स्त्री०) कुम्भीरा वीजम्, ३-तत्। जैपाक-वीज, जायफल।

कुम्भीवृक्षफल (सं० स्त्री०) कायफल, कायफर।

कुम्भीखेद (सं० पु०) खेद विशेष, एक भपारा। वह घटस्थित वातहर क्षाथ वा काष्ठीक आदिसे लिया जाता है।

कुम्भीखर (सं० पु०) एक तीर्थ। कुम्भीखण देखो।

कुम्भीजी (प्रथम)—१ काठियावाड़के देशीय राज्य गोडलके प्रतिष्ठाता। इन्हें अपने पिता मिरामानजीसे चारडोई और दूसरे गांव मिले थे। २ जाड़ेजावंशके चौथे ठाकुर साहब। इन्होंने गोडल राज्यको धोराजी, उपलेटा और सरसई आदि परगने से वर्तमान प्रवस्था पर पहुंचाया था।

कुम्भीदर (सं० पु०) कुम्भी इव उदरमस्य, बहुभ्रो०।

१ शिवके अनुचर विशेष । (त्रि०) २ कुम्भकी भांति
हृदय उदर विशिष्ट, घड़े-जैसे बड़े पेट वाला ।

कुम्भोद्भवतत्त्व (सं० पु०) कुम्भादुद्भवो यस्य स चासी
तत्त्व, वङ्गो० कर्मभा० । अगस्त्यहृदय, अगस्त्यका पेट ।

कुम्भोलु (सं० पु०) पंचकभेद, एक उल्लू ।

कुम्भोलूक (सं० पु०) उल्लूक भेद, एक उल्लू ।

“हत्वा पिष्टमयं पूर्णं कुम्भोलूकः प्रजायते” । (महाभारत, अश्वत्थाम)

कुम्भोलूखलक (सं० पु०) गुग्गुलु ।

कुम्भेत (हिं० पु०) १ कुम्भित, साखी, घोड़ेका कालापन
लिये लाल रंग । २ कृष्णभ रक्तवर्ण अश्व, स्याही
लिये लाल रंगका घोड़ा । (वि०) ३ कृष्णभ रक्तवर्ण,
स्याही लिये लाल ।

कुम्भेद, कुम्भेत देखो ।

कुम्भड़ा (हिं० पु०) १ कुम्भाण्ड लता, कोई फैलनेवाली
बेल । उसके पत्र हृदय, गोलाकार और लोमश होते
हैं । उनके उगठन बड़े और पोले रहते हैं । पुष्प
हृदय और पीतवर्ण पाते हैं । कुम्भाण्ड लता बहुत
दूर तक फैल पड़ती हैं । फल गोल और अतिमय हृदय
होते हैं । एक एक फल परिमाणमें ७ । ८ सेर तक
निकलता है । श्वेत और पीत भेदसे कुम्भाण्ड दो
प्रकारका है । श्वेत कुम्भाण्डको हिन्दीमें ‘पीठा’
कहते हैं । वह खानमें कुछ कुछ पिच्छल (पनछुट)
लगता है । कुम्भड़ेका सुरक्षा तैयार किया जाता है ।
फिर उसके सूक्ष्म खण्डोंको पीठीमें मिला कर बरी भी
बनाते हैं । उनका नाम ‘कुम्भड़ीरी’ है । पीतवर्ण कुम्भा-
ण्डका सार रक्त वर्ण और मधुर होता है । वह घोषम
और वर्षा काल वर्षमें दो बार फूलता-फलता है ।
ग्रीष्मवाला भूमि और वर्षावाला छप्पर आदिपर फलाया
जाता है । कुम्भड़ेका शाक बहुत पच्छा बनता है ।
उसमें मीथीकी बघार लगती है । कृष्ण देखो ।

२ कुम्भाण्ड फल ।

कुम्भड़ीरी (हिं० स्त्री०) कुम्भड़ेकी बरी । कृष्ण देखो ।

कुम्भलाना (हिं० स्त्री०) १ सुरसताका जाता रहना,
ताजगीका चला जाना, सुरभाना, पीलापन आना ।
२ शुष्कता आने लगना, खुशी दौड़ना । ३ न्यान पड़ना,
शिशुफुत्तगी न रहना ।

कुम्हार (हिं० पु०) १ कुम्भकार, मट्टीके बरतन बनाने-
वाला ।

“मट्टी कहे कुम्हारसे तू क्या कहे मोहि” ।

रक्त दिन ऐसा होयना मैं रूखी तोहि ॥ ”

२ कुम्भकारजाति, मट्टीके बरतन बनानेवाली कौम ।

दाक्षिणात्यके कुम्हारोंमें कई श्रेणों रहती हैं ।

महाराष्ट्र कुम्भकार कुम्भजन्म अगस्त्य ऋषिकी अपनी
जातिका प्रवर्तक बताते हैं । उनकी अनेक पदवी हैं ।
एक पदवीका कुम्हार अन्य पदवीके कुम्हारसे विवाह-
सम्बन्ध कर सकता है । किन्तु दोनों एक ही पदवीके
होनेसे विवाह बनना असम्भव है । सितारा जिले-
के अन्तर्गत सिङ्गनापुरमें महादेव और सितारिके
पुरातन दुर्गमें जगदम्बाका मन्दिर विद्यमान है । उक्त
दोनों स्थानोंके देव और देवी पर महाराष्ट्र कुम्भकारोंकी
प्रगाढ़ भक्ति लक्षित होती है । ग्रामस्थ जोशी उनका
पौरोहित्य करते हैं । सन्तान भूमिष्ठ होनेसे प्रसूति
७ दिनमात्र अशुचि रहती है । धात्री व्यतीत कोई
रुखे स्नान नहीं करता । पुत्रसन्तान जन्म लेनेसे
द्वादश वा त्रयोदश दिवस सधवा रमणी एक मुट्ठी ज्वार
वा परिधेय वस्त्रादिसे शिशु को आशीर्वाद देती है ।
उसके पीछे नामकरण किया जाता है । किसी किसी
स्थान पर पुत्र जन्म लेनेसे पञ्चम और नामकरणके
दिन षष्ठी देवीके उद्देश्य छागवलि करते हैं । द्वादश
वा त्रयोदश मास नापित जाकर शिशुके मस्तकके
बाल बना डालता है । इसी प्रकार चूड़ाकरण करने-
की रीति है । मराठा कुम्हारोंमें वात्स्यविवाह और
वयस्का कन्याका विवाह—दोनों प्रचलित हैं । कन्याके
पिता अथवा कर्तृपक्षकी पात्र स्थिर करना पड़ता है ।
स्थानभेदसे विवाहका नाना प्रकार कुलाचार प्रचलित
है । विवाहकाल ब्राह्मण-पुरोहित वर कन्याका वस्त्रा-
च्छल ले ग्रन्थिबन्धन करता है । विवाहके अन्तमें अभ्या-
गत वर कन्याके मस्तक पर खीलों निक्षेप करते और
मराठे भाट सुस्तर वंशावली पढ़ते हैं । विवाहके उत्सव-
में हरिद्राका प्रयोग अधिक किया जाता है । विवाहके
दूसरे दिन भी स्त्रियां पानीमें हलदी और चूना घोल
और उसमें मट्टी मिला आक्कीय कुटुम्बके गात्र पर

हिएक देती है। मराठे कुम्हारोंमें कोई श्व दाह करता और कोई उसको समाधि देता है। प्रत्येक ग्राममें उनका जो एक प्रधान रहता, उसे सब कोई 'मिहतर' कहता है। वही प्रधान सबका जाति-सम्बन्धीय विवाद मिटाता है।

गोरे मराठे कुम्हार एक स्थान पर स्थायी भावसे नहीं रहते, गांव-गांव घूमा करते हैं। वह अपने साथ छेरा-ताम्बू रखते, जिसमें रातको बसते हैं। मद्य-मांस ग्रहणमें उनको कोई पापान्त नहीं।

कर्णाटकके कुम्हार अपर सकल श्रेणियोंसे अपने-को छेष्ट समझते हैं। दूसरी किसी श्रेणीके साथ उनका आहार-व्यवहार प्रचलित नहीं। वह मद्यमांससे दूर रहते हैं। उनमें विधवा विवाह प्रचलित है। लिङ्गायत उनके गुरु हैं।

परदेशी कुम्हार युक्तप्रदेशसे वहां गये हैं। उनका आचार व्यवहार अधिकांश युक्तप्रदेशके कुम्हारों-जैसा ही है। परदेशी कुम्हारोंकी भाषा हिन्दी है।

तिलंगी कुम्हारोंका प्रधान निवास तेलङ्ग है। किन्तु आजकल दक्षिणात्यके नाना देशोंमें वह पाये जाते हैं।

लिङ्गायत कुम्हार हड़काय और घोर लम्बावर्ण होते हैं। वह अधिकांश बीजापुर, शोलापुर और धारवाड़ जिलेमें रहते हैं। किसी उत्सव वा कर्मोपलक्ष्यतीत लिङ्गायत अन्न आहार नहीं करते। उन्हें मिर्च, प्याज और इमली खाना बहुत अच्छा लगता है। मद्यमांस उनमें निषिद्ध है। उसको ज्ञानसे लिङ्गायतोंको जातिभ्रुत होना पड़ता है। उनकी रमणी भी स्वामीके कार्यमें साहाय्य करती हैं। उक्त रीति अन्य श्रेणियोंमें देख नहीं पड़ती। वह प्रति धर्मभीरु होते और अपनेको पञ्चमशाल लिङ्गायतके समकक्ष समझते हैं। जङ्गम उनके पुरोहित हैं। जङ्गम देखो, फिर भी समय समय पर शुभ दिन स्थिर करनेको लिङ्गायत देवस्र ब्राह्मणका आश्रय लेते हैं। श्रीशैलक मल्लिकार्जुनादि उनके उपास्य देवता हैं। लिङ्गायतोंका जातकर्मादि दूसरी श्रेणियोंसे मिलते भी विवाहकी पद्धति कुछ स्वतन्त्र है। विवाहसे कई दिन पहले

वर कन्याके गात्रमें हरिद्रा लगायी जाती है। विवाहके दिन वरकन्याको ज्ञान करा एक वयस्का सधवा रमणी (अमङ्गल दूर करनेके अभिप्रायसे) उभयकी भ्रूको स्पर्श करती है। युवती वरकन्याके निकट बत्तीका प्रकाश भुक्ता वरण करती और पीछे उभयको अन्तःपुर ले जाती है। वहां कन्या हलदी लगेहुये श्वेत वस्त्र परिधान करती है। उसके पीछे वरकन्या दोनों एक वृषभ पर आरोहण कर ग्रामस्थ मासतिको पूजने जाते हैं।

तत्पूर्व देवान्ध्रमें पञ्चकलसकी पूजा हुवा करती है। वर कन्या दोनों वहां पहुँच उठा पञ्चकलसके सम्मुख उपवेगन करते हैं। जङ्गम कन्याके कण्ठमें मङ्गलसूत्र लपेट देते और दोनोंके मस्तक पर धान्य द्वारा आशीर्वाद पढ़ते हैं। उस समय वाद्यकर बाजा बजाते और आत्मीय कुटुम्ब चावल छोड़ते जाते हैं। रुन्ध्या कालकी वर पञ्च पर चढ़ कन्याको अपने आगे बैठे आत्मीय कुटुम्बके साथ ग्रामस्थ देवमन्दिर पं चता है। वाद्यकर आगे-आगे बाजा बजाते चलते हैं मन्दिरमें पहुँचने पर देवपुरोहित एक नारिकेल तोड़ देवताकी उत्सर्ग और कपूर लका आरति करते हैं। निकटस्थ धूप सुलगा कर वरकन्याके कपाल पर भस्मको एक टिप्पी लगा दी जाती है। फिर वर नव-वधूके साथ घोड़े पर बैठ घर आता है। उस समय अपने-अपने स्थानों पूर्ण कुम्भ और दीपक ले वरकन्याको उतारने जाते हैं। प्रथम वर कन्याको वह पालोकेसे वरण करती, फिर घोटकेके पैरों पर सक्त पूर्ण कुम्भ ठाल देती है। उसके पीछे वह वरकन्याको गृहके मध्य ले जाकर दोनोंको एक आसन पर बैठासती है। उस समय वरकन्या उभय एक पात्रमें आहार करते हैं। वर कन्याको और कन्या वरकी खिला देती है। आहारके पीछे सुगन्धलेपन किया जाता है। कन्या वरके गात्रमें चन्दन लगाती और एक पान वरकी खिलाती है। पीछे वह गलेमें वस्त्र डाल और हाथ जोड़ वरकी नमस्कार करती है। वर भी कन्याको नाम लेकर बुलाता, अपने वाम पार्श्व पर बैठान और उसके सीमन्तमें सिन्दूर चढ़ा गण्डस्थल पर चन्दन

कनाता है। फिर कन्याको माता वरकी माताकी कन्याका हाथ पकड़ा कहती है—“भाजसे यह कन्या तुम्हारी हो गयी।” विवाहका सकल व्यय वरके पिताको वहन करना पड़ता है। विवाहका अनुष्ठान सम्पन्न हो जाने पर कन्या पितालयकी चली जाती है। उसके पीछे कन्याकी बड़ी होने पर श्वसुर अपने घर बुलाता है। कन्या वरके घर बसनेकी जाती है। ऋतुमती होनेसे वह एक पालिम्यनयुक्त पोठ पर बंठायी जाती है। हिन्दुस्थानका पुष्पोत्सव लिङ्गायतो में ‘फलशोभन’ कहाता है। फलशोभन होनेसे पहले लड़ा रमणी भिक्षा दूसरा कोई उसे स्पर्श कर नहीं सकता। सप्तम, एकादश, पञ्चदशके मध्य जो दिन शुभ आता, उसी दिन गर्भाधान किया जाता है। फिर उसी दिन ऋतुमतीको उत्तम वसन पहनाते, पाल्मीय कुटुम्ब उसके साथ पामोद लगाते और जङ्गम जाकर आशीर्वाद सुनाते हैं—‘तुम अष्ट पुत्रोंकी माता हो।’ किसीके मरने पर लिङ्गायत कुम्भकार मृत देहको धोकर वस्त्रालङ्कारसे सुसज्जित करते हैं। फिर उसे झूटेमें रस्सीसे बांध बैठा देते हैं। मठपति कपालमें भस्म लगा मृत व्यक्तिके निकट जाते हैं। मठपति देखो। पीछे सब लोग तन्त्रते पर रख या कम्बलमें लपेट मृतदेह समाधिस्थान पहुंचाते हैं। समाधिस्थान मृत व्यक्तिके पैरकी नापसे ८ पाद दीर्घ, ७ पाद विस्तृत और ७ पाद गभीर बनाया जाता है। उसमें नवीन पत्र बिछा मृत व्यक्तिकी लिटा मट्टीसे दबा देते हैं। गर्तके मुख पर एक पत्थर लगा रहता है। समाधिकार्य श्रेय होने पर मठपति उक्त पत्थर पर खड़े हो जाते हैं। उस समय मृतके पाल्मीय मठपतिको कुछ धर्म दे पूजा करते हैं। पञ्चम दिवस अशोचान्तपर जङ्गम लोगोंको बुला खिखाना पड़ता है। लिङ्गायत कुम्हारोंमें विधवाविवाह और पुरुषके पक्षमें बहुविवाह प्रचलित है। कुम्भकार देखो।

कुम्भो (हि० खी०) कुम्भी, पानी पर फैलनेवाला एक पौधा।

कुम्हेर—राजपूताना-भरतपुर राज्यकी कुम्हेर तहसीलका सदर मुकाम। यह भरतपुर नगरसे ११ मील

उत्तर-पश्चिम अक्षा० २७° १८' उ० और देशा० ७७° २१' पू० में अवस्थित है। शहर मट्टीकी चहारदीवारी और खाईसे घिरा है। कुम्हेरमें डाकखाना, तारघर, अस्पताल और देशभाषाकी पाठशाला है। इस स्थानका नामकरण इसके स्थापयिता सिनसिनी ग्रामके जाट कुम्भके नामपर हुआ है। लोकसंख्या प्रायः ६२४० है। १७२४ ई० के लगभग महाराज वदनसिंह-ने यहां राजप्रासाद और दुर्ग बनाया था। ३० वर्ष पीछे मराठोंने असफलरूपसे दुर्गको अवरोध किया, जब महाराजरावके पुत्र खण्डेराव होलकर निहत हुये। उनको विधवा रानी पहचानाईने इस नगरसे १ मील उत्तर उनको छतरी खड़ी कराया थी, जो आज भी इन्दारराज्यके अधिकारमें है।

कुयज्यो (सं० पु०) कुत्सितो यज्यो यज्ञकर्ता, कु-यज्-ङ्निप् इति सुबजोङ्निप्। पा १।१।१०१। कुयाज्ञिक, अच्छा यज्ञ न करनेवाला व्यक्ति।

कुयव (वे० पु०) एक असुर।

‘कुयाय यच्चमयव’ निवर्तोः प्रपिले अत्रः कुयव’ बहवा।’ (सूक् ७।१६।१२)

‘कुयव’ कुयवनामानमसुरः।’ (सायब)

इन्ने उक्त असुरको विनाश किया था।

२ कुम्भित यव, खराब जो।

कुयवाच् (वे० पु०) कुय मिथ्या वाच वाक्यम्, कादेशः।

१ मिथ्यावादी, झूठ बोलनेवाला। २ असुरविशेष।

वह इन्द्रकक्षक निहत हुआ था। (अ० १।१०७।७)

कुयाजो (सं० पु०) कुत्सितो याजो, कु-यज्-ङ्निप्, कुगति समा०। कुयाज्ञिक, निम्नयज्ञकर्ता।

कुयोग (सं० पु०) कुम्भितो योगः। यदनचमादिका अनिष्टकर संयोग, कुलम्ब।

कुयोनि (सं० खी०) कुम्भित योनि, मोच खीकी योनि, कमीना औरतका रेशम या वस्त्रादान।

कुर (कुरकु)—कोनों जैसी एक जाति। दाक्षिणात्यमें बहु-संख्यक कुर लोग रहते हैं। अकेले बरारमें ही प्रायः २८ सहस्र कुरोंका वास है। वह देखनेमें अधिकतर गोंडों जैसे होते हैं। दाक्षिणात्यमें खानभेदसे उनकी भाषा कुछ बदलती भी आकार-गठनादि सकल खानोंमें एक ही प्रकारका है। अधिकांश कुरक जिस

भाषामें बात चीत करते, उसके साथ समताही भाषाका विशेष संस्त्रव है। गो'ड़ लोग उत्सवके समय गोमांस भक्षण करते हैं। किन्तु कुर गोवधको महापाप समझते, विशेषतः गोमांसमें बड़ी घृणा रखते हैं। इसके प्रतिरिक्त कोलोंकी भांति मांसादि आहार करनेमें कुर भी बहुत पटु हैं। कुरोंमें कुछ प्रधान लोगोंके पास मुगलवादशाहीके दिये परवाने मौजूद हैं। उनमें कुरोंकी राजपूत कहा है। नोब देखो।

कुरकनी (हिं० स्त्री०) छोटा क वा गटभके चर्मका अग्र-भाग, छोड़े या गटहके चमड़ेका अंगला हिस्सा। कुर-कनीका कीमत्त नहीं बनता।

कुरका (सं० स्त्री०) १ सज्जकी छल, सलई, चीड़। २ जनपदविशेष, कोई मुल्क। वह दक्षिणात्यमें रही। कुरकाका वर्तमान नाम कुररा है। ३ नगरविशेष, कोई शहर। वह कुररा देशमें ताम्रपर्णी नदी तीर पर विद्यमान थी। वैष्णवाचार्य शठकोपका जन्म कुरकामें ही हुआ था।

कुरकी, कुरों देखो।

कुरकु, कुर देखो।

कुरकुट (हिं० पु०) छुद्र खण्ड, छोटा टुकड़ा।

कुरकुटा (हिं० पु०) १ छुद्र खण्ड, छोटा टुकड़ा, कूटा हुआ रवा। २ रोटीका टुकड़ा।

कुरकुण्ड (हिं० पु०) ढणविशेष, रीहा या कमखुश घास। वह आसाम और बङ्गालमें उत्पन्न होता है। उसका तन्तु अत्यन्त दृढ़ और सूक्ष्म होता है। कुर-कुण्डको जाल, वस्त्र आदिके निर्माणकार्यमें व्यवहार करते हैं।

कुरकुर (हिं० पु०) अशक्त शब्दविशेष, एक आवाज। खरी चीजके दब कर टूटनेसे 'कुरकुर' शब्द निकलता है।

कुरकुरा (हिं० वि०) कुरकुरानेवाला, खरा और करारा।

कुरकुराहट (हिं० स्त्री०) कुरकुर शब्द निकलनेका भाव, कुरकुर होनेको हासत।

कुरकुरी (हिं० स्त्री०) १ अश्वरोमविशेष, छोड़ेकी कोई बीमारी। उससे अश्वका मलमूत्र रुकता और सदर फूल उठता है। २ मृदुसूक्ष्म पशु, जो हड्डी कड़ी

और सख्त न हो। ३ कुरकुराहट, कुरकुरकी आवाज। ४ कुरकुर करनेवाली।

कुरगरा (हिं० पु०) एक थापी। वह छोटी रहती और दर्जबन्दी, कारनिस वगैरहके बारीक काममें चलती है।

कुरङ्गर (सं० पु०) कुरमित्यव्यक्तशब्द करोतीति, कुर-ङ्ग-ट। १ सारसपक्षी। सारस देखो। २ कौस्तुभपक्षी। कुरङ्गर, कुरङ्गर देखो।

कुरङ्ग (सं० पु०) कृ विक्षेपे अंगश्च यद्वा कुर शब्दे पता-दित्वात् षङ्गः। विक्षेपः कित्। उच. १। ११९०। १ हरिण, हिरन। २ मृगभेद, किसी किम्बत्ता हिरन। ताम्र अथवा कृष्णवर्ण हरिण, कुरङ्ग नहीं कहाता। किन्तु किसी-किसीके मतमें वह ईषत् ताम्रवर्ण होता है। ३ पर्वतविशेष, कोई पहाड़। वह मेरुके कर्णिका-देशमें अवस्थित है। (भागवत, ५। १। १८) ४ तीर्थभेद, कुरङ्ग तीर्थमें तिराज उपवासपूर्वक स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। (महाभारत, अनुशासन) ५ तार-लौह, साफ लोहा। ६ अकर्मरा। ७ कन्दोविशेष।

कुरङ्ग (हिं० पु०) १ अश्वभ लक्षण, बुरा हास। २ छोड़े-का लखौरी रङ्ग। ३ लखौरी घोड़ा।

कुरङ्गक (सं० पु०) कुरङ्ग स्त्रार्थे कन्। १ हरिण, हिरन। २ अकर्मरा।

कुरङ्गजातक — एक वौद्धजातक। जातक देखो।

कुरङ्गनयना (सं० स्त्री०) कुरङ्ग नयने इव नयन यस्याः, बहुव्री०। मृगनेत्रा स्त्री, आङ्गूचश्च औरत।

कुरङ्गनाभि (सं० पु०) कुरङ्गस्थनाभिः, ६-तत्। कच्छूरी, मूशक।

कुरङ्गम (सं० पु०) कुर-गम्-खच्। नमः। पा ३। २। ४३१। हरिणविशेष, एक हिरन।

कुरङ्गमांस (सं० स्त्री०) मृगविशेषका मांस, हिरनका गोस्त। वह रक्तपित्तमें हित, कफज, मधुर, पित्तज और मांसवर्धक होता है। (चिकित्सा)

कुरङ्गमाच्छन (सं० पु०) चन्द्र, चाँद।

कुरङ्गाक्षी (सं० स्त्री०) कुरङ्गस्थ अक्षिणीव पक्षिणी यस्याः, कुरङ्ग-अक्षि-वच्-ङीप्। बड़ोरी वनवासीः काकात् वच्। पा ५। ४। ११२। मृगनयना स्त्री, आङ्गूचश्च औरत।

कुरङ्गिका (सं० स्त्री०) कुरङ्गक-टाप्। मृगपर्णी, मोठ।

कुरङ्गिन (हि० स्त्री०) कुरङ्गी, हिरनी ।

कुरङ्गिनो, कुरङ्गिका देखो ।

कुरङ्गी (सं० स्त्री०) कुरङ्गपत्नी, हिरनी ।

कुरथ (हि० पु०) कौशपत्नी, कराकुल ।

कुरचिन्त (सं० पु०) कर्कट, केकडा ।

कुरट (सं० पु०) १ चर्मकार, चमार । २ जनपद-विशेष, कोई मूलक । ३ जनपदविशेषका अधिवासी, किसी मूलकका वाशिन्या ।

कुरडा (हि० पु०) घोटकविशेष, एक घोडा । वह परबी और तुर्की घोड़ोंके सहवाससे उत्पन्न होता और दोगला कहलाता है । परबमें कुरडा घोड़ा पाया जाता है ।

कुरण्ट (सं० पु०) १ सितिवारवृक्ष, सिरिवारीका पेड़ । २ श्वेतभिण्टी, सफेद कटसरेया । ३ कुटज-वृक्ष, मकोय ।

कुरण्टक (सं० पु०) १ पीतभिण्टी लुप, पीली कट-सरेया । उसका संस्कृत पर्याय—सैरेयक, सैरेय, श्वेतपुष्प, कुरण्टिका, कटसारिका, सहाचर और सहचर है । भावपकाशके मतमें वह तिक्त, उष्ण, मधुर, दन्तोपका-रक, सुस्निग्ध और केशरञ्जनकारी है । उससे कुष्ठ, वात, कफ, कण्डू, विष और रक्तदोष विनष्ट होता है । चावधके प्रसृतकाल उक्त वृक्षका समस्त पत्र ग्रहण किया जाता है । २ रक्तभिण्टी, लाल कटसरेया ।

कुरण्टमूल (सं० स्त्री०) पीतपुष्प-भिण्टीमूल, पीली कटसरेयाकी जड़ ।

कुरण्टिका (सं० स्त्री०) १ कुटजवृक्ष, मकोयका पेड़ । २ सकलवृक्ष, कोई पौदा । ३ सुनिषण्णकशाक, सिरियारी ।

कुरण्टी (सं० स्त्री०) सिंहपिप्पली, सिंहलकी पीपल ।

कुरण्ड (सं० पु०) १ साकुलवृक्ष, एक पौदा । वह गुर्जरदेशमें प्रसिद्ध है । २ पञ्चोटवृक्ष, पखरोटका पेड़ ।

३ सुष्कवृक्षिरोग, फोता बढ़नेकी बामारी । (Hydrocele) उक्त रोग अम्नवृक्षिका एक प्रकारभेद है । इसका लक्षण और चिकित्सा समस्त अम्नवृक्षि रोगके लक्षण एवं चिकित्साके तुल्य है । अनगि देखो

कुरण्ड (हि० पु०) कुरविन्द, एक खनिज पदार्थ । वह

किसी प्रकारका मूर्छित पलमीनम है । उसे चम-कौली मिसरोकी उसीकी तरह खानोंमें पाते हैं । कुरण्ड हीरेसे किञ्चित् ही मृन् कठिन है । उसके बुरादेको साह वगैरहमें लपेट कर हथियार पैमानेका द्रव्य बनाया जाता है । सुम्बक प्रभृतिमें मिली हुये कुरण्डकी 'मानिक-रेत' कहते हैं । उससे स्वर्णकार चाँदी सोनेके आभूषण उत्पन्न करते हैं । ज्यादा चमक-दार कुरण्ड रत्न समझा जाता है ।

कुरण्डक (सं० पु०) कुरण्टकवृक्ष, कटसरेया ।

कुरण्डका (सं० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक पौदा । वह सारक, बन्ध, गुद, अग्निप्रदोषन और कफघातनाशन है । वृक्ष कुरण्डिका शीत, कट, तिक्त, चार, रुच, सारक, वृक्ष, जड़, वातल, पित्तल वस्त्रिमें वातकर, कफापह और रक्त तथा मूत्रलक्ष्ण नाशक होती है ।

(वैद्यकनिषण्ड)

कुरता (तु० पु०) परिच्छदविशेष, पहननेका एक कपड़ा, उसमें शिर प्रवेशके लिये ऊपर स्थान रहता है, वक्षःस्थल पर कोई परदा या जोड़ नहीं लगता । आजकल भारतमें उसे लोग बहुत पहनते हैं ।

कुरती (हि० स्त्री०) १ छोटा कुरता । उसे स्त्रियां पह-नती हैं । कुरती फतुही-जैसी होती है । २ स्त्री, पौरत (सोनारोंकी भाषामें) ।

कुरथी (हि० स्त्री०) कुलथ, कुलथी ।

कुरन (हि०) कुरन् देखो ।

कुरना (हि० क्ति०) १ एकत्र होना, ठेर लगना ।

२ मधुरध्वनि करना, चिड़ियोंका मीठा बोलना ।

कुरबनही (हि० स्त्री०) कोण बनानेका पस्त्र, कोना सुधारनेका एक औजार । उससे बढ़ई काठकी किसी चीजका कोना छोल छाल कर सुधारते हैं । कुरबनही बखानी-जैसी होती है । उसमें दस्ता नहीं लगता ।

कुरवान (प० वि०) बलि चढ़ा हुआ, जो ग्योहावर हो गया हो ।

कुरवानी (प० स्त्री०) बलिप्रदान, चढ़ावा ।

कुरवाहुक (सं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया ।

कुरम—एक नदी । वह सफेदकोह नामक गिरिसे निकल सिन्धुनदमें मिलित हुई है । ऋग्वेदमें 'कसु'

नामसे उसका वर्णन किया गया है। उक्त नदी-तटस्थ प्रदेश भी कुरम कहा जाता है। राजतरङ्गिणीमें उसे 'कमुक' कहा है। (राजतरङ्गिणी, ४।१५८) कुरम समुद्रपृष्ठसे ४८०० फीट ऊँचा है। वहाँ ब्रौह्मकाक को अधिक जल नहीं रहता, परन्तु शीतकालको बहुत वर्ष पड़ता है। वर्षमें दो बार शस्त्र उत्पन्न होता है—प्रथम यव तथा गेहूँ और उसके पीछे धान, ऊँच बाजरा वगैरह। नानाजातीय वृक्ष भी उत्पन्न होते हैं। कुरममें प्रधानतः मिङ्गल, याजी, बांगन और तूरी लोग रहते हैं।

कुरमा (हिं० पु०) कुटम्ब, कुनवा, घराना। जहाजके निम्नभागमें अभ्यन्तरकी ओर शङ्खोरीके मध्य उनको आबद्ध रखनेके लिये लगनेवाली लकड़ियाँ 'कुरमाका बाँक' कहाती हैं।

कुरमा, कुनवी-देखो।

कुरर (सं० पु०) कुशब्दे कुरच्। कुरः कुरच्। उच. १।१२२। १ भ्रवजातीय पक्षिविशेष, करालकुल। उसका संस्कृत पर्याय—उत्क्रोश, खरमण्ड, क्रीच, पंक्तिचर, खर और कुरल है। कुररका मांस रक्तपित्तघ्न, शीतल, खिन्ध, वृष्य, वातघ्न और रस तथा पाकमें मधुर होता है। (सुश्रुत)

२ जलचर पक्षिविशेष, पानीकी कोई चिड़िया।

“कुररवकमकराः कटपटकपिचकचकाराः।” (हारीत, १।११)

३ पर्वतविशेष, कोई पहाड़। (भाष्य, ५।१६।२६)

कुररव (सं० पु०) पारावत, कबूतर।

कुररा (हिं०) कुरर देखो।

कुररात्रि (सं० पु०) १ देवसर्प, किसी किन्नका खरसी। २ रक्तमूलक, लाल मूली।

कुरराव (सं० स्त्री०) कुरराः सन्वत्, कुररवः प्रकारस्त दीर्घः। वमकारस्य जन्मेऽपि इत्येति वक्तव्यम्। (महाभाष्य ५।१।१०२) कुररपूर्वस्नान, करालकुलीसे भरो हुयी जगह।

कुररी (सं० स्त्री०) कुरर स्त्रियां ङीप्। १ मेघो, मेढ़ी।

२ कुरर पक्षिजो, मादा करालकुल।

“यद्यपि चिन्मं कुररीव सुखम्।” (भाष्य, ६।१४।५१)

३ पार्या जन्दीमिद। उसमें ४ शुद्ध और ४८ लहसुन रस रहते हैं।

कुररीदता (सं० स्त्री०) जन्दीविशेष, एक बहुर। उसका लक्षण है—“कुररीदतानममैर्लङ्गमुक्” अर्थात् प्रथम ४ ऋक्ष १ दीर्घ, फिर १ ऋक्ष १ दीर्घ, उसके पीछे १ ऋक्ष १ दीर्घ और अन्तको २ ऋक्ष १ दीर्घ सब मिलाकर १४ अक्षरोंसे उक्त जन्दी प्रथित होता है। कुररीदतामें ४ चरण पड़ते हैं। यथा—

“अनतिचिरोन्मिदस्य जलदेन चिरस्मित-वडुवुदस्य पञ्चोत्पत्तिम्।”
(भाष्य, ४।४१।)

कुरल (सं० पु०) १ उत्क्रोशपक्षी, करालकुल। २ चूर्ण-कुन्तल, काकुल, लुलुपा। ३ तिक्कवज्रवर-प्रणीत कोई तामिल काव्य। किसी किसी पण्डितके मतमें वही तामिल भाषाका आदिग्रन्थ है। तिक्कवज्र, वर देखो। ४ धरणी, जमीन।

कुरलना (हिं० क्रि०) मधुर स्वरसे कलरव करना, चेहकना।

कुरला (हिं० पु०) १ कुला, गरारा। २ कुन्तल, काकुल, पट्टा। कुला देखो।

कुरव (सं० पु०) १ खेतार्क, सफेद मदार। २ रक्त। ज्ञान-पुष्पवृक्ष, लाल फूलकी कटसरैया। हिन्दीमें उसे लाल कुरैया और मडुवा भी कहते हैं। ३ भिण्टी-शाक, कटसरैयाकी सब्जी। ४ पीतभिण्टी, पीले फूलकी कटसरैया। ५ पक्षिकथान्न जातिभेद, कोई धान। वह काङ्गकवत् गुणविशिष्ट होता है। ६ केश, बाल। ७ तिलकवृक्ष, तिलका पेड़।

“अन्धकारकुरवीतपक्षपक्षकायं।” (भाष्य, १।१५।८१)

८ मृगाल, सियार। ९ कुम्भितरव, कुरी बोली।

(त्रि०) १० कुम्भितरवमुक्त, कुरी बोली बोलनेवाला।

कुरवक (सं० पु०-स्त्री०) कुरव स्वार्थे कन्। १ रक्त-भिण्टी, लाल कुरैया। २ कुटज, मकोय। ३ कुरवक-पुष्प, कटसरैयाका फूल। उत्प देखो।

“आलोचितः कुरवकः कुरते विक्रयम्।” (कुमारसम्भव, १।१६)

कुरवा (हिं० पु०) १ कुरवक, कटसरैया। २ एक खेरकी नापका वरतन। वह लकड़ीका बनता है। ३ पुरवा, सिकोरा।

कुरवारना (हिं० क्रि०) कर्तन करना, खरोचना।

कुरविरामशास्त्री—भारतपर्व नामक ग्रन्थके प्रणेता।

कुरवी (सं० स्त्री०) चिह्नपिप्पली।

कुरस (सं० पु०) कुक्षितो रसः, कुगतिसमा० । १ आसव, अपक्व औषध-सिद्ध मद्य । २ मद्यविशेष, कोई शराब । ३ कुक्षितरस, खराब अर्क । (त्रि०) ४ कुरसयुक्त, बुरे अर्कवाला ।

कुरसय (हिं० पु०) मखिन शर्कराभेद, एक मैली खांड ।
कुरसा (सं० स्त्री०) गाजिह्वालता, गोभी ।

कुरसा (हिं० पु०) १ वृक्षविशेष, कोई पेड़ । वह पति शीघ्र वृद्धिको प्राप्त होता और बड़ी शोभा देता है । उसका काष्ठ दृढ़ और रक्तवर्ण रहता है । उसे गृह और सेतु निर्माणमें व्यवहार करते हैं । कुरसाका उत्पत्तिस्थान आसाम, बङ्गाल, मद्राज, नीलगिरि, अवध और कुमायूं है ।

कुरसी (अ० स्त्री०) १ बिष्टर, बैठनेकी एक चौकी उसमें कुछ ऊंचे पाये लगाते हैं । पीछे सहारा लेनेकी भी पट्टी या वैसी ही कोई दूसरी चीज लगती है । अच्छी कुरसीमें हाथ रखनेके लिये दोनों ओर लकड़ियां जड़ दी जाती हैं । उस पर एक व्यक्ति बैठ सकता है । अंगरेजीमें कुरसीका नाम चेयर (Chair) है ।

कुरसीको प्रायः लकड़ीसे बनाते और उसमें नीचे बैठने और पीछे सहारा लेनेकी जगह बैठकी बुनी हुयी जाती लगाते हैं । कभी कभी उसे पत्थर, लोहे, पोतल या दूसरे धातुसे भी बना लेते हैं । लेटने या सोनेकी कुरसीको पाराम-कुरसी कहते हैं ।

२ कोई ऊंचा चबूतरा । उसके ऊपर गृहादि निर्माण करते हैं । ३ पुश्ता, पीढ़ी । ४ चौकी, उरबसी । वह एक चतुष्कोण यन्त्र (तावीज) है । उसे हुमेनके बीच छाल कर गलेमें पहनते हैं । ५ नावके किनारेकी तख्ताबन्दी । उसी पर नीचेका पाल बांधा जाता है । ६ जहाजके मस्तूलकी ऊपरी भाड़ी-तिरछी लकड़ियां । कुरसी पर खड़े हो करके जो मलाह पालकी रस्सियां खींचते हैं ।

कुरसीनामा (फा० पु०) कुलपत्य, वंशवृक्ष, शजरा, पुश्तानामा ।

कुरा (हिं० पु०) १ कुरह, पुराने जख्ममें पड़नेवाली गांठ । उसमें पीब जम जानेसे नासूर निकल आता है ।

२ कुरव, कटसरैया ।

कुराई (हिं० स्त्री०) पैरमें डाला जानेवाला काठ ।

कुराजा (सं० पु०) कुक्षितो राजा, कुगतिसमा० । निन्द्य-राजा, रेतकी डिफाजत न करनेवाला बादशाह ।

कुराज्व (सं० स्त्री०) कुक्षितं राज्यम्, कुगतिसमा० । निन्द्यराज्य, बुरी सलतनत ।

कुरान (अ० पु०) मुसलमानोंका धर्मग्रन्थ । वह परबी भाषामें लिखा है । मुसलमानोंके विश्वासानुसार ईश्वर-ने कुरानकी आयतों (वाक्यों)-की विभिन्न समय जिबरीलके जरिये (द्वारा) मुहम्मद साहबके निकट प्रेरण किया था । उसमें ३० भाग (पारा) हैं । कुरान-के माननेवालेको 'कुरानी' (मुसलमान) कहते हैं ।

परबी भाषामें कुरान शब्दका अर्थ ग्रन्थ, पुस्तक वा गांठ है । इसको फुरकान या मसहफ भी कहते हैं । इसी कुरानके प्रवर्तित धर्मका नाम इस्लाम है । कुरानका मुख्य उद्देश्य इस तत्त्वकी प्रकाश करना है कि जगदीश्वर एक और अद्वितीय है । परन्तु इसमें ईश्वरकी उपासना, ध्यान, धारणा तथा योगतपस्यादिके नानाप्रकार तत्त्व और मनुष्यके आचार-व्यवहार, रीति-नीति प्रवृत्ति एवं भूत भविष्यत् कालकी बहुविध उपदेशपूर्ण बातें भी कहीं हैं । इसलाम धर्मावलम्बी विद्वानोंने कुरानके अध्याय, श्लोक, शब्द और अक्षर वा वर्ण पर्यन्त मंथ्याभुक्त करके निर्देश किये हैं । कुरान प्रथमतः ३० पारावां या अध्यायोंमें विभक्त है । इसमें ११४ सूरे (परिच्छेद), ६६६६ आयतें (श्लोक), ७८४३६ कलमे (शब्द) और ३२३७४१ हर्फ (अक्षर) हैं । उसमें ४८८७२ अलिफ, ११४२८ बे, १०१८८ ते, २०२७६ से, ३२८३ जीम, ३८८३ हे, २४१६ खे, ५६७२ दाज, ४६८७ ज्ञान, ११७३३ रे, १५८० जी, ५८८१ छोटीशोन, २२५३ बड़ेशोन, १२०१३ ख़ाद, २६१७ ज़ाद, १२७४ तो, ८४२ फी, ८२२० ऐन, २२१८ गैज, ८४८८ फे, ६८१३ बड़ेकाफ, ८५८० छोटे काफ, १३०४३२ लाम, २६१३५ मोम, २६५६० नून, २५५१६ वाव, १००७० छोटे हे, ४७२० लाम-अलिफ और २५८१८ ए हैं ।

अरब देशान्तर्गत मक्का नामक स्थानमें कुरैश-वंश-जात मुहम्मद नामक किसी महात्माने इस कुरान-

अन्वको प्रकाश और प्रचार किया था। मुसलमान कहते कि मुहम्मद अपने आप इस किताबके बनाने-वाले नहीं, ईश्वरके निकटमें आये हुए किसी स्वर्गीय दूतके मुँह उन्होंने इसे सुना। ५०२ शक्र या ५७० ई० १० नवम्बरको मक्का नगरमें मुहम्मदका जन्म हुआ।

मुहम्मदके पिताका अबदुल्ला, माताका जहारिह और पितामहका नाम अबदुल मतालिब था। इनके पूर्वपुरुष मन्ध्यान्त एवं राजवंशोद्भव रहे। मक्केका मशहूर काबा नामक देवालय बहुदिनसे उनके कर्तृत्वाधीन था। प्रवाद है—मुहम्मदने यद्यपि लड़कपनमें लिखना पढ़ना कुछ नहीं सीखा, वह उसी समयमें ही विशेष बुद्धिजीवी और धर्मजिज्ञासु रहे। उन्होंने देखा, उस समय परब आदि नाना स्थानोंमें जिन सकल धर्मोंका अनुष्ठान तथा आचरण होता था, नितान्त कुक्षित, कदर्य और अहितकर था। उस समय परब आदि स्थानोंमें केवल पीतनिकता, पशुहिंसा और नरवलि प्रभृति कदाचार प्रचलरूपसे प्रचलित थे। ग्रन्थादिमें लिखा है कि एक बार मुहम्मदके दादा अबदुल मतालिबको काबेमें नरवलि देनेका उद्योग हुआ। किन्तु उन्होंने १०० सट्टी वलि प्रदान करके उक्त दायित्वसे अभ्याजनि पाया। स्वदेशकी ऐसी दुर्दशा देख मुहम्मद हमेशा की ओर विमुक्त धर्म चलानेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना और निज जन्ममें उसकी उपासना किया करते थे। वह अपने ४० वर्ष वयः क्रमके समय मन्माने निज जन्म स्थान जम्माभूमिके निकट हिरार नामक पर्वतकी गुहामें जाकर एकान्त चित्तसे ध्यान धारणा लगाने लगे। एकदा ध्यानमग्नावस्थामें उन्होंने देखा, किसी पश्यान्तमूर्ति पवित्र पुरुषने उनके निकट उपस्थित हो आदेश किया था 'पाठ करो'। मुहम्मदने उत्तर दिया—'मैं मूर्ख हूँ, पढ़ना नहीं जानता; कैसे पाठ करूँगा।' इस पर उस पुरुषने फिर अपनी वही बात कही थी। मुहम्मदने भी कहा—'मैं पाठ नहीं जानता, कैसे करूँगा।' उस समय स्वर्गीय पुरुष तीसरी बार मुहम्मदसे 'पाठ करो' कह 'एरा व एसम रबिबा' से 'मालमइयात्म' तक पढ़ कर अन्तर्हित हो गया। इस प्रकारकी आश्चर्य घटनासे विस्मयाविष्ट हो मुह-

म्मदने घर लौट कर अपनी पत्नी खदीजासे आनुपूर्विक समस्त वृत्तान्त बताया था। खदीजाने भी अचम्भेमें पड़ अपने भाई वराकरके पास उन्हें ले जाकर सारी घटनाका परिचय दिया। बीबी खदीजाके भ्राताने यह वृत्तान्त सुनके कहा था—

'सावधान ! जिन महापुरुषने आविर्भूत हो मुहम्मदको उपदेश किया है, स्वर्गीय दूत हैं। उनका नाम जिवरोल है। वह समय समय पेगम्बरोंकी ऐसे ही धर्मका उपदेश देते हैं।' फिर कुछ महीने तक उक्त स्वर्गीय दूत मुहम्मदको देख न पड़े। उसके बाद जब तब महापुरुषने पूर्वीत प्रकारसे मुहम्मदके निकट उपस्थित हो क्रमशः समस्त धर्मका उपदेश दिया। कहते हैं—इसी तरह तेरह सालामें मुहम्मदने सारी कुरानका उपदेश पाया था। यह उपदेश वह समय समय पर शिष्यों तथा उपदेश्योंको सुनाते और वह इसे खजूरके पत्ते, पत्थर या भेड़की हड्डी पर लिखते जाते थे। इसी प्रकार सारा उपदेश लिखा जाने पर उनको किसी औरतके पास रखा गया और उनके मरनेसे दो साल पोछे उनके शिष्य और मित्र अबू-बकरने उसको किताब बना डाली। हिजरो सनके ३० वर्ष बाद खलीफा जमरने इसका संशोधन किया। मुहम्मदने पहले पहल अपनी सबसे प्यारी पत्नी खदीजाको इस धर्मको दीक्षा दी थी। उसके बाद उनके आत्मोप अबूबकर और अली नामके एक लड़केने उनके चलाये धर्मको पकड़ा। धीरे धीरे अरबके बहुत-से दूसरे आदमी भी उनके धर्मको मानने लगे। मुहम्मदके कुरान चलानेसे पहले अरब वगैरहमें तरह तरहके दूसरे मतोंका भी प्रचार था और उनके मानने-वाले अपने अपने धर्मप्रवक्तकोंकी सिद्ध-पुरुष और अलौकिक मनुष्य जैसा समझते थे। कुरानमें उनको बात लिखी थी यथा-सम्भव भक्ति अथा कही है। अरब आदि देशोंके पुराने लोगोंमें किसी किसीके मतानुसार अठारह हजार सिद्ध पुरुष और किसीके मतसे ३१३ पेगम्बर निर्दिष्ट हुए हैं। फिर १०४ धर्म-पुस्तकोंमें प्रचारकी कथा है। परन्तु मूसा, दाऊद और ईसाकी बनाई इज्जत और तीर्थोंकी बाह-

बिल धर्मपुस्तकका नाया टेष्टामेण्ट (पब्लिक-जदीद)
 और पुराना टेष्टामेण्ट (पब्लिक-इलीक) बहुत प्रसिद्ध
 और प्रबल है। मुहम्मद प्रचारित कुरानके मतावलम्बी
 निर्देश करते कि पूर्वोक्त धर्मावलम्बियोंको भटकते
 देख उन्हें उद्धार करनेके लिये ईश्वरने मुहम्मदके द्वारा
 कुरान भेजा है। यद्यपि जगदोत्तर समय समय और
 सभी समय जीवोंके निस्तारको एक न एक पैगम्बर
 याभी धर्मप्रचारक पहुँचाया करता है, किन्तु मुह-
 म्मदका एक दूसरा नाम सुस्तफा यानो आखिरो पैग-
 म्बर है। सुसलमान बताया करते हैं—कुरानमें पहले
 अरब अक्षरमें दूसरे जितने धर्मपुस्तक प्रकाशित और
 प्रचारित हुई थी, उनमें कुरानको तरह किसी दूसरे
 पुस्तकमें ईश्वरका एकत्व और अद्वितीयत्व सफाईके
 साथ बताया और समझाया नहीं गया है। कहते हैं—
 मुहम्मदने एक हाथमें कुरान दूसरे हाथमें पैनी तल-
 वार ले इसलाम धर्म चलाया था। परन्तु किताब
 वगैरह पढ़नेसे समझ पड़ता कि सब जगह मुहम्मद-
 को अपना मत चलानेमें ऐसा नहीं करना पड़ा, बहुतों-
 ने धर्मपुस्तकके विशुद्ध उपदेशसे आकर्षित हो इच्छा-
 पूर्वक उनका मत अवलम्बन कर लिया था। कुरानमें
 बड़े गहरे ज्ञानका उपदेश और गहरे तत्त्वों की बातें
 देख पड़ती हैं। शम, दम, उपरति, तितिक्षा आदि
 को समस्त साधन सर्वदेशप्रचलित तथा सकल प्रकार
 विशुद्ध धर्मानुमोदित हैं। कुरानमें उन सबका उपदेश
 मिलता है। फिर भी जो लोग अरब आदि देश-प्रच-
 लित प्राचीन पौस्तलिक धर्मके सहारे कालयापन और
 स्वार्थ साधन करते थे, कुरानके प्रचारमें अपने स्वार्थ
 पर व्याघात पड़नेसे सर्व प्रथम मक्का में मुहम्मद पर
 अत्याचार आरम्भ किया और जब उन अत्याचारियों-
 के दलने खूब जोर पकड़ा, मुहम्मदकी शान्तिरक्षाके
 लिये मक्कासे मदीना जाना पड़ा। जिन दिन मुहम्मद
 मक्कासे मदीना गये थे, सुसलमानोंका हिजरी भन
 गिना जाता है। मदीनेके लोग पहलीसे ही मुहम्मद-
 की बात समझते थे, बहुतसे उनके मतावलम्बी भा-
 हो गये थे। मुहम्मदके मदीना पहुँचते ही उन्होंने
 वहीं इज्जतके साथ जनको भगवानों की। मुहम्मद

उसी जगह रह धीरे धीरे भूमण्डलके प्रधान प्रधान
 स्थानोंमें नामा कौगलोंसे अपना मत फैलाने लगे।
 किसी समय यूरोपके पश्चिम प्रान्तमें स्पेन देश पर्यन्त
 कुरानका मत पहुँचा और वहाँ बड़ी बड़ी मसजिदों-
 में जहाँ आवाजसे कुरानका कलमा पढ़ा जाता था।

सुसलमान कहते कि रमजान महीनेकी २७ वीं
 रातको स्वर्गसे कुरान उतारा था। इसीसे कुरानका
 दूसरा नाम 'लैलतुन कद' अर्थात् निशाकी शक्ति भी
 है। इस रातको धार्मिक सुसलमान अतिपवित्र भाव-
 से रहते हैं।

कुरानकी बहुतसी टीकायें हैं। उनमें अलवेदवी,
 मालिक, इनीफ, सफी और हनवलीकी टीका ही
 प्रधान है। टीकाकारोंमें इनीफने ८० हिजरी को
 कूफा नगरमें जन्म लिया और १५० हिजरी को बुग-
 दादके कैदखानेमें उनका मृत्यु हुआ। सफीने १५०
 हिजरी को पानेस्ताइनके गजा नगरमें जन्म लिया।
 मिसर देशमें २०४ हिजरीको देहत्याग किया था।
 मालिक ८५ हिजरीको मदीना नगरमें आविर्भूत
 हुए और वहाँ मरते दम तक बने रहें। टीकाकारोंके
 सिवा फारसी, तुर्की, हिन्दी, तामिल, ब्रह्मी, मलया,
 बंगला, अंगरेजी, लाटिन, इटालीय, जर्मन, फ्रांसीसी,
 स्पेनिश वगैरह कई जगहोंमें कुरानका तरजुमा हुआ
 है। धार्मिक सुसलमान अनुवाद पर बिलकुल भरोसा
 नहीं करते। वह आज प्रायः तरह मो वर्षसे बराबर
 इसी मूल ग्रन्थको भक्ति और इज्जत करते पाये हैं।
 फिर सुसलमान अशुद्धि अवस्था में कभी कुरान नहीं
 छूते और न कोई दूसरी किताब उस पर रखते हैं।
 लड़कपनसे ही निष्ठावान् सुसलमानोंके लड़के कुरान
 पढ़नेका मशह किया करते हैं। मुहम्मद शब्दमें विवरण देखो।

कुरानके बारेमें एक अपूर्व अनोखी कहानी सुन
 पड़ती है। दिल्लीके बादशाह अकबरके समय उनके
 अनन्तम मन्त्री प्रसिद्ध विद्वान् फेजोने ख्यात किया—
 अच्छा हो, यदि किसी न किसी तरह मुहम्मदके बताया
 कुरानका मत तबदील किया जा सके। यही मन्त्रालय
 करके वह विशेष भजनगर्भ गभीर तत्त्वके आदेश एवं

उपदेशसे पूर्ण एक पत्र बना किसी चरणके मध्य एक छक्के कोटरमें यत्नपूर्वक रख पाये और एक दिन प्रसङ्गक्रममें अकबर बादशाहसे कहने लगे—“जहान-पनाह ! कल रातको मैंने स्वप्नमें एक अनोखी बात देखी है। किसी स्वर्गीय दूतने आकर मुझमें कहा—‘मैं ईश्वरका दूत हूँ’। मेरा नाम जिवरील है। अकबर बादशाहके जरिये धर्मपुस्तक प्रचारित करनेको जग-दीश्वरने मुझे भेजा है। मैं वही किताब उस जङ्गलके उस पेड़को खोहमें रख जाता हूँ। तुम अकबरसे कह कर उसे मंगालो। उस किताबको खास बात यह है कि उसमें कहीं नुकता नहीं।’ अकबर फैंजेकी कहनेसे अच्छा दिन देख यद्योचित मङ्गलाचरणपूर्वक सब आत्मीयों और पमात्मीयोंको साथ लेकर कुरान लेने चले और निदिष्ट छक्केकोटरसे अतिभक्तिभावसे उस किताबको अपने हाथों निकाल शिरसे छूवाया और छातीसे लगाये राजधानी लौट पाये। उन्होंने यथा-समय मुझावोंको वह भक्तिग्रन्थ पढ़नेको दिया था। उसके सभी मधुर उपदेशोंको सुन कर लोगोंमें अनिर्वचनीय अद्भुत और भक्तिका उदय हुआ, साथ ही जगह जगह मौजूदा कुरानके खिलाफ बहुतसे मत देख किसी किसीके मनमें मन्देह भी उठ खड़ा हुआ; किन्तु अकबरकी अचला भक्ति समर्थन करके किसीको कुछ कहनेकी हिम्मत न पड़ी। फिर सबने सोचा कि वह सब फैंजेकी चालाकी थी। एक दिन उर्फ़ी उस किताबकी शुरूसे अखीर तक पढ़ने पर भी किसी जगह कोई गलती निकाल न सके। पीछे उन्होंने किताबका ऊपरी हिस्सा उलट कर देखा तो उसमें विसम्मिता शब्द लिखा था। यह देख वह सोचने लगे—फैंजेने तो इस किताबकी बेनुकता कहा था, परन्तु वे अक्षरके नीचे नुकता लगा है। उन्होंने अकबरकी यह ऐव बता उसका प्रचार बन्द करा दिया।

कुरान (सं० पु०) कुलाह घोटक, दरयायो घोडा उसका जङ्गादय कृष्णवर्ण और अपर अङ्ग पाण्डुवर्ण होता है।

कुरान (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। वह हिमा-लयका उत्तर विभागके शिमला, गढ़वाल और कुमायूँ

प्रभृति स्थानोंमें उत्पन्न होता है। कुरानमें फलियां पाती हैं।

कुराह, कुराव देखो।

कुराह (हिं० स्त्री०) कुत्तित मार्ग, खराब रास्ता।

कुराहर (हिं० पु०) कोलाहल, गुलगपाडा।

कुराही (हिं० वि०) १ कुमार्गी, बुरी राह चलनेवाला। (स्त्री०) २ दुराचारिता, बदचलनी।

कुरिया (हिं० स्त्री०) १ कुटी, मछैया, भोपड़ी। २ अति दूद ग्राम, बहुत छोटा गांव। ३ गांज, ढेर। ४ राबके बारे को जूसी निकालनेके लिये नीचे-ऊपर रखनेका काम।

कुरियाल (हिं० स्त्री०) पंखोंका संवार, परोका बनाव। पक्षी आनन्दमें जब रहते, तब कुरियाल किया करते हैं।

कुरिल (हिं० पु०) चमार।

कुरी (सं० स्त्री०) यमुनातीर-प्रसिद्ध दृष्यधन्यविशेष, चेना। वह मधुर, बलप्रद और हरित, पक वा दृढ होते भी वाजिपुष्टिदायक है। (राजनिषध्)

कुरी (हिं० स्त्री०) १ वंश, खानदान, घराना। २ कोल्हू। ३ विभाग, कूरा।

कुरीति (सं० स्त्री०) १ कुप्रथा, बुरी रस्स। २ कदाचार, कुचाल।

कुरीर (वे० स्त्री०) १ स्त्रियोंके मस्तकका आच्छादन-वस्त्रविशेष, औरतोंके मथ्या टांपनेका कोई कपडा।

“कुरीरमस्य शोषं वि कुम्बं वाणिनिदधति।” (अथर्व ६।१२८।१)

२ वैदिक छन्द।

“सोमा वासन् प्रतिषधः कुरीरं हन्तुं प्रोपयः।” (ऋक् १०।८५।८)

कुरीर (सं० स्त्री०) कृष्-ईरन् उकारादेशश्च। अथ उच। उच ४।११। मथुन, लुफती।

कुरीरिन् (वे० त्रि०) कुरीरयुक्त। (अथर्व ६।१२८।२, ५।११।२)

कुरु (सं० पु०-स्त्री०) कृष्-कुः उकारादेशश्च। अथ उच। उच ४।११। १ अग्नीध्र राजाके पुत्र। उनके पितामहका नाम प्रियव्रत रहा। २ सम्वरणराजाके पुत्र। सूर्यकन्या तपतीके गर्भसे उन्होंने जन्मग्रहण किया था। कुरु धातराष्ट्रों और पाण्डवोंके पूर्वपुरुष रहे। उन्होंने इस अभिप्रायसे समस्तपञ्चककी भूमिकी कर्षण किया

जो व्यक्ति इस स्थानमें कलेश्वर कीदेगा, वही स्वर्गलाभ कर सकेगा। (महाभारत, आदिपर्व. ११४ अ०)

१ जनपदविशेष, एक मूलक।

“कुरुन् स्वपिति।” (सिद्धान्तकौमुदी)

शक्तिसङ्गमतन्त्रके मतानुसार कुरुक्षेत्रके दक्षिण और पश्चात्कर्के पूर्वभागमें हस्तिनापुर पर्यन्त उक्त जनपद अवस्थित है।

“हस्तिनापुरमारभ्य कुरुक्षेत्रस्य दक्षिणे।

पश्चालपूर्वभागे नु कुरुक्षेत्रः प्रकटितः॥”

किन्तु यह ठीक नहीं। कुरुक्षेत्र देखो।

४ जम्बुद्वीपके उत्तरमें एक वर्ष।

“नाभिश्च प्रथमं वर्षं ततः दिग्पुरुषं स्मृतम्।

हविषं तथैवाभ्यन्तर्गतेऽपि सितम्।

रसाकं चोत्तरं वर्षं तथैवाभ्यन्तर्गतेऽपि।

उत्तरा कुरुक्षेत्रं यथा वे भारतं तथा।

इलाहवत्त तन्मध्ये सोवर्णं मरुत्तम्।”

५ उत्तरकुरु नामक जनपद। उत्तरकुरु देखो।

६ भक्त, भक्त, भात। ७ कण्टकारिका, कटेया। ८

पुरोहित। ९ कुरुजनपदवासो।

“उवाच पाण्डुः पश्येतां समवेतान् कुरुमिति।” (गीता १ अध्याय)

कुरुषा, कुरु देखो।

कुरुक्षेत्र (हि० स्त्री०) मौनो, वांमो या मंजकी छोटी डालिया।

कुरुक (सं० पु०) राजविशेष, एक राजा।

कुरुकट (सं० पु०) कुरुक्षेत्र, इन्द्रः। कुरु और कटदेशवासो।

कुरुकन्दक (सं० स्त्री०) मूलक, मूनी।

कुरुकुला (सं० स्त्री०) १ कालो देवी।

“कालीकपालिनो कुला कुरुकुला विरोचिनो।” (कामाक्ष्य)

२ बौद्धदेवताभेद।

कुरुक्षेत्र (सं० स्त्री०) कुरुव कुरुक्षेत्रम्, एकवत् इन्द्रः। विभिन्नलिङ्गो नदीदेशोऽयम्। पा १।४।७। कुरुदेश और कुरुक्षेत्र।

कुरुक्षेत्र (सं० स्त्री०) कुरुक्षेत्रं क्षेत्रम्, मध्यपदलो०।

एक पति प्राचीन पुण्य स्थान। पूर्वकाल कुरु नामक राजर्षिने उक्त क्षेत्रको कर्षण किया था, इसीसे उसका कुरुक्षेत्र नाम पड़ गया।

“पुरा च राजर्षिर्वरेच सोमता, वदन्ति वर्षाव्यमितेन तेजसा।

प्रजटमेतत् कुरुषा महात्मना, ततः कुरुक्षेत्रमितोह पश्ये॥”

(भारत, शक्य, ५१।२)

महाभारतमें यह भी लिखा है—

“बलरामने कहा,—‘हे तपोधन! यह अवश्य करनेके लिये मेरी वासना है क्योंकि कुरुक्षेत्रमें यह क्षेत्र कर्षण किया था। आप अनुग्रह करके मुझे बतला दीजिये।’

महर्षिने कहा—‘पूर्वकाल कुरुके इस क्षेत्रका कर्षण आरम्भ करनेसे देवराज इन्द्रने उनके समीप उपस्थित हो करके पूछा—‘राजन्। आप किस अभि-प्रायसे यत्रके साथ इस भूमिको कर्षण करते हैं।’ कुरुक्षेत्रने उत्तर दिया—‘हे पुरन्दर! हमारे भूमि कर्षणका यहो उद्देश है—जो व्यक्ति इस क्षेत्रमें कलेश्वर परित्याग करेगा, वह अपनायास स्वर्गलोक पहुँच सकेगा।’ सुरराज उनकी उपहास कर चले गये। इधर कुरुक्षेत्र इन्द्रके उपहाससे अणमात्र भी दुःखित न हो एकान्त मनसे भूमिकर्षणमें लगे रहें। परिशेषमें सुर-राज भूपतिके हृदयमें अध्ववसाय दर्शनसे भीत हो देवों-को उनकी वासना कह सुनायी। फिर वह देवोंके वाक्यानुसार कुरुक्षेत्रके निकट उपस्थित हो कहने लगे—‘राजर्षि। अब तुम्हें कष्ट करनेका प्रयोजन नहीं; जो इस स्थानमें पातक्यशून्य हो अपनाहार प्राण परित्याग करेगा अथवा युद्धमें वीरतापूर्वक मरेगा, वह निश्चय स्वर्ग पहुँच रहेगा।’ कुरुक्षेत्र इन्द्रके वाक्यसे मन्मुष्ट हो चान्त पड़े और सुरपति भी सुरलोकको चलते बने।” (भारत, शक्य, ५१ अ०)

कुरुक्षेत्र भारतीयोंका एक प्राचीनतम तीर्थस्थान है। ऋग्वेदीय ऐमरिय-ब्राह्मण (७।१०), यजुर्वेद-शतपथब्राह्मण (११।५।१।४), कात्यायन-श्रौतसूत्र (२४।६।१४), पञ्चविंशब्राह्मण, शांखा-यनब्राह्मण (१५।१६।१२), तैत्तिरीय आरण्यक (५।१) प्रभृति वेदिक ग्रन्थमें भी कुरुक्षेत्रका उल्लेख मिलता है।

शतपथब्राह्मणके मतसे उक्त स्थानमें देव वज्र करते थे—

“कुरुक्षेत्रेऽसी देवा वज्रं तन्वते।” (शतपथब्राह्मण ४।१।५।१९)

जावालोपनिषद्में भी कुरुक्षेत्र—अविमुक्तक्षेत्र, ब्रह्म-

सदन और देवताओंकी यज्ञभूमि जैसा वर्णित हुआ है—

“अविष्कृतं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्।”

उसका अपर नाम समस्तपञ्चक है। महाभारतमें लिखा है :—

“प्रजापतेरुत्तरवेदिकृत्यते सनातनी राम समस्तपञ्चकम्।

समीक्षितं यत् पुरा दिवीकसो वरेण सर्वेण महावरप्रदाः।”

(गण्यपर्व, ५३।१)

हे राम ! समस्तपञ्चक ब्रह्माको उत्तरवेदि कहाता है। वहाँ पड़ले महावरप्रद देवगणने यज्ञ किया था।

सोमा—“उत्तरेण हवस्ता दक्षिणेन सरस्वतीम्।

ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिपिष्टे ॥

ब्रह्मवेदो कुरुक्षेत्रं पुण्यां ब्रह्मर्षिं सेवितम्।

तरन्तुकारन्तुकयो र्देदन्तं रामप्रदानाच्च मचक्रं कस्य च।

एतत् कुरुक्षेत्रसमस्तपञ्चकम्।” (वनपर्व, ८२।१०५, १०८)

दृषदतीके उत्तर और सरस्वती नदीके दक्षिण पुण्यप्रद राजर्षिसेवित ब्रह्मवेदो कुरुक्षेत्र है। कुरुक्षेत्रमें रहनेवाला स्वर्गवास करता है। तरन्तुक, परन्तुक, रामप्रद और मचक्र समुदायका मध्यवर्ती स्थान हो कुरुक्षेत्र—समस्तपञ्चक है।

किसी किसी प्रज्ञातत्त्वविदके मतमें ब्रह्मवेदो कुरुक्षेत्र मनुष्योक्त ब्रह्मावर्त देश है। (Cunningham's Arch. Sur. Repts, Vols. II. p. 215; XIV. p. 87.) किन्तु यह भ्रम है। मनुसंहितामें स्पष्ट उल्लेख है कि ब्रह्मावर्त और कुरुक्षेत्र एक नहीं।

यथा—“सरस्वती हवस्ता दे वसन्ती र्देदन्तम्।

तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥

कुरुक्षेत्रश्च मन्त्राच्च पाञ्चालाः शूरसेनकाः।

एव ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तोदनन्तरम् ॥”

(मनु, २ च०, १७-१८ श्लो०)

सरस्वती और दृषदती देवनदीका जो पन्तर पाता वह ब्रह्मावर्त कहाता है। ब्रह्मावर्त देवनिर्मित देश है। फिर कुरुक्षेत्र, मन्त्रा, पाञ्चाल और शूरसेनक ब्रह्मर्षिदेश हैं। ब्रह्मर्षिदेश ब्रह्मावर्तसे कुछ भिन्न होता है।*

महाभारत (वन, ८१।५२ श्लो०)-में कुरुक्षेत्रके

पन्तर्गत ब्रह्मावर्त तीर्थका उल्लेख होते भी दूसरे अध्यायमें कुरुक्षेत्रसे ब्रह्मावर्तको भिन्न कह दिया है। पहले ब्रह्मावर्त अतिक्रम करके यमुनाप्रभव नामक पुण्यतीर्थको ज्ञाते थे।* (वन, ८४।४३ श्लो०) महाभारतका शेषोक्त ब्रह्मावर्त ही मनुष्योक्त ब्रह्मावर्तसे मिलता है। वह कुरुक्षेत्रके पागे उत्तरको और पवस्थित है।

कुरुक्षेत्रका परिमाण हादगयोजन (४८ कोस) है :—

“धर्मक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं हादगयोजनमसि।” (द्रुपद ४।१६)

कुरुक्षेत्र-तीर्थ-निर्णयके मतसे—कुरुक्षेत्रके ईशान-कोणमें तरन्तुक की वायव्य, वायुकोणमें परन्तुक, नैऋतकोणमें कपिल (उसीके निकट रामप्रद) और अग्नि-कोणमें मचक्र अवस्थित है। महाभारतोक्त तरन्तुकका वर्तमान नाम ‘रतनयख’ है। वह सरस्वती नदीके तीरे पिप्पली नामक स्थानके निकट पड़ता है।

परन्तुक को आजकल ‘वहेर’ कहते हैं। वह कैथल ग्रामके उत्तर-पश्चिम पवस्थित है।

रामप्रद और कपिलातीर्थ भींदसे ढाई कोस वर्तमान रामराय नामक स्थानमें है।

मचक्र—वर्तमान सोख नामक स्थानका नाम है। वह पानोपथ और भींदके मध्यस्थलमें पड़ता है।

उपरोक्त स्थाननिर्देशके अनुसार कुरुक्षेत्रका भूपरिमाण इस प्रकार निर्णय होता है :—

पूर्वमें तरन्तुकसे मचक्र	... २७ कोस
पश्चिममें रामप्रदसे परन्तुक	... २० कोस
उत्तरमें परन्तुकसे तरन्तुक	... २० कोस
दक्षिणमें मचक्रसे रामप्रद	... १२॥ कोस

* “ब्रह्मावर्त” ततो गच्छेद् ब्रह्मचारो समाहितः।

अथमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकाच्च गच्छति ॥

यमुनाप्रभवं गत्वा समुपसृज्य यामुनम्।” (वन, ८४।४३-४४)

+ कोई कोई इस प्रकार पाठ करता है—

“तद्ब्रह्मकारणक्यो र्देदन्तं रामप्रदानाच्च मचक्रं कस्य च।”

Cunningham's Arch. Snr. Repts. Vol. II. p. 218.

किन्तु महाभारतके किसी मुद्रित पुस्तक या हस्तलिखितमें उक्त पाठ नहीं मिलता।

* धर्मपद्धति भी ब्रह्मावर्त और कुरुक्षेत्रको भिन्न ही कहा है।

(अभिधानचिन्तामणि, ४।१५-१६)

कुरुक्षेत्रमाहात्म्यके मतानुसार उत्तम सीमाके मध्य ३६५ तीर्थ अवस्थित हैं।

महाभारतमें भी कुरुक्षेत्रके अनेक तीर्थों और पुण्यस्थानोंका विवरण लिखित हुआ है। अकारादिक्रमसे उनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है :—

अग्नितीर्थ—आजकल अग्निकुण्ड कहाता है। वह यानेश्वरसे ७ कोस पश्चिम पृथूदक नामक प्राचीन नगरके पार्श्वमें अवस्थित है। कृताशन भृगुके शापसे भीत हो वहाँ सभोगर्भमें जाकर छिपे थे। अग्नितीर्थमें स्नान करनेसे अग्निभोज मिलता है।

(शल्य, ४७।१६-२९, वन, ८३।१३८)

अमरकूट—यानेश्वरसे ५ कोस दक्षिण-पश्चिम चन्द्र-रान ग्राममें अवस्थित है। आजकल उसे अमरकूप कहते हैं। वहाँ स्नान और इन्द्रको पूजा करनेसे स्वर्ग-भोज मिलता है। (वन, ८३।१०५)

अम्बाजम्भ—कुरुक्षेत्रमाहात्म्यमें 'धन्यजम्भ' नामसे वर्णित हुआ है वह सकर-तीर्थके पूर्व है, अम्बाजम्भका वर्तमान नाम दोरखेरी है। वहाँ स्नान और प्राण-त्याग करने पर तीर्थयात्रियोंको नारदेवके आदेशसे उत्तम लोक प्राप्त होता है। (वन, ८३।८९)

अश्वमती—एक शुद्ध नदी है। वह वृष-यमुनाकी एक शाखा होती है। कुरुक्षेत्रप्रदीपमें उसे अंशुमती कहा है। सम्भवतः वही ऋग्वेदोक्त अंशुमती भी है। यथा—“अथ द्रुपदो अंशुमतीमतिष्ठदियागः कृषो दग्निः सहस्रेः।”

(ऋक्संहिता ८।२६।१९, साम १।४।१।४।१)

दशसहस्र सेव्य सह द्रुतगमनकारी क्षण्य अंशु-मती नदीतीर अवस्थान करते थे।

बृहद्देवतामें लिखा गया है :—

“अपक्वमय तु द्वैभ्यः सोमो ब्रह्मयार्दितः।

नदीमंशुमती नामाभ्यतिष्ठत् कुरुन् प्रति॥” (६।२१८)

रामानुजने रामायण-टीकामें 'अंशुमती'का सूर्य-तनयाके अर्थमें प्रयोग किया है। (रामायण, २।५५।६) सूर्यतनया यमुनाका एक नाम है। सम्भवतः वृद्धे यमुनाकी एक शाखा रहनेसे अंशुमती भी यमुनातुल्य विवेचित जाती थी। ऋक् और सामवेदके मतमें इन्द्र-ने वहाँ क्षण्यसुरको विनाश किया है। उसीके तीर महाभारतीक सुतीर्थक तीर्थ है। (वन, ८३।५५)

अरन्तुक—कुरुक्षेत्रके एक हारकी भांति विख्यात है। उसका वर्तमान नाम वाहेर है। वह यानेश्वरसे १८ कोस पश्चिम सरस्वती नदीके तीर अवस्थित है। वहाँ यक्षकुण्ड भी है। अरन्तुकतीर्थमें स्नान करनेसे अग्निष्टोमका फल प्राप्त होता है। (वन, ८३।५१)

अरुणातीर्थ वा अरुणामङ्गल—अरुणा और सर-स्वती नदीके सङ्गमस्थान पर पेहवा नगरसे छेड़ कोस उत्तर-पूर्व उच्चस्तूपके पास अवस्थित है। नमुचिका शिरश्छेदन करनेसे इन्द्र ब्रह्मादित्यामें निप्त हुये थे। ब्रह्माके आदेशसे वह अरुणा-सरस्वतीसङ्गममें यज्ञा-नुष्ठानपूर्वक स्नान और दान करके पापसे छूट गये। (शल्य, ४९।१७।४५) वहाँ स्नान करने पर तीर्थयात्री ब्रह्मादित्याके पापसे मुक्त होते हैं। (वन, ८३।१५०)

अर्धकील—अरुणातीर्थके निकट है। उसका वर्त-मान नाम सामुद्रकतीर्थ है। दर्भिने विप्रगणके मङ्ग-लार्थ चार सागरोंका जन मंगा अर्धकीलतीर्थ निर्माण किया था। (वन, ८३।१५२)

अश्विनीतीर्थ—वर्तमान प्रसन्नपुरमें यानेश्वरसे आध कोस पश्चिम भोजसघाटके निकट अवस्थित है। इस तीर्थमें अवस्थान करनेसे रूपवान् होते हैं।

(वन, ८३।१७)

अहस्तीर्थ—आपगाका विवरण देखो।

आदित्यतीर्थ—सारस्वतीतीर्थके निकट है। वहाँ जैगीषव्य और देवलने यज्ञानुष्ठान करके महाप्रभाव लाभ किया था। (शल्य, ५२ अध्याय) आदित्यतीर्थमें स्नान करके सूर्यदेवकी अर्चना करनेसे कुल उधार और आदित्यलोक लाभ करते हैं। (वन, ८३।१८४)

आपगा—वर्तमान कुटंग नदीकी एक शाखा है। ऋग्वेदमें आपगा नदी 'आपया' नामसे वर्णित हुयी है :—

“नि त्वा वध वरणा प्रथिव्या इलावाप्यदे सुदिनत्वे अज्ञा।

वधवत्त्वा मातुष आपयाया सरस्वत्या रेपवधे दिदोहि।” (ऋक् १।२३।४)

हे अग्नि ! सुदिन लाभके लिये इकारूप पृथिवीके उत्कृष्ट स्थानमें तुम्हें रखते हैं। तुम वधवती, आपया और सरस्वतीतीरस्थ मनुष्योंके गृहमें धनशांति हो दोषि प्रदान करो।

आश्वर्यका विषय है कि उक्त मन्त्रमें 'पृथिवी',

‘इलास्यद’, ‘सुदिन’, ‘पद्म’, ‘दृषदती’, ‘मानुष’, ‘आपगा’ और ‘सरस्वती’ जो कई शब्द हैं, महा-भारतमें उनके प्रत्येक नाम पर एक एक स्वतन्त्र तीर्थ वर्णित हुआ है। यथा—

“ततो गच्छेत्त रात्रिम् । मानुषं लोकविश्रुतम् ।
यत्र यच्चसमा राजन् । व्याधे न शरपोहिताः ॥ ६४ ॥
विगाह्य तस्मिन् परमि मानुषत्वमुपागताः ।
तस्मिन् तीर्थे नरः क्षात्वा ब्रह्मचारी समाहितः ॥ ६५ ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोकं महीयते ।
मानुषस्तु तं पूर्वेण कोशमात्रे महीयते ॥ ६६ ॥
आपगा नाम विख्याता नदी सिद्धजिषेविता ।”
“रुद्रकोटौ तथा कृपे रुद्रेषु च महीयते ।
इलास्यदश्च तथैव तीर्थं भारतसप्तमः ॥ ७६ ॥
तत्र क्षात्वापि सित्वा च देवताभिः पितृभ्यः ।
न दुर्गं नवाप्नोति वाजपेयश्च विन्दति ॥” ७७ ॥
“पद्मसुदिनश्चैव च तीर्थं लोकविश्रुते ।
तत्रोः क्षात्वा भवन्ति । सृष्टीलोकसमाप्तवान् ॥” ८८ ॥
(वनपर्व, ८९ अध्याय)

उसके अनन्तर लोकप्रसिद्ध ‘मानुष’ तीर्थको जाना चाहिये। किन्तु जो क्षण्यन्तर्ग व्याधेके शरसे पीड़ित हो वहाँ स्नान करने की गये और स्नान करते ही मानुषत्वको प्राप्त हुये। मानुषतीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य विशुद्धात्मा और सर्वपापविमुक्त हो स्वर्गलोकमें प्रशंसा पाता है। मानुषतीर्थसे एक कोस पूर्व सिद्धसेवित ‘आपगा नदी’ है। फिर रुद्रकोटो, रुद्रकूप और रुद्रहृदमें ‘इलास्यद तीर्थ’ अवस्थित है। वहाँ स्नान करके देवता और पितृ-गणको प्रार्थना करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और वाजपेययज्ञका फल लाभ करता है। ‘पद्म’ और ‘सुदिन’ दोनों लोकप्रसिद्ध तीर्थ हैं। वहाँ स्नान कर-नेसे सूर्यलोक प्राप्त होता है। (वर्तमान पेड़वा नगरके पूर्व और आपगा नदीके पश्चिम मानुषतीर्थ है। पेड़वाके पास शेरगढ़ नामक स्थानमें इलास्यदतीर्थ और सोहन नामक स्थानमें सुदिन तथा पद्मतीर्थ अवस्थित है।)

इन्द्रतीर्थ—यानेश्वर और पेड़वाके ठीक मध्यस्थल-में सरस्वती नदीके तीर पड़ता है। उसका वर्तमान नाम इन्द्रवारि है। देवराज इन्द्रने वहाँ यज्ञानुष्ठान किया था। इसीसे उसे इन्द्रतीर्थ कहते हैं। वह सर्व

पापनाशक है। उक्त तीर्थमें इन्द्रने भरद्वाजकन्या-य वावतीकी भक्ति परीक्षा की थी। (मत्स्य, ४८। १८)

इलास्यद—आपगा ही विवरण देखो।

एकरात्रतीर्थ—यानेश्वरके निकट है। वहाँ नियत सत्यवादी हो एक रात्रि यापन करनेसे ब्रह्मलोक लाभ करते हैं। (वन, ८९। १८९)

एकहंसतीर्थ—किसी किसीके मतानुसार वर्तमान दुष्टिग्राममें अवस्थित है। वहाँ स्नान करनेसे सहस्र-गोदानका फल मिलता है। (वन, ८९। १९०)

शोधवती—प्रज्ञातत्वविद् कनिष्कहामके मतसे आपगा नदीका अपर नाम है। उसे आजकल कुटंग कहते हैं। किन्तु महाभारतमें आपगा और शोधवती दोनों भिन्न नदीकी भांति वर्णित हुई हैं।

(वन, ८९। ६७, मत्स्य, १८। १८)

“करोच यजमानस्य कुरुक्षेत्रे महात्मनः ।

आजगाम महाभागा सरित्पञ्च महासती ॥

शोधवत्यपि राजेन्द्र वशिष्ठेन महात्मना ।

समाहृता कुरुक्षेत्रे दिव्यतोषा सरस्वती ॥”

(मत्स्य, १८। १७-१८)

कुरुराजने कुरुक्षेत्रमें यज्ञ किया था। उस यज्ञमें सरस्वती महर्षि वशिष्ठ-कहलूक समाहृत हुईं। उन्होंने उक्त पवित्रस्थानमें जाकर शोधवती नाम धारण किया था।

श्रीशनसतीर्थ—सरस्वतीके उत्तरकूल पेड़वा नगर-से थोड़ी दूर पड़ता है। उसका अपर नाम कपाल-मोचन है। उक्त तीर्थमें देखगुरु शुकने तपस्या की थी, इसीसे उसे श्रीशनसतीर्थ कहते हैं। पूर्वकाल राम-चन्द्रने एक रात्रसका मस्तक छेदन किया था। वही छिन्नमस्तक महर्षि महोदरको जङ्गलमें संलग्न हुआ। महर्षिके उस तीर्थको जाकर अवगाहन करते ही जङ्गलमग्न मस्तक स्थलित हो सलिलमें छिप गया। रात्रसका कपाल विमुक्त होनेसे ही उसका नाम ‘कपाल-मोचन’ पड़ा है। वहाँ आर्ष्टिषेवने कठोर तप उठाया और सिन्धुद्वीप, देवाधि तथा विष्णुमित्रने ब्राह्मणत्व पाया। (मत्स्य, ४०-४१। १०)

वर्तमान कुरुक्षेत्रमाहात्म्यमें आर्ष्टिषेव प्रवृत्ति उक्त ऋषियोंके नामानुसार एक एक विभिन्न तीर्थ

वर्धित हुआ है। कपालमोचनकी चारो ओर ही उक्त सकल तीर्थ अवस्थित हैं।

कन्यातीर्थ—‘वृद्धकन्यकतीर्थ’ कहाता है।

कन्याश्रम—सन्निहितीतीर्थके निकट है। वहाँ ब्रह्म-चारी हो तीन रात्रि उपवास करनेसे तीर्थयात्री शत कन्या पाते और स्वर्ग जाते हैं। (वन, ८१। १८०)

कपालमोचन—भीमनद देखो।

कपिलातीर्थ—सूर्यतीर्थ और श्रुतीर्थके निकट है। उसको आज कल ‘केलत’ कहते हैं। वहाँ स्नान करके देवता और पित्रगणको अर्चना करनेसे सहस्र कपिलादानका फल प्राप्त होता है। (वन, ८१। ४६)

कलसीतीर्थ—आज भी कलसी ही नामसे प्रसिद्ध है। उसका जल स्पर्श करनेसे अग्निष्टोम यागका फल पाया जाता है। (वन, ८१। ७८)

काम्यकवन—कामोद ग्रामके निकट है। उसे आजकल ‘कामवन’ कहते हैं। काम्यकवनसे अनति-दूर सरस्वती प्रवाहित है। साधारण लोग उसे ‘द्रौपदीका भाण्डार’ कहते हैं। प्रवाद है कि द्रौपदी वहाँ पञ्चपाण्डवको रन्धन करके खिलाती थीं।

महाभारतमें लिखा है :—

“पाण्डवास्तु वने वासमुद्दिष्ट मरतवर्माः।

प्रययुर्गात्रवीरुलात् कुरुक्षेत्रं सङ्गुणाः॥

सरस्वतीह वदन्ती यमुनाश्च निधिव्यति।

ययुर्वनेनेव वनं सततं पश्चिमां दिशम्॥

ततः सरस्वतीशुक्लि समिधु मन्थयन्तु।

काम्यकं नाम दृढपर्वणं मुनिजनप्रियम्॥” (वन, ५। १-४)

काम्यकवनमें कामेश्वर महादेवका भी मन्दिर बना है।

कायशोधन—आजकल ‘कासीयन’ कहाता है। वहाँ स्नान करनेसे शरीर शुद्ध होता है। फिर देहान्तको उत्तम लोक गमन करते हैं। (वन, ८१। ४२)

कारवपन—भूक्षप्रसवणसे थोड़ी दूर पड़ता है। बजराम सरस्वतीका प्रवाह और भूक्षप्रसवणतीर्थ दर्शन करके कारवपन गये थे। वहाँ उन्होंने स्नान-दान एवं देवता तथा पित्रगणको तर्पणपूर्वक ब्राह्मणों सहित एकत्रात्रि वास किया। (मन्व. ५। ११-१२)

काशीश्वरतीर्थ—आजकल ‘कासान’ कहाता है।

उक्त तीर्थमें स्नान करनेसे शरीर मोरोग हो जाता और देहान्तमें मनुष्य ब्रह्मलोक पाता है। (वन, ८१। ५६)

किन्दसकूप—वर्तमान वाखली नामक ग्रामके पार्श्वमें अवस्थित है। उक्त कूपमें तिलप्रस्थ प्रदान करनेसे ऋणमुक्त होते और परमा सिद्धि लाभ करते हैं।

(वन, ८१। ८०)

किन्दान—कलसीतीर्थके निकट है। उसीके पार्श्वमें किंजप्यतीर्थ अवस्थित है। उभय तीर्थमें दान और जप करनेसे अशेष पुण्य प्राप्त होता है। (वन, ८१। ७८)

कुरुतीर्थ—आजकल ‘कुरुध्वज’ कहाता है। वृद्ध तैजसतीर्थके पूर्व अवस्थित है। वहाँ ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय हो स्नान करने पर सब पापोंसे छूट ब्रह्मलोक जाते हैं। (वन, ८१। १८०)

कुञ्जतीर्थ—वर्तमान वनपुर नामक स्थानमें अवस्थित है। उक्त तीर्थमें स्नान करनेसे अग्निष्टोमका फल मिलता है। (वन, ८१। १०८)

कुलम्पुन—केथल ग्रामसे २ कोस उत्तर करान नामक ग्राममें अवस्थित है। उसका वर्तमान नाम ‘कुलतारण तीर्थ’ है। (केथल और किर्माच ग्रामके निकट कुलतार नामक दूसरे भी दो तीर्थ हैं।) कुलम्पुनमें स्नान करनेसे स्नानकारी का कुल पवित्र होता है। (वन, ८१। १०९)

कुतशीच—एकहंसतीर्थके निकट है। उसमें स्नान दान करनेसे अनन्त फल पाते हैं। (वन, ८१। १०)

कपिलकेदारतीर्थ—घोषवती नदीके तीरे यानेश्वरसे ५५ कोस दक्षिण-पश्चिम अवस्थित है। आजकल ‘कपिलमुनितीर्थ’ कहाता है। उसमें स्नान करने से ब्रह्मलोक मिलता है। (वन, ८१। ७९)

कोटितीर्थ—दो हैं। प्रथम पञ्चमदके अन्तर्गत है। उसमें स्नान करनेसे पञ्चमेधके समान फल प्राप्त होता है। द्वितीय गङ्गाहृदके निकट है। उसमें स्नान करनेसे बहुसुख्य लाभ करते हैं। (वन, ८१। ७७, १०१)

कौवेरतीर्थ—यानेश्वरके निकट है। उसका वर्तमान नाम ‘कुवेर’ है। महात्मा कुवेरने वहाँ तपस्या की थी। फिर वहाँ वह अनाधिपति और महादेवके सखा भी हुए। कौवेरमें कुवेरका एक मनोहर कानन विद्यमान है। समस्त देवगणने वहाँ कुवेरकी अभिषेक

करके पुष्पकरय प्रदान किया था। (बन, १०:२२-२४)

कौशिकीसङ्ग्राम—कौशिकी और द्रुपदकी सङ्ग्राम स्थान है। वह करनालसे ४४ कोस पश्चिम वर्तमान बालू नामक ग्राममें अवस्थित है। कौशिकीसङ्ग्राममें स्नान करने पर मनुष्य सकल पापसे मुक्त होता है। (वन, ८२:८४)

गङ्गाहृद—नागदूसे ३ कोस दक्षिण-पश्चिम दुसेन नामक ग्राममें अवस्थित है। उसको आजकल 'गङ्गा-तीर्थ' कहते हैं। वहां स्नान करनेसे स्वर्गलोक प्राप्त होता है। (वन, ८२:१००)

गोभवन—आजकल 'गोहन' कहा जाता है। वहां यथाक्रम स्नानदानादि करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है।

जयन्ती—भौंदकी कहते हैं। वहां सोमतीर्थ अवस्थित है। सोमतीर्थमें स्नान और दान करनेसे अनन्त फल पाते हैं। (वन, ८२:१४४)

तेजमतीर्थ—आजकल 'बीजसघाट' कहा जाता है। वह थानेश्वरसे आध कोस पश्चिम अवस्थित है। उक्त तीर्थमें ब्रह्माने देव और ऋषिगण सहित मिलित हो कार्तिकेयको देव सेनापतिके पद पर अभिषेक किया था। वहां स्नानदानसे अनन्त फल पाते हैं।

(वन, ८२:१४४)

त्रिविष्टप—वर्तमान धोधाग्राममें अवस्थित है। वहां पुष्यसलिला वैतरणी नदी प्रवाहित है। उसमें स्नान करके वृषभध्वजकी अर्चना करनेसे सकल पाप विनष्ट होते हैं। फिर परिणाममें सहाति मिलती है।

(वन, ८२)

दधीचतीर्थ—थानेश्वरके निकट है। उक्त तीर्थ अति पवित्र और पवित्रकारी है। वहां तपोनिधि अङ्गिराने जन्मग्रहण किया था। वहां स्नान और दान करनेसे अश्वमेध यज्ञके समान फल मिलता है। फिर सरस्वती लोक भी प्राप्त होता है। (वन, ८२:१८०:१८८)

दधीचतीर्थ ही वेदाक्त श्रयणावत् सरोवर समझ पड़ता है। ऋक्संहितामें लिखा है:—

“इन्द्रो दधीचो अस्थिं वृषाण्यप्रतिष्ठातः।

जघान नवतीर्णवः।” (ऋक् १:८४:१२)

“इन्द्रश्च यन्त्रिः पर्वतैश्चप्रसृतः।

तदिदं श्रयणावति।” (ऋक् १:८४:१४)

प्रतिद्वन्द्विरहित इन्द्रने दधीचि ऋषिके अश्वमेधमस्तकके अस्थि द्वारा वृषगणको ८८ बार वध किया था। गिरिगङ्गरमें स्नानादित दधीचिके अश्वमेधस्तककी टूटने पर इन्द्रने श्रयणावत्में * पाया था। श्रयणावत् देखो।

महाभारतके पाठसे समझते कि दधीचके ही निकट सोमतीर्थ है:—

“सोमतीर्थं नरः क्षात्वा तीर्थं सेवो नराधिपः।

सोमलोकाववाप्नोति नरो नास्माद्वसंशयः॥

ततो गच्छेत्त धर्मश्च दधीचस्य महात्मनः।

तीर्थं पुण्यतमं राजन् पावनं लोकविश्रुतम्॥”

(वन, ८२:१८६-१८७)

तीर्थयात्री सोमतीर्थमें स्नान करनेसे सोमलोक पाते हैं। उसके आगे महात्मा दधीचिका पुण्यतम तीर्थ है।

ऋग्वेदमें भी वर्णित हुआ है—

“ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्दिरे॥

ये वादः श्रयणावति।” (ऋक् ८:१४४:१२)

जो सकल सोमरस अतिदूर वा अतिनिकट अथवा श्रयणावत्में प्रसृत हुये हैं।

“श्रयणावति सोममिन्द्रः पिबतु इवहा।” (ऋक् ८:१२१:१)

श्रयणावत्में जो सोम है, उसे वृषसंहारकारी इन्द्र पान करें।

सम्भवतः श्रयणावत्के निकट जिस स्थानमें सोम रहा अथवा जहां इन्द्रने सोमपान किया, महाभारतमें वही स्थान सोमतीर्थकी भांति वर्णित हुआ है।

दशाश्वमेधतीर्थ—सकोन नामक ग्रामके निकट है। उसमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है। (वन, ८२:१४४)

द्रुपदतीर्थ—आजकल 'राखी' कहा जाता है। उसमें स्नान तथा देवता एवं पित्रलोककी अर्चना करनेसे अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है।

(वन, ८२:८४)

देवीतीर्थ—मधुवटीका विवरण देखो।

* “श्रयणा नाम कुरुक्षेत्रवर्तितो देशः। तेषामदूरभव सरः श्रयणावत्।” (सायणाचार्य, ८:१४:१२ ऋग्भाष्य)

शास्त्राचार्यनाममें भी कहा है—

“श्रयणावत् इव नाम कुरुक्षेत्रस्य जघनाधो सरः स्यात्ति।”

नरकतीर्थ—थानेश्वरसे एक कोस दक्षिण सरस्वती नदीके तीर वर्तमान है। उसको आज कल 'नरक-तारी' वा 'अनरक' कहते हैं। ब्रह्मा नारायण प्रभृति देवगणके सहित वहां अवस्थिति करते हैं। तीर्थसेवो नरकतीर्थमें स्नान करके दुर्गतिसे मुक्त होते हैं। वहां विश्वेश्वर, नारायण और इन्द्रपत्नीकी अर्चना करनेसे विष्णुलोक पाते हैं। (वन, ८१। ७१-७२)

नागतीर्थ—पृथूदकसे थोड़ी दूर सपिदान ग्राममें अवस्थित है। उसमें स्नान तथा अर्चना करनेसे नाग-लोक एवं अग्निष्टोम यज्ञके समान फल मिलता है।

(वन, ८१। १४)

नागोद्भेद—थानेश्वरसे ५। कोस दक्षिण अवस्थित है। उसका वर्तमान नाम 'नागदू' है। नागोद्भेदके लोग कहते कि वहां भोजका सत्कार हुआ था। उसमें स्नानदान करनेसे नागलोक पाते हैं। (वन, ८१। १११)

पञ्चनदतीर्थ—वर्तमान हाट नामक ग्राममें अवस्थित है। उक्त तीर्थमें उपस्थित हो यथानियम स्नानादि करनेसे अश्वमेध यज्ञ समान फल प्राप्त होता है।

(वन, ८१। १६)

पञ्चवटी—वर्तमान कापर नामक ग्राममें थानेश्वरसे १ कोस दक्षिण-पश्चिम अवस्थित है। इन्द्रिय-संयम और ब्रह्मचर्य अवलम्बन करके पञ्चवटीमें वास करनेसे ब्रह्मादि उत्कृष्ट लोक मिलते हैं। वहां योगेश्वर नामक एक शिव हैं। उनकी अर्चना करनेसे अभिसाव पूर्ण होता है। (वन, ८१। ६१-६२)

पवनज्झद—कुटंग नदीके तीर है। उसको आजकल 'पव-नाव' कहते हैं। उक्त ज्झदमें यथानियम स्नान करनेसे वायुलोक पाते और उसका अनिवर्जनीय सुख उठाने हैं। (वन, ८१। ७)

पाणिष्ठात—कुटंग नदीके तीर फरल ग्राममें अवस्थित है। उक्त तीर्थमें स्नान करके पित्रलोकका तपण और देवतागणकी अर्चना करनेसे अग्निष्टोम एवं अतिरात्रयागका फल मिलता है। इसको छोड़ राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होकर तीर्थयात्री ऋषिलोककी गमन कर सकता है। (वन, ८१। ८८-८९)

परीणह—कुश्चेत्त्रके अन्तर्गत एक अति प्राचीन

पुण्यस्थान है। कात्यायनश्रौतसूत्रमें उसका उल्लेख मिलता है।

पारिप्लव—महर्षिसे दक्षिण थोड़ी दूर पड़ता है। वह त्रिभुवन-विख्यात है। उसमें स्नान दान करनेसे अग्निष्टोम और अतिरात्रका फल पाते हैं। (वन, ८१। ११)

पुष्करतीर्थ—फरल ग्रामसे ३ कोस दक्षिण अवस्थित है। उसका वर्तमान नाम 'पुष्करो' है। शुद्धचित्त होकर उसमें स्नान करनेसे अमरारामा पवित्र होता है। (वन, ८१। ११)

पुष्करतीर्थ—पृथूदकके निकट है। आजकल उसे 'पुष्करवेदी' कहते हैं। उक्त तीर्थमें स्नान करके पित्रलोक और देवतागणकी अर्चना करनेसे तीर्थयात्री चरितार्थ हो अश्वमेध यज्ञका फल लाभ कर सकता है। महात्मा परशुरामने पुष्करतीर्थ बनाया था।

(वन, ८१। १४)

पृथिवीतीर्थ—पारिप्लव तीर्थके निकट है। उसमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है।

(वन, ८१। ११)

पृथूदक—आजकल 'पौडवा' कहाता है। उक्त तीर्थ सर्वलोक-विख्यात है। उसमें स्नान करके पित्रलोक और देवतागणकी अर्चना करना चाहिये। स्त्री किंवा पुरुषने अज्ञान वा ज्ञानपूर्वक जन्मजन्मान्तरमें जिस किसी पापकार्यका अनुष्ठान किया है, उक्त तीर्थमें गमन वा स्नान करनेसे वह विनष्ट होता और अश्वमेधका फल लाभ कर तीर्थयात्री स्वर्गलोक जा सकता है। इस महीमण्डलमें कुश्चेत्त्र अतिशय पुण्यमय स्थान है। सरस्वती कुश्चेत्त्रसे अधिक पुण्यमयी है। सरस्वतीका तीर्थ सरस्वती नदीसे भी अधिक पुण्यजनक है। पृथूदक समस्त तीर्थोंके मध्य श्रेष्ठतम है। उसमें शरीरत्याग करनेसे प्राणीका फिर जन्म वा मरण नहीं होता। सनत्कुमार और व्यासदेवने कहा है कि पृथूदकके समान कोई तीर्थ नहीं। भूमण्डलमें वह पवित्र और पुण्यमय है। नितान्त दुराचार व्यक्ति भी स्नानमात्रसे स्वर्गकी गमन कर सकते हैं।

(वन, ८१। ४०-४३) पृथूदक शब्दमें विद्यत विवरण देखो।

फलकीवन—आजकल 'फरल' कहाता है। वह

देवतागणका तपस्त्रास्थान है। (वन, ८२। ८५)

मङ्गणक—प्राजकल 'मङ्गना' कहलाता है। वहाँ सप्तसारस्वत तीर्थ विद्यमान है।

मधुवटी—फरल गांवसे २ कोस दक्षिण अवस्थित है। उसमें प्राजकल मधुवन वा मोहन कहते हैं। उक्त स्थानमें देवीतीर्थ विद्यमान है। उसमें स्नान करनेसे देवी यात्री पर सन्तुष्ट होती है। फिर उसे सहस्र गो दान करनेका फल मिलता है। (वन, ८२। ८६-८७)

कूर्मपुराणके मतमें मधुवनतीर्थकी गमन करनेसे इन्द्रका अर्धासन प्राप्त होता है। (कूर्मपुराण, २। १५। ८)

मधुसूततीर्थ—पृथ्वीके निकट अवस्थित है। उसमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है।

(वन, ८२। ८०)

मातृतीर्थ—महानेसे सन्तति और श्री व्रतती है।

(वन ८२। ८०)

मानुषतीर्थ—प्रापणाका विवरण देखो।

मित्रकतीर्थ—पाणिष्ठातसे अनतिदूर अवस्थित है। व्यासदेवने ब्राह्मणोंके उपकारार्थ उक्त स्थानमें समस्त तीर्थ मिश्रण किये गये हैं। इसीसे उसका नाम मिश्रक पड़ गया। अकेले मिश्रकतीर्थमें स्नान करनेसे सकल तीर्थोंके स्नानका फल प्राप्त होता है।

(वन, ८२। ८०-८१)

मुञ्जवट—वर्तमान धानेश्वर है। वहाँ यक्षिणी-कुण्ड विद्यमान है। मुञ्जवट महादेवका आवासस्थान है। वहाँ उपवास करके एक रात्रि रहनेसे गांधपत्य मिलता है। उक्त तीर्थमें एक यक्षिणी वास करती है। उसकी आराधना करनेसे कामना सिद्ध होती है। मुञ्जवट कुसुमेयका द्वार कहाता है। (वन, ८२। ९२-९४)

मृगधूम—हुसेन ग्रामके निकट है। वहाँ जाकर गङ्गातीर्थमें स्नान और महादेवकी अर्चना करनेसे सहस्र गोदानके समान फल प्राप्त होता है।

(वन, ८२। १००)

यमुनातीर्थ—सुप्तप्राय समझ पड़ता है। कारण उसका कोई सम्मान पाया नहीं जाता। महर्षियोंने उक्त तीर्थको खगद्वार बताया है। महाराज भरतने वहाँ अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया था। उससे उन्हीं

ने ससागरा पृथिवीका आधिपत्य पाया। मह राजाने भी वहाँ यज्ञ किया। यमुनातीर्थमें स्नान करनेसे सकल पापोंसे छूट जाते और परिणाममें सद्गति पाते हैं। यमुनातीर्थमें जलाधिपति वरुणने समस्त देवगणके साथ मिलित हो एक वृहत् यज्ञका अनुष्ठान किया था। उसी समय देवगणके साथ असुरकुलका संग्राम भी हुआ। (वन, १२८। ११-१७)

यायाततीर्थ—पृथ्वीपरिक्रमणका शेष तीर्थ है। प्राजकल उसे ययातितीर्थ कहते हैं। राजा ययातिने वहाँ एक वृहत् यज्ञ किया था। सरस्वतीने मूर्तिमती बन महाराजका सकल यज्ञोपद्रव्य जोड़ा था। इसलिये उक्त तीर्थ यायात नामसे प्रसिद्ध हुआ। उक्त स्थानमें स्नानदान करनेसे अक्षय पुण्य मिलता है।

(शक्य, ४१। १०-१२)

यायाततीर्थ भी कुसुमेयका द्वार कहाता है।

(वन, १२८। १९)

वकाश्रम—वक नामक एक प्रसिद्ध महर्षि रहे। नेमिधारण्यवासी महर्षियोंके द्वादश वार्षिक यज्ञानुष्ठान काल वक महर्षिने अपना गोवत्स सकल उनका अर्पण किया। उन्होंने महाराज धृतराष्ट्रके निकट उपस्थित हो गोको मांगा था। धनान्ध धृतराष्ट्रने कटु वाक्य प्रयोग कर कई मृत गो प्रदान करनेकी अनुमति की। महर्षि उनके असद्व्यवहारसे रोषाविष्ट हुए। उन्होंने धृतराष्ट्रका राज्य विनाश करनेके अभिप्रायसे उक्त स्थानमें एक आभिवारिक यज्ञका अनुष्ठान किया। पीछे धृतराष्ट्रने बहुविध विनय कर मुनिको रिझा लिया। इसीसे वह वकाश्रम नामसे प्रसिद्ध है। (शक्य, ४१। ५०)

रामतीर्थ—धानेश्वरके निकट इन्द्रतीर्थसे अनतिदूर अवस्थित है। महात्मा परशुरामने एकविंशतिवार पृथिवी निःशत्रिय कर उक्त स्थानमें शत पशुमेधयज्ञ समापन किये थे। इसीसे उसे रामतीर्थ कहते हैं। रामतीर्थमें स्नान-दानका अनन्त फल है। (शक्य, ४२। ७८)

रामकद—पाँच है। उनमें भींदसे २॥ कोस दक्षिण-पश्चिम रामराय नामक स्थानमें एक है। दूसरा धानेश्वरके निकट है। परशुरामने शत्रुय राजाओंकी निधन कर पाँच कद उनके शीशितसे भरे थे। फिर

उसी शोचितसे उन्होंने पितृपितामहगणका तर्पण किया। पूर्वपुरुष सातिशय सन्तुष्ट हो उनके पास पहुँचे थे। परशुरामने उनसे प्रार्थना की कि वह पाँचो ऋद तीर्थ स्थान हो जाय। उन्होंने वही स्वीकार किया था। ऋद तीर्थ बन गये। जो रामऋदमें स्नान कर पितृलोकको तर्पण करता, उसके मनका अभिलाष पूर्ण होता और चरमको स्वर्ग मिलता है। (वन, ८१।२६-४८)

रैणुकातीर्थ—यानेश्वरसे थोड़ी दूर उर्णायच नामक स्थानमें अवस्थित है। उसमें स्नान, दान और पितृ लोक तथा देवगणको अर्चना करने पर सर्वपापसे मुक्ति पाते, अग्निष्टोमका फल उठाते और प्रतिघट्टक समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं। (वन, ८१।२५८)

लोकेश्वरतीर्थ—ग्राजकल लोधर कहाता है। वह लोधर ग्राममें ही अवस्थित भी है। वह प्रधानतीर्थ है। उसमें स्नान करनेसे पितृलोकका उद्धार होता है। (वन, ८१।४४)

वटतीर्थ वा वटाश्रम—सोमतीर्थमें एक वटवृक्षके तलमें देवगणने कार्तिकेयको अभिषेक करके सेनापति पदपर नियुक्त किया था। वही स्थान वटतीर्थ वा वटाश्रम कहाता है। (शल्य ४३।४८; वन ८०।११)

बदरीपाचनतीर्थ—यानेश्वरसे १८ कोस और पृथूदकसे ११ कोस पश्चिम वेर नामक ग्राममें सरस्वतीके तीर अवस्थित है। वहाँ अद्यापि विस्तार बदरीवन दृष्ट होता है। महर्षि भरद्वाजकी शुवावती नाम्नी एक कन्या रही। उसने इन्द्रको पतित्वमें वरण करनेके लिये चौरतर तपस्या की थी। उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो देवराज वशिष्ठकी मूर्ति धारण कर उसके निकट उपस्थित हुये और कहने लगे—‘सुन्दरि! हम तुम्हें यह पाँच बदरीफल प्रदान करते हैं, तुम पाक कर इन्हें प्रस्तुत करो; हम पाते हैं।’ शुवावतीने उनके आदेशसे बदर पाक करना आरम्भ किया था। दिवा अवसान हुआ, किन्तु बदर किसी प्रकार सिद्ध न हो सका। शुवावतीने जो काष्ठ संघट्ट किया था, वह सब जल गया। शुवावती विनित्त हुयी थी। परिशेषको उसने अपने हस्तपद ही काष्ठ बना पाक करना आरम्भ कर दिया। इन्द्र सातिशय सन्तुष्ट हो पुनर्वार

अपनी मूर्तिसे उपस्थित हुये और कहने लगे—‘शुवावति! हम तुम्हारे प्रति सन्तुष्ट हुये हैं। यह तीर्थ बदरीपाचन कहायेगा और तुम्हारा अभीष्ट भी सिद्ध हो जायेगा।’ इन्द्रने वहाँसे प्रस्थान किया और थोड़ी देरमें ही शुवावतीका पाश्चिग्रहण कर लिया।

(शल्य ४८ पं०)

वराहतीर्थ—वर्तमान बारा नामक ग्राममें अवस्थित है। भगवान्ने वराहमूर्ति धारण कर वहाँ अवस्थान किया था। वराहतीर्थमें स्नान करनेसे अग्निष्टोमका फल मिलता है। (वन ८१।१८)

वशिष्ठापवाहतीर्थ—यानेश्वरके निकट है। वह स्थानतीर्थका भी निकटवर्ती है। वशिष्ठापवाहतीर्थका प्रवाह अति भीषण है। वशिष्ठ और विश्वामित्रने परस्पर वैरभाव रखा। एकदिन विश्वामित्रने वशिष्ठको अपने पास उपस्थित करनेके लिये सरस्वतीको अनुमति की थी। सरस्वतीने देखा कि विषम सङ्घट्ट पड़ गया। महाक्रोधी विश्वामित्रका आदेश पालन न करनेसे निस्तार कहाँ था। वह महर्षि वशिष्ठको किस प्रकार ले जातों। परिशेषको उन्होंने वशिष्ठके पास उपस्थित हो कातरस्वरसे आद्योपान्त सकल वृत्तान्त निवेदन किया। वशिष्ठने कहा—‘भद्रे! तुम हमको ले चलो, नहीं तो विश्वामित्रके हाथसे तुम्हारा निस्तार कैसे होगा।’ सरस्वतीके तीर विश्वामित्र तपस्या करते थे। सरस्वतीने उसी समय ले जाकर विश्वामित्रके समीप वशिष्ठको उपस्थित कर दिया। विश्वामित्रके उनको विनाशको अस्त्रानुसन्धानमें प्रवृत्त होने पर उन्होंने पुनर्वार वशिष्ठकी यथास्थानमें पहुँचाया था। विश्वामित्रने सरस्वतीको चातुरी देख शाप दिया। उसी शापसे एकवच तक सरस्वतीका जल शोषित रहा। इसी प्रकार वशिष्ठापवाहतीर्थ बन गया।

(शल्य ४९ अध्याय)

वंशमूल—वर्तमान बरगोला ग्राममें है। वहाँ स्नान और दान करनेसे वंशका उद्धार होता है।

(वन ८१।४०)

वामनक—स्थानमें विष्णुपदऋद विद्यमान है। वहाँ स्नान करके वामनकी अर्चना करनेसे अनन्त फल मिलता है। (वन ८१।१०९)

विष्णामित्रतीर्थ—पृथूदकके निकट सरस्वतीके दक्षिण कुल ४० फीट ऊँचे स्तूप पर अवस्थित है। वहाँ शिल्प और कारुण्यविशिष्ट एक सुन्दर मन्दिर का ध्वंसावशेष देख पड़ता है। मन्दिरमें ऐरावत-परिवृत इन्द्रमूर्ति और उसीके पार्श्वमें नवग्रह तथा अष्टनायिका मूर्ति शोभित है। नीच जाति भी उसमें स्नान करनेसे ब्राह्मण-जन्म ग्रहण कर शुचि और पवित्रात्मा हो जाते हैं। वरममें उन्हें ब्रह्मलोक मिलता और उनका सप्तम कुल पर्यन्त पवित्र होता है।

(वन, ८२। १०-१८)

विष्णुपद वा विष्णुस्थान—राजकल 'धान' कहा जाता है। वह पारिव्रजतीर्थका निकटवर्ती है। विष्णुपदमें भगवान् विष्णु सर्वदा सन्निहित रहते हैं। उक्त स्थानमें स्नान करके विष्णुको नमस्कार करनेसे अश्वमेधका फल पाते और परिणाममें स्वर्गको जाते हैं।

(वन, ८२। ११-१२)

वेदवती—वर्तमान शीतलामठके पार्श्वमें है। उसका अपर नाम वेदीतीर्थ है। वेदवती किन्दत्त कूपसे अनतिदूर अवस्थित है। उसमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है। (वन ८२। २०)

वैतरणी—वर्तमान धोधा ग्रामके पार्श्वमें प्रवाहित कूटंग नदी है। सकल पापविनाशिनी वैतरणीमें स्नान करके पित्रलोक और महादेवकी भजना करनेसे लोगोके सब पाप छूट जाते और वह परिणाममें सुक्ति पाते हैं। (वन ८२। ८२)

वृद्धकन्यकतीर्थ—धानेश्वरके निकट है। कुण्डिगर्ग नामक किसी महर्षिने तपोव्रतसे एक मानसी कन्याको सृष्टि की थी। वह अपने अनुरूप पतिके अभावमें उक्त स्थान पर तपस्या करने लगी। क्रमशः उसका वार्धक्य उपस्थित हुआ, चलने-फिरनेकी शक्ति जाती रही। फिर परलोक गमन करनेकी इच्छासे वह कलेवर परित्याग करने पर कृतसङ्कल्प हुयी। उसी समय नारदने उपस्थित हो कर कहा था—'कन्याणि! अनूठा कन्याको सद्गति मिलनेकी सम्भावना नहीं, तुम कैसे परलोक गमन करोगी।' वृद्धकन्या चिन्तित हुयी और कहने लगी—'यदि कोई हमारा पाणि-

ग्रहण करना स्वीकार करे, तो हम उसकी अपने तपस्विका अर्धांश प्रदान करेंगी।' गुरुवान्ने वृद्धकन्याका पाणिग्रहण किया था। वृद्धकन्याने एकरात्रि उनका सहवास करके कलेवर छोड़ दिया। इसीसे उक्त तीर्थका नाम वृद्धकन्यक पड़ गया है। (शक्य ४२ च. ५५)

व्यासवन—वर्तमान वासधली ग्रामकी दक्षिण-पार्श्वस्थ भूमि है। उसमें मनोज्ञ नामक ऋद विद्यमान है। उसमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। (वन ८२। २९)

व्यासस्थली—वर्तमान वासधली ग्राम है। वह करनालसे ८ कोस पश्चिम अवस्थित है। व्यासदेव पुत्रशोकसे कातर हो उक्त स्थानमें प्राणत्याग करने चले थे। वहाँ जानेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है। व्यासस्थली कौशिकीसङ्ग्रामके निकट अवस्थित है। (वन, ८२। २५-२६)

ब्रह्मतीर्थ—वर्तमान रसालू ग्राममें अवस्थित है। वह कन्यातीर्थसे अधिक दूर नहीं। उसमें स्नान करनेसे नीचवर्ण भी ब्राह्मणत्व पाता है। ब्राह्मणकी स्नान करनेसे सङ्गति मिली करती है। (वन, ८२। ११२)

ब्रह्मयोगि—पृथूदकतीर्थके निकट है। ब्रह्माने उक्त तीर्थको निर्माण किया था। उसमें स्नान करनेसे ब्रह्मलोक मिलता और सप्तकुलका उद्धार भी होता है। (वन, ८२। १८-१८)

ब्रह्मावत—राजकल 'ब्रह्मदत्त' कहा जाता है। उसमें स्नान करनेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। (वन, ८२। ५२)

शङ्खिनी—गोभवनमें अवस्थित है। उसमें स्नानदान करनेसे अनन्तफल मिलता है। (वन, ८२। ५२)

शक्रावत—वर्तमान समय 'शकरा' कहा जाता है। वह पृथूदकसे थोड़ी दूर पड़ता है। उसमें स्नान करके देवता और पित्रलोककी भजना करनेसे उत्कृष्ट लोककी गमन कर सकते हैं। (वन, ८४। २८)

शतसहस्र—साहस्रक नामक एक अपर तीर्थके निकट है। उक्त दोनों तीर्थोंमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है। शतसहस्रतीर्थमें दान उपवास प्रवृत्ति जो अनुष्ठान किया जाता, उसका सहस्रगुण फल पाता है। (वन, ८२। १५६-५७)

यज्ञका फल और पिङ्गलोक प्राप्त होता है।

(वन, ८१।५१।५४)

सुदिन—आपगाका विवरण देखो।

सूर्यतीर्थ—कपिलातीर्थ का निकटवर्ती है। वहाँ उपस्थित हो कर उपवास करना चाहिये। सूर्यतीर्थ में भक्तिपूर्वक देवता और पिङ्गलोककी अर्चना करनेसे अग्निष्टोमका फल तथा सूर्यलोक मिलता है।

(वन, ८१।४७-४८)

सोमतीर्थ—दो हैं। एक समसारस्वतका निकटवर्ती और दूसरा दधोचतीर्थ से अनतिदूर अवस्थित है। उभयतीर्थ में स्नान करनेसे ही चन्द्रलोक मिल जाता है।

सोमतीर्थ में हिराज चन्द्रने राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था। यज्ञके अवसानमें देवगणके साथ राक्षसगणका घोरतर संग्राम हुआ। उसी युद्धमें कार्तिकेयने सेनापतिके पद पर नियुक्त हो समस्त राक्षस और तारासुरका विनाश किया था। सोमतीर्थ में एक बटवृक्ष है। सेनापति कार्तिकेय उसके तलपर निरन्तर अवस्थान करते थे। (शल्य, ४३ अ०; वन, ८१।१११-११६)

स्थाणुतीर्थ—वर्तमान समयमें 'थानेश्वर' नामसे विख्यात है। उसका अपर नाम मुञ्जवट है।

(वन, ८१।१२) मुञ्जवटका विवरण देखो।

पञ्चवटोके अन्तर्गत किसी स्थान पर योगेश्वर नामक एक स्थाणु (शिव) है। उन्हीं भी स्थाणुतीर्थ कहा जाता है। (वन, ८१।१६९) पञ्चवटोका विवरण देखो।

स्थाणुवट—बहरीपावनतीर्थ का निकटवर्ती है। उक्त स्थानमें यथानियम स्नान करके एकरात्रि वास करनेसे रुद्रलोक मिलता है। (वन, ८१।१८०)

स्वर्गद्वार—थानेश्वरसे अनतिदूर अवस्थित है। आजकल लोग उसे 'स्वर्गद्वारी' कहते हैं। वहाँ नरक-तीर्थ का निकटवर्ती है। संयतेन्द्रिय हो उक्त स्थानको गमन करनेसे स्वर्गलोक किंवा ब्रह्मलोक पाया जाता है। (वन, ८१।६८)

स्वस्तिपुर—आजकल 'प्रस्तिपुर' कहा जाता है। किसी किसीके मतानुसार कुरुक्षेत्र महासमरके निहत वीरगणका अस्थि वहाँ रक्षित होनेसे ही उसका अस्थि-

पुर नाम पड़ा है। किन्तु कुरुपाण्डवपक्षीय वीरगणके मृतदेहका केवल उसी क्षुद्र ग्राममें संचित होना किसी प्रकार प्रमाणित नहीं होता। स्वस्तिपुरमें स्नान और प्रदक्षिण करनेसे सहस्र गोदागङ्गा फल मिलता है। (वन, ८१।१७५)

उपर्युक्त तीर्थ और पुण्यस्थान व्यतीत नारदपुराणो-परिभागखण्डके ६४ तथा ६५ अध्याय, माधवाचार्य विरचित कुरुक्षेत्रमाहात्म्य, रामचन्द्रसरस्वती-प्रणीत कुरुक्षेत्रतीर्थनिर्णय, कुरुक्षेत्ररत्नाकर और भट्टोजि-दोक्षितके शिष्य लक्ष्मणदत्तरचित कुरुक्षेत्रप्रदीप प्रभृति ग्रन्थमें दूसरे भी अनेक तीर्थका विवरण लिखा है। उनके मध्य कुरुक्षेत्रयुद्धमें निहत वीरगणके नामानुसार वर्तमान अनेक तीर्थोंका नामकरण किया गया है। आज भी कुरुक्षेत्रकी सीमामें उक्त सकल तीर्थ विद्यमान हैं।

महाभारतोक्त तीर्थनामोंके अपभ्रंश पर आजकल कई ग्रामोंका नाम चल गया है।

महाभारतके नानास्थानोंमें कुरुक्षेत्रका माहात्म्य वर्णित हुआ है। महाभारत और पूर्वकथित नारद-पुराणादि ग्रन्थ व्यतीत कूर्म, अग्नि, नृसिंह प्रभृति पुराणोंमें भी कुरुक्षेत्र परम पवित्र स्थान जैसा विवृत हुआ है—

“कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसामाहुम्।

य एव सततं ब्रूयात् सीमलः प्राप्नुयाद्दिवम्॥

तत्र विष्णुादयो देवास्तत्र वासाहरिं व्रजेत्।

सरस्वत्या समिधितः श्वानज्जह ब्रह्मलोकभाक्॥

पाशवीऽपि कुरुक्षेत्रे नयन्ति परमां गतिम्।”

(अभिपुराण, १०८।१४-१५)

इतिहास—जगतके आदि ग्रन्थ ऋग्वेदके प्रमाण द्वारा निर्णीत हुआ कि कुरुपाण्डवकी युद्धघटनासे बहुत पूर्व कुरुक्षेत्रने प्रसिद्धि लाभ की थी।

भागवतके मतानुसार सत्वरणके औरससे सूर्य-तनया तपतीके गर्भमें कुरु नामक एक राजाने जन्म ग्रहण किया था। वही कुरुक्षेत्रपतिकी* भाति प्रथम वर्णित हुवे हैं। उसके पीछे सम्भवतः कुरुक्षेत्र तह-शीय राजगणके अधिकारमें रहा। महायुद्धके अनन्तर

* “तपसा सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः।” (भागवत, ६।१२।४)

कीरवाधिकात विपुल जनपदोंके साथ उक्त स्थान भी पाण्डवोंका अधिकृत हो गया। सम्भवतः क्षेमक अवधि कुरुक्षेत्र चन्द्रवंशीय राजगणका अधिकारभुक्त था। यह समझनेका प्रकृत उपाय नहीं, उसके पीछे कुरुक्षेत्र किसके हाथ लगा। मकदुनियाके वीर अशोक-सिन्दर (सिकन्दर) घघरा नदीके तट पर्यन्त पहुँचे थे। उस समय घघरानदीके पूर्वतटसे समस्त पूर्व-भारत मगधराजगणके अधिकारमें रहा। कुरुक्षेत्र भी उसीके अन्तर्गत था। मगधके बौद्धराजाओंका प्रभाव खर्व होने पर कुरुक्षेत्र और उसका निकटवर्ती समस्त प्रदेश कान्यकुब्जके हिन्दूराजगणका अधिकारभुक्त हो गया।

वाणभट्टके श्रीहर्षचरितपाठसे समझते हैं कि हर्षदेवके पिता प्रभाकर-वर्धन स्याग्वीश्वरमें और उनके जामाता (दामाद) ग्रहवर्मा कान्यकुब्जमें राजत्व करते थे।

मधुवनसे प्राप्त हर्षवर्धनके प्रदत्त (२५ संवत्) ताम्रगासनमें उनके छह पितामह (परदादा) नरवाहनसे राजाओंके नाम मिलते हैं। * सम्भवतः उक्त नरवाहन (६० पञ्चम शताब्दीके शेष भागमें) से श्रीहर्ष पर्यन्त छह राजाओंने कुरुक्षेत्रमें राजत्व रखा।

श्रीहर्षचरित और चीन-परिव्राजक युएन-चुयाङ्गके भ्रमण वृत्तान्तमें लिखा है कि हर्षदेवके ज्येष्ठभ्राता (स्याग्वीश्वरराज) राज्यवर्धनने मालवराज देवगुप्त को पराजय करके कान्यकुब्ज अधिकार किया था। उन के मरने पर हर्ष स्याग्वीश्वर और कान्यकुब्जके राज-वक्त्रवर्ती हुए।

हर्षके राज्यकाल (६० पष्ठ शताब्दीके शेष भाग) चीन-परिव्राजक युएन-चुयाङ्ग कुरुक्षेत्रस्थ स्याग्वीश्वर (स-त नि-श-फ-लो) देखने आये थे। † उस समय स्याग्वीश्वर राज्य (सम्भवतः कुरुक्षेत्र) ५०० कोससे अधिक (७००० लि) विस्तृत रहा। उसमें १ बौद्ध सङ्घाराम, हीनयानमतাবलम्बी ७०० बौद्ध याजक

और प्रायः शताधिक (हिन्दू) मन्दिर थे। चीन-परिव्राजकके समय भी यानेश्वरका चतुःपार्श्वस्थ १६ कोस स्थान (२०० लि) 'धर्मक्षेत्र' नामसे अभिहित होता था। *

चीन-परिव्राजककी वर्णनासे समझा जाता है कि उस समय भी धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें मृत वीरगणका अस्थिराशि विद्यमान रहा। उन्होंने यानेश्वरसे उत्तर-पश्चिम अनतिदूर बौद्धराज अशोक-निर्मित ३०० फीट ऊँचा एक स्तूप देखा था।

उसके पीछे बराबर कुरुक्षेत्र कान्यकुब्जके राजगणका अधिकारभुक्त रहा। कान्यकुब्जके राजगणके समयमें पृथूदकसे प्राप्त खोदित शिलाफलकादि द्वारा उक्त विषय समझा जा सकता है। †

महमूद-गजनवीने यानेश्वरको आक्रमण करके कुरुक्षेत्रको चक्रस्वामी नामक विष्णुमूर्तिको ध्वंस किया था। उसके पीछे १०४३ ई० में दिल्लीके राजा पृथ्वीराजने सुसलमानके कबलसे पुण्यक्षेत्र कुरुक्षेत्रको लूटा लिया। ११८२ ई० को दिल्लीश्वर पृथ्वीराजका गौरव-रवि अस्तमित होने पर कुरुक्षेत्र और सरस्वती-प्रवाहित विस्तीर्ण भूभाग सुसलमानोंके अधिकारमें पड़ गया। हिन्दू-विह्वली सुसलमानोंके आधिपत्य काल कुरुक्षेत्रके अनेक पुण्यतीर्थ लुप्त और अधिकांश देवालय विध्वस्त हुए। किन्तु धर्मप्राण हिन्दू कुरुक्षेत्रका माहात्म्य भूल न सके। उस दारुण सङ्कटके समय भी शत सङ्घस्र (लाखों) तीर्थयात्री जीवनकी तुच्छ समझ बहु दूर देशसे कुरुक्षेत्रके सकल पवित्र तीर्थ दर्शन करने जाते थे। 'तारीख-दाजदी' नामक सुसलमान इतिहासमें लिखा है—'सिकन्दर-सोदीके सिंहासनलाभसे पूर्व कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेके लिये एक बार विस्तर यात्रियोंका समागम हुआ। सिकन्दरने उनमें सकलको विनाश करनेका सङ्कल्प किया था।' तबकात-अकबरीके पाठसे समझ पड़ता है—'बादशाह (अकबर) यानेश्वरमें जा पहुँचे। उस

* Epigraphia Indica, Vol. I. p. 68.

† La Vie de Hiouen-Tsang, per Stanislas Julien; p. 64.

* Beal's Si-yu-Ki, Vol. I. p. 184.

† Epigraphia Indica vol. I. p. 106, 244.

समय कुरुक्षेत्रके सरोवर तट पर यज्ञके उपलक्ष्यमें स्नानार्थ विस्तार योगी और संन्यासी उपस्थित थे। तीर्थयात्री स्वयं और मणिरत्नादि ब्राह्मणोंको दान करने लगे। संन्यासी और योगी दोनों दलमें विवाद रहा। बादशाहकी अनुमति मांग कर उन्हींके समक्ष उभय दलमें घोरतर युद्ध हुआ। शेषको संन्यासियोंने जय पाया।

हिन्दूविद्वांश और जूजिबने कुरुक्षेत्रमें उक्त सरोवरके * मध्यवर्ती द्वीपकार स्थान पर मुगलपाड़ा नामक एक दुर्ग बनाया था। उसी दुर्गसे सुसज्जमान समागत तीर्थयात्रियोंको गोलीसे मार देते थे।

सिखोंके अभ्युदयमें हिन्दुओंके तीर्थों और प्राचीन देवमन्दिरोंका सुसज्जमानोंके कवचसे उद्धार हुआ। पूर्वकालकी भांति फिर सहस्र सहस्र तीर्थयात्री कुरुक्षेत्रके दर्शनको गमन करने लगे। आजकल भी सकल समय भारतके नाना स्थानोंसे तीर्थयात्री कुरुक्षेत्र पहुंचा करते हैं।

कुरुक्षेत्रीयोग (सं० पु०) १ किसी सावन दिनकी तीन तिथि, तीन नक्षत्र और ३ योगका स्मरण। २ कुरुक्षेत्रमें मृत्युसूचक यज्ञयोग विशेष। जन्मकालको मृत्युस्थानमें पांच यज्ञ, तथा लम्बमें हृदयस्थिति रहने और जन्मलम्बका अधिपति चन्द्र होनेसे कुरुक्षेत्रमें मरते हैं, इसीका नाम कुरुक्षेत्रीयोग है। (जातकावत सं० यज्ञ)

कुरुक्ष (हिं० वि०) क्रुध, क्रुपित, नाराज, मुंह बनाये हुआ, बुरे खलवाला।

कुरुखेत (हिं०) कुरुक्षेत्र देखो।

कुरुचिह्न (सं० पु०) कर्कट, केंकड़ा।

* उक्त उद्धृत सरोवर यानि यज्ञके निकट अवस्थित है। यह देख्यमें १५४१ फीट और प्रस्थमें १८०० फीट है। एक समय उस सरोवरका प्रायः विगुण आयतन रहा। यह महाभारतके दधीचतीर्थ और ऋग्वेदीय श्रृंगयावत अनुमित होता है। उसकी मध्य ५०० फीट परिमित एक द्वीप है। सरोवरसे द्वीपकी जानेकी लंबी उत्तर और दक्षिण अंशमें दो सेतु हैं। कुरुक्षेत्र-माहात्म्य-कथित चन्द्रकूप उसी द्वीपके मध्य पश्चिम अंशमें अवस्थित है। द्वीप और सरोवर चारों ओर इष्टक-प्राचीनसे घेरे हुए हैं। प्राचीन और सेतु दोनों अक्षरके प्रिय वयस्य राजा वीरवर्माके म्यसे निर्मित हुये हैं।

कुरुजाङ्गल (सं० स्त्री०) कुरुक्षेत्र जाङ्गलक्ष, एकवत् चन्द्रः। विश्वलिङ्गी नदीदेशोऽयाम्; पा १।४.७। जनपद विशेष, एक मुष्क। राजा सखरणके पुत्र कुरुके नामानुसार उक्त स्थान 'कुरुजाङ्गल' नामसे विख्यात है—

‘ततः सखरणात् सीरो तपती सुपुत्रे कुरुम्।

तस्य नावाभिबिद्यतां पृथिव्यां कुरुजाङ्गलम् ॥

(महाभारत, आदिपर्व, २४।४८)

वामनपुराणमें लिखा है—

‘‘कुरुक्षेत्रं समाभ्यागाद् यष्टं वैरोचनिः वलिः।’’ (४।१)

वलि कुरुक्षेत्रमें यज्ञ करनेको गये थे।

फिर अन्यस्थलमें—

‘‘विलासलोलामग्नो गिरीन्मात् समभागश्च कुरुजाङ्गलं हि।’’

(५०।१७)

(वामनरूपी विष्णुने) उस पर्वतवरसे विलास गमन पर कुरुजाङ्गलमें वलिके यज्ञको गमन किया।

वामनपुराणके उक्त दोनों स्थानोंके पाठसे कुरुक्षेत्र और कुरुजाङ्गल एक ही जनपद समझ पड़ता है।

किन्तु उक्त पुराणमें फिर देवस्थानके उल्लेखकाल कुरुक्षेत्र, कुरुजाङ्गल और कुरुक्षेत्र तीनों स्थान पृथक् पृथक् वर्णित हुये हैं। यथा—

‘‘रूपधारमिरावर्त्ता कुरुक्षेत्रे वीरानन्दम्।’’ (५०।५)

‘‘महालयि अतः रीद्रं चलेत्तु कुरुक्षेत्रम्।

पद्मनाभं सुनिश्चेत् सर्वसौख्यप्रदायिन् ॥’’ (५०।२२)

‘‘तेजसे शम्भुनक्षत्रं स्थापय कुरुजाङ्गले।’’ (५०।१७)

वामनपुराणके उक्त शेष चरणके मतसे कुरुजाङ्गलमें स्थाणु देव विराज करते हैं। वर्तमान थानेश्वरका प्राचीन नाम स्थाणुतीर्थ है। स्थाणुतीर्थ स्थाण्वीश्वर महादेवके नामके अपभ्रंशसे थानेश्वर कहाता है। थानेश्वर देखो। वामनपुराणके मतसे थानेश्वर और उसकी चारों ओरका विस्तीर्ण भूखण्ड 'कुरुजाङ्गल' है। पाश्चात्य प्राचीन भौगोलिक टलेमिने उसे 'करङ्गकोल' (Korangkolai) नामसे उल्लेख किया है। उसका अपरनाम कुरुदेश है। कुरुदेश देखो। शक्तिसङ्गमतम्बके मतमें पाश्चात्यके पूर्व इस्तिनापुरसे कुरुक्षेत्रके दक्षिण भाग पर्यन्त कुरुदेश है, किन्तु वह वर्णना ठीक नहीं। रामायणादिके मतमें इस्तिनापुर और पाश्चात्यके पश्चिम कुरुजाङ्गल पड़ता है।

कुरुक्षेत्र शब्दमें विलासित विवरण देखो।

दशरथके मरने पीछे भरतकी कैकयराज्यसे जानेके लिये कई दूत भेजे गये थे। उन्होंने अयोध्याके पीछे नाना स्थान पतिक्रम करके इस्तिनापुरमें गङ्गाको पार किया। फिर वहाँ पश्चिमाभिमुख पाञ्चाल और पीछे कुरुजाङ्गलके मध्य उपस्थित हुये। वाल्मीकिकी वर्णनासे समझ सकते हैं कि उस समय भी वहाँ कमल-शोभित सरोवर और पुष्पकूल-भूषित स्वच्छजला नदी वर्तमान रही।—

“ते हस्तिनपुरे गङ्गा तीर्त्वा प्रवृत्सुखा ययुः ।

पाञ्चालदेशमासाद्य मध्यं न कुरुजाङ्गलम् ॥

सरांसि च सफुल्लानि नदीषु विमलोदकाः ।

निरीचमाणा जम्बुसं दूताः कार्यवशाद् द्रुतम् ॥”

(अयोध्याकाण्ड, ६३। १२-१४)

कुरुट (सं० पु०) सितावर-शाकक्षुप, शिरियारी।

कुरुटी (सं० पु०) अश्व, घोड़ा।

कुरुण्ट (सं० पु०) १ पीतभिण्टो, पीली कटसरेया।

२ दाहपत्नी, कोई घास। ३ अज्ञान वृक्षभेद, किसी किसमकी कटसरेया। ४ कुटजवृक्ष, मकोय।

कुरुण्टक (सं० पु०) कुरुण्ट स्त्रायँ कः। कुरुण्ट देखो।

कुरुण्टका (सं० स्त्री०) पीतभिण्टो, पीली फूलकी कटसरेया।

कुरुण्टका (सं० स्त्री०) १ साकुरुण्ट वृक्ष, कोई पेड़। २ भिण्टो, कटसरेया। ३ इस्तिशण्टो, कोई पेड़। ४ शैलालिकाभेद, सिहरू।

कुरुण्टो (सं० स्त्री०) १ काष्ठपुत्तलिका, कठपुतली।

२ ब्राह्मणपत्नी अथवा शिक्षकपत्नी, उस्तादकी बीबी।

कुरुण्टो कई वृक्षोंका भी नाम है। कुरुण्टका देखो।

कुरुण्ट (सं० पु०) कुरुण्टकवृक्ष, किसी किसमकी कटसरेया।

कुरुत (सं० पु०) वंशनिर्मित वृक्षदाकार पात्र, बांसका बना हुआ बड़ा बरतन।

कुरुतीर्थ (सं० स्त्री०) कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ।

कुरुनदिका (सं० स्त्री०) कुरुनदिका, कुरुनदी, छोटा दरया।

“यथास्विका नदिका कुरुनदिकेत्युच्यते ।”

(आश्वलायन-श्रौतसूत्रभाष्य, ८। ११। १८)

कुरुनन्दन (सं० पु०) कुरो राज्ञः नन्दनः, ६-तत्। कुरु-वंशीय युधिष्ठिरादि वृत्ति।

कुरुनाथ (सं० पु०) १ उट्ट, जट। २ पीतभिण्टो, पीली फूलकी कटसरेया।

कुरुपञ्चाल (सं० पु०) कुरुवः पञ्चालाश्च, इन्द्रः। कुरु तथा पञ्चाल देशवासों लोग।

कुरुपिशङ्गिला (सं० स्त्री०) पिशङ्गः वृक्षदण्डाद्यवयवान् मिलति अथः करोति, पिशङ्ग-गिल-क-टाप्। दण्डादि भोजन और कुरु शब्दका अनुकरण करनेवाली, जो घास वगैरह खाती और कुरु-कुरु आवाज लगानी हो।

“अजापि पिशङ्गिला चावित् कुरुपिशङ्गिला ।”

(वाजसनेयसं, २१। ४६)

‘कुरुपिशङ्गिला कुरु इति शब्दायुक्त्या। पिश अथर्ववे कपचयः। पिशान् मूलाद्यवयवान् मिलति पिशङ्गिला मूलानां शतं भक्षयतीति महीधर)

कुरुमार—दाक्षिणात्य और राजपूतानेकी एक जाति। राजपूताने और युक्तप्रदेशमें इन्हें सिकलीगर भी कहते हैं। इनका काम चाकू, कैंची, कुरी, तलवार आदि हथियारों पर धार या शान चठाना है। कुरुमार अपना परिचय क्षत्रिय-जैसा देते हैं। परन्तु कुछ विद्वान् ऐसा नहीं मानते।

कुरुम्ब (सं० पु०-स्त्री०) कुनपालक, नारङ्गो।

कुरुम्बर—दाक्षिणात्यकी एक जाति। पूर्वकाल कुरुम्बर लोग अति प्रबल रहे। पवादानुसार समस्त द्राविड देशमें उनका आधिपत्य था। दाक्षिणात्यमें अनेक जन-पद उनके प्रतिष्ठित किये हुये हैं। चोल राजगणके समय आर्कट प्रभृति स्थानोंमें कुरुम्बर रहते थे। आज कल दाक्षिणात्यके नाना स्थानोंमें वहाँ देख पड़ते हैं।

कुरुम्बरोमें अधिकांश लोग असभ्य हैं। उन्हें जङ्गलमें छोटे छोटे कुटीर (भोपड़े) बना वास करना अच्छा लगता है। फिर कोई वृक्ष पर, कोई गिरि-गुहामें और कोई वृक्षकोटरमें रहता है। कुरुम्बर अधिक बुद्धिमान् न होते भी प्रायः नस्ल और निरीह हैं। उत्तरमें वास करनेवाले अपेक्षाकृत उच्च नहीं। किन्तु गोदावरीके दक्षिण-प्रान्तसे कुमारिका-अन्तरीप पर्यन्त जो पशु पुराते फिरते, वहाँ अधिकतर उच्च, क्षत्र और क्षणवर्ण होते हैं। मेषपाल अर्ध पनाहत रहते हैं। उनका आच्छादन केवल एक गाढ़ कम्बल है।

दाक्षिणात्यके विनाद नामक स्थानमें कुरुम्बरोके

मध्य दो त्रेणीभेद हैं—जनी और गुकी। जनी लोग केवल वनमें वास करते हैं। कुठार (कुल्हाड़ा) से छत्त कटना ही उनकी उपजीविका है।

अपरापर कुरुम्बरो की अपेक्षा नीलगिरिके कुरुम्बर कुछ सभ्य हैं। नीलगिरिके साधारण लोगों की विश्वास है कि वह इन्द्रजाल जानते हैं। इसीसे बहुतों को उनसे बड़ा भय रहता है। कुरुम्बरके वासस्थानके निकट यदि कोई मर जाता, तो उस पर इन्द्रजाल द्वारा मृत व्यक्तिको संसार करनेका सन्देश आता है। यहाँ तक कि अनेक समय मृत व्यक्तिके आत्मीय दलबन्ध जो उक्त कुरुम्बरकी जाकर विनाश करते हैं। इसीसे कुरुम्बर लोकालय (लोगों के घर) में रहनेका साहस नहीं रखते। फिर भी यदि कोई रह जाता और सुन पाता कि असुख व्यक्ति मर गया तथा मृत व्यक्तिके आत्मीयों की दृष्टि उस पर पड़ी है, तो वह अविश्वम्भ गृहद्वार एवं गोमेषादि छोड़ निविड़ वनको पलायन करता है।

कुरुम्बा (सं० स्त्री०) द्रोणपुष्पी, गुमा।

कुरुम्बिका, कुरुम्बा देखो।

कुरुम्बी (सं० स्त्री०) सेंहलीवृक्ष, एक प्रकारके पीपलका पेड़।

कुररी (सं० स्त्री०) कुररी, स्त्री श्येन पक्षी, बहरी। २ भेषी, भेड़ी।

कुररी (सं० पु०) १ कुररपक्षी, शिकरा, बाक। २ भालस्थ चूर्णकुन्त, मत्स्यकी जुल्फ। उसका संस्कृत पर्याय भ्रमरक और भ्रमरालक है।

कुरल (सं० पु०) कुरी देखो।

कुरला (सं० स्त्री०) गानेकी एक गमक।

कुरवक (सं० पु०) १ रक्तभिण्टी, लाल कटसरैया। (स्त्री०) २ कुरवक शाक वा कुरवकपुष्प, कटसरैया की सजी या फल।

कुरवक्क (सं० पु०) राजपुत्रविशेष, एक शाहजादा वह ज्योत्सव-वंशीय अनवरथ राजाकी पुत्र थे।

कुरवर्ष (सं० स्त्री०) कुरसंज्ञक वर्षम्, कर्मधा०। वर्ष-विशेष, एक सुख। जम्बूद्वीपके उत्तर कुरवर्ष अवस्थित है। उत्तरद्वय देखो।

कुरवश (सं० पु०) नृपतिविशेष, एक राजा। वह विदर्भवंशीय मधुके पुत्र थे। (भागवत, ८। २४। ५)

कुरवाजपेय (सं० पु०) वाजपेय यज्ञका प्रकारविशेष, एक छोटा वाजपेय यज्ञ।

कुरवार—युक्तप्रदेशकी एक वैष्णवजाति। यह लोग एटा, बरेली, बदायूँ, सीतापुर, मुरादाबाद आदि जिलोंमें रहते हैं। कुछ लोगोंके कथनानुसार कुरवार 'कार-बाहर' शब्दसे निकला है, जिसका अर्थ नियमविरुद्ध कार्यकारी है।

कुरविन्द (सं० पु०) १ ब्रह्मिभेद, कोई कुधान्य। २ कुलत्थ, कुरथी। ३ भद्रसुस्ता, नागरमोथा ४ सुस्ता, मोथा। ५ माष, उड़द। (स्त्री०) ६ पद्मरागमणि, मानिक। ७ काचलवण, काला नमक। ८ रत्नभेद, कोई जवाहर। ९ दर्पण, आईना।

कुरविन्दक (सं० पु०) कुरविन्द स्वार्थ कन्। १ वन कुलत्थक, जङ्गली कुलथी। २ भद्रसुस्तक, नागरमोथा। कुरविन्दार्या (सं० स्त्री०) कुरविन्देति आख्या यस्याः, बहुव्री०। कुरविन्दक देखो।

कुरविज्ञ, कुरविज्ञ देखो।

कुरविष्व (सं० पु०) १ नागरसुस्ता, नागरमोथा। २ पद्मरागमणि, मानिक। ३ वनकुलत्थ, जङ्गली कुलथी। ४ कुलत्थाञ्जन।

कुरविष्वक, कुरविल देखो।

कुरवित्त (सं० पु०) सुवर्णपत्र, ४ तोला सोना।

कुरवीरक (सं० पु०) अर्जुनवृक्ष, एक पेड़।

कुरवृद्ध (सं० पु०) कुरुषु वृद्धः, ७-तत्। भौष।

कुरव्यवण (सं० पु०) कुरवो यज्ञकर्तारः तेषां व्यवणः श्रोता, कुर-श्रु-युच्। अनुदात्ततय इत्यादिः। पा ३। २। १४८। एक वेदप्रसिद्ध नृपति। उन्होंने त्रसदस्युके पुत्र याज्ञिक गणकी स्तुति सुनी।

“कुरव्यवणमाहवि राजानं वासदस्यवः।” (ऋक् १०। १३। ४)

‘कुरव्यवणं कुरव ऋत्विजः तदीयानां स्तुतीनां श्रोतारं तन्नामकं राजानम्।’ (सायब)

कुरसुति, कुरसुति देखो।

कुरसुति (सं० पु०) वैदिक मन्त्रप्रकाशक एक ऋषि। कुरुटिनी (बे० स्त्री०) किरीटधारी सेन्यदल।

“वादिनी विशदपा कुरुटिनी।” (अथर्व, १०। १। १५)

कुरुप (सं० वि०) कुक्षितं रुपमस्य, बहुव्री० । १ कुन्नी, बदसूरत । (स्त्री०) कुक्षितं रुपम्, कुगति समा० ।
२ निम्नरूप, खराब सूरत ।

कुरुपता (सं० स्त्री०) कुक्षितरूपविशिष्टता, बदसूरती, बेटफापन ।

कुरुप्य (सं० स्त्री०) कुरुषत् कुर्यं रजतं तत् साह-
श्यात्, कुगतिस्मा० । रङ्ग, रांगा ।

कुरुव (वै० पु०) कीटविशेष, एक कीड़ा ।

(अथर्व २। ११। २, ८। २। २२)

कुरेदना (हिं० क्ति०) कर्तन करना, करोदना, खुर-
चना ।

कुरेदनी (सं० स्त्री०) ककड़ी या लोड़े वगैरहका एक
झींकार । वह लम्बी, तुकीली और छड़-जैसी होती है ।
उससे भट्टोकी भागको कुरेदते हैं ।

कुरेभा (हिं० पु०) वर्षमें दो बार घानेवाली गाय ।

कुरेर (हिं० स्त्री०) कल्लोल, जंसी खुशी, खेल कूद ।

कुरेसना (हिं० क्ति०) खनन करना, खोदना, कुरेदना ।

कुरेसनी (हिं० स्त्री०) कुरेदनी, भट्टोकी भाग कुरेदने
की एक छड़ ।

कुरेत (हिं० पु०) साभो, हिस्सेदार ।

कुरेमा (हिं० पु०) राशि, ढेर ।

कुरैया (हिं० स्त्री०) कुटजवृक्ष, एक पेड़ । वह वनमें
उत्पन्न होती है । उसके पत्र दोष और तरङ्गी (लह-
रिया) रहते हैं । कुरैयामें दोष और सुगन्धि पुष्प
आते हैं । वह श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण वा नीलवर्ण होते
हैं । उसका फल इन्द्रियव कहाता है । इन्द्रिय देखो ।

कुरीना (हिं० क्ति०) राशि लगाना, ढेर या कूरा
करना ।

कुरीनी (हिं० क्ति०) राशि, ढेर, कूरा ।

कुर्क (तु० वि०) राजापद्वत, जव्त,

कुर्क भमीन (तु० पु०) न्यायालयकी आज्ञासे सम्पत्ति
अपहरण करनेवाला राजकर्मचारी, जो सरकारी
मुलाजम पदावतके हुक्मसे जायदाद जप्त करता हो ।

कुर्कनामा (तु० पु०) अपहरणपत्र, जवतीका परवाना ।

कुर्कनामिके सुताबिक ही कुर्क भमीन जायदाद जप्त
करते हैं ।

कुर्की (हिं० स्त्री०) अपहरण, जवती । कर्तृपक्ष पक्षा-
यित अपराधीके न्यायालयमें उपस्थित होने या अध-
मर्णका कष्ट परिशोध करनेके लिये उसकी सम्पत्तिकी
कुर्की करता है । कच्ची कुर्की वह है जिसके अतुल्य
फैसला या डिगरी होनेसे पहले ही अधमर्णकी
सम्पत्ति अपहरण कर ली जाती है ।

कुर्कुट (सं० पु०) कुकट, सुरगा । कुर्कुट स्पर्श करना
निषिद्ध है । कुकुर और चण्डालके स्पर्शमें जो दोष समता,
कुर्कुट स्पर्श करनेसे ही भी उसी दोषका भागी बनना
पड़ता है ।

कुर्कुटाहि (सं० पु०) कुर्कुट-तुल्य अहति अह-इति ।
१ पक्षिविशेष, कोई चिड़िया । उसका रव और वर्ष
कुर्कुटके तुल्य होता है । कुर्कुट इवाहिः । २ सर्पवि-
शेष, कोई साँप ।

कुर्कुर (सं० पु०) कुरित्त्वव्यक्तशब्दं कुरति शब्दायते,
कुर-कुर-क । आस्यमृग, कुत्ता ।

“कुर्कुराविव कुजलो ।” (अथर्व ७। २५। २)

कुर्ग—दक्षिण-भारतका एक छोटा अंग्रेजी प्रान्त । वह
अक्षा० ११° ५६' तथा १२° ५०' उ० और देशा० ७५°
२२' एवं ७६° १२' पू० के मध्य पश्चिम घाट पर्वतकी
चोटियों और ठालों पर मडिसुर राज्यसे पश्चिम अव-
स्थित है । कुर्ग ऊँचा और विभिन्न देश है । भूमिका
परिमाण १५८२ वर्गमील लगता है । वह उत्तर-दक्षिण
६० मील लम्बा और पूर्व-पश्चिम ४० मील चौड़ा है ।
कुर्गके उत्तर एवं पूर्व मडिसुरका इसन तथा मडिसुर
जिला और दक्षिण-पश्चिम मद्राजका मलवार एवं
दक्षिण कनाड़ा जिला है ।

विशुद्ध नाम 'कोड़ुगु' है । उसीसे अंग्रेजोंने 'कुर्ग'
बना लिया है ! वह कनाड़ी शब्द 'कुडु' (ठालू या
पथरीला) से निकला है । कुर्गके लोगोंको 'कोड़ुग'
कहते हैं । कुर्ग भाषामें देशको 'कोड़ुगु' और उसके
अधिवासियोंको 'कोड़ुव' कहा जाता है ।

वत्ती या चारङ्गी नदीके दक्षिण प्रधान कुर्ग प्रान्त-
में जङ्गल बहुत है । वहाँ गाँव वा नगर देख नहीं
पड़ते । कुर्गके अधिवासियोंको अपने खेतोंके पास ही
भीपड़े ठाल रहना अच्छा लगता है । जङ्गलमें डरे-

“हरि पेड़ लहराते और नदी-नाले बहते चले जाते हैं। जमीन चाससे ठंकी रहती है।

सुब्रह्मण्यसे ब्रह्मगिरि तक कोई ६० मील पश्चिम-घाटकी प्रधान पर्वतश्रेणी चली गयी है। सुब्रह्मण्यके उच्चतम पर्वत पुष्पगिरिका शिखर समुद्रपृष्ठसे ५६२७ फीट ऊँचा है। मरकारासे ८ मील उत्तर ५३७५ फीट ऊँचा कोटवत्त गिरिशिखर है। बेंगलूर नाद पर्वत पश्चिम-को घाटकी और चला गया है। इसी स्थल पर कावेरी नदीका उत्पत्तिस्थान ब्रह्मगिरि है। ब्रह्मगिरिसे उत्तर सम्पाकी उपत्यका है। उत्तर-पूर्वके पर्वतोंमें तुमधिमल इगुतप्प, इगुतप्पकुन्दु तदियनदमल और सोम-मल प्रधान है। दक्षिण-पश्चिम छोर पर मारनाद पहाड़ है।

कुर्गकी प्रधान नदी कावेरी है। वह पश्चिमघाटके ब्रह्मगिरिसे निकलती और पूर्वसे दक्षिण सिद्धपुरको बहती है। हेमावती और लक्ष्मणतीर्थ नदी उसकी सहायक हैं। बारापोल पश्चिमको जाता है। सारत नदी ४३४ फीट ऊँचेसे भूमि पर पतित होती है।

कुर्गमें कोई बड़ी भोजन नहीं। मच्छराजपत्तन तालुकमें कुछ सरोवर विद्यमान हैं।

कुर्गके पहाड़ोंमें मरकाराके निकट ब्लैकलेट (चिकनी-मट्टीकी पत्थर-जैसा कड़ी तखती) मिलती है। फ्रेसपेटके पास कोल्लुरमें पत्थरका चूना बहुत है। उसके साथ ही सफेद मट्टीकी डलियां भी पायी जाती हैं। ईंट-जैसा पत्थर प्रत्येक प्रान्तमें वर्तमान है। लोहे की भी कोई कमी नहीं। दक्षिण-पश्चिम कुर्गमें नीले रंगका चमकीला पत्थर बहुत है।

समग्र वन्य भागमें हाथी पाये जाते हैं। प्रधानतः पूर्व प्रान्तकी ओर उनकी संख्या अधिक है। किन्तु पहाड़ोंकी भांति उनकी बढ़ती देख नहीं पड़ती। अन्तिम कुर्मेराजके एक शिक्षाफलकमें लिखा है कि १८२२ ई०के जुलाई माससे १८२४ ई० के अपरिल मास तक उन्होंने २३३ हाथी मारे और १८१ हाथी पकड़े थे। आजकल कमिशनरका बिना लैसन्स किसी कोई उन्हें मार नहीं सकता। १८०२ ई० से हाथी पकड़नेका नियमित प्रवन्ध किया गया है। प्रधानतः

मारनाद और होरमलनादके बहुत घने जङ्गलोंमें जङ्गली भैंसे देख पड़ते हैं। शेर, चीते और भालू भी बहुत हैं। कई प्रकारकी बिड़ियां मिलती हैं। जल्ती और दूसरी नदियोंके किनारे जदबिलाव रहते हैं। जङ्गली कुत्ते भुण्ड बांध बांध कर शिकार करते हैं। वनमें कई प्रकारके हरिण पाये जाते हैं। लङ्गूरों और भूरे बन्दरोंकी भी संख्या अधिक है। भूरे बन्दरोंकी लोग पकड़ करके मार खाते हैं। गीध, चीकें और दूसरी शिकारो बिड़ियां प्रायः पायी जाती हैं। तोतो, कबूतरों और जलचर पक्षियोंकी बहुतायत है। जङ्गली मुरगोंके परोंका बड़ा मोल होता है। सांपोंकी कोई कमी नहीं। बांसकी कोठियोंमें भजगर रहते हैं। घने जङ्गलोंमें विषैला काला सांप मिलता है। रामस्वामी कनावेके निकट कावेरीमें प्रायः घड़ियाल देख पड़ते हैं। नदियोंमें कई प्रकारकी छोटी बड़ी मछलियां मिलती हैं। कीड़े मकोड़ोंकी कोई संख्या नहीं लगा सकता। बरसातके पहले तितलियोंका दृश्य अपूर्व होता है।

कुर्गका जलवायु न अधिक उष्ण और न अधिक शीतल है।

कावेरी-माहात्म्यमें कुर्गकी पौराणिक वर्णना मिलती है। कावेरी कवेर मुनिकी कन्या रहीं। उन्होंने अपने पिता और जगतके कल्याणार्थ नदी रूप धारण करना चाहा था। किन्तु भगवन्ने उन्हें देख अपनी पत्नी बननेको कहा। इस पर वह इस शर्त पर सन्मत हुई—यदि भगवन् उन्हे अकेली कभी छोड़ेंगी तो वह भी चली जानेके लिये स्वाधीन रहेंगी। एक दिन नारद अपनी वचन भूल उन्हे अकेली छोड़के कनका नदीको स्नान करने गये थे। उसी बीच कावेरी घरसे निकल उनके पवित्र ऋद्धमें कूद पड़ी और सुन्दर नदीके रूपमें बहने लगीं। भगवन्ने अपने साथ रहने-की बहुत अनुमति विनय करने पर उन्होंने दो रूप धारण किये थे। एक रूपसे वह नदी होकर वहीं और दूसरी रूपसे मुनिके साथ रहीं।

उक्त कावेरी-माहात्म्यको देखते कुर्गवासी चन्निय पित्तके औरस और शुद्ध माताके गर्भसे उत्पन्न हुई हैं।

उन क्षत्रियका नाम चन्द्रवर्मा था। वह मल्लदेशके राजा सिधार्थके कनिष्ठ पुत्र रहे। चन्द्रवर्मा तीर्थयात्रा करते करते ब्रह्मगिरि पहुँचे थे। वहाँ उन्होंने पार्वती-की पाराधना की। पार्वतीने सन्तुष्ट हो उन्हें कुर्गका राज्य प्रदान किया और उनका विवाह किसी शूद्रासे कर दिया। पार्वतीने कावेरीका रूप धारण करनेको भी कहा था। उसी शूद्रा पत्नीसे चन्द्रवर्मके ११ पुत्र हुए। वह विदर्भराजकी शूद्रा-जात १०० कन्याओंके साथ ब्याहे गये थे। चन्द्रवर्मा अपने ज्येष्ठपुत्र देव-कान्तको राज्यभार सौंप यह कहते हुए ईश्वरोगा-सनाके लिये वनको चलते बने कि पार्वती शीघ्र ही नदीका रूप धारण कर आविर्भूत होगी। प्रत्येक राजकुमारके एक शतसे भी अधिक पुत्र हुए, जो कुर्गमें चारों ओर फैल पड़े। उन्होंने वन्य शूकरोंकी भाँति कृषिकर्मके लिये भूमिको विदीर्ण किया था। इससे उक्त प्रान्तका नाम 'कोड़देश' पड़ गया। उसीसे कोड़गु नाम निकला है।

तुला-सङ्क्रमणसे दो दिन पहले पार्वतीने स्वप्नमें देवकान्तको दर्शन दे कहा था वह अपनी समस्त प्रजाको वलम्बुरिके निकट एकत्र करते। तदनुसार वहाँ सब लोग जा पहुँचे। फिर नदी उपत्यकासे कोलाहल करती हुई नीचेकी वह चली। समवेत कुर्गवासियोंने उसके सञ्चो जात जलमें स्नान किया था। उसी समयसे बराबर तुला सङ्क्रान्तिके समय कावेरीके उपत्यकामें प्रति वर्ष मेला लगता है।

शिलाफलकोंके पाठसे विदित होता है कि ई० ८म और १०म शतकको कुर्ग मल्लराजाओंके राज्यमें सम्मिलित रहा। उनकी राजधानी मल्लपुरके दक्षिण-पूर्व कावेरी तटका तलकाटमें थी। उन्होंने मल्लपुरमें ई० द्वितीय शतकसे एकादश शतक पर्यन्त राजत्व किया।

मल्लराजाओंके अधीन चङ्गनादके चङ्गासव नृपति रहे, जो अपनेको पीछे मल्लराजपत्तनके अधीश्वर कहने लगे। मल्लराजपत्तन कुर्गमें कावेरीके उत्तर अवस्थित है। उसी स्थान पर कावेरी कुर्ग और मल्लपुरके सीमा रूपसे प्रवाहित है। पहले चङ्गासवोंका पनसोगी या

उनसोगीसे सम्बन्ध था। वह कावेरीने दक्षिण मल्ल-पुरके एदतोर तालुकमें रहते थे। उनके राज्यमें मल्ल-पुरका हुनसुर तालुक और पूर्व कुर्ग तथा उत्तर कुर्गका कुछ भाग लगता था। एदवनाद और वेत्तिपतनादमें उनके शिलाफलक मिले हैं। वह पसलमें जैन थे।

ई० एकादश शताब्दके पारम्भ काल तामिलके चोलोंने मल्ल नरेशोंको पराजय करके तलकाट अधि-कार किया था। वह कुर्ग प्रान्त जीतनेका भी दावा करते हैं। फिर चङ्गासव चोलोंके करद राजा बने और उनके चोल नाम रखे गये।

ई० एकादश शताब्दको चङ्गासवोंके उत्तर मल्ल-पुरके परकलगूद तालुक और कुर्गके उत्तर येलूस-विर प्रान्तमें कोङ्गालवोंका राज्य रहा। वह भी जैन थे। उनकी राजधानी कोङ्गलनादमें रही होगी।

ई० १२श शताब्दके लगते ही पोयसलां या होय-सलोंने मल्लपुरसे चोलोंको निकाल तलकाट अधि-कार किया था। उनकी राजधानी दोर-समुद्रमें रही। किन्तु वास्तवमें वह पश्चिम घाटके सुदगीर तालुकसे मल्लपुर पहुँचे थे। इनका उपाधि 'मल्लपावीर' (पहाड़ी राजाओंके बहादुर) रहा। कुर्गमें ८८७ ई० का एक शिलाफलक मिला है, जिसमें चार मल्लोंका नाम लिखा है।

११४५ ई० को होयसलराज नरसिंहने चङ्गासव-राजको युद्धमें विनाश किया और उनके हाथियों, घोड़ों, सोना और जवाहिरातको लूट लिया था। फिर चङ्गासव सम्भवतः कुर्गको पीछे हट गये। कारण ११७४ ई० को २५ बल्लालने पालपारिको उनके विरुद्ध अपना सेनापति बेत्तरस भेजा था। वहाँ एक दुर्ग रहा, जिसका अन्तर्भाव किरगुतनादके इतगतनादमें पड़ा है। महादेव चङ्गासव मारे गये। बेत्तरसने वहाँ अपनी राजधानीके लिये एक नगर निर्माप किया था। किन्तु चङ्गासव पेश विरप्पा बूदगन्द, नन्दिदेव, कुरा-चेके उदयादित्य और दूसरों (सब नादोंके कोड़गों)-के साथ पालपारिके विरुद्ध अथसर हुए और बेत्तरस पर टूट पड़े। बेत्तरस पहले तो घबराये, किन्तु अंतको जीत गये। इसके पीछे सम्भवतः चङ्गासव पूर्णरूपसे पराभूत

हुवे। १२५२ ई० की होयसलराज सोमेश्वर रामनाथ-पुरमें (चरकलगूढ तल्लुमें कावेरीकी उत्तर ओर) बनने मिले थे। उस समय चङ्गलवांकी राजधानी कावेरीसे दक्षिण सिद्धपुरके निकट श्रीरङ्गपत्तन (कौडुगु श्रीरङ्गपत्तन) में रही। उस समय चङ्गलवां ने दूसरे पुराने जैन राजावांकी भांति अपना धर्म परि वर्तन और द्वादश शताब्दका लिङ्गायत मत अवलम्बन किया था। उनके कुलदेवता वेंतदपुर पर्वतके प्रबन्धानो मल्लिकार्जुन हो गये। उक्त पर्वतको चङ्गलव श्रीगिरि कहते थे।

ई० १४ शताब्दकी होयसलोंका उत्तराधिकार विजय-नगरराजकी मिला और चङ्गलवांकी उनके अधीन होना पड़ा था। ई० १६५ शताब्दके प्रारम्भ काल नल्ल-राजने अपनी नयी राजधानी नल्लराजपत्तनको स्थापित किया। १५८८ ई० की प्रिय राजा वा रुद्रगण्णन शृङ्ग-पत्तनको पुनः निर्माण करके अपने नामानुसार प्रिय-पत्तन नाम रखा था। १५६५ ई० की मुसलमानोंने जब विजयनगरका अधिकार किया, तब राजप्रति-निधिकी शक्तिका भी ह्रास होने लगा। १६०७ ई० की राजप्रतिनिधिने मुसलवाड़ी देश (हुमसूर ताल्लुक) रुद्रगण्णको प्रदान किया था, जिसमें चङ्गलव राजवंशके रहते प्रबन्धानो मल्लिकार्जुन देवका पूजाचर्चन न उठता। किन्तु १६१० ई० की वह महिसुरराजके लिये पीछे हट गये। महिसुरराजने श्रीरङ्गपत्तनको अधिकार करके अपनी राजधानी बनाया था। फिर १६४४ ई० की महिसुरने वेंतदपुर और प्रियपत्तनको भी अधिकार किया। नल्लदुराजने जगत्से अपना सम्बन्ध तोड़ा था। किन्तु उनके पुत्र वीरराज अपनी राजधानी रक्षामें धराशायी हुवे। उन्होंने अपना सङ्कटापन्न स्थिति और चङ्गलव शासनका अन्त देख पड़ले ही अपनी महिषी और अपने पुत्रोंको मार डाला था।

‘फिरिशा’ लिखता है—ई० १६५ शताब्दके शेष भाग प्रधान कुर्ग प्रदेश अपने ही राजावां द्वारा शासित होता था। उनका उपाधि ‘नायक’ रहा। वह विजय-नगरकी वक्षता मानते थे। किन्तु उनमें परस्पर प्रायः विरोध लगा रहता था। कुर्ग देश १२ कोम्बुवां और

१५ नादोंमें विभक्त था। महिसुरने चङ्गलवांको जीत कुर्गको अपने राज्यमें मिलाया न था। कुर्गके जातीय इतिहासके अनुसार महिसुरकी सेना पालपारिको बड़ी और हार गयी। उसके अनेक सैनिक धराशायी हुवे थे। जो जी, परन्तु महिसुरकी बदनूरके नायक शिवप्पा-के विरुद्ध अपनी रक्षा करनी थी। शिवप्पा महिसुरका सम्पूर्ण पश्चिम प्रान्त उजाड़ रहे थे। १६४६ ई० की उन्होंने श्रीरङ्गपत्तनको घेर लिया और विजयनगरके पलायित राजाको पुनर्वाप अधिकार दिलानेकी प्रयत्न किया। इस प्रकार भूतपूर्व चङ्गलव राज्यकी राह किसीके लिये अधिकार करनेकी खुली थी।

इक्केरी या बदनूर राजवंशके किसी राजकुमारने वह कार्य सम्पादन किया। वह मरकाराके उत्तर जालेरीमें लिङ्गायत पुरोहित वा जङ्गमकी पोशाक पहन बसे थे। उन्होंने समय देशकी अपने अधीन बना लिया। १८३४ ई० तक उनके वंशज कुर्गमें राज्य करते रहे। १८०७ ई० तक उनका इतिहास ‘राजिन्द्र-नामा’ में मिलता है। उक्त इतिहास महापराक्रमशाली वीर-राजिन्द्रके आदेशसे कनाड़ी भाषामें लिखा गया था।

सुदूर राजा राजधानीकी उठा कर मदिकेरी या मरकारा ले गये। १६८१ ई० की उन्होंने वहां दुर्ग और राजप्रासाद बनाया था। उनके तीन पुत्रोंमें ज्येष्ठ पुत्र डोण्ड वीरप्पकी मरकाराका उत्तराधिकार मिला। राजा अप्पाजी तथा नन्दराज, द्वितीय एवं तृतीय पुत्र, जालेरी और होरनेलमें बस गये। १६८० ई० की जब महिसुरने चिक्कदेवरायके अधीन बेलूर प्रान्त आक्रमण किया, तब डोण्ड वीरप्पने कुर्गके लिये एकुसादिर प्रान्त छीन लिया। उन्हें उक्त प्रान्त अपने अधीन रखनेकी आज्ञा इस शर्त पर मिली कि वह आधी मालगुजारी महिसुरकी देते। उन्होंने चिर-कल राजाको बदनूरके नायक सोमशेखरके विरुद्ध साहाय्य करनेसे उत्तर-पश्चिम अमरसुखका जिला भी पाया था। १७३६ ई० की ७८ वर्षकी अवस्थामें उनका मृत्यु हुआ। फिर उनके पौत्र चिक्क वीरप्पकी सिंहा-सन सौंपा गया। चिक्क वीरप्पके शासनकाल महिसुरमें हैदराबादीका बल वैभव बढ़ा था। १७६३ ई० की उन

ने बदनूर और उसका राज्य जय किया। फिर वह अपनेको कुर्ग का महाप्रभु समझने लगे। पड़ले उन-
ने एलुसाविर पानिका दावा किया था। पीछे १ लाख
पागोडाके बदले उचिक्कि कुर्ग को दे डालो।

चिक्किवोरप्पका कोई उत्तराधिकारी न रहा। इस-
लिये सुहू और सुहप्प दो अन्य शाखाओं को कुर्ग राज्य
प्राप्त हुआ। उन्होंने परस्पर मिलकुल राज्यशासन किया
था। अपने वचनानुसार उचिक्कि न देनेसे उसके बदले
हैदरअलीको पंजी और बेक्कार स्थान देने पड़े। पूर्वोक्त
दोनों राजाओंने १७७० ई० को इहलोक परित्याग किया।
सुहू राजा अप्पाजी नामक अपना उत्तराधिकारी छोड़
गये थे। सुहू के पिताके भ्राताने उसे सिंहासन पर बैठाना
चाहा। किन्तु सुहूप्पाके पुत्र मल्लप्पाने अपने बेटे देवप्पा
राजाको भागे कर दिया जो कुर्ग राज्यका उत्तरा-
धिकारी मान लिया गया। इस पर लिङ्ग राजाने हैदर-
अलीके निकट साहाय्यके लिये पलायन किया। वह
साथमें अपने पुत्र वीर राजा और भ्रातृपुत्र (भतीजे)
अप्पाजीको भी ले गये। किन्तु हैदर अली उस समय
मराठोंसे लड़ रहे थे। इसलिये वह शीघ्र कुछ कर
न सके। मराठोंके हट जाने पर लिङ्ग राजा एक
सेनाके साथ भेजे गये। राहमें बहुतसे कुर्ग भी उनसे
आ मिले। इसलिये वह बिना किसी रोकटोकके राज-
धानी मरकाराकी ओर अग्रसर हुये। देवप्प राजाने
कोतेके चिरकल राजके निकट जाकर शरण लिया था,
किन्तु वहां अपना अच्छा स्वागत होते न देख वह
केवल ४ अनुचरोंके साथ वेश बदल कर उत्तरकी ओर
भागे, हरिहरमें पकड़े जाने पर वह औरङ्गपत्तन भेजे
गये। वहां उनके बाल बच्चे कोद खानेमें पड़े सड़ रहे
थे। उनके साथ देवप्पाको भी प्राणदण्ड मिला। यही
होरमिल शाखाका अन्तसाग था। फिर हैदर अलीने
लिङ्ग राजाको इस शर्त पर कुर्ग प्रदान किया कि वह
कर देते रहेंगे। बिनाइके एक बार अधिकार कर
लेनेको भी उन्हें आज्ञा मिली थी। किन्तु साथ
ही उनके अधिकारसे अमर सुब्ब, पच्चे, बेक्कार और
एलुसाविर निकाल लिया गया। १७८० ई० को लिङ्ग
राजाकी मरने पर हैदर अलीने इस बहाने सम्पूर्ण

कुर्ग राज्य अधिकार किया कि वह लिङ्ग राजाके
अबोधबालकोंकी अभिभावकता करेंगे। फिर उक्त
बालकोंकी महिसुर जिलेके परकलगूद तालुकमें
कावेरी पर गोरुर किलेमें रहनेकी आज्ञा दी गयी।
कुर्ग के एक पूर्वतन ब्राह्मण कोषाध्यक्ष शासक हुवे और
मरकारा किलेकी रक्षाको सुसज्जमान सिपाही नियुक्त
रहे।

कुर्ग इससे बहुत बिगड़े कि उनके शासक ब्राह्मण
बने और उनके राजकुमार सिंहासन छोड़ चले थे।
सुतरा १७८२ ई० को उन्होंने बलवा कर दिया और
सुसज्जमानोंको निकाल बहार किया। हैदर किरना-
टकमें उस समय अंगरेजोंसे लड़ रहे थे। उनके मर
जानेसे शीघ्र कोई प्रतिकार हो न सका। किन्तु उनके
पुत्र टीपू सुलतान कुर्गको पुनर्वा जय करने पर तुले
थे। उन्होंने कुर्ग राजाओंके वंशको प्रियपत्तन पहुँचाया
और १७८४ ई० को नगर पुनर्वा अधिकार और मङ्ग-
लौर विध्वंस करने पर कुर्गके मध्य औरङ्गपत्तनको
अग्रसर हुये। उन्होंने घोषणा की थी—‘कुर्गों पर यह
अपराध प्रमाणित है कि उन्होंने अपने बहुतसे खामी
बना लिये हैं। फिर विद्रोह भी उन्होंनेका फेलाया हुआ
है, किन्तु इस बार हम उन्हें क्षमा कर देंगे। यदि
दूसरी बार फिर उन्होंने उपद्रव उठाया, तो समझना
होगा कि उनका काल आया है। फिर कोई कुर्ग
देशमें रहने न पावेगा और बिलकुल सुसज्जमानों
शासन हो जावेगा।’ टीपू कुर्ग छोड़ करके गये ही थे कि
१७८५ ई० को कुर्गने फिर अन्न धारण करके अपनी
पहाड़ियां सुसज्जमानोंके हाथसे छीन लीं। जी सेना
दमन करनेके लिये भेजी गयी थी, वह विद्रोहियोंके
भीषण आक्रमणसे पीछे हटी। फिर टीपू अपने पाप
फौजके साथ कुर्गको अग्रसर हुये। उन्होंने कुर्गको
प्रलोभन दिया कि तत्केकावेरी जाकर उनसे शान्ति-
पूर्वक मिलति और अपने अभाव अभियोगको प्रकाश
करते। किन्तु कुर्गोंके वहां पहुँचने पर टीपूने उन्हें
धोकेसे पकड़ लिया और उनके बाल-बच्चोंकी रीढ़ने
पीछे ७०००० सोनीको भेड़ोंकी भांति औरङ्गपत्तन
बहरे दिया। वहां उनकी सुसज्जमानों की गयी। कुर्ग

कुर्गसमान जमीन्दारोंमें विभक्त हुआ। इन नये जमीन्दारोंमें टीपूने यही कहा—यदि कोई हमारे हाथका कूटा कुर्ग मिले, तो उसे जानसे मार डालो; हम उनके विनाश पर तुल्य हुवे हैं। मरकारा (जाफराबाद), फ़ेसरपेट (कुर्गसनगर), भागमण्डल और वेणुनादकी किल्लेमें रक्षकसेन्य रहता था।

१७८८ ई० की वीर राजा ६ वर्ष काराबद्ध रहनेके पीछे अपनी पत्नी और अपने दो भाई सिद्धराज तथा अण्णाजीके साथ प्रियपत्तनसे गुप्त भावमें भागे थे। कुर्ग लोग दल दल उनसे जा मिले और थोड़े ही दिनमें वह समस्त प्रान्तके राजा बन गये। टीपूने उनसे लड़नेकी बड़ी फौज भेजी थी। किन्तु मलयालम-राजाओंके उपद्रव उठाने पर वह पश्चिम तटकी ओर चली गयी। फिर वीर राजा और अंगरेजोंमें एक सन्धि हुई। टीपूने उन्हें पीछे फ़ुसलानेकी व्यर्थ चेष्टा की थी। १७८८ ई० की फरवरी मास बम्बईसे जो फौज औरङ्गपत्तनको अग्रसर हुई, उसे निकटस्थ देशको पूर्ण रूपसे लूट करके वीर राजाने रसद दी। साहू कामवालिसने टीपूको पीछे औरङ्गपत्तन भगा होपको अधिकार किया था। इसी युद्धविषयमें टीपू जिन १२००० लोगोंको पकड़ ले गये थे, वह भी लूट करके अपने देश आ पहुँचे। टीपूको अंगरेजों की शर्तें मानना पड़ीं। उनमें एक शर्त यह भी थी, कि टीपूको कम्पनीके अधिकारसे लगा हुआ अपना पाधा राज्य अंगरेजोंको सौंपना पड़ेगा। टीपूके बदलेसे वीर राजाको बचानेके लिये कुर्ग भी मांग लिया गया; जिस स्थान पर वीर राजा अंगरेजी सेनानायक पवर-क्रोम्बीसे पहले मिले, वहीं उन्होंने वीरराजोन्डपेट नामक नगरको स्थापन किया, जो आज कल कुर्गमें द्वितीय नगर है। टीपूने वीर राजाके वधकी दो बार व्यर्थ चेष्टा की थी। टीपूके साथ अन्तिम युद्धमें राजाने फिर बम्बईकी फौजको रसद घेरकर पहुँचाया। १७८८ ई० की औरङ्गपत्तनके पतनकाल उन्हें युद्धके कुछ जयचिह्न (पख्त शस्त्र आदि) मिले थे। परन्तु प्रियपत्तन प्रान्त अपने अधिकारमें न रख सकनेसे वह हताश हो गये। फिर भी उन्हें दक्षिण कनाड़ामें पाजे

और वेन्नारि मिला था। दूसरे विवाह की लड़कियाँ तो उनके रहीं, किन्तु लड़का कोई न था। १८०७ ई० की मद्रासके परलोक जाने और उत्तराधिकारी होनेकी आशा न पानेसे वह पागल पड़ गये और क्रोधके आवेशमें लोगोंके वधही आत्मा देने लगे। अफरीकाके सीढ़ी उनके शरीररक्षक रहे। वह आदेश मिलते ही लोगोंको मार डालते थे। परन्तु राज-प्रासादके रक्षक और सेनाके पदाधिकारी कुर्ग रहे। उन्होंने अन्धाय अन्धकार असन्न होनेसे राजाको मार डालनेके लिये साजिश की। अन्तर्गत संवाद मिलने पर वह बड़ी सावधानताके साथ शय्यामें रत्नाक्त कम्बल के नीचे एक तकिया रख भाग गये। साजिश करनेवाले उन्हें ढूँढनेको बाहर-भीतर दौड़ पड़े। परन्तु उनके हाथ न पाने पर हताश हुवे। फिर उन्होंने उसी समय अपने सीढ़ियोंको बुलाया और किल्लेके फाटकोंको बन्द कराया था। इसमें ३०० कुर्ग फंसे जा सबके सब वध किये गये। राजाने अपने आप ३०० कुर्गोंको गोलीसे मारा था। पीछे उन्हें अंगरेजोंके अप्रसन्न होनेका डर लगा। उन्होंने गवर्नर-जनरलको लिखा था,—‘हमारी रानी मर गयी है। हम चाहते हैं कि हमारे राज्यका उत्तराधिकार बड़ाईके अनुसार हमारी चारों लड़कियों या उनके, लड़कों को दिया जावे।’ किन्तु बहुत दिन तक उसका कोई उत्तर मिला न था। उन्होंने अपना मृत्यु आता देख और उस अवस्थामें लड़कियोंकी रक्षाके लिये चिन्तित हो अपने दोनों भाइयोंको मार डालनेके लिये जवाब भेज दिये। किन्तु जब वह सचेत हुवे, तो उक्त आदेश रद्द करनेके लिये हरकारि प्रेरण किये गये। हर कारीके पहुँचते पहुँचते अपना जो तो मर चुके थे, सिद्धराज बचे रहे। अन्तमें १८०८ ई० की ८ वीं जूनको राजाने अपनी बड़ी लड़की देवम्माजीको बुला करके अपनी मुहर-छाप सौंप दी और आखिरी सांस की। देवम्माजी कुर्गकी रानी बनी थीं। अर्गोय राजाके बड़े जामाता सीदे राजा दिवान्का काम करते रहे।

उसी बीच कुर्गोंने सिद्धराजको राज्यका उत्तराधिकारी बनाया था। सीदे राजासे उनके देश कीट

जानेको कहा गया। लिङ्गराजने अपने लिये रामीसे भी सिंहासन छोड़ने को कहा था। १८११ ई० को उन्होंने अपने राजा होनेकी घोषणा की। बम्बई और मद्रासमें देवन्नाजीके लिये उनके पिता जी बहुत सा रुपया जमा कर गये थे, उसे भी लिङ्गराजने उठा लेना चाहा। किन्तु वह १८२० ई० की ४५ वर्ष की अवस्थामें स्वर्गवासी हुए। उनकी स्त्रीने भी भविष्यत्के भयसे आत्महत्या कर डाली।

लिङ्गराजके पीछे उनके पुत्र वीर राजा, जिनका वयस बीस वत्सर रहा, सिंहासन पर बैठे। राजा होते ही पहले उन्होंने उन लोगोंको फाँसी पर चढ़ाया, जिनोंने उन्हें उनके पिताके वर्तमान रहते चिढ़ाया या सताया था। उनका शासन बहुत कठोर रहा। १८६२ ई० को चन्नवसव नामक एक कुर्ग भाग कर मद्रासुरके रसीडण्टके पास पहुँचा और उनसे जाकर निवेदन किया—‘चाप वीर राजाके अत्याचारसे हमें बचाइये।’ राजाने रसीडण्टको लिखा कि अभियुक्त उनको सौंप दिये जाते। किन्तु उनकी बात मानी न गयी। रसीडण्ट फिर कुर्ग गये और राजाको समझाया कि अंगरेज सरकारकी आज्ञा न मानने पर उनके सिंहासनसे उतारे जानेका भय था। किन्तु राजा न सुधरे। वीरराजेन्द्रकी लड़की देवन्नाजी अपने अवशिष्ट परिवारके साथ मार डाली गयीं। फिर राजाने मद्रासके गवर्नर और गवर्नर जनरलको कड़ी कड़ी चिट्ठियाँ लिख कर और भी बात बिगाड़ दी। १८३४ ई० की साल्ट विलियम बेनटिङ्गने उन्हें सिंहासनसे उतारनेके लिये फौज भेजी थी। उसका किसीने सामना न किया और उसने सरकारमें जा कर अफ़रेजी भण्डा उड़ा दिया। राजा अपना कोष और कुटुम्ब लेकर नलकनाद भाग गये।

उक्त वर्षकी ११वीं अपरेलको पोलिटिकल एजण्ट करनल फ़ेजरने दिंडोरा पिटाया कि कुर्गमें राजा वीरराजेन्द्रने उदयपुरका शासन और राज्य नियत रूपसे उठाया था। फिर ७ वीं मईको कुर्ग अंगरेजी राज्यमें मिलाया गया। राजा वीरराजेन्द्रने निर्वासित हुए। अन्तको उन्हें बनारसमें जाकर रहनेकी आज्ञा दी गयी थी।

१८३३ ई० की बोरप्पा नामक एक व्यक्तिने अपने को राजवंशका उत्तराधिकारी बताया और कुर्गके अंगरेजी राज्यमें मिलाये जाने पीछे संस्थापकी वेधमें राज्य पानेको बड़ा प्रयत्न रचाया। विद्रोहके समय वह पकड़ कर मङ्गलोरके जेलमें रखा गया। फिर १८६० ई० की उक्त संस्थापी जेलमें ही मरा था।

१८३७ ई० की पश्चिमठालके मोद बिगड़ उठे। इनकी आपत्ति यह रही—अमरसुख, पुन्नूर और बन्तपाल जिला कनाड़ेमें मिल जानेसे राजस्व रूपयोंमें देना पड़ता था, जिसमें वह मन्त्रालयसे कृपण लेने पर बाध्य होते थे; कुर्गके नियमानुसार उन्हें राजस्वमें उत्पन्न द्रव्यादि देनेका अभ्यास था। मङ्गलोरमें उपद्रव उठा। विद्रोहियोंने जेलके कैदियोंको छोड़ दिया और दफतरी तथा कुछ सिविलियनोंके घरोको लूट लिया और जला कर भस्म किया। किन्तु कुर्गोंने अपने पाप उक्त विद्रोहको दबाया था, जिसके लिये उन्होंने पुरस्कार और पदक पाया। १८६१ ई० की सिपाही-विद्रोहके पीछे कुर्ग अपनी राजभक्तिके कारण इधियार सेलिये जानेसे बचे रहे।

१८५४ ई० की पहले पक्ष कुर्गके सरकारा खानमें अंगरेजोंने कहैका बाग लगाया था। फिर १८६५ ई० तक कितने ही दूसरे बाग लग गये।

कुर्गके घरोके पास एक छोटा चौकोर खान बना रहता है। उसमें वह अपनी चाँदीकी घासी रखते जिनमें कुर्गके स्त्रीपुरुषोंके चित्र बने होते हैं। उक्त खानको कैमद मन्दिर कहते हैं। १८०८ और १८२१ ई० की सरकाराके निकट राजाका सुप्रसिद्ध समाधिमन्दिर बना था। सरकाराका राजप्रासाद भी दर्शनीय है।

कुर्गका प्रधान नगर सरकारा, वीरराजेन्द्रपेट, सोमवारपेट, फ़ेसरपेट और कोदलीपेट है। लोकसंख्या प्रायः १८०,६०७ है।

कुर्गमें कर्णाट (कनाड़ी) भाषा प्रचलित है। उसके नीचे कोङ्गु या कुर्गकी बोली है। कुर्गकी बोली पुरानी कनाड़ी और मलयालमके संयोगसे बनी है। उसमें लिखनेके अक्षर नहीं। वह कनाड़ी अक्षरोंमें ही लिखी जाती है। फिर भी कुर्गकी बोलीमें वीर-

रसके कुछ गीत मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कुर्ग में परब, तुलु, हिन्दी, तामिल, तेलुगु, मराठी और कोङ्कणी भाषा भी चलती रहती है। जङ्गली लोग कुदम्ब बोली बोलते हैं।

कुर्ग सनातनधर्मावलम्बी हैं। वह महादेव और सुब्रह्मण्यदेवकी इग्नोत्पन्न नामसे पूजते हैं। कावेरी नदीकी भी पूजा अर्चना की जाती है। कुछ लोग भूत प्रेतोंकी भी मानते हैं। अथप्पदेवके लिये देवकुंदादु एक लम्बा चौड़ा जङ्गल सुरक्षित रहता है। उसमें कोई मनुष्य जाने नहीं पाता।

तन्ना नामक वृक्षोंकी मण्डली कुर्गीके समाजका प्रबन्ध करती है। नियम भङ्ग करनेवालेका अभियोग अम्बल (हरेभरे मैदान) पर सुना जाता है। अपराधीको तन्ना सभापति १०५ रु० तक अर्थदण्ड कर सकते हैं। दण्ड न देनेवाला जातिसे निकाल दिया जाता है। परन्तु युरोपीयोंके सङ्घर्षसे कुर्गोंमें लोग अधिक मदिरा पीने लगे हैं। १८८३ ई० को संयमका आन्दोलन उठा था, किन्तु उसका कुछ फल न हुआ।

पुत्रके ज्ञायमें भूमिष्ठ होते ही रणका धनुर्वीण पकड़ा दिया जाता है, जिसमें वह शिकारी और लड़ाका हो। मरने पर युवकोंको भूमिमें गाड़ और वृक्षोंको जला देते हैं।

कुर्गोंमें कावेरी, उत्तरी (फसल-पूजा), भगवती और कोल सुद्धत (इधियार-पूजा) का जलसा बड़ी धूमधामसे होता है। उस समय यह बहुत गाने बजाते और आनन्द उड़ाते हैं। कुर्गमें दूसरे रहनेवाले यरव, हालीय गोद, तीय, नायर, तामिल, मराठा, मोपला, सिख और ईसाई हैं।

सबसे छोटे ८८ कुर्ग खेती करते हैं। यहां चावल बहुत होता है। पानी अधिक बरसने और नदी नाले भर रहनेसे सींचनेके लिये नहरोंकी आवश्यकता नहीं पड़ती। पहले इलायचीके जङ्गलसे भी लोगोंको बड़ी आमदनी रही। किन्तु अब जङ्गलोंका पड़ा हो जानेसे इलायचीका मोल घट गया है। कहनेकी बात पहले ही लिख चुके हैं। सिनकोना (कुनैनके पेड़) और चायकी खेती अङ्गरेजोंने आरम्भ की थी, परन्तु सफ-

रता न मिलनेसे छोड़ दो। कहवा मरकारा, चाटके पहाड़ों और बांसके जिलेमें बोया जाता है। कुर्गमें केला और नारङ्गीकी उपज भी अधिक है।

कुर्गका जलवायु पशुबोंके लिये अच्छा नहीं केवल भैंसे और सूवर जीते जागते हैं।

वनविभाग डिप्टी कमसर्वेटरके अधीन है। घाटका जङ्गल मालेकादु कहलाता है। जङ्गल ऐसा घना कंटीला है, कि बिना राइ बनाये चलना असंभव है। पुर्वके जङ्गलको कनवेकादु कहते हैं। उसमें बांसकी कोठियां बहुत हैं। इमलीका पेड़ फेसरपेट और सोमवारपेटके बीच कावेरीतीर कहीं कहीं मिलता है। सुरक्षित वनकी लकड़ी काट कर मडि-सुरमें बेची जाती है। कुर्गमें कड़ड़ और मट्टीको छोड़ कर दूसरे धातुकी खानि कहीं नहीं।

कुर्ग प्रान्तमें व्यापारकी कोई चीज भी नहीं बनती, केवल बढिया बढिया चाकू तैयार होते हैं। उत्तर कुर्गमें मोटा और शनिवारसान्तेमें बारीक कपड़ा बुना जाता है।

गेहूं, चना, दाल, पन्ध, चीनी, नमक, तेल और कपड़ा कुर्गमें बाहरसे आता तथा इलायची, चावल, नारङ्गी, लकड़ी, चन्दन और चमड़ा आयाज किया जाता है।

चीफ कमिशनर कुर्गका प्रबन्ध करते हैं। कुर्गके बड़े पफसर कमिशनर साइब मरकारामें रहते हैं।

कुर्चिका (सं० स्त्री०) १ सूची, सूई। २ कुर्चिका, बिगड़ा हुआ दूध। कुर्चिका देखो।

कुर्चक (सं० पु०) पटोलसता, परवलकी बेल।

कुर्चज (सं० पु०) कुलिजन वृक्ष, गन्धमूल, कुशीजनका पेड़।

कुर्दंन (सं० स्त्री०) कुर्द भावे अट्। क्रीड़ा कार्य, खेल कूद।

कुर्दमी (हिं० स्त्री०) गौरज, जहाजी रक्षा।

कुर्दस्थान—कुर्द जातिकी वास्तवभूमि, कुर्द लोगोंके रहनेका सुक्त। वह पारसका पूर्वभागका एक प्रदेश है। फिर टादजिस नदीसे उत्तर पूर्ववर्ती असीरियाका एक जनपद निम्न कुर्दस्थान कहलाता है।

कुर्दस्थानके उत्तर प्रान्तमें वायुह्रद है। उक्त प्रान्त भाग समुद्रपृष्ठसे ५२०० फीट ऊंचा है। वहां अधिकांश कुर्द लोग रहते हैं। वायु ह्रदके निकटवर्ती गिरि शृङ्खल पति उच्च हैं। उनमें कोई कोई प्रायः १५००० फीट ऊंचा निकलेगा। फिर किसी किसीकी उच्चता इतनी आती, कि सर्वदा उस तुषार (बर्फ) की शोभा दिखाती है। कुर्दस्थानके पर्वत पूर्व सीमासे उत्तरकी मेसोपेटेमिया विस्तृत हैं। उक्त पर्वत कुर्दस्थानके अनेक दुर्गुरुपसे अवस्थित हैं। उन्हें जय न करनेसे कुर्दस्थान या एशियाके तुर्क (तुर्क) राजाके मध्यप्रदेश कैसे जीत सकते हैं? कई शतवर्ष गत हुये—मिद, पारसिक, ग्रीक, रोमक, सरासेन, रुस, तुर्क प्रभृति लोगोंने कितनी ही चेष्टा की थी, किन्तु कुर्दस्थान कोई सड़जमें जीत न सका। अल्पकाल हुआ, कुर्दस्थान दूसरे लोगोंका अधिकृत हो गया है। परन्तु सदस्यधिक वर्ष पूर्वसे कुर्दजाति उक्त पर्वतोंके कठिन अङ्गमें आश्रयलाभ करके आज भी स्वाधीनभावसे कालयापन करती है। कुर्दस्थानका जलवायु विशुद्ध, स्वास्थ्यकर और शीतप्रधान है। वहां शीतकालको बहुत बर्फ गिरता है। यहां तक—किसी किसी स्थानमें चार-पांच मास पर्यन्त बर्फ नहीं गलता।

कुर्दस्थानमें कुर्द और गोन दो जातियाँका वास है। उनमें कुर्द लोग ही अधिक देख पड़ते हैं।

कुर्द लोग सुसज्जमान् सुकीमतावलम्बी, कृषिजीवी और अधिकांश मेषपालक होते हैं। वही पाश्चात्य ऐतिहासिक जेनाफिन-वर्णित कर्दुकि (Carduchi), गार्दियारि (Gordiar) और किरि (Cyrtic) नामक प्राचीन जाति हैं। जेनाफिनके समय अरमेनिया, लरिस्थान प्रभृति जिन जिन स्थानोंमें वास करते, आज भी उन्हीं उन्हीं प्रदेशोंमें बह रहते देख पड़ते हैं। पूर्वकालको टाइग्रिस नदीके दक्षिणकुलमें सेत और बिस्सिस (देशा० ४२°) से बरन्दूज (देशा० ४२° ५०') पर्यन्त कुर्दस्थान जनपद कहलाता था। आज कल कुर्द लोग यूफ्रेटिस नदीके पश्चिमसे ट्रास पर्वतके दक्षिण और तुखारासे पूर्व अफगानस्थान तथा कच्छ-

गन्धर्व पर्यन्त फैल गये हैं। किसी किसीके मतमें वर्तमान समय कुर्द जातिकी संख्या ५० लाख होगी।

कुर्दस्थान, तुर्क और पारस्य राजाके अधिकृत होनेसे पहले सुदूर सुदूर अंशोंमें विभक्त रहा। प्रत्येक अंश किसी न किसी सामन्तके तत्त्वावधानमें रहता था। जो व्यक्ति वंशमर्यादामें अशुभ, सुशोभ, बलशाली और साहसी ठहरता, वही कुर्द लोगोंमें सामन्त बन सकता था। सामन्तको वह 'बे' कहते हैं। वे यदि अधिक समताशाली हो जाते, तो अपने बाहुबलसे अपरापर सामन्तोंको वशीभूत बनाते थे। आज भी स्थानविशेषमें कुर्द लोगोंके बीच एक एक दलपति रहता है। उसे दख्खदलपति भी कह सकते हैं। अति पूर्वकालसे वर्तमान समय पर्यन्त वे डाकू कहलाते हैं। मध्य मध्यमें दो-एक कुर्द गिरिपथ पर उपस्थित हो वाणिज्यद्रव्यादिका आना-जाना रोक देते और सुविधा लगनेसे माल असहाय लूट पर्वतकी गुहामें जाकर शरण लेते हैं।

पूर्वकी भांति आज भी वह गीमेवादि पालन और सामान्य कृषि द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। कुर्द शारीरिक परिश्रम द्वारा अर्थोपार्जन करना नहीं चाहते। रुस तुर्कके युद्धकाल तुर्ककाधिपतिने अनेक कष्टमें कुर्द दलपतियोंके साथ प्रबन्ध बांध कुर्द सेन्य पाया था। कुर्द सिपाही जय पराजय पर अधिक लक्ष्य नहीं रखते। उन्हें शत्रुपक्षियों पर शेरतर पत्थाचार करके लूटमार मचाना अच्छा लगता है। अपरापर सभ्य जातियोंकी भांति वह विपक्षों वा पराजितोंके प्रति कुछ भी ममता नहीं दिखाते। शत्रु सवल हो या दुर्बल और चाहे वह प्राणभिजा भी मानी, कुर्द किसी और भ्रूषण न कर उसका शिरच्छेद किया करते हैं। इसमें उन्हें विपुल आनन्द आता और सन्नाह बढ़ जाता है।

कुर्दोंमें बहुतसे लोग एक स्थानमें ही रहना चाहते हैं। उन्हें पर्वतकी भिन्न भिन्न उपत्यकाओंमें घूमना-फिरना अच्छा लगता है। मूसाताग नामक मैदानके उत्तर-पश्चिम दख्खदोलत उपत्यकामें अरमचशील कुर्दोंका अधिक वास है। वसन्त कालको उक्त उपत्यकाका

दृष्ट पति प्रीतिकर लगता है। उस समय चारों ओर लक्ष्मण विविध कुसुमभूषणसे विभूषित होता है। कुर्द लोग भी फूल तोड़ करके नाना सज्जासे सजते और उत्साहमें उन्मात् हो इधर उधर घूमा करते हैं। यदि अभागे अधिक उनके सामने पड़ जाते, तो अपना यथासर्वस्व गंवाते हैं। उस समय सैकड़ों अधिक कुर्दों के कराख कवलमें पड़ प्राणत्याग करते हैं।

कुर्दोंमें सदल, करचेरचुल, एजिदी, शिरकेरा, रुदनी, मिकरी प्रभृति अनेकीमेद विद्यमान है।

सदल, करचेरचुल और एजिदी खुरासानमें वास करते हैं। उनके पूर्वपुरुषोंकी तरुष्क सैन्यके गति रोधार्थ पारस्यराज शाह इसमाइल कुर्दस्थानसे वहां ले गये थे। उनकी कोई कोई शाखा अफगानस्थान और बेलूचस्थानमें भी फैल पड़ी है। शिरकेरा सहरवान, रुदनी दस्तबदौलत और मिकरी भाजर-बिजानके दक्षिणार्धमें रहते हैं। मिकरी कुर्द अच्छे अस्त्रारोही हैं। एक समय उन्होंने रुसके सुइसवारोंको रणक्षेत्रमें पराजय कर देशसे निकाल दिया था।

शेरवानी और बेसानी नामक दूसरी भी दो अणियोंका नाम सुन पड़ता है। बेलूचस्थानका कच्छगन्धव और दस्तबदौलत भाग भी कुर्दोंके अधिकारमें है।

कुर्पर (सं० पु०) १ कफोनि, कुइनी। २ जानु, घुटना।

कुर्पास (सं० पु०) स्त्रियोंका स्तनाच्छादन-वस्त्र, चोली।

कुर्पासक (सं० पु०) कुर्पास स्वार्थ कन्। अर्धचोलक, अंगिया।

“मनोव्रतकुर्पासकपोडितसना।” (रत्नावली)

कुर्वत् (सं० वि०) करोति इति, क-शतृ। १ कर्ता, करनेवाला। २ भृत्य, नौकर।

कुर्वादि—पाणिनि-वर्णित एक गण। कुर्व, गर्गर, मङ्गुष, अजमार, रथकार, बावदूक, सम्नाज (अत्रियजाति होनेसे), कवि, मिति, कापिल्लादि, वाक्, वामरथ, पितृमत, इन्द्रराजी, एजि, वातकि, दामोद्वीषि, गण-कारि, कैशोरि, कुट, शलाका (शलाका), सुर, पुर, एरका, शुभ्र, अश्र, दर्भ, केशिनी, वेष्वा (कन्दोबोधक होनेसे), शूपर्षाय, श्वावनाय, श्वावरथ, श्वावपुत्र,

सत्यहार, बड़भीकार, पथिकार, मूठ, शकम्भु, शङ्क, शाक, शाकिन्, शासीन, कट, कट, इन और पिण्डी शब्द कुर्वादिगणमें पड़ता है। कुर्वादिभ्योः ष्यः। पा ३।१।१५। उक्त सकल शब्दोंके उत्तर अपत्य अर्थमें ष्य प्रत्यय लगता है।

कुर्मी, कुनो देखो।

कुर्मुक (हि०) कसक देखो।

कुर्मी (हि० स्त्री०) १ सुत्रागा। २ कुरकुरी हड्डी।

कुर्वा—युक्तप्रदेशकी एक जाति। यह लोग मिर्जापुर जिलेमें अधिक देख पड़ते हैं। कृक साहबने इन्हें १२ वीं अण्यकी जाति माना है। इनमें पुरुषोंसे स्त्रियोंकी संख्या अधिक है।

कुर्स (अ० पु०) १ सुद्राविशेष, कोई सिका। वह अरब में चलता और डेढ़ आने मूल्यका रहता है। २ चीन की एक मुद्रा। वह सोने या चांदीसे नौकाकार बनाया जाता है। उसका परिमाण ५० या १०० तोले रहता और कभी कभी घटता बढ़ता है। ३ गोल टिकिया।

कुर्स (हि० पु०) दृष्टविशेष, एक घास। उसका मूल दीर्घ, मृदु एवं दृढ़ रहता और रस्सी तथा चट्टाई बनानेके कार्यमें लगता है। कुर्स केवल अपने मूलके लिये ही लगाया जाता है।

कुर्सी—युक्तप्रदेशके लखनऊ जिलेका एक नगर। वह अक्षा० २७° ८' स० और देशा० ८१° ८' पू० पर अवस्थित है। वहां प्राचीन कैशरीगढ़का भग्नावशेष पड़ा है। शाहजहान्के समय शीराज-उद्-दीन नामक किसी व्यक्तिने एक खूबसूरत मसजिद बनायी थी। उक्त मसजिद देखने योग्य है।

कुल (सं० स्त्री०) कुल-क। इगुपधशास्त्रिकरः कः। पा ३।१।१५।

१ वंश, खानदान, घराना।

“कथामयेनकुसुदः कुनभूषणे न।” (रघुवंश, १५।८५)

शास्त्रके मतमें निम्नलिखित कर्म करनेसे कुल नष्ट होता है—

“गोमिश्र चोटकेचिप्र ! कृष्णा राजोपसेवया।

कुलान्यकुलतां यानि यानि क्षीयानि इति ततः ॥ १८ ॥

कुविवाहः क्रियाक्षेपे वेदानध्ययनेन च।

कुलान्यकुलतां यानि ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ २० ॥

अपत्यान्धरदामाश्च तथाऽभयस्य भयस्यात्।

अश्वीतधर्माचरणात् विप्रं नमस्ति वै कुलम् ॥ २१ ॥

अश्वीतधियु वै दानात् इवलीषु तर्कव च ।

विहिताचारहीनेषु विप्रं नमस्ति वै कुलम् ॥ २२ ॥”

(कूर्मपुराण, उष्णिमान, १६ अ०)

कूर्मपुराणके मतमें—गो पशुवा घोटकके व्यवसाय, कृषिकर्मके अनुष्ठान, राजसेवा, कुलवृत्तिके विरुद्ध कार्यके सम्पादन, कुविवाह, कर्तव्यकर्मकी उपेक्षा, ब्राह्मणके अतिक्रम, मिथ्यावाक्य, परदाराभिलाष अभिन्न भक्षण, अश्वीत धर्मके आचरण और अश्वीतिय, वृषल तथा विहिताचारविहीन व्यक्तिकी दान करनेसे कुल बिगड़ जाता है ।

मनुके मतानुसार—कुलाङ्गनावीकी सुखसे रखना चाहिये । कारण उनको कष्ट मिलनेसे अचिर ही कुल नष्ट होता है । उन्हें सुखमें रखनेसे कुल बढा करता है । भगिनी, पत्नी, दुहिता, पुत्रवधू प्रभृति स्त्री यदि किसी कारण अवमानित होने पर अभिसम्पात करतीं, तो धन, पशु आदिके साथ कुल बिगड़ जाता है । अतएव यज्ञपूर्वक अलङ्कारवस्त्रादि द्वारा उनको सन्तुष्ट रखना चाहिये । दम्पतीमें सह्याव रहनेसे कुल वनता और असह्यावसे बिगड़ता है । कुविवाह, विहित कर्म तथा वेदादि अध्ययन एवं ब्राह्मणकी पूजाके अभाव, अविहित चित्र प्रभृति शिल्पकर्म, गो, अश्व, रथ आदिके क्रय विक्रय, कृषिकर्म, राजसेवा, अविहितकर्मके अनुष्ठान और विहितकर्मके परित्यागसे कुल नष्ट होता है । (मनु, १।४०-४५)

कुं भूमिं स्नाति गृह्णाति, कु-ला-क । २ जनपद, मुक्त, वसतो । ३ जाति, कोम । ४ गृह, घर । ५ देह, जित्त । ६ मध्यम हलद्वयसे कर्षित भूमि, दो मंभोले हलोंसे जोती हुई जमीन ।

“दशकुलभुञ्जीतविंशी पञ्चकुलानि च ।” (मनु ७।१८)

‘पञ्चन’ मध्यमें हलमिति तथाविधहलद्वयेन यावतो मुनिः कृष्यते ताव-
ज्भूमिं कुलमित्युच्यते ।’ (कुल्लूक)

७ वंशीय, घरानेवाले । ८ सजातीय समूह, हम-
कीमोंका जमाव । ९ समूह, झुण्ड । १० शक्ति ।

“अकुलं शिवभावश्च कुलं शक्तिः प्रकीर्तितम् ।

कुलाकुलानुसन्धाना निपुणाः कौलिकाः प्रिये ॥”

(कुलाचं वतन, १७ ग उल्लास)

११ तन्त्रके मतमें—प्रकृति, दिक्, काल, आकाश, चिति, जल, तेज, और वायु सकल पदार्थ समूह ।

“जीवःप्रकृतितत्त्वश्च दिक्कालाकाशमेव च ।

लित्यप्रीतिर्जीवायवश्च कुलमित्यभिधीयते ॥” (महाविर्वाण)

१२ वंशमर्यादा, घरानेकी इज्जत । कुलोन देखो ।

आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, तीर्थदर्शन, धर्म-
निष्ठा, प्रवृत्ति, तपस्या और दान कुलके नौ लक्षण हैं ।

“आचारो विनयो विद्या प्रतिष्ठा तोषं दर्शनम् ।

निष्ठाऽतिशयोदानं नवधा कुललक्षणम् ॥” (कुलराम)

१३ वदर, बैर । १४ कथाज्ञान । १५ सङ्गीतताल-
विशेष । (त्रि०) १६ अष्ट, बड़ा ।

कुल (अ० वि०) सम्पूर्ण, पूरा, सब ।

कुलक (सं० पु०-स्त्री०) कुल संज्ञायां कन् । १ मरुवक-
वृक्ष, महुवेका पेड़ । २ काकतिन्दुक, मकरतेंदुवा ।
३ कुपीलु, कुचिला । ४ पटोललता, परवलकी बेल ।
५ हरित्सर्प, हरा सांप । ६ वल्लीक, दीमककी
निकाली हुयी मट्टी । ७ कुलश्रेष्ठ । ८ शिल्पिप्रधान ।
९ समूह, टेर । १० परस्पर सम्बन्ध ५ स्त्रीक ।

“बलापकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः कुलकं व्यूतम् ।” (साहित्यदर्पण)

११ गद्य लिखनेकी कोई रीति । १२ भोग्यवस्तु,
काममें आनिवाली चीज ।

कुलकञ्जल (सं० पु०) कुलस्य वंशस्य कञ्जलं कालिमा
इव वंशगौरव-नाशनादित्यर्थः, ६-तत् । कुकार्य करके
वंशका गौरव नाश करनेवाला व्यक्ति, जो शस्त्र बुरे
काम करके खान्दानकी इज्जत बिगाड़ता हो ।

कुलकण्टक (सं० पु०) कुलस्य कण्टक इव कण्टकवत्
कुलवेधनत्वात् । वंशका कण्टकस्वरूप व्यक्ति, जो शस्त्र
अपने खानदानका कांटा हो ।

कुलकना (हि० स्त्री०) प्रसन्न होना, खुसीसे हसना
बोलना ।

कुलकन्या (सं० स्त्री०) कुले अष्टवंशे उत्पन्ना कन्या,
मध्यपदस्त्री० । सप्तवंशजाता कन्या, अच्छे घरानेकी
लड़की ।

कुलकर (सं० पु०) कुलं करोति, कुल-कृ हेतौ टः ।

कचो हेतुताच्छील्यानुलोमिषु । ८।१।२।२० । वंशप्रवर्तक, घराना
चलानेवाला ।

कुलकर्कटो (सं० स्त्री०) चीन तर्कटो, चीना ककड़ी ।

कुलकर्ता (सं० पु०) कुलस्य कर्ता, इ-तत् । वंशस्थापक, खानदान चलानेवाला ।

कुलकर्म (सं० स्त्री०) कुलस्य कर्म विभिन्नकुलस्य निर्दिष्टं विभिन्नमनुष्ठेयम्, इ-तत् । वंशका कर्म, खानदानो चाल । भिन्न भिन्न वंशके विवाहादि काल पृथक् पृथक् अनुष्ठेय कार्य 'कुलकर्म' कहलाता है ।

कुलकलङ्क (सं० पु०) कुलस्य कलङ्कः कुत्सितकार्यादिना तद्गौरवनाशकः, इ-तत् । वंशमें कलङ्क लगानेवाला व्यक्ति, जो शस्त्र अपनी बुरी चालसे खानदान में धब्बा लगाता हो ।

कुलकलङ्किनी (सं० स्त्री०) कुलस्य कलङ्किनी, इ-तत् । व्यभिचारादि द्वारा पित्र वा श्वशुर कुलकी अवमानना करनेवाली स्त्री, जो औरत छिनाला वगैरहसे अपने बाप या ससुरके घरानेको बदनाम करती हो ।

कुलका (सं० स्त्री०) १ पटोलसतिका, परबलकी बेल । २ मनःशिला, मैमसिल ।

कुलकानि (हिं० स्त्री०) वंशमर्यादा, खानदानकी इज्जत ।

कुलकुण्डलिनी (सं० स्त्री०) कुलचक्र कुण्डलाकारेण वेष्टयित्वा तिष्ठति, कुलकुण्डलिन्-ङीप् यद्वा को पृथिवी-तत्त्वाधारे मूलाधारे लीयते, कु-ङी-ङ । कुलाचारियों की उपास्य कुण्डलिनी । तन्त्रशास्त्रप्रसिद्ध मूलाधारका सर्पितुल्या एक शक्ति । उसका स्वरूप प्रभृति शारदा-तिलकमें इस प्रकार वर्णित हुआ है—

कुलकुण्डलिनी चेतन्यस्वरूपा और सर्वगामिनी है । विश्वसंसार उसीका एक अंश है । वह शिवके सज्जिधानमें रह सर्वदा आनन्द उठाती और साधकका भी आनन्द बढ़ाती है । कुलकुण्डलिनी दिक्काल प्रभृति द्वारा अनवच्छिन्ना रहती अर्थात् किसी देश और किसी समयमें उसकी अनुपस्थिति नहीं पड़ती । वेदमें कुण्डलिनी ही परा और अपर नामसे वर्णित हुयी है । योगियोंके हृदयपद्ममें उपस्थित हो वही मृत्यु करती और योगियोंको परमानन्दसे भरती है । वह प्राचिमात्रके मूलाधारमें विद्युत्की भांति दीप्ति कर रही है । कुण्डलिनीशक्ति शब्दावर्तनिभा है । वह सकल ज्ञानमें व्याप्त हो अवस्थिति करती है । कुण्डलीकृत

सर्पकी भांति उसकी आकृति है । इसीसे कुण्डलिनी नाम पड़ा है । वही विश्वस्वरूपिणी प्रभु हो सकल जगत्को प्रसव करती है । सकल देवता उसके अंश है । वह सर्वमन्त्रमयी और सर्वतत्त्वस्वरूपिणी है । कुण्डलिनी देवी सूक्ष्मा, व्यापिका, चन्द्र-सूर्याग्नि-स्वरूपा, विशाल ब्रह्माण्डकी दृष्टिकर्त्री और शब्द-ब्रह्ममयी है । श्रैवसिद्धान्तके शक्ति शब्दमें कुलकुण्डलिनीका उल्लेख किया जा चुका है । वह सत्व, रजः और तमोगुणमयी है । सांख्यशास्त्रमें 'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः' इत्यादि सूत्रसमूह द्वारा प्रकृतिके नामसे उक्त कुण्डलिनी देवी ही निरूपित हुई है । शक्तिमान् शिव आत्मा और शक्ति प्रकृति है । शक्तिमान् और शक्तिकी अभेद कल्पना करके तन्त्रशास्त्रमें कुण्डलिनीको चेतन्यस्वरूपा कहा गया है । भगवान्ने अर्जुनसे—

“धूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरिव च ।

अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरुच्यते ॥

अपर्यमितस्त्वस्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।”

इत्यादि पाठम्बर करके परा और अपरा प्रकृति-की जो वर्णना की, उसके द्वारा भी कुलकुण्डलिनी ही वर्णित हुई है । “विचार जनने” नावामष्टरूपामगाम्, वाम् ।” श्रुतिने तारस्वरसे कुण्डलिनीका ही निरूपण किया है । वेदान्तिक उसीको मायाकी भांति वर्णना करते हैं । वह सकलकी बोधगम्या नहीं ।

मूलाधारमें कुण्डलिनीको ध्यान करके पूजना चाहिये । कुण्डलिनीका ध्यान करनेसे साधक शीघ्र योगी हो सकता है । ध्यान इस प्रकार है—

“प्रसुप्तसुषुप्ताकारां लयभू लिङ्गमाश्रिताम् ।

विद्युत्कोटिप्रभां देवीं विचित्रवसनान्विताम् ।

यद्गारादिरसीन्नासां सर्वदा कारवप्रियाम् ।

एवं ध्यात्वा कुण्डलिनीं ततो यमेत् समाश्रितः ।”

‘कुण्डलिनी देवीकी निद्रित भुजङ्गी-जैसी आकृति है । वह स्वयम्भूलिङ्गको वेष्टन किये हुयी है । कुण्डलिनी कीटि विद्युत्की भांति दीप्तिमती, नाना वसन द्वारा विभूषिता, शृङ्गारादि रसभावबुला और सर्वदा कारणप्रिया है ।’ इसी प्रकार कुलकुण्डलिनीको ध्यान करके पूजना पड़ता है । पूजा समापन करके वाग्भव

मन्त्र (ऐं) जपना चाहिये । फिर नामाविध स्तव द्वारा देवीको समुष्ट करते हैं ।

सूर्यामन्त्रमें प्रकारान्तरसे कुलकुण्डलिनोकी उपासना निरूपित हुई है । प्रातःकाल गात्रोत्थान करके मङ्गल-मय श्रीगुरुके चरणकमलको सहस्रदलपद्ममें चिन्ता करना पड़ता है । पीछे हस्तपद्ममें श्रीपदको चिन्ता करके विविध उपचारसे पूजापूर्वक नमस्कार करना चाहिये । फिर त्रैलोक्यव्यापिनी, चिन्मयी, स्रयश्चलिङ्ग वेष्टिता, हादशाङ्गुलप्रमाणा और मूलाधारमें कुण्डली भूता सर्पोंकी भांति अवस्थिता कुलकुण्डलिनोका जागरित करके मस्तकस्थित सुधाब्धमें निविष्ट कराते हैं । उस स्थान पर उसे सुधा पिना करके पुनर्वार मूलाधारको आनयन करना चाहिये । आनयनकाल सुषुम्ना नाड़ीकी मध्यगत चित्रिनी नाड़ीके बीचसे उसे ले चलने हैं । ऊर्ध्वगमनकाल कुलकुण्डलिनोको तेजोमयी और पुनर्वार घूम कर मूलाधारको जाते समय प्रसृतमयी चिन्ता करना चाहिये । इसी प्रकार बार बार चिन्ता करके साधक सर्वसिद्धिका अधीश्वर हो सकता है । पीछे देवीको मानसोपचारसे पूज माया-वोज (क्लीं), कामवोज (क्लीं) और पञ्चाशत् वर्ष मासा अनुलोम तथा विलोमसे यथाशक्ति जप करना चाहिये ।

कुलकुलाना (हिं० क्रि०) १ कुल कुल करना, घेर घेर कोलना । २ कुलकना, खुश होना ।

कुलकेतन—दाक्षिणात्य-प्रसिद्ध कलिङ्गके एक पूर्व-तन राजा ।

कुलकत् (सं० पु०) ककर, चकरकरा ।

कुलक (सं० पु०) करताली, हाथकी थपेड़ी ।

कुलक्रिया (सं० स्त्री०) कुलस्य क्रिया निर्दिष्टमनुष्ठेयम्, ६-तत् । १ भिन्न भिन्न वंशका विभिन्न आचार, अपने अपने घरानेकी चाल । २ कुलकार्य, घरानेका काम ।

कुलक्षण (सं० स्त्री०) कुलितं लक्षणं कुगतिस० ।

१ निम्न लक्षण, बुरी प्रसामत । २ कुरीति, बुरी चाल ।

(त्रि०) १ निम्न लक्षणयुक्त, बुरी प्रसामतवाला । ४ दुराचार, बुराचल ।

कुलक्षयो (सं० त्रि०) निम्नलक्षणविशिष्ट, बुरी प्रसामत-वाला ।

कुलक्षय (सं० पु०) कुलस्य वंशस्य क्षयो ध्वंसः, ६-तत् । पुत्रपौत्र पात्नीय स्त्रजन प्रभृतिके विनाशसे वंशका अधःपतन और ध्वंस, घरानेका बिगाड़ ।

कुलक्षयके पीछे जो घटना आती, वह गीतामें वर्णित दिखाती है—कुलक्षय होनेसे समातन कुलधर्म विलुप्त हो जाता है । कुलधर्मके अभावमें चारतर अधर्म कुलको आक्रमण करता और कुलस्त्रियोंका आचरण बिगड़ता है । कुलकामिनियोंके दूषित होनेसे वर्णसङ्घर्षोंको उत्पत्ति होता है । जिस वंशमें सङ्घर्षोंकी उत्पत्ति देख पड़ती, उस वंशके कुलनायक व्यक्तियोंको अधम गति मिलती है । उस वंशमें फिर पूर्वपुरुषोंके आचरणके अधिकारी नहीं रहते । आह-विण्णदान एकवारगो हो विलुप्त हो जाता है । आहवि क्रिया विलुप्त होनेसे पूर्वपुरुष नरकगामो होते हैं । जो कुलनायक ठहरते, उनके सङ्घर्ष प्रभृति समस्या दोषोंसे जातिधर्म उत्सन्न हो जाता है । जातिधर्म उत्सन्न होनेसे मनुष्योंको निम्न नरकमें रहना पड़ता है ।

(भगवद्गीता, १ अध्याय)

कुलक्षया (सं० स्त्री०) १ कर्पूरशटी, किसी किस्मकी जङ्गली पदरक । २ कपिकच्छ, केवाँच ।

कुलगरिमा (सं० पु०) कुलस्य गरिमा गौरवम्, ६-तत् । वंशगौरव, घरानेका बढ़प्पन ।

कुलगिरि (सं० पु०) कुलपर्वत, हिन्दुस्थानके सात बड़े पहाड़ोंमें एक पहाड़ ।

“यस्य नामग्रामवस्थितः सर्वतः सौरवः ।

कुलगिरिराजो महर्षीपायाम समुदाहः ॥” (भागवत, ५।१६।७)

कुलगृह (सं० स्त्री०) कुलस्य गृहम्, ६-तत् । वासगृह, रहनेका घर ।

कुलगोप (वे० पु०) कुलं गोपयति रक्षति, कुल-गुप्-वञ् । वंश और गृहका रक्षक, खानदान और मकानका सुहृदफिज ।

“एष वे व्याघ्रः कुलगोपो यदग्रिः ।” (तैत्तिरीयसंहिता ६।२।५।५)

कुलस्र (सं० त्रि०) कुलं हन्ति, कुल-हन्-टक् । वंश-नाशक, खानदान बिगाड़नेवाला । जो व्यक्ति कुलकर्मा-चरणसे वंशके लोपका कारण ठहरता, उसीका नाम

कुलस्र पड़ता है—

“दीर्घरेतः कुलङ्गानां वर्षेसद्वरकारणैः ।

उज्जायने जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥” (गीता)

कुलङ्ग (सं० पु०) कृष्णसर्पविशेष, एक कासा साप ।

कुलङ्ग (फा० पु०) १ पक्षिविशेष, कोई चिड़िया ।
उसका शिर रक्तवर्ण और अवशिष्ट मात्र धूसरवर्ण होता है । कुलङ्ग का कण्ठ दीर्घाकार रहता है । वह लकलकावे बड़ा और जलके निकट निवास करने-वाला है । २ कुलट, सुरगा ।

१ व्यंज्यसे लम्बी टांगीवाले पादमीको भी ‘कुलङ्ग’ कहते हैं ।

कुलङ्गी (सं० स्त्री०) मिथुङ्गी, ककड़ासींगी ।

कुलचण्डी (सं० स्त्री०) कुले शत्रुसमूहसे चण्डी कोपना तथा विनाशिकेत्यर्थः । देवीभेद ।

कुलचन्द्र—१ कलापव्याकरणके दुर्गावाक्यप्रबोधक नामक जनेक टीकाकार । २ मणिपुरके अन्तिम स्वाधीन राजा । ब्रिटिश गवर्नमेंण्टने उनको राज्यभ्रुत करके हीपान्तरमें निर्वासित किया था । मणिपुर देखो ।

कुलचा (हिं० पु०) १ किसान किरमकी रोटो । वह खमीरसे बनती और खूब फूली हुई रहती है । २ कोई गोल लड्डू । वह तम्बू या खेमिके उण्डे पर लगता है । ३ गुप्तभावसे संगृहीत धन, पोशीदा तौरसे जमा किया हुआ रुपया ।

कुलचा शब्द फारसीके ‘कलीचा’ का अपभ्रंश है ।

कुलचूड़ामणि (सं० पु०) १ घटक, बिचवानो, विवाह-का सम्बन्ध स्थिर करनेवाला । २ कोई प्राचीन तन्त्र । तन्त्रसार, शक्तिरत्नाकर, शाक्तानन्दतरङ्गिणी प्रभृति ग्रन्थोंमें उससे प्रमाण उद्धृत हुये हैं । कुलचूड़ा-मणि तन्त्रमें कुलप्रशंसा, कौलकर्तव्यता, कुलशक्तिपूजा, कौलिकानुष्ठान, महिषमर्दिनोत्सव प्रभृतिको वर्णन किया गया है । सदाशिव शक्तन उक्त तन्त्रकी एक टीका लिखी है ।

३ कोई पाण्डुराज । वह सोमचूड़ामणि पाण्डुरके पुत्र थे ।

कुलच्युत (सं० त्रि०) कुलात् च्युतः परिभ्रष्टः, ५-तत् ।
जातिच्युत अथवा समाजच्युत, कौम या जमातसे निकाला हुआ । जो व्यक्ति अकार्यानुष्ठान करने पर

जाति वंश वा समाजसे बहिष्कार किया जाता वही ‘कुलच्युत’ कहा जाता है ।

कुलज (सं० पु०) कुले सत्कुले जायते, कुल-जन-उ ।
सप्तमां जनेष्टः । पा १ । २ । २० । १ सत्कुलोद्भव व्यक्ति, अच्छे घरानेका पादमी ।

“कुलजे वितसन्त्यन्ने धर्मेष्टे सत्यवादिनि ।

महापत्ने धनिव्याधिं निषेपं निषिधेदुधः ॥” (मनु ८।१०८)

२ पटोल, परवल ।

कुलजन (सं० पु०) कुले सत्कुले जातो जनः, मध्यप-दलो० । महदंशोद्भव, बड़े घरानेका पादमी ।

कुलजा (सं० स्त्री०) कुलज-टाप् । कुलपालिका, सद्-वशोत्पन्ना गुणवती सती स्त्री, खान्दानी औरत ।

कुलजा (हिं० स्त्री०) वन्यमेष-भेद, किसी किसमकी जङ्गली भेड़, वह पामोर और घिलचिटमें मिलतो है ।

कुलजात (सं० त्रि०) कुले सत्कुले जातः सम्भूतः, ७-तत् ।
सत्कुलोद्भूत, खानदानो, अच्छे घरानेवाला ।

कुलज (सं० पु०) कुलं जानाति, कुल-जन् कः । घटक, कुलका वृत्तान्त जाननेवाला व्यक्ति ।

कुलज (सं० पु०) कुं पृथिवीं रक्षयति, कु-रक्ष-णिच्-भल्, रक्षाने लकारः । गन्धमूलवृक्ष, कुलज्जन ।

कुलज्जन (सं० पु०-स्त्री०) १ गन्धमूलक, खुशबूदार जड़का एक पेड़ । वह चार्द्रकसे मिलता और ब्रह्म, मलयद्वाप तथा चीन प्रभृति देशोंमें उपजता है । कुलज्जनकी मूलको बाहर भेजते हैं । २ महाभैरवी वचा, सफेद वचा । वह कटु, तिक्त, उष्ण, अग्निदीपन, रुच्य, स्वर्य, हृद्य, सुख तथा कण्ठका विशुद्धकारो और मुखदोष, कफ, कास, वानस्पृक एवं हृत् कुष्ठनाशक है । (बैद्यकनिष्य) कुलज्जनको संस्कृतमें कुर्णज गन्धमूल और कुलज्ज भी कहते हैं ।

कुलट (सं० पु०) कुलात् कुलान्तरमटति, पचाद्यच् पचात् कुल-अट् शकन्वादिवात् साधुः । १ पिछकुलकी परित्याग करके अन्यकुलका पान्त्रय लेनेवाला, जो अपने घरानेको छोड़ दूसरेके घरानेका सहारा पकड़े हो । औरस और दत्तकपुत्र व्यतीत पणक्रीत तथा चैत्रज प्रभृति पुत्रोंको कुलट कहा जाता है । २ व्यभि-चारी, ऐयाश, रण्डीवाज ।

कुलटा (सं० स्त्री०) कुलात् कुलान्तरमटति व्यभि-
चाराय, घट पचाद्यच् पचात् कुल-घटा शकन्वादिवत्
साधुः । शकन्वादिवु च । पा १।१।२४। नार्तिक “शकन्वादिवु परकपं वक्त-
व्यम् ।” (महाभाष्य) ‘घटति इत्यटा पचाद्यच् पचात् कुलीन सम्बन्धः चत्वार्य
कर्मण्य निष्पत् प्रसङ्गः ।’ (वेदटभाष्यप्रदीप)

१ व्यभिचारके विचारसे अपने कुलको परिष्ठाप
करके अन्यकुलमें गमन करनेवाली स्त्री, हिनालेके
खयालसे अपने घरानेकी छोड़ दूसरे घरानेमें मिल
जानेवाली औरत ।

“परपतिनिर्दयकुलटा शोषित शठ । भव्या न कोपिन ।

दग्धममसीपतसा रोदिमि तव तानव’ वीचा ॥”

(चार्वाकसप्तमी, १२९)

कुलटाका संस्कृत पर्याय—पुंखली, धर्षिणी, बन्धकी,
चसती, इत्वरी, खैरिणी, धर्षणी, पांसुला, छटा, दुष्टा,
धर्षिता, निशाचरी, लङ्का और तपारण्डा है ।

२ परकीया नायिकाभेद ।

“कोल कङ्को कुलटा कुलीन चकुलीन कङ्को ।” (१६)

संहिताकारोंके मतमें कुलटाका प्रसन्न खानेसे प्राय-
चित्त करना पड़ता है । प्रायश्चित्त देखो ।

कुलटौ (सं० स्त्री०) मनःशिला, मेनसिल ।

कुलतत्त्ववित् (सं० पु०) कुलस्य वंशस्य तत्त्वं वेत्ति,
कुल-तत्त्व-विद्-क्विप् । कुलतत्त्वज्ञ, कुलतत्त्वान्त जानने-
वाला व्यक्ति ।

कुलतन्तु (सं० पु०) कुलस्य तन्तुरिव तस्य कुलवर्धकत्वा
दित्यर्थः, ६-तत् । वंशका सूत्र, खानदानका डोरा ।
जो वंशका सूत्रस्वरूप रहता और जिससे वंश बढ़ता,
उसीका नाम कुलसूत्र पड़ता है । कुलसूत्र सम्मान वा
अपत्यको कहते हैं ।

कुलतारन (हिं० वि०) वंशपवित्रकारी, जो घरानेको
तारता हो ।

कुलतिथि (सं० स्त्री०) कुलानां कुलाचारिणां तिथिः
देवताराधनाय प्रयुज्यतेत्यर्थः ६-तत् । तन्त्रके मतमें—
चतुर्थी, षष्ठमी, द्वादशी और चतुर्दशी ।

कुलतिलक (सं० पु०) कुलस्य वंशस्य तिलक इव, उप-
मितसं० । वंशश्रेष्ठ, अच्छे कामोंसे घरानेकी इज्जत
बढ़ानेवाला पादमी ।

कुलदण्ड (सं० स्त्री०) दमनक, दोना ।

कुलति—इय कोङ्कुराज माधवके वंशधर । उनका अपर
नाम परिकुलति राय था ।

कुलत्य (सं० पु०) १ शस्त्रविशेष, कोई घनाज, कुलथी ।
उसका संस्कृत पर्याय—काशताम्रगुड, ताम्रवीज,
सितेतार और कुलतिका है । वह लक्ष्य और वन्यभेद-
के दो प्रकारका होता है ।

भावप्रकाशके मतमें कुलत्य कषाय, पाचक, कटु,
पित्त तथा रक्तजनक, लघु, विदाही, उष्णवीर्य और
स्नेहरोधक है । उससे श्वास, कास, कफ, वायु, हिक्का,
अश्मरी, शुक्रदाह, पानाह, पौनस, स्नेह, ज्वर और
क्षमि विनष्ट होता है । उसका यूष वायु, शर्करा तथा
अश्मरी विनाशक है । कुलथो देखो ।

२ जनपदविशेष, कोई बसती या सुत्त । (महाभरत,
भीष्म, ८ अध्याय) कुलूत देखो ।

कुलत्यगुड (सं० पु०) हिक्का और श्वासका शोध-
विशेष, हिचकी और दमाकी एक दवा । कुलत्य १००
पल, दगमूल (सब मिलाकर) १०० पल और भार्गी
१०० पल ६४ शरावक वारिमें एकत्र वा घृथक् घृथक्
क्वाथ करते और पादावशिष्ट रहनेसे उतार रखते हैं ।
फिर ५० पल गुडको पाक कर लेह जैसा बना लेते
और उसमें मधु ८ पल, वंशरोचना ६ पल, पिप्पली
२ पल तथा गुडत्वक्, तेजपत्र एवं एला २ तोला पीस
कर डाल देते हैं । (चक्रदान)

कुलत्ययूष (सं० पु०) आमकुलत्यसाधित क्वाथ, कच्ची
कुलथीका रस । वह उष्णवीर्य, मधुर, अग्निप्रदोपन,
कषाय और शुष्म, कफ, वायु, अग्नि, श्वास, कास,
तथा मेहनाशक होता है । (वैद्यकनिष्यङ्ग)

कुलत्यघटपलघृत (सं० स्त्री०) हिक्का और श्वासका घृत,
विशेष, हिचकी और दमाका एक घी । कुलत्य २ शरा-
वक, मिलित दगमूल २ शरावक क्वाथके लिये ६४
शरावक जलमें डाल पाक करते हैं । फिर १६ शरावक
जलशेष रहनेसे उक्त क्वाथ उतार लिया जाता है ।
पीछेको उसमें घृत ४ शरावक, गन्धदुग्ध ४ शरावक
और कल्पाय पञ्चकोल तथा यवचार एक एक पल
डाल करके यथानियम पाक करनेसे उक्त घृत प्रसृत
होता है । (रसरत्नाकर)

कुलत्थसूप (सं० पु०) भट्टकुलत्थ सिद्धयूष, भूनी हृषी कुलथीका रसा । कुलत्थसूप वातघ्न, कटु, पाकमें कषाय, पित्त, शुक्र तथा पञ्चकार और श्वास, कास एवं चर्मरोगनाशक है । (वैद्यकनिषध)

कुलत्था (सं० स्त्री०) १ कुलत्थाप्लवन, काला सुरमा । २ वनकुलत्थिका, जङ्गली कुलथी । उसका संस्कृत पर्याय—टुकप्रसादा, अरण्याकुलत्थिका, कोचनक्रिता, चक्षुष्या, कुम्भकारिका, कुलत्थिका, कुनाली और प्रपा पहा है । वह कटु, चक्षुष्य, व्रणरोपण, तिक्त और अग्नि, शूल, विवस्त्र तथा आध्माननाशक होती है ।

(राजनिषध)

कुलत्थाप्लवन (सं० स्त्री०) कुलत्थया ज्ञतमप्लवनम्, मध्य-पदलो० । प्लवनविशेष, काला सुरमा । उसका संस्कृत पर्याय—कुम्भकारो और प्रलापहा है । वह चक्षुष्य, कषाय, कटु, शीतल और विष, विस्फोटक, कण्डू तथा अतिव्रणोपनाशक है । (राजनिषध)

कुलत्थादिलेप (सं० पु०) कर्षमूलके शीथका लेप-विशेष । कुलत्थ, कटुफल, शुण्ठी और लवणजीरक समभाग जलमें पीस ईषत् उष्ण करके उत्त लेप बनाया जाता है । (भावप्रकाश)

कुलत्थाद्यष्टत (सं० स्त्री०) चर्मरोगका घृतविशेष । पथरीकी बीमारी पर लगाया जानेवाला एक घी । घृत ४ शरावक और वङ्गत्वक् १२ । (मतान्तरमें ८) शरावक ६४ शरावक जलमें डाल पाक करते हैं । १६ शरावक जल शेष रहनेसे उत्त त्रायको उतार लिया जाता है । फिर उसमें कुलत्थादि कष्टक एकत्र पाण्य है । मतान्तरमें—घृत ४ शरावक, वङ्गकी छाल ४ शरावक और जल १६ शरावक एकत्र पाककर ४ शरावक शेष रहने पर उतार लेते हैं । फिर उसमें कर्षार्थ कुलत्थ, सैन्धव, विडङ्ग, शर्करा (चीनी), शेफालिकी छाल, यवचार, कुष्माण्डीबीज और गोक्षुरबीज प्रत्येक आठ आठ तोले पड़ता है ।

कुलत्थाज (सं० स्त्री०) कुलत्थजत भक्त, कुलथीका भात । वह मधुर, कषाय, रुच्य, उष्ण, लघु, क्षतिकर, पाकमें कटु, अग्निदीपन और कफ, वात, क्षमि तथा श्वास-नाशन होता है । (वैद्यकनिषध)

कुलत्थिका (सं० स्त्री०) १ कुलत्थाप्लवन, काला सुरमा । २ कुलत्थ, कुलथी । ३ वनकुलत्थ, वनकुलथी । ४ रक्त-कुलत्थ, लाल कुलथी । ५ शीतलादेवी ।

कुलत्थी, कुलत्था देखो ।

कुलथ, कुलथी देखो ।

कुलथी (हिं० स्त्री०) कुलत्थिका, उड़द जैसा मोटा पत्र । उसको संस्कृतमें कुलत्थ वा कुलत्थिका, बङ्गलामें कुर्तिकन्नाय, सन्तानीमें होरेक, कुमाय् प्रान्तकी भाषा-में गहत या कलश, सिन्धुमें कोल, मध्यप्रान्तकी बोली-में कादकी, बम्बेयामें कुलग, दक्षिणी तथा मारवाड़ी-में कुल्लिथ, गुजरातीमें कलथि, तामिलमें कोल, तेलगु-में बुलवलि, कनारीमें कुग्लो और मलयमें मूथिर कहते हैं । (*Dolichos uniflorus*)

भारतमें कुलथी दो प्रकारकी होती है । सीधी और जोड़दार । हिमालय, सिन्धु और ब्रह्मदेशमें वह पायी जाती है । कभी कभी उसको बो भी देते हैं । पहाड़ी और देशी कुलथीमें बड़ा भेद है । बङ्गाल और मद्राज-में काली-भूनी दोनों प्रकारकी कुलथी बोयी जाती है । भूरे बीजकी कुलथीका पौड़ा सीधा होता है । उसकी शाखा लुड़ी रहती हैं । वह दो-तीन फीट तक बढ़ती है । खेतीको छोड़ कर कुलथी वन्य अवस्थामें कम देव पड़ती है । भारतके सागरतट पर भूरी कुलथी बहुत बोयी जाती है । उसके लिये सूखी हलकी, और उपजाऊ भूमि आवश्यक है । अक्तोबर और नवम्बर बीज-डालनेका समय है ।

कुलथीको हरी खाद या चारा और पनाजके लिये बोते हैं । कुलथीको खाद खेतमें बहुत लगती है । उसकी घास भी कम नहीं हाती । वह प्रत्येक ऋतुमें उत्पादन की जासकती है । हर एक फसल बिगड़ते भी कुलथी बनी रहती है । उसके जगनेके लिये एक ही पानी पर्याप्त होता है । बिलकुल पानी न पाते भी कुलथीके बीज महीनों भूमिमें गड़े जोते रहते और वर्षा गिरते ही भटसे निकल पड़ते हैं । रबो काट कर उसे बो देने पर एक महीनेमें चारा पाने लगता है, खाद देनेको कोई आवश्यकता नहीं । चंकुवा निकल पाने पीछे एक ही पानी मिलनेसे काम चल

जाता है। कुलधुर्यको जड़मे सखाड़ डेर लगाने और उस पर डेल चलाते हैं।

कुलधुर्यको पत्तियां और डालियां गाय बैलों और घोड़ोंको खिलायी जाती हैं। विशेषतः मन्द्राजमें उसे घोड़ोंको बहुत देते हैं। कुलधुर्यको भूसी भी मवेशी खाते हैं।

कुलधुर्यको बीजमें एक प्रकार तैल निकलनेकी बात सुन पड़ती है। परन्तु उसका हाल किमीका मालूम नहीं। गरीब हिन्दु यानी कुलधुर्य खाते हैं। कुलधुर्य देखो।
कुलदत्त—एक नेपाली बौद्ध ग्रन्थकार। उन्होंने क्रिया-संग्रहपञ्चिका नामक किसी बौद्ध ग्रन्थकी रचना किया है। कुलदत्तने अपने ग्रन्थमें इस बातका परिचय दिया कि वह तन्त्र शास्त्रके अनुकरण पर लिखा गया है। यथा—“निरोध तन्त्रं निखिलं समर्थं संयुता चारुता विग्रहा।”

उक्त ग्रन्थमें तान्त्रिक कथा-श्रुतीत, विचार और बौद्धदेवदेवीकी मूर्तिकी निर्माण प्रणाली लिखी है।

कुलदमन (सं० पु०) कुलस्य दमनः शासयिता कुल-दमन्यादित्वात् ल्य। कुलशासक, घरानेकी दशाकर रखनेवाला।

कुलदान—पाराकानमें प्रवाहित एक नदी। वह यम-गिरिसे निकल आकयाव नगरके निकट वङ्गोपसागरसे मिलित हुयी है। युरोपीय उसको पाराकान नदी कहते हैं।

कुलदीप (सं० पु०) कुले कुलाचारे पूजार्थं विहितो दीपः, मध्यपदलो०। १ तन्त्रसारोक्त कुलाचारका अङ्ग-स्वरूप कोई दीप, घरानेका चराग या दीया। मन्दार, कर्पूर और वाय्यालक रुईसे वर्तित प्रसृत कर प्रदीप लगाना चाहिये। इस प्रकारसे बना हुआ दीप ही कुलदीप कहाता है। अस्त्रमन्त्रसे कुलदीपकी पूजा करना पड़ती है। कुलदीप सज्जा निवारण हो जानेसे जानाविध विघ्न उपस्थित होते हैं। (तन्त्रसार)

कुलं दीपयति सञ्ज्वलौकराति, कुल-दीप-विष्-पण्। २ कुलज्ज्वल, खानदानमें सबसे बड़ा।

कुलदुहिता (सं० स्त्री०) कुले स्वकीये सत्कुले वा दुहिता। १ अर्द्धशोभा कन्या, अपने घरानेकी लड़की। २ सद्धर्माशोभा कन्या, भले घरानेकी लड़की।

कुलदूषक (सं० त्रि०) कुलस्य वंशस्य दूषकः, कुल-दुष्-कुल। वंशमें दोष लगाने वाला, जो मनुष्य व्यभिचार आदिसे घरानेमें बुराई पैदा करता या उसे भलाबुरा कहता है।

कुलदूषक (सं० त्रि०) कुलस्य दूषकः, कुल-दुष्-णिच् नन्त्यादित्वात् ल्य। १ कुलाङ्कार, घराना बिगाड़नेवाला। (क्लो०) २ वंशदोष, घरानेका दोष।

कुलदेवता (सं० स्त्री०) कुले पाराध्या देवता, मय-पदलो०। १ वंशकी पाराध्य देवता। २ गोपीदि पङ्क मातृकाके मध्य एक।

“शक्तिः पुष्टिर्भक्तिस्तृप्तिरामदेवतया सह।

चात्री विनायकः पूज्योऽस्ते च कुलदेवता॥” (यन्त्रविधि)

कुलदेवी (सं० स्त्री०) कुलेः कुलाचारेरुपाया देवी। १ तन्त्रसारके मतमें—त्रिपुरा, त्रिपुरेयी, सुन्दरी और पुरसुन्दरी प्रभृति कई देवता। २ वंशपरम्परापूजिता देवी।

कुलदेव (सं० स्त्री०) कुलस्य देवं मङ्गलम्, ६-तत्। १ वंशका कुमल, घरानेकी भलाई।

“विप्रस्य चाकृतं कुलदेवदेवतैर्विषे हि भद्रं तदनुष्मन् हि नः।”

(मानवत, २।५।२)

२ कुलदेवता।

“नमो ब्रह्मकुलात् प्रायाः कुलदेवाय चाकृताः।” (मानवत, २।२।४४)

कुलद्रव्य (सं० स्त्री०) मय, शराव। तान्त्रिक मयकी कुलद्रव्य कहते हैं। मय देखो।

कुलद्रुम (सं० पु०) कुलः द्रुमः, नित्यस०। छत्रविशेष, कोई पेड़। शेषान्तक, करञ्ज, विश्व, अश्वत्थ, कदम्ब, निम्ब, वट, उदुम्बर, धात्री और तिलिङ्गी दश कुल-द्रुम हैं।

कुलधर, कुलधारक देखो।

कुलधर्म (सं० पु०) कुलविशेषाश्रितो धर्मः, मध्य-पदलो०। वंशधर्म, घरानेका काम।

“शक्तिजानपदान् धर्मान् च बोधर्मां च धर्मवित्।

समोच्य कुलधर्मां च स्वधर्मं प्रतिपादयेत्॥” (मनु०। २।१)

कुलधारक (सं० पु०) कुलं धारयति, कुन् धृ विच्-खल्। कुलको धारण करनेवाला, पिछर, बैठा।

कुलधुर्य (सं० त्रि०) कुलेषु धुर्यः अठ, ७-तत्। वंश-

येष्ठ, आनदानका खिलापिला और वचा सकनेवाला शस्त्र ।

कुलध्वज—दाक्षिणात्यके एक पाण्डुराज । वह पाण्डुरेश्वर पाण्डुरके पुत्र थे ।

कुलन (हि० स्त्री०) पीड़ा, दर्द, कल्लाहट ।

कुलनचक्र (सं० स्त्री०) नक्षत्रभेद । भरणी, रोहिणी, पुष्या, मघा, उत्तरफल्गुनी, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा, श्रवणा, और उत्तरभाद्रपदकी कुलनचक्र कहते हैं ।

कुलनन्दन (सं० पु०) कुलं नन्दयति, कुल-नन्द-णिच्-नन्दादिखात् ल्यु । सत्कार्यं सम्पादनपूर्वकं वंशो आनन्दं देनेवाला व्यक्ति, जो शस्त्र भले कामोंसे अपने घरानेको खुश करता हो ।

कुलना (हि० स्त्री०) पीड़ित होना, दर्द करना, दुखना, टोसना ।

कुलनाथ—एक विख्यात टीकाकार । उनकी कृत रावणवधटीका और हालप्रणीत सप्तशती की टीका मिली है ।

कुलनायिका (सं० स्त्री०) कौलिका की पूजनीय नायिका । कौलिक यथोक्त विधानसे कुलनायिकाकी उपासना करके सिद्धि लाभ कर सकते हैं । निरुत्तर तन्त्रमें लिखा है—

“निलोभा कामहोना च निलंज्जा हृदयजिता ।

शिवसङ्गता साध्वी स्त्री च्छया विपरीतगा ॥”

“एवं सा कुलना देवी त्रिषु लोकेषु पूजिता (गोपिता) ।”

(५ म पटल)

जा साध्वी कुलरमणी लोभशून्य एवं कामहीन रहती, जिसके हृदयमें लज्जा तथा सुख दुःख उभय नहीं, जो सर्वदा आनन्दमयी होती, योगबल किंवा अन्य किसी उपायसे जिसका सत्वगुण रजः और तमोगुणकी अभिभूत कर अतिप्रबल पड़ा और जो इच्छा करते ही विपरीत दिक्की गमन कर सकती अर्थात् जो किसी विषयमें आसक्ति नहीं रखती, वह कुलनायिका त्रिभुवनमें पूजनीय ठहरती है । कौलिकोंको उसका अवलम्बन कर उपासना करना चाहिये ।

“माता च भगिनी देव दुहिता च कृपा तथा ।

गुरुपत्नी च पत्नीता राजपत्नी प्रपूजयेत् ॥

वस्त्रालङ्कारभूषणैर्गन्धमाख्यामुद्यमेः ।

पूजयेत् परया भक्त्या देवताभ्यो निवेदयेत् ॥

भक्त्या नानाविधं द्रव्यं नानावस्त्रसज्जितम् ।

आसवं शुद्धिसंयुक्तं ताम्रं दद्यात् पुनः पुनः ॥

प्रथमं प्रजपेन्मन्त्रं हृष्टा तां सङ्कलम् ।

चक्रं नो व स्पृशेत् तासां स्पृशेत् नरकं व्रजेत् ॥”

माता, भगिनी, दुहिता, पुत्रवधू, वीरपत्नी वा गुरुपत्नी कुलनायिकाकी राजचक्रमें पूजा करना चाहिये । वस्त्र, अलङ्कार, अङ्गराग, गन्ध, माख्य और अनुलेपन प्रभृति द्वारा परम भक्ति सहकार उनकी अर्चना करनेका विधान है । उनको देवता मान कर नानाविध भक्त्य और वस्त्रालङ्कार निवेदन करना चाहिये । नायिकागणको बार बार शुद्धियुक्त आसव प्रदान करते हैं । उनको प्रणाम करके अवलोकन करते करते सङ्कलजप किया जाता है । कुप्रतिप्रायसे उनका चक्र कभी स्पर्श करना न चाहिये । कारण उससे नरकगामी होना पड़ता है । (निरुत्तर, १० पटल)

“माता भग्यो सुवा कन्या वीरपत्नी कुलेश्वरि ।

महाचक्रं यजेद्देताः पञ्च शक्तीः पुनः पुनः ॥

द्रव्यदाने तु संपूजा न शक्ती लिङ्गयोजनम् ।

योजयेत् सिद्धिदानिः स्यात् रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

महान्याधिभवेद्देवि धनदानिः प्रजायते ।

सर्वदा दुःखमाप्नोति सर्वं तस्य विनश्यति ॥”

माता, भगिनी, पुत्रवधू, कन्या, वीरपत्नी वा गुरुपत्नी—गाँवों शक्तियोंकी महाचक्रमें बार बार अर्चना करना चाहिये । नानाविध द्रव्यदान द्वारा उनकी पूजा करना पड़ती है । शक्तियोंमें कभी लिङ्ग योजन करना न चाहिये । कारण उससे सिद्धिदानि आती, परिणाममें रौरव नरककी गति दिखाती और महारोग तथा धननाशकी वारी पड़ जाती है । पाषण्ड सर्वदा दुःख अनुभव करता और उसका समस्त धर्मकर्म बिगड़ता है ।

“पञ्चकन्या यजेच्चक्रं नातिरिक्ता कदाचन ।

लोभादा मोहतो वापि क्लृप्ता वरवर्षिणि ॥

यदि स्यात् सङ्गमलासां रौरवं नरकं व्रजेत् ॥”

पूर्वाक्त पञ्चशक्तिकी चक्रमें अर्चना करना चाहिये । यदि कोई व्यक्ति लोभ, मोह किंवा क्लृप्त करके शक्तियों के साथ सङ्गम करता, तो वह अवश्य रौरव नरकमें पड़ता है । (निरुत्तर, १० पटल)

‘नटी कापालिकी वेश्या रजकी नापिताङ्गना ।
योगिनी खपची शौखी भूमोन्दतनया तथा ॥
गोपिनी मालिका रम्या चाचां कार्यविभेदतः ।
चतुर्वर्णीहवा रम्या कापाली सा प्रकीर्तिता ॥
पूजाद्रव्यं समालोक्य नृत्यगीतपरायणा ।
चतुर्वर्णीहवा रम्या सा नटी परिकीर्तिता ॥
पूजाद्रव्यं समालोक्य वेश्याचरचमिच्छति ।
चतुर्वर्णीहवा रम्या सा वेश्या परिकीर्तिता ॥
पूजाद्रव्यं समालोक्य रजोऽवस्थां प्रकाशयेत् ।
सर्ववर्णीहवा रम्या रजकी सा प्रकीर्तिता ॥
पूजाद्रव्यं समालोक्य कुलजा वीरमाश्रयेत् ।
सन्त्यक्त्य पशुभर्तारं कर्म बाण्डालिनी सा तथा ॥
शिवशक्तिसमाशोभात् योगिनी सा प्रकीर्तिता
विपरीतरता पत्नी पाव' या परिपृच्छति ।
चतुर्वर्णीहवा रम्या सा शौखी परिकीर्तिता ॥
सर्वदा यन्मसंस्कारो यस्याश्च परिजायते ।
सैव भूमोन्मजा रम्या चतुर्वर्णीहवा प्रिये ॥
अद्यान् गोपयस्व सर्वदा पशुसङ्घे ।
चतुर्वर्णीहवा रम्या गोपिनी सा प्रकीर्तिता ॥
पूजाद्रव्यं समालोक्य या माला परिकीर्तिता ।
चतुर्वर्णीहवा रम्या मालिनी सा प्रकीर्तिता ॥”

नटी, कापालिकी, वेश्या, रजकी, नापिताङ्गना, योगिनी, चाण्डाली, शौखी, रजककन्या, गोपिनी और शलिनी समस्त नायिका पूजनीया हैं। वह सभी चतुर्वर्णीहवा हैं। केवल कार्यभेदसे उनके नटी, कापालिकी प्रभृति नामोंका उल्लेख किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णोंको कोई जातीया सुन्दरी मनोहरा नायिका कापालिका है। जो नायिका पूजाद्रव्य देख भानन्दसे नृत्यगीत पारम्भ करती, उसकी संज्ञा नटी पड़ती है। पूजा द्रव्यको अवलोकन कर वेश विन्यास करनेके लिये अभिलाषिणी होनेवाली नायिका वेश्या कहलाती है। जो नायिका पूजाका आयोजन दर्शन करके अपनी रजोपवस्था प्रकाश करती, वही रजकी ठहरती है। जो कुलपूजाके आयोजनसे उत्साहित हो अपने पशुभर्ताको छोड़ करके वीराचारीको आश्रय करती, उसकी बाण्डा चाण्डाली पड़ती है। शिव एवं शक्ति युक्तकी योगिनी और अपने अपने पतिसे विपरीतरता हो पात्र पङ्चमानकी इच्छा रखने-

वाली नायिकाको शौखी कहते हैं। जो सर्वदा यन्त्र संस्कारमें नियुक्त रहती, उसकी विद्वन्मण्डली भूमोन्द्रकन्या कहती है। जो पूजाद्रव्यसे सन्तुष्ट हो मात्मा बनाती, वह मालिनी कहलाती है। स्थानान्तरमें माता प्रभृति पाँचों शक्तियोंको भी भूमोन्द्रकन्यादि कहा है। यथा—

“भूमोन्द्रकन्या माता दुहितृ रजकी सुता ।

अपची च तस्या श्रेया कापाली च कृपा सता ॥

योगिनी निजशक्तिः स्यात् पञ्चकन्याः प्रकीर्तिताः ।”

(निरुत्तर, १० म पटल)

पूर्वप्रदर्शित भूमोन्द्रकन्या माता, रजकी दुहिता, चाण्डाली भगिनी, कापालिका पुत्रवधू और अपनी स्त्री योगिनीकी भाँति कीर्तित हुई है।

कुलनार (हिं० पु०) खनिज पदार्थ वा प्रस्तरविशेष, एक धातु यः पत्थर। वह खेतवर्ण वा नीलाभ होता है। उसका अपर नाम सिलखड़ो, सङ्गजराहन, सफेद सुरमा और कपूरशिलासित है। कुलनारकी जला करके गच तैयार करते हैं। उसका जला हुआ चूर्ण पानी पड़नेसे चिपचिपाता और सूखनेसे सुट्ट, प्रस्तर जैसा कठोर पड़ जाता है। कुलनारसे मूर्ति, छिन्नोना, विजलीके छापेके साँचे और बहुत सी दूसरी चीजें बनायी जाती हैं। उससे शोशमें जोड़ भी लगता है। वह भारतवर्षके मन्द्राज, पन्नाब, राजपूताना और दूसरे भी कई भागोंमें मिलता है। योधपुर और बीकानेरमें कुलनारकी बड़ी बड़ी खानें हैं। उससे खिड़कीकी जालियां गढ़ गठ कर बनाते हैं। गोल कुलनार (गच) की दो समान पट्टियां पर एक ही नक्काशोकी जालियां काटी जाती हैं। फिर एक पट्टीकी जाली पर रङ्ग रङ्गका शोशा लगा करके ऊपरसे दूसरी पट्टी भी मिलाकर बांध देते हैं। इसलिये दोनों पट्टियां एक जैसी लगती हैं। कटावके बीचसे रङ्गदार शोशी चमका करते हैं। पागरे, साहोर, प्रजमेर वगैरहके प्राचीन राजप्रासाद कुलनारके प्रयोगसे ही निर्मित हुये हैं। उसका चूर्ण खेतोंमें भी खादकी भाँति पड़ता है। कुलनारकी खाद डालनेसे नील बहुत पनपता है। मूत्रोसर्गके लिये भी उसका चूर्ण दुग्धके साथ खिलाया जाता है।

कुलनारी (सं० स्त्री०) कुले सत्कुले संस्कृता नारी, मध्यपदलो० । १ सत्कुलोद्भूता स्त्री, अच्छे घरानेकी औरत । २ सच्च वंशजाता सती गुणवती स्त्री, जंचे ज्ञानदानकी पाकदामन औरत ।

कुलनाथ (सं० पु०) कुलस्य नाथो ध्वंसः, इ-तत् । १ वंशलोप, कुलध्वंस, घरानेकी बरबादी । २ कौलीन्य नाश, बड़प्पनका खातिमा । जिनके साथ आदान प्रदान नहीं चलता अथवा जिनके वंशका गौरव निम्न स्थानीय रहता, उनके वंशकी कन्या अथवा भगिनी सम्प्रदान करनेसे कुल नष्ट हो जाता है ।

कुलं भूमिलग्नं न अग्राति, कुल-नञ्-अश्-अच्, सुप्सुप्स० । ३ उट्ट, ऊट ।

कुलनाशन (सं० क्लो०) कुलं नाशयत्यनेन, कुल-नश-णिच् करणे ल्यट् । बरबादिकरण्याय । पा० १।१।१८। वंशनाशका कारण, घरानेकी बरबादीका सबब ।

कुलन्धर (सं० पु०) कुलं वंशं धारयति रक्षति, कुल-धृ-णिच्-बाहुलकात् खच् । संशया धनं निधिरिहितपि दन० । पा० १।२।४६ । पुत्र, वंशधर, बेटा, घरानेकी रखनेवाला ।

कुलप (व० पु०) कुलं पालि रक्षति, कुल-प-ञ्च, ज्ञानदानकी डिफाजत करनेवाला ।

“परित्यासते निधिभिः सखायः कुलपा न मात्रमतिं चरन्म् ।”

(अज् १०।१७०।२)

‘कुलपाः कुलस्य वंशस्य रक्षकाः पुत्राः ।’ (सायण)

कुलपति (सं० पु०) कुलस्य वंशस्य पतिः स्वामी, इ-तत् । वंशअच्छे अथवा गोत्रअच्छे, बड़े घरानेवाला । २ गृहस्वामी, घरानेका मालिक । ३ अध्यापकभद, कोई उस्ताद ।

“सुमोनां वयसाश्च योऽनुरागादिपोषणम् ।

अध्यापयति विप्रविंरसो कुलपतिः श्रुतः ॥”

जो दस हजार सुनियोंकी वस दानादि पोषण पूर्वक पढ़ाता, वही कुलपति कहाता है ।

कुलपति मिश्र—हिन्दी भाषाके एक कवि । इन्होंने १६५७ ई० की जम्मापकरण किया था । बनारसके सुप्रसिद्ध सरदार कवि और कृष्णानन्द व्यासदेवने इनकी कविता उद्धृत की है ।

कुलपत्र (सं० पु०) दमनक वृक्ष, द्यौनेका पेड़ ।

कुलपत्रक, कुलपत्र देखो ।

कुलपति (सं० पु०) भारतवर्षके सात प्रधान पर्वतोंके मध्य एक पर्वत । उसकी कुलगिरि, कुलभूषण, कुलाचल और कुलाद्रि भी कहते हैं ।

कुलपहाड़, कुलपहाड़ देखो ।

कुलपा (वें० स्त्री०) कुलअच्छा, घरानेकी बड़ी औरत ।

“एषा ते कुलपा राजन् ” अथर्व १।१४।३ ।

कुलपांसुका (सं० स्त्री०) कुलं पांसुमिव कायति प्रकायति, कुलपांसु के कटाप् । असती स्त्री, व्यभिचार आदिसे वंशको कलङ्क लगानेवाली स्त्री, खानदानमें धब्बा देनेवाली औरत ।

कुलपालक (सं० त्रि०) कुलं पालयति, कुलपाल रक्षणे खल् । १ वंश प्रतिपालक, घरानेकी परवरिश करनेवाला । (क्लो०) २ कुलधर, नारङ्गो ।

कुलपालि (सं० स्त्री०) कुलवती स्त्री, सती, साध्वी, नेक औरत ।

कुलपालिका, कुलपालि देखो ।

कुलपाली, कुलपालि, देखो ।

कुलपाहाड़—युक्तप्रदेशके अन्तर्गत हमीरपुरसे ३० कोस दक्षिण-पश्चिम अवस्थित एक तहसील । वहाँ पर्वत पर अनेक देवमन्दिरों, मसजिदों और राज-प्रासादोंका भग्नावशेष दृष्ट होता है ।

कुलपाहाड़से ३ कोस दक्षिण-पूर्व सेटमहोदयाम है । वहाँ एक विष्णुमन्दिर और १२०० संवत्का प्राचीन एक जैनमन्दिर विद्यमान है । उसके निकट प्राचीन दृष्टक और शिल्पकार्यका स्तूपीग्रन भग्नावशेष पड़ा है । चंदेलराज मदनवर्माने (११२८-११६५ ई०) वहाँ मदनपुर नामक एक नगर स्थापन किया था ।

कुलपुत्र (सं० पु०) कुले सत्कुले जातः पुत्रः, मध्यपदलो० । १ सद्वंशजात पुत्र, अच्छे घरानेका लड़का । २ दमनक वृक्ष, द्यौनेका पेड़ ।

कुलपुत्रक (सं० पु०) कुलपुत्र स्मार्थे कन् । दमनक वृक्ष, द्यौनेका पेड़ ।

कुलपुत्री (सं० स्त्री०) कुलस्य पुत्री दुहिता, दुहित

जाने पुत्रदत्त आदेशस्ततो लोष । सुतोवराजभोजकुलमेवधो
दुहितः पुत्रदत्तः वा । पा ६।१।३० । सहंशोद्भव कन्या, भले
घरानेकी लड़की ।

कुलपुत्रव (सं० पु०) कुले सत्कुले जातः पुत्रवः ।
१ सहंशोद्भव व्यक्ति, अच्छे घरानेका आदमी ।
२ पितृपुत्रव, पूर्व पुत्रव, पुरखा ।

कुलपुरोहित (सं० पु०) कुलक्रमागतः पुरोहितः ।
एक वंशमें बहुत दिन पुरोहितत्व करनेवाला व्यक्ति,
घरानेका पुरोहित ।

कुलपूज्य (सं० त्रि०) कुलमें पूजा जानेवाला, जो
घरानेमें पूजता चला आया हो ।

“गुरु वशिष्ठ कुलपूजा हमारे ।” (तुलसी)

कुलपूर्वग (सं० पु०) कुलस्य पूर्वगः, कुल-पूर्व-गम-उ,
इ-तत् । पूर्वपुत्रव, पुरखा ।

कुलफ, कुल देखो ।

कुलफा (हिं० पु०) शाक विशेष, खुर्फा । इसकी पत्ती
मोटी, नीचे मुकीली और ऊपर चौड़ी होती है ।
लम्बाईमें वह दो अङ्गुल रहती और छगलमें एक एक
जोड़ी आमने सामने निकलती है । कुलफाका फूल
पीला होता है । उसके गिर जानेसे छोटासा कंगूरा
निकल आता है । उसमें कासा, गोल और चपटा
दाना पड़ जाता है । वह बहुत छोटा रहता और
बीजधर्म पड़ता है । कुलफेका दाना ठण्डाईमें भी
प्रायः छोड़ते हैं । वृक्ष एक बिन्से छेड़ बिन्से तक
बढ़ता और ठण्डी जगहमें पनपता है । कुलफा वसन्त
ऋतुमें बोते हैं । बीजकालको वह तैयार हो जाता है ।
कुलफाके बढ़नेमें देर नहीं लगती । वर्षा ऋतुको
वह अपने आप खेतोंमें जगता है । कुलफेकी भाजी
बनायी जाती है । सोनी, भमसोनी या नोनिया भी
उसीकी एक छोटी जाति है ।

कुलफी (हिं० स्त्री०) १ टोल या किसी दूसरी धातुका
छोटा चोंगा । इसमें दूध वगैरह डाल कर बरफके
सेहारे जमाया जाता है । पहाड़ी कुलफीमें दूध और
शकर वगैरह भर कर उसका मुँह पाटेसे बन्द कर
देते हैं । फिर उसे एक बड़े बरतनमें डाल ऊपरसे
बरफके छोटे छोटे टुकड़े समझके ढाक दिये जाते हैं ।

थोड़ी देरमें कुलफीके भीतरका दूध वगैरह बर्फकी
ठण्ठक पाकर जम जाता है । इस प्रकारके जमे दूध
पदार्थको भी कुलफी ही कहते हैं ।

२ पेंच, छोटा कुपुल । १ नारियलमें नेचा बांधनेके
लिये लगायी जानेवाली पीतल या ताँबे वगैरहकी
झुकी हुई एक नली ।

कुलवधू (सं० स्त्री०) कुले गृहे स्त्रिता वधूः । कन्या-
शीला साध्वी स्त्री, भले घरानेकी औरत ।

कुलवधूरस (सं० पु०) सन्निपातस्वरका रसविशेष,
सरशामकी एक दवा । पारद, शोषक, ताम्र, मगः-
शिला और तुल्यकको समभाग इन्द्रवाक्स्थो रसमें
खरख करके चणकके बराबर बटी बना लेना चाहिये ।

(वेद्यकरनामलो)

कुलवांसा (हिं० पु०) करघेका एक बाँस । उसमें
जलाहे कंचो बांधते हैं ।

कुलवालदेव—“सप्तमती” ग्रन्थके एक टीकाकार ।

कुलवाला (सं० स्त्री०) कुले सत्कुले जाता बाबा
बालिका । सहंशोद्भव सती स्त्री, अच्छे घरानेकी
लड़की ।

कुलवालिका, कुलवाला देखो ।

कुलबुल (हिं० पु०) छुद्र छुद्र जीवोंकी गतिका शब्द,
छोटे छोटे कीड़ोंके सरकनेकी आवाज ।

कुलबुलाना (हिं० त्रि०) धारे धीरे हिलाना हलाना,
छोटे छोटे जीवोंका सरकना । २ बच्चेका सोतेमें हाथ
पैर चलाना ।

कुलबुलाहट (हिं० स्त्री०) सरकौसरका, चलफिर,
हिलाव हलाव ।

कुलबोरन (हिं० वि०) कुलकलह, घरानेकी जुबाने-
वाला ।

कुलब्राह्मण (सं० पु०) कुलपुरोहित, घरानेका पुरोहित ।

कुलभ (सं० पु०) बलिराजके सैन्यका एक दैत्य । (हरिवंश)

कुलभङ्ग (सं० पु०) कुलस्य भङ्गः, इ-तत् । बीबीस-
नाथ, घरानेकी इज्जतका बिगाड़ ।

कुलभार्या (सं० स्त्री०) कुले गृहे स्त्रिता भार्या, मन्ध-
पदकी । भार्मिका दूधोका पचका सत्कुलोद्भवा
पत्नी, भले घरकी औरत ।

कुलभूषण (सं० पु०) कुलपर्वत । अपर नाम—कुला-
चल, कुलाद्रि और कुलगिरि है ।

(भागवत ५।१६।१०)

कुलभूषण (सं० त्रि०) कुलस्य वंशस्य भूषणमिव, उप-
मित सं० । कुलतिलक, घरानेकी खूबसूरती ।

२ एक जैन मुनि । सिधार्थनगरके राजा क्षेमंकर
और रानी विमलासे इनका जन्म हुआ था । इनके
बड़े भाईका नाम देशभूषण था । ये दोनों ही बाल्य
अवस्थामें सदा संसारसे विरक्त रहा करते थे । युवा-
वस्थाके प्रारम्भ होने पर कन्यायें इनके विवाहार्थ मंगाईं
मईं और उनको देखने ये उद्यानकी तरफ चले ।
रास्तेमें भरोखेसे इनकी वहिन भी यह सब उत्सव देख
रही थी । अचानक इनकी दृष्टि वहिन पर पड़ी और
उसे ही अपने लिये विवाहार्थ चाई जान विकार भाव
किया । इतनेमें साथके भाटोंने उच्छ्वरसे स्तुति करते
हुये कहा—‘क्षेमंकरके ये दोनों पुत्र और भरोखेमें
बेठी हुई कमखोशवा कन्या जयवंत रह्यो ।’ वस अब
क्या था यह सुनतेही दोनों भाई अपनी वार २ निन्दा
कर घर वार छोड़ दोषित हो गये । बिहार करते २
ये वंशस्थल (कुंथल) गिरि पर आये और वहां धराना-
रुठ हो विराजि ।

इनके पूर्वजन्मका एक वैरि अग्निप्रभनामका
ज्योतिषी देव हुआ था । उसने कुलवधिव्रजानसे क्रुद्ध हो
उन पर सांप विहू आदि विषैले जंतु छोड़े एवं अन्य
भी भयावह नाना उपसर्ग किये । इस प्रकार करते कई
दिन जब हो गये तो पिताकी आज्ञासे वनर फिरने
वाले रामचंद्रकी भी वहां पानिकले और तब वह
दुष्ट इनको बलभद्र और लक्ष्मणकी नारायण जान
भयसे भाग गया एवं उपसर्ग दूर होते ही उक्त दोनों
मुनियोंका केवलज्ञान प्राप्त हुआ । (जैन पद्यपुराण १८ पर्व)
कुलभूषण पाण्डव—दाक्षिणात्यके एक पाण्डव राजा ।

कुलहस्ता (सं० स्त्री०) कुलेः कुलभवेष्ट्या भरचम्,
कुल-श्च भाषे कप तुगाममश्च स्त्रियां टाप् । १ गर्भिंदो
पर्यपासना, हमसवाकी औरतकी खिदमतगारी ।
२ वंशका प्रतिपादन, घरानेकी परवरिश ।

कुलभट्ट (सं० त्रि०) कुलात् वंशात् जातेर्वा भट्टः,

५-तत् । वंशज्युत अथवा जातिज्युत, कौम या खान-
दानसे निकाला हुआ ।

कुलमार्ग (सं० पु०) कुलेः सत्कुलोद्भूतैराश्रितो मार्गः
पन्थाः । सुपथ, सदुपाय, भली राह, घरानेकी चाल ।

कुलमित्र (सं० स्त्री०) कुलस्य मित्रम्, ६-तत् । कुल-
सुहृद्, वंश परम्परागत बन्धु, खानदानका दोस्त, घराने-
का साथी ।

कुलमणि शुक्ल—एक विख्यात स्मृतिटीकाकार । अक्षिरः
स्मृतिटीका, आह्निकचन्द्रिकाटीका, कर्पूरस्तवदी-
पिका, गौतमस्मृतिटीका, तन्त्रामृत, मातङ्गीकर्म, याज्ञ-
वल्करस्मृतिटीका, योगकल्पद्रुम, रामार्चनचन्द्रिका
और सत्कर्मदोपिका नामक उनका बनाया अन्य
मिलता है ।

कुलमुनि—एक विख्यात संस्कृत ग्रन्थकार । उनका
बनाया हुआ नीतिप्रकाश धर्मशास्त्र, समासाख्य व्याक-
रण और सांख्यकारिकावृत्ति नामक ग्रन्थ मिलता है ।

कुलम्पन (सं० स्त्री०) कुलं पुनाति, कुल-पु-खण् लुमाग-
मश्च बाहुलकात् स धुः । कुलक्षेत्रका एक तीर्थ ।

“कुलम्पने नरः खाला पुनाति सकुलं ततः ।” (भारत, वन, ८२ पं०)

कुलम्पना (सं० स्त्री०) नदोविशेष, एक दरया ।

कुलम्भर (सं० पु०) कुलं विभर्ति पालयति, कुल-भृ-
खच् । संशयां भद्रजिधरि । पा १।२।४६ । १ वंशपालन
कर सकनेवाला पुत्र, जो लड़का घरानेकी परवरिश
कर सकता हो । २ कुजम्भिन और, सेंध लगानेवाला
और ।

कुलयो (सं० स्त्री०) ठसविशेष, एक पेड़ । वह शीतल,
स्वादु, वातल, कफलत् और गुह होती है ।

(वैद्यकनिघण्टु)

कुलयोषित् (सं० स्त्री०) कुले सत्कुले उत्पन्ना योषित्
स्त्री । कुलस्त्री, सहंशोद्भवा साध्वी स्त्री, अच्छे घरानेकी
औरत ।

“यद्युक्तप्रणीतानां स्त्रियाम् कुलयोषिताम् ।

उच्छिष्टं भाग्यं यं कादृशं पुं विधिरय नः ॥” (मनु, २।२४५)

कुलर (सं० त्रि०) कुल अस्मादित्वात् रः । उन्वयतठसि-
सिधिरुजयवकम् । पा ३।२।८० । कुलसचिवकृष्ट देशादि ।

कुलरचक (सं० पु०) कुलस्य रक्षकः, ६-तत् । १ वंशका

रक्षाकर्ता, घरानेकी हिकायत करनेवाला । २ कन्या को प्रहस्य करके दूसरेके कौलीयकी रक्षा करनेवाला ।
कुलराज (सं० पु०) पीयूषवर्ष अश्व, एक तरहका घोड़ा ।
संस्कृत पर्याय—कुलाज, मेराज और सुरराजक । (अमर)

कुलराजक, कुलराज देखो ।

कुलकां (सं० पु०) तालमटन ।

कुलवन्त, कुलवान् देखो ।

कुलवर्गा—हैदराबाद राज्यका एक नगर । ख्रिष्टीय १४३१
शताब्दीकी दक्षिणात्यके प्रथम सुसलमान राजा अला-
उद्-दीन हुसेन बहमानीने उस नगरको स्थापन किया
था । बहमानी राजा कुलवर्गमें ही राजत्व करते थे ।

कुलवर्णा (सं० स्त्री०) रक्तमूल विष्ट, लाल निसोत ।
कुलवधन (सं० पु०) कुलं वंशं वर्धयति, कुल-वृध-णिच-
नम्यादित्वात् लुः । वंशवर्धक, घरानेकी तरफ़ी देने-
वाला ।

कुलवान् (सं० लि०) कुलं प्रशस्तं कुलमस्यस्य, कुल मतुष्ट-
मस्य वः । बलादिभ्यो मतुबन्धतरस्याम् । पा ५ । २ । ११६ । कुलीन
खानदानी ।

कुलवार (सं० पु०) १ तन्त्रशास्त्रके मतमें—मङ्गलवार
और शुक्रवार । २ कुलीन ।

कुलविद्या (सं० स्त्री०) कुलपरम्परागत विद्या ।
१ वंशानुगत शिक्षणीय विद्या, खानदानी इत्थम् ।
२ आम्बोष्णिकी प्रवृत्ति विद्या ।

कुलविप्र (सं० पु०) कुलकमागतो विप्रः पुरोहितः ।
कुलपरम्परागत पुरोहित ।

कुलवृद्ध (सं० पु०) कुलेषु वृद्धः, वृत्तत् । वंशके मध्य
प्राचीन, घरानेमें बुजुर्ग ।

“आश्रयेः कुलवृद्धेः पर्यकोऽमात्रं वन्धुभिः ।” (भागवत, ७ । २ । १८)

कुलव्रत (सं० स्त्री०) कुले कुलविशेषे आचरणीयं व्रतम् ।
कुलधर्म, वंश परम्परा क्रमसे आचरणीय कार्य, खान-
दानी काम ।

कुलवीडा (सं० स्त्री०) कुलोचिता सत्कुलोचिता व्रीडा ।
कुलकामिनियोंकी लज्जा, खानदानी औरतोंकी
शर्म ।

कुलशेखर—पाचर्यमाका नामक ग्रन्थके रचयिता । सन्ति-

कर्णवृत और सन्निभुत्तावलीमें कुलशेखरका ग्रन्थ
उद्धृत हुआ है । २ नीलाचलके कोई परम वैष्णव राजा ।
(भक्तिमार्गा, ११४१) ३ मदुराराज्य-प्रतिष्ठाता दक्षिणात्य-
के प्रथम पाण्ड्य राजा ।

कुलशेखर चर्चर—दक्षिणात्यवाले केरल राज्यके एक
शक्ति प्राचीन राजा । प्रवादानुसार १८६० कल्प
पर्यात् ई०से १२४२ वर्ष पूर्व उन्होंने राज्य परित्याग
करके संन्यास धर्म अवलम्बन किया था ।

कुलशेखरदेव—एक पाण्ड्य राजा । अनुमानतः १२००
से १२१५ ई० तक उन्होंने मदुराराज्य शासन किया ।
किष्कीके मतमें वह सिंहलराज पराक्रमवाहुके सम-
सामयिक रहे । २ दक्षिणात्यके कोई सात्विक हिन्दू
राजा । उन्होंने सुकुन्दमालास्तोत्र नामक संस्कृत ग्रन्थ
बनाया था ।

कुलश्रेष्ठी (सं० त्रि०) १ श्रेष्ठकुलसम्भूत, अच्छे
घरानेमें पैदा होनेवाला । २ वंशके मध्य श्रेष्ठ, घरानेमें
सबसे बड़ा । (पु०) ३ शिल्पिकुलप्रधान, कारीगरों-
के घरानेका मुखिया । उसका संस्कृत पर्याय—कुलिक,
कुलक और कुल है ।

कुलसङ्ग, ल (सं० पु०) नरकविशेष, एक दाऊख ।

कुलसङ्गा (सं० स्त्री०) कुलस्य वंशस्य संख्या कीर्तिः,
इतत् । कुलकीर्ति, वंशकी श्रेष्ठता, खानदानकी
बड़ाई, घरानेकी गिनती ।

कुलसन्ध्य (सं० स्त्री०) परिप्लवृत्त, पानीमें पैदा होने-
वाली एक सुशबूदार घास ।

कुलसत्र (सं० स्त्री०) कुलेः कुलजनैरनुष्ठेयं सत्रम्, मध्य-
पदलो० । सङ्घ वत्सरसाध्य यज्ञविशेष, हजार वर्षमें
पूरा होनेवाला एक यज्ञ ।

कार्णाजिनि मुनिके मतसे उत्तम कुलसत्र नामक
यज्ञ सङ्घवत्सरमें परिपूर्ण होता है । पिता, पुत्र,
पौत्र, प्रपौत्र और उनके पुत्रादिको ही कुल कहते हैं ।
उन सबके अनुष्ठान करनेसे ही उत्तम यज्ञका नाम
कुलसत्र पड़ा है । ऐसा दीर्घजीवी कोई नहीं, जो अपने
कुलसत्र यज्ञका आरम्भ और समापन कर सके ।
मनुष्योंका एकमात्र नियम यह रहता है कि आरम्भ कर-
के कार्यको समापन करना पड़ता है । जिस कार्यका

(कात्यायन-श्रौतसूत्र १।६।१०)

कुलशक्ति (सं० स्त्री०) कुलस्य वंशस्य शक्तिः कावित्वम्.

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

पार्थिव अक्षरोंका वाङ्मय और आग्नेय अक्षरोंका माहृत अक्षरसमूह मित्र है। पार्थिव अक्षरोंका माहृत और वाङ्मयका आग्नेय शत्रु है। फिर पार्थिव अक्षरोंका मित्र वाङ्मय और शत्रु आग्नेय है। नाभम अक्षर सबके मित्र हैं। साधकके नामका आद्य अक्षर और मन्त्रका आद्य अक्षर परस्पर शत्रु रहनेसे साधकको वह मन्त्र ग्रहण करना न चाहिये। साधकके नाम और मन्त्रका आद्य अक्षर परस्पर मित्र रहनेसे मन्त्र लिया जाता है। साधकके नाम और मन्त्रका आद्य अक्षर एक रहनेसे स्वकुल ठहरता है। स्वकुल मन्त्र ग्रहण करनेसे सिद्धि मिलती है। यथा—

“कुलाकुलस्य भेदं हि वक्ष्यामि मन्त्रिणामिह ।
वायुमिभूजलाकाशाः पञ्चाशद्विषयः क्रमात् ॥
पञ्चदशाः पञ्चदशैर्वा विन्दुः साः सन्धिसन्धवाः ।
कादयः पञ्चशः पञ्च ल सङ्गताः प्रकीर्तिताः ॥
साधकस्याक्षरं पूर्वमन्त्रस्यापि तदक्षरम् ।
यद्येकभूतदेवस्य जानीयान् स्वकुलं हि तम् ॥
भोमस्य वाङ्मयं मित्रं आग्नेयस्यापि माहृतम् ।
माहृतं पार्थिवानाञ्च शत्रुं रात्रेयमथसाम् ।
नाभसं सर्वं मित्रस्याहिरुद्रं नैवशोभयेत् ॥” (तन्त्रसार)

कुलाचल (सं० स्त्री०) कुक्षरी, कुतिया।

कुलाङ्गना (सं० स्त्री०) कुली सत्कुली जाता अङ्गना स्त्री। कुलस्त्री, सत्कुलोद्भवा साध्वी स्त्री, अच्छे घरानेकी औरत।

कुलाङ्गार (सं० पुं०-स्त्री०) कुलस्य अङ्गारमिव, उपमित-सं०। कुलमें अङ्गारस्वरूप व्यक्ति, कुलगौरव नाश करनेवाला, घरानेकी इज्जत बिगाड़नेवाला शख्स।

“एकं चाति क कुलाङ्गारं” चोदितो मे ततद्रुद्रम् ॥” (भागवत, १। १८। १०)

कुलाचल (सं० पुं०) १ पर्वतविशेष, कोई पहाड़। भारत प्रकृति प्रत्येक वर्षमें सात-सात प्रधान पर्वत हैं। उन्हें कुलाचल कहते हैं। भारतवर्षमें महेन्द्र, मलय, सहाय, सुक्तिमान, ऋत, विन्ध्य एवं पारिपात्र सात; भद्राश्ववर्षमें सोवक, वर्णमालाग्र, कीरञ्ज, श्वेतवर्ण तथा नील पांच; केतुमालवर्षमें विशाल, कम्बल, कण्ठ, जयन्त, हरिपर्वत, अशोक एवं वर्धमान सात; ब्रह्महोपमें गोमिदक, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना तथा वैभ्राज सात; शास्त्रहोपमें कुमुद, उन्नत, बला-

हक, द्रोण, कङ्क, महिष, ककुद्धान् सात; कुग्रहोपमें विद्रुमोच्चय, हेमपर्वत, अतिमान्, पुष्पवान्, कुशेश्वर, हरिगिरि, मन्दर सात; क्रौञ्चहोपमें क्रौञ्च, वामनक, अन्धकारक, दिवावृत्, दिविन्द, पुष्करोक्त, दुन्दुभिस्त्रन सात; शाकहोपमें उदय, जलधार, वैद्यक, श्याम, अस्तमय, आम्बिकेय, वायु सात, और पुष्करहोपमें एकमात्र मानस कुलाचल नामसे अभिहित हुआ है। ब्रह्माण्डपुराण, ५२ च०)

जैनधर्मानुसार मध्यलोकमें असंख्यात द्वीप समुद्र है। उनमें केवल जम्बू, धातकी और आधे पुष्कर द्वीपमें ही मनुष्य रहते हैं। प्रत्येक द्वीपमें भरत ऐरावत आदि चोखोंका विभाग करनेवाले पुर्वसे पश्चिम समुद्र तक लम्बे पहाड़ हैं। उनको ही कुलाचल कहते हैं। जम्बूहोपमें हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी नामके यह कुलाचल हैं। धातकी और आधे पुष्करमें वारह वारह हैं। इस तरह कुल ३० कुलाचल हैं। (तत्त्वार्थसूत्र २। ११।)

२ दानवविशेष, कोई राक्षस। उसका अपर नाम कुलाकुल था।

कुलाचार (सं० पुं०) कुलस्य आचारः, ६-तत्। १ कुलोचित धर्म, घरानेकी चाल। २ तन्त्रोक्त ज्ञानभेद। जीवात्मा, प्रकृति, दिक्, काल, आकाश, चित्ति, जल, तेजः और वायुको कुल कहते हैं। ब्रह्मदृष्टिसे पर्याप्त ब्रह्मसे वह भिन्न नहीं—चिन्ता करके व्यवहार करना कुलाचार कहा जाता है।

३ तन्त्रोक्त आचारविशेष। तन्त्रसारके मतमें—समस्त काम्यकर्म परित्याग करके नित्यकर्मके अनुष्ठानमें तत्पर होना चाहिये। कर्मफल अपने इष्टदेवताको अर्पण करते हैं। अन्य मन्त्रकी अर्चना, अर्घा किंवा अन्य मन्त्रकी पूजा करना उचित नहीं। कुलस्त्री किंवा वीराचारीकी निन्दा करना सर्वदा गहित है। स्त्रीके प्रति रोकको परित्याग करते हैं। सकल संसारको स्त्रीमय समझना चाहिये। पेय, चय, चोष, भक्ष्य, लेख्य प्रकृति सभी पदार्थोंको युवतीमय चिन्ता करते हैं। कुलजा युवतीको अवलोकन करके समाहित चित्तसे नमस्कार करना चाहिये। यदि साधकको भाग्यक्रमसे कुलज्ञान देख पड़े, तो भगिनी, भगविन्ता,

भगवता, भगमास्त्रिनी, भगनासा, भगस्तनी, भगवता और भगसर्पिणी देवताकी पूजा करे। बासा, युवती, वृषा, सुन्दरी अथवा कुसिता—किसी प्रकारकी क्यों न हो, स्त्रीका देखते ही नमस्कार करना चाहिये, स्त्रियोंके प्रति प्रहार, निन्दा अथवा किसी प्रकारकी दूसरी कुटिलता नहीं करते। क्योंकि वैसा करनेसे साधकको मिष्टि मिलना कठिन है। स्त्रीसङ्गी साधकको भावना करना चाहिये—स्त्री ही देवता, स्त्री ही प्राण और स्त्री ही चलद्वार है। स्त्रियोंके हस्तरचित पुष्प, जल एवं अन्य द्रव्य देवताको निवेदन करना चाहिये। जपस्थानमें महाशङ्ख स्थापन करके कुलजा युवतीके साथ विहार करते करते अथवा उसको स्पर्श किंवा अवलोकन करके जप करनेका विधान है। फिर स्त्रीका भुक्तावशिष्ट ताम्बूल प्रभृति भक्षण करके जप करते हैं। इस आचारमें दिक्काल किंवा अवस्थानका कोई नियम नहीं। उपासक अपनी इच्छाके अनुसार उपासना कर सकता है। वस्त्र, आसन, स्थान, शरीर, गृह, पुष्प, जल प्रभृतिकी शुद्धिका भी प्रयोजन नहीं पड़ता।

कुलार्णवतन्त्रमें कथित हुवा है—

“कुलाचारगृहं गत्वा भक्ता पापविह्वलः ।
याचयेदमृतं कीलं तदभाषि जलं पिवेत् ॥
कुलाचारिणं यद्वत् कृत्वा पात्रे च भक्तितः ।
नमस्कृत्वा च गृहोयादभ्यधा नरकं व्रजेत् ॥”

कुलाचार-गृहमें गमन करके पापकी विमृष्टिके निमित्त कील पर्यात् कुलाचारीसे अमृत प्रार्थना करना चाहिये। अमृत न मिलनेसे जलपान कर लेते हैं। कुलाचारी जो कुछ दे, उसे ही भक्तिपूर्वक नमस्कार करके ग्रहण कर ले। तन्त्रसारमें भी उक्त हुवा है—

“न इषा नमयेत् कालं घृतक्रीडादिना सुधीः ।
नमयेत् देवता पूजाजपयागादिना सदा ॥
वीराणां जपयज्ञस्तु सर्वकांक्षे प्रशस्यते ।
सर्वदेशे सर्वपाठे कर्तव्यो नात्र संशयः ॥”

साधकको घृतक्रीडादि द्वारा वृषा काक प्रतिवाहन करना न चाहिये। देवतापूजा जपयागादि करके कालयापन करते हैं। वीराचारियोंका अपरूप यज्ञ सर्वकालकी ही प्रशस्त है। सकल स्थान और सकल आसन पर जप करना आवश्यक है।

“शक्तिः शिवः शिवः शक्तिः शक्तिर्ब्रह्मा जगद्गण
शक्तिरिन्द्रो रविः शक्तिः शक्तिश्चन्द्रो यज्ञा ध्रुवम् ॥

शक्तिरूपं जगत् सर्वं यो न जानाति नारदो ।” (शिवानुम)

शिव, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य एवं अन्य यह सर्व ही शक्तिमय हैं। जो इसप्रकार नहीं समझता, वह नारको ठहरता है।

“ज्ञानादि मानसं शौचं मानसः प्रवरो जपः ।

मानसं पूजनं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम् ॥

सर्व एव शुभः कालो नाशुभो विद्यते कश्चित् ।

न विशिषो दिवा रात्रौ न सन्याया तथा निशि ॥

सर्वदा पूजयेद्देवो मन्मातः कृतभोजनः ।

महानिश्चयश्चो देशे बलिं मन्त्रेण दीपयेत् ॥” (वीरतन्त्र)

ज्ञानादि रूप मानस शौच, मानसिक जप, मानस-पूजा एवं मानसिक तर्पणादि सर्वश्रेष्ठ है। वह सर्वकालकी ही शुभ है। उसके लिये कोई काल अशुभ नहीं होता। दिवा, रात्रि, सन्या किंवा महा-निशाका विशेष नियम कब लगता है! पश्चात् वा भोजन करके भी देवीकी पूजा करना चाहिये। महानिशाकी अशुचि देशमें मन्त्रपूर्वक वलिप्रदान करते हैं।

गन्धर्वतन्त्रमें लिखा है—

“पृथ्वीवृत्तमतीं वोच्य सङ्कलं यदि नित्यशः ।

तदा वादी स्वसिद्धान्तवतः चितितलं विभेत् ॥

पर्वते इक्ष्मारोष्य निर्भयो यतमानसः ।

कवितां लभते सोऽपि अमलचापि गच्छति ॥”

स्त्रीको ऋतुमती देख वोच्य दिन पर्यन्त प्रतिदिन सङ्कल संख्यक जप करनेसे वादो अपने सिद्धान्तपर पराजित हो चितितलमें प्रवेश करता अर्थात् नितान्त लज्जित रहता है। भयशून्य एवं स्थिरचित्त हो करके स्तनमण्डल पर हस्तप्रदानपूर्वक वोच्य दिन पर्यन्त प्रतिदिन सङ्कलवार जप करनेसे साधक कवित्वशक्ति और अमरत्व लाभ कर सकता है।

“पद्मं दृष्ट्वा तथा विन्धं खल्वनं शिखरं तथा ।

चामरं रविचिह्नं च तिलपुष्पं सरोद्वहम् ॥

त्रिशूलं वोच्य जज्ञा च यतशः ग्रहभावना ।

सुखप्रसादं सुमुखं सुकीर्णं सुहृत्कम् ॥

सुदेशं सुगतिं गन्धं सुगन्धं सुखदीप च ।

लभते च यद्वाचं स्त्र्यं शृणु पावति साधरम् ॥” (नीलतन्त्र)

सुख, अधर, चक्षु, मस्तक केय, कपोलका सिन्दूर, नासिका, नाभि एवं त्रिवली अवलोकन करके शत-संख्यक जप करनेसे यथाक्रम प्रसाद, सुन्दर सुख, सुन्दर लोचन, सुन्दर हास्य, सुवेश, सुगति, गन्ध, और सुगन्ध पाते हैं।

“एकाकी निजने देशे श्मशाने विजने वने ।
शुभागारे नदीतीरे निःशङ्को विहरेत् सदा ॥
महाचीनद्रुमे देवीं ध्यात्वा तव प्रपूजयेत् ।
तद्द्रुमोद्भवपुष्पे च पूजयेत् भक्तिभावतः ॥
स भवेत् कुलदेवस्य कुलद्रुमगतः शुचिः ।” (भावचूडामणि)

निजमंदेश, श्मशान, वन, शून्यगृह किंवा नदीके तीरमें निःशङ्क हो सर्वदा विचरण करना चाहिये। महाचीनद्रुममें देवीको ध्यान करके पूजा करते हैं। महाचीनद्रुमके पुष्प द्वारा भक्तिभावसे पूजा करने पर साधक कुलदेव हो सकता है।

कुलचूडामणिमें और भी कथित हुआ है—

“शृणु पुत्र ! रक्ष्यं मे समयाचारसम्भवं ।
येन होमा न सिद्धान्ति जन्मकोटिसङ्घतः ॥
मानवः कुलशास्त्राणां कुलचर्यानुसारिणम् ।
उदारचित्तः सर्वत्र वेत्तवाचारतत्परः ॥
परिन्दासहिषः स्यादुपकाररतः सदा ।
पर्वते विपिने वापि निजं नै शुभमश्नुये ॥
चतुषथे कलामध्ये यदि देवात् वतिर्भवेत् ।
चर्चं स्थिता मनुं जम् । नत्वा गच्छेद् यथासुखम् ॥”

कुलाचारका रक्ष्य अवगण करो। उसको न समझनेसे कोटिसङ्घस जन्ममें भी सिद्धि मिलना कठिन है। कुलशास्त्र और कुलाचारीके प्रति आवाहन हो वेत्तवाचारतत्पर रहना चाहिये। किसी मन्द-मतिके कुलाचारीकी निन्दा करने पर दुःखित नहीं होते, सर्वदा परोपकारनिरत रहते हैं। पर्वत, विजयकानन, शून्यगृह, चतुषथ अथवा नृत्यगीतादिके मध्य किसी कार्यसे उपस्थित होने पर कुछ काल अवस्थान करके मन्त्र जप करना चाहिये। उसके पीछे नमस्कार करके यथाभिलषित स्थानकी गमन करते हैं।

कुलाचारी गृध्र, लेमहरी, जम्बुकी, काक, श्येन-पक्षी, नीलवर्ण कपोत और कृष्णवर्ण मार्जार अव-लोकन करके निम्नलिखित मन्त्रपाठपूर्वक महा-काशीकी नमस्कार करते हैं—

“ब्रह्मोदरो महाचक्षुः सुतकीर्ति बलिप्रिये ।

कुलाचारमसंशयो नमस्ते शहरप्रिये ॥”

श्मशान और शवकी देख निम्नलिखित मन्त्र पढ़के नमस्कार किया जाता है—

“वीरदंष्ट्रे करालास्त्रे किटिशब्दनिनादिनि ।

वीरवीररवास्त्रास्त्रे नमस्ते चित्तिवासिनि ॥”

इसीप्रकार रक्तवस्त्र एवं पुष्प देख त्रिपुरसुन्दरी और कृष्णवर्ण पुष्प, राजा, राजपुरुष, महिष, हस्ती, अश्व, रथ, अस्त्र, वीरपुरुष तथा कुलदेवताकी अव-लोकन करके जयदुर्गा किंवा महिषमर्दिनीकी अर्चना करना चाहिये।

कुलार्णवतन्त्रके एकादश उद्गासमें कुलाचारका कर्तव्यकर्तव्य इस प्रकार निर्णयित हुआ है—दोचित ज्येष्ठके कुलपूजादि-वर्जित होने पर क्रमशः कनिष्ठ हो कुलपूजाका अधिकारी है। पूजाके समय ज्येष्ठ, गुरु किंवा कनिष्ठ समागत होनेसे उनके साथ सादर सम्भाषण करके उन्हींकी अनुमतिके अनुसार पूजादि-कार्य करना चाहिये। कौलिक दिनकी निम्नपूजा, रात्रिकालकी नेमित्तिक और रात्रिदिन दोनों समय काम्यकर्मका अनुष्ठान करते हैं। कुलाचारियोंकी अस्त्रात, अङ्गनस्त्र किंवा भुक्त, गन्धपुष्प, वस्त्र तथा अलङ्कार द्वारा भूषित न होने पर किंवा अविश्वस्त शरीर सर्वदा कुलपूजासे अलग रहना चाहिये। विना मांस किंवा विना मद्य कुलपूजा करनेसे क्या फल मिलता है ? कुलाचारीको शक्तिरहित हो करके मद्य-पान करना न चाहिये। एकाकी ओषधका अनुष्ठान, एकपात्र किंवा एकहस्तासे अर्चना, एक हस्तासे जलपान और मद्यमांस द्वारा पशुके सन्निधानमें देवीकी अर्चना इत्यादि कुलाचारीके लिये एकान्त निषिद्ध है। कौलिकको प्रणाम करके ओषधमें प्रवेश करना और प्रणाम करके ओषधसे बाहर निकलना चाहिये। ओषध दर्शन करनेसे सकल पाप विनष्ट होते हैं। ओषधमें उपविष्ट शक्तिकी गौरी और कौलिकको साक्षात् शिव समझना चाहिये। अस्त्रात, भुक्त अथवा अभुक्त होके कुल-द्रव्य (मद्य) सेवन नहीं करते अर्थात् भोजनके समय मद्य पीते हैं। उष्णोषधारी, कष्टकी,

नम्र, सुताकेश, दिगम्बर, व्यप, हृष्ट और विवादोको कभी कुलामृत पीना न चाहिये। मद्यपानके पीछे निष्ठोवन, मद्यभाण्डका परिभ्रमण, ऊर्ध्वनालमें मद्यपान, दूसरेके साथ चामन पर उपविष्ट हो एकपात्रमें भोजन, किंवा एकपात्रमें मद्यपान कुलाचारमें एकाग्र अकर्तव्य है। गुरु, तत्पुत्र किंवा तद्वंशोय कोई व्यक्ति अथवा कौलिक ज्येष्ठ यदि एकग्रामवासी हो, तो उसकी अनुमति ग्रहण न करके एकाकी कुलद्रव्यका सेवन करनेसे अलग हो रहना चाहिये। हस्तप्रक्षालनपूर्वक कुल-द्रव्यका अर्पण, मधुभाण्ड उत्तोलन करके पात्रपूरण, सुधाकुण्डमें भोगपात्रका निःक्षेप, चक्रके मध्य अशुचिर्मनसे करादि प्रक्षालन, निष्ठोवन मलमूत्रपरित्याग किंवा पायुवायु निःसारण नहीं करते। चक्रके मध्य देवात् घटभङ्ग, पात्रस्खलन किंवा दीपनिर्वाण होनेसे दोषशान्तिके निमित्त पुनर्वार चक्र बनाना चाहिये। भ्रमण, गर्जन, हास्य, विवाद, वाद प्रतिवाद, ज्ञानीकी निन्दा, परिहास, प्रसाप, वितण्डा, बहुभाषण, चौदासीन्य, भय और क्रोध चक्रके मध्य एकाग्र वर्जनीय है। पात्रहस्त चक्रके मध्य भ्रमण, पूर्णपात्र हाथमें ले करके अनेकक्षण अवस्थान, पात्रहस्त प्रसाप, पद द्वारा पात्रस्पर्श, भूमितल पर विन्दुपात, मुद्राशून्य एक हस्तसे प्रदान, एकस्थानसे अन्य स्थानको पात्रकी चालना, पात्रसङ्कर, सशब्द पान किंवा शब्द करके पात्रपूरण करना कुलाचारियोंके किये नितान्त अकर्तव्य है। पात्रके साथ पात्रका सङ्गठन, अस्तिकामें स्थापन, आचारके साथ पात्र उत्तोलन किंवा रिक्त पात्र दर्शन करना न चाहिये। पात्रको प्रक्षालन करके गोपन करना चाहिये। कौलिक कुलद्रव्य पानसे उद्भासित हो यदि पशुको देखे, तो पशु शास्त्र पाठ करके उसको पशुभाव दिखलावे। फिर पशुके प्रसङ्ग और पशुके कार्यका अनुष्ठान करना चाहिये। स्वेच्छा किंवा धनलोभसे अथवा किसी प्रकार भीत हो करके भी श्रीचक्रस्य कुलद्रव्य पञ्चाचारोंको अर्पण करना न चाहिये। क्योंकि वैसा करनेवालेका धन, पायु और यश विनष्ट होता है। चक्रके मध्य रह करके शत्रुसे भी विरोध नहीं करते। चक्रस्थित कौलिकोंको पितृ तुल्य

और शक्तियोंको माताके समान मानना चाहिये। इस प्रकारकी चिन्ता करना ही कौलिकोंका प्रधान कार्य है—ब्रह्मासे स्वस्व पर्यन्त सकल गुरुके सन्तान हैं, मैं सभीका शिष्य हूँ और सब मेरे पुण्य हैं। जपकाल भिन्न गुरुका नाम लेना न चाहिये। गुरु, कुलशास्त्र और पूजास्थानको अवलोकन करके नमस्कार करते हैं। कौलिकको अपनी पत्नीको भाँति कुलशास्त्र सर्वदा सेवन करना चाहिये। परदारवत् पशुशास्त्रको परित्याग करते हैं। पशुसे कुलधर्मको कोई कथा सुनना न चाहिये। गुरुपत्नी, गुरुकन्या, कुमारी, व्रतधारिणी, वक्राङ्गी, विक्रताङ्गी, कुला, अपनी कन्या, भगिनी, पौत्रों और पुत्रवधू अलगनीया होती है। कौलिकोंका कभी उनको कामना करना न चाहिये। गुरुसे कोई बात गोपन करना अकर्तव्य है। कृष्णवस्त्रपरिधारिणी, कृष्णवर्णा, कृशोदरी और युवती कुमारीको देवता समझ करके पूजा करते हैं। चाममांस, सुराकुम्भ, मत्तगज, सिद्धिसूचक चिह्नविशिष्ट व्यक्ति सहकारवृक्ष, अशोकवृक्ष, क्रीडाकुला कुमारी, शोफल वृक्ष, श्मशान, शक्तिसमूह किंवा रत्नाम्बरधारिणी कुलकामिनीको अवलोकन करके भक्तिपूर्वक नमस्कार करना चाहिये। कुलद्रव्य और कौलिक कुलधर्मके सूचक, शिष्यक अथवा बोधक मनुष्यको देख भक्तिभावसे नमस्कार करना कुलाचारीका कर्तव्य है। स्त्रीजातिकी निन्दा, उनके अप्रिय कार्यका अनुष्ठान, किंवा अवमानना, भक्तकी परीक्षा, वीरका कर्तव्याकर्तव्य विचार; अनावृतस्नान, उल्लङ्घनी एवं अक्षता कामिनीका अवलोकन और दिनको स्त्रीसंयोग वा स्त्रीयोगिका अवलोकन कुलाचारमें निषिद्ध है। सकल स्त्रियाँ मातृकुलसे उत्पन्न हैं। उनकी किसी प्रकार अवमानना करनेसे कुलयोगिनी असन्तुष्ट होती है। शत शत अपराध करने पर भी किसी प्रकार उनका अप्रिय आचरण करना न चाहिये। कुलवृक्ष किंवा अर्कके पत्रमें भोजन, कुलवृक्षके तल पर शयन अथवा कुलवृक्ष पर किसी प्रकार उपद्रव करना निषिद्ध है। कुलवृक्षको देख अथवा उसका नाम सुनके नमस्कार करते हैं। कभी कुलवृक्षको छेदन करना न चाहिये। श्लेषातक,

करण, निम्न, अशुचि, कदम्ब, विष, वट और उदुम्बर तन्त्रशास्त्रमें कुलवृक्षके नामसे अभिहित हुवा है। कौलिकोंको प्रायश्चित्त, भृगुपात, सत्रास, व्रतधारण और तीर्थयात्रा पाँच कार्य परित्याग करना चाहिये। वीरहत्या, चक्रभिन्न मद्यपान, वीरपत्नीमें अभिगमन, वीरद्रव्यका अपहरण और उक्त समस्त कर्मके अनुष्ठान-कारीका संसर्ग पाँच महापातक तन्त्रशास्त्रमें अभिहित हुवे हैं। कुलशास्त्रमें अविश्वास अथवा कुलगुरुका विद्रोह आचरण करना न चाहिये। माता, पिता, भार्या, भाई, बन्धु किंवा कुलधर्मकी निन्दा करने-वाले अन्य व्यक्तिको बध करते हैं। अशक्त होने पर उनके प्रति शत्रुता प्रकाश करके स्वयं प्राण परित्याग करना चाहिये। कुलधर्म, कुलदेवता, कौलिक और कुलशास्त्रकी रक्षाके निमित्त प्राणिहत्या करनेसे पाप नहीं लगता। शूद्रके समक्ष जैसे वेदपाठ अविधेय है, वैसे ही पश्चात्कारीके निकट कुलाचारका प्रसङ्ग छेड़ना भी कर्तव्य नहीं। प्रकृत कुलाचारियोंकी अन्तरमें कुलाचार, वाहर श्रेयभाव और सभामें वैष्णवमत अवलम्बन करना चाहिये। कुलाचारको कभी प्रकाश नहीं करते। कारण मन्त्र प्रकाश करनेसे सम्पत् विगाड़ती और अवस्था घटती है। शास्त्रमें महापातकीकी निषकृति निरूपित हुई है। किन्तु कुलाचार-परिभ्रष्ट कौलिकका कोई उपाय बताया नहीं गया।—इस प्रकार कुलाचारको प्रतिपादन करनेसे साधक सर्वसम्पत्तिशाली हो पीछे परमात्मामें लीन हो सकता है। सकल धर्म परित्याग करके मंत्र, तंत्र और अभिषेक न करते भी केवल कुलाचारके प्रतिपादनसे ही कुलाचारियोंको सिद्धि मिल जाती है।

निम्न तन्त्रमें कुलाचारका विषय इस प्रकार लिखा गया है—

“कुलाचारं भो वल्ल सुगोप्यं कुरु यत्नतः।

स्वशक्तिं कौलिकीं कृत्वा तत्र पूर्णं प्रकल्पयेत्॥

सिद्धमन्त्रो यजेच्छक्तिं कायेन मनसापि वा।

परधोषां विशे वेप सिद्धमन्त्रो प्रपूजयेत्॥

एतानि कुलधर्माणि नृकभिचरितानि च।

वाचनीयं सिद्धमन्त्रो तावच्च स कुलं भजेत्॥”(निम्नतन्त्र, दस पटल)

हे वल्ल ! कुलाचार बलपूर्वक गोपन करना उचित है। अपनी शक्ति (स्त्री) को कौलिकी करके पूजा करना चाहिये। सिद्धमन्त्री मन और प्राणमें सर्वदा शक्तिकी अर्चना किया करते हैं। फिर जो सिद्धमन्त्री हो नहीं सके हैं अर्थात् जिनका मंत्र सिद्ध नहीं, उनको अपनी शक्तिकी ही पूजा कर्तव्य है, परन्तु अवलम्बन करना सर्वदा निषिद्ध है। परम गुरुने उक्त प्रकारसे ही कुलधर्म कथन किया है।

कुलाचारी को मंत्रसिद्धिप्रणाली निम्नतन्त्रके नवम पटलमें इस प्रकार कथित हुई है :—

शुभकर अथच मनोरम्य समस्त कुलद्रव्य भक्तिपूर्वक आनयन करना चाहिये। उसके पीछे चक्र बनाके शक्तिकपासके वीरकोणमें कामकलामन्त्र और मध्यमें कामवीज युक्त मूलमन्त्र लिखते हैं। फिर उसी शक्तिको कुलदेवीका आह्वान और ध्यान करके पूजा करना चाहिये। उसके पीछे साधक स्थिरचित्तहोके सप्त जप करता है। जप समाप्त होने पर शक्तिके वामकर्णमें ऋषिहृन्मःयुक्त मूलमन्त्र तीन बार कड़के निम्न-लिखित मन्त्र पाठ करना चाहिये—

“अथ प्रथम शक्तिस्थं कुलदेवार्चनं चर।

गुरोराज्ञां समादाय वृत्तान्त्र्याविवर्जिता॥

शिवोक्तविधिना देव करिष्यामि कुलार्चनम्।

वाङ्मि नाथ कुलाचारवामिनीकामनायकः॥

तत्पादाशीरुहच्छायां देहि मे कुलवर्त्मनि॥”

इसी प्रकार रात्रिका प्रथम प्रहर अर्थात् होनेपर शक्तिको नाना आभरणसे विभूषित करके अपने वाम-भागमें बैठा उसके कपासपर नामयुक्त मन्त्र लिखते हैं। साधकको ताम्बूल भक्षण करके कुलाकुल मन्त्र जप करना चाहिये। इसी प्रकार साधना करनेसे मंत्र सिद्ध होता है। जबतक सिद्धि नहीं पाते, तबतक इसी प्रकार अनुष्ठान उठाते हैं। मंत्र सिद्ध होने पर कुलाचारमें परस्त्रीको अवलम्बन करते किंवा श्मशानमें परस्त्रीकी पूजा करते हैं। इसके पीछे देवकन्याको आकर्षण करना चाहिये। फिर देवताको आकर्षण करके साधक शिवतुल्य हो सकता है। मन्त्रसिद्धि विषय पर नाना तन्त्रोंमें नाना मत उचित होते हैं। उनका विचार समझनेके लिये कालौतक, गन्धर्वतन्त्र, भावचूडामणि प्रथम प्रत्य द्रष्टव्य है।

कुलाचार्य (सं० पु०) १ कुलक्रमगत आचार्यः । कुल-
गुरु, कुलपुरोहित । २ घटक । घटक देखो ।

कुलाट (सं० पु०) कुलेन समूहेन घटति, कुल-घट-
घट् । सुद्रमव्य-विशेष, एक छोटी मछली ।

कुलाव्य (सं० पु०) जनपद विशेष, एक आवाद सुक्त ।
(भारत, भोव, २ व०)

कुलाद्रि (सं० पु०) कुलपर्वत । उसका अपर नाम
कुलाचल और कुलगिरि है ।

कुलाधारक (सं० पु०) कुलं धरति रक्षति, कुल-धृ-
कर्तरि खल् । पुत्र, भेटा, घरानेकी हिफाजत करने-
वाला लड़का ।

कुलाधि (हि० स्त्री०) पाप, दोष, गुनाह, ऐव ।

कुलान्वित (सं० त्रि०) कुलेन सत्कुलेनान्वितः, १-तत् ।
सत्कुलोत्पन्न, अच्छे खान्दानमें पैदा होनेवाला ।

कुलाबा (सं० पु०) १ लोहेका जसुरका, पायजा । उससे
किवाड़ बाजूमें जकड़ा रहता है । २ मछली पकड़ने-
का कांटा । ३ चकवेके बीचकी लकड़ी । ४ पानी
निकलनेको नली, मोरी ।

कुलाभि (सं० पु०) धर्मभाण्डार, खजाना ।

कुलाभिमान (सं० पु०) कुलस्य वंशस्य अभिमानः,
१-तत् । वंशाभिमान, खानदानका गफूर ।

कुलाभिमानी (सं० पु०) कुलाभिमानीऽस्वास्ति, कुला-
भिमान-इति । अपने वंशका गौरव करनेवाला व्यक्ति,
जो शस्त्र अपने घरानेकी बढ़ाई करता हो ।

कुलाय (सं० स्त्री०) को पृथिव्यां सायो लयोऽस्य ।
१ शरीर, जिन्हा, महीमें मिल जानेवाला बदन । (पु०)
कुलं पक्षिसमूहः पयतेऽत्र, कुल-पय-घञ् । २ पक्षि-
नीड़, घोंसला, १ ऊर्णनाभिष्टम्भ, मकड़ीका जाल ।
३ कुलुरादि जन्तुका वासस्थान, कुत्ते वगैरह जानवर-
के रहनेकी जगह । ५ स्थान मात्र, कोई जगह ।

कुलायन (सं० पु०) गोत्रप्रवर्तक ऋषिभेद ।

कुलाययत् (वे० त्रि०) कुलाय निर्माण करनेवाला, जो
जगह बनाता हो ।

“कुलाययविषयम् न आगन् ।” (ऋक् ७।५०।१)

“कुलाययत् कुलायं स्थानं तत् कुर्वन् ।” (चापव)

कुलायस्व (सं० पु०) कुलाये नीडे तिष्ठति कुलाय-स्व-
कः । पक्षी, चिड़िया, घोंसले या खोतेमें रहनेवाला ।

कुलायिका (सं० स्त्री०) कुलायो विद्यतेऽस्याम्, कुलाय-
ठन्-टाप् । पक्षिगाला, चिड़िया-खाना ।

कुलायिनी (सं० स्त्री०) कुलायो विद्यतेऽस्याम्, कुलाय-
इनि-ङोप् । १ विष्टुतिविशेष । पक्षियोंके वासस्थानको
कुलाय कहते हैं । कुलाय जैसे विपर्यस्त दृष्यसमूहसे
बनाया जाता, वैसे ही विपर्यय करके पाठ किया जाने-
वाला मन्त्र समूह कुलाय कहाता है । उक्त कुलाय
अर्थात् मन्त्रसमूह जिसमें रहता, उस विष्टुतिका
नाम कुलायिनी पड़ता है ।

“कुलायिनी कुलायो नीडं पक्षिणां निवासस्थानं तदयथा व्यस्यतश्चादिनि-
मित्तं एव व्यस्यस्युक्ता ऋषः कुलायः तेषां इतो कुलायिनी एतत् संज्ञा
विश्वत्सोमस्य विष्टुतिरियम् ।” (ताण्ड्यब्राह्मण, १ अध्याय, माधवभाष्य)

“तिष्ठभ्यो हिङ्गरोति स पराचोभिः । तिष्ठभ्यो-हिङ्गरोति या मध्यमा
सा प्रथमा योत्तमा सा मध्यमा या प्रथमा सोत्तमा । तिष्ठभ्यो हिङ्गरोति ।
योत्तमा सा प्रथमा या प्रथमा सा मध्यमा या मध्यमा सोत्तमा कुलायिनी
विहती-विष्टुतिः ।” (ताण्ड्यब्राह्मण, १ व०)

विश्वत्सोमकी विष्टुतिकी कुलायिनी कहते हैं ।
उसका प्रथम पर्याय परिवर्तिनी सदृश होता है ।
द्वितीय पर्यायमें दृक्की प्रथमा ऋक्को उत्तमा, द्वितीया-
की प्रथमा और उत्तमा ऋक्की मध्यमा बनाना पड़ता
है । फिर तृतीय पर्यायमें उत्तमाको प्रथमा, प्रथमाको
मध्यमा और मध्यमाको उत्तमा कर देते हैं । इसी
विष्टुतिका नाम कुलायिनी है ।

कुलायिनीका अधिकारी भी ताण्ड्यब्राह्मणमें निरु-
पित हुआ हैः—

“प्रजाकामी वा पशुकामी वा स्तुती प्रजा वं कुलायं”

पशवः कुलायं कुलायमेव भवति ।” (ताण्ड्यब्राह्मण)

प्रजाकामी वा पशुकामीको कुलायिनी द्वारा स्तुति
करना चाहिये । प्रजा और पशुको कुलाय समझते हैं ।
कुलायिनी द्वारा स्तुति करनेवाला प्रजा और पशुका
आश्रय बनता है ।

“एतामिवशुजावराय कुर्वांश्च तासामिवायं परियतीनां प्रजानां मन्त्रं
पठेति ।” (ताण्ड्यब्राह्मण)

अतिशय निकट यजमानके मङ्गलको कुलायिनी
विधान करना चाहिये । जिसके निमित्त कुलायिनीका

अनुष्ठान किया जाता, वह श्रेष्ठ पदपर प्रतिष्ठित मनुष्योंके मध्य भी प्रतिष्ठा पाता है।

“एतामिव बहुमो यजमानेभ्यः कुर्यात् । यत् सर्वा ऋषिषा भवन्ति सर्वा भूषाः सर्वा उत्तमाः । सर्वानेवैतान् समावहमाज्यः करोति नानोन्मपन्नते सर्वं समावदिन्द्रिया भवन्ति ।” (तात्पर्यब्राह्मण)

उद्गाताको बहु यजमानोंकी मङ्गलकामनाके लिये कुलायिनी अनुष्ठान करना चाहिये। कारण कुलायिनीकी दृष्टमें सकल ऋक् समान होती हैं। पूर्व ही प्रदर्शित हो चुका है कि प्रथम पर्यायमें व्यतिक्रम नहीं पड़ता। द्वितीय पर्यायमें मध्यमा ऋक् प्रथमा उत्तमा ऋक् मध्यमा तथा प्रथमा ऋक् उत्तमा और तृतीय पर्यायमें उत्तमा ऋक् प्रथमा, प्रथमा ऋक् मध्यमा और मध्यमा ऋक् उत्तमा करके पाठ करना पड़ती है। अतएव प्रथम पर्यायमें जो ऋक् प्रथमा रहती, वही द्वितीय पर्यायमें मध्यमा और तृतीय पर्यायमें उत्तमा बनती है। इसी प्रकार प्रथम पर्यायकी मध्यमा ऋक्, द्वितीय तथा तृतीय पर्यायमें प्रथमा एवं उत्तमा लगती है। फिर प्रथम पर्यायकी उत्तमा ऋक्, द्वितीय एवं तृतीय पर्यायमें मध्यमा तथा प्रथमा निकलती है। कुलायिनीमें दृष्टके सकल मन्त्र समान होते हैं। कुलायिनी द्वारा सकल यजमान समान फलभागी हो सकते हैं। सकल यजमान समान फलभागी होनेसे फिर परस्पर कोई एक दूसरेकी हिंसा नहीं करता और सबका वीर्य समान रहता है।

“बहुः परंशो भवति इमे हि कोका खलसान् हिङ्गारिष व्यतिवजति ।” (तात्पर्यब्राह्मण)

प्रथम एक हिङ्गार द्वारा लोकत्रयस्नानीय तीनों ऋक् सम्मिलन जैसा करती हैं। इससे तीनों कोक (स्वर्ग, मर्त्य, रसातल) का परस्पर उपकार्य और उपकारक भाव वांछित नहीं होता। अत एव भिन्न ब्रह्मासमय वर्णन करता है।

(त्रि०) २ कुलाय विशिष्ट ।

“अप्र विभेभिः स्नोतदेवैरुर्वावर्त्त प्रथमः सोद योनिम् ।

कुलायिर्न वृत्तवर्त्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ।”

(अथ० ६।१५।१६)

“कुलायिर्न कुलायो नोर्ध्वं तत् सङ्गं युग्मकुलादिकश्चरणीयतम् ।” (सायण)

कुलायो (वे० त्रि०) गृहनिर्माणकारी, घर बनानेवाला।

“योनिं कुलायिर्न वृत्तवर्त्तं । (अथ० ६।१५।१६)

कुलायं व—एक प्राचीन तन्त्र । तन्त्रसार, शक्तिरत्नाकर, आगमतस्त्वविलास, प्रायतोषिणी प्रभृति तान्त्रिक ग्रन्थोंमें कुलायं व तन्त्र उद्धृत हुआ है। फिर पूर्वोक्त गौरीकान्त प्रभृतिने भी उसका प्रमाण उल्लेख किया है। उक्त तन्त्रमें जीवस्थिति, कुलमाहात्म्य, त्रिप्रसाद-परामन्त्र, महाषोढा कुलद्रव्यादिका संस्कार, बटुक शक्त्यादि पूजन, त्रितयतत्त्व, पागादि भेद, योनि-स्थापन, दिन विशेषकी विशेष पूजा, कुलाचार, पादुका, गुरु तथा शिष्यका लक्षण, दीक्षाभेद, पुरस्चरण, काम्य-कर्मविधि और कुलादि पदार्थका लक्षण समस्त वर्णित हुआ है।

कुलाल (सं० पु०) कुलसंस्थाने कालम् । तद्विविशिष्टि चचिकुलिकपिपत्ति पचिभ्यः कालम् । अथ० १।११०। १ कुम्भकार, कुम्हार । २ ककुभपची, जङ्गली सुर्गा । ३ पेचक, उलू । ४ कुम्भीर, घड़ियाल ।

कुलालादि (सं० पु०) कुलालः आदौ यस्य, बहुव्री० । पाणिन्युक्त गणविशेष, कुछ लफ्जोंका जखीरा। उसमें कुलाल, बड़ड़, चण्डाल, निषाद, कर्मार, सेना, सिरिंध्र, सेरिंध्र, देवराज, पर्वत, बधू, मधू, बहू, बद्र, अम-उह, ब्रह्मन्, कुम्भकार और श्रृण्पाक शब्द रहता है। उक्त शब्दोंके उत्तर कृत अर्थमें संज्ञाका बोध होनेसे वृत्त पाता है। (पा० ४।२।११५)

कुलालिका, कुलाली देखो।

कुलाक्षी (सं० स्त्री०) कुलाल-डीप । १ कुलालपत्नी, कुम्हारिन । २ कुलत्याचन प्रस्तरविशेष, सुरमेका कोई पत्थर । ३ वनकुलालिका, जङ्गली कुलाली ।

कुलाक्षी (हिं० स्त्री०) दूरवीचचयन्त्र, दूरवीन ।

कुलासक (सं० पु०) दुरासभा, जवासा ।

कुलाह (सं० पु०) ईषत् पीतवर्णं क्षणजानु अश्व, कुछ पीला और काले घंटनोंवाला घोड़ा । २ रक्त कोकिल-आश, आश तालमखाना । उसका संस्कृत पर्याय—कोकिलाश, काकेक्षु, इक्षुर, क्षुर, भिक्षु, काकेक्षु, इक्षुवाकिका और इक्षुमन्था है। भावप्रकाशके मतमें वह शीतल, बलकारक, आहु, अन्न, पित्तवर्धक और

तिष्ठ है। उससे चामशोष, चर्मरोग, दन्त्या, चर्दित तथा वातरक्तदोष मिटता और निम्न आहार करनेसे रक्त बढ़ता है।

कुलाह (फा० स्त्री०) एक टोपी। वह लंबी रहती और तुर्कस्थान तथा अफगानस्थानके पड़नावेमें चलती है।

कुलाहक (सं०) कुलाह देखो।

कुलाहल (सं० पु०) छद्म वृक्षविशेष, एक छोटा पेड़।

कुलाहल (हिं०) कोलाहल देखो।

कुलि (सं० पु०) १ हस्त, हाथ। २ चटकपत्ती, चिड़ा।

३ काचनार भेद, साल कचनार।

कुलि (सं० स्त्री०) १ चविका, चय। २ कण्टकारी, कटेया।

कुलि (हिं० क्रि० वि०) १ अधिक, बहुत, ज्यादा। २ सम्पूर्ण, तमाम, सब।

कुलिक (सं० त्रि०) कुलमस्त्यस्य, कुल-ठन्। १ शिल्पि-कुलप्रधान, कारीगरोंमें सुखिया। २ सत्कुलसम्पन्न, अच्छे घरानेवाला। (पु०) ३ अष्ट महानागान्तर्गत एक नाग। (भागवत, ५। २४।) ४ काकादनी वृक्ष, एक पेड़। ५ कोकिलाक्ष, तालमखाना। ६ कर्कट, केकड़ा। ७ यात्रादि शुभकर्ममें निषिद्ध सुहृत्, दुष्ट समय।

“शकार्कदिग्वसुरसाध्याधित्यः कुलिका रथैः।

रात्रौ निरेकाक्षिण्यंशः शनौ चाख्योऽपि निन्दितः॥”

(सुहृत्चिन्तामणि)

कुलिक सकल वारको दिन और रात्रिमें होता है। उसमें किसी शुभकर्मका अनुष्ठान करना न चाहिये। कारण कुलिकमें शुभकर्म करनेसे असफल किंवा कार्य-नाश होता है। रविवारके दिनमें १४ सुहृत् एवं रात्रिमें १३ सुहृत्, सोमवारके दिनमें १२ तथा रात्रिमें ११ सुहृत्, मङ्गल वारके दिनमें १० एवं रात्रिमें ८ सुहृत्, बुधवारके दिनमें ८ तथा रात्रिमें ७ सुहृत्, वृश्चतिवारके दिनमें ६ एवं रात्रिमें ५ सुहृत्, शुक वारके दिनमें ४, तथा रात्रिमें ३ सुहृत् और शनिवारके दिनमें २ एवं रात्रिमें १ सुहृत् की कुलिकवेला तथा कुलिकरात्रि कहते हैं। किसी किसीने

१। रविवारके १५। १० सुहृत् की भी कुलिक निर्देश किया है।

“शरैश्चिबन्धे वापि बलात्कं लघुमे शुभे।

कुलिकोऽन्यदोषस्तु निगम्यति न संशयः॥

शुभे केन्द्रगते चन्द्रे शुभांशे वा शुभाक्षिते।

लघुमे सबन्धे वापि कुलिकस्तु प्रलोभते॥” (वृश्चति)

यदि वारका अधिपति बलवान्, अन्य बलवान् यद् युक्त, शुभ किंवा लग्नगत अथवा शुभचन्द्र केन्द्र वा शुभांशगत किंवा शुभग्रहकट्टक दृष्ट किंवा लग्नगत वा बलवान् रहता, तो कुलिकका दोष नहीं लगता।

“कुलिके सर्वनाशः स्यात् रात्रौ चिते न होवदाः।” (वृश्चति)

वृश्चतिके कथनानुसार कुलिकमें कोई कार्य करनेसे सर्वनाश होता है। किन्तु रात्रिको कुलिक दोषावह नहीं।

“काश्मीरे कुलिकं दुष्टमर्थं ग्रामस्तु सर्वतः।” (गर्ग)

गर्ग मुनिके मतसे काश्मीर देशमें ही कुलिक अनिष्टकारक है। अन्य देशोंमें वह पशुभप्रद नहीं होता।

शारदातिलकमें ‘नवदुर्गाभिचार कर्म’ को कुलिक-वेलामें करनेका विधान है।

“नपिक्ता सितशुक्रानां कुलिकं कुलिकोदये।” (शारदातिलक)

कुलिकच्छ (सं० पु०) नन्दी वृक्ष, तुलका पेड़।

कुलिकवेला (सं० स्त्री०) शुभकर्ममें निषिद्ध काल।

कुलिक देखो।

कुलिका (सं० स्त्री०) मेघनृत्ती, मेढ़ासींगी।

कुलिकाक्ष्य (सं० पु०) कुलिका इत्याख्या यस्य, बहु-त्री०। कोलिहृक्ष, बेरी।

कुलिङ्ग (सं० पु०) कौ प्रथिष्ठां लिङ्गति आहारार्थं चरति, कु-लिङ्गि-अच् नुमागमः। १ चटक, चिड़ा। गृहकुलिङ्गका मांस रक्तपित्तहर और अति शीतल होता है। (राजनिषध) २ सविषमूषिकविशेष, कोई जहरीला चूहा। उसके दंशनसे दंशमण्डल पर रज और शोफ हो जाता है। (सुश्रुत) ३ फिक्कपत्ती, गौरा चिड़िया। उसका मांस मधुर, स्निग्ध और कफ तथा शुक्रविवर्धन है। (सुश्रुत) ४ पक्षीमांस, कोई चिड़िया। (स्त्री०) ५ कुक्षित लिङ्ग। (त्रि०) ६ कुक्षित-लिङ्गयुक्त।

कुलिङ्गक (सं० पु०) कुलिङ्ग स्वार्थे कन् । कुलिङ्ग देखो ।
कुलिङ्गा (सं० स्त्री०) १ कुलिङ्गपक्षीकी स्त्री । मादा
चिड़ा । २ कर्कटशृङ्गो वृक्ष, ककड़ासींगीका पेड़ ।
३ गढ़वालका निकटवर्ती कोई नगर ।
कुलिङ्गाक्षी (सं० स्त्री०) १ पेटिकावृक्ष, रसभरीका पेड़ ।
कुलिङ्गी (सं० स्त्री०) कुलिङ्ग-ङीष् । १ कर्कटशृङ्गो,
ककड़ासींगी । २ फिङ्गक, गौरा ।
कुलिङ्गुरि—एक प्राचीन संस्कृत कवि । हरिहारावली
ग्रन्थमें उनकी कविता उद्धृत हुई है ।
कुलिङ्ग (सं० पु० स्त्री०) कुली हस्ते जायते, कुलि-जन्-
ड । १ मछ, माखून ।

“कुलिङ्गकृष्टे दक्षिणतोऽधोः सभारमाहरति ।” (गृह्यसूत्र)

२ परिमाणविशेष, कोई तौल ।

कुलित्या (सं० स्त्री०) रक्तकुलित्य, लाल कुलियो ।
कुलित्यिका (सं० स्त्री०) १ वनकुलित्य, जङ्गली कुलियो ।
२ त्रिवृत, निमोत । ३ मसूरिका, मसूर ।
कुलिन्य (सं० पु०) कुल-इन्दः । १ जनपदविशेष, एक
बसा हुआ मुल्क । (भारत, वन) कुलिन्य देखो । २ कुलिन्य-
जनाधिप, कुलिन्य देशके राजा । (भारत, समा)
कुलिर (सं० पु०) कुल-इरन् वाङ्मलकात् साधुः ।
कर्कट, केकड़ा ।

कुलिश (सं० पु० स्त्री०) कुली हस्ते शिंते, कुलि-शी-डः
यद्वा कुलिनः पर्वतान् श्रमति, कुल-शी-डः । १ वज्र,
कहर, बिजली । २ कुठार, कुल्हाड़ा, फरसा ।

“कल्पासीव कुलिशेनाविहङ्गपाणिः ।” (अक्षर १ । ३२ । ५)

‘कुलिशेन कुठारेण ।’ (सायण)

३ हीरकप्रभ मत्स्यविशेष, हीरकी तरह चमकने-
वाली कोई मछली । उसे संस्कृतमें कण्टकाष्ठौल भी
कहते हैं । ४ पश्चिम-द्वार वृक्ष, इड़फोड़का पेड़ ।
५ लताशाल, बेलदार साल । ६ खण्डकर्ण वृक्ष, सकार-
कन्दका पेड़ । ७ हीरक, हीरा ।

कुलिशतड (सं० पु०) अश्वकर्णशाललता, एक बेलदार
पेड़ ।

कुलिशद्रुम (सं० पु०) खुहीवृक्ष, यूहर ।

कुलिशधर (सं० पु०) कुलिशं धरति, कुलिश-धृ षच् ।
कुलिशधारी, इन्द्र ।

कुलिशनायक (सं० पु०) एक शृङ्गारबन्ध । (रतिसंज्ञो)
कुलिशपाणि (सं० पु०) कुलिशः पाशावस्य बहुव्री० ।
वज्रधर, इन्द्र ।

कुलिशमत्स्य (सं० पु०) कुडिशमत्स्य, एक मछली ।

कुलिशाङ्गुशा (सं० स्त्री०) बौद्धोंकी सोलह विद्या-
देवियोंमें एकका नाम ।

कुलिशासन (सं० पु०) कुलिशमिव इदमासनमस्य,
बहुव्री० । बुद्धका नामान्तर ।

कुलिशी (सं० स्त्री०) कुलिश स्त्रियां ङीष् । एक वेदोक्त
नदी । “बंजरी कुलिशी वीरपत्नी ।” (अक्षर १ । १०४ । ४)

‘बंजरी कुलिशी वीरपत्नी एतत् सञ्जिकालिकी नद्यः ।’ (सायण)

कुली (सं० पु०) कुलमस्यस्य, कुल-इन् । बलादिभ्यो मठ
बन्धतरङ्गाम् । पा ५ । २ । ११६ । १ पर्वत, पहाड़ । (त्रि०)

२ सत्कुलयुक्त, खानदानो, पण्डे घरानेवाला ।

कुली (सं० स्त्री०) कुलि-ङीष् । १ कण्टकारी वृक्ष,
कटैयेका पेड़ । २ वृद्धती, बड़ी कटैया । ३ कोकिलाक्ष,
तालमखाना । ४ पत्नीकी ज्येष्ठाभगिनी, बड़ी साली ।

कुली (तु० पु०) भारवाहक, मजदूर, पक्षेदार, सुटिया ।

कुलीजन (हिं०) कुलजन देखो ।

कुलीक (सं० पु०) पत्नी, चिड़िया ।

कुली कुतुब शाह (१ म)—दक्षिणापथमें गोलकुण्डा
राज्यके प्रतिष्ठाता । वह सुलतान कुली कहलाते थे ।
उनके पिताका नाम कुतुब-उल्-मुल्क रहा । कुतुब-
उल्-मुल्कके मरने पीछे कुली कुतुब शाहकी तैलङ्गकी
तरफदारो (एक पद) और गोलकुण्डा तथा तैलङ्गके
कुछ प्रान्तमें जागीर मिली थी । बहुमानो वंशका पञ्च-
पतन होने पर जब आदिल शाह प्रभृति राजकीय
चमता प्रकाश करते थे, उसी समय १५१२ ई० की
कुली कुतुबशाह भी तैलङ्ग राज्य अधिकार करके एक
स्वाधीन राजा बन बैठे । उन्होंने अपना उक्त नाम
रखा था । कुली कुतुब शाहने स्वाधीन भावसे ३२ चान्द्र
वर्ष राजत्व किया । कोई कोई बताता है कि उत्तराधि-
कारी जमशेद कुतुब शाहने एक तुर्की क्रीतदास
(गुलाम) की उत्तुव (रिश्वत) देके गुप्तभावसे
उनका वध कराया था । १५४३ ई० की २री सित-
म्बर रविवारको कुली कुतुबशाह मर गये ।

कुली कुतुब शाह (२ य)—सुदामाद कुली कुतुब । अपने पिता इब्राहीम कुतुब शाहके मरने पर १५८१ ई०के जून मास द्वादश वर्ष वयःक्रम कालको वह गोलकुण्डाके सिंहासन पर बैठे थे। राज्यलाभके प्रारम्भमें ही उनसे बीजापुरके नवाब आदिल शाहका घोरतर युद्ध हुआ। १५८७ई० को उन्होंने आदिल शाहकी सन्धि करके अपनी भगिनी प्रदान की। वह राजधानी गोलकुण्डामें बहुत रहते न थे। भागमती नाम्नी एक वेश्या उन्हें अधिक प्यारी थी। उसीके नामानुसार गोलकुण्डासे ४ कोस दूर उन्होंने भागनगर स्थापन किया। कुली कुतुब शाह उसी नूतन नगरमें सर्वदा वास करते थे। शेषकी उक्त वेश्यासे विरक्त हो उन्होंने भागनगर हैदराबादको दे डाला।

पारस्यराज शाह अब्बासने कुली कुतुबकी एक कन्याके साथ अपने पुत्रका विवाह करने के लिये प्रस्ताव उठाया था। उन्होंने अपने को कृतार्थ समझके पारस्य राजपुत्रको कन्या प्रदान की। उससे सुसलमानोंके समाजमें उनका सम्मान और भी बढ़ गया।

कुली कुतुब विद्याका बड़ा आदर करते थे। तत्कालीन अनेक विद्व पण्डित उनकी सभामें अवस्थित रहे। उन्होंने अपने आप भी 'कुलियात कुतुब शाह' नामक हिन्दी, दक्षिणी और फारसी कविता मिश्रित एक वृहद् ग्रन्थ रचना किया है। १६१२ ई०के जनवरी मासमें वह मर गये।

कुलीच खान—हैदराबादके विख्यात अधिपति निजाम-उल्-मुल्क आसफ जाहके पितामह (दादा)। बादशाह शाहजहाँके राजत्वकाल वह भारतमें आये थे। फिर बादशाहने उन्हें 'चार हजार' पद प्रदान किया। १६८६ ई०की ८ वीं फरवरीको गोलकुण्डाके अवरोधकाल तोपका गोला लगनेसे उनका प्राण बहिर्गत हो गया।

कुलीन (सं० त्रि०) १ सद्बन्ध जात, खानदानी, अच्छे घरानेवाला। वेद, स्मृति प्रभृति अति प्राचीन ग्रन्थोंमें विद्वान् और सत्कुलोत्पन्न व्यक्तिको ही कुलीन कहा है।

“चेतकेतो वक्ष मन्त्रचर्यं न वे सोम्याऽऽकृत् कुलीनोऽनन्य मन्त्रवन्धुरिव भवतीति।” (छान्दोग्योपनिषत् ६।१।१)

वक्ष स्नेतकेतो ! तुम अनुरूप गुहके निकट अवस्थान करके ब्रह्मचर्य अवलम्बन करो। कुलीन होते भी अध्ययन न करनेसे कोई कैसे ब्राह्मण हो सकता है !

मनुसंहिताके अनेक स्थल पर कुलीन शब्दका उल्लेख है। मिथा तिथिने कुलीन शब्दकी इस प्रकार व्याख्या की है।

“सन्कुले जाता विद्यादिगुणयोगिनः कुलीनाः।”

(मनुभाष्य, मिथातिथि ८। १२१)

सत्कुलमें जन्मग्रहण करनेवाला और विद्यादि बहुगुणसम्पन्न व्यक्तिको ही कुलीन है।

“महाकुलीनः ख्यातिधनविद्याशौर्यादिगुणो जातः।”

(मिथातिथि ८। १२५)

कीर्ति, धन, विद्या और शौर्यादि भूषित कुलमें जो जन्म पाता, वही महाकुलीन कहलाता है।

याज्ञवल्क्यस्मृतिके अनेक स्थलोंमें कुलीन शब्दका प्रयोग विद्यमान है। विश्वामित्रर प्रभृति विख्यात टोकाकारोंने उसका इस प्रकार अर्थ लगाया है।

‘कुलीनाः महाकुलपत्न्याः।’ (२। ६८)

‘मातुः पित्रतयाभिजनवान् कुलीनः।’ (मिताचर १।१०८)

मातापितासे कौलीन्य लाभ करनेवाले अर्थात् सत्वंशोत्पन्न माता पिताके पुत्रको कुलीन कहते हैं।

रामायणमें मान्य सत्कुलोद्भव व्यक्ति ही कुलीन कहा गया है।

रामायणके टीकाकार रामानुजने लिखा हैः—

‘चारित्रं वेदानुमताचारः तत्सम्पन्नः सन् कुलीनत्वादि

ख्यातिं ख्यापयति असम्पन्नश्चकुलीनत्वादीति भावः।’

(रामायणटीका, १।१०२।४)

चरित्र शब्दका अर्थ वेदविहित आचार है। जो वह आचार अवलम्बन करता, उसीको सब कोई प्रतिष्ठित कुलीन कहता है। फिर वेदविहित धर्मका अनुष्ठान न करनेवाला अकुलीन है।

महाभारत और पुराणमें अनेक स्थान पर ऋषि तथा सन्ध्यान्त ऋषिय वीरगणको कुलीन कहा गया है।

(भारत, उद्योग और अनुशासन पर्व, सह्याद्रिखण्ड, पृष्ठा १७।१०)

शास्त्रकारों, भाष्यकारों और टीकाकारोंकी भांति धन, मान, कुल तथा शीलमें खेड व्यक्तिको ही परवर्ती काशकी कुलाचार्यकारिकामें भी कुलीन कहा है—

“आचारो विनयो विद्या प्रतिष्ठा तीर्थदर्शनम् ।

निष्ठाभ्यान्निखपोदानं नवधा कुललक्षणम् ।”

आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, तीर्थदर्शन, निष्ठा, शान्ति, तपः, तथा दान नव-प्रकार गुणविशिष्ट व्यक्ति ही कुलीन माना गया है ।

२ भूमिसन्त, जमीनसे जगा हुआ ।

(पु०) ३ वज्रदेश्य ब्राह्मण और कायस्थविशेष ।

ई० ८म शताब्दीके आरम्भको राज्यमें साम्प्रदायिक ब्राह्मण न होनेके कारण पञ्चगौड़के महाराज आदिशूर पांच ब्राह्मण कनौजसे ले गये थे । कुलीन उन्हीं पांच ब्राह्मणोंके सम्मान हैं ।

४ कुलख नामक सुद्वेग, नाखूनकी एक बीमारी । कुलख देखो । ५ श्वेतघोटक, सफेद घोड़ा । ६ तान्त्रिक कुलाचारी शक्तिपूजक ।

कुलीनक (सं० त्रि०) कुलीन स्वार्थे कन् । १ कौलीन्य-युक्त, खानदानी । (पु०) २ वनसुन्न, जङ्गली मोठ । ३ कर्कट, केकड़ा ।

कुलीनस (सं० स्त्री०) कुलीनं भूमिसन्तं द्रव्यं सति, कुलीन सो-कः । जल, पानी ।

कुलीना (सं० स्त्री०) कुलीन स्त्रियां टाप् । कई प्रकार-के पार्यायणोंका नाम ।

कुलीपय (वै० पु०) जलचर, जलज ।

“निमाद्य कुलीपयान् वक्ष्यामि नामान् ।” (श्रुत यजुर्वेद २४।२१)

कुलीयक (सं० स्त्री०) नेत्रसन्धि, आँखोंका जोड़ ।

कुलीर (सं० पु०) कुल ईरन्-किञ्च कपिलादित्वात् सत्वे कुलीरः (उज्ज्वलदत्त ४ । २२ । यथा कुलवर्षसंज्ञयोः ईरः ।

(रामवर्मा, उपाधिकोष, १।१०१) १ कर्कटम्बुकी, ककड़ासोंगी

२ कर्कट, केकड़ा । ३ सुद्रककर्कट, छोटा केकड़ा ।

कुलीरका मांस शीतल, धातुविवर्धक, तृष्य, और स्त्रियोंका रक्त प्रवाह समनकारी है । (वैद्यकनिष्यु)

कुलीरक (सं० पु०) सुद्रः कुलीरः, अपत्यार्थे कन् । सुद्र कर्कट, छोटा केकड़ा ।

कुलीरविषाचिका (सं० स्त्री०) कर्कटम्बुकी, ककड़ा-सोंगी ।

कुलीरविषाणी, कुलीर विषाचिका देखो ।

कुलीरम्बुकी (सं० स्त्री०) कुलीरः कुलीरायव इव मृङ्ग-यस्याः, कुलीर-मृङ्ग-ङोप् । विदर्भीरादिभ्यश्च । पा ४।१।४१ कर्कटम्बुकी, ककड़ासोंगी ।

कुलीरा, कुलीरम्बुकी देखो ।

कुलीरात् (सं० पु०) कुलीर-अद्-क्तिप् । कर्कटशिशु, केकड़ेका बच्चा । लोग बताते हैं कि केकड़ेके बच्चे मातृ-गर्भमें रहते ही माताके शरीरका अभ्यन्तर भाग खा जाते हैं । माताके मरने और समस्त शरीर आहारकर चुकनेपर वह वहिर्गत होते हैं । कुलीरात्का पर्याय स्येगवि है ।

कुलीश (सं० पु०-स्त्री०) कुली इत्येते, कुलि-शोष्-पृषोदरादित्वात् दीर्घः । वज्र, बिजली ।

कुलुक (सं० स्त्री०) कुल बाहुलकात् उलच्-लस्य कः किञ्च । जिह्वामल, जीभका मेला ।

कुलुक गुप्ता (सं० स्त्री०) कौ पृथिव्यां लुक्ता लुकायिता गुप्तेव उत्काम्निः । तारा टूटनेके वस्तु देख पड़नेवाली भाग ।

कुलुङ्ग (वै० पु०) कुरङ्ग, हिरन ।

“कीमाद्य कुलुङ्ग आरभ्योऽनी नकुलः शकाः ।”

(वाजसनेयस २४। ३२)

कुलुष (वै० पु०) चौरभेद, एकतरहका चोर ।

‘कु’ भूमि’ चे वयसादिदृष्या लुचन्ति इरन्ति कुलुषाः कुतचित् लुकति वा ।’

(शिददीपे, महीधर १६। १२२)

कुलुफ (हि०) कुफल देखो ।

कुलुस (हि० पु०) मत्स्य, कुरसा मछली । वह चिन्तु, युक्त प्रान्त, वज्रदेश और आसाममें मिलता है । उसका देव्य ५ फीट तक रहता है । कुलुस तासाशोमें पासा जाता है

कुलू (हि० पु०) १ कुलूत, कागड़ेके पासका कुलू सुल्फ । उलू देखो ।

२ वृक्ष विशेष, कोई पेड़ । उसके मृदु मत्स्यजने स्तर वहिर्गत होते हैं । पत्र दश बारह इंच दीर्घ रहते और टेढ़नीके छोरपर गुच्छाकार निकलते हैं । पुष्प

सुद तया पीतवर्णं होते हैं। कलू नेपालकी तराई, बुंदेलखण्ड और बङ्गालमें पाया जाता है। उसका निर्यास 'कतौरा' कहलाता है।

कुलूत (सं० पु०) जनपद विशेष, एक बसती। कुलू-देवी।

कुलू (सं० स्त्री०) तुषानल, भूसीकी भाग।

कुलेचर (सं० पु०) कुले चरति, कुले-चर-अन् अलुक् समा०। छत्रक भेद, एक छोटी सजी।

कुलेय (सं० त्रि०) कुले भवः, कुल-टः बाहुलकात् साधुः। कुलीन, खानदानी।

“बभूव तत् कुलीयाणां द्वयकार्यसुपस्थितम्।” (महाभारत, १।१७८ अः)

कुलेल (हिं० स्त्री०) कलोल, खेल कूद, हंसी खुशी।

कुलेलना (हिं० क्रि०) कलोल करना, खेलना कूदना।

कुलेखर (सं० पु०) कुलस्य जगत्समूहस्य ईश्वरः, ६-तत्।

१ शिव, महादेव। २ कुलपति, घरानेका मालिक।

कुलेखरी (सं० स्त्री०) कुलेखर टित्वात् ङीप्। दुर्गा।

कुलोत्कट (सं० पु०) कुलेन उत्कटः उपः। १ सत्कुल-जात चोटक, जाती घोड़ा। (त्रि०) २ सत्कुलोद्भव, अच्छे खानदानमें पैदा।

कुलोत्थिका (सं० स्त्री०) कुलस्य, कुरथी।

कुलोद्भूत (सं० त्रि०) कुलात् सत्कुलात् उद्भूत उत्पन्नः। सत्कुलजात, अच्छे घरानेका पैदा।

“मोलान् शास्त्रविदः यराम् लब्धलघान् कुलोद्भूतान्।” (मनु ७।५४)

कुलोद्भव (सं० त्रि०) कुलं वंशं उद्भवति पालयति, आद्यादिना पित्रपुत्र्यान् अध्वं नयति वा। कुलश्रेष्ठ, वंशप्रतिपालक, खानदानकी परवरिश करनेवाला।

कुलटू (हिं० पु०) कोटू, कुटू।

कुलथी, कुलथी देखो।

कुलफ (सं० पु०) कल संस्थाने फक्। कलिनलिभां फगस्योश्च। उच ५।१६। १ गुलफ, पिंडली।

“यदिनामन् पदवि चन्दनं भुवदष्टोवनी परिकुलपी च दृश्यते।”

(चक्र ७।५०।२)

२ रोग, बीमारी।

कुलफ (हिं० पु०) ताला, कुलुफ।

कुलफा (सं० स्त्री०) कुलफ स्त्रियां टाप्। रोगविशेष, एक बीमारी।

कुलफी, कुलफी देखो।

कुल्लस (सं० स्त्री०) कुल्ल-कल्लन् लल्लान्तादेशः। कुल्ल-उच ७।१८०। १ पाप, गुनाह,।

कुल्लस (वे० पु०) वाण वा बरछेका वह अंश, जिसमें दण्ड संलग्न कर दिया जाता है।

“तत्र मे नन्दताह्वं शल्य इव कुल्लसं यथा।” (अथर्व २।१०।१)

कुल्लसवर्हिष (सं० पु०) एक वैदिक ऋषि।

कुल्लाष (सं० पु० स्त्री०) कुलः अर्धस्त्रिको माघोऽस्मिन्, बहुव्री०। १ अर्धस्त्रिकधान्य-गोधूमादि, घुंघनी, कोहरी। भावप्रकाशके मतमें वह गुरु, रुच, वायु-नाशक और

मलभेदक है। २ खिचड़ी। ३ कोटदष्टमाष, कोढ़ेका खाया हुआ उड़द। ४ राजमाष, सोविया। ५ यावक, छरुने पानीमें पकाया हुआ चावल। ६ सूर्यका पारि-

पाश्विकभेद। ७ शूकधान्य, शृङ्गादिसमन्वित व्रीह्यादि धान्य, टणधान्य। ८ काश्मीरका तुलसीभेद।

९ काष्ठीक, कांजी। १० रोगविशेष, एक बीमारी।

११ वनकुलस्य, वनकुलथी। १२ मसीपरिणाम।

१३ कुलस्य, कुलथी। १४ गन्धपालि, खुशबूदार चावल।

१५ वंश, बांस। १६ जटामांसी। १७ धान्यविशेष, बोरो धान। १८ यवौदन, जौका दलिया। १९ यवपिष्टमाष।

कुल्लाषाभिभव कुल्लाषाभिभुत देखो।

कुल्लाषाभिभुत (सं० स्त्री०) कुल्लाषैरभिभुतम्, ३-तत्। काष्ठीक, कांजी।

कुल्लाषी (सं० स्त्री०) कुल्लाष स्त्रियां ङीप्। एक नदी। (हरिवंश)

कुल्लास (सं० पु० स्त्री०) कुल्लाष,।

कुल्य (सं० त्रि०) कुलं कौलीन्यमस्यस्मिन् कुल वला-दित्वात् यः। कुल्ल-उच ७।१८०। यद्वा कुल अपत्यर्थे यत्। अपूर्वपदादन्तरस्यां यङ्ठक्ञी। पा ४।१।१०। १ सत्कुलोद्भव, अच्छे घरानेवाला। २ कुलपरम्परागत, खानदानी वाला दाखिल।

“यद्वा न मनोबोद्धपरिच्छदांश्च इतीय कुल्यः पश्यन्त्यवर्णान्।”

(भागवत ७।६।१२)

३ माननीय, इज्जनदार। (स्त्री०) ४ अस्त्रि,

उछी। ५ अमिष, मांस, गोश्त। ६ सूर्प, सूप।

७ अष्टद्वीप परिमाण, चौंसठ सेरकी तौल। ८ कीकस,

पन्जर, ठठरी।

कुल्लू (वै० त्रि०) कुल्लूभव, कृत्रिम सरित्जात, नहरसे पैदा। “नमः कुल्लूय च सरस्वाय च नमो नदियाय च। (इत्ययम् १६१७) ‘कुल्ला कृत्रिमा सरित्जात भवः कुल्लूः। (महीधर,)

कुल्लू (सं० स्त्री०) कुल्लू-टाप। १ कृत्रिम नदी, नहर, बम्बा, बम्बी। २ पयःप्रणाली, पनारा। ३ महाभार-तोक्त ऋषिकुल्लू, देवकुल्लू प्रभृति कई नदियोंका नाम। ४ जीवन्ती, कोई सज्जी। ५ नदामात्र, कोई दरया। ६ स्थूल वार्ताकी, बड़ा बैंगन या भांटा। ७ कुलस्त्री, खानदानी औरत। ८ द्रोणाष्टकमान, ६४ सेरकी तौल।

कुल्लू (वै० स्त्री०) कुल्लू नदी, छोटा दरया।

“स्यन्दनां कुल्लू विविताः।” (अक् ५।८१८)

कुल्लूसन (सं० स्त्री०) कुल्लूय कुल्लूचाराय हितमास-नम्। इन्द्रायामलतम्भमें कहा हुआ एक मासन।

कुल्ला (हिं० पु०) १ गरारा, कुरला, मुंह साफ करनेके लिये उसमें पानी भरकर चारो ओर झिंझाते हुए बाहर फेकनेका काम। २ सुखपूर्ण जल, एक बार सुहमें आ सकनेवाला पानी। उपर्युक्त दोनों अर्थोंमें ‘कुल्ला’ संस्कृतके कवल शब्दका अपभ्रंश है।

३ इच्छुत्तसिन्धुन-विशेष, जखके खेतकी कोई सिंचाई। कुल्ला ईखमें अक्षुर निकलने पर किया जाता है।

४ घोटकवर्ण भेद, घोड़ेका कोई रंग। मेरुदण्ड (पीठकी रीठ) पर लम्बवर्ण रेखा रहनेसे कुल्ला रंग कहाता है। ५ कुल्लू, काकुल, बाल।

कुल्लू (हिं० स्त्री०) छोटा कुल्ला। कुल्ला देखो।

कुल्लूक (हिं० पु०) वंशभेद, किसी किसका बांस।

कुल्लू (कुल्लू) पञ्जाब प्रदेशके अन्तर्गत कांगड़ा जिलेका एक विस्तीर्ण उपविभाग। वह हिमालयकी उपत्यकामें अक्षा० ३१° २०' से ३२° २६' उ० और देशा० ७६° ५८' १०" से ७७° ४८' ४५' पू० पर्यन्त विस्तृत है। उसके मध्य शतद्रु नदीका पश्चिम तट और विपाशा नदीकी खण्डित अववाहिका विद्यमान है।

उक्त कुल्लू जनपद महाभारत, रामायण तथा पुराणादिमें उल्लूत, कुल्लूत, कौल्लूत और कौल्लूक नामसे

वर्णित हुआ है। चीनपरिव्राजक हुएन चुपाङ्गने उसका नाम कउ-लू-तो लिखा है। उन्होंने वहां जा और उक्त स्थान पर्यटन करके कहा है—‘यह राज्य ३००० लि (प्रायः ५०० मील) विस्तृत है। इसकी चारो ओर पर्वतमाला लगी है। राजधानी प्रायः १४१५ लि (ठाई मील) होगी। यहां भूमि विशेष शस्यशाली और उर्वरा है। नानाविध जता, तह और फलफूल प्रचुर परिमाणमें उत्पन्न होते हैं। विशेषतः यहां मूखवान् वृक्षमूल अधिक निकलते हैं। स्वर्ण, रौप्य और ताम्र प्रभृति धातु स्थान स्थान पर मिलता है। यहां चिरकाल शीत रहता, सर्वदा तुषार गिरता है। अधिवासियोंकी प्रायः गलगण्ड और अर्बुद रोग लग जाता है। वह अतिशय उग्रप्रकृति और वीरत्व तथा न्यायके पक्षपाती हैं।’ उस समय कुल्लूमें २० बौद्ध सङ्घाराम, सङ्घस्थाधिक बौद्ध याजक, एतद्विष १५ हिन्दू देवालय थे। पर्वतके भूगुपातकी चारो ओर पत्थर-के घर रहते। अर्धतु और ऋषि उन्हींमें वास करते थे। कुल्लू राज्यके मध्यभागमें बौद्धराज अशोक-प्रतिष्ठित एक स्तूप रहा।

प्रायः साधं द्वादश शत (१२५०) वर्ष पूर्व चीन-परिव्राजक जो लिख गये हैं, कुल्लू राज्यमें आज भी उसके अनेक निदर्शन मिलते हैं। अधिवासियोंका स्वभाव प्रायः पूर्ववत् है। उनमें साहस और शारीरिक बल विशेष विद्यमान है। किन्तु सब लोग दरिद्र हैं। उनके पास एकमात्र कच्चा परिधय है। स्त्रियों और पुरुषोंका परिष्कृत प्रायः एकही प्रकारका रहता है। स्त्रियां सुदीर्घ केश चूड़ा करके बांधती हैं। बसाहिर, सुकेत, मण्डी, कोहिल्लान और कुल्लू कई स्थानोंके अधिवासी एक जातीय समझ पड़ते हैं। सामान्य खेतो बारी करनेवाले गूजर और महिष, छाग प्रभृति प्रति-पालन करनेवाले गछी कहलाते हैं। कुनेत और डगी लोगोंका ही यहां प्राधान्य है। इस समय भी शिवराज नामक स्थानमें स्त्रियोंके मध्य बहुविवाहकी प्रथा दृष्ट होती है। कई भार्य मिलके बहुतसी स्त्रियों-से विवाह कर लेते हैं। वह सब स्त्रियां उनकी साधारण सम्पत्ति समझी जाती हैं। कुल्लूराज्यके कुछ दूसरे

जाना में उक्त प्रथा अधिक प्रचलित नहीं। वहाँ स्त्रियाँ अधिक परिश्रमी होतीं और क्षेत्र में जाके काम करती हैं। काम पर जाने के समय वह अपने अपने शिशु सन्तान को किसी न किसी वृद्धा के पास छोड़ जाती हैं। सुवास्तु (नदी) प्रभृति स्थानों को लघिकायों के लिये जाते समय युवतियाँ अपने अपने सन्तान आपाद-मस्तक कक्ष्यलमें लपेट भरने के पास ऐसे भावसे डाल देती, कि उनके मस्तक पर सड़क ही पानी के बूंद टपका करते हैं। लोगों को विश्वास है कि शिशुवकाल-उस भावमें रखनेसे वह भविष्यत् में अधिक परिश्रमी, वीर्यवान् तथा बलवान् निकलते और सदरामय प्रभृति सकल प्रकार रोग नहीं लगते। साधारणतः डाइनका बड़ा भय रहता है। किसीको पीड़ा पड़ने पर या गोमिषादि पक्षिमात् मरनेसे सब लोग डाइन पर्यात् सन्दिग्ध वृद्धा स्त्रीको पकड़के विशेष कष्ट देते हैं। पूर्वकाल उक्त वृद्धा स्त्रीको लोग मिल लुलके जला डालते थे। आजकल ब्रिटिश राजत्वमें वैसा नृशंस व्यवहार किया जा नहीं सकता। फिर डाइन समझी जानेवाली वृद्धा स्त्री समाजच्युत करके देशसे निकाल दी जाती है। उससे अभागिनो शीघ्र ही मृत्युके सुखमें पतित होती है। कुल्लूक और कांगड़ा देखो।

कुल्लूक (सं० पु०) मनुसंहिताके एक विख्यात टीकाकार। वह वारेन्द्र ऋषीके नन्दनावासीग्रामी दिवाकर भट्टके पुत्र और वारेन्द्र-समाजमें परिवर्तन-मर्यादा प्रतिष्ठाता उदयनाचार्य भादुङ्गीके समसामयिक थे।

कुल्लू (वै० स्त्री०) १ लोमहीनता, गंजापन।

“चातिष्ठत्वा चातिकुलं चातिलोमम् च ।” (पञ्चयजुः १०।२२)

‘चातिकुलं’ लोमरहितम् । (महीधर)

(त्रि०) २ लोमहीनतायुक्त, गच्छा।

कुल्लूक (सं० स्त्री०) जिह्मामल, जीभका मेला।

कुल्लूङ्ग (हिं० पु०) पुरवा, सिकोरा कुरवा, चुकड़।

कुल्लूङ्गा (हिं० पु०) कुठार, कोहिका एक बीजार। उससे लकड़ी काटी और चीरो जाती है। कुल्लूङ्गा १२।१४ पङ्गुल लम्बा और ४।६ पङ्गुल चौड़ा होता है। उसमें दो सिरे रहते हैं। ऊपरी सिरा ३४ पङ्गुल मोटा होता है। उसमें एक लम्बा गोल छेद चारपार

जाता है। उसी छेदमें लकड़ीका बेंट डालते हैं। कुल्लूङ्गका दूसरा सिरा पतला और भारदार रहता है।

कुल्लूङ्गी (हिं० स्त्री०) १ सुद कुठार, छोटा कुल्लूङ्गा, टांगी। २ बसूला।

कुल्लूङ्गिया (हिं० स्त्री०) छोटा कुल्लूङ्ग।

कुल्लू (हिं० पु०) कुल्लूत, कुल्लू, कांगड़ेके पासका एक देश। कुल्लू देखो।

कुव (सं० स्त्री०) कुं भूमि वाति गच्छति तत्र जम्ब-ग्रहणादित्यर्थः, कु-व-क। १ उत्पल, कमल। २ वारिज पुष्प मात्र, पानीका कोई फूल।

कुवकालुका (सं० स्त्री०) कुवमिव कायति प्रकाशते, कुव-कै-कः। चोली शाक, एक सबजी।

कुवङ्ग (सं० स्त्री०) कु ईषत् वङ्गमिव गुणसादृश्यादित्यर्थः उपमितसं०। शीषक, सीसा।

कुवचः (सं० स्त्री०) कुत्सितं वचो वाक्यम्, कुगतिसं०। १ कुत्सित वाक्य, निन्दा, बुरी बात, गालीगलौज। (त्रि०) कुत्सितं वचोऽस्य, बहुव्री०। २ निन्दक, बुरी बात कहने या दूसरेकी बुराई करनेवाला।

कुवज (सं० पु०) पद्मयोनि, ब्रह्मा।

कुवज्जक (सं० स्त्री०) कुत्सितं वज्जं हीरकमिव कायति प्रकाशते, कु-वज्ज-कै-कः। वैक्रान्त मणि, एक तरहकी चुन्नी।

कुवद (सं० स्त्री०) कुत्सितं वदं वाक्यम्, क-वद्-अच्। १ कुत्सित वाक्य, निन्दा, बुरी बात, बुराई। (त्रि०) कुत्सितं वदं वाक्यमस्य, बहुव्री०। २ निन्दाकारी, बुराई करनेवाला।

कुवम (सं० पु०) कौ पृथिव्यां वमति वर्षति जलमित्यर्थः, कु-वम्-अच्। १ सूर्य, सूरज।

“कुलं कुलच कुवमः कुवमः काययो विजः।” (महाभारत, अनुशासन, २१ अ०)

(त्रि०) कुत्सितं वमति। २ निन्दित वमनकारक।

कुवर (सं० पु०) कुत्सितं वृणाति मृच्छाति रसमित्यर्थः। कु-वृ-अप्। अक्षरपू। पा ३। १। ५०। १ तुवररस, कसेलापन। (त्रि०) २ कषायरसयुक्त, कसेला।

कुवर्ष (सं० पु०) कुत्सितो वर्षो वृष्टिः, कु-वृष-अच्। अजस्र वर्षण, अत्यन्त वृष्टि, बड़ी बारिश।

“भारोवृद्धेन सिन्धुस्य तथैवै रत्नवाजिनः ।

दोना धर्मपरित्राणाः कुवलयपङ्कता इव ॥” (रामायण ६।८२।१५)

कुवलय (सं० पु०) कौ वलते, कु-वल् पचादित्वादच् ।
१ बदरीवृक्ष, बेरका पेड़, बेरी । (स्त्री०) २ बदरीफल,
बेर । ३ मुल्लफल, हरफली । ४ उत्पल, कोका ।
५ पद्म । ६ जल, पानी । ७ सर्पेन्द्र, सांपका पेट ।
८ लङ्गत् वदर, बड़ा बेर ।

कुवलयकौ (सं० पु०) शल्लकी वृक्ष, सलईका पेड़ ।

कुवलयकुण (सं० पु०) कुवलयानां पाकः, कुवलय-पीण्या-
दित्वात् कुणप् । तस्य पाकमूले पीण्यादिकर्षादिभ्यः कुचवजाऽचौ ।
पा ५।१।१४४ । कोलिफलकाल, बेरका मौसम ।

कुवलयप्रस्थ (सं० पु०) नगर विशेष, एक शहर । कुवलय
शब्द कर्क्षादिगणान्तगत होनेसे उदात्त स्वर नहीं
लगता । (पा ६।१।८०)

कुवलय (सं० स्त्री०) कौः पृथिव्या वलयमिव तस्या
शोभोत्पादकत्वात्, उपमितसं० । १ उत्पल, कोका,
बघोला । २ नीलोत्पल, नीली कोई । ३ श्वेतपद्म, सफेद
कंवल । ४ नीलपद्म, नीला कंवल । ५ श्वेतकुम्भ, सफेद
बघोला ।

“ज्योति र्कं खावलपि गलितं यस्य वरुं भवानी ।

पुन मेखा कुवलयदक्षमापि कथं करोति ।” (मेघदूत, ४६)

कौः पृथिव्या वलयम्, इ-तत् । इ भूमण्डल ।

“योवा अयं वीपः कुवलयकमलकोशमग्नरकीयः ।” (भागवत, ५।१।६५)

(पु०) ७ कुवलययात्रा, राजाके छोड़े का नाम ।

८ असुर भेद ।

कुवलयपुर (सं० स्त्री०) नगरविशेष, एक शहर ।

कुवलयदित्वा (सं० पु०) नृपतिविशेष, एक राजा ।

कुवलयपीठ देखी ।

कुवलयानन्द (सं० पु०) कुवलयं भूमण्डलं आनन्दयति,
कुवलय-आ-नन्द-पच् । १ असङ्कार ग्रन्थविशेष । वह
चन्द्राक्षोकके टीका रूपसे लिखा गया है । २ कुसुदका
आनन्दजनक चन्द्र, चांद ।

कुवलयपीठ (सं० पु०) कुवलयमापीठं भूषणं यस्य ।
१ काश्मीरके कोई राजा । उनका अपर नाम कुवलय-
दित्वा था । वह ललितादित्यके पीछे काश्मीरके सिंहा-
सन पर बैठे । राज्ञी कमलादेवीके गर्भसे उन्होंने जन्म

लिया था । उनके राजत्वका बहुतसा समय आतापीठ
साथ युद्ध विषयमें व्यतीत हुआ । पीछे किसी कारणसे
उनको बेराम्ब पा गया था । इसीसे उन्होंने राज्य परि-
त्याग करके प्रस्थ-प्रसवण नामक वनको गमन किया ।
भूपतिके वन जाने पर सखीक मन्त्रिपर मित्रशर्माने
वितस्ताके जलमें डूब प्राण छोड़ा । क्योंकि उनका
वाक्य और कार्य ही भूपतिके वनगमनका प्रधान
कारण था ।

२ देख्यविशेष । उक्त देख्य हस्तीका रूप धारण कर-
के कृष्ण और बलरामकी विनाश-कामनासे कंसके
हारदेश पर उपस्थित रहा । कंसालयमें प्रवेश करते
समय हारदेश पर कुवलयपीठने कृष्णको आक्रमण
किया था । किन्तु कृष्णने उसे मार डाला ।

(हरिवंश ८५ प०)

कुवलयवली (सं० स्त्री०) श्रीकण्ठदेशाधिप आदित्य-
प्रभकी महिषी । वह डाकिनिसिद्ध रहीं । पति भी
उनके उपदेशसे डाकिनोमन्त्रमें दीक्षित हुवे । एकदा
रानीने फलभूति नामक किसी ब्राह्मणको भोजन करना
चाहा था । फिर उनके पादेशसे एक घातक रत्न-
शालामें उपस्थित रहा । उसे पात्रा थी—जो व्यक्ति
रत्नशालामें पाये, वह जीता सौटने न पाये । महाराज-
राजने कलना करके फलभूतिको पाकगृहमें जानेके
लिये अनुमति की । देवक्रमसे फलभूतिके परिवर्तनमें
राजकुमार वहाँ जाके उपस्थित हुवे । घातकने उनकी
वध किया था । इसी प्रकार राजकुमारको पितामाताने
खा डाला । पीछे फलभूतिके मुखसे समस्त विवरण
सुनके राजाने गृह परित्याग किया था । रानी कुवलय-
वली भी पति और पुत्रके शोकसे हुताशनमें जल मरीं ।

(कथासरित्सागर)

कुवलययात्रा (सं० पु०) १ नृपतिविशेष, कोई राजा ।
उनका अपर नाम धनुमार था । (भागवत, ८।६।१८)

२ शक्रजित् राजाके पुत्र । उन्हें ऋतुध्वज भी कहते
थे । किसी दिन एक तपस्वी कोई अश्व ले राजसभामें
उपस्थित हुये और कहने लगे—“महाराज ! कोई
दानव पशुका रूप धारण करके प्रतिदिन यज्ञ भङ्ग करने
की चेष्टा करता है । हमने उसके व्यवहारसे अत्यन्त

सुखित हो ईश्वरकी आराधना की थी। पीछे एकस्मत् एक दिन आकाशमण्डलसे यह अश्व पतित हुआ और हमने इस दैववाणीकी सुना—“वीरश्रेष्ठ राजपुत्र इस तुरङ्ग की आरोहण करके अपनायास दैत्यसंहार कर सकेंगे। इस पृथिवी मण्डल पर कहीं गति प्रतिहत न होनेसे यह घोटक कुवलययात्र कहाता है।” अनन्तर ऋतुध्वज पिताके आदेशसे घोटक पर चढ़के सुनिके आश्रमको गये। (कुवलय नामक अश्व मिलनेसे ही ऋतुध्वजका नाम कुवलययात्र पड़ा था) यथासमय यज्ञविघ्नकारी दानव बराहका रूप धारण करके उक्त आश्रममें उपस्थित हुआ था। राजकुमारने उसको लप्य करके वाण निक्षेप किया। दानव वाणाघातसे बहुत घबड़के भागा था। राजकुमार भी अप्रतिहत गतिसे अश्व पर चढ़के उसके पश्चात् धावित हुये। उन्होंने दानवके अनुसरणमें पुरी प्रवेश करके गन्धर्वराज विश्वावसुकी कन्या मदालसाकी शिवाह किया था। पातालपुरीमें गन्धर्वकुमारीके मुखसे उन्होंने सुना—जो दानव पशुरूप धारण करके यज्ञमें विघ्न डालता था, वह राजकुमारके वाणाघातसे मर गया। राजपुत्र मदालसाको लेकर घर आये। दिन दिन मदालसा उनकी प्राणसे भी प्रियतमा होने लगीं। पातालकेतुके भ्राता तालकेतुने भ्रातृहन्ताकी अनिष्ट कामनासे सुनिवेश धारण करके राजधानी अदूरवर्ती यमुनातट पर एक आश्रममें कपट तपस्या की आरम्भ किया। राजकुमार कुवलय नामक घोटक पर आरोहण करके दैवक्रमसे उक्त कपट संन्यासीके आश्रम पहुँचे थे। संन्यासी वेशधारी तालकेतुने राजपुत्रको कहा—“यदि आप अनुग्रह पूर्वक अपना शिरोभूषण हमें प्रदान करते, तो हमारे बहुत दिनोंके परिश्रममें फल लगते।” ऋतुध्वजने उसे शिरोभूषण दे डाला। दानवने शिरोभूषण लेके और राजपुत्रको आश्रमरक्षाका भार देके गमन किया था। वह सुहृत्तमध्य राजप्रासादमें उपस्थित होके कहने लगा—“राजपुत्रने दुष्ट दानवके युद्धमें प्राणपरित्याग किया और मृत्युसे पहले अपना शिरोभूषण हमको दे दिया है। हम भिक्षुक हैं। हमें शिरोभूषणसे कोई प्रयोजन नहीं।” फिर शिरोभूषणको वहीं रखके दानवने प्रस्थान किया।

पतिप्राणा मदालसाने पतिका निधन सुनके शोकमें प्राण छोड़ा। पीछे कुवलययात्रने भवनमें जाकर देखा कि प्राणाधिका प्रियतमाने उन्हें परित्याग किया था। उन्होंने प्रतिज्ञा की—“हम अब दारपरिग्रह न करेंगे जिससे जन्मान्तरमें गन्धर्वकुमारीको लाभ कर सकें।” राजपुत्रने ऐसा ही स्थिर करके संसारधर्म प्रायः छोड़ दिया। दैवक्रमसे नागराज अश्वतरके पुत्रद्वयसे उनकी वन्धुता बढ़ी थी। अश्वतर पुत्रोंके मुखसे राजपुत्रका विवरण सुनके एक मनसे सरस्वतीकी आराधना करने लगे। सरस्वतीके प्रसादसे उन्होंने अद्वितीय सङ्गात-विद्याका अभ्यास किया था। नागराजने तदनन्तर सङ्गीतद्वारा महादेवकी उपासना की। महादेवके समुष्ट हो वर देनेकी उपस्थित होने पर उन्होंने कहा था—“प्रभो ! हम को यही प्रार्थनाय है कि कुवलययात्र राजकुमारकी प्राणोपमा गन्धर्वकुमारी हमारे कन्या रूपमें जन्मग्रहण करें।” महादेव बोले—“आह करके स्वयं ही मध्यम पिण्ड भक्षण कीजिये। अनन्तर तुम्हारी मध्यम फणासे वही गन्धर्वकुमारी मदालसा बहिर्गंत होगी।” नागराजने शिवके कहनेसे वही किया था। फिर उनकी फणासे मदालसा निकल पड़ीं। नागराजने मदालसाको छिपाके अन्तःपुरमें रखा था। अनन्तर उनके आदेशसे पाताल पहुँचने पर चिर विरहिणी मदालसासे कुवलययात्र मिल गये।

(मार्कण्डेयपुराण, १०-१४ अ.)

१ कोई अश्व या घोड़ा। सुनियोंके यज्ञ-विघ्नकारी पातालकेतुको विनाश करनेके लिये सूर्यदेवने आकाशसे उसे भूतल पर अर्पण किया था। कुवलय (भूमण्डल) में किसी स्थान पर गति प्रतिहत न होनेसे उसका नाम कुवलययात्र पड़ा था

“अश्वानः सकलं भूमेर्बलं तुरगोत्तमः ।

समर्थः क्रान्तुमर्कं च तवायं प्रतिपादितः ॥ ४८ ॥

यतो भूवलथं सर्वं मन्त्रान्मोक्षं चरिष्यति ।

अतः कुवलथो नामा ख्यातिं लोके प्रशस्यति ॥ ५१”

(मार्कण्डेयपुराण, १० अध्याय)

कुवलययात्रीय (सं० स्त्री०) कुवलययात्र-हः। कुवलययात्र-नृपसम्य न्नीय गण्य, कुवलययात्र राजाकी कहानो।

कुवलयित (सं० द्वि०) कुवलयानि सञ्जातान्यस्य,
कुवलय-तारकादित्वादित्यम् । तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इत् ।
पा । ५ । १६ । कुवलयपूर्वं स्थान, कोकासे भरो दुई जगह,
जहां बहुतसे बघोली खिलें ।

“पुरमविशदयोध्यां मैथिली दर्शनीनां कुवलयितगवाणां लोचनैरङ्गनाम् ।”
(रघुव०, ११ । ८१)

कुवलयिनी (सं० स्त्री०) कुवलयानां सङ्घः, कुवलय-
इति स्त्रियां ङीप् । उत्पलिनी, कोके या बघोलीकी बहुत
तायत ।

कुवलयेश (सं० पु०) कुवलयस्य भूमण्डलस्य ईशः
पतिः, इत्यतः । पृथिवीपति, राजा, बादशाह ।

कुवला (सं० स्त्री०) मुक्ताविशेष, एक मोती ।

कुवलाश्र (सं० पु०) कुवलाश्रय, धनुमार राजाका
नामान्तर । (महाभारत, वनपर्व)

कुवली (सं० स्त्री०) कुवलय स्त्रियां गौरादित्वात् ङीप् ।
कोलिहल, बेरी, बेरका पेड़ ।

कुवलेश्वर (सं० पु०) कुवले उत्पले शिरो, कुवले-शी-अच्
अनुक् समान् । कुवलय पर सोनेवाली विष्णु ।

कुवां (द्वि० पु०) कूप, चाह, कुप्पा ।

कुवांट (द्वि० पु०) जङ्गली गुलाब ।

कुवाक्य (सं० स्त्री०) कुक्षितं वाक्यम्, कुगणितसमा० ।
कुक्षित कथा, निन्दा, अतिकर वाक्य, बुरी बात,
गांजी-गंजीज ।

कुवाक् (सं० स्त्री०) कुक्षितं वाक् वाक्यम् । कुक्षित
वाक्य, बुरी बात ।

“संस्कारिते मर्मभिदः कुवागिष्णू ।” (भागवत, ४ । १ । ५)

कुवाच्य (सं० चि०) १ कहा न जाने योग्य, जो कहने

लायक न हो, गन्दा । (स्त्री०) २ दुर्वचन, बुरी बात ।

कुवाट (सं० पु०) कुक्षितमशुभं चौरप्रवेशादिकं वटति
निवारयति, कुवट-अण् । कवाट, कपाट, द्वार, कवाड़,
दरवाजा ।

कुवाण (द्वि० पु०) धनुष, कमान ।

कुवाद (सं० द्वि०) कुक्षितं वदति, कुवद्-अण् । १ पर-
दोषकथनशील, दूसरेके ऐब कहनेवाला । (पु०) २ परी-
वाद, कुक्षितवाक्य, बदकलामी, बुरी बात ।

कुवार (द्वि० पु०) आश्विन मास, आसोजका महीना ।

कुवारी (द्वि० वि०) आश्विन-सम्बन्धीय, कुवारवाला ।

कुवासना (सं० स्त्री०) कुत्सित अभिप्राय, बुरी खाहिश ।

कुवाहुल (सं० पु०) कुत्सितं वहति, कु-वह-उलच्
बाहुलकात् साधुः । क्रमेलक, छद्म, छंट ।

कुविक (सं० पु०) जनपद विशेष, एक वसती ।

कुविचार (सं० द्वि०) मन्द विचारयुक्त, बुरी खयालवाला ।

कुविड (सं० स्त्री०) विडलवण, एक नमक ।

कुवित् (वै० अण्) १ बहुवार, कई मरतबा बार बार ।

“कुविमो अग्रिहचयस्य वीरसत् ।” (ऋक् १ । १४३ । ६)

‘कुवित् बहुवार’ (सायण)

२ धन्य धन्य । वाह वाह ! क्या खूब !

कुवित्स (वै० पु०) किसी व्यक्तिका नाम ।

“कुवित्सस्य प्रजिगमं गोमन्तं दस्युहागमत् ।” (ऋक् ६ । ४५ । १४)

‘कुविद् बहुवचः स्यति द्विजलोति कुवित्सो नाम कश्चित् ।’ (सायण)

कुविन्द (सं० पु०) कुवक्रोधे-किन्दच् वा वकारोऽन्या-
देशः । (उपेक्षावच । उप् ४ । ८६) तन्तुवाय, जलाहा, कीरो ।

कुविन्दक (सं० पु०) कुविन्द स्वार्य कन् । कंसकार,
कंसेरा ।

कुविम्ब (सं० पु०-स्त्री०) कुत्सितं विम्बम्, कुगणितसमा० ।

१ निन्दित मण्डल, जमीन् ।

कुविवाह (सं० पु०) कुत्सितो विवाहः, कुगणितसमा० ।

अशालीय विवाह, बुरी शादी ।

“कुविवाहेः क्रियालोपेक्षे दानध्ययनेन च ।

कुलान्यकुलतां यानि नम्रण्यातिप्रमेष च ॥” (मन्, १ । ६१)

‘कुविवाहेरासुरादिविवाहेः ।’ (कुल्लुक ४-६)

कुवीणा (सं० स्त्री०) कुत्सितानां नीचजातीयानां
वीणा । अण्डालकी वीणा ।

कुवीरा (सं० स्त्री०) एक नदी, कोई दरया ।

कुवृत्ति (सं० स्त्री०) कुत्सिता वृत्तिः, कुगणितसमा० ।

१ निन्दित आचरण, कुत्सित जीविका, कुव्यवहार,
बुरी चाल, खराब पैशा, बुरा बरताव । (द्वि०)

२ कुवृत्तियुक्त, बुरे चालचलन या पैशेवाला ।

कुवृत्तिकृत् (सं० पु०) कुवृत्तिं फलप्रदणकाले कण्ट-
काघातरूपं निन्दिताचरणं करोति, कृ-क्षिप् तुगागमश्च ।

१ पूतिका, करण भेद, कंटोला करीदा । (द्वि०)

२ निन्दित चेष्टाकारक, बुरी चरकत करनेवाला ।

कुवेरा (सं० स्त्री०) ईषत्, वेषन्ति गच्छन्ति मत्स्या-
यत्र, कु-वेष-अच् स्त्रियां टाप् । नदीविशेष, कोई दरया ।
२ मत्स्याधानी, मछलीकी टोकरी ।

कुवेणी (सं० स्त्री०) कुईषत् वेणन्ते गच्छन्ति मत्स्या-
यत्र, कु-वेष-इन् । १ मत्स्याधानिका, मछलीकी
टोकरी । २ सिंहलाधीश्वरी कोई याक्षणी । उनके
साथ निर्वासित राहुकुमार विजयका निवाह हुआ था ।
(महावंश) विजय और सिंहल देखो ।

कुवेर (सं० पु०) अश्वत्थं कुम्भति आच्छादयति, कुवि
आच्छादने एरक् नलोपस्य । कुम्भलोपस्य । उच्यते । १० ।
यद्वा कुम्भितं वेरं शरीरं यस्य, बहुव्री० । १ यक्षाधिपति,
इन्द्रवाले नवनिधिके भण्डारी और महादेवके
मित्र ।

“कुम्भां किति यद्वोऽयं शरीरं वेरमुच्यते ।

कुवेरः कुशरीरत्वात् नाका तेनैव संज्ञितः ॥” (मार्कण्डेयपुराण)

कुवेरका संस्कृत पर्याय—अश्वत्थसप्त, यक्षराट,
गुह्यकेश्वर मनुष्यधर्मा, धनद, यक्षराज, धनाधिप,
किन्नरीश, वैश्रवण, पोखरेश, नरवाहन, यक्ष, एकपिङ्ग,
ऐश्वर्य, श्रीद, पुष्पाजनेश्वर, इयंश्च और अलकाधिप
है । कुवेर देखो । २ वर्तमान अवसर्पिणोंके १८ वें सर्पत्के
कोई उपासक । ३ देवराष्ट्र नामक कोई राजकुमार ।
४ कादम्बरी-रचयिता वाचभट्टके प्रपितामह (परदादा) ।
५ तुल्यवृक्ष, शङ्खतूतका पेड़ । (त्रि०) ६ विकट,
अद्भुत, अस्वाभाविक, अनोखा, निराशा । ७ मन्द,
असह्य, भीमा, सुस्त ।

कुवेरक (सं० पु०) कुवेर कार्ये कन् । १ कुवेर । २ तुल्य
वृक्ष, शङ्खतूतका पेड़ ।

कुवेरनलिनी (सं० स्त्री०) एक तीर्थ ।

कुवेरबान्धव (सं० पु०) कुवेरस्य बान्धवो मित्रः, इ-तत् ।
शिव । कुवेरके भ्राता होनेसे महादेवका एक नाम
कुवेरबान्धव भी है ।

कुवेरवन (सं० स्त्री०) कुवेरस्य वनम्, इ-तत् । कुवेरका
अभिहित वन ।

कुवेरवज्रभ (सं० पु०) कुवेरो वज्रभः प्रियोऽस्य,
बहुव्री० । वैश्यभेद, एक वर्णिया ।

कुवेराची (सं० स्त्री०) कुवेरस्याचीव पिङ्गलवर्णं पुष्प

मत्स्यः, कुवेर-अचि-लीच् । १ पाटला वृक्ष, पाड़री ।
२ सताकरण, बिलदार करोंदा । ३ सितपाटलिका,
सफेद पाड़री । ४ पेटिका, रसभरीका पेड़ ।

कुवेराचल (सं० पु०) कैलास पर्वतका नामान्तर ।

कुवेराक्षि, कुवेराचल देखो ।

कुवेर (सं० स्त्री०) कुवेर जलनपुष्पेषु ईं शोभां लाति
गृह्णाति, कुव-ला-कः । कुवलय, लाल कोई ।

कुवेय (सं० पु०) कुत्सितो वेद्यः, कुगृह्यतः । कुत्सित
वेद्य, खराब हकीम या डाक्टर ।

कुव (सं० स्त्री०) अरक्ष्य, वन अङ्गल, ।

कुश (सं० पु०) कुं णपं स्यति विनाशयति, कु-शी-
यद्वा कौ भूमौ श्रेते वायुनावनमितः सन्निवृत्तः कु-शी-
कः । १ खनामत्स्यात वृक्ष विशेष, एक घास ।
(Poacynosuroides) इसका संस्कृत पर्याय—कुश, दर्म,
पवित्र, याज्ञिक, ऋष्यगर्भ, और यज्ञभूषण है । समस्त
वैदिक कर्ममें कुश सगता है । वह वैदिक क्रियाकलाप-
का एक प्रधान अङ्ग है । भागवतमें उसकी उत्पत्तिके
सम्बन्ध पर इस प्रकार लिखा है—यज्ञके अपना शरीर
फटकारने पर कितने ही लोग बर्हिंसतोपुरीमें गिरे
थे । उन्हींसे कुश उत्पन्न हुवे । ऋषियोंने उन्हीं कुशोंसे
यज्ञ करके यज्ञ विज्ञकारियोंको विनाश कर डाला ।

“बर्हिंसतो नाम पुरी सर्वसम्पत् समन्विता ।

अपतन् यत्र रोमाणि यज्ञस्याङ्गं विधुमन्तः ॥ १० ॥

कुशः काशास्य वासन शनश्चरित वर्चसः ।

अबयोः खैः पराभ्याम् यज्ञज्ञान् यज्ञनोद्विरे ॥ १८ ॥”

(भागवत १। १६ च०)

“सपिण्डलाश्च हरिताः पुष्टाः शिग्धाः समाहिताः ।

गोकर्णमावाच कुशः सकृच्छिन्नाः समूलकाः ॥” (मनुपुराण)

यज्ञादि कर्ममें अथयुक्त, हरिहरण, अकर्मण्य, पुष्ट,
दोषरहित, गोकर्ण परिमित और मूलयुक्त कुश प्रयुक्त
होते हैं । कुशकी एक बार मात्र छेदन करना
उचित है ।

“चित्तो रर्भाः पांच रर्भा ये रर्भा यज्ञभूमिषु ।

सरवासनपिण्डेषु बह्वर्जान् परिवर्जयेत् ॥” (शरीत)

चित्ताख्यान जात, पञ्चजात और यज्ञभूमि जात
कुश परित्याग करना चाहिये । उनसे आस्तरण, आसन
और पिण्डदान करना अनुचित है ।

“हृतेः कृते च विचरन्ते त्वमन्ते वा विधीयते ।

नीवी मध्ये च ये दर्भा मन्त्रान्ते च ये हृताः ।

पवित्रास्तान् विजानीयात् यथा कायसबा कुशः ॥”

(बन्धोगपरिचिट)

कुश धारण करके मल किंवा मूत्र परित्याग करने से वह अपवित्र हो जाता है । किन्तु नीवीके मध्य वा यज्ञक्षेत्रमें रख लेनेसे कुश अशुद्ध नहीं होता, शरीरकी भांति पवित्र रहता है । दिवसके द्वितीय यामार्धमें कुशसंग्रह करना पड़ता है—

“समित् पुष्पकुशादीनां द्वितीयः परिकीर्तितः ।” (२५)

यमने भी कहा है—

“समृत्तान् मवेद दर्भः पितृणां आह्वयनेभिः ।

मूलेन लोकान् जयति शक्तस्तु सुमहात्मनः ॥” (यम)

पितृगणके आह्वकार्यमें मूलयुक्त कुश लेना चाहिये ।

वह उक्त कुशमूल द्वारा इन्द्रलोक जय किया करते है ।

कुश ग्रहण करनेका मन्त्र यह है—

“विरिचिना सङ्कोचस्त परमेष्ठिनिसर्गेज ।

गुद सर्वाणि पापानि दर्भं ख सत्करो भव ॥” (गङ्गा)

कुशके छेदनका नियम है—

“दक्षिणामिमुखं स्थित्यात् प्राचीनावीतिनी विजः ।

प्रेतस्त्रिषार्धं पिबत्यं भविष्यार्षमेव च ॥” (भरद्वाज)

ब्राह्मणकी यज्ञोपवीत वामकक्ष तलमें सम्मिलित कर दक्षिणमुखी होके प्रेतकार्य, पितृकार्य और अभिचारके लिये कुश तोड़ना चाहिये ।

वरदातन्त्रके १४ पटलमें लिखा है—कि पूजा-काशकी सर्वदा हाथमें कुश रखना उचित है । कारण कुश हाथमें न रहनेसे पूजा विफल हो जाती है । यज्ञादि कार्यमें कुशका विस्तार विभिन्न प्रकार व्यवहार है । दर्भ देखी । हलानुचर्न अपने ब्राह्मणसर्वस्वमें सधवा स्त्रियोंको कुशस्पर्श करनेका निषेध किया है ।

भावप्रकाशके मतमें साधारण कुशसे विभिन्न प्रकार दूसरा कुश भी होता है । उसका संस्कृत-पर्याय—दीर्घ-पत्र और क्षुरपत्र है । साधारण कुश और दीर्घपत्र उभयविध दर्भं त्रिदोषघ्न और शैत्यगुणविशिष्ट है । उसके मूलसे मूत्रकच्छु अश्वरो, दण्डा, वस्ति और अह्वर रोगकी लाभ पड़ता है ।

कुश कांसके समान द्रव्य है । उसके पत्रका एक

अथ भाग सूक्ष्म, तीक्ष्ण और कठिन रहता है । कुशकी रज्जु जलानेकी सक्की कपेटने और जुवा बांधने वगैरहके काममें लगती है ।

२ रामचन्द्रके ज्येष्ठपुत्र । उन्होंने सीताके गर्भसे जन्म लिया और महर्षि वाल्मीकिके निकट शस्त्रविद्या प्रवृत्ति शिक्षा करके अद्वितीय वीरकी भांति त्रिशुवनमें यशो लाभ किया था । युद्धके कौशलमें स्वर्ग रामचन्द्रको भी उनसे पराजित होना पड़ा । कुशने रामचन्द्र की सभामें रामायणगान किया था । उन्होंने रामचन्द्रकी प्रतिष्ठित कुशावती नगरीमें अपनी राजधानी स्थापन की । (रामायण) उनके कुशावती परिव्याग करके अयोध्या जानेको कथा रघुवंशमें वर्णित हुई है । कुशके पुत्रका नाम पतिष्ठि था ।

१ कुशनिर्मित एकप्रकार रज्जु, कुशकी रस्सी । ४ वसु उपरिचरके किसी पुत्रका नाम । ५ बलाकके पौत्र । वह बलाकाश्वके पुत्र और कुशाश्व तथा कुश-नाभके पिता थे । ६ सुहोत्रके किसी पुत्रका नाम । ७ विदर्भराजके किसी पुत्रका नाम । ८ पुष्टरववंशोद्य वामके पुत्र और भानुके पिता (मत्स्यपुराण १ । १० । १५) ९ काशमीरराज लवके किसी पुत्रका नाम । १० सप्त-होत्रके मध्य हृतसमुद्रवेष्टित कोई द्वीप । (भागवत ५ । १ । १२) (त्रि०) कुतुसिते अनाचरणीये कर्मणि श्रुते तिष्ठति, कु-शी-कः । १४ पापिष्ठ, पापी । १५ मत्त, मतवाला । (श्लो०) १६ जल, पानी । १७ सर्पीदर, सांपका पेट ।

कुशकण्डिका (सं० श्लो०) कुशैः कण्डिकैव । एक वैदिक संस्कार । कुशिका देखी ।

कुशकाश (सं० श्लो०) कुशश्च काशश्च द्रववाचकत्वात् समाहारद्वन्द्वः । विभावा इत्यनन्तराद्यन्त्यव्यञ्जनपद्यञ्जुल्यवचनपूर्वा-पराधरोतराणाम् । पा २ । ४ । १२ । कुश और काश ।

“कुशकाश विराजते वटपः सामगा इव ।” (विष्णुपुराण)

कुशकेतु (सं० पु०) १ ब्रह्मा । २ कुशध्वज राजा ।

कुशचौर (सं० श्लो०) कुशनिर्मितं चौरम्, मध्यपद-कोपी० । कुशनिर्मित वस्त्र, चासका कपड़ा ।

कुशचौरा (सं० श्लो०) कुश-चौर स्त्रियां टाप् । एक नदी । (भारत)

कुशज (सं० पु०) जनपदविशेष, एक बसती ।

कुशह (सं० पु०) जनपद विशेष, एक बसती । (भारत)

कुशण्डिका (सं० स्त्री०) कुशं डीयते प्राप्नोति, कुश-

डीङ्-क्षिप् क्षिपो लोपः अलुक् । विरहस्य पा १.२।१० ।

कुण्ड अथवा स्थण्डिकमें विधि अनुसार अग्निस्थापनके अनुष्ठानकी क्रिया ।

हिन्दुस्थानी पण्डित उसे कुशकण्डिका कहते हैं । उनकी पद्धतिमें भी “कुशकण्डिका” ही लिखा है । किन्तु भवदेवने स्वयं पद्धतिमें कुशण्डिका शब्द लिखा है—

“तस्य सर्वेषामाहुतिपुनःकरणं कुशण्डिका संकृताग्रिसाधत्वात् कुशण्डिकैव प्रथममभिधीयते ।” इति सकर्मसाधारण्ये कुशण्डिका समाप्ता ।

कुशण्डिका वेदीय क्रिया है । वह वेदोंके अनुसार विभक्त भी हुई है । सामवेदकी कुशण्डिका इस प्रकार है—

१ हाथ जंघी, १ हाथ लम्बी और १ हाथ चौड़ी वेदी निर्माण करके उसके ऊपर कुशण्डिका करना पड़ती है । उक्त वेदिका नाम स्थण्डिक है । यथोक्त वेदिनिर्माण करके भली भाँति परिष्कार करते हैं, जिससे शर्करा (कंकर), अङ्गार (कोयला), केश और तृष प्रभृति किसी प्रकारका अपवित्र द्रव्य उस पर रह न जावे । मण्डप और वेदिकी अच्छे प्रकारसे गोमय द्वारा लेपन करना चाहिये । होमकर्ता नित्य कार्य समापन करके पूर्वमुखी हो कुशासनपर उपवेशन करते और स्थण्डिककी उत्तर दिक् कुश तथा पुष्पके साथ एक जलपात्र रखते हैं । तदनन्तर होमकर्ताकी भूमिमें दक्षिण जानु संलम्ब करके उत्तराय कुशके ऊपर वामहस्तका प्रादेश उत्तानभावसे (चितकरके) रख दक्षिण हस्तकी अनामिका तथा अङ्गुष्ठ द्वारा कुश ग्रहण और ग्रहीत कुशके मूलद्वारा स्थण्डिकके दक्षिण प्रान्तमें १२ अङ्गुलिप्रमाण पूर्वमुखी एक रेखा अङ्कित करके उसका ध्यान करना चाहिये । उक्त रेखा पीतवर्णा और उसकी अधिष्ठात्री देवता सृष्टिवी रहती है । उस रेखाके मूलसे २१ अङ्गुलिप्रमाण उत्तरमुखी दूसरी रेखा अङ्कित करके उसकी रक्तवर्णा चिन्ता करते हैं । इस रेखाकी देवता अग्नि है । प्रथम रेखासे उत्तर ७

अङ्गुलि दूर प्रादेशप्रमाण पूर्वमुखी तीसरी रेखा अङ्कित करना चाहिये । उसकी अधिष्ठात्री देवता प्रजापति हैं । फिर उसकी रक्तवर्णा चिन्ता करते हैं । इस रेखासे ७ अङ्गुलि दूर उत्तरदिक् प्रादेशप्रमाण पूर्वमुखी चौथी रेखा अङ्कित करके चिन्ता करना चाहिये कि वह नीलवर्णा है और उसकी देवता इन्द्र हैं । इस रेखासे ७ अङ्गुलि दूर अर्थात् २१ अङ्गुलि-प्रमाण रेखाके उत्तर अग्रभागमें प्रादेश प्रमाण पूर्वमुखी पाँचवीं रेखा खींचके उसे शुक्लवर्णा और उसकी देवता चन्द्रको ध्यान करते हैं । तदनन्तर सकल रेखाका उत्कर (रेखा अङ्कित करनेकी उत्कीर्ण धूलि) दक्षिण हस्तके अङ्गुष्ठ और अनामिका अङ्गुली द्वारा ग्रहण करके निम्नलिखित मन्त्रपाठपूर्वक ईशानकोणमें थोड़ी दूर निक्षेप करना चाहिये ।

“प्रजापतिर्ह्यविच्छेत्, पूजन्तोऽग्निदेवता रेखासुत्करनिरसने विनियोगः ।
र्षी निरसः परावसुः ॥”

अनन्तर पूर्वस्थापित जलद्वारा समस्त रेखा अभ्युक्ष करते हैं । दक्षिण दिक् कांक्षपात्र किंवा नूतन शरावमें स्थापित अग्निसे ज्वलन्त इन्धन (काष्ठ) ग्रहण करके निम्नलिखित मन्त्र पढ़ दक्षिण-पश्चिम कोणमें निक्षेप करना चाहिये—“प्रजापति ह्यविच्छेत्, पूजन्तोऽग्निदेवताप्रिषंकारे विनियोगः । र्षी कथ्यादनग्निं प्रक्षिप्योनि दूरं यमराज्यं गच्छत, रिप्रवाहम्” पीछे अग्नि ग्रहण करके निम्नलिखित मन्त्र द्वारा तृतीय रेखाके ऊपर उसका स्वीय अभिमुखी करके अग्निस्थापन करते हैं—“र्षी भुवः स्वरोऽम् ।” अनन्तर वाम हस्तसे उत्तोलन करके यह मन्त्र पढ़ना पड़ता है—“र्षी इहेवायमितरो जातवेश देविभ्यो हव्यं वहुतु प्रजानम् ।”

भवदेवभट्टकृत पद्धतिमें यह इष्ट है कि प्रत्येक वेदमन्त्रके पूर्व उसके ऋषि, हन्तः, देवता और कार्यके विनियोगका उल्लेख करना चाहिये । फिर अग्रं त्वं विश्वरूपनामोसि” कह्य अग्निका नाम स्मिर करके ध्यान और आवाहन करते हैं । पीछे “विश्वरूपनामो अग्रये नमः” मन्त्रसे पाद्यादि द्वारा अग्निकी पूजा करके निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना चाहिये—

“र्षी सर्वतः पाषिपादानः सर्वतोऽग्निरोमुहः ।

विश्वरूपो महानग्निः प्रचीतः सर्वं कर्मसु ॥”

अनन्तर प्रादेशप्रमाण एक छुताक्त समिध्, अग्निमें बिना मन्त्र आहुति प्रदान करके ब्रह्मस्थापन करते हैं

पश्चात् कुशपत्रका अथभागा समान करके दर्भमय ब्राह्मण निर्माण करना पड़ता है। दर्भमय ब्राह्मणकी किंवा वेदस्य सदाचारो ब्राह्मण इव वा उत्तरीय वस्त्र-को ब्रह्मकी भांति कल्पना करना चाहिये। अनन्तर एक जलपात्र ग्रहण करके अग्निके उत्तरसे दक्षिणावर्त दक्षिण दिक्को जा परस्मिन् दूर पूर्वाभिमुखी एक वारिधारा छोड़ उसके ऊपर प्रागय कुश फेला पश्चिम-मुखी होके खड़े होते हैं। वामहस्तकी अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा एक आस्तीर्ण कुशपत्र ग्रहण करके निम्न-लिखित मन्त्र द्वारा दक्षिण-पश्चिम कोणमें निक्षेप करना चाहिये—“ओं निरः परावसुः।” पीछे दक्षिण पद द्वारा वाम पाद अवष्टम्भ (वेष्टन) करके उत्तरमुखी आस्तीर्ण कुश सकल जल द्वारा अभ्युक्ष्य करते हैं। “आवसोः सदेने सोद” इत्यादि मन्त्र पाठ करके कुशके ऊपर पूर्वमुखी करके दर्भमय ब्राह्मण स्थापन करना चाहिये। ब्राह्मणके पक्षमें (यथोक्त ब्राह्मण ब्रह्मरूपसे कल्पित होने पर) ब्राह्मण “सोदामि” कहके प्रत्युत्तर करते और उसको उत्तरमुख करके रखते हैं। ब्राह्मणके ऊपर कुश प्रदान करके जल द्वारा अभ्युक्ष्य और कुश एवं कुसुमद्वारा ब्राह्मणकी अर्चना करना चाहिये। पीछे उसी पथको कौटके आसन पर पूर्वाभिमुखी हो उप-वेशन करते और “ओं इदं विष्णुर्विष्णवे नो धेना निदधे पदं। समुद्रमस्य पांसुषी।” (साम १।१।११।८) मन्त्र जपते हैं। ब्राह्मणके पक्षमें उक्त मंत्र ब्राह्मणका ही पाठ्य है। प्रकृत कर्ममें चरुहोम रहनेसे उसी समय चरुपाक करके उसको ऊपरसे छूत छोड़ अग्निकी उत्तरदिक् कुशपर स्थापन करना पड़ता है।

दक्षिण जानु भूमि संलग्न करके दाहना हाथ ऊपर रख हस्तद्वय अधोमुख करके निम्नलिखित मन्त्र पठ भूमि पर स्थापन करना चाहिये—“ओं इदं भूमिभंजनाहं इदं भद्रं सुमङ्गलं परावपमान् वाधस्त्वान्वां विन्दते धनम्” रात्रिकी कर्म करने पर ‘धन’ के स्थान पर ‘वसु’ पठना पड़ता है। दक्षिण हस्तमें कुशग्रहण करके अग्निके उत्तरसे दक्षिणावर्तकी “ओं इदं सोममर्हति जातवेदसे रवमिव स नवेना मनःपया।” (साम १।१।२१।४) इत्यादि मन्त्र द्वारा ऋष शोधन करके ईशान कोणमें

निक्षेप करना चाहिये। अनन्तर अग्निकी पूर्वदिक् उत्तरान्तसे दक्षिणान्त पर्यन्त मूलके समीप द्विज एक-पत्रयुक्त कुशके अथभाग द्वारा मूल आच्छादन करके वारत्रय आस्तरण करते हैं। इसीप्रकार दक्षिणदिक् पूर्वान्तसे पश्चिमान्तपर्यन्त, पश्चिमदिक् दक्षिणान्तसे उत्तरान्त पर्यन्त और उत्तरदिक् पश्चिमान्तसे पूर्वान्त पर्यन्त यथोक्त क्रममें आस्तरण करना पड़ता है। “ओं रक्षाय दिक्पालाय स्वाहा।” इत्यादि मन्त्र पठके पूर्वदिक्से क्रमान्वयमें दशदिक्में घृताक्त स्नस्तिक प्रदान करना चाहिये। अनन्तर दो प्रादेश-प्रमाण धव, खुदिर, पलाश और यज्ञदुसुरके अन्यतम २० काष्ठके मध्य छतधारा प्रदान करके प्रजापतिकी मन ही मन भावना करके विना मन्त्र अग्निमें पाहुति छोड़ते हैं। पीछे आस्तरण कुशसे अथयुक्त कुशपत्रद्वय ग्रहण करके “ओं पवित्रे सो वेचन्वी” मन्त्र उच्चारण करके प्रादेश-प्रमाण कुशान्तर द्वारा वेष्टन करके मध्य व्यतिरेक केंद्रन करना चाहिये। “ओं विशोमनसा पूते स्व” मन्त्र द्वारा अभ्युक्ष्य करके तान्त्रादिपात्रमें उत्तराप करके पवित्र स्थापन करते और उसी पात्रमें होमके निमित्त घृत रखते हैं। उक्त कुशपत्रद्वयका अथभाग दक्षिण हस्तकी अनामिका तथा अङ्गुष्ठ द्वारा और मूलभाग वाम हस्तके अङ्गुष्ठ एवं अनामिका द्वारा ग्रहण करके दक्षिण हस्तके ऊपर रख हस्तद्वय अधोमुख करके कुशपत्र द्वयके मध्य द्वारा “ओं देवस्त्वा सवितोवृणानु अविद्रेष पवित्रे च वसोः स्वस्व रश्मिभिः स्वाहा” मन्त्रके उच्चारणसे एकवार घृतकी पाहुति प्रदान करना चाहिये। उसके पीछे अमन्त्रक पाहुति दो बार देना पड़ती है। अनन्तर वही कुशपत्रद्वय जल द्वारा अभ्युक्ष्य करके अग्निमें निक्षेप करते हैं। फिर आन्वपात्रके जल द्वारा उन्नाजंन, अग्निके ऊपर और उत्तर दिक् उतार रखना चाहिये। इसी प्रकार वारत्रय किया करते हैं। इसका नाम आन्वसंस्कार है। पीछे धव, खुदिर, पलाश और यज्ञदुसुरका अन्यतम सुष्टिहस्त प्रमाण काष्ठ लेके स्नान संस्कार करना पड़ता है। इसी प्रकार स्नान और निक्षेप प्रभृतिका भी संस्कार करते हैं। अनन्तर दक्षिण जानु भूमि पर डासके उदकाच्छादि ले “ओं पवित्रे चरुमन्त्र”

मन्त्रद्वारा अग्नि की दक्षिणदिक्, पश्चिमान्तसे पूर्वान्त पर्यन्त प्रदान करना पड़ती है। इसी प्रकार “ओं वसुन्ते वसुमन्त्रः” मंत्र द्वारा अग्नि की पश्चिमदिक्, दक्षिणान्तसे उत्तरान्त पर्यन्त और “ओं सरस्वत्यन्मन्त्रः” मंत्र द्वारा अग्नि की उत्तरदिक्, पश्चिमान्तसे पूर्वान्त पर्यन्त उदका-प्लवि द्वारा सेवन करना चाहिये। अनन्तर “ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः कृतपुः कृतव्रतः पुनातु वाचस्पति-वोचन सवतु।” मंत्र उच्चारण करके उदकाप्लवि द्वारा दक्षिणावर्तमें अग्नि वेष्टन करते हैं। अनन्तर दक्षिण जानु उठाके उपर्यधोभावेमें स्थित दक्षिण एवं वाममुष्टि द्वारा फल, पुष्प और कुश ग्रहण करके विरूपाक्ष जप करना चाहिये। विरूपाक्ष जप समापन करके पूर्वगृहीत कुश पूर्वोत्तर दिक्में निक्षेप करते और फल तथा पुष्प ब्राह्मणको दे देते हैं। काम्य कर्मके लिये कुशण्डिका करनेमें प्रथम ही प्राणायामपूर्वक ब्रह्माप्लवि होके “ओं तपस तेजस ब्रह्मा च त्रीष सत्यब्राह्मणस्य त्यागस्य धृतिश्च धर्मस्य सत्यस्य वाक्च मनस्य आत्मा च ब्रह्म च तानि प्रपद्ये मा सन्तु।” मंत्र जप करके पीछे विरूपाक्ष जप करना पड़ेगा। सामवेदियोंकी सर्व कर्म साधारणो कुशण्डिका इसी प्रकार की जाती है। कुशण्डिकाके पीछे प्रकृत कर्म करते हैं। प्रथम घृताक्ष प्रादेशप्रमाण समिध्, अमंत्रक अग्निमें निक्षेप करके महाव्याहृति होम करना चाहिये। यदि प्रकृत कर्ममें चरुहोम रहे, तो प्रथम व्याहृति होम न करे। कारण प्रकृत कर्म समापन करके महाव्याहृति होम करनेका विधान है। इसी प्रकार प्रकृत कर्म समापन करके पुनर्वार महाव्याहृति होम करना चाहिये। अनन्तर प्रादेशप्रमाण समिध्, अमंत्रक अग्निमें निक्षेप करके शाहायनहोम करते हैं। प्रकृत कार्य, किसी प्रकार अङ्गहीन होने किंवा किसी प्रकारका वेगुण्य पड़नेसे, शाहायनहोम द्वारा पूर्ण होता है। शाहायनहोमके पीछे प्रायश्चित्त-होम, नवग्रह-होम, लोकपाल-होम और प्रत्यक्ष देवताका होम करना चाहिये। इसके पीछे उदकाप्लवि सेवन और दर्भ तृणाभ्यञ्जन किया जाता है। अनन्तर पूर्ण होम करना चाहिये। ब्राह्मणको पूर्व पात्र और दक्षिणा प्रदान करके होमकी दक्षिणा

करते हैं। पीछे प्रदक्षिण करके दक्षिण दिक्, गमन-पूर्वक ब्रह्मपन्थिमोचन करना चाहिये। लौटके आनेसे आसन पर उपवेशन करते हैं। कुश और पुष्पके साथ अक्षपात्रके ऊपर हस्त स्थापन करके शान्ति करना पड़ती है। फिर दक्षिणा प्रदानपूर्वक अष्टिद्रावधारण करना चाहिये।

कालेसि-कृत पद्धतिमें ऋग्वेदिकुशण्डिका इस प्रकार लिखी गयी है—

होमकर्ताको निम्न क्रियाके समापनान्त पूर्वमुखी हो आचमन और तीन बार प्राणायाम करके स्वस्ति-वाचन तथा सङ्कल्प करना चाहिये। अनन्तर ३५ प्रमाण अर्थात् १ हाथ ऊंचो, १ हाथ लम्बी और १ हाथ चौड़ी एक वेदी प्रस्तुत करके गोमय द्वारा लेपन करते हैं। फिर व्याकृति काष्ठ द्वारा किंवा कुशमूल द्वारा उत्तराय एक रेखा, और इस रेखाके आदि तथा अन्तभागमें दो एवं मध्यमें प्रादेशप्रमाण तीन रेखा अङ्कित करते हैं। पीछे कुश वा खड्गकाकृति काष्ठ खण्डिकामें रखके अक्षद्वारा अभ्यङ्गणपूर्वक निक्षेप करना चाहिये। अनन्तर आचमन करके कांस्यपात्र किंवा अन्य शुद्धपात्रमें अग्नि आनयन करते हैं। अग्निसे एक उल्लान्त काष्ठग्रहण करके “प्रजापतिर्च विरगुष्ट, एक्षन्तोऽग्निर्देवता अप्रिसंकादि विनियोगः। ओं कस्यादमपि प्रक्षिप्योमि दूर्वं यमराज्यं गच्छतु रिपवाहः” मन्त्रपाठ पूर्वक दक्षिण पश्चिमदिक् निक्षेप करना चाहिये। अग्नि प्रक्षलित करके “प्रजापतिर्च विरगुष्ट, एक्षन्तो ब्रह्मतिर्देवता अप्रिमति-हापने विनियोगः। ओं भृशुं वः सरोऽम्” मन्त्रद्वारा आकाशमुखी करके अग्निस्थापन और अग्निव्यान करते हैं। “ओं रवे-वायमितरो जातवेश देवेभ्यो हव्यं वसतु प्रजानन्” मन्त्रपाठ करना चाहिये। इसी समय यथोक्त कार्यके अनुसार अग्नि का नामकरण करना पड़ता है, “ओं अवे त्वं वसुक्कनामासि।” अनन्तर दक्षिण जानु झुकाके प्रादेश-प्रमाण घृताक्ष ३ समिध्, अमन्त्रक अग्निमें निक्षेप करना चाहिये। पीछे “अथवादि—अमुकाखाकरं चित्तं तदङ्गमन्वाधानं चार्चं करिष्ये। तव च देवता-परिवराश्च” अक्षिन्नव्याहृतिऽप्री अपि जातवैदसमिधेन प्रजापतिं आपरद्भवति जात्ये नाप्रीवीमो वसुषो आत्ये नाप्रीं परमानन्द प्रजापतिं। एताः प्रधान-देवताः चन्द्रम्येष अनुवागसप्तहनामां बद्रं पश्यति” चरुमेषेण सिद्धिकृतं इतमेषेण अप्रिमसं देवान् विचमपि बाधुं स्य” प्रजापतिश्च सर्वप्राव-विचदेवता आत्ये न विचान् देवान् सर्वेषु साकेन कर्मणा सद्योऽहं वक्ष्यामि”

उच्चारण करके व्याकृति द्वारा ईशानकोणसे उत्तर दिक् पर्यन्त अम्नाधार, तीन बार अमन्त्रक परिवर्तण और उत्तराय वा पूर्वाय कुशका प्रोक्षण करते हैं। इसी प्रकार अग्निके पूर्वसे दक्षिणावर्तमें उत्तरदिक् पर्यन्त तीन बार प्रोक्षण करना चाहिये। इसको परिसमूहन कहते हैं। अनन्तर पूर्वसे दक्षिणावर्तमें उत्तर पर्यन्त अग्निका पयुक्षण और होमीय द्रव्यका प्रोक्षण करते हैं। फिर अग्निकी उत्तर दिक् उपवेशन करके ब्रह्माके दक्षिण हस्तका अङ्गुष्ठ ग्रहणपूर्वक “ओं अयेत्यादि मन्त्रकर्मण्युक्तकर्मणि वृताक्तादिचक्रपत्राद्यन्ते नासुक्तगोत्रमनुक्तप्रवरं श्रीमनुक्तदेव शर्माणां त्वागच्छ” मन्त्र पाठ करना चाहिये। ब्रह्मा “ओं हतोऽग्नि” कहके प्रत्युत्तर करते हैं। फिर ब्रह्माको अग्निकी पूर्वदिक्में उत्तर आनयन करके ब्रह्मासन कुश-विष्टरसे वामहस्तके अङ्गुष्ठ एवं अनामिका द्वारा एक कुश ग्रहण करके “ओं निरसः परावसुः” मन्त्र द्वारा नैऋतकोणमें निक्षेप करना चाहिये। अनन्तर आचमन करके “ओं इरमहो सर्वांगवृषोः सद्मि सोद” मन्त्र द्वारा उत्तरमुखी करके ब्रह्माको उपवेशन कराते हैं। ब्रह्मा को “सोदानि” कहके प्रत्युत्तर करना चाहिये।

ब्रह्माको स्पर्शकरके निम्नलिखित मन्त्रपाठ करते हैं—“ओं इहव्यतिर्ब्रह्मा ब्रह्मसदने चाग्न्यति इहव्यति यज्ञं गोपाय स यज्ञं पाति स यज्ञपति” पाति सर्वा पातिर्भूभुवः स्वर्ग इत्यति.....प्रसूत” अनन्तर उत्तराय कुशके ऊपर होमीय द्रव्य स्थापन करना चाहिये। चरुहोममें पवित्र छेदनदर्भ १, एवं पवित्र २ प्रणीत, प्रोक्षणी, सुक्, शुव, इधम, वह्निः, सम्यार्जनार्थ कुश ३, उपयमन कुश ७, कुला, क्षणसारचर्म, उदूखल, सुषल, घृत, तण्डुल, मेक्षण, कमण्डलु, पुष्प चन्दन प्रभृति और पूर्णपात्र रखते हैं। आण्यहोममें सुक्, कुला, क्षणसारचर्म, मेक्षण, उदूखल और सुषल आनयन करना नहीं पड़ता। प्रोक्षणीपात्र पशुपताकृति १२ अङ्गुलि दीर्घ एवं करतलतुल्य खातविशिष्ट, आण्यस्त्राक्षी तंजस पथवा मृत्तिका निर्मित, शुव खदिर काष्ठनिर्मित १ हस्तपरिमाण तथा अङ्गुष्ठपरिमाण खातविशिष्ट और शुवका मुख वतुलाकार करना पड़ता है। हस्तपरिमित हस्ताकृति खदिरकाष्ठकी सुक् बनाते हैं। कुला गलनिर्मित, १ हस्त विस्तोष

होती है। वह मुष्टिहस्त वा २ प्रादेश प्रमाण २१ वा १५ पलाय, खदिर किंवा वटके काष्ठसे निर्माण की जाती है। कुशमुष्टिकी वह्निः कहते हैं। अनन्तर पूर्व-स्थापित कुशपत्रहय ग्रहण करके पशुयुक्त प्रादेश प्रमाण मूल छेदन करना चाहिये। पीछे पवित्र द्वारा सकल पात्र प्रोक्षण करते हैं। इसके उत्तर प्रणीत पात्र, उसके पीछे पवित्रहय प्रोक्षणीपात्रमें स्थापन करके उसमें जल और पुष्प प्रदान करना चाहिये। गन्ध, पुष्प और जलपूर्ण पवित्रयुक्त प्रोक्षणीपात्र वामहस्तके ऊपर रखके दक्षिण हस्तद्वारा आच्छादनपूर्वक “ओं ब्रह्म-प्रवः प्रवेद्यानि” कहते हैं। ब्रह्माको “ओं प्रचय” उच्चारण पूर्वक प्रत्युत्तर करना चाहिये। पीछे कर्ता “ओं भूभुवः स्वर्ग इत्यति प्रसूत” मन्त्र पाठपूर्वक प्रोक्षणीपात्र अपनी नासिकाके समीप आनयन करके अग्नि और प्रणीत-पात्रके मध्य स्थापन करके कुश द्वारा आच्छादन करते हैं। इसका नाम पूर्णपात्र है। अनन्तर पूर्णपात्रस्व पवित्रहय कुला पर रखके उसमें धान्यमुष्टि भाग करना चाहिये। “ओं अथेत्वा जुष्टं गृह्यानि” कहके धान्यमुष्टि ग्रहण करते और “अथेत्वा जुष्टं निर्वापानि” कहके कुला पर रखते हैं। इसी प्रकार “अपोषोमाभ्यां” इत्यादि उच्चारणपूर्वक अपर अपर भाग स्थापन करना चाहिये। पीछे क्षणाग्नि पर उदूखल स्थापन करके उसमें पूर्व-विभक्त धान्य निक्षेप करते और सुषलके आघातसे तण्डुल प्रसून करके कुला द्वारा निस्तुष करते हैं। इस तण्डुलका घृत द्वारा पाक करना चाहिये। फिर सूर्यस्व पवित्रहय आण्यस्त्राक्षीमें स्थापन करके घृत डालते और अग्निकी उत्तर दिक्से अङ्गार लाके घृत पिघलाते हैं। घृतके ऊपर दर्भाग्रहय तीन बार निक्षेप करके ज्वलन्त काष्ठ उसके ऊपर तीन बार घुमाना चाहिये। हस्तहय उत्तान करके अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा पवित्रहय ग्रहणपूर्वक “ओं सवितुस्तुलाप्रसव” इत्यादि मन्त्र पद किञ्चित् घृत उत्तालन करते तथा अमन्त्रक दो बार उत्तालन करके पवित्रहय अग्निके डाल देते हैं। (सकल मन्त्राके पूर्व ग्राह्य, छन्दः, देवता और कार्यके विनियोगका उल्लेख करना पड़ता है) पूर्वसंस्तु-हीत कुशमुष्टि विस्तोष करके आण्यपात्र स्थापन

करना चाहिये। अनन्तर सुक् एवं शुव अधोमुख करके अग्निमें उत्तापित और सुक् भूमिपर स्थापन करके शुवकी वामहस्तमें धारण करते हैं। सम्मार्जन कुश द्वारा शुवके मूलसे रन्ध्र मार्जन करके पुनर्वाँर उत्पन्न करना और सम्मार्जन कुशके मूलसे रन्ध्रके शेषभाग पर्यन्त तीन बार मार्जन एवं प्रणीत पात्रस्थ जल द्वारा तीन बार प्रोक्षण तथा पुनर्वाँर उत्पन्न करके वर्द्धिमें स्थापन करना चाहिये। अनन्तर इसी प्रकार सुक्संस्कार भी करना पड़ता है। फिर उन कुशोंको प्रोक्षित करके अग्निमें निक्षेप करते हैं। चरुमें घृत मिखाके आण्य पात्रकी दक्षिण दिक् घृत और अग्निके मध्य उसे रखना चाहिये। कृताञ्जलि हो के “विश्वानि नो दुर्गहा” (ऋक् ५।४।८)। “यस्य त्वा उदा कौरिषा” (ऋक् ५।४।१०)। “यस्ये त्वं सुकृते जातवेद” (ऋक् ५।४।११) तीन पूर्ण ऋद्ध मन्त्र द्वारा अग्नि अलङ्कृत करके “ओं अयन्त इध आत्मा जातवेद” मन्त्र द्वारा इध स्थापन करते हैं। फिर वायुकोणसे अग्निकोण पर्यन्त “ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये” कहके शुवसे घृतधारा प्रदान करना चाहिये। शुव-लग्न घृत प्रोक्षणो पात्रमें निक्षेप करना पड़ता है। इसी प्रकार “ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये” मन्त्र द्वारा नैऋत कोणसे ईशान कोण पर्यन्त घृत धारा छोड़ना चाहिये। इन दोनों पाहुतिको आचार कहते हैं। उपविष्ट होके “ओं अग्रये स्वाहा इदमग्रये” कहके दक्षिण दिक्में नैऋत कोणसे अग्निकोण पर्यन्त और उत्तर दिक्में पश्चिमकी शेष सीमासे पूर्वके शेष पर्यन्त घृतकी धारा दिया करते हैं। इसका नाम आण्यभाग है। प्रथममें अग्निका दक्षिणकोचन और द्वितीयमें वामकोचन विन्ता करना पड़ता है। इसके पीछे प्रकृत होम है। इसके अर्धभागमें “इदमग्रये”, इदमग्रो कोनाभा” कहके भाग बना एक रेखा लगाना चाहिये। शुवसे हत्येमें घो निकाल चरुमें घृतशुव डालते हैं। मेषण द्वारा चरुके मध्यसे अङ्गुष्ठपूर्व-परिमाण चरु दो बार लेके उसके ऊपर घृतशुव प्रदान और पात्रस्थ चरु द्वारा होम करना चाहिये। अग्निके मध्य वा पश्चिम “अग्रये स्वाहा। इदमग्रये” पढ़के पाहुति देते हैं। इसीप्रकार पूर्वदिक् किंवा उत्तरदिक् “अग्रोकोनाभा

स्वाहा। इदमग्रोकोनाभा” उच्चारणपूर्वक पाहुति देना चाहिये। “ओं यदस्य कर्मण इन्दरोरिष” बोलके पाहुति दी जाती है। पूर्वदिक्में एक पाहुति देना चाहिये। इसको स्निष्टकृत् होम कहते हैं। अनन्तर इधवन्धनी रज्जु, खोलके शुव और सुक्का लेप निकाल “ओं रुद्राय स्वाहा” कहके अग्निमें फेंक देना चाहिये। परिस्तरण कुशको भी अग्निमें निक्षेप किया करते हैं। फिर यथाक्रम निम्नलिखित सात मन्त्र उच्चारण करके ७ पाहुति देना चाहिये। यथा—

- (१) “ओं अयथाग्रे स्वनभिश्चिपाच.....।”
- (२) “ओं अतो देवा अयन्त नो.....।” (ऋक् १।१२।१६)
- (३) “ओं इदं विष्णुर्विचक्रमी...।” (ऋक् १।१२।१७)
- (४) “ओं भूः स्वाहा। इदमग्रये।”
- (५) “ओं भुवः स्वाहा। इदं वायवे नमः।”
- (६) “ओं स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय नमः।”
- (७) “ओं भूमिं वः स्वः स्वाहा। इदं प्रजापतये।”

प्रायश्चित्तका होम इस प्रकार है—“ओं विधेभ्यो देविभ्यः स्वाहा” मन्त्रसे एक पाहुति देते हैं। पीछे निम्नलिखित पाँच मंत्र पढ़के ५ पाहुति देना चाहिये—

- (१) “ओं अगच्छातं यदघातं यन्नस्य क्रियते निघः।”.....
- (२) “ओं पुरुषसन्धितो यन्त्री यन्नः पुरुषसन्धितः.....।”
- (३) “ओं सत् पाकना मनवा दीन दवा न.....।” (ऋक् १०।१५।५)
- (४) “ओं त्वं नोऽग्रे चरुचस्य विशान्...।” (ऋक् ४।१।४)
- (५) “ओं सत् नो अग्रेऽवनी मवीतो...।” (ऋक् ४।१०।५।)

फिर स्वर अक्षर पदवृत्त वर्षकोपके पापका प्रायश्चित्त करनेको “ओं यतो देवाचकुम” इत्यादि (ऋक् ४।१०।५) मंत्रसे एक पाहुति प्रदान करते हैं।

कुशके ऊपर पूर्णपात्र स्थापन करके उसे जल द्वारा पूर्ण कर देना चाहिये। पीछे “ओं धामनो विश्व” इत्यादि (ऋक् ४।४८।११) मंत्र पाठ करके घृत, पुष्य और फलयुक्त पूर्ण पाहुति छोड़ते हैं। बैठे बैठे पूर्वाहुति देना निविष्ट है। फिर दक्षिणा प्रदान करना चाहिये। अनन्तर पूर्णपात्र कुशके ऊपर रखके “ओं आपो अन्वा-न्वातरः” इत्यादि (ऋक् १०।१७।१०) “ओं इदं आपः प्रवहत” इत्यादि (ऋक् १।१२।१२), “ओं सुमित्रिवाण आप जीवधयः” इत्यादि तीन मंत्रोंसे यजमानको मार्जन करते हैं। पुंसवनादिमें पत्नीका भी मार्जन करना पड़ता है।

पशुपति-संस्कारों में देशकर्मपद्धतिमें यजुर्वेदीय कुशसिद्धि का इस प्रकार लिखित हुआ है—

एकहस्त-परिमित चतुरस्र स्थण्डिल कुशपत्र द्वारा तीन बार मार्जन करके गोमयसे भरी भाँति लेपन करना चाहिये। पीछे खड्गालङ्कित काष्ठ द्वारा (यही काष्ठ पद्धतिमें 'स्र' नामसे अभिहित हुआ है) किंवा कुशमूल द्वारा स्थण्डिलके मध्य ७ अङ्गुलि अन्तरसे (प्रत्येक दूसरीसे ७ अङ्गुलि दूर रहना चाहिये) प्रादेश-प्रमाण तीन रेखा अङ्कित करते हैं। अनन्तर दक्षिण हस्तकी तर्जनी और अङ्गुष्ठ द्वारा रेखा अङ्कनके समय उत्थित धूलि ग्रहण करके दूरकी निक्षेपपूर्वक जलसे रेखा अभ्युक्ष्ण करके अपनी दक्षिणदिक् कास्वपात्रमें अग्नि स्थापन करना चाहिये। फिर अग्निसे एक ज्वलन्त काष्ठ लेके "ओं कवचादग्निं प्रविशोमि दूरं यमराजं गच्छतु रिप्रवाहः" (यजुर्वेदः १५।१८) मन्त्र उच्चारण पूर्वक काष्ठकी दक्षिण-पश्चिम कोणमें निक्षेप करते हैं। यजुर्वेदीय मंत्रपाठके पूर्व ऋषि, छन्दः, देवता और अपना विनियोग उल्लेख करना नहीं पड़ता। 'इष्टिवायमितरो जातवेदा द्विभगो हवा' वस्तु प्रज्ञानम्" (यजुर्वेदः १५।१८) मंत्र द्वारा अपने अभिमुखी करके पूर्वोक्तिखित तृतीय रेखा पर अग्नि स्थापन करके "अग्ने त्वं सूर्यानामसि" पढ़के अग्निका नामकरण करना चाहिये। अग्निकी दक्षिणदिक् ब्रह्मस्थापनके लिये पूर्वाभि कुश-पत्रत्रयके साथ आसन रखके उस पर ब्रह्मस्थापन करते हैं। ब्रह्माकी "ओं नमो देविसर्गो दक्षिणानि" इत्यादि मंत्र पाठ करके अग्निप्रदक्षिणपूर्वक उसी स्थानपर उपस्थित हो ब्रह्मासन अवलोकन करना चाहिये। उसी आसनसे वामहस्तकी अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा एक कुशपत्र ग्रहण करके "ओं निरस्तः पाप्मा सङ्गतेन" इत्यादि मंत्र द्वारा दूर फेंक देते हैं। "ओं इव नमो हृदयते सदसि वीरानि" इत्यादि मंत्र पढ़के अग्निके अभिमुखी हो उपवेशन करना चाहिये। अग्निकी उत्तरदिक् आस्त-रणके निमित्त कितना ही स्थान परित्यागपूर्वक कुश-पत्र विस्तीर्ण करके उसके ऊपर यज्ञपात्र काष्ठनिर्मित हत्या (६ अङ्गुलि चौड़ा, २० अङ्गुलि लम्बा, ४ अङ्गुलि गहरा और ४ अङ्गुलिके दण्डनाला हत्या यज्ञ करनेके

लिये वाह्य काष्ठ द्वारा निर्मात्र करना पड़ता है) पथवा मृत्समपात्र जलपूर्ण करके कुशपत्र द्वारा बाह्या-दन और ब्रह्माका मुख अवलोकन करके स्थापन करते हैं। अनन्तर मूलसमीप स्थित वर्तिसमूह द्वारा अग्निकी पूर्वदिक्में अग्निकोणसे ईशानदिक् पर्यन्त, दक्षिणदिक्में ब्रह्मासे अग्निकोण पर्यन्त, पश्चिम दिक्में नेत्रतसे वायुकोण पर्यन्त और उत्तरदिक्में अग्निसे पूर्वस्थापित जलपर्यन्त परिस्तरण करना चाहिये। फिर अग्निकी उत्तरदिक् अपने समीपसे आरम्भ करके समस्त यज्ञीय द्रव्य स्थापन करते हैं। यज्ञीय द्रव्य यह है—पवित्र छेदनके निमित्त तीन कुशपत्र, पवित्रके निमित्त अग्नयुक्त गर्भरहित दो कुशपत्र, प्रोक्षणीपात्र, धान्य, यव, काष्ठनिर्मित उदूखल, सुषल, हृद्युपल, घृत रखनेका पात्र, मार्जन करनेके लिये ६ कुशपत्र, उपयमनके निमित्त १३ कुशपत्र, तीन समिध, श्रुव, घृत और दुग्ध। अनन्तर प्रादेश प्रमाण दो कुशपत्र-ग्रहण करके "ओं पवित्रे ह्यो वेच्यौ" (यजुर्वेदः १।१२) मन्त्र द्वारा छेदन करके (नख द्वारा छेदन करना निषिद्ध है) "ओं विश्वोमनसो पूते ह्यः" (वातक १५।५३) मन्त्र उच्चारण करके जल द्वारा अभ्युक्ष्ण करना चाहिये। यह कुशपत्र हय प्रोक्षणीपात्रमें रखके उसमें पूर्वस्थापित जल प्रदान करते हैं। अनन्तर वामहस्तकी अनामिका एवं अङ्गुष्ठ द्वारा अग्रभाग और दक्षिण हस्तकी अनामिका तथा अङ्गुष्ठ द्वारा मूल पकड़के पवित्रके मध्यसे किञ्चित् जल उठाके भूमिपर निक्षेप करना चाहिये। इसी प्रकार तीन बार करना पड़ता है। फिर वामहस्तके तल पर प्रोक्षणीपात्र स्थापन करके दक्षिणहस्तस्थित पवित्रसे किञ्चित् जल वारत्रय उत्तोलन करके पवित्रकी प्रोक्षणी पात्रमें स्थापन करते हैं। उसी जलसे यज्ञीय सकल द्रव्य प्रोक्ष्ण करना चाहिये। पवित्रके साथ प्रोक्षणीपात्र वामभागमें रखा जाता है। आण्यस्यानीमें घृत रखके पूर्वस्थापित धान्यसे "ओं अग्नये त्वा जुष्ट" इत्यादि मंत्र द्वारा एक मुष्टि धान्य ग्रहण करके "ओं अग्नये त्वा जुष्टं निवेदामि" मंत्र द्वारा निवेदन (भाग) करके "ओं अग्नये त्वा जुष्टं प्रोचामि" मंत्र उच्चारण करके प्रोक्ष्ण करना चाहिये। इसी प्रकार "ओं वहाव त्वा जुष्टं यमनि" इत्यादि मंत्र द्वारा

धान्यमुष्टिपूर्वपत्तं ग्रहण, निर्वपण, प्रोक्षण और “बो पक्ष्मणे ला कुटं यन्नाति” इत्यादि मंत्र द्वारा यथाक्रम ग्रहण, निर्वपण और प्रोक्षण करके अमंत्रक भी तीन बार ग्रहणादि करते हैं। अनन्तर “बो उद्वलसुवसे” इत्यादि मंत्र पाठ करके सुषल द्वारा आघात करना और “बो गालीगाली गालीगाली” इत्यादि मंत्र द्वारा सूपमें ठठाके फटकार डालना चाहिये। इसी प्रकार धान्य और यवसे तण्डुल प्रस्तुत करना पड़ता है। पाँछे पूर्वस्थापित दृग्द और उपल द्वारा तण्डुल पेषण करके चबखालीमें स्थापन करते हैं। प्रोक्षणीपात्रसे जल और दुग्ध डालके चब पाक करना चाहिये। चब पाक होनेसे घृत और चबके ऊपर एकलक्ष काष्ठ सुमाके डसे अग्निमें डाल देते हैं। फिर श्रुव ग्रहण करके अग्निमें उत्तापित करना चाहिये। कुशके पत्रसे उसका मूल और अग्र मार्जन करके कुशपत्र अग्निमें फेंक देते हैं।

अनन्तर प्रणीत जल द्वारा अभ्युक्षण और अग्निमें उत्तापित करके आस्तरणके ऊपर रख देना चाहिये। पवित्र द्वारा “बो सवितु स्ता” (यजुः १।११) इत्यादि मंत्र पाठ करके घृत, “बो सवितुः” (यजुः १।११) इत्यादि मंत्र द्वारा प्रोक्षणीसे जल उत्तोलन करके पुनर्वार निक्षेप करते हैं। फिर दो हत्ये घी चबके मध्यमें डाल मला जाता है। पुनर्वार इसी प्रकार घी डालके अग्निमें उत्तरदिक् चब स्थापन करना चाहिये। होमको समाप्ति तक उपयमन-कुशपत्र वामहस्तमें धारण किये रहते हैं। खड़े होके तीन घृताक्त समिध पूर्वार्ध करके अमंत्रक अग्निमें निक्षेप करना चाहिये। फिर उपविष्ट होके प्रोक्षणी जल द्वारा दक्षिणावर्त अग्निमें वेष्टन करके जलधारा प्रदान करते हैं। धारा विच्छेद जाना निषिद्ध है। “बो गयोऽदिवः” इत्यादि मंत्रसे प्रोक्षणीपात्रस्थित पवित्र प्रणीत पर स्थापन करके प्राक्षणीपात्रको यथास्थान रख देना चाहिये। अनन्तर दाक्षिण जानुको भूमिसंस्पर्श करके ब्रह्माके अन्वारम्भपूर्वक हत्येसे दो बार घृतकी आहुति छोड़ी जाती है। प्रजापतिको मनमें चिन्ता करके वायुकोणसे जगाके अग्निकोण पर्यन्त घृत द्वारा आहुति प्रदान करते हैं। “बो प्रजापतये साहा इदं प्रजापतये”

मंत्र उच्चारण करके पूर्वोक्त कार्य करना पड़ता है। नैऋतकोणसे ईशानकोण पर्यन्त “बो इन्द्राय साहा इदं इन्द्राय” मंत्रोच्चारण करके धारा प्रदान करनेका विधान है। इसी प्रकार दक्षिणदिक्में पूर्वान्तसे आरम्भ करके पश्चिमान्त पर्यन्त और उत्तरमें पश्चिमान्तसे आरम्भ करके पूर्वान्त पर्यन्त घृत धारा छोड़के श्रुक् पात्रमें स्थापन करना चाहिये। अनन्तर घृत द्वारा अन्वारम्भ करके “बो इक्ष्मणे स्ताहा इक्ष्मणे” इत्यादि प्रत्येक मंत्र द्वारा आहुति प्रदान करते हैं। फिर चबमें घृत श्रुव डालके पूर्वार्धसे निक्षेप द्वारा चब ग्रहण करके उसके ऊपर घृतश्रुव छोड़ चबके अतस्मान पर (जिस स्थानसे आहुतिका चब उठाया गया है) घृतश्रुव प्रदान करना चाहिये। “बो अग्ने स्ताहा इक्ष्मणे” मंत्र द्वारा दो समिध और लुहु अग्निमें निक्षेप करते हैं। इसी प्रकार “ब्रह्माय साहा इदं ब्रह्माय” इत्यादि मंत्र द्वारा भी आहुति प्रदान करना चाहिये। अनन्तर ब्रह्माके अन्वारम्भपूर्वक लुहुमें घृत श्रुव प्रदान करके चबमें घृतश्रुव प्रदान करते हैं। चबके पश्चिमांशसे अवदानद्वय ग्रहण करके लुहुमें स्थापन करना चाहिये। उसके ऊपर और चबमें घृतश्रुव प्रदान किया जाता है। अनन्तर घृत द्वारा महाव्याहुति होम करते हैं। प्रकृत कर्ममें चबहोम रहनेसे जो प्रक्रिया करना पड़ती, वही इस स्थान पर सिखी गयी है। चबहोम न रहनेसे चबकी प्रक्रिया भिन्न दूसरा सकल कर्म करना चाहिये। सूर्यको धान्य-तण्डुलके चबसे आहुति प्रदान करना निषिद्ध है। पक्षिमें जिस स्थानपर सूर्यको आहुतिका उल्लेख है, उस स्थान पर यवतण्डुलके चब द्वारा आहुति प्रदान करना चाहिये। इस चबको पीण्यचब कहते हैं। प्रकृत कर्म करके प्रायश्चित्तहोम प्रभृति किया जाता है।

अथर्ववेदियाँ और तांत्रिकोंकी भी कुशखण्डिका-पद्धति मिलती है। होम इको।

कुशदह—बङ्गालके यशोहर जिलेकी इच्छामती नदी-तोरका एक महाग्राम। (भविष्य ब्रह्मसूत्र, १।१।१७) नव-होपाधिपति क्षणचन्द्रके समय कुशदह बड़ी उन्नति पर था।

कुशद्वय (सं० स्त्री०) कुशानां द्वयम्, ६-तत्। कुश-द्वि-
असत्। विभिन्नां तयस्यासत्त्वा। पा३।२।४१। स्थूल-सूक्ष्म
दर्भद्वय, मोटा और पतला दोनों प्रकारका कुश।

कुशद्वीप (सं० पु०) कुशेन विख्यातो द्वीपः, मध्यपद-
को०। १ सप्तप्रधान द्वीपोंके अन्तर्गत कोई द्वीप।
विष्णुपुराणके मतमें वह चतुर्थ द्वीप है। उसका
विस्तार शास्त्राली-द्वीपसे द्विगुण पड़ता है। कुशद्वीप
द्वारा सुरासमुद्र और कुशद्वीप घृतसमुद्र द्वारा परि-
वेष्टित है। उसमें एक सुवृहत् कुशस्तम्भ है। उसीके
अनुसार कुशद्वीप नाम पड़ा है। कुशद्वीपमें उल्लिखित,
वेणुमान्, वैरथ, सख्यन्, धृति, प्रभाकर और कपिल
नामक वर्ष हैं। उसके पर्वतोंका नाम विद्रुम, हेम-
शैल, द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेश्वर, हविः और मन्दर
है। उसमें धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सन्धति, विदुः-
दम्भा और मही नामक नदी प्रवाहित हैं। फिर कुश-
द्वीपमें देव, दानव, देव, गन्धर्व, यक्ष, रक्ष, और मनुष्य
रहते हैं। मनुष्योंमें चातुर्वर्ण व्यवस्था भी विद्यमान है।
कुशद्वीपवासी ब्राह्मणरूप जनार्दनकी उपासना करते हैं।
(विष्णुपुराण, २।४।२५-४४)

भागवतमें कुशद्वीप अन्य प्रकार वर्णित हुआ है—
सुरासमुद्रसे बाहर उससे द्विगुण समान परिमाण
घृतसमुद्र द्वारा परिवेष्टित कुशद्वीप है। उसमें एक
कुशस्तम्भ विद्यमान है। उसीके अनुसार कुशद्वीप नाम
हुवा है। कुशद्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र हिरण्यरिता-
ने अपने वसु, दान, दृढबुद्धि, नाभिगुप्त, सत्यगुप्त, देव-
नाथ और प्रियनाथ सातपुत्रोंको उक्त द्वीप बांट दिया
था। उसीसे कुशद्वीपमें सात वर्ष हैं। फिर हिरण्यरिता
के उक्त पुत्रोंके नामानुसार ही वर्षोंका भी नाम चला
है। इन सप्त वर्षोंमें वभ्रु, चतुःशृङ्ग, कपिल, चित्र-
कूट, देवानीक, अर्धरोमा तथा द्रविण नामक सात
सीमापर्वत और रसकुण्डा, मधुकुण्डा, मित्रविन्दा, श्रुत-
विन्दा, देवगर्भा, धृतस्थिता एवं मन्दमाला नामक सात
नदी हैं।

२ पीठस्थानविशेष। (देवीभावत, ७।१०।८०)

कुशधारा (सं० स्त्री०) एक नदी।

कुशध्वज (सं० पु०) १ ऋक्षरोमराजाके पुत्र। वह

सीरध्वज जनकके कनिष्ठ भ्राता और भरत तथा
शत्रुघ्नपत्नी माण्डवी एवं श्रुतकीर्तिके पिता थे। २ ऋक्ष-
रोमाके पौत्र। ३ ध्रुवध्वजके कोई पौत्र। ४ ऋषिविशेष,
वेदवतीके पिता।

कुशनाभ (सं० पु०) अयोध्याधिपति कुशके पुत्र।

कुशनामा (सं० पु०) उष्ट्र, ऊँट।

कुशनेत्र (सं० पु०) मरीचिपुत्र, एक देख।

(हरिवंश, २४० अ०)

कुशप (सं० पु०) कुशि दीप्तौ अपः। रत्नादिभ्योऽपः स्यात्।
रामचन्द्रजित उवाचिकोपटीका १।७५। पानपात्रविशेष, पीने-
का एक बरतन।

कुशपत्र, कुशपत्रक देखो।

कुशपत्रक (सं० स्त्री०) कुशपत्रमिव, कुशपत्र-कन्। कुश-
पत्राकार पत्राच्छविशेष, एक नश्वर। उसे विज्ञानवर्णमें
प्रयोग करना चाहिये। कुशपत्रकका फला दो अङ्गुल
रहता है। (सुसुत)

कुशपुर—गोमती नदीतीरवर्ती एक अति प्राचीन नगर।
उसका अपर नाम कुशभवनपुर है। प्रवादानुसार राम-
के पुत्र कुशने उक्त स्थानमें थोड़े दिन वास किया था।
उन्हींके नामानुसार कुशपुर नाम पड़ा है। वह कोसाम-
से ११७ मील उत्तरपूर्व अवस्थित है। चीनपरिव्राजक
सुएनचुयाङ्ग ई० सप्तम शताब्दीके प्रथम भागमें कुश-
पुर (कि-प-सि-पो-को) देखने पाये थे। उस समय
वहाँ एक पुरातन बौद्धसङ्घाराम रहा। चीनपरि-
व्राजकने लिखा है कि उसी पुरातन सङ्घाराममें पर-
कालको धर्मपाल बोधिसत्वने विधर्मियोंके साथ शास्त्रीय
तर्क किया था। वहाँ बौद्धराज अशोक-प्रतिष्ठित एक
भग्नस्तूप है। धनवान् और सुखी प्रजा उस नगरमें
रहती है। मुसलमानोंने जब युक्तप्रदेश अधिकार किया,
कुशपुरमें मन्दकुमार नामक एक भार-राजाका राजत्व
रहा। सुलतान अला-उद्-दीनने उन्हें पराजय करके
उसे अधिकार किया और कुशपुर नाम बदलके सुल-
तानपुर रख दिया। आजकल कुशपुरको सुलतानपुर
ही कहते हैं।

कुशपुष्प (सं० स्त्री०) कुशाकारं पुष्पमस्म। १ अग्न्यपणं,
गांठपत्ता। कुशाश्च पुष्पाणि च, समाहारद्वन्द्व०।
२ कुश और पुष्प।

कुशम्वन (सं० स्त्री०) एक तीर्थ । ब्रह्मचारी व्यक्ति समाहित होके त्रिरात्रि उपवासपूर्वक इस तीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेधका फल पाता है । (भारतवर्ष, ८५ पृ०)

कुशमुत्तोलो (सं० स्त्री०) एक कुशमय रचना विशेष, कुशकी चंगूठी ।

कुशमुद्रिका (सं० स्त्री०) पवित्र, पैती, कुशकी एक चंगूठी ।

कुशमुष्टि (सं० त्रि०) कुशा मुष्टी यस्य, बहुव्री० । १ मुष्टीमें कुश लिये हुआ, जो मुष्टी भर कुश रखता हो ।

(पु०) २ मुष्टिपरिमित कुश, मुष्टी भर कुश ।

कुशमूल (सं० स्त्री०) दध्ममूल, कुशकी जड़ । वह शीतल, रुच्य, मधुर और पित्त, रक्त, प्लवर, दृष्ट्या, श्वास तथा कामला रोगनाशक है । (बाभट)

कुशर (वै० पु०) कुक्षितः शरः, कुगतिः । शरकी भांति एक मध्यछिद्र तृण ।

“शरासः कुशरासो वर्मा सः सेये चत ।” (अक्ष, १।१८१।३)

‘शरासः कुक्षितशराः’ (सायण)

कुशरीर (सं० पु०) १ महाशालवृक्ष । (त्रि०) २ कुक्षित शरीर, बुरे निम्नवाला ।

कुशल (सं० स्त्री०) कुश सिधादित्वात् लच् । सिधादिभाष । पा ५।२।८० । १ कल्याण, मङ्गल, खेरियत ।

“पद्मश्च कुशलं राज्ञे राज्याश्रमसुनि सुनिः ।” (१३वर्ग, १।५८)

मनुने कुशल शब्दकी व्यवहार करनेका निर्दिष्ट नियम रखा है । कुशल शब्द केवल ब्राह्मणकी मङ्गल प्रशंसा करनेमें व्यवहृत होता है । क्षत्रियसे अनामय, वैश्यसे क्षेम और शूद्रसे पारोग्य शब्द व्यवहार करके मङ्गल-प्रशंसा करना चाहिये ।

“ब्राह्मणं कुशलं वृच्छं तु क्षत्रियं मनामयम् ।

वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥” (मनु २।१२१)

२ पुण्य, सवाव ।

“नष्टेष्टाकुशलं कर्म कुशले नागुच्यते ।” (नीता १८।२०)

(पु०) ३ जनपद-विशेष, कोई बसती या सुल्का । ४ कुशहीपवासी । ५ शिवका कोई नाम । ६ कोई राजपुत्र । ७ कोई वैद्याकरषिक । ८ नौने पक्षिकाप्रदीप नामक ग्रन्थ रचना किया है । ८ क्षेमहरके पौत्र । वह चटकपैरटीकाके रचयिता रहे । ९ कुक्षुर, कुत्ता ।

१० महाजलवेतस, कोई वृक्ष । ११ मत्स्यमेद, किसी किस्मकी मछली ।

(त्रि०) १२ कुशयुक्त, कुश लिये हुआ । १३ पुण्य-शील, नेक । १४ कुशग्रहण करनेमें समर्थ, कुश तोड़ सकनेवाला । कुशग्रहण करनेमें हाथ कट जानेकी विशेष सम्भावना रहती है । जो व्यक्ति चतुर रहता, उसीका हाथ बचता है । १५ चतुर, शिघ्रित, होशियार, तालीमयाफता ।

“समुद्रवानकुशला दीशकालावर्द्धनिः ।” (मनु ८।१५२)

१६ कुशग्राहक, कुश लानेवाला ।

कुशलक्षेम (सं० स्त्री०) कुशलमङ्गल, खैर आफियत, राजौ खुसी ।

कुशलता (सं० स्त्री०) कौशल, निपुणता, होशियारी, चालाकी ।

कुशलप्रश्न (सं० पु०) कुशलः प्रश्नः, मध्यपदलो० । कुशल जिज्ञासा, खैर आफियतका सवाल, राजौ खुशीकी पूछताछ ।

कुशलबुद्धि (सं० त्रि०) कुशला बुद्धिर्यस्य, बहुव्री० । शिघ्रित, चतुर, होशियार, समझदार ।

कुशलव (सं० पु०) पुण्यवतीरिव एकशक्त्या राम-पुत्रयोरिव बोधकत्वं कुशलं लवश्च तौ मित्रावरुणादिवत्, इन्द्रः । रामचन्द्रके पुत्रद्वय, कुश और लव ।

कुशलसागर (सं० पु०) एक ग्रन्थकार । वह लावण्य-रत्नके शिष्य थे ।

कुशलार्द्र (हिं० स्त्री०) कुशल, खैर, अमन-चेन ।

कुशलात, कुशलार्द्र देखो ।

कुशली (सं० त्रि०) कुशलमस्त्वस्य, कुशल-हनि । कल्याणयुक्त, खुश, राजी ।

कुशली (सं० स्त्री०) कुशल-क्षीप् । १ अश्वन्तक वृक्ष, चाबुटा, अमकोट । २ कुद्राक्षिका, छोटी अमलीनी । ३ चाङ्गेरौ, चौपतिया । ४ कुमारी, चोकुवार ।

कुशलोदर (सं० स्त्री०) कुशलमुदरमस्य, बहुव्री० । भव्य, चालता ।

कुशवती (सं० स्त्री०) एक नगर, कोई शहर । कुश-वती नामसे भी उसका उल्लेख है । (महाभारत, वनपर्व) कुशवती देखो ।

कुशवन (सं० स्त्री०) एक वन या जङ्गल । वह वनमें गोकुलके पास विद्यमान है ।

कुशविन्दु (सं० पु०) एक जनपद, कोई बसती या सुख । (महाभारत ६।८५०)

कुशवीरा (सं० स्त्री०) एक नदी या दरया । कुशवीरा प्रभृति विभिन्न नामसे उसका उल्लेख देख पड़ता है । (महाभारत, ६।८ अध्याय)

कुशस्तम्ब (सं० पु०) कुशानां स्तम्बो गुच्छः, ६-तत् । १ कुशका गुच्छा । २ कोई तीर्थ । (महाभारत, ११।२५ अध्याय) ३ कोई राजपुत्र ।

कुशस्तरण (सं० स्त्री०) कुशोंका फैलाव, वेदिकी चारो ओर कुश बिछानेका काम ।

कुशस्त (सं० स्त्री०) कुस्तित् अस्त, खराब नश्वर । कुशस्त लगनेसे विकार उत्पन्न होता है । (तहत)

कुशस्थल (सं० स्त्री०) कुशप्रधानं स्थलम् । कान्यकुब्जा नामान्तर ।

कुशस्थली (सं० स्त्री०) कुशस्थल-स्त्रीष् । एक अति प्राचीन नगरी । श्रीकृष्ण प्रभृति यादवोंने जरासन्धके भयसे उत्कण्ठित हो रैवतक गिरिके निकट कुशस्थलीमें जाकर दुर्गसंस्कार करा अवस्थान किया था । (महाभारत सभा, ११ च०) हरिवंशमें लिखा है—

‘कुशस्थली भानर्तकी राजधानी है । पूर्वकी वह रैवतके अधिकारमें रही । यादवोंने वहाँ जाके रमणीया द्वारका नगरी स्थापन की ।’ (१० अध्याय) ‘कुशस्थली पुरलक्षणीपयोगी अति रमणीय स्थान है । वह चारो दिक् सागरवेष्टित रहनेसे देवगणके लिये भी दुर्भेद्य है । उसके मध्य मध्य सागरजल प्रविष्ट और सजल-स्थान सन्निविष्ट है । उसमें नानाविध फल, पुष्प और सर्वप्रकार रत्नके आकर हैं । उसका सर्वत्र लोकाकीर्ण है । अतुर्दिक् स्वप्राकार और परिष्ठापरिवृत है । अत्युच्च भट्टाशिका, विचित्र प्राङ्गण, मनोहर राजपथ, विपुल तोरणद्वार, रमणीय गोपुर, विचित्र यन्त्र और अगल शोभित हैं । कुशस्थली मनुष्य, हस्तां, अस्त्र और रथचक्रके घर्घरध्वनिसे निरन्तर समाकीर्ण रहती है । वह नानादिग्देशजात पश्यद्रव्यसे परिपूर्ण है । वृहत् वृहत् प्रासादश्रेणी ध्वजपताकासे सुशोभित है ।

पुरद्वारसे अनतिदूर भूषणस्वरूप रैवतगिरि विराज करता है ।’ (हरिवंश, ११२-११३ च०)

विष्णुपुराण और भागवतके मतसे भी कुशस्थली भानर्तविषयके अन्तर्गत है । उसे द्वारका भी कहते हैं । (विष्णुपुराण ४।१।३४, भागवत ८।१।२८)

सद्वाद्विखण्डके मतानुसार परशुरामने दश-गोत्रीय ब्राह्मण ले जाके वहाँ स्थापन किये थे—

‘पश्चात् परशुरामेण स्नानोत्ता मुनयो दश ।

विद्योत्वासिनश्चैव पञ्चगौडान्तरक्षया ॥

गोमाचले स्थापितास्ते पञ्चकौश्या कुशस्थल्यम् ।

भारद्वाजः कौशिकश्च वत्सकौण्डिन्यकश्यपाः ॥

वशिष्ठो जामदग्न्यश्च विश्वामित्रश्च गोतमः ।

अत्रिश्च दशमघ्नश्च स्थापितास्तत्र एव हि ॥”

(सद्वाद्विखण्ड २।१।४०-५०)

कुशस्थली—एक सारस्वत ब्राह्मण वंश । यह कारवार, कुमता, होनावर और सिरसोमें मिलते और गोपा तथा मलवारके मध्य समग्र समुद्रतट पर अल्प अल्प देख पड़ते हैं । गांधीपके ३० ग्रामोंमें कुशस्थली नामक एक ग्रामके नाम पर इनका नामकरण हुआ है । कुशस्थली साधारणतः शैवजी जातीय जैसे परिचित हैं । परन्तु यह इस नामसे घृणा करते और सारस्वत कहे जाने पर सन्तुष्ट रहते हैं । कहते हैं, १५८० ई० की गोपामें धर्मविचारसभा (Inquisition) प्रतिष्ठित होने पर यह कनाड़ा चले गये । परन्तु कुशस्थली अथवा इनमें कुछ १५१० ई० की गोपाके पोर्तगीजोंके हाथ पड़ने या १४६७ ई० की दक्षिणी मुसलमानोंके उसकी अधि-कार करने पर १५८० ई० से पड़ले ही कनाड़ा पहुँच गये । यह अपने आप कहा करते कि हम कनाड़ा पानेसे बहुत पोछे शैवियोंसे अलग हुए । पाठ्यकथा कारण दो प्रधान वंशोंके मध्य सम्पत्तिविषयक कोई विवाद बताते हैं । दूसरोंके कथनानुसार प्रायः १८० वर्ष हुए किसी दीक्षागुरुके मरण पर धार्मिक भगड़ा लगा था । कारण पड़ले गुरुके दो शिष्य रहे, जिनमें वह किसीको अपना उत्तराधिकारी ठहरा न सके । समग्र शैवजी लोग एक या दूसरी ओर खड़े हो गये और इतना वैरभाव बढ़ा कि वह गङ्गावली नदीके

उत्तर-दक्षिण धुयक रूपसे रहने को सम्यत हुए। सरकारी नौकरीके लिये इन दोनों दलोंमें आज भी बड़ी श्रद्धा है। इनका गोत्र वात्स्य, कौशिक, कौण्डिन्य, भारद्वाज और अत्रि है। मङ्गेश, शान्ता, दुर्गा, महालक्ष्मी और लक्ष्मीनारायण कुलदेवता-जैसे पूजे जाते हैं। कुलकरणी, नादकरणी, मने, वारटे, चिक्कर मने और उगरादवरू आदि कुशस्थलियोंके उपाधि हैं। पीछेके तीन उपाधि महिसूरके बदनूर वा इक्केरी राजाओंके समय (१५६०-१७६० ई०) से चले हैं। पहले यह बागले, पण्डित, वेद्य, तैलङ्ग और दूसरे शिनवी उपाधि धारण करते थे। किन्तु आज कल पण्डित भिन्न दूसरे उपाधि कम प्रचलित हैं। भारद्वाज और अत्रि नामक दो वंश शाष्टकार कहलाते हैं, जो कुशस्थलियोंमें मिल गये हैं। इनकी कुलदेवता महालक्ष्मा हैं। कौण्डिन्य, वात्स्य और कौशिक गोत्रीयोंके कुलदेव नङ्गेश और कुलदेवी शान्तादुर्गाके मन्दिर गोष्ठांमें बने हैं। महालक्ष्माका भी मन्दिर गोष्ठा ही में है। कुछ कुशस्थली अड़ोला-इनमोलाके लक्ष्मीनारायणकी भी उपासना करते हैं। वह इनके मन्दिरमें अपनी अविवाहिता कन्याएँ ले जाते समय उनका शिरोमुण्डन करा लाते हैं। पुरुषोंके शेषगिरि राव, विठ्ठल राव, वेङ्कट राव, लक्ष्मण राव, सुबराव, रामचन्द्र राव, पद्मनाभय्या, शान्ततप्पय्या, गणपय्या, शेषगिरिअप्पा तथा वेङ्कप्पा; बालकोंके प्यारके पुत्तू, बालू एवं चेरदू और बालिकाओंके नाम अम्मा, बालि और दुम्मा जैसे हैं। पहले नामके अन्तमें कनाड़ी अप्पा (बाप) और अय्या (महाशय) लगा दिया जाता था, किन्तु अब मराठी शब्द रावने उनका स्थान अधिकार कर लिया है। इसी प्रकार स्त्रियोंके नाममें कनाड़ी अम्माके स्थान पर मराठी बाई शब्द आया करता है। परन्तु स्त्रियोंके नामसे अभी अम्मा शब्द निकला नहीं है। जैसे-दुर्गाम्मा, कालम्मा, देवम्मा इत्यादि। एक ही गोत्र या उपाधिमें विवाह करना निषिद्ध है और कुशस्थली सारस्वतोंकी दूसरी स्त्रियोंके साथ न तो आदानप्रदान और न खाना-पाना हो रहते हैं। सिवा स्त्रियोंमें शरीरस्थूलता और परिच्छदकी तड़क भड़क तथा सफाईकी प्रीतिके

शिनवियोंसे कुशस्थली कुछ अधिक विभिन्न नहीं। यद्यपि इनकी मातृभाषा कोंकणी है, यह कनाड़ी और मराठी लिखते पढ़ते और इनमें बहुतसे अंगरेजी और हिन्दी भी समझते हैं। इनके पास शिनवियोंसे अधिक गायें, भैंसें और नौकर चाकर रहते हैं। कुशस्थलियोंका प्रधान खाद्य चावल, नारियल, घी, दूध, गुड़, अचार, दाल और मसाला है। शाक्त लोग शिनवियोंकी भांति जो शाक्त हैं दुर्गा पूजाके समय पत्तियों और भेड़का मांस खाते और मद्यपान करते हैं। परन्तु बहुतसे दाल, भात, तरकारी और चटनी खा कर भी उपवास भङ्ग कर लेते हैं। पूजा आदिके समय यह शिनवियोंसे अच्छा खाद्य व्यवहार करते हैं। पुरुष नख संघते और स्त्री पुरुष दोनों पान सुपारी खाते हैं। कुशस्थली शिनवियोंसे भड़कीली पोशाक और उम्दा गहने पहनते हैं। यह साफ सुथरे, परिश्रमी, चानाक और बुद्धिमान हैं। पश्चिम भारतमें कोई जाति ऐसी सुहरिरी, वकालत और सरकारी नौकरी नहीं कर सकती। बहुतसे पुरुष सरकारी नौकरीमें सुंशी और दीवानो तथा माली अफसर हैं। कुछ वकील, कुछ जमीन्दार, गांवके मुखिये और मीर सुंशी और कुछ व्यवसायो तथा दलाल हैं, जो रुई, चावल और दूसरे अनाजका काम करते हैं, यह अपने जिलेमें बड़े प्रभावशाली हैं, यद्यपि हालमें इनका दबदबा कुछ घट गया है। कुशस्थली सामाजिक विषयमें हेविगी और कोंकणस्थानोंके समकक्ष समझे जाते हैं।

इनके गुरु होनावरके शिराली स्थानमें रहते हैं। बालकोंकी शिक्षा स्कूलोंमें अच्छी तरह होती है। गुरु-देव विवाह नहीं करते।

कुशस्थलियोंमें विवाहके दिन सवेरे यज्ञोपवीत होता है। जब बालक काशीकी विद्या पढ़नेके लिये जानका आग्रह करता, तो कन्याका पिता उसे आकर मनाता और अपनी पुत्रीसे विवाह कर देनेकी कहता है। कन्यापक्षीय वरके घर सब प्रकारका खाद्य बड़े समारोहसे पहुँचाते हैं। वर जब अपने घरमें सबको खिला पिछा कर समुदाय वापस आता, तो उसे रातको अपनी स्त्री टूँटना पड़ती है। दूल्हनके स्थानमें

एक लड़केको जनाना पोशाक पहना कर बैठा देते हैं। स्त्रीके मिन जाने पर वरकन्या दोनों ऐपनके बने नागोंकी पूजा करते हैं। विवाहोत्सव आठ दिन तक रहता है। परन्तु जब किसी पुरुषका पुनर्विवाह होता, तो एक ही दो दिनमें सब काम निबट जाता है।

कुशहस्त (सं० त्रि०) कुशाः हस्ते यस्य, बहुव्री०। हाथमें कुश लिये हुआ, जिसके हाथमें कुश रहे। आद्य वा दान आदिके कार्यकाल हाथमें कुश ग्रहण करके ठहरना पड़ता है। इस प्रकारकी अवस्थामें कार्यकर्ताको कुशहस्त कहते हैं।

कुशा (सं० स्त्री०) कुश स्त्रियां टाप्। १ रज्जु, रस्सी। २ मधुकर्कटो, किसी किसिका मीठा नीबू। ३ वस्त्रा, लगाम। ४ कुशटण।

कुशाकार (सं० पु०) कुशैराकीर्यते समन्तात् वेष्ट्यतेऽत्र यज्ञकाले इत्यर्थः। कुश-आ-क अधिकरणे अप्। १ अग्नि, आग। कुशां रज्जुं करोतीति, कुशा-क-टः। २ रज्जुकारक, रस्सी बनानेवाला।

कुशाक्ष (सं० पु०) कुश इव सूक्ष्मं अक्षि यस्य, कुश-अक्षि समासान्त अच्। अक्षोऽदृशनात्। पा ५। ४। ७६। वानर, बन्दर।

कुशाय (सं० स्त्री०) कुशस्याग्रम. इ-तत्। १ कुशका अग्रभाग।

“कुशाये अपि कीले य न द्रष्टव्यो महीदधिः।” (भारत, वनपर्व)

(पु०) २ वृक्षद्रव्यके पुत्र। (भागवत, ८। २२। ६)

(त्रि०) ३ कुशाग्रतुष्य सूक्ष्म, कुशकी नोक जैसा पतला या पेना।

कुशाग्रपुर—मगधकी प्राचीन राजधानी राजगृहका नामान्तर। (अष्टाध्यायीपुराणान्तर्गत जैन चरित्र, ११। ६४)

कुशाग्रोय (सं० त्रि०) कुशाग्रमिव, कुशाग्र-क। कुशाग्र-कः। पा ५। १। १०५। कुशाग्रतुष्य, कुशकी नोक-जैसा।

“कुशं बुद्धिं कुशाग्रोयामनुकामोन्मत्तां त्यज।” (भट्टि)

कुशाङ्गरीय (सं० पु०-स्त्री०) कुशेन निर्मितोऽङ्गरीयः, मध्यपदलो०। पवित्र, पेंतो, आद्यादिके कार्यकाल हाथमें धारण की जानेवाली कुशकी अंगूठी।

कुशादगी (फा० स्त्री०) विस्तार, फैलाव, चौड़ाई।

कुशादा (फा० वि०) १ अनाहत, खुला हुआ। २ विस्तृत, लम्बा-चौड़ा।

कुशादितैल (सं० स्त्री०) कुश, गणिकारिका, नील-भिण्टी, नल, दम, इलु, गोक्षुर, कड़ई, वक, सूर्यावर्त, शतमूली, शरा, घातकी, श्योणाक, वृक्षरुहा (बांदा), कर्णपुर तथा हिमसागर समस्त द्रव्योंके कषाय और कल्क द्वारा तैल पाक करना चाहिये। इसका नाम कुशादितैल है। इस तैलको पान, अभ्यङ्ग, वस्ति (पिचकारी) और उत्तरवस्तिमें प्रयोग करनेसे शर्करा, अश्मरी, मूत्रकण्डू, प्रदर, योनिशूल और शक्कदीप रोगका प्रतीकार पड़ता है। फिर कुशादितैलसे वन्ध्याका गर्भसञ्चार भी होता है। (भागप्रकाश)

कुशादिशालिपण्यं (सं० स्त्री०) १ तृणपञ्चकमूल। २ विदारि गन्धादि गण।

कुशाद्यघृत (सं० स्त्री०) १ अश्मरी रोगका घृतविशेष, पथरीका कोई घी। कुशादि क्वाथद्रव्योंका समष्टि १२५ शरावक, ६४ शरावक जलमें क्वाथ करके १६ शरावक रहनेसे उतार लेना चाहिये। फिर शिला-जतु आदिका १ शरावक कल्क और ४ प्रस्थ घृत डालके निम्नलिखित द्रव्योंके क्वाथको पकानेसे कुशाद्य घृत प्रसृत होता है—कुशमूल, काशमूल, इलुमूल, पाषाणभेद, उलुमूल, भूमिकुषाण्ड, वाराहकीन्द, वराह-क्रान्ता, वा शालिधाम्यमूल, गोक्षुर, श्योणाक, पाटला, पाठा, शालिष्ठशाक, पीतभिण्टी, श्वेतपुनर्नवा और शिरीष। कल्कद्रव्य निम्नलिखित हैं—शिलाजतु, यष्टिमधु, इन्दोवरबीज, त्रपुषवीज और कर्कटीबीज।

(चक्रवर्त्त)

२ दूधका घृत। कुशाद्यतैल देखो।

कुशाद्यतैल (सं० स्त्री०) दाहाधिकारका तैलविशेष, जलनका एक तैल। ४ शरावक तिलतैल वा घृत और क्वाथ द्रव्योंका १०० पल समष्टि ६४ शरावक जलमें क्वाथ करके १६ शरावक रह जानेसे उतार लेना चाहिये। फिर जीवकादिका ८ पल मिलित कल्क उसमें पाक करनेसे उक्त कुशाद्यतैल वा घृत प्रसृत होता है। क्वाथद्रव्य यह है—कुश, काश, शर, इलु, उसीर और शालपर्णी। (रवरभाकर)

कुशाब्ध (सं० पु०) जनपदविशेष, एक बसती या सुत्क। इसका कुलाङ्ग और कुशाङ्ग प्रभृति पाठान्तर मिलता है।

कुशाब्ध (सं० पु०) १ वसु उपरिचरके कोई पुत्र। (भागवत, २।१२।६) २ निमिदंशीय कुशनामक नरपतिके पुत्र। वह भागवतमें कुशाब्ध और विष्णुपुराणमें कुशाब्ध नामसे अभिहित हुए हैं। (भागवत २।१५।४, विष्णुपुराण ४.७ च०)

कुशाब्ध नृपतिने पिताके आदेशसे कौशाब्धी नामक पुरी स्थापन की थी। कौशान्दी देखो।

कुशाब्ध (सं० स्त्री०) १ कुशका जल। (पु०) २ कुशाब्ध राजा।

कुशारणि (सं० पु०) कुशं शापदानार्थं जलं अरुणिरिवास्य। दुर्वासा मुनि। दुर्वासा कोपनस्वभावप्रयुक्त सर्वदा शाप प्रदान करते थे। इसीसे उनका नाम कुशारणि पड़ गया।

कुशालगढ़—राजपूताना बांसवाड़ाके दक्षिण पूर्वका एक सुदृढ़ देशीय राज्य। इसका भूमिपरिमाण ३४० वर्ग-मील है। इसमें २५७ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या १६२२२ है। इसमें सेकडे पीछे ७१ भील निकलेंगे। कुशालगढ़की वार्षिक आय प्रायः ३५०००, ४० है। कुशालगढ़ ग्राम वा नगरमें डाकखाना, पाठशाला और औषधालय बना है। कुशालगढ़के राजा राठौर राजपूत हैं और योधपुरनगर प्रतिष्ठाता योधसिंहके वंशज होनेका दावा करते हैं। पहले वह पूर्वकी गये और रतलामके शासक रहे, जहां आज भी उनके ६० गांव हैं और ६००, ४० वार्षिक उनका करस्वरूप वह रतलामके राजाको देते हैं। ई० १७ वें शताब्दीके पिछले भाग उन्होंने कुशालगढ़प्रान्त अधिकार किया। बांसवाड़ा-वासियोंके कथनानुसार बांसवाड़ाके राजा कुशालसिंहने भीलोंसे इस प्रान्तको छीन अपने नाम पर नामकरण करके अक्षय राजकी उनकी सेवाके पुरस्कारमें दे डाला था। परन्तु कुशालगढ़-वंशका कहना है कि अक्षय राजने स्वयं उसे भीलोंसे ले लिया फिर वंशने अक्षय राजकी पराजय किया। इसका नामकरण भील-सरदार कुशलके नाम पर ही हुआ

था। जो हो, परन्तु उत्तर-पश्चिममें राज्यका एक भागस्वरूप तांभिसड़ा जिला बांसवाड़ेके किसी राजाने जागीरकी भांति दिया था और कुशालगढ़के राव ५५०, ४० करस्वरूप बांसवाड़ाको पहुँचाते हैं। राव अब पूर्ण रूपसे स्वाधीन हैं। केवल उन्हें बांसवाड़ाको कर देना और महारावजके राज्यभित्त तथा विवाहादिके समय बांसवाड़ामें उपस्थित होना पड़ता है। वह अपने राज्यमें दीवानी और फौजदारी दोनों महकमोंका अधिकार रखते हैं, फांसी देने या कालापानी करनेमें राजपूताना गवर्नर जनरलके एजेंटसे अनुमति लेना पड़ती है।

कुशालसिंह—बांसवाड़ाके एक राजा। इन्होंने प्रायः ई० १७ वीं शताब्दीके अन्तको भीलोंसे दक्षिणपूर्व देश छीना और अपने नामपर उसका कुशालगढ़ नामकरण किया था। कुशलगढ़ देखो।

कुशालसिंह—सगरवंशीय एक राजा। चेतनचन्द्र नामक किसी कविने (जन्म १५५८ ई०) इनके लिये शालि-होत्रपर एक निबन्ध लिखा था।

कुशात्मलि (सं० पु०) कुक्षितः शात्मलिः, कुक्षितिसः १ रक्तरोहितक, लाल रोहितक। २ रोहितक लवण, एक पेड़।

कुशात्मली (सं० स्त्री०) कुशात्मलि देखो।

कुशावती (सं० स्त्री०) नगरविशेष, एक शहर। वह रामपुत्र कुशकी राजधानी रही। (रघुवंश १।५।८०, १६।२५) रामचन्द्रने कुशावती नगरी स्थापन की थी—

“कुशस्य नगरी रम्या विश्वपर्वतराशेऽसि।

कुशावतीति नाम्ना सा कृता रामेण धीमता ॥” (रामायण ७।२२।१४)

कुशावतं (सं० पु०) कुशस्य जलस्य आवर्ती यत्र, बहुव्री०। १ तीर्थविशेष।

“गङ्गावारि कुशावर्ते विल्लके नीलपर्वते।

तथा कनकले चान्ना धूत पा मा दिवः प्रसीत ॥”

(महाभारत, १।१२४ च०)

२ ऋषभ नृपतिके शतपुत्रके मध्य भरतके कनिष्ठ।

(भागवत ५।४।१०)

कुशावली (सं० पु०) प्रमेहाधिकारका औषधविशेष, जिरियानुकी एक दवा। वीरणमूल (बसकी जड़), कुशमूल, काशमूल, लक्ष्मिमूल और खग्गड़ मूलका

१० पल प्रत्य ६४ शरावक जलमें स्नाय करके ८ शरावक जल बचनेसे उतार लेना चाहिये। फिर उसे २ शरावक शुण्ड मिला पकाते और लेहभूत होनेपर उसमें निम्नलिखित द्रव्योंका २ तोले प्रक्षेप मिलाते हैं— यष्टीमधुक, कर्कटीबीज, कुष्माण्डीबीज, त्रिपुण्ड्रबीज, वंश-लोचना, आमलकपत्र, पलात्वक (दालचीनी), माग-केशरपुष्प, वरुणत्वक, गुडूची और प्रियङ्गु। (चक्रवर्त)
कुशाश्व (सं० पु०) सूर्यवंशीय एक राजा। (रामायण १।४७।१६) उनकी राजधानी विशाला रही। कुशाश्व सहदेवके पुत्र और सोमदत्तके पिता थे।

कुशासन (सं० पु०) कुशैर्निर्मितमासनम्, मध्यपदलो०।

१ कुशदण्डनिर्मित आसन। दान, यज्ञ, आहु, उपासना प्रभृति समस्त कार्यकालको कुशनिर्मित आसनपर बैठनेका विधि प्रचलित है। कुशासनपर उपवेशन न करके किसी कार्यके करनेका कदा विधान है? किसी उत्तम आसनके नीचे थाड़ेसे कुश डालके भी बैठ जाते हैं। आहुके समय पितृपुरुषोंको आवाहन करके आसनके निमित्त कुश ही देनेका विधि है। कुश देखो।

कुशिशपा (सं० स्त्री०) कुक्षिता शिशपा, कुगतिस०।

कपिलवर्ण शिशपा, काली शौशम।

कुशि (सं० पु०) पेचक, उल्लू।

कुशिक (सं० पु०) कुशः कुशनामा नृपोजनकत्वेनाख्यस्य, कुश-ठन्। १ विश्वामित्रके पितामह, गांधिके पिता। महाभारतके मतानुसार महातेजस्वी अयन महर्षिने ध्यानबलसे समझ लिया था कि कुशिकवंशसे उनके वंशमें अत्रियधर्मका सञ्चार होते ही उसकी अव-नति होगी। वह कुशिकवंश पागे ही भस्मसात् करने-के अभिलाषसे महाराज कुशिकके निकट उपस्थित होके कहने लगे—“महाराज! हम आपके साथ एकत्र वास करना चाहते हैं। आपका जो अभिप्राय हो, प्रकाश कर दीजिये।” महाराज कुशिकने विनीत-भावसे कहा—“विधान ऐसा है कि केवल पत्नी ही स्वामीके साथ एकत्र वास करेगी। महर्ष! आप जो अभिलाष प्रकट करते हैं, वह धर्मशास्त्र-सम्मत नहीं। फिर भी आप जब हमारे साथ एकत्र वास करना चाहते हैं, तो अवश्य हम उसमें सन्मत हैं।” कुशिकने महर्षि-

की यथानियम पूजा की थी। फिर राजाने कहा—“भगवन्! हम और हमारी महिषी दोनों आपके सम्पूर्ण अधीन हैं। अनुमति कीजिये, हम आपका क्या काम करेंगे।” मुनिने उत्तर दिया—“हम कोई प्रार्थना न करेंगे। तुम्हारा और तुम्हारी महिषीका यदि अभिप्रेत हो, तो हम किसी कार्यका अनुष्ठान करें। इस नियमके अनुष्ठानमें तुम दोनोंको हमारे परिचर्या करनी पड़ेगी।” महाराज और राजमहिषीने पुनः स्वीकृत मन स्वीकार किया—“हम अवश्य ही आपके अनु-मति प्रतिपालन करेंगे।” फिर वह महर्षिकी एक उत्कृष्ट गृहके मध्य ले गये और कहने लगे—“आपका व्यवहारोपयोगी समस्त ही प्रसूत है। आप स्वेच्छानु-सार इस स्थानमें अवस्थिति कीजिये।” क्रमसे सन्ध्या उपस्थित हुई। महर्षि अयनने पादारादि क्रिया समापन कर राजाको सम्बोधन करके कहा था—“हमारी निद्राका समय उपस्थित है। हमारे सो जानेसे हमको मत जगावो, तुम दोनों अविश्रान्त रूपसे हमारे परिचर्यामें नियुक्त रहो।” राजा और रानीने वही स्वीकार किया।

क्रियतृष्ण पोछे महर्षि निद्रित हुये। राजा और रानी दोनों अविश्रान्त भावसे उनकी परिचर्या करने लगे। एकविंशति दिवस अतीत हो गये, तथापि मुनि-की निद्रा न टूटी। राजा और रानी दोनोंने पादार निद्रा परित्याग करके दृष्टान्तःकरणसे उनकी परि-चर्या की थी। एकविंशति दिवस अतिवाचित होनेपर अयन स्वयं जागरित हुये और राजा तथा रानीसे कोई बात न कर गृहसे बाहर निकल गये। राजा और महिषी क्षुधा-दृष्ट्यासे अत्यन्त आतुर होते भी उनका अनुगमन करने लगीं। क्रियतदूर गमन करके महर्षि अन्तर्हित हुये। उन्होंने महर्षिके पत्नीकिक व्यापारसे विस्मित हो प्रत्यागमन किया था। गृहमें प्रवेश करके उन्होंने देखा कि महर्षि पूर्ववत् निद्रित हैं। उस समय उनके विस्मयकी परिसीमा बहुत बढ़ी, राजा और महिषीने पुनर्বার उनको चरचसेवा करना पारम्भ किया। पुनरपि एकविंशति दिन अतीत हो गये। महर्षि अयनने जागरित होके

कहा था—“हम खान करेंगे। तुम हमारे अङ्गमें भोजी भाति तेक मर्दन करो।” राजा और महिषीने तेक मस दिया। महिषि खान-शालामें पहुँचके पन्त-हित हुये। कियत्क्षण पीछे राजा और रानीने देखा कि मुनि खान करके सिंहासन पर बैठे थे। उन्होंने समस्त आचारीय आयोजन किया। उस समय महिषि अवनने शय्या, आसन और बहुमूल्य समस्त वस्त्रादि एकत्र करके जला दिये। राजा और रानीको इससे अणुमात्र भी चोभन लगा। कियत्क्षण पीछे ही महिषि फिर पन्तहित हुये। अनन्तर एक दिन उन्होंने कहा था—“राजन्! तुम और तुम्हारी पत्नी दोनों मिल कर हमारा रथ बहान करके ले चलो और इसका भी विधान करो कि पश्चिमध्य हमारे समक्ष जो उपस्थित होंगे हम उनको इच्छानुसार द्रव्यादि प्रदान करेंगे।” राजा सम्यक्त हो गये। राजा और रानीने महिषिका रथ बहान करना आरम्भ किया था। कियत्क्षण पीछे महिषि एक चाबुकसे दम्पतीको निदारण प्रहार करने लगे। किन्तु उससे वह अणुमात्र भी दुःखित न हुये। महिषि कल्पवृक्षकी भांति अजस्र दान करते रहे। राजा और रानीमें उससे कोई विकार संचित न हुआ। अवनने कहा था—“हम इस रथ्य काननमें अवस्थिति करेंगे। तुम इस समय जावो। प्रभातको फिर आगमन करना।” राजा और रानी दोनों उस समय लौट पड़े। परदिन प्रातःको तपोवनमें उपस्थित होके उन्होंने देखा कि उसने अमरावतीसे भी उत्कृष्ट शोभा धारण की थी। महाराज कुशिकने विस्मयाविष्ट हो इतस्ततः भ्रमण करते करते एक रत्नमय आसन पर उपविष्ट महिषीको देख लिया। महिषि उसी समय पन्तहित हो गये। कियत्क्षण पीछे काननके मध्य वह फिर एक कुशासन पर उपविष्ट देख पड़े। राजाने समझा कि वह समस्त महिषिके तपोबलसे होता था। राजा विस्मित हो महिषीको सम्बोधन करके कहने लगे—“प्रिये! तपोबल विश्वका राज्य लाभ करनेसे भी अत्यन्त है।” फिर राजाने महिषि अवनके निकट जाके इस समस्त पलौकिक घटनाका कारण जिज्ञास किया। महिषि कह चले—

“महाराज! हमने ब्रह्माके मुखसे सुना है कि तुम्हारे वंशसे हमारे वंशमें क्षत्रिय-धर्मका सञ्चार होगा और तुम्हारे पौत्रको ब्राह्मणत्व मिलेगा। हमने यह बात सुन तुम्हारा वंशविनाश करनेकी कामनासे तुम्हारे गृहगमन किया था। किन्तु हमने किसी बातमें तुम्हारा छिद्र न देखा कि अभिशाप देके भस्म करते। तुम्हारे व्यवहारसे हम अत्यन्त सन्तुष्ट हुए हैं। वर प्रार्थना करो।” राजाने कहा—“हमारी यही प्रार्थना है कि आपका वाक्य सत्य हो और हमारे वंशीयोंको ब्राह्मणत्व मिल सके।” महिषिने तथासु कहके वर दे दिया। (भारत, अनुशासन, ५१-५२ अ०)

२ कुशिकस्वापत्यादि, कुशिक-अञ्ज तस्य शोपः। रजनीय। पा २.४.६४। कुशिकगोचोय। “गोमौ रत्नं कुशिकासो वसानहै।” (सूक् १।२६।१) ‘कुशिकासः कुशिकगोचोपनाः।’ (सायब)

३ जनपदविशेष, कोई बसती या सुख। ४ फाल, फरी। ५ तैलशेष, तेलका तलछट। ६ सर्जवृक्ष, धूनेका पेड़। ७ विभोतकवृक्ष, बहेड़ेका पेड़। ८ अश्वकण्ठवृक्ष, सालका कोई पेड़। ९ भस्मातकवृक्ष, मिलावेका पेड़। १० बदर, बेर। (त्रि०) ११ वक्रदृष्टि, कैया, टेढ़का।

कुशिकान्वर (सं० पु०) एक मुनि। (लिङ्गपुराण, ७.४७) कुशिका (सं० स्त्री०) कुशो स्वार्थ कन्-टाप्। फाल, हलकी कुसी।

कुशियामक (सं० पु०) मङ्गराज्यके अन्तर्गत बुद्धदेवका निर्वाणस्थान। उसका अपर नाम कुशिनगर है।

कुशित (सं० स्त्री०) कुश-इतः। “वृद्धादिभ्य णः स्यात्।” (रामचमकृत उणादिकोषटीका, १।२८७।) १ जलमिश्रित वस्तु, पानी मिली हुई चीज। (त्रि०) २ जलमिश्रित, पानी मिला हुआ।

कुशिनगर (सं० स्त्री०) बौद्धशास्त्र-वर्णित बुद्धदेवका-निर्वाणस्थान। वर्तमान नाम कुशिया है। वह युक्त-प्रदेशमें गोरखपुरसे ३५ मील पूर्व अवस्थित है। प्राचीन कालमें उक्त स्थान बौद्धोंके एक पुण्यतम तीर्थ जैसा प्रसिद्ध था। अति दूरसे सहस्र सहस्र बौद्ध-तीर्थयात्री उसके दर्शनको आगमन करते थे। ४०० ई० की चीनपरिव्राजक फाहियान वहाँ बौद्धराजनिर्मित

विस्तर स्तूप और विहार देख गये। फिर ई० सप्तम शताब्दीको चीनपरिव्राजक युएनचुयाङ्ग कुशिनगर (किउ-शिन-कि ए लो) पहुँचे। उन्होंने उसका दर्शन करके अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें इस प्रकार लिखा है।

‘कुशिनगर राजधानी आज कल विध्वस्त है। ग्राम नगर आदि जनशून्य मरुप्राय हो गये हैं। प्राचीन राजधानीका इष्टक-निर्मित प्राचीर प्रायः एक कोस (१३ लि) विस्तृत है। तोरणद्वारके ईशान-कोणमें अशोकराजस्थापित स्तूप और चन्द्रभवन है। नगरके वायुकोणमें अजितावती (वा हिरण्यवती) नदीके पश्चिम तटसे अनतिदूर सालवन बहता है। इसी स्थानमें बुद्धदेव निर्वाणप्राप्त हुए। निकट ही विहारके मध्य उनकी मूर्ति प्रतिष्ठित है। विहारके पार्श्वमें अशोकराजका बनाया हुआ स्तूप है। वहाँ एक प्रस्तरस्तम्भपर बुद्धदेवके निर्वाणकी कथा खोदित है। उससे थोड़ी दूर सुभद्र और वज्रपाणिके स्मरणार्थ भी स्तूप बना है। नगरके उत्तर नदीपारसे कुछ दूर तीसरा स्तूप है। वहाँ बुद्धदेवके मृतदेहका सत्कार किया गया था। उसीके निकट अशोकराज स्थापित कोई दूसरा स्तूप है। वहाँ बुद्धदेवने प्रियशिष्योंको भी औपदेश किया था। उक्त स्तूपमें उनके पूतदेहका भस्मावशेष ८ भागोंमें विभक्त हुआ।’

ई० सप्तम शताब्दीको चीनपरिव्राजकने जो देखा था, वर्तमान कुशिया ग्राममें वह कुछ भी नहीं रहा। चीन-परिव्राजक वर्णित जिस सालवनमें बुद्धने निर्वाण पाया, आजकल वही स्थान ‘माताकुंवर का-कोट’ (मृत कुमारका गढ़) कहलाया है। अल्प दिन हुए वहाँ प्रायः १४ हाथ ऊँची बुद्धदेवकी एक प्रतिमूर्ति मिली थी। मूर्तिका अङ्ग नानारंगसे चित्रित है। उक्त सुवहत् बुद्धमूर्ति कुशिनगरके ही एक हिन्दू देवमन्दिरमें रक्षित हुई है। उसकी छोड़ दूसरी ८ हाथकी ऊँची नीलप्रस्तरकी बुद्धमूर्ति भी है। बाँधके लोग उसे “माता कुंवर” (मृत कुमार) कहती और पूजा किया करते हैं। यही बुद्धकी निर्वाण-मूर्ति किसी अनुमित होती है। कुशिनगरमें देवीस्थान

वा रामभारटीका नामक एक वृहत् स्तूप गिरा पड़ा है। पहले वहाँ रामभार-भवानीदेवीका मन्दिर रहा। कुशिम्वि (सं० स्त्री०) कुत्सिता शिम्बो पृषोदरादित्वात् ऋक्षः। शिम्बोविशेष, किसी किस्मकी सेम। वह विपाक तथा रसमें मधुर, वलप्रद और पित्तनिवर्त्तक होती है। (वेद्यकनिचयः)

कुशिम्वी, कुशिम्वि देखो।

कुशी (सं० त्रि०) कुशाः सन्त्यस्य, कुश-इति। १ कुश-युक्त, कुशवाला।

“दृष्टो मयी कुशी चोरो घृताक्त खेनोद्धतः।” (भारत ११।१५ अ०।)

(पु०) २ वाल्मीकि सुनि।

कुशी (सं० स्त्री०) कुश स्त्रियां ङीष्। जानपदकुश-नीचस्थलभाजनमकाल-नील-कुश.....। पा ४।१।४२। १ लोह विकार, लोहेकी चोज। २ फाल, फरी।

कुशीद (सं० स्त्री०) कु-सद-शः पृषोदरादित्वात् सख्य वा शत्वम्। १ रक्तचन्दन, लालचन्दन। २ वृद्धिजीविका, सूदखोरो। ३ फाल, डलका फल। ४ सुखमालातन्त्र।

कुशीनार—कसिया। कुशिनगर देखो।

कुशीपु (सं० पु०) अन्न, चारा, अनाज।

कुशीरक (सं० पु०) कुत्सितः शीरको यत्र कर्षण इत्यर्थः। क्षेत्रविशेष, एक कड़ो जमीनवाला क्षेत्र। जिस क्षेत्रमें कर्षणकाल लाङ्गलका फाल टेढ़ा पड़ा जाता, वही कुशीरक कहाता है।

कुशील (सं० त्रि०) कुत्सितं शीलमस्य, बहुव्री०। मन्दस्वभावयुक्त, नाशायस्ता, बदमिजाज।

कुशीलव (सं० पु०) कुत्सितं शीलं तदस्वस्य, कु-शील-वः।

“वप्रवरये अन्येभ्योऽपि डध्यते।” (महाभाष्य, पा ५।१।१०८)

१ नट, कलाबाज।

“यन्नाय्यवस्तुनः पूर्वं रक्षितोपशान्तये कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति”

(साहित्यदर्पण, ६४ परिच्छेदः)

मनुके मतमें नटोंका व्यवसाय निन्दित है। वह एक पंक्तिमें बैठके भोजन करनेके योग्य होते हैं।

(मनु, २।१५५-१६०)

२ चारण, भाट। ३ गायक, गानेवाला। ४ कथक, कहनेवाला। ५ वाल्मीकि सुनि। ६ रामचन्द्रके साथ और कुश दोनों पुत्र।

कुशीवश (सं० पु०) कुशीव कुशवान् सन् श्रेते अव-
तिष्ठते, कुशव-शी लः । वाल्मीकि मुनि ।

कुशुम्भ (सं० पु०) कौ पृथिव्यां शुम्भति शोभते जलपरि-
पूर्णः सन्निवृत्त्यर्थः, कु-शुम्भ-अच् । १ पात्रविशेष, कोई
बरतन । २ तपस्वीका जलपात्र, फकीरके पानीका
बरतन ।

कुशूल (सं० पु०) कुस-जलच् पश्चात् प्रयोदरादित्वात्
सस्य शत्वम् । खड्गपिस्त्यादिभ्यो करोलचो । (उष् ४।२०)
१ धान्यागार, अनाजकी बखारी या खत्ती । उसे हिन्दी-
में कोठला और देहरी भी कहते हैं । संस्कृत
पर्याय—अन्नकोष्ठक और व्रीह्यागार है । २ तुषाग्नि,
भूसीको आग । ३ स्थान, जगह । ४ कटाह, कड़ाह ।
५ कोई दानव । ६ कुत्सित शूल, बुरा दण्ड ।

कुशूलधान्य (सं० स्त्री०) कुशूलपरिमितं धान्यम्, मध्य-
पदलो० । तीन वर्षके लिये आहारोपयोगी सञ्चित
धान्य, कुठलेका अनाज ।

कुशूलधान्यक (सं० स्त्री०) कुशूलमितं धान्यमस्य,
बहुव्री० कप् । तीन वर्षके लिये आहारोपयोगी धान्य
सञ्चित रखनेवाला गृहस्थ, जिसके घरमें तीन सालके
लिये खानेकी अनाज रक्खा हो ।

“कुशूलधान्यकोवास्यात् कुशीधान्यक एव वा ।” (मनु ४।७)

कुशेलय (सं० स्त्री०) कुशे जले लीयते जलं श्लिष्यती-
त्यर्थः, कुशे-ली-अच्, अलुक्स० । पद्म, कंवल ।

कुशेशय (सं० स्त्री०) कुशे जले श्रेते, कुशे-शी-अच्,
अलुक्स० । १ पद्म, कमल ।

“कुशेशयातामसश्चैव कश्चित् करेण रेखाभजलाच्यनेन ।”

(रघुवंश, ६-१८)

२ सारसपक्षी । (पु०) ३ कर्णिकारवृक्ष, कनियारी ।

४ कुशहौपका कोई पर्वत । (विष्णुपुराण, २।४।४१)

कुशेशयकर (सं० पु०) कुशेशयं पद्मं करे यस्य,
बहुव्री० । विष्णु ।

कुशोदक (सं० स्त्री०) कुशसंस्पृष्टसुदकम् । दानार्थं
कुशसञ्चित जल ।

कुशोदका (सं० स्त्री०) एक देवी ।

कुश्या (फा० पु०) धातुकी रासायनिक क्रिया द्वारा
जारण करके बनाया हुआ भस्म ।

कुशी (फा० स्त्री०) मल्लयुद्ध, पकड़, जोड़, पकड़वानों-
की लड़ना ।

कुशीवाज (फा० वि०) मल्लयुद्धमें अभ्यस्त, कुशी लड़ने-
वाला ।

कुश्रि (सं० पु०) एक आचार्यका नाम ।

कुश्रुत (सं० त्रि०) कु ईषत् श्रुतम्, कुगतिस० । अपरि-
स्फुट भावसे श्रुत, कम सुना हुआ, जो साफ साफ सुन
न पड़ा हो ।

कुश्रुम्भ (सं० स्त्री०) कु ईषत् श्रुम्भं क्षिद्रम्, कुगतिस० ।
क्षुद्र क्षिद्र, छोटा छेद ।

कुषक (सं० पु०) विभीतकवृक्ष, बहेड़ेका पेड़ ।

कुषण्ड (सं० पु०) एक पुरोहित ।

कुषल (सं० त्रि०) कुश-ला-क बाहुलकात् यस्य पत्वम् ।
चतुर, दक्ष, पटु, होशियार, चालाक ।

कुषवा (वै० स्त्री०) एक राक्षसी ।

“ममश्नत्वा युवतिः परास समश्नत्वा कुषवा जगार ।”

(स्कन्ध ४।१८।८) ‘कुषवानामो कश्चित् राक्षसी ।’ (सायण)

कुषाकु (सं० पु०) कुष-काकुः । कठि कु(क) शिभा काकुः ।
(उष् १।००) १ अग्नि, आग । २ वानर, बन्दर । ३ सूर्य-
सूरज । (त्रि०) ४ उत्तापक, तपानेवाला ।

कुषान (कुषन, गुषन) एक युएची राजवंश । पहले यह
वंश पांच श्रेणियोंमें विभक्त था, किन्तु पीछे मिल
कर एक हो गया । यह लोग अपना पूर्व अनिश्चित वास
छोड़ सभ्य बने थे । इनके राज्य बाक्ट्रियामें कहते हैं
हजारों गहर रहे । यह बात शायद बढ़ा कर कही
गयी हो । परन्तु सम्भवतः बाक्ट्रिया ईरान और यूनान-
की सभ्यताका मिलनस्थान था । इसके राजावों देमेत्रि-
अस (Demetrius) और यूक्रेतिदसने (Yukretedus)
भारतको आक्रमण किया था । इस लिये कोई आश्चर्य-
की बात नहीं कि युद्धप्रिय युएची जातिके कुषानोंने
यूनानियों और ईरानियोंका अनुसरण किया हो और
अपने साथ उनको सभ्यताका कुछ अंश लेते आये हों ।

इस आक्रमणका विवरण और भारतके कुषानोंका
इतिहास ठीक समझा जा नहीं सकता, यद्यपि हमें
राजावोंके नाम विदित हैं । भारतीय साहित्यमें इस
समयका अल्प उल्लेख है । कुषानोंकी सब बातें चीना

कहानियों, शिलाफलकों और सिक्कों से ली गयी है। इस साक्ष्य से यह आशय निकलता है कि कोजुल-कदफिस, कुजुलाकस् या कियु-चिउ-किषो नामक किसी राजाने (४५-८५ ई०) युएची जातिकी पांच विभिन्न श्रेणियोंको एकमें मिला दिया, काबुल उपत्यकाको जय किया और यूनानी राज्यका अवशिष्ट अंश दबा लिया। सम्भवतः कुछ दिन पीछे विमोकदफिस, हिमकसिस या एन-काव-चिन-ताई उनके उत्तराधिकारी हुए और उन्होंने उत्तर भारतको पूर्णरूपसे विजय किया। फिर कनिष्कका राजत्व (१२३-५१ ई०) हुआ, जो पूर्व एशियाके भीतर बाहर बौद्धधर्मके संरक्षक और द्वितीय बौद्धसङ्घके आश्रयकारी-जैसे प्रसिद्ध हैं। कहते हैं उन्होंने भी काशगर, यारकन्द और खुतन जय किया था। उनके उत्तराधिकारी हुविष्क और फिर वासुदेव हुए, जो २२५ ई०को अवश्य मर गये होंगे। वासुदेवके राजत्व पीछे कुषानोंकी शक्ति क्रमशः क्षीण पड़ी और सिन्धुकी उपत्यका और उत्तर-पूर्व पक्कानस्थानको खदेर दिये गये। चीना ग्रन्थकारोंकी वर्णनाके अनुसार यहाँ उनका राजपरिवार किदार जाति कहलूँ कूरीभूत हुआ। किदार भी युएची जातिके ही वंशधर थे। कुषानोंके भारतको अग्रसर होते समय वह बाक्ट्रियामें ही रह गये थे। पीछेकी किदारो हिन्दूकुशके दक्षिण चट गये; कारण चीना सीमाप्राप्तसे युषाङ्ग-युषाङ्ग पश्चिमकी बढ़े थे। ४१० ई० के समय कन्दाहारमें कुषानोंका एक सुदृढ़ राज्य फूलाफला था, परन्तु हूणोंके आक्रमणोंसे विध्वस्त हुआ।

कुछ ग्रन्थकार कुषान-वंशकी उपर्युक्त वंशावली स्वीकार नहीं करते और सोचते हैं—कनिष्ककी ईसासे आगे यहाँ तक कि उनसे ५८ वर्ष पहलेके व्यक्ति मानना चाहिये और हुविष्कके पहले या पीछे वसुष्क नाम जैसे कोई दूसरे भी राजा रहे। किसी प्रकार १० सन्से बहुत पहले या पीछे युएचियोंका भारत आक्रमण नहीं हुआ और भारतकी सभ्यता पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा। उनके सिक्कोंमें आचरणोंका अपूर्व तारतम्य है, जो बहुतसी जातियोंसे लिया गया

है। साधारण रूप और आकृति रोमक है। लेख यूनानी या खरोष्टी भाषामें लिखा है। मुद्राके पृष्ठ पर ईरानी, यूनानी या हिन्दुस्थानी देवता (शिव वा कार्ति-केयदेव)-का चित्र है। अग्रभागमें राजाकी तसवीर बनी है, जो लम्बा खुला कोट, घुटने तक जूते और लंबी टोपी पहने हैं। गन्धारकी चित्रशालिका जिसके नमूने कनिष्ककी राजधानी पुरुषपुर (वर्तमान पेशावर)-से गये, एक यूनानी रोमक-कलाकी शाखा थी जो पूर्वोक्त धार्मिक विषयोंके लिये उपयुक्त बनी। युएची लोग ही प्रधानतः उसे भारतमें लाये। उसके भारत आगमनका कारण ई० से १८०-१३० वर्ष पहले यूनान और बाक्ट्रिया कहलूँ भारत विजय भी था। भारत और बौद्ध एशिया पर गन्धार-प्रभावकी आवश्यकता मानी हुई बात है। कनिष्क और दूसरे राजा स्पृहास्त्रद थे, परन्तु किसी प्रकार निषेधक बौद्ध न थे। फिर खुतन और काशगरकी जीतसे चीनमें बौद्धमत फैलनेकी अवश्य सुविधा हुई होगी। पीछेकी ईरानी उपाधि कुषान राजाओंका अपना-जैसा बन गया। सिक्कोंकी मूर्ति विशाल नासायुक्त, दीर्घचक्षु, श्मश्रु पूर्ण और मोटे होठोंकी है। इससे युएची लोग मङ्गोलों या उगरो-फिनिकोंकी अपेक्षा तुर्कोंसे अधिक मिलते जुलते देख पड़ते हैं। फिर संस्कृतमें तुर्कोंकी 'तुबष्क' लिखते हैं। इससे युएचियोंका और भी तुर्कोंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध प्रमाणित होता है। सुसलमान-ग्रन्थकार अलबेरूनीका कहना है कि पहले भारतके राजा तुर्क (जैसे कनिष्क) रहे। कुछ ग्रन्थकारोंके कथनानुसार युएची शब्द 'युत'-का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ 'जाट' होता है।

कुषार (सं० पु०) एक व्यक्ति।

कुषित (सं० त्रि०) कुष्-कृत। १ जलमिश्रित, पानी मिखा। २ प्रसन्न, खुश।

कुषोतक (वे० पु०) १ पक्षजातिविशेष, किसी किस-को चिड़िया। २ ऋषिभेद, कोई महात्मा। ३ कुषोतक-के पुत्रपौत्रादि।

कुषोद (सं० स्त्री०) कुस्-इदं पश्चात् सुषोदरादित्वात् सख्यं घत्वम्। उषेदन्मोनेति। (वच० । १०६) १ हृदिके अर्थ

धन प्रदान, सुदखोरी । (त्रि०) २ उदासीन, निषेष्ट, गमनीन, निष्ठता । ३ कुषोदिक, सुदखोर ।

कुषोदी (सं० पु०) एक अध्यापक । वह महासुनि पौष्पिलिके शिष्य थे । (विष्णुपुराण, १।६।६)

कुषुम्भ (वै० पु०) कीटविशेषकी विषयली, किसी कीड़ेके जहरकी घैली ।

“मिनमि ते कुषुम्भं यस्मि विषयानः” (अथर्व १।१२।६)

कुषुम्भक (वै० पु०) नकुल, नेवला ।

“कुषुम्भकसद प्रवीणिरे प्रवर्तमानकः” (अष्टक १।१८१।१६)

कुष्ठ (सं० पु०-स्त्री०) कुष्-कथन् । इति-कुषि-नीर-मि-काशिमः । कथन् । उच्यते । यद्वा कुक्षितं तिष्ठति, कुक्ष्या-कः पश्चात् सख्यं पत्वम् । अन्नाभ्युत्थितस्य पश्चिमि कु..... । पा० । १।८० । १ औषधिविशेष, एक जड़ीबूटी । उसे चलती हिन्दीमें कुठ कहते हैं । (Costus Speciosus or Arabicus) कुष्ठका संस्कृत पर्याय—कदाह्य, दुष्ट, व्याधि, परिभाष्य, वाप्य, उत्पल, आप्य, जरण, गदाह्य, गदाह्य, गदाह्य, कौवेर, भासुर, काकल, नीरुज, कुठिक, रुजा, गद, भामय, पारिभद्रक, राम, वाणी-रज, पावन, कुक्षित, पाकल और पञ्चक है । भावप्रकाशके मतानुसार वह उष्ण, कटु, स्नायु, शुक्रजनक, तिक्त और लघु होता है । वह वातरक्त, वीसर्प, कास, कुष्ठ, बाधु और कफरोगकी नाश करता है ।

कुष्ठका प्रकार भेद भी होता है । पुष्करमूल एक प्रकारका कुष्ठ ही है । उसका संस्कृत पर्याय पोष्कर, पुष्कर, पद्मपत्र और काष्मीर है । भावप्रकाशके मतमें पुष्करमूल कुष्ठ, कटु, तिक्त और वातसैषिकज्वर, शय, अरुचि तथा श्वासरोगनाशक है । पाश्चात्य रोग पर वह बड़ा उपकार करता है ।

२ विषभेद, कोई जहर ।

३ रोगविशेष, कोढ़की बीमारी । वैद्यशास्त्रके मतानुसार सातप्रकारका महाकुष्ठ और प्यारह प्रकारका सूक्ष्म कुष्ठ होता है ।

संहिताकारोंके मतमें कोई कुष्ठ महापातक और कोई अतिपातकका विज्ञ है । भविष्यपुराणमें लिखा है कि विशर्चिका, दुश्कर्मा, चर्चरीय, विकर्षु, व्रजताम्र और जम्बू तथा श्वेत कुष्ठोंमें जिस व्यक्तिके गण्डदेश,

कपाल, नासिका एवं सर्वमात्रमें कुष्ठव्रण रहता, वह देवकार्य, पित्रकार्य प्रभृति समस्त कार्यके अयोग्य ठहरता है । उसके मरने पर उसे तीर्थ अथवा वृक्षमूलमें प्रोक्षित करना चाहिये । उसका पिण्डदान, तपण अथवा दाहकार्य करना अनुचित है । यदि छह मास अथवा तीन मासके कुष्ठरोगीको कोई दाह करता, तो उसे दाहान्तर चान्द्रायण प्रायश्चित्त करना पड़ता है । विष्णुसंहितामें कुष्ठरोगकी पूर्वजन्मावृत्ति अतिपातकका विज्ञप्रकाश बताया है । शातातपने अपने कर्मविपाकमें कुष्ठरोगकी महापातकके लक्षण जैसा निर्देश किया है । कुष्ठरोग देखो ।

४ कुलिञ्जवृक्ष, कुलीजनका पेड़ ।

कुष्ठकण्टक (सं० पु०) खदिर वृक्ष, खैरका पेड़ ।

कुष्ठकालानलरस (सं० पु०) कुष्ठाधिकारका रसविशेष, कोढ़की एक दवा । गन्धक, पारद, टङ्गण, ताम्र और लौहकी पिप्पलीके साथ भस्म करके पञ्चाङ्ग निम्ब, फलत्रय तथा राजतरुकी भावना देना चाहिये । इस रसकी एक गुच्छा परिमित मात्रा सेवन करनेसे सर्वप्रकार कुष्ठरोग आरोग्य होता है । (रसनिर्णय)

कुष्ठकुठाररस (सं० पु०) कुष्ठाधिकारका रसविशेष, कोढ़की एक दवा । १ भाग सूतभस्म, १ भाग गन्धक ; सूत लौह, ताम्र, गुग्गुलु, त्रिफला, महानिम्ब, चित्रक तथा शिलाजतुमें १६ भाग प्रत्येक, ६४ भाग करणवीजचूर्ण और ६४ भाग अभ्रके चूर्णानुरूप घृत तथा मधुसे विलो-कन करने पर यह औषध प्रस्तुत होता है । (रसरत्नाकर)

कुष्ठकेतु (सं० पु०) कुष्ठनाशनः केतुश्चिह्नं यस्य । भूम्याहुव्यक्षुप, एक भाड़ ।

कुष्ठगन्धा (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा, असगंध ।

कुष्ठगन्धि (सं० स्त्री०) कुष्ठस्यैव गन्धोऽस्य इकारान्तादेशश्च । उपमाशब्द । पा० । ४।१२० । एलवालुक, एलुवा ।

कुष्ठगन्धिनी (सं० स्त्री०) कुष्ठस्यैव गन्धोऽस्त्यस्याः, कुष्ठगन्ध-इति स्त्रियां ङीप् । अश्वगन्धा, असगंध ।

कुष्ठघ्न (सं० त्रि०) कुष्ठं हन्ति, कुष्ठ-घ्न-टक् । १ कुष्ठनाशक, कोढ़ मिटानेवाला । (पु०) २ हितावली, कोई कता । ३ खदिरवृक्ष, खैरका पेड़ । ४ पटोलकता, परवसकी बेल ।

कुष्ठबी (सं० स्त्री०) कुष्ठज स्त्रियां ङीप् । १ काको-
दुम्बरिका, कठगूलर । २ काकमावी । ३ वाकुची ।
४ चितावली ।

कुष्ठतोदन (सं० पु०) रक्तखदिरवृक्ष, काल खैरका
पेड़ ।

कुष्ठदलनरस (सं० पु०) कुष्ठाधिकारका रसविशेष,
कोढ़की एक दवा । गन्धक, पारद, वाकुची, पलाश-
वोज, चित्रक और शुण्ठी प्रत्येकका समभाग चूर्ण
मिश्रानसे उक्त रस प्रसृत होता है । (रसरत्नाकर)

कुष्ठदोषापहा (सं० स्त्री०) वाकुची, सोमराजी ।

कुष्ठनाशन (सं० पु०) कुष्ठं नाशयति, कुष्ठ-नश्-णिच्-
ङ्नि-ङ्युः । १ जीवीशहृक्ष, कोई पेड़ । २ श्वेतसर्पप,
सफेद सरसों । ३ वाराहीकन्द । ४ रक्तखदिरवृक्ष,
काल खैरका पेड़ । ५ पारग्वधवृक्ष, अमिश्रतासका
पेड़ । ६ कुष्ठहरहृक्षमात्र, कोढ़के लिये सुफीद कोई
दरखत । (त्रि०) ७ कुष्ठनाशक, कोढ़ मिटानेवाला ।

कुष्ठनाशिनी (सं० स्त्री०) कुष्ठ-नश्-णिच्-ङ्नि-ङ्युः ।
१ वाकुची, सोमराजी । २ काकमाची ।

कुष्ठनोदन (सं० पु०) कुष्ठं नोदयति, कुष्ठ-नुद्-णिच्-
ङ्युट् । रक्तखदिरवृक्ष, काल खैरका पेड़ ।

कुष्ठरोग (सं० पु०) महाव्याधि नामका रोगविशेष,
कोढ़की बीमारी । आयुर्वेदीय वैद्यकग्रन्थोंके मतमें
मिष्टा आहार, मिष्टा आचरण; विरुद्ध अन्न, पानीय एवं
अत्यन्त तरल, स्निग्ध तथा गुरुपाक द्रव्योंके सेवन, वमन
वेग एवं मलमूत्र वेगधारण, अतिरिक्त परिश्रम, अत्यन्त
रौद्र वा अग्निके ताप ग्रहण, आहारान्त अतिरिक्त परि-
श्रम; रौद्र-सन्तप्त, भयार्त वा परिश्रान्त व्यक्तिके विश्राम
न करते शीतल जलपान वा स्नान, शीत, उष्ण, उपवास,
अनियमित आहार, भुक्तद्रव्य जीर्ण न होते पुनर्वारके
आहार, वमन विरेचन प्रवृत्ति पञ्चकर्मके अन्त कुपथ्य-
सेवन; अत्यधिक नवाक, दधि, मत्स्य, लवण, अन्न,
माषकलाय, मूलक, पिष्टक, तिल, दुग्ध किंवा गुड़
भक्षण, भुक्तद्रव्यकी विदग्धाजीर्णवस्थामें मैथुन, दिवा-
निद्रा और ब्राह्मण किंवा गुरुजनके अभिभव एवं
शुद्धतर पापकर्मके अनुष्ठानसे वात, पित्त और कफ
एक एककुचित होके त्वक्, रक्त मांस तथा अण्डको

विनाशित और कुष्ठरोग उभाड़ते हैं । अतएव कुष्ठ-
रोगका साक्षात् कारण सात प्रकारका है—दूषित
वात, पित्त, कफ, त्वक्, रक्त, मांस और पम्बु (मांस
और त्वक्के मध्यका एक प्रकार रस) ।

कुष्ठरोग अष्टादश प्रकार है । उसमें सात प्रकारका
कुष्ठ महाकुष्ठ और एकादश प्रकारका लुट्टकुष्ठ
कहाता है । कापाल, उदुम्बर, मण्डल, सिन्ध, काक-
शक, पुण्डरीक और ऋजजिह्वा नाम महाकुष्ठ है ।
एककुष्ठ, गजचर्म, चर्मदल, विचर्चिका, विपादिका,
पामा, कण्डू, दद्रु, विस्फोट, किटिम और पलसक
ग्यारहको लुट्टकुष्ठ कहते हैं । सर्वप्रकार कुष्ठ त्रिदो-
षसे उत्पन्न होता है । किन्तु दोषकी उत्पत्तिकाके अनु-
सार वातज, पित्तज, कफज, वातपैत्तिक, वातश्लेष्मिक,
पित्तश्लेष्मिक और सांनिपातिक सात ही भेद कहे हैं ।

कुष्ठरोग लगनेसे पूर्व चर्म मृत्प, खरखर्श; चर्मकी
अधिकता या हीनता, विवर्णता और स्पर्शज्ञान-
रहित हो जाता और दाह, कण्डू तथा सूवीविहवत्
वेदनाका वेग बढ़ जाता है । त्रण शीघ्र निकलता,
दीर्घकाल ठहरता और अत्यन्त वेदना करता है ।
त्रणके पङ्कुरकी रक्तता, अल्प कारणसे ही उसकी वृद्धि,
रोगीकी क्षान्ति, रोमाञ्च और रक्त कण्ठवर्ण होना
कुष्ठका पूर्वरूप है । वाताधिक्यसे कापाल, पित्ताधि-
क्यसे उदुम्बर, कफाधिक्यसे मण्डल एवं विचर्चिका,
वातपित्ताधिक्यसे ऋजजिह्वा, वातश्लेष्माधिक्यसे चर्म-
कुष्ठ, एककुष्ठ, किटिम, सिन्ध, पलसक तथा विपा-
दिका, पित्तश्लेष्माके आधिक्यसे दद्रु, शताक्षी, पुण्डरीक,
विस्फोट, पामा एवं चर्मदल और त्रिदोषके आधिक्यसे
काकश कुष्ठ उत्पन्न होता है ।

चर्मका उपरिभाग खपड़े-जैसा ईषत् रक्त एवं
कण्ठवर्ण भुक्त, रुच, कर्कश और अत्यन्त वेदनायुक्त
रहनेसे कापालकुष्ठ कहाता है ।

उदुम्बर कुष्ठमें चर्म यज्ञदुसुरकी भांति काला पड़
जाता, दाह सताता, वेदनाका वेग बढ़ जाता और देह
खुजलाता है । फिर उसके उपरिस्थित रोम कपिल-
वर्ण धारण करते हैं ।

जो कुष्ठ किञ्चित् श्लेष्मण्य तथा ईषत् रक्तवर्ण, खिर

भाद्रभावापन्न, क्षिण्ण और उच्च मण्डलाकारमें उत्थित होके परस्पर मिलित रहता, उसे चिकित्सक मण्डल-कुष्ठ कहता है। वह कष्टसाध्य है।

सिद्ध कुष्ठमें चर्म भस्मावपत्रकी भांति श्वेतवर्ण तथा ईषत् रक्तवर्ण हो जाता और घर्षण करनेसे धूलि-जैसा निकल आता है।

जिस कुष्ठका वर्ण गुच्छाफलकी भांति रक्त तथा पार्श्वमें क्षण्य किंवा मध्यमें क्षण्य एवं पार्श्वमें रक्तवर्ण रहता, वेदनाका वेग प्रत्यन्त बढ़ता और घर्षण नहीं पकता, उसका नाम काकणकुष्ठ पड़ता है।

रक्तपद्मके पत्रकी भांति रक्त और श्वेतवर्ण कुष्ठको पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं।

कृच्छ्रजिह्वके मण्डलसमूहकी आकृति भस्मकी जिह्वाके सदृश होती है। वह सब ओर रक्त-वर्ण और मध्यमें क्षण्यवर्ण, कर्कश और वेदनायुक्त रहता है।

जो कुष्ठ अनेक स्थानमें व्याप्त होके मत्स्यके मांस जैसा उठ आता, वह एककुष्ठ कहाता है। एककुष्ठ रोगमें घर्मावरोध हुआ करता है। गजचर्म-जैसे अति-शय स्थूल, रुक्ष और क्षण्यवर्ण कुष्ठको गजचर्म कहते हैं।

चर्मदल कुष्ठ रक्तवर्ण वेदनायुक्त और कण्डूयुक्त होता है। उसमें स्पर्शसह स्फोटक निकलता और चर्म विदीर्ण हुआ करता है।

जिस कुष्ठमें क्षण्यवर्ण, कण्डू, युक्त और बहु स्त्राव-शील पीड़का निकल आती, उसको वैद्यमण्डली विचर्चिका बताती है।

पामा कुष्ठमें कण्डू और दाहयुक्त स्त्रावशील छुद्र पीड़का उत्पन्न होती है।

जिसमें हस्तहृदय और नितम्ब पर पामाकी भांति अथवा अत्यन्त वेदनायुक्त स्फोटक निकलते, उसे कच्छु कहते हैं।

दद्रुकुष्ठमें रक्तवर्ण एवं कण्डूयुक्त पीड़का मण्डलाकार उठती है। जिस कुष्ठमें चर्म बहुत पतला पड़ जाता और स्फोटक श्वाव वा रक्तवर्ण दिखता, वह विस्फोटक कहाता है। किटिमकुष्ठ श्वाववर्ण, खरस्पर्श और शुष्कत्वकी भांति कर्कश होता है।

जिस कुष्ठमें रक्तवर्ण, कण्डूयुक्त और छद्म स्फोटक निकलता, उसका नाम अलसक पड़ता है। शताह कुष्ठमें दाहयुक्त और रक्त वा श्वाववर्ण बहुततर व्रण उत्पन्न होते हैं।

रसधातुगत कुष्ठमें देहकी विवर्णता, रुक्षता, रोमाञ्च, अधिक घर्म और त्वक्का स्पर्शज्ञानराहित्य देखते हैं।

रक्ताश्रित कुष्ठमें कण्डूका प्राबल्य और अत्यन्त पूय-सञ्चय होता है। मांसगत कुष्ठमें कुष्ठाधिक्य रहता, मुखशोष लगता, शरीर कर्कश पड़ता, छुद्र पीड़का उद्भव लगता और सूक्ष्मविवृत वेदनायुक्त स्थिर भावापन्न स्फोटक उठता है। मेदगत कुष्ठमें हस्तचय, गमनशक्ति-का अभाव, सर्वाङ्गमें वेदना तथा क्षत और रक्तमांसगत कुष्ठका समस्त लक्षण प्रकाशित होता है। अस्थि एवं मज्जागत कुष्ठमें नाशाभङ्ग, चक्षुरक्तवर्ण, स्वरभङ्ग, वेदना और क्षतस्थानपर कीड़ा देखते हैं। वाताधिक्य-से कुष्ठ रक्तवर्ण वा क्षण्यवर्ण, खरस्पर्श, रुक्ष, और वेदनायुक्त होता है। इसी प्रकार पित्ताधिक्यसे कुष्ठरोग रक्तवर्ण एवं दाह तथा स्त्रावयुक्त और कफाधिक्यसे कण्डू एवं गाढ़ क्लेदयुक्त, क्षिण्ण, गुरु और शीतल रहता है। त्रिदोषजकुष्ठमें द्विदोष और साक्षिपातिकमें त्रिदोषका लक्षण प्रकाशित होता है। त्वक, मांस वा रक्तगत और वातस्त्रेष्माधिक्य कुष्ठसाध्य होता है। मेदोगत और हन्धज कुष्ठ याप्य है। फिर मज्जा वा अस्थिगत; क्षमि, दाह एवं मन्दान्त्रियुक्त और त्रिदोषज कुष्ठ असाध्य होता है। कुष्ठरोगमें अङ्ग विदीर्ण होके पूयादिस्त्रव, चक्षु रक्तवर्ण, स्वरभङ्ग और वमन विरेचनादि पञ्च कर्म द्वारा उपकार न होनेसे रोगी अचिर ही मर जाता है। गुच्छदेश, शिश्र, योनि, हस्तपदतल किंवा आठगत क्लिप्त होनेसे आरोग्य मिलना कठिन है। कुष्ठरोगी-के साथ मैथुन, एकत्र भोजन, शय्यामें शयन, उपवेशन किंवा उसका गात्रस्पर्श और निश्वास ग्रहण अथवा उसका व्यवहृत पुष्प, फल, अनुलेपन प्रभृति व्यवहार करनेसे कुष्ठरोग लग जाता है। वातोत्पन्न कुष्ठमें घृत-प्रयोग, कफोत्पन्न कुष्ठमें वमन और पित्ताधिक्य कुष्ठमें प्रलेप, परिषेक और रक्तमोक्षण कर्तव्य है। शरीतकी,

निम्बभूमिजात करण्ड, श्वेतसर्पप, हरिद्रा, सोमराजी, सैन्धव और विडङ्ग समस्त द्रव्य समभागमें गोमूत्र द्वारा पेयण करके प्रलेप लगानेसे कुष्ठ नष्ट होता है। सोमराजी और शुण्ठीका चूर्ण समभागमें मिलाके उद्- र्गन करनेसे वर्धित कुष्ठ घट जाता है। निम्बके पुष्पित होनेके समय फल और फलित होनेके समय फल ग्रहण तथा उसका वल्कल, मूल एवं पत्र पाहरण करके चूर्ण करना चाहिये। फिर उसके चारमें दो भागोंको भृङ्गराजके रसको सात दिन भावना देते हैं। अनन्तर चिफला, त्रिकटु, ब्राह्मी, गोक्षुर, भक्षातक, चित्रक, विडङ्गसार, वाराहीकन्द, लौह, गुलेचीन, हरिद्रा, दाहहरिद्रा, सोमराजी श्लोषाक, दाहचीनी, कुष्ठ, इन्द्रयव और आकनादि सकल समभागमें चूर्ण करके निम्बचूर्णके अर्धांशमें मिसाना और खदिर, पीतशाल तथा निम्बके काष्ठ द्वारा सात दिन भावना लगाना चाहिये। उक्त औषधको मधु, तिक्तघृत वा खदिर और शालके काष्ठ सहित लेहन करनेसे विच- चिका, छदुम्बर, पुण्डरीक, कापाल, ददु एवं किटिभ प्रभृति कुष्ठका प्रतीकार पड़ता है। औषधकी मात्रा प्रथम दिन १ तोला रहती और दूसरे दिनसे एक एक तोले बढ़ पल पर्यन्त पहुँचती है। औषध जीर्ण होने पर स्निग्ध अथवा लघुद्रव्य पाहार करना चाहिये। ५ पल सोमराजी, ५ पल शिलाजतु, १० पल गुग्गुलु, ३ पल स्वर्णमाक्षिक एवं २ पल लौह तथा सुण्ठी और त्रिफला, करण्ड, तेजपत्र, खदिर, गुलेचीन, त्रिवृत् (निमोत), दन्ती, सुस्ता, विडङ्ग, हरिद्रा, कुटज, दाहचीनी, निम्ब, चित्रक एवं श्लोषाक २५।२५ पल लेके मधुके सहयोगसे वटिका बनाना चाहिये। उक्त औष- धकी एक वटिका प्रातःकाल गोमूत्रके साथ निगल कर खानेसे कुष्ठ अच्छा हो जाता है। इसके व्यतीत एकविंशतिक गुग्गुलु, अष्टतभक्षातक अवलेह, महा- भक्षातक, लघुमन्त्रिष्ठादि काष्ठ, मध्यमन्त्रिष्ठादि काष्ठ, बृहन्मन्त्रिष्ठादि काष्ठ, लघुमरिचादि तैल, महामरि- चाद्यतैल, ताकेश्वररस और मलितकुष्ठारिरस सेवन करनेसे कुष्ठरोग मिट जाता है।

कुष्ठ, मूलाका बीज, प्रिवङ्ग, सर्पप, हरिद्रा और

नागकेशर सकल समभाग चूर्ण करके सेवन करनेसे बहुकालका सिध नामक कुष्ठ पारोग्य होता है।

मूलाका बीज अपामार्ग रसके साथ अथवा कदलीके चार सहित हरिद्रा पेयण करके प्रलेप लगानेसे भी सिध नष्ट हो जाता है। दाहहरिद्रा, मूलाका बीज, हरिताल, देवदारु तथा ताम्बूलपत्र प्रत्येक २ तोला और शङ्खचूर्ण आध तोला सकल एकत्र जल द्वारा पेयण करके प्रलेप देनेसे सिध अच्छा होता है।

किञ्चित् जलकी पान्त्रपेयी (चमचूर) जलके साथ ताम्रपात्रमें पेयण करके प्रलेप चढ़ानेसे चर्मदल मिट जाता है। शुष्क आमलकी जलके साथ उस्त द्वारा घर्षण करनेसे चर्मदल-रोगाक्रान्त व्यक्तिका प्रतिकार पड़ता है।

८ तोला जीरक और ४ तोला सिन्दूर ताल आध सेर तैल पाक करके प्रयोग करनेसे पामा नष्ट होती है। मन्त्रिष्ठा, त्रिफला, लाक्षा, विषलाङ्गला, हरिद्रा और गन्धकके चूर्ण द्वारा रौद्रके उत्तापमें तैल पाक करके सेवन करनेसे भी पामा अच्छी हो जाती है। सैन्धव, चक्रमर्द, सर्पप और पिप्पली काष्ठीक द्वारा पेयण करके प्रयोग करनेसे पामाकण्डू, विनष्ट होती है।

४ सेर सर्पपतैल, कल्काय १ सेर हरिद्रा और १६ सेर आकनादिपत्रका रस एकत्र पाक करके सेवन करनेसे पामा, कण्डू तथा विचर्चिका रोग प्रशमित हो जाता है। चारम्बपत्र, निम्बभूमि जात करण्ड- पत्र, पलाश, सर्पप, श्वेतसर्पप, हरिद्रा, कुटज, यष्टिमधु, सुस्ता, शुण्ठी, रक्तचन्दन, आमलकी, यवानी और देवदारु समभागमें चूर्ण करके सर्पप तैलके सहयोग- से मर्दन करने पर पामा रोग घटता है। कुष्ठ, विडङ्ग, चक्रमर्द, हरिद्रा, सैन्धव तथा सर्पप सकल द्रव्य काष्ठीकके साथ अथवा दूर्वा, मची, सैन्धव, चक्रमर्द एवं गन्दीव्य समभागमें काष्ठीक तथा तक्के साथ पेयण करके प्रलेप देनेसे अल्पकालके मध्य ही दहुरोग अच्छा होता है।

गन्धककटण, श्वेतसर्पप तथा लुहीपत्र तीनों समभाग और समस्त द्रव्यसे दिगुण चक्रमर्दपत्र अष्टगुण

गन्धघृतमें छोके रख छोड़ना चाहिये। तीन दिन पीछे समस्तको एकत्र पेषण करते हैं। पीछे वन्योपल (विनुवाकण्डा) से ददुस्थान घर्षण करके उसका लेप लगा देना चाहिये। उक्त प्रलेपके प्रयोगसे सात दिनके मध्य ददुरोग निश्चय नष्ट हो जावेगा। (भावप्रकाश)

युरोपीय चिकित्सकोंके मतमें कुष्ठरोग सर्वाङ्गव्यापी है। उनमें कोई कोई इसको संक्रामक कहता है। किन्तु अनेक युरोपीय इसे संक्रामक न मानते भी पुरुषानुक्रमिक बताते हैं। उन्होंने श्लोषद प्रभृति रोगोंको भी कुष्ठरोगके ही अन्तर्निविष्ट किया है। श्लोषद देखो। दूसरे चिकित्सक कुष्ठरोग पर पारद व्यवहार करते हैं। किन्तु इस देशके वैद्योंके मतमें पारदका व्यवहार प्रशस्त नहीं। कोई कोई युरोपीय कुष्ठपर चावलमोगरा और गर्जनका तेल व्यवहार करता है।

अतिपूर्वकाल मिसर और भारतवर्षके लोग कुष्ठरोगको विशेष संक्रामक और पुरुषानुक्रमिक समझ कुष्ठरोगीसे अति घृणा करते थे। प्राचीन ऐतिहासिक मनेथोने लिखा है—‘रमेशके पुत्र मिसरराज मेनेफ्थाने राज्यके सकल कुष्ठरोगियोंको एकत्र करके अरबको मरुभूमिके निकट निम्नमिसर पहुँचाया और जनमानवविहीन अवरोध नगरमें रहनेको आदेश सुनाया था। पीछे उन्होंने पैलेष्टाइनवासियोंसे मिल धर्मयुद्धकी घोषणा की। उससे मिसरराज मेनेफ्थाने इथियोपियाको पराजित किया।’

भारतके वङ्गालप्रान्त और चीनराज्यमें कुष्ठरोगियोंकी संख्या अधिक है। चीनदेशमें वह रस्सी बेचनेके सिवा दूसरा कोई काम करने नहीं पाते। भारतके नाना स्थानोंमें कोढ़ी रोगमुक्त होनेके लिये नागराजकी पूजा करते हैं।

कुष्ठल (सं० श्लो०) कुत्सितं खलम् अम्बुष्ठादित्वात् खलम्। १ कुत्सितस्थान, खराब जगह। कोः पृथिव्याः खलम्। २ पृथिवीका उपरिभाग, जमीनका ऊपरी हिस्सा।

कुष्ठविद् (सं० श्लो०) कुष्ठस्य तत्स्वरूपादेः विद् विद्या कुष्ठविद् विप्। १ कुष्ठविद्या, कुष्ठके स्वरूप आदिका ज्ञान, कोढ़की पहचान। (त्रि०) २ कुष्ठरोगकी

लक्षणआदि द्वारा समझनेवाला, जो कोढ़की पहचानता हो।

कुष्ठवेरी (सं० पु०) कुष्ठस्य वेरी तन्नाशक इत्यर्थः, ६-तत्। वृक्षविशेष, चावलमोगरा। इसका संस्कृत पर्याय—शैलरोही, महागद और वैवस्वत है। भावप्रकाशके मतमें कुष्ठवेरी बलकारक और रसायन होता है। पामा, विषर्चिका, कण्ड सिन्धु, उददं, विपादिका, पामवात, वातरक्त और कुष्ठरोगपर वह उपकारक है। कुष्ठरोग में उसे दीर्घकाल व्यवहार करनेसे विशेष फल मिलता है। उसके फलका बीज और बीजका तेल ग्रहणीय है।

कुष्ठशैलेन्द्रवज्जरस (सं० पु०) कुष्ठाधिकारका रसविशेष, कोढ़की एक दवा। हरिताल, मरिच, कुष्ठ, कावलवण, टङ्गण (सीङागा), हरिद्रा, वचा, निर्गुण्डी और निम्ब तथा कारवेरके बीज वा पत्र प्रत्येक १ तोला, सर्वचूर्णसम गुग्गुलुचूर्ण, सोमराजौचूर्ण ८ तोला, पारद एवं गन्धकका मिलित चूर्ण १६ तोला और त्रिफलाशुद्ध खोइ १६ तोलाको एकत्र गोमूत्रमें मिला ६-६ माषाकी बटी बना लेना चाहिये। यह रस कुष्ठरोगोंके लिये अमृतोपम होता है। (रसरत्नाकर)

कुष्ठसूदन (सं० पु०) कुष्ठं सूदयति नाशयति, कुष्ठ-सूद णिच्-ल्यु। आरग्वध, अमिलतास।

कुष्ठहन्ता (सं० पु०) कुष्ठं हन्ति, कुष्ठ-हन्-ठप्। १ हास्तिकन्दनाम महाकन्दशाक। (त्रि०) २ कुष्ठनाशक, कोढ़ मिटानेवाला।

कुष्ठहन्त्री (सं० श्लो०) कुष्ठ-हन्तृ स्त्रियां ऋदन्तात् ङोप्। बाकुची, सोमराजौ।

कुष्ठहर (सं० पु०) कुष्ठं हरति, कुष्ठ-ह-अच्। हरतेरनुबन्धेच्। पा १।१।८। १ विट्खदिरवृक्ष। (त्रि०) २ कुष्ठनाशक, कोढ़ मिटानेवाला।

कुष्ठहरतालेखर (सं० पु०) कुष्ठाधिकारका रसविशेष, कोढ़की एक दवा। शुद्ध हरिताल १२ भाग, गन्धक १६ भाग, पारद ७ भाग और कणाभ्रभस्म ७ भाग एकत्र चूनाटकाय, सेहूण्डाऔर, चर्कऔर, करवीर-काष्ठ तथा उदुम्बरकाष्ठसे मर्दन करना चाहिये। फिर

ताम्रकोटरमें समस्त रक्तके पुटपाक विधिसे ६ प्रहर पाक करते हैं। (रसैन्द्रसारसंग्रह)

कुष्ठहा (सं० पु०) कुष्ठं हन्ति, कुष्ठ-हन्-क्षिप्। १ पटोल-वृक्ष, परवलका पौदा। २ सप्तपर्ण। ३ कुष्ठनाशक।

कुष्ठहृत् (सं० पु०) कुष्ठं हरति, कुष्ठ-हृ-क्षिप् तुगागमश्च। १ खदिरवृक्ष, खैरका पेड़। २ विट्-खदिर। (त्रि०) ३ कुष्ठनाशक, कोढ़ दूर करनेवाला।

कुष्ठाङ्ग (सं० त्रि०) कुष्ठं ञ्गे यस्य, बहुव्री०। कुष्ठ-व्याधियुक्त, कोढ़ी।

कुष्ठादिचूर्ण (सं० पु०-स्त्री०) कुष्ठाधिकारका चूर्ण-विशेष, कोढ़की एक वृक्षनी। कुष्ठ, दन्ती, यवचार, त्रिकटु, सोचरलवण, सैन्धवलवण, विट्लवण, वच, क्षण्डजोरा, यवानो, हिङ्गु, सर्जिकाचार, चविका, चित्रक और शुण्ठी सबको चूर्ण करके मिश्रित करना चाहिये। इसे कुष्ठादिचूर्ण कहते हैं। इसको जलके साथ सेवन करनेसे वातोदर नष्ट होता है। (भावप्रकाश)

कुष्ठान्नतैल (सं० स्त्री०) ऊर्ध्वस्तम्भका तैलविशेष, जाँघके जकड़नेकी एक दवा। सर्पपतैल ४ सेर और कल्काय कुष्ठ, सरस निर्यास, वाला, सरसकाष्ठ, देवदारु, नाग-केशर, वनयवानो तथा अश्वगन्धा सकल एकत्र १ सेर यथाविधान पाक करके मधुके साथ यथामात्रा पान करनेसे ऊर्ध्वस्तम्भ खुल जाता है। (भावप्रकाश)

कुष्ठान्नहर्तन (सं० स्त्री०) कुष्ठरोगका चर्द्धर्तन-विशेष, कोढ़ पर मली जानेवाली एक दवा। कुष्ठ, हरिद्रा, तुलसी, पटोल, निम्ब, अश्वगन्धा, देवदारु, शिशु, सर्पप, तुम्बूदाण्य, कैवर्त-सुस्तक और चोरपुष्पी, समभागमें तल्लके साथ पीसके तेल लगाने पीछे शरीर पर मर्दन करनेसे कुष्ठरोग मिट जाता है। (चक्रदान)

कुष्ठान्तकरस (सं० पु०) कुष्ठाधिकारका रसविशेष, कोढ़की एक दवा। शुद्धपारद एक भाग और गन्धक २ भाग, निगुण्ठी तथा वाकुचीके रसमें एक दिन मर्दन करना चाहिये। फिर इसे एक याम लवणक यन्त्रमें पाक करते हैं। अनन्तर तुष्य त्रिफला तथा वकुच फलके साथ इसको चूर्ण करके सबके बराबर भुङ्गराज-का चूर्ण डाल यह औषध सौहमाजनमें पलाश एवं खदिर-काष्ठ और गीसूतसे पाक किया जाता है।

एक दिन पीछे निष्कप्रमाण वटी बनाके प्रतिदिन सेवन करनेसे कुष्ठ और विस्फोटक नष्ट होता है। (रसरत्नाकर)

कुष्ठारि (सं० पु०) कुष्ठस्य अरिः तन्नाशक इत्यर्थः, ६-तत्। १ खदिर, खैर। २ विट्खदिर। ३ पटोल, परवल। ४ आदित्यपत्र-वृक्ष, मदार। ५ भ्रमरारिपुष्पवृक्ष, एक पेड़। यह मालव देशमें प्रसिद्ध है। ६ गन्धक। ७ कुष्ठ-नाशक, कोढ़ दूर करनेवाला।

कुष्ठारिरस (सं० पु०) कुष्ठाधिकारका रसविशेष, कोढ़की एक दवा। खेतबला, पीतबला, नागबला, ब्रह्मदण्डो, काकडुमुर, ब्राह्मणयष्टिकामूल, खेतवाट्यालक, पीत-वाट्यालक और गोरक्षचाकुल्या समभाग मधुके साथ सेवन करनेसे कुष्ठरोग दब जाता है। (रसैन्द्रसारसंग्रह)

कुष्ठिक (सं० स्त्री०) चक्षुके किण्वाधका मध्यभाग, घोड़ेके दोनों भगले पैरोंके बीचकी जगहका दर-मियानी हिस्सा।

कुष्ठिका (वे० स्त्री०) कुष्ठोव कायति, कुष्ठो-के-कः। यज्ञीय पशुके पाददेशका एक अंग। यह अंग यज्ञ क्रममें परित्यज्य है।

“याके जङ्गायाः कुष्ठिका चक्षुरा ये च ते शफाः।”

(अथर्व १०।८।२२)

कुष्ठित (सं० त्रि०) कुष्ठं जातमस्य, कुष्ठ-इतच्। जात-कृष्ट, कुष्ठरोगयुक्त स्त्रीपुरुषके शुकशोणितसे उत्पन्न, कोढ़ीसे पैदा।

कुष्ठो (सं० त्रि०) कुष्ठ मत्वर्थ इतिः। रत्नोपतापगर्भात् प्राणिस्थादिनिः। पा ५।२।१२८। कुष्ठरोगयुक्त, कोढ़ी।

कुष्णोष (सं० पु०) सरीसृपच्वर, साँप वगैरहके काट-नेसे चानेवाला बुखार।

कुष्णल (सं० स्त्री०) कुष्-कलन्। कुटिकुभिर्भा कलन्। उष ४।२८। १ पत्र, पत्ता। २ छेदन, कटाई। ३ मुकुल, कल्लो।

कुष्माण्ड (सं० पु०) कु ईषत् उष्मा पण्डेषु बीजेषु यस्य। फलक्षताविशेष, एक फलदार वेल। इसकी हिन्दीमें कुम्हड़ा, सीताफल या रामकोला, बंगलामें कुमड़ा और उड़ियामें पानीकखाह कहते हैं। (Benincasa cerifera.) कुष्माण्डका संस्कृत पर्याय—पृष्ठावास, तिमिष,

ग्राम्यकर्कटी, पुष्पफल, कुष्माण्डक, कर्काश, शिखिवर्धक, कुष्माण्डी, कर्कोटिका, वृहत्फल, सुफला, नागपुष्प-फल, कुक्षफल और शुनी है। भावप्रकाशके मतानुसार कुष्माण्डफल बाल, मध्यम और उत्तम भेदसे तीन प्रकारका होता है। बाल कुष्माण्ड वातघ्न तथा रोचक, मध्यम कुष्माण्ड त्रिदोषघ्न और उत्तम नातिहिम, स्नादु, सञ्चार, दीपन, कृघु, वस्तिशोधक और चेतोरोगनाशक है। इसकी सता और शाक मधुर, चाररस, गुह, रुच, रुचिकर और वात, कफ, अश्लील तथा शर्कराहारी होता है। कुष्माण्डकी मज्जा शुक्ल, पित्तघ्न और वस्तिशोधन है। कुम्हड़ा देखो।

कुष्माण्डक (सं० पु०) १ कुष्माण्ड, कुम्हड़ा। २ नाग-विशेष। (महाभारत, १।२५।११) ३ शिवके कोई पारिषद। कुष्माण्डकघृत (सं० स्त्री०) अपस्माराधिकारका घृत-विशेष, मिरगीका घी। घृत ४ शरावक, यष्टिम-धुका कल्क १ शरावक और कुष्माण्डरस ३२ शरावक एकत्र पाक करनेसे यह घृत प्रसृत होता है। (चक्रदत्त) कुष्माण्डकरसायन (सं० स्त्री०) औषधविशेष, एक दवा। उत्तम रूपसे १०० पल शुष्क कुष्माण्ड निष्कासित करना चाहिये। पीछे किसी ताम्रपात्रमें एक प्रस्थ परिमाण घृत डाल भाग पर चढ़ाते हैं। घृत उत्तम होने पर उसमें कुष्माण्ड निक्षेप करना चाहिये। कुष्माण्डके मधु-जैसा हो जाने पर उसमें सुरानामक गन्ध-द्रव्य डाला जाता है। फिर २ पल परिमित पिप्पली, चाद्रक तथा जीरकचूर्ण और अर्धपल परिमित दास-चीनी, इलायची, मरिच एवं धान्यकचूर्ण छोड़ देते हैं। अनन्तर हथेसे उसे भली भाँति घाँटना चाहिये। पक होनेपर घृतसे आधा मधु डालके पात्रमें इसे स्थापन करते हैं। इसका नाम कुष्माण्ड-रसायन है। अग्नि-मान्य न होनेसे इसको सेवन करने पर रक्तपित्त, ज्वर, शय, कास, श्वास और मूर्च्छा प्रवृत्ति रोग आरोग्य होते हैं। (चक्रदत्त)

कुष्माण्डकशिका (सं० स्त्री०) कुष्माण्डमूल, कुम्हड़ेकी जड़।

कुष्माण्डखण्ड (सं० स्त्री०) रक्तपित्ताधिकारका घृत-विशेष, एक घी। शुष्क कुष्माण्ड ५० पल, घृत १ प्रस्थ

और भाद्रक परिमित खण्ड तथा वासकका क्षाय एकत्र पाक करना चाहिये। साध हो उसमें एक कर्ष-परिमित सुस्ता, चामलकी, वंशलोचन, ब्राह्मणघटिका, इलायची, दासचीनी तथा तेजपत्र और एक पल परि-मित एलवालुक, शुण्ठी एवं धान्यक छोड़ देते हैं। फिर पाक हो जानेपर आध सेर पिप्पली और १ सेर मधु भी डालना चाहिये। इसका नाम कुष्माण्डखण्ड है। यह कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, रक्तपित्त, ज्वररोग और अक्षपित्त रोगमें सेवनीय है। (चक्रदत्त)

कुष्माण्डगुडकषाय (सं० स्त्री०) ग्रहणो अधिकारका औषधविशेष, दस्तकी एक दवा। वस्तरातीत और बुका-वीज तथा वस्त्रलरहित कुष्माण्डकी स्लोकजल (पानीके छीटे)-से पीस और निचोड़के नीरस बनाते और धूपमें सुखाते हैं। फिर उक्त कुष्माण्ड १०० पल, घृत ३२ पल और तिलतेल ८ पल एकत्र भूना जाता है। अनन्तर पुरातन गुड़ २५ पल, और १०० पल चामलकी-रससे सनी हुई शर्करा भर्जितकुष्माण्डके साथ तब तक पाक करना चाहिये, जब तक पाक दूर्वीक्षित न हो। पाकशेषमें यमानी, जीरक, पिप्पली, पिप्पलीमूल, चित्रकमूल, गजपिप्पली, धान्यक, विडङ्ग, मरिच, त्रिफला, वनयवानी, इन्द्रयव तथा सेन्धव प्रत्येकका चूर्ण ८ तोला और त्रिवृन्मूल चूर्ण ८ पल डालनेसे यह औषध प्रसृत होता है। (चक्रदत्त)

कुष्माण्डग्रह (सं० पु०) एक भूतग्रह। बहुप्रकाप, क्षणास्य और प्रसम्बुधवच कुष्माण्डग्रहका सञ्चल है। (वाग्भट)

कुष्माण्डतैल (सं० स्त्री०) कुष्माण्डबीजतेल, कुम्हड़ेके बीजोंका तेल। यह वातपित्तघ्न, श्लेष्मल, शुह और शीतल होता है। (वाग्भट)

कुष्माण्डनाडिका (सं० स्त्री०) कुष्माण्डका नाड, कुम्हड़े-का छण्डल। यह शुह और शर्करा तथा अश्लीलनाशक होती है। (राजवल्लभ)

कुष्माण्डनाडी, कुष्माण्डनाडिका देखो।

कुष्माण्डवटक (सं० पु०) कुष्माण्डकत वटक, कुम्हड़ोरी, कुम्हड़ेकी बड़ी। कुष्माण्डकी पेषण करके उसका जल भली भाँति निकाल डालना चाहिये। फिर उसमें

कुम्भक (हरीधनिया), हरिद्रा तथा माषपूषं, तिल एवं सेन्धव डाकके वटी बनाते और धूपमें सुखाते हैं। तिलके तैलमें उक्त वटी भली भाँति पाक करनेसे सचिकर और वातहर होती है। (वैद्यकनिघण्टु)

कुष्माण्डवटी (सं० स्त्री०) कुष्माण्डवटक देखो।

कुष्माण्डशालि (सं० पु०-स्त्री०) शालिवाग्यविशेष, किसी किन्नका धान। यह मधुर, गुह, सुगन्ध, पीत, दुर्जर, स्थूलतण्डुल और कोमल होता है। (राजनिघण्टु)

कुष्माण्डसुरा (सं० स्त्री०) कुष्माण्डकृत सुराविशेष, कुम्हड़ेकी शराब। यह गुह, धातुवर्धक, अग्निमान्यकर, वृष्य और दृष्टिप्रद है। (वैद्यकनिघण्टु)

कुष्माण्डिका (सं० स्त्री०) कुष्माण्डक स्त्रियां टाप।

अकारखे काख । पा ७।१४३। कुष्माण्डी, विलायती कुम्हड़ा।

कुष्माण्डी (सं० स्त्री०) कुष्माण्ड स्त्रियां जातित्वात् ङीष्।

१ कुष्माण्डलता, कुम्हड़ा, सीताफल। यह अति लघु, याही, शीतल और रक्तपित्तशान्तिकारक है। पकने पर कुम्हड़ा तिल, अग्निजनक, चारविशिष्ट और कफ-वातनाशक हो जाता है। पीतकुष्माण्ड (विलायती कुम्हड़ा) गुह, पित्तवृद्धिकारक, अग्निमान्यकर, श्लेष्मण और वायुप्रकोपक है। २ कुष्माण्डभेद, किसी किन्नका कुम्हड़ा। ३ कर्कोटिका। ४ योगक्रियाविशेष। ५ यजुर्वेदके बीसवें अध्यायका अग्नि, वायु तथा सूर्यसम्बन्धीय १४ वां, १५ वां और १६ वां अनुष्टुभ श्लोक।

“अग्निवायुसूर्यदेवत्यासिकोऽनुष्टुभः कुष्माण्डी वंशः।”

(वेददीप, महीधर, २०।१४)

६ प्रायश्चित्तविशेष। ७ दुर्गाका नामान्तर।

(हरिवंश, १७।८)

कुष्माण्डोष्माद (सं० पु०) भूतोष्मादभेद, एक तरहका पागलपन। यह कुष्माण्डग्रहजात होता है। (शाकंभर)

कुसंस्कार (सं० पु०) कुक्षित संस्कार, बुरा जमाव।

कुसगुन (हिं० पु०) कुलक्षण, बुरे आसार।

कुसङ्ग (सं० पु०) कुक्षितो सङ्गः। कुक्षित सङ्ग, बुरी सोहबत, खराब साथ। “असि कुसङ्गं भावत कुसलम्।” (कलकी)

कुसङ्गति (सं० स्त्री०) कुक्षित सङ्गति, बुरी सोहबत।

कुसचिव (सं० पु०) कुक्षितः सचिवो मन्त्री, कुगतिसं०।

अनुपपुङ्गव अथवा कुम्भकवादाता मन्त्री, नाकिस वजीर।

कुसमय (सं० पु०) कुक्षित समय, बुरा जमाना, खराब वक्त।

कुसर (हिं० पु०) एक जलजात लताका मूल, पानी-बिल या मूसलकी जड़। कुसर औषधमें व्यवहृत होता है।

कुसरित् (सं० स्त्री०) कुक्षिता सरित्। अगभीर नदी, खराब दरया। अल्पजलविशिष्ट वा जलशून्य नदीकी कुसरित् कहते हैं।

“अथ न तु विहीनस्य पुच्छस्यास्यमेषः।

उच्छिद्यते क्रियाः सर्वा योष्मे कुसरितो यथा॥” (पञ्चतन्त्र, १।१८९)

कुसल (सं० स्त्री०) कुस्-कलच्। १ कुशल, खैर आफियत। २ कुशल-युक्त, अच्छा, मजेमें।

कुसलई (हिं० स्त्री०) १ नैपुण्य, होशियारी। खेम, मङ्गल, खैर आफियत।

कुसलक्षेम (हिं० स्त्री०) कुशलक्षेम, खैर आफियत।

कुसली (हिं० स्त्री०) १ धामकी गुठली। २ पिराक गोभा। वह एक पकवान है। पहले गेहूँके आटेकी छोटी छोटी गोल पूरी बेलते हैं। फिर उसके बीचमें कोई मोठा चूरा रखके चारो ओरसे लपेट दिया जाता है। इसे घी या तैलमें अच्छी तरह भूनेसे कुसली बन जाती है। कुसलीमें प्रायः गुड़ ही भरा जाता है। जिस कुसलीमें बरफीका चूरा या चीनी मावा भरते, उसे गोभा या गोभिमा कहते हैं। चीनी और चावलके आटेकी भरी कुसली पिराक कहालाती है।

कुसवा (हिं० पु०) जड़हनमें लगनेवाला एक रोग। इसके कारण जड़हनके पत्र पीतवर्ण पड़ जाते हैं।

कुसवारी (हिं० पु०) १ कोशकार, किरिमपिन्ना, रेशमका जङ्गली कीड़ा। वह खेर और पिथासाल वगैरहके पेड़ों पर कोया बनाके रहता है। इसकी चार अवस्था हैं। सर्व-प्रथम कुसवारी डिम्ब रूपमें अवस्थान करता है। डिम्बसे निर्गत होने पर वह कमला कीटकी भाँति देख पड़ता है। अनन्तर पञ्चावरण खाता और कुसवारी धागा बनाता है। अन्तमें वह कोयेसे वहिर्गत हो पतङ्गकी भाँति उड़ता, मैथुन करभा और मरता है।

२ रेशमका कोया। ३ रेशम।

कुसहाय (सं० पु०) कुक्षितः सहायः, कुक्षितसं०।

कुक्षित सक्की, बुरा साथी।

कुसाइत (हिं० स्त्री०) कुमुहृतं, बुरा वक्ता।

कुसाखी (हिं० पु०) १ कुक्षित वृक्ष, खराब पेड़।

२ कुक्षित साधो, बुरा गवाह।

कुसाटी—दाल्जिणात्यकी एक जाति। इनका दूसरा भेद उंवारी है। यह लोग नटों की तरह कलावाजी करके अपनी जीविका चलाते हैं।

कुसारथि (सं० पु०) कुक्षितः सारथिः। मन्दसारथि, खराब गाड़ीवान्, बुरा कोचवान्।

कुसारी, कुसवारी देखो।

कुसित (सं० पु०) कुस् खेषणे इतः। कुसितभोमेदताः। उष्ण ४। १०६। १ जनपद वसती। २ देशविशेष, कोई मुल्क। ३ कुसीदिक, सूदखोर, व्याज पर रुपया उधार देनेवाला।

कुसितायी (सं० स्त्री०) कुसितस्य स्त्री, कुसित-डीप् ऐकारादेशश्च। वषाकप्यप्रिकुसितकुसीदानामुदात्तः। पा ४। १। ३०। कुसीदव्यवसायीकी पत्नी, सूदखोरकी बीवी, व्याज खानेवालीकी जोड़ी।

कुसिदायी, कुसितायी देखो।

कुसिन्ध (वै० स्त्री०) कवन्ध, मस्तकहीन देह, सरकटा जिस्म। “यामागो कुसिन्धं सुहृदं बभूव।” (अथर्व, १०। २। ३। ५)

कुसिम्बा (सं० स्त्री०) कुक्षिता सिम्बा त्वक् यस्याः। कुसिम्बी, सेम।

कुसिम्बा (सं० स्त्री०) की पृथिव्यां सिम्बीति ख्याता। रक्तसिम्बीलता, लाल सेमकी बेल।

कुसिया, कुसी देखो।

कुसियार (हिं० पु०) इक्षुभेद, थून, एक प्रकारकी ईख। वृद्ध स्थूल, श्वेतवर्ण और मृदु होता है। कुसियारमें रस अधिक रहता है। वह अधिकतर चूसने लिये लगाया जाता है। उससे गुड़ नहीं बनता।

कुसी (हिं० स्त्री०) कुशो, जलका फार।

कुसीद (वै० त्रि०) उदासीन, अलस, काहिल, एक ही जगह बहुत देर तक बैठनेवाला।

“कसीरं यद्यश्नत् कुसीदं।” (ऐतरीयब्रह्म ७। १। ११। १)

कुसीद (सं० स्त्री०) कुस-ईदः। वृथार्थ धनप्रयोग, सूदखोरी, व्याजके लिये रुपया उधार देनेका काम। इसका संस्कृत पर्याय—अर्थप्रयोग और वृद्धिजीविका है। पुराणादिमें कुसीद व्यवसायको यथेष्ट प्रशंसा देख पड़ती है। गरुडपुराणके १२५ वें अध्यायमें इसको विस्तर प्रशंसा वर्णित हुई है—ब्राह्मणोंको कुसीद, वाणिज्य और कृषिकार्य स्वयं करना न चाहिये। यदि नितान्त विपत्तिकाल आ पहुंचता, तो स्वयं उसके करनेमें भी कोई पाप नहीं पड़ता। ऋषिर्गाने जीवनके बहुततर उपाय निर्णय किये हैं। उनमें कुसीद ही उत्कृष्ट ठहरता है। अनावृष्टि, राजभय और सुषिकादि द्वारा कृष्यादि कार्यमें विघ्न उपस्थित हो सकता है। कुसीदमें ऐसा विघ्न होनेको कोई सम्भावना नहीं। देशविशेषके वाणिज्यमें क्वास वृद्धि लगी रहती है। किन्तु कुसीद सभी देशोंमें ममान है। कुसीदमें जो लाभ हो, उससे पिछलोक, देवता और ब्राह्मणको पूजा करना चाहिये। वह सन्तुष्ट हो कर कुसीदका दोष दूर करते हैं। इस व्यवसायके प्रायका चतुर्थ भाग सन्ध्य और अर्ध भाग द्वारा नित्य नेमित्तिक कार्य तथा आत्मभरण करना चाहिये। अपर चतुर्थ भाग मिश्रकोंको दान कर देते हैं। विद्या, शिल्पकर्म, वेतन, सेवा, गोपालन, दूकानदारी, कृषिकर्म, व्यवसाय, भिक्षा और कुसीदके मध्य मनुष्य किसी उपायसे जीविका-निर्वाह कर सकता है। (नाटक, २१५ अध्याय)

मनु कहते हैं—शतकार्षापण कपटिका मूलधन रहने पर उसके पत्नी भागोंमें एक भाग अथवा दो पण मासिक व्याज ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार व्यवहार करनेसे ब्राह्मणको भी प्रायश्चित्त करना नहीं पड़ता। फिर आपदकाल अधिक भोग लिया जा सकता है। आपदकाल उपस्थित न होनेसे जो ब्राह्मण यह नियम सज्जन करता, उसे प्रायश्चित्त करना पड़ना है।

गोतम, लहस्यति सबने अल्प विस्तर कुसीद व्यवसायकी अनिन्दनीयता दिखायी है। उनके मतमें कुसीद व्यवसायसे लब्धधनका षष्ठांश राजाको, किञ्चित् देवताको और किञ्चित् ब्राह्मणको दान कर देनेसे फिर कोई दोष नहीं रहता। ब्राह्मण भी कुसीद व्यवसाय

कर सकता है। किन्तु सुसलमान लोगोंमें कुसीद व्यवसाय प्रत्यन्त विगड़ित कार्य समझा जाता है। धर्मप्रिय सच्चे सुसलमान उसीसे विना व्याजके कर्ज दिया करते हैं।

२ वृद्धि के साथ पुनःप्राप्तिके लिये उधार दिया जानेवाला रुपया अथवा वस्तु, जो रुपया या अनाज वगैरह सूदके साथ फिर मिलनेके लिये कर्ज दिया जाता हो।

(पु०) ३ वृद्धिजीवी, सूदखोर, व्याजके लिये कर्ज देनेवाला।

कुसीदपथ (सं० पु०) कुसीदानां कुसीदजीविनां पन्थाः, इ-तत्। शास्त्रनियमके अतिरिक्त वृद्धिग्रहण, मुनासिबसे ज्यादा सूदखोरी, पांच रुपये सैकड़से ज्यादा सूद लेना। “कृतानुसारादधिका अतिरिक्तं न शिष्यति।

कुसीदपथमाहुस्तं पञ्चकं शतमर्दनि ॥” (मनु ८। २५२)

कुसीदवृद्धि (सं० स्त्री०) कुसीदरूपा वृद्धिः, मध्यपदलो०। कुसीद व्यवसायमें धनकी वृद्धि, सूदसे दौलतकी बढ़ती। कुसीदायी (सं० स्त्री०) कुसीदस्य कुसीदजीविनः पत्नी, कुसीद-ऐडच। “वृषाकप्यप्रिमगुपूतक्रतुकुसित-कुसीदादेडच ।” (बोप, स्त्री २५) कुसीद व्यवसायीकी पत्नी, सूदखोरकी बीबी, व्याज खानेवालीकी जोड़ी।

कुसीदिक (सं० पु०) कुसीदद्रव्यं प्रयच्छति, कुसीद छन्। कुसीददेशेकादशात् छन्। पा ४।४।२१। कुसीदजीवी, सूदखोर, महाजन।

कुसीदी (सं० त्रि०) कुसीदं ऋणदानव्यवसायोऽस्त्यस्य, कुसीद-इनि। १ कुसीदजीवी, सूद पर कर्ज देनेवाला। इसका संस्कृत पर्याय—वाह्वृषिक, वृषाजीव, वाह्वृषि, कुसीद और कुसीदिक है। (पु०) २ कखवंशीय कोई ऋषि। उन्होंने ऋग्वेदके अनेक मन्त्र प्रकाश किये हैं।

कुसुम (सं० पु०-स्त्री०) कुस्-उमः। १ पुष्प, शिगूका, फूल। “गुच्छाविचविच कुसुमकौक्षि ।” (तुलसी)

वृहत्संहिताके २८ वें अध्यायमें लिखा है कि कोई कोई पुष्प अधिक आनेसे कोई कोई शस्य भी अधिक परिमाणमें उत्पन्न होता है। जैसे—शालपुष्प अधिक परिमाणसे उत्पन्न होने पर कलमशालि, रक्ताशोक अधिक आनेसे रक्तशालि और नीलाशोकसे मसूरकी उपज बढ़ती है।

२ स्त्रीरजः, ईज।

“यदा नारदाः पितुर्गच्छे कुसुमस्तनसम्भवः ।” (ज्योतिष)

३ फल, मेवा। ४ नेचरोगविशेष, आंखकी कोई बीमारी। ५ देवेश्वरप्रणोत कविकल्पनताका अपेक्षाकृत एक लुट्ट खण्ड। उसके अवशिष्ट लुट्ट खंडका नाम स्तवक है। ६ स्वाहाकार विषयमें पञ्चप्रकार वृद्धिके मध्य एक वृद्धि।

“ने जातिवेदसः सर्वे कथावः कुसुमस्तथा ।

दहनः शोषणश्चैव तपनश्च महाबलः ॥

स्वाहाकारस्य विषये प्रख्याताः पञ्चवक्त्रयः ।” (हरिवंश, १८० अ०)

७ वर्तमान अवसर्पिणीके षष्ठ अर्द्धतके कोई पार्षद। ८ छन्दोविशेष।

कुसुम (हिं०) कुसुम् देखो।

कुसुमकार्मुक (सं० पु०) कुसुमं कार्मुकमस्य, बहुव्री०। कन्दर्प, कामदेव।

कुसुमकेतु (सं० पु०) एक किन्नर।

कुसुमचाप (सं० पु०) कुसुमं चापमस्य। कन्दर्प, काम।

“कुसुमचापमतेजयदंशभिः ।” (माघ)

कुसुमदेव (सं० पु०) एक ग्रन्थकर्ता। उन्होंने दृष्टान्त-शतक रचना किया है।

कुसुमधन्वा (सं० पु०) कुसुमं धन्व धनुरस्य। कन्दर्प, कामदेव।

कुसुमनग (सं० पु०) कुसुमबहुलो नगः, मध्यपदलो०। एक पर्वत।

कुसुमपञ्चक (सं० स्त्री०) कुसुमानां पञ्चकम्, इ-तत्। अरविन्द प्रभृति कन्दर्पके पांच वाण वा पुष्प।

“न कुसुमपञ्चकमप्यलं विमोदम् ।” (माघ)

कुसुमपुर (सं० स्त्री०) कुसुमाख्यं पुरम्, मध्यपदलो०। पाटलिपुत्र, पटना। पाटलिपुत्र और पटना देखो।

“सखे ! विराधगुप्त ! वर्षायेदानीं कुसुमपुरवृत्तान्तमेषम्” (सुद्राशासत्र)

कुसुमफल (सं० स्त्री०) जातोफल, जायफल।

कुसुममध्य (सं० स्त्री०) कुसुमं पुष्पं मध्ये अभ्यन्तरे यस्य। मध्यफल, चालता। चालताका फूल पड़से मोल होके खिला रहता है। पीछे चारो ओरसे सिमटके बही फलका रूप धारण करता है। फूल बोधमें ही

रह जाता है। इसीसे चालताका नाम कुसुमसेध्य पड़ा है। चालता देखी।

कुसुममय (सं० त्रि०) कुसुमात्मकं कुसुमप्रचुरं वा, कुसुम-मयट्। १ पुष्पमय, फूलोंका बना हुआ। २ पुष्पप्रचुर, फूलोंसे भरा हुआ।

कुसुमरेण (सं० पु०) कुसुमका रेण, पराग, फूलकी धूल।

कुसुमवती (सं० स्त्री०) कुसुममातृवं सञ्जातमस्त्राः, कुसुम-मतृप् स्त्रियां ङीप् मस्य वः। १ ऋतुमती स्त्री, राजःस्त्रला, जो भीरत कपड़ोंसे ढो। २ पाटलिपुत्र नगर। ३ पुष्पवतीलता, फूली हुई बेल।

कुसुमवाण (सं० पु०) कुसुमानि पुष्पानि वाणा यस्य, बहुव्री०। १ कन्दर्प, कामदेव। कुसुमस्य वाणः, इ-तत्। २ कन्दर्पके पक्ष पुष्पवाण।

परविन्द, पशोक, चूत, नवमल्लिका और नीलोत्पल—कामदेवके पांच पुष्पवाण हैं।

कुसुमविचित्रा (सं० स्त्री०) कुसुममिव विचित्रा उपमि०। एक छन्द। प्रथम चार ऋत्न एवं दो दीर्घ और फिर चार ऋत्न तथा दो दीर्घ हादश अक्षरोंसे कुसुमविचित्रा बनती है।

‘नय-सहितो नौ-कुसुमविचित्रा।’

“विपिनविहारे कुसुमविचित्रा कुतस्त्रिगोषो मञ्जितचरित्रा।

सुरिप्रसूतिसुखरितवंशा चिरमवतावसरल-वतंसा ॥” (कन्दोमंजरी)

कुसुमशयन (सं० स्त्री०) कुसुमनिर्मितं शयनं शय्या, मध्यपदलो०। पुष्पनिर्मित शय्या, फूलोंका बिछोना।

कुसुमशर (सं० पु०) कुसुमानि शरो यस्य, बहुव्री०। १ कन्दर्प, कामदेव। कुसुमनिर्मितः शरः। २ कन्दर्पका पुष्पवाण।

कुसुमसार (सं० पु०) मधु, शहद, फूलोंका निचोड़।

कुसुमस्तवक (सं० पु०) कुसुमानां स्तवको गुच्छः, इ-तत्। १ पुष्पगुच्छा, फूलोंका गुच्छा या तुरी। २ दण्डकजातीय कोई छन्द। प्रथम २ ऋत्न और फिर एक दीर्घ, इसी प्रकार २० अक्षरोंसे यह छन्द बनता है। इसमें चार चरण लगते हैं।

‘सवचः सवचः खड्ग यम मधिलमिह प्रवदन्ति वृषाः कुसुमस्तवकम्।’

“विराजन् वरीयकरः जनकपुतिवन्धुरवानहमः छत्रकुलध्वजः

भ्रमरप्रकरणे यथावत्समृतिरशोबलताविलसत्कुसुमस्तवकः।

स नवीनतमानदलप्रतिमच्छवि विध्वस्तौव विलोचनहारिचपुः

चपलावचिरांयुक्त्वज्जिह्वरो हरिरस्तु मदीयहृदम्भुजमध्यगतः ॥”

(कन्दोमंजरी १५ लवक)

कुसुमा (सं० स्त्री०) कुसुम-स्त्रियां टाप्। १ मात्नीपुष्प-वृक्ष। २ रत्नपाटला, लाल पांडुरी। ३ जातीफलवृक्ष, जायफरका पेड़। ४ गङ्गपुष्पी, सखौली।

कुसुमाकर (सं० पु०) कुसुमानां आकरः खनिः, इ-तत्। १ उद्यान, कुच्छ, बाग, फूलोंसे भरी जगह। २ वसन्त-काल, बहार, बहुतसे फूलोंसे खिलनेका वक्त।

“मासानां मार्गशीर्षोऽस्मिन् ऋतूनां कुसुमाकरः।” (नीता, १० प०)

कुसुमागम (सं० पु०) कुसुमानामागमो यत्र। वसन्त-काल, मौसम-बहार।

कुसुमाञ्जन (सं० स्त्री०) कुसुमाकारमञ्जनम्, शाक-पार्थिवत् समा०। पुष्पाकार रीतिमल-सम्भव अञ्जन, पीतलकी कान्तिष्मसे बना हुआ फूल जैसा अञ्जन।

कुसुमाञ्जलि (सं० पु०) कुसुमपूर्णोऽञ्जलिः, मध्य-पदलो०। पुष्पाञ्जलि, पुष्पपूर्ण अञ्जलि।

कुसुमात्मक (सं० स्त्री०) कुसुममिव आत्मास्वरूपं यस्य कुसुम-आत्मन्-कप्। १ कुङ्कुम, जाफरान, केसर। (पु०) २ केश, बाल।

कुसुमाधिप (सं० पु०) कुसुमेषु कुसुमप्रधान-वृक्षेषु अधिपः श्रेष्ठः। चम्पकवृक्ष, चम्पाका पेड़।

कुसुमाधिराट् (सं० पु०) कुसुमेषु कुसुमप्रधानवृक्षेषु अधिराजते कुसुम-अधि-राज-क्षिप्। महानागकेशर चम्पकवृक्ष, नागेश्वर चम्पा।

कुसुमायुध (सं० पु०) कुसुमानि प्रायुधान्यस्त्र, बहुव्री०। कन्दर्प, कामदेव। “कुसुमायुधपति ! दुर्धर्भलव भर्ता न चिरादभवि-ष्यति।” (कुमार ४४०)

कुसुमाल (सं० पु०) कुसुमानि कुसुमवत् कोभनीयानि द्रव्याणि आलाति अगोचरेण गृह्णाति कुसुम-आ-ला-कः। चौर, चोर।

कुसुमावचय (सं० पु०) कुसुमानामवचयश्चयनम्, इ-तत्। पुष्प-चयन, फूलोंको तोड़ना।

कुसुमावली (सं० स्त्री०) १ कुसुमवेषो, फूलोंको लपट २ छन्दोजत सिद्धयोगटीका, एक वैद्यक ग्रन्थ।

कुसुमासव (सं० पु०-क्री०) कुसुमरसानामासवः, इतत् । मधु, शङ्खद ।

कुसुमास्त्र (सं० पु०) कुसुमानि अस्त्राण्यस्त्र, बहुव्री० । १ कन्दर्प, कामदेव । (क्री०) २ कामशर, कामदेवका वाण ।

कुसुमित (सं० त्रि०) कुसुमं सञ्जातमस्य कुसुम-इतच् । पुष्पित, शिगुफता, खिला हुआ जो फूला हो ।

“गृहीयान् कुसुमितैरस्यं बह्वनरदुःखे ।

अत्रविहङ्गमिष्यन् गायन्मत्तमधुव्रतः ॥” (भागवत, १।२८।१८)

कुसुमितलतावेक्षिता (सं० स्त्री०) एक छन्द । प्रथम ५ दीर्घ एवं ५ ऋत्व, फिर २ दीर्घ तथा १ ऋत्व और फिरसे २ दीर्घ १ ऋत्व और २ दीर्घ—इस प्रकारके १८ अक्षरोंसे कुसुमितलतावेक्षिता बनेगी । उसमें ४ चरण रहते हैं—

“स्याद् भूतलं यैः कुसुमितवेक्षितामती नयी यी ।” (कन्दोमंजरी)

कुसुमितलतावेक्षिताको ‘कुसुमितलता’ भी कहते हैं, कुसुमेष्णु (सं० पु०) कुसुमानि इषवोऽस्य, बहुव्री० । कन्दर्प, कामदेव ।

“नाकल्यो यदि कुसुमेष्णुषा न युन्वः ।” (माघ ४।७०)

कुसुमोदर (सं० क्री०) भव्यफल, चालता ।

कुसुमोद्यान (सं० क्री०) कुसुमाय निर्मितसुद्यानम्, मध्यपदलो० । पुष्पोद्यान, गुलिस्तान्, फूलवाड़ी ।

कुसुम्ब, कुसुम्भ देखो ।

कुसुम्बया (हिं० स्त्री०) कुसुम्भ देखो ।

कुसुम्भ (सं० पु०) कुसु-उभः । १ पुष्पविशेष, कोई फल । चलती हिन्दीमें उसे कुसुम कहते हैं । कुसुम्भका संस्कृत पर्याय—लट्वा, महारजन, कमलोत्तर, कमलोत्तम, ग्राम्यकुङ्कुम, वज्रिशिख, कुक्कुटशिख, पावक, पीत, पद्मोत्तर, रत्न, लोहित, वस्त्ररञ्जन और अग्निशिख है । वह हिन्दीमें कुसुम, तामिलमें सेन्दुर-कम्, बंगलामें कुसुमफूल, तेलङ्गीमें कुसुम्बचेद, अरबोंमें उसफर, ब्राह्मीमें इसु, मिसरीमें कोतम और इराजोंमें सैफ फावर कहलाता है । (Carthamus Tinctorius)

भारत, चीन और ब्रह्मदेशमें कुसुम्भ बिस्तार उत्पन्न होता है । अधिकांश स्थलमें प्रथम उसका बीज वपन

किया जाता है । फिर छोटे छोटे पौदोंको खोद एक हाथके अन्तर रोपण करते हैं । जमीन् अच्छी रहनेसे पौदा शीघ्र बढ़ता और सुन्दर सुन्दर फूल लगता है । छोटे छोटे फूलोंको तोड़ कर छायामें अति सावधानीसे सुखाते हैं । उन्हीं सूखे फूलोंसे कुसुम्भो रंग निकलता है । देश विदेशमें रंगके लिये ही कुसुम्भका आदर है । उससे जो पीतरस निर्गत होता, वह रंगके लिये उत्कृष्ट नहीं । क्योंकि वह जलमें डालनेसे गल जाता है । उसमें कपड़ा वगैरह रंगनेसे धीरे समय रंग नष्ट होने लगता है । कुसुमके फूलसे जो रंग निकलता, वही उत्कृष्ट ठहरता है । परन्तु वह लाल रंग सहजमें नहीं निकलता । पीत अंश निर्गत होने पोछे सूखे फूल जलीय लवणद्रावकमें गला कर प्रस्तुत करने पड़ते हैं । केवल जल वा सुरासारमें कुसुम्भ नहीं गलता । उसके लवणांशको जमा कर दानेदार बना सकते हैं । एवं उसमें कोई वर्ण नहीं रहता । उसके साथ अन्नयोग करनेसे कुसुमान्नाचार प्रस्तुत होता है । इसे अधिक परिमाणसे बनानेको पीतरस निकाल कर सोडाके पानीमें नीचूका रस डाल सूखे फूल भिगोंने पड़ते हैं । कुछ क्षण पोछे फूलोंसे कुसुमान्नाचार स्वतन्त्र हो पात्र-के तल पर जम जाता है । शेषको धीरे धीरे जल और अन्य पदार्थ निकाल उसे ईषत् अग्निके उत्तापसे सुखा लेते हैं । सूती और रेशमी कपड़े पर उसका रंग बहुत अच्छा आता है । मनुष्यके गात्रवर्णसे मिलाके रेशम पर रंग चढ़ानेको एक पाव कुसुम फूलको टिकिया और एक छटांक सोडा सात सेर पानीमें गलाते हैं । उसके पोछे डेढ़ सेर खड़िया महीकी छनी बुकनी उसमें डालनी पड़ती है । फिर नीचूका रस या टार्टरिक एसिड मिलाएँसे जो रंग नीचे बैठ रहता, वही सबसे अच्छा निकलता है । मिश्रित कुसुमान्नाचारसे ईषत् पीताभ लाल रंग भी प्राप्त होता है । चीनावोंके तैयार किये हुये सोडा-मिश्रित कुसुमान्नाचारसे एक दूसरे प्रकारका रंग निकलता है । उसको देखने या रंगनेसे कोई रंग मालूम नहीं पड़ता । किन्तु उसमें गात्रका पानीना रंगनेसे लवणांश नष्ट होने पर अति सुन्दर नयनहसिभर गुलाबी रंग भलकने लगता है ।

कुसुमपुष्पके बीजसे यथेष्ट तेल उत्पन्न होता है। उसे पचाधात रोगमें मर्दन करनेसे उपकार पहुँचता है। सड़े घाव पर भी कुसुमका तेल लगानेसे लाभ है। कुसुमपुष्पकी ही एक स्त्रीकी चीना 'कङ्कड़ा' कहते हैं। इसका रंग उन्हें बहुत प्यारा है। क्रोप, साटिन इत्यादि पर रंग चढ़ानेकी यही व्यवहृत होता है। निङ्गो प्रदेशके चिकियाङ्ग नामक स्थानमें कुसुमके फूलकी बसग खेती है। भारतवर्षमें अवधका कुसुम सबसे अच्छा होता है।

कुसुमके फूलका रंग सात प्रकार होता है। उसमें पियाजी-गुलाबी, सजला गुलाबी और गहरा लाल खालिस है। उसमें सेंडुके फूल मिलानेसे सुनहला और नारंगी रंग आ जाता है। फिर कुसुमके फूलोंमें हलदी डालनेसे सुन्दर पीताभ गहरा लाल और नील मिलानेसे नाना प्रकारका वैजनी रंग तैयार होता है। यह सब मिली रंग देखनेमें अति सुन्दर और मनोरम लगते हैं। परन्तु धुलाई पड़नेसे इनमें कोई नहीं ठहरता।

कुसुमका काष्ठ कठिन और दृढ़ होता है। उसे कोरहूकी जाट और गाड़ी बनानेमें लगाते हैं। उसकी लकड़ बहुत अच्छी रहती और जूँचे दाम पर बिकती है। कुसुमके पत्र ८। १० अङ्गुलि दीर्घ रहते और सीकमें जोड़े जोड़े आमने सामने लगते हैं। फूल चम्पेके फूल जैसा रंगदार होता है। कुसुममें २ अङ्गुलि दीर्घ, तीक्ष्ण और चिकण फल आते हैं। बहुत होने पर कुसुमकी पत्ती औषधतुमें औषधियोंकी भी खिलायी जाती है।

वह तीन प्रकारका होता है—महाकुसुम, क्लृप्त-कुसुम और वनकुसुम। कुसुम वातल, रज्ज, विदाही, कटु और मूत्रकृच्छ्र, कफ एवं रक्तपित्त विनाशक है। उसका पुष्प सुखादु, भेदक, रज्ज, उष्ण, पित्तल, केश-रंजनकारक, कषु और कफ तथा त्रिदोषघ्न होता है। (चिकित्सक) कुसुमका शाक मधुर, रज्ज, कटु, उष्ण, मलमूत्रदोषनाशक, दृष्टिप्रसादक, रुचिकारक, अग्निवर्धक, क्षमिन्न, पित्तजनक, वायुवृद्धिकारक, रक्तपित्तनाशक और श्लेष्माशान्तिकारक है। उसका

तेल कटु, उष्ण, त्रिदोषकारक, गुह, खादु, विदाहक, मलनाशक और तेजोवृद्धिकारक होता है। (भावप्रकाश)

उसके वर्णन करनेसे त्रिदोष उपजता, पुष्टि एवं बल घटता और कण्डू रोग बढ़ता है। कुसुमका शाक-भक्षण निषिद्ध है—

“कुसुमे ललिताशाकं इत्याकं पूतिकां तथा।

भक्षयन् पतितसु स्यादपि वेदात्मगोचिनः॥” (तिथितत्व)

२ कुङ्कुम, जायफल, केशर। ३ स्वर्ण, सोना।

४ कमण्डलु। ५ पूर्वरागका प्रकार भेद।

“नीलीकुसुममंजिष्ठाः पूर्वरागोऽपि च विधा।

कुसुमरागं च प्राशयंदेति च शोभते॥” (साहित्यदर्पण)

६ पर्वतविशेष, कोई पहाड़। (भागवत, ५। १६। २०)

कुसुमतेल (सं० क्लो०) कुसुमबीजकोड़, कुसुमके फूलका तेल। कुसुम देखो।

कुसुमपत्र (सं० क्लो०) कुसुमशाक, कुसुमकी पत्ती। कुसुम देखो।

कुसुमला (सं० स्त्री०) दाहहरिद्रा।

कुसुमवान् (सं० त्रि०) कुसुम-मत्तुपमस्व वः। कमण्डलुधारी।

“कृतमकेशनखश्रुः पावो दण्डो कुसुमवान्॥” (मनु ६। ५२)

कुसुमबीज (सं० क्लो०) कुसुमस्य बीजम्, ६-तत्।

कुसुमवृक्षका फल वा बीज। उसका संस्कृत पर्याय—वरटा और वरटिका है। वह मधुर, क्षिब्ध, कषाय, शीतल, गुह, वृष्य और रक्तपित्त, कफ तथा वातघ्न होता है। (भावप्रकाश)

कुसुमा (सं० स्त्री०) आषाढ़ शुक्ला षष्ठी, आषाढ़ सुदी छठ।

कुसुमा (हिं० पु०) १ कुसुमवर्णक, कुसुमका रंग।

२ अहिफेन और विजयाके सहयोगसे प्रसृत एक मादकद्रव्य। ३ घुली और मोटे कपड़ेसे कनो हुई अफीम।

कुसुमो (हिं० वि०) कुसुमवर्णविशिष्ट, रक्तवर्ण, लाल।

कुसुमविन्द (सं० पु०) उद्दालकवंशीय एक व्यक्ति।

कुसुमविन्दु (सं० पु०) एक ऋषि। उन्होंने शुक्लयजुर्वेदके अनेक मन्त्र प्रकाश किये हैं।

कुसु (सं० पु०) कुस-कूः। किञ्च, लुक्, गण्यपद, केशुवा।

कुसूत (हिं० पु०) मन्दसूत, बुरा सूत या धागा ।

कुसूक (वै० पु०) कुस-कृत् । १ देवयोनिविशेष ।
(अथर्व ४।६।१०) २ तुषाणस, भूसीकौ भाग । ३ धान्या-
गार, कोठला ।

कुसूति (सं० स्त्री०) कुस्तिता कृतिरुपायो व्यवहारो
वा, कुगतिसं० । १ शठता, पाजोपन । २ इस्तलघुता,
इन्द्रजालविद्या, हाथकी सफाई, बाजोगरी । (त्रि०)
कुस्तिता कृतिराचारोऽस्य, बहुव्री० । ३ कुस्तिताचारी,
बुरा काम करनेवाला ।

“यत् पादपद्ममकरन्दनिषेवणेन ब्रह्मादयः शरणादास्तु वति विभूतिः ।
कथावर्धं कुसूतयः खलयोगयसं दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीताः ॥”
(भागवत, ८।२३।७)

कुसुभ (सं० पु०) कुं पृथिवीं स्तुभोति वराहरूपेण-
त्यर्थः, कु-स्तुभ-कः । १ विष्णु, वराहरूप भगवान् ।
२ समुद्र, बहर ।

कुसुम्बरी (सं० स्त्री०) कुस्तिता तुम्बरी पृषोदरादिवत्
साधुः । धन्याक, धनिया ।

कुसुम्बर (सं० पु०) १ यक्षराज कुबेरके कोई पार्षद ।
(स्त्री०) २ धन्याक, धनिया ।

कुसुम्बुर (सं० पु०-स्त्री०) कुस्तिस्तुम्बुरः, जाती सुडा-
गमः । कुसुम्बुरि जातिः । पा ६।१।१४२ । १ पादधन्याक,
हरा धनिया । वज्र स्वादु, दौर्गन्धनाशक, हृद्य, मधुर-
पाक, स्निग्ध, कटु, किञ्चित् तिक्त, स्तोतोविशोधन और
तृट् दाह तथा दोषघ्न होता है । (चरक)

कुसुम्बुरका संस्कृत पर्याय—धन्याक, धान्यक,
धान्य, धनीयक, धन्य और कुसुम्बरी है । २ कोई
यक्ष । (भारत १।१०।१५)

कुसूरी (सं० स्त्री०) कुस्तिता स्त्री, कुगतिसं० । मन्द
स्त्री, बुरी औरत, छिनाल ।

कुसुप्र (सं० पु०) कुस्तितः सुप्रः । मन्द सुप्र, दुःसुप्र,
बुरा खयाब ।

कुसुमी (सं० पु०) कुस्तितः सुमी । कुस्तित प्रभु वा
पति, खराब मानिक या खाविन्द ।

कुसू (हिं० पु०) कुदाल, कुदाही ।

कुङ् (वै० अथर्व०) किम्-इ पश्चात् किमः कुः । कुङ्,
कङ्, किस ज्ञान पर ।

“यं वा प्रकृति कुङ् सति धोरम् ।” (अथर्व १।१२।५)

(पु०) कुङ्गयति विस्मापयति ऐश्वर्यप्रभावेन,
कुङ्गिष्-अच् । २ कुबेर । ३ विस्मापक, प्रतारक ।
४ राजबदरवृक्ष, बड़े बेरका पेड़ । ५ नीलपद्म, आस-
मानी कंवल ।

कुङ्क (सं० त्रि०) कुङ् कृन् । १ दाक्षिक, प्रतारक,
ऐन्द्रजालिक, मकार, धोका देनेवाला ।

“तद्देवतुल्य इवैवः स रथोऽयान् सोऽहं रथो द्रुपतयो यत आनसन्ति ।
सर्वं चक्षेन तदभूदसदौशरितं भवन् इतं कुङ्कराद्विबोतमुष्याम् ॥”
(भागवत, १।१५।२१)

(पु०) २ भेक, मेंढक । ३ संपराजविशेष, सांघो-
का कोई राजा । (विष्णुपुराण, १।१७।२८ ; भागवत, १।१८।१५)
४ मण्डूकजातीय कीटभेद, मेंढककी मछली का कोई
कीड़ा । ५ ग्रन्थिपर्णवृक्ष, गांठपत्ता । (स्त्री०) ६ इन्द्र-
जालविद्या, इस्तलघुता, प्रतारणा, बाजोगरी, हथ-
काण्डा, नजरबन्दी ।

कुङ्ककार (सं० त्रि०) कुङ्कं इन्द्रजालं करोति,
कुङ्क-कृ-अण्, उपपदसं० । ऐन्द्रजालिक, प्रतारक,
बाजोगर, धोका देनेवाला ।

कुङ्कचकित (सं० त्रि०) कुङ्केन मायया चकितो
विस्मितः, इ-तत् । इन्द्रजालविद्याके प्रभावसे विस्मित,
बाजोगरीके जोरसे चकराया हुआ ।

कुङ्कजीवी (सं० त्रि०) कुङ्केन इन्द्रजालविद्याया
जीवति, कुङ्क-जीव-णिनिः । मायाजीवी, बाजोगर,
सवेरा ।

कुङ्कना (हिं० त्रि०) मधुरध्वनि करना, मोठे बोलना
पीकना । यह शब्द केवल मोर और कोयलकी बोलोके
लिये आता है ।

कुङ्ककृत्ति (सं० स्त्री०) कुङ्ककृत् कृत्तिः, इ-तत् । इन्द्र-
जालविद्या, इस्तलघुता, बाजोगरी, हाथकी सफाई ।
कुङ्ककृत्तन (सं० पु०) कुङ्कको विस्मापकः कृत्तनः शब्दो-
ऽस्य । वनकुङ्कट, जङ्गली सुरगा ।

कुङ्ककृत्तर, कुङ्ककृत्तन देखो ।

कुङ्कका (सं० स्त्री०) कुङ्कक स्त्रियां टाप् । इन्द्रजाल,
माया, बाजोगरी, धोकाधड़ी ।

कुङ्ककी (सं० त्रि०) कुङ्ककोऽस्त्यस्य, कुङ्कक-इनि ।

१ ऐन्द्रजालिक, बाजीगर। २ प्रतारक, धोकावाज।

३ मायावी, मकार।

कुहकुह (हि० पु०) कुङ्कुम, जाफरान, केसर।

कुहक (सं० पु०) एक ताल। दो द्रुत और दो लघु ताल लगनेसे कुहक होता है—“द्रुतद्वयं लघुद्वयं ताले कुहकसंज्ञकः” (सङ्गीतदामोदर)

कुहचिह्नित (वै० त्रि०) किसी स्थानमें विद्यमान, कहीं हाजिर। “शिवेयमिन्द्रयते दिवे दिवे राय चाकुहचिह्निदे।” (अक् ७३२।२) ‘कुहचिह्नितः कुहचिह्निदे।’ (सायण)

कुहन (सं० पु०) कुं भूमिं हन्ति खनति, कु-हन्-अच्।
१ मूषिक, चूहा। कुत्सितं हन्ति दंशति। २ सर्प, सांप।
३ महाभारतोक्त कोई व्यक्ति। (भारत, वन)

(स्त्री०) कु ईषत् प्रयत्नेन हन्यते, कु-हन् कर्मणि अप्। ४ मृगशृङ्गविशेष, मट्टीका कोई बरतन। ५ काचपात्र, शीशेका बरतन। (त्रि०) ६ ईर्ष्यालु, हसदी, डाह करनेवाला।

कुहना (सं० स्त्री०) कुह-युच्। प्रतारणा, धोकावाजी, फरेब।

कुहना (हिं० क्रि०) मारना पीटना, मार मारके कचूर निकालना।

कुहनिका (सं० स्त्री०) कुहन स्त्रायं कः स्त्रियां टाप् अकारस्येकारः। कुहना, प्रतारणा, धोकावाजी।

कुहनो (हिं० स्त्री०) कफोणि, हाथ और बांहका जोड़। २ कोई टेढ़ी गली। वह तांबे या पीतलको बनती और हुककी निगाहीमें लगती है।

कुहनो उड़ान (हिं० पु०) मलयुद्धका एक हस्तलाघव, कुशीका कोई पेंच इसमें कुहनोके सहारे भटपट अपनी जोड़के हाथ पकड़ रहा लगते हैं। कुहनोउड़ान तब चलता, जब अपनी गर्दन पर दूसरे लड़नेवालेके दोनों हाथ रहनेका मौका लगता है। कुहनो उड़ानकी टांग भी मारी जाती है।

कुहप (हिं० पु०) राक्षस, रजनीचर।

कुहया (वै० स्त्री०) कहां रहनेकी जिज्ञासाका समय, वह वक्त जिसमें कहां रहनेका सवाल करें।

“यत्ना पञ्चादीजानः कुहया कुहयाकृते।” (अक् ८२४।३०)

‘कुहया क तिष्ठतीति यदा पञ्चति तदानीम्।’ (सायण)

कुहयाकृति (वै० स्त्री०) कहां है खाननेके लिये सम्मान किया जानेवाला, जिसकी इज्जत कहां है मालूम करनेके लिये करें। (अक् ८२४।३०)

‘कुहयाकृते कुह कुव तिष्ठतीत्ये तदिच्छया जिज्ञासुभिः पुरस्कृते।’ (सायण)

कुहर (सं० पु०) कुह विस्मापने कः, कुहं भयं राति ददाति, कुह-रा-कः। यहा कुह-अरः। १ क्रोधवशवंशीय नागविशेष, कोई सांप। २ कर्ण, कान। ३ कण्ठ, गला। ४ कण्ठशब्द, गलेकी आवाज। (स्त्री०) ५ छिद्र, छेद। ६ गर्त, गड्ढा। ७ समीप, पास। ८ रतिक्रिया। ९ भृष्टान्न, भूना हुआ अनाज, बहुरी।

कुहर (हिं० स्त्री०) बहुरी, चिड़ियोंकी पकड़नेवाला एक शिकरा।

कुहरा (हिं० पु०) कुहेड़िका, गलीज बोखारात, कोहासा, धुंध। शीतलता पाकर आकाशमें भाप जमनेसे जलके अत्यन्त सूक्ष्म कण उत्पन्न हो जाते हैं। फिर धीरे-धीरे वह भूमिपर उतरते और पत्तियों पर बड़े बड़े बूंद बन बैठते हैं। इन्हीं कणोंके गिरनेका नाम कुहरा है। कुहरा प्रातःकाल ही पड़ता है।

कुहराम (हिं० पु०) १ कहर-आम, आतं नाद, हाय हाय। २ उपद्रव, हलचल।

कुहरित (सं० स्त्री०) कुहरयति कण्ठशब्दं करोति, कुहर क्तौ णिच् भावे क्तः। १ कण्ठशब्द, गलेकी आवाज। २ पिकालाप, कोकिलध्वनि, कोयलकी बोली। ३ रतिध्वनि।

कुहलि (सं० पु०) १ सज्जित ताम्बूल, लगाया हुआ पान। २ पूगपुष्पिका, पान।

कुहा (सं० स्त्री०) कुह-क-टाप्। १ कटकी, कुटकी। २ बदरवृक्ष, बेरी, बेरका पेड़। ३ गोपघोषटा, भड़बेरी।

कुहाना (हिं० क्रि०) मनही मन क्रूह होना, बठना, बुरा मानना।

कुहारा (हिं० पु०) कुठार, कुल्हाड़ा।

कुहावती (सं० स्त्री०) दुर्गाका नामान्तर।

कुहासा (हिं० पु०) कुष्मटिका, कुहरा।

कुही (हिं० स्त्री०) १ पक्षिविशेष, कुहर, बहुरी। (पु०) २ टांगन घोड़ा।

कुहू (सं० स्त्री०) कुहू विस्मापने कु । १ अभावस्था ।

२ कुहूशब्दार्थ । ३ कोकिलध्वनि, कोयलकी बोली ।

“कोकिलानां कुहूरवः सुखेः सुतिमनोहरः” (भारत, १५।२७ च०)

४ कोई नदी ।

कुहूक (सं० स्त्री०) पत्न्यपण, गांठपत्ता ।

कुहूक (हिं० स्त्री०) पत्नियोंका मधुर कूजन, पीक, कूक ।

कुहूकना (हिं० क्रि०) मधुरध्वनि करना, मीठे मीठे बोलना ।

कुहूकवान (हिं० पु०) मधुरध्वनिकारो वाण, कुहूकने-वाला तीर । वह बांसकी खपाचोंको जोड़कर निर्माण किया जाता है ।

कुहू ((सं० स्त्री०) कुहू-उ । १ कोकिलध्वनि, कोयल-को पुकार ।

“उन्मीलन्ति कुहूः कुहूरिति कलौचालाः पिकानां गिरः ।”

२ अभावस्था, जिस तिथिको चन्द्र देख न पड़ता हो ।

“इह वा अभावस्था या पूर्वाभावस्था सा सिनीवाली योचरा सा कुहू ।” (सुति)

अभावस्था दो प्रकारकी होती है—सिनीवाली और कुहू । जिस अभावस्थामें कुहू भी चन्द्रकला देख नहीं पड़ती उसको कुहू और जिसमें कुहू देख पड़ती है उसको सिनीवाली कहते हैं—

“हृष्टचन्द्रा सिनीवाली नष्टचन्द्रा कुहूमता ।”

मतान्तरमें तिथिज्ञय होनेसे अभावस्था सिनीवाली और वृद्धि होनेसे कुहू कहाती है ।

“तिथिचये सिनीवाली नष्टचन्द्रा कुहूमता ।

वाङ्मयेऽपि कुहूञ्च या वेदवेदान्तवेदिभिः ।

सिनीवाली द्विजैः कार्यं सायिकैः पित्रकर्मभिः ।

स्त्रीभिः यद्रेः कुहूः कार्यं तत्तत्तान्त्रिकैर्विजैः ।” (लोनाचि)

अभावस्था यदि अपराह्नयव्यापिनी हो तो चाङ्गिताग्नि व्यक्तियोंका सिनीवालीमें आश्रय करना चाङ्गिये । निरग्नि ब्राह्मणों, स्त्रियों और शूद्रोंके लिये कुहूमें आश्रय करनेका विधान है ।

३ अभावस्थाको अधिष्ठात्री अङ्गिराकी कन्या ।

“सिनीवाली कुहूरिति ईश्वरतन्त्री ।” (निवृत्त)

अङ्गिरा ऋषिको अङ्गनाम्नी भार्याके गर्भसे कुहूमें जन्मग्रहण किया था—

Vol. V. 57

“अवात्सहिरसः पत्नी चतस्रोऽस्तकन्याः ।

सिनीवाली कुहूराका चतुर्बाहुमनिसिनीवा ।” (भागवत, ७।१।२८)

“कुहू ईश्वरी सुकृतं विप्रना ।” (अथर्व, ७। ७७।१२)

४ कोकिलालाप, कोयलकी कूज ।

“केनाद्यापि पिकानां कुहू विहायितरः शब्दः ।” (शार्दासप्तम्यो, ६१०)

कुहूक (सं० पु०) कुहूरिति शब्दं करोति, कुहू-क-भ । काकिल, कोयल ।

कुहूकण्ठ (सं० पु०) कुहूरिति शब्दः कण्ठे यस्य, बहुव्री० । कोकिल, कोयल ।

कुहूकाल (सं० पु०) कच्छप, कछुवा ।

कुहूमुख (सं० पु०) कुहूरिति शब्दो मुखे यस्य, बहुव्री० । कोकिल, कोयल ।

कुहूरव (सं० पु०) कुहूरिति रवो यस्य, बहुव्री० । कोकिल, कोयल ।

कुहूल (सं० स्त्री०) कुहू-ललक् । शम्भयुक्त गतं, सांपकी बांबी ।

कुहूङ्किता (सं० स्त्री०) कुहूङ्क्तेति वेष्टते दृष्टि-सञ्चारोऽत्र, कु-हूङ्क् वेष्टने स्त्राय कन् स्त्रियां टाप् । कुञ्जटिका, कुहरा ।

कुहूङ्गी (सं० स्त्री०) कु-हूङ्क्-ङ्क् स्त्रियां ङीष् । कुञ्जटिका, कुहरा ।

कुहूङ्किता (सं० स्त्री०) कु-हूङ्क्-ङ्क् स्त्राय कन्-टाप् । कुञ्जटिका, कुहरा ।

कुहूङ्ग (सं० स्त्री०) कुहूङ्क्तेति वेष्टते दृष्टि-सञ्चारोऽत्र, कु-हूङ्क् वेष्टने स्त्राय कन् स्त्रियां टाप् । कुञ्जटिका, कुहरा ।

कू (सं० स्त्री०) कूनाति शब्दायते, कू-क्लिप् । पिशाची, डाहल, चुड़ैल ।

कू (हिं० स्त्री०) लड़कोंके कानमें सुई लगाके निकासानेवाला एक शब्द । कू शब्द कानमें फूँकनेसे लड़के हँसने लगते हैं ।

कूख (हिं० स्त्री०) कुक्षि, काख ।

कूखना (हिं० क्रि०) काखना, पोड़ित भवस्थामें कद-जलक शब्द निकासना ।

कूंग (हिं० पु०) चराह, चरख । कूंग एक यन्त्र है ।

कसेरे उस पर ताख वा पित्तलवाक, कसेरे करता है ।

(१० स्त्री० ङी०) कुहूङ्क्

कूंगा (हिं० पु०) कषायविशेष, बबूलकी छालका काढ़ा। कूंगामें डुबोकर चमड़ा सिभाया जाता है।

कूंच (हिं० स्त्री०) १ प्राचर्षणीविशेष, एक बड़ा बुरस। कूंच खस या नारियलके रेशेसे बनती और हाथ डेढ़ हाथ लम्बी रहती है। जुलाहे उससे तानका सूत साफ करते हैं।

२ सन्दंशविशेष, लोहारकी बड़ी मंडसी। ३ घोड़ नस, पै। कूंच एक मोटी नस है। वह मनुष्योंकी एड़ीके ऊपर और पशुओंके टखनेके नीचे रहती है। कूंचना (हिं० क्रि०) तोड़ना, फोड़ना, टुकड़े टुकड़े करना, कुचलना, मारना-पीटना।

कूंचा (हिं० पु०) १ छोटा भाड़ू। कूंचा किसी रेशेदार लकड़ी या मूँज वगैरहकी कूट कर बनाया जाता है। वह चीजोंको भाड़ने और साफ करनेमें काम आता है। २ भग्न नौखण्ड, जहाजका टूटा टुकड़ा। ३ करछा।

कूंची (हिं० स्त्री०) १ छोटा कूंचा। २ बालों या कुटी हुई मूँजके रेशोंका गुच्छा। कूंचीसे चीजें साफ करते या उनमें रंग भरते हैं। ३ तूलिका, बालोंका कलम। कूंचीसे चित्रकार चित्रों पर रंग चढ़ाते हैं। ४ कूजा, मिसरी जमानेकी कुलिया। ५ मृगमयपात्र विशेष, महीका एक बरतन। कूंचीमें कोल्हूसे निकलनेवाला रस टपकाया जाता है। ६ तालिका, चाबी।

कूँज (हिं० पु०) क्रीष्णपक्षी, क्राकुल चिड़िया।

कूँजड़ा—एक हिन्दूजाति। आजकल कूँजड़े अधिक श्रांश सुसलमान हो गये हैं। परन्तु पहले यह हिन्दू रहे। कहते हैं, अजमेरके युद्धमें जब अत्रिय हारे और मीर साहब जाते, तब उन्होंने लड़नेवाले हिन्दुओंके हाथोंमें बेड़ियाँ डाल दीं। इस पर हिन्दू वीर 'हुजूर हमें क्यों जड़ा, हुजूर हमें क्यों जड़ा' कह कर बार बार चिल्लाने लगे। उनमें जो सुसलमान हुए, उन्होंने साग भाजा और फल आदि बेचनेका कार्य अङ्गीकार किया। इन्हींका नाम कूँजड़ा है।

कूँजड़ी (हिं० स्त्री०) कूँजड़ेकी औरत, कबाड़िन।

कूँड (हिं० पु०) १ लोहनिर्मित शिरस्त्राणविशेष, लोहेकी कोई टोपी, खोद। पहले लड़ाईमें लोग कूँड लगाते थे। २ पात्रविशेष, कोई बरतन। कूँड मही या लोहेसे बनाया जाता और चोगीशिया टोपी सा आता है। उसे टे'कुलमें लगाकर खेत सींचनेके लिये कुबेसे पानी निकालते हैं। ३ क्षेत्ररेखाविशेष, खेतकी कोई लकीर। कूँड इस जोतनेसे बन जाता है।

कूँडा (हिं० पु०) १ मृगमय पात्र विशेष, महीका कोई गहरा और चौड़े मुँहका बरतन। कूँडेमें प्रायः पानी भर कर रखते हैं। २ गमला, छोटे छोटे पीढ़े लगानेका बरतन। ३ डोल, रोगनी करनेकी बड़ी झाड़ी। ४ कठौता, मही या लकड़ीका बड़ा बरतन। कूँडामें पाटा माँड़ा जाता है।

कूँड़ी (हिं० स्त्री०) १ पथरी, पथरोटी, पथरकी कटोरी। २ छोटी नाँद। ३ कोल्हूके बीचका गड्ढा। कूँड़ीमें जाट रहती है। ४ एंड़री, कोई छोटीसी गद्दी। कूँयना (हिं० क्रि०) १ काँखना, कराहना। २ गुट-रगू करना।

कूर्च (हिं० स्त्री०) कुसुदिनी, कोशा, बघोछा।

कूर्च जलमें उत्पन्न होनेवाला कमल-जैसा एक पौदा है। उसके पत्र कमलके पत्रोंसे मिलते, परन्तु ईषत् दीर्घ और कटेहुए रहते हैं। जिन सरोवरोंमें वर्षाका जल सिमट आता, इन्हींमें कूर्चका पौदा होते दिखाता है। वह वर्षाके प्रारम्भमें बीज वा पुरातन मूलसे निकलती है। उसके पत्र जलके ऊपर और डण्डल जलके भीतर रहते हैं। आश्विन-कार्तिक मास कूर्च फूलती है। उसके पुष्प श्वेतवर्ण और सुन्दर होते हैं। कूर्चका डण्डल चिकना रहता है, उस पर कमलकी भांति गड़नेवाला रूपा नहीं निकलता। उसका फूल रातकी फूलता और चांदनीमें बहुत खिलता है। यही कारण है कि कवि लोग चन्द्रको कुसुदबन्धु कहते हैं। श्वेत पुष्पकी कूर्च अधिक होती है। किन्तु कहीं कहीं उसमें रक्त वा पीतवर्ण पुष्प भी आते हैं। कमलकी भांति कूर्च फूलके भीतर छत्ता नहीं खलता। उसमें

एक कर्णिकामण्डल रहता, जो अपने निम्नदेशमें नासकी घुण्टी रखता है। उक्त अन्वि ही वर्धित हो कर मोदकका आकार धारण करती और बीजोंमें भर रहती है। कूईके बीज काले सरसों-जैसे पाते और बेरा कहलाते हैं। भूननेसे वह सफेद सावे हो जाते हैं। व्रतके दिन उनको व्यवहार किया करते हैं। कूईका मूल भी भक्षण किया जाता है।

कूक (हिं० स्त्री०) १ कूजन, मोर या कीयलकी मोठी बोली। २ रोदन, रोना। ३ चढ़ी या बाजे वगैरहमें चाबी लगानेका काम।

कूकना (हिं० क्रि०) १ लंबी और मोठी आवाज लगाना, कूजना। २ चाबी लगाना, घड़ी या बाजेकी कमानीको चाबी देकर कसना।

कूकर (हिं० पु०) कुकर, कुत्ता।

कूकरकौर (हिं० पु०) १ श्वानको दिये जानेवाले उच्छिष्ट भोजनका सुद्र अंश, टुकड़ा, कुत्तेका हिस्सा। २ तुच्छ वस्तु, छोटी चीज।

कूकरचन्दी (हिं० स्त्री०) पोषधिविशेष, एक जंगली जड़ी। कूकरचन्दीको पत्ती पीसकर कुत्तेके दृष्टस्थान पर लगायी जाती है।

कूकरनिंदिया (हिं० स्त्री०) श्वाननिद्रा, कुत्तेकी नींद, हलकी नींद।

कूकरबसेरा (हिं० पु०) अल्प विश्राम, थोड़ा आराम।

कूका—एक नानकपन्थी सम्प्रदाय। कूका श्वेतवस्त्र धारण करते, झूठ कम कहते, दिनमें तीन बार नहाते और जन या सूतकी मात्ता रखते हैं। अपनी सभा लगने पर कूका नानकके शब्द उच्चारण करके उसके स्वरसे कू कू पुकारने लगते हैं। इसीसे इनका नाम कूका पड़ गया है। यह सबके सब गृहस्थ हैं। सिद्धधर्मके अनुसार इनका विवाह होता है। कूका सम्प्रदायके आदिगुरु रामसिंह खाती (बठई) थे। इन्होंने पटियाला-मालेर और कोटलेके राज्योंमें विद्रोह उपस्थित किया था। अतएव अंगरेज सरकारने इनके आचार्य रामसिंह खातीको कालेपानीकी सजा दी। वर्ष १८३० ई० की उनका मृत्यु हुआ। इनका गुहदार सुधियानाके तहसी गांवमें है।

कूकी (हिं० स्त्री०) कभिभेद, एक कीड़ा। कूकी जाड़े-की फसल बिगाड़ा करती है।

कूकुद (सं० पु०) कुशब्दे भावे क्तिप् कुवः शब्दस्य ख्यातेः कुं भूमिं ददाति, कू-कु-दा-क। यथाविधि नियमानुसार अलङ्कृता कन्या दान करनेवाला, जो बाकायदे लड़कीकी शादी करता हो।

कूकुर (सं० पु०) कुकर, कुत्ता।

कूच (सं० पु०) कुशब्दे चट् दीर्घश्च। कुवश्चट् दीर्घश्च। उच ४।२। नवोदित स्तन, नये उभरे हुए पिस्तान्।

कच (तु० पु०) १ प्रस्थान, रवानगी, चला चली। २ कुशतीका एक पेंच। प्रतिहन्दीका एक पर पकड़कर खींच लेना कुशतीमें 'कच' कहलाता है।

कूचका (सं० स्त्री०) कूच-कः स्त्रियां टाप्। वृक्ष विशेषका दुग्धवत् रस, एक पेड़का दूध-जैसा रस।

कूचक (वै० पु०-स्त्री०) पृथिवीवल्लय, जमीनका घेरा।

“दीप्याना कूचको येन सिञ्चन्।” (ऋक् १०।१०।११)

“कुः पृथिवी तस्याचको वलयः कूचकः।” (सायण)

कूचवार (सं० पु०) कूचं वृषोत्थस्मिन्दे शेषे कूच-व अधिकरणे घञ्। १ कोई देश। २ कोई व्यक्ति।

कूचा (फा० पु०) सुद्रमार्ग, तङ्ग गली, छोटा रास्ता। २ कंचा।

कूबिका (सं० स्त्री०) कूष स्त्रार्थ कन् स्त्रियां टाप् प्रकारस्येकारः। १ अन्धादिमत्स्य, किसी किसीकी मछली। २ सुद्रकुम्बिका, छोटी चाबी। ३ दुग्धपाचित कृतभर्जित तण्डुल, दूधमें पकाकर भूने हुये चावल। ४ तूलिका, सुसुप्तरका कलम।

कूचिदर्शी (वै० त्रि०) कहीं मांगनेवाला।

“चित्तं समं त्वं गुहा हितं सुविदं कूचिदर्शिनम्।” (ऋक् ४।७।६)

“कूचिदर्शिनं कापि हविष्यर्चिनं क इत्यत्र वकारस्य आन्दसे सम्प्रसारणे पर-पूर्वत्वे च इत्यु इति दीर्घत्वम्।” (सायण)

कूची (सं० स्त्री०) कूष स्त्रियां ङीष्। १ तृक कूचिका। २ दुग्धकूचिका। ३ चित्रलेखनिका, तसवीर बनानेका कलम।

कूची (हिं० स्त्री०) कूची, छोटा भाकू।

कूचीकान्त (सं० स्त्री०) एक वृक्ष।

कूकलिंग (सं० पु०) कुकुन्दरुद्रश्च, कुकरकुत्ता।

कूज (हि० स्त्री०) ध्वनि, बोली ।

कूज (सं० पु०) कूजतीति, कूज-अच् । शब्दकारी, बोलने-वाला ।

“रामशोकमिभूतं तस्मिन्निःकूजमिवकामनम् ।” (रामायण २।५८।१०)

कूजक (सं० त्रि०) कूजतीति, कूज-कृत्, क् । अव्यक्त शब्द-कारी, अपमौ बोली बोलनेवाला ।

कूजन (सं० स्त्री०) कूज भावे क्युट् । १ पक्षिध्वनि, चिड़ियोंकी बोली । २ उदरध्वनि, पेटकी गुड़ गुड़ाहट । ३ अव्यक्तध्वनि, समझमें न आनेवाली बोली । ४ रथ-चक्रध्वनि, गाड़ीके पहियेके घरघराहट ।

कूजना (हि० क्ति०) कूकना, पीकना, चहकना, मीठी मीठी बोलना बोलना ।

कूजा (फा० पु०) १ कुहड़ड़, मट्टीका प्याले-जैसा बरतन । २ कूजमें जमी हुई मिसरी ।

कूजा (हि० पु०) कूजक, बेली या मोतियेका फल ।

कूजित (सं० स्त्री०) कूज भावे क्त । १ पक्षिध्वनि, चिड़ियोंकी चहचहाहट । (वि०) २ ध्वनित, पीका या कूका हुआ ।

“ललितलवङ्गकतापरिशौलनकीमलमलयसमीरे ।

मधुकरनिकरकरन्वितकीलकूजितकुसुमकुटीरे ॥”

(गीतगोविन्द, १।४।२)

कूजी (सं० त्रि०) कूज-इति । अव्यक्त शब्दयुक्त, मधुर-ध्वनिकारी, पीकने या कूकनेवाला ।

कूट (सं० पु०-स्त्री०) कूट-अच् । १ मृङ्ग, कंगूर ।

“सत्रो ब्रह्मपि वक्ष्ये वाचः कूटं वा ब्रह्मदमितामिति ।”

(स्कन् १०।१०२।४) “कूटं पर्वतशृङ्गम् ।” (सायण)

२ मुकुट, ताज । ३ अग्रभाग, अगला हिस्सा ।

“किरोटकूटैर्ज्वलितं शृङ्गारं दोमकुण्डलम् ।” (रामायण)

४ पर्वताग्रभाग, पहाड़का अगला हिस्सा ।

“तुषारमिरि-कूटामं शितामिशिलरोपमम् ।” (महाभारत, ११।१४।५०)

५ ऊर्ध्व, प्रधान, बढ़ा । ६ समूह, जखीरा । ७ यन्त्र भेद, कोई याजार । ८ लौहमुद्गर, लोहेकी सुगरी ।

“एते त्वां संप्रतीचन्ते खरन्तो वैशसं तव ।

सं परितमस्य कूटे निन्दन्त्यात्यतमन्वयः ॥” (भागवत, ४।१५।८)

९ फाक, काङ्गकावयव । १० जाक, हिरनोंके पकड़नेका फन्दा ।

“वायुराग्निय पायैश्च कूटैश्च विविधैर्नराः ।

प्रतिष्कन्नाथ उध्माश्च निम्ननिम्न बहन्मृगान् ॥” (रामायण, ४।१८।१७)

“कूटे वक्ष्येऽस्यभादिसम्पादनरूपेः ।” (रामायण)

११ गुताक, गुप्ती, काठकी कड़ीमें छिपा हुआ इधियार ।

“न कूटेरायुधैर्हन्त्यान् युध्मानो रथे रिपून् ।” (मनु ७।८०)

“कूटानि यानि बहिःकाष्ठमयान्यन्तर्निहितशस्त्राणि ॥” (मेधातिथि)

१२ कैतव, मिथ्या, झूठ ।

“वाचः कूटम् देवर्षेः स्वयं विमलमुर्धिया ।” (भागवत ६।५।१०)

१३ तुच्छ, छोटा । १४ भग्नमृङ्ग, टूटा सोंग ।

१५ पुरझार, शहरका दरवाजा । १६ जलपात्र, पानीका बर्तन । १७ सुद्र हस्तविशेष, कोई छोटा पेड़ । १८ गृह, घर । १९ अगस्त्य मुनिका नामान्तर । २० भग्न-शृङ्ग वृष, टूटे सोंगका बैल । २१ लौहसार । २२ पित्तल, पीतल । (त्रि०) २३ निखल, ठहरा हुआ ।

२४ कपटतायुक्त, धोकेसे भरा हुआ ।

“विश्वामाख्यवा ब्रूयुः कूटाः स्युः पूर्वाश्विषः ।” (याज्ञवल्क्य १।८०)

२५ असम्मानित, अष्टीकृत, जो बिगाड़ डाला गया हो ।

कूट (हि० पु०) १ कुष्ठ नामक औषधि, कुट । २

कुटीर, भोपड़ा । (स्त्री०) ३ कुटाई, कूटनेकी क्रिया ।

कूटक (सं० पु०-स्त्री०) कूट-कृत्, क् । १ वृद्धि, बढ़ती ।

२ फाल, हलकी खोपी । ३ कपट, धोका । ४ मिथ्या, झूठ । ५ पर्वतविशेष, कोई पहाड़ । (भागवत ५।२।१६)

६ कवरी, काकुल । ७ गन्धद्रव्यविशेष, एक खुशबू-दार चीज । सरा देखो ।

कूटकर्म (सं० स्त्री०) हल, धोका, छिपा कर किया हुआ काम ।

कूटकर्म (सं० पु०) हली, मकार ।

कूटकार (सं० त्रि०) कूटं करोति, कूट-क-अच् । दुष्ट, प्रवचक, झूठो गवाही देनेवाला ।

कूटकारक (सं० त्रि०) कूट-क-कृत्, क् । दुष्ट, प्रवचक, मिथ्या साक्षी, झूठ बोलनेवाला ।

“समुद्रवधौ बन्दी च तेष्विहः कूटकारकः ।” (मनु २।१५।८)

“कूटकारकः साक्षीचरितवादी ।” (मेधातिथि)

कूटकृत (सं० त्रि०) कूट-क-कृत् । १ कृतव, झूठ

बोलनेवाला ।

‘तुलाशासनमानानां कूटकुत्राचक्षयः च ।’ (याज्ञवल्क्य, २।२४१)

२ कृत्रिम अभिमानादिकारक, झूठो छींग मारनेवाला ।
(पु०) १ कायस्थ । ४ शिव ।

कूटखण्ड (सं० पु०) कूटः खण्डः कर्मधा० । गुप्तखण्ड,
छिपी तलवार ।

कूटगृह (सं० स्त्री०) जेन्नाकगृह, भपारा लेनेका घर,
जिस मकानमें बैठ कर पसीना निकाला जाये ।

कूटकृष्ण (सं० पु०) कूटं माया कृष्ण आच्छादनं
यस्य, बहुव्री० । धूर्त, प्रवञ्चक, धोका देनेवाला ।

कूटज (सं० पु०) कूटाज्जायते । १ कुटजवृक्ष । २ श्वेत-
कूटज ।

कूटजीव (सं० पु०) पुत्रजीववृक्ष ।

कूटता (सं० स्त्री०) १ काठिन्य, कड़ाई । २ असत्य,
झूठापना ।

कूटतुला (सं० स्त्री०) कूटा मिथ्या प्रवञ्चका तुला तुला-
दण्डः, कर्मधा० । कुम्भित तुला, खराब तराजू, बट्टेकी
डण्डी, पसंगेका पल्ला ।

कूटधर्मा (सं० त्रि०) कूटो मिथ्या धर्मो यस्य यस्मिन्दे
गृहे वा, बहुव्री० । कूटधर्म समासे अनिष्ट । धर्मादनिष्ट
केवलात् । पा ५।१४।२४ । मिथ्याव्यवहारको धर्मकार्य परि-

गणित करनेवाला, झूठ बातों पर ईमान लानेवाला ।
कूटना (त्रि० क्ति०) १ ऊपरसे धड़ाधड़ पीटना, चीट
मारना । २ ठोकरना, मारना-पीटना । ३ पत्थरके सिल
वगैरहको टांकीसे दांतदार बनाना । ४ बधिया
करना ।

कूटनीति (सं० स्त्री०) कपटनीति, धोकेकी चाल ।

कूटपर्व (सं० पु०) हस्ती आदिका त्रिदोषज ज्वर,
हाथी वगैरह जानवरोंका सरशामी बुखार ।

कूटपाक (सं० पु०) १ सन्निपात, सरशाम । २ पैत्तिक-
ज्वर, पित्तका बुखार ।

कूटपाकज (सं० पु०) १ हस्तीका पैत्तिकज्वर, पित्तसे
आनेवाला हाथीका बुखार । २ दीर्घीत्यत्र सन्निपात-
ज्वर, कोई सरशामी बुखार । उससे उच्छ्वास बढ़ता,
अङ्ग स्वास्थ पड़ता, सोचन नहीं चलता और तीन रात-
में जन्तुका प्राण निकलता है । (भावप्रकाश)

कूटपाठ (सं० पु०) सङ्गीतमें मृदङ्गका एक वर्ण ।

कूटपालक (सं० पु०) कूटं मृत्तिकाराशिं पालयति,
कूट-पालि-ग्वल् । १ कुलासका पवन । २ पित्तज्वर ।

कूटपाश (सं० पु०) कूटः कपटः पाशः, कर्मधा० ।
गुप्तपाश, पशुपत्नी प्रभृति पकड़नेका एक यन्त्र ।

कूटपूर्व, कूटपर्व देखो ।

कूटबन्ध (सं० पु०) कूटः कपटः जालादिरूपो बन्धः,
कर्मधा० । पाश, पशुपत्नी पकड़नेका फन्दा ।

कूटमान (सं० स्त्री०) कूटं मिथ्यामानं परिमाणम्,
कर्मधा० । मिथ्या परिमाण, बट्टेका बांट या पसंगेकी
तराजू । “भूयिष्ठं कूटमानैश्च पण्यं विक्रीयते जनाः ।” (भारत, वनपर्व)

कूटसुहर (सं० पु०) कूटः अप्रकाशितस्वरूपो सुहरः,
कर्मधा० । गुप्तसुहर, लोहेका बह सुदगर जो देखनेमें
काठका बना मालूम पड़ता हो ।

“कूटसुदगरहस्तस्य मृत्युः सौ समन्वयात् ।” (भारत, १।१२ च०)

कूटमोहन (सं० पु०) कार्तिकेयका एक नाम ।

(भारत वनपर्व)

कूटयन्त्र (सं० स्त्री०) कूटं कपटं यन्त्रम्, कर्मधा० ।
उन्माथ, पशुपत्नी पकड़नेका एक यन्त्र, फन्दा, जाल ।

कूटयुद्ध (सं० पु०) कूटं कपटं युद्धम्, कर्मधा० ।
१ कपटयुद्ध, धोकेकी लड़ाई । असमशस्त्र वा असम-
प्रतिद्वन्द्वीके साथ अथवा न्यायविगर्हित जो युद्ध किया
जाता, वह कूटयुद्ध कहलाता है ।

“कूटयुद्धविधिरपि तस्मिन् समागमोपनि ।” (रघुवंश, १०।६८)

(त्रि०) कूटयुद्धयुक्त, धोकेसे लड़नेवाला ।

“कूटयुद्धा हि राक्षसाः” (रामायण १।२२।७)

कूटयोधी (सं० त्रि०) कूटेन मायया शब्देन वा युध्यते,
कूट-युध-णिनि । कपटयुद्धकारी, छिप छिपके लड़ने-
वाला ।

कूटरचना (सं० स्त्री०) कूटा शब्दपूर्ण रचना यस्याः,
बहुव्री० । विस्तृत वाशुरा, जानवर वगैरह पकड़नेके
लिये लंबा चौड़ा फन्दा या जाल ।

“स्थित्वा पाशमपास्य कूटरचनां मंज्रा वलावाशुराम्”

(पञ्चतन्त्र, २।८६)

कूटलमस्तक (सं० पु०) चविका, चव्य ।

कूटलेख (सं० पु०) कपटलेख, झूठी तहरीर । २ सम-
अर्धमें न आनेवाली इबारत ।

कूटलेखक (सं० पु०) १ कपटलेखक, झूठी तहरीर करनेवाला। २ वह लेखक जिसका लेख समझ न पड़े।

कूटशः (सं० अव्य०) कूट बहुलार्थे शस्। बहुलार्थोऽयं कारकादन्तरस्याम्। पा ५। ४। ४२। बहुपरिमाणमें, राशि राशि, बहुतायतके साथ, ढेरों।

कूटशाल्मलि (सं० पु०-स्त्री०) कूटः शाल्मलिः, कर्मधा। १ शाल्मलिभेद, किसी प्रकारका शाल्मलि। उसका मंस्कृत पर्याय—रोचना और कुक्षितशाल्मलि है। भावप्रकाशके मतानुसार कूटशाल्मलि तिल, कटु, भेदी, उष्ण और कफ, वायु, प्लीहा, यकृत, गुल्म, विष, विषम्ब, अम्ल, भेद और शूलनाशक है।

२ रक्तरोहितकवृक्ष। ३ यमकी गदा।

“अयः शङ्खचिता रजः शतघ्नोमय शस्त्रम्।

इतां देवस्वस्त्यो व कूटशाल्मलिमधिपत् ॥” (रघु, १२। ८५)

४ नरकका कण्टकमय लौहनिर्मित शाल्मलिवृक्ष।

(भारत, १८। ३। ४)

कूटशाल्मलिक (सं० पु०) कूटशाल्मलि स्वार्थे कन्। कूटशाल्मलिवृक्ष।

कूटशासन (सं० स्त्री०) कूटं मिथ्या शासनं दण्डो विचारो वा, कर्मधा०। मिथ्याशासन, अविवार, झूठा हुकम, धोकेका राज।

कूटशैल (सं० पु०) कूटबहुलः शृङ्गबहुलः शैलः, कर्मधा०। पर्वतविशेष, एक पहाड़।

कूटसंक्रान्ति (सं० स्त्री०) सूर्यसंक्रमणका प्रकारभेद। अर्धरात्रिके पीछे सूर्यका अन्यराशिमें संक्रमण आनेसे वह संक्रान्ति कूटसंक्रान्ति कहलाता है।

(विद्यानिधिस्त ज्योतिःसामरसार)

कूटसाक्षी (सं० त्रि०) कूटः अनृतवादी साक्षी, कर्मधा०। मिथ्यावादी साक्षी, झूठ बोलनेवाला गवाह।

“न ददाति च यः साक्षां ज्ञानत्रयि नराधमः।

स कूटसाक्षिणो पापे स्तुषो दण्डे न चैव हि ॥” (याज्ञवल्क्य २। १०८)

कूटस्वः (सं० त्रि०) कूटवदयो घनवत् निर्विकारो निखलः

सन् तिष्ठति, कूट-स्वा-क। १ परिष्कारादि-शून्य और सर्वकालमें एकरूपसे अवस्थित।

“तस्यापि द्रष्टुं शक्यं कूटस्वस्याखिलात्मनः।” (भागवत, १। १। १०)

२ अष्ट, सर्वोपरिस्थित, बड़ा, सबसे ऊपर रहनेवाला।

“ज्ञानविज्ञानद्वयात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।

युक्तइत्युच्यते योगी समलोटाग्रमकाचनः ॥” (गीता, ६। ८)

कूटो लोहसुदगरः पर्वतशृङ्गं वा तद्वन्निखलतया अविकारितया तिष्ठति। ३ निखल, अविकार और सर्वकाल समान, हमेशा एक-जैसा।

“अधिष्ठानतया देहद्वयावच्छिन्नचित्तमः।

कूटवन्निर्विकारेण स्थितः कूटस्य उच्यते ॥

कूटस्थे कल्पिता बुद्धिस्तत्र चित् प्रतिबिम्बकः।

प्राधान्यां धारणाज्जोषः संसारेण स युज्यते ॥” (पञ्चदशी, ६। १५-१६)

वैदान्तिक मतमें निम्नलिखित व्युत्पत्ति भी हो सकती है—“कूटः वैतव” मिथ्या साधेति यावत् तस्मिन् तिष्ठति।”

सांख्यमतमें जिसका किसी समयमें परिणाम नहीं, जो सर्वदा एकरूप रहता और जो जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थात्रयमें एक रूपसे ही अवस्थान करता, उसी आत्मा पुरुषको विद्वान् कूटस्थ कहता है—

“अरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।” (गीता, १५। १६)

नैयायिकोंके कथनानुसार अन्य विशेष गुण न रखनेवालेको ही कूटस्थ कहते हैं। वह ईश्वरमें अन्यविशेष गुण स्वीकार नहीं करते।

४ समूहस्थित, जो बहुतोंके बीचमें हो।

“स एष नरलोकेऽस्मिन्मवतीर्णः स्वमायया।

रेमि स्वीरजकूटस्थो भगवान् प्राकृतो यथा ॥” (भागवत १। १। २५)

(स्त्री०) ५ व्याघ्रनख, एक खुशबूदार चीज।

कूटस्वर्ण (सं० स्त्री०) कूटं मिथ्याभूतं स्वर्णम्, कर्मधा०। कृत्रिमस्वर्ण, खोटा या बनावटी सोना।

“कूटस्वर्णव्यवहारी विमोहस्य च विकथो।” (याज्ञवल्क्य २। १००)

कूटा—युक्तप्रदेशकी एक जाति। इनका काम धान कूट कर चावल निकालना है। इसीसे कूटा नाम भी पड़ गया है। यह अपनेको अत्रियवर्ण बतलाते, परन्तु दूसरे लोग उस बात पर विश्वास नहीं करते। इन्हें कूटामाली भी कहते हैं। युक्तप्रदेशमें इनकी संख्या पांच सहस्रसे अधिक नहीं है।

कूटाक्ष (सं० पु०) कूटः अक्षः, कर्मधा०। मिथ्या पाशा, जाली पासां, बंधी कौड़ी।

कूटागार (सं० स्त्री०) कूटमागारम्, कर्मधा०। १ गड्ढी-

परिस्थित मण्डप, घरकी ऊपरी मंडिया। कूटागारका संस्कृत पर्याय—वड़भी और चित्रशालिका है।

“कूटागारशतेषु तां गन्धर्वीं नगरीयमा।” (रामायण, ५।१२।४५)

२ क्रीड़ागृह, खेलनेका घर।

कूटायु (सं० पु०) गुग्गुलु, गूगल।

कूटार्थभाषा (सं० स्त्री०) कूटार्थस्य कल्पितार्थस्य भाषा कथा, ६-तत्। कल्पित प्रबन्ध, बनावटी किस्सा।

कूटार्थभाषिता (सं० स्त्री०) कूटार्थस्य कल्पितार्थस्य भाषिता भाषा कथा। प्रबन्धकल्पनाकथा, भूठी किस्सेबाजी।

कूटार्थसिद्धिक्त् (सं० पु०) पुत्रस्त्रीवृत्त।

कूट (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। कूट हिमालय पर्वत, बङ्गाल, आसाम, ब्रह्म, दक्षिणात्य, मध्यप्रान्त और युक्तप्रदेशमें बोया जाता है। जुलाईमें बीज पड़ता है। फसल अक्तूबरमें तैयार हो जाती है। कूटका पौदा डेढ़ या दो फुट तक बढ़ता और अपने सिरे पर नीले फूलोंका गुच्छा रखता है। पुष्प अति सुन्दर देख पड़ते हैं। फूल भड़ आनेसे फल आता, जिसकी पकने पर डगढलसे मल कर बीज निकाला जाता है। कूटका बीज तिकोना, लम्बा और लुकीला होता है। बीजकी भूमी निकाल कर पाटा पीसा जाता, जो फलाहारमें व्रतके दिन काम आता है।

कूड़ा (हिं० पु०) १ मैल, भाड़न। २ व्यर्थवस्तु, बेकाम चीज।

कूड़ाखाना (हिं० पु०) कूड़ा डालनेकी जगह, घूरा।

कूड्य (सं० स्त्री०) कूडति घषीभवति नृदादिना, कूड-ण्यत्। भित्ति, दीवार।

कूड़ (हिं० पु०) १ जांघा, परिहत, हलपत, हलका वह हिस्सा जिसमें एक और मुठिया और दूसरी और खोंपो होती है। २ हलकी गरारीमें बीज डालकर बोनेकी चाल। (वि०) ३ अन्नान, नासमझ, बेवकूफ।

कूड़मग्न (हिं० पु०) मन्दबुद्धि, कुन्दजिह्वन, वात न समझनेवाला।

कूणकुच्छ (सं० पु०) शिवके एक अनुचर।

कूण (सं० त्रि०) कूण-इन्। सङ्कुचितहस्ता, वक्रहस्ता, हथट्टा, टेढ़े हाथवाला।

कूणिका (सं० स्त्री०) कूण्-ण्वल्-टाप् च अकारस्येकारः।

१ कलिका, बीजाकी मध्यस्थित वंशशलाका, बाजेकी खंटी। उसीकी मरोड़ कर तार चढ़ाया उतारा जाता है। २ मृङ्ग, सींग।

कूणितेक्षण (सं० पु०) कूणितमीक्षणं चक्षुर्यस्य, बहुव्री०। श्येनपक्षी, बाज चिड़िया।

कूत (हिं० स्त्री०) अनुमान, अन्दाज, किसी वस्तुकी संख्या, मूल्य वा परिमाणका बिना गिने या नापे जोखे ठहराव।

कूतना (हिं० त्रि०) १ अनुमान लगाना, अन्दाज बांधना। २ अटकलसे किसी चीजका दाम या नाप-जोख बताना।

कूथन (सं० स्त्री०) कुन्थन।

कूद (हिं० स्त्री०) कूदनेकी क्रिया, कुदाई।

कूदना (हिं० त्रि०) १ उछलना, फांदना, कलांग मारना। २ गिरना पड़ना। ३ हस्तक्षेप करना, दखल देना। ४ क्रम भङ्ग करना, सिलसिला तोड़ना। ५ अत्यन्त आश्चर्यदिता होना, बहुत खुशी जाहिर करना। ६ श्रेष्ठी बघारना, बातें मारना। ७ सज्जन करना, लांघना।

कूदर (सं० पु०) कुत्सितमुदरं मातृगर्भो यस्य। ऋतुके प्रथम दिवस ब्राह्मणीसे उत्पन्न ऋषिपुत्र।

“ब्राह्मण्याश्रित्वोर्ये ऋतोः प्रथमवासरे।

कुत्सिते चोदरे जातः कूदरसो न कीर्तितः॥” (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

कूदा (हिं० पु०) कूद कूद कर जमीन नापनेका एक तरीका।

कूदी (वे० स्त्री०) बदरी, बेर।

“कूदीप्रान्तानि स सूचाणि” (कौशिकसूत्र, १५।२४)

“कूदीप्रान्तानि एकविंशतिभेव वदन्त्याणि।” (दारिल)

कूहाल (सं० पु०) कुहालकवृक्ष, लाल कचनारका पेड़।

कूनी (हिं० स्त्री०) कूड़ी, पेरनेकी अख डालनेके लिये कोरझका गट्टा।

कूप (सं० पु०) कुर्वन्ति मण्डूका अस्मिन्, कु मण्डे पः आतोर्दीर्घत्वञ्च। कुपुमाच। उच्यते १।२०। १ गतं, चाह, कूँवा, रनारा। कूपका वैदिक पर्याय—अन्तु, प्रहि,

उदपान, भवट, कोहार, कात्त, कर्त, वल्ग, काट, खात, भवत, क्रवि, सुद, उत्त, कृष्णदात्, कारोतरात्, कुशेष और केवट है।

“तितः कूपे इवहितः।” (अक्ष १।१०५।१०)

कूपका जल स्वादु रहनेसे त्रिदोषघ्न, हिम और लघु होता है। कूपका चारजल कफ तथा वातघ्न एवं दोषघ्न और पित्तकृत् है। (भावप्रकाश)

२ गुणवृक्ष, मस्तूल। ३ नदीमध्यस्थित वृक्ष अथवा पर्वत, दरयाके बीचका पेड़ या पहाड़। ४ कूपक, गङ्गा। कूपक (सं० पु०) कूप स्वार्थे कन्। १ कूप, कूँवा, झरारा। २ गुणवृक्ष, मस्तूल। ३ नौबन्धनस्तम्भ, नाव बांधनेका खंटा। ४ कुकुन्दर, नितम्बस्थित गर्त। ५ चिता। ६ चिताके निम्नदेशका गर्त। ७ शुष्क नदी आदिमें जलके लिये बनाया हुआ गङ्गा। ८ तैलादिका आधार, कूपिया। ९ नदीमध्यस्थित वृक्ष अथवा पर्वत, दरयाके बीचका पेड़ या पहाड़।

कूपकच्छप (सं० पु०) कूपे एवानयत्र सञ्चारशून्यः कच्छप इव, पात्रे समितादिवत् समा०। कूपस्थित कच्छप, कूँका मेंड़क।

कूपकार (सं० पु०) कूपं करोति, कूप-क-अण्। कूप-खनक, कूँवा खोदनेवाला।

कूपखा (वे० त्रि०) कूप-खन वेदे विट् डाच्। जनसनखन-क्रमगोविट्। पा १।१।६०। कूपखनक, कूँवा खोदनेवाला।

कूपज (सं० पु०) कूप-जन-ङ। सोम, केश, बाल।

कूपजल (सं० स्त्री०) कूपसलिल, कूँवेका पानी।

कूपत् (सं० अव्य०) १ कूँ, क्या (प्रश्न)। २ धनप्रधान ! वाह वाह, क्या खूब (प्रशंसा)।

कूपद (सं० पु०) कुकुद।

कूपदुर् (सं० पु०) कूपे एवानयत्र सञ्चारशून्यः ददुर् इव। पात्रे समितादिवत् साधुः। पा १।१।७१। १ कूपमध्यस्थित मेक, कूँवेका मेंड़क। २ जनभिन्न, जनजान, थोड़ी समझवाला।

कूपन (सं० पु० = Coupon.) मनी-पार्डरके फार्मका वह हिस्सा जिस पर रुपया भेजनेवाला पानेवालेके नाम कुछ लिख सकता हो। कूपन मनी-पार्डर पानेवालेके पास ही रह जाता है।

कूपमच्छूक, कूपवर्द्ध देखो।

कूपराज्य (सं० स्त्री०) कूपवृक्षं दद्यात्प्रासां पक्षि-कानां पानाय खनितकूपमित्यर्थः राज्यम्, मध्यपदलो०। देशविशेष, एक मुल्क।

कूपाङ्ग, कूपाङ्ग देखो।

कूपाङ्ग (सं० पु०) रोमाञ्च, रोंगटे खड़े होनेकी हालत।

कूपार (सं० पु०) कुक्षितः पारस्तरणमस्मिन् तस्या-पारत्वादित्यर्थः। समुद्र, बहर।

कूपिक (सं० स्त्री०) कूप कुमुदादित्वात् ठच्। योनि।

कूपिका (सं० स्त्री०) नदीजलगतोपल, दरयाके पानी-का पत्थर।

कूपी (सं० त्रि०) कूप प्रेक्षादित्वात् चतुर्थे इनि। कूपसन्निकटस्थ देशादि, कूँवेके पासका मुल्क वगैरह।

कूपी (सं० स्त्री०) कूप-इन् स्त्रियां ङीष्। १ छुद्र कूप, छोटा कूँवा। २ नाभि, नाफ, ताँदी। ३ पात्रविशेष, कोई बरतन। ४ कपिकच्छु, केवाँच।

कूपुष (सं० स्त्री०) मूत्राशय, पेशाबके रहनेकी जगह।

कूपोदक (सं० स्त्री०) कूपजल, कूँवेका पानी।

कूप देखो।

कूप्य (सं० त्रि०) कूप-यत्। १ कूपजात, कूँवेसे पैदा। “नमः कूप्याय चावशयच।” (प्रकृत्यनुः, १६।३८)

(स्त्री०) २ रौप्य, चाँदी। ३ माणिक्य, मानिक।

कूबड़ (हिं० पु०) १ कूबर, पौठका टेढ़ापन। २ वक्र-भाव, टेढ़ापन।

कूबर (सं० पु०-स्त्री०) कुशब्दे वरच्। १ युगन्धर, कूबड़।

“मनोरत्रिबुद्धिस्तोत्रोद्गीर्णकूबरः।

पक्षेन्द्रियाणं प्रक्षेपः समधातुरद्वयकः॥” (भागवत, ३।२।१८)

२ कुज, कुबड़ा। ३ रथिकस्थान।

“पक्षो कूबरवाकूरावमभिषेत्।” (गोमिलसूत्र)

‘कूबरं रथिकस्थानं’ (रघुनन्दन)

(त्रि०) ४ मनोहर, दिक्परेव, सुहावना।

कूबरी (सं० पु०) रथ, शकट, गाड़ी।

कूबरी (सं० स्त्री०) वस्त्राच्छादित रथ, कपड़ेसे ढकी गाड़ी।

कूबरी (हिं० स्त्री०) कुआ, कुबरी।

कूबा (हिं० पु०) १ युगम्बर, कूबड़। २ बंछेरा रखने-
की टेढ़ी लकड़ी। ३ यन्त्रविशेष, कोई चीज। कूबा
सीसेसे गोल-गोल दुपकी बराबर बनता है। वह टेकु-
रीके नाचे चपकाया जाता है।

कूम (सं० स्त्री०) कोः पृथिव्या उमा कान्तिर्यस्मात्,
बहुव्री०। सरोवर, तालाब।

कूम (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। कूमका काष्ठ
अधिक सुट्ट होता है। गढ़वाल तथा चट्टग्राममें उस-
की उपज यथेष्ट है। कूमका काष्ठ गृहनिर्माणादिमें
व्यवहृत होता है। कहीं कहीं उसे जलाते भी हैं।

कूमटा (हिं० पु०) १ वृक्षविशेष, कोई पेड़। कूमटा
राजपूताने और सिन्धु प्रदेशमें उत्पन्न होता है।

(स्त्री०) २ कार्पासभेद, किसी किस्मकी कपास।

कूमटा धारवाड़में उत्पन्न होती है।

कूर (सं० पु०) अन्न, भक्त, भात।

कूर (हिं० पु०) १ जगानकी कमी, मजसूलमें रिपायत,
कूर बड़े छपकोंकी हलवाहा रखनेके लिये मुजरा
दिया जाता है। २ चूर, चूरा। ३ पिसेकी पुकारनेकी
बोली। (वि०) ४ कूर। कूर देखो।

कूरता (हिं०) कूरता देखो।

कूरपन (हिं० पु०) कूरता देखो।

कूरनारायण—यमकरत्नाकर नामक ग्रन्थके प्रणेता।

कूरा (हिं० पु०) १ राशि, जखीरा, ढेर। २ भाग,
हिस्सा।

कूरी (हिं० स्त्री०) १ छणभेद, चपरेला, मोतिया, किसी
किस्मकी घास। २ छुद्र राशि, छोटा ढेर। (वि०)
३ निरुद्धा, काम न करनेवाला।

कूरेश—पञ्चस्तवरचयिता एक ग्रन्थकार।

कूर्कर (सं० पु०) बालकोंका अनिष्टकारी एक दैत्य।

कूर्च (सं० पु०-स्त्री०) कूर्चते इति, कूर-चट् दोषघ्न
बाहुलकात् मधुः पर्ध्वदित्वात् स्त्रीषे पुंसि च। चर्च-
पुंसि च। पा १.४.११। १ सुष्टिपरिमाण कुश, सुठो भर
कुश।

“अथाजिनस्य सु-मे सविशं वाससाधितम्।

वादनं चैव कूर्चं तथाजिनमभिन्दते॥” (हरिवंश, १९८ अ०)

२ भूद्वयका मध्यस्थान, दोनों भोंके बीचकी जगह।

३ चित्रका उपरिभाग, हाथ और पैरके अंगूठे तथा
अंगूठेकी पासवाली अंगुलीके बीचकी ऊपरी जगह।

४ सुष्टिपरिमाण मयूरपुच्छ, सुठो भर मोरपंख।

५ अम्ल, दाढो, मूँछ। ६ केतव, फरेव, धोका। ७ विक-
त्यन, दरोगगोई, झूठी बात। ८ दम्भ, घमण्ड। ९
पासन भेद। १० काठिन्य, कड़ापन। ११ हुं वीज
मन्त्र।

“वर्गाद्यं वज्रिसंख्यं विधुरतिवर्जितं तत्तुल्यं कूर्चयुग्मम्।” (कपूरालिख)

१२ मलापकघंणार्थं केशादिगुच्छ, मेल भाड़नेके
लिये बाल वगैरहकी कुंची।

“वशीरकूर्चकं दत्वा सर्व पापः प्रसृज्यते।” (हरिभक्तिविलास, ६।४८)

१३ मस्तक, सर, मत्था। १४ भाण्डार, गुदाम।
कूर्चक (सं० पु०) कूर्चं स्वार्थं कन्। १ केशादिकृत
मार्कजी, बालकी कुंची या कलम। २ ध्वजके उपरि-
भाग और अधोभागका वस्त्रखण्ड, झण्डेके ऊपरी
हिस्से और निचले हिस्सेका कपड़ा। ३ जीवकवृक्ष।
४ जाङ्गलपक्षिविशेष, कोई जंगली चिड़िया।
५ भूमध्यादि देहांश। (स्त्री०) ६ दन्तधावनकुक्षिका,
दांत साफ करनेकी कुंची।

कूर्चकी (सं० त्रि०) कूर्चकमस्त्यस्य, कूर्चक-रनि।
पूष, स्थल, भरा पूरा, मोटा ताज़ा।

कूर्चपर्णी (सं० स्त्री०) मेघशृङ्गो, मेढासींगी।

कूर्चभाक् (सं० स्त्री०) भूर्जपत्र, भोजपत्र।

कूर्चमर्म (सं० स्त्री०) तन्नामक स्नायुमर्मपट्टक। कूर्च
मर्म अंगुष्ठ और अंगुलिके मध्य उपरिभागमें रहता है।

कूर्चल (सं० पु०) कूर्च-लच्। प्राणियोंका पुनर्दन्तो-
द्भमकाल, दूसरी बार दांत पानेका वक्त।

कूर्चशिरः (सं० स्त्री०) कूर्चस्य शिरः, इ-तत्। १ हस्त
और पादतलका उपरिभाग, हाथ और पैरका
ऊपरी हिस्सा। २ अङ्गि, स्तम्भ, पिंडरी। ३ तन्नामक
स्नायुमर्मचतुष्टय। कूर्चशिरःका स्थान गुल्फ-
मन्धिके अधोभागमें दोनों ओर होता है। (वृहत्)

कूर्चशोष (सं० पु०) कूर्चं अम्लं तद्वत् शोषं मस्य,
बहुव्री०। १ नारिकेलवृक्ष, नारियलका पेड़। २ जीवक-
शोषधि।

कूर्च शीर्षक, कूर्चशीर्ष देखो।

कूर्चशेखर (सं० पु०) कूर्च श्मश्रु तद्वत् शेखरमख,
बहुव्री०। नारिकेलवृक्ष, नारियलका पेड़।

कूर्चामुख (सं० पु०) विष्णुमित्र-वंशजात एक ऋषि।
(भारत, ११। ४ अः)

कूर्चिक (सं० पु०) कूर्चिका देखो।

कूर्चिका (सं० स्त्री०) कूर्च क स्त्रियां टाप् इकारादेशश्च।

प्रत्ययस्यात् कात् पूर्वस्यादिवाप्य सुपः। पा ७। १। ४४। १ तृत्तिका,
बाजका कलम। २ कुचिका, चाबी, कुंजी। ३ सुचिका,
सूई। ४ पुष्पकलिका, फूलकी कली। ५ क्षीर-
विक्रति, फटा दूध। कूर्चिका दधिकूर्चिका क्षीर
तत्ककूर्चिका भेदसे दो प्रकारकी होती है। दक्षिणे
साथ क्षीर पाक करनेसे दधिकूर्चिका क्षीर तत्कके साथ
क्षीर पाक करनेसे तत्ककूर्चिका बनती है। (भरत)

कूर्चिकापिण्ड (सं० पु०) किलाट, केना, फटे दूधका
मावा।

कूर्ट (सं० पु०) कूर्दतं इति, कूर्ट-अच्। १ कम्प, ऊलांग,
कूटफांद। २ सामभेद।

कूर्दन (सं० स्त्री०) कूर्द भावे ण्युट्। शिशुकीडा,
लड़कीका खेल, उल्लूक-कूद।

कूर्दनी (सं० स्त्री०) कूर्दतेऽस्मान्, कूर्द अधिकरणे ण्युट्
छोप् च। चैत्रमासकी पूर्णिमा तिथि, चैतकी पूरन-
मासी। कूर्दनीकी कामदेवका उत्सव करते हैं।

कूर्प (सं० स्त्री०) कूर् पाति, कूर्-पा-क दीर्घश्च। कूर्च,
भ्रू हयका मध्यस्थान, दोनों भौंके बीचकी जगह।

कूर्पर (सं० पु०) १ कफोष्णि, कुहनी। कूर्परका संस्कृत
पर्याय—कफोष्णि, भुजामध्य और कफणि है। २ जानु-
देश, घुटना।

कूर्परमर्म (सं० स्त्री०) कूर्पर स्थानस्थित मर्महय, कुह-
नीकी दो नाजुक जगहें।

कूर्परा (सं० स्त्री०) कूर्पर देखो।

कूर्पास (सं० पु०) कूर्परे शरीरे अस्मत्ते आस्ते वा, कूर्पर-
अस्-अच्, पृषोदरादिवत् रकारलोपे दीर्घश्च साधुः।
१ स्त्रियोंकी कञ्जुलिका, अंगिया, चोली। कूर्पासका
संस्कृत पर्याय—निबोलक, बारवाच और कञ्जु, क है
२ अर्धतोलक, पाध तोला। ३ चोल, वज्र, कपड़ा।

कूर्पासक (सं० पु०) कूर्पास स्वार्थे कन्। कञ्जु, क-
चोली।

“प्रसो हवारिसविशेषविविक्तमङ्गे

कूर्पासकं चतनखचतसृत्चिपको।” (भाष, ५। १२१)

कूर्म (सं० पु०) कु ईषकूर्मिर्बगोयस्य, पृषोदरादिवत्
साधुः। १ कच्छप, कहुवा।

“यावापृषिवीयः कूर्मः।” (युक्त्यनुः १४। ३४)

कूर्मका संस्कृत पर्याय—पञ्चनख, जलगुल्म, गुह्य,
कच्छप, कमठ, क्रीडपाद, चतुर्गति, पञ्चाङ्गुल, दोलेय,
जीवथ, पीवर और पञ्चगुल है।

वृहत्संहिताके ६४ अध्यायमें राजावोंका कूर्म-
पालन और कूर्मसङ्ग्रह इस प्रकार लिखा है—

“कटिभरजतवर्षा नीलराजीवचित्रः कलमसदृशमूर्तिश्चास्वयं कूर्मः।

अरुचसमवपूर्वा सर्षपाकारचित्रः सकलवृषमहत्वं मन्दिरस्थः करोति॥

अञ्जनभङ्गश्यामवपूर्वा विन्दुविधितोऽव्यङ्गशरीरः।

सर्पशिरा वा स्थूलनखो यः सोऽपि शृपाणां राक्षसिभ्यः॥

वेदूर्यलिट्-स्थूलकण्ठस्त्रिकोणे गूढच्छिद्रश्चास्वयं शयः।

क्रीडावासां तोयपूर्णं मथी वा शायः कूर्मो मङ्गलाय नरेन्द्रेः॥”

‘कटिक अथवा रजतकी भांति वर्षाविशिष्ट, नील-
पद्मचिह्नयुक्त, विचित्र, सुन्दर कलम जैसा तथा सुन्दर
पृष्ठदण्डवाला अथवा अरुचकी भांति रक्तवर्ण और
सर्पचिह्नसे चिह्नित कूर्म वृहत्में रहनेसे राजावोंका
महत्त्व वृद्धि करता है।

‘अञ्जन किंवा शङ्खकी भांति श्यामवर्ण, विन्दु विन्दु
चिह्नसे चिह्नित अविकलाङ्ग, सर्पकी भांति मस्तक-
विशिष्ट अथवा स्थूलकण्ठ कूर्म राजावोंका राज्यका
वृद्धिकारक है।

‘वेदूर्यमणिके समान कान्तिविशिष्ट, स्थूलकण्ठ,
त्रिकोणाकार, गूढच्छिद्र और सुन्दर पृष्ठदण्डयुक्त
कूर्म ही प्रशस्त है। राजावोंकी क्रीडा-वापी अथवा
जलपूर्ण वृहत् पात्रमें मङ्गल लाभके लिये कूर्मपालन
विधेय है।’

२ पृथिवी, जमीन। ३ प्रजापतिका कोई अवतार।

“यत् कूर्मो नाम एतदा रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजाः पञ्चनत,
अरुचजताकरोत्तदं अरुचरोत्तं तस्मात् कूर्मो अस्म्यो वे कूर्मस्यदाहः।”
(अथर्ववैजयन्त ५। १। ५। ५।)

४ देहस्थित नामादि पञ्चबायुके मध्य द्वितीय वायु। कूर्म वायु नेत्रोंमें अवस्थान करता है। इसीके कारण पक्षके खुला घौर बन्द हुवा करती है।

“उन्मोक्षने रजतः कूर्मो भिन्नाङ्गनसमप्रभः ।” (शारदातिथ्यष्टोका)

५ बद्धके कोई पुत्र, नाग। (भारत, १।६।१।४१)

६ गुल्ममदके किसी पुत्रका नाम। उन्होंने ऋग्वेदके २५ मण्डलका २०, २८ और २९ इत्यादि सूक्त प्रकाशित किया है।

७ विष्णुका द्वितीय अवतार। समुद्रके मन्थन काल भगवान् विष्णुने कूर्मरूप धारण करके मन्दरपर्वतको पृष्ठपर रखा था।

८ तन्त्रशास्त्रप्रसिद्ध कोई मुद्रा। तन्त्रसारमें कूर्म-मुद्राकी प्रक्रिया इस प्रकार लिखी है—

“वामहस्तस्य तर्जनीं दक्षिणस्य कनिष्ठया ।

तथा दक्षिणतर्जनीं वामाङ्गुष्ठेन योजयेत् ॥

उन्नतं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामस्य मध्यमादिकः ।

अङ्गुलीर्धोजयेत् पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च ॥

वामस्य पिङ्गलीर्धेन मध्यमानामिके तथा ।

अधोमुखे च ते कुर्याद्दक्षिणस्य करस्य च ॥

कूर्मपृष्ठसमं कुर्याद्दक्षिणाङ्गुलिं सर्वतः ।

कूर्ममुद्रे यमाख्याता देवताध्यानकरमेणि ॥”

वामहस्त वित्त करके उसके ऊपर दक्षिणहस्त रखना चाहिये। फिर वामहस्तकी तर्जनीके साथ दक्षिणहस्तकी कनिष्ठा और दक्षिण हस्तकी तर्जनीके साथ वाम हस्तकी वृद्धाङ्गुलि मिला देते हैं। किन्तु दक्षिणहस्तका अङ्गुष्ठ उन्नत रखना पड़ता है। अनन्तर वामहस्तकी मध्यमादि अवशिष्ट तीनों अङ्गुलि दक्षिणहस्तके पृष्ठदेशसे मिला देना चाहिये। दक्षिणहस्तकी मध्यमा और अनामिकाको वामहस्तका पिङ्गलीर्धेन पर्यात् अङ्गुष्ठ तथा तर्जनीके मध्यसे अधोमुख करते और दक्षिणहस्तका पृष्ठदेश कूर्मपृष्ठकी भांति सर्वप्रकार उन्नत रखते हैं। इसीका नाम कूर्ममुद्रा है। कूर्ममुद्रा देवताके ध्यानकार्यमें अनुष्ठेय होती है। ८ आसनविशेष, एक बैठक। उठयोगप्रदीपिकामें लिखा है :—

“शुद्धं निकष्य शुक्लाङ्गां व्युत्पत्तयेय सनाहितः ।

कूर्मासनं कथयितुं विदुः ॥”

शुक्लहस्त द्वारा शुक्लदेशकी दबाके क्रमविपर्ययसे अवस्थित होना चाहिये। इसीका नाम कूर्मासन है।

कूर्मचक्र (सं० लो०) कूर्माकारं चक्रम्, मध्यपदलो०।

१ अष्टाष्टोय मन्त्रका शुभाशुभसूचक कोई कूर्माकार चक्र। रुद्रयामलमें उक्त चक्रका विषय इस प्रकार लिखित है :—कूर्मचक्र शुभाशुभ फलबोधक है। इस चक्रका विषय अवगत होनेसे सर्वशास्त्रार्थ समझ पड़ता है। प्रथम चतुष्पाद-समावृत कूर्माकार महाचक्र अङ्कित करना चाहिये। उसके मुखदेशमें स्वरवर्ण, सम्मुखके दक्षिणपाद पर कवर्ग, वामपाद पर चवर्ग, पश्चात्के दक्षिणपाद पर टवर्ग, वामपाद पर तवर्ग, उदरमें पवर्ग, हृदयमें य र ल व, पृष्ठके मध्यस्थानमें श ष स ह, पुच्छमें शक्रवीज पर्यात् ल और लिङ्गके मध्य चकार सन्निवेशित करते हैं। उसके पीछे मन्त्रविद्व्यक्तिका गणना करना चाहिये। गणनामें स्वरवर्ण होनेसे लाभ, कवर्गसे श्री, चवर्गसे विवेक, टवर्गसे राजपदवी, तवर्गसे धनवान् है। उदरमें लिखित वर्ण जानेसे सर्वनाश, हृदयमें पड़नेसे बहु दुःख, पृष्ठस्थित वर्णमें सर्वप्रकार सन्ताप और लाङ्गुलस्थित वर्ण होनेसे निश्चित मरण होता है।

२ तन्त्रसार-वर्णित जपयन्त्रादिका शुभाशुभ सूचक कोई चक्र। तन्त्रसारमें इसका विषय इस प्रकार लिखित है :—चतुरस्र भूमिभेद करके ८ कोष्ठ अङ्कित करना चाहिये। पूर्व कोष्ठसे यथाक्रम सात वर्ग बनाये जाते हैं। ईशान कोणमें लक्ष और मध्य कोष्ठमें स्वरवर्ण शुक्लक्रमसे लिखना चाहिये। पूर्वादि दिक्के मध्य जिस कोष्ठमें जेवादि रहते, उसे मुख, उसके उभय पार्श्वस्थित दोनों कोष्ठोंको हस्त, उसके परवर्ती दोको कुनि और अवशिष्ट दोको पाद तथा पुच्छ समझते हैं। फल—मुखमें सिद्धि लाभ, हस्तमें अल्पजीवन, कुनिमें उदासीनता, पदमें दुःख और पुच्छमें पीड़ा, वन्धन तथा उच्चाटन है। कूर्मचक्र न जाननेसे जप यज्ञ करनेमें क्या फल मिलता है ? चक्र देखो।

कूर्मपित्त (सं० लो०) कूर्मस्य पित्तम्, इ-तत्। कूर्मका शरीरका पित्त धातु।

कूर्मपुराण (सं० लो०) कूर्मरूपो भगवान् कथित पुराण,

व्यास-प्रणीत षष्ठादश पुराणके मध्य षष्ठादश पुराण । इस पुराणमें निम्नलिखित विषय वर्णित है :—‘पूर्व-भाग’में विष्णुका कूर्मशरीरधारण, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षका माहात्म्य, इन्द्रद्युम्नराजप्रसङ्गमें दयाका आधिक्य, लक्ष्मीप्रद्युम्न-संवाद, वर्णाश्रमका आचार, जगतकी उत्पत्ति, कालसंख्या प्रलयके समय प्रभुका स्तव, सृष्टिविवरण, शङ्करचरित, पार्वती-सहस्रनाम, योगनिरूपण, भृगुवंशवर्णन, स्वायम्भुव मनुका विवरण, देवतागणकी उत्पत्ति, दक्षयज्ञभङ्ग, दक्षसृष्टि, कश्यप-वंशवर्णन, आत्रेयवंशवर्णन, कृष्णचरित, मार्कण्डेय-कृष्णसंवाद, व्यासपाण्डव-संवाद, युगधर्म, व्यास-जैमिनि संवाद, काशीमाहात्म्य, प्रयागमाहात्म्य, त्रैलोक्यवर्णन और वेदशास्त्रानिरूपण । उसके “उत्तर भाग”में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रका वृत्ति-निरूपण, सङ्करजातिकी वृत्ति, काम्यकर्मका विधान, षट्कर्म सिद्धि, मुक्ति, मोक्षका उपाय और पुराण श्रवणकी फलश्रुति है ।

कूर्मपुष्ट (स० ली०) कूर्मस्य पुष्टम्, ६-तत् । १ कच्छ-पका पुष्टदेश, कहुएकी पीठ ।

“कूर्मपुष्टीतौ चापि शोभते किङ्किणीकौ ।” (भारत, ३।४।११)

(पु०) कूर्मस्य पुष्टमिव तद्वत् कठोरत्वादित्यर्थः ।

२ अज्ञानपुष्ट ।

कूर्मपुष्टक (स० ली०) कूर्मपुष्टमिव कायते प्रकाशते कूर्मपुष्ट के-क । शराव ।

कूर्मपुष्टाखि (स० ली०) कूर्मस्य पुष्टाखि, ६-तत् ।

कूर्मके पुष्टदेशका अखि, कहुवेकी पीठकी हड्डी ।

कूर्मप्रस्थ—कुरुक्षेत्रके वज्रकोषमें अवस्थित एक नगर ।

(मविष्णु ब्रह्मसंहिता, ५०।११५)

कूर्मभट्ट—वाल्मीकीयवतके रचयिता ।

कूर्मराज (स० पु०) कूर्माणां राजा अष्टत्वात् कूर्मराजन-टत् । राजाः सन्निभाटत् । पा ३।३।२१ । कच्छगराज, कूर्मरूपो विष्णु । उन्मोने पुष्टीकोकी पुष्टपर वहन किया था ।

“दृष्टि । खिगभव भुजङ्गम् । धारदेनां

स कूर्मराज । तदिदं वितथं दधीयाः ।” (महाभारत)

कूर्मविभाग (स० पु०) कूर्मस्य भूदूतभगवदवयवस्य विभागोऽयम् । १ वराहमिहिरप्रणीत बृहत्संहिताका

१४वां अध्याय । इस अध्यायमें नक्षत्रानुसार देशका शुभाशुभ निरूपित हुआ है—

अश्विनी प्रभृति २७ नक्षत्रोंको ८ भागमें विभक्त करके तीनमें एक वर्ग बनाते हैं । १म—मध्यभागमें क्षत्तिका, रोहिणी तथा मृगशिरा तीन नक्षत्रों पर भद्र, अरिमेद, माण्डव्य, साह्य, नीप, उज्जिहान, संह्यात, मरु, वत्स, घोष, यासुन, सारस्वत, मत्स्य, माध्यमिक, माथरक, उपज्योतिष, धर्मारण्य, शूरसेन, गौरक्षीव, उद्देहिक, पाण्डु, गुड, अश्वत्थ, पाश्चात्, साकेत, कङ्क, कुरु, कालकोटि, कुकुर, पारिपात्र, औदुम्बर, कापिष्ठन और इस्तिना अवस्थित है । २य पूर्वदिक्की आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्या नक्षत्रमें अज्ञान, लघभध्वज, पद्म, माण्डवान्, व्याघ्रमुख, सुघ्न, कर्बट, चान्द्रपुर, शूर्प-कर्ण, खस, मगध, शिशिरगिरि, मिथिला, समनट, उद्, अश्वमुख, दन्तुरक, प्राग्ज्योतिष, लौहिल्य, चौरोंदममुद्र, पुरुषाद, उदयगिरि, भद्र, गोडक, पोण्ड्रक, उत्कल, काशी, मेकल, अम्बष्ठ, एकपद, ताम्रलसि, कोशलक और बर्धमान पड़ता है । ३य अग्निकाणमें अश्लेषा, मघा तथा पूर्व-फलानो नक्षत्रमें कोशल, कलिङ्ग, वङ्ग, उपवङ्ग, जठर, अङ्ग, शैलिक, विदर्भ, वत्स, अन्ध्र, चेदि, ऊर्ध्वकण्ठ, लघुक्षीप, नारिकेलक्षीप, चर्मक्षीप, विन्ध्यान्त-वासी, त्रिपुरा, श्मशुधर, हेमकुण्डर, व्यालक्षीव, महाक्षीव, किष्किन्ध, कण्टकस्थल, निषाद, पुरिक, दशार्ण, मग्न और पर्णशवर है । ४र्थ उत्तरफलांजी, हस्ता तथा चित्रा नक्षत्रमें दक्षिणदिक् लङ्का, काला-जिन, सौरि, कीर्ण, तालिकट, गिरिनगर, मलय, ददुर्, महेन्द्र, मालिन्य, भरु, कच्छ, कहुट, टङ्गन, वनवासी, शिविक, फणिकार, कौण्डण, आभौर, आशर, वेना, आवन्तक, दशपुर, गोनर्द, केरल, कर्णाट, महाटवी, चित्रकट, नासिन्ध, कोल्लगिरि, बाल, काश्च-क्षीप, जटाधर, कावेरी, ऋण्यभूक, वेदूर्य, शङ्क, मुक्त, अत्रि, आश्रम, बारिचर, धर्म (यम), पट्टन, होप, गणराज्य, कृष्णवैश्वर, पिथिक, शूर्पाद्रि, कुसुमगिरि, तुम्बर, कामशेयक, दक्षिणसमुद्र, तापसाश्रम, ऋषिक, काशी, मरुचो पट्टन, चेरी, आर्यक, सिंहल, ऋषभ, बलदव पट्टन, दण्डकारण्य, तिमिङ्गिलासन, भद्र,

कच्छ, कुञ्जरदरी, भार ताम्रपर्णी नदी है। ५म नैऋतकोषमें स्वाती, विशाखा तथा अनुराधा नक्षत्र पर पञ्चव, काम्योज, सिन्धुसौवीर, वङ्गवासुख, भारव, अम्बष्ठ, कपिल, नारीमुख, धानत, फेणगिरि, यवन, माकर, कर्णप्रावेय, पारसव, शुद्र, ववैर, किरात, खण्ड, क्रव्याद, आभीर, चञ्चक, हेमगिरि, सिन्धु, कालक, रैवतक, सुराष्ट्र, बादर और द्रविड़ पड़ता है। ६ष्ठ पश्चिमदिक्को ज्येष्ठा, मूला तथा पूर्वाषाढा नक्षत्रमें—मणिमान्, मेघवान्, वनौघ, क्षुरापण, अस्ताचल, अपरा-न्तक, शान्तिक, हेहय, प्रशस्ताद्रि, वोक्काण, पञ्चनद, रमठ, पार, ततार, जिति, जङ्ग, वैश्य, कनक और शक आता है। ७म वायुकोषमें उत्तराषाढा, श्रवणा तथा धनिष्ठा नक्षत्र पर माण्डव्य, तुषार, ताल, हल, मद्र, अश्लक, कुलूत, लङ्क, स्त्रीराज्य, नृसिंहवन, खल्य, वेणुमती, फलगुलका, गुरुहा, मरुकुञ्च, चर्मरङ्ग, एक-विलोचन, शुलिक, दीर्घघीव, दीर्घास्य और कुश है। ८म उत्तरदिक्को शतभिषा, पूर्वभाद्रपद तथा उत्तर-भाद्रपद नक्षत्र पर कैलास, हिमालय, वसुमान् एवं धनुष्मान् पर्वत, कौश, मेरु, कुरु, क्षुद्रमीन, कैकय, वसति, यामुन, भोगप्रस्थ, चार्जुनायन, आम्बोध, आदर्श, अन्तर्होप, त्रिगर्त, तुरगानन, अश्व-सुख, केशधर, चिपिट-नासिक, दाबेरक, वाटधान, शरधान, तक्षशिला, पुष्कलावत, कैलावत, कण्ठधान, अम्बर, मद्रक, मालव, पौरव, कच्छार, दण्डपिङ्गलक, मानहल, कूण, कोहल, शीतक, माण्डव्य, भूतपुर, गन्धार, यशोवति, हेमताल, राजन्य, खचर, गन्ध, योधेय, दासमेय, श्लमाक और जेमधूत पड़ता है। ९म ईशानकोषमें रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्र पर मेरुक, नष्टराज्य, पशुपाल, कोर, काश्मीर, अभिसार, दरद, तङ्गव, कुलूत, सेरिन्ध्र, वनराष्ट्र, ब्रह्म-पुर, दार्व, डामर, वनराज्य, किरात, चीन, कौण्डिन्ध, भक्त, पक्षील, जटासुर, कुनठ, खस, घोष, कुचिक, एकचरण, अनुविश्व, सुवर्णभू, वसुवन, दिविष्ठ, पौरव, जोरनिवसन, त्रिनेत्र, सुञ्जाद्रि और गन्धर्व देश अवस्थित है।

जिस नक्षत्रमें जा जो देश निरूपित हुये हैं, उसमें

कूरयङ्गका योग होनेसे उन देशोंके राजा और प्रजा-गणका अमङ्गल होता है। (ब्रह्मसंहिता, १४ पं०)

कूर्मशौर्षक (सं० पु०) जीवकवृक्ष, एक पेड़।

कूर्मा (सं० स्त्री०) बाणाभेद, एक बाजा।

कूर्माङ्गन्याय (सं० पु०) कूर्माङ्गदृष्टान्तमूलको न्याय, मध्यपदको०। कूर्माङ्गदृष्टान्तमूलक एक लौकिक न्याय। कूर्म जिस प्रकार स्वेच्छाक्रमसे स्वीय अङ्ग सङ्कुचित और प्रसारित कर सकता, उसी प्रकार कोई कार्य किया जानेसे उक्त न्याय लगता है।

कूर्मावतार (सं० पु०) कूर्म कूर्मरूपे अवतारोऽवतरणं, कूर्मदेहधारणमित्यर्थः। विष्णुका कूर्मदेह धारण, द्वितीय अवतार।

कूर्मासन (सं० स्त्री०) कूर्म देखो।

कूर्मि (वे० त्रि०) वृत्तिकर्मि देखो।

कूर्मिका (सं० स्त्री०) पुरातन वाद्यविशेष, एक पुराना बाजा। उसमें तार चढ़ते थे।

कूर्मी, कूर्मिका देखो।

कूर्माव्रता (सं० स्त्री०) योनिभेद।

“कूर्माव्रता भवेद्योनिः कूर्मपृष्ठमिवोव्रता” (लोकप्रकाश)

कूल (सं० स्त्री०) कूलति पातुष्येति जलप्रवाहम्, कूल-अच्। १ नद्यादिका तोर, नदी वगेरङ्गका किनारा।

“उक्ता कूले कलहंसमण्डली” (नेषध)

कूलका संस्कृत पर्याय—रोधः, तोर, प्रतोर, तट, तटो, वेला, प्रयात और कच्छ है। २ स्तूप, खम्भा। ३ तड़ाग, तालाव। ४ सेन्यपृष्ठ, फौजका पिछला हिस्सा। ५ अन्तिक, समीप, पास।

“कूलाय कूलेषु मिलुष्य ते सुताः” (नेषध)

“कूलायकूलेषु नौकान्तिषु” (सन्निपाय)

कूलक (सं० पु० स्त्री०) कूल स्त्रार्थ कन्। १ तोर, किनारा। २ स्तूप, ऊँचा खम्भा। ३ क्षमिपर्वत, दीम-ककी पहाड़ी। ४ क्षुद्र वृक्षविशेष, एक छोटा पेड़।

५ पटोलपत्र, परवलको पत्ती। ६ पटोल, परवल।

कूलङ्गण (सं० त्रि०) कूलं कषति व्याप्नोति भिनत्ति, कूल-कष-खच्-सुम्। सर्वकूलायकरीषेषु कवः। पा १। २। ४२।

१ कूलव्यापक, किनारेमें भरा हुआ। (पु०) २ समुद्र।

कूलक्षपा (सं० स्त्री०) कूलक्षप स्त्रियां टाप्। नदी, दरया।

“कूलक्षपेव सिंधुः प्रसन्नमभक्षटतर्बच ।” (शकुन्तला ५ अ०)

कूलचर (सं० त्रि०) कूले नद्यादीनां तीरे चरति, कूल-चर-ट। १ नदीतीर विचरण करनेवाला, जो दरयाके किनारे घूमता हो। (पु०) २ नदीतीर विचरण करने वाला पशु, जो जानवर दरयाके किनारे घूमता हो। सुश्रुतके मतमें गज, गवय, मृग, हस्तिजातीय मृग, चमर, बालमृग, रोहितजातीय मृग, वराह, गण्डार, मोहरिण, कालपुच्छ, कोन्द्र, बहुशृङ्गविशिष्ट न्यहु-जातीय मृग और अरण्यागवय प्रभृति कूलचर पशु हैं।

कूलचर पशुका मांस वायुपित्तनाशक, हृष्य, बलकारक, मधुर, शीतल, स्निग्ध, मूत्रजनक और कफ हृदिकारक होता है। (भावप्रकाश)

कूलन्धय (सं० त्रि०) कूलं धयति, कूल-धे-ट्-खश्-सुम्।

(बोप) कूलच्छर्मा, किनारेकी छूनेवाला।

कूलभू (सं० स्त्री०) कूलस्य तीरस्य भूभूमिः, इ-तत्।

तीरभूमि, किनारेकी जमीन।

कूलमुद्रज (सं० त्रि०) कूलमुद्रजयति, कूल-उत्-वृज-खश्-सुम्। उदिकृषि हजिवहोः। पा १। २। २१। कूलभेदक, किनारेकी फाड़नेवाला।

“शामादितो जयं त्रयं न गजेः कूलमुद्रजेः।” (महि)

कूलमुद्रह (सं० त्रि०) कूलं उद्वहति, कूल-उ-द-वृ-खश्-सुम्। कूलभेदक, किनारेकी तोड़ फोड़ डालनेवाला। “उत्तीर्णो वा कथं भीमाः सरितः कूलमुद्रहाः।” (महि)

कूलवती (सं० स्त्री०) कूलमस्त्यस्याः, कूल वलादित्वात् मतप् मस्य वः स्त्रियां डीप्। नदी, दरया।

कूलहण्डक (सं० पु०) तड़ागादौ हण्डते संघी भवति, कूल-हण्ड सुमागमस्य हृषोदरादित्वात् उकार लोपे साधुः। जलावत, गिर्दाब, पानीका भंवर।

कूला (हिं० पु०) १ शुद्ध कृत्रिम जलप्रवाहविशेष, बन्नी, नाली। २ कूल्हा।

कूलास (सं० त्रि०) कूलं अस्वति क्षिपति, कूल-अस-अण्। कूलक्षेपक।

कूलिक (सं० पु०) इक्ष्वाकु-वंशीय एक राजा। वह प्रसेनजित्के पौत्र और कुट्टकके पुत्र रहे। (महा २०। १२२) हेमचन्द्र-कृत महावीर-चरित्रमें लिखा है कि

मगधराज प्रसेनजित्के पुत्र अणिक और अणिकके पुत्र कुलिक थे। बौद्धशास्त्रके अनुसार अणिक शाक्य-सिंहके समसामयिक रहे। विष्णुपुराणमें कुण्डक, ब्रह्माण्डपुराणमें कुलिक और किसी किसी हस्तलिपिमें ‘कुलिक’ पाठान्तर दृष्ट होता है।

कूलिका (सं० स्त्री०) कूलिक-टाप्। वीणाका तल देश, वीन या सितारके नीचेका हिस्सा।

कूलिनी (सं० स्त्री०) कूलमस्त्यस्याः, कूल-इनि स्त्रियां डीप्। नदी, दरया।

“देशः प्रवलतीर्थाऽयं महापद्मसरोजलेः।

कूलिनीमिथ शवलः खल्योत्पत्तिः सदाभवत्॥” (राजतरङ्गिणी, ५। ७२)

कूलौ (सं० त्रि०) कूलमस्त्यस्य, कूल-इनि। कूलयुक्त किनारादार।

कूलौ (हिं० स्त्री०) १ मत्स्यविशेष, कोई छोटी मछली। वह दक्षिणभारतकी नदियोंमें पायी जाती है। २ कूला।

कूलेश्वर (सं० पु०) कूले चरति, अलुक्-स०। नद्यादि तीरविहारी पशु, नदी वगैरहके किनारे घूमने फिरनेवाला जानवर। कूलचर देखो।

कूल्लना (हिं० स्त्री०) कांखना, कराहना, पाह भरना।

कूल्ला (हिं० पु०) १ अस्थिविशेष, पेड़की दोनों तर्फ उभरी हुई इड्डियां। कूल्ला कौल्लके नीचे कमरमें होता है। २ कुश्तीका एक पेंच। अपनी जोड़की कूल्ले पर साद कर चित फेंकनेका नाम कूल्ला है।

कूल्ली (हिं० स्त्री०) पित्तल, पीतल।

कूलत (अ० स्त्री०) शक्ति, ताकत।

कूलर, कूलर देखो।

कूलार (सं० पु०) कुं पृथिवीमावृणोति कु-वृ-अण् हृषोदरादिवत् दीर्घे साधुः। समुद्र, बहर।

कूल्ल (वै० पु०) हवनीय देवताभेद।

“प्रदरान् पावुना कूल्लान्कपिच्छैः।” (यत्नयलुः २५। ७)

‘कूल्लान् दीवान् प्रीचानि’ (महोदर)

कूपाण्ड (सं० पु०) कु-ईषदूषा अन्तेषु वीजेषु यस्य।

१ कुष्माण्डलता, कुम्हड़ेकी बेल। २ गणदेवताभेद।

३ यक्षुर्वेदीक मन्त्रविशेष।

“कूष्माण्डे वापि जुडयाइष्टतमसौ यथाविधि।” (मनु ८।१०६)

“कूष्माण्डा नाम मन्त्रा यजुर्वेदे पठ्यन्ते।” (मेधातिथि)

४ कृषिभेद। (याज्ञवल्क्य १।२८५) कूष्माण्ड देखो।

कूष्माण्डक, कूष्माण्ड देखो।

कूष्माण्डकी (सं० स्त्री०) १ भूमिकूष्माण्ड, भुइँकुम्हड़ा।

२ कूष्माण्डलता, कुम्हड़ेकी बेख।

कूष्माण्डवटिका (सं० स्त्री०) कलायकूष्माण्डशस्यकृत वटीविशेष, कुम्हड़ेकी बड़ी, कुम्हड़ौरी। वह पित्तरक्त और लघु होती है। (वेद्यकनिघण्टु)

कूष्माण्डिका (सं० स्त्री०) पीताम्बु, पीली लौकी।

कूष्माण्डिकी, कूष्माण्डिका देखो।

कूष्माण्डिनी (सं० स्त्री०) एक देवी।

कूष्माण्डी, कूष्माण्डी देखो।

कूषल (हिं० पुं०) लघुविशेष, एक घास। उसके लघु-लौका भाड़ू बनाते हैं।

कूड (हिं० स्त्री०) १ चिगघाड़, हाथीकी बोली। २ चिगाइट, चीख।

कूडा (सं० स्त्री०) कुम्भटिका, कुहरा।

कूही (हिं० स्त्री०) पक्षिविशेष, एक शिकारी चिड़िया। वह बाज-जैसी होती है।

कृक (सं० पुं०) कृक-कृक। गलदेश, कण्ठ, गला।

कृकण (सं० पुं०) कृक इति कणति शब्दं करोति, कृक-कण-पञ्च। १ कृकरपक्षी, कोई चिड़िया। २ कृमि, कीट, कीड़ा। ३ सात्वतवंशीय भजमान राजपुत्रभेद।

(विष्णुपुराण, ४।१।२) ४ स्थानविशेष, कोई जगह।

कृकण्यु (सं० पुं०) पुरुवंशीय रौद्राक्षके एक पुत्र। (हरिवंश, ३१ अध्याय)

कृकदाशु (दे० पुं०) हिंसाकारक, शत्रु।

“सर्वं परिक्रम्य जडि जंमया कृकदाशुम्।” (ऋक् १।२८।०)

“कृकदाशु” पञ्चदिवस हिंसाप्रदं शत्रुम्। (सायण)

कृकर (सं० पुं०) कृक करणं जगत् सृष्टिसंहारादिकार्यं करोति, कृक-कट। १ शिव। २ शत्रुकर शरीरस्थ वायु, हौक खानेवाली हवा।

“कृकरस्तु हते चेव जगत्समसन्निभः।” (भारताविचकटीका)

३ कृकचपक्षी, कोई चिड़िया। ४ चम्पक। वह लघु और कामाग्निवर्धन होती है। (भविष्यति)

५ करवीरवृक्ष, कमेरका पेड़।

कृकरा, कृकरा देखो।

कृकल, कृकर देखो।

कृकला (सं० स्त्री०) कृकाकारं गलदेशाकृतिं लाति गृह्णाति कृक-ला-क स्त्रियां टाप्। १ पिप्पली, पीपल। २ कृकलासस्त्री, मादा गिरगिट।

“सर्पदन्तं गृहीत्वा तु कृकलश्चिकनयकम्।

कृकलालारक्तसंयुक्तं सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत्॥” (इन्द्रजाल)

कृकलाश (सं० पुं०) कृकं कण्ठदेशं लासयति शोभायुक्तं करोति, कृक-लास-णिच्-पञ्च। कृकलास, गिरगिट।

कृकलास (सं० पुं०) सरीसृपजातीय एक जन्तु, गिरगिट। उसका संस्कृत पर्याय—सरट, वेदार, कृकचपात, लणाञ्जन, प्रतिसूर्य, प्रतिसूर्यकयानक, वृत्तिस्थ, कण्ठकागार, दुरारोह, द्रुमाश्रय और भयानक है।

“कृकलासः पिप्पला शकुनिके।” (वाजसनेयसंहिता २।४।४०)

कृकलासक (सं० पुं०) कृकलास स्वार्य कन्। कृकलास, गिरगिट।

कृकवाकु (सं० पुं०) कृकेन गलदेशेन वक्ति कृक-वच्-लुष् कक्षान्तादेशः। कृकवचः कच। उच २।१।६ १ कुकुट, मुरगा। “कृकवाकुः सावित्री हंसी वातस्य।” (यजुसुक्तः २।४।१५)

“कृकवाकुः तावचपः।” (महीधर)

२ मयूर, मोर।

“लताकण्डकसङ्गीर्षीः कृकवाकूपनादिताः।” (रघुवंश, २।१८)

३ कृकलास, गिरगिट।

कृकवाकु (सं० स्त्री०) गृहगोधिका, छिपकली।

कृकवाकुध्वज (सं० पुं०) कृकवाकुर्मयूरोध्वजेऽस्य, बहुव्री०। कार्तिकेयका एक नाम।

कृकषा (सं० स्त्री०) कृक इति शब्दं कणति, कृक-कष-पञ्च स्त्रियां टाप्। कृकषाहारिक पक्षी, चिड़ियेकी एक खास किस्म।

“कृकषाया जायुःकामस्य।” (पारस्करगृह्यसूत्र १।१२)

कृकाट (वे० स्त्री०) कृकं गलदेशमटति, कृक-अट्-पञ्च। गलदेशका सम्बन्धक, हलक, गलेका जोड़।

“इन्द्रः शिरोऽग्निलंघाटं यमः कृकाटम्।” (अथर्व २।४।१)

कृकाटक (सं० स्त्री०) कृकाट स्वार्य कन्। १ गलदेश, हलक। २ स्तम्भांश, कंभका हिस्सा।

कृकाटिका (सं० स्त्री०) कृकाट स्त्रियां टाप् अकारश्च-
कारश्च । १ ग्रीवापश्चात्भाग, गर्दनका पिछला हिस्सा ।
२ ग्रीवाका वैकल्पिकार मर्महय, गर्दनकी दो नाजुक
जगहें ।

कृकालिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया ।

कृकी (सं० पु०) बौद्धशास्त्रोक्त एक पुराने राजा ।

कृकुलाम (सं० पु०) कृकुलाम पृषोदरादित्वात् साधुः ।
गिरगिट ।

कृकुवुत्स्या (सं० स्त्री०) बन्दर ।

कृकर (सं० पु०) करीर ।

कृच्छ्र (सं० पु०-स्त्री०) कृन्तति सुखम्, कृति छेदने रक्-
छकारान्तादेशश्च । कृतेच्छकृच् । उण्-१।२१। १ दुःख, तक-
लीफ । “तथा व्यग्रमिदं दृष्ट्वा कृच्छ्रादयादाविमुच्यते ।” (मनु ६।७८)

कृन्तयत्यनेन पापम् । २ सान्त्वननादि व्रत ।
संहिताकारानि अनेक प्रकार कृच्छ्रका विधान किया
है । याज्ञवल्क्य कहते हैं :—

“गोमूत्रं गोमयं चौरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।

जम्भापरं ऽङ्गु पवसन् कृच्छ्रं सान्त्वनचरन् ॥”

पूर्व दिवस आहार परित्यागपूर्वक गोमय, गोमूत्र,
चौर, दधि और घृत पञ्चगव्य कुशोदकके साथ पीकर
दूसरे दिन उपवास करना चाहिये । पीछे सप्तम दिवस
भी उपवास करते हैं । इसका नाम है रात्रिक सान्त्वन
कृच्छ्र है ।

“गोमूत्रं गोमयं चौरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।

एकेनं प्रत्यहं पीत्वा त्वहोरात्रमभोजनम् ॥” (जावाल)

छह दिन आहार परित्याग-पूर्वक प्रत्यह दिन
गोमूत्र प्रभृति पञ्चगव्य और कुशोदक यथाक्रम एक
एक पीना चाहिये । पीछे सप्तम दिवस उपवास करते
हैं । इसका नाम सप्ताहसाध्य कृच्छ्रसान्त्वन है । याज्ञ-
वल्क्यने इसे महासान्त्वनकृच्छ्र कहा है । (१।२१५)

एतन्नैव प्राजापत्यकृच्छ्र है । उसे प्राकृतकृच्छ्र भी
कहते हैं । (मनु १।१२९१) तप्तकृच्छ्र (मनु १।१२९५),
चान्द्रायणकृच्छ्र (मनु १।१२९८-२९७) (याज्ञवल्क्य १।२९५),
पराककृच्छ्र (मनु १।१२९६), कृच्छ्र (मनु १।१२९१), अति-
कृच्छ्र (मनु १।१२९४), पर्यंककृच्छ्र (याज्ञवल्क्य १।२९६) पादकृच्छ्र
(याज्ञवल्क्य १।२९८), कृच्छ्रातिकृच्छ्र (याज्ञवल्क्य १।२९०),

सौम्यकृच्छ्र (याज्ञवल्क्य १।२९०) और तुलापुरुष (याज्ञवल्क्य
१।२९१) प्रभृति कई प्रकारके दूसरे कृच्छ्र भी होते
हैं । मार्कण्डेयने पत्रकृच्छ्र, फलकृच्छ्र और मूलकृच्छ्र,
इत्यादि एकादश प्रकारके कृच्छ्रोंकी बात कहो है ।

३ पाप, गुनाह । ४ मूलकृच्छ्ररोग, कम पेशाब
आनेकी बीमारी । ५ कष्टसाधक, तकलीफ देनेवाला ।
६ कष्टयुक्त, तकलीफमें पड़ा हुआ । ७ कष्टसाध्य,
मुश्किलसे होनेवाला ।

कृच्छ्रकर्म (सं० स्त्री०) कृच्छ्रं कष्टसाध्यं कर्म,
कर्मधा० । कष्टसाध्यकर्म, मिहनतसे होनेवाला काम ।
कृच्छ्रप्राण (सं० त्रि०) कृच्छ्रं कष्टं विपदं गताः प्राणा
यस्य । विपदग्रस्त, मुश्किलमें पड़ा हुआ ।

“क्षेत्रेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेवपुंरिति ।

कृच्छ्रप्राणाः प्रजा ह्येष रक्षिष्यन् जसेन्द्रवत् ॥” (भागवत, ४।१६।८)

कृच्छ्रमूत्रपूरीषत्व (सं० स्त्री०) मूत्रं च पूरीषश्च,
समाहारइन्द्र; कृच्छ्रं कष्टसाध्यं मूत्रपूरीषं तस्या-
इत्यर्थः यस्य, बहुव्री० तस्य भावः, कृच्छ्र-मूत्र-पूरीष-
त्व । मलमूत्र परित्यागके समय मलकाठिन्य और
मूत्रावरोध-जन्य यन्त्रणा, दस्त और पेशाब उतरनेकी
तकलीफ ।

कृच्छ्रसाध्य (सं० त्रि०) कष्टसाध्य, मुश्किलसे अच्छा
होनेवाला ।

कृच्छ्रसान्त्वन (सं० पु०-स्त्री०) कृच्छ्रं सान्त्वनम्,
कर्मधा० । एक व्रत । कृच्छ्र देखो ।

कृच्छ्रहर (सं० पु०) पाषाणभेद, एक पत्थर ।

कृच्छ्रातिकृच्छ्र (सं० पु०) कृच्छ्रादपि अतिकृच्छ्रः । एक
कृच्छ्रव्रत ।

“कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम्” (याज्ञवल्क्य १।२९०)

एकविंशति दिवस केवलमात्र दुग्ध पान करके
कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत आचरण करना पड़ता है । वशिष्ठ
कहते हैं :—

“अनुब्रूयतेऽतीत्यः कृच्छ्रातिकृच्छ्री यावत् सकृदादीत यावदेकवारमदकं
हसेन गृहीतुं शक्नोति नावन्नवसु दिवसेषु भक्षयित्वा वाहसुपवासः
कृच्छ्रातिकृच्छ्रः ।”

एक अच्छलमें जितना जल था सके, उतना ई
प्रत्यह एक बार मात्र पी कर ८ दिन रहना चाहिये ।

उसके पीछे ३ दिवस उपवास करते हैं। इसीका नाम कृष्णातिकृष्ण है। सुमन्तके मतमें—

“हादशरात्रं निराहारः स कृष्णातिकृष्णः तत् कृष्णातिकृष्णं यद्वा दशाहसाध्यमशक्तविषयम्।”

हादश रात्रि निराहार रह कर कृष्णातिकृष्ण व्रत पालन करना चाहिये। यह हादशाहसाध्य कृष्णातिकृष्ण अचम व्यक्तिके प्रति विधेय है। ब्रह्मपुराणमें निम्नलिखित वचन देख पड़ता है—

‘चरेत् कृष्णातिकृष्णं च विधेनोयं च शीतलम्।

एकविंशतिरात्रं तु चाश्वेतेषु संयतः॥”

इक्कीस दिन प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल तीन-बार मात्र शीतल जल पान करके कृष्णातिकृष्ण-व्रत आचरण करना चाहिये।

कृष्णामृत (सं० त्रि०) कृष्णात् कष्टात् मुक्तम्, पलु-कसं०। पञ्चम्याः लोकादिभ्यः। पा ३।१।२। कष्टमुक्त, मुश्किलसे छूटा हुआ।

कृष्णारि (सं० पु०) कृष्णस्य कष्टस्य कष्टदायक रोगस्य वा परिनिर्णयकः, इ-तत्। विष्ण्वान्तरवृक्ष, किसी किसमके बेलका पेड़।

कृष्णार्ध (सं० पु०) कृष्णस्य व्रतविशेषस्य अर्धः अर्धांशः, इ-तत्। कुछ दिन साध्य एक व्रत। यह हादश दिन साध्य कृष्णव्रतका अर्धांश होता है—

“सायं प्रातस्तथैकैकं दिनद्वयमवाचितम्।

दिनद्वयं च नाश्रियात् कृष्णार्धः सोऽभिधीयते॥” (प्रायश्चित्तविवेक)

एक दिन प्रातःकाल और एक दिन रात्रिको एक बार आहार करके रह जाना चाहिये। फिर दो दिन प्रायश्चना करके आहार नहीं करते और दो दिन उपवास रखते हैं। इसीका नाम कृष्णार्धव्रत है।

कृष्णी (सं० त्रि०) कृष्णं कष्टमस्वस्य, कृष्णसुखादि-त्वात् इति। सुखादिभ्यः। पा ३।१।२। १ विपदापन्न, तक-लीफ पानेवाला। २ क्रुद्ध, नाराज।

कृष्णैवित् (वे० त्रि०) १ विपदग्रस्त। २ विपदके नाशमें सचेष्ट।

“सादुपबन्धः पितरो बन्धुषाः कृष्णैवितः शत्रोर्वन्तो नमीराः।”

(ऋक् ६।०।१।२)

‘कृष्णैवितः शत्रोर्वन्तो नमीराः।’ (सायण)

कृष्णोन्मील (सं० पु०) कृष्णादुन्मीलः उन्मीलनं नेत्रयो-रित्थयः यस्मिन्। चक्षुरोगविशेष, आँख का एक बीमारी।

कृष्णोन्मीलन (सं० पु०) कृष्णादुन्मीलनं नेत्रयोरित्थयः यस्मिन्। चक्षुरोगविशेष, मुश्किलसे आँख खुलनेका बीमारी। वाग्भटने इस रोगका लक्षण इस प्रकार लगाया है—

“चक्षुःशूलं नरलक्षणं प्राप्य वर्त्तामयाः शिराः।

सुप्तोत्थितस्य कुर्वते वर्त्तमानः सवेदनम्॥

पांशुपूर्वाभनेतलं कृष्णोन्मीलनमस्य च।

विमर्दनात् स्याच्च समं कृष्णोन्मीलं वदन्ति तम्॥”

कृष्ण (सं० पु०) कृष्णर देखो।

कृष्ण (सं० पु०) क बाहुलकात् लुः णत्वञ्च। चित्रकर-जाति, सुसंस्वर, चितेरा।

कृत् (सं० त्रि०) करोति, कृ-कृप् तुगागमश्च। १ करनेवाला, जो करता हो। कृत् शब्दका व्यवहार पृथक् नहीं होता। कोई शब्द उपपदमें रहनेसे यह अर्थ प्रकाश कर सकता है। (पु०) २ पाणिन्यादि व्याकरणका प्रत्ययभेद, धातुके उत्तर तिङादि भिन्न पानेवाला समस्त प्रत्यय। कृदतिङ्। पा ३।१।२। १। “अवापि भाविष्येभ्यो धातुभ्यो नैगमाः कृतो भाष्यते। (निबन्ध २।२)

कृत (सं० त्रि०) क्रियते क कर्मणि क्तः। १ विहित, सम्पादित।

“कृत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्।” (ऋक् ७।६१।२)

२ प्रसूत, तैयार।

“कृते योनौ वपतेह योज्ज्वलः।” (ऋक् १०।१०।१२)

३ प्राप्त, हासिल, लिया हुआ।

“कृतस्य कार्वाणं वेदं क्वाति।” (अथर्व १।२।५)

४ यथेष्ट, ठीक।

“इतरं तु कृतम्।” (शतपथब्राह्मण ३।६।२।२)

५ निकटस्थित, नजदीक रहनेवाला। ६ अभ्यस्त, महावरा रखनेवाला। ७ पर्याप्त, काफी। ८ हिंसित।

(अथर्व०) ९ पलम्, बस।

(ली०) क भावे क्तः। १० वीर्यकर्म, बड़ा काम।

“ने कृत्वा योजं प्रथमा कृतानि।” (ऋक् ७।६५।३)

११ कृत उपकार, इहसान।

“निषिद्धी कृतकृत्य ये च निषासपातकाः ।

ते नरा नरकं याति बाधयन्दिवाकरी ॥” (उष्ट)

१२ फल, फायदा । १३ लब्ध, द्राविड की बुद्धि चीज । १४ क्रीडाका निर्धारित पण, दांव पर लगा हुआ पैसा । १५ सुण्डन द्रव्य, लूटका रुपया । १६ सत्ययुग ।

“कृतमेतादिसर्गे च युगाख्या इति कस्यसतिः ।” (विष्णुपुराण १।१।४३)

१७ मोदन शक्त्यादि हव्यकी संज्ञा ।

“कृतमोदनशक्त्यादि तण्डुलादि कृताकृतम् ।

श्रीश्रादि चाकृतं प्रोक्तमिति द्रव्यं विधा बुधैः ॥” (कात्यायन २।४।३)

(पु०) १८ कोई विश्वदेव । (भारत १।१।२१ अध्याय)

१९ वसुदेवके कोई पुत्र । (भागवत ८।१४।४६) २० सुमतिके पौत्र और सत्यतिके पुत्र । वह कौशल्य हिरण्यनाभके शिष्य रहे । (हरिवंश, २० पं०) २१ उत्तरयुके पुत्र और विवुधके पिता । (विष्णुपुराण ४।१।२२) २२ जयके पुत्र और हर्यवकके पिता । (भागवत ८।१०।१६) २३ अवधके पुत्र और उपरिचर वसुके पिता ।

(विष्णुपुराण ४।१।२१८)

कृतक (सं० त्रि०) कृती छेदने कृन् । १ कृत्रिम, बनावटी ।

‘आयं रूपसमाचारं चरन् कृतके पयि ।’ (भारत, १।१।४८ पं०)

(क्री०) २ विडुलवध । इसका संस्कृत पर्याय—विडु, पाण्ड, द्राविड और आसुर है । ३ रसाञ्जन । (पु०) ४ मदिरागर्भजात वसुदेवके कोई पुत्र ।

(भागवत, ८।१४।४०)

कृतकर्तव्य (सं० त्रि०) कृतं निष्पादितं कर्तव्यं येन, बहुव्री० । अपना कर्तव्य कर्म सम्पन्न करनेवाला, जो अपना फर्ज पदा कर चुका हो ।

कृतकर्मा (सं० त्रि०) कृतं कर्म येन, बहुव्री० । १ दत्त, होशियार ।

“अथ बाण्यस्मिन्नेन कृत्यामि हकीदर ।

कृतकर्मा परिश्रान्तः साधु तावदुपारम ॥” (भारत, १।१।४८)

२ स्वकार्य निष्पन्न करनेवाला, जो अपना काम कर चुका हो ।

“बाण्यदकं न यावे च कृतकर्मा दिवाकरः ।” (रामायण, ६।८५।१२)

३ परमेश्वर, कर्तव्यकर्म न रखनेवाला । जिसका

शक्ताशक्तादि कर्म सम्पन्न हो जाता, वही कृतकर्मा कहलाता है । (योगशास्त्र)

कृतकल्प (सं० त्रि०) कृतः निष्पादितः परिश्रान्तः कल्पो लोकव्यवहारो येन, बहुव्री० । लौकिक व्यवहारादिमें अभिन्न, दुनियाका कामकाज समझनेवाला ।

“लौकिके समवाचारे कृतकल्पो विशारदः ।” (रामायण, २।१।१६)

कृतकाम (सं० त्रि०) कृतः सिद्धः कामोऽभिलाषो यस्य, बहुव्री० । अभिलषित पदार्थ पानेवाला, जो अपनी सुराद पूरी कर चुका हो ।

कृतकार्य (सं० क्री०) कृतं निष्पादितं कार्यम्, कर्मधा० । १ निष्पादित कर्म, किया हुआ काम । (चि०) कृतं निष्पादितं कार्यं येन, बहुव्री० । २ कार्यसाधन करनेवाला, जो काम कर चुका हो ।

“समृद्धकार्यं आयातान् कृतकार्यान् विचर्जयेत् ।” (याज्ञवल्का, २।१८९)

कृतकाल (सं० पु०) कृतो निर्धारितः कालः । १ निर्धारित समय, सुकरर वक्त । “कृतशिल्पोऽपि निवसेत् कृतकालं गुरो-र्यं ॥” (याज्ञवल्का २।१८०)

(त्रि०) कृतो निर्धारितः प्राप्तः अपेक्षितो वा कालो येन, बहुव्री० । २ नियत, सुकरर । ३ भेजा हुआ । ४ समय पूरा करनेवाला ।

“तस्यैवा हारपालं को प्रीत्यन्ते राजशासनम् ।

कृतकालाः सुवलयन्तो हारमवाप्स्यन् ॥” (भारत, उभापर्व)

कृतकीर्ति (सं० त्रि०) कृता प्राप्ता कीर्तिर्यंशो येन, बहुव्री० । यशोलाभ करनेवाला, जो नामवरी पा चुका हो ।

कृतकूर्च (सं० त्रि०) छोटी गठरी या कूचीकी तरह बंधा हुआ ।

कृतकृत्य (सं० त्रि०) कृतमनुष्ठितं कृत्यं कर्तव्यं येन, बहुव्री० । १ सम्पूर्णरूप स्वकायं साधन करनेवाला, जो पूरी तौर पर अपना काम कर चुका हो । २ चतुर, होशियार । ३ सन्तुष्ट, आसुदा ।

“कृतकृत्यो विधिमन्ये न वर्धयति तस्य तासु ।” (माघ, २।१२)

४ मुक्त, समाप्तपुरुषार्थ, सब काम कर चुकनेवाला ।

“मायैतत् कृतकृत्योऽपि विजो भवति नाम्ना ।” (मनु, १२।८२)

(क्री०) कृतमनुष्ठितं कृत्यं कार्यम्, कर्मधा० ।

५ निष्पादित कर्म, किया हुआ काम ।

कृतकृत्यता (सं० स्त्री०) सफलता, कामयाबी ।

कृतकोटि (सं० पु०) कृता लब्धा कोटिः श्रेष्ठता येन, बहुव्री० । १ काश्यपमुनि । २ उपवर्ष मुनिका नामान्तर ।

कृतकोप (सं० त्रि०) क्रुद्ध, नाराज ।

कृतकोतुक (सं० त्रि०) खेलाड़ी, खेलनेवाला ।

कृतक्रय (सं० पु०) क्रोता, खरीददार ।

कृतक्रिय (सं० त्रि०) कृता क्रिया कार्यं येन, बहुव्री० ।

१ कृतकार्य, जो काम कर चुका हो । २ शास्त्रविहित कार्य करनेवाला ।

“विप्रः गृह्यत्वपः स्याद्वा चतुर्यो वाङ्मनःपुत्रः ।

वैश्यः प्रतीदं रश्मोन् वा यष्टिं यूदं कृतक्रियः ॥” (मनु ५ । ८८)

कृतक्रुध (सं० त्रि०) कृतकोप, नाराज ।

कृतक्षण (सं० त्रि०) कृतः क्षणः समयो येन, बहुव्री० ।

१ कृतावकाश, मौका निकालनेवाला ।

“कृतक्षण एवाणि शीघ्रनिष्कामि ।” (भारत, आदिपर्व)

कृत निष्पादितः क्षणः पर्वः उत्सवो येन । २ कृतोत्सव, जलसा कर चुकनेवाला ।

“उदाग्रं तं विचमिदं तदासीत् यन्निद्रया मोलितहङ्गममौलयत् ।

असौ हस्तस्योऽधिशयान एकः कृतक्षणः स्नात्वरती निरीकः ॥”

(भागवत, १८।११)

(पु०) ३ कोई राजपुत्र । (भारत, २।४।२० ।)

कृतघातयज्ञ (सं० त्रि०) घातका यज्ञ करनेवाला । जो मार डालनेकी कोशिश करता हो ।

कृतज्ञ (सं० त्रि०) कृतं कृतोपकारादिकं ज्ञप्ति, ज्ञात-इन्-टक् । पूर्वजन्त उपकार भूल जानेवाला, इहसान-करामोश । उपकारका प्रत्युपकार न करने या उपकारीका अपकार करनेवालीको भी कृतज्ञ ही कहते हैं । प्रायश्चित्तविवेकमें लिखा है—

“अहं पिष्टापहतां च पिष्टपिष्टापहारकः ।

यस्मात् गृहीत्वा चिन्तां च दक्षिणां न प्रयच्छति ॥

पुत्रान् स्त्रियश्च यो वेष्टि यच्चैतान् घातयेन्नरः ।

कृतज्ञं योषं वदति सकामात् करोति यः ॥

न करेत् कृतं वस्तु चावसानं वस्तु दूषयेत् ।

सर्वांसाधनिभिः साधं कृतज्ञान्नवीक्यतः ॥”

प्रभु अथवा पिष्टपिष्ट अपहरण करनेवाला, विद्या-शिक्षा करके दक्षिणा न देनेवाला, पुत्र वा स्त्रीको हँस

अथवा वध करनेवाला, उपकारीकी निन्दा अथवा उसका अभिलाषपूर्ण न करनेवाला किंवा ज्ञात उपकार भूल जानेवाला और सकल आश्रम दूषित करनेवाला व्यक्ति कृतज्ञ कहलाता है । कृतज्ञका अर्थ भक्षण निषिद्ध है । “मेलू वतन्नुवायात्र कृतज्ञस्यान्नमेव च ।” (मनु ४।११४)

कृतज्ञके पापका प्रायश्चित्त नहीं होता ।

“कृतज्ञे च सुरापे च चौरि च गुरुतत्त्वम् ।

निष्कृतिर्विहिता सति कृतज्ञे नास्ति निष्कृतिः ॥” (भारत, चतुर्थासन)

ब्रह्मघाती, मद्यपायी, चौर और गुरुपत्नीगामीकी निष्कृतिका उपाय विद्यमान है । किन्तु कृतज्ञकी निष्कृति नहीं ।

कृतज्ञता (सं० त्रि०) उपकार विस्मृत हो जानकी अवस्था, एहसान करामोशी ।

कृतज्ञोपाख्यान (सं० स्त्री०) कृतज्ञस्य उपाख्यानं कथा, इ-तत् । महाभारतोक्त एक उपाख्यान । अति प्राचीनकालकी मध्यदेशीय एक दरिद्र ब्राह्मणने उत्तर दिशामें जो समस्त जलच्छेद है, उसके मध्य समुद्रसम्पन्न तथा ब्राह्मण-वर्जित किसी ग्राममें भिक्षा-लाभकी आशासे प्रवेश किया । उस ग्राममें विभवं-सम्पन्न सत्यवादी दाता एक दस्यु वास करता था । ब्राह्मणने उसके निकट भिक्षा प्रार्थना की । दस्युने ब्राह्मणको एक वर्षकी उपयुक्त आहार्य, वासोपयोगी गृह और वस्त्रादि दान किया तथा वयःप्राप्त एक युवतीके साथ उसका विवाह करा दिया था । ब्राह्मणका नाम गौतम रहा । गौतम उक्त समस्त विभवं प्राप्त होकर बृहच्चित्तसे उसी दस्युप्रदत्त गृहमें रहने लगे । उक्त दस्यु व्याधीसे वाणशिक्षा करता और प्रत्यह उनके साथ वनके मध्य प्रवेश करके उन्हींकी भांति पशुपक्षी मारता फिरता था । वह प्रत्यह प्राणिवधमें नियुक्त रह हिंसाप्रिय और व्याधीके साथ रहते रहते व्याध वन गया । उसी समय उसके किसी परिचित ब्राह्मणने जाकर उसका तिरस्कार किया था । इससे वह उत्तर-मुख जाकर समुद्रके तीर उपस्थित हुआ । वहाँ किसी वक्त्रके साथ उसकी मित्रता हो गयी । गौतमको वक्त्रके मित्र एक राजससे बहुततर धन मिला था । किन्तु उसने घर लौटते समय निद्रित वक्त्रको मांसके

लोभसे मार डाला। इस कृतघ्नताके निमित्त मृत्युके पीछे उसे भगन्त नरकभोग करना पड़ा था। क्योंकि ब्रह्मघाती, सुरापायी प्रभृति महापापी व्यक्ति भी प्रायश्चित्तादि करके मुक्ति पा सकते हैं। किन्तु कृतघ्नके पापका प्रायश्चित्त नहीं। (भारत, शान्तिपर्व)

कृतचूड़ (सं० पु०) कृता निष्पादिता चूड़ा संस्कारविशेषो यस्य, बहुव्री०। चूड़ा-संस्कार सम्पन्न।

“दत्तकान्तिमुज्जाति च कृतचूड़े च संस्थिते।” (मनु ५।५८)

कृतच्छाया (सं० स्त्री०) श्वेतकीषातकी।

कृतच्छिद्रा (सं० स्त्री०) कीषातकीक्षता, कड़ई तरीई।

कृतजम्ब (सं० त्रि०) उत्पादित, पैदा किया हुआ।

कृतघ्न (सं० त्रि०) कृतं कृतोपकारं जानाति स्मरति, कृत-घ्ना-क। चातोऽनुपसर्ग कः। पा १।२।२। १ कृत उपकारको स्मरण अथवा उपकारीको प्रत्युपकार करने वाला, एहसानमन्द, कियेको माननेवाला।

(पु०) २ शिव। ३ कुत्ता।

कृतघ्नता (सं० त्रि०) किये को माननेका भाव, एहसानमन्दी।

कृतध्वर (सं० पु०) कृतः सृष्टः ज्वरो येन, बहुव्री०। शिवका एक नाम।

कृतध्वज (सं० पु०) १ सप्तदश व्यासका नाम। (विष्णुपुराण, १।६।१५) २ इक्ष्वाकुवंशीय वर्धिराजाके पुत्र। (भागवत, ८।१२।१२) ३ कोई ऋषि। (विष्णुपुराण ७।१६)

कृततनुत्वाय (सं० स्त्री०) कवच धारण करनेवाला, जो बख्तर पहने हो।

कृततीर्थ (सं० पु०) कृतं निष्पादितं तीर्थं तीर्थकार्यं येन, बहुव्री०। १ घनेक तीर्थ भ्रमण कर चुकनेवाला। २ उपदेष्टा, परिचायक।

कृतत्रा (सं० स्त्री०) कृतं त्रायते, कृत-त्रै-कः यजादित्वात् टाप्। त्रायमाणा, एक जड़ी दूटी।

कृतत्राणा, कृतत्रा देखो।

कृतदण्ड (सं० पु०) यमराज।

कृतदार (सं० पु०) कृताः गृहीता दारा येन, बहुव्री०। विवाहित, जो दार परिग्रह कर चुका।

“द्वितीयमायुको मार्गं कृतदारी गच्छे वसेत्।” (मनु ४।१२)

मनुष्योंको जीवनके द्वितीय भाग पर दारपरिग्रह करके गृहमें बसना चाहिये।

कृतदास (सं० पु०) कृतः विहितः कृतनियमो दासः, कर्मधा०। समय निर्दिष्ट करके दासत्व स्वीकार करनेवाला, जो वस्त्र सुकरर करके नोकर बना हो। दास देखो।

कृतद्युति (सं० स्त्री०) चित्रकेतु राजाकी पत्नी।

(भागवत, ६।१४।२८)

कृतद्विष्ट (वे० त्रि०) दूसरेके कार्यपर क्रुद्ध।

“यथाकृतद्विष्टासोऽसुप्ते शेष्यावते।” (अथर्व, ७।११।११)

कृतधन्वा (सं० पु०) कनकके एक पुत्र। (हरिवंश)

कृतधी (सं० त्रि०) कृता स्थिरीकृता धीर्येन, बहुव्री०।

१ कृतसङ्कल्प, कामयाबीके बारेमें शक न रखनेवाला।

कृता उत्पादिता धीः शास्त्रसंस्कृता बुद्धिर्येन।

२ शिक्षित, शास्त्रादिके विचारसे बुद्धिको ठहरानेवाला।

कृतध्वंस (सं० त्रि०) १ विजित, शिकस्त, जो हार गया हो। २ पाहत, जो बरबाद हो गया हो।

कृतध्वज (वे० त्रि०) उच्छिन्न ध्वजा। (सायण)

“यवानरः समयं ते कृतध्वजः।” (ऋष ७।८।१२)

कृतध्वज (सं० पु०) शीरध्वज जनकके प्रपौत्र शीरधर्मध्वजके पुत्र। (भागवत, २।११।१८; विष्णुपुराण, ६।६।७)

कृतध्वस्त (सं० त्रि०) मिलकर गया हुआ, जो हाथमें धाकर निकल गया हो।

कृतनख (सं० त्रि०) नख परिष्कार करनेवाला, जो अपने नाखून साफ कर चुका हो।

कृतनाशक (सं० त्रि०) कृतस्य कृतोपकारस्य नाश कः, इ-तत्। कृतघ्न, एहसान-फरासीश।

कृतनित्यक्रिय (सं० पु० त्रि०) कृता सम्पादिता नित्यक्रिया येन, बहुव्री०। सन्ध्यावन्दनादि नित्यक्रिया सम्पन्न कर चुकनेवाला।

कृतनिन्दक (सं० त्रि०) कियेकी निन्दा करनेवाला, जो एहसानको न मानता हो।

कृतनिर्णेजन (सं० त्रि०) कृतं निर्णेजनं यस्य येन वा। १ धौत, धोया हुआ। २ धो डालनेवाला।

३ पापमुक्तिके लिये प्रायश्चित्त कर चुकनेवाला।

कृतनिश्चय (सं० त्रि०) कृतो निश्चयो येन, बहुव्री०।

१ कृतसङ्कल्प, दुराहट बांध लेनेवाला। २ निःसन्देह, कोई शक न रखनेवाला।

कृतपर्व (सं० स्त्री०) कृतार्थ्यं पर्व, मध्यपदलो० । कृत-
युग, सत्ययुग ।

कृतपश्चात्ताप (सं० द्वि०) पश्चात्ताप करनेवाला, जो
पछताता हो ।

कृतपिच्छीत (सं० पु०) शिकारस ।

कृतपुङ्ख (सं० त्रि०) कृतोऽभ्यस्तः पुङ्खः पुङ्खयुक्तो वाणो
येन, बहुव्री० । शराभ्यासनिपुण, तीर चलानेमें होशि-
यार ।

कृतपुण्य (सं० त्रि०) पुण्य कार्य कर चुकनेवाला, जो
भले काम खूब कर चुका हो ।

कृतपूर्व (सं० त्रि०) पहले किया हुआ, जो पेश्तर
किया जा चुका हो ।

कृतपूर्वनाशन (सं० त्रि०) कृतपूर्वस्य पूर्वं कृतोपकारस्य
नाशनो नाशकः, ६-तत् । कृतघ्न, पहले किये एहमान-
को भूल जानेवाला ।

कृतपूर्वो (सं० त्रि०) कृतं पूर्वमनेन, कृतपूर्वं इति ।
सपूर्वो । पा ५.२.१४७ । निष्पन्नकर्मा, पहले ही कर डालने-
वाला ।

कृतप्रणाम (सं० त्रि०) प्रणाम करनेवाला, जो बन्दगी
वजाता हो ।

कृतप्रतिकृत (सं० स्त्री०) कृतस्य प्रतिकृतं प्रतीकारः ।

१ आक्रमणका प्रत्याक्रमण, हमलेके जवाबमें हमला ।

२ आघातकी प्रतिक्रिया, हमलेकी रोक ।

“ततो रामोऽतिसंक्रुद्धा चापमाकुञ्च बोधवान् ।

कृतप्रतिकृतं कर्तुं मनसा संप्रचक्रमे ॥” (रामायण, ६.८१.१०)

(त्रि०) कृतं प्रतिकृतं येन, बहुव्री० । ३ प्रतीकार

करनेवाला, जो जवाब कर रहा हो ।

कृतप्रतिघ्न (सं० त्रि०) प्रतिघ्नाको पूरा करनेवाला, जो
इकरार पूरा करता हो ।

कृतप्रयत्न (सं० त्रि०) चेष्टा करनेवाला, जो कोशिश
करनेमें लगा हो ।

कृतफल (सं० स्त्री०) कृतं फलमस्य । १ ककोल,
शोतलचीनी । (त्रि०) कृतमुपाजितं फलं येन, बहुव्री० ।
२ कृतकार्यफलस्य फल, कियेका मतोजा हासिल कर
चुकनेवाला ।

कृतफला (सं० स्त्री०) कोलशिम्बी, एकफली ।

कृतबंधन (सं० स्त्री०) कोशातकफला ।

कृतबन्धु (सं० पु०) एक राजपुत्र । (भारत, १.२२१ बः)

कृतबाहु (सं० त्रि०) हाथ फैरनेवाला, जा छू रहा हो ।

कृतबुद्धि (सं० त्रि०) कृता स्थिरीकृता बुद्धिर्येन । १ कृत-
निसंय, इरादा बांध लेनेवाला ।

“कृतबुद्धौ स्थिरामर्शो वक्तुमुदसुतमम् ।” (रामायण, ६.८१.१६)

२ पण्डित, ज्ञानी, शास्त्रवेत्ता ।

“ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ।

कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तुं बुभ्रुववेदिनः ॥” (मनु, १.८०)

कृतबोध (सं० पु०) कृत उपाजिता बोधो येन, बहुव्री० ।

तपोदेव नामक ब्राह्मणके पुत्र । उन्होंने पितामाताको
परित्याग करके कुछ काल तपस्या की थी । एक दिन
तपस्या करते ही समय किसी पक्षीने इनके मस्तक पर
मलत्याग किया । इनके क्रोधदृष्टिसे उसको और
देखते ही पक्षी भस्म हो गया । यह देख इन्होंने
अपनेको सिद्धपुरुष विवेचना किया और तपस्याको
छोड़ दिया था । एक दिन यह किसी ब्राह्मणके घर
आतिथ्य ग्रहण करने गये । ब्राह्मण उस समय निद्रित
रहा । ब्राह्मणका पुत्र पिताको पदसेवा करता था ।

इसीसे उसने कृतबोधकी अभ्यर्थना न की । उस पर
उन्होंने क्रुद्ध हो वक्तकी भांति ब्राह्मणपुत्रकी भस्म
करनेकी चेष्टा की थी । ब्राह्मणपुत्र उनकी क्रोधदृष्टि
देख कर कहने लगा—‘इमें वक्त न समझिये । हमने
तुम्हारा कोई अपकार नहीं किया है । इस स्थान पर
हृथा अचङ्कार प्रकाश उपयुक्त नहीं ।’ इस पर कृत-
बोधने विस्मित हो ब्राह्मणपुत्रसे वक्तव्यवृत्तान्त जानने-
का उपाय पूछा था । उसने कहा—‘तुम काशीस्थित
तुलाधार नामक व्यक्तिसे जाकर मिलो ।’ कृतबोध
तुलाधारसे जाकर मिले थे । उसने कृतबोधकी समझा
दिया कि तपस्यासे पिदसेवा कहीं अच्छी थी । इससे
कृतबोध फिर घर लौट कर पितामाताकी सेवामें लग
गये । पितामाताके सेवाकार्यमें स्थिरबुद्धि होनेसे ही
कृतबोध नाम पड़ा है । (उद्बर्धनपुराण)

कृतवत्सा (सं० त्रि०) वत्सास्तोत्र करनेवाला ।

“कृतवत्सा ययवत्सावस्य हत् ।” (अक्ष, १.२१.११)

‘कृतवत्सा वत्सकीनं कृतं येन वः ।’ (उवाच)

कृतभय (सं० त्रि०) डरनेवाला, जो भयभीत हुआ हो।
कृतभाव (सं० त्रि०) कृतः स्थिरीकृतो भावः कश्चिदा-
शयो येन, बहुव्री०। किसी विषयमें मतिको स्थिर
करनेवाला, जो अपमान इरादा बांध चुका हो।

“ती परस्परममोत्य सर्वाभाषेषु धत्विनौ।

चौरैर्दिवा धनुर्वाचैः कृतभाषासुभो जयै ॥” (रामायण ६।७०।१९)

कृतभूतमेत (सं० त्रि०) सबसे मित्रभाव रखनेवाला।
कृतभोजन (सं० त्रि०) भोजन कर चुकनेवाला, जो
खा चुका हो।

कृतमङ्गल (सं० त्रि०) शुभ, सुबारक।

कृतमति (सं० त्रि०) कृता स्थिरीकृता मतिर्बुद्धिर्येन,
बहुव्री०। कृतनिश्चय, इरादा बांध चुकनेवाला।

“इत्युक्त्वा सा कृतमतिरभवत्सावहासिनी।

स्त्रीदोषास्त्वाञ्चतान् सत्यान् भाषितुं सम्यक्करी ॥” (भारत, १।१२८ च०)

कृतमन्यु (सं० त्रि०) क्रुद्ध, नाराज।

कृतमार्ग (सं० त्रि०) मार्ग बना चुकनेवाला, जो राह
तैयार कर चुका हो।

कृतमार्गा (सं० स्त्री०) कृतो मार्गः पत्न्या यथा, बहुव्री०।
एक नदी।

कृतमाल (सं० पु०) कृता माला यस्य मालावदुत्पन्न-
पुष्पत्वात् बहुव्री०। १ कृत्स्न पारग्वध, कर्णिकार।
२ सङ्घातचारिर्पक्षविशेष, एक चिड़िया। ३ सङ्घात-
चारिमृग, एक जानवर।

कृतमालक, कृतमाल देखो।

कृतमाला (सं० स्त्री०) कृता माला मालाकारिण वेष्टनम-
नया, बहुव्री०। मलयपर्वतसे उद्भूत एक नदी।
(विष्णुपुराण, १।१।१९)

कृतमुख (सं० त्रि०) कृतं संस्कृतं मुखं यस्य, बहुव्री०।
पण्डित, होशियार।

कृतमैत्र (सं० त्रि०) कृतं मैत्रं मित्रता येन, बहुव्री०।
मित्रता करनेवाला, जो दोस्ती दिखा चुका हो।

कृतमृगुः (सं० त्रि०) कृतमभ्यस्तं यजुर्देवमन्त्रा
येन। यजुर्देवके मन्त्रोंका अभ्यास कर चुकनेवाला।

“कृतमृगुः सभृतसम्भारः ॥” (तैत्तिरीयसंहिता १।५।१।४)

कृतयज्ञ (सं० पु०) कृतो यज्ञो येन, बहुव्री०।
१ अयनके पुत्र और देव्य उपरिचर वसुके पिता।

(हरिवंश, १९ च०) उनका अपर नाम कृतक था।
(विष्णुपु० ४।१८।१८)

(त्रि०) २ यज्ञ कर चुकनेवाला।

कृतयशाः (सं० पु०) १ अङ्गिरस्-वंशीय कोई व्यक्ति।

(त्रि०) कृतं बन्धं यशो येन, बहुव्री०। २ यशो-
लाभ कर चुकनेवाला, जो नामवरी पा चुका हो।

कृतयुग (सं० स्त्री०) कृतमेव युगम्। सत्ययुग।

“अन्वे कृतयुगे धर्मास्तेतार्या वापरे परे।

अन्वे कलियुगे नृणां युगक्रासानुवपतः ॥” (मनु, १।८५)

कृतयुष (सं० पु०) प्रमथया।

कृतयथ (सं० पु०) १ निमिर्वंशीय मरुके पौत्र।

(भागवत ८।११।२६ विष्णुपुराण, ५।५।१९) (त्रि०) कृतो रथो
येन, बहुव्री०। रथकार, गाड़ी बनानेवाला।

कृतयव (सं० त्रि०) शब्दकारी, गानेवाला।

कृतयस (सं० पु०) स्नेहशृणुयादियुक्त कृत मांसरस,
तेल और सोंठ वगैरह डालकर बनाया हुआ गोशक्ता
शोरबा।

कृतरक् (सं० त्रि०) दीप्तिमान्, चमकदार।

कृतरुष (सं० त्रि०) क्रुद्ध, नाराज।

कृतलक्षण (सं० त्रि०) कृतानि लक्षणान्यस्य, बहुव्री०।

१ गुणप्रतीत, बड़ादुरी वगैरहके लिये मशहूर। २ कृत-
चिह्न, निशानदार।

“ज्ञातिसम्बन्धिमिश्रते ते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः।

निर्देया निजं मङ्गाराक्षन्मोहनं शासनम् ॥” (मनु, ८।२१८)

(पु०) ३ विश्वक्सेनके पुत्र। विश्वक्सेनने उन्हें
दूसरे कई पुत्रोंके साथ गण्डूषको प्रदान किया था।

(हरिवंश, २५ च०)

कृतवर्मा (सं० पु०) १ यदुवंशीय कनकके पुत्र।

(हरिवंश, १९ च०) २ भोजके पौत्र और हृदिकके पुत्र।

(विष्णुपुराण, ४।१४।७) ३ वर्तमान अवसर्पिणीके त्रयो-
दश अर्जुनके पिताका नाम।

कृतवान् (सं० त्रि०) कर चुकनेवाला।

कृतवाप (सं० पु०) कृतो निष्पादितो वापः क्षीरकायं
यस्य, बहुव्री०। क्षीरकायं करा चुकनेवाला व्यक्ति, जो
पादमी बाल बनवा चुका हो।

कृतविद्य (सं० त्रि०) कृता सख्या विद्या येन, बहुव्री० ।
ज्ञानी, पण्डित, ईश्वरदार ।

“सुवचस्पृष्टितां पृथो विदित्वानि नराक्षयः ।

यस्य कृतविद्यस्य यच्च जानाति सेवितुम् ॥” (पञ्चतन्त्र, १।५१)

कृतविवाह (सं० त्रि०) विवाहित, शादी कर चुकने-
वाला ।

कृतवीर्य (सं० त्रि०) कृतमुपाजितं वीर्यं येन,
बहुव्री० । १ वीर्यवान्, ताकतवर । (अथर्व, ७।१।२७)

(पु०) २ यदुर्वंशोय कनकके पुत्र । (हरिवंश, २२ च०)

कृतवेग (सं० पु०) राजपुत्रविशेष, राजाके एक सङ्केत ।
(भारत, समापर्व)

कृतवेतन (सं० त्रि०) कृतं स्थिरीकृतं वेतनं भूतिर्यस्य,
बहुव्री० । नियमित वेतन पर नियुक्त, बंधी तनखाह
पानेवाला ।

“यथापि तान् पश्यन् गोपः सायं प्रत्यर्पयेत् तथा ।

प्रमादमतनष्टांश्च प्रदाद्य कृतवेतनः ॥” (याज्ञवल्क्य २।१।६७)

कृतवेदी (सं० चि०) कृतस्य कृतोपकारस्य वेदी विज्ञाता,
ई-तत् । कृतज्ञ, एहसानमन्द, कियेकी समझनेवाला ।
कृतवेध, कृतवेधक देखो ।

कृतवेधक (सं० पु०) कृतो वेधः छिद्रमस्मिन्, बहुव्री० ।
कोषातकी जता, कड़ू ईतरोंई ।

कृतवेधन (सं० पु०) कृतं वेधनं यस्मिन्, बहुव्री० ।
१ कोषातकी जता, सफेद फूलकी एक बैल । २ पार-
ग्यधनुष, अमिलतास । १ ज्योत्स्निका, रतनजोत ।

कृतवेधना (सं० स्त्री०) कृतवेधन स्त्रियां टाप् । १ राज-
कोषातकीजता । २ श्वेतघोषा, कटुघोषा ।

कृतवेश (सं० स्त्री०) कृतो निष्पादिनो वेशो येन,
बहुव्री० । अलङ्कृत, जो सज चुका हो ।

कृतव्यधन (टि० त्रि०) अस्रयुक्त, सशस्त्र, हथियारबन्द ।
(अथर्व, ५।१।४।६)

कृतव्रत (सं० पु०) कृतं गृहीतं चध्ययनादिरूपं व्रतं
येन, बहुव्री० । कौमहर्षण मुनिके एक छात्र ।

कृतशिल्प (सं० त्रि०) कृतं अभ्यस्तं शिल्पं येन, बहुव्री० ।
अभ्यस्त शिल्प, कारीगर ।

“कृतशिल्पोऽपि निवसेत् कृतकालं गुरोरेव ॥” (याज्ञवल्क्य)

कृतश्रम (सं० चि०) कृतः श्रमो येन, बहुव्री० । १ मही-
खादान्वित, मिहनत कर चुकनेवाला । (पु०)
२ कोई मुनि । (भारत २।४।१४)

कृतसंज्ञ (सं० त्रि०) कृता संज्ञा यस्मै, बहुव्री० ।
१ कृतसंज्ञेत, माना हुआ ।

“शुभांश्च स्थापयेदामान् कृतसंज्ञान् समन्ततः ।” (मनु, ८।१६६)

कृतसंज्ञेत (सं० त्रि०) कृतः स्थिरीकृतः संज्ञेतः समय-
निर्देशः स्थाननिर्देशो वा यस्मै, बहुव्री० । संज्ञेत किया
हुवा, जो ठहराया जा चुका हो । २ इङ्कित द्वारा अपना
मनोभाव बतानेवाला, इशारा कर चुकनेवाला ।

कृतसापत्निका (सं० स्त्री०) कृतसापत्न्यं यस्याः, कृत-
सापत्न्यं समां कप् स्त्रियां टाप् अकारस्य इकारे
यनोपस्य । सपत्नी की हुई स्त्री, जिस प्योरतका
खाविन्द उसके जीते जी दूसरी शादी कर चुका हो ।

कृतसापत्नी, कृतसापत्नीका और कृतसापत्नका
आदि कई शब्द भी इस अर्थमें व्यवहृत होते हैं ।

कृतस्थिति (सं० त्रि०) ठहरा हुआ ।

कृतस्नेह (सं० त्रि०) प्यार करनेवाला ।

कृतस्मर (सं० पु०) पर्वतविशेष, एक पहाड़ ।

कृतस्वस्थयन (सं० त्रि०) स्वस्थयन कर चुकनेवाला,
जो किसी कामके पहले देवताको मना चुका हो ।

कृतस्वेच्छाहार (सं० त्रि०) स्वेच्छापूर्वक आहार कर
चुकनेवाला, जो अपने दिलसे खा चुका हो ।

कृतस्वर (सं० पु०) १ स्वरणखनि, सोनेकी खान ।
(त्रि०) कृतः स्वरः शब्दो येन, बहुव्री० । २ कृतशब्द,
आवाज लगा चुकनेवाला ।

कृतहस्त (सं० त्रि०) कृतोऽभ्यस्तः हस्तो शरपरित्याग-
लाघवरूपा हस्तशिक्षा येन, बहुव्री० । १ शरक्षेपने
निपुण, जो सफाईसे तीर मारता हो ।

“अमाताश्चैव तान् पार्ष्णिच्छेद कृतहस्तवत् ।” (भारत, ४।५।१।२०)

२ दण्ड, हथचला ।

कृतहस्ता (सं० स्त्री०) निपुणता, हथियारी, हाथकी
सफाई ।

कृतकृत (सं० त्रि०) कृतं तदकृतं च । केन न जन्विषे
नामक । पा २।१।६० । १ कृत और अकृत, किया न किया

(क्री०) कृतं चाकृतं च, समा० इन्द्र । २ कृत और अकृत कर्म, किया और न किया हुआ काम ।

“शान्तिं नो अस्तु कृताकृतम् ।” (अथर्व १८।८।२)

३ कार्य और कारण । ४ स्वर्ण तथा रजत, सोना चांदी ।

“कृताकृतश्च अनेकं गजैर्द्राव्यक्षीमपाः ।” (भारत, १३।५३ च०)

५ तण्डुलादि द्रव्यभेदः ।

“कृतमोदनशक्तादि तण्डुलादि कृताकृतम् ।

श्रीश्रादि चाकृतं भोक्तृमिति इत्थं विधा बुधैः ॥”

द्रव्यद्रव्य तौन प्रकारका होता है । उसमें अन्न तथा शक्ती प्रभृति द्रव्य कृत, अपन्न तण्डुलादि कृताकृत और श्रीश्रादि अकृत है ।

“कृताकृतौ सख्युलांश्च पलाशोदनमिव च ।” (याज्ञवल्क्य १।२८०)

कृतं करणं चाकृतमकरणश्च, इन्द्रः । ६ करण और अकरण, करणकी असमाप्ति ।

“कृताकृतमित्यत्रैकदेशे करणाकरणभ्यां करणस्य समाप्तिर्गमते ।” (केवट)

कृताख्ययूष (सं० पु०) खवणखेहकटकादि कृत यूष, नमक, तेल और कड़वी चोंचोंका शोरवा । यह गुह होता है । (वेदकनिषेधः)

कृतागम (सं० त्रि०) कृत आगम उपार्जनसुखतिर्वा येन, बहुव्री० । उन्नति करनेवाला, जो तरकी कर चुका हो । (पु०) कृत आगमो वेदशास्त्रं येन, बहुव्री० ।

२ परमेश्वर, वेद बनानेवाला ईश्वर ।

कृतागाः (सं० त्रि०) कृतं आगः अपराधो येन, बहुव्री० । अपराधी, दोषी, पापी । (अथर्व १२।५।६०)

कृताग्नि (सं० पु०) राजपुत्रविशेष, राजाके एक सड़के । वह कनकके पुत्र और कृतवोयंके भ्राता थे ।

[कृतवीर्यं देखी]

कृताग्निकार्यं (सं०) अग्निका कार्य कर चुकनेवाला ब्राह्मण ।

कृताह (सं० त्रि०) कृताहश्चिह्नं यस्मिन्, बहुव्री० । चिह्नित, निशान किया हुआ ।

“सहासमनमिदं सुवत्कृतस्याऽकृतजः ।

कथां कृताहो निर्वाहः । इत्थं च आश्रयकर्तृवेत् ॥” (मनु, ८।१८१)

कृताञ्जलि (सं० त्रि०) कृतोऽञ्जलि येन, बहुव्री० । १ वहांजलि, हाथ जोड़े हुआ ।

“अभिवादेशेदं वहांश्च दद्याद्वैवाचनं सत्तम् ।

कृताञ्जलिदपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वितात् ॥” (मनु, ४।१५०)

(पु०) कृतोऽञ्जलिरिव पत्रसङ्कोचो येन, २ औषधि-भेद, वराहकाम्ना । (स्त्री०) ३ लज्जावतीलता । लाल सूतसे कपेट कर बांधने पर कृताञ्जलि एकादशको जीत लेती है । (भैषज्यारवाचने)

कृताञ्जलिपुट (सं० त्रि०) कृतोऽञ्जलिपुटो येन, बहुव्री० । अञ्जलिका पुट बनाये हुआ, जो अंगुली बांधे हो ।

“तं दृष्ट्वा प्रपन्नं पार्श्वे कृताञ्जलिपुटं दपः ।” (रामायण, १।१।११)

कृतात्मा (सं० त्रि०) कृतः संस्कृत आत्मा अन्तःकरणं येन यस्य वा, बहुव्री० । १ शुद्धचित्त, साफदिल ।

“गृहे गृहवतामित्र्यमानञ्जलि कृतात्मनाम् ।”

२ शिचित्त बुद्धि, अकृतका काममें लाये हुआ । ३ कृतकृत्य, पड़चा हुआ ।

“पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ।”

(सुषकोपनिषत् १।१।१)

कृताख्य (सं० पु०) कृतस्य कर्मणोऽत्ययो भागेनावसानम् । भोग द्वारा कर्मका नाश । सांख्यदर्शनके मतमें एकबार कर्म उत्पन्न होने पर भोग व्यतीत उसका नाश नहीं होता । विवेक ज्ञान उत्पन्न होने पर कर्म समाप्त हो जाता है । उससे दूसरा नूतन कर्म उत्पन्न नहीं होता । किन्तु पूर्वकृत भोगव्यतीत सब नहीं छूटता है । इसीसे सुप्तपुरुषको अवस्था दो प्रकारकी होती है—जीवन्मुक्ति और विदेहकैवल्य । विवेकज्ञानकी उत्पत्तिसे आत्मा मुक्त होते भी ज्ञानोत्पत्तिसे पड़सि अर्जित फलारम्भ-रहित कर्मसमूहका नाश होता है । किन्तु प्रारब्ध कर्म बना रहता है । जिस कर्मने फल देना आरम्भ किया है, उसीका नाम प्रारब्ध कर्म है । इसी हेतुसे कर्म फलजन्य देह और तत्त्वित-कुहादि विद्यमान रहता है । यथा—

“द्यौर्लोकास्तु कर्माणि तज्जिह्वं दृष्टे परावरे ।”

“आत्मनाम्नापटुत्वादि भाजनेभिर्द्रव्यमैव अथवावापिपासादीनां मोहादिभाजनं च.....सुखकामानि ज्ञानविद्ययाभ्यामव्यवहानि च पञ्चब्रह्मादि ।” (वैदानसार)

कर्मके भेदसे अवसानके लिये सुप्त पुरुषकी भी देह धारण करके रहना पड़ता है । अवशेषकी कर्मका

अवसान जाने पर विदेहकेवल्य मिलता है। इसी कर्मावसानका नाम कृतात्यय है।

कृतानति (सं० त्रि०) भुक्कनेवाला, जो अदृक्के लिये भुक्क गया हो।

कृतानुकर (सं० त्रि०) कृतकार्यका अनुकरण करनेवाला, जो कियेको नकल करता है।

कृतानुकूल्य (सं० त्रि०) दयालु, मिह्रवान्।

कृतानुकृत (सं० स्त्री०) कृतानुकृतमनुकरणम्, इ-तत्। कृतका अनुकरण, कियेकी नकल, पहले और पीछे किया हुआ काम।

“...कृतानुकृतकारिणी। परस्पर वधे वीरो यतमानो परन्तपौ।”

(रामायण, ६।६।१८)

कृतानुव्याध (सं० त्रि०) संयुक्त, बंधा हुआ।

कृतानुसार (सं० पु०) नियत अभ्यास, चाल।

कृतान्त (सं० त्रि०) कृतो निष्पादितोऽन्तः समाप्तिर्यन, बहुव्री०। १ समाप्तिकारक, खत्म करनेवाला।

“कृतान्त आसीत् समरो देवानां सह दानवैः।” (भागवत, ८।६।१२)

(पु०) पूर्वजन्मार्जित फलोन्मुख कर्म, किस्मत।

“कृतान्तस्त्रिपि न सङ्गते सङ्गमं नो कृतान्तः।” (मेघदूत, २।१०५)

३ यम।

“रज्ज्वेव पुरुषो बद्धा कृतान्तोपनौयते।” (रामायण, ५।१५।२)

४ सिद्धान्त।

“सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्ध्यै सर्वकर्मणाम्।” (गीता, १५।१२)

५ मृत्यु, मौत। ६ पाप, गुनाह। ७ शनिवार,

सनीचरका दिन। ८ देवमात्र। ९ शनि।

“कृतान्ते कुशलोर्वारि यस्य जन्मदिनं भवेत्।” (ज्योतिष)

१० यमदेवताधिष्ठित भरणी नक्षत्र। ११ अङ्ग-गणनामें दो की संख्या।

कृतान्तजनक (सं० पु०) कृतान्तस्य जनको जन्मदाता, इ-तत्। सूर्य, सूरज।

कृतान्ता (सं० स्त्री०) कृतान्त स्त्रियां टाप्। शिष्टका नामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चोज।

कृतान्त (सं० स्त्री०) कृतं पक्वं तदन्तं च, कर्मधा०। १ पक्का, लच्छू वगैरह।

“वस्त्रं पक्वमलङ्कारं कृतान्तमुदकं स्त्रियः।

योमलेभं प्रचापं च न विभाज्यं प्रचक्षते॥” (मनु, २।१२८)

२ सिद्ध पक्क, पका हुआ खाना। (त्रि०) कृतं सिद्धमन्नं येन, बहुव्री०। ३ अन्नपाक करनेवाला, जिसने खाना पकाया हो।

कृतापकार (सं० त्रि०) १ आहत, जखमी। २ पराभूत, दबा हुआ। ३ अपकार करनेवाला, जो बुराई करता हो।

कृतापकृत (सं० त्रि०) कृतं च तदपकृतं च।

“कृतापकृतादीनां चोपसंख्यानं कर्तव्यम्।” (पा २।१।६० सूत्रका वार्तिक)
आनुकूल्य और प्रातिकूल्यमें किया हुआ, जो किसीके सुताविक चौर खिलाफ किया गया हो।

‘कृतापकृतमित्येवापि असमाप्तिर्गम्यते, यत् कृतं तदेव वापकृतं विरुपं कृतमित्यर्थावगमात्।’ (केयट)

कृतापदान (सं० त्रि०) कृतं अपदानं महत्कार्ये येन, बहुव्री०। महत्कार्य करनेवाला, जो बड़ा काम कर चुका हो।

कृतापराध (सं० त्रि०) कृतोऽपराधो येन, बहु दोषी, मुजरिम।

कृताभय (सं० त्रि०) भयसे बचाया हुआ, जो बेखोफ बना दिया गया हो।

कृताभरण (सं० त्रि०) अलङ्कृत, सजा हुआ।

कृताभिषेक (सं० त्रि०) कृतोऽभिषेकोऽभिषेकः यस्मै, बहुव्री०। १ अभिषेक किया हुआ, जो गद्दीपर बैठ चुका हो। (पु०) २ अभिषिक्त राजपुत्र, गद्दीपर बिठाया हुआ शाहजादा।

कृताभ्यास (सं० त्रि०) अभ्यास्त, मद्दावरा रखनेवाला। कृताय (सं० पु०) कृतं कृतसंज्ञाऽयः पाशकः। पाशक-भेद, किसी किस्मका पांसा।

कृतायास (सं० त्रि०) परिश्रम करनेवाला, जो मिह-नत सटा रहा हो।

कृतार्घ (सं० पु०) कृतो दत्तोऽर्घः पूजोपचारविशेषो यस्मै, बहुव्री०। अतीत अवसर्पिणोके १८वें अर्हत्का नाम।

कृतार्तनाद (सं० त्रि०) आर्तनाद करनेवाला, जो दर्दभरी आवाज लगा रहा हो।

कृतार्थ (सं० त्रि०) कृतो निष्पादितोऽर्थः प्रयोजनं येन, बहुव्री०। १ कृतकार्य, अपना काम कर चुकनेवाला। ‘कृतः कृतार्थोऽस्मि निर्वर्तिताह्वया।’ (भाष, १।८)

२ सन्तुष्ट, आसुदा । ३ दक्ष, होशियार । ४ सुक्त, जो आत्माका स्वरूप प्राप्तिकरूप महान् कार्य साधित कर चुका हो । (चैतान्तरोपनिषत् २।१४)

कृतार्थता (सं० स्त्री०) सफलता, कामयाबी ।

कृतार्थीभूत (सं० त्रि०) कृतार्थ हो चुकनेवाला, जो कामयाब हो चुका हो ।

कृताश्रक (सं० पु०) कृता अश्रक तन्नामपुरी येन, बहुव्री० । शिवके एक अनुचर ।

कृतालय (सं० त्रि०) कृत आलयो येन । १ कृतावास, अपना मकान बना लेनेवाला ।

“यत्र मे दयिता भर्ग्यो तनयश्च कृतालयाः ।” (रामायण ४।६१२१)

(पु०) कृता गृहीतोऽन्यक्तः स्वक्रियत्वेन इत्यर्थः

आलयो येन, बहुव्री० । २ भेक, मेंढक ।

कृतालोक (सं० पु०) आलोक दिया हुआ, जो रोगन किया गया हो ।

कृतावधान (सं० त्रि०) सावधान, होशियार ।

कृतावधि (सं० त्रि०) १ नियत, सुकर, माना हुआ ।

२ सीमाबद्ध, महदूद, घिरा हुआ ।

कृतावमर्ष (सं० त्रि०) १ विस्मृत, भूला हुआ ।

२ असहजशील, बरदाश्त न कर सकनेवाला ।

कृतावश्यक (सं० पु०) आवश्यकतानुसार किया हुआ, जो जरूरी सभक्त कर कर डाला गया हो ।

कृतावसक्त्यिक (सं० त्रि०) कृता अवसक्त्यिका येन, बहुव्री० । वस्त्र द्वारा अपने घुटके साथ जानु और जड़ा बांधनेवाला ।

कृतावस्थ (सं० त्रि०) कृता अवस्था स्थितिः राजद्वारेऽभियुक्तरूपावस्थाविशेषो वा यस्य, बहुव्री० । १ निर्धारित, ठहराया हुआ । २ आहृत, जो अदालतमें तलब किया गया हो ।

“इतोऽप्रायमानसु कृतावस्थो धर्मे विधा ।” (मनु ८६०)

“कृतावस्थ आहृतोऽभियुक्तो गृहीतप्रतिभुश्च ।” (मेधातिथि)

कृतावास (सं० पु०) १ गृह, मकान । (त्रि०) २ रहनेवाला ।

कृताग्रन (सं० त्रि०) आहार करनेवाला, जो खा चुका हो ।

कृतासनपरिगृह (सं० त्रि०) उपविष्ट, बैठा हुआ ।

कृतास्कन्दन (सं० त्रि०) १ आक्रमणकारी, हमला करनेवाला । २ विस्मृत हो जानेवाला, जो मद न रहता हो ।

कृतास्त्र (सं० त्रि०) कृतं शिष्टितं अस्त्रं येन, बहुव्री० ।

१ अस्त्रशिखा करनेवाला, जो हथियार चलाना सीख चुका हो ।

“अथे वां अत्रिबाणां च कृतास्त्रापामनेकयः ।” (भारत, १४।६० च०)

२ अस्त्रयुक्त, हथियारबन्द । (पु०) ३ किसी वीरका नाम ।

कृतास्त्रता (सं० स्त्री०) अस्त्रप्रयोगको निपुणता, हथियार चलानेका हुनर ।

कृतास्रद (सं० त्रि०) १ शासित, अधीन । २ सहारा लेनेवाला । ३ रहनेवाला ।

कृताश्रक (सं० त्रि०) नित्यनेमिस्तिक कर्म कर चुकनेवाला ।

कृताहार (सं० त्रि०) भोजन कर चुकनेवाला, जो खा चुका हो ।

कृताश्रक (सं० त्रि०) कृतमाश्रकं सन्न्यासवन्दनादिरूपं प्रात्यक्षिकं कर्म येन, बहुव्री० । सन्न्यासवन्दनादिकार्यं सम्पन्न करनेवाला ।

कृताज्ञान (सं० त्रि०) आहृत, जो बुझाया गया हो ।

कृति (सं० स्त्री०) कृ भावे कृत् । १ क्रिया, काम ।

“विचित्रा जगतः कृतिर्हरिरेरिषा वा ।” (सिद्धान्तकोसरी)

२ हिंसा, मार काट । ३ पुरुषप्रयत्न, करनेवाले की चाल । ४ माया, बाजीगरी ।

“कृत्यानादींश्च जन्तु प्रभुः ।” (भारत १३।४० च०)

५ मायाविनी, डाकिनी । ६ कृन्दाविशेष ।

“कृतिर्षी द्वादशाक्षराविक्रयाष्टाक्षरः पादः ।” (अक्षरप्रतिपाद्य १।१९७)

यह अनुष्टुप् जातीय कृन्द है, इसमें द्वादश अक्षरके दो चरण और अष्टाक्षरका एकचरण लगते हैं ।

७ कोई अन्य कृन्द । यह २४ अक्षरके ४ पादमें वंशित होता है । ८ वर्गसंख्या, समान पङ्क्तिका घात ।

“समोद्दिष्टातः कृतिरुच्यतेऽथ ।” (लीलावती)

९ विंशति संख्या, बीसकी पदद । १० हिरण्यकशिपुकी पुत्र संक्रादकी पत्नी । (वै०) ११ अस्त्रभेद, कटारी ।

“इति पुंस्त्रादिश्च कृतिश्च सन्दर्भः ।” (अक्षर १।१६८।१)

(पु०) १२ विष्णु । (भारत १।१२४०।११)

कृतिकर (सं० पु०) कृतिसंख्या विंशतिसंख्याः करः यस्य, बहुव्री० । विंशति हस्तयुक्त रावण ।

कृतिमान् (सं० त्रि०) कृतिरस्यास्ति, कृति-मतुप् ।
१ अनेक सत्कार्य कर चुकनेवाला, जो बहुतसे भले काम कर चुका हो ।

“नानादेशकृतिसता नानादेशनिवासिनाम् ।” (भारत १४।६० च०)

२ वंशस्थापनकर्ता, घराना चलानेवाला ।

कृतिरात (सं० पु०) विदेहवंशीय विभ्युतके पुत्र ।
(भागवत ८।११।१० ; विष्णुपुराण, ४।५।२२)

कृतिरोमा (सं० पु०) कृतिरातके एक पुत्रका नाम ।
कृतिसाध्यत्व (सं० स्त्री०) चेष्टासे सफल होनेकी अवस्था, जिस हाजतमें कोशिशसे कामयाब हो ।

कृती (सं० त्रि०) कृतं कर्म प्रशस्तमस्यास्ति, कृत-इनि । १ शिष्टित, पढ़ालिखा । २ साधु, सीधा । ३ पुण्यवान्, भला काम करनेवाला । ४ कोई उद्देश्य साधन करनेवाला, जो काम पूरा कर चुका हो ।

“न खल्विजित्य रघुं कृतो भवान् ।” (रघुवंश, १।५१)

५ कुशल, होशियार । (पु०) ६ अयनके पुत्र, उपरिचर वसुके पिता । भागवत ८।२२।५ । ७ सन्नतिमानके एक पुत्र । (भागवत ८।२१।२८)

कृते (सं० अव्य०) कृ-कृप् एदन्त निपातनम् । निमित्त, वास्ते, लिये ।

“संभवे जनयिष्यामि सीताया मातुषः कृते ।” (रामायण, १।६।८।१९)

कृत्ययुक्त (सं० पु०) रौद्राक्षके एक पुत्र ।

कृत्त (सं० त्रि०) कृत्ते कृदने क्त । कृत्त, कटा हुआ ।

कृत्ति (सं० स्त्री०) कृत्-कृत्तिन् । १ कृत्तसारादि चर्म । २ त्वक्, खात । ३ भुज्ज, भोजपत्र ।

कृतिका (सं० स्त्री०) कृत्-कृतिकन् कृत्तः । १ तृतीय नक्षत्र, चन्द्रकी पत्नी । एक दिन भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, अश्लेषा, मघा, उत्तरफल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और उत्तरभाद्रपदाने चन्द्रके निकट उपस्थित हो चन्द्र और रोहिणीकी अतिशय भस्मना की थी । चन्द्रने नितान्त क्रुद्ध हो अभिशाप दिया—‘तुमने हमको कटु वाक्य कहे हैं, इस लिये तुम उष और तीक्ष्ण कहलावोगी और तुम्हारे नौके भोग्यदिन भी यात्राके उपयुक्त न होंगे ।’ चन्द्र

द्वारा इस प्रकार अभिशाप हो सबकी सब पिताके घर चली गयीं । उन्होंने दक्षके सामने पहुँच गिड़ गिड़ा कर कहा था—‘पितः ! द्विजराज हमें देख नहीं सकते, रोहिणीके साथ आमाद-प्रमोद किया करते हैं । हमको अपनी ओर भाते देख वह भाँख फिर लेते हैं, फिर घूम कर हमारी ओर नहीं देखते । हमने बहुत दुःखित हो उनको अनुरोध किया था, उन्होंने क्रोध कर शाप दे दिया ‘तुम अयाश्रिक होगी ।’ दत्तप्रजापति कन्याओंके दुःखकी बात सुन बहुत चबरा उठे और चन्द्रके पास जाकर कहने लगी—‘वस ! तुम्हारा अविधेय आचरण सुन हम बहुत दुःखित हुए हैं । तुम इस अविधेय आचरणकी छोड़ सबको बराबर समझो । एकको सोहागिनी बना कर सबको दुःखित करना अच्छा नहीं ।’ द्विजराजने भय और लज्जासे उनकी बात मान ली परन्तु भय और लज्जा कब तक रह सकती है । दक्षने प्रस्थान किया था । कुछ देर पीछे भय लज्जा भी चली गयी । चन्द्र पहिलेकी भाँति रोहिणीकी ही प्यार करते रहे । भरणी प्रभृति रमणियोंने फिर पिताके पास पहुँच कर कहा था—‘पितः ! हमारा दुरदृष्ट किसी प्रकार दूर नहीं हो सकता । द्विजराज कभी हमको न अपनावेंगे ।’ दक्षने फिर चन्द्रसे जाकर कहा और उन्होंने ‘हां हाँ’ कर दिया, किन्तु कोई फल न निकला । चन्द्र पहिलेकी भाँति रोहिणीसे ही प्रेमाकाङ्क्षी बने रहे । इसमें विशेषता यह आ गयी कि वह भरणी आदिकी पहिलेसे भी अधिक बुरा समझने लगी । उन्होंने दक्षके समीप उपस्थित हो कर कहा—‘तात ! हमें चन्द्रसे अब कोई प्रयोजन नहीं, आप हमें तपस्साका उपदेश प्रदान कीजिये । हम तपस्विनी बनेंगी ।’ यह सुन कर दक्ष बहुत क्रुद्ध हुए थे । उनकी नाकके अग्रभागसे कामिनी-सम्भोगलोलुप राजयक्ष्मा निकल पड़ा । फिर दक्षने उस रोगसे कहा था—‘तुम शीघ्र चन्द्रके शरीरमें प्रवेश करो और चन्द्रकी खा डालनेके लिये उनकी शरीरमें जा कर रहने लगी ।’ यक्ष्माने चन्द्रके शरीरमें प्रवेश किया । द्विजराज दिन दिन घटने जाते थे । अन्तको एक कला मात्र बचनेसे देवीने चन्द्रकी यह अवस्था देख

ब्रह्माको बताया। पीछे ब्रह्माके आदेशानुसार देवीने दक्षके घर पहुँच बहुतसा स्तव कर कहा था—‘आप रजगीनायकके प्रति सन्तुष्ट हो उनकी दुर्दशा दूर कीजिये। उनकी दुरवस्था देख हम सब दुःखित हुए हैं।’ प्रजापति देवीके स्तवसे सन्तुष्ट हो कहने लगे—‘हमने जो शाप दिया है, किसी प्रकार अन्यथा हो नहीं सकता। चन्द्र यदि अपना दुराचार छोड़ सब पत्नियोंके साथ समान व्यवहार करें, तो एक पक्ष क्षय और एक पक्ष वृद्धि लाभ कर सकते हैं।’ देवीने चन्द्रको जाकर सब वृत्तान्त बताया था। दक्षके वाक्य से चन्द्र एक पक्ष घटने और दूसरे पक्ष बढ़ने लगे (कालिकापुराण, १०-२१ अ०)

भरणी प्रभृतिके साथ कृत्तिकाकी भी चन्द्रने शाप दिया था। इसीसे कृत्तिका नक्षत्र यात्रामें वजनीय है। कृत्तिकाने कार्तिकेयको पालन किया था। उसकी पश्चिष्ठात्री देवता अग्नि हैं। कृत्तिकामें ६ तारा हैं।

“अधधिकः सत्यधर्मे हि होनो वृष्टा नोत्पन्नमति कृतः।

कठोरवाक् चाहितकर्मकृत् स्यात् सित कृत्तिकायां मनुजः प्रसूतः॥”

(कीटोप्रदीप)

कृत्तिका नक्षत्रमें जन्म लेनेसे मनुष्य सुधित, मिथ्यावादी, वृथा पर्यटनशील, कृतघ्न, कठोरवादी और अहितकारी होता है। उसके आद्यपादमें जन्मपण्य करनेसे जात व्यक्तिका मेघराशि और अवशिष्ट पाद त्रयमें जन्म लेनेसे उसका वृषराशि होगा।

२ शकट, गाड़ी। ३ मृगचर्म। ४ खाल। ५ भूर्ज-पत्र।

कृत्तिकाक्षि (सं० लि०) कृत्तिका शकटं अक्षिस्त्रिलोकं चिह्नं यस्य, बहुव्री०। शकटचिह्नचिह्नित, गाड़ीका निशान रखनेवाला। अश्वमेधयज्ञमें अश्वके शकटाकार तिलक लगाया जाता है। (मतपञ्चम्याय ११७।२४)

कृत्तिकाभव (सं० पु०) कृत्तिकायां कृत्तिकानक्षत्रे भव उत्पत्तिरस्य। चन्द्र, चांद।

कृत्तिकासुत (सं० पु०) कृत्तिकायाः सुतः पुत्रः, इ-तत्। कार्तिकेय। कृत्तिकाने कार्तिकेयको पालन किया था। इससे उनका नाम कृत्तिकासुत भी है। कार्तिकेय देखो।

कृत्तिवास (सं० पु०) कृत्त्या चर्मणा मज्जासुरस्येति शेषः वस्त्रे कटिदेशमाच्छादयति, कृत्ति-वस्-अण्। १ शिव। २ बंगलाभाषाके कोई बहुत पुराने कवि।

“कृत्तिवासी रामायण” या बंगलाभाषाका रामायण उनकी अक्षय कीर्ति है। शान्तिपुरके निकट फुलिया ग्राममें वह रहते थे। उनके पितामहका नाम सुरारी श्रीभा और पिताका नाम वनमाली था।

कृत्तिवासाः (सं० पु०) कृत्तिगंजासुरस्य चर्म वासोऽस्य, बहुव्री०। १ शिव। महादेवने गजासुरको मार उसका चर्म परिधान किया था, इसीसे उनका नाम कृत्तिवासाः पड़ गया। काशोत्पल्लुके ६८वें अध्यायमें लिखा है—पार्वतीने जिस समय महादेवसे रत्नेश्वर लिङ्गका माहात्म्य सुना, उसी समय महिषासुरका पुत्र गजासुर अपने बलशैलीमें प्रमत्त हो महादेवके अनुचरोंको निपोड़न करते करते उन्हींकी ओर चला था। प्रमत्त गजासुरके भयसे चबरा कर महादेवके पास पहुँच गये। गजासुरने इससे पहले तपस्या करके ब्रह्मासे यह वर पाया था—कन्दर्पवशीभूत किसी व्यक्तिके हाथ उसका मृत्यु न होगा। वह सारे जगत्को कन्दर्पके वशीभूत समझ किसीसे डरता न था। परन्तु जब वह कन्दर्पदर्पहारी महादेवके सामने पहुँचा, तो उन्हींने त्रिशूलसे छेद एकबारगी ही उठा कर उसे शून्यमें टांग दिया। गजासुरने शून्यमें महादेवके मस्तक पर छत्रकी भाँति अपना देह फैलाया था। गजासुरने शून्यमें उसी प्रकार रह महादेवकी बहो सुतिकी; महादेवने प्रसन्न हो उसे वर देना चाहा था। उस पर गजासुरने प्रार्थना की, ‘हे! दिगम्बर महादेव! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो आप मेरे शरीरका चमड़ा लेकर पहन लीजिये और आजसे अपना नाम कृत्तिवास रखिये।’ महादेवने गजासुरकी यह प्रार्थना मान ली। उसी समयसे महादेवको कृत्तिवास कहते हैं।

शुक्लयजुर्वेदमें महादेवका एक नाम कृत्तिवासाः भी देख पड़ता है—

“अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अर्धिसन्नः शिवोत्तमोहि।”

(वाजसनेयसंहिता १६१)

हे ब्रह्म! त्वं कृत्तिवासाः चर्मधारः। (महोत्तर)

(स्त्री०) २ दुर्गा ।

कृत्वा (सं० त्रि०) १ कर्तृमयी, तेज, काटनेवाला ।

“वज्रो व कृत्वा चामिना ।” (अक १।२१।१०)

‘कृत्वाः कर्तृमयीः ।’ (चावच)

कृ-कृत्वा । कृत्वाभिः कृत्वाः अक १।२१।१० २ शिल्पी, कारीगर ।

कृत्य (सं० त्रि०) क्रियते, क-कृप् तुगागमः ।

विभाषा कृत्वाः । पा १।१।१२०। १ कर्तव्य, किया जानेवाला ।

२ विद्विष्ट, बंझकाया हुआ, उत्कोच (रियवत) द्वारा वशीभूत अथवा किसीको विनाश करनेके लिये नियुक्त किया जा सकनेवाला ।

(पु०) ४ व्याकरणमें तस्य, अनीयर्, तवत्, यत्, क्वप्, ण्यत्, केलिमर् प्रवृत्ति प्रत्यय । वोपदेवने उक्त प्रत्ययकी स्य संज्ञा की है । कृत्य प्रत्यय कर्म और भाव-वाच्यमें आता, कहीं कहीं कर्तृवाच्यमें भी लग जाता है । ५ अभिचारदेवता, जादूटोनाके देव ।

(स्त्री०) ६ कार्य, फर्ज ।

कृत्यक (सं० पु०) कृत्य स्वार्थे कन् । विद्वेषक, नुकसान करनेवाला ।

कृत्यज्ञा (सं० स्त्री०) कृत्यक स्त्रियां टाप् । माया-विनी, डाकिनी, चुड़ैल, जानमासका नुकसान करनेवाली औरत ।

“लोष्टुभिः पांशुभिश्चैव बभूवुः काहेच सृष्टितः ।

अवस्थमेव इन्धाम सायं स किल कृत्यकाम् ॥”

(भारत, नलोपाख्यान ११।१२८)

कृत्यवान् (सं० त्रि०) कृत्यमस्त्यस्य, कृत्य-मत्तुप् मस्य वः । १ कृत्ययुक्त, फर्ज पदा करनेवाला ।

“तेऽप्यन् ब्राह्मणं शान्मापन्नं पलितं कृशम् ।

कृत्यवान्महूरस्यमप्रियोमपुरस्तम् ॥” (भारत, आदिपर्व)

२ कार्यवान्, कामवाला ।

कृत्यवित् (सं० त्रि०) कृत्यं कर्तव्यं वेत्ति, कृत्य-विद्-क्विप् । कार्यज्ञ, कामको समझनेवाला ।

कृत्यविधि (सं० पु०) कृत्यस्य कर्तव्यस्य विधिनियमः, ६-तत् । कर्तव्यकार्यका नियम, कामका तरीका ।

कृत्या (सं० स्त्री०) कृ भावे क्वप् तुगागमः टाप् च ।

१ क्रिया, काम ।

Vol. V. 64

“श्रावणस्य दशः कृत्या जातिरत्रे वसययोः ।” (मनु ११।१८)

२ अभिचारादि कार्य, जादूटोना ।

“उत्कृत्या किरामि ।” (बाणभनेयसंहिता ५।२६)

‘उत्कृत्या शत्रुभिरभिचरन्तिः सन्धादिता वज्रगव्या ।’ (मत्तोपर)

३ अभिचारकार्यके लिये प्राराधित कोई देवता, जादूके देव ।

“शमीव कृत्या कर्तारमच्छतु ।” (अथर्ववेद ५।१४।११)

अभिचार क्रियामें कृत्याकी उत्पत्ति होती है ।

फिर जिसके विनाशको अभिचार क्रियाका अनुष्ठान किया जाता, उसके मरने पर ही कृत्याका विनाश देखनेमें आता है ।

महाभारतमें कृत्या उत्पत्तिकी एक कथा लिखी है । नरपति वृषादभिं सुनियोसे दानकी बड़ाई सुन उन्हें प्रतिदिन उड़ूखर फल (गूखर) दिया करते थे । सुवर्ण दानमें अधिक फल है । परन्तु देख सकने पर सुनि उसे ग्रहण न करते । इसीसे उन्होंने फलमें छिपाकर सोना दिया था । सुनियोने समझने पर वह फल ग्रहण न कर स्वानान्तरको प्रस्थान किया । इस पर वृषादभिं क्रुपित हो सुनियोको विनाश करनेके लिये अभिचार करने लगे । यथाविधि क्रिया समाप्त हुई और एक राक्षसी (कृत्या) लोगोंके देखते देखते निकल पड़ी । नरपतिने कहा—‘यातुधानि ! तुम अत्रि आदि सुनियोको मार डालो । किन्तु उन्हें मारनेसे पहले उनके नामका अर्थ हृदयकर्म कर लीजियेगा ।’ यातुधानो सुनियोके पास जा पहुँची । देवराज इन्द्र, राक्षसीको मारनेके लिये एक संन्यासीकी मूर्ति धारण करके पहले ही सुनियोमें मिल गये थे । राक्षसीने जाकर सुनियोका परिचय पूछा । सुनियोने यथाकाम अपने नामका अर्थ और परिचय बताया था । परन्तु राक्षसी कुछ समझ न सकी, अन्तको उसने संन्यासी वेशधारी इन्द्रके निकट जाकर पूछताछ की । इन्द्रके परिचय देते भी वह कुछ समझ न सकी और कहने लगी—‘मैं कुछ नहीं समझी, आप अपना परिचय फिर प्रदान कीजिये ।’ संन्यासीने कहा, ‘तुमने एक-बार हमारा परिचय नहीं पाया । इस लिये हम इस त्रिदशके आघातसे तुम्हें मार डालेंगे ।’ ऐसा कह

कर इन्द्रने त्रिदण्ड फटकारा और राजसीको मारा था। उसने भूतल पर गिर प्राच छोड़ दिया।

(भारत, अगुशासन, ८१५०)

किसी दूसरे समय महाराज अश्वरीष राज्याश्रम छोड़के यमुनातीर विष्णुकी चर्चना करते थे। उसी समय महासुनि दुर्वासा उनके प्रतिधि हुए। महाराजने पादरके लिये शुद्ध जल दिया था। इस पर क्रुद्ध हो उन्हें विनाश करनेके लिये अपनी अटासे दुर्वासाने कालानल सट्टा प्रज्वलित देवधारिणी पवित्रस्ता (तलवार हाथमें लिये) कृत्याको सृष्टि किया।

(भागवत, ८।४.५०)

विष्णुपुराणमें लिखा है—कृष्णने काशिराज पोण्ड्रकको मार डाला था। इस पर उनके पुत्रने तपस्यासे महादेवकी सन्तुष्ट किया और पितृयज्ञ, कृत्याका मारनेके लिये उनसे कृत्याको वर मांग लिया। उसी समय दक्षिणाम्निसे ज्वाला करासवदना प्रज्वलित केशकलापा कृत्या निकली थी। उसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

“कोषाज्ज्वलन्ती ज्वलन् वसन्ती सृष्टिं दृष्टन्ती दितिर्ग वसन्तीम्।

भीमं नदन्ती प्रचमामि कृत्यां रोदवनायां वृधवीयकालीम्॥”

क्रोधसे कृत्याका टेढ़ प्रज्वलित हो रहा है। वह अग्निवमन और सृष्टिदाह करती है। उसका नाद भीम है। लुधासे वह उच्च चीत्कार करती है।

कृत्याको शान्ति अथर्ववेद (५।१३।१४) में लिखी है। सुश्रुतमें भी कृत्याको शान्तिका मन्त्र विद्यमान है।

“ततोऽसुरा एषु लोकेषु कृत्यां वलगात्रिषु सुवते वं चिह्नं वानभिभवमेति।”

(शतपथब्राह्मण १।५।४।२)

४ कोई नदी। (भारत, भोज ८।१८)

कृत्याकृत (वे० त्रि०) कृत्यां अभिचारक्रियां करोति, कृत्या-क-कृप् तुगागमश्च। अभिचार कार्यकारी, जादूटोना करनेवाला।

“कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कामिन प्रति मुच्यत।” (अथर्व ५।१४।३)

कृत्यादूषण (वे० पु०) कृत्याया अभिचारक्रियाया दूषणः, कृत्या-दूष-ङ्, ट्। १ अभिचार कार्यके अति-कारके लिये कोई दैवक्रिया, जादूटोना रोकनेका

एक काम। अथर्ववेद (५।१३।१४) और शतपथ-ब्राह्मण (१।५।४।२।२) में कृत्याके विनाशकी कथा लिखी है। २ कृत्याविनाशक कोई पोषधि, जादूटोना भूठा करनेवाली कोई जड़ी बूटी। (अथर्व ५।७।१०) ३ अङ्गिरसर्वशीय कृत्याविनाशक कोई जङ्गिड़ ऋषि। (अथर्व १८।१४।१) कृत्यादूषणी शब्द भी इस अर्थमें व्यवहृत होता है।

कृत्यादूषी (सं० त्रि०) कृत्याया अभिचारक्रियाया दूषी दूषकः, कृत्या-दूष्-ङिनि। कृत्याविनाशक, जादूटोना न चकने देनेवाला।

“कृत्यादूषिरयं मन्त्रिणो चरातिदूषिः।” (अथर्व २।४।६)

कृत्योन्माद (सं० पु०) कृत्याजात भूतोन्मादरोग, जादूसे पैदा होनेवाला पागलपन।

कृत्रिम (सं० क्री०) क-कृ-मप्। १ विद्वत्तपण। २ काचलक्षण, कविया नीत। ३ रसाञ्जन, कोई सुरमा। ४ ज्वरादिनाशक गन्धद्रव्य, खुशबू वगैरह मिटानेवाली कोई खुशबूदार चीज। ५ चीनकपूर, चीना काफूर। ६ गन्धराज। ७ कस्तूरिका, मुश्क। ८ सिङ्गक, एक खुशबूदार चीज। ९ पोतचन्दन। १० द्वादशविध पुत्रान्तर्गत कोई पुत्र।

“सदृशन्तु प्रकुर्याद यं गुणदोषविषयचक्षम्।

पुत्रं पुत्रशब्देयुक्तं स विशेषश्च कृत्रिमः॥” (मनु ८।१६८)

(त्रि०) ११ मिथ्याभूत, मसूनूयी, बनावटो। १२ कार्यानात, कामसे निकला हुवा।

कृत्रिमक (सं० पु०) कृत्रिम स्वार्थे कन्। कृत्रिम देखो। कृत्रिमधूप (सं० पु०) कृत्रिमेन गन्धद्रव्य विशेषेण कल्पितो धूपः, मध्यपदलो०। नाना सुगन्धि द्रव्यनिर्मित दशाङ्ग धूप, तरह तरहकी खुशबूदार चोर्जाका एक धूना। इसका संस्कृत पर्याय—पायस, वृक्षधूप, औषध और सरलद्रव्य है।

कृत्रिमधूपक (सं० पु०) कृत्रिमधूप स्वार्थे कन्। कृत्रिमधूप देखो।

कृत्रिमपुत्र (सं० पु०) कृत्रिमस्वाप्तो पुत्रश्च, कर्मधा०। बारह पुत्रोंमें एक पुत्र, धनके लोभसे बिटा बनाया हुवा अपनाय सड़का। पुत्र देखो।

कृत्रिमपुत्रक (सं० पु०) कृत्रिमपुत्र अर्थार्थ कन् ।
क्रीडापुत्रिका, खेलकी पुतली ।

कृत्रिमभूमि (सं० स्त्री०) कृत्रिमा चासी भूमिश्च,
कर्मधा० । रचितभूमि, कुर्सी ।

कृत्रिममित्र (सं० पु०) कृत्रिमं मित्रं इति समासात्
पुंलिङ्गत्वम् । मित्रभेद, एक दोस्त । नीतिशास्त्रके
मतमें मित्र दो प्रकारका होता है—सहज और कृत्रिम ।
उसमें जिसके साथ उपकार आदिसे मित्रता करते,
उसे कृत्रिम मित्र कहते हैं । कृत्रिम मित्र दोनों
प्रकारके मित्रोंमें श्रेष्ठ है ।

कृत्रिमरत्न (सं० स्त्री०) काच, शीशा ।

कृत्रिमवन (सं० स्त्री०) कृत्रिमश्च तद्वनश्च, कर्मधा० ।
उपवन, बाग, फूलवाड़ी ।

कृत्रिमविष (सं० स्त्री०) विषदोष, जहरकी बुराई ।

कृत्रिमोदासीन (सं० पु०) कृत्रिमचासी उदासीनश्च,
कर्मधा० । उदासीनता दिखानेवाला व्यक्ति, जो उदा-
सीनताका ढोंग बतलाता हो ।

कृत्वरी (सं० स्त्री०) कृत्वन् स्त्रियां ङीप् रश्चान्तादेशः ।
कार्यकारिणी, काम करनेवाली ।

“महासिन्धवः सहकृत्वरी बभूवुः ।” (नेवध)

कृत्वा (वे० वि०) करोतिरन्तेभ्योऽपि कृष्यन्त इति
कनिप् । १ कार्यकारी, काम करनेवाला ।

“तदिच्छावया भवयेना कृत्वने ।” (चक्र- ८।१७।१५)

‘कृत्वने कर्मणां कर्ते ।’ (सायच)

कृत्वा (सं० अव्य०) कार्यसम्पादनान्तर, काम करनेके
पीछे, करके । “कृत्वावकाशे बचिसंप्रलभम् ।” (भट्टि)

कृत्वो (सं० स्त्री०) व्यासके पुत्र शुक्रदेवकी कन्या । वह
अणुइकी पत्नी और ब्रह्मदत्तकी माता थीं ।

(भाववत, १।११।१५)

कृत्व्या (वे० वि०) १ कर्तव्य, जिया जानेवाला ।

“धर्ता दिवः पचते कृत्व्याः ।” (चक्र- १।७।११)

२ युद्धकर्मकुशल, लड़नेमें हाथियार ।

“उत्तीतु कृत्व्यानां नवावसा ।” (चक्र- ८।१५।११)

‘कृत्व्यानां युद्धकर्मणि कुशलानाम्’ (सायच)

कृत् (सं० स्त्री०) कृ-सः क्तिच् । अ,प्रचिन्नत्वविभः क्तिच् ।
उच- १।१६ । १ जल, पानी । २ समुदाय, ढेर । ३ कुत्ति,
कोख ।

कृत् (सं० वि०) कृती वेष्टने क्त्विः । कृत्तयमां क्त्विः
उच- १।१७ । १ सम्पूर्ण, सब ।

“वेदः कृत्स्नोऽधिनगवः सरस्वती विजयमा ।” (मनु ११।६५)

(स्त्री०) २ जल, पानी । ३ समुदाय, ढेर ।

“तत्रैकस्य जगत् कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।” (गीता, १।११)

४ कुत्ति, कोख ।

कृत्स्नक (सं० वि०) कृत्स्न स्वार्थ कन् । समुदाय, सब ।

“त्वमेवैतत् कृत्स्नके ब्रह्मवन्मो ।” (शाङ्खायन-श्रौतसूत्र १।१।११)

कृत्स्नवित् (सं० वि०) कृत्स्नं वेत्ति, कृत्स्न-विद्-क्तिप् ।
सर्वज्ञ, सब समझनेवाला ।

कृत्स्नशः (सं० अव्य०) कृत्स्न वीक्षायां शम् । सम्पूर्ण-
रूपसे, पूरी तौर पर ।

“विश्लोयन्ते तदा क्रेशाः संसृतस्यैव कृत्स्नशः ।” (भाववत ३।७।११)

कृत्स्नहृदय (सं० स्त्री०) कृत्स्नश्च तत् हृदयश्च,
कर्मधा० । समग्र हृदय, पूरा दिल ।

“पश्यति कृत्स्नहृदयेन ।” (शक्तयजुः १८।८)

‘समग्रहृदयेन पश्यति’ इव प्रीयामि । (महीधर)

कृत्स्नायत (वे० वि०) कृत्स्नं समग्रमायतं विस्तृतं
यस्य । सम्पूर्णरूपसे विस्तृत, पूरी तौरपर फैला हुआ ।

“नमः कृत्स्नायतया भावते ।” (शक्तयजुः १६।१०)

कृदन्त (सं० पु०) कृत् प्रत्ययके योगसे निष्पन्न शब्द ।

कृदर (सं० स्त्री०) कृ-पच् निपातनात् साधुः । कृदरादवश्च ।

उच- ५।७१ । १ गृह, घर । २ उदर, पेट ।

“समिद्धो चञ्ज कृदरं मतीनां ।” (शक्तयजुः १८।१)

‘मतीनां कृदरं गृहीणामुदरं’ गभम् । (महीधर)

३ कोई पात्र, किसी किसमका बरतन । (पु०) ४

कुशूल, कुठिया ।

कृधु (वे० वि०) अल्प, छुद्र, फ़स, छोटा, कम ।

“कृध्विति फ़सनाम नकृत् भवति ।” (निबन्ध ६।१)

“यदस्मा चञ्चमियाः कृधु खलुसुपातसत् ।” (शक्तयजुः १३।१८)

कृधुक (सं० वि०) कृधु स्वार्थ कन् । अल्प, फ़स,
छोटा, कम ।

कृधुकर्ण (सं० वि०) कृधु फ़सो कर्णो यस्य, बहुव्री० ।

फ़सकण, छोटे कानोंवाला । (चप- १।१।१०)

कृधुर्कृत्वः कर्णः कर्णाभ्यन्तरस्थिता ठका यस्य । २
कर्णाभ्यन्तरस्थित छुद्र ठकावाला, जो कम सुनता हो ।

“मम स्नानात् कृधुकर्णो भवति ।” (चक्र- १०।२०।५)

कृत्तव (वे० स्त्री०) १ भाग, हिस्सा, टुकड़ा। (चक. १०।१०।२१) कृती छेदने कर्तव्य नुमागमस्य। कृतेनं च। उच. १।१०६। २ लाकड़, हल।

कृत्तन (सं० स्त्री०) कृत्-ल्यट् नुम् च। छेदन, काट।
कृत्तनिका (सं० स्त्री०) कृत्तन-कन् ततः स्त्रियां टाप् इकारागमस्य। कुरिका, चाकू।

कृत्तविचक्षण (सं० स्त्री०) कृत्त हिन्वि विचक्षण इत्थुच्यते अस्यां क्रियायाम्, मयूरव्यं। 'हे विचक्षण। तुम छेदन करो' निर्देश की जानेवाली क्रिया, जिस काममें कहा जाय कि तुम उसे काट डालो।

कृप् (वे० स्त्री०) कृप् कृपतेर्वा कल्पतेर्वा। (निघण्टु ६।८)
१ सुन्दर पाकति, अच्छी सूरत। (चक. ६।१।६) २ कल्पना, चन्दाज। (यत्नप्रभुः ४।१५)

कृप (सं० पु०) कृप्-अच्। १ देवराज इन्द्रके एक बन्धु। (चक. ८।१।१२) २ गौतमके पौत्र, भरद्वाज ऋषिके पुत्र। शरस्तम्भमें उनका जन्म हुआ था। श्रान्तनुने उन्हें पालन किया। द्रोणाचार्य उनकी भगिनी कृपेकी व्याहि थे। द्रोणाचार्यकी भांति वह भी कौरव और पाण्डवकी अस्त्रशिक्षा देते रहे। इसीसे उनका नाम कृपाचार्य हुआ। कुरुक्षेत्रके युद्धमें उन्होंने दुर्योधनका पक्ष अवलम्बन किया था। युद्धके अन्तपर वह पाण्डवकी ओर हो युधिष्ठिरके आश्रयमें रहने लगे। सबसे पीछे उन्होंने परीक्षितको भी धनुर्विद्या सिखायी।

(महाभारत)

२ व्रजराज एलराजके पुत्र। उनके पुत्रका नाम हरिवर्ष था।

कृपण (सं० त्रि०) कृप्-कृन्। (कृपेरी कः। पा. ८।२।१८)
'कृपणादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः।' (महाभाष्य) १ व्यसनप्राप्त, पाजी। २ व्ययकुण्ठ, कंजूस। ३ पदाता, न देनेवाला। (पञ्चतन्त्र १।१५) ४ लुट्ट, छोटा। ५ कदर्य, खराब। (हम, १।११) (स्त्री०) ६ दैन्य, कंजूसी। ७ अनुकम्पा, रहम। (मनु ४।१८६) (पु०) ८ क्षमि, कोड़ा।

कृपणकाशी (वे० त्रि०) अपने अभिप्राय-जेसा भाव प्रकाश करनेवाला, जो अपना मतसब बाहर करता हो। (तैत्तिरीयसंहिता १।४।७।१)

कृपणता (सं० स्त्री०) व्ययकुण्ठता, कंजूसी।

कृपणधी (सं० त्रि०) कृपणा दीना धीर्बुद्धिर्यस्य, बड़व्री०। लुट्टमनाः, छोटे दिलवाला। कृपणबुद्धि प्रभृति शब्दभी उक्त अर्थमें व्यवहृत होते हैं।

कृपणवत्सल (सं० त्रि०) कृपणेषु दीनेषु वत्सलः, ७-तत्। दयालु, गरीबपरवर।

कृपणा (सं० स्त्री०) सविषकीटविशेष, एक जहरीला कीड़ा।

कृपणी (सं० त्रि०) कृपणं दैन्यमस्यास्तीति, कृपणा सुखादिस्वात् इति। सुखादिभाष्य। पा. ४।२।११। दैन्यग्रस्त, कंजूस।

कृपण्यु (वे० पु०) स्तोता, स्तव वा गुणगान करनेवाला। (निघण्टु, १।१६)

कृपणील (वे० त्रि०) कर्मस्थान। (चक. १।१।१०।१)

कृपया (सं० अस्व०) कृपा करके, मिहरबानीसे।

कृपा (सं० स्त्री०) कृप् स्त्रियां भिदादिस्वादङ् सम्प्रसारणं टाप् च। विहिदादिभ्योऽङ्। पा. १।१।१०४। १ दया, मिहरबानी। २ नदीविशेष, कोई दरया।

(मार्कण्डेयपुराण ५०।१०)

कृपाकर (सं० त्रि०) कृपां करोति, कृपा-कृ-अच्, उपपद०। दयालु, मिहरवान्।

कृपाचार्य, कृप देखो।

कृपाण (सं० पु०) कृप-आनच्। बाहुल्यकात् कृपेरपानच्। (अमरकदण्ड २।२०) १ खड्ग, तलवार। २ कोई कन्द। वह दण्डक वृक्षका एक भेद है। उसमें ३२ वर्ष लगते हैं। ८ वर्षों पर यति डालते हैं। कृपाणमें ३१वां वर्ष गुरु और ३२वां वर्ष लघु रहता है। यति पर अनुपास मिलता और अन्तमें नकार लगता है।

कृपाणक (सं० पु०) कृपाण स्मार्थ कन्। खड्ग, तलवार।

कृपाणिका (सं० स्त्री०) कृपाणक स्त्रियां टाप् प्रकार-स्वकारः। १ कुरिका, चाकू। (हम, १।४४८) २ कर्तरी, कटारी।

कृपाणी (सं० स्त्री०) कृपाण स्त्रियां ङीष्। कृपाणिका देखी।

कृपावैत (सं० पु०) कृपायां कृपाप्रदाने अवैतः द्वितीय-रहितः। बुद्धभेद। (निघण्टु०)

कृपानिधि (सं० पु०) कृपाया निधिराधारः, ६-तत् ।
दयावान्, मिहरवान् ।

कृपापात्र (सं० पु०) १ दयाभाजन, जिस पर मिहर-
बानी की जाये । २ केवलाद्वैतवाद-कुलिश नामक
वैदान्तिक ग्रन्थ बनानेवाले ।

कृपायतन (सं० पु०) कृपानिधि, मिहरवान् ।

कृपाराम—१ कोई विख्यात संस्कृत ग्रन्थकार । काशी-
माहात्म्यसंग्रह, वीजगणितोदाहरण, सुद्राप्रकाश
(योग), वासुचन्द्रिका, पञ्चपक्षीटीका, मकरन्दोदा-
हरण, सुहृत्तत्त्वटीका, यन्त्रचिन्तामण्युदाहरण और
सर्वार्थचिन्तामणिग्रन्थ कृपाराम रचित हैं ।

२ विवादभङ्गार्णव नामक धर्मशास्त्रके ग्रन्थतम
संग्रहकार ।

३ जयपुरके एक कवि । (१७२० ई०) बनारसके
सरदार कविने अपने 'शृङ्गार संग्रहमें' इनकी कविता
उद्धृत की है ।

४ गोंडा जिला नारायणपुरके एक हिन्दी कवि ।
इन्होंने भागवतकी दोहा चौपाइयोंमें अनुवाद किया ।
कृपालकवि—हिन्दीके एक पुराने कवि । इन्होंने
शृङ्गाररसकी ही कविता लिखी है ।

कृपालु (सं० त्रि०) कृपां लाति आदत्ते, कृपा-ला-डु
यद्वा कृपा विद्यतेऽस्मिन्, कृपा-पालुष् । दयालु,
मिहरवान् ।

कृपालुता (सं० स्त्री०) दयालुता, मिहरबानी ।

कृपावलोकन (सं० स्त्री०) कृपाया अवलोकनम्, ३-तत् ।
कृपादृष्टि, मिहरबानीकी नजर ।

कृपावान् (सं० त्रि०) कृपा अस्तस्य, कृपा-मतुप् मस्य
वः । कृपायुक्त, मिहरवान् ।

कृपाशङ्कर—ज्योतिषकेदार नामक संस्कृत ग्रन्थ बनाने-
वाले ।

कृपासिन्धु (सं० पु०) कृपायाः सिन्धुरिव । दयासागर,
मिहरवान् ।

कृपी (सं० स्त्री०) कृप-ङाप् । द्रोणाचार्यकी पत्नी,
कृपाचार्यकी भगिनी, अश्वत्थामाकी माता । उनके
जन्मका विवरण इस प्रकार लिखा है—

एक समय शरहान् ऋषि कठोर तपस्या करते
थे । उनकी तपस्यासे इन्द्रने डरकर तपमें विघ्न डाल-
नेके अभिप्रायसे ज्ञानपदों माली अप्सराको उनके
निकट भेजा । स्वर्गवेद्याके प्रपूर्व रूपज्योतिसे ऋषिका
चित्त मोहित हो गया । उससे ऋषिका रेतः स्त्रवित
हो शरके गुच्छामें गिरा था । वहां अमिततेजाः मह-
र्षिके रेतःने दो भागमें विभक्त हो एक पुत्र और एक
कन्याको उत्पादन किया । महाराज शान्तनु ऋगयाको
गये थे । उन्होंने उक्त पुत्र और कन्याको देख अपने
राजप्रासादमें ले जाकर सासनपालन किया । राजाकी
कृपासे वर्धित होनेके कारण ही उनका नाम कृप और
कृपी हुआ । (महाभारत)

कृपोट (सं० स्त्री०) कृप कीटन् स प्रतिषेधः । कृत्कृपिभाः
कीटन् । उच० ५।१८५। १ उदर, पेट । (उच० १०।१८८) २ जल,
पानी । (निघण्टु १।२२) ३ इन्धन, जलानेकी लकड़ी ।
४ विपिन, जंगल ।

कृपोटपाल (सं० पु०) कृपोट-पालि-रण् । १ समुद्र ।
२ केनिपात, नावका डांड । ३ पवन, हवा ।

कृपोटयोनि (सं० पु०) कृपोटं काष्ठं योनिरुत्पत्ति-
स्थानमस्य, बहुव्री० । अग्नि, आग ।

कृपोपति (सं० पु०) कृप्याः कृपभगिन्याः पतिर्भर्ता,
६-तत् । द्रोणाचार्य ।

कृपोसुत (सं० पु०) कृप्याः सुतः पुत्रः, ६-तत् । अश्वत्थामा ।

कृमि (सं० पु०) क्लामतीति, क्लम-ङ् । क्लमितीति क्लामय
त्य । उच० ५।१२१ । १ कीट, कीड़ा । २ पतङ्गमात्र, उड़ने-
वाला कोई कीड़ा । ३ पिपीलिका, चीटी । ४ साँसा,
लाइ । ५ जर्षनाभ, मकड़ा । ६ गर्दभ, गधा ।
७ कृमिल, किरमिजी या हिरमिजी । ८ रोगविशेष,
पेटमें पैदा होनेवाले कीड़ोंकी बीमारी ।

भुक्तद्रव्य परिपाकके पूर्व आहार ; अजीर्णकारी,
अनभ्यस्त, विद्वह वा मलिन द्रव्यके भोजन, परिश्रमके
अभाव ; शुद्धपाक, अतिशय स्निग्ध एवं शीतल द्रव्यके
भोजन, दिवानिद्रा ; माषकलाय, पिष्टाक, विद्वह,
मृषाक, शालुक, केशुर, पर्ब, शाक, सुरा, पिष्टाक,
चिपिटक और मधुराश्वपानीय सकल द्रव्य द्वारा
जोषा तथा पित्त कृपित होता है । उसीसे कृमिकी

उत्पत्ति है। आमाशय और पक्वाशय ही कृमिकी उत्पत्तिका स्थान है।

सुन्धतके मतमें देहस्थ कृमि विंशतिजातीय होता है। पुरीष, रक्त और कफ उसकी उत्पत्तिका कारण है। अयवा, वियवा, क्लिप्पा, चिप्पा, गण्डुपदा, सुरव और हिमसुख सात प्रकारका कृमि पुरीषसे उपजता है। वह स्वेतवर्ण और सूक्ष्म रहते तथा मलके निर्गमनपथमें सञ्चरण करते हैं। पुरीषजात उक्त सात प्रकारके कृमिसे शूल, अग्निमांश, पाण्डुता, विष्टम्भ, वक्षज्वर, काशान्नास, पित्त, ज्वरोग और मलभेद सकल उपसर्ग उठ खड़ा होता है।

रक्त, गण्डुपद, दीर्घा, दर्भपुष्पा, प्रलूना, चिपिट्टा और पिपीलिका कृमिकी उत्पत्तिका कारण कफ प्रकोप है। उक्त कृमि उत्पन्न होनेसे शूल, पाटोप, मलभेद, अजीर्ण इत्यादि उपसर्ग उठ खड़े होते हैं।

रोमशा, रोमसूर्धा, सपुच्छा, श्यावमण्डल, क्लिक्श और कुष्ठज छह प्रकारके कृमिका कारण रक्त है। इनमें प्रथम चार प्रकारके कृमि धान्यके अङ्कुरकी भांति आकृतिविशिष्ट, शूलवर्ण और सूक्ष्म होते हैं। वह मज्जा, नेत्र, तालु तथा श्रोत्रदेशमें निकलते और केश, नख एवं रोम भक्षण करते हैं। इस प्रकारके कृमि उत्पन्न होनेसे शिरोरोग, ज्वरोग, वमन, प्रतिश्याय प्रभृति उपद्रव उठते हैं। माषकलाय, पिष्टान्न, लवण, गुड़, शाकके आहारसे पुरीषजात कृमि उत्पन्न होते हैं। मांस, माषकलाय, गुड़, चीर, दधि और बहुकालका विक्षत इक्षुरस इत्यादि खानेसे कफजात कृमिकी उत्पत्ति है। विरुद्ध किंवा अजीर्णकारी शाक प्रभृति खा लेनेसे रक्तजन्य कृमि पड़ जाते हैं। इस रोगमें ज्वर, विषण्णता, शूल, ज्वरोग, अयसाद, भ्रम, पित्त और अतिसार समस्त उपद्रव उठ खड़े होते हैं। प्रथम त्रयोदश प्रकार कृमि स्पष्ट दृश्य हैं। केशजात प्रभृति अदृश्य होते हैं। सर्व प्रथमोक्त दो प्रकारके कृमि असाध्य हैं।

कृमिरोगकी चिकित्सा—रोगीको प्रथम सुरसादि-गणके ज्ञाथसे पाक किये घृतद्वारा वमन कराना चाहिये। पीछे तीक्ष्ण विरेचन प्रयोग करके यव, कोल, कुलत्थ,

सुरसादिगणके ज्ञाथ, विडङ्ग, तेल और सैन्धव लवण-के साथ आस्थापन प्रयोग करते हैं। रोगीको अच्छे जलसे स्नान कराके कृमिनाशक आहार देना चाहिये। अन्नके पुरीषका चूर्ण और वारिभङ्गचूर्ण मधुके साथ पान करनेसे कृमिका उपशम होता है। छोटे कर्पूरे-का रस मधुके साथ सेवन करनेसे भी कृमि मर जाते हैं। पुरीषजात वा कफजात कृमिकी भी चिकित्सा इसी प्रकार करनी पड़ती है।

मस्तक, हृदय, मुख, नासिका और चक्षु सकल स्थानोंमें जो कृमि उत्पन्न होते हैं, उनके लिये अञ्जन, नख तथा प्रवणोदन प्रयोग करना चाहिये। रोमजात कृमिकी चिकित्सा इन्द्रलुप्तके अनुसार की जाती है। दन्तजात कृमिकी मुखरोगकी भांति और रक्तजात कृमिकी कुष्ठरोगकी भांति चिकित्सा कर्तव्य है।

कृमिरोगमें तिल और कटु रस भोजन करना हितकर है। दुग्धपान भी प्रशस्त होता है। वनपाक दुग्ध, मांस, घृत, दधि, शाक, अन्न, मधुर और हिम कृमि-रोगमें परित्याग करते हैं। (सुन्धत, उत्तरतन्त्र, ५। ५०)

बेर और छाटे करेलीका मूल गुड़ और घृतके साथ सिद्ध करके खानेसे सकल प्रकारके कृमि नष्ट हो जाते हैं। (गण्डपुराण, १८५ ५०) कृमि-रोगमें कृमिकालानल, क्रिमि-विलाम, लालावटी, विडङ्गकौह प्रभृति सेवन करते हैं। शेषको उपकार न होनेसे विडङ्ग वा क्रिमि-घातिनी-गुड़िका प्रयोज्य है। क्रिमि देखो।

युरोपीय चिकित्सकोंके मतमें—अन्तर्में पांच प्रकारके कृमि (Vermes or worms) उत्पन्न हो जाते हैं। यथा—बड़े और गोलाकार कृमि (Ascaris lumbricoidea), सूत-जैसे छाटे छोटे कीड़े (Ascaris Vermicularis), सूत-जैसे लम्बे कीड़े (Tricocephalus dispar), लम्बे और फीते-जैसे कृमि (Taenia lata) और चौड़े तथा फीते-जैसे कीड़े (Taenia lata) इन पांच प्रकारके कीड़ोंके जोच (१) बड़े और गोल कीड़े केसुवे जैसे गोल, १२ इंच तक लम्बे और दोनों ओर ठालू होते हैं। वह छोटी पांतमें उपजते, परन्तु कभी कभी पाकाशय, मुख और बड़ी पांतमें भी देख पड़ते हैं। (२) सूत-जैसे छोटे कीड़े ठोका

रुईके धागेके समान होते हैं। प्रधानतः सीधी पातमें ही उनका वास है। (१) सूत-जैसे बड़े कीड़े २ इंच तक लम्बे होते हैं। उनके अगले भागका १-२ अंश चौड़े के बाल-जैसा सीधा रहता है। किन्तु पश्चात्भाग अपेक्षाकृत मोटा पड़ता है। वह प्रधानतः सीधी पातमें ही रहते हैं। (४) फीते-जैसे लम्बे कीड़े कभी कभी १०-१५ फीट तक बढ़ जाते हैं। उनकी दोनों कोरें सीधी होती हैं। मस्तक बड़ा और गोल रहता है। वह २ इंचसे ४ इंच तक टुकड़े टुकड़े हो बाहर निकलते हैं। (५) चौड़े फीते-जैसे कीड़े बहुत चौड़े और अन्तमें कड़े कीड़ेकी भांति लंबे होते हैं। उनका मत्था बहुत छोटा रहता है। वह टुकड़े टुकड़े हो बाहर निकलते हैं। यह पांचों प्रकारके कीड़े मनुष्योंके होते हैं। अन्तमें कड़े २ प्रकारके कीड़े प्रायः बालकोंके निकल पाते हैं।

पहले प्रकारके कृमिरोगमें पेटकी पीड़ा, भूखका घटना, जी मिचलाना, पेट फूलना, व्यथायुक्त अन्त्र-शूल, कभी कोष्ठवह, कभी भेद, नाकका खुजलाना और दांतोंका दुखना इत्यादि लक्षण प्रकाशित होते हैं। दोनों प्रकारके छोटे कीड़े होनेसे मलद्वारमें बड़ी खुजली चलती है। बच्चोंके यह रोग होनेसे वह सोते सोते मलद्वारको हाथसे खुजलाने लगते हैं। कभी कभी उन्हें आक्षेपयुक्त मूर्छा भी आ जाती है। इस प्रकारके कृमि अज्ञातसार या पचननेके कपड़ेमें निकल पड़ते हैं।

बड़े और गोल कीड़ेके लिये सेण्टोनाइन बड़िया औषध है। सेण्टोनाइनके साथ उससे ६ गुण बाइका-बर्नेट अब सोडा मिलाकर प्रति दिन सबेरे और तिसरे पहर २३ बार खिलाने पीछे जुलाब देनेसे कीड़े निकल जाते हैं। सेण्टोनाइन-जैसा ही कीड़ोंके बहुत मारता, वैसीही उसके सेवनसे पाण्डु, कामला इत्यादि भयङ्कर रोग लगने की सम्भावना भी रहती है। इसी लिये सेण्टोनाइन व्यवहार करनेसे उसके साथ चीनी मिलाकर दिनमें २-३ बार खाकर जुलाब लेनेसे एक दिनमें ही सब कीड़े निकल जाते हैं। छोटे और सूत-जैसे कीड़े होने पर चीनी पड़े दूधमें २० बंद टिफ्टर

एलोस एटमार मिला कर प्रति दिन ३ बार खिलाना चाहिये। बच्चोंके ऐसी अवस्थामें मलद्वार पर चूनेके पानीकी पिचकारी लगानेसे शीघ्र ही उपकार होता है।

सृष्टियोग—कांजी, ललिताकी पत्नीका जल, विरा-यतेका पानी, सोमराज, मधुके साथ विडङ्गका चूर्ण, बमबन—यह सब द्रव्य काड़ोंको बहुत मारते हैं।

कृमिक (सं० पु०) कृमि स्वार्थ कन्। यावदिमाः कन्। पा० ४। २१। १ रुद्र कृमि, छोटा कीड़ा। २ काला सांप। (स्त्री०) ३ सुपारी।

कृमिकण्टक (सं० स्त्री०) कृमौ कृमिरोगे कण्टकमिव तन्नाशकत्वात्। १ विडङ्ग। २ गूलर। ३ चीत।

कृमिकर (सं० पु०) कृमिं करोति, कृमि क-ट। एक विषेला कीड़ा।

कृमिकर्ण (सं० पु०) कृमियुक्तः कर्णो यत्र, बहुव्री०। कृमिरोगविशेष, कानकी एक बीमारी। कानके छेदमें किसी प्रकारका कीड़ा लगने या मक्खीका बच्चा पड़नेसे सुननेकी शक्ति रुक जाती है। इसीका नाम कृमिकर्ण है। कृमिकर्ण मिटानेके लिये कीड़े मारनेवाला औषध प्रयोग करना चाहिये। (सुस्त)

कृमिका (सं० स्त्री०) १ ग्रन्थिपर्णी। २ राई। ३ सूजन।

कृमिकालानलरस (सं० पु०) कृमिरोगका एक औषध। २ पल विडङ्ग, १ पल विषचूर्ण, ४ तोले लौह, २ तोला पारद और २ तोला गन्धक बकरीके दूधमें घोंटनेसे यह औषध बनता है। (रसैन्द्रसारसंग्रह)

कृमिकुम्भा (सं० स्त्री०) महाकाललता।

कृमिकोश (सं० पु०) १ माजूफल। इसका संस्कृत पर्याय—संघाही, पूगफल, पत्रफल, काषायो और अस्त्रगोधक है। यह संघाही, तिक्त, रक्ताशोधक और ज्वर, अर्श, प्रदर, अतोसार तथा अण्डामयनिवारक होता है। (वेद्यकचन्द्रिका) २ कीड़ेका कोया।

कृमिकोगोथ (सं० त्रि०) कृमिनिर्मितः कोशः, तस्मादुत्तिष्ठति कृमिकोश-उद्-स्था-क। रेशमी कपड़ा।

कृमिकोष्ठक (सं० पु०) चौड़ेका एक रोग। इस रोगमें चौड़ेको भिन्न पुरीष उत्तरता है। (जयदल)

कृमिगुहा (सं० स्त्री०) ककड़ीकी बीज।

कृमिग्रन्थि (सं० पु०) आंखके जोड़का एक रोग।

कृमिग्रन्थि रोगसे आंखकी पलकों और विरनियोंमें खुजसानेवाली गाँठ निकल आती है। उन्हीं सब जोड़ोंमें उत्पन्न होनेवाली कीड़े वर्म और शुक्लके सन्धिस्थानमें विचरण करके आंखका अभ्यन्तर विगाड़ देते हैं। (सुश्रुत)

कृमिचार्तिनी (सं० स्त्री०) कीड़ा मारनेवाली एक गोली। १ भाग पारा, २ भाग गन्धक, ३ भाग वन-यमानो, ४ भाग विडङ्ग, ५ भाग ब्रह्मवीज और ६ भाग तिन्दुके बीज मधुके साथ घोट कर यह गोली बनायी जाती है। (रसैन्द्रचिकित्सा)

कृमिघाती (सं० पु०) १ विडङ्ग। (त्रि०) २ कीड़े मारनेवाला।

कृमिघ्न (सं० पु०) कृमिं हन्तीति, कृमि-हन्-टक् न णत्वम्। १ विडङ्ग। २ पियाज। ३ कोलकन्द। ४ पारिभद्र। ५ कड़वी नीम। ६ भिलावा। ७ हलदी। (त्रि०) ८ कीड़े मारनेवाला।

कृमिघ्नरस (सं० पु०) कीड़ोंका एक औषध। विडङ्ग, पलाशबीज, नीमके बीज और रससिन्दूरका चूर्ण बराबर बराबर मिलानेसे यह औषध प्रसृत होता है। (रसैन्द्रसारसंग्रह)

कृमिघ्ना (सं० स्त्री०) १ हलदी। २ लाह। ३ विडङ्ग। ४ तमाखू। ५ सोमराजी।

कृमिघ्नो, कृमिघ्ना देखो।

कृमिज (सं० स्त्री०) कृमिभ्यो जायते, कृमि-जन ड। १ अगुरुकाष्ठ। २ लाह। (त्रि०) ३ कीड़ेसे उत्पन्न होनेवाला।

कृमिजम्ब (सं० स्त्री०) कृमिभिर्जम्बम्, इ-तत्। अगुरुकाष्ठ।

कृमिजखज (सं० पु०) कृमिजख।

कृमिजा (सं० स्त्री०) १ लाह। २ रेशम। ३ हिर-मिजी। ४ अगुरु।

कृमिजाह्वा, कृमिजा देखो।

कृमिजित् (सं० स्त्री०) विडङ्ग।

कृमिण (सं० त्रि०) कृमिरस्त्यस्व, कृमि-न णत्वच्। कीड़ेवाला।

कृमिदन्त, कृमिदन्तक देखो।

कृमिदन्तक (सं० पु०) दांतकी पीड़ा।

कृमिद्रव (सं० पु०) लाह।

कृमिनाशन (सं० स्त्री०) १ विडङ्ग। (त्रि०) २ कीड़े मारनेवाला।

कृमिनाशिनी (सं० स्त्री०) अजमोदा।

कृमिपर्वत (सं० पु०) कृमीणां पर्वत इव। वल्लीक, दीमकका पहाड़।

कृमिपाना (सं० स्त्री०) लाह।

कृमिपामा (सं० स्त्री०) लाह।

कृमिफल (सं० पु०) कृमयः फलेऽस्य, बहुव्री०। गूसर।

कृमिभक्ष (सं० पु०) कृमिभिर्भक्ष्यतेऽत्र आधारे अप, इ-तत्। एक नरक। कृमिभोजन देखो।

कृमिभोजन (सं० पु०) कृमिभिर्भुज्यतेऽत्र, भुज आधारे ण्यट्, इ-तत्। एक नरक। भागवतमें लिखा है—

गृहस्थको जो वस्तु मिले, वह सबको बांट देना चाहिये। यही शास्त्रका विधि है। यदि कोई गृही किसी दूसरेको न दे या पञ्चयज्ञका अनुष्ठान न कर केवल स्वयं उसे भोग करता, तो वह गृहस्थ कृमि-भोजन नामक अति निन्द्य नरकमें पड़ता है। उस नरकमें लाखों लोग लंबा चौड़ा एक कृमिकुण्ड है। यह व्यक्ति उसी कुण्डमें कीड़ा हो जन्म लेता है। फिर कीड़े सदा इसे काटा करते हैं। लाखों वर्ष इसी प्रकार कृमिकुण्डमें रहना पड़ता है। (भागवत, ५।१६।१८)

कृमिमलिका (सं० स्त्री०) कीड़े-केसी मक्खी।

कृमिमत् (सं० त्रि०) कृमि परस्त्यर्थे मत्तुप्। तबलाचकि-त्रिति वा मत्तुप्। पा ८।१।२७। कीड़ेवाला।

कृमिसुत्र (सं० पु०) कृमिरोगका एक रस। १ भाग पारा, २ भाग गन्धक, ३ भाग वनयमानो, ४ भाग विडङ्ग, ५ भाग कुचिला या नीमका बीज और ६ भाग पलाशबीज एक साथ कूट पीस कर मिलानेसे यह औषध प्रसृत होता है। मात्रा ४ माषा है।

(भेषजराशवली)

कृमिरिपु (सं० पु०) कृमीणां रिपुः, इ-तत्। विडङ्ग।

कृमिरोग (सं० पु०) कृमिभिर्जातो रोगः, मध्यपदको०। पेटके कीड़ासे होनेवाला रोग। कृमि देखो।

कृमिल (सं० त्रि०) कृमिरस्त्यत्र, कृमि परस्त्यर्थे क।

१ कमियुक्त । (पु०) २ कोई पुरानी बसती । किसीके मतमें वह सुगैरके पास है ।

कमिला (सं० स्त्री०) कमिं लाति, कमि-ला-क-टाप् । बहुत सड़के उत्पन्न करनेवाली स्त्री । २ कीड़ेवाली । कमिलाश्व (सं० पु०) अजमीढ़-वंशके एक राजा । अजमीढ़के पुत्र सुशान्ति, सुशान्तिके पुत्र पुरुजाति, पुरुजातिके पुत्र बाह्याश्व और बाह्याश्वके पञ्चम पुत्र कमिलाश्व थे । यह बहुत ही प्रजारक्षक रहे । (हरिवंश, ३२ अ०)

कमिलिका (सं० स्त्री०) लाल रंगका रेशमी कपड़ा । कमिवारिकृ (सं० पु०) कमिशङ्क ।

कमिनिशरस (सं० पु०) कमिरीगका एक औषध । पारा, गन्धक, अभ्रक, लोहा, मनःशिला, धातकी, त्रिफला, लोभ्र, विडङ्ग, हरिद्रा और दाहहरिद्राको बराबर बराबर से अदरकके रसमें तीन बार भावना देना चाहिये । (रसैन्द्रसारचं वृद्ध)

कमिष्ठ (सं० पु०) कीषास्त्र, कौसंभ ।

कमिशङ्क (सं० पु०) कमिमिव शङ्कः, उपमितसं० । एक शङ्क । इसका संस्कृत पर्याय—जीवशङ्क, कमिजलज, कमिवारिकृ और जन्तुकम्बु है । यह शङ्क हो-जैसा होता है । शङ्क देखी ।

कमिशत्रु (सं० पु०) कमिषां शत्रुर्नाशकत्वात् । १ विडङ्ग । २ पारिजातवृक्ष ।

कमिशात्रव (सं० पु०) कमिषां शत्रुरेव । १ विडङ्ग । २ रक्तपुष्पक । ३ विट्छदिर ।

कमिशुक्ति (सं० स्त्री०) कमिरिव शुक्तिः । १ जलशुक्ति । २ किसी प्रकारकी मछली ।

कमिशैल (सं० पु०) कमिनिर्मितः शैल इव । वल्लीक, दीमककी बांवी ।

कमिशैलक, कमिशैल देखी ।

कमिसरारी (सं० स्त्री०) एक विषेला कीड़ा । उसके काटनेसे पित्तके रोग लग जाते हैं । (चरक)

कमिखेन (सं० पु०) एक प्रकारका यन्त्र ।

कमिहन्त्री (सं० स्त्री०) विडङ्ग ।

कमिहर (सं० पु०) कमिं हरति नाशयतीति, कमि-ह-

अप् । १ विडङ्ग । २ विडुलवन्ध । ३ कासी मिर्च । (त्रि०) ४ कीड़े दूर करनेवाला ।

कमिहररस (सं० पु०) कमिरीगका एक औषध । पारा, गन्धक, इन्द्रियव, यमानो, मनःशिला और पलाशबीज बराबर बराबर हस्तिघोषाफलके रसमें दिन भर घांटनेसे यह रस बनता है । अनुपान शाल-पर्णिका रस है ।

कमिहा (सं० पु०) विडङ्ग ।

कमी (सं० त्रि०) कीड़ेवाला ।

कमीलक (सं० पु०) जंगली मूंग ।

कमीश (सं० पु०) कमीषा ईशः, ई-तत् । एक नरक ।

कसुक (सं० पु०) गुवाकवृक्ष, सुपारी । (शतपथब्राह्मण)

कवि (सं० पु०) क्रियते वस्त्रादिमनेन, क-क्रिन् । कृषिपिच्छविस्त्रिविक्रीदिवि । उच्यते ४।५६ । कपड़ा बुननेका यन्त्र, करघा ।

कथ (सं० त्रि०) कथ धातोः क्त निपातनात् साधुः ।

१ थोड़ा । २ पतला । ३ अधूरा । ४ धीमा । ५ दरिद्र ।

६ दुबला । (पु०) ७ विष्णु । ८ कोई ऋषिकुमार ।

शमीकके पुत्र शृङ्गीसे इनका बन्धुत्व रहा । पत्नी देखी ।

धीरे धीरे यह एक बड़े ऋषि बन गये । इन्होंने महा-

राज वीरशुम्भको अनेक उपदेश दिये । (भारत, आदि

और शान्ति) ९ ऐरावतके कुलका कोई नाग ।

कथक (सं० पु०) कथ स्वार्थे कन् । कथ, दुबला पतला ।

कथगु (सं० त्रि०) कथा गौर्यस्य, बहुव्री० । दुबली पतली गाय रखनेवाला ।

कथता (सं० स्त्री०) कथस्य भावः, कथ भावार्थे तल् । चीन्हा, दुबलापन ।

कथन (सं० स्त्री०) १ सोना । (त्रि०) २ सोनेका बना हुआ ।

कथनावत् (सं० त्रि०) सोनेके बहुतसे गहने पहने हुआ ।

कथनी (सं० त्रि०) कथन अस्थाय इति । सोनेके गहने पहने हुआ ।

कथर (सं० पु०) कथं अल्पमात्रां रातीति, कथ-रा-क । तिलमिश्रित अन्न, खिचड़ी ।

“तिलतन्मुसवन्निमः कथरः परिकीर्तितः ।” (स्वति)

ग्रहपूजामें शनैश्वरकी कथर दिया जाता है ।

“शनेश्वराय कथरम् ।” (मत्स्यपुराण)

कशरा (सं० स्त्री०) कशर-टापू। खिचड़ी। चावल और दाल मिलाके नमक, चंदरक और होंग डालकर खिचड़ी पकाना चाहिये। दूसरा नियम अन्नादि पाकके समान है। भावप्रकाशके मतमें कशरा शूल तथा बलवृद्धिकर, गुरुपाक, कफ एवं पित्तवर्धक और मल तथा मूत्रवृद्धिकारक है।

कशराज (सं० स्त्री०) खिचड़ी।

कशरोमा (सं० स्त्री०) शुकशिम्ली, खजोहरा।

कशला (सं० स्त्री०) कशं कार्यं ज्ञाति कश-ला-क-टापू। शिरके बाल।

कशशाक, कशशाक देखो।

कशशाख (सं० पु०) कशा शाखा यस्य, बहुव्री०।

१ पर्पटक, पापड़ा। (त्रि०) २ छोटी डालोंवाला।

कशाकु (सं० पु०) उष्णकरण, तपार्ह।

कशाच (सं० पु०) कशे अचिणी यस्य, बहुव्री०। ऊर्ण-नाभ, मकड़ा।

कशाङ्गी (सं० स्त्री०) कशानि अङ्गानि यस्य, बहुव्री०।

१ प्रियङ्गुलता। (पु०) २ मकड़ा। (त्रि०) ३ दुबला-पतला।

कशानु (सं० पु०) कश्नति तनूकरोति दणकाष्ठादि वस्तुजातम्, कश-भानुक्। चतुर्विंश कृषिभ्यः। उष् ४।२।

१ भाग। २ चीत। ३ सोमकी रक्षा करनेवाला। (चक्र ४।२०।२) ४ वामपाशस्व रश्मिधारक।

(तात्पर्यमात्रम्)

कशानुक (सं० त्रि०) कशानु अस्त्यर्थे वुन्। गोषवादिभ्यो वुन्। पा ५।२।६९। जलता हुआ।

कशानुरेता (सं० पु०) कशानौ अग्नी पतितं रेतोऽस्य, बहुव्री०। १ महादेव। दुर्गानि शिवका वीर्य धारण न कर सकनेसे भागमें डाल दिया था। उसीसे कार्तिकेयकी उत्पत्ति हुई। कार्तिकेय देखो। (स्त्री०) २ भागकी लपट।

कशाश्व (सं० त्रि०) कशाश्वो यस्य, बहुव्री०। १ छोटा घोड़ा रखनेवाला। (पु०) २ दणविन्दु-राजवंशके कोई राजर्षि। यह दणविन्दु-राजवंशीय संयमके पुत्र रहे। इनके छोटे भाईका नाम महादेव था। (भागवत ६।१।२४) ३ दण्डके दामाद। इन्होंने दण्डकी अर्चिः और

धीवणा नामकी दो कन्याओंसे विवाह किया था। इनके औरससे अर्चिके गर्भमें धूमकेश और धीवणाके गर्भमें देवसकी उत्पत्ति हुई। (भागवत, ६।६।२४) रामायणके मतसे—राजर्षि कशाश्वने दण्डकी जया और सुप्रभा नामकी दो कन्याओंके साथ विवाह किया था। उनकी पहली स्त्री जयाने शस्त्रस्वरूप महातेजस्वी ५० पुत्र प्रसव किये थे। फिर सुप्रभाके गर्भसे संहार नामके शस्त्रस्वरूप ५० पुत्रोंने जन्म लिया। यही कुम्भकाश्व नामसे प्रसिद्ध हैं। ४ धुन्नुमार-वंशके कोई राजा। (हरिवंश, १२५०)

कशाश्वी (सं० पु०) कशाश्वेन धुन्नुमारवंशेनृपतिना प्राप्तं नाट्यसूत्रादिकं अधीते वेत्ति वा, कशाश्व-इनि कर्त्तृकृशायादिभिः। पा ४।१।११। नट, नाचने-गानेवाला।

कशिका (सं० स्त्री०) कशाएव स्वार्यं कन् इत्वंच। आखुर्गर्णलता, एक बेल।

कशित (सं० त्रि०) दुबला-पतला।

कशौवल (सं० पु०) काकजङ्गागुल्म, एक भाड़।

कशोदरी (सं० स्त्री०) कशं उदरं यस्याः, बहुव्री०। १ पतकी कमरकी स्त्री। २ श्वेतसारिवा, अमलमूल।

कशोरा—गुजरात प्रान्तके एक प्रकारके नागर ब्राह्मण। इन्हें कण्ठपुरे भी कहते हैं। पहले यह तीनों वेद पढ़ते थे, किन्तु अब तो नाममात्रकी ऋग् वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी रह गये।

कष (सं० पु०) जंगल।

कषक (सं० त्रि०) कषति भूमिं यः, कष कुन्। कष-विशोदोषाम्। उष् २।२८। १ किसान। कषति भूमिमनेन, कष करणे कुन्। २ हलका फाल। ३ बेल।

कषर (सं० पु०) कशर, खिचड़ी।

कषाण (सं० त्रि०) किसान।

कषाणु (सं० पु०) कश-भानुक् सुषोदरादिवत् पलम्। भाग।

कृषि (सं० स्त्री०) कृष-इन्-कृषि। १ खेती। यह वैश्योंकी कृति है। खेतीके विषय पर 'कृषिपाराशर' नामके कृषिग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है—साधारण मनुष्यसे लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सबको कभी कभी रुपये-

ऐसेका प्रभाव हो सकता है। रुपया-पैसा न रहनेसे उन्हें दूसरेसे मांगना और मांगनेके लिये अपना छोटा-पन मानना पड़ता है। जो खेती करता, उसको कभी घाटा नहीं लगता और इसीसे उसको किसीसे मांगना नहीं पड़ता।

“कष्टे इले च कथं च सुवर्णं यदि विद्यते ।

उपवासलबापि खादश्राभाविन दीक्षितम् ॥

अन्नं प्राया बलं चान्नमन्नं सर्वाङ्गसाधकम् ।

देवासुरमनुष्याश्च सर्वे चास्मीपजीविनः ॥

अन्नत्तु धान्यसम्भूतं धान्यं कृष्या विना नर ।

तस्मात् सर्वं परित्यज्य कृषिं यत्ने न कारयेत् ॥

कृषिर्धन्या कृषिर्मेधा जननां जीवनं कृषिः ।

हिंसादिदोषयुक्तोऽपि सुच्यतेऽतिथिपूजनात् ॥” (कृषिपाराशर)

अन्न न रहनेसे जिसके गले, हाथ या कानमें अनेक प्रकार सीनेका गड़ना रहता, उसे भी उपवास करना पड़ता है। शरीरधारीका अन्न ही प्राण और बल है। ऐसा कोई काम नहीं जो अन्नके अभावमें हो सके। देवता, राजस अथवा मनुष्य सभी अकेले अन्नके सहारे जीते हैं। एक पल भी बिना अन्नके संसारका काम-काज बन्द हो जाता है। धान्य आदिसे उसकी उत्पत्ति है। खेती न करनेसे धान्य होना असम्भव है। इस लिये दूसरा काम छोड़के खेती करना चाहिये। जन्तुमात्रका जीवन कृषि है। खेती न होनेसे एक पल भी कैसे जी सकते हैं। मुनि लोग कहते हैं कि खेतीके काममें हिंसा आदि दोष रहते भी प्रतिथि पूजा करनेसे कृषकको सुक्ति मिलती है।

अपने पाप खेतीको देखना भालना चाहिये। मौक़र या किसी दूसरेको देखभालका काम सौंप कृषकको निश्चिन्त होना उचित नहीं। यथानियम रक्षा करनेसे खेती सीना उपजाती है। किन्तु टाक-मटोक करनेसे बड़ी दरिद्रता आ जाती है। ऋषियोंने कहा है कि पिताको अन्तःपुर, माताको पाकगृह और अपने-जैसे किसी व्यक्तिको गोरक्षाका भार सौंप अपने पापको सदा खेती करना चाहिये। इस उपदेशको कभी भूलना उचित नहीं कि थोड़ी देर भी खेती न देखनेसे बड़ी हानि होती है। सबको अपने सामर्थ्य पर विशेष लक्ष्य लगा खेतीका काम

करना पड़ता है। सामर्थ्यसे अधिक काम करनेसे निश्चय कोई फल नहीं मिलता। जो किसान सदा पशुर्वाका भला चाहता और यथानियम उन्हें खिलाता पिलाता और सदा आलस छोड़के खेती देखने भाल-नेके लिये खेत पर जाता, उसको खेती कभी नहीं बिगड़ती। (कृषिपाराशर)

कषितत्त्व अर्थात् किससमय कौन शस्य लगाना अच्छा होता है इत्यादि कृषकको अवश्य ही समझ लेना चाहिये।

“कृषिश्च तादृशो कुर्यात् यथा बाह्यं पीडयेत् ।

बाह्यपीडाजितं शस्यं गच्छति सर्वकर्मसु ॥

बाह्यपीडाजितं शस्यं फलितश्च अगुण्यम् ।

बाह्यनिश्वासविफलः कृषको निःस्वतो ब्रजेत् ॥

गुण्यकं येषसेधू नैकथान्यैरपि पोष्यते ।

बाह्यः कषिश्च सीदति साद्यं प्रातश्च चारणात् ॥” (कृषिपाराशर)

बाह्य अर्थात् गौ, मछिषकी दुःख न दे खेतीका काम करना चाहिये। बैल या भैंसेको दुःख होनेसे वह अनाज सब कामोंके लिये निम्ननीय है। बैल, भैंसा आदि यदि पीड़ित होता, तो अनाज सौगुना होते भी किसान पीड़ित गोमछिषके निश्वाससे निर्धन हो जाता है। नानाविध उपायोंसे गोमछिषकी रक्षा करना चाहिये—जैसे घास आदि खिलाना और मशक आदि निवारणके लिये धूवां करना।

गोशाला बहुत सुदृढ़ बनाना पड़ती है, जिसमें कोई हिंस्र जन्तु गोको मार न सके। सदा गोशालाका गोबर और गोमूत्र उठा डालना चाहिये। गोमूत्र २५ हाथ लंबा चौड़ा होनेसे गावृद्धि होती है। गोमूत्रमें चावलका धोया हुआ पानी, भातका मांड़, मछलीका पानी, कपास, हल्दी और भूसी न रखना चाहिये। गोशालामें भाड़ू, मूसर, जूठन और बकरी रखनेसे गोविनाश होता है। गोमूत्रसे गोशालाका मैला भाड़ना कभी ठीक नहीं। रवि, मङ्गल अथवा शनिवारके दिन किसीको गोबर देना न चाहिये। इन तीन वारोंमें गोबर देनेसे शीघ्र ही गोविनाश होता है। धूक, मूत, मला, कौचड़ और धूल निकाल

कर सदा गोशाला परिष्कार रखना पड़ती है। सन्ध्या-
का गोगृहमें दीपक जलानेसे लक्ष्मी सन्तुष्ट रहती
है। दीपक न जलानेसे लक्ष्मी उस घरको छोड़कर
भाग जाती है और गोकुल जंघे स्तरमें रोया
करते हैं।

“इलमष्टागव' धर्म' चतुर्गव' व्यवसायिनाम् ।

चतुर्गव' नृशंसानां दिनवच्च गवाश्विनाम् ॥

मित्व' दशहस्ते लक्ष्मीनि' त्व' पञ्चहस्ते धनम् ।

नित्यञ्च विहसि भक्त' नित्यमेकहस्ते ऋणम् ॥” (कृषिपाराशर)

धर्मशास्त्रके अनुसार ८ बैलोंका हल अच्छा होता
है। व्यवसायी लोग ६ बैलोंका भी हल चला सकते
हैं। जो ४ बैलका हल चलाता उसे नृशंस और जो २
बैलके हलसे खेती करता उसे गोखादक समझना
चाहिये। जिसके १० हल चलते, उसके घरमें लक्ष्मी
सदा टिकी रहती है। ५ हल चलनेसे धन मिलता
और ३ हलसे केवल भक्तका सुभीता पड़ता है। १ हल
चलानेसे कोई फल नहीं निकलता, केवल ऋणमें
फँसना पड़ता है।

कार्तिक मासमें जगुड़ प्रतिपत् तिथिको गोपूजा
करना पड़ती है। ग्वालोंको इस दिन कंधेमें श्यामा-
कता बांध तेल और हलदी लगा नहाना और कुङ्कुम
तथा चन्दनसे शरीर सजाना चाहिये। फिर एक बड़े
बैलको नाना प्रकारके गहनों और कपड़ोंसे सजा
नाचते गाते बजाते गांवमें सर्वत्र घुमाते हैं। कार्तिक
मासके पड़ले दिन गोकुल शरीरमें हलदी और कुङ्कुम
मिलाकर तेल लगाना चाहिये। उसी दिन तपाया
हुवा लोहा आदि गोकुल भस्ममें प्रदान करना उचित
है। गोकुल पूँछके बालोंका अगला भाग भी काट
छाकते हैं। यह काम करनेसे वर्षमें गोकुल कोई विघ्न
नहीं होता। इसका नाम गोपर्व है। पूर्वफाल्गुनी, पूर्वा-
षाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, अनिष्टा और ज्येष्ठा नक्षत्रमें
जोयाया तथा गोप्रवेश अच्छा होता है। उत्तरफाल्गुनी,
उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, पुष्या, अश्लेषा,
ज्येष्ठा और चित्रा नक्षत्रमें, सिनीवाली, अमावास्या,
—चतुर्थी तथा अष्टमी तिथिको गोयात्रा और गोप्रवेश
निषिद्ध है। निषिद्ध नक्षत्र और तिथिमें गोयात्रा

किंवा गोप्रवेश करानेसे गो तथा गृहस्थका विनाश
होता है।

माघ मासमें गोमयकूटको भक्तिपूर्वक अर्चन
करके फावड़ेसे उठाना चाहिये। फिर सब गोबरको
धूपमें सुखा करके भसी भांति चूरकर छालते हैं। यही
गोबर फाल्गुन मासको प्रत्येक कियारामें गह्रा खोद-
के गाड़ देना चाहिये। पीछे बीज बोनेका समय
आने पर गहरे से यह खाद निकाल कर खेतमें छालते
हैं। खाद न देनेसे खेती बिगड़ जाती है।*

हल बनानेमें ८ वस्तु लगते हैं—हरस, जुवा,
खूँटा, निर्यौल, रस्सी, पण्डवक, शील और पच्चनी।
हरस ५ हाथ और खूँटा २५ हाथ लम्बा बनाना पड़ता
है। निर्यौल आध हाथ और जुवा कानके समान बनाते
हैं। निर्यौलपाशिका १२ अंगुल और शीलको मुँड़े
हाथकी बराबर रखना चाहिये। पच्चनीको बांससे
और उसका अगला भाग लोहेसे निर्माण किया जाता
है। इसकी नाप १२। मूठ या ८ मूठ है। आवन्ध
(जोतकी रस्सी) गोश और १५ अंगुल रहता है।
जुवा ४ हाथ और उसकी रस्सी ५ हाथ और फाल १
हाथ ५ अंगुल या १ डी हाथका बनाना पड़ता है।
२१ शलाकाका बना विहक और ८ हाथकी मई
खेतीके लिये अच्छी होती है। कपककी यज्ञपूर्वक
सब सामग्री बहुत दृढ़ रखना चाहिये। यह सामग्री
अच्छी न होनेसे खेतीके समय पदपद पर विघ्न पड़
सकता है।

स्नाती, उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्र-
पद, रोहिणी, मृगशिरा, मूला, पुनर्वसु, पुष्या किंवा
अश्लेषा नक्षत्रमें शुक्र, सोम, बृहस्पति तथा बुधवारको
हल चलाना अच्छा है। मङ्गल, रवि किंवा शनिवा-
रको खेतीका काम आरम्भ करनेसे राजोपद्रव उठ

* यदि गोमयकूट संपूर्ण अक्षयान्वितः ।

सारं शुभदिनं प्राप्य कृद्वालेखोत्थितः ॥

रीद्रेः स'शोच्य तत्सर्वं' कृत्वा गृह्यकदपिचम् ।

पाण्डु ने प्रति कैदारे नतं' कृत्वा निधापयेत् ॥

ततो वपनबाधे तु कुर्यात् सारविनीचनम् ।

विना सारिच बहाम्' वर्षते न कलस्यपि ॥” (कृषिपाराशर)

खड़ा होता है। दशमी, एकादशी, द्वितीया, पञ्चमी, त्रयोदशी, चतुर्थी और सप्तमी तिथि खेतीके लिये अच्छी है। प्रतिपत्की शस्यक्षय, द्वादशीकी वध तथा बन्धनका भय, षष्ठीकी विघ्न और अमावस्याकी खेतीका काम लगानेसे किसान मर जाता है। अष्टमीकी गोका विनाश और नवमीकी शस्यक्षय होता है। चतुर्थी की कृषिकर्म आरम्भ करनेसे कीड़े सब अनाज बिगाड़ देते हैं और चतुर्दशीकी शस्य विनष्ट होता है। वृष, मीन, कन्या, मिथुन, धनु और वृश्चिक लग्न कृषिकर्मके लिये प्रशस्त हैं। मेषमें पशुनाश, ककटमें मेष-भय, सिंहमें शौरभय, कुम्भमें सर्पभय, मकरमें शस्य-क्षय और तुला लग्नमें कृषिकर्म आरम्भ करनेसे कृषकका प्राण नाश होता है। चन्द्र संयुक्त रवि शुद्ध होनेसे हल चलाया जाता है। हल चलानेसे पहले दो खण्ड युक्त वस्त्र, युक्तपुष्प तथा गन्धादिसे हलयुक्ता पृथिवी, पृथु और प्रजापतिकी अर्चना करते हैं। अग्निका प्रदक्षिण करके बहुत प्रकारका दान और उसकी ठीक दक्षिणा भी देना चाहिये। फालके अगले भागमें सोना लगा और मधु चढ़ा नागके वामपार्श्वमें हल चलाना चाहिये। अग्नि, हिज और देवताकी यथाविधि पूजा करके वासव, व्यास, पृथु, राम और पराशरकी स्मरण करते हैं। काला, लाल वा कालालाल बैल ही हलमें जोतनेको अच्छा होता है। दोनों बैलोंका मुँह और पार्श्व मक्खन या घी लगा कर प्रतिदिन भली भांति धुलवा डालना चाहिये। कृषक उत्तरमुखी हो निम्न लिखित मन्त्र पढ़के इन्द्रकी अर्घ्य प्रदान करते हैं—

“यत्तुपुष्पमायुक्तं दधिचौरसमन्वितम् ।

सुष्ठु देवैः । गृहाणान्यं शचीपते ॥”

फिर विष्टर पर बैठ और दोनों घुटने भूमिसे लगा इन्द्रकी नमस्कार करना चाहिये।

वह बैल हलके कामका नहीं, जिसका कटिदेश बहुत मोटा हो, जिसको पूँछ या कान कटा हो अथवा जिसका रङ्ग बहुत उजला हो। किसान और बैल नो रोग न होनेसे हल चलाना अनुचित है। पराशरके मतमें एक, तीन या पाँच बार खेतको जोतना चाहिये। हलकी रेखा काटना ठीक नहीं। एक रेखा जयकरी

होती है। फिर तीन रेखायें अर्धसाधनी और पाँच बहुत अनाज देनेवाली हैं। हल चलानेके समय कूर्म (वासु) खखड़ जानेसे गृहस्थ मरता या अग्नि लगता है। फाल उखड़ या टूट जानेसे देश कुटता, हल टूटनेसे स्वामी मरता, हरस टूटनेसे किसानका प्राण जाता और जोत टूटनेसे किसानके भाईका मृत्यु जाता है। इसी प्रकार शील टूटनेसे बैल मरता, जोत टूटनेसे रोग लगता तथा अनाज कम पड़ता और किसान गिर जानेसे राजमन्दिरमें कष्ट मिलता है। हल जोतते समय एकाएक एक बैलके बोलनेसे चौगुना अनाज उपजता है। रीतिके अनुसार हल न लगानेसे क्या फल मिलता है ? खेतीमें हल चलाना ही बड़ा काम है।

“सत्सुधर्षसमा माघे कुम्भे रजतसन्निभा ।

चेन्ने तावसमा ख्याता धान्यतुष्या च माघे ॥

ओष्ठे सदैव विघ्नो या आषाढे कर्दमाश्रयाः ।

निष्फला कर्कटे देव हलैरुत्पाटिता तु या ॥”

माघ मास ही जोतनेके लिये अच्छा समय है। माघ मासमें मही सोने-जेसी होती है, सङ्गममें ही खेती की जा सकती है और चौगुना अनाज उपजता है। फाल्गुनमें कर्षण करनेसे मिट्टी चान्दी-जेसी निकलती है। चैत्रमें वह ताँबे-जेसी रहती है। वैशाख मास प्रथम काल है। इसमें खेती करनेसे धान्यके समान फल होता अर्थात् बहुत थोड़ा अनाज उपजता है। ज्येष्ठ और आषाढ़में खेती करनेसे अनाजका न होना ही सम्भव है। यदि होता भी है, तो मही और कीचड़की बराबर। आषाढ मासमें कर्षण करनेसे निश्चय कोई फल नहीं मिलता।

माघ या फाल्गुन मास सब प्रकारका बीज संप्रदा करना चाहिये। बीजको इकट्ठा करके भली भांति धूपमें सुखाते हैं। उसे अच्छे प्रकार सुखाके ओसमें रख देना चाहिये। फिर पुटक बनाके बीजका निधान शोधन करते हैं। बीज निधान मिट्टा रहनेसे फल बिगड़ जाता है। बीज एक आतीय होनेसे अच्छा फल लगता है। इसलिये यज्ञके साथ ऐसा ही बीज संप्रदा करना चाहिये। सुहृद पुटक बनाके उसमें निकले हुए अंकुरकी तोड़ डालते हैं। बीजका अंकुरवा

न तोड़नेसे खेती घास फूससे भर जाती है। दीमककी बाँबीके पास, गोशालामें पथरा जिस घरमें बन्ध्या या प्रसूता स्त्री रहती हो, कभी बीज न रखना चाहिये। जूठे मूँह, रजस्वला, बन्ध्या या गुर्विणी स्त्रीको बीज छूने नहीं देते। घी, तेल, मट्ठा, नमक या दीपकको झूल कर भी बीजके ऊपर रखना न चाहिये। बीज अच्छा होनेसे ही खेती आशानुरूप फल देती है। बीज पर विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

“वपनं रोपणस्यैव बीजं स्यादुभयात्मकम् ।

वपनं नदनिर्मुक्तं रोपणं सगदं विदुः ॥”

बीजकी दो प्रक्रिया हैं—बीजा और लगाना। बीज बोनेसे फिर कोई विज्ञ होनेकी सम्भावना नहीं। किन्तु लगानेमें पड़चम पड़ सकती है। खेतको यथानियम बनाके उसमें बीज डालना पड़ता है। धीरे धीरे पौदा बढ़ने पर यथानियम घास फूस निकाल डालते, किन्तु पौदेको दूसरे स्थान पर नहीं ले जाते। फल पकनेके समय तक वहाँ उसी स्थान पर रहता है। इसीका नाम वपन या बीजा है। लगानेमें भी इसी प्रकार बीज डालते हैं। परन्तु पौदा बढ़नेसे उसे उखाड़ कर दूसरे स्थान पर लगा देते हैं।

वैशाख मास ही बीज बोनेका अच्छा समय है। फिर ज्येष्ठ मध्यम, आषाढ़ अथम और आषण मास अथमाथम अर्थात् बहुत ही निकट काल है। लगानेको जो बीज बोया जाता, उसके लिये आषाढ़ उत्तम, आषण मध्यम और भाद्रपद अथम समय होता है। उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, मूला, धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा और रेवती कई अच्छे बीज डालनेके लिये अच्छे हैं। पूर्वाषाढ़ा, पूर्वफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, विशाखा, भरणी, आर्द्रा, स्वाती और अश्लेषा बीज बोनेके लिये मध्यम अच्छे हैं। मङ्गल और शनिवारको बीज डालनेसे चूहे और टिळीका डर रहता है। रिक्तातिथि वा जीव चन्द्रमें खेत न बोना चाहिये। ज्येष्ठ मासके अन्तिम ३॥ दिन और आषाढ़के प्रथम ३॥ दिन—७ दिन बीज वपनके

लिये निषिद्ध हैं। अशुक्लवाची* दिनोंमें बीज डालना बहुत मना है।

“हिमेन वारिषा सिक्तं बीजं शान्तमनाः शुचिः ।

इन्द्रं चित्तं समाधाय स्वयं हृदिमयं वपेत् ॥”

जिस दिन बोनेको होता, उसके पहले दिन रातको सोसका पानी न मिलनेसे परिष्कार ठण्डे पानीमें बीजको भिँगोकर रखना पड़ता है। दूसरे दिन सबेरे पवित्र और शान्तचित्त हो मन ही मन इन्द्रको ध्यान कर अपने आप इन्द्र मूँठ बोना चाहिये। इस प्रकार धान्यका पुण्याह समापन करके छष्टचित्तसे पूर्वमुखी हो निम्नलिखित मन्त्र पढ़के प्रणाम करते हैं—

“वसुधे देवमर्भासि बहुशस्यफलप्रदे ।

वसुपूज्य । नमस्तुभ्यं वसुपूण्यास्तु मे कृषिः ॥

रोपविध्यामि धान्यानां वृक्षबीजानि प्राह्वयि ।

सुस्था भवन्तु कृषका धनधान्यसमृद्धिभिः ॥

वासवो नित्यवर्षोऽस्याग्निवर्षास्तु तोयदाः ।

शस्यसम्पत्तयः सर्वाः सफलाः सन्तु जीवन्तः ॥”

वसुधाकी नमस्कार करके किसानोंको घी, खोर आदि बहुत प्रकारके उपहारोंसे भोजन कराना चाहिये। ऐसा अनुष्ठान करनेसे खेती नहीं बिगड़ती।

“बीजस्य वपनं कृत्वा मदिकां तत्र दापयेत् ।

विना मदिकरानेन शस्यजन्म न जायते ॥”

खेतमें बीज डालकर उस पर मई देना पड़ती है। बोने पीछे मई न देनेसे पनाज नहीं उपजता है। पहले कहे नियमसे बीज बोनेपर जब धान्यका पेड़ होगा, तब उसे उखाड़ कर यथास्थान लगाना पड़ेगा। किन्तु धानकी जड़ हट्ट होनेसे उसे उखाड़ कर दूसरे स्थान पर लगाना न चाहिये।

“इलान्तरं कर्कटे च विन्दे इलार्धमेव च ।

रोपणं सर्वधान्यानां कन्यायां चतुरङ्गलम् ॥”

आषण मासमें १ जाय, भाद्रमें आषाढाथ और आश्विनमें ४ चंगुलके अन्तरसे पौदा लगाने हैं। सब प्रकारके धान्यरोपणका यहो विधान है।

“वावादे वावसे चैव धान्यमाहृदयेतु ॥
अनाकृष्टं तु यद्वाप्यं यवावोजं तथैव हि ॥
भाद्रे च कृदयेद् धान्यमहृदयी कृषितत्परः ।
भाद्रे चार्धफलप्राप्तिः फलाशो नैव चाग्निने ॥
न विलभ्यते धान्यानां कुर्यात् कष्टनरोपये ।
न च सारप्रदानं तु दण्डमावन्तु शोधयेत् ॥”

धानकी न कपटनेसे अच्छी फसल नहीं होती। और धानका पौदा भी नहीं बढ़ता। इसी लिये आषाढ़ या आश्व मासमें धान कपटना पड़ता है। पानी न बरसने पर भाद्र मासमें भी कष्टन कर सकते हैं। भाद्रमासमें कपटनेसे आधि फलकी आशा की जा सकती है। परन्तु, आश्विनमें कष्टन करनेसे फिर फलकी आशा कहाँ? जो नियम दिखाया गया है, उसे जँचो भूमि पर करना चाहिये। नीची भूमिमें धान बोना बोलते, लगाते नहीं। नीची भूमिमें खाद देना या कपटना भी अच्छा नहीं। धान बोकर केवल घास फूस निकाल डालना चाहिये।

“निष्पन्नमपि यद्वाप्यं अकृत्वा ह्यवर्जितम् ।
न सम्यक् फलमाप्नोति दण्डनीचकृषिर्भवेत् ॥
कुलीरभाद्रयोर्मध्ये यद्वाप्यं निष्पन्नं भवेत् ।
दण्डोरपि तु सम्यक् तद्वाप्यं विगुणं भवेत् ॥
दिवारमाग्निने मासि कृत्वा धान्यं तु निष्पन्नम् ।
अथ पाकविहीनं हि धान्यं फलति मावन्तु ॥
तस्मात् सर्वप्रथमेन निष्पन्नां कारयेत् कृषिम् ।
निष्पन्ना हि कृषाणां कृषिः कामदुवा भवेत् ॥”

धान्य यथानियम निकलते भी यदि निराया नहीं जाता, तो अच्छा फल कहाँ आता है? घास धीरे धीरे बढ़कर धानको बिगाड़ देती है। आश्व और भाद्र मासके बीच धान निराया चाहिये। पड़सी बहुत घास फूस रहते भी पीछे धान दूना बढ़ जाता है। आश्विन मास दो बार निरा देनेसे धान उड़द जैसा फलता है। किसानकी यज्ञसे खेती निराया चाहिये। खेती निरुद्ध होनीसे अभीष्ट फल देती है।

“नीचजायं हि धान्यानां जलं भाद्रे विमोचयेत् ।
मूलमावन्तु स'स्याप्य कारयेत्त्वमोचयन् ॥
भाद्रे च जलसम्पूर्णं धान्यं विविधवाकैः ।
प्रवीकितं कृषाणानां न घत्ते फलस्तुतमम् ॥”

भाद्रमास धानमें पानी भरा रहनेसे वह नागा विघ्नीसि नष्ट हो जाता है। इसलिये धानका यह रोग कुड़ानेके लिये पानी निकाल डालना चाहिये। परन्तु सब पानी नहीं निकालते। खेतमें इतना पानी रहना चाहिये जिसमें धानको जड़ डूबी रहें। एकबारगी हो पानी न रहनेसे धानका पैड़ सूख कर मर जाता है।

धान्यका व्याधिनाशक मन्त्र यह है—

“ओं विहिः शुक्पादेभ्यो नमः । खलि हिमगिरिशिखरात् शङ्खकुन्देन्दु-
धवलशिखरतटात् नन्दनवनसङ्काशात् परमेश्वरपरममहारक महाराजाधिराज
श्रीमद्रामभद्रपाराः विजयिनः समुद्रतटावस्थितमानाशे शान्तवानरकोटिलबा-
यगण्यं खरतरनखरातितीक्ष्णहस्तं ऊर्ध्वलाङ्गुलं लोलामनससमुद्भूतवर्तवर्ग-
वध तपधत्तवत् परचक्रप्रमथनं पवनसुतं श्रीहनुमन्महापथकिं असुकयानि
असुकगोत्रस्य श्रीमतोऽसुकस्य अखण्डचेतस राना भोव्याहृता गान्ध्या भोभ्यो
गान्धो द्रोही पाण्डुरसुखी महिषासुखी धूलिप्रज्ञा मण्डूका इत्यादयः सर्व
श्रेयोपचातिनो यदिददीय वचनेन न त्यजन्ति तदा तान् वचलाङ्गुलीन ताङ्-
यिष्यसीति । ओं वां श्रीं त्र्यो नमः ।”

बेलके काँटेसे केलीके पत्ते पर यह मन्त्र भक्ति-
भावसे लिखना चाहिये। रविवारको बाल खोलकर
खेतके ईशान कोणमें पनाजकी मञ्चरीसे इसको
बांध देते हैं। इस अनुष्ठानसे धान्यका सब विघ्न कूट
जाता है।

मतान्तरमें धान्यका व्याधिनाशक मन्त्र इस
प्रकार है—

“ओं सिद्धिः शुक्लरथेभ्यो नमः । श्रीरामचन्द्रचरथेभ्यो नमः । खलि
हिमगिरिशिखरात् शङ्खकुन्देन्दुधवलशिखरतटात् नन्दनवनसंकाशात् परम-
ेश्वर परममहारक महाराजाधिराज श्रीमद्रामभद्रपाराः कुयलिनः, समुद्र-
तटावस्थितमानादेशान्तवानरकोटिलबायगण्यं खरतरनखरातितीक्ष्णहस्तां
ऊर्ध्वलाङ्गुलं लोलामनससमुद्भूतवर्तवर्गवध तपधत्तवत् परचक्रप्रमथनं
पवनसुतं श्रीहनुमन्महापथकादयः । असुकयानि असुकगोत्रस्य
श्रीअसुकस्य अखण्डचेतस भोभ्या भोभ्यो पाण्डुरसुखी गान्धो ललिप्रज्ञादि-
रोगखलीन विपुटो नाम राक्षसो सप्तगुवादाय विविधविघ्नं समाचरन्नावति-
ष्ठति । इदं महोदयशासनलिखनमवगम्य तां पापराक्षसीं सपुत्रबाध्यां वज्र-
दंष्ट्राधिकलाङ्गुलदंष्ट्रैः खरतरनखरैश्च विदधे ददियसमूहं लवणान्धो
खण्डशः प्रविषेहि । वयम् त्वयाचक्षमपि विभक्त्यति तद्वि त्वं केशरिणा पित्रा
पवनेन माया चाजनया शत्रव्योऽहोमन्त्राया नाहं प्रभुर्न त्वं भव्य इति श्रीं त्र्यो
त्र्यो नमः ।”

इस मन्त्रको मञ्चवरसे लिख कर पनाजमें बांधने
पर कीड़े आदि मर जाते हैं।

“आग्निने कार्तिके चैव धानस्य ललरचचम् ।

न कृतं धेनून् सूयन् तस्य का शस्यवासना ॥”

आग्निन और कार्तिक मास धानका पानी बचाना पड़ता है। जो मूर्ख किसान पानीको नहीं बचाता, वह अपनाज होनेकी बात क्यों उठाता है ?

“चटप्रविश-संक्रान्तां रोपयेत् नलं तथा ।

केदारेशानकोणे च सप्तमं कृषकः शुचिः ॥

गन्धः पुष्पे य धूपे य शक्तवस्त्रे विशेषतः ।

पूजयित्वा नलं तत्र पूजयेद्धानाश्चकान् ॥

दक्षिभक्तश्च नैवेद्यं पायसञ्च विशेषतः ।

ततोदयात् प्रयत्ने न तालाष्टिशस्येव च ॥”

कार्तिक संक्रान्तिको खेतके ईशानकोणमें एक पत्तेवाला नल लगाना चाहिये। किसान पवित्रभावमें गन्धपुष्पादि द्वारा नलको पूजा करके धानके पेड़को पूजते हैं। दही, भात, नैवेद्य और पायस (खीर) चढ़ानेका विधान है।

नलरोपणका मन्त्र यह है—

“कालकालद्वया दृष्टाः सन्ति ये धानाश्चकाः ।

जो छायापि कनिष्ठा वा सगदा निर्गदाश्च ये ॥

आश्रया भीमसेनस्य रामस्य च प्रथोपरि ।

तादृक्ता नलदण्डेन सर्वेभ्यः समपुष्पिताः ॥

समपुष्पलमासाद्य फलरत्नाश्च च निर्भरम् ।

सुख्या भवन्तु कृपका धनधानासम्पन्नाः ॥”

अग्रहायणमास मूठ लेना पड़ती है। मूठ न लेकर नियमके विरुद्ध धान काटनेसे किसान अड़चनमें आ जाता है। अग्रहायण मासके शुभ दिनको खेत पर पहुँच भक्तिके साथ गन्धपुष्पादिसे धान्यवृक्षका पूजा करके ईशानकोणमें २॥ मूठ धान्य छेदन करना चाहिये। वहाँ २॥ मूठ धान भगला भाग सामनेकी ओर करके मट्ठे पर ठठाकर रख लेते हैं। फिर किसी से कोई बात न कर घर आ बड़े खान पर धान्य रखना और गन्धपुष्पादिसे उसकी पूजा करना चाहिये। कार्तिक और पौष मासमें सुष्टिग्रहण एक बारगी ही निषिद्ध है। आर्द्रा, मघा, अश्लेषा, पुष्या, ज्येष्ठा, स्वाती, उत्तराश्रय, मूला और अवध नक्षत्र ये धान काटनेके लिये अच्छे होते हैं। वैष्ण्वि, व्यतीपात,

भद्रा, रिक्ता, मङ्गल, धनि और बुधवारको मूठ न लेना चाहिये।

“इत्था तु खलकं मार्गे समं गोमयलेपितम् ।

रोपणीया प्रयत्ने न तत्र मेधिः शुभेऽहनि ॥”

अग्रहायण मास खुल्लयान बराबर करके गोबरसे लेपते हैं। उसमें किसी शुभ दिनको यज्ञके साथ खंवा गाड़ना पड़ता है।

बड़, सप्तपर्ण, गाभारी, सेमर, गूलर या किसी दूसरे दूधिया पेड़का खंवा बनाना चाहिये। इसके न मिलने पर स्त्रीनामधारी किसी वृक्षका खंवा बन सकता है। धानके अग्रभाग, घास, मकैट (एक अपनाज) नोम या सरसोंसे खंवाको बांधना चाहिये। उसमें एक पताका भी लगाना पड़ती है। फिर भक्तिभावसे चन्दन-फलसे उसकी पूजते हैं। यह अनुष्ठान करनेसे अपनाज बढ़ जाता है।

“पौषे मेधिनं पारोप्या क्रूरं रात्रिं यवो तथा ।

शस्यवृद्धिकरो मार्गे पौषे शस्यचयद्वरो ॥

कपित्थविलवशां दृष्ट्वा रात्रौ तर्पयेत् च ।

मेधिः कार्यो परैर्न च यदौष्ण्यं दात्मनः शुभम् ॥”

पौष मास, क्रूर दिन और अथवा नक्षत्र खंवा गाड़नेके लिये अच्छा नहीं। अग्रहायणमें मेधि पारोपणसे शस्य बढ़ता और पौषमें पारोपण करनेसे घटता है। कौथ, बेल, बांस, नारियल और ताड़के पेड़का खंवा लगाना अशुभ होता है।

“अच्छित्ते ततो धान्ये पौषे मासि शुभे दिने ।

पुष्यायां जनाः कुर्युरगोनाश्च वसन्ति ॥”

पौष मासमें धान काटनेसे पहले सबको मिलकर एक दूसरेके खेतोंके पास पुष्यायात्रा करना चाहिये। यह शुभ दिन और शुभ नक्षत्रमें की जाती है।

खीर, मङ्गली, मांस, निरामिष, दही, दूध, घी, नानाप्रकारके फल, मीठा पकवान आदि बहुतसे उपहारोंके साथ केलीके पत्ते पर भोजन करना चाहिये। भोजनके पोछे चन्दन, केशर आदि सुगन्धि द्रव्य परस्पर एक दूसरेके अङ्गमें लगाते हैं। लौंग, कपूर आदि डालकर मुँह भर पान खाना चाहिये। उस दिन सबको नये कपड़े पहनने पड़ते हैं। फिर पुष्पमाच,

पुष्पाभरण बनाके शचीपतिको भक्तिके साथ नमस्कार करते हैं। गा बजा और नाच कर मञ्जोत्सव करना चाहिये। हर्मितचित्तसे हाथ जोड़ निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हैं।

“वेदे वाचस्पिते भानो तव दीवप्रसादतः ।
पुष्पान् मिलिताः सर्वे शस्त्रानि समकारकाः ॥
मनसा कर्मणा वाचा ये चाकार्का विरोधिनः ।
ते सर्वे प्रथमं यान् पुष्पयात्रा प्रसादतः ॥
भानावृद्धिर्यशोवृद्धिः प्रवृद्धिः पुनरावृद्धिः ।
राजसन्मानवृद्धिश्च गवां वृद्धिस्तर्ध्ववच ॥
मन्त्रशासनवृद्धिश्च खलीवृद्धिरवनिर्गमः ।
चकाराकमस्तु सततं यावत् पूर्णं न वत्सरः ॥”

यह सकल आमोद खेतके निष्कट करना पड़ते हैं। उसके पीछे सबको प्रसन्नचित्त अपने अपने घर जाना चाहिये। उस दिन फिर बाजार करना ठीक नहीं।

“पुष्पयात्रां न कुर्मन्ति ये जना धनगर्बिताः ।
न विप्रोपशमसो वा कुतश्च वत्सरे सुखम् ॥”

जो धनके अभिमानमें पुष्पयात्रा नहीं करते, उनके विघ्न बढ़ते ही रहते हैं, उस संवत्सरमें सुखकी सम्भावना कहाँ ?

पौष मास धान्य काटना पड़ता है। काटनेके दो तीन दिन पीछे धान्यमर्दन करना चाहिये। पौषमें इस धानको काममें खानेका निषेध है। प्राण जाते भी पूसमें नया धान उठाना न चाहिये।

“मापनं सर्वशस्त्रानां वामाङ्गं न जीर्तितम् ।
धान्यानां हविर्वायते मापनं चवकारकम् ।
वामावर्तेन सुखं भानावृद्धिश्च परम् ॥”

सब अनाज बाईं ओरसे मापना पड़ता है। दाहिनी ओरसे धान तोलने पर रज्य होता है। वामावर्तसे मापने पर सुख और शस्त्र बढ़ता है।

“शदशाङ्गुलकेनाथै शदशः परिकीर्तितः ।
शेकातकान्पुष्पान्गुलमादकमुत्तमम् ।
कपिलपर्वटोनिम्नजितं देवावर्धकम् ॥”

आदक १२ अंगुलका होता है। शेकातक, आम और नागकेशरका आदक अच्छा है। कैथे, पाकर और नीमके आदकसे दरिद्रता बढ़ती है।

हस्ता, स्वाति, पुष्पा, रेवती, रोहिणी, भरणी, मूला, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, मघा तथा पुनर्वसु नक्षत्र और वृश्चिक, मीन किंवा शुक्रवारको, तथा अष्टम स्थानमें क्रूर पक्ष न रहनेसे धान्यस्वापन करना चाहिये।

ऊपर वही बातें बतायी गयी हैं, जो कृषिपाराशर नामक कृषिशालमें लिखी हैं।

वराहमिहिरने भी वृहत्संहितामें कृषिके सम्बन्ध पर लिखा है—इसको कर्म करनेवाले ब्राह्मणोंको खेतीका काम पकड़ लेना चाहिये। अङ्गुलीन, दुर्बल, भूखे, प्यासे और धके माँदे बैलसे खेती करना अच्छा नहीं। दिनको दोपहर तक खेतीका काम करना चाहिये। फिर नहा धोकर भोजन करते हैं। बुरे बैलसे खेती करना मना है। किसानको बड़े यत्नके साथ अच्छे बैल और बड़े-बड़े इकट्ठे करने चाहिये।

तीसरे या चौथे दिन बैल नाथा जाता है। बहुत दुबला या मोटा बैल जोमेके नाथना न चाहिये। शीशम या खैरके पेड़से १२ अंगुलकी मील बना नासिका भेद किया जाता है। दक्षिणद्वार गोशाला प्रशस्त है। उत्तरकी गोभृङ्गका द्वार रखना न चाहिये। पशुशालामें प्रवेशके समय यथाविधि देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं।

इस ४८ अंगुलका बनाना पड़ता है। उसका नीचेवाला भाग १६ अंगुल, ऊपरोभाग २६ अंगुल और वेधस्थान ६ अंगुल रहता है। उरःस्थान ८ अंगुल, वेधके ऊपरकी ओर १० अंगुल और उसके ऊपर हस्तपाद (मुठिया) ८ अंगुलका बनाते हैं। उसके नीचे ४ अंगुलका प्रतिहार और ४ अंगुलका वेध रखा जाता है। प्रतिहार अच्छा बनानेमें वेध ३ अंगुल और उरःस्थान ५ अंगुल ही रखना चाहिये। शिरोभाग करतलकी भांति फेंका रहैगा। उरःस्थानका विस्तार ८ अंगुल होता है। बन्धके बाहर प्रतिहार १६ अंगुल रहते हैं। लोहपाख्यका सुतीक्ष्ण दामादि विदारक प्रतिहार करना उचित है। नीम, बैल या दूसरे दूधिया पेड़का हल नहीं बनाते। खुले सतहस्त प्रमाण ईशा बनाना पड़ता है। उसमें ४ हाथके पीछे वेध रखना चाहिये। बड़े और पाकर-

की ईशा बनानेसे मन्त्र और मन्त्रीका विनाश होता है। वेदकी नापके अनुसार ईशा गोखी जंघो रखनी पड़ती है। जोत ४ हाथकी और स्तम्भस्थानमें चर्म चन्द्राकृति बनाते हैं। मेढ़ासीनी, कदम, सास और धव वृक्षकी १० पङ्क्तियाँ सम्म्या (सामी) वेधके बाहर तैयार करना चाहिये। इसीके बराबर और इससे १० पङ्क्तियों पर प्रयाकी बनायी जाती है। बांसकी ४ हाथ चानुक्क-जैसी छोटी बड़ी गांठोंवाली छड़ी लेना चाहिये; उसका अग्रभाग लोहेसे जो जैसा बनाते हैं। जो प्रमाण और प्रणाली कही गयी है, उसको सख्तना न चाहिये। खेती इस प्रकार की जाती है, जिसमें बैलोंकी दुःख न हो।

गृही ब्राह्मणकी शुभदिन शुभ नक्षत्रमें मातृश्राद्ध करके द्रव्य, कास और देशके अनुसार खेतीका काम लगाना चाहिये। एक घेरा खींचके पुष्प, धूप, दोप आदिसे उसके ऊपर इन्द्र, अश्विनीकुमार, मरुत् प्रभृतिकी पूजा करते हैं। पीछे पानी इकट्ठा करनेके लिये सीता, कुमारी और अनुमतिकी पूजा की जाती है। देवताके नाममें 'नमः स्वाहा' लगाके पूजा करनी पड़ती है। बैलोंकी भी भक्तिभावसे नाना प्रकारके आहार देना चाहिये। सीर और फासके अगली भागकी सोने या चांदीसे चिस कर मधु और घृत लगाया जाता है। अग्नि और वृषकी प्रदक्षिण करके इस चसाना चाहिये। पराशर ऋषिकी श्रारण करके "कल्याणाय नमः" मन्त्र पढ़ सीताके ऊपर फूल चढ़ाते हैं। "सीतां वुञ्जीत" इत्यादि मन्त्र द्वारा इस चसाना पड़ता है। दही, दूध, घातप चावल, फूल, शमीपत्र आदिसे सीताकी पूजा करना चाहिये। फिर सात धान्य प्रोक्षित करके पूर्वमुखी हो क्षेत्रमें परंपर करते हैं। पीछे खेत जोतना चाहिये। ब्राह्मण, यव और तिलकी छोड़के यदि दूसरे अनाजके लिये इस चसाता, तो पिछलेक तथा देवतागण उससे बहुत बिगड़ जाते हैं। देवता, भेष, भूमि, इस और पुष्य व्यापार कृषिका कारण है। इनमें एकका भी अभाव होनेसे कृषि नहीं बनती। शासि, शव, कपास, भांटा आदि सबका बीज लगाना चाहिये। जो सब प्रकारकी खेती कर सकता, उसे

कभी बाटा नहीं लगता। अमावस्याकी कर्षण करना नितान्त निषिद्ध है।

"वीते वीर्ये कुमरि त्वं देवि देवाचिंत्ये प्रिये।

वृत्ततादि यथा सिद्धा तथा मे वरदः भव ॥"

इसी मन्त्रसे सीताकी नमस्कार करना पड़ता है। सीताका स्थापन, अनुमानका नामोच्चारण और अभ्युत्थन करनेसे सब अनाज बिगड़ जाता है। बोन, काटने, खेतमें जाने, इस चसाने और धान लाने आदिका भी यही नियम समझना चाहिये। देवस्थान, उद्यान (बाग), लड़ाईका स्थान, गोचारणस्थान, सीमा, श्मशानभूमि, पेड़के तल, यूपके निम्नके स्थान, पथ और न जोतनेयोग्य स्थानमें इस नहीं चसाते। ऊपर तथा मेले और कंकड़ पत्थरसे भरे स्थान और नदीके रेतोखे तटकी जोतना मना है, न माननेसे वंशनाश होता है। प्रवचना करके दूसरेकी भूमिमें खेती करनेसे किसान अनन्त नरकमें पड़ता है।

कृषिपाराशर और वृहत्संहितामें जो नियम लिखे हैं, पड़लै भारतमें नानास्थानों पर उन्हींके अनुसार खेती की जाती थी। आजकल बड़ समय नहीं। अब बहुतसे लोग नई प्रणालीसे खेती करते हैं। खेतीके सुभीतेके लिये आजकल नानाप्रकारके यन्त्र बनाये गये हैं। अनेक स्थानोंमें मोटरसे खेत जोते जाते हैं। भारतके स्थानविशेषमें इस प्रणालीमें प्रवेश किया है। किन्तु दुःखकी बात है कि पड़ले नियमसे जैसा फल मिलता था, वैसा अब नहीं देख पड़ता।

कृषिक (सं० पु०) कृष्यतिऽनेन, कृष-किसान्। गृह्यकोः कृषन्। अ० २। १०। १ फाल्गु। (त्रि०) २ किसान।

कृषिकर्म (सं० क्री०) १ खेतीका काम। (त्रि०) २ खेती करनीवाला।

कृषिजीवि (सं० त्रि०) कृष्या जीवति, कृष-जीव-चिनि। किसान, खेतीके सहारे जीनेवाला।

कृषिकोष्ठ (सं० क्री०) कृष्यकोष्ठ, एक प्रकारका लोहा।

कृषी (सं० त्रि०) कृषिरस्य अस्ति, कृषि-इति। किसान, जिसके खेती हो।

कृषीवत् (सं० त्रि०) कृषिरस्यास्ति वृत्तित्वेन, कृषि-वत् दोषवत्। रत्नःकृष्यावृत्तिपरिपक्षे वक्तव्य। वा. ५। २। १२२ किसान।

(मेहरारत ५। ५। ७०)

कृष्ण (सं० पु०) कृष्णं करोति कृष्टिभित्तिप्रभृति-
शक्तियोगात् सम्पादयति, कृष्ण-क-टक् पृषोदरादित्वात्
निपातः। शिव।

कृष्ट (सं० त्रि०) कृष्णं कर्मणि क्त। १ कर्मित, जोता
हुवा। (मनु ११।१०४) इसका संस्कृत पर्याय—सीत्य
और कृष्ण है। (श्री०) २ कर्मण, जोतार।

कृष्टज (सं० त्रि०) कृष्टे जायते, कृष्ट-ज-ज। जोतनेसे
उत्पन्न होनेवाला। (मनु ११।१०५)

कृष्टपथ (सं० त्रि०) कृष्टे स्वयमेव पथ्यते, कृष्ट-प-थ्
कृप्। राजपुत्रवर्गको स्वयमेव कृष्टपथ्याम्यथाः। पा १।१।११४।
ब्रीहिसाम, एक अनाज। (भागवत १।१२।१८)

कृष्टपाक्य (सं० त्रि०) कृष्टे पच्यते, कृष्ट-प-च-प्यत्।
चक्षुः कुत्वम्। चनोः कृष्टिपत्तोः। पा ३।१।११९। ब्रीहिसाम।

कृष्टराशि (वे० त्रि०) खेतीके काममें उन्नति या चुकने-
वाला।

कृष्टि (सं० पु०) कृष् कर्तरि बाहुलकात् कृष्टि ति वा।
१ पण्डित, विद्वान्। २ मनुष्य आदि। (चक्र ६।१८२)
(श्री०) ३ कर्मण, जोतार। ४ आकर्मण, खिंचार।
कृष्टिप्रा (वे० त्रि०) कृष्टीणां मनुष्याणां पूरकः, कृ-प-प्
निपातः। मनुष्यपूरक। (चक्र ३।१८२)

कृष्टिमा (सं० पु०) कृष्टि भावे इमनिच्। १ पाण्डित्य,
पण्डितार। २ मनुष्यत्व, आदमीयत।

कृष्टिहा (सं० त्रि०) कृष्टिं हन्ति, कृष्टि-हन्-णिप्। १
मनुष्यको मारनेवाला योहा। २ पण्डितको बिगाड़ने-
वाला अभिमान। (चक्र २।७११)

कृष्टोत्त (सं० त्रि०) कृष्टे उत्तकर्षणे चेन्ने उत्तः, क-तत्।
जोते हुए खेतमें लगाया हुआ। (भारत, आदि० २८ अ०)

कृष्टोद्योताः (वे० त्रि०) प्रतिशय बलशाली। (चक्र ३।८२१)

कृष्ण (सं० पु०) कृष्णं नक् चत्वञ्च बाहुलकात् वर्षे
विनापि नक् प्रत्ययः। कृष्णं च। उच १।४। अथवा कृष्ण-
वर्णयोगात् कृष्णं पर्यादित्वादच्। भवेत् कृष्णोऽपि उरी।
(उज्ज्वलवर्ण) पुराणकारोंने कृष्ण नामकी इस प्रकार
निश्चिती की है—

“कृष्णं नामकः शब्दः वर्ष निर्वृतिरापकः।

अतीरेकात् परब्रह्म कृष्णं प्रत्यभिधीयते॥” (श्रीपरमात्मी)

कृष्ण शब्दका अर्थ संसार और च शब्दका अर्थ
निर्वृति अर्थात् सुझाना है। इन दोनों शब्दोंमें पञ्चमा-
तत्पुत्रस्य समास लगता है। इसलिये जो संसारसे
जीवांको सुझाता, वही परब्रह्म कृष्ण कहलाता है।

१ विष्णुका कोई अवतार। कोई कोई कहता कि
भगवान्‌के १० अवतारोंमें कृष्णका अवतार आठवां है।
किन्तु बहुतसे स्त्रियों पर बलरामको ही अष्टम अवतार
लिखा गया है। भागवतके मतमें कृष्ण भगवान्‌का
बीसवां अवतार है। (भागवत १।१।१९) कृष्णका उत्तान्त
महाभारत, हरिवंश, विष्णुपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण,
ब्रह्माण्डपुराण, श्रीमद्भागवत, देवीभागवत, गङ्गा-
पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, स्कन्दपुराण, कूर्मपुराण, आदि
पुराणों और दूसरे पुराने ग्रन्थोंमें मिलता है। लगभग
सभी ग्रन्थकारोंने अपनी बातको रखा है, दूसरेके मत
पर विशेष ध्यान नहीं दिया। इसी लिये अनेके कृष्ण-
का जीवन-वृत्तान्त नामा भावोंमें वर्णित हुआ है।

ऊपर लिखे ग्रन्थोंके बीच विष्णुपुराणमें कृष्णकी
बाणकीड़ा आदि सभी वर्णित हैं। भागवत और
हरिवंशमें भी उसीकी वर्णना है, किन्तु कुछ
अधिक मात्रामें। विष्णुपुराणके मतमें वसुदेवने भोज-
वंशके देवकीकी कन्या देवकीका पाण्डिप्राप्य किया
था। विवाहके पीछे वसुदेव देवकीको जब घर लिये
जाते थे, कंसने प्रीतिके साध उतका रक्त डाला। उसी
समय देवकीकी हुई कि इस देवकीके पाठवें गर्भमें
जन्म लेनेवाला पुत्र ही कंसको मारेगा। कंस डर गये
और आपद् मिटानेके लिये तत्पश्चात् तत्तवार उठाकर
देवकीको मारनेके लिये चढ़े हो गये। वसुदेवने
उन्हें बहुत कष्ट सुनके ठण्ठा किया और यह मान
लिया कि देवकीके गर्भमें जितने सन्तान होंगी, उन्हें
वह अपने पाप कंसके पास पहुँचा देंगी। इससे अन्तकी
देवकीके प्राण बच गये। किन्तु कंसने वसुदेव और
देवकीको कारागारमें डाल दिया।

इसपर दुस्रिही दुरात्मा देवकीके अत्माचारसे अत्यन्त
प्रीकृत हो सुमिरुपर्वत पर देवगणकी सभामें जा
पहुँची। उसने गिड़ गिड़ा कर कहा था—“हे सुरगण,
आप भरे लिये कोई उपाय कीजिये। दुरात्मा पाँका

आत्माचार सब में सब नहीं सकती।' देवगणकी हृदयमें यह बात बैठ गयी। परन्तु वह यह स्मिर कर न सके, क्या उपाय किया जायेगा। इसी लिये सब बात पितामहसे कहना पड़ी। ब्रह्मा बहुत सोच विचार देवगणके साथ श्रीरोदसमुद्रके तीर जा पहुँचे और मन लगा कर विष्णुकी स्तुति करने लगे। भगवान् विष्णुने ब्रह्माके स्तवसे सन्तुष्ट हो कहा था—'बतलाइये, आप लोग किस लिये पाये हैं। हम निश्चय आपकी मनस्कामना पूरी करेंगे।' ब्रह्माने उत्तर दिया—'आप जगत्के पालनेवाले हैं। हम लोग दुःखमें पड़नेसे जो आपके पास आ पहुँचते हैं। आज कल पृथिवी भारसे बहुत आक्रान्त हो रसातल जाना चाहती है। आप इस पृथिवीको बचाइये।' विष्णुने ब्रह्माकी बात पर सन्तुष्ट हो अपने गिरसे दो बाण उखाड़े थे। उनमें एक काला और दूसरा उजला था। दोनों बाण से उन्होंने देवगणको सम्बोधन कर कहा—'हमारे यह दोनों बाण पृथिवी पर अवतीर्ण हो समस्त भार हरण करेंगे। तुम भी पृथिवी पर अवतीर्ण हो इनको साथ दो।' इस लिये विष्णुपुराणके मतमें स्मिर हुआ कि कृष्ण विष्णुका पूर्ण अवतार नहीं, एक केशमात्र है श्रीधरस्वामीने इस बातको असङ्गत समझ कर कहा है—'यह ठीक नहीं कि विष्णुका केश कृष्णरूपमें अवतीर्ण हुआ था। फिर भी बाण लेकर विष्णुने जो कहा था, उसका तात्पर्य यह है कि उक्त सामान्य कार्य उनका केश भी कर सकता था। कृष्ण विष्णुका पूर्णावतार है।' (विष्णुपुराण १।१।६० की टीका)

कृष्णावतार होनेसे पहले देवकी और वसुदेवने विष्णुकी प्राराधना कर प्रार्थना की थी कि विष्णु उनके पुत्ररूपसे जन्मग्रहण करते। विष्णुने भी इस बातको मान लिया था। देवकीने अष्टम गर्भमें कृष्ण को धारण किया। भाद्र-मासकी कृष्णष्टमी रात्रिको दूसरे पहर कृष्णने जन्म लिया था। अपने जन्मके समय यह चतुर्भुज रहे। वसुदेवने ईश्वरावतार समझ उनकी बहुत प्रकारसे स्तुति की। वसुदेवने कंसके भयसे भीत हो प्रार्थना करते हुए कहा कि वह अपनी दिव्य मूर्ति छिपा लेते। इस पर कृष्णने उसे गोपन कर

मनुष्यकी मूर्ति धारण की। कृष्णके कहनेसे वसुदेव उन्हें लेकर व्रज पहुँचे। जिस दिन कृष्णने जन्म लिया, उसी दिन गोपराज नन्दकी पत्नीने भी एक कन्या को प्रसव किया था। महामाया देवगणकी स्तुति और विष्णुकी अनुमतिसे नन्दरानीके गर्भमें प्रादुर्भूत हुई। उनकी मायासे सभी व्रजवासी गहरो नोदमें अचेतन थे। वसुदेव अपने बालकको यशोदाके पास छोड़ उनकी कन्याको लेकर मथुरा लौट आये। यथासमय कंसने कन्याको वध करनेकी लिये पत्थर पर पटकवा था। परन्तु वह कन्या देखनेवालोंको अर्धभेमें डाल आकाश पर चढ़ गयी और हंस हंस कर कहने लगी—'दुष्ट कंस! तेरे मारनेवालेने जन्म ले लिया है।' यह सुन कर कंस बहुत डरे थे। फिर उन्होंने देवकी और वसुदेवको छोड़ दिया। गोपराज नन्द जब वार्षिक कर देने कंसकी राजधानीमें पहुँचे, तब वसुदेवने उनको समझाया—'आप शीघ्र राजधानी छोड़ कर चले जाइये। हमारे कहनेसे आप बालकको बड़े यज्ञसे प्रतिपादन कीजिये और यह भी प्रार्थना है कि रोहिणीके बालकको भी देखते भासते रहिये।

इधर कंसने महामायाकी बातपर अपने मारनेवाले बालकके वधार्थ चारों ओर असुरोंकी भेजा था। पूतना नन्दके घर पहुँची। उसकी दृष्टि पड़ते ही लड़कोंको अपने प्राण खीना पड़ते थे। राजसी श्रीकृष्णको स्तम्भपान कराने लगी। कृष्णने इसप्रकार निचोड़ कर दूध पीया था, कि उसका प्राण निकल गया।

एक बार यशोदा शिशु कृष्णको किसी शकट (गाड़ी)-के नीचे सुला यमुना तीर चली गयीं। इधर कृष्णचन्द्रने पैरकी ठेलसे गाड़ी उलटा दी। यशोदाने घर लौटने पर देखा कि गाड़ी उलटी पड़ी थी। यह देख कर वह सन्तानकी अमङ्गल आशङ्कासे रो उठीं, परन्तु पीछे सन्तानको चञ्चूता पा ठण्ठी पड़ीं। वसुदेवके भेजे गये बराबर व्रजपुरमें रहते थे। उन्होंने रामकृष्णका जातकर्म आदि सब संस्कार सम्पन्न किया। कृष्णका स्वभाव बहुत चूल्चूला हो गया। एक दिन यशोदाने किसी प्रकार कृष्णको स्मिर न रख

सकनेपर उडूखलके बीच बांध दिया था। परन्तु चञ्चल बालक फिर भी अचरुच न रहा और छुटनोंके चल चलते चलते यमलाक्षु न नामक दो पेड़ोंके बीच पहुँच गया। उडूखल तिरछा हो दोनों पेड़ोंके बीच अटका था। परन्तु लड़का इसकी चिन्ता न कर बल-पूर्वक उडूखल खींचने लगा। उसी समय दोनों पेड़ फट पड़े। परन्तु इससे बालकका कुछ बिगड़ा न था। देखने सुननेवाले बड़े अचम्भेमें आ गये। इस समय कृष्ण दाम (इस्वी) से बांधे गये थे। इससे उनका नाम दामोदर भी है। फिर एक दिन बड़े गोपनि इकट्ठे हो खिर किया कि पहले पूतनावध, दूसरे शकट-विषय और तीसरे यमलाक्षु न भङ्ग जैसी असी-किक घटनाओंसे विदित होता है कि ब्रजपुरमें रहनेसे निश्चय हमसोगीका भ्रमफल होगा। परामर्श करने पीछे गोप लोग ब्रजको छोड़ वृन्दावन चले गये। वृन्दावनमें ७ वर्ष रुँसते खेलते बीते थे। कृष्णवलराम दूसरे गोपाल बालकोंके साथ जंगलमें गाये चराते रहे।

एक दिन कृष्णवलराम दूसरे साथियोंके साथ कालिन्दीतीर पर उपस्थित हुये और किसीसे कुछ न कह एक भीलमें कूद पड़े। वह देखते देखते गहरे जलमें डूबे थे। साथके अशोध बालक फूट फूट कर रोने लगे और उनमें कुछ नन्दके घर यह संवाद पहुँचानेको चल दिये। उत्तम ऋद्धमें कालिय नामका एक सांप रहता था। कृष्णके कूदनेको खटक पाते ही वह आ पहुँचा। कृष्ण उससे लड़ने लगे। थोड़ी देरमें ही कालिय डार गया। कृष्णने उसके शिरपर चढ़के नाचना आरम्भ किया था। फिर कृष्णने भीलसे निकल सबको सन्तुष्टा दी।

वर्ष बातने पर गोप लोग एक इन्द्रयज्ञ करते थे। यह इन्द्रयज्ञ शरत्कालमें ही होता था। शरत्काल आने पर इन्द्रयज्ञका आयोजन होने लगा। यह देख कर कृष्णने पूछा था—‘क्यों यह आयोजन किया जा रहा है?’ इस पर नन्दने कहा—‘इंद्र पानी बरसाते हैं। वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है। अन्न खाकर हम और गोप

लोग जीते हैं और गाये दूध देता है। इसीसे उनके लिये यह यज्ञ किया जाता है।’ कृष्णने उन्हें रोकके गिरियज्ञ करनेके लिये परामर्श दिया। उस वर्ष इन्द्रयज्ञ हुवा न था, गोपोंने गिरियज्ञका ही अनुष्ठान किया। इससे इन्द्रदेव बहुत क्रुद्ध हो वर्षण करने लगे। कृष्णने गोवर्धन-पर्वत धारण करके समस्त वृन्दावनको बचाया था। इन्द्र किसीका कुछ कर न सके। अन्तको उन्होंने कृष्णके निकट अपना पराजय स्वीकार किया।

पीछे निर्मल आकाश, शारदीय चन्द्रिका और फूली हुई कुसुदिनीके गन्धसे दशदिशा आमोदित देख कृष्णवलरामने गोपियोंके साथ रासक्रीड़ा करना चाहा था। वह दोनों कुञ्जमें उपस्थित हो गाना गाने लगे। गोपियां घरका काम काज छोड़ कुंजमें आ पहुँचीं। कृष्ण और बलरामने उनके साथ रास क्रीड़ाकी समापन किया। परन्तु इससे पहले ही वह गोपियोंकी प्रेमदृष्टिमें पड़ गये थे। एक दिन कृष्ण सम्भ्याके समय गोपियोंके साथ रुँस खेल रहे थे। उसी समय अरिष्ट नामके एक दुष्ट वृषभने गोष्ठमें प्रवेश किया और भयङ्कर उत्पात मचाने लगा। परन्तु कृष्णने जब उसके दोनों सींग उखाड़ डाले, तो उसने प्राण छोड़ दिया। कृष्णके अद्भुत बलवीर्यकी बात सुन कंस बड़े सोचमें पड़े थे। उसी समय नारदने जाकर उनको छिपी बातें बता दीं। देवकीके पाठवें गर्भका अदल बदल सुन उनका भय बहुत बढ़ा था। कंसने कृष्ण-वलरामको मथुरा बुला कर मार डालनेका सङ्कल्प किया। इसी लिये उन्होंने एक धनुर्यज्ञका अनुष्ठान किया और कृष्णवलरामको लानेके लिये अक्रूरको वृन्दावन भेज दिया था।

उसी समय कंसका भेजा हुवा मनुष्यका मांस खानेवाला घोड़े-जैसा केशी दैत्य कृष्णको मारनेके लिये वृन्दावन पहुँचा और भयानक उत्पात करने लगा। जब कृष्ण उसके पास गये, केशी सुँह फाड़ कर कृष्णको खा डालनेके लिये उद्यत हुवा। कृष्णने उसके सुँहमें दाय डाल दांत उखाड़ लिये और उसे मार डाला। उसी समय नारदने आकाशसे कहा

या—दुष्ट केशीका बध करनेसे आपका नाम 'केशव' विख्यात होगा।

अक्रूर कृष्णभक्त थे। वह सुन्दावन पट्टुंसे और भक्तिभरसे भुक्तके कृष्णसे अपने भानेका कारण बताने लगे। सभी ब्रजवासियोंने मथुरा जानेकी उद्योग किया था। परन्तु उपठौकन आदि संघर्ष करनेमें उन्हें कुछ देर लग गयी। कृष्ण और बलराम अक्रूरके रथ पर बैठ आगे आगे मथुराकी चल दिये।

राजमें अक्रूरने कृष्णकी विश्वभरमूर्ति दर्शन करके बड़ा आनन्द लाभ किया। रामकृष्ण दोनों गोप-वेशधारी थे। उसी वेशसे राजसभामें जाना उन्हें अच्छा न लगा। कंसका धोबी सड़क सड़क जाता था। उन्होंने उससे बढ़िया कपड़े मंगी। परन्तु रजकने कपड़े देना अच्छीकार किया था। रामकृष्णने एक थप्पड़ लगाके उसे मार डाला और कपड़े ले लिये। फिर उन्होंने सुदाम नामके मालीके घर जा बढ़िया माख और चन्दनसे अपनेकी सजाया था। राजमें कुन्नाके हाथसे अनुसूपन कर कृष्णने उसके कूवरमें अपना हाथ लगा दिया; कृष्णका हाथ लगते ही कुवरी परमा सुन्दरी बन गयी। इन घटनाओंके पीछे वह धनुःशालामें छुसे। जिस बड़े धनुःका याग होता था, उसे उन्होंने बातकी बातमें तोड़ डाला। कंसने यह सब बातें सुन कुवलय-पीढ़ नामक मतवाले जाही और चाणुर तथा सुष्टिक नामक दो मन्त्रोंको कृष्णवधके लिये नियुक्त किया था। कृष्ण और बलरामने राजद्वारमें पट्टुंसे कुवलयपीढ़ की मार डाला। मलयुद्धमें कृष्णने चाणुर और बलरामने सुष्टिक मन्त्रको संहार किया। फिर तोसलक नामक मन्त्र भी थोड़ी देर लड़ने पर कृष्णके हाथसे मारा गया। उस समय कंसने गोपीकी राज्यसे निकालने और वसुदेव तथा उग्रसेनकी मार डालनेकी अनुमति दी थी। परन्तु कृष्ण हलांग मार उनके मन्त्र पर चढ़ गये और कंसको उन्होंने मार डाला। शत्रुको मार कर दोनों भाई पितामाताके चरणों पर गिर पड़े और उन्होंने लड़कपनमें उनकी जो सेवाश्रमूषा नहीं की थी, उसके लिये दुःख प्रकाश करने लगे। कंसकी

पत्नियां कृष्णकी चेर फूट फूट कर राती थीं। इस पर उन्होंने अनुपूर्व नेत्रोंसे उन्हें सम्मलना प्रदान की। कंसके पिता उग्रसेनने कृष्णके पास पट्टुंसे सब राज्य-ऐश्वर्य ले लेनेको कहा था। परन्तु कृष्णने उत्तर दिया—'आपका लड़का बहुत दुष्ट था। इसीसे हमने उसे मार डाला है। हम राज्य लेना नहीं चाहते।'

कृष्णने राज्य ग्रहण किया न था, कंसके राज-सिंहासन पर उग्रसेनको ही बैठा दिया। कुछ दिन पीछे कृष्ण और बलराम सान्दीपनि मुनिके पास पढ़नेके लिये काशी गये और ६४ दिनके बीच शस्त्रविद्यामें शिक्षित हो पढ़ने लगे—'आपको क्या दक्षिणा हमसे मिलनी चाहिये।' सान्दीपनि मुनिने उन्हें अभिततेजा देख कहा था—'तुम हमारे अपहृत पुत्रको ला दो।' कृष्ण-बलरामने समुद्रमें रहनेवाले मुनिपुत्रापहारक ५ लांगोंकी मारकी गुरुके पुत्रको कुड़ाया और जयके चिह्नकी भांति वह एक शङ्ख ले पाये। इस शङ्खको पाञ्चजन्य कहते हैं। विष्णुपुराणमें लिखा है कि वह शङ्ख पञ्चजन नामके असुरका अस्त्र था।

प्रबलपराक्रम जरासन्धकी अग्नि और प्राप्ति नामक दो कन्याओंके साथ कंसने अपना विवाह किया था। कंसवधके पीछे उनकी पत्नियां जरासन्धके पास आकर पतिके मारनेवालीको दवानेके लिये रोने लगीं। जरासन्धने कृष्णकी मारनेके लिये ससैन्य जाकर मथुरा चली थी। श्रीकृष्णके सेनापतित्व-प्रभावसे यादवोंने जरासन्धको हरा दिया। परन्तु जरासन्ध इससे चुप होकर न बैठे। वह बार बार मथुरा पर चढ़ाई करने लगे। उन्होंने १८ बार मथुराको आक्रमण किया था, परन्तु कृष्णके युद्धकीशससे उन्हें प्रत्येक बार हारना पड़ा। इधर कालयवन नामक एक यवनराज यादवोंकी बढ़तीकी बात सुन मथुरा पर चढ़नेका उद्योग करने लगे। कृष्णने दोनों प्रबल शत्रुओंसे यादवोंकी आने वाली विपद्की आशङ्का कर समुद्रके बीच एक दुर्ग बनाया था। उक्त दुर्ग १२ योजन लम्बा चौड़ा रहा।

* सान्दीपनिवर्म लिखा है कि देवकीके लड़के कृष्ण और आर्जुन नामक अग्नि के शिष्य थे। (सान्दीप्य १११६)

उसका नाम हारका है। कृष्ण परिवारके साथ यादवों की दुर्गमें रख अपने पाप शत्रुओंसे लड़नेके लिये मथुरामें रहने लगे। जब कालयवन मथुरा पर चढ़े, वह निरपन्न हो बाहर निकल पड़े। कृष्ण आगे आगे चले, उनके पीछे कालयवन भी लगे थे। कृष्ण पहाड़की एक बड़ी गुहामें छुस गये। कालयवनने वहां जाकर देखा कि एक व्यक्ति पड़े सोता था। कालयवनने उसे कृष्ण समझ ज्ञात मार दी। परन्तु उसके जागते ही पांखोंसे ऐसी आग निकली, कि कालयवन जल कर भस्म हो गये। पुराणमें लिखा है कि राजा सुशु कुन्द देवगणके लिये बड़ी लड़ाई लड़ गिरिकी गुहामें विश्राम करते थे। उधर देवगणका आदेश रहा, जो व्यक्ति उन्हें जागायेगा, उनकी पांखोंसे निकली आगमें जलकर भस्म हो जायेगा। कालयवनके मरने पीछे कृष्णने उनके हाथी घोड़े आदि ले लिये और हारका जाकर सब उपसेनको अपर्ण किये।

विदर्भराज्यके अधिपति भीष्मककी कन्या बहुत गुणवती और रूपवती रहीं। उनकी प्रशंसा सुन कृष्णने भीष्मकसे प्रार्थना की कि, उनके साथ वह रक्षिणीका विवाह कर दें। रक्षिणी पहलेसे ही कृष्णकी चाहती थीं। भीष्मक अपने पुत्र रक्षीके कहनेसे कृष्णकी कन्यादान करने पर असम্মत हुए। जरासन्धकी बात पर शिशुपालके साथ रक्षिणीका विवाह पक्का हो गया। कृष्णने बलराम आदि यादवोंके साथ विवाहके स्थान पर पहुँच रक्षिणीका हरण किया था। उस समय दन्तवक्र शिशुपाल आदिसे यादवोंका युद्ध हुआ। लड़ाई यादव लोग जीते थे। कृष्णके साथ लड़नेमें रक्षीकी प्राणोंकी पड़ गयी। परन्तु रक्षिणीने प्रार्थना करके भाईके प्राण बचाये। कृष्णने हारका जाके यथानियम रक्षिणीसे विवाह किया था। रक्षिणीसे प्रयन्त्र, चारुदेव, सुदेव, चारुदेव, सुषेण, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुविन्द, सुचारु और चारु नामक दश पुत्रों और चारुमती नाम्नी एक कन्याने जन्म लिया। कालिन्दी, मित्रविन्दा, नम्रजित् की सुता सत्या, जाम्बवती, मद्रराजकी सुता सुशीला, सत्ताजित्की लड़की सत्यभामा और लक्ष्मणा भी

कृष्णकी पत्नी थीं। सिवा इसके लिखा है कि कृष्णके १६ हजार पत्नियां रहीं।

नरकासुर नामक एक पृथिवीका पुत्र था। उसकी राजधानी प्रागज्यातिवमें रही। वह बड़ा कड़ा था। इन्द्रने हारका जाके उसके दोरास्यकी बात कृष्णसे कही। कृष्ण नरकका मारनेके लिये प्रतिश्रुत हुए। उन्होंने नरकको मार उसको राजधानीसे १६ हजार कई सौ कन्यायें पकड़ लीं। इससे पहले नरक दितिके कुण्डल छीन चुके थे। नरकके मरने पर पृथिवीने वही कुण्डल कृष्णकी भेंट किये और कहा—‘आपने जब वराह अवतार धारण किया था; उस समय मेरे उच्चारके लिये जो वराहका स्पर्श हुआ, उसी स्पर्शसे गर्भवती हो मैंने नरकको जन्म दिया।’ कृष्ण कुण्डल ले दितिकी देनेके लिये सत्यभामाके साथ इन्द्रास्य गये थे। वहां सत्यभामा पारिजात मांग बैठी। इस लिये इन्द्र और कृष्णसे लड़ाई होने लगी। इन्द्रको साथ दूसरे देवोंने भी दिया था। परन्तु थोड़ी ही देरमें सब हार गये। कृष्ण पारिजात वृक्ष ले हारका चले पाये।

कृष्णके प्रथम पुत्र प्रयन्त्र थे। प्रयन्त्रके पुत्र अनिरुद्धने वाणराजाकी कन्या उषासे विवाह किया। उषाने एकदिन स्वप्नमें अनिरुद्धको देखा था। वह अनुरागिणी बन गयीं और अपनी सखी चित्रलेखाकी भेज अनिरुद्धको उन्होंने उठा मंगाया। छिप कर विवाह हुआ था। दूल्हा दूल्हनने सुखसे अन्तःपुरमें रहना आरम्भ किया। रक्षियोंके सुँहसे यह बात सुन वाणराजने अनिरुद्धको चेरा था। यह संवाद हारका पहुँच गया। कृष्ण परिवारके साथ वाणपुरीमें उपस्थित हुये। प्रथम रुद्रसे युद्ध छिड़ा था। उसी युद्धमें ज्वरकौ उत्पत्ति हुई। रुद्रके हारने पर कृष्णने चक्रसे वाणके सहस्र वाहु काटे थे; (पहले वाणराजाके हजार हाथ रहे) शिवने ज्ञात विगड़ते देख अपने पाप युद्धक्षेत्रमें जाके लड़ाई मिटा दी। कृष्ण अनिरुद्ध और उषाको ले हारका चले पाये।

पौष्क नगरमें वासुदेव नामका एक दुर्हत राजा था। उसने हत्ता उड़ा दिया कि हारकाके रहनेवाले वासुदेव लखे न थे, वह अपने पाप ईश्वरका अवतार

था। उसने कृष्णको यह भी कहला भेजा कि कृष्ण उसके पास जाते और शङ्ख चक्र गदा पद्म आदि चिह्न उसे दे पाते, जिनपर उसका ही प्रकृत अधिकार था। कृष्णने बहुत अच्छा कहके पौण्ड्रराज्यको गमन किया और चक्र आदि अस्त्र चला पौण्ड्रक वासुदेवको मार दिया। काशीके राजासे पौण्ड्रककी वस्तुता थी। वह मित्रहन्ता कृष्णसे लड़ने लगे, परन्तु थोड़ी ही देरमें मारे गये। काशीराजके पुत्रने पित्रहन्तासे बदला लेनेको एक आभिचारिक यज्ञ किया था। यज्ञसे एक कृत्या निकली और कृष्णको मारनेके लिये द्वारका पहुँची। कृष्णने कृत्याको मारनेके लिये चक्र फेंका था। उसने कृत्याके पीछे पीछे वाराणसी जा वाराणसीके साथ कृत्याको जला डाला।

विष्णुपुराणमें यह कहीं नहीं लिखा कि कृष्णने भारतयुद्धमें सहायता दी या पाण्डवोंसे सख्यता की। केवल इतना कहा है कि कृष्णने अर्जुनकी सहायतासे दुष्टोंको दबाया था। फिर यदुवंशके मित्रने पर अर्जुनने कृष्णबलराम आदिका अन्त्येष्टिकायं किया। विष्णुपुराणके ५म अंशमें कृष्णके जन्मसे उनके स्वर्ग जाने तक सब वर्णित हुआ है। परन्तु उसमें स्वमन्तकोपाख्यान नहीं मिलता। हाँ विष्णुपुराणके ४थ अंशके ११ वें अध्याय, भागवत और हरिवंशमें वह लिखा है। उपाख्यान इस प्रकार है—वृष्णिर्धनके राजा सत्ताजित्ने सूर्यकी पाराधना करके उनके गलेका स्वमन्तक मणि मांग लिया था। विष्णुपुराणकार लिखते, जब सत्ताजित् मणिको गलेमें पहन द्वारका पहुँचे, तब लोग उन्हें सूर्य समझने लगे। भागवतके मतमें केवल लड़के भूल गये, बड़ोंको वैसा भ्रम होना असम्भव था। कृष्णने उस मणिको देख विचारा कि वह यादवाधिपति उग्रसेनके योग्य रहा, परन्तु जातिविरोधके भयसे मांग न सके। सत्ताजित्ने सोचा—यदि कृष्ण लेना चाहेंगे, तो हम किसी प्रकार मणि रख न सकेंगे। इसी भयसे उन्होंने मणि अपनी भाई प्रसेनको दे दिया। एकबार प्रसेन शिकार खेलने जंगल गये थे। वहाँ एक सिंहने उन्हें मार डाला और मणि लेकर हाँफता हुआ अपने घरको

चल पड़ा। फिर किसी बड़े भालूने सिंहको मारके मणि छोड़ा था। इधर लोग कहने लगे कि कृष्णने ही मणिके लोभसे प्रसेनको मार डाला है। कृष्ण अपवाद दूर करनेको मणि ठूँदते ठूँदते एक गिरिगुहामें पहुँचे थे। वहाँ भलूक-कुमारकी धात्रीके सुँघ मणिकी बात सुन पड़ी। जब उन्होंने मणि मांगा, तो भालू उनसे लड़ने लगा। भलूकका नाम जाम्बवान् था। वह रावणके युद्धमें रामका प्रधान मन्त्री रहा। इसीसे लड़ाई बहुत बढ़ी। अनेक दिन लड़ने पीछे वह हार गया और कृष्णको जय मिला। परस्पर परिचित होने पर भालूने अपनी कन्या जाम्बवती कृष्णको सौप दिवाहके यौतुक (दहेज) की भाँति स्वमन्तक दिया था। कृष्णने द्वारका जाके दूसरे यादवोंकी बातमें न पड़ उसे सत्ताजित्के सामने रखा। सत्ताजित्ने लज्जित हो अपनी कन्या देना चाहा था। पीछे यादवोंने सत्ताजित्को मार मणि ले लिया। उस समय कृष्ण वारणावतमें रहे। पिताके मरने पर शोकातुरा सत्त्वभामाने वारणावत जा कृष्णसे नालिश की।

कृष्ण बलरामकी साथ ले शतधन्वाको मारने चले थे। शतधन्वा अक्रूरको मणि सौप भाग गये। कृष्णने पीछे पीछे जा मिथिलाके निरुपवती वनमें उन्हें मारा था। परन्तु उनके पास मणि न निकला। कृष्णने लौट कर बलरामको सब वृत्तान्त बताया था। परन्तु बलरामकी उन पर सन्देह आया और वह बिरपरिचित भ्रातृवात्सल्य छोड़ कहीं चले गये। पीछे बढ़ा यत्न करने पर वह द्वारका लौटे। अक्रूर भी थोड़े दिनसे यज्ञानुष्ठानका ठाँग करके द्वारका रहते थे। पीछे मणि लेकर कई यादवोंके साथ उन्होंने द्वारका छोड़ दी। बहुत दिन पीछे कृष्णके यज्ञसे द्वारका आने पर उनके पास मणि मिला था। मणि देख कर बलराम आदिको खालच लगा। सत्त्वभामाने भी उसे पिता का धन बता हाथ बढ़ाया था। परन्तु कृष्णने कीसीको मणि नहीं दिया, फिर अक्रूरको ही प्रत्यर्पण किया। (भागवत १०। ५६-५७, विष्णुपुराण ४। ११ च०, हरिवंश २८। १८ च०)

कृष्णने अपना लड़कपन वृन्दावनमें बिताया था।

उस समय पाण्डवोंके इनके विशेष आकाप परिचयका प्रमाण नहीं मिलता। विष्णुपुराणमें लिखा है—गिरि-यज्ञके पीछे जब इन्द्र वृन्दावन गये, उन्होंने भर्जुनकी रक्षाके लिये कृष्णसे कहा था। कृष्णने भी उनकी बात मान ली। (विष्णुपुराण ५।१२ च०)

कृष्णने कंसवधके पीछे पाण्डवोंका भेद लेने अक्रूर-की हस्तिनापुर भेजा था। वहाँ जाकर अक्रूरने सब संवाद ला कृष्णको सुना दिया। दुरात्मा कौरवोंने भीमसेनको मारनेकी चेष्टा की थी। कुन्तीदेवीन उनसे रो रो कर कहा—“कृष्ण आकर हमारा दुःख दूर करें, हमारे लिये दूसरा उपाय नहीं है।” अक्रूरने यह बात भी कृष्णसे कही थी। इसके पीछे ही जरासन्धका उत्पात और कालयवन आदिका वध है। उस समय कृष्ण पाण्डवोंके पास पहुँच न सके। (भागवत, १०।४८ च०)

जतुगृहदाहके पीछे श्रीकृष्ण और पाण्डवोंकी दूसरी कोई बात नहीं मिलती। थोड़े दिन पीछे कृष्ण बलरामके साथ द्रौपदीके स्वयम्बरमें पाञ्चाल गये थे। भर्जुनने लक्ष्य विह्वल करके द्रौपदीको लाभ किया। इस पर आये हुए राजा पाण्डवोंसे लड़ने लगे। पाण्डवोंने रणमें असामर्थ्य कौशल दिखाया था। उही समय कृष्णने उनकी बात बलरामसे कही। श्रीकृष्णने भगवत् करनवाले राजाओंको यह कहकर हटा दिया था—जिस व्यक्तिने धर्मबलसे द्रौपदीको लाभ किया है, उससे लड़ना ठीक नहीं। कृष्णके कहनेसे लड़ाई बक गयी, पाण्डव द्रौपदीको लेकर चलते हुए। कृष्ण बलरामके साथ जाकर उनसे वहाँ मिले थे। पाण्डवोंका मिलना क्षिपानिके लिये दोनों रातकी ही अपन छिे पर लौट आये। द्रौपदीके साथ पाण्डवोंका विवाह हो जाने पर कृष्णने मणिरत्न और महार्घ वसनभूषण आदि उपहार पहुँचाया था। इसके पीछे धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको लानिके लिये विदुरको भेजा। इस समय पर कृष्ण वहाँ उपस्थित रहे। उन्होंने पाण्डवोंके हस्तिनापुर जानिके लिये परामर्श दिया। पाण्डव धृतराष्ट्रके कहनेसे कृष्णके साथ खाण्डव-प्रस्थ चले गये और वहाँ एक विचित्रपुत्री बना रहने लगे। पुरी बन जानेपर पाण्डवोंको खाण्डवप्रस्थमें रख कृष्ण बलरामके साथ

हारका लौट आये। भर्जुन नियम तोड़ द्रौपदीके घर चले गये थे। इसीसे उन्हें १२ वर्ष वन वन तीर्थोंमें घूमना पड़ा। नाना तीर्थ घूम फिर भर्जुन प्रभास-क्षेत्र पहुँचे थे। वहाँ श्रीकृष्ण उनसे मिले। उन्होंने पहले ही भर्जुनकी सादर लेनिके लिये रैवतक पर्वत पर सब आयोजन लगा रखा था। वहाँ भोजन, शयन और विश्राम करके श्रीकृष्ण भर्जुनको हारका ले गये। हारकामें कई दिन रह वह फिर रैवतकको लौट पड़े। यहाँ भर्जुनने पहले सुभद्राको देखा था। सुभद्राके परिणयका यही सूत्रगत है। पीछे श्रीकृष्णने ही भर्जुनको परामर्श दिया कि वह सुभद्राको हरण करते। जब भर्जुन सुभद्राको भगा ले गये, वृष्णि लोग कन्याको छोन लेने और भर्जुनको समुचित दण्ड देनेपर क्षत-सङ्कल्प हुए। बलदेव आदि सब लोग कृष्णसे प्रभुमति लेनिके लिये उनके पास गये थे। कृष्णने कहा—भर्जुनने हमारे कुलका अपमान नहीं किया, वरं सम्मान हो बढ़ाया है। पार्थ ही सुभद्राके लिये उपयुक्त वर हैं। सुभद्रा पहलेसे ही भर्जुनकी चाहती हैं।” कृष्णकी बातसे सब ठण्डे पड़ गये। भर्जुन सुभद्राको लेकर खाण्डवप्रस्थ पहुँचे थे। कृष्ण बलराम आदिके साथ वहाँ गये। उन्होंने विवाहका समुचित यौतुक प्रदान किया था। आत्मोय स्त्रजन कुछ दिन खाण्डव-प्रस्थमें रह हारका आये, कृष्ण भर्जुनके साथ वहीं रह गये।

कृष्ण और भर्जुनने अम्निके कहने पर खाण्डव जलानेमें सहायता की। बड़ा खाण्डववन बहुतसे जंगली जन्तुओंसे भरा था। खाण्डववनके दाह समय देवीके साथ भर्जुन और कृष्णका सुह हुआ। कहते हैं भर्जुन और कृष्णसे लड़ाईमें हारि हुए इन्द्र आदि देव उनसे वर मांगनेको कहने लगे। कृष्णने कहा—“हम यही मांगते हैं कि हमारा और भर्जुनका साथ कभी न छूटे।” देव वर दे कर चले गये, वह भी कार्यसिद्ध करके बड़ी प्रसन्नतासे लौट पड़े।” (भारत, आदिपर्व)

राजा युधिष्ठिरने राजसूययज्ञ करना चाहा था। इसीसे उन्होंने सत्परामर्शके लिये हारकासे कृष्णको बुला लिया। कृष्णने देखा—बिना प्रबल पराक्रान्त जरासन्धकी मार निर्विघ्न राजसूययज्ञ सम्पन्न नहीं हो

सकता। इसीसे वह अर्जुन और भीमसेनको साथ ले खातकके वेशमें जरासन्धकी राजधानी पहुँचे। जब भीमसेनने जरासन्धकी मार डाला, बन्दी राजा कारा-मुक्त हुये। कृष्ण कारामुक्त राजावाँके साथ इन्द्रप्रस्थ पहुँचे और युधिष्ठिरके कहनेसे उन्हें अपनी अपनी राजधानी जानका अनुमति दी, अपने आप भी द्वारका चले गये।

राजा युधिष्ठिरने राजसूययज्ञका उद्योग किया था। कृष्ण वसुदेवकी पुरी रक्षाका काम सौंप सैन्यक साथ अपारमित धनरत्न लेकर इन्द्रप्रस्थ जा पहुँचे। कृष्णकी अनुमति से युधिष्ठिर राजसूययज्ञमें लगे थे। भीष्म द्रोण आदिको एक एक काम सौंपा गया। श्री-कृष्णने अपनी इच्छासे ब्राह्मणोंके पैर धोनेका भार अपने लिया था। बात उठी—पहले अर्घ किसकी मिलेगा। भीष्मके कहनेसे युधिष्ठिरने कृष्ण ही अर्घ दिया था। प्रबलपराक्रान्त शिशुपाल इसे सह न सके। शिशुपालने कृष्णको बहुतसी कड़ो बातें कहीं, जो सभाके धार्मिक राजावाँसे सही न गयीं। शिशुपालने कहनेके लिये कृष्णको ललकारा था। कृष्णने शिशुपाल की पुकार सुन सभाके राजावाँसे उनके दुश्चरित्रकी बात कही। इसपर सभी शिशुपालकी निन्दा करने लगे। अंधेर हो युद्धमें प्रवृत्त होने पर कृष्णने चक्रके आघातसे उन्हें मार डाला। राजसूययज्ञ समाप्त हो गया। श्रीकृष्ण बन्धुवाँको सम्भाषण करके द्वारका चले गये।

जब दुर्योधनके कूटचक्रसे पाण्डव निर्वामित हुए, कृष्ण द्वारकामें उपस्थित न थे। पौंड्रे पाण्डवोंके वन-वासकी बात सुन वह बहुत सन्तापित हुए और जिस वनमें पाण्डव रहते थे, वहीं जा पहुँचे। उनको दुर्दशा देख क्रोधसे अंधेर होकर कृष्णने कहा था—‘दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन—चार दुरात्मावाँके रक्तसे शीघ्र ही पृथिवी ढूँब जायेगी। जो ऐसा असदाचरण करता, उसको वध करना ही सनातन धर्म है। हम अपने पाप इन लोगोंको नौकरी चाकरीके साथ मार युधिष्ठिरकी राजा बनाते हैं।’ अर्जुनके बहुत समझाने बुझाने पर उनके क्रोधकी शान्ति हुई। द्रौपदीने

बहुत रो रो कर अपने दुःखकी बात कही थी। कृष्णने सभीको समझा बुझाकर सान्त्वना की। कृष्णने कहा—‘आपके वन आते समय हम राजधानीमें उपस्थित न थे। इसीसे कौरव आपके साथ कपटताकी चाल चलसके हैं।’ युधिष्ठिरने पूछा—‘क्यों वह राजधानीमें न थे।’ कृष्णने उत्तर दिया—‘सौभपति सात्वकी यह संवाद मिला कि हमने राजसूययज्ञमें शिशुपालको वध किया था। इसीसे उन्होंने हमारे न रहते द्वारकाकी जाकर घेर लिया। परन्तु युधिष्ठिर प्रवृत्त हो मारसे चबरा वह भाग गये हैं। हमने यह बात सुन और द्वारकाकी दुरवस्था देख भाव्यका मार डालने का निश्चय कर लिया था। वह सौभपुरस समुद्रकुलको चले गये। हमने वहाँ जाकर उनको आक्रमण किया था। मायावी सात्वने लड़ाईमें बड़ा माया दिखाया, किन्तु हम उससे कुछ भी न करे। फिर सुदर्शनचक्रसे हमने उनका मार डाला।’ कृष्णने पाण्डवोंको समझा बुझा कर देखा कि जंगलमें बालक अभिमन्युकी भली भाँति खिलाना पिलाना और सिखाना पढ़ाना असम्भव था। इसीसे वह सुभद्रा और अभिमन्युको अपने साथ ले द्वारका चले गये। (वनपर्व)

सात्व राजाके वध पीछे उनके सखा प्रबलपराक्रान्त दन्तवक्रने गदा से कृष्णको आक्रमण किया था। श्रीकृष्ण सखन्धमें उसके मामाके लड़के रहे। दन्तवक्रने कृष्णको ताक करके वेगके साथ गदा चला दी। परन्तु इससे उनका कुछ न बिगड़ा। फिर श्रीकृष्णने उसके गदा मारी थी। दन्तवक्रकी छाती फट गयी और बाँधर वमन करके उसने प्राण छोड़ दिया। दन्तवक्रके भाई विदूरथसे भी श्रीकृष्ण लड़े थे। वह कृष्णके सुदर्शनआघातसे मारे गये। कहते हैं कि दन्तवक्रके मरने पौंड्रे उनका तेजः कृष्णके शरीरमें प्रविष्ट हुआ था। (भावत १०।७८ च०)

अर्जुन जब तपस्या करनेको चले गये, युधिष्ठिर मनमें बहुत चबरा उठे और काम्यकवन छोड़ प्रभास-तीर्थको चलते हुए। कृष्ण उष्यलोगोंकी खेके युधिष्ठिरसे सम्भाषण करने गये थे। सात्विक आदि पराक्रान्त यादव युधिष्ठिरके दुःखसे दुःखित हो उसी समय

लड़नेका उद्योग लगाने लगे। कृष्णने सबको रोका था। फिर उन्होंने युधिष्ठिर आदिको सात्वता दे सैन्यके साथ द्वारकाके लिये प्रस्थान किया। (वनपर्व ११०-११८ च०)

इसके थोड़े दिन पीछे कृष्ण सत्यभामाको लेकर फिर काम्यकवनमें पाण्डवोंके पास पहुँचे और इस प्रकार नाना उपदेश देकर द्वारकाको सौट पड़े कि धर्मपथ पर रहनेसे उन्हें बहुत शोभन राज्य मिलेगा। (वनपर्व २१४ च०)

दुर्वासा नामक एक मुनि रहे। वह अग्निकल्प मुनि उस समय बात बात पर अभिसन्ताप करते थे। एकदिन वह अपने शिष्योंके साथ दुर्योधनके घर जाकर प्रतिथि हुए। दुर्योधनने यथेष्ट सेवा श्रुश्रूषा करके कई दिन पीछे उनसे पाण्डवोंके पास जानेको कहा था। दुर्वासा दिनके तीसरे प्रहर पाण्डवोंके पास जा पहुँचे। युधिष्ठिरने उनको यथोचित अभ्यर्थना करके कहा—‘आङ्गिक समापन करके आ जाइये।’ इधर पाकशालामें द्रौपदी बैठे रो रही थीं। ऐसी सम्भावना न थी कि सशिष्य मुनिका आहार बनाया जा सकता। द्रौपदी दूसरा कोई उपाय न देख श्रीकृष्णकी स्मरण करने लगीं। कृष्ण द्वारकामें बैठे ही बैठे समझ गये कि द्रौपदी पर कोई विपद् पड़ी थी। वह रुक्मिणीको शय्या पर छोड़ द्रौपदीके पास पहुँचे। उन्होंने वहाँ पहुँचते ही कहा था—‘हमें बड़ी भूख प्यास लगी है, शीघ्र हमें कुछ भोजन दे दो।’ द्रौपदी इस बात पर खबरा रही थीं, दुर्वासाको क्या खिलाया जायेगा। फिर उन्होंने कृष्णको इस लिये पुकारा था कि वह जाकर उनको खाने पानेका कोई उपाय करेंगी। परन्तु कृष्णने जाकर द्रौपदीका दुःख दूना बढ़ा दिया। द्रौपदी एकबारगी ही फूट फूट कर रोने लगीं। कृष्णने उन्हें सात्वता करके खाने पानेको कहा था। अगत्या पाकशालाको कृष्णके समीप पहुँचायी गयी। कहते हैं कि पाकशाला सूर्यकी दी हुई थी और द्रौपदीके खानेसे पहले भरी हो रहती थी। काशी लोगोंके पहुँचने पर वह अनायास उनका पीट भर सकती थी। परन्तु द्रौपदीके आ लेने पर उसमें कुछ न बचता था। कृष्णकी बहुत दूढ़ने पर

उसके कण्ठमें लगी शाककी एक कण्ठा मिला गयी। उन्होंने प्रीतिके साथ वह शाककण्ठा खा सुनियोंको आहारके लिये बुलानेकी कहा था। इधर मुनि लोग पानीमें स्नान पश्चात् स्नान करते रहे। एकाएक उन्हें उकार पाने लगी और भूख भी मिट गयी। मुनि एक दूसरेका मुँह देखने लगे। बहुतोंने कहने पर भी खाना स्वीकार न किया। कृष्ण और द्रौपदीको छोड़ किसीने यह बात समझ भी न पायी। दुर्वासाऋषि फिर सौटे न थे। कृष्ण यथोचित पाण्डवोंसे बात-चीत कर द्वारका चले गये। (वनपर्व २१२ च०) ऐसी ही अद्भुत घटनाओंसे श्रीकृष्णका ईश्वरत्व प्रमाणित होता है।

पाण्डवोंके अज्ञातवास पीछे अभिमन्युके साथ विराटकी लड़की उत्तराका विवाह पक्का हुआ। युधिष्ठिरने जब समाचार भेजा, कृष्ण अभिमन्युकी लेकर विराटनगर पहुँच गये। विवाहके दूसरे दिन द्रुपद आदि राजा विराटको समामें बटे थे। कृष्ण उनको सम्बोधन करके कहने लगे—‘आप लोग जानते हैं कि दुर्योधन आदिने पाण्डवोंके साथ कैसा बुरा व्यवहार किया है। युधिष्ठिर अनायास उन्हें ठीक कर सकते थे, फिर भी वह सत्य प्रतिपालनके लिये १२ वर्ष जंगल जंगल घूमे हैं। हम ठीक नहीं जानते दुर्योधनने क्या ठहरा लिया है। हम आपसे पूछते हैं—यह क्या करना चाहिये। हमारी सम्झनेमें यहाँसे एक दूत भेज दिया जावे। वह जाके वहे, यदि दुर्योधन युधिष्ठिरको आधा राज्य भी दे दे, तो भगड़ा मिट जायेगा।’ समामें बैठे सभी लोगोंने एक साथ अनुमोदन किया था। दूत भेजा गया। कृष्ण द्वारकाको चल दिए। (उद्योग, १ च०)

द्रुपदका पुरोहित दुर्योधनको राजधानीमें सौटा था। इधर सञ्जय नामक धृतराष्ट्रका दूत कृष्ण और पाण्डवोंके पास आ पहुँचा। कृष्णने समझ लिया कि दुर्योधन बड़ा दुष्ट था और लड़ना ही चाहता था। तथापि शान्तिकी चेष्टामें वह दुर्योधनकी राजधानी गयी। उन्होंने बड़ा उपदेश दिया था, जिस पर दुर्योधन उनका अपमान करने पर आ गया। कृष्ण इससे कुछ

भी न हिसे डुले और वहाँसे लौट पड़े। किसी प्रकार शान्ति होते न देख उन्होंने पाण्डवोंको लड़ जानिके लिये कहा था।

लड़ाईकी तैयारी होने लगी। देश देश दूतोंको भेज कर कौरवों और पाण्डवोंने आत्मीय स्वजन बुलाये थे। अर्जुन द्वारका गये और दुर्योधन भी वहाँ जा पहुँचे। कृष्ण उस समय सोते थे। दुर्योधन कृष्णके सिराहने जाँचे आसन पर बैठ गये, अर्जुन पैताने ही रहे। आँख खुलने पर श्रीकृष्णने पहले अर्जुनको ही देखा था। पीछे दोनोंने युद्धके लिये सहायता माँगी। कृष्णने अर्जुनका ही पक्ष लिया, क्यों कि वह पहले देख पड़े थे। अर्जुनके कहने पर उन्होंने उनका रथ हाँकना स्वीकार किया। कृष्णने सुना कि दुर्योधन अर्जुनसे पहले आये थे। इसलिये उन्होंने दुर्योधनको सुँह माँगी नारायणी सेना दे दो। लड़ाईके खेतमें दोनों औरकी सेना और आत्मीय स्वजनको देख अर्जुन डोवाँडोल हुए थे। कृष्णने उन्हें नाना प्रकारकी दाश-निक युक्तियों और भक्तिरसके उपदेशोंसे समझा बुझा समरमें प्रवृत्त किया। नीता देखी।

कृष्णही एकले पाण्डवोंके मन्त्री थे। उन्हींकी मन्त्रणाके बल पर पाण्डव अन्धाधुन्ध लड़ाईमें जीत गये। कहते हैं कि भारतका युव बन्द होने पर अश्वत्थामाने पाण्डवोंके ५ पुत्र मार डाले थे। फिर अर्जुनके साथ अश्वत्थामाकी लड़ाई हुई। इस युद्धमें अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे उत्तराके पेटका लड़का मरा था, परन्तु कृष्णने उसे फिर जिला दिया। युधिष्ठिरके गद्दीपर बैठने पीछे कृष्ण अपने परिवारके साथ द्वारका आ गये। (उद्योग—अवनीषपर्व)

धर्मका राज्य संस्थापित हुआ, धर्म प्रचारित हुआ। कृष्णने प्रबलपराक्रान्त यदुकुल ध्वंस करके पृथिवी छोड़ी थी। उसको बात इस प्रकार बतायी जाती है—देवदूतने आकर कहा था—‘देव चाहते हैं, अब आप अधिक दिन मर्त्यलोकमें न रहें।’ कृष्णने देवोंकी बात मान ली। इधर यादव दिन दिन बहुत बिगड़ रहे थे। एक बार विश्वामित्र, कश्यप और नारद—तीनों लोकविभूत ऋषि द्वारका गये। दुष्ट यादव

कृष्णके लड़के शम्भुको स्त्रीका रूप बना ऋषियोंके पास गये और उनसे पूछने लगे, उसके पेटसे क्या होगा। महाविर्याने कहा कि लोहेका सुसल होगा और उसी सुसलसे कृष्णवलरामको छोड़ सारा यदुवंश ध्वंस हो जायेगा। कृष्णको यह बात विदित हो गयी। उन्होंने कहा—‘सुनियोने जो कहा है, वह अवश्य होगा।’ शपथ निवारणके लिये कोई उपाय किया न गया। शम्भुने लोहेका एक सुसल प्रसव किया था। यादवोंके राजाने उसे चूर कर डालनेकी आज्ञा दी। सुसल चूर कर डाला गया और सब चूर्ण समुद्रमें फेंक दिया गया। और धीरे यादवोंने भी सब धर्मकर्म छाड़ दिया था। उस समय श्रीकृष्णने उनके विनाशको वासनार्थ उन सबसे प्रभासतीर्थ चलनेकी कहा। प्रभासमें जा यादव सुरापान करके हंसने खेलने लगे। अन्तको आपसमें लड़ाई हुई। कुरुक्षेत्रके महारथी सात्यकिने पहले भगड़ा उठाया था। जब वह क्षतवर्मासे लड़ने लगे, प्रयुक्त उनकी घोर हो गयी। सात्यकिने क्षतवर्माका शिर काटा था। फिर क्षतवर्माके भाईबन्दीने सात्यकि और प्रयुक्तको मार डाला। कृष्णने भी एक मूठ परका (एक घास) तोड़के उसके आघातसे बहुतसे यादवोंकी गिराया था। कहते हैं कि समुद्रमें फेंके हुए सुसलके चूर्णसे ही परका घास निकली थी। इस युद्धमें सारा यदुवंश ध्वंस हो गया। उस समय कृष्णके सारथि दारुक उन्हें बल-देवके पास लेकर पहुँचे। फिर कृष्णने दारुकको अर्जुनके पास हस्तिनापुर भेजा था। कृष्णने बलरामको योगासन पर बैठे देखा। उनकी सुँहसे सहस्रमस्तक सर्पने निकलके समुद्रमें प्रवेश किया था। बलरामके प्राण छूट गये। उस समय कृष्ण मर्त्यलोक छोड़नेकी वासनासे महायोग अवलम्बन करके भूतल पर सोये थे। जरा नामके व्याधने भूलसे हिरण समझ उनके पादपद्ममें बाण मार दिया। पीछे जब उसे अपना अपराध विदित हुआ, वह श्रीकृष्णके चरण पर जा गिरा। कृष्ण उसे आश्वासन करके स्वर्ग गये थे।

(महाभारत नीलकण्ठ, विष्णुपर्व ५१० च०)

श्रीकृष्णके साथ ब्रजकी गोपियोंने जो व्यवहार

किया, वह भक्तिरसका चरम दृष्टान्त है। विष्णुपुराण, भागवत, हरिवंश और ब्रह्मवैवर्त आदि जिस जिस ग्रन्थमें कृष्णचरित कहा गया है, उसमें थोड़ी बहुत गोपियोंकी बात प्रवृत्त मिलती है। गोपियाँ कृष्णकी बहुत चाहती थीं। शाण्डिल्यने भक्तिकी सीमासा करनेमें अनेक सूत्र बनाये हैं। उसमें उन्होंने कहा है कि गोपियोंकी ज्ञान न था, वह कृष्णकी भक्तिसे ही सुक्त हुईं। (शाण्डिल्य १४ सूत्र) भागवतमें लिखा है कि गोपियाँ पति, पुत्र, आत्मायत्नजन, भय-लज्जा आदि छोड़के श्रीकृष्णके ही शरणमें जा पड़ चुकी थीं। वह सदा कृष्णकी परब्रह्म समझती रहीं। भागवतमें गीताकी बात बहुत बढ़ कर लिखी गयी है। उससे समझ पड़ता है कि गोपियोंने कृष्णकी अपना मन, प्राण सब कुछ सौंप रखा था, संसारसे उन्हें कोई काम न रहा। वह कृष्ण छोड़ दूसरीकी जानती न थीं, उनके लिये सारा जगत् क्लेशमय हो रहा था। एक दिन कृष्ण फुलवारीमें थे। गोपियाँ सुयोग पाकर उनके पास पड़ चुकीं। कृष्णने उन्हें उपदेश दिया था—

‘रजन्वो वा चौररूपा चौरसत्त्वनिविता ।
प्रतिघातं ब्रजं निहृद्ये यं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥१८
मातरःपितरः पुत्रा मातरः पतयन्वयः ।
विचिन्तन्ति हृदयस्थली मा कृष्णं बन्धुसाधुसम् ॥२०
तद्वयातमाचिरं गोष्ठं यश्च बन्धुं पतौन् सतोः ।
क्रन्दन्ति बन्धुसा बालाश्च तान् पाययन् दुःखतः ॥२१
अथवा मदभिक्षो दादु मनस्यो यन्निताशयाः ।
आगतः स पप्रन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥२२
भतुः यश्च बन्धुं स्त्रीणां परोक्षसौ हृत्मायया ।
तद्वन्धुनाश्च कल्याणः प्रजानां नृपो वपम् ॥२३
दुःखान्ते दुर्मनो हृदो जहो यं यथधनोऽपि च ।
पतिः क्षामिन् हतस्यो जाके स मिरपातको ॥२४
अक्षयं मयश्च फला कृष्णं भयावहम् ।
गुणधितश्च सर्वस्य चोपगन्तुं कुलस्त्रियाः ॥२५
अथवा हृदयान्दधानान्दधि भागोऽनुकीर्तनात् ।
न तथा सन्निवर्षे प्रतिघातं ततो गृहान् ॥२६

(भागवत १०.१२.५)

यह बात डरावनी है। इसमें भयानक प्राची घूमा करती है। इस लिये ब्रजका लौट जाओ। हे सुमध्यमाओ! यहां स्त्रियोंकी इज्जत ठोक नहीं। तुम्हारे

पिता, माता, भ्राता, पुत्र और स्वामी तुमको न देख ठूँढ़ रहे हैं। उनको खटकेमें न डालो। इस लिये तुम घर लौट जाओ, देर न लगाओ। हे सतिमाओ! घर जाके अपने अपने पतिकी सेवा करो। लड़के बच्चे रो रहे हैं, उनको जाकर दूध पिलाओ। यदि तुम हमारे खेड़के वशीभूत होनेसे जो आया करतो हो, तो यह बात भी तुम्हारे लिये ठीक हो हुई है। क्योंकि सभी प्राणी हमसे प्रसन्न हुवा करते हैं। हे कल्याणियों! निष्कलरूपसे स्वामी तथा स्वामीके बन्धुवाकी सेवा और सन्तानोंकी प्रतिपालन करना जो स्त्रियोंका प्रधान धर्म है। सद्गति चाहनेवालों स्त्रियोंको उचित नहीं कि वह अपने स्वामीको छोड़ दें; चाहे वह दुःखी, अभागा, बूढ़ा, जड़, रोगी या निर्धन हो क्यों न हो। कुलकामिनियोंकी स्वर्गच्युतिका प्रधान कारण उपपत्ति सेवन ही है। यह काम अयशस्कर, तुच्छ, दुःखजनक, भयानक और सर्वत्र निन्दित है। हमारा नाम सुनने, हमें देखने और हमारा ध्यान तथा कीर्तन करनेसे हममें जैसी प्रीति बढ़ती है, वैसी हमारे पास आनेसे नहीं होती। इस लिये तुम घर चली जाओ।

आकाश निर्मल है। शरच्चन्द्रकी चांदनी छिटक रही है। कमलिनो फूली है। चारा और सुगन्ध ठड़ रहा है। भौरोंके झुण्ड गुंज रहे हैं। ऐसे ही समय जंगलमें पूर्णयौवन कृष्ण अबिले बैठे हैं। पूर्णयौवना गोपियाँ उनके प्रेममें अमुरागिणी बन रही हैं। वह संसार, लज्जाभय, पतिपुत्र छोड़के उनके पास पड़ चुकी है। किन्तु इसमें कृष्ण कुछ भी न हिंसे ली। उलटे उनको प्रत्याख्यान करने लगे। यही भगवान् कृष्ण-चन्द्रकी ठीक वर्णना है। पारदारिक साम्यत्व की वर्णना प्रेमिक कविको कल्पनासे निकली समझ पड़ती है। प्राचीनकालको भारतवर्षमें यह नियम रहा कि स्त्री-पुरुष एकसाथ मिलकर नाचते थे और समाजमें इसकी निन्दा न होती थी। कृष्णने भी वृत्तावलीमें यही किया था। विष्णुपुराण (५ अंग ११ अध्याय)-में रामलीला लिखी है। परन्तु उसमें किसी प्रकारके छिनासीकी बात नहीं। भागवतमें बताया है—

“एवं शशाङ्कविनिर्जिता निशाः स सत्यबालोऽनुरतावलागवः ।

विषे न आत्मव्यवहारैरतः सर्वाः शरत्कालायनधारसावयाः ॥”

(भागवत १० । १३ । २५)

‘अनुरागिणी रमणियोंसे घिरे हुए सत्यसङ्कल्प श्रीकृष्णने अपनेमें ही वीर्यको रोकके सारे चाँदनी रात प्रेमकी बातोंमें बिता डाली ।’ इससे स्पष्ट ही समझ पड़ता कि रासलीलामें श्रीकृष्णने किसी प्रकारका निन्दित पारदारिक कार्य नहीं किया ।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कृष्णके लड़कपनसे लेकर सारा वृत्तान्त लिखा है । उसको देखनेसे समझ पड़ता है कि राधिकाको सांख्यसिद्ध प्रकृति और कृष्णको निर्लेप, निर्लिकार और निर्मम आत्मारूप बताना ही ब्रह्मवैवर्तका प्रधान उद्देश्य है । ब्रह्मवैवर्तके मतसे विष्णुकी शक्तिने सुदामके श्रापसे गोपकुलमें जन्म लिया था । उसीका नाम राधिका है । विष्णुके अंशसम्भूत राधाणघोषके साथ उनका विवाह तो हो गया, परन्तु वह नपुंसक रह्यो । पीछे ब्रह्माने जाके कृष्णके साथ राधिकाका विवाह करा दिया ।

(ब्रह्मवैवर्त, जन्मखण्ड १ च०) राधिका देखो ।

इस बारेमें बहुतसे लोगोंने बहुतसी बातें कहीं हैं—कितने समयसे कृष्ण देवावतार माने गये हैं । आजकल किसी किसी पाश्चात्य और देशीय विचक्षण व्यक्तिको विश्वास है, पहले लोग कृष्णको देवावतार न समझते थे । महाभारतमें कई शिशुपाल, दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण और शकुनोका व्यवहार तथा वाक्य देखनेसे ही यह बात निकल आती है । विष्णुपुराण, भागवत, हरिवंश और महाभारतके भी जिस अंशमें कृष्णके ईश्वरत्वकी बात मिलती है वह आधुनिक और प्रक्षिप्त है * वह जिस प्रकार कृष्णका देवावतार होना नहीं मानते और जिस प्रकार महाभारतकी आलोचना करके कृष्णको जीवनोके सम्बन्धमें प्रक्षिप्त वचन उद्धृत करनेकी चेष्टा करते हैं, वह समोच्चो नही समझ पड़ता । कृष्णके शत्रु, दुर्योधन आदिकी बात पर विश्वास करके कृष्णके अवतारत्व वा देवभाव सम्बन्धमें मन्दह नहीं कर सकते । कारण उसी व्यक्ति-

की मित्रप्रशंसा और शत्रुनिन्दा किया करते हैं । कुरुपितामह प्राज्ञ भोजने युधिष्ठिरको सम्बोधन करके कहा था—

“तुरीयार्धं न तस्य मे विद्धि केशवमप्युत्तमम् ।

तुरीयार्धं न लीलास्त्रीन् भावयथैव बुद्धिमान् ॥”

(शान्तिपर्व २८१ । ६४)

यह महात्मा केशव ईश्वरके द्वे अंशमें समुत्पन्न हैं ।

उक्त वचनसे समझ पड़ता है कि कृष्ण उस समय पूर्णावतार न माने जाते थे, लोग उन्हें महापुरुष और ईश्वरांशसम्भूत ही समझते थे । भोजने अपने आप युधिष्ठिरका दिया हुआ अर्घ्य न लेके कृष्णको समर्पण करनेका आदेश दिया था, (समापर्व)

कालिदासके मेघदूत (१ । १५), बौद्धोंके पुराने ग्रन्थ ललितविस्तर (११ च०) और ख्रिष्टीय ४४१ शताब्दीके खोदित लेख* और उससे बहुत पहले पतञ्जलिके महाभाष्य (१ । ४ । ८२, ४ । १ । १४, ५ । ३ । ८८) में कृष्णको देवावतार माना गया है । इसको छोड़के बुद्धदेवसे भी बहुत पहलेके पाणिनिस्मृत (४।३।८८) और कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक-में भी कृष्णका प्रसङ्ग आया है । यहां तक कि ऋग्वेदके खिल स्मृत (१० । १) में लिखा है—

“कच विचो हवीर्केश वासुदेव ननोऽस्तुते ।”

इस मन्त्रसे कृष्णका महत्व स्वीकृत हुआ है ।

नीता शब्दमें कृष्णका धर्ममत देखो ।

२ परब्रह्म । कृष्णवर्णोऽस्वास्ति, कृष्ण वर्णादित्वाद्दत् । ३ वेदव्यास । ४ अर्जुन । ५ कौयल । ६ कौवा । ७ करौंदा । ८ नीला रंग । इसका संस्कृत पर्याय— नील, असित, श्याम, काल, श्यामल, मेघक, वहुल, राम और शिति है । (त्रि०) ८ काला । (क्ली०) १० काली मिर्च । ११ लोहा । १२ काला अंगूर । १३ नीला अस्त्र । १४ नीलका पेड़ । १५ पीपल । १६ दाख । १७ नील पुनर्नवा । १८ काला जोरा । १९ गाभारो । २० कुटकी । २१ एक प्रकारका अनन्तमूल ।

* Journal of the Royal Asiatic Society, N. S. Vol. I.

† नीलमूलरकी कर्गई-कुरई शब्देवसंहिता (२४ संस्करण) के ४४ भागका ५३५वां पृष्ठ द्रष्टव्य है ।

* अथर्वसुनार द्वादशके ७पासकसप्तशतका २१ भाग (उपनिषद्) ।

२२ राई। २३ पर्पटो। २४ काकोली। २५ सोम-
राजी। २६ धनविशेष। कृष्णपक्षी। २७ महीनेका
काला पाख। (पु०) २८ कृष्णपक्षाभिमानो देवता: वह
कृष्णपक्षको अपना (अहं) समझते हैं। पित्रयानमें
कृष्णपक्षाभिमानो देवताका वास रहता है। २९ काला
हिरन। ३० अशुभ काम। ३१ कोई वेदोक्त असुर।
देवराज इन्द्रने उसे सर्वश मार डाला था। ३२ कोई
ऋषि। वह ऋग्वेदके ८ वें मण्डलके ४२-४४ सूक्तके
ऋषि हैं। ३३ अथर्ववेदको कोई उपनिषत्।

(सुक्तकीपनिषत्)

३४ बौद्धशास्त्रोक्त कोई नागराज। (दिग्भवन, पूर्णाव-
सान) ३५ मित्रोदके पश्चिमका एक पर्वत। (लिङ्गपुराण
४८।५०, ५०।१२) ३५ तिरुमलयके पुत्र। इन्होंने जयतीर्थ-
को प्रसिद्धीपिका पर भावप्रकाश नामको टीका
लिखी है। ३७ कोई ग्रन्थकार। यह युधिष्ठिरके पुत्र
थे। १६४६ ई०को इन्होंने कृष्णबोधव्याकरण बनाया।
३८ किसी संस्कृत ग्रन्थकारका नाम। पञ्चिण्योतिष,
साहित्यतरङ्गिणी, नलोदयटीका, भगवद्गीताटीका,
शुद्धिविवेकटीका, सांख्यकारिकाव्याख्या, सांख्यसूत्र-
प्रक्षेपिका, सांख्यसूत्रविवरण आदि ग्रन्थ बनानेवालोंका
नाम भी कृष्ण ही है। ३९ कई राजाओंका नाम।
कृष्णराजदेवो। ४० हिन्दीके कोई कवि। इनका जन्म
१६८३ ई०को हुआ। यह औरङ्गजेबके दरबारमें
(१६५४-१७०७ ई०) उपस्थित रहे। सम्भवतः जयपुरके
कृष्ण कवि भी यही थे।

४१ जयपुरके एक हिन्दी कवि। (१७२० ई०) यह
ब्रजवासी विहारीलाल चौबेके चेले थे और इन्होंने
राजा जयसिंह सवाईकी नौकरी इस्लतयार की।
इन्होंने विहारी सतसईकी एक टीका लिखी है।

४२ हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म १८११ ई०को
हुआ था। मोति पर इन्होंने फुटकर कविता की है।

४३ आन्ध्रदेशके द्वितीय नृपति। इनके उत्तराधि-
कारी सातकर्षि हुए। (वायु और विष्णुपुराण) परन्तु भाग-
वतमें कृष्णके उत्तराधिकारीका शान्तकर्ष नाम लिखा
है। आन्ध्रके मतमें कृष्ण और सातकर्षिके बीच तीन
या उससे भी अधिक राजा हो गये।

मासिकके २२वें शिलाफलकमें लिखा है कि
कृष्ण सातवाहनवंशीय नृपति थे। इनका समय ईसासे
दो शताब्द पूर्व था। क्योंकि शिलाफलकके अक्षर
बहुत प्राचीन हैं।

४४ दक्षिणात्यमें कलचुरि राजवंशीय कल्याण
शाखाके प्रतिष्ठाता। बेलगांवके दानपत्रोंमें लिखा
है कि वह विष्णुका अवतार दूसरे कृष्ण थे और
उन्होंने लड़कपनमें आश्रयजनक कार्य कर दिखाये।
इनके पुत्र योगम उत्तराधिकारी हुये और योगमके
पीछे उनके पुत्र परमार्दी राज्याभिषेक किये गये।
परमार्दीके पुत्रका नाम विजुन था।

जनादंनके पुत्र कृष्णदेवने कृष्णको राज्य अधि-
कार करनेमें बड़ा साहाय्य दिया था। इन्होंने बहुतसे
यागयज्ञ किये और इस प्रकार वैदिक क्रियाको उत्ते-
जन दिया। इनकी अनुमतिसे बागवाड़ी ग्राममें बत्तीस
ब्राह्मणोंको निष्कर भूमि मिली थी। कृष्णने प्राचीन
संस्कृत कवियोंके श्लोकोंका सूक्तिसुक्तावली नामक
एक संग्रह किया। इन्होंने शासनकाल अमलानन्दने
वाचस्पति मिश्रकी भामतीपर वेदान्तकल्पतरु नामकी
एक टीका लिखी थी। ११८२ शक या १२६० ई० को
इनके भाई महादेवने राज्यका उत्तराधिकार पाया।

कहते हैं कृष्णने शिवके औरस और किसी ब्राह्मणी-
के गर्भसे जन्म लिया था। नापितके वेशमें जाकर
राजसुराज कालखरका इन्होंने विनाश किया। इस
प्रकार यह मध्यभारतमें नौ लाखका चेदिदेश पा गये।

१२४७-६० ई० को सिंहाणा राजाका उत्तराधि-
कार कृष्णने पाया था।

४५ राष्ट्रकूट-नृपति कृष्णने एल्लोरामें चट्टानोंको
काटकर शिवका आश्रयजनक मन्दिर बनाया।

राष्ट्रकूट-राज २५ कृष्ण (८७७-८१५ ई०) कलिङ्ग
और पूर्वचालुक्योंके विरुद्ध लड़े थे। परन्तु देखनेमें
कोई सफलता न मिली।

राष्ट्रकूट-नृपति ३५ कृष्णने (८४०-७१ ई०) चोल-
देशमें बड़ी सफलता पायी थी। वहाँको शिलालिपिसे
विदित होता है कि ३५ कृष्ण उन्नत देशके भागों पर
पूर्ण राजत्व रखते थे। उत्तरभरकाट, तर्कोर और

त्रिविनापत्नी चोलीके हाथसे निकल राष्ट्रकूटोंके अधिकारमें पहुँच गये। ८४८-५० ई० का अठकूर और महिसूरमें जो शिलाफलक मिला है, उसमें लिखा है—जब १२म परान्तकके पुत्र राजादित्य चोलसे शय कृष्ण लड़ रहे थे, इनके मित्र तलवादवाले पश्चिम गांगोंके शय बूतुगने (जिन्होंने कृष्णकी बहनसे व्याह कर लिया था) वर्तमान मन्द्राजसे अनतिदूर तन्नोल नामक स्थानमें धो से चोलराजको वध किया। इस कामसे राष्ट्रकूट इतने प्रसन्न हुये, कि महिसूरके उत्तर कृष्णने बूतुगको बहुतसी भूमि जागोर दे डाली, जिसमें वनवासी और कई दूधरे जिले सम्मिलित थे। दूसरे शिलाफलकोंसे भी यह बात ठीक उतरती है।

४६ नागवंशीय एक राजा। यह सोपार पर ५०० नागोंके साथ जा चढ़े थे। परन्तु बुढ़ने आगे जाकर सब नागोंको अपना धर्मावलम्बी बना डाला।

कृष्णक (सं० पु०) कृष्ण स्थूनादित्वात् कन्। स्थूलादिभाः प्रकारवचने कन्। पा ३।४।३। १ कृष्णसर्प, लाही। २ कृष्ण मुक्त, भटवांस। ३ कृष्णतण्डुला। (क्लौ०) अनुक्रमितं कृष्णाजिनम् कृष्णाजिन-कन् अजिनस्य लोपः। ४ कृष्ण सार चर्म, काले हरिकला चमड़ा।

कृष्णकण्टक (सं० पु०) कृष्णकण्टक, काला चना।

कृष्णकदली (सं० स्त्री) महाराष्ट्रदेशका एक प्रसिद्ध केला। यह दूध उत्पन्न करनेवाली, कसेली, हलकी, वात तथा धातु बढ़ानेवाली और प्रमेह, पित्त एवं प्यास मिटानेवाली है। (वैद्यकनिघण्टु)

कृष्णकन्द (सं० क्लौ०) काल कमल।

कृष्णकरवीर (सं० पु०) काले फूलका कनेर।

कृष्णकर्कट (सं० पु०) नित्यकर्मधा०। काला केकड़ा यह बल देनेवाला, कुछ गर्म और वातनाशक है। (सुसुत)

कृष्णकण्ठ (सं० त्रि०) कालेकानवाला।

कृष्णकर्म (सं० क्लौ०) १ पापका काम हिंसा आदि।

२ सबकी चिकित्साको कोई प्रक्रिया। (सुसुत)

कृष्णे परब्रह्मणि अपि कर्म, मध्यपदलोपी कर्मधा०।

३ फलकी कामना छोड़ ईश्वरके लिये किया जानेवाला काम। (त्रि०) कृष्ण मणिमें हिंसादिरूपं कर्म यस्य, बहुव्री०। ४ बुरा काम करनेवाला।

कृष्णकलि (सं० पु०) गुलजब्बास या गुलाबासका फूल और पेड़। कहीं कहीं इसे सन्न्यासिणि भी कहते हैं। इसका भरबी नाम जहर-डल् अजल, मिसरी जिब्बुल अजल, मलयी रम्बूत पलु कम्पत, तामिलो वद्राच और सिङ्गली सेन्द्रिका है। इसको शाखा गाँठदार होती है। पत्ता छोटे पान-जैसा रहता है। फूल-काला, सफेद और गुलाबी लगता है। फूलके ५ दल में ६ केसर आते हैं; गन्ध बहुत मन्द नहीं होता। सन्न्याके समय फूल खिलता है। बीज मिर्च जैसा होता है। यह फूल सब ऋतुओंमें फूला करता है। परन्तु वर्षाकालको बहुत फूल उतरते हैं। इसके बीज और मूलसे पेड़ उपजता है। पत्तों और जड़ पोस कर लगा देनेसे फोड़ा फूट जाता है। (वैद्यकनिघण्टु)

कृष्णकवि—१ ताराशशाह नामक संस्कृत काव्य बनानेवाले। यह नारायणके पुत्र थे। २ भागवत कृष्ण कवि नामसे प्रसिद्ध एक ग्रन्थकार। इन्होंने शर्मिष्ठा-ययाति नामक एक संस्कृत नाटक बनाया है। ३ शेष-कृष्ण कहलानेवाले कोई संस्कृत ग्रन्थकार। यह नृसिंहके पुत्र रहे। इनके रचित उषापरिणय चम्पू, कंसवध-नाटक, क्षियागोपनकाव्य, पारिजातहरणचम्पू, सुरारी-विजयनाटक, सत्यभामापरिणय, सत्यभामाबिलास नाटक आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

कृष्णकवीन्द्र—यमकशिखामणि व्याख्या नामका संस्कृत ग्रन्थ बनानेवाले।

कृष्णका (सं० स्त्री०) राई।

कृष्णकाक (सं० पु०) काला कौवा।

कृष्णकातरा (सं० स्त्री०) काल घुँघरी।

कृष्णकान्तन्यायरत्न—एक विख्यात नेयायिक और वेदान्तिक पण्डित। इन्होंने ब्रह्मानन्दमस्वती की रचित न्यायरत्नावली पर न्यायरत्नप्रकाशिका और शब्दशक्ति-काशिका नामको टीका लिखी है।

कृष्णकान्त भादुड़ी (रससागर)—एक बङ्गाली कवि। बंगला सन् ११८८ को इन्होंने नदिया जिलेके बाड़ेबाँका गाँवमें जन्म लिया था। सम्झन, निन्दो, फारसी और उर्दू इनकी पढ़ी थी। कृष्णनगरके राजा गिरीशचन्द्रके यह एक सभासद और वित्तभोगी रहे। इन्हें समझा

मूर्तिमें भी अच्छी योग्यता थी। राजाने इनकी कविता शक्तिसे सन्तुष्ट हो 'रससागर' उपाधि दिया था। कृष्णनगरमें ही इनका विवाह हुआ। बंगला सन् १२५१ को ५२ वर्षकी अवस्था पर शान्तिपुरमें दामाद के घर कृष्णकान्त का कन्यासमें पड़ गयी।

कृष्णकान्तवसु—रङ्गपुरके डेविड स्काट साहबके तहसीलदार। १८१५ ई० को भूटानी और अंगरेजी प्रदेशका किसी सीमा पर झगड़ा छठ खड़ा हुआ। सीमानिर्धारणके लिये स्काट साहबने गवर्नमेंण्टके कहनेसे कृष्णकान्तको दूत बना कर भूटान भेजा था। कृष्णकान्त भूटान राज्यका विवरण संघट्ट कर लिखते रहे; स्काट साहबने उसीको अंगरेजीमें अनुवाद करके भूटान राज्यके इतिहास नामसे छपा दिया।

(Asiatic Researches, Vol. XV.)

कृष्णकापोती (सं० स्त्री०) एक मङ्गीवधि। यह मधुर रस, दूधिया, रुयेदार और मृदु होती है। (सुसुत)

कृष्णकाय (सं० पु०) कृष्णः कायोऽस्य, बहुव्री०। १ भैंसा।

कृष्णस्य कायः, इ-तत्। २ कृष्णका शरीर। कृष्णसासो कायखेति, कर्मधा०। ३ काला शरीर।

कृष्णकाष्ठ (सं० स्त्री०) कृष्णं काष्ठमस्य, बहुव्री०। काला पत्थर।

कृष्णकीर्तन (सं० स्त्री०) कृष्णस्य कीर्तनम्, इ-तत्।

कृष्णके यशका गान। साधारणतः इसे कीर्तन ही कहा करते हैं। अच्छे कथ और राग तथा स्वरके संयोगसे सङ्गीतास्वाप द्वारा देवदेवीकी कीर्त्ता वर्णना भी कीर्तन कहाती है। परन्तु प्रति दिनकी बोल चालमें कीर्तनसे कृष्णकीर्तनका ही बोध होता है। कीर्तनके कई भेद हैं—(१) असकी कीर्तन, ठपक, सङ्गीतन और नगरकीर्तन। प्रायः सब प्रकारके कीर्तनमें कृष्णकीर्त्ताके भी गीत गाये जाते हैं। असकी और ठपके कीर्तनमें मान, माधुर और गोष्ठ आदि पालेका नियम बंधा है। परन्तु कीर्तन और नगरकीर्तनका ऐसा

नियम नहीं। सङ्गीतन और नगरकीर्तन मानमें साधारणतः कृष्णकीर्त्ता-घटित भक्ति और रसादिका वर्णन बहुत है। उसमें भी मस्तिरसके ही गीत अधिक हैं। कीर्तनमें जितने प्रकारका गान रहता, उसमें असकी कीर्तन सबसे कठिन, मधुर और प्राचीन लगता है। ठप उससे सीधा और अप्राचीन है। सङ्गीतन और नगरकीर्तन यद्यपि अप्राचीन हैं, उसमें कवित्वभाव और रागस्वरका गुण अल्प ही मिलता है। ऊपर लिखे कीर्तनके कई विभागोंको छोड़ एक टहल नामका भी गाना है। उसका उन्दावन आदि तीर्थोंमें अधिक प्रचार है।

या। उसकी कीर्तन करनेवाले दानकृष्ण कहते हैं। दानकृष्णका संबंध वाचक शब्द दान है। दूसरे महारानी राधा एकबार रातको अमिचरिका हो श्रीकृष्णसे मिलनेकी कामनामें निकुञ्ज पड़च कर वासकसम्प्राप्त हुई। कुछ वहाँ जाड़ी रहे थी। परन्तु राहमें चन्द्रावलोंने उन्हें रोक लिया और निकुञ्जमें से जाकर निशियापन किया। इधर राधा महारानी कृष्णके विरहमें उत्काण्ठिता और विप्रलम्भा हो धराशायिनी थीं। ऐसेही समय सधरे कृष्ण रातमें जानसे आँखें खोल कर देखी और अपना वेश बिगाड़े उनकी कुल्लमें जा पड़्ये। राधिका पड़्ये अपनी और पीछे खड्गिता हो दुर्लभ मान करके बैठ गयी। श्रीकृष्णने उसी मानकी तोहफेके लिये चिकनी चपड़ी बाते कही थीं और चन्ममें काल न निकलने पर बहोसे प्रस्नान किया था। फिर महारानीने कलहमारिता हो योगीश्वर धारण करके आर्तनाद, विलाप और अनुताप लगाया। इसके पीछे कृष्णने योगीश्वरमें कीर्त्तन और कलसे उनकी मानकी निचा माँगी थी। ऊपर लिखी बातोंके सविचार वर्णनका नाम ही "मान" है।

मधुराके राजा कंसकी मार श्रीकृष्ण पितामाताकी कुटुम्बके लिये मधुरपुर गये, परन्तु व्रजकी पीछे न फिर इससे व्रजकी स्त्रियाँ विरहसे बहुत जल उठीं और विरहके कारण राधिकाकी दयप्रकारकी अवस्था देख उनकी सहचरियाँ मयूरा पड़च आत्मनिर्देशन तथा भर्त्सना करने लगीं। ऊपर लिखी वर्णनाकी ही कृष्णकीर्तनमें माधुर कहते हैं। कीर्तनमें माधुरको भाँति गाढ़े रससे भरा पाला दूसरा नहीं। माधुरमें सखियोंकी बात और श्रीकृष्णकी निष्ठ मिठावट बहुत अच्छी प्रकार लिखी गयी है। सन्देह है—किसी दूसरे भाषामें ऐसा भावयुक्त रसपूर्ण कवित्व प्रकाशित हुआ है या नहीं।

गोष्ठमें यह बात लिखी है—कैसे उन्दावनमें रसवालेके वैश्व श्रीकृष्णने गाये 'चरोवी', कंसके भेजे दूत चलापुर आदि असुरोंको मारा और कालिय-दमन आदि कीर्त्ताये कीं। गोष्ठमें वासक और कदच रसके बह बहते हैं। शाल, शाल, सख, वासक और मधुर—पाँच भागोंसे भक्त श्रीकृष्णकी व्रजकीला और व्रजविहार गाया करते हैं। उसमें चक्र रत्नवाद और प्रसादादि नामाप्रकार कदचरसपूर्ण चक्र है।

* ठपका चर्च प्रकार अर्थात् ठोक कीर्तन नहीं निकलती, परन्तु उससे निकला-मुलता है। ठपमें असकी कीर्तनको भाँति दान मान आदिकी बारी रहती है।

† व्रजकी बीकामें एकबार श्रीकृष्णने कालिन्दीके तटपर अपने पसं नदीके महादेव गीर्त्ताओंको पार से जानेमें जो कोड़ाहीटक दिया

नहीं कह सकते—कितने दिनसे कौतूहल की गीत भारतमें चल पड़े हैं। परन्तु दिल्ली आदि राजदरबारों के प्रसिद्ध धुरपद गानेवालोंने असली कौतूहल सुनके कई बार बड़ी प्रशंसा की है। विदित होता है कि असली कौतूहलकी भाँति मधुर सङ्गीत और दूसरा नहीं। उसमें सङ्गीत और साहित्य दोनों रस एकमें ही मिले हैं। रसकी ऐसी मधुरता उर्दू, फारसी या अंगरेजी किसी भाषामें मिलना कठिन है। कौतूहलकी सुनके गाना बजाना न जाननेवाला भी पिघल उठता है।

कण्ठकुटज (स० पु०) काले फूलकी कुटकीका पेड़।
कण्ठकुमारी—राजपूतानेके अन्तर्गत मेवाड़के राजा भीमसिंह की कन्या। १७७८ ई० का भीमसिंह मेवाड़के सिंहासन पर बैठे थे। अनहिलवाड़के पुराने राजवंशीय चौहानोंकी कन्या उनकी रानी रह्यो। उन्हींके गर्भसे कण्ठकुमारीने जन्म लिया। कण्ठकुमारीका रूप बहुत सुन्दर था। उनके रूपने जवानोंमें खिलके उन्हें और भी शोभाका घर बना दिया था। इसीसे लोग उन्हें राजपूतानेमें 'फूलनलिनो' कहते थे। कन्या विवाहके योग्य हो गयी। राजाने जयपुरके राजा जगतसिंहके साथ उनका विवाह करना विचार लिया। राजा जगतसिंहने भी यह बात मान ली। उन्होंने भीमसिंहके पास भेंट भेजी थी। फिर वह अपने आप भी सहरस सैन्य ले जयपुरके पास शाहपुरमें आकर रहने लगे। भीमसिंहने भी भेंटके बदलेमें बहु-मूल्य द्रव्यादि उनके पास पहुँचाये थे। इसी प्रकार विवाह पक्का हो गया।

कण्ठकुमारीके रूपसावय्यकी बात राजपूतानेके सभी लोग सुन चुके थे। देशके दूसरे दूसरे राजावाँके भी मनमें उन्हें लाभ करनेकी वासना रही। किन्तु उन्हें अपने मनकी बात कहनेका सुयोग न मिला। जयपुरके राजा जगतसिंह विवाहके किये शाहपुरमें जाकर रहने लगे थे। इससे ईर्ष्यापर-वश हो मारवाड़के राजा मानसिंह कण्ठकुमारीको पानेके लिये खबरा उठे। मारवाड़के भूतपूर्व राजाके साथ इससे पहले एक बार कण्ठकुमारीका विवाह पक्का

हो चुका था; इस समय मानसिंह उसी राज्यके पची-खर रहे। इस लिये कुमारी उन्हींको प्राप्य थीं। इसी प्रकार हेतुवाद दिखा कर भीमसिंहको उन्हींने लिखा भेजा—'यदि पाप हमें कन्या न देगी, तो हम जयपुरके राजा जगतसिंहके साथ विवाह करनेमें बड़ा झगड़ा लगायेंगे।' इधर भीमसिंह मानसिंहको कन्या देना चाहते न थे।

मारवाड़के सरदारोंने अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये मानसिंहको और भी उभारा था। इधर चन्द्रावत स्थानके सरदार अजितसिंहको उत्तोल (रिशवत) दे राणाको भी भड़काने लगे। किन्तु भीमसिंहने किसी प्रकार मानसिंहकी बात न मानी। महा-राष्ट्रोंके नेता सेंधियाने जयपुरके राजा जगतसिंहसे रूपया मांगा भेजा था, किन्तु उन्होंने देना अस्वीकार किया। इस पर सेंधियाने क्रोधसे आग बबूला हो विवाहमें बाधा डालनेकी ठान ली। उन्होंने राणा भीमसिंहको कहला भेजा था—'जयपुरराजके दूतको विदा कर मारवाड़के राजा मानसिंहके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दीजिये।' भीमसिंह बलहीन रहते भी सेंधियाके प्रस्ताव पर सन्नत न हुए। फिर सेंधिया सहरस सैन्य ले जयपुर पहुँचे थे। पहाड़ी राहमें मेवाड़ और जयपुरकी सेनाने मिलकर उन्हें रोका। परन्तु सेंधिया उस सारी सेनाको अतिक्रम करके जयपुरके पास पहुँच अपनी छावनी डाल दी। एका-एक भीमसिंहने जयपुरके दूतको विदा किया।

इधर जयपुरके राजा जगतसिंहने भस्ममनोरथ और अपमानित होनेके असंख्य सैन्यसंग्रह किया था। मारवाड़के राजा को इस अनर्थके मूल्य थे। इसीसे पहले जगतसिंहने वह बड़ी सेना मानसिंहके विरुद्ध मारवाड़को चलायी थी। परन्तु प्रत्यक्ष हारके उन्हें भागना पड़ा। मानसिंहने अपनी पहली टेक उस समय भी छोड़ी न थी। उन्होंने सुशंस नवाब अमीर खान्की भीमसिंहके पास भेज दिया। अमीरखान्के ससैन्य उदयपुर जामेमें अजितसिंह उनके साथ हो गये। अमीरखान्ने मारवाड़के राजा मानसिंहके साथ कण्ठकुमारीके विवाह करनेकी बात कही थी।

राणा भीमसिंहके उस पर चसम्मत होने पर उनके भाईबन्धोंने उन्हें समझाया—‘यदि आप ऐसा करना नहीं चाहते तो यही अच्छा है कि कृष्णकुमारीको मार डालिये।’ भीमसिंहने सोचा—यदि हम मारवाड़के राजाको कन्या नहीं देते, तो मुसलमान सेन्य हमारा राज्य विगाड़ देंगे। इसीसे उन्होंने अन्तमें कन्याको मार डालना ही ठहरा लिया।

पहले राणा भीमसिंहके पितामहके भाईके वंशके महाराज दौलतसिंहको कृष्णकुमारीके मारनेका काम सौंपा गया था। परन्तु दौलतसिंहकी इच्छा न देख वह काम कृष्णकुमारीके भाई जवानदासके हाथ लगा। जवानदाससे कहा गया था—‘राजकुमारीके मारनेका काम किसी साधारण घातक (जहाद)के हाथ कराना ठीक नहीं। जब मार डालनेको छोड़ दूसरी कोई गति नहीं, तब यह काम किसी घरवालीको हो करना पड़ेगा। जवानसिंहने पगत्या स्त्रीकार कर लिया। वह तलवार हाथमें लिये कन्याको मारने चले थे। किन्तु कृष्णकुमारीको देखते ही वह रो उठे और तलवार हाथसे गिर पड़ी। वह यह देख कर सन्तुष्ट हुए कि बहनके प्राण बच गये। परन्तु काम पूरा न होनेसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वहांसे भागना पड़ा। उस समय महारानी सब बातें समझ बूझ कन्याके प्राणकी भिन्ना मांगती हुई फूट फूट कर रोने लगी। उस हृदयभेदी स्वरसे राजप्रासाद मानो फटा जाता था। उस समय हजियारसे मारनेकी बात छोड़ दी गयी और विष देनेका उद्योग होने लगा। परन्तु विष कौन खिलाता पिताता। भीमसिंहकी बहन चांदबाईसे सब बात समझा कर बतायी गयी। चांदबाईने विषका प्याला ले कृष्णाको दिया और कहा था—‘बेटो! अपने बापके सम्मानकी रक्षा करो। अपने वंशकी मर्यादा बचाओ। मानकी चालसे राणा जिस चार सङ्कटमें पड़ गये हैं, उससे उन्हें छुड़ाओ।’ कृष्णाने यह सुनके विषको ले लिया कि उनके पिताने भेजा था। भगवान्से पिताके मङ्गलकी कामना करके वह विष पी गयीं। उनकी माता रोने लगीं। उस समय उन्होंने माताको समझा कर कहा था—‘माता! जीवन तो दुःखमय

होता है। उसी जीवनके मिटने पर क्या दुःख है। तुम्हारी लड़की होकर क्या मैं मरनेसे डरूंगी? जन्म लेने पीछे ही हमें बलि चढ़ाया जाता है। मैं तो बहुत दिन बची।’ कृष्णा इसीप्रकार मातासे बात चीत करने लगीं। परन्तु हलाहलने मानो उनके शरीरमें अपना स्वभाव भर दिया था। विषसे कोई फल न निकला। यह संवाद पमीरखान् पाठान् और राजपूत-कलह पत्रित्ने सुना था। उन्होंने कुसुम्भा नामक एक पानीय बनवाया। कई फूलों और पेड़ोंसे बने एक प्रकारके शर्बतमें अफीम मिलानेसे कुसुम्भा तैयार होता है। वही शर्बत कृष्णाके पास भेजा गया। उन्होंने हंसते हंसते उसे पीकर कहा था—‘भगवान्ने हमारे भाग्यमें यही विवाह लिखा है।’ थोड़ी देर पीछे ही गाड़ी नींदने आकर उन्हें अवसन्न कर दिया और इस जन्ममें उन्हें फिर उठने न दिया। १८१० ई० को यह घटना हुई थी। उस समय कृष्णाको अवस्था १६ वर्षकी रही।

कृष्णाके विष पीकर मरनेकी बात विना विलम्बके उदयपुरमें चारों ओर फैल गयी। नगरमें हा हाकार पड़ा था। सबकी श्वा राणा परसे उठ गयी और लोग गालियोंकी बौछार करने लगे। यहां तक कि नृशंस पमीरखान् भी खराबे थे। अजितसिंहने जब यह संवाद उनकी सुनाया, पमीरखान् कहने लगे—‘क्या यही तुम्हारा राजपूत वीरत्व है?’ फिर पमीरखान्ने अपने सामनेसे उन्हें हटा दिया और शीघ्र उदयपुर छोड़ प्रस्थान किया था।

इस घटनाके ४ दिन पीछे करादरके सामन्त संध्यामसिंह उदयपुर जा पहुँचे। वह एकबारगी घोड़े परसे उतरते ही भीमसिंहके सामने गये और उनसे पूछने लगे—‘राजकुमारी जीती हैं या मर गयीं?’ अजितसिंहने संध्यामको उत्तर दिया था—‘मरी लड़कीकी बात छेड़ कर फिर बापको कष्ट देनेसे क्या मिलना है?’ उस समय संध्यामसिंह अपनी तलवार कमरसे निकाल और म्यानके साथ उसे भीमसिंहके घरखोंपर रख कहने लगे—‘हमारे पुरखोंने ३० पीढ़ी तक आपके राजसंसारके लिये तलवार पकड़ी है। हम

खोल कर कह नहीं सकते, हमारी मनमें क्या आती जाती है। इस तलवारको लीजिये। आपकी सेवाके लिये अब यह न चलेगी।' इसके पीछे उन्होंने अजितसिंहकी ओर देख कर कहा था—'पापिष्ठ! सैकड़ों वर्षके पवित्र सिसोदिया वंशमें आज तूने कालिख लगा दी। जन्मकी भांति सिसोदिया घरानेका मुंह लटक गया। इस पापका प्रायश्चित्त नहीं है। अब स्पष्ट समझ पड़ता है कि बप्पारावका घराना शेष हो गया।' भीमसिंह हाथसे मुंह मूंद रोने लगे। संग्रामसिंहने फिर कहा—'सिसोदिया वंशके कलङ्कस्वरूप राजपूत-कुलम्बानि तूने हमें बड़े कलङ्कमें डाल दिया। निर्वेश हो जा, तेरा नाम मिटसा जाये। अपने स्वार्थके लिये इतना यत्न! पठान क्या नगर पर चढ़ आये थे? उन्होंने न घरके भीतरकी स्त्रियोंको उठा ले जानेका उद्योग तो नहीं किया था? फिर यदि वही होता, तो तेरे पुरखे किस प्रकार मरे थे, तू भी क्यों न मरा? हमारा वंश शेष हो गया है।' राधा मुंह लटकाये बैठे रहे। इस घटनाके ८ वर्ष पीछे संग्रामसिंह स्वर्गवासी हुए। परन्तु उनकी भविष्यवाणी मिथ्या न निकली। कल्याणकी माता कन्याके शोकमें खाना पीना छोड़ छोड़े दिन पीछे ही मर गयीं। भीमसिंहके ८६ बेटी बेटोंमें केवल कल्याणकुमारीके भाईको छोड़ कोई बचा न था। १८२१ ई० की मेजर जनरल मिलककलमने उदयपुर जा कल्याणके भाई जवानसिंहको देखा भाखा। उन्होंने सुना कि युवराजका रूप रंग कल्याणसे बहुत मिलता जुलता था। साइबने युवराजके रूपकी बड़ी प्रशंसा की। कल्याणकुमारीके मरने पर एक मास पीछे अजितसिंहकी स्त्री और २ पुत्र मर गये। अन्तमें अजित संसार छोड़ ईश्वरका नाम लेते तीर्थमें घूमने लगे।

कल्याणकुल (सं० पु०) काको कुलथी। यह आही, रक्त-पित्तकर, रसमें कषाय, पाकमें कटु, वातहर तथा वात, हृत्क, पश्मरी, गुल्म, पीनस, श्लास एवं कासको जीतने और आनाह, गुदकील, पथ तथा मेदधातुको नाश करनेवाला है। (बैद्यकनिबन्ध)

कल्याणकुलिका (सं० स्त्री०) जंगली कुलथी।

कल्याणकुलम (सं० पु०) कासा कनैर।

कल्याणकेलि (सं० पु०) गुलाबासका पेड़।

कल्याणकोइल (सं० पु०) कल्याणकोइ-का-क। लुपारी।

कल्याणगङ्गा (सं० स्त्री०) नित्यवर्मधा०। कल्याण नदी।

कल्याणगङ्गा—१ बङ्गासके नदिया जिलेका एक थाना और नगर। वह अक्षा० २३° २५' ४०" और देशा ८८° ४५' ५०" पर माथाभांगा नदीके बायें कूलपर अवस्थित है। यहां वाणिज्य बहुत चलता है। राजा कल्याणचन्दने यह नगर बसाया था। २ पुरनिया जिलेके कल्याणगङ्गा उपविभागका प्रधान नगर। वह अक्षा० २६° ६' २८" ४०" और देशा० ८७° ५८' १३" पू० पर दारजिलिङ्ग जलिके बड़े रास्तेके किनारे अवस्थित है। यहां डाक घर, थाना और स्कूल बना है। ३ विहारके भागलपुर जिलेके अन्तर्गत छोई परगनेके बीचका एक नगर। वह अक्षा० २५° ४१' १०" ४०" और देशा० ८६° ५८' २०" पू० में भागलपुर शहरसे १६४ कोस उत्तर पड़ता है। यहां अधिकांश व्यवसायी बणिकोंका वास है। बड़ा बाजार और थाना विद्यमान हैं।

कल्याणगढ़—राजपूतानेका एक राज्य। वह अक्षा० २४° ४८' से २६° ५८' ४०" और देशा० ७०° ४' से ७५° ११' पू० तक विस्तृत है। क्षेत्रफल ८५८ वर्गमील है। लोकसंख्या प्रायः १०५००० होगी। यह राज्य अंगरेजोंकी राजपूताना एजेन्सीके अधीन है। कल्याणगढ़ ही इसका प्रधान नगर है।

कल्याणसिंहसे इस राज्यका नाम कल्याणगढ़ पड़ा है। कल्याणसिंह योधपुर-महाराज उदयसिंहके दूसरे लड़के थे। उन्होंने आपका राज्य छोड़ इस प्रदेशको ले लिया। कल्याणसिंहने १५८४ ई० की बादशाह अकबरसे अपने नामकी सनद पायी थी। उस समयसे उनकी वंश कल्याणगढ़ राज्य करते चला आता है। १८१८ ई० की जब अंगरेज सरकारने पिछारी लुटेरोंकी हथानेकी ठानी थी, इस वंशके राजा कल्याणसिंहके साथ एक सन्धि की गयी। उससे राज्यकी रक्षाका भार गवर्नमेण्टने अपने हाथमें ले लिया। यह ठहर गया था कि बिना गवर्नमेण्टके कहे महाराज किसीको राज्यके सम्बन्धमें किसी पत्रो लिख न सकेंगे। १८२५ ई० की राजाके मनमें आया कि राज्यके भीतरी कामोंमें अंगरेजों

सरकार हस्तक्षेप करती है। इसी बात पर वह दिक्की गयी। परन्तु जब उनकी समझा कर बता दिया गया कि अंगरेज सरकारका वह उद्देश्य न था, महाराज वहांसे लौट आये। लोगोंने उन्हें उनकी समझाया। राज्यमें उनके दो नौकर बहुत बढ़ निकले। उनको दबानेके लिये सेन्य भेज महाराजने फिर दिक्कीको यात्रा की थी। इधर राज्यमें विद्रोहला बढ़ गयी और अन्तको विद्रोहियोंका दल अंगरेजी अधिकारमें जाकर लूट मार करने लगा। इस पर गवर्नमेण्टको हस्तक्षेप करना पड़ा था। विद्रोहियोंको कड़वा भेजा गया कि अंगरेजोंसे भगड़ेका कारण बताने पर वह मीमांसा कर देंगे। महाराज कल्याणसिंहसे भी राज्यको लौट जानेके लिये कहा गया था। दूसरे यह कि यदि वह लौट न जायेंगे, तो गवर्नमेण्ट पक्षकी सन्धि रद्द करके विद्रोही ठाकुरोंसे नयी सन्धि कर लेगी। महाराज भयसे कृष्णगढ़ जा राजत्व करने लगे। किन्तु राज्यकी भीतरी अवस्था देख उनका मन डावांड़ोल हो गया। उन्होंने अपना राज्य गवर्नमेण्टको बन्दोबस्तके लिये देना चाहा था। इसमें गवर्नमेण्ट सन्मत न हुई। महाराज कृष्णगढ़ छोड़ अजमेर चले गये। राज्यके बड़े बड़े लोगोंने मिल कर उनके लड़केको राजा बनाया था। अन्तको अंगरेज सरकारके पोलिटिकल एजण्टने बोचमें पड़ भगड़ा मिटा दिया। परन्तु कल्याणसिंह राज्यका काम कर न सकते थे। १८३२ ई० को अपने लड़के मखदूमसिंहको राज्यका भार सौंप और ३६०००) ६० वार्षिक वृत्ति ले वह अंगरेजी राज्यमें रहने लगे। महाराज मखदूमसिंहने पृथ्वीसिंह बहादुरको गोद लिया था। १८३५ ई०को पृथ्वीसिंहका जन्म हुआ और १८४० ई०को उन्हें राज्य मिला। कृष्णगढ़के राजाका लड़का गोद लेनेका अधिकार है। १८७८ ई०को उनकी मृत्यु हुई और उनके ज्येष्ठपुत्र शार्दूलसिंह गद्दीनसीन हुए। १८०० ई०का शार्दूलसिंहको भी मृत्यु हो गई। उनके एकमात्र पुत्र वर्तमानकालान Lt-Col. महाराजाधिराज महाराज सर मदनसिंहजी बहादुर K. C. S. L., K. C. I. E., राजा हैं। उन्हें

अंगरेज गवर्नमेण्टसे १५ तोपकी सलामी मिलती है।

कृष्णगढ़में अनाज आदि अच्छा नहीं उपजता। पहाड़ों जमीनके बीच बीच जंचे पहाड़ हैं और उनमें जंगल बहुत हैं। इस राज्यकी आमदनी ४ लाख रुपया थी। कृष्णगढ़ राज्यकी ओरसे राजपूताना छोट रेलवे निकली है। रेलवे चलने और आमदनी तथा रफतनोंका महसूल उठ जानेसे राजत्वकी बड़ी क्षति पहुँची है। गवर्नमेण्ट वर्षमें २५०००) ६० दिया करती है। यह कर राजाको देना नहीं पड़ता। महाराजके पास स्थायी ८४ सवार, १३६ पैदल, ६५ तोप और ३५ गालन्दार्ज हैं और प्रस्थायी ८३६ सवार, ८०३ पैदल हैं।

कृष्णगत रोग (सं० पु०) आंखका एक रोग। इस रोग पर सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—चक्षुमें कृष्णगत सत्रणशुक्र, अत्रणशुक्र, पाकात्यय और अजका चार प्रकारका विकार अर्थात् रोग उत्पन्न होता है। काली-पुतलीमें सूई जैसी चुभने, गर्म ठलका बहने और अतिशय वेदना उठनेसे सत्रणशुक्र कहाता है। यह रोग यदि दृष्टिके निकटवर्ती स्थान पर नहीं होता, हलका रहता और ठलका नहीं बहता या पोड़ा नहीं करता एवं युग्मशुक्र नहीं पड़ता तो पारोक्ष्य होनेकी आशा पर पानी फिरता है।

कालीपुतलीमें सफेद, बहनेवाला, थोड़ा थोड़ा दुखनेवाला और आंसू लानेवाला बादलके टुकड़े जैसा शुक्र निकलनेसे अत्रणशुक्र कहाता है। अत्रणशुक्र गम्भीर रहनेसे कष्टसाध्य है। शुक्र मांससे पिरा, बीचमें फटा, चञ्चल, सिरासे लगा हुआ, दृष्टिको रोकनेवाला, दोनों खालोंको काट डालनेवाला, बीचमें काल और थोड़ा थोड़ा उभरनेवाला होने पर भी असाध्य है, इसका प्रतीकार नहीं कर सकते। कालीपुतलीमें कभी कभी मटर—जैसा कीचड़ निकल आता और उसमें जोड़ा उठनेसे उष्ण अशुपात लग जाता है। इसको भी असाध्य ही समझना चाहिये। शुक्रको तीतरके परों जसा होनेसे कोई कोई असाध्य बताया करता है। कालीपुतली सफेदीसे घिर जाने पर अजि-

पाकाख्य कहते हैं। यह तीव्ररोग नेत्रके कोपसे उत्पन्न होता है। पीड़ा होने और बकरीकी मिंगनी जैसी साफ गांठ कालीपुतलीको फोड़ कर निकलनेसे अजका रोग समझा जाता है। (सद्युत)

कृष्णगति (सं० पु०) अग्नि। (महाभारत, अ० ८५ अ०)

कृष्णगन्ध (सं० स्त्री०) शोभास्नानच, सैजनका पेड़। इसको परिसर्प (इसके कोढ़) शय अश्वरोग पर लगाना चाहिये। (चरक)

कृष्णगन्धिका (सं० स्त्री०) शोभास्नान, सैजन।

कृष्णगर्भ (सं० पु०) कटफलवृक्ष, कायफल।

कृष्णगर्भा (सं० स्त्री०) कृष्ण नामक असुरकी भार्या। (स्क० १।१०।१।१)

कृष्णगल (सं० पु०) कुकभपची, जंगली सुर्गा।

कृष्णगिरि—मन्दाज प्रदेशख सालेम जिलेके कृष्णगिरि तालुकका प्रधान नगर। यह अक्षा० १२' ३१' ८० तथा देशा० ७८' ११' ५० पर अवस्थित और नये एवं पुराने दो भागोंमें विभक्त है। नये कृष्णगिरिका दूसरा नाम दीक्षिताबाद है। दोनों स्थानोंमें अच्छी पत्थी सड़के और मकान हैं। उत्तरकी ओर ७०० फीट ऊँचा दुर्गका पहाड़ है। यहां टूटा फूटा प्रकार और सेन्धके रहनेका स्थान पड़ा है। कृष्णगिरिका पुराना दुर्ग सड़जमें टूटनेवाला न था। १७६७ और १७८१ ई० की अंगरेजी सेन्धने कई बार दुर्ग ले लेनेकी चेष्टा की थी, परन्तु उसके दांत खट्टे हो गये।

कृष्णगुह—मणिभाषप्रकाश नामक वेदान्तिक ग्रन्थकार।

कृष्णगुप्त—गुप्तवंशके एक राजा। यह गुप्तराज आदित्य-सेनके ८वें पूर्वपुरुष थे। किसौ किसौके मतमें ४७५ और ५०० ई० के बीच कृष्णगुप्त विद्यमान रहे। सिन्धु-नदके पश्चिम पार इस्यार नामक स्थानमें गुहाके बीच कृष्णगुप्तकी छोटी लिपि निकली है।

कृष्णगोकर्णी (सं० स्त्री०) काली फूलकी मूर्वालता, काला सुरहरा। यह तातो, चिकनी, शीतवीर्य और त्रिदोष, वात, पित्त, ज्वर, दाद, श्रम, कास, श्वास, कफ, कुष्ठ, अय, रक्तानिसार, उन्माद और पिशाचकी बाधा दूर करनेवाली है। (रघुनन्दन)

कृष्णगाधा (सं० स्त्री०) एक विषेला सौम्य कीड़ा। इसके काटनेसे स्त्रियाका रोग उठ खड़ा होता है। (सद्युत)

कृष्णग्रीव (सं० पु०) १ नीलकण्ठ, महादेव। (त्रि०)

२ काली गलेवाला। (शक्यशुः, २५।१) काली गलेका पशु अश्वमेध यज्ञमें काम आता है।

कृष्णचन्द्रवर्ती—ज्योतिःसूत्र नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। इस ग्रन्थमें राशि, लग्न, नक्षत्रविभाग, ग्रह-दृष्टि, गोचरशुद्धि, यात्रिकलग्न और भूमिकम्प आदि निरूपित हुआ है।

कृष्णचक्षुक (सं० पु०) काला चना।

कृष्णचणक (सं० पु०) काली चनेका पेड़। यह मधुर, बल्य, रसायन और कास, पित्त तथा पित्तातिसारको दूर करनेवाला है। (राजनिघण्टु)

कृष्णचतुर्दशी (सं० स्त्री०) कृष्णा कृष्णपक्षीया चतुर्दशी। काले पाखकी चौदस।

कृष्णचन्दन (सं० स्त्री०) कृष्णप्रियं चन्दनम्, शाकपार्थिव-वत् कर्मधा०। १ हरिचन्दन। कृष्णं चन्दनञ्चेति, कर्मधा०। २ काला चन्दन।

कृष्णचन्द्र—१ वासुदेव। [कृष्ण देवी] २ नवहोपके राजा रघुरामके लड़के। १७१० ई० (१६३२ शक) की कृष्ण-चन्द्रने जन्म लिया था। अपने लड़कपनमें शङ्करतरङ्गके कहनेसे उन्हें कालिदाससिद्धान्तके पास संस्कृत पढ़ना पड़ा। फारसी और बंगला वह समझते थे। उन्होंने बिसरामखान् कलावतसे गाना बजाना और सुजफ्फर हुसेनसे तीर चलाना भी सीखा था। कहते हैं कि रघुरामने मरते समय अपने सौतेले भाई राम गोपालका उत्तराधिकारी बनाना चाहा। अन्तकी रामगोपाल और कृष्णचन्द्र दोनोंने चकलेदारीका पद पानेके लिये नवाबके पास दावा किया था। कृष्ण-चन्द्रने कौशलसे नवाबको बता दिया कि रामगोपाल तमाखू बहुत पीते थे और पीछे 'राजा' उपाधि और चकलेदारीका पद लाभ किया।

राजा कृष्णचन्द्रको जब राज्य मिला, सरकारी खामदनी और नजराना बहुत देना था। राजस्वके १० लाख और नजरानेके १२ लाख रुपये बाकी रहे।

उस समय अलीवर्दीखान् बङ्गालके नवाब थे। बर-गियों (महाराष्ट्रों) ने उनका राज्य छूट लिया। प्रजा बड़ी दुरवस्थामें पड़ी थी। उन्होंने कृष्णचन्द्रको अवरुद्ध किया। इस विपद्से कुड़ानेके लिये कोई कुछ भी उपाय कर न सका। रघुनन्दनमित्र नामक एक कायस्थ उस समय नदिया राजके दीवान रहे। उन्होंने कुछ दिनके लिये राजा कृष्णचन्द्रसे पूरा अधिकार ले लिया और राजाके दामाद, घराने तथा पोष्यवर्गका स्वर्ध घटा दिया था यहाँ तक कि कुटुम्ब, कर्मचारी और प्रजासे बाकी आमदनी खूब वसूल करने लगे। इससे वह सबके अप्रिय बन गये। परन्तु राजाका देना बहुतसा चुकता हुआ।

कृष्णचन्द्र सुरगिदाबादमें अवरुद्ध तो रहे परन्तु प्रतिदिन नवाबसे भेंट कर सकते थे। इस सुयोगसे दोनोंमें मित्रता स्थापित हुई। राजा कृष्णचन्द्र प्रतिदिन सन्ध्या कालको नवाबके पास जाते और उर्दूमें उन्हें महाभारत उलथा करके सुनाते थे। इतना मिल-जोल बढ़ते भी नवाब बाकी आमदनीकी बात न भूले। अन्तको किसी दिन राजा कृष्णचन्द्र नवाबके साथ नाब पर बैठ कर चले थे। नवाबकी नाब पलासीके पास पहुँची। पलासी परगनेमें उससमय खेतो बारी कुछ न थी। राजा कृष्णचन्द्र उँगली उठा कर कहने लगे—‘हमारे सारे परगने ऐसे ही हैं। किसीमें पानी नहीं, किसीमें खेतो नहीं, कोई जंगलसे भरा है और किसीको भूमि अच्छी नहीं। इसीसे हम राजस्व चुका न सके। फिर कृष्णचन्द्र पूर्वतटकी अवस्था भी उन्हें दिखाने लगे। यह देख कर अलीवर्दीखान्ने बाकी आमदनी माफ कर दी।

कृष्णचन्द्र महाराष्ट्रोंके उपद्रवसे बचे रहनेको कृष्णनगरसे ६ कोस दूर इच्छामतीके पास एकस्थान चुनके वहाँका जंगल काटवा ‘शिवनिवास’ नामक एक नगर बसाके वहाँ रहने लगे। उसके पोछे उन्होंने कृष्णगञ्ज, हरधाम और आनन्दधाम आदि कई दूसरे नगर भी स्थापन किये थे।

नवाब शीराज-उद्द-दौलाका सर्वनाश करनेके लिये मीरजापर आदिने जा अभिसन्धि लगायो, उसमें

कृष्णचन्द्रने भी योग दिया था। उस समय वह कालौजीके दर्शनके बहाने कालौघाट गये और वहाँ क्लेशसे मिले। फिर उन्होंने शीराजको राज्यसे हटानेके सम्बन्धमें बात चोत की थी। कृष्णचन्द्र नवाबी राजविप्लवके प्रवर्तक मन्त्री और प्रधान उद्योगी एक व्यक्ति रहे। इसीसे नवहोपमें उन्हें कोई कोई ‘नमक-हराम’ कहता है।

जब मीरकासिमके साथ अंगरेजोंके युद्ध होनेका उपक्रम लगा, कासिमने कृष्णचन्द्रको अंगरेजोंका साथी समझ उनके पुत्र शिवचन्द्रके साथ सुंगरेके दुर्गमें बन्द किया था। उस समय उनके मरनेमें कोई बात बाकी न रही। परन्तु सप्ताहको शेष रात्रीको अन्नपूर्णादेवीने मातृरूप धारण करके उनसे स्वप्नमें कहा था—कृष्णचन्द्र तुम्हें किसी बातका डर नहीं, तुम शीघ्र ही छूट जावोगे। परन्तु चैत सुदी अष्टमीकी अन्नपूर्णाकी पूजा करना।’ कहते हैं, बङ्गालमें उन्होंने सबसे पहले जगन्नाथीपूजा चलायी है।

राजा कृष्णचन्द्र पाप्मगौरव-वर्जित न रहे। बीच बीचमें सुयोग लगने पर वह दूसरेकी जमिन्दारी भी छीनके अपने कब्जे कर लेते थे। वह एक धीर तान्त्रिक और चैतन्यहवी रहे। सुननेमें आया है कि समय समय पर अपने इष्टदेवताकी तुष्टिके लिये महावलि भी चढ़ाते थे। कृष्णचन्द्र बहुतसे भले काम भी कर गये हैं। उन्होंने काशीकी प्रसिद्ध ज्ञानवापीका सोपान बनाया और शिवनिवासमें प्रायः १६ हाथ ऊँची शिवमूर्ति की प्रतिष्ठा किया। वह अपने राज्यका चौधार्धसे भी अधिक भाग ब्राह्मणोंको बेलगान दे डाला। इसको छोड़ उन्होंने अम्बहोत्री और बाजपेयी यज्ञ भी किया था। वह बड़े विद्योक्ताही रहे। उनको सभामें वाणेश्वरविद्यालङ्कार, कवि भारतचन्द्र राय, सुत्ताराम सुखापाध्याय, गोपालभोंड, हास्यार्थव आदि प्रसिद्ध व्यक्ति सर्वदा उपस्थित रहते थे। उस समय कृष्णचन्द्र बङ्ग-समाजमें सबसे बड़े गिने जाते थे।

उनके दो पत्नी रहीं। पहलीकी गर्भसे शिवचन्द्र, भैरवचन्द्र, हरचन्द्र, महेशचन्द्र, ईशानचन्द्र और

दूसरीके गर्भसे शम्भुचन्द्रने जन्म लिया। १७८२ ई० को ७३ वर्षकी अवस्थामें कृष्णचन्द्र परलोक चले गये।

अयोध्या, भारतचन्द्र, कविरत्न, गोपालमोह, नवहोप आदि ग्रन्थमें दूसरी बातें देखना चाहिये।

कृष्णचन्द्रका राज्य—नवद्वीप, अयोध्या, चक्रद्वीप (चाकदह) और कुशद्वीप (कुशदह) चार भागोंमें विभक्त था।

राजा कृष्णचन्द्रके कहनेसे 'कृत्यराज' नामक धर्मशास्त्र, काशीनाथकी लिखी हुई ताराभक्तितरङ्गिणी (संस्कृत), रामानन्दका आश्रिकाचारराज (धर्मशास्त्र), भारतचन्द्र कर्टक बंगला अमरदामङ्गल आदि बहुतसे ग्रन्थ बने।

राजा कृष्णचन्द्रके समयके कागजपत्र पढ़नेसे मालूम होता है—कपिलमुनि और गङ्गासागर तक कृष्णचन्द्रका अधिकार रहा। उन्हींके अधिकारस्थ कलकत्ता शहरमें प्रसिद्ध हालवेल आदि साहब रहते थे और बीच बीचमें सलामी पर उनसे उनका भगड़ा लग जाता था।

३ कोई पुराने कवि। कविचन्द्रोदयने इनका नाम उद्धृत किया है। ४ ब्रह्मास्त्रपद्धति और भुवनेश्वरीरहस्य आदि ग्रन्थोंके रचयिता। ५ व्रतविवेकभास्करके प्रणेता। ६ राजसकाव्यके टीकाकार। ७ विवादभङ्गार्णवके सङ्कलन करनेवालोंमें कोई व्यक्ति।
कृष्णचंद्र—अचलदास क्षत्रियके लड़के। अचलदास धार्मिक हिन्दू रहे। उनका घर दिल्लीमें था। वहां सदा बड़े बड़े पण्डित नानास्थानोंसे जा पहुँचते थे। उनको देखकर कृष्णचंद्रको लड़कपनसे ही विद्याका अनुराग लग गया। वह संस्कृत और फारसी अच्छी पढ़े थे। १७२३ ई०को उन्होंने फारसीमें “इमेश बहार” नामका एक बढ़िया जीवनी ग्रन्थ लिखा। उसमें बादशाह जहांगीरसे लेकर मुहम्मदशाहके समय तक कोई २०० कवियोंकी जीवनी है। आलमगीरने उनको विद्याबुद्धिसे परितुष्ट हो “इखलासखान् इखलास कैस” उपाधि दिया था। सम्राट् फर्रुखसियारके समय यह ७००० संवत्के अधिनायक हुए। “बादशाह-नमा” सम्राट् फर्रुखसियारका इतिहास कृष्णचंद्रने ही लिखा है।

कृष्णचूड़ा (सं० स्त्री०) कृष्णस्य चूड़ेव पुष्पचूड़ा यस्य, बहुव्री०। १ लाल पुँवचो। २ कोई कटोला फूलदार पेड़, गुलतुरी। इसका फूल गोला और लाल होता है। छोटे बड़े सब १० दल लगते हैं। फूलका वृत्त कुछ लम्बा पड़ता है। इसमें १० दोर्घ केशर आते हैं। फल सेम-जैसा रहता और कुछ कुछ मड़कता है। इसका फूल सभी ऋतुओंमें खिलता है। परन्तु बरसातमें बहुत फूल उतरते हैं। कृष्णचूड़ाके मूल और बीजसे उष्ण उत्पन्न होता है।

कृष्णचूड़िका (सं० स्त्री०) कृष्णा चूड़ा अयं यस्याः, ततः कप्-टाप् अत इत्वच्। गुच्छासता, पुँवचो।

कृष्णचूरक (सं० पु०) चनेका पेड़।

कृष्णचूर्ण (सं० स्त्री०) कृष्णस्य लाडस्य चूर्णम्, इ-तत्। लौहमल, सुरचा।

कृष्णचैदो—बघेलखण्डके एक राजा। कहते हैं इन्होंने कालिञ्जरके राजस राजाको मार डाला था।

कृष्णचैतन्य (सं० पु०) चैतन्यदेवका दूसरा नाम। चैतन्यदेव देखो।

कृष्णच्छवि (सं० पु०) कृष्णस्येव च्छविर्यस्य, बहुव्री०। १ भाग। २ कृष्णकी जैसी कान्ति।

कृष्णजंघाः (सं० पु०) पुनः पुनः गम्यते, जन्-यङ् कर्मणि असुन् कुत्वाभावश्चान्दसः जंघा-मार्गः ततः कर्मधा०। १ बुरी राह। (त्रि०) २ राह बिगाड़ कर चलनेवाला। (ऋक् १।४१।७)

कृष्णजटा (सं० स्त्री०) कृष्णा जटा यस्याः, बहुव्री०। जटामांसी, मड़कनेवाली जटामांसी।

कृष्णजम्भाष्टमी (सं० स्त्री०) भादों बंदौ अष्टमी। इसी तिथिको कृष्णने जन्म लिया था। जम्भाष्टमी देखो।

कृष्णजयन्तो (सं० स्त्री०) काली जयन्तोका पेड़। वह रसायनी जाती है। (राजनिष्य,)

कृष्णजिह्व (सं० पु०) काली जौभका अशुभ घोड़ा।

कृष्णजीरक (सं० पु०) नित्यकर्मधा०। १ काला जीरा। इस संस्कृतमें सुषवी, कारवी, पृथ्वा, पृथु, काला, उपकुक्षिका, सुषवी, कुक्षिका, उपकुक्षि, कृष्णा, जरणा, शाकी, बहुगन्धा, पृथुका, पृथिवी और भिज भौ कहते हैं। भावप्रकाशके मतमें यह कृष्णा, कड़वा,

उष्ण, दीपन, लघुपाक, पाहो, पित्तवर्धक, गर्माशय-परिष्कारक, ज्वरघ्न, पाचक, बलकारक और वायु, आशान, गुल्म, प्रतिसार तथा कृटिनाशक है। काला जीरा माटा और पतला दो प्रकारका होता है।

२ जीराका कोई भेद।

कृष्णजीवन लक्ष्मीराम—हिन्दीके एक पुराने कवि। इनकी कविता बहुत अच्छी होती थी—

१। “खेलन आयि मन्द गावते रंगभोने बरसाने।

समसद रंग बरगजा चावा नरनारी सब साने ॥

बिन काहर कजरारी चाँखिया चटो मदन खरसाने।

कृष्णजीवन लक्ष्मीरामके प्रभु पारि जी घर घर बरसाने ॥”

२। “कान्ह ताहे ऐसी मति कौन दई।

देख पराई नारी सलोना होरी करत नई ॥

डार गुलाल बाँज चाँखनमें भुजा भर चढ़ लई।

केसरको पिचकार मारके बड़ियाँ पकर लई ॥

कृष्णजीवन लक्ष्मीरामकी यह गति देखो कह न भई ॥”

३। “मखी भई जा हारो चारै घर आयि घनग्याम।

योग कहैं टोनवा पढ़ डारी प राधाको काम ॥

धन्य तेरो भाग्य सुहाग भावती और न दूजो बाम।

कृष्णजीवन लक्ष्मीरामकी इच्छा पूजिय बेगहो ग्याम ॥”

४। ‘तूजो न खोले रो देन दे वाहे गारो।

हे लवारजो भारजगतको तुम ही सुलवन नागरी नारो ॥

वाके मनभावे सो ही नावे तुम कहा करिहो लाजकी नारो।

या होरीमें कौन बिगोरे कृष्णजीवन लक्ष्मीराम अंगारो ॥”

कृष्णज्योतिर्विन्द—ताजकतिलक नामक ज्योतिषका एक ग्रन्थ बनानेवाले।

कृष्णतर्कालङ्कार भट्टाचार्य—एक प्रसिद्ध नैयायिक।

इन्होंने तर्कसंग्रह और साहित्यविचार नामक न्यायके ग्रन्थ बनाये हैं।

कृष्णतण्डुला (सं० स्त्री०) १ विडङ्ग। २ कर्णस्फोटालता। ३ पीपल।

कृष्णताताचार्य—एक प्रसिद्ध दार्शनिक। संस्कृत भाषामें इनके लिखे बहुतसे दार्शनिक ग्रन्थ मिलते हैं—

अष्टापकविषयता-शून्यत्व, एत्वचन्द्रका, पञ्चता-क्रोड़, पञ्चभूतवादार्थ, परमुखचपेटिका (वेदान्त), प्रमात्वचिह्न, मद्वाशब्दार्थविधार (वेदान्त), वादककल्पक, वादकुतूहल, चटकोटिखण्डन, सजातीयविशिष्टा-न्तरावहितत्व, सत्प्रतिपक्षविचार आदि।

कृष्णताम्बूलवल्ली (सं० स्त्री०) कृष्णभासनागवल्ली, काला पान। यह तोती, उष्ण, कड़वी, कसेली, मल, थामनेवाली, दाह उत्पन्न करनेवाली और सुँड़को जड़ बना देनेवाली है। (बैद्यकनिषध्)

कृष्णतान्त्र (सं० स्त्री०) गोशेषचन्दन।

कृष्णतार (सं० पु०) १ काला हिरन। २ कोई हिरन।

कृष्णतारा (सं० स्त्री०) चाँखका काला तिल।

कृष्णतिल (सं० पु०) काला तिल।

कृष्णतीक्ष्णा (सं० स्त्री०) काला जीरा।

कृष्णतीर्थ—रामतीर्थके गुरु। यह जगन्नाथके समसाम-यिक रहें। वेदान्तसारपर “विद्वन्मनोरञ्जना” टीका कृष्णतीर्थको लिखी बतलायी जाती है।

कृष्णतुण्ड (सं० पु०) एक विशेषला कीड़ा। इसके काटनेसे पित्तके राग लग जाते हैं। (सुसुत)

कृष्णतुलसी (सं० स्त्री०) काली तुलसी। यह खाँसी, बात, कोड़े, वमि और भूत वाधाका दूर करती है। (राजनिषध्)

कृष्णत्रिवृता (सं० स्त्री०) कृष्णा त्रिवृता, कर्मधा०। काली जड़की त्रिवृता, काला निशित। इसका संस्कृत पर्याय—श्यामा, पाणिन्दी, कालमेषिका, काला, मसुर-बिदला, अधचन्द्रा और सुषेणिका है। चरकके मतानुसार यह कसेली, मधुर, रुखी, पकने पर कड़वी, कफ तथा पित्तको दबानेवाली और वायुको भड़काने-वाली है। (चरक) परन्तु श्वेतत्रिवृतासे इसमें कुछ हीन गुण रहता है। (भावप्रकाश)

कृष्णत्वक् (सं० पु०) मौलसिरो।

कृष्णदत्त—१ कोई सङ्गीतशास्त्र बनानेवाले। सङ्गीत-नारायणमें कृष्णदत्तका मत उद्धृत हुआ है। २ कर्म-कौमुदी नामक धर्मशास्त्र-संग्रह करनेवाले। ३ कोई वैद्यक ग्रन्थकार। इनकी बनायो द्रव्यगुणदोषिका और शतश्लोकीटीका युक्तप्रदेशमें प्रचलित है। ४ शास्त्र-संग्रह नामक वैष्णव ग्रन्थ बनानेवाले। इन्होंने अपने शास्त्रसंग्रहमें सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक, मीमांसा, भ्रव, बौद्ध, जैन, चार्वाक और शाङ्कर मध्ति बहुतसे मतोंकी काटके वैष्णव शास्त्रकी बड़ाई उधरायी है। ५ न्यायविद्वान्त-मुक्तावलीको मनारमा टीका बनाने-

वाने। ६ ब्रह्मदत्तके लड़के और चरणव्यूहभाष्यके प्रणेता। ७ कोई पुराने कवि। इन्होंने ८०८ संवत् (१) में राजा धर्मवर्माको प्रसन्न करनेके लिये 'मान्द्रकुतुहलप्रहसन' और फिर 'राधारहस्यकाव्य' बनाया, इनके पिताका नाम सदाराम और माताका नाम आनन्ददेवी था। ८ महेशमित्रके पुत्र और भट्टोजिके चेले। इनका दूसरा नाम वनमाली 'मित्र' था। इन्होंने कुहल्लेवप्रदीप रचना लियी। ९ कोई मैथिल कवि। यह मैथिल कृष्णदत्त कहलाते थे। इन्होंने संस्कृत भाषामें कुवलयारण्यनाटक, पुरञ्जनचरित-नाटक चण्डीचरित, चण्डीटोका और गीतगोविन्द-टोकाओं लिखा है। पुरञ्जनचरित उद्योतके राजा पुरुषोत्तमजी मभामें खेला गया। १० भिनगाके कोई राजपूत राजा। यह अपने आप हिन्दूके सुकवि थे। और काव्यसे बहुत प्रसन्न हुवा करते थे। इन्होंने १८५२ ई०को जन्म लिया था।

कृष्णदत्त (सं० त्रि०) १ काले दांतवाला।

कृष्णदन्ता (सं० त्रि०) कृष्णो दन्तः शिखरदेशोऽस्याः, बहुव्री०। काश्मरीहस्त, गंभारी।

कृष्णदर्शन (सं० पु०) शङ्कराचार्यके एक शिष्य।

कृष्णदशन (सं० त्रि०) काले दांतवाला। मध्य आदि पीनसे दांत काले पड़ जाते हैं।

कृष्णदास—१ कोई संस्कृत अभिधान-रचयिता। अमर-कोषकी टीकामें रामनाथने इनका वचन उद्धृत किया है। २ कोई ज्योतिर्विद। इनका बनाया 'अश्वारूढी' नामक संस्कृत ग्रन्थ युक्तप्रदेशमें मिलता है। ३ कर्णानन्द नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। ४ गीत-गोविन्द और मेघदूतकी टीका लिखनेवाले। ५ कोई विख्यात नैयायिक, इनकी बनायी तत्त्वचिन्तामणि-टीकामें नन्दादिटिप्पणी और प्रसारिणी टीका मिलती है। ६ कोई ग्रन्थकार। अकबर बादशाहके अन्तर्ग्रन्थसे इन्होंने 'फारसीप्रकाश' अर्थात् फारसी-कोष लिखा। इस ग्रन्थमें फारसी शब्दोंका अर्थ संस्कृत भाषामें दिया गया है। ग्रन्थकार विहारीकृष्णदास कहलाते थे। ७ मगधशक्ति नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। इनका उपाधि मिश्र था। ८ रामकृष्ण-

काव्यके टीकाकार। ९ सूरसिंहनाथ नामक संस्कृत ग्रन्थ रचना करनेवाले। यह वक्फ़देशके रहनेवाले काव्यस्थ थे। १० मध्यप्रदेशके जबुवा नामक स्थानके सरदार। पहले इनके बाप भनजो दिल्लीके बादशाहके नीचे ४०० सैन्यके अधिनायक थे। सभी समय कृष्णदास युवराज अला उद्दीनकी सुदृष्टिमें पड़ गये। ठाकाके शासनकर्ता जब विगड़ उठे, कृष्णदासने उन्हें जोत ठाका सवार किया था। इसमें बादशाहने प्रसन्न हो उन्हें ५ जिले हिन्दुस्थान और १० जिले मालवामें दे डाले। गुनरात-शासनकर्ताकी सुवनायक और चन्द्रभानु नामक दा सरदारोंने मार डाला। सुवनायक जबुवाकी भोजकी राजा थे। कृष्णदासने जबुवा पहुँच कलाकौशलसे सुवनायक और राजपूत सरदार चन्द्रभानुका विनाश किया। इस पर बादशाहने उन्हें जबुवा जागोरमें दिया था। ११ चमत्कारचन्द्रिकाके रचयिता। १२ प्रेततत्त्वनिरूपण नामका ग्रन्थ बनानेवाले। १३ हर्षके पुत्र और विमलनाथपुराणके रचयिता। १४ राजा राजवल्लभके पुत्र। कोई कोई उन्हें कृष्णवल्लभ भी कहता है। धन्वन्तरिगोत्रके वेदगर्भसप्तगुप्त नामके कोई वैद्य यथाहरके इतना ग्रामसे ठाका जिलेके राजनगरमें जाकर रहे थे। इन्होंने वेदगर्भसेनके वंशमें राजा राजवल्लभने जन्म लिया। राजवल्लभके ७ लड़कोंमें कृष्णदास दूसरे थे। १८०० ई० को मुहम्मद अलीखानने फारसी भाषामें 'तारीख मुजफ्फरा' नामक इतिहास बनाया, उसमें कृष्णदासको 'कृष्णवल्लभ' लिखा है। राजवल्लभके बड़ लड़केका नाम रामदास और तीसरेका नाम गङ्गादास था। इस लिये संभलेका नाम कृष्णवल्लभ नहीं, कृष्णदासही होना अधिक सम्भव है। हुसेन कुलीखानके मरने पर राजा राजवल्लभ नयाज मुहम्मदके दीवान बनाये गये। नयाज मुहम्मदके मृत्यु पछि वह घसीटी बेगमके सब बातोंमें परामर्शदाता रहे। नवाब अलीवर्दीको मरते देख घसीटी बेगमने अकरामुहौला-का वंगालकी गद्दी पर बैठानेकी चेष्टा की। इधर अलावर्दीने अपने गौदलिय लड़के शीरालुहौलाका सम्पत्ति और राज्यका उत्तराधिकारी बना रखा था।

उस समय वसोटी-बेगमने १०००० सैन्यके साथ मुर्शिदाबाद छोड़ एक कोस दक्षिण मतिभीलके बागमें अपनी छावनी डाली। युद्धमें हारना जीतना लगाही रहता है। इसीसे पहले ही सावधान होनेके लिये राजा राजवल्हभने अपने लड़के कृष्णदासके हाथ सारी सम्पत्ति कलकत्ते भेज दी। बहानेके लिये लोगोंसे कहा गया कि कृष्णदास पुरुषोत्तम गये थे। राजा राजवल्हभके कहनेसे कामिम्-बाजारकी कोठीके मालिक याटसन साहबने कृष्णदासको कलकत्तेमें महरा देनेके लिये गवर्नर डेक् साहबके नाम एक चिट्ठा लिखी। चिट्ठा कलकत्ते पहुँच गया। उस समय डेक् साहब बालेश्वरमें थे। उनके न रहते दूसरे बड़े अंगरेज कर्मचारियोंने परामर्श करके कृष्णदासको आश्रय देनेकी ठहरा ली। पीछे जब कृष्णचन्द्र जा पहुँचे, अमीरचांदने उन्हें अपने घरमें रख लिया। यह संवाद शीराजुद्दौलाके मिला था। उस समय भी अलीवर्दीखान् जीते थे। कुछ दिन पीछे वह मर गये और शीराजुद्दौला सिंहासन पर बैठे। उन्होंने मेदनीपुरके राजाके भाईको एक चिट्ठी दे कलकत्ते डेक् साहबके पास भेजा। चिट्ठीमें लिखा था कि बिना विलम्ब कृष्णदासको साहब चिट्ठी से जानेवालेके हाथ सौंप देवें। कलकत्तेके अंगरेजीने यह बात न मानी। शीराजुद्दौलाने इससे अपना बड़ा अपमान समझा था। उसी अपमानका बदला लेनेके लिये उन्होंने कलकत्ते जाकर नगर आक्रमण किया और कृष्णदास तथा अमीरचांदको सामने बुलाके भलमन्सीके साथ अपने पास बैठा लिया। मीरजाफरने नवाब होकर राजा राजवल्हभको अपना मन्त्री बनाया और कृष्णदासको टाकेके शासनकार्यमें लगाया था। कम्पनीके उस समयके कागज पत्रोंमें कृष्णदास टाकेके नवाब लिखे गये हैं। इसके पीछे राजा राजवल्हभ मुंगेरके सूबेदार हो गये। मीरजाफरने कृष्णदासको “राजा बहादुर” उपाधि दे अपना मन्त्री बनाया। मीरजासिमके समय भी यह लोग नवाबों सरकारकी नौकरी करते थे। मीरजासिम जब मुंगेरसे भागे, उन्होंने राजवल्हभ, कृष्णदास और दूसरे सब

लोगोंके गलेमें बालूसे भरी धैसी बांध मुंगेरके पास नदीमें डबा कर उन्हें मार डालनेको आज्ञा दी। ई० सन् १७६३ के सावनमें सोमवारको सन्ध्या समय यह घटना हुई थी। राजवल्हभ देखा। १५ हिन्दोभाषाके एक पुराने कवि। इन्होंने शृङ्गाररस पर अनूठी कविता की है—

- १। “बड़ा चितवनि चिते रसिक तन गुप्त प्रीतिकी भेद जनार्थी।
सुखको बड़ाई कैसे घटत है द्वितीकी प्रस मधो दुरत दुरायो ॥
सगरी अलक वदन पर बिधूरे सहि बिध लाल रहवटे लायो।
कृष्णदास प्रभु गिरिधर नागर नवनिर्गुज अपनो करि पायो ॥”
- २। “मली रतियां सखियां आज सुन्दर अन्नसो अन्न लुरे यदुगारै।
ममसाइन बड़ भागन पाये आज रंगाली रात साधारै ॥
सब बिध आस पूजो सोरे मनकी अखिलखो अपति पीतम पाई।
कृष्णदासकी इच्छा पूनी कनियां धरिके हाथ कुवाई ॥”
- ३। “रासरस गोविन्द करत विहार।
सुरसुताके पुनिन रसमें फूली कुन्दसंदार ॥
अह त शतदल बिकसित कोमल मुकुलित कुसुम कलार।
मलय पवन बड़े शारद पूरण चन्द मधुप भहार ॥
मुचगारै सज्जित कलानिधि मोहन मन्दकुमार।
नजमांनि सग प्रसुदित नाचत तन चरित बनसार ॥
समय स्वल्प शुभगता सोमा कोककला सुखसार।
कृष्णदास स्वामी गिरिधर प्रिय पहर रसमय हार ॥”
- ४। “इह मन वैसेके रहे राखी।
जिहि मधुव्रत हो गिरिधर प्रियको वदन-कमल-रस चाखी ॥
जो कहु में कोन्हो परवश हो इतनी हो सग साखी।
बार बार बहुबिधि ससुभायो कंचो नोचो भाषी ॥
केहु न मानति मझा हठीली कहो तुम्हारी बाखी।
कहे कृष्णदास कहां भी बरषों पांच और मिलि काखी ॥”

कृष्णदास कविराज—बंगला चैतन्यचरितामृतके रचयिता एक प्रसिद्ध बेष्यव कवि। वर्धमान खिलेके भामटपुर छोटे गांवके बेष्यवंशमें इन्होंने जन्म लिया था। अपने घरका काम करनेके लिये लड़कपनमें कृष्णदासने संस्कृत भाषा पढ़ी और उस समयके नियमानुसार कुछ फारसी भी सीख ली। किन्तु ग्रंथबसे हो वह धर्मनुरागी बन गये। उनके माता-पिता चैतन्य-धर्मावलम्बी थे। वह भी लड़कपनमें चैतन्यके गुणोंको सुन एक कहर चैतन्यभक्त हो गये। धीरे धीरे जब उन्होंने यौवनमें पेर रखा, उनका धर्मनुराग और विषयविराम बहुत बढ़ा। भजनभावमें रात दिन

बीत जाता था। उनके भाई घरका काम करने लगे। कहते हैं, एक दिन कृष्णदासने स्वप्न में नित्यानन्दको देखा था। नित्यानन्द प्रभुने उन्हें संसाराश्रम छोड़नेकी अनुमति दी। कृष्णदास इसके पीछे वृन्दावनकी ओर चल पड़े।

कृष्णदासके जन्म लेनेसे पहले चैतन्यदेवने इहलोक छोड़ दिया था। कृष्णदास वृन्दावनमें चैतन्यके प्रिय शिष्य रूप और रघुनाथदास गोस्वामीसे जाकर मिले और उनके शरणापन्न हुए। पीछे वह रघुनाथदाससे दीक्षा ले अपना अवशिष्ट जीवन प्रेमभक्तिशिखा, शास्त्रकी आलोचना, महाप्रभुके चरित्रके अनुशीलन और साधनभजनमें बिताने लगे। नौलावला पर चैतन्य महाप्रभुकी शेष अवस्थामें उनके पास स्वरूप और रघुनाथदास रहते और उनके महाभावकी अवस्थामें शरीररक्षा तथा सेवा-शुश्रूषा किया करते थे। स्वरूप महाप्रभुके मनकी सब छिपी बातें समझते थे। उन्होंने वही सब बातें रघुनाथका बता दीं। फिर कृष्णदासने अपने दीक्षागुरु रघुनाथसे सब कुछ सुन लिया। इससे पहले गोविन्ददासने महाप्रभुकी बाब्यलोला आदि विस्तृत भावसे लिखके चैतन्यमङ्गल बनाया था। परन्तु उन्होंने अन्तर्लोलाके सम्बन्धमें कुछ अधिक नहीं कहा। इसीसे वृन्दावनवासी चैतन्यकी शेष लीला जाननेके लिये सदा आग्रह दिखलाया करते थे। उनकी सन्तोष देने और चैतन्यकी जीवनी पूरी करनेके लिये राधाकुण्डके तीर हृदय अवस्थामें कृष्णदासने चैतन्यचरितामृत बनाया। १५७३ शककी यह सुन्दर ग्रन्थ पूरा हुआ फिर बुढ़े कविराजने अपना ग्रन्थ जीवगोस्वामीका दिखाया। जीवने देखा कि चैतन्यचरितामृत बंगलाभाषाके सुललित छन्दोंमें लिखा गया था। उसमें वैष्णवधर्मका गूढ़रहस्य और चैतन्यका उपदेश विवृत था। अवलीलाक्रमसे साधारण लोग उसे समझ सकते थे। किन्तु रूपसनातनके संस्कृत ग्रन्थका वैसा आदर होनेवाला न था। ऐसीही आग्रह करके जीवने कृष्णदासके हृदयका धन उनके हाथकी पोथी यमुना जलमें फेंक दी। कृष्णदास समाहित हो मथुरा चले

गये और बाजारनिद्रा छोड़ रातदिन हाथहाथ करने लगे। पीछे उन्होंने एक दिन सुना, जब वह चैतन्यचरितामृतका कोई परिच्छेद पूरा करते, उनके प्रिय शिष्य सुकुन्द उसकी एक नकल उतार रखते थे। शिष्यने गुरुके पास वही पोथी पहुँचा दी। खोया हुआ धन मिलनेसे कृष्णदास फूले न समायें। उन्होंने उस पुस्तकको आद्योपान्त संशोधन करके गुप्तस्थानमें रख दिया।

इधर जीवगोस्वामीने कृष्णदासके हाथकी लिखी जो पोथी यमुनाके स्रोतमें फेंक दी थी, वह बहते बहते मदनमोहनघाटमें जा लगी। फिर जीव उसे निकाल कर अपने घर ले गये और गोस्वामीके दूसरे ग्रन्थोंके साथ एक कोठरीमें रख आये।

जब कविकर्णपुर वृन्दावन पहुँचे, कृष्णदासने उनको चैतन्यचरितामृतकी बात बताया था। फिर कर्णपुरने वही बात जीवसे कही। उस समय जीवगोस्वामीने कविकर्णपुरके कहने पर कोठरीसे चैतन्यचरितामृत निकाल अपना अनुमोदन स्वाधर करके दे दिया था। पहले प्रति परिच्छेदके अन्तमें चैतन्यचरितामृत लिखा था। जीवने उसकी काटकर 'कहे कृष्णदास' बना दिया। फिर वृन्दावनवासियोंने इस ग्रन्थकी उतार लिया था।

इसी प्रकार चैतन्यचरितामृत व्रजभूमिमें प्रकाशित हुआ। जीवने यह ग्रन्थ बङ्गाल भेजनेके लिये सम्मति न दी। परन्तु कृष्णदासने सुकुन्दकी नकल की हुई पोथी उनके साथ गुप्तभावमें नवहोपकी भेजी थी। उनके अपने हाथकी लिखी चैतन्यचरितामृत पोथी वृन्दावनके राधादामोदर मन्दिरमें देवताकी भाँति पूजो जाती है।

चैतन्यचरितामृतमें कृष्णदासके संस्कृत शास्त्रका असाधारण पाण्डित्य झलक पड़ा है। उन्होंने चैतन्यके चलाये वैष्णवधर्मकी सब छिपी हुई बातें चलती और सीधी बंगलाभाषामें लिखी हैं। उन्हें मन लगा कर पढ़नेसे उनकी बनावटके दंगकी प्रशंसा प्रशंसा करती पड़ती है। इसलिये बङ्गालमें बड़े बड़े वैष्णव इस ग्रन्थकी दूसरी सारी पोथियोंसे अधिक मानते हैं। यह

उनकी भक्तिका वस्तु है। कल्यादासने चेतन्यचरिता-
मृतकी लोड़के देखावाएक, गोविन्दलीलामृत, कल्याकर्ण-
मृतकी सारङ्गरङ्गदा टीका आदि कई संस्कृत ग्रन्थ
बनाये थे।

कल्यादीक्षित—१ रघुनाथभूपालीय नामक पद्यकारके
रचयिता। २ रूपावतार नामक व्याकरण बनानेवाले।
३ यज्ञेश्वरके पुत्र। इन्होंने और्ध्वदेहिकप्रयोग नामक
संस्कृत ग्रन्थ लिखा था। ४ मौमांसापरिभाषाके प्रणेता।
इनका दूसरा नाम कल्यायन्वा था।

कल्यादेव—१ उड़ीसाके खुर्दाके राजा द्रव्यसिंहके पुत्र।
श्रीक्षेत्रकी मादलापल्लीके मतमें इन्होंने १६१७से १६४२
तक राज्य किया। दूसरे मतमें इनका एक नाम
हरिकल्यादेव भी था। १७१५ ई०की यह गद्दी पर बैठे।
(Starling's Orissa.) २ रामाचार्यके लड़के। इन्होंने
तन्त्रचूडामणि वा धर्ममौमांसासंग्रह नामक एक
मौमांसाग्रन्थ बनाया था। ३ मिथिलामें रहनेवाले
प्रसिद्ध भवदेवभट्टके पिता। ४ ण्यवानुष्ठानपद्धति
नामक ग्रन्थके रचयिता। ५ प्रस्तारपत्तन नामसे
छन्दका एक ग्रन्थ बनानेवाले।

कल्यादेवराय—विजयनगरके एक प्रबलपराक्रान्त राजा।
इन्हें लोग कल्यारायायु कहा करते थे। इनके पिताका
नाम राजा नरसिंह और माताका नाम नागलादेवी
या नागाम्मा था। विजयनगरके राजाओंके दिये अनु-
शासन और खोदित लिपि पढ़नेसे समझ पड़ता है
कि कल्यादेवकी माता राजा नरसिंहकी महिषी न थीं,
एक नर्तकी मात्र रहीं।

राजा कल्यादेव १५०८ ई०की गद्दी पर बैठे थे।
(Arch. Sur. Southern India, Vol. I. p. 107.)
पहले यह काशीपुरके निकट द्राविड़ राज्यमें सुबे, पीछे
उन्नातुरके गङ्गवंशीय राजाकी हरा उनके अधिकृत
शिवसमुद्र दुर्ग और औरङ्गपत्तन नगर पर चढ़े। इसके
बनन्तर सारा महिसुर राज्य कल्यादेवके वशीभूत हो
गया। १५१३ ई०में इन्होंने राजा वीरभद्रकी हराके नेलूर
और दुर्गके साथ उदयगिरि जीत लिया और वहाँसे
कल्यालामौकी मूर्तिको लाके विजयनगरमें एक बड़ा
मन्दिर निर्माण किया और उसीमें उसको बैठा दिया।

१५१५ ई०में कल्यादेवने प्रतापहठ्ठ-गजपति-राजकी
हराया, पीछे कल्या नदीके दक्षिणतीरवाले कोण्ठवीड़,
कोण्ठपल्ली और राजमहेन्द्री पर अपना अधिकार
जमाया। उदयगिरि जीतने पीछे इन्होंने उड़ीसा जाके
गजपति राजाकी कन्यासे विवाह किया था। फिर
दक्षिणात्यके पूर्व उपकुलवाले सारे राज्य इनके अधि-
कारमें आ गये। यवनोंके दिये अनुशासनमें कल्यादेव
उनके राज्य-सीमानिर्देशक बताये गये हैं। १५२१
ई०की इन्होंने कोण्ठवीड़नगरमें एक बड़ा देवालय
बनाया था। इसके पीछे १५२८ ई०की पितामाताके
पारत्रिक उत्सवके लिये पत्थरकी बहुत बड़ी नरसिंह
मूर्ति कल्यादेवने विजयनगरमें स्थापन की। इनकी
पटरानीका नाम चिन्नदेवाम्मा था। कल्यादेवके दिये
ताम्रशासन आदि पढ़नेसे समझ पड़ता है कि वह बड़े
देवद्विजभक्त थे और उन्होंने ब्राह्मणोंको बहुतसा
ब्रह्मोत्तर दान किया था।

२ दक्षिणात्यके बीचवाले जयपुरके राजा। यह
विश्वम्भरदेवके पुत्र थे। इन्हें लोग काला कल्यादेव कहा
करते थे। विजयनगरके राजा सीतारामके उत्पीड़नसे
१७६० ई०की यह राज्यभूत हुए। फिर उन्होंने
अनुग्रह करके इनके भाई विक्रमदेवकी राजा बनाया
था। उसी समयसे जयपुर विजयनगरका करद राज्य
हो गया।

कल्यादेवस्मार्तवागीश—एक विख्यात बङ्गाली पण्डित।
यह बन्धुवटीय नारायणके लड़के थे। इन्होंने संस्कृत
भाषामें कृत्यतत्त्व वा प्रयोगसार, शुद्धिसार, प्रायश्चित्त-
कौमुदी आदि कई स्मृतिसंग्रह बनाये।

कल्यादेव (सं० पु०) कल्यादेही यस्व, बहुव्री०। भौंरा।
कल्यादेव (सं० पु०) १ कोई प्रसिद्ध ज्योतिःशास्त्र-
विद्। यह विख्यात ज्योतिर्धन्यकार नृसिंहके पिता
और दिवाकरके पितामह थे। २ ब्रह्माक्षदेवज्ञके
लड़के और रङ्गनाथके भाई। यह दिल्लीके बादशाह
जहाँगीरके अधीन काम करते थे। इनके बनाये
छादकनिर्णय, पञ्चपत्नी, परमेश्वरीय, प्रश्नकल्याण्य,
(भास्करकी) बीजावलीकी बीजविहितकल्याणतावतार
नामकी टीका, बीजाङ्कुर नामकी बीजगणितकी टीका,

श्वोपतिटोका, सिद्धान्तसार और सूर्यसिद्धान्तोदाहरण नामक कई ज्योतिषग्रन्थ प्रचलित हैं।

कृष्णद्विवेदी—काव्यप्रकाशको मधुरसा नाम्नी टीका बनानेवाले।

कृष्णद्वैपायन (सं० पु०) द्वीपे भवः, द्वीप-अणु निपातः यद्वा द्वीपं अयनं आश्रयो यस्य, ततोऽण्। वेदव्यास। यमुनाद्वीपमें वेदव्यास उत्पन्न हुए थे। द्वीपमें अणु लेनेसे ही उन्हें द्वैपायन कहते हैं।

एक मल्लाहने धर्मके लिये लोगोंके पार जाने जानेकी नदीमें नाव रखी थी। उसकी बेटी किसी दिन अपने बापके कहनेसे नावमें उपस्थित रही। देवकर्मसे पराशरमुनि नदी पार जानेके लिये पहुँच गये। नाव जब यमुनाके बीच पहुँची, महर्षिने कन्याके रूपमें सुग्ध हो अपना अभिप्राय कहा था। मल्लाहकी लड़कीने सुँह लटका लिया, कोई उत्तर न दिया। मुनिने आदरके साथ बात चीत करके कहा—‘शोभनाङ्गे! हम तुम्हारे रूपमें सुग्ध हो गये हैं। तुम हमारी प्राशा न तोड़ो।’ मल्लाहकी लड़कीने कहा—‘महाभाग! यह नदी खुला स्थान है। नावमें किसी प्रकारकी पाड़ नहीं। लाखों नौकायात्री सम्भवतः यहां आ पहुँचेंगे। ऐसे स्थान पर किस प्रकार आपका अभिप्राय पूरा हो सकता है? विशेषतः मेरे शरीरमें जो दुर्गन्ध है, उससे निश्चय आप मेरे पास आ न सकेंगे।’ महर्षिने योगबलसे कुहरा बनाया था। चारों ओर धँधरा छा गया। कन्या भी सम्मत् हो गयी। महर्षिने अपना अभिलाष पूरा किया था। उनके कहनेसे मल्लाहकी बेटी वह गर्भ यमुनाद्वीपमें छोड़ घर चली गयी। उसका कन्याभाव न बिगड़ा। द्वीपमें उसी गर्भसे व्यासकी उत्पत्ति हुई। (भारत, भाषि १०५ च०) व्यास देखो।

कृष्णधत्तूरक (सं० पु०) काला धतूरा।

कृष्णधन (सं० स्त्री०) कृष्णं कुत्सितं धनम्, कर्मधा०। निन्दित धन, लुब्धा आदि बुरा काम करके कमाया हुआ रुपया-पैसा।

‘पान्तिं कथ्यतचौर्ध्वं प्रतिपद्यताहसः।

हस्तेनोपार्जितं यच्च तत् कृष्णं लघुवाच्यतम्॥’ (निघण्टुवृत्ति)

अपात्रको पात्र मानके जुवा, चोरी, प्रतिनिधि, साहस, छलआदि धर्मनाशक उपायोंसे कमाया हुआ रुपया पैसा कृष्णधन कहलाता है।

कृष्णधान्य (सं० स्त्री०) १ काला धान। २ श्यामाक, घासमें होनेवाला एक धान।

कृष्णधीर—दरभङ्गेका एक बड़ा गाँव। भविष्य ब्रह्मखण्डमें लिखा है—हरिभक्तिपरायण कृष्णधीरके नाम पर ग्रामका नाम कृष्णधीर रखा गया। (४७।१९)

कृष्णधुत्तूरक (सं० पु०) काले फूलका धतूरा। इसका संस्कृत पर्याय—सिद्ध, कनक, सचिव, शिव, कृष्णपुष्प, विषाराति और क्रूरधूर्त है। यह कड़वा, उष्ण, शरीरका लावण्य बढ़ानेवाला और ब्रणरोग, त्वक्, इन्द्रियका ठीकापन, खुजली, अतिज्वर तथा अमकी नाश करनेवाला है। (राजनिघण्टु)

कृष्णधूर्जटिदीक्षित—कोयम्पूरीके रहनेवाले वेङ्कटेश दीक्षितके पुत्र। शेषोंके गर्भसे इनकी उत्पत्ति हुई। ४८७५ कल्पवृक्ष (१६८६ शक) की इन्होंने उत्तैनके राजा गजसिंहके पुत्र महाराज राजसिंहके लिये तर्क-संग्रहकी ‘सिद्धान्तचन्द्रोदय’ नामसे एक बढ़िया टीका बनायी थी।

कृष्णनगर—नदिया जिलेका कृष्णनगर नामक एक विभाग और उसका बड़ा नगर। यह जलंगी नदीके तौर अक्षा० २३° १७' तथा २३° ४८' ७०" और देशा० ८८° ८' और ८८° ४८' पू० मध्य अवस्थित है। कृष्णनगरकी म्युनिसिपालिटोका अधिकार प्रायः ७ वर्गमील है। उसमें लगभग ७००० घर बने और २६७५० लोग बसे हैं। अदालत और कालेज विद्यमान है। यहां व्यवसाय बहुत होता है। कृष्णनगरके कुम्हार खिलौने अच्छे बनाते हैं। भूमिपरिमाण ७०१ वर्गमील है। पलासीका सुप्रसिद्ध युद्धक्षेत्र इस विभागकी बिलकुल उत्तरसीमा पर पड़ता है।

कृष्णनाथ—स्मृतिके कोई विख्यात टीकाकार। इनकी बनायी अत्रिसंहिताटीका, दशसंहिताटीका, मनुस्मृति-टीका, व्यासस्मृतिटीका, संस्कारतत्त्वटीका, ज्ञानदीपिकाटीका, स्मृतिकौमुदीटीका और स्मृतिसारटीका मिलती हैं। २ कोई संस्कृत कवि। इन्होंने आत्मन्द-

लतिका, काशिकोपनिषद्दीपिका, चण्डिकाचर्मक्रम, प्रत्यङ्गिरातत्त्व, प्रत्यङ्गिरासूक्तभाष्य, सुद्राक्षचण, योगदर्शन-टीका, रामगीताटीका, रामायणसार, वनदुर्गातत्त्व, वामनतत्त्व, शिवार्चनक्रम आदि संस्कृत ग्रन्थोंकी रचना की। ३ न्यायग्रंथ जागहोशीके कोई टीकाकार। ४ भावकल्पलता नामक ज्योतिर्ग्रंथकी टीका लिखनेवाली।

कृष्णपत्र (स० पु०) कर्मधा० । प्रतिपदसे समावस्था पर्यन्तका समय, चन्द्रक्षयका पक्ष, अंधियारा पाख।

कृष्णपण्डित—१ कोई संस्कृत ग्रंथकार। इनके पिताका नाम नरसिंह था। इन्होंने पदचन्द्रिका नाम पर एक व्याकरण तथा उसकी वृत्ति, राजा कल्याणके कहनेसे प्राप्तकौमुदीटीका और प्राप्ततचन्द्रिकाको बनाया था। २ सन्ध्यावन्दनभाष्य और मन्त्रभाष्य बनानेवाली। ३ जातकपद्धत्युदाहरण नामक ज्योतिर्ग्रंथके रचयिता। ४ विश्वमङ्गलकृत कृष्णकर्णामृतके कोई टीकाकार। ५ कपूर्वरादिस्तवटीकाके प्रणेता। यह वैद्यक-ग्रंथकार नागनाथ और नारायणके पिता थे।

कृष्णपतिशर्मा—एक टीकाकार। इन्होंने कुमारसम्भव और रघुवंशकी अन्वयसापिका टीका लिखी थी। उसमें कृष्णपण्डितने अपनेको मेधिल शङ्कराढीवंशोद्भूत बताया है।

कृष्णपदो (स० स्त्री०) कृष्णो पादौ यस्याः अकारलोपः पदादेशश्च ङीष् । कृष्णपदीषु च । पा० । ४ । ११८ । काली पैरोवाली स्त्री।

कृष्णपर्णी (स० स्त्री०) काली तुलसी।

कृष्णपक्षवा (स० स्त्री०) काली करेम्बू।

कृष्णपवि (वे० त्रि०) अंधेरी राह जानेवाला। (चक्र ७।८।२)
'कृष्णपविः कृष्णमार्गः' (सायब)

कृष्णपद्मी (हिं० स्त्री०) एक गानेवाली चिट्ठिया। यह एक बिन्ता लम्बी रहती, काश्मीरसे भटान तक मिलती और जाड़ेमें नीचे उतरती है। पेड़की जड़में इसका घांसला बनता है। कृष्णपद्मी एक बारमें ४ अण्डे देती है।

कृष्णपाक (स० पु०) करौंदा।

कृष्णपाकफल, कृष्णपाक देखो।

कृष्णपिङ्गल (स० त्रि०) काला और भूरा।

कृष्णपिङ्गला (स० स्त्री०) दुर्गा।

कृष्णपिण्डार (स० पु०) बिही, पियारा, सफरी।

कृष्णपिण्डीतक (स० पु०) नित्यकर्मधा० । १ सफरी, पियारा। २ काला मैमफल।

कृष्णपिण्डीर, कृष्णपिण्डीतक देखो।

कृष्णपिपीलिका (स० स्त्री०) कृष्णा पिपीली, कर्मधा० । काली चीटी। इसको संस्कृतमें खूला और ठुलकहा भी कहते हैं। यह पेड़ पर चढ़ा करतो है।

कृष्णपिपीली, कृष्णपिपीलिका देखो।

कृष्णपुच्छ (स० पु०) १ रोज़ मछली। २ सोमड़ी।

कृष्णपुर—त्रिवाङ्गराज्यके करानागपल्ली जिलेका एक नगर। यह अक्षा० ८° ८' ८० पौर देशा० ७६° ३३' पू० पर अवस्थित है। यहां राजप्रासाद, पुराना दुर्ग और जजका न्यायालय विद्यमान है। किसी समय समुद्रका बाणिज्य यहां बहुत चलता था।

कृष्णपुष्प (स० पु०) काला धतूरा।

कृष्णपुष्पो (स० स्त्री०) प्रियङ्गुका पेड़।

कृष्णपूतिफला (स० स्त्री०) सोमराजी।

कृष्णप्रभु—हिन्दीभाषाके कोई कवि। इनकी कविता विरल है—

“बरसानेमें खेलत होरी श्रीवैष्णवभक्तियोरी।

चन्दन बन्दन अतर अरगजा अतिर गुलाल लिये भर भीरी॥

कोठ गावत कोठ छदंग बनावत धूम मचाय नन्दकी दोरी।

उतते सखा सङ्ग से कृष्णप्रभु पिचकारिन भर रक्त रचोरी॥”

कृष्णप्रिय (स० पु०) कदम्बका पेड़।

कृष्णप्रुत् (वे० त्रि०) १ काला पड़ा हुआ। २ काला कर छाकनेवाला। (चक्र १।१४०।१) ‘कृष्णप्रतो अत्रिसम्पर्कान् कृष्णवर्णतां प्राप्नुवन्तो प्रापयन्ता वा ।’ (सायब)

कृष्णफल (स० पु०) करौंदा।

कृष्णफलपाक (स० पु०) करौंदा।

कृष्णफला (स० स्त्री०) १ सोमराजी। २ छोटा जामुन। इसका संस्कृत पर्याय—सूक्ष्मफला, कृष्णफला, जम्बू, दीर्घपत्रा, मध्यमा, कोलशिखि और पर्यङ्क-पट्टिका है। ३ छोटा करौंदा।

कृष्णवर्षर (स० पु०) काली बबई।

कृष्णबालक (सं० पु०) कृष्णः बालकम्, कर्मधा० ।
१ काला सफेद रंग । (त्रि०) २ काला ।

कृष्णवार—काश्मीरका एक नगर । यह समुद्रके पृष्ठसे ३३३२ हाथ ऊँचे अर्थात् ३३° १८' ८० और देशा० ७५° ४८' ५० पर अवस्थित है । चन्द्रभागा नदीकी बाईं ओर इस स्थानकी भूमि कितनी ही बराबर है । नदीकी दोनों ओर प्रायः ६६७ हाथ ऊँचे पहाड़ खड़े हैं । हिन्दू और मुसलमान सभी अधिवासी दरिद्र हैं । घर भी बहुत ही साधारण बने हैं । लोग पशुमीने और शाकदुग्धाले तैयार कर अपना काम चलाते हैं । पहले यहां काश्मीरके राजा गुलाबसिंहका अधिकार था । परन्तु सिखोंने पुराने राजाको निकाल बाहर किया । सिखोंके अत्याचारसे ही लोग धनहीन और दुर्दशाग्रस्त हो गये हैं । यहां एक बाजार और किला है ।

कृष्णबालुक (सं० स्त्री०) एकप्रकारका पहाड़ी मट्टी ।
कृष्णभट्ट—१ औषधप्रकार नामक वैद्यकग्रन्थके प्रणेता । २ विद्याधिराजतीर्थका दूसरा नाम । १३३१ ई०को वह स्वर्गवासी हुए । ३ पूर्व और अपर-पक्षीयप्रयोग नामका संस्कृत ग्रन्थ बनानेवाले । ४ कर्मतत्त्वप्रदीपिका नामक स्मृतिके संपादक । ५ कविरहस्य, कालचन्द्रिका, कालनिर्णयदीपिका, सरोज-सुन्दर आदि धर्मशास्त्र संपादक करनेवाले । ६ किरणा-वलीटीकाके रचयिता । ७ कृष्णभक्तचन्द्रिका नामक ग्रंथके प्रणेता । ८ बौधायनीय चातुर्मास्यप्रयोग और आद्यपद्यति बनानेवाले । ९ जीवत्पितृकर्तव्यसङ्घय नामक ग्रंथके रचयिता । १० तर्कचन्द्रिका नामक न्यायग्रंथ बनानेवाले । ११ भागवतपुराणके कोई टीका-कार । १२ मुक्तिवादटीकाके कोई प्रणेता । १३ पाप-स्तम्भ-श्रौतप्रायश्चित्तके टीकाकार । १४ समयमयूख बनानेवाले । १५ वेदान्तका सिद्धान्तचिन्तामणि नामक ग्रंथ लिखनेवाले । १६ स्मृतिसारसंग्रह नामक धर्मशास्त्रके सङ्कलनकर्ता । १७ रघुनाथके बेटे और नारायणके छोटे भाई । इन्हें लोग कृष्णभट्ट या कृष्णभट्ट आर्षे कहकर करते थे । यह काशीवासी एक प्रसिद्ध नैयायिक रहे । इन्होंने काशिका वा मादाधरी-

विद्वत्ति, केवलव्यतिरेकियंथरहस्यटीका, मञ्जुवा वा जागदीशीतोषिणी, सिद्धान्तसङ्घ, निर्णयसिन्धु-दीपिका, वाक्चन्द्रिका, कृष्णभट्टीय, बाधपूर्वपञ्चम्यं-रहस्यहस्तटीका आदि ग्रंथोंकी रचना की । १८ होसिक रामेश्वरके पुत्र और शास्त्रोद्धार तथा दुष्ट-दमन नामक संस्कृत काव्यके रचयिता । १९ पटवर्धन-वंशीय विष्णुभट्टके लड़के और गदाधरके भतीजे । इन्होंने पदार्थचन्द्रिकाविलास, पदार्थरत्नमञ्जुषा और माधुरी टीका ग्रंथ लिखा था । पदार्थचन्द्रिकामें कृष्णभट्टने माधवसरस्वतीके मितभाषिणी ग्रंथकी बड़ी निन्दा की है ।

कृष्णभट्ट मोनो—रघुनाथभट्टके पुत्र और गोवर्धनभट्टके पौत्र । इनका प्रकृत नाम जयकृष्ण था । परन्तु अपने ग्रंथमें बहुतसे स्थलोंपर इन्होंने कृष्ण नामसे ही परिचय दिया है । कृष्णभट्टने कारकवाद, लघुकोमुदीटीका, विभक्त्यर्थनिर्णय, वृत्तिदीपिका, शब्दार्थतर्कामृत, शब्दार्थसारमञ्जरी, शुद्धिचन्द्रिका, सिद्धान्तकोमुदीकी वेदिकप्रक्रियाकी सुबोधिनी नामकी टीका और स्कोट-चन्द्रिका आदि संस्कृत ग्रंथ बनाये ।

कृष्णभस्म (सं० स्त्री०) पारिका काला भस्म । इसके बनानेकी रीति यह है—१ पल धान्याभ्रक और १ पल पारा से मारकद्रव्यके साथ एक दिन तक घोटना चाहिये । फिर मारकद्रव्यके कल्कसे कपड़ेका एक टुकड़ा लपेट बत्ती बना लेते हैं । इसके पीछे बत्तीको रैडीके तेलमें बार बार डुबा जलाना चाहिये । बत्तीके बीचमें पारा रख देते हैं । बत्ती जलते समय जो पारा धीरे धीरे गिरता, उसे चीके भरी एक बर्तनमें टपकाते जाते हैं । इसीका नाम कृष्णभस्म है । उसकी नियामक गणोंसे घोटके कन्दुकाव्य ग्रन्थमें एकदिन पाक करनेसे कृष्णभस्म शुद्ध हो जाता है । (रसैन्द्रसारसंग्रह) पारद देखो ।

कृष्णभूकुष्माण्ड (सं० पु०) काली पत्ती और बोंड़ीका भूईकुम्हड़ा ।

कृष्णभूभवा (सं० स्त्री०) करीबी ।

कृष्णभूम (सं० पु०) कृष्णा भूमिः मृत्तिका यत्र, बहुव्रीहि समर्थ अच् । १ काली मट्टीका देश । (त्रि०) २ काली मट्टीवाला ।

कृष्णभूमि (सं० स्त्री०) काली मट्टीका देश ।

कृष्णभूमिका (सं० स्त्री०) गोमूत्रिका द्रव्य, एक घास ।

कृष्णभूषण (सं० स्त्री०) काली मिर्च ।

कृष्णभेदा (सं० स्त्री०) कुटकी । इसकी संस्कृतमें कटो, कटुका, तिक्ता, कटुश्वरा, अशोका, मत्स्यशकला, चक्राङ्गी, शकुलादनी, मत्स्यपित्ता, काण्डरुहा, रोहिणी और कटुरोहिणी भी कहते हैं ।

कृष्णभेदिका, कृष्णभेदी, कृष्णभेदा देखी ।

कृष्णभोगी (सं० पु०) नित्यकर्मधा० । काला सांप ।

कृष्णमणि (सं० पु०) राजावतमणि, नीलम ।

कृष्णमण्डल (सं० स्त्री०) कृष्णश्च तत्तमण्डलश्चेति, कर्मधा० । आंखकी काला पुतली ।

“नेत्रायामत्रिभागात्, कृष्णमण्डलमुच्यते ।” (सुसुत)

कृष्णमत्स्य (सं० पु०) नित्यकर्मधा० । कांटेदार एक काली मछली । यह ३ हाथ तक लम्बा होता है । इसमें कांटे बहुत होते हैं, किन्तु छोटे छोटे । सुसुतके मतमें यह नदीसे उपजता है । कृष्णमत्स्य मधुर, पकानमें भारी, वायुनाशक, रक्तपित्त बढ़ानेवाला, उष्ण, बलकारक, चिकना और थोड़ा तेजस्कर है । (सुसुत)

कृष्णमदन (सं० पु०) काला मेनफल । यह ठण्डा, मधुर, कड़वा, तीता, कसैला, वास्तिकर, पित्त तथा कफनाशक और पक्क प्रामाशयकी रुद्ध करनेवाला है । (वैद्यकनिघण्टु)

कृष्णमधुराक्षर (सं० पु०) एक प्रकारका हलका खर । कृष्णमक्षिका (सं० स्त्री०) १ काली पत्तीकी छोटी तुलसी । २ बवई । ३ जङ्गली बवई ।

कृष्णमक्षिका (सं० स्त्री०) काली मक्खी ।

कृष्णमालुक (सं० पु०) कृष्णार्जक, काली तुलसी ।

कृष्णमाष (सं० पु०) काला उड़द । यह बलकर, रुच्य और तीनों दोषोंकी मारनेवाला है । (वैद्यकनिघण्टु)

कृष्णमित्र पाचार्य—नानाशास्त्र जाननेवाले एक विख्यात पण्डित । यह रामसेवकके लड़के और देवदत्तके नातो थे । इन्होंने अनुमितिपरामर्श, प्रौढमनोरमाकी कल्पलतागान्धी टीका, कारकवाद, कालमार्तण्ड, काव्यप्रकाशटीका, वेद्याकरणसिद्धान्तभूषणकी कुक्षिका-टीका, कुमारसम्भवटीका, कृत्यप्रदीप, गादाधराटीका,

तत्त्वचिन्तामणिदीप्तिप्रकाश, वृहत्सर्गतरङ्गिणी, तर्कप्रतिबन्धरहस्य, लघुतर्कसुधा, तर्कसुधाप्रकाश, तिथिनिर्णयमार्तण्ड, त्रिंशच्छ्लोकीभाष्य, नानार्थवादटीका, लघुन्यायसुधा, पदार्थखण्डनटिप्पणीशास्त्रा, पदार्थपारिजात, प्रेतप्रदीप, बाधबुद्धिप्रतिबन्धकताविचार, भवानन्दीप्रदीप, भावप्रदीप, शब्दकोस्तुभटीका, सिद्धान्तकौमुदीकी रत्नार्णवटीका, रत्नावलीवादसुधा-टीका, वादसंग्रह, वादसुधाकर, वायुप्रत्यक्षतावाद, वेद्याकरणसिद्धान्तभूषणटीका, आहप्रदीप, सामग्रीवादार्थ, लघुसामग्रीव्याप्ति, सिद्धान्तरहस्य, सुवन्तवाद, सुवन्तसंग्रह आदि संस्कृत ग्रन्थोंकी रचना किया ।

कृष्णमित्र—१ प्रबोधचन्द्रोदय नामक प्रसिद्ध दार्शनिक नाटक बनानेवाले । इन्होंने उक्त नाटक चंदेलराज कीर्तिवर्माकी प्रसन्न करनेके लिये लिखा था । कीर्तिवर्मा देखी । २ प्रायश्चित्तमनोहर नामका संस्कृत ग्रंथ लिखनेवाले । ३ वीरविजय नामक एक ईशानुग-के रचयिता । ४ सर्वतोभद्रादिचक्रावलि नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता । ५ चिन्तामणि नामक न्यायग्रंथके रचयिता । ६ विष्णुके लड़के और मिथ्यामन्दके पंती । यह कात्यायनशास्त्रके आहकाशिका नामक भाष्यके रचयिता थे ।

कृष्णमुख (सं० स्त्री०) कृष्णं मुखं वदनं अप्रं वा यस्य, बहुव्री० । १ कलमुखा । २ जिसका अगला भाग काला हो । (पु०) ३ लङ्गूर, काली मुँहका बन्दर । ४ कोई दानव । (हरिवंश २४० च०)

कृष्णमुखा (सं० स्त्री०) काला अनन्तमूल ।

कृष्णमुखी (सं० स्त्री०) विषैली जोंक ।

कृष्णसुत्र (सं० पु०) नित्यकर्मधा० । काली मूँग । इसका संस्कृत पर्याय—वासन्त, माधव और सुराष्ट्रज है । भावप्रकाशके मतमें यह त्रिदोष तथा दाह मिटानेवाला, मधुर, दीपन, पकानमें हलका, पथ्य, बलकारक, वीर्य बढ़ानेवाला और अङ्गकी पुष्टि करनेवाला है । पुराने समय केवल सुराष्ट्रदेशमें वसन्त कालकी कालीमूँग उपजती थी । इसीसे उसके सुराष्ट्रज और वासन्त दो नाम पड़े हैं । आजकल भारतवर्षके नानास्थानोंमें और प्रायः सभी जगहोंमें कृष्णसुत्र उत्पन्न होता है ।

कृष्णमुष्क (सं० पु०) कृष्णघण्टा पाटलिका, काली मोखा ।

कृष्णमूला, कृष्णमूला देखो ।

कृष्णमूलौ (सं० स्त्री०) काली जड़का अनन्तमूल ।

कृष्णमूषिक (सं० पु०) एक प्रकारका चूड़ा ।

कृष्णमृग (सं० पु०) काला हिरन ।

(महाभारत, वनपर्व ५१ अ०)

कृष्णमृत् (सं० स्त्री०) कर्मधा० । १ मङ्गकनेवाली

काली मट्टी । यह मूत्रकृच्छ्र, कफ और पित्तको नाश करती है । (देवकनिघण्टु) २ काली भूमि ।

कृष्णमृत्तिक (सं० पु०) काली भूमि ।

कृष्णमृत्स्त्रा, कृष्णमृत् देखो ।

कृष्णमृत्तिका, कृष्णमृत् देखो ।

कृष्णमिह (सं० पु०) काला प्रमेह ।

कृष्णयजुर्वेद—यजुर्वेदका एक भाग । यजुर्वेद कृष्ण और शुक्ल दो भागोंमें बंटा है । कृष्णयजुर्वेदका दूसरा नाम तैत्तिरीय है । यजुर्वेद शब्दमें वडा विवरण देखो ।

कृष्णयाम (वै० त्रि०) कृष्णायामो गमनमार्गो यस्य, बहुव्री० । अंधेरी राह जानेवाला । (अक् ६।६।१)
'कृष्णयामं कृष्णवर्मानम्' (सायण)

कृष्णयोनि (वै० त्रि०) कृष्णा मलिना निकृष्टा योनिरित्य-
स्यर्यस्य, बहुव्री० । छोटी जातिवाला । (अक् २।१०।७)

कृष्णरक्त (सं० पु०) कृष्णोरक्तः, कर्मधा० । १ कालापन लिये हुआ लाल रंग, बैजनी रंग । (त्रि०) २ बैजनी, काला लाल ।

कृष्णरङ्ग (सं० स्त्री०) सीसा, जस्ता ।

कृष्णरङ्ग—एक प्राचीन हिन्दी कवि । इनका पद्य नीचे उद्धृत किया जाता है—

“कृष्ण लाल शरचागत तेरी राख लाज अपने जनकेरी ।

अशरच शरच तोकी जग जाने नित दीनदशाल दया कर डेरी ।

दुजो और कीम समरथ है जाकि नाम कटे भव बेरी ।

कृष्णरङ्ग प्रभु प्रणतिपाल सुनि तविय कटाच कमल दगफेरी ॥”

कृष्णरम्भा (सं० स्त्री०) काला केला ।

कृष्णरस (सं० पु०) पारे का काला भरम । इसके बनाने-
को प्रणाली यह है—लोहे या ताँबेके बरतनमें १ पल शोधित गन्धक रखके धीमी आँच लगाया चाहिये । गन्धक गल जाने पर उसमें ३ पल शोधा हुआ पारा

डाल लोहेके चूखेसे बार बार चलाते हैं । पीछे गोबर पर केलेका पत्ता रखके उसपर शोधको ढाल देना चाहिये । इसप्रकार गन्धकसे मिले हुए पारेको सब रोगों पर देना चाहिये । (अमिसंहिता)

कृष्णरसिक—एक विख्यात हिन्दी कवि । इनकी कविता बहुत भावपूर्ण है—

१ । “लालकी लगन बेसे छूटे ।

लाख जतन कर मन समझाऊँ पै बालियनकी पीत लगी कैसे छूटे ।

कृष्णरसिक नेक नहीं मानत बरबस हिलमिल जटे ॥”

२ । “शेवरेके साथमें चली जइहँ सजनी ।

कहा करेगी दुरजन पुरजन निशदिन बाइकी शरण रमि रहिहँ सजनी ॥

घरी पल दिन मोहै कल न परत है तन मन रसबस भइ हों सजनी ।

कृष्णरसिकके हाथ बिकानी मन माने सी करिहँ सजनी ॥”

३ । “मैं तो ठाढ़ीरौ आँगनवा हो सैयाँको आवन सुनवा ।

कागा बोलिरे सखी सगुन भरलवा दरक दरक न्हारे उठल जीवनवा ।

बिन देखि मोहै कल न परन है कृष्णरसिक कल मनकी डरवा ॥”

४ । “सैयाँ मोरीरे गगरिया कलकाई राम ।

मैं जो गयी थी पनियाँ भरनकी कुवत लाज नहीं आई राम ।

कृष्णरसिक रसबस कर डारी बरबस कछु लगाई राम ॥”

५ । “हिंडोलना मैं ना झूलूँ मेरी जान ।

जिय धड़कत यहि बात सखीरौ देवराको मन बेमान ॥

सासके आँगन केबारे कहीं ननदीके आँगन डाल ।

जामैं छरझी आचरारे सैयाँसे कहियो कुशान ॥

कासों कहीं यह भेद सखीरौ बिसर गयो कुलकान ।

कृष्णरसिक रसबस कर लोभो बड़ मधुरी मुसकान ॥”

६ । “लानी गइलो हमरा जियरा ।

पनवा ऐसी पातरीरे गज गतकीसी चाल ।

कृष्णरसिक तिरछी चितवनहीं फेंकत है बड़ जाल ॥

नहीं माने मेरी एकपल हियरा ॥”

७ । “ना बसो बेईमानकी नगरिया ।

आप न आवे वारी ना लिख भेजे जीवत हँ पिया तोरी डगरिया ।

कृष्णरसिक कासों यह कहिये काठ न लागत मोरी मोहरिया ॥”

८ । “जीवनवा तू ना जइयारे तेरे रहैसे भेरा मान ।

जी तू चला वारी बे जान न देशाँ मौला रखि तेरी आन ।

कृष्णरसिक यह बात मान ले अब समुझे नादान ॥”

९ । “मोरी मोली परोसिन हन्दावन गैल दिखाय देरे ।

हन्दावनमें कान्ह बसत है मुखीकी टेर सुनाय देरे ।

कृष्णरसिकहीं लगन लगी है मेरो मन समुझाय देरे ॥”

कृष्णराज (सं० पु०) काका संजन।

कृष्णराज—दक्षिणापथके एक पराक्रान्त राष्ट्रकूट-वंशीय राजा। इन्हें शुभसुङ्ग और धैरमेघ भी कहते थे। प्रसिद्ध जैनगुरु अकलङ्क और निष्कलङ्क इन्होंने दो पुत्र रक्षे। २ राष्ट्रकूटराज अमोघवर्षके पुत्र। इनका दूसरा नाम अकालवर्ष था। इन्होंने कलचुरि राज वंशके कोकलकी कन्या महादेवीका पाणिग्रहण किया। ८७५ और ८९१ ई०के बीच इनके राज्यके पारम्भका समय था। मत्तान्तरमें ८४५ से ८५७ ई० तक इन्होंने राज्य किया। ३ राष्ट्रकूटराज जगत्तुङ्गके लङ्के। ४ औरङ्गलके कोई गणपति राजा। १३२३ ई०को इनके पिता प्रतापराट्टके स्वर्गवासी होनेपर यह राजा बने। उसी समय अलाउद्दीनने औरङ्गल आक्रमण किया था। ५ महाराष्ट्रके कोई राजा। यह गोविन्दके पुत्र और राघवके पौत्र थे। कृष्णराजने वर्णाश्रम-धर्मप्रदीप नामक संस्कृत धर्मशास्त्र लिखा।

कृष्णराज—मालखेडके एक राष्ट्रकूट राजा। बड़ोदा राज्यके बागुमडा स्थानमें एक ताम्रफलक मिला है, उसमें लिखा है कि गुजरातके महासामन्ताधिप अकालवर्ष कृष्णराजने भागवततीर्थ पर नर्मदामें स्नान और दो ब्राह्मणोंको कोट्टण विषयमें वरिष्ठावीका कर्धठसादि नामक ग्राम दान किया था। यह भूमि-दान ८१० शक संवत्को चैत्र शुक्ल द्वितीयाके दिन (१५ अपरैल ८८८ ई०) सूर्यग्रहणके उपलक्ष्यमें हुआ। उस समय कृष्णराज अङ्गुलीश्वरमें रहते थे। अङ्गुलीश्वर आजकल भड़ोच जिलेका एक प्रधान नगर, वरिष्ठावी बड़ोदा राज्यका तापती पर बसा वर्तमान वरिष्ठाव और कर्वाठसादि सुरत जिलेका गया कौसाड़ था।

और भी दो प्राचीन शिलालेखोंमें लिखित हुआ है कि १०५७ और १०६७ ई० के बीच परमार-वंशके महाराजाधिराज कृष्णराज भिनमाल शासन करते थे। उनके पिताका नाम ठण्डुक और पितामहका नाम देवराज रहा।

कृष्णराज उदैयर (सार्वभौम)—महिसुरराज चाम-राज उदैयरके पुत्र। १७८५ ई०को चामराजके मरने पर टीपू सुलतानने राजभवनको लूट रानियोंको

बन्द करके रखा था। उस समय उनके साथ चाम-राजका एक लड़का था। उसकी अवस्था २ वर्षकी थी और टीपूका यह भेद समझा न था। यदि वह जानते तो बोध होता है, उसे भी मार डालते। उसी बच्चेका नाम कृष्णराज है। टीपूके मरने पर दूसरे दिन पुरनिया नामक एक ब्राह्मण मन्त्री उसको लेकर अंगरेज सेनापति हैरिसके डेरे पर पहुँचे और जाकर निवेदन किया कि वही राजपुत्र महिसुरराज्यके पतले उत्तराधिकारी थे। अंगरेज सेनापतिने उनकी बात पर विश्वास करके १७८८ ई० को उसी ३ वर्षके राजकुमारको राजा और पुरनियाको मन्त्री बना दिया। पीछे राजकुमारका नाम, महाराज कृष्ण-रायायु उदैयर पड़ा था। मन्त्री पुरनियाने औरङ्ग-पत्तनको बदल महिसुरमें राजधानीको स्थापन किया और टीपू सुलतानका मकान तोड़ उसीके साज-सामानसे कृष्णराजका बहुत बड़ा राजप्रासाद बनवा दिया। १८१४ ई०को कृष्णराज बालिग हो अपने आप राज्य शासन करने लगे। उन्हें ब्रिटिश गवर्नमेंण्टसे K. G. C. S. I. उपाधि मिला था। १८६८ ई०को ७२ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने परलोक गमन किया। इनके समय मन्त्रिवर पुरनियाके सुशासन-गुणसे महिसुर राज्यकी यथेष्ट उन्नति साधित हुई। कृष्णराजके नामपर उनके आश्रित पण्डितोंने कई संस्कृत ग्रन्थ बनाये थे। जैसे—कृष्णाष्टक, गणपतिस्तोत्र, गणेश-नवरत्नमालिका, ग्रहणदर्पण (ज्योतिष), चामुण्डा-लघुनिघण्टु, चामुण्डानक्षत्रमालिका, देवतानाम कुसुममञ्जरी, रामकृष्णस्तोत्र, शकपुरुष-विवरण, शिव-नक्षत्रमालिका, शिवमङ्गलाष्टक, श्रीतत्त्वनिधि, सांख्य-रत्नकोष, सूर्यचन्द्रस्तोत्र, सौगन्धिकापरिणय इत्यादि।

कृष्णराजिका (सं० स्त्री०) काका सरसा।

कृष्णराम—१ कोई प्रसिद्ध नैयायिक। यह अनुमान-मणिदीधितिप्रसारिणी नामसे नव्यन्यायकी टीकाके रचयिता थे। २ कोई स्मार्त पण्डित। इन्होंने उत्तर्ग-निर्णय, दानोच्चोत, प्रायश्चित्त-कुतूहल आदि संस्कृत ग्रंथ बनाये। ३ कोई स्मार्त पण्डित और विख्यात टीकाकार। इन्होंने कर्मकालप्रकाशिका नामक धर्म-

शास्त्र, छन्दःसुधाकर, वृत्तदीपिका तथा वृत्तमुक्तावली नामसे छन्दोग्रंथ एवं छन्दःकौस्तुभटीका, छन्दो-दीपिकाटीका, छन्दोमञ्जरीटीका, भट्टहरिश्चन्द्र-टीका, रामायणटीका, वृत्तमुक्तावलीटीका, वृत्तरत्नाकरटीका आदि संस्कृत ग्रंथोंकी रचना की। ४ कोई नव्य संस्कृत कवि। इन्होंने सारशतक, मुक्तकमुक्तावली और जयपुरविलास काव्यको प्रणयन किया।

कृष्णराम—बङ्गालप्रान्तीय यशोर जिलेके एक राजा। इन्हें प्रायः १७०४ ई०को मनोहररायका उत्तराधिकार मिला था। कृष्णरामके पीछे सुखदेव राय गद्दी बैठे (१७२८-४२)। यशोर देखो।

कृष्णराम वसु—दयाराम वसुके पुत्र। इनका आदि निवास हुगली जिलेका तड़ा था। १६५५ शक (१७३३ ई०)को ११ पौषके दिन कृष्णरामका जन्म हुआ। उनके पिता दयाराम घराज भगड़ोंसे घबरा तड़ा छोड़ कर बाकीमें जा कुछ दिन रहे थे। कृष्णरामकी अवस्था उस समय १४।१५ वर्षकी थी। उनके पिता सदासीन रहते थे। उनका जी बहलाने और ठण्डा करनेके लिये कृष्णराम उसी अवस्थामें पुराणोंकी कथा सुनाते थे। कभी कभी वह शास्त्रके श्लोक और अच्छी अच्छी बातें भी कह करके थे। फिर कृष्णरामने एक संन्यासीसे दीक्षा ली। इस घटनाके कुछ काल पीछे वह लोग कलकत्तेमें आकर रहने लगे। कृष्णरामने बापसे कुछ रुपये ले अपने आप व्यवसाय किया था। एकबार उन्होंने मुफत्सिलका नामक अपने आप पकौली लिया और उसे बेचकर ४० हजार रुपया कमाया। इस रुपयेको लगा और काम बढ़ा उन्होंने बहुत रुपया उपार्जन किया था। इसके पीछे व्यवसाय बन्द करके उन्होंने नौकरी करनी चाही। २ हजार रुपये मासिक पर वह हुगलीमें ईष्ट इण्डिया कम्पनीके दीवान हो गये। इसीसे लोग इन्हें कृष्णराम दीवान कहते थे। फिर उसी वर्ष वह नौकरी छोड़ कलकत्तेके बागबजारमें रहने लगे। उन्होंने यशोर, वीरभूम और हुगली जिलेमें बहुतसी जमौन्दारी खरीदी थी।

१८११ ई०को ७८ वर्षकी अवस्थामें कृष्णराम स्वर्ग-

बासी हुए। वह बङ्गालमें दाताके नामसे विख्यात थे। उनका दान भी सामान्य न रहा। कहते हैं कि उन्होंने एकबार १ लाख रुपयेके चावल मोल लिये थे। उसके पीछे देशमें दुर्भिक्ष पड़ा। यदि वह चाहते, तो उस समय चावल बेच बहुतसा रुपया कमा लेते। परन्तु उन्होंने लाभ की परवा न करके सभी चावलसे भक्तसत्र खोल दिया। इस आत्मत्यागसे उनका यश चारों ओर फैल गया। घरमें दुर्गास्वके उपलक्ष पर वह बड़ा दान करते थे। कहा जाता है कि प्रतिमाविसर्जन करके घर लौटते समय जो कोई भरा घड़ा दिखा सकता, उसी को रुपया मिलता था। इसीलिये गङ्गातीरसे उनके लौटते समय राहके दोनों ओर श्रैकड़ों लोग भरे घड़े रखे बैठे रहते थे।

धर्मपरायण कृष्णरामकी अनेक कीर्तियाँ हैं। श्रीरामपुरके निकट माहेशका रथ उन्हींकी कीर्ति है। यशोरमें मदनगोपालजी और वीरभूममें राधावल्लभजीको स्थापन करके सेवाके लिये यथेष्ट परिमाण भूमि भू-पुजारी ब्राह्मणोंकी हस्ति वह लगा गये हैं। काशीके नानास्थानोंमें उन्होंने शिवको स्थापन किया। कृष्णराम भागलपुर जिलेके जहंगीरा नामक स्थानमें गङ्गागर्भके किसी पहाड़ पर महादेवका अच्छासा बड़ा मन्दिर बनवा गये हैं। तड़ासे मथुरावाटी तक उन्होंने जो राह बनायी, वह कृष्णजङ्गल कहायी है। गयाके रामशिला पहाड़की उन्होंने सोढ़ियाँ भी निकलवायी थीं। उन्हींके रुपये और यत्रसे यात्रियोंके सुभौतेको कटकसे पूरी तक प्रायः २० कोस राहकी दोनों ओर आमके पेड़ लगाये गये। जगन्नाथ, बलराम और सुभद्राके लिये उन्होंने ३ रथ बनवा दिये और उसके व्यय आदिको यथेष्ट भूसम्पत्ति दे रखी है। यात्रियोंकी सुविधाके लिये पुरीके बाहर उन्होंने एक बड़ा तलाव खुदवाया। उनके मदनगोपाल और गुरु-प्रसाद दो लड़के रहे।

कृष्णरामदास—एक बंगाली कवि। यह निमताके रहनेवाले और जातिके कायस्थ थे। इनके पिता नाम भगवतदास था। इनके बनाये बंगलाके २ पुस्तक मिलते हैं। उनमें एकका नाम कालिकामङ्गल और

दूसरेका नाम रायमङ्गल है। रायमङ्गल—खासपुर परगनेके बड़िया गाँवमें १६०८ शककी लिखा गया। एक दिन जब उस गाँव किसी कार्यके उपलक्षमें गये थे। उस दिन सोमवार भाद्रमास था। किसी गोपालकी गोशालामें उन्हें रहना पड़ा। उन्होंने बीती रातको स्वप्न देखा कि सिंह पर चढ़के उनके पास किसीने जाकर कहा था—‘हम दक्षिणराय हैं। माधवाचार्यने हमारे मङ्गलगीत बनाये हैं। परन्तु वह गीत हमें अच्छे नहीं लगते। माधवाचार्य हमारा माहात्म्य नहीं समझते। इसलिये तुम ‘रायमङ्गल’ गीत बनावो। जो तुम्हारे बनाये गीत न सुनेगा, हमारा सिंह उसका संबंध मार डालेगा। इसी स्वप्नको देखके कृष्णरामने रायमङ्गल लिख डाला।

कृष्णरामका कालिकामङ्गल विद्यासुन्दरके गल्पके आधार पर लिखा गया है, परन्तु उसमें वर्धमानका नाम और गन्धर्व भी नहीं है। भारतचन्द्रका विद्यासुन्दर लिखा जानेसे बहुत पहले कवि रामकृष्णने अपना कालिकामङ्गल लिखा था। दोनों पुस्तक पढ़नेसे कई बार ऐसा समझ पड़ता कि भारतचन्द्रने कृष्णरामका अनुकरण किया है। भारतचन्द्रने उससे पहलेके किसी विद्यासुन्दरके लेखका नाम नहीं निकाला। परन्तु विद्यासुन्दरके सहारे भारतचन्द्रके पीछे भी बङ्गालके जिन कवियोंने ग्रंथ बनाये, उन्होंने अपने पुस्तकमें रामकृष्णको विशेष प्रशंसा की है। बङ्गालके इन कविका नभम प्राणराम है।

कवि कृष्णरामकी जन्मभूमि निमतः ईष्टर्न बङ्गाल छोट रेलवेके बेलघरिया स्टेशनसे आध कोस दूर है। अब उनके वंशमें कोई नहीं रहा।

कृष्णरामराय—वर्धमानके एक राजा। वह कपूरवंशीय क्षत्रिय घनश्यामके उत्तराधिकारी थे। कृष्णराय अपने नामकी सनद दिल्लीके बादशाहसे ले आये थे। सन्धतः इसीसे राजा उपाधि इस वंशमें पहले पहले चला होगा। १६८६ ई०को उन्होंने प्रवलपराक्रान्त की वर्धमानके निकटवर्ती चेतुयाके राजा शोभासिंहकी राजधानी आक्रमण की थी। ताहुकदार शोभासिंहने राजा कृष्णरायके अन्यायाचरणसे बिगड़ विद्रोह

ठठाया और अफगानयोद्धा रहीमखान्की सहायतासे मुसलमानोंमें राजधानी आक्रमण करके कृष्णरामकी मार डाला। राजाके घरानेके सभी लोग कारामारमें पड़े थे। केवल राजपुत्र जगत्‌राम ठाका भाग जानेंसे बच गये। सिन्धीवंशवालीमें लिखा है कि कृष्णरामके लड़के जगत्‌रामने स्त्रीके वेशमें वर्धमानसे भाग कृष्णनगरके राजा रामकृष्णका आश्रय लिया था।

कृष्णराय—१ दक्षिणापथवाले चेरराज्यके कोई गङ्गवंशीय राजा। यह वीररायके पुत्र थे। २ विजयनगरके प्रसिद्ध राजा। कृष्णदेवराय देखो। ३ आम्बुवतीकल्याण नामका संस्कृत नाटक बनप्तिवर्त्ति। ४ सिद्धान्तसंग्रह नामक ज्योतिषग्रन्थके प्रणेता।

कृष्णरक्षा (सं० स्त्री०) कृष्ण सती रोहति, कृष्ण-रक्षक-टाप। जतुकालता।

कृष्णरूप—हिन्दीके कोई कवि। इनकी कविता अधिक प्रचलित नहीं—

“रो मालिनी खेलतमें मेरी गंदकों लई है चोरई।

मालवाल संग खेल मन्ने ते चक्रियामें उरारै ॥

लपट भपट बहियां गई लोन्ही एक बई हो पारै।

चबोर गुलाल मन्ने मुखरोरी पिचकाझिरीं भिजारै।

कृष्णरूप हो गई री म्वारन सुधवध सब बिसरारै ॥”

कृष्णरूप्य (सं० त्रि०) कृष्णस्य भूतपूर्वः, कृष्ण-रूप्य। पञ्चादश ५। पा ५। १। ५४। कृष्णसे पहले सम्बन्ध रखनेवाला।

कृष्णल (सं० पु०) कृष्णं कृष्णवर्णं लाति। १ हुंघची। २ रत्नी (तौल)। ३ काली हुंघची।

कृष्णलक, कृष्ण देखो।

कृष्णलवण (सं० स्त्री०) कृष्णं लवणम्, कर्मधा०। काला नमक। इसका संस्कृत पर्याय—रक्षक, अथ और सौवर्चल है।

कृष्णला (सं० स्त्री०) कृष्णं पस्तार्थं लक्ष-टाप। १ सफेद हुंघची। २ हुंघची। ३ काली हुंघची। ४ रत्नी (तौल)। इसका संस्कृतमें साङ्गुडा, गुञ्जा, रत्तिका, काकणत्तिका, काकादनी, काकतिता, काकजङ्गा और शिखण्डनी भी कहते हैं।

कृष्णलौह (सं० स्त्री०) निम्बकर्मधा०। १ काललौह। २ तोष्णलौह।

कृष्णलोहित (सं० त्रि०) कृष्णः सन् लोहितः, कर्मधा० ।
कासा कास, बैजनी ।

कृष्णलोह, कृष्णलोह देखो ।

कृष्णवक्त्र (सं० पु०) कृष्णं वक्त्रं यस्य, बहुव्री० । काले
मुँहका बन्दर ।

कृष्णवनालुक (सं० स्त्री०) एक लकड़ी का लुक । यह रुचि
उत्पन्न करनेवाला, महासिद्धिकर और जादूगर है ।

(बीजकनिष्ठः)

कृष्णवर्ण (सं० पु०) कृष्णो वर्णो ऽस्य, बहुव्री० । १ राहु ।

कृष्णो ऽश्वो वर्णः । २ शुद्ध । ३ काला रंग । ४ काला
मेनफल । ५ कस्तूरी । ६ सुस्ता । ७ गीठा । ८ करेन् ।

९ कोई मछली । (स्त्री०) १० पानी । ११ कौंग ।

१२ काला पगर । (त्रि०) १३ काले रंगवाला ।

कृष्णवर्तनि (टि० त्रि०) कृष्णो वर्तनिर्मागो यस्य,
बहुव्री० । काली राहवाला । (चक्र ८२११८)

कृष्णवर्मा (सं० पु०) कृष्णं वर्मं धूस्त्रप्रसाररूप गति-
स्यां यस्य, बहुव्री० । १ भाग । २ चीता । ३ भिलावा ।

४ राहुघड । (स्त्री०) ५ कृष्णस्वरूप गति । (त्रि०)

६ तुरा काम करनेवाला ।

कृष्णवर्मा—एक कदम्बरज । देवगिरिके एक दानपत्रमें
लिखा है कि उनके पुत्रका नाम देववर्मा था । उन्होंने
एक अश्वमेधयज्ञ किया ।

कृष्णवर्वर (सं० पु०) नित्यकर्मधा० । काली तुलसी ।

कृष्णवल्लीक (सं० पु०-स्त्री०) काली बाँधी ।

कृष्णवज्रिका (सं० स्त्री०) कृष्णा वज्रिका, कर्मधा० ।
मालवेमें उत्पन्न होनेवाली जतुका लता ।

कृष्णवल्ली (सं० स्त्री०) १ काली तुलसी । २ लकड़ी ।
३ काला अमन्तमूल ।

कृष्णवानर (सं० पु०) काले मुँहका बन्दर । इसका
संस्कृत पर्याय—गोलाङ्गूल, गौरास्य, कपि और कृष्ण-
मुख है ।

कृष्णवार्ताकु (सं० पु०) काला बैंगन या भाँटा ।

कृष्णविषाणा (सं० स्त्री०) कृष्णस्य कृष्णसारम्भस्य
विषाणा, इ-तत् । यज्ञमें दीक्षित यजमानके कण्डूयनकी
काले हिरनके सींगका बना एक द्रव्य । कात्यायन-
श्रौतसूत्रमें लिखा है :—

‘‘कृष्णविषाणां विविधं पञ्चवलिं योक्तव्यं दशायां वधोत ।’’

तीन या पाँच गंठीली कृष्णविषाणायें अर्धमुन्ही
करके कपड़ेके खूंटमें बांध देनेी चाहिये । परिशिष्ट-
कारके मतमें कृष्णविषाणाकी एक विल्ली बराबर
रखते और दाहिनी ओर बांधते हैं ।

‘‘विवलिः पञ्चवलिर्वा विविधाऽह भवति । सव्याहदित्येके ।’’ (कर्क)

‘‘तथा कण्डूयनम् ।’’ (कात्यायनश्रौतसूत्र) ‘‘दीक्षितेन कर्तव्यम् ।’’ (कर्क)

तीन या पाँच गांठवाली कृष्णविषाणा दाहिनी ओर
बांधनी पड़ती है । किसी किसोने बाँधे और बांधनेको
बात भी कही है । यज्ञमें दीक्षित यजमानको उसी
कृष्णविषाणासे कण्डूयन करना चाहिये ।

कृष्णमृगो विषाणं योनियस्यः, बहुव्री० । २ दीक्षित
यजमानके धारण करने योग्य काले हिरनका
चमड़ा ।

कृष्णबीज (सं० स्त्री०) कृष्णं बीजं यस्य, बहुव्री० ।

१ कलौंदा, तरबूज । इसे संस्कृतमें कालिन्द और
सुवर्तुल भी कहते हैं । यह घाही, शुक्र निगाड़ने-
वाला, शीतल, पकानेमें भारी, उष्ण, खारा, पित्तवधक
और वायु तथा स्नेहनाशक है । (भावप्रकाश)

(पु०) कृष्णं उग्रं बीजं यस्य, बहुव्री० । २ लाल
सेजन ।

कृष्णवृन्ता (सं० स्त्री०) कृष्णं वृन्तं यस्य, बहुव्री० ।

१ पाटलावृक्ष, पीडरी । इसका संस्कृत पर्याय—पाटलि,
पाटला, मोघा, मधुकूती, फलेबहा, कुवेराक्षी, काल-
स्थाली, पलिवल्लभा और ताम्रपुष्पी है । २ माषपर्णी ।
संस्कृतमें सिंहपुच्छी, ऋषिप्रोक्ता, माषपर्णी, महा-
सहा, काव्योजी और पाण्डुलोमशपर्णिनी है ।
३ गन्धारीवृक्ष । इसका पर्याय—गान्धारी, भद्रपर्णी,
श्रीपर्णी, मधुपर्विता, काश्मरी, काश्मीरी, होरा,
पीतरोहिणी, मधुरसा और महाकुसुमिका है ।

(भावप्रकाश) ४ रसभरी ।

कृष्णवृन्तिका, कृष्णवृन्ता देखो ।

कृष्णविषा (सं० स्त्री०) दाक्षिणात्यकी एक प्रसिद्ध नदी ।

इस नदीसे देवहूद और जातिस्मरहूद नामक २ हूद
उत्पन्न हुए हैं । इसका चक्षता नाम कृष्णा है ।

(भारत, वन, ८५ पृ०)

काली हिरण्मयी संस्कृतमें लक्ष्मणधार और लक्ष्मण-
सारङ्ग भी कहते हैं। वह वज्रपायमें और सिद्धहस्तमें

पहाड़ोंमें अधिक देख पड़ता है। मलय और सुमात्रा द्वीपमें काले हिरनोंका दल बंधा रहता है। मलयके रहनेवाले उसे 'इसीरताम्' कहते हैं। दूसरे हिरनोंसे वह आकारमें कुछ बड़ा होता है। रंग कितना ही काला रहता है। जन्मसे २ वर्षके बीच उसको टुछी और गलेमें लम्बे लम्बे बाल आ जाते हैं। दूसरोंके ऐसे बाल नहीं निकलते। छोड़ेसे काला हिरन कुछ कुछ मिलता है। इसीसे ग्रीक-विद्वान् पारिस्तातकने उसका नाम 'इपिलिफास' रखा है। कानके पास और पूंछमें दूसरे हिरनोंसे बाल कुछ अधिक रहते हैं। काले हिरनोंमें नरके सींग होते, स्त्रीके नहीं। मादा काले हिरनके गलेमें बाल कुछ छोटे आते हैं। समय समय पर काले हिरन दल बांध कर घूमा करते, किसी किसी समय वयस्कालके अनुसार जोड़े जोड़े अलग देख पड़ते हैं। स्थानविशेषमें प्राकृतिका वेशभूषण लगता है। जहाँ भली भाँति खानेकी मिलता और बाघ आदिका डर नहीं रहता, काला हिरन कुछ कुछ अधिक बढ़ता है। फिर खानेकी सामग्री यथेष्ट न पाने और हिंस जन्तुसे सताये जानेपर उसका आकार प्रायः छोटा होता है। बोरलियो और यवहोष्ठी भी कृष्णसार देख पड़ता है। वैद्यकमतमें काले हिरनका मांस—खाड़ी, रुचिकर, बलकर और ज्वरनाशक है।

कृष्णसारका (सं० स्त्री०) काला शीघ्रम।

कृष्णसारक (सं० पु०) कृष्णः सारको मृगः, कर्मधा० ।

१ करसायल, काला हिरन।

"कृष्णसारक मध्यमभावे लोहितसारकम्।"

(काव्यायनश्रीतस्म अ० २१)

कृष्णसारथि (सं० पु०) कृष्णः सारथियस्य, बहुव्री० ।

१ मंभली पाण्डव अर्जुन। भारतके महायुद्धमें अर्जुनके कहनेसे कृष्णने उनका सारथि होना स्वीकार किया था। २ अर्जुनवृद्ध।

कृष्णसारमांस (सं० स्त्री०) काले हिरनका मांस।

कृष्णसार देखो।

कृष्णसारा (सं० स्त्री०) काला शीघ्रम।

कृष्णसारिवा (सं० स्त्री०) १ श्यामाक्षता, सावां। यह

ठण्डी, बल बढ़ानेवाली, मधुर और कफको दूर करनेवाली है। (वैद्यकनिघण्टु)

कृष्णसिंह—कृष्णगढ़के एक कछवाह राजा। यह सूर्यसिंहके बड़े भाई थे। सूर्यसिंहने १६१५ ई०को इन्हें मार डाला। बादशाह जहांगीरने कृष्णसिंहकी बहनसे विवाह किया था। उन्होंने गर्भसे सम्राट् शाहजहान्ने जन्म लिया।

कृष्णसीता (वै० द्वि०) कृष्णमार्ग, अंधेरी राह चलनेवाला। (अक १।१४०।४)

कृष्णसुन्दर (सं० पु०) कृष्णवर्णोऽपि सुन्दरः। १ श्रीकृष्ण। २ काला होते भी अच्छा लगनेवाला पुरुष।

कृष्णसूक्ष्मफला (सं० स्त्री०) शारिवाभेद, एक प्रकारका अनन्तमूल। यह वीर्य बढ़ानेवाली और अग्निमान्य, अरुचि, श्वास, कास, भ्रम, विष, दीपचय, रक्तदोष, प्रदर, ज्वर तथा भतीसार दूरकरनेवाली है।

(वैद्यकनिघण्टु)

कृष्णस्कन्ध (सं० पु०) तमालवृक्ष, तमास्कका पेड़।

कृष्णस्त्रोत (सं० पु०) रसाञ्जन, रसोत।

कृष्णस्त्रसा (सं० स्त्री०) कृष्णस्त्र स्त्रसा भगिनो, इतत् दुर्गा।

कृष्णा (सं० स्त्री०) कृष्णेनक् चत्वं ततष्टाप्। १ द्रौपदी। द्रौपदी देखो। २ पुराणकी कही हुई एक नदी।

कृष्णानरीदेखो। ३ नीलका पेड़। ४ विश्वप्रिय। ५ दाढ़।

६ काला पुनर्नवा। ७ काला जीरा। ८ गंभारी। ९

कुटको। १० अनन्तमूल। ११ राई। १२ श्यामा,

चिड़िया। १३ पर्पटी, पपड़ो। १४ काकोली। १५

सोमराज्जी। १६ विषैली जीक। यह काली और मोटी

होती है। (संहत) १७ मिर्च। १८ पीपल। १९

इन्द्रयव। २० काली तुलसी। २१ सिरिष। २२ पर-

वल। २३ सेवती। २४ जटामांसी। २५ दूर्वा।

२६ काली निगुण्डी। २७ बनकुरवी। २८ कसुरी।

कृष्णा—मन्त्राजप्रान्तके उत्तरपूर्व सागरतटका एक

जिला। यह अक्षा० १५° ३७' एवं १७° ८' उ० और

देशा० ७८° १४' तथा ८१° १२' पू०के बीच पड़ता है।

इसका क्षेत्रफल ८४८८ वर्गमील है।

कृष्णा जिलेके पूर्व बङ्गालकी खाड़ी, पश्चिम

निजामका राज्य तथा करनूल जिला और उत्तर एवं दक्षिण क्रमशः गोदावरी तथा नेल्लूरका जिला लगा है। कृष्णा नदी इसकी पश्चिम सीमा पर बहती है। इसीसे लोग जिलेको भी कृष्णा ही कहते हैं। पश्चिमका देश पथरीला है। बीचमें और उत्तरको और काली मट्टीका मैदान है। पूर्वमें कृष्णाके पानीसे घिरी हुई तीखूटी भूमिमें धानको खेती बहुत है। इस जिलेमें पेड़ अधिक नहीं होते। पालनाद और विनुकोंड जंगलमें चीते तथा सांभर हिरन मिलते हैं। भीतरी तालुकोंमें तेंदू और भालू भी कहीं पहाड़ोंकी खोहमें छिपे रहते हैं। विड़ियां अधिक हैं। कोल्लेर भीलमें पानीके सभी पखेरू देख पड़ते हैं। उसमें मछलियां भी बहुत हैं।

कृष्णाका जलवायु स्वास्थ्यकर है। पर कहीं कहीं घोषकी प्रबलता रहती है। ऊपर लोगोंको बहुत कम आता है। वर्षमें प्रायः ३३ इंच पानी बरसता है। खेत सींचनेके लिये कृष्णा नदीसे नहर निकली है। परन्तु बाढ़ प्रायः आया करती है। १७८८ ई०को मसूली-पटममें समुद्रकी लहर १२ फीट चढ़ गयी थी। उसमें २० हजार लोग डूब मरे। १८६४ ई०को इससे भी बुरी दुर्दशा हुई। समुद्रने १७ मील तक इस जिलेकी भूमि डूबा दीथी। उसमें ३०००० मनुष्योंने अपने प्राण गंवाये।

जहां तक विदित हुआ है, पहले अश्वशंके बौद्ध राजा कृष्णामें राजत्व करते थे। उन्होंने अमरावतीमें एक स्तूप बनाया। उनके पीछे ई० १७ वीं शताब्दीके आरम्भमें पूर्वसे ब्राह्मण मतावलम्बी चालुक्य आये। उन्होंने उण्डवेल्ल और दूसरे स्थानोंकी चटानोंको तोड़ तोड़ कर उनके भीतर मन्दिर बनाये थे। प्रायः ८८८ ई०को उनका स्थान चोल राजाओंने ले लिया। फिर २ शताब्दी पीछे वरङ्गलके गणपतियोंका दबदबा बढ़ा। उनके राज्यकालको मोत्तुपल जिलेमें मार्कापोली जाकर उतरि थे। उस समय यह जिला दो अधिकारोंमें बंटा गया। उड़ीसाके राजा उत्तर-भाग और रेड्डी लोग दक्षिणभाग पर राजत्व करते थे। उनके दुर्गोंका ध्वंसावशेष कीडवीड, वेति-

यमकोड और कीडपल्लिमें आज भी देख सकते हैं। १५१५ ई०को विजयनगरके कृष्णदेवन जिलेका उत्तर-भाग उड़ीसाके गणपति राजाओंसे छीन लिया था। १५६५ ई०को जब विजयनगर साम्राज्य पतित हुआ, कृष्णाजिला गोलकुण्डेकी कुतुबशाहीमें लगने लगा और अन्तको औरङ्गजेबकी कदशाहीमें मिल गया।

१६११ ई०को मसूलीपटममें अंगरेजोंने अपना दूसरा उपनिवेश स्थापन किया था। जबतक (१६४१ ई०) वह मद्राज नहीं पहुँचे, मसूलीपटम भी उनका बड़ा भण्डा रहा। इसके तीन वर्ष पीछे उच्च और १६०८ ई०को फ्रेंच भी आ पहुँचे। परन्तु १७५० ई० तक किसी यूरोपीय शक्तिने राजनीतिक प्रभाव नहीं दिखाया। दो वर्ष पीछे दक्षिणके सूबेदारने फ्रेंचोंको सबका सब उत्तर सरकार दे डाला, जिनसे वह अङ्गरेजोंके हाथ आया। १७५८ ई०को अंगरेजों और फ्रेंचोंमें लड़ाई छिड़ी थी। सार्ज क्लाइवने बङ्गालसे कर्नल फोर्डको फ्रेंचोंपर धावा करनेको भेजा। उन्होंने कीदोरमें फ्रेंचोंको हराया और मसूलीपटम तक उन्हें भगाया था। फिर कर्नल फोर्डने वहाँ उन्हें घेर लिया। अन्तको रातमें उन्होंने दुर्ग आक्रमण करके अधिकार किया था। इस जीतका फल यह हुआ कि दक्षिणके सूबेदारने सारा सरकार अंगरेजोंको दे डाला।

१७८६ ई०को सत्तनपल्ले तालुकके अन्तर्गत अमरावतीका स्तूप आविष्कृत हुआ था। वीहांकी यह बड़ी कीर्ति थी। इसका कुछभाग लन्दन, कलकत्ता और मद्राजके सरकारी प्रजायबवरोमें रखा है। कहते हैं, पहले अमरेश्वरका मन्दिर भी बौद्ध वा जैनस्थान था। तेनालि तालुकमें एक बड़े पुराने स्थान चन्दवोलुका ध्वंसावशेष पड़ा है। उसमें बौद्ध मन्दिर और समाधि विद्यमान है। जगन्मयपेट और गुडिवाड़में भी बौद्धस्तूप हैं। चन्दवोलुमें सोनेके सिक्के मिले हैं। १८७४ ई०को मजदूरोंने कितनी ही सोनेकी ईंटें पायीं। भट्टिप्रोडुमें पहले एक बड़िया बौद्धस्तूप था। विनुकोंडमें शिलालेख बहुत हैं।

कृष्णाजिला ११ तालुकोंमें बंटा है—वेजवाडा,

गण्टूर, नूजवीद, नन्दोयाम, गुदिवाड, बन्दर, मण्डूर, सत्तनपल्ले, तेनालि, नरसरावपेट, पल्लनाद, विनुकोड और बापतल। इस जिलेकी लोकसंख्या २१५४८०३ है। सेकड़े पीछे ८८ हिन्दू, ६ सुसलमान और ५ ईसाई हैं। सोमें ५ मनुष्य हिन्दी बोलते हैं। अवशिष्ट लोगोंकी तेलगु भाषा है। हिन्दुओंमें ब्राह्मणोंका संख्या अधिक है। साधारणतः लोग खेतीबारी करके अपना काम चलाते हैं। धानकी फसल बड़ी होती है। सफेद धानको सींचना और एक स्थानसे उखाड़ कर दूसरे स्थान पर लगाना पड़ता है। काला धान बरसातके पानीमें ही हो जाता है। पल्लनाद और सत्तनपल्लेमें रुई बहुत उपजती है। तम्बाकू यहांसे ब्रह्मदेशकी अधिक भेजी जाती है।

जंगल भूमि गोचारण स्थानकी कोई कमी नहीं। जंगलके अच्छे अच्छे पशु यहां मिलते हैं। भेड़ें बहुत हैं। जंगलकी कमी है। सिवा पत्थरके दूसरी धातु इस जिलेमें नहीं मिलता। कहीं कहीं थोड़ा लोहा और विनुकाडमें तांबा पाया जाता है। अंगरेजोंका अधिकार होनेसे पहले कृष्णा जिलेमें हीरा ढूंढनेके लिये खान खोदनेका बड़ा काम लगा था। प्रो० जीहरी टेवरनियरने लिखा है कि कृष्णा जिलेमें ८०० करट (रत्ती)-का जो हीरा मिला था, वह औरङ्गजेबकी भेजा गया। कुछ अन्यकार इसी हीरेकी कोइलूर समझते हैं।

भेड़ और बकरीके ड्येंका मोटा कम्बल इस जिलेमें कई स्थानों पर बनता है। पल्लंगोंके लिये निमाड पल्लनाद और विनुकोड तालुकमें तैयार की जाती है। विनुकोडमें मोटे गलीचे और ऐन-वोलुमें चटाइयां बनाते हैं। पहले मसूलीपटम्से बढ़िया गलीचे इकट्ठे भेजे जाते थे। आज कल यह काम बिगड़ गया है। पहले जगन्नाथपेटमें रेशमका अच्छा कपड़ा बनता था, परन्तु अब वह भी न रहा। कोडपल्लिमें लकड़ीके खिलोने अच्छे बनते हैं। पहले कोडवीडमें कागज तैयार किया था। परन्तु १८५७ ई० से जब सरकारी दफ्तरोंने उसको लेना बन्द किया, सब काम चौपट हो गया। मसूलीपटम् और

निजामपटम् कृष्णा जिलेकी २ बन्दर हैं। रेलवेसे रुई बाहर बहुत भेजी जाती है। बेजवाड़ेमें चमड़ेका काम बहुत है। मन्द्राज रेलवेकी रुई कोट साइन कृष्णा जिलेसे निकल गयी है। निजामकी गारण्टीड ट्रेड रेलवे और साउदन महरठा रेलवे बेलवाडेमें जा कर समाप्त हुई है। कृष्णा जिलेमें ७०८ मील पक्की और ४४८ मील कच्ची सड़क है। तेनालि और बाप-तल तालुकमें पक्की सड़ककी बड़ी आवश्यकता है। १८३३ ई०को कृष्णा जिलेमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा था। उस समय १५०००० मनुष्य भूखों मर गये। गण्टूर, मसूलीपटम् और बेजवाड़ेमें म्युनिसिपालिटी है। इस जिलेमें कोई बड़ा जेल नहीं। अपराधी राज-महेन्द्री भेज दिये जाते हैं। छोटे छोटे प्रायः २० जेल बने हैं, जिनमें १४१ कैदी रह सकते हैं।

बन्दरमें शिक्षाका अच्छा प्रचार है। मसूलीपटम् और गण्टूरमें कला सम्बन्धीय विद्यालय बना है। कृष्णा जिलेमें १४ अस्पताल और ८ औषधालय सरकारी हैं।

कृष्णाख्या (सं० स्त्री०) काली पुनर्नवा।

कृष्णागुरु (सं० स्त्री०) कृष्ण प्रगुरु, कर्मधा०। काला अंगर। इसका संस्कृत पर्याय—शृङ्गार, विश्वरूपक, शीघ्र, कालागुरु, केश्य, वसुक, कणकाष्ठ, धूपार्ह, वज्र, मिश्रवर्ण और गन्ध है। राजनिघण्टुके मतमें यह कड़वा, उष्ण, तीता लगानेमें ठण्डा और पीनेसे पित्त-नाशक है। कोई कोई इसे त्रिदोषघ्न भी बताता है।

अथ व र्णो।

कृष्णाङ्ग (सं० स्त्री०) जीरकभेद, कलौंजी।

कृष्णाचल (सं० पु०) १ रेवतक पर्वत। इसी पर्वतके पास हारिकापुरी थी। श्रीकृष्णका क्रीड़ास्थान भी कृष्णा-चल ही रहा। कृष्णोऽचलः, कर्मधा०। २ नीलगिरि। कृष्णाचार्य—१ नृसिंहाचार्यके छोटे लड़के। यह सर्व-शास्त्रविशारद रहे। रामराजके आदेशसे कृष्णाचार्यने स्वतन्त्रता प्रकाश की थी। इनके नृसिंहाचार्य और रामचन्द्राचार्य दो पुत्र थे। २ कोई व्यक्ति। इनका दूसरा नाम विद्यानिधितीर्थ था। १३८५ ई०को कृष्णा-चार्य स्वर्गवासी हुए। ३ किसी विख्यात पुस्तकका नाम।

पीछे लोग इसे सखरतीर्थ कहने लगे थे। यह १०८८ ई० की वस्तु बचे।

कृष्णाजटा (सं० स्त्री०) पिप्पलीमूल, पिपरामूल।

कृष्णाजानी (सं० स्त्री०) कृष्णजीरक, काला जीरा।

कृष्णाजिन (सं० स्त्री०) कृष्णस्य कृष्णसारमृगस्य अजिनम्, इ-तत्। १ काले हिरनका चमड़ा। २ किसी ऋषिका नाम।

कृष्णाजिनी (सं० त्रि०) कृष्णाजिनमस्यास्ति, अस्त्यर्थे इति। काले हिरनका चमड़ा रखनेवाला।

कृष्णाञ्जन (सं० स्त्री०) स्त्रीतोञ्जन, काला सुरमा।

कृष्णाञ्जनी (सं० स्त्री०) अन्त्येऽनया, मन्त्र करणे ल्युट्, ततो ङीप्, कृष्णा कृष्णवर्णा अञ्जनी, कर्मधा०। कालाञ्जनी छुप, काली कपास।

कृष्णाञ्जि (वै० त्रि०) कृष्णं कृष्णवर्णं अञ्जि पुण्डं तिलकं यस्य, बहुव्री०। काले तिलकका हिरन।

(वाजसनेयसंहिता १४।४)

कृष्णाढकी (सं० स्त्री०) कृष्णपुष्पाढकी, काले फूलकी अड़हर। यह कसैली, बल बढ़ानेवाली, अग्निदीप्तिकर और पित्त तथा दाहको दवानेवाली है। (वैद्यकनिघण्टु)

कृष्णातण्डुल (सं० स्त्री०) पिप्पलीबीज, पीपलका कण। कृष्णात्रेय (सं० पु०) वैद्यकसंहिताके प्रणेता एक महर्षि।

कृष्णादिगण (सं० पु०) पीपल आदि द्रव्य। इसमें पीपल, चीत, अड़सा, मजीठ, अन्त्रिपर्णी, इसायची, अतिविषा, संभालूका बीज, कटुत्रिक (सोंठ-मिर्च-पीपल), अजवायन, दाख, मदार, चिरायता, बेल, चन्दन, भांगरा, तुलसी, सोंठ, पावला, काकोली, मूर्वा और जीरा आदि द्रव्य रहते हैं। (बाभट)

कृष्णाद्यतैल (सं० स्त्री०) आंखके रोगका एक तेल। पीपल, बिड़ङ्ग, सुलहटी, सैन्धव और सोंठ सब १ शरावक बराबर, १ शरावक तिलोंका तेल, ४ शरावक पानी और १ शरावक बकरीका दूध यथारोति साथ साथ पकाने पर यह तेल बन जाता है। इसे नासकी भांति सूँघते हैं। (चक्रवर्त)

कृष्णाद्यमोदक (सं० पु०) पैर सूजनेका एक औषध। पिपरामूलका चूर्ण २ तोला, चीतकी जड़का चूर्ण ४

तोला, इन्दीकी जड़का चूर्ण ८ तोला और चरंका चूर्ण २० तोला ले २ पल गुड़ डाल लज्जू बना लेना चाहिये। यह औषध मधुके साथ खाया जाता है।

(रसरत्नाकर)

कृष्णाद्यलौह (सं० स्त्री०) शूलरोग पर दिया जानेवाला लौह। पीपल, हर और शुक्ललौहचूर्ण मधु और घीके साथ खानेसे सब प्रकारका शूलरोग दूर होता है।

(रसरत्नाकर)

कृष्णाध्वा (वै० पु०) कृष्णोऽध्वा गमनपथो यस्य, बहुव्री०। अग्नि। (अक्ष० १।४।६)

कृष्णानदी—दक्षिणात्यकी एक महानदी। यह अरब सागरसे ४० मील दूर पश्चिमघाटमें अक्षा० १७° ५८' उ० और देशा० ७३° ३८' पू० से निकली और दक्षिणका बही है। इसकी पूरी लम्बाई ४०० मील है। कोइना, मांगली, वर्णा, पञ्चगङ्गा, घाटप्रभा, मालप्रभा और मूसी कृष्णाकी सहायक नदियाँ हैं। यह कराड, कुवन्दवाड, बेलगांव जिला, दक्षिण महाराष्ट्र एजेंसीके राज्य, बीजापुर निजामके राज्य और कृष्णा तथा गण्टर होती हुई समुद्रमें जा गिरी है। पहाड़के पास इस नदीमें चटानें बहुत हैं और धारा इतने द्रुतवेगसे बहती है कि नाव चल नहीं सकती। परन्तु सतारा जिले और दक्षिण पूर्वके कुछे देशमें इसका पानी सींचके काम आता है। बेलगांव और बीजापुरमें काली महीका इसका किनारा २० से २५ फीट तक ऊँचा है और कितने ही टापू पड़ गये हैं। जिनमें बहुत बड़ हैं। निजामके राज्यमें कृष्णा शोरापुर और रायचूरके मैदान पर नीचे उतर पड़ी है। लगभग ३ मील तक पानी ४०८ हाथ ऊँचे से गिरता है। शोरापुरमें भीमा और रायचूरमें तुङ्ग-भद्रा कृष्णासे मिली हैं। बेजवाडेमें जहाँ यह पहाड़ोंके बीचसे निकली है, एक बांध बनाकर सींचनेके लिये नहर चलायी गयी है। बांधके नीचे मन्द्राज रेलवेके लिये इस पर पक्का पुल बंधा है।

कृष्णाकी संस्कृतमें कृष्णसमुद्रवा, कृष्णविष्णा, कृष्ण-वेष्णा और कृष्णवेणी भी कहते हैं। इसके उत्पत्तिस्थान पर एक ऊँचे पहाड़के नीचे महादेवका मन्दिर है। एक गोमुखाकर भरनेसे पानीका स्रोत बहा करता

है। कल्याणदेवी इस स्थानकी अधिष्ठात्री देवता हैं। वने पेड़ पत्तोंसे कल्याणका उत्पत्तिस्थान चिरा है। वह एक महातीर्थ समझा जाता है। स्कन्दपुराणके कल्याणमाहात्म्यमें लिखा है कि वहां नहानेसे गङ्गास्नानका फल मिलता है। इसीसे इस नदीका एक नाम कल्याणगङ्गा भी है। नानादेशोंसे तीर्थयात्री कल्याणस्नान करने आया करते हैं। वैद्यकमतमें कल्याणका जल स्वच्छ, रुचिकर, दीपन और पाचक है।

कल्याणनन्द—१ तत्वबोधिनी नामक संस्कृतग्रन्थ बनाने वाले। इस ग्रन्थमें शाक्तोंका कर्तव्याकर्तव्य निरूपित हुआ है। २ तन्त्रसारके रचयिता। इनके सुविख्यात ग्रन्थमें तान्त्रिकोंका अनुष्ठेय विधि बताया गया है। ३ मानसोद्भास नामक ग्रन्थ बनानेवाले। ४ वैदिक-सर्वस्व नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। यह ग्रन्थ १८५६ ई०को बनाया गया। ५ सङ्गदयानन्द नामक संस्कृत काव्य लिखनेवाले। ६ सिद्धान्तसिद्धान्त नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। ७ कोई दार्शनिक। इन्होंने भी एक सांख्यकारिका रची थी। ८ त्रिषु-सङ्गनामके भाष्यकार। ९ बालकल्याणनन्द कहलाने वाले कोई द्राविड़ पण्डित। इन्होंने ईश, केन, कठ, कान्दोग्य, तैत्तिरीय आदि उपनिषदोंकी व्याख्या, भिन्नसूत्रभाष्यके वार्तिक और प्रणवार्थनिर्णय नामक संस्कृत ग्रन्थकी प्रणयन किया। (बाबकृष्ण देखो।)

कल्याणनन्द विद्यासागर—बङ्गालके नदिया जिलेके महेशपुरके एक विख्यात पण्डित। इन्होंने कल्याणलौकान्त व्याकरण प्रणयन किया। इस ग्रन्थमें भाँति भाँतिके कन्दोंसे उत्कृष्ट कविताके द्वारा व्याकरणसूत्र और उसमें कल्याणगुणानुवाद कहा गया है।

कल्याणनन्द व्यासदेव रागसागर—रागकल्पद्रुम नामक बहुत बड़े सङ्गीतकोषके प्रणेता। कल्याणनन्द अपने आप एक उस्ताद और अच्छे गानेवाले थे। उन्होंने राजा राधाकान्त देवके शब्दकल्पद्रुमको देख वैसी ही बड़ी एक बहुत सी रागरागिनियोंसे मिलो देश देशकी जीतावली संग्रह करके एकत्र प्रकाश करनी चाही थी। उसीके अनुसार बंगला, हिन्दी, कर्णाटी, मराठी, तैलङ्गी, गुजराती, उड़िया, फारसी, पुरबी, संस्कृत

और अंगरेजी आदि भाषाओंसे नाना स्वरोंके पुराने और उस समयके प्रचलित गाने संग्रह करके चार खण्डोंमें विभक्त बहुत बड़ा रागकल्पद्रुम कल्याणनन्दने प्रकाश किया। यह अपूर्व सङ्गीतभाण्डार १८०० विक्रमाब्द (१८४३ ई०) को पूरा हुआ था। कोई कोई कहता जिस जिस भाषामें उन्होंने गान संग्रह किया, उसको थोड़ा बहुत पढ़ा था। राजा राधाकान्त देव उनका बड़ा सम्मान करते थे। राजाके घरमें सङ्गीतके संग्रामस्थल पर कल्याणनन्द मध्यस्थ रहते थे।

कल्याभा (सं० स्त्री०) कल्या सती आभाति, कल्या-आभा-क-टाप्। कालांजनी, काली कपास।

कल्याभिसारिका (सं० स्त्री०) नायिकाभेद। अंधेरी रातको अपने प्यारेके पास जानेवाली स्त्री कल्याभिसारिका कहलाती है।

कल्याभ्र (सं० स्त्री०) १ नीलाभ्र, काला अबरक। २ काला बादल।

कल्यामिष (सं० स्त्री०) कल्याणवर्णन वा आमिषति स्पर्धते वर्णन, कल्याण-आमिष-क। झोड़ा।

कल्यामूल (सं० स्त्री०) पिप्पलीमूल, पिपरामूल।

कल्याय (सं० स्त्री०) कर्मधा०। कान्तलौह, ईसपात।

कल्यायस (सं० स्त्री०) कल्याणायसम्, स्वार्थे णप्।

१ कल्याणवर्ण लौह, ईसपात। २ तौल्यलौह, खेड़ी। ३ सुण्डलौह।

कल्याचिं (सं० पु०) कल्याणवर्णं अचिर्यस्य, बहुव्री०। १ अग्नि। २ चीत।

कल्याजक (सं० पु०) काली पत्तीकी छोटी तुलसी। इसका संस्कृत पर्याय—कल्यामाल, मालुक, कल्यामालुक, कल्यामल्लिका, गरुड, वनवर्बर, वर्धरी, जाति, कल्यावली और करालक है। यह कड़वा, उष्ण, कफवातकी पीड़ा दूर करनेवाला, नेत्ररोगनाशक, रुचिकर और सुपसवकारक होता है। (राजनिबन्ध)

कल्यालु (सं० पु०) कल्याणवर्णं आलुः, कर्मधा०। १ काला आलू। २ तेंदूका पेड़।

कल्यालुक (सं० पु०-स्त्री०) नीलालु, काला आलू। यह मधुर, शीतवीर्य, अम मिटानेवाला, वृष्य, रुचिकर और पित्त, दाह तथा मुखकी जड़ता दूर करनेवाला है।

(राजनिबन्ध)

कृष्णावतार (सं० पु०) अवतारभेद । कृष्ण देखो ।

कृष्णावास (सं० पु०) आवासस्थान, कृष्ण-आ-वास अधि-
करणे घञ् । १ अस्थत्यव्यय, पीपल । २ द्वारकापुरी ।

कृष्णाष्टमी (सं० स्त्री०) भादों बदी अष्टमी, कृष्णका
जन्मदिन । जन्माष्टमी देखो ।

कृष्णाङ्गा (सं० स्त्री०) कृष्णा आङ्गा नाम यस्याः, बहुव्री० ।
पिप्पली, पीपल ।

कृष्णिका (सं० स्त्री०) कृष्णः कृष्णवर्णो भूनाऽस्त्यस्याः कृष्ण-
ठन्-टाप् । १ राजिका, राई । २ श्यामापत्नी । इसका
दूसरा नाम बराहो, शकुनी, कुमारी, श्यामा, दुर्गा,
देवी, चट्टिका, उमा, ग्रीतकी, पण्डविका, मितपत्निणी,
ब्रह्मपुत्री, धनुर्धरी और पान्यमाता भी है ।

(वसन्तराजशाकुन्)

कृष्णिमा (सं० पु०) कृष्णस्य भावः, कृष्ण भावे इमणिच्
कृष्णत्व, कालापन ।

कृष्णिय (वे० पु०) एक वेदोक्त व्यक्ति । इनके पिताका
नाम कृष्ण था । (ऋक् १ । ११६ । २२)

कृष्णी (सं० स्त्री०) रात ।

कृष्णीकरण (सं० स्त्री०) काली रंगारं ।

कृष्णेशु (सं० पु०) कृष्णः इन्द्रः, कर्मधा० । श्यामेशु,
काली जख । यह स्वाभाविक तिल, पाकमें मधुर,
स्वादु, हृद्य, कटुरसयुक्त, त्रिदोषघ्न, कान्तिप्रद और
वीर्यवर्धक है । (रात्रनिघण्टु) इसकी शक्कर बल बढ़ाने
वाली, हृदि करनेवाली, वीर्यवर्धक, अम मिटानेवाली
और जीवनको बनाये रखनेवाली है । (चक्ररत्न) काली
जखकी जड़ ठण्ठी, मूत्रकारक, पित्तनाशक और
मेध्य तथा दाहकृच्छ्र दवा देनेवाली होती है ।

(अविस्मृतिता)

कृष्णोद्ग्रय (सं० पु०) कदम्ब ।

कृष्णोयक (सं० स्त्री०) पद्मपुष्प, कम्बलका फूल ।

कृष्णोत्त (वे० त्रि०) कृष्णाधिक एतः कर्तुः, कर्मधा० ।
१ कर्तुर्वर्णविशिष्ट, बहुत काला । (पु०) २ कृष्णवर्ण
हरिण, कर्सायल । (वैजयिणीसंहिता ५ । ६ । १८)

कृष्णोदर (सं० पु०) दर्पोकर सर्प, फनदार साँप ।

कृष्णोदुम्बर (सं० पु०) कृष्णोदुम्बरिका देखो ।

कृष्णोदुम्बरिका (सं० स्त्री०) काकोदुम्बरिका, कठ-
गूलर ।

कृष्ण (सं० त्रि०) कृष्ण कर्मणि परार्थे कृष्ण् । कर्मण्यके
उपयुक्त, जोतने लायक ।

कृसर (सं० पु०) दुःकृष्ण करणे कृ-सवन्-कित् बाहुल-
कात् सत्त्वम् । कृष्मादिभाः कित् । उष् २ । ०२ । तुल्य तिलाज
बराबर बराबर तिल और चावलकी खीचड़ी ।

कृसरा (सं० स्त्री०) यवागूभेद, एक प्रकारकी दलिया ।
तिल, चावल और सड़द या तिल और चावलसे छह
गुना पानी डालके दलिया पकाना चाहिये । यह बल
बढ़ानेवाली, मद तथा पुष्टिप्रद एवं कफ, पित्त, मल,
स्तम्भ तथा वीर्य उत्पन्न करनेवाली और बातको मिटाने-
वाली है । (वैद्यक निघण्टु)

कृस (सं० त्रि०) कृ प-त्त । १ रचित, बनाया हुआ ।
२ नियत, ठहराया हुआ । “कृमेन सोपानपथेन ।” (रघु०)

३ छिन्न, काटा हुआ । “कृसकेशमखम्भुः ।” (मनु०)

कृसकीला (सं० स्त्री०) कृसं कीलयति, कृस-कील-
भण् । स्त्रियां बाहुलकात् टाप् । व्यवस्थापन, कानूनी
चिट्ठी ।

कृसधूप (सं० पु०) कृसो धूपो येन, बहुव्री० । सिद्धक,
एक द्रव्य ।

कृसि (सं० स्त्री०) कृ प भावे तिन् । १ रचना, बनाव ।
२ अवधारण, धराव । ३ नियम । (शतपथब्राह्मण १२ । ११ । १०)

कृसिक (सं० त्रि०) कृसं मूष्यदानेन सत्त्वं देयत्वे-
नास्थस्य, कृसि-ठन् । क्रीत, खरीदा हुआ ।

के (हिं० प्रत्य०) सम्बन्धीय, सुताज्ञिक । यह सम्बन्ध
सूचक ‘का’ का बहुवचन है । (सर्व०) २ कौन,
किसने । ३ कितने ।

एक ही वाक्यमें सम्बन्धसूचक शब्द ‘का’ और
‘के’ लगाना बहुत कठिन है । अच्छे अच्छे लेखक इस-
में भूल जाते हैं ।

केंके (हिं० स्त्री०) १ केंके, चिट्ठियोंके दुःखका शब्द ।
२ चायं चायं, भगड़ेकी बोली ।

केंचुल (हिं० स्त्री०) साँपकी अपनी आप गिर जाने-
वाली खाल ।

केंचुली (हिं० वि०) १ कृष्णकसहस्र, केंचुल जैसा ।
(स्त्री०) २ केंचुल । आकर्षण करनेसे सर्पकी भांति
वर्धित होनेवाला लवका ‘केंचुली लवका’ या ‘केंचुली-
का लवका’ कहलाता है ।

के'बुवा (हिं० पु०) वर्षा ऋतुका एक जमि। यह एक बिन्ती या इससे भी अधिक दीर्घ होता है। इसके देह-में पत्थि नहीं रहता। यह अपना देह सिकोड़ और फैला सकता है। मृत्तिका ही इसका खाद्य है। के'बुवे-के मुँहसे कोई पीतवर्ण वस्तु निकलता, जो रातको चमकता है। प्रायः बहुतसे के'बुवे एक ही स्थान पर रहता करते हैं। जन्ममतानुसार इसके स्पर्शन और रसना ये दोही इंद्रियां ज्ञाता हैं और मछोते ही बिना बोयं और रजके स्वयं पंदा हा जाते हैं। २ पेटमें पड़ जानेवाला एक सफेद कीड़ा। यह के'बुवेके ही आकारका रहता और मलक साथ बाहर निकलता है।

कैंत (हिं० पु०) कोई मोटा बंत। इसकी छड़ी बनायो जाती है।

केंदू (हिं० पु०) केन्दुल्ल, तेंदू।

केलंभा (हिं० पु०) १ बुद्ध्या। २ चुकन्दर। ३ शलगम।

केउटा (हिं० पु०) एक विषधर सर्प। इस सर्पके विषसे औषध प्रस्तुत होता है। यह मैदान, बाँधी और पुराने टूटे घरोंमें रहता है। नर केउटाका शरीर अपेक्षा-कृत दीर्घ, स्थूल और गाल होता है। उसका फन भी गोल और बड़ा रहता है। प्राँख लाल और ऊपरको उठी होती है। स्त्रीजातिका शरीर कुछ कुछ छोटा, ठालू और चपटा रहता है। फिर उसकी फणा भी लम्बी, ठालू और छोटी लगती है। स्त्रीजाति न मिलनेसे केउटा दूसरी जातिकी नागिनसे भी सङ्गम कर लेता है। वह एक बारगोही १६ से ५० तक अण्डे देता है। जब तक अण्डा नहीं फटता, नागिन उसकी गोदमें लिये बाँधीके भीतर बँठी रहती है। साँप जब तब पास आता जाता है। अण्डा फटने पर बच्चा निकलने-से स्त्रीपुरुष दोनों उसे खा डालते हैं।

केकड़ा (हिं० पु०) कर्कट, पानीमें रहनेवाला एक जन्तु। इसके ८ पैर और २ पंजी होते हैं। यह छोटे तलावसे लेकर समुद्र तकमें मिलता और कितने ही छोटे बड़े आकार तथा रंग रखता है। केकड़ा अण्डज जन्मि है। कहते हैं इसकी माता अण्डे देनेसे पहले ही कालकवलित हो जाती है। अण्ड परिपक्व होने पर

उससे छोटे छोटे बच्चे निकल पड़ते हैं। लोगोंके कथ-नानुसार पाँच खोलें बढने पर केकड़ा अपने असली स्वरूपको पहुँचता है। यह भूमि पर भी गमन कर सकता है। घोषकालको केकड़ा अगभीर जलमें किनारे पर वास करता और शीत कालको गभीर जलमें जा पहुँचता है। बड़ा केकड़ा छोटे छोटे केकड़ोंका आहार करता है। कर्कट देखो।

केकय—१ जनपदविशेष, कोई वसती। कूर्म-विभागमें उत्तर पोर केकय देशका अवस्थान बताया गया है। रामायणमें लिखा है—भरतको बुलानेके लिये जो दूत भेजा गया था, वह वाल्मीकि, सुदामापर्वत, विष्णुपद, विपाशा और शाल्मलीनदी दर्शन करके केकयके राजाकी राजधानी गिरिव्रज वा राजगृहमें उपस्थित हुआ। (अयोध्याकाण्ड, ६८ अध्याय)

फिर जब भरत मनानेसे अयोध्याको और आनि-लगे, वाल्मीकिने उनको वर्णनामें कहा है—भरत पूर्वाभिमुख राजगृहसे बाहर निकल सुदामा नदी उतरे थे। फिर वह बहुत बड़ी तरङ्गसमाकुल पश्चिमकी बहनेवाली ज्वादिनी नदी पार करके शतद्रु नदीके उस पार पहुँचे। (अयोध्याकाण्ड ७१। १-२)

यह विवरण देखनेसे कह सकते कि केकयकी राजधानी गिरिव्रज शतद्रु नदीसे पश्चिम और विपाशा तथा शाल्मली नदीके आगे ही अवस्थित है। शतद्रुकी आजकल सतलज और विपाशाको बियास कहते हैं। यह दोनों नदियाँ काश्मीरराज्य और पंजाबमें प्रवा-हित हैं। वर्तमान काश्मीरराज्यके सीमान्त पौरपञ्चाल गिरिसे दक्षिण राजौरी नामका एक छोटा राज्य है। उसीके बीच राजौरी नामक एक बहुत पुराना नगर भी है। काश्मीरकी राजतरङ्गिणी (७। ११। ५५) में राजपुरी नामक किसी देग और उसीके अन्तर्गत पहा-ड़ोंसे घिरे किसी सुदृढ़ नगरकी बात लिखी है। वही राजपुरी वर्तमान राजौरी है। उसका वर्तमान अवस्थान देखनेसे इसको रामायणमें कही केकयकी राजधानी गिरिव्रज वा राजगृह माना जा सकता है। राजगृह देखो।

महाभारतके वनपर्वके १२८ अध्यायमें लिखा है— (रामायणोक्त) विष्णुपदतीर्थके आगे विपाशा नदी और

उसीके भागी काश्मीरमण्डल है। इससे समझ पड़ता है कि वर्तमान राजौरीकी चारो ओर काश्मीर तक जो पथरीला देश है, वही पूर्वकालकी केकय कहलाता था। रामायणमें संकड़ी देशोंकी बात रहते भी काश्मीरका नाम नहीं लिखा है। इससे भी अनुमान किया जाता है कि वाल्मीकिके समय काश्मीर देश या उसका कुछ अंश केकय नामसे प्रसिद्ध था। रामायणमें भरतके नाना (मातामह) केकयराज अश्वपति और उनके पुत्र युधाजित्का उल्लेख विद्यमान है। आज कल केकय देश और उसके अधिवासियोंको कका कहते हैं।

केकयानां राजा, केकय-पण तस्य लोपः। २ सूर्य-वंशोय कोई राजा। ये दशरथके स्वशुर थे।

(रामायण १। ११। २३)

केकयी (सं० स्त्री०) केकयस्य अपत्यं स्त्री, केकय-पण-उडीष्। केकयराजाकी कन्या। यह दशरथकी मंभली पत्नी और भरतकी माता थीं।

केकर (सं० त्रि०) मूर्ध्नि नेत्रतारां कर्तुं शीलमस्य, क-अच्, अलुकसमा०। १ वक्राक्षि, कंचा। (स्त्री०) २ वक्रचक्षु, टेढ़ी आंख। पूर्व जन्ममें तरक्षु, (तेंदू) मारनेसे आंख टेढ़ी पड़ जाती है। (शातातप) (पु०) ३ विश्वसारतन्त्रमें कहा हुआ ४ अक्षरोंका एक मन्त्र।

मन्त्र देखो।

केकरी—पजमेर मेवाड़-प्रायस्क एक नगर। यह अक्षा० २५° २५'। उ० और देशा० ७५° १३' पू०में अवस्थित है। यहां एकट्ठा अमिटण्ट कमिशनरके हेडक्वार्टर बने हैं। लोकसंख्या (१८०१) में ७०५३ है। पहले यह एक अच्छा तिजारती शहर था, परन्तु कुछ सालोंसे यह बात नहीं रहो। यहां रुईकी गांठें बांधने और साफ करनेके कई कारखाने हैं।

केकल (सं० पु०) नर्तक, नाचनेवाला। केकल देखो।

केका (सं० स्त्री०) के मूर्ध्नि कायते, के-कै-ह अलुकसमा०। मयूरवाणी, मोरकी बोली।

केकाण (सं० पु०) एक प्रकारका घोड़ा।

केकावल (सं० पु०) केका अस्त्यर्थ बाहुलकात् बलच्। मयूर, मोर।

केकिक (सं० पु०) केका अस्त्यर्थ ठन्। औद्यादिभाष। पा ५। २। ११६) मयूर, मोर।

केकिशिखा (सं० स्त्री०) मयूरशिखा, मोरपंख।

केकी (सं० पु०) मयूर, मोर।

केकेयी, केकेयो देखो।

केक्रेरू—एक चतुष्पद जन्तु। इसके भी सब प्राणियोंकी भांति ही उदर रहता है। परन्तु विशेषता यह है कि पेटके बाहर एक थैली लटका करती है। यह उर्भोमें अपने श्रावकको रख चरता फिरता है। इसीसे केक्रेरूको द्विगर्भ (Marsupiate) कहते हैं। लंबाई चौड़ाईमें यह बिलार जैसा होता है। तौलमें एक एक केक्रेरू डेढ़ या दो मनसे कम नहीं बैठता। इसका मांस और मुखका आकार हरिणसे कितनाहा मिलता है। पूंछ लम्बी होती है। शरीरका रूपांघना, छोटा और नरम रहता है। फिर शरीरका सम्मुखभाग थोड़ा ही चौड़ा होता है। पीछेकी ओर क्रमशः स्थूल पड़ती जाती है। सम्मुखके दोनों पद छोटे और पाछेके दोनों पद कितने ही बड़े लगते हैं। सम्मुखके पदोंमें पांच और पीछेके पदोंमें चार नखरसमेत अङ्गुलि होती हैं। नखर वक्र, कठिन और तीक्ष्ण रहते हैं। जब यह वृक्षके ऊपर अवस्थान करता, तो अपनी लंबी पूंछ किसी शाखामें लपेट निश्चित हो कर निद्रा लेता है। पूंछ और पिछले दोनों पैरोंके सहारे केक्रेरू सीधा बैठ और कभी कभी दोनों पिछले पैरोंसे सीधा चला जाता है। यह देखनेमें शान्त-मूर्ति है। यज्ञ करनेसे केक्रेरू डिल जाता है। जब यह दौड़ने लगता, तो शीघ्र भागनेवाला शिकारी कुत्ता भी उसे पकड़ नहीं सकता। राहमें ५। ६ हाथ लंबी कोई बाधा पड़नेसे यह स्वच्छन्द उसे लाँचकर चला जाता है। शिकारी कुत्ता यदि पास पहुंच कर पकड़नेकी करता तो केक्रेरू पीछेके पैरोंसे उसे ऐसा मारता कि नखर द्वारा कुत्तारका उदर फट जाता है। यह अधिक गंध घास पात खाते हैं। कोई काई मांसभोजी भी होता है। केक्रेरू रोमन्यन (जुगाली घगुट) भी करते हैं। पेड़की ऊपर दोनों पैरोंके बीचमें एक थैली रहती है। श्रावक उसके भीतर

बैठ स्नान्यपान करता और निद्रा लेता है। कुछ बढ़ने पर वह थैलीसे मुँह निकाल सामनेकी घास पात खाने लगता है। माता जब चरती रहती, शिशु कभी इधर उधर निकल कर घूमा करता है। उठात भयभीत होने पर वह दौड़ कर इसी थैलीमें घुस रहता है। दलबद्ध हो कर चरनेके समय उनमेंसे एक दूर खड़ा हो प्रहरीका काम करता है। प्रहरीका सङ्केत पाते ही दलके सभी केँकेरु वनके मध्य भाग जाते हैं।

एक प्रकारके केँकेरु बहुत छोटे होते हैं। उनका नाम केँकेरु चूहा (Kangaroo rat) है। वह देखनेमें कितने ही शशक (खरगोश) जैसे होते हैं। वर्षा ऋणसे बहुत कुछ मिलता है।

केँकेरु कई प्रकारके होते हैं। सबसे बड़े मुख-से पृष्ठतक ४ हाथ लम्बे बैठते और ऊँचाईमें २॥ या २॥ हाथ निकलते हैं। सामनेके पैरों पर खड़े होनेसे केँकेरु मनुष्यसे बड़े लगते हैं। कहते हैं कि १७७० ई० की २२ वीं जूनको प्रसिद्ध भ्रमण-कारियोंने इन्हें पहली आविष्कार किया था। नवजीनिया और नवजीलेण्डमें इनका अधिक वास है। इङ्गलेण्डमें कई केँकेरु मंगाकर रखे गये थे। उनके बच्चे भी हुए। परन्तु वहाँ इनके अधिक बढ़नेकी आशा नहीं। मनुष्य केँकेरुओंका मांस आहार करके धीरे धीरे उनके वंशको मिटा रहा है।

केचन, केचित् देखो।

केचित् (सं० अथ०) के अनिश्चितार्थे चित् वा चन।

कोई कोई व्यक्ति, कोई।

कोशुक (सं० क्ली०) कशु स्वार्थे कन् पृषोदरादित्वात् साधुः। १ कशू। २ कोई शाक। ३ करेम्।

कशुकाकन्द (सं० पु०) कशू, सुइया।

कोजा (हिं० पु०) केना, साग पात मोल लेनेको दिया जानेवाला थोड़ासा अन्न।

कोड़वारी (हिं० स्त्री०) १ शाक, फल आदि बोनका बाग। २ नवान् वृक्षोंका बाग।

कोड़ा (हिं० पु०) १ नवान्दुर, कोपल, कल्ला। २ नया जवान्। ३ गहा।

केषिक, केषिका देखो।

केशिका (सं० स्त्री०) वस्त्रनिर्मित गृह, खोमा, डेरा।

केत (सं० पु०) कित निवासे आधारे घञ्। १ घर।

भावे घञ्। २ बसती। ३ बुद्धि। ४ सङ्कल्प। ५ मन्त्रणा, सलाह। ६ ध्वज, पताका। ७ अन्न। (त्रि०) ८ प्रज्ञाता, अच्छी तरह समझनेवाला।

केतक (सं० पु०) कित-खुल्लु। १ केतकीका पेड़।

(क्ली०) २ केतकीका फूल।

केतकफल (सं० क्ली०) १ कुचेलक, कुचिला। २ केतकी फल। वह त्रिदोष और विषको नाश करनेवाला है।

केतकादास, जेमानन्द देखो।

केतकाद्यतैल (सं० क्ली०) वातव्याधिका एक तैल।

केतकीमूल, वाय्वालक और अतिबला सब ४२ पल २ कर्ष ३ माषा, १२८ शरावक (शेष १६ शरावक) और काष्ठीक १६ शरावकमें तैलको यथाविधि पाक करनेसे यह औषध प्रस्तुत होता है। (चक्रदत्त)

केतकी (सं० स्त्री०) केतक गौरादित्वात् ङीष्। पुष्प-वृक्षविशेष, एक फूलदार पेड़। चलतो बोलोमें इ-केवड़ा कहते हैं। इसका संस्कृत पर्याय—सूचोपुष्प, हकीन, जम्बुल, केतक, सूचिकापुष्प, जम्बुक, कवच्छद, तीक्ष्णपुष्पा, विफला, धूलिपुष्पिका, मेध्या, कण्टदला, शिवद्विष्टा, नृपप्रिया, ककचा, दीर्घपत्रा, स्थिरगन्धा, गन्धपुष्पा, इन्दुकलिका, दलपुष्पा और पांसुला है। केतकीको हिन्दीमें केवड़ा कहते हैं। (Pandanus Odoratissimus)

केतकी बहुत बड़ी नहीं होती। इसके पत्र दीर्घ, श्वेतवर्ण, कोमल और चिकण रहते हैं। पत्तोंके बीचमें फूल आता है। वह श्वेतवर्ण और सुगन्धि होता है। इससे अंतर और भरक बनाते हैं। केवड़ेमें कत्या बसानेसे खुशबूदार हो जाता है। बरसातमें जब फूल खिलता, उसकी खुशबूसे निकटका स्थान महकने लगता है। केतकीके पत्तोंसे चटार्ई, कतरौ और साहबोंकी टोपी बनती है। इससे कागज भी तैयार किया जाता है। दुर्भिक्षके समय इसकी पत्तियोंका कोमल कोमल अंश खाते दरिद्र लोगोंको देखा भी गया है। इस वृक्षका काष्ठ (तना) बहुत सुसायम

होता है। इसीसे उससे बोटसके काग और चिपियां बनायी जाती हैं। मरिच द्वीपमें छोड़ा कड़वा, चीनी आदि रखनेके लिये केतकीके पत्रके छोटे छोटे दोने तैयार होते हैं। तामिल उससे भई खाते बनाते जो उनकी भाषामें 'ताले-इले-केदरि' कहलाते हैं। गञ्जाम प्रदेशमें लोगोंको विश्वास है कि केवड़ेके फूलमें काला सांप छिपकर जा बैठता है। केतकीके फूलसे शिवकी पूजा नहीं करते।

केतकी सफेद और पीली दो प्रकारकी होती है। बेयकके मतमें यह मधुर, तिक्त, कफनाशक, कटु और स्रवपाक है। उसका फल वर्णकर और केश-दुर्गन्धनाशक है। पीली केतकी कामवर्धक, बलवर्धक और सौख्यकारी होती है। केतकीको जड़ बहुत ठण्डी, कड़वी, पित्तकफनाशक, रसायन और वर्ण तथा शरीरको दृढ़ करनेवाली है। (राजनिघण्टु) २ एक रागिणी।

केतन (सं० स्त्री०) कित-स्युट्। १ निमन्त्रण, बुलावा। २ ध्वज, झण्डा। ३ चिह्न, निशान। ४ घर। ५ स्थान, जगह। ६ ज्ञान।

केतपू (वै० त्रि०) केतं अक्षं पुनाति, केत-पू-क्तिप्। अक्ष पवित्र करनेवाला। (वाजसनेयसंहिता २। १)

केतरस—एक राजा। विजति संवत्के जो शकसंवत् १००३ और ११७०-७१ ई० से मिलता है, एक लेखप्रमाण इनकी महामण्डलेश्वर बतलाता है। साच ही कादम्ब और उच्छङ्खीगिरियोंका अधीश्वर भी कहा गया है। यह महामण्डलेश्वर पाण्ड्य विजय-पाण्ड्यके जागीरदार थे।

केती—बम्बईप्रान्तोय कराची जिलेके घोड़ावाड़ी तालुकाका एक बन्दर। यह अक्षा० २४° ८' ७० और देशा० ६७° ३०' पू० में सिन्धुकी हजामरी शाखा पर समुद्रके पास ही बसा है। लोकसंख्या १८११ ई० की २१२७ थी। यह सिन्धुके दोबाबका बड़ा बन्दर है। यहां नदियों और समुद्रकी बहुतसे जहाज आते जाते हैं। बम्बई, मद्रास, सोममियानी और मकरानकी केतीसे अनाज, दास, तेलहन, जल, रुई, किराना, रस्स, शोरा और जलानेकी लकड़ी भेजी जाती है। वाजर

आनेवाली चीजोंमें नारियल, सूती कपड़ा, धातु, चीनी, मशाला, रस्सो और कौड़ी है। बरसातमें तूफान-के कारण समुद्रसे जहाज यहां नहीं आ सकते। इस लिये कामकाज बन्द रहता है। तत्ता, मीरपुर सक्को और घोड़ावाड़ीकी पक्की सड़क लगी है। शहरमें म्युनिसिपैलिटी, शफाखाना और मदरसा मौजूद है।

केतु (सं० पु०) चाय-तुधातोः क्वादेशस्य । चायः कि० । उच० १। ७४। १ गमनागमन प्रवृत्ति क्रिया, चलने फिरने आदिका काम। (चक्र० १२४। ५) २ प्रज्ञा, समझ। ३ दीप्ति, चमक। ४ पताका, झण्डा। ५ चिह्न, निशान। ६ अग्निमन्त्र। ७ रोग। ८ पीड़ा, दर्द। ९ उत्पात। १० नवग्रहके अन्तर्गत एक ग्रह।

फलितज्योतिषके मतमें जम्भराशिसे गोचरके ग्यारहवें, तीसरे, दशवें या छठे स्थान पर केतु रहनेसे मनुष्य सम्मान, भोग, राजपूजा, सुख और धन पाता तथा आकाशकारी पुरुष और स्त्रीसे सुखभोग एवं पुण्य-सञ्चय होता है।

अष्टोत्तरीके मतमें केतुकी दशा निर्णीत नहीं हुई है परन्तु विंशोत्तरीके मतमें केतुकी दशा ७ वर्ष रहती है। केतुकी दशाके पहले बुधकी दशा जाती और पीछे शक्रकी दशा आती है। मघा, मूला वा अश्लिनी नक्षत्रमें जन्म होनेसे प्रथम केतुकी दशा लगेगी। केतुकी दशाका फल इस प्रकार है—

लग्नमें पड़े केतुकी दशामें भार्या एवं पुत्रका विनाश, राजभय, कष्ट, विद्या-बन्धु-धनप्राप्ति, मित्र-विच्छेद, रोग, अग्नि तथा शत्रुभय, धानसे पतन, विष-जल, शस्त्रभय, विदेशगमन और कलहका डर होता है। केन्द्रस्थ केतुकी दशामें क्रियाका वेकल्य और राज्य, धर्म, सुत तथा भार्याका नाश एवं विपद् है। लग्नके केन्द्रमें पड़े केतुकी दशामें महद्भय, ज्वर, अतीसार, प्रमेह और विसृष्टिका होती है। द्वितीय लग्नगत केतुकी दशाका फल धनक्षय, वाक्पादघ्न, मनोदुःख, कुत्सिताक्ष और मनःपीड़ा है। तृतीयलग्नगत केतुकी दशा बड़ा सुख देती, मनकी विकसता बढ़ाती और भाईसे लड़ाई कराती है। चतुर्थलग्नमें सुखक्षय, भार्या तथा पुत्र आदिका विरोध और आन्ध्रत्व है।

पञ्चमस्य केतुकी दशामें लड़का मरता, बुद्धि बिगड़ती, राजा कोप करता और धन घटता है। षष्ठ केतुकी दशाका फल महाभय, चौर और अग्नि तथा विषभय है। सप्तमस्य केतुकी दशामें महदभय रहता और भार्या, पुत्र तथा धर्मका नाश होता एवं मूत्रकण्ठ और मनःपीड़ाका रोग लगता है। अष्टम केतुकी दशाका फल महदभय, पितृवियोग और श्वास, कास, ग्रहणी तथा ज्वररोग है। नवम केतुकी दशामें पितासे वियोग होता गुरुजनोंको विपद्का सामना करना पड़ता, दुःख रहता और शुभकर्म बिगड़ता है। दशम केतुकी दशामें प्रथम तो सुख मिलता, परन्तु पीछे मानहानि, मनोजाया, अपकीर्ति और मनःपीड़ाको सज्जना पड़ता है। एकादश केतु अपनी दशामें मनुष्यको सुख देता, भ्रातृवर्गको प्रसन्न रखता और यज्ञवृद्धि तथा भार्यावृद्धि करता है। व्ययगत केतुकी दशा कष्ट, स्थानान्तरण, प्रवास, राजपीड़ा और चञ्चुनाश करनेवाली है। केतुकी दशाके आदिमें दुःख, मध्यमें राजपीड़ा तथा देहजाया होता है। जन्मकालीन केतुको यदि शुभग्रह देखता, तो उसकी दशामें मनुष्यको सौख्य, राज्य, ग्रहशान्ति और राजसम्मान मिलता है। परन्तु पापग्रह यदि उसे देखता या उसके साथ जा पड़ता, तो दुःख, ज्वरातीसार, प्रमेह, त्वग्दोष और राजपीड़ाका वेग बढ़ता है। केतुकी दशामें पहले ४ मास २७ दिन केतुकी अन्तर्दशा रहती है। उसके पीछे १ वर्ष १ मास शुक्रकी, ४ मास ६ दिन रविकी, ७ मास चन्द्रकी, ४ मास २७ दिन मङ्गलकी, १ वर्ष १८ दिन राहुकी, ११ मास ६ दिन बृहस्पतिकी, १ वर्ष १ मास ८ दिन शनिकी और ११ मास २७ दिनके किये बुधकी अन्तर्दशा आती है। दशा देखा।

केतुकी अन्तर्दशाका फल इसप्रकार है—चतुर्थ केतुकी अन्तर्दशामें मानभङ्ग, महाद्वेष और नृप, चौर तथा अग्निकी पीड़ा है। त्रिकोणराशिस्थित केतुकी अन्तर्दशा मनस्ताप लाती, विविध आपद् लगानी, पुत्र-नाश करती, पितामातासे छुड़ाती और भृत्य तथा बन्धुके साथ विरोध बढ़ाती है। यह फल पापग्रहकी दशाकी अन्तर्दशाका है। शुभग्रहकी दशाकी अन्त-

र्दशामें कृषि, गो, भूमि मिलती, बन्धु समागम होता और विद्या प्रभृतिकी प्राप्ति होती है। षष्ठ अष्टम और व्ययगत केतुकी पापग्रह दशामें अन्तर्दशा होनेसे मरण विदेश गमन प्रमेह मूत्ररोग और गुल्म आदि होते हैं। वादको कुछ सुख होता है। शुभग्रहकी दशाकी अन्तर्दशामें स्त्री पुत्र वृद्धि और धान्य वस्त्र आदिका लाभ द्वितीय और साभगत केतुकी पापग्रह दशाकी अन्तर्दशामें पाप कर्म बन्धु वियोग आदि शुभग्रहकी दशाकी अन्तर्दशामें केतु धन दिक्ताता और बन्धुसम्मान बढ़ाता है। अन्तर्दशामें केतु पापयुक्त होनेसे मंदफल और शुभ-युक्त रहनेसे शुभफल मिलता है। पापग्रह वा शुभग्रहकी दृष्टि रहनेसे भी इसीप्रकार फल समझ लेना चाहिये। (सर्वार्थचिन्तामणि)

किसी किसीके मतमें केतु एक ग्रह है। परन्तु कोई इसे ग्रह ही नहीं एक उत्पत्ति भी मानता है। वराहमिहिरने बृहत्संहितामें लिखा है—

‘केतुका उदय अस्त गणित द्वारा नहीं समझ सकते। क्योंकि दिव्य, आन्तरीक्ष और भौम भेदसे केतु तीन प्रकारका होता है। विविध प्रकार रहनेसेछो इसके उदय किंवा अस्तकी कोई स्थिरता नहीं। खद्योत, पिशाच, चन्द्रकान्त आदि मणि, मारकत प्रभृति रत्न किंवा काष्ठविशेषके तेजको छोड़के अग्नि-शून्य स्थानमें जो तेजस्वरूप पदार्थ पड़ता, वही केतुका रूप ठहरता है। ध्वज, शस्त्र, गृह, वृक्ष, अश्व, हस्ती और अन्य चतुष्पदमें जो केतु रहता वह आन्तरीक्ष, नक्षत्रस्य केतु दिव्य और इसकी छोड़ दूसरा केतु भौम कहलाता है।’

गर्भ आदि ज्योतिर्विद्गोंने १००० केतु निरूपण किये हैं। परन्तु पराशर आदिके मतमें १०१ केतुसे अधिक नहीं। नारदका कहना है कि वास्तविक केतु एक ही है। उसीके अवस्था भेदसे नाना रूप देख पड़ते हैं।

(बृहत्संहिता ११ अ०)

केतु जितने दिन या जितने मास तक देख पड़ता, उतनेही दिन वा मास तक उसके फलदानका काल रहता है। जिस दिन प्रथम केतु देखनेमें आता, उस दिनसे १५ दिन पीछे उसका शुभ वा अशुभ फल पाया

जाता है जो नियमित काल तक चला करता है।

शुभाशुभ केतुका लक्षण इस प्रकार है—जो केतु शुद्ध, प्रसन्न, स्निग्ध, प्रवृत्त और श्वेतवर्ण होता, अल्प कालके मध्य ही जो प्रसन्न हो जाता और उदय होतेही देख पड़ता, उसे शुभकेतु कहते हैं। इससे विपरीत लक्षणविशिष्ट धूमकेतु कहा जाता है। धूमकेतु अतिशय प्रमङ्गलजनक है। इन्द्रायुधसदृश अथवा दो या तीन शाखाविशिष्ट केतु भी अहितकर होता है। यह दोनों बहुत बड़ा पापफल प्रदान करते हैं। हार, क्षण और सुवर्ण सदृश वर्णविशिष्ट शिखायुक्त किरण नामक २५ केतु सूर्यसे उत्पन्न हुए हैं। यह पूर्व और पश्चिमकी ओर देख पड़ते हैं। किरणकेतु उदित होनेसे राजकलङ्क होता है। शुक्र पक्षीकी भांति नील और पीतवर्ण अथवा अग्नि, बन्धुजीवक, साक्षा वा रक्त जैसे वर्णविशिष्ट शिखायुक्त २५ केतु अग्निसे निकले हैं। यह अग्निकोणमें देखे जाते हैं। इनका फल अग्निभय है। कृष्णवर्ण, अस्निग्ध और प्रसृष्ट शिखावाले २५ केतु मृत्युसुत कहलाते हैं। दक्षिण दिशामें ही इनका उदय होता है। यह केतु उदित होनेसे बहुतसे लोग मर जाते हैं। दर्पणकी भांति वर्तुलाकार रश्मियुक्त शिखाशून्य जल और तैलकी भांति कान्तिविशिष्ट ३२ केतुघोंका नाम भूपुत्र है। ईशानकोणमें इनका उदय होता है। फल दुर्भिक्ष है। चन्द्रकिरण, हिम, रौप्य, कुमुद वा कुन्दकुसुमकी भांति वर्णविशिष्ट शिखायुक्त तीन केतु चन्द्रसे उत्पन्न हैं। उत्तर और इनका उदय होता है। फल सुभिक्ष है। तीन शिखावाले सित, पीत और रक्तवर्ण ब्रह्मदण्ड नामक केतुके उदयका कोई निर्णय नहीं किस ओर होगा। इनका उदय सभी दिशाओंमें हो सकता है। फल सर्वव्यय है। शुक्र सुतकेतु ८४ हैं। यह स्निग्ध होते हैं। इनकी तारका अपेक्षाकृत विस्तीर्ण और शुक्लवर्ण रहती है। यह उत्तर और ईशान कोणमें देख पड़ते हैं। फल अनिष्ट है। शनिसे उत्पन्न होनेवाले ६० केतु हैं। वह स्निग्ध प्रभायुक्त, दो शिखाविशिष्ट और कनक नामसे अभिहित हैं। सभी ओर इनका उदय होता है। फल अनिष्ट है। वृहस्पतिसे ६५ केतु, उत्पन्न हुए हैं। शिखाशून्य,

श्वेतवर्ण तारकायुक्त और विक्रवा नामसे अभिहित हैं। दक्षिण दिशामें यह निकलते हैं। फल अनिष्ट है। बुधसे ५० केतु निकले हैं। यह सूक्ष्म दीर्घ श्वेतवर्ण और प्रसृष्टरूपसे उदित होते हैं। इनके उदयकी किसी दिशाका ठिकाना नहीं। फल अनिष्ट है। मङ्गलसे कौटुम्भ नामक ६० केतु उत्पन्न होते हैं। यह अग्नि और रक्त सदृश लोहित वर्णविशिष्ट होंगे। इनके ३ शिखायें रहती हैं। उदयमें किसी दिशाका निर्णय नहीं। फल प्रमङ्गल है। राहुसे तामसकीलक नामक ३३ केतु निकलते हैं। यह सूर्य और चन्द्रमण्डलके निकट देख पड़ते हैं। फल सर्वाचारमें द्रष्टव्य है। विश्वरूप नामक १२० केतु अग्निसे उत्पन्न हैं। इनमें कितनी ही के पूंछ (शिखा) होती है। फल घोर अग्निभय है। वायुसे अरुण नामक, कृष्णलोहितवर्ण, रुक्म, तारकाशून्य चामर जैसे ७७ केतु निकलते हैं। यह सभी दिशाओंमें देख पड़ते हैं। फल अनिष्ट है। तारापुञ्जाकार गणक नामक ८ केतु प्रजापति और चतुरस्र नामक २०४ केतु ब्रह्मासे उत्पन्न हैं। यह अग्निकाणमें देख पड़ते हैं। फल अनिष्ट है। वंशगुल्फकी भांति आकृतिविशिष्ट, चन्द्रकी भांति प्रभायुक्त, कङ्क नामक ३२ केतु वरुणसे उत्पन्न हैं। इनके उदयका किसी दिक्में निर्णय नहीं। फल प्रमङ्गल निकलता है। कवच शरीरकी भांति आकृतिविशिष्ट, तारकाशून्य, शिखायुक्त, कवच नामक ८६ केतु कालपुत्र कहलाते हैं। इनके उदयसे केवल पुण्ड्र देशका मङ्गल और अपर देशोंका प्रमङ्गल होता है। इनके उदयका दिक्निर्णय कोई नहीं। इसको छोड़के शुक्लवर्ण तारकायुक्त ८ केतु विदिक्से निकले हैं। जिन समस्त केतुओंकी बात कही गयी है, उनमें कई दृश्य और कई पण्ड्य हैं। उत्तर दिक्में आयत, स्निग्धमूर्ति और अतिशय बृहत् जो केतु पश्चिमदिक्में देखा जाता, वसाकेतु कहलाता है। जिस दिन यह निकलता है मरण होने लगता और राज्यमें अतिशय दुर्भिक्ष पड़ता है। इसी वसाकेतुकी भांति लक्षणयुक्त केवल औच्छव्यविहीन केतुको अस्थिकेतु कहते हैं। इसके उदयमें दुर्भिक्ष होता है। वसाकेतुकी भांति

पूर्व दिशामें देख पड़नेवाला केतु शस्त्रकेतु कहलाता है। इसके उदयका फल कलह और दुर्भिक्ष है। अमावस्याको जो धूम्रवर्ण केतु पूर्वमें दृष्ट होता, उसका नाम कपालकेतु है। यह आकाशके अर्धभाग पर्यन्त विचरण करता है। इसके उदयमें दुर्भिक्ष, मरक, अनाष्ठि और रोग होता है। पूर्व दिक्को अग्निवीथीमें रौद्र नामक केतु देख पड़ता है। यह शूलकी भांति आकारविशिष्ट, कपिश, रुध, ताम्रवर्ण-प्रभायुक्त और तीन शिखायुक्त रहता और आकाशके ३ भाग तक संचरण कर सकता है। इसका फल कपालकेतुके ही समान है। पश्चिम दिक्में चक्र-केतुका उदय होता है। इसकी दक्षिणाग्र एकाङ्गुलि उच्छ्रित एक शिखा रहती है। चक्रकेतु निकलते ही उत्तर दिक्को जा सकता और इसकी शिखा भी धीरे धीरे बढ़ा करती है। यह सप्तर्षिमण्डल, ध्रुव नक्षत्र और अभिजित्को स्पर्श करके पुनर्वार प्रत्यागमन करता और दक्षिण दिशामें ही अस्त होता है। इस केतुके निकलने पर प्रयागसे अवन्तीपुर पर्यन्त पुण्यारण्य नामक स्थान और उत्तरदिक्में देविका नदी पर्यन्त स्थान विगड़ता, मध्यदेशमें भयानक उत्पात उठता और दूसरे देशोंमें दुर्भिक्ष तथा रोग बढ़ता है। यह केतु जिस दिन देख पड़ता, उससे १५ दिन पीछे १० मास पर्यन्त ऐसा ही अशुभ फल मिला करता है। श्वेतकेतु पूर्व दिशामें अर्धरात्रिके समय दृष्ट होता है। इसकी शिखाका अग्रभाग दक्षिण दिक्को अवनत रहता और पश्चिम दिशामें भी दुर्गकी भांति आकृति-विशिष्ट कोई अपर केतु निकलता, जिसका नाम ककेतु पड़ता है। यह दोनों ही एक काल उदित होते और ७ दिन पीछे अदृष्ट हो जाते हैं। फल सुभिक्ष और मङ्गल है। परन्तु ७ दिन पीछे भी यदि ककेतु देखनेमें आता, तो घोरतर शस्त्रयुद्धसे समस्त लोकका अमङ्गल आता है। किसी दूसरे केतुको श्वेत कहते हैं। यह जटा जैसा तथा क्षणवर्ण रहता और आकाशके ३ भाग पर्यन्त चल करके वाम भागको प्रत्यागमन करता एवं अस्तमित होता है। इसके उदयमें भयानक मरक पड़ता और प्रजाका बर्तमान मात्र बचता

है। रश्मिकेतुकी शिखा ईशत् धूम्रवर्ण रहती है। यह केतु कृत्तिका नक्षत्रके निकट देख पड़ता है। इसका फल श्वेतके ही समान है। ध्रुवकेतु देखनेमें स्थूल, सूक्ष्म और मध्याकृति होता है। इसकी गति और उदयका कोई ठिकाना नहीं। यह दिव्य, आन्तरीक्ष और भौम भेदसे तीन प्रकारका होता है। कभी कभी इसका नानाविध आकार देख पड़ता है। फल शुभ है। परन्तु जिस राजाके सेनाङ्गमें यह देखा जाता, वह अचिर ही मृत्यु, फता है। फिर जो देश शीघ्र मिटनेवाला होता उसके वृक्ष, पर्वत और गृहमें यह दीखता है। इसी प्रकार जिस गृहस्थकी गृह सामग्री किंवा गृहतरु प्रभृतिमें यह केतु देख पड़ता, वह मर मिटता है। कुमुदकेतु श्वेतवर्ण और पूर्वाग्र पश्चिमको रखनेवाला है। यह एक रात्रि मात्र दिखाई देता है। इसके दर्शन पीछे १० वत्सर पर्यन्त सुभिक्ष रहता है। मणिकेतु रात्रिको १ प्रहर काल पर्यन्त पश्चिम दिशामें देख पड़ता है। इसकी एक सूक्ष्म तारा और शूलशिखा रहती है। शिखा देखनेमें स्तनसे पतित ठीक दुग्धधारा जैसी होती है। इसके उदय दिन से ४१ मास पर्यन्त सुभिक्ष रहता है। जलकेतु—स्निग्ध उन्नत शिखाविशिष्ट और पश्चिम दिशामें देख पड़नेवाला है। इसके उदयमें ८ मास पर्यन्त सुभिक्ष और प्रजाका मङ्गल होता है। भवकेतु—एक सूक्ष्म तारका-विशिष्ट, सिंहके लाङ्गुल-जैसी शिखा द्वारा वेष्टित पूर्वमें एक रात्रि मात्र देख पड़ता है। यह स्निग्ध रूपमें जितने सुदृढ़ पर्यन्त देखा जाता, उतने मास सुभिक्ष रहता और रुध रहनेसे प्राणान्तिक रोग लगता है।

पद्मकेतु—सूण्यालकी भांति श्वेतवर्ण रहता और पश्चिम दिशामें एकरात्र मात्र देख पड़ता है। इसके उदयसे ७ वत्सर पर्यन्त सुभिक्ष होता है। आवर्तकेतु अरुणतुल्य और स्निग्ध रहता और अर्धरात्रिको पश्चिम दिक्में देख पड़ता है। यह केतु जितने क्षण देखनेमें आता, उतने वर्ष पर्यन्त सुभिक्ष होता और जगत् नित्य यज्ञोत्सवसे आनन्दित रहता है। संवर्तकेतु अतिशय भयानक, धूम्र और ताम्रवर्ण शिखायुक्त होता और संख्या कालको पश्चिम दिक्में देखा जाता है। यह केतु

नभीमण्डलका विभाग अतिक्रम करके जितने मुहूर्त अवस्थिति करता, उतने वर्ष शस्त्रयुद्धसे भूपतियोंका विनाश लगा रहता है। संवत्केतु जिस नक्षत्र पर उदित होता किंवा जिन समस्त नक्षत्रोंको आश्रय करता, वह सब नक्षत्र और तदाश्रित देश पीड़ित होते हैं। अश्विनीनक्षत्र अशुभ केतुके साथ युक्त वा धूपित होनेसे अश्वमेध देशीय नृपति मर मिटता है। इसी प्रकार भरणीनक्षत्रमें किरातराज, कृत्तिकानक्षत्रमें कङ्केश्वर और रोहिणीनक्षत्रमें शूरसेनाधिपतिका विनाश होता है। पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रमें उशीरेश्वर, उत्तरफाल्गुनीमें उज्जयनीपति, हस्तामें दण्डधारण्यक राजा, अश्लेषामें असिकाधिपति, चित्रा नक्षत्रमें कुब-जेश्वर, स्वाती नक्षत्रमें काश्मीर तथा काश्मीरके अधिपति, विशाखा नक्षत्रमें इक्ष्वाकुराज एवं अलका नगरीके अधीश्वर, अनुराधा नक्षत्रमें पुण्ड्राधिपति और ज्येष्ठानक्षत्रमें किसी एक सार्वभौम नरपति अथवा कान्यकुब्जाधिपतिका विनाश है। इसी प्रकार मूळामें मद्रकपति, पूर्वाषाढ़ामें काशीराज, उत्तराषाढ़ामें योक्षेयक, भाद्रपदायन, शिवि तथा चैत्र नृपति और श्रवणासे ६ नक्षत्रोंमें यथाक्रम कैकयनाथ, पञ्चनदाधिपति, सिंहसाधिप, वङ्केश्वर, नैमिषराज एवं किराताधिपका विनाश होता है। शिखा चल्का द्वारा अभिहित होने और उदय होते ही देख पड़नेसे सकल प्रकार केतु शुभफल प्रदान करते हैं। परन्तु ऐसा केतु भी चोल, वङ्ग, सित और ज्ञान देशके लिये अमङ्गलकारी है। केतुकी शिखा जिस दिशामें वक्रभावसे अवस्थिति करती किंवा जिस दिशाको चलने लगती उसी दिशामें अवस्थित देश समूह और जिस नक्षत्रकी स्पर्श करती उस नक्षत्रका कथित दिक्समूह—राजा विपुल पराक्रमसे जय करके भोग करते हैं।

(भट्टोपलविरचित संहिताशक्तिकेतुचाराध्याय)

केतुपात होने पर शान्तिके लिये राजाको पृथिवी दान करना चाहिये और दूसरे गृहस्थोंको भी प्रभूत धन दान करना विधेय है। उठात् उदय वा अस्तकालके केतु देख पड़ने पर पित्तज्वरसे राजाका मृत्यु होता है। (नक्षत्राभाषणत समवाचन)

पाश्चात्य युरोपीय ज्योतिर्विदोंके मतमें केतु कोई ग्रह नहीं। चन्द्रकक्ष और क्रान्तिरेखा दोनों जिस बिन्दुमें सम्मिलित हैं उन्हीं दोनोंमें जिससे चन्द्र जपर चढ़ता उसको अर्धगपात और जिस बिन्दुमें नीचे उतरता उसको अधोगपात कहते हैं। भारतवर्षके किसी सिद्धान्तवेत्ताने अधोगपात स्थानका नाम कंतु और अर्धगपातका नाम राहु रखा है। चन्द्र पृथिवीका उपग्रहस्वरूप है। उसको भ्रमण करनेमें चन्द्रका कक्ष क्रान्तिरेखाके दोनों स्थलों पर संयुक्त हो जाता है। इसी प्रकार बुधशुक्रादि ग्रह सूर्यको प्रदक्षिण करते और उनके भी कक्ष क्रान्ति पर पड़ते हैं। उनमें प्रत्येकके दो दो संक्रामित स्थानोंको अर्ध और अधः अनुसार उनको राहु और केतु कहना असङ्गत नहीं। ज्योतिर्गण जिस प्रकार जड़पदार्थ होनेसे ग्रह और तारका कहते हैं, वैसे राहु और केतु जड़ पदार्थ नहीं—पाश्चात्यमार्गके निर्णीत चिह्नमात्र हैं। ग्रहोंके साथ उनका यही सादृश्य है—जैसे ग्रहोंकी भिन्न भिन्न परिमित गति रहती है, वैसे ही नाना कारणोंसे क्रान्ति और कक्ष सकलके अल्प अल्प व्यतिक्रममें ग्रह सभी सम्पातस्थान किञ्चित् किञ्चित् सरका करते हैं। इसका नाम पातगति है। इस गतिके अनुसार राहु-केतु नामक चिह्न स्थल पर कक्ष तिर्यक् भावमें जिस कोणको भुङ्क पड़ता, वह कुछ कुछ घटता बढ़ता है।

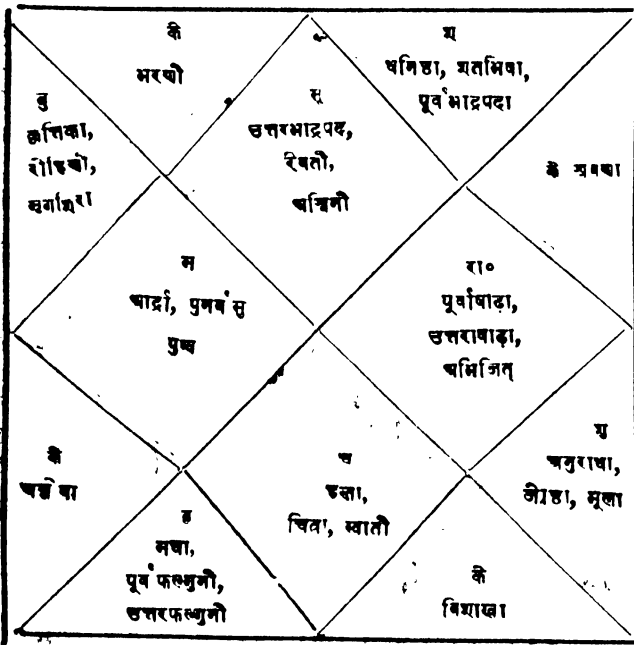
चन्द्रके दो पातस्थानों पर्यात् राहुकेतुकी जो गति है, वह चन्द्रके एक एक बार भूप्रदक्षिण समयका अर्धकांश प्रतिसरण है। अग्रसरण उसकी अपेक्षा अति अल्प होता है। किसी नक्षत्रको लक्ष्य करके राहुकेतुका स्थान ठहरा गणना द्वारा स्थिर हुवा है कि उक्त गति द्वारा इस स्थानसे अलग हो फिर इसी स्थान पर उपस्थित होनेमें ६७८१ दिन ८ घण्टे २१ मिनट ८१ सेकेण्ड समय लगता है। उसीसे इससमय बीतते हुई पूर्णिमा और अमावस्या आदि पूर्वको जिस जिस दिन हुई, उसी उसी दिन फिर हुना करती है।

ग्रहण, पात, चन्द्र, ग्रह आदि ग्रह देखी।

हिन्दुओंमें केतुको पुच्छलतारा, बढ़नी और भाङ्ग भी कहते हैं।

केतुकुण्डली (सं० स्त्री०) चक्रविशेष, एक कुण्डली । इसके द्वारा जन्मप्रभृति एक एक वर्षका अधिपति ग्रह निकासा जा सकता है । प्रजापतिदासने लिखा है— १२ प्रकोष्ठ चक्रित करके प्रथममें रवि, द्वितीयमें केतु, तृतीयमें बुध, चतुर्थमें मङ्गल, पञ्चममें केतु, षष्ठमें बृहस्पति, सप्तममें चन्द्र, अष्टममें केतु, नवममें शुक्र, दशममें राहु, एकादशमें केतु और द्वादश प्रकोष्ठमें शनिको स्थापन करना चाहिये । फिर प्रथम प्रकोष्ठमें रविके साथ उत्तरभाद्र, रेवती, अश्विनी तीन नक्षत्र और द्वितीय प्रकोष्ठमें केवल भरणी स्थापन करते हैं । इसी प्रकार छत्तिकासे यथाक्रम दूसरे ग्रहके प्रकोष्ठमें तीन तीन और केतुके प्रकोष्ठमें एक एक नक्षत्र रखनेका नियम है ।

केतुकुण्डली चक्र ।



यदि बाह्यक उत्तरभाद्रपद, रेवती वा अश्विनी-मेंसे किसी नक्षत्र पर जन्म लेता, तो उसका प्रथम रवि, द्वितीय केतु, तृतीय बुध, चतुर्थ मङ्गल, पञ्चम केतु, षष्ठ बृहस्पति, सप्तम चन्द्र, अष्टम केतु, नवम शुक्र, दशम राहु, एकादश केतु और द्वादश वर्ष शनिके अधीन समझना चाहिये । इसी प्रकार दूसरे स्थानोंसे भी गणना की जाती है । रवि आदि वर्षाधिपतियोंका फल केतुपताकाचक्रकी भांति होता है । इस

चक्रमें केतुके प्रकोष्ठ अधिक हैं । इसीसे इसका नाम केतुकुण्डली रखा गया है । (पञ्चसरा)

केतुग्रह (सं० पु०) नवग्रहके अन्तर्गत एक ग्रह ।

केतु स्त्री ।

केतुग्रहवृक्ष (सं० स्त्री०) वैद्यकमणि, लहसुनिया ।

केतुतारा (सं० स्त्री०) केतुः शिखा तद्युक्ता तारा, मध्यपदलोपी कर्मधा० । धूमकेतु । यह एक नक्षत्र-विशेष है । इसकी एक शिखा धूमवर्ण होती है ।

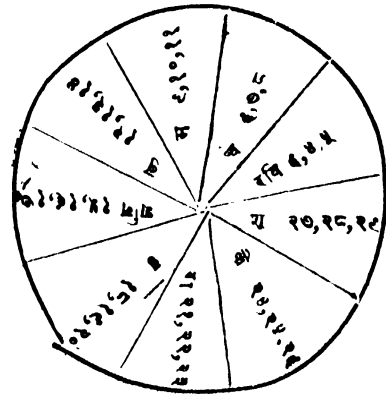
केतु ताराके उदयसे नानाविध उत्पात उठा करते हैं ।

केतुधर्मा (सं० पु०) एक राजा । यह जगतके अधिपति सूर्यवर्माके अनुज थे ।

केतुपताका (सं० स्त्री०) केतोः पताका इव । एक चक्र । इसके द्वारा जन्मसे प्रत्येक वर्षका अधिपति ग्रह समझा जा सकता है । पञ्चसरामें लिखते हैं—

‘केतुपताकामें रवि, चन्द्र, मङ्गल, बुध, शनि, बृहस्पति, राहु, केतु और शुक्र यथाक्रम स्थापन करना चाहिये । पीछे रवि आदि प्रत्येक ग्रहके साथ छत्तिका प्रभृति तीन तीन नक्षत्र रखते हैं । जन्म नक्षत्र जिस ग्रहके साथ केतुपताकामें रहता, वही ग्रह प्रथम वर्षका अधिपति ठहरता है । फिर दूसरे वर्षका अधिपति उसके आगेका ग्रह होगा । केतुपताकामें रविके साथ शनि, सोमके साथ बृहस्पति, मङ्गलके साथ राहु और बुधके साथ शुक्रका वेध लगता है । परन्तु केतुके साथ किसी ग्रहका वेध नहीं ।

केतुपताकाका चक्र ।



अधिपति ग्रहके अनुसार वर्षका फल इस प्रकार कहा गया है—

‘रवि जिस वर्षका अधिपति रहता, उसमें कोई

लाभ नहीं मिलता, शिरःपीड़ा, ज्वररोग, गृहदाह और पट पट पर विस्फोटाभय रहता है। चन्द्रके वत्सरमें रौप्य तथा सुवर्णका आभरण पाते और क्षत्रिय कार्य करनेसे विशेष फल उठाते हैं। मङ्गलके वर्षमें मृत्युभय, गृहदाह, धनहानि, चोरका डर और राजभय रहता है। बुधके वत्सरका फल उत्कृष्ट श्रेयालाभ, रौप्य प्रभृति धनप्राप्ति, दान और मानसिक पुण्यकर्म है। शनिके वर्षमें दाह, बन्धन, नानाविध पीड़ा, धनहानि, प्रहार और आत्मीय सज्जनके साथ कलह होता है। बृहस्पतिके वर्षका फल नानाविध सम्पत्ति, क्षत्र्य लोहित कृत्रप्राप्ति और बहुविध सम्मान है। राहुके वर्षमें बन्धन, नौकाविप्लव अर्थात् पानीमें नाव डूब जाना, हाथ पैर और सारे शरीरमें ब्रह्म तथा सर्वदा अशान्ति रहती है। केतु ग्रहका फल भी ऐसा ही होता है। शुकके वर्षमें विपुल सम्पत्तिलाभ, इस्ती, अश्व प्रभृति वाहन प्राप्ति और उत्साह होता है।

प्रत्येक ग्रहके वर्षमें दूसरे ग्रहोंका अन्तर्दिन पाता है। उसीके अनुसार फलफल समझ लेते हैं। वर्षको ८ भागोंमें बांटना पड़ता है। प्रथम भागमें २० दिन, दूसरेमें ५० दिन, तीसरेमें २८ दिन, चौथेमें ५६ दिन, पांचवेंमें ३३ दिन, छठेमें ६३ दिन, सातवेंमें २० दिन, आठवेंमें ७० दिन और नवेंमें २० दिन वर्षके अधिपतिका अन्तर्दिन प्रथमभाग अर्थात् २० दिन रहता है। उस ग्रहका जो फल कहा गया है। वह इन्हीं २० दिनमें मिलजाता है। पताकाके स्थापनानुसार वर्षाधिपतिके परवर्ती ग्रहका द्वितीय भाग और उसके परवर्ती ग्रहका तृतीय भागमें अन्तर्दिन पाता जाता है। इसीप्रकार सब ग्रहोंका अन्तर्दिन देखना चाहिये। शुभ अथवा अशुभ ग्रहका फल जो कहा गया है, अन्तर्दिनमें भी उसका वही फल होता है। केतुभ (सं० पु०) केतु ग्रहस्येव भा दौस्रियस्य, बहुव्री० । मित्र, वादल ।

केतुभूत (सं० त्रि०) पताका बना हुआ; जो भण्डा बन गया है।

केतुमती (सं० स्त्री०) १ सुमाती राजसक्ती स्त्री। यह अकम्पन, धृञ्जात आदिकी माता थीं। २ कोई छन्द,

अर्धसमस्त। जिसके प्रथम चरण तथा तृतीय चरणमें पहले २ छन्द, १ गुरु, १ छन्द, १ गुरु, ३ छन्द और २ गुरु पाते और द्वितीय एवं चतुर्थ चरणमें पहला; चौथा, छठा, दशवां और ग्यारहवां अक्षर गुरु जगते, उसे केतुमती छन्द ठहराते हैं।

केतुमान् (सं० त्रि०) केतुरस्यस्य, केतु मनुष्य। १ चिह्नयुक्त, निशानदार। २ प्रज्ञायुक्त, समझदार। (सक्त६/४०/१२) (पु०) ३ काशीराज दिवोदासके वंशवाली कोई राजा। (हरिवंश १ च०) ४ श्रीकृष्णकी पत्नी सुमन्दाका निवासगृह। (हरिवंश) ५ धन्वन्तरिके पुत्र। ६ कोई दानव। (भागवत ८/१०/५)

केतुमाल (सं० पु०) १ अम्बीधराजाके एक पुत्र। २ जम्बुद्वीपके अन्तर्गत नीमें एक वर्ष। यह वर्ष निषधालके पश्चिम अवस्थित है। इस वर्षमें विशाल, कम्बल, कण्ठ, जयन्त, हरिपर्वत, अशोक और अर्धमान नामक ७ कुलपर्वत हैं और वन्य जन्तु अधिक रहते हैं। सुवप्रा आदि अनेक नदी और नद वतमान हैं। देवर्षियों, सिद्धों और चारणोंकी इन समस्त नदियोंके जलमें स्नान करना अच्छा लगता है।

(ब्रह्माण्डपुराण)

केतुमाली (सं० पु०) शम्बरदेवके एक सेनापति। केतुयष्टि (सं० स्त्री०) पताकाका दण्ड, भण्डेका बांस। केतुरत्न (सं० स्त्री०) वैदूर्यमणि, लहसुनिया।

केतुवीर्य (सं० पु०) एक दानव। (हरिवंश १ च०)

केतुवृक्ष (सं० पु०) मेषके चतुर्दिक्स्थित मन्दर प्रभृति पर्वतोंके चिह्नस्वरूप वृक्ष। मन्दर पर्वतमें कदम्ब, गन्धमादनमें जम्बू, विपुलमें वट, एवं सुपाश्व पर्वत पर पिप्पल केतुवृक्ष कहलाता है। (विशालशिरोमणि)

विष्णुपुराणके मतमें मेषके पूर्व मन्दरमें कदम्ब, दक्षिणदिक्स्थ गन्धमादनमें जम्बू, पश्चिमस्थ विपुलमें पिप्पल और उत्तर सुपाश्व पर्वतमें वटवृक्ष ही केतुवृक्ष हैं।

केतुमृग (सं० पु०) पौरववंशीय एक राजा।

(भारत आदि १० च०)

केतो (हिं० पु०) अमेरिका उष्ण देशका एक जन्तु। यह सोमड़ी-जैसा लगता और ईशके खेतको चरता है।

केदगांव—बम्बईप्रान्तीय पूना जिलेका एक गांव।

सूपासे यह १२ मील उत्तर पड़ता है। यहाँ पेनि-सुला रेलवेका एक स्टेशन है।

केदार (सं० पु०) के दृष्टाति कैर्दियंते वा, के-ट-अच् पथवा अप। १ वनस्पतिविशेष, कोई पेड़। (त्रि०) २ काष्ठ, काना। ३ टेरक, टेरा, कै'वा।

केदार (सं० पु० स्त्री०) के शिरसि दारोऽस्य केन जलेन वा दारोऽस्य, बहुव्री०। १ हिमालयके अन्तर्गत कोई पर्वत और महापुण्यभूमि। (हिमवत्खण्ड ८। १०) काशी-खण्डमें कहा है—

केदार दर्शन करनेका निश्चय करनेवालेके पापनाश सञ्चित पाप उसी समय विनष्ट हो जाते हैं। जानेका निश्चय करके घरसे निकलते ही दोजन्मके अर्जित पाप शरीरसे दूरीभूत होते हैं। पथके मध्यभागमें पहुँचने पर तीन जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। सायंकालको केदार नाम तीन बार बोलनेसे घरमें बैठे रहते भी केदारयात्राका फल मिल सकता है। केदारपर्वत अवलोकन और वहाँका जलपान करनेसे जन्मजन्मान्तर के पाप कटते हैं। उसी स्थान पर हरपाप नामक एक ऋद्ध है, उसमें स्नान करके केदारेश्वरकी पूजा करनेसे कीटजन्मके अर्जित पाप विनष्ट होते हैं। जो हरम्पापऋद्धके तौर आराधन करते, उनके सप्त पुत्र स्वर्ग पहुँचते हैं। हिमालय पर चढ़के केदार अवलोकन करनेसे काशीदर्शनका सप्तगुण फल होता है। २ कामरूपका कोई पवित्र तीर्थ। कामरूप देखो। ३ नर्मदातीरस्थ कोई तीर्थ। यह पुराणमें मतङ्गकेदार नामसे वर्णित है। (वासुपुराण, रेवामाहात्म्य) ४ केदार पर्वतस्थ शिवलिङ्ग। ५ काशीका कोई शिवलिङ्ग। काशी देखो। ६ बदरिकाश्रमका निकटवर्ती कोई क्षेत्र। (श्रीगीता) ७ जल निवारणके निमित्त चारो पार्श्वकी चेतुर्वन्धयुक्त क्षेत्र, चारो ओरसे घिरा हुआ क्षेत्र। ८ आलवाल। ९ मालभूमिविशेष, कोई उपजाऊ जमीन। १० केदारशालि, एक प्रकारका धान। ११ अम्बि नामक धर्मशास्त्र बनानेवाले। श्रीधर स्वामीने इनका मत उद्धृत किया है। १२ कोई सम्पूर्ण जातिका राग। यह मीरागका चौथा पुत्र है और रातके दूसरे प्रहर गाया जाता है।

केदारक (सं० पु०) पट्टिकधाम्यविशेष, चाठी धान।

यह मधुर, वात तथा पित्तनाशक, पुष्टिकर और कफ एवं शुक्लवृद्धिकारक होता है। (वृत्त)

केदारकटुका (सं० स्त्री०) केदारस्थ क्षेत्रस्थ कटुकेव। कटुकी।

केदार कवि (कदर ?) हिन्दी भाषाके एक कवि। शिव-सिंहसरोजमें लिखा है कि वह अलाउद्दीन खिल-जौके दरबारमें आते जाते रहे। इसलिये केदार कविके अभ्युदयका समय ११५० ई० था। इनकी कविता विरल है।

केदारकान्त—युक्तप्रदेशके गढ़वाल प्रान्तका एक निरि-शुद्ध। यह अक्षा० ३१° १' उ० और देशा० ७८° १४ पु० पर अवस्थित और समुद्रतलसे ८३६० हाथ ऊँचा है। हिमालयमें यमुना और तमसा नदीकी जहाँ उत्पन्न हुई, ठीक उसीके मध्यस्थल पर केदारकान्त विद्यमान है। इसकी चारो ओर पर्वत ठालू हैं। इसी-से इस पर चढ़नेका बड़ा सुभीता है। निम्नभागमें घसिमका भाग अधिक है और उपरिभाग अश्वयुक्त है। भूमिसे ६६६६ हाथ ऊँचे तक इसमें वृक्षादि देख पड़ते हैं। उससे ऊपर खूब और छोटे छोटे शुष्कमात्र उत्पन्न होते हैं। शीतकालको शिखरदेशमें बरफ जमता, जो ज्येष्ठ मासक मास गलता है। कई महीने बरफ देख नहीं पड़ता। पहले यह पेमायशके केन्द्रस्थानकी भाँति व्यवहृत होता था। स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें इसीको 'केदारगैल' कहा है।

केदारखण्ड (सं० पु०) स्कन्दपुराणका एक अंश। जिसमें केदारमाहात्म्य विशदरूपसे वर्णित हुआ है। २ बांध, पुष्टा।

केदारगङ्गा—युक्तप्रदेशके गढ़वालप्रान्तकी एक नदी। यह अक्षा० ३०° ४४' १५" उ० और देशा० ७८° ५' पु० से निकली और पाँच-छह कोस पथ चलके गङ्गो-तरीके निम्नभागमें अक्षा० ३०° ५८' उ० और देशा० ७८° ५८' पु० पर भागीरथीसे जा मिली है। बर्फ गल जानेसे इसका जल अधिक परिमाण और प्रबल वेगमें बहता है। दूसरे समय अधिक जल नहीं रहता।

केदारज (सं० त्रि०) केदारात् जायते, केदार-जन्म-ज।

१ क्षेत्रजात, खेतका पैदा। (स्त्री०) २ पञ्चकाष्ठ।
केदारजल (सं० स्त्री०) क्षेत्रका जल, खेतका पानी।
यह मधुर, गुणपाक और दोषकारक होता है। फिर
क्षेत्रजल जल मुक्त होने पर अतिप्रिय दोषकारक है।

(राजनिघण्टु)

केदारनट—केदार और नट रागके योगसे उत्पन्न एक
राग। इसमें ऋषभ और धंशत वर्जित केवल ५ स्वर-
ग्राम हैं। (सङ्गीतपारिजात) केदारनटको रात्रिके दूसरे
पहर गाते हैं। कोई कोई इसे नटनारायणका छठा
पुत्र मानता है।

केदारनाथ—हिमालयप्रदेशस्थ गढ़वालकी एक पुण्य-
भूमि। यह अक्षां० ३०° ४४' ८" और देशां० ७८° ५०'
पर महापथ नामक तुषारशृङ्गके नीचे समुद्रपृष्ठसे
७३३३ हाथ ऊँचे अवस्थित है।

इस स्थानमें केदारनाथ नामक शिवलिङ्ग विद्यमान
है, इसीसे हिन्दुओंके वास्तो यह स्थान अतोव पुण्य
भूमि है। केदार देखो।

अति प्राचीनकालसे केदार एक महापुण्यस्थान
कहलाता है। महाभारत, मात्स्य (२२।११),
कूर्मपुराण (६।१।२।१) स्कन्दपुराण और नन्दीपुराणमें
केदारनाथको महापुण्यस्थान बताया है।

यहाँके केदारनाथ शिवके नामानुसार समस्त
गढ़वाल प्रदेश प्राचीनकालको केदारभूमि कहलाता
था। यह बात गढ़वालराज अनेकमल्ल आदि राजाओं-
के प्रदत्त प्राचीन अनुशासनपत्र पढ़नेसे समझ पड़ती
है। गढ़वाल देखो।

स्कन्दपुराणके केदारखण्डमें लिखा है—यह स्थान
महादेवको अतिप्रिय है। यहाँकी धूलि स्पर्श करनेसे
भी महापण्य होता है। जिसने महापाप किया है,
केदारनाथके दर्शनसे उसका सब छूट जाता है। तीर्थ-
यात्रियोंको यहाँ आके केदार, तुङ्गनाथ, बदालय,
मध्येश्वर और कल्पेश्वर पञ्चकेदार दर्शन करना
चाहिये।

पुण्यधाम केदारनाथके मन्दिरको छोड़के यहाँ
दूसरे भी अनेक तीर्थ विद्यमान हैं। उनमें खर्गरेहिबो,
अशुपतन, रेतकुण्ड, हंसकुण्ड, सिन्धुसागर, त्रिवेणी-

तीर्थ, महापथ, मन्दाकिनी नदीका निकटस्थ शिव-
कुण्ड आदि प्रधान हैं। केदारखण्डमें इन सबके
तीर्थोंका विस्तृत माहात्म्य लिखा है। महापथ नामक
पुण्यस्थानमें भैरवभक्त्य एक गिरिशृङ्ग है। पड़ले
अनेक सुसुष्ठु तीर्थयात्री यहाँ आके देवके प्रसादकी
लाभाशामें इसी महोच्च गिरिशृङ्गसे नीचे कूद पड़ते थे।
नन्दीपुराणके केदारखण्डमें लिखा है कि केदारनाथ
आके भक्त्य प्रदान करनेसे महादेव उसी समय भोजन
प्रदान करते हैं।

पड़ले बहुतसे लोग यहाँ प्राणत्याग करते थे। आज
कल अंगरेज गवर्नमेण्टके शासन गुणसे कोई बहुत
गहरे कूद नहीं सकता।

वैशाख मासकी अष्टम्य-द्वतीयासे कार्तिक-संक्रान्ति
पर्यन्त ऋतुमास काल तीर्थयात्री यहाँ आते हैं। अर्ध-
मागशीर्ष उपक्रान्तिके दिन यहाँ महासमारोह होता
है। केदारखण्डमें लिखा है—उस दिनको देवदेवी यहाँ
उपस्थित होती हैं। बहुतसे लोग कहते कि उसीदिन
उच्च गिरिशृङ्गसे नामाजातीय कुसुमोंका सौरभ और
उसीके साथ सुमधुर ध्वनि निकल कर आगन्तुकोंका
कर्णकुहर पवित्र करता है।

केदारनाथका प्राचीन मन्दिर टूट गया है। वर्त-
मान मन्दिर अधिक दिनका बना नहीं। मन्दिरकी
चारो ओर तीर्थयात्रियोंके ठहरनेके लिये देशीय राजा-
ओंके व्ययसे निर्मित बहुतसे घर खड़े हैं।

केदारनाथके प्रधान मन्त्रालयका उपाधि रावल है।
वह यहाँका पौरोहित्य नहीं करते, गुप्तकाशी और
छत्रौमठमें सर्वदा बने रहते हैं। उनके चले केदार-
नाथमें रह कार्य करते हैं। रावलजी दाक्षिणात्यकी
जङ्गम श्रेणीके ब्राह्मण हैं। यहाँके बड़े बड़े पण्डे भी
दाक्षिणात्यकी मन्थूरी श्रेणीके ब्राह्मण हैं। प्रति वर्ष
सहस्र सहस्र तीर्थयात्री केदारनाथ दर्शन किया
करते हैं। गढ़वाल देखो।

केदारभट्ट (सं० पु०) १ उत्तरकाकर नामक संस्कृत-
ग्रन्थके रचयिता। यह पञ्चकेके पुत्र थे। मङ्गनाथ,
शिवराम, पद्मनाभ प्रभृति पण्डितोंने इनका मत उद्धृत
किया है। २ कोई अलङ्कारप्रणेत।

केदारभूमि (सं० स्त्री०) मालदेव, आश्वद जमीन ।
 केदारमन्त्र—राजा मदनपालका उपाधि । मदनपाल देखो ।
 केदारराय—सन्दीपके निकट श्रीपुरके राजा । १६८२ ई०को यह राजत्व करते थे । उसी समय मुगलोंने जब बङ्गाल देशको अधिकार किया, सन्दीप केदाररायका अधिकृत रहा । किन्तु मुगलोंने उसका बलपूर्वक ले लिया । उस समय पोर्तगोज इस प्रदेशमें वाणिज्य करने आते थे । उन्होंने भी सुभोतिके अनुसार उसका कितना ही अंश अधिकार किया । आराकानके राजाने पोर्तगोजोंको निकाल बाहर करनेके लिये एक दल नौसेना भेजी थी । इधर केदाररायने भी श्रीपुरसे लड़ाईकी कई नावें पठा दीं । मिलित नौसेनाके जीतने पर पोर्तगोज सन्धिकरके श्रीपुरमें अपनी टूटी नावें मरम्मत करने गये थे । उसी समय मुगल सेनापति मन्दरायने उनको आक्रमण किया और केदाररायका पराक्रम खूब हुआ ।

केदारशालि (सं० पु०) केदारक्षेत्रज शालिधान्य, साठी धान ।

केदारा, केदारी देखो ।

केदारी (सं० स्त्री०) ऋषभ और धैवत वर्जित षोडश रागिणी । इसका यह अंश मार्गो, मूर्छना और निवय-युक्त है —

नि स ग म प नि नि ।

केदारीका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—जटाधारिणी केदारी रागिणी योगपट्ट और नागोत्तरीय धारण करके एकान्त मनसे शिवका ध्यान करती है । इसका मस्तक शुक्लपद्मीय शशधर द्वारा परिशोभित है । (सन्नोतदर्पण)

रागविबोधकार सोमेश्वरके मतमें यह सम्पूर्ण जातिकी रागिणी है । इसकी सायंकाश वीर और शृङ्गार रसमें गाना चाहिये ।

केदारेश्वर (सं० पु०) १ काशीस्थ कोई शिवलिङ्ग । (काशीखण्ड) २ एकान्त काननके अन्तर्गत कोई प्राचीन शिवमन्दिर । कपिलसंहितामें इनका माहात्म्य विस्तृत भावसे कहा है ।

केदिवारि—सिन्धुनदके समुद्रमें गिरनेका एक मुख । यह

अक्षा० २४° २' उ० और देशा० ६७° २१' पू० पर अवस्थित है । पहले सिन्धुनदके मुखमें घुसनेकी यही बड़ी राह थी । उस समय इसमें दस बारह हाथ पानी रहता था । आज कल हाजामरोव शाखामें अधिक जल रहनेसे वही बड़ा मुंहाना गिनो जाती है ।
 केन (सं० अव्य०) किससे, क्यों, कहाँसे ।

केन (सं० पु०) एक उपनिषद् । इसका पहला मन्त्र 'केन' शब्दसे आरम्भ होता है । यह सामवेदकी उपनिषद् है और ४ खण्डमें १४ मन्त्र लिखे गये हैं ।

केन—युक्तप्रदेशको एक नदी । इसका दूसरा नाम कयान भी है । संस्कृतमें इसे कर्णवती और श्रीकर्म केन्स कहते हैं । यह नदी भूरान्तराज्यके बीच विन्ध्याचल पर्वतके उत्तर-पश्चिम भागके ढाल प्रदेशसे निकली है । उत्पत्तिस्थान अक्षा० २३° ५४' उ० और देशा० ८° १०' पू० पर अवस्थित है । वहाँसे आगे सत्रह अष्टारह कोस जाके पिपरियाघाट नामक स्थानके निकट बन्देर नामक गिरिमानाके ऊपरसे इस नदीका जल एकबारगीसे बहुत नीचे गिरनेपर वहाँ एक जलप्रपात बन गया है । इसके आगे पश्चिममुख जानेसे पटना और सुनार नदी आकर इसमें मिली है । फिर बाँदा जिलाके बिलहड़का ग्राममें कायल, गवैन चन्दावाल नामक छोटी छोटी नदियाँ भी इसीमें गिरी हैं । यह सब मिली हुई नदियाँ बिह्ला नामक ग्राममें यमुनासे जा मिली हैं । उक्त स्थानका अक्षा० २५° ४७' उ० और देशा० ८०° ३३' पू० है । नदीकी लम्बाई उत्पत्तिस्थानसे ११५ कोस है । इसका कहीं स्रोत बड़ा और कहीं इसमें पहाड़ आ पड़ा है । इसीसे केनमें नाव चलनेका सुभोता नहीं । वर्षाकालकी यमुनाजोसे बाँदा तक १७।१८ कोसमें छोटी छोटी नावें चला करती हैं । इस नदीमें मछलियाँ बहुत हैं । फिर इसके तलसे अनेक मूखशान् प्रस्तर भी निकल आते हैं । लोग केनका पानी स्वास्थ्यकर नहीं समझते । अब इससे कई नहरें निकाली गयी हैं ।
 केनती (सं० स्त्री०) के सुखार्थं नति; वा डोप् अलुक् ।
 १ कामलीला । २ रति ।

केना (सं० स्त्री०) पत्रशाकविशेष, एक सज्जी । यह

मधुर, शीतल, रुच्य और स्तम्भवर्धनी होती है ।

(वैद्यकनिषध)

केना (हि० पु०) १ शाकभाजी लेनेके लिये दिया जानेवाला थोड़ासा अनाज । २ शाक, भाजी ।

केनार (सं० पु०) के मूर्धिनारः, अलुक् समा० । १ कुम्भिनरक । २ मस्तक और कपोलकी सन्धि, शिर और गालका जोड़ ।

केनिप (सं० पु०) के मुखे निपतति, के-नि पत-ड अलुक् समा० । मेधावी, समभट्टार । (ऋक् १० । ४४ । ४)

निषण्ट में केनिपके स्थल पर आकेनिप पाठ भी देख-पड़ता है ।

केनिपात (सं० पु०) के जले निपात्यतेऽसौ, नि-पत-णिच् कर्मणि अच् । भरित्र, बहना, नाव चलानेका डांड या बल्लो ।

केनिपातक (सं० पु०) केनिपात स्वार्थे कन् । भरित्र, नाव चलानेका डांड ।

केनो (सं०) केना देखो ।

केनघितोपनिषद् (सं० स्त्री०) केनोपनिषद् ।

केन्दु (सं० पु०) ईषत् इन्दुः, कोः कादेशः । तिन्दुक-वृक्ष, तेंदू ।

केन्दुक (सं० पु०) केन्दु सञ्ज्ञायां कन् । १ गालवृक्ष, एक प्रकारका शीशम जिससे राल निकलती है । २ कोई ताल

“लघु इयं विरामानां तालिकेन्दुकसञ्ज्ञिके ।” (सङ्गीतदासोदर)

केन्दुली (केन्दुविल्व)—वङ्गदेशके बोरभूम जिलेकी अजय नदीके तीरका एक बड़ा गाँव । यह अक्षा० २३° ३८' ३०" और देशा० ८७° २६' पू० पर अवस्थित है । प्रसिद्ध वैष्णव कवि जयदेवने यहीं जन्म लिया था । उक्त कविके स्मरणार्थ प्रतिवर्ष संक्रान्तिको यहाँ एक बड़ा मेला लगता है । उसमें प्रायः ५० हजार लोग इकट्ठे हुआ करते हैं ।

केन्दुवाल (सं० पु०) के जले इन्दोरिव अर्धन्दोरिव वाल-खलनमस्त्र, बहुव्री० । भरित्र, नावकी बल्लो ।

केन्दुविल्व (सं० पु०) वीरभूम जिलाके अन्तर्गत वर्तमान केन्दुली नामक गण्डग्राम । यह विख्यात जयदेव कविकी जन्मभूमि है । जयदेव देखो ।

केन्द्र (सं० स्त्री०) वृत्तक्षेत्रका मध्यस्थान, घेरेके बीचकी जगह । ग्रीक भाषामें इसे केन्ट्रॉन (Kentron) कहते हैं । २ कोई लग्न । लग्नके १म, ४थ, ७म, और १०म स्थानका नाम केन्द्र है । केन्द्रस्थानमें जाके ग्रह जो आकर्षण करता, वह प्रबल होता है ।

(ब्रह्मसंहिता)

केन्द्रका (सं० स्त्री०) केन्द्र, तेंदू ।

केन्द्रमुखवल (सं० स्त्री०) वह बल जिससे सकल वस्तु केन्द्रके अभिमुखसे प्रवर्तित होता है ।

केन्द्रस्त्रोत (सं० स्त्री०) मेरुके निकटसे आया हुआ स्त्रोत ।

केन्द्रापसारिणी (सं० स्त्री०) शक्तिविशेष, एक ताकत । इस शक्तिके प्रभावसे द्रव्यको केन्द्र छोड़के जाना पड़ता है ।

केन्द्रापाड़ा—उड़ीसेके कटक जिलाका एक उपविभाग । इसका प्रधान नगर भी केन्द्रापाड़ा है । यह महानदीकी शाखा चितरतला नदीके तीर अक्षा० २०° १८' और २०° ४८' ३०" और देशा० ८६° १५' और ८७° १' पू० पर अवस्थित है । पहले कुजङ्गके राजा यहाँ सदैव लूट मार किया करते थे । इसीसे मराठोंने वहाँ एक फौजदार रख दिया । केन्द्रापाड़ामें एक म्युनिसिपैलिटी, कई अदालतें और डाकबंगला है ।

केन्द्राभिकर्षणीशक्ति (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी शक्ति, जिसके प्रभावसे द्रव्य केन्द्रके अभिमुख चलता है ।

केन्द्राभिमुखवल (सं० स्त्री०) वह बल जिससे सकल वस्तु केन्द्रके अभिमुख आकृष्ट होता है ।

केपि (सं० त्रि०) कुक्षित कर्मकारी । (ऋक् १० । ४४ । ६)

केमद्रुम (सं० पु०) जम्बूकालीन एक ग्रहयोग । जम्बूकालकी जिन ग्रहोंके जिन लग्नमें रहनेसे सुनफा, अनफा और दुरधुरा योग होता, उससे अन्य लग्नमें ग्रह पड़नेसे केमद्रुमयोग लगता है । केमद्रुम योगमें जातव्यक्ति दरिद्र तथा दुःखी रहता और पीछे उसे दासत्व करके जीविकानिर्वाह करना पड़ता है । केमद्रुम जातव्यक्ति राजवंशीय होते भी दरिद्र, मलिन, दुःखित और दूसरेका बेटनपाही होता है । चन्द्र केन्द्रगत, अपर ग्रहयुक्त वा अपर सकल ग्रह दृष्ट होनेसे

केमुकमयोग नहीं लगता। बीसमें इसे केनोडोमस कहते हैं। (गीतिसिख)

केमुक (सं० पु०) के शिरसि अमयति, के-अम-उक्।

१ हृत्त्वविशेष, केमुककन्द, केडुआ, बंडा। इसका संस्कृत पर्याय—पेचुक, पेचुनी, पेचु, पेचिका, दलसारिणी और केचुक है। केमुकका मूल कफनाशक, पित्तघ्न, रोचक और अग्निदीपनकारक है। (राजनिषण्ड)

२ राठ देशका एक ग्राम। वृषेश्वर शिवलिंगके लिये यह ग्राम प्रसिद्ध है। (दिविजयप्रकाश)

केम्पेगोड—एक एलहट्ट राजा। १५३७ ई० की इन्होंने मङ्गलोर नगर स्थापन किया था। इनके पुत्रने मागडी और मायनदुर्गका अधिकार किया था।

केम्पदेव—महिसुरके एक प्रबल राजा। इन्होंने मदुराके नायकका पराजय करके एरोद नामक स्थान जीता था। वेदनोरके शिवाप्पा नायक भी इनसे परास्त हुए। इन्होंने दाऊदेवराज सपाधि ग्रहण किया था।

राज्यकाल १६५८-१६७२ ई० रहा।

केम्बुक (सं० स्त्री०) पूग, सुपारी।

केयदेवपण्डित—एक वैद्यक ग्रन्थकार। इनके पिताका नाम सारङ्ग और पितामहका नाम पञ्चनाभ था। इन्होंने मणिरत्नाकर और पथ्यापथ्यविवेक नामक वैद्यकग्रंथ रचना किया।

केयूर (सं० स्त्री०) के बाहुशिरसि याति के-या-जर-किञ्च अणुक् समा०। १ बाहुभूषण, वजुक्ता, २ कोई रति-बन्ध।

“स्त्रीजङ्घे चैव संपीय दोर्भांमालिङ्गा सुन्दरीम्।

कारयेत् स्थापनं कामो बन्धः केयूरसंश्रितः॥” (रतिदीपिका)

रतिमञ्जरीमें प्रकारान्तरसे केयूरबन्ध निर्णीत हुआ है।

स्त्रीषां जङ्घान्तराविष्टो गाढमालिङ्गा सुन्दरीम्।

मथेविपुलं कामो बन्धः केयूरसंश्रितः॥” (रतिमञ्जरी)

केयूरक (सं० पु०) १ कोई गन्धर्व। वाणभट्टने इन्हें गन्धर्वकुमारो कादम्बरीका अनुचर बताया है। २ अङ्गद, बहूटा।

केयूरबन्ध (सं० पु०) वज्रतेऽव, बन्ध-चञ्, केयूरस्य बन्धः, इ-तत्। अङ्गद परिधानका स्थान, वजुक्ता बांधनेकी जगह।

केयूरबल (सं० पु०) बौद्धशास्त्रोक्त देवताभेद।

(कलितविलार)

केयूरी (सं० त्रि०) केयूरमस्यास्ति, केयूर-इनि। बाहु-भूषणयुक्त, वजुक्ता बांधे हुआ।

केरक (सं० पु०) १ जनपदविशेष, कोई देश। (महाभारत, सभा २० अ०) २ केरकके रहनेवाले।

केरटपर्याय—एक प्राचीन कवि। श्रीधरदासके सूक्तिकर्णा-मृतमें इनकी कविता उद्धृत हुई है।

केरल (सं० पु०) १ क्षत्रियविशेष। सूर्यवंशीय सगर-राजाने इन्हें धर्मस्थ कर डाला था। (हरिश्च)

२ दक्षिणापथके अन्तर्गत कोई अति प्राचीन जनपद, दक्षिण भारतका एक बहुत पुराना प्रान्त। रामायण (४।४१ अ०), महाभारत (६।८ अ०), ब्रह्माण्ड-पुराण (४८।५२), मार्कण्डेय (५७।४८), मत्स्य (११३।४६), वामन (१३।४६) और बृहत्संहिता आदि ग्रन्थोंमें इस जनपदका उल्लेख मिलता है। वर्तमान गोकर्णसे कुमारिका अन्तरीप पर्यन्त समुद्रतीरवर्ती विस्तीर्ण प्रान्त केरल कहलाता था। शक्तिपञ्चमत्तके मतमें सुब्रह्मण्य (दक्षिण कानाड़के सीमान्त)से जनार्दन तक केरल देश रहा। इसीके बीचमें सिद्धकेरल, रामेश्वरसे वेङ्कटाद्रि पर्यन्त हंसकेरल और अनन्तशैलसे अथ्य तक समग्र देश केरल नामसे प्रसिद्ध था।

यहांके पुराने राजाओंने जो अनुशासन दिये हैं, उनको देखनेसे समझ पड़ता है कि मलयवार, चेरराज्य, कोइम्बतुर और सालेमभूभागके सब स्थानोंमें पहले केरल राज्य फैला था। मलयवार, चेर आदि शब्द देखो। आज-कल केरल कहनेसे समुद्रतीरवर्ती केरल मलयवार उप-खूटका बोध होता है। किसीके मतमें पाश्चात्य भौगोलिक टलेमिने परलिया (Paralia) नामक जिस जनपदका उल्लेख किया है, वह वास्तवमें करलिया (Keralia) होगा। करलिया केरल शब्दका ही रूपान्तर है। (Wilson's Introduction to the Mackenzie collection, p. 56.) फिर कोई कहता है कि पुराने युनानियोंने इसी केरलका नाम 'लिमारिक' या 'डिमारिक' लिखा है। (Col. Yule's Glossary, p. 41)

ई० से पहले इय शताब्दीको अशोकराजाके अनु-
शासनमें केरलपुत्र नामक यहाँके किसी राजाका नाम
पाया है। ग्रीनिने 'केलोबोत्रस' (Kelobotras), टले-
मिने 'केरबोथ्रस' (Kerabothrus), और पेरिप्लासने
'केप्रोबोथ्रस' (Ceprobothrus) नामसे केरलकी वर्णना
की है। मलयालम् भाषाके केरलोत्पत्ति नामक ग्रन्थ-
में लिखा है कि क्षत्रियोंके वेरी परशुरामने समुद्रसे
केरल देशको उद्धार कर उसमें अष्ट ब्राह्मणोंको
ले जाकर स्थापन किया। इसके बहुतकाल पीछे आर्य-
पुरसे आये पेरुमाल नामक किसी राजाने केरलराज्य
तुलुव (गोकर्णसे पेरुम्पुर), मूषिक (पेरुम्पुरसे पदु-
पट्टन), केरल (पदुपट्टनसे कन्नोति) और कूप (कन्नो-
तिसे कुमारी अन्तरोप) ४ भागोंमें बांटा था।

मलवार देखो।

३ गढ़वालका एक गिरिशृङ्ग। यह काली नदीके
निकट अवस्थित है। केरलमें देवीमूर्ति विद्यमान है।
केरलतन्त्र—एक पुराना तन्त्र। सुन्दरदेवने इस तन्त्रका
मत उद्भूत किया है।

केरलपुराण—केरल वा वर्तमान मलवारके तीर्थोंका
विवरणमूलक एक उपपुराण।

केरलाचार्य—दिश्वचूड़ामणि नामक ज्योतिष्यके प्रणेता।
केरली (सं० स्त्री०) एक ज्योतिषशास्त्र। केरलदेशमें
प्रकाशित होनेसे ही इसका नाम केरली पड़ा है। गर्ग-
संहितामें बताया है—

अ क च ट त प य श—आठ वर्ग हैं। अ वर्गकी
संख्या १ और इसके वर्णोंकी संख्या १६ है, यथा—
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः।
क-वर्गकी संख्या २ और उसकी वर्णसंख्या ५ है, जैसे—
क ख ग घ ङ। च वर्गकी संख्या ३ और उसके वर्णों
की संख्या पाँच है,—च छ ज झ ञ। ट वर्ग ४था है
और उसमें ट ठ ड ढ ण ५ वर्ण आते हैं। त वर्गकी
संख्या ५ और उसकी वर्णसंख्या भी ५ ही है—त थ
द ध न। प वर्ग ६ठा पड़ता; जिसमें प फ ब भ म
५ वर्णोंका समावेश रहता है। म य वर्गमें य र ल व
४ वर्ण हैं। श वर्गकी संख्या ८ और उसकी वर्णसंख्या
१० है। यदि कोई दाक्षिण फलके नाम पर

प्रश्न करे, तो दकारकी वर्गसंख्या ५, वर्णसंख्या ३;
उकारकी वर्गसंख्या ४, वर्णसंख्या ३; मकारकी वर्ग-
संख्या ६, वर्ण संख्या ५; दकारके अकारकी वर्ग संख्या
१, वर्णसंख्या २, उकारके इकारकी वर्गसंख्या १, वर्ण-
संख्या ३ और मकारके अकारकी वर्गसंख्या १ तथा
वर्णसंख्या १—सब मिलाकर बड़ो संख्या ३५ आती
है। इसीका नाम पिण्डसंख्या है। गणक प्रश्नकर्ता वा
किसी दूसरे व्यक्तिसे एक फलका नाम लेनेको कहता
है। जिस फलका नाम लिया जायेगा, उसकी पूर्ण प्रद-
र्शित नियमके अनुसार पिण्डसंख्या बनाना पड़ेगी।
इसके पीछे फलाफल समझा जा सकता है। किसी
किसीके मतमें स्वरसंख्याको छोड़ केवल व्यन्जनसंख्या-
से ही गणना करना चाहिये। ऐसे लोग ४ वर्ग मानते
हैं—कवर्ग, टवर्ग, पवर्ग और यवर्ग। ककारकी १,
खकारकी २, गकारकी ३ सब मिलाकर कवर्गकी
संख्या १० है। इसी प्रकार टवर्गकी १०, पवर्गकी ५
और यवर्गकी संख्या ८ है। किन्तु उकार और नकार-
की कोई संख्या नहीं, इनके स्थान पर शून्य ग्रहण
करना पड़ता है।

प्रश्नके शब्दमें जितने अक्षर रहेंगे, उनकी इसी
प्रकार संख्या लेकर गणना करते हैं। किन्तु पहले
नियमकी भांति इसमें अक्षरोंका योग नहीं करना होता।
अक्षरोंको यथास्थान रख देते हैं। जैसे प्रश्नशब्द पाताल
होनेसे पकी संख्या १, तकी संख्या ६ और लकी ३
है। सभी अक्षरोंकी वामागति रहनेसे इसमें पिण्डसंख्या
१६१ आती है। ऐसे ही प्रश्नके शब्दको पिण्डसंख्या
निकाल कर गणना करते हैं।

केरलजातक, केरलचिन्तामणि, गंगाचार्यकृत केरलपाशावली, केरल-
प्रश्न, केरलसिद्धान्त, केरलीयवाद्यमात्र आदि ग्रन्थोंमें इसका विस्तृत विवरण
द्रष्टव्य है।

२ केरलदेशकी स्त्री। (राजन्द्रकणपुर)

केरा (हिं० स्त्री०) पश्चिमविशेष, पतारी वस्तु।

केराकत (किराकत) युक्तप्रदेशके जौनपुर जिलेकी
पूर्वी तहसील। यह अक्षा० २५° ३२' तथा २५°
४६' उ० और देशा० ८२° ४०' और ८३° ५' पू० बीच
पड़ती है। इसका क्षेत्रफल २४४ वर्गमील है।

केरानाकी लोकसंख्या प्रायः १८७१२८ है। इसतह सीलके प्रधान नगरकी भी केराना ही कहते हैं। गोमती नदी इसके बीचसे बहती है। तालाब या भील यहाँ थोड़े हैं। खेत कृषिके पानीसे ही सींचे जाते हैं। केराना (हिं० क्रि०) १ अनाजका छोटा और बड़ा दाना सूपसे हिला हिलाकर अलग करना। (पु०) २ हलदी, धनिया, सिर्चा आदि मसाला।

केरानी (हिं० पु०) १ युरेशियन, किरण्टा, भारतवासियोंके संसर्गसे उत्पन्न दोगला युरोपियन। २ लेखक। केराव (हिं० पु०) कलाय, मटर।

केरी (हिं० स्त्री०) अबिया, आमका कच्चा छोटा फल। केरूर—बम्बई प्रदेशके बीजापुर जिलेका एक गढ़बन्द गांव। यह शोलापुर जिलेकी सड़क पर बादामीसे ११ मील उत्तर-पश्चिम पड़ता है। पड़ले यहाँ जङ्गल था। सड़क चलती देख एक चमार केरूरके पास रहने लगा और मुसाफिरीके जूते गांठ गांठ खूब रुपया कमा लिया। एक दिन सलामतखान् नामक कोई धनी पठान उसके पास पहुँचा और पीनेकी पानी मांगा। फिर दोनोंने बात चीत कर केरूर गांव बसा दिया। किलेके उत्तरी दुर्गमें आज भी उक्त चर्मकारकी प्रस्तर-मयी प्रतिष्ठाति विद्यमान है। किलेमें छपरदप्पा, माकनी और विठोवा और बाजारमें दुर्गवा, व्यामव, गणपति, कलव, माकति, नगरेखर, रच्छोतेखर और वेङ्कटपति का मन्दिर है। नये बाजारमें वाशंकारीका मन्दिर बना है। कुछ मन्दिरोंके मच्छप गिर गये हैं। वाशंकारी, कालव, नगरेखर और वेङ्कटपति मन्दिरोंमें मीनार हैं। नगरेखर मन्दिरका मीनार चटपहलू है। कुछ मन्दिरोंमें काठके खम्भे लगे हैं। नगरेखर मन्दिरमें लिङ्ग तथा नन्दीमूर्ति प्रतिष्ठित है। लिङ्गके दक्षिण नागोव और वामको गणपति और पूछकी और शक्ति तथा सूर्यमूर्ति है। वेङ्कटपति मन्दिरकी दीवारों पर सिंह और हाथी खिंचे हैं।

केरोसिन (अंग० पु० Kerosine) मट्टीका तेल। यह खनिज निकलता है। यूनानी भाषामें केरस मोमकी कहते हैं। फिर जलानेके लिये मोम प्रयोजनीय होता है। इससे केरोसिनका अर्थ जलानेका द्रव्य है। परन्तु

आज कल इस शब्दसे जलानेके साधारण द्रव्यका बोध नहीं होता—मट्टीका तेल ही समझा जाता है। मट्टीसे पेट्रोलियम् नामक एक प्रकारका तेल निकलता, जिससे केरोसिन बना करता है। ब्रह्मदेश और बहुतसे दूसरे देशोंमें भी मट्टीके तेलकी खानें पायी गयी हैं। १८५८ ई०को अमेरिकाकी यूनाइटेड स्टेट्सके ओर इन्डो प्रदेशमें एक कूप खोदते समय उसके भीतरसे प्रति दिन सहस्र सहस्र मन तेल निकलने लगा। उसी समय वहाँ तेलके कारण एक नया ज्वर भी फैल पड़ा। फिर व्ययसायके एक नये लाभका उपाय पाकर लोग चारों ओर सैकड़ों कूप खोदने लगे।

अमेरिकाके नाना स्थानोंमें पेट्रोलियम मिलता है। इसी पेट्रोलियमको टपका कर सुपरिष्कृत पेट्रोलियम तेल प्रस्तुत होता है। आज कल भारतवर्षमें जिस केरोसिन तेलका व्यवहार किया जाता, वह अधिकांश अमेरिकासे ही आता है। आविष्कारके समय पड़ले पड़ल जलानेके लिये अच्छा दीपाधार न रहनेसे अनेक दुर्घटनायें हुई थीं। यह अभी तक ठीक नहीं समझ पड़ा—किस किस द्रव्यसे यह तेल बनता है। सर विलियम लोगान साहब कहते हैं कि सामुद्रिक जन्तु भूमिके मध्य प्रोथित रहनेसे यह तेल उत्पन्न होता है। वातरोग और हठात् किसी स्थानके कट जानेसे रक्त निकलने पर यह बड़ा उपकार करता है। नलीके छत और दहुरीगके लिये भी केरोसिन एक उत्तम औषध है। परन्तु इस तेलके जलनेसे जो धूँवाँ उठता, उससे मनुष्यको बड़ी हानि पहुँचती है। इसका दुर्गन्ध भी असह्य है।

थोड़े दिन हुए ईरानमें भी मट्टीके तेलकी बड़ी बड़ी खानें निकली हैं।

केल (हिं० पु०) एक वृक्ष। यह हिमालयमें ६००० से ११००० फीट ऊँचे तक मिलता है। केल बहुत बड़ा और सीधा पेड़ है। इसका काष्ठ गृह निर्माणादि कार्यमें लगता है। केलसे चौड़की भाँति तेल निकलता और इसके कोयलेसे लोहा तक पिघलता है। इसकी खज्जु हट्ट रहती और उससे छत पटती है। केलकी पत्तियों और डालियोंकी बिचाकी बनाते हैं।

केलक (सं० पु०) नतक, नाचनेवाला। केलक जाधमें खड्ड पादि धारण करके नाचते हैं इसका पर्याय—प्रवक है।

केलट (सं० स्त्री०) कुसुम्भका बीज।

केलटक (सं० स्त्री०) केमुककन्द, केसवां।

केलनपुर—बड़ोदा राज्यका एक गांव और रेलवे स्टेशन। खण्डेराव गायकवाड़ने यहां एक धर्मशाला और शिकारगाह बनायी थी। मकरपुराका जङ्गल जहां कोई हिरन मारने नहीं पाता केलनपुरसे कुछही मील दूर है।

केला (हिं० पु०) कदलीवृक्ष। कदली देखो।

केलापुर—मध्यप्रदेशके एवतमाल जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १८° ५०' तथा २०° २८' उ० और देशा० ७८° २' और ७८° ८१' पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १०८० वर्गमील आता है। लोक-संख्या प्रायः १०३६५७ है। पांढर कवाड़में डेडकाटार है। यहां गोड बहुत रहते हैं। इसकी उत्तर और दक्षिण सीमापर पानगङ्गा नदी बहती है।

केलास (सं० पु०) केला विलासः सीदत्यस्मिन्, केला-सद आधारे बाहुलकात् उः। १ स्फटिकमणि, बिलोरी पत्थर। २ केलास।

केलि (सं० पु०-स्त्री०) केल-इन्। १ परिहास, हंसी। इसका पर्याय—द्रव, क्रीड़ा, लीला और नर्म है। २ नायिकाका एक अलङ्कार। नायकके साथ विहार करते समय नायिका जो क्रीड़ा करती, उसीका नाम केलि है। (साहित्यदर्पण) ३ पृथिवी। ४ मधुवर्णन नामका संस्कृत काव्य बनानेवाले।

केलिक (सं० पु०) केलिः प्रयोजनमस्य ठन्। अशोक-वृक्ष।

केलिकदम्ब (सं० पु०) केलिः क्रीडार्थं कदम्बम्, इ-तत्। एक प्रकारका कदम्ब। कदम्ब देखो।

केलिकला (सं० स्त्री०) केलिरूपा कला, शाकपार्थि-बादित्वात् साधुः। १ रतिक्रीड़ा। २ सरस्वतीको बीणा।

केलिकिण, केलिकीर्ण देखो।

केलिकिला (सं० पु०) केलिना किलति, किल क्रीडायां कः। १ शिवके कुष्माण्डक नामक अनुचर। २ विदूषक, हंसोड़ा। इसका पर्याय—विदूषक, वासन्तिक, वेहासिक, प्रहासी और प्रीतिद है। ३ अशोकवृक्ष।

केलिकिला (सं० स्त्री०) कामकी पत्नी रति।

केलिकिलावती, केलिकिला देखो।

केलिकीर्ण (सं० पु०) केलिनिमित्तकैः पांशुभिः कीर्णः। कंट।

केलिकुञ्जिका (सं० स्त्री०) केलीनां कुञ्जिकेव। श्यालिका, साली।

केलिकोष (सं० पु०) केलीनां कोष इव। नट, खिलाड़ी।

केलिगृह (सं० स्त्री०) केलिगृहम्, इ-तत्। १ केलि-मन्दिर, खेलका घर। २ रत्नादि गृह।

केलिनागर (सं० पु०) केलिः प्रधानो नागरः, मध्यपद-लोपी कर्मधा०। विलासी, हंसने खेलनेवाला।

केलिपिक (सं० पु०) कोकिल।

केलिप्रिय—विहारिप्रताप नामक संस्कृत काव्यके रचयिता।

केलिमण्डप (सं० पु०) केलिगृह, खेलघर।

केलिमुख (सं० पु०) केलिः मुखं प्रधानमस्य, बहुव्री०। परिहास, हंसी ठहा।

केलिमन्दिर, केलिमण्डप देखो।

केलिरैवतक (सं० स्त्री०) इक्षीयलक्षणयुक्त एक नाटक। साहित्यदर्पणमें इसका उदाहरण उद्धृत हुआ है।

केलिगृह (सं० पु०) केलिकदम्ब।

केलिशयन (सं० स्त्री०) सुखमय शय्या, पारामका पलंग।

केलिशुषि (सं० स्त्री०) केलिना शुषति, केलि-शुष-कि। पृथिवी।

केलिसचिव (सं० पु०) केली सचिवः सहायः, इ-तत्। विदूषक, हंसोड़ा, खेलका मन्त्री।

केलिसदन, केलिगृह देखो।

केलिखनी (सं० स्त्री०) क्रीडाभूमि, खेलका स्थान।

केलो (हिं० स्त्री०) छोटा केला।

केलीपिक (सं० पु०) क्रीडाकोकिल।

केलीवनो (सं० स्त्री०) आनन्दकानन, अच्छी फलवारी।

केलु (स० पु०) निर्दिष्ट संख्या, ठहरायी हुई गिनती ।
केलूट (स० पु०-स्त्री०) १ कन्दशाकविशेष, केसरी ।
२ जलोदुम्बर ।

केलूटक, केलूट देखो ।

केलूराव (हि० पु०) केलका पेड़ ।

केलो (हि० पु०) केल नामक वृक्ष ।

केलोद—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलेका एक नगर । यह अक्षा० २१° २७' उ० और देशा० ७८° ५३' पू० में सातपुरा गिरिके पाददेशपर छिन्दवाड़ेकी राज्‍यके पास अवस्थित है । लोकसंख्या ५१४१ है । यहां बकुल, पीतल और तांबेके वर्तन बनते और अमरावती तथा रायपुरमें जाकर अधिक बिकते हैं । इसको छोड़ काचके बहुतसे गहने भी केलोदमें बनते हैं । कहते हैं—वर्तमान मालगुजारीके पूर्वपुरुषोंने यह नगर स्थापन किया था । फिर उन्होंने निकटवर्ती गौलिसामन्त नगरके पास जाटघरमें एक बहुत बड़ा सरोवर भी खनन कराया । यहां प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष पड़ा है ।

केलोमेल—एक प्रकारका पारा । यह भारतके रसकपूरसे कुछ स्वतन्त्र है । रसकपूरको अंगरेजीमें 'बाई-क्लोराइड ऑफ मरक्यूरि' (Bichloride of Mercury) कहते हैं, परन्तु केलोमेल शुद्ध क्लोराइड ऑफ मरक्यूरि, (Chloride of Mercury) है । यह पारसे बनता है । इसका रंग सफेद और वजन भारी रहता और खानेमें स्वादहीन लगता है । केलोमेल पानी या स्थिरितमें नहीं मिलता और अधिक उत्ताप या खुली बोतलमें रखनेसे उड़ चलता है । यह प्रदाहनाशक, अति-विरिचक और पित्तनिःसारक है । फिर अल्पमात्रामें सेवन करनेसे केलोमेल धातुपरिवर्तक, लालानिःसारक और कृमिनाशक होता है । भारी सूजन या ज्वर पर इसका प्रयोग किया जाता है । केलोमेलका व्यवहार जैसा पड़ले रहा, वैसा अब देख नहीं पड़ता । वमन, पाण्डुरोग, पित्तकी पीड़ा, आमाशय, उदरी, ज्वरविष वेदना, धनुषद्वार, शिरःपीड़ा, वधिरता आदि रोगों पर यह बड़ा उपकार करता है । चर्मरोग किसेसे भी न मिटने पर केलोमेलसे अच्छा हो जाता है । उपदंश रोग पर भी इसे व्यवहार करते हैं ।

धातुपरिवर्तनके लिये १ या २ ग्रैन और अतिविरिचनके लिये २से ६ ग्रैन तक केलोमेल दिया जाता है । भपारा लेनेमें यह २०से ३० ग्रैन तक लगता है ।

केल्भर—मध्यप्रदेशके बर्धा जिलेका एक नगर । यह बर्धा नगरसे ८ कोस उत्तरपूर्व अक्षा० २०° ५१' उ० और देशा० ७८° ५१' पू० पर अवस्थित है । केल्भर बहुत पुराना नगर है । यहां लोगोंमें प्रवाद है कि केल्भर ही महाभारतके वक्राक्षसकी उपद्रुत एक-चक्रानगरी है । परन्तु यह प्रवाद प्रकृत समझ नहीं पड़ता । [एकचक्रा देखो] । यहां एक सुरम्य दुर्गका भग्नावशेष पड़ा है । दुर्गके प्राकारमें गणेशकी एक बहुत बड़ी मूर्ति प्रतिष्ठित है । प्रतिवर्ष माघ मासकी शुक्ला पक्षमीका गणनाथके महोत्सव उपलक्ष्यमें मेला लगता है ।

केल्टिक—एक प्राचीन जाति । इस जातिके लोग सेल्ट और केल्ट दो नामोंसे अभिहित होते हैं । कोई कोई कहता है कि यूरोपके मध्यभाग और पश्चिमके अवासी ही केल्टिक कहलें थे । भाषाका विचार कर आधुनिक प्रकृतस्वविदार्थन इन्हें २ भागोंमें बांटा है । एक भाग यूरोपके पश्चिम रहता था । दूसरे भागमें सिम्ब्रिय हैं । उनका आदिवास एशियाखण्ड था । वहां से वह जर्मनी आदि राज्योंमें फैल पड़े । केल्टिकोंमें एशियासे जर्मनी आदि देशोंके जानेवाले ही केल्ट कहलाते हैं ।

केल्व माहिम—बम्बई प्रान्तस्थ थाना जिलेके माहिम तालुकका इडकाटार । यह अक्षा० २८° ३६' उ० और देशा० ७२° ४४' पू० की पालघर स्टेशनसे साढ़े ५ मील पश्चिम अवस्थित है । १८०१ ई० की संख्या ५६८८ थी । केल्वगांव माहिमसे ठाई मील दक्षिणकी है । बन्दरके समुद्रका किनारा खूब पथरीला है और २ मीलतक साहिल कोई चला गया है । केल्व गांवके सामने एक छोटा टापू पड़ा है और पोतगीर्जोंके बनाये दो किले खड़े हैं । यहां बाग बहुत हैं और केले, गन्ने, अदरक और पानकी खासो धूम्रको होती है । १९५० ई० की दिल्लीके मुसलमानोंने माहिम अधि-कार किया था । १९५२ ई० की यह पोतगीर्जाका-

अधिकृत हुआ। इस नगरमें अस्पताल और कई स्कूल हैं।

केल्सी—बम्बई प्रदेशके रत्नगिरि जिल्लाका एक बन्दर। यह रत्नगिरिसे ३२ कोस दूर अक्षा० १७° ५५' उ० और देशा० ७३° ६' पू० पर अवस्थित है। यहां प्रतिवर्ष २०से ५० हजार रुपये तकका माल आया जाता करता है।

केवका (हिं० पु०) प्रसूतिकी दिया जानेवाला मसाला।

केवकी (हिं० स्त्री०) केवटी, एक बहुत छोटा कीड़ा।
केवट (वे० पु०) के जलार्थमवटः। जलाधार गर्त, कूवा।
(चक्र ६। ५४। ०)

केवट (हिं० पु०) नाव चलानेवाली एक जाति। इसे स्थानभेदसे कंवर्त, खेवट और मल्लाह भी कहते हैं।
केवर्त देखो।

केवटी, केवकी देखो।

केवटीदाल (हिं० स्त्री०) दो प्रकारकी एकहीमें मिली हुई दाल।

केवटीमोथा (हिं० पु०) सुस्ताविशेष, किसी प्रकारका मोथा। यह मालवदेशमें उपजता और बहुत मजकता है। केवर्तसुता देखो।

केवड़े (हिं० पु०) १ किसी प्रकारका रंग। यह केवड़ेकी भांति हलका पीला और हरा मिला हुआ सफेद रंग है और शहाब, खटार तथा तुनके फूल मिला कर बनाया जाता है। (वि०) २ केवड़ा-जैसा रंगदार।

केवड़ा (हिं० पु०) श्वेतकेतकीवृक्ष। केवड़ेका पीला केतकीसे कुछ बड़ा रहता है। इसके पत्र और पुष्प भी उससे बड़े आते हैं। केवड़ेकी पत्तियोंसे चटारें तैयार की जाती है। इसका फूल अंतर और खुशबूदार जल बनाने तथा कल्या वसानमें व्यवहृत होता है। २ केवड़ेका फूल। ३ केवड़ेका अंतर। ४ केवड़ा जल। ५ वृक्षविशेष, कोई पेड़। यह हरिद्वार और ब्रह्मदेशके जङ्गलोंमें पाया जाता और बीसके समय फूल आता है। इसका काष्ठ सुहृद रहता और भेज, कुरसी, सड़क वगैरह बनानेमें लगता है। केतकी देखो।

केवर्त (सं० पु०) के जल वर्तते, के-वर्त-अच् असुक्-स-

मा०। केवर्तजाति, मकुवा। (वाजसनेयसंहिता २०। १६)

केवर्त (सं० त्रि०) केव सेवने कल यद्वा के शिरसि वलयति, के-वल्-अच्। १ एकमात्र, अकेला। (ऋक् १०। १०१। २ निर्णीत। ३ शुद्ध। (अव्य०) ४ सिर्फ, अकेले। (स्त्री०) ५ भ्रान्तिशून्य विशुद्धज्ञान।

“अविपयेयादिग्रहं” केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्।” (सांख्यकारिका)

६ अवधारणा (पु०) ७ कुहन, कुम्भीका ऊपरी ढांचा।

केवलज्ञान (सं० स्त्री०) केवलं असहायं ज्ञानं, कर्मधा०।

इन्द्रियोंकी सहायताके बिना केवल आत्मासे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान। जैनमतानुसार संसारी आत्माके ज्ञानको ज्ञानावरणीय कर्मने आच्छादित कर हीन कर रक्खा है। तपस्या और ध्यान द्वारा जिस समय वह ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट कर दिया जाता है उसी समय आत्माके सम्पूर्ण ज्ञान विकसित हो निकलता है। इन्द्रिय आदि पर पदार्थोंकी सहायताके बिना ही यह आत्मा भूत भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालोंकी समस्त द्रव्योंकी समस्त पर्यायोंकी एक साथ जानने लगता है।

इसी ज्ञानका नाम केवलज्ञान है। (तत्त्वार्थसूत्र टीका)

केवलज्ञानी (सं० पु०) केवलं शुद्धं ज्ञानमस्त्यस्य, केवल-ज्ञान-इति। १ शुद्धज्ञानी, तत्त्वज्ञानी। २ अर्हत्।

केवलदर्शन (सं० स्त्री०) केवलज्ञानके साथ होनेवाला दर्शन। वस्तुके सामान्य सत्तावलोकनकी दर्शन कहते हैं, और वह छद्मस्थों (अल्पज्ञानियों)के ज्ञानसे पूर्व-क्षणवर्ती होता है परन्तु सर्वज्ञ (केवलज्ञानी)के वह ज्ञानके साथ ही साथ होता है। यह दर्शनावरणीय कर्मके नष्ट कर देनेसे पैदा होता है। (तत्त्वार्थसूत्र टीका)

केवलद्रव्य (सं० स्त्री०) मिथं।

केवलराम—१ रेखाप्रदीप नामक गणित-शास्त्रके रचयिता। २ ब्रजभाषाके कोई प्रसिद्ध कवि। भक्तिमार्गमें इनका प्रशंसावाद विद्यमान है। यह ई० षोडश शताब्दीके प्रसिद्ध कवि गोकुलनिवासी दूध ही पीनेवाले जगन्नाथदासके शिष्य थे। जगन्नाथदासदेवने इनकी कविता उद्धृत की है।

केवलव्यतिरेकि (सं० स्त्री०) एक अनुमान। इसका उपपन्न नहीं रहता और यह अनुमान केवल व्यतिरेक व्याप्ति द्वारा चलता है।

केवलाच (सं० त्रि०) केवलपापविशिष्ट ।

(ऋक् १० । ११० । ६)

केवलात्मा (सं० पु०) केवलः पुण्यपापरहित आत्मा, कर्मधा० । १ ईश्वर, जो पुण्यपापसे अलग है । (त्रि०)

२ शुद्धस्वभाव, सीधासादा । (कुमारसम्भव २ । ४)

केवलादी (सं० त्रि०) केवलाच । (ऋक् १० । ११० । ६)

केवलान्वयि (सं० स्त्री०) १ कोई अनुमान । अनुमान तीन प्रकारका होता है—केवलान्वयि, केवलव्यतिरेकि और अन्वयव्यतिरेकि । जिसका विपक्ष नहीं पड़ता और जो केवल अन्वयव्यतिरेकि द्वारा चलता, वही केवलान्वयि अनुमान ठहरता है । प्रमेयत्व केवलान्वयि है और उसकी साधक अनुमिति भी केवलान्वयि है ।

(अनुमानचिन्तामणि)

२ कोई पदार्थ जो सर्वत्र सत्ता रखता और जिसका कहीं अभाव नहीं पड़ता । प्रमेयत्व, अभिधेयत्व, ज्ञेयत्व आदिके स्वरूप सम्बन्धमें कहीं भी अभाव नहीं आता । कि सीके मतमें कई अत्यन्ताभाव भी केवलान्वयि होते हैं । सोन्दरमत-सिद्ध व्यधिकरण-धर्मावच्छिन्न अभाव केवलान्वयी है ।

केवली (सं० स्त्री०) केवल-होष्ट । १ ज्ञान, समझ । (पु०) २ केवलज्ञानयुक्त जिन ।

केवा (सं० स्त्री०) पुष्पवृक्ष-विशेष, एक फूलदार पेड़ । कोङ्कणदेशमें इसे केवार कहते हैं । यह मधुर, शीतल और दाह, पित्त, अम, वात, स्नेहा तथा हृदिकी नाश करनेवाली है । (राजनिघण्टु,)

केविका (सं० स्त्री०) केव गतिचालनयो ग्वुल्-टाप्-अत इत्वम् । केवा देखो ।

केवी, केवा देखो ।

केवु, केवुक देखो ।

केवुक (सं० पु०) १ पत्तूर, शालिच्छशाक । २ वेमुक, केववां ।

केवुका (स्त्री) केवुक देखो ।

केवूक, केवुक देखो ।

केवूका (स्त्री०) केवुक देखो ।

केश (सं० पु०) क्लिप्सते क्लिप्सति वा, क्लिप्-अच् लक्षो-पञ्च । १ बन्धन, बंधाव । २ ज़ीवर । ३ कोई दैत्य ।

४ विष्णु । काशते काश-अच् पुषोदरादिह्वात् साधुः । ५ सूर्य और अग्नि आदिका किरण । केश देखो । ६ परब्रह्मकी शक्ति—ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र । केशव देखो । ७ कुन्तल, जुलफ । के शिरसि शिरो, शी-ङ । ८ मज्जा-जात उपधातुविशेष, बाल । इसका पर्याय—चिकुर, कुन्तल, बाल, कच, शिरोरुद्ध, शिरसिज, मूर्धज, अस्त्र और वृजिन है । गर्भस्थ बालकके अष्टम मास केश आता है । सन्तानका केश पितासे उत्पन्न होता और सर्वदा बढ़ा करता है । भावप्रकाशमें बताया गया है, केशकी उत्पत्ति कैसे होती है—फिर भुक्तद्रव्य कोष्ठस्थित अग्नि द्वारा पक्का हुआ करता है । पांच अहो-रात्रके पीछे छेड़ घड़ी तक वह अग्निकोष्ठमें ही अवस्थिति करता है । उसके पीछे मल निकलता है । यह मल व्यानवायु द्वारा परिचालित होकर शिरापथसे गमन करता और अङ्गुलीमें नखरूप तथा शरीरमें लोमरूपसे परिणत होता है ।

सन्तु तके मतमें केश शुक्ल होनेका कारण यह है—क्रोध, शोक और अधिक अमसे शारीरिक स्या मस्तक में प्रविष्ट हो जाती है । फिर स्या-उत्तम पित्त केशको पक्का देता है । किसी रोगसे गिर जाने पर पुनर्वा केश उत्पन्न करनेका उपाय यह है—महुवा, इन्दोवर, मूवी, तिल, घृत, गोदुग्ध और भुङ्गराज मिलाके प्रलेप लगानेसे केश घन, दृढ़मूल, आयत और सरल हो जाता है ।

सफेद बाल इस प्रकार काले किये जाते हैं—अल्प पके नारियलमें त्रिफलाचूर्ण, लोहचूर्ण और भुङ्गराजका रस भर कर रख छोड़ते हैं । इसी अवस्थामें उसको एक मासतक रखना चाहिये । फिर मस्तक मुँडाके उस पर नारिकेलस्य प्रलेप लगाते और ठांफनेके लिये केलीका पत्ता चढ़ाते हैं । कुछ दिन तक इसी भावमें रहना चाहिये । सातवें दिन आवरण निकालके त्रिफलाके जालसे मस्तक धोया जाता है । इसमें दग्धमांस प्रभृति आहार करना पड़ता है । ऐसा करने पर सफेद बाल काले पड़ जाते हैं । इसका नाम कलापरज्ज्व है ।

(चक्रपाणि)

केशके पीछे पाश, रचना, भार, उच्छ्रय, हस्त, पञ्च

और कलाप शब्द लगनेसे समूहवाची अर्थ निकलता है। (इमचन्द्र)

केशक (सं० त्रि०) केशेषु प्रसितः तत्परः कन् । स्वाभेदाः प्रसिते । पा ५।२।११। केशरचनातत्पर, बाल संवारनेवाला ।

केशकर्म (सं० स्त्री०) केशानां कर्म रचनादि, इ-तत् । १ केशरचनादिकरण, बालोंका बनाव । २ केशान्त कर्मसंस्कार ।

केशकलाप (सं० पु०) केशानां कलापः, इ-तत् । केश-समूह, बालोंका गुच्छा ।

केशकार (सं० पु०) केशं केशकारं करोति केश-क-पण् । १ केशसंस्कारक, बाल बनानेवाला । २ कुमियारी ऊख । यह गुरु, शीत और रक्त, पित्त तथा चयन्न है ।

केशकारी (सं० त्रि०) केशं केशरचनां करोति, केश-क-णिनि । केशरचनाकारक, बाल संवारनेवाला । (स्त्री०) २ रोहिणी ।

केशकीट (सं० पु०) उकुण, जं । कफ, रक्त और कृमिके प्रकोपसे बालोंमें जं पड़ जाते हैं । (सुप्त)

केशगर्भ (सं० पु०) केशो गर्भे ऽस्य, बहुव्री० । कवरी, जुल्फ ।

केशगर्भक (सं० पु०) केशो गर्भे ऽस्य, बहुव्री० कप् । १ कवरी, जुल्फ । २ श्योनाकवृक्ष । ३ छागल, बकरा । ४ उकुण, जं ।

केशग्रह (सं० पु०) केशानां ग्रहः, इ-तत् । बलपूर्वक बालोंका ग्रहण, लटाभोटो । २ सुरत-व्यापारमें केश-ग्रहण । (मनु ४।८१)

केशग्रहण (सं० स्त्री०) केशस्य ग्रहणम्, इ-तत् । लटा-भोटो ।

केशग्रहम् (सं० अव्य०) केशान् गृहीत्वा केश-ग्रह-णमुक्त्वा स्वाभे ऽधुवे । पा २।४।५४। केश-ग्रहणान्तर, बाल पकड़के ।

केशघ्न (सं० स्त्री०) केशान् हन्ति, केश-घ्नन् टक् । इन्द्र लुप्तरीग, गंज, बालखोर ।

केशचैत्य—नेपालकी बागमती नदीके तीरका एक बौद्ध पीठ । यह शिवपुरी पर्वत पर अवस्थित है ।

केशच्छिद् (सं० पु०) केशान् छिनत्ति, केश-छिद-क्षिप् । १ नापित, नार्ई । (त्रि०) २ बाल काटनेवाला ।

केशजाह (सं० स्त्री०) केशस्य मूलं कर्ण-जाहच् । तस्य पाकमूलं कृण्व-जाहचो । पा ५।२।२४। कर्णमूल ।

केशट (सं० पु०) को ब्रह्मा ईशो महादेवः तो षटतः प्रणये स्त्रीनो भवतो यत्र यहा केशो जलेशोऽटति जानाति यम्, केश-षट् शकम्बादिवत् साधुः । १ विष्णु ।

केशेषु लृणादिषु षटति चरति । २ छाग, बकरा । केशेषु मूर्धजेषु चरति । ३ उकुण, जं । ४ भ्राता, भाई । ५ कामदेवका शीषण नामक वाण । ६ श्योनाक वृक्ष, टेंटू । ७ कोई प्राचीन कवि । सूक्तिकर्णामृतमें इनकी कविता उद्धृत हुई है । ८ शाहाबाद जिलेका एक नगर ।

केशधर (सं० त्रि०) केशान् धरति, केश-धृ-प्रच् । केश-ग्राहक, बाल पकड़नेवाला । (पु०) २ कोई देश और उसके अधिवासी । वृहत्संहितामें कर्मविभागकी उत्तर दिक्को इस जनपदका उल्लेख है । फिर मार्कण्डेयपुराणमें (५८।४३) यह केशधारी नामसे वर्णित हुआ है ।

केशधारिणी (सं० स्त्री०) दुर्गपुष्पी, केशपुष्टा ।

केशधृत् (सं० पु०) केशमिव धरति, केश-धृ-क्षिप् । १ मस्तक, मत्था । २ भूतकेश नामकी कोई घास ।

केशनाम (सं० पु०) केशस्य नामेव नाम यस्य । स्त्रीविर, सुगन्धवाला ।

केशपक्ष (सं० पु०) केशानां पक्षः, इ-तत् । केशसमूह, जुल्फ ।

केशपर्णी (सं० स्त्री०) अपामार्ग, लटजीरा ।

केशपाश (सं० पु०) केशानां पाशः समूहः । केशभार, जुल्फ ।

केशपाशी (सं० स्त्री०) शिरोमध्यस्थ शिखा, चोटो ।

केशपीठ (सं० पु०) एक पीठस्थान ।

(राधात्मक ८) प्रथम देखो

केशपुष्टा (सं० स्त्री०) दुर्गपुष्पी ।

केशप्रसाधनी (सं० स्त्री०) केशः प्रसाध्यते संस्क्रियतेऽनया, प्रसाध करणे श्युट्-ङीप् इ-तत् । कङ्कतिका, कंधो ।

केशवन्ध (सं० पु०) १ कवरी, बालोंकी कट । २ नाचमें

हाथोंकी एक चाक । इसमें हाथोंकी कन्धोंसे मोड़ते हुए कटि पर ले जाते और फिर उन्हें शिरकी ओर ऊपर पहुँचाते हैं।

केशभू (सं० स्त्री०) केशानां भूतत्पत्तिस्त्वानम् । मस्तक, सर ।

केशभूमि, केशू देखो।

केशभृत् (सं० पु०) केशभू देखो।

केशमयनी (सं० स्त्री०) केशो मय्यते ऽनेन, मय करणे त्थ, ट् पश्चात् ङीप् । शमोद्वच ।

केशमार्जक (सं० स्त्री०) केशान् माष्टि, मृज-ण्व, ल् । कङ्कतिका, कंघी, ककई ।

केशमार्जनी (सं० स्त्री०) केशो मृज्यते ऽनेन, मृज करणे त्थ, ट् । कङ्कतिका, कंघा । भावे त्थ, ट् । २ केशसंस्कार, बालोंकी सफाई ।

केशमार्जनी (सं० स्त्री०) कङ्कतिका, कंघी ।

केशमुष्टि (सं० पु०) केशानां मुष्टिरिच । १ विषमुष्टि, बकाइन ।

केशमुष्टिक, केशमुष्टि देखो।

केशमृत्, (सं० पु०) चमरपशु ।

केशयन्त्र (सं० स्त्री०) उपविष आदि शोधनेके लिये एक यन्त्र । धान और मूँजसे भरी चूँडी पर नारियलकी मांसा रखके दूधसे विषकी रगड़ना चाहिये । इसीका नाम केशयन्त्र है । (रसचन्द्रिका)

केशर (सं० पु०-स्त्री०) को जले शिरसि वा शीर्यति, मृ-अच्, पलुक् समा० । १ किष्कत्क, फूलोंके बीचके पतले पतले सीँके । २ नागकेशर । ३ वकुल-वृक्ष, मौलसिरी । ४ पुन्नागवृक्ष । ५ सिंहजटा, शेर या घोड़ेकी भयावह । ६ बिज्जुवृक्ष, जौंगका पेड़ । ७ कुङ्कुम, केसर । ८ नीप, कदम्ब । ९ विषभेद ।

केशरङ्ग (सं० पु०) १ केशराज, कोई शाक । २ भृङ्गराज ।

केशरङ्गिनी (सं० स्त्री०) सहदेवीलता ।

केशरचना (सं० स्त्री०) केशानां रचना, इ-तत् । १ केशविन्यास, बालोंका संवार । २ केशसमूह, काकुल ।

केशरञ्जन (सं० पु०) केशान् रञ्जयति, रञ्ज-चिच्-

त्थ, । १ भृङ्गराज, चमिरा । २ नीलभिण्डी, काले फूलकी कटसरैया ।

केशरपाक (सं० पु०) वाजीकरणका एक पाक ।

केशरा (सं० स्त्री०) नागरमुस्ता ।

केशराग (सं० पु०) भृङ्गराजवृक्ष, भंगरैया ।

केशराज (सं० पु०) केशो राजते ऽनेन, राज करणे चञ् । भृङ्गराज, भंगरैया । इसका पर्याय—भृङ्गराज, भृङ्गपतङ्ग, माकर, नागमार, पवक, भृङ्गसोदर, केशरञ्जन, केश्य, कुन्तलवर्धन, भृङ्गारक, एकरज, करञ्जक, भृङ्गरज, भृङ्गार, भजागर, भृङ्गरजः और मकर है । भावप्रकाशके मतमें यह कड़वा, तीता, रुखा, उष्ण, केश तथा त्वक्का उपकारी और कृमि, श्वास, कास, शोष, आमय एवं कफवातको नाश करनेवाला है । फिर केशराज दांतका हितकर, रसायन, वलकारक और कुष्ठरोग, नेत्ररोग तथा शिरोरोगका प्रतीकारक होता है ।

केश(स)रान्न (सं० पु०) केशरे तदवच्छेदेऽन्तो रसो यस्य, बहुव्री० । १ मातुलुकवृक्ष, बिजौरा नीबू । २ दाडिम, अनार ।

केशरिया—विहारके चम्पारन जिलेका एक गांव और थाना । यह अक्षा० २६° २१' ३०" और देशा० ८४° ५३' ५०" पर अवस्थित है । लोकसंख्या ४४६६ है । इस ग्रामसे १ कोस दक्षिण सत्तरघाट पर प्रायः ८३२॥ हाथ ऊँचे डेढ़ हजार वर्ष से अधिक पुराना मट्टीका एक बौद्धस्तूप विद्यमान है । साधारण लोग, इस स्तूपको 'राजा वेणका धरहरा' कहते हैं । इससे थोड़ी दूर पर उक्त राजाके नामकी एक वृहत् पुष्करिणी भी है । २ मलवार प्रदेशका कोई छोटा राज्य ।

केश(स)रिसुत (सं० पु०) केशरिणः सुतः, इ-तत् । हनुमान् । केशरीकी पत्नी अम्बानाके गर्भमें पवनके और-ससे हनुमान्का जन्म हुआ था ।

केश(स)री (सं० पु०) केशराः सम्बन्ध, केशर-इनि । १ सिंह । २ घोड़ा । ३ पुन्नागवृक्ष । ४ नागकेशर । ५ बिजौरा नीबू । ६ वानरभेद । ७ हनुमान्के पिता । (रामायण) ८ कोई जलचर पक्षी । ९ रत्नत्रिपु, साक सैजन । १० उड़ीसेका पुराना राजवंश । उल्लेख देखो ।

केशरीनृसिंह—हकीमेके एक केशरीवंशीय राजा ।

उत्कल देखो ।

केशरीपुष्पपति—महिसुरके एक गङ्गवंशीय राजा ।

केशरहा (सं० स्त्री०) केश इव रोहति, रह-कः ।

१ भद्रदन्ती । २ महाबला । ३ महामोक्षी ।

केशरुद्रक (सं० पु०) कासमट ।

केशरुपा (सं० स्त्री०) केशस्वेव रूपमस्याः, बहुव्री० ।
बन्दाक, बांदा ।

केशलुक्ष (सं० पु०) केशान् लुक्षति अपनयति, लुक्ष-
अप् लक् वा । १ कोई जैन आचार्य । (प्रबोधचन्द्रोदय)
२ केशसुण्डनकारी । ३ जैनमतानुसार साधु होते
समय अपने हाथोंसे केश उपाड़ने पड़ते हैं । उसे केश-
लुक्ष कहते हैं । (बनगार धर्मावत)

केशव (सं० पु०) को ब्रह्मा ईशो रुद्रस्यो वातः प्रलये
उपाधिरूपं मुक्तिं परित्यज्य तिष्ठतो यत्र, केश-वा-ड ।
१ परमात्मा । केशं केशिनामानमसुरं वाति हन्ति, केश-
वा-क । २ विष्णु । केशीनामक दैत्यको मार डालनेसे
विष्णुका नाम केशव पड़ा है । (हरिवंश ८० । ६६) यद्वा
प्रलयकालको क्षीरोदसमद्रमें शयन करनेसे विष्णु
केशव कहलाते हैं । ३ विष्णुकी कोई मूर्ति । ४ पुत्राग
वृक्ष । ५ नागकेशर । ६ वायस, कौवा । ७ जलस्थित
शव, पानीमें पड़ा हुआ सुर्दा ।

" केशवपतितं दृष्ट्वा श्रेयो हर्षमुपागतः ।

वदन्ति पाण्डवाः सर्वे हा हा केशव केशव ॥ " (विदग्धसुखमञ्जय)

८ कोई संस्कृत वैयाकरण । इन्होंने केशरी व्याक-
रण बनाया था । ९ कोई प्राचीन कवि । श्रीधरदासने
इनकी कविताको उद्धृत किया है । १० कल्पद्रुम-
नाममाता और लघुनिघण्टुसार नामक संस्कृत अभि-
धानके रचयिता । इनका अभिधान मङ्गिनाथ और
हेमाद्रिकर्णक उद्धृत है । ११ केशवार्णव नामक धर्म-
शास्त्र बनानेवाले । १२ न्यायतरङ्गिणी नामक संस्कृत
ग्रन्थके प्रणेता । १३ पुण्यस्तम्भवासी लोगाचीकुलसम्भूत
जनन्तके पुत्र । इन्होंने भानन्दवृन्दावनचम्पू, नृसिंह-
चम्पू और राजा उमापति दलपतिके अशुरोषसे प्रज्ञाद-
चम्पू आदि संस्कृत ग्रंथोंकी रचना की । १४ दिवाकरके
पुत्र और नृसिंहके सुव्रतात (चचा) । इन्होंने १५६४

शकको 'ज्योतिषमणिमाता' नामक संस्कृत ग्रन्थ
बनाया था । १५ रसिकसञ्जीवनी नामक संस्कृत चम-
त्कारके प्रणेता । इनके पिताका नाम हरिवंश और
गुरुका नाम विठ्ठलेश्वर था । १६ कर्णाटदेशके कोई
पुराने पण्डित । ई० द्वादश शताब्दीको इन्होंने सर्व-
प्रथम कर्णाटी भाषामें एक चम्पूनामा व्याकरण लिखा
था । केशवमह देखो । १७ केशवीपद्धतिरचयिता । विष्णु-
नाथने केशवीपद्धतिकी टीका की है । केशवदेवप्र देखो ।
१८ हिन्दी भाषाके एक मैथिल कवि । (१७७५ ई०)
यह मिथिलाराज राजा प्रतापसिंहकी जिनका उप-
नाम मोदनारायण रहा, सभाके एक सभ्य थे ।

(त्रि०) १८ प्रशस्तकेशयुक्त, बालदार ।

केशवकवीन्द्र—त्रिभुतके एक पण्डित । इन्होंने संख्या-
परिमाणनिबन्ध नामक संस्कृत ग्रन्थ रचना किया ।
केशवकीर्तिन्यास (सं० पु०) विष्णुकी पूजाका एक चम्पू-
न्यास । तन्त्रसारमें इसका विधान लिखा है—

केशवकीर्तिन्यास करनेसे, इसमें सम्यक् नहों कि,
योग मुक्ति पा सकते हैं । प्रथम मातृकावर्ण प्रकार
आदिका एक उच्चारण करके 'केशवाय कीर्त्यै नमः' मंत्र
पढ़ते और नियमानुसार न्यास करते हैं । न्यासकी
प्रणाली यह है—'अं केशवाय कीर्त्यै नमः' उच्चारण
करके ललाटमें न्यास करना चाहिये । इसी प्रकार
मुखमें 'अं नारायणाय कान्त्यै नमः', दक्षिण चक्षुमें 'ईं
माधवाय तुष्ट्यै नमः', वाम चक्षुमें 'ईं गाविन्दाय पुष्ट्यै
नमः', दक्षिण कर्णमें 'उं विष्णवे धृत्यै नमः', वाम
कर्णमें 'लं मधुसूदनाय शान्त्यै नमः', दक्षिण नासा-
पुटमें 'ऋं त्रिविक्रमाय क्रियायै नमः', वाम नासापुटमें
'ऋं वामनाय दयायै नमः', दक्षिण गण्डमें 'ळं
श्रीधराय मेधायै नमः', वाम गण्डमें 'लृं हृषीकेशाय
हर्षायै नमः', ओष्ठमें 'एं पद्मनाभाय श्रद्धायै नमः',
अधरमें 'ऐं दामोदराय लज्जायै नमः', अर्ध दन्त-
पंक्तिमें 'अं वासुदेवाय लज्जायै नमः', अधोदन्तपंक्तिमें
'अं सहस्रर्षभाय सरस्वत्यै नमः', मस्तकमें 'अं प्रद्युम्नाय
प्रोत्यै नमः', मुखमें 'अः अनिरुद्धाय रत्यै नमः',
दक्षिण बाहुकरमूल तथा सम्मुखमें 'अं चक्रिणे जयाय
नमः', 'अं गदिने दुर्गायै नमः', 'गं शक्तिं प्रभायै

नमः', 'वं खड्गिणे सत्त्वाये नमः', एवं 'ङं शङ्किने चण्डाये नमः', वामबाहु तथा करमूल सन्ध्यर्धमें 'वं हस्तिने वाण्यौ नमः', 'हं सुषलिने विलासिन्यै नमः', 'जं शूलिने विजयाय नमः', 'भं पाशिने विरजाये नमः', एवं 'अं अङ्गुशिने विश्वाये नमः', दक्षिण पादमूल तथा सन्ध्यर्धमें 'टं सुकुन्दाय विनटाय नमः', 'ठं नन्दजाय सुनन्दाये नमः', 'डं नन्दिने स्नात्यै नमः', 'ढं नराय ऋद्धेय नमः', एवं 'णं नरकजिते समुद्धेय नमः', वाम पादमूल तथा सन्ध्यर्धमें 'तं सुरये शुद्धेय नमः', 'थं कृष्णाय बुद्धेय नमः', 'दं सत्त्वाय धृत्यै नमः', 'धं सत्त्वाय मत्यै नमः', एवं 'नं सौराय क्षमायै नमः', दक्षिण पाश्वर्धमें 'पं शूराय रमायै नमः', वामपाश्वर्धमें 'फं जनार्दनाय उभायै नमः', पृष्ठमें 'वं भूधराय क्लिदिन्यै नमः', नाभिमें 'भं विश्वमूर्तये क्लिन्नायै नमः', उदरमें 'मं वैकुण्ठाय वसुदायै नमः', हृदयमें 'यं त्वगात्मने पुरुषोत्तमाय वसुधायै नमः', दक्षिण स्कन्धमें 'रं अष्टगात्मने बलिने परायै नमः', गर्दनमें 'लं मांसात्मने वलानुजाय परायणायै नमः', वाम स्कन्धमें 'वं मेदात्मने वलाय सुष्मायै नमः', हृदयादि दक्षिण करमें 'शं अष्टगात्मने वृषभाय सन्ध्यायै नमः', हृदयादि वाम करमें 'वं मज्जात्मने प्रज्ञायै नमः', हृदयादि दक्षिण पादमें 'सं शुक्रात्मने हंसाय प्रभायै नमः', हृदयादि वाम पादमें 'हं प्राणात्मने वराहाय निशायै नमः', हृदयादि उदरमें 'लं जीवात्मने विमलाय अमोघायै नमः' और हृदयादि सुखमें 'लं क्रोधात्मने नृसिंहाय विद्युतायै नमः', उच्चारण करके न्यास किया जाता है।

यह केशवकीर्तिन्यास लक्ष्मीवीज मिलाके करनेसे स्मृति, धैर्य तथा सर्वसम्पत्ति पाते और अन्तर्को वैकुण्ठ धाम जाते हैं। उपर्युक्त प्रत्येक मन्त्रके पहली 'ओं' लगा लेनेसे लक्ष्मीवीजयोग होता है। (तन्सार)

केशवचन्द्रसेन—बङ्गालके ब्राह्मधर्मप्रचारक विख्यात वाग्मी। चौबीस परगनेके अन्तर्गत हुगलीके उस पार गङ्गातीरपर गरिफा गाँवके विख्यात वैद्य सेनवंशमें इनका जन्म हुआ था। इनके पितामह रामकमल सेन पहली १०, २० महीनेकी कम्पोजीटरी करते थे, परन्तु पोछेकी टकसाल तथा बङ्गाल वैद्यके दीवान और एधि-

याटिक सोसाइटीके सेक्रेटरी तक हो गये। साहित्यका उन्हें बड़ा अनुराग रहा। रामकमल सेनके चार पुत्र थे। द्वितीय पुत्र प्यारीमोहन सेन केशवके पिता रहे। १८३८ ई० की १८वीं नवम्बरको केशवने कलकत्तेमें जन्म लिया था। यह प्यारीमोहनके द्वितीय पुत्र रहे। वाष्पकालको केशव प्रत्यह प्रातःस्नान करके, तिलक लगा और पट्टवस्त्र पहन शुद्धाचारसे रहते थे। इन्होंने इतिहास, पाश्चात्य न्याय, मनोविज्ञान और प्राणीवृत्तात्स को शिक्षा बड़े बड़े स्कूलोंमें पायी थी।

केशव बहुत सुश्री, प्रियदर्शन और प्रियस्वद रहे। सभी लोग इन्हें चाहते थे। लड़कपनसे ही इनके मनमें धर्मभाव जगा था। यह आत्माभिमानो, गम्भीरप्रकृति और निर्जनप्रिय रहे। निर्जनमें बैठ केशव धर्मचिन्ता किया करते थे। चौदह वर्षको अवस्थामें इन्होंने मत्स्या-हार परित्याग कर दिया। केशव अपने आप जा सम-भते, उसे दूसरेको भी समझानेकी चेष्टा करते थे। विद्या और ज्ञानके विस्तारको यह अल्पवयससे ही यत्नवान् रहे।

१८५६ ई० की २७वीं अपरेलको बालीग्रामके वैद्यवंशीय चन्द्रकुमार मजुमदारकी कन्याके साथ इनका विवाह हुआ। किन्तु उसी समयसे केशवके मनमें वैराग्य बढ़ आया। वह ४ वर्षतक अकेले धर्मचिन्तामें रत रहे। इन्होंने सच्चा धर्म टूटनेको नाना प्रकारके धर्मग्रन्थ पढ़े थे। फिर इन्होंने वक्ता बननेके लिये कठोर अभ्यास किया। इसी समय कभी कभी केशव घरके किवाड़ बन्द कर अपने आप वक्त ता दिया करते थे। १८५७ ई० की इन्होंने 'गुडविल फ़ोटनिटी' और 'ब्रिटिश इण्डियन सोसाइटी' नामक दो सभायें स्थापित कीं। पहलीका उद्देश्य धर्मालोचना और दूसरीका उद्देश्य विज्ञान तथा साहित्यको आलोचना था।

इसी समय रेवरण्ड डल साहबने राममोहनराय को एक्सेरवादी ईसाई प्रतिपक्ष करनेके लिये इनका बनाया 'ईश्वरनैति' नामक ग्रन्थ मुद्रित करके प्रचार किया। केशवने उसे पढ़के वैसा ही एक्सेरवादी ईसाई होना चाहा था। फिर इन्होंने राममोहनके लिखे बहुत से पुस्तक पढ़के देखा कि वह एक्सेरवादी ईसाई

नहीं—प्रकृत ब्राह्मणानी रहे। उसी समयसे ब्राह्मधर्म पर केशवकी अद्वा बढ़ चली। नवीनकृष्ण वन्द्या-पाध्यायने इन्हें उक्त धर्मकी शिक्षा दी ही थी। यह घटना १८५७ ई० की हुई। परन्तु जब इन्होंने अपने कुलके वैष्णव धर्मकी दीक्षा लेनेपर अस्वीकृत हुए, तब घरके सब लोग इनसे विरक्त हो गये। एक बार कृष्णनगरमें इन्होंने धर्म सम्बन्ध पर डाइसन साहबको इराया था। इससे नवहीपके ब्राह्मण पण्डित केशव पर बहुत सन्तुष्ट हुए। फिर इन्होंने इण्डियन मिरर (Indian Mirror) नामक संवादपत्र प्रकाश किया।

१८६२ ई० की १३वीं अपरेलकी केशव कलकत्ता ब्राह्मण-समाजके आचार्य बनाये गये और इन्हें 'ब्रह्मानन्द' उपाधि तथा सनद भी मिली।

१८६२ ई० के दिसम्बर मास इनके ज्येष्ठ पुत्रने जन्म लिया था। उसका जातकमें ब्राह्मण-धर्मके अनुसार होता देख घरके लोग बाहिर चले गये, परन्तु माताने इन्हें न छोड़ा। फिर इन्होंने अपने घरमें 'सङ्गत सभा' स्थापन की। धर्ममत और जीवन एक बनानेके लिये यह सभा स्थापित हुई थी।

उस समय बहुतसे बड़े बड़े बङ्गाली ब्राह्मणधर्मकी ओर चले गये। परन्तु वह काम हिन्दुओं जेमेहो करते थे। इसीसे केशवचन्द्रने, 'ब्राह्मधर्मर अनुष्ठान' नामक एक पुस्तक लिखा। इसके अनुसार कितने ही ब्राह्मणोंकी यज्ञोपवीत परित्याग करना पड़ा। 'सङ्गत-सभा'के 'धर्मसाधन' और 'वामाचोधिनी' नाम्नी दो पत्रिकायें भी निकलने लगी। केशवके यत्नसे ब्राह्मधर्म फेलने पर ईसाई पादरियोंका धर्म प्रचार बहुत कुछ रुक गया।

१८६४ ई० की यह मन्द्राज पहुँचे थे। वहाँ इनकी यथोचित अभ्यर्थना हुई। नानास्थानोंमें ब्राह्मधर्मका उपदेश दे मन्द्राजसे केशव बम्बई गये। वहाँ टाउन हालमें इनकी मौखिक वक्तृता सुन सब लोग चमत्कृत हुए।

१८६५ ई० की मतभेदके कारण इन्हें कलकत्तेका आदि ब्राह्मणसमाज छोड़ना पड़ा और १८६६ ई० की इन्होंने 'भारतवर्षी ब्राह्मणसमाज' नामक नवी संस्थाकी स्थापन किया।

थोड़े दिन पीछे ही केशव ठाका, फरीदपुर, मैमन-सिंह अञ्चलमें धर्म प्रचार करने गये थे। दूसरे वर्ष फिर केशव युक्तपदेश पहुँचे। इङ्गलेण्ड भी जाकर इन्होंने खूब वक्तृता की थी। इङ्गलेण्डसे लौटने पर पहले इन्होंने भारतसंस्कारक सभाकी स्थापन किया। उसका उद्देश्य—सुलभ साहित्यप्रचार, दान, अम-जीवियोंकी शिक्षा, स्त्रीविद्यालयप्रतिष्ठा और मद्य-पाननिवारण था। उसी समय एक पैसे मूख्यका, 'सुलभ समाचार' निकला और १८६१ ई० की १ली जनवरीसे इण्डियनमिरर दैनिक हो गया। १८७२ ई० की भारत-आश्रमकी प्रतिष्ठा हुई। फिर युवकोंके लिये 'ब्राह्मनिकेतन' स्थापन किया गया और १८७२ ई० की १८ वीं मार्चकी ब्राह्मविवाहका कानून पाम हुआ। उसके अनुसार १४ वर्षसे न्यून अवस्थाकी कन्या और १८ वर्षसे न्यून पुत्रका विवाह हो नहीं सकता। केशवने १८७६ ई० की चन्दा करके असबर्ट-हाल स्थापन किया था।

१८७८ ई० की ६ वीं मार्चकी इन्होंने अपने कन्याका विवाह कोचविहार-महाराजके साथ कर दिया। इससे इनकी बड़ी निन्दा हुई। लोग कहने लगे कि केशवने रुपयेके लालचमें पड़ धर्मकी चौपट कर दिया।

फिर इन्होंने अपने धर्मका नाम 'नवविधान' रखा था। इसका गूढ़ अर्थ मनुष्यके साथ ईश्वरका व्यवहार है। विलायतसे लौटने पर केशवचन्द्र जितने दिन जिये, केवल धर्मप्रचार और धर्मविस्तारका कार्यही करते रहे। यह ठोस और करतास लिये घर घर धर्मगत गाते फिरते थे। कोई इन्हें आचार्य और कोई अवतार समझता था। केशव अनेक प्रकारके रूप बना अपने मतानुयायियोंकी मोहित और विमुग्ध किया करते थे। इनका मत किसी धर्मकी निन्दा न करना और सबका सार ले लेना था। इसमें सन्देह नहीं कि यह बङ्गालके असाधारण और अणजन्मा पुरुष थे। इसी प्रकार थोड़े दिन जीवनयात्रा निर्वाह करके १८८४ ई० की ८ वीं जनवरीकी ४६ वर्षके बयसमें केशवचन्द्र ने अपनी मानवलीला संवरण की।

केशवजीवानन्द—एक स्मार्त पण्डित। यह आचार्यकारिका नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता थे।

केशवदत्त—श्रीमद्भागवतकी प्रथमस्कंधा टीका बनाने वाले।

केशवदास (केशूदास) १ जयसक्तके पुत्र और राजा गिरिधरके पिता। (बादशाहनामा) २ काश्मीरके रहने वाले एक विख्यात पण्डित। प्रायः १५४१ ई० को यह ब्रजधाम गये और कृष्णचैतन्यसे तर्कमें परास्त हुए। इनकी बनाई बहुतसी हिन्दी कविता विद्यमान है।

केशवदास—हिन्दीके एक सुप्रसिद्ध कवि। यह बुंदेलखण्डके रहनेवाले थे। प्रायः १५८० ई० की इनका अभ्युदय हुआ। इनके बनाये ग्रन्थ कविप्रिया और रसिकप्रियाका हिन्दी भाषामें बड़ा आदर है। केशवदासके दो सुयोग्य उत्तराधिकारी रहे—कानपुर जिलेके चिन्तामणि त्रिपाठी (१६८०) और बांदाके पद्माकर भट्ट (१८१५ ई०)।

केशवदास—मालव प्रान्तीय बदनावरके एक राजा। यह भीम सिंहके पुत्र और शाहजादे सलीमके साथ चकने-वाले एक सरदार रहे। जब सलीम जहांगीर नामसे तख्त नशीन हुए, केशवदास मालवेके दक्षिणपश्चिम जिलोंमें लुटेरोंकी दवानेकी नियुक्त किये गये। केशवदासने उन्हें दमन करके उनकी भूमि अधिकार की थी। १६०७ ई० को बादशाहने उन्हें उसराका खिताब दिया, परन्तु उसी वर्ष इनके उत्तराधिकारी पुत्रके विषप्रयोगसे उन्हें इहलोक छोड़ना पड़ा।

केशवदास खुसाली—जीवनरामके पुत्र और लक्ष्मीनाथके भ्राता। इनका दूसरा नाम रामराय था। इन्होंने एक संस्कृत धर्मशास्त्रग्रंथ और श्रीधरस्वामीकी भागवतार्थदीपिकाकी टिप्पणीकी रचना किया।

केशवदास सनाथ (मिश्र) बुंदेलखण्डके एक प्रसिद्ध हिन्दी कवि। इन्होंने टेहरी नामक गांवमें जन्म लिया था। वहाँसे बीछीके राजा मधुकर शाहकी सभामें गये। राजाने इनका बड़ा सम्मान किया था। राजा मधुकरके पुत्र इन्द्रजित्ने राजा होने पर केशवदासकी पाण्डित्य और कवित्वसे सुन्ध हो रहने और खाने पीनेके लिये बीछी राज्यके बीच २१ ग्राम दिये।

हिन्दी भाषाके कवियोंमें इन्होंने सबसे पहले 'कविप्रिया' नामक अपनी ग्रन्थमें काव्यका दशाङ्ग प्रकाश किया था। राजा मधुकर शाहका प्रसन्न करनेके लिये केशवदासने हिन्दी भाषामें 'विज्ञानगीता,' प्रवीणराय बेष्टाके लिये 'कविप्रिया,' राजा इन्द्रजित्के नाम पर 'रामचन्द्रिका' और पीछे 'रसिकप्रिया' लिखी। इसकी छोड़ कर इन्होंने हिन्दी साहित्य और बलहार पर दूसरे भी कई पुस्तक बनाये हैं। उक्त ग्रन्थोंके मध्य फलका राय, सरदार और हरिराय नामक कई व्यक्तियोंने कविप्रियाकी हिन्दी टीका, जानकीप्रसाद और धनोरामने रामचन्द्रिकाकी हिन्दी टीका और यूसुफ खान्, याकूब खान्, सरदार, सुरति मिश्र और हरिजनने रसिकप्रियाकी हिन्दी टीका लिखी। केशवदास १५८० ई० की विद्यमान थे। किसी कविने एक दोहेमें कहा है—

“सूरसूर तुलसी शशी उदयग च केशवदास।

चवके कवि खद्योत सम जहं तहं करत प्रकाश ॥”

केशवदास राठौर राजा—बादशाह जहांगीरके खजुर। इन्होंने अपनी कन्याका विवाह बादशाह जहांगीरके साथ किया था। उनका नाम पीछे बहार बानो बेगम पड़ा।

केशवदीक्षित—प्रयोगरत्न और केशवदीक्षितीय नामक संस्कृत धर्मशास्त्र बनानेवाले। इनके पिताका नाम सदाशिव था।

केशवदेव—१ सुलतानके राजा। इनके पुत्रका नाम ताराचन्द्र था। केशवदेव राजाके चरित्रको अवलम्बन करके वैद्यनाथ नामक किसी मैथिल पण्डितने केशवचरित्र नामक एक संस्कृत काव्य बनाया था। २ कोई वैयाकरण। इन्होंने व्याकरणदुर्घटोद्घात नामक गोपीचन्द्र उक्त संक्षिप्तसार टीकाकी एक टिप्पणी लिखी है।

केशवदेव—एक विख्यात ज्योतिर्विद्। यह दक्षिणपथके मन्दीग्रामवासी कामलाकरके पुत्र और अनन्तदेवके पिता थे। इनके बनाये ज्योतिर्ग्रन्थोंमें ग्रहकीर्तुक, सुहृत्समार्तण्ड, और सिद्धान्तसमुच्चयमणि, तथा तात्त्विकर्मपद्धतिका टीका मिलती है। ग्रहकीर्तुक

पढ़नेसे समझ पड़ता कि वह १४१८ ई०को विद्यमान थे। भरद्वाजगोत्रीय राणिके पुत्र किसी केशवदेव-काभी नाम सुननेमें आता है। उन्होंने एक फलित ज्योतिष बनाया था। गणेशदेवज्ञने उसकी टीका लिखी। केशवार्क देखो।

केशवनगर (गड़वाल समस्थान) हैदराबाद राज्यके रायचूर जिलेका एक करदराज्य। इसकी लोक-संख्या प्राय ८६८४८१ है। राज्यकी पूरा आमदनी ३ लाख है, जिसमें ८६८४०० रु० वार्षिक निजामको कररूप देना पड़ता है। इसका प्रधान नगर निजाम राज्यकी स्थापनासे पहलिका बसा है। पूर्वकाल केशव-नगरका अपना सिका बनता जो रायचूर जिलेमें आज भी चलता है। गड़वालका किला राजा समतादिने १७०३से आरम्भ कर १७१० ई० को बनाकर पूरा किया था। इस राज्यके उत्तर और दक्षिणभागमें कृष्णा तथा तुङ्गभद्रा नदी प्रवाहित है। नदियोंके किनारेकी जमीन बहुत उपजाऊ होती है। तलाव बहुत कम हैं। सूखी खेती की जाती है। गड़वाल नगरमें रेशमी साड़ियां, दुपट्टे, पगड़ियां और धोतियां बनतीं जिनमें जरीकी किनारियां लगती हैं।

केशवमथ—गोदापरिणय नामक संस्कृत नाटकके रच-यिता।

केशवनायक—कोई राजा। यह कोण्ठपनायकके पुत्र और विष्णुस्मृतिकी वैजयन्ती टीका बनानेवाले मन्द पण्डितके प्रतिपालक थे।

केशवपण्डित—लौगाक्षिकुलोद्भव अमरके पुत्र और प्रसिद्ध चम्पूकाव्यके रचयिता।

केशवती—नेपालकी एक नदी। नेपाली बौद्धोंके स्वयम्भू-पुराणमें लिखा है कि मञ्जुश्री बोधिसत्वके मरने पर क्रकुच्छन्द नेपाल गये थे। वहां उन्होंने चारो वर्षके बोगोंको दीक्षित किया। जहां उनके केश वायुसे उड़ कर गिरे थे, एक नदी बन गयी। उसी नदीको केश-वती कहते हैं। यह नेपाल क्षेत्रकी पूर्वसीमा है। आजकल इसका नाम विषखमती है।

केशवपनीय—एक अतिरात्र याग। कात्यायनश्रौत-सूत्रमें लिखा है—पञ्चमथके अन्तमें केशवपनीय नामक

अतिरात्र याग करना पड़ता है। यह यज्ञ ऋषि मास-की पूर्णिमा तिथिको करना चाहिये।

शतपथब्राह्मणमें केशवपनीय यागका विधि इस प्रकार कहा है—दोनों पशुओंको बांधने पीछे केश-वपनीय नामक अतिरात्र यज्ञ करना पड़ता है अभिषेचनीय सोमयज्ञ करके संवत्सर पर्यन्त बाल न बनवाना चाहिये। इसी व्रतके उद्यापनकी पूर्णमासी सुख सोमयाग करना पड़ता है। उसीका नाम केशवपनीय अतिरात्र है। वीर्यमय जलरस सबसे पहले केशकी अवलम्बन करके अवस्थान करता है। बाल मुँडानेसे यह वीर्यसम्पद् बिगड़ जाती और मनु-ष्यकी बलहीन बनाती है। इसलिये संवत्सरपर्यन्त केशवपन न करना चाहिये। संवत्सरमें यह व्रत आच-रण करना पड़ता है। इसीसे उस समय केशमुण्डन करना अनुचित है। इसयज्ञमें प्रातःकाल २१, मध्याह्न-को १७ और अपराह्नमें १५ सवन करने पड़ते हैं। यज्ञ-के अवसानको केशवपन होता है। बाल मुँडाना न चाहिये। बाल न मुँडानेसे वीर्यरूप जलरस सञ्चित होता है और उसीसे इस व्यक्तिका अभिषेक किया जाता है। यज्ञके अवसानमें बाल कटा डालना चाहिये। केश कर्तन करनेसे वीर्य नहीं बिगड़ता, उसमें बना रहता है। इसी कारण मुण्डन नहीं, वपन करना चाहिये। इसी प्रकार व्रतका अनुष्ठान करना पड़ता है। इस व्रतकी प्रतिष्ठा नहीं होती, यावज्जीवन अनु-ष्ठान चलता है। इस व्रतमें यजमानको सदा जूता पहने रहना चाहिये, किसी स्थानमें जूता खोलनेको आवश्यकता नहीं, अवरोहण कालमें जूता नहीं उता-रते। किसी स्थानको जानेमें रथ या दूसरा कोई यान आरोहण करना कर्तव्य है। (शतपथब्राह्मण)

केशवपुर—बङ्गालके यशोर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २२° ५५' ४०" और देशा० ८८° ११' पू० का यशोर नगरसे ८ कोस दक्षिण हरिहर नदीतीर पर अवस्थित है। केशवपुर वाणिज्यप्रधान स्थान है। यहां चीनीके बहुतसे कार्यालय हैं। इसके पास नदीके दूसरे पार श्रीपुर नामक उपनगरमें भी चीनीके बहुतसे कार-खाने हैं। चावल, पोतक और मझीकी चीजें या कपड़े

पादिकी भी बड़ी आमदनी होता है। इसको छोड़ २ बड़े बाजार हैं।

केशवप्रिया (सं० स्त्री०) केशवस्य प्रिया, इ-तत् ।
१ राधिका । २ गोरोचना ।

केशवविश्वरूप—दक्षिणापथके तुङ्गभद्रा तटवासो एक विख्यात तान्त्रिक । इन्होंने आगमतत्वसारसंग्रह नामक एक तन्त्रशास्त्र रचना किया ।

केशवभट्ट—१ कोई ग्रन्थकार । इन्होंने सांख्यार्थतत्त्वप्रदीपिका नामक सांख्यदर्शन सम्बन्धीय एक संस्कृत ग्रन्थ लिखा । इनके पिताका नाम सदानन्द था । २ हिरण्य-केशी-सूत्रीय ग्रन्थेष्टिप्रयोगके रचयिता । ३ संस्कृत भाषामें आचारदीप, कृत्यप्रदीप, प्रायश्चित्तप्रदीप और शुद्धिप्रदीप नामक स्मृतिग्रन्थ बनानेवाले । इन्हें लोग भट्टकेशव कहते थे । ४ आनन्दलहरीके कोई टीकाकार । ५ गोस्वामी उपाधिधारी कोई वैष्णव ग्रन्थकार । इन्होंने क्रमदीपिका नामक कृष्णपूजाका एक संस्कृत ग्रन्थ और उसकी उत्कृष्ट टीकाकी रचना किया । ६ कोई विख्यात दार्शनिक पण्डित । इन्होंने संस्कृत भाषामें न्यायग्रन्थ और पदार्थचन्द्रिका नामसे वैशेषिक तत्त्व लिखा है । ७ प्रस्तावसुक्तावली नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता । ८ रामशतकके प्रणेता । ९ अनन्त-भट्टके पुत्र । इन्होंने तर्कभाषाकी तर्कदीपिका नामकी एक उत्कृष्ट टीका बनायी । १० निम्बार्क सम्प्रदायभुक्त एक कश्मीरी पण्डित । यह श्रीमङ्गलके पुत्र और श्रीनिवासके शिष्य थे । इनकी रचित तत्त्वप्रकाशिका नामकी भगवद्गीताटीका, भागवतके १० स्कन्धकी तत्त्वप्रकाशिका वेदस्तुतिटीका और निम्बार्क मतके अनुसार वेदान्तसूत्रका वेदान्तकोस्तुभप्रभा नामक भाष्य पादि मिलता है । ११ (भट्टाचार्य) पद्यावलीष्टुत एक प्राचीन कवि ।

केशवभारती—चैतन्यदेवके एक गुरु । चैतन्यदेव देखो ।

केशवमिश्र—१ कोई पुराने ज्योतिषी । विश्वनाथ और केशवार्क के बनाये जातकपद्धति ग्रन्थमें इनका मत उद्धृत हुआ है । २ कोई प्रसिद्ध आलङ्कारिक । इन्होंने धर्मचन्द्रके पुत्र राजा माधवचन्द्रके आदेशसे संस्कृत भाषामें अलङ्कारशेखर आदि कई अलङ्कारग्रन्थ लिखे ।

३ छन्दोगपरिशिष्ट-रचयिता । ४ तर्कपरिभाषा-प्रणेता कोई नैयायिक । ५ प्रसिद्ध धर्मशास्त्रविद् वाचस्पति-मिश्रके प्रशिष्य । इन्होंने चैतपरिशिष्ट बनाया । ६ धर्म-भाषा नामक स्मृतिग्रन्थ बनानेवाले ।

केशवराम भट्ट—एक हिन्दी कवि । इन्होंने 'सज्जाद सम्बुल' और 'शमशाद सोसन' नामक दो नाटक लिखे ।
केशवराय—हिन्दी भाषाके एक कवि । प्रायः १६८२ ई० की यह विद्यमान थे ।

केशवराय पाटन—राजपूतानेके बूंदी राज्यकी एक तहसील और शहर । यह अक्षा० २५° १७' उ० देशा० ७५° ५७' पू० में चम्बलके उत्तर तटपर अवस्थित है । यहाँसे कोटा १२ मील नीचे और बूंदी २२ मील दक्षिणपूर्व है । लोकसंख्या प्रायः ३३७३ है । यह स्थान महाभारतका समकालीन बतलाया जाता है । पहले यहाँ बिलकुल जङ्गल था । नगरका असली नाम रत्निदेवपाटन है । राजा रत्निदेव माहिषतीके अधिपति और हस्तिनापुर-प्रतिष्ठता राजा हस्तिके भतीजे थे । प्राचीनतम शिलालिपियां २ सतीमन्दिरोंमें मिली है । उनमें अनुमानतः सन् ३५ और ८३ ई० पड़ा है । यह भी कहा जाता है कि उक्त समयसे बहुत पीछे परशु नामक किसी व्यक्तिने जम्बुमार्गेश्वर नामक शिवमन्दिर बनाया था । धीरे धीरे यह मन्दिर गिर गया और (१६३१—५८) राव राजा छत्रसालने उसका संस्कार किया और केशवरायका भो बड़ा मन्दिर बनवा दिया, जिसके लिये यह नगर प्रसिद्ध हुआ है । केशवराय मन्दिरमें विष्णुकी एक मूर्ति है और प्रतिवर्ष बहुतसे भक्त पूजा करने आया करते हैं ।
केशवर्धनी (सं० स्त्री०) केशान् वर्धयति, केश-वृध्, णिच्-णिनि स्त्रियां ङीप् । महावज्रालता, सहदेवी ।
(अथर्व ६।२।१)

केशवशर्मा—एक पण्डित । इन्होंने स्मृतिसार और भाषारत्न नामक वैशेषिकतत्त्व रचना किया ।

केशवशेष—ब्रह्मसूत्रका वेदान्तसूत्रार्थचन्द्रिका नामक भाष्य बनानेवाले ।

केशवसेन देव—सेनवंशीय एक राजा । यह महाराज बल्लभसेन देवके पौत्र और लक्ष्मणसेनदेवके पुत्र थे ।

हरिमिश्ररचित प्राचीन कुलाचार्यकारिकामें लिखा है कि राजा केशव यवनोंके भयसे गौड़राज्य छोड़ पूर्व-वङ्गकी भागी और यवनोंके भयसे सदा व्यस्त रहने पर पितामहके प्रतिष्ठित कुलविधिसंस्कारमें यत्न कर न सके। एडूमिश्र नामक प्राचीन कुलाचार्यके मतानुसार केशव किसी राजाकी सभामें जाकर पहुँचे थे। राजाने प्रसङ्गक्रममें केशवसे उनके पितामहके चलाये कुलविधिकी बात पूछी। उनके सहचर एडूमिश्रने कुलकी कथा बतायी थी।

१८३८ ई० को जनवरी मास प्रिन्सप साहबन एशियाटिक सोसाइटीकी पत्रिकामें केशवसेनके नामसे ताम्रशासनकी एक प्रतिलिपि छपायी थी। कहते हैं उसमें इनके बड़े भाई माधवसेनका नाम मिटाकर केशवसेन लिख दिया गया है। (Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. VII. pt. p. 42.) परन्तु यह युक्ति ठीक नहीं समझ पड़ती। फरीदपुर जिलेके कोटालीपाड़से दूसरा एक ताम्र-शासन निकला है। इसके सब श्लोक पूर्वीत ताम्र-शासनसे बराबर मिलते हैं। परन्तु प्रिन्सप साहबका प्रकाशित पाठ विशुद्ध न होनेसे ऐतिहासिक अन्वेषणमें बड़ा गड़बड़ पड़ गया है। उनके पाठमें महाराज लक्ष्मणसेनके वर्णन पीछे लिखा है—

‘एतस्मात् कथमन्यथा रिपुवधं वेधय्यवहवती।

विख्यातः चित्तिपालमौलिरभवत् श्रीविश्वरूपो नृपः ॥’ १०

(J. A. S. Bengal, Vol. VII. pt I. p. 44.)

सप्त पाठ ठीक नहीं लगता। कोटालीपाड़ ताम्र-शासनमें प्रकृत पाठ इसप्रकार है—

‘एतस्मात् कथमन्यथा रिपुवधं वेधय्यवहवती।

विख्यातचित्तिपालमौलिरभवत् श्रीविश्वरूपो नृपः ॥’

केशवसेन और ताम्रशासनवर्णित प्रबल पराक्रान्त विश्वरूप दोनों ही लक्ष्मणसेनके पुत्र थे।

केशवस्वामी—१ कोई वैयाकरण। माधवीय धातुवृत्ति, दिनकर और हेमाद्रि प्रवृत्ति ग्रन्थोंमें केशवस्वामीका मत उद्धृत हुआ है। २ कोई धर्मशास्त्रवित् प्राचीन पण्डित। इन्होंने अग्निहोत्रपद्धति, बौधायनीय नवतरे-

ष्टिप्रयोग, बौधायनमृग्यपद्धति, बौधायनश्रौतसूत्रका प्रयोगसार नामक भाष्य, पञ्चकाठकप्रयोगवृत्ति और आपस्तम्बसावित्रादि-प्रयोगवृत्ति आदिकी रचना किया। त्रिकाण्डमण्डनने इनकी सावित्रादि प्रयोग-वृत्ति उद्धृत की है। इससे समझ पड़ता है कि केशव-स्वामी ई० १२ वीं शताब्दीमें विद्यमान थे।

केशवाचार्य—हारितगोत्रोय एक बड़े पण्डित। किसीके मतमें यह रामानुजस्वामीके पिता थे।

केशवादित्य—१ काशीके आदिकेशवकी उत्तर और भवस्थित एक सूर्यमूर्ति। काशीखण्डमें कहा है—दिवाकरने आकाशमण्डलमें घूमते घूमते देखा था कि आदिकेशव जल लगाकर ईश्वरकी उपासना करते हैं। केशवकी पूजा समाप्त होने पर दिवाकरने उनके पास जाकर कहा—‘प्रभो! सकल जगत् आपसे उत्पन्न होता और प्रलयकी आपमें ही लीन हो जाता है। आपही सबके आराध्य ईश्वर हैं। हमें यह जाननेकी वड़ा कौतूहल है कि आप किसकी आराधना करते हैं, कृपा कर हमको यह भेद बतला दीजिये।’ केशवने सङ्केत करके उनको कहा था—‘आदित्य! हम देवादि-देव महादेवकी उपासना करते हैं। यही त्रिभुवनके सृष्टिकर्ता और सबके आराध्य हैं। जो व्यक्ति माहवश त्रिलोचनको छोड़के दूसरे देवकी आराधना करता, वह लोचन रहते भी अंधा ठहरता है। मृत्युस्वरूपसे शिवकी आराधना करनेवालेको मृत्युका भय नहीं रहता।’ दिवाकर आदिकेशवकी बात सुन काशीमें शिवकी आराधना करने लगे। उस दिनसे यह आदि-केशवके उत्तर भवस्थान करते हैं। इन्होंने नाम केशवादित्य है। जो व्यक्ति काशी जाकर केशवादित्यका दर्शन करता, उसको दिव्यज्ञान मिलता है। पादोदक-तीर्थमें स्नान करके केशवादित्यकी अर्चना करनेसे सब पाप छूट जाते हैं। रविवारकी सप्तमी तिथि होनेसे पादोदक-तीर्थका स्नान और केशवादित्यका दर्शन बहुत ही प्रशस्त है। (काशीखण्ड)

२ स्मृतिचन्द्रिका नामक संस्कृत धर्मशास्त्रके संग्रह-कार। ३ नकोदय टीकाके रचयिता।

केशवाबन्दर—त्रिपुरा जिलेका एक पुराना बड़ा गांव।

यह अग्रतलासे ८ कोस दूर पड़ता है। केशवाबन्दर कालीसुखदा देवीमूर्तिके लिये प्रसिद्ध है। (देशवल्लो)
 केशवायुध (सं० स्त्री०) केशवस्यायुधम्, ६-तत् । १ विष्णु का हथियार (पु०) २ भामका पेड़ ।
 केशवार्क (केशवादित्य)—एक विख्यात ज्योतिर्विद् ।
 यह राणिगके पुत्र, श्रियादित्यके पौत्र, जयादित्य तथा कृष्णदेवन्नके भ्राता और प्रसिद्ध गणेशदेवन्नके पिता थे । इनके रचित निम्नलिखित कई ग्रन्थ मिलते हैं—जातक-पद्धति, बृहत्केशरी, ताजिकपद्धति, नावप्रदीप, ब्रह्मतुल्य-गणितसार, मुहूर्तकल्पद्रुम, मुहूर्ततत्त्व, वर्षपद्धति, वर्ष-फल, विवाहहन्दावन, औपतिपद्धति, षड्विधयोगफल, सन्तानदीपिका और कृष्णक्रीडितकाव्य ।
 केशवालय (सं० पु०) केशवस्य आलयः, ६-तत् । १ अश्वत्थवृक्ष, पोपल । २ विष्णुमन्दिर ।
 केशवावास, केशवालय देखो ।
 केशविन्यास (सं० पु०) केशस्य विन्यासः, ६-तत् । कवरी, बालोंकी सजावट ।
 केशवेन्द्रस्वामी—हरिसाधनचन्द्रिका नामक संस्कृत भक्तिग्रन्थके प्रणेता ।
 केशवेश (सं० पु०) केशस्य वेशः बन्धनरूपवेष्टादि-भिर्विन्यासः, ६-तत् । बालोंका बनाव । (भाष्य ११० ११५ ११७)
 केशशौक्ता (सं० स्त्री०) पलित, बालोंकी सफेदी ।
 केशसीमन्तकञ्जर (सं० पु०) केशानां सीमन्तकृत, ६-तत् ततः कर्मधा० । एक असाध्यञ्जर ।
 केशहन्तृफला (सं० स्त्री०) केशहन्तृ फलमस्याः, बहुव्री०, ततः टाप् । महाशमीवृक्ष ।
 केशहन्त्री (सं० स्त्री०) शमीवृक्ष ।
 केशहस्त (सं० पु०) केशानां हस्तः समूहः, ६-तत् । केशसमूह, बालोंका गुच्छा ।
 केशा (सं० स्त्री०) जटामांसी ।
 केशाकेशि (सं० स्त्री०) केशेषु केशेषु गृहीत्वा प्रवृत्तं बुधम्, पूर्वपदस्याकार इत् । लटाभौटी, एक दूसरेके बालोंकी पकड़कर होनेवाली लड़ाई ।
 केशास्थ (सं० स्त्री०) क्रीडेर, सुगन्धवाला ।
 केशाद (सं० पु०) केशान् अस्ति, केश-प्रद-अण् । क्षमि, कीड़ा ।

केशान्त (सं० पु०) केशान् अन्तयति छेदनात् इति, केश-अन्ति-अण् । १ केशच्छेदनरूप संस्कारविशेष । इसका दूसरा नाम गोदानकर्म है । ब्राह्मणका १६ वें, क्षत्रियका २२ वें और वैश्यका २४ वें वर्ष केशान्त संस्कार करना चाहिये । (मृग) २ केशका अग्रभाग, बालका सिरा । (कुमार)
 केशान्तिक (सं० त्रि०) केशान्तः केशपर्यन्तः परिमाण-मस्य, केशान्त-ठन् बाहुलकात् साधुः । केशान्तपर्यन्त परिमाणविशिष्ट, चोटी तक पहुँचनेवाला । (मृग १।४६)
 केशापहा (सं० स्त्री०) शमीवृक्ष ।
 केशारि (सं० पु०) नागकेशर ।
 केशारुहा (सं० स्त्री०) महाबलानुप, सहदेवी ।
 केशार्हा (सं० स्त्री०) केशं केशवर्णं अर्हति, केश-अर्ह-अण्, उपमितस० । महानीली लुप, बड़े नीलका पेड़ ।
 केशालि (सं० पु०) भृङ्गराज, भांगरा ।
 केशाक्ष (सं० स्त्री०) बालक, सुगन्धवाला ।
 केशि (सं० पु०) एक दानव ।
 केशिक (सं० पु०) १ केशर, कसेरू । २ कोई जनपद । (मार्कण्डेयपुराण ५८।४५) (त्रि०) प्रशस्तः केशः अस्थस्य, केश-ठन् । १ प्रशस्त केशयुक्त, बालदार ।
 केशिका (सं० स्त्री०) केशीव कायते, कै-क । शतावरो, सताविर ।
 केशिध्वज (सं० पु०) निमिवंशके एक राजा । यह कृत-ध्वजके पुत्र थे । (भागवत, २।११।१२)
 केशिनिसूदन (सं० पु०) केशिनं निसूदयति, नि-सूद-ल्य, कृष्ण । कृष्णकट्क केशिके संहारकी कथा हरिवंशमें इस प्रकार लिखी है—
 कंसराजाने कृष्णकी वधकामनासे केशिदेवकी हन्दावन भेजा था । केशी कंसके कहनेसे हन्दावन पहुँच हन्दावनवासियों पर अत्याचार करने लगा । थोड़े दिनमें ही हन्दावन जनप्राणीविहीन श्मशानतुल्य बन गया । एक बार केशिदेव श्रीकृष्णको दूँटते गोपाल-भवन पहुँचा और श्रीकृष्णसे उसका बुझ चुवा । केशी कई बार लड़नेके पीछे मारा गया । (हरिवंश)
 केशिनी (सं० स्त्री०) केशास्तदाकारा जटाः सन्त्वस्याः, केश-इति स्त्रीप् । १ जटामांसी । २ चौरपुष्पी ।

३ प्रशस्त केशयुक्त स्त्री, जिस स्त्रीके बहुत बाल रहें ।
४ दमयन्तीकी दूती । हृष्यवेवसे जाने पर नलके पास
यह दूती भेजी गयी थी । (भारत, वन ७४ अ०)

५ कोई अप्सरा । कश्यपकी पत्नी प्रधाके गर्भसे इस-
का जन्म हुआ । (महाभारत, आदि ६५ अ०) ६ पार्वतीकी
एक सहेली । (भारत, वन २९० अ०)

७ अजमोढ़ राजाकी अन्यतमा पत्नी । ८ सुहोत्र
नृपतिकी पत्नी । ९ सगरराजाकी अन्यतमा पत्नी ।
१० रावणकी माता । ११ वन्धा, बाँझ ।

केशिपुर—एक प्राचीन नगर । (यागिनौतन २४)

केशी (सं० त्रि०) केश प्राशस्त्ये भूम्नि वा इनि । १ प्रशस्त
बहुकेशयुक्त, बालदार । २ केशकी भांति कृष्णवर्णयुक्त,
बाल जैसा काला । (अक० १ । १४० । ८)

(पु०) ३ केशिविद्याप्रकाशक कोई गृहपति,
स्वामी । (शतपथब्राह्मण) ४ कोई देख । हापरयुगमें
कृष्णने इसे संहार किया था । केशिनिसूदन देखो । ५ घोड़ा ।
६ सिंह ।

श्री (सं० स्त्री०) केश गौरादित्वात् ङीष् । १ शुक-
शिखी, केशांच । २ जटामांसी । ३ महाशतावरी ।
४ आस्त्रातक, आमड़ा । ५ नीकीवृक्ष । ६ चौरपुष्पी ।

केशोच्चय (सं० पु०) केशानां उच्चयः, ६-तत् । केशसमूह,
बालोंकी जट ।

केश्य (सं० स्त्री०) केशाय हितम्, केश-यत् । १ कृष्णा-
गुरु, काला अंगर । २ क्रीवर, सुगन्धवाला । (पु०)
३ मार्कवक्षुप, भांगरा । ४ असनशाल । (त्रि०)
५ केशहितकारक ।

केशर (सं० पु०-स्त्री०) के जले सरति, सू-अच् । १ नाग-
केशर फूल । २ किष्कल । ३ वकुलवृक्ष, मौलसिरी ।
४ कासोस । ५ सोना । ६ पुष्पागवृक्ष । ७ मातुलुङ्ग-
वृक्ष, नीबूका पेड़ । ८ हौग । ९ सिंहच्छटा, भयाल ।

केशरक्षेत्र—कनाड़ा प्रदेशके सौदीका एक पुण्यस्थान ।
इसका अपर नाम बालुकाक्षेत्र है ।

केशरवर (सं० स्त्री०) केशरेण किष्कलकेन वृणाति,
वृ-अच् । कुङ्कुम, जाफरान ।

केशराचल (सं० पु०) केशरस्थितोऽचलः । सुमेरुपर्वत ।
एधिवोरूप पद्मका कर्षिकास्थानीय होनेसे सुमेरु
केशराचल कहलाता है । (विष्णुपुराण)

केशराज (सं० पु०) के जलनिमित्तकः सरः पद्मो
रसोऽस्य । १ वीजपुर, बिजौरा नीबू । २ दाडिम्ब,
अनार ।

केशरिका (सं० स्त्री०) महाबला क्षुप, सहदेवी ।

केशरिया (हिं० वि०) पीतवर्ण, पीला, केशरकारक
रखनेवाला । २ जिसमें केशर मिली या पड़ी हो ।

केशरिया—उदयपुर (मेवाड़) रियासतका एक शहर ।
इसकी धुलैव ग्राम भी कहते हैं । यहां एक नदी, एक
तलाब, चार बावड़ी, चार धर्मशाला, चार कुंड और
एक दिगम्बर जैन-मंदिर है । इस मंदिरमें प्रथम तीर्थं-
कर आदिनाथ स्वामीकी श्यामवर्ण मूर्ति बहुत बड़ी
और मनोहर है । मंदिर एक मीलके घेरेमें है । समस्त
जैन अजैन यहां आकर पूजा करते हैं । राज्यकी
तरफसे सब प्रबन्ध है । केशर अधिक चढ़नेसे मूर्ति-
का नाम केशरिया वा केशरियानाथ पड़ गया है ।

केशरिसुत (सं० पु०) हनुमान् ।

केशरी (सं० पु०) १ सिंह । २ घोटक, घोड़ा । (रघुवंश)
३ पुष्पागवृक्ष । ४ नागकेशरवृक्ष । ५ रत्नशिख, लाल
सहिंजन । ६ वानरभेद, हनुमानके पिता । (रामायण)

केशरी (हिं०) केशरिया देखो ।

केशरोच्छटा (सं० स्त्री०) १ सुस्ता ।

केशवराम—हिन्दीके एक कवि । कोई कोई कहता
की 'भ्रमरगीत' उन्होंने ही लिखा था ।

केशरी (हिं० स्त्री०) केशर, दुबिया मटर । इसका बीज
चुद्र, चपटा, चतुष्कोण और धूसरित होता है । पत्तियां
लम्बी और पतली रहती हैं । इसकी छोटी और पतली
फलियों पर कभी कभी धब्बे भी आ जाते हैं । केशरी-
का दूसरा नाम कसारो, खेसारी या खतरी है ।

केशू (हिं० पु०) किंशुक, टेसू ।

केशरि—हिन्दी भाषाके एक कवि । यह राजा रत्नसिंह-
की सभाके एक राजकवि थे । सम्भवतः १५०८ ई० तक
राजाका अभ्युदयकाल रहा । वह नोमार त्रिलोके
बुरहानपुरमें राजत्व करते थे ।

केशरी (हिं० पु०) १ केशरी, शेर । २ घोड़ा ।

केशरी (हिं० स्त्री०) कौसा, छोटी बेली । इसमें दरजी
या मोची सीनेकी चाँदें रखते हैं ।

कैहा (हि० पु०) १ मयूर, मोर। २ कोई जङ्गली चिड़िया। यह बटेर-जैसा होता है।

कैहि (हि० वि०) किस।

‘कैहि हित लागि रहै तन नाहीं’। (तुलसी)

कैहनी (हि० स्त्री०) १ कफोष्ठी, कुहनी। २ पीतल या ताम्रकी एक टेढ़ी नली। यह नैचेमें लगती है।

कैहूँ (हि० क्रि० वि०) किसी प्रकार, कैसे हो।

कैचा (हि० वि०) ऐंचाताना, भेंगा, टेढ़ा पांखवाला।

(पु०) २ एक प्रकारका बैल। इसका एक सोंग सीधा खड़ा रहता और दूसरा पांखके ऊपर होता हुआ नीचेकी झुकता है। ३ बड़ी कैची।

कैची (तु० स्त्री०) १ कर्त्री, कतरनी, बाल और कपड़े बगैरह काटनेका एक औजार। इसमें बराबरके दो लम्बे फल लगते जो एक कीलसे जुड़ते हैं। २ कैचीकी तरह जुड़ी हुई दो सीधी तीलियाँ या लकड़ियाँ। ३ कुशीका कोई पेंच। इसमें जोड़की दोनों टांगोंमें अपने पैर डाल कर उसे पटकते हैं। ४ मासखन्धकी कोई कसरत। इसमें खेलाड़ी दौड़ या उड़कर बिना हाथके सहारे मासखन्धकी बांधता है।

कैडल (हि० पु०) जङ्गली तीतर।

कैड़ा (हि० पु०) १ यन्त्रविशेष, एक औजार। इससे किसी चीजका नक्शा दुरुस्त किया जाता है। २ पैमान, नाप। ३ ढंग, बनावट। ४ चाल, होशियारी।

कैता (हि० पु०) पत्थरकी एक तख्ती। यह दीवारमें फरकीकी दोनों ओर चौड़ाईके बल लगती है।

कैप (अ० पु० Camp) पड़ाव, छावनी, कैंपू।

कै (हि० वि०) १ कितने। (अव्य०) २ अव्यवा, या।

(पु०) ३ जड़हन धान। (अ० स्त्री०) ४ वमन, उलटी, फटकार।

कैशुक (सं० स्त्री०) किंशुकस्येदम्, किंशुक-अण्। किंशुकपुष्प, टेसू।

कैकय (सं० पु०) कैकय स्वार्थे अण् बाहुलकात् न यादेरियादेशः। कैकय देश। कैकय देशी।

कैकयी (सं० स्त्री०) कैकयस्यापत्यं स्त्री, कैकय-अण्-ङीप्। कैकयराजकन्या, कैकेयी।

कैकस (सं० पु०) कैकसमखि सारतया अचक्ष्ण, कैकस-अण्। राक्षस।

कैकसी (सं० स्त्री०) कैकस-ङीन्। महारवाणकी जेम्। पा ३।१०१। सुमाली राक्षसकी कन्या और राक्षसी माता। (रामायण, बिहपुराण)

कैकादि—दाक्षिणात्यकी एक जाति। कैकादि लोग बम्बई प्रदेशमें ही अधिक रहते हैं। यह एक स्थानमें स्थिर होकर कभी नहीं ठहरते। बम्बई प्रदेशमें मराठा और कुचिकर २ अयेवी हैं। परन्तु परस्पर आदान प्रदान और भाषा आदि प्रचलित नहीं। यह काले, दुबले और बहुत मेले होते हैं। पुरुष मस्तक पर चूड़ा बांधते और मूँह ठोड़ी रखते हैं। यह सामान्य भोपड़े या कच्चे घरमें वास करते हैं। सभी कैकादि मछली खाते और भैंस, बकरी, हिरन, सूअर आदिका मांस खानेमें भी कोई आपत्ति नहीं उठाते। मादक द्रव्यके सेवनमें अनेक पटु होते हैं। इनमें बहुतसे चोर हैं। सुभीता लगने पर किसीका द्रव्य चुरा कर स्थानान्तरको चले जाते हैं। इसी लिये इन पर सदा पुलिसकी दृष्टि रहती है। कोई कोई बांसकी टोकरी या चिड़ियोंका पिंजड़ा बनाता और कोई साँप नचाते घूमा करता है। बहुतसे पक्षेदारों और मजदूरी करते हैं। इनके स्त्रीपुत्र भी इन सब कामोंमें साहाय्य किया करते हैं।

कैकादि हिन्दू हैं और सभी हिन्दू देवदेवियोंको मानते हैं। देशस्थ-ब्राह्मण इनका पौरोहित्य करते हैं। दाक्षिणात्यके वेशाव गोस्वामी इनके गुरु हैं। गुरुके प्रति इन्हें बड़ी भक्ति अर्पण रहती है। सन्तान भूमिष्ठ होने पर ५वें दिन कैकादि षष्ठी देवीके उद्देशसे ह्वाग बलि देते हैं। १२वें दिन ब्राह्मण जा कर नवमसूत शिशुका नामकरण करता है। यह १४से १६ वर्षके बीच कन्या और ३० वर्ष वयसके मध्य पुत्रका विवाह कर देते हैं। विवाहसे ५ दिन पहली गात्रमें हरिद्रा लगायी जाती है। घर छोड़े पर चढ़ विवाह करने जाता है। कन्याके घर पहुँचनेसे पहले स्थानभेदसे नानाविध अनुष्ठान चलता है। देशस्थ-ब्राह्मण जब मन्त्र पढ़के मस्तक पर चावल छोड़ आशीर्वाद देते हैं, तब विवाह पक्का होता है। हिन्दुस्थानकी भाँति विवाहके पीछे इनमें भी गाँठ खोलनेकी चाल है। कन्याका पिता कक्षमें गाँठ लगा देता है। फिर कन्याकर्ता

वरकी सम्बोधन करके कहता है—‘इतने दिन यह लड़की हमारी रही, परन्तु आजसे आपकी हो गयी।’ कन्याके घरमें दूसरे अनुष्ठानके पूरे हो जानेसे वर और कन्या दोनों घोड़े पर चढ़ वरके घर पहुँचते हैं। विजयपुर आदि किसी किसी जिलेमें वरकर्ताकी ही पात्रीका अनुसन्धान करना पड़ता है। किसी किसी स्थानमें विवाहके पीछे वर श्वशुरके घर रहकर काम काज करता और जब तक ३ सन्तान नहीं होते, उसीमें लगा रहता है। यदि कोई अपनी या पत्नीकी इच्छासे ससुरालसे चला आता, तो वह सास ससुरकी खुराक या खर्च चलाता है। ऋतुमती होने पर कन्याकी ५ दिन निराले घरमें रखते और अच्छी पच्छी सामग्री खिलाते हैं। ५वें दिन उसे नयी साड़ी पहना उसके काँष्ठमें ५ गाँठ हलदों, सुपारी, कुहारा और नीबू डालते हैं। किसीके मरने पर शवकी समाधि देते या दाह करते हैं और ५, ८ या १२ दिन अशौच रखते हैं; परन्तु आज कोई नहीं करता। फिर भी १३ वें दिन एक बकरा काट बन्धुबान्धवोंको खिलाया जाता है।

कैकेय (सं० पु०) कैकयस्यापत्यम्, कैकय-अण् यादे-रियादेशः। कैकयनिग्रयप्रधानां यादेरियः। पा ७।१। १ कैकय-राजाके लड़के। २ संस्कृतसे बिगड़ कर बनी हुई एक भाषा। (मार्कण्डेय कवीन्द्र ज्ञत प्राकृतसर्गल)

कैकेयी (सं० स्त्री०) कैकयस्यापत्यं स्त्री, कैकय-अण् यादेरियादेशः ततो ङीप्। कैकयराजाकी कन्या। यह दशरथकी बहुत प्यारी पत्नी रहीं। इनके पुत्रका नाम भरत था। इन्होंने मत्स्यराके बहकानेसे दशरथकी सत्यके पाशमें बांध रामचन्द्रको वनवासी बनाया था।

(रामायण)

कैकीवाद (कैकुवाद)—दिल्लीके एक बादशाह। यह गयास-उद्-दीन बलवनके पौत्र और नासिर-उद्-दीनके पुत्र थे। १२८६ ई०को गया-उद्-दीन बलवनके मरनेपर यह दिल्लीके सिंहासनपर बैठे। पिता नासिर-उद्-दीन उस समय बङ्गालमें रहे। बलवनके मृत्यु समय नासिर निकट न थे। इसीसे वह महमूदके पुत्र सुगण्डको राज्यपर अभिषिक्त कर मरे। सुगण्डके

पितासे राज्यके फौजदार माराज थे। इसीसे उन्होंने ऐसा दौराकर चारग किया कि सुगण्डको एकाएक सिंहासन छोड़ मूलतान भाग जाना पड़ा। फिर कैकी-बादने सिंहासन पर आरोहण किया था। उस समय इनका वयस १८ वर्ष मात्र रहा। परन्तु यह देखनेमें बहुत ही सुन्नी थे। इनमें भद्रता मन्त्रता प्रभृति बहुत-से गुण रहे। उसी वर्ष इनकी विद्याबुद्धिकी सुख्याति हुई। इन्होंने पिताके शासनमें रह यह सब गुण लाभ किये थे। परन्तु अपने आप प्रभुत्व पाने पर वह भाव बदल गया। यह किसीको कुछ समझते न थे। थोड़े दिनोंमें ही कैकीवाद घोर विलासी बन गये। इनके कर्मचारियोंने इनका दृष्टान्त पकड़ा और सभी आमोद प्रमोदमें समय बिताने लगे।

कैकीवादके नाजिम-उद्-दीन नामक एक उच्च कर्मचारी थे। वह सम्राटकी चल डाल देख अपने आप सिंहासन अधिकार करनेकी कल्पना लगाने लगे। इसी उद्देश्यसे उन्होंने प्रधान अमलराय सुगण्डको अनुचरसे मरवा डाला। फिर राजाके बड़े कर्मचारी धीरे धीरे मारे जाने लगे। किन्तु कोई समझ न सका, यह इत्याकाण्ड कौन करता है। अन्त्या अमलराय अन्तर्हित होने पर नाजिम उद्-दीनने सोचा कि सुगल सिपाही कैकीवादता पक्ष ले सकते हैं, इसलिये पहले उन्हें विनाश करना उचित है। यही सोच कैकीवादको समझाया था कि इन सुगल सिपाहियोंका बिलकुल भरोसा न करना चाहिये। किसी दिन यह अपने दलमें मिल सिंहासन अधिकार करेंगी। उसी समय खिर बुवा कि एक समय उनको इकट्ठा कर मारा जायेगा। पीछे सेनापति कहीं पहुँचन न डालें, इसलिये पहलेही वह कारागारमें डाल दिये गये।

कैकीवादके पिताने बङ्गदेशमें इस शोचनीय अवस्थाकी बात सुन पुत्रको सावधान कर एक पत्र लिखा था। उससे कोई फल न निकला देख वह अपने आप ससैन्य दिल्लीको चल पड़े। कैकीवाद भी फौज ले पितासे लड़नेको आगे बढ़े थे। उन्होंने देखा कि लड़केसे लड़ने लायक अपनी फौज नहीं। उन्होंने सन्धिका प्रस्ताव करके मीठा था। पुत्रके असम्यति

प्रकाश करने पर पिताने एक खेड़मय पत्र लिख एक बार पुत्रका मुख देखना चाहा। चिट्ठी पढ़नेसे कैकोवादका कठोर हृदय पिघल गया। पितापुत्रसे साक्षात् हुवा। दोनों प्रेमाश्रु बहाने लगे। सुशरू कविने 'शुभ-संयोग' नामक अपने काव्यमें उक्त पितापुत्रका मिलन अति सुन्दरभावसे वर्णन किया है।

जो हो, पिताके उपदेशसे कैकोवादने अपनी अवस्था देख भाल नाजिम-उद्-दीनको विषप्रयोगसे विनाश किया था। थोड़े दिन यह अपनी कुप्रवृत्ति छोड़ प्रजापालन करने लगे, परन्तु पीछे फिर विलासमें डूब पचाघात रोगसे आक्रान्त हुए। राज्यके मध्य उस समय दो चक्रान्त चल पड़े। खिलजी जातीय मलिक जलाल-उद्-दीन फीरोज एक दलके नेता थे। इस दलमें सबके सब खिलजी जा मिले। इधर मुगल कैकोवादके ३ वर्षके लड़केको सिंहासन पर बैठानेकी चेष्टा करने लगे। कैकोवादके जीते भी मुगलोंने शिशुको सिंहासन पर बैठाना चाहा था। राज्यमें विमृष्टताकी सीमा न रही। दोनों पक्षपरस्पर दलके लोगोंकी मारने काटने लगे। उस समय कैकोवाद अकेले प्रासादमें मृतप्राय पड़े थे। नौकर चाकर जहाँ तहाँ भाग गये। जलाल-उद्-दीनके अनुचरोंने सुभीता देख लठके आघातसे असहाय बादशाहका मस्तक फोड़ डाला और उनको लाश बिल्लोनेमें लपेट खिरकीसे नदीमें फेंक दी। शिशु राजकुमार भी थोड़े दिन पीछे निहत हुये। १२८८ ई० को यह घटना हुई थी। उस समय जलाल उद्-दीन फीरोज सिंहासन दबा कर बैठ गये।

कैश्वरी—२ मूलतानवाले शासक मुहम्मद खान्के पुत्र और दिल्लीवाले सम्राट् गयास-उद्-दीन बलबनके पौत्र। १२८५ ई०को अपने पिताके मरने पीछे उन्हें मूलतान्के शासकका पद मिला था। किन्तु १२८६ ई० को कैकोवादके बजीर मलिक निजामुद्दीनने उन्हें वध किया। कैगर (६० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह जंवा और सुघरा होता है।

कैहरायण (सं० पु०) कैहरस्यापत्यम्, कैहर-फक्। कैहरवंशीय, कैहरके पुत्र।

कैहय (सं० स्त्री०) सेवकाई, खिदमतगारी।

कैहनायन (सं० त्रि०) किङ्कल नडादित्वात् फक्। सात्वतवंशीय किङ्कल नामक नरपतिके वंशीत्यर्थ।

कैङ्क (सं० पु०) गरगण्ड नामक वृक्ष।

कैट (सं० त्रि०) कौटस्येदम्, कौट-अण्। कौटसम्बन्धी, किरमी।

कैटज (सं० पु०) कूटज एव, कूटज स्वार्थे अण् पृषोद-रादित्वादुकारस्यैकारः। कूटजवृक्ष।

कैटभ (सं० पु०) कौट इव भाति, कौट-भा-ङ-अण्। दैत्यविशेष। (कालिकापुराण)

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है—विष्णु जब एकार्णवमें सोते थे, उनके कर्णमूलसे बलवान् असुर निकल पड़े। उन्हींमें एकका नाम कैटभ था। यह विष्णुके नाभिकमलस्थित कमलयोगिनीको वध करने पर उद्यत हुए। ब्रह्माके स्तवसे सन्तुष्ट हो विष्णु इनसे लड़ने लगे थे। कहते हैं—५००० वर्ष उनके साथ विष्णुका वाहु-युद्ध चला, किन्तु दोनों असुर किसी प्रकार परास्त न हुए। अन्तमें दूसरी गति न देख महामाया उनके गलेको दबाकर बँठ गयीं। उन्होंने विष्णुसे वर मांगने-को कहा था। विष्णुने सुयोग देख यही मांग किया कि तुम हमारे हाथों मारे जाओ। दोनों असुरोंने वीरत्वका परिचय दे वही स्वीकार किया था। विष्णुने उन्हें मार डाला। (मार्कण्डेयपुराण चण्) हरिवंशके मतमें ब्रह्माने मट्टीके २ खिलौने बनाये थे। पीछे ब्रह्माके आदेशसे उनमें वायुने प्रवेश किया और २ प्रकाण्ड असुर हो गये। उन्हींमें एकका नाम कैटभ था।

(हरिवंश ५२ च०)

कैटभजित् (सं० पु०) कैटभं स्वनामख्यातमसुरं जितवान् कैटभ-जि भूते क्तिप् तुगागमश्च। कैटभहन्, कैटभारि।

कैटभा (सं० स्त्री०) कूटा गुणास्तत् कार्यं सृष्ट्यादिकं कैटं तेन भाति प्रकाशते। दुर्गा। (विक्रमशेष)

कैटभी (सं० स्त्री०) कैटं कार्यजातं तेन भाति, कंटाभा-ङ-ङीप्। १ दुर्गा। २ महाकाशी, योगनिद्रा। मधुकैटभके वधकाल ब्रह्माने इनका स्तव किया था।

(मार्कण्डेयचण्)

कैटभेश्वरी (सं० स्त्री०) कैटभपुरस्व ईश्वरी अभिष्ठात्री

पक्षे कैटभस्य तमसः ईश्वरो नियन्त्री । दुर्गा । कैटभके मरने पीछे उसकी पुरी अधिकार करनेसे दुर्गाका यह नाम पड़ा है । (ईश्वरपराय ४५ पं०)

कैटयं (सं० पु०) कित् ज्ञाने चञ्चलं राति अतिरिक्तत्वात्, कैट-रा-क स्वार्थे ष्यञ् । १ कटफल, कायफल । २ कोई महानिम्ब, नीम । यह कटु, तिक्त, कषाय, शीतल, लघु, और ताप, शोष, कुष्ठ, रक्त, कृमि तथा भूतविषघ्न होता है । (राजनिघण्टु) ३ मदनवृक्ष, मयनौ । ४ पूतीकरञ्ज । ५ कटभीष्टवृक्ष । ६ कासुक । ७ कसु-काश्मर्य ।

कैटयं कैटयं देखो ।

कैटक (सं० स्त्री०) कैतक्या इदम्, कैतकी अण् । १ कैतकीपुष्प, केवड़ेका फूल । २ शृगालकोली, भड़-बेरी । (त्रि०) ३ कैतकीसम्बन्धीय, केवड़ेवाला ।

कैतव (सं० पु०-स्त्री०) कितवस्य भावः कर्म वा कितव-अण् । १ शठता, धोखेबाजी, बदमासी । २ व्यूत-क्रोडा, जुवा । ३ वैदूर्यमणि, लहसुनियां । ४ कुसुद, कोका । ५ राजिका, राई । ६ कितव, धोखेबाज । ७ शठ, पाजी । ८ व्यूतकारक, लुभारी । ९ धुस्तूर, धतूरा ।

कैतवप्रयोग (सं० पु०) कैतवस्य प्रयोगः, कैतवत् । कूट व्यवहार, टेढ़ी चाल ।

कैतवापहृति (सं० स्त्री०) एक शब्दालङ्कार । इसमें असली बात खुले शब्दोंमें नहीं, ब्याजसे छिपायी या मिटायी जाती है ।

कैतवायन (सं० त्रि०) कितव-फञ् । अत्रादिभाः फञ् । पा ४ । १ । ११० । कितववंशीय ।

कैतवायनि (सं० त्रि०) कितवस्यापत्यम्, कितव-फिञ् । त्रिकादिभाः फिञ् । पा ४ । १ । १५५ । कितवके अपत्य ।

कैतवेय (सं० पु०) कितवाया अपत्यं, कितवा-ठक् । स्त्रीभा ८क् । पा ४ । १ । १२० । उल्लूक नामक एक चित्रिय । यह चंशुमान् राजाके लड़के थे । (हरिवंश ८८ पं०)

कैतव्य (सं० पु०) कितवायाः अपत्यम्, कितवा बाहुल-कात् ज्ञ । चंशुमान् नृपतिके पुत्र उल्लूक ।

कैतायन (सं० त्रि०) कित-फञ् । कितववंशीय ।

कैति—नीलगिरि पर्वतके ऊपर बसा हुआ एक नगर ।

यह अक्षा० ११° २२' ३०" उ० और देशा० ७६° ४६' ३०" पू० पर उत्तकामन्दसे ३ मील दूर अवस्थित है । कैति उपत्यका और नीलगिरि पर्वत पर सर्वप्रथम चंगरेज आ इसी शहरमें रहे थे । १८३१ ई० को यहां चंगरेजोंकी कोठी बनी । इस उपत्यकामें यव, गेहूं और आलूकी उपज अधिक है । १८३५ ई० को लार्ड एल-फिन्टोनने यहां जमीन किराये पर ले एक सुन्दर घर बनाया था ।

कैतून (अ० स्त्री०) कपड़ोंके किनारे किनारे लगाया जानेवाला बारीक गोटा । यह सुनहले और रेशमसे तैयार होती या खालिस जन या रेशमसे भी बनती है ।

कैथ (हिं०) कैथा देखो ।

कैथल—पंजाबके करनाल जिलेकी पश्चिम तहसील और उसका प्रधान नगर । कैथल नगर अक्षा० २८° ४८' उ० और देशा० ७६° २४' पू० पर अवस्थित है । लोकसंख्या १४४०८ है । इसमें प्रधानतः हिन्दुओंका वास है । एक कृत्रिम झर प्रायः इसका अर्धांश घेरे है । देखनेमें यह बहुत अच्छा लगता है । इस झरमें बड़े बड़े घाट बने जिनमें सिद्धियां लगी हैं । कैथल करनालसे १८ कोस पश्चिम पड़ता है । कहते हैं युधिष्ठिर इस झर और नगरके प्रतिष्ठाता थे । फिर कोई कोई हनुमान्को उनका प्रतिष्ठाता बनाता है । कैथलका संस्कृत नाम कपिस्थल वा कपिष्ठल है । इसमें अकबरका बनाया दुर्ग विद्यमान है । १७६७ ई० को सिख सरदार भाई देशूसिंहने यह स्थान अधिकार किया था । उनके वंशधर 'कैथलके भाई' कहलाते और शतशु तीरवर्ती देशीय सामन्तोंमें बड़ी प्रतिष्ठा पाते हैं । १८४३ ई० को यह सर्दार पञ्चरैजी-के अधीन हुये । बीचमें १८४८ ई० को कैथल थानेश्वर जिलेमें लगा था, परन्तु १८६२ ई० को फिर कर-नालमें मिला दिया गया । झरके तीर भाइयोंके दुर्ग और बड़े प्रासादका भग्नावशेष पड़ा है । शहरके सामने मझोका एक बड़त् प्राचीर है । यहां शीरा साफ और कम्बल और लाखका गहना और खिलोना तैयार किया जाता है । नगरका दृश्य अति सुन्दर और मनो-रम है । यहां हनुमानकी माता पद्मनाका मन्दिर है ।

कैथा (हि० पु०) कपित्थ, एक कंटीला पेड़। यह वेल जैसा होता और इसमें वेल-जैसा फल भी पाया करता है। कैथेकी पत्तियां छोटी, नीचेकी लम्बी, भांगी गोल और एक सीकेमें लगी होती हैं। फल खानेमें कसेला और खटमिट्टा रहता और चटनी तथा अचारमें पड़ता है। प्रवादानुसार जायो कैथेकी सीधा निगल जाता जो पीके लीदके साथ जैसाका तैसा निकल आता है, परन्तु उसके भीतर लीदके सिवा और कुछ नहीं दिखता। इसीका नाम 'गजकपित्थ' न्याय है। कैथेकी लकड़ी मजबूत और सफेद रहती जिसमें पीली भाई पड़ती है। बहुतसे लोग कैथा खाना अच्छा नहीं समझते। लोकोक्तिमें कहा जाता है—

“बेल खाय वैकुण्ठे जाय। कैथा खाय सो नरके जाय॥”

कैथिन (हि० स्त्री०) कायस्थ जातिकी स्त्री, लालाइन।

कैथी (हि० स्त्री०) क्षुद्रकपित्थ, छोटे फलका कैथा।

२ एक पुरानी कवि। यह नागरी या हिन्दीसे बहुत कुछ मिलती है। परन्तु इसमें अक्षरोंका माथा नहीं बांधा जाता। कैथीमें ऋ, ॠ, ल और लृ स्वर तथा ङ, ज, ण, श और ष व्यञ्जनका अभाव है। विहारमें चिट्ठी पत्री और हिसाब किताब इसी लिपिसे लिखते हैं।

कंद (अ० स्त्री०) १ बन्धन, जकड़। २ दण्ड, सजा।

यह राजाकी आज्ञासे मिलती है। आज कल कैद तीन प्रकारकी होती है—सादी, सख्त और तनहाई या कालकोठरी। ३ प्रतिबन्ध, शर्त, अटका।

कैदखाना (फा० पु०) कारागार, जेल, कैदियोंके रखने की जगह।

कैदतनहाई (अ० स्त्री०) कालकोठरी, कैदीकी बहुत ही छोटी और तंग जगहमें रखनेकी सजा।

कैदसख्त (अ० स्त्री०) सादी कैद, साधारण दण्ड। इसमें कैदीकी कोई काम करना नहीं पड़ता।

कैदसख्त (अ० स्त्री०) कठोर दण्ड, कड़ी सजा। इसमें कैदीकी कड़ी मिहनत करनी पड़ती है।

कैदार (सं० पु०-स्त्री०) कैदाराणां क्षेत्राणां समूहः कैदार-अण्। १ क्षेत्रसमूह, हार। २ पञ्चाङ्ग, पञ्चाख। ३ कैदारस्थित जल, खेतका पानी। कैदारजल देखो।

४ शालिधान्य। ५ षष्ठिकधान्य। यह मधुर, रुच्य, वस्त्र, पित्तनिवर्धन, कुछ कुछ कसेला और खट्टा, गुरु और कफ एवं शुक्र बढ़ानेवाला है। (सप्रत)

कैदारक (सं० स्त्री०) कैदाराणां समूहः, कैदार-वृक्ष कैदारसमूह, हार।

कैदारिक (सं० स्त्री०) कैदाराणां समूहः, कैदार-ठण्ड कैदारसमूह, बहुतसे खेत।

कैदार्य (सं० स्त्री०) कैदार-यण्। कैदाराद यण् च। पा३।२।३०। कैदारसमूह, हार।

कैदी (अ० पु०) कारावासका दण्डप्राप्त, जिसकी कैदकी सजा हुई हो।

कैदेव—एक वैद्य। इन्होंने संस्कृत भाषामें द्रव्यतत्त्व नामक ग्रन्थ लिखा है।

कैधौ (हि० अव्य०) अथवा, या।

कैनिङ्ग—१ इङ्गलेण्डके एक प्रसिद्ध कवि, वाग्मी, लेखक राजनैतिक और मन्त्री। इनका पूरा नाम जार्ज कैनिङ्ग था। १७७० ई० की ११ वीं अपरिलकी कैनिङ्गका जन्म और १८२७ ई० की ८ वीं अगस्तकी मृत्यु हुआ। १८२२ ई० की यह भारतके गवर्नर जनरल मनोनीत हुए थे। बन्धुधर्मसे विदा होके भारत आनेका उद्योग भी कर रहे थे, कि इङ्गलेण्डके परराष्ट्रसचिवके मर जानेसे इन्हें वह पद ग्रहण करना पड़ा और भारत आना ही न सका। इन्होंने जनरल स्कॉट नामक किसी धनी सेनिककी कन्यासे विवाह किया था। उसी पत्नी की अपने पिताके मरने पर करोड़ रुपयेकी सम्पत्ति मिल गयी।

२ भारतके एक प्रसिद्ध गवर्नर जनरल और इङ्गलेण्डके राजप्रतिनिधि। इनका प्रकृत नाम चार्ल्स जान कैनिङ्ग था। भारतमें यह लार्ड कैनिङ्ग नामसे प्रसिद्ध थे। लार्ड कैनिङ्ग पूर्वोक्त जार्ज कैनिङ्गके पुत्र रहे। १८१२ ई० की १० वीं दिसम्बरकी इनका जन्म हुआ था। १८२८ ई० की माताका मृत्यु होने पर उत्तराधिकारसूत्रसे इन्हें भाइकाउण्ट (Viscount) उपाधि मिला। १८३५ ई० की ५ वीं सितम्बरकी इन्होंने सार्लट एडवार्ट नामकी रमणीका पाणिग्रहण किया था। यह रमणी सेडी कैनिङ्ग नामसे प्रसिद्ध

१८५६ ई० के अगस्त मास कैनिङ्ग पारलियामेंटके सभ्य निर्वाचित हुए। प्रसिद्ध सर राबर्ट पील्सने इनके साथ एक मन्त्रिसभा की। लार्ड एलेनबरोने भारतके शासनकर्ता बन कर आते समय इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बनाना चाहा था। किन्तु अपने सम्मानकी और देख लार्ड कैनिङ्ग उसमें सम्मत न हुए। पारलियामेंटमें रह कर पहले इन्होंने वनविभाग और पीछे डाकविभागके मन्त्रीका काम किया था।

१८५५ ई० की भारतके गवर्नर जनरल लार्ड डालहाउसीके पद त्याग करके भारतसे चले जानेकी बात उठी। उस समय इङ्ग्लैण्डकी ईष्ट इण्डिया कम्पनीने लार्ड कैनिङ्गकी भारतका गवर्नर जनरल स्थिर कर दिया। १८५६ ई० की १ मी फरवरी को लार्ड डालहाउसीने पद त्याग तो किया, परन्तु एक मासका अधिक समय ले लिया था। २८वीं फरवरी को लार्ड कैनिङ्गने कलकत्ते पहुँचते ही गवर्नर जनरल का कार्यभार ग्रहण किया।

इन्होंने जब भारतका शासनभार लिया, माननीय लज एमसन भारतके प्रधान सेनापति रहे। लार्ड कैनिङ्ग राज्यभार ग्रहण करते ही सकल विषय रत्ती रत्ती समझने लगे। प्रथम कई दिनों तक इन्होंने ऐसा परिश्रम किया कि एकबार भी घरसे बाहर न निकले। भूतपूर्व गवर्नर जनरल डालहाउसी अयोध्या राज्य अंगरेजोंके शासनाधीन कर गये थे। यह पहले उसीका बन्दोबस्त करने लगे। नवाब वाजिद अली शाह अवधसे कलकत्ते आकर रहे थे। उनकी माता महारानीसे अपना दुःख कहने छिपकर विलायत चला गयीं। इन्होंने विलायतकी ईष्ट इण्डिया कम्पनी की पत्र लिखा था कि सम्मानके साथ वृद्धा रानी की प्रभयना की जावे।

उसी समय पारस (ईरान) के साथ अंगरेजों को लड़ाई होनेवाली थी। उस अभियानका कितना ही भार लार्ड कैनिङ्ग पर डाला गया। १८५७ ई० के जनवरी मास अफगानस्थानके अमीर दोस्त मुहम्मदसे सन्धि हुई थी। इस व्यापारमें लार्ड कैनिङ्गकी विशेष अस्मत् रहना पड़ा। इन्होंने साधही देशकी आभ्यन्त-

रिक उन्नतिमें भी मन लगाया था। देशमें रेल फैलाने, राह घाट बनाने और देशीयोंकी सामाजिक उन्नतिका विधान करनेमें लार्ड कैनिङ्ग विशेष यत्नवान् हुए।

विद्यासागर महाशय विधवाविवाह विधिवत् करनेके लिये पूर्वसे ही चेष्टा लगा रहे थे। लार्ड डालहाउसीके समय उसको कानूनमें लानेकी व्यवस्था भी हुई थी। फिर लार्ड कैनिङ्गके समयको वह विधिवत् होकर चल पड़ा।

इससे पहलेही ब्रह्मदेशके अन्तर्गत पेगू राज्य अंगरेजोंके अधिकारमें आ गया था। लार्ड कैनिङ्गने आकर देखा कि वहाँ कुछ कालके लिये स्थायी सैन्य रखना आवश्यक था। इन्होंने भारतीय सिपाहियोंकी फौज भेजना चाही, परन्तु वह जहाज पर बैठ किसी प्रकार समुद्र पार जाने पर सम्मत न हुए। डालहाउसीके समय भी ऐसा ही हुआ था। दो बार गवर्नर जनरल तक उन्हें समुद्रयात्रा करने पर बाध्य कर न सके।

लार्ड कैनिङ्ग परास्त होनेवाले लोग न थे। उन्होंने नियम कर दिया—अतःपर से निक विभागमें जो लोग नियुक्त होंगे, उन्हें गवर्नरमेंष्ट इच्छा करने पर समुद्र पार पर्यन्त ले जा सकेगी, नौकरो करनेसे पहले सिपाहियोंको इसी मर्मके स्वीकारपत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ेगा। यह नियम निकालके लार्ड कैनिङ्गने विलायतकी चिट्ठी लिखी थी कि सिपाहियोंने इस नये नियम पर असन्तोष प्रकाश नहीं किया। परन्तु यह बात छिपी नहीं कि वह भीतर ही भीतर विलक्षण चिन्तित हुए थे। कम्पनीकी नौकरो उस समय पुत्र-पौत्रादिक्रमसे रहती थी। पुरातन नियममें नियुक्त सिपाहियोंने समझा—वाहे हमें समुद्र पार जाना न पड़े, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भविष्यत्में हमारे पुत्रपौत्रोंकी समुद्रयात्रासे बचना कठिन होगा। भारतके प्रकृतवीर राजपूत फिर सिपाहियोंके दलमें प्रविष्ट होनेसे हट गये। सिपाहियोंके मनमें यह धारणा हुई—अब कम्पनी हमारी जाति नष्ट करना चाहती है।

१८५७ ई०के अपरिल महीने देशीय सैन्यका भावगतिक देखके लार्ड कैनिङ्गने विलायतकी लिख भेजा

था—युरोपीय सेनामें चार चार और भारतीय सेना दलमें दो दो अतिरिक्त अङ्गरेज सेना-नायकोंका प्रयोजन है। किन्तु विलायतसे इस प्रस्तावके विरुद्ध यह उत्तर मिला कि नायकोंकी संख्या बढ़ानेसे वह स्वतन्त्र दल बन जायेंगे और साधारण सेनाके साथ सद्भाव न रहेगा। इनका प्रस्ताव कार्यमें परिणत न हुआ।

लार्ड कैनिङ्गने भारत आनेसे पहले भोजके उपलक्ष्यमें लो वृत्ता की, उसमें कहा था—मैं शान्तिप्रिय हूँ, परन्तु यह स्मरण रखके कार्य करना पड़ेगा कि भारतके आकाशसे एक हस्तपरिमित बादलका टुकड़ा उठ कर समुदाय देशको डूबा सकता है। लार्ड कैनिङ्ग की यह भाषणा कार्यमें परिणत हो गयी। उनके शासनग्रहणके ठीक एक वर्ष पीछे भारतमें सिपाहियोंका विद्रोह आरम्भ हुआ। सिपाहीविद्रोह देखो।

किसी समय अम्बाला नगरमें सेनादलसे कुछ लोग नये कारतूस ले क्वायद सीखने गये थे। प्रधान सेनापति जनरल एनसन वहाँ उपस्थित रहे। सिपाहियोंने नये कारतूस व्यवहार करने पर घोर आपत्ति उठायी थी। जनरल एनसनने ऐसा गतिक देख लार्ड कैनिङ्गको लिख भेजा—सिपाहियोंका जैसा रंगटंग है, उसको देख उन्हें समझाना बुझाना कुछ सरल नहीं; ऐसी अवस्थामें शिक्षार्थी सिपाहियोंको अपने अपने रजिमेंट लौट जाने देना चाहिये। लार्ड कैनिङ्गने यह प्रस्ताव अग्रज्य कर कहा था—इस प्रकार सिपाहियोंकी जिद चलानेसे हमारा प्रभुत्व कहाँ रहेगा? सिपाही क्वायद तो करने लगे, परन्तु असन्तोषके चिह्न चारों ओर झलक पड़े। बारिकपुरमें ३४वें पदातिक दलके जिन दो सिपाहियोंने प्रथम विद्रोहाचरण किया, उन्हें फाँसीका दण्ड दिया गया। फिर यह बात उठी बाकी सेनाका किस प्रकार शास्तिविधान होगा। लार्ड कैनिङ्गने अवशेषमें उनको दलच्युत करनेका हुक्म दिया था। ऐसे गुह्यतर अपराधमें इस प्रकारका सामान्य शास्तिविधान देख अंगरेजोंमें इनकी बड़ी ही निन्दा हुई। उनके मतमें ऐसे सदैव व्यवहारसे ही सिपाहियोंको बलवा करनेकी हिम्मत पड़ी थी। लार्ड कैनिङ्गने उनकी बातके जवाबमें कह दिया—‘न्यायकी दृष्टिसे जो

शास्ति दी गयी है, वह नितान्त सामान्य नहीं। संयुक्त-प्रान्तमें पीछे बलवा हुआ है। मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता कि वङ्गदेशमें इस शास्तिसे कोई फल नहीं निकला। जहाँ विद्रोह होगा, वहीं हमारी कर्तव्यनीति है कि दलपतियोंको शास्ति देकर दलस्थ लोगोंको पदच्युत किया जावे। फिर भी जिनकी निर्दोषिता प्रमाणित होगी, उन्हें कोई शास्ति न मिलेगी।’ इस सम्बन्धमें तर्क वितर्क चल ही रहा था, कि १२ वीं मईको मेरठसे विद्रोहका संवाद आ गया। क्रम क्रमसे विद्रोह दिल्ली तक फैल पड़ा और देखते देखते पयोध्या, रुहेलखण्ड, कानपुर, अलीगढ़, इटावा, मेनपुरी तथा बुलन्दशहरमें भी जा उपस्थित हुआ। जालन्धरके बागियोंने लुधियाना लूटा था। भाँसीकी रानी विद्रोहियोंसे मिल अंगरेज सिपाहियोंको विनाश करने लगीं। ग्वालियरके संधियाने अंगरेजोंके साहाय्यार्थ सेना भेजी थी। परन्तु अखीरकी वह भी बिगड़ गयी। राजपुताना, सागर, जबलपुर, दक्षिण-हैदराबाद और कोल्हापुरमें भी विद्रोहके लक्षण देख पड़े। चारों ओरोंसे जितने ही विद्रोह और अंगरेजोंके मारे जानेके संवाद आने लगे, अंगरेज लोग भी उत्तन ही भड़कने लगे। देशीयों पर उनका बड़ा ही आक्रोश बढ़ा था। वह सदैव व्यवहारके लिये लार्ड कैनिङ्गको घोर निन्दा करने लगे। इन्होंने देखा, चारों ओर विपद् ही विपद् थी। लार्ड कैनिङ्ग इस विपद्कालमें पड़ कर भी अचल तथा अटल भावसे अपना कार्य करते रहे।

इन्होंने देखा—‘सिपाहियोंकी फौजमें ही बलवा फूटा है, देशी अधिवासियोंकी उसमें कोई सहानुभूति नहीं, वह विद्रोहसे अलग हैं। अंगरेजोंके प्रति उनकी विलक्षण सहानुभूति भी है। अब यदि अंगरेज उन पर घृणा प्रकाश कर उनको उत्तेजित कर डालेंगे, तो भारतवासियों और अंगरेजोंमें सङ्घर्ष उपस्थित होने पर समय देशमें वह विद्रोहानल प्रज्वलित होगा, जो किसीका बुझाया न बुझेगा।’ लार्ड कैनिङ्गका मस्तिष्क इन दो विषय चिन्ताओंमें पीड़ित होने लगा—सिपाहियोंका बलवा मिटाऊँ या अंगरेजोंका समझाऊँ। सन्देह है—कैनिङ्गका छोड़ कर दूसरा

कोई आदमी ऐसा भार उठा सकता था नहीं। भारत-के अंगरेजों की बात इन्होंने सुनी न थी। यह सब बातें अंगरेजों से खोलकर कह न सके ऐसी विपद् के समय इनकी शान्तमूर्ति देख वह और भी भड़क उठे। उनको इच्छा थी कि कलकत्ते की सेना युक्तप्रदेश को विद्रोह दमन करने के लिये भेजी जाती और साहब लोग बालिशटयर (स्नेच्छासेवक) बन कर कलकत्ते की रक्षा करते। लार्ड कैनिङ्ग इस पर असन्मत् हुए। साहबोंने देश की रक्षा के लिये जो प्रस्ताव किये, इन्होंने सुने न थे। क्या अंगरेजों को देशी सभी संवादपत्रों की स्वाधीन समालोचना थोड़े दिनों के लिये बन्द करा दी गयी। अंगरेजोंने इसमें अपना अपमान समझा था। अस्त्र-आर्जन दोनों के प्रति समान भावसे लिपिबद्ध हुआ। साहबों का आक्रोश इस बात पर भी बढ़ा था कि उनके लिये कोई खास रियायत रखी न गयी। साहबों के रहते भी एक मुशलमान पटने का डिपटी कमिशनर बना था। इससे साहबों के दुःख की सीमा न रही। यही सब बातें लिखकर १८५७ ई० के शेष भाग की कलकत्ते के साहबोंने इङ्ग्लैण्ड की रानी के पास एक आवेदन भेजा। उसमें लिखा था—‘लार्ड कैनिङ्ग की दुर्बलता और निबुद्धिता से ही देश की यह दुरवस्था हुई है। अतएव आप इन्हें देश की वापस बुला लें’। आवेदन लार्ड कैनिङ्ग के हाथों ही रवाना हुआ। इन्होंने उसको कोर्ट अव डिरिक्टर्स के निकट भेजा और टीका टिप्पणी में अपना हाल भी लिख दिया। आवेदन से लार्ड कैनिङ्ग का कुछ विशेष अनिष्ट न हुआ, केवल वही धन्यवाद न मिला, जो विद्रोह दमन होने पर पारलियामेण्ट की ओर से सभी कर्मचारियों को दिया गया था।

दिन दिन विद्रोहियों द्वारा साहबों के मारे जाने का जितना संवाद आता, उनकी चिन्ता उतनी ही बढ़ती जाती थी। लार्ड कैनिङ्ग भी समय समय उत्तेजित हो प्रतिहिंसापरायण बने थे। परन्तु यह भी समझ पड़ता है कि अल्पकाल पीछे ही यह प्रकृतिस्थ हो जाती थी। इनकी दया देखकर साहबोंने हंसी में

इनका नाम क्लिमिन्सी (कहनामय) कैनिङ्ग रख दिया। विलायत के संवादपत्र भी भारत के साहबों का स्वर पकड़ कर लेख लिखने लगे। १८५७ ई० के सितम्बर मास लार्ड कैनिङ्ग ने महारानी को जो पत्र लिखा, उसमें दुःखपूर्वक कहा था—‘बाहरी लोगों के मन में प्रतिहिंसा इतनी प्रबल है, कि वह दोषों और निर्दोषों में प्रभेद लगा नहीं सके। जो समाज के पप्रणी हैं, और जिन्हें देख कर लोग शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, उनके मन का भाव ऐसा होना प्रार्थनीय नहीं। ४० या ५० हजार लोगों को एकबारगी ही फाँसी देना या गोली से मार डालना क्या सम्भव वा विवेचना का कार्य हो सकता है?’

१८५७ ई० की १५ वीं धारा के अनुसार सुद्रायन्त्र की स्वाधीनता एक वर्ष के लिये छोप हो गयी। १४वीं जुलाई को इन्होंने इस सम्बन्ध में विलायत के कोर्ट अव डिरिक्टर्स के पास जो पत्र भेजा, उसमें लिखा था—देशीयों और युरोपीयों के मध्य कोई इतर विशेष करना उचित नहीं, इसलिये यह कानून सब पर समान भावसे प्रयोग किया जावेगा।

१५ वीं धारा का मर्म ऐसा था—‘बिना गवर्नमेण्ट की अनुमति के कोई छापाखाना रख न सकेगा। सबको लाइसेन्स लेना आवश्यक है। लाइसेन्स न लेने से गवर्नमेण्ट सुद्रायन्त्र को कुर्क करेगी। गवर्नमेण्ट के आदेश से प्रत्येक प्रेस के लिये कई नियम बनेंगे। वह नियम समय समय पर बदले जा सकेंगे। पुस्तकादि पर मुद्रक और प्रचारक का नाम रहेगा और उसका एक अङ्क मजिस्ट्रेट के पास भेजना पड़ेगा। १८५७ ई० की १२ वीं अनुसूची से एक वर्ष तक यह कानून चलेगा।’ देशीयों और अंगरेजों को इस कानून में समान रखने से साहब लोग जल उठे।

एक ओर कानून बनता और दूसरी ओर विद्रोह की शान्तिका प्रबन्ध चलता था। अल्पसंख्यक जो अंगरेज सेना दिल्ली का घरे थी, उनकी अवस्था दिन दिन बिगड़ने लगी। सर जान जारिंग्स का मत था—पञ्जाब से फौज बुला और पेशावर की रक्षा का भार दोस्त मुहम्मद पर डाल उस सेना की दिल्ली के अवरोध में निवृत्त करना

ही अर्थ व्यय हुआ। उस समय राजकोष शून्यप्राय था। इन्हें इस बातकी विषम चिन्ता पड़ गयी—किस उपायसे अर्थान्तरण होगा, कैसे शासन चलेगा। लार्ड कैनिङ्गने एक अच्छे राजस्वकर्मचारीके लिये विलायत का लिखा था। विलायतसे जेम्स विलसन साहब भारत भेजे गये, उसी समय सर बरटल् फ्रियर नामक कौंसिलके दूसरे सभ्य भी ट्रेनिंग हुये। फ्रियर साहबने कैनिङ्गको विशेष सहायता दी थी। इन्हींके गुणसे भारतके साहब लोग कैनिङ्गके प्रति वीतराग हुये।

उनके आनेसे पहले लार्ड कैनिङ्ग युक्तप्रदेश गये थे। मई मासके विद्रोहकी पूर्ण शान्तिका समाचार मिला। जिन राजाओंने विद्रोहके दमनमें सहायता पहुँचायी थी, उनके पुरस्कार इत्यादि देनेके लिये लार्ड कैनिङ्गने जगह जगह दरबार किया। अयोध्या, कामपुर, दिल्ली, अम्बाला, पेशावर, खैबरपास प्रभृति स्थानोंमें दरबार हुआ। इससे पहले देशीय राजाओंके उत्तराधिकारी न रहने पर दत्तकग्रहणकी अनुमति न थी। अब अनुमति मिल जानेसे देशीय राजाओंके विश्वास आ गया, कि अंगरेजीने उनका अधिकार छीन लेनेका सङ्कल्प परित्याग कर दिया था। १८६० ई० की २१ वीं मईको यह कलकत्ते लौट आये।

उसी समय नीलवाले साहबोंके साथ प्रजाका विवाद उपस्थित हुआ। अस्स-पाईन पर साहबोंमें घोरतर आन्दोलन चला करता था। फिर महारानीकी सेनाके साथ भारतीय सेनाके सम्मेलनका भी सारा बन्दोबस्त इसी समय करना पड़ा। इन सकल विषयोंकी यथायथ मीमांसा करके १८६० ई० के शरत्काल बड़े साटको देवारा युक्तप्रदेश जाना पड़ा। पटनाके कई राजाओंसे साक्षात्कार करके इन्हींने जबलपुर पहुँच एक दरबार किया था। ग्वालियरके सेंधिया और इन्दौरके होलकर प्रभृति महाराष्ट्र राजा वहाँ लार्ड कैनिङ्गसे जाकर मिले। १८६१ ई० के फरवरी मास यह कलकत्ते वापस पहुँचे थे। इसी समय पुरानी सदर दीवानी और सुपरिम कोर्ट एकत्र करके हाई-कोर्ट नाम रखा गया। बड़े साटकी व्यवस्थापक सभाका भी कितना ही परिवर्तन हुआ। १८६१ ई० की

इन्डिया-कौंसिल-एक्ट कानूनके अनुसार भारतके गवर्नर जनरल कुछ कमताये मिली थीं। तदनुसार इन्होंने राजकार्यके कई स्वतन्त्र विभाग कर डाले। होम डिपार्टमेण्ट, राजस्व एवं कृषिविभाग, धन तथा वाणिज्य-विभाग, समर-विभाग, पूर्त-विभाग सभी विभागोंका भार भिन्न भिन्न सभ्योंको सौंपा गया। फारिन वा वेदेशिक विभाग बड़े साटके अपने ही तत्त्वावधानमें रहा। इस विभागमें देशीय राजाओंका कार्य कलाप आलोचित होता था।

लार्ड कैनिङ्गने देशीय और युरोपीय सेनाओंका ऐसा अनुपात लगाया था कि दो देशीय और एक युरोपीय सेनादलका हिसाब रहे। उससे युरोपीय सैन्यसंख्या ७०००० और देशीय सैन्यसंख्या १३५००० हो गयी। पूर्व की भारतमें जो युरोपीय सैन्यसंग्रह होता था, वह बन्द हुआ।

पूर्वसे गवर्नमेण्टका ऋण क्रमशः बढ़ रहा था। विद्रोहके पोछे वह और भी बढ़ चला। नूतन राजस्व-सचिव विलसन साहब प्रायद्विहिके नाना उपाय करने लगे। इनकम टैक्स (प्रायकर) स्थापित हो गया। मन्दाज और बम्बई गवर्नमेण्टने उस पर आपत्ति उठा कर कहा था—इन प्रदेशोंमें जब विद्रोह नहीं हुआ, तो लोग क्यों कर देंगे? किन्तु उनकी बात न चल सकी। विलसन साहबके बाद १८६१ ई० की लेफ्ट साहब भारत-सचिव हुए। उन्होंने नाना विषयोंमें नाना व्यय-सङ्कीर्ष करके राजस्वके प्राय व्ययका सामञ्जस्य लगा दिया।

अवधके राजपूतोंमें उस समय शिशुहत्या होती थी। लार्ड कैनिङ्गने उसके निवारण पर कृतसङ्कल्प होके १८६१ ई०के प्रक्तूबर महीने लखनऊमें दरबार किया और एक अच्छीसी वक्तृता देके यह प्रथा उठा देनेके लिये सबसे कहा सुना। तालुकदार उसमें सम्मत् हो गये। १० वीं नवम्बरका यह कलकत्ते लौटे। लार्ड कैनिङ्गके युक्त प्रदेश जाने पर लेडी कैनिङ्ग दारलिङ्ग घूमने गयी थीं। प्रत्यागमनके समय राहमें उन्हें ज्वर पड़ा। कलकत्ते पहुँचने पर मालूम हुआ कि ज्वर सामान्य न था। १८ वीं नवम्बरकी प्रातःकाल उनका

प्राण छूट गया। सुख दुःखकी सङ्गिनी प्रियतमा पत्नीके वियोगसे इनका हृदय टूटा था। १८६१ ई० की १२ वीं मार्चकी लार्ड एलगिन नये गवर्नर जनरल हो कर आ पहुँचे। एक सप्ताह पीछे न्यायवान्, दयालु, उदार-प्रकृति लार्ड कैनिङ्गने विलायतकी यात्रा की थी। जाते समय क्या भारतवासियों और क्या साहबों सभीने एक वाक्यसे प्रशंसापूर्वक इन्हे विदा किया। जिस शोकसे लार्ड कैनिङ्गका दिल टूटा था, उसीमें पड़ कर इन्होंने १८६३ ई० की १७ वीं जनवरीकी इहलोक परित्याग किया।

कैनित (हिं० स्त्री०) खनिजद्रव्यविशेष, खानसे निकलने-वाली एक चीज। यह खादके काम आती है। इसमें जवाखार या पोटाश अधिक रहता है।

कैन्दर्भ (सं० त्रि०) किन्दर्भस्य गोत्रापत्यम्, किन्दर्भ-भञ्ज्। अष्टभान्तर्गते विदादिभोगेऽन्। पा ४।१।१०४। किन्दर्भ-वंशीय।

कैन्दास (सं० त्रि०) किन्दासस्य गोत्रापत्यम्, किन्दास-भञ्ज्। किन्दासवंशीय।

कैन्दासायन (सं० पु०) किन्दासस्य युवापत्यम्, किन्दास-भञ्ज्। निन्दित दासका युवा सन्तान।

कैन्नर (सं० त्रि०) किन्नरः तन्नामवर्षे अभिजनः पिता-दिक्रमेण निवासस्थानं भ्रम्य, किन्नर-भञ्ज्। वंशपरम्परा क्रमसे किन्नर वर्षमें रहनेवाला। किन्नरस्येदम्, किन्नर-भण्। २ किम्पुरुषसम्बन्धीय।

कैपीला (सं० स्त्री०) कृष्णत्रिष्ठित्, काला निसेत।

कैफ (अ० पु०) १ मद, नशा। २ बुलबुलकी लड़ाने-से पहली खिलाया जानेवाला एक चारा। इसमें कोई न कोई नशेकी चीज मिला देते हैं।

कैफियत (फा० स्त्री०) १ वर्णन, वयान। २ विवरण, हाल। ३ अनोखी घटना, अनहोनी बात।

कैफो (अ० वि०) १ उन्नत, मतवाला। २ नशावाज।

कैबर (हिं० पु०) गाँसो, तीर।

कैबिनेट (अ० पु०—Cabinet) १ धीसचिवसभा, दीवानखास। २ छोटा कमरा। ३ काष्ठनिर्मित द्रव्य, लकड़ीका सामान। ४ फोटोका काड से दूना आकार।

कैमगञ्ज (कायमगञ्ज) युक्तप्रदेशके फर्रुखाबाद जिलेकी

एक तहसील और उसी तहसीलका हेड-क्वार्टर। यह तहसील अक्षा० २७° २१' तथा २७° ४१' उ० और देशा० ७८° ८' एवं ७८° ३७' पू०के बीच पड़ती है। १८०१ ई० की इसकी लोकसंख्या १६८६०६ थी। इसमें ३८७ गांव और २ शहर आवाद हैं। इसके दक्षिण अञ्चलमें बगार नदी घूम घूम कर बहती है। यहां जख और तम्बाकूकी खेती बहुत होती है। खेत नहर और कूपसे सींचे जाते हैं।

कायमगञ्ज नगर अपनी तहसीलका हेड-क्वार्टर है। यह अक्षा० २७° ३०' उ० और देशा० ७८° २१' पू० में पड़ता है। १७१३ ई० की फर्रुखाबादके पहले गवाब मुहम्मद खानने अपने बेटे कायम-खानके नाम पर इसकी बसाया था। इसकी चारों ओर बहुतसे पठान रहते, जो ई० १७ शताब्दीकी यहां आकर बसे थे। कायमगञ्जसे १ मौल उत्तर मजरासीदाबाद गांव है, जहाँ तम्बाकू बहुत उपजती है। इसके पास पास पठान फौजमें खूब भरती होते हैं। १८५७ ई० की कालपीके भगोड़े बलवाइयोंने कायमगञ्ज तहसीलका पूरे तौर पर घेर लिया था। शहरमें एक लम्बा चौड़ा पक्का बाजार है, जिससे छोटी छोटी गलियां चारों ओर निकली हैं।

कैमा (हिं० पु०) कदम्बविशेष, किसी प्रकारका कदम। इसका पत्र कचनारकी भांति चौड़े सिरका रहता और फूल छोटे कदम्बसा लगता है, जिस पर सफेद जोरा नहीं पड़ता। काष्ठ पौतवर्ण और अति सुहृद होता है।

कैमुतिक (सं० पु०) किमुत इत्यर्थादागतः, किमुत-ठक्। न्यायविशेष। न्याय देखो।

कैयट (कैयट) प्रसिद्ध वैयाकरण और महाभाष्यकी भाषाप्रदीप-टीकाके रचयिता। यह, कैयटके पुत्र और महेश्वरके शिष्य थे।

कश्मीरके पण्डित कहते कि कैयट कश्मीरके पाम-पुर नगरमें (किसीके मतसे येच ग्राममें) रहते थे। वह अति दरिद्र थे और बड़े कष्टसे अपना काम चलाते थे। ऐसी अवस्थामें भी उनके जीवनका प्रधान व्रत—महाभाष्य और व्याकरणपाठ था। महाभाष्यमें उनकी

ऐसी प्रगाढ़ व्युत्पत्ति रही कि स्वयं वरहमि भी जिन स्थानोंमें सन्देह कर कुण्डल लगा गये हैं, वह बिना पुस्तक देखे छात्रोंको समझा सकते थे। किसी समय दक्षिणदेशसे कृष्णभट्ट नामक एक पण्डित कश्मीरमें उनसे मिलने गये थे। उन्होंने जाकर देखा—कैयट सामान्य भौकरकी भांति दैहिक परिश्रम करनेमें लगे हैं और साथ ही छात्रोंको भाष्यका अर्थ भी समझा देते हैं। वह कैयटका असधारण पाण्डित्य और बहुत बुरी अवस्था देख विमुग्ध हो गये। फिर विदेशी पण्डित कश्मीरराजके निकट पहुंचे और कैयटके नाम एक ग्रामका शासन तथा जीविकाका उपयुक्त धान्यसंग्रह करके फिर उनके पास लौट पड़े। किन्तु तेजस्वी कैयटने राजाकी दी हुई भूमि ली न थी। अन्तकी जन्मभूमि छोड़ वह काशी पैदल चले गये। यहाँ उन्होंने पण्डितसभामें विद्याके बलसे सबको हराया था। काशीमें ही सभापतिके अनुरोधसे उन्होंने सुप्रसिद्ध 'भाष्यप्रदीप' बनाया।*

भाष्यप्रदीपमें भट्टहरिका वाक्यप्रदीप, हरिसेतु और काशिकावृत्तिको उद्धृत किया गया है। फिर सर्वदर्शनसंग्रह तथा माधवीयधातुवृत्तिमें माधवाचार्य, रघुवंशकी टीकामें मङ्गिनाथ और श्रीनिवास दीक्षित आदिने कैयटका मत उद्धृत किया है। इससे कोई कोई अनुमान लगाता है कि कैयट खृष्टीय दशम और द्वादश शताब्दके मध्य किसी समय विद्यमान थे।

कैयट (हिं० पु०) १ यन्त्रविशेष, एक योजनार। इससे टांगवाले बर्तन रोजते हैं। यह करछी-जैसा लोहेका बनता और एक ओर लकड़ीका दस्ता लगता है।

कैरली (सं० स्त्री०) विडम्बा।

कैरलीय (सं० पु०) कैरलानां राजा, कैरल-टक। कैरल-देशाधिपति, कैरलके राजा।

कैरव (सं० पु०-स्त्री०) के जले रोति कैरवः इंसः तस्य प्रियम्, कैरव-अण्। १ कुसुद, बघोला। २ श्वेतवर्ण उत्पल, सफेद कंवल। (भारत १। १। ८६) ३ विडम्बा। ४ श्वेतकुसुद। कुक्षितो रवो यस्य कुरवः, कार्ये अण्। ५ शत्रु। ६ कितव, लुवारी।

कैरविका (सं० स्त्री०) कुसुदिनी, छोटा बघोला।

कैरविणी (सं० स्त्री०) कैरव पुष्करादित्वात् इनि। उत्पलिनी, कुसुदिनी।

कैरविणीखण्ड (सं० पु०) कैरविणी समूहार्थे खण्ड। कुसुदलता समूह।

कैरविणीफल (सं० स्त्री०) कैरविण्याः फलम्, इ-तत्। कुसुदिनीका बीज।

कैरवी (सं० पु०) कैरवं प्रियत्वेन प्रकाशत्वेन वा अस्त्यस्य, कैरव-इनि। चन्द्र।

कैरवी (सं० स्त्री०) कैरवस्य प्रिया, कैरव-अण्-स्त्रीप्। १ चन्द्रिका, चांदनी। २ मेथिका, मेथी।

कैरवोज्ज्वल (सं० पु०) तेजज्ज्वल।

कैरा (खेड़ा) कैरा जिलेका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ४५' ७" और देशा० ७२° ४१' ५०" पर सुहृन्मदा-बाद रेलवे स्टेशनसे ७ मील दक्षिण-पश्चिम और ग्रामि-दावादसे २० मील दक्षिण-पश्चिम अवस्थित है। लोक-संख्या १०,३८२ है। देशीय प्रवादके अनुसार यह नगर पाण्डवोंके समयमें भी मौजूद था। यहाँ अनेक ताम्र-शासन मिले हैं। उनसे समझ पड़ता है कि कैरा खृष्टीय ५म शताब्दीकी बहुत विख्यात था। वलभी राजाओंके समय इसकी शोभासन्धि बहुत रही। १८म शताब्दीके प्रथम यह वाविधंशके हाथ लगा, अन्तमें १७५३ ई० की दामाजी गायकवाड़के अधीन हुआ और १८०१ ई० की आनन्दराव गायकवाड़ने अंगरेजोंको दे दिया। सीमावर्ती नगर होनेसे १८२० तक इसमें गोलन्दाजों, सवारों और पैदल फौजकी छावनी रही। पीछे छावनी दीसाको उठ गयी।

कैरा (हिं० पु०) १ धूमरितवर्ण, भूरा रंग। २ रक्ताभ शुक्लता, सुर्खीमायल सफेदी। ३ सोकना बेल। इसका चमड़ा साल और बाल सफेद होता है। यह बहुत तेज पर सुकुमार रहता है। (वि०) ४ कैरा रंग-वाला। ५ कंजा।

कैराटक (सं० पु०) किरं पर्यन्तभूमिं षटति, किराटक स्वार्थं षण् । स्यावरविषमैद् । इसमें अफीम, कनेर, सखिया वगैरह शामिल हैं ।

कैरात (सं० पु०-स्त्री०) किरात इव शूरः, इवार्थं षण् । १ बलवान् पुरुष । इसका पर्याय—दोर्गह और चाम है । किराते पर्यन्तदेशे भवः । २ भूमिम्ब, चिरायता । ३ शवरचन्दन । कैरातः किरातसम्बन्धी वेशोऽस्त्वस्य । ४ किरातवेशधारी महादेव । ५ जलपक्षिविशेष, पानी-की कोई चिड़ियां । (त्रि०) किरातस्येदम् । ६ किरात-सम्बन्धीय ।

कैरातक (सं० स्त्री०) कैरात स्वार्थं कन् । १ शम्बर चन्दन । (त्रि०) २ किरातसम्बन्धीय । (महाभारत)

कैरातचन्दन (सं० पु०-स्त्री०) चन्दन जा बहुत पीला न हो । कोङ्कण देशमें इसे शवरचन्दन कहते हैं । यह शीतल, तिक्त, कान्तिकर और विचर्चिका, कुष्ठ, कण्डू, कफ, दद्रु, विष, रक्तपित्त, कृमि, टषा, ज्वर और दाहको दूर करनेवाला है । (वैद्यकनिषय)

कैरातिका (सं० स्त्री०) कैरात स्वार्थं कन्-टाप् इत्वञ्च । १ किरातसम्बन्धीनी । २ किरात-रमणो । (अथर्व १०।४।१४)

कैरान—युक्तप्रान्तके मुजफ्फरनगर जिलेकी उत्तर-पश्चिम तहसील । यह साथ अपने ४६४ वर्गमील क्षेत्रफलके अन्धा० २८° १८' तथा २८° ४२' उ० और देशा० ७७° २' एवं ७७° ३०' पू० के बीच पड़ती है । इसमें ५ परगने हैं—कैरान, भिंभाना, शामकी, थाना और बिदौली । कैरानकी लोकसंख्या अनुमानतः २२४६७८ है । इसमें पाँच शहर कैरान, थानाभवन, शामकी, जलालाबाद और भिंभान और २५६ गाँव बसे हैं । पश्चिम सीमा पर यमुना बहती और भीलों तथा मदिहोंकी कोई कमी नहीं पड़ती । पूर्व यमुनाकी नहर ऊँची जमीन सींचती है ।

कैरान—युक्तप्रान्तके मुजफ्फरनगर जिलेकी कैरान तहसीलका हेड-क्वार्टर । यह अन्धा० २८° २४' उ० और देशा० ७७° १२' पू० में पड़ता है । मुजफ्फरनगरसे पक्की सड़क आकर यहीं पूरी हो गयी है । १८०१ ई० को इस शहरको आबादी १८३०४ थी । जहांगीर और शाह आलमके चिकित्सक मुकरब खान्की कैरान

और उसके पास-पासका देश सुषाफी मिला था । उन्होंने एक दरगाह बनायी और एक बड़े तालाबके एक उम्दा फुलवाड़ी लगायी । नगरमें १६ और १७ शताब्दीकी कई मसजिदें भी हैं । बाजार साफ और पोखता है । १८७४ ई० को इस शहरमें म्युनिसिपालिटी हुई । रक्कीन कपड़े पर शीशेके छोटे छोटे टुकड़े जड़ कर भड़कीले परदे तैयार किये जाते हैं । यहाँ अनाजका खासा कामकाज होता और कुछ छोटका कपड़ा भी छपता है । कैरानमें तहसीलकी छोड़ कर मुनसफी भी है ।

कैराल (सं० स्त्री०) किरं पर्यन्तभूमिं षटति पर्या-प्रोति, किर-षल-षण् । विडङ्ग, वायविडङ्ग ।

कैराली (सं० स्त्री०) कैराल गौरादित्वात् ङीष् । १ भूमिम्ब, चिरायता । २ विडङ्गा ।

कैरी (हिं० स्त्री०) १ धूसरितवर्णा, भूरी । २ लाली लिये सफेद ।

कैर्मदुर (सं० स्त्री०) १ किसी देशका नाम । (त्रि०) २ कैर्मदुरका रहनेवाला ।

कैलकिल (सं० पु०) किलकिलानगरी तत्र भवः, किल-किला-षण् । कैलकिलानगरवासी यवन राजा ।

डाक्टर भाऊदाजीका मतानुसार वाकेटकके सेन-राजा की पुराणमें कैलकिल यवन कहे गये हैं । विष्णु-पुराणके मतमें इस वंशके प्रथम राजा विम्बशक्ति और फिर पुरञ्जय, रामचन्द्र, धर्म, वराङ्ग, क्षतनन्दन, सुविनन्दि, नन्दिपशः और शिशकप्रधारी इन ८ लोगोंने १०६ वर्ष राजत्व किया था । उसके पीछे इस वंशमें और १३ राजा हुए । (विष्णुपुराण ४ । २४ च०)

प्रजतत्त्ववित् कनिंङ्गम साहबने शेषोक्त १३ राजाओंमें कईके नाम शिलालिपिसे उद्धृत किये हैं, यथा—प्रवर-सेन, रुद्रसेन, पृथिवीसेन, २य रुद्रसेन, २य प्रवरसेन और देवसेन । उनके मतमें विम्बशक्ति २८४ ई० और शेषोक्त देवसेन ५२५ ई० को राजत्व करते थे । किन्तु वाकाटकके सेनराजाओंने अपनेको विष्णुरुद्र ऋषिका वंशधर बताया है । इसमें बड़ा सन्देह है कि वाकाटकके यह राजा यवन थे या नहीं ।

कौलास (सं० त्रि०) कौलासस्य गोत्रापत्यम्, कौलास-विदादित्वात् अच् । अ० व्यानन्तर्वा विदादिभ्योऽङ् । पा० ३।१।१०४। कौलासवंशीय ।

कौलास (सं० पु०) के जले लासी लसनं दीप्तिरस्य कौलासः स्फटिकः तस्यैव शुभ्रः, कौलास-अण् । यद्वा कौलीनां समूहः कौलं तंन आस्यतेऽत्र, आस आधारे यच् । स्वनामप्रसिद्ध पर्वत, महादेव और यक्षाधिप कुबेरका वासस्थान । बृहत्संहिताके कूर्मविभागमें उत्तर दिक्को कौलास-पर्वत निर्णीत हुआ है । कौलास-पर्वत दूरसे शुभ्र भेव जैसा देख पड़ता है । यहां किन्नर और गन्धर्व देवकन्याओं के साथ मिलकर गाते बजाते देवदेवको रिभाते हैं । (हरिवंश २०२ अ०)

मत्स्यपुराणमें लिखा है—नाना रत्नमय शृङ्गयुक्त हिमशैलके पृष्ठ पर कौलास-पर्वत है । इसमें शिवजी वास करते हैं । इससे दक्षिण एलाश्रम, उत्तर सौगन्धिक पर्वत, दक्षिण-पूर्वकोणको शिवगिरि, पश्चिम उत्तर ककुद्गान् और पश्चिम अरुण नामक पर्वत अवस्थित हैं । कौलास-पर्वतके पाददेशसे शीतल जल परिपूर्ण मन्दोद नामक एक सरोवर निकला है । प्रसन्नसलिला भागीरथी उसी सरोवरसे प्रवाहित हुई है । इसके तीर मनोरम और पवित्र एक मन्दनवन है । यक्षाधिपति कुबेर यज्ञों और अप्सराओं के साथ सर्वदा इस पर्वतमें रहते हैं । (मत्स्यपु० २१४ अ०)

वर्तमान तिब्बत देशमें मानसरोवरके निकट और कश्मीर राज्यके उत्तरपूर्व कौलास-पर्वत अवस्थित है । यह राक्षसताल वा रावणकुदसे ५० मील दूर पड़ता है । इस पर्वतसे सिन्धु, शतद्रु और ब्रह्मपुत्र नद उत्पन्न हुए हैं । वर्तमान कौलासका दूसरा नाम गांगरी है । यह सिन्धुनदके उत्पत्ति स्थानसे शारक-सङ्क्रम तक चला गया है । इसके दक्षिण लाधक, वलति एवं रङ्गद और उत्तर रथोद, कुम्भा, शिखर और ह्णजा नगर हैं । इस शैलमें १०००० से १२००० तक जंघे गिरिपथ विद्यमान हैं । भोंट लोग इसे 'तिसि' कहते हैं । उनके मतसे पृथिवीमें कौलास ही सबसे जंघा पहाड़ है ।

विश्व्यादपुराण, वराहपुराण आदि ग्रन्थोंमें कौलास-

का माहात्म्य वर्णित है । पुराणादिमें इसका अपर नाम गणपर्वत और रजताद्रि है । आजकल भी बहुतके संन्यासी वर्ष तोड़ कर कौलास-पर्वत पहुँचते हैं ।

जैन शास्त्रानुसार प्रथम तीर्थंकर श्रीश्वभदेवने कौलास पर्वतसे मुक्ति पाई थी । उसके पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरतने भूत, भविष्यत् और वर्तमानके चौबीस चौबीस तीर्थंकरोंके ७२ सुतर्णमय जैनमंदिर वहां बनवाये थे । (उत्तरपुराण)

२ छह कोनेका एक मन्दिर । इसमें ८ भूमि और बहुतसे शिखर रहते हैं । कौलास १८ हाथ लम्बा-चौड़ा होता है ।

कौलासनाथ (सं० पु०) कौलासस्य नाथः, इ-तत् । १ शिव । २ कुबेर । (रघुवंश ५।२८ कौलासपति आदि शब्द भी इसी अर्थमें व्यवहृत होते हैं ।

कौलासाचार्य—कौलगजमर्दन नामक संस्कृत तान्त्रिक ग्रन्थके रचयिता ।

कौलासी (हिं० वि०) १ कौलाससम्बन्धीय । २ कौलास-का रहनेवाला ।

कौलासीकाः (सं० पु०) कौलास ओको यस्य, बहुव्री० । १ शिव । २ कुबेर ।

कौलिष्ठा (सं० त्रि०) कौलिष्ठस्येदम्, कौलिष्ठा-अण् । कौलिष्ठसम्बन्धीय, वारीक लकड़ीका बना हुआ । (सप्तत)

कैवर्त (सं० पु०) के जले वर्तते, वृत्त-अच्, अलुक् समास ततः स्तार्थे अण् । यद्वा कुत्सिता वृत्तिः किंवृत्तिः सा अस्त्यस्य, किंवृत्ति-अच् पृषोदरादिवत् साधुः । एक जाति । चलती बोलीमें कैवर्तीको कैवट कहते हैं । आजकल इनमें प्रधानतः २ पृथक् श्रेणियां देख पड़ती हैं । एक हालािक कैवर्त और दूसरी जालिक कैवर्तके नामसे अभिहित हैं । हालािक कैवर्त कहते हैं कि हम जालिकोंसे कोई संश्रव नहीं रखते, हम मछुवों और दूसरे शूद्रोंसे जंघे हैं । वह अपने श्रेष्ठत्व प्रतिपादनके लिये ब्रह्मवैवर्त पुराण जम्बखण्डसे कैवर्त जातिसम्बन्धीय निम्नलिखित वचन उद्धृत किया करते हैं—

“चववीर्येन वैश्यायां कैवर्तः परिकीर्तितः ।

कौली तोवरसंसर्गाद्भीवरः पतिती भुवि ॥”

जलियके औरस और वैश्याके गर्भसे जिस जातिकी उत्पत्ति है, उसे कैवर्त (भीवर) कहते हैं, कलिकास-

में तीवरीके संगर्गसे जीवर (कैवर्त) गिर नसे है।

किसी किसीने पञ्चपुराणीय जातिमासाका नाम देकर ऐसा ही वचन उद्धृत किया है। किन्तु पञ्चपुराणकी ५।६ पौष्टियोंके किसी खण्डमें इस प्रकारकी जातिमासाका अनुसन्धान नहीं मिलता। भागवतराम, परशुराम प्रभृतिके नामसे कई जातिमासायें विद्यमान हैं। उनमें लिखा है कि स्वर्णकारके औरस और मोदकीके गर्भसे कैवर्त उत्पन्न होता है।

कैवर्त लोगीकी उद्धृत बृहत्संज्ञासंहिता (३५ खण्ड, २० अध्याय) में लिखा है—

कैवर्त दो प्रकारके होते हैं—जालिक और जालिक जल चलाकर जीविकानिर्वाह करनेवाले जालिक और मछली मारनेवाले जालिक कहते हैं। जालिकके औरस और वैश्याके गर्भसे कैवर्त उत्पन्न होते हैं। यह कर्मके अनुसार उत्तम और अधम हुए हैं। जालिक कैवर्त भोज्यान्न एवं उत्तम और मत्स्यजीवी जालिक अन्तरज, पतित तथा नीचकर्मके अनुसार भोज्यान्न बन गये हैं। यह जालिकोंके साथ क्षत्रिमें प्रवृत्त हो कैवर्त कहाये और उन्हींके संगर्गसे शूद्रत्वकी पहुँच है। प्रत्येक ही युगमें संगर्गका दोष वा गुण लगा करता है। इसलिये वह भी कैवर्त कहालाये है।

फिर उक्त पुस्तकके ४४ खण्ड (७ म अध्याय) में यह भी बताया है—

वैश्याके गर्भ और क्षत्रियके औरससे मध्यम और अधम कैवर्त नामक पुत्रोंने जन्म लिया था। इनमें एक जालिक और दूसरा जालिक रहा। जालिक खेतोंसे काम चलाता है। जालिक मत्स्यजीवी होता है। जालिक तीवरके संगर्गसे जीवर, नीच जायके अनुसार अधम और इसीसे पतित हो गया है।

उपर्युक्त वचन ठीक होनेसे मानना पड़ेगा कि क्षत्रियके औरस और वैश्याके गर्भसे कैवर्त-जाति उत्पन्न हुई है। याज्ञवल्क्यसंहितामें इस प्रकारकी अनुलोम सङ्कर-जाति 'माहिष्य' कहा गयी है। इसीसे मालूम होता कि किसी किसी स्थानके कैवर्त अपनेकी 'माहिष्य जाति' और वैश्याकर्म बताते हैं। परन्तु अब बात यह है कि ब्रह्मवेवर्त और बृहत्संज्ञाके उक्त वचन ठीक हैं या

नहीं। पहली तो ब्रह्मवेवर्तपुराणके ब्रह्मखण्डमें पति नीच जातिकी वर्णनाके साथ ही कैवर्त-जातिकी कथा है और उसके पीछे जोला आदि नीच सुसहमान जुलाहोंका उल्लेख है। 'जोला' शब्द ब्रह्मवेवर्तव्यतीत किसी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थमें नहीं मिलता। सुसहमानोंके इस देशमें जाने पर उनके और हिन्दू जुलाहोंके मिलनसे जोला (जुल्हा) जाति निकली है। ऐसे स्थल पर ब्रह्मवेवर्तके जिस अध्यायमें जातिनिर्णय किया है, वह प्राचीन पुराणका अंग नहीं माना जा सकता। अतएव अप्राचीन समझनेसे इसके द्वारा पुरानी कैवर्त-जातिका प्रकृत तत्त्व निर्णीत हो नहीं सकता।

जोला और ब्रह्मवेवर्तपुराण देखो।

दूसरे काथोके संस्कृत विद्यालय और दूसरे भी नाना स्थानोंमें जो व्याससंहिता-विद्यमान है, उससे प्रथमोक्त बृहत्संज्ञासंहिता कुछ भी नहीं मिलती। उसको पढ़नेसे बोध होता है कि मानो किसी विशेष उद्देशसे अप्राचीन कालको ब्रह्मवेवर्त देखके वह बनायी गया है। सुतरां जब उक्त बृहत्संज्ञासंहिताके प्राचीनत्व और मौलिकत्वमें घोर सन्देह रह जाता, तो उसी एक पुस्तक पर निर्भर करके कैवर्त-जातिकी उत्पत्ति ठहरायी नहीं जा सकती।

अब देखना चाहिये कि प्राचीन पुस्तकोंमें कैवर्तको क्या कहा है—

शङ्कयजुर्वेदमें दूसरी नीच जातियोंके साथ 'कैवर्त' शब्द सबसे पहली लिखा गया है। (वाजसनेय १०।१६ भाष्यकारने इस स्थलपर कैवर्त शब्दका 'नौकाजीवा' अर्थ लगाया है।

मनुसंहितामें दो स्थानों (८।२६०, १०।३४) पर कैवर्त शब्द आया है। प्रथम स्थल पर भाष्यकार मेधातिथिने कैवर्तके सम्बन्धमें लिखा है—'कैवर्तका अर्थ दास है। वह तड़ागखनन प्रभृति कार्योंसे जीविकानिर्वाह करते और जहाँ उपजुक्त काम पाते, वही जाते हैं।'।

दूसरे खान (१०। ३४) पर मनुने कहा है—
‘निषादके औरस और आयोगवीके गर्भसे नौकर्मजीवी
मार्गव उत्पन्न होते हैं। इनका नाम दास है। इन्हें ही
आर्यावर्तवासो कैवर्त कहते हैं।’

यहां भी मेधातिथिने लिखा है—‘प्रतिलोम प्रक-
रण रहनेसे ब्राह्मणके औरस और शूद्राके गर्भसे निकल
पूर्वकायित निषाद इस खल पर नहीं गृहीत हुआ
है। परन्तु दस्युकी भांति प्रतिलोममें आयोगवीके
गर्भजात प्रतिलोम मार्गवकी ही जीविका नौकर्म है,
जिसे आर्यावर्तमें दास वा कैवर्त कहते हैं।’

किसीके मतमें मनुप्रोक्त दास नामक आर्यावर्त-
प्रसिद्ध कैवर्त गौण कैवर्त हैं, मूल कैवर्त जाति नहीं।
किन्तु अष्टम अध्यायका मनुवचन और उसका मेधा-
तिथिभाष्य पढ़नेसे यह सन्देह मिट जाता है। विशे-
षतः आज भी कैवर्तजातिमें बहुतसे अपनेकी ‘दास
कैवर्त’ कहते हैं। रामायण, महाभारत आदि बहुतसे
प्राचीन ग्रन्थोंमें केवल नाव चलानेवाले कैवर्तका ही
उल्लेख है। (रामायण, अयोध्या ८४।८, महाभारत, अनुशासन ५१।५)
सिवा इसके शान्तिशतक (३। १६) हितोपदेश, कथा-
सरित्सागर (२५। ४८) आदि विस्तृत ग्रन्थोंमें मन्त्रा-
जीवी कैवर्तकी बात आयी है। अमर, हेमचन्द्र, हला-
दुष प्रभृति अभिधानरचयिताओंने कैवर्त शब्दका मुख्य
अर्थ धीवर लिखा है। सुप्रसिद्ध वेदव्यासकी जीवनी
पढ़नेसे समझ पड़ता कि पहले धीवर नौकर्मजीवी
रहे। मूल भविष्यपुराणके मतमें भी (नौकर्मजीवी)
कैवर्तकात्याके गर्भसे व्यासने जन्मग्रहण किया था।

(भविष्यपुराण ४१।१९)

महाभारत आदि पुराने ग्रन्थ पढ़नेसे समझ सकते
कि पूर्वकालको नाव चलाना और जाल डाल कर
मछलियां पकड़ना ही कैवर्तों की उपजीविका रही।

(अनुशासन ५०। १६)

इसीसे मालूम पड़ता कि अठाधर प्रभृतिके प्राचीन
अभिधानों में कैवर्तका अपर नाम जालिक लिखा है।

अत्रिसंहिता (१८५ श्लो०) में धीवी, अमार, गट,
बहड़, कैवर्त, मेद और भिन्न सात जातियोंको
अन्त्यज कहा है।

अत्रिरःकृति (१ श्लोक), आपस्तम्बसंहिता
(५४ श्लोक) और बृहदारण्यक जातिमात्रामें भी ठीक
यही बात है। इससे बोध होता कि अत्रि, अत्रिरा,
आपस्तम्ब प्रभृति धर्मशास्त्रकारोंके समयमें केवल
अन्त्यज कैवर्त ही रहे।

अत्रिसंहिताके दूसरे खल (१८२) पर चर्मक,
रजक, वेष्ट, धीवर और गटको छू कर ब्राह्मणको नष्ट
डालनेकी लिखा है।

अत्रिसंहिताके दोनों वचन पढ़नेसे कैवर्त और
धीवर एक ही जाति समझ पड़ते हैं। अन्त्यज जाति
प्रतिपाद्य अत्रि आदिके श्लोकोंसे मनुसंहिता मिलती है।

रामायण, महाभारत और प्राचीन धर्मशास्त्र
पाठसे बोध होता कि पूर्वकालको धीवर वा जालिक
कैवर्त ही विद्यमान था। फिर किसी प्राचीन ग्रन्थमें
हालिक कैवर्तका नाम नहीं आया। मालूम होता है
कि पुरानी कैवर्त जातिके मध्य कोई कोई क्षत्रि-
वृत्तिको अवलम्बन करके हालिक वा हलवाह कैव-
र्तके नामसे प्रसिद्ध हुआ अथवा दूसरी किसी जातिने
कैवर्त-प्रधान देशमें हल चलानेके काम पर नियुक्त
रह हालिककैवर्त नाम पाया है। आज कल
हालिक और जालिक कैवर्तोंमें परस्पर कोई संस्त्रव
नहीं, यहां तक कि हालिक कैवर्तोंको वर्तमान
सामाजिक अवस्था देखनेसे वह निगूढ़ अन्त्यज जैसे
समझ नहीं पड़ते। दूसरे हालिक कैवर्तोंमें दास
नामक एक श्रेणी है। वह वासस्थानके भेदसे दास और
शैलपुत्र कहते हैं। हालिकों और जालिकोंमें वैवाहिक
सम्बन्ध न रहते भी एक ही पुरोहित दोनोंका यजन
कराता है। कैवर्त या दूसरी जातिवाले इनका अन्न
भिक्ष जलादि ग्रहण किया करते हैं। हालिक कैवर्तोंके
घरमें जालिक दासत्व करते हैं। इसी जातिके संस्त्रवसे
क्या हालिक, हालिककैवर्त नामसे प्रसिद्ध हुये हैं ?
उक्त दास श्रेणीके मध्य जो कुण्डलीक हैं, उनका
जल अव्यवहार्य होता है।

पहले ही कहा जा चुका है कि हालिक कैवर्त
अपनेकी माहिष्य जाति बताते और अपने पक्ष सम-
र्थनके लिये कुण्डूक भट्टीयत उद्योगका निष्पत्तिगत
वचन दिखाते हैं—

‘माहिष्-जातिकी उपजीविका मृत्त, गीत, नक्षत्र-गणना और शस्त्ररक्षा है।’ उनके मतमें ‘शस्त्ररक्षा’ शब्द हालािक कैवर्तीका समर्थक है। इसवाहन वा क्षत्रिकर्म करनेवाले ही हालािक कहते हैं। किन्तु केवल ‘शस्त्ररक्षा’ कहनेसे शस्त्रोत्पादन वा क्षत्रिकर्मका बोध नहीं होता। स्कन्दपुराणके सद्माद्रिखण्ड (पूर्वभाग, २६। ४४-४६) में लिखा है—

‘वैश्याके गर्भ और क्षत्रियके औरससे माहिष्का जन्म है। यह अनुलोमज, अधिकारनिरत और चतुःषष्टि-क्षत्राभिन्न होते हैं। इनमें व्रतबन्धादि सभी क्रियायें वैश्यके समान हैं। ज्योतिःशास्त्र, शाकुनशास्त्र और स्वर शास्त्र ही इनकी जीविका है।’

हालिक कैवर्तीका जातीय इतिहास पालोचना करनेसे यह उपर्युक्त लक्षणाक्रान्त समझ नहीं पड़ते। ऐसे स्थल पर विशेषतः जब किसी प्राचीन ग्रन्थमें हालािक कैवर्तकी विवरण नहीं मिलता, इसका कोई ठौरठीक नहीं लगता कि माहिष् और हालािक कैवर्त एक ही जाति हैं या नहीं।

१८८१ ई० की लोकगणनाके समय हालािक-कैवर्त-समितिने मरदुमशुमारीके तत्त्वावधायकके पास अंगरेजीका एक छपा आवेदनपत्र भेजा था। उसके १२वें पृष्ठमें जो लिखा है, उससे समझ पड़ता है कि (अश्वमेधपर्व ८३ प०) अर्जुनने दक्षिण समुद्रके तीर रहनेवाली जिन माहिष्कीसे युद्ध किया था, वही वर्तमान हालािक कैवर्तीके आदिपुरुष रहे। किन्तु महाभारतके कर्णपर्व (४४ अध्याय) में माहिषक लक्ष्य बताया गया है और हरिवंश (११४ प०) में लिखा है कि इन माहिषक आदि जातियोंकी वशिष्ठके आदेशसे समर राजाने धर्मच्युत कर डाला था। सुतरां यह ठीक तीरसे नहीं कहा जा सकता कि समुद्रतीरवासी माहिषक ही वर्तमान हालािक कैवर्त हैं या नहीं।

कहीं कहीं कैवर्तीकी अवस्था कितनी ही उन्नत है। बङ्गालके वरेन्द्र, मेदिनीपुर, तमलुक, बालिसिता, तुर्की, मुजामुता, कुतबपुर आदि स्थानोंमें अति प्राचीन कालसे हालािक कैवर्त राजत्व करते हैं। मोड़राज्यमें

जब आदिशूरका अभ्युदय न हुआ था, उससे भी बहुत पहले हालािक इस प्रान्तमें राजत्व करते रहे। उनमें तमलुक, मेनागढ़ और वेतालका राजवंश समधिक प्राचीन है। उड़ीसेके कमिशनर साहबकी रिपोर्ट पढ़नेसे जान पड़ता कि तमलुकका कैवर्त राजवंश ४८ पीढ़ीतक स्थायी रहा। अन्तिम स्थायी राजा १६५४ ई० की सिंहासनसे उतारे गये। उनके वंशधर वर्तमान तमलुकगढ़के अधिपति हैं।

वरिष्ठ, ताबलिष्ठ, मेदिनीपुर, मेनागढ़ प्रकृति शब्द द्रष्टव्य हैं।

हालिक कैवर्तीमें प्रधानतः निम्नलिखित कई गोत्र देख पड़ते—हैशाखिल्य, काश्यप, वात्स्य, सावर्ण्य, भरद्वाज, मौद्गल्य, पलासर (पराशर?), नागेश्वर, विलास, वशिष्ठ, व्यास और पालम्यान। फिर हालािक कैवर्त आदि, मध्य और अन्त्य तीन भागोंमें विभक्त हैं। विवाह आदिके समय यह त्रैणी सबकी ओर दृष्टि रखके काम करती है।

हालिकोंमें भी कई समाज प्रचलित हैं। एक समाजके लोग दूसरे समाजमें जानेसे अपदस्त्र हुआ करते हैं। कौलीन्यका परिचय उपाधि द्वारा नहीं, वंश द्वारा ही मिलता है। कुलीन, मौलिक आदि ज्ञात्री त्रैणियोंमें अपने गोत्रका आदान प्रदान नहीं चलता, परन्तु निम्नत्रैणीमें इस नियमकी सर्वदा रक्षा कम होती है।

वङ्गालमें हालािक कैवर्तीकी विवाह प्रथा उच्चत्रैणीके छिंदुवोंसे मिलती जुलती है। प्रथम तैलहरिद्रावितरण, सङ्कल्प, अधिवासर (मङ्गादि द्रव्यस्पर्शन), गोर्पादि पाङ्कश-माटका पूजा, वसोधाराकी पूजा, पायुस्त्रमन्त्र, आभ्युदयिक आह, समन्त्रक वर आह्वान, भवदेवकी मतानुसार मन्त्रादि द्वारा विवाह एवं पाणिग्रहण और साजहोम, दूसरे दिन जलसेक, तीसरे दिन वरकी विदा तथा वरका स्वर्ग प्रवेश, अक्षसूत्रपरित्याग, नववधूका गृहप्रवेश, कोलिकमाङ्गलिक पूजा एवं ब्राह्मणभोजन और चौथे दिन पाकस्पर्श होता है। कन्या ऋतुमती होनेसे पहले ही विवाह कर देनेका नियम है।

भारतवर्षके नाना स्थानोंमें हालािक कैवर्त रहते हैं। फिर नाना स्थानों पर कैवर्त जातिके सम्बन्धमें

नामाविषय प्रवाद चलता है। जातिक कैवर्त सम्बन्ध है। वर्षाब्राह्मण उनका पीरोहित्व करते हैं। जातिक का जल शुद्ध नहीं होता। इनमें बहुतसे लोग वैष्णव हैं। जातिक सभी देवदेवियों को मानते हैं। विवाहकी प्रथाकी स्थानभेदसे निम्नश्रेणीके अपरापर हिन्दुओंसे मिलती है। इनमें विधवाविवाह नहीं चलता। कहीं कहीं वात्स्यकाण्डको ही कन्याका विवाह कर देना अच्छा समझा जाता है, परन्तु किसी प्रकार कन्या ऋतुमती होने पर भी उसके विवाह करनमें कोई दोष नहीं लगता। वात्स्यविवाह सर्वत्र आदरणीय है।

कैवर्तोंमें कहीं ३०, कहीं १५ और कहीं १० दिन व्रतीय ग्रहण करते हैं।

विहारके कैवर्तोंको केवट कहते हैं। मछली पकड़ना और खेती करना इनको प्रधान उपजीविका है। ऊँची जातिके निकट यह नौकरी भी करते हैं। इसी नौकरीके अनुसार समाजमें इनका सम्मान होता है। इनकी ५ श्रेणियाँ हैं—

अयोध्यावासी, विविहार, गर्भाहत, सघोर और मछुवा। अयोध्यावासी अवधसे आये हैं। इनमें अधिकांश खेती करते हैं। विविहार या घृतपायी युक्तप्रदेशके लोग हैं। वहाँ पहले यह नाव चलाते और मछली पकड़ते थे। प्रभुका उच्छिष्ट भोजन करनेसे इनका ऐसा नाम पड़ गया है। दरभंगा महाराजके राजभवनमें पहले कुरमी जातिके लोग काम करते थे। किसी किसीके विश्वासघातकताका काम करनेसे राजाने उनको निकाल युक्तप्रदेशके कैवर्तोंकी रखा था। यह लोग जैसा काम करते थे, उसीके अनुसार इनके नाम भी रखे गये। राजाके पास रहनेवाला श्वास, भाण्डारका कर्मचारी भाण्डारी, बन्धनका कामकरनेवाला डेरादार, बन्धादिकी तत्त्वावधायक जापड़ और राजाकी अपनी जमीनका काम देखनेवाला कामत नामसे अभिहित था। पीछे कृषक गर्भाहत और खास काम करनेवाले बड़ियावक नामसे अलग अलग श्रेणीबद्ध हुए। जो पहलेसे नौकाका व्यवसाय करते थे, वह मछुवा समझे गये। वर्तमान विहारी कैवर्तोंमें भदौरिया, विश्वास, हाजरा, हतवार, कापड़, महरना, मरर, सुखिया,

भाण्डारी, चौधरी, डेरादार, जानदार, कामत, श्वास, महरतो, मन्दर इत्यादि उपाधि हैं।

इनमें वात्स्यविवाह ही प्रचलित है। ५ से १० तक बालक और इसे १० वर्ष तक बालिकाके विवाहका समय है। वरको अपेक्षा कन्याका वयस अधिक होनेमें कोई बड़ी प्रकृषन नहीं, परन्तु ऊँचाईमें वह बड़ी न होना चाहिये। वरसे कन्या यदि दीर्घ हो अथवा दोनों बराबर बैठें, तो उस विवाहमें मङ्गल नहीं। विवाहसे पहले दोनोंको नाप लेते हैं। वरकी अपेक्षा देखनेमें कन्या समीप लगनेसे विवाह नहीं होता। विवाहका सम्बन्ध स्थिर होने पर वरपक्षीय लोग कन्या देखने जाते हैं। पीछे तिलकके उपलक्ष्यमें कन्याकर्ता वरके घर वस्त्र अर्थ आदि भेज देता है। तिलक चढ़ जाने पर मैथिल ब्राह्मण कोई शुभ दिन ठहराते हैं। विवाहके पूर्व दिन वर और कन्या दोनोंके घर 'मट-कोड़वा' हुआ करता है। इसके लिये घरकी स्त्रियाँ सदस गाते माते घामके बाहर पानी लेकर जाती हैं। वहाँ वर और कन्याको ज्ञान करा, वहाँसे श्रुतिका ला और उससे घरमें एक चूल्हा बना गृहदेवताकी पूजाके उपसक्तमें धी तपाती और खीले भूतनी हैं। विवाहके समय इन खीलोंकी आवश्यकता पड़ती है। उसी समय एक बकरा भी बलि दिया जाता है। विवाहके दिन कन्याके घरकी स्त्रियाँ अपने बीच एकके मस्तक पर एक घड़ा पानी रख दसबच झेकर वरके घर जाकर गाती हैं, गालियाँ सुनाती हैं और हँसी ठहा उड़ाती हैं। वरपक्षके उन्हें पान और द्रव्य देने पर वह निरस्त होकर चल देती हैं। पीछे कन्याकी भतीजी सम्पर्कीय कोई स्त्री या वरके गलेमें दुपट्टा डाल उसे कन्याके घर ले जाती है। वहाँ उन्हें मण्डपकी चारो ओर घुमाते घुमाते खीले छोड़ी जाती हैं। फिर वर और कन्याको बैठा पुरोहित सिन्दूर दान करता और उभयपक्षके पूर्वपुरुषोंका नाम आत्मपक्ष पर लिख कर उसे वरकन्याके हाथमें बांध देता है। किसी एक घरमें परमाज प्रसूत रहता है। वहाँ वर और कन्याके मातृसे एक एक विन्दु रख लेकर परमाजमें मिलाया और दोनोंको खिलाया जाता है।

विधवा सगाई कर सकती हैं। विवाहके भङ्गका नियम नहीं चलता। स्वजातिके मध्य व्यभिचार लगानेसे उसका प्रायश्चित्त किया जाता है। परन्तु दूसरी जातिके साथ ऐसा होने पर स्त्रीको घरसे निकाल देते हैं।

भगवती ही इनकी पारमार्थ्य देवता हैं। कोई विस्-हरको भी पूजता है। फिर बन्दो, गोरेया, नरसिंह और कालीकी उपासना भी की जाती है। विहारमें कैवर्तोंके हाथका पानी शुद्ध समझते हैं।

दाक्षिणात्यमें कवर्तका नाम 'भोई' है। भोई देखो।

२ महानिख्य।

कैवर्तक (सं० पु०) कैवर्त स्त्रिये कन्। कैवर्त, कैवट।

(रामायण २। ८३। १५)

कैवर्तमुस्त, कैवर्तमुस्तक देखो।

कैवर्तमुस्तक (सं० स्त्री०) कैवर्तिका, पानीमें पैदा होनेवाला एक मोथा। यह ठण्डा, तीता, कसेला, कडुवा, कान्तिकर और कफ, पित्त, रक्तदोष, विसर्प, कुष्ठ तथा कण्डूजन होता है। कैवर्तमुस्तक वितुस्तक नामक वृक्षकी छाल है, जो देखनेमें मोथा-जैसी लगती है। (भावप्रकाश)

कैवर्तिका (सं० स्त्री०) कैवर्ती जलस्थ इव, स्त्रिये कन् ऋस्वय। जलजमुस्ताविशेष, पानीमें पैदा होनेवाला एक मोथा। यह हलकी, वीर्य बढ़ानेवाली, कसेली और कफ, खांसी, खास तथा मन्दाग्नि मिटानेवाली है। (राजनिघण्टु) इसका संस्कृतपर्याय—सुरङ्गा, लता, वल्ली, रङ्गिणी, बल्लरङ्गा और सुभगा है।

कैवर्तमुस्तक (सं० स्त्री०) कैवर्त्याः कैवर्तपत्नीः प्रियं मुस्तकम्, इ-तत् विकल्पे ऋस्वः। उदायोः। पा ६। १। ६९। कैवर्तिका, कैवटी मोथा।

कैवर्ती (सं० स्त्री०) के जले वर्तते, वृत्-अच् अलुक् समा० स्त्रिये अण् ततो ङीप्। १ कैवर्तीमुस्त, कैवटी-मोथा। २ कैवर्तपत्नी, कैवटी।

कैवर्तीमुस्त (सं० स्त्री०) कैवर्तीनां कैवर्तपत्नीनां प्रियं मुस्तम्, इ-तत् विकल्पे ऋस्वः। मुस्ताभिद, कैवटी मोथा। किसी किसी देशमें इसे केशरिया मोथा भी कहते हैं। इसका संस्कृत पर्याय—कुटजट, दशपुर, वानेय, परिपेलव, प्रव, गोपुर, गानर्द, दाशपुर, दाश-

पूर, परिपेल, पारिपेल, कैवर्तमुस्तक, कैवर्तमुस्तक, वनसम्भव, धान्य, शीतपुष्प, जोरुबुध्नक, वन्य और शीतपुष्प है।

कैवल (सं० स्त्री०) कैवलते, वल-अच् अलुक्-सं० स्त्रिये अण्। विडङ्ग, वायविडङ्ग।

कैवल्य (सं० स्त्री०) कैवलस्य औपाधिक सुखदुःखादिरहितस्य चित्स्वरूपस्य भावः, कैवल-अच्। १ मुक्ति-विशेष, निर्वाण। विवेकका साक्षात्कार होनेसे अहङ्कार विनष्ट होता है। फिर ऐसा ज्ञान नहीं उठता कि मैं कर्ता, सुखी वा दुःखी हूँ। अहङ्कार निवृत्त होने पर उसके कायं राग, द्वेष, धर्म और अधर्म आदिकी उत्पत्ति भी होना सम्भव नहीं। प्रारब्ध कर्म पर्याप्त जिससे शरीर धारण हुआ है, धीरे धीरे मिट जाता और अविव्यारूप सहकारिकारण न रहनेसे फिर संस्कार नहीं होता तथा संस्कारके अभावमें पुनर्वार जन्म लेना नहीं पड़ता। वर्तमान शरीरपात होनेसे आत्मा चित् स्वरूपमें अवस्थान करता है। इसी अवस्थाका नाम कैवल्य है। पातञ्जलसूत्रके कैवल्यपादमें इस विषय पर लिखा है—

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनानिवृत्तिः। (योगसूत्र ४। २५)

पूर्वोक्त प्रकारसे चित्त और आत्माका भेद देख पड़ने पर जिस समय चित्त अपना तथा आत्माका विशेष दर्शन करता, उस समय कर्तृत्व, ज्ञातृत्व और भोक्तृत्व आदि ज्ञान निवृत्त हो एकताको पहुँचता है। 'मैं कर्ता हूँ' 'मैं ज्ञाता हूँ' और 'मैं भोक्ता हूँ', इत्यादि ज्ञान तिरोहित होने पर फिर पुरुषकी किसी कर्मकी चेष्टा नहीं रहती। चित्तके आत्माका स्वरूप पहचान सकने पर आत्माकारका पा कैवल्यपद लाभ होता है। चित्तका कर्तृत्व आदि अभिमान छूटनेसे कर्म निवृत्ति हो जाती है। फिर उससे विवेकज्ञान आता है। विवेकज्ञान ही मुक्तिका प्रथम सूत्र है। (योगसूत्र ४। २५)

जब योगी समाधि आश्रय करते, उनको इन्द्रिय-वृत्ति क्षीण होते भी व्याधि, स्थान, संशय, भालस्य, प्रमाद, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलम्बभूमिकत्व और अनवस्थितत्व नोप्रकारके विघ्न उठ खड़े होते हैं। इसमें फिर प्रत्ययान्तर पर्याप्त मैं और मेरा इत्यादि ज्ञान

स्वरूप विघ्न समुत्पन्न हो समाधिका व्याघात करते हैं। अतएव चित्तवृत्तिका उच्छेद साधन करके इन सब विघ्नोंको निवारण करना चाहिये। (योगसूत्र ४।२६)

पातञ्जलके द्वितीय पादके दशम और एकादश सूत्र-में अविद्या आदि मिटानेके उपाय जंसे प्रदर्शित हुए हैं, वैसेही उपाय अवलम्बन करके संस्कारका जय करते हैं। संस्कार बीज होनेसे “मैं-मेरा” इत्यादि ज्ञान नहीं रहता। जैसे बीज अग्निमें जल जानेसे फिर अक्षर उत्पत्तिकी सम्भावना नहीं, वैसे ही ज्ञान अग्निमें अर्थसे अविद्यादि क्लेश मिट जाने पर चित्तके क्षेत्रमें संस्कार नहीं लग सकता और ऐसा होने पर ‘मैं मेरा’ इत्यादि प्रत्ययान्त निवृत्त होता है। (योगसूत्र ४।२७)

बहुतसे विषयोंके तत्त्वोंकी भलग भलग भावना करके भी जो सब प्रकारके फलोंकी कामना नहीं करता, उसीके पूर्वोक्त विघ्न तिरोहित होकर विवेककी उत्पत्ति होती है। विवेक उठने पर ही उससे समाधिसिद्ध होती है। यह समाधि सर्वदा परम पुत्रार्थ साधनका धर्मवारि खेचन करता है। इसीसे इसका नाम धर्म-मिथ है। यह धर्म तत्त्वज्ञान उत्पादन करता है।

(योगसूत्र ४।२८)

पूर्वोक्त धर्ममिथ अविद्या आदि सब क्लेशोंको निवारण करता है। फिर उसीसे संसार भ्रमणके कारण सब शुभाशुभ फल बीज होते और वासना निवृत्ति हो जाती है। (योगसूत्र ४।२९)

अविद्यादि क्लेश और शुभाशुभ कर्मफल चित्तके आवरणकारी मल जैसे होते हैं। जिसके चित्तसे यह सब मल निकल गया है, वही व्यक्ति समुदय त्रेय वस्तु समझ सकता है। चित्तके आवरणका मल विनष्ट होने पर ही सर्वविषयक ज्ञान उठता है। उस समय आकाश प्रभृति महत् पदार्थ भी अनायास समझ जा सकता है। फिर दूसरा कोई विषय अपरिज्ञात नहीं रहता। (योगसूत्र ४।३०)

हृदयके आकाशमें धर्मका मिथ उदित होने पर उसके वर्षणसे क्लेशके कर्मका मल धीन हो जाता है। उससे सत्व, रजः और तमः तीनों गुण क्षतार्थ होते अर्थात् पुत्रार्थ भोग और मोक्ष साधनके सब कर्म

समाप्त हो जाते और इन सकल गुणोंके क्रमका परिणाम नहीं होता। (योगसूत्र ४।३१)

क्षणसे पक्ष, पक्षसे दण्ड, और दण्डसे प्रहर इत्यादि प्रकारसे कालका परिणाम हुआ करता है। फिर पञ्चभूतसे जो सकल वस्तु उत्पन्न होते, वह भी उत्तरोत्तर परिणाम पाकर नानाप्रकार वस्तु उत्पादन करते हैं, इसीका नाम क्रमपरिणाम है। इन सकल परिणामोंका अन्त कोई समझ नहीं सकता। कारण परिणामकी कोई सीमा नहीं। सृत्तिकासे उद्भिद् आदि सकल वस्तु निकलते हैं और यह सकल उद्भिदादि फिर सृत्तिकाके रूपमें परिणत हो जाते हैं। इसी प्रकार पदार्थोंके उत्तरोत्तर नानाप्रकार परिणामकी इयत्ता कोई कर नहीं सकता। (योगसूत्र ४।३२)

गुणोंका भोग और अपवर्गके लक्षण पुत्रार्थ शून्य हो जाने पर क्षणकालके लिये भी किसी प्रकारका विकार उपस्थित नहीं होता। अथवा चित्तशक्तिकी वृत्तिका स्वरूप्य उठ जाता है। आत्माके चित्सवरूपमें जो अवस्थिति आती, वही कैवल्य कहती है। (योगसूत्र ४।३३) मुक्ति और विवेक शब्द देखो।

वेदान्तके मतसे परमात्मामें जीवात्माके लीन हो जानेका नाम कैवल्य है। न्यायके मतमें सकल अदृष्ट विनष्ट होने पर फिर आत्माके दुःखकी उत्पत्ति वाज्य नहीं होता। नैयायिक शरीर छूटने पीछे आत्माकी इसी अवस्थाको कैवल्य कहते हैं। (न्याय १।१।२)

जैनशास्त्रानुसार कैवल्य अवस्था मुक्ति प्राप्त करनेसे पहिली होती है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय इन चार घातिया कर्मोंके नष्ट हो जाने पर आत्माके कैवल्यज्ञानकी प्राप्ति होती है और उस समय समस्त पदार्थोंकी समस्त पर्यायोंकी एक साध यह जीव जानने लगता है। (तत्त्वार्थसूत्र टीका)

२ मुक्ति, छुटकारा। मुक्ति देखो। ३ क्षणायुर्वेदके अन्तर्गत एक उपनिषद्। (त्रि०) ४ कैवल्यस्वरूप। ५ अद्वितीय।

कैवल्यानन्द—एक संस्कृत ग्रन्थकार। इन्होंने प्रणवार्थ-प्रकाशिकाव्याख्यान और महिम्नस्तवटीकाकी रचना किया।

कैवल्यानन्द सरस्वती—भगवद्गीतासारके प्रणेता ।

कैवल्यश्रम—गोविन्दाश्रमके शिष्य । इन्होंने त्रिपुरी-वरिवस्था नामक तान्त्रिक ग्रन्थ और भानन्दलहरीकी सौभाग्यवर्धनी टीकाकी रचना की ।

केशव (सं० त्रि०) केशवस्येदम्, केशव-अण् वृद्धिश्च ।
केशवसम्बन्धीय । (रघु १० । २८)

कैशिक (सं० स्त्री०) केशानां समूहः ठक् । १ केश-समूह, बालोंकी लट या गुच्छा । (पु०) केशेषु केश-विन्यासेषु साधुः । २ शृङ्गाररस । ३ नृपविशेष, कोई राजा । (हरिवंश २६) ४ नाचकी एक चाल । इसमें नलाकतके साथ किसीकी नकल करते हैं ।

कैशिकता (सं० स्त्री०) केशसदृश सूक्ष्म छिद्रविशिष्ट नलमें दृष्ट होनेवाला व्यापार ।

कैशिकनिषाद (सं० पु०) सङ्गीतका एक बिगड़ा हुआ स्वर । यह तीव्र स्वरसे चलता और तीन श्रुतियों-का प्रयोग रखता है ।

कैशिकपञ्चम (सं० स्त्री०) सन्दीपनी श्रुतिसे पारम्भ होनेवाला एक विकृत स्वर । इसमें चार श्रुतियां लगती हैं ।

कैशिकाकर्षण (सं० स्त्री०) जड़पदार्थकी एक शक्ति, नली किंचाव । इससे सूक्ष्मछिद्रविशिष्ट नलमें जलादि उन्नत हो जाते हैं ।

कैशिकानाड़ी (सं० स्त्री०) केश जैसी सूक्ष्म नाड़ी, बाल जैसी बारीक रग । इसी नाड़ीसे पृथ्वी शिरामें रक्त सञ्चालित होता है ।

कैशिकावनति (सं० स्त्री०) कैशिक नलके अभ्यन्तरमें किसी तरल पदार्थकी अवनति, बाल-जैसी बारीक नलीमें किसी पतली चीजका गिराव ।

कैशिकी (सं० स्त्री०) १ व्यञ्जनउपयोगी पञ्चधारा, छिदने लायक नश्वरकी बाढ़ । २ नाटककी एक वृत्ति । शृङ्गार-रसमय नाटकोंमें यह वृत्ति रहती है । इसमें नाचन, गान, बजाने और खेल कूदकी बातें बहुत होती हैं । कैशिकी नाटक अधिकांश स्त्रियों द्वारा अभिनीत होता है ।

कैशिकीकति (सं० स्त्री०) कैशिक नलके अभ्यन्तर किसी तरल पदार्थकी उन्नति, बहुत पतली नलीमें किसी रकीक चीजके ऊपर उठनेकी हालत ।

कैशिकीज, कैशिकीज देखो ।

कैशिन (सं० स्त्री०) कैशिन इदम्, कैशिन-अण् वृद्धिश्च ।
१ कैशिसम्बन्धीय (पु०) कैशिनोऽपत्यम् । गाविषिद्वि-
कैशिनविपचिनश्च । पा ४ । १ । १५ । २ कैशिका पुत्र ।

कैशिन्य (सं० पु०) कैशिनोऽपत्यम्, कैशिन-अण् । कैशिका-
पुत्र ।

केशोर (सं० स्त्री०) क्षिशोरस्य भावः कमै वा, क्षिशोर-
अञ् । माण्डव्यातिवयोवचनोदगातादिभ्योऽण् । पा ५ । १ । १२६ ।
नवीन वयस, लड़कपन । प्यारहसे पन्द्रह वर्ष तक
यह अवस्था रहती है । पांच तक कौमार, दश तक
पौगण्ड, पन्द्रह तक केशोर और पछे यौवन होता है ।

(गीधर)

केशोरक (सं० स्त्री०) केशोर स्वार्थे कन् । १ केशोरा-
वस्था, लड़कपन । (हरिवंश ७० प०) (पु०) २ वातरक्त-
को लाभ पहुँचानेवाला एक गुग्गुलु । पट्टकीवृक्ष गुग्गुलु
दो शरावक, त्रिफला २ शरावक और गुड़ूची ४ शरा-
वक एकत्र ८६ शरावक जलमें डाल अवशिष्ट काथ
बनाना चाहिये । काथ वस्त्रपूत करके उससे घृत-
मर्दित गुग्गुलुको गोले बना फिर पाक करते हैं ।
घनीभूत होने पर पाकको उतार उसमें ४ तोला
त्रिफलाचूर्ण ४ तोला त्रिकटुचूर्ण ४ तोला विडङ्गचूर्ण,
२ तोला त्रिवृचूर्ण, २ तोला दन्तीमूलचूर्ण और
८ तोला गुड़ूचीचूर्ण पड़ता है । (चक्रदत्त)

केशोरि (सं० पु०-स्त्री०) क्षिशोरस्वापत्यम्, क्षिशोर-
इण् । क्षिशोरापत्य, क्षिशोरका लड़का या लड़की ।

कैशोरिकैय (सं० पु०) क्षिशोरिकाया अपत्यम्, क्षिशो-
रिका-ठक् । क्षिशोरिकाका अपत्य ।

कैशोर्य (सं० पु०) क्षिशोरी-अण् । क्षिशोरीका अपत्य ।

केश्य (सं० स्त्री०) केशानां समूहः, केश-यञ् । केशाभाया
यञ्जावन्तरक्षाम् । पा ४ । २ । ४८ । केशसमूह, बालोंकी लट
या गुच्छा ।

कैषिका (सं० स्त्री०) १ आम्रातक, आमड़ा । २ किसी
किसीके मतानुसार—शरमूल ।

कैषी (सं० स्त्री०) १ पाठा, पाननादि ।

कैष्किन्ध (सं० त्रि०) किष्किन्धा नगरी अभिजनोऽस्य,
किष्किन्धा-अण् । सिन्धुतटविजादिभ्योऽञ् । पा ४ । १ । २९

किष्किन्धावासी, वंशक्रमसे किष्किन्धामें रहनेवाला।

कैसर (हिं० पु०) १ सम्राट्, बादशाह। २ जर्मन-सम्राट्का उपाधि, जर्मनोके बादशाहका खिताब।

कैसरगञ्ज—युक्तप्रदेशके बहरायच जिलेकी दक्षिण-पश्चिम तहसील। यह अक्षा० २७° ३६' ४०" और देशा० ८१° १६' एवं ८१° ४६' पू० के मध्य अवस्थित है। इसमें फखरपुर और जिसालपुर परगने लगते हैं। कैसरगञ्जकी लोकसंख्या प्रायः ३४८१७२ है। कैसरगञ्ज तहसीलमें ६४७ गांव बसे हैं। परन्तु शहर एक भी नहीं। यह तहसील घाघराकी प्रशस्त उपत्यकामें पड़ती और कई पुरानी नदीयां बहती हैं। सरयू और तिरही प्रधान स्रोतस्त्रती हैं।

कैसा (हिं० वि०) कौटुक, किस तरहका। यह शब्द निषेधार्थक प्रश्नकी भांति भी व्यवहृत होता है।

कैसे (क्रि० वि०) १ किस प्रकारसे, कौनसे तरीकेमें। २ किस कारण, क्यों।

कौटना (हिं० क्रि०) छेदना, गड़ाना, चुभाना।

कौचफली (हिं० स्त्री०) कच्छ, कौछ।

कौचा (हिं० पु०) १ कौच, पानीकी कोई चिड़िया। २ बहेलियेकी लम्बी लमी। इसके सिर पर लासा लगाया और उससे कौच कर ऊंचे पेड़ या किसी दूसरी जगह पर बेंठी चिड़ियाको फंसाया जाता है। ३ भड़ भूँजेका बाल निकालनेवाला कलछा।

कौछ (हिं० पु०) स्त्रियोंकी ओढ़नी या पिछोरीका एक कोना।

कौछना (हिं० क्रि०) चुनना, कौछियाना। यह क्रिया साड़ीके उस भागके चुननेमें आती, जो धारण करते समय पेटके आगे खोसा जाता है।

कौछियाना (हिं० क्रि०) १ कौछना। २ कौचमें डाल कर कोई चीज आगे कमरमें घटका देना।

कौछी (हिं० स्त्री०) फुवती, तिसी, साड़ी या धोतीका एक भाग। इसे स्त्रियां चुन कर पेटके आगे खोस लेती हैं।

कौड़ई (हिं० स्त्री०) कण्टकाकोण वृक्षविशेष, एक कंटीला झाड़। यह युक्तप्रदेश, बङ्गाल और दक्षिण-प्रायमें उत्पन्न होता है। इसके पत्र ३४ अङ्गुलि

दीर्घ होते हैं। छुद्र छुद्र गुच्छामें पुष्प भी बहुत ही छुद्र लगते हैं। पत्तोंकी पशु तथा फलोंकी मनुष्य खाते और मूल तथा त्वक्से औषध बनाते हैं।

कौंडरा (हिं० पु०) कुण्डल, गांडरा, मोटके सिर पर लगनेवाला लोहेका एक कड़ा।

कौंडरी (हिं० स्त्री०) चमड़ेसे मढ़ी हुई डड़क, बाजे की सजड़ा।

कौंटा (हिं० पु०) १ कुण्डल, जंजोर या कोई दूसरी चीज लगानेके लिये धातुका एक छला या कड़ा। २ रुपयेका चांदीसे भरा छेद। (वि०) ३ कौंटादार, कौंटा लगा हुआ। यह शब्द रुपयेका विशेषण है। भारतमें रुपये छेद कर माला बनायो और स्त्रियों तथा बालकोंको पहनायो जातो है। फिर यह रुपये जब बाजारमें चलाने होते, तो पहल उनका छेद चांदी भर कर बन्द कर दिया जाता है। ऐसे ही रुपयोंको कौंडहा या कौंटा कहा जाता है।

कौंटी (हिं० स्त्री०) १ छोटा कौंटा। २ अस्फुटित मुकुल, बंधी हुई कली।

कौंथ (हिं० पु०) १ मृत्तिकाकी चक्र पर रखनेके पीछे बगनेवाला पात्रका पूर्वरूप। २ कच्चा पुराना दीवारके छेदोंमें सनी हुई मट्टीका भराव।

कौंथना (हिं० क्रि०) १ कराहना। २ कबूतरोका बोलना। ३ दीवारके छेदोंमें सनी मट्टी भरना।

कौंपना (हिं० स्त्री०) कुचिघाना, कौंपल देना।

कौंपल (सं० स्त्री०) अङ्गुर, पेड़की नयी और मुलायम पत्ती।

कौंधरा (हिं० पु०) घुघनी, उवाल कर तेलमें बघारे खड़े चने या मटर। यह नमक मिश्रण लगा कर खाया जाता है।

कोषा (हिं० पु०) १ कोष, कुसियारी, रेशमके कौड़ेका घर। २ टसरका कौड़ा। ३ गोलेंदा, मधुवेका पका फल। ४ कटहलका पका हुआ बीज काष ५ धुने हुए जनको पीना। इसे कात कर ऊर्षाका मूत्र प्रसृत किया जाता है। ६ अक्षिगोलक, भायका डेसा।

कोषार (हिं० पु०) वृक्षविशेष, कोरा।

कोषारी—१ दक्षिणप्रायमें पूना जिलेका एक नगर।

इसके निकट गिरिचट्ट विद्यमान है। पहले यह मराठाओंके अधीन रहा। बाजी राव पेयवाके साथ जब युद्ध हुआ, चंगरेजीने (११ मार्च १८६८ ई०) इसे आक्रमण किया था। गङ्गा नामक एक निकटस्थ दुर्गके बाहुदखानेमें भाग लगनेसे बड़ा धड़ाका हुआ। फिर दुर्गस्थ मराठोंके चंगरेजीके हाथ आत्मसमर्पण करने पर यह (१७ मार्च) चंगरेजीके अधिकारमें चला गया।

२ विहारके सारन जिलेका कोइ परगना। इसका पूरा नाम कल्याणपुर-कोषारी है। कोषारीसे उत्तर, दक्षिण तथा पश्चिम गोरखपुर जिला और पूर्व सिपा परगना है। हुसेपुर, बड़गाँव, बथुआ और भागिपति-मीरगंज इसके प्रधान नगर हैं। हुसेपुरमें एक पुराने दुर्गका भग्नावशेष दृष्ट होता है। मीरगंजमें अफीमकी कोठी है। आजकल कोषारी जयवा महाराजकी जमीन्दारीमें लगती है।

कोइरा—एक नदी। यह सिंधभूमसे निकली और कोयल नदीमें जा मिली है। कोइरा १८ कोस लम्बी है। सारन विभागमें ही इसका स्रोत चलता है।

कोइरी—कविजीवी जातिविशेष, एक काश्तकार कौम। छोटानागपुर और विहार अञ्चलमें कोइरी लोग मिलते हैं। उन्हें सुरास भी कहा जाता है। कुछ कोइरी अपनेकी सन्तति बताते हैं। कुर्मी लोगोंसे उनका बहुत सौसाहस्य है। १४० प्रकारके कोइरी पाये जाते हैं। उनमें सूर्यवंशी, बेसवार, कनौजिया, दांगी, बजाफर, भदौरिया, गान्धवंशी और कडवाहा प्रधान हैं।

कोइरी अपने आप कहा करते हैं कि यदि कोइरी महादेव और पार्वतीके पुत्र हैं। जिस समय वह देव-देवीके आदेशसे उद्यान रचार्य नियुक्त हुये, उस समय नामा-रम्भी वहाँ फल तोड़ने गयीं। वह मित्रांशु कोइरियोंका रूप देव कामप्रीकृत हुई थीं। कोइरियोंने उनकी रक्षाकी वरदान किया। फिर उनमें प्रत्येकके गर्भसे एक एक सन्तान हुआ। उसीसे अेषीभिद पद गन्त है। पाइरी मेरिह कहलने लिखा है—“बहुतकी अधिकारी जातिजो राजपूत नहने।”

कोइरा गान्धवंशीसे मिले हुये हैं। वह राजपूतोंके तुल्य हैं और कुछ लोग राजपूतोंसे ही निकलते हैं। काहियोंकी भांति कोइरी भी कडवाहा वंश हैं। कडवाहा एक प्रसिद्ध और वल्लभ राजपूत जाति है।*

छोटानागपुरके कोइरी अपना कच्छप (काश्यप ?) और नाम गोत्र होनेसे कभी कच्छप और नाग (सर्प) को नहीं मारते, वरन् भक्ति किया करते हैं।

उपरि उक्त श्रेणियोंके मध्य बड़कीदांगी भिन्न सकल श्रेणियोंमें विधवा-विवाह होता है, इसीसे कोइरियोंमें बड़की-दांगी कोषी श्रेष्ठ और अधिक सम्मानित है।

कोइरियोंमें १० वर्षके मध्य कन्याका विवाह कर देनेकी रीति है। किन्तु सम्पत्तिशाली दो तीन बर, यहाँ तक कि दन्तोद्भमसे पीछे ही कन्याका विवाह कर देते हैं।

विवाहके प्रथम कोइरियोंमें गान्धान-प्रथा प्रचलित है। वरपक्षीय बाका बजाते एक कपड़ा से ब्राह्मणके साथ पात्री देखने जाते हैं। वरकर्ता और कन्याकर्ता दोनों एक एक बख्खल भूमि पर फेंका देते हैं। उसके पीछे वरकर्तासे धान्य से पात्रीके हाथ पर दे ब्राह्मणके आशीर्वाद करने पर पात्री उक्त धान्यकी भावी स्मरणसे फेंकावे बख पर हाथ देती है। सरी बार धान्यसे आशीर्वाद मिलने पर फिर वह उसे पिताके बख पर फेंकती है। इसी प्रकार वर और कन्याकर्ता दोनों प्रतिज्ञा-व्रत होते हैं। उक्त प्रथा सम्पन्न होनेके ८ दिन पीछे विवाह होता है। उद्य-श्रेणीके ब्राह्मण यथाचार विवाहकर्म सम्पन्न करते हैं। विवाहमें वरपक्षीयकी अधिक श्रम तो करना पड़ता है, किन्तु स्त्रियोंके स्मरणसे घर जाने पर उससे अधिक श्रम मिलता है।

कोइरियोंमें बहुविवाह प्रचलित है। बड़कीदांगीको छोड़ अपर श्रेणीकी विधवा समार कर सकती हैं। विधवाविवाहमें बहुत सम्मान नहीं होती। केवल विधवायें ही उसमें योग देती हैं। फिर विवाहकी

रात्रिकी पुनश्च स्त्रीको एक नतन वस्त्रखण्ड देता, ससु-
रासके लोगोंके खाने-पीनेका खर्च भी उठा लेता है।
उक्त विवाह देवरके साथ करनेका नियम है। किन्तु
पश्चायतकी अनुमतिसे विधवा दूसरेके साथ भी अपनी
सगाई कर सकती है।

कोइरियोंमें शैव और शाक्त अधिक, वैष्णव अल्प हैं।
मानभूममें वर्षा ब्राह्मण उनका पीरोहित्य कराते हैं।
मरुबुध, बड़पाहाड़ी, सोखा, परमेश्वरी, महावीर,
तथा हनुमान् कोइरियोंके प्रधान उपास्य देव हैं।

विहारके कोइरी बहुत उन्नत हैं। मैथिल और
कहीं कहीं कान्यकुब्ज ब्राह्मण भी उनका पीरोहित्य
करते हैं। उनमें समय समय पर कई ग्राम्य देवताओं-
की पूजा होती है।

प्रसवके पीछे कोइरी-रमणी १२ दिन अशुचि
रहती हैं।

शवको दक्षिणमुखी करके जलाते हैं। १०वें दिन
शुद्धि, ११वें दिन महापात्रकी विदाई, १२वें दिन
सपिण्डीकरण और १३वें दिन ब्राह्मणभोजन होता है।

कोइरियोंकी सामाजिक अवस्था अच्छी है। कुरमी
और ग्वालोंकी भांति उन्हें सम्मान मिलता है। कृषि ही
उनकी उपजीविका है। वह किसीका दासत्व स्वीकार
नहीं करते।

कोइल—युक्तप्रदेशके अलीगढ़ जिलेकी एक तहसील।
इसका क्षेत्रफल ३५६ वर्गमील है। कोइलका अधि-
कांश ग्रन्थशाही है। इसके भीतर नाना स्थानोंमें गढ़ा-
लीकी नहर फैली और रेल निकली है। प्रधान नगर
भी कोइल ही है। इसमें एक म्युनिसिपालिटी विद्य-
मान है।

कोइलपटम्—मन्द्राज विभागास्तर्गत त्रिन्त्रयकी जिल्लाके
तेहराई जिलेका एक नगर। यह अक्षा ८°
१०' उ० और देशा० ७७° ५२' पू० पर समुद्रके तीर
अवस्थित है। लोकसंख्या ३४१५से अधिक है। यहां
एक मन्दिर भी है। लभय लोग वहाँ नानाविध व्यव-
साय चलाते हैं। कोइलपटम्में नमक बनता है। कोर-
कोइ नामक स्थानमें पक्षी विलक्षण वाणिज्य होता
था। परन्तु वहाँ समुद्रके सूट जानेसे समस्त वाणिज्य

वहाँसे उठ पाया। आजकल कोइलपटम्की अवस्था
बिगड़ी है और कामकाज तुतकुड़ी सरक गया है।
प्रसिद्ध भ्रमणकारी मार्कोपोलोने 'कोइल' नामसे इस
नगरका उल्लेख किया है।

कोइलवा—राजपूतानेका एक सुदूर सामन्त राज्य।
सामन्तवीर पुत्तूके नामसे यह स्थान प्रसिद्ध है। राणा
उदयसिंहके राजत्वकाल दिक्षोश्चर पकघरने चित्तोर
आक्रमण किया था। उस समय कोइलवाके सामन्त
घोड़शवर्षीय पुत्तूने जो अद्भुत वीरत्व दिखाया वह उनके
शत्रुमित्र सभीके लिये विस्मयकर है। राजस्थानके इति-
हत्तलेखक महारमा टाडने कहा है—“जब सूर्यद्वार पर
सालुम्बरापति निहत हुए, उस द्वारकी रक्षाका कोइल-
के पुत्तू पर डाला गया। उस समय इनका वयस
घोड़शवर्ष मात्र रहा। गत समरमें पुत्तूके पिताका
मृत्यु हुआ था, वीर जननीने इन्हींके लालन पालन
करनेकी जीवन धारण किया। वीर जननीने पुत्रको
गेरिक वस्त्र पहना चित्तोरके लिये जीवन उत्सर्ग
करनेमें लगा दिया। पीछे नव वधूके लिये कहीं पुत्र
भग्नोत्साह न हो जाये, इसीसे वह इसे भी रणसज्जासे
सुसज्जित कर और हाथमें भाला दे दृग्गन्धेन पर चढ़
गयी। चित्तोरके वीर पुत्रोंने देखा कि उस बालिकाने
भी चित्तोरके लिये प्राण उत्सर्ग किया था। फिर
किसी-से जीनेकी लालसा न रही। सबने मिलकर
भीषण जहरघृतका आयोजन लगाया। जन्मभूमिके
लिये (पुत्तू और जयमलकी भांति) सबने जीवन
चढ़ा दिया। (Tod's Rajasthan, Vol. I. p. 327.)

इसके पीछे सम्राट् पकघर चित्तोर जीत जब दिक्षी
लौट कर पहुँचे, उन्होंने (शत्रु होते भी) उक्त वीर-
वर पुत्तू और जयमलके वीरत्वसे सुन्ध हो दोनोंकी
प्रस्तरमूर्तियां बनवा कर दिक्षीके सिंहद्वार पर
रखवा दीं।

उक्त घटनाके प्रायः १०० वर्ष पीछे (१६६३ ई०
१ जुलाई) प्रसिद्ध भ्रमणकारी वर्णियारके दिक्षी प्रवेश
करते समय कोइलवा और मिरतेके सामन्तोंकी मूर्तियां
देख उनके हृदयमें भय और भक्तिका संचार हुआ था।
कोइलारी (हि० स्त्री०) १ अक्षरकी कोइरी गोल कहा।

यह नटखट पशुधर्म गरावमें लगा दी जाती है। इससे वह गरावमें भटका दे नहीं सकते। कारण वसा करने पर कोइलारी उनका गला दबाती है। २ गरावकी सुधी।

कोइली (हिं० स्त्री०) १ कोई कच्चा आम। इसमें किसी कारणसे चोट पहुँचने पर एक काका दाग लग जाता है। लोग समझते हैं कि आमके फल पर कोयलके बैठनेसे ही कोइली बनती है। यह खानेमें मीठी और अच्छी लगती है। २ आमकी गुठली। ३ कोयल।

कोइली—जुनागढ़ राज्यके वन्यजी मङ्गलका एक गांव। यह वन्यलीसे ४॥ मील उत्तर-पूर्व पड़ता है। १८७८-७९ ई० को दुर्भिक्षके कारण इसकी लोकसंख्या घटी थी। यहाँ बागोंमें कोयल बहुत होते हैं। इसीसे 'कोइली' नाम पड़ गया है। १७२८ ई० (संवत् १७८४) की जुनागढ़के तत्कालीन फौजदारने तुलसीगिरि मङ्गलको यह दे डाला था। १८११ ई० (१८६९ संवत्) की मङ्गल कृपालगिरिने दुर्भिक्ष पड़ने पर खूब दानपुण्य किया। १८३१ ई० की जुनागढ़के नवाब बहादुर खान् तर्नेतरके मङ्गल दामोदरगिरिसे जाकर मिले थे। मङ्गलने भक्तिपूर्वक उनका स्वागत किया। इससे प्रसन्न हो नवाब साहबने बोदकू तथा रङ्गपुर गांव, एक चाबी, एक पालकी और एक मशाल उनको भेंट किया था। मङ्गल लोग छोड़े पैदा करनेके बड़े शौकीन रहे हैं और आज भी उनके पास घोड़ों और घोड़ियोंकी कोई कमी नहीं। तर्नेतर 'त्रिनेत्र' शब्दका अपभ्रंश है। १८११ ई० की गायकवाड़की दीवान् विठ्ठलराव देवाजीने मन्दिरका संस्कार कराया। इसी अर्थका मन्दिरमें एक शिला-फलक लगा है। परन्तु मन्दिरके निर्माता भगवानाथ नामक साधु बतलाये जाते हैं। जो दूध हो पीते और १२६१ ई० की कच्छके अज्जारीसे यहाँ आ पहुँचे थे। आश्विन मासकी शुक्ला पक्षमेंकी यहाँ बड़ा मेला लगता जो २ दिन चलता है। मन्दिरके चरमें गणेशजीकी एक मूर्ति है। उसके दाहिने पैरके अंगूठे पर बरका एक पिकू उगा है। कहते हैं, उसमें सदा सर्वदा संत

ही पत्तियाँ रहती और उसका आकार कभी नहीं घटता-बढ़ता।

कोई (हिं० सर्व० वि०) अज्ञात वस्तुविशेष, एक न जानो चीज। २ अनिर्दिष्ट, अविशेष। १ एक भी।

कोकंब (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक दरखत। इसके सब अङ्ग खट्टे होते हैं।

कोक (सं० पु०) कोकते आदत्ते, कु क-अच्। १ चक्र-वाक, चक्रवा चिह्निया।

"कोक शोकप्रद पङ्कजद्रोही।

अवगुण बहुत बंदमा तोहो॥" (तुलसी)

२ खजूरी वृक्ष, खजूर। ३ भेक, मेंढक। ४ विष्णु। ५ वृक्ष, भेड़ीया। ६ ज्येष्ठिका, छिपकली। ७ ईशान्मृग, हिरन मारनेवाला कोई जानवर। यह कुत्ते जंसा और कपिलवण होता है। ८ कोई पण्डित। यह रतिशास्त्रके आचार्य माने जाते हैं। ९ वृष्ट सङ्गीत-भेद। इसमें नायक, नायिका, रसाभास, अलङ्कार, उद्दीपन, आलम्बन आदि अवश्य समझना चाहिये। कोकई (हिं० वि०) १ गुलाबी नीला, कौड़ियाला। (पु०) २ कौड़ियाला रंग, गुलाबी लिये दूये नीला रंग। कोकईरंग—शहाब, मजीठ और नील मिला कर बनाया जाता है।

कोककला (सं० स्त्री०) रतिविद्या, सन्भोगशास्त्र।

कोकड़ (सं० पु०) कोक कोक-ल-क लक्ष्म इत्वम्। चमर-पुच्छ विलेशय मृग, एक हिरन। इसका मांस धूम्र-वर्ण और पुच्छ चमरकी भांति लोमयुक्त होता है। कोकड़का मांस खास, वायु तथा कफनाशक और पित्त एवं दाहकारी है। (राजनिषध)

कोकदत्ता (सं० स्त्री०) हस्तरक्षक, मेहदीकी पत्ती नखरक्षक देखो।

कोकदेव (सं० पु०) कोकशक्रवाकः स इव दीव्यति, कोक-दिव-अच्। १ कपोत, कबूतर। २ कोकशास्त्र नामक रतिशास्त्रके प्रणेता।

कोकन (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक कंसा दरखत। यह आसाम और पूर्ववङ्गमें उत्पन्न होता है। पत्र जाड़ेमें झड़ पड़ते हैं। काष्ठ अभ्यन्तरमें सफेद निकलता है। उस पर पीतवर्ण रेखायें होती हैं। यह

देखनेमें मृदु रहते भी न फटता और न लचता है। कोकनकी लकड़ी चायकी सन्दूकों, नावों और मकानोंमें काम आती है।

कोकनद (सं० क्री०) कोकान् चक्रवाकान् नदति पाम् विकाशेन, कोक-नद-पद् भूतभूतचिज्यः । १ रक्तकुसुद, सास कोई । २ रक्तपद्म, सास कमल । यह कटु, तिक्त, मधुर, शीतल, सन्तपण, वृष्य और रक्तदोष, कफ, पित्त तथा वातशमन होता है । (राजनिघण्टु)

कोकनदच्छवि (सं० पु०) कोकनदस्य रक्तोत्पलस्य हवि रिव हविर्दीप्तियस्य । १ रक्तवर्ण, सास रंग । (त्रि०) २ रक्त वर्णविशिष्ट, सास ।

कोकना (हि० त्रि०) कक्षा करना, संगर डालना, बखिया करनेके लिये कपड़ेमें सूईसे दूर दूर पर धागा घटकाना ।

कोकनाद (काकनाड़ा)—मद्राज प्रांतके गोदावरी जिलेका एक बन्दर और नगर। यह अक्षा० १६° ५७' ७०" और देशा० ८२° ११' ५०" पर अवस्थित है। कोकनाद ही गोदावरी जिलेका प्रधाननगर है। यहाँ मजिस्ट्रेटकी अदालत जेल, डाकघर, तारघर और विद्यालय विद्यमान हैं। बन्दरनाथ जीनेसे कोकनादमें सांस्तुतिक शुद्ध वस्तु करनेके लिये भी एक सरकारी कार्यालय है। जमनालपुर नामक ग्राम पहले कोलम्बाजोंके अधिकारमें रहा, १८२५ ई० में अंगरेजोंको सौंपा गया। आजकल वह इसी नगरकी म्युनिसिपैलिटीमें मिला गया है। रुई, चावल, चीनी, अलसी यहाँसे बाहर बहुत भिजी जाती है। आनेवाली चीजोंमें लोहा, ताँबा और शराब खास है। अंगरेज, फरासीसी आदि बहुतसी जातियाँ यहाँ व्यवसाय करती हैं। जहाजोंके रहनेको इसके पासका समुद्र बहुत उपयोगी और निरापद है। फिर भी इसका पानी भीरे भीरे घटता जाता है। १८६५ ई० को यहाँ समुद्रके जलपर एक आखोकमृदु बना था। परन्तु बीचमें रेत पड़ जाने पर उससे प्रयोजन सिद्ध न होती देख १८७८ ई० को दूसरा बनाया गया। कोकनादमें ४७ गा ४४ घर हैं। जमनालपुरको लेकर इसकी लोक-संख्या कोई तीस हजार होगी। उसमें हिन्दू ही अधिक हैं।

कोकनामराठा—कारवार और चकोलाके रहनेवाले कुछ मराठे। इनके नामसे मालूम पड़ता है कि वह कनाड़ाके उत्तर तटसे आये और सम्भवतः गीम्वाउनका घर था। यह चत्रिय होनेका दावा करते, परन्तु लोग इन्हें सम्बुद्ध ही समझते हैं। इनके नामोंके पीछे प्रायः 'नायक' शब्द लगता और साधना, देशाई या सायल उपाधि पड़ता है। इनमें अधिकांश लोग साफ सुथरे, लम्बे और गींघुंवे रंगके होते हैं। पुरुषोंसे स्त्रियाँ सुन्दर और कोमल होती हैं। यह श्रेणियोंकी तरह गीम्वाजीज भटकेके साथ कोकनी भाषा बोलते हैं। इनका घर कच्चा रहता और उसपर छप्पर पड़ता है। छत नहीं रखी जाती। बहुतसे लोग एक ही साध-मिलजुल कर रहते और कुछ पुरुष तथा स्त्रियाँ घरका प्रबन्ध करती हैं। इनका साधारण भोजन चावल और मछली है। परन्तु बकरेका मांस, मुर्गी और भिकार भी खाया जाता है। निरङ्कार, महामाई, रौखनाथ, जतगा और खेतरा देवताको महालयके दिन पिठ-उद्देश मण्डप बलि करते हैं। इनमें ताड़ी पीनेकी आलस है। मर्द तम्बाकू पीनेका शौक रखते और औरतें पान खाती हैं। पुरुषोंकी पोशाक लम्बा चपकन, सरका रुमाक और भूरा या कासा कम्बल और गड़ना चंगूठी, छत्ता, बाकी और चाँदीकी करधनी है। वह चोटी और मूँहको छोड़ सब बाल बनवा डालते हैं। स्त्रियाँ साड़ियोंको पेशेके बीचसे शिर पर से जाकर ओढ़तीं और चोली नहीं बाँधतीं। उनके निबर नय, बाकी, चार, काँचकी चूड़ियाँ और चंगूठी-छल्ले हैं। धारवाड़के हुबली और वेल्गांवके श्रापुरसे कपड़ा मंगाया जाता है। कोकने खच्छ, मितथयी, गन्धीर और ईमानदार होते, परन्तु सुस्त और निर्बल रहते हैं। स्त्रियाँ बहुत लड़ाका होती हैं। पुरुष किसानों, मजदूरों और चिड़ी रखानी करते हैं। घरका काम करनेके सिवा स्त्रियाँ पुरुषोंको खाद इकट्ठा करने या खेतको पटुंछाने, पौधा लगाने, निराने, काटने, काटने और पछोड़नेमें भी सहायता देती हैं। यह आते हैं और सब देवताओंको पूजते हैं। भूतों प्रेतों और जादू टोना पर बीनीकी बड़ा विश्वास है। रौखनाथ भोजके दिन कोमार पावक

अपने हाथकी हथेली कुरीसे और ३ बूंद लहू भूमि-
पर गिराता है। करवाड़ ब्राह्मण इनका विवाह और
अन्तर्द्विजिया संस्कार कराते हैं। पुरोहितोंको बावा
कहते जो कोकना जातिके हों रहते हैं। कारवारके
सदाशिवगढ़के पास कृष्णपुरमें उनका निवास है।
विवाहों, छठीके दिन, महालयाकी रातकी और दूसरे
अवसरों पर उन्हें पूजा करनी पड़ती है। वड़ विठोवा-
की एक मूर्ति लाते, फूल फल धूप दीपसे उसकी पूजा
करते और आताओंको अर्घ्य समझा समझा कर तुका-
रामके भजन गाते हैं। पूजा समाप्त होने पर उन्हें
खिलाया पिलाया जाता है। कहते हैं कि पहले बावा
एक पुण्यशरीर थे। अपनी स्त्रीके मरने पर वह बराबर
सालमें एक बार लड़केको लेकर पण्डरपुर विठोवा
दर्शन करने जाते थे। लड़के होने पर यह अपने ही गये
और वार्षिक नियमसे विठोवाके दर्शनको न पहुँच सके-
परन्तु उनको दर्शनपेक्षा घटी न थी। विठोवाने यह
देख और उनकी श्रद्धाभक्तिसे सन्तुष्ट हो एक बार स्वप्न-
में दर्शन देकर उनकी कहा था, यदि वह उनके लिये
एक मन्दिर बना देते, वह उसीमें जाकर रहने लगते।
फिर कृष्णपुरमें विठोवाका मन्दिर बनाया गया।
कृष्णपुरकी विठोवा मूर्ति पत्थरकी बनी, कीर्ति १५ फुट
अं चौ और मनुष्यकी भाँति दो हाथ रखनेवाली है।
वार्षिक महोत्सव और दूसरे अवसरों पर मूर्तिको कपड़ा
पहनना दक्षिणी पगड़ी बांधते हैं। जो मूर्तियां लोगोंके
वर भजन भाव होनेके समय जातीं, वह ५ दश अं चौ
पीतलकी बनी होती हैं। इन्होंने विठोवा देवके सम्मानार्थ
प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष शुक्ला दशमीको एक मेला लगता
जो ५ दिन चलता है। फिर प्रति तृतीय वर्षको किसी
पासकी पर रखके पीतलकी एक मूर्ति पण्डरपुर ले
जाते और राहमें हरिक गांव पर सवारों ठहराते हैं।
कार्तिकी एकादशीसे दो-एक दिन पहले वह पण्डरपुर
पहुँच रहते, और एकादशीको चन्द्रभागमें मूर्ति-
को स्नान कराते हैं। फिर मूर्तिको पण्डरपुर मन्दिरके
तीन प्रदक्षिण कराये जाते हैं। लड़कोंका १४से १८
तथा लड़कियोंका विवाह ८ से १२ वर्षकी अवस्थामें
होता है। विधवाविवाह और बहुविवाह प्रचलित है।

यह बच्चोंको छोड़ भवदाह करते हैं। ११ दिन मृता-
शौच रहता है। बालकोंको मराठी लिखना पढ़ना
सिखाया जाता है।

कोकनी (हिं० पु०) १ तितिरविशेष, किसी प्रकारका
तीतरा। २ दिल्ली और सहारनपुरका समूह। ३ किसी
प्रकारका रंग। यह गह्राव, लाजवर्द और फिटकिरीसे
बनता है। (वि०) ४ लुट्ट, नन्हा। ५ तुच्छ, घटिया,
कम कीमत।

कोकबन्धु (सं० पु०) सूर्य।

कोकम (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक सदाबहार पेड़।

यह दक्षिणात्यमें उपजता और छोटा रहता है।

कोकयातु (सं० पु०) कोकैः परिकरभूतै यातयति
हिनस्ति याति गच्छति कोकरूपो याति वा कोक या
बाहुलकात् तुक्। राक्षसविशेष। यह राक्षस चक्रवा-
कोंसे वेष्टित हो गमन किंवा हिंसा करते अथवा चक्र-
वाकका रूप बना हिंसामें लगते हैं। (चक्र०। १०४। १२)

कोकरक (सं० पु०) देशभेद। (भारत ६। २४०)

कोकलहाट—गया जिलेकी साकरी उपखण्डका एक
जलप्रपात। यहां ६० हाथ ऊपरसे पानी नीचे गिर
अपूर्व शोभा धारण करता है। माघ मासमें कोकलहाट
भरनेपर बड़ा मेला लगता है।

कोकव (सं० पु०) रागविशेष। यह पूर्वी, बिलावल,
केदारा, मारु और देवगिरीके योगसे बनता है।

कोकवा (हिं० पु०) वंशभेद, किसी प्रकारका बाँस।
यह ब्रह्मदेश और आसाममें अधिक उत्पन्न होता है।
इससे टोकरे तैयार किये जाते हैं।

कोकवाच (सं० पु०) कोकल वाचेव वाचा वाक् रवो-
यस्य। कोकल चिरन।

कोकशास्त्र (सं० लो०) कोक नामक पण्डितका
बनाया हुआ रतिशास्त्र। इसमें नायक नायिका लक्ष्य,
रतिप्रसङ्गके आसन, वाजीकरण ओषध, यन्त्र मन्त्र
आदि अनेक विषयोंका वर्णन किया गया है।

कोकसम्भव—अमरकान्तके एक टीकाकार।

कोका (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह दक्षिण अमे-
रिकामें उत्पन्न होता है। इसकी छाल पत्ती चाय और
कढ़वेकी भाँति उत्तेजक है। इसके खानेसे बकावट

घोर भूख नहीं समझ पड़ती। दक्षिण अमेरिकाके पहाड़ी लोग पर्वत पर चढ़नेसे पहले थोड़ीसी सूखी पत्तियां खा लिया करते हैं। उनमें एक प्रकारका नशा रहता है। अभ्यास पड़ जानेसे फिर इसे छोड़ना कठिन है। कोकन कोकासे ही होती है।

कोका (तु० पु० स्त्री०) धात्रीका सन्तान, धायका लड़का या लड़की।

कोका (हि० पु०) १ कबूतर। (स्त्री०) २ कुसुदिनी।
कोकाय (सं० पु०) कोकः मञ्जरील्लः तद्वदग्रमस्य, बहुव्री०। समष्टिल्लुच, एक पेड़।

कोकाविली (हि० स्त्री०) १ नीली कुसुदिनी। यह पुराने भीलों या तालाबोंमें लगती है। पुष्प नीलवर्ण, हृदय और त्रिभुज का होता है। इसके बीजका पाटा व्रतमें फलाहारकी भांति व्यवहार किया जाता है। बीज भूननेसे लावा बन जाते हैं। उन्हें चाशनीमें डाल कर लच्छू बनाते हैं। २ बघोला।

कोकामुख—भारतका एक प्रसिद्ध तीर्थ। ब्रह्मचर्य और व्रतको अवलम्बन करके कोकामुख तीर्थमें स्नान करनेसे अपने पूर्वजन्मकी जातिका स्मरण आ जाता है।

(भारत २। ८४)

कोकाह (सं० पु०) कोका इव पाहन्ति, पा-हन-ड।
१ पाण्डुवर्णघोटक, पीला घोड़ा। २ शुक्लाश्व, सफेद घोड़ा।

कोकिल (सं० पु०) कुक आदाने इत्यच्। सलिलान्ननिर्मि-
तमिन्नमिन्नितुष्टिभृत्किल्लमृत्तम्। उच्यते। १ पिक, कोयल।

(रामायण २। ५२। २)

" नील कोकिल कोर चकोरा।

कूजत विहंग नचत कल मोरा ।" (तुलसी)

इसका संस्कृत पर्याय वनप्रिय, परभृत, पिक, पर-पुष्ट, काल, वसन्तदूत, ताम्बाक्ष, गन्धर्व, मधुगायन, वासन्त, कलकण्ठ, कामान्ध, काकलीरव, कुहुरव, अन्य-पुष्ट, मत्त, मदनपाठक, काकपुच्छ, कलघोष, अलिम्बक, कामजाक, पञ्चमाश्व, मधुखर, कुङ्कण्ठ, घोषयिज्ज, कलध्वनि, गातु, अलिपक, अलिमक, अन्यभृत, अव-कलिट्, मधुवन, कामताल, कुङ्कुमुख, मधुकण्ठ, काक-पुष्ट, आह्वपुष्ट, मधुघोष और वसन्त है। इसे तेजगुर्मे

कोकिलपिका, तामिलमें कौड़ियाया और अंगरेजीमें कुकू (Cuckoo) कहते हैं। (Eudynamys Orientalis) इसकी बोलीसे ही इसका नामकरण किया गया है। कोकिलके स्वरको संस्कृतमें कुहुरव कहते हैं। हिन्दीमें वही कूक समझा जाता है। इसके स्वर पर बहुतसी कविता बनी है। युरोप और भारतका कोकिल प्रायः एकजातीय ही है। यह दूसरे पक्षीके घोंसलेमें अपना अण्डा दे पाता है। भारतका कोकिल कौवेके घोंसलेमें अपना अण्डा देता है। संस्कृतमें परभृत वा अन्यपुष्ट नाम इसीलिये रखा गया है कि उसके बच्चे-को दूसरा प्रतिपालन करता है। कोकिल भारत, सिन्धु, मलय और चीनमें देखा जाता है। वसन्त कालको इसको बोली सुन पड़ती है। इसीसे कोकिल वसन्तका सहचर कहलाता है। भारतमें शस्यका संप्रदाय होने पर यह बोलीने लगता है। इङ्गलैण्डमें आज भी कोयलकी पड़ली कूक सुनने पर मजदूर एक दिन कुट्टी ले आनिद प्रमीदमें बिताते हैं। बहुत-से लोगोंका विश्वास है कि इसके बोलीते समय हाथमें पैसा रहना अच्छा नहीं। वर्षाकालको कोयलका गला बिगड़ जाता है। यह देखनेमें काला और कौवेसे छोटा होता है। आंख लाल रहती है। कोकिल विभिन्न जातीय होता है, जैसे युरोपका कुकू (Cuculus Canorus), छोटा कोकिल (Cuculus poliocephalus), हिमालयका कोकिल (Cuculus Himalayanus), पाटल रेखावृत्त कोकिल (Cuculus Sonneratii), भारतीय कोकिल (Cuculus micropterus), पहाड़ी कोकिल (Cuculus striatus), राजकोकिल (Hierococcyx varius or Nisicolor or Sparverioides) और शोकोहीपक कोकिल (Polyphasianigra) इत्यादि। कोकिलका मांस खिल और पित्तनाशक है। (शरीरसंहिता)

२ उवलन्त अङ्गार, जलता अंगार। ३ सविष सौम्य कीटविशेष, एक जहरीला कोड़ा। इसके काटनेसे कफके रोग उठ खड़े होते हैं। ४ कोई चूड़ा। इसके विषसे शरीरमें उग्रधन्वि पड़ती और अतिशय ज्वर तथा जलन उठती है। भेक और नीलवृक्षका जाय

धीमें पाक करके व्यवहार करनेसे इसका प्रतीकार होता है। (सप्त.) ५ बदरीफल, बेर। ६ जम्बोविशेष। यह क्षयका एक भेद है। इसमें ५२ गुह, ४८ लघु और १५२ मादा लगते हैं।

कोकिलाक्ष (सं० स्त्री०) कोकिल सञ्चार्य कन्। जलता हुआ अंगारा।

कोकिलनयन (सं० पु०) कोकिलस्य नयनमिव रत्न-पुष्पमस्य, बहुव्री०। कोकिलाक्षक्षुप, तलामखानेका पीदा।

कोकिला (सं० स्त्री०) १ काकोली। २ कोकिलस्त्री, मादा कोयल।

कोकिला—रसालु नामक राजाकी महिषी। रावलपिण्ड-से ५ कोस दक्षिणपूर्व खयरमूर्ति नामक स्थानमें रसालु रहते थे। अनुमान ई० शताब्दीसे २०० वर्ष पहले वह राजत्व करते थे। उसी समय पंजाबमें अटक नामक स्थानके निकट खैराबादमें जदी नामक कोई राजा रहे। रसालु जब वासस्थान छोड़ लुलना-कोङ्कण चले गये, जदी राजा उनकी पत्नी रानी कोकिलाके प्रणयमें आसक्त हुए। उन्होंने खयरमूर्तिके भवनमें जा रानी कोकिलासे प्रेमाशाय किया था। कहते हैं—रानीके एक शुकपक्षी रहा। उसने रानीका पसदाचरण देख क्षितना ही रोका था। रानीकी अपनी बात सुनते न देख उसने कहा—मुझे छोड़ दो। रानीने तोता उड़ा दिया था। पक्षी घरसे निकल लुलना-कोङ्कण पहुँचा और प्रत्यूषको रसालुके घर जा उनकी जगा कर कहने लगा—आपके घरमें चोर घुसा है। रसालु तोतेकी बात सुन सत्वर घर पहुँचे थे। वह समस्त हत्तान्त सुन उन्होंने रानीकी परित्याग किया। परित्यक्त कोकिला पीछे दूसरे किसी व्यक्तिके प्रेममें फँस गयीं। उसके फलसे तेज, चेज और सेज नामक तीन सन्तान उत्पन्न हुए। बहुतसे लोग अनुमान करते कि इन्हीं तीनोंसे तुवान, चेबो और स्याल जाति उत्पन्न हुई हैं। (Cunningham's Arch. Sur. Reports, Vol. V.)

कोकिलाक्ष (सं० पु०) कोकिलस्याक्षीव पुष्पमस्य, कोकिलाक्षि समासे टच्। अक्षोऽवर्णनात्। पा ५। ४। १६। १ वृक्षविशेष, तालमखाना। इसका संस्कृत पर्याय—

इक्षुगन्धा, काण्डेक्षु, इक्षुर, क्षुर, मृगाली, मृहली, मूरक, मृगालप्रण्टी, वज्रास्त्रि, मृहला, वज्रकण्टक, इक्षुरक, वज्र, मृहलीका, पिकेक्षणा और पिच्छिला है। श्वेत कोकिलाक्षकी बीरतद, त्रिक्षुर, क्षुरक, शुकपुष्प और कुसाक्षक कहते हैं। रत्नकोकिलाक्षका नाम क्षुरक और अतिच्छुर है। यह आमवात और रक्तदोषको दूर करता है। (राजनिघण्टु) कोकिलाक्षका बीज शीतल, स्वादु, कषाय, तिक्त, गुह, वृष्य और गर्भस्थापन है।

(वेद्यनिघण्टु)

कोकिलाक्षक, कोकिलाक्ष देखो।

कोकिलाक्षी (सं० स्त्री०) कोकिलाक्षबीज, तालमखाना।

कोकिलानन्द, कोकिलावास देखो।

कोकिलाप्रिय (सं० पु०) सङ्गीतको एक ताल। इसका दूसरा नाम परमलु है।

कोकिलारव (सं० पु०) १ तालका कोई भेद। २ कोयलकी बोली।

कोकिलावर्ति (सं० स्त्री०) नेत्ररोगका वर्तिविशेष, आंखमें लगायी जानेवाली एक सलाई। त्रिकटु, लोहिका चूर्ण, समुद्रफेन, त्रिफला और अज्जनके संयोगसे बनाई गोलो पानीमें घिस कर लगानेसे तिमिरको दूर करती है। इसीका नाम कोकिलावर्ति है। (चक्रदण)

कोकिलावास (सं० पु०) कोकिलस्य आवासः, ६-तत्। राजान्मृग, आमका पेड़।

कोकिलासन (सं० स्त्री०) रुद्रयामलोक्त एक आसन। वायुका सञ्चार निरोध करके दोनों हाथ ऊपर उठाने चाहिये। उसके आगे दोनों अंगूठे बांध खिर चित्तसे बैठते हैं। फिर पद्मासन लगा जानुके ऊपर अवस्थिति करनी पड़ती है। इसीका नाम कोकिलासन है।

आसन देखो।

कोकिलेक्षु (सं० पु०) कोकिल इव इक्षुः क्षयवर्णत्वात्। काण्डेक्षु, काकोली जख।

कोकिलेष्टा (सं० स्त्री०) महाजम्बूवृक्ष, बड़े जासुनका पेड़।

कोकिलोत्सव (सं० पु०) कोकिलानामुत्सवोऽत्र, बहुव्री०। आम्बुवृक्ष, आमका पेड़।

कोकूपा, कोकाप देखो।

कोकूपाखण्ड—उड़ीसा प्रान्तके कटक जिलेका एक परगना। इसका क्षेत्रफल केवल २०६ वर्गमील है।

टांगी और हरिघण्टा इसके प्रधान नगर हैं।

कोकुर—कश्मीर राज्यका एक प्रस्नवण। यह पीर-पंजाल पर्वतकी उत्तर और निम्नभागमें अक्षा० ३३° ३०' उ० तथा देशा० ७५° १८' पू० पर अवस्थित है।

कोकुर भरना ६ सुर्खोंसे बाहर निकल एक छोटी नदीके आकारमें बहता और अन्तकी बरेङ्ग नदीसे जा मिलता है। इस प्रस्नवणका पानी बहुत ही स्वास्थ्यकर है।

कोकुराह (सं० पु०) सुखपुण्ड्रकयुक्त अश्व, टीकेदार घोड़ा।

कोकेन (अंग० स्त्री०) औषधविशेष, एक दवा। यह कोका नामक वृक्षके पत्तोंसे प्रसृत होती है। इसमें कोई गंध नहीं और वर्ण सफेद रहता है। कोकेन औषधकी भांति खायी और मरहमोंमें मिलायी जाती है। पांख-जैसे कोमल अङ्गोंपर भी इसे प्रस्नचिकित्सा करनेसे पड़ने लगा देते हैं, जिसमें वह सुख पड़ जाये। थोड़े दिन हुए भारतमें कोकेन लोग पानके साथ नशेकी तौर पर खाने लगे थे। परन्तु सरकारने कानून बना यह बात उठा दी। युरोप और अमेरिकाके नशेवाज इसे नशेकी भांति संघते हैं। भारतमें अब भी कोकेन नशेके लिये छिपा छिपा कर बहुत बेची जाती है।

कोकी (हिं० स्त्री०) काण्डी, मादा कौवा।

कोकिलि—कलिङ्ग देशके एक चालुक्यवंशीय राजा। राजमहेन्द्रीमें इनकी राजधानी रही। इन्होंने ६ मास-मास राजत्व किया था।

कोख (हिं० स्त्री०) १ पेट। २ पेटकी दोनों ओरका स्थान। ३ गर्भाशय, हमल। जिस स्त्रीके बच्चे होकर मर जाते, उसे कोखजली और बांझकी कोखबन्द कहते हैं।

कोमी (हिं० पु०) पशुविशेष, एक जानवर। यह सोमकी-जैसा देख पड़ता, कुछ बांध कर रहता और लपकी बड़ी जानि करता है। सोमोंके कहनानुसार

कोमियोंका मुख्य सिङ्को भी आक्रमण करता और उसके टुकड़े टुकड़े कर डालता है। जिस वनमें यह पड़ते, शेर निकल भगते हैं।

कोङ्क (सं० पु०) एक देश। (मानवत ५। ६। ८)

कोङ्कण (सं० पु०) जनपदविशेष, एक देश। कूर्मविभागमें दक्षिणदिक्को यह देश निरूपित हुआ है।

(उत्तरसंहिता १४ अ०, भारत ६। ८। ५८)

पूर्वकाल कोङ्कण एक विस्तृत जनपद-जैसा गिना जाता था।

केरल, तुलुख, सौराष्ट्र, कोङ्कण, करवाट, करवाट और वर्वर—सात देशोंका नाम कोङ्कण है। इसे सप्त-कोङ्कण भी कहते हैं। (सहाद्रिखण्ड, उत्तरार्ध ६। ४८)

सहाद्रिखण्डमें लिखा है,—‘सहाद्रिके शिखरदेशमें १०४ योजन विस्तृत कोङ्कण नामक देश है। इस देशमें केवल नष्ट चण्डाल रहते हैं।’ (सहाद्रि० १। २। १८) शतिसङ्गमतन्त्रमें लिखा है कि अभ्यङ्गसे कोटिदेशके बीच समुद्रप्रान्तवर्ती जनपद कोङ्कण कहलाता है।

कोङ्कणदेश दक्षिणात्यके पश्चिम अंगमें अवस्थित है। अरवसागर और पश्चिमघाट नामक पर्वतश्रेणीके अन्तर्गत जो भूभाग है, उसीको कोङ्कण कहते हैं। अपठ लोग कोङ्कण शब्दको बिगाड़ कर ‘कोकन’ कहने लगे हैं। साधारणतः समुद्रतटके इस प्रदेशमें दक्षिण पश्चिमसे वायु या जलदृष्टि करती है। जहाँ ऐसा हुआ करता, उसी स्थानका नाम कोङ्कण है। जिस पार्श्ववर्ती स्थानमें ऐसा नहीं होता, उसे लोग ‘देश’ कहा करते हैं।

कोङ्कण प्रदेश पश्चिमघाट (सहाद्रि)से क्रमशः ठालू हो समुद्र तक चला गया है। इसके भीतरसे कई एक सामान्य सामान्य नदियाँ प्रवाहित हो समुद्रमें जा गिरी हैं। इसमें बहुतसे बन्दरगाह हैं। एक ही जगह इतने बन्दरगाह और कहीं देख नहीं पड़ती। उपकुल उच्च और सरल रेखा-जैसा रहनेसे बहुत दूर तक दृष्टि पड़ती है। यहाँ प्रतिदिन दो प्रकारका वायु चलता है। प्रातःकाल भूभागसे समुद्रकी ओर जाता और पार्श्ववायु समुद्रसे भूमिकी ओर आता है। पुरवाँका वेग समुद्रमें २० कोस तक अनुभूत होता है।

कोङ्कणका देष् ११० कोस और प्रस् १७।१८ कोस होगा। अधिकांश ही पर्वत्य है। बीच बीच जंगल भी देख पड़ता है। पर्वत प्रायः १२२२ हाथसे २६६६ हाथ तक ऊँचे हैं। गिरिपथ दुरारोह हैं, शकट आदि उन पर गमन कर नहीं सकते। अधित्यका भूमिके स्थान स्थान पर पर्वतोंकी शाखायें निकल पड़ी हैं।

आजकल कोङ्कण प्रदेश २ भागोंमें विभक्त है। एक भागको उत्तर कोङ्कण और दूसरेको दक्षिण कोङ्कण कहते हैं। दोनों ही विजयपुरके अन्तर्गत रहे। यहाँ सब प्रकारका शस्य उत्पन्न होता है। उसमें पाट और नारियल अति उत्कृष्ट रहता है।

पहले यहाँ लोग जहाजोंको लूट जीविका निर्वाह करते थे। १८ वीं शताब्दीको भी जो जहाज इस राह में आते, कुछ कर देकर छुटकारा पाते थे। कर न देनेसे जहाज लूट लिया जाता था। कोङ्कणका अधिकांश अंगिरिया वंशके अधिकारमें रहा। १७५६ ई० को क्लाइव और वाटसन साहबने जाकर उन्हें निकाल बाहर किया था। फिर इसका बहुतसा अंश पेशवाने अधिकार कर लिया। १८१८ ई० को यह स्थान अंगरेजोंके अधिकारमें पहुँचा। उन्होंने इसे उत्तर और दक्षिण भागमें बाँटा है। उत्तर भागमें पहाड़ों पर अनेक दुर्ग हैं। उनमें बेसिन, (बसर) चारनाला, केल्वी, महिम, सिरिगम, तेरापुर, चिबोचन, धनु और जमरगाँव प्रधान हैं। गम्भीरगढ़, सेगीयात, आसिवा, भूपतिगढ़ और पुरुभुल नामक गिरिस्थलों पर जो मिले रहे, वे तोड़ डाले गये। गीतौरा, तुकमुक, गोज, विकटगढ़ या पाइव महुलि, मल्लगढ़ और असुरि नामक कई दुर्ग मध्यके प्रदेशमें अवस्थित हैं। अंगरेजोंने बेकाम बता इनमें कई किलोंको तोड़ डाला है। सीमान्त-प्रदेशमें सद्याद्रिके ऊपर बहरामगढ़, गोरखगढ़, कोतलगढ़, और सिद्धगढ़ नामक कई दुर्ग खड़े हैं। दुर्गारोह रहनेसे इन पर चढ़नेके लिये राह बना दी गयी है।

अंगरेजोंकी अमलदारीमें कनाड़ा, रत्नगिरि, कोलाबा, बम्बई और थाना विभाग इसके अन्तर्गत आ

गया है। आजकल कोङ्कणकी सीमा इस प्रकार है—उत्तरकी ओर गुजरात, पूर्व तथा दक्षिण मद्राज प्रदेश और पश्चिमको समुद्र।

कोङ्कणक (सं० पु०) कोङ्कण स्त्राय कन्। कोङ्कण देश।
(हरिवंश १४ प०)

कोङ्कण कुनबी—बम्बईके कनाड़ा जिलेकी एक जाति। इसको संख्या कोई १४८१२ होगी। हलीयानमें बहुसंख्यक और कारवाड़ तथा अक्कोलामें अल्पसंख्यक काले (कोङ्कण) कुनबी पाये जाते हैं। दक्षिण-पश्चिम गोवाके कुनबियोंसे इनकी रिश्तेदारी है। रामलिङ्ग, नायकी, मोनाई, श्रीनाथ, भूतनाथ और भूतनाथ प्रधान देवता होते जिनके मन्दिर गाँवोंमें बने हैं। सब लोग एक साथ खाते पीते हैं। इनका रङ्ग काला है। यह बांसकी बनी कच्ची झोपड़ियोंमें रहते हैं। स्त्रियाँ अपने बालोंको फूसोंसे सजाती हैं। हलदी, मिर्च और नमककी तरकारी बनती है। नशेसे इन्हें बड़ा परहेज है। यह भगड़ालू होते, परन्तु सच्चे और सादे रहते हैं और अपनी ईमानदारीके लिये मशहूर हैं। इनका पुश्तानो पेशा जङ्गली जमीन जीतना है, जिसके कम पड़ जानेसे इन्हें मिहनत मजदूरी करना पड़ती है। स्त्रियाँ खाना पकानेके सिवा खजूरकी चटाइयाँ बनाती हैं। शिववाहन वृषभ वा नन्दीकी प्रधान रूपसे पूजा होती, जिनका मन्दिर स्याउलवोमें बना है। बहुतसे लोग प्रति वर्ष उलवीकी तीर्थयात्रा करते, जब फरवरी मासको १० दिन तक वहाँ मेला लगता है। नारियलकी जटा निकाल करके उसको पूर्वपुरुषों जैसा पूजते हैं। इनको विश्वास है—अकालमृत्यु होनेसे मनुष्य भूत होकर लोगोंको सताता है और गर्भवती मरनेसे सुड़ेल बनकर चढ़ती है। होलोको लोग उलवीके मन्दिरमें कटियाँ घुमा घुमा कर खड़काते और नाचते गाते हैं। बच्चे के पहले पहले जंपरी दाँत घाना अशुभ समझा जाता है। विधवाविवाह और बहुविवाह प्रचलित है। वरकर्ता विवाहका प्रस्ताव करता है। मरणके पोछे ३ दिन तक अशोच रहता है। यह सुदेको जमीनमें गाड़ते और मूँछें सुँडा डालते हैं।

कोङ्कण कुम्हार—बम्बई कनाड़ा जिलेकी कारवाड़ और यक्नापुरमें रहनेवाली एक कुम्हार जाति। इनकी संख्या कोई छहसौ होगी। यह गोवाके जसगांवसे आये हुए मालूम पड़ते हैं। कनाड़ामें ब्राह्मणोंके जानेसे पहले यह स्थानीय पुरोहित-जैसे रह चुके हैं और स्थानीय देवताओंके कुछ मन्दिरोंमें आज भी मङ्गली करते हैं। कारवाड़के असनोटी स्थानमें रामनाथके उद्देश उत्सर्ग किया हुआ एक मन्दिर है। उसमें सिवा कोङ्कणी कुम्हारके दूसरा मङ्गल नहीं हो सकता। ग्राम्य देवताओंके लिये पत्थरकी मूर्तियां और पात्रबनानेकी इनका मोरुसी हक है। यह किसी किस्मका नशा नहीं खाते पीते और खूब परिश्रमी, मितव्ययी और सुशील होते हैं। मझेके बर्तन और खपड़े बनाना इनका काम है। स्त्रियां पुरुषोंको सहायता पहुंचाती हैं। यह ग्राम्य देवताओंको पूजते और जादूटोनामें दृढ़ विश्वास रखते हैं। इनकी कुलदेवता पुरीश हैं, जिनकी पीतलकी मूर्ति बनाकर बहुतसे लोग घरमें रखते हैं। लड़कियोंका ८से १२ और लड़कोंका १४से २० वर्षके बीच विवाह होता है। विधवाविवाह निषिद्ध है। यह अपढ़ लोग हैं।

कोङ्कण खारबी—बम्बईके कनाड़ा जिलेमें समुद्र किनारे रहनेवाली एक जाति। यह खम्बातके खारकियोंकी, जिनसे आचार व्यवहारमें बहुत मिलते जुलते, एक शाखा समझ पड़ते हैं। कांतरादेवी या वाणेश्वरी कुलदेवता हैं, जिनका मन्दिर अहोलाके औरसामें बना हुआ है। खारबी बड़े परिश्रमी हैं। यह समुद्रमें मछली मारते पार अच्छे मज्जाह होते हैं। स्त्रियां भाजन बनातीं, सन बटतीं और मछलियां बेचती हैं। शूद्रोंकी स्नातं मठके प्रधान इनके गुरु होते हैं। लिखने पढ़नेकी चाल कम है।

कोङ्कणस्थ ब्राह्मण—दक्षिणात्यके ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी। यह चितपावन कहलाते हैं। मराठी ब्राह्मणोंमें यही प्रधान है। महाराष्ट्रराज पेशवा इसी श्रेणीके थे। उनके अभ्युदयसे यह जाति भी प्रबल पड़ गयी। कोङ्कण और पूना जिलेमें विशेषतः इनका वास है। पेशवाके अधिकारकाल यह नाना देशोंमें फैल पड़े।

महाराष्ट्रमें कहीं इन्हें चितपावन, कहीं चितपोल और कहीं चिपलून कहते हैं।

चितपावन या चितपोल नामकी उत्पत्ति पर सच्चा-दृष्टिमें लिखा है—

इसके पीछे ग्राह और यज्ञोपलक्षमें समस्त ब्राह्मणों और ऋषियोंको निमन्त्रण किया गया, परन्तु किसीको आया हुआ न देखा भागव मन ही मन विड़ गये और सोचने लगे—‘हमने गया क्षेत्र निर्माण किया है। हम एक नूतन कर्ता हैं। ब्राह्मणोंके न आनेका क्या कारण है? अथवा उन्होंने अपना क्या उद्देश रखा है? जा हो, हम नूतन ब्राह्मण सृष्टि करेंगे।’

किन्तु कोङ्कणस्थ ब्राह्मण अपने आप कहा करते कि हमारा चित पवित्र है और हम दूसरेका चित पवित्र करते हैं, जिससे हमारा ‘चितपावन’ नाम पड़ा है। सच्चादृष्टिमें अपर स्थानमें यह ब्राह्मणश्रेणी चित-पुण्यात्मा नामसे भी वर्णित हुई है। (उत्तरार्ध ६।५८) १७१५ ई० के पेशवा बालाजी विश्वनाथके अभ्युदयमें यह सप्तकोङ्कणके मध्य श्रेष्ठ समझे गये। कोङ्कणस्थ ब्राह्मण परशुरामशैलके निकटस्थ चिपलून ग्राममें प्रतिष्ठित परशुरामकी मूर्ति पूजते हैं। इसीसे और पूर्वोक्त प्रवाद पर विश्वास करके बहुतसे लोग इस ब्राह्मणश्रेणीको परशुरामकी सृष्टि कहा करते हैं।* चितपावन फिर कहा करते हैं कि हमारे पूर्व-पुरुष निजाम राज्यके अम्मा जोगाई स्थानसे पूना जिलेमें आये थे। पहले वह देशस्थ ब्राह्मण रहे। परशुराम जिन १४ ब्राह्मणोंको आर्यावर्तसे लाये उनमें इनके एक पूर्वपुरुष भी थे। किसीके मतमें इनके पूर्वपुरुष भण-

*Asiatic Researches, Vol. I X. 239; Taylor's Oriental Manuscripts, III. 705; Moor's Hindu Pantheon, 351; Grant Duff's Marathas, Vol. I.; Wilk's History of the South of India, Vol. I. p. 157-158; Ancient Remains of Western India, 12; Burton's Goa and the Blue Mountains, 14-15; Journal of the Royal Asiatic Society, Bombay Gazetteer, Vol. XVIII. Pt. I; Sherring's Tribes and Castes.

तरी हो समुद्रके स्रोतमें बहते कोङ्कणमें जा लगे थे। बहुतसे लोग कहते कि ब्राह्मणबीर पेशवाके अभ्युत्थान से पहले कोङ्कणके ब्राह्मणोंकी अवस्था बहुत अच्छी न रही, बहुतसे लोग उनसे शूद्रकी भांति घृणा करते थे। फिर कोई कोई इनका श्रोतवर्ण, पाण्डुर चक्षु और सुन्दर आकृति देख नाव टूटनेकी बात पर विश्वास करके बताते कि यह पारसिक सन्तान हैं, खुशरू परवीणके वंशमें इनका जन्म है। सहाद्विखण्डके मतमें कोङ्कण ब्राह्मण-चण्डालसेवित दुष्टदेशसम्भूत, आचारहीन, सब कार्योंमें वर्जनीय और दुर्जन हैं।*

(उत्तरार्ध ४।४५)

जो हो, वर्तमान समयमें इनकी अवस्था बहुत उन्नत है। यह विद्वान्, बुद्धिमान्, मिधावी, दूरदर्शी, चतुर, स्वार्थपर, आत्माभिमानी और शारीरिक तथा मानसिक परिश्रममें विशेष पटु हैं। महाधनवान् होने लेकर भिक्षुजीवी अथवा दरिद्र पर्यन्त इनमें लोग होते हैं।

कोङ्कणस्य ब्राह्मणोंमें कोई ऋग्वेदकी शाकलशाखाभुक्त और कोई कण्वयजुर्वेदी हैं। ऋग्वेदी आश्वलायनसूत्र और कण्वयजुर्वेदी हिरण्यकेशी सूत्रके अनुसार श्रौत तथा गृह्य कर्म करते हैं। इनमें अत्रि, कण्ठ, काश्यप, कौण्डिन्य, कौशिक, गर्ग, जामदग्न्य, नित्य, ज्ञान, भरद्वाज, बल्ल, वाभ्रश्च, वासिष्ठ, विष्णुवृष और शाण्डिल्य गोत्र लगता है।

उपाधि—अभ्यङ्गर, आगासी, पाठवली, बाक, बापत, भागवत, भाट, भावे, भिडे, चितले, दामले, दुगले, मादगिर, गरदे, योग, जोषी, कर्षे, कुण्डे, लेली, लिमये, लोडे, मेहेन्दले, मोदक, नेने, ओक, पटवर्धन, फडके, राणाडे, साठे, व्यास इत्यादि हैं। स्वगात्र वा एकप्रवरमें विवाह नहीं होता। इनका आचार व्यवहार आदि देशस्य ब्राह्मणोंसे कितना ही भिन्न है। इनकी मातृभाषा कोङ्कणी वा मराठी है। परन्तु खानभेदसे कोई कोई कनाडी या तेलगुमें भी बात करता है।

* सहाद्विखण्डमें अपना ऐसा निन्दावाद रखनेसे कोङ्कणस्य ब्राह्मण उसे देख पाते ही जला डालते हैं। बीच बीच इस पुस्तककी अंश करके भी वह भारतकी नाना खानोंमें आदमी भी भेजा करते हैं।

कोङ्कणस्य ब्राह्मण यागयज्ञ भिन्न मांस नहीं खाते, अधिकांश लोग निरामिषभोजी हैं; इनमें मद्यपान निषिद्ध तो है, किन्तु अङ्गरेजी सभ्यताके गुणसे आजकल बड़े लोगोंमें कितने ही शराब पीना सीख गये हैं। यह दास भात खाते हैं। इन्हें मट्टा खाना बहुत अच्छा लगता है, मट्टा न मिलनेसे एक प्रकार खाना पीना रुक जाता है। सम्या आङ्गिक और शयनकालको बहुतसे लोग चेकी या रेशमी कपड़ा पहनते हैं।

पहले इन लोगोंमें देशकी पोशाक पर ही खोंबतान थी, परन्तु आजकल अंगरेजी लिखना पढ़ना अधिक सीख बड़े लोग अपने घरोंमें अंगरेजी पोशाकका अनुकरण कर रहे हैं। पूर्वकी इनकी स्त्रियां देवद्विजों पर ही बड़ी निष्ठा रखती थीं, गहने पोशाक पर बड़ा कोई लक्ष्य न रहा। किन्तु अब वह समय चला गया, आजकल अलङ्कार और साज सज्जा पर ही निष्ठा बढ़ी है। इनकी सभी रमणियां अंगना व्यवहार करती हैं। फिर बड़े घरकी कामिनियां चहर छोड़ बाहर निकलती हैं। सकल ही पति परिष्कार परिष्कृत रहते हैं। स्वभाव चरित्र भी आश्चर्यजनक है। विद्या बुद्धि और शासन करनेकी क्षमता इनकी भांति दाक्षिणात्यकी किसी दूसरी जातिमें नहीं। १७२७ ई० का निजामने देखा कि सब प्रकारके राजकीय कर्मचारियोंका पद कोङ्कणस्य ब्राह्मणोंने अधिकार किया था। अंगरेजोंके राज्यत्वमें इनकी शतवर्ष-व्यापी वही साधारण क्षमता नष्ट हो गयी है। आज भी क्या राजकीय क्या साधारण, इतना कि भिन्नावृत्ति पर्यन्त ऐसा कोई काम नहीं छूटा, जिसे यह करनेसे चूकें। सैकड़ों पण्डितोंने इस ब्राह्मण कुलमें जन्मग्रहण किया है। उनमें प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् बापुदेव शालीका नाम उल्लेखनीय है।

चितपावन अपनी अंशिके ब्राह्मणोंका ही पौराहित्यमें नियुक्त करते हैं। यही नहीं की पुराहित केवल शान्तिस्वस्थयन और पूजादि करके निश्चिन्त हो जायेगा। उसे यजमानकी गृहणियोंका आदेश पालन करना, विवाहादिमें विधवांनी वनना और कभी कभी बाजारसे सौदा मुकफ भी खाना पड़ता है। फिर

समय समय पर वह दशाशी भी करते हैं। इतने कामोंके सिवा पुरोहितको कुछ वेदान्त भी जानना चाहिये। क्योंकि कभी कभी यजमानोंको शङ्कराचार्यके मतानुसार कुछ उपदेश भी देना पड़ता है।

प्रसववेदना उपस्थित होते ही प्रसूतिको प्रसव-गृहमें ले जाते हैं। इनका उक्त स्थान कागजसे खूब सटा और गर्म रहता है। सन्तान भूमिष्ठ होनेके पीछे मा और बच्चेको उष्ण जलसे स्नान कराया जाता है। माके सिरहाने किसी पशुका मस्तक रखते हैं। फिर पिता अथवा इनके अस्वस्थ रहनेसे कोई दूसरा गुरुजन ज्ञान आदिसे निवृत्त सन्तानका जातकर्म सम्पन्न करता है। इसी समय पुण्याहवाचन, मातृकापूजा, नान्दी-श्राद्ध और शान्तिपाठ होता है। पञ्चम और षष्ठ दिनको षष्ठीपूजा करते हैं। कितने ही फिर पांचवें दिन बन्धुवाच्यों और भिक्षुओंको खिलाते पिलाते हैं। षष्ठ कालरात्रि है। गृहस्थ रमणियां सारी रात जागके आमोद प्रमोद गीत और शान्तिपाठ क्रिया करती हैं। १० वें दिन प्रसूति सेवरसे निकल नहा भी शुद्ध होती है। द्वादश दिवस शिशुका कर्णवेध क्रिया जाता है। पुत्र सन्तान उत्पन्न होनेसे चतुर्थ मास सूर्यावलोकन, पञ्चम मास भूम्यप्रवेशन और षष्ठ, अष्टम, दशम वा द्वादश मास अन्नप्राशन होता है। इसके पीछे जन्मतिथिके उपलक्षमें कुलदेवता, जन्मनक्षत्र-देवता, अश्वत्थामा, वसिष्ठ, विभीषण, भानु, जनूमान्, परशुराम, कृपाचार्य, मार्कण्डेय, प्रजापति, प्रह्लाद, षष्ठी, गणेश और व्यासदेवकी पूजा चढ़ाना पड़ती है। चौथेको छोड़ पड़से पांचवें वर्षके बीच बालकका चूड़ाकरण, सातवेंसे दशवें वर्षके बीच यज्ञोपवीत और फिर १२ दिन पीछे समावर्तन होता है।

चितपावन कन्याका छहसे दश और पुत्रका दशसे बीस वर्षके मध्य विवाह कर देते हैं। इनमें ब्राह्मण-विवाहकी प्रथा प्रचलित है। विवाहकालको दहेज भिन्न वर कन्या दोनों पनेक उपहार पाते हैं। बड़े घरोंमें वरकन्याकी जन्मकुण्डली मिला कर विवाह किया जाता है। भार्यावर्तके श्रेष्ठ कुलीन ब्राह्मणोंकी भांति विवाहका अनुष्ठान आदि सम्पन्न हुवा करता

है। अबस्थाके अनुसार विवाहके दोसे २० दिन तक पहले विवाहमण्डप बनता है। हिन्दुस्थानकी तरह वहां भी विवाहमें खूब धूमधड़ाका रहता है।

विवाहके पीछे जब वर ससुरालके गांवसे बाहर निकलता, सीमान्तपूजा नामक एक क्रिया हुआ करती है। वरकन्याका वास एक ही ग्राममें रहनेसे विवाहके पहले या पिछले दिन ग्रामस्थ मन्दिर या वरके घरमें सीमान्तपूजा होती है। वरके घरमें सीमान्तपूजाके समय पहले कन्यापक्षीय एक बयोज्येष्ठा सधवा रमणी एक उलियायमें नारियल, चावल, मट्ठा, दही, दूध, शहद, गुड़, शकर, हलदी, सिन्दूर, फल, चन्दन और किसी थलीमें पान सुपारी रख २ दुपड्डे, २ पगड़ियां, फूलोंकी लड़ियां आदि कितनी ही चोजें और एक बड़ी चाकी पर बनात जड़ ताँबेके कितने ही पैसे बिछा देती हैं। पुरोहितोंके साहाय्यसे द्रव्योकी उठा सधवा तथा कन्यापक्षीय पुरुष और रमणियां वरके घर पहुंचती हैं। उस समय वरके घरपर बाजी बजा करते हैं। वरकर्ता पुरुषोंको अभ्यर्थना बाहरी कमरेमें और वरकी माता कन्याकी माता प्रभृति को सादर सन्वाषणपूर्वक अन्तःपुरमें ले जाकर बैठती हैं।

फिर कन्याके पुरोहित लायो हुयी जंघी चौकीके पार्श्वमें दो छोटी चौकियां रख उन पर बनात डाल देते हैं। वर उसी जंघी चौकी और कन्याके पिता तथा माता उभय पार्श्वस्थ छोटी चौकियों पर उपवेशन करते हैं। कन्याके माता प्रथम गणनाथकी पूजते हैं। इसी समय कुलके पुरोहितको एक पगड़ी देना पड़ती है। उसके पीछे वरको पूजा होती है। कन्याकी माता पहले गर्म पानीसे वरका दक्षिण पद, पीछे वाम पद धोत करती है। कन्याका पिता वरके पैर पाँख उसके कपाल पर चन्दन और चावल चढ़ाता है। फिर वह वरको एक नयी पगड़ी बांधनेके लिये देता है। वर अपनी पगड़ी खोश शहरकी दो हुई पगड़ी पहनता है। उस समय कन्याका पिता वरके हाथमें एक सन्दूक देता, जिसे वह अपने स्नाय पर रख लेता है। ऐसे ही समय वरकी भगिनी पीछेसे उसकी पगड़ीमें फूलोंकी माला डालती है। फिर कन्याका पिता वरको पचा

मृत पिताता है। इस समय चारों ओरसे पुष्पवृष्टि और धान्यवृष्टि हुवा करती है। कुलपुरोहित वरावर मन्त्र पाठ करता रहता है। इसके पीछे कन्याकी माता वरकी बहनके पैर धोतीं, पीछे सबको अन्तःपुर ले जाकर वरकी माता और अपरापर महिलाओंके पैर धो उनके कोठमें नारियल, चावल और चीनी डालनी पड़ती है। अन्तःपुरमें जिस समय यह सब काम होते रहते, बाहर कन्याके आत्मीय कुटुम्ब अभ्यागत लोगोंके मन्त्रे-चन्दनकी टिकली लगा और उन्हें पानसुपारी तथा नारियल दे अभ्यर्थना किया करते हैं। इसके पीछे कन्यापक्षीय सभी अपने अपने घर चले आते हैं।

उसी दिनको सन्ध्याकाल कन्याके पिताके अतिरिक्त दूसरे सब सगे बन्धुबान्धव नाना प्रकार खाद्य द्रव्य साथ ले वरके घर जाते हैं। पहले वर समवयस्क बालकोंके साथ वह चीजें खाता है। उसके पीछे वरपक्षीय और कन्यापक्षीय आत्मीय कुटुम्बी आशीर्वाद करते हैं।

इधर कन्या वीतवस्त्र (पचिया) पहन हरगौरीके सम्मुख एक छोटी चौकी पर बैठ इस प्रकार प्रार्थना करती है—‘हे गौरी ! हमें सौभाग्य दो और हमारे द्वार पर जो पाये हैं, उन्हें दीर्घायु करो।’ पीछे कन्याका पिता पुरोहितको साथ ले वराह्मण करने जाता है। वह वरके घर जा वर और उसके पुरोहितको एक एक नारियल पकड़ा अपने घर आनेके लिये निमन्त्रण कर आता है।

विवाहके पहले सन्ध्याकालको वर प्रथम शशुरप्रदत्त पगड़ी और उत्तरीय (डूपट्टा) परिधान करता है। उसकी बहन फूँकोंका एक बड़ा द्वार उसी पगड़ीमें बांध देती है। उस समय पुरोहित मन्त्र आदि पढ़ा करता है। वर प्रथम इष्टदेव, तत्पश्चात् गुरुजनोंको नमस्कार करके बाहर जा घोड़े पर चढ़ता है। इस समय सलामी दगती रहती और बाजे बजा करते हैं। वरके साथ उसकी माता, भगिनी और आत्मीय कुटुम्बी व्याहने जाते हैं। पथमें अनिष्ट निवारणके लिये नारियल बंटा करता है। वर जब कन्याके घर पहुँचता, उसके मन्त्रेमें भात छूवा कर दूर फेंक दिया जाता है। इसी समय कन्यापक्षीय कोई सधवा रमणी एक

गड़वा पानी ला वरके घोड़े पर डाल देती है। वरके घोड़ेसे उतरने पर सधवा रमणियां सामने दीपक रख वरण करती हैं। फिर कन्याका भाई वरका दाहना कान मल देता है। इसीलिये उसे एक पगड़ी उपहार मिलती है। उस समय कन्याकर्ता वरकी विवाह-मण्डपमें ले जाकर यथारीति मधुपर्क प्रदान करता है। मधुपर्क देखो। मधुपर्कके पीछे पुरोहित इष्टदेवकी स्मरण करके शुभकार्य सम्पन्न करनेके लिये अभ्यागत व्यक्तियों की अनुमति लेता है। उस समय एक सधवा रमणी आकर पुरोहित, वरकन्या और कन्याके पिता माताके कपालमें चन्दन लगाती है।

इस स्थान पर पुरोहित कुल विधिके अनुसार अनेक कार्य सम्पन्न करते हैं। फिर लग्नकक्षण, सभा-पूजन, गृहप्रवेश और विवाहहोमके पीछे सप्तपदी गमन हुवा करता है। उपकण्डव आदि शब्द देखो। स्त्री आचार और उसके पीछे वर कन्याका आहार होने पर पसिका खेल होता है। इसी समय वरको कन्याका पैर पकड़ने और परस्पर चुम्बन करनेके लिये कहा जाता है। दोनों ओर हँसी दिक्कगी उड़ा करती है। इसी बीच वरकी आत्मीय रमणियां कुछ चुम्ब हो वरके घर चली जाती हैं। उस समय फिर कन्यापक्षीय रमणियां बड़ी बड़ी टोकरियां भर नाना प्रकार मिष्ठान, दासमोठ, दही, गुड़, नारियल आदि लेजाकर वरके आत्मीयोंको देतीं और उन्हें अपने घर चलकर आहार करनेका अनुरोध करती हैं। इसी समय वरके श्यालक और शशुर एक घोड़ा सजा वरके दरवाजे लाकर उसे नाना प्रकार प्रसोभन दिखाते हैं। फिर वरपक्षीय रमणियां ठण्ठी पड़ हंसते हंसते वरकी ले कन्याके घर जा पहुँचती हैं। उसके पीछे सबका भोज होता है। इसके बाद बाहर पुरुषों और भीतर रमणियोंमें ‘नकटा’ की हँसी दिक्कगी चलती है। इसपर वर और कन्या-पक्षीय मराठी भाषामें जिला-जबानी बोलते हैं। इस रङ्गरङ्गके पीछे वरपक्षीय अन्नहार दे नववधूका सुख देखते हैं। उसके अनन्तर स्नानोत्सव होता है। कन्याकी माता वरकी माता और ज्ञातिकी दूसरी रमणियोंको सयक बुला वरके पीछे मांडिके मोचे ले जाकर स्नान

कराती है। वहां छोटी छोटी घण्टियां लटका कराती है। स्नानके समय डोरी पकड़ उन घण्टियोंको बजाया जाता है।

पंचाङ्गके दिनसे ५ दिन तक इसी प्रकार नाना-प्रकारके सामोद आच्चादमें समय बीतता है। ५ वें दिन विदाका जुलूस निकलता है। वर कन्या दोनों कृष्णवान् वेशभूषा धारण करते हैं। वर घोड़े पर चढ़ कन्याको अपने पानी बैठाके गृहाभिमुख चलता है। साथ ही आत्मीय नरनारी, वाद्यकर और दासदासी गमन करते हैं। गृहके सम्मुख उपस्थित होने पर पुरकी स्त्रियां वरकन्याको वरण करके घर ले जाती हैं। बीचमें कितने ही कौलिक आचार होनेके पीछे वर-कन्याको सम्बोधन करके कहता है—मेरी बहन मेरी कमराको चाहती है। उस समय कन्या प्रतिज्ञा करती है—मेरे सात पुत्रोंके पीछे भी कन्या होने पर मैं उसे ननदके लड़केके साथ व्याह दूंगी। इसके पीछे कन्या का नया नाम रखा जाता है। वर कन्याके कानमें चुपके से उसका नाम सुना देता है। फिर भोज, समाराधान और देवदेवकोत्थापन प्रभृति उत्सव होते हैं।

और प्रथम ऋतुमती होनेसे शुभदिनको गर्भाधान किया जाता है। इस उत्सवमें इनकी रमणी-मण्डलीके मध्य भी इसदीका रंग चलता है।

गर्भवती होने पर यथाकाल पुंसवन, सीमन्तोन्नयन और 'अनवलोभन' (साधभक्षण) संस्कार करते हैं।

चितपावनीमें किसीका मृत्यु काल या पड़ुचने पर उसको तुलसीपत्र पर शयन करा वेद और भगवद्-गीता सुनाते और पुराहित 'नारायण,' 'नारायण' शब्द उच्चारण किया करते हैं। मृत्यु होने पर उसके आत्मीय कुटुम्बियोंको संवाद दिया जाता है। वह सब या मृतदेहको ले श्मशानमें सत्कार करने पड़ुचते हैं। मृत व्यक्ति अग्निहोत्री होने पर रक्षित अग्निसे एक पात्रमें एक जलता पत्तार उठाकर ले जाना पड़ता है। चितपावनीको विश्वास है—त्रिपाद, नक्षत्रपक्षक, चनिष्ठाके द्वितीयाध और अश्विनीके प्रथमार्धमें मृत्यु होनेसे बहुत अशुभ होता है। इस अशुभ निवारणके लिये अनेक शान्ति सस्त्रयन किया जाता है।

अन्येष्टिक्रिया यथानियम शास्त्रके अनुसार सम्पन्न होती है। अन्येष्टिक्रिया देखो।

साधारण ब्राह्मणोंकी तरह यह भी दश दिन अशौच ग्रहण करते हैं। इन १० दिनोंमें कोई अच्छी चीज काममें नहीं लायी जाती। पान, शकर यहां तक कि दूध भी इस दश दिनों ग्रहण करना निषिद्ध है। इस समय लोग गढ़पुराण सुनते हैं। सन्याकालको तारा न देखनेसे आहार नहीं किया जाता। इसीके मध्य अस्त्रचयन है। हिन्दुस्थानमें यह प्रथा न रहते भी दाक्षिणात्यमें बराबर चलती है। तीसरे दिन मृत-व्यक्तिका आवाधिकारी जिस वेशसे शवदाह करने गया था, उसी वेशसे कर्त (कर्ता?) नामक निष्कण्ट ब्राह्मण-को साथ लेकर श्मशानको जाता है। वह पहले स्नान करके एक नया कपड़ा पहनता है। (उसे उत्तरीय और यज्ञसूत्रके साथ खींच कर बांधना पड़ता है।) फिर चिताके पत्तार पर अन्न गोमूत्र छोड़ा जाता और नहीं जली हड्डियां पृथक् करके सज्ज्य करते हैं। इसी प्रकार सब इकट्ठा करके एक टोकरीमें उठा लेते हैं। फिर उन्हें और वहांके सब अंगारों ले निकटस्थ नदी या पुष्करिणीमें फेंक आते हैं। जहां मृत व्यक्तिके पैर रहते थे, वहां बैठकर एक त्रिकोण वेदी बनाना पड़ती है। आवाधिकारी इस वेदीके तीनों कोण पर तीन और बीचमें एक मट्टीकी जलपूर्ण कलसी रखता है। कलसीके भीतर थोड़े तिल छोड़ना पड़ते हैं। कलसीयोंके पास अन्न नामक शिखा रखी जाती है। चारों कलसीयोंके पार्श्वमें हरिद्रावर्णके ४ चिह्न और प्रत्येक कलसीके मुखमें एक एक पिंड स्थापित होता है। पाटे की सान उससे ८ गोले बनाके छत्र और पिष्टकके आकारमें परिणत कर कलसीके निकट रखते हैं। चितपावनीका विश्वास है—'मध्य कलसीका जल और पिष्टक मृत व्यक्तिकी लुधा मिटावेगा। पाटेका छाता भूपति और पादुका स्वर्गकी राहमें काटि छोड़ेगी उसके चरचकी रक्षा करेगी। पार्श्ववर्ती कलमियां और उनके साथके पिष्टकादि बद्र, यम तथा पूर्वपुत्रोंके लिये रहते हैं। आवाधिकारी उसके पीछे पिण्डीके साथ कलसी-योंमें तिल एवं जल डाल कलस तथा घृतके साथ अन्न

करता है। उसके पीछे चहरका एक खूंट पानीमें डुबा उससे एक एक बूंद पानी और एक एक पिण्ड देते हैं। फिर आघ्राण लेकर उत्त द्वापरिण्डीके सिवा दूसरे समस्त द्रव्य जलमें फेंके जाते हैं। दश दिन तक ऐसा ही प्रति दिन किया करते हैं। यह करनेसे सम्भवतः मृत व्यक्ति नव शरीर धारण करता है। पहले दिन उसका मस्तक, दूसरे दिन चक्षु, कर्ण एवं नासिका, तीसरे दिन गर्दन, पृष्ठ एवं हस्त, चौथे दिन निम्न अंगके साथ कटि, पाँचवें दिन पदद्वय, छठे दिन जीवन, सातवें दिन अस्थि मज्जा, आठवें दिन केश तथा दन्त, नवें दिन शरीरमें बससस्य और दशवें दिन नूतन देहमें लुधा लुणाका बोध होता है। १०म दिवस आद्याधिकारी व्यक्ति एक त्रिकोणाकार वेदी प्रस्तुत करके उसको गोबर और जलसे लोपता तथा उस पर हलदीकी बुकनी छोड़ देता है। फिर पाँच प्रकारके लुणों पर महीके जलपूर्ण पाँच पात्र रखते हैं। उनमें तीन एक र्गन्तिमें और दो पार्श्वमें रहते हैं। उनमें तिल डाल उसके ऊपर आटेका पिष्टक और चावलका पिण्ड रख देते हैं। फिर चरे रंगका चिह्न लगा और उसी स्थान पर द्वारपिण्डी रखके पूजा करते हैं। धूप दीप देकर मृतको उपकरण निवेदन कर दिये जाते हैं। उसी समय यदि एक काक आकर दक्षिण दिक्का पिण्ड उठाता, तो समझा जाता कि मृत व्यक्तिका मृत्यु सुखमें हुआ है। कौवेके न आनेसे समझना पड़ेगा कि उसके मनमें कष्ट है। आद्यकारी तब इस द्वारपिण्डीको नमस्कार करके मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे कहता है—‘आप निश्चिन्त रहें आपके परिवारवर्ग और इष्टदेवका यथारोति तत्त्वावधान किया जायेगा। फिर यदि अन्येष्टि क्रिया नियमानुसार सम्पन्न नहीं होती, तो उसका संशोधन करेंगे।’ यह बात कहके दो चण्डा राह देखा करते हैं। इति मध्य काशके आ कर पिण्ड लेजानेसे अच्छा है। नहीं तो आद्य करनेवाला निजमें एक चाससे पिण्ड स्पर्श करता है। फिर द्वारपिण्डीको उठाके उसमें तिलसे लगी जाती है। उद्देश्य यह कि इससे मृतकी लुधालुणा निवारित होगी। फिर मृतके उद्देश्य पिण्ड और जल दे द्वारपिण्डी उठा कर पश्चात् दिक्को

पानीमें फेंक दी जाती है। दशवें दिनका कार्य इसी प्रकार सम्पन्न होता है। एकादश दिवस चरका समस्त स्थान गोबरसे लोपपोत चरके सब लोग स्नान करते हैं। फिर पुरोहित वेदीमें अग्नि जला गोमूत्र, गोमय, दुग्ध, दधि और घृतसे होम करता है। उसमें अगोच कूट चर शुद्ध होता है। आद्याधिकारी और दूसरे सब लोग तब पञ्चगव्य आहार करते हैं। फिर होमका भस्म लगा और होमाग्निमें चावल छोड़ निश्चिन्त होते हैं। प्राग अपने आप बुझ जाती है। मृत्यु कालकी यदि त्रिपाद वा पञ्चक नामक नक्षत्रदोष लगता, तो इसी शान्तिसे वह कटता है।

यथारोति शास्त्रीय विधिके अनुसार आद्यकार्य सम्पन्न होता है। फिर प्रति भाद्रपदमें महापक्षके दिन पितृ उद्देश्यसे तर्पण किया करते हैं।

कोङ्कणावती—परशुरामकी माता।

कोङ्कणासुत (सं० पु०) कोङ्कणदेशोद्भवा रेणुका तस्याः सुतः, ६-तत् । परशुराम ।

कोङ्कणी—कोङ्कणमें प्रचलित एक भाषा। मराठी भाषाके साथ इसका कितना ही सादृश्य है। इसीसे भाषाविद् लोग इसको उसकी भगनी कहा करते हैं। आर्य और द्राविड़ भाषाके मिश्रणसे यह बनी और तीन प्रकारकी है। तुलु और कनाड़ी भाषाके अनेक शब्द इस कोङ्कणी भाषामें प्रवेश कर गये हैं। गोवासे छपि नामक स्थान के उत्तर तक इसकी कोङ्कणी चलती है। इसमें अनेक प्राचीन ग्रन्थ हैं। इन सब ग्रन्थोंका अधिकांश गोवामें पोर्तुगीजोंके अभ्युदयकाल जेसुट ईसाईने लिखा था। प्रायः तीस हजार आदमी कोङ्कणी भाषा बोलते हैं।

कोङ्कणी—कोङ्कण सागरतटके अधिवासी। आदिम अवस्थामें यह सरस्वती नदी किनारे रहते थे। सप्तार्द्धि खण्डकी वर्णनाके अनुसार उनकी एक शाखा त्रिहुतमें बसती थी, जहाँसे परशुराम १० चरानोंकी गोमन्त (गोवा), पञ्चक्रोशी और कुशस्थली ले गये। वहाँ देशकी सुन्दरता और बढ़ती देख और भी लोग आ कर बसे थे। परन्तु जब पोर्तुगीजोंने इनके धर्मपर हस्तक्षेप किया, बहुतसे कोङ्कणी कनाड़ा और तुलुकी चले गये। वहाँसे फिर यह भावङ्कूम और कोचिन पड़ने और

हिन्दू राजाओंके राज्यमें सुखसे रहते थे। कोचिन और अज़मगढ़में इनकी जैसी धनशाली धार्मिक संस्थाएं हैं, मसलवारमें दूसरी जगह देख नहीं पड़ती। कोङ्कणी ब्राह्मण स्वच्छवर्ण और लम्बे होते हैं। उनके छोटे और बाल घने रहते हैं साथ ही नाक ऊंची और छाती चौड़ी लगती है। स्त्रियां रेशमी किनारके कपड़े खूब व्यवहार करती हैं। यह वैष्णव होनेसे लम्बे तिलक लगाते हैं। कोङ्कणी वैश्य शैव हैं। भारतमें पोर्तुगीज आनेके समयसे यह व्यापार करते रहते हैं। त्रिकुपति मन्दिरके वेङ्कटरमणकी बड़ी श्रद्धा भक्ति की जाती है। श्रावणकोरप्रान्तमें इनके कई बड़े मन्दिर बने हैं। कई स्थानोंमें लक्ष्मोन्टसिंहकी भी पूजा करते हैं। इनकी विश्वास है कि सांप मारनेसे कोढ़ी और निर्वंश होना पड़ता है। कोङ्कणी वैश्य और शूद्र भी नागपूजक होते हैं। इनके प्रधान गोत्र कौण्डिन्य, कौशिक, भारद्वाज और गार्गि हैं। ५ दिन विवाहकी धूमधाम रहती है। उस समय दुलहा दुलहन दोनों एक ही कमरेमें खाते पीते और सोते बैठते हैं। विवाहके पीछे घर ३ मास तक कन्याके घर ठहरता और स्वास्तीपाक यज्ञ करता है। तलाक देनेकी चाल नहीं। पत्नी बन्धा और रोगिणी होने पर उससे पूछ कर दूसरी शादी की जा सकती है। सात और १० वर्षके बीच उपनयन संस्कार होता है। नृताशीव १० दिन माना जाता है। आठके अवसर पर केवल एक ही ब्राह्मणका खिलाते हैं। इनकी भाषा भी कोङ्कणी ही है। उसमें कई एक पोर्तुगीज शब्द मिले हैं। अपने जातिवालोंको छोड़करके दूसरीसे यह मलयसमूहमें बातचीत करते हैं।

कोङ्कणी केलास—बम्बई प्रान्तके अजोला, होनावाड़ और कारवाड़ जिलोंके गांवोंमें रहनेवाली एक जाति। इन्हें इजाम भी कहते हैं। इनकी संख्या प्रायः पांचसौ होगी। यह गोवासे आये हुए बतलाये जाते हैं। गोवाके निरङ्कार और अजोलाके लक्ष्मीनारायणको देवता मानते हैं। इनमें पुरुष गुरुएं रंगके मंभोले कदवाले और मजबूत होते हैं। स्त्रियां उनसे छोटी और गरीब लगती हैं। घरमें यह कोङ्कणी भाषा बोलते, परन्तु हिन्दुस्थानी और कनाड़ीमें भी बात चीत कर सकते

हैं। कोङ्कणी केलास किरायती, सफाईसे रहनेवाले, गम्भीर और भलेमानस हैं। सिवा अछूत लोगोंके यह सबके बाल बनाते हैं। कोई कोई फोड़े फुड़ियाको चीर-फाड़ भी करते हैं। इनका आचरण और पद कनाड़ केलासियों और कनाड़ी नाइयोंसे मिलता है। कारवाड़वाले गोवाके निरङ्कार और होनावाड़वाले अजोलाके लक्ष्मीनारायणको पूजते हैं। गोकर्ण, धर्मस्थल और पराठरपुर इनका तीर्थस्थान है। कन्याओंका पाठसे बारह और बालकोंका बारहसे बीस वर्षके बीच विवाह होता है। विधवाविवाह विरल है। यह अपने शवको जलाते और १० दिन अशौच मानते हैं। पञ्चायतोंमें सामाजिक भगड़े मिटायें जाते हैं।

कोङ्कणी माडोवाल—बम्बई प्रदेशके कनाड़ा जिलेकी एक बोबी जाति। इनकी संख्या प्रायः २००० होगी। यह सिरसीमें और कारवाड़, अजोला, कुमता और होनावाड़में सम्राट्टिके नीचे रहते हैं। इनके प्रधान कुल-देवता मङ्केशका मन्दिर सालसीटमें है। यह दूसरे धोबियोंके साथ राटो-पेटीका व्यवहार नहीं रखते। इनकी भाषा कोङ्कणी है। यह शराब नहीं पीते। और किरायत, मिहनती और शायस्ता होते हैं। बारह वर्षके पहले कन्याओंका विवाह कर देते हैं। विधवा विवाह और बहु-विवाह प्रचलित है।

कोङ्कण (सं० पु०) कोङ्कण देशज उत्तम अन्न, कोङ्कणका बढ़िया घोड़ा।

कोङ्कार (सं० पु०) कोङ्काकाराव्यक्त शब्द करीति, कोङ्क-अण्। काकका शब्द, कौविकी बोली।

कोङ्कणिवर्मा—१ दक्षिणापथवाले कोङ्क राज्यके गङ्गवंशीय प्रथम राजा। यह काखयन-गोत्रीय रहे। अपर नाम माधव था। स्कन्दपुरमें यह अभिलिखित हुए। २ गङ्गवंशीय कोङ्कराज विष्णुगीपवर्माके दौहित्र (लड़कीके लड़के)। लोग इन्हें कोङ्कणिवर्मा मङ्गाधिराय कहते थे।

३ कोङ्क राज्यके कोई प्रबल पराक्रान्त राजा। इनका दूसरा नाम नवकाम था। यह गजपति भूविजयके पुत्र रहे। इन्होंने अपनेक स्थानोंके राजाओंको जीत जयमना करद बनाया।

कोङ्गनोली—बम्बई बेलगांव जिलेके बिकोदी तालुकका एक गांव। यह अक्षा० १६° ११' ७०" और देशा० ७४° २०' पू० में बेलगांव-कोल्हापुर सड़क पर पड़ता है। लोकसंख्या ५५८७ है। इस गांवमें बड़ा व्यापार होता है। चावलकी रफ्तानी और कपड़े, छेहारे, नमक, मसाले और शकरकी आमदनी लगी रहती है। कुछ स्थिति वारके सामाजिक बाजार लगता, जिसमें सूत, अनाज, गुड़, तम्बाकू और हजारों मवेशी बिकते हैं। यहां साड़ियां, दरियां और कम्बल बुने जाते हैं।

कोङ्ग—दक्षिणापथका एक विस्तृत प्राचीन राज्य। इसका पहला नाम चेर था। गङ्गवंशीय राजाओंने 'चेर' नाम बदल कर 'कोङ्ग' रख दिया। पहले चेर राज्यका उत्तरांश ही कोङ्ग, नामसे प्रसिद्ध था। तामिल भाषाके 'कोङ्गदेश राजकुल' नामक ग्रन्थमें कोङ्ग, राज्यका प्राचीन इतिहास लिखा है। केरल और चेर देखो।

कोच (सं० पु०) कुच-ण। ज्वलित कसनेभ्यो षः। पा १।१।१४०। १ सङ्कोचक, सङ्कुचित करनेवाला व्यक्ति। भावे घञ्। २ सङ्कोच, संकुचन।

कोच (हिं० पु०) १ कोई लम्बा छड़। इसके द्वारा भट्टे-मेंसे ठले हुए पात्र निकालते हैं। २ भग्न नौकाका कोई खण्ड, टूटे जहाजका टुकड़ा।

काच (अ० पु०-Coach) १ घोड़ागाड़ी, बग्गी। २ गद्देदार पलंग या आरामकुरसी।

कोच—१ एक जाति। इस जातिकी पणिकोच अथवा आचार व्यवहार आलीवना करनेसे स्थिर हुवा है कि वह वैदिक युगमें 'पाणि', पौराणिक युगमें 'पाणिकवच', तन्त्रमें 'कुवाच' और पाश्चात्य जगत्में 'फिनिक' (Phœnician) नामसे परिचित है।*

बङ्गालके उत्तरपूर्व प्रदेशमें काच लोग रहते हैं। पाश्चात्यतत्त्वविद् इन्हें अनार्य जाति विवेचना करते हैं। उनमें कितनीहीका सिद्धान्त है कि इस जातिमें मङ्गोलोय रक्त मिल गया है। इस जातिके लोग आज-काल अपनेको कोच नहीं बतलाते। कोचविहार, रङ्गपुर, जलपाईगोड़ी आदि स्थानोंमें यह अपना परिचय राजवंशी या भङ्ग-अत्रियकी भांति देते हैं। परशुरामके

क्रीधसे परिव्राण पानेको जो सकल अत्रिय भागे थे, यह अपनेको उन्हींका एक सम्प्रदाय बतला अपना अत्रियत्व प्रतिपन्न करते हैं। इनकी एक अथवा ऐसी है, जो अपनेको राजा दशरथका वंश बतलाती है। सभी कोचोंका काश्यप गोत्र है। यह बङ्गालियोंकी भांति हिन्दूधर्मके अनुसार क्रियाकलाप करते हैं। ब्राह्मण इनके पुरोहित हैं। पाश्चात्य पण्डितोंका कहना है कि कोच पूर्वकी अनार्य रहे। अन्तर्का क्रमशः हिन्दुओंको देखा देखी वह हिन्दूधर्मका आचार व्यवहार अवलम्बन करके हिन्दू बननेकी चेष्टा कर रहे हैं। आपाततः केवल एक गोत्र ग्रहण करते भी भविष्यत्में जब देखेंगे कि हिन्दू अपने गोत्रमें विवाह नहीं करते, तब धीरे धीरे गोत्रान्तर ग्रहण कर सकते हैं। कितने ही कोचोंका आदिवास द्राविड़ देश बतलाते हैं। राजवंशी स्त्रियां जिस भावसे वस्त्र परिधान करके घाट-बाटमें निकलती हैं, द्राविड़ोंके अनुरूप है। वह मस्तक पर अवगुण्ठन नहीं लगातीं। असलो बंगाली होनेसे किसी प्रकार स्त्रियां घूंघट उठा न सकतीं। उनका पल्लवार आदि भी दाक्षिणात्यवासियोंसे मिलता है। इन्हीं सकल कारणोंसे अनुमित होता है, जब आर्योंने बङ्गालमें प्रवेश किया था, गाक्षप्रदेशमें रहनेवाले द्राविड़ोंने दूरीभूत ही बङ्गालके उत्तर और उत्तर-पूर्व अञ्चल पर वनमय भागमें आश्रय लिया।

कोच जातिमें कितने ही अथवाविभाग हैं। प्रत्येक अथवामें कोई विशेष पार्थक्य नहीं। फिर भी जो अथवा हिन्दुओंका आचार शुद्ध भावसे पालन कर सकती, अधिक सम्मानार्ह ठहरती है। इसी हिसाबसे राजवंशियोंमें जो सर्वांश अष्ट हैं, अपनेको शिववंशी बताया करते हैं। नेव, कामरूप और कोचविहार देखो।

शिववंशी कोच अपनेको भङ्ग-अत्रिय, पतित अत्रिय, अत्रसङ्कीर्ण और सूर्यवंशी भी कहते हैं। शिववंशियोंके पीछे पलिया नामक अथवा गण्य है। परशुरामके भयसे पलायन करने पर ही यह अपनेको 'पलिया' ठहराते हैं। डाक्टर बुकानन साहबके अनुमानसे, पहले दिनाजपुर और रङ्गपुरमें जो पणिकोच कहलाते, आजकल पलिया समझे जाते हैं। यह साधू पार बाबू दो

* Social History of Kāmrup, by N. Vasu नामक ग्रन्थमें

बड़ा विवरण देखना चाहिये।

सम्प्रदायों में बंटे हैं। जिनसे कोचविहारके राजवंश और जलपाईगोड़ीके रायकत वंशका संभव लगा है अपना परिचय बाबू पलिया या केवल राजवंशोंकी भांति दिया करते हैं। साधू पलिया बाबू पलियाओंकी अपेक्षा कुछ शुद्धाचारी हैं। बाबू पलिया शूकर, पक्षी कुम्भीर तथा गोधा जातीय जीवमांस खाते और अधिः परिमाणमें स्नान करते हैं। किन्तु साधू पलियाओंके मध्य उनमें कोई भ्रष्टा नहीं। दीनाजपुरमें एक अ्रेणीके कोच "देशी" नामसे ख्यात हैं। यह अपनेको पलिया-वोंसे ऊंचा समझते हैं। देशी कोच पलिया कोच पुरुषके हाथमें अन्न जल और मिष्टान्न ग्रहण कर सकते हैं, परन्तु उनकी कामिनियोंके हाथसे नहीं। इन दोनों अ्रेणियोंमें विवाह भी नहीं होता। बैलोंद्वारा हल या कोल्ह न चलानेके कारण देशी अपनेको पलियावोंसे उच्च श्रेणीस्थ बतलाते हैं। जलपाईगोड़ीमें कोच राजवंशी ही कहलाते हैं। किन्तु इनमें दोभाषी, मोदासी और जालुया—तीन अ्रेणी हैं। दोभाषी कोच सुवर और चिड़ियाका मांस खाते और शराब पीते हैं। मोदासी पक्षीमांस ग्रहण नहीं करते। जालुया मछ-लियां पकड़ते और बेचते हैं। दारजिलिङ्गमें रहनेवाले कोचोंकी भी तो गिया, खोपरिया और गोबरिया तीन अ्रेणियां हैं। तो गिया हिमालयवासी मङ्गोलीयोंकी तरह लकड़ी पर वासगृह बनाते हैं। खोपरिया जमीन पर नीचे नीचे छोटे छोटे घर उठाते हैं। फिर गोबरिया गाय बछड़े आदि पशु से किसी मकानमें रहते हैं। आजकल इनमें भी चलगाव नहीं। गोबरिया क्रमशः साधू और बाबू पलियाओंकी भांति आहा-रादि अवलम्बन करके तत्तत् नामसे अपना परिचय देते हैं। कंटाई राजवंशी नामक अ्रेणीके दूसरे कोच भी होते हैं। यह नाना स्थानोंमें फैल गये हैं। गुमास्तामीरी, खेतीबारी और चिकित्सा ही इनका काम है। इनमें तीयार या दलई नामक एक अ्रेणी है। वह मत्स्य पकड़ा करते हैं। तीयार जाल नहीं डालते, बंसीसे मछली मारते हैं।

निम्नअ्रेणीके कोच लंगीटी लगाते हैं। तदपेक्षा उच्चअ्रेणीके पुरुष १ हाथकी धोती और स्त्रियां पतनी

नामकी साड़ी पहनती हैं। दूसरे देशकी स्त्रियां जैसे कमरमें लपड़ा बांधतीं, यह छाती पर उसे लपेट परिधान करती हैं। साड़ी घुटनों तक लंबी होती है। यह मुंह पर घूंघट नहीं डालती। राहमें निकलनेसे वस्त्र-स्थलकी पतनी पर और एक खण्ड लगा दिया जाता है। उंचे दरजेके लोग हिन्दुओंकी भांति वेद्यभूषा करते हैं। स्त्रियां बायं हाथमें शङ्ख बांधती हैं। बालिकायें पीतकी माला गलेमें डालती हैं।

राजवंशी उन्मत्तको स्वतन्त्र सूरतिकागृह नहीं बनाते। इनमें जन्मका अशौच ३१ दिन रहता है। इस समय तक सूरतिकागृहमें प्रवेश करनेवालेको नहाना पड़ता है। भूतपद्व निवारणके लिये यह सूरतिकागृहकी खिड़की, दरवाजा और दीवार पर कंटीले पेड़की डालें काट कर रख देते हैं। सन्तान उत्पन्न होने पर कोई निकटस्थ आत्मीया वृद्धा बांशकी खपाचसे नाड़ीच्छेद करती हैं। बालक या बालिका बुढ़ीकी आजीवन 'नाड़ी काटनेवाली मा' कहा करती है। १३ वें दिन क्षीर होता और पुरोहित शान्तिजल छिड़कता है। निम्नअ्रेणीके कोच १० दिनमें सन्तानका नामकरण करते हैं। किन्तु उच्चअ्रेणीमें देवज्ञकी व्यवस्थाके अनुसार ३२, ७२, १०२ या ३०२ दिन नवजात शिशुका नाम रखा जाता है।

७म, ८म वा ११म मासको अन्नप्राशन होता है। ऊंची अ्रेणीके लोग इस समय आभ्युदयिक नान्दी-मुख आह करते हैं। अधिकारी वा पुरोहित यह सब कार्य कराते हैं। अन्नप्राशनमें कोई सधवा स्त्री बालकको सूप, दिया और मङ्गलकलस लेके वरण करती है। पितामही ही प्रथम आस अन्न मुखमें डालती है।

छठे, बारहवें या अठारहवें महीने घरके बाहर बालक बालिका दोनोंका मस्तक मूंडा जाता है। सुण्डन स्थानकी चारों ओर कागके चोड़े और छोटे छोटे निशान लगा देते हैं। सुण्डनके पीछे गर्भज केश-राशि "बुड़ी माकेवामी" नामक देवके मन्दिर लेजाना पड़ता है। क्योंकि वह प्रथमजात बालकोंको अभिष्टानों देवता हैं। कोई कोई बालोंको गाड़ भी देता है। कोचविहारके महाराजसे लेकर सामान्य हीन व्यक्ति तक इस संस्कारको यत्नसे पालन करता है।

उसके पीछे विवाहके पूर्व किसी समय हिन्दू आचारी कोच चूड़ाकरण किया करते हैं।

ठाका जिलेके उत्तरांश भागके जङ्गलमें इनकी कोचमन्दई नामक एक शाखा देख पड़ती है। ज्ञात होता है—बहुकाल पूर्व यह स्वदेश छोड़ उक्त अञ्चलके गारिवीसे जा मिले थे। मन्दई (मनई) शब्द गारि भाषा में मनुष्यवाचक है। इसलिये कोच मन्दईका अर्थ कोच जातीय मनुष्य होता है। सम्भवतः गारिवीने स्वजातिसे इन्हें अलग रखनेके लिये ही ऐसा नाम निकाला है। रामायणमें इस शाखाको 'मन्देह' लिखा है।

छाड़े दिन हुए कोचोंमें चारसे दश वर्षके वयस तक कन्या व्याहृतिना नियम चल गया है। किन्तु कह नहीं सकते—कहाँ तक इसका प्रतिपालन करते हैं। रङ्गपुर, कोचविहार प्रभृति स्थानोंके राजर्षीयों विधवाविवाह अच्छा नहीं समझते, परन्तु तराई प्रदेशके कोचोंको उसमें कोई आपत्ति नहीं। फिर भी विधवा पूर्वस्वामी के किसी गुरुतर सम्पर्कीय व्यक्तिसे विवाह कर नहीं सकती। विधवावेमिं जो संसारकी सर्वमय कर्त्री है, निविष्ट व्यक्ति व्यतीत एक पुरुषको अपने आप मनोनीत करके उसीके साथ स्वामी स्त्रीकी तरह रहती है, उसे फिर विवाह करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। कोचोंमें पत्नी परित्याग प्रथा प्रचलित है। जिन सकल दोषोंसे पत्नीको परित्याग किया जाता, उनके सङ्घटित होने पर स्वामी पश्चायतीसे पत्नी छोड़नेकी बात बतलाता है। पश्चायतमें पुरोहित और नापित उपस्थित रहता है। पश्चायत लगने पर स्वामी स्त्रीके दोष व्यक्त करता है। फिर स्त्रीका वक्तव्य सुनते हैं। परन्तु प्रायः स्त्रीका दोष प्रमाणित करके उसके मस्तक मुण्डनकी व्यवस्था की जाती है। गार्ह बातकी बातमें उसके बाल जड़से उड़ा देता है। इसके पीछे स्वामी स्वजातिसे उसे निकालता है।

विधवाविवाहके कारण इनमें कितनी ही कौलीन्य प्रथा देख पड़ती है। जिनके वंशमें कभी विधवाविवाह नहीं हुआ, वही कुलीन हैं। इन्हें स्वजातिके लोग 'महत्' कहा करते हैं। इस वंशकी कन्या ब्रह्म करनेमें दूसरे-की कन्यापण देना पड़ता है। 'महत्' जहाँ चाहें कन्या-

का विवाह कर सकते हैं। इस बातकी कोई पड़चन नहीं कि बराबरोके घरमें ही विवाह करना पड़ेगा।

घटक (विचवानी) पात्रपक्षसे नियुक्त हो पात्री स्थिर करने जाते हैं। पात्रीके घरमें ३ दिन रह वह विवाहके सम्बन्धमें बातचीत पक्की कर लेते हैं। पात्रीके गृहमें विचवानोंके अवस्थान काल यदि घरमें या पड़ने हुए कपड़ेमें एकाएक आग लग जाये या पानोंका घड़ा या भातकी हंडी अचानक टूट जाय, तो उस पात्रपात्रीका विवाह नहीं हो सकता। क्योंकि कोचोंके मतमें यह विषम कुलक्षण है। कन्यापण २०) या २५) ६० ठहरता है। पात्री सुन्दरी और पात्रपक्ष धनी होनेसे ८०) ८०) ६० तक देना पड़ता है। पात्र अधिक वयस्क होने पर भी अधिक दहेज लगता, १०० ६० से कम नहीं हो सकता। कन्याका पिता चाहे, तो एक पैसा तक न ले। फिर विचवानोंके वापस आने पर पात्रके आत्मोय कन्याके आत्मीयोंको दहीकी भेंट भेज देते हैं। यह भेंट पड़च जानसे कन्यापण लगता है। सब लोग पूरा रूपया दे नहीं सकते, आधा धाधा चुकाते हैं। इसके बाद शुभ दिनका वर कन्याके घर सम्भ्रा समय पहुँचता है। वरको पहुँचने पर ४ सधवा स्त्रियां पालकीसे उतार ले जाती हैं। इन्हीं चार स्त्रियोंका नाम बरातो है। वह वरको एक उच्चासन पर बैठा पान तम्बाकू खिलाती हैं। पात्रीके घरके चबूतर पर केलोंका एक मण्डप (मंडवा) बनाते हैं। वरके पैरके अंगूठेसे जान तक जितनी लम्बाई होती, एक केलीसे दूसरा केशा उतनी ही दूर स्थापन किया जाता है। मण्डपके प्रत्येक केलीके नीचे एक एक जलपूर्ण कलसी रखते हैं। फिर वरके आसनकी वाम और दक्षिणी और एक पूर्ण कलसी तथा दक्षिण और सूप और पूर्ण कलसी रखी जाती है। इस सबको कोच मन्वा कहते हैं। (इसका नक्शा दूसरे पन्ने देखिये)

फिर उक्त चार स्त्रियां आगे वर और पीछे कन्याको कर मन्वाके पास पहुँचती और दूल्हा दूदिहलके साथ उसका पाँच बार प्रदक्षिण करती हैं। एक एक बार प्रदक्षिण करके वर कन्या दोनों एक दूसरे पर कामकी कौड़ियां और चावल फेंकते हैं। कन्या जिस समय

कन्यासम

केलिका पेड़ † † केलिका पेड़
पूर्ण कलसी ० ० पूर्ण कलसी

† केलिका पेड़
० पूर्ण कलसी

केलिका पेड़ † † केलिका पेड़
पूर्ण कलसी ० ० पूर्ण कलसी

बरासन

पूर्ण कलसी ० ० पूर्ण कलसी
चलनी † † सूप

मारती, बराती स्त्रियां दोनोंके कपड़ोंको ऐसी छाड़ कर देतीं कि वरके देखमें दोहो एक कौड़ियां या चावल लग सकते हैं, अधिक नहीं; परन्तु वरके वार करने पर कपड़े एकबारगी ही नीचे कर दिये जाते हैं।

फिर चलनी और सूप पर कपड़ा बिछा वरकन्याको बैठाती हैं। कन्याका वाम हस्त वरके दक्षिण हस्तमें कुथसे बांध दिया जाता है। इसीका नाम कन्या-दान है। इस समय वर कन्याके हाथमें १ या १॥) रु० रखता है। यही वरके कन्यादानकी दक्षिणा है। पुरोहित बराबर मन्त्र पढ़ा करता है। उसके पीछे कन्याका पिता वरको एक गड़वा, कोई नया कपड़ा और अपनी सामग्र्यके अनुसार गहना आदि देता है। इसी समय स्वामीप्रदक्षिण और शुभदृष्टि देती है। प्रदक्षिणके समय कन्या पीठे पर बैठके घुमायी जाती है। नापित कन्याके शिर पर छतरी रखता है। कन्याका पिता मन्त्रपूत जल वरकन्याके मस्तक पर छिड़क देता है। पिता न रहनेसे जो यह काम करता, कन्या उसको आजीवन 'पानी बाप' कहती है।

फिर वर कन्याको खेलनेके लिये कौड़ियां देते हैं। कौड़ियोंके ढेरसे कन्या एक सुट्टी उठा वरके हाथमें रखती है, वर उन्हें मट्टी पर फेंक देता है। बराती स्त्रियां फिर देखतीं, उनमें कितनी चित और कितनी पट पड़ी हैं। चित कौड़ी अधिक रहनेसे स्वामी स्त्रीके और पटकी संख्या अधिक आनेसे स्त्री स्वामीके वशी-भूत होनेका अनुमान किया जाता है। इसके पीछे वर कन्या परस्पर दही और बताशे एक दूसरेको खिलाते हैं। खाना पीना हो जानेसे वर अपने साथियों

के पास घरसे बाहर निकल जाता और कन्या बराती स्त्रियोंके साथ चली जाती है। आहारादिके आनिदमें रात बीत जाती है। दूसरे दिन सुबेरे वर कन्याके साथ अपने घर लौट आता है।

विवाहके दिन वर आनेसे पूर्व ही कन्याके गात्रमें हरिद्रा लगायी जाती और दो स्त्रियां उसके कपाल और मागमें सिन्दूर चढ़ाती हैं। वर केवल कपालमें टिकली लगाता है।

जलपाई गुड़ीके राजवंशी मन्त्रमें केलीके केवल चार पेड़ स्थापन करते हैं। पांचवें केलीके स्थानमें कोयलीकी तेज आग रखी जाती है। वर कन्या मन्त्रा प्रदक्षिण नहीं करते और न कागकी कौड़ियां चावल एक दूसरे पर फेंकते हैं। इसके बदले वह अग्नि-कुण्डकी दोनों ओर खड़े हो फूलोंकी मार करते हैं। फिर सात बार अग्नि प्रदक्षिण करना पड़ता है। कन्याका पिता तर्जनी और मध्यमा द्वारा वरका जानु स्पर्श करके कन्यादान करता है।

कोचोंमें एक प्रकारका गान्धर्व विवाह होता है। परन्तु इस विवाहकी पात्रपात्री दोनोंके मातापिता या आत्मीय निर्वाचन करते हैं। केवल विवाहके समय चलनीमें कपड़ा तथा शङ्ख रखा और माख्य बदला जाता है। नवयौवनसम्पन्ना पतिप्रिया सधवा कामि-नियां ही इस चलनीका वरपक्षसे लेकर कन्यापक्षमें स्थापन करती हैं। इस प्रकारका विवाह उच्चश्रेणीमें होता है। इसमें पुरोहितका कोई प्रयोजन नहीं।

गर्भाधानकी कोच 'देा कपड़ा' उत्सव कहते हैं। नव सधवायें ऋतुमतीके वक्षःस्थल पर एक वस्त्र बांध देती हैं। इसी दिनसे वह युवती समझी जाती है।

जन्म लेते ही इनके बालकोंके कानमें वैष्णव सम्प्रदायके अधिकारी राम राम (हरिनाम) सुना देते हैं। पीछे परिणत वयसमें वह गुरुमन्त्रसे दीक्षित होते हैं। वंशके अधिकारी पुरोहित ही दीक्षागुरु बनते हैं। ज्ञान करके आहारके पूर्व गुरुमन्त्र अपनेका नियम है।

रङ्गपुर तथा कोच विहारके कोच प्रायः वैष्णव और शैव होते हैं। दारजिलङ्गमें तान्त्रिक मतके शाक्त

अधिक हैं। ग्राम्य और गृहदेवताओंमें काली, विष्णु, वामनसा, भामी (ग्रामको अधिष्ठात्री तिष्ठ-बुड़ी, हनुमान्, विन्दुकी, तुलसी) हृषीकण्ण, पेथानी, योगिनी, हनुमदेव, वास्तुदेवता, वलीभद्र ठाकुर और कोराकुरी प्रधान हैं। जब अनाष्टि होतो, कोच रमणियां मष्टी या गोबरसे हनुमदेवकी दे। प्रतिमायें बना रातको मैदानमें ले जातीं और वहां नङ्गी ह। अश्लील गीत गा गा कर प्रतिमाओंकी चारा चोर नाचा करती हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करनेसे पानी बरसता है। वैशाख मासको प्रति दिन दो बार गृहस्थांके घरमें वास्तुपूजा की जाती है। नये गृहके चारभू और प्रवेश काल भी वास्तुपूजा होती है। घरमें एक बांस गाड़ उसकी जड़ पर हथेली भर मष्टी गोमयसे लिप्त करके वास्तुदेवताकी प्रतिमा बनाते हैं। इसीको भद्रका भाग लगा गृहस्थ प्रसाद पाते हैं। ज्येष्ठ मास सत्यनारायणकी पूजा चढ़ती है। दो बेलोंको जीत हलके ऊपर वलिभद्र (वलीवर्द)-को पूजा होती और सबलोग दोनों बेलोंके सामने साष्टाङ्ग प्रणिपात करते हैं। कोचोंको विश्वास है कि इन देवताकी कृपासे अच्छी फसल लगती है। सन्तानके जन्म सेनेसे ७वें दिन और अक्षप्रशन्नके समय षष्ठी-पूजा करते हैं। माझी घरारके हंस पर घरारकी देवीमूर्ति बनाते हैं। यही षष्ठीकी प्रतिमा है। पौष मासको केवल स्त्रियां घरके चबूतरे पर घट रखकर कोराकुरी पूजा करती हैं। पेथानी और योगिनी केवल स्त्रीपूज्य हैं। संन्यासी देवता बालकोंके पूज्य होते हैं।

रङ्गपुरमें कामरूपके ब्राह्मण इनका पीरोहित्य करते हैं। यह ब्राह्मण वर्णब्राह्मण समझे जाते हैं। दारजिलिङ्ग और जलपाईगुड़ीमें कोचोंका कोई स्वजातीय व्यक्ति ही पुरोहितका काम कर देता है।

कोच शवदाह करते हैं। कुष्ठरीगी, शिशु और सर्पदंष्ट व्यक्तियोंमरणसे गाड़ दिया जाता है। दाह वा समाधिस्थान पर कोई कोई सादे मलमलका चन्द्रातप वा पताका या तुलसी लगाता है। दारजिलिङ्गमें ११ वें, जलपाईगुड़ीमें ११वें और रङ्गपुरमें रहनेवाले

कोच ११वें दिन दाह करते हैं। इस समय यह भीगी कपड़े पहने निरामिष (भातपाक) खाते हैं। पान, नमक, मसूरकी दाल, मसाला वगैरह व्यवहारमें नहीं आता। प्रतिवर्ष भाद्र मासकी कृष्णा नवमीको नदीमें जम्बूतन १ पुरुषोंका तर्पण और पिण्डदान किया जाता है।

कोच शब्दका अर्थ कोच देशवासी और देशविशेष भी है। कोचविहार देखो।

कोच—युक्तप्रदेशकी एक जाति।

कोचकी (हिं० पु०) १ वर्णविशेष, कोई रंग। यह मकोइयासे मिलता और लाल भूरा रहता है। इसके तैयार करनेकी कई रीतियां हैं। (वि०) २ रत्नाभ धूसर, लाल भूरा।

“कोचको कपासी पियवासी सुखरासी छाकी।” (कलित)

कोचना (हिं० क्रि०) चुभाना, गड़ाना, नोकदार चीज-को किसी दूसरी सुझायम चीजमें धंसाना।

कोचनी (हिं० स्त्री०) १ सुदृढ़ लोहयन्त्रविशेष, लोहका एक छोटा औजार। यह सूई-जैसा रहता और तलवारके मगानका ऊपरी चमड़ा सीनेमें चलता है। २ औगी, बेल हांकनेकी छड़।

कोचबक्स (अंग० पु० = Coachbox) बग्गीके हांकनेवालीकी बैठक। यह घोड़ानाड़ीमें सामने जंघे पर होता है।

कोचर—घोसवाल बनियोंकी एक श्रेणी। कहते हैं जब इनके चाटिपुरुषने जन्म लिया, कोचर यानी उल्लू बोलता था। इसीसे ‘कोचर’ नाम पड़ गया।

कोचरा (हिं० पु०) लताविशेष, एक बेल। यह सघन लगता और पेड़ों पर चढ़ता है। पत्तियां १ अङ्गुलि दीर्घ और उभयदिक् नोकदार होती हैं। ज्येष्ठ आषाढ़ मासको इसमें पीत पुष्पोंके गुच्छ निकलते और आगामी वैशाख तक फल पकते हैं। कोचरा युक्त-प्रदेश, खसिया और भोटानमें उपजता है।

कोचरी (हिं० स्त्री०) पत्तिविशेष, कोई चिड़िया।

कोचवान (हिं० पु०) बग्गी हांकनेवाला। यह अंगरेजीके कोचमैन (Coachman) शब्दका अपभ्रंश है अथवा अंगरेजी कोच और फारसी ‘वान’ (वाला) शब्दको मिलाकर बनाया गया है।

कोचविहार—बङ्गाल प्रदेशका एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २५° ५८' एवं २६° ३२' उ० और देशा० ८८° ४५' तथा ८९° ५२' पू० के मध्य अवस्थित है। बाङ्गाल कोचविहार राजशाही कमिशनरके अधीन हुआ है। इसका क्षेत्रफल १३०० वर्गमील है। कोचविहारके उत्तर जलपाईगुड़ी जिलेका पश्चिमहार, पूर्व आसामके ग्वालपाड़ा जिलेका पूर्वहार, रङ्गपुर, गदाधर तथा खण्कोशी नदी, दक्षिण रङ्गपुर और पश्चिम जलपाई-गुड़ी एवं रङ्गपुर है। यह राज्यस्थान समतल और त्रिकोणाकार है। भूमि अधिकांश उर्वरा और शस्य-शाली है। आसामके पास जगह जगह जंगल लगा है। भूमि समतल होते भी उत्तर-पश्चिमसे दक्षिण पूर्वकी ओर झुक टल गयी है। इसीलिये दूसरी ओर की भूमिका पानी इसी राहसे निकलता है। वर्षमें सभी समय भूमिसे ७।८ हाथ नीचे पानी रहता है। फिर जमीनके २।३ हाथ नीचे बालू मिलती है।

भूतत्त्वविदोंके मतमें पहले हिमालय पर्यन्त समुद्र था। समुद्रके तरङ्गका आघात पर्वतमें लगनेसे बालूकी कण उत्पन्न होने पर यह प्रदेश बढ़ गया है। नदीमें रेत पड़नेसे उसके ऊपर उर्वरा भूमि हुई है। हिन्दु-स्थानमें जैसे सब लोग मिल कर एक ग्राममें रहते और खेतोंकी भूमि अलग रखते हैं, कोचविहारमें वैसा नहीं करते। यहां जिस जगह जिसका क्षेत्र रहता, वह वहीं बसता है। लक्षक और क्षेत्रपतिके घरके निकट प्रायः बांसकी एक बीड़ और केलेका बाग देख पड़ता है।

कोचविहार राज्यमें कालजानि, गदाधर, तिस्ता, तरसा, धरला या अवला और रेधकनामक छह बड़ी नदियां हैं। इन सब नदियोंमें सौ मन बोझ लादके नाव बारहो महीने आ जा सकती है। एतद्व्यतीत दूसरी भी सामान्य बीस नदियां हैं। वर्षाकालकी प्रवाहित होते भी उनमें अन्य समय सामान्य जल रहता है। यह नदियां रेतकी जमीन पाकर जिस ओर चाहतीं, वह चलती हैं। इसीसे कोचविहारकी नदियां प्रायः स्थानपरिवर्तन किया करती हैं। प्रधान नदियोंका स्त्रोत विवेक्षण है, परन्तु उसमें कोई पंच

लगानेका प्रयोजन साधित नहीं होता। सैकड़ों पोछे २ पादमी जलों या मलाहोंका काम करते हैं। तम्बाकू और सन नावसे बाहर बहुत भेजा जाता है।

यहां बाघ, जंगली भैंसे, गेंडे और भालू बहुत हैं। नाना प्रकारके हरिण श्रमण किया करते हैं। परन्तु शिकारके लायक शब्दिकां कम देख पड़ती हैं।

गाय बेल, बछड़े, भैंस, बकरे, सूवर, कुत्ते, बिल्लियां वगैरह सभी जानवर कोचविहारमें मिलते हैं।

ग्रामोंका १२०० और गृहोंकी संख्या ८१८२० होगी। मिखलोगंज, माताभांगा, लालबाजार, दिनहाटा, कोचविहार, तूफानगंज प्रभृति स्थानोंमें पुलिसका थाना है।

कोचविहारके अधिकांश अधिवासी राजवंशों या कोचजातीय हिन्दू हैं। प्राचीन अधिवासियोंको जो संख्या अधिक है। मुसलमानोंकी भी कोई कमी नहीं। देशमें विवाहवन्धन दृढ़ न रहनेसे जारज सन्तान बहुत देख पड़ते हैं। बङ्गाल और हिमालयको तराईसे बहुतसे लोग जाकर कोचविहारमें बस गये हैं।

प्राचीन अधिवासियोंकी संख्या ८६५ होगी। इसमें २२६ पादमी आसामके गारो पर्वतसे आये हैं। वह जङ्गलसे काष्ठ आहरण करते हैं; कछारो, मेच और मोरङ्ग जातिके भी घराने देख पड़ते हैं। मेच और मोरङ्ग लोग लवक हैं। मेच बेहरेका काम भी करते हैं। तेलंगा नामक जातिका निर्दिष्ट वासस्थान नहीं, वह बेड़ियावोंको तरह घूमते फिरते हैं। हिन्दूधर्ममें ब्राह्मण, राजपूत, क्षत्रिय, कायस्थ, कोलिता, वैश्य, माड़वारी, वणिक वा गन्धवणिक, नापित, कुम्हार, मछुवे, तेली, लोहार, बारी, माली, कैवर्त, जाही, ग्वाले, कुरमी, लुलाहे, बड़ई, वेण्णव, स्वर्णकार, खेयेन, राजवंशी, कोच, कलवार, धोबी, कहार, धानुक, ध्वज, योगी, चण्डाल, मज्जाह, नालुया, दारी, मबोल, वगत, नोनिया, चमार या मोची, बड़ेलिये, बाजारी, वाग्दी, डोम, हाड़ी, मेहतर, भुइमाली, जङ्गाद और बेड़िया सब लोग देख पड़ते हैं।

अन्यान्य स्थानोंकी भांति यहां भी दोवार बान्ध उपलब्धता है। उसमें एकका आध वा बितारी और दूस-

रेका नाम हैमन्तिक वा आमन है। वितारीमें कितना ही पड़ले और कितना ही पीछे बोया जाता है। इसे माघ फाल्गुन मास बोके ज्येष्ठमें काटते हैं। आमन ज्येष्ठ मास बोया जाता और भाद्र वा आश्विनको काटा जाता है। कोचविहारमें एक विशेष प्रथा यह है कि धान पकने पर पेड़को जड़में नहीं काटते। पड़ले बाले उतार ली जाती हैं; पेड़ वैसे ही खड़े रहते हैं। स्थानीय जपकोंका कहना है कि पेड़ थोड़ा दिन खेतमें लगा रहनेसे खुब कड़ा पड़ जाता और छानो छप्परका काम ठीक चलाता है। सिवा इसके पशु आदि कच्चा चारा अति आनन्दसे खा सकते हैं। सजल भूमिमें जिस समय वितारी धान बोते, आमनका बीज भी साथ ही छोड़ देते हैं। वह शस्य अग्रहायण वा पौषमास काट लिया जाता है। इससे जो मोटा चावल निकलता, सामान्य जपकोंके व्यवहारमें लगता है। वितारी या आठस २० और आमन धान ७६ प्रकारका होता है।

कोचविहारमें चावल ही अधिक उपजता है। गेहूं, मसूर, दुविया, सरसों वगैरह भी कम नहीं होता। राज्यके पश्चिम भागमें सग यथेष्ट निकलता है। सरसोंके कच्चे पत्ते कितने ही लोग खाते हैं। तम्बाकूकी खेती भी बहुत देख पड़ती है। यहां बड़े बड़े वृक्ष बहुत नहीं हैं। बांस प्रचुर होनेसे उसीको लोग जलाते और घर बनाने आदि सब कामों में लगाते हैं। थोड़े दिन हुए दूसरे पेड़ भी रोपित हुए हैं।

भूमिके अधिकार भेदसे जातनेवालों, चुकानेवालों, बंटानेवालों, भाव करनेवालों आदिका विभाग है। जातनेवालोंके लिये जमीनका बन्दोबस्त होता है। कोचविहारकी सब भूमि राजाके अधिकारमें है।

कृषिकार्यके लिये इसी देशका जल, मई, पटहा प्रभृति व्यवहृत होता है। तेल और जमीनकी पैमा-यशमें भी इसी देशका मन, बिस्वा, बीघा आदि प्रचलित है। मजदूर किसी स्वतन्त्र श्रेणीके लोग नहीं हैं। फिर भी प्रत्येक अपनी अपनी जमीनका सब काम करता है। ब्रह्मज, सुकररी भक्ता, बख्शिग, देवत, पीरोंकी जमीन, जागौर नामक कई जमीनोंका अगम नहीं देना पड़ता।

इस देशमें नहर नहीं है। जहां पानी नहीं मिलता, कूवा खोदनेमें ६) ७) ८० लगता है। अच्छा कूवा बनानेमें ७०) ८०) ९० तक खर्च पड़ जाता है। यहां अतिवृष्टि अनावृष्टि प्रायः नहीं होती। इसीसे दुर्भिक्ष भी बहुत कम पड़ता है। १८२२ और १८४२ ई० के बाढ़में कितना जो गन्ना बह गया और गाय बल बछड़े आदिका भी प्राण नष्ट हुआ। १८५४ ई० के अनावृष्टिसे जगह जगह दुर्भिक्ष पड़ा था। १८६३ ई० के टिब्बियोंने तम्बाकू और सरसोंका खा डाला, परन्तु धान्यकी विशेष क्षति न पहुंचायी।

कोचविहारमें तीन बड़ी सड़कें हैं, जिनमें एक धुबड़ीको चली गयी है।

कोचविहारके अधिकांश लोग कृषिजीवी हैं। परन्तु अन्योन्य व्यवसाय भी चलते हैं। चंडी और मेखली नामक वस्त्र इसी देशमें प्रसृत होता है। एरण्ड वृक्षका गोल कौड़ा जो रेशम निकालता, उसीसे अग्ली बनती है। मेखली पटसनसे तयार की जाती है। इसका कपड़ा मोटा रहता, जो परदेमें लगता है।

कोचविहारका प्राचीनतम इतिहास गाढ़ तमसा च्छन्न है। पूर्वकालको इसका कितना ही अंश काम-रूप और कितना ही प्राचीन गौड़ वा पौण्ड्र राज्यके अन्तर्गत था। पड़ले इस अञ्चलमें भगदत्तवंश, कायस्थ-वंश, आदि राजा राजत्व करते थे। वर्तमान कोच-विहारके लालबाजार नामक नगरमें कायस्थवंशका राजधानी कामतापुरका भग्नावशेष पड़ा है।

कामतापुर और कामदप देखी।

तबकात-इ-नासिरी नामक फारसी ग्रन्थ पढ़नेसे समझ पड़ता है—बख्तियार खिलजी जब तिब्बत पर चढ़े, कोचविहारमें कूच, मेच और तिहारु लोग रहते थे। कूचों (कोच) और मेचोंके बीच आकिमेच नामक एक सरदार रहे, उन्होंने सुसलमान धर्म ग्रहण किया और पहाड़ी राजसे बख्तियारको तिब्बत पहुंचा दिया। उनके प्रत्यागमन कालकी कामरूपके राजाने नदीका सेतु तोड़ डाला था। इससे बख्तियार और विपदापन्न हुए। उनके प्राण बचनेकी आशा न रही

परन्तु उक्त कोच सरदार बड़े यत्न और कोशसे देव-
कोट तक उन्हें ला सके थे।

कामरूप शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

मालूम होता कि तत्काल यह अचल कामरूप
राज्यके अन्तर्गत रहा, फिर थोड़े दिनों सुमनमार्गोंके
अधिकारभुक्त हुआ। ई० १५ वीं शताब्दीके बीच मेच-
जातिका अभ्युदय देख पड़ा। योगिनीतन्त्रमें लिखा है—

“कौचाख्यानि च देशे च योगिनीसमोत्पत्तः।

साध्वी सती ब्रह्मिका हि रेवती जलविष्णुता ॥

क्लेष्टदोहवा या तु योगिनी सुन्दरी नमा।

भिक्षाचार प्रसङ्गे न गच्छामि च दिवानिशम् ॥

अरास्त्वः रतिर्जाता मम कामिनी सर्वदा।

तस्याः पुत्रो विशुसिंहो मदौरससमुद्भवः ॥” (१३ पटल)

कोच देशमें योगिनीके निकट रेवती नामकी एक
साध्वी स्त्री रहती थी। यह सुन्दरी क्लेशकी औरस-
जाता होते भी सर्वदा योग किया करती थी। मैं (शिव)
भी भिक्षा लेनेके लिये सर्वदा उसके पास जाता रहा।
इस प्रकार मुझसे और इस कामिनीसे मेलजोल बढ़ा
था। मेरे औरस और कोच-रमणीके गर्भमें विशुसिंह
नामक एक पुत्रने जन्म लिया।

योगिनीतन्त्रके त्रयोदश पटलमें महादेवके कोच-
नीपाड़ा जानि और विशुकी मातासे मेल बढ़ाने पर
कहा है—

‘प्रापेक्षरि नगिन्द्रमन्दिनि । मैं इस साध्वीका वृत्तान्त
कहता हूँ’ अवश्य करो। इस साध्वी रमणीने एकाग्र-
कामनमें वर्षके साथ केलि की थी। यही वेदाङ्गसम्भवा
देवी सर्वदा योग करती रही। मेरे अनुष्ठानमें इसकी
परिहसि न मिलनेसे मुझे पानेके लिये इसने कठोर
तपस्या की थी। एकाग्रकामनमें अनेक तीर्थ और पर्वत
हैं। इस स्थानमें बैठ कर तपस्या करनेसे वासना पूर्ण
होती है। देवक्रमसे किसी ब्राह्मणने जाकर इस साध्वी-
से भिक्षा माँगी थी। भिक्षा कहाँ, रमणीने उसे उत्तर
तक न दिया। ब्राह्मण विगड़ उठे और—दुर्मदे! तू
क्लेशत्वको प्राप्त होगी—शाप देकर चले गये। योगि-
नी क्लेशत्वको पहुँची थी। जो व्यक्ति दे सकते भी
भिक्षुकको भिक्षा नहीं डालता, बड़ी दुर्गतिमें पड़
जाता है। ऐश्वर्यशाही होते भी विनयी रहना उचित

है। रमणीने मुझे तपस्या करके माल ले रखा था।
इसीसे मेरा मेलजोल बढ़ा। मेरे औरस और कामिनी-
के गर्भसे विशुसिंह नामक एक पुत्रने जन्म लिया था।
विशु अल्प दिनोंमें ही कामरूप, सोमार और पञ्चगोड़-
के राजाओंका पराजय करके अद्वितीय समृद्धिशाली
बन गये। उनके कितने ही पुत्र हुये थे। कोच लोग
धार्मिक और उनके राजा पृथिवीपालक तथा युद्ध-
विशारद हैं। विशुसिंह योग अवलम्बन करके कल्याण
पर्यन्त उसी ग्राममें अवस्थान करेंगे। कुछ दिन पीछे
साध्वी देवी मेरे शरीरमें ही लय प्राप्त हुई। नन्दीकी
माताकी भाँति यह योगिनी मेरी जाया और विशु
नन्दीजैसे मेरे प्रियपुत्र हैं। विशुसिंह भी कल्याणमें मुक्त
होगे। उनके वंशजात सभी महात्मा समृद्धिशाली और
अन्तमें केलासवासी बनेंगे। यह भैरवकी भाँति रूप-
योगसम्पन्ना देवकन्याओंके साथ विहार और क्रीड़ा
करते हैं। जब जब कामाख्यामें ब्रह्मशाप उपस्थित
होगा, मैं भी अवतीर्ण हो कामरूपका प्रतिपालन
करूँगा। इस वंशके सभी लोग कामरूपप्रतिपालक हैं,
कल्याणको मुक्त हो जायेंगे। तब तक यही नियम
रहेगा। कलमें तीन सौ वर्षका एक कल्प होता है।
उतने ही वर्षों तक शापका भोग चलेगा।’

अकबर-नामामें लिखते हैं—प्रायः ५ सौ वर्ष पहले
किसी रमणीने शिवसदनमें पुत्रकामना की थी। उसकी
प्रार्थना पूर्ण हुई। उन्हीं पुत्रका नाम विशा (विशु)
है। यह विशा क्रमशः कोवविहारके राजा बन गये।

राजा प्राणनारायणके समय बने कविराजके ‘राज-
खण्ड’ और प्रायः ८० वर्ष पहले मुंशी यदुनाथ घोष-
के लिखे ‘राजोपाख्यान’ नामक कोवविहारके इति-
हासमें प्रथम कोवराज विशुसिंहकी उत्पत्ति पर बहुत
कुछ लिखा है। उसीका संक्षिप्त भावार्थ यह है—

‘४५८१ कलब्दको चिकना पहाड़ पर मेचके घर-
में जीराने जन्म लिया था। हरिया (हरिदास) मेच
नामक एक व्यक्तिके साथ जीरा और उसकी भगिनी
जीराका विवाह हुआ। यथाकाल जीराके चन्दन और
मदन नामक दो पुत्रोंने जन्म लिया था। किन्तु जीराके
तब भी कोई पुत्र सम्मान न हुआ। वह सर्वदा मन ही

मन महादेवकी पुकारा करती थीं। महादेवने भिक्षु-
वेषमें आकर उनकी मनस्कामना पूर्ण कर दी। पहले
शिशुसिंह और उसके पीछे १४२२ शककी महादेवके
औरस तथा होराके गर्भसे विश्वसिंहने जन्म लिया।
१४२२ शककी विश्वने मेचवालकीके साथ खेलनेके
समय भगवतीकी एक मूर्ति बना कर पूजो थी। बलि-
दानके समय उन्होंने एक मेचवालकका शिर उतार
देवीके उद्देशसे उत्सर्ग किया। यह भीषण घटना देख
मेचवालक इधर उधर भाग गये। घाटग्रामके तुर्की
कोतवालको इस भयङ्कर नरवलि का संवाद मिला था।
उन्होंने अविलम्ब शिशु और विश्व का मस्तक काट लाने-
की आज्ञा निकाली। इधर यह वनमें जाकर छिप रहे।
उसी दिन शेष रजनोको वनमध्य छद्मके नीचे विश्वने
स्वप्नमें देवीके सुं सुना था—“हम तुम्हारे प्रति मन्तुष्ट
हुये हैं, क्लेशयुद्धमें तुम जीतींगे और पीछे तुम्ही राजा
होगे”। दूसरे दिन दोनों भाई चन्दन और मदनके
साथ कोतवालके लोगीं पर टूट पड़े। इस क्षुद्र युद्धमें
मदन और कोतवाल मारे गये। १४३२ शकमें विश्वने
निज बाहुबलसे वेमात्र (सीतेली) भ्राता चन्दनको राज्य
पर अभिषेक किया। परन्तु कोचका शासनभार अपने
ही हाथमें रखा। इसी अभिषेक दिनसे कोचविहारका
प्रथम ‘राजशाक’ चल पड़ा। उक्त घटनासे कुछ ही
पहले राजा कामतेश्वरके परलोक जानेसे कामपोठ
अराजक बना था। विश्वने अनायास सैन्यके साथ काम-
पोठ अधिकार करके कोचविहार राज्य बढ़ा दिया।*

अंगरेज ऐतिहासिकोंके मतमें हाजा नामके कोई
प्रबल पराक्रान्त कोच-सरदार रहे। रङ्गपुर और काम-
रूप जिले तक उनका अधिकार था। इनके होरा और
जोरा नामकी दो कन्याओंने जन्म लिया। नीचजातीय
हरिया मेचके साथ होराका विवाह हुआ था। मालूम
नहीं, जोरा किसको व्याही थीं। किन्तु जोराके गर्भसे
(जलपार्श्वगुड़ीके वर्तमान रायकत-वंशके प्रादिपुत्र)

शिशु और होराके गर्भसे विश्वने जन्म ग्रहण किया।
यही विश्व मातामहके अधिकारी हुए।*

जो हो, परन्तु विश्वसे मेवराजवंश प्रसिद्ध हुआ
है। राजखण्ड और राजोपाख्यानके मतमें विश्वसिंह
१४४५ शककी २२ वर्षके वयःक्रमकाल सिंहासन
पर बैठे थे। उनके सहोदर शिश्वने रायकत
अर्थात् सर्वप्रधान मन्त्री हो उनके शिरपर राजकूत
धारण किया। जलपार्श्वगुड़ी ग्रन्थमें रायकतका विवरण देखो। काम-
पोठके पूर्वतन क्लेशविजेता हिन्दूराजाके तीन कन्यायें
थीं। इन्हीं तीनों कन्याओंके साथ शिश्व, विश्व और
चन्दनका विवाह हुआ। विश्वने राजा होने पर सौमार
राज्य, विजनी (विद्याग्राम) और विजयपुर अधिकार
किया था। इसके पीछे शिश्वसिंह वैकुण्ठपुरमें सुन्दर
भवन बना वहीं जाकर रहने लगे।

पहले कोलिता लोग ही कोचविहारमें गुरु और
पौरोहित्यका कार्य करते थे। राजा विश्वसिंहने मैसिल
और श्रीहृदके वैदिक ब्राह्मणोंको बुला गुरु और पुरा-
हितका भार सौंप दिया। इन्होंने चिकना-पहाड़ छोड़
कोचविहारके समतलक्षेत्रमें राजधानीको स्थापन किया
और उसका नाम ‘हिङ्गलावास’ रखा था, फिर १४७६
शक (१५५४ ई०) को राज्य परित्याग करके धानप्रस्थ
ले लिया। राजखण्ड और राजोपाख्यान देखते विश्वके
तीन पुत्र हुये। ज्येष्ठका नृसिंह, मध्यमका नरनारायण
और कनिष्ठका नाम चिलाराय या शुक्लध्वज था। विश्व-
सिंहके संसारका आश्रम छोड़ने पर उनके मंभले बेटे
नरनारायण ही राजा हुये। राजखण्डमें लिखा है—जेटे
लड़के नृसिंहने नरनारायणके विवाहकाल नववधूको
आशीर्वाद दिया था कि वह राजाकी रानी होगी। किन्तु
विश्वके बाद जब नृसिंहके अभिषेकका समस्त आयोजन
किया गया, नरनारायणको पत्नी सखियोंके साथ सभामें
पहुँच सर्वसमक्ष नृसिंहको अभिवादन करके कहने
लगीं—‘आपने मेरे विवाहमें आशीर्वाद देकर कहा कि
मैं राजरानी होऊंगी। परन्तु अब आप राजा होते
हैं। मैं किस प्रकार रानी बन सकूंगी ? आपको बात

* राजोपाख्यान ग्रन्थमें उक्त विवरण योनिनीतनका मतानुयायी बताया
गया है। परन्तु योनिनीतनकी २ पौखियोंमें ऐसा विवरण नहीं मिलता
आर विश्वसिंहको कोचसरदार किसी दूसरेका नाम भी नहीं देख पड़ता।

* Hunter's Statistical Account of Bengal, X. 403.

भूट समझ पड़ती है।' नृसिंहने खेड़के साथ उत्तर दिया—'बेटी तूने ठीक कहा है। तूही रानी होगी।' इसी समय उन्होंने नरनारायणको अभिषेक करनेका आदेश किया था। चारों ओर जयध्वनि होने लगी। वैकुण्ठपुरसे समागत रायकतने राजकुल धारण किया और नरनारायण सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। उसी दिनसे नृसिंह संसारविरागी बन गये।

किन्तु राजा नरनारायणके समसामयिक पण्डित रामसरस्वतीने अपने ग्रन्थमें लिखा है कि विश्वसिंहके कोई पुत्र न था। उनकी कन्याके गर्भसे नरनारायणने जन्म लिया। महाराज नरनारायणका दूसरा नाम मङ्गदेव वा मङ्गनारायण था। कामरूप देखो।

राजा नरनारायणसे सर्वप्रथम कोचविहारमें 'नारायणी' मुद्रा (सिका) प्रचलित हुई। उन्होंने भ्राता शुक्लध्वजके साथ सौमार और कामरूप अधिकार किया था। कहते हैं कि शुक्लध्वजके वीरत्वसे ही नरनारायण नामाख्यान जीत सके। शुक्लध्वजने वीरमदमें लक्ष्मण हो सोचा था—जब हमी राज्यारोह करते और विभिन्न जनपद कोचविहारके अधिकारमें जब हमारी ही कारण पड़ते, हम क्यों न अपने आप राजा होंगे। वह राजा नरनारायणके प्राणवधका सङ्कल्प कर तलवार हाथमें लिये आगे बढ़े। परन्तु राजाके पास पहुँचने पर वह फूट फूट कर रोने लगे और एसि हाथसे छूट पड़ी * क्रमशः राजा नरनारायणने शुक्लध्वजसे उनकी अवस्थाके परिवर्तनका कारण पूछा और प्रकृत तथ्य विदित होने पर उसी समय उन्हें कामरूपका राजा बना दिया।

राजा नरनारायणने ही कामरूप जिलेमें कामाख्या देवीका मन्दिर आदि शत शत मन्दिर निर्माण कराये थे। आज भी कामाख्याके मन्दिरमें नरनारायण और शुक्लध्वजकी मूर्त विराज रही है।

महाराज नरनारायणने ११ वर्ष राजत्व करके

* राजोपाख्यानमें लिखा कि शुक्लध्वजने दिखा था—मार्गे दशमुखा नरनारायणकी रक्षा कर रही हैं। उसीसे शुक्लध्वज इतने अनुत्तम हो गये। फिर भार्गव मुंढसे दशमुखाकी कथा सुनकर ही राजा नरनारायणने दुर्गा पूजाकी प्रचलन किया।

७८ राज शाक (१५०८ शक) की देहत्याग किया था। फिर रायकत और मन्त्रियोंने उनके पुत्र लक्ष्मीनारायणको राजा बनाया। आसामपुरणीके मतमें १५०६ शककी लक्ष्मीनारायण राजा हुये थे।

अबुल फज्जके अकबरनामामें लिखा है—बाकगी-साई (नरनारायण) ने प्रथम विवाह न किया था। इसीसे उनके कोई लड़का भी न रहा। उन्होंने भ्रातृ-ध्वज पाटकुमारकी युवराज ठहराया था। फिर उन्होंने भार्गव शुक्ल गीसाईके अनुरोधसे वृद्ध वयसमें विवाह कर लिया। इसी विवाहका फल लक्ष्मीनारायण थे। राजाके मरने पर लक्ष्मीनारायण राजा हुए। इसी समय उक्त पाटकुमारने राज्यलाभकी आशासे विद्रोह उठाया था। लक्ष्मीनारायणने घोर विपद्में पड़ अकबरकी अधीनता स्वीकार की और बङ्गालके सूबेदार मानसिंहको सानुरोध पत्र लिखा कि आप मेरा साहाय्य कीजिये। मानसिंह आनन्दपुर जाकर उनसे मिले थे। अनेक आभेद उत्सवोंके पीछे वह कोचविहार-राजकी कन्याका पाणिग्रहण करके लौट पड़े।

राजखण्ड और राजोपाख्यानमें लिखा है कि राजा लक्ष्मीनारायणने सुकुन्द सार्वभौम नामक किसी ब्राह्मणका प्रसन्नान किया था। उन्होंने दिल्लीके बादशाह जहांगीरके पास जाकर नालिश की। इसीसे दिल्ली-शहरने गौड़के सूबेदारको लक्ष्मीनारायणके विरुद्ध युद्धघोषणा करनेकी अनुमति दी थी। सुसलमानोंके उत्पातसे कोचराज्य भ्रंस-प्राय हो गया। महाराज लक्ष्मीनारायणने अपने ब्रजनारायण और भीमनारायण नामक दो पुत्रोंको साथ लेकर दिल्ली यात्रा की थी। वहाँ बादशाह उनके असाधारण सामर्थ्यका परिचय पा लक्ष्मीनारायणसे मिले और दोनों सन्धिसूत्रमें आवद्ध हुये। प्रत्यागमनकालको कोच-राज दिल्लीसे अच्छे अच्छे कारीगर साथ लाये थे। उन्होंने १८ राजकुमारोंके लिये आठारकोटा बनाश था।

सुसलमानोंके किसी इतिहासमें नहीं लिखा—महाराज लक्ष्मीनारायण दिल्ली गये थे या नहीं। अकबरनामामें कहा है—प्रायः १००५ हिजरी (१५८६ ई०) की कोचाधिपति लक्ष्मीनारायणने बादशाहकी अधीनता मानी थी।

भार्यन चक्रवर्तीमें पढ़ते हैं कि कोचराजाके पास १००० अक्षारोही और १००००० पदाति सेन्य था।

राजोपाख्यानके मतमें १५४३ शककी लच्छी-नारायण मरे और उनके लड़के वीरनारायण राजा हुये थे। उन्होंने आठारकोटामें राजधानी स्थापित की। एकजन मण्डलने 'मण्डलावास' नामक मनोरम मन्दिरशोभित राजप्रासाद निर्माण करके राजाको दिया था। वीरनारायणके अभिषेककाल रायकत न पहुँचे। उनके बदले उनके भ्राता नाजिर देव महीनारायण कुमारने राजद्वार पकड़ा था। इसीसे उन्हें द्वारनाजिर उपाधि दिया गया। इसी समय भोटानके देवराजने कर रोक रखा।

महाराज वीरनारायण अति विस्वासी, कामुक, विद्योत्साही और ब्राह्मणभक्त थे। राजोपाख्यानमें लिखते हैं कि उन्होंने अनेक विवाह किये। किसी स्त्रीके गर्भसे एक अनुपमा सुन्दरी कन्याने जन्म लिया था, परन्तु राजाने उसे कभी न देखा। वही वास्तिका जब घोड़शी हुयी, घटनाक्रमसे वीरनारायणको देख पड़ी। उसके रूप पर राजा मोहित हुये और अपना कु अभिप्राय उसके निकट कहना भेजा। राजकुमारीने घृणा लज्जासे फिर मुख न दिखाया। नदीके स्त्रोतमें डूब प्राण गंवाया था। उसी दिनसे इस स्त्रोतस्त्रिनीका नाम 'कुमारी नदी' पड़ गया। राजा इस दास्य समाचारसे शोकसन्तप्त और अतिशय लज्जित हुये। उनका सुख, धर्म, उत्साह, कोतुहल न जाने कहाँ चला गया। अल्प दिन पीछे १५४८ शककी उन्होंने इह-संसार परित्याग किया था। द्वारनाजिर महीनारायणने वीरनारायणके पुत्र प्राणनारायणको राजसिंहासन पर बैठा दिया। प्राणनारायणने स्मृति, व्याकरण और सङ्गीतशास्त्रमें बहुत पाण्डित्य लाभ किया था। उन्होंने विक्रमादित्यका अनुकरण करके 'पद्मरत्नसभा' बनायी। उनके उत्साह और यत्नसे कविरत्नने "राज-खण्ड" नामक कोचराज्यका विवरण लिखा था। फिर महाराज प्राणनारायणके ही उत्थोगसे प्रसिद्ध अस्वीश, बाणेश्वर और वण्डेश्वर देवका इष्टक-मन्दिर, कामतेश्वरी देवीका मन्दिर तथा सुडङ्ग प्राचीर निर्मित हुवा।

३८ वर्ष राजत्व करनेके पीछे वह मृत्युशय्या पर लीये थे। उनके मृत्युका संवाद पाद्वारनाजिर महीनारायणने राज्यलाभकी आशासे चार पुत्र और सेन्य दल साथ ले राजधानी प्रवेश किया। पड़ली उनकी इच्छा अपने ज्येष्ठपुत्रको कोचराज्य देनेकी थी। परन्तु उन्होंने अपने चारों पुत्रोंको सिंहासनलाभकी आशामें उत्तेजित देखा। सुतरां इच्छा न रहते भी उन्होंने प्राणनारायणके पुत्रके मस्तक पर ही दत्त धारण किया।

१५८७ शककी मोदनारायण अभिषिक्त हुये। इस समय द्वारनाजिर महीनारायण ही राज्यके सर्वमय कर्ता बने थे। महाराज मोदनारायणने देखा कि मैं कहनेका राजा हूँ, मेरे लिये राजभोग विडम्बना मात्र है। उस समय उन्होंने अनेक चेष्टाओंसे द्वारनाजिरके कितने ही बड़े सिपाहियोंको अपने दलमें मिला उनके विरुद्ध युद्धघोषणा की थी। द्वारनाजिर परास्त हो संन्यासीके वेशमें भागे और वंजुण्ठपुरकी राजमें रायकतके कर्मचारियोंने उन्हें मार डाला।

१६०२ शककी मोदनारायणने अपुत्रक अवस्थामें प्राणत्याग किया था। इसी समय महीनारायणके पुत्र दर्पनारायण भोटियोंके साहाय्यसे कोचराज्य पर चढ़े। जगदेव और भुजदेव रायकतने आकर विद्रोहियोंके हाथसे कोचविहार उधार किया और प्राणनारायणके तृतीय पुत्र वासुदेवनारायणको राजा बना दिया। इसी समय दर्पनारायणका मृत्यु हुआ।

इससे २ वर्ष पीछे जगत्नारायण प्रभृति महीनारायणके अपर पुत्रोंने फिर भोटिया सेन्यसंग करके राजधानीको आक्रमण किया था। युद्धमें वासुदेव निहत हुये। रानिया वासुदेवके भतीजी माननारायणके शिशु-पुत्र महेन्द्रनारायणको लेकर स्थानान्तरकी चली गयीं। इसीके साथ महीनारायणके दूसरे लड़केने राजा बननेका आयोजन लगाया था। परन्तु रायकत वीर जगदेव और भुजदेवने आकर उनकी सब चेष्टाएँ निष्फल कर दीं। जगत्नारायणने राजधानीको एक बारगी हो प्रश्रयान बना कर पुष्ट प्रदर्शन किया था।

फिर रायकतके यत्नसे १६०४ शककी शिशु महेन्द्र-

नारायण* अभिषिक्त हुये। इस समय उनकी उम्र सिर्फ ५ वर्षकी थी। पीछे भी जगतनारायण और उनके भाई यज्ञनारायण दोनोंने मिल कर अनेक उपद्रव किये। थोड़े दिनों बाद महाराज महेन्द्रनारायणने जगतनारायणके मृत्युका संवाद सुना था। उसी समय कोचविहारमें अन्तर्विग्रह उठ खड़ा हुआ। कोचराजने यज्ञनारायण और उनके भतीजोंकी राजधानीमें सा यज्ञनारायणकी छत्रनाजिर और सैन्याध्यक्ष बनाया था। इसी समय कोचविहारके अन्तर्गत काकिना, टेपा, मनघना, काटपूर, काजिरहाट, बोदा, पाटग्राम और पूर्व भाग परगना मुसलमानोंने अधिकार किया। पाटग्राममें मुसलमानी सैन्यके साथ यज्ञनारायणका एक घोरतर युद्ध हुआ था। मुसलमानोंने यहां बहुतसे कोच सिपाहियोंका मुण्डपात किया। उसी लड़ाईसे इस खानका दूसरा नाम 'मुण्डमाला' पड़ा है। पूर्वभाग की सीमापर बहुतसे तुर्क मारे गये। आज भी उस जगहको "तुर्ककाट" कहते हैं।

१६१३ शककी यज्ञनारायणका अकस्मात् मृत्यु हुआ। इसी समय राजाकी अनिच्छामें दर्पनारायणके पुत्र शान्तनारायण छत्रनाजिर बन गये। ११ वर्ष मात्र राजत्वके पीछे महाराज महेन्द्रनारायणका मृत्यु हुआ। तरह तरहकी गड़बड़ीके बाद १६१६ शककी जगतनारायणके पुत्र रूपनारायण राजा बने थे। इण्डर आदि अंगरेज ऐतिहासिकोंके मतमें राजा महेन्द्रनारायणके स्वर्गवासी होने पर भगीदेव और जगदेव रायकतने कोचविहारका सिंहासन अधिकार करनेकी चेष्टा की, परन्तु मुगल सिपाहियोंकी मददसे रूपनारायणने उन्हें नीचा दिखाया।†

परन्तु अंगरेज ऐतिहासिकोंकी बात पर रायकतवंश विश्वास स्थापन नहीं करता। राजोपाख्यानमें कहा है

* महाराज महेन्द्रनारायणके काष्ठ पुत्रका नाम विष्णुनारायण था। वह जगतनारायण नामक एक पुत्र की वृद्ध अवस्थामें पैदा हुये। महेन्द्रनारायण इन्होंने मालनारायणके लड़के रहे।

† W. W. Hunter's Statistical Account of Bengal, Vol. X, p. 414.

कि महेन्द्रनारायणके जीते-जी जगदेवका मृत्यु हुआ और भुजदेव रायकत पीड़ित पड़े। ऐसे स्वप्नमें यह असम्भव है कि उन्होंने कोचविहार आक्रमण किया था। यदि वह चाहते, तो बहुत पहले ही महेन्द्रनारायणकी राजत्व न दे अपने आप कोचराज्य अधिकार कर लेते।

राजा रूपनारायणने तरसा नदीके पूर्वकूल गुड़ियाहाटी ग्राममें राजधानी स्थापन की। आजकल उसीका नाम कोचविहार है। राजा रूपनारायणके साथ टाकाके नवाब जबदस्तखानकी एक सन्धि हुई। उससे महाराजको बोदा, पाटग्राम और पूर्वभाग कई चक्रले वापस मिले। किन्तु राजाको छत्रनाजिर शान्तनारायणके नामसे टाका सूबेदारके पास कर भेजना पड़ता था। उन्होंने राजधानीमें मदनमोहन देव और पाटदेहरा देवीकी मूर्ति प्रतिष्ठा की। १६३६ शककी उनकी मृत्यु हुआ। उनके ज्येष्ठपुत्र उपेन्द्रनारायण सिंहासन पर बैठे थे। टेपाके जमीन्दार महादेव राय राजाके खासमबोस हुये। राजा उपेन्द्रनारायणने बन्धुताके सूत्रमें दोननाजपुरराज प्राणनाथके साथ पगड़ी बदली थी। उन्होंने अपनी प्रिय नर्तकी लालबाईके नाम पर लालबाजार बसाया। इसी खान पर प्राचीन कामतापुर था। यथाकाल राजा उपेन्द्रनारायणके सन्तानादि न होनेसे उन्होंने दौवान देव सत्यनारायणके* पुत्र दोननारायणको गोद ले लिया।

वह दोननारायण पर बड़ा ही अनुग्रह रखते थे। एक दिन नाजिर इन्द्रनारायण देवने दोननारायणकी परामर्श दिया—'तुम्हें राजा बहुत चाहते हैं। इस समय उनसे एक सन्ध ले लो कि उनके मृत्यु पीछे तुम्हें राजा होंगे। ऐसा न करनेसे तुम्हारे राजा होनेकी आशा नहीं। इसी परामर्शके अनुसार दोननारायणने राजासे सन्ध मांगी थी। राजाने उनकी बात न मानी। तब दोननारायणने अत्यन्त क्रुद्ध हो रङ्गपुर जाकर सुबुद्ध अली खान नामक फौजदारकी मददसे कोचविहार पर चढ़ाई की थी। इस समय गौरीप्रसाद

* सत्यनारायण दर्पनारायणके पुत्र और शान्तनारायणके भाता थे।

बख्शीके कोशकसे कोचराज्य दुश्मनके हाथसे मुश्किलमें छूटा। राजा उपेन्द्रनारायणने बख्शी पर खूब खुश हो कर उन्हें खासनबीसका जोरदा दिया था। फिर राजा शादीखान् नामक स्थानके गोखामीके निकट दीक्षित हुये। इसी समय उनकी छोटी रानीके गर्भसे देवेन्द्रनारायणने जन्मग्रहण किया। १६८५ शककी चलियावाड़ी नामक स्थानमें राजा महेन्द्रनारायणका मृत्यु हुआ। बड़ी रानीकी कोशिशसे चार वर्षके कुमार देवेन्द्रनारायणने सिंहासन पर आरोहण किया। इसी समय नाजिर रुद्रनारायण सिपाहियोंकी तलवाहकी भाड़में राज्यका बहुतसा रूपया उकार गये। राजगुरु रामानन्दगोखामीके निकट रतिशर्मा ब्राह्मण रहता था। किसी दिन जब बालक राजा देवेन्द्र खेल रहे थे, उस दुष्टने भाकर इनका गिर काट डाला। थोड़ी ही देरमें राजाके मारे जानेकी बात चारों ओर चल पड़ी। राज्यमें सब जगह हाहाकार मच गया। भूटानके देवराजने यह खबर पाकर रामानन्द गोखामीको उत्त हत्याकाण्डका मूल समझ उन्हें अपने राज्यमें ले जाकर मार डाला। अनेक दुष्टटनाओंके पीछे दीवानदेव खड्गनारायणके* लड़के गोपाल जिनका दूसरा नाम धैर्यन्द्र नारायण था, राजा हुये। भोटियोंने जल्मेखर, मन्दुस और जलस नामक स्थान जीते थे। देवराजने पेनसतुमा नामक किसी प्रतिनिधिकी कोचराजधानी भेज दिया। २६० राजशाहकी देवराजने धैर्यन्द्रनारायणसे साहाय्य मांगा था। तदनुसार दीवानदेव रामनारायणने ससेन्य विजयपुर आक्रमण किया। देवराज इससे बहुत ही उपकृत हुये। इस युद्धमें जयलाभ करके रामनारायण बहुतसों चीजें लूट लाये थे, किन्तु उन्होंने बहुत थोड़ी चीजोंके सिवा राजाकी कुछ भी नहीं दिया। राजाके पात्र-मित्रोंने उनके कानमें बार बार यह बात डाल राजाका मन तोड़ा था। उसके पीछे सबने साजिश करके दीवानदेवका प्राणवध किया। पेनसतुमाने भूटानराजके निकट यह दारुण संवाद पहुँचाया था। देवराज हत्याकाण्डका संवाद पाकर कोचराज पर बहुत विगड़

और कोशकक्रमसे उन्हें तथा उनके पात्रमित्रोंको अपने राज्यमें ले जाकर बन्दी बनाया। पुरमहिलाओंने यह खबर सुनके राजाके शिशुपुत्र धरेन्द्रनारायणको प्रत्यः-पुरमें छिपा रखा था।

१६८३ शककी भोटियोंने रामनारायणके भाग्यित राजेन्द्रनारायणका अभिषेक किया। राज्यको रक्षाके लिये पेनसतुमा कोचविहारमें हो रहे धीरे धीरे यहां भोटियोंका आधिपत्य बढ़ने लगा। दूसरी वर्षकी महासमारोहसे राजा राजेन्द्रनारायणका विवाह हुआ। इस विवाहमें देवराजने उन्हें बहुत भेंट दी थी। विवाहके पीछे पञ्चम दिवसकी महाराज राजेन्द्रने इहलासा संवरण की। उन्हींके समय कोचविहारकी नारायणी मुद्रा पुष्पचिह्नित हुयी थी।

कुमार वैकुण्ठनारायणने पेनसतुमासे मिलकर राजा होनेकी चेष्टा की। उसी समय काशीनाथ लहो-ड़ीके यत्नसे कुमार धरेन्द्रनारायण सिंहासन पर बैठे थे। पेनसतुमा अपनी क्षमता चलते न देख देवराजके पास पहुँचे। देवराजने कोचविहारकी आभ्यन्तरिक अवस्था समझवूझ कर कोचराज्य आक्रमण करनेकी बक्साहारसे ३८४० भोटिया सैन्य भेजा था। चेवाखाता नामक स्थानमें नाजिरदेवने उन्हें परास्त किया। फिर देवराजने समस्त कोचविहार विध्वंस करनेके लिये जम्मे नामक सेनापतिके अधीन १८ हारसे १७२८० सिपाही रवाना कर दिये। बक्साहार, लख्खो-पुरहार और हलदी बाड़ीहारसे भोटिया-सेनानायक संयामिनीपुरीमें आ उपस्थित हुये। इस बार कोच फौज हारी थी। भोटिया-सेनापति जिम्मेने रामनारायणके लड़के वीजेन्द्रनारायणकी राजा बना चेवाखाता नामक स्थानमें ले जाकर रख दिया। बड़ी जलवायु असह्य होनेसे अल्पदिनोंमें ही राजा वीजेन्द्रनारायण कालघासमें पतित हुये। इसी समय भोटियोंने चितालदहा, बाजाडांगा, नवामारो, मड़ाघाट, लख्खो पुर आदि स्थानोंमें दुर्ग बना लिये और भोटिया-सेनापति जिम्मे दलबल लेकर कोचविहारके रङ्गमन्दिरमें रहने लगे। जो ही, समस्त कोचविहार-राज्य

* खड्गनारायण, राजावपनारायणके लड़के और उपेन्द्रनारायणके छोटे बेटे।

भोटियोंके हाथमें चला गया। बीजेन्द्रनारायणके * स्वर्गवासी होने पर नाजिरदेव खगेन्द्रनारायण, धैर्येन्द्र-नारायणके बेटे कुमार धरेन्द्रनारायणको राजा देनेके लिये आ पहुँचे थे। भोटियोंने उनके विरोधी हो युद्ध घोषणा की। नाजिर हार गये। भोटियोंने राजा धैर्येन्द्रके बड़े भतीजे वज्जेन्द्रको सिंहासन पर अभिषेक किया था। नाजिरदेवने भाग कर अंगरेजी कम्पनीका आश्रय लिया। किसीके मतमें उस समय वैकुण्ठपुरके दर्पदेव रायकतने भोटियोंको साहाय्य दिया था। परन्तु यह बात विश्वासयोग्य नहीं।

१७७१ ई० की ५ वीं अपरैलको अंगरेजोंके साथ राजा धरेन्द्रनारायणकी एक सन्धि हुई। उसके अनुसार अंगरेज लोग ५० हजार रुपये लेकर कोचराजका साहाय्य करने पर सन्मत हो गये। फिर नाजिरदेवके साथ अंगरेज सैन्यने कोचविहारमें प्रवेश किया था। भोटिया-सेनापति जिम्मे असाधारण सामर्थ्य दिखा युद्धमें पराजित होर निहत्त हुये।

अंगरेज-सेनानायक परल्लिङ्गेन चेचाखाता पहुँच विजयघोषणा की थी। भूटानमें देवराजके पास कम्पनीका एक पत्र गया, जिसमें लिखा था आपकी चाहिये कि महाराज धैर्येन्द्रनारायण और उनके लोगोको छोड़ दें, नहीं तो युद्ध अनिवार्य है। देवराजने भीत हो ससन्मान महाराज धैर्येन्द्रनारायणको चेचा-खाता तक पहुँचा दिया। नाजिरदेव राहमें महा-राजसे मिलने आये। प्रथम साक्षात्काशको महाराज धैर्येन्द्रनारायणने उनसे कहा था—‘नाजिर कम्पनीके हाथमें राजत्व क्यों सौंप दिया? जो राजा विदेशीको कर देता, कृत धारणसे क्या फल उठा लेता है। मैं पूर्व-जन्मके पापसे देवराजके हाथ कैद हुआ। स्वाधीनता-विक्रयकी अपेक्षा विश्वसिंहका वंशकीर्ण होना अच्छा था।’ महाराज जब कोचविहार नगरमें उपस्थित हुये, राज्यके सभी प्रधान व्यक्ति उनसे राज्यग्रहण करनेका अनुरोध करने लगे। उन्होंने अस्वीकार

करके कहा था—धरेन्द्रनारायण राजा हैं, उन्हींको राजत्व करने दो। फिर धैर्येन्द्रनारायण राज्यके किसी आदमीसे बहुत मिलते जुलते न रहे, सर्वदा देवीकी आराधनामें लगे रहते थे। थोड़े दिन बाद राजा धरेन्द्रनारायणका मृत्यु हुआ। उस समय (१७७५ ई०) इच्छा न रहते भी सबके अनुरोधसे महाराज धैर्येन्द्र-नारायणने फिर सिंहासन ग्रहण किया। परन्तु वह शासनकार्य बहुत देखते न थे, सर्वदा दानध्यानमें ही लगे रहते। १७०० शकको वह व्याघ्र चर्मपरिधान-पूर्वक पदत्रज हो तीर्थयात्राको वद्विगंत हुये। तीर्थ-यात्राके समय दीनाजपुरमें हीपिधर्मधारी महाराज धैर्येन्द्रके साथ राजा वंशनाथकी मुलाकात हो गयी। वह कोचराजको विस्तर उपहार देने लगे। परन्तु उन्होंने किसी द्रव्यको हाथ न लगा कहा था—दीन दरिद्रको प्रदान कर दीजिये। फिर वह पेंदल काशी प्रभृति नानाखान घूम फिर खराज्यकी लौट आये। उनका ऐसा वैराग्यभाव देख कोच लोग पागल राजा कहते थे। १७०२ शकको उनके धरेन्द्रनारायण नामक एक पुत्रने जन्म लिया। राजाके कोई कामकाज न देखनेसे सब भार रानीके ही हाथमें रहा। रानीके प्रियपात्र सर्वानन्द गोसाई और खासनबोस सर्वमय कर्ता बने थे। उन्होंने रङ्गपुरके कलकटर साहबसे मिल-जुल नाजिर देवकी पदमर्यादा हरण करनेके लिये चेष्टा की, परन्तु अन्तको अपने आप कैद कर लिये गये। १७०५ शकको राजा धैर्येन्द्रनारायणका मृत्यु होने पर कुमार धरेन्द्रनारायण अनेक कष्टोंसे राजा हुये। रानी राजाका इच्छापत्र दिखा अंगरेज सरकारकी अनुमतिसे बालकराजकी ओरसे राजकार्य चलाते लगीं। परन्तु नाजिरदेवका जोर जुलम धीरे धीरे बढ़ता ही गया। सर्वानन्द और खासनबोस उस समय भी रङ्गपुरमें कैद थे। उन्होंने गुडलाड साहबकी सूचना दी नाजिरदेव अपने आपराज्यशासन करनेकी चेष्टामें हैं, ऐसे स्थलमें आपको उनके ऊपर नजर रखना चाहिये। उस समय साहबके बाबूने नाजिर-देवसे रिश्वत ले उनके पक्षको बहुतसी बातें साहबकी सुभायी थीं। बाबूकी बात पर विश्वास करके साहब

* इन्द्र वगैरह अंगरेज ऐतिहासिकोंने ‘राजेन्द्र’ नामसे बीजेन्द्रका उल्लेख किया है। किन्तु श्री यदुनाथ आदिके लिखे देशीय इतिहासोंमें ‘बीजेन्द्र’ नाम ही मिलता है।

पुष्पके बैठ रहे। इधर नाजिरदेव राजपक्षीय कर्मचारियों को विनाश करने लगे और राजा तथा राजमाता को कैद करके अपने आप सिंहासन पर बैठ गये। अन्य समय अभिषेकमें नाजिरदेव अभिविक्त राजाके मस्तक पर छत्र लगाते थे। परन्तु इस बार उसने स्वयं अपने मस्तक पर ही छत्र धारण किया। जब यह बात रङ्गपुरके गुडलाड साहबके कानमें पड़ी थी, उन्होंने भटपट खासनवीस और सर्वानन्द गोसाईं को रिहा करके कोचविहार भेज दिया। उस समय नाजिरदेव भयसे समस्त धन-रत्न लेकर बलरामपुर भाग गये। किन्तु शीघ्र ही साहबके आदमियों ने उन्हें पकड़ लिया था। सर्वानन्द गोसाईं और दीवानदेव सुन्दरनारायण पर राजस्व चुकानेका भार अर्पित हुआ। रानी पर राज्यशासनका भार रहनेसे दुष्ट कर्मचारी अपना पेट भरने लगे। १७१० शककी घटनाक्रमसे नाजिरदेव कारागारसे किसी प्रकार निकल भागे थे। उनके भाई भगवन्त-नारायण आदि कितने ही लोग नागेश्वरी और पाय-डांगाके सन्ध्यासियों से मिल राजविद्रोही हुये और राजप्रासाद आक्रमण करके राजमाता तथा बालक राजाको बलरामपुर पकड़ ले गये। वहाँ नाजिरदेवने उन्हें कठोर रूपसे उत्पीड़ित किया था। सर्वानन्द गोसाईं ने रङ्गपुरके कलक्टर साहबकी कोचविहारकी दुरवस्थाका समाचार कइला भेजा। उन्होंने अविलम्ब एक दल फौज बलरामपुरकी रवाना की थी। वहाँ एक सामान्य युद्ध हुआ। राजमाता और राजाकी छुटकारा मिला था। विद्रोही कैद करके रंगपुर लाये गये। नाजिरदेव निरुद्देश्य रहे। उस समय कोचविहारकी समुद्रय अवस्थाके पर्यावेक्षणकी दो कमिशनर नियुक्त हुये। नाजिरदेवने उनके हाथों अपनेकी सौंपा था। कोचविहार, मुगलहाट और रङ्गपुरमें प्रायः कुछ मास तक अनुसन्धान होता रहा। इसी समय नाजिरदेवने बोदा, पाटघाम और पूर्वभाग परगनेकी अपनी पिछसम्पत्ति बताया और कोचविहारके अर्धांश पर भी अपना दावा लगाया था। वड़ी अकृषणमें नाजिरदेवकी कोचविहारकी सरकारसे

५००) रु० मासिक और बलरामपुरकी चारो पाद-दोकीस भूमि पर अधिकार मिल सका। परन्तु थोड़े दिनों बाद ही राजाने कम्पनीकी कहा था—जब सन्धिके अनुसार अंगरेज हमारे राज्यकी रक्षा करनेकी बाध्य हैं, तब कितना ही सैन्य रखके उसका व्यय उठाना युक्तिसिद्ध नहीं। सुतरां नाजिरदेवका इस सरकार पर कोई दावा रह नहीं सकता।

महाराज हरिन्द्रनारायणके साथ क्रमान्वयमें वैकुण्ठपुरके दर्पदेव रायकती दो पौत्रियोंका विवाह हुआ।

उनके समय चामूहटी साहब कोचविहार कमिशनर हो कर गये थे। उसने राजाके विपक्ष दलसे मिलित हो राजा और प्रजा पर बड़ा अत्याचार किया। धीरे धीरे उनके अत्याचारकी बात कलकत्तेकी कौंसिलमें पहुँची थी। १८०१ ई० को राजाके हाथ सम्पूर्ण भार अर्पण करनेकी आदेश निकाला। फिर महाराजने बड़े ठाठबाटमें राज्यके शासनका भार लिया था। उसने सुयोग्य खासनवीस काशीनाथ लाहिड़ीके यत्नसे कोचराज्यमें कितनी ही उन्नति साधित हुई। राजाने विचक्षण बंगालियोंको प्रधान कर्मचारियोंका पद दिया था। इसी समय नारायणी मुद्राका प्रचलन उठ गया।

१८०७ ई० को महाराज हरिन्द्रनारायणने सागर-दीघि नामक बृहत् सरोवर खनन कराके उसके तीर पर शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा की थी। १८१२ ई० को उन्होंने भितागुड़ी नामक स्थानमें अपनी राजधानी बसायी। इसी समय दीवानदेव पर राजाकी कुदृष्टि पड़ी थी। अन्धाय आचरणके लिये दीवानदेवके मुख्तार राजाके आदेशसे निहत हुये। दीवानदेवने डर कर रंगपुरके कलक्टर साहबसे मदद मांगी थी। १८११ ई० को पगस्त मास नरमान-माकलायड कोचविहार एक बन्दोबस्त करने पहुँचे। राजा उनसे बिगड़ उठे। साहब अंगरेजी नियम चलाते गये थे, राजा साहबकी बात पर सन्तप्त न हुये। अन्तको १८१६ ई० के फरवरी महीने छटिश गवर्नमेण्टने फिर पुराना कायदा ही कायम रखा। फिर राजा धलियावाड़ीमें राजप्रासाद निर्माण करके वहीं रहने लगे। रानी के पड़ोसी उन्हें राजकार्यसे विछेद्या हो गये थे। वह

केवल दान, ध्यान और धर्मशास्त्रके पाठानमें लगे रहते थे।* १८३५ ई० की वह कुमार शिवेन्द्रनारायण और राजेन्द्रनारायण पर शासनभार डाल राज्य छोड़के काशीधाम चले गये। ५६ वर्ष राजत्व करके काशीधामके मणिकर्णिका घाटमें १८३८ ई० की महाराज हरिन्द्रनारायणने इहलोक परित्याग किया।

१७६१ शककी उनके बड़े बेटे शिवेन्द्रनारायण राजा बने थे। राजा शिवेन्द्रनारायणके अधिकारकाल कोचविहारके राजकार्यकी विलक्षण उत्थति हुई। दीवानी और फौजदारीका काम धायदेसे चलानेके लिये उन्होंने पहले नायब अहलकार और सरदार अमीनका प्रोहदा निकाला था। फिर उनके यत्नसे विचारालय भी स्थापित हुआ। सिवा इसके उन्होंने धर्मसभा और सर्वसाधारणके लिये धर्मशास्त्रा प्रभृति स्थापित करके देशका मङ्गल साधन किया। पहले अंगरेजोंका प्राप्य बहुतसा कर बाकी पड़ा था। राजा शिवेन्द्रनारायणने वह सब चुका दिया। अपने पुत्र सन्तान न रहनेसे उन्होंने चौथे भाई राजेन्द्रनारायणके लड़के कुमार नरेन्द्र वा नेत्रनारायणको दत्तक ग्रहण किया था। १८४७ ई० की उन्होंने पिताकी तरह काशीधाममें जीवन विसर्जन किया। उनके दत्तकपुत्र नरेन्द्रनारायण अभिविक्त हुये। महाराज नरेन्द्रनारायणने कृष्णनगरके कालीजमें अंगरेजी पढ़ी थी। इनकी नाबालगीमें उनके जन्मदाता राजेन्द्रनारायण सरबराहकार या राज्यके कार्याध्यक्ष रहे। १८५० ई० की राजा नरेन्द्रनारायणने बालिग होने पर राज्यका भार उठाया था। १८५३ ई० की २२ वें वर्षके वयःकर्मकाल वह १० महीनेके अपने बच्चे नृपेन्द्रनारायणको छोड़ इहलोकसे चलते बने। प्रथम उनकी तीन रानियोंको राज्यशासनका भार मिला था। किन्तु उनमें-विवाद विसंवाद लग जानेसे राजकुमारकी नाबालगीमें छटिश गवर्नमेण्ट कार्य शासनकार्य देखने लगी। १८६४ ई० की २८ वीं फरवरीको महाराज Colonel सर नृपेन्द्रनारायण

भूप बहादुर G. C. I. E. C. B गद्दी बैठे और ब्रटन साहब २०००) रु० की तनखाह पर कमिशनर नियुक्त हुये। इन्हीं कमिशनर साहबकी कोशिश पर १८६४ ई० की ७ वीं सितम्बरको कोचविहारसे कठोर दासत्व प्रथा उठ गयी।

राजा नृपेन्द्रनारायणने पटना-कालीजमें अंगरेजी पढ़ी थी। यह १८७७ ई० की दिल्ली दरबारमें उपस्थित रहे। १८७८ ई० की ६ ठीं मार्चकी वाग्नोप्रवर केशवचन्द्र सेनकी बड़ी बेटीसे इनका विवाह हुआ। केशवचन्द्र सेन प्रसिद्ध ब्राह्म और कोचविहारका परिवार निष्ठावान् सनातनधर्मी था। केशवचन्द्र ब्राह्म मतसे विवाह करना चाहते थे, परन्तु राजपरिवारके अनुरोध पर ब्राह्मणोंने सनातनधर्मांनुसार ही उसे सम्पन्न किया।* विवाहके पीछे वह विलायत चले गये। १८८० ई० की २३ वीं फरवरीको गवर्नमेण्टने उन्हें 'महाराज' और पीछे जी० सी० आई० ई० उपाधि दिया। सिवा इसके भूपबहादुर बङ्गाल अख्तारोही सैन्यके अवैतनिक लेफ्टिनेण्ट कर्नल और प्रिन्स अव वेल्लसके अवैतनिक सुसाहब (Aid-de-Camp) बन गये। आजकल उनके पुत्र हिज हारनेस महाराज सर जीतेन्द्रनारायण भूप बहादुर K, C. S. I. कोचविहारके वर्तमान अधीक्षर हैं। बड़ोदा गायकवाड़की राजकुमारी महारानी इन्दिरादेवी इनकी महिषी हैं। कोचविहारके महाराज अंगरेज सरकारसे १३ तोपोंकी सलामी पाते हैं।

इस देशके अधिवासी वाणिज्य व्यवसायमें बहुत लिस नहीं। माड़वारी ही यह काम चलाते हैं। कोचविहार, बलरामपुर, चौड़ा, गोबराहड़ा, दीवानगञ्ज, चांगड़ाबांदा और साठकुटी नगर वाणिज्यके प्रधान स्थान हैं। तम्बाकू, पाट, सरसों, सरसोंका तेल, अंडी और मिखली कपड़ा तथा चावलकी रफ्तनी ज्यादा होती है। बाहरसे शक्कर, गुड़, मसाला, नारियल, सुपारी, नमक, पीतल, काँसेके बर्तन और विलायती कपड़ा अधिक मंगाते हैं। देशमें जगह जगह बाजार लगता है। चैत्र मासकी गदाधर नदीके दक्षिण भागमें

* इसी समय यदुनाथ घोष नामक राजाके किसी सुशोने राजोपाख्यान नामक कोचविहारका इतिहास प्रकाशित किया था। वह सुशोका पत्र देख बहुत उत्तुष्ट हुये और करितोषिक स्वरूप पाँच बाल निम्नर दी दिये।

* Report on the Administration of Bengal, 1877-78.

कोचविहार शहरसे पांच छह कोस दूर तीन दिनतक एक बड़ा मेला लगता है।

पहले कोचविहारी अर्थसमय करना जानते न थे। परन्तु आजकल अवस्था उन्नत होनेसे वह अपना इकट्ठा करना सीख गये हैं। कोचविहारमें एक बड़ा कालेज विद्यमान है। राजाके दानसे अन्यान्य भी कई विद्यालय खुल गये हैं।

देशका राजकार्य राजाके कर्मचारी ही सम्पन्न करते हैं। अपोलका विचार करना राजवंशके ही हाथमें है। राज्यमें एक जेल और कई थाने हैं।

राजाकी खास जमीन खालसा कहलाती है। उसकी आमदनी दीवान वसूल करते हैं। राजाके प्राचीन लोग उसके इजारादार हैं। खालसाको छोड़ खानगी और खासवास जमीन भी होती है।

कोचविहारके राजा अपने राज्यके अधिकारी और दण्डमुण्डके कर्ता हैं। उन्हें राज्यशासन, कर और व्यवस्था स्थापनकी सम्पूर्ण स्वाधीनता है। १८६४ ई० को राजाके शिशु रहनेसे अंगरेज गवर्नमेण्टने राज्यके तत्त्वावधानका भार अपने आप उठाया था। भूटानयुद्धके पीछे १८६६ ई० को दारजिलिङ्ग, जलपाइगुड़ी, ग्वालपाड़ा, गारो पहाड़ और कोचविहार लेकर एक कमिश्नरी बनायी गयी। परन्तु १८७५ ई० को आसाम स्वतन्त्र विभाग हो जानेसे राजशाही और कोचविहार अलग एक कमिश्नरके अधीन हुआ। राज्यमें अंगरेज सुपरिण्टेण्डेण्टका तत्त्वावधान रहनेसे बहुतसा परिवर्तन पड़ गया है। आमदनी वसूल करनेका नया कानून निकाला और कितना ही अंगरेजी टंग चला है। स्त्रियोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी है। अच्छी पच्छी राहों, नदीके पुलों, डाकघरों और तारघरोंका इस्त-जाम किया गया है।

१७७३ ई० को जो सन्धि हुई थी, उसके अनुसार कोचविहारके राजा अंगरेज गवर्नमेण्टको आधी आमदनी देने पर स्वीकृत हुये थे। परन्तु १७८० ई० की वार्षिक ६७००० रु० कर ठहराया गया।

कोचविहार बङ्गालके अन्यान्य स्थानोंकी भांति उन्नत नहीं है। मलेरिया ज्वर प्रबल रहता है। पुरवाई

ही अधिक चलती है। वैशाखसे कार्तिक मास तक वृष्टि हुआ करती है। शीतकालमें ही बहुत गरमी नहीं लगती। पीड़ाओंमें रक्तामाशय, ज्वर, मीड़ा, उपदंश और गलगण्ड रोग अधिक देख पड़ता है। किसीकिसी नदीका जल पीनेसे ही गलगण्ड उपस्थित हो जाता है। देशमें कविगान्धी चिकित्सा अधिक प्रचलित है। ओषधियाँ भी अनेक प्रकारकी यहाँ मिलती हैं। लोकसंख्या प्रायः ६ लाख है। राज्यका सर्वप्राय १८४१२७८ रु० है।

कोचहाजी—आसाम ग्वालपाड़ा जिलेके एक अंशका पुराना नाम। वामभागमें ब्रह्मपुत्रतीर और करै-बाड़ी परगनेकी बीचवाली हाथशिलासे दक्षिण भागको भितरबन्द परगनेके उत्तरांश और पूर्वकी कामरूप जिलेतक यह प्रान्त विस्तृत था। धुबड़ी और रांगामाटी नगर इसीके प्रान्तगत रहे। पूर्वतन अंगरेज-भ्रमणका-रियोंने अजो (Azo) नामसे इसका उल्लेख किया है।*

कोचा—(हि० पु०) गड़ाव, सुभाव, कोच।

कोचिंडा (हि० पु०) वन पिट्ठालु, जंगली प्याज। यह हिमालयमें उपजता है।

कोचिला (सं० स्त्री०) कुचेलक, कुचिला।

कोची (हि० पु०) वन वर्वरभेद, एक प्रकारका जंगली बबूल। यह पूर्व और दक्षिण भारतके वनमें बहुत उपजता है। इसकी सूखी पत्तियाँ पौस कर शिरपर मलनेके काम आती हैं। कोचीको बनरोठा और सीकाकाई भी कहते हैं।

कोचीन—मन्द्राज प्रेसीडेन्सीमें अंगरेजोंके अधीन एक देशीय राज्य। यह अक्षा० ८° ४८' एवं १०° ४८' ७०' और देशा० ७६° तथा ७६° ५५' पू० के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल १३६११ वर्गमील है। पहले कोचीन नामक नगर इसकी राजधानी रहा। १७८५ ई० को जब पोर्तुगालीने इसे आक्रमण किया, यह मलयवार-के अन्तर्निविष्ट हो गया। कोचीन राज्यके पश्चिम अरब सागर, पूर्व तथा दक्षिण मलयार जिला और उत्तर

* Journal of Asiatic Society of Bengal, Vol XLI. pt. I. p. 56.

बम्बई प्रेसिडेन्सी है। यह—कोचीन, कोचनर, मुकुन्दपुरम्, त्रिचूड़, तलपली, चित्तर और कोदङ्गलुर ७ भागोंमें बंटा है।

कोचीनमें केवल भीलें और खाड़ियाँ हैं। उनमें पश्चिमघाट पर्वतकी सब नदियाँ जा गिरी हैं। नदियों में पानी घटने बढ़नेसे ज़दादिका भी जल घटता बढ़ता है। सालवारि नदीकी खाड़ी जब सूख जाती, इधर उधर ६ इंचसे अधिक पानी नहीं रहता, परन्तु उसके भर जानेसे पानी ही पानी देख पड़ता है। इस राज्य में कोचीन, कोदङ्गलुर और चतवारि तीन बन्दर हैं। कोचीनसे कोदङ्गलुर तक पानीकी राह बारहो महीने सवारी और मालकी नावें आया करती हैं। कोचीनसे आसिप्पि तक भी ऐसा ही होता है। वर्षा कालको सब स्थानोंमें चपटे पेंदेवालो नावें चल सकती हैं। यहां नारिकेल अपर्याप्त फलता है। जहाँ तहाँ निविड़ नारिकेलका वन खड़ा है। जहाँ बांध बंधे हैं, धानकी क्षेत्र यथेष्ट देख पड़ते हैं।

कोचीनकी प्रधान नदियाँ—पोनानी, तस्वमङ्गलम्, कदवनूर और मलकुड़ी हैं। सालवारि नदी इस राज्य में बहुत दूर तक चली गयी है।

लकड़ी कोचीनमें बहुत अच्छी होती है। साग-वनके पेड़ बढ़ते तो खूब हैं, परन्तु त्रिवाङ्गुडकी तरह अधिक दिन नहीं ठहरते। इसीसे कोचीनका साग-वन जहाजमें काम लगता है। पित्तन वृक्षका मख्मूल अच्छा आता है। पड़से यहां लोड़ और सोनेकी खानमें काम होता था, परन्तु आज कल रुक गया है। कोचीनमें नानाप्रकार उल्लिख और रंग तथा गोंद-के पेड़ भी मिलते हैं। दालचीनी काफी देख पड़ती है। वन्य जन्तुओंमें हाथी, जंगली भैंसा, भाल, बाघ, चीता, सांभर आदि हिरन, हायना, भेड़िया, लोमड़ी और बन्दरोंकी कोई कमी नहीं। धान्य प्रायः ५० प्रकारका होता है। अच्छी जमीन पर वर्षमें तीन बार धान लगता है। जहाँ मछी हलकी है, वहीं नारियल उपजता है। नारियलकी रस्सी और तेल वगैरह भी खूब होता है। यह सकल द्रव्य इतने आते, कि विदेश भी भेजे जाते हैं। सिवा इसके रुई, काँचवा, नील, पान,

सुपारी, सन, ईख, चदरक और मिर्चकी उपज भी अच्छी है।

कोचीन और कोण्णनूरमें धातुके बर्तनों, हाथी दांत और लकड़ी पर बहुत उम्दा नक्काशी की जाती है। गवर्नमेण्टके कारखानेमें लकड़ बनता है। नारियल, मिर्च, दालचीनी और बड़ादुरी लकड़ीकी रफ्तानी देश विदेशकी होती है।

रेलवे राजकी सिवा नहरें निकाल करके व्यवसाय-के लिये यथेष्ट सुविधा कर दी गयी है।

एण्कोलम् और त्रिचूड़ शहरमें राजाके साहाय्यसे पाठागार स्थापित हुये हैं। ईसायोंकी मददसे कई छापेखाने भी चलते हैं। जहाँ 'कोचीनका सरकारी गजट' नामक एक अंगरेजी संवादपत्र निकलता है। तीर्थभ्रमणकारी ब्राह्मणोंके लिये सकल देवालयोंमें प्रतिधिसेवाकी व्यवस्था है। स्थानीय ब्राह्मणोंके प्रतिपालनार्थ नानास्थानोंमें राजाका विस्तार दान लगा है। प्रति वत्सर देवालयोंमें दश दिन तक बराबर उत्सव होता है। कोदङ्गलुरका उत्सव सर्वप्रधान है।

देशके जलवायुकी अवस्था अच्छास्थकर नहीं है। यीशका विशेष प्रादुर्भाव नहीं देख पड़ता है। लगातार ३।४ दिन ज्यादा गर्मी पड़ते ही एक दिन पानी बरस जाता है।

केरल, त्रिवाङ्गुड और मलबार आदि जब प्राचीन केरल राज्यके अन्तर्गत रहे तब (ई० नवम शताब्दीको) चेरूम पेरूमल नामक एक व्यक्ति इस सकल प्रदेशके शासनकर्ता थे। उन्होंने अन्तको स्वाधीन हो राजस्व ग्रहण किया। कोचीनके वर्तमान महाराज उन्हीके वंशधर हैं। कोई कोई कोचीनके राजाको चेरूम पेरूमलके भ्राताका वंशधर बताता है। भारतमें जब प्रथम पोर्तुगीज आये, कालिकट प्रदेशमें जमोरिनके उपाधिधारी एक राजा थे। उक्त समय कोचीनराजा उन्हीके प्रतिद्वन्द्वी रहे। कोचीन और कालिकटके बीच सदा युद्ध चला करता था। कभी कोचीन और कभी कालिकटके राजा जीत जाते थे। यह भगड़ा मल्लिकार्जुनकी टीपू सुलतानके समय तक रहा। केवल मध्यमें ई० १६ वीं शताब्दीकी कोचीनका कुछ अंश पोर्तुगीजोंके हाथ लगा।

१५०० ई० की २४ वीं दिसम्बरको पिछो पल्लवरज डि काबराल नामक पोर्तुगीज नव आविष्कृत अमेरिका में अपने नाम पर ब्रेजिलका नाम रखके कोचीनके निकट भा उपस्थित हुये। भास्को-डि-गामा जी कर न सके थे, इन्होंने वही करनेकी चेष्टा की। अन्तमें बहुत-सी चेष्टाके पीछे कालिकटके जमोरिनसे नानाविध प्रबन्ध करके कालिकटमें इन्होंने पोर्तुगीज कोठी खोल दी। कई पोर्तुगीजोंको इस कोठीका काम सौंप काबराल स्वीय नौसेनादल से स्वदेश चले गये। उनके जानके पीछे ही जमोरिनने कोठीको विध्वंस और उसमें रहनेवाले पोर्तुगीजोंको विनाश किया। खबर धीरे धीरे पोर्तुगाल पहुँची थी। वास्को-डि-गामा सैन्य से अधिनायक बन कर भारताभिमुख चले थे। उनके साथ २० जहाज रहे। १५०२ ई०को कालिकट पहुँचते ही उन्होंने एकबारगी नगर घेर लिया और बन्दरमें जितने विदेशी जहाज थे, उन्हें तोड़ दिया। विदेशी वणिकोंकी यथेष्ट क्षति और विदेशी राजाओंके साथ विवादका सूत्रपात होते देख जमोरिनने उनसे सन्धिक्रा प्रस्ताव किया था। परंतु उन्होंने कहा—हम निश्चित पोर्तुगीजोंके मारनेवालोंको जबतक न पायेंगे, सन्धिक्री बात कैसे चलायेंगे? तीन दिन युद्ध स्रगित रहा। फिर भास्कोडिगामा विना कारण ५० मलबारी मलाहोंकी फौदी चढ़ा कालिकट शहरको गोलेसे उड़ा देनेकी चेष्टा करने लगे। लगभग आधा शहर टट फूट गया, फिर भी जमोरिनने आत्मसमर्पण न किया। अन्तको डिगामाने जमोरिनके प्रतिद्वन्द्वी कोचीनराजसे मित्रता जोड़ इनको उखारना चाहा था। उन्होंने कोचीनराजको पोर्तुगालके सैन्यका वलादि और विक्रम बता भय दिखा करके कोचीनकी खाड़ीके मुँहाने पर कोठी बनानेकी अनुमति ली। इसी कोठीसे कोचीनमें युरोपीय अधिकारका सूत्रपात हुआ था। फिर १५०३ ई० की २१ीं सितम्बरका आलफनशो-डि-आलबुकार्क पोर्तुगीज-अधिनायक बन कोचीनकी कोठी पहुँचे थे। उन्होंने आकर कोचीन-राजके साथ साथ जमोरिनसे युद्ध किया। लड़ाईमें कोचीनके राजा जीते थे। इसी सुयोगसे आलबुकार्कको कोचीनकी कोठीमें पोर्तुगीज फौज रखनेका अधिकार

मिल गया, जिससे इस राज्यके सर्वनाशका सूत्रपात हुआ। १५१५ ई०को गीआ, कन्नूर, मलक्का हीपपुञ्ज और पारस्य उपसागरका निकटस्थ हीपपुञ्ज उनके हाथ लना था। १५२४ ई०को पोर्तुगालके राजाने वास्को-डि-गामाको भारतीय अधिकारका प्रतिनिधिपद प्रदान करके भारत भेज दिया। वह १५२५ ई०को इस देशमें आकर मर गये। कोचीननगरके प्रानसिसकान गिर-जमें उनका देह समाहित हुआ। डिगामाके बाद हेनरिन मेनेजिज उनके आसन पर बैठे थे। वह कोचीनसे पोर्तुगीज-राजधानी उठा गोआ ले गये।

इसी समय पोर्लुग्जाजोंका बल सिंहलमें बढ़ रहा था। वह अपने व्यवसायको क्षति लगते देख भारतमें स्थान अधिकार करनेकी चेष्टा करने लगे और पोर्तुगीजोंको अटकानेके लिये करमण्डल उपकुलमें निगा-पत्तन, कुडलन तथा कोदङ्गलूर अधिकार करके मल-वार उपकुलका कोचीन नगर (१६६२ ई०) आ घेरा। दोनों ओरसे बड़ी लड़ाई हुई। रानीप्रासादमें अति भयानक युद्ध होने पर उन्हें भागना पड़ा। परन्तु कुछ महीनों पीछे ही उन्होंने फिर अधिक संख्यक सैन्य लेकर कोचीन आक्रमण किया और १६६३ ई० को नगर पर्यन्त अधिकार किया। उनके अधीन कोचीन-नगरकी यथेष्ट उन्नति हुई। अन्तको प्रायः एक शताब्दी पीछे कालिकटके जमोरिनने फिर कोचीन अधिकार करनेकी चेष्टा की थी। परन्तु त्रिवाङ्गुडके राजाने उन्हें परास्त करके कोचीनका कियदेश ले लिया।

१७७६ ई० को मद्रासके राजा हैदरअलीने इस प्रदेशको अपने अधिकारमें आनयन करके कोचीन-राजको मित्रराजकी भाँति उनके पद पर स्थापित किया था। उसके पीछे १७८० ई० को टीपूने इसकी यथेष्ट क्षति की और बीरपलाई तक जनपदादिका उच्छेद कर डाला। परन्तु श्रीरङ्गपत्तनकी रजाको कीट जानेसे वह एक काल ही सर्वनाश कर न सके। १७८२ ई० तक यह स्थान नाम मात्रकी टीपूके अधीन रहा।

१७८१ ई० की टीपूके भयसे कोचीनराज अंगरेजोंके सहाय्यार्थी हुये। लड़ वेलेसकी उस समय

गवर्नर रहें। उन्होंने इस सुयोगमें कोचीनके राजाको बन्धुता जोड़ मित्रराज-जैसा माना था। लाख रुपया राजकर ठहर गया। १८०८ ई० की स्वाधीनता लाभकी आशामें त्रिवाङ्गुडके राजाने रेसीडेण्टको बंध करनेकी कल्पना लगायी थी। परन्तु भेद खुल जाने पर राजासे फिर नयी सन्धि की गयी। इस सन्धिके अनुसार ठहरा था—राजा अंगरेज गवर्नरसेण्टसे विना पूछे किसी विदेशी राजासे कोई बातचीत न कर सकेंगे और न किसी युरोपीयको अपने काममें ही लगा सकेंगे। राजकर २०००००) रु० स्थिर हुआ।

कोचीन राज्यमें आजकल ७ तहसीलें हैं। तहसीलदार ही पुलिस इन्स्पेक्टर, कलक्टर और मजिस्ट्रेटका काम करते हैं। राजस्वके विषयमें वह राज्यके बड़े दीवान और शासनकार्यके सम्बन्धमें पेशकारके मातहत हैं। कोचीनराज अपनी प्रजाके सकल प्रकार दण्डमुण्ड करते हैं। एरनाकोलम् कोचीनकी राजधानी है। किन्तु राजा त्रिपुस्तोरा स्थानमें रहते हैं। इस राज्यका आय प्रायः (१२३६४०) रु० है। १८८१ ई० की रविवर्माके पुत्र रामवर्मा राजा रहें। उन्होंने १८३५ की जन्म ग्रहण और १८६४ ई० की राज्यारोहण किया था। उन्हें १८७१ ई० की के० सी० एस० आई० उपाधि और सम्मानार्थ १७ तोपोंकी सलामी मिली। उनके मृत्यु पछे १८८८ ई० की २३ वीं जुलाईकी वीर केरलवर्मा राज्याभिषिक्त हुए। १८८५ ई० की वर्तमान राजा सर रामसिंह वर्मा गद्दी बैठे थे। १८०३ ई० की इन्हें जी० सी० एस० आई० उपाधि मिला। कोचीनकी लोकसंख्या आठ लाखके ऊपर है। कोचीनचीन (आनाम) —पूर्व उपद्वीपका पूर्वविभाग। मलयवासी इसकी और भारतके कोचीनकी भी 'कुचि' कहा करते हैं। फिर पूर्व उपद्वीपके कुचिको अलग करनेके लिये कुचिचीना कहा जाता है। ओलन्दजों और अंगरेजोंने इसीसे कोचीन-चाइना नाम निकाला है। आनामवासी कुडचों और चीनालोग किचचिङ्ग कहते हैं। खानडोया प्रदेशमें जहां हिड नगर अवस्थित है, वह प्रदेश पहले इसी नामसे अभिहित होता था। ग्रीक भौगोलिक टलेमिने 'सिनडोया'

नामक जिस देशकी बात लिखी है उससे इसी स्थानका बोध होता है।

इसकी पूर्वदिक्की समुद्र है। पूर्व कासकी भारतका राज्य इसी समुद्र तक विस्तृत था। फिर महा-भारतके समय कोचीनचीन तिरातराज्यके अन्तर्गत रहा। अजकल भी यह प्रदेशका 'गङ्गाचीन भारत' या 'गङ्गाके बाहरका भारत' कहा जाता है। कोचीन-चीन अक्षा० ८°८०' से २३° ३०' और देशा० १०२° से १०८° पू०के मध्य अवस्थित है। इसका उत्तर दक्षिण दैर्घ्य ४८° कोस और पूर्व पश्चिम प्रस्थ कहीं १५० और कहीं ५० कोम भी है। कम्बोजके दक्षिण भागका स्याम्मा नामक राज्य और चीन-समुद्रके कई द्वीप कोचीनचीनके अन्तर्भुक्त हैं। इसके उत्तर चीन राज्य, पूर्व टङ्गिन राज्य तथा चीनसमुद्र, दक्षिण चीनसमुद्र और पश्चिम लेयस एवं श्यामराज्य लगता है। परन्तु असली कोचीनचीन अक्षा० ११° से १८° ४० पर्यन्त ही विस्तृत है।

समुद्र कूलके साथ साथ बराबर एक पर्वतश्रेणी इस देशमें चली गयी है। टङ्गिन प्रदेशका उत्तरभाग समतल है। सङ्का नदी इसके भीतरसे प्रवाहित हुई है। काम्बोज प्रदेशमें काम्बोजिया नदी बहती है। मेरुङ्ग या काम्बोजिया नदी ही कोचीनचीनकी सबसे बड़ी नदी है। यह चीन देशके पर्वतोंसे निकल लेयस और कम्बोजके बीचसे प्रवाहित हो कई सुंङाना पर चीन सागरमें गिरी है। इसकी लम्बाई ८०० कोस होगी। मेरुङ्ग या दोनार्ड नदीका मेरुङ्गके साथ संश्लेषण लगा है। वह पूर्व दिक्की बहती है। उसका दैर्घ्य २०० कोस होगा। हिड नदी असली कोचीन-चीनके बीचसे निकली है। इसकी पार्श्वमें उपत्यका-भूमिकी शोभा पति सुन्दर है।

कम्बोजकी भावहवा कितनी ही बङ्गास-जैसी है। टङ्गिनमें कभी सहसा गर्मी बढ़ जाती, कभी गर्मीसे एकाएक सर्दी हो जाती है। खास कोचीन-चीनमें वर्षा-कालकी अत्यन्त ठण्डि होनेसे पाश्चिम कार्तिक मास वन्हा (बाढ़) या समस्त देश प्रावित कर देती है।

कोचीन-चीनमें धान्य यथेष्ट उपजता है। एतद्-

ज्योत बाबू, मटर, फूट, मकई, तम्बाकू, कपास, नील, चाय और ईश भी बुना करती है। रेशमकी भी कोई कामी नहीं। अशुब, चावल, नागकेसर, चन्दन, रंग-के पेड़ आदि बहुविध काष्ठ कोचीन-चीनके पर्वतोंमें उत्पन्न होता है। निम्नभूमिमें ताड़ और बांस यथेष्ट लगता है। देशमें अनेक प्रकारके खनिज धातु मिलते हैं। परन्तु खानसे उन्हें निकालनेकी कोई बड़ी चेष्टा नहीं की जाती। टङ्गिनमें सोना, चाँदी, कोहा, ताँबा और कोयला निकलता है। साम्य पर्वतोंके मध्य गाय, भैंस, सूवर, बकरो, बिल्ली और कुत्ते देख पड़ते हैं। इस कबूतर सब जगह हैं।

जङ्गली जानवरोंमें बाघ, हाथी, चीता, भेड़िया, सूँवर, गेंडा, बन्दर और लङ्कूर पर्वतों पर बहुत मिलते हैं। साँपों और रेंगनेवाले दूसरे कीड़ोंकी भी कोई कामी नहीं। मोर, चीक, तीतर और छोटे तोते वगैरह अनेक प्रकारके पक्षी विद्यमान हैं। मछलियाँ भी बहुत देख पड़ती हैं।

अधिवासियोंकी आकृति मङ्गोलीय लोगोंसे कितनी ही मिलती है। यह प्रायः एक अच्छरकी बात करते हैं। इनमें सभी खर्वाकृति और बलिष्ठ होते हैं। चेहरे गोल, मुँह बड़े, होठ मोटे और बाल काँसे रहते हैं। रङ्ग सुन्दर, साल और पीलापन लिये होता है। साधारणतः लोग इसमुख हैं। उच्च श्रेणियोंके व्यक्तियोंकी प्रकृति गम्भीर होती है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंका रंग साफ रहता और देखनेमें भी ज्यादा अच्छा लगता है। स्त्रियों और पुरुषोंका परिधय वस्त्र प्रायः एक ही प्रकारका होता है। सूती या रेशमी पायजामे पर एक एक बड़ा कुरता पहनते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों बाल नहीं कटाते, वेणी बनाकर पीछे लगाते हैं। मर्द कासी और औरतें चासमानी पगड़ी बाँधती हैं। अनेक समय मर्दों पर रुमास कपेट होते हैं। सब लोग सुपारी खाते हैं। कितने ही तम्बाकू भी पाते हैं। पहले कोचीन-चीनके अधिवासी हिन्दू और बौद्धधर्मावलम्बी थे। कम्बोज देशों चीनके समीपवर्ती होनेसे इन्हीं चीनका आचार व्यवहार और धर्म कितना ही अवलम्बन किया है। कनकुचि, ताऊ और बौद्धधर्म ही

यहां प्रचलित हैं। पूर्वपुरुषोंकी पूजा सभी किया करते हैं। कितनी ही विवेचनाके पीछे समाधिस्थान ठोक करना पड़ता है। इनको विश्वास है कि खानके निक-पण पर परिवारका सौभाग्य निर्भर करता है।

देशके लोगोंका पक्ष ही प्रधान खाद्य है। कोनिया मछलीकी बूकनो बना चटनी तैयार करते हैं। इसका नाम 'बालचियाम' है। यही अधिवासियोंका बड़ा उपादेय खाद्य है। चाय पीनेका बहुतोंकी प्रवृत्ति है। चावलसे एक प्रकारका मद्य बना करके पान करते हैं। साधारण लोग बाँसेके घरोमें ही रहते हैं। बड़े बड़े लोगोंके मकान पक्के बने हैं।

स्त्रियाँ पुरुषोंके अधीन नहीं होतीं। वह निजमें अपना वाणिज्य और छविकार्य चलाती हैं। सम्मान सम्पत्ति अधिक रहनेसे स्त्रीका गौरव भी बढ़ जाता है। दरिद्र और पासन करनेमें अथम रहनेसे लोग अपने लड़के बेच डालते हैं। घरके कर्ताकी सम्पत्ति भिन्न किसीका विवाह नहीं होता। धनवान् विवाहित स्त्रियोंके अतिरिक्त दूसरी औरत भी रख सकते हैं। विवाह-भङ्गकी व्यवस्था प्रचलित है। व्यभिचारके लिये विशेष दण्ड दिया जाता है, फिर भी अविवाहित स्त्रियोंके पक्षमें यह बड़े कलहकी बात नहीं। रूपया परिशोधन कर सकने पर उत्तमर्ष अधमर्षकी सम्पत्ति, स्त्री और परिवारके दूसरे लोगोंको बटका सकता है।

टङ्गिन और कोचीन-चीनमें एक ही जातिके लोग रहते हैं। खाम और मलय जातिका भी आचार व्यवहार इनसे कितना ही मिलता है। यह व्यवहार करते हैं।

पार्श्व प्रदेशमें असभ्य जातिवासी वास है। काम्बोजकी भाषा अलग है। पण्डितोंके बीच और अदालतमें चीना भाषा चलती है।

शासनकार्य कितना ही चीन राज्योंके समान है। चीन देशी। राजाकी समता यथेष्ट है, परन्तु उन्हें पार्वन मानना पड़ता है। राजकी एक सभा है, जिसके सदस्य माम्दारीय या मन्त्री होते हैं। कर्मचारी फौजदारी या फौजी और दिवानी—दो भागोंमें विभक्त हैं। फौजी मजकमकी इज्जत ज्यादा है। इस देशकी

प्रथा है कि अपराधीका कुछ भूमिकी ओर करके उसे छोटाके दीने। पर कुछ जंजे बांधके उस पर बांसकी मार देते हैं।

हुए वा हुआ नगर कोचीनचीनकी राजधानी है। (ई० शताब्दीसे २१४ वर्ष पूर्व) चीनार्थने चानाम (चकम्) अधिकार किया था। अधिवासियोंने स्वाधीनता लाभके लिये क्रमागत चेष्टा करके १४२८ ई० को उसे पा लिया है। आज भी चानामके अधिपति चीनकी अधीनता स्वीकार करते हैं। किन्तु वह नाममात्र ही है। अष्टादश शताब्दीकी फरासीसियोंने इस देशमें आकरके प्रभुत्व फैलाया और अपने अनुगत घियासङ्गकी कोचीनचीनके सिंहासन पर बैठाया था। १७८७ ई० को फरासीसी राजा १६वें लुईके साथ एक सन्धि हुई। उसमें निर्दिष्ट हो गया कि फरासीसी राजा सैन्य दे साहाय्य करेंगे और घियासङ्ग फरासीसीयोंको राज्य दे देंगे। परन्तु फ्रान्सके गृहविवादसे यह बात न चल सकी।

१७८८ ई० को फरासीसीयोंके साहाय्यसे घियासङ्ग राजा हुये। १८०८ ई० को उन्होंने काबोज अधिकार किया था। १८१८ ई० को घियासङ्गका मृत्यु हुआ। मिशनरियोंने देशके बहुतसे लोगोंको ईसाई बना डाला। इस पर बहुतसे आदमी बिगड़ उठे और देशीय ईसाईयों और रोमन-काथलिक मिशनरियोंको वध करनेके लिये उनके गिरजा-घर और आश्रम आदि फूँक दिये। १८५८ ई० को प्रतिशोध लेनेको अनीय और फरासीसी फौजने तुरान और खैरगढ़ प्रभृति स्थान अधिकार किये।

१८६२ ई० को टुडक नामक राजाके साथ फरासीसीयोंकी एक सन्धि हुई थी। उसमें बियेनहोया, गियादिन और दिनतुयाङ्ग विभाग फरासीसीयोंको सौंपा गया। १८६७ ई० को इन सकल प्रदेशोंके फरासीसी गवर्नर पाउमिराल ग्राण्डियर विनसङ्ग चांदई और जातियान नामक विभाग अधिकार किया था। १८७४ ई० को फिर एक सन्धि हुई। उससे समुदाय देश फ्रान्सके कर्तृत्वमें पड़ा और टङ्गिन फरासीसीयोंको दिया गया। चीनार्थने इस पर आपत्ति उठायी थी। परन्तु

उसका कोई विशेष फल न निकला। हिउ नगर आज कल फरासीसी सेना द्वारा रक्षित है। १८८२ ई० को फिर फरासीसियोंने यहाँ फौज भेजी थी। परन्तु आज भी अपनेक स्थानोंने उनकी वधता नहीं मानो है। १८८८ ई० को अपरेल मास फरासीसी मन्त्रिसभाने जो आदेश प्रचार किया था, उससे खिर हुआ यह सब राज्य एक गवर्नर जनरलके अधीन रहेगा। उनके नीचे दो रेसिडेण्ट जनरल काम करेंगे। एक चानाम और टङ्गिनकी देख भाल रखेगा और हुए नगरमें रहेगा। दूसरा जो काबोजके लिये होगा, प्रोमनगरमें वास करेगा। सिवा इसके जामोई नगरमें एक प्रधान रेसिडेण्ट और कोचीनचीनका एक तत्त्वावधायक अवस्थिति करेगा। उसी समयसे आजतक फरासीसी कर्तृत्व चल रहा है।

राजा टुडकके मरने पर १८८८ ई०को १०वीं जनवरीको तत्पुत्र बुनसान राजा हुये। उस समय इनका वयस दस वर्ष मात्र था। राजकार्य चलानेके लिये राजवंशीय होयार्डङ्क पर भार डाला गया। इस राज्यमें प्रायः १२०० फरासीसी फौज है।

कोजागर (सं० पु०) की जागर्ति इति लक्ष्म्या उत्तिरत्न काली, पृथ्वीदरादिवत् साधुः। पाश्चिम मासको पूर्णिमा, सरदपूनी। इस दिन निशीथ समयकी लक्ष्मी कहती है—“आज नारिकेल पान करके कोन जागता है ? हम उसे सम्पत्ति प्रदान करेंगे।” इसीसे सरद-पूर्णिमाको कोजागर कहते हैं। ब्रह्माण्ड पुराणमें कोजागर विधान इस प्रकार निर्णीत हुआ है—पाश्चिम मासकी पूर्णिमाको निजुम्भ सिपाहियोंके साथ लड़ते लड़ते बालुकाखंभसे आकर उपस्थित होते हैं। अतएव इस दिनको गृहके निकटवर्ती सकल पथ परिष्कृत तथा सुशीभित और पुष्प, अर्घ्य, फल, मूल, अन्न, सर्वप आदि संघट्ट करके गृह भूषित करना चाहिये। फिर कोजागरके दिन सभीको उपवास करके रहना उचित है। स्त्री, बालक, मूर्ख और लड़ लुधावे बहुत ही कातर होने पर देवतादिकी अर्चना करके खा सकते हैं। पुष्प, फल प्रभृति विविध उपहारसे द्वारकी ऊर्ध्व भित्ति की पूजना चाहिये। द्वारके उपासनेमें यथ, घृत

और तण्डुल द्वारा इक्ष्वाकुकी पूजा की जाती है। इसी प्रकार यथोक्त विधानसे पूर्णन्दु, स्कन्द, सभायन्द, मन्दीरसुनि, गोमानके साथ सुरभि, जगवानके साथ हुताशन, उरभ्रवान सहित वरुण, गजवानके साथ विनायक और रेवन्तकी भी पूजा होती है। इसके पोछे तिलतण्डुल और कसरान (खिचड़ी) आदिसे निकुम्भकी यथासम्भव अर्चना कर्तव्य है।

लिङ्गपुराणमें लिखा है कि—प्राश्चिन मासकी पूर्णिमाकी रातको अक्षक्रीड़ा करके जागरण, लक्ष्मी-पूजा और इन्द्रकी भी पूजा करना चाहिये। नारियल और चिवड़ेसे पिढलोक तथा देवताकी अर्चना करते हैं। स्वयं नारियल चिवड़ा खाते और बन्धुवोंकी भी वही खिलाता चाहिये। जिस दिनको प्रदोष और निशोथ समव्यापिनी पौर्णमासी आती, उसी दिनको जागरण करना पड़ता है। पूर्वदिन निशोथव्यापिनी और पर दिन प्रदोषव्यापिनी होनेसे दूसरे दिन और पर दिन प्रदोष न मिलनेसे पूर्वदिन ही को जागर कर्तव्य है।

(तिथितल)

कोट (सं० पु०) कुट भावे घञ् । १ कोटिष्ण, टेढ़ापन। कुट्यते प्रताप्यते शत्रुयुद्ध, कुट आधारे घञ् । २ दुर्ग, किला। ३ कोठरोग, एक ज्वरदी बीमारो। ४ गुवाक वृक्ष, सुपारीका पेड़।

कोट (सं० पु० = Coat) परिच्छदविशेष, पहननेका एक कपड़ा। इसे कुरते या कमीज पर पहनते और सामने कई बटन लगा रखते हैं।

“धारण करि कोट पतलून ईट छिड़ ऊपर।” (कालीचरण)

कोट—पञ्जाबके पटको जिलेकी फतहगढ़ तहसीलका एक राज्य। इसका क्षेत्रफल ८८ वर्ग मील है। चेबा लोग सिन्धु और सोहान नदियोंके बीच जङ्गलों पहाड़ी देशमें बहुत दिनोंतक स्वाधीन रहे और नाम मात्रकी उन्होंने सिखोंकी वस्यता मानी। १८३० ई० की चेबा सरदार राय मुहम्मदने हजारके पागल मुसलमान-नेता सैयद अहमदके विरुद्ध रणजित्सिंहको बड़ा साहाय्य किया था। राज्यका आय ४४००) रु० है। यहां छोटे बहुत पैदा किये जाते हैं।

कोट—बम्बई प्रदेशके कनाड़ा जिलेकी एक ब्राह्मण जाति। यह प्रधानतः होनाबाड़, कुमता और सिरसी

उपविभागोंमें मिलते हैं। इनको संख्या काई ३८८ होगी। मङ्गलोरसे ६० मील कोटेश्वर ग्राम पर इनका नामकरण हुआ है। यह हवीनोंके साथ रोटी बेटोका व्यवहार रखते और व से ही देवताओंको पूजते हैं। कोट सुचतुर किसान हैं। यह अपने बालक कुछ दिनसे स्कूलोंमें भेजते और उन्नत होते समझ पड़ते हैं।

कोट-भरलू (हि० पु०) मत्स्यविशेष, एक मछली। यह समुद्रमें रहती है।

कोटक (सं० पु०) जातिविशेष, वरामो। ब्रह्मवैवर्तके मतमें कुम्भकारीके गर्भ और अष्टालिकाकारके औरतसे प्रथम कोटक लोग उत्पन्न हुये थे।

कोटकपुरा—पञ्जाब प्रदेशके फरीदकोट राज्यको कोट-कपुरा तहसीलका सदर मुकाम। यह अक्षा० ३०° ३५' उ० और देशा० ७४° ५२' पू० में फरीदकोट शहरसे ७ मील नार्थवेस्टमें रेलवेकी फीरोजपुर भटिण्डा शाखा और राजपूताना-मालवे रेलवे पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८५१८ है। पहले यह एक गांव था। चौधरी कपूरसिंहने कोट-ईसा-खान्के लोगोंको बसा इसे नगररूपमें परिणत किया। कपूर-सिंहसे इस पर कोट-ईसा-खान्के सरकारी सूबेदार बिड़ गये और १७०८ ई० को उन्होंने इन्हे मार डाला। फिर यह चौधरी जोधसिंहकी राजधानी बना, जिन्होंने १७६६ ई० को नगरके समीप एक दुर्ग निर्माण किया। परन्तु दूसरे ही साल पटियालाके राजा अमरसिंहसे लड़ते मारे गये। इसके बाद कोट-कपुरा राजा रणजित् सिंहके हाथ लगा और १८४७ ई० को फिर फरीदकोट राज्यको सौंपा गया। यहां अनाजका बड़ा काम होता और अच्छा बाजार लगता है।

कोटगढ़—मध्यप्रदेशका एक नगर। कोट और गड़ नामक दो स्वतन्त्र स्थानोंसे कोटगड़ नाम पड़ा है। यह विन्हासपुरके बहुत ही निकट अवस्थित है। गड़ नामक स्थानमें एक चतुष्कोण दुर्ग है। वह १०।३२ हाथ ऊंची मूर्तिकाकी परिखा द्वारा वेष्टित है। पूर्व और पश्चिमकी दो फाटक लगी हैं। पश्चिमी

फाटककी मेहराब अभी तक नहीं टूटी। मेहराब पर पुराने पत्थरोंमें क्या न क्या लिखा है। वहाँ ई० दशम शताब्दीके पत्थरोंसे मिलते हैं। इससे मालूम पड़ता है पहाड़ी यह एक बड़ा स्थान था। कोई कहता है कि किलेका पाँच सौ वर्ष पूर्व जयसिंह नामक एक स्थानीय सामन्तने निर्माण कराया था। किला बहुत छोटा है। परिधामें ही इसकी अधिकांश भूमि आवृत हुई है। दुर्गके पार्श्वमें एक पहाड़ है। इसी पर्वतकी उत्तर दिक्को कोट नामक स्थान पड़ता है।

कोटगढ़ (कोटगुह, गुहकोट) पञ्जाब-प्रदेशका एक जिला और प्रधान गाँव। यह शिमलासे २७ कोस उत्तरपूर्व शतद्रु नदीके तीरे, भारतसे तिब्बत जानेकी राहमें पर्वत पर अवस्थित है। इस जिलेमें ४१ गाँव आगते हैं। पर्वतसे शतद्रु पर्यन्त ठालू भूमि पर नाना-विध शस्य उत्पन्न होता है। अधिकांश अधिवासी कुल जातीय हैं। सामन्त लोग राजपूत होते हैं। यहाँ एक साधु रहते थे। उनका समाधिस्थान नानाविध पताकावाँसे शोभित है। कोटगढ़में अन्यान्य देव-देवियोंके मन्दिर भी हैं। उनमें पहाड़ी पहाड़ी नरवलि चढ़ता था। पंगरेजोंकी समकदारीमें यह बन्द हो गया है। परन्तु कई ग्रामोंमें आज भी वलिके लिये आगसंघट्ट करते हैं। स्त्री विनयकी प्रथा चल रही है। कन्या उत्पन्न होते ही मार डाली जाती है। कहीं कहीं शिशुको भी जीते जी गाड़ देते हैं। १८४० ई० की इसी प्रकारकी चार घटनायें सुनी थीं। विवाहके समय वरकी ७) से २०) इ० तक दहेज देना पड़ता है। चार पाँच भाई मिलकर एक कन्याको ब्याह लेते हैं। एक व्यक्ति यदि रुपया संघट्ट नहीं कर सकता, तो बहुतसे लोग चन्दा करके एक ही रमणीका पाचि-ग्रहण करते हैं। इस प्रकारके दृष्टान्त पंगरेजोंका अधिकार छोड़ने पर बहुत देख पड़ते हैं। यही, नहीं कि अर्थके अभावसे ऐसा किया जाता है। इस विवाहमें अधिक यत्न होनेका कारण यह है कि कई आतावीकी सम्पत्ति एकत्र रहती और कभी परस्पर विच्छेद नहीं पड़ता। पर्वतकी चूड़ा, गुहा, वन और प्रखरवन्त माझमें एक एक अधिष्ठात्री देवताका आवास है। वहाँ पूजा

और वलिदान आदि हुवा करता है। अधिवासी वलिदानके बाद पेड़की छाल लेकर नाचते हैं।

कोटगंधल (हि० पु०) क्षुद्र वृक्षविशेष, एक छोटा पेड़। बङ्गाल, मध्यप्रदेश और मन्द्राजमें यह बहुत होता है। काष्ठ कठोर, चिक्का तथा सुहृद रहता और गृह-निर्माणादि कार्यमें लगता है।

कोटगार—एक जाति। बम्बई विभागके धारवाड़ प्रदेशमें ही यह देख पड़ते और ग्राम वा नगरसे बाहर रहते हैं। भाषा कर्णाटी है। कोटगार कृष्णवर्ण और वलिष्ठ होते हैं। सामान्य कुटीर ही इनके रहनेका स्थान है। यह नित्य कंगनीकी रीटो और मांड खाते हैं और भिक्षा करके जो उपार्जन कर लाते, उसीमें कष्टसे दिन बिताते हैं। परिधेय वस्त्र पर चहर और पगड़ीका व्यवहार है। विवाहके समय कोटगार पुरोहितको नहीं बुलाते। इन्द्रजात्र त्रिया और गणक पर इनकी विशेष श्रद्धा रहती है। पीड़ा अथवा कोई अमङ्गल होनेसे कुटनाशगहक्ति नामक स्थानमें जा लिङ्गायत पुरोहितके निकट उपस्थित होते हैं। वह एक नीबू पड़ कर खाने और थोड़ासा भस्म चठा कर गात्रमें लगानेका देते हैं। उससे पीड़ाका उपशम और दुःख दूर हो जाता है। विवाहके समय वर-कन्याको एक कंबल पर बैठानेके उपस्थित कोटगार उच्चैःस्वरसे बोल उठते हैं—विवाह सम्पन्न हुवा। मृत्यु होनेसे शव भूमिमें गाड़ दिया जाता है।

कोटगिरि—मन्द्राज प्रादेशिक नीलगिरि जिलेके कूनूर तालूककी एक पहाड़ी जगह। यह अक्षा० ११° २६' ७०" देशा० ७६° ५२' पू० में अटकामण्डसे १८ मील दूर पड़ता है। आबादी कोई ५१०० है। १८२० ई० की इसकी स्थापना हुई थी।

कोटचक्र (सं० स्त्री०) कोटस्थ चक्रम्, ६-तत्। दुर्गका शुभाशुभ जाननेके लिये अष्टविध चक्र।

(वरपतिजयचर्चा) चक्र देखो।

कोटचांदपुर—बङ्गाल प्रान्तीय बर्धमान जिलेके भेंदिया उप-विभागका एक नगर। यह अक्षा० २३° २५' ७०" और देशा० ८८° १' पू० में कोबदक नदीके बाँस तट पर पड़ता है। लोकसंख्या ८०६५ है। यहाँ बीबीका

बड़ा कारबार और कारखाना है। १८८६ ई० को यहां म्युनिसिपालिटी हुई।

कोटज (सं० पु०) कुटजसुख, कुरैया, कुरची।

कोटड़ा—बम्बईकी काठियावाड़ पालिटिकल एजेंसीका एक छोटा राज्य। यह अक्षा० २१° ५४' तथा २२° ४' उ० और देशा० ७०° ५१' एवं ७१° ८' पू० बीच अवस्थित है। इसकी आबादी ८८३५ और आमदनी ८१५००) रु० है। कोटड़ा काठियावाड़में चौथे दरजेकी रियासत गिनी जाती है। गोंडलके कुम्भोजीके लड़के सांगोजीने इसे स्थापन किया था। उनके पौत्रों जसोजी और सुरतानजीने १७५० ई० को काठियोंसे कोटड़ा जीत लिया और अरडोईसे अपनी राजधानीको उठा यहां स्थापन कर दिया।

कोटहार—युक्तप्रदेशके गढ़वाल जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २८° ४५' उ० और देशा० ७८° ३२' पू० में खोह नदी पर पहाड़ियोंके नीचे बसा है। आबादी लगभग १०२६ होगी। कोटहार अपने जिलेका सबसे बड़ा बाजार है। यहांसे लोग सूती कपड़ा, शकर, नमक, रसोईके बर्तन और दूसरी चीजें खरीद ले जाते हैं। तिब्बती व्यापारका केन्द्रभी कोटहार ही है। भोटिये सोडागा बेचने और दाल, शकर, तम्बाकू और कपड़ा खरीदने आते जाते हैं। हिन्दुस्थानकी जङ्गली पैदावार, सरसों, लाल मिर्च और हल्दीकी रफ्तानी होती है। यहां घाना और शफाखाना बना है।

कोट पूतली—राजपूताना जयपुर राज्यकी तोड़ावाटी निजामतका एक परगना और उसी परगनेका प्रधान नगर। यह अक्षा० २७° ४२' उ० और देशा० ७६° १२' पू० में जयपुर शहरसे प्रायः ६० मील उत्तरपूर्व और अलवर सीमाकी साहबी नदीके पास अवस्थित है। खेतरीके राजाका यहां अधिकार है। आबादी कोई ८४३८ होगी। कोट पूतलीमें एक किला बना है। पहले पहाल १८०३ ई० को लार्ड लेकने खेतड़ीके राजा अभयसिंहकी २००००) रु० पर इसका इस्तेमरारी पट्टा उनको उस सहायताके लिये लिखा था, जो उन्होंने बम्बल नदी पर संधियाकी फौजसे अंगरेजोंका युद्ध होते समय

दी थी। १८०६ ई० को कोट पूतली खेतड़ीके राजाने माफीके तौरपर हासिल की। १८५७ ई० को जयपुरकी सेनाने इसे अधिकार किया था, परन्तु अंगरेजोंने खेतड़ीके राजाको वापस दिला दी। इसका क्षेत्रफल २८० वर्गमील और वार्षिक आय १ लाख ४ हजार रुपया है। कोट पूतली नगरसे ८ मील दक्षिण-पश्चिम भंसलानामें सफ्फूसी निकलता है।

कोटभरिया (हिं० खी०) नौकाके प्रान्तभागमें ऊपरकी लगी हुई लकड़ी।

कोटमाले—सिंहलद्वीप मध्यवर्ती रामबोदीके निकट एक सुन्दर उपत्यका। इस पर एक अनोखा उल्ल है। स्थानीय लोगोंको विश्वास है कि उसके जलमें स्नान करनेसे कुमारी तीन मासके मध्य पतिकी पाती और सोभाव्यशालिनी तथा बहुपुत्रवती हो जाती है। कोटर (सं० पु०-खी०) कोटं कौटिल्यं राति, कोट-रा-क। १ वृक्षगङ्गा, पेड़की खोखली जगह। इसका संस्कृत पर्याय—निष्कुह, निर्गूढ़, प्रान्तर और तर-विधर है। (भारत, भाष. ४७ प०)

२ दुर्गकी रक्षा करनेके लिये उसकी चारो ओर लगाया हुआ जंगल। (त्रि०) कोटोऽस्ति अस्त्र, कोट अस्त्रार्थे र। ३ दुर्गसज्जित, किलेसे लगा हुआ।

कोटरङ्ग (कोत्तरङ्ग)—बङ्गाल-प्रान्तीय हुगली जिलेके श्रीरामपुर सबडिवीजनका एक नगर। यह अक्षा० २२° ४१' उ० और देशा० ८८° २१' पू० में भागीरथीके दक्षिण तटपर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५८४४ है। यहां ईंट, सुर्खी और खपड़ा बहुत बनता और रस्सी और डोले भी तैयार होती है। १८६८ई० को यहां म्युनिसिपालिटी पड़ी।

कोटरपुष्पी (सं० खी०) बृहद्दारकलता, एक बड़ी वेल। कोटरा (सं० खी०) वाणासुरकी माता।

कोटरा—राजपूताना उदयपुर राज्यकी आवनी। यह अक्षा० २४° २२' उ० और देशा० ७३° ११' पू० में उदयपुर नगरसे कोई ३८ मील दक्षिण-पश्चिम और राजपूताना मालवा-रेलवेके रोहड़ा स्टेशनसे ३४ मील दक्षिणपूर्व अवस्थित है। मिनाड़ भील फौजकी २ कम्पनियां यहां रहती हैं। कोटरा बाबल और

साबरमतीके सङ्गम पर बसा और वने पेड़ोंके पहाड़ोंसे घिरा है। कोटरा जिलेमें २४२ गांव पड़ते, जिनमें १६७२८ लोग रहते हैं। यहां भीलोंकी संख्या अधिक है। उक्त ग्रामोंमें अछा, घोघना और पनरवाके ३ ग्रासिया सरदार राजत्व करते हैं।

कोटरादि (सं० पु०) गणपाठोक्त एक गण । कोटर, मिश्रक, सिप्रक, पुरग, शारिक कई शब्द कोटरादि गणके अन्तर्गत हैं। वनशब्द पीछे रहनेसे कोटरादि गणका स्वर दीर्घ हो जाता है।

कोटरावण (सं० स्त्री०) कोटरान्वितानां तरुणां वनम्, इत्यतः। पूर्वस्वरदीर्घः ण्यत्वम् । वनं पुराणान्वितासिप्रकाशारिका-कोटरावणः । पा ८। ४। ४। कोटरविशिष्टवृक्षयुक्त वन, किलेके दरख्तोंका जंगल ।

कोटरि (कोतरी)—सिन्धुप्रदेशके कराची जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २४° ५८' एवं २६° २२' उ० और देशा० ६७° ५५' तथा ६८° २८' के मध्य अवस्थित है। इसका परिमाण ६८४ वर्गमील है। इसमें ३ ताल्ले (परगने) और २६ गांव लगते हैं। (दो-तीन गांवोंका एक ताल्ला होता है। लोकसंख्या ७६१७ है।

२ कोटरि तालुकका प्रधान नगर। यह अक्षा० २५° २२' उ० और देशा० ६८° २२' पू० पर सिन्धु नदीकी दक्षिण दिक्की हैदराबादके अन्तर्गत गिदुबन्दरके अपर पार अवस्थित है। समय समय पर वारण पर्वतसे जलराशि आकर नगर आवृत करता है। इसीसे कोटरिकी उत्तर दिक्की नाली बना अतिरिक्त जल निकासनेका प्रबंध किया गया है। नदीकी राह छीमर, नीका प्रभृति अनायास यातायात करते हैं। रेलवे भी यहां निकली है। आर्टन-मकबरीमें इस मालवे सूबेके अन्तर्गत कहा है। उस समय ८ मइल इसमें लगते थे।

कोटरी (सं० स्त्री०) कोटं कौटिल्यं रोषाति गच्छति, रो गतो ज्ञिप् । १ विवस्त्र स्त्री, नंगी औरत । कोटं कुटिलस्वभावं राजसादिकं रोषाति इन्ति कोटरी-ज्ञिप् २ चण्डिका । ३ दुर्गा ।

कोटवक्कर—वर्ग्यके कनाड़ा जिलेकी एक जाति। यह

महाराष्ट्र पर सिहापुर और सिरसीमें मिलते हैं। इनकी संख्या प्रायः १८२२ है। यह सुपारियोंको खजूरकी पत्तियोंके थैलोंमें भर कर उनकी रक्षा करते हैं। इनकी मातृभाषा कनाड़ी है। यह शराब नहीं पीते और बागों और खेतोंमें मजदूरी करते हैं। इनमें विधवा-विवाह और बहुविवाहका निषेध है।

कोटवी (सं० स्त्री०) नग्न स्त्री, नंगी औरत ।

कोटा—राजापूतानेके अन्तर्गत एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २४° ७' एवं २५° ५१' उ० और देशा० ७५° ३७ तथा ७७° २६' पू० के मध्य अवस्थित है। कोटा शरावतीका कियदंश है।

इसका प्रधान नगर कोटा अक्षा० २५° ११' उ० और देशा० ७५° ५१' पू० में चम्बल नदीके दक्षिण कूलपर अवस्थित है।

कोटा राज्यके उत्तर जयपुर एवं अलीगढ़, उत्तर-पश्चिम चम्बल नदी, पूर्व ग्वालियर राज्य, टीक और भालावाड़का कुछ अंश दक्षिण खिलचिपुर एवं राजगढ़, पश्चिम बुन्देली एवं उदयपुरराज्य और दक्षिण-पश्चिम रामपुर-भानपुर, भालावाड़ और आगरा है। परिमाण ५६८४ वर्गमील लगता है। लोकसंख्या लगभग ५४४८७८ है। यहां उर्दू और हिन्दी भाषा प्रचलित है।

राव देवसिंहने (११४२ ई०) भीमा कोटसे बुन्देल्यका ग्रहण करके बूंदेली राज्य स्थापन किया था। फिर उनके पुत्र समरसिंह राजा हुए। समरसिंहके तीसरे लड़के जैतसिंह किसी दिन केतुन प्रदेशकी यात्रा करते समय राहके बीच गिरिसङ्कटवासी भीलोंके प्रदेशमें जा पहुँचे। यहां भीलोंको आक्रमण करके उन्होंने बहिर्दुर्ग अधिकार किया था। कोटिया नामक भीलोंकी एक अणीसे इस स्थानका नाम कोटा पड़ा है। जैतसिंहने अपना विजयचिह्न स्थायी बनानेके लिये रणदेव भैरवके उद्देशसे पत्थरकी एक सुवृहत् हस्ती-मूर्तिको स्थापन किया। वही प्रसारमय मूर्ति कोटा राजधानीके चार-भीपड़ा नामक स्थानके दुर्गतीरणके निकट विराजित है।

जैतसिंहके बेटे सुरजनदेवने ही भीलोंके इस

प्रदेशका नाम कोटा रखा और राजधानीके चारो पार्श्व प्राकार बनवा दिया था। सुरजनके पुत्र धीरदेवने यहाँ १२ बड़े बड़े सरोवर खुदाये। उनमें किशोरसागर नामसे परिचित वर्तमान सरोवर प्रधान है। धीरसिंहके लड़के कण्ठूल और तत्पुत्र भोनङ्ग थे। भोनङ्गसिंहके समय धाकुड़ और कासिरखान् नामक दो पठानोंने आकर कोटा आक्रमण किया। भोनङ्ग अफीमके नशेमें हमेशा चूर रहते थे, इसीसे राज्यकी रक्षा करना संभव नहीं था। अन्तमें वह बूंदी राज्यकी निर्वासित हुवे। उनकी वीर-रमणीने ससैन्य केतुन प्रदेश जाकर आश्रय लिया था। थोड़े दिन पीछे भोनङ्गका नशा छूट गया। उन्होंने अपनी पत्नीको सानुनय कहला भेजा था कि अब हम नशा न लेंगे। उस समय वीरबालाने पतिको समादरसे ग्रहण किया। परन्तु उन्होंने देखा कि पठानोंके हाथसे कोटा उधार करनेके लिये हमारे पास यथेष्ट सैन्यबल नहीं, फिर भी किसी न किसी प्रकार राज्य उधार करके खामीकी सिंहासन पर बैठाना पड़ेगा। राजपूतबालाने नूतन उपाय खिन्न करके कासिरखान्को कहला भेजा था कि कोटा राज्यकी पूर्वतन अधीश्वरी राजपूत-महिलावाँकी लेकर आपके साथ होकी खेलेंगी। पठान वीरोंका मन पिघल उठ। उन्होंने परम आनन्दसे भोनङ्गमहिषीको आश्रय किया था। इधर राजपूतबाला तीन सौहर जातीय सुन्नी युवकोंको स्वीदेशमें सजा और अपने साथ सजा कोटा राजधानी पहुँचों। होकी होने लगी। स्वीदेशधारी भोनङ्ग कासिर खान्के मस्तक पर अवीर लगाने चले थे। उन्होंने अवीर लगवानेके लिये जैसे ही अपना शिर झुकाया, भोनङ्गने घाबरसे तलवार निकाल उसके दो टुकड़े कर डाले। दूसरे राजपूतके युवकोंने भी भोनङ्गकी भाँति किया था। अल्प समय मध्य ही रमणीके कौशलसे कोटा राज्यका पुनरुद्धार हो गया। भोनङ्गके मरने पीछे उनके पुत्र डूंगरसिंह अधिपति हुवे। इसी समय राव सूर्यमल्लने डूंगरको शासन करके कोटा राज्य बूंदीमें मिला लिया। बूंदी देखो।

कुछ दिनों बाद बूंदीके अधीन रहा। फिर १६३४ संवत् (१५७८ ई०) की बूंदीके राजा रावरज, मधु-

सिंह और हरिसिंह नामक दो पुत्रोंको साथ लेकर बुरहानपुरके युद्धमें दिक्कीश्वरका साहाय्य करने गये थे। इस लड़ाईमें पितापुत्रके असीम वीरत्वसे सुख हो बाट-ग्राहने रावरजको बुरहानपुरकी स्विकारी और उनके दूसरे बेटे मधुसिंहको वर्तमान कोटा राज्यकी सनद दी। इसी समय हरवती राज्य दो हिस्सोंमें बंट गया। पहली कोटाराज्य अधिक विस्तृत न था। परन्तु चतुर्दश-वर्षीय वीर मधुसिंहके गह्वे पर बैठनेसे इसकी सीमा कितनी ही बढ़ गयी। पर पूर्व गोंड जातिके अधीन मङ्गराली तथा राठौर राजपूतोंके नाहरगढ़, उत्तर चखल नदी तीरवर्ती सुलतानपुर और दक्षिणको गागरी एवं घाटोली तक चला गया है। इसके बीच ३६० नगर और विस्तर उर्वरा भूमि थी। राजा मधुसिंहके मरनेसे कुछ पहले मालव और हरवतीके सीमान्त पर्यन्त उनकी अधीनस्थ हो गया। उन्होंने १६३१ ई० की पाँच उपयुक्त पुत्र छोड़ दह-लाक़ परिव्रज किया था। तत्पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र सुकुन्दसिंहको कोटाके महाराज और दूसरे चार बेटोंको प्रधान सामन्तका पद मिला। मालव और हरवतीका मध्यवर्ती सुकुन्दहार नामक प्रसिद्ध गिरिपथ राजा सुकुन्दसिंहने ही निर्माण कराया था। इसी राहसे १८०४ ई० की अंगरेज सेनानायक मनसब साहब रथ छोड़ कर ससैन्य भाग निकले।

जब दुर्गन्त औरक़जेबने पिछड़खाका सङ्कल्प किया, राजा सुकुन्दसिंहने अनुजीके साथ जी तोड़ कर ग्राह-जहान्को पक्ष लिया था। इसीसे १६५८ ई० की उज्ज-यिनीके निकटवर्ती क्षेत्रमें औरक़जेबके विपक्ष लड़ते समय इन्होंने अपना प्राण विसर्जन कर दिया। फिर सुकुन्दके पुत्र जगत्सिंहने राजा हो दिक्कीश्वरके निकट दो हजार मनसबदारका पद पाया था। १६७० ई० की राजा जगत्सिंहका मृत्यु हुआ। उनके पुत्र सन्तानादि न रहनेसे राजा मधुसिंहके पौत्र कनीरामके पुत्र पायमसिंहको राज्य मिला था। किन्तु उन्हें पण्ड

* राजस्थानकी इतिहासलेखक डा० साहबने लिखा है कि जहांगीरने मधुसिंहको कोटा राज्य दिया। परन्तु उस समय दिक्की सिंहासन पर चक्कर बैठे थे।

कार्गिके कारण राज्यभूत करके पचावतने उनके पैतृक सामन्तराज्य कोयल पहुंचा दिया। वहां आज भी इनके वंशधर रहते हैं।

पायमसिंहके पीछे राजा मधुसिंहके पंचम पुत्र वीर-वर किशोरसिंह राजसिंहासनमें अभिविक्त हुये। वह सम्राट् बीरब्रजेबकी घोरसे दाखियात्ममें मराठीसे बड़े जोरों लड़े थे। उनके देहमें अस्त्राघातके ५० चिह्न रहे। वह १७४२ संवत्को पार्कटगढ़के अधिकारकाल मारे गये। फिर किशोरसिंहके दूसरे बेटे रामसिंह गद्दी बैठे। पक्षी बड़े बेटे विष्णुसिंहके ही राजा होनेकी बात थी। परन्तु अपने पिताके साथ युद्ध करनेकी न जानके कारण वह राजपदसे वञ्चित हुये।

राजा रामसिंहके मनमें एक बड़ी ही आशा थी, कि हम बूंदीके राजाको शासन करेंगे। किन्तु वह कृतकार्य हो न सके। उनके अकाल कालयासमें पड़नेसे भीमसिंह राजा हुये थे। यह अतिशय चतुर और बुद्धिमान रहे। उस समय फरखसियार दिल्लीके सम्राट् और दो सैयद राजाके समय कर्ता थे। राजा भीमसिंह उन्हीं सैयदोंका पक्ष अवलम्बन करके पांच हजारों मनसबदार बन गये। इसी समय कोटा प्रथम अन्धकी राज्य समझा गया। राजा भीमसिंहने बूंदीपति बुधसिंहके प्रायनाशकी चेष्टा लगायी थी। पीछे उन्होंने बूंदीके राजाका नकारा और सुप्रसिद्ध रणशङ्क सूट लिया और दुर्गत्त सैयदोंके साहाय्यकारी हो उनसे कोटासे अहीरवा तक समग्र पारिपात्र प्रदेशका शासन-पत्र ग्रहण किया। हरवती राज्यकी दक्षिणसीमामें अकसेन नामक भीलोंके एक राजा पुरुषानुक्रम पर स्वाधीन भावसे राजत्व करते थे। राजा भीमसिंहने अक-स्मात् उन्हें आक्रमण करके भील वंशको ध्वंस कर डाला।

दाखियात्ममें निजाम राज्यके प्रतिष्ठाता खिजर खान् (पीछे निजाम-उल्-मुल्क) जब दिल्लीकी अधीनता न मान दाखियात्मके अभिसुख चले, भीमसिंह और नर-वरके राजा गजसिंहकी उन्हें रोक रखनेका आदेश मिला। उसी युद्धमें (१७२० ई०) मोलेकी बोटसे नर-वरके राजा गजसिंह और भीमसिंह निहत हुये। हर-

जातिकी आदि वासभूमि गोसल्लुण्ड हैदराबादके अधीन हो गया।

राजा भीमसिंहके अर्जुन, श्याम और दुर्जनशाह तीन पुत्र थे। प्रथम अर्जुनसिंहकी ही कोटाका "महा-राव" पद मिला, परन्तु ४ वर्ष पीछे उनका मृत्यु होनेसे राजसिंहासनके लिये श्यामसिंह और दुर्जनशाह उभय भ्रातावीमें घोरतर युद्ध हुआ। इस युद्धमें श्यामसिंह मारे गये। १७२४ ई० को दुर्जनशाह निर्धिष्ठ कोटाके सिंहासन पर बैठे थे। उन्हें दिल्लीके बादशाहने खिलफत दी और उन्हींके अनुरोधसे सम्राट् सुहमद शाहने आदेश प्रचार किया—हरजाति यमुनाके तीर जहाँ जहाँ रहती है, कोई सुसलमान भव गोहत्या कर न सकेगा। १७२८ ई०को हरजातिसे मराठे मिल गये। किन्तु अम्बरराज ईश्वरोसिंहने वह मित्रतामूत्र विच्छिन्न करके १७४४ ई० को महाराष्ट्र-नेता और जाटीके स्वामी सूर्यमल्लके साहाय्यसे कोटा राज्य आक्रमण किया। इस समय कोटाके सेनापति बालाजातीय वी-विश्वतसिंहके वीरत्व और कौशलसे ईश्वरोसिंह परास्त हुये और पेशवा बाजीराव भी सन्धिके सूत्रमें बंध गये। इसी सूत्रमें पेशवा बाजीरावने नाहरगढ़ नामक दुर्ग जय करके कोटाके राजा दुर्जनशाहकी सौंपा था। राजा दुर्जनशाहने पैतृक विवाद विसंवाद भूल होलकरके साहाय्यसे बुधसिंहके पुत्र अम्बेदसिंहकी बूंदी राज्यमें अभिविक्त किया। इस उपलक्ष्यमें अम्बेदसिंह और राजा दुर्जनशाहकी भी होलकरका करद होना पड़ा। १७५७ ई० को राजा दुर्जनशाहका मृत्यु हुआ। उनके राजत्व कालमें मृगया-सहचरी राजपूत-महि-लावोंने बन्दूक चलाना सीखा था।

कोटाके पूर्वराज रामसिंहके ज्येष्ठ पुत्र विष्णुसिंहके छत्रशाल नामक एक प्रपौत्र थे। दुर्जनने उन्हीं छत्र-शालकी गोद लिया। दुर्जनशाहके मृत्यु पीछे विश्वतसिंहके यत्नसे छत्रशालके जन्मदाता अजितसिंह ही प्रथम अभिविक्त हुये। ठाई वर्ष पीछे बुध अजितसिंहके मरने पर छत्रशालने सिंहासन आरोहण किया था। १७६१ ई० को अम्बरपति मानसिंह अचक्षुष्य सेन्ध कर कोटाराज्य पर चढ़ आये। उस समय विश्वतसिंह

जोते न थे। उनके भतीजे फौजदार जालिमसिंहके बहुत कौशलसे कोटाराज्यका सुष्ठिमय हर-सेन्य चम्बर-पतिके प्रसन्न सैन्यको विध्वस्त करनेमें समर्थ हुआ। अल्पकाल पीछे ही छत्रशालने इहलोक छोड़ा था। १७६६ ई० को उनके मध्यम सहोदर गुमानसिंह गद्दी बैठे। इस समय कोटाराज्यके उच्चारकर्ता राजनीतिज्ञ जालिमसिंह पर सकल प्रभुत्व रहा। यह गुमानसिंहको अच्छा न लगा। उन्होंने जालिमसिंहको खर्व करनेके लिये फौजदारका पद और जालिमसिंहका अधिकृत नन्दता प्रदेश उनके मातुल भूपतिसिंहको प्रदान किया था। जालिमसिंह अपमान और क्षोभसे मेवाड़ चले गये। महाराजाने उन प्रसाधारण योद्धा और राजनीतिज्ञको सन्तुष्ट ही "राजराणा" उपाधि दिया था। मेवाड़ देखो। थोड़े दिन बाद महाराष्ट्र-समरमें ग्राह्यत हो जालिम फिर कोटा लौट आये। इस बार राजा गुमानसिंहने अपना अन्याय पाचरण समझ कर जालिमको फिर पूर्व पदमें नियुक्त किया था। १७७१ ई० को उन्होंने अपने १० वर्षके पुत्र उम्मेदसिंहको जालिमकी गोदमें रखके इहलोक छोड़ दिया। उम्मेदसिंह राजा और जालिमसिंह बालक राजाके अभिभावक हुए। जालिमकी कूटराजनीतिसे नरवर आदि कई राज्य कोटामें मिले थे। जालिमसिंह राज्यके प्रकृत मित्र थे, तो भी उनके अभ्युदयसे प्रधान प्रधान सामन्तीकी ईर्ष्या लगी। विपक्ष दलने जालिमके प्राण लेनेकी १८ बार षडयन्त्र लगाया था, परन्तु सोभान्य क्रमसे उनका कोई अनिष्ट न हुआ। सामन्त लोग साजिश करके कुछ बना न सके। परन्तु इसी समय राजाके अन्तःपुरमें भी महिलाओंके बीच घोर षडयन्त्र चलता था। किसी दिन कनिष्ठ राजकुमारकी माताने जालिमसिंहको अन्तःपुरमें आह्वान किया। वह जाकर रानीके पार्श्ववर्ती कक्षमें बैठे ही थे, कि चठात् कई एक राजपूत रमणियोंने हाथमें नक्की तलवारें लिये उनको घा घेरा। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि जालिमसिंहसे गूढ़ राजनीतिक बातें न कर उन्हें मार डालेंगी। जालिमसिंह जीनेकी आशा छोड़ एका एक प्रश्नका उत्तर देने लगे। इसी

समय एक एक महारानीकी अति बलशाली प्रधाना सहचरीने पहुँच कर उक्त दारुण विपद्से छोड़ा दिया।

उस समय जालिमसिंह शासनकर्ता और विधानकर्ता, प्रकृत प्रस्तावमें राज्यके अधीश्वर भी कहा सकते थे। राजा उम्मेदसिंह उनके हाथके लिखौने ही रहे। वह ऐसा उच्चपद पाने पर भी अपने दुःसमयके उपकारी मेवाड़के महाराणाको भूल न सके थे। जालिमसिंह कोटाराज्यका स्वार्थत्याग करके मेवाड़को भलाइ करनेमें विशेष तत्पर थे। उन्होंने राजनीतिक उच्चा कांक्षा पूरी करनेमें कोटाराज्यका सर्वनाश किया और अतिरिक्त कर लगानेमें किसानोंको क्षतदास बना दिया। थोड़े दिनों पीछे उनको पाँखें खुलीं। वह राजप्रासाद छोड़ कोटाराज्यके दक्षिणप्रान्त पर एक दुर्भेद्य स्थानमें जाकर रहने लगे। यहां जालिमसिंहने देशी और अंगरेजी प्रणालीसे एक एक नयी फौज बनायी थी। फिर उन्होंने करसंघाटक पटेलोंकी पूर्व क्षमता घटा उन्हें सामान्य आय पर नियुक्त किया और अपने आप नाना स्थानोंमें घूम फिर प्रत्येक गांवकी चकबन्दी करायी। उस समय नये पटेल रखनेका आदेश निकलनेसे पहलेके पटेलोंने अपना अपना पद पानेकी आशासे प्रायः १० लाख रुपया भेंट दिया था। जालिमसिंहने सब पटेलोंमें चार शिखित और चतुर पटेलोंकी अपने पास रखा और एक समिति बनाके उन्हें सदस्य पद पर वरण किया। राजस्व, विचार और शान्तिरक्षाका काम उनको सौंपा गया। इधर नये पटेल नाना प्रकार किसानोंका मटियामिट करने लगे। उनके अत्याचार करने और उत्कोच लेनेकी बात जालिमसिंहके कानमें पड़ी थी। उन्होंने १८११ ई० को किसी दिन सब पटेलोंको कैदमें डाल दिया। विचारके पीछे उन्हें कहा सुर्माणा हुआ। केवल एक व्यक्ति सात लाख रुपया खानान्तर कर सका था।

इधर राजराजाने देखा कि राजभाण्डार भरता तो था, परन्तु प्रजाका बढ़ा अनिष्ट होता था। उस

समय सुचतुर जालिमसिंह कोटाराज्यमें जहां जितनी जंगली जमीन पड़ी थी, खेती कराने लगे। थोड़े दिनोंमें कोटाराज्य अपनाजसे भर गया। कर्नल टाउनले लिखा है कि १८२१ ई० को जालिमसिंहके अपने ही खेतोंमें ४ हजार हल चलते और उसमें १६ हजार बैल लगते थे।

अन्तको जालिमने नियम निकाला—जो विधवा फिरसे विवाह करेगी, उसको कर देना पड़ेगा। भीख मांग कर रुपया कमानेवाला संन्यासी भी कर देनेको बाध्य था। परन्तु उनके पुत्र माधवसिंहने यह जघन्य कर उठा दिया।

बहुतसे लोग कह सकते हैं, कोटाराज्यके उद्धारकर्ता जालिमसिंह क्यों ऐसा कड़ा नियम लगा प्रजावर्गका सर्वनाश करते थे। अवश्य इसका कारण था। उन्होंने राज्यका भार पाकर देखा—‘राजाका धनागार शून्य था, उन्हें ३२ लाख रुपया देना था। वैदेशिक आक्रमणसे राज्य बचानेकी वेसे सैन्य सामर्थ्य भी न रहे, बहुतसे दुर्ग टूटे थे।’ इसीसे उन्हें बहुतसा रुपया खींच करके दुर्ग सुधारने, चार हजार सवारोंकी जगह बीस हजार सीखे सिपाही रखने और १०० तोपें इकट्ठा करना पड़ी।

१८०३ ई० को जालिमसिंहके साथ ब्रिटिश गवर्नमेंटका सीधा सम्बन्ध हो गया। इसी समय जनरल मनसून एक दल अंगरेजी फौजके साथ होलकर पर चढ़ चले। कोटाराज्यके बीचसे जब वह निकले, जालिमसिंहने उन्हें खाने पीनेकी चीजें और नौकर आकर दे विशेष साहाय्य पहुँचाया था। सेनापति मनसूनके होलकरसे द्वार कर पीठ देखाने पर उन्होंने इन

बिगड़ कोटाराज्य आक्रमणका उद्योग किया। परन्तु सुचतुर जालिमके कौशलसे विना रक्तपात उन्हें अपने देश लौट जाना पड़ा। इनके साथ रह कर महाराव उम्मेदसिंह भी अनेक गुण पा गये। वह एक अच्छे सवार, बन्दूकका सच्चा निशाना लगानेवाला और खासे शिकारी थे। वयोवृद्धके अनुसार उनका धर्मानुराग भी बढ़ गया। इसी धर्मानुरागके प्रवर्तों ही वह पिछनियोजित जालिमसिंहका समधिक सम्मान करते

थे। उन्होंने जालिमसे विना पूछे कभी कोई काम नहीं किया। जालिमसिंह भी बड़े राजभक्त थे।

इसी समय अंगरेजोंसे पिछकारियोंकी समासान लड़ाई हुई। जालिमसिंहने इस युद्धमें अंगरेज गवर्नमेंटको यथेष्ट साहाय्य दिया था।

१८१७ ई० में २६ दिसम्बरको कोटाराज्यके साथ अंगरेजोंकी एक सन्धि हुई। इस सन्धिके अनुसार ब्रिटिश गवर्नमेंटने कोटाके राजाको सदाके लिये मित्रराज जैसा मान लिया और उन्हें वंशानुक्रममें शासनकी पूर्ण क्षमता मिल गयी। सन्धिपत्रमें यह भी लिखा है कि कोटाराज्यमें अंगरेजी दीवानी और फौजदारी कभी न चलेगी। दूसरे वर्ष २० फरवरीको फिर एक सन्धि की गयी। उसके अनुसार जालिमसिंह और उनके ल्येष्ठ पुत्र आदि क्रमसे वंशधरोंकी कोटाराज्यके शासनकी क्षमता प्रदत्त हुई।

१८१८ ई० को महाराव उम्मेदसिंहने परलोक गमन किया था। उनके किशोरसिंह, विष्णुसिंह और पृथ्वीसिंह—तीन पुत्र रहे।

राजराणा जालिमसिंहके भी माधवसिंह और गोवर्धनदास—दो पुत्र थे। जालिमसिंहने माधवसिंहकी सेनापति और गोवर्धनकी कविविभागके ‘प्रधान’ पद पर नियुक्त किया।

महाराव उम्मेदसिंहके मरने पर कुमार पृथ्वीसिंह और गोवर्धनदासने इस बातकी विशेष चेष्टा की, कि जालिमकी वंशपरम्परामें राज्यशासनकी क्षमता न रहे। महारावके मृत्युका संवाद पाते ही जालिमसिंह राजधानीमें आ पहुँचे, परन्तु कोई राजकुमार उनसे न मिले। कुमार पृथ्वीसिंह और गोवर्धनके भड़कानेसे युवराज किशोरसिंह भी जालिमसिंहसे बिगड़ पड़े और राज्यके शासनकी क्षमता उद्धार करने की सभी चेष्टा करने लगे। किन्तु उनकी इच्छा पूरी न हुई। ब्रिटिश गवर्नमेंटके एजेंट टाड साहबके यत्नसे जालिमसिंहका ही हक कायम रहा। कुमार पृथ्वीसिंह और गोवर्धनदास महारावके पाससे हटाये गये और हरवती राजसे गोवर्धनदास निर्वासित हुई। फिर १८२० ई० में १७ अगस्तको महाराव किशोरसिंह सिंहासन पर

बैठे और फिर जालिमके साथ सझाव बढ़ गया। इस अभियेकके उपलक्षमें किशोरसिंहने जालिमके बैठे माधवसिंहको खिलचतके साथ वंशानुक्रममें कोटाके सेनापति पदको सनद दे दी।

बृह जालिमसिंह मृत्युसे पूर्व दो कार्य करके प्रजाके कृतज्ञताभाजन हुये—(१) उनका कोई उत्तराधिकारी यदि राजाके किसी कर्मचारीको पदच्युत करे, तो उस कर्मचारीको सम्पूर्ण स्वाधीनता देना पड़ेगी और पूर्व कार्यके लिये वह कर्मचारी दायी न होगा और (२) कोटाराजमें जो दण्डकर लगा है, एक काल ही उठ जावेगा।

१८२१ ई० की गोवर्धनदासके साथ भावुषाके अधीश्वरकी एक कन्याका विवाह पक्का हुआ था। इसी उपलक्षमें उन्हें मालव आनेकी अनुमति मिली। उन्होंने उक्त नगरमें पहुँचते पहुँचते चारों ओर हरजातीय वीरको भड़काके एक बड़ा बड़बुल खड़ा कर दिया। जालिमसिंहके पक्षीय पुरातन सेनानायक सैफ पक्षी महाराव किशोरसिंहसे मिल गये। थोड़े दिनोंमें ही जालिमसिंहके साथ कोटाराजका युद्ध छिड़ा था। स्वजातिके रक्तसे कोटाराज भर गया। अन्तकी अंगरेजी सैन्यके साहाय्यसे जालिमसिंहने एककाल ही राजसैन्यका उच्छेदसाधन किया था। इस युद्धमें कुमार पृथ्वीसिंह शत्रुके हाथों मारे गये। फिर अमहाय महाराव किशोरसिंहको जालिमसिंहके साथ सन्धि करना पड़ी और उनकी माधवसिंहसे मित्रता भी स्थापित हुई। ८६वें वर्ष राजराणा जालिमसिंह मृत्युके मुखमें जा पड़े। उनके जैसे बुद्धिमान, चतुर, राजनीतिज्ञ और असाधारण मेधावी व्यक्तिने राजस्थानमें आज तक जन्म नहीं लिया है।

१८२४ ई० की जालिमसिंहका मृत्यु होने पर उनके पुत्र मधुसिंह उपयुक्त न रहते भी सन्धिपत्रके अनुसार कोटाके प्रधान मन्त्री और शासनकर्ता हो गये। १८२८ ई० की महाराव किशोरसिंहका मृत्यु हुआ। उनके भ्रातृपुत्र रामसिंह गद्दा बैठे थे। इसी समय मधुसिंहके काकापासमें पड़नेसे उनके पुत्र मदनसिंहने पितृपद अधिकारग्रहण किया। परन्तु कोटाके अधि-

पति नव मन्त्रीके शासनकालसे अत्यन्त असन्तुष्ट हुये थे। १८६४ ई० की दोनों ओर जदाई छिड़ जानेका उपक्रम लग गया। इस बार ब्रिटिश सरकारने जालिमसिंहके साथ की गयी सन्धिकी भङ्ग करके कोटाराजको ही पूर्ण शासन-अमता प्रर्पण की। जालिमसिंहने पिण्डारियोंको दमन करनेमें ब्रिटिश सरकारको जो साहाय्य पहुँचाया था, उसके लिये कोटाके अन्तर्गत १७ परगनेका नया भालावाड़ राज्य मदनसिंह को मिला। इस समयसे कोटा और भालावाड़ दोनों स्वतन्त्र राज्य समझे जाते हैं।

कोटाराज्यके तत्त्वावधानकी एक अंगरेज पोलिटिकल एजेंट नियुक्त हुवे। १८५७ ई० की विद्रोहके समय कोटाके सिपाहियोंने एजेंट और उनके दोनों पुत्रोंको विनाश किया था। उस समय महारावके एजेंटका साहाय्य न करनेसे ब्रिटिश गवर्नमेण्टने सत्रहको जगह ११ तोपोंकी ही सलामी कर दी। १८६६ ई० में २७ मार्चको महाराव रामसिंहका मृत्यु हुआ और उनके पुत्र भीमसिंह (अपर नाम छत्रसिंह) को राज्य मिला। उस समय छत्रके नाबालिग रहनेसे राज्यके प्रधान कर्मचारियों पर ही राज्यशासनका भार पड़ा था। परन्तु उन सबके स्त्र स्त्र उदरपूरण करनेकी चेष्टा लगानेसे अल्प दिन मध्य ही राजकीय शून्य हो गया और राजसंसारमें अणु बढ़ने लगा। इसी समय ब्रिटिश गवर्नमेण्टने हाथ डाल १८७४ ई० की जयपुरके प्रधान मन्त्री फौज बख्शोंको कोटाराज्य शासन करनेकी अमता दी थी। उक्त विघ्न और सुचतुर कर्मचारीके यत्नसे राज्यकी कितनी ही उन्नति हुई। उन्होंने राजकीय विभागमें नाना प्रकारके नूतन नियम चलाये थे। समस्त कोटाराज्य ८ निजामतोंमें बाँटा गया और उसमें फिर दीवानी और फौजदारीका महकमा बाँधा तथा प्रत्येक विभागमें एक एक कर्मचारी नियुक्त हुआ। इन सकल कर्मचारियोंकी अमताके अतिरिक्त विषयका विचार करनेकी राजधानीमें दीवानी, फौजदारी और तहसीलदारी अदास्त खोली गयी। महाराव छत्रसिंहके समय फिर ब्रिटिश गवर्नमेण्टने १७ तोपोंकी सलामी ठहरा दी। महाराव छत्रसिंहके पीछे वर्तमान

महाराजाधिराज महीमहेन्द्र महाराव राजा सर उमैद सिंहजी साहब बहादुरको राज्यका अधिकार मिला था। कोटाका वार्षिक राजस्व ३१००००० रु० है।

कोटा-भासावाड़—दक्षिण-पूर्व राजपूतानेका पलिटिकल एजेंसी। यह अक्षा० २३° ४५' तथा २५° ५१' उ० और देशा० ७५° २८' एवं ७७° २६' पू० के बीच पड़ती है। पलिटिकल एजेंटका सदर कोटामें है। लोकसंख्या ६३५०५४ निकलती है। क्षेत्रफल ६४८४ है। आकारको देखते यह एजेंसी राजपूतानेमें पांचवीं और भासावाड़के हिसाबसे सातवीं ठहरती है।

कोटाकोपाड़ा—बङ्गाल प्रदेशके फरीदपुर जिलेका एक परगना। इसमें ७२ गांव हैं। कोटाकोपाड़ामें घघर नामक एक नद प्रवाहित है। इसके भूतत्वकी पर्यालोचना करनेसे समझ पड़ता है कि ५।६ सौ वर्ष पहले यह स्थान नदीमय रहा। आजकल कोटाकोपाड़ाके पश्चिमांशमें घघर नदीकी रेखा ही देख पड़ती है। घघर नदीके उस पारसे फुल्लुश्रीयाम ४४ कोस पूर्व है। इससे अनुमित होता है कि तत्कालकी यह उसके नर्भमें पड़ा था। महाविषुव-संक्रान्तिके दिन उसके किनारे एक मेला लगता है। अनेक स्त्रियां आकर स्नान करती हैं। प्रवाद है कि एक संन्यासीने यह वर दिया था—जो अपुत्रक स्त्री महाविषुव-संक्रान्तिको यहाँ स्नान और गङ्गापूजा करेगी, उसके सन्तान होगी। कोटि (सं० स्त्री०) कोट्यते च्छिद्यतेऽनया, कुट-ङन् बाहुलकात् गुणः। १ खड्गादिका पान्त, तलवार वगैरहकी धार या नोक। २ अग्रभाग, अगला हिस्सा। ३ धनुषका अग्रभाग, कमानका गोश। ४ उत्कर्ष, बड़ाई। ५ शतलक्ष संख्या, सौ लाखकी अदद, (१०००००००)।

“कोटि कोटि रघुवीर”। (तुलसी)

प्रत्येक संख्याकी गणना एक, दश, शत, सहस्र, अशुत, लक्ष, निशुत, कोटि और अर्बुद क्रमसे की जाती है।

(चरमाच)

६ सृका, एक सुश्रुतदार सव्जी। ७ संशयका आलम्बन। ८ पूर्वपक्ष। ९ त्रिभुज वा चतुर्भुज क्षेत्रकी भूमि और कर्षभिक्ष रेखा। (बीजावली) १० राशि-

चक्रका द्वितीय अंश। (सिद्धान्तशिरोमणि) ११ छाया निरूपणके लिये कल्पित क्षेत्रकी कोई अवयव रेखा।

“दिक्सप्तसप्ततन्तस्य शब्दोऽन्त्यावपूर्वापरसूत्रमध्यम्।

दीर्घः प्रभावर्गवियोगमूलं कोटिनं रात् मानपरा ततः स्यात्॥”

(सिद्धान्तशिरोमणि)

१२ चन्द्रके मृङ्गकी उन्नति निकालनेकी कल्पित क्षेत्रका कोई अवयव। (सिद्धान्तशिरोमणि) १३ उदयास्त सूत्र द्वारा क्षेत्रका कल्पित अवयव। (सिद्धान्त-शिरोमणि) १४ श्रेणी, दरजा। १५ राशि, टेर। (त्रि०) १६ कोटिसंख्याविशिष्ट।

कोटिक (सं० पु०) कोट्या बहुसंख्यया कार्यात् प्रकाशते कोटि-कै-क। १ इन्द्रगोपकोट, वीरबल्लटी। २ मण्डूकजातीयसविषकोटभेद, कोई जहरीला मेंड़क। मण्डूक देखो।

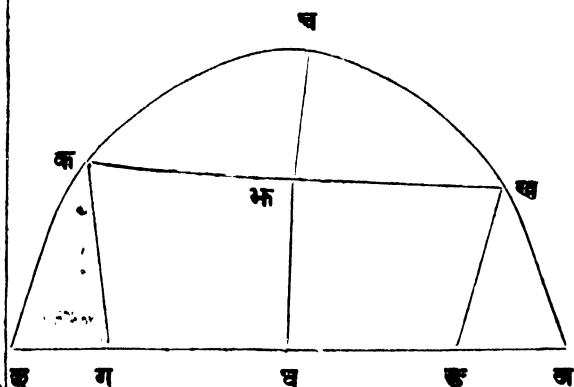
कोटिक (हिं० वि०) करोड़ा, बेशुमार।

कोटिकाख (सं० पु०) कोटिकस्येव आखमस्य। शिविवंशके एक राजा। इनके पिताका नाम सुरथ था।

(भारत, वन २६४ अ०)

कोटिजित् (सं० पु०) कोटिं कविकोटिं पणे कोटिमितं द्रव्यं वा जितवान्, जि भूते क्षिप्। रघुवंश आदि काव्यके प्रणेता कालिदास।

कोटिण्या (सं० स्त्री०) यहाँकी स्रष्टाके साधनका अङ्ग। धनुष-जैसा एक क्षेत्र। (सूर्यसिद्धान्त)



इस अङ्कित क्षेत्रमें क च ख भुज और क छ तथा ख ज भुजकी कोटि हैं। इसके बीचमें क भ किंवा भःख और क ग किंवा खःङ अंशका नाम कोटिण्या है। कोटितौर्य (सं० स्त्री०) कोटिस्त्रीर्वाख्य, बहुव्री०। १ महाकासका निकटवर्ती अवन्तिदेशीय कोई तौर्य।

इस तीर्थमें स्नान करनेसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। (भारत, वन ८२ अ०) सज्जिनो देखो।

२ पञ्चनदका मध्यवर्ती कोई तीर्थ। यहाँ स्नान करनेसे भी अश्वमेध यज्ञका फललाभ होता है।

(भारत, वन ८२ अ०)

भारतमें नाना स्थानों पर कोटितीर्थ नामके तीर्थ विद्यमान हैं।

कोटिनगर (सं० क्ली०) वाणराजाकी राजधानी। चित्रगुप्तने इसी स्थान पर शण्डिकाकी आराधना की थी। (भारत, शानि)

कोटिपात्र (सं० पु०) कोटिरथं पत्राकारं यस्य यद्वा कोटिरथं पात्रे जलांशोऽस्य जलक्षेपणात्। केनिपातक पतवार, डांड।

कोटिपाल (सं० पु०) कोटपाल, किलादार।

कोटिफल (सं० क्ली०) कोटीनां फलम्, इ-तत्। त्रिभुज चतुर्भुज प्रभृति क्षेत्रोंके अवयव कोटिका फल।

(मृधसिद्धान्त)

कोटिफली—गोदावरी नदी मुंजानके वाम कूलका एक प्रसिद्ध तीर्थ। यह विशाखपत्तनके अन्तर्गत और करिष्क बन्दरके निकट है। धवलेश्वरसे जहाज पर चढ़के यहां आते हैं। स्थानीय लोगोंका विश्वास है—कोटिफलीमें स्नान करके प्रायश्चित्त करनेसे कोटिगुण फल मिलता है। प्रति द्वादश वर्षको ब्रह्मरथके सिंहराशि पर गमन करनेसे कोटिफलीमें पुष्करयोग होता है। इससे ३॥ कोस पूर्व दक्षाराम नामक दूसरा प्रसिद्ध स्नान तीर्थ है।

गौतमीमाहात्म्यमें लिखा है इन्द्रने अहल्यागमनके पापसे छूट कोटीश्वर, चन्द्रने गुरुपत्नी गमनके पाप-नाशको छायासोमेश्वर और कश्यपऋषिने कोटीफलीमें जनार्दनस्वामीकी प्रतिष्ठा की थी। इस तीर्थका अपर नाम मादगमनापहारी है।

छायासोमेश्वरका मन्दिर अभी विद्यमान है। वृद्ध देखनेसे प्राचीन समझ पड़ता है। इसकी अपेक्षा कोटिलिङ्ग और जनार्दनस्वामीका मन्दिर छोटा है। मन्दिरके वक्षिर्भागमें एक छाटा गोपुर और गोपुरके सम्मुख सोमकुण्ड नामक एक बृहत् सरोवर है।

कोटिवालिक्का (सं० स्त्री०) सरट, गिरगिट।

कोटिमान् (सं० त्रि०) कोटिरस्वस्य। कोटिविशिष्ट, नोकदार।

कोटिर (सं० पु०) कोटिं चत्वार्षं राति, रा-क। १ इन्द्र। २ नकुल, नेवला। ३ इन्द्रगोपकीट, बीर-बड़टी।

कोटिवर्ष (सं० क्ली०) कोटिसंख्यकानि अस्त्राणि उप-स्थितान् शत्रून् प्रति वर्षं त्यज, कोटि-वर्ष-पप्। वाण-राजाकी राजधानी, कोटिनगर।

कोटिवर्षा (सं० स्त्री०) कोटिभिरथै वर्षंति, हृष-अण् पिडिङ्गशाक, एक सज्जो।

कोटिबृक्षक (सं० पु०) कुटजवृक्ष, कुरैया।

कोटिश (सं० पु०) कोट्या अयेण श्यति, नाशयति चूर्णं करोति, शो-क। १ लोष्ट्रभेदक अस्त्र, मर्द। इसका संस्कृत पर्याय—लेष्ट्रभेदन, लेष्ट्रघ्न, लेष्ट्रभेदी, चूर्णदन्त, लोष्ट्रभङ्गाथंमुहुर और लोष्ट्रघ्न है। (त्रि०) कोटि-रस्यास्तोति, कोटि लोमादित्वात् श। २ कोटिबुक्ष, कमानदार।

कोटिश--वासुकि वंशीय एक नाग। (भारत, पारिपर्व ५७ अ०)

कोटिशः (सं० अथ०) कोटि वारार्थं शस्त्रं। कोटि कोटि, करोडों। (रघुवंश, २ सर्ग)

कोटी (सं० स्त्री०) कुट-इन्-ङीप्। १ अस्त्रायाक, पिडिङ्ग। २ कुटजवृक्ष, कुरैया। ३ शस्त्रापभाग, हथि-यारकी नोक।

कोटो—पञ्जाबके खीथल राजकी एक जागीर। यह अक्षा० ३१° २' तथा ३१° ११' उ० और देशा० ७७° ११' एवं ७७° २१' पू० के बीच पड़ती है। क्षेत्रफल ५० वर्ग-मील, लोकसंख्या ७८५८ और वार्षिक आय २५०००, रु० है। खीथल रियासतका ५०० रु० कर देना पड़ता है।

कोटीर (सं० पु०) कोटीभिरथैरीरयति पीडयति, कोटि-ईर-अण्। १ किरीट। २ जटा, रेशा। (नेष)

कोटोला—इन्दौरका निकटवर्ती एक ग्राम। यह राज-पूतानेके पूर्व अंशमें एक पर्वतपर अवस्थित है। इसमें एक दुर्ग रहनेसे ही कोटोला नाम पड़ा है। यह किला सुदृढ़ है। इसकी पूर्व दिक्की दाहार नामक छद्म है।

यह भील पर्वतकी उपत्यकामें लगी है। पहले कोटीला-की चारो ओर श्रुतिका-निर्मित प्राकार रहा। उसका कुछ कुछ चिह्न आज भी देख पड़ता है। शत्रु के आने पर लोग ग्राम छोड़ कर पहाड़ पर चढ़ जाते थे। यहां खान्जादा घरानेके बहादुर खान साहबकी राजधानी रही। इन्होंने तैमूरके भेजे दूतसे यहीं साक्षात् किया था। १३८० ई० को जब सुहृद्द फीरोज तुगलक कोटीला पर चढ़े, बहादुर माहुर भाग गये। १४२१ ई० को खिखखान् सैयदने कोटीलाके किले पर चढ़ाई करके शेष ध्वंस कर डाला। कहीं कहीं अभी दुर्गका भाग खड़ा है। नगरके भीतर जुमा मसजिद नामक एक सुसज्ज इमर है। इसे फीरोजशाह तुगलकके बेटे सुहृद्दशाह बनवाने लगे थे, परन्तु सम्पूर्ण करनेसे पहले ही मर गये। इसकी चारो ओर कच्चा और बौचमें गुम्बज है। सभी काम पत्थरका बना है। मसजिदके भीतर लाल पत्थरकी एक कब्र है। परन्तु उसका अर्थ काश टूट गया है।

कोटीश्वर (सं० पु०) करोड़पति।

कोठर—एक ग्राम। यह अक्षा० १६° १' उ० तथा देशा० ७५° २' पू० पर बम्बई प्रेसिडेन्सी बेलगांव जिला प्रसादगढ़ तालुकके सौन्दत्ती नगरसे १० कोस उत्तर-पश्चिम अवस्थित है। यहां परमानन्द देवका मन्दिर है। मन्दिरकी दक्षिणदिक्की एक प्राचीन शिलालिपि खोदित है। इसमें परचित राजाका उत्तान्त लिखा गया है।

कोटेशन (सं० पु० = Quotation) १ उद्धरण, नकल। २ सीसेका एक टुकड़ा। यह चौकोर तथा पोला रहता और संचिमें ठलना है। कंपोज करनेमें इसे खाली जगह भरनेको लगते हैं। लाइटेसे कोटेशन बड़ा, ४ एम पाइका चौड़ा और २, ४, ६ या ८ एम पाइका लम्बा होता है। ३ भाव, निर्वह।

कोटेश्वर (सं० पु०) दक्षिणात्यमें कनाड़ा उपकुल पर कोणपुरसे उत्तर अवस्थित एक प्राचीन शिवस्थान। कोटेश्वरमाहात्म्यमें लिखा है—यहां शिवलिंगदर्शन करनेसे सर्व अभीष्ट सिद्ध होती है।

कोटीदुम्बर (सं० पु०) यमोदुम्बर, एक प्रकारका गूलर।

कोट (सं० पु०-क्री०) कुट्ट-घञ् निपातनात् साधुः। १ दुर्ग, किला। २ पुरविशेष। ३ कोई राजधानी।

कोटपाल (सं० पु०) कोटं पुरं दुर्गं वा पालयति रक्षति, कोट-पा-णिच्-अण्। पुररक्षक, कोतवाल। (पञ्चतन्त्र)

कोटवी (सं० स्त्री०) कोटं वाति, कोट-वा-क गौरादि-त्वात् ङीष्। १ विवस्त्रा स्त्री, नंगी औरत। २ वाणा-सुरकी माता। हरिवंशमें वर्णित हुआ है कि वाणयुक्तके समय वाणमाता कोटवी अपने तनयकी प्राणरक्षाके लिये नग्न हो कर समरक्षेत्रमें उतरी थीं। कृष्णने उनको वस्त्र पहननेका अनुरोध किया। परन्तु उन्होंने एक न सुनी। (हरिवंश १८५ च०) ३ दुर्गा। ४ मुक्तकेशी नारी।

कोटवीपुर (सं० क्री०) कोटव्याः पुरम्, इ-तत्। वाणपुर।

कोटायम—१ मन्द्राज-प्रान्तके उत्तर मलबार जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ११° ४१' तथा १२° ६' उ० और देशा० ७५° २७' एवं ७५° ५६' पू० के मध्य अवस्थित है। भूमि-परिमाण ४८१ वर्गमील, लोकसंख्या २०-५१६ और राजस्व १८७००० रु० है। इसका सदर तेलिचेरि बड़ी जगह है। पूर्वकी ओर पश्चिमघाट पर्वतने इस तालुकको बन्द कर रखा है।

२ मन्द्राजके त्रिवाङ्गुडम् राज्यके कोटायम तालुकका सदर मुकाम। यह अक्षा० ८° १६' उ० और देशा० ७६° ३१' पू० में मीनचिल किनारे पड़ता है। लोकसंख्या १७५५२ है।

कोटार (सं० पु०) कुट्ट-आरक् घृषीदरादिषत् साधुः। यहा कोटं कोटं दुर्गमित्थर्थः ऋच्छति गच्छति, कोट-अण्। १ कृप, कृपा। २ नागर, शहरका बाशिन्दा। ३ पुष्करिणी पाटक, तालाबकी सिद्धियां। ४ दुर्गपुर, किलेका शहर। ५ लुच्चा।

कोटार्धं (सं० पु०) आधा करोड़, ५० लाख।

कोट्यहार (सं० पु०) चतुर्भुज वा त्रिभुज क्षेत्रकी कोटिका निकास।

कोठ (सं० पु०) कुठि-अच् निपातनात् नकारलोपः। चक्राकार कुष्ठरोग, चकते-जैसा कोढ़। इसका पर्याय—मण्डलक, दुखर्मा, त्वग्दोष और चर्मदूषिका है।

कोठर (सं० पु०) कुठ्यते ष्विद्यतेऽसौ, कुठ-अर्। अज्ञोत्तम।

कोठरपुष्पी (सं० स्त्री०) कोठरस्य पुष्पमिव पुष्पं
यस्याः, बहुव्री० । छद्ददारक, विधारा ।

कोठरी (हिं० स्त्री०) दीवारोंसे चारो ओर घिरा हुआ
छोटा कमरा ।

कोठा (हिं० पु०) १ लम्बी-चौड़ी कोठरी, बड़ा कमरा ।
२ भाण्डार, इकट्ठा की हुई चीजें रखनेको जगह ।
३ घटारी, छतके ऊपरका कमरा । ४ उदर, पेट ।
५ गर्भाशय, धरन । ६ घर, स्थान ।

कोठाकुचाल (हिं० पु०) हाथियोंकी एक बीमारी ।
इसमें उनको भूख घट जाती है ।

कोठादार (हिं० पु०) कोठारी, कोठेवाला ।

कोठार (हिं० पु०) भाण्डार, अनाज, रुपया पैसा
बगैर रखनेकी जगह ।

कोठारिया—राजपूताना उदयपुरके छुद्रराज्य कोठारि-
याका प्रधान नगर । यह अक्षा० २४° ५८' उ० और
देशा० ७१° ५२' पू० में बनास नदीके दाहिने किनारे
उदयपुर शहरसे ३० मील उत्तरपूर्व पड़ता है । लोक-
संख्या प्रायः १५८६ है । यहांके राजा चौहान राजपूत
हैं और रावत कहलाते हैं । कोठारिया राजवंशके
प्रतिष्ठाता मानकचंद रड़े जो १२०० ई० की राणा
संघामकी ओर बाबरसे लड़े थे ।

कोठारी (हिं० पु०) १ भाण्डारी, कोठादार । २ मार-
वाड़ी वैश्योंका एक उपाधि ।

कोठारी—एक भोसवाल जाति । किसी समय सबल-
दास एक कोठारी राजा हुए थे । उन्हींकी ओष्ठविसे
कोठारी नाम चल पड़ा ।

कोठी (हिं० स्त्री०) १ इम्य, इबेली । २ थोक विक्रीकी
बड़ी दूकान । ३ कुठिला । ४ ईंट या पत्थरकी कोई
जोड़ाई । यह क्यूँकी दीवार या पुलके खंभे पर
पानीके भीतर चबती है । ५ बन्दूकमें बारूद ठहरनेकी
जगह । ६ म्यानकी साम । ७ बांसकी बीठ ।

कोठी—मध्यभारतका एक छोटा राज्य और नगर ।
यह बघेलखण्डके पोलिटिकल एजिएंटके अधीन है ।
क्षेत्रफल १६८ मील आता है । बघेल राजपूतोंका राज्य
है । जगतराजसिंह नामक किसी बघेलेने यहांके भार-
राजाको निकाल अपना राजत्व जमाया था । १८ वीं

शताब्दीको बंदेशोंका प्रभुत्व छत्तसालके नेतृत्वमें बढने
पर कोठीके राजा पन्नाको कर देने लगे, परन्तु पन्ना-
बहादुरके दौरदोरमें अपनी स्वाधीनता अक्षुण्ण रख
सके । अङ्गरेजोंका राज्य होने पर १८०७ ई० में पन्नाको
जो सनद मिली, कोठो उसका करदराज्य जैसी लिखी
है । परन्तु १८१० ई० को यह अंगरेजोंके जो अधीन
कर दी गयी । फिर कोठोके राजाको १८६२ ई० में
दत्तक ग्रहण करनेकी भी सनद हासिल हुई । १८७८
ई० में अपनी राजभक्ति और उदारताके लिये कोठोके
राजाने 'राजा बहादुर' उपाधि पाया था । लोकसंख्या
प्रायः १८११२ है । कोठी राज्यमें ७५ गांव बसे हैं ।
राज्यकी भूमि सर्वरा है और सब मामूली अनाज खूब
पैदा होता है । सालाना आमदनी २६०००) रु० है ।
कोठो राजधानी अक्षा० २४° ४६' उ० और देशा०
८०° ४७' पू० में जेतवार छेशनसे ६ मील पश्चिम
अवस्थित है । कोठीके राजा २२३ पैदल सिपाही
और ३० सवार रखते हैं ।

कोठीवाल (हिं० पु०) १ महाजन, बड़ा साहूकार ।
२ मुड़िया ।

कोठीवाली (हिं० स्त्री०) १ महाजनी, साहूकारी ।
२ मुड़िया लिपि ।

कोड़ग (कुर्ग)—दक्षिणात्यका एक जिला । यह अक्षा०
११° ५६' एवं १२° ५०' उ० और देशा० ७५° २२'
तथा ७६° १२' पू०के मध्य अवस्थित है । परिमाण
१५८२ वर्गमील है । इस जिलेके पश्चिम पश्चिमघाट
है । यह पर्वतश्रेणी कुछ झुक कर कुर्गको उत्तर और
दक्षिण सीमाके रूपमें खड़ी है । इस जिलेकी पूर्व और
उत्तरदिक् महिसुरराज्य है । कुमारधारी और हैम-
वती नामक दो नदियोंने उत्तरदिक्को प्रवाहित हो
महिसुरसे इसको अलग कर दिया है । पूर्वदिक्को
थोड़े अंशमें कावेरी नदी प्रवाहित है । कुर्गका प्रधान
नगर मेरकारा अक्षा० ७५' ४६' और देशा० १२°
२६' पू० पर अवस्थित है ।

यह राज्य पर्वतोंसे समाकीर्ण है । खान खान
पर श्यामल ढलपूर्ण प्रकाण्ड समतलभूमि और बीच
बीच शस्त्रपूर्ण उपत्यका है । पश्चिमघाट पर्वतश्रेणी

प्रायः ३० कोस फैली और भूमिसे ३८१८ हाथ उठी है। इससे छोटे छोटे पहाड़ फूट देशमें फैल पड़े हैं। पश्चिमघाटकी ही एक अधित्यका पर २३३ हाथ ऊंचा प्रधान नगर मिरकारा है। कुर्ग प्रदेशमें कावेरी और उसकी उपनदी लक्ष्मणतीर्थ तथा हेमवती प्रधान है। बारपोल और दूसरी भी कई छोटी छोटी नदियां हैं। परन्तु किसी नदीमें जहाज नहीं चलता। तृष्टि वायु, सूर्यके ताप और पेड़के पत्ते सड़नेसे पार्वतीय भूमि नव आकार धारण करके धीरे धीरे उर्वरा हो रही है। गड़ आदि बनानेकी पहाड़से पत्थर तोड़ कर लाते हैं। किसी अन्य मूल्यवान् धातुकी खानि नहीं है।

कुर्ग प्रदेशके वनसे यथेष्ट धनागम होता है। पश्चिमघाट प्रदेशके वनकी यहां मिलकाटु कहते हैं। इसमें पुन नामक वृक्ष उपजता है। पुन वृक्ष प्रायः ६३ हाथ बढ़ता है। इससे जहाजके मस्तूल बनाते हैं। सिवा इसके शीघम, कटहल, सर्व या सनौवर वगैरह पेड़ोंसे बहुत तरहकी लकड़ी निकलती है। वनभूमि नानाविध लतापत्र और पुष्पसे शोभित है। पूर्वदिक्के सकल भरष्प और छोटे छोटे पर्वत कनिष्काटु कहते हैं। यहां सागवन और चन्दनकी पेड़ बहुत होते हैं। बांस बढ़िया लगता है। एक एक बांस कोई ६०।६५ हाथ बढ़ जाता है। जगह जगह बड़े बड़े बांसोंका जंगल है। यहां सागवन और चन्दनकी लकड़ी सिवा गवर्नमेण्टके और कोई बेच नहीं सकता। कई प्रकारके दूसरे दरख्त भी उपजते, जिन्हें स्थानीय लोग मालती, होनि वा किनो दिन्दुल और डेहेमरा कहते हैं।

वनभूमि बहुविध वन्य पशुओंसे भरी है। देशवासी अधिकांश शिकारी हैं। वन जंगलसे खच्छुन्द नामाप्रकार वृक्षनिर्यास, रेशिका सूत और राल लाया करते हैं। वनमें बाघ, भालू, हाथी, चीते, भैंसे, सांभर हिरन, जंगली बकरी और जंगली सूअर आदि देख पड़ते हैं। यहां गवर्नमेण्ट एक शेर मार सकनेसे ५, २० और चीताके लिये ३, २० पुरस्कार देती है। शेर बहुत हैं। हाथियोंकी संख्या कुछ घट गयी है।

कुर्ग प्रदेशमें कावेरी नदीकी उत्पत्तिका स्थान एक प्राचीन तीर्थ-जैसा मण्ड है। स्कन्दपुराणके कावेरी-

माहात्म्यमें उसकी महिमा वर्णित है। खट्टीय षष्ठ शताब्दीकी महिसुरकी उत्तर-पश्चिमदिक् कदम्ब नामक एक राजा रहें। उन्होंने कोड़ग जातिका जन्म है। दक्षिण कुर्गमें एक शिलालिपि मिली है। उससे समझ पड़ता है कि ई० ८म शताब्दीकी चेरवंशीय राजा राजत्व करते थे। सुसलमान ऐतिहासिक फारिस्ताने (कोड़ग शताब्दीकी) लिखा है कि कुर्गराज्य उस समय स्वाधीन और १२ कोम्ब या जिलोंमें विभक्त था। फिर हालेरी पालिगारोंने यहां आकर राज्य स्थापन किया। हालेरी लोग कुर्गके अधिवासियोंसे स्वतन्त्र और लिङ्गायत शैव थे। कुर्गके लोग भूतप्रेत और पूर्वपुरुषोंकी उपासना करते थे। उधर पालिगार निष्ठुर होते भी सबके अन्धा-भाजन रहें। १६३३से १८०७ ई० तक इस देशमें, जो राजा हुवे, 'राजेन्द्रनामा' नामक पुस्तकमें उनका विवरण लिखबद्ध है। दोऊडवीर राजेन्द्रनामक राजाको आन्नासे १८०७ ई०की यह कर्षाटी भाषामें रचित हुवा कुर्ग अधिवासी वीरत्वके लिये विख्यात हैं। हैदराबादके हैदरअलीने दाक्षिणात्यका समस्त राजा जीतके कुर्ग देश आक्रमण तो किया, किन्तु उनके विषम आक्रमणसे विध्वस्त होते भी कुर्गकी राजसेनाने पराजयकी न माना। अवशेषमें एकवार हैदरअली या राजाको पराजय करके राजवंशके सब लोगोंकी कैद कर ले गये। फिर हैदर अलीके लड़के टीपू सुलतानने राजाकी मझीमें मिलानेके लिये कुर्गके ८५००० अधिवासियोंको औरङ्गपत्तन पहुँचाके सुसलमानोंकी जमीन दे डाली और आदेश लगाया—जहां जितने कोड़ग मिलेंगे, देख पड़ते ही मार डाले जावेंगे। महिसुरके कैदियोंमें कोड़गके राजवंशीय वीरराजेन्द्र नामक एक राजपुत्र थे वही किसी प्रकार महिसुरसे पलायन करके खराजकी पर्वतोंपर अपनी स्वाधीनताका झण्डा उठा सैन्यसंग्रह करने लगे। अल्प काल मध्य ही अनेक कुर्गवासी उनके साथ हो गये। उन्होंने सुसलमानोंको निकाल कुर्गमें अपना राजा स्थापन किया था। इसके बाद समय समय पर अप्रत्यक्ष भावसे टीपूकी फौज पहुँच उन्हें उत्थान करने लगी। शेषकी भारतके गवर्नर जनरल कार्नवालिस-के कुर्गकी रक्षा करना स्वीकार करने पर युद्ध निवृत्त

हुवा। १०२८ ई० की ठोपूके मरने पर राजा में शान्ति स्थापित हुई। बहिर्विवादकी तो शान्ति हो गयी, किन्तु अन्तर्विवादसे देश बिगड़ने लगा। वीरराजेन्द्र और उनके परवर्ती राजाओं ने राजा में घोरतर निष्ठुराचरण किया था। महिषुरके अंगरेज रेसीडेण्ट ने कितना ही प्रतिवाद उठाया, परन्तु उससे कोई फल देखने में न आया। साडे बेण्टिन् ने अन्तको युद्धका उद्योग किया था। १००० अंगरेजी फौज ४ दलों में कुर्ग पर बढ़ आयी। राजा निष्ठुर रहते भी कोड़ग-सेनादल अंगरेजों की दो फौजों से जी तोड़ कर लड़ने लगा। इसी अवसर में अंगरेजों के दूसरे दो सेनादलों ने मेरकारा नगरको भूषटके अधिकार किया था। पोलिटिकल एजेंट कर्नल प्रेजर के हाथों राजा ने अपने को सौंप दिया। १८३४ ई० में ७ मई को कर्नल प्रेजर ने घोषणा की—‘देश के सब लोगों की ऐकान्तिक इच्छा वा एकमतसे कुर्ग राजा कम्पनी के शासनाधीन हुवा है। अधिवासियों के धर्म और समाज-सम्बन्धीय आचार अनुष्ठानका यथेष्ट सम्मान किया जावेगा। फिर जिससे उनके सुख स्वच्छन्द और शान्तिकी वृद्धि हो, उसकी विशेष चेष्टा करनेको गवर्नमेण्ट वचन देती है।’

राजा १००० ई० वृत्ति पाकर काशीवासी हुये। १८५२ ई० को वह इफ्लेण्ड गये और १८६२ ई० को वहीं स्वर्गवासी हुये। उनकी कन्या ने ईसाई धर्म अवलम्बन किया था। महाराणा बिक्टोरिया स्वयं उनकी धर्ममाता होनेसे उनका नाम बिक्टोरिया गौड़ान्ना रखा गया। राजकुमारी ने किसी अंगरेज सेनिकसे विवाह किया था। १८६४ ई० को वह मर गयीं। राजाका परिवार आज भी काशी में रहता है। उन्हें कुर्ग के राजस्वसे सामान्य वृत्ति मिलती है। कुर्ग राजा अंगरेजी अधिकार में दिन दिन उन्नति लाभ करता है।

अधिवासियों में युरोपीय, मार्किन, अफ्रीकन, फिरङ्गी, कोड़ग, मंड्राजी, महिषुरी, महाराष्ट्री, बंगाली, सिन्धुदेशीय, भरवी, कन्दहारी, हिन्दुस्थानी और अन्धान्य देश के लोग हैं। इनमें हिन्दुओं की संख्या सेकड़ों पीछे ८५ पड़ती है।

महरी में मेरकारा या महादेवपेट प्रधान है। इसी में सुल्को और फौजी महकमेका बड़ा काम होता है। एतद्व्यतीत वीरराजेन्द्रपेट, मादे तथा प्रेजरपेट नामक कई दूसरे भी नगर हैं। कुर्गराज्य में अनेक प्राचीन कीर्तियां हैं और जगह जगह प्रस्तरस्तूप देख पड़ते हैं। कहीं दो एक और कहीं कतार के कतार स्तूप खड़े हैं। कितनेही स्तूप खोस कर देखा गया है कि उनके बीच २५ हाथ ऊंचे कई प्रस्तरखण्ड सम्बन्धसे लगे हैं। उनपर छतकी तरह एक बड़ा पत्थर रखा है। इस प्रकारकी छतके बीच मृत्पात्र में भस्म, कौड़मल और मात्तापादि संरक्षित हैं। यह आज तक नहीं जाना गया, किस जाति ने यह स्तूप बनाये हैं। इसको छोड़ पत्थरकी नक्शा की हुई मूर्तियां बहुत हैं। लोग उन्हें कोलोकल कहा करते हैं। युद्ध में निहत वीर पुरुषों के स्मरणार्थ कोलोकल बनते थे। यहां कदङ्ग नामक एक प्रकारका दूसरा मृत्तिकास्तूप भी है। वह पर्वतके ऊपरसे निम्नभूमि पर्यन्त देशकी चारो ओर विस्तृत है। कहीं कहीं उसकी ऊंचाई २५।२६ हाथ है। जान पड़ता है, परिखा वा गड़का प्रयोजनसाधन अथवा देशके विभिन्न भागों में सीमा निर्देश करनेको यह बनाया गया होगा।

उपत्यकामें नदीके तीरे जंगलके बीच जहां कर्षणोपयोगी भूमि है, खेती होती है। भूमि में अनेक प्रकारका धान्य उपजता है। उसमें दोहावाडा चावलकी उपज अधिक है। ज्येष्ठमासके शेषको बीज डालते हैं। आषाढ़ आषाढ मास वह उखाड़ कर रोपण किया जाता है। पौषमें धान कटता है। एक मन बीजमें ५० मन धान आता है। सिवा इसके राई, ईख, तम्बाकू और कपासकी खेती भी कम नहीं। सब लोगोंके गृह प्राङ्गणमें कदली लगा करती है। साइबो ने पाकर कहावे और इलायची की खेती आरम्भ की है। कार्तिक मासमें जलोका और सर्पके कारण इलायची संग्रह करना बहुत कठिन है। बहुतसे विलायती पेड़ खान खान पर रोपित होनेसे सुफल प्रदान कर रहे हैं।

इस देशमें अन्धान्य द्रव्य अधिक प्रसृत नहीं होते। कुर्गके चाकू और कसरबन्द बहुत अच्छे निकलते हैं।

जगह जगह बाजार लगता है। उसीसे अधिवासियों का प्रयोजन साधित होता है। मङ्गलूर, तेन्निचेरि, कन्नूर और बङ्गलूर रपतनीकी बड़ी आठते हैं।

कुर्गकी आवहवा ज्यादा गर्म नहीं, बल्कि ठण्डी है। तापमानदन्ध (थर्मोमीटर) अत्यन्त ग्रीष्मके समय ८२° डिग्री बढ़ता है। समुद्रके वाष्पसे भिन्न बनता, जो पश्चिमघाट पर्यन्त बरसता है। बारह मास प्रातः और सन्ध्या समय उपत्यकाभूमिके जंगल कुहरसे आवृत हो जाते हैं। वर्षाकालकी प्रचुर वृष्टि पड़ती, साथही साथ प्रबल वायु बहती है। कभी कभी कई सप्ताह सूर्यका मुख देख नहीं पड़ता। एक मासमें ४।५ हाथ जल गिरकर भर जाता है। परन्तु कहवेकी छेतीके लिये वन कट जानेसे अब पड़लेकी भांति वृष्टिका पानी इकट्ठा हो नहीं सकता। आवहवा ठण्डी होती भी साहबों और अधिवासियोंके पक्षमें खूब स्वास्त्रकार है। परन्तु भारतकी समतलभूमिके अधिवासियोंके लिये सुविधाजनक नहीं। ग्रीष्मकालको उपत्यकाभूमिमें मलेरिया हो जाता है। रैजा बहुत कम होता है। शीतला रोग यहां बहुत ही प्रबल है, गोबीजके टीकासे कोई फल नहीं निकलता।

अंगरेज सरकारकी अमलदारीमें यह राज्य मडि-सूर चीफ कमिश्नरके अधीन हो गया है। कुर्गमें एक सुपरिण्टेण्डेंट, उनके नीचे एक युरोपीय और एक कोड़ग सहकारी रहते हैं। राज्य छह तालुकोंमें बंटा है। प्रत्येक विभागमें एक एक सूबेदार रहते हैं। फिर हरिक तालुकमें बीस नाद या होबली होते हैं। परपट्ट-गार नामक कर्मचारी नादका तत्त्वावधान रखते हैं।

जमीन तीन तरहकी होती है। कोड़ग पुरुषानुक्रमसे जन्मा नामकी सीर जमीन भोग करते हैं। इस जमीनकी १०० भट्टियोंका सालाना लगान ५५ रु० है। (६ बीघेकी १०० भट्टियां होती हैं।) सकू नामक अच्छी जमीनकी १०० भट्टियोंका लगान १०५ रु० पड़ता है। कहवा लगनेकी ३ बीघा जमीन पर २५ रु० साल आमदनी देते हैं।

भिरकारामें अंगरेजी छावनी है। कुर्गमें गुहतर अपराधीकी संख्या बहुत थोड़ी है। अधिवासी प्रायः

बुद्धिमान् होते और विद्या पढ़नेका विशेष आग्रह रखते हैं। कितने ही विद्यालय यहां विद्यमान हैं।

कोड़ग—कुर्गमें रहनेवाली एक जाति। कह नहीं सकते, यह जाति कहाँसे आयी है। यह लोग पावंतीय और परस्पर सहायभूति रखनेवाले हैं। इनमें उच्चश्रेणीके कोड़ग अन्धाकोड़ग कहलाते हैं। उनकी संख्या ३ सौसे अधिक न होगी। कोड़ग दृढ़काय, प्रशस्तवस्त्र और प्रायः ४ हाथ लम्बे होते हैं। आज्ञाति प्रकृतिसे समझ पड़ता है कि उनमें मनुष्यत्व और वीरत्व विद्यमान है। कोड़ग 'कुपस' पहनते हैं। कुपस चपकन जैसा घुटने तक लम्बा पहनावा है। लाल या नीले रंगके कम रत्नमें हाथीदांतकी मूठका चांदीकी जंजीरसे बंधा हुआ एक लुरा रहता है। शिरमें एक साल रुमाक और एक पगड़ी लपेट लेते हैं। गलेमें माला, कानमें बाली और हाथमें सोने या चांदीका बाजूबन्द या ताबीज धारण किया जाता है। कोड़ग स्त्रियां परमा सुन्दरी हैं। उनकी चक्कसीछव भी बहुत अच्छा होता है। कमरके ऊपर चोली रहती और साड़ी नीचेकी ओर पांव तक लटकती है। साड़ीकी अंगके ऊपर घुमाके पश्चात्-दिक् बांध देती हैं। स्त्रियां घरके सभी काम करती हैं। बीच बीच छविकर्ममें वह पुरुषोंको भी साहाय्य पहुंचाती हैं। पुरुषोंको जब दूसरा काम नहीं रहता, वह जंगल जंगल शिकार करते घूमा करते हैं। पड़ले कोई नौकरीको अच्छा नहीं समझता था। परन्तु आजकल कोई सरकारी नौकरी मिल जानेसे लोग अपनी कुतार्थ मानते हैं। १६ वर्ष पीछे कोड़गोंका विवाह होता है। पड़ले पड़ल यह प्रथा रही कि स्त्री एकाधिक पतियोंकी ग्रहण कर सकती थी, परन्तु आजकल वैसा कम देख पड़ता है। फिर भी विवाहके समय कन्याकी वरके भाइयोंकी अधीनता मानना पड़ती है। ग्रामके ठक या वयोन्ये छ लोग आवश्यक होनेसे विवाहके विच्छेदकी व्यवस्था कर देते हैं।

कोड़चाद्रि—मडि-सूर राज्यस्थ शिमोगा जिलेके नगर तालुकका एक पहाड़। यह अक्षा० १३° ५१' ७०" और देशा० ७४° ५२' ५०" में अवस्थित और ४४११ फुट ऊंचा है। इसका जंगल बहुत अच्छा है। पश्चिम-

की घोर यह प्रायः ४००० फुट खड़ा उत्तरता जाता और नीचे कनाड़ाका जङ्गल फैला हुआ पाया जाता है। समुद्र विस्तृत इसके पास ही लगा है। पर्वत पर बुकीदेव (नृसिंह) का मन्दिर है और ३२ भुजाकी मूर्ति प्रतिष्ठित है।

कोड़ना (हिं० क्रि०) खेतकी मही गहरी करके उत्तटना, गोड़ना।

कोड़ा (हिं० पु०) १ दुरी, सांटा, चाबुक। बेंतके एक छोटे छण्डे या दस्तोमें चमड़े या सूतकी बटकर लगानेसे यह तैयार होता है। इससे घोड़ेकी हांफते हैं। युक्त प्रदेशके फतेहपुर नगरका कोड़ा बहुत अच्छा होता है। २ उत्तेजना, चपेट। ३ चेतावनो, आगाही। ४ बांसका एक भेद। यह दाक्षिणात्यमें उत्पन्न होता है। ५ कुशीका एक पेश। इसमें जब अपनी जोड़दाहने पैतरे पर खड़ी होती, बायें हाथकी कलाईसे उसकी दाहनी रान दबा और दाहने हाथकी कलाईसे उसके दाहने परका गद्दा उठा दोनों हाथोंकी सम्मिश्रित शक्तिसे उसे चित्त मारते हैं।

कोड़ा—युक्तप्रदेशकी एक जाति। यह प्रधानतः शोरा बनाते या नमकका काम चलाते हैं। इनकी 'बनिया' बतलाया जाता है।

कोड़ा—युक्तप्रदेशके फतेहपुर जिलेकी खलुहा तहसीलका पुराना नगर। यह अक्षा० २६° ७' उ० और देशा० ८०° २२' पू० में आगरासे दूलाहाबादकी गयी हुई सुगल राह पर फतेहपुर शहरसे २८ मील दूर पड़ता है। प्रायद्वी २८० ई. में अरगलके गौतम राजाोंने सैकड़ों वर्ष यहां राजत्व किया और सुसलमानीकी एक प्रान्तका भी कोड़ा सदर रहा। अकबरके समय इलाहाबाद सूबेकी एक सरकारने इसमें अपनी राजधानी स्थापित की थी। आज भी यहां कितने ही बड़े बड़े मकान गिरे पड़े हैं। ई० १८ वीं शताब्दीकी बनी बड़े बागमें एक बढिया बारादरी देखने योग्य है। कोड़ाके पास ही जहानाबाद नामक दूसरा बड़ा नगर है। इसीसे लोग प्रायः दोनों नगरोंका नाम मिला कर 'कोड़ा-जहानाबाद' ही कहा करते हैं।

कोड़ा-जहानाबाद—युक्तप्रदेशके फतेहपुर जिलेका एक

नगर। यहां सुसलमानी जमानेकी एक पुरानी बड़ी सराय बनी और रिन्द नदीका पुल बंधा है। कहते हैं—यह पुल फतेहचन्द नामक किसी व्यक्तिने बनवाया था। पहले जब पुल बन रहा था, कई बार नदीके बगसे टूट गया। परन्तु फतेहचन्दने अपना उद्योग न छोड़ा और अन्तकी उसे खड़ा ही करा दिया। अपने कृतकार्यों न होने पर वह कहा करते थे—या तो रिन्द रिन्द हो नहीं, या फतेहचन्द ही नहीं।

कोड़ार (हिं० पु०) कुंडरा, बन्द, कला। यह लोहेका बनता और कोरूकी लकड़ीमें लगता है।

कोड़िक—जातिविशेष। यह लोग सूपर पातते हैं।

कोड़ी (हिं० स्त्री०) १ बीसी, बीस बीजाका समूह। २ पका घोना, पानीका निकास।

कोढ़ (हिं०) ऊठ देखो।

कोढ़—युक्तप्रदेशके मिर्जापुर जिलेकी उत्तर-पश्चिम तहसील। यह भदोईके पास अक्षा० २५° ८' तथा २५° ३२' उ० और देशा० ८२° १४' एवं ८२° ४५' पू०के बीच पड़ती है। इसका क्षेत्रफल ३८६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २८५२४० है। यह गङ्गाके उत्तर खूब घना बसा है।

कोड़ा (हिं० पु०) खेतका बाड़ा। यहां गोबर इकट्ठा करनेकी पशु रखे जाते हैं।

कोढ़िया (हिं० पु०) तम्बाकूके पत्तोंका एक रोग। इससे तम्बाकू पर चकता पड़ जाता है।

कोढ़ी (हिं० वि०) कुष्ठरोगसंक्रान्त, जिसके कोढ़ रहे।

कोष (सं० पु०) कुणति वादयत्यनेन कुणति वादयति वा कुण शब्दे करणे घञ् कर्तरि अच् वा। १ वीणादिक वादन; मिजराब, कमानी, गज, चोब। २ अस्त्र आदिका अयभाग, नशर या हथियार वगैरहकी नोक। इसका संस्कृत पर्याय—पालि, अस्त्र और कोटि है। ३ विदिक, दो दिशाओंके मध्यस्थ दिशा। जैसे—अग्नि, नैऋत आदि। ४ गृहादिका एक देश, मकान वगैरहका एक हिस्सा। ५ लगुङ, लकड़ी, सींटा। ६ मङ्गल-ग्रह। ७ शनि। ८ दो सरस्वतीनामके वक्रभावसे मिलनेका स्थान, कोना, गोशा।

“विदुमिकोष-वसुकोष-इत्युत्तमम्।” (तत्त्वसार)

कोणकुण (सं० पु०) कोणे मस्तकदेशे कुणति चसति,
कुण-क। १ उक्तुण, जू। २ मत्कुण, खटमक,
खटकीरा।

कोणवादी (सं० पु०) शिव।

कोणवृत्त (सं० ली०) देशान्तर वृत्तविशेष, कोनेका
एक घेरा। यह उत्तरपूर्वसे दक्षिण-पश्चिम अथवा उत्तर-
पश्चिमसे दक्षिण-पूर्वको चलता है।

कोणशङ्कु (सं० पु०) सूर्यका अवस्थानविशेष, सूरजका
एक ठहराव। इसमें सूर्य कोणवृत्त और उष्णवृत्त दोनों
से अलग रहता है।

कोणस्पृग् वृत्त (सं० ली०) कोणस्पृश करनेवाला वृत्त,
जो घेरा कोनेसे मिला हो।

कोणाकोणि (सं० अव्य०) १ कोनेसे कोने तक, तिरछा।
कोणाघात (सं० पु०) वाक्यविशेष, एक वाजा। इसमें
एक साख ठक्का और दश सड़स भेरी एककाल ही
बजाते हैं।

कोणार्क (सं० पु०) उड़ीसाके पुरी जिलेका एक प्राचीन
ग्राम और सूर्यक्षेत्र। यह अक्षा० १८° ५३' ७०" तथा
देशा० ८६° ६' ५०" पर जगन्नाथपुरीसे ८॥ कोस उत्तर-
पश्चिम समुद्रके तीरे अवस्थित है।

इसका ब्रह्मपुराणमें 'कोणादित्य', साम्बपुराणमें
'मित्रवन', कपिलसंहितामें 'अर्कक्षेत्र', वा 'मैत्रेयवन',
पुरुषोत्तमपद्यतिमें 'कोणार्क' और सत्कलकी मादला-
पञ्चीमें 'पद्मक्षेत्र' नाम लिखा है।

साम्बपुराणमें कहते हैं—'किसी समय नारद द्वारका-
पुरी गये थे। वहाँ सभी यदुकुमारों ने पाण्डवोंसे
उनकी यथेष्ट पूजा की। परन्तु जाम्बवतीसुत साम्बने
नारदका वैसा सम्मान न किया। इस पर देवर्षिने
अत्यन्त क्रुद्ध हो कर श्रीकृष्णसे कहा था—'आपके पुत्र
साम्ब अतिशय रूपगर्बित हैं, तुम्हारी सोलहो हजार
पत्नियाँ उनके रूप पर विमोहित हो रही हैं। श्रीकृष्ण-
ने कहा यह कभी नहीं हो सकता कि मेरी पत्नियाँ
मेरे पुत्र साम्बकी अनुरागिणी हों।' नारदने उत्तर
दिया कि 'मैं आपको किसी दिन यह कौतूहल दिखा
दूंगा।' यही बात कह कर नारद चलते बने। किसी
दिन श्रीकृष्ण रैवतक गिरि पर स्त्रियोंके साथ जल-

क्रीड़ा करते थे। उसी समय नारदने द्वारका पहुँच
साम्बसे कहा था—'इस समय आपने पिताके पास जावो
और हमारा संवाद उन्हें सुनावो, विलम्ब न होने
पावे।' साम्ब नारदके कहनेसे झटपट पिताके निकट
खबर देने पहुँचे। उस समय श्रीकृष्णकी पत्नियाँ मद्य-
पानमें व्यस्त हो जलक्रीड़ा करती थीं। एकाएक मद-
नोपम साम्बकी मनोहर मूर्ति देख श्रीकृष्ण रमणियों-
को कामेच्छा हो आयी। इधर साम्बके पीछे पीछे नारद
भी जा पहुँचे। उनको देख कर जैसे ही सब क्रूर पर
चढ़ने लगीं, श्रीकृष्णने देखा कि उन सभी रमणियों-
का शूलवास भेद करके पद्मपत्र पर मद टपक रहा
है। वासुदेवने क्रुद्ध हो तत्क्षणात् उन रमणियोंको
शाप दिया था—'निश्चय तुम दस्युके हाथ पड़ोगी, तुम्हें
स्वर्गलाभ नहीं होगा। फिर श्रीकृष्णने साम्बको सम्बो-
धन करके कहा—'तुम्हारे ही दारुण रूपसे रमणियाँ
सुगंध हुई हैं, इसलिये तुम भी कुष्ठरोग भोग करोगे।
उस समय साम्बने नारदके उपदेशक्रमसे इस मित्रवन-
में आकर सूर्यदेवकी तपस्सा की। (साम्बपुराण)

कपिलसंहितामें लिखा है—थोड़े दिनों तपस्सा
करने पर सूर्यदेवने साम्बको स्वप्नमें दर्शन दिया था।
दूसरे दिन सबेर वह चन्द्रभागा नदीमें स्नान करने गये।
वहाँ उन्हें जलके मध्य पद्मपत्र पर सूर्यकी प्रतिमा देख
पड़ी। फिर साम्बके आभिदका क्या ठिकाना था। मंदा-
हर्षसे स्नान करके उक्त प्रतिमाको ले आकर उन्होंने
स्थापन कर दिया। उसकी पूजा करते ही साम्ब सब
रोगोंसे मुक्त हो गये। (कपिलसंहिता ६। १२-१४)

साम्बपुराणके मतमें सूर्यदेवकी हादशी मूर्तिकी
नाम मित्र है। वह संसारकी भलाईके लिये चन्द्रनदी-
के तीरे रह केवल वायु आहार करके कठोर तपस्सा
करते, नानाविध वर देते और भक्तों पर अनुग्रह रखते
हैं। यही सूर्यदेवका आदिस्नान था, जिसे साम्बने
पीछे निर्माण किया। मित्रके रहनेसे ही यह स्थान
मित्रवन कहलाता है। (साम्बपुराण, ४। २०-२२)

कपिलसंहिता कहती है—मैत्रेय नामक वन
मैत्रेयकी तपस्सासे मिला है। यहाँ आने पर मानव
सत्वर महारोगसे मुक्त हो जाता। (कपिलसंहिता ६। १७)

साम्बपुराणके २५वें अध्यायमें लिखा है—साम्बने चन्द्रभागा नदीमें स्नान करने जा उसके स्त्रोतमें सूर्यकी प्रभामयी प्रतिमा देखी थी। उसी प्रतिमाको मित्र-वनमें ले जाकर उन्होंने यथाविधान स्थापन किया। फिर वह रविको प्रणाम करके पूछने लगे—प्रभो! आपकी यह मङ्गलमयी आकृति किसने बनायी है? प्रतिमाने उत्तर दिया—‘पूर्वकालकी हमारी एक तेजो-मयी मूर्ति थी, जो देवताओंके लिये असह्य रही। उन्होंने प्रार्थना की, कोई ऐसी मूर्ति होती, जिसे सभी आनन्दसे देख सकते। प्रथम महातपा विश्वकर्माने शाकद्वीपमें हमारी शान्तमूर्ति निर्माण की थी, पीछे हिमवान्के पृष्ठपर क्षणवृक्षसे यह मूर्ति निर्मित हुई। तुम्हारे ही उद्धारार्थ हमने चन्द्रभागा नदीमें, अवतरण किया है।’ फिर साम्बने नारदसे पूछा था—आपके ही अनुग्रहसे मैंने भास्करदेवका प्रत्यक्ष दर्शनलाभ किया है, अब इस देवप्रतिमाकी किससे परिचर्या कराना चाहिये। नारदने कहा—आजकल अधिकांग ब्राह्मण देवल और लाभमोहित हैं, ऐसे ब्राह्मण सूर्यपूजाके लिये उपयुक्त नहीं। साम्ब विषम विपदमें पड़ गये और कुछ भी स्थिर कर न सके—किस पर देवसेवाका भार अर्पण किया जावे। उन्होंने फिर प्रतिमासे जिज्ञासा की—प्रभो! कौन ब्राह्मण आपको परिचर्या करेंगे? सूर्यदेवने उत्तरमें कहा था—जम्बूद्वीपमें हमारी परिचर्या करनेको उपयुक्त लोग नहीं हैं। शाकद्वीपसे हमारे पूजापरायण व्यक्तियोंको ले आवो। शाकद्वीपमें मग, मामग, मानस और मन्दग चार जातियोंका वास है। उनमेंसे हमारी पूजाके लिये मग ब्राह्मणोंको यहां लाना चाहिये। कारण मग लोग ब्राह्मण, मामग क्षत्रिय, मानस वैश्य और मन्दग शूद्र हैं। उनमें कोई सङ्करवर्ण अथवा आश्रमविभाग नहीं है। पूर्वकालकी हमारे तेजःसे वह निर्मित हुये हैं। हमने उन्हें सरहस्य चार वेद प्रदान किये हैं।

सूर्यके आदेशसे साम्ब गरुड़ पर चढ़ शाकद्वीप पहुँचे और वहाँसे स्त्रीपुत्रोंके साथ १८ वेदवादी मग ब्राह्मण ले आये। यही मग ब्राह्मण सूर्यदेवकी परिचर्यामें लगे थे।

कपिलसंहितामें कहा है—साम्ब प्रासाद निर्माणपूर्वक उसमें सूर्यप्रतिमा स्थापन करके फिर द्वारका चले गये।

ब्रह्मपुराण (२६ अध्याय), साम्बपुराण और कपिलसंहितामें इस रविचित्रका माहात्म्य विस्तृत-भावसे वर्णित है।

साम्बपुराण (४२ प०) के मतमें यह पुण्यस्थान सर्वपापहर, पुण्यप्रद, सर्वतीर्थमय और मङ्गलप्रद है। प्रातःकालको यहां जो व्यक्ति सूर्यका सुखीर दर्शन करता, उसको कभी रोग, शोक और भय नहीं रहता।

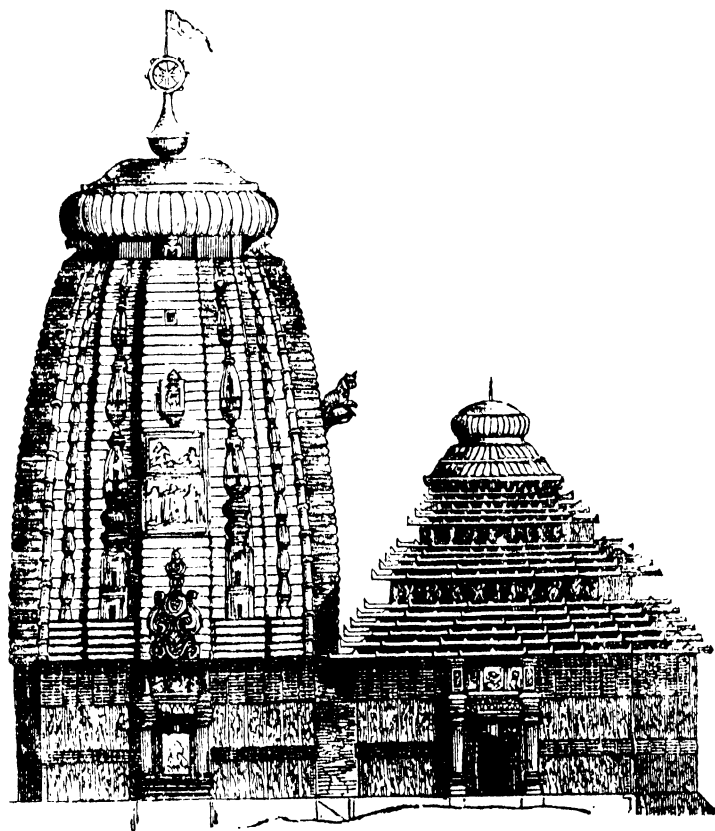
कपिलसंहितामें लिखित है—रमणीय मैत्रेयवनमें जो देह परित्याग करता, वह सभी पापोंसे मुक्त हो ज्योतिर्लोक पहुँचता है। फिर रविवारकी रविचित्रमें समाहितचित्त एवं भक्तिभावसे रविकी प्रतिमा दर्शन करनेसे सूर्यलोक मिलता है।

रघुनन्दनको पुरुषोत्तम-पञ्चतिमें निम्नलिखित पुराणोद्धृत वचन आया है—जो सुक्ति चाहते, उनके लिये विरजा, एकाम्र, कोणार्क और पुरुषोत्तमक्षेत्र—सिद्धि-स्थानकी सिद्धियां समझना चाहिये। इस कोणार्कक्षेत्रमें दूसरे भी बहुतसे प्राचीन तीर्थ रहे। उनके मध्य कपिल-संहितामें मङ्गलतीर्थ, शाश्वतीभाण्डतीर्थ, सूर्यगङ्गा, चन्द्रभागा, रामेश्वर और अर्कवटका उल्लेख मिलता है। कपिलसंहिताके मतमें इस क्षेत्रके सभी क्षेत्र पुण्य-प्रद हैं, विशेषतः सागरतीर्थ सर्वापेक्षा श्रेष्ठ कहा गया है। (कपिलस० ६। ४८)

पूर्वकालको अति पुण्यस्थान रहनेसे जहां सेकड़ों तीर्थयात्री आते और जिसको समुच्च मन्दिर चूड़ा सागर-यात्रियोंके बहुत दूरसे नयन मन आकर्षण करती थी, आज उसी पवित्र स्थानके तीर्थ एक प्रकार विलुप्त हैं, समुच्च देवालय विध्वस्त हैं और जनाकीर्ण पुण्य-भूमि हिंस्र जन्तुओं द्वारा अधिकृत है। परन्तु इस निर्जन पुण्यक्षेत्रके ध्वंसावशेषमें इस समय भी जो देख पड़ता, बहुत अल्प नहीं लगता। उसको देखते ही क्या पुराविद्, क्या शिष्यी, क्या स्वपति, क्या स्वधर्म और क्या विधर्मी सभी मुक्तकण्ठसे भूयसी प्रशंसा

करने लगते हैं। प्राचीन शिल्पनेपुण्यसे सबका मन बाक्य हो जाता है। आज भी कोषाक में सूर्यदेवका जो प्राचीन भग्न मन्दिर है, उसकी निर्माणप्रणाली और अवस्थिति परिदर्शन करनेसे श्रीक्षेत्रका सुवृद्ध मन्दिर सामान्य-जैसा समझ पड़ता है। यदि कहीं भारतीय शिल्पनेपुण्यका सञ्ज्वल सदाहरण है, तो इसी रक्षितमें भूतकता है। सूर्यदेवका यह मन्दिर देख प्रधान प्रधान पाश्चात्य शिल्पी विस्मित हुये हैं। १२०० और १२०४ शककी गङ्गवंशीय उत्कलराज नरसिंहदेव ने इसे बनवाया था। इस मन्दिरका देख कर प्रायः ३०० वर्ष पूर्व अवलोकन लिख गये हैं—जगन्नाथके पास ही सूर्यमन्दिर है। इस मन्दिरका बनानेमें बड़ीसाराज्यके १२ वर्षोंका सब राजस्व खर्च हुवा था। ऐसा

कीन है, जो सबही इमारतको देख कर चौंक न उठेगा। इसके चारो ओरकी दीवार १५० हाथ ऊँची और १८ हाथ मीठी है। बड़े दरवाजेके सामने काले पत्थरका एक ५० हाथ ऊँचा खंभा है। इसकी ८ सिद्धियाँ चढ़नेसे पत्थरके ऊपर खुदे सूरज और सितारे देख पड़ते हैं। मन्दिरकी दीवारों पर चारो ओर बहुतसो जातियोंके उपासकोंकी मूर्तियाँ हैं। उनमें कोई बैठा, कोई मल्ये पर हाथ रखके खड़ा, कोई रोता, कोई हंसता, कोई मानो होशमें, कोई बेहोश-जैसा, कोई गाता और कोई नाचता है। ऐसे भी कई जानवरोंकी मूर्तें हैं जो खयालमें नहीं आते। इस बड़े मन्दिरके पास दूसरे भी २८ मन्दिर हैं। लोग कहते हैं कि सभी मन्दिरोंमें बनहोनी बातें हुवा करती हैं।



कोषाक का मन्दिर।

चारों-पक्षवर्षोंमें तीन सौ वर्ष पहले जी बातें लिखी गयी हैं, इस समय वह समस्त लुप्तप्राय हैं, केवल प्रधान मन्दिर सम्पूर्ण नष्ट नहीं हुवा है। ग्रामवासी बतलाया करते हैं—पहले इस मन्दिरकी चोटी पर

‘कुम्भर-पाथर’ नामक एक बहुत बड़ा पत्थर रखा। उसकी आकर्षणी शक्तिके प्रभावसे सैकड़ों अर्णवयान (जहाज या नाव) यहाँ टकरा कर विपर्यस्त हो गये हैं। अटनाक्रमसे एक सुसज्जमान या मन्दिर तोड़के वह

अपूर्व पत्थर निकाल ले गया। उसके पीछे यहाँके पण्डे भी इस पुण्यभूमिकी छोड़ देवमूर्ति उठा कर पुरीको चलाते बने। वहाँ सूर्यमन्दिरमें उक्त देवप्रतिमा विराजमान है। फिर मराठे यहाँके प्राचीर आदि तोड़ श्रीक्षेत्रमें कई मन्दिर बनानेके लिये साज सामान उठा ले गये।

सब कुछ निकल जाते भी जो बना है, हिन्दू-शिल्पियोंके एकान्त आदर और गौरवकी चीज है। बहुतसे लोग कहते हैं—हिन्दू कारीगर सजधजमें तो डोगियार होते हैं, किन्तु शरीरविज्ञानमें अज्ञ रहनेसे प्रकृत देहका ठीक सौन्दर्य परिष्कृत करना नहीं जानते। हमारा अनुरोध है कि ऐसी बात कहनेवालोंको एक बार कोणार्कका टूटा मन्दिर आकर देख जाना चाहिये। यहाँ सजीव प्रतिमूर्तियोंका अभाव नहीं है। क्या मानव, क्या पशु सभीके अङ्ग प्रत्यङ्गका बेलाग काम यहाँ देख सकेंगे। राजचक्रवर्त्तसे कुटीरवासी भिक्षु पर्यन्त सबकी अवस्था, सबका हावभाव, सबका वाङ्मय आचार व्यवहार जिस कौशल और सोच विचारसे अङ्कित हुआ है, उससे पुराने हिन्दू शिल्पियोंकी समुदायण समता भल्लक रही है।

सांख्यपुराणके ४१ वें अध्यायमें सांख्यके सूर्यप्रतिमा प्रतिष्ठा करने पर नानाजाति मानव, देव, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, रक्ष, दिक्पाल, लोकपाल, सरग, गुह्यक प्रभृतिके आगमनकी कथा लिखी है। यहाँ वहाँ सभी मूर्तियाँ अङ्कित वा खोदित देख पड़ती हैं। नवग्रह, सप्तग्रह और भगवान्की ऐसी मूर्ति, सन्देह है, भारतमें किसी दूसरे स्थान पर मिलेगी या नहीं। *

कोणिक (६० त्रि०) कुण्डन बाहुलकात् गुणः। टेड़े हाथवाला।

* कोणार्ककेवकी वर्तमान अवस्था जो विशेष जानना चाहते हैं, निम्नलिखित ग्रन्थ पाठ करें—

Asiatic Researches, Vol. XV. 326-333; Hunter's Statistical Account of Bengal, Vol. XIX. 85-91; Hunter's Orissa, Vol II; Raja Rajendra Lal Mitra's Antiquities of Orissa, Vol. II और कोणार्कनामा।

कोषी (सं० त्रि०) १ टेड़े हाथवाला। २ कोणयुक्त, कोना रहनेवाला।

कोणेर आचार्य—इय्योवदण्डक नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

कोणेरभट्ट—विष्णुके पुत्र और रुद्रभट्टके पिता।

कोणेरौ—खेटबोध नामक ज्योतिःशास्त्रके रचयिता।

कोण्डपल्ली—मन्द्राज-प्रान्तके कृष्णा जिलेका वेणुवाड़ा तालुकका एक प्राचीन नगर। मुसलमानोंके आधिपत्य कालको कोण्डपल्ली नामकी एक सरकार रही। यह उसीकी प्रधान नगरी थी। कोण्डपल्ली अक्षा० १६° ३०' ३०" और देशा० ८०° ३३' ००" पर अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ४७८८ है। पहले यहाँ हिन्दू राजावाँला अधिकार था। १४७१ ई० में मुहम्मदशाह बाहमनीने इस स्थानको अधिकार किया। उसके पीछे १५१६ ई० को सुलतान अली-खानने यहाँ फिर हिन्दु-वाँको डरा समस्त कृष्णा जिला ले लिया था। १७६५ ई० को कोण्डपल्ली अंगरेजोंकी अधिकृत हुई।

कोण्डभट्ट—१ कोई विख्यात संस्कृत शास्त्रज्ञ पण्डित। यह रणोजी भट्टके पुत्र और भट्टोजी दीक्षितके भ्रातृपुत्र रहे। इन्होंने तर्करत्न, न्यायपदार्थदीपिका, वेयाकरण-सिद्धान्तभूषण, वेयाकरणसिद्धान्तभूषणसार, वेयाकरण-सिद्धान्तदीपिका, स्तोत्रवाद और राजा वीरभट्टके आदेशसे तर्कप्रदीप रचना किया। २ व्रतराज नामक संस्कृत ग्रन्थ बनानेवाले।

कोण्डवीड़—मन्द्राज-प्रान्तके गुण्टूर जिलेका नरसराय-पेट तालुकका एक गिरिदुर्ग और नगर। यह अक्षा० १६° १६' ४०" और देशा० ८०° १६' ००" पर दाहने अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १८७८ है। १३२३ ई० को मुसलमानोंके हाथ औरङ्गजेके गणपति-राजके परास्त होने पर दाक्षिणात्यके पूर्व उपकुलपति रेड्डि उपाधिकारी मण्डलेश्वरीने प्राधान्य लाभ किया था। उनमें कोण्डवीड़ के रेड्डिशेर प्रधान रहे। उनके समय कोण्डवीड़ एक स्वतन्त्र स्वाधीन राज्यमें परिणत हुआ। ख्रिष्टीय चतुर्दश शताब्दीके प्रथम भागमें दोस्त-अल्ला रेड्डिने सर्वप्रथम राज्य स्थापन किया था। फिर प्रलयवेम रेड्डिने कोण्डवीड़ में पुत्तकोट बनाया। १४२७

ई० की सुसलमानोंकी हाथी रेड्डिराज रावको जय परास्त हुये, यह स्थान गजपति-राजाके अधिकारमें चला गया। १५१५ ई० की विजयनगरके अधिपति कृष्णदेव-रायने वीरभद्र गजपतिको परास्त करके १५२१ ई० की यहां एक सुष्ठु देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा की। विजयनगर-पति सदाशिव रायके राजत्वकाल काण्ठनबोलि राम-राजके पौत्र विठ्ठलदेव यहांके शासनकर्ता थे। १५८० ई० की स्थानीय सूबेदारकी विश्वासघातकतासे कोण्ड-वीडु, गोलकुण्डाधिप इब्राहीम कुतुबशाहके अधीन हुवा।

कोतल (फा० पु०) १ सुसज्जित तथा भारोही-रहित अश्व, घिसवारका कसा हुआ घोड़ा। कोतल घोड़े किसी जुलूसमें देखावाके लिये निकाले जाते हैं। (वि०) २ बेकाम, निठला।

कोतलगारद (अ० पु० Quarter Guard.) सेनावासका एक स्थान, कावनोंकी कोई जगह। यहां सर्वदा गारद रहती और दलेलवालोंकी देखरेख चलती है।

कोतवार—युक्तप्रदेशकी एक जाति। मालूम पड़ता है कि यह कोतवालका अपभ्रंश है। यह लोग मिर्जापुर जिलेमें पाये जाते हैं।

कोतवाल (हि० पु०) १ नगरपाल, शहरका बड़ा धान-दार। नगरकी रक्षाका कार्य इसके अधीन रहता है। सुसलमानोंकी अमलदारी और अंगरेजों राजत्वके प्रारम्भ में कोतवाल ही भारतके किसी नगरमें प्रधान पुलिस कर्मचारोंका काम करता था। उसकी क्षमता भी बहुत रही। २ प्रबन्धक, सरबराहकार।

कोतवाली (हि० स्त्री०) १ कोतवालके रहनेकी जगह, शहरका बड़ा धाना। २ कोतवालका काम या दरजा। कोतवालीश्वर (हि० पु०) युक्तप्रदेशके कानपुर नगरकी एक प्रसिद्ध शिवमूर्ति। इनका मन्दिर चौकमें बना है। पहले मन्दिरके पास कोतवाली रहनेसे ही यह नाम निकला है।

कोताही (फा० स्त्री०) कमी, घाटा।

कोतुनचगि—धारवाड़का एक बड़ा गांव। यह गदग नगरसे ७ कोस उत्तरपूर्व अवस्थित है। यहां एक भक्त-दुर्ग और सोमदेवका मन्दिर विद्यमान है। इस मन्दिर-

में १०३४ और १०६४ शककी खोदित दो गिना-लिपियां लगी हैं।

कोतुल—बम्बई प्रान्तके अहमदनगर जिलेका एक शहर। यह अकोला उपविभागका द्वितीय नगर है लोकसंख्या प्रायः २२६० होगी। बुधवारकी बड़ा साप्ताहिक बाजार लगता है। माल आने जानेकी सुविधा रहनेसे कोतुलका व्यापार बढ़ रहा है।

कोत्तूरु—मद्राज प्रान्तीय बेङ्गारी जिलेके कूदिगो तालुकका एक शहर। लोकसंख्या प्रायः ६८८६ है। यह लिङ्गायतोंका केन्द्रस्थान है। यहां उनके गुरु बसवाल्लिङ्ग स्वामी रहते थे। लम्बे कानाहो पुराण में उनकी पूरी कथा लिखी है। नगरकी पूर्व और उनका समाधि है। नगरकी चारों ओर पत्थरकी चहार दीवारी खिंची है। बड़े दरवाजेके पश्चिम गजलक्ष्मीकी आकृतिहोन प्रतिकृति है। कहते हैं—बसप्याने यहांके जेम्सकी शास्त्रार्थमें जीत लिङ्गायत बनाया और अपने प्रधान मन्दिरमें लिङ्ग लगाया था। यन्त्र सूती कपड़े खूब बुने जाते हैं।

कोथ (सं० पु०) कुप्यते पूतित्वं गमयते अनेन, कुथ-घञ्। १ नेत्ररोगभेद, कुथुवा। यह आंखकी पलकके भीतर होता है। कुथरति गुदं क्षिणोति, कुथ कर्तरि षच्। २ भगन्दरोग। मांसलुब्ध व्यक्तिके प्रसक्त साथ अस्थि भक्षण करनेसे वह जीव नहीं होता, पुरोधके साथ गुह्यदेशमें उत्तर वक्र भावसे अवस्थिति करता और बाहर नहीं निकलता और धीरे धीरे क्षत उठता है। फिर इसीसे भगन्दर हो जाता है। ३ पूतीभाव, पीव। ४ दुर्गन्धकृद, बदबूदार मवाद। ५ पाक, पकाई। (त्रि०) ६ गलित, बहनेवाला। ७ मथित, मथा हुआ। ८ शठित।

कोथमोर (हि० पु०) हरा धनिया।

कोथरा—बम्बई प्रान्तके कच्छ जिलेका एक नगर। लोकसंख्या प्रायः ३६७३ है। यहांके लोगोंने बम्बई, जञ्जी-बार और व्यापारके दूसरे केन्द्रोंमें खूब रुपया कमाया है। कोथरामें अच्छे अच्छे मकान, मन्दिर और तलाब बने हैं। १८६१ ई० की युद्ध-कच्छका सबसे उम्दा मंदिर तैयार हुआ। शालिमासका अन्न-मन्दिर अहमदाबाद-

जैसा बनाया गया है। इसी मन्दिरकी दासानके मीन खोद कर भी एक छोटा मन्दिर निर्मित हुआ। उसमें कोई सङ्गमरमरकी २५ मूर्तियाँ हैं, जिनकी आँखों, छातियों और हाथों पर बहुमूल्य रत्न लगे हैं। सिवा इसके एक चोरखाना भी आपत्कालके लिये बना है।

कोथला (हिं० पु०) १ थैला। २ उदर, पेट।

कोथली (हिं० स्त्री०) लम्बी थैली। इसमें रुपये पादि भर कर कमरमें बांध लेते हैं।

कोथी (हिं० स्त्री०) मगानकी साम। यह धातुका एक छप्पा है, जो तलवारके मगानके सिरे पर लगता है।

कोद (हिं० स्त्री०) १ दिक्, तरफ। २ कोण, कोना।

कोद—बम्बई-प्रदेशके धारवाड़ जिलेका दक्षिण-पश्चिम सीमास्थ एक उपविभाग। यह पश्चा० १४° १७' तथा १४° ४३' उ० और देशा० ७५° १०' एवं ७५° ३८' पू०के बीच पड़ता है। इसके उत्तर हाङ्गल तथा कर-जगि, पूर्व रानीवेन्नुर और दक्षिण एवं पश्चिम महिसुर-राज्य है। भूमिका परिमाण ४०० वर्गमील, ग्रामसंख्या २०४, लोकसंख्या ८४४२७ और वार्षिक राजस्व २ लाख ३ हजार है।

कोद उपविभाग छोटे छोटे पर्वतों और सरोवरोंसे समाकीर्ण है। एक एक सरोवरका देर्घ्य प्रायः कोस डेढ़ कोस होगा। आनगुण्डी राजावेंके समय यह सब तालाब बने थे। इस स्थानका अधिकांश सजल है। उसमें ईख और पानकी उपज बहुत है। यहाँकी मट्टी साफ है। परन्तु पश्चिमांशमें कुछ सरस काली मट्टी भी मिलती है।

छोटे छोटे पहाड़ोंमें भाड़ी और घास भरी है। उसमें कोई हिंस्रजन्तु नहीं रहता। परन्तु कभी कभी भाड़ीमें शेर पा जाता है। पहाड़ोंमें मारावलि ही बड़ा और ४०० हाथ ऊँचा है। ग्रीष्म और वर्षाकालकी यहाँका जलवायु कुछ कुछ स्वास्थ्यकर होते भी शीत-कालकी ज्वरादिका अधिक प्रादुर्भाव होता है। पाँच वर्षके अन्तरसे एक बार भयंकर हैजा फूटा करता और बहुतसे लोगोंकी मरना पड़ता है।

कोदमें तुङ्गभद्रा, वरदा, और कुमुदती नदियाँ हो

प्रधान हैं। तुङ्गभद्रा दक्षिण-पूर्वकी और कुमुदती नदी महिसुरके मदक ऋदसे निकल इस विभागके पूर्वांशकी प्रवाहित है।

यहाँ लालमिर्च, बाजरा, जुवार, धान, गेहूँ, मटर, मूँग, राई, तिल, ईख आदिकी उपज अधिक है।

२ कोद विभागका एक प्रधान ग्राम। यहाँ प्रति मास प्रायः दो हजारके चावल और लालमिर्चकी विक्री होती है। स्थानीय हनुमान् मन्दिरमें प्राचीन कर्णाटी भाषाकी एक शिलालिपि लगी है।

कोदइत (हिं० पु०) कोदवदलनेवाला।

कोदई (हिं०) कोदव देखो।

कोदईकानल—मद्राज-प्रान्तीय मदुरा जिलेका एक छोटा तालुक। कोदईकानलमें इसका सदर मुकाम है। लोकसंख्या १८६७७ और राजस्व ४२००० रु० है। गेहूँ, लहसुन, कड़वा और इलायची यहाँ खूब उपजती है। लोगोंमें शिक्षाका प्रचार कम है।

कोदईकानल—मद्राज-प्रान्तीय मदुरा जिलेके कोदई-कानल तालुकका सदर मुकाम। यह पश्चा० १४° १४' उ० और देशा० ७७° २८' पू० में पालनी पर्वत पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १८१२ है। परन्तु स्वास्थ्यकर स्थान होनेसे गर्मीमें इसकी आबादी बहुत बढ़ जाती है। १८८८ ई० को यहाँ म्युनिसिपैलिटी पड़ी थी। ७००० फुट ऊँचे सानिटोरियम खड़ा है। पहाड़ोंके बीच एक समुदा तालाब बना लिया गया है। यहाँकी आबकवा भारतकी किसी भी जगहसे खराब नहीं। इसकी चारो ओर साफ जमीन बरी भरी है और बारामासो भरने बहा करते हैं। साउथ इण्डियन रेलवेके अम्बयनाद-कनूर स्टेशनसे पर्वत ३३ मील पड़ता, जहाँसे बैलगाड़ीमें बैठ कर यात्री पाया जाया करते हैं। घोड़ेकी राह ११ मीलमें ६००० फुट ऊँचे चढ़ती, जिस पर किसी किस्मकी गाड़ी चल नहीं सकती। स्टेशनके पास कोदईकानल आबसरवेटरी (वेधशाला) समुद्रपृष्ठसे ७७०० फुट ऊँचे स्थापित है। कोदकार (सं० पु०) अज्ञाकारमृगमेद, घोड़े-जैसा एक हिरन।

कोदकल—हैदराबाद-राज्यके गुलबर्ग जिलेका पूर्वीय

तालुक। इसका क्षेत्रफल २११ वर्ग मील और लोक-संख्या ६२०८१ है। तालाबोंकी सींचसे धान बहुत होता है। इसमें तांदूर और कोसगी दो तालुक जागीरी हैं।

कोदण्ड—हैदराबाद-राज्यस्थ गुलबर्ग जिलेके कोदण्ड तालुकका सदरमुकाम। यह अक्षा० १७° ७' ८०" और देशा० ७७° ३८' ५०" में निजाम छोट रेलवेके तांदूर स्टेशनसे १२ मील दक्षिणको पड़ता है। आबादी ५०८८ है। इसमें एक मसजिद है जो ३०० वर्षकी पुरानी बतलायी जाती है।

कोदण्ड (सं० पु० स्त्री०) कु शब्दे विच् कौः शब्दायमानो दण्डो यस्य, बहुव्री०। १ धनुष, कमान। कोदण्डं धनुः तत्पुष्पं आकारो विद्यतेऽस्य, बहुव्री०। २ भ्रू, भोंह। ३ जनपदविशेष, कोई देश। ४ धनुराग्रि।

कोदमगि—बम्बई-प्रदेशके धारवाड़ जिलेका एक ग्राम। यह कोदगांवसे ५॥ कोस दक्षिण अवस्थित है। यहां बयला वसण्या और सिहरामेश्वर देवका मन्दिर है। प्रथम मन्दिरमें १०१८ और शिवोक्तमें १००२ शककी खोदित शिलालिपि लगी है।

कोदरा (हिं०) कोद्रव देखो।

कोदरेता (हिं० पु०) कोद्रव दलनेकी चक्री। यह प्रायः चिकण मृत्तिका द्वारा निर्मित होता है।

कोदव (हिं०) कोद्रव देखो।

कोदवला (हिं० स्त्री०) छणभेद, एक घास। यह कोद्रव जैसी होती है। इसके कोमल पत्र चौपाये दक्षिपूर्वक भक्षण करते हैं।

कोदार (सं० पु०) ईषदुदारः कोः कादेशः। धान्यविशेष, एक अनाज। "न बाष्पं सर्वानामाषवरकोदारकोद्रवम्।"

(कात्यायन १।६।८)

कोदीनार—बड़ोटा राज्यस्थ अमेरेली-प्रान्तके कोदीनार तालुकका सदरमुकाम। यह अक्षा० २०° ४७' ८०" और देशा० ७७° ४२' ५०" में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६६६४ है। कोदीनार एक प्राचीरवेष्टित नगर है और समुद्रसे लगभग ३ मील दूर सिङ्गवाड़ नदीके दक्षिणतट पर अवस्थित है। यहांकी म्युनिसिपैलिटीको राज्यसे सहायतार्थ १४००, ६० वार्षिक मिलता

है। कोदीनारमें मुनसिफ़ी, मजिस्ट्रेटी, पञ्चताल, देशी भाषाका स्कूल और पब्लिक आफिस, बने हैं। समुद्रकी राह बम्बई, कराची, पोरबन्दर और मंगराजके साथ व्यापार करते हैं। रुई, अनाज और चीकी रफ्तनी और गेहूं, ज्वार, कपड़े, मसाले और सूखी चीजोंकी आमदनी होती है।

कोदु—नागपुरकी एक दुर्दान्त असम्य जाति। यह लोग गिरिवासी होते हैं। कोई कोई उन्हें कम्बजातिका शाखा समझता है।

कोदुङ्गलूर—कोचीन-राज्यका एक नगर और बन्दर। इसका दूसरा नाम कोडुङ्गरीलूर है, परन्तु युरोपीय कङ्गानोर कहते हैं। यह अक्षा० १०° १३' ५०" ७०" तथा देशा० ७६° १४' ५०" पू० पर कोचीन शहरसे ८ कोस उत्तर-पश्चिम अवस्थित है। ५२ ई० की प्रथम यहां सेण्ट-टोमस आये थे। १४१ ई० को कोदुङ्गलूरमें चेङ्गमल पेरुमलकी राजधानी रही। ई० चतुर्थ शताब्दीसे यहदी और नवमसे ईसाई-सम्प्रदाय यहां रहता है। इस नगरमें १५२३ ई० की पीतगीर्जाके एक दुर्ग निर्माण किया था, जो १६६१ ई० की फोलन्दाजोंके हाथ अष्टादश शताब्दीके शेषभागमें कोचीनके देशीय राजाको किला सौंप दिया। १७७६ ई० को वह टीपू-सुलतानके अधीन हो गया था। किन्तु कोचीनके राजाने फिर अधिकार कर लिया। १७८४ ई० की टीपूने फिर उसे लेकर त्रिवाङ्गुड़ महाराजके हाथ बेच डाला, परन्तु १७८८ ई० की फिर टीपूके अधिकारभुक्त हुआ। यह नगर प्राचीन ताम्रशासनमें मूयिरि नामसे वर्णित है। ग्रिनिने Muziris primum emporium Indiae लिखा है।

कोदो (हिं०) कोद्रव देखो।

कोहालक, कोद्रव देखो।

कोद्रव (सं० पु०) कु-विच कौः सन् द्रवति, द्रु-अश् ततः कर्मधा०। यद्वा वायुना द्रवति, पृषोदरादिवत् पूर्वस्य चोत्तारः। कुधान्यभेद, कोदो। यह भारतमें प्रायः सर्वत्र उत्पन्न होता है। कुछ दीर्घ छण अथवा धान्यसे मिलता जुलता है। प्रथम छट्टि पकते ही कोद्रव-को वपन करते और भाद्रमास काट लेते हैं। इसके

लिये उत्तम भूमि अथवा कठिन परिश्रम आवश्यक नहीं। खानविशेषमें कोद्वय कार्पास वा अड़हरके क्षेत्रमें जो देते हैं। यह पकनेसे कुछ पहले ही खेतसे काट लिया जाता है, कारण ऐसा न करनेसे इसके बीज खेतमें भड़ पड़ते हैं। इसकी त्वक् अलग होने पर गोल गोल चावल निकलते जो आहारादिमें व्यवहृत होते हैं। अगिया नामक लृण कोद्वयका शत्रु है। इसके साथ उसके उत्पन्न होनेसे यह भस्मीभूत हो जाता है। कोद्वय कटनेसे पहले मिश्र होने पर अन्नमें विष आता है। देशविशेषमें इसके नाना भेद किये गये हैं। राजवत्सभके मतानुसार कोद्वय वातल, ग्राही, शीतल और पित्तकफघ्न है। अत्रिसंहितामें इसे रुच, रुच्य और स्वादु भी लिखा है। फिर राजनिघण्टु देखते त्रिणियोंके लिये कोद्वय पथ्य है। इसका संस्कृत पर्याय—कोरद्वय, कुद्वय, कुहाल, मदनापक, कोरदुष्क, कोहार और कोदाल है।

कोद्वयमण्ड (सं० पु०-स्त्री०) कोद्वयकृतमण्ड, कोदोका मांड। यह मूर्च्छा और ग्लानि उत्पन्न करता है। (वैद्यकनिघण्टु)

कोद्विक (सं० स्त्री०) सावर्चलसवण, सौंवर नमक।

कोदुभक्त (सं० पु०-स्त्री०) कोद्वयक, कोदोका भात या दलिया। कोदोका भात रुचिकर, मधुर और प्रमिह, मूत्रदोष, लृणा, छर्दि, कफ, वात, आम तथा दाहनाशक है। (वैद्यकनिघण्टु)

कोन (हिं० पु०) १ कोण, कोना। २ नौकी संख्या। यह दहालीकी बोली है। उन्नीसकी संख्याको दहाल 'कानकाय' कहते हैं।

कोनदाने—बम्बई प्रान्तका कुलाबा जिलेके गुजरात तालुकका एक गांव। अक्षा० १८° ४८' ७०" और देशा० ७३° २४' ५०" में राजमाची पहाड़के नीचे पड़ता है। लोकसंख्या १५८ है। यहां प्राचीन बौद्ध गुहायें बनी हैं। चैत्यको लेकर कुल ४ गुहायें हैं। ई० से पहलेकी २५ शताब्दीकी एक शिलालिपि मिलती जिसमें लिखा है—कान्द, (लृणा)-के शिष्य बालककठक निर्मित। उक्त गुहायें ई० से २५० वर्ष पहले और १०० ई० की बनी समझ पड़ती हैं।

कोनफल (सं० स्त्री०) रत्नालु, रतालू।

कोनसिला (हिं० पु०) एक माटी लकड़ी। यह कोनिया के छाजनमें बंछेरके सिरेसे दीवारके कोने तक तिरछी पड़ती है। कोरा इसीके सहारे लगाते हैं।

कोना (वै० त्रि०) अभिसारी। (सामसंहिता)

कोना (हिं० पु०) १ कोण, गोशा। २ नौक, अनी। ३ पत्ता, खूट। ४ निराली जगह। ५ दहालीकी बोलीमें—बौछाई।

“लोचनजल रश्मि लोचनकोना। जैसे परम रूप कर कोना ॥”

कोनाल (सं० पु०) वृत्तिकाख्य जलपत्ती, पानीकी एक चड़िया। इसका पुच्छ कृष्णवर्ण और उदर श्वेतवर्ण होता है। (सुश्रुत)

कोनालक, कोनाल देखो।

कोनालि (सं० स्त्री०) ओषधि सताभेद, एक बूटी। यह कुछविहित भक्ष्यद्रव्य है। (सुश्रुत)

कोनिया (हिं० स्त्री०) एक छाजन। इसमें बंछेरके दोनों छोर पाखोंसे अलग धरनपर रहते, जिसे कोनीसे थोड़ी दूर रहते हैं। यहांसे दीवारके कोनें तक दो धरनें तिरछा लगती हैं। कानियामें पाखेकी जरूरत नहीं पड़ती। २ पटनी, काठकी एक पटरी या पत्थरकी पटिया। इसे दीवारके कोने पर द्रव्यादि स्थापन करने को लगा देते हैं।

कोनील, कोनाल देखो।

कोनिदंड (हिं० पु०) एक प्रकारका व्यायाम या कसरत। घरके किसी कोनेमें दोनों ओरकी दीवारों पर हाथ रख । जो दंड मारा जाता, कोनिदंड कहलाता है।

कोन्तल (सं० पु०) कुन्तल देशका अधिवासी। (हरिवंश)

कोन्नगर—बङ्गालके हुगली जिलेका एक बड़ा गांव।

यहां म्युनिसिपैलिटी और रेलवे स्टेशन विद्यमान है।

कोन्नूर—बम्बई प्रान्तीय बेलगांव जिलेका गोकार् तालुकका एक गांव। यह अक्षा० १६° ११' ७०" और देशा० ७४° ४५' ५०" के मध्य घाटप्रभा नदीके तीरपर गोकार्से ५ मील उत्तर-पश्चिम अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ५६६७ है। गोकार्के जलप्रपातके पास ११५ शताब्दीके कई भग्न मन्दिर हैं।

कोन्वशिर (सं० पु०) एक क्षत्रिय जाति । यह लोग ब्राह्मण शापसे छवत्त्वको प्राप्त हुए हैं । (भारत, अ० १५ अ०)

कोप (सं० पु०) कुप्यते कुप भावे घञ् । १ क्रोध, गुस्सा ।

२ प्रणयकोप, नायिकाका नायकके प्रति बनावटी क्रोध ।

यह शृङ्गार रसका एक अङ्ग है ।

“नामः कोपः स तु द्वेधा प्रणयेष्वर्था समुद्भवः ।” (साहित्यदर्पण ३)

३ धातुवैषम्यकारी विकारविशेष, भड़क ।

कोपक्रम (सं० क्ली०) उपक्रम्यते कर्मणि घञ्, कस्य

ब्राह्मणः उपक्रमम्, ६-तत् । १ ब्रह्माकी सृष्टि । (त्रि०)

कोपस्य उपक्रमोऽस्य, बहुव्री० । २ कोपयुक्त, नाराज ।

कोपड़ (हिं० पु०) पड़टा, सराव ।

कोपन (सं० त्रि०) कुप ताच्छ्लेष्ये युच् । १ कोपशील,

गुस्सावर । (पु०) २ असुरविशेष, कोई राजस । (हरिवंश

४२ अ०) ३ ग्रन्थिपूर्ण, गठिवन । (क्ली०) कूप-णिच्

भावे ल्युट् । ४ कोपनिष्पादन, गुस्सा दिशानेकी बात ।

कोपनक (सं० पु०) १ कोपनः कोपशील इव कायति,

कै-क । १ चौराख्यगन्धद्रव्य, चोवा । (त्रि०) २ कोप-

शील, गुस्सावर ।

कोपना (सं० स्त्री०) कुप्यति, कुप ताच्छ्लेष्ये युच्-टाप् ।

१ कोपवता । इसका पर्याय—भामिनी, चण्डी और

भीमा है । २ रक्तकरवीर, लाल कनेर ।

कोपनी (हिं० क्ली०) कोपान्वित होना, गुस्सा करना ।

कोपनीय (सं० त्रि०) कूप कर्मणि णनीयर् । कोपका

विषयीभूत, जिस पर गुस्सा की जाये ।

कोपभवन (सं० क्ली०) गृहविशेष, एक घर । जहाँ

गुरुसेने आकर जा बैठते उसे कोपभवन कहते हैं ।

कोपयिष्णु (सं० त्रि०) कुप-णिच् बाहुलकात् इष्णुच् ।

कोपकारक, नाराज करनेवाला ।

कोपर (हिं० पु०) १ पात्रविशेष, एक प्रकारका थाल ।

यह पीतल या किसी दूसरे धातुका बनता और धरने-

छठानेके लिये एक और कुण्डा लगता है । २ टपका,

डालका पका आम ।

कोपरगांव—बम्बई-प्रदेशके अहमदनगर जिलेका एक

उपविभाग । यह अक्षा० १८° ३५' एवं १८° ५८' उ०

तथा देशा० ७४° १५' तथा ७४° ४५' पू० के मध्य अव-

स्थित है । इसके उत्तर नासिक उपविभाग, पूर्व निजाम

राज्य, दक्षिण-पूर्व नेवास, दक्षिण राहुरि तथा सङ्गमनेर और पश्चिम सङ्गमनेर एवं सिन्नर उपविभाग हैं । भूमि-का परिमाण ५१८ वर्गमील है । लोकसंख्या प्रायः ७३५३८ है ।

यहाँ मही काली है और पहाड़ कहीं नहीं । गोदावरीके तटकी छोड़ कर दूसरी जगह वैसे पेड़ भी नहीं देख पड़ते । यहाँ गोदावरी, गोदावरीकी शाखा गुई, अगस्ति, नरन्दि, कोल, जाम और काट नदी प्रवाहित है । ज्वार, बाजरा, कुलथी, मूंग, तिल, अलसी, ईख, गांजा, तम्बाकू और मकई बहुत होती है । धौद और मनमाड छोट रेलवे कोपरगांवसे निकल गयी है । मङ्गमदापुर, कोपरगांव और रङ्गाटा प्रधान नगर हैं ।

२ कोपरगांव उपविभागका प्रधान नगर । यह अक्षा० १८° ५४' उ० तथा देशा० ७४° ३३' पू० पर गोदावरी नदीके उपकूल मालगांवकी सड़कके किनारे अवस्थित है । कोपरगांव नगरपेशवा रघुनाथ रावको बहुत अच्छा लगता था । उनके राजभवनमें आजकल गवर्नमेण्टका स्थानीय प्रधान कार्यालय खुल गया है इस नगरसे डेढ़ कोस दूर हिङ्गली नामक स्थानमें रघुनाथका प्रति सुन्दर समाधि-मन्दिर बना है । कोपरगांवके तुद्र हीपमें प्राचीन राजप्रासादके निकट कचेश्वर और शुकेश्वर देवका मन्दिर है । कच और शुककी मूर्ति प्रस्तरमय तथा पास ही पास अवस्थित है । बहुतसे लोग इन दोनों मूर्तियोंकी पूजा किया करते हैं । कच और शुक देखो ।

कोपल (हिं० स्त्री०) पल्लव, नयी पत्ती ।

कोपलता (सं० स्त्री०) कर्णस्फोटालता, कनफोड़ी बेल ।

कोपली (हिं० वि०) बैंगनी, कोपलका रंग रखनेवाला ।

(पु०) २ बैंगनी या काला-लाल रंग । यह मजीठ और नीलके मेलसे बनता है ।

कोपवती (सं० स्त्री०) कोप अवस्थि मत्तुप् मस्त्व वः स्त्रियां ङीष् । कोपयुक्त स्त्री, नाराज औरत ।

कोपवान् (सं० त्रि०) कोपयुक्त, नाराज ।

कोपागञ्ज—युक्तप्रदेश-आजमगढ़ जिलेकी घोसी तहसील-का शहर । यह अक्षा० २६° १' उ० और देशा० ८२° ३४' पू० पर गाजीपुरसे गोरखपुर जानेवाली पक्की रा पर अवस्थित है । वहाँ रेलवेका एक जङ्गशन है ।

लोकसंख्या लगभग ७०३८ है। यह शहर आजमगढ़ के राजा इरादत खानने प्रति पुराकालकी बसाया था। इस शहरकी आमदनी १३०० रु० है। वहां चीनी और अनाजकी तिजारत चलती है।

कोपाल (सं० त्रि०) कोपयुक्त, नाराज।

कोपित (सं० त्रि०) कुप-णिच् त्त। क्रुद्ध, नाराज।

कोपिन (सं० पु०) जलकपोत, पानीके पास रहनेवाली एक चिड़िया।

कोपी (सं० पु०) अवश्यं कुप्यति, कुप आवश्यके णिनि। आवश्यकप्रसंगेषोर्णिनि। पा१।१।१००। १ जलपारायत, दरयायी कबूतर। (त्रि०) २ कोपविशिष्ट, नाराज। ३ कोपीत्यादक, भड़कानेवाला।

कोपकेशरी—कुलोत्तुङ्ग चोलका नामान्तर। कुलोत्तुङ्ग देखो।

कोपचोर—ब्रह्मपुत्र नदीके उत्तर कूल पर रहनेवाली एक असभ्य जाति। यह लोग अका प्रभृति जातियोंके साथ बसते हैं। अका देखो।

कोप्पा—महिसुरके कदूर जिलेका पश्चिम तालुक। येदे-हल्ली और श्रीङ्गेरि लेके यह अक्षा० १३° १५' एवं १३° ४६' ४०' और देशा० ७५° ५' तथा ७५° ४५' पू०के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ७०१ वर्गमील है। लोकसंख्या लगभग ६५४८३ है। इस तालुकमें तीन शहर और ४२७ गांव हैं। उसकी पश्चिम सीमा पश्चिमघाट है। इसकी पश्चिम सीमासे तुङ्गा और पूर्व सीमासे भद्रा नदी बहती है। इसका दृश्य देखने लायक है। चावल वहांका एक मात्र शस्य है।

कोफ्त (फा० पु०) जर निशान्, लोहे पर सोने या चांदीकी पच्चीकारी। (स्त्री०) २ दुःख, रंज। ३ परेशानी, डलभन।

कोफ्तगरी (फा० स्त्री०) कोफ्तगरका काम।

कोबड़ी (हिं० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह ब्रह्मदेश और नेपालमें बहुत जाती है।

कोबतुर (कोयम्बतुर)—महाराज-प्रदेशके दक्षिण अंशका एक बड़ा जिला। इसका परिमाण ७४३२ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १८ लाख है। कोबतुरके उत्तर कोङ्कणाक्ष, पश्चिम नीलगिरि और दक्षिण-पश्चिम उत्कल वन तथा इस्तिमकीर्ण अजमलय वा इस्तिगिरि है।

यहां कृष्णानरभोजी कादेर नामक जाति का वास है।

कोबतुर जिलेकी अवस्था दिन दिन सुधर रही है। यहां एक प्रकारका कोरण्डम् नामक उत्कल खनिज पदार्थ उत्पन्न होता है। मरकत मणि भी स्थान स्थान पर मिलता है।

इस जिलेके लोग कहते हैं—पञ्च पाण्डव वनवास-कालको इसी कोबतुरके जङ्गलमें आकर थोड़े दिनों रहे थे। इसके अन्तर्गत धारापुर जिलेका परिचय प्राचीन 'विराटपुर'के नामसे दिया जाता है। लोगोंके कथनानुसार धारापुरमें ही पञ्च पाण्डवने एक वत्सर-काल अज्ञातवास किया। परन्तु विराटराज्य यहां न था। विराट देखो। कोबतुरके नामा स्थानोंमें पत्थरके पुराने समाधिस्थान विद्यमान हैं। देशीय उन्हें 'पाण्डवकुलि' कहते हैं। हरिकाण्ठनेलूरके निकट पत्थरके ऐसे ही समाधि 'बालि राजाकी छावनी' कहलाते हैं।

अति पूर्वकालकी यह अक्षय चेर या केरल राजाओंके अधिकारमें रहा। ८७८ ई०को चोल-राजाओंने पूर्व राजाको परास्त करके कोदर, कोङ्ग, कर्णाट और तलकाड़ अधिकार किया। फिर १०८० ई० को कोबतुर बल्लाळवंशीय राजा विनयादित्यका अधिकारभुक्त हुआ। १३४८ ई०को विजयनगराधिप हरिहरने इसको अधिकार किया था। १५६५ ई०को विजयनगरके उत्पन्न होने पर कोबतुर मदुराके अधीन हुआ। १६२३ से १६७२ ई०को जोष महिसुरराज चिन्नदेवने इसे जय किया था। १७८८ ई०को कोबतुर ब्रिटिश शासनके अधीन हुआ।

इस जिलेका प्रधान नगर भी कोबतुर ही है। यह अक्षा० १०° ४८' ४१" ४०' और देशा० ७६° ५८' ४६' पू०के मध्य अवस्थित है। जिस स्थान पर राजभवन बना, वह समुद्रपृष्ठसे ८०० हाथ ऊंचा है। आसपास अच्छी होनेसे इस शहरमें सभी राजकीय प्रधान कार्यालय हैं। यहां औषधालय, चिकित्सालय, तारघर, डाकघर और छोटे बड़े सब प्रकारके अंगरेजी तथा देशी विद्यालय बने हैं। शहरसे २ कोस दूर पेंबर नामक स्थान पर मेनचिदम्बरतीर्थ है। इस तीर्थकी यहांके हिन्दू प्रगाढ़भक्ति करते हैं। वह कहते हैं—

यहाँके देवता जायत हैं, यहाँतक कि टीपू सुलतानको भी देवसम्पत्ति वा देवालय पर हस्तक्षेप करनेका साहस न हुआ। चिदम्बरका मूल मन्दिर चेर-राजाने बनवाया था। मन्दिरके प्रवेशद्वार पर छहत् गोपुर और पास ही बड़ा ध्वजस्तम्भ है। स्तम्भका शिल्पकार्य बहुत चमकीला है। इसके पश्चिम गात्रमें लिङ्ग पर स्नानदान करती हुई सुन्दर गोमूर्ति, दक्षिण त्रिशूलाकृति, पूर्व विनायक और उत्तर सुन्दरदेवकी मूर्ति है। ज्येष्ठमासकी सुन्दरदेवके भूमिखननका उत्सव होता है। गोपुरके आगे दूसरे प्राकारमें पत्थरका कनकसभामण्डप है। इस सभामण्डपके प्रत्येक स्तम्भमें पौराणिक देवदेवियोंकी मूर्तियाँ पारिपात्यके साथ खोदित हैं। यहाँ नट राजाका गृह है। दशभुज नटरूपी महादेव एक पादसे दण्डायमान हैं। मूलमन्दिर मरकत निर्मित है। उसकी चारो ओर हिन्दू राजाओंके अनुशासन खोदित हैं। यहाँके महादेव लिङ्गरूपी हैं। निकट ही देवीका मन्दिर है। देवी मरकतवल्ली नामसे अभिहित होती हैं। यहाँ बारी महीने एक एक उत्सव हुआ करता है। कोई बड़ा अंगरेज या हिन्दू कोबतूर जाकर विना मिलचिदम्बर देखे नहीं लौटता।

इस जिलेमें और भी कई एक तीर्थ तथा पुण्यस्थान हैं। भवानी शहरमें कावेरी तथा भवानीसङ्गमके मध्यस्थलका सङ्गमेश्वर, पालनाद तालुकका पापनाशी और कोरूर शहरमें पञ्चपतीश्वर स्वामीका मन्दिर उल्लेखयोग्य है।

कोबा (फा० पु०) १ चमड़ा कूटनेकी मोंगरी।

मुट। १ कोई मोंगरी।

कोबी (हिं० स्त्री०) गोभीका फूल।

कोम (सं० स्त्री०) पिपासास्थान।

कोमता (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह बड़ा कीकरसे मिलता-जुलता, सुहावना और सदाबहार पेड़ है। सिन्ध और अजमेरकी रेतोली जगहमें कोमता बहुत उपजता है। इसमें कांटे भरे रहते हैं।

कोमती—दाक्षिणात्यकी एक व्यवसायी जाति। कर्णाट और तेलङ्ग कोमतियोंकी आदि वासभूमि है। यह अपनेकी प्रकृत वैश्य बतलाते हैं, परन्तु दाक्षिणात्यके ब्राह्मण उसे स्वीकार नहीं करते।

कोमतियोंके कथनानुसार पहले उनमें ६०० गोत्र थे, अब केवल १०१ रह गये हैं। अवशिष्ट गोत्रोंके आप हो जाने पर निम्न लिखित गल्प सुना जाता है—

लाभषट्ति वंशमें कणिका नामकी एक परमासुन्दरी कोमती-कुमारीने जन्म लिया था। किसी नीच जातीय राजाने कणिकाके रूपमें मुग्ध हो उनसे विवाह करना चाहा। दारुण सङ्कटमें पड़ वह राजाके प्रस्तावसे सम्मत हो गयीं, परन्तु राजाको यह कहला भेजा कि विवाहसे पहले उन्हें कुलदेवताकी पूजा करना पड़ेगी। तदनुसार उनके आत्मीय कुटुम्बी आ पहुँचे। देवादेशमें अग्निकुण्ड जला कणिका प्रदक्षिण करके उसी जन्तु कुण्डमें कूद पड़ी, उनके घरके १०१ आत्मीय कुटुम्बी भी उनके अनुगामी हुए। बाकी ४८८ लोग नीच राजाके साथ मिलकर अपना जाति खो बैठे।

आजकल जो १०१ विभिन्न वंशीय कोमती हैं। सभी कणिकाकी देवी समझ पूजा करते हैं। १०१ कुलोंमें बूचनकुल, चेःबल, धनकुल, गुंडकुल, मासटकुल, मिधनकुल, पगडिकुल, और पेडकुल, बम्बई प्रदेशके नानास्थानोंमें देख पड़ते हैं। यह परस्पर एक साथ आहार तो करते, परन्तु कन्याके आदान प्रदानमें हिचकते हैं। इनके पुरुषोंके नाम शेष पर 'अप्पा' (पिता) और स्त्रियोंके नाम शेषपर 'अम्मा' (माता) शब्द व्यवहृत होता है।

कोमती देखनेमें कदाकार और लक्षणवर्ण होते हैं। इनका शरीर काला और लम्बा रहता है। चोटी और गलमुच्छ्रा रहते भी यह दाढ़ी कभी नहीं रखते। साजसज्जा दाक्षिणात्यके ब्राह्मणों-जैसी है। इनकी अवस्था नितान्त मन्द नहीं। सभी व्यवसाय करते हैं। जिनकी अवस्था उतनी अच्छी नहीं, उनके भी मोदोकी एक छोटीमोटी दुकान है। स्त्रीपुत्र दूकान पर बैठ क्रयविक्रयमें साहाय्य करते हैं। कोई महाजनी और नौकरी भी करता है। क्या पुरुष क्या स्त्री सबके सब परिश्रमी, क्लेशसहिष्णु, मितव्ययी और चतुर हैं। कोमती कहते कि रेल निकलनेसे ही उनका सर्वनाश हुआ है।

यह हिन्दू देवदेवियोंका ही मानते हैं। कणिका

देवी, बालाजी, नगरेश्वर, नरसीवा, राजेश्वर और वीर-भद्र कोमतीकी कुलदेवता हैं। तेलङ्गमें नाना स्थानों पर इन कुलदेवताओंके मन्दिर बने हैं। देशस्थ ब्राह्मण कोमतियोंका पौराहित्य करते हैं। यह ब्राह्मण भिन्न दूसरी किसी जातिके हाथका भक्ष ग्रहण नहीं करते। काशी, नासिक, पण्ढरपुर और तुलजापुर इनके प्रधान तीर्थस्थान हैं।

कोमतियोंके प्रधान गुरु शङ्कराचार्यस्वामी और कुलगुरु भास्कराचार्य हैं। सिवा इसके एक मोक्षगुरु भी होते हैं। गुरुकी सेवा और गुरुके पादोदकका पान परमार्थ-जैसा समझा जाता है।

इनमें कोई कोई लिङ्गधारी होता है। परन्तु लिङ्गायत ब्राह्मण कोमतियोंको लिङ्गायत नहीं मानते। जङ्गम लोग पिताकी अनुमतिसे पुत्रको लिङ्ग चिह्नित कर देते हैं। जङ्गम देवी। लिङ्गधारी यज्ञसूत्र नहीं रखते। उनका मृत्यु होनेसे जङ्गम उठाने पाते हैं। परन्तु कितने ही समय सूत्रधारी कोमतो उनका गव-दाह करके यथारीति आह किया करते हैं।

कोमतीयोंमें यज्ञसूत्रके धारणका कोई निर्दिष्ट नियम नहीं है। पिता अपनी इच्छासे पुत्रके गलेमें जनेज डाल सकता है। जनेज ही जाने पर बालक प्रथम अपनी भगिनीके घर जा भानजीसे भिक्षा ग्रहण करता है। फिर भगिनी और भगिनीपति हाथमें जल डाल उसे विदा करते हैं। आजकल विवाहके समय जनेज होता है। बहुत खर्च पड़नेसे दूसरे समय जनेज नहीं करते। कोमतियोंमें विवाहकी प्रथा बहुत ही भिन्न है। मामा-भानजीका विवाह इन्हींमें होता है। भगिनीकी कन्या कितनी ही कुक्षित क्यों न हो, उसके साथ विवाह करना पड़ता है। इन्हें कड़ा दहेज लगता है। रीतिके अनुसार दहेज न मिलने पर वर-पक्षके मुखियाका जी नहीं भरता। बालकका तेरहवें और बालिकाका बारहवें दिन नामकरण होता है।

विवाहमें पाँच सधवा रमणियां ही प्रधान होती हैं। उनकी यथारीति पादर-अभ्यर्थना करना पड़ती है। फिर वह भी विवाहके समस्त मङ्गल कार्य किया करती हैं। कुलकी प्रथाके अनुसार सम्प्रदानके पीछे वर

तथा कन्याका मातुल यथाक्रम उन्हें कन्ये पर चढ़ा नाचते रहते और परस्पर कुटुम्ब निक्षेप करते हैं। फिर वर कन्याके साथ घोड़े पर बैठ अपने घर आता है।

कन्या प्रथम ऋतुमती होनेसे पुष्पोत्सवकी धूम पड़ जाती है। कन्याकी साथ लेकर उसके पिता माता आत्मीय कुटुम्बी गाते बजाते और नाचते कूदते वरके घर पहुँचते हैं। वहाँ खूब हलदी चलती है। वरपक्षकी रमणियां स्थानभेद और कुलाचारके अनुसार कन्याकी आदर-अभ्यर्थना और पूजा करके फिर उसे पिच्छ-गृहको भेज देती हैं। प्रथम ऋतुमती तीन दिन अलग किसी कोठरीमें रहती और चौथे दिन स्नान करती है। उसी दिन वर महासमारोहसे श्वसुरालय जा गर्भाधानक्रिया सम्पन्न करता है। कन्या गर्भवती होनेसे छतीय मास वस्त्रदान और सप्तम मास साधभक्षण उत्सव होता है। सधवा रमणियां प्रत्यह आकर गर्भवतीको मीठे मीठे गीत सुनाती हैं। प्रसव होनेसे उस घरमें दूसरी गर्भवती रहने नहीं पाती। उसे विना विनम्र दूसरे स्थान पर पहुँचा देते हैं। मन्तान प्रसूत होने पर भी पञ्चम दिवस कोई विवाहित रमणी घरमें रहने नहीं पाती। उसे स्वामीके पास अथवा निकटस्थ आत्मीय कुटुम्बीके घर उस दिन और उस रातके लिये भेज देते हैं।

कोमती दश दिन अशौच ग्रहण करते हैं। द्वादश दिनकी आह होता है। आहदि अथवा किसी दूसरे गुरुतर कार्यमें आवश्यक होनेसे यह लोग शङ्कराचार्यके सहकारी भास्कराचार्यके मतानुसार कार्य करते हैं।

कोई दोष करने पर अर्थदण्ड लगता है। यह रुपया गुरुका प्राप्य है।

कोमर (हि० पु०) कोषविशेष, खेतका एक कोना। यह एक तर्फ कुछ ज्यादा बढ जाता है।

कोमल (सं० त्रि०) कु-कमल् बाहुलकात् सुट् च, यद्वा कम-कलच् । १ मृदुल, सुलायम, नर्म। इसका संस्कृत पर्याय—सुकुमार, मृदु, मृदुल और पेक्षव है। २ मनोहर, दिलकश। (क्ली०) ३ जल, पानी। ४ सूक्ष्म और मिष्ट स्वर, बारीक और मीठी आवाज। स्वरतीन प्रकारके हैं—शुद्ध, तीव्र और कोमल। पण्ड्य और पञ्चम शुद्ध

होते हैं, उनमें कोई विकार नहीं रहता। अवशिष्ट कृष्ण, गन्धार, मध्यम, धैवत और निषाद-कोमल एवं तीव्र भेदसे दो दो प्रकारके हैं। इनमें धीमे और कुछ उत्तरे स्वरको कोमल कहते हैं। भैरवीमें केवल शुद्ध और कामल स्वर लगते हैं।

कोमलक (सं० त्रि०) कोमल स्वार्थ कन्। १ मृदु, सुला-यम। (क्ली०) संज्ञायां कन्। २ मृणाल, कमलकी छल्ली। ३ पद्मकाष्ठ।

कोमलकदल (सं० क्ली०) बालकदलफल, कच्चा केला। यह शीत, मधुर, कषाय, रुच्य, अम्ल और पित्तघ्न होता है।

(वैद्यकनिघण्टु)

कोमलता (सं० स्त्री०) कोमलस्य भावः, कोमल-तल। १ मादं, नरमो। २ सौकुमार्यं, खूबसूरती। ३ माधुर्यं, लालित्य। “कोमलता कुच तैः गुलाब तैः सुगन्ध लेके।” (ठाकुर)

कोमलदल (सं० क्ली०) पद्म, कमल।

कोमलनारिकेल (सं० क्ली०) बालनारिकेल, डाम।

कोमलपत्रक (सं० पु०) कोमलं पत्रमस्य, बहुव्री०। शिशु, सङ्गिजना।

कोमलप्रसव (सं० पु०) श्वेतभिण्टी, सफेद कटसरैया।

कोमलवल्कला (सं० स्त्री०) कोमलं वल्कलं यस्य, बहु-मा०। खवलीवृक्ष, हरफली।

कोमला (सं० स्त्री०) कोमल-टाप्। १ चीरिका, छिरनी। २ खर्जूरिका, खजूर। ३ आलङ्कारिक मतसिद्ध वृत्तिविशेष।

कोमलासन (सं० क्ली०) मृगचर्म-निर्मित आसन।

आसन देखो।

कोमलेष्टु (सं० पु०) इष्टुविशेष, कच्ची ईख। यह मेद, कफ और मेहकारी होता है। (वैद्यकनिघण्टु)

कोमारपायक—बम्बई-प्रान्तके कनाड़ा जिलेकी एक जाति। यह समुद्रके किनारे किनारे पाये जाते हैं। कारवाड़के सदाशिवगढ़, माजकी, कारवाड़, भिक्की, अरगी, तोदुर और चंदिआ, अक्कोलाके असुर तथा अक्कोला और कुमताके गोकर्ण और कुमतमें इनका केन्द्र है। कोमारपायक अपनेको निजाम राज्यके गुल-बगंसे गया हुआ बतलाते हैं। इनके गुरु कलादगीके कुमारस्वामी रहे। कहते हैं, पहले कोमारपायक

सोडा-राज्यके सिपाहियोंमें भरती थे। १७६३ ई०को हैदर अलीके कनाड़ा जीतने पड़े यह लूटमार मचाने लगे, किन्तु १७८८ ई०को अङ्गरेजों होने पर शान्त और संयत हो गये। इनकी मातृभाषा विकृत कनाड़ी है। यह कीङ्कणी भी बोला करते हैं। कोमारपायकोंमें शराब पीनेकी चाल नहीं। विधवाओंको अलङ्कार पहननेका निषेध है। यह परिश्रमी, बलवान्, मितव्ययी और संयमी होते हैं। इनमें खांग करनेकी बड़ी मण्डलियां हैं। विधवाविवाह होता है। कुछ लोग कनाड़ी लिख पढ़ सकते और अपने लड़कोंको स्कूल भेजते हैं। वासव, वेङ्कटरमण, कालभैरव, महापुरुष और महासतियां देवता हैं। गोकर्ण, तिरुपति, पण्डरपुर और काशी इनका तीर्थस्थान है।

कोमासिका (सं० स्त्री०) ईषत् उमा अतसीवृक्षः स इव चास्ते, आस-खल् टाप् अत इत्वम्। जालिका, फल-का जाला।

कोम्पनी (अ० स्त्री० = Company) जनसमूह, जमात, मण्डली। बहुसंख्यक लोगोंके मिलकर कोई काम-काज करनेसे उनके समष्टिको कोम्पनी या कम्पनी कहते हैं। साधारणतः यह शब्द व्यवसाय वाणिज्यके लिये ही व्यवहृत होता है। इस देशमें मिलजुल कर किया जानेवाला काम बहुत है। परन्तु पहले उसे कम्पनी न कहते थे। आजकल बहुतसे व्यवसायी अपनी दूकानके नाममें कम्पनी या ‘एण्ड को०’ लगा देते हैं।

अंग्रेजोंको भारतमें आने पर कम्पनी, उनके रुपयेको कम्पनीका रुपया और उनकी भारतीय सेनाको कम्पनीकी फौज कहते थे। किन्तु कम्पनीका राजत्व अब उठ गया है। यह राजत्व भारतमें प्रायः १०० वर्ष चला।

पहले भारतको युरोपीय लोग ईष्ट इण्डिया और अमेरिकाको वेष्ट इण्डिया कहते थे। युरोपीय जानते थे कि हिन्दुस्थान नामक एक धनशाली देश पृथिवी पर विद्यमान है। परन्तु यह किसीकी मालूम न था, वह देश कहाँ है। भारतको ढूँढने निकल सन्तों के कोलम्बस अमेरिका आविष्कार कर बैठे। अपना अम

समझके उन्होंने उसका नाम वेष्टइण्डिया या पश्चिम-भारत रखा था। फिर कोलम्बसके आविष्कार करनेसे अमेरिकाकी लोग कोलम्बिया भी कहने लगे। पोर्तूगोज पोताध्वज भास्को-डि-गामा १४८८ ई०की २० वीं मईको प्रथम भारत पहुँचे थे। उसी समयसे पोर्तूगोज इस देशमें वाणिज्य करने लगे, परन्तु उनके व्यवसायके लिये कोई निर्दिष्ट कम्पनी न रही। व्यवसायका लाभ राजकोषमें ही अर्पित होता था।

भारतमें वाणिज्य करनेके लिये अंगरेजोंने ही प्रथम 'ईष्ट-इण्डिया-कम्पनी' नामकी एक कम्पनी १५८८ ई०को भारतमें खोली थी। फिर फरासीसियोंने इस नामकी कितनी ही कम्पनियां बनायीं। उनमें पहली १६०४, दूसरी १६११, तीसरी १६१४, चौथी १६४२ और पाँचवीं १६६४ ई०को स्थापित हुई। इसी प्रकार ओलन्दाजोंकी ईष्ट इण्डिया कम्पनी प्रथम १६०२ और द्वितीय १६१८ और दिनेमार्कोकी पहली १६१२ तथा दूसरी १६७० ई०को खोली गयी। खिस लोगोंने भी इसी नाम पर कम्पनी रखी। वह चीनमें वाणिज्य करते थे। अष्ट्रियामें भी 'वेष्टएण्ड ईष्ट इण्डिया' नामकी एक कम्पनी बनी थी, परन्तु अल्प दिन पीछे ही उठ गयी। परन्तु हमारा लक्ष्य अंगरेजोंकी ईष्ट इण्डिया कम्पनी ही है।

पोर्तूगोजोंको भारतमें वाणिज्य करनेसे विवक्षित लाभ उठाते देख ओलन्दाजोंने भी यही चेष्टा की थी। १४८६ ई०में इङ्ग्लैण्डके राजा सप्तम हेनरीने जानुकावाट और उनके तीन पुत्रोंको दो जहाजोंके साथ भारत आविष्कार करने भेजा था। वह अमेरिकाके न्यूफाउण्डलैण्ड प्रभृति नानास्थान आविष्कार करके लौट गये। १५५३ ई०को सर हिउयुविकोवीने एक बार फिर चेष्टा की थी, परन्तु वह भी भारत पहुँच न सके। १५७८ ई०को टिफिन नामक किसी अंगरेजने प्रथम भारतको देखभाल इसका विवरण इङ्ग्लैण्ड भेजा था। उसको देख कर वहाँके लोगोंने भारत पहुँचनेका उद्योग किया। १५८३ ई०को रास्फकिन्, जेम्स न्यूवेरी और लिड्स नामक तीन वचिक भारत पहुँचे थे। परन्तु पोर्तूगोजोंने ईर्ष्यापरवश जोके उन्हें मोषा

नगरमें कैद कर दिया। अन्तको न्यूवेरीने गोवामें एक दूकान खोल जोविका चलायी और लिड्सने दिल्ली-सम्राटके निकट एक नौकरी पायी। फिर साहब बङ्गाल, पेगू, म्याम, सिङ्गल और मलकादीप भ्रमण करके इङ्ग्लैण्ड लौट गये।

पोर्तूगोजोंके पीछे ही ओलन्दाज पूर्वदेशमें वाणिज्य करने लगे। वह अंगरेजोंके हाथ मिर्च बेचते थे। पहले मिर्चका भाव ३) ६० सेर रहा। परन्तु १५८८ ई०को वह भाव बढ़ा ६) ६० से ८) ६० सेर तक बेचने लगे। इस पर अंगरेज वणिक् विरक्त हो फाउण्डर्स-हाल नामक भवनमें १५८८ ई०की २२ वीं दिसम्बरको एक सभा करके भारतमें व्यवसाय करनेके लिये कृतसङ्कल्प हुये। कम्पनीके १२५ हिस्सेदार बने थे। उस समय रानी एलिजाबेथ इङ्ग्लैण्डके सिंहासनपर पधिरित रहीं। कम्पनीके लोगोंने उन्नति साधनकी युक्ति देखा कर रानीके निकट एक आवेदन किया था। रानीने प्रस्तावमें सम्मत हो सर जान मिलडनहाल नामक साहबको दिल्लीसम्राटके पास भेज दिया। सम्राटसे भारतमें वाणिज्य करनेकी अनुमति मांगना ही दूत-प्रेरणका प्रधान उद्देश्य रहा।

इधर कम्पनीका मूलधन तीन लाख और प्रत्येक अंश एक हजार ठहरा था। २५ सितम्बरको १६००) ६० में 'सुसान' नामका एक जहाज और २६ वीं दिसम्बरको हेक्टर और एसेन्स नामक दो जहाज खरीदे गये। यह सब उद्योग हो हो रहा था कि राजस्वविषयक प्रधान कर्मचारी बरले साहबने कम्पनीको एक पत्र लिखा। उसमें कहा गया था कि आपको अपने वाणिज्य-कार्यमें सर एडवर्ड मिचेल्को तत्त्वावधायक बनाना पड़ेगा। परन्तु कम्पनी इस पर सम्मत न हुई। उसने लिखा था—'व्यवसायका काम बड़े चादमियोंको रखनेसे चल न सकेगा। कारबारियोंकी समिति कारबारी चादमियोंसे ही बनेगी। बड़े चादमी अच्छे नाविक हो सकते और अच्छा हिसाब किताब कर सकते हैं। परन्तु जो भद्रवंशजात लोगोंके समाजमें आया जाया करते, व्यवसायका कोई काम उनसे चल न सकेगा। इस प्रकारके लोग होनेसे बहुत-

से, हिस्सेदार बिगड़ पड़ेंगे। अपनी लिखापढ़ी मंजूर न होते भी कम्पनी साहसके साथ काम चलाने लगी। कम्पनीके १२५ साझे बने थे। १६०० ई०की ३१ वीं दिसम्बरको कम्पनीको राजीनामा सम्मतिपत्र मिला। इसको चार्टर (Charter) कहते हैं। यह चार्टर बहुत बड़ा है। इसका नाम "The Governor and Company of the Merchants of London, trading into the East India." अर्थात् भारतमें वाणिज्य करनेवाले लन्दनके वणिकोंकी समिति और उसके अध्यक्ष नाम रखा गया। इस अनुमतिपत्रमें लिखा है—'स्वदेशकी नाविकविद्या और वाणिज्य बढ़ानेके लिये यथोपयुक्त जहाज और नावें लेकर भारत, एशिया और अफ्रीकामें भी जहां कहीं व्यवसायोपयोगी द्वीप या बन्दर आविष्कृत होंगे, कम्पनी वाणिज्य कर सकेगी। कम्पनीका काम देखने भालनेको एक वर्ष एक गवर्नर और २४ सभ्य उपस्थित रहेंगे। छह मास वा एक वर्षके अन्तर नूतन सभ्यों का नियोग और उनका परिवर्तन किया जा सकेगा। इस समय १५ वर्षके लिये ही यह चार्टर दिया जाता है। फिर आवेदन करनेसे और भी समय बढ़ा दिया जावेगा। कम्पनीके लोगोंको छोड़ कर दूसरा कोई पूर्वोक्त खानाका वाणिज्य कर न सकेगा। यदि कोई ऐसा काम करेगा, तो वह राजाके क्रोधका पात्र बनेगा। उसकी द्रव्यसामग्री और जहाज आदि जब्त कर लिये और कर्मचारी कारागारमें डाल दिये जावेंगे। सिवा इसके अपराधियोंको कम्पनीके क्षतिपूरण-स्वरूप दश हजार रुपये देना पड़ेगा। बिना इस कम्पनीकी अनुमतिके किसीको नया अनुमतिपत्र न मिलेगा। कम्पनी अपने कारबारके लिये तीन लाख रुपया ले जा सकेगी। इसी प्रकारकी बहुतसी बातें चार्टरमें लिखी गयीं।

कम्पनीको सनद मिलने पीछे बुद्धिमती रानी एलिजाबेथकी आज्ञासे एक पत्र लिखा गया, परन्तु उसका सरनामा कम्पनीके लोगोंके लिखनेकी खाकी रहा। कारण जिस जिस देशमें बणिक जायेंगे, उसी देशके राजाका नाम लिख वह पत्र उन्हें दे देंगे। उक्त

पत्र इस प्रकारका था—'ईश्वरके अनुग्रहसे आशुचित इङ्ग्लैण्ड, फ्रान्स और आयरलैण्डकी रानी एलिजाबेथ—देशीय महापराक्रमशाली राजाकी सादर सम्भाषण निवेदन करती हैं। ईश्वरने अपनी असीम कृपाके बल विधान किया है कि एक देशका उत्पन्न द्रव्य अपने देशका अभाव पूरा करे और वह स अंग्रेज देशमें, जहां उसका अभाव हो, बंटे जिसमें ईश्वरकी महिमा प्रचारित हो। इससे एक देशके साथ अन्य देशकी सभ्यताका बन्धन टूट होगा। यह सब विवेचना करके और इस विषयमें आपकी सुख्याति सुननेसे आश्वासित होके कि आप विदेशीयोंके लिये बड़ा यत्न किया करते हैं, इस वणिकदलकी आपके राज्यमें व्यवसाय वाणिज्य करनेकी अनुमति दी है। यह लोग आपके देशमें रह, देशकी भाषा पढ़ और आपकी प्रजाके साथ बातचीत करके दोनों राज्योंकी सख्यता बढ़ कर देंगे' इत्यादि।

इसी प्रकारके पत्र आदि लेकर १६०१ ई०की फरवरी मास वणिकोंका एक दल निकल पड़ा था। वह भारत न आ सुमात्रा, यव, मलक्का प्रभृति द्वीपोंके साथ वाणिज्य स्थापन करके लौट गये। १६०४ ई० की द्वितीय अभियान हुआ। तृतीय और चतुर्थ अभियानसे भी कोई विशेष फल न निकला। १६०८ ई० की कप्तान मिडलटनके कर्तृत्वाधीन प्रथम अभियान लगा था। तृतीय अभियानमें कप्तान हफिन्स रहे। वह इङ्ग्लैण्डके राजा प्रथम जेम्स और ईष्ट इण्डिया कम्पनीके दूत बन कर सम्राट् जहांगीरके पास आगरे पहुँचे थे। सम्राट्ने उनकी यथोचित अभ्यर्थना की और उनसे कुछ ही अंगरेज प्रतिनिधिकी भांति अपनी सभामें रहनेकी अनुरोध किया और वार्षिक ३२००० रु० वेतन बांध दिया। परन्तु जेम्स पादरियोंने उनके विरुद्ध सम्राट्को उभाड़ कर कहा था—'हम इनको विष देकर मार डालेंगे। परन्तु सम्राट्ने उनके साथ चतुरताकी अवसरमन कर हफिन्ससे बात दिया आप विवाह करके इसी खान पर रहिये, फिर विषप्रयोगका कोई भय न रहेगा। जहांगीरने उनके लिये एक ईसाई चर्मनी रमखी भंगा दी थी।

इकिन्सने उसके साथ विवाह कर लिया। किन्तु जहाँगीरने अपनी प्रतिज्ञाको पालन न किया था। उन्होंने न तो अंगरेजोंको वाणिज्य करनेका अधिकार और न इकिन्सका नियत किया हुआ वेतन ही दिया। इकिन्स किसी प्रकार पलायन करके जहाज पर चढ़ गये। १६११ ई०को कप्तान मिडलटनने काम्बे नगरमें उपनीत हो पोर्तगीजोंसे युद्ध किया और उक्त नगरमें वाणिज्य करनेका अधिकार पा लिया। सप्तम अभियानमें कप्तान डिपनने आकर मसलीपत्तन और श्याम-देशमें कोठी खोली थी। १६१२ ई०को गुजरातके शासनकर्ताके साथ कम्पनीकी एक सन्धि हुई, जिसके अनुसार सूरत, काम्बे, अहमदाबाद और गोगीमें उसे वाणिज्य करनेकी अनुमति मिली। १६१५ ई०को कप्तान वेष्टकी नौसेना सूरतके निकट ताप्ती नदीके मुँहाने पर आनेसे पोर्तगीजोंने उसको आक्रमण किया था। चार बार लड़ाई हुई। उसमें पोर्तगीजोंने सम्पूर्ण-रूप पराजय स्वीकार किया। जयलाभ करके अंगरेजोंने गगरा, अहमदाबाद और काम्बे नगरमें कोठी खोली सर्वप्रथम सूरतमें अंगरेजोंकी कोठी बनी थी। इसी समय इङ्ग्लैण्डके राजा प्रथम जेम्सने सर टामस-रो साहबको सम्राट् जहाँगीरके निकट प्रेरण किया। इस बार उन्होंने कम्पनीको भारतमें वाणिज्य करनेकी अनुमति दे दी। १६२० ई०को आगरे और पटनेमें कोठी स्थापित हुई। १६२५ ई०को भारतके पूर्व उप-कूल मसलीपत्तनके निकट अमरगांव नगरमें भी एक कोठी खोली गयी। १६३२ ई०को गोलकुण्डके राजासे सनद ले अंगरेजोंने मसलीपत्तनमें वाणिज्य स्थापन किया था। १६३४ ई०को फरवरी मास दिल्लीके सम्राट्ने अंगरेज कम्पनीको बङ्गालमें वाणिज्य करनेकी सनद दी। १६३८ ई०को फ्रान्सिस डे साहबने चन्द-गिरिके राजासे चेन्नापत्तन वा मद्राज नामक स्थान क़ाय करके वहाँ एक दुर्ग निर्माण किया और उसका नाम फोर्ट सेण्ट-जार्ज रखा। अमरगांवसे कोठी उठा कर यहीं लायी गयी थी। पूर्वोक्त सनदके अनुसार १६४० ई०को बङ्गके अन्तर्गत हुगली और १६४२ ई०की बालीखरमें कम्पनीकी कोठी खुली। तीन वर्ष पीछे

होपविल जहाजके डाक्टर बाउटन साहबने सम्राट् शाहजहानकी कन्याकी चिकित्सा करके बादशाहसे कम्पनीके लिये कई अधिकार लाभ किये। दूसरे वर्ष बङ्गालके शासनकर्ताने भी उन्हें वैसे ही अधिकार दिये थे। १६५८ ई०को कासिमबजारमें कम्पनीकी कोठी खुली। १६६१ ई०को इङ्ग्लैण्डके राजाको विवाहसूत्रसे बम्बई नगर मिला था। २५ चार्ल्सने यह कम्पनीको दे डाला। १६८७ ई०को सूरतकी कोठी बम्बई उठ आयी।

१६८१ ई०को मद्राज और बङ्गालका वाणिज्य स्वतन्त्र कर दिया गया। उस समय बङ्गालके अन्तर्गत हुगली, कासिमबजार, पटना, बालीखर, मालदह और ढाकामें कोठी रहती थी। किन्तु १६८६ ई०को बङ्गालके नवाब शायस्ता खान् उन पर अत्याचार करने लगे। उसी समय हुगलीकी कोठी छोड़ अंगरेजोंने सुतानुटी या कलकत्तेमें उसकी खोला था। कलकत्ता देखो। इसी समय मराठोंका भी नानारूप अत्याचार चल रहा था। कम्पनी पर बार बार इस प्रकार अत्याचार होनेसे उसी वर्ष विलायतमें कम्पनीकी एक सभा की गयी। उसमें स्थिर हुआ—कम्पनीका उद्देश केवल व्यवसाय करना ही नहीं है, साथ ही साथ राजत्व बढ़ाना, बहुतसी विपत्तियाँ रहती भी कम्पनीका अधिकार दृढ़ करना और भारतमें एक पराक्रान्त जाति बनना पड़ेगा। फिर इस देशमें शुद्ध वणिक्-रूपसे नहीं, एक प्रबल पराक्रान्त जाति रूपसे कम्पनी दिखायी दी। इसके अनन्तर कम्पनीका वाणिज्य भारतके इतिहाससे संश्लिष्ट है। भारतवर्ष देखो। १८५८ ई०की कम्पनी उठ गयी।

पहली सनदके पीछे बीस बीस वर्षमें उस पर नयी अनुमति लेना पड़ती थी और नूतन अनुमतिपत्र मिलते समय कम्पनीकी कार्यावली देखी जाती थी। और भी दो एक कम्पनियाँ बनी थीं, जो इसीमें मिला गयीं। १८१३ ई०को पारलियामेण्टके तदन्तसे कम्पनी-को भारतमें व्यवसाय करनेका जो एकाधिकार मिला था, बन्द हुआ। १८१३ ई०को चार्टर एक्ट (Charter Act) के अनुसार चीनके व्यवसायका अधिकार रोक दिया और भारतवासियोंको कम्पनीकी नौकरी देने पर

अनुमति हुई। १७७३ ई० को रेगुलेटिंग एक्ट (Regulating Act) के अनुसार बङ्गाल के शासनकर्ता भारत के गवर्नर जनरल मनोनीत हुए। १७७४ ई० को पिट साहब के इण्डिया बिल में कितने ही नई काटछांट की गयी। शेष में १८५८ ई० को सिपाहीविद्रोह (बलवा) के पीछे भारत इङ्ग्लैण्ड-राज के अधीन हुआ और गवर्नर जनरल का नाम वाइसराय या राजप्रतिनिधि रखा गया। सिपाहीविद्रोह देखो।

पहले पहले यही ठहरा था कि कम्पनी के सभी भारत के राजस्व से कड़े पीछे १०॥५० लाभांश पायेंगे और कम्पनी के नौकरों को तनखा दे दी जावेगी। लेकिन बाद में कम्पनी का ईष्ट इण्डिया डायस नामक जो मकान था, बिक गया और कम्पनी का प्रकाण्ड पुस्तकालय राजा के अधीन हुआ। अब भारत-शासन के परिदर्शन का भार सेक्रेटरी प्रभु स्टेट (Secretary of State) को सौंपा गया है। कम्पनी की इस समय क्षतिमात्र शेष है। भारतवर्ष, बङ्गाल, मद्राज, कश्मीर, उपनिवेश आदि शब्द देखो।

कीम्य (वै० त्रि०) कम कर्मणि अत्रत् पृषोदरादिवत् साधुः। काम्य, चाहने योग्य। (सूक् ११।१०१।३)

कीयर (हि० पु०) १ शाक, भाजी, तरकारी। २ पशु-वोंको दिया जानेवाला चरा चारा।

कीयल (हि० स्त्री०) १ कोकिल। कोकिल देखो।

“कोला भर कोयल कुङ्कुमार करे किये।” (मजमूँ)

२ लताविशेष, कोई बेल। इसकी पत्तियां गुलाबकी पत्तियों से कुछ छोटी होती हैं। फूल सफेद और नीले आते हैं। इसमें फलियां भी लगा करती हैं। पत्तियों का रस पीने से सांपका विष मर जाता है। इसका संस्कृत पर्याय—अपराजिता है।

कीयलकीडा—मद्राज प्रान्त के कर्नूल जिले का एक तालुक। यह अक्षा० १४° ५७' एवं १५° २७' उ० और ७७° २७' तथा ७८° ३३' पू० के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ५७२ वर्गमील है। लोकसंख्या प्रायः ८८१४७ है और ८५ गांव इससे लगते हैं। ३१००० इसका राजस्व है। कंडेह नदी पूर्वांश पर बहती है। यहां की भूमि उपजाऊ है।

कीयलकीडा—हैदराबाद-राज्य के महबूबनगर का पहला तालुक। इसका क्षेत्रफल ५४६ वर्गमील, लोकसंख्या ५८०११ और मालगुजारी ६४००० रु० है। १८०५ ई० को यह कोदरूल और पुरगी तथा महबूबनगर में मिला दिया गया।

कीयलपट्टी—मद्राज-प्रान्त के तिरुवेली जिले के सातूर तालुक में साठथ इण्डियन रेलवे का एक स्टेशन। यह एक इनामी गांव है और अक्षा० ८° १०' उ० तथा देशा० ७७° ५२' पू० में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ३४१५ लगती है। इसका जलवायु सूखा तथा स्वास्थ्यकर है। सूत कातने का एक पुतलीघर कीयल-पट्टी में चलता और गवर्नमेंट की खेती भी होती है।

कीयला (हि० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह आसाम में उपजता और बहुत बढ़ता है। कीयल का काष्ठ चिक्का, कठोर तथा सुहृद रहता और गृहनिर्माण आदि कार्यों में लगता है। पत्तियों को रेशम के कीड़े खाते हैं। इसका दूसरा नाम सोम है।

कीयला (हि० पु०) अङ्गार, किसी चीज का जला हुआ वह हिस्सा, जो पूरी तरह खाक न हो और काला पड़ जाय। वृक्ष आदिके दग्धावशिष्ट कण्ठावर्ण कठिन पदार्थों को इस देश में साधारणतः कीयला कहते हैं। आपाततः कीयला दो प्रकार का देख पड़ता है—१ अग्निदग्ध काष्ठ आदिका कीयला और २ रा भूगर्भ से उत्पन्न खनिज कीयला। खनिज कीयल को संस्कृत भाषा में मृद-ङ्गार और लकड़ी के कीयल को अङ्गार ही कहते हैं। पत्थर का (खनिज) कीयला भी भूगर्भ के आभ्यन्तर ताप में दग्धावशिष्ट रासायनिक क्रिया से उत्पन्न वृक्ष आदिका अवशिष्ट अंश है। जीवों के शरीर से भी कीयला निकलता है, किन्तु उसका परिमाण प्रत्यक्ष ही रहता है।

इसे बङ्गाल में आंगरा या कयला, दक्षिणात्य में कोलसा, तामिल में सिमाइकरी, तेलगु में बोम्बु, मलया में करि, कर्णाटी में इहालु, गुजराती में कीयलो, सैंडली में अङ्गूर और ब्रह्मी में मिसुए कहते हैं।

प्राकृतिक गठनप्रणाली के अनुसार पदार्थतत्त्ववेत्ता-वीने कीयल की कई श्रेणियां निर्धारण की हैं। खनिज-तत्त्ववेत्ता इसे दो भागों में बांटते हैं। उनमें एक

भाग शिखराजतुविशिष्ट रहता और दूसरेमें यह नहीं मिलता। शिखराजतुरहित कोयलेका ही नाम पत्थरका कोयला है। पत्थरका कोयला बहुत कड़ा होता है। इसकी जलानेमें व्यवहार करते हैं। अमेरिकामें इस जातिके कोयलेसे दावात, सन्दूक आदि व्यवहार्य वस्तु भी प्रसृत होते हैं। शिखराजतुविशिष्ट कोयलेकी नामाविध अशिया और उनके स्वतन्त्र नाम हैं। पत्थरके कोयलेसे यह कोयला बहुत कोमल होता है। इसका आपेक्षिक गुणत्व भी उसकी अपेक्षा कम है।

पिच कोयला—का वर्ण ईषत् धूसर क्षणवर्णके मखमल-जैसा होता है। यह अग्निमें डालनेसे चटख कर टूट पड़ता; किन्तु उसके पीछे यदि फिर उत्ताप मिलता, तो सबके सब गलकर ढेर हो रहता और बराबर जला करता है। जलनेके समय इस कोयलेकी लपट कुछ पीली लगती है। परन्तु बार बार इसे उलटाते न रहनेसे इसकी आग बुझ जाती है। इङ्ग्लैण्डके ग्लासिल नामक स्थानकी खनिमें पिच कोयला बहुत मिलता है।

लाल कोयला—देखनेमें ठीक पिच कोयले जैसा ही रहता और उसीकी तरह यह भी आग लगते ही फूट कर छिटक पड़ता है, परन्तु गलते गलते जमता नहीं। लाल कोयला बहुत भस्मप्रवण है, इसलिये खनिसे निकालनेमें यथेष्ट क्षति होती है। इससे जलते समय परिष्कार पीतवर्णकी शिखा उठा करती है। इङ्ग्लैण्डके ग्लासगो नामक स्थानकी खानमें यही कोयला अधिक है। अंगरेजीमें इसे चेरी कोल (Cherry coal) कहते हैं।

बत्तीका कोयला—पीछवर्ण नहीं रहता। इसका गठन अधिक दृढ़ और मजबूत है। अग्नि पानेसे यह भी चटख कर छिटक पड़ता और अति शीघ्र जलता है। इससे पीतवर्ण अग्निशिखा निर्गत होती है। बत्तीका कोयला आगमें नहीं लगता, जला ही करता है। इससे एक प्रकारकी बत्ती, दावात, नासदानी आदि व्यवहार्य वस्तु प्रसृत होते हैं।

काठ कोयला—उसे कहते हैं, जिसके काठका अंश सम्पूर्ण रूपसे कोयला न बना हो। इसका रंग कुछ

गुलाबी लिये काका रहता और जलानेसे अतिशय मजबूत निकलता है। अणुवीक्षण (खुदबीन) यन्त्रसे इसकी गठनप्रणाली जानने पर अपरिवर्तित काठका अंश स्पष्ट देख पड़ता है। भारतवर्षके उपकुल भागमें काठ कोयला मिलता है। इसमें जलीयांश अधिक होता है; यहां तक कि अकारसारसे उसका परिमाण प्रायः समान बैठता है। प्राचीनतम कोयलेके स्तरोंकी अपेक्षा इस कोयलेके स्तर आधुनिक जैसे अनुमित होते हैं।

मसीकण्य कोयला—भी एक प्रकारका शिखराजतु मिला कोयला है। यह हलशाखाकी भांति आकृति-विशिष्ट होकर भूस्तरमें उपजता और कोमल तथा भस्मप्रवण रहता है। इसका आपेक्षिक गुणत्व पानीसे कुछ अधिक पड़ता और वर्ण गहरे काले मखमल-जैसा लगता है। इसमें रालकी तरह एक प्रकार पीछवर्ण दृष्टिगोचर होता है। दक्षिण-भारतमें यह मिलता है। इसमें जो उत्कृष्ट रहता, उससे काँचकी चूड़ियों जैसा एक गहना बनता और मन्दांश जलानेमें लगता है। इसके जलते समय बरी लपट उठती और महीके तेल जैसी बदबू निकलती है। मसीकण्य कोयलेमें सैकड़ों पीछे १० भाग दाह्य और वायवीय होता है।

भारतवर्षके प्रायः सभी प्रदेशोंमें कोयलेकी खनि हैं। इन खानोंमें जो कोयले मिलते, युरोपके कोयलोंकी तरह भूस्तर-सङ्गठनके अकार-युगका वस्तु नहीं ठहरते। दक्षिणात्यमें पाया जानेवाला कोयला गोण्डवन कोयला (Gondwana system) कहलाता है। भूस्तरसङ्गठनके द्वितीय युगमें उत्पन्न होनेवाले अकारस्तरके गठन-प्रकारसे गोण्डवन-कोयला मिलता है। दक्षिणात्यके वहिर्भागमें मिलनेवाले कोयलेकी खानें भूस्तरसङ्गठनके तृतीय युगकी गठनभङ्गिमा रखती हैं।

यह कोयला उत्तरपूर्व अक्षांश और मध्यभारतमें भी मिलता है। भूस्तरगठनके तृतीय युगका उत्पन्न कोयला सेंधवीय और ग्राह्य प्रदेशके वहिर्भाग सब स्थानोंमें होता है। दोनों प्रकारके कोयलेमें सर्वोत्कृष्ट जैसा विविध होनेवाला प्रायः सबसे अच्छे युरोपीय कोयले-जैसा निकलता है। गोण्डवन कोयलेमें भस्मका भाग कुछ अधिक रहता है, फिर किसी खानके कोयलेमें जलीय

भाग भी कम नहीं पड़ता। तृतीय युग के कोयले में भस्म-भाग अपेक्षाकृत कम और दाह्य पदार्थों का अंश अधिक रहता है। गोंडवन कोयले से यह हलका होता है। गोंडवन कोयले में बक्कास का और तीसरे युग के कोयले में आसाम का कोयला प्रधान समझा जाता है। बक्कास और आसाम के कोयले में कितना दाह्य पदार्थ, कितना जलीयाँ और कितना भस्म है—यह नीचे लिखे नमूनें समझिये—

बक्कास का कोयला		आसाम का कोयला	
माप	उत्कट	माप	उत्कट
भस्म ... १६.१०	४.४०	१.०२	०.४
जलीयाँ ... ४.००	०.२६	५.०	
दाह्य पदार्थ (जलीयाँ) २५.०८	१८.१२	१४.०६	११.५
अकारसार ... ५१.२०	६६.२२	५६.५	६६.१

बक्कास के निम्नलिखित स्थानों में कोयले को खानें हैं—
रानीगंज-क्षेत्र—हो भारतवर्ष के उन सब स्थानों में बड़ा और प्रयोजनीय है, जहाँ कोयला आविष्कृत हुआ है। कलकत्ता के प्रति निकट भारत के प्रधान रेलपथ पर रहने से इसका व्यवसाय बहुत विस्तृत है। यह स्थान कलकत्ते से १२० मील उत्तर-पश्चिम बक्कास के पार्वत्य प्रदेश में अवस्थित है। यहाँ प्रायः ५०० वर्गमील भूमि से कोयला निकाला जाता है। किन्तु अनुमान लगाते हैं कि इससे दूनी जगह में कोयला भरा है। कारण खान जितनी हो बढ़ती, पूर्वकी ओर उसकी गभीरता और कोयले की अधिकता देख पड़ती है। ऐसा अनुमित हुआ है—रानीगंज क्षेत्र में नष्ट हो जानेवाले को छोड़ कर १४ करोड़ टन कोयला मौजूद है। यहाँ कोयले के परतों (Seams) में कोई कोई प्रायः ७०-८० फुट तक मोटा है। परन्तु परत अधिक मोटा होने से उसमें अच्छा कोयला नहीं रहता।

भरिया—रानीगंज के कोयला क्षेत्र से ८ कोस पश्चिम दामोदर नदी के निकट अवस्थित है। यह समस्त क्षेत्र मानभूम जिले में लगा और प्रायः २०० मील विस्तृत है। इसके परत में होनेवाला कोयला रानीगंज के कोयले से अच्छा रहता और जलनेवाला अंश भी अधिक निकलता है। इस क्षेत्र के परत सब स्थानों पर बराबर भिटे

नहीं होते। भरिया से ४६५.०००.०० टन कोयला निकलता है।

बोकारो—भरिया से २ मील पश्चिम दामोदर के निकट पड़ता और २२० मील विस्तृत लगता है। यहाँ मध्यम कोयला होता है। परत बहुत लम्बे हैं। एक एक परत ८२ फुट तक मोटा बैठता है। यहाँ प्रायः १५०००००.०० टन कोयला मिल सकता है।

रामगढ़—बोकारो क्षेत्र से दक्षिण अवस्थित है। इसका कोयला बहुत अच्छा नहीं होता। यहाँ परत बहुत हैं, परन्तु वह थोड़ी ही दूर तक विस्तृत हैं। पश्चिम सीमा में हजारोबाग से रांची तक एक राह है। बहुत से खोखे अनुमान लगाते हैं—यहाँ अपने आप भूमि के उपरिभाग में कोयला निकल आता, जो देशीय लोगों के हाथों संकलित हो रांची बिजने जाता है। रामगढ़ क्षेत्र ४० वर्गमील विस्तृत है। यहाँ ५००००००.०० टन कोयला निकाला जा सकता है।

उत्तर करणपुर—रामगढ़ से पश्चिम दामोदर को उत्पत्ति स्थान के निकट अवस्थित और प्रायः ४७२ वर्गमील विस्तृत है। इस क्षेत्र में कोयला भी प्रायः ८७५.०००.०० टन विद्यमान है।

दक्षिण करणपुर—उत्तर करणपुर से दक्षिण प्रायः ७२ वर्गमील विस्तृत है। यहाँ प्रायः ७५०००.०० टन विशेष उत्तापजनक कोयला मौजूद है।

चोपेक्षेत्र—केवल १ वर्गमील विस्तृत और हजारोबाग की उपजाऊ भूमि पर अवस्थित है।

इटकुरी—हजारोबाग से २५ मील उत्तर-पश्चिम विस्तृत है। यहाँ कोयले के थोड़े से सामान्य परत मिले हैं।

घोरङ्ग—बोहारडागा जिले में कोयल नदी के तीरे अवस्थित है। कोयल शीत-नदी की एक उपनदी है। यह क्षेत्र प्रायः ८७ वर्गमील लम्बा चौड़ा है। इसमें से २०००००.०० टन कोयला निकल सकता है। यहाँ भी जो कोयला अपने आप मही से निकलता, बहुत अच्छा नहीं ठहरता।

हुतार—घोरङ्ग क्षेत्र से पश्चिम ८८ वर्गमील विस्तृत है। इसकी खान का कोयला अच्छा होता है।

ठाकुरनग—कोयल नदी के तीरे २०० वर्गमील

कच्चा चोड़ा क्षेत्र है। परत छोड़े और ६।६ फुट मोटे हैं। कोयला बहुत समृद्ध निकलता है। यहां अनुमानतः ११६०००० टन कोयला निकाला जा सकता है।

करहारबारी—कलकत्तेसे २०० मील पश्चिम बजारी-बाग जिलेमें अवस्थित और ८ बर्ग मील विस्तृत है। यहां बहुत बढ़िया कोयला होता है। इस क्षेत्रमें ३ बड़े और १६ फुट मोटे परत हैं। प्रायः १३६००००० टन कोयला विद्यमान है। पत्थरोंके कामको राजीगखसे यह कोयला अच्छा है।

देवघरमें—जयन्ती, शाहाजारी और कश्चित्त कहेया नामक तीन क्षेत्र परस्पर अति निकट अवस्थित हैं। यहां कई तरहका कोयला निकलता है। जयन्तीका कोयला अति उत्कृष्ट, परन्तु शाहाजारीका खराब है।

राजमहल—राजमहल पर्वतके पश्चिमांशमें यह पार्वत्य क्षेत्र बहुत दूर तक चला गया है, परन्तु अभी थोड़े ही खानमें काम लगा है। बीच बीच पर्वतके शिखरोंका व्यवधान पड़ जानेसे हुडा, चापारभिता, पाची याड़ा, मियुघुड़ी और ब्राह्मचो पांच विभाग किये गये हैं। इस स्थानका कोयला अच्छा नहीं, प्रायः पत्थर जैसा होता है। किसी भागमें परत बहुत नहीं बड़े। पूर्व दिक्को यदि कोयलेके परत निकलें, तो यहांसे कोयला बाहर भेजनेमें बड़ा सुभीता पड़े, क्योंकि गङ्गानदी निकट ही है।

डहीसेकी ब्राह्मची नदीके तीरे ताकचिरमें ७०० बर्ग मील विस्तृत कोयलेका क्षेत्र है। परन्तु इसका कोयला अच्छा नहीं होता।

पासाममें जो कई एक क्षेत्र हैं, उनमें उलफा पहाड़के क्षेत्रसे मीडवन कोयला मिलता है। परन्तु यहां कोयलेका स्तर ५।६ फुटसे अधिक मोटा न होनेसे सब काम रुका है।

खसिया और जयन्तीपहाड़के क्षेत्रमें—भूस्तर-गठन-द्वितीय युग और प्रायियुगके स्तर-जैसा कोयलेका स्तर देख पड़ता है। मियोवेलिक नामक खानमें जो कोयला निकलता, पम्परिटी नामक मन्थक प्रधान

चातुका भाग अधिक रहनेसे जलानेके काममें नहीं लगता, फिर भी शिलाङ्ग ऐशन पर व्यवहृत होता है। यहांके और लाङ्गपिन नामक खानके कोयलेका स्तर द्वितीय युग और चेरापूँजीके कोयलेका स्तर प्रायियुगका है। जयन्तीपर्वतके समीर, लाकाडोङ्ग, नरपुर, शाटि-हा और सेरमाङ्ग नामक खानोंके कोयलेमें चकार-मारका भाग यथेष्ट है। यहां एकमात्र लाकाडोङ्ग क्षेत्रसे ही १५००००० टन कोयला निकल सकता है।

गारीपर्वतके—दरङ्गगिरि क्षेत्रमें प्रायः ७ फुट मोटे कोयलेका परत है। किन्तु वहां चंगरेजोंके काम पहुँचनेसे कोयला निकाला नहीं जाता।

उत्तर पासाम—माकुम नामक क्षेत्रमें कोयलेके कितने ही बड़े बड़े परत हैं। उनमें एक १०० और एक ७५ फुट मोटा है। यहां बहुत अच्छा कोयला होता और प्रायः १८०००००० टन मिल सकता है। जयपुर नामक क्षेत्रका कोयला वैसा अच्छा नहीं रहता। दो चार परतोंमें अच्छा कोयला भी मिलता है। इस क्षेत्रमें प्रायः १००००००० टन कोयला होगा। नाजिर नामक क्षेत्रमें कितने ही परत हैं। उनमें अधिकांश ३० फुट या इससे भी मोटा है। जांग्री और डिसाई नामक और भी दो क्षेत्र यहां विद्यमान हैं।

ब्रह्मदेश और भारतके पूर्व अंशमें निम्नलिखित खानों पर कोयला होता है—

अरकान प्रदेशके अन्तर्गत परङ्गा हीपमें तीन और पेनक्रियङ्ग हीपमें एक कोयलेकी खान है। रामरी हीपमें जो खनि है, उसका एक परत प्रायः ६ फुट मोटा है। चेदुवाभूमिमें भी कोयलेकी खान है। पेगू प्रदेशमें १८५५ ई०को प्रथम ग्रेयटमेयोकी खनि आविष्कृत हुई। किन्तु थोड़े दिनों पीछे यहां काम बन्द हो गया। सिवा इसके तेनासरिम और उत्तर-ब्रह्मके नाना खानोंमें कोयलेकी खानि निकली है।

युक्तप्रदेशमें तातापानी, हरिया और मोरन नामक तीनों क्षेत्र शोषनदके निकट हैं। यहां परतोंमें जो कोयला मिलता, उससे खूब काम चलता है। मिंग रावली नामक खानके कोटाक्षेत्रका कार्य सम्पत्ति बन्द हो गया है। सोहागपुरक्षेत्रके परत निम्नलिखित

रही हैं; सुतरां यहाँ कोयला निकालनेका बड़ा सुभीता है। एतद्भिन्न जोड़ला, उमरिया, कोरर, भिलमिल, चित्रामपुर, लक्ष्मपुर प्रभृति स्थानोंमें भी कोयलेके क्षेत्र हैं। इनमें उमरियाका क्षेत्र सबसे बड़ा है।

मध्यभारतमें मझानदीके निकट रायगढ़, डिङ्गिर, उदयपुर और कोर्वाक्षेत्र है। इनमें कोर्वाक्षेत्रका कोयला बहुत अच्छा और परत मोटा है। नर्मदा नदी और सतपुरा पर्वतके बीच मझापानीक्षेत्र बहुत बड़ा है। इसके कोयलेसे ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवेका काम चलता है। सिवा इसके तोया उपत्यकाके शाहपुर या विठ्ठलक्षेत्र, पेंच उपत्यका और वर्ध-गोदावरी उपत्यकाके बन्दरक्षेत्रमें बहुत कोयला होता है।

बरारमें बर्धा या चण्डक्षेत्रकी खनि बहुत बड़ी है। यहाँ बरोरा, धूगुस, बुन और पापुर तथा पछी एवं पीनोमें कोयला होता है।

बम्बई विभागके कच्छ, सिन्धु, बोलन गिरिवर्गके माछ नामक स्थान, हरणार्ड गिरिपथके शाहुरिग, कोनी पठानराज्यके समारलङ्ग, वजीरी राज्यके कानीगरम, लवणपर्वत, कुलावा आदि स्थानोंमें कोयलेकी खानि है। पञ्जाब लवणपर्वतके अम्ब, सुं गीलवर, चम्बल, कुइ, शोभाखान, देवल, नूरपुर (नीलवन,) केरली, दाङ्गत, पीड़, भगवान बल आदि स्थानोंमें कोयला मिलता है। पीड़ खानिका कोयला ही इस देशमें जलाया जाता है। भगवानबलके कोयलेमें पाइरिटीज नामक गन्धकप्रधान धातुका भाग अधिक और अति विषिक्त होता है। इसीलिये यह जलानेके काममें नहीं लगता।

हिमालय पर्वत पर पञ्चनदीके तीरवर्ती डांडकी सङ्गरमार्ग पर्वतके उत्तर-पश्चिम भागमें प्राचीयुगके कोयलेका स्तर देख पड़ता है। शिवालिक पर्वतमें कोयले-जैसा पदार्थ और अपरिपुष्ट कोयला तो मिलता है, परन्तु उससे काम नहीं निकलता। शिकिमके डालिस्लोट नामक स्थानोंमें गोखवनकी भांति छोटा छोटा कोयला होता है। यहाँ कोयलेकी एक तुकड़ी

मिलती, जो पेनसिलके जाले सीसे-जैसी ठहरती है।

मन्दाजके बोहादानोल, मादवेरम, लिङ्गला, सिङ्गा-रेखी, कामारम, टांडूर, अन्तरगाव, पछी और पीनो आदि स्थानोंमें कोयला निकलता है।

१७७४ ई० की सर्वप्रथम बङ्गालमें कोयला निकालनेका काम पारम्भ हुआ था। उस समय बङ्गाल सिविल-सरविसके डिप्टी और सामार नामक दो व्यक्ति इसका एकाधिकृत व्यवसाय करते थे। इन्होंने पहले रानीगञ्जमें काम लगाया था, परन्तु अतिथस्त होनेसे उसे बन्द कर दिया और १८१५ ई० तक इसका काम बन्द रहा। फिर जोस्का नामक एक व्यक्ति काम करने लगे, परन्तु कोई सुविधा न मिलने पर १८२० ई० तक छोड़ बैठे। अलेगजण्डर-एण्ड-कम्पनी नामक वणिकोंके एक दलने इसी वर्ष फिर कार्य पारम्भ किया था। इस वर्षसे १८५८ ई० के बीच इन लोगोंके हार्थों ५० स्थानोंका काम चलता रहा। उस समय २७ एक्जिन चलते और १६०० लोग काम करते थे। खानि १२० फुट पर्यन्त गभीर खोदी गयी थी। यह खान दामोदर नदीके तल पर्यन्त प्रायः १ मील विस्तृत थी। १८४० ई० की यहाँ १५ लाख मन कोयला निकाला गया था। फिर धीरे धीरे परिमाण बढ़ने लगा और शेषको १८६० ई० में प्रायः चतुर्गुण हो गया।

भारतका कोयला प्रायः अधिकांश रेलवेके कार्यमें व्यवहृत होता है। रानीगञ्ज या बङ्गालका कोयला कलकत्तेके पुतलीघरों और जहाजोंमें लगता है। फिर छोटा छोटा कोयला ईंटोंके पजावेमें पड़ता और सबसे छोटा घरोंमें जलता है।

बङ्गालका करद्वारवारी क्षेत्र सर्वापिचा सुदूर रहते भी यहाँ उत्तोलन-प्रधाने सर्वापिचा उत्पत्तिकाभ किया है। बङ्गालके अन्ध्यान्ध क्षेत्रोंमें भी इसी स्थानके अनुकरणसे काम चलता है। कोयलेकी खानमें सवेरे ६ बजेसे सन्ध्याको ६ बजे तक काम होता है। आवश्यक होनेसे रात तक मजदूर नहीं छूटते। सप्ताहमें ४ दिन बड़े जोरसे काम चलता है। खननकार्यमें निम्नश्रेणीके हिन्दू और सुसलमान तथा सन्ताल कोस आदि निरुक्त होते हैं। प्रति रविवारको उन्हें वेतन मिलता है।

बङ्गालके बाडरी लोग खान खोदनेमें बड़े दक्ष हैं। खानके बीचसे पानी निकालनेको एन्जिनके सहारे नल लगता और वायु पाने जानेके लिये धूमनलकी भांति शून्यगर्भ स्तम्भ बनता है। परन्तु बहुतसी खानोंमें यह बात नहीं रहती। अन्धकारवशतः लोग पलीता जलाकर काम करते हैं। जिस खानमें तेल या गन्धकका परिमाण अधिक रहता, पलीतकी आगसे समय समय बड़ी विपद् पड़ जाती है।

खनक खनिके निकट ही छुद्र छुद्र कुटीर बना वास करते हैं। प्रत्येक कुटीरमें एक छुद्र वासगृह, एक शय्यशाला और एक गोशाला रखते हैं। शीतकाल और ग्रीष्मकालकी जब खानमें काम चला करता, यह लोग उसमें लगे रहते हैं, किन्तु वर्षाकालके तीन मास (जुलाई, अगस्त, सितम्बर) अपनी खेतीबारी देखते हैं। फिर बहुतसे लोग बारह मास केवल खानमें ही काम किया करते हैं। सोमवारकी खनक सप्ताहकी छुट्टी पाते हैं।

कोयलेका घाना जाना लगा रहता है। जो जहाज इस देशसे बाहर जाते, उनमें खर्चके लिये भरा जाने-वाला कोयला ही भारतके कोयलेकी रफ्तनी है। बम्बई कपड़ेके पुतलीघरोंके लिये बङ्गाल और निजामके राजसे कोयलेकी आमदनो होती है।

कोक-कोयला—यह है, जो गृहस्थोंके घरमें जला करता है। यह खानका सीधा निकला नहीं होता। इसे पेंचमें जला और तेल आदि निकाल करके तैयार करते हैं। खानका कोयला सामान्यतः कच्चा कोयला कहलाता है। कोक इस देशमें बनाया और अन्यान्य देशोंसे भी मंगाया जाता है। भारतका कोक कठिन और कोमल दो प्रकारका होता है। कठिन कोक लोहेके कारखानों और छोटे छोटे पक्कनों तथा कोमल कोक जिससे जलते समय धूँवाँ निकलता रन्ध्र आदि कार्योंमें व्यवहृत होता है।

बहुतसे विचक्षण डाक्टर कहा करते हैं कि कलकत्ते और तत्निकटवर्ती खानोंमें अधिकतर लोगोंकी अन्धरोग जगनेका प्रधान कारण इसी कोयलेकी आगसे भोजन बनाकर खाना है। यह बात द्रव्यतत्त्वानु-

सन्वादी लोगोंका मनोयोग आकर्षण न कर सकते भी नितान्त अमूलक जैसी नहीं समझ पड़ती। कारण कोयलेकी आगसे बना हुआ भोजन खानेमें कम अच्छा लगता है।

कोयष्टि (सं० पु०) कं जलं यष्टिरिवास्थ, बहुव्री० पृषो-
दरादिवत् प्रकारस्योकारः। जलकुक्षिभ, एक छोटा सफेद सारस। मनु ५। १२)

कोयष्टिक, कोयष्टि देखो।

कोया (हिं० पु०) १ अस्तिगोशक, आंखका डेला।
२ कटहलका गूदेसे भरा हुआ बीजकोष।

कोया—एक धनवान् विदेशी बणिक। त्रिवाङ्गुडके इति-
हासानुसार जब भास्कररविवर्मा वा (केरलविशेष-
माहात्म्यके मतमें) वाण पेरुमल बीहोंके साथ मक्के
गये, उसके कुछ दिन पोंछे (गुजरातके अभिधानानु-
सार १५ ई० और डा० वनलके मतमें खृष्टीय अष्टम
शताब्दीकी) तल नामक स्थानमें सामरिन-प्रासादके
निकट किसी वर्धिष्णु बणिकने एक ग्राम स्थापन
किया। यह बणिक मक्केके परब बणिकोंसे वाणिज्य
व्यवसाय करके यथेष्ट धनवान् हुये थे। फिर जब
पुत्तराकोन सामरी पद पर अधिष्ठित हुये, उपयुक्त
ग्राममें कोया नामक एक विदेशी धनवान् बणिक रहा
करते थे। इन्हींके नामानुसार ग्राम 'कोरकोट' कह-
लाया। इसी कोरकोट शब्दका अपभ्रंश 'कालिकट'
है। कोयाने परिशेषको सामरीकी राज्यवृद्धि करनेमें यथेष्ट
साहाय्य दिया था। बहुत थोड़े दिन पोंछे ही पोतंगीज
इस देशमें आये।

कोर (सं० पु०) कुल संस्थाने षष्ठगुणः लख रः। शरीर-
का सन्धिविशेष, जिसका कोई जोड़। अङ्गुली, मणिवन्ध,
गुल्फ, जानु और कूर्पर स्थानोंके सन्धिका नाम कोर-
सन्धि है। (सुप्त)

कुल भावे षष्ठ लख रः। २ संस्थान, शरीरका
अवयव।

कोर (हिं० स्त्री०) १ प्रान्तभाग, सिरा हाथिया।
२ डेय, दुग्धनी। ३ दोष, बुराई। ४ पनी, नाक।
५ धार, बाड़। ६ त्रेणी, दरजा। ७ रबो बगैरहकी
पहली सींच। ८ चवेना, मजदूरोंको दी जानेवाली

पनपिलाई। ८ कोण, कोना।

“कोरनमें कनका कोरन लगी फिरे।” (देवकीनन्दन)

कोरई (हिं० स्त्री०) लक्षविशेष, सुंदरकटी नामकी एक घास। यह हिमालय पर कश्मीरसे ब्रह्मदेश पर्यन्त ६००० फुट ऊंची पहाड़ियों और तराइयोंमें जगती है। कोरईकी चटाइयां बहुत बनायी जाती हैं।

कोरंगा (हिं० पुं०) एक प्रकारकी दौरि या टोकरि। इसको गोबर और मट्टीसे लपेट बनाज आदि रखनेमें व्यवहार करते हैं।

कोरंजा (हिं० पुं०) मजदूरीमें दिया जानेवाला बनाज।

कोरक (सं० पुं०-स्त्री०) कुल संस्थाने एवम् लक्ष्य रः। १ कुड्मल, फूलकी कटोरी। (नाच) २ मृणाल, कमलकी डंटी। ३ चकोरपत्ती। ४ चोरक नामक गन्धद्रव्य, चोवा। ५ काकोली, शीतलचीनी।

कोरक (हिं० पुं०) एक प्रकारका बेंत। यह पासाम और ब्रह्मदेशमें उपजता तथा मोटा एवं सुहृद रहता है। इसकी छड़ियां बना करती हैं।

कोरकवृक्ष (सं० पुं०) इक्षुदीवृक्ष, एक पेड़।

कोरकसर (हिं० स्त्री०) न्यूनता, कमी, काट छांट।

कोरकार (सं० त्रि०) कोरं अवयवं करोति, कोर-क-पण्। अवयवसंख्यानकारक, जोड़ लगानेवाला।

कोरकित (सं० त्रि०) कोरकं जातमस्य, तारकादित्वादितच्। मुकुलित, फूटा हुआ, जिसमें कली आ गयी हो।

कोरकू—मध्यप्रदेशकी एक आदिम जाति। इनकी संख्या प्रायः १४०००० है। इसमेंसे १००००० मध्यभारत और अवशिष्ट बरार तथा मध्यभारतमें रहते हैं। होशंगाबाद, निमाड़ और बैतुल जिलेमें सतपुरा पहाड़के पश्चिम कोरकू पाये जाते हैं। ‘कोरकू’ शब्दका अर्थ आदमी (कोर = आदमी और कू = बहुवचनका चिह्न) है। यह छोटानागपुरके कोरवाओंसे मिलते जुलते हैं जो लोगोंके कथनानुसार अपना आदिम अधिवास पंचमढी पर्वत रखते हैं। राज-कोरकू सब राजपूतोंके वंशधर होनेका दावा करते और कहते हैं कि उनके पूर्वपुरुष धारानगरी (उज्जैन)-से पंचमढी पहुँचे थे। इनमें मोवासी और बावरिया कुलीन तथा रुमा और बीदीया नीचका समझे जाते हैं।

कुछ कोरकू कन्याका विवाह करना अशुभ मानते और विना किसी चाल ठालके उसे वरके हाथ सौंप देते हैं। शवको गाढ दिया जाता है। यह हिन्दू हैं और महादेवकी पूजा करते हैं, जिनका पंचमढी पहाड़ पर मन्दिर है। कई ग्राम्यदेवताओंकी भी पूजा होती है। अपनी ईमानदारी और सादगीके लिये खेतीकी नौकरी इन्हें बहुत मिलती है। इनकी भाषा भी कोरकू कहलाती है।

कोरगर—मङ्गकोरके निकट दक्षिण-कनाड़ा में रहनेवाला एक असभ्य जाति। इनकी तीन श्रेणियां हैं—अन्दि-कोरगर, वस्त्रकोरगर और सप्पकोरगर। पहले कोरगरीकी कुमरन, मंगरन नामकी और भी दो श्रेणियां रहों, परन्तु अब वह लोप हो गयी हैं। अन्दियोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। इनके गलेमें एक बरतन लटका करता है। सप्पकोरगर वस्त्रके बदले वृक्षपत्र परिधान करते हैं। तीनों श्रेणियोंमें आदान प्रदान चलता है। विवाहके समय वरकन्याको स्नान कराके एक चटाई पर बैठाते हैं। फिरउन पर चावल छोड़े जाते हैं। कोरगर पवित्र स्थानमें शवको प्रोथित करते और समाधि पर भातके चार गोले बना कर रख देते हैं। उपस्थित वयोव्योष्ठ ही इनका पुरोहित होता है। कश्कन नामक वृक्षके तल पर देवता आदिको पूजते और केलेके पत्ते पर हलदी दिया हुआ भात देवताको निवेदन करते हैं। कमरके नीचे पेड़के पत्ते लपेट लिये अपनी लज्जा निवारण करती हैं। कोरगर कहते हैं—किसी हवशीने अनन्तपुरसे एक दल सेना संग्रह की थी, जिसमें हम-लोग प्रधान रहे। पहले तो हम युद्धमें जीते, परन्तु शत्रुकी हार जाने पर वनमें आश्रय लेना पड़ा।

कोरगांव—बम्बई प्रदेशस्थ सतारा जिलेके मध्यखलका एक उपविभाग। यह अक्षां० १७° २८' एवं १८° १' उ० और देशां० ७४° तथा ७४° १८' पू० पर अवस्थित है। इसके उत्तर खण्डाल और फलटन, पूर्व फलटन तथा खतव, दक्षिण कराड़ और पश्चिम सतारा एवं बाई है। कोरगांवका परिमाण प्रायः १४६ वर्गमील है।

इस उपविभागके चारों ओर पर्वतमाला लगी, केवल दक्षिण-पश्चिम जम्हा नदी बही है। उत्तर और

उत्तर-पूर्वके पर्वत ही अधिक ऊँचे हैं। दक्षिणकी भूमि समतल है। पश्चिमांशकी उपत्यकामें आन्ध्रपञ्चीके सुन्दर सुन्दर कुल और कुमती ग्रामकी उद्यानावली विराजित है। पूर्वांशकी भूमि प्रायः अनुवरा है। कोरगांवका जलवायु स्वास्थ्यकर है। दक्षिण अंशमें घीसका प्रादुर्भाव अधिक होता है। कृष्णा ही प्रधान नदी है। तन्निका वासना नामक एक छोटी नदी भी है। इसी वासना नदीसे कोरगांवके १० मील उत्तर एक अच्छी सीनहर निकली है। यह नहर भी कोरगांवके भीतर प्रवाहित है। कृष्णा और वासनाके तीर जुवार, चना और अड़हर उपजती है। अच्छी तरहसे सींचकर खेती करने पर ईश, तरकारी और अन्यान्य फलसूख भी होते हैं। पर्वतके अंशमें मोटी जुवार और बाजरेकी छोड़ कर दूसरी कोई चीज नहीं उपजती।

कोरगांव नगर अक्षा० १८° ३८' ७०" और देशा० ७४° ४' पू० पर अवस्थित है। शहरमें एक उत्तर-दक्षिण और दूसरा पूर्वपश्चिमकी विस्तृत दीर्घ राजपथ है। सतारा-रोड नामक राहमें शहरसे पौन कोन दक्षिण वासना पर एक सुन्दर प्रस्तरसेतु बना है। कोरगांव मानगङ्गा नामकी छोटी नदीके किनारे बसा है। मानगङ्गाके तीर ग्रामका यथेष्ट जंगल है। यह सकल आन्ध्रकुल स्वाभाविक सेनानिवासकी भांति अति स्वच्छन्द रूपसे व्यवहृत हो सकते हैं। १६१८ ई०की यहां मराठोंसे अंगरेजोंका एक युद्ध हुआ। जनरल स्मिथ पेशवा बाजीरावके अनुसरणकी नियुक्त किये गये। स्मिथके सटल पंढरपुरके निकट पहुंचने पर बाजीराव जुन्नारकी भागे थे। शेषकी भीमा नदीके तीर १८१८ ई०में पूर्वी जनवरीके दिन कोरगांवमें उभय पक्षमें एक लड़त युद्ध हुआ। पेशवा पराजित हो सतारेके अभिसुख भाग गये।

कोरङ्गी (सं० स्त्री०) कुर्ति कोरङ्गीत्याख्यां गच्छति, कुर्-प्रकृच् गौरादित्वात् डीष्। १ सुष्मैला, छोटी इलायची। २ पिप्पली, पीपल।

कोरचर—बम्बई-प्रदेशकी एक जाति। यह देखनेमें प्रायः कोरबियां जैसे होते और तामिल भाषा बोलते हैं। गृहदेवताका नाम दुर्गामा है। कोरचर भी मंडीकी छोटे

छोटे भीपड़ोंमें रहते और छतकी ढाल नहीं रखते। इनका प्रधान खाद्य काजुनकी रोटी, दाल और भाजी है। यह भेड़, बकरा, शिकार की हुई चिड़ियाका मांस और मछली खाते हैं। देशी विदेशी शराबकी भी मिलने पर नहीं छोड़ते। अच्छे पहनावेमें मत्थे पर रुमाल, छोटा कुरता, फतुही, छोटी धोती और छोटी धोढ़नी है। स्त्रियां फतुही जैसी एक चोकी पहनती हैं। कोरचर मराठोंकी समन्वेषीमें ही गिने जाते और उनके साथ खाते पीते भी हैं, परन्तु परस्पर विवाह आदि नहीं होते। यह मजदूरी और शिकार करते हैं। सब लोग प्रायः कठिन परिश्रमी होते हैं। स्त्रियां गोदना गोद कर भी कुछ उपाजन कर लेती हैं। कोरचर हिन्दू देवदेवियोंकी पूजते और हिन्दुओंके पर्वोंको मानते हैं। नित्य तथा नैमित्तिक कार्यमें ब्राह्मण लगाया जाता है। किसीका मृत्यु होनेसे शवकी समाधि देते हैं। पंच लोग इनके घरका विवाद मिटाते हैं। कोई कोरचर लिखना पढ़ना नहीं सीखता।

कोरचर—कर्णाटवासी एक जाति। यह पर्वत और वनमें रहते हैं। इनका साधारण नाम कोरचा है। यह बांसकी टोकरी, दीरो, डलिया, चटार्ई आदि प्रस्तुत करते और बेचते हैं। कोरचर बाजारोंमें सुपारी बेचते घूमा करते हैं।

कोरङ्गी (सं० स्त्री०) सौराष्ट्रिका, सौराष्ट्र देशकी महकती मट्टी।

कोरट (सं० पु० = Court of Wards) राज-विभाग-विशेष, नाबालिगोंके सरपरस्तीका महकमा। किसी राज्य या जमीन्दारीका प्रबन्ध जब सरकार अपने हाथमें लेती, तो उसे कोरट या कोर्ट प्रवार्ड्स कहते हैं।

कोरवाहकी—बम्बई-प्रदेशके चारवाड़ जिलेका एक ग्राम। यह सुन्दरगौ नगरसे ६ मील दक्षिण गङ्गके निकट तुङ्गभद्राके बाग तोर पर अवस्थित है। इस ग्राममें कंकड़ पत्थरसे बंधा हुआ तुङ्गभद्राका एक पुराना बांध है। यह बांध जलमध्यस्थ पर्वत पर बना और भाटेके समय १३१४ हाथ पानीके ऊपर देख पड़ता है। इसका उपरिभाग भी १४ हाथ प्रशस्त है। यह नहीं कि बांधमें बड़े पत्थर नहीं हैं। एक एक पत्थर ८ हाथ

लम्बा, २ हाथ मोटा और ११ हाथ चौड़ा निकलेगा। उपरि-भागमें बीच-बीच ११ हाथ लम्बे भी बहुतसे पत्थर हैं। इसके मध्यस्थलमें आजकल १३३२०० हाथ चौड़ी एक दर्राज पड़ गयी है, जिससे यह अव्यवहार्य है। विजयनगरके राजावर्गने इस बांधको बनवाया था। मन्द्राजकी और इस बांधके पास 'मदल फाट' नामक ग्राम है। इस शब्दका अर्थ 'पहला बांध' है। मालूम होता है कि विजयनगर-राजावर्गके बनाये बांधमें वही पहला था।

कोरवटो (सं० स्त्री०) बदरीद्वज, बेरी, बेरका पेड़।

कोरतल—हैदराबाद राज्यके करीमनगर जिलेके जगति-पाल तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १८° ४८' ७०" और देशा० ७८° ४३' पू०में अवस्थित है। यहां मोटा कागज बनता जो पटवारियोंके खातोंमें बहुत लगता है।

कोरदूष (सं० पु०) कोर संस्तरानं दूषयति, कोर-दूष्-णिच्-अण् लृट् रत्वम्। कोद्रव, कोदो। यह मधुर, शीतल, घाही, गुरु, तिक्त, द्रव्य, रुच, जीर्ण होने पर लघु और कफ, पित्त, विष तथा मूत्रकण्ठनाशक है।

(वैद्यकनिषध,)

कोरदूषक, कोरदूष देखो।

कोरदूष्य, कोरदूष देखो।

कोरनी (हिं० स्त्री०) पत्थरकी खुदाई, मकताराशी।

कोरपुट—१ मन्द्राज-प्रान्तके विजगापटम् जिलेका एक उपविभाग। २ विजगापटम् जिलेकी एजेन्सी तहसील। यह घाटी पर पड़ती और ६७१ वर्गमील क्षेत्रफल रखती है। लोकसंख्या प्रायः ७६८१८ है। देश पहाड़ी होते भी खूब जोता बोया जाता है। जयपुरके राजाका यहां अधिकार है। ३ कोरपुट तहसीलका सदर। यह अक्षा० १८° ४८' ७०" और देशा० ८२° ४४' पू०में पड़ता है। यहां जयपुरके स्पेशल पसिष्टण्ट एजेण्ट और पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट और बहुतसे जर्मन मिशनरी रहते हैं। आबादी लगभग १५६० है।

कोरव (कोड़व)—दाक्षिणात्यवासी एक उच्चजाति प्राय जाति। इनके वासस्थानकी स्थिरता नहीं। दाक्षिणात्यके प्रायः सभी देशोंमें यह देख पड़ते हैं। इनमें गांव

कोरव या मोनार् कोलबुद, किसान कोरव या कसबी कोरवा अथवा कुष्टि कोरवा, कोल कोरव और सोली कोरव नामके कई श्रेणीविभाग हैं। कुष्टि कोरवे एक स्थानमें नहीं बसते, दूधर उधर घूमा फिरा करते और जाल बिछाकर चिड़ियां पकड़ते रहते हैं। गायको छोड़ कर प्रायः सभी पशुओंका मांस खाया जाता है। शवको दाह करते हैं। गोदावरी तीर पखल भीलके पास अपेक्षाकृत बन्ध कोरव जातिका एक दल रहता है। कनाड़ा प्रदेशमें इनका नाम कोरवण और कोरमारवण है। इनमें फल कोरमार (व्यवसायी चोर), बलग कोरमार (गीतवाद्यकार) और इकि कोरमार (बांसके टोकरे बनानेवाले और व्याध) तीन श्रेणियां होती हैं। मडिसुरके कोरवोंकी अपनी स्वतन्त्र भाषा है। और भी दक्षिणको जेरकेल कोरवार जातिके अन्तर्गत-जैसा गण्य है। यह शिकारमें मिले पशुपक्षीका मांस आहार करते हैं। जङ्गली फलमूल आदि भी खा जाते हैं। बहुतोंने भाष्यगणनाका व्यवसाय पकड़ लिया है। कोई कोई लकड़ीकी कंधियां भी बनाता है। यह बंधे घरमें नहीं रहते। तीन लंबी लकड़ियां गाड़ उनपर खजूरेके पत्तोंकी चटाइयां डाल कर आवश्यक-जैसा घर खड़ा कर लेते और स्थान परिवर्तन करते समय चटाइयां उतार और लकड़ियां उखाड़ गंधकी पीठ पर लाद कर चल देते हैं। कोरव सूवर पाकते और उसका मांस खाते हैं।

दक्षिण अरकाटमें उपु कोरवर नामक एक जाति है। उनकी बोली तामिल और तेलगुकी मध्यवर्ती एक बिगड़ी भाषा है। इनमें बहुतोंका एक गृहदेवता होता है। भ्रमणके समय इस देवताको अपने साथ ही रखते हैं। इस जातिमें बहुविवाहकी प्रथा प्रचलित है। प्रायः रविवारकी ही विवाह होता है। पूर्व दिन शनिवारकी देवपूजा करते हैं। इसलीसे रंगे चावल वरकन्याके मस्तकमें बांध कन्याके गलेमें 'परिणय-सूत्र' डाल देनेसे ही विवाह हो जाता है। कोरव कितने ही निकट सम्बन्धोंमें विवाह नहीं करते। विधवाविवाह अप्रचलित है। इनमें वैष्णवोंका भी प्रभाव है। कोरवोंकी जातीय रीति यह है कि

वंशकी प्रथम दो कन्यायें अपने मातुलपुत्रोंके साथ विवाहित होती हैं। कन्यापण देना पड़ता है। मातुल अपने पुत्रोंके साथ विवाह करते समय प्रति भागिनेयोंके लिये ४२, ६० देते हैं। फिर यदि मामाके लड़का नहीं होता, तो भानजियोंके विवाहकाल कन्याके ७०, ६० दहेजसे प्रति भागिनेयी उसे २४, ६० मिलता है। नेलूर प्रदेशमें जेकल कोरव कन्याओंकी गहने रख देते हैं। महाजन इच्छा करनेसे गहने रखी हुई कन्याओंकी अपने भाप या अपने पुत्रोंके साथ व्याह्र सकता अथवा उन्हें निकाल बाहर भी कर सकता है। यदि कोई जेकल जाता और उस समय उसकी स्त्री अन्य स्वजातीय पुरुषके साथ उपरत होती और कोई सन्तान उपजता तो स्वामी छूटने पीछे सन्तानादि लेकर घर लौट आता है। इससे कोरवोंकी सामाजिक निन्दा नहीं होती। विष्णुपटमें उपु कोरव स्त्रीको भी रिह्न कर देते हैं। तन्नोरमें स्त्री बन्धक रखनेसे उस अवस्थामें जो सन्तानादि होते, उनमें पुत्र महाजन और कन्या बन्धकरखनेवालेकी सम्पत्ति ठहरती है। मदुरामें २५, ६० की स्त्री विक्रीत है। विक्रीत स्त्री फिर वापस नहीं होती। देना चुकाने पर रिह्न स्त्री कन्या वापस मिल जाती है। कोरव एकाग्रवर्ती और वंशगत उपाधिधारी होते हैं। इनके सकल विवाहोंकी पंचायत मीमांसा करता है। घरकाटमें स्त्री-कन्या रिह्न रखनेकी रीति नहीं है। इनके गृह-देवताका नाम शङ्खलाम्बा है। यह पशुपालन भी करते हैं। जलमें चावल पका कर खाया जाता है। दास और तरकारीमें इसली डाल देते हैं। मद्यपानमें भी इन्हें कोई आपत्ति नहीं। पुरुष कानों, उंगलियों और कलाईयों पर पीतलके कड़े पहनते हैं। फिर स्त्रियां पीतलके बलुके बांधती और नयनी लगाती हैं। स्त्रियोंकी अंगिया और धोती निम्नश्रेणीके हिन्दुओं जैसी रहती और पुरुषोंके टाई हाथकी लंगोटी लगती है। इनमें एक असधारण चमत्ता यह है कि—पक्षी पकड़ते समय अपने भाप उनकी तरह तरहकी बोलीका अनुकरण करते और पक्षी भी स्वजातीयका भाषान समझके जानमें आ गिरते हैं। कोरव छिप

कर मछिष तक मार डालते हैं। वर्षमें उत्सवके चार समय हैं—ज्यैष्ठमासमें 'उपादि', भाद्रमें नागपञ्चमी, आश्विनमें दशहरा और कार्तिकमें दीवाली। प्रति मङ्गलवारको यह गृहदेवता शङ्खलाम्बाकी मृत्प्रतिमा पूजते, नारियल तथा केला चढ़ाते, धूप देते और प्रार्थना उतारते हैं। कोरव स्वधर्मपरायण हैं। इनके ब्राह्मण वा शैवगुरु नहीं होते। कोरवमात्र चुड़ैलों और भूतोंके उपद्रवको मानते और रोग होने पर देवज्ञसे पूछ गृहदेवताकी मानता करते हैं—प्रारोग्य होने पर चांदीकी आंख और मोड़ चढ़ावेंगे। कभी कभी रोगदाता भूत स्वप्नमें आहार प्रार्थना करते हैं। उस समय यह तीन गोले भात लेकर तीन स्वतन्त्र मृत्पात्रोंमें रखते और उसमें थोड़ा पानी छिड़कते हैं। पत्रके तीनों गोलोंमें गर्त करके तेल और पत्रोंसे जला देते, फिर हलदो लाई, चना, नीबू और केला प्रत्येक रोगीके मुखके निकट उतार कर वनमें फेंक आते हैं।

पुत्रकन्या उत्पन्न होने पर नाड़ीच्छेद करके रेड्डोका तेल जलके मुख पर लगाते और बच्चेको गर्म पानीसे स्नान कराते हैं। प्रसूति स्नान नहीं करती और पांच दिन तक पक्षीका मांस खाती है। ग्यारहवें दिन उसका स्नान होता है। तृतीय मास शिशुका मस्तक मुण्डन किया जाता है। विवाहके लिये शुभदिन आवश्यक नहीं, रविवार होनेसे ही काम निकाल लेते हैं। विवाहके पूर्वदिन शनिवारको शङ्खलाम्बाकी पूजा होती है, उस दिन मांस रांधा नहीं जाता। बेदी पर बठाके वरकन्याके मस्तक पर हलदोसे रंगी चावल छोड़ देते और वरकन्या दोनों हलदीका सबटन लगा नहा लेते हैं। वरकन्या दोनों कनिष्ठा उंगलियां परस्पर शङ्खलवत् जुड़ी रखते हैं। ५ सधवा स्त्रियां विवाहगोत्रि गाकर वरके मणिवन्ध और कन्याके कण्ठमें हरिद्राक्ष 'मङ्गलसूत्र' बांध देती हैं। फिर वरकन्या दोनों इसी प्रकार हाथ रखे घरमें जाकर पानीके बोच हाथ डुबा कर एक दूसरेकी छोड़ते हैं। उसके पीछे वरकन्या एकत्र आहार करते हैं। ४थे दिन उभयपक्षके पार्वीय स्त्रियोंमें महासमारोहसे भोज निष्यन्न होता है। तत्-

पश्चात् श्री प्रथम ऋतुमती होनेसे भारतीय सज्जन मर्यादा दी कर सामीझोंको एकत्र अवस्थान करने देते हैं। कोरवा में व्यभिचारिणी होते भी पत्नी परि त्याग करनेकी प्रथा नहीं है। कहीं कहीं विधवा विवाह चलता है।

कोरवर—एक जाति। मडिसुर-प्रदेश और बम्बईके भी दो एक स्थानों पर कोरव जातिके लोगोंको कोरवर या कोरमान कहते हैं। कोरव देखो।

कोरवा (हि० पु०) ताम्बूलकी कृषिका द्वितीय वर्ष, पानकी बोटका दूसरा साल। इसका पान बहुत अच्छा होता है। २ कुरवा, कुल्हड़।

कोरवाई—मध्यभारतकी भूपाल एजन्सीका एक मंभोल राज्य। यह अक्षा० २४° १' तथा २४° १४' ३०' और देशा० ७८° २' एवं ७८° ८' पूरके बीच पड़ता है। क्षेत्रफल प्रायः १११ वर्गमील है। कोरवाईमें बेतवा नदी प्रवाहित है।

१७११ ई०को तीराके एक अफगान मुहम्मद दिलेरखाने जो फीरोजखेलेसे सम्बन्ध रखते थे, कोरवाईको साथ आसपासके कुछ गाँवोंपर अधिकार किया। फिर अपनी सेवाओंके पुरस्कारमें बादशाहसे उन्होंने ३१ परगने पाये। मुगल-साम्राज्य बिगड़ते समय यह राज्य भूपालके बराबर रहा, किन्तु मराठोंके अभ्युदय कालको घट गया। १८१८ ई०को नवाब पर मुश्किल पड़ी थी, उन्होंने भूपालके पोलिटिकल एजण्टसे संधि-याके विरुद्ध साहाय्य मांगा, जो दिया गया। १८२० ई०को अंगरेजी प्राधान्य स्थापित होनेपर अकबर खानने राज्य अधिकार किया था। किन्तु राज्यके प्रकृत अधिकारी इरादत मुहम्मदखान् थे, जिन्हें राज्यका दावा छोड़ने पर पेशगन मिली। १८८५ ई०को मुहम्मद याकूब अलीखान्ने राज्यका उत्तराधिकार पाया था। १८०६ ई०को उनके मरनेपर सवार अलीखान् नवाब बनाये गये।

कोरवाईकी लोकसंख्या प्रायः १३६३४ है। राजस्थानी माझवी भाषा प्रचलित है। राज्यका वार्षिक आय १७०००) रु० है।

कोरवाई राजधानी बेतवाके दक्षिण तट पर बसी

है। इसकी आबादी लगभग २२५६ है। नगरसे पूर्व एक छोटी पहाड़ी पर पत्थरका दुर्ग खड़ा है।

कोरसाकेन (हि० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह युक्त-प्रदेश, आसाम, बङ्गाल तथा मन्द्राजमें बहुत उपजता और विशाल एवं सुन्दर लगता है। इसके बटनेमें देर नहीं लगती और पत्तियोंकी अधिकतासे घनी छाया रहती है। कोरसाकेनका काष्ठ सुदृढ़ और बहुमूल्य होता है। इसे गृहनिर्माणदि कार्यमें व्यवहार करते हैं।

कोरहा (हि० वि०) १ किनारीदार, नुकीला। २ काडला, बहुत खिन्नाया जानेवाला।

कोरा (हि० वि०) १ अव्यवहृत, काममें न लाया हुआ। २ चिह्नरहित, वेदाग। ३ निरन्तर, अपढ़। ४ दरिद्र, गरीब। ५ केवल, खाली। (पु०) ६ पक्षि-विशेष, कोई चिड़िया। यह सरोवरके निकट अवस्थान करता, ज्येष्ठ आषाढ़को डिब्ब रहता और ऋतुके अनुकूल अपना वर्ण बदलता है। इसका चक्षु पीत-वर्ण और पद रक्तवर्ण होते हैं। ७ वृक्षविशेष, कोई पेड़। यह गढ़वाल, आसाम, मध्यप्रदेश और बरारमें अधिक उपजता और लुट्टाकार रहता है। आभ्यन्तरिक काष्ठ श्वेतवर्ण, चिकण और मृदु निकलता है। कोरे पर नकाशी भी की जाती है। त्वक, फल तथा पत्रको औषधमें डालते हैं। ८ क्षारचोषका कोई सलमा। ९ इक्षुक्षेत्रका प्रथम सिञ्चन।

कोरापन (हि० पु०) नयापन, अच्छी हालत।

कोरापुल—मन्द्राज-प्रदेशके मलबार जिलेकी एक नदी। यह ३२ मील लम्बी पड़ती, परन्तु उथली होनेसे व्यापारके काममें अधिक नहीं लगती। उत्तर मलबारकी स्त्रियाँ इसे पार करना अशुभ समझती हैं।

कोरार—बम्बई-प्रदेशके कनाड़ा जिलेकी एक जाति। कुमता, मोंकी, शिराली, भटकल, सुरदेश्वर और अन्य ग्रामों तथा नगरोंमें यह अल्पसंख्यक पाये जाते हैं। मडिसुर और कोयम्बतूरमें इन्हें कोरग, कोरम, और कोरच कहते हैं। दक्षिण कनाड़ामें कोरार जङ्गलके बीच रहते हैं। दक्षिण कनाड़ाके कोरगारोंकी भाषा तेलगु और तुलु मिली है। यह निर्धन और ऋणग्रस्त

होते हैं। विधवाविवाह और बहुविवाह प्रचलित है।
कोरि (हिं०) कोरि देश।

कोरि—सिन्धु नदीके मुंहानेकी एक निकटस्थ शाखा।
पूर्व इसका अपर नाम सहर (सहीण) है। कुछ वर्ष
तक प्रदेशमें इसको फड़न या फण कहते हैं। कहीं
कहीं 'साकपत' नदी भी कहा जाता है। इसीने कच्छ
और सिन्धु-प्रदेशको बांट दिया है। १८१८ ई० तक
इस नदीके साथ सिन्धु का योग रहा और पूर्व सुखसे
सागर प्रवेशका यहाँ द्वार भी रही, किन्तु उस वर्ष
भूमिकम्पसे कच्छनगर उत्पन्न होने पर एक बांध लगा
कर सिन्धु से यह अलग कर दी गयी है। आजकल यह
सागरकी खाड़ी जैसी देख पड़ती है। जूकूनगरके
उत्तर यह सागरमें जा मिली है। मुंहाना बहुत बड़ा है।
कोरिङ्ग—मन्द्राज-प्रदेशके गोदावरी जिलेके कोकनद
तालुकका एक गांव। यह अक्षा० १६° ४८' ७०" और
देशा० ८२° १४' ५०" में कोकनदसे ८ मील सड़कको
राह पड़ता है। पहले यह एक उच्च उपनिवेश और
बड़ा बन्दर था। १८०२ ई०को यहाँ जहाजोंको मर-
म्मत करनेकी एक डक खुली, परन्तु गोदावरी खेत रुक
जानेसे १८००-१ ई०को एक भी जहाज न पहुँचा
१८१२ ई०को यहाँ एक बड़े भारी भड़के आजानेसे
बहुत बड़ी हानि हुई। फिर १७८७ ई० और १८१२
ई०में एक भयानक बाढ़ आई और उससे समस्त प्रदेश
नष्ट भ्रष्ट हो गया। लोकसंख्या ४२५८ है।

कोरिची—सुमात्राद्वीप निकटवर्ती मेनाह्याद्वीपकी
एक जाति। इनकी वर्णमालामें केवल २८ अक्षर हैं।
उन्हें देखनेसे समझ पड़ता है, मानों कई तिरछा
खींचे लगे हुये हैं।

कोरिमद (सं० पु०) कासमद, कसौदो।

कोरिया—१ मध्यप्रदेशका एक करद-राज्य। यह अक्षा०
२२° ५६' तथा २३° ४८' ७०" और देशा० ८१° ५६'
एवं ४२° ४७' ५०" के बीच पड़ता है। इसका क्षेत्रफल
१६११ वर्गमील है। १८०५ ई० तक कोरिया ब्रह्मसूत्रके
छोटानागपुर राज्योंमें सम्मिलित रहा। इसके उत्तर
रोवा राज्य, पूर्व सरगुजा, दक्षिण विजासपुर जिला
और पश्चिमकी चांगभन्धार और रोवा है। यह खुरखुरी

पत्थरकी एक खंवी अधिकता है। निम्न अधिकता
साधारण तल समुद्रपृष्ठसे १८०० फुट ऊँचा पड़ता है।
पश्चिमकी पहाड़ियोंमें देवगढ़की चोटी ३३७० फुट तक
पहुँची है। इसदी कोरियाकी सबसे बड़ी महानदीमें जा
मिली है। किरवाहोमें उसका एक बड़िया भरना है।

१८१८ ई०को यह राज्य अंगरेजोंके हाथ सौंपा
गया था। राजा अपना परिचय चौहान राजपूत जैसा
देते हैं। यह देश बहुत जङ्गली और उजाड़ है, प्रधानतः
पर्यटनशील आदिम अधिवासी बसते हैं। लोकसंख्या
प्रायः ३५११३ है। सोनहाट गाँवमें राजा रहते हैं।
अधिकांश लोगोंका काम खेती बारीसे चलता है।

कोरियाके जङ्गलमें साल और बाँस बहुत उपलब्धता
है। जङ्गलकी छोटी मोटी चीजोंमें लाख और खैर है।
लोहा सब स्थानोंमें मिलता, परन्तु खानों पर अंगरेज
सरकारका अधिकार रहता है। इस राज्यमें पग-
उण्डियाँ लगी हैं, ठोक ठोक सड़क कहीं नहीं
व्यापारी बैलों पर लादकर माल चालान करते हैं।

राज्यका अंगरेज सरकारके साथ १८८८ ई० का
दी हुई सनदके मुताबिक बर्ताव जाता है। राजा
छत्तीसगढ़ कमिशनरके अधीन हैं। उन्हें साने,
चांदो, हीरे या कीयले वगैरहकी खानोंका कोई
अधिकार नहीं। छत्तीसगढ़के पोलिटिकल एजेंट
सक्कीन लुर्मीका फौजला करते हैं।

राज्यका सम्पूर्ण आय प्रायः १८५००, ६० वार्षिक
है। ब्रिटिश गवर्नमेंण्टको ५००, ६० सालाना कर दिया
जाता है। राज्यमें पाठशालाओंका अभाव है।

२ एशियाका एक विस्तृत राज्य यह अक्षा० ३३° से
४३° ७०" और देशा० १२४° से १३०° ५०" के मध्य चीनके
उत्तर-पूर्व अवस्थित है। कोरियाके उत्तर मन्चूरिया
एवं रुसरान्य, पूर्व पीतसागर और पश्चिम जापान-
सागर हैं। भूपरिमाण ८५००० वर्गमील और लोक-
संख्या एक करोड़से ऊपर है।

चीना इस देशका 'कौली' और अधिवासी 'वोहसिन'
वा 'चूसन' कहते हैं। कोरियाका प्रधान नगर होनि
यङ्ग वा सोडन है।

इस देशके उत्तरांशमें केवल यव उत्पन्न होता है।

दक्षिणांशकी भूमि बहुत उर्वरा है। वहाँ धान, गेहूँ, काकून, सन, रुई, मटर, तम्बाकू सभी उपजता है। कोरियाके पहाड़ोंमें स्थान स्थान पर सोना, लोहा, जस्ता और कोयला मिलता है। यहाँ शेर, चीता, भेड़िया, हिरन और गीदड़ बहुत हैं। कोरियाका व्यापारिक नाना देशों बिकनेकी भेजा जाता है।

कोरियामें सन, रुई, घास, रेशम, चिकनी मट्टीके बरतनी, युद्धके नानाविध अस्त्रों और अच्छे कागजका व्यवसाय होता है। प्रधान बन्दर—सेप्योल, येण्डान, फूसन और युएनसन हैं। सेप्योलमें राजधानी है। इसकी लोकसंख्या प्रायः २२००००० है।

कोरियाके अधिवासी पूर्वकालकी तातारमें रहते थे। उत्थान होने पर यहाँ आकर बस गये। मुगलवीर कबला खानने यह देश आक्रमण किया था। किन्तु वह सिगूर यारिडोमके हाथों पराजित हुए।

१५८० और १६१० ई०की प्रायः डेढ़ लाख काथोलिक ईसाइयोंने कोरियाके विरुद्ध धर्मयुद्धकी घोषणा की थी। उन्होंने राज्यका प्रायः दश भाग अंश अधिकार भी किया; परन्तु चीन-सम्राट् तैकसमा उन्हें अमहाय्य अवस्थामें छोड़ गये, जिसमें वह चीनसेन्धके आक्रमणसे उत्पीडित हो पृष्ठप्रदर्शन करने पर बाध्य हुए।

कोरियाके राजा चीन-सम्राट्की सामान्य कर दिया करते हैं। १८८८ ई०की यहाँ राजाशा प्रचारित हुई—राज्यके किसी स्थानमें ईसाई न रहने पावेंगे, देख पड़ते ही भगा दिये जावेंगे। कोरियामें चीनकी राजनीति चलती है। सभी अधिवासी प्रायः बौद्धमतावलम्बी हैं। कोई कोई कनफुचीके मतकी भी मानता है।

कोरियाके रहनेवालेको कोरियन कहते हैं। इनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग अच्छा जूटपुट, मँड चौरस, आँखें बाँकी गाल चौड़े और दाढ़ी थोड़ी होती है। देखते ही मालूम पड़ जाता, मानो चीनाघों और जापानियोंके संमिश्रणसे बने हैं। ख्रिष्टीय पञ्चम शताब्दीकी एक चीना परिव्राजक अपना धर्मप्रचार करने गये थे, उन्होंने कोरियनोंने प्रथमतः बौद्धधर्मको प्रवर्ण किया। इनकी भाषा जापानियों-जैसी और स्वरका सादृश्य ब्रह्मचीन-

की भाषा-जैसा है। कोरियाकी भाषामें बहुतसे शब्द हैं। कोरी—एक हिन्दू जाति। यह गजोगाढ़ा बुनते हैं।

इनका दूसरा काम एक प्रकारका बाजा बजाना भी है। एक आदमी अपने गलेमें छोटीसी नगड़िया डोरीके सहारे लटका लकड़ीकी दो छोटी छोटी उण्डियोंसे बजाता और दूसरा फूलकी एक कटोरी हाथमें ले एक छोटी डंडीसे खटकाता जाता है। इसीका नाम कोरि-बजना है। यह बाजा विवाह, यज्ञोपवीत, मुण्डन, कर्ण-वेध, जन्मोत्सव आदि अनेक अवसरों पर बजा करता है। यह एक प्रकारका मङ्गलवाद्य है। स्त्रियां जब देवी पूजने जातीं, तो कोरि बजना अवश्य मंगती हैं। द्विजाति कोरियोंके हाथका पानी नहीं पीते।

कोरी (हिं० स्त्री०) १ बीसका ढेर, बीसी। (वि०) २ नयी, काममें न आयी हुई। ३ सादी, बेरङ्ग।

कोरेश—इज्राजकी एक अरब जाति। इसमाइलके वंशमें अल अरब-उल्-मस-तरेवा नामक एक सम्प्रदाय चला था। इसी सम्प्रदायसे कोरेशोंकी उत्पत्ति है। सुविख्यात धर्मवीर मुहम्मदने इसी जातिमें जन्म लिया था। भारत-के सिन्धु-प्रदेशमें बहुतसे कोरेश रहते हैं। वह सीरिया, ईरान और ईराकसे इस देशमें आये हैं और अपनेकी अली, अब्बास, अबूबकर वगैरहका वंशधर बताते हैं। इनमें बहुतसे जातीय उपाधि होते हैं।

कोरी (हिं० पु०) १ काष्ठविशेष, कोई लकड़ा। इससे तंबोलौ अपने भीट छाते हैं। २ खपरैलकी काड़ी। ३ रेड़का सूखा पेड़।

कोरोया—छोटानागपुर अञ्चलकी एक जाति। पाश्चात्य मानवतत्त्वविदोंके मतमें यह कोलजाति-सम्बन्धित होते हैं। देखनेमें कृष्णकाय, मँड चपटे और बलवान् हैं। सब लोगशिरपर चोटी रखते हैं। इनमें कई एक शाखायें हैं, यथा—पहाड़िया या बोर कोरोया, विरिञ्जिया कोरोया, विरहोर कोरोया, कोरक कोरोया, कोरियामुण्ड, दण्डकोरोया या दिड कोरोया, और आगरिया कोरोया। इनमें केवल आगरिया कोरोया हिन्दी बोलते हैं। बाकी सबकी भाषा कोकी-जैसी है। पहाड़ पर रहनेवाले बकरा, सूपर, सुरगी और भैंस वगैरह खाते हैं, परन्तु साँप, मेंढ़क या छिपकली नहीं

हूते। सिर्फ बिरहोर कोरोया बन्दर पकड़ कर खा डालते हैं। वनवासी कोरोया अनेक प्रकारकी ओषधियोंका गुणगुण पढ़चानते और उससे कठिन रोग अच्छे कर सकते हैं।

यह अपनी जातिके बीचसे तीन प्रकारके याजक नियुक्त करते हैं। उनमें प्रधान पुरोहित वा गुरु 'पहन-बेगा', दूसरे 'पूजार' और तीसरे 'देवर' कहलाते हैं। इनकी छोड़ कर ओझा, डाइन वगैरह भी होते हैं। यह लोग सभी सूर्यपासक हैं। सूर्यके उद्गम यह सफेद सुरगी वस्त्र देते हैं। समतलक्षेत्रके कोरोया कालीभक्त हैं। इठात् कोई विपद् आपद् आनेसे पहनबेगा दूधसे कालीपूजा करते हैं।

सम्मान भूमिष्ठ होने पर एक सप्ताह वा १० दिन प्रसूति अशुचि रहती है। कन्या उत्पन्न होनेसे पहले माता स्वप्न देखती है—मानो मेरी सासने आकर मेरे गर्भमें जन्म लिया है। फिर पुत्रके जन्मकाल शशुरका स्वप्न आता है। जन्मसे एक मास पीछे पितामहके नाम पर पुत्र और पितामहीके नाम पर कन्याका नामकरण होता है।

कोरोयाओंमें भी गोत्र है। एक गोत्रमें विवाह नहीं करते। विवाहके समय वर कन्याकर्ताकी एक घड़ा महुयेकी शराब, ५० रु० और एक खल्ली (बकरा) देता है। वरके कन्याके मस्तक पर सिन्दूर चढ़ाते ही विवाह सिद्ध हो जाता है। उस समय सब लोग थोड़ी थोड़ी शराब पीते हैं।

इनमें विधवाविवाह और पत्नी-परित्यागकी प्रथा प्रचलित है। विवाह करनेवाली विधवाको 'बियाहुर' और पितामाताकी अनुमति लिये बिना दूल्हा बननेवाली युवकको 'धुक्' कहते हैं। अविवाहित युवकोंके लिये प्रत्येक ग्राममें एक एक स्वतन्त्र गृह रहता है। इस अच्छेको 'धुमकुड़िया' कहते हैं। धुमकुड़ियेके सामने नाचका मैदान होता है। अविवाहित कुमारियां वहीं जाकर नाचा गाया करती हैं। युवककी पांख लगने और भीतर ही भीतर मेल बढ़ने पर विवाहमें बाधा नहीं पड़ती।

साधारण लोग शवकी समाधि देते हैं। परन्तु इनमें

कोई प्रधान व्यक्तिके मरने पर नदी तीर जलाया जाता है। कोर्कु—महादेव-पर्वतवासी कोल जातिकी एक शाखा।

इनकी भाषा गोंडोंसे अलग है।

कोर्गी—खड़कसे २ मील उत्तरका एक होप। यहां विख्यात जलदस्यु मीरमोहनका अड्डा था।

कोर्ट (अंग० पु० = Court) १ न्यायालय, अदालत। २ ताशकी एक जीत। यह सात जीतोंके बराबर हातो है। आरम्भमें एक घोर बराबर सात हाथ बन जानेसे दूसरी घोर कोर्ट हो जाता है।

अदालतके दारोगाको कोर्ट-इन्स्पेक्टर, अदालती रजूमको कोर्टफौस और फौजी अदालतको कोर्टमार्शल कहते हैं। फिर बड़ी अदालत हाईकोर्ट, छोटी अदालत स्मालकाजकोर्ट और पुलिसकी अदालत पुलिसकोर्ट कहलाती है। कोर्ट अब वार्डस वह सरकारा विभाग है, जो किसी अनाथ, विधवा वा अयोग्य व्यक्तिकी सम्पत्तिका प्रबन्ध करता है। ताशके कोर्टपीस खेलमें चार आदमी खेलते हैं। कोर्टशिप गान्धर्व विवाहका नाम है।

कोर्षिगञ्ज (कुर्षाईगञ्ज) सिंहरहोपका एक नगर।

१३१८ से १३४७ ई० तक यहां सिंहरहके राजाओंकी राजधानी रह्यो। इस समयके मध्य द्वितीय भुवनेश्वराहु, चतुर्थ पण्डित पराक्रमवाहु, द्वातीय बलि भुवनेश्वराहु और पञ्चम विजयवाहु राजा हुवे। उनके हाथी गान्धकी श्री मारे पड़ी।

कोर्दादसाल—पारसिक धर्मप्रवर्तक जरदस्तके जन्म दिनका उत्सव।

कोर्ट्रव, कोट्रव दिवा।

कोर्वा—छोटानागपुर प्रदेशवासी एक जाति। यह लोग आगरिया, दण्ड, डिह और पहाड़िया चार श्रेणियोंमें विभक्त हैं। पशुपक्षियों और फलोंके नाम पर इनमें कई गोत्र हैं, जैसे—ग्राम, धान, बाघ, साँप, पशुवा, मूड़ी इत्यादि। मूड़ी गोत्रवाले कहते हैं कि उनके पूर्व-पुरुषोंने चार सुर्दाकी ओषधियोंका चूल्हा बना उसीमें अन्नपाक करके खाया था।

कोर्वा अपनेकी ही इस पञ्चलका आदिम अधिवासी बताते हैं। इसीसे स्थानीय उपदेवताओंकी पूजा

करनेमें आज भी केवल उनके पुरोहित ही नियुक्त होते हैं।

पहाड़िया कीर्वाओंका कहना है—सरगुजामें जो व्यक्ति पड़ले धान बोने गये थे, उन्होंने अपरापर जीव जन्तुओंको भय दिखानेके लिये खेतके बीचमें एक मूर्ति खड़ी की। वह स्थानीय भूतकी बड़ी भक्ति करते थे। भूत महाशयने भक्त पर समुष्ट हो शस्त्ररक्षा करनेको उस मूर्तिमें जान डाल दी। वही मूर्ति कीर्वा जातिक आदिपुरुष है।

कीर्वाओंका आचार व्यवहार आकार प्रकार कितना ही कीरोयावा जैसा है। कीरोया देखो। कोई कोई इन्हें आदिम द्राविड़ जातिसे उत्पन्न बताता है। परन्तु कीर्वा और कीरोया दोनों जातियोंका हावभाव, रीतिनीति और विश्वास पर्यालोचना करनेसे कोई भेद नहीं मिलता। कीर्वापुरुष सभी साहसी, परिश्रमी, वलिष्ठ और परिपुष्ट हैं। परन्तु स्त्रियां गुह्यतर परिश्रमके भारसे दिन दिन ओझीन और निर्बल पड़ती जाती हैं। खेत का काम और घरका काम सभी स्त्रियोंको देखना पड़ता है। पुरुष हाथमें तीरकमान ठठा शिकार ढूँढ़ते घूमा करते हैं। यदि उनके पट्टसे आखेट नहीं मिलता, तो रमणियां जंगलसे कन्दमूलादि खोद लाती हैं। कीर्वा असाधारण तीरन्दाज होते हैं। यह तीर फेंकनेमें बड़े पटु हैं। इनकी कमानें बहुत मजबूत होती हैं। और तीरके आगे ८ इंचकी बड़ी पनी लगी रहती है कीर्वा अपने आप खोड़ा गला उससे बहुत तेज तलवा बना लेते हैं।

यह लोग जंगल काट जमीनको जोतते बोलते हैं इस प्रकार नई जमीन ढूँढ़नेमें २१ वर्ष पीछे घा बदलना पड़ता है। कीर्वा जंगलसे शहद, मोम, पारा-रोट, लाख, रजन, गार्द आदि लाकर भी बेचा करते हैं।

यह प्रधानतः पूर्वपुरुषोंके प्रेतोद्देश पूजा चढ़ाते हैं। यशपुरमें कोई कोई खुड़ियारानी रौर काकीदेवीको भी पूजता है। पड़नवेगा पुरोहित होते हैं।

बाबा (कोड़वी) दाक्षिणात्यवासी एक जाति। यह लोग आठ श्रेणियोंमें विभक्त हैं—सनाड़ी, घण्टेचोर, कैकड़ी,

पड़वी या काले कैकड़ी, कुडी, पावड़, सूली और मोदी।

सनाड़ी या रोगनचोका बजानेसे सनाड़ी नाम पड़ा है। सनाड़िये दूसरी श्रेणियोंसे अपनेको श्रेष्ठ समझते हैं। इसीसे अन्य श्रेणियोंसे आदान प्रदान नहीं करते। कहीं वह कैकड़ियों और कुड़ियोंके साथ खा लेते हैं। सनाड़ी छुद्रकाय, काले और कुछ मैले होते, शिरपर छोटे छोटे बाल रखते और देखनेमें असभ्य-जैसे मालूम नहीं पड़ते हैं।

घण्टेचोरोंकी संख्या अति अल्प है। चौयंठपति ही उनका व्यवसाय है। यह श्रेणी बहुत ज्यादा देखनेमें नहीं आती।

कैकड़ी देख पड़ते ही निम्नात असभ्य-जैसे लगते हैं। भिन्ना, मजदूरी और कपासकी लकड़ीसे टोकरियां बना जीविका निर्वाह करते हैं।

पड़वी या काले कैकड़ी कटर चोर है। दिनको भाड़ू और टोकरियां सरपर रख बेचनेके बहाने घूमा करते और पता लगाते रहते—किसके घरमें अच्छी अच्छी चीजें हैं, किसके घरमें पुरुष कम हैं। रातको उन्हीं घरोंमें जा जो पाते, खुरा लाते हैं। पड़वियोंकी औरतें पकी चोर हैं। दिनको भिन्नाके छलसे गली गली घूमती हैं। थोड़ी ही दूर पर उनकी जमादारिन चाबीका गुच्छा लिये टहला करती हैं। जब देखतीं किसी घरमें कोई नहीं, ताला लगा है; झटपट जमादारनको खबर देती हैं। वह जाकर ताला खोलती है। फिर घरमें घुस सबकी सब जो पातीं, उठा लाती हैं। अनेक समय वह दल बांध किसी गृहस्थके घर पहुँचतीं और सुविधा मिलते ही उसको आक्रमण करके उसका सर्वस्व हरण कर लेती हैं। कोई कोई बुढ़िया पट्ट-गणनाका बहाना करके लोगोंके घरमें घुस जाती है। मध्याह्नकाल है, घरमें कोई मर्द नहीं। एक सरला पबला पकेले घरमें बैठी है। बुढ़ीके फन्देमें पड़ वह अपनी पट्ट गणना कराने लगती है। सुभीतेके सुता-बिक बुढ़िया उसकी पांखों पर पड़ी बांध पट्ट सह बका करती और उधर उसके साथवालो चुपकेसे कोठरीमें घुस चोरी करके चम्पत होती है। फिर बुढ़िया रमणी-

की बाँखें खोल और उससे इनाम ले हंसते हंसते चल देती है।

कुछा कोबी मयर आदि नानाविध पक्षी पकड़ते और उन्हें को बेच दिनपात करते हैं। इनकी आकृति प्रकृति कितनी ही सजावियों—जैसी है। विजयपुर आदि स्थानोंमें सजावियोंके साथ इनका आदान प्रदान होता है।

पातड़ लोग उत्तर परकाटके अन्तर्गत ब्युट-गिरमें रहते हैं। नाचना गाना ही इनका व्यवसाय है।

सूकी अथीके सभी लोग भ्रष्टाचारी हैं। इनकी स्त्रियां प्रायः वेश्यायें होती हैं।

कोबियोंका प्रधान खाद्य काकुनकी रोटी, मट्ठा पड़ा सावांका भात और उड़दकी दास है। यह सूपरका बच्चा भी खाते हैं। इनमें कपाल पर 'नाम' अर्थात् तिलक लगानेवाले शनिवारकी मारुतिदेवके सम्मानार्थ मांस स्पर्श नहीं करते। प्रायः सभी सन्याको थोड़ीसी शराब पी लेते हैं।

पुरुष वालोंकी चोटो और दाढ़ी मूछ रखते हैं। विवाहिता स्त्रियां सीमन्तमें सिन्दूर, शिशिकी चड़ियां और कण्ठमें 'मङ्गलसूत्र' व्यवहार करती हैं।

कोबी लोगोंके कुल देवता—मारुति, कल्लोलाप्पा, मलेवा, यल्लप्पा, वसप्पा और मार्गव वा लक्ष्मी हैं। सर्वापेक्षा यह मारुतिके अधिक भक्त होते हैं। शनिवार मारुतिकी पूजाका दिन है। विजयपुर जिलेमें बहुतसे लोग पीरगाजीकी भी पूजते हैं। इन्हीं पीरके उद्देश वहां कोबी वृद्धश्रितवारकी मांसाहार नहीं करते। वह सकल हिन्दू देवदेवियोंकी भी मानते हैं। निजाम-राज्यके अन्तर्गत हुसिंगोव, सादत्ती, बेल्गांवके परसगढ़ और कल्लोली प्रभृति स्थानोंमें उनके तीर्थ हैं। ब्राह्मण पुरोहित रखे नहीं जाते।

सन्तानको भूमिष्ठ होते ही धो डालते और प्रसूतिकी भी नहलाते हैं। पांचवें दिन सूतिकाष्टकके साथ समस्त भवन गोबरसे लीपापोता जाता है। लड़केकी मा खान करके शुद्ध होती है। इसी दिन बन्धुबान्धवोंकी मोठी रोटी खिलाते हैं। सन्याकासकी जीवती या बहीदेवीकी पूजा होती है। बारहवें दिन बच्चेकी दोसा

पर शयन करके नामकरण करते हैं। फिर भाईबन्दीकी मांस खिलाता पड़ता है। राणपटीकन्या देवीके सामने लड़केका चढ़ाकरण करके पूजा चढ़ाते हैं।

कोबियोंकी भी कन्यापण देना पड़ता है। जो दहेज मिलता, उसमें चाधा कन्याके पिता और चाधा कन्याके मातुलका भाग रहता है। शुक्रवारकी हलदी उबटन लगा सोमवारकी विवाह कर देते हैं। वर कन्याके घर पहुँचने पर गांठ जोड़ी जाती है। निमन्वित बन्धुबान्धव चावल छोड़ आशीर्वाद करते और कन्याके गलेमें मङ्गलसूत्र पहनाते हैं। फिर सब लोग मीठी रोटी और भात खाते हैं। वर कन्याको लेकर लौटते समय ग्रामस्थ मारुतिके मन्दिरमें जाकर पूजा चढ़ाना पड़ती है।

अपने घरमें मारुति रखनेवाली या प्रसवके १० दिन पीछे मरनेवाली रमणीकी ही केवल जलाते हैं। दूसरे शव जमीनमें गाड़ दिये जाते हैं। केवल पुत्र वा प्रधान प्राणीय १० दिन अशौच ग्रहण करते हैं, ग्यारहवें दिन भाईबन्दीकी खिला पिला शुद्ध हो जाते हैं।

वालविवाह, बहुविवाह किंवा विधवाविवाह सभी इन लोगोंमें अप्रचलित है। कोई नारी भ्रष्टा होने पर समाजच्युत कर दी जाती है। परन्तु अग्नि-परीक्षामें उत्तीर्ण होनेसे उसे फिर ग्रहण कर लेते हैं। इनमें अग्निपरीक्षा निम्नलिखित रीतिसे की जाती है—

चारो और काकुनके पेड़की सूखी लकड़ी लगा बीचमें स्त्रीकी खड़ा करते हैं। फिर उस सूखी लकड़ीमें आग लगा देते हैं। रमणी निर्भय उसमें खड़ी रहती है। फिर सोनेका एक टुकड़ा तपा उसकी जीभ दागी जाती है। इस प्रकारकी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेसे फिर उसकी निन्दा कोई नहीं करता।

प्रति ग्राममें कोबियोंका एक एक नायक रहता है। वही इनका विवाद विमर्वाद मिटाया करता है।

कोहली—बम्बई-प्रदेशके अहमदनगर जिलेका एक पुराना नगर। आजकल यह नगर विध्वस्त और जनहीन है। किन्तु किसी समय इसकी बड़ी समृद्धि रही। नगरकी चारो ओर हलकरने सुदृढ़ प्राचौर बनवाया था, जो आज भी खड़ा है। महाराष्ट्रपति पेशवोंने ३०

गानिके बदले हुलकरसे इसे प्राप्त किया। १८१८ ई० को अहमदनगरका कोषागार यहीं रहा। उसकी रक्षा के लिये एक घानादार रखा गया था। १८३० ई० को घानादारकी चालाकी खुलने पर वह निकाले गये और कोर्हले नासिक सिद्धर उपविभागके पन्तभुक्त हुवा। निमोनका कार्य-विभाग उठ जाने पर यह नगर कोपरमांव उपविभागमें मिला दिया गया। १८६५ ई० तक यह स्थान होलकरके कर्तृत्वाधीन रहा, फिर ब्रिटिश गवर्नमेण्टके हाथ लगा।

कोल (सं० पु०-क्षी०) कुल संख्याने अष्ट १ शुक्र, सुवर २ ब्रह्म, वेडा, चरनई ३ कोड़, गोद ४ शनिघट ५ चित्रक, चीत ६ अक्षपाणि, लिपटानेमें दोनों हाथोंके बीचकी जगह ७ आलिङ्गन, हमागोशी ८ अस्त्र-विशेष ९ मरिच, मिर्च १० चव्य ११ बदरफल, बेर १२ ककोल, शीतलचीनी १३ अङ्गोल १४ गजपिप्पली १५ पिप्पला १६ राजबदर, पेवदी १७ मख, एक खुशबूदार चीज १८ बदरवृक्ष, बेरका पेड़ १९ बदरास्त्रियस्य, बेरकी गुठलीका गूदा २० टङ्ग-हयपरिमाण, एक तौल २१ कुलस्य, कुरथी २२ अङ्गोलवृक्ष २३ बहुचारवृक्ष २४ तोलकमान, एक तोलेकी तौल २५ पुरुवंशीय पाक्कीड़ नामक राजाके पुत्र (हरिवंश १२ प०) २६ जनपदविशेष, कोल राज्य।

कोल (हिं० पु०) चबेना, बहुरी।

कोल—भारतकी एक प्राचीन जाति। ब्रह्मवैवर्तपुराणके ब्रह्मखण्डमें लिखा है—लेटके औरस और तीवरकन्याके गर्भसे मालु, मज्ज, मातर, भण्ड, कोल और कलन्दर छह मानवोंने जन्म लिया था। १०।१०१) किन्तु वर्तमान कोल जातिका विवरण पढ़नेसे ऐसा नहीं समझ पड़ता—किसी समय इनके साथ लेटी या तीवरीका कोई सम्बन्ध रहा या इस समय है।

अति पूर्वकालसे यह लोग भारतमें रहते हैं। स्कन्द-पुराणमें कुमारिकाखण्ड (४५अ०, ५३अ०) और हिमवत्खण्ड (८।८) पाठ करनेसे इनका कितना ही आभास मिलता है। पाश्चात्य पुराविद् कहते हैं—कोल जाति आर्य जातिसे पूर्ववर्ती भारतकी आदिम अधिवासी है। ऋग्वेदमें दस्यु, दास प्रभृति नामसे जो उल्लेख हैं, वे कोलजातिके पूर्वपुरुष थे।

वर्तमानकाल हो, मुण्डा, उरावं, भूमिज आदि कई जातियां ही कोल कहलाती हैं। उनमें हो या लड़का कोल प्रकृत कोल-जैसे देख पड़ते हैं।

लड़का कोल अधिकांश छोटानागपुर और सिंध-भूमि अंचलमें रहते हैं। हो, होरे या होरो शब्दका अर्थ मनुष्य है। अपर मनुष्यसे अपनेको श्रेष्ठ समझने पर हो नाम पड़ा है। किन्तु हो लोग अपनेको लड़का अर्थात् योद्धा बताते हैं। संभवतः अति पूर्वकाल मुण्डा, उरावं और हो तीन श्रेणियां एकत्र और एक परिवारभुक्त होकर रहती थीं। मालूम पड़ता है—छोटानागपुरमें कोलोंके संस्कृत “मुण्डा” नाम ग्रहण करनेसे पहले ही हो लोग पृथक् हो गये। मुण्डा आदि श्रेणियोंका आचार विचार कितना ही भ्रष्ट होते भी लड़का कोल प्राचीन रीति नीति बराबर समानभावसे पालन करते जाते हैं।

आज भी ठोक पता नहीं लगा—प्रथम कोल जाति कहाँसे इस अंचलमें आयी थी। हिमवत्खण्डमें लिखा है कि कोल नामक क्लेच्छ हिमालयमें मृगया मारते घूमता था। इससे समझ पड़ता है कि पूर्वकालको किसी समय हिमालयमें कोल जातिका वास रहा।

इनके पानेसे पहले छोटानागपुर और सिंधभूमि अंचलमें ‘शरावक’ नामक जाति रहती थी। खेताम्बर जेनोंके पुराने ग्रन्थोंमें लिखा है—महाबोरखामी जब सुनिवेशमें तीर्थभ्रमणको निकले, वन्यभूमि नामक एक व्यक्ति कुत्ते और तीरकमान से उनके रक्षक रहे। बहुतसे लोग समझते हैं वन्यभूमि ही भूमिज नामक कोल सम्प्रदायके आदिपुरुष थे। शरावक शब्द भी जैन ‘श्रावक’ भिक्षु दूसरा क्या है। इसके अनेक प्रमाण पाये जाते हैं—आजकल मानभूम और सिंधभूममें जहाँ-जहाँ कोलोंका वास है, जैन सम्प्रदाय भी वहाँ पहले रहता था। मानभूम, सिंधभूम, भूमिज प्रभृति शब्द देखो। सिंधभूममें जहाँ वेवल कोल लोग रहते, उसे कोलहान कहते हैं।

लड़का कोलोंका कहना है—प्रथम अतिथोराम और सिद्धबोहाने स्वयं जन्म लिया था। उन दोनोंमें

मिलकर इस पृथ्वी, प्रसर, जल, जल, नदी और फिर पशुकी सृष्टि की। सब सृष्टि हुई, किन्तु कोई मेल न मिला। उस समय उन्होंने एक बाखल और एक बाखलकी बनाया था। सिङ्गबोङ्गाने पर्वतके गर्भमें उनको छोड़ दिया और इसी प्रकार छोड़ा समय बीत गया। सिङ्गबोङ्गाने उनमें कामकी प्रवृत्ति न देख विचार किया—सन्तानोत्पत्ति कैसे होगी? उन्होंने दोनोंको धानकी शराब बनाया सिखाया था। शराब पीनेसे दोनोंकी कामिच्छा हुई और उसी समय वंशवृद्धि होने लगी। इस प्रथम नरनारीके १२ पुत्र और १२ कन्या-वोंने जन्म लिया था। सिङ्गबोङ्गाने मछल, बैल, छाग, भेड़, शूकरशायक, नाना पक्षियोंका मांस और शाकभाजी पकड़ पकड़ पका कर एक भोज दिया। उन्होंने एक एक भाई बहनकी मिथुन करके एक एक मिथुनको एक एक चीज खिलायी थी। प्रथम और द्वितीय भाई बहनने बैल और मछलका मांस लिया। उन्होंने कोल और भूमिज जातिकी उत्पत्ति है। शाकभाजी खाने-वालोंसे ब्राह्मण-क्षत्रिय और जागमांसहारियाँ शूद्र-जाति निकली है। उसी समय एक जोड़ा सूअर-मांस खानेसे सन्तान हो गया। कोल अपनी भाँति युरोपी-योंकी भी प्रथम मिथुनसे उत्पन्न बताते हैं।

सड़का कोल देखनेमें बहुत भड़े नहीं होते। भूमिज सन्तान आदि जातियोंसे कितने ही अच्छे लगते हैं। चम्पा या गुलाबके फूल जैसा रूप न सही, जो है, बचिकर है। मुँह, पाँख, नाक आदि जिन जिन पक्षोंसे सुंदर होनेसे रूपवान् समझते, इनकी रम-बियोंमें उनका अभाव नहीं देखते। सभी मत्वे पर बाल रखते हैं, केवल पुद्गल ब्रह्मतल मुँहा छाखते हैं।

ज्या बड़े आदमी, ज्या छोटे प्रायः अधिकार्य नम्र रहते हैं, इसमें कोई सजाकी बात नहीं। स्त्रियोंकी अधिक बनाव चुनाव अच्छा नहीं लगता। कोलजानमें अनेक स्थानों पर कोल लोग 'बटई' नामक छोटा कोपीन पड़ते हैं। फिर भी यह नहीं कि कपड़े पहनते ही नहीं। लम्बी संमोटी इनका जातीय परि-च्छेद है। यह किसी दूसरी जातिके साथ एकत्र रहना नहीं चाहते। और दूसरी सभी जातियों विभिन्नतः

हिन्दुओंसे बड़ी दूरा करती हैं। पहले कीक दसवह होकर एक एक पक्षीमें रहते थे। उस समय जपर कोई जाति उस घाममें रह न सकती थी। केवल ब्याही, सुबाड़े, सोहार आदि जिन सागोंके न रहनेसे अपने अनेक विषयोंकी क्षति समझते, उन्हीको बहुत देख-भाल छोड़ासा खान दे देते थे। दूसरी किसी जातिका संश्रव न रहनेसे यह जातीयभाव पहले-जैसा हो रह सके हैं। परन्तु आजकल अंगरेजी राजत्वमें जहाँ जपर जाति जाकर इनके साथ रही है, कोल अच्छी तरह कपड़ा पहनने लगे हैं। जहाँ कुछ भी लज्जा न थी, अब उसका प्रवेश हो रहा है।

हिन्दुस्थानी रमबियोंकी भाँति इनमें बाल बाँध-नेकी चाल नहीं है। बाल ऐँछ और गुच्छा बनाकर दाढ़ी कानके पास लगा और अच्छे अच्छे फूलोंसे सजा दिये जाते हैं। अलङ्कारोंके बीच गलेमें कासे बड़ाचकी माला, हाथमें कड़प तथा चूड़ा और पैरमें पीतलका नूपुर पहनना अच्छा समझते हैं। पैरमें नूपुर छालना कोई आसान बात नहीं। युवतियाँ सोहारकी दुकान पर नूपुर पहनने जाती हैं। सोहार पहले पैरकी एड़ीमें एकतह चमड़ा लगा देता है। फिर सब लोग पैर दबा कर नूपुर पहनाने लगते हैं। रमबी सड़चरीके कंधे पर हाथ रख कर परित्राहि चीत्कार किया करती है। उसके बिलाने पर लोग दकड़े हो जाते हैं। अनेक कठोंमें एक एक कड़ा चढ़ाते हैं। पहनावा हो जाने पर युवतीकी दोनों पाँखोंसे चाँदनीकी लड़ा और सुखकी ईसी नहीं दकती।

सड़का कोल कभी किसीकी नाकरी करना नहीं चाहते और न किसीकी पक्षेदारी ही करते हैं, सब अपनी अपनी जमीन जोते बोते हैं। बहुतोंके श्रेयोत्पन्न द्रव्यादि खानेकी एक एक माछी रहती है। शकट चखानेमें सभी पटु हैं। कोल धनुर्विद्यामें विशेष पार-दर्शी होते हैं। बाखलकासको तोर चखाना सीखा जाता है। प्रायः बाखलमास चायमें खमान उठा जङ्गल-में गवाहि चराते घूमते और बखरबा करते हैं। चिड़ियाकी उड़ते उड़ते मार देनेसे अपना वाचमिचा

साथैक समझी जाती है। बहुतसे शिकरा भी पाकते हैं। चेतन मासकी यह बड़े समारोहसे शिकार करने निकलते और निकटवर्ती पक्षीके लोग भी आकर मिलते हैं।

पानी पड़नेसे फिर घरमें किसीका मन नहीं लगता, खेतकी और धावित होते हैं। रमणियांभी पुष्पोंका साहाय्य करती हैं। केवल हलवाहनकाय स्त्रियां करने नहीं पातीं। लड़का कोल अपने आप कृषिकर्मके पखादि प्रसृत और धान, गेहूं, चना, सरसों, तिल, काकुन, तम्बाकू, रुई आदि उत्पन्न करते हैं। कपड़ेका प्रयोजन पड़नेसे जुलाहेको रुई दे ले लेते हैं।

इनकी भूत और डाइनका बड़ा भय रहता है। किसीकी कोई पीड़ा होनेसे समझते किसी भूतका कोप हुआ और किसी डाइनकी दृष्टिसे रोग लगा है। भूत पर सन्देह आनेसे अनेक यत्नासे उसकी शान्ति की जाती है। इनमें शोखा नामक कितने ही लोग होते, जो चुड़ैलकी भाँड़ते हैं। भाँड़नेमें एक पत्थर और तराजका एक पक्का जरूरी है। पत्थे पर पत्थर रख और डाइन-खगे आदमीको बैठाल घुमाना शुरू करते हैं। फिर शोखा घामके एक एक व्यक्ति का नाम लेकर मन्त्र पढ़ता है। जैसे ही एक नाम हो जाता, धान छोड़ कर रोगीकी मारते हैं। ऐसा ही होते होते रोगी पत्थरकी छलट भूमि पर चकर खाकर गिर जाता है। जिसके नाम पर पत्थर छलटता, उसीको सब कोई डाइन समझ पकड़ता है। उस डाइनका—पुहव हो या स्त्री, फिर निस्तार नहीं। सब लोग उसको पसंग करके उसकी सन्तानादिके साथ मार डालते हैं। कोली की विश्वास है कि डाइनके वंशधर भी डाइन ही होते हैं। आजकल अंगरेजोंके शासनमें डाइने बहुत कम मारी जाती हैं। परन्तु डाइने पहिलेसे मालूम होने पर देश छोड़ भागती हैं। कभी कभी भयसे कोई आत्महत्या तक कर बैठता है। शोखाओंमें कोई कोई भूतविश्व होता है। वह भूत उतार कर उससे डाइन या जादूगरका नाम पूछ लेते हैं। यदि जादूगर निकलता, रोगीके पास उसकी से आकर रहते हैं—यदि

भला चाही, शीघ्र अपने जादू या भूतको उतार को। ऐसी अवस्थामें जो जादू नहीं भी जानता, मारके डरसे सभी बातें स्वीकार करता और कहता है—रोगीकी कोई भय नहीं है, मेरे द्वारा कोई अनिष्ट न होगा। रोगीके अल्पअल्प अच्छा होनेमें ही मङ्गल है। नहीं तो उसको सब लोग बड़ी मार मारा करते हैं। किसी किसी समय रोगीके साथ उसको भी यमासय पहुँचना पड़ता है।

कोल साहसी, परिश्रमी, उत्साही, निर्भीक और विश्वासी हैं। यह बड़े ही सत्यप्रिय होते, पाप जाते भी मिथ्या नहीं बोलते। फिर जैसे ही सत्यवादी, वैसे ही अभिमानी भी होते हैं। अति सामान्य विद्रूप या निन्दा कभी सहा नहीं करते। निन्दा या पवत्रा करनेवालेकी भिन्न जाति होनेसे सुविधा लगते ही मार डालते हैं। इतना अभिमान। स्त्रियोंकी तो बात बातमें अभिमान है। कहते हैं, किसीने अपनी कन्याकी इस बात पर थोड़ी निन्दा की—वह रसोई ठीक बना न सकी। परन्तु मानिकी यह भी सहा न हुआ, उसी दिन वह कूपमें डूब कर मर गयी।

इस वीर जातिके मध्य प्रत्येक गांवमें एक एक मण्डल रहता है। कभी कभी भिन्न भिन्न पक्षियोंके साथ युद्ध छिड़ जाता है। उभय पक्षों पर अनेक लोगोंके न मरनेसे सहजमें वह विवाद नहीं मिटता। कितना ही विवाद क्यों न हो—जब किसी विजातीय दलको अपने ऊपर आक्रमण करनेके लिये आते सुनते, परस्परके विवाद विस्वादको छोड़ बैठते हैं। फिर वहां जितने कोल रहते, जातीय गौरवकी रक्षाके लिये एकत्र पा मिलते हैं। इसीलिये सहजमें इन्हें कोई पराजय कर नहीं सकता।

विवाहके समय पण देना पड़ता है। दहेज बहुत बड़ा है। सुतरां पण देनेकी अड़चनमें बहुतसी कन्याओंका विवाह रुक जाता है। जो विशेष धनवान् हैं, वह भी यथारोति दहेज न मिलनेसे पुत्रका विवाह करनेमें हिचकते हैं। कोल पण लेना आवश्यक समझते हैं। यह कौलिक रीति और सभ्यताका विरुद्ध है। इस कुप्रथाके कारण कोलीमें अनेक अजड़ ब्रह्मर्षि देख पड़ती हैं।

कोटो उल्लमें शादी न होनेसे कुमारी जीवनमें पदा-
पंथ करने पर युवकोंका मन डरब करनेकी चेष्टा
लगाती है। कभी युवकोंके साथ हाथ पकड़ कर नाचती,
कभी फूल तोड़ कर सजाती, कभी मीठा मीठा गाती
है। जिससे मन मिल जाता, युवक विवाह करनेकी
अनेक चेष्टायें लगाता है। परन्तु भवकतेपथकी ज्वाला
से सभी समय उसकी आशा नहीं फलती। पुत्र होनेसे
ही पिता अपनेकी भाग्यवान् और सम्पत्तिशाली सम-
झने लगता है। सुतरां दहेजका लालच नहीं छूट
सकता।

कोलोंके गांवमें प्रायः देखते युवक युवती परस्पर
कंधे पर हाथ रख मिष्टानाप करते चले जाते हैं,
दोनोंका मन परस्पर आसक्त है। नहीं समझ सकते—
विवाहित होने पर वह कितने सुखी होंगे। कुमारीसे
उसके मनका भाव पूछिये। सरलहृदया सरल भावसे
कहेगी—पर। मैं क्या करूंगी, खुली पांखें रहते भी
दूसरे देख नहीं सकते। युवककी एकान्त इच्छा है—
अपने साथ नाचनेवाली अमृता कुमारीसे विवाह
करूंगा। उससे सब ठीक ठाक कर लिया और पिताके
पर पकड़ अपने मनकी बात कही। पुत्रवत्सल पिता
भी उसमें सन्मत हो गया। किन्तु पंचोंने गोल बांध
कर भगड़ा बढ़ा दिया। फिर पितामाता पुत्रसे पूछने
लगे—उस कन्याका वयस क्या है, किस समय वह
पच्छी लगी, देखनेमें कैसी है। पुत्र भी ठीक उसी
समयकी निर्देश करता है। परन्तु उसके पीछे यदि
दुर्लक्ष्य नहीं लगता और कन्याका पिता दहेज देनेकी
राजी रहता, विवाह हो जाता है। अनेक समय सब
ठीकठाक हो जाने पर भी दहेजकी बात पर विवाह
नहीं होता। पथ चुक जाने पर फिर आमीदकी सीमा
नहीं रहती। उस समय कन्या अपनी सहेचरियोंके साथ
नाचते गाते वरके घरकी ओर चलती है। इधर नाना
खानोंसे निमन्त्रित बालक बालिकायें और युवक युव-
तियां आकर वरके साथ हो लेती हैं। वह सभी दल
बढ़ हो कर कन्याकी मध्यपथमें आगान करने जाते
हैं। राहमें दोनों दल मिलकर पास ही किसी उपवनमें
पहुंचते हैं। वहां भस्मभट्टाकेसे नाचगाना होता है।

वर कन्याका हाथ पकड़ नाचा करता है। दोनों ठुमक
ठुमकके नाचते नाचते एक एक रमणिकी गोदमें जा
बठते हैं। इसी प्रकार सब लोग पक्षीमें या उपस्थित
होते हैं। फिर भोज, नाच, गाना और खूब शराब
बला करती है। विवाहमें दूसरा कोई कुलाचार या
तन्त्रमन्त्र नहीं, एक एक प्याला शराब दूल्हा दूल्हन-
को दी जाती है। वर अपने प्यालेसे थोड़ीसी शराब
कन्याके पात्रमें और कन्या अपने प्यालेसे थोड़ीसी
शराब वरके पात्रमें टपका देती है। फिर उसीका
दानों बड़े आनन्दसे पीते हैं। यही विवाहका प्रधान
अङ्ग है।

विवाहके बाद तीन दिन नव दम्पती एकत्र रहते
हैं। उसके पीछे पत्नी चुपके चुपके पतिके गृहसे चली
जाती है। फिर बन्धुबान्धवोंसे कहती फिरती है—सुभे
ऐसे भर्तारसे कोई काम नहीं, मैं उसे अब देखना भी
नहीं चाहती। पति अपनी आदरिण्योको ठंडने जाता
और देख पड़ते ही पकड़ लेता है। उस समय नव-
वधू मनका प्रकृत भाव गोपन कर कुछके रूखापन
दिखाती है। सङ्गमें साथ चलते न देख बिना विलम्ब
उसे प्रालिङ्गन करके अथवा सामर्थ्य रहते कंधे पर
उठा कर अपने घर ले जाता है। इसमें दम्पती कुछ
भी लज्जा नहीं समझते। अनेक समय देखनेमें आता
पति नवीना भार्याकी भरे बाजारसे खींच जाता, कन्या
परित्राहि बिज्ञाती है। किन्तु इस पर सब लोग हंसा
करते हैं। यदि नववधूके शरीरमें अधिक शक्ति रहती,
तो फिर क्या कहना है। कितनी ही धौंगासुस्ती करके
युवक ज्ञानसुख घर लौट आता या समयानुसार
पत्नीका मन बहला पति यज्ञसे उसे अपने साथ
लाता है।

वर पाने पर कोलरमण्यी स्नामीकी प्रकृत अर्धा-
ङ्गिनी होती है। वह समझती है—पति भिन्न दूसरी
गति नहीं, पति स्वर्ग और पति ही मोक्ष है। स्नामी
भी पत्नीको गृहकी लक्ष्मी, उसके सुखमें सुखी और
ःखमें अपनेकी दुःखी मानता है। उस समय मन
ही मन प्रकृत मिलन होता है। सभी कार्य दोनों
परामर्शके साथ करते हैं। कोलरमणियां स्नामीके

बकीन नहीं, खामी उन्हें अपनी जीवनसङ्गिनी सम-
झते हैं। ज्ञात होता है—पति पत्नीके मध्य ऐसा विशुद्ध
भाव जगत्में कहीं नहीं। पत्नीके प्रति एकान्त अनु-
राग देख कोई कोई कोस जातिको स्त्रैव समझते हैं।

कोसरमन्थियां मात्र पतिप्रसायका रहती और
पतिके लिये सब कुछ कर सकती हैं। पतिके रहते
कोई परपुरुषकी कामना नहीं करते। यह कहना
कोई अत्युक्ति नहीं कि कोसोंमें पसती स्त्रियां बहुत
कम हैं। परन्तु घटनाक्रमसे किसीका चरित्रदोष
लगने पर तत्पश्चात् उसे समाजच्युत और परित्यक्त
कर देते हैं। जो पुरुष रमणियोंको बिगाड़ता वह उसके
खामीको विवाहके पक्षका रूपया देने पर बाध्य है।

सन्तान भूमिष्ठ होनेसे पितामाता ८ दिन अशुचि
रहते हैं। दूसरे सब लोग घर छोड़ जाते हैं। इसीसे
खामीकी स्त्रीके लिये रन्धन करना पड़ता है। ८ दिन
पीछे फिर सब लोग घर वापस आ जाते हैं। फिर
बन्धुबान्धवोंका भोज और नव शिशुका नामकरण होता
है। पितामहके ही नाम पर उसका नाम रखते हैं।
कभी कभी नामकरणके समय पूर्व; पुरुषोंका नाम
ले लेकर उसके किसी पात्रमें एक एक उड़द डालते
जाते हैं। जो नाम लेते समय उड़द तेरने लगता,
वही शिशुका नाम पड़ता है।

मृतोंके प्रति सभीकी प्रगाढ़ भक्ति है। इनमें किसी
प्रधान व्यक्तिका मृत्यु होनेसे बड़ी शून्याम देख पड़ती
है। घरके सामने जलानेकी अच्छी अच्छी लकड़ी
लाकर जमा करती और उसपर शवाधार रखते हैं।
मृतदेह अति यत्नसे धोया और फिर तेल डलदो
समा रधी पर रखा जाता है। मरनेवालेके, साथ
उसका निजस्व भी जाना चाहिये, नहीं तो उसका
मन चूष हो सकता है यही समझ कर कोस लोग
मृत व्यक्तिका रूपया पैसा, कपड़ा गहना और खेती
बारीके पञ्चमख्न जो रहता, देहके पास पंक्ति बार
रख देते हैं। शवाधार छोड़ी देर बन्द रखते हैं। फिर
ठकन खोल कर चारो पाशोंके काष्ठमें पन्थि समाया
जाता है। मृत व्यक्तिके वासगृहके सन्ध्या ही शवदाह
करते हैं। दूसरे दिन बाज्जीय जलसे भाग बुझा देते

और सब लोग उसकी हड्डियां खोज लेते हैं। छोटी-
छोटी हड्डियां गाढ़ दी जाती हैं, केवल बड़ी-बड़ी
हड्डियां किसी महीके बरतनमें उठा कर रख छोड़ते
हैं। फिर बड़ी पात्र मृतकी माता वा पत्नीके घर कुछ
दिन लटका करता है। जितने दिन यह घरमें रहता
वहा रोना शोना मचता है। इसी बीच शेष अन्त्येष्टि-
क्रियाका आयोजन हुवा करता है। घरके पास ही एक
बहुत बड़ा गर्त बनाते हैं। इसी गर्तके पास एक
ऐसा प्रकाष्ठ पत्थर रखते, जिसको २०१५ लोग मिला-
कर उठा सकते हैं। गर्तमें पत्थर रखनेके लिये शुभ-
खण्ड खिर होता है। निर्दिष्ट समयकी ४।५ निमिष
प्रतिवेशी और ८ बालिकायें आकर दरवाजे खड़ी हो
जाती हैं। मृतकी माता वा स्त्री एक पात्रमें पत्थर
रखती, फिर उसे अति यत्नसे झाती या मल्ले पर रख
कर रोते रोते बाहर निकलती है। आगे पत्थरवाहिका
और उसके पीछे बालिकायोंकी दो पंक्तियां रहती
हैं। पड़की कतारकी लड़कियां अपनी बगलमें फटा
और खाकी घड़ा रखती हैं। प्रतिवेशी लोग कंधे पर
ठोस रख पधसर होते हैं। बालिकायें नाचतीं और
पुरुष बाजा बजाते हैं। उस नाच और उस बाजेमें
मानी शोक तथा विवाद भरा रहता है। जिस राहसे
यह जाते, लोग बाज्जीकी आवाज सुन अपने अपने घरसे
निकल आते हैं। प्रति द्वारके सम्मुख उक्त पत्थरपात्र
उतारा जाता, मृतका दीर्घनिष्वास और अनुसिक्त
मयनसे मृतको बुलाता है। वन, उपवन, जैत्र, गृह,
नाचघर आदि स्थानोंमें जहां मृत व्यक्ति पड़से जाता-
जाता था, हड्डियां धुमते हैं। मृतसे जिसका मन
कभी मिला था, जिसने कभी उसको आलम्भावसे पुकारा
था; वह आज अकपट भावसे चार पाँच बड़ा शोक
जता दिखाता और उन हड्डियोंके सामने मध्यम शव-
मत करके अन्तिम अभिवादन करता है। अवशेषको
सब धूम कर उसी गर्तके निकट उपस्थित होते हैं।
पड़से चावल और खाद्यादि उस गर्तमें रखे जाते, फिर
समस्त पत्थर धीरे धीरे निचोव करके वही बड़ा पत्थर
गर्तके मुखपर लगाते हैं। इसी स्थान पर अन्त्येष्टि
क्रिया पूरी हो जाता है। कोसोंके गाँवमें जगह-जगह

ऐसे बहुतसे पत्थर हैं। उन्हें देखने पर अनायास ही समझ सकते—यहाँ किसीको समाधि दिया गया है।

वर्ष में लड़का कोलोंके ७ पर्व होते हैं। प्रथम और प्रधान उत्सवका नाम माघपर्व या 'देशौली बोंगा' है। धान काट चुके हैं, घर घर धानकी खत्तियाँ भरी हैं लक्ष्मीदेवी मानों प्रत्येक गृहमें विराज कर रही हैं, चेतनशून्य हैं, लज्जितजीवी कोलोंको भी अब कोई शारीरिक परिश्रम करना नहीं पड़ता। इस समय पूर्ण अवकाश है, ऐसे अवकाश, ऐसे सुखके दिनों सभीका मन प्रफुल्ल है। सभी लोग समझते हैं—ऐसे दिनों स्त्रीपुरुषोंके हृदयमें मदनकी आग जलने लगती है। चिर दिन काम ही किया करते हैं। अन्य समय कब अवकाश मिलता है। जिसको भीतर ही भीतर चाहते, जिसको देख फूले नहीं समाते, जिसने मन हरण किया है। दिल ही दिलमें जिससे मिल बढ़ गया है—उसको साथ लेकर दो चढ़ी आमोद करनेका समय वा सुयोग नहीं लगता। परन्तु इस माघ मासमें, इस पूर्णिमा रजनीको ऐसे पूर्ण अवकाश पर—उपयुक्त अवसर क्यों वृथा नष्ट करेंगे। यही विचार करके सभी मदनोत्सवमें उत्पन्न हो जाते हैं। इस समय पिता माता, भाई बहन, आत्मीय कुटुम्बी कोई किसीको देख कर लज्जा नहीं करता। इस समय दास दासी अपना कर्तव्य काम भूल जाती हैं। प्रभु मृत्युका सम्मुख इस समय न मालूम कहां चला जाता है। सभी सुरापान और प्रेयसीके वदन सुधापानमें खब व्यस्त हैं। जो लोग कभी बुरी बात नहीं कहते, इस माघोत्सवमें अपना मुँह खोल बैठते हैं। पिता पुत्रकी अवस्थ भाषामें सम्बोधन करता, पुत्र भी पिताके सम्मुख युवतीका गाढ़ आलिङ्गन सम्पन्न करनेमें नहीं हिचकता। ज्योत्स्ना रजनी आनेसे मानो सब लोगोंकी मुट्ठीमें स्वर्ग आ पड़ चुका है। युवक युवतियाँ मण्डलीमें पड़ चुके मनमानी रासक्रीड़ा किया करती हैं। विवाहित रमणियाँ अपने स्त्रामियोंके साथ मजे उड़ाती हैं, किन्तु अविवाहित युवक युवतियाँ अचकलके लिये काण्डमान भूल जाती हैं। लड़का कोल स्थान स्थान पर माघ मासके शुक्लपक्षकी यह उत्सव मनाते हैं किन्तु सुष्कारि नामक कोल सम्प्रदाय केवल माघ

पूर्णिमाके दिन इस पर्वमें योग देता है। कोल जातिमें ऐसे आमोदका दिन दूसरा नहीं होता।

कोल लोगोंको विश्वास है कि उस समय भूतप्रेत निकला करते हैं। इसी लिये बालक बालिकायें युवक युवतियाँ हाथमें लठ ले नाचती गाती और तर्जन गर्जन करती गांवमें घूमती हैं। इनकी समझमें ऐसा करनेसे भूतप्रेत भाग जाते हैं।

उसके पीछे चैत्रमासको पुष्योत्सव होता है। इस पर्वको लड़का कोल 'बड़बोझा' और सुष्कारि 'सरहल' कहते हैं। मधुमासकी चारो ओर नानाप्रकारके फूल खिलते हैं। बालिकायें छलियाँ भरके उन फूलोंकी तोड़ खाती हैं। गृहहार फूलोंकी मालावाँ, फूलोंकी तोड़ों और फूलोंसे सजाये जाते हैं। अपने आप भी कोल लोग फूलोंसे सजकर दो दिन बराबर नाचा करते हैं। इस समयका नाच कई तरहका होता है। भावभङ्गिमा भी अनोखा आता है। इतने प्रकारका नाच बहुतोंने देखा न होगा, सभ्यसमाजमें भी सम्भवतः कोई नहीं समझता। नाचते नाचते जैसे ही क्लान्त पड़ जाते, एक गिलास शराब पी लेते हैं। इस पर्वपर प्रति गृहस्थ एक एक सुर्गा बलि देता है। फिर ग्रामकी पुरोहित या सुखिया अपने देशौली देवके उद्देश्य एक सुर्गा और दो सुर्गियाँ बली चढ़ाते हैं। ठाकुरके फूल, चावलके आटेकी रोटियाँ और तिल उत्सर्ग करके देवताको पूजा चढ़ा प्रार्थना करते हैं :—भगवन् विपद् आपद् सभी समयों पर दृष्टि रखिये, जिसमें आगामो वर्ष यथाकाल दृष्टि हो और हमारे परिश्रमसे धन शस्त्र प्रच्छा उपजे।

तीसरा—ज्येष्ठमासका दुमरिया नामक पर्व है। प्रथम धान बोनेके समय यह पर्व पड़ता है। बीजकी रक्षाके लिये पूर्वपुरुषों और भूतप्रेतोंकी पूजा चढ़ाना पड़ती है। इसमें कोल एक बकरे और एक सुर्गीको बलि देते हैं।

चौथा—आषाढ़ मासमें हरिकोंगा या हरिहर उत्सव है। इस पर्व पर देशौली और 'जाहिरमुड़ी'के उद्देश्य पवित्र उपवनमें एक सुर्गी, एक चढ़ा शराब और एक मुट्ठी चावल रख जाते हैं। अभिप्राय यह कि उनके

आशीर्वादसे शस्त्र रखा होगी। दूसरे महिने 'बहतीसी बोंगा' नामक उत्सव होता है। किसान एक सुर्गी मारते हैं। उसको पर एक बांसमें बांध खादके ढेर या पनाजके खेतमें गाड़ देते हैं। कोलोंके कथनानुसार इस पर्वकी उपेक्षा करनेसे शस्त्र नहीं पकता। इस दिन-को स्त्रियाँ अखाड़ेमें जाकर नृत्यगीत करती हैं। छोटा नागपुरके छिन्दू भी इस पर्वमें शामिल होते हैं।

फिर भाद्रमासकी 'लुमनामा' नामक पर्व पड़ता है। इस समय 'गोराधान' पकते हैं। सिङ्गवींगा अर्थात् सूर्यदेवकी इन नये धानोंके चावल और एक सफ़ेद सुर्गी चढ़ाया जाता है। कोल नये चावल सूर्यदेवकी विना अर्पण किये नहीं खाते।

उसके बाद खेतसे धान काट कर लाते समय 'कलमबोंगा' नामक शेष पर्व होता है। इस पर्व पर देशीलीकी एक सुर्गी चढ़ाना पड़ती है।

सिवा इसके 'पान' अर्थात् केवल पुरोहितोंका भी एक उत्सव आता है। इस उत्सवके निर्वाहार्थ उन्हें 'दाक्षिणतारी' अर्थात् थोड़ीसी माफ़ी जमीन दी गयी है। इस पर्वमें मरङ्गबुरुके उद्देश दो वर्ष पीछे एक सुर्गी, तीन वर्षके अन्तर एक भेड़ और चार वर्ष बाद एक महिष बलि देते हैं। सृष्टा, भूमिज आदि शब्द देखो।

१८२१ ई०की लड़का कोलोंसे ब्रिटिश गवर्नमेण्टकी एक घमासान लड़ाई हुई। अनेक कष्टोंमें अंगरेजी सेनाने कोलोंको परास्त किया था। अखीरकी कोलोंके साथ एक सन्धि हुई। उसमें इन्होंने ब्रिटिश गवर्नमेण्टको कर देना स्वीकार किया था। १८५७ ई०की कोलहानके निकटवर्ती पुरहाटके चौहान-राजाकी ओरसे लड़का कोलोंने अंगरेज सरकारके विरुद्ध हथियार उठाये। परन्तु शेषको पुरहाट-राजाके शासित होने पर इन्होंने भी शान्तमूर्ति धारण की थी। धनुष, जहर बुझाये तीर, वरुा और कुठार कोलोंके युद्धास्त्र है।

कोलहान देखो।

कोल जातिकी भाषा स्वतन्त्र है। आर्यावर्त पथवा दक्षिणात्यकी द्राविड़ भाषासे उसका कोई संश्लेष नहीं, इनकी मूल भाषाके सम्बन्धमें अभी तक कोई निश्चय नहीं हो पाया है। कोई गोंड जातिकी भाषाके साथ

उसका कितना ही सौसादस्त्र बताता, और कोई कुछ भी सादृश्य नहीं पाता। गौर देखो।

प्रवाद है—बोधगयाके निकट विस्तर प्रस्तरमण्डल और गया जिलेके कोंचगांवका बृहत् मन्दिर कोलोंने बनाया था।

२ विहारके गोंडी लोगोंकी एक शाखा।

कोलक (सं० पु०-स्त्री०) कुल-गवल्। १ अछोटवृक्ष, अखरोटका पेड़। २ बहुवारवृक्ष, चालता, लसीड़ा। ३ गन्धद्रव्यविशेष, एक खुशबूदार पेड़। ४ मरिच, मिर्च। ५ ककोल, शीतलचीनी।

कोलक (हिं० पु०) यन्त्रविशेष, एक छोटा चीजार। इसमें दांत रहते और इसे रैती तथा चारी पैनानेमें व्यवहार करते हैं।

कोलकई—मन्द्राज-प्रदेशके तिवेवेसी जिलेके श्रीवैकुण्ठम् तालूकका एक गाँव। यह पक्षा० ८° ४०' ७०" और देशा० ७८° ५' पू०में श्रीवैकुण्ठम् नगरसे १२ मील दूर पड़ता है। लोकसंख्या प्रायः २५१८ है। कहते हैं—कोलकई द्राविड़ सभ्यताका सबसे पुराना स्थान है। यहाँ चेर, चोल और पाण्ड्य राजाओंने राजत्व किया। प्राचीन युरोपीय भौगोलिक इसे भारतका सबसे बड़ा बाजार समझते थे। ८० ई०की पेरिप्लसके रचयिताने कोलकईकी मोती निकालनेकी मशहूर जगह लिखा और १३० ई०की टलेमिने भी इसका परिचय दिया है। परन्तु ताम्रपत्रोंकी रेत जमा हो जानीसे समुद्र धीरे धीरे पीछे हटा और यह उससे ५ मील दूर पड़ गया।

कोलकन्द (सं० पु०) कोल इव कन्दोऽस्व। स्त्रनामख्यात महाकन्द शाकविशेष, एक जमोकंद उला। काश्मीरमें इसका नाम पुटालु है। कोलकन्दका पर्याय—कमिष्ठ, पञ्जल, वस्त्रपञ्जल, पुटालु, सुपुट और पुटकन्द है। राजनिधण्टुमें इसकी कट, उष्ण और क्षमिदोष, वमन, कर्दि तथा विषनाशक कहा है।

कोलककंटिका (सं० स्त्री०) कोल इव ककंटिका। मधु-खलुरिकावृक्ष, मीठो खजूरका पेड़।

कोलककंटो, कोलककंटिका देखो।

कोलका (सं० स्त्री०) शुक्ल शुक्लशिखी, सफ़ेद कोंचकी कड़ी।

कोलकुच (सं० पु०) उकुच, कुं, लीख ।

कोलगजनी (सं० स्त्री०) गजपिप्पली, बड़ी पीपल ।

कोलगांव—बम्बई प्रदेशका अहमदनगर जिलेके श्रीगोंडे तालुकका एक नगर । यहां हेमाडपंथियोंका कस्बेखर नामक एक बड़ा मबरज-मन्दिर और एक भग्न शिवालय है । मन्दिर पुराना-जैसा मालम पड़ता है । इसके खम्भों और दीवारों पर अनेक चित्र और देवमूर्तियां बनी थीं । परन्तु नयी अस्तरकारी होनेसे कितनी ही मिट गयी हैं । कोलगांवमें प्रति बुधवारको बाजार लगता है ।

कोलगिरि (सं० पु०) दक्षिणदिक्को अवस्थित एक पर्वत । (भारत २।२०)

कोलाचल आदि शब्द इसी पर्वतमें व्यवहृत होते हैं । प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ कोलाचल पर्वतपर रहते थे । इसीसे कोलाचल शब्द मल्लिनाथके विशेषणरूपसे व्यवहृत होता है । कोलगिरि देखो ।

कोलगङ्गा (कहलगांव) बिहार-प्रान्तके भागलपुर जिलेका एक नगर । यह अक्षा० २५° १६' ३०" और देशा० ८७° १४' ५०" में गङ्गाके दक्षिण तट पर अवस्थित है । लोकसंख्या ५७३८ है । गौड़ विध्वंसके पीछे १५३८ ई०को बङ्गालके आखिरी सुदमुखतार नवाब गयासउद्-दीनका यहां मृत्यु हुआ । कहलगांवमें चट्टानका एक अनोखा मन्दिर बना है । पड़ले उसमें कारु-कार्यके अच्छे आदर्श रहे । सवन्मतः चीनपरिव्राजक ह्युयेनत्सुयङ्ग उसे देखने गये थे । यह नगर कभी ठगोंके लिये बदनाम था । १८६८ ई०को यहां म्युनिसिपालिटी हुई ।

कोलघोषटा (सं० स्त्री०) एक प्रकार बदरी, किसी किस्मका बेर ।

कोलङ्ग (सं० पु०) ग्रामलक ठुल, भावलेका पेड़ ।

कोलचेल—मन्द्राज-प्रान्तके त्रिवाङ्गुडम् राज्यके एरानोल तालुकका एक बन्दर । यह अक्षा० ८° ११' ३०" और देशा० ७७° १८' ५०" में अवस्थित है । लोकसंख्या प्रायः १००० है । कितना ही माल जहाजोंके जरिये आता जाता है । बारटोलोमियोने इसे एक महफूज बन्दर लिखा है । कुछ दिनोंतक डेन लोगोंने यहां

अधिकार रखा । किन्तु १७४० ई०को त्रिवाङ्गुडम् सेनापति रामअय्यन दलबने उन्हें पूर्णरूपसे पराजित किया और पश्चिम-तटसे उनका प्रभाव उठा दिया था ।

कोलटा—मध्यप्रदेशके छत्तकोकी एक प्रधान जाति । यह लोग अधिकांश सम्बलपुर जिलेमें रहते हैं । इनके अपना परिचय अत्रियवर्ण जैसा देते भी लोगोंने मत-भेद है ।

कोलतेल (सं० स्त्री०) बदरीबीजतेल, बेरकी गुठलीका तेल ।

कोलदल (सं० स्त्री०) कोलं बदरीफलं तदद् दलमस्य, बड़ली० । १ लखी नामक गम्भद्रव्य । २ बदरीपत्र, बेरीकी पत्ती ।

कोलद्वय (सं० स्त्री०) कर्ष, दो तोला ।

कोलना (हिं० स्त्री०) छेदना, बाचमें खोदकर पोला करना ।

कोलनाशिका (सं० स्त्री०) कोलस्य शूकरस्य नाशिका इव । वह्निनीष्ठ, एक पेड़ । किसीके मतमें कोलनाशिका भी लिखते हैं ।

कोलपार (हिं० पु०) मध्याह्नाति ठुलविशेष, एक मंभोला पेड़ । यह बरार और दारजिलिङ्गकी तराईमें अपने-आप उपजता है । इसको कलियोंका सुरब्बा डालते हैं । काष्ठ सुहृद रहता और क्षयिग्र तथा गृहनिर्माणादि कार्यमें लगता है । भीतरी लकड़ी गुलाबी निकलती परन्तु वायु लगनेसे काली पड़ती है । कोलपारका अपर नाम सोना है ।

कोलपुच्छ (सं० पु०) कोलस्य शूकरस्येव पुच्छः । १ कङ्कपत्ती, सफेद चील । २ सूपरकी पूछ ।

कोलबालुक (सं० पु०) कुङ्कुष्ठ ।

कोलबुक—एक अति प्रसिद्ध अंगरेज विद्वान् । इनके पिताका सर जार्ज कोलबुक और माताका नाम मेरी था । यह अपने बापके तीसरे लड़के रहे ।

१७६५ ई०की १५ जुनको लन्दन नगरमें इन्होंने जन्म लिया था । यह कभी साधारण विद्यालयमें विद्या नहीं पढ़े, घर पर शिक्षक रखके विद्याभ्यास करती-रही । द्वादश वर्षके वयःक्रमकाल कोलबुक फ्रान्स भेजे गये, वहां षोडशवर्ष पर्यन्त रहे । उसी समय इनके

मनमें धर्मका अनुराग बढ़ा था। इन्होंने धर्मकार्यमें नियुक्त होनेकी चेष्टा की, किन्तु इच्छा पूर्ण न हुई। इनके बाप ईष्ट इच्छिया कम्पनीके एक डिरेक्टर (तत्त्वावधायक) रहे। उन्होंने अपने लड़केको भी कम्पनीके काममें लगा भारतवर्ष भेजा था। कोलहस पहले कलकत्ते का बोर्ड ऑफ् एकाउण्ट कार्यालयमें नियुक्त हुये, फिर त्रिहुतके राजस्व-विभागमें सहकारी कलेक्टर हो चले गये। इसी समय इनके पिता इन्हें देशीय भाषा सीखनेकी उपदेश देते और इनसे हिन्दू-धर्मका कोई विषय पूछ पत्र लिखा करते थे। इसी सूझसे इन्हें संस्कृत शिक्षाका अनुराग बढ़ा। कम्पनीके काममें लगे रहनेसे प्रथम यह अपनी दृष्टि मिटा न सके थे। १७८८ ई०की ये फिर पूर्णियाको बदल गये। इस समय कोलहस अवकाशके अनुसार संस्कृत सीखते और वक्रीय कवियोंकी अवस्था देखते घूमते थे। १७८९ ई०की यह पुरनियासे नाटोर चले गये।

१७८४ ई०की सर विलियम जोन्स जिस व्रतके बन्दी रहे, आज कोलहस भी उसी मन्त्रमें दीक्षित हो गये। भारतवर्षकी प्राचीन रीति नीति, आचार व्यवहार और शास्त्रीय तत्त्व यह पुनःपुनः रूपसे देखने लगे। प्राचीनतम भारतीयोंका असाधारण अध्यवसाय तथा अपूर्व तत्त्वज्ञान अवगत होने पर इनका मन क्रमशः उत्तेजित हो गभीर तत्त्वोंके अनुसन्धानमें प्रवृत्त हुआ। १७८४ ई०की इन्होंने एशियाटिक सोसाइटीकी पत्रिकामें सर्वप्रथम "साध्वी हिन्दू विधवाके कर्तव्य कर्म" पर अंगरेजी भाषामें एक अति उत्तम प्रबन्ध प्रकाश किया था। इसी समय गवर्नमेण्टने बङ्गालके उत्पन्न द्रव्यादिका इन्हें परिदर्शक बना दिया। इसी वर्ष लाम्बार्ट नामक एक कलकत्ताके वणिक्के साहाय्यसे बङ्गालकी कृषि तथा वाणिज्यकी वर्तमान अवस्था पर एक पुस्तक रूपा कर बन्सुबान्सर्वोंके निकट प्रचार किया था। इस पुस्तकमें कोलहसने अति उत्तम भावसे

बताया है—वक्रीय कृषि और भारत तथा इङ्ग्लैण्डके स्थायी वाणिज्यकी अवस्था कैसी हो गयी है।

बड़े लाट बारन डेष्टिफ़सके समय १७७२ ई०की जो कानून निकला, उसमें लिखा था—मौलवी और पण्डित अदालतमें धर्मशास्त्र वा शरिअतकी व्याख्या करेंगे और मुकद्दमों पर राय देनेके समय विचारकको साहाय्य देंगे। तदनुसार १७७६ ई०की बारन डेष्टिफ़सके तत्त्वावधान पर ८ ब्राह्मण पण्डितोंने मिल कर संस्कृत भाषामें एक बृहत् धर्मशास्त्रसंग्रह प्रणयन किया था, जो Code of Gentoo Law नामसे अंगरेजीमें अनुवादित हो प्रकाशित हुआ। विचारपति इसी ग्रन्थको देख कर आवश्यक्-जैसा मत देते थे। किन्तु सर विलियम जोन्सने इस ग्रन्थको देख कर गवर्नमेण्टसे कहा—यह सर्वाङ्ग सुन्दर नहीं हुआ है। गवर्नमेण्टने उन्हें भारतीय धर्मशास्त्र सङ्कलनका कार्य सौंपा था, परन्तु अकालकी उनके मर जानेसे कोलहस पर यह बड़ा भार डाला गया। इसी समय प्रसिद्ध पण्डित जगन्नाथ तर्कपञ्चाननने विवादभङ्गार्थ नामक धर्मशास्त्रकी रचना किया था। १७८७ ई०की कोलहसने वही २ खण्डोंमें अंगरेजी भाषामें Digest of Hindu Law on Contracts and Successions, from the Original Sanskrit नाम पर रूपा दिया। उस समय यह काशीके निकट मिर्जापुरमें विचारकके पद पर नियुक्त रहे। इन्होंने काशीके प्रधान प्रधान पण्डितोंके साथ हिन्दू धर्म पर कितनाही परामर्श किया था। कोलहसने इस ग्रन्थमें जो टीका टिप्पणी लिखी, उससे हिन्दू धर्मशास्त्रमें इनकी असाधारण विद्वत्ता झलकता है। आजकल भी कानूनपेशा व्यक्तिमात्र बड़े सम्मानके साथ उसका मत उद्धृत किया करते हैं।

फोर्ट विलियम कालेज संस्थापित होने पर कोलहस भी उसके एक अवैतनिक संस्कृताध्यापक बन गये। यह इस कालेजके छात्रोंकी समय समय पर संस्कृत, हिन्दी, बंगला और फारसी भाषामें परीक्षा लेते थे। फिर यह सदर दावानी अदालत और निजामतके प्रधान विचारपति हुये। थोड़े दिनों कोलहस बोर्ड ऑफ रेविन्यू (Board of Revenue)के प्रेसि-

* "Remarks on the Present State of the Husbandry and Commerce of Bengal, by a Civil Servant of the Company."

लेण्ट, बड़े साटकी सप्रोम कोमिलके मेम्बर और एशियाटिक सोसाइटीके डायरेक्टर भी रहे।

भारतवर्षमें रहते समय इन्होंने भारतका जाति-तत्त्व(१), भारतीय ब्राह्मणोंका धर्मानुष्ठान(२), संस्कृत एवं प्राकृत भाषा(३), वेदतत्त्व(४), जैनमत समालोचन (५), भारत और अरबी राशिचक्र विभाग(६), संस्कृत शिलालेख-युक्त प्राचीन कीर्तिस्तम्भोंका विवरण(७), संस्कृत और प्राकृत छन्दोशास्त्र(८), भारतीय ज्योतिर्विदोंके मतानुसार नक्षत्रोंकी गतिका निर्णय(९), फोर्ट विलियम कालेजके छात्रोंकी शिक्षाकी संस्कृत पाठ(१०) संस्कृत व्याकरण(११), अमरकोष तथा उसका अंगरेजी अनुवाद(१२), हिन्दूओंके दायभाग पर दो प्रबन्ध(१३)

1. "Examination of Indian Classes." (As. Res. Vol. V.)
2. "Essays on the Religious Ceremonies of the Hindus and of the Brahmans especially,"—(in As. Res. Vol. V. VII.)
3. "On the Sanskrit and Pracrit Languages" (VII.)
4. "On the Vedas, or Sacred Writings of the Hindus," (As. Res. VIII.)
5. Observations on the Sect of Jains.
6. On the Indian and Arabian Divisions of the Zodiac.
7. "On ancient Monuments containing Sanskrit Inscriptions"—As. Res. IX.
8. "On Sanskrit and Pracrit Prosody," As. Res. X.
9. "On the Notion of the Hindu Astronomers concerning the Precession of the Equinoxes and Motions of the Planets." As. Res. XII.
10. A Collection of Compositions in Sanskrit for the use of the Students of the College of Fort William, including the Hitopodesa, with Introductory Remarks, &c.
11. Grammar of the Sanskrit Language, 1805.
12. Amara Cosha, or Dictionary of the Sanskrit Language, by Amara Sinha, with an English Interpretation and annotation, 4to, Calcutta, 1808.
13. Two Treaties on the Hindu Law of Inheritance translated from the Sanskrit. 4to, 1810.

आदिकी अंगरेजी भाषामें प्रकाश किया।

पचास वर्षके वयःक्रमकाल १८१५ ई०को यह स्वदेश लौट गये, परन्तु विलायत पहुँच कर भी भारतका संस्कृत शास्त्र भूल न सके। १८२२ ई०को वहाँ इन्होंने रायल एशियाटिक सोसाइटीकी स्थापना किया था। विलायतमें रहते समय भी इन्होंने निम्नलिखित पुस्तक बना डाले—हिन्दूदर्शन (१४), ब्रह्मसिद्धान्त एवं भास्कराचार्यकी लीलावतीका अंगरेजी अनुवाद (१५), वैदेशिक शस्यकी आम्दानीकी बात(१६), प्रबन्धमाला (१७) और सभाष्य सांख्यकारिकाका अंगरेजी अनुवाद(१८)।

अध्यापक मोक्समूलरके मतमें कोलब्रुक ही—"the Founder and father of true Sanskrit Scholarship in Europe" अर्थात् युरोपमें प्रकृत संस्कृत-विद्याके प्रवर्तक और जन्मदाता थे। वस्तुतः पहले इनकी भांति कोई युरोपीय व्यक्ति संस्कृत शास्त्रमें गाढ़ प्रवेश कर न सका था। कोलब्रुकके प्रबन्ध पढ़नेसे इनकी असाधारण विद्वत्ताकी देख भारतवासियोंकी भी सुन्ध होना पड़ता है।

प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् सर जान हर्सलके मरने पर यही विलायतकी ज्योतिष सभाके नेता (President of the Astronomical Society.) चुने थे।

ज्वररोगसे शय्यागत हो १८३७ ई०की १०वीं मार्चकी विह्वर कोलब्रुकने इहसंसार परित्याग किया।

14. "On the Philosophy of the Hindus" (Trans. Roy, A. S. vol. II.)
15. Algebra with Arithmetic and Mensuration, from the Sanskrit of Brahmagupta and Bhascara, &c., London 1817.
16. On the Import of Colonial Corn, 8vo. Lond. 1818.
17. Miscellaneous Essays or reprints of previously published papers and prefaces, 2 Vols. 8vo London, 1837.
18. Sankhya-Karika or Memorial Verses on the Sankhya Philosophy, also the Bhasya, etc. 4to Oxford, 1837.

कोलमज्जा (सं० स्त्री०) बदराखि शस्त्र, बेरकी गुठलीका गूदा। यह मधुर और पित्त, कटि तथा पित्तनाशक है।
(राजवज्जम)

कोलमूल (सं० स्त्री०) कोलं बदरीफलमिव मूलम् पिप्पलीमूल, पिपरा मूल।

कोलमूला (सं० स्त्री०) पिप्पलीमूल।

कोलमूलक (सं० पु०) कुल-पम्बच् संज्ञायां कन् तन्मी भिन्न वीणाका समुदाय प्रवयव, तारोंको छोड़कर सितार वगैरहका सारा हिस्सा। कोलाय देखो।

कोलरुण, -मन्द्राज-प्रदेशकी कावेरी नदीका बड़ा मुँहाना। यह अक्षा० १०° ५१' उ० तथा देशा० ७८° ५१' पू० की श्रीरङ्गपीपकी प्रान्तसीमा पर त्रिचनापलीसे पांच कोस पश्चिम बड़ी खाड़ी छोड़ उत्तरपूर्व दिक् प्रायः ८४ मील प्रवाहित हो अक्षा० ११° २६' उ० एवं देशा० ७८° ५२' पू० में पाचवरम् नामक स्थान पर बङ्गोप-सागरमें मिल गया है। इसका देशीय नाम 'कोल्लिडम्' और उसका अपभ्रंश 'कोल्लडम्' है। कोलरुण नाम पोर्तुगीजोंका रखा हुआ है।

पूर्वकालकी कोलरुण शाखानदी न रही। टलेमिने इस अञ्चलकी अपरापर नदियोंका उल्लेख किया है, परन्तु इसका नाम कहीं नहीं लिया। १५५१ ई० की डि-वारसन 'कोलरन' नामक किसी समुद्र-कुलवर्ती खानकी बात कही थी। समय समय पर करमण्डल उपकुलमें भयानक जलप्लावन आता, जिसमें सैकड़ों लोगोंका प्राण जाता है। 'कोल्लिडम्' शब्दका स्थानीय अर्थ बध्यभूमि है। मालूम पड़ता है—किसी समय कावेरी नदी जलप्लावनमें अपनी गति बदलके इस अञ्चल से बही थी, जिसमें बहुतसे लोगोंकी जान गयी। इसीसे खेतका नाम कोल्लिडम् पड़ा होगा। पोर्तुगीजोंने सम्भवतः निकटस्थ कोलरन नामक स्थानसे ही इसका नाम कोलरुण रखा है।

आजकल कोलरुण नदी वाम तट पर त्रिशिराप्पी जिला एवं उत्तर परकाट और दक्षिणकुल पर तञ्जोर-राज्य छोड़ मध्यस्थलमें सीमारूपसे प्रवाहित है। निकट-वर्ती स्थानोंसे जलकी सुविधाके लिये कई नहर निकाली गयी हैं। इस नदीमें सभी समय नौका चला करती हैं।

जिसीके मतानुसार सद्योय एकादश यताब्दीकी तञ्जोरराज्यमें लहर पहुँचनेके समय कोलरुण नदी निकली थी।

कोलवज्जिका (सं० स्त्री०) १ गजपिप्पली। २ चण्ड, शीतलचीनी। ३ शूकरपादिका।

कोलवज्जी, कोलवज्जिका देखो।

कोलशिम्वि (सं० स्त्री०) कोलपादाकारा शिम्विरुखाः, बहुव्री०। १ कपिकच्छु, काँचकी फली। इसका संस्कृत पर्याय—कृतफला, खट्टा, शूकरपादिका, काकाण्डोला, दधिपुष्पा, काकाण्डा और पर्यङ्गपादिका है। २ सेमकी फली। यह वायुनाशक, गुदपाक, उष्ण और कफ तथा पित्तवर्धक होती है।

कोलशिम्वी, कोलशिम्वि देखो।

कोलसा (हिं० पु०) इंगनी, एक धातु, अंगरेजीमें इसे मैंगनीज कहते हैं। यह एक प्रकारका धातुमल है, जो धातुओंमें आक्सीजनके संमिश्रणसे उत्पन्न हो जाता है। कोलसा भारतवर्षके मध्यभारत, मडिसुर, मन्द्राज और मध्यप्रान्तकी खनिजोंसे निकलता है। इसे काँचकी हरेरी छोड़ाने और उस पर चमक लानेमें व्यवहार करते हैं। इससे एक खेत लोह और भी प्रसृत किया जाता है।

कोलहान—बङ्गाल-प्रदेशके सिन्धभूम जिलेका एक विभाग। यह अक्षा० २१° ५८' एवं २२° ४३' उ० और देशा० ८५° २१' तथा ८६° १' पू०के बीच पड़ता है। इसका परिमाण १८५५ वर्गमील है। कोलहानमें ८८३ गाँव लगते हैं।

यहां सर्वत्र ही नामक कोल लोग बसते हैं। इसीसे कोई कोई इसको 'होदेश' भी कहते हैं। इस विभागमें २० गाँवोंका एक परगना होता है। प्रत्येक ग्राममें एक मण्डल वा प्रधान रहते हैं। राजस्व चुका और अपराधीका अनुसन्धान लगा देने पर प्रधान बाध्य हैं। इन प्रधानों पर प्रत्येक परगनेमें एक एक मांकी कब्ज़ा करता है। प्रधान लोग मांकीके पास अपराधीको ले जाते या राजस्व पहुँचाते हैं। सरकार मांकीसे सब बातें समझ लेती हैं। राजस्व वसूल करनेसे मांकी दशमांश और मण्डल पछांश कमीशन पाते हैं।

कोलहानका पंचायती वा जमीनी भगड़ा मांकी और मण्डल ही निबटाते हैं। कोब देखो।

कोलहार—बम्बई-प्रदेशके अहमदनगर जिलेका एक विस्तृतवाणिज्य प्रधान नगर। यह प्रवरा नदीके तीर अवस्थित है। यहां प्रतिवर्ष पौषमासको १५ दिन तक मेला लगा रहता है।

कोला (सं० स्त्री०) कुल ज्वलादित्वात् षः तत्प्राप् ।
१ बदरीवृक्ष, बेरी। २ पिप्पली, पीपल। ३ मन्नावावची, गोरखसुष्की। ४ चव्व।

कोला (हि० पु०) नृमास, गीदल।

कोला (सं० पु० = Cola) वृक्ष-विशेष, एक पेड़। यह अफ्रीकाके उष्ण स्थानोंमें उपजता और फल अखरोट-जैसा लगता है। कोला फलके बीज आन्ति एवं क्लान्ति-को मिटाते, नशेकी आदत छुड़ाते और पानी साफ करनेमें भी काम आते हैं।

कोलाच (सं० पु०) एक देश। आदिशूर इस देशसे पांच ब्राह्मण गौड़देशको ले गये थे। कानकन देखो।

कोलाती—दाक्षिणात्यकी एक ऐन्द्रजातिक जाति। इन बाजीगरोंकी कोलहाति, कोलहाटी और ठोंवरी भी कहते हैं। कोलातियोंका कहना है—‘कोला नामक कोई नट रहे। तेजीके औरस और क्षत्रिय-कन्याके गर्भसे उनका जन्म था। यही कोलनट कोलातियोंके आदिपुरुष थे।’ पूना, सतारा, बेलगांव, शोलापुर, अहमदनगर आदि जिलोंमें यह लोग देख पड़ते हैं। पूना जिलेमें इनके मध्य दो श्रेणियां हैं—दूकर या पोतरी कोलहाती और पाल या काम-कोलहाती। इन दोनों श्रेणियोंमें आहार व्यवहार और विवाहका आदान प्रदान नहीं चलता। इनकी भाषा—ऊर्णाटी, मराठी, गुजराती और हिन्दुस्थानी मिश्रित है। यह भोपड़ोंमें वास करते हैं। दूकर कोलहाती शूकर और गोमांस खाते हैं। दूसरे कोलहाती मद्य एवं सकल प्रकार मांस भक्षण करते भी सुषर और गायका मांस नहीं छूते।

पूना और सतारा जिलेके कोलहाता देखनेमें बुरे नहीं। किसी किसीका रंग खूब साफ और चमक तथा बास कासी होते हैं। विशेषतः इनकी स्त्रियां बहुत सुन्धी और हृद्यभावविशिष्ट हैं। शोलापुर आदि स्थानोंके कोलाती देखनेमें कासी, परन्तु चतुर और परिश्रमी

होते हैं। कोलहाती रमणियां अधिकान्त वेष्टा हैं। कितनी ही नाचती मातों और बिचड़ोंकी गुड़िया बना कर बेचती हैं।

इनकी गृहस्थरमणियोंके अलङ्कार वैसे अधिक नहीं रहते। परन्तु जो वेष्टावृत्ति करतीं, उनके अलङ्कारों और बनाव चुनावकी कमी नहीं पड़ती। उन्हें रण्डियों-जैसी खूबसूरती बनाना कुछ अच्छा लगता है। इनके गुणोंमें दूसरोंकी कन्यायें चुराना छोड़ा भयानक है। कन्याओंको चुरा कर यह यथाकाल उन्हें वेष्टावृत्ति सिखाती हैं।

यह जाति बहुदिन एक स्थानमें नहीं रहती। कितने ही टट्टू और खच्चर रखते हैं। उनकी पोठ पर जहरी चीकें खाद फांद कर जगह जगह घूमते फिरते हैं। राह घाटमें ठेरे डाल उनमें भी रहा करते हैं। साथमें एक प्रकारकी घटाई रहती, जो बैठने और ठेरे डालने दोनों कामोंमें लगती है। भ्रमणकालको रस्तीके नाचसे जीविका चलाते हैं। कोई किसीकी नौकरी नहीं करता। नौकरी करनेसे समाजभ्रत होना अथवा अर्थदण्ड देना पड़ता है।

सभी हिन्दू देवदेवियों और सुसलमानोंके पीरोंको पूजते हैं। वीरदेव और मारी (हैजा)-देवी इस जातिके प्रधान उपास्य हैं। कोलाती प्रधानतः शैव होते हैं। देशस्थ ब्राह्मण इनके पुरोहित हैं। भूतप्रेत, जादू और मन्त्रतन्त्र पर सभीको विश्वास है। उत्सवके समय मद्य और मांस ही प्रधान खाद्य होता है। सन्तान भूमिष्ठ होने पर प्रसूति ४ दिन अशुचि अवस्थामें सोवर नहीं छोड़ती, पांचवें दिन बछीपूजा और स्नान करके शुद्ध होती है। कहीं १२ दिन, कहीं जन्मसे ५ सप्ताह पीछे ब्राह्मण जाकर शिशुका नामकरण करता है। अहमदनगर आदि जिलोंमें बच्चेकी कुछ बढ़ने पर जोशी ब्राह्मण कपाल पर सिन्दूरकी बिन्दी लगा जनेज पढ़ाता है। स्नान स्नान पर बछीपूजा होती और नामकरण तथा जनेजके दिन एक एक मन्त्रिष वक्त्र चढ़ता है।

कोलाती २५ वर्षके पूर्व पुत्र और ऋतुमती होनेसे पहले कन्याका विवाह कर देते हैं। पांच दिन विवाह-

का उत्सव होता है। वरका पिता प्रथम एक दोना शकर देकर कन्याका मुख देख जाता है। उसके साथ जो लोग रहते, कन्याका पिता उन्हें शराब पिलाता है। विवाहके प्रथम दिन ठोल बजाकर देवकपूजा, द्वितीय दिन गात्रमें हलदीका छबटन, तृतीय तथा चतुर्थ दिन केवल भोज एवं थोड़ा थोड़ा मद्यपान और पञ्चम दिन विवाह होता है। वरके विवाह करने जाने पर वर-कन्याकी माँके नीचे बैठकर गाँठ जोड़ देनेसे ही विवाह सिद्ध हो जाता है। कोल्हापुर जिलेमें वर-कन्याकी आमने सामने एक चौकी पर खड़ा करते हैं। ब्राह्मण मन्त्र पढ़के दोनोंकी चावल छोड़ आशीर्वाद देता है। यह हो जाते ही पति पत्नीका सम्बन्ध टूट पड़ जाता है। इनमें विधवाविवाह और बहुविवाह प्रचलित है।

कन्या प्रथम ऋतुमती होनेसे पाँच दिन एक ही स्थान पर बैठी रहती है। छठे दिन वह स्नान करती और उसके कोंठमें पाँच छोड़ारि, पाँच गाँठ हलदी, पाँच टुकड़े नारियलकी गरी और पाँच बरी डाली जाती हैं। उस समय कन्या चाहे तो वेश्या हो सकती अथवा स्वामीके घरकी शोभा बढ़ा सकती है। रण्डी बननेकी इच्छा रहनेसे आत्मीय कुटुम्बियोंको भोज देना और सबके सामने कहना पड़ता है—मैं वेश्या बनूँगी। वेश्याके पुत्र एक स्वतन्त्र श्रेणायुक्त होते हैं। वेश्याओंके साथ पिताके औरसजात पुत्रोंका विवाह नहीं होता।

कोलाती मृत व्यक्तिको गाड़ देते हैं। फिर तीसरे दिन कब्र पर उसके स्मरणार्थ एक स्तूप निर्माण करते और बन्धुबान्धवोंको खिला पिला कर शुद्ध होते हैं। छह मास पीछे दूसरा भोज भी देना पड़ता है।

इनकी पञ्चायत होती है। सामाजिक कलह विवाद पञ्च लोग मिटाते हैं।

कोलाभज (सं० पु०) बदरफल, बेर।

कोलादिमण्डुर (सं० ली०) परिणाम-शूलका एक औषध, अंतर्द्वियोंकी सृजन और दर्दकी कोई दवा। १० तोला शोधित मण्डुर (कोहा) तथा शण्ठी, पिप्पली, चम्ब, पिप्पलीमूल एवं यबचारका प्रख

२ तोला और गामूच ८० तोला यथावैति खरल करने-से यह औषध प्रसृत होता है।

कोलापुर (कोल्हापुर)—बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत एक देशीय राज्य। यह अक्षा० १५' ५०' एवं १७' ११' उ० और देशा० ७३' ४३' तथा ७४' ४४' पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ३१६५ वर्गमील है। लोकसंख्या ८१००११ है। इसका प्रधान नगर कोल्हापुर अक्षा० १६' ४२' उ० और देशा० ७४' १६' पू० पर पड़ता है। इस राज्यके उत्तर एवं उत्तरपूर्व सतारा, पूर्व तथा दक्षिण दिक् बेलगाँव जिला और पश्चिम सावन्तवाड़ी एवं रत्नगिरि है। उत्तर-पश्चिमसे दक्षिण-पूर्व सीमा दैर्घ्यमें ४८ कोस और प्रस्थमें प्रायः ३३ कोस होगी। पश्चिम-दिशाके घाटपर्वतसे इसकी भूमि क्रमशः ढलकर पूर्वकी ओर समतल बन गयी है। इसी कारण अनेक नदियाँ पर्वतोंसे निकल कोल्हापुर होती हुई कृष्णानदीमें जा मिली हैं। उनमें जर्णा नदी ही प्रधान है। भूमि अधिकांश पर्वतमय है। जगह जगह उर्वरा भूमि भी पा गयी है। अधिकांश ज्यादातर मराठा, रामोसी और भील हैं।

पहले चालुक्य राजाओंके अधीन शिलाहार-वंशीय नरेश यह प्रदेश शासन करते थे। पीछे कोल्हापुर मराठोंका अधिष्ठित हुआ। महाराष्ट्रवीर शिवाजीके पुत्र राजारामसे वर्तमान राजवंशकी उत्पत्ति है। शम्भुजीके लड़के शाहजी जब दिल्लीमें बन्दी हुये, राजाराम यहाँ राजत्व करते थे। उनके मरने पर तत्पुत्र शिवजी सिंहासन पर बैठे। थोड़े दिन पीछे शाहजीके छूट कर आनेसे शिवजीने उन्हें राज्य दे देने पर आपत्ति उठायी थी। दोनोंमें झगड़ा बढ़ गया। इसी बीच शिवजीका मृत्यु हुआ और उनके पुत्र शम्भुजीके साथ शाहजीका सिंहासन पर विवाद चलता रहा। कुछ दिन बाद मोर्मासा हुई—शम्भुजी अपने लिये कोल्हापुर और तदनन्तर्गत प्रदेश रख कर महाराष्ट्र राज्यका अपर समस्त भाग शाहजीको सौंप देगे। महाराष्ट्र राज्य इसी प्रकार दो भागोंमें बंट गया। शम्भुजीने राजा होकर कोल्हापुर राज्य स्थापन किया था। १७६० ई०की शम्भुजीका मृत्यु हुआ। शम्भुजीके निःसन्तान रहनेसे

उनकी विधवा रानी शिवजी नामक किसी दत्तक पुत्रकी पद्धत करके उसके नामसे अपने आप शासन करने लगीं। पहलीसे ही राज्यमें खल और असुव्य-पर दखुर्बीका उत्पात बहुत बढ़ रहा था। राजा अपने आप लूटमार करनेवाले कितनेही जहाज रखते थे। समुद्रकी राह विदेशसे जहाज आने पर यह उन्हें लूट लेते थे। इस असुव्य दखुर्बीको दमन करनेके लिये १७६५ ई०में अंगरेज गवर्नमेंण्टने एक दस सैन्य बख्श भेजा और मासवानका दुर्ग छीन ली। १७६६ ई०की १२वीं जनवरीको सन्धि स्थापित होने पर कोल्हापुरके राजाने अपना किला वापस पाया। १८०४ ई०की जब सर थॉमस वेल्लेसली दक्षिणात्यका बन्दोबस्त करते थे, कोल्हापुरके राजा शिवजीने उनसे कहा—पेशवा हमारे राज्यका कितना ही अंश अधिकार किये हैं। उन्होंने कहा कि अंगरेज सरकार मध्यस्थ हो समझौता करा देगी। परन्तु कोल्हापुरके राजाने इसी बहाने पेशवाका राज्य आक्रमण किया था। वेल्लेसलीने उसी सूत्रमें लुटेरे जहाजोंकी दवानेकी विशेष चेष्टा की, परन्तु सफलता न मिल सकी। कितनी ही बार चेष्टा हुई, दखुर्बीने प्रतिज्ञा की—यह लूटमार न करेंगे, फिर भी वह अपने दुराचारसे निवृत्त न हुए। १८१२ ई०की कोल्हापुर-राज शिवजीका मृत्यु होनेसे उनके पुत्र शम्भुजी सिंहासन पर बैठे थे। यही शम्भुजी आप्पा नामसे विख्यात रहे। अंगरेज जब पेशवासे लड़े, उन्होंने अंगरेजोंका पक्षावलम्बन किया था। उसीके लिये अंगरेजोंने शम्भुजीकी चिकोरी और सुनोली नामक दो जिले दे डाले। १८२१ ई०की शम्भुजी इतन हुए। उनके पुत्र अम्बासिंहने सिंहासन अधिकार किया था। किन्तु एक बखर बाद वह भी मारे गये। रानी हीराबाईके गर्भसे उनके एक शिशु सन्तान रहा। लोग उसे दोवान् कहते थे। अम्बासिंहके भाई बाबा साहब गद्दी दबा बैठे। थोड़े दिन पीछे ही शिशुसन्तानका मृत्यु होनेसे बाबा साहब राजा बने थे। अपने राज्यमें अत्याचार और पाखण्ड सामन्ती पर आक्रमण होते देख अंगरेजोंकी राजाके विरुद्ध फौज भेजना पड़ी। राजाके बख्शता खोकार करने पर एक सन्धि हो गयी। परन्तु

अंगरेजों के स्वयंके राज्य छोड़ कर जाते ही बाबा साहब फिर फौज इकट्ठी कर निकटवर्ती सामन्ती और सरदारी पर अत्याचार करने लगे। अंगरेजों के स्वयं पुनर्वाच प्रेरित हुआ और राजाने बख्शताको खोकार किया। १८२७ ई०की पहिली और १८२८ ई०की दूसरी सन्धि फिर हुई, जिससे राजाके कार्यको परीक्षा करनेको छोड़ी अंगरेजी फौज कोल्हापुरमें रखी गयी। अंगरेजोंने अपने एक आइमीको मन्त्री बना दिया था। किन्तु मन्त्रीके पुनर्वाच राजाको अत्याचार करनेका परामर्श देने पर फिर अत्याचार होने लगा। अंगरेज मन्त्रीको निकाल और सुप्रबन्ध बांध अपनी फौज उठा लाये। १८२८ ई०के नवम्बर मास बाबा साहबका मृत्यु हुआ। दो स्त्रियोंके गर्भसे उनके छोटे छोटे दो पुत्र सन्तान रहे। उनमें ज्येष्ठ शिवजीको सिंहासन पर अभिषिक्त किया गया। इन्हें भी लोग बाबा साहब कहते थे। बाबावख्शामें इनकी माताने थोड़े दिन राजकार्य चलाया था। पीछे पूर्वोक्त दोवानकी माता और अम्बासिंहकी पत्नी हीराबाई पर अंगरेज गवर्नमेंण्टने समस्त भार अर्पण किया। किन्तु इनके शासनमें भी कितना हा बड़ेका बढ़नेसे १८४२ ई०की अंगरेज अपने तत्त्वावधानमें लक्ष्मणसिंहको मन्त्री नियुक्त करके राजाकी नवाखिगीमें राजकार्य चलाते रहे। १८४४ ई०की हीराबाईके कमचारी विद्रोही हो गये। अंगरेजोंने फौज भेज बागियोंको दबावा था।

अखीरमें अंगरेज सरकार अपने आप राज्यशासन करने लगी। इसी समय दुर्ग भूमिसाल् किये गये। राजाके जो सैन्य आदि रहे, उन्हें भी जवाब मिला था।

१८६२ ई०की अंगरेजोंने शिवजी पर राज्यभार डाल दिया। सन्धि हुई—राजा अंगरेज गवर्नमेंण्टके परामर्श व्यतीत कोई कार्य न करेंगे। १८६६ ई०की ६ठीं अगस्तको राजा शिवजीने इहलोक परित्याग किया था। उनके कोई पुत्रसन्तान न रहा। मृत्यु से पूर्व उन्होंने नागोजीराव पाटनकार नामक एक बालकको गोद लिया था। शिवजीके मृत्यु पीछे यही बालक राजाराम नाम ग्रहण करके राजत्व करने लगा।

राजाराम १८७० ई०की इङ्गलेण्ड घूमने गये थे।

राज पर बटखीके अन्तर्गत कोरेण्ड नगरमें उनका बस्य हुआ। उनके पुत्र पञ्चम शिवजी सिंहासन बैठे थे। मन्मथेश्वरने उनके लिये एक अंगरेज शिपक नियुक्त कर दिया। १८७५ ई०को यह राजकुमार प्रिन्स अब वेल्सकी अभ्यर्थना करने बम्बई गये थे, १८७७ ई०को दिल्ली दरबारमें की० सी० एस० चार्ल्स उपाधिकी प्राति हुई। इनका पूरा नाम महाराज सर शिवजी राव भोंसले छत्रपतिमहाराज दामनलताफर के० सी० एस० चार्ल्स है। पञ्चम शिवजी १८८३ ई०की २५ दिसम्बरकी मर गये। उनका कोई पुत्रसन्तान नहीं रहा। उनके गोद लिये यशवन्त राव (ववा साहेब) ने साइ छत्रपति नामसे राज्यभार ग्रहण किया। इनका उपाधि एच० एच० कर्नल जी० सी० चार्ल्स ई० है। कोल्हापुर राजाके सम्मानार्थ १८ तोपोंकी सलामी दगती है। राज्यमें एक पोलिटिकल एजण्ट रहता है। बरा, दातावाद, लुवाण, कुरणी, कागल (४ अंश), कापसी, तोड़गल और विशाखनदमें एक एक सामन्त रहता है। यह सभी कोल्हापुरके राजाकी कर दिया करते हैं।

भूमि चार प्रकारकी है—जासी, तांबड़ी, मासी और खारी या पन्थारी (सफेद)। ज्वार, धान, नाचनी और बाजरीकी उपज अच्छी है। दूसरी चीजोंमें जल, तम्बाकू, रुई, साबुमिर्च, कुसुम, और सुपारी बड़ा करती है। कच्चा और रसायनोंके बागीचे भी कुछ आमदनी आती है। सिंचाईका सुभीता कम है। नदी-जर्ममें कृषां या ताजाब छोड़ करके खेत सींचे जाते हैं। जङ्गलमें साख, चन्दन, शीशम, पांखला, वास और गड़द होता है।

कोल्हापुर राज्यमें तीन प्रकारका कच्चा कोड़ा मिलता है। खानसे निकलनेवाली दूसरी चीज पत्थर है। यह पत्थर जिससे सङ्गमरमर-जैसा कामकने लगता है।

राज्यमें रोसा तेल तैयार होता है। यहाँ बननेवाली दूसरी चीजोंमें मट्टीके बर्तन, सोडाकागड़, मोटे सुती और जूनी कपड़े, नमदा, चतर, साह और जांचके गड़ने हैं। मोटीयकर, तम्बाकू, रुई और

अनाजकी रफ्तमी और साफ की हुई चीजों, मसाले, मारियक, कपड़े, रेशम, नमक तथा गन्धकी आमदनी होती है। व्यापारके प्रधान केन्द्र कोल्हापुर नगर, बाइः पुर, वाडगांव, इचलकराणी और कागल हैं। दक्षिण मराठी रेलवे इस राज्यमें आयी है। राज्यमें छह सड़के हैं, जिनमें पूनासे बेलगांव जानेवाली प्रधान है।

कोल्हापुर राज्य ६ पेठों (ताऊकी) और ३ मंड-कीमें बंटा है और पोलिटिकल एजण्टकी अनुमतिसे महाराज इसका इत्तजाम किया करते हैं। उन्हें दीवानी और फौजदारीका पूरा अधिकार है। परन्तु यह अंगरेज प्रजाके बड़े अपराधोंकी जांच बिना पोलिटिकल एजण्टकी अनुमतिके नहीं कर सकते। चोरी और मारपोट बहुत होती है।

१८८६ ई०की पहली पहल पैमायशका काम शुरू किया गया था। राज्यकी सारी आमदनी कोई ४४००००० रु० है। १८४८ ई०को कोल्हापुरकी टकसाल बन्द होजानेसे अंगरेजी सिक्का चलने लगा है। महाराजकी फौजमें ७१० सिपाही रहते हैं। राज्यमें १५ पुस्तकालय हैं और ८ समाचारपत्र निकलते हैं।

कोलाबा (कुलाबा)—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके कोल्हाप विभागका एक टापू और उसीसे मिला हुआ एक जिला। यह अक्षा० १७° ५१' एवं १८° ८' उ० और देशा० ७२° ५१' तथा ७३° ४५' के बीच अवस्थित है। क्षेत्रफल २१३१ वर्गमील है। इसके उत्तर बम्बई, पूर्व भीरराज्य, पूना एवं सतारा जिला, दक्षिण रत्नगिरि और पश्चिम परब-सागर है। लोकसंख्या ६०५५६६ है। पहले अनुर्वर पार्वतीय भूमि जैसा समझा जानेसे कोलाबेका उतना आदर न रहा। १६६२ ई०को महाराष्ट्रवीर शिवजीने इसपर अधिकार किया। यहाँ जलदखु समुद्रकी राह जानेवाले सभी जहाज लूट लेते थे। शिवजीके मृत्यु पीछे इसी स्थानसे अंगरिया वंशमें सामुद्रिक दखुवृत्ति चलती रही। दखुवृत्ति क्रमशः बढ़ने पर युरोपीय जहाजोंका इस प्रदेशमें आना बहुत ही विपदसङ्कल हो गया। व्यक्तिबद्ध होने पर १७२२ ई०को अंगरेजी सेनाके तीन जहाजों और पोर्तुगीज सेनाके एक दलने आ कर अंगरिया दुर्ग आक्रमण किया था। परन्तु उन सबकी पराजित हो भागना पड़ा।

१८२२ ई० की रहुकी अंगरियाके साथ अंगरेजोंकी को सन्धि हुई, उससे उन्होंने अंगरेजोंकी वज्रता स्वीकार की। अंगरेज भी उन्हें अन्त्यान्त प्रत्युर्वे वचाने पर स्वीकृत हुए। १८३८ ई० की रहुकी मर गये। उनकी एक पत्नी उस समय गर्भवती थी। कुछ दिन पीछे एक सन्तान हुआ। अल्प दिनके मध्य ही उसके मर जानेसे अंगरिया-वंशका कोई दूसरा उत्तराधिकारी न बचा। कई एक जारज पुत्रोंने राजा बननेकी चेष्टा की थी। किन्तु उनकी आशा फलवती न हुई। अंगरेज गवर्नमेण्टने राज्यकी अपना बना लिया। सरकार अंगरियाके कंशीयोंको इस समय भी पेंशन दिया करती है।

कोलाबाकी अधिकांश भूमि उपजाऊ है। चावल खूब बोया जाता है। प्रधानतः यह साल और सफ़ेद दो तरहका होता है। छोटे अनाजोंमें नागकी, वारी और हरीक होता जो ज्यादातर लोगोंके खानेमें आता है। सिवा इसके बाज, उड़द, मूंग, चना, तिल, सन, पान और सुपारी भी होती है। १७५५ और १८०० ई०के बीच अङ्गरियोंके अधीन अधिकांश बांध बने थे। कुछ व्यापारी और बड़े जमीन्दार गुजराती बेल रखते हैं। कोलाबेके भैंसे छोटे, काले और चिकने चमड़ेवाले होते हैं। भैंसे दाहिखाखसे मंगाये जाती हैं। बांगड़ और बखारि दक्षिणसे टट्टू ले आते हैं। खेतोंकी सिंचाई कूपा और तलाबोंसे होती है। खारी पानीके कूपोंमें नारियल सोचनेके लिये रूँटे लगे हैं।

कोलाबाके जङ्गलमें साखू और शीशमकी कीमती लकड़ी निकलती है। जङ्गलकी आसदनी लगभग ८३०५०) ६० साल है। अपताकी पत्तियां बीड़ी बनानेके काम आती हैं। यहां खानसे केवल लोहा निकलता है। माधेरानकी चारो ओर पहाड़ियोंमें एक-मिनियम भी पाया जाता है। इमारती पत्थर और बाजकी कोई कमी नहीं। सुखा सुखा कर बहुतसा नमक तैयार किया जाता है। कितने ही घरानोंका काम तिल, नारियल आदिका तेल निकालने और नारियलका रेशा तैयार करनेसे भी चलता है। पान-बेलमें गाड़ियोंके पहिये बहुत बनते हैं।

इस जिलेमें व्यापारके प्रधान केन्द्र पेंन, पानबेल, करजत, नानोवन, रोबदक, रोडा, मोरगांव और महाड़ हैं। खास कर चावल, नमक, लकानेकी लकड़ी, चास, लड़ा, सब्जी और फलकी रफतनी की जाती है। मंगाये जानेवाली चीजोंमें मलबारी साखू, पूना तथा नासिकके बने पीतलके बर्तन, खजूर, अनाज, कपड़ा, तेल, घी, आलू, चकदी, शकर और गुड़ है। कोलाबा जिलेमें ५ बन्दर हैं। गुजराती और मारवाड़ी बनिसे प्रधानतः दूकानदार और महाजन हैं। करजत ताकूक और खाजापुर-पेठसे होकर ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे निकली है। तीन बड़ी बड़ी सड़कें इस जिलेको भीतरी भागसे मिलाती हैं। मानगांवमें निजामपुर कालपर सबसे बड़ा पुल बना है। १५८० ई० की ३००००) ६० की लागतसे नागोवनमें ईंटका पक्का पुल बांधा गया था।

कुलाबा जिला ७ तालुकोंमें बंटा है—धलीबाग, पेंन, पानबेल, करजत, रोडा, मानगांव और महाड़। इस जिलेमें छोटी छोटी चोरियां बहुत होती हैं। दुर्भिक्षके समय दक्षिणके लाग जो यहां आकर बसे हैं, डाका भी डाल लेते हैं। पहले यह जिला रत्नगिरि और फिर थानेमें शामिल था, किन्तु १८६८ ई० की खतम कर दिया गया। १८८८ और १८०४ ई० की बाव दोबारा इसकी पैमायश हुई।

कोलाबा—त्रिवाङ्गल राज्यके कुदरसन तालुकका एक बहुत पुराना नगर और बन्दर। (देवीय तामिल नाम 'कोलम्' है। अंगरेज लोग कुदरसन Quilon कहा करते हैं—)

पाश्चात्य प्राचीन भौगोलिक टोलेमिने 'Elangkon Emporium', सिरोय भाषाके एक पुरातन ग्रन्थमें कोलम् (Kaulam) (१), ३८५१ ई० की अवधिमें कोलम्मलय, (२) ११६६ ई० की पैलेस्टिन निवासी किसी भ्रमणकारीने सुलम, (३) १२८०-१२८८ ई० के

१. Land's Anecdota Syriaca. p. 27.

२. Relation des Voyages etc., par M. Belnaud, I. 15.

३. Benjamin of Tudela, in Early Travellers in Palestine,

अथ मार्कोपोलोने कुडलन या कोइलन, (४) समय समय पर सुसज्जमान ऐतिहासिकोंने कुलन या कोलम (५) और खुष्टीय चतुर्दश शताब्दीके प्रारम्भमें ईसाई मिशनारियोंने कलम्बिओ तथा कलम्बो (६) नाम देकर इसका वर्णन किया है।

किन्तु संस्कृत ग्रन्थोंमें और प्राचीन तान्त्रशास्त्रोंमें कोलम्ब वा कोलाम्ब नाम ही मिलता है। कवि लक्ष्मी-दास-रचित 'शुक्रसन्देश' नामक ग्रन्थमें कहा है—

“लोकवशात्संस्कृतमुद्योजने कावलयम्

कोलाम्बोऽस्मिन् क्व न भवतः कोऽपि सा भूविजम्बः ।

अन्वयोलामपि परिवितावन्मदेशातिशयि-

न्यायार्थानामहमस्मिन्ना कल्य कथं न वेतः ॥” (पूर्वसन्देश ५६ श्लोक)

इसका नाम 'कोलाम्ब' क्यों पड़ा ? इसके बारेमें कोई अभी निश्चय नहीं कर सका है। स्कन्दपुराणके कुमारिकाखण्ड (४५ पं०) और सञ्जाद्विखण्ड (१।३।३।६८)में कोलाम्बादेवीका नाम मिलता है। केरल पञ्चसूत्रमें राज भी कितनेही कोलाम्बा देवीकी पूजा करते हैं। मालूम होता—इन्हीं कोलाम्बादेवीके नाम पर किसी समय 'कोलाम्ब' नगरका नाम रखा गया होगा।

८२५ ई०की २५वीं शताब्दीसे त्रिवाङ्गुड़का कोलाम्ब शब्द प्रारम्भ हुआ (७) है। किसीके अनुमानमें इसी शब्दसे कोलाम्ब नगरकी उत्पत्ति है। किन्तु यह समीचीन नहीं समझ पड़ता। कोलाम्ब पति प्राचीनकालसे जनाकीर्ण नगर और वाणिज्यस्थान-जैसा प्रसिद्ध है। यह बात टलेमि आदि पुराने भौगोलिकों और भ्रमणकारियोंके ग्रन्थ पढ़नेसे समझी जा सकती है।

४. Chinese Annals quoted by Panthier. Marco Polo. Bk. 603 ; Yule's Marco Polo. Bk. III. ch. 22.

५. Elliot's Muhammadan Historians, Vols. 1 p. 68, III. 32.

६. Odorici Raynaldi Ann. Eccles. V 455 ; Friar Odoric in Cathey, p. 71.

(७) Journal of the Royal As. Soc. Vol. XVI. p. 402

कोई यह भी कहता है कि ८२४ ई०से कोलाम्ब शब्द पड़ा है (Yule's Glossary, p. 569.)

डाक्टर डब्लरके मतमें १०१८ ई०से कोलाम्ब शब्द प्रथम प्रारम्भ हुआ है। (W. W. Hunter's Imperial Gazetteer; Vol. XI, p 339.)

प्राचीनकालकी यहाँ सिरीयक ईसायीका धर्ममन्दिर स्थापित हुआ। ६६० ई०की ईसाई-धर्मात्मा जेसुजबस (Jesujabus, Nestorian Patriarch of Adiabene) ने कोलाम्बमें ही प्रायः छोड़ा था।

सिरीय भाषामें लिखा है कि ८२३ ई०की सिरीयाके मिशनरियोंने जा कर कोलाम्बके चक्रवर्ती राजाकी अनुमतिसे वहाँ गिरजाघर बनाया था।

१०१८ ई०की यह नगर फिर निर्मित हुआ। प्रवाद है—ईसाई-धर्मप्रचारक सेण्ट टामसने कोलाम्बमें भी एक उपासना-मन्दिर स्थापन किया था। १३१० ई०की जोर्टनस यहाँके प्रधान याजक (Bishop) रहे। उक्त समयसे बहुत पहले कोलाम्बमें हिन्दुओंके अनेक देवालय थे—इसका प्रमाण मिलता है। १५०३ ई०की पोर्तगोनीने यहाँ एक कोठी और किला बनाया था। छेड़सौ वर्ष पीछे पोर्तगोनीने इस दुर्गको अधिकार किया। समय समय पर कोलाम्ब कोचीन, कलिकुटलन और त्रिवाङ्गुड़के अधीन हो गया। १७४१ ई०की त्रिवाङ्गुड़के राजाने नगर घेरा था। १७४५ ई०की कोलाम्बके राजा वशीभूत हुए। १८०३ से १८३० ई० तक यहाँ अंगरेजी सेनाके कई दल रहे। आजकल केवल एक दल देशीय सेना पड़ा है।

खुष्टीय पूर्वाब्दे यह बन्दर एक प्रधान वाणिज्यस्थान-जैसा विख्यात है। पूर्वकालकी इस बन्दरमें सबसे अधिक मिर्चकी आमदनी और रफ्तनी होती थी। कोलाम्बके प्राचीन हिन्दू और विदेशीय वस्त्र-वस्त्राक, ब्रह्मदेश, पिंगू, और भारत-महासागरीय दीपपुञ्जकी वाणिज्य करने जाते थे। १३२८ ई०की यादरी जर्डनस (Friar Gordanus) लिख गये हैं—“मैं जब कोलाम्बमें था, वहाँ चिमगीदड़-जैसे परवाले दा चूर्चोंका देखा।” (Mirabilia Descripta, p. 29)

कोलाम्बा (कोलम्बा)—दाक्षिणात्यकी एक प्रसिद्ध देवी।

स्कन्दपुराणके कुमारिकाखण्डमें लिखते हैं—नन्दादिश्वके निकट शुभदिलमें विष्णुमाता कोलाम्बादेवी विराजती है।

देवर्षि नारदने आराधना करके भद्रादिश्वके निकट कोलाम्बादेवीको स्थापन किया था।

(कुमारिकाखण्ड ४५ पं०)

सम्राट्रिषण्णके मतमें दक्षिणापथके त्रिग्रिभीमोत्रीय राजा कोलास्यादेवीके भक्त थे। (पूर्वा ११/६८)

पूना जिलेकी भीमा उपखण्डमें कोतलगढ़से १ कोस दक्षिण कोलास्या नामक एक गिरिपथ है।

कोलार-१ बम्बई-प्रेसिडेंसीके अन्तर्गत सतारा जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १६° २६' ७०" और देशा० ७५° ४४' पू०के मध्य विजयपुरसे १२ कोस दक्षिण अवस्थित है।

२ महिसुरके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १२° ४६' एवं १३° ५८' ७०" और देशा० ७७° २२' तथा ७८° ३५' पू०के मध्य बंगलूरसे उत्तरपूर्व अवस्थित है। क्षेत्रफल ३१८० वर्गमील है। लोकसंख्या ७२३६०० है। यहां कई जातियोंका वास है। जैन और लिङ्गायत सम्प्रदाय अधिक देख नहीं पड़ता।

इस बातका ठीक ठीक वर्णन मिलता कि कोलार जिलेके पूर्व भागमें सबसे पहले महावलियों या बाणोंका शासन रहा। वह अपना पूर्वपुरुष राजावलिकी बतलाते, जिन्होंने देखे होते भी अपने तपोबलसे इन्द्रको पराजय किया था। उन्हें ही हलनेके लिये विष्णुने वामन अवतार रखा। वाण वा बाणासुर बलिका पुत्र था। उसके हजार भुजाएं रहीं। कृष्णके पीछे पड़ कर उसकी कन्या छाने अपने घर चुपके चुपके देवियोंको भेज पकड़ मंगाया था। उसी पर युद्ध पारम्भ हुआ। शिव अपने भक्त बाणासुरकी रक्षावाली करते थे। बलवलियोंका सम्बन्ध मन्द्राज सागर-तटके महावल्लिपुरसे हो सकता है। इनका राजत्व ई० १०वीं शताब्दी तक रहा। किन्तु बहुत दिन तक पक्षीने उन पर प्रभुत्व किया। इनकी पिछली राजधानी पदुविपुरी थी। उनके समय अवनि ब्राह्मण-समाजका पुण्यस्थान रहा। कुछ शिलाफलकोंमें उत्तरके वैदुम्बोंका भी नाम मिलता है। २रीसे ११वीं ई० शताब्दी तक कोलार जिलेका समय पश्चिमांग गङ्गीके राज्यमें लगता रहा। ८८८ ई०को चोर्षोंने उनका स्थान ग्रहण करके इस जिलेका नाम निकरिलि चोलमण्डल रखा था। लगभग १११६ ई०के होयसर्षोंने महिसुरसे चोर्षोंको निकाल बाहर किया। ११५४ ई०को जब होयसर्ष

राज्यका बंटवारा होनेकारके दो बड़कोंके बीच हुआ, कोलार जिन्हा तामिळ-प्रान्तके साथ रामनाथकी मिला। किन्तु दूसरे राजा १५ बलाकने फिर अपने समयमें राज्यको एकमें ही मिला दिया। १५वीं शताब्दीके अन्तको शालुवा नरसिंहने जो कर्णाट और तैलङ्गके एक सरदार और विजयनगरके सेनापति थे, इस जिलेमें विजयनगर राज्यको आक्रमण करनेवाले बहमानी सुलतानकी गति रोकी। पीछेको विजयनगरके दूसरे दूसरे राजाओंने तन्मोद नामक अवनि-वंशके एक सरदारको उनकी सेवाके लिये कोलार जिलेका पूर्वांग दे डाला। ई० १७वीं शताब्दीको बीजापुरने कोलारको दबा शाहजीकी जागीरमें लगाया था। फिर ७० वर्ष तक यहां सुगर्षोंका अधिकार रहा। उन्होंने इसको सीर-प्रान्तमें मिलाया था। इस समय हैदर अलीके वासिद फतेह सुब्बानद कोलारमें फौजदार हुआ। फिर यह मराठों, कडप्पाके नवाब और निजामके भाई वसालत जङ्गके हाथ लगा। १७६१ ई०को हैदर अलीने इसको अंगरेजोंको सौंपा। अंगरेजोंने १७६८ ई० तक कोलारमें राजत्व किया था। १७७० ई०को मराठोंने फिर कोलार जीत लिया, परन्तु हैदर अलीने उधार किया। १७८१ ई०को अंगरेजोंने दोबारा इसको अधिकार किया था, किन्तु १७८२ ई०को महिसुरसे सुलह होने पर वापस दे दिया।

अवनि, धेतमङ्गल और टेकलमें प्राचीन स्मारक हैं। मालूरसे दक्षिण नोनमङ्गलमें १८८७ ई०को एक जैन-मन्दिरका भित्तिमूल पाविष्कृत हुआ है। उसमें ४थी और ५वीं शताब्दीके उल्लिखित ताम्रफलक और बहुतसी मूर्तियां, सङ्गीतके बाजे और दूसरी चीजें पायी गयी हैं। कोलारमें नन्दीका प्राचीन नन्दोत्तर और कोलारका कोलारम्मा मन्दिर देखने योग्य है। यह मन्दिर ११वीं शताब्दीकी चोल-राजाओंके समय बने थे। कोलारमें हैदर अलीके घरानेका इमामबाड़ा भी है। इस जिलेकी विभिन्न शिलालिपियां अनुवादित और प्रकाशित हुई हैं।

जिलेका सदर कोलार शहरमें है। कोलार गोलूड कीलडमें २०००० अदमा रहते हैं।

यहां रागी, चावल, चना, तिलहन, जल और दूसरे अनाजकी खेती होती है। चिकवन्नपुर और सिदल-
घट्ट में आलू बहुत लगाये जाते हैं। नन्दी द्रुगमें कुछ
कहवा और चिकवन्नपुर, सिदलघट्ट तथा कोलार
ताड़कमें जलदाह भी होती है।

बौरिङ्गपेटमें सोनेकी खानि है। प्रतिवर्ष लाखों
रुपयेका सोना निकलता है। इमारतमें लगाने और
सड़क पर बिछानेका पत्थर भी मिलता है। रहमान-
गढ़में किसी मौसमको जमीनसे फूट कर तेल निकला
करता है।

सोनेकी खानके कामको छोड़ करके गोरीबिद-
नूरमें चीनीका एक कारखाना भी है। कोलार, सिदल-
घट्ट और चिकवन्नपुरके सुसज्जमान रेशमका काम
करते हैं। सूती कपड़े, कम्बल और दूसरे रेशे भी तैयार
होते हैं। लकड़ी, कोहरे, पीतल, ताँबे, तेल और गुड़
शहरके कई कारखाने हैं। सुलवागल अपनी उम्दा
शकरके लिये मशहूर है। गोल्डफील्ड और बौरिङ्गपेट
व्यापारके केन्द्र हैं। सोनेके सिवा रफ्तानीकी कीमती
चीज शकर, मिसरी, गुड़, सूती कपड़ा और देशीकम्बल
है। बाहरसे यहाँ कलपुरजा, सोनेकी खानिमें लगने-
वाली चीजें, नमक, रस्सी, टोकरियां और कागज
मंगाया जाता है।

मन्द्राज रेलवेकी बङ्गलोर शाखा इस जिलेमें ५६
मील तक चली गयी है। बौरिङ्गपेटसे गोल्डफील्ड रेलवे
निकल १० मील तक पूर्व और दक्षिण पहुँचती है।

कोलार जिला बागिपत्ती, बौरिङ्गपेट, चिकवन्नपुर,
चिन्तामणि, गोरीबिदनूर, कोलार, मालूर, सुलवागल,
सिदलघट्ट और त्रीनिवासपुर नामक १० तालुकोंमें
बंटा है। बड़े अपसर कमिशनर और असिस्टण्ट
कमिशनर हैं।

कोलासुर—१ कोई असुर। योगिनीतन्त्रके १७वें पटल
में वर्णित हुआ है—किसी समय अन्धाय आवरण कर-
नेसे विष्णुको ब्रह्मशाप लगा था। ब्रह्मशापसे उनके
शरीरमें पापने आश्रय लिया। उन्होंने उक्त पापसे बहुत
खराकर हिमालयके निकट पछाचरी काशीमन्त्र
जपके काशीकी उपासना की थी। काशीके समुद्र होने

पर विष्णुके हृदयसे वह पाप असुररूप धारण करके
निकल पड़ा। वही असुर कोला नामसे विख्यात हुआ
है। कोलासुर दिन दिन दुष्ट बनता गया, धीरे धीरे
ब्रह्मा विष्णु प्रभृति बड़े बड़े देवोंको भी उससे पराजित
होना पड़ा। वह सब देवताओंको हरा कोलापुरमें
जाकर रक्ता था। अन्तकी काशीने ही कोलासुरको
मारनेकी चेष्टा की। उन्होंने बालिकामूर्ति बना उसकी
राजधानी पहुँच कर इस प्रकार आत्मपरिचय दिया
था—मैं एक मातृपिच्छीना बालिका हूँ, सुधासे बहुत
खराकर आप (कोलासुर) के पास आयी हूँ। कोला-
सुर असहाय बालिकाको अन्तःपुरमें ले गया। लड़की
आहार करने बैठी थी। असुर सकल खाद्य लाकर देने
लगा। उसने जो कुछ दिया, बालिकाने उसे मुहूर्तके
मध्य उदरसात् किया। कोला जब और खानेकी मा-
न सका, बालिका उसका धानागार, अन्न, हस्ती, रथ
और सैन्य खाने लगी और परिशेषकी वस्तुबान्धव
सहित कोलाको भी पेटमें डाल वहाँसे चला दी।

२ छोटानागपुर अञ्चलके असुरोंकी एक श्रेणी।
प्रधानतः सरगुजा और कोडारडगामें असुर जाति
रहती है। उन्हें कोड़ा और अंगरिया भी कहते हैं।
असुरोंमें पाँच श्रेणियां और ११ गोत्र वा कुल हैं।
श्रेणियोंके नाम—कोलासुर, कोड़ासुर वा कोडासुर, पहा-
ड़ियासुर, विरजिया तथा अंगोरिया या अंगोरिया और
कुलोंके नाम—अहम्ब, कछुवा, केठोर, केकेटा, नाग,
मकदयार, तिरक, तोया रोटे, बरभो, बांसरियार, तथा
बेलियार हैं। इनमें माझी और परजा—दो उपाधि देख
पड़ते हैं।

पुराणोंमें विन्ध्यचलवासी जिन असुरोंका उल्लेख है,
यह कितने ही डन-जैसे समझ पड़ते हैं। मुण्डानामक
कोल बताते कि सिंगवींगाने असुरोंको ध्वंस किया था।
वस्तुतः वर्तमान असुरजाति पक्षसे जिन स्थानोंमें रहती,
कोलोंने अधिकार कर लिये हैं। मुण्डाओंसे उल्लेख हो
इन्होंने पूर्वस्थान छोड़ दिया है,—यह बात असुर भी
समय समय बताया करते हैं। मानवतत्त्वविदोंके
मतमें यह भी भारतके आदिम अधिवासी और कोल-
देवता संभवोंगाके पूर्वज हैं। असुर पहाड़ों और भूत-

मेनोको भी समय-समय पूजते हैं। यह खानसे कोहा निकाल बचते हैं। कोई कोई कोहेको चीजे भी बनाता है।

कोलाहुर एक कुल या गोत्रमें विवाह नहीं करते। प्रायः वयस्का होने पर ही कन्याका विवाह होता है। इनमें बहुविवाह और पत्नीत्याग अधिक प्रचलित है। स्त्रियोंका स्वभाव-चरित्र वैसा अच्छा नहीं, बहुतसी नाच गा कर अर्थ उपार्जन करती हैं। ब्रह्मण और विहारमें प्रायः तीन हजार असुरोंका वास है। सुधा देखो।

कोलाहट (सं० पु०) एक प्रवीण नर्तक। इसका अङ्ग प्रत्यङ्ग बांसकी तरह लचकता है। कोलाहट तलवारकी धार पर नाचता और मुँहसे मोती पिरोता है।

कोलाहल (सं० पु०) कोल एकीभूताव्यक्तशब्दविशेषस्तु प्राहलति, कोल-हल-अच्। १ अनेक लोगोंका उच्च-शब्द, बहुतसे लोगोंकी लंबी आवाज, कलकलध्वनि, हल्ला, चिल्लाहट। (रामायण, १। ११४) २ भूकदम्ब।

कोलि (सं० पु०) बदरीवृक्ष, बेरी।

कोलि—बम्बई-प्रदेशकी उत्तर-पश्चिम अखिलवासी एक जाति। यह अपने आप कहा करते—कुल अर्थात् वंश-विभागके अनुसार जिनकी अपनी बंधी, वही कोलि हैं। कुनबीका अर्थ कुटुम्बी है, अर्थात् एक परिवारके अनुसार अपनीविभक्त होनेवाले कुनबी कहलाते हैं। कुनबियोंमें पार्यक्य निर्देशके लिये ही 'कोलि' नाम पड़ा है। दक्षिणात्यके ब्राह्मणोंका कहना है—'वैणराजके बाहु मन्थनसे निषाद जाति उत्पन्न हुई थी। इसी निषाद जातिसे निकले किरातोंकी कथा पुराणोंमें देख पड़ती है। कोलि वही किरातजाति है। परन्तु यह अपनेको रामायणकार महर्षि वाल्मीकिका वंशोद्भव बताते हैं। पाश्चात्य विद्वानोंके अनुमानमें कोलि भी कोलजातिकी एक शाखा हैं। दायोनिशियास और इब्न खुरदादने अपने अपने ग्रन्थमें इनकी बात लिखी है। खुरदादने इन्हें उत्तर मल्लवारका रहनेवाला भी कहा है। खान-भेदसे इनका नाम कोहनी कोलि, मराठी कोलि, बरोदा कोलि और तलबड़ा कोलि आता है।

शोलापुरमें कोलियोंके वास-सम्बन्ध पर 'मालुतारण' नामक ग्रन्थ कहता है—'पैठनसे राजा शालिवाहनने

अपने मन्त्री रामचन्द्र उदावन्त सोनारके वंशमर्शानुसार ४ कोलि सरदारोंको डिण्डिर वन विद्रोह दमनार्थ भेजा था। बलवा मिटाने पर कोलि सरदारोंकी उसी स्थानके वनभाममें रहनेकी अनुमति मिली। शालिवाहनने इन्हें मौकावाहन और शिवमन्दिरका पौरोहित्य करके जीविका चलावनेका आदेश दिया था। फिर और भी दो सरदार और इन चारोंके पितामाता वहाँ जाकर रहे। पड़ले चारों सरदारोंका नाम अभनयाव, अधत्राव, नेहेत्राव और परचंदे था। इन्हींके नामसे वर्तमान कोलियोंका वंशोपाधि लगा है।

गुजरातमें भी कोलि लोग रहते हैं और नाना-स्थानों पर लघिकाय करते हैं। अष्टवीसी प्रदेशमें इनकी संख्या अधिक है। बम्बई-प्रेसिडेन्सीके पूना, खान्देश, अहमदनगर, शोलापुर, बालाघाट, कोङ्कण आदि स्थानोंमें भी इनका वास है। अष्टवीसी प्रदेशका थोड़ा अंश आज भी कोलवन नामसे वर्णित हुआ है। पाश्चात्य विद्वानोंके अनुमानमें कोलि जातीय लोगोंका आधिक्य ही उत्त स्थानके कोलवन नामसे प्रसिद्ध होनेका प्रधान कारण है।

यह नानाविध श्रेणियोंमें विभक्त हैं—राज कोलि, मलेसी कोलि, टंगकिर (टीकरी बनानेवाले) कोलि, धोर कोलि, डोंगरी कोलि। यह श्रेणियां प्रायः अष्ट-वीनी, वुन, दन्तोरी और नासिक जिलोंमें रहती और हिन्दू देवता भैरव तथा भवान्नीकी पूजती हैं। राज-कोलियोंका एक दल कोङ्कणप्रदेशमें वास करके महादेव कोलि, पानभरी (जलवाहक) कोलि, धर (पशुपालक) कोलि, चाहीर कोलि, तलपाड़ी कोलि, मूर्वी कोलि, मिट्टा कोलि, चावी कोलि, पत्तनवाड़िया कोलि, खबैज कोलि, धांदर कोलि, भवड़िया कोलि, चुनवल कोलि, या लुगड़िया, किलोकतार कोलि, मंग कोलि, प्रभृति श्रेणियोंमें विभक्त हो गया है।

इनमें पानभरी या जलवाहक कोलि अपेक्षाकृत सम्मानार्ह हैं। यह अपनेको महारी वा मल्लार-पूजक कहते और खान्देश, हैदराबाद राज्यकी सीमा, बालाघाट, इन्दोर, नागदेर जिलेके बोडेन, नलदुर्ग, पण्डर-पुर तथा उसके चतुष्पार्श्व, पूनाके दक्षिणपूर्व पुरन्दर,

सिंहगढ़, तोरण एवं राजगढ़ पर्वतमें रहते हैं। पान भरी घाम घाम और पान्निवासोंमें पानी भरने तथा पण्डरपुरके पास कितने ही घामकी हाररखा एवं चौकीदारीका काम करते हैं। खानदेश और पद्मद-नगरमें इनके थोड़े आदमी गाँवोंके सुखिया हैं। पूनाके दक्षिणपूर्व कोलि वंशानुक्रमसे पार्वत्य दुर्गकी रक्षकता करते चले आते हैं। इनके शिर पर पानीका चड़ा रखनेको कपड़ेकी बुनी हुई एक गुंडरी रहती है। पानभरियोंका दूसरा नाम चुमली है। कुनबियोंके साथ आहार व्यवहार रहनेसे इन्हें कुमन-कोलि भी कहते हैं।

कोलि भैंसेकी पीठ पर मसकमें पानी भर लाते और गाँव गाँव उसको पहुँचाकर अधिवासियोंसे वार्षिक शस्त्र, सूखी घास या रुपया पैसा पाते हैं। यह कमफटे गोखामियोंके निकट दीक्षित होते हैं। दीक्षा-ग्रहीता स्नान करके गुहके नीचे बैठ उनके पैर धोता और फूलोंकी माला पहना तथा सुगन्धि तेल लगा देता है। फिर गुह १०८ दानेकी तुलसीकी माला शिथके कण्ठमें डाल करणमें मन्त्र सुनाता है। उन्हें सिर्फ १, २० दक्षिणा मिलती है। कोलियोंके मध्य जो पण्डरपुरमें बिठोबा-मन्दिरके कर्मचारी हैं, प्रायः तुलसीकी माला पहनते और मन्त्र मंत्र भक्षण नहीं करते।

महादेव-कोलि पूनाके दक्षिणपश्चिमभाग सद्मादिकी उपत्यकामें वास करते और उत्तर गोदावरीसे ताम्रक पर्वत बराबर मिलते हैं। यह २४ कुलों या वंशोंमें विभक्त हैं। फिर इन २४ कुलोंमें प्रत्येक नामा भागोंमें बंट जानेसे २१८ श्रेणियाँ हो गयी हैं। इनमें समान कुलमें स्त्रीपुत्रका विवाह नहीं होता। महादेव कोलियोंके मध्य अघासीमें ३, भगिन्त (भागवन्त) - में १४, भाँसलमें १६, चवानमें २, दलईमें १२, दलभीमें १४, गायकवाड़में १२, गभलीमें २, जगतापमें १३, कदममें १६, केदारमें १५, खराडमें ११, खीरसागरमें १५, नामदेवमें १५, पवारमें १३, सागरमें १२, पोखवमें १२, सेहखाता सेवमें १२, शिवमें ८, शिरछीमें २, सूर्य-वंशीमें १६, उत्तरचामें १३, वनकपालमें १६ और बुधि-

वन्त (बुधिमन्त) कुलमें १० भाग हैं। एतद्विषय कई कुनबियोंने इनमें मिला कर नवीन कुल और नतन नतन श्रेणियाँ उत्पन्न की हैं।

कोलियोंके मध्य जो सकल कुलनाम मराठीके उपाधिके साथ एकत्र हैं, (अर्थात् चवान, दलभी, गायकवाड़, कदम, पोरव, भोंसले प्रभृति) पाश्चात्य विद्वानोंके मतानुसार अति पूर्व कालको प्रायः एक जाति थे। आकारमें भी मराठा और कोलि जातीय लोगोंकी विशेष भिन्नता नहीं पड़ती। पहिले दक्षिणात्य-वासी मराठा और कोलि आदि वीर जाति जब दख्खुता करके जीवन चलाते रहे, इनकी श्रेणियोंका नाम वंशगत वा जातिगत न था। मालूम पड़ता है, उस समय भिन्न जाति होते भी यह एक श्रेणीमें ही गण्य थे। इसका प्रमाण आजकल भी मिलता है। पूनाके जवकतरे दख्खु 'उचला' जातीय लोगोंमें गायकवाड़ और यादव—दो ही श्रेणियाँ हैं। उनमें सकल जातीय लोग—ब्राह्मण, वनियाँ यहां तक कि मुसलमान भी हैं। किसी किसीके अनुमानमें 'सेखाज सेव' कुल कोलियोंके धर्मसम्प्रदायके नामसे गृहीत हुआ है। किन्तु कोई उचलावोंका व्यापार देख कहते हैं शायद पूर्व कालको कोलियोंमें मुसलमानोंकी मिला जाने पर 'शेख'से सेखाज नामक स्वतन्त्र कुल बन गया है।

जो हो, परन्तु इनमें कुनबियोंके प्रवेश करनेसे जो स्वतन्त्र कुल चले, प्रायः एक एक करके विशेष विशेष स्थानोंमें बसे हैं। झूला नदीके उपकुल पर आलोकके पन्तगत कोतुलमें बरमल, बरमत्ती, भागवत, दिन्दले, घोड़े; राजुरकी पश्चिम प्रवरा नदीके तीर भंड़े, वने, जड़े, कारे, खदाले, सकते, पिचर (इसी पिचर कुलसे राजुरका देशमुखवंश उत्पन्न है) ; अकोलाके उत्तर-पश्चिम यादव, गोड़े, सावले, चेतरो और खलपारे कुलोंका वास है।

महादेव कोलि साधारणतः देखनेमें कृष्णवर्ण, खर्वकाय, सबलदेह, दृढ़ तथा खूबपेयोविशिष्ट—किन्तु उस्तादहीन हैं। इनकी स्त्रियाँ नती सुकपा और न सुत्री हैं, परन्तु यह भी नहीं कि सर्वाङ्गकुदपा ही हों। प्रायः सभी रमणियाँ मधुरस्वभावा, सुगठिता,

लज्जाशीला, पतिपरायणा, सती और परिष्कार-परि-
च्छया होती हैं। महादेव कोलि टूटीफूटी मराठी
भाषामें बोलते हैं। लृणाच्छादित कुटीरोंमें सामान्य
लोगोंका वास है। यह कुटीर बहुत बड़े बड़े होते
और प्रत्येकमें दो लक्ष्मी चौड़ी कोठरियां और एक
छोटा कमरा होते हैं। एक बड़ी कोठरी बाहर बैठने
उठने और दूसरी भीतर चीजें रखनेके काम आती है।
भीतरकी कोठरीमें ही शय्यादि रखा जाता है। धनि-
योंके गृहादि धनी कुनबियोंके घरों-जैसे होते हैं। धनी
लोग पशुपत्नी प्रतिपालन करते और उन्हें अपने
आवासमें ही रखते हैं। महादेव कोलि शूकर और
गोमांस व्यतीत अपर सकल मांस भक्षण करते हैं।
इनका साधारण खाद्य काकूनकी रोटी है। स्त्री पुरुष
सभी प्रातःस्नान किया करते हैं। प्रत्येक परिवारमें
वयोवृद्ध सबेरे नहा कर चन्दन पुष्पादि द्वारा गृहदेवता-
को पूजते और प्रसुत खाद्यादिका भोग लगाते हैं।
प्रत्येक व्यक्ति तुलसी प्रदक्षिण और प्रणाम करता है
सत्त्ववादिमें भात, बड़ी, रोटी पूरी आदिका भोग देव-
ताको निवेदन किया जाता है। दौष मासकी शक्ता
पछीको यह खंडोवा नामक देवताके सम्मुख छागवलि
देते और उसी मांसको रन्धन करके अन्न तथा पिष्टकादि
सहित भोग लगा लेते हैं। महादेव कोलि तम्बाकू,
गांजा, भांग और देशी शराब भी खूब पीते हैं। स्त्रियां
किसी प्रकारका मादकद्रव्य सेवन नहीं करतीं, देवल
चूनेके साथ सुरती मिला पानमें खा लेती हैं। पुरुष
शिखा व्यतीत समस्त मस्सक मुण्डन करते और दाढ़ी
भी नहीं रखते। स्त्रियां बाल बांधतीं और सधवा सिन्दूर
लगाती हैं। पुरुष स्नानके पीछे चन्दनका तिलक
लगाते हैं। इनका पहनावा कुछ कुछ कुनबियों और
रावकों-जैसा रहता है। गलीमें लाल और सफेद पोतकी
पहनने जानेवाली माला 'मङ्गलसूत्र' कहलाती है।
प्रायः सभी लोग कर्मठ, बलिष्ठ और शीघ्रहस्त होते भी
कुनबियों-जैसे परिश्रमी एवं बुद्धिमान् नहीं। यह कुछ
अलस और भविष्यदृष्टिहीन हैं। परन्तु स्वजातिवत्स-
लता, साहाय्यकारिता और सत्त्ववादिका इनमें अभाव
नहीं। अति सरल होनेसे जो सिखाया जाता, सीख

लेते हैं। विदेशियों और शत्रुओंके प्रति बहुत सन्देह-
चित्त रहते हैं। फिर भी विदेशियों पर बड़ी दया करते
हैं। इनकी स्त्रियोंका साहस अपरिसाम है। वह पुरु-
षोंके परिच्छेदमें आत्मगोपन करके अंगरेजों पुलिसके
पहरावालोंका काम करते देखी गयी हैं।

सोन कोलियोंमें कितने ही मछली मारते और
बहुतसे नाव चलाते हैं। यह देशीय लोगोंके जहाजां
पर भी काम करते हैं, परन्तु युरोपीयोंसे अलग ही रहते
हैं। क्योंकि वैसा करने पर इन्हें समाजच्युत होना
पड़ता है। इनकी स्त्रियां बायें हाथमें कांचकी चूड़ियां
पहनती और नदीतीरसे मछलियां ले जाकर बाजारमें
रखती हैं। पुरुष वही मछलियां बेचा करते हैं। विवा-
हके समय इनकी स्त्रियोंके दाहने हाथका गहना या
चूड़ियां उतार कर समुद्रमें फेंक दी जाती हैं। उद्देश्य
यह है—मछलियां पकड़ने जाने पर जलदेवता पानोंमें
कन्याके स्वामीकी रक्षा करेंगे। महुवेकी शराबन
होनेसे इनकी पत्न्यायत नहीं बैठेगी। कोलावा प्रदेशमें
अंगिरियाके अधीन कितने ही सोन कोलि सैनिकोंका
कार्य करते थे। इनमें घनेश धनी हैं। बम्बई, थाना,
भेवंदी, कल्याण, बासिम, दमन प्रभृति स्थानोंमें पोत-
गोजीने कितने ही सोन कोलियोंको ईसाई बना डाला
था, परन्तु १८२०-२१ ई०को विस्तृत रोगसे आक्रान्त
ही बहुतसे सोन ईसाइयोंने अपना पूर्व धर्म अवलम्बन
कर लिया।

धीर कोलि अतिगय मद्यपायी हैं। यह स्वभाव-
वृत्त पशुओंका मांस भी खा जाते हैं। इनकी भोलोंके
साथ घनिष्ठता है। फिर कितने ही अपनेको भील भी
बताया करते हैं।

आहीर कोलि खानदेशमें गीर्णा और तापती नदी
किनारे रहते हैं। यह चौकीदारीके काममें नियुक्त
हुवा करते हैं।

मूर्वी कोलि उत्तर-कोङ्कणके प्रत्येक ग्राममें वास
करते हैं। बम्बईमें पीनसबरदारी ही इनका खास
काम है।

चाँची कोलि काठियावाड़के अन्तर्गत जूनागढ़से
जाकर बम्बईमें रहे हैं। यह खेतीबारी और मजदूरी

क्रिया करते हैं। मिठा कोलियोंका बम्बई-प्रदेशके नासिक जिलेमें कारवार है।

तुसांदा कोलियोंकी संख्या गुजरातमें अधिक है इनकी अपेक्षा खेज, धांदर, भावरिया कोलि कम देख पड़ते हैं। महीकान्ता जिलेमें कई श्रेणीयों अधिक हैं। यह भी चौकीदारी और मजदूरी करते हैं। सेलोता कोलि मामूली तिनारत चलाते हैं।

पत्तनवाड़िया गुजरातके महीकान्ता जिलेमें खेती-बारी और मजदूरी क्रिया करते हैं।

बम्बई होपवासी कोलि खेतीबारी करते, ताड़ी बनाते, शिकार करते और पशुपक्षी बेचते हैं।

तलवाड़ी कोलि निरीह जनक हैं। परन्तु चम्बल जिलेके चुनवल कोलि बहुत भ्रष्ट होते हैं।

टंगकिर कोलि बम्बईके निकट रहते हैं। स्पष्ट समझ नहीं पड़ता—इनकी कोई स्वतन्त्र श्रेणी है या इनके व्यवसायसे ही टंगकिर नाम पड़ा है। यह बांसकी डलियां, टोकरियां आदि बनाते हैं। कोलि जातिकी अन्यान्य श्रेणियोंमें भी यह व्यवसाय होता है। साफ साफ मालूम नहीं होता है—विभिन्न श्रेणियोंके समव्यवसायी कोलियोंके बम्बईमें एक स्थान पर अवस्थान करनेसे इस प्रकारकी एक श्रेणी कल्पित और अभिहित हुई है या नहीं।

डंगरी कोलि पर्वतवासी हैं। यह पर्वतकी डंगर कहते हैं। कलिकताके कोलि महकपुरमें रहते और नौवाहनादि करते हैं।

मह कोलि किसी किसी जिलेमें युवती स्त्रियोंकी देवताके नाम पर अविवाहिता रहते हैं।

धीर कोलि पशुपालन और नित्यप्रयोजनीय द्रव्यादिका व्यवसाय करते हैं।

कोलि जाति अधिकांश चौकीदार, पटैल, गांवके मुखिया और कुछ लोग वंशानुक्रममें देशमुख पर्वत आत्मविचारकका काम क्रिया करते हैं। पूर्वकालकी कोलि जनकोंके स्वत्वादिकी रक्षाके लिये 'नायकबड़ा' होते थे। इन्हें स्वाधिकारके प्रत्येक घामसे बाध मन बनाज, एक मुर्गा, एक सेर धी और एक रुपया मिलता था।

साधारणतः कोलि लोग निर्धन हैं। सरकारी बन्ध-विभागकी सख्तियां पढ़नेसे इनका कष्ट और भी बढ़ गया है। इनकी चारणभूमि घट गयी है, काष्ठसंपदका अभाव हो गया है और 'बचाव'की खेतीके लिये यह पत्ते भी इकट्ठा नहीं कर सकते।

कोलियोंसे कुनवियोंका सांसारिक जीवन नहीं मिलता। यह प्रतिदिन तीन बार आहार करते हैं—सबेर ८ बजे, दोपहरको और रातमें। पीपकालका इनके जेठका कार्य अल्प रहता है। उसी समय यह पुत्रादि साथ लेकर वनमें शिकार करने जाते हैं। जंगकी सुपरका शिकार इन्हें बहुत अच्छा लगता है। यह बहुत स्थिरलक्ष्य होते हैं। शनिवार इनके गृह-देवताका अधिष्ठित वार है। इसीसे उस दिन कोई काम नहीं करते। इस दिनको कोलि धर्मराजका द्वितीय दिवस बताते हैं। यह मराठा कुनवियोंसे छोटे समझे जाते हैं। कोलि कहते—पूर्वकालकी हम भी मराठे थे, शिवजीके पीछे कुछ गिर गये। इस बातके प्रमाणमें उनका कहना है—पहमदनगरके कोलि सोनारीके भैरवकी प्रतिमा, निजामराज्यके कोलि तुलजापुरकी देवीकी मूर्ति और पूनाके कोलि जेजुरीके खंडोवाकी मूर्ति अपने अपने घरमें रखते हैं। पूजाके दिन उपवासी रहते हैं। इसको छोड़ कर हिन्दुओंके प्रति पर्व और व्रतादिके दिन भी उपवास करते हैं। एतज्जिन दरयाबाई, चोपरदेवी, गुजईवीरव, हीरो, कलसुवाई, झैसवा, नवलाई प्रभृति देवताकी उपासना भी इनमें होती है। मुसलमान पीरोंको भीरीनी चढ़ाई जाती है। स्वजातिके मध्य वा स्ववंशमें जो व्यक्ति महत् कार्यके लिये भयानक रूपसे हत हुए हैं, उनके समाधिस्थलकी यह बड़ी भक्ति करते हैं। आजकल कोलि स्थानीय ब्राह्मणोंसे देवपूजादि कराया करते हैं। पहले लिङ्गायत रावल गोस्वामी इनके पुरोहित रहे, किन्तु द्वितीय पेशवा बालाजी बाजीरावके राजत्वकाल (१७४०-६१) यह प्रथा रहित हो गयी। इनके मतमें पूनाके अन्तर्गत जेजुरी, नासिक, और शोलापुरके अन्तर्गत पण्डरपुर प्रधान तीर्थस्थान है। माघकी द्वितीया इनके प्रधान उत्सवका दिन है।

आवकी सोमवार और शिवरात्रिको यह उपवास करते हैं। पशुपालक कोलि गायोंमें एकको गृहदेवता-के नाम पर निर्दिष्ट कर रखते और उक्तबादिके दिन उस गायका दूध परिवारमें कोई नहीं पीता। उसके दूधसे घो प्रसुत करके सम्झाकालको देवगृहमें उसी घृतका दीप जलाते हैं। उपदेवताके उपद्रव या कुल्लोक-की चेष्टासे इस घोके बिगड़नेकी बात है। इसीसे मन्थनदण्डके मस्तक मखन पर 'भूतखेत' वृक्षकी डाल रख देते हैं। यह समय समय पर्वत पर वा जलाशय-के तीर स्थानीय उपदेवताकी सन्तुष्टिको घृत जलाते और प्रार्थना करते हैं—आप अन्यान्य उपदेवताओंके हाथसे हमारे पश्चादिकी रक्षा कीजिये।

यह लोग देवरोष वा उपदेवताके उपद्रवसे बहुत डरते हैं। इनमें बहुतसे शायद कुडुक-विद्याके पारदर्शी हैं। साधारण उनसे कुछ भय भक्ति रखते हैं। कोलि-योंके विश्वास हैं—क्या पुंरुष, क्या स्त्री, क्या शिशु, क्या पशुको भी रोग दुःख, विपद्, दुर्घटना प्रभृति भेलना पड़ता, देवताके क्रोध वा उपदेवताके उपद्रव का फल है। ऐसा होने पर यह कारण निरूपणार्थ 'देवद्वी' (ओम्भा, झड़ाफूंक करनेवाला)-के निकट गमन करते हैं। पीड़ितके आत्मीय बन्धुबान्धव किसी देवद्वीकी बुला लाते और उसे देखाते हैं। वह पहले पक्षी पक्षी पक्षीका एक फूल और एक सुर्गा लेकर रोगीके मस्तककी चारो ओर घुमाते हैं। इससे रोग दूर न होने पर बड़े ठाट बाटसे शान्ति कार्यका अनुष्ठान किया जाता है। प्रथम दिन देवद्वी रोगीकी अवस्थाका पुष्टानुपुष्ट अनुसन्धान लगाते और दूसरे रोज आकर बताते हैं—कि भवानी, हीरोवा या खंडोवा तुमपर क्रुद्ध हुए हैं; अच्छे प्रकार उनको सन्तोष कर पूजादि दे दो। पीड़ितके घरवाले आयोजनके निमित्त सप्ताह वा पक्षकाल समय प्रार्थना करते हैं। देवद्वी रोगीकी अवस्था देखभाल अवसर देते हैं। फिर निर्दिष्ट दिनको ३ या ४ भेड़ लाकर रखते और सोमवारको सम्झाकाल दो-तीनको बलि करते हैं। यह बलि भैरव और खंडोवा देवताके उद्देश दिया जाता है। रातको 'गौधाल' नृत्यगीतादि करते

हैं। आत्मीय स्वजन उस दिवस बुलाये जाते और वही मांसादि खाते हैं। दूसरे रोज सबेरे देवद्वीके आदेशसे निर्दिष्ट सुदृढ पर बाकी भेड़ हीरोवाके उद्देश्य बलि देते हैं। इस समय गांवके लोग दण्डक रूपसे उपस्थित होते हैं। स्त्रियोंका उस स्थान पर रहने नहीं देते। कोलियोंको विश्वास है कि स्त्रियोंकी छायासे बलिका द्रव्य अपवित्र हो जाता है। गृहदेवताके सम्मुख बैठ कर देवद्वी एक अग्निकुण्ड जलाते हैं। इस अग्निमें बलिमांसके थोड़े चिज्जित अंशसे नानाविध खाद्य प्रस्तुत किया जाता है। अवशिष्ट मांस अन्यत्र पका करता है। इतिमध्य ठोल बजनेके साथ साथ देवद्वी समस्त शरीर छिजाते, गिखाका अन्त्रि खोल देते हैं। शेषको मानो अवसन्नताका रूप लाते हैं। इससे सब लोग समझते कि हीरोवा देवता उन पर भर किये है। यह अवस्था आने पर वाद्यादि बंद हो जाते, सकल दण्डक स्वर भावसे टकटकी लगाते हैं। उसके बाद देवद्वी एक हाथमें हीरोवाकी प्रतिमा मयूर पुच्छ द्वारा सजा और हलदीकी चुकनी लेकर अग्निकी चारो ओर चक्कर लगाते और बीच बीच उसी कटाहमें हलदी की चुकनी छोड़ते हैं। फिर वह कड़ाहका थोड़ा तेल किसी बर्तनसे निकाल भागमें ढाल देते हैं। अवशिष्ट तेलमें मांसादि भून उपस्थित लोगोंको परि-वेशन करते (परोसते) हैं। यदि देवद्वीके हाथमें तेलकी उष्णता अधिक लगती, तो यह बात समझ पड़ती कि देवताके रोषकी शान्ति नहीं हुई। ऐसे अवसर पर फिर आदिसे समस्त कार्य करना पड़ता है।

कोलि दुरस्व आत्मीय हैं, पलायित गो और अपहृत-द्रव्यका संवाद प्राप्त करनेको सर्वदा देवद्वीका साहाय्य लेते हैं। इनके कथनानुसार कलसास (गिरगिट)-के लाङ्गूलमें ज्वरघ्न गुण होता है। शुक्रवारकी रातमें इस जीवकी पकड़ शनिवारको प्रातःकाल मारकर लाङ्गूल ग्रहण करते हैं। इस लाङ्गूलका एक एक टुकड़ा प्रत्येक परिवारमें रख दिया जाता है। यात्रा-कालमें यदि कोई सामने हरिण, विट्ठाल वा काकको राह काट कर जाते देखता, लौटकर दो एक दिन घरमें रहने पीछे बाहर निकलता है। इसकी अपेक्षा कोई

सामान्य दुर्लक्षण देख पड़ने पर वाम पादकी पादुका (जती) दक्षिण पादमें पहन कर चले जाते हैं। कोलि जलाशयके तीर आ हाथमें तुलसी वा विस्वपत्र, काकुन और हलदीकी बुकनी उठा महादेवके नाम पर प्रणम करते हैं।

इनके जन्म, विवाह और मृत्युमें तीन उत्सव होते हैं। शिशु जन्म लेनेसे नाड़ी छेदनेके पीछे धात्री स्तिका-ग्रहमें एक गत छोड़ रखती है। फिर शिशुकी तेज हलदी लगा प्रसूतिके साथ गर्म पानीसे नहला देते हैं। प्रसूति नववस्त्र पहना कर चारपायी पर लेटायी जाती है। खाटके नीचे बरौसीमें आग रखते हैं। चतुर्थ दिन वह शिशुकी स्नान देना आरम्भ करती है। नव शिशुके दर्शनार्थी कई एक विन्दु गोमूत्र पांवमें लगा सोवरमें घुसते हैं। कोलि समझते हैं—यै सा करने पर कोई उप-देवता उनके साथ उस घरमें आ नहीं सकते। चौथे दिन सवेरे शिशु और प्रसूति दोनों स्नान करते हैं। उसी दिन प्रसूतिको घी या तेलकी मूरियां खिलाते हैं। मध्याह्नकी आजीवन प्रतिवासिनियां शिशु देखने आती और सभी अपना पदधूलि ले शिशुकी चारों ओर घुमा कर प्रायः आधा फाँकसे उड़ा देतीं, फिर चुटकी बजा कर बैठ जाती हैं। यदि शिशु रोने लगता, तो धूप आदि सुगन्धि द्रव्य जलाती और भैरव तथा षष्ठीसे उसका मङ्गल मनाती है। पाँचवें दिन एक छद्म स्तिकाग्रह-में किसी चौकी पर सिन्दूर और हलदी लगा रखती हैं। उस पर एक सुपारी, एक नारियल और निकट ही दूसरी चौकी पर फूलचन्दन रखा जाता है। अन्त-की षष्ठी देवीकी पूजा होती और दास, भात तथा व्यञ्जन आदिका भोग लगता है। पञ्चम दिनसे ही प्रसूति छुत्तान्न खानेकी पाती है। दश रोज प्रसूति सोवरमें रहती है। ग्यारहवें दिन गृहादि गोबरसे ओपते पोतते और प्रसूति तथा शिशु नहाकर शुद्ध होते हैं। हादश दिनकी सम्झाकाल शिशुका नामकरण होता है। इसी रोज पुरोहित आते हैं। उनकी बच्चेके जन्मदिन और समयकी बात कही जाती है। वह पञ्चाङ्ग देख बालककी कोठी प्रसूत करके नाम फिर कर देते हैं। फिर शिशुकी दोहामें लेटाकर सब लोग

नवनामसे आवाहन करते हैं। फिर अभ्यागतोंके हाथों पके चने और पान बाँटे जाते हैं। फिर बालक या प्रसूति पर उपदेवताकी दृष्टि न पड़नेकी दोहोंके काजल लगाते और शिशुके गलेमें काले सूतसे बजर बँटूके दो काले दाने बांध लटका देते हैं।

पुरुष पक्षीससे पूर्व और स्त्रियां बारहसे १५ वर्षके मध्य विवाहित होती हैं। वरके पक्षसे विवाहका प्रस्ताव उठता और कन्यापण स्वरूप १५ से २० तक देना पड़ता है। बहुतसे गरीब कोलि इतना धन संग्रह न कर सकनेसे आजीवन अविवहित रहते हैं। अविवहित बालक मरजानेसे 'घाटवय' (विवाहयोग्य द्वर्जोप) कहलाता है। कोई विवाह होनेसे पहले इन घाटवयोंके प्रेतात्माका तुष्टिसाधन करना पड़ता है। नहीं तो दुलहिन बन्धा हो जानेका प्रवाद है। इनके तुष्टिसाधनका आयोजन इस प्रकार है—कोई स्त्री एक थालमें हलदी, सुपारी, ज्वार और एक प्रदीप ले आगे चलती है। इसके मस्तक पर चंदोवा लगाया जाता है। इस स्त्रीके पश्चात् किसी व्यक्तिके स्वस्थ पर एक बालक नङ्गी तलवार ले चौत्कार करते करते चलता है। फिर यह लोग किसी प्रतिष्ठित पत्थरके पास पहुँच उसकी सिन्दूरसे भूषित करते और उक्त सकल द्रव्य उसके सम्मुख रखते हैं। इसी प्रस्तरमें घाटवयोंके प्रेतात्माका आधिर्भाव और उपहार द्रव्योंका ग्रहण कल्पित होता है।

समान देवक या एक कुलमें कोलियोंका विवाह कम होता है। माटपक्षके देवकसे कन्या वा वरका देवक मिलनेमें बाधा नहीं। सम्बन्ध स्थिर हो जाने पर वरके पिता किसी शुभ दिन एक छद्मको भेज पूछ लेते हैं—इस विवाहमें कन्याके पिताकी सम्मति है या नहीं। सम्मति मिलने पर वरकन्या दोनोंके पिता मिल कर किसी देवज्ञके पास पहुँच उनके पञ्चाङ्ग पर पान सुपारी रख कर प्रणाम करते हैं। वह पात्रपात्रीका नाम पूछ कर बता देते हैं—विवाह कर देनेसे शुभ होगा या अशुभ। देवज्ञके सम्बन्धकी दूषित बताने पर विवाह रुक जाता है। अन्यथा दोनों घर लौट जाते और किसी अन्य छद्म व्यक्ति द्वारा कन्यापणादि ठहराते हैं। उसके बाद किसी दिन मंगनी होती है। अर्थात्

पात्रके पिता, जितना शस्त्र देनेको स्वीकृत हुए, कन्या-
के पिताके निकट लेकर पहुँचते और उनकी वर उप-
हार दे उनकी कन्याका वधूपमें प्रार्थना करते हैं।
फिर उसी दिन वरके पिता आत्मीय स्त्रजनोंको लेकर
कन्या देखने जाते और उसे नववस्त्र तथा अंगिया
दिखाते हैं। वहाँ कन्यापक्षके भी कुछ लोग उपस्थित
रहते हैं। कन्या नववस्त्र पहन गृहदेवताकी सुपारी
चढ़ा प्रणाम कर भावी श्वसुरके सम्मुख जाकर बैठती
है। वरके पिता इसी समय उसके कपाल पर सिन्दूर
चढ़ाते हैं। कन्या उन्हें प्रणाम कर उठ जाती है। वर-
पक्षीय कन्याके घरमें आहारादि करते हैं। फिर किसी
दिन देवदत्तके निकट जा विवाहका दिन ठहरा पाते
हैं। विवाहके दिन प्रातःकाल वरकन्या दोनोंके घर
५ सधवायें जा घरके ठीक सामने पाटेसे एक चतुरस्र
मण्डल चिह्नित कर उसके मध्यस्थल पर दो सिलवट्टे
रखती हैं। उसके पीछे सुहागिनें एक कपड़ेमें हलदी
और दूसरेमें एक सुपारी बांध सिलमें हलदी बंधा और
लोढ़में सुपारी बंधा कपड़ा लगा ऐपन बाँटती हैं।
इस एपनके नीचे-जैसे पाँच गोले बनाये जाते, जो
'उन्दास' कहलाते हैं। फिर वर और कन्याको हलदी-
का उबटन लगा नहला प्रत्येक सुहागिन वरकन्याके
हथसे एक एक उन्दास ले चल देती है। इसके बाद
दोनों घरोंसे एक एक पुरुष साम्प्रशाखा और एक एक
स्त्री अन्नव्यञ्जनादिका घाल ले मातृदेवके मन्दिर
जाती है। यात्राकालकी इनके मस्तक पर श्वेतवस्त्रका
चंदोवा लगा लेते हैं। चलते समय पुरोहित शाखावाड़ी
पुरुष और अन्नवाहिनी स्त्रीकी गाँठ जोड़ देते हैं।
मातृके मन्दिरमें पहुँच साम्प्रशाखा एवं अन्नादि रख
कर प्रणाम और नवदम्पतीकी कुशल प्रार्थना करते हैं।
फिर देवताकी सुपारी और पैसा भेंट कर साम्प्रशाखा
सठा चले पाते हैं। सकल वंशोंके लोग साम्प्रशाखा
नहीं ले जाते। भिन्न भिन्न गोत्रमें भिन्न भिन्न उरकी
शाखा चलती है। यह उरशाखा ही कोलियोंका कुल-
चिह्न है। लौटते समय भी वाइकीके शिर पर चंदोवा
रहता है। साथमें बराबर बाजे बजा करती हैं। मन्दिर-
से या साम्प्रशाखाकी मण्डल मध्यस्थल लोढ़के साथ बांध

कर रख देते हैं। यही कोलि-विवाहके अधिष्ठातृ-देवता
हैं। पुण्यचन्दनसे देवताकी पूजा होती और अन्नव्यञ्जननादि
द्वारा भोग लगता है। उभय पक्षोंके आत्मीय स्त्रजन
आहारादि करते हैं। सन्ध्याकालकी वर और सिर पर
रख छोड़े चढ़ कर बरातियोंके साथ कन्याके घर जाता
है। वरकी भगिनी पीछे छोड़े पर बैठ उसके मस्तकपर
पूर्ण घट रखती है। घटके पर एक नारिकेल रहता है।
कन्याके घाम पहुँच वहाँके मातृति-मन्दिरमें वर अपने
दरुके साथ अवतरण करता है। वरका अविवाहित
भ्राता उसके पक्ष पर बैठ कन्याके घर जाता है। इसी
समय एक सधवा वरप्रदत्ता कन्याका कपड़ा ले उसके
घर पहुँचती है। वह कन्याका वेश परिवर्तन करके
कपाल पर सिन्दूर चढ़ा देती है। वरका भ्राता वहाँसे
लौट जाता और अपने साथ कन्याके पिताकी भी जाता
है। उस समय कन्याका पिता वरको एक पगड़ी देता
है। वह उसे बांध गाजेबाजेके साथ बरातियोंको साथ
लेकर कन्याके घर पहुँचता है। द्वार पर उपस्थित
होनेसे कन्याकी माता निकल उसकी आरती उतार
पैर धुला देती है। फिर उसको ले जाकर मण्डलके
मध्य उसी सिलवट्टेके निकट महीकी वेदीके पास चौकी
पर पूर्वमुख खड़ा करते हैं। कन्याको वरके सम्मुख
पश्चिममुख खड़ा होना पड़ता है। दोनोंके बीच श्वेत-
वस्त्रका एक अन्तराल (परदा) डाल दिया जाता है।
पुरोहित विवाहके मन्त्रादि पढ़ा करते हैं। शुभ क्षणको
वह वस्त्र बीचसे खींच लिया जाता है। उस समय बाजे
बजने लगते और वरकन्याको स्वामी स्त्रीरूपमें गण्य
करते हैं। फिर वेदीके निकट एक चटाई पर वरके
वामभाग कन्याको बैठा दोनोके वस्त्रप्रान्तमें गाँठ लगा
देते हैं। उसके पीछे वेदिपर पुरोहित होम करते हैं।
वरकन्या गृहदेवताकी नारिकेल भेंट कर शुभजनोंको
प्रणाम करते हैं। फिर उनका गंठबन्धन खोल दिया
जाता है। इस समय पुरोहितकी उभय पक्षोंसे दो-दो
तीन-तीन रूपये मिलते हैं। दूल्हा दूल्हन आहारा करके
इसी घरमें रहते हैं। वरयात्री आहारादिके पीछे जम-
वासे चले जाती हैं। दूसरे दिन सवेरे वरकन्या हलदी-
का उबटन लगा उन्हा जलसे स्नान करते हैं। सन्ध्या-

कासको फलदान होता है। जनाती बाजा बजाते और बरातिथीको स्वागत करनेके लिये बुलाने जाते हैं। उसी समय वरके पिता वरको नववस्त्रादि और अन्न द्वारादि दिया करते हैं। फिर वरके साथे कन्याको बैठाल वरकी बहन दोबारा दोनोंके वस्त्राच्छन्न बांध और वरके गोदमें चावल, ५ नारियल, ५ पान, ५ सुपारी, ५ छोड़ारे और ५ गांठ हलदी डाल देती है। पुरोहित आकर दोनोंके कपाल पर सिन्दूर तथा धान चढ़ा आशीर्वाद करते हैं। फिर उभयपक्षीय उपस्थित आत्मीय इसी प्रकार रोचना और चावलसे आशीर्वाद करते तथा एक एक पैसा दोनों पर न्यौछावर कर किसी दोनेमें रखते चलते हैं। इसके पीछे कन्यापक्षके मुखिया साध्य होनेसे सबको खिलाते पिनाते, नहीं तो केवल दूल्हा दूल्हनको भोजन करा जमाताको एक धोती पहना देते हैं। विवाहके पूर्व वरका जो मीर रहा, उसके बदले दूसरा मीर शिरपर रख वरकन्या अम्हा रोहणसे दूल्हाके घरको चला करते हैं। घर पहुँचने पर वरकर्ता सबको खिलाते पिनाते हैं। दो व्यक्ति वरकन्याको स्नान पर बैठाल युवन्तु (भेंदो नाच) किया करते हैं। इस नाचके पीछे मीर उतार लेनेसे विवाहकाण्ड समाप्त हो जाता है।

विधवाविवाहमें स्त्रियाँ स्वयं पतिनिर्वाचन करके आत्मीय स्त्रजनोंकी अनुमति लेती हैं। यदि वह सम्मत हो जाते, तो पुरोहित दिन स्थिर करके रातको अन्ध सकलके निद्रित रहते विधवाके घर पहुँच पात्रपात्रीको चौकमें बैठाल विवाह कर आते हैं। पात्रके साथ कुटुम्बके दो एक पुरुष रहते हैं। पात्रीके पक्षकी भी दो एक स्त्रियाँ जागा करती हैं। पुरोहित सुपारीमें गन्ध पति और पूर्ण कुम्भमें वरुणकी पूजा करके दूल्हादुल्हनको गांठ जोड़ देते हैं। वर वधूकी गोदमें फल दान करता है। फिर पात्रपात्रीके प्रणाम करनेसे पात्रीके कपाल पर पुरोहित सिन्दूर लगाते हैं। विधवा विवाह हो जाने पर तीन दिन किसी सधवा स्त्रीकी अपना मुख दिखाने नहीं पाती। इस विवाहके बाद यदि पात्रपात्रीमें कोई पीड़ित होता, तो वह देवद्वेष परामर्श लेता है। वह प्रायः कह देते कि उसके पूर्वस्वामीने

विरक्त हो कर यह अनिष्ट लगाया है। इस पर विधवा आत्मीय स्त्रजनोंकी भोज देती और पूर्व स्वामीकी एक मूर्ति अर्पित करके ताम्रपुटमें रख अपने कण्ठमें बांध लेती या गृहदेवताओंमें रखा करती है।

कन्या प्रथम ऋतुमती होनेसे तीन दिन अशुचि रहती है। चौथे दिन वह नहाती, फिर उसकी गोदमें चावल और नारियलसे भरी जाती है।

कोलि शवदाह नहीं करते, वे उसको गाढ़ देते हैं। अशौच काल १० दिन रहता है। मृत्युके पासकाल पुत्र वा पत्नी पीड़ितके मुखमें तुलसीपत्रसे कई बूंद जल डाल देते हैं। रोगीके मरते ही स्त्रियाँ उच्चैः स्वरसे रोने लगतीं; आत्मीय स्त्रजन जा कर शोकप्रकाश करते हैं। घरके बाहर उसी समय मृतपात्रमें अन्न और एक पात्रमें उष्ण जल प्रक्षुण किया जाता है। फिर सायको घरसे बाहर निकालते और दक्षिणकी पैंर रखके लेटा देते हैं। इसके पीछे मर्त्यमें घी लगा पूर्वोक्त उष्णजलसे नहलाते और नूतन श्वेतवस्त्रसे देह आच्छादित करके उसको भरथी पर चढ़ा देते हैं। मृतका पुत्र गलेमें उत्तरीय लपेटता है। फिर आच्छादन वस्त्रपर रक्तवर्ण सुगन्धि द्रव्य छिड़क कपड़ेके एक कोणमें पूर्वोक्त अन्नका कियदंश बांध देते हैं। मृतका पुत्र वाम हस्तमें अवशिष्ट अन्न और दक्षिण हस्तमें जलती लकड़ी या कण्डकी भाग ले शवके साथ जाता है। चार निकट आत्मीय शवको वचन करके नदीके तीर समाधिस्थलमें उपस्थित होते हैं। वहाँ जाकर मृतका पुत्र अन्नभाण्ड और अग्निभाण्ड तोड़फोड़ कर उसकी कालिख अपने मुखमें हस्तके छुल्लभागसे लगा लेता है। राहमें एकस्थल पर ३ खण्ड प्रस्तर पर शवको उतार पीछेके लीग सामने या कंधा बदलते हैं। समाधिस्थानमें गड्ढा खोद शवको चित लेटा देते हैं। मृतका पुत्र स्नान कर एक चड़ा पानी साता और शवके मुँहमें थोड़ा पानी डाल चारो ओर मही छोड़ता है। दूसरे साग गण्डकी पूरते हैं। फिर मृतका पुत्र जलका कलस लेकर तीन बार समाधिप्रदक्षिण करता है। हर बार घूमते समय एक व्यक्ति चड़ेमें छेद कर देता, अखीरको तोड़ डालता है और लड़का चड़ेका बचा हुआ हिस्सा अपने पीछे

फेंक उसटे हाथ अपने मुँह पर चोट करता है। उसके बाद सब लोग नहा कर घर आते हैं। साय बाहर हो जाने पर औरतें सारा मकान गोबरसे खीप डालती हैं। जहाँ मृतने देह छोड़ा, फर्श पर एक दीया जलाते और चावलका पाटा फेंकाते हैं दोपह्न एक टोकरासे ठांप दिया जाता है। मृतका पुत्र लौट आ कर तान्न पात्रमें जल लेता और दूसरे शववाहकोंके हाथ पर डाल देता है। वह लोग उस पानीको लड़केके ऊपर छोड़ अपने अपने घर आते हैं। इसके बाद लच्छ करके देखते हैं—उस दिन जहाँ चावलका पाटा छोड़ा गया था, किसी जीवके पैरका निशान लगा है या नहीं। यदि किसी जानवरके पांवका दाग पाते, तो समझ जाते हैं—कि मृत व्यक्तिने देह छोड़के सूखे शरीर धारण किया है। फिर मृत व्यक्तिके परिवार एरन्ध्रके छण्डलमें गोमूत्र भर लेते और मृतके उद्देश चार गोधूम पिष्टक उठा समाधिचित्रकी ओर अग्रसर होते हैं। राहमें जहाँ कंधा बदला था, दो पिष्टक और अब शिष्ट दो पिष्टक तथा गोमूत्र समाधि पर फेंक देते हैं एक पिष्टक पांवकी ओर दूसरी शिरकी ओर डाली जाती है। समाधिकी कंटीसे पेड़की डालसे ठांकते हैं, जिसमें मृगालादि शवको खोद कर निकाल न सकें। दशम दिन मृतका पुत्र नापित और पुरोहितकी साथ लेकर समाधिचित्र जाता है। वहाँ पहुँच वह स्नान करके खीरी होता और दोबारा फिर नहा कर ११ पाटे और १२ चावलके पिण्ड बनाता और हलदी, तिल तथा सिन्दूरसे पिण्डपूजा करता और पिताके उद्देश प्रणाम करके उनकी छमिके लिये काकोकी पुकार कर पिण्ड खिलाता है। काकके पिण्ड ग्रहण करनेसे समझते कि मृत व्यक्तिका पुनर्जन्म हुआ और वह सुखी है। यदि काक पिण्ड नहीं खाता, तो समझा जाता कि मृत-व्यक्ति प्रेतयोनिमें पड़ विरक्त और उद्दिग्ग हो रहा है। कौवेक न जानेसे यह कह कर मृतव्यक्तिके प्रेतात्माकी मनुष्ट करनेकी चेष्टा की जाती कि भारतीय स्वजन उसके परिवारके शत्रुपावेक्षणका भार अपने ऊपर ले लेंगे। यदि किसी प्रकार कौवा पिण्ड ग्रहण नहीं करता, तो उन्हें गायकी खिलाते या नदीमें फेंक सब लोग

नहाकर घर चले आते हैं। उस दिन फिर मकान गोबरसे खीपापोता जाता है। त्रयोदश दिवस बनाइत स्वजातिवर्गको खिलाते हैं। किसी अपुत्रकके मरने पर दशम दिन नहीं, मृत्युके पीछे प्रथम समावास्याको दश पिण्ड देते हैं। सधवाका मृत देह हर कपड़े और अंगिया आदिसे सजा हाथमें हथी रंगकी मोमी चूड़ियां पहना सिन्दूरसे मांग भर कर गोदमें चावल और नारियल डाल प्रोक्षित करते हैं। विधवाका देह पुनः देहकी भांति गाड़ देते हैं।

कोलियोंका सामाजिक विवाद पञ्चायतसे मीमांसित होता है। पहले महादेव कोलियोंकी गोपाधि नामक पञ्चायत रही। उसमें सभापति, सहकारी, बरकन्दाज, चौबदार, गवास्त्रिबन्धक और मृतपात्रापहारक छह काम करनेवाले रहते थे। यह सभी पद वंशगत होते थे। सुनारके प्रधान कोलि नायकके नीचे काम करते थे। सभापति ही विचारकर्ता रहे। सहकारी विचार कार्यमें सहाय्य करता और सभापतिकी अनुपस्थितिमें स्वयं विचारक बनता था। बरकन्दाज गांव गांव लोगोंका आचार व्यवहार देखते घूमा करते थे और भ्रष्टाचारीकी विचारकर्ताके सम्यक् पकड़ ले जाते थे। चौबदार पम्बर वृक्षकी डाल से विचार अपाद्यकारी लोगोंके द्वारपर रोपण कर देते थे। गवास्त्रिबन्धक मरी गायकी छड़ियां ले अपराधीके दरवाजे पर बांधते थे, जिससे वह फिर स्वजातिकी सहायभूति पा न सकता था। मृतपात्रापहारक अपराधीके गृहादिकी पवित्रताके अभिधानका तत्त्वावधान करते और मृद्भाण्डादि लेकर चल पड़ते थे। यदि जारज सन्तानोंकी माताका स्वामी उनके लेने पर राजी हो ४० ५० रुपये खर्च करके स्वजातिके मध्य बड़द भोज देता, तो वह इनकी समाजमें मिला लिये जाते हैं। पूर्वोक्त सभापति, नायक या पटेलकी अनुज्ञासे अन्य जातीय स्त्रियां कोलि जातिमें गण्य हो सकती हैं। अहमदनगरमें इस प्रकारकी पञ्चायतका कोई प्रतिनिधि नहीं, किन्तु तदनु रूप कार्य होता है। यहाँ अपराधीको उसके अपराधके लिये अपने ग्राममें प्रत्येक गृहसे थोड़ा थोड़ा ही मांग लानेकी कहते हैं। यह

न करनेवाला जाति बाहर कर दिया जाता है।

कोलि पुरुष 'नरकी' नामक एक पुर्णिमाकी समुद्रकी पूजा करके नारिकेल प्रदान करते हैं। नयी नाव चलाते समय स्त्रियां उसके पतवार पर नारियल तोड़ती हैं। स्त्रियां समुद्रपूजाके दिन गौरीपूजा करती हैं।

कोलि देशीया और नायकीके अधीन डाका डालते थे, पहले ऐसे डाकुओंका दल असंख्य रहा। शिवजीका प्रथम महाराष्ट्र-सैन्य ऐसे ही डाकुओंके दलसे संयुक्त हुआ था। १८७८ ई०कीभी उस दिन कृष्ण सबका और तत्पुत्र माहति सबका नामक कोलिसरदारोंके डाकू दलने जमरी, धमरी, मिरर आदि खान एक-बारगी ही उत्सवप्राय कर डाले थे। पच्छीरमें मेजर डेनियल पूनासे पश्चारीही सैन्य ले जाकर बड़े कष्टमें अनेक बार लड़नेके पीछे उन्हें दमन कर सके।

पूना कोलियोंके कुलमें काम्बसे, मोड़ और बाघले नामक ३ प्रतिरिक्त वंश देख पड़ते हैं। यह कोल देवदेवी व्यतीत कालको, जखी और जोको नामक देवताओंका पूजते और काशी दर्शनको भी जाते हैं। इनमें विवाहके समय दैवज्ञ द्वारा विवाहकी बातचीत और तिथि स्थिर होने पर २१ दिन पीछे वरके घरकी स्त्रियां कन्याके घर गुड़, दास, पान, और सुपारी लेकर पहुँचती हैं। इन चीजोंके कन्याके गृहदेवताके सम्मुख रखने पर कन्यापक्षसे उन्हें वंशमर्यादानुसार शकर और पान मिलता है। इनमें गात्रहरिद्रा और विषाह विभिन्न दिन होता है। गात्रहरिद्राके समय मण्डलमें वरके निकट उसकी भगिनी बैठती है। वह सम्मानप्राप्ती कहलाती है। उसके बाद धानादरती होती है और फिर माँड़ेकी दूसरी वनसमें कतारकी ३ चौकियां लगाते हैं। इन चौकियों पर वरकी माता, वरका पिता और वर बैठता है। उस समय वरके पिताको वरमावल और वरकी माताको वरमावली कहा जाता है। एक स्त्री उनके सामने दीया जला और घालमें रोली, पान, सुपारी, बदाम और चावल लगा रख देती है। यह सब वरके सामने रखना पड़ता है वरकी माताके ठीक सामने माँड़ेकी खंटी पर सिक-हरमें रख कर एक नारियलके साथ पूर्णकुम्भ जटकाते

हैं। पुरोहित मन्त्रपाठ करके सबके मस्तकमें रोली और चावल लगा पिता और माताके वस्त्राच्छलकी गाँठ जोड़ देता है। एक स्त्री कोई कुदहाड़ी, दासकी एक बड़ी और एक पापड़ खाकर कुठारके साथ एकत्र बांध वरके पिताके हाथ पर रखती है। वह इसे कंधे पर डाल माँड़ेसे बाहर निकलता, पीछे वरकी माता उस प्रज्वलित प्रदीपको घालमें ले गमन करती है। फिर वरका पिता इसी कुठारसे पन्धर पेड़की एक डाल काटता है। वही शाखा माँड़ेके मध्य रोपित होती है। पुरोहित मन्त्रपाठ करके डालको हलदी और रोलीसे रंगते और वरके पिता भी इस काममें उनका साथ देते हैं। पीछे भोजनादि होता है। सम्प्रदायकावली वरके घरसे पुरुष और स्त्रियां कन्याके लिये गहना, नारियल, सुपारी, ५ पान, कुहारा, बादाम, एक घालमें प्रज्वलित प्रदीप और एक कटोरीमें बटी हलदी ले बाजा बजाते उसके घर जाती हैं। स्त्रियां भीतर जाकर बैठती हैं। फिर कन्याको यही हलदी लगा, मङ्गल-सूत्र पहना मण्डलमें ले जा कर बैठाती हैं। वरपक्षीय पुरुष उसको कुछ फलादि दान करते हैं। इसका नाम 'पतिभरण' है। वरपक्षीय चीनी और सुपारी खा कर चले जाते हैं। इसके दूसरे दिन प्रातःकाल वरके घरमें माँड़े पर एक चतुरस्र मण्डल बना उसके चारो कानों पर चार पूर्णकुम्भ स्थापन करते हैं। उनके बीचमें वर पीटे पर बैठता है। वरकी भगिनी उसके पीछे खड़ी हो हाथ चित करके उसके शिर पर रखती है। ४ या ५ सुहागनें गीत गाते गाते उनका प्रदक्षिण करतीं और पूर्णकुम्भका जल वरकी भगिनीके हाथ पर डाल वरके मस्तक पर छोड़ती है। चारो कलसियोंका पानी चुक जाने पर वर कपड़े उतार घरमें जाता है। गृहके मध्य ५ चतुरस्र मण्डल अङ्कित कर रखते हैं। वर पाटे पर बैठता है। भड़-भूँचा ठीकरमें फूलोंके हार लगा उसके सामने रखता है। एक सुड़ी सन और पान किसी लड़के बांध ५ स्त्रियां उसको पकड़ कर गीत गातीं और उस लड़को तेजमें हुवा जलातीं और एक बार कमीन, एकबार टीकरे एक एक बार गृहदेवताके नाम पर कुछ चीजों और

अखीरको वरके मत्थे पर अटकाती हैं। फिर वर दूसरे शीकमें बैठ बास बनवानेको तैयार होता है। नापित आकर स्त्रियोंसे कहता है—वरके मस्तकमें रोचनाक्षत लगा आशीर्वाद करो। स्त्रियोंके बैसा कर चुकने पर वह वरके बास बना देता है। फिर उक्त चारो सधवायें वरके मत्थे पर एक पेसा उतार चार भरे घड़े ले गीत गाते गाते पानी भरने जाती हैं। इसी बीच वेदि पर एक स्त्री कोई चतुरस्त्र आलिम्पन करती है। सुहागिनें उक्त आलिम्पनके चारो कोणों पर जलकी चार कलसियां और उसके बीचमें एक सिल रखती हैं। पूर्णकुम्भोंके गलेको घेर कर लाल डोरा बांध दिया जाता है। स्त्रियां गीत गाते रहती हैं। वर स्त्रीय भगिनीके साथ जाकर पांच बार आलिम्पन प्रदक्षिण करता है। फिर सिल पर बैठ जाता है। इसके पीछे दोवार वरको नहलाते हैं। खीरो व्यतीत कन्याके घरमें भी सब ऐसा ही होता है। फिर वर पोशाक पहन घोड़े पर चढ़के विवाह करने जाता है। पूनामें बराती मन्दिरमें नहीं ठहरते, कन्याका गृह निकटवर्ती होने पर पुरोहित भोज कन्यापक्षको सतर्क होनेके लिये कहते हैं। पीछे कन्याका भाई नारियल हाथमें ले सबकी अभ्यर्थना करता और शेषमें वरके निकट उपस्थित हो काम पकड़ता और परस्पर प्रेमालिङ्गन चलता है। कन्याके दरवाजे पर प्रवेश-पथ सूतसे रुका रहता है। वर कुरीसे सूतको काट प्रवेश करता है। कन्याका पिता आ वरके पावों पर तेल और पानी डाल वेदी पर ले जाकर उसे बैठा खता है। फिर एक शीकमें कांसेकी थाली पर वरको खड़ा होना पड़ता है। उसके सामने कांसेकी दूसरी थाली रहती है। कोई देवघ्न पानी घड़ी देखा करते हैं। (किसी पूर्ण जलपात्रमें मध्यविध आकारको एक कटोरी तैरा देते हैं कटोरीके पेटमें बारीक छेद रहता है। इस छेद पानी पड़चने पर जब कटोरी डूब जाती, शुभघड़ी आती है।) कन्याको लाकर उसी जगह खड़ा करते हैं। उभय पक्षीय व्यक्ति अक्षत हाथमें ले चारो ओर घेर कर खड़े हो जाते हैं। पुरोहित मन्त्र पढ़ा करते हैं। फिर पानी-घड़ोंमें शुभक्षण निकलने

पर पहले पुरोहित और पीछे आक्षीय अक्षत ढाड़ आशीर्वाद करते हैं। दूसरे दिन वरकन्या सुपारी ले जना-पूरा खेलते और दोनों वरके घर पहुँचते हैं। दूल्हाकी बहन दरवाजा रोक कर खड़ी जाती है। वह भीतर जानेकी इच्छा प्रकट करता है। बहन कहती है—अपनी कन्याके साथ यदि मेरे पुत्रका विवाह करनेको कहो, तो मैं तुम्हें भीतर घुसने दूंगी। वर स्वीकार करने पर प्रवेश करने पाता है। फिर वरकन्या परस्पर एक दूसरेका नाम लेकर पुकारते हैं। अन्तको भोज हो कर विवाहका व्यापार शेष हो जाता है।

पूना जिलेमें कोलि शब्ददाह करते हैं। अन्यान्य बातें अहमदनगर जैसी ही हैं। शोलापुरके कोलियोंका विवाह व्यापार कुछ भिन्न होता है। इस प्रकारका पार्थक्य स्थानभेदसे ही पड़ता, नहीं तो सब कुछ प्रायः एकरूप ही रहता है।

कोलि (वा व्याघ्रपुर)—एक प्रसिद्ध स्थान, यह दोपाव-के अन्तर्गत गोरखपुरके पास बस्ती नगरसे ३१ कोस उत्तर-पश्चिम कुनाव नदीके तीरे अवस्थित है। यहां नदी पूर्वदिक्को मुड़ गयी है। वहीं वराहक्षेत्र भी है। नदी अपनी गतिसे इस जगह एक झड़-जैसी बन गयी है। दूसरी भी भील-जैसी एक खाड़ी है, परन्तु उसमें जल नहीं है। मालूम होता—पहले इन्हीं दोनोंके मिलित होनेसे एक झड़ बना था। यह उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम प्रायः पावकोस और उत्तर-पश्चिम तथा दक्षिण-पूर्व प्रायः पावकोस होगा। इससे उत्तर और पश्चिम दिक् जङ्गलसे घिरी पार्वतीय भूमि है। उसके भीतर दो और तीन गांव बसे हैं। इसीकी उत्तर-पश्चिम ओर पूर्वकालकी व्याघ्रपुर था। आजकल उसका भग्नावशेष मात्र देख पड़ता है। टूटी ईंटें और खपड़े बिखरे पड़े हैं। इस समय भी स्थान स्थान पर जंगल काटनेसे कोलिका भग्नावशेष मिलता है।

यहां एक पुष्करिणी (तलाव) है। उसे वराहक्षेत्र कहते हैं। सरोवरके पार्श्वमें वराह अवतारका मन्दिर है। पुष्करिणी नदीके पार्श्वभागमें लगी है। नदीके साथ उसका योग रहना असंभव नहीं सरोवर

अत्यन्त गभीर है। यहाँ लोग उसे अतलस्थल कहते हैं। तलावका उपरिभाग गोलाकार है, तीन ओर ऊँची सिंछियाँ हैं। पश्चिम ओर ऊँचा पहाट नहीं, सिर्फ जमीन ठसवाँ हो कर घाट-जैसी बन गयी है। पुष्करिणी-के उपरिभागसे एक नाका निकल नदीमें जा गिरा है। इस सरोवरके उत्तर तीर किसी पुरातन गृहका चिह्नस्वरूप इष्टक राशि है। यहाँ वेदतका अतुष्कोण एक भग्न मन्दिर पड़ा है। उसमें एक लिङ्गमूर्ति प्रतिष्ठित है। अतुष्कोण प्रस्तरका मध्यस्थल कटा है। स्तूपके उपरिभागमें इस प्रकारके प्रस्तरखण्ड देख पड़ते हैं। पुष्करिणीकी दक्षिण ओर कतारोंमें वृक्षत्रयो है। उसके भीतर इष्टक निर्मित एक प्राधुनिक मन्दिर विद्यमान है।

नदी जहाँ दक्षिणमुखी हुई, मृत्तिकानिर्मित अति उच्च अतुष्कोण दुर्ग खड़ा है। यह आजकल जंगलसे भर गया है। कहते हैं—वसतीके राजा सास साहबने उसे बनवाया था। किलेसे पश्चिम क्रियहूर गमन करने पर एक गाँव मिलता है। उसीके निकट एक उपवन और कई सरोवर हैं। इस जगह चूनेके कामके तीन टूटे घर पड़े हैं। सम्भवतः—वह सतीस्तम्भ हेमि। पुरातन व्याघ्रपुरका सम्भवतः इसी स्थान पर उपवन (बाग) रहा।

बुद्धदेवकी माता मायादेवीके पिता राजा सुप्रबुद्ध इसी कोलि वा व्याघ्रपुरमें अवस्थान करते थे। किसी समय मायादेवी पितासे साक्षात् करने जा रही थीं। पश्चिमध्य प्रसववेदना उठने पर लुम्बिनी-जाननमें शासवृक्षके मूल पर बुद्धदेवका जन्म हुआ। यह स्थान कपिलवास्तु और कोलिके बीचमें पड़ता है।

महावस्त्ववदानमें एक कोल कहिका उल्लेख है। माकूम पड़ता—उन्हींके नाम पर इस स्थानका नामकरण हुआ है। कोलिय देखो। यह स्थान वराहक्षेत्रके अन्तर्गत है। इसमें कोई सन्देह नहीं—पहले कोलिमें उपवन और सरोवर—शोभित एक नगर था। कुनाव नदीकी धारा बाँध भीलका प्रयोजन साधित हुआ था, जिसमें प्रजावर्गकी जलका अभाव न पड़े।

कोलिसे ५ कोस पश्चिमदिक्की बुद्धादि

वास्तु है। इसके प्राग् २॥ कोस दक्षिण-पश्चिम बुद्धपाड़ा तथा सरकुइयाँ नामक स्थान हैं। सम्भवतः इसी सरकुइयाँ का वर्णन चीन-परिव्राजक युयेनचुयाङ्गने 'शरकुप' के नामसे लिखा है। उनही वर्णना पर हिसाब लगा कर देखनेसे कोलि वा वराहक्षेत्रको शरकुप-जैसा अनुमान असङ्गत नहीं है।

देशके लोग कहा करते हैं—विष्णुके इस स्थानमें वराह अवताररूपमें जन्मग्रहण करनेसे इसका नाम वराहक्षेत्र हुआ है। इसी लिये कोलिमें प्रतिवर्ष चैत्र और कार्तिक मासकी दो बार मेला लगता है। इस मेलेमें अनेक यात्री आते हैं।

कोलिकट—मन्द्राज-प्रदेशके मलबार विभागका एक तालुक। तामिल भाषामें 'कोलि'-का कुकुट (सुर्गा) और 'कोटु' शब्दका अर्थ कोट वा गढ़ है। देशीय लोगोंमें कोई 'कोलिजुकुभ' और 'कोलिकोट' कहता है। अंगरेजों और विदेशीयोंने उसका अपभ्रंश कालिकट (Calicut) * बना लिया है। इसकी भूमिका परिमाण ३३६ वर्गमील है। एक शहर और ३८ गाँव इस तालुकके अन्तर्गत हैं। लोकसंख्या प्रायः डेढ़ लाख है। यहाँ तीन दीवानों और ४ फौजदारी अदालत हैं।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर और बन्दर। यह अक्षा० ११° १५' ८०" और देशा० ७५° ४८' पू० के मध्य वेपुरसे ३ कोस उत्तर अवस्थित है। यहाँ हिन्दुओं और मोपला नामक सुसलमानोंकी ही संख्या अधिक है। कहना अनुचित न होगा कि इन्हीं मोपलोंने एक वर्षसे घोर विद्रोह उठा अंगरेजोंकी नाकमें दम कर रखा था। अब बलवा एक तरह दब जैसा गया है, परन्तु पूर्णशान्ति नहीं हुई। हिन्दुओं और सुसलमानोंके एक ही जानेकी बात जगह-जगह सुन पड़ते भी उन्होंने सैकड़ों हिन्दुओंकी लूट मारा और उजाड़ दिया है। कितने ही हिन्दू मन्दिर विध्वस्त हो गये हैं। मोपलोंने इसके सिवा बहुतसे हिन्दुओंकी बलपूर्वक सुसलमान भी बना डाला है।

अतिपूर्वकालसे कालिकट बन्दर एक प्रधान वाणिज्य

* फिर किसीके मतमें 'कोलिजुकु'से कालिकट शब्दकी उत्पत्ति हुई है। (Sewell's Dynasties of Southern India, p. 57)

स्थान-जैसा विख्यात है। प्रसिद्ध भूमणकारी इस्म बतूता प्रभृतिके ग्रन्थपाठसे समझ पड़ता है—चीन, यव, सिन्धु, पारस्य (ईरान), मिसर, इवशीदेश आदि नानास्थानोंसे वणिक्-कालिकट वाणिज्य करने आते थे। ख्रिष्टीय नवम शताब्दीकी इस्लाम-धर्मावलम्बी कई सौदागर यहां कारबार करने पहुंचे। उन पर कालिकटके राजा चेरमान पैरमारकी शुभदृष्टि पड़ी थी। उन्होंने तुर्कस्थानके सुलतानकी कन्यासे विवाह करनेकी आज्ञासे सुसज्जमान बग भरवके अभिसुख यात्रा की। प्रवाद है—प्रातःकालको कालिकटके तालि-मन्दिर-से जहां तक कुकुटका ध्वनि सुन पड़ा था, मनविक्रम सामरीको* वह उतना स्थान देकर चले गये। तदवधि बहुत दिन सामरी-राजा यहां स्वाधीनभावसे राजत्व करते रहे। १४८६ ई०को पोर्तुगीज परिव्राजक कोवि-लहाम् युरोपीयोंके मध्य सर्वप्रथम यहां आये थे। उसके पीछे १४८८ ई०को सुप्रसिद्ध भास्कोडिगामा आ उपस्थित हुये। उस समयके सामरी-राजाोंने प्रथम पोर्तुगीज पोताध्यक्षको यहां कोठी बनाने न दी थी, अखीरकी वाध्य हो १५१२ ई०में उन्हें कोठी खोलनेका अधिकार देना पड़ा। फिर १६१६ ई०को अंगरेजों, १७२२ ई०को फरासीसियों और १७५२ ई०को दिनोंकी कोठी कालिकटमें स्थापित हुई।

१६८५ ई०को अंगरेजी सेनाके नायक कपतान किडने यह नगर लूटा था। १७६६ ई०को हैदर-अलीके मसवार आक्रमण करने पर सामरी-राज राजभवनमें आग लगा सपरिवार जल मरे। फिर १७७२ और १७८८ ई०को मद्रासुरके सिपाहियोंने आक्रमण करके इस नगरकी यथेष्ट क्षति की थी। १७८० ई०को अंगरेजी फौज आ कालिकट दबा बैठी। १८१८ ई०को अंगरेजोंने यह नगर फरासीसियोंको सौंप दिया था। परन्तु पीछे फिर अंगरेजोंने उनसे लीन लिया।

* सामरी शब्दके अपभ्रंशसे युरोपीयोंने जमोरिन (Zamorin) निकाला है। 'सामुद्रो' (समुद्रपति) शब्द मलयालम भाषामें अपने भाव पर 'तामा-तिरि' वा 'तामुरि' बन जाता है। इसी तामुरी वा सामुद्रोसे 'सामुरी' वा 'सामरी' नाम बना है।

बहुत दिन कालिकट 'कालिको' नामकी छोट-के लिये मशहूर है। परन्तु अब यहां वह तैयार नहीं होता। फिर भी कालिकटके नामकी तरह तरहकी छोट बना करती है। सामरी-राज आजकल अंगरेज गवर्नमेंण्टके वृत्तिभोगी हैं। कोलिकट तालुकमें उनकी बहुतसी कीर्तियां खड़ी हैं। उनमें कालिकट नगरका वर्तमान सामरी-राजप्रासाद और 'तालि' मन्दिर उल्लेख योग्य है।

सामरी-राजवंशमें विवाह प्रथा नहीं है। राज-कुमारीयोंका शैशव अवस्थामें वस्त्राच्छाद बन्धन (तालीजोड़) होता है। पीछे वयस्था होने पर वह 'गुणदोषकारण' सम्बन्ध* स्थिर करके किसी नम्बुत्तिरी ब्राह्मणके साथ सङ्वास करती हैं। उनका गर्भजात पुत्र बाध्यकालको मातृभवनमें स्त्रीधनसे प्रतिपाकित होता है। १४ वर्षका होने पर वह माका घर छोड़ स्वतन्त्र पुरुषगृहमें रहना करता है। स्त्रीधनसे ही उनका भरणपोषण चलता है। किन्तु कुमारीके मङ्गलमें फिर जाने नहीं पाता। कुमारियां देवालय दर्शन भिन्न भन्ध समय बाहर कम निकलती हैं। इनमें बहुतसी सुशिक्षिता हैं, कोई कोई संस्कृत भा खूब समझती हैं। इनमें वयोव्येष्टा रमणी ही "रानी" पद पाती हैं। वही राजकुमारोंके भरणपोषणकी वृत्ति दिया करती हैं। रानी एक होते भी आजकल तीन रानी-वंश हो गये हैं—'मूलन कोविलवासी पुदिया', 'पश्चिम कोविलवासी पतिनहरी' और 'पूर्व कोविलवासी किशकी'। इन्हीं तीन रानीवंशोंसे सर्वव्येष्ट राजकुमार 'मनविक्रम सामरी-प्रासाद' में शास्त्रोक्त विधिके अनु-सार सामरी (जामरी) पद पर अभिषिक्त होते हैं। कोलिका (सं० स्त्री०) चण्डावदर, जङ्गली बेर।

* केरलप्रदेशमें अनेक स्थानों पर यह 'गुणदोषकारण' सम्बन्ध प्रचलित है। कन्या वयस्था होने पर गृहस्थानिनीकी अनुमतिसे किसी मनमाने पुरुषके साथ नियोन कर सकती है, किंवा कहीं आतापी परामर्श करके किसी नम्बुत्तिरी ब्राह्मण अथवा खजातीय उत्कृष्ट वंशके किसी युवाके साथ शुभ लगमें सम्बन्ध स्थिर करती है, कन्या भी उसमें अपना मत देती है। इसी प्रकारके सम्बन्धका नाम गुणदोषकारण है। नाय्यर सम्बन्ध विस्तृत विवरण देखो।

कोलिता—१ एक जाति। कोटानागपुरके करदराज्यमें दक्षिणभाग पर इनका वास है। कहते हैं—रामचन्द्र के समय मिथिलासे कोलिता उक्त देशमें गये थे। यह गौरवर्ण हैं। कन्याओंका यौवनावस्थासे पूर्व विवाह नहीं होता। कृषिकार्यसे कोलिता जीविकानिर्वाह करते और अपनेको तासा कहते हैं। तासाका अर्थ किसान है।

२ आसामकी कोई जाति। यह लोग अपनेको कायस्थ भी कहते हैं। फिर इन्हें कुलता भी कहते हैं। इन्होंने एककाल विशेष उन्नतिलाभ किया था। उस समय एशियाखण्डमें इनके समकक्ष अति अल्प ही लोग रहे। (Asiatic Researches, Vol. XVI.) इस वंशके राजा आसाममें विशेष समृद्धिवासी थे।

पहले कीचविहार प्रभृति स्थानोंमें कुलता ही पौरोहित्य करते थे। परन्तु राजा विशुसिंहके समयसे यह प्रथा कितनी ही सटती गयी। कामरूप देखो।

कोलिया (हिं० स्त्री०) १ गलीकूचा, सङ्कीर्ण मार्ग।
२ छोटा और लम्बा खेत।

कोलियाना (हिं० क्रि०) १ कोलियासे जाना, तङ्गराज पकड़ना। २ औरियाना, छातीसे लगाना। (पु०)
३ कोलियार्क रहनेकी अगह।

कोलिसर्प (सं० पु०) चतुर्विधविशेष। सगरराजने इन्हें चतुर्विध धर्मसे वद्विष्कृत किया था। (हरिवंश) महाभारतमें भी लिखा है—

“कोलिसर्पा माद्विष्काकासाः चतुर्विजातयः।

उपलब्धं परिगता ब्राह्मणादर्शमेव च॥” (अगुशासन १६)

कोली (सं० स्त्री०) कोलति पीनत्वेन जायते वर्धते वा, कुल-अच् गौरादित्वात् ङीप्। कोलिष्ठ, बेरका पेड़।

कोली (हिं० स्त्री०) एक पालिङ्गन, हमागौशी, र्धकवार।

२ मेहदी लगनेकी कालिख। (पु०) ३ हिन्दू जुलाहा।

कोलीगौड़—ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी। कोली या कोरी

कोरीका पौरोहित्य करनेसे ही यह नाम पड़ा है।

कोलीगौड़ साधारण गौड़ ब्राह्मणोंसे निम्नस्थ माने जाते

हैं, कुलीन गौड़ इनसे आदान-प्रदानका व्यवहार नहीं

रखते।

कोलुर—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके धारवाड़ जिलेका एक गांव।

यह करजगिसे छेढ़ कोस पश्चिम पड़ता है। यहां वास-वन्देवका एक प्राचीन मन्दिर है। उसकी गठन-प्रणाली विचित्र है। मन्दिरके १२ स्तम्भोंमें दो खोदित लिपियाँ मिलती हैं। कहते हैं—यख्यनाचार्य नामक एक राजा ब्राह्मणवधके प्रायश्चित्तस्वरूप बीस वर्ष हिमालयसे कुमारिका पर्यन्त मानास्थानोंमें मन्दिर बनवाते घूमते रहे। कोलुरका मन्दिर उन्हींमेंसे एक है।

कोलूक, कुलूत देखो।

कोल्लेदा, गोल्लेदा देखो।

कोल्ला (सं० स्त्री०) कोलमहेति, कोल-यत्। पिप्पली, पीपल।

कोल्लगिरि (सं० पु०) भारतवर्षस्थ एक पर्वत। षडत्-संहिताके कूर्मविभागमें इसे दक्षिणदिक्की निरूपण किया है। आजकल कोल्लमलय कहते हैं।

कोल्लङ्गोद—मन्द्राज प्रान्तके मलबार जिलेके पालघाट तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १०° ३७' ३०" और देशा० ७६° ४१' ५०" में अवस्थित है। आबादी लगभग ८८०० होगी। यहां कोल्लङ्गोदकी निम्नीदी रहते जो एक बहुत बड़े जमीन्दार हैं। इस नगरसे २ मील दक्षिण हिन्दुओंका कचनकुरिचि नामक देवमन्दिर है। कड़वेके बाग जबसे लगे, कोल्लङ्गोदका व्यवसाय बढ़ गया है।

कोल्लमलय—मन्द्राज-प्रदेशके सालम् विभागका एक पहाड़।

यह अक्षा० ११° १०' से ११° २७' ३०" और देशा० ७८° १८' से ७८° ३०' ३०" पर्यन्त विस्तृत है। उच्चता १६५०-२३५० हाथ होगी। इसका उच्चतम समुद्रपृष्ठसे ३१३० हाथ ऊँचा सटा है। यहां मलयाली नामक पहाड़ी लोग रहते हैं।

कोल्लेगाल—१ मन्द्राज प्रान्तके कोयम्बतूर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ११° ४६' तथा १२° १८' ३०" और देशा० ७६° ५८' एवं ७७° ४७' ५०" के मध्य पड़ता है। क्षेत्रफल १०७६ वर्गमील है। कावेरी नदी इसे तीन ओरसे घेरि है, जिससे उत्तर-पश्चिम कोणपर सुप्रसिद्ध शिवसमुद्रम् द्वीप और निर्भरकी उत्पत्ति हुई है। लोकसंख्या प्रायः ८६५६३ है। पश्चिमकी बिलिगिरि

रङ्गन पहाड़ी है। आधेसे अधिक ताड़कमें सुरचित जङ्गल है, जो प्रधानतः मवेशियोंकी चरागाह जैसा बरता जाता है। कारण स्थानीय प्रजा कृषिकर्मकी अपेक्षा पशुपालन अधिक करती है। अलम्बादीके मशहूर मवेशी यहीं होते हैं।

२ मन्द्राज-प्रान्तके कोयम्बतोर जिलेके कोल्हेगल ताल कका सदर। यह अक्षा० १२° १०' उ० तथा देशा० ७७° ७' पू०के बीच पड़ता है। आबादी कोई १३०२८ है। अपने जरीन कपड़ी और रुमाकीके किये यह प्रसिद्ध है।

कोरहाड़ (हि० पु०) ऐंघी, जख पेरने और उसके रस का गुड़ बनानेकी जगह।

कोल्हवा, कृष्ण और कोल्ह देखो।

कोल्ह (हि० पु०) १ यन्त्रविशेष, तेल या जख पेरनेका पंच। यह डमरु-जैसा बहुत बड़ा बनता और पत्थर, लकड़ी या लोहेका रहता है। कोल्हके बीच खोखली जगहका नाम हांडी या कूंडी है। पेंदा नासोदार होता है, जिससे रस निकल कर एक बर्तनमें गिरता है। कूंडीके बीच लगी मोटी लकड़ीका नाम जाट है। कोल्हका बैल चलनेसे जाट घूमने लगता और कूंडीमें डाली हुई चीज पर दबाव पड़ता है। २ तैलिक जातिभेद।

कोल्हना (हि० पु०) धान्यविशेष, एक धान। यह पंजाबमें उपजता और मोटा चावल रहता है।

कोवलय (कुवलय)—माराकानके एक पराक्रान्त मग राजा। इन्होंने ५२१ मग अब्द (११५८ ई०) को सिंहासन आरोहण और श्याम, ब्रह्म तथा चीनका छोड़ा अंश अधिकार किया था। इनके पांच श्वेतहस्ती रहे। कोवलयने ही महती नामक प्रसिद्ध देवमन्दिर स्थापन किया। ५३० मग अब्दको यह स्वर्गवासी हुवे।

कोवारी (हि० पु०) जलपक्षिविशेष, पानीकी एक चिड़िया।

कोविद (सं० वि०) कुङ्कु शब्दे विष् कोर्वदः तं वेत्ति, विदु-क। १ पण्डित, विद्वान्, वेदज्ञ।

“कवि कोविद कवि सकृद्वि वराते।” (तुलसी)

(पु०) २ तिलकवृक्ष, मीठे तिलका पेड़।

कोविदार (सं० पु०) कुंभूमि विहन्ताति, कु-वि-ह-अण्, Vol. V. 123

उपपदसमा०। १ रक्तकाष्ठावृक्ष, कचनारका पेड़। इसका पर्याय—चमरिक, कुहाव, युगपत्रक, युगपत्र, काष्ठावृक्ष, काष्ठावृक्ष, ताम्रपुष्प, कुदार, रक्तकाष्ठावृक्ष, चम्प, विदल, कान्तपुष्प, करक, कान्तार, यमल-च्छद, गण्डारि और शोणपुष्पक है। इसके वृक्षमें सुन्दर सुगन्धि पुष्प होता है। भारतके नाना स्थानोंमें कोविदार देख पड़ता है। इसका काष्ठ अति सारवान् है। परन्तु १० इंचसे ज्यादा चौड़ा तख्ता नहीं बनता। गन्नाम और गुमसुर प्रदेशमें यह वृक्ष बहुत उपजता है। वहां लोग रत्ननादिमें इसका काष्ठ व्यवहार करते हैं। ब्रह्मदेश और अजमेरमें भी इसकी कोई कमा नहीं। इसका फूल खिलनेसे शोभा फूट पड़ती है। सुगन्ध चारों ओर फैल जाता है। इसकी कलियां बहुतसे लोग उपादेय समझ कर खाते हैं। इसका अंगरेजी वैज्ञानिक नाम Bauhinia purpurascens or Bauhinia candida है। यह Bauhinia variegata विभागके अन्तर्गत है। वैद्यक मतमें कोविदार—कफघ्न, वातघ्न, कषाय, व्रणनाशक, संप्राप्ती, दीपन और मूलकृच्छ्रनाशक है। इसका फूल धारक, रुचिकारक और रक्तपित्त रोगमें सुपुष्प होता है।

(राजवृक्ष)

कोविदारका तेल विभोतक-तेल- जैसा गुणविशिष्ट है। इसकी कलियोंकी मठमें उबाल कर मीठे तेलमें पकाने और होंगका बघार लगानेसे बहुत अच्छी तरकारी बनती है—

“कोविदारकविजातिबोमला तत्कविजातिवर्तनपाचिता।

विष्णुवाचकसुवासपाचिता वैश्वारुणितातिबोमदा ॥” (पाकशास्त्र)

२ पारिजात । (हरिवंश)

कोविराज केशरिवर्मा—एक प्रसिद्ध बोल राजा। यह कुलोत्पन्न, वीर, राजेन्द्र कोप्य केशरिवर्मा प्रभृति नामोंसे भी अभिहित होते थे। इन्होंने १०६४ ई०को कोकमहादेवीसे विवाह किया। १०७८ ई०को यह राज्याभिषिक्त हुवे। पाण्डुराज वीरपाण्ड्य और तुङ्गभद्राके निकट चालुक्यराज सोमेश्वरदेवकी परास्त करके इन्होंने दक्षिणापथमें बहुत दूरतक राज्य विस्तार किया था।

कोल इतिहासमें यह प्रथम कोलोत्तुङ्ग नामसे वर्णित हुए हैं। शिलासेखकी पाठसे समझ पड़ता है कि उन्होंने अपने अनुज गङ्गकोखन कोलकी मदुरा राज्यमें अभिषिक्त किया था। एक समय सिंहसराज मिहिन्दू भी इनसे परास्त हुये। उसके कुछ दिन पीछे सिंहसराज विजयवाहुके साथ कोलसेखकी बड़ी सहाई लखी। विजयवाहुने अनेक कहींमें माहभूमिको शत्रु-कारसे उद्धार तो किया, परन्तु उसके बाद किसी समय राजसभामें श्यामके दूतको कोल-दूतकी अपेक्षा अधिक श्रमान देने पर राजा कुलोत्तुङ्ग बहुत विगड़े और सर्व समस्त सिंहस दूतके नाक कान काट ससेख सिंहस पर जा पड़े। इस युद्धमें सिंहसी हारि और राजा विजयवाहु भागे थे। किसीके मतमें इनके शारङ्गधर नामक कोई भ्राता रहे, उन्हें लोग साधारणतः चुरङ्ग कहते थे। केशरिवंशके पञ्चपत्तन पर उत्कलके सामन्तोंने उनको ही कर्षाटसे आज्ञान किया। उत्कलके इतिहासमें वह चोड़गङ्ग नामसे ख्यात है।

प्रवाद है—राजा कुलोत्तुङ्गने वङ्गदेश पर्यन्त आक्रमण किया था।

कोविदखण्डी (कोईखण्डी, कुइखण्डी)—मल्लवारका एक नगर। यह अक्षा० ११° २६' २५" उ० और देशा० ७५° ४४' ११" पू० पर अवस्थित है। लोकसंख्या कोई ११ हजार है। उनमें अधिकांश हिन्दू हैं। यह नगर आपसीका एक प्रधान वाणिज्यस्थान है। कोविदखण्डी बन्दरमें सर्वप्रथम भास्को-डि-गामा लसेख उतरे थे। १०८३ ई०की यहां अंगरेजोंका एक जहाज बालूके टेकसे टकरा कर टूट गया। कोविदखण्डीमें मलिक इब्न दीनारकी बनायी एक मशहूर मस्जिद है।

कोश (सं० पु०-खी०) कुश्मते संज्ञितते, कुश-वच् कर्तरि षच् वा । १ अक्ष, अक्ष्वा । आकरोत्यित विग्रह सुवर्ण वा रजत, खानसे निकाला हुआ खालिस सोना वा चादी । २ कुङ्कुम, फूलकी बंधी कली । ४ खड्गपिधान, तलवारका म्यान । ५ समूह, टेर । ६ दिव्यविशेष । कोषपान ईश्वर । ७ चर्मकोष, खालकी खोल । ८ पात्र, बर्तन । ९ जातिकोष, जाविची । १० पैगी, पुडा ।

कोशक (सं० पु०) १ अक्षवन्धनविशेष, जङ्गल-पर बांधनेकी एक पट्टी । २ अक्ष, अक्ष्वा ।

कोशकार (सं० पु०) कोशं करोति, त्वक्पत्रादिभि-
रास्मानमाच्छादयति, कोश-क-अच् । १ इक्षु, ईख, कुसि-
यार । २ खड्गादिका आवरणकारी, तलवार वगैरहका
म्यान तैयार करनेवाला । ३ कीटविशेष, रेशमका
कीड़ा । (मङ्गलारत, शान्तिपर्व)

कोशकाली (सं० खी०) जलधर पश्चिमिद, पानीकी
एक चिड़िया ।

कोशकत् (सं० पु०) कोशं खड्गाद्यावरणं वेष्टनं वा
करोति, क-क्षिप्, इ-तत् । १ लण्ठेचु, काली जख ।
२ कोशकार, म्यान बनानेवाला ।

कोशचक्षु (सं० पु०) कोशं चक्षी यस्मै, बहुव्री० ।
सारसपक्षी ।

कोशनायक (सं० पु०) कोशाध्यक्ष, खजानची ।

कोशपाल (सं० पु०) कोशं राण्याङ्गधनसङ्ग्रहं पालयति,
कोश-पालि-अच् । पर्यरक्षक, रुपयेकी डिफाजत करने-
वाला । धर्मशास्त्रके मतमें—धातु, वस्त्र, चर्म और
रत्न लक्षणाभिन्न तथा सारपदार्थके संश्लेषको कोशपाल
कहते हैं। पवित्र, निपुण, अग्रमत्त, आयव्ययज्ञ, लोकज्ञ
और कृताकृतज्ञ व्यक्तिको कोशपाल पद पर नियुक्त
करना चाहिये । (विनाशि—परिमिटलक्ष)

कोशपेटक (सं० पु०-खी०) अर्घ्य रखनेका पेटक ।
रुपयेकी बंकी या डब्बी ।

कोशफल (सं० खी०) कोशे फलमस्मै, बहुव्री० ।
१ ककीलसीतल चीनी । २ जपुषी, खीरा । ३ देवदाली,
कोई बेल । ४ चोण्डा, भड़बरी । ५ बदर, बेर ।

कोशफला (सं० खी०) कोशे फलं यस्याः, बहुव्री० ।
१ महाकोशातकी, हाथीचिंकार । २ जपुषी, खीरा, फूट ।
३ देवदालीकता । ४ पीतचोषा, पीले फूलको एक
बेल । ५ खेतत्रिवृता, खण्डत्रिवृता, सफेद या कासा
जिसीत ।

कोशयी (सं० खी०) कुश बाहुल्यकात् अयि ततो खीन् ।
सुवर्णपूर्णकोश । अक्ष० १०० । १२ ।

कोशक (सं० पु०) कुश-कक्षच् बाहुल्यकाद् गुणः । १ काशी-
के उत्तर अयोध्यासहित सरयूतीरवर्ती समस्त भूभाग ।

कोशक उत्तर और दक्षिण दो भागोंमें विभक्त है। यह शब्द तालक, मूर्धन्य और दन्तसकारयुक्त व्यवहृत होता है। कोशक देखो। “प्रसू चमर्ष कोशकपुराणा” (गुणवो) २ चतुर्थि जातिविशेष। ३ अयोध्या। ४ कोई राग। इसमें गन्धार तथा धैवत कोमल और वाक्का शुद्ध स्वर लगते हैं।

कोशका (सं० स्त्री०) कुश वृषादित्वात् कलच्, बाहुलकाद् गुणः ततः स्त्रियां टाप्। अयोध्यानगरी, रामकी राजधानी। अयोध्या देखो।

कोशकामजा (सं० स्त्री०) कोशकस्य कोशकनृपते-राजजा, ६-तत्। कोशक्या, दशरथकी प्रधान महिषी और रामकी माता।

कोशलिक (सं० स्त्री०) कुशलाय कर्मणे हितजनककार्य-सिद्ध्यर्थं दीयते यत्, कुशल-ठक् बाहुलकादुकारस्य भोकारः। इत्कोच, रिशवत, घूस। किसी किसी पुस्तकमें कोशलिक पाठान्तर है।

कोशवती (सं० स्त्री०) कोशो विद्यतेऽस्य, कोश-मतुप् मस्य वः। घोषा, कोषातकी।

कोशवान् (सं० त्रि०) कोशोऽस्यस्य, कोश-मतुप् मस्य वः। कोशयुक्त, खजानेवाला। (भारत, अ० २० च०)

कोशवासी (सं० पु०) कोशे वसति, वस-चिनि ७-तत्। १ शम्भूक, घोषा। २ तन्तुकीट, रेशमका कीड़ा। ३ स्फटिकविशेष, एक प्रकारका बिलोरी पत्थर। कोशक देखो।

कोशवृद्धि (सं० पु०) कोशस्य मुकुलस्य वृद्धिर्यत्र बहुव्री०। १ कुरण्कवृद्ध, कोरोका पेड़। (स्त्री०) २ अण्डकोष-वृद्धि, फोता बढ़नेकी बीमारी। ३ धनसञ्चय, रुपयेकी बढ़ती।

कोशवेष्ट (सं० स्त्री०) कोषागार, खजाना।

कोशशायिका (सं० स्त्री०) कोशे पिधानमध्ये शीते, शी-ष्णुल् ७-तत्। शूरिका, एक सजी।

कोशकृत् (सं० पु०) कोशं करोति, क-क्षिप् निपा-तनात् कृट्। कोशकारक जन्तुविशेष, रेशमका कीड़ा।

कोशक (सं० पु०) कोशे तिष्ठति, स्था क ७-तत्। ब्रह्म-युतवादि, धीचे वधेरह। सुश्रुतके मतमें आनुपवर्ग

पञ्चविध होता है—कुलचर, प्रव, कोशक, पादो और मस्य। इनमें ब्रह्म, ब्रह्मनस, युक्ति, शम्भूक, भङ्गक प्रभृति कोशक प्राची हैं। इनका मांस रस तथा पाकमें मङ्गर, वायुनाशक, शीतक, स्निग्धकर, पित्तका हितकर, तैलो-वृद्धिकर और श्लेष्मवर्धक है।

कोशक्यमांस (सं० स्त्री०) ब्रह्मयुतवादिमांस, ब्रह्म सीप वधेरहका गोश। कोशक देखो।

कोशा (सं० स्त्री०) मस्य, शराव। २ नदीविशेष, कोई दरया। (भारत, नीच ८ अ०) ३ वृद्धत् नौका, बड़ी नाव। पहले भारतवासी इस नाव पर चढ़ कर जलयुद्ध करते थे। ४ पूजापात्रभेद, पूजा करनेका कोई बर्तन। इसमें जल रखके पूजा करते हैं।

कोशा-राजपूतानेकी एक सुसज्जमान जाति। राजपूतानेकी मरभूमिके निकट एक सहाराई जाति रहती है। यह लोग पहले हिन्दू रहे, अब सुसज्जमान बन गये हैं। कोशा या खोशा जाति सहाराइयोंकी अश्वीमात्र है। यह दस्युवृत्तिसे जीवन यापन करते थे। कोई छद्मोपरि और कोई अश्वोपरि आरुढ़ हो बरछा, ठाल, तलवार तथा बन्दूक लेकर लूटनेकी निकल पड़ता था। कभी कभी यह योधपुर तक लूट ले जाते थे। मरभूमिके दक्षिण अंश पर नवकोट, मिट्टी, बुखियारी प्रभृति खानोंमें इनका वास है। आजकल यह लूटमार तो नहीं करते, परन्तु क्लबकीसे ‘करी’ ले लेते हैं। प्रत्येक वृद्धके लिये किसानकी एक रुपया और १ मन चना देना पड़ता है। कोशा लोग कभी कभी उदयपुर, योधपुर प्रभृति राजवाड़ोंमें नौकरी भी करते हैं। राजपूत इन्हें विश्वासघातक और भोक्-जैसा समझते हैं।

कोशा—अफगान जातिकी एक अश्वी। यह लोग डेरा-गाजीखान्के पर्वत और समतल भूमिपर रहते हैं। इनके सरदार कोराखों और गुलाम हैदर अंगरेजोंका पक्ष प्रवर्तन करके मूलराजसे लड़े। कोराखों ४०० अश्वारोहियोंके साथ मेजर एडवर्डको साहाय्य करने गये थे। अंगरेज गवर्नमेंण्टने इसी लिये उन्हें १००,००० आबकी एक जागीर दे डाली।

कोशागार (सं० स्त्री०) काशस्य आगारम्, ६-तत्। खजाना, खजाना। (भारत, अ० १८०) कोशकृद् प्रभृति

शब्द भी इसी अर्थमें व्यवहृत होते हैं।

कोशाङ्ग (सं० क्ली०) कोश इवाङ्गमस्य, बहुव्री० । इत्कट्, एक भ्रातृ ।

कोशातक (सं० पु०) कोशमतति, कोश-अत-कृन् ।
१ कठ, यजुर्वेदकी एक शाखाका नाम । २ कोश, बास ।
३ घोषक, एक ज्ञाता ।

कोशातकी (सं० स्त्री०) कोशमतति, कोश-अत-कृन्
गौरादित्वात् ङीष् । कड़ई तरोई । यह खेत पीतभेद-
से दो प्रकारकी होती है । इसका फल कफ और अर्शोघ्न
होता है । पक्षी कोशातकी आमामय शुद्धिकरी है ।
इसमें मूलीके तलका गुण रहता है । (राजवज्रम्)
२ अन्यविध फलशाकविशेष, तरोई, घीया । यह ठण्ठी,
कड़वी, कुछ कसैली, वात-पित्त-कफको दूरकरनेवाली
और मलाशयशोधिनी है । (राजनिघण्टु) ३ महाकोषा-
तकी, नेनुषा । यह स्निग्ध, सर और पित्त तथा वायु-
नाशक है । इसका फल स्नादु, मधुर, वातपित्तघ्न, पाक-
में कफघ्न और ज्वरमें हितकर है । (अमरसिंहिता) ४ तिक्त-
फलजलाविशेष, कड़वा परवल । ५ महाकासजला ।
६ खेतघोषा । ७ पटोली, परवल । ८ अपामार्ग,
जटजीरा ।

कोशातकी (सं० पु०) कोशातकाऽस्यास्ति, कोशातक-
इनि । १ व्यवसायी, सौदागर । २ वणिक्, बनिया ।
३ बाड़वाणि ।

कोशाध्यक्ष (सं० पु०) १ धनागारका कर्ता, खजानची ।
२ धनदाता, रुपया देनेवाला । ३ कुषेर ।

कोशाब्जो, कोशलो देखो ।

कोशास्त्र (सं० पु०) कोशे आम्न इव । जुद्रास्त्र, कोसम ।
इसका पर्याय—कोषास्त्र, क्षमिष्ठ, सुकोशक, धनस्तम्भ,
वनास्त्र, जन्तुपादप, जुद्रास्त्र, रत्नास्त्र, साक्षातृक्ष और
सुरक्तक है । कोशास्त्र—कुष्ठ, रक्तपित्त, शोथ, व्रण और
कफनाशक है । इसका फल—घाही, वातघ्न, अम्ल,
उष्ण, गुह्य और पित्तवर्धक होता है । (भावप्रकाश) राज-
निघण्टु इस फलको कफार्तिघ्न, दाहकारक और
शोधनाशक बताता है । कोशास्त्र पक्षमेंसे मधुर एवं
अम्लरस हो जाता है । यह खवख मिलानेसे दीपन,
रुचिकर, पुष्टिकर तथा बलकारी है । कोशास्त्रका

तेज—सारक, क्षमि, कुष्ठ तथा व्रणनाशक, अम्लमधुर,
वस्त्र, पथ्य, रोचन और पाचन होता है । सुसुतके मतमें
यह तेज अतस्त्रान पर लगानेसे कुछ अच्छा हो जाता है ।

कोशास्त्रतेज (सं० क्ली०) कोसमका तेज । कोशाव देखो ।
कोशिका (सं० स्त्री०) कोशी, कोशासे छोटा बर्तन ।
कोशिला (सं० स्त्री०) कोशः कोश इव पदार्थो वा अस्याः
अस्ति, कोश पिच्छादित्वात् इलच् ततश्चाप् । १ सुप्तपर्णी,
मोठ । २ कोई नदी ।

कोशिश (फा० स्त्री०) चेष्टा, उद्योग ।

कोशी (सं० स्त्री०) कुश संज्ञे ये अथ गौरादित्वात् ङीष् ।
१ उपानत्, जूता । २ व्याघ्रनख, एक सुशब्ददार चीज ।
३ धान्यादिशुद्धा, पनाज वगेरहकी बास । (पु०)
४ आम्नवृक्ष, आमका पेड़ । इसका पर्याय—पञ्चमी,
पादविरजाः और पादरथी है । ५ कोशिका, पूजाका एक
पात्र । (त्रि०) कोशोऽस्त्रस्य, कोश-इनि । ६ कोशयुक्त,
खोलवाला ।

कोश्य (वै० पु०) कोशो हृदयकोशः तत्र वर्तते, कोश
बाहुलकात् य । हृदयस्य मांसपिच्छ । (वाजसनेय ३८८)

कोष (सं० पु०-क्ली०) कुप्यन्ते आकृष्यन्ते फलपुष्पोत्पा-
दकमधुमयपरागादयो यस्मिन्, कुष अधिकरणे घञ् ।
१ कुड्मल, बंधी हुई कली । २ खड्गपिधान, तलवारका
स्थान । (महाभारत, ४४०।१२) ३ अर्थसमूह, खजाना ।
(१७०।५।१) ४ दिव्य । (राजतरङ्गिणी ५।२२५) ५ अण्ड,
अण्डा । ६ आवर्तित वा आकरोत्येत स्वरूपं रोप्य, खानका
ताजा सोना या चांदी । ७ पात्र, बर्तन । ८ जातीकोष,
जायफल । ९ शब्दादि-संग्रह, अभिधान । १० भाण्डा-
गार, भाण्डार । ११ पानपात्र, प्याला । १२ योनि ।

१३ शिखा, सेम । १४ कटहल आदि फलोंके बीजका
हिस्सा, गूदा । १५ धन, दौलत । (मार्कण्डेयवक्त्री)
१६ त्वक् प्रभृतिका आवरणक, खोल । १७ वृषण, फीता ।
१८ कोषकी भांति आवरणकारी वेदान्तप्रसिद्ध पञ्च-
पदार्थ । वेदान्ती अक्षमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञान-
मय और आनन्दमय—पांच कोषोंकी कल्पना करते हैं
विश्वेकचूडामणिमें पञ्चकोषका विवरण इस प्रकार
लिखा है—

देह अक्षसे उत्पन्न है, अक्ष द्वारा ही जीवित रहता

और उसके अभावमें विनयता है ; इसीसे देहका नाम अजस्रमय कोष है ।

वाक्, वाचि, पाद, पादु और उपर्य पञ्च कर्मेन्द्रियोंके साथ मिलित प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान पञ्चप्राणकी प्राणमय कोष कहते हैं । इसी प्राणमय कोषसे मिलकर अजस्रमय कोष देहकी सकल क्रियाओंमें प्रवृत्त होता है ।

ओत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण पांच ज्ञानेन्द्रियोंसे मिले मनका नाम मनोमय कोष है । यह मनोमय कोष ही 'मैं' 'मेरा' आदि विकल्पज्ञानोंका कारण है । यही मनोमय अग्नि बहु वासनारूप इन्धन द्वारा अतिशय प्रज्वलित हो इस प्रपञ्चको दग्ध करता है । मनके अतिरिक्त कोई अविद्या नहीं । मन ही अविद्या और संसाररूप बन्धका एकमात्र कारण है । मन विनष्ट होनेसे सब मिट जाता और मन कार्य करते रहनेसे सभी पदार्थोंका अस्तित्व देखनेमें आता है । स्वप्नकी अवस्थामें किसी वास्तव पदार्थसे कोई संबंध नहीं रहता । किन्तु मन अपनी अपनी शक्तियोंसे ही भोक्ता भोग्य प्रभृति सकल सृष्टि करता है । मनके अतिरिक्त कुछ भी वास्तविक नहीं । इसी प्रकार स्वप्न अवस्थाके दृष्टान्तसे जाग्रदवस्थामें भी जगत्प्रपञ्च मनोमय समझना पड़ेगा । सकल ही मनका विकृन्धन मात्र है । जैसे सुषुप्ति-कालको मन विलीन होनेसे सब मिट जाता, सबलोग समझ सकते हैं, वैसेही मन नष्ट होनेसे किसी अवस्थामें कुछ नहीं देखाता ।

अवयव, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण पांच ज्ञानेन्द्रियोंसे मिलित बुद्धि विज्ञानमय कोष कहलाती है । यह विज्ञानमय कोष ही कर्तारूप कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख और दुःख प्रभृति अभिमानविशिष्ट पुद्गलके संसारका कारण है । सत्वगुणप्रधान अज्ञान परमात्माका आवरण जैसा रहनेसे अजस्रमय कोष कहा जाता है ।

पूर्व शब्दान्तर युक्त होनेसे यह गोलकवाचक है ।
कोषक (सं० पु०) कोष स्त्रायं कन् । १ अण्ड, अण्डा ।
२ अण्डकोष कीता ।

कोषकार (सं० पु०) कोषं करोति स्वपञ्चत्वगादिभिरा-
ज्ञानं कादयति, कोष-क-अण् । १ इड, अण् ।

२ इडविशेष, कुसियार । यह गुह, शीत और रक्त, पित्त तथा अयनाश्रक है । (भावप्रकाश) कोषकार मूल और मध्यमें मधुर होता है । (सुत) कोषं खवेष्टनं स्वमुख-
निःसृतलाकारूपतन्मुभिः करोति । २ कीटभेद, रेशम-
का कीड़ा । (भारत १२ । ३२८ । २८) १ जनपदविशेष,
कोई देश । यहां पहले बहुत तन्तुकीट उत्पन्न होते थे ।
रामायणमें उत्तरवर्ती जनपदके उल्लेख स्वस पर
कहा है—

“नामधांश्च महाबलान् पुच्छसुक्तांस्तथैव च ।”

सुनिध कोषकाराणां सुनिध रजताकराम् ॥ ” विषुक्तिव्या ४०।१२३।

यह कोषकार भूमि आसामराज्यके उत्तरस्थित चीनदेश जैसी अनुमित होती है । सम्भवतः इसी स्थान-
को पाश्चात्य प्राचीन भौगोलिक टोलेमिने 'सेरिके'
(Serike) नामसे उल्लेख किया है ।

कोषं पर्यसहितशब्दसंयोजनरूपं अन्वविशेषं
करोति । १ अभिधानकर्ता, लुगात बनानेवाला ।

कोषकारज (सं० स्त्री०) कोषिय, रेशम ।

कोषकाव्य (सं० स्त्री०) परस्पर निरपेक्ष श्लोकसमूह ।

(साहित्यदर्पण ६ परिच्छेद)

कोषचक्षु (सं० पु०) कोषः खड्गकोष इव चक्षुर्यस्य,
बहुव्री० । सारसपक्षी ।

कोषगान (सं० स्त्री०) परोक्षाविशेषार्थं कोषख इत्य-
कोषपरिमितस्य जलस्य त्रिप्रसृतिरूपस्य पानम्, इ-तत् ।
परोक्षाविशेष, एक जांव । इसमें यह समझनेके लिये
कि अमुक व्यक्ति पावो है या निष्याप, तीन गण्डूजल
पिलाया जाता है । वीरमित्रोदय नामक स्मृतिसंग्रहमें
कोषपानविधि इस प्रकार लिखा है—

जिस व्यक्तिकी परीक्षा लेते, उसे पूर्वाङ्गमें उप-
वासी रहने देते हैं । फिर परीक्षाके समय खान
करके पाइँ वस्त्र पहने ही देव तथा ब्राह्मणमण्डलीके
मध्य उसकी कोषपान कराते हैं, पानकर्ता दिव्य
करनेका अभिलाषी और श्राव्युक्त व्यसनशून्य हो तथा
मिथ्या दिव्य करनेमें अनिष्टकी आशङ्का करे ।

मन्त्रपाथी, व्यसनसक्त, किरात, नास्तिक आचारी,
महापातकी, आश्रमधर्मवर्जित, छतप्र, लाव, प्रतिशोभक,
दास, नास्तिक और ब्राह्म कोषपानके अनधिकार हैं ।

विष्णुस्मृतिमें लिखते हैं—किसी उग्रदेवताकी चर्चना करके उसका स्नानोदक तीन गण्डूष पीना चाहिये। वही पानी हाथमें लेकर पूर्वाभिमुख कहना पड़ता है—जिसके लिये परीक्षा होती है, वह कार्य मैंने नहीं किया। उससे बाद पान करनेका नियम है।

जिसकी परीक्षा की जायगी, उसके मस्तक पर व्यवस्थापन रखके चपर चपर दिव्यके साधारण विधिका अनुष्ठान करना चाहिये। फिर उसको देवता-यतनके निकटवर्ती मण्डलमें पूर्वाभिमुखी बैठान धर्म-शास्त्रके मतसे निष्पादित करनेमें जो समस्त अनिष्ट आता, वह भली भाँति समझाया जाता है। प्राङ्-विवाककी उपवासी रह गन्धपुष्पादि द्वारा दुर्गा प्रभृति उग्रदेवताओंमेंसे किसी एककी पूजा करना चाहिये, उनका स्नानीय जल दिव्यस्नानमें स्थापन किया जाता है। जलविधानके अनुसार “तोय त्वं प्राचिनां प्राणः” इत्यादि मन्त्र द्वारा पूर्वस्थापित जलसे तीन गण्डूष जल चपराधी व्यक्तिको पिलाते हैं। उसको भी “सत्यानृत-विभागश्च” इत्यादि मन्त्र उच्चारण करके वह पानी पी लेना चाहिये।

चपराधीका उसी देवताका स्नानीय जल पिलाते, जिस पर उसकी दृढ़ भक्ति पाते हैं। जो सभी देवता-ओंमें समान भाव रखता, उसको सूर्यका स्नानीय जल पिलाना पड़ता है। चोरीं और शस्त्रोपजीवियोंको दुर्गाका स्नानीय जल पिलाना उचित है। ब्राह्मणको सूर्यका स्नानीय जल पिलाते हैं।

कात्यायनने कहा है—प्रत्येक चपराधमें देवताके आयुधका जल पिलाना उचित है। जल पान करनेवाले व्यक्तिको किसी प्रकारका विकार उपस्थित होनेसे पापी समझते और पापानुसार उसका दण्डविधान करते हैं। यदि कोषपान करके उसको कोई विकार न लगे, तो वह निष्पाप माना जाता है।

कोषपान करनेवालेको तीन सप्ताहके मध्य कोई दैविक व्याधि लगनेसे पापी-जैसा समझना और यज्ञ-पूर्वक उसका दण्डविधान करना चाहिये। परन्तु ग्राम-वासों या निकटवर्ती सभी लोगोंको दैविक व्याधि उप-स्थित होनेसे कोषपान करनेवाला पापी नहीं ठहरता।

पापी व्यक्तिको कोषपान करनेसे छद्म, अतीसार, विस्फोटक, शूल, अस्त्रपीड़ा, नेत्ररोग, कपाकपीड़ा, हृन्नाद, शिरभङ्ग, ऊरुभङ्ग और भुजभङ्ग प्रभृति समस्त दैविक व्याधियोंमें कोई एक धर दवाती है। विष्णु-स्मृतिके मतमें—दो या तीन सप्ताहके मध्य परीक्षितव्य व्यक्तिका दैवरोग, अग्निभय, जातिमरण वा राजदण्ड होनेसे पापी-जैसा निश्चय करते हैं। किन्तु ब्रह्माके मतमें तीन रात, सात रात या दो सप्ताहके बीच किसी प्रकारका विकार न पड़नेसे परीक्षितव्य निष्पाप प्रमा-णित होता है। वीरमित्रोदयकारका कहना है—दो सप्ताहके पीछे तीसरे सप्ताह तक विकार उपस्थित होनेसे भी वह पापी ठहरता है। सम्प्रति हिन्दूराजा-ओंके अभावसे कोषपानविधि अप्रचलित हो गया है। कोषफल (सं० पु० स्त्री०) कोषे फलमस्य, बहुव्री०। १ ककूल, कपूर-जैसी खुशबूदार एक मिर्च। २ घोषक-कता, एक वेल।

कोषफला (सं० स्त्री०) कोषफल प्रजादित्वात् टाप्। १ पीतदेवताकुष्ठज। २ पीतघोषा, घोषा तरोई। ३ लिम्पाक, कागजी नीबू।

कोषवती (सं० स्त्री०) कोषातकी, तरोई।

कोषवृद्धि (सं० स्त्री०) १ कुरण्ड, कोरी। २ अर्थसञ्चय, रुपये पैसोंकी बढ़ती। इति देखी।

कोषला, कोषला देखी।

कोषलाह्वा (सं० स्त्री०) जीवशाक, एक सब्जी।

कोषशायिका (सं० स्त्री०) कोषे पिधाने श्येते तिष्ठति, कोष-श्री कर्तरि खल् टाप्। कुरिका, तलवार, कटार।

कोषश्च (सं० त्रि०) कोषवासिप्राणिमात्र, खोलमें रह-नेवाले शङ्ख शक्ति शङ्खनख शम्बक कर्कट आदि सभी जीव। शङ्ख कूर्म आदि स्वादुरसपाक, वातघ्न, शीत, स्निग्ध, कफमें हित और श्लेष्मवर्धन होते हैं। । इत्यतः।

कोषा (सं० स्त्री०) १ पादुका, जूता, खड़ाज। २ शृङ्गा, बाल। ३ आम्नवृक्ष।

कोषातक, कोषातक देखी।

कोषातकी, कोषातकी देखी।

कोषातक्यादितैल (सं० स्त्री०) उपदंशका एक तैल, गर्मीकी बीमारीका कोई तैल। जिसके सिक्का मांस

अभिभूत होनेसे सड़ने लगता, उसको यह तेल उप-
कार करता है—४ शरावक तेल, १ शरावक तरोई,
कड़वा नीली, बीज तथा नागरका कस्क और १६
शरावक जल डाल कर एकमें यथाविधान पकानेसे
कोषातकादितैल प्रसृत होता है। (सरवाकर)

कोषाख, कोषाख देखो।

कोषी, कोषी देखो।

कोषीफला (सं० ००५०) पीतकोषा, तराई।

कोष्टी (महरा)—छोटानामपुरकी एक जाति। कर्षसे
कपड़ा बुनना और खेतीबारी करना ही इनकी उप-
जातिका है। यह लोग महरा-जैसा अपना परिचय देते
हैं। किन्तु दूसरे लोग इन्हें कोष्टा कहते हैं। सम्भवतः
यह मध्यप्रदेशके सम्बलपुर, रायना और छत्तीसगढ़
प्रान्तसे प्राये होंगे। इनमें नाना श्रेणियां हैं—बाघल,
बगुटिया, भात, भतपड़ाड़ा, चौधरी, चौर, गोही, खंडा,
कूरम, मानक, नाग, सना इत्यादि। कोष्टा दास उपाधि
ग्रहण किया करते हैं। किसी वंशका एक एक प्राणी
गृहदेवतास्वरूप रहता है। इनके बीच कुमारी प्रव-
स्थामें कन्याको व्याहृत पुण्यका कार्य है। सम्पन्न लोग
ही ऐसा विवाह कर सकते हैं। दरिद्रोंकी कन्यायें
प्रायः यौवनावस्थामें व्याहृत जाती हैं। सोमनाथमें सिन्दूर-
दान ही विवाहका प्रधान प्रसङ्ग है। विधवावीका सगाई
चलता है। स्वामीका भ्राता रहनेसे उसके साथ ही
प्रायः सगाई होती है। विवाहविच्छेद भा लग जाता
है। पुरुषोंके पक्षोंसे कहने पर वह लोग विवाह भङ्ग
कर देते हैं।

कुशादेव ही कोष्टाप्रान्तके उपास्य देवता हैं। यह
कहते हैं कि विवाह करनेकी चलते समय वह बीरकी
भांति निहत हुए थे। उसी दिनसे वह देवता-जैसे पूजे
जाते हैं। कोष्टाओंमें बहुतसे कबीरपन्थी हैं। मरनेसे
कबीरपन्थी जमीनमें गाड़ दिये जाते हैं। अपरापर
विषयोंमें इनका व्यवहार हिन्दुओं-जैसा ही है। यह
ब्राह्मणों, राजपूतों आदिका भक्त आहार करते हैं।
किन्तु गौड़ प्रभृतिके साथ भक्त वा दासगोटी नहीं खाते।
कोष्टी—दक्षिणात्यकी तन्तुवाय (जुलाहा) जाति।
बम्बई-प्रदेशमें इस जातिके लोगोंकी संख्या पचास हजार

से ज्यादा है। स्वामिन्दसे कोष्टीओंका श्रेणीभेद भी
लग जाता है, जैसे—मराठा कोष्टी, कनाड़ा कोष्टी और
सिक्कायत कोष्टी या नीलकण्ठ सिक्कायत।

पूनाके मराठा कोष्टी कहते हैं कि—पहले वह ब्राह्मण
रहें। किसी समय जेनतीयंहार पार्श्वनाथ स्वामीने
उनसे वस्त्र मांगी थी, परन्तु उन्होंने न दिये। इसीसे पार्श्व-
नाथने उन्हें अभिशाप किया था—तुम जुलाहेका काम
करोगे और किसी समय सन्नत हो न सकोगे।

मराठा कोष्टीओंमें देवह्वयवे, हाटगर, जूनरे और
खतावन आदि कई शाखायें हैं। इनके उपाधि दूध
प्रकार हैं—ऐकाड़े, कलसे, कलटावने, कांभसे, कुदल,
कुर्कुटे, कुडकर, खाड़गे, खाने, खारवे, गलांटे, गुरसले,
गुलबने, गोदसे, चाटे, घोड़के, चकरे, चिपाड़े, चारदे,
जवरे, भाड़े, ठोले, तरके, तरलकर, तरवदे, ततपडक,
तवरे, तंभे, तिपरे, दण्डवते, दहुरे, दिङ्गे, दिदे, दिवते,
दुगम, दोईकोड़, धगे, धवलसांख, धीमते, सोमाने,
पदे, पंदारे, पाखले, पांदकर, पारखे, भाकके, बड़दे,
बहिरात, बावद, बिदे, रीतरे, बांभदे, भाकरे, भागवत,
भासेसिंग, भंडारे, बिबरे, मकवते, मन्तरकर, माकमे,
मालबंदे, मनाल, मुखवते, बंगारे, रहातड़े, रासिनकर,
लकारे, लड़, बरादे, बाहल, बेदोर्दे, शीलवंत, सेवाले,
सोपाड़े, मचदे, और हरके चुले। एक उपाधि रहनेसे पर-
स्परविवाह होता और नहीं भी होता है। किन्तु भिन्न
उपाधिमें परस्पर आदान प्रदान बराबर चलता है।
कोष्टियोंकी मातृभाषा मराठी है।

कनाड़ेके कोष्टीओंमें कुरनावल और पतनावल दो
ही भाग हैं। इनकी अपनी बोली कर्णाटी है। फिर भी
बम्बई-प्रदेशके नानास्थानोंमें यह प्रचुर मराठी बोलते हैं।

सिक्कायत या नीलकण्ठ कोष्टी बिलेजादर और
पड़सलगादर दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं। दोनोंमें पर-
स्पर आदान प्रदान वा आहार व्यवहार नहीं चलता।
इनके और भी १० कुल या गोत्र हैं। जिरानी, बन्नी,
बसरी, भेनस, बिबो, होंग, सर, कदिगा, बंकी, धमं,
मुंड प्रभृति गोत्र सचराचर प्रचलित हैं। एककुल वा
एकगोत्रमें विवाह नहीं होता।

कोष्टी लोग देखनेमें प्रधानतः काले होते हैं।

आकार प्रकार मंभोका है। अधिक बलवान् भी यह नहीं होते। फिर भी सब लोग प्रायः परिचयी हैं। जनाव पुनाव दाक्षिणात्यके उच्चश्रेणीके हिन्दुओं-जैसा रहता है।

यह रेशम और रुईका सूत तैयार करके कपड़ा बुनते हैं। प्रायः सभी कोशोंके घरमें करवा और चरवा रहता है। इनकी स्त्रियां सूत कात कर स्वामीका साहाय्य करती हैं। आजकल विनायती कपड़ेकी घाम-दनीसे इनका कामकाज बहुत बिगड़ गया है। मालूम पड़ता, इसीसे बहुतोंने जातीय व्यवसाय छोड़ क्षिपिकार्य और भिखावृत्तिको पारम्भ किया है।

कोष्टी सचराचर १०से २५ वर्षके बीच पुत्र और ५से ११ वर्षके बीच कन्याका विवाह करते हैं। कन्यादान, अग्न्याधान और वरकटक कन्याका कुलदेवता-पूजन विवाहके प्रधान अङ्ग हैं। इनके विवाहकी एक अधिष्ठात्री देवी है। उनको 'जूपन' अर्थात् पञ्चपक्ष कहते हैं। कन्यादानकालको वरकन्या बांसके एक टोकरे पर आमनेसामने खड़े होते हैं। विवाहके अपरापर काण्ड कुनवियों और अधिकतर कोलियों-जैसे रहते हैं।

कोष्टी धर्मानुरागी और स्वजातिप्रिय हैं। यह सभी हिन्दू देवदेवियोंको मानते और व्रत उपवासादि करते हैं।

मराठा कोष्टी देवीभक्त और कनाड़ी कोष्टी शिव-भक्त हैं। दाक्षिणात्यके नानास्थानोंमें देवदेवियोंके मन्दिर हैं। यह भी अपने अपने अभीष्ट देवके दर्शन और पूजा करने नाना स्थानोंको जाया करते हैं।

नीलकण्ठोंका आचार व्यवहार अपरापर लिङ्गायतों जैसा ही है। यह शाकाश्रमजी हैं। कोई मद्य मांस तो नहीं खाता, परन्तु विना प्याज और लहसुनके व्यञ्जनका प्रसुत होना रुक जाता है। सभी कोष्टी उत्सवके समय शहरका मालपूवा डढ़ाते हैं।

मराठे कोष्टीमें देवग और चाटमरीके एक एक मन्त्रगुरु होते हैं। किन्तु जूनरोंका कोई गुरु नहीं।

नीलकण्ठोंके बीच आश्विनमासको दशहरा, कार्तिक-मासको दीवाली, फाल्गुनमासको होली, चैत्रमासको नववर्षके प्रथमदिन, आषाढमासको नागपञ्चमी और

भाद्रमासको नवमवस्तुर्वाके उपलक्ष्यमें 'शिरा' उत्सव होता है। नितान्त हरिद्वर होते भी विवाहके पीछे पुत्रव मात्र 'लिङ्ग' और सभी स्त्रियां 'मङ्गलसूत्र' धारण करती हैं। नीलकण्ठ और श्रीमैसका मल्लिकार्जुनलिङ्ग इनके प्रधान उपास्य हैं। इनके गुरुको 'नीलकण्ठस्वामी' कहते हैं। वह पाजीवन अविवाहित रहते हैं। मृत्यु होनेसे उनके प्रधान प्रिय शिष्यको 'नीलकण्ठस्वामी' पद मिलता है। लिङ्गावन देखो। सन्तान भूमिष्ठ होनेसे ५ दिन अग्रोच मानते हैं।

लिङ्गायत कोष्टियोंमें किसीके मरने पर जङ्गम कुछ रुपया लेकर मृतव्यक्तिको गाढ़ते हैं। मराठे कोष्टी शवको जलाते और दश दिन तक अग्रोच बसाते हैं। कोष्ठ (सं० पु०-ली०) कुप-धन् । अष्टिकुपिनतिम्यस्त्रन्-उच् १।४। १ गृहमध्य, घरका भीतरी हिस्सा। २ उदरमध्य, पेटके बीचकी जगह। ३ कुशूल, खत्ती। (भारत २।५।६८) ४ उदरमध्यस्थित मलभाण्ड, पेटके बीच मल रहनेकी जगह।

“स्थानान्नामप्रपङ्गनां सूत्रस्य बधिरस्य च।

इदंशकः फुस फुसय कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ (सुश्रुत)

यह मृदु, क्रूर तथा मध्यम भेदसे तीन प्रकारका होता है। बहुपित्तका मृदु, बहुवातकोष क्रूर और समदोष मध्यम कहलाता है। मृदुकोष्ठ दुग्धसे विरेच्य है। क्रूरकोष्ठ दुर्विरेच्य होता है। मध्यमकोष्ठको साधारण ही समझना चाहिये। मृदुकोष्ठ इसकी, क्रूरकी तीक्ष्ण और मध्यकी मात्रा मध्य ही रखना चाहिये। आमाशय, पक्वाशय, मूत्राशय और गर्भाशय आदिका नाम कोष्ठ है। हिन्दीमें इसीको कोठा कहते हैं। ५ उदर, पेट। (भागवत ६।१८।२९) ६ नाभिके ऊपरका मणिपुर पद्म। (भागवत ४।२१।१४) ७ प्राकार, चहारदीवारी। ८ कुष्ठ ओषधि, कुष्ठ। (उच देखो) ९ स्वकुष्ठमें हृदयसे वसित पर्यन्त स्थान, कोष्ठमें दिक्से पेशाबकी जगह तक। १० एक चिह्न। चंगरेजीमें इसे ब्राकेट (Bracket) कहते हैं। (त्रि०) ११ आन्वीय।

कोष्ठक, कोष्ठ देखो।

कोष्ठपाल (सं० पु०) १ नगरपाल, चहारदीवारीका सुहाजिक। २ कीदम्बूरी, दूधिया मूरहर।

कोष्ठपुष्प (स० पु०) चीरमुर्बा, दूधिया सुरहर ।

कोष्ठबद्ध (स० स्त्री०) मलकी बकावट, कजियत ।

कोष्ठभेद (स० पु०) मलभेद, कोठेकी फूट ।

कोष्ठशुद्धि (स० स्त्री०) कोष्ठस्य मलभाण्डस्य शुद्धिः, ६-तत् । मलभाण्डका उत्तम रूपसे परिष्कार, मलनिर्गम, कोठेकी सफाई ।

कोष्ठसन्ताप (स० पु०) अन्तर्दाह, भीतरी जलन ।

कोष्ठागार (सं० स्त्री०) कोष्ठमागारमिव । धान्यादि रखनेका गृह, गोला, खत्ती (भारत १११८)

कोष्ठागारिका (स० स्त्री०) कोष्ठागारे भवः तत्र नियुक्ती वा, कोष्ठागार-ठन् । कोष्ठागारमें उत्पन्न, गोलेका पैदा । २ कोष्ठागारमें नियुक्त, गोलेका नौकर ।

कोष्ठागारिका (स० स्त्री०) मृत्तिकाविशेष, एक प्रकारकी मट्टी ।

कोष्ठागारी (स० पु०) प्राणघातक कीटविशेष, जान लेनेवाला एक कीड़ा । इसके काटनेसे साक्षिपातिक रोग सठ खड़े हो जाते हैं । (सप्त ३)

कोष्ठाग्नि (स० पु०) जठरका पाचकाग्नि, कोठेकी पचानेवाली गर्मी ।

कोष्ठाङ्ग (स० स्त्री०) नाभिहृदयादि पञ्चदशविधाङ्ग, तौदी, दिल वगैरह पन्द्रह तरहके अंग ।

कोष्ठान्त्रित (स० पु०) अन्त्राध्यान, पेटका चढ़ाव ।

कोष्ठिक (स० स्त्री०) मट्टीकी कुठाली ।

कोष्ठिकयन्त्र (स० स्त्री०) लोहकारका धमनयन्त्रविशेष, लोहारकी एक धौंकनी । पात्रेयसंहिताके मतमें यह औजार १६ अङ्गुल विस्तृत और १ हाथके आयतका बनाना चाहिये ।

कोष्ठिका (स० स्त्री०) कोष्ठिक देखो ।

काष्ठिकायन्त्र, कोष्ठिकयन्त्र देखो ।

कोष्ठो (स० स्त्री०) जन्मपत्रिका । इसमें जन्मकालीन ग्रहणचरित्रोंकी स्थिति और सञ्चारके अनुसार यावज्जीवनका शुभाशुभ लिखा रहता है ।

कोष्ठोकी गणनामें सर्वप्रथम जन्म समयका निर्णय करना पड़ता है । समय स्थिर न होनेसे कोष्ठो बनाना कठिन है । बड़ी आदि यन्त्रोंसे अनेक बार सूक्ष्मरूपसे समय निर्णय नहीं होता । इसीसे हमारे ऋषि

वादशास्त्रक ग्रहच्छाया द्वारा जन्म समय स्थिर करते थे । यह और बटिका देखो । बहुतेकोने फिर ग्रहोंके परिवर्तनमें दूसरे भी कई एक उपाय निर्देश किये हैं । सम्बद्ध होनेसे उनके अनुसार समय ठहरा लिया जाता है ।

सूतिकागृह और जन्मसंख्याके अनुसार लग्ननिर्णय इस प्रकार करते हैं—जन्मलग्न मेष, सिंह वा धनु रहनेसे सूतिकागृहकी चतुःसीमाकी पूर्व और और सूतिकागृहमें पांच उपसूतिकायें होंगी अर्थात् सूतिकागृह पूर्वदिक् होने और उसमें पांच उपसूतिकायें रहनेसे मेष, सिंह वा धनु लग्नका जन्म सम्भूतना चाहिये । इसी प्रकार दक्षिणदिक्की सूतिकागृह होने और उसमें चार उपसूतिकायें रहनेसे कन्या, वृष वा मकर, उत्तर दिशामें सूतिकागृह और दो उपसूतिका रहनेसे मिथुन, तुला वा कुम्भ और पश्चिमदिक् सूतिकागृह और दो उपसूतिकायें रहनेसे मीन, वृश्चिक अथवा कर्कट जन्मलग्न होता है ।

ग्रहज्जातकमें अन्यप्रकार लग्ननिर्णयका उपाय प्रदर्शित हुआ है—जन्मकालकी सूतिकागृहके पूर्व मेष तथा वृष, अग्निर्कोणकी मिथुन, दक्षिण कर्कट एवं सिंह, नेत्रैर्दक्षिण कन्या, पश्चिम तुला तथा वृश्चिक, वायुर्कोण की धनुः, उत्तर मकर एवं कुम्भ और ईशानकोणकी मीनराशि संस्थापन करना चाहिये । जिस ओर जात बालककी शय्या और शयन करानेमें उसका मस्तक रखते, उस ओरका लग्न ही जन्मलग्न सम्भूत है । प्रसवकालकी बालकका मस्तक पूर्वदिक् रहनेसे मेष, सिंह वा धनुः जन्मलग्न होता है । इसी प्रकार मस्तक दक्षिण दिक् रहनेसे कन्या, वृष वा मकर, पश्चिम दिक् रहनेसे कुम्भ, तुला वा मिथुन और उत्तरदिक् रहनेसे मीन, वृश्चिक अथवा कर्कट जन्मलग्न पड़ता है । किसी स्थान पर दिवा किंवा रात्रिकाकालकी स्त्रियोंकी प्रसव वेदना उपस्थित होनेसे किसी तैलपूर्ण प्रदीपमें बत्ती जलाकर रख देना चाहिये । इससे लग्नका भुक्त और भोग्य अंश निकल सकता है । जन्मकालकी जिस राशिमें चन्द्र रहता, उसी राशिके तीस भागोंसे प्रथम दो वा तान अंशोंके मध्य चन्द्र पानेसे जन्मकालकी प्रदीपका तल परिपूर्ण रहता है, फिर राशिके शेष अंशमें जन्म

जोनेसे प्रदीपका तैल देख नहीं पड़ता। यदि राशिके मध्य चर्चात् उसके १५ अंशोंमें चन्द्र रहता, तो प्रदीपका तैल अर्ध परिमाण जलता है। इसी प्रकारका प्रदीपका तैल जितना रहता किंवा जलता, राशिके उतने ही अंशोंमें चन्द्रका अवस्थान समझ पड़ता है।

जिस लग्नमें जन्म हुआ है, उसके तीस भागोंमें दो किंवा तीन अंशोंके मध्य जन्म होनेसे बत्तीके दो किंवा तीन अंश दग्ध होते हैं। उसी लग्नके १५ भागोंमें जन्म होनेसे बत्तीका आधा और शेषभागमें जन्म होनेसे उसका सम्पूर्ण परिमाण जलता है। इसी प्रकार बत्तीका जितना हिस्सा जलता, लग्नके उतने ही परिमाणमें जन्म समझ पड़ता है। यन्त्रादि द्वारा भी प्रदर्शित उपायोंमें प्रति सूक्ष्मरूपसे जन्म समय स्थिर करके कीछी गणना की जाती है।

क्षेत्र, होरा, द्रेकाण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश—इस प्रकारके भागोंका नाम षड्वर्ग है। मेष और वृश्चिक दो राशि मङ्गलका क्षेत्र हैं। वृष और तुलाकी शुक्रका क्षेत्र कहते हैं। मिथुन और कन्या लग्न बुधका क्षेत्र है। कर्कटराशि चन्द्रका क्षेत्र होता है। धनु और मीन वृहस्पतिका क्षेत्र है। मकर और कुम्भराशिकी शनिका क्षेत्र कहा है। सिंहराशि सूर्यका क्षेत्र है।

राशिके अर्धांशकी होरा कहते हैं। मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भके प्रथम अर्धमें सूर्य और द्वितीयाधमें चन्द्रकी होरा होती है। वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक मकर और मीनके प्रथमार्धमें चन्द्र और द्वितीयाधमें सूर्यकी होरा कही है।

राशिके तीन भागोंमें प्रत्येकका नाम द्रेकाण है जो यह जिस राशिका अधीक्षर रहता, वही उसी राशिके प्रथम द्रेकाणका अधिपति ठहरता है। उसी राशिसे पञ्चम राशिका अधीक्षर यह द्वितीय द्रेकाणका अधिपति और उसके नवम राशिका अधीक्षर यह तृतीय द्रेकाणका अधिपति होता है। यथा—मेसके प्रथम द्रेकाणका अधिपति मङ्गल, द्वितीय द्रेकाणका अधिपति सूर्य और तृतीय द्रेकाणका अधिपति शनि है। इसी प्रकार दूसरे राशिके द्रेकाणके अधिपतियोंको भी समझ लेना चाहिये।

राशिके नव भागोंमें एक भागकी नवांश कहते हैं। मेष, सिंह, धनु—तीन राशिके प्रथमका मङ्गल, द्वितीयका शुक्र, तृतीयका बुध, चतुर्थका चन्द्र, पञ्चमका रवि, षष्ठका बुध, सप्तमका शुक्र, अष्टमका मङ्गल और नवम अंशका अधिपति वृहस्पति है। मकर, वृष एवं कन्याके प्रथम तथा द्वितीयका शनि, तृतीयका वृहस्पति, चतुर्थका मङ्गल, पञ्चमका शुक्र, षष्ठका बुध, सप्तमका चन्द्र, अष्टमका रवि और नवम अंशका अधिपति बुध होता है। तुला, कुम्भ एवं मिथुन—तीन राशिके पहली अंशका शुक्र, दूसरेका मङ्गल, तीसरेका वृहस्पति, चौथे तथा पांचवेंका शनि, छठेका वृहस्पति, सातवेंका मङ्गल, आठवेंका शुक्र और नवें अंशका अधिपति बुध कहा है। कर्कट, वृश्चिक एवं मीन—तीन राशिके प्रथमका चन्द्र, द्वितीयका रवि, तृतीयका बुध, चतुर्थका शुक्र, पञ्चमका मङ्गल, षष्ठका वृहस्पति, सप्तम तथा अष्टमका शनि और नवम अंशका अधिपति वृहस्पति है।

राशिकी १२ भाग करनेसे उसका एक एक अंश द्वादशांश कहलाता है। अपने राशिका अधिपति यह ही प्रथम द्वादशांशका और तत्परवर्ती राशिका अधिपति यह द्वितीय द्वादशांशका अधिपति माना है। इसी प्रकार पर पर राशिके अधिपति यहको पर पर अंशका अधिपति समझना चाहिये। जैसे—मेषराशिके प्रथमका मङ्गल, द्वितीयका शुक्र, तृतीयका बुध, चतुर्थका चन्द्र, पञ्चमका रवि, षष्ठका बुध, सप्तमका शुक्र, अष्टमका मङ्गल, नवमका वृहस्पति, दशम तथा एकादशका शनि और द्वादश अंशका अधिपति वृहस्पति है। इसी प्रकार दूसरे राशिके द्वादशांशका अधिपति भी समझ लेना चाहिये।

राशिके तीस भागोंमें प्रत्येक भागका नाम त्रिंशांश है। मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ—इस राशिके प्रथम पांच अंशोंका मङ्गल, द्वितीय ५ अंशोंका शनि, फिर ८ अंशोंका वृहस्पति, ७ अंशोंका बुध और पिछले ५ अंशोंका अधिपति शुक्र होता है। वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन—इस राशिके प्रथम पांचका शुक्र, फिर ५का बुध, आठका वृहस्पति,

जातका शनि और पांच राशियों का अधिपति मङ्गल है। जातकान्तिका पञ्चमं इसी प्रकार खिर करके तदनुसार फल भी खिर करना पड़ता है। (चतुर्थ देखो।)

पञ्चसरा मतमें शिशु का रिष्ट इस प्रकार होता है— यदि राहुग्रह कर्कटराशिमें रह कर चन्द्रसे मिलता, किंवा सिंह राशिमें सूर्यके साथ अवस्थान करता और जन्मलग्न पर यदि शनि तथा मङ्गलकी दृष्टि पड़ती, तो १५ दिनमें जात बालक का मृत्यु होता है। जन्मलग्नके नवम स्थानमें शनि, षष्ठ स्थानमें चन्द्र और सप्तम स्थानमें मङ्गल रहनेसे माताके साथ बालक मर जाता है। लग्नमें शनि, षष्ठ स्थानमें चन्द्र और तृतीय स्थानमें बृहस्पति पड़नेसे बालक का मृत्यु अवश्यभावी है। जन्मलग्नके नवें स्थानमें रवि, सातवें शनि, ग्यारहवें बृहस्पति किंवा शुक्र भागसे एक मासके मध्य बच्चा चल बसता है। जन्मलग्नमें शनि एवं मङ्गल, द्वादश स्थानमें बुध और पञ्चम स्थानमें चन्द्र पड़नेसे बालक एक माससे अधिक नहीं चलता। लग्नमें शनि तथा मङ्गल, आठवें घरमें चन्द्र और छठे बृहस्पति पड़नेसे बालक का जीवन निष्फल होता है। किसी किसी ज्योतिर्विदके मतमें षष्ठम स्थानमें बृहस्पति रहनेसे भी ऐसा ही फल मिलता है। रवि और चन्द्र षष्ठ स्थानमें पड़नेसे बालक का मृत्यु अचिर ही आ जाता है। षष्ठम स्थानमें पापग्रह और द्वादश स्थानमें बुध रहनेसे फिर बालक नहीं जीता जागता। छठे या आठवें घरमें चन्द्र, सातवें मङ्गल और चौथे, सातवें या दशवें घरमें शनि रहनेसे एक महीनेके बीच ही पितामाताके साथ लड़का कालकवलित होता है। लग्नमें रवि, शुक्र तथा शनि और द्वादश राशि पर बृहस्पति पड़नेसे बच्चा ५ महीने बचता है। लग्नमें सूर्य, सप्तम स्थानमें मङ्गल और चतुर्थ, सप्तम किंवा दशम स्थानमें शनि आ जानेसे एक मासके मध्यमें ही बालक यमलोकयात्रा करता है। लग्नमें चन्द्र तथा शनि, द्वादश स्थानमें रवि एवं मङ्गल और जन्मलग्न पर शुभग्रहकी दृष्टि न पड़नेसे बालक का विनाश होता है। लग्नमें मङ्गल, द्वादश स्थानमें शनि और चतुर्थ स्थानमें राहु रहनेसे आठ महीनेके बीचमें बालक मर जाता है। इसकी छोड़ कर बृहज्जातक,

कोष्ठोसारावली, दीपिका आदि ग्रन्थोंमें भी नाना प्रकारके रिष्ट लिखे हैं। रिष्ट देखो।

राजमार्तण्डके मतमें—प्रश्निनी, मघा तथा मूला नक्षत्रोंके प्रथम तीन दण्ड और रेवती, अश्लेषा एवं ज्येष्ठा नक्षत्रोंके शेष पांच दण्ड गण्ड नामसे प्रसिद्ध हैं। ज्येष्ठा और मूला नक्षत्रोंके दिवस, मघा तथा अश्लेषा नक्षत्रोंकी रात्रि और रेवती एवं प्रश्निनी नक्षत्रोंकी उभय सम्भाषोंको गण्ड लगता है। जिस बालक वा बालिकाका जन्म गण्डयोगमें हो, उसे परित्याग कर देना अथवा छह मास अतीत होने पर उसका सुख देखना चाहिये। किसी किसी ज्योतिर्विदका कहना है—गण्डयोगकी दोषशान्तिके लिये दान एवं होम प्रभृति करके बच्चेको देखनेमें कोई बुराई नहीं। कोष्ठोसारावलीके मतमें प्रश्निनीके तीन, मघाके चार, मूलाके नौ, रेवतीके दो, ज्येष्ठाके ग्यारह और अश्लेषाके आठ दण्डोंका नाम गण्ड है। गण्ड, पिष्टरिष्ट, मादरिष्ट को रिष्टमत्र प्रभृति देखो।

पञ्चसरा बताती है—बालक का जन्म होते ही पहले योगज रिष्ट समुदायकी विचार करके देखना चाहिये। किन्तु चतुर्विंशति वयस्य अतीत न होनेसे आयुर्गणना करना अयोग्य है, क्योंकि चौबीस वर्षतक रिष्ट होनेकी सम्भावना रहती है। पताकीचक्र निष्कर्षण करके भी रिष्ट विचारना पड़ता है। पताकी देखो।

लग्न, राशि, तिथि, नक्षत्र, मास, पक्ष, योग प्रभृतिका फल तत्तत् जन्म और जन्मकालकी मेष प्रभृति राशिस्थित रवि आदि ग्रहोंका फल वह लग्नमें द्रष्टव्य है।

एक राशिचक्र खींचके उसमें जन्मकालीन ग्रहोंकी स्थापन करना चाहिये। फिर ग्रहोंका स्फुट बनाके शयनादि द्वादश भाव गिनते हैं। सङ्केतकौमुदीमें शयन प्रभृति द्वादश भाव गणना करनेका यह नियम है—जन्मकालकी जो ग्रह जिस नक्षत्रमें अवस्थिति करता, उस ग्रहकी उसी नक्षत्रसे पूरण करना चाहिये और यह ग्रह अक्षिष्ठित-राशिमें जिस नवांशमें अवस्थित हो, उसी नवांश परिमित ग्रह द्वारा पूर्वसंख्य ग्रहकी पुनर्वीर पूरण कर देना चाहिये। पीछे ग्रहोंका अपना अपना नक्षत्र इस ग्रहमें योग करके जन्मलग्नसंख्यक ग्रह और उदयावधि जात दण्ड उसमें मिलाते हैं। फिर

इन समस्त ग्रहोंकी १२से भाग करने पर जो अवशिष्ट रहेगा, उसी ग्रहके अनुसार द्वादश भावकी समझना पड़ेगा। १से शयन, २से उपवेशन, ३से नेत्रपाणि, ४से प्रकाशन, ५से गमनेच्छा, ६से गमन, ७से सभा वसति, ८से आगमन, ९से भोजन, १०से नृत्यल्लिप्सा, ११से कौतुक और १२से अवशिष्ट रहनेसे निद्राभाव समझा जाता है। रविके १६ विशाखा, चन्द्रके ३ कृत्तिका, मङ्गलके २० पूर्वाषाढा, बुधके २२ अश्लेषा, बृहस्पतिके ११ पूर्वफाल्गुनी, शुक्रके ८ पुष्या, शनिके २७ रेवती, राहुके ३ भरणी और केतुके ८ अश्लेषा नक्षत्र जन्मनक्षत्रोंके नामसे विख्यात हैं। इस विषयमें ज्योतिर्विदोंका नामाप्रकार मतभेद लक्षित होता है। उसमें सङ्केतकौमुदीका मत अच्छा समझ पढ़नेसे नीचे लिखा जाता है—

प्रथम शुभ और अशुभ ग्रहोंका बलाबल निर्णय करना आवश्यक है। यह स्वकीय अवस्थानमें रहनेसे अतिशय बलवान् होते हैं।

भावोंका फल इस प्रकार है—जन्मकालकी रवि शयनभाव पर रहनेसे जात व्यक्ति मन्दान्नि, पित्तशूल और गोद (मस्तक) तथा गुच्छदेशके रोगसे पीड़ित होता है। उपवेशनभावमें सूर्य आनेसे जातव्यक्ति शिल्पकर्मकारी, श्यामवर्ण, उत्तम विद्यारहित, दुःखयुक्त और परसेवानिरत रहता है। रवि नेत्रपाणिभावमें रहने लग्नके पञ्चम, नवम, दशम वा सप्तम स्थानकी जानेसे मनुष्य सर्वसुखयुक्त होता है। इसके सिवा अन्य स्थानमें रहनेसे क्रूरप्रकृति और जलदोष रोगयुक्त निकलता है। इसी प्रकार रविके द्वातीय भावका फल चक्षुरोग, अतिशय क्रोध, परहेष, पुण्य कर्मानुष्ठान और धन है। त्रैतीय भावका फल दानशक्ति, भोजनशक्ति, राजतुल्य सम्मान, पुत्रलाभ और विपुल धन कहा है। पञ्चम भावमें निद्राभिलाष, क्रोध, क्रूरप्रकृति, कुबुद्धि, दान्धिकता, क्षपणता और परदारकी अभिरुचि होती है। छठे भावका फल प्रथम स्त्री तथा प्रथम पुत्रका विनाश, विदेशवास और पादरोग है। सातवें भावमें दया, सम्मान, विद्या और विनय आता है। रविके अष्टम भावमें पढ़नेसे मूर्खता, मिथ्याकथा, कुक्षित विद्या,

निर्दयता और परनिन्दा होती है। नवम भावका फल दान्धिकता, मांसलोभ, सदाचार और पाण्डित्य आता है। दशवें भावका फल कर्णरोग, नागा विद्या, राजपूजा और पाण्डित्य है। एकादश भावमें रविके जानेसे उत्साह, दानशक्ति, भोजनशक्ति, और शिल्पकर्मका अनुष्ठान होता है। रविके द्वादश भावका फल अधिक निद्रा, व्याधि, प्रवास, चक्षुरक्तवर्ण, क्रोध और परनिन्दा है।

दूसरे ग्रहोंका भावफल 'भावफल' शब्दमें द्रष्टव्य है।

अपर ज्योतिर्विदोंने ग्रहोंके छह भाव निर्देश किये हैं—१ लज्जित, २ गर्वित, ३ क्षुधित, ४ दूषित, ५ सुदित और ६ चोभित।

जो ग्रह रवि किंवा मङ्गल अथवा शनिके साथ एक राशिमें अथवा लग्नसे पञ्चम स्थानमें राहुके साथ मिलित हो अवस्थिति करता, उसका नाम लज्जित पड़ता है। स्त्रीय तुल्यस्थान अथवा स्त्रीय मूलत्रिकोणमें रहनेवाला ग्रह गर्वित कहा जाता है।

शत्रुसे मिलकर जो रिपुके गृहमें जा पड़ता और रिपु उसकी देखता रहता, उसको दैवग्रह क्षुधित कहते हैं। शनिके साथ एक राशिमें अवस्थान करनेवाले ग्रहका भी नाम क्षुधित है।

जलराशि अथात् कर्कट, वृश्चिक वा मीनराशिमें रहनेवाला और रिपुग्रह दृष्टियुक्त तथा शुभग्रह दृष्टि-विहीन ग्रह दूषित होता है।

जो ग्रह मित्रके साथ मित्रगृहमें अवस्थान करता और अपने पर मित्रग्रहकी दृष्टि रखता, वह सुदित ठहरता है। बृहस्पतिके साथ एक राशिमें अवस्थित ग्रह भी सुदित ही है।

जो ग्रह रविके साथ एक राशिमें पड़ता और अपने पर पापग्रह तथा शत्रुकी दृष्टि नहीं रखता, उसका नाम चोभित पड़ता है।

लज्जित आदि छह भावोंका फल इस प्रकार है—जिसके लग्नसे दशम स्थानमें लज्जित, दूषित, क्षुधित अथवा चोभित ग्रह पड़ जाता, वह व्यक्ति दुःख उठाता है। लग्नके पञ्चम स्थानमें कोई लज्जित ग्रह रहनेसे मनुष्यके सब सन्तानोंमें एकही बचता है। लग्नसे सप्तम स्थानमें कोई क्षुधित अथवा चोभित ग्रह आनेसे स्त्रीका विनाश होता है।

दैवज्ञवक्त्रभामें ग्रहोंके १० भाग उक्त हुये हैं—१ दीप्त, २ दीन, ३ सुख, ४ सुदित, ५ सुप्त, ६ प्रपीडित, ७ सुषित, ८ हीनवीर्य, ९ प्रवृद्धवीर्य और १० अधिक-वीर्य। स्त्रीय उच्च स्थानमें अवस्थित दीप्त तथा नीचस्थानमें स्थित दीन, स्त्रीय गृहस्थ सुख, शत्रु गृहस्थ सुप्त, ग्रहयुद्धमें पराजित प्रपीडित और अस्तगत ग्रह सुषित होता है। अपने नीच गृहके अभिमुख गमन करने-वाला परिहीनवीर्य, स्त्रीय उच्च गृहकी ओर चलनेवाला प्रवृद्धवीर्य और शुभगृहके षड्वर्गमें अवस्थित ग्रह अधिक-वीर्य कहलाता है।

ग्रहोंके उक्त १० भावोंका फल इस प्रकार है—ग्रहोंके दीप्तभावमें उत्तम कार्यसिद्धि, दीनभावमें दीनता, सुखभावमें धन, लक्ष्मी, कीर्ति तथा सुखलाभ, सुदितभावमें आमोद एवं वाञ्छित फलप्राप्ति, सुप्तभावमें विपद्, पीडितभावमें शत्रु पीड़ा, सुषितभावमें अर्थ-क्षय, हीनवीर्यमें वीर्यहानि, प्रवृद्धवीर्यमें हस्ती, अश्व, रत्न तथा भूमिलाभ और अधिकवीर्य भावमें राजसदृश सम्पद पाते हैं। सारावली प्रभृति दूसरे दूसरे ग्रन्थोंमें अन्यप्रकार भावोंका उल्लेख है। परन्तु उनका आदर भारतवर्षमें अधिक नहीं है।

जिस लग्नमें जन्म होता, उसको प्रथम स्थान मान-के गणना करना पड़ता है। दीपिकाकार श्रीनिवासने इन सभी स्थानोंको तन्वादि भावों-जैसा लिखा है। उन-के मतमें प्रथम स्थान अर्थात् जन्मलग्न तनुभाव वा तनु-स्थान, द्वितीय धनस्थान, तृतीय सञ्जोदरस्थान, चतुर्थ बन्धुस्थान, पञ्चम पुत्रस्थान, षष्ठ रिपुस्थान, सप्तम भार्या-स्थान, अष्टम मृत्युस्थान, नवम धर्मस्थान, दशम कर्म-स्थान, एकादश आयस्थान और द्वादश व्ययस्थान है।

प्रथम स्थानमें शक्ति, शरीर भला बुरा और मङ्गल-चिन्ता करना चाहिये। इसी प्रकार द्वितीयस्थानमें धन तथा कुटुम्बका विषय चिन्तनीय है। तृतीयस्थानमें विक्रम, सञ्जोदर एवं युद्धका विषय, चतुर्थस्थानमें बन्धु, वाहन, सुख तथा गृहका विषय, पञ्चम स्थानमें बुद्धि, मन्त्रणा एवं पुत्रका विषय, षष्ठ स्थानमें क्षत तथा शत्रुका विषय और सप्तम स्थानमें काम, स्त्री एवं पथका विषय चिन्ता करते हैं। अष्टम स्थानमें आयु, अपवाद वा

पापका विषय, नवम स्थानमें तपस्सा, दशम स्थानमें सम्मान, आज्ञा तथा कर्मका विषय, एकादश स्थानमें प्राप्ति एवं आय और द्वादश स्थानमें मन्त्री तथा व्ययकी चिन्ता की जाती है।

प्रथम स्थानसे द्वादश स्थान पर्यन्त जो समस्त चिन्तायें उक्त हुई हैं, उनका फलाफल निर्णय करते समय भावापन्न राशियों और उनके अधिपति ग्रहोंका वर्ण, भाजति, खर्वता, दीर्घता आदि स्थिर करके ग्रहों और राशियोंका बलाबल देख और यह विवेचना करके कि यह कक्षातक फल दे सकता है—फल लगाना पड़ेगा। उक्त स्थानोंके ग्रह यदि शुभग्रह वा स्थानके अधिपति ग्रहसे युक्त वा दृष्ट होते, तो अधिक फल देते हैं। किन्तु उनसे पापग्रहकडँक दृष्ट वा युक्त होने और स्थानके अधिपति ग्रहकी दृष्टि न पड़नेसे फलकी हानि होती है। तनु प्रभृति जो द्वादश भाव उक्त हुए हैं, तत्तत्-भावापन्न ग्रहोंकी स्फुट गणना व्यतीत फलाफल स्थिर किया नहीं जाता। इसीसे स्फुट करके भावफल विवेचना करना पड़ता है। सिवा इसके दशा, प्रत्यन्तर्दशा और उनका फलाफल भी कोष्ठीमें लिखनेका नियम है।

रवि प्रभृति शब्द देखो।

योगिनी, वार्षिकी, नाक्षत्रिकी, लग्निकी, सुकुन्दा, विंशोत्तरा, त्रिंशोत्तरा, पताकी, हरगौरी और दिन-दशा—१० दशायें ज्योतिःशास्त्रमें निरूपित हुई हैं। कलिकालमें केवल नाक्षत्रिकी दशाके अनुसार ही फल मिलता है। इसीसे जन्मपत्रीमें नाक्षत्रिकी दशाही लिखी जाती है। यह नाक्षत्रिकी दशा अष्टोत्तरी, विंशोत्तरी और त्रिंशोत्तरी तीन रीतियोंसे गणना करते हैं। अष्टो-त्तरीके मतमें केतुको दशा नहीं लगती। परन्तु विंशो-त्तरी और त्रिंशोत्तरामें उसे भी रख लेते हैं। दशा शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। कोष्ठीमें एक जातचक्र अङ्कित करना पड़ता है। उसको प्रणाली इस प्रकार है—जातककी एक प्रतिमूर्ति बना उसके मस्तक प्रभृति प्रत्येक चक्रमें २० नक्षत्र स्थापन करना चाहिये। जन्मकालकी जिस नक्षत्रमें रवि होगा, उससे तीन नक्षत्र मस्तकमें और तत्परवर्ती तीन नक्षत्र मुखमें रखना पड़ते हैं। इसी प्रकार स्कन्धोंमें २, बाहुओंमें २, करतलोंमें २, वक्षःस्थल

में ५, नाभिमें १, गुह्यदेशमें १, जानुवर्गमें ६ और पाद-
तलमें ४ नक्षत्र रखे जाते हैं। इस प्रकार नक्षत्र
स्थापन करनेमें जिस अङ्ग पर जन्मनक्षत्र पड़ता, उसीके
अनुसार आयु: और अंतर फलाफल जाना जा सकता है।

जन्मनक्षत्र जातचक्रके चरणमें लगनेसे अल्पायुः,
जानुमें भ्रमण, गुह्यदेशमें परदारिक, नाभिमें अल्पधन,
हृदयमें प्रचुर धनलाभ, हस्तमें चौर, बाहुमें दुःख,
स्कन्धमें भोग, मुखमें धार्मिक और मस्तकमें पढ़नेसे
मनुष्य राजा होता है। जिसका जन्मनक्षत्र जातचक्रके
मस्तक पर देख पड़ेगा, वह व्यक्ति एकशत वत्सर
जीवित रहेगा। इसी प्रकार स्कन्धमें ८०, हृदयमें ८५,
हस्तमें ७०, बाहु तथा गुह्यदेशमें ६६ और जानुमें पढ़ने-
से ५० वत्सर जीवित रहेगा। जातकाभरणकार कुशिल-
राजने जातचक्रकी डिम्बचक्र जैसा लिखा है। उनके
मतमें फलका भी व्यतिक्रम देख पड़ता है। इसके सिवा
प्रत्येक घटका अष्टवर्ग और महाष्टवर्ग भी गणना करके
कोठीमें लिखते हैं। उसकी प्रणाली महाष्टवर्गमें द्रष्टव्य है।
ग्रहोंकी स्थितिके अनुसार जारजयोग, राजयोग, नाभस-
योग, चन्द्रप्रभायोग, क्षेत्रसिंहासनयोग, निशाग्रयोग,
धनवानयोग, जीवयोग, चतुःसागरायोग, सिंहासनयोग,
कनकदण्डयोग, राजहंसयोग, दारिद्र्ययोग, तीर्थमर-
योग, वंशनाशयोग, हृदयोग, फणिसुखयोग, काक-
योग, व्याघ्रतुण्डयोग, कुताग्रयोग, केमदुमयोग,
सकाटीयोग और श्रीयोग प्रभृति कई एक योग ब्रुवा
करते हैं। उनका फलाफल योग शब्द और आयुगणना-प्रणाली पर
आयुः शब्दमें देखो। केतुपताकी, केतुकुण्डली और गुरु-
कुण्डली—तीनों मतोंसे यदि पापघटका वर्ष आता,
तो वह त्रिपाप वत्सर कहलाता है। यह समझनेके
लिये कोठीमें एक त्रिपापचक्र खींचना पड़ता है।

त्रिपाप देखो।

पूर्वाक्त गणनाके अनुसार वर्षके अधिपति रवि
श्रद्धति ग्रहोंका फल खनाने इस प्रकार कहा है—

‘रवि वत्सरका शुभफल शिरःशूलज्वर होय।

भयन जरे मागुस मरे विघ्न सकल निग कोय ॥

बुध वत्सरकी आवर्ते मनष मरण हो जात।

पीडा बनिता पुत्रकी रोग शोक अधिकत ॥

अनघिता लागो रहे अघंछानि बुध दैत।

शनि मङ्गल समदूत हैं करते सदा अघैत ॥

यह वरकी हैं फलकते और करे’ उत्तपात।

राजा सब हरि शैत हैं सत्य खनाकी बात ॥

राहु वर्ष बेकी पके माना दुःख दिखत।

सुखकी नाम न रहतु है मनुज बहुत बिलखात ॥

शनिवत्सर नहि’ भोगसुख बन्धुबिद्यो नपार।

रोग शोक बादन बहुत ऊपर फटत पहार ॥’

त्रिपाप वत्सर यदि सप्तशून्य पड़ता, तो मनुष्य उसी
वत्सर मरा करता है। इसीसे जन्मपत्रोंमें एक सप्तशून्य-
चक्र खींच लेते हैं। सप्तशून्यचक्रसे अनायास सप्तशून्य
वर्ष निकाला जा सकता है। सप्तशून्य देखो।

खनाके मतमें आयुगणना इस प्रकार होती है—

‘एक ऊन करि दून शक गुनि तिथि वार नक्षत्र।

अष्टोत्तरशतहरण कर शेष आयुको पत्र ॥’

जन्मकालीन ग्रहोंका स्फूट करके तनु प्रभृति हादश
भाव ठहराना पड़ते हैं। भावसाधन देखो।

ग्रहस्फूट और भावसाधन करके जिस प्रकार जन्म-
कुण्डली खींचना पड़ती, उसका उदाहरण स्वरूप एक
चक्र नीचे दिया जाता है।

उप १ च०	मेघ १२ च०	मीन ८ च० शनि १ च० चन्द्र १२ च०
लप मिथ न १० च० ३६ च०		कुम्भ ८ च०
०.५ ११ १५ केतु ११ च०		मकर १२ च० राहु १२ च० श्रद्धति १२ च०
०.५ ११ १५		शनि १० च० रवि १० च० बुध ११ च० शुक्र ११ च०
०.५ ११ १५	०.५ ११ १५	०.५ ११ १५

१८०० शकाब्दके पौष मासकी सूर्यके १० अंश कीर्तने पर दिवा अपराह्न ५ वज्र कर १० मिनट पर जिसका जन्म हुआ, उसीकी यह जन्मकुण्डली है।

जन्मकालकी मिथुनके १० अंश ३६ कला तक लग्नका तनुभाव है। उसके आगे कर्कटके १२ अंश पर्यन्त द्वितीय धनभाव है। उसके पीछे सिंहके ८ अंश पर्यन्त तृतीय सौंदर्यभाव है। इसी प्रकार कन्याके ८ अंश पर्यन्त चतुर्थ बन्धुभाव होता है। तुलाके १२ अंश पर्यन्त पञ्चम पुत्रभाव है। वृश्चिकके १६ अंश तक छठा रिपुभाव है। धनुके १० अंश ३६ कला सातवां जाया भाव आता है। मकरके १२ अंश पर्यन्त अष्टम निधन भाव रहता है। कुम्भके ८ अंश तक नवम धर्मभाव, मीनके ८ अंश पर्यन्त दशम कर्मभाव, मेषके १२ अंश तक ग्यारहवां आयुभाव और वृषके ६ अंश पर्यन्त द्वादश व्ययभाव है।

जन्मकालकी रवि धनुःराशिके १० अंश पर अवस्थित है। इसी प्रकार चन्द्र मीनराशिके १६ अंश, मङ्गल वृश्चिकराशिके १२ अंश, बुध धनुःराशिके १ अंश वृहस्पति मकर राशिके १८ अंश, शुक्र धनुराशिके २५ अंश, शनि मीनराशिके ३ अंश, राहु मकरराशिके १५ अंश और केतु कर्कटराशिके १५ अंश पर पड़ा है। इन सभी ग्रहोंकी स्थितिके अनुसार भावोंका फल विचारना पड़ता है।

बहुकालसे भारतमें जन्मपत्रिका लिखनेका नियम प्रचलित है। भृगुसंहितामें राम कृष्ण प्रभृतिकी कोठी भी देखा पड़ती है। भारतीयोंका विश्वास है कि ग्रह-गण देवता मानवजन्मसे मृत्यु पर्यन्त किसी न किसी एक ग्रहके अधिकारमें अवस्थित करते हैं। ग्रह ही मानवके शुभाशुभ फलोंका कारण हैं। ग्रह मन्द होनेसे लक्ष्मी, पुत्र, राज्य, ऐश्वर्य प्रभृति सभी विनष्ट हो सकता है। फिर शुभग्रह मानवके सकल प्रकार सुखके कारण हैं; यहां तक कि वह ससागरा पृथिवीका आधिपत्य भी दे सकते हैं।

भारतीयोंकी भांति मुसलमानों, यज्ञदियों आदिमें भी बहुकालसे जन्मपत्रिका आदर चला आता है। युरोपियोंमें भी कोई कोई जन्मकोठी प्रसृत किया करता

है। फिर कोई कोई वैज्ञानिक जन्मपत्रों पर कुछ भी विश्वास नहीं रखता। उनका कहना है—ग्रहोंका अवस्थान जातकग्रन्थोंमें जिस प्रकार निर्णीत हुआ है, ठीक नहीं पड़ता; सुतरां उस पर निर्भर करके मान-वका शुभाशुभ कुछ भी ठीक किया जा नहीं सकता। जातक और ज्योतिष शब्दमें विसारित विवरण देखो।

युरोपीय जिस प्रकारकी जन्मपत्रों बनाते, उसमें भी १२ प्रकोष्ठ दिखाते हैं। परन्तु वह भारतकी अष्टित कुण्डलीसे कुछ भिन्न रहती है।

भारतमें बहुत दिनसे जन्मकोठीका पाटन है। इतना कि किसीकी जन्मपत्रों न रहनेसे नष्टकोठीका उच्चार भी हुआ करता है।

वराहमिहिरके बृहज्जातकमें नष्टजातकके उच्चार सम्बन्ध पर लिखा गया है—

जिसके जन्मकालका निश्चय नहीं, प्रश्नलग्नसे उसका जन्मसमय ठीक करना पड़ता है। लग्नकी प्रथम होरामें प्रश्न होनेसे उत्तरायण अर्थात् माघादि पञ्चास और द्वितीय होरामें श्रावणादि छह महीनोंके बीच जन्म निश्चय करना चाहिये। प्रश्नलग्नकी तीन भाग करके देखते हैं—किस द्रेकाणमें प्रश्न किया गया है। प्रथम द्रेकाणमें वृहस्पति प्रश्नलग्न पर, द्वितीय द्रेकाणमें प्रश्नलग्नसे पञ्चम स्थान और तृतीय द्रेकाणमें प्रश्न होनेसे जन्मकालकी प्रश्नलग्नसे नवम स्थान पर वृहस्पतिका अवस्थान समझना चाहिये। प्रश्नलग्नसे जिस स्थान पर वृहस्पति वर्तमान रहते, उसी स्थान तक गिननेसे राशि आनेवाले संख्यक] वस्तर प्रश्नकर्ताके वयसके अतीत माने जाते हैं।

लग्नके प्रथम द्वादशांशमें प्रश्न होनेसे जन्मलग्नमें वृहस्पतिका अवस्थान ठहरता है। इसी प्रकार द्वितीय द्वादशांशमें दूसरे और तृतीयादिमें होनेसे तृतीयादि स्थानोंमें वृहस्पतिका अवस्थान समझते हैं। प्रश्नकर्ताका आकार देखके अनुमानसे वयस स्थिर करना चाहिये। पूर्वानुसार वृहस्पतिकी स्थिति निर्णय करके उसी राशिसे वर्तमानकी वृहस्पति जिस स्थान पर रहते, वहां तक गिनके जितनी संख्या आती, प्रश्नकर्ताके वयसके उतने ही वर्ष ठहरते हैं। किन्तु प्रश्नकर्ताका वयस अनुमानमें

१२से २४ वर्षके बीच रहने पर निरूपित चक्षुमें १२ मिलाके वयस निर्णय करना चाहिये। २४ वत्सरसे अधिक ३६ वत्सरके मध्य वयस अनुमित होने पर २४ मिला देते हैं। इसी प्रकार जितना ही अधिक वयस समझ पड़े, १२के हिसाबसे बढ़ाते जाना चाहिये। १२० वर्षसे अधिक होने पर गणना करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। यदि प्रश्न लग्नमें रवि रहे या रविके द्रेकाणमें प्रश्न हो, तो प्रीष्ण ऋतुका जन्म स्थिर करते हैं। इसी प्रकार शनिसे शिशिर, शुक्रसे वसन्त, मङ्गलसे ग्रीष्म, चन्द्रसे वर्षा, बुधसे शरत् और बृहस्पतिसे हेमन्त ऋतु निकलता है। दो या उससे अधिक ग्रह लग्नमें रहनेसे जो ग्रह बलवान् हो, उसीसे ऋतु निर्णय करना चाहिये। लग्नमें एक भी ग्रह न रहनेसे द्रेकाणके अनुसार ऋतु निकाला जाता है।

यदि अयन और ऋतु परस्पर विरुद्ध हों अर्थात् प्रथम होरामें प्रश्न होनेसे उत्तरायण—किन्तु प्रश्नलग्नमें बुध रहनेसे शरत् समझ पड़े, तो ऐसे स्थल पर परिवर्तन कर लेना चाहिये। अर्थात् चन्द्र, बुध तथा बृहस्पतिकी जगह पर शुक्र, मङ्गल एवं शनिकी ग्रहण करते हैं। गणना ऐसी लगाना चाहिये, जिसमें अयन और ऋतुका विरोध न पड़े।

ऋतुके पीछे मास ठीक करते हैं। लग्नके प्रथम द्रेकाणमें ऋतुका पहला मास, द्वितीय द्रेकाणमें दूसरा और तृतीय द्रेकाणमें ऋतुका पहला मास मान लेते हैं। मास और तिथिकी गणनामें सर्वत्र सौरमास ग्रहण करना चाहिये। प्रत्येक लग्नमें १८०० कलायें और उसके एक एक द्रेकाणमें ६०० कलायें होती हैं। प्रथम ३०० कलायोंके मध्य प्रश्न होनेसे ऋतुके पहले मास और ३०० कलायोंके पीछे ६०० कलायोंके बीच प्रश्न किया जानेसे ऋतुके दूसरे महीनेका जन्म माना जाता है। उक्त ३०० कलायोंकी दश दश कलायोंमें एक एक तिथि लगाते हैं। प्रथम १० कलायोंमें प्रश्न होनेसे प्रतिपत्, उसके बाद १० कलायोंमें द्वितीया ठहरती है। इसी प्रकार यथाक्रम तिथि निर्णय करना चाहिये।

मनित्यके मतानुसार प्रश्नकालका लग्न दिव्य होनेसे रात्रिकाल और रात्रिसंज्ञक रहनेसे दिवाभागकी प्रश्नकर्ताका जन्म ठहरता है।

अन्य-प्रकार नियम भी है, यथा—ऊर्त्तिका तथा रोहिणी नक्षत्रमें कार्तिक, मृगशिरा एवं चार्दा में अश्वहायण, पुनर्वसु तथा पुष्यामें पौष, अश्लेषा एवं मघामें माघ, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी तथा ज्येष्ठामें कार्तिक, चित्रा एवं स्वातीमें चैत्र, विशाखा तथा अतुराधामें वैशाख, ज्येष्ठा एवं मूला में ज्येष्ठ, पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढामें आषाढ़, श्रवणा एवं धनिष्ठामें श्रावण, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद तथा उत्तरभाद्रपदमें भाद्र और रेवती एवं आश्लेयी नक्षत्रमें प्रश्न होनेसे आश्विन मासका जन्म समझना चाहिये।

मेघके नवम नवांश अवधि वर्षके सप्तम नवांश पर्यन्त किसी राशिके नवांशमें उक्त नवांशस्थित चन्द्र होनेसे कार्तिक, वर्षके अष्टम नवांशसे मिथुनके षष्ठ नवांश पर्यन्त अश्वहायण, मिथुनके सातवें नवांशसे कर्कटके पांचवें नवांश तक पौष, कर्कटके षष्ठ नवांशसे सिंहके चतुर्थ नवांश पर्यन्त माघ, सिंहके पञ्चम नवांशसे कन्याके सप्तम नवांश पर्यन्त फाल्गुन, कन्याके आठवें नवांशसे तुलाके छठे नवांश तक चैत्र, तुलाके सातवें नवांशसे वृश्चिकके पांचवें नवांश तक वैशाख, वृश्चिकके छठे नवांशसे धनुःके चौथे नवांश तक ज्येष्ठ, धनुःके पञ्चम नवांशसे मकरके तृतीय नवांश पर्यन्त आषाढ़, मकरके चतुर्थ नवांशसे कुम्भके द्वितीय नवांश पर्यन्त श्रावण, कुम्भके तीसरे नवांशसे मीनके पांचवें नवांश तक भाद्र और मीनके छठे नवांशसे मेघके आठवें नवांश तक आश्विन मास लगाया जाता है। इस गणनामें शुक्ल प्रतिपदसे मास ग्रहण करना चाहिये। यवनेश्वरका कहना है—प्रश्नकालकी चन्द्र जिस राशिके अवस्थित होगा, उतना संख्यक नवांश उसी राशिके जिस नक्षत्रका जो पाद सम्भव होगा, उसी नक्षत्रमें जो मास होगा, प्रश्नकर्ताका वही जन्ममास समझा जायेगा। जैसे प्रश्नकालकी मेघका पञ्चम नवांश मिलनेसे नवांशचक्रमें सिंह पर चन्द्रकी स्थिति और सिंहके पञ्चम पादमें पूर्वफल्गुनीका प्रथमपाद हो, इसमें पूर्वफल्गुनी नक्षत्रमें फाल्गुन मास होनेसे, वही प्रश्नकर्ताका जन्ममास ठहरा।

प्रश्न लग्न, तत्पश्चम और उसका नवम-दन

तीन राशियाँ के मध्य जो राशि अधिक बलवान् रहता, वही प्रश्नकर्ता का जन्मराशि ठहरता है। अथवा प्रश्न काल की प्रश्नकर्ता को चक्र स्पष्ट करता रहेगा, उससे कालपुरुष के चक्रविभाग पर पड़नेवाली राशि में उसका जन्म ठहरेगा। किंवा प्रश्नकाल को लग्न से जिस राशि पर चन्द्र होगा, उसी चन्द्रगमन राशि की राशिगणना का उतना संख्यक राशि जन्मराशि ठहरेगा। जैसे—मीन लग्न में प्रश्न होने से मीनराशि आता है। ऐसे ही दो तीन तरह गणना करने से यदि एक राशि न हो, तो उस समय जिस किसी जीवका देखते या जिसका स्वर सुनते, उसी प्राणी के अनुसार जन्मराशि स्थिर करते हैं। अर्थात् मछिवादि स्थल पर वृषराशि और हागादि स्थल पर मेषराशि इत्यादि ठहराते हैं।

प्रश्न लग्न में जो ग्रह हो, उसी ग्रह के स्फुट राश्यादि को अंश करके उसके अंश में मिला देना चाहिये। इस ग्रह समष्टि की द्वादशाङ्गुल-परिमित शङ्कु की छाया में अङ्गुलि संख्या द्वारा पूरण करके जो आवेगा, उसमें १२ से भाग लगाया जायेगा। इसमें जो बाकी बचता, मेष से उतना ही संख्यक राशि प्रश्नकर्ता का जन्मलग्न ठहरता है। लग्न में दो तीन या अधिक ग्रह रहने से जो ग्रह बलवान् होता, वही रखा जाता है। अथवा प्रश्नकाल की जो नवांश आता, वही राशि प्रश्नकर्ता का जन्मलग्न कहलाता है।

नक्षत्रादि प्रश्नकालीन लग्नस्फुट के राश्यादि कला करके कला के साथ जोड़ देना चाहिये। फिर उसी युक्ताङ्ग की राशिगुणक द्वारा गुण करते हैं। प्रश्नलग्न में ग्रह रहने पर राशिगुणक से गुण न करके ग्रह गुणक से गुण किया जाता है। राशिगुणक ऐसा होता है—मेषका ७, वृषका १०, मिथुनका ८, कर्कटका ४, सिंहका १०, कन्याका ५, तुलाका ७, वृश्चिकका ८, धनुःका ८, मकरका ५, कुम्भका ११ और मीनका १२। ग्रहगुणक यह है—रवि, चन्द्र, बुध और शनिका ५, मङ्गलका ८, बृहस्पतिका १० और शुक्रका ७। लग्न में दो वा अधिक ग्रह रहने से जो जो ग्रह लग्न में होते, उनका गुणकाङ्ग मिला दिया जाता है। फिर जो योगफल आता है, उससे उतने की ही गुण किया करते हैं।

भट्टाचार्य के मतानुसार प्रथम द्रेकाघमें प्रश्न होने से ८ और द्वितीय द्रेकाघमें ८ वियोग करना पड़ता है, तृतीय द्रेकाघमें योग वियोग कुछ भी नहीं होता। गृहीत चक्र की २७ से भाग करके जो भागशेष आता, उसके द्वारा नक्षत्र निर्णय किया जाता है। जैसे—१ से अश्विनी और २ से भरणी इत्यादि। इस प्रकार निकलनेवाला नक्षत्र ही जन्मनक्षत्र ठहरता है।

प्रश्नकर्ता यदि अपने लिये प्रश्न न करके पत्नी, भ्राता, पुत्र अथवा शत्रु के जन्मकाल की पूछता हो, तो पत्नी के नष्टजातक के प्रश्नकाल की प्रश्नलग्नका सप्तम राशि, भ्राता का तृतीय राशि, पुत्र का पञ्चम राशि और शत्रु का षष्ठ राशि एवं उन्हीं उन्हीं राशिस्थ ग्रहों को लेकर पूर्ववत् गणना करना चाहिये।

कोष्ठीगणक (सं० पु०) ज्योतिर्विद्, जन्मपत्री बनानेवाला।

कोष्ठीगणना (सं० स्त्री०) जन्मकालीन ग्रहों का स्फुट और लग्नादिके गणितानुसार स्थिरीकरण, जन्मपत्री बनाने की रीति।

कोष्ठेष्ट (सं० पु०) खेतेष्ट, सफेद जख।

कोष्ण (सं० स्त्री०) ईषदुष्णम्, कु-उष्ण कोः कादेशः। १ ईषदुष्ण, थोड़ी गर्मी। (त्रि०) ईषदुष्णविशिष्ट, थोड़ा गर्म, गुनगुना। (२४ १।८८)

कोस (हिं० पु०) क्रोश, २ मील। पहले यह ४००० या ८००० हाथका भी माना जाता था।

कोसगी—१ हैदराबाद-राज्य के अन्तर्गत गुलबर्ग जिलामें सत्तारजङ्ग घराने के अधीन कोसगी राज्य का प्रधान शहर। यह अक्षा० १६° ५८' ७०" और देशा० ७७° ४३' पू० में अवस्थित है। यहां की जनसंख्या प्रायः ८ हजार है। इस शहरमें एक पोषाशाला, एक पुलिस स्टेशन और एक विद्यालय है। ये सब राज्य से ही रहित हैं। रेशमी और सूती साड़ी यहां विशेष परिमाणमें प्रस्तुत होती हैं। लगभग १५०० कारवे चलते हैं।

२ मन्द्राज के अन्तर्गत विंकारि जिला के पदोनी तालुक का एक शहर। यह अक्षा० १५° ५१' ३०" और देशा० ७७° १५' पू० पर मन्द्राज रेलवे लाइन के उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहां की जनसंख्या प्रायः ८ हजार है। यह

शहर एक पहाड़ीके निकट बनाया गया है। जिसकी ऊँचाई लगभग ४००।५०० फीट है। यह शहर कोटी २ पहाड़ियोंसे घिरा हुआ है जो देखनेमें बहुत सुन्दर लगते हैं। उन पहाड़ियोंमेंसे एक जो कोसगी स्टेशनसे ३ मील दक्षिण है, हिन्दुस्तानके दक्षिणभागमें सबसे सुन्दर है। इस शहरमें चमड़ा रंगा जाता है और साधारण सूती कपड़े बुने जाते हैं, जिन्हें उसी जिलाकी स्त्रियां पहनती हैं। यहां १८७७ और १८८१ ई०में भीषण अकाल पड़ा था। जिसमें सेकड़े २७ मनुष्य १८७१ ई०की अपेक्षा घट गये थे। परन्तु फिर मनुष्योंकी संख्या बढ़ती गई और आजकल यह एक प्रभावशाली स्थान हो गया है।

कोसना (हि० क्रि०) अभिषाप देना, गाँधी दे दे कर बुरा मनाना।

कोसम (हि० पु०) कोशाम्, एक पेड़। यह पञ्जाब मध्यभारत और मद्राजमें बहुत उपजता है। इसकी पत्तियां हर साल झड़ जाती हैं। कोसमकी भीतरी लकड़ी काल भूरी, कड़ी और पोखी रहती, घर बनाने में लगती है। उससे खेती आदिके यन्त्र भा बनते हैं। कोसम एक बड़ा पेड़ है और इसमें लाख बहुत अच्छी आता है। कोशाम् देखा।

कोसल—भारतवर्षके कई एक विस्तृत जनपद या देश।

“यसु सनरथ कोसलपुर राजा।” (तुलसी)

रामायणमें जिस कोसलराज्यका उल्लेख है, उससे वर्तमान अवध प्रदेशका ही बोध होता था—

“कीसकी नाम तद्वितः कोतो जनपदो महान्।

निविष्टः सरद्वतीरे प्रभूत-धनः शाल्यवान्॥

अयोध्या नाम नगरी, तमासीकोकविश्रुता।” (भा० ५। ६)

रामायणमें दूसरे किसी कोशलराज्यका उल्लेख नहीं है। उक्त कोशलका छोड़ कर महाभारतमें दूसरा कोई पूर्वकाशल भी लिखा है—

“दक्षिणात् ये च पाञ्चालाः पूर्वाः कुन्तिपु कोशलः।” (उभा ११ च०)

महाभारत और कालिदासके रघुवंशमें पूर्वाञ्चल कोशल वा अयोध्याराज्य “उत्तर कोशल” नामसे वर्णित हुआ है—

“ततो गोपालकचं च सोत्तरानपि कोशलान्।” (उभा २८ च०)

“आकुलस्यस्य सत उन्नतियाः शाल्यं दधन्, परकोशलिकाः।”

(रघुवंश ६। ६१)

महाभारत और रघुवंशमें उत्तरकोशलका उल्लेख देखनेसे समझ पड़ता, कि उस समय दक्षिणकोशल नामका भी कोई राज्य रहा। किन्तु महाभारतादि प्राचीन ग्रन्थोंमें “दक्षिणकोशल” शब्द स्पष्ट नहीं लिखा है। महाभारतमें जिस पूर्वकोशलका उल्लेख है, वही दक्षिणकोशल-जैसा मालूम पड़ता है।

सभाषर्वके ३०वें अध्यायमें लिखा है—

“कोसलाधिपतिं चैव तथा मेघातटाधिपम्।

कान्तारकां च समरे तथा प्राक्कोशलाद्रूपाम्॥”

(सहदेवने दक्षिणदिक् जा प्रवन्ति प्रवृत्ति देशीय वीरोंको जय करके) कोसलाधिपति, मेघानदी-तीरवर्ती नरपति, कान्तारक और पूर्वकोसलराज्यके राजाओंको समरमें पराजय किया।

सहदेवने जो कोशल जीता, वही दक्षिणकोशल होगा। महाराज समुद्रगुप्तका खोदित शिलालेखमें* महाकान्तार और केरलराज्यके साथ कासलाधिप महेंद्रका उल्लेख है। यही दक्षिणकोशल गुप्तवंशीय राजाओंकी प्रदत्त शिलालेखमें “महाकोशल” नामसे वर्णित हुआ है।

सभाषर्वके मतसे सहदेव नर्मदा और अवन्तिराज्य अतिप्रथम करके दक्षिणकोशल गये थे। उसीके प्रागे मेघातट है। इस मेघा नदीकी आजकल वेणगङ्गा कहते हैं। यह मध्यप्रदेश नागपुरके पूर्वांशसे निकल तिरछी होकर गोदावरी नदीमें जा गिरी है। वेणगङ्गी इससे अनुमान होता कि नर्मदा नदीके दक्षिणपूर्व और वर्तमान वेणगङ्गाके उत्तर दक्षिणकोसलराज्य अवस्थित था।

ख्रिष्टीय सप्तम शताब्दीके प्रारम्भमें सुप्रसिद्ध चीन-परिव्राजक युयेनचुयाङ्ग कोसलराज्य पढ़ा है। उन्होंने लिखा है—“कलिङ्गराज्यसे १८०० लि (कोई

* Fleet's Inscriptionum Indicarum, Vol. III, p. 7.

+ यह महाकान्तार और सभाषर्ववर्णित कान्तारराज्य एक-जैसा मालूम पड़ता है। प्रगतत्वविद् कनिङ्गहाम् साहबने इस महाकान्तारकी वर्तमान बरन्धभूमि-जैसा प्रकाश किया है। (Cunningham's Archaeological Survey Reports, Vol. XV, p. 112.) किन्तु यह बात समीचीन-जैसी नहीं मालूम पड़ती। महाकान्तार और बरन्धभूमि दोनों

छेड़ सौ कोस) उत्तरपश्चिम चलेनेसे कोसल जनपद मिलता है। इस देशका परिमाण ५००० कि (४१६॥ कोस) है। इसकी प्रान्तसीमाकी चारों ओर पहाड़ और जङ्गल है। इसकी राजधानी लगभग ४० कि (प्रायः ३। कोस) होगी। इसकी भूमि सर्वरा और प्रभूत शस्त्रशालिनी है। 'इससे ८०० कि (करीब ७५ कोस) दक्षिण अम्बुराज्य है।' (चि-व-कि १०)

प्रकृतस्वविद् कनिष्कहामके मतमें—महानदी और उसकी शाखाकी उत्तरवर्ती समुदाय उपत्यकाभूमि ही महाकोसल वा दक्षिणकोसल है। वह उत्तरमें नर्मदा-नदीके उत्पत्तिस्थान अमरकण्टकसे दक्षिणकाट्टे तक और पूर्वकी हासदा तथा जीक नदीसे पश्चिम वेणगङ्गाकी उपत्यका भूमि तक विस्तृत है। जब तब मण्डल, बालाघाट, वेणगङ्गातट एवं महानदीका मध्य-विभाग, सम्बलपुर और गोणपुर तक दक्षिण कोसल माना जाता था। *

प्राककाल जिये हम गोंडवन और हत्तीसगढ़ कहते हैं, महाभारतके समय वही देश दक्षिणकोसल नामसे विख्यात था। गुप्तराजावाके अधिकारकालको यह और भी अधिक विस्तृत-जैसा रहनेसे "महाकोसल" कह-लाता था। महाकोसलाधिप भवगुप्तके समयकी खोदित शिलालिपि पढ़नेसे समझ पड़ता है कि उत्कल और कनिष्क पर्यन्त उनका अधिकारभुक्त था। उड़ीसेके केशरीराज उनकी कर देते थे। निःसन्देह बतानेका कोई उपाय नहीं है—चीनपरिव्राजक-वर्णित राजधानी ठीक किस स्थान पर रही। किसीके मतानुसार प्राचीर-वेष्टित वर्तमान चन्दा नगरमें ही वह राजधानी थी। फिर कोई उसके वर्तमान वैरागढ़ वा भाण्डक नामक स्थानमें रहनेकी ही अधिक सम्भावना समझता है।†

पुराणोंके मतमें—कोसलमें ७ राजा राजत्व करेंगे। विष्णुपुराणमें लिखा है कि देवरचित नामक कोई परा-क्रान्त राजा कोशल, जोड़, पुण्ड्रक और ताम्रलिप्त पर राजत्व रखेंगे। (४।२४ च०) वायु और ब्रह्माण्डपुराणको देखते देवरचित अर्थात् देवरचितवंशीय राजा उक्त स्थानके राजा होंगे।

चीनपरिव्राजक युयेन चुआङ्गने लिखा है कि कोस-लमें (छठीय १म पूर्वाब्दको) सदबह (सात-वाहन?) नामक कोई अत्रिय राजा राजत्व करते थे। नागार्जुन बोधिसत्त्वने उनकी बहुतसा उप-देश दिया। चीना विद्वान् इत्सिङ्गने कहा है कि नागार्जुनने "सुद्धलेख" नामक एक उपदेशपूर्ण काव्य बना कर दक्षिणकोसलके राजा सदबहकी उत्तम किया। राजा सदबहने वहाँ अपनेक सङ्घाराम बनाये थे। उनमेंसे एक सङ्घाराममें सदबहके आदेशसे ब्राह्मण रहते थे। उन्हीं ब्राह्मणोंने पीछे बौद्धोंको निवास बाहर करनेके लिये बौद्धसङ्घारामोंको तोड़फोड़ डाला।

चीनपरिव्राजकके समय यहाँ एक बौद्ध अत्रिय राजा राजत्व करते थे। उसके पाछे यह विस्तृत जनपद हैहयवंशीय हिन्दूराजाओंका अधिकारभुक्त हुआ।

कनौज-दण्डिणी।

ते अभिजनोंऽस्य तेषां राजा वा, कोसल-चञ्। बहुल्वे तस्य सुक। २ पितापितामहादिक्रमसे कोसल देशके रहनेवाले। ३ कोसलदेशके राजा।

कोसला (सं० स्त्री०) कोसलदेशको राजधानी अयोध्या।

"कह' कोसलाधीश रघुराया।" (तुलसी)

कोसली (सं० स्त्री०) एक रागिणी। इसमें षष्ठम नहीं लगता।

कोसा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका मोटा रेशम। यह मध्यभारतमें अधिक उत्पन्न होता है। २ महाका एक बड़ा सरवा। घटका मुख आच्छादन करने या द्रव्यादि रखनेको यह व्यवहृत होता है। ३ अभिशापरूप दुर्व-चन, कोसार्ह।

कोसाकाटी (हिं० स्त्री०) अभिशापरूप दुर्वचन, गाकी दे दे कर कोसना।

कोसाम् कोशाली देखो।

कोसिया (हिं० स्त्री०) १ नृत्पात्रविशेष, मडोका एक छोटा वर्तन। चूना रखनेका वर्तन।

कोसिली (हिं० स्त्री०) छोटी पिराक या गुम्फिया।

कोसी (हिं० स्त्री०) १ नदीविशेष। कोशिकी देखो।

२ गूड़ी, चंचरो। कोसी—जुवार या मूंगके उन दानाकी कहते, जो दायके बाद भी बाकमें लगे रहते हैं।

कोसी—बुद्धप्रदेशका मथुरा जिलेकी जाता तहसीलका

* Cunningham's Arch. Sur. Reports, Vol XVII p. 68.

† Jour. Roy. As. Soc. N. S. Vol. VI. p. 260.

एक शहर। यह अक्षा० २७° ४८' ८०" और देशा० ७७° २६' में आगरा-दिल्लीकी राह पर अवस्थित है। लोक संख्या ८५६५ है। यहां अकबरके सुबेदार ख्वाजा एतबार खानकी बढिया सराय बनी है। बलबेके समय जिलेके अफसर कोसीमें जा कर छिपे थे, परन्तु भरतपुरकी फौज बिगड़ जानेसे उन्हें भागना पड़ा। यह नगर निम्नभूमिमें बसा है और चारो ओर गन्दा पानी भरा रहनेसे लोगोके स्वास्थ्यकी बड़ा धक्का पहुँचाता है। १८६७ ई०की यहां म्युनिसिपालिटी हुई। कोसीसे मथुराकी अमाज और रुई बहुत भेजते हैं। रुई साफ करनेके कई पुतलीघर भी हैं। परन्तु प्रधानतः कोसी अपने पशु व्यवसायके लिये प्रसिद्ध है। प्रति वर्ष ३०००० मवेशी बिका करते हैं। कोसीकी गायें बहुत अच्छी होती हैं।

कोसू (हिं० पु०) कोसनेवाला।

कोसी (हिं० क्रि० वि०) कई कोसके फासले पर, बहुत दूर।

कोहंडोरी (हिं० स्त्री०) कुन्डोरी, कुन्डड़े और उड़द की बरी।

कोह (हिं० पु०) १ अर्जुनका पेड़। २ क्रोध, गुस्सा। (फा०) ३ पर्वत।

कोहकाफ (फा० पु०) एक पहाड़। यह यूरोप और एशियाके मध्य अवस्थित है। इसके चतुःपार्श्वस्थ अधिवासी अति रूपवान् होते हैं। कहते हैं, इस पर परियाँ रहती हैं।

कोहड़ (सं० पु०) नाट्यशास्त्रके एक प्रणेता। कोहल देखो।

कोहना (हिं० क्रि०) क्रुद्ध होना, रिसियाना।

कोहनी (हिं० स्त्री०) कुहनी, किन्नी।

कोहनीय (सं० पु०) किसी ऋषिका नाम। (गोभिलग्रन्थसूत्र)

कोहनूर (फा० पु०) जगद्विख्यात एवं इतिहासप्रसिद्ध एक हीरक। कोहका अर्थ पर्वत वा प्रस्तर और नूरका अर्थ आलोक वा चमत्कार है। अपनी बड़ी चमकके कारण ही इस हीरकेका नाम कोहनूर पड़ा है।

यह मालूम करनेका कोई उपाय नहीं—सुष्ठुसत् समुज्ज्वल कोहनूरकी मिली कितने दिन हुए। किसी किसीकी कवनानुसार पाँच हजार वर्ष पहले मसकी-

पत्तनके निकट गोदावरोगर्भमें यह मिला जा। फिर यह अफ़्ग़राज कर्णके पास रहा। कोई कहता है कोहनूर वही कौसुभमणि है, जिसे श्रीकृष्ण व्यवहार करते थे। और किसीका मत है कि वह उज्जयिनीराज विक्रमादित्यके पास रहा। लोग जो चाहें कहें, परन्तु यह ठीक नहीं—प्रथम कोहनूर कब आविष्कृत हुआ और पूर्वकालका किसके पास रहा।

सुसलमानो इतिहास पढ़नेसे समझ पड़ता है—पहले यह हीरा मालवके हिन्दू राजाके पास था। अला-उद्दीन जब मालवके राजा हुए, यह उनके हाथ लग गया। सम्राट् बाबरने आत्मजीवनीमें लिखा है—‘हुमायून्के आगरा-दुर्ग अवरोध-कालको ग्वालियरके राजा विक्रमादित्य उसकी रक्षा करते थे। अखीरकी जब उन्होंने देखा कि जिला बच न सकता था, खीपुर्वाकी लेकर उनके प्राण बचानेके लिये भागनेकी चेष्टा की। इसी समय सुसलमानोकी फौज उन पर टूट पड़ी। परन्तु हुमायून्ने उक्त प्राचान राजवंशकी यथेष्ट सम्मान प्रदर्शनपूर्वक बचाया था। ग्वालियरके राजाने अनुग्रही ही हुमायून्को विस्तर मणिरत्न उपहार दिये। उन्होंने कोहनूर भी था। परन्तु किसी इतिहासमें नहीं लिखा—ग्वालियरके राजाने मालवकी सुसलमान अधिपतिसे किस प्रकार कोहनूर पाया था। राजस्थानका इतिवृत्त पढ़नेसे मालूम होता है—१४५५ ई०की अला-उद्दीन खिलजी मेवाड़के कुम्भराणासे पराजित हुए। उस समय ग्वालियरके राजा कीर्तिसिंहने कुम्भराणाको साहाय्य किया था। कुम्भराणा देखो। फरिश्तामें लिखा है—‘इस भायानक युद्धमें अला-उद्दीनकी विशेष शक्ति हुई थी। शेषको उभयपक्षकी विमृष्टला मिट गयी।’ सम्भवतः उसी समय यह बहुमूल्य हीरा कुम्भराणाको मिला होगा। बाबरकी जीवनीमें कहा है,—१५१८ ई०की राणा सांगाने मालवराज सुहम्नदकी छोड़ते समय राजमुकुट और स्वर्णमेखलाकी अपने लिये रख लिया था। ऐसे क्षण पर मालवराजाका वैशकीमत हीरा भी किसी समय मेवाड़के राणाको मिल गया होगा। राणा सांगाने एक कनिष्ठ पुत्रका नाम विक्रमादित्य वा विक्रमजित् था। उन्होंने बाबरके

अनेक मखिरन दिये थे। क्या यही विक्रमजित् स्वाहिरके राजा थे। क्या इन्हींसे हुमायून्ने महारत कोहनूर पाया था ?

उसके बाद कोहनूर बहुत दिन दिल्लीके सुगल बादशाहोंके हाथमें रहा। बादशाह मुहम्मद शाहके समय नादिर शाहने भारत आक्रमण किया। उस समय सुगल-साम्राज्यका पराक्रमसूर्य कितना ही निस्तेज हो रहा था। सुतरां दिल्लीखरने नादिर शाहकी गति न रोके उनके साथ मित्रताकी स्थापन और विस्तार मणि माणिक्य दे उनका सुष्टिविधान किया। पहले उन्होंने कोहनूर दिया न था। नादिर शाहने किसी रमणीके मुखसे कोहनूरकी बात सुनके उनसे इसे मांग भेजा। उन्होंने अनिच्छासे अनेक कष्टोंमें नादिर शाहको हीरा दे दिया। नादिर शाहने इस हीरेका नाम 'कोहनूर' रखा था। नादिर शाहके बाद कोहनूर उनके लड़केके हाथ लगा। फिर काबुलके अमीर अहमद शाहने उत्तराधिकारसूत्रसे इसे पाया था। अहमद शाहके दो लड़के रहे—शाह शुजा और महमूद। पिताके न रहते शाह शुजा काबुलके सिंहासनके प्रकृत अधिकारी थे। परन्तु महमूदने बलपूर्वक उसकी अधिकार किया। शाहशुजा कोहनूर साथ ले कश्मीर भाग आये। कश्मीर उस समय पठानोंके अधिकारमें रहा, आता मुहम्मद उसके शासनकर्ता थे। उन्होंने किसी बात पर शाह शुजाको कैद कर दिया। कुछ दिन पीछे रणजित् सिंहके सेनापति माखनचन्द काश्मीर आक्रमण करने चले थे। उसी समय शाह शुजाकी पत्नीने उनकी कहला भेजा—यदि आप शाह शुजाको कैदसे छोड़ा सकेंगे, तो वह सुप्रसिद्ध कोहनूर मणि सिखराजकी अर्पण करेंगे। सिखसेनापतिने कश्मीर जय करके शाह शुजाको कैदसे छोड़ा था। शाह शुजा सखीक सिखराजके पास लाहौर आ पहुँचे। पञ्जाबकेशरी रणजित् सिंहने अति समादरसे उनकी अभ्यर्थना की थी। फिर कोहनूर देनेकी बात चली। किन्तु शाह शुजा और उनकी बेगमने जगत्का महारत कोहनूर देनेकी अम शक्ति प्रकाश की थी। सिख-इतिहास-लेखक मापिंगर साहबने कहा है—शाह शुजा उस समय रणजित्के

सम्मुख आयात्ताधीन थे, किन्तु सिखराजने कोहनूर देनेके लिये उन पर कोई पत्थाचार नहीं किया। विताडित काबुलराज गभोर पन्थकारमय कारणों भी निहित नही हुए, सिर्फ नजरबन्द कर दिये गये। *

कपतान कनिङ्गहाम साहबने लिखा है—पन्थको महाराज रणजित् उनसे मिले और दोनों पगड़ियां बदल मित्रतापाशमें बद्ध हुए। शाह शुजाने अपने पाप कोहनूर दे दिया था। उन्होंने अपने भरणपोषणके लिये पञ्जाबमें जागीर पायी और सिखराजने भी प्रतिष्ठा की कि वह काबुलराज्य उद्धारके लिये उनकी साहाय्य करेंगे।† किन्तु दोनों हीने कहा है—महाराज रणजित्मिंहने शाह शुजासे बलपूर्वक कोहनूर छीन लिया था। परन्तु यह बात ठीक नहीं। पञ्जाबकेशरीने शाहशुजाको २०००० रु० की जागीर दे यह महारत ग्रहण किया था ‡

१८१३ ई०की १ली जूनकी सिखराजने अपने हाथमें कोहनूर पाया था। इसके समुच्चन दोसिदर्शनसे विमुग्ध हो उन्होंने शाह शुजासे पूछा—यह कैसी चीज है। शाह शुजाने उत्तरमें कहा था—जो समस्त शत्रुओंकी दमन कर सका है, उसीको यह भोग्य महारत मिलता है, पानेवाला सौभाग्यशाली हो जाता है। उसी समयसे पञ्जाबकेशरी सर्वदा इसे अपने बाहु पर धारण करते रहे। किसी किसीने यह भी कहा—कोहनूर हीरा जिसके हाथमें रहता, वही शेषका दुर्दशामें पड़ता है, सुतरां इस मणिका धारण करना अच्छा नहीं। रणजित्मिंहने एक बार इस महामणिकी पुरोस्य जगन्नाथदेवके श्रीपादपद्म पर अर्पण करना चाहा था। किन्तु अपनी इच्छा पूर्ण न होते ही उन्होंने इहलोक परित्याग किया। उस समय दत्तोपसिंह शिशु रहे। रणजित्मिंहको प्रियमाहेषी महारानी भिन्दन अपने अञ्जलके निधि दत्तोपसिंहके बाहुमें इस महामणिकी बांध देती थीं। किन्तु इतनाग्य महाराज दत्तोपसिंहसे

* Macroror's History of the Sikhs, Vol. I. p. 281.

† Captain Cunningham's History of the Sikhs, 1849. p.162

‡ Shah Shooja's Autobiography, Chap. XXV.

पञ्जाबकी रक्खी मचल पड़ी। अङ्गरेजोंने कलकौशल से पञ्जाब पर अपना आधिपत्य फैलाया था। किन्तु, पञ्जाब, सिख प्रभुति शब्द देखो। उस समयके बड़ेलाट लाई हार्डिन्ग बालकराज दक्षीपसिंहके अभिभावक बने। वह जितने दिन रहे, प्रकृत अभिभावककी भांति ही कार्य करते गये। उनके पीछे लाई हार्डिन्ग उसी बड़ेलाट हो कर आये थे। परन्तु पञ्जाबके अभिभावक होते भी उन्होंने न्यायसङ्गत कार्य न किया।* उन्होंने पञ्जाबके राजकोषागार पर हाथ फेंका था। फिर कोहनूर अंगरेजोंके अधिकारमें आया। १८४८ ई०की २८वीं मार्चको यह महारज इङ्गलेण्डकी महारानीके निकट भेजा गया। तबसे बराबर कोहनूर वहाँ पड़ा है।

कौन कहेंगा—कोहनूरमें कितने राज्याकी श्रीवृद्धि और कितने राजावाँका अधःपतन देखा है? यही नहीं, कि यह महारज हाथी हाथ घूमा है, साथ ही कितना ही परिवर्तन भी हो गया है।

प्रसिद्ध भ्रमणकारी टेभार्नियर और जेवकी सभामें आ कोहनूर देखकर वर्णना करते हैं—“यह होरा तोलमें ३१८ रत्ती (279—carats) है। पहले जब यह होरा कटा न था, ८०७ रत्ती (793 carats) रहा।” किन्तु मुगलसम्राट् बाबरकी जीवनीमें लिखा है—‘कोहनूर वजनमें ८ मिष्कल अर्थात् ३२० रत्ती है। इसका मूल्य समस्त जगतके आधे दिनका खर्च है।’ रणजित्सिंहके निकट रहते कोहनूर वजनमें बहुत घटा न था। किन्तु इङ्गलेण्ड पहुँचनेसे यह दिन दिन घटता ही जाता है। १८५० ई०की ३री जूनको कोहनूर इङ्गलेण्डमें महाराणी विक्टोरियाके पास पहुँचा था। उसको दूसरे वर्ष हाइड पार्कके बड़े मिलेमें इसका मूल्य १४ लाख रुपया स्थिर हुआ। उस समय इसका परिमाण १८६—कारट था। महाराणीकी इच्छाके अनुसार १६

सार चामटरहामसे किसी भोजन्याजने जा ३८ दिन १२ घण्टे काम करके अधिक उत्थितिः निकालनेके लिये इसके तीन टुकड़े कर डाले। इस काट काटमें ८० हजार रुपया लगा था। फिर गुलाबके फूल जैसा बनानेकी यह तराशा गया। आजकल कितना ही घट कर कोहनूर १०६—कारट रह गया है। बड़े कोहनूरका कितना ही अर्थ नष्ट हो जानेसे पहलो चमक भ्रमक भी बहुत कुछ उड़ गयी है। अब इससे बड़ा होरा मिला है। किन्तु वह इतना मूल्यवान् नहीं। यदि यह काटा न जाता, तो हम कह सकते थे—क्या आकारमें क्या मूल्यमें कोहनूरसे बड़ा होरा जगत्में दूसरा नहीं है। हीरक शब्दमें विलुप्त विवरण देखो।

कोहवर (हिं० पु०) स्थानविशेष, एक जगह। विवाहके समय यहाँ कुलदेवताको स्थापन करते हैं।

कोहरा (हिं० पु०) धूयेँके रूपमें प्रातःकालको गिरनेवाली ओस, कुहासा।

कोहरो (हिं० स्त्री०) चुंचनी, उबाले हुए गेहूँ आदि। कोहरी प्रायः उबाले हुए गेहूँ या जुशरकी ही कहते हैं। नागपञ्चमीके दिन कोहरो चबानेकी रीति है। नयी जुशार आने पर भी कोहरो बहुत बनती है।

कोहल (सं० पु०) कोहयति विस्माययति, कुछ बाहुलकात् कलच गुणश्च। १ वाद्यविशेष, कोई बाजा। २ यवसङ्घ, कृत मद्यविशेष, जोकी शराब। यह त्रिदोषघ्न, वृष्य और वदनप्रिय होता है। (सप्त) ३ नाट्यशास्त्रप्रणेता कोई सङ्गीतज्ञ गन्धर्व। इन्होंने समिधरसे सङ्गीत सीखा था। (सङ्गीतशास्त्र) इनका रचित ‘ताल-लक्षण’ नामक संस्कृत सङ्गीतग्रन्थ मिलता है।

कोहकी (सं० स्त्री०) कुष्माण्डसुरा, कुम्हड़ेकी शराब। यह ठण्डा और शुद्ध होती है। (वेद्यननिषध)

कोहलू—बेलूचिस्तानके अन्तर्गत शिवि जिलाके शिवि सर्वाडिबीजकी एक तहसील। यह पक्षा० २८° ४३' तथा ३०° २' ड० और देशा ६४° ५४' एवं ६८° ३२' पू०में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल प्रायः ३६२ वर्ग-मील और जनसंख्या १७४३ है। यह अधिव्यक्ता त्रिभुजके आकार की है जो समुद्रतलसे प्रायः १८०० फीट

* Captain Cunningham's History of the Sikhs, p. 294-300; Punjab Papers 1849; Major Evans Bell's Retrospects and Prospects of the Indian Policy, p. 178-9; W.M. Torrens' Empire in Asia, p. 352-3 प्रभृति देखो।

कंची है इस लिये यहाँकी भावहवा अच्छी है। यहाँ सिर्फ नौ ग्राम हैं और वार्षिक आय लगभग १४१५४) ६० की है।

कोहा (६० पु०) छहदमत्पाचविंश, महीका एक बड़ा झूँड़ा। इसमें इक्षुरस वा काष्ठीक रखते हैं। २ खप्पर, खोपड़ी जैसा महीका बर्तन।

कोहाट—पञ्जाब प्रदेशका एक जिला। यह अक्षा० ३२° ४८' तथा ३३° ४५' उ० और देशा० ७०° ३०' एवं ७२° १' पू० के बीच मध्यप्रदेशके दक्षिण और दक्षिण पश्चिम अवस्थित है। इस जिलेके उत्तरमें पेशावर जिला और पहाड़ी है—जहाँ जोवाकी और अफरोदी जाति वास करती है, उत्तर-पश्चिममें पोरकजाई तीरा दक्षिण-पश्चिममें काबूल-खैराण्य, दक्षिण-पूर्वमें पंजाबके वक्ख और मियनवाली जिला एवं पूर्वमें इन्दस या सिंधु है। इसकी लम्बाई १०४ मील और चौड़ाई ५० मील है। क्षेत्रफल २८७३ वर्गमील है। लोकसंख्या २१७८६५ है। यह प्रायः १८॥ कोस दीर्घ एक उपत्यका भूमि है। प्रथममें कोहाट कहीं २ कोस, कहीं ३ कोस तक निकलेगा। यहाँ सङ्कीर्ण गिरिपथसे होकर आते हैं।

कोहाटके मध्य समतल भूमि और हुक्क नामक उपत्यकामें नानाविध शस्य उपजता है। यहाँ गेहूँ, चना और ज्वार बहुत होते हैं। जुंढरीके आटेकी रोटी स्थानीय अधिवासियोंका प्रधान आहारीय है। बीच बीच नदीका जल पहुँच जानेसे धान भी अच्छा लगता है। पत्थरका कोयला जगह जगह मिलता है। उत्तरदिक्के पर्वतसे गन्धक निकलता है। बहादुरखेल नामक उपत्यकामें खवणकी खनि है। यहाँ एक दुर्ग निर्मित हुआ है। तैरितय उपत्यकाके निकट ३० कोस लम्बा और पाधा कोस चौड़ा नमकका एक पहाड़ है। यह पर्वत देखनेमें ईषत् मौल आभायुक्त धूसरवर्ण और प्रायः १३२ हाथ ऊँचा है।

कोहाटके पहाड़में 'ममीयाई' नामक काले गोंद जैसा एक चिपचिपा पदार्थ मिलता है। उससे पञ्जाबमें औषध प्रस्तुत करते हैं।

कोहाटके उत्तर-पश्चिम बरकजाई जातिका वास

है। यह प्रयोजन पड़नेसे २० सङ्कल योद्धा समवेत कर सकते हैं। शामिलजाई, हुक्कू, मीरानजाई, शेखान, मिश्री और रबियाखेल बरकजाई जातिके दो अन्त-भूत हैं। बरकजाई पर्वतमें तेरा नामक एक सुन्दर सुशीतल उपत्यका है। यौष्मकालकी लोम वहाँ पश्चादि चराने ले जाते हैं। हुक्कू नामक उपत्यका प्रायः १० कोस लम्बी और १॥ कोस चौड़ी है। इसमें सात गढ़-बन्द गाँव हैं। पहले प्रत्येक ग्राममें शासनका प्रबन्ध स्वतन्त्र रहा। आजकल वह अंगरेज गवर्नमेण्टके अधीन हैं।

पन्थान्य अधिवासियोंके मध्योखटक और बङ्गश पठान ही प्रधान हैं। समस्त अधिवासियोंकी तुलनामें इनको संख्या दश भाग होगी। बङ्गश पठान कोहाटको पश्चिमदिक् और खटक पूर्वदिक्को सिन्धुतीर पर्यन्त स्थान स्थान पर रहते हैं। खटक लोग देखनेमें दीर्घ-काय, सुन्नी और वीरप्रकृति हैं। सिख, ब्राह्मण, अहोर, जाट और अत्रिय जातीय बहुतसे लोग कोहाटके वर्तमान अधिवासी हैं।

इस जिलाका प्रथम ऐतिहासिक विवरण अकबर बादशाहसे ही आरम्भ हुआ है। यह जिला आजकलकी तरह पहले भी पठानकुलके बङ्गश और खटक दो शाखाओंमें विभक्त था। बङ्गशके अधिकारमें मीरानजाई उपत्यका और कोहाटका पश्चिमीभाग था और खटकके अधिकारमें पूर्वार्ध देशके शेषभाग सिन्धुनदके किनारे तक। थोड़े समयके बाद बङ्गश गारदेजसे निकाल दिये गये और कूरम उपत्यकामें रहने लगे। इहाँसे वे पूर्वकी ओर मीरानजाई और कोहाट प्रदेश तक फैल गये। ऐसा कहा जाता है कि खटक भी अपनी भूमिकी छोड़ कर वक्ख आकर रहने लगे। बाबरने १५०५ ई०में इस जिला पर आक्रमण किया और कोहाट और हैक्कू-प्रदेशको लूटा। १७०७ ई०में कोहाट दुरानी राज्यका एक अंग हो गया। लेकिन वैक्कश और खटकके ही अधिकारमें रहा। उसीसर्वो शताब्दीमें कोहाट और हैक्कूने सर्दार सामद खाँ को गवर्नर बनाया। सर्दार सामद खाँके लड़के पेशावरके सर्दार सुलतान मुहम्मदसे भगाये गये। इस तरह हमेशा सर्दारके बदल बदल होनेसे

अशान्ति फैली रहती थी। जब यह देश सिखाके अधीन हुआ तो पहाड़ी आदिमियोंसे कर वसूल करना असंभवसा दीख पड़ने लगा। रणजित्सिंहने सुलतान मुहम्मद खाँको पेशावरमें कर वसूल करनेके लिये नियुक्त किया और रसूल खाँको टेरीका प्रधान बनाया गया। सुलतान मुहम्मद खाँ भी जिलाके शेषभागमें शासन करने लगा। जब दूसरी लड़ाईमें सिख-सेना पेशावर पहुँची तो ब्रिटिश कम्पनीचारी जार्ज लावरैन्स भागकर कोहाट चले गये, लेकिन सुलतान मुहम्मद खाँने उसे धोखा देकर कैदी बना लिया। इस लड़ाईमें अङ्गरेजोंकी जीत हुई और कोहाट एवं पञ्जाबका शेषभाग अङ्गरेजी राज्यमें मिला दिये गये। उसने आमदनी अदा करनेका काम हुज़ूरखान्की सौंप रखा था। किन्तु उनको किसी आत्मोद्यन मार डाला। फिर यह काम उनके लड़केको दिया गया। मोरान्जाई पर्वतके अधिवासियोंने प्रार्थना की थी—हम कोहाटकी अंगरेजी सरकारके शासनाधीन रहना चाहते हैं। इसीसे वह प्रान्त भी १८५१ ई० को कोहाटका अन्तर्भूत हो गया।

यह जिला तीन तहसीलोंमें बाँटा गया, हर एक तहसील तहसीलदार और नायब तहसीलदारके अधीन रखी गयी। डेप्टी कमिशनर मुकद्दमा जांच करनेके लिये नियत हुवे। उनके अधीन दो सहायक कमिशनर रखे गये जिन्हें थल सवडिवीजन कार्यका भार सौंपा गया। पहले पहल कोहाट जिलामें मालगुजारी वसूल करनेकी संख्या ठीक नहीं थी। राजा अपनी अपनी जमींदारी की ठीका पर लगा दिया करते थे। लेकिन जबसे यह जिला अंगरेजी राज्यमें मिलाया गया तभीसे यहां का काम सुचारु रूपसे चलने लगा। जमीनकी मालगुजारी भी तीनघानेसे ६५० तक प्रति एकड़की नियत की गई। इस जिलामें सिर्फ एक म्यूनििसिपैलिटी है जिससे १४१०० रु०की आमदनी होती और १६३०० रु० खर्च होते हैं। पुलिसके ५२७ आदमी हैं जिसमेंसे ४४ म्यूनििसिपैलिटीवाले हैं। ग्राम्य चौकीदारोंकी संख्या २६५ है। यहां १२ थाने, १६ रोडपोस्ट और ४ पोस्ट हैं। पहले यहां शिक्षाका बहुत अभाव था, इसलिये सैकड़ें ४२ मनुष्य पढ़े लिखे थे। किन्तु आजकल यहां

बहुतसे विद्यालय हैं जिनमें लड़के और लड़कियां अलग अलग शिक्षा पाते हैं। पूर्व समयकी अपेक्षा आजकल यहां बहुत तरक्की उन्नति है।

२ कोहाट जिलेका प्रधान नगर। यह नगर चारों ओर प्राचीरवेष्टित है। इसमें एक बाजार और एक मसजिद विद्यमान है।

कोहाना (हिं० क्रि०) कूट होना, गुप्ता खाना।

२ रुठना, रिसाना।

कोहित (सं० पु०) किसी ऋषिका नाम। शिवादि गणान्तर्गत रङ्गनेसे इस शब्दको अपत्यार्थमें अप् प्रत्यय होता है।

कोहिल (हिं० पु०) पक्षिविशेष, किसी किस्मका बाज। कोहिस्तान (फा० पु०) १ पार्वत्यप्रदेश, पहाड़ी जगह। २ काश्मीर-प्रान्तमें गिलगिटके पासकी एक उपत्यका। इसे आवासीनका कोहिस्तान कहते हैं। उसका जल जाकर सिन्धुनदमें गिरता है। रौजा, जामुन, करमीन और दुमान नामक जातियां इस उपत्यकाकी अधिवासी हैं।

कोहिस्तान—सिन्धु-प्रदेशका एक तालुक। यह कराची कनकटीके अन्तर्भूत है। इसकी उत्तर और पूर्व-दिकके थोड़े अंशमें सेहवान विभाग है। पूर्वदिककी शेष अंशमें जिरक नामक जिला और एक पर्वतश्रेणी है। कोहिस्तान उत्तर-दक्षिण ३० कोस और पूर्व-पश्चिम २०।२५ कोस होगा। इसका परिमाण प्रायः ५०५८ वर्गमोल है। कोहिस्तान अधिकांश पर्वतमय है। दक्षिणदिककी पर्वतश्रेणी, मध्य मध्य समतल भूमि है। ब्रिटिक पीछे यहां प्रचुर लवणादि उत्पन्न होता है। उस समय चारों ओरोंसे पश्चादि या यहां बरा करते हैं।

कोहिस्तानमें हुब्ब, बारन और मसौर नामक तीन नदियां हैं। हुब्ब नदी खिलातके पाससे निकल ५० कोस बहती हुई अरब सागरमें जा मिली है। ब्रिटिक उपरान्त समय समय पर इसमें बन्हा (बाढ़) आती है। किन्तु अल्पवर्षके मध्य ही जल घट जाता है। बारन नदी खीरखर पर्वतसे उत्पन्न हो ४४ कोस पथ

अतिक्रम करके सिन्धुमें जा गिरी है। वारण नदीके उत्पत्तिस्थानसे ही गंगा नामक दूसरी नदी भी निकली है। वहां अति उच्च पर्वतको फाड़ कर मानो होमुख बन गये हैं। देखनेसे ऐसा समझ पड़ता है—मानो किसी दैत्यने आकर पहाड़के बीचसे दो टुकड़े उड़ा दिये हैं। इस स्थानकी शोभामें बड़ा चमत्कार है। मन विस्मयके रससे आप्रुत हो जाता है। मलीर नदी कोहिस्तानकी पश्चिमदिक्के पर्वतसे निकल २० कोस राह चलके कराचीके निकट भरव सागरमें मिली है।

कोहिस्तानमें ज़ायना, चीता, भेड़िया और बकरा आदि नाना जन्तु देख पड़ते हैं। गृध्र, चित्त, सवा और टिट्ठिभ पक्षी बहुत हैं।

कोहिस्तानमें न्यूनाधिक १२८७७ लोगोंका वास है। उनमें मुसलमान ही अधिक, हिन्दू अल्प हैं। अधिवासी अधिकांश भ्रमणशील हैं। कोहिस्तानके मध्य केवल ६ ग्रामोंमें लोगोंका स्थायीवास है। बलूच, नुमारिया, जोकिया, बींद और नोहानी नामक जातियां यहां रहती हैं। एतद्व्यतीत अन्यान्य अनेक जातियां भी पायी जाती हैं।

बलूच कोहिस्तानकी उत्तरदिक्, नुमारिया मध्य और जोकिया दक्षिणदिक्को रहते हैं। नुमारियोंके २४ विभाग हैं। जोकिया लोग राजपूत वंशोद्भव हैं। यह भेष और छागल चरा कर दिनयापन करते हैं। गबोल बलूच क्षत्रियार्थमें लगे रहते हैं। दूसरोंके भेषादि चुरानेमें कोहिस्तानके अधिवासी विशेष पट्ट हैं।

कोहिस्तानकी दक्षिण-पूर्वदिक्को लघुमान नामक स्थानमें नोयाके पिता लामिकका कबरस्थान है। यहां एक पहाड़के ऊपरसे निम्न पाददेश पर्यन्त एक श्वेत-रेखा देख पड़ता है। कोहिस्तानके लोग कहते हैं—यह रेखा भग्न है, इसके निम्नभागमें एक प्रकार शब्द सुन पड़ता है। इस स्थानके सम्बन्धमें बहुविध गल्प प्रचलित हैं। सुखेत, माग्दी और कूलूके अधिवासी दीर्घकाय और बलिष्ठ हैं। उनका रंग कुछ मेला रहता है। स्त्रियां सुधी होती हैं, परन्तु २०१२५ वर्षके वयसमें ही उनकी कोमलता उड़ जाती है। स्त्रियों और पुरुषोंके पहनावेमें कोई विशेष भेद नहीं। लम्बा कुर्ता

और पायजामा, काले रंगके पश्मी कपड़ेकी टोपी और चासका जूता यह लोग पहनते हैं। स्त्रियां टोपीके बदले रङ्गीन रुमाक मल्लमें कपेट लेता हैं। वह मस्तक पर बाकाकी वेची बना उसके शेषभाग पर फीता बांधती हैं। कूलू मल्लकी स्त्रियां बड़ी अलङ्कारप्रिय हैं। वह सीपके नानाविध अलङ्कार प्रयुक्त करके परिधान करती हैं। पुरुषोंमें बहुविवाह चलता है, किन्तु स्त्रियोंमें देख नहीं पड़ता।

चांवा पर्वतमें गड्डी नामक जातिका वास है। यह खर्वकाय अथवा बलवान् होते और अन्यान्य लोगोंकी अपेक्षा परिष्कार परिच्छुद्ध रहते हैं। गड्डी अपनेकी राजपूत-जैसा समझते हैं। इनमें बहुतसे भाड़फूंकका काम करते और भूतोंको उतारते हैं। इनके भूत उतारनेकी प्रणाली बहुत चमत्कारी है। किसीके मरने पर लोग समझते कि उसे भूतने मार डाला है। यह आभा ही आके निर्णय करते हैं—किस भूतने मारा है। वह एक ऐसा बुद्धी स्त्रीको देखके चुन लेते, जिससे वह नाराज रहते हैं। फिर लोग उसे चारों ओरोंसे घेर कर बैठ जाते और ओम्हा घूम घूम कर नाचते, बीच बीच उसकी तर्फ देख प्रणाम करते हैं। इसी समय चारों ओर दर्शक भी शिर झुका नमस्कार करते हैं। ऐसा होनेसे ही वह स्त्री डायन-जैसी ठहर जाती और उसीने मारा है ऐसा प्रमाणित हो जाता है पुराने समयमें तो उस वृद्धाका प्राणविनाश किया जाता था। किन्तु इस देशमें अबसे भंगरेजोंका अधिकार हुआ डायनके प्राणविनाशकी प्रथा उठ गयी है। राज-कल डायनकी जातिप्रयुक्त करके उसका पाहार आदि भी बन्द कर देते हैं। इसके पीछे डायनका कोई आत्मीय वधु यदि ओम्हाको भेष वा छागल भेंट कर समुष्ट कर सकता है, तो वह उसका दोष किसी दूसरेके मल्ले मढ़ देते हैं। फिर उस व्यक्तिके भी कुछ उपहार दे देनेसे दोष किसी दूसरेके ही ऊपर जा पड़ता है।

साहुसी नामक और एक प्रकारकी जाति कोहिस्तानके साहुल प्रदेशमें रहती है। यह खर्वजाति, बलिष्ठ, किन्तु देखनेमें जैसे ही कुक्षित, आचार व्यवहारमें भी

अपरिष्कृत हैं। पुरुष पशुमा अंगरखा और पायजामा पर एक चादर लगा चक्के ऊपरसे कमरकी बगलमें उसका छोर खींच लेते हैं। स्त्रियां कच्ची चोटी करके बालमें तरङ्ग तरङ्गकी रङ्गीन पट्टियां या फीते बांधती हैं। मत्थे पर टोपीके किनारे जख्जीर या काचकी माला लटकाती हैं। पुरुष और स्त्री दोनों गलेमें सीपके पात फीरोजा वगैरह पहनते हैं। उन लोगोंकी विश्वास है कि उक्त सकल द्रव्य साथ रहनेसे चुड़ैल चोट कर नहीं सकती। सभी गलदेश पर अग्निप्रज्वालनके उपयोगी चकमक आदि एक थैलीमें लटका रखते हैं। लाहुल प्रदेशमें शीत पत्यस्त पड़ता है। इसीसे लाहुली जाड़ेके समय कूल अञ्चलमें जा कर छह मास काल अवस्थिति करते हैं। यह समय सुरापान और नृत्य-गीतमें अतिवाहित होता है। उत्सवके समय पातिश बाजी छूटती है। स्त्रियां नाचा करतीं और मनमानी शराब पीती हैं। शेषको मतवाली हो नाच न सकने पर बठ रहती हैं। नृत्यके समय हवायें रंग रंगकी वेश-भूषासे सज्जित हो उत्सवमें योग देता है। लाहुली स्त्रियांकी आंख बड़ी कटीली होती है। उसको देखते ही बहुतसे पुरुष उत्सन्न बन जाते हैं।

कोहिस्तानकी विविध जातियोंमें प्रायः विवाद उठ खड़ा होता है। एक जातीय व्यक्तिके मत्थेका टोपी यदि अपर जातीय व्यक्ति हाथसे उतार कर फेंक देता, तो अपराधीका प्राणनाश न होनेसे विवाद चला ही करता है। इसी प्रकार किसी जातिका एक व्यक्ति मारा जानेसे उस जातिके सभी लोग एकवारगी हो उभड़ उठते हैं। फिर उभय जातियोंमें विवाद आरम्भ होता है। यह विवाद बहुकाल तक चला करता है। आजकल अंगरेज अनेक बार किसी जातिके दलपतिको कारागृह करके अथवा अन्य जातिके दलपतिको जॉट, रुपया या भेड़ बकरा दिलाके भगड़ा निवटाते हैं।

आजकल कोहिस्तानमें एक कोतवाल, कई सवार और थानेदार रहते हैं। वही शान्तिरक्षा किया करते हैं।

कोही (हिं० वि०) कोधी, गुस्सावर।

“नालमहाचारी अति कोही।” (तुलसी)

कोहीर—१ हैदराबाद—राज्यके बिदर जिलेका एक तालुक। [बिदर देखो।] हैदराबाद-राज्यके अन्तर्गत बिदर तालुक और जिलाका एक शहर। यह अक्षा० १७° ३६' उ० और देशा० ७७° ४१' पू० बिदर शहरसे २४ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या प्रायः ६३७८ है। यहां मुसलमानोंकी दो प्रसिद्ध समाधियां हैं। इनके अतिरिक्त बहुतसी मसजिदे हैं, जिनमेंसे जुमा मसजिद जो बाघ्यानी राजाओंके शासन-कालमें बनायी गयी प्रसिद्ध है। इस शहरमें एक मिडिल-स्कूल, एक कन्या-पाठशाला, पोष्ट आफिस तथा पुलिस इन्स्पेक्टरके आफिस हैं। कोहीर आमके लिये प्रसिद्ध है।

कोहीवावा—एक लम्बे पहाड़की पंक्ति। यह पूरवसे पश्चिम जाती हुई अफगानिस्तानके मध्य होकर गयी है। यह अक्षा० ३४° ४२' से ३५° २०' उ० और देशा० ६८° १५' से ६१° १०' पू०में अवस्थित है। यह हिन्दू-कुस पहाड़की नाईं फैला हुआ है। इसमेंसे एक घाटी निकला है, जिसका नाम 'शीवरघाटी' है। इसी स्थानसे कोहीवावा पश्चिम औरसे दक्षिण याकवल्लत तक फैला हुआ है, जहां इसकी चार शाखा हो गई हैं। एक शाखा दक्षिणकी ओर गई है। जिसका नाम वनदी-हुषा खवन या वन्दोवेन है। यह दक्षिण हरिकुद तराईसे हीरत तक फैली है और वन्दोबोर नामसे मशहर है। दूसरी शाखा सफेद—कोहू कहलाती है। इस शाखाके उत्तरमें शाहबुवका वन्दोवाला, नामकी शाखा हरिकुद उपत्यकाके उत्तर तक फैली हुई है। चौथी शाखा उत्तर-पश्चिम तक विस्तृत है। एक दहिने और बांये ओर बहुत ऊंचा पहाड़ है जो अफगानिस्तानकी प्राकृतिक सीमा है। इसका पश्चिमी भाग यथार्थमें कोहीवावा कहलाता है। जिसकी ऊंची चोटी १६००० फीट खड़ी है। कोहीवावाके दक्षिण पहाड़ी प्रदेश हजारजन्के वेसुद जिला है। उत्तरमें अफगानिस्तानकी बड़ी अधिपत्या है जो अक्सक़ा और १४० मील तक फैली है।

कौकिर (हिं० स्त्री०) ककर देखो।

कौंच (हिं० स्त्री०) कपिकण्ठ, खजोहरा। यह एक

प्रकारकी शिखी-जंसी लता है। इसकी फलियां सेमसे अधिक बर्तुल लहलह, शस्त्रसम्पन्न और लोमयुक्त रहती हैं। खेत, कृष्ण और धूसर भेदसे यह तीन प्रकारकी होती है। कृष्ण और धूसर फलियोंमें केश रहते हैं। खेत फलियां सफाचट होती हैं। कृष्ण और खेत फलियोंका शाक बनाते और भूरी फलियोंको पौषधके व्यवहारमें लाते हैं। इनके रुये शरीरमें लगनेसे कण्डू चटने लगती है। इससे इसका दूसरा नाम खजोहरा भी है। कौच बहुत वीर्य बढ़ानेवाला, ताकतवर, हलकी, मोटी और बातकी बीमारीको मारनेवाली है।

कौची (हिं०) कनची देखो।

कौध (हिं० स्त्री०) विजलीकी दूरकी चमक।

कौधना (हिं० स्त्री०) दूरसे बीजली चमकना।

कौधा (हिं० पुं०) कौधा देखो।

कौर (हिं० पुं०) लहद लहदविशेष, एक बड़ा दरख्त वन-खीर। यह पञ्जाब, नेपाल और नेपालकी तराईमें उत्पन्न होता है। काष्ठ भीतरसे ईषत् पाटलवर्ण निकलता और गड़गड़निर्माणादिमें लगता है। उससे लहद एवं लुह पात्र भी प्रस्तुत होते हैं। कौरके फलके आटाको पार्थव्य प्रदेशके अधिवासी गेहूं आदिके आटेमें मिस्रण करके भक्षण करते हैं।

कौरा (हिं० पुं०-वि०) कांवर और कावरा देखो।

कौरी, कंवरी देखो।

कौंसलर (अंग० पुं० Councillor) १ मन्त्री, वजीर।
२ उपदेशक, नसोहत करनेवाला।

कौंसिल (अंग० स्त्री० Council) सभा, परिषत्।

कौहर (हिं० पुं०) फलभेद। यह पक्षावस्थामें प्रति सुन्दर रत्नवर्ण हो जाता है। प्रवाद है—कौहरमें सर्पको दूर रखनेका गुण है।

कौप्राना (हिं० स्त्री०) १ बराना, अण्ड बण्ड बकने लगना। २ अकबकाना, निखेष्ट होना।

कौकाच (सं० त्रि०) कौकाच-अण्। कौकाचका दण्डनीय (मानव वा शिष्य)।

कौकिल (सं० पुं०) कौकिलस्यापत्यम्, कौकिल-अण्। अण् कृत् कौकिलात् कृतः। (पा० ४।१।१० भाष्य) कौकिलशावक, कोयलका नर वच्चा।

कौकिली (सं० स्त्री०) कौकिल-ङीप्। कौकिलका स्त्रीजाति शावक, कोयलका मादा वच्चा।

(लाटायन चीत० ५।४)

कौकिल्य (सं० पुं०) कौकिलाक्षप्रच, तालमस्थानका पेड़।

कौकुटक (सं० पुं०) जनपदविशेष, एक देश।

“अथापरं जनपदाः कौकुटकास्तथा कोलाः।” (महाभारत, भीष्म ८)

कौकुर (सं० पुं०) कुरुराणां देशः, कुरुर-अण्। १ देश-विशेष, कोई सुल्क। यह वर्तमान राजपूतानेके मध्यमें रहा। “अन्वष्टा कौकुराणाणां वस्त्राः पद्मवैः सह।” (महाभारत २।१२)

कुरुरा यादवभेद। एव, कुरुर स्वार्य अण्। २ यादव-वंशीय राजा। (भारत भीष्म ५ अ०)

कौकूस्त (सं० पुं०) एक ऋषि। (शतपथब्राह्मण ४।१।१११)

कौकृत्य (सं० स्त्री०) कुक्षितं कृत्यम्, स्वार्य अण्।

१ अनुताप, पछतावा। २ यन्दकायं, बुरा काम।

कौकुट (सं० त्रि०) कुक्कुट-सम्बन्धो, मुर्गेके मुताबिक।

कौकुटपुट (सं० स्त्री०) पुटविशेष, एक तह या गड्ढा। वितस्तिमात्रके खातको कौकुटपुट कहते हैं। कोई कोई उसे षोडशांगुलक खात भी कहता है। (भावप्रकाश)

कौकुटिक (सं० पुं०) कुक्कुटवद्भेन विहरति यद्वा कुक्कुटी मयां कापत्यादिकं पादविशेषस्थानञ्च पश्यति,

कुक्कुट-ठक्। (संज्ञाया ललाटकुक्कुटी पश्यति । पा० ४।४।४६)

१ दाक्षिक, मगहर। २ अदूरप्रेरिताञ्च, जीवहत्याके भयसे दूसरी ओर न देख बड़े सावधानसे पैर रखनेवाला, कोई संन्यासी। ३ कुक्कुटविक्रता, मुर्गाफराश। ४ पक्षिविशेष, कोई चिड़िया।

कौकटिकन्दल (सं० पुं०) कुक्कुटस्यायम्, कुक्कुट-इज्ज कौकुटिः स इव कन्दलः। सर्पविशेष, किसी किसका अजदहा।

कौकुटिकन्दली (सं० स्त्री०) स्त्री जातीय अजगरसर्प, मादा अजदाहा।

कौच (सं० त्रि०) कुक्षि इदमर्थे अण्। कुक्षिबद्ध, कोख-से सरोकार रखनेवाला।

कौचक (सं० त्रि०) कुक्षौ देशभेदे भवः, कुक्षि-बुज्। असादिभाष्य। पा० ४।१।१०। कुक्षिदेशोत्पन्न, कोखसे निकला हुआ।

कौशेय (सं० त्रि०) कुशो भवः, कुचि-ठञ् । इति-कुचि-
कलशिवत्पसाष्टेठञ् । पा ४।१।५६। कुचिवह, वगसी । (भट्ट ४।१।१)

कौशेयक (सं० पु०) कुशो कोषे तिष्ठति, कुचि-ठञ् ।
कुलकुचिप्रोवाभाः नास्यलङ्कारिषु । पा ४।२।२६। कुचिवह खड्ग,
तलवार ।

कौड (सं० पु०) कुड एव स्वार्थे ञ् । कौड्य देश ।
कौड्य देखो

कौड्य (सं० पु०) कौड्य एव स्वार्थे ञ् । १ कौड्य-
देश । 'कौड्य मालवाना ।' (भारत ६।२) २ कौड्य-देशके
राजा ।

कौड्य (सं० पु०) कौड्य स्वार्थे ञ् पृषोदरादित्वा
दकारस्य इकारः । कौड्यदेश ।

कौड्य (सं० त्रि०) कुड्यसम्बन्धाय, केसरिया ।

कौचवार (सं० पु०) कुचवारस्यापत्यम्, कुचवार-ञ् ।
कुचवारके लड़के ।

कौजप (सं० त्रि०) कुजपस्येदम्, कुजप-ञ् । कुजप-
सम्बन्धी, कुजपसे सम्बन्ध रखनेवाला ।

कौच (सं० पु०) कूच एव स्वार्थे ञ् पृषोदरादित्वाद्
रक्षोपः । कौचपर्वत, एक पहाड़ ।

कौचर (सं० त्रि०) कुचर इदमर्थे ञ् । कुचरसम्बन्धी,
हाथीसे ताक रखनेवाला ।

कौच्रायन (सं० पु०) कुचस्य पुमपत्यम्, कुच-फञ् ।
गोत्रे कुच्रादिभ्यः । पा ४।१।२। कुचके वंशोत्पन्न सन्तानादि ।

कौच्रायनी (सं० स्त्री०) कुचस्यापत्यं स्त्री, कुच-फञ् ।
कुचकी वंशोत्पन्न स्त्री ।

कौच्रायन्य (सं० पु०) कौच्रायन स्वार्थे ञ् । प्रातश् फलो-
रक्षियाम् । पा ५।११।१५। कुच नामक ब्राह्मणके वंशोत्पन्न
पुरुष ।

कौचि (सं० पु०) कुचस्य ऋषेरनन्तरापत्यम्, कुच-इञ् ।
कुच नामक ऋषिके पुत्र ।

कौची (सं० स्त्री०) कुचस्य ऋषेरपत्यं स्त्री, कुच-इञ् ।
ततः स्त्रियां ङीष् । कुच नामक ऋषिकी कन्या ।

कौट (सं० पु०-त्रि०) कूटे गिरिगुह्ये भवः, कूट-ञ् ।
१ कूटजवृक्ष । कूटे मायायां भवः, कूट-ञ् । २ कपट-
साक्षी, बनावटी गवाह । कूट्यां वंशोत्पन्नमायायां भवः ।
३ स्वाधीन, आजाद । ४ मिथ्याकथन, झूठ बात ।
५ कूटसाक्ष, झूठी गवाही ।

कौटकि (सं० त्रि०) कूटमेव स्वार्थे कान् कूटकं मांसं
पचमस्य, कूटक-ठञ् । मांसविक्रेता, गोमत्परोक्ष ।

कौटज (सं० पु०) कौटे जायते, कौट-जन-ङ । कूटजवृक्ष ।

कौटजभारिक (सं० त्रि०) कूटजस्य भारं हरति वहति
भावहति वा, कूटज-भार-ठञ् । १ कूटजभार वहन
करनेवाला । २ कूटजभार हरण करनेवाला । ३ कूटज-
भार उत्पादन करनेवाला ।

कौटजलेह (सं० पु०) प्रशीधिकार पर लेह, बवासोर-
की एक चटनी । १०० पल कूटजत्वक् ६४ शरावक
जलमें पकाना चाहिये । ८ शरावक पानी शेष रहनेसे
खाद्यको उतार लेते हैं । फिर उसको कपड़े से छान
उसमें ३० पल पुराना गुड़ और ८ पल घी डाल गर्म
करते हैं । चटनी जैसा बन जाने पर उसमें एक एक
पल वच, व्योष, विडङ्ग, इन्द्रियव, त्रिफला, अग्नि, रसा-
ज्वन, भस्मात, अतिविषा और विषका चूर्ण तथा
८ पल मधु डाल घी, शहद, मट्ठा, पानी या दूधके साथ
खानेसे रक्तसमुद्भव अर्शरोग शान्त हो जाता है ।
(सारकौमुदी)

कौटजवीज (सं० स्त्री०) इन्द्रियव ।

कौटजिक (सं० त्रि०) कूटजं भारभूतं हरति वहति
भावहति वा, कूटज-ठञ् । वंशादिभ्य इत्यस्य व्याख्यानं भारभू-
तेभ्य वंशादिभ्य इति । (पा ५।१।५० सिद्धान्तकौमुदी) कूटजभार
हरण, वहन वा भावहन करनेवाला ।

कौटतण (सं० पु०) कौटः स्वाधीनः तथा, कर्मधा० ।
स्वाधीन सूत्रधर ।

कौटभी (सं० स्त्री०) कौटभी, दुर्गा ।

कौटण (सं० पु०) कूटो घटस्थं सान्ति कूटणाः कुच-
धान्यास्तेषां अपत्यम्, बाहुलकात् यञ् । यद्वा कूट कलष-
स्वार्थे ञ् । वात्स्यायन मुनि ।

कौटवी (सं० स्त्री०) कौटवी, एक नंगी औरत ।

कौटसाक्षी (सं० पु०) कूटएव कौटः स्वार्थे ञ् तादृशः
साक्षी, कर्मधा० । मिथ्यासाक्षी, झूठा गवाह ।

कौटसाक्ष्य (सं० स्त्री०) कौटसाक्षिणो भावः कर्म वा,
कौटसाक्षिन् ञ् । मिथ्यासाक्ष, झूठी गवाही । मनुके
मतमें—झूठी गवाही देनेसे सुरापानके समान अनुपा-
तक लगता है । पीछे यदि समझ पड़े कि कौटसाक्ष-

पक्षसे कोई विवाद मीमांसा किया गया है, तो वह पूर्वकी भांति अकृत अर्थात् पुनर्वार विचारणीय है। सोमसे मिथ्यासाक्ष्य देने पर शत पण, मोहसे प्रथम साहस, भयसे मध्यम साहस, मित्रता तथा अनुरोधसे प्रथम साहसका चतुर्गुण, स्त्री कामनासे प्रथम साहसका दशगुण, क्रोधसे तीन गुण, अज्ञानसे २ शत पण और मूर्खतादोषसे भूठी गवाही देने पर एक शतपण दण्ड करना उचित है।

कौटायन (सं० पु०) कूटस्य गोत्रापत्यम्, कूट-फञ् । कूटवंशाय सन्तान ।

कौटि (सं० पु०) कूटस्य अपत्यम्, कूट-इञ् । मिथ्यावादीका पुत्र, भूठे गवाहका लड़का ।

कौटिक (सं० त्रि०) कूटेन मृगादिवन्धनयन्त्रेण चरति, कूट-ठक् । मांसविक्रेता, गोशफरोश । इसका संस्कृत पर्याय—वेतंसिक और मांसिक है । २ व्याध, बहेलिया ।

कौटिलिक (सं० त्रि०) कुटिलिकया हरति मृगान् अङ्गारान् वा, कुटिलिका-अण् । १ व्याध, चिड़ीमार । २ लोहकार, लोहार ।

कौटिल्य (सं० पु०-स्त्री०) कुटिलस्य भावः, कुटिल-अञ् । १ कुटिलता, क्रूरता, टेढ़ापन । (काव्यप्रकाश) २ चाणक्य । इनके क्रोधानलसे नन्द नृपति विनष्ट और इन्हींके चक्रान्तसे मुरापुत्र चन्द्रगुप्त सिंहासन पर अधिष्ठित हुए । कुटिलताके मूलस्वरूप रहने पर यह कौटिल्य नामसे विख्यात है । चाणक्य देखो । ३ चाणक्यमूलक, किसी किस्मकी मूकी ।

कौटिल्यक (सं० पु०) अग्निप्रकृति कौटिविशेष, एक जहरीला कीड़ा । इसके काटनेसे वातनिमित्तज रोग सठ खड़े होते हैं । (सुश्रुत)

कौटी (सं० स्त्री०) कुटजवृक्ष, कुरैयाका पेड़ ।

कौटीगव (सं० त्रि०) कौटीगव्यस्य छात्रादिः, कौटी-गव-अण् । अपत्यप्रत्ययस्य लोपः । कौटीगवके छात्र प्रभृति ।

कौटीगव्य (सं० पु०) कुटिगोत्रविशेषस्य गोत्रापत्यम् । कौटीगो नामक ऋषिवंशीय सन्तान ।

कौटीय (सं० त्रि०) कूट ऋण् । कूटसन्निष्ठ देश, कूटका निक्षेपवर्ती ।

कौटीर (सं० त्रि०) कुटीरस्य अवयवो विकारो वा, कुटीर-अण् । १ कुटीरका अवयव । २ कुटीरका विकार । कौटीर्य (सं० त्रि०) कुटीरः केवल एव, स्वार्थे अञ् । १ केवल, असहाय, अकेला, बेचारा ।

कौटीर्या (सं० स्त्री०) दुर्गा । (हरिवंश १७८)

कौटुम्ब (सं० त्रि०) कुटुम्बं तदभरणं प्रयोजनमस्य, बहुव्री० । कुटुम्ब भरणोपयोगी द्रव्य, खानदानकी परवरिश करने लायक । (आश्वलायनश्रौतसूत्र १।६।१०)

कौटुम्बिक (सं० त्रि०) कुटुम्बे तदभरणे यापृतः, कुटुम्ब-ठक् । कुटुम्ब परिपालनमें व्यापृत रहनेवाला, जो खानदानकी परवरिशमें लगा रहता हो । भागवत ५।१।१८) कुटुम्बे भवः । २ कुटुम्बसम्बन्धीय, खानदानी ।

(भागवत ५।१।१९)

कौट्या (सं० स्त्री०) कुटस्त्रापत्यं स्त्री, कुट-अञ् । १ कूट-वंशीय कन्या । (त्रि०) कुट-अञ् । २ कूटसन्निष्ठ देशादि ।

कौठार (सं० पु०) कुठारस्य तन्नामकस्य ऋषेरपत्यम्, कुठार-अण् । कुठार नामक ऋषिके पुत्र ।

कौठारिक्य (सं० त्रि०) अल्पा कुठारी कुठारिका तस्या इदम्, कुठारिका-ठक् । क्षुद्र कुठारसम्बन्धाय, छोटी कुल्हाड़ीसे सरोकार रखनेवाला ।

कौठारी (सं० स्त्री०) कौठार-डीप् । कुठार नामक ऋषिकी कन्या ।

कौठुम (सं० पु०) कौथुम शाखा ।

कौडविक (सं० त्रि०) कुडवस्य वापः, कुडव-ठञ् । (तस्य वापः । पा।५।१।४५) १ कुडव परिमित वीजवपनके उपयुक्त, एक कुडव वीज डालने लायक । कुडवं तत् परिमितमन्नं सम्भवति पचति अवहरति वा, कुडव-ठञ् । सम्भवत्यवहरति पचति । पा।५।१।५२ । २ एक कुडव अन्न रह सकने लायक । ३ एक कुडव अन्न पाक करनेवाला । ४ एक कुडव परिमित अन्न अवहरण करनेवाला । ५ कुडव परिमित, बारह मुंडो ।

कौड़ा (द्वि० पु०) १ छड़त् कपटक, बड़ी कौड़ी । २ अस्त्राव, तापनेके लिये रोज जलाया जानेवाला एक गड़ा । जाड़ेमें इसकी चारो तरफ बैठके लोग तापते और बातचीत करते हैं । ३ कौचिंड़ा, कोई जंगली प्याज ।

कौड़िया (हि० वि०) कपर्दक-जैसा, कौड़ीसे मिलता-जुलता ।

कौड़ियाला (हि० वि०) १ कोकई, हलका नीला, इसमें कुछ गुलाबीकी भलक रहती है । (पु०) २ कोकई रंग । ३ कोई सांप । यह जहरीला होता और शरीर पर कौड़ी-जैसा दाग रहता है । ४ कपण, कंजूस । ५ एक पेड़ । यह जसरमें चपजता और मट-मैले रंगकी छोटी छोटी पत्तियां रखता है । कौड़िया-सामें कुच्छी-जैसे छोटे छोटे फूल आते हैं । यह तीन प्रकारका होता है—सफेद, लाल और नीला । नीले फूलका कौड़ियाला विष्णुकाम्ता भी कहलाता है ।

अपुण्यो देखो ।

कौड़ियाही (हि० स्त्री०) १ कौड़ियोंमें चुकाई जाने वाली मजदूरी । २ लालची, कौड़ियों पर काम करने-वाली ।

कौड़ी (हि० स्त्री०) कपर्दिका, यह एक समुद्री कौड़ा है । घाँवकी भाँति कौड़ी भी अस्थिकोशमें ही रहती है । इसका अस्थिकोश ऊँचा और चमकीला होता और उसके नीचे बड़ा लम्बा पतला छेद रहता है । इस छेदके दोनों किनारों पर दाँत होते हैं । खुले मुखको बन्द करनेके लिये ठकन नहीं रहता । कौड़ीका शिर छिद्रके बाहर होता है । उसके दोनों कोने अर्धेन्द्रियका काम देते हैं । कल्प देखो । २ द्रव्य, रुपया पैसा । ३ कर, खिराज । ४ अक्षिगोलक, आँखका डेला । ५ छातीकी एक हड्डी । यह छातीके बीचो बीच सबसे छोटी रहती है । सबसे नीचेकी दो पसलियां कौड़ी ही पर आके मिलती हैं । ६ कोई गिलटी । प्रायः जाँघ, काँख और गलेकी गिलटीको कौड़ी कहते हैं । ७ कटारकी घनी ।

कौड़ी गुड़गुड़ (हि० पु०) क्रीड़ाविशेष, एक खेल । बहुतसे लड़के दो पंक्तियोंमें आमने सामने बैठते हैं । दोनों पंक्तियोंमें एक एक सरदार रहता है । पैसा या जूता उछाल कर निर्णय करते, जिस ओरसे खेल शुरू होगा । जिस पंक्तिसे खेल आरम्भ होता, उसका सरदार अपनी अंजुलीमें एक कौड़ी छिपा धूल भर लेता है । फिर वह कौड़ी थोड़ी धूल अंजुलीसे अपनी ओरके सब

लड़कोंके हाथ पर डालता है । दूसरी ओरके लड़के इस बात पर ध्यान रखते हैं, कौड़ी किस लड़केके हाथ पर गिरी है । ठीक मालूम हो जाने पर जिसके हाथ पर कौड़ी गिरती, उसके चपत पड़ती है । इसको कौड़ी जगनमगन भी कहते हैं ।

कौड़ीजूड़ा (हि० पु०) अलङ्कारविशेष, एक गहना । इसे स्त्रियां मस्तक पर धारण करती हैं ।

कौड़ेना (हि० पु०) १ यन्त्रविशेष, कोई औजार । यह कोड़ेका होता है । कसेरे इससे बर्तनों पर नकाशो करते हैं । कौड़ेना छेद बालिश लंबा और नोक पर पतला तथा चपटा रहता है । २ कौड़ियाला जड़ी । (स्त्री०) ३ कौड़ियाही ।

कौड़यक (सं० त्रि०) कुड्याया जातः, कुड्या-टकन । कवादिभ्यो ढकञ् । पा ४।२।२३ । कुड्याजात ।

कौणकुत्तर (सं० पु०) एक ऋषि । (भारत, आदि ८७०)

कौणप (सं० पु०) कुणपस्त्रिधातुकं शरीरं शर्वं वा भजयितुं शीलमस्य, कुणप-अण् यद्वा कुणपः भक्ष्यत्वेन अस्त्यस्य । १ राजस । (भारत, आदि १०० ७०१) २ वासुकि वंशीय कोई सर्प । (भारत १।५०।५ (त्रि०) ३ कुटप-गन्धि, बदबूदार ।

कौणपदण्ड (सं० पु०) कौणपस्य दण्डा इव दण्डो यस्य, बहुव्री० । भोष ।

कौणपाशन (सं० पु०) कौणपानामशनमिवाशनं यस्य, बहुव्री० । एक सांप । (भारत, आदि २५७०)

कौणिन्द (सं० पु०) कुणिन्द-जनपदवासी । कुनिन्द देखो ।

कौण्य (सं० पु०) रजनका प्रतिपालक । (तैत्तिरीयसं०)

कौण्डपायिन् (सं० स्त्री०) कुण्डपायिनामिदम् कुण्डपायिन्-अण् निपातनात् साधुः । कुण्डपायियोंका करणीय एक यज्ञ ।

कौण्डपायो (सं० पु०) कुण्डमेष कौण्डं तेन पिबति, कौण्ड पा णिनि । सोमयागकारी एक यजमान ।

कौण्डभट्ट, कौण्डभट्ट देखो ।

कौण्डल (सं० त्रि०) कुण्डलमस्त्यस्य, कुण्डल-अण्, अण्-प्रकारणे ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम् । (पा ५।२।१०२ । वार्तिक) कुण्डलयुक्त, बाला पहने हुआ ।

कौण्डलिक (सं० त्रि०) कुण्डल-कुसुदादित्वात् ठक् ।
कुण्डल सन्निकृष्ट देशादि ।

कौण्डाग्निक (सं० त्रि०) कुण्डाग्नी भवः, कुण्डाग्नि-
युज् । कल्पाधिकृतोत्तरपदात् । पा। ४। २। १२६। कुण्डाग्नि
समुत्पन्न, कुण्डाग्नि-सम्बन्धीय, कुण्डकी भागसे निकल
हुआ ।

कौण्डायन (सं० त्रि०) कुण्डस्य अदूरवर्ती देशादि कुण्ड-
पक्षादित्वात् फक् । कुण्डके निकटवर्ती देशादि ।

कौण्डिनी (सं० स्त्री०) कौण्डिन्य-ङीप् यलोपस्य । कुण्डिन
मुनिकी कन्या ।

कौण्डिनेयक (सं० त्रि०) कुण्डिन-ठक्ञ् । कुण्डिन नगर-
जात, कुण्डिननगरसम्बन्धीय ।

कौण्डिन्य (सं० पु०) कुण्डिनस्य गोत्रापत्यम्, कुण्डिन-
यज् । १ कुण्डिन मुनिके पुत्र । किसी समय शिवके
क्रोधसे विष्णुने इन्हें बचाया था । तदवधि इनका दूसरा
नाम विष्णुगुप्त पड़ गया । (शतपथब्राह्मण १४। ४। १०)
यह एक धर्मशास्त्रकार थे । नीलकण्ठ और कमला-
करने इनका मत उद्धृत किया है । २ दाक्षिणात्यके
कोई विश्वामित्रगोत्रीय राजा । (महाभारत १। २२। २८)
३ गोत्रप्रवर्तक ऋषिभेद । ४ कोई प्रधान बौद्ध स्थविर ।
प्रथम यह भाराठ-कालामके निकट दीक्षित हुवे ।
श्यामदेशीय बुद्धजीवनीमें लिखा है—बुद्धदेवके जन्म-
काल राजा शुद्धोदनने १०८ ब्राह्मणोंको बुलाया था ।
उनमें पाठ लोग प्रधान रहे । इन्हीं प्रधानोंमें एक
कौण्डिन्य भी थे । उस समय वयस अल्प रहते भी इन्होंने
वेदवेदाङ्ग सीख लिये थे । इन्होंने शुद्धोदनसे सम्भाषण
करके कहा—राजन् । आपका पुत्र संसारके सुखमें
सुखी न होगा, राजराजेश्वरके पदको भी अप्राप्त
करेगा; इसको सर्वज्ञ बुद्धपद मिलेगा । जिस समय बुद्ध
देव निर्जन अरण्यमें कठोर साधन करते थे, कौण्डिन्य
भी उनके निकट रहे । बुद्धके शिष्योंमें यह सबसे वयो-
ज्येष्ठ थे । भोटदेशके विनयसूत्रमें कहा है—बुद्धदेव
जब कोई शास्त्रीय तत्त्व इनसे पूछते, यह अवलीला-
क्रममें उसका उत्तर दे दिया करते थे । इसीसे लोग
इन्हें 'अज्ञातकौण्डिन्य' कहते थे ।

सुवर्णप्रभास नामक नेपालदेशीय बौद्धग्रन्थमें
लिखा है—

शाक्य मुनिके निर्वाणलाभकी बात सुनके कौण्डि-
न्यने बुद्धदेवके पदप्राप्तमें विलुण्ठित हो कर प्रार्थना
की—प्रभो ! आपने जो महाज्ञानलाभ किया है,
उससे सर्वपका कणमात्र मुझे भी प्रदान कीजिये,
मेरा यही शेष भिक्षा है ।

तिब्बतके विनयसूत्रमें बताया है—बुद्धदेवके निर्वाण
पीछे आनन्द जब महामण्डलके मध्य बुद्धदेवका मही-
पदेशपूर्ण सूत्रान्त पढ़ा था, कौण्डिन्य उसे सुन कर
मूर्छित हो गये । शेषको इन्होंने ज्ञानाक्षोकसे उद्बोस
हो कर संसार परित्याग किया ।

कौण्डिन्य दीक्षित—एक प्रसिद्ध नैयायिक । यह मुरारि-
भट्टके शिष्य रहे । इन्होंने तर्कभाषाप्रकाशिकाको
रचना किया ।

कौण्डिन्या (सं० स्त्री०) मांसरोहिणी, एक खुगवृद्धार
चीज ।

कौण्डिन्यायन (सं० पु०) कुण्डिनस्य युवापत्यम्, कुण्डिन-
गर्गादित्वात् यञ्-ततः फक् । कुण्डिनका युवक अपत्य ।
(शतपथब्राह्मण १४। ५। ५। १०)

कौण्डिन्य, कौण्डिन्य देखो ।

कौण्डिन्यक (सं० पु०) कीटविशेष, एक कीड़ा । इसकी
विष्टा और मूत्रमें विष होता है । (सुश्रुत)

कौण्डोपरथ (सं० पु०) कुण्डोपरथ-अण् । अस्त्रधारो
जातिविशेष, एक सड़ाका कीम । (सिद्धान्तकौमुदी)

कौण्य (सं० त्रि०) १ विकलाङ्ग । (कौ०) २ कुणित्व,
हाथका टेढ़ापन ।

कौतप (सं० त्रि०) कुतपमस्तस्य, कुतप्-अण् । कुतप-
विशिष्ट, अच्छी तपस्या न करनेवाला ।

कौतुस्त (सं० त्रि०) कुतः कुतो भवः, कुतः कुतस
अण् टिलोपस्य विसर्गस्य सकारः । कल्पादित्वात् पा। ८। २। ७८
किस किस स्थानका जात, कौन कौन जगहमें पैदा
होनेवाला ।

कौतस्त (सं० त्रि०) किस स्थानका जात, कौनमो
जगह पैदा होनेवाला ।

कौतुक (सं० क्ली०) कुतुक प्रज्ञादित्वात् स्वायं अच्
यद्वा कुतकस्य भावः, कुतुक युवादित्वात् अण् । १ कुतु-
हल, किसी चीजको देखने या समझनेके लिये उत्साह ।

२ माङ्गलिक हस्तसूत्र, रखिया । (कुमारसम्भव ७।२।)

३ उत्सव, जलसा । (भागवत ४।२।१३) ४ अभिलाष, स्नाहिश । (कवासरित्सानर) ५ परिहास, हंसी, ठठोली ।

६ आनन्द, मजा । ७ परस्परगत मङ्गल । ८ नृत्य गीतादि, तमाशा । ९ भोगकाल, खानेका वक्त ।

कौतुककर्ता (सं० पु०) कौतुक करनेवाला, जो तमाशा दिखाता हो ।

कौतुकाक्रिया (सं० स्त्री०) आमोदप्रमोद, हंसी खेल, स्वांग तमाशा ।

कौतुकतोरण (सं० पु०-स्त्री०) कौतुकेन निर्मित तोरणम्, मध्यपदलो० । उत्सवनिर्मित तोरण, जलसेका साज ।

कौतुकमङ्गल (सं० स्त्री०) कौतुकेन कृतं मङ्गलम्, मध्य पदलो० । उत्सव मङ्गल, जलसेकी खुशी ।

कौतुकागार (सं० स्त्री०) कौतुकगृह, जलसे या तमाशेकी जगह ।

कौतुकिनी (सं० स्त्री०) कौतुकमस्त्यस्याः, कौतुक-इनि स्त्रियां ङीप् । नायिकाविशेष, तमाशा करनेवाली औरत ।

कौतुकिया (हिं० पु०) १ कौतुकी, तमाशा करनेवाला । २ विवाह सम्बन्ध स्थिर करनेवाले नापित, पुराहित आदि ।

कौतुकी (सं० त्रि०) कौतुकमस्त्यस्य, कौतुक-इनि । १ कौतुकविशिष्ट, तमाशेमें पड़ा हुआ । २ कौतुक करनेवाला, जो तमाशा करता हो ।

कौतूहल (सं० स्त्री०) कुतूहलस्य भावः कर्म वा, कुतूहल युवादित्वात् ण्ययद्वा कूतूहल प्रज्ञादित्वात् स्वार्थ ण्य । १ कुतूहल, किसी नये या अपरिज्ञात विषयके जानने, सुनने या देखनेका आग्रह । (माकंष्य ८।१)

कौतूहल्य (सं० स्त्री०) कुतूहल ब्रह्मणादित्वात् स्वार्थ ण्यम् । गुणवचनब्रह्मणादिभ्यः कर्त्तृणि । पा ५।१।१२५ । कुतूहल, तमाशा ।

कौतोमत (सं० पु०) कुतोमतस्यापत्यम्, कुतोमत ण्य । एक ऋषि । (गोपब्राह्मण)

कौत्स (सं० पु०) कुत्सस्य ऋषेरपत्यम्, कुत्स-ण्य । कुत्स नामक ऋषिके पुत्र । यह महर्षि वरतन्तुके शिष्य और जेमिनिके आचार्य थे । (आचक्षायन श्रौतसूत्र १।२।५)

रघुवंशमें वर्णित हुआ है कि वशिष्ठके शिष्य कौत्सने गुरुके आदेशसे अयोध्यापुर पहुँचके इन्दुमतोके विद्योग-में शोकविह्वल अज राजको नानाविध उपदेश दिया था ।

(रघु ५म सर्ग)

राजर्षि भगीरथने इनको हंसी नाम्नी कन्या सम्प्रदान की थी । (भारत, अश्वमेध १२७ अ०)

यास्कने निरुक्तमें लिखा है—व्याकरण व्युत्पत्त मन्त्रका अर्थ समझ नहीं पड़ता । फिर जिसका अर्थ समझमें नहीं आता, उसका स्वरसंस्कार भी असम्भव दिखाता है । अतएव व्याकरण ही विद्यास्थान है और इसका भी पड़ता है । कौत्स कहते हैं कि मन्त्रका अर्थ समझनेके लिये व्याकरणकी कोई जरूरत नहीं, मन्त्रका अर्थ कब होता है । पूर्वप्रदर्शित युक्तिके बलसे कौत्सका मत उपेक्षित हो गया । (निरुक्त १।१५)

(स्त्री०) कुत्सेन दृष्टं साम, कुत्स-अण् । कुत्स नामक ऋषिकर्त्तृक दृष्ट सामविशेष । यह विकृत यज्ञमें गेय होता है । (सामवेद, गा० १६ प० २ अर्ध १० गान) कौत्सायन (सं० पु०) कुत्स पञ्चादित्वात् चातुरार्थिक फक् । कुत्स-सम्बन्धीय ।

कौत्सी (सं० स्त्री०) कुत्सस्य अपत्यं स्त्री, कुत्स-अण् स्त्रियां ङीप् । कुत्स नामक ऋषिकी कन्या ।

कौथ (हिं० स्त्री०) कौन तिथि, क्या तारीख । यह शब्द एक प्रकारका प्रश्नवाचक सर्वनाम है ।

कौथुम (सं० त्रि०) कुथुमं वेदशाखाविशेषं अधीते वेत्ति वा कुथुम-अण् । तदधीते तद्वैद । पा ४।२।५२ । १ कुथुम शाखाध्यायी । २ कौथुमि-सम्बन्धीय ।

कौथुमी (सं० स्त्री०) कुथुमि मुनि प्रचारित सामवेदकी एक शाखा । ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है—वाराहकल्पके जनविंशति युगमें शिव जटामाली नाम ग्रहण करके अवतीर्ण हुये । हिमालयके अन्तर्गत जटायु पर्वतमें उनका वासस्थान रहा । जटामालीके चार पुत्र हुए । उनमें सर्व कनिष्ठका नाम कुथुमि था । कुथुमि महर्षि हिरण्यनाभके निकट प्राच्य सामवेद अध्ययन करके अद्वितीय वैदिक-जैसे विख्यात हुये । महर्षि कुथुमिने सामवेदकी जिस शाखाको प्रचार किया, उसीका नाम कौथुमी शाखा है । कुथुमिके पराशर, भागवति और

तंजस्त्री नामक तीन पुत्र हुवे। इन तीनोंने कथुमिसे सामवेदकी कौथुमी शाखा पढ़ी थी। इन्हीं तीनोंको कौथुम कहा करते हैं। कथुमिके ज्येष्ठपुत्र पराशरने ६ संज्ञिताओंको प्रचार किया था। पासुरायण, वैशाख्य, वेदहृष्ट, परायण, प्राचीनयोगपुत्र और पतञ्जलि—इस लोग पराशर-कौथुमके शिष्य रहे। इनके प्रशिष्यक्रमसे कौथुमी शाखा विस्तृत हुई है।

भारतवर्षके सामवेदी ब्राह्मण प्रायः कौथुमी-शाखाके अनुसार कार्य किया करते हैं।

कौथुमी (सं० पु०) कौथुम ।

कौदालीक (सं० पु०) कुदारेण आचरति, कुदार-ईकन् रस्य लत्वम् । कुदालीकः ततः स्वार्थे ण् । एक जाति । तीवरके औरस और रजकीके गर्भसे यह लोग निकले हैं। (ब्रह्मवैवर्त पु०)

कौद्रविक (सं० स्त्री०) कौद्रवो निमित्तमस्य, कौद्रव-ठञ् । सौवर्चलवण, सौवर नोन ।

कौद्रवीण (सं० स्त्री०) कौद्रवाणां भवनं उत्पत्तिस्थानम्, कौद्रव-खण् । (धात्यानां भवने चैव खञ् । पा। ३।१।११) क्षेत्रविशेष कौद्रवका खेत ।

कौद्रायण (सं० पु०) कुद्रस्य ऋषेयुं वापत्यम्, कुद्र-इञ् । ततः फक् । कुद्र नामक ऋषिके युवक पुत्र ।

कौद्रायणक (सं० त्रि०) कौद्रायण चातुरर्थिक वुञ् । कौद्रायण सन्निकृष्ट देशादि ।

कौद्रय (सं० पु०) कुद्रि ठञ् । ग्यादिभ्यश्च । पा। ३।१।११६ ।

कुद्रिके पुत्र । (कात्यायन १०।१।२१)

कौद्रयी (सं० स्त्री०) कौद्रय-ङीप् । कुद्रिकी कन्या ।

कौन (हि० सर्व०) १ कः, को, कौनसा। यह एक प्रश्न-वाचक सर्वनाम है। इसके द्वारा अभिप्रेत व्यक्ति वा वस्तुको पूछते हैं।

‘कौनको लक्ष्य हो करेया भयो काव ।’ (पद्माकर)

विभक्ति लगानेसे ‘कौन’ का ‘किस’ हो जाता है, जैसे—किसने, किसको, किसमें, किससे इत्यादि । (वि०) २ कैसा, किस प्रकारका ।

कौनस्य (सं० स्त्री०) कुनखिनो भावः, कुनखिन्-खण् । टिशोपस्य । कुनखीरोग । ब्राह्मणको सोना चोरी करने-से पापभोगके पीछे उसका चिह्नस्वरूप कुनखीरोग लग जाता है । (नट ११।७८)

कौनामि (सं० पु०) कुनामिनोऽपत्यम्, कुनामिन्-इञ् । कुत्तित नामधारीका अपत्य ।

कौनामिक (सं० त्रि०) कुनामन्-ठञ् । कनाम सम्बन्धीय, बदनामीके सुताज्ञिक ।

कौन्तायनि (सं० त्रि०) कुन्ती कर्णादित्वात् फिञ् । कुन्तीके निवास देशादि ।

कौन्तिक (सं० पु०) कुन्तः प्रहरणमस्य, कुन्त-ठञ् । कुन्तास्त्र धारण करके लड़नेवाला, जो भालासे लड़ता हो ।

कौन्ती (सं० स्त्री०) कुन्तिषु देशविशेषेषु भवा, कुन्ति-अण् । ततो ङीप् । रेणुका नामक गन्धद्रव्य, एक खुश-बूदार चीज । इसका संस्कृत पर्याय—रेणुका, राजपुत्री, नन्दिनी, कपिला, द्विजा, भस्मगन्धा, पाण्डुपुत्री, हरे-णुका, ब्राह्मणी और हैमगन्धिनी है । रेणुका देखो ।

कौन्तेय (सं० पु०) कुन्त्या अपत्यम्, कुन्तो-ठक् ।

१ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर प्रभृति । (गोता) २ अर्जुनपुत्र ।

कौन्त्य (सं० पु०) कुन्ति-आङ् । कुन्तिदेशीय राजा । (सिद्धान्तकौमुदी)

कौन्द (सं० त्रि०) कुन्दस्त्रेदम्, कुन्द-अण् । कुन्दसम्बन्धीय ।

कौन्द्रायण, कौद्रायण देखो ।

कौन्द्रायणक, कौद्रायणक देखो ।

कौप (सं० स्त्री०) कूपे भवम्, कूप-अण् । १ कूपोदक, कूपका पानी । यह खादु, त्रिदोषघ्न, शीतल और लघु होता है । लवणयुक्त होनेसे कौप पित्तवर्धक, श्लेष्मघ्न, दीपन और लघु है । वसन्तकालको कूपका जल सेवनीय होता है । (सन्त) (त्रि०) २ कूपसम्बन्धीय, -कूपके सुताज्ञिक ।

कौपजल, कौप देखो ।

कौपाटकी (सं० स्त्री०) कौमोदकी नाकी कणकी गदा ।

कौपिञ्जल (सं० पु०) कुपिञ्जलस्यापत्यम्, कुपिञ्जल-अण् । कुपिञ्जलके पुत्र ।

कौपिञ्जली (सं० स्त्री०) कौपिञ्जल ङीप् । कुपिञ्जलकी कन्या ।

कौपीन (सं० स्त्री०) कूपे पतनमर्हति, कूप-खण्, अकार्याद्यै निपातः । १ अकार्य, न करने लायक काम ।

२ पाप, गुनाह । ३ गुह्यदेश । ४ उपस्य, लिङ् ।
५ मेखलावह परिधेय वस्त्रखण्ड, कफनी । इसका संस्कृत
पर्याय—कच्छा, कच्छटिका, कक्षा और घटी है ।

(भागवत ७।१३२)

कौपीनवान् (सं० त्रि०) कौपीनमस्यस्य, कौपीन-
मतुप् मस्य वः । कौपीनविशिष्ट, कफनी पहने हुआ ।
कौपुत्र (सं० स्त्री०) कुपुत्रस्य भावः कर्म वा, कूपुत्र-वृज् ।
हन्मनोशादिभाष्य । पा ५।१।१३३ । १ कुपुत्रका धर्म, बुरे लड़-
केका काम ।

कौपीदकी (सं० स्त्री०) कौपीदकी निपातनात् साधुः ।
कौपीदकी, विष्णुकी गदा ।

कौप्य (सं० त्रि०) कूपे भवः, कूप-यञ् । कूपजात,
कूपसे पैदा होनेवाला ।

कौबीरा (सं० स्त्री०) भूम्यामलकी, भुईं पांवला ।

कौबीर, कौबीर देखो ।

कौबीरघट (सं० पु०) अश्वजातिका एक दुष्ट घट
लिङ्गाङ्ग, वेपमान और जानुवोंके सहारे बैठनेवाले
घोड़ेकी कौबीरघट रहता है । (चक्रवर्त)

कौञ्ज (सं० स्त्री०) कुञ्जस्य भावः, कुञ्ज-अञ् । शरीर-
का वक्रभाव, कुञ्जत्व, जिह्मका टेढ़ापन ।

कौम (सं० पु०-स्त्री०) काठक ।

कौम (सं० स्त्री०) जाति, नस्ल ।

कौमार (सं० पु०) अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरूपपन्नः निपातः ।
कौमारा पूर्वापत्ते । पा ४।२।१२ । १ कुमारीपति, लड़कीका
स्वामी । २ कुमारावस्था, बचपन । यह अस्मद्वधि पञ्चम
वर्ष पर्यन्त रहता है । जातव्यस्ति जिस दिन प्रथम
पुष्पी-पर जाता उसी दिनसे पञ्चमवर्ष पर्यन्त कौमार
ठहरता है । तन्त्रके मतमें कौमारावस्था चौदश वर्ष-
पर्यन्त मानी गयी है । (गीता २।१२)

कुमारस्य सन्तकुमारस्यायम्, कुमार-अण् । १ सन्त-
कुमारवृत्त लृङ्गिभेद । (भागवत १।१।३) ४ कुमार,
बच्चा । ५ अविवाहित पुत्र । (त्रि०) ६ कुमार-सम्ब-
न्धीय, बच्चेसे सरोकार रखनेवाला । (भारत १।२५ अ०)
कौमारक (सं० स्त्री०) कौमारमेव, स्वार्थे कन् । कौमार ।
कौमारवृत्त (सं० स्त्री०) शाकधत्वा, आयुर्वेदका एक
तन्त्र । इसमें वाक्पत्रका जालन पावन और चिकित्साका

विषय बहुत अच्छी रीतिसे कहा गया है । कुमारवृत्तादिहो ।
कौमारावृत्त (सं० स्त्री०) यौवराज्य, लड़केकी रियासत ।
कौमारायण (सं० पु०) कुमारस्य गोत्रापत्यम्, कुमार-
फक् । कुमार नामक ऋषिवंशीय सन्तान ।

कौमारायणी (सं० स्त्री०) कौमारायण-ऊोप् । कुमार
नामक ऋषिवंशीय स्त्री ।

कौमारिक (सं० त्रि०) १ कुमारीसम्बन्धीय । (पु०)
कोई राग ।

कौमारिकेय (सं० पु०) कुमारिकाया अपत्यम्, कुमारिका
ठक् । कुमारीका पुत्र, कानीन ।

कौमारी (सं० स्त्री०) अपत्नीकं कुमारं पतिमुपपन्ना
निपातनात् कौमारि ततो ऊोप् । १ प्रथमा पत्नी, दार-
परिग्रह न करनेवालेकी स्त्री । २ कुमारसम्बन्धीय
श्रेष्ठा, लड़केकी कोशिश । (भागवत १।१।२८) ३ कार्ति-
केयशक्ति, मातृकाविशेष । (मातृकाय चर्चा) ४ वाराही-
कन्द । ५ वंशसोचनभेद । ६ घृतकुमारी ।

कौमुद (सं० पु०) कौ पृथिव्या मोदते जना यस्मिन्,
मुद-क, अलुक्समा० । कार्तिक मास, कार्तिकका
महीना ।

कौमुदिक (सं० पु०) कुमुद-ठक् । कुमुदपर्वतका सजि-
ल्लह देश ।

कौमुदिका (सं० स्त्री०) कौमुदी सञ्चार्ये कन् ततो ङस्त्वः
टाप् च । १ दुर्गाकी कोई सखी । २ ज्योत्स्ना, चांदनी ।

कौमुदी (सं० स्त्री०) कुमुदस्य इयं प्रकाशकत्वात्, कुमुद-
अण् ततो ऊोप् । १ ज्योत्स्ना, चांदनी । (कुमार ४।२१)
२ कार्तिकी पूर्णिमा, कतकी । ३ पाश्चिमी पूर्णिमा,
सरदपूनी । ४ दीपोत्सव तिथि । (पञ्चमंग) ५ उत्सव,
धूमधाम । ६ कार्तिकीव्रत । ७ सिद्धान्तकौमुदी ।
८ दाक्षिणात्यकी कोई नदी । ९ कुमुदिनी, बचपन ।

कौमुदीचार (सं० पु०-स्त्री०) कौमुद्या ज्योत्स्नायाश्चारः
प्रागस्त्यमत्र, बहुव्री० । कोजागर पूर्णिमा, सरदपूनी ।
कौमुदीजीवन (सं० पु०) अक्षोरपत्नी ।

कौमुदीपति (सं० पु०) कौमुद्याः पतिः, इ-तत् । चन्द्र,
चांद । कौमुदीनाथ प्रभृति शब्द भी इसी अर्थमें व्यव-
हृत होते हैं ।

कौमुदीवृत्त (सं० पु०) कौमुद्या इव प्रकाशिकायाः

दीपशिखायाः वृक्षः, ६-तत् । दीपवृक्ष । देवदारका सीधा पेड़ ।

कौमुदतेय (सं० पु०) कुमुदतया अपत्यम्, कुमुदती-ठक् । कुमुदतीके पुत्र । (रघु १८।२)

कौमोदकी (सं० स्त्री०) कोः पृथिव्याः पादकत्वात् मोदकः कुमोदको विष्णुः तस्येयम्, कुमोदक-घण्-ङीप् । कृष्णकी गदा । यह गदा खाण्डवदाहनकाल की अग्नि के निकट मिली थी । (हरिवंश २२)

कौमोदी (सं० स्त्री०) कुं पृथिवीं मोदयति कुमोदः विष्णुः तस्येयम्, कुमोद-घण्-ङीप् । विष्णुकी गदा ।

कौम्भ (सं० त्रि०) कुम्भ-घञ् । १ कुम्भसम्बन्धीय, मटके वाला । (स्त्री०) २ कुम्भमध्यस्थित एक शत वत्सरका पुराण वृत्त, मटकेमें रखा हुआ सौ वर्षका पुराण थी । कौम्भकारक (सं० स्त्री०) कुम्भकारेण कृतम्, कुम्भकार-वुञ् । कुम्भकारनिर्मित एक मृत्तिकापात्र, कुम्हारका बनाया मट्टीका कोई वस्तु ।

कौम्भकारि (सं० पु०-स्त्री०) कुम्भकारस्वापत्यम्, कुम्भ-कार-इज् । उदीचमिन् । पा ४।१।१६१ । कुम्भकारका पुत्र वा कन्या, कुम्हारका लड़का या लड़की । स्त्रीलिङ्गमें विकल्पसे ङीप् पाता है ।

कौम्भकारी (सं० स्त्री०) कुम्भकार-इज्-स्त्रिया वा ङीप् । कुम्भकारकी कन्या, कुम्हारकी लड़की ।

कौम्भकार्यं (सं० पु०) कुम्भकारस्वापत्यम्, कौम्भकार-व्य । शैनालक्षचकारिभाष । पा ४।१।१६१ । कुम्भकारका पुत्र, कुम्हारका लड़का ।

कौम्भकार्या (सं० स्त्री०) कुम्भकार-व्य-टाप् । कुम्भकारकी कन्या, कुम्हारकी बेटी ।

कौम्भहत (सं० स्त्री०) शताब्दिका वृत्त, सौ वर्षका पुराण थी ।

कौम्भसर्पिः, कौम्भहत दीर्घ ।

कौम्भायन (सं० त्रि०) कुम्भ-फक् । कुम्भके सन्निकृष्ट देशादि ।

कौम्भायनि (सं० त्रि०) कुम्भ चातुरर्थिक फिज् । कुम्भके सन्निकृष्ट देशादि ।

कौम्भीर (सं० पु०) कुम्भीक तथा तत्सदृश जीव, घड़ियाल और उसके जैसा जानवर ।

कौम्भीयक (सं० त्रि०) कुम्भी-ठक्ञ् । कुम्भीजात, घड़ियालसे पैदा होनेवाला ।

कौम्भीर (सं० त्रि०) कम्भ-व्य । कुम्भसन्निकृष्ट देशादि । कौर (हिं० पु०) १ कवल, निवाला, एक बार मुँहमें डाली जानेवाली खानेकी चीज । २ चक्कीमें एक बार पीसनेकी डाला जानेवाला अन्न । ३ वृक्षविशेष, एक झाड़ । यह छोटा और फैलनेवाला होता है । उत्तर-भारतकी पार्वत्य भूमिमें कौर उपजता है । ४ कोना, पाखा ।

“अस त्वे चितवे नितवे कौरे नागि ।

अग्निं ह्येष उपरिया रक्षिणे नागि ॥”

कौरयाच (वे० पु०) कुरयाचस्वायम्, कुरयाच-घण् । शत्रु के प्रति गमन करनेको उत्थात व्यक्तिका पुत्र । (अक ८।१।११)

कौरव (सं० पु०) कुरोरपत्यम्, कुर-घञ् । वत्सादिभ्योऽङ् । पा ४।८६ । १ कुरवंशीय । (भारत १।१२८।१६) २ कुरराज सम्बन्धीय देश । (निघट्ट ५०) ३ तद्वंशीय राजा । (त्रि०) ४ कुरसम्बन्धीय ।

कौरवक (सं० त्रि०) कुरोर्गोत्रापत्यम्, कुर-वुञ् । कुर-वंशीत्यन् । २ कुरवक सम्बन्धीय, कटसरैयाके सुतादि ।

कौरवायचि (सं० पु०-स्त्री०) कुरोरपत्यम्, कुर-फिज् । कुरवंशीय पुत्र वा कन्या ।

कौरवी (सं० स्त्री०) कौरव-ङीप् । कुरसम्बन्धीया, कुरसे सरोजार रखनेवाली । (भारत १।१२०।१५)

कौरवेय (सं० पु०) कुरोर्गोत्रापत्यम्, कुर बाहुलकात् ठक् । कुरवंशीय, कुरकुलजात । (भारत १।१४२)

कौरव्य (सं० पु०) कुरोरपत्यम्, कुर-व्य । १ कुरवंशीय, कौरव (भारत १।१२२।५५) २ नागविशेष (भारत १।१५।१६)

कौरव्यायचि (सं० पु०-स्त्री०) कौरव्यस्वापत्यम्, कौरव्य-फिज् । कौरव्यके सन्तान ।

कौरव्यायची (सं० स्त्री०) कौरव्य-०-ङीप् । कौरव्यभाष्यका भाष्य । पा ४।१।१८ । कौरव्यवंशीत्यन्ता स्त्री ।

कौरव्यायणीपुत्र (सं० पु०) कौरव्यायस्याः पुत्रः, ६-वत् । एक वेदिक आचार्य ।

कौरव्यव (सं० पु०) प्रवर ऋषिर्भेद । (प्रवरभाष्य)

कौरा (हिं० पु०) १ द्वारका एक भान, दरवाजेका कोई

हिस्सा। किवाड़ खुलने पर इससे भिड़ जाते हैं।
 २ कुत्ते वगैरहकी दिया जानेवाला रोटीका टुकड़ा।
 ३ कौड़ा, अनाव।
 कौरियाना (हिं० क्रि०) दोनों हाथोंसे पकड़के छातीमें लगाना, मिलना भेटना।
 कौरी (हिं० स्त्री०) १ कौड़, गोद। २ अनाजके कुछ कटे हुए पीटे। यह फसलके वक्त मजदूरोंकी मजदूरीमें मिलती है। ३ गुवार।
 कौरकत्य (सं० पु०) कुरुकतस्यापत्यम्, कुरुकत-यञ्। कुरुकत नामक ऋषिके पुत्र।
 कौरकत्यायनि (सं० पु०) कुरुकतस्य युवापत्यम्, कुरुकत-यञ्-फिञ्। कुरुकत ऋषिके युवापत्य।
 कौरकुल (सं० पु०) कौरसम्प्रदायभेद।
 कौरजङ्गल (सं० त्रि०) कुरुजङ्गल-चातुरर्थिक अ वा वृद्धि उत्तरपदस्य। कुरुजङ्गलका जात।
 कौरजङ्गल, कौरजङ्गल देवी।
 कौरपाञ्चाल (सं० त्रि०) कुरुपु पञ्चालेषु च प्रसिद्धः, कुरु-पञ्चाल-अण् डभयपदवृद्धिः। कुरु और पञ्चाल देशप्रसिद्ध।
 (शतपथब्राह्मण १।०।२।८)
 कौर्य (सं० पु०) एक मुनि। (लिङ्गपुराण ७।५१)
 कौरमाधु—भागवतपुराणके एक टीकाकार।
 कौपर (सं० त्रि०) कूपरस्यायम्, कूपर-अण्। कूपर-सम्बन्धीय, बाहोंके बिचले हिस्सेसे सरोकार रखनेवाला।
 कौर्प्य (सं० पु०) वृद्धिकराणि। (दीपिका) पाश्चात्य पण्डितोंके मतमें यह यूनानी शब्द है।
 कौर्म (सं० स्त्री०) कूर्मं कूर्मवितारमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः। १ कूर्मपुराण। २ विषभेद, किसी किस्मका जहर। (त्रि०) ३ कूर्मसम्बन्धीय, ककुषेसे सरोकार रखनेवाला।
 कौत्त (सं० त्रि०) कुले सत्कुले भवः। १ सत्कुलोत्पन्न, खानदानी। २ कुलाचारपरायण, दिव्य भावरत, कौलिक। (कुलाचर) ३ कुलाचारज्ञ, तान्त्रिक कुलाचार समझनेवाला। (महाभारत) (पु०) ४ कोई ग्रन्थ। कौलो-पनिषद् प्रभृतिको कौत्त कहते हैं। इनमें कुलाचारका कर्तव्याकर्तव्य और साधनप्रणाली प्रभृति भलीभांति निर्णीत है। ५ कौलाम्बा देवीभक्त प्रियर्षिगीत्रीय कोई राजा। यह कर्कशके पुत्र थे। (सप्तसिद्धि १।११।७१।)

कौल (हिं० पु०) गीतिविशेष, किसी किस्मका गाना।
 २ करावल, फौजकी छावनीका विचला हिस्सा।
 कौल (अ० पु०) १ वाक्य, बात, कहन। २ प्रतिज्ञा, वादा।
 कौलई (हिं० वि०) नारङ्गी, लाल पीला।
 कौलक (सं० त्रि०) कुले भवः, कुल-बुज्ज, कुलोत्पन्न, खानदानी।
 कौलकि (सं० पु०) प्रवर ऋषिभेद।
 कौलकेय (सं० त्रि०) कुले सत्कुले भवः, कुल ठक् कुक् च। १ सत्कुलोत्पन्न, खानदानी। (पु०) २ अस-तीका पुत्र, क्षिनालका लड़का।
 कौलटिनेय (सं० पु०) कुलटाया अपत्यम्, कुलटा-ठक्-इनङ्-आदेशश्च। कुलटाया वा। पा ४।१।११०। १ असतीका पुत्र, क्षिनालका बेटा। इसका संस्कृत पर्याय कौलटेय और कौलटेर है। जो सती रमणी भिन्नाके लिये दूसरे घर जाती, वह भी कुलटा कहलाती है।
 २ भिक्षुकीका पुत्र, भिन्नारनका बेटा।
 कौलटेय (सं० पु०) कुलटाया असत्या अपत्यम्, ठक्-१ असतीका पुत्र, क्षिनालका लड़का। २ सती भिक्षु-कीका पुत्र, भिन्नारनका लड़का।
 कौलटेर (सं० पु०) कुलटाया अपत्यम्, कुलटा-ठक्-चदामी वा। पा ४।१।१११। असतीका पुत्र, व्यभिचारिणी-का गर्भजात। किसी किसी आभिधानिकके मतमें कौलटेर शब्दसे सती भिक्षुकी रमणीके पुत्रका भी ज्ञान होता है।
 कौलत्य (सं० त्रि०) कुलत्येन संस्कृतः, कुलत्य-अण्। कुलत्यकोपधादण्। पा ४।४।४ कुलत्य सम्बन्धी, कुरथीवाला।
 कौलत्यीन (सं० त्रि०) कुलत्यस्य कलायविशेषस्य भवनं क्षेत्रं वा, कुलत्य-खञ्। धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्। पा १।१।१। कुलत्योत्पादक, कुरथी पैदा करनेवाला।
 कौलदुमा (हिं० वि०) लम्बी और कंवलकी पत्ती-जेसी छिछली पूछवाला कबूतर।
 कौत्तपत (सं० त्रि०) कुत्तपति-अण्। अत्रपत्यादिमात्र। पा ४।१।८२। कुत्तपतिसम्बन्धीय।
 कौत्तपुत्रक (सं० स्त्री०) कुत्तपुत्रस्य भावः, कुत्तपुत्र-बुज्ज। कुत्तपुत्रका भाव, कुत्तपुत्रका धर्म, खानदाना लड़केकी चाल।

कौलव (सं० पु०) वव आदि एकादश करणोंके अन्तर्गत तृतीय करण । इस करणमें जन्म लेनेसे मनुष्य वक्ता, विनयी, स्वाधीन, प्रगल्भ, महाबलशाली, पण्डितप्रिय और कृतज्ञ होता है । (कौटोप्रदीप)

कौला (हिं० पु०) १ कमला, एक उमदा और मीठी नारंगी । २ कौड़, गोद । ३ कोना, पाखा ।

कौलाल (वै० पु०) कुलाल एव, कुलाल-अण् । “अण प्रकरणे कुलालवद्वनिवाचयलालानिमे भ्रातृन्दसि ।” (पा ५ । ४ । ३६ वार्तिक)
कुलाल, कुम्हार ।

कौलालक (सं० त्रि०) कुलालेन कृतम्, कुलाल संज्ञायां वुञ् । कुलालनिर्मित (मृत्तिकापात्र शराव प्रभृति), कुम्हारका बनाया हुआ ।

कौलालचक्र (सं० क्लो०) कुलालसेदम्, कुलाल-अण् ततः कर्मधा० । कुलालका चक्र, कुम्हारका चाक ।

कौलास (सं० त्रि०) कुलास-अण् । सकलादिमास । पा २।४।५।
कुलासके निशटवर्ती देशादि ।

कौलिक (सं० त्रि०) कुलादागतः, कुल-ठक् । १ कुल-परम्परागत । आचार प्रभृति । खान्दानी (चाल) । २ कुलशास्त्रज्ञ, कुलतन्त्र समझनेवाला । ३ कुलधर्मप्रवर्तक, खानदानी चाल बढ़ानेवाला । ४ ब्रह्मतत्त्वज्ञ । ५ तन्तुवाय, जुलाहा । ६ पाषण्ड, ठोंगी ।

कौलितर (सं० पु०) कुलितरस्यापत्यम्, कुलितर-अण् ।
शम्बरसुर (चक्र ४ । १० । १४)

कौलिन्द, कौलिन्द देखी ।

कौलिया (हिं० पु०) वज्रुरभेद, एक छोटा बबूल । यह बरारमें बहुत होता है ।

कौलिशायनि (सं० त्रि०) कुलिश-फिज् । कुलिशके सन्निकष्ट देश प्रभृति ।

कौलिशिक (सं० त्रि०) कुलिशमिव, कुलिश-ठक् ।
चक्र, आदिमासक । पा ५ । १ । १०८ । कुलिश-सदृश, वस्तुतः, बाज जैसा ।

कौलोक (वै० पु०) एकप्रकारका पक्षी, कोई चिड़िया ।

कौलीन (सं० त्रि०) कौ पृथिव्यां लीनः, अलुक्-समा० । १ भूमिलज्ज, जमीनसे लगा हुआ । कुलादागतः, कुल-अण् । २ कुलजन्मागत, खानदानी ।

(रामायण १।८४ च०)

(क्लो०) कौ पृथिव्यां लीनं लयी यस्यात् व्यधिक० बहुव्री० । कुलीनं भूमिलीनमर्हति, कुलीन-अण् वा । ३ अपवाद, बदनामी, बुराई (रघु १४ । ८४) ४ गुह्य, गुदा । ५ उपस्थ, लिङ्ग । ६ युद्ध, लड़ाई । ७ कुकर्म, बुरा काम । ८ पशुओं, सर्पों और पक्षियोंका युद्ध, जानवरों, साँपों और चिड़ियोंकी लड़ाई । ९ कौलीयक, कुत्ता । १० कुलीनत्व, खानदानीपना ।

कौलीन्य (सं० क्लो०) कुलीन-अण् । कुलीनत्व, वंश-मर्यादा, खानदानी इज्जत ।

कौलीय (कौलिय)—श्रीवशास्त्रवर्णित एक क्षत्रिय-जाति । महावक्त्रदानमें लिखा है—‘राजा महासम्मतके पुत्र कल्याण, तत्पुत्र राव, तत्पुत्र उपोषध और उपोषधके पुत्र मान्धाता थे । मान्धाताके वंशमें अनेक राजाओंने जन्मग्रहण किया । उनमें इक्ष्वाकुवंशीय सुजात राजा भी थे । यह साकेत (अयोध्या) नगरीमें राजत्व करते थे । सुजातकी महिषीके गर्भसे ऊपर, निपुत्र, कलण्डक, उत्कामुख तथा हस्तिकर्षीर्ष नामक ५ पुत्रों और उनकी प्रिय वेश्या जेतीके गर्भसे जित नामक एक लड़केने जन्म लिया । राजाने वेश्याके प्रेममें अपनेको भूल उसा वेश्यापुत्रको राज्यमें अभिषिक्त किया था । उनके वंशधर पाँच पुत्र स्वदेश छोड़के उत्तराभिमुख चल हुए । भक्त प्रजाने भी उनका अनुगमन किया था । वह हिमालयके एक गभीर वनमें जा पहुँचे । वहाँ महर्षि कपिलका आश्रम था । उन्होंने उसी वनके मध्य नगर पत्तन करके उसका नाम कपिलवास्तु रखा था । प्रथम ज्येष्ठ ऊपर राजा हुए । फिर निपुत्र, कलण्डक और उत्कामुख क्रमान्वयमें अभिषिक्त किये गये । उत्कामुखके पीछे हस्तिकर्षीर्ष और उनके पौत्र सिंहतनु यथाक्रम राजा बने । सिंहतनुके चार पुत्र रहे—शुभोदन, धीतोदन, शुक्लोदन और अशुतोदन । शेषको उनके एक कन्या उत्पन्न हुई । उसका नाम अमिता था । दुर्भाग्यक्रमसे अमिताको कुष्ठरोग लगा, जिसे कोई अच्छा कर न सका । शेषकी अमिता सबकी घृणापात्री बन गयीं । उनके भ्राता उन्हें उत्कल पर्वत पर छोड़ आये । अमिता उसी पर्वतकी गुहामें रहने लगीं, उनके पास केवल एक

पत्थरका खाद्य रहा। गुहाका मुँह बन्द था, बाहर निकलनेकी कोई आशा न थी। किन्तु इस दुर्गम स्थानमें अमिता कापरिवर्तन हुआ, उनका दारुण रोग मिट गया। किसी दिन एक व्याघ्रका मनुष्यका गन्ध लगा था। वह गुहाके मुखका आवरण खोलनेकी चेष्टा कर रहा रहा था, कि उसी समय कोल नामक एक ऋषि वहाँ जा उपस्थित हुए। उन्होंने तत्पश्चात् हटाकर देखा—भीतर एक अनुपमा रूपलावण्यमयी रमणी है। ऋषिका मन डावांड़ोल हो गया। उन्होंने अमिताके साथ अपना विवाह किया था। यथाकाल उनके ३२ पुत्र हुए। पितामाताने लड़कोंको कपिलवास्तु भेजा था। शाक्योंने अति समादरसे उन्हें ग्रहण किया। कोल ऋषिके अपत्य जैसे रहने पर 'कौलीय' और व्याघ्रके उनकी माताको दिखानेसे 'व्याघ्रपादीय' नामसे वह परिचित हुये। कालक्रमसे कौलीय और शाक्य परस्पर विवाह-बन्धनमें प्रावण हो गये।

कौलीरा (सं० स्त्री०) कुलीरः तच्छृङ्गाकारोऽस्थः, बभ्रुव्री०। कर्कटशृङ्गी, ककड़ासींगी।

कौलूत (सं० पु०) कुलूत देशके राजा। कुलू और कुलूत देखो।
कौलिय (सं० त्रि०) कुले सत्कुले भवः, कुल बाहुलकात् ठक्। सत्कुलोत्पन्न, खानदानो।

कौलीयक (सं० पु०) कुले भवः, कुल-ठक्। कुलकुलविशेष-
वाभ्यः शास्त्रकारिणः। पा ४।१।२६। १ कुलूर, कुला। (त्रि०)
२ कुलीन, खानदानो।

कौलीशमेरवी (सं० स्त्री०) त्रिपुराभैरवी। (ज्ञानाश्रय)

कौलीपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्। इसमें कौल आचार वर्णित है।

कौलीकवर्द्धि (सं० स्त्री०) सामविशेषका नाम।

(लाक्षणिक ४।१।२६)

कौलीयिक (सं० त्रि०) कुलमाषे साधुः, कुलमाष-ठक्।
गुहादिभाषणः। पा ४।४।१०। कुलमाष (एक धान) रोपण करनेके उपयुक्त क्षेत्रादि।

कौलीषी (सं० स्त्री०) कुलमाषाः प्रायेणावमस्ताः, कुलमाष-
षञ्-स्त्रीप्। कुलमाषणः। पा ४।१।८४। पूर्णिमाविशेष,
एक पूजनमासी। इस पूर्णिमाको कुलमाष खानेका
विधान है।

कौलमाषीण (सं० स्त्री०) कुलमाषाणां भवनं क्षेत्रम्,
कुलमाष-खञ्। १ कुलमाष धान्यको उत्पत्तिके योग्य
क्षेत्र। (त्रि०) २ कुलमाषोत्पादक।

कौल्य (सं० त्रि०) कुले सत्कुले भवः, कुल-खञ्। सद्-
वंशजात, कुलीन।

कौवल (सं० स्त्री०) कुवलमेव, कुवल स्वार्थे ण्।
कोलिफल, बेर।

कौवा (हिं० पु०) काक, एक मशहूर चिड़िया। यह पृथिवीके सभी देशमें होता है। कौवा कई प्रकारका है, परन्तु भारतवर्षमें इसकी दोही जातियां मिलती हैं। मामूली कौवा कोई १८ अङ्गुल रहता है। उसका चञ्च दीर्घ तथा कठिन, पाद बहुत दृढ़, अग्रभाग धूसरवर्ण और पश्चाद्भाग कृष्णवर्ण होता है। उसकी नासा बिलकुल बीचमें नहीं पड़ती, किनारेकी कुछ हटो रहती है। साधारण काक अक्सर पेड़ोंको डालों पर घोंसला रखता है। वह वैशाख अथवा भाद्रमास पर्यन्त डिम्ब देता है। अण्डोंकी संख्या चारसे छह तक होती है। डिम्ब हरितवर्ण रहता और उस पर काले धब्बे पड़ जाते हैं। अन्यप्रकारका काक डोलडील-में भारी और कोई एक हस्तपरिमित दीर्घ होता है। उसका सारा निम्न कासा ही कासा रहता है। इसीसे उसे कासा कौवा भी कहते हैं। काले कौवे परस्पर और युद्ध करते और मर मिटते हैं। पौषसे फाल्गुनमास पर्यन्त उनके अण्डे देनेका समय है। मामूली कौवे डिम्ब देनेके समय ही आवासस्थान निर्माण करते हैं। काक दिवसकालको आहारादिके अन्वेषणमें दश बारह कोस तक उड़ जाता है। पर भली दुरी सब चीजें खा डालता है। प्रवाद है—कौवेके एक ही आँख रहती, जो दोनों ओर घूमती फिरती है। काक देखो।

२ चालाक आदमी। ३ कौवा, डंडेरीको आड़के लिये लगनेवाली लकड़ी। ४ एक खिलौना। ५ घांटो, कण्ठके अभ्यन्तर तालुके मध्यभागका मांसखण्ड।

कौवाठोंठी (हिं० स्त्री०) काकतुण्डो, एक बेल। इसके पुष्प श्वेत एवं नीलवर्ण रहते और आकृतिमें काक-
नासासे मिलते हैं। कौवाठोंठीकी फलियोंके बीज कोबिड़े-जैसे होते हैं। यह अर्शरोगनाशक है।

कौवापरी (हि० स्त्री०) श्यामवर्ण कुरुपा स्त्री, काली बदचरित औरत ।

कौवारी (हि० स्त्री०) १ पक्षिविशेष, कोई चिड़िया । २ पुष्पवृक्षविशेष, एक पेड़ । आकृतिमें यह कचूरसे मिलती है । इसमें कितनेही रक्तवर्ण पुष्पोंका गुच्छ लगता है । कौवारीका मूल दवामें पड़ता है । ३ काक-तुण्डी, कौवाठाँठी ।

कौवाल (अ० पु०) कौवाली गानेवाला ।

कौवाली (अ० स्त्री०) १ कोई गाना । यह पीरीकी कन्नौया सूफियोंकी मजलिसोंमें गायी जाती है । कौवालीमें धर्मसम्बन्धी चर्चा वा आध्यात्मिक शिक्षा रहती है । इसके सुननेवाले प्रेमभावमें लीन हा भूमने लगते हैं । २ कोई ताल । ३ कौवालोंकी वृत्ति ।

कौविद्यासाय, कौविद्यासीय देखो ।

कौविदार्य (सं० त्रि०) कौविदार-अय । कौविदारके निकटवर्ती देशादि ।

कौविद्यासीय (सं० त्रि०) कौविद्यास-अण् । कौविद्यासके निकटवर्ती देशादि ।

कौवेर (सं० त्रि०) कुवेरस्येदं कुवेरो देवतास्य इति वा, कुवेर-अण् । १ कुवेरसम्बन्धीय । २ कुवेरका उपासक । (स्त्री०) ३ कुष्ठ, कुट ।

कौवेरिकेय (सं० पु०) कुवेरिकाया अपत्यम्, कुवेरिका-ठक । कुवेरिकाका सन्तान ।

कौवेरी (सं० स्त्री०) कुवेरः अधिष्ठात्री देवताऽस्याः, कुवेर-अण्-ङीप् । १ उत्तरदिक् । (तिथितत्त्व) २ कुवेरकी शक्ति ।

कौश (सं० स्त्री०) कुशा प्राचुर्येण भूक्षा वा सन्ति अन्न, कुश-अण् । १ कान्यकुलदेव, कन्नौज । २ कुशहीप । (सिद्धान्तबिरोध) ३ क्षमिकौशसे उत्पन्न पट्टवस्त्र, रेशमी कपड़ा । (भागवत १।४।७) ४ गोत्रविशेष । (भागवत १०।८।१७)

(त्रि०) ५ कुशमय, कुशसम्बन्धीय । (भारत १।१।२।२८)

कौशल (सं० पु०-स्त्री०) कुशलस्य भावः कर्म वा, कुशल-युवादित्वात् अण् । १ कुशलता, कारीगरो ।

“कृपाति कर्कशः शान्तः कृपाति वलितः शक्तिः ।

एकत्र काव्ये स्याद्व्याप्तुकावरी कौशलं कवेः ॥” अमरवचनचटोका ।

२ मङ्गल, भलाई । (भागवत १।१।१९) ३ चातुर्य, कौशि-

यारी । ४ कौशल जनपद, अवधप्रदेश । श्रीधवायणके रोमकसिद्धान्त मतसे—वृषराशिमें कौशल जनपद अवस्थित है । ५ कौशलजनपदवासी, अवधके वाशिनदे । कौशलक, कौशलक देखो ।

कौशलायन (सं० पु०) कुशलाया युवापत्यम्, कुशलो-वाङ्मादित्वात् इञ्, युनपत्ये फञ् । कुशलाका युवापुत्र । कौशल (सं० पु०-स्त्री०) कुशलाया अपत्यम्, कुशला-इञ् । कुशला स्त्रीका पुत्र वा कन्या । स्त्रीलिङ्गमें विकल्पसे ङीप् लगता है ।

कौशलिका (सं० स्त्री०) कुशलस्य पृच्छा, कुशल-ठक् ।

१ कुशलप्रश्न, खेर आफियतका सवाल । कुशलाय मङ्गलाय दीयते । २ उपढोकन, भेंट ।

कौशली (सं० पु०) कौशलं नैपुण्यं अस्त्यस्य, कौशल-इनि । निपुण, दक्ष, होशियार, कारीगर ।

कौशली (सं० स्त्री०) कुशलाय दीयते कुशलस्य पृच्छा वा कुशल-अण्-ङीप् । १ उपढोकन, भेंट । २ कुशलप्रश्न, खेर आफियतका सवाल । ३ कुशला स्त्रीकी कन्या । कौशलेय (सं० पु०) कौशलाया अपत्यम्, कौशला-ठक् यलोपस । श्रीराम, दशरथके ज्येष्ठ पुत्र ।

“कौशलेयः प्रतापवान् ॥” रामायण ।

कौशल्य (सं० पु०-स्त्री०) कुशल भावे अण् । १ कुशलता, दक्षता । (भारत १।१।१९) २ कौशलराजकी पुत्र । ३ कोई ऋषि । (रामायण ७।१।९) किसी किसी मुद्रित रामायणमें ‘कौशिक’ पाठान्तर है । (त्रि०) स्त्रायं अण् । ४ कुशल, होशियार ।

कौशल्य आश्वलायन—प्रश्नोपनिषद् उर्णित एक ऋषि ।

कौशल्या (सं० स्त्री०) कौशलस्य राज्ञोऽपत्यम्, कौशल-अण्-ततः टाप् । १ कौशलराजकन्या, दशरथकी प्रधान महिषी, रामकी माता । कौशल्या देखो ।

“कौशल्यामिदमवतीत् ॥” (रामायण १।१६।१६)

२ पुरुराजकी पत्नी, जनमेजयकी माता । (भारत, चादि)

३ सत्वान्की पत्नी और सात्वतीकी माता । (त्रि०)

४ कौशलदेशवासी (भारत ६।८.४०)

कौशलानन्दन (सं० पु०) कौशलाया नन्दनः, इ-तत् । रामचन्द्र । कौशलानन्दन प्रभृति शब्द भी इसी प्रकारके हैं ।

कौशल्यायनि (सं० पु०) कौशल्याया अपत्यम्, कौशल्या-
पिङ्ग । कौशल्यायनिग्रामाच्च । पा० ४।१।१५५ कौशल्याके पुत्र
रामचन्द्र । "कौशल्यायनिग्रामम् ।" भट्टो अ० ८० ।

कौशाब्ब (सं० त्रि०) कुशाब्बेन निर्बृत्ता, अण्-
कुशाब्ब नामक राजकर्टक निर्मित, कुशाब्ब राजाका
बनाया हुआ ।

कौशाब्बी (सं० स्त्री०) कुशाब्बेन निर्बृत्ता, कुशाब्ब-अण् ।
नगरीविशेष, वर्तमान नाम कोसाम । इसका अपर नाम
वत्सपत्तन है । (कथासरित्सागर २।५) रामायणके मतमें—
कुशके पुत्र कौशाब्ब नरपतिने यह पुरी निर्माणकी थी ।
इसीसे कौशाब्बी नाम पड़ गया । (रामायण १।२९।५)

पूर्वकाल इस नगरको 'कौशाब्बी' नगर वा 'कौशा-
ब्बीपुरी' और राज्यको 'कौशाब्बीमण्डल' कहते थे ।
शतपथब्राह्मण (१२।२।१।११)में कौशाब्बेय
कौसुक्विन्दिका सङ्ग्रेह देख कोई कोई उससे भी पूर्व
कौशाब्बी नगरीका अस्तित्व स्वीकार करता है । हिन्दू,
जैन, बौद्ध प्रभृतिके धर्मग्रन्थोंमें यह स्थान प्रसिद्ध है ।

कौशाब्बी शहरका भग्नावशेष इस समय भी
विद्यमान है । आज इस नगर तथा सन्निकटवर्ती
स्थानोंके सीध और मन्दिरादिका भग्नावशेष इसके पूर्व
गौरवका परिचय देता है । इलाहाबादसे १४ कोस
पश्चिम करारी परगनेके बीच यमुनातीर यह भग्ना-
वशेष देख पड़ता है । पूर्वको जेनोंके हाथ कौशाब्बी
नगरविशेष समृद्धिशाली रहा ।

(अरिष्टनेमिपुराणान्तर्गत हरिवंश १४।२)

कोसाम नगर आजकल यमुनाके तीर पर नहीं है ।
यमुना उससे बहुत दूर हट गयी है । किन्तु पूर्वकालको
कौशाब्बी यमुनाके तीर ही अवस्थित था । चीना परि-
ब्राजक युचन चुयाङ्ग अपने भ्रमणके विवरणमें लिख
गये हैं—प्रयाग और कौशाब्बी (कि-ओ-शङ्ग-मि) के
मध्य ३०० लि (२५ कोस) व्यवधान है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कोसाम ही प्राचीन कौ-
शाब्बी है । कारण स्थानीय भग्नावशेषके मध्य सर्वापेक्षा
बृहत् स्तम्भके गात्र पर अक्षरके समयकी खोदित
लिपिमें इसका यह नाम देख पड़ता है । फिर १०३५
ई०की खोदित खरा दुर्गकी भी एक लिपिमें इस स्थानका
नाम 'कौशाब्बीमण्डल' लिखा है ।

वर्तमान कोसाम दो भागोंमें विभक्त है—'कोसाम-
इनाम' और 'कोशाम खिराज' या 'इशीमाबाद' अर्थात्
करद और करशून्य कोसाम । पुराने टूटे जिलेके पश्चिम
कोसाम इनाम और पूर्व कोसामखिराज विभाग पड़ता
है । यमुनातीरकी दुर्गप्राकारके अभ्यन्तर 'बड़गड़वा'
और 'छोटगड़वा' नामके दो जुद्ध ग्राम हैं । कोसाम
इनामके प्रागे 'पाली' नामक अपेक्षाकृत बृहत् ग्राम
और कोसामखिराजकी उस और 'गोपसाइस' नामका
एक गण्ड ग्राम और उत्तरांशकी 'अम्बाकूवा' नामका
दूसरा कसबा है । इस गांवमें आम्बकुण्डके मध्य एक
प्राचीन बृहत् कूप बना है । जिससे ग्रामका नाम
हुवा है ।

कौशाब्बीमण्डलकी पश्चिम सीमा प्रभास वा 'पभोसा'
पर्वत है । यह पहाड़ गड़वा गांवसे ३ मील उत्तर
पश्चिम लगता है । प्रवाद है—प्रभास पर्वत पर किसी
गुहामें एक बृहत् नाग वास करता है । उसका मस्तक
यातीर और लाङ्गूल गुहाके मध्य (प्रायः ४४० र
विस्तृत) रहता है । परन्तु किसीने उसे कभी देखा
नहीं है । सम्भवतः दीपमालिकाकी सर्पराजके दर्शन
होते हैं । गुहा स्वाभाविक नहीं—कृत्रिम है । उसकी
छतके अवलम्बनार्थ एक स्तम्भ लगा है । स्तम्भके
निकट गुहाके सम्मुख एक जैन मन्दिर है । यह मन्दिर
प्राधुनिक है, केवल ५० वर्ष पूर्वका बना है । गुहामें दो
गवाक्ष और एक प्रवेशद्वार है । उसमें चार पादमी चार-
पाई डाल कर सो सकते हैं । इसके ऊपर पूर्वदिक्की
देवकुण्ड नामक एक पुष्करिणी और उसके तीर एक
मन्दिर है । युचन चुयाङ्गने लिखा है कि यहां अशोक-
का प्रतिष्ठित १३८ हाथ ऊंचा एक स्तूप है । किन्तु
उसका कोई चिह्न पाया नहीं जाता । मालूम पड़ता है ।
कि वर्तमान जैन मन्दिरके स्थान पर ही वह विद्यमान
था । तीर्थयात्री कहते हैं—'इस स्तूपके निकट बुद्धदेव
साधना करते थे और दूसरे किसी बृहत् स्तूपमें उनके
केश तथा नख रक्षित थे । पीड़ित व्यक्ति यहाँ रोगमुक्तिके
लिए प्रार्थना करने पड़ते हैं । पर्वत गात्र पर गुह
राजाओंके समयके अक्षरोंमें कई भास्करोंका नाम है

होता है। इससे समझ पड़ता कि गुप्तोंके समय ही यह गुहादि खोदे गये।

रत्नावलीमें वत्सराजकी राजधानीका नाम वत्स-पत्तन लिखा है। किन्तु कलितविस्तर, महावंश, बृहत्-कथा आदि ग्रन्थोंमें कौशाम्बीराज शतानिकके पुत्र उद-यन वत्सका नाम मिलता है। कलितविस्तरके मतमें उदयनने बुधदेवके जन्मदिनको ही जन्मग्रहण किया था। सिंहली पुस्तकादिमें भारतको १८ बड़ी राजधानियोंके बीच कौशाम्बीका नाम पाया है। भोटके बौद्धग्रन्थोंमें भी कौशाम्बीराज उदयनवत्सका नाम वर्णित है। कलितविस्तरमें कहा है कि बुधदेव बुधत्वप्राप्त होनेके बाद ३ वत्सर यहाँ रहे। युपनयुयाङ्गका कहना है कि बुधकी जीवह्ममें ही उदयनराजाने रत्नचन्दनकी बुधमूर्ति स्थापित की थी। यह मूर्ति आज भी उदयन-प्रासादके भग्नावशेषके मध्य एक मन्दिरमें रखी है। बौद्ध इस प्रतिमाके कारण इस स्थानको अति पवित्र जैसा समझते हैं।

कौशाम्बी वा उदयनदुर्गका भग्नावशेष आज भी विद्यमान है। उसकी चहार-दीवारी और मुरचे कहीं नहीं गये। दुर्गका परिमाण प्रायः १५४०० हाथ और दुर्गप्राकार २०३ २४ हाथ तक जंचा है। मुरचे इससे भी जंचे पड़ते हैं। उत्तर और ३४ हाथ जंचा मुरचा है। पहली चहार-दीवारीके नीचे खार्च थी। परन्तु आजकल जगह जगह केवल खड्डे देख पड़ते हैं। दुर्गका आकार असमभुज आयत-जैसा है। किलेके पक्के बुर्जसे प्रभास पड़ा २ कोस दूर बैठता है। किलेके भीतर एक छोटासा जङ्गल खड़ा है। इसमें ६ तोरण रहनेका अनुमान किया जाता है। नदीकी ओर कोई दरवाजा न रहा। दूसरी कच्ची ओरों दो-दो द्वार लगे थे।

कौशाम्बीकी प्रधान कीर्ति रत्नचन्दन काष्ठ निर्मित बुधप्रतिमा है। युपनयुयाङ्ग कहते हैं—यह उदयन प्रासादके मध्यखल पर एक गुम्बजदार मन्दिरमें प्रति-ष्ठित थी। वह कौशाम्बीपुरीके मध्यखलमें अवस्थित है। सम्भवतः इसी जगह पर १८३४ ई०की बना पाषाणाय-का मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ है। क्योंकि इस मन्दिरके पूर्व और पश्चिमपाश्वर्क की छहदाकारकी प्रहालिकाओंका

भग्नावशेष विद्यमान है। वह गडवा गांवमें दो बौद्धों-के खोदित स्तम्भ और छत्तेका भग्नावशेष है। पत्थरकी एक बेदी भी है। उसके गांवमें बौद्धधर्मके 'ये धर्महेतु-प्रभावा' इत्यादि स्तोत्रांग खोदित है। इसकी वर्णमाला अष्टम अथवा ८म शताब्दीकी वर्णमाला-जैसी समझ पड़ती है। छोटा गडवा गांवमें एक सुद्र स्तम्भ है। इसके गांवमें स्तूपका आकार खोदित है। अनुमान होता है—यह सब एककालकी बौद्ध-मन्दिरमें बहिर्भाषीरके पथ्य-स्तर रहे। भेकसाके निकटवर्ती सांची स्तूपके शिल्पादिसे इन स्तम्भोंकी कारीगरी मिलती है। सुतरां इन्हें उनका समसामयिक कहनेमें कोई हानि नहीं।

किलेके भीतर बौद्ध चिह्नोंमें इलाहाबाद और दिल्लीके स्तम्भोंकी भांति एक प्रस्तरस्तम्भ है। इसके मूलदेगमें भग्न इष्टकराशि इतना इकट्ठा हो गया है, कि १०॥ हाथसे अधिक देख नहीं पड़ता। पास ही इसके दो भग्न खण्ड पड़े हैं। वह प्रायः १८॥ हाथ होंगे। यह स्तम्भ एक बृहत् निम्बवृक्षसे मिल गया है। किसी समय कुछ ग्वालोंने हठात् वृक्षके नीचे अग्नि जलाया था, उसी उत्तापसे स्तम्भका मस्तक टूट गया। अकबरके समयको इस स्तम्भके गांवमें खोदित विवरणसे समझ पड़ता है कि उस समय भी यह स्तम्भ इसी भावमें रहा। उसमें भी पागकी गर्मीसे मस्तक टूटनेकी बात लिखी है। गांवके लोग भी इस बारेमें ऐसा ही गल्प करते हैं। गुप्त कालसे वर्तमान काल पर्यन्त सभी समयकी बहुविध खोदित लिपियां इसके गांवमें देखी जाती हैं। खूटजम्भके पूर्व-कालसे वर्तमान समयावधि माना समयोंकी रजत तथा ताम्रमुद्रायें मिली हैं। इसमें अकबरका नाम 'सुगल-बादशाह अकबर पातशाह गाजी' लिखा है। उसके नीचे किसी क्षणकारकी वंशावली है। तन्मध्य वंशके आदि पुरुष आनन्दराम दास 'कौशाम्बीपुर'में स्वर्गगत हुवे। इससे अनुमित होता कि यह कोसाम ही प्राचीन कौशाम्बीपुर है। प्रवादानुसार यह स्तम्भ 'रामकी छड़ी' या 'भीमकी गदा' है। दुर्गके मध्य तक चतुर्गिर शिव-लिङ्ग भी है। उसके प्रत्येक मस्तकमें तीन तीन चक्षु बने हैं। युपनयुयाङ्गने लिखा है कि उनके समय ५० हिन्दू-मन्दिर कौशाम्बीमें खड़े थे। गांवके कोमीका

कहना है कि यहाँ एक बृहत् उद्यान भी रहा। सिंह लके बौद्ध बतलाते हैं कि उस बागको 'गोशिल उद्यान' कहते थे। कोई इसका नाम गोशिर ठहराता है। काश्मिरान और युपनयुयाङ्ग इसको 'किउ-सि ला' नामसे अभिहित कर गये हैं। इसका संस्कृत नाम 'गोशीर्ष' और पालि नाम 'गोशिव' है। इसी स्थल पर आजकल 'गोपसाहम' नामक एक ग्राम है। यह गांव छाट गड़वाके पास अवस्थित है। देशीय लोग 'गोपसम' कहते हैं। हमारी समझमें 'गोशीर्ष' शब्दके इस प्रकार रूपान्तर बन गये हैं। गांवके बौद्ध सर्वत्र बड़े बड़े पत्थरों और पट्टालिकाओंका भग्नांश पड़ा है। कई एक खंभोंके जंगली भी दिखायी देते हैं। यह खंभे मथुराके जंगलों-जैसे हैं। नेपाली बौद्धोंके 'वसुन्धरा-व्रतोत्पत्त्यवदान' नामक ग्रन्थमें लिखा है—कौशाब्धीके सपनगर गोशीर्ष नामक स्थानमें बुद्धदेवने चामुण्डकी 'वसुन्धरा' व्रत सिखाया था।

कौशाब्धीमण्डलके उत्तरपश्चिम भाजघाटसे १॥ मील दूर दो मन्दिरोंका भग्नावशेष पड़ा है। इस स्थानका नाम रिठौरा है। रिठौराके दोनों मन्दिरोंका कारुकायं विशेष प्रशंसाकी सामग्री है। उसको देखते ही मोहित होना पड़ता है। बड़े मन्दिरकी सिर्फं दालान बच गयी है। मन्दिरका अभ्यन्तर कुछ गिर जानेसे भीतरकी प्रतिमा पर्यन्त सम्भवतः चूर हो गयी है। मन्दिरके प्रवेशद्वारके सम्मुख कुम्भीरारोहिणी रमणियोंकी दो मूर्तियां हैं। इसीके निकट कालीकी एक प्रतिमा है। दालानके दोनों खंभे हिन्दुओंकी पुरानी धरनके हैं। छोटा मन्दिर भी ऐसा ही है। इसके मध्यमें हरगौरीमूर्ति और द्वार पर मकरवाहिनी गङ्गामूर्ति तथा कूर्मवासिनी यमुनामूर्ति है।

हरगौरी-मन्दिरमें अति प्राचीन खोदित शिलालिपि है। तत्पश्चात् एकमें लिखित है कि ११५ गुप्त-संवत्की राजा भीमवर्माने देवमूर्तिकी प्रतिष्ठा किया। यहाँ महाराज समुद्रगुप्तका कीर्तिस्तम्भ खड़ा है।

चक्रुर्नके दस अधस्तन पुरुष चक्रके समय कौशाब्धीने प्रसिद्धि लाभ किया था। चक्रने इस्तिना छोड़के इसी स्थानमें अपनी राजधानी बसायी। १०१५ ई०की

खरा दुर्गके तोरणकी खोदित लिपिसे समझ पड़ता है कि उस समय यह नगर कन्नौज राज्यके अधीन नहीं, स्वाधीन था।

कौशाब्ध्ये (सं० पु०) कुशाब्धस्य गोत्रापत्यम्, कुशाब्ध-ठक्। १ कुशाब्ध नृपति वंशीय। (त्रि०) कौशाब्धरां भवः। २ कौशाब्धीनगरीजात।

कौशाब्ध्ये (सं० स्त्री०) कुशाब्धस्य गोत्रापत्यं स्त्री, कुशाब्ध-ठक्-ङीप्। कुशाब्ध राजवंशीया स्त्री।

कौशाब्ध (सं० पु०) कौशाब्धीनगरीके अधिपति। (हरिवंश ८२ प०)

कौशारव, कौशारवि—श्रीवारव देखो।

कौशाब्धी (सं० स्त्री०) कुशाब्धेन राज्ञा निवृत्ता, कुशाब्ध-अण्-ङीप्। कुशाब्धराजाकी प्रतिष्ठित राजधानी।

कौशिक (सं० पु०) कुशिकस्यापत्यं यद्वा कुशिके तद्दंशे वा भवः, कुशिक-अण्। १ इन्द्र।

राजपि कुशिकके इन्द्रतुल्य पुत्रप्राप्तिकामनासे कठोर तपस्या पारम्भ करने पर देवराज इन्द्रने भीत हो उनके पुत्ररूपमें जन्म लिया था। इन्हींका नाम गांधि पड़ा। (हरिवंश १ प०) यह एक गौतमप्रवर्तक थे।

हरिवंशमें देवराजके कौशिक नामका एक अपर कारण भी लिखा है—

भगवान् जन्म लेते ही कुशद्वारा आशुत हुए थे। इसीसे देवराज इन्द्रका कौशिक नाम पड़ गया। (हरिवंश २७ प०) इस मतमें निम्नलिखित व्युत्पत्ति लगाना पड़ती है—क० श्रेण वृत्तः, क० श० ठक्। २ पेशक, उष्ण। ३ गुग्गुलु। ४ अश्वकण्ठवृक्ष, एक वेल। ५ मकुल, नेवला। ६ व्याल, सांप। ७ पाह, घड़ियाल, मगर। ८ कोशकार, रेशमका कीड़ा। ९ मज्जा, चरबी। १० कोषाध्यक्ष, खजांची। ११ मृत्कार रस। १२ विष्णु-मित्त। "कौशिकं मुनि यद्दं तुरत पठाये" (गुल्लो) १३ पुत्रवंशीय कोई राजा। इनकी माताका प्रतिष्ठा और ज्येष्ठ भ्राता-का नाम प पलादि था। (हरिवंश) १४ जरासन्ध नृपति-के सेनापति। इनका दूसरा नाम हंस रहा। (भारत २।२।) १५ कोई असुर। (हरिवंश ४२ प०) १६ कोई धर्मपरायण ब्राह्मण। महाभारतमें इनका चरित्र इस प्रकार वर्णित है—

कौशिक किसी दिन एक वृक्षतल पर बैठ तपस्या करते थे। उसी समय एक बकने उनके गात्र पर पुरीष छोड़ दिया। ब्राह्मणके क्रोधान्ध हो बकके प्रति दृष्टिपात करते ही वह तत्क्षणात् मृत्युको प्राप्त हुआ। कौशिक बकके मर जानेसे अधिक अनुताप करके भिक्षाके लिये पूर्वपरिचित किसी ब्राह्मणके घर गये। साध्वा ब्राह्मण-पत्नी पतिशुश्रूषाके अनुरोधसे यथासमय कौशिकको भिक्षा दे न सकीं। कौशिकके ब्राह्मणपत्नीके प्रति क्रोध दृष्टि निक्षेप करने पर उन्होंने कहा था—‘ब्रह्मन् ! आप मेरा यह अपराध माजना करें। मेरे लिये पतिकी शुश्रूषा ही सर्वापेक्षा प्रधान धर्म है। मैं बक नहीं हूँ। आप क्रोध दृष्टिसे मेरा कुछ भी बिगाड़ न सकेंगे। यदि प्रकृत धर्मका मर्म समझना चाहें, तो मिथिलाके धर्म व्याधसे जा कर मिलें।’ ब्राह्मण पतिव्रता रमणीकी अकौशिक क्षमता देख कर विस्मित हुए और उनकी आत्मस्थानि आ गया। कौशिक थोड़े दिनों पीछे मिथिलामें धर्मव्याधके पास पहुँचे थे। उन्हें धर्मोपदेश प्रदान किया। (महाभारत, वन २०५—२१५)

१७ कोई प्रति प्राचीन वैयाकरण। १८ कोई प्राचीन स्मृतिकर्ता। हेमाद्रि, माधवाचार्य प्रभृतिने कौशिक स्मृतिको उद्धृत किया है। १९ कोई राग। हनुमान्ने इसे तोड़ी, गौरी, गुणकरी, खम्बावती और ककुभाका पति कहा है। २० अथर्ववेदका सूत्रविशेष। कौशिकसूत्र देखो।

(त्रि०) कौशात् क्षमिकोवाज्जातः, कौश-ठक्।

२१ क्षमिकोवसे उत्पन्न, रेशमी।

कौशिक—जातिविशेष। यह जाति युक्तप्रदेशके बलिया, बस्तौ, आजमगढ़ और गोरखपुरमें रहती है। कौशिक ऋषिके नाम पर इस जातिका नाम पड़ा है। ये लोग अपनेको क्षत्रिय वंशीय मानते हैं। लेकिन बहुरोंका मत इसके विरुद्ध है। इनका आचार विचार तो उच्च दीख पड़ता है, परन्तु सर्वत्र ये लोग क्षत्रिय नहीं माने जाते।

कौशिकपुराण—कौशिक ऋषि—प्रोक्त एक उपपुराण।

कौशिकप्रिय (सं० पु०) कौशिकस्य कुशिकपौत्रस्य विश्वामित्रस्य प्रियः, इ-तत्। विश्वामित्रके प्यारे, रामचन्द्र।

कौशिकफल (सं० पु०) कौशिकं कौषगतं फलमसह, बहुव्री०। नारिकेलवृक्ष, नारियलका पेड़।

कौशिकराम—धूर्तस्वामीके आपस्तम्बश्रौतसूत्रभाष्यकी टीका बनानेवाले।

कौशिकसूत्र—अथर्ववेदका एक सूत्र। इसमें अथर्ववेद-र्योंका करणीय श्रौत और गृह्यविधि संक्षेपसे लिखा तो गया है, परन्तु आलोचना करनेसे इसकी श्रौत अथवा गृह्य सूत्र-जैसा ग्रहण करना कठिन है। फिर भी किसी किसी टीकाकारने इसे गृह्यसूत्र-जैसा ही माना है। कौशिकसूत्रमें निम्नलिखित विषय वर्णित हैं—आन्नाय-प्रत्यय, देवयज्ञ, पित्र्ययज्ञ, पाकयज्ञ, परि-भाषा, सायंप्रातर्होम, आज्यतन्त्र, सर्वकर्मार्थपरिभाषा, मन्त्रका गण, शान्त्युदकरूपण, मेधाजननकर्म, ब्रह्मचारीकी सम्पद्, ग्रामकी सम्पद्, सर्वाभोष्टसम्पद्, सामनका अधिकार, वचंविधि, सांप्रामिकका कर्म, राष्ट्रप्रवेशविधि, लघु अभिषेक, महाभिषेक, निर्ऋति कर्म, गौष्टिकर्म, यात्राकालका पुष्टिकर्म, समुद्रकर्म, गवादिके पुष्टिसाधनकी शान्ति, मणिवन्धनशान्ति, अष्टकाकर्म, क्षत्रिकर्म, गोशान्ति, वस्त्र प्राप्त करनेका कर्म, दायभाग, रसकर्म, अपनी समृद्धिके लिये नाना-विध पुष्टिकर्मका विधि, गृहहारश्च, चित्रकर्म, क्षत्रिमन्त्र, वीजवपन-कर्म, किसी स्थानको जानेसे पूर्व और जानेसे परका कृत्य, वृषोत्सर्ग, आयुहायणी कर्म, भेषज, नानाविध स्त्रीकर्म (यथा—पुत्रप्राप्तिका उपाय, गर्भपात निवारण, पुंसवन, गर्भाधान, सीमन्तकर्म इत्यादि), विज्ञान कर्म (अर्थात् लाभालाभ, जय पराजय, सुख दुःख, उत्कर्ष अपकर्ष, सुभिन्न दुर्भिन्न, क्षेम अक्षेम, रोग अरोग प्रभृति), वज्र और वृष्टिनिवारणका मन्त्र, दृढ़-कर्म तथा विवादमें जयलाभका मन्त्र, क्षत्याकर्म, नदीकी दूर प्रवाहित करनेका मन्त्र, अरणिसमारोपण कर्म, पुरुषकी वीर्यवृद्धि करनेका उपाय, वृष्टिप्राप्तिका मन्त्र, अर्थोपार्जनके विज्ञ दूर करनेका मन्त्र, गोवत्स और अश्व-शान्ति, प्रवासमें निर्भय अर्थोपार्जनका उपाय, साम्य-विधि, वेदज्ञान लाभका मन्त्र, पापलक्षणा रमणोकी शान्ति, गृहप्रवेश, वास्तुसंस्कार, प्रायश्चित्त, अभिचार, नानाविध स्त्रत्ययन, आयुष्य कर्मविधि, गोदान,

चूड़ाकरण, उपनयन, कर्णवेध, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, काम्यकर्म, सवयज्ञ, आवसथ्याधान, वलिहरण, नवाक्ष, विवाहविधि, पिष्टमेष और पिष्टपिष्टयज्ञ, मधुपर्क तथा अर्घ्यदानविधि, अमुतशान्ति, वेदारम्भ, इन्द्रमहोत्सव, वेदाध्ययनविधि इत्यादि।

कौशिकसूत्रकी अनेक टीका टिप्पणियाँ हैं। उनमें अष्टारिभट्ट, दारिल, केशवस्वामी और वासुदेवकी टीका वा पद्धति प्रचलित है।

कौशिका (सं० स्त्री०) कोश एव, कोश स्त्रायं कन् ततोऽण् ततश्चाप् अत इत्वञ्च । १ पानपात्र, पानी पीनेका बर्तन । २ ग्रन्थिपर्णोक्षुप, गंठवन । ३ सुरा, एक खुशबूदार चीज ।

कौशिकाचार्य—'षड्शोतिकशौचप्रकरण' नामक धर्मशास्त्रके रचयिता। इनका अपर नाम आदित्याचार्य था।

कौशिकात्मज (सं० पु०) कौशिकस्य इन्द्रस्य आत्मजः, इ-तत् । १ इन्द्रपुत्र, जयन्त । २ अर्जुन, कुन्तीके तीसरे बच्चे । ३ विश्वामित्र मुनिके पुत्र ।

कौशिकादित्य—श्रीमालक्षेत्रके अन्तर्गत एक पवित्र तीर्थ । श्रीमाल देखो।

कौशिकायनि (सं० पु०) कुशिकस्त्रापत्यम्, कुशिक-क्षिज कौशिकवंशीय एक ऋषि । (शतपथब्राह्मण १४।३।२१)

कौशिकायुध (सं० स्त्री०) कौशिकस्य इन्द्रस्य आयुधम्, इ-तत् । इन्द्रधनुः ।

कौशिकार (सं० पु०) कोशकार निपातनात् साधुः । कोशकार, रेशमका कीड़ा ।

कौशिकाराति (सं० पु०) कौशिकानां पेशकानां अरातिः, इ-तत् । उलूखोका शत्रु, काक, कौवा । काकोलूक देखो।

कौशिकारि, कौशिकाराति देखो।

कौशिकी (सं० पु०) कौशिकेन प्रोक्तमधीयते, कौशिक-णिनि । काम्यपक्षीशकामाश्रयिभां चिनिः । पा ३।१।१०१ विष्णु-मित्रकथित शास्त्र अध्ययन करनेवाला ।

कौशिकी (सं० स्त्री०) कुशिकस्य गोत्रापत्यं स्त्री, कुशिक-अण्-ङीप् । १ चण्डिका । देवराज इन्द्रके कुशिकका पिता जैसा स्त्रीकार करने पर चण्डिका भी उनके कन्या रूपसे अवतीर्ण हुई। इसी कारण उनको कौशिकी कहते हैं । (हरिवंश ५०५०)

कुशिक-अण् । अश्वानन्वे' विहाविमोऽय् । पा ३। १। १०१

२ कुशिक नरपतिकी पौत्री, ऋचीक मुनिकी पत्नी ।

३ कोई नदी । रामायणमें इस नदीका विषय इस प्रकार वर्णित है। गांधिराजनन्दिनी सत्यवती जब अपने पति ऋचीक मुनिके साथ सशरीर स्नान चली गयीं, तब इस नदीकी उत्पत्ति हुई। इसीसे उनके नामानुसार नदीका नाम कौशिकी पड़ा। सत्यवतीका दूसरा नाम कौशिकी था। (रामायण १। ३८ सर्ग)

कौशिकी नदी हिमालयके नेपालराज्यसे अक्षा० २८° २५' ७" तथा देशा० ८६° ११' ५०" में उत्पन्न हो प्रायः ३० कोस दक्षिण-पश्चिम, तत्पर ८० कोस दक्षिण-पूर्व उत्पत्ति स्थानसे कुल १६२ कोस चल चम्पा नगरीके निकट गङ्गाके साथ मिल गयी है। इसका वर्तमान नाम कशी नदी है। कौशिकीके स्नातका वेग बहुत भयानक है। महाभारतके मतमें इस नदीके तार पर एक मास वास करनेसे अश्वमेधका फल होता है। (भारत च० १।१८ ब्रह्मपुराण १०५) ४ पार्वतीके शरीरसे निःसृत देवीमूर्ति । कौशिकी देखो। ५ कोई नाटकीय रचना । नाटक देखो। ६ पूरिया तथा अजयपाल अथवा वसन्त सायेरी और पञ्चमके योगसे उत्पन्न एक रागिणी। अनुमाने इसको मालकौशकी एक भार्या माना है।

कौशिकी कान्हा (हि० पु०) कौशिकी और कान्हाके योगसे बनी हुई एक रागिणी। यह कामल स्वरोंमें ही गायी जाती है।

कौशिकोपुत्र (सं० पु०) कौशिक्याः पुत्रः, इ-तत् । एक ऋषि । (बृहदारण्यक ६।५।१२)

कौशिकीसङ्गम—कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक पवित्र तीर्थ । कुरुक्षेत्र देखो।

कौशिक्य (सं० पु०) शाखोटवृक्ष, सड़ीका पेड़। यह पित्तल, उष्ण, तिक्त और वातार्तिनाशक है। (नैयकनि०)

कौशिक्या (सं० स्त्री०) कौशिक्य देखो।

कौशिक्योज (सं० पु०) कौशिक्या इव योजी बलं यस्य, बहुव्री० पृषोदरादिवत् सकारलोपे साधुः । बीजिक देखो। कौशिक्योन्म, बीजिक देखो।

कौशिज (सं० पु०) जनपदविशेष, एक मुक्त ।

(भारत, अधि २५०)

कौशिल्य—गोत्रकार ऋषिविशेष। (भाष्य १०८। १८)

कौशीतकी, कौषीतकी देखी।

कौशीधान्य (सं० स्त्री०) कौषजात धान्य, तिल प्रभृति।

(भाष्ययनश्रौतसूत्र २। १। १०)

कौशीर (सं० स्त्री०-पुं०) नखीनाम गन्धद्रव्य, एक खुशबू-
दार चीज।

कौशीरकेय (सं० स्त्री०) कुशीरक-ठण्। कुशीरकका
निकटवर्ती देश।

कौशीलव (सं० स्त्री०) कुशीलवस्य कर्म, कुशीलव-
पण्। कुशीलवका व्यवसाय, खेलतमाशाका पेशा।

कौशील्य (सं० स्त्री०) कुशीलवस्य कर्म, कुशीलव-
पण्। कुशीलवका व्यवसाय, नाटक अभिनय प्रभृति,
खेलतमाशा।

कौशिय (सं० स्त्री०) कौशादुल्लिखितम्, कौश-ठक्। १ कर्म-
कोषजात वस्त्र, रेशमी कपड़ा। (भाष्य ८। ६) यह शब्द
मर्धन्य प्रकारयुक्त भी व्यवहृत होता है। २ काशदण।

कौशियक, कौशिय देखी।

कौश्य (सं० स्त्री०) कुशस्येदम्, कुश-पण्। १ कुशनिर्मित,
कुशसम्बन्धीय। (भाष्य, अनु ७१ च०)

(पुं०) कुशस्य गोत्रापत्यम्। २ कुशवंशीय कोई
ऋषि (अतपत्राज्ञा १०। ५। ५। ४)

कौष (सं० स्त्री०) कमल।

कौषारव (सं० पुं०) कुषारोरपत्यम्, कुषार-पण्।
कुषार मुनिके पुत्र, मैत्रेय। किसी स्थान पर मर्धन्य
प्रकार, कहीं तालव्य प्रकार और किसी स्थान पर
दन्त्य प्रकारयुक्त प्रयोग भी देखते हैं।

कौषिक (सं० पुं०) कौशिक पृषोदरादिवत् प्रकारस्य
प्रकारादेशः। १ कौशिक। कौशिक देखी। २ पाण्डित्यिक।

कौषिकफल, कौषिक फल देखी।

कौषिकी (सं० स्त्री०) कौशिकी पृषोदरादिवत् साधुः।

१ कौशिकी। कौशिकी देखी।

कौषि शरीरकोषे भवः, कौष-ठक्-ङीप्। २ कालीके
कायकोषसे उत्पन्ना कोई देवी। कालिकापुराणमें इस
प्रकार वर्णित हुआ है—कालीके कायकोषसे निःसृत
होने कारण ही यह कौषिकी नाम पर विख्यात है।
इसकी मूर्ति प्रतिग्रय मनोमुत्पन्नकर है। मस्तक कधरी-

भारसे परिशोभित है। कपाल पर च चन्द्र, मस्तक
पर नानाविध रत्नखचित मुकुट, कर्णमें ज्योतिर्मय
कर्णपूर और गलेमें सुवर्ण मणिमाणिक्य निर्मित मान-
हार तथा पुष्पमाला है। कौषिकी दशहस्ता हैं।
दक्षिणहस्तीमें यथाक्रम शूल, वज्र, वाण, खड्ग तथा
शक्ति और वामहस्तीमें गदा, घण्टा, धनुः, चर्म एवं
शङ्ख धारण किये हैं। इनका वाहन सिंह और परिधान
व्याघ्रचर्म है। ब्रह्माणी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी,
वाराही, नारसिंहा, ऐन्द्री और शिवदूती—इनकी
आठ सखियां सर्वदा निकट ही अवस्थान करती हैं।

(कालिकापुराण ६० च०)

मार्कण्डेयपुराणके मतमें—शुभ निशुभके उत्पीड़नसे
देवतागणके नितान्त व्याकुल हो देवीका स्तव आरम्भ
करने पर देवी उनके स्तवसे सन्तुष्ट हो उनके निकट
जाकर उपस्थित हुईं और पूछने लगीं—तुम किसका
स्तव करते हो। उस समय देवीके शरीरसे एक दूसरा
देवीने निकल कर कहा था—देवलोक मेरा स्तव
करते हैं। इन्हीं देवीका नाम कौषिकी है। इन्हींने
दत्तवंशकी सम्मूल नाश कर डाला। (मार्कण्डेयपुराण, देवी-
माहात्म्य) देवीपुराणकी देखते—कौषियवस्त्र धारण ही
कौषिकी नामका कारण निर्णीत हुआ है।

(देवीपुराण ४५ च०)

कौषीतक (सं० पुं०) कुषीतकस्यापत्यम्, कुषीतक-
पण्। कुषीतक ऋषिके पुत्र। ऐतरेयब्राह्मणमें इसका
नाम दृष्ट होता है। यह ऋग्वेदकी एक शाखाके प्रव-
र्तक थे। (भाष्ययन श्रौ० सू० १। ४। ४। २१)

कौषीतकि (सं० पुं०) कुषीतकस्यापत्यम्, कुषीतक-
पण्। १ कुषीतक ऋषिके पुत्र। २ ऋग्वेदान्तर्गत
ब्राह्मणविशेष।

कौषीतकी (सं० पुं०) कौषीतकेन प्रोक्तमधीयते, कौषी-
तक-णिनि। कौषीतक-प्रणीत शास्त्र पढ़नेवाले।

(भाष्य २०। १। २१। ५)

कौषीतकी (सं० स्त्री०) कुषीतकस्य अपत्यं स्त्री, कुषी-
तक-पण्-ङीप्। १ अगस्त्यकी पत्नी। कुषीतकेन
प्रणीता प्रणीता वा या शाखा। २ ऋग्वेदान्तर्गत
ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्का भेद।

(मुक्तिकोपनिषद्)

कौषीतकेय (सं० पु०) कुषीतक-ठक् । विकसं कुषीतका ।
काण्डपे । पा ४ । १ । १२४ । कुषीतकके अपत्य ।

(शतपथब्राह्मण १४ । ६ । ४ । १)

कौषेय (सं० स्त्री०) कौषेय पृषोदादिबत् शकारस्य
षकारादेशः । रेशमी कपड़ा । (मार्कण्डेयपुराण १५ । १६)
कौष्ठ (सं० त्रि०) कौष्ठ वा भाण्डार सम्बन्धीय ।

(शतपथब्राह्मण १ । १ । २ । ७)

कौष्ठवितक (सं० त्रि०) कुष्ठविदि कुष्ठविद्यायां साधुः,
कुष्ठविद्-ठक् । दकारस्य तकारः ठस्य च कः । कषादिभा-
ठक् । पा ४ । ४ । १०२ । भली भांति कुष्ठविद्या जाननेवाला, जो
कोढ़की पूरी जानकारी रखता हो । किसी किसी वै या-
करणके मतमें इस स्थल पर ठकारके स्थानमें ककार
नहीं हो सकता । वह कौष्ठविदिक शब्द सिद्ध करते हैं ।
कौष्ठिल—एक बौद्ध ग्रन्थकार ।

कौष्ठ्य (सं० त्रि०) कौष्ठ वा उदर सम्बन्धीय, कोठे या
पेटसे सरोकार रखनेवाला ।

कौसल, कौशल देखो ।

कौसलेय (सं० पु०) कौसल्याया अपत्यम्, कौसल्या-
ठक् । कौसल्याके पुत्र रामचन्द्र ।

कौसल्यायनी, कौशल्यानि देखो ।

कौसल्य (सं० पु०) कौसलस्यापत्यम्, कौसल-जगङ् ।
इदं कौसलजाया जगङ् । पा ४ । १ । १०१ । कौसलदेशीय
राजाके पुत्र । (शतपथब्राह्मण १५ । ४ । ४)

कौसल्या (सं० स्त्री०) कौसल-जगङ्-टाप । १ कौसल-
राजकी कन्या । यह दशरथ राजाकी प्रधान महिषी
और रामकी माता थीं । २ पुरुषकी पत्नी । ३ सखान्की
स्त्री । (हरिवंश) कौसल्या देखो ।

कौसीद (सं० त्रि०) कुसीदसम्बन्धीय, कशीदेवाला ।
(मनु ८ । १४३)

कौसिका (द्वि० स्त्री०) कौसल्या ।

कौसीद (सं० त्रि०) कुसीदे साधुः, कुसीद-अण् । वृद्धि-
जीवी, सुदखीर ।

कौसीथ (सं० स्त्री०) कुक्षितं सीदत्वस्मिन्, सद् बाहुल-
कात् पाधारे शः ततः स्वार्थे थञ् । १ आलस्य,
सुखी । २ तन्द्रा, तुन्दी । कुसीदस्य भावः । ३ वृद्धि-
जीविका, सुदखीरी ।

कौसुम (सं० स्त्री०) कुसुमेन निर्वृत्तम्, कुसुम-अण् ।
१ पुष्पाञ्जन, बनावटी सुरमा । (त्रि०) २ कुसुमसम्ब-
न्धीय, फूलोंवाला ।

कौसुमायुध (सं० पु०) कौसुमः कुसुमनिर्मितः आयुधः
यस्य, बहुव्री० । कामदेव, पञ्चबाण ।

कौसुम्भ (सं० पु०-स्त्री०) कुसुम्भ स्वार्थे अण् । १ वन-
कुसुम्भ, जंगली कुसुम । २ पुष्पाञ्जन, फूलोंका सुरमा ।
३ कौई शाक । यह अतिशय कोमल होता है । (त्रि०)
कुसुम्भेन रक्तम्, कुसुम्भ-अण् । ४ कुसुम्भरागसे रञ्जित,
कुसुम्भी ।

कौसुम्भतल (सं० स्त्री०) कुसुम्भबीजोद्भव तैल, कुसुमके
बीजका तेल । यह कटु, सखार और वात, कफ तथा
पित्तहर होता है । (वाग्भटटीका) कुसुम्भतल देखो ।

कौसुम्भशाक (सं० स्त्री०) कुसुम्भशाक, कुसुमकी सब्जी ।
कुसुम्भपत्र देखो ।

कौसुम्भशुण्डिक (सं० स्त्री०) स्त्रनामख्यातशालि, किसी
जिसका चावल । यह कषुपाक और वातपित्तघ्न
होता है । (राजनिघण्टु)

कौसुम्भीशालि, कौसुम्भशुण्डिक देखो ।

कौसुम्भविन्द (सं० पु०) दशराज-साध्य एक यज्ञ ।

(कात्यायनश्रौत० २१ । ५ । २८)

कौसुम्भविन्द (सं० पु०) कुसुम्भविन्दस्यापत्यम् कुसुम्भ-
विन्द-इङ् । अत इङ् । पा ४ । १ । २५ । कुसुम्भविन्द मुनिके पञ्च
उद्दालक ऋषि । (शतपथब्राह्मण १२ । २ । १२)

कौसुतिक (सं० त्रि०) कुसुम्भा कुत्सितगत्वा चरति,
कुसुति-ठक् । चरति । पा ४ । ४ । ८ । १ कुडकी, बाजीगर ।
२ शठ, पाजी ।

कौम्भ (सं० स्त्री०) दशान्विक छत, दश वर्षका पुराना घो ।

कौस्तुभ (सं० पु०) कुं भूमिं सुभ्राति व्याप्नोति कुस्तुभः
समुद्रः तत्र भवः, यद्वा कुं भूमिं सुभ्राति व्याप्नोति सर्व-
माक्रम्य तिष्ठति कुस्तुभो विष्णुः तस्य अयम्, कुस्तुभ-
अण् । १ विष्णुका हृदयभूषण मणि । यह समुद्रमन्थन
काल समुद्रसे उत्पन्न हुआ था ।

देवता विष्णुके साहाय्यसे जब समुद्र मथने लगे,
उससे नानाविध बहुमूल्य पदार्थ निकल पड़े । विष्णुने
उनमें केवल कौस्तुभ लिया था । (हरिवंश २९) भागवतके

मतमें—कौस्तुभ पद्मराग मणि-जैसा रत्नवर्ण और कोटि सूर्य-जैसा किरणशाली है। २ सुद्राविशेष। दाहने हाथकी कनिष्ठ अङ्गुलि, अनामिका और अङ्गुष्ठकी संलग्न करके वाम हस्तकी कनिष्ठ अङ्गुलि और दाहने अङ्गुष्ठ मूलमें वामहस्तकी अनामिकाको दक्षिण हस्तकी तर्जनी अङ्गुलि द्वारा बद्ध करना चाहिये। फिर अङ्गुष्ठके मध्यभागमें अथवा चारों अङ्गुलियोंका अग्रभाग सरल भावसे संयोजित करने पर कौस्तुभसुद्रा बनती है। (तन्त्रसार)

कौस्तुभलक्षण (सं० पु०) कौस्तुभः लक्षणः यस्य, बहुव्री०। विष्णु।

कौस्तुभलक्षण (सं० पु०) कौस्तुभः लक्षणं यस्य, बहुव्री०। विष्णु।

कौस्तुभवक्षाः (सं० पु०) कौस्तुभो वक्षसि यस्य, बहुव्री०। विष्णु।

कौस्तुभ (सं० स्त्री०) कुक्षिता स्त्री कुक्षौ तस्या भावः, कुक्षी-अण्। आयनालबुवादिभ्योऽण्। पा ५।१।१२०। कुक्षिता स्त्रीका धर्म, खराब औरतका काम।

कौस्तुभपुर (सं० स्त्री०) शिलालिपिवर्णित एक प्राचीन नगर।

कौड (हिं० पु०) ककुभ, अणुनका पेट।

कौडड़ (सं० पु०) कौडड़स्य अपत्यम्, कौडड़-अण्। भिवादिभ्योऽण्। पा ४।१।१११। कौडड़के लड़के।

कौडर (हिं० पु०) इन्द्राणी, एक देव।

कौडल (सं० पु०) कौडलस्य अपत्यम्, कौडल-अण्। कौडलके पुत्र।

कौडलिय (सं० पु०) कौडलप्रवर्तित वेदशाखा।

(गोमिश १।४।२८)

कौडकी—अति प्राचीन एक वैदिक वेद्याकरण।

(तिलीयप्रतिशाखा १।५)

कौडकीय, कौडकीय देखो।

कौडा (हिं० पु०) कौवा, बहूवां, बंडेरीकी आड़के लिये लगाया जानेवाली लकड़ी।

क (सं० त्रि०) कः प्रजापतिः तस्मै हितः, क-यत्। ब्रह्माका हितकारक, ब्रह्माको उपकार करनेवाला।

(अतपप्रज्ञा १०।१।१।१४)

क्या (हिं० सर्व०) १ कोई प्रश्नवाचक शब्द, कौन चीज। यह 'क्लिम्' शब्दका अपभ्रंश है। इसके द्वारा किसी विषयमें प्रश्न करते हैं। क्या सर्वनाम तो है, परन्तु इसमें कोई विभक्ति नहीं लगती। (वि०) २ कितना। ३ ऐसा, इतना। ४ कैसा, निराला, अनोखा। ५ अच्छा, बढ़िया। (क्रि० वि०) ६ क्यों, काहेकी। ७ नहीं।

'क्या' केवल प्रश्नवाचक अव्ययकी भांति भी पाता है।

क्यान्नानोर—मन्द्राज प्रान्तके मलबार जिलेका एक शहर और बन्दर। यह अक्षा० ११° ५२' ३०" और देशा० ७५° २२' ५०" में अवस्थित है। इसका देशीय नाम कच्छूर वा कसन्नूर अर्थात् लष्णनगर है। यहां कोई २८ हजारसे अधिक मनुष्य रहते हैं। उनमें सुसलमानों और हिन्दुओंकी ही संख्या अधिक है।

प्रवाद है—प्रथमकी यह नगर चेरमान पेरुमाळ-वंशीयोंके अधिकारमें रहा। उनके हाथसे मीपळा राजावोंने इसे दखल कर लिया।

१४८८ ई०की भास्को डि-गामा यहां उतरे थे। उसके सात वर्ष पीछे क्यान्नानोरमें पोर्तुगीजोंकी कोठी खुली। १५१० ई०की भ्रमणकारी बार्थोमा-लिखित विवरण पाठसे समझ पड़ता है कि उस समय यहां पोर्तुगीजोंका एक दुर्ग बना था।*

१६५६ ई०की ओलन्दाजीने यहां एक किला बनाया था। यह दुर्ग १७६६ ई० तक उन्हींके अधिकारमें रहा, उसके पीछे हैदराबादीके सिपाहियोंने दखल किया। १७८४ ई०की अंगरेजीने आक्रमण मारा था। क्यान्नानोरकी अधीश्वरीने उनकी अधीनता स्वीकार की। सात वर्ष पीछे अंगरेजीने इसे एकबारगी ही अधिकार कर लिया था। उस समयसे यहां मलबार जिलेके मध्य सर्वप्रधान सैनिक-निवास स्थापित हो गया। क्यान्नानोरमें अंगरेजी और देशी दोनों

* Travels of Lodovico de Varthema in 1510, published in Hack, Society.

प्रकारका सैन्यदल है। किलेसे कुछ दूर समुद्र किनारे मोपला राजा रहते हैं। सालाना आमदनी ३८००० रु० है।

क्याम्बू (सं० स्त्री०) क्यं प्रजापतिद्वितं अम्बु, यत्र, बहुव्री० ततः ऊङ् । अम्बुजलयुक्त पुष्करिणी प्रभृति, गड्डिया।
क्यारी (हिं० स्त्री०) क्रियारी।

क्यों (हिं० क्रि०) १ किस कारण, किस लिये, काहेको।
यह शब्द व्यापारविशेषका कारण पूछता है। २ कैसे, किस प्रकार।

क्योंकि (हिं० अव्य०) कारण, इसलिये कि।

क्योंभर (कैउंभर)—उत्कल-प्रान्तका एक करदराज्य। यह अक्षा० २१° १' तथा २२° १०' उ० और देशा० ८५° ११' और ८६° २२' पू० के बीच पड़ता है। भूपरिमाण ३०८६ वर्गमील है। इसके उत्तर सिंहभूम जिला, दक्षिण कटक जिला तथा टेंकानालराज्य और पश्चिमको पाल-लहरा तथा मोनाईराज्य लगता है। यह उच्च और निम्न दो भागोंमें विभक्त है। उच्च विभागमें पहाड़ी जंघी जमीन् और निम्नदेशमें उपत्यकाएं तथा मैदान हैं। प्रस्तरमय उत्तर-पश्चिमांशसे वैतरणी नदी निकलती है। प्रधान शिखर गन्धमादन (३४७८ फीट), ठाकुरानी (३००३ फीट), तोमाक (२५७७ फीट) और बोलात (१८१८) फीट है।

प्रथमतः त्रैलोक्येश्वरी वा क्योंभर मयूरभञ्जका एक अंश था। परन्तु २०० वर्ष हुए क्योंभरके अधिवासियोंने मयूरभञ्जसे अलग हो राजाके एक भाईको अपना राजा चुना। उस समयसे बीसियों राजा राज्य कर गये। १८५७ ई०को क्योंभरराजने अंगरेज सरकारको बड़ी मदद दी थी। इसीसे राज्यका कर घटा दिया गया और 'महाराज' उपाधि भी मिला। १८६१ ई०को महाराजके मरने पर कोई अपना औरसजात पुत्र न रहनेसे राज्याभिषेक पर विवाद ठठा और उसके परिणाम स्वरूप भुइयों तथा जुवांगोंने विद्रोह मचा दिया। परन्तु अंगरेजी फौजको मददसे वह दबाया गया। १८८१ ई०को मन्त्रियोंके अत्याचार पर प्रतिवाद रूप फिर पहाड़ी लोगोंने विद्रोह खड़ा किया, जो विना अंगरेजी साहाय्यके दब न सका। राज्यका वार्षिक

आय ३ लाख रुपया है। सरकारी कर १७१०, रु० लगता है। १८०१ ई०को इस राज्यकी लोकसंख्या २८५८५८ थी। इस राज्यका बड़ा गाँव आनन्दपुर वैतरणी नदी पर बसा हुआ है। मेदिनीपुर-सम्बलपुरकी पुरानी सड़क क्योंभर नगरके बीचसे निकली है। राज्यमें कई दातय्य औषधालय और विद्यालय विद्यमान हैं।

क्रकच (सं० पु०-स्त्री०) क्र इति कचति शब्दायते, क्र-कच-प्रच्। १ पन्थिसृज्ज, गंठवन। २ करपच, घारा। ३ केतकी, केवड़ा। ४ प्रवृद्ध होन मध्य वातादिजनित सन्निपातज्वर, एक तरहका सरशामी बुखार। इसमें प्रलाप, आयास, सम्मोह, कम्प, मूर्च्छा, रति तथा भ्रम बढ़ता और रोगी मन्थास्तम्भसे मरता है। (भावप्रकाश)

५ ज्योतिःशास्त्रोक्त कोई योग। वार और तिथिकी संख्या मिलाने पर तेरह आनेसे क्रकच योग पड़ता है। (नारद) अर्थात् शनिवारकी षष्ठी, शुक्रवारकी सप्तमी, बृहस्पतिवारकी अष्टमी, बुधकी नवमी, मङ्गलकी दशमी, सोमवारकी एकादशी और रविवारकी द्वादशी होनेसे यह योग आता है। इस योगमें कोई मङ्गलकार्य न करना चाहिये।

क्रकचच्छद (सं० पु०) क्रकच इव च्छदो यस्य, बहुव्री०। केतकीवृक्ष, केवड़ेका पेड़। क्रकचदल प्रभृति शब्द भी इसी अर्थमें व्यवहृत होते हैं।

क्रकचपत्र (सं० पु०) क्रकचमिव पत्रमस्त्र, बहुव्री०। शाकवृक्ष, सागवनका पेड़।

क्रकचपात् (सं० पु०) क्रकच इव पादो यस्य, बहुव्री०। अन्धकोपः। जकलास, गिरगिट।

क्रकचपाद (सं० पु०) विकल्पेन अन्धकोपः। जकलास, गिरगिट।

क्रकचपृष्ठी (सं० स्त्री०) क्रकच इव पृष्ठं यस्याः, बहुव्री० ततः ङीष्। कवयी मत्स्य, कंठवा। इस मछलीकी पीठ पर घारा-जैसी एक चीज होती है। उसीसे इसका नाम क्रकचपृष्ठी पड़ा है।

क्रकचव्यवहार (सं० पु०) गचितविशेष, एक जिसका इसके द्वारा कार्यानुसार बढ़ईका वेतन निर्णय किया जाता है। चेव देखो।

क्रकचा (सं० स्त्री०) क्रकचस्तदाकारोऽस्तः, क्रकच-
पत्रं चादित्वात् अच् ततश्चाप् । १ केतकीवृक्ष, केवड़ा ।
२ होगलक्ष, भारी-जैसी एक लम्बी घास ।

क्रकटोया—यवहोपका निकटवर्ती एक लुप्तहोप । यह
स्थान पहिले समुद्रपृष्ठसे प्रायः २००० हाथ ऊंचा था ।
किन्तु १८८३ ई० की २३ वीं अगस्तकी यवहोपके
पर्वतसे अति भयङ्कर अग्न्युत्पात हुआ । ऐतिहासिक
और भूतत्वविद् कहते हैं कि वैसा अग्न्युत्पात
और कभी किसी स्थान पर नहीं उठा । उससे क्रकटोया
होप विस्तृत नगर कानन और शत शत प्राणी सह
मासूम नहीं कहाँ अदृश्य हो गया । उसका चिह्न मात्र
भी नहीं मिलता । वहाँ आजकल भारत महासागरका
अतलस्थली अल भरा है । यवहोप देखो ।

क्रकण (सं० पु०) क्र इति कणति शब्दायति, कण-अच् ।
तित्तिरपत्नी, किलकिला चिड़िया । ककर देखो ।

क्रकर (सं० पु०) क्र इति शब्दं कर्तुं शीलमस्त्र, क्र-क
ताच्छीष्ये अच् । १ करीरवृक्ष, करील । २ क्रकण-
पत्नी, किलकिला । इसका संस्कृत पर्याय—कृकण,
क्रकण, और ककर है । इसका मांस वातघ्न, पित्त-
नाशक, मेध्य, हृष्य, अग्नि तथा बलबुद्धिकारक,
लघुपाक और रुचिकर होता है । (सुस्त)

१ करपत्र, भारा । ४ दरिद्र ।

क्रकराट (सं० पु०) भरहाजपत्नी, एक चिड़िया ।

क्रकुच्छन्द (सं० पु०) भद्रकल्पके ५ बुद्धीमें प्रथम बुद्ध ।
ख्यम्भपुराणमें लिखा है—विश्वभूके निर्वाण पीछे
क्षेमवतीनगरमें क्रकुच्छन्द नामक किसी ब्राह्मणने
जन्म लिया था । वाक्यकालसे ही उन्हें धर्मानुराग
लग गया । वह शिरोव हृष्यके मूलमें लूणासन पर बैठ
कठोर तपस्या किया करते थे । फिर तपोबलसे उन्होंने
बोधिज्ञान पाया । उनके प्रधान शिष्यका नाम ज्योतिः-
पाल था ।

बोधिज्ञान लाभ करनेके पीछे क्रकुच्छन्द नाना
स्थानोंमें बहुतसे लोगोंके बीच सद्धर्म प्रचार करने लगे ।
वह थोड़े दिन नेपालके पद्मपुरमें रहे । वहाँसे शिष्यों
और भक्तोंके साथ दुर्गम शङ्कगिरि पर जा पहुँचे । इस
शङ्कगिरिकी एक विस्तृत गुहामें उन्होंने शिष्योंकी

अनेक उपदेश दिये थे । इसी समय ब्राह्मणप्रवर
गुणध्वज, क्षत्रियराज अभयनन्द प्रभृति महात्मा बोधि-
ज्ञान लाभ करनेकी क्रकुच्छन्दके शरणापन्न हुए । इस
जगह भगवान् क्रकुच्छन्दने शिष्योंकी प्रोषधप्रतके
अनुष्ठानादिकी शिक्षा दी थी । उन्होंने कहा—‘पदस्त
वस्तु ग्रहण, ब्रह्मचर्यके विपरीत आचरण, मद्यपान, नृत्य,
गीत, पुष्पमाला-सुगन्धि-अलङ्कारधारण, पर्यङ्कका शयन
और असमय आहार भिक्षुके लिये एकान्त निषिद्ध है ।
जो यह नियम पालन नहीं करते, उनको विस्तर
प्रत्यवाय उठाना पड़ते हैं । परन्तु जो मनसे पालन
करते वह वैसाआत्मार, देववाणीश्रवण, अग्न्यके
मनका भाव जाननेकी क्षमता, पूर्वजन्मकी स्मृति और
अलौकिक कार्यसाधनकी क्षमता पा जाते हैं । तत्पर
उन्होंने ३७ धर्म प्रचार किये । उनमें स्मृतिस्नातके ४,
इन्द्रियके ५, बोधिधर्मस्नातके ७, संग्रहाणके ४, अने-
मार्गिक कार्य करनेके ४, शक्तिस्नातके ५ और नाना
प्रकार ज्ञान लाभके ८ उपाय थे ।’ ख्यम्भपुराण ४ पृ० ।

अवदानशतकमें कहा है—क्रकुच्छन्दके निर्वाण
पीछे राजा शोभितने शोभवती नगरमें उनके केशी और
नखी पर एक लङ्घत् स्तूप निर्माण कराया था ।

(अवदानशतक ८७ पृ०)

खृष्टीय पञ्चम शताब्दीके प्रारम्भमें चीन-परिव्रा-
जक फाहियान क्रकुच्छन्दका जन्मस्थान देखने गये थे ।
उनके मतमें इनके जन्मस्थानका नाम ‘न-पि-क’ था ।
वह आबन्ती नगरीसे १२ योजन दक्षिण-पूर्वमें अव-
स्थित रहा । जहाँ पितापुत्रका साक्षात् हुवा और जहाँ
भगवान्की निर्वाण मिला, जितने ही स्तूप बनाये गये ।

१-की-कि ११) चीन-परिव्राजक युचनचुयाङ्ग भा आकर
स्तूप और अशोकराज-प्रतिष्ठित २० हाथ ऊँचे स्तम्भ पर
लिखी क्रकुच्छन्दके निर्वाणकी कहानी देख गये थे ।
(सि-यु-की ६) क्षेमवती क्षेमवती देखो ।

क्रकोक्ष (सं० पु०) पश्चिमविशेष, एक चिड़िया ।

क्रातु (सं० पु०) क्रियते ऽसौ, क्रा-कतु । कृष्णः कतः । उष्-
१०८ । १ सप्तऋषियामें एक ऋषि । यह ब्रह्माके मानस
पुत्र रहे । ब्रह्माके हाथसे इनका जन्म हुआ था ।
(महाभारत १।६।१।१०) कर्दम प्रजापतिकी कन्या क्रिया

इसकी पत्नी रहती। क्रियाके गर्भ और इनके औरसे सठ हजार वासुदेव सुनिर्मित जन्म लिया था। (भागवत ४।१।२८) २ विश्वेदेवविश्वेय, ब्राह्मणके एक मानस पुत्र। (हरिवंश) (शतपथब्राह्मण १०।६।१।१) ३ सोमरस। साध्य यूपयज्ञ। ४ विष्णु। (विश्ववर्तिना) सङ्कल्प, ५ इरादा। ६ दक्षिका अधिव्यस, अतिशय अभिलाष। ७ सुति प्रभृति कर्म। (चक्र ४।२।१।०) ८ प्रज्ञा, निश्चय, पङ्चान। (काम्योपनिषत्) ९ आषाढ मास। इसमें चातुर्मास्य प्रभृति अनेक यज्ञोंका विधान रहनेसे ऋतु नाम पड़ा है। (वाजसनेयवर्तिना। १८) १० अश्वमेध यज्ञ। (मनु ७।०८) ११ इन्द्रिय। १२ कोई प्राचीन धर्म-शास्त्रकार। हेमाद्रि, माधवाचार्य, विश्वामित्रर प्रभृतिके ग्रन्थोंमें ऋतु कृतिका मत उद्धृत हुआ है।

ऋतुकर्म (सं० ली०) यागयज्ञ।

ऋतुजित् (सं० पु०) एक ऋषि। (वाटकस्य)

ऋतुदोषतुत् (सं० पु०) ऋतूनां इन्द्रियाणां दोषं मुदति दूरीकरोति, ऋतु-दोष-मुद्-क्षिप्। प्राप्नोयाम। प्राप्ना-याम करनेसे सन्तान इन्द्रियोंका दोष मट्ट होता है।

ऋतुदुष्ट (सं० पु०) ऋतवे दुश्चति, दुष्ट-क्षिप्। अशुभ, यज्ञको बुरा समझनेवाला।

ऋतुद्विद् (सं० पु०) ऋतवे द्वेष्टि, द्विष्-क्षिप्। सत्सुविष हृत्-दुष्ट-मुविष्ट-भिद-विष्ट-जि-नो-राकतुवर्धने ऽवि। वा १।२।६।२।१ असुरा २ नास्तिक्।

ऋतुध्वंसी (सं० पु०) ऋतुं दध्वायध्वं ध्वंसयति, ऋतु-ध्वंस-विष्-चिनि। दध्वाका यज्ञ ध्वंस करनेवाले शिव।

किसी यज्ञकी सञ्चालनमें देवीका निमन्त्रण रहा। इस सबके पीछे सभामें पहुँचे। उसको देख कर इन्द्र, चन्द्र, वरुण, वायु प्रभृति सभी उठ खड़े हुए। शिव भी उस सभामें थे। किन्तु वह न उठे। कनिष्ठ वामांतर शिवकी यह असमर्थता देख दह चिढ़े थे। वह फिर शिवकी अवमाननाके लिये चेष्टा करने लगे, किन्तु कुछ बना न सके। परीक्षीको उन्होंने एक यज्ञका अनुष्ठान किया था। शिवका अपमान करना ही उसका प्रधान उद्देश रहा। बड़े धूमधड़ाकेसे यज्ञका अनुष्ठान होने लगा। भूचर, ज्वर, ज्वर, मर्म, पातक निमज्जित हुआ था, किन्तु कैलासकी कोई संवाद भी भेज न मध्य। शिव

खबर पा कर मन ही मन हँसे थे। सतीके निकट भी दध्वायज्ञका संवाद पहुँचा। वह वापके घर यज्ञ देख-नेकी जानेके लिये विदा माँगने शङ्करके निकट उपस्थित हुई। शिवने उन्हें यज्ञमें जानेसे रोका था। सती इस पर रोते रोते पाकुल हो मर्यी। पमत्वा शिवने उन्हें जानेकी अनुमति दी थी। सती दध्वायज्ञमें मर्या, परशु वरुण भूतपतिकी निम्दा सुनके अपना देह परित्याग कर बैठीं। शिवने सतीका सत्य संवाद पाकर क्रोधभरसे शिरकी जटा मोच डाली थी। उसी जटासे एक वीरपुरुष उत्पन्न हुआ। उसका नाम वीरभद्र था। त्रिलोचनने उसे दध्वायज्ञ भङ्ग करनेकी अनुमति दी। वीरभद्र शिवकी आज्ञा पाकर भूतपति प्रभृति संन्यसामन्तोंके साथ यज्ञस्थल पर पहुँचे और मुहूर्त मध्य लूट मार मचा यज्ञ भङ्ग कर डाला। (काशीखण्ड ८८ अध्याय)

ऋतुपशु (सं० पु०) ऋतोरश्वमेधयज्ञस्य पशुः, ६ तत्। अश्व, खीड़ा।

ऋतुपति (सं० पु०) ऋतोः पति, ६ तत्। यज्ञेश्वर, विष्णु। (भागवत ४।२८.२८)

ऋतुपा (सं० लि०) ऋतु यज्ञं पाति रक्षति, ऋतु-पा-विच्। यज्ञरक्षक, प्रहरीरहकर यज्ञका विघ्न निवारण करनेवाला।

ऋतुपुरुष (सं० पु०) ऋतुः मघः तदधिष्ठाता पुरुषः। १ विष्णु। ऋतुः पुरुष इव। २ बराबरपक्षारी यज्ञपुरुष। हरिवंशमें इनकी वर्णना इस प्रकार लिखी है—चार वेद यज्ञपुरुषके चारो पाँव हैं। इसी प्रकार यूपकी दंष्ट्रा, यज्ञकी हस्त, यज्ञकुण्डकी मुख, अग्निकी जिह्वा, कुशोंकी रोम, ब्रह्माकी मस्त्रक, दिन तथा रात्रिकी दोनों चक्षु, ऊँची वेदमञ्जीकी कर्णके अलङ्कार, घृतकी नासाखल, स्त्रुवकी होठ और यज्ञमें किये जानेवाले सामध्वनिकी उनका शब्द-जैसा समझना चाहिये। यज्ञपुरुष सत्य तथा धर्ममय, श्रीमान् और क्रमविक्रमयुक्त हैं। पशु उनका जानु, उद्धाता लोग उनकी नाड़ियाँ, वायु अम्तराजा, सत्य सिद्धि, सोमरस रक्त, वेदि अन्ध, हवि गन्ध, दक्षिणा हृदय, अग्नि पत्नी और मणि यज्ञपुरुषका शृङ्ग हैं। विष्णु ऐसी ही यज्ञ-

वराहमृति बनाकर अथोद्देश को नये से । (हरिवंश २२४५०)

क्रतुप्रकरण, क्रतुपा देखो ।

क्रतुपा (सं० पु०) क्रतून् कर्माणि प्राप्ति पूरयति,
क्रतु-पा-क्षिप् । कर्मपूरक, कर्मोंका पूरण करनेवाला ।

(चक्र ४११८२)

क्रतुफल (सं० स्त्री०) क्रतोः फलम्, ६-तत् । १ यज्ञका
फल स्वर्गादि । (पु०) क्रतुरेव यज्ञानुष्ठानमेव फलं
प्रयोजनं यस्य, बहुव्री० । २ निष्काम हो यज्ञका अनु-

ष्ठान करनेवाला, यज्ञके फलको न चाहनेवाला व्यक्ति ।
क्रतुभुक् (सं० पु०) क्रतुं क्रतुर्देयं हविः भुङ्क्ते, क्रतु-
भुज्-क्षिप् । देवता । यज्ञमें देवताओंके उद्देश जो सकल
द्रव्य अर्पण किया जाता, देवता लोग मनुष्यकी भांति
उसको भोग नहीं करते; किन्तु उसको देख कर हस
रहते हैं ।

क्रतुभूषण—तत्त्वविवेकसार नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता ।

क्रतुमय (सं० त्रि०) अक्षयसायात्मक । (बाल्मीक्य उपनिषद्
१।१०।१) (पु०) २ क्रतुबहुल विष्णु ।

क्रतुमान् (सं० त्रि०) क्रतुर्लोकप्रवर्णहेतु भूतकर्म
असंशयः, क्रतु-मत् । १ क्रतुयुक्त, यज्ञका अनुष्ठान
करनेवाला । (चक्र. १६११२) (पु०) २ विश्वामित्र-
के पुत्र । (भागवत १।१६।१६)

क्रतुराज (सं० पु०) क्रतूनां राजा श्रेष्ठः समासान्त
टच् । राजसूय यज्ञ ।

क्रतुराट् (सं० पु०) क्रतुषु यज्ञेषु राजते, क्रतु-राज्-
क्षिप् । सत्सूत्रेणादि । पा १।१।६१ । अश्वमेध यज्ञ ।

(मनु १।१।६१)

क्रतुविक्रयी (सं० त्रि०) क्रतुं तत्फलं विक्रीणाति,
क्रतु-वि-क्री-णिनि । अपरके निकटसे धन लेकर उसको
क्रतुफल बेच डालनेवाला । (मनु ४।२।१४)

क्रतुविद् (सं० त्रि०) क्रतुं वेत्ति जानाति, क्रतु-विद्-
क्षिप् । क्रतु कर्म जाननेवाला ।

क्रतुखला (सं० स्त्री०) एक अप्सरी । यजुर्वेदमें इसका
उल्लेख मिलता है । (वाजसनेयसं० १।१।१५) ब्रह्माण्ड-
पुराणके मतानुसार यह चैत्रमासको सूर्यके रथमें
रहती है । (ब्रह्माण्ड, अष्टावक्रादि)

क्रतुखण्ड (सं० त्रि०) क्रतुमिन्द्रियं अक्षय-क्षिन् । इन्द्रिय

को क्षय करनेवाला । (पाञ्चलाग्न-यजुसूत्र ४।१०।५)

क्रतुसम (सं० पु०) क्रतुसूतमः, ७-तत् । राजसूय यज्ञ ।
क्रत्वर्थ (सं० त्रि०) क्रतवे इदम्, नित्य समा० विशेष-
लिङ्गता व । किसी किसी व्याकरणके मतमें—क्रतुर्थः
प्रयोजनस्य—इस प्रकार बहुव्रीहि समाससे क्रत्वर्थ रूप
साधित होता है । यज्ञका उपकारक, यज्ञका अङ्ग ।
वेदमें यज्ञादिका जो सकल फल विधि पाया जाता,
वह पुरुषार्थ और चर्यवाद क्रत्वर्थ कहलाता है ।

क्रत्वर्थ और पुरुषार्थका लक्षण निरूपण करनेको
कहना पड़ेगा—जिसके अनुष्ठानसे जीवोंको सुख
मिलता और फलके अनुसार जिसका चाव बढ़ता
(शास्त्र द्वारा जिसकी लिप्सा नहीं होती), वही पुरु-
षार्थ ठहरता है । पुरुषार्थ प्रीतिके साथ अविवर्धक है ।
जो जो अनुष्ठान करनेसे जीव सुखी हो सकते, उन्हींको
पुरुषार्थ कहते हैं । इसके विपरीत चर्यात् जिसके अनु-
ष्ठानसे किसी प्रकारका फल नहीं मिलता और केवल
शास्त्र द्वारा ही जिसका चाव बढ़ता, उसीका नाम
क्रत्वर्थ पड़ता है । जैसे—प्रजापति व्रत प्रभृतिको पुरु-
षार्थ और उसके अङ्ग जैसे समिदादि तथा उपवास प्रव्र-
तिको भी क्रत्वर्थ समझना चाहिये ।

क्रत्वादि (सं० पु०) पाणिनिके मतमें एक गण । क्रतु,
इमीक, प्रतीक, इष्य और भग—इहै एक शब्द इसके
अन्तर्गत हैं । सुपदके परवर्ती क्रत्वादि गणका आदि
स्वर उदात्त होता है ।

क्रत्वामच (वे० त्रि०) क्रतुमा कर्मणा मङ्गीयः, क्रतु-
मङ्-अच् निपातने साधुः । शीघ्र ममन प्रवृत्ति द्वारा
प्रयत्ननीय । (चक्र ४।१२८)

क्रत्वीश्वर (सं० स्त्री०) क्रतुना मुनिना स्थापितं ईश्वर-
लिङ्गम् । क्रतुमुनि स्थापित काशीस्थ शिवलिङ्ग ।

(काशोत्पत्ति १८ अ०)

क्रथ (सं० पु०) १ यादवीकी एक जाति । यह क्रथसे
निकले हैं । २ विदर्भके पुत्र और कैशिकके भ्राता ।
३ किसी असुरका नाम ।

क्रथकैशिक (सं० पु०) एक देश । (रघुवंश)

क्रथकैशिक, क्रथकैशिक देखो ।

क्रथन (सं० स्त्री०) क्रथ्यते, क्रथ वधे भावे क्त्वा ।

१ मारण, मारकाट । २ छेदन, काटाई । (प्रबोधचन्द्रोदय)

(पु०) १ कोई दानव । (भारत १।६।०।२८) ४ कोई देवयोनि । (भारत १।११।१८) धृतराष्ट्र पुत्रभेद । (भारत चादि) ६ शुक्ल अश्व, सफेद अश्व ।

कथनक (सं० स्त्री०) कथन स्वार्थे कन् । १ श्वेताश्व-काष्ठ, सफेद अश्वकी लकड़ो । (पु०) कथने दन्तकर-वकश्टककच्छेदने प्रसृतः, कथन-कन् । २ उष्ट्र, जंठ ।

कन्द (सं० पु०) १ ज्ञेयारव, घोड़ेकी हिनहिनाहट । २ चोत्कार, चौख । (चरम १।१।१२)

कन्ददिष्टि (दे० त्रि०) गमनमें शब्दयुक्त, चलनेमें आवाज निकालनेवाला । (अक १०।१००।२)

कन्दन (सं० स्त्री०) कदि भावे ल्यट् । १ अनुविमर्जन, बलाई । २ युद्धके समय वीरोंका आह्वान, ललकार । (पु०) ३ विडाल, बिज्ञा ।

कन्दनी (सं० स्त्री०) कन्दन जातित्वात् ङोष् । विडाली, बिज्ञी ।

कन्दनु (वै० पु०) पर्जन्य, मेघ । (अक ७।४१।२)

कन्दम् (दे० स्त्री०) शब्द करनेवाला, जिससे आवाज निकले । (अक १।११।८) २ आवा पुथिवी, भूलोक और अन्तरीक्ष लोक । (अक १०।१२।६)

कन्दित (सं० स्त्री०) कदि भावे ल् । १ कन्दन, बलाई । इसका संस्कृत पर्याय—इदित, कुष्ट, रोदन और कन्दन है । २ आह्वान, पुकार । ३ युद्धके समय वीरोंका आह्वारध्वनि, लड़ाईमें बहादुरोंकी ललकार ।

कन्य (सं० स्त्री०) कन्द, ज्ञेयारव, हिनहिनाहट ।

क्रम (सं० पु०) क्रम्यते प्राप्यते पाठभेदोऽनेन, क्रम घञ् । नोदात्तोपदेशः । पा ७।१।२४ । १ वैदिक विधान, कल्पविधि, क्रम भावे घञ् । २ अनुक्रम, तरतीब । ३ शक्ति, ताकत । ४ चरण, कदम । ५ रुद्र । (भारत १।१।६।१२८)

६ विष्णु । इन्होंने बलिराजकी हलनेमें त्रिपादसे त्रिभुवन आक्रमण किया था । इसीसे विष्णु का नाम क्रम पड़ गया । ७ आक्रमण । ८ पदविशेष, पाँव रखनेका काम । ९ पूर्वापर भावमें अवस्थान, आगे पीछे रहनेकी हालत ।

एकाधिक कार्योंमें कौन पहले और कौन पीछे करने—जैसे पौर्वापर्य नियमकी क्रम कहते हैं । वैदिक कार्यका पौर्वापर्य—श्रुति, अर्थ, पाठ, प्रवृत्ति, स्थान

और मुख्यके अनुसार निर्णीत होता है । मोर्मासादर्शन-के प्रथम अध्यायमें क्रमके नियमका उपाय इस प्रकार ठहरा है—

श्रुतिमें जो सकल विधान है, किसी स्थलमें श्रुतिके अनुसार ही उसका क्रम निश्चय करना चाहिये । मोर्मासा ५।१।१ । जैसे यज्ञमें दीवाक्रम श्रुतिके अनुसार ही कल्पित होता है । यथा—अध्वर्यु प्रथम गृहपतिको, उसके पीछे ब्रह्माको, फिर उदगाताको और तत्पर होताको दीक्षित करता है । इत्यादि । (मोर्मासा ५।१।१ शबरभाष्य) किसी स्थल पर अर्थके अनुसार अर्थात् कार्यका सामर्थ्य स्थिर करके श्रुतिका पाठक्रम लङ्घन करके भी अन्यरूप क्रम प्रवसम्भन करना पड़ता है । इसका नाम आर्थिक क्रम है । मोर्मासा ५।१।२ । भाष्य जिस प्रकार विधि है कि जन्मके पीछे वर देना, अश्रुलि करके उसको लेना और अभिनन्दित करना चाहिये । ऐसे स्थल पर पाठक्रमकी छोड़के प्रथम अभिनन्दन, उसके पीछे ग्रहण और फिर वरदान-जैसा क्रम पकड़ना पड़ता है । (मोर्मासा ५।१।२ भाष्य) जैसे—प्रथम विधान अग्निहोत्र और पीछे चरुपाक करना चाहिये । किन्तु चरु न होनेसे यज्ञ होना असम्भव है । इसलिये आर्थिक क्रम प्रवसम्भन करके प्रथम पाक, पीछे अग्निहोत्र करना पड़ता है । (मोर्मासा ५।१।२ भाष्य)

किसी स्थल पर विधिवाक्यमें जैसा पौर्वापर्य रहता है, वही क्रम पकड़ना पड़ता है । इसको वाचनिक क्रम कहते हैं । जैसे दश पौर्णमास यज्ञमें समिध्यज्ञ, तनुनपात यज्ञ, इड्यज्ञ, वर्ह्ययज्ञ और स्वाहाकार यज्ञका विधान हो । इस स्थल पर वाक्यानुसार ही प्रथम समिध्यज्ञ, तत्पर तनुनपात यज्ञ इत्यादि क्रमसे चलते हैं ।

(मोर्मासा ५।१।४)

कहीं कहीं प्रथम प्रवृत्तिके अनुसार क्रम लगाना चाहिये । जैसे वाजपेययज्ञमें १७ पशु प्रजापति देवताके उद्देश्य बलि देने और प्राण प्रभृति करनेका विधान है । यहाँ प्रथम प्रवृत्तिके अनुसार ही क्रम रखना चाहिये । (मोर्मासा ५।१।५)

किसी जगह स्थानानुसार क्रम बाँधना पड़ता है । सन्तानकामनामें २१ अतिरात्र याग और बलकामनामें

२७ अतिरात्र याग करनेकी कहा है। इस स्थल पर स्थानानुसार क्रमकी अवलम्बन करना चाहिये। इसी प्रकार सोमयागविशेषमें तीन पशु बलि देनेका विधान है। किन्तु पहले अग्नीषोमीय पशु हिंसा करनेसे सवनीय स्थान नष्ट हो जाता है। इसीसे प्रथम बहन करके सवनीय को ही मारना पड़ता है।

(मीमांसा ५.१.१३)

किसी किसी स्थलमें गौणमुख्य विवेचना करके मुख्य कार्यकी प्रथम कर्तव्यता ठहराना पड़ती है। इसका नाम मुख्यानुक्रम है। यथा—सरस्वती और सरस्वान् देवताओंके उद्देश्य दो सारस्वत याग करनेका विधान है। यहां स्त्री देवताके उद्देश्य किये जानेवाले यज्ञका प्राधान्य है। इसी श्रिये प्रथम सरस्वती देवताके लिये सारस्वत-याग, उसके पीछे सरस्वान्के उद्देश्य सारस्वत याग करना चाहिये। (मीमांसा भाष्य ५.१.१५)

१० विन्यास, बनाव। ११ वत्सप्रीकं पुत्र। (मार्कण्डेय

पुराण १.८१) १२ परिपाटी, चाल।

क्रमक (सं० त्रि०) क्रमं वेदपाठं अधीते वेत्ति वा, क्रम-वुन्। क्रमादिभ्यो डन्। पा ३.१.४१। १ क्रम अध्ययन करने-वाला। २ क्रमच।

क्रमज (सं० त्रि०) क्रमके नियमसे उत्पन्न।

(अथर्वप्रतिशास्त्र १.५८)

क्रमजटा (सं० स्त्री०) वेदपाठका एक प्रकार। ऋग्वेद देखो।

क्रमजित् (सं० पु०) एक नरपति। (भारत समा १.२३ अ०)

क्रमज्या (सं० स्त्री०) क्रान्तिज्या। (Sine of a planet, declination.)

क्रमण (सं० पु०) क्राम्यत्यनेन, क्रम करणे ल्युट्।

१ चरण, पांव। २ यदुवंशीय कोई राजा। (हरिवंश)

(स्त्री०) ३ पादविक्षेप, पांव रखनेकी क्रिया।

क्रमणौय (सं० त्रि०) क्रम-अनीयर। आक्रमणयोग्य, जिस पर हमला होनेवाला हो।

क्रमत्रैराशिक (सं० पु०) त्रैराशिकभेद। त्रैराशिक देखो।

क्रमदण्डक (सं० पु०) वेदपाठका एक प्रकार। ऋग्वेद देखो।

क्रमदीपिका—एक तन्त्र। गणेशभट्ट, गोविन्दभट्ट विद्या-विनोद और भैरव चिपाठोक्त इस तन्त्रकी टीका मिलती है। इस नामकी बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ भी हैं।

केशवाचार्य प्रणति शब्द देखो।

क्रमदोशर (सं० पु०) संचितसार व्याकरणप्रणीता। यह सुगंधबोध टीकाकार दुर्गादास और भरतमल्लिकके बहुत पूर्ववर्ती थे।

क्रमनिम्न (सं० त्रि०) ढालू, ढलवां, ऊंचेसे नीचा होने वाला।

क्रमपद (सं० पु०) वेदपाठका एक प्रकार।

क्रमपाठ (सं० पु०) प्रक्रम, वेदका क्रमानुसार अध्य-यन। (महाभाष्य कैषट ८.३.१८)

क्रमपार (सं० पु०) वेदपाठका एक प्रकार।

क्रमपूरक (सं० पु०) क्रमेण पूरयति वाजम्, क्रम-पूर, णिच्-ण्वल्। १ वक्रवृत्त, अगस्त्यका पेड़। २ वृत्त, बौद्ध।

क्रमप्राप्त (सं० त्रि०) क्रमेण प्राप्तः, इ-तत्। क्रमागत, सिलसिलेसे मिला हुआ।

क्रमभङ्ग (सं० पु०) क्रमस्य भङ्गः, इ-तत्। नियम भङ्ग, कायदेका टूटना।

क्रममान (सं० त्रि०) क्रम-शानच्। इतस्ततः भ्रमण-शील, इधर उधर घूमनेवाला।

क्रमयोग (सं० पु०) क्रमस्य योगः, इ-तत्। क्रमसम्बन्ध, सिलसिलेका जोड़।

क्रमराज्य (सं० स्त्री०) काश्मीर-राज्यका एक विभाग। राजतरङ्गिणीके माना स्थानोंमें इसका उल्लेख है। आज-कल इसे कमराज कहते हैं। इसमें पांच परगने हैं। वर्तमान समय यह विभाग बज़ूर ज़िले और झेलम नदीके उत्तर कूलसे बरामूल पर्यन्त विस्तृत है।

क्रमशः (सं० अव्य०) क्रम बीप्सायां शस्। क्रमक्रम, धीरे धीरे। (मनु १.१२२)

क्रमशास्त्र (सं० स्त्री०) क्रमानुसार वेदपाठ करनेका एक शास्त्र। (अथर्वप्रतिशास्त्र १.१.१३)

क्रमागत (सं० त्रि०) क्रमेण आगतम्, इ-तत्। १ क्रमसे आया हुआ, जो सिलसिलेसे मिला हो। २ पिछ पितामहादि क्रमसे आगत, वंशपरम्परा क्रमसे प्राप्त। (मनु २. १८)

क्रमादि (सं० पु०) पाणिनिमतसिद्ध एक गण। इसके उत्तर समझने या पढ़नेके अर्थमें बुन् प्रत्यय होता है।

क्रमादित्थ (सं० पु०) गुप्तराज स्कन्दगुप्तका नामान्तर। कान्यकुब्ज देखो।

कक्षाध्ययन (सं० स्त्री०) क्रमिक अध्ययनम्, इ-तत् ।

१ क्रमानुसार अध्ययन, सिलसिलेवार पढ़ाई । क्रमस्य वेदपाठविशेषस्य अध्ययनम्, इ-तत् । २ क्रम नामक वेदपाठविशेषका अध्ययन ।

क्रमानुभावकता (सं० स्त्री०) पर्यायज्ञानकी शक्ति ।

क्रमानुयायी (सं० त्रि०) क्रमानुसारी, सुरन्तिव, सिल-सिलेसे चलनेवाला ।

क्रमानुसार (सं० पु०) क्रमस्य अनुसारः, इ-तत् ।

क्रमका अनुसरण, सिलसिलेकी चाल । हिन्दीमें यह शब्द क्रियाविशेषण-जैसा भी व्यवहृत होता है । ऐसे स्थल पर इसका अर्थ क्रमानुक्रम या सिलसिलेवार है ।

क्रमान्वय (सं० पु०) क्रमस्य अन्वयोऽनुसरणम्, इ-तत् ।

क्रमका अनुसरण, सिलसिलेकी चाल । (अन्व०) २ यथाक्रम, सिलसिलेवार, तरतीबसे ।

क्रमि (सं० पु०) क्रमि, कीड़ा । २ चुन्ना, पेटका छोटा सफेद कीड़ा । क्रमि देखो ।

क्रमिक (सं० त्रि०) क्रमादामतः, क्रम-ठन् । १ कुल-क्रमागत, खानदानो सिलसिलेसे मिला हुआ । भारत २१५ क्रमो विद्यतेऽस्य । २ क्रमवर्ती, सुरन्तिव ।

क्रमिकण्टक (सं० स्त्री०) क्रमौ कण्टकमिव तन्नाशक-त्वात्, इ-तत् । १ बिड़ङ्ग, कटेया । २ उदुम्बर, गूलर । चित्राङ्ग, चीता ।

क्रमिन् (सं० स्त्री०) क्रमिं इन्ति, क्रमि-जन्-ट ।

१ बिड़ङ्ग । (त्रि०) २ क्रमिनाशक, कीड़े मारनेवाला ।

क्रमिज (सं० स्त्री०) क्रमिभ्यो जायते, क्रमि-जन्-ड । अशुद्धकाष्ठ, अंगरकी लकड़ी ।

क्रमिजा (सं० स्त्री०) क्रमिज-टाप् । लाजा, लाह ।

क्रमिता (सं० पु०) क्रम-ठच् । पादविशेषकारी, सिल-सिला तोड़नेवाला ।

क्रमिरिपु, क्रमिघ्न देखो ।

क्रमिघ्न (सं० पु०) क्रमिघ्नां शब्दः, इ-तत् । बिड़ङ्ग ।

क्रमीक्षक (सं० पु०) वनमुह, जङ्गली मोठ ।

क्रमु (सं० पु०) क्रम बाहुलकात् डण् । १ गुवाकवृक्ष, सुपारीका पेड़ । २ कोई प्राचीन जनपद, एक पुराना देश । डण्ण देखो ।

क्रमुक (सं० पु०-स्त्री०) क्रम-उण् संज्ञायां कन् ।

१ पूगफल, सुपारी । २ गुवाकवृक्ष, सुपारीका पेड़ । भद्रमुस्तक, नागरमोथा । ३ कार्पासी फल, कपासका बिलौला । सुसुतने साससारादिगणके अन्तर्गत क्रमुक-को गिना है । यह कुष्ठ, मेह तथा पाण्डुरोगनाशक और कफ एवं मेदका शुष्ककारक है । (सुश्रुत) ४ पट्टिकालोभ, पठानी लोभ । ५ देवदारु । ६ रत्नरोध । ७ पारिषाज्य । ८ तूतफल, शहतूत । ९ तूतवृक्ष, शहतूतका पेड़ । १० कोई प्राचीन जनपद, एक पुराना मुल्क । (राजतरङ्गिणी ४।१५८) सञ्चाद्विखण्डके मतमें क्रमुकके ब्राह्मण भ्रष्ट होते हैं । क्रमु देखो ।

क्रमुकप्रसून (सं० पु०) धूकीकदम्ब ।

क्रमुकफल (सं० स्त्री०) क्रमुक एव फलं यद्वा क्रमुकस्य गुवाकवृक्षस्य फलम् । गुवाक, सुपारी । सन्धि-बन्ध-विश्लेषकरत्वसे यह विकसित होता है । (भाट्ट-धर)

क्रमुकी (सं० स्त्री०) क्रमुक गौरादित्वात् ङीप् । गुवाक, सुपारी ।

क्रमेतर (सं० त्रि०) क्रमात् वेदपाठप्रकारात् इतरः, इ-तत् । वेदपाठके क्रमसे भिन्न । यह शब्द ठकुरादि गणके अन्तर्गत है । इसके उत्तर समझने या पढ़नेके अर्थमें ठक् प्रत्यय लगता है ।

क्रमेल (सं० पु०) क्रममालम्ब्य एतत्ति गच्छति, क्रम-एल-पच् । उष्ट्र, जंट । इसीसे अंगरेजी कैमेल (Camel) शब्द बना है ।

क्रमेलक (सं० पु०) क्रममालम्ब्य एतत्ति गच्छति, क्रम-एल-पच् । यद्वा क्रमेल स्वार्थे कन् । उष्ट्र, शतर ।

क्रमोद्ग (सं० पु०) क्रमिण उद्गतः उल्लूरो वा वेगो यस्य, बहुव्री० । उष, वेल ।

क्रय (सं० पु०) क्री भावे घच् । मूल्यसे वस्तु ग्रहण, खरीद ।

क्रयके नक्षत्रमें विक्रय और विक्रयके नक्षत्रमें क्रय करना उचित नहीं । रेवती, शतभिषा, अश्लिनी, स्वाती, श्रवणा और चित्रा नक्षत्र क्रयमें विहित हैं । (सप्तर्षिना-मणि) इस स्थल पर शङ्का उठ सकती है कि क्रय और विक्रय एक ही समयकी होता है । यदि क्रय विहित नक्षत्रमें विक्रय और विक्रय-विहित नक्षत्रोंमें क्रय निषिद्ध ठहरता, तो क्रय विक्रय कैसे हो सकता है ।

शास्त्रकारोंने इसकी निम्नलिखित सीमांसा की है—

‘विक्रताको विक्रयविहित शुभक्षणमें क्रेताकी अनुमतिसे विक्रयवस्तु पृथक् करके रख देना चाहिये। इसीका नाम विक्रय है। फिर क्रय विहित शुभक्षण उपस्थित होने पर क्रेता मूल्य देकर उसे ले लेता है। इसीको क्रय कहा जाता है। ऐसी सीमांसा करनेसे फिर कोई झगड़ा नहीं लगता।’ (सुवर्चिकामणि)

क्रयकर्ता (सं० पु०) क्रेता, खरीददार, मोल लेने-वाला।

क्रयण (सं० क्री०) क्रय, खरीद। (कात्यायनश्रौतसूत्र १०।१।१०)

क्रयणीय (सं० त्रि०) क्रय किया जानेवाला, जिसे खरीदें।

क्रयनियम (सं० पु०) क्रये नियमः, ७-तत्। क्रेता और विक्रेताका नियमविशेष, खरीदका तरीका। ऋग्वेद और उसके भाष्यमें यह नियम इस प्रकार लिखा है—

‘यदि विक्रेता कोई महार्घ वस्तु अथवा मूल्यमें बेश पुनर्हरि क्रेताके निकट उपस्थित हो अपना क्षतिपूरण करना चाहे, तो खरीदरको उसे और दाम बढ़ाकर देना चाहिये। कारण इसी अथवा मूल्यमें क्रेता सिद्ध हो गया है। परन्तु विक्रेताके समय उसकी पक्की बात-चीत न होनेसे खरीद फरोख्त कच्ची रहती है। यदि कोई चीज मोल लेते समय कहा जाये कि अभी दामके तौर पर इतना ले लीजिये, पीछे जांच करके हिसाब कर लिया जावेगा, तो फिर कीमत बढ़ा देना पड़ती है। नहीं तो, खरीद कच्ची रहती है।’

(सूक्त १।२४।६)

महानिर्वाणतन्त्रमें भी कहा है—

वस्तु और उसका मूल्य निरूपण करके उभयकी सम्मतिके मतसे परस्परकी अनुमति होनेपर क्रयसिद्धि होती है। परन्तु खराब चीज अच्छी बता कर बेचने पर पीछे यदि खरीददारको मालूम हो कि विक्रेताके समय जैसी तारीफ की गयी थी, वह देख नहीं पड़ती, तो बिक्री खिगड़ जाती है और बेचनेवालेको कीमत वापस देना पड़ती है।

क्रयलेख्य (सं० क्री०) क्रयस्थ क्रयमधिकार्य वा लेख्यम्। भूमि प्रकृति क्रयकी लिखापट्टी, कवाला।

‘यद्विषयवादिनां क्रीता तुल्यमूल्यापारान्वितम्।

यवमभारयते यत् क्रयलेखां तदुच्यते॥’ (हृदयपति)

क्रयविक्रय (सं० पु०) क्रयश्च विक्रयश्च, इन्द्र। १ क्रय और विक्रय, खरीद फरोख्त। मनु कहते हैं—पण्यद्रव्यकी आमदनी रफ्तानौ और चय वृद्धि भली भांति पर्यालोचना करके क्रयविक्रय पारम्भ करना पड़ता है। जिस पण्यका मूल्यादि अल्प दिनके मध्य ही बढ़ने या घटनेकी सम्भावना रहती, पांच दिन पीछे उसकी पर्यालोचना लगती है। अपरापर पण्यकी पर्यालोचना १५ दिन पीछे करनेसे भी काम चल सकता है।

(मनु ८५०)

‘‘क्रयेण सहितो विक्रयः’’ अर्थात् खरीदके साथ फरोख्त-जैसे मध्यपदलोपो समासमें सिद्ध क्रयविक्रय शब्द एकवचनान्त है। भारत, वन १४८

२ वाणिज्य, कारबार। गुरुके साथ शिष्यका एकत्र वाणिज्य करना तन्त्रके मतमें निषिद्ध है।

‘‘स्यदानं तथा दानं वस्तूनां क्रयविक्रयः।

न कुर्याद् गुरुणा सार्धं शिष्यो भूत्वा कथञ्चन॥’’ (तन्त्रसार)

क्रयविक्रयानुशय (सं० पु०) क्रये विक्रये च अनुशयः, ७-तत्। मनुके मतसिद्ध अष्टादश विवादोंमें एक विवाद, लेन देनका झगड़ा।

कोई वस्तु क्रय वा विक्रय करके जिस व्यक्ति को अनुताप पड़चता, वह दश दिनके मध्य उक्त वस्तुकी वापस दे या ले सकता है। अनुशय और क्रीतानुशय देखी।

क्रयविक्रयिक (सं० पु०) क्रयविक्रयाभ्यां जीवति, क्रयविक्रय-ठन्। वचनचक्रविक्रयान् ठन्। पा ४।१।११। ‘‘क्रयविक्रय-यर्थं संचातविग्रहीतार्थं क्रयविक्रयिकः।’’ (सिद्धान्तकीमुदी), १ वचिक, सौदागर। (त्रि०) २ क्रयविक्रयसे जीविका निर्वाह करनेवाला, जो खरीद फरोख्तसे अपना काम चलाता हो।

क्रयविक्रयी (सं० पु०) क्रयो विक्रयश्च अस्त्य अस्ति, क्रयश्च विक्रय इति। क्रेता और विक्रेता, खरीदने और बेचने-वाला। मनुने इसे धातक लिखा है। (मनु ४।४१) गोविन्दराजके मतमें क्रय करके विक्रय करनेवालेका नाम क्रयविक्रयी है।

क्रयशीर्ष (सं० क्री०) कपिश्रीर्षं पृषोदरादिवत् साधुः। कपिश्रीर्षं, शिगुरफ।

क्रयसद (स० पु०) हाग, बकरा ।

क्रयाक्रयिका (स० स्त्री०) क्रय सञ्चितः अक्रयः शाक-
पार्थिव० ततः स्वार्थं कन् अत इत्वम् । क्रय और अक्रय ।

क्रयाराह (स० पु०) क्रयार्थं आरोहः समारोहः अत्र,
बहुव्री० । हट्ट, बाजार, मण्डी, खरीद फरोखतके लिये
लोगोंका जमाव होनेकी जगह ।

क्रयिक (स० पु०) क्रयः प्रयोजनमस्य, बहुव्री० ।
१ क्रयी, खरीददार । २ क्रयजीवी, खरीदके अपना
काम चलानेवाला । (माघ)

क्रयी (स० त्रि०) क्रयोऽस्त्यस्य, क्रय-इति । क्रोता, खरी-
दनेवाला ।

क्रय्य (स० त्रि०) क्रयाय क्रेतारः क्रषीयुरिति बुद्ध्या
प्रसारितम्, क्री-यत् निपातने साधुः । क्रय्यसदर्थे । पा ६।१।८२।
क्रोताओंके क्रयकी वृष्ट प्रभृति स्थानोंमें प्रसारित (पण्य-
द्रव्य) बेचनेके लिये रखा हुआ, बिकनेवाला ।

(शतपथब्राह्मण १।१।११)

क्रवण (वै० त्रि०) कृङ्-ल्यु । १ स्तुतिकारक, तारीफ
करनेवाला । (अक् ५।५।५६)

क्रविष्णु (वै० त्रि०) कृ, बाहुलकात् इष्णुच् । क्रव्याद,
मांस भक्षण करनेवाला । (अक् १।८०।४)

क्रविम् (वै० स्त्री०) कृव-इसुन् लस्य रः । मांस ।

(अक् १।१२।१।१०)

क्रव्य (स० स्त्री०) कृव यत् रस्य लः । मांस गोश्च ।

(भागवत ४।१८।१४)

क्रव्यघातन (स० पु०) क्रव्यस्य क्रव्याथे वा घातयतेऽसी,
इन् स्वाथ पिच् कर्मणि ल्युट् चतुर्थी अर्थ, इ-तत् ।
१ मांसके लिये मारा जानेवाला नृग । क्रव्याथं मांस-
निमित्तं घातयन्ति, कर्तरि ल्युट् । २ रुद्रमुग्म ।

(भागवत ५।१६।१५)

क्रव्यभुक्त (स० पु०) क्रव्यं भुङ्क्ते, क्रव्य-भुज्-क्तिन् ।

१ राक्षस, कच्चा गोश्च खानेवाला । २ रुद्रमुग्म । (सप्तम)
३ मांसभोजी, गोश्चखोर ।

क्रव्यात् (स० त्रि०) क्रव्यं मांसं अस्ति, क्रव्य-अद्-वि ।

क्रव्ये च विट् । पा १।१।६६ । मांसभोजी, गोश्चखोर । (पु०)

२ रुद्रा, शतान । ३ मांसाशी पशु । ४ शवदाहक अग्नि ।

(अतपब्राह्मण १।१।१४)

क्रव्याद (स० पु०) क्रव्यं मांसं अस्ति, क्रव्य-अद्-अण् ।

उपपदस० । १ राक्षस । २ सिंह, शेर । ३ श्येनपक्षी,

बाज, शिकरा । ४ शवभक्षक अग्नि । अग्निके शवभक्षण

विषय पर एक उपाख्यान है—किसी दिन एक असभ्य

राक्षस भृगु सुनिकी स्त्री पुलोमाके प्रेममें पासना हो

उन्हें टूटने लगा । राक्षस पुलोमाको पहचानता न था

इसीसे उसको कृतकार्य होनेमें कठिनता पड़ी । अग्निको

इसका कुछ भी हाल मालूम न था । उठात् राक्षस जा

कर उनसे पुलोमाको पूछ बैठा । उन्होंने पुलोमाको

दिखला दिया था । दुष्ट राक्षस पुलोमाको लेकर

स्वस्थान चला गया । बहुत दिनों पीछे जब पुलोमाको

पुनर्वार मिले, अपने मनका दुःख निवारण करनेको

उनसे सब बातें पूछने लगे । पुलोमाने भी एक एक

करके सब बातें बतायीं । उनमें यह बात भी आ गयी

कि अग्निने उन्हें राक्षसको दिखा दिया था । भृगु उसे

सुनते ही जल उठे और उन्होंने श्राप दिया कि अग्नि

सर्वभक्षक होगी । अग्नि श्रापका वृत्तान्त मिलने पर लुका-

यित हुए । जगत् संसार अग्निशून्य हो गया । यज्ञ

प्रभृति सकल क्रियायें रुकी थीं । ब्राह्मण और ऋषि

देवताओंके साथ पितामहके पास पहुँचे । पितामहने

अग्निको बुला कर समझाया कि भृगुका श्राप मिथ्या

होनेवाला न था, फिर भी यह उपाय रहा कि उनका

सकल अंश सर्वभक्षक न बनते भी कोई अंश सर्वभक्षक

होनेसे भृगुका श्राप सत्य निकल सकता था । पिताम-

हके नियमसे उनका एक अंश सर्वभक्षक हुआ । उसी

को क्रव्याद कहते हैं । (भारत, पारि ६-० प०) ऋग्वेदके

भी एक मन्त्रमें क्रव्याद अग्निकी कथा आयी है ।

(अक् १०।१।६।६)

उक्त मन्त्रकी पढ़कर सभी मङ्गलकार्योंमें अग्निकी

क्रव्याद अंश छोड़ना पड़ता है ।

क्रव्यं मांसं अस्ति, क्रव्य अद्-अण् । ५ रुद्रमुग्म ।

क्रव्यादरस (स० पु०) वैद्यकीय औषध विशेष, वद-

हजमीकी एक दवा । १ पल पारा, २ पल गन्धक, ४ तोला

ताम्र और ४ तोला लोहा चूँ करके सबको लौहपात्र-

में नुदु अग्निसे गला जस्द परणपत्र पर ठाल पर्यंटी

वत् बना लेना चाहिये । फिर इसे १०० पल जम्बीर

रससे धीरे धीरे लौहपात्रमें पकाते हैं। शुद्ध रसमें पञ्च कोल काष्ठसे पञ्चाशत और अज्ज्वेतससे भी पचास भावनायें दी जाती हैं। फिर सर्वचूर्ण सम अष्टष्टकचूर्ण (४ पल), उसके आधा विडचूर्ण (२ पल) और सर्व द्रव्य सम मरिच चूर्ण (१० पल) पड़ता है। इसके पीछे चणक चार जलसे ७ भावनायें देनेसे यह रस तैयार होता है। भोजनान्तको २ माषा क्रादरस से भवतक्रके साथ सेवन किया जाता है। पञ्चकोलकाष्ठ इस प्रकार बनता है—पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक और शुण्ठी बराबर अष्टगुण जलमें पाक करके चतुर्थांश अवशेष रखते हैं। (सारकौमुदी) यह रस अजीर्ण को मिटाता और बल बढ़ाता है।

क्रव्यादा (सं० स्त्री०) जटामांसी।

क्रव्यादी, क्रव्यादा देखो।

क्रशमा (सं० पु०) कश भावे इमनिच्। कशता, कमजोरी।

क्रशष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन कशः, कश-इष्टन्। अतिशय कश, बहुत दुबला पतला।

क्रथीया (सं० त्रि०) कथ-ईयसुन्। क्रथि देखो।

क्रष्ट्य (सं० त्रि०) कर्ष वा आक्रमणके योग्य, कर्षण किया जानेवाला। (कथासरित्सागर)

क्रा (सं० त्रि०) क्रम्-विट्-मस्य आकारः। जन-सम-स्न-क्रमगमो विट्। प १।२।६७ अतिक्रमकारी, लांघ जानेवाला।

क्राकचिक (सं० त्रि०) क्रकचः करपत्रं तत् क्रियया जीवति, क्रकच-ठक्। करपत्रोपजीवी, आराकश, बड़ई।

(रामायण २।८२।१४)

क्राथ (सं० पु०) क्राथदेशानां राजा, क्राथ-अण्।
१ दक्षिणापथके राजा, राहुग्रहका अवतार।

“ग्रहन्तु सुषुवे यन्तु सिंहाकारं नुमदंनम्।

संक्राथ इति विज्ञातो बभूव मनुजाधिपः॥”

(भारत १।६।७०)

२ कोई वानर। यह वानर राम-रावण युद्धमें रामके सेनापति पद पर नियुक्त थे। (भारत, १।२८१ च०) ३ नाग-विशेष। (भारत, ली० ४ च०) क्राथ हिंसायां भावे घञ्।

४ मारण, हिंसा, कत्ल।

क्रान्त (सं० पु०) क्रम्यते आक्रम्यते, क्रम-क्त। १ घोटक,

घोड़ा। २ पादेन्द्रिय, पैर। (मनु १२।१२१) ३ वैक्रान्त मणि, चुन्नी। (स्त्री०) भावे क्त। ४ आरोहण, आक्रमण, चढ़ाई। (शतपथब्राह्मण ५।५।२।६) (त्रि०) कर्मणि क्त।

५ आक्रान्त, दबा हुआ। ६ अतीत, गया बीता।

क्रान्तदर्शी (सं० त्रि०) क्रान्तं प्रस्माकं वाद्येन्द्रियविषयतामतिक्रान्तं वस्तु द्रष्टुं शीलमस्य, क्रान्त-द्रष्ट-णिनि।

१ अतीत, अनागत और सूक्ष्म पदार्थ देख सकनेवाला, जो गयी बातें देख सकता हो। (स्त्री०) २ सर्वज्ञ, परब्रह्म, ईश्वर।

क्रान्ता (सं० स्त्री०) क्रम कर्तरि क्त स्त्रियां जातित्वेऽपि संयोगोपोधत्वात् टाप्। १ छड़तो, कटैया। २ स्थूलैका, बड़ी इलायची।

क्रान्ति (सं० स्त्री०) क्रम भावे क्तिन्। १ पादविक्षेप, पांव रखनेकी बात। २ नक्षत्रकी गति। ३ राशिचक्रकी मध्यरेखा। विषुवरेखासे उत्तर कर्कटक्रान्ति पर्यन्त अथवा दक्षिणको मकरक्रान्ति तक सूर्यके दूरत्वका नाम क्रान्ति है। यह खगोलके मध्यकी ईषद्वयक्र गोल रेखा है, जहाँसे सूर्य गमन करते हैं।

“चयनादयनं यावत् कक्षा तिर्यक्तथापरा।

क्रान्तिर्ज्ञा तथा सूर्यः सदापर्येति भासयन्॥” (सूर्य सिद्धान्त)

‘नाडीमण्डलात् दक्षिणोत्तरं क्रान्तिमण्डलावधि यदन्तरं तत्।’

(नृसिंहविद्याम्बर)

इसका नामान्तर—अपमण्डल, अपठस्त, अपक्रम, अक्रान्त और अपम है।

४ परिवर्तन, हेरफेर।

क्रान्तिक्षेत्र (सं० स्त्री०) क्रान्ति ज्ञानार्थं अङ्कित क्षेत्र, नक्षत्रकी गति निकालनेकी खींचा हुआ क्षेत्र।

क्रान्तिव्या (सं० स्त्री०) क्रान्तिवृत्त क्षेत्रस्थित पञ्चक्षेत्रका एक अवयव। (Sine of the declination or of the ecliptic.) अचक्षेय देखो।

क्रान्तिपात (सं० पु०) क्रान्तेः क्रान्त्यर्थे पातः, अश्वत्थासादिवत् तदर्थे इ-तत्। विषुवरेखा और अयनमण्डलका संयोगस्थल। इस स्थल पर पृथिवी आनेसे दिवारान्ति समान होते हैं।

क्रान्तिपातगति (सं० स्त्री०) क्रान्तिपातकी चलाचली या एकस्थानसे अन्यस्थानकी सरकाव। (Precession of the equinox.)

क्रान्तिभाग (सं० पु०) क्रान्तियुगाका चिह्न ।

क्रान्तिमण्डल, क्रान्तिमण्डल देखो ।

क्रान्तिमण्डल (सं० पु०) क्रान्तिमण्डल, विषुवरेखा-जैसा अयनमण्डलके चतुर्विंशति भाग दक्षिण तथा उत्तरकी विद्यमान वनयाकृति परिधि ।

क्रान्तिवृत्त (सं० क्री०) क्रान्तिमण्डल-जैसा गोलाकार क्षेत्र ।

क्रान्तिसाम्य (सं० क्री०) क्रान्तिः साम्यम्, इ-तत् । यहाँकी तुल्य क्रान्ति । सभी यहाँका क्रान्तिसाम्य होता है । चन्द्र और सूर्यकी तुल्यक्रान्ति आनेसे किसी मङ्गल-कायका अनुष्ठान करना न चाहिये । क्रान्ति साम्यमें यहाँकी अवनतिका अभाव होता है ।

क्रान्तिसूत्र (सं० क्री०) सूत्रकी भांति क्रान्तिसमूहका एक योग । यह ध्रुवनक्षत्र पर्यन्त स्पष्ट करता है ।

क्रान्ति (सं० पु०-स्त्री०) क्रम तुल्य वृद्धि । पक्षी, चिड़िया ।

क्रामक (सं० पु०) क्रमकमूल, सुपाराकी जड़ ।

क्रामक (सं० पु०) टङ्कणक्षार, सोडागा

क्रामेतरक (सं० पु०) क्रमेतरमधीति वेत्ति वा, क्रमेतर टक् । क्रतुकथादिस्वान्ताइक । पा ४।१६०। क्रमेतर पढ़ने या समझनेवाला ।

क्रायक (सं० पु०) क्रीणाति क्री कर्तरि ण्वल् । १ केता, खरीददार । २ अमरकोष-टीकाकार भरतके मतमें—क्रयोपजीवी, खरीदसे अपना काम चलानेवाला । किन्तु व्याकरणके अनुसार इस अर्थमें क्रायक नहीं—क्रयिक होता है ।

क्रायिष्ट (सं० पु०—Christ.) ईसा, मसीह, मसीहा क्रावरी (सं० स्त्री०) क्रावन्-डोप्रखान्तादेशः । अति क्रमकारिणी स्त्री ।

क्रावा (सं० पु०) क्रम-वनिप्-मकारस्य अकारः । विषयनो-रमुनासिकः स्यात् । पा ६।४।४१। क्रान्ता, खाँच जानेवाला ।

(वाजसनेयसंहिता २१।१२)

क्रावुन (सं० पु०—Crown) १ मुकुट, ताज । २ राज्य, सत्तान्त । ३ राजा, वादशाह । ४ मौलि, चांद । ५ अग्र, सिरा । ६ माका, चेहरा । ७ रुप्यमुद्रा, अंग-रेजी अशरफी । ८ कागजका १५ इंच विस्तृत और २० इंच दीर्घ परिमाण । छापेका २० इंच चौड़ा और

४० इंच लम्बा कागज डबल क्रावुन कहलाता है ।

क्रिकेट (सं० पु०—Cricket) बन्दुकक्रीडाविशेष, गेंद बल्लेका खेल । यह एक अंगरेजी खेल है । इसकी ग्यारह ग्यारह खिलाड़ियोंके दो दल परस्पर खेला करते हैं । एक ओर तीन लकड़ियां गाड़ी जाती हैं और दूसरी ओर टप्पेकी सीमा रहती है । एक दलका एक खिलाड़ी बल्ला लेकर उक्त तीनों गडी लकड़ियोंके पास गेंद मारने-को खड़ा होता है और दूसरे दलका एक खिलाड़ी टप्पेकी हटसे गेंद लकड़ियां गिरानेका फकता है । बाकी खिलाड़ी अपने अपने दलके सहायक रहते हैं । यदि गेंद उक्त तीनों गडी लकड़ियोंमें कू जाता या बल्लेसे मारा जाने पर विपक्ष दलके खिलाड़ी उसे जमीन पर गिरनेसे पहले ही हाथमें थाम लेते तो गेंद मारने वाला खिलाड़ी 'आउट' हो यानी हार जाता है और उसका दूसरा साथी उसके स्थान पर आता है । इसी प्रकार ग्यारहो खिलाड़ी आउट हो जानेसे विपक्ष दल बल्ला लेता और हारा हुआ दल गेंद देता है । बल्लेसे गेंद मारने पर जब तक गेंद देनेवाला गेंद फेंके तब तक गेंद मारनेवाला गडी लकड़ियोंसे टप्पेकी हट तक जितने बार दौड़ कर आता जाता, उसका नाम 'रन' है । यह रन हार जीतमें गिने जाते हैं । इस खेलमें विपक्षियोंका भगड़ा मिटानेकी सरपक्ष (अम्पायर) भी रहते हैं ।

क्रिमि (सं० पु०) क्रम-इन्-कित् अत इच्छ । क्रिमिमिश्रित-लक्ष्मामत इच्छ । अण ४।२२। १ घुण, घुन । २ लाक्षा, लाख । ३ रोगविशेष, चुस्के की बीमारी क्रिमि देखो । क्रिमि दो प्रकारके होते हैं—वाह्य और अभ्यन्तर । वहिः, मल, कफ, अम्लग्न और मलके जन्म भेदसे फिर बड़ चतुर्विध समझे जाते हैं । (बघक)

क्रिमिकण्टक, क्रिमिकण्टक देखो ।

क्रिमिकर्णक (सं० पु०) कर्णस्त्रीरोगरोगविशेष, कानकी एक बीमारी । कानके भीतर मांसशोषित सड़ जाने या मक्खियोंके बण्डा देनेसे क्रिमि उत्पन्न होते हैं । इसीका नाम क्रिमिकर्णक है । (नाथवनिदान)

क्रिमिकर (सं० पु०) प्राणहर कौटभेद, जान ले डालने-वाला एक कीड़ा ।

क्रिमिकालानलरस—वैद्यकोक्त औषधविशेष, एक दवा ।

१६ तोला विडङ्ग, ८ तोला विष और चार चार तोला पारा, लोहा तथा गन्धक छाग दुग्धमें पीसकर १६ रत्ती परिमाणकी गोलियां बना छायामें सुखा लेना चाहिये। अनुपान धनिया और कीरा है। इसकी सेवन करनेसे सकल प्रकार उदरस्थ क्रिमि, शोष, गुल्म, ब्रीहा और उदरीरोग मिट जाता है। (रसैन्द्रसारसंग्रह)

क्रिमिकाष्ठानल—वैद्यकोक्त एक औषध, कोई दवा। पारा गन्धक, वङ्ग, हरिताल, कौडी, मनःशिला, कृष्णकाच, सोमराजी, विडङ्ग, दन्तावीज, जयपाल, सोडागा, चीत और शिलाजतु प्रत्येक दोर तोले मनसाके गीदमें सान मटर—जैसी गोली बना लेना चाहिये। यह औषध क्रिमि, कफ, कफपित्त और कफवातमें उपकारी है।

(रसैन्द्रसारसंग्रह)

क्रिमिकोण्ड—चालराजविशेष, चाल देशके एक राजा ।

यह अनन्य शिव भक्त थे। इन्होंने अपने देशके समस्त विद्वानोंसे लिखा लिया था—शिव सर्वोपरि देवता हैं।

क्रिमिकोण्डका विचार था कि रामानुजस्वामीकी बन्दी बनाते, परन्तु इसमें वह कृतकार्य न हुए।

क्रिमिपण्य (सं० पु०) सन्धिज नेत्ररोग। क्रिमिपण्य देखो।

क्रिमिन्न (सं० पु०) क्रिमिं हन्ति नाशयति, क्रिमि-हन् टक्। अमन, धकट के ५ पिचापा १। २। ५२। १ कोलकन्द नाम महाकन्द शाक। अमन देखो। (लो०) २ विडङ्ग। (त्रि०) क्रिमिमाशका।

क्रिमिन्नरस—वैद्यकोक्त औषधविशेष, एक दवा। विडङ्ग पलाशवीज और तुलसीपत्रका भस्म समभाग इन्दुर कर्णोंके रसमें सान तीन तीन रत्तीकी गोलियां बनाना चाहिये। इसके सेवनसे सभी प्रकारका क्रिमिरोग अच्छा हो जाता है। (रसैन्द्रसारसंग्रह)

क्रिमिन्ना, क्रिमिन्नी देखो।

क्रिमिन्नी (सं० स्त्री०) क्रिमिन्न-डीप। १ विडङ्ग। २ हरिद्रा। ३ लाक्षा। ४ घृन्मपत्रा, तम्बाकू। ५ सोमराजी।

क्रिमिज (सं० स्त्री०) क्रिमिभ्यो जायते, क्रिमि-जन-ड। पगुरुचन्दन।

क्रिमिजा (सं० स्त्री०) क्रिमिज स्त्रियां टाप् लाक्षा, लाव

क्रिमिदन्तक (सं० पु०) क्रमिज दन्तरोगविशेष, दांतमें कीड़ा लगनेकी एक बीमारी। इससे दांतमें कृष्णच्छिद्र पड़ जाता, चलत्व आता, दन्तमूलमें शोथ दीखता, वेदनासे रुका नहीं जाता, लालास्राव बढ़ता और अकस्मात् पीडाका आधिक्य होता है। (माधवनिदान)

क्रिमिधूलिजलप्लवरस—वैद्यकोक्त औषधविशेष, एक दवा। पारा, गन्धक, वङ्ग तथा शङ्ख समभाग और हरीतकी चतुर्गुण पटोलरसमें मर्दन करके कार्पासके बीज जैसी बटियां बना लेना चाहिये। यह तीन गोलियां प्रातः काल शीतल जल अनुपानमें सेवन करनेसे पित्त और वातपित्त क्रिमिशूल दूर होता है।

क्रिमिमर्दरस—वैद्यकोक्त औषधविशेष, एक दवा। १ भाग पारा, २ भाग गन्धक, ४ अजवायन, ८ भाग विडङ्ग, १६ भाग कुचिला और ३२ भाग ब्रह्मयष्टिका-बीज बुकनी बना कर मधु या मोथेके रस किंवा उसके काथके साथ सेवन करनेसे क्रिमि नष्ट होता है।

क्रिमिसुन्नरस—एक औषध। १ भाग पारा, २ भाग गन्धक ३ भाग अजवायन, ४ भाग विडङ्ग, ५ भाग कुचिला, ६ भाग पलाशबीज और आध तोल मधु डाल सुस्ताका काथ पान करना चाहिये। यह क्रिमिनाशक और पश्मिदीपक है।

क्रिमिरिपु, क्रिमिशब्द देखो।

क्रिमिरोगारिरस—एक दवा। पारा, गन्धक, लोह, मरिच विष, धायके फूल, त्रिफला, सोंठ, मोथा, रसाञ्जन, आकनादि, त्रिकटु, गुवारका पाठा, क्रीवर और बेल-सोंठकी समभाग भृङ्गराजके रसमें भावना देना चाहिये। यह औषध कौड़ी बराबर खानेसे क्रिमिरोग नष्ट होता है। (रसैन्द्रसारसंग्रह)

क्रिमिविनाशरस—एक औषध। पारा, गन्धक, अम्र, लोह, मनःशिला, धायके फूल, त्रिफला, लोध, विडङ्ग, हरिद्रा, दारुहरिद्रा समभाग ७ बार भावना देके चणकप्रमाण बटी बनाना चाहिये। इसकी सवेरे सेवन करनेसे वायु, पित्त, कफ और त्रिदोषज क्रिमिनाश होता है।

क्रिमिशब्द (सं० पु०) क्रिमिः शत्रुरिव नाशकत्वात्। १ विडङ्ग। २ प्रवाल। ३ पालिधातुज, लाल मदार।

क्रिमिशास्त्रव (सं० पु०) शत्रु स्त्रायं अण् शास्त्रवः क्रिमिः शास्त्रवः, ६-तत् । विट्छदिर ।

क्रिमिशिरोरोग (सं० पु०) क्रमिज शिरोरोग, कीड़े से सरमें पैदा होनेवाली बीमारी । शिरमें कांटा-जैसा चुभना, उसका अन्तर् माग इस प्रकार फड़कना मानो उसको कोई काटे खाता हो और नाकसे पीवके साथ पानी बहना । इस रोगका लक्षण है । (माधवनिदान)

क्रिमिशैल (सं० पु०) क्रिमिभिर्निर्मितः शैल इव । वल्लीक, दीमककी पहाड़ी ।

क्रमिहर (सं० पु०) १ विडङ्ग । २ मरिच । ३ कण्ठ-लवण, कासा नमक । (त्रि०) ४ क्रमिघ्न, कीड़े मारने-वाला ।

क्रमिहृ (सं० स्त्री०) क्रमिं हन्ति, क्रमि-हन्-ड बाहुलकात् टाप् । लाक्षा, लाह ।

क्रिया (सं० पु०) क्रिया यद्वाणामाद्यगतिर्विद्यतेऽत्र, क्रिया-अच् । मेघराशि । (नीलकण्ठताजक)

क्रियमाण (सं० त्रि०) कर्मणि शानच् । उत्पाद्यमान, जो प्रस्तुत किया जा रहा हो ।

क्रिया (सं० स्त्री०) क्रियतेऽनया असौ अस्यां वा, क-श-रिङ् आदेशः इयङ् च । रिङ्-श-यगलिट् च । पा ७।४।१८ अचित्र-धातुश्च वा यवोरियङ्-उवङ् । पा ६।४।७० । १ आरम्भ, शुरु । २ निष्कृति, निपटारा । ३ शिक्षा, तालीम । ४ पूजा, इवादेत । ५ सम्प्रधारण, ठहराव । ६ उपाय, तजवीज । ७ न्यायमत सिद्ध उत्प्रेषण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन नामक पाँच कर्म, उछाल, गिराव, सिकोड़, फैलाव और चाल पाँचों काम । ८ चेष्टा, कोशिश । ९ चिकित्सा, इलाज । १० कारण, अनुष्ठान, कराई । ११ आह । १२ शीघ्र, सकार । १३ प्रयोग, इस्तेमाल । १४ धातुका अर्थ । व्याकरणके मतमें धातुके अर्थको क्रिया कहते हैं । कर्ताका व्यापार ही क्रियापदवाच्य है । जैसे—सुझिका पर खाली चढ़ा देनेसे पुनर्वा उतारने तक कर्ता जो व्यापार निष्पन्न करता, उसीका नाम पाक-क्रिया पड़ता है । व्याकरणके मतमें क्रिया दो प्रकारकी है—साध्य और सिद्ध । तिङ् निष्पन्न क्रियाको साध्य और घञ् प्रभृति निष्पन्नको सिद्ध कहते हैं । फिर क्रिया सकर्मक और अकर्मक भेदसे भी दो प्रकारकी होती है ।

जिसका कर्म रहता अर्थात् जिस कर्ताका व्यापार किसी अन्य पदार्थ पर जा कर पड़ता उसको सकर्मक और जिसका कर्म नहीं मिलता अर्थात् कर्ताका व्यापार उसी पर पूरा उतरता उसको अकर्मक कहते हैं । प्रत्येक क्रियाका एक फल और एक व्यापार है । जिस उद्देशसे क्रियाकी प्रवृत्ति होती उसका नाम फल और जो उस फलको निकालता उसका नाम व्यापार पड़ता है । अकर्मक क्रियाका फल और व्यापार कर्तामें ही रहता है । जैसे—वह हंसता है । इस स्थलपर हास्य क्रिया अकर्मक है । कारण इसका फल और व्यापार कर्तामें ही विद्यमान है ।

जिस स्थलपर कर्ता भिन्न अन्य किसी पदार्थमें क्रियाका फल लगता, उस स्थलमें क्रियाका नाम सकर्मक पड़ता है । जैसे—राम भात बनाता है । इस स्थल पर चूल्हे पर हांडी चढ़ा देना आदि पाकक्रियाका व्यापार और पदार्थकी शिथिलता वा विक्षिप्ति ही उसका फल है । वह विक्षिप्ति वा शिथिलता कर्ता भिन्न अपर पदार्थ ओदन (भातमें) रहनेसे पाक क्रिया (बनाना) सकर्मक है ।

“फलव्यापारयोरैकनिष्ठतायामकर्मकः ।” (कलापटीका)

वक्ताओंका फल विवक्षा करनेसे सकर्मक और फल न करनेसे क्रिया अकर्मक होती है । एक ही क्रिया वक्ताकी इच्छानुसार सकर्मक वा अकर्मक बना करती है । जैसे—राम वनको जाते हैं । यहां गमन क्रिया सकर्मक है । क्योंकि उसके फलकी विवक्षा लगी है । फलकी विवक्षा न रहनेसे यही क्रिया अकर्मक भी होती है । यथा—राम वनमें जाते हैं । इस स्थल पर क्रियाके फल की कोई विवक्षा नहीं है । सुतरां गति क्रिया अकर्मक ठहरती है ।

“क्रियावच्छेदकं वनफलं कर्ताविवक्षितम् ।

तत्रैव कर्म धातोश्च फलानुक्तावकर्मकः ॥” (भट्टहरि)

वैयाकरणोंने कई अकर्मक क्रियाओंकी गणना की है । यथा—होना, बचना, अभिमान करना, डरना, सोना, खेलना, रहना, गिरना, अव्यक्त ध्वनि करना, उड़ना, चलना, बसना, बुढ़ाना, शरमाना, प्रमाद करना, उठना, मतवाला बनना, भागना, घूमना, विख्यात

होना, घटना, दुबकना, मोड़ना, दौड़ना, गड़ रहना, मतुवाना, शान्त पड़ना, बहना, डूबना, चमकना, जागना, जाना, उत्साहित होना, मरना, सन्निध रहना, चिनाना, धीरे धीरे जाना, नाचना, गिरना, चेष्टा करना, विगड़ना, रोना, बहना, हावभाव प्रकाश करना, पकना, ठहरना, हर्ष करना, पादर करना, सेवा करना, कपना, चबराना, भूषकना, शङ्का जाना, और खेद करना, यह सकल क्रियायें एकमेक हैं। इन सभी अर्थोंमें कर्म नहीं रहता। जैसे—घड़ा होता है, मार्क-खेय जीता है इत्यादि।

क्रिया समापिका और असमापिका भेदसे भी दो प्रकारकी है। जिस क्रियापदमें वाक्यकी समाप्ति हो जाती और अन्य किसी क्रियाकी आकाङ्क्षा नहीं आती, वह समापिका क्रिया कहलाती है। तिङन्त क्रिया ही समापिका क्रिया हुषा करती है। जैसे—वह चन्द्रको देखता है। इस स्थल पर देखना क्रिया समापिका है।

कारण इसी क्रियामें वाक्यकी समाप्ति होती है; दूसरी किसी क्रियाकी अपेक्षा नहीं। जिस क्रियापदमें वाक्य-शेष नहीं होता और किसी अपर क्रियाकी अपेक्षा रहती है, उसका नाम असमापिका क्रिया है। क्ताच्-व्यप् प्रभृति प्रत्ययसे निष्पन्न होने-वाला क्रियापद ही असमापिका है। जैसे—वह वनमें जाकर। इस क्रियापदमें वाक्य शेष नहीं होता, 'ठहरता है' प्रभृति अन्य क्रियापदकी अपेक्षा लगती है। सुतरां 'जाकर' असमापिका क्रिया है। प्राचीन संस्कृत व्याकरणमें समापिका वा असमापिका क्रिया-जेसा कोई भेद लक्षित नहीं होता।

१५ चार प्रकारके व्यवहारोंमें एक व्यवहार। यह देवी और मानुषी दो प्रकारका होता है। रुई, अग्नि, जल, विष, कोषपान प्रभृति द्वारा प्रभाव करके जो विषय विचारा जाता वह देवी व्यवहार कहलाता है। साक्ष्यग्रहण, बहस या निदर्शन और अनुमान द्वारा विचार निष्पत्ति करना मानुषी व्यवहार है।

१६ चिकित्साकार्य, इलाज। इस अनुष्ठानसे शरीरके वात, पित्त और कफ धातु समान होती हैं।

क्रियाकल्प (सं० पु०) क्रियायां कल्पः उन्मूहः,

६-तत्। क्रियासमूहः अनुष्ठेयमान सकल क्रिया, काम काज।

क्रियाकल्प (सं० पु०) क्रियायां चिकित्सायां कल्पः विधिः चिकित्साका नियम, इलाजका कायदा। सुश्रुत उत्तर तन्त्रके १८वें अध्यायमें सभी क्रियाकल्प चिकित्साका नियम निर्णीत हुवा है।

क्रियाकार (सं० पु०) क्रियां शिञ्चारणं करोति, क्रिया-क-षण् । १ नूतन छात्र, नया विद्यार्थी। (चि०) २ कर्मकारक, काम करनेवाला।

क्रियाक्रम (सं० पु०) चिकित्सोपक्रम, इलाजका सिलसिला।

क्रियाङ्ग (सं० पु०) यन्त्रमें इत्यादि द्वारा सम्पन्न क्रिया जानेवाला किसी क्रियाका सिद्धान्त; जैसे तबला सितार आदि बजाना। २ करण और उत्साहादियुक्त क्रिया।

क्रियातन्त्र (सं० पु०) क्रियायास्तन्त्रः अधीनः, ६-तत्। १ कर्माधिकारी, काममें लगा हुवा। (कौ०) २ एक बौद्धतन्त्र।

क्रियातियोग (सं० पु०) वसन आदि अतियोग।

क्रियाहेषी (सं० कौ०) क्रियां व्यवहाराङ्गसाधनं साचिलेख्यादिकं हेष्टि, क्रिया-हिष-णिनि। १ विवाद आदिके स्थल पर दलीलकी न माननेवाला, जो बहस कदूल न करे।

“सिद्धाच्च साचिष्ये व क्रिया क्रवा मनोविभिः।

ता क्रियां हेष्टि यो मोहात् क्रियाहेषी स उच्यते॥” (भाष्यभन)

लिखने और देखनेवालेकी बात पर बिगड़नेवाला क्रियाहेषी कहलाता है। धर्मशास्त्रमें क्रियाहेषी हीनोंमें गिना गया है।

“अन्ववादी क्रियाहेषी नोपस्थापी निश्चरः।

आहतप्रपञ्चावो च हीनः पचविधः अतः॥” (भाष्यभन)

२ कर्महेष्टा, कर्मकाण्डसे हेष रहनेवाला।

क्रियान्वित (सं० त्रि०) क्रियया सत्क्रियया अन्वितः। सकर्मशास्त्री, भला काम करनेवाला।

क्रियापटु (सं० चि०) क्रियायां पटुः कुशलः, ७-तत्। चतुर, कार्यदक्ष।

क्रियापथ (सं० कौ०) क्रियायां चिकित्सायाः पन्थाः नियमः, ६-तत्। समावेष्टः। चिकित्साका नियम, इलाजका राह। (सूक्त)

क्रियापद (सं० स्त्री०) क्रियावाक्य, क्रियाका सिद्ध रूप जैसे—होता है, पकता है, करता है।

क्रियापत्र (हिं० पु०) कर्मकाण्डमार्ग, कामकी राह।

क्रियापर (सं० त्रि०) क्रियायाः परः अधीनः, ६-तत् क्रियाधीन, कामका पाबन्द।

क्रियापाट—संस्कृत देशावली वर्णित ब्राह्मणभूमिका एक गांव। यह कलौश्यामसे २ योजन पर वायुकोणमें अवस्थित है।

क्रियापाद (सं० पु०) क्रिया विवादसाधनं पाद इव। चार भागोंमें विभक्त व्यवहारशास्त्रका तृतीय भाग, मुकदमेंकी तीसरी मद।

“पूर्वपक्षः स्मृतः पादः द्वितीयोत्तरः स्मृतः।

क्रियापादसंज्ञा चान्यस्तुर्थो निर्णयः स्मृतः॥” (इहस्पति)

पूर्वपक्षकी पाद, द्वितीयकी उत्तर, अन्यकी क्रिया-पाद और चतुर्थकी निर्णय कहते हैं। विचार देखो।

क्रियाफल (सं० स्त्री०) १ कर्मफल, कामका मत्ताजा। उत्पत्ति, प्राप्ति, वृद्धि और संस्कृतकी क्रियाफल कहते हैं। (शैलानपरिभाषा)

२ यज्ञ आदिका पुण्य और पाप। ३ क्रियाजन्य स्वर्ग और ह्रासि प्रभृति, कामसे मिलनेवाला पाराम वगैरह।

क्रियाभ्युपगम (सं० पु०) क्रियायाः कर्षणादिक्रियायं अभ्युपगमः तादर्थ्यं ६-तत्। अधिया बंटारै, खेतका अधिया बंटारै पर लिया जाने पर। यह नियम करके कृषिकर्मके लिये दूसरेका क्षेत्रप्रवृत्त करना क्रियाभ्युपगम कहलाता है कि क्षेत्रमें जो शस्य उत्पन्न होगा, वह खेतके मालिक और किसान दोनोंमें बराबर बराबर बंट जायगा। इसमें सरकारी आमदनी जो लगती, खेतवालीको देना पड़ती है और जोतने बोनका खर्च किसान उठाता है।

“क्रियाभा पनमात् चेन्नं योगाच्च” इति प्रदीयते।

तस्मै ह भाविनी इहो नीजो चेन्निक एव च॥” (मनु)

क्रियाभ्याहति (सं० स्त्री०) क्रियायाः अभ्याहतिः, ६-तत्। क्रियाका पीनःपुन्य, किसी कामकी धुन।

क्रियायोग (सं० पु०) क्रिया एव योगो योगोपायः।

१ पौराणिकनवकण्ठक उल्लिखित देवता-पाराधन, देव-

मन्दिर निर्माण प्रभृति पुण्यकर्म। प्रायः सकल पुराणों और उपपुराणोंमें क्रियायोगका अल्प विस्तर प्रशंसा मिलती है। मत्स्यपुराणके मतमें क्रियायोग सहस्र सहस्र ज्ञानयोगसे भी प्रधान है। क्रियायोग ही ज्ञान-योगका प्रधान कारण है। क्रिया व्यतीत शत सहस्र जन्मोंमें भी ज्ञान नहीं आता। क्रियायोगसे चित्तकी शुद्धि होती है। चित्तशुद्धि होनेसे ज्ञानायास ही मुक्ति लाभ किया जा सकता है। समस्त पुण्यकर्मोंका मूल-कारण वेद और आचार है। प्राणीमात्रके प्रति दया, सहिष्णुता, पीड़ित व्यक्तिका प्रतिपालन, गुणवान् व्यक्ति पर मिथ्यादोषारोप न करना, आभ्यन्तरीय तथा वाह्य पवित्रता, विघ्न होनेकी सम्भावना न रहनेवाले कार्यमें भी मङ्गलाचरण कृपणताशून्यता, और परद्रव्य वा पर-स्त्रीमें स्मृहा न रखना—आठ प्रधान प्रधान गुण हैं। इनमें एकका भी अभाव होनेसे क्रियायोग अवलम्बन कर नहीं सकते। वेदों और स्मृतियोंमें जो सकल पुण्य-कर्म निरूपित हुए हैं, उनका अनुष्ठान ही क्रियायोग है। चूल्हा, सिल बट्टा, भाङ्ग, पोखली, मूषल, घड़ा और पीढ़ा—पांच वस्तुओंकी सूना क्रियायोगी गृहस्थके लिये अपरिहार्य है। अर्थात् अन्यरूपहिंसा अनेक यज्ञोंसे परित्याग की जा सकती है, किन्तु पाकके समय चूल्हे, मसाला बांटनेमें सिल बट्टे, भाङ्गनेमें भाङ्गके नीचे, कूटनेमें पोखली, पानी रखनेमें घड़े और बैठने बैठनेमें पीछेसे जो हिंसा होती, उसे गृहस्थ किसी प्रकार छोड़ नहीं सकता। इसी कारण उक्त पञ्चविध हिंसाके प्रतीकारकी क्रियायोगमें पांच यज्ञोंका विधान किया गया है। यथा—देवयज्ञ, पित्रयज्ञ, मनुष्ययज्ञ अर्थात् अतिथि सत्कार और स्वाध्याय तथा ज्ञानयज्ञ। इन पांचो यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे पञ्चसूना पाप विनष्ट होता है। जिनमें पूर्वोक्त दया आदि आठो गुण नहीं होते, वह यथाविहित संस्कारोंसे संस्कृत रहते भी क्रियायोग लाभ कैसे कर सकते हैं? उपाजित अर्थ द्वारा गोब्राह्मणको प्रतिपालन, व्रत, उपवास और नानाविध उपहारसे ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, वसु तथा शिवकी पंचना क्रियायोगीका एकान्त कर्तव्य है। (मत्स्यपुराण ५२ च०) नीतामें कर्मयोगके नामसे क्रियायोगका ही उल्लेख

क्रिया गया है। पातञ्जलके मतमें तपस्या, मोक्षसाधनके अध्ययन और क्रियाफल ईश्वर अर्पण करके फलकामी न हो केवलमात्र कर्तव्यताबोधसे समस्त पुण्यकर्मोंके अनुष्ठानका नाम क्रियायोग है। (योगसूत्र २।१) कर्म देखो।

क्रियया योगः सम्बन्धः, इ-तत्। २ क्रियाके सहित सम्बन्ध।

“निपाताद्यादयो ज्ञेया उपसर्गास्तु प्रादयः।

द्योतकत्वात् क्रियायोगे लोकादवगता इमे॥” (कलापटीका-द्वितीयः)

क्रियार्थ (सं० पु०) क्रिया अनुष्ठानं यज्ञादिकं अर्थोऽभिधेयो यस्य, बहुव्री०। यज्ञादि क्रियाका प्रतिपादक विधिववाक्य। मीमांसामतमें क्रियार्थ वाक्य ही प्रमाण है, क्रियार्थ भिन्न वाक्यका प्रामाण्य नहीं होता।

“आधायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यं तदर्थानाम्।” (मीमांसासूत्र)

जो सकल ग्रंथ वेदका अर्थवाद है अर्थात् जिनमें किसी प्रकारका विधि नहीं केवल-देवता वा क्रियाकी प्रशंसा मात्र है, उनके साथ विधिवाक्योंकी एकवाक्यता लगा व्याख्या करनी पड़ती है। इससे अर्थवाद भी क्रियार्थ बन जाता है। उसका अप्रामाण्य ही नहीं सकता।

क्रियावश (सं० त्रि०) क्रियायाः वशः अधीनः। क्रियाके अधीन, कर्तव्य कर्म शेष न करनेवाला, कामसे मजबूर क्रियावसन्न (सं० त्रि०) क्रियया अवसन्नः पराजितः, इ-तत्। साक्षी किंवा प्रमाण द्वारा अपना पक्ष प्रमाणित न कर सकनेसे पराजित होनेवाला, जो गवाह या सुबूतसे अपना मामला साबित न कर सकने पर सुकदमा हार गया हो।

“स्यमभ्युपपन्नोऽपि सचर्वावसितोऽपि सन्।

क्रियावसन्नोऽभ्युपेत परं सत्त्वावधारणम्॥” (नारद)

क्रियावस्ति (सं० स्त्री०) वमनादि पक्ष कर्मोंमें प्रयोज्य वस्ति।

क्रियावाचक (सं० स्त्री०) क्रियापद। जिसका अर्थ क्रिया है, उसीको क्रियावाचक कहते हैं। जैसे पकात है, जाता है इत्यादि।

क्रियावादी (सं० पु०) १ व्यवस्थापक, क्रियाको निरूपण करनेवाला, जो काम बताता हो। (त्रि०) २ प्रसाधवादी, कार्यवादी, करवादा। (निवाचन)

क्रियावान् (सं० त्रि०) क्रिया विद्यतेऽस्य, क्रिया-मत्तुपमस्य वः। १ क्रियायुक्त, सक्रियान्वित, कामकाजी।

२ क्रियानिरत, काममें पड़ा हुआ। (भारत वन २)

३ कर्ता, करनेवाला।

क्रियाविदग्धा (सं० स्त्री०) नायिकाभेद। यह किसी क्रिया द्वारा नायकको अपना भाव बताती है।

क्रियाविशाल—जेन शास्त्रानुसार श्रुतज्ञानके दो भेद हैं—अंगवाद्या और अंगप्रविष्ट। अंगप्रविष्टके आचारांग आदि १२ भेद हैं। उनमें वारहवें दृष्टिप्रवाद नामक अंगका चौथा भेद पूर्वगत है और उस पूर्वगतके भी उत्पाद आदि १४ भेद हैं। उनमें यह क्रियाविशाल १३वां है। उसमें नौ करोड़ पद हैं और छदःशास्त्र, व्याकरण-शास्त्र आदिका वर्णन है। (जिनसेनाचार्यकृत हरिवंश १०।१२०)

क्रियाविशेषण (सं० स्त्री०) क्रियायाः विशेषणम्, इ-तत्। क्रियाका विशेषण, क्रियाका भाव वा अवस्था प्रकाश करनेवाला पद। जैसे—वह शीघ्र जाता है, स्तोक पकाता है। पाणिनिके मतमें क्रियाविशेषणोंका एकत्व कर्मत्व और नपुंसकत्व है। इस विधानसे क्रियाविशेषणके उत्तर स्त्रीवलिङ्गमें द्वितीयाके एकवचन भिन्न अन्य विभक्ति नहीं लगती। हिन्दीमें भा इसका रूप बराबर एक ही जैसा बना रहता है, कभी विभक्त नहीं होता।

क्रियाशक्ति (सं० स्त्री०) क्रियैव शक्तिः। १ परमेश्वरकी एक शक्ति। ईश्वर इसी शक्तिके द्वारा अनन्त ब्रह्माण्डकी सृष्टि करता है। सांख्यमें प्रकृतिरूप और वेदान्तमें मायारूपसे क्रियाशक्ति वर्णित हुई है।

शारदातिलकमें भी सांख्यमत अवलम्बन करके इस शक्तिका तान्त्रिक भावसे वर्णन किया है :—

नित्य, ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप, सर्वमय परमेश्वर-से शक्तिकी उत्पत्ति होती है। शक्तिसे नाद और नादसे विन्दु उत्पन्न हुआ करता है। सर्वशक्तिमान् ईश्वर इसी प्रकार तीन रूपोंमें विभक्त होता है। विन्दु, नाद और बीज—उसके तीन भेद हैं। विन्दु शिवस्वरूप और बीज शक्ति है। इन्हीं दोनोंके मिलनको नाद कहते हैं। विन्दुसे रीझी, नादसे ब्रह्माक्षी और बीजसे वासु-शक्ति निकलती है। इन्हीं तीनों शक्तियोंसे ब्रह्म, ब्रह्मा

और विष्णु की उत्पत्ति है। यह ज्ञानेच्छा तथा क्रिया-विशिष्ट और चन्द्र, सूर्य एवं अग्निस्वरूप हैं। (शारदा-तिलक) प्रयोगसार, पदार्थादर्श, पञ्चरात्र और वायुपुराण प्रभृतिमें भी ऐसा ही लिखा है।

क्रियासमभिहार (सं० पु०) क्रियायाः समभिहारः, क्रिया-सं-अभि-हृ-घञ्। क्रियाका पौनःपुन्य, कामका बार बार दुहराव। (माघ २ सर्ग)

क्रियासाधन (सं० स्त्री०) चिकित्सासाधन, इलाजकी पावन्दी।

क्रियाज्ञान (सं० स्त्री०) क्रियाङ्गं ज्ञानम्, मध्यपदलोपी कर्मधा०। धर्मशास्त्रकार शङ्खप्रदर्शित ज्ञानविधि।

प्रथम मृत्तिका और जल द्वारा विधि अनुसार ग्रीच कर्म करके पानीमें उतर डुबकी लगाना चाहिये। पीछे उठके आचमन करते हैं। फिर मन्त्रपाठ करके तीर्था-याजन करना पड़ता है। यथा—

“प्रपद्ये वक्ष्ये” देवमभ्यासी पतिनर्षितम्।
 बाधितं देहि मे तीर्थं सर्वपापायन् तथे
 तीर्थं मानाद्यिष्यामि सर्वार्थविनिर्मुक्तम्।
 सान्निध्यमस्मिन् तीर्थे च क्रियतामदनुग्रहात् ॥
 ब्रह्मान् प्रपद्ये वरदान् सर्वानपि सदसयाः।
 सर्वानपि सदर्थैश्च प्रपद्ये प्रयतः स्थितः ॥
 देवसंश्रयं वक्षिं प्रपद्ये ऽचमिस्त्वृणम्।
 आपः पुण्याः पवित्राश्च प्रपद्ये शरच्च तया ॥
 ब्रह्मसामिन् सर्वेषु वक्ष्येऽप्येव एव च।
 अस्यैवास्मिन् मे पापं माचरेत्तु सर्वदा ॥”

इसके पीछे सम्भ्राविधि अनुसार अचमर्षण करना चाहिये। पुनर्बार डुब्बी मार तीर्थनाम जप करते हैं।

इस प्रकार नहानेसे तीर्थज्ञानका फल होता है।

क्रियेन्द्रिय (सं० स्त्री०) क्रियायाः कर्मणः साधनं इन्द्रि-
 यम्। वाक्पाणि प्रभृति कर्मेन्द्रिय, हाथ पांव वगैरह-
 काम करनेकी औजार।

क्रिवि (वे० पु०) कृवि-इन् निपातः। १ कृप, कृपा।
 २ कर्त्ता, करनेवाला। ३ पञ्चाक्ष देश। (मतपत्राक्ष-
 ११५५००) ४ असुरविशेष। (कक. १।२१।२) (त्रि०)

५ हिंसक। (वागवैभव १०।२०)

क्रिविः (वे० त्रि०) कृवि-इन् निपातने साधुः। विक्षेप-
 क्रीडक। (कक. १।२१।२।४)

क्रिय—अज्ञविशेष, किरच। भारत और भारतमहा-
 सागरीय द्वीपपुञ्जके सभी सभ्यजाति किरच व्यवहार
 करते हैं। मलयवासी उसको ‘क्रिय’ कहते हैं।

क्रिश्चियन (च० पु०—Christian) ईसाई, किरानी।

क्रिष्टल (च० पु०—Chrystal) १ स्फटिक, बिलौर।
 शीरे वगैरहका कलम। (वि०) २ स्फटिकाभ, बिलौर-
 जैसा चमकीला।

क्रीट (हि० पु०) किरौट।

क्रीड (सं० पु०) क्रीड्-घञ्। १ क्रीड़ा, खेल। २ परि-
 हास, हंसी टट्टा।

क्रीडक (सं० त्रि०) क्रीड्-ण्वल्। १ क्रीड़ा करनेवाला,
 खेलाड़ी। २ हारस्थित सेवक, दरबान्।

क्रीडचक्र (सं० स्त्री०) छन्दोविशेष, कोई छन्द। इसके चारो
 चरण समान रहते और प्रत्येक चरणमें १८ स्वरवर्ण
 लगते हैं। उनमें १ला, ४था, ७वां, १०वां, १३वां
 और १६ वां अक्षर छल्ल होता है। इसको छोड़कर सब
 अक्षर गुरु आते हैं। (हन्दःशास्त्र)

क्रीडन (सं० स्त्री०) क्रीड भावे क्युट। १ क्रीड़ा, खेल।
 (भारत १।१२८ च०) २ क्रीड़ासाधन, खेलनेका औजार।
 (भागवत १।१८।१४)

क्रीडनक (सं० स्त्री०) क्रीडन स्वार्थे कन्। क्रीड़ामाधन,
 खेलनेका औजार। (भारत १।१२ च०)

क्रीडनिका (सं० स्त्री०) क्रीडन स्वार्थे कन् स्त्रियां टाप्
 अत इत्थञ्च। धात्री, धाया, दायी।

क्रीडनीय (सं० त्रि०) क्रीड करणे समीयर्। १ क्रीड़ा-
 साधन, खेलमें मदद देनेवाला। (भारत, चतु० ८६) (स्त्री०)
 भावे समीयर्। २ क्रीड़ा, खेल।

क्रीडनीयक (सं० त्रि०) क्रीडनीय स्वार्थे कन्। क्रीड़ा-
 साधन, खेलनेवाला। (अथावर्तित् सागर)

क्रीड़ा (सं० स्त्री०) क्रीड भावे अततः टाप्। १ परि-
 हास, हंसी दिङ्गली। २ क्रीडन, खेलकूद। (कमारवैभव)

क्रीड़ाकानन (सं० स्त्री०) क्रीड़ायाः क्रीडाय काननम्,
 अश्वघासादिवत् तादर्थ्यं ६-तत्। उपवन, बाग।

क्रीड़ाकोप (सं० पु०) क्रीडार्थे कोपः। क्रीड़ाके लिये
 प्रकाश किया जानेवाला कोप, खेलकी रिंग।

क्रीड़ाकौतुक (सं० स्त्री०) क्रीडार्थे कौतुकम्। क्रीड़ाके-

लिये किया जानेवाला कौतुक, खेल तमाशा ।
क्रोडाखण्ड (सं० क्री०) गणेशपुराणके द्वितीय भागका नाम ।

क्रोडागृह (सं० क्री०) क्रोडार्थं गृहम् । क्रोडा करनेका गृह, खेलनेका मकान् । (साहित्यदर्पण १० प०)

क्रोडाचक्रमण (सं० क्री०) क्रोडाख्यानविशेष, खेलनेकी एक जगह ।

क्रोडाचन्द्र—भोजपत्रम्—वर्णित एक कवि ।

क्रोडाताल (सं० पु०) एक ताल । इसमें एकमात्र ध्रुत रहता है । (सङ्गीतदामोदर)

क्रोडानारी (सं० स्त्री०) क्रोडायाः क्रोडार्थं नारी, तादर्थ्यं तत् । चामोद प्रमोद करनेकी स्त्री, वेश्या, रहस्यी । (हरिवंश १४० प०)

क्रोडामय (सं० त्रि०) क्रोडाप्रचुर, खेलमें लगा रहनेवाला ।

क्रोडामयूर (सं० पु०) खेलनेका मोर ।

क्रोडाष्टग (सं० पु०) क्रोडार्थं षट्गः । खेलनेका हरिण ।

क्रोडायान (सं० क्री०) क्रोडायाः यानम्, तादर्थ्यं ३-तत् । पुष्परथ, फूलोंकी गाड़ी ।

क्रोडारत्न (सं० क्री०) क्रोडायाः रत्नमिव । रतिक्रिया, मैथुन ।

क्रोडारथ (सं० पु०) क्रोडायाः रथः, तादर्थ्यं ३-तत् । क्रोडायान, फूलोंकी बग्गी ।

“क्रोडारथो ऽथ भगवान् उत साङ्गामिको रथः ।” (भागवत १।५२ प०)

क्रोडारसातक (सं० क्री०) एक उपरूपक, कोई हस्तकाव्य (साहित्यदर्पण ६ प०)

क्रोडावेश्म (सं० क्री०) क्रोडागृह, खेलका घर ।

क्रोडाशकुन्त (सं० पु०) खेलनेकी चिड़िया ।

क्रोडाशैल (सं० पु०) क्रोडापर्वत, खेलनेका पहाड़ ।

क्रोडासरः (सं० क्री०) खेलनेका सरोवर ।

क्रोडाख्यान (सं० क्री०) खेलकी जगह ।

क्रोडि (वै० त्रि०) क्रोड-इन् । क्रोडक, खेलाड़ा ।

(अक्ष० १० । २४ । १५)

क्रोडिता (सं० त्रि०) क्रोड-इत् । क्रोडक, खेलाड़ी ।

(भागवत १ । ११ । १४)

क्रोड़ी (वै० त्रि०) क्रोड बाहुलकात् ताच्छिष्ये इति ।

१ वायुविशेष, घटखेलियां करनेवाली हवा । २ क्रोडाशैल, खेलमें लगा रहनेवाला । (वाजपेय्यसंहिता २४।१६)

क्रोडि (वै० त्रि०) क्रोड-इन् । क्रोडाकारक, खेलाड़ा ।
(अक्ष० २।२०।७)

क्रोडोद्देश (सं० पु०) क्रोडायाः उद्देशः ख्यानम्, ३-तत् । क्रोडाख्यान, खेलकी जगह ।

क्रोडोपस्कार (सं० पु०) क्रोडाया उपस्कारः, ३-तत् । क्रोडासाधन, खिलोना । (भागवत, १।१।४२)

क्रोत (सं० त्रि०) क्री कर्मणि क्त । १ क्रय किया हुआ, जो मोल लिया गया हो । (क्री०) २ क्रय, खरीद । (पु०) द्वादश प्रकारके पुत्रोंमें एक पुत्र । जनक और गर्भधारिणी धन लेकर जिस पुत्रको विक्रय करती, उसे क्रोत कहते हैं—

“दद्यान् माता पिता वा यं स पुत्रो दत्तकः कृतः ।

क्रोतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्नात् स्नानं कृतः ॥” (वाचस्पत्या)

मनुके मतमें—क्रोत पुत्र केवल पिता माताकी सम्पत्तिका अधिकारी है । उसे वन्धुवर्गका दायधिकार नहीं होता ।

“कानोमश्च सङ्गोदश्च क्रोतः पौनर्भवश्च ।

स्वयंदत्तश्च श्रोत्रश्च वक्षसायादवाम्भवाः ॥” (मनु)

कानोम, सङ्गोद, क्रोत, पौनर्भव, स्वयंदत्त और शूद्रगर्भजात—३ पुत्र बान्धवदायाधिकारी नहीं होते ।

दत्तकमामांसा और दत्तकचन्द्रिकाके मतसे कलि-कालमें क्रोतपुत्र रखनेका विधान नहीं है । पराशरने कलिधर्मप्रस्तावमें शीरस, क्षेत्रज, दत्त और छत्रिम केवल चार ही प्रकारके पुत्रोंका उल्लेख किया है ।

क्रोतक (सं० पु०) क्रोत स्वार्थे कन् । क्रोतपुत्र, खरीदा हुआ लड़का ।

“क्रोचोवाह व ह्यपन्नाच” मातापित्रोर्यं नमिकान् ।

स क्रोतकः सुतकस्य सङ्गोदसङ्गोदपि वा ॥” (मनु २।१०४)

वंशरक्षाके लिये पितामाताको मृत्यु देकर क्रय किया जानेवाला पुत्र, क्रोताका क्रोतक पुत्र कहलाता है । वंशमर्यादा प्रवृत्तिमें बालक समान वा असमान होते भी क्रोतक पुत्र बनाया जा सकता है । परन्तु भिन्नजातीय कभी ग्रहण करना न चाहिये । दत्तक देखो ।

क्रीतदास (सं० पु०) क्रीतदासी दास्य, कर्मधा० ।
मोक्षकानौकर, गुलाम । दासशब्दमें विसृत विवरण देखो ।

क्रीतानुशय (सं० पु०) क्रीते कृते अनुशयः, ७-तत् ।
कोई वस्तु क्रय करके पीछे होनेवाला अनुताप, मान
लेनेके पीछेका पछतावा । धर्मशास्त्रप्रणीताओंने
इसको षष्ठादश विवादोंके अन्तर्गत एक विवाद-जैसा
लिखा है । वीरमित्रादय नामक स्मृतिसंग्रहमें यह
विषय वर्णित हुआ है—

“क्रीत्वा मूल्येन यत्पण्यं क्रीतां न बहु मन्थते ।

क्रीतानुशय इत्येतद् विवादपदमेव च ॥” (नारद)

करी वस्तु मूल्य देकर खरीदने पर यदि क्रेता
अपनेकी ठगा हुआ समझता, तो क्रीतानुशय ठहरता
है । यह एक विवादपद-जैसा निरूपित हुआ है । कोई
चीज जांच न करके खरीदने और पीछे परीक्षाके
समय उसका कोई दोष निकलने पर क्रेता उसे विक्र-
ताको फेर दाम वापस ले सकता है । बेचनेवाला
कीमत लौटा देने पर बाध्य है । किन्तु परीक्षा करके
मोल लेने पर कोई वस्तु लौटाया जा नहीं सकता ।

धर्मशास्त्रकार व्यासके मतमें—चमड़ा लकड़ी,
हंटा, सूत, धान, शराब और रसकी फौरन् जांच करना
पड़ती है । धर्मशास्त्रविहित परीक्षाके कालमध्य जांच
न लेनेसे पीछे परीक्षा करके दोष देखने पर खरीदो हुई
चीज वापस हो नहीं सकता । खादी, सोसे और सोने
भी सब ही परीक्षा करना चाहिये । दोघ गो महिष
प्रभृतिका परीक्षाकाल तीन दिन और बाह्य जेब,
पादिका ५ दिन है । रत्न, हीरक और प्रवालकी परी-
क्षाके क्रिये ७ दिन नियत हैं । पुरुषकी १५ दिन और
स्त्रीकी १ मासमें जांच होती है । धान पादि बीजोंकी
१० दिन और कोड़े तथा कपड़ेकी परीक्षाका काल
१ दिन है । कात्यायनने गृह, चित्र, भूमि प्रभृतिकी
परीक्षाका काल १ दिन ठहराया है । परीक्षाकालकी
कोई दाप देख न पड़ने और क्रेताके मतमें यह अनु-
ताप उपस्थित होते भी खरीद भरे लिये ठीक नहीं
हुई है, चीज लौटायी जा सकती है । किन्तु ऐसे मौके
पर खरीददार बेचनेवालेकी कीमतका ६ठा हिस्सा

देगा । विक्रेता भी मूल्यका षष्ठ भाग लेकर वस्तु वापस
लेने पर बाध्य है ।

नारदके मतमें मोल लेनेके दिन ही चीज लौटा-
नेमें कुछ भी देना नहीं पड़ता । परन्तु दूसरे दिन १०वां
और तीसरे दिन लौटानेमें मूल्यका १५ वां भाग क्रेता
विक्रेताको देगा । इसके पीछे खरीदो हुई चीज लौटायी
जा नहीं सकती । फिर उस चीजकी भी खरीद कर
वापस कर नहीं सकते, जो काममें लानेसे बिगड़ गयी
हो । परीक्षाकालके पीछे क्रीत वस्तु लौटानेसे राजा
क्रेताको उपयुक्त दण्ड दे सकता है । (वीरमित्रादय-अवधारपद)

क्रुङ् (सं० पु०) क्रुञ्च-क्रिन् । निपातने साधुः ।
अतिगृह्यक संग्रिति । पा ३।१।५। १ वक्रपक्षी, बगला । २ हंस ।

(वाङ्मन्यसंहिता १८। ७३)

क्रुञ्च (सं० पु०) क्रुञ्च-पञ् । १ क्रुञ्चपर्वत । २ वक्र-
पक्षी । (वाङ्मन्यसंहिता २४। १२)

क्रुञ्चकीय (सं० त्रि०) क्रुञ्चा-श कुक् क्रुञ्च । नडादीनां
कुक्च । वीणाका निकटवर्ती (देशादि) ।

क्रुञ्चा (सं० स्त्री०) क्रुञ्च-टाप् । एक वीणा ।

क्रुञ्चामान् (सं० त्रि०) क्रुञ्चा वीणा वकी वा विद्यते
ऽस्य, क्रुञ्चा-मतुप् । यवादि गणान्तर्गत रहनेसे यहां
मतुप्के मकारस्थानमें व नहीं हुआ । १ वीणायुक्त ।
२ वकीयुक्त, मादा बगलाकी क्रिये हुआ ।

क्रुत् (सं० स्त्री०) क्रुध सम्प्रदादित्वात् भावे क्तिप् ।
क्रोध, गुस्सा । क्रुध शब्दकी प्रथमाके एकवचनमें क्रुत्
और क्रुद् दो रूप होते हैं । किन्तु संक्षिप्तसार व्याक-
रणमें क्रुत्, क्रुद्, क्रुत्त और क्रुद् चार रूप लिखे हैं ।

क्रुब् (सं० त्रि०) क्रुध कर्तरि क्त । १ क्रुधयुक्त, माराज ।

“युद्ध विरुद्ध क्रुब् दोष बन्दर ।” (तुलसी)

(स्त्री०) भावे क्त । क्रोध, गुस्सा ।

क्रुधा (सं० स्त्री०) क्रु-क्तिप् विकल्पे टाप् । क्रोध,
गुस्सा ।

क्रुधी (द्वि० त्रि०) क्रुध बाहुलकात् मिनि क्तिप् ।
क्रुधनशील, गुस्सावर । (अक ०।५।८)

क्रुमु (द्वि० त्रि०) सर्वत्र गमनशील, सब जगह पहुँचने-
वाला । (अक ०।५।१८) (स्त्री०) २ सिन्धु नदीकी एक
शाखा नदी । (अक ०।१०।५६) इसका वर्तमान नाम कुरम्
है । ऊरम् देखो ।

क्रमुक (सं० पु०) सुपारी । (तैत्तिरीयसंहिता ५।१।१५)

क्रशरी (सं० स्त्री०) क्रशन्-ङाप् रयान्तादेशः
शृगाली, मादा गौदङ्ग ।

क्रश्या (सं० पु०) क्रश-क्लानिप् । लीङ्-कृशियेति । उच्यते ॥११॥ शृगाल, गौदङ्ग ।

क्रष्ट (सं० क्ली०) क्रश् भावे क्त । १ रोदनध्वनि, चीख ।
(चि०) कर्मणि क्त । २ पाहत, बुनाया हुआ ।
३ शब्दित, आवाज लगाया हुआ । ४ अभिशप्त, बंद दुःख
दिया हुआ । ५ कथित, कहा हुआ । ६ अप्रिय, नागवार

क्रूर (सं० त्रि०) कृत-रक् धातु स्थाने क्रू-आदेशश्च ।
कृतीन्द्रकृष् । उच्यते ॥११॥ १ परद्रोहकारी, दूसरेसे दुःख
रखनेवाला । (मिवहृत २) २ निर्दय, बेरहम । इसका संस्कृत
पर्याय—नृशंस, घातुक और पाप है । “न क्रूरे प्रतिष्ठतक्रियाः”
(कुमारसम्भव १।४८) ३ कठिन, कड़ा । (रघुवंश १।१४) ४ घोर,
भयानक । (पञ्चतन्त्र १।२५) ५ उष्ण, गरम । (पु०) ६ विषम-
राशि । द्वादश राशियोंमें १म, ३य, ५म, ७म, ९म और
११य राशि क्रूर है ।

“भीमोऽय युष्मं विषमः समश्च क्रूरोऽय सीमः पुंसोऽङ्गना च ।

चरस्थिरह्यात्मकनामधेयाः सिवादयोऽपि क्रमयः प्रदिष्टाः ॥”

(दीपिका)

७ पापग्रह । रवि, मङ्गल, शनि और क्षीणचन्द्रको
करग्रह कहते हैं । पापग्रह और शुभग्रह एक ही
राशिमें रहनेसे शुभग्रह भी क्रूर ही कहलाता है । जो
तिथि, राशिका अथ और नक्षत्र क्रूरग्रह विह्वल हो, उसमें
यात्रादि शुभकर्म न करना चाहिये । क्योंकि ऐसा
करनेसे विवाहमें दम्पतीका विच्छेद आता और
यात्रामें मनुष्य मर जाता है ।

८ रक्तकरवीर, लाल कनेर । ९ भूताङ्गशठज,
गायजुवा । १० श्वेनपक्षा, बाज, शिकरा । ११ दंश,
मच्छड़ । १२ कङ्कपक्षी । (क्ली०) १३ पक्ष, भात ।
१४ कृत्तकृत्त, छातेका पेड़ । १५ कृष्णधुस्तूर, काला
धतूरा । १६ श्वेतपुनर्नवा ।

क्रूरक (सं० पु०) रक्तपुनर्नवा ।

क्रूरकर्मा (सं० त्रि०) क्रूरं हिंसकं कर्म यस्य, बहुव्री० ।

१ हिंसा कर्मकारी, बेरहमीका काम करनेवाला ।

“विजिज्ञाः क्रूरकर्माणि निष्ठाच्छिद्रानुसारिणः ।

हृतोऽपि हि पश्यन्ति राजानो भुजगा इव ॥” (पञ्चतन्त्र १।५०)

(पु०) १ कटुतुम्बिनी नाम महाक्षुप, कड़वी
तूँबीका पेड़ । २ चर्कपुष्पी, सूरजमुखी । इसका
संस्कृत पर्याय—चर्कपुष्पी और जलकामुका है ।

(भावप्रकाश)

क्रूरकृत् (सं० त्रि०) क्रूरं करोति, क्रूर-कृ-क्लिप्
तुगागमश्च । नृशंसाचारी, बेरहमीका काम करनेवाला ।

क्रूरकोष्ठ (सं० त्रि०) क्रूरं कठिनं कोष्ठं यस्य,
बहुव्री० । बड़कोष्ठायय, कड़े कोठेवाला, जिसको दस्त
साफ न उतरता हो । (घृत्त)

क्रूरगन्ध (सं० पु०) क्रूर उग्रो गन्धो यस्य, बहुव्री० ।
१ गन्धक, कियरीत । (त्रि०) २ तीक्ष्णगन्धयुक्त, कड़ी
बूवाला ।

क्रूरगन्धा (सं० स्त्री०) क्रूरो गन्ध एकदेशो यस्याः,
बहुव्री० ततष्ठाप् । कन्यारोधक ।

क्रूरता (सं० स्त्री०) क्रूर भावे तल् । १ परद्रोह, दूसरे-
की बुराई । २ निर्दयता, बेरहमी । ३ कठिनता, कड़ा-
पन । ४ घोरता, सख्ती । ५ उष्णता, गर्मी । ६ तीक्ष्णता,
तीखापन, तेजो ।

क्रूरदन्तो (सं० स्त्री०) कड़े दाँतोंवाली दुर्गादेवी ।

क्रूरदर्शना (सं० स्त्री०) श्वेतकाकमाची, सफेद कौवा-
टोटी ।

क्रूरदृक् (सं० पु०) क्रूरा दृक् यस्य, बहुव्री० । यद्वा क्रूरं
पश्यति, दृश-क्लिन् ततः, २-तत् । १ खल, पाजी । २ शक्ति-
ग्रह । ३ मङ्गलग्रह । (जीतिलाल) ४ ग्रहोंका कोई स्थान ।
नीलकण्ठताजकके मतमें—इस स्थानको क्षुताख्यदृष्टि
वा रिपुदृष्टि कहते हैं । (स्त्री०) क्रूराणां ग्रहाणां दृक्-
दृष्टिः । ५ पापग्रहोंकी दृष्टि ।

क्रूरधूतं (सं० पु०) क्रूरः क्षणत्वात् तत्सदृशो धूतः ।
क्षणधुस्तूर, काला धतूरा ।

क्रूरप्रसादन (सं० त्रि०) क्रूरमपि प्रसादयति, क्रूर-
प्र-सद-णिच्-ञ्चट् । क्रूर व्यक्तिको भी शत्रूणादि द्वारा
प्रसन्न करनेवाला, सेवक । (क्ली०) क्रूरस्य प्रसादनम्,
६-तत् । क्रूर व्यक्तिकी प्रसन्नता, पाजीकी रजामन्दी ।

क्रूररव, क्रूररवि देखो ।

क्रूरराविणी (सं० स्त्री०) १ स्त्री द्रोणकाक, मादा
काला कौवा । २ मादा कौवा । ३ स्त्री कर्करेट ।

क्रूरावी (सं० पु०) क्रूरं कर्कशं उग्रं वा रीति, क्रूर-
व-पिनि । १ काक, काँव काँव करनेवाला कौवा ।
२ कर्कट । ३ द्रोणकाक, काला कौवा ।

क्रूरलोचन (सं० पु०) क्रूरं लोचनं यस्य, बहुव्री० । प्रने-
चर, शनिघ्न । शनिकी दृष्टिसे लोभीका अनिष्ट होता
है । इसीसे उसको क्रूरलोचन कहते हैं ।

क्रूरव (सं० पु०) मृगाल, झूझ करनेवाला गीदड़ ।
क्रूरसत्त्वोपधि (सं० स्त्री०) गन्धमादनकी निकटवर्ती
और कैलास पर्वतके दक्षिण अवस्थित एक पहाड़ी ।

“कैलासाद्विधे पात्रं क्रूरसत्त्वोपधिं निरिम् ।

उवकायात् किलोत्पन्नमनं निरुत्पत्ति ॥”

(ब्रह्माण्डपुराण, अनु. पञ्चपाद)

क्रूरस्वर (सं० त्रि०) क्रूरः कर्कशः स्वरो यस्य, बहुव्री० ।
कर्कशध्वनियुक्त, कड़ी आवाजवाला । काक, उलूक,
घरह (चकिया), उष्ट्र, मय्य और गर्दभ क्रूरस्वर होते
हैं । (चरित्रचरिता)

क्रूरा (सं० स्त्री०) क्रूर-टाप् । १ रत्नपुनर्नवा, लाल
नदहपूर्णा । २ वराटक, कौड़ी ।

क्रूराकृति (सं० त्रि०) क्रूरा आकृतिर्यस्य, बहुव्री० ।
१ प्रतिग्रय कर्कश मूर्तिवाला, जो डरावनी स्वरत रखता
हो । (पु०) २ रावण । (स्त्री०) कठिना मूर्तिः,
कर्मधा० । ३ कठिन मूर्ति, डरावनी स्वरत ।

क्रूराज (सं० पु०) क्रूरे पवित्री यस्य, बहुव्री० समा-
सान्त टप् । प्रतिग्रय कर्कश चण्डुवोंवाला, संस्कृत नजर ।

क्रूराका (सं० पु०) क्रूर आका स्वभावो यस्य, बहुव्री० ।
प्रतिग्रय कुटिल स्वभावयुक्त, कड़े मिजाजवाला ।

क्रूराकापी (सं० स्त्री०) द्रोणकाक, काला कौवा ।

क्रूराग्रय (सं० त्रि०) क्रूर आग्रयोऽभिप्रायो यस्य,
बहुव्री० । मन्दाग्रय, बुरा मतलब रखनेवाला ।

क्रूरं (सं० पु०) १ पक्षीविशेष, कोई चिड़िया ।
२ म्मन्नु, दाढ़ी ।

क्रूस (सं० पु०—Cross) १ ईसाई मजहब, किरि-
ष्टानो धर्म । २ सलीब, सूली । ३ सैद्धांतिक चिह्न, पाड़ा
निशान । जैसे—+, ×, १, १ । ४ ईसाई मजहबका
निशान । ५ नापनेका आला ।

क्रोचि (सं० त्रि०) क्री कर्तरि नि । १ क्रेता, खरीदने-
वाला । (स्त्री०) भावे नि । २ क्रय, खरीद ।

क्रांतव्य (सं० त्रि०) क्री कर्मणि तथ्य । १ क्रय करने
योग्य, खरीदा जानेंवाला । (स्त्री०) भावे तथ्य ।
२ क्रय, खरीद ।

क्रोता (सं० त्रि०) क्री-ङच् । क्रय करनेवाला, खरीद-
दार ।

क्रोय (सं० त्रि०) क्री कर्मणि यत् । १ खरीदने लायक ।
(स्त्री०) भावे यत् । २ खरीद ।

क्रोलुसेन्दुपुर—युक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलेका गङ्गातीरस्थ
एक प्राचीन स्थान । इसका पूर्व नाम धनपुर और वर्त-
मान नाम मसौंदो है । यहाँ किसी समय गुप्तराजा-
ओंकी राजधानी रही । प्राचीन मन्दिरादिके ध्वंसा-
वशेष और खोदित शिलालिपि द्वारा इसका थोड़ा
परिचय मिलता है । यहाँ गुप्तराजाओंकी कुछ सुद्रायें
निकली हैं ।

क्रोडिन (वै० त्रि०) क्रीड्नी मरुत् देवताऽस्य, क्रीडिन्-
पण् बाहुलकात् न लोपाभावः । मरुत् देवता सम्ब-
न्धीय (साकमेधीय एक इवि) । (मतपञ्चानन्य ११।५।१४)

क्रोडिनीया (सं० स्त्री०) क्रोडिन् इविः तदधिकृत्य इष्टि-
क्रीडिन्-ङ् । एक यज्ञ । कात्यायनश्रौतसूत्रमें (५।७।१)
सूत्रसे इस यज्ञका नियम और प्रणाली प्रदर्शित
हुई है ।

क्रोव्य (सं० पु०) क्रिषीणां पञ्चाक्षानां राजा, क्रिषि-
बाहुलकात् अत्र । पञ्चाक्षदेशीय राजा । क्रिषि देको ।

क्रोच (सं० पु०) क्रुच-पच् बाहुलकात् गुणः ।
२ क्रोच पर्वत ।

“कैलासे धनदायसे क्रोचः क्रीडोऽभिधीयते ।” (उग्रतारावली)

क्रोचकुमारिका (सं० स्त्री०) एक राक्षसी । (विष्णुवदान)

क्रोचदारण (सं० पु०) क्रोचं क्रोचपर्वतं दारयति,
क्रोच-ङ-णिच्-ञ् । कार्तिकेय ।

क्रोचपदी, क्रोचपरी देको ।

क्रोड (सं० पु०-स्त्री०) क्रोड् वनीभावे णच् । १ शूकर,
सुवर । (भारत, अनुशासन ५० प०) २ बाहुवोंका मध्यभाग,
अंकवार, गोद । इसका संस्कृत पर्याय—सुजान्तर, उरध,
वल्ग, वचः, उल्लङ्ग, भोग और वपुषःप्राक् है । (गणपतिव-
सं० १५।८) ३ छत्रकोटर, पेड़की छोड़ । (पञ्चर) ४ चोटकका
उरःस्थल, छोड़ेका सीना । ५ वाराहीकन्द । ६ उत्तर-
देशीय कोई घास । ७ शनिघ्न ।

क्रोड़कन्द (सं० पु०) वाराहीकन्द ।
 क्रोड़कन्या (सं० स्त्री०) क्रोड़स्य शूकरस्य कन्धेव प्रिय-
 त्वात् । वाराहीकन्द ।
 क्रोड़कशेद, क्रोड़कशेदक देखो ।
 क्रोड़कशेदक (सं० पु०) भद्रमुस्ता, नागरमोथा ।
 क्रोड़चूड़ा (सं० स्त्री०) क्रोड़े चूड़ा यस्याः, बहुव्री० ।
 मण्डूकपर्णी, बड़ी गोरखमुण्डी ।
 क्रोड़पत्र (सं० स्त्री०) क्रोड़े उपचारात् मध्ये स्थितं पत्रम्,
 ७-तत् । अतिरिक्त पत्र, जमीमा । (Supplement)
 पुस्तक वा समाचारपत्रका कोई अंश परित्यक्त वा
 पतित होनेसे क्रोड़पत्र लिख या छाप कर उसमें लगा
 दिया जाता है ।
 क्रोड़पर्णी (सं० स्त्री०) क्रोड़े कण्टकमध्ये पर्णं यस्याः,
 बहुव्री०, ततो गौरादिवात् ऊीष् । कण्टकारिका,
 भटकटैया ।
 क्रोड़पात् (सं० पु०) क्रोड़े पादोऽस्य, पादस्य पात्
 आदेशः । कच्छप, ककुषा ।
 क्रोड़पाद (सं० पु०) विकल्पेन पात् आदेशः । कच्छप ।
 क्रोड़पुच्छी (सं० स्त्री०) पुच्छिपर्णी, पिठवन ।
 क्रोड़मज्जक (सं० पु०) भिक्षुक, भिखारी । (दिव्यावदान)
 क्रोड़ा (सं० स्त्री०) १ शूकरी, मादा सूवर । २ बाहुवींका
 मध्य, अंकवार । ३ वाराहीकन्द ।
 क्रोड़ाङ्ग (सं० पु०) क्रोड़े अङ्गानि यस्य, बहुव्री० ।
 कच्छप, ककुषा ।
 क्रोड़ाङ्गि (सं० पु०) क्रोड़े अङ्गियं यस्य, बहुव्री० ।
 कच्छप, सङ्गपुष्ट, बाखा ।
 क्रोड़ाटि (सं० पु०) क्रोड़ आदिर्यस्य गणस्य, बहुव्री० ।
 पाणिनिका एक गण । इस गणके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें
 ऊीष् नहीं होता । न क्रोडादिवचनः । पा ४।१।५६। क्रोड़, मख,
 खुर, गोखा, उखा, शिखा, वाक, शफ, शूक, भग, गल,
 घोष, नाक, भृज, गुद और कर—सकलको क्रोड़ादि-
 गण कहते हैं ।
 क्रोड़ी (सं० स्त्री०) क्रोड़जाती गौरादिवात् विकल्पे
 ऊीष् । १ वराहजातीय स्त्री, मादा सूवर । २ वाराही-
 कन्द ।
 क्रोड़ीकन्या (सं० स्त्री०) वाराहीकन्द ।

क्रोड़ीकरण (सं० स्त्री०) क्रोड़-चिह्न भावे क्तिन् । आलि-
 ङ्गन, हमागोशी, अंकवार ।
 क्रोड़ीकृति (सं० स्त्री०) क्रोड़-चिह्न-भावे क्तिन् ।
 आलिङ्गन, हमागोशी ।
 क्रोड़ीमुख (सं० पु०) क्राड्याः शूकर्या मुखमिव मुखं
 यस्याः, बहुव्री० । गण्डकपशु, गेंडा ।
 क्रोड़ीमुखी (सं० स्त्री०) क्रोड़ी मुखजातित्वात् ऊीष् ।
 गण्डकपञ्जी, मादा गेंडा ।
 क्रोड़ेष्टा (सं० स्त्री०) क्रोड़स्य इष्टा प्रिया । मुस्ता,
 मोथा ।
 क्रोध (सं० पु०) क्रुध हिंसायां भावे घञ् । इनन, मार-
 काट ।
 क्रोध (सं० पु०) क्रुध भावे घञ् । १ द्वेष, काप,
 गुस्सा, डाह । कोई प्रतिकूल घटना उपस्थित होने पर
 तीव्रताके प्रादुर्भाव-जैसी किसी चित्तवृत्तिका नाम
 क्रोध है । (साहित्यदर्पण २) साहित्यदर्पणके मतमें क्रोध
 रौद्ररसका स्थायिभाव है । भगवद्गीताको देखते—
 किसी कारणसे पूरण न होनेवाला अभिलाष ही क्रोध
 रूपमें परिणत होता है । क्रोध रजोगुणका कार्य है ।
 प्रथम सङ्गरूप वासनासे अभिलाष उठता है । किसी
 कारणसे अभिलाष पूर्ण न होने पर क्रोधरूपमें परिणत
 होता है । क्रोधान्ध व्यक्ति कुछ व्यतीत दूसरा कोई कार्य
 कर नहीं सकता । क्रोधी व्यक्ति अंधे और बहरेकी भांति
 चेतन रहते भी अचेतनकी तरह कोई भी कर्तव्य स्मिर
 करनेमें असमर्थ होता है । हितोपदेश उसके कानमें
 पहुंच नहीं सकता । क्रोधने इसी प्रकार सम्मोह होता
 है । मोह होनेसे स्मृति बिगड़ जाती है । स्मृतिनाशसे
 बुद्धि नष्ट होती है । बुद्धिनाश होनेसे विनष्ट होना
 पड़ता है । सभीके लिये क्रोध परित्याग करना उचित
 है । क्रोध परित्याग करनेका प्रधान उपाय समा ही
 है । (नीतिशास्त्र)

क्रोधका संस्कृत पर्याय क्रोध, असमर्थ, रोष, प्रतिघ,
 हट, क्रोत्, आसर्ष, भीम, क्रोधा और द्रवा है ।

पुराणोंके मतमें सर्वप्रथम ब्रह्माकी भ्रूसे क्रोध
 निकला है । शरीर मध्यस्थित दुष्ट रिपुर्वीके अन्तर्गत
 यह भी एक रिपु है ।

“काम क्रोध मद मोह न जाके ।

तात निरन्तर वय में ताके ॥” (तुलसी)

हेम, हर, हृषि, त्वज, भाम, एह, हर, तपुषी, जर्णि, मन्यु, और व्यथिः—क्रोधके एकादश नाम हैं ।

२ वस्त्रविशेष । ज्योतिःशास्त्र प्रसिद्ध षष्टिसंवत्सरीमें एक वस्त्र है । यह वस्त्र पानेसे सकल जगत् भाकुल हो जाता और प्राणियोंमें क्रोध अधिक दिखाता है ।

क्रोधकृत (सं० त्रि०) क्रोधं करोति, क्रोध-कृ-क्षिप् ।
१ क्रोधकारी, गुस्सा करनेवाला । २ परमेश्वर ।

(विष्णुपराय)

ईश्वरके क्रोधका कारण न रहते भी जो व्यक्ति उसकी आज्ञाका प्रतिपालन अर्थात् अपना कर्तव्य कर्म नहीं करता, जगत्पिता परमेश्वरका उस पर क्रोध रहता है । यह प्राणियोंके अदृष्टानुसार ही हुआ करता है ।

क्रोधज (सं० पु०) क्रोधात् जायते, क्रोध-जन-उ ।

१ क्रोधसे उत्पन्न होनेवाला मोह । (त्रि०) २ क्रोधसे उत्पन्न, गुस्सेसे निकला हुआ । खलता, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया (गुणीके प्रति दोषारोप,) अर्थदूषण (रुपये पेसेकी चोरी), बाक्यपाठ्य और दण्डपाठ्य इन पाठोंका नाम क्रोधज गण है । (मनु ७।४८)

क्रोधज्वर (सं० पु०) क्रोधजन्य ज्वर, गुस्सेका बुखार ।

क्रोधन (सं० त्रि०) क्रोध-युच् । क्रोधमन्त्राद्ये भाष्य । पा १।१।५१।

२ क्रोधयुक्त, गुस्सासे भरा हुआ, पाग-बबूला । इसका संस्कृत पर्याय—अमर्षण, क्रोधी, क्रोधी और रोषण है ।

(श्वेताश्वतार १५६)

(पु०) २ क्रोधिकका एक पुत्र । यह गर्गसुनिके शिष्य

थे । (हरिवंश २१२५०) ३ कोई कुसुवंशीय राजा । इनके पुत्रका नाम देवातिथि था । (भागवत ८।२२।१११)

४ ज्योतिःशास्त्रके षष्टिसंवत्सरीमेंसे एक । तन्त्रके मतानुसार इस वर्षमें रोग, मरण, दुर्भिक्ष, विरोध और प्राणियोंकी नानाविध विपद् होती है । ५ एक तन्त्रोक्त भैरव ।

क्रोधना (सं० स्त्री०) क्रोध-युच् स्त्रियां टाप् । १ कोप

वती । इसका संस्कृत पर्याय—भामिना और चण्डी है ।

(रामायण २००।१०) २ अग्निपर्णीकता, गंडवना ।

क्रोधनीय (सं० त्रि०) क्रोध्यते ऽनेन, क्रोध करने अनी-यर् । क्रोधकारण, गुस्सा दिखानेवाला । (रामायण २।४१।५)

क्रोधमय (सं० त्रि०) क्रोधप्रचुर, अधिक क्रोधविशिष्ट, गुस्सावर ।

क्रोधमूर्च्छित (सं० त्रि०) क्रोधेन मूर्च्छितः, ३-तत् ।

यहां क्रोधो मूर्च्छितो बहुस्त्रीभूतो यस्य बहुव्री० ।

१ अतिक्रोध, निहायत नाराज, गुस्सेसे बेहोश । (रामायण १।१।४८) (पु०) क्रोधः क्रोधमय इव मूर्च्छितः, ।

२ चोरानामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चोज, चोया ।

क्रोधवन्त (द्वि० वि०) क्रोधमय, नाराज ।

क्रोधवर्धन (सं० त्रि०) क्रोधं वर्धयति, वृध-वृध्-ल्, २-तत् ।

१ कोपवर्धक, गुस्सा बढ़ानेवाला । (पु०) २ कोई असुर । (हरिवंश १६१५०) यह असुर भारतके बुद्धकाल-

को दण्डधार नृप नामसे अचतीयं हुआ था ।

(भारत, १।६०५०)

क्रोधवश (सं० पु०) क्रोधस्य वशोऽधीनत्वम् । १ क्रोधकी

अधीनता, गुस्सेकी पावन्दी । (मनु ९।२१४)

२ महीतलमें अवस्थित अनेक फणाविशिष्ट काट-

वेय नामक एक सर्प । (भागवत ५।२४।१८)

हिन्दीमें यह शब्द क्रियाविशेषण जैसा भी व्यवहृत

होता है ।

क्रोधवशा (सं० स्त्री०) कश्यपकी एक पत्नी (हरिवंश १५०)

इनके गर्भसे दन्द्शूक प्रभृति सर्पोंकी उत्पत्ति हुई ।

(भागवत ६।१८)

क्रोधसम्भव (सं० पु०) क्रोधः सम्भरोऽस्य, बहुव्री० ।

१ मोह । क्रोधस्य सम्भवः, ६-तत् । २ कोपकी उत्पत्ति,

गुस्सेका उठान । (चातक्य रघुनन्दन)

क्रोधहन्ता (सं० पु०) एक असुर (हरिवंश ४२५०)

क्रोधहा (सं० पु०) क्रोधं हन्ति, हन्-क्षिप् । १ विष्णु ।

(विष्णुपराय) (त्रि०) २ कोपनाशक, गुस्सेकी मिटानेवाला ।

क्रोधा (सं० स्त्री०) क्रोध स्त्रियां टाप् । दक्षराजकी एक

कन्या । (भारत १।६५।१२)

क्रोधान्वित (सं० त्रि०) क्रोधेन अन्वितो युक्तः, ३-तत् ।

क्रोधयुक्त, नाराज ।

क्रोधात् (सं० त्रि०) क्रोध बाहुल्यकात् आत्तुच् । कोप-

शील, गुस्सावर, बिगड़ उठनेवाला । (सप्तत)

क्रोधित (हि० वि०) क्रुद्ध, नाराज ।

क्रोधी (सं० त्रि०) क्रोध-विनि यद्वा क्रोध चक्षुष्ये इतिः ।

१ अल्पमें ही जिसको क्रोध उत्पन्न हो, थोड़ेमें ही बिगड़ उठनेवाला, गुस्सावर । सुश्रुतके मतमें वायुप्रकृति कोग ही अधिक क्रोधी होते हैं । (पु०) २ मन्त्रिष, भैंसा ।

क्रोधीशभैरव (सं० पु०) भैरवतन्त्रकार ।

क्रोश (सं० पु०) क्रुश भावे घञ् । १ रोदन, रुलाई । २ आह्वान, पुकार, बुलावा । क्रोशति यतः, अपादाने घञ् । ३ कोस, दो मील । कोलावतीके मतमें चार हाथ-का एक दण्ड और दो हजार दण्ड पर्यात् आठ हजार हाथोंका एक कोस होता है । मार्कण्डेय-पुराणके मतसे चार हाथका एक धनुः और हजार धनुःका एक कोस होता है—

“चतुर्दशो धनुर्दशो मालिका तदुभयम् च ।

क्रोशो धनुःसहस्रं च ॥” (हिमा० द्वा० मास० ०)

क्रोशशब्दका मूल अर्थ ‘आह्वान’ देखनेसे है और इस-लिये ज्ञात होता है पहले किसी स्थानसे किसीको चीत्कार करके बुलाने पर वह शब्द जितना दूर जाता, एक कोस कहलाता था । आज भी गुजरात और जनकपुर प्रान्त-में गायको पुकार जितना दूर जाती, वही कोस कहलाता है । साइबेरियामें स्थान स्थान पर इसी क्रोश शब्दका अपभ्रंश ‘कियोसेम्’ (Kiosses) व्यवहृत होता है । पश्चिममें कोस दो प्रकारका होता है—कच्चा कोस और पक्का कोस । परिमाणमें बड़ी गड़बड़ी रहने-से अकबर बादशाहने ५००० इलाही गजोंका एक कोस बाँध दिया था । (फार्देन-चकवरी) मज देखो ।

४ सुहृत् । (शक्तिचक्रमतक ६ पटल)

क्रोशताल (सं० पु०) क्रोशं व्याप्य तालः शब्दो यस्य, बहुव्री० । ठक्का, ठोल ।

क्रोशध्वनि (सं० पु०) क्रोशं व्याप्य ध्वनिरस्य, बहुव्री० । ठक्का, ठोल ।

क्राशन (सं० स्त्री०) क्राश-च्यट् । १ क्रन्दन, कातर-ध्वनि । २ आह्वान, पुकार ।

क्रोशयुग (सं० स्त्री०) क्रोशस्य युगम्, ६-तत् । मन्वति, दो कोस ।

क्रोशी (सं० त्रि०) क्रुशि-विनि । शब्दकारक, पावाक लगानेवाला ।

क्रोष्टपुच्छिका (सं० स्त्री०) पुच्छिपर्णी, पिठवन ।

क्रोष्टा, क्रोष्टु देखो ।

क्रोष्टु (सं० पु०) क्रोशति रीतिः, क्रुश-तुम् । चित्तनिर्गमि मसिचक्षुषिधानक्रुशिमन्तुम् । उच्यते १०० । १ शृगाल, सियार । (बाजसनेवसं० २४।३२) २ यदुवंशोय नृपतिविशेष । गान्धारी और माद्री नाम्नी इनके दो पत्नियाँ रहीं । इसी वंशमें जयत्पावन भगवान् श्रीकृष्णने जन्म लिया था ।

(हरिवंश २३ च०)

क्रोष्टुक (सं० पु०) क्राष्टु, स्वार्थे कन् । १ शृगाल, गीदड़ । (भारत १।१४०) २ शृगालकीली, भड़बेरी ।

क्रोष्टुकर्ष (सं० पु०) किसी घामका नाम । यह शब्द पाणिनिके तत्त्वशिक्षादि गणान्तर्गत है ।

क्रोष्टुकपुच्छिका (सं० स्त्री०) क्रोष्टुकस्य शृगालस्य पुच्छमिव पुच्छमस्यस्याः, क्रोष्टुकपुच्छ-ठन्-टाप् चकारस्य इकारः । १ पुच्छिपर्णी, पिठवन । २ गोशोमिका, पथरी ।

क्रोष्टुकपुच्छी, क्रोष्टुकपुच्छिका देखो ।

क्रोष्टुकमान (सं० पु०) किसी व्यक्तिका नाम । यह शब्द यस्कादि गणान्तर्गत है । इसके उत्तर अपत्यार्थमें जो प्रत्यय आता, पंक्ति और स्त्रीवर्णिके बहुवचनमें उसका लोप हो जाता है ।

क्रोष्टुकमूलिका, क्रोष्टुकपुच्छिका देखो ।

क्रोष्टुकमिखला, क्रोष्टुकपुच्छिका देखो ।

क्रोष्टुकशिरः (सं० स्त्री०) एक वातरक्तज रोग । जानु-के मध्य वातरक्तजनित, प्रतिशय वेदनाविशिष्ट और शृगालके मस्तक-जैसा जो शोथ उठ जाता, क्रोष्टुकशिरा कहलाता है । शिरावेधकी प्रणालीसे गुल्फके चार अङ्गुल ऊपर शिर बिड़ कर देने पर क्रोष्टुकशिरा रोक-का प्रतीकार होता है । (सुश्रुत) इस रोगमें गुड़ूची, गुग्गुलु और त्रिफला वा छद्दददारकको पानी, दूध या पण्डीके तेलके साथ पोना चाहिये । (चैद्यनियन्त्र)

क्रोष्टुकशीर्ष, क्रोष्टुकशिरः देखो ।

क्रोष्टुचण्डिका (सं० स्त्री०) चण्डिसंहारक ।

कोट्टपाद (सं० पु०) एक ऋषि । यह शब्द पाणिनि के यस्क गणान्तर्गत है ।

कोट्टफल (सं० स्त्री०) कौटोः प्रियं फलम् । इक्षु, दी-
वृक्ष ।

कोट्टमान (सं० पु०) किसी ऋषिका नाम । यह शब्द यस्कादि गणके अन्तर्गत है ।

कोट्टमाय (सं० पु०) एक ऋषि । यह यस्कादिगणा-
न्तर्गत एक शब्द है ।

कोट्टविद्या (सं० स्त्री०) कौटुभिः विद्या प्राप्ता इव ।

१ वृद्धिपर्वी, पिठवन । इसका संस्कृत पर्याय—पृथक्-
पर्वी, चित्रपर्वी, अहिपर्वी और सिंहपुच्छी है ।

२ वृक्षविशेष, कोई पेड़ ।

कोट्टशीर्ष, कोट्टकशिरः देखो ।

कोट्टहित (सं० पु०) चोरा नामक गन्धद्रव्य, चोया ।

कोट्ट (सं० स्त्री०) वृक्षिकासी, बिलुवा ।

कोट्टेष्ट (सं० पु०) कौटोः प्रिय इष्टः पृषोदरादिवत्
साधुः । खेतेश्वर, सफेद गन्ना ।

कोट्टो (सं० स्त्री०) कोट्ट-डोप् कोट्ट-पादेशः । १ शुक्ल-
भूमिकुष्माण्ड । २ लाङ्गलिका । ३ मृगाली । ४ पिप्पली ।
५ वाराहीकन्द । ६ वृक्षिकाला ।

कौश (सं० पु०) कौश स्वार्थे षण् । १ प्रवजातीय वक्त्रपत्नी
कराङ्कुल चिह्नित । (रामायण १।१।१५) इसका संस्कृत
पर्याय—कुङ्कु, कुश, कुशा, कौश, काशिक, काशोक
और कलिक है । कौशका मांस वृष्य, अतिशय रुचिकर,
दीपन और अश्वग्री, शोष, मूर्च्छा तथा कासरोगनाशक
है । (हारित) २ पद्मवीज, कमलगट्टा । ३ कुररपत्नी ।
४ कोई पर्वत । (तैत्तिरीय ब्राह्मण १।४।१९) हरिवंश के मतमें
यह पर्वत हिमालयका पौत्र और मैनाकका पुत्र है ।
कौश अतिशय शुभ्रवर्ण है । इस पर्वतमें नानाविध रत्न
मिलते हैं । (हरिवंश १८।१९—२४)

५ मयदानवका पुत्र, कोई असुर । यह असुर कौश
हीमें रहता था, कार्तिकेयसे लड़ने पर निहत हुआ ।
कौश देख अपनो राजधानीके निकट किसी पर्वत पर
अशौचिक कर्म करता था । देखके नामानुसार उक्त
पर्वतका भी नाम कौश पड़ गया । (ब्रह्मवैवर्तिका) ६ शाक-
पूषिके शिष्य । यह एक निरुक्तज्ञात है । (विष्णु-१।४।९)

७ पर्वतोंकी कोई ध्वजा । ८ कोई राक्षस । ९ सप्त-
द्वीपके अन्तर्गत एक द्वीप । इसका परिमाण सोलह
लक्ष योजन है । कौशद्वीपकी चारो ओर दक्षिण
समुद्र लगा है । विष्णुपुराणके मतमें यूपतिमान् नामक
कोई प्रवक्षपरक्रान्त नरपति इसके अधिपति थे । उनके
सात पुत्र हुए । राजाने कौशद्वीप सात भाग करके
अपने पुत्रोंको दिया था । जिस राजकुमारने जहाँ
राजत्व किया, उसीके नामानुसार उस अंशका नाम
रखा गया । यह सातों भाग सात वर्षों-जैसे विख्यात
हैं । सातों वर्षोंके नाम—कुशल, मन्दग, उष्ण, पीवर,
अन्धकारक, सुनि और दुन्दुभि हैं । कौश, वामन, अन्ध-
कारक, हरशैल, देवावृत्, पुष्करिकवान् और दुन्दुभि-
सात वर्ष पर्वत हैं । इनमें एक एक यथाक्रम एक एक
वर्षमें अवस्थित है । कौशद्वीपमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य
और शूद्र चारवर्णोंका वास है । इस देशमें बहुत सी
नदियाँ हैं । उनमें गौरी, कुमुदती, सन्ध्या, रात्रि,
मनोजवा, स्वाति और पुष्करिका—सात नदियाँ प्रधान
हैं । कौशद्वीपवासी जनार्दन और योगी रुद्रदेवकी
उपासना करते हैं । (विष्णुपुराण) भागवतके अनुसार
कौशद्वीपकी चारो ओर चौरसमुद्र है । इस द्वीपमें
कौश नामक एक प्रधान पर्वत खड़ा है । उसीके नामानु-
सार द्वीपका भी नाम कौश पड़ा है । प्रियव्रतके पुत्र
वृत्तवृत्त नामक नरपति इस द्वीपमें राजत्व करते थे ।
उनके सात पुत्र हुए । नरपतिने यथासमय द्वीपकी
सात भागोंमें विभक्त करके उन्हें अर्पण किया था ।
उन्हींके पुत्रों नामानुसार यह सातों अंश सात वर्ष—
जैसे विख्यात हैं । वर्षोंके नाम—आम्र, मधुरह, मेघपृष्ठ,
सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितवर्ण और वनस्पति हैं । इनके
शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपवर्द्धन, नन्द, नन्दन और
सर्वतोभद्र सात वर्ष पर्वत हैं । इनसे प्रत्येक यथाक्रम
एक एक वर्षमें अवस्थित है । अभया, अमृतोवा,
आयंका, तीर्थवती, रूपवती, पवित्रवती और शुक्ला—
सात प्रधान नदियाँ हैं । (भागवत ५।२०।१८-२२)

यह स्त्रीकार न करनेसे गड़बड़ी । मिटनेकी कड़ा
सन्भावना है कि कल्पभेदसे एक कौशद्वीप ही नाना-
प्रकार होता है ।

(क्रौ०) १० सामविशेष । सामगेय गानके १५ प्रपाठक—द्वितीयाधिका ८ और ८ गान । ११ महात्मा सारसका बसाया हुआ कोई नगर । यह सञ्जाद्रिके पश्चिम पार अवस्थित है । (हरिवंश)

क्रौञ्चक (सं० द्वि०) क्रौञ्चकीयायां भवः, क्रौञ्चकीया-अण् ङप्रत्ययस्य कोपः । निलकादिभान्धस्य लुक् । पा ३।४।१५२ । क्रौञ्चकीयासे उत्पन्न । क्रौञ्चकीयादेव ।

क्रौञ्चदारण (सं० पु०) क्रौञ्च असुरं पर्वतं वा दारयति, क्रौञ्च-ट्-णिच्-ञ्च् । कार्तिकेयने क्रौञ्चपर्वत विदारण किया था । इसीसे उनका नाम क्रौञ्चदारण पड़ गया । उपाख्यान इस प्रकार है—किसी क्रममें क्रौञ्च पर्वत निम्नान्त दुर्गत्त बन गया । उसके दौरात्मासे सभी होप-वासो उत्पन्नित हो कार्तिकेयके शरणागत हुए । देव-सेनापति कार्तिकेयने उसे दशानकी प्रतिष्ठा की थी । उन्होंने श्वेतगिरिको लक्ष्य करके वाण मारा । उसी वाणसे क्रौञ्चका सकल शरीर क्षत विक्षत हो गया । वह घोरतर आर्तनाद करने लगा । उसके दुःखसे दुःखित हो दूसरे पर्वत भी रोये थे । हंस, गृध्र प्रभृति वनचर उसकी माया छोड़ सुमेरु पर्वतकी चले गये । कार्तिकेय चबड़ानेवाले लड़के न थे । उन्होंने खड्ग उठा क्रौञ्च पर दारुण आघात किया था । उस चोटसे क्रौञ्च-का मुँह टूट पड़ा । क्रौञ्चने भीत हो पृथिवीकी छोड़ा था । (भारत ३।२२४।१२-१६) मृगेन्द्रसंहिताको देखते उपाख्यान अन्यरूप है—क्रौञ्चद्वीपमें क्रौञ्च नामक कोई दुर्गत्त असुर रहता था । उक्त पर्वत पर ही उसका दुर्ग भी रहा । क्रौञ्चद्वीपवासियोंने असुरका दौरात्मा सह न सकने पर देवताओंसे कहा था । देवोंके समाज-से असुरकी निकास देनेके लिये कार्तिकेय भेजे गये । असुर सहजमें निकलना न चाहता था । उसके साथ कार्तिकेयका युद्ध हुआ । युद्धमें परास्त हो क्रौञ्चासुरने दुर्गका आश्रय लिया था । देवसेनापति कार्तिकेयने अपन प्रसाधारण कौशलसे किला तोड़ असुरकी मार डाला । (मृगेन्द्रसंहिता) किसी किसी पुराणके मतमें क्रौञ्चासुर तारकासुरका प्रधान सेनापति था ।

क्रौञ्चद्वीप (सं० पु०) क्रौञ्चवासो द्वीपश्चेति, कर्मभा० । अस द्वीपान्तर्गत एक द्वीप । क्रौञ्च द्वीप ।

क्रौञ्चनायक (सं० पु०) पञ्चवीज, कमलगट्टा ।

क्रौञ्चपक्ष (सं० पु०) घोटकविशेष, कोई घोड़ा । (रामायण ५।१२।१५)

क्रौञ्चपदा (सं० स्त्री०) ऋग्वेदविशेष । इसके चारो चरण समान होते हैं । प्रत्येक चरणमें पञ्चोस-पञ्चोस स्वर-वर्ण रहेंगे । उनमें प्रथम, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, नवम, द्वादश और पञ्चविंशतितम अक्षर गुरु और अपर सकल ऋष्य होते हैं । पञ्चम, दशम, सप्तदश और शेष अस्तिम अक्षरमें यति स्थान है । (इतरनाकर)

क्रौञ्चपदी (सं० स्त्री०) एक तीर्थ । इस तीर्थमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्याका पाप विनष्ट होता है । (भारत, अनुशासन २५ अ०)

क्रौञ्चपुर (सं० स्त्री०) यदुवंशीय सारस नृपति-निर्मित एक नगर । इस नगरमें चम्पक और अशोकके पेड़ ही अधिक हैं । क्रौञ्चपुरकी मृत्तिका ताम्रमय है । यह सञ्जाद्रि समीपस्थ दक्षिणापथके करवीरपुरके निकट अवस्थित है । खट्वाङ्गी नाम्नी नदी पार होके क्रौञ्चपुर पहुँचते हैं । इस नगरमें अनेक तपोधन मुनियोंका आश्रम था । (हरिवंश ६ और ८५ अ०)

क्रौञ्चबन्धम् (सं० अश्व०) क्रौञ्च-बन्ध-नमुक् । संज्ञानाम् पा ३।४।४२ । बन्धविशेष, एक आसन । (सिद्धान्तकोशे)

क्रौञ्चरन्ध्र (सं० स्त्री०) क्रौञ्चस्य क्रौञ्चपर्वतस्य रन्ध्रम्, ६-तत् । क्रौञ्चपर्वतका एक रन्ध्र, या छेद । कवियोंके मतमें वर्षाकालको हंस आदि इस देशमें नहीं रह सकते, वह क्रौञ्चरन्ध्रकी राह मानस-सरोवर पहुँचते हैं । (मेघदूत १)

परशुरामने धूजटिके निकट अस्त्रविद्याका अभ्यास किया था । कार्तिकेयकी गर्व हो गया—इसमें क्रौञ्चपर्वत विदारण किया है । तेजस्वी परशुराम यह सह न सकें । उन्होंने क्रौञ्चपर्वतकी एक वाण मारा, जो उसे इस पारसे फोड़ कर उस पार निकल गया । प्राचीन कवियोंके मतमें उसी रन्ध्रकी राह हंस प्रभृति मानस-सरोवरकी चले जाते हैं । (मेघदूतटीका, मणिनाथ)

क्रौञ्चकोहित (सं० द्वि०) हिङ्गुल, ईश्वर ।

क्रौञ्चवधू (सं० स्त्री०) क्रौञ्चानां वधूः, ६-तत् । स्त्रीवक, मादा बगला ।

क्रीडवान् (सं० पु०) क्रीडा वक्रभेदाः बाहुव्येन सम्यग्र
क्रीड-तुप् मस्य वः । १ पर्वतविशेष, एक पहाड़ । (हरि-
वंश १०२) (त्रि०) २ क्रीडयुक्त, क्रीडपर्वत वा
क्रीडपक्षी रहनेवाला ।

क्रीडसूदन (सं० पु०) क्रीडं मयदैत्यसुतं सूदयति
नाशयति, क्रीडसूद-णिष्-त् । कार्तिकेय, मय दैत्यके
पुत्र क्रीड असुरको मारनेवाले । (सप्त)

क्रीडा (सं० स्त्री०) क्रीड-टाप् । १ क्रीडभार्या, मादा
बगला । २ पद्मवीज, कमलगट्टा । किसी किसी आभि-
धानिकके मतमें क्रीड शब्दके उत्तर टाप् नहीं पाता,
छीप् लग कर क्रीवो शब्द बन जाता है । क्रीडिण्य देखो ।

क्रीडादन (सं० स्त्री०) षट् कर्मणि षट् क्रीडस्य
पदमम्, इ-तत् । १ पिप्पली, पीपल । २ मृगाल, कमल
की छड़ी । ३ चेंचुली, घुंघरी । ४ चिष्टक टण, एक घास । यह गुरु, अजीर्णकारी और शीतल है ।

(राजवल्लभ)

क्रीडादनी (सं० स्त्री०) पद्मवीज, कमलगट्टा ।

क्रीडारण्य (सं० स्त्री०) जमखानसे तीन कोस दूर
घोर मतङ्गाश्रमसे तीन कोस पश्चिम अवस्थित एक वन ।

(रामायण १।६६ सं०)

क्रीडारति (सं० पु०) क्रीडस्य परातिः, इ-तत् ।
१ कार्तिकेय । २ परशुराम ।

क्रीडारि (सं० पु०) क्रीडस्य परिः, इ-तत् । १ कार्ति-
केय । २ परशुराम । क्रीडारिपु, क्रीडशत्रु, प्रवृत्ति शब्द
भो इसी अर्थमें व्यवहृत होते हैं ।

क्रीडावक (सं० पु०) क्रीडस्येवावकः । व्यविशेष ।
क्रीडवक जैसे आकारविशिष्ट अवयवों को क्रीडा-
वक कहते हैं ।

क्रीडिक (सं० पु०) क्रीडिकाके पुत्र एक ऋषि ।

(शतपथभा० १४।८।४।१२)

क्रीडी (सं० स्त्री०) १ वकी, मादा बगला । २ कश्यपकी
एक कन्या । कश्यपकी तात्या नागकी पत्नीने यह दुष्टत्यक्त
हुई थीं । पुराणानुसार क्रीडी उल्लुखी को आदि माता
रहों ।

क्रीड (सं० त्रि०) क्रीडस्व इदम्, क्रीड-षण् । शूकर-
सम्प्रदाय, सूपरका ।

क्रीडि (सं० पु०) एक ऋषि । (पत्तिनि)

क्रीडा (सं० स्त्री०) क्रीडेरपत्यं स्त्री, क्रीडि-षण् षण्
आदेशश्च । क्रीडादिभाष । पा ४।१।८० । क्रीडिकी कन्या ।

क्रीर (सं० स्त्री०) क्रूरस्य भावः क्रूर-षण् । क्रूरता,
खलता, पाजीपन । (शकुन्तल)

क्रोशशक्ति (सं० त्रि०) क्रोशशतं गच्छति, क्रोश-शत-
ठञ् । क्रोशशतयोजनयतयोदपसंख्यानम् । पा ५।१।७४ वा । १ शत-
क्रोश गमनकारी, सौ कोस जानेवाला । क्रोशशतादिभ-
गमनमहेति । २ शतक्रोश दूरसे आगत, सौ कोससे
आया हुआ । स्त्रीलिङ्गमें छीप् पानेसे क्रोशशतिकी
बनता है ।

क्रोष्टुकि (सं० पु०-स्त्री०) क्रोष्टुकस्य ऋषेरपत्यम् ।
१ क्रोष्टुक ऋषिके अपत्य । २ कोई प्राचीन ऋषि और
वैयाकरण । (निरुक्त पार) ३ गर्गके पुत्र । यह एक ज्योति-
र्विद् थे । बृहत्संहिता (१।८) को टीकामें भट्टोत्पलने
इनका मत उद्धृत किया है । ४ त्रिगर्गछीके मधी-
नस्य चन्द्रियजातिविशेष । (पा ५।१।१६ कारिका)

क्रोष्टायण (सं० पु०) क्रोष्टोरपत्यम्, क्रोष्टु-फक् क्रोष्टु-
स्थाने क्रोष्टु आदेशश्च । क्रोष्टुके अपत्य । स्त्रीलिङ्गमें
छीप् होता है ।

क्रोष्टायणक (सं० त्रि०) क्रोष्टायणेन निर्मितः, क्रोष्टायण-
बुज् । क्रोष्टायण द्वारा निर्मित, क्रोष्टुके लड़केका बनाया
हुआ ।

क्रोष्टायण्य (सं० पु०) क्रोष्टा गोत्रापत्यम्, क्रोष्टी-फक्
ततः स्वार्थे ण्य । क्रोष्टुके गोत्रोत्पन्न ।

क्रादि (सं० पु०) क्री आदिर्यस्य, बहुव्री० । क्री आदि
कई धातु ।

क्रथन (वै० स्त्री०) क्रथ वधे षट् । छुटके मध्य अप-
वर्तन । (वेदोपनिषद् उपर, १८।१)

क्रदवान् (वै० पु०) क्रदविशिष्ट । (अथर्व ७।८०।१२)

क्रन्द (सं० त्रि०) क्रन्द रोदने षञ् ततः अर्थ आदित्वात्
षच् । १ रोदनयुक्त, रोनेवाला । (पु०) २ रोदन,
रुलाई ।

क्लब (सं० पु० Club) समाज, सहभोजियों का संसर्ग,
सहमन, मजलस ।

क्लम (सं० पु०) क्लम भाषि क्लम । मोदीपीपदेशक पा ७।१।१६

उक्त सूत्रसे वृद्धि निषेध है। १ पायास, क्षान्ति, यकावट।
अम न करके भी देखें अमबोध हीने और दीर्घशास
न चलनेसे क्षम कहलाता है। इसमें विषयज्ञानमें भी
बाधा हो जाती है। (संयुक्त शरीर ४५०)

२ खेद, सुस्ती, ठीलापन, सख्त मिहनतके पीछे
पानिवाली यकावट।

क्रमध (सं० पु०) क्रमधयच० पायास, मिहनत।

क्रमी (सं० त्रि०) क्रम-विष्णु। क्षान्तियुक्त, यकामांदा।

क्लर्क (५० पु०—Clerk) लिपिकार, लेखक, सुंशौ।

क्लाइव—बंगालके एक शासनकर्ता (Governor)।

(Lord Clive, Baron of Plassey.) यह
साहसी तथा अध्वसायी सैनिक पुरुष और भारतमें
ब्रिटिश साम्राज्यके भित्तिस्थापनकारी रहे।

१७२५ ई०की विलायतमें सर्पसायरके अन्तर्गत मार्केट
ह्रेटनके निकटवर्ती टिकी नामक स्थानमें इन्होंने जन्म
किया। यह रिचार्ड क्लाइवके सर्वश्रेष्ठ पुत्र थे। इनकी
माताका नाम रेवेका था। पितामाताकी अवस्था उसभी
सङ्कतिपन्न न होनेसे वास्तविकताकी क्लाइव अपने मौसा
बेकी साहबके घरमें रहते थे। बेकी साहबने लिखा है सात
वर्षके वयसमें ही क्लाइवकी ज्यादा मारपीट अच्छी लगती
थी। मौसाके घरसे यह लड़कके स्कूलमें भरती हुए।
इस विद्यालयके शिक्षक डाक्टर इटन साहबने भविष्यद्-
वाणी की थी—क्लाइव दुर्लभ होते भी यदि जी जायेंगे,
तो अपनी धीरशक्तिके प्रभावसे किसी समय एक बड़े
आदमी कहलायेंगे। एकादश वर्ष के वयसमें यह लड़क
विद्यालयसे मार्केट ह्रेटनके स्कूलमें गये और वहां
अपने साहस और दुर्लभताके लिये विशेष परिचित
हुये। क्लाइव सभी समय विद्यालयके सहपाठियोंकी
अपनी निर्भीकता और प्रभुत्व देखाते थे। अोजसिता,
साहसिकता और मनका सतेजभाव इनमें इतना प्रवक्त
रहा कि उस वास्तविकताके चरित्रकी श्रेष्ठतासे भविष्यत्
वाक्यांश निःसन्देह उज्ज्वल आलोकमय देख पड़ता
था। मरुजके अकर्मण्य दुर्लभ बालकोंकी इकट्ठा कर
क्लाइवने गुणोंका एक दल बनाया। यह दलके फल-
विक्रताधी और दूसरे दूकानदारोंसे कराररूप फल
कीर पैस (Half-pence) वसूल करती और किसी

की चोरी न होनेके दायी रहते थे। किसी दिन देखनेमें
पाया दुःसाहसिक 'बब' क्लाइव मार्केट-ह्रेटनके गिरजाकी
चूल्होंके उपरिस्थित प्रस्तरचत्वर पर खच्छन्द बैठे हैं।
फिर कई वर्ष लन्दनमें रह मर्चण्ट टेकरके स्कूल और
पीछे हार्टफोर्डसायरके हेमेल हेमस्टेड स्कूलमें पढ़
कर इन्होंने विद्याका शेष कर दिया। इनका लिखना
पढ़ना ठीक न हुआ। स्वभाव दीवसे क्रमशः यह एक
विद्यालयसे दूसरे विद्यालयकी पढ़ावाये जाते थे। परन्तु
पढ़नेके बदले प्रत्येक विद्यालयमें क्लाइव दुष्ट बालकों-
के प्रधान दलपति बनते रहे। ऐसी मूर्खता, दान्धि-
कता और यथेष्टकारिता देख इनके पितामाता अपने
एकमात्र आश्रयस्थल राबर्ट क्लाइवकी परित्याग कर देने-
से कुण्ठित न हुए। १७४३ ई०की उन्होंने ईष्ट इण्डिया
कम्पनीके अधीन एक मुहरिरीकी लिये आवेदन किया
था। तदनुसार क्लाइवकी १८ वत्सर वयसमें मन्दाज
भाना पड़ा। पितामाताकी इच्छा थी कि वहां जाकर
लड़का अर्थोपार्जन करना सीखेगा।

ठीक एक वर्ष पीछे क्लाइव मन्दाज आ पहुँचे।
इस दीर्घयात्रामें युवा क्लाइवकी बड़ा ही कष्ट मिठा
था। बेतन वस्य लगने और उससे जायमें रूपया न
रहनेसे इन्हें कष्टपस्त होना पड़ा। इनके पिताने किसी
भले आदमीके नाम एक सिफारिशो बिछो दी थी।
किन्तु क्लाइवके मन्दाज पहुँचनेसे कुछ ही पूर्व वह मद्र
पुरुष इङ्ग्लेण्ड चले गये।

क्लाइव बहुत गर्वित रहे। इसीलिये मालूम पड़ता
है, प्रथम किसी अपरिचित व्यक्तिसे साथ इन्होंने आत्मप
नहीं किया। विशेषतः इनके—जैसे उद्यमशील और
साहसिक व्यक्तिके लिये वैसे लेखकका कार्य अच्छा
लगता न था। स्वदेशके लिये इन्होंने यहां जो दुःख
प्रकाश किया, कोमल और हृदयवादी रहा। मन्दाजमें
क्लाइवकी साख्यनाका एकमात्र विषय यह था कि
मन्दाज-शासनकर्ताके पुस्तकालयसे पढ़नेकी पुस्तकें
मिल जाते थे। वास्तविकतामें एकबारगी ही जिसे
पढ़ना अच्छा न लगे, युवावस्थामें उसका इतना परि
चामी बन विद्याभ्यासमें प्रवृत्त होना आवश्यक
विषय है। विदेशका कष्ट पढ़ने पर भी इनकी

भोजन-सुविधा का कोई ज्ञास न हुआ। वास्तविकता में विद्यालय के शिक्षकों से यह जैसा व्यवहार करते, यहां भी अपने उपपदस्थ कर्मचारियों के साथ वही चाल चलते थे। “लेखक-भवन” (Writer's Buildings) में रहते समय दो बार इन्होंने आत्महत्या की चेष्टा की, परन्तु दोनों मरतवा पिस्तौल की गोली इनके गले के पास से चकूती निकल गयी। इसी समय इन्हें अपना महत्त्व प्रकाश करने का अवसर मिला था। युरोप में अष्ट्रिया के सिंहासन पर गड़बड़ी पड़ी थी। मरिच शहर के गवर्नर लावोर्दो १७४६ ई० की मन्दाज का सेण्ट जार्ज दुर्ग देख कर बैठे। डुप्ले (Dupleix) ने रूपया लेकर किला न दिया था। उसी वक्त भले बादमियों की कंठ करके युवजय के गौरव स्वरूप सेण्ट जार्ज दुर्ग से पुंदिचेरी ले गये। इस विपद के समस्त क्लाइव ने समझमानी वेश से भाग सेण्ट डेविड दुर्ग में जाकर आश्रय लिया था। लेखक का काम अच्छा न लगने से इन्होंने कम्पनी के अधीन सैनिक विभाग में कार्य करने की प्रार्थना की। इनका आवेदन मान्य हो गया। उस समय क्लाइव की उम्र २१ साल थी। १७४८ ई० की तत्क्षोर के सिंहासन पर सेयदने प्रतापसिंह को बंठाया। प्रकृत उत्तराधिकारी सुजीही ने अङ्गरेज गवर्नर सेण्ट को कहा था। सुजीही के साहाय्य की मेजर लारिन्स ने देवीकोट घेर लिया। प्रताप ने अंगरेजों की दुर्बल देख आक्रमण किया था। क्लाइव ने प्राण बचा पलायन करके किसी प्रकार परित्याग पाया। मुंशीगरी की हालत में इन्होंने सेण्ट डेविड किले में एक दुर्दान्त सैनिक को सम्मुख-युद्ध में मार डाला। उस समय मेजर लारिन्स सैनिक विभाग के अफसर थे। वह क्लाइव के ऐसे वीरत्व पर चमत्कृत हुए। ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स में सन्धि स्थापित होने पर डुप्ले ने मन्दाज अङ्गरेजों की लौटा दिया था। क्लाइव फिर मुहर्रर हो गये। पीछे देशीयों से लड़ने के लिये मेजर लारिन्स के साहाय्यार्थ पुनर्बार सैनिक के कार्य में नियुक्त हुए।

१७४८ ई० की दक्षिणात्य के शासनकर्ता निजामुल मुल्क मुल्क मर गये। उनके पुत्र नासिरजङ्ग पर शासन-भार अर्पित हुआ। किन्तु देववश निजाम के दोहित्र मुजफ्फरजङ्ग शासनभार धारण करने विनये थे। उसी

समय कर्णाट-शासनकर्ता के जामाता चांद साहब ने कर्णाट को देख ल करने के लिये उपद्रव मचाया। मुजफ्फरजङ्ग और चांद साहब दोनों ने अपना अपना खान लेने के लिये फरासीसियों से साहाय्य मांगा था। तदनुसार डुप्ले ने ४०० फरासीसी और २००० शिखित सिपाही भेज दिये। युद्ध में कर्णाट के पूर्वतन शासनकर्ता पनवर-उद्दीन का मृत्यु हुआ। उनके पुत्र मुहम्मद अली अल्पमात्र सैन्य लेकर त्रिशिरापल्ली भाग गये। दक्षिण में डुप्ले ने फयताबाद में फरासीसी गौरव का जयस्तम्भ स्थापन किया था। उसको चारों ओर चार प्रस्तरफलकों पर नासिरजङ्ग का पतन, मुजफ्फरजङ्ग का राज्यलाभ और फरासीसी शासनकर्ता डुप्ले का यशः कीर्तित हुआ। मुहम्मद अली को कर्णाट का शासनभार सौंपने पर अंगरेजों ने यत्न लगाया था। मन्दाज के सेना-नायक लारिन्स उस समय उपस्थित न रहे। चांद साहब ने फरासीसियों के साहाय्य से त्रिशिरापल्ली को अवरोध किया। इस बार अज्ञातवीर्य, कौशली और धैर्य-सम्पन्न युवा क्लाइव का अदृष्ट सुप्रसन्न हो गया। इन्होंने २५ वत्सर में पदार्पण किया ही था कि यह कम्पनी के सेनानायक पद पर नियुक्त हुए। १७५१ ई० की चांद साहब के गोलकुण्डा घेरते समय क्लाइव कप्तान गिन-जन के साथ पराजित हो भाग आये थे। पीछे इन्होंने पिगट साहब के साथ वरदाचल का मन्दिर देख ल किया। २४ साधियों को लेकर क्लाइव लौट ही रहे थे, कि पल्लिगार सिपाहियों ने राह में इन पर आक्रमण किया। अधिकांश साधी मारे गये। परन्तु सौभाग्यवश से इन्होंने भाग कर आकरचा की। तत्पर यह एक दल सेना लेकर त्रिशिरापल्ली पहुँचे। राह में फरासीसी सैन्य से एक युद्ध होने पर फरासीसियों ने पराजय मान ली। क्लाइव निर्विघ्न त्रिशिरापल्ली पहुँच गये। उस समय सभी ने कहा था—कर्णाट-राजधानी आर्कट नगर आक्रमण करने के सिवा त्रिशिरापल्ली उद्धार का अन्य उपाय नहीं। परन्तु मन्दाज की सैन्यसंख्या प्रति अल्प रहो। तथापि क्लाइव ने साहस पर खेल कर २०० अंगरेजों और ३०० सिपाहियों के साथ आर्कट अधिकार किया। पलायित सैन्य दूर जा शिविर स्थापन करके फिर

दुर्ग लेनेका आयोजन कर ही रखा था, कि गभीर रात्रिको क्लाइवने सैन्य वहाँ पहुँच छावनी जला उनका पीछा किया। यह संवाद चांद साहबकी मिला था। उन्होंने अपने पुत्र राजासाहबकी १००० सेनाका अध्यक्ष बना कर अंगरेजोंके विरुद्ध आर्कंट भेज दिया। राजासाहबने फौजके साथ आकर आर्कंट घेरा था। ५० दिन तक घेरा पड़ा रहा, तथापि क्लाइव कुछ भी भीत न हुए। इसी प्रसंग वयसमें सतर्कता, सहिष्णुता और दक्षता सङ्कारसे क्लाइवने अवरोधको बचाया था। महाराष्ट्र-सरदार सुराजी राव प्रथम मुहम्मद अलीकी साहाय्य करेंगे-जैसे प्रतिश्रुत रहे, परन्तु फरासीसियोंका गौरव और अंगरेजोंकी हीनवीर्य देख अग्रसर हो न सके। शेष पर क्लाइवकी साहस और दृढ़ताके साथ दुर्ग रक्षा करते देख वह भी ६००० महाराष्ट्र सेना लेकर युद्धक्षेत्रमें उतर पड़े। राजासाहबने भीत होकर सन्धिका प्रस्ताव किया था। परन्तु क्लाइव किसी प्रकार सन्मत न हुये। फिर राजासाहब किला उड़ा देनेका उद्योग लगाने लगे। क्लाइव भी संवाद पाकर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हो गये। घोरतर युद्ध हुआ, परन्तु एक आदमी तक किलेमें घुस न सका। शत्रु-पक्षके बहुतसे सिपाही मारे गये। राजासाहबने विपद् देख रणमें कुछ प्रदर्शन किया था। कितनी ही तोपें और बारूद अंगरेजोंके हाथ लगीं। सेण्ट जार्ज दुर्गमें क्लाइवकी जयध्वनि प्रतिध्वनित हुई। मन्द्राजसे २०० अंगरेज और ७०० देशी सिपाही फिर इनके पास भेजे गये। इन्होंने नूतन सैन्य लेकर तिमोरीका दुर्ग अधिकार किया और राजासाहबकी फिर परास्त करके उनका रूपया पैसा छीन लिया। क्लाइवने फरासीसियोंसे विना युद्ध काष्मीपुर छीना था। आरनी जयके पीछे क्लाइवने पराजित सैन्यके पीछे धावित हो उनका आक्रमण किया और राजासाहबकी दौलतका सन्दूक और १०००००० रु० निकाल लिया। फिर इन्होंने आरनीके ६०० सिपाहियोंकी अपनी फौजमें रखा था। आरनीके शासनकर्ता चांद साहबके बदले मुहम्मद अली अवाब-जैसे घोषित हुये। जब क्लाइवने देखा कि राजा साहबके आर्कंट उद्धार करनेकी चेष्टा हवा है तो एक

सेनादल लेकर कावेरीपाकके अभिसुख चम पड़े। राजा साहबका पलायित सैन्य और उनका साहाय्यकारी फरासीसी सेनादल कावेरीपाकके वनमें छिपा था। इन्होंने फरासीसी सिपाहियों पर सहसा वीरदर्पमें पीछे जा कर आक्रमण किया। सिपाही घबड़ा कर इधर उधर भाग खड़े हुए। क्लाइवने सङ्ग ही (१७५२ ई०) कावेरीपाकका किला जीता था। इसके बाद समरसभासे आदेश आया—क्लाइवकी एक दल सेना लेकर त्रिशिरापल्ली जाना पड़ेगा। फौज लेकर जाते समय इन्होंने नासिरजङ्गके मृत्युस्थान पर बना फरासीसी वीर डग्रेका कीर्तिस्मृति लोप कर दिया था। चांद साहबने फिर त्रिशिरापल्लीको घेर लिया। क्लाइव और मेजर लारेन्सने एकत्र ४०० अंगरेज और ११०० सिपाहियोंके साथ त्रिशिरापल्ली उद्धारके अभिप्रायसे यात्रा की थी। शत्रुसंख्या अधिक समझ कर लौटनेके समय ६०० सैन्य सङ्ग कप्तान डासटन और मुहम्मद अलीकी फौज उनसे जा मिली। युद्धमें शत्रुोंने पलायन किया था। क्लाइव भी सायंकालको फौजके साथ त्रिशिरापल्लीमें घुस पड़े। इस सकल युद्धवापारसे कम्पनीकी विशेष क्षति होने लगी।

अवशेषकी अंगरेजी सेनादल दो भागोंमें बांट दिया गया। एक दल कावेरी नदीके दक्षिण और अपर दल कोलरुणके उत्तर चला था। क्लाइव उत्तर-विभागके सेनानायक बने। इन्होंने औरङ्ग अतिक्रम करके समयावरम् नामक स्थान जीता था। १७५२ ई०की यह फिर फरासीसी सैन्यके हाथों फँस गये। किन्तु इनके सुकौशलसे फरासीसियोंने भाग कर बोलकुण्डामें आश्रय लिया था। समयावरम्में जाकर २००० अस्त्रारोही और १५०० पदातिक क्लाइवसे मिलित हुए। युद्धके पीछे फरासीसी सेनापति द'तेल (M. d' Auteuil.) बोलकुण्डाके किलेमें पकड़े गये और क्लाइवसे अपना पराजय स्वीकार करने लगे। इसी वर्ष (१७५२ ई०) १० सितम्बरको क्लाइवने मन्द्राजसे २५ मील दक्षिण समुद्रतीर कोवलङ्गके अभिसुख यात्रा की।

कोवलङ्ग फरासीसियोंके अधिकारमें था। कोई आधी फौजके साथ सन्ध्याकालको सेफटीनेष्ट रूपर कोवलङ्ग

दुर्ग के निकट एक बाग में पड़े थे। प्रभात की शत्रु के गोली की चोट से वह सैन्य निहत हुए। उनके पक्षी-मध्य सिपाही भाग ही रहे थे, कि क़ाबू सैन्य वहाँ पहुँच गये। यह उन सभी भयानक सिपाहियों की लौटा लाये और अपने आप असमसाहस से शत्रु की भीषण गोलाबारी के बीच रह उन्हें सन्तुष्ट करने लगे। क़ाबू की देख दुश्मन दिल में डर कर भाग खड़े हुए। इन्होंने विना आयास के कोवलक़ क़िला जीता था। इसी समय चिक्कलपुत के शासनकर्ता ने कोवलक़ उधार करने की नूतन सैन्य प्रेरण किया था। उसे कोवलक़-दुर्ग जय का धीरे संवाद न रहा। वह निरापद अग्रसर होता था। ठाट गुप्तस्थान से सिपाहियों पर गोलाबारी होने से उनमें १०० पादमी मर गये और बाकी सबकी क़ाबू ने कैद करके चलते चलते चिक्कलपुत क़िला जा घेरा और उसे जीत भी लिया। इन सकल घटनाओं के पछे क़ाबू का स्वास्थ्य भङ्ग हुआ। १७५३ ई० की शरीररक्षा के लिये यह इङ्गलैण्ड गये थे। वहाँ २८ वर्ष वयस में इन्होंने 'मै सकेलिन' नाम की किसी युवती का पाणिग्रहण किया। कम्पनी के डिरेक्टरी ने एक भोज दिया और सबने इन्हें 'जिनेरल क़ाबू' नाम से सम्मानपूर्वक पुकारा था। ईष्ट इण्डिया कम्पनी कर्तव्य क़ाबू की हीरी की एक तलवार उपहार दी गयी। इन्होंने उसे लेना पक्षीकार किया और कहा था—जब तक ऐसी ही दूसरी तलवार मेरे साथी मेजर कार्ल्सको न दी जायगी, मैं इस तलवार को कैसे ले सकता हूँ? क़ाबू की ऐसी उदारता का प्रमाण अनेक स्थलों में मिलता है। १७५४ ई० की इङ्गलैण्ड में पार-लियामेण्ट सभा के सभ्यनिर्वाचन समय युद्धविभाग के प्रधान (Secretary of war) जेनरी फ़र्क के साथ इनका आलाप हुआ। इन्होंने क़ाबू की सदस्य होने के लिये अनुरोध किया था। उसमें इनका विस्तर व्यय हुआ। यह सभ्य बन न सके। सुतरां नौकरी के लिये इन्हें फिर भारत आना पड़ा। १७५५ ई० की क़ाबू सेण्ट डेविड दुर्ग के गवर्नर और इङ्गलैण्ड-राज की ब्रिटिश सेना के नायक (सेफ्टेनेण्ट कर्नेल) जो भारत लौटे थे। इस समय दक्षिणार्ध के उपकुल में तुलजी

अंगरिया की चमत्ता बहुत बढ़ी रही। यह दख-दखपति अपने जहाजों के जरिये पूर्वसमुद्र में विदेशियों के वाणिज्य-पोत प्रभृति लूट लेते थे। १७५६ ई० के फरवरी मास में क़ाबू और नौसेनापति वाटसन १४ जहाजों में ८०० अंगरेज और १००० सिपाही चढ़ा जलपथ से चल पड़े। तुलजी के प्रायः सभी जहाज बाट-सन का गोला लगने से जले थे। क़ाबू ने स्वल्पथ से अंगरिया का घेरिया नामक स्थान जाकर दखल किया। किन्तु फिर यह अंगरिया के जहाजों पराजित हो २० जून को डेविड दुर्ग लौट आये। इसी दिन बङ्गाल के नवाब शीराज-उद्-दौला ने अंगरेजों से कलकत्ता ले लिया था। फिर अगस्त मास की अन्धकूप का लोमहर्षण संवाद मन्दाज पहुँचा। वहाँ अंगरेज मात्र क्रोध, दुःख और भय से अभिभूत हो गये। २० दिसम्बर की क़ाबू और नौसेनापति वाटसन फलता पहुँच कलकत्ता के अंगरेजों से मिले थे। क़ाबू और वाटसन ने कलकत्ता के शासनकर्ता मानिकचंद को इस मर्म का एक पत्र लिखा—यदि शीराज-उद्-दौला अंगरेजों पर किये गये अत्याचार के लिये क्षतिपूर्णास्वरूप कुछ न देंगे, तो अंगरेज नवाब से लड़ कर कलकत्ता दखल कर लेंगे। भीड़ मानिकचंद ने यह बात नवाब को न कही थी। २७ दिसम्बर को फलता से क़ाबू सैन्य बजबज आ पहुँचे। मानिकचंद संवाद पाकर पूर्व से ही ३५०० सवार और २००० पैदल सिपाही लेकर बजबज की रक्षा को गये थे। रात को युद्ध आरम्भ हुआ। शेष को मानिकचंद भागे थे। अंगरेजों फौज ने आकर बजबज दखल किया। १७५७ ई० की २ जनवरी को क़ाबू पक्षीगढ़ दुर्ग से स्वल्पथ पर अग्रसर हो कलकत्ता के अभिमुख चलने और वाटसन लड़ाई के जहाज ले फोर्ट विलियम दुर्ग के सामने पहुँच गोलाबारी करने लगे। कपतान कुट एक दल सैन्य के साथ किनारे पहुँचे थे। मुसलमानों के अधिकार से फिर कलकत्ता अंगरेज वणिकों के हाथ पड़ा। इसी समय मन्दाज से संवाद मिला था—यूरोप में अंगरेजों और फ्रांसीसियों से लड़ाई होनेवाली है। इसी से क़ाबू की शीघ्र फौज लेकर लौटने का आदेश हुआ। इधर क़ाबू ने जगत-

सिठको मध्यस्थ बना भगड़ा मिठा डालने पर पत्र लिखा था। नवाब भी सन्धि करनेकी राजी हो गये। किन्तु अंगरेजोंके हुगली आक्रमण करनेसे वह एक बारगी हो जल उठे। २ फरवरीको उन्होंने सन्धि-प्रस्ताव-कारी वाट साहब और अमीचंदको कहला भेजा था—सन्धिके सम्बन्धमें हम दरबार करेंगे। ४थे मराठा-खातके किनारे अमीचंदके बागमें शीराजन जाकर डेरा डाला। क़ादूरने सहसा ६ बजेके समय नवाबका शिविर आक्रमण किया था। नवाब उस समय युद्धके लिये प्रस्तुत न रहे। खबर लगते ही वह भागे थे। आक्रमणके दूसरे दिन नवाबने रणजितरायके द्वारा क़ादूरके निकट सन्धिका प्रस्ताव पहुँचाया। रणजितराय और अमीचंदमें परस्पर कितनी ही लिखापढ़ी होनेके बाद ८ फरवरीको इस मर्मकी सन्धि हुई थी—‘नवाबने अंगरेजोंका जो माल लूट लिया है, लौटा देंगे। अंगरेज जिस उपायसे चाहेंगे, कलकत्तेकी किलाबन्दी कर सकेंगे। नवाब अंगरेजोंके व्यवसायका मजसूल न ले सकेंगे और पहले उनकी जो ज़मत थी, वनी रहेगी।’ क़ादूर और वाटसन ऐसी सन्धि पर राजी न हुए, उल्टे भीतर ही भीतर युद्धका आयोजन करने लगे। शान्ति स्थापित होने पर क़ादूरने चन्दननगरमें फरासीसियोंके दमनको अमीचंदके द्वारा नवाबकी सूचना दो और चन्दननगर आक्रमण करनेके लिये उनकी अनुमति मांगी। क़ादूरका उत्तर था—फरासीसियोंका काम काज बन्द हो जानेसे अंगरेजोंका बड़ा लाभ होगा; फिर यदि फरासीसी ठाले पड़ और अंगरेज बढ़ जायें, तो नवाबके भी उनके अधीन होनेमें कोई सन्देह न रहेगा। नवाबने चन्दननगर आक्रमण करनेकी सन्मति दे दी।

क़ादूरने १८ फरवरीको चन्दननगर यात्रा की। फरासीसी क़ादूरका भावगतिज्ञ समझ गये। उसी समय फरासीसी दूतने अपहोप जा नवाबका आश्रय मांगा और क़ादूरको दुर्भिक्षिणी उनसे, खोज कर कह दिया। नवाबने फरासीसियोंके साहाय्यार्थ १००००० रु० देने और हुगलीके फौजदार मन्कुमारसे सैन्य भेजनेकी कहा था। इधर मोरजापुरके भी

आधी फौज लेकर चन्दननगरमें रहनेका बन्दोबस्त किया गया। क़ादूरने देखा कि फरासीसियोंकी उठातू दवानेकी सुविधा नहीं।

अहमद शाह अब्दालीने जब दिल्लीको जय किया, उनके बहाल जीतनेका भी समाचार प्रकाशित हुआ। इस समय शीराजने अंगरेजोंसे साहाय्य मांगा था। चतुर वाटसनने नवाबको लिख दिया—‘आप पटना जाते हैं और हमको भी साथ ही चलनेका आदेश देते हैं। सुतरां किस प्रकार फरासीसी शत्रुओंको पीछे रख हम निरापद कलकत्ता और बाणेश्वरकी कोठो छोड़ चलें? यदि आप अनुमति करें, तो हम चन्दननगर देखल करके चल सकते हैं।’ नवाब इस चातुर्यपूर्ण पत्र पर चिढ़ उठे। उसी समय बम्बई शहरसे कम्पनीके ३ दल पैदल, १ दल सवार और कम्बरलेण्ड नामक सेनादल बालेश्वर तक आ पहुँचा था। नूतन सन्धिके आगमनसे उत्साहित हो क़ादूरने नवाबकी अनिच्छा रहते भी २४ मार्चको ६ बजे चन्दननगर आक्रमण किया। फरासीसियोंने यथासाध्य अपनेको बचाया था। ८ बजे सन्धिके लिये भण्डा उठाया गया। अपराह्नकी १ बजे उन्होंने अंगरेजोंको नगर और गढ़ समर्पण किया था। क़ादूरके इस कार्य पर नवाबने प्रकाशमें तो कोई रोष प्रदर्शन न किया, परन्तु फरासीसी सेनानायक बुसीको लिखे हुए उनके पत्रसे प्रकाशित होता है कि वह आन्तरिक रूपसे चिढ़ गये थे। थोड़े दिन पीछे नवाबने क़ादूरको लिख दिया—‘आपने सन्धिपत्रके विरुद्ध कार्य किया है, इसलिये सैन्य सामन्त लेकर फिर कलकत्ते चले जाइये। क़ादूरने नवाबका पत्र पान्न न किया था। वह हुगलीके उत्तर छावनी डाल कर पड़े रहे।

इसी समय शीराजकी राज्यस्थिति करनेकी साजिश चलती थी। यार लतोफखान नामक नवाबके एक सेनापति जनत्सेठके बतनपाइो थे। उन्होंने वाट साहबकी परामर्श दिया—‘इस समय नवाब पटनामें अफगानोंसे लड़नेमें व्यस्त हैं। यदि अंगरेज आकर एक-बारगी ही मुर्शिदाबाद राजधानी आक्रमण करें और हमें नवाब बना दें, तो सभी विषयोंमें साहाय्य पा सकते

है। वाट साहबके अनुमोदन करने पर ह्माइव भी इस पर सम्यत हो गये। पिटूस नामक किसी परमनेने वाट साहबकी मीरजाफरके साहाय्यका प्रस्ताव बताया था। बहुतसे प्रधान प्रधान कर्मचारियोंने भी मीरजाफरको राज्यच्युत करनेके लिये अंगरेजोंको आह्वान किया। यार लतीफखानकी छोड़ मीरजाफरकी ही नवाब बनानेके लिये सबका अभिप्रेत हुआ। इस सम्बन्धमें मीरजाफरके साथ इकरारनामा लिखा गया। अंगरेजों ने भी मीरजाफरकी लिख दिया कि हम सभी समय आपकी साहाय्य करने पर प्रस्तुत हैं। मीरजाफर बङ्गाल, विहार और उड़ीसेके सूबेदार बनाये जायेंगे। इस सम्बन्ध पर नौसेनापति वाटसन साहब, कलकत्तेके गवर्नर डेक साहब, करनल ह्माइव, वाट साहब, मेजर किलपाट्रिक और बीचर साहबके दस्तखत थे। १० जूनको मीरजाफरके सम्बन्ध पर दस्तखत करके कलकत्ता भेजने पर ह्माइव समेत चम्पनगरसे भयसर हुए। अभीचंदने जब सुना कि उनकी अनुपस्थितिमें मीरजाफरके साथ लिखा पढ़ी हो गयी है और उसके अनुसार सबकी कुछ न कुछ मिलेगा—किन्तु उनका अट्टल खाली है, तो उन्होंने नवाबसे इस साजिशकी खोज देनेकी धमकी दी। ह्माइव मुश्किलमें पड़ गये। उन्होंने अभीचंदको भुलावा देनेके लिये छलना की थी। ह्माइवने दो चिट्ठियाँ लिखीं। एक सफेद कागज पर लिखी गयी। उसमें अभीचंदका नाम भी न था। दूसरी लाल कागज पर लिखित हुई। उसमें अभीचंदको दिये जानेवाले रुपये आदिका बात लिखी थी। सफेद कागजकी चिट्ठी ठीक थी और लाल चिट्ठी मूर्ख अभीचंदको प्रतारित करनेके लिये ह्माइवका कौशलमात्र था। न्यायवान् वाटसन साहबने लाल चिट्ठी पर सही करके अपने आप प्रतारक बनना न चाहा। इसीसे उस पर ह्माइवकी वाटसन साहबके आखी दस्तखत बनाना पड़े। किसी किसीका कहना है कि कम्पनीके विख्यात लेखक स्काफटन साहबने यह जाल किया था।

नवाबके विरुद्ध सबका संयुक्त खिर हो गया। २१ जूनको ह्माइव कांठिया दस्तक करके मुबार्र भयसर

हुवे। नदी पार होके पलासीके निकट आम्बरनमें इन्होंने छावनी डाली थी। ह्माइवने मीरजाफरकी चिट्ठी भेजी—यदि आप आ कर हमसे न मिलेंगे, तो हमें नवाबसे सन्धि कर लेना पड़ेगी। २३ जूनको प्रातः काल नवाबने आम्बरन आक्रमण किया था। घोरतर युद्ध होने लगा। सन्ध्याको मीरजाफरने पहली बात चीतके अनुसार सिपाहियोंको यह कह कर वापस जाने का आदेश दिया—अब लड़ाई रोक दो, सबेरे फिर लड़ेंगे। हुक्मके मुताबिक सिपाही लौट पड़े। ह्माइव पूर्व सङ्केतके अनुसार पीछेसे गोली मारने लगे। सैन्य हतभङ्ग हो गये। चारों ओर गड़बड़ मचा था। इसी सुयोगमें मीरजाफर ह्माइवसे आ मिले। नवाब यह खबर पा जंट पर चढ़ कर भागे थे। भविष्यत् युद्धके जयकी आशा इतनाभ्य मीरजाफरके हृदयसे अन्तर्हित हुई। ह्माइवने दाजदपुर तक पीछा किया था। मीरजाफर उसी जगह जाकर इनसे मिले। ह्माइवने भी बङ्गाल विहार और उड़ीसेके नवाब जैसी उनकी अभ्यर्थना की थी। फिर दोनों मुर्शिदाबादके राजप्रासादाभिमुख भयसर हुए। मीरजाफर-होना देखो।

नवाबके धनागारमें सब मिलाकर १ करोड़ ५० लाख रुपया निकला था। उसमें ह्माइवकी १६ लाख, वाट साहबकी ८ लाख, किल पाट्रिककी ३ लाख और स्काफटनकी २ लाख रुपया मिला। विशेष विवरण उसीबाद गल्पमें देखो। ह्माइवने प्रासादमें पहुँच २८ जूनके दिन मीरजाफरकी नवाबके सिंहासन पर बैठाया था। राजकोषमें धनाभाव होनेसे मीरजाफर ह्माइवकी कड़ा हुवा रुपया दे न सके। यह उन्हें जगतसेठके पास ले गये। सेठजीके परामर्शसे आधा रुपया उसी समय दिया गया और आधेके लिये खिर हुआ कि तीन मासमें दे दिया जावेगा। इस रुपये पर सैनिक विभागके कर्मचारियोंमें गड़बड़ पड़ा था। उन्होंने इसी उद्देशसे एक सभा की और ह्माइवके मत विरुद्ध उन्होंने इस सम्बन्ध धनका एक अंश मांगा। ह्माइव उन्हें अंश देने पर अस्वीकृत हुए। मीरजाफरके देय धन और उनके स्वच्छादानसे उन्हें कुल २१ लाख ४० हजार रुपया मिला था। १४ सितम्बरकी यह मुर्शिदाबादसे कलकत्ते आये। इसी भयसरमें

मीरनने शीराजके आतुषुत्र मिर्जा मन्दीकी मार डाला था। सुयोग देख कर पुरनियाके शासनकर्ता भोगल-सिंह और विहारके रामनारायणने विद्रोह मचा दिया। यह संवाद पाकर २५ नवम्बरकी क़ाद्व सुर्गिदावाद जा पहुँचे। ३० तारीखकी यह भोगल सिंहके विरुद्ध अगसर हुवे और उन्हें बन्दी बना लाये। विहारमें राम-नारायण की दवानेके लिये मीरजाफरने क़ाद्वसे मदद माँगी थी। इन्होंने लिखा कि सन्धिपत्रका लिखा बाकी रुपया मिलने पर हम पटने जा सकेंगे। नवाबने दोबान् रायदुर्लभकी खुशामद करके रुपयाका पच्छा इत्त-जाम कर दिया था। नवाबके साथ यह पटने गये और वहाँ रामनारायणकी बुला करके बलवा मिटा दिया। रायदुर्लभके साथ रामनारायणकी बन्सुता हो गयी। नवाबकी अनिच्छा पर भी रामनारायण विहारके शासनकर्ता बने रहे। १७५८ ई०की ५ मईकी राय-दुर्लभके साथ क़ाद्व सुर्गिदावाद लौट आये।

पलासी-युद्धजयके पीछे कम्पनीके विलायती अध्यक्षोंने क़ाद्वकी बङ्गालके शासनकर्ता रूपसे नियुक्त किया था। सम्राट् शाह आलमने इसी समय पटने पर आक्रमण मारा। क़ाद्व फौजके साथ उनके विरुद्ध चले थे। शाह आलमका सेन्य क़ाद्वकी देखते ही भाग खड़ा हुवा। शाह आलम भी नौ दो ग्यारह हुवे। क़ाद्वके जयसे मीरजाफरकी बड़ा आह्लाद मिला था। उन्होंने जमीन्दारी रहते भी कलकत्तेके दक्षिण जो जमीन २२२८५८५ रु० लगान पर कम्पनीको सौंपी थी, क़ाद्वकी जागीरके तौर पर दे डाली। २३ नव-म्बरकी फौलन्दार्जीमें लड़ाई हुई। क़ाद्वने अपने आप करनेल फरड़ीसे चुंभुड़ा आक्रमण करनेको कहा था। फौलन्दार्जीने युद्धमें पराजय स्वीकार किया।

इसके बाद १७६० ई०की २५ फरवरीकी क़ाद्व स्वदेश चले गये। भारतवर्षमें रह कर इन्होंने जो रुपया रोजगारसे विलायत भेजा था, उसकी तालिका इस प्रकार मिलती है—फौलन्दाज बणिर्जी द्वारा १८ लाख, अंगरेज कम्पनीके जरिये ४ लाख और मन्दाजसे २ लाख ५० हजार रुपयेके हारे। एतद्व्यतीत इसका कोई हिसाब किताब नहीं। इन्होंने अन्यान्य बन्सुर्गियोंके

द्वारा कितना रुपया भेजा था। मीरजाफरसे मिली जागीरका आय प्रायः २ लाख २३ हजार रुपया था। इसमेंसे १ लाख रुपया क़ाद्वने अपनी बहनोंकी दे डाला। भारतमें अवस्थानकाल पितामाताके खर्चको यह वार्षिक ८०००, रु० भेज देते थे। मेजर लारे-गसकी वेतन स्वरूप वर्षमें ५०००, रु० क़ाद्व पहुँचाते रहे। फिर अन्यान्य दरिद्र बन्सुर्वी और कुटिम्बियोंकी उपर्यक्त रुपये समेत इन्होंने ५ लाख रुपया दान किया।

जागीर पर कम्पनीके चेयरमेन सुलिमानके साथ क़ाद्वका विरोध हो गया। इन्होंने १७६३ ई०के समय डिरेक्टर निर्वाचनमें सुलिमानको पदच्युत करनेकी चेष्टा की थी। किन्तु इनकी चेष्टा विफल हुई। सुलिमानने इनकी जागीर छीननेका उद्योग लगाया था। इसीसे क़ाद्वकी इङ्ग्लैण्डकी सबसे बड़ी पदालत (Chancery) में विषय रचाई दरखास्त देना पड़ा। जिस समय इङ्ग्लैण्डमें क़ाद्व और डिरेक्टरोंके मध्य ऐसी गड़बड़ी थी, बङ्गालमें मीरकासिमने कई अंगरे-जोंकी मार डाली। इस खबरसे डिरेक्टरोंका दिमाग चकर खा गया। मीरकासिमकी दवानेके लिये क़ाद्वका प्रयोजन पड़ा था। कम्पनीके स्वत्वाधिकारी इनकी खुशामद करने लगे। क़ाद्वने कहा—यदि कम्पनी मेरी जायदाद छोड़ दे, तो मैं फिर शासनभार लेकर बङ्गाल जा सकता हूँ। तदनुसार इन्होंने इनकी बात पर राजी हो इन्हें बङ्गालका शासनकर्ता और सेनाध्यक्ष बना भारत भेजा। इसी समय सुलिमानके साथ क़ाद्वकी मित्रता हो गयी थी। इन्होंने सकल घटनाओंके पीछे १७६५ ई०के मई मासमें यह तीसरी बार कलकत्ते आ पहुँचे। इन्होंने पाते ही सेन्य-सम्प्रदायका संशोधन आरम्भ किया था। उस समय अंगरेजी सिपाही रिश-वत लेकर या जोर जुल्म दिखा कर जो काम करते थे, एक बारगी हो बन्द हो गये। इससे बङ्गालके अंगरे-जोंकी अनेक असुविधायें और अतिर्या उठाना पड़ी। जनष्टन नामक कोई सभ्य इनके शासन संशोधनके विरुद्ध रहे। इन्होंने विलायतके अध्यक्षोंकी भारतके कर्म-चारियोंका वेतन बढ़ानेके लिये लिखा और सेन्य सम्प्र-दायका चोरी करके व्यवसाय चलाना रोक दिया। इस-

के बाद क्लाइवने दिल्लीके बादशाहसे बङ्गालकी दीवानी सनद मांगी थी। सन्नादने कम्पनी पर बङ्गाल, बिहार और उड़ीसके मालगुजारी वसूल करने और शासन रखनेको एक सनद क्लाइवके पास भेज दी। काशीके राजा और अवधके नवाबने इन्हें उपहारस्वरूप हथि और जवाहरात देना चाहे थे, परन्तु यह लेने पर अस्वीकृत हुये। मीरजाफर मृत्यु कालकी क्लाइवके नाम दान-पत्रमें ५ लाख रुपये लिख गये थे। कम्पनीके कानूनसे मृत व्यक्तिका उक्त दान क्लाइवकी न भिन्ना। इसके लिये नीचे लिखा इन्तजाम किया गया था। कम्पनीके कर्मचारियों और सैनिकोंमें जो कार्य करनेमें अक्षम होगा, उसका इस रूपमेंसे छोड़ा बहुत माहवारकी तौर पर भिन्ना करेगा। फिर सैफ-उद्-दौलाने और भी १ लाख रुपये दे डाले।

क्लाइवकी अनुपस्थितिमें मीरकासिम और समरुने अंगरेज-इत्या करके अवधके नवाब शुजा-उद्-दौलाके पास पहुँचकर आश्रय लिया था। शुजा-उद्-दौला मराठ और अफगान-सैन्य लेकर बङ्गाल आक्रमण करने बिहारके सीमाप्रान्त पर्यन्त आ पहुँचे। क्लाइवने ससेन्य जा उन्हें पराजित किया और युद्धके व्ययस्वरूप ५० लाख रुपये ले लिया। फिर यह स्थिर हो गया—अवधके नवाब मीरकासिम और समरुकी पुनराश्रय न देंगे और अंगरेज उनके राजत्वमें विना शुल्कवा शिष्य कर सकेंगे। सुल्तानद रिजाखान् नवाब नाजिम-उद्-दौलाके नायब रहे। उन्होंने कम्पनीके कौंसिलके मेम्बरोंको कोई उच्च पद पानेके अभिलाषमें २० लाख रुपये रिश्वत दिया था। सन्धि के पीछे जब क्लाइव कलकत्ते लौटे, नाजिम-उद्-दौलाने घूसकी बात इनसे कह दी। क्लाइवने ऐसे घृणित व्यवहारके लिये कम्पनीके गवर्नर स्पेन्सर साहब और अन्य नौ उच्चपदस्थ कर्मचारियोंको निकाल बाहर किया था। माली इस्तीयार रहते इन्होंने बङ्गाल, बिहार और उड़ीसेमें कम्पनीके लिये नमक, सुपारी और खानेको तम्बाकूके ठेकेका व्यवसाय आरम्भ किया। पलासी-युद्धके पीछे मीरजाफर सिपाहियोंको दूना भत्ता देते थे। इन्होंने उसको घटा दिया। इससे बाँकीपुर और मुँगेरकी फौजोंमें बलवा फूट पड़ा।

१७६६ ई०के मई मासमें इन्होंने वहाँ जा बलवा मिटा दिया और उसी समय उनका स्वास्थ्य भी भङ्ग हो गया। १ वर्ष ६ मास बङ्गालमें रह १७६७ ई०को २८ जनवरीको यह इङ्ग्लैण्डको और रवाना हुये।

इस बार इङ्ग्लैण्डमें क्लाइवके लिये कोई विशेष आदर अभ्यर्थना न हुई। समाचारपत्रोंमें इनके कार्य और चरित्र पर अनेक विचार उठने लगे, मानो देशके सभी लोग क्लाइवका अपमान करनेको व्यस्त रहे। भारतके धनसे धनी होकर यह बारकलेसायरके किसी सुन्दर भवनमें रहने लगे। स्त्रपसायर और लोथरमण्डमें भी इनके दो प्रासाद निर्मित हुये। क्लाइवकी ऐसी दौलतमन्दो देख लोगोंकी पाँखें फूल गयीं। गरीब यदि बड़ा पादमी हो जाता, तो वह एकाएक नवाब कहलाता है। इसी प्रकार इङ्ग्लैण्डके लोग इनका ऐसा उच्च पद देख इन्हें 'नवाब साहब' कहने लगे। १७७० ई०की बङ्गालमें भयानक दुर्भिक्ष पड़ा था। लखनवासियोंने भारतीय प्रजाके दुःखसे दुःखित हो एकस्वरमें कहना आरम्भ किया—कम्पनीके नौकर बङ्गालमें चावल खरीद चौगुनी कीमत पर बेचते और इसीसे बङ्गाली दुर्भिक्ष-यन्त्रणा भोग करते हैं। ऐसे ही कानाफूसीसे क्लाइव लोगोंमें और भी अश्रद्धा तथा अनादरके पात्र बन गये। १७७२ ई०को पारलियामेण्ट महासभा में क्लाइवका विचार हुआ था। सभी दोष अभागे क्लाइवके भत्ते मढ़ा गया। स्वजन इनके विपक्षमें जाकर खड़े हुए। सभी लोग इन्हें पारलियामेण्टसे निकालनेको चेष्टा करने लगे। परन्तु पारलियामेण्टके निर्वाचित सभ्योंके विचारसे क्लाइव निर्दोष निकले थे। फिर भी अपमान, घृणा और लज्जासे इनके हृदयमें मर्मान्तिक पाघात लग गया। नाना भावनाओंसे इनका शरीर भङ्ग हुआ। १७७४ ई०को ४८ वर्षके वयसमें २२ नवम्बरके दिन क्लाइवने आत्महत्या करके इङ्ग्लैंड परित्याग किया।

क्लाउन (अ० पु०—Clown) विदूषक, नक्काल, भंडेला।
क्लाक (अ० क्लो०—Clock) घामनाली, घरमघड़ी। यह काष्ठादिके ठाँचोंमें लगी रहती और लङ्गरके सहारे चलती है।

कान्त (सं० त्रि०) कान्त कर्तरि क्त । १ कान्तियुक्त, यका-
मादा । २ कान्त, सुरभाया हुआ । (भारत १।७।१०)

कान्ति (सं० स्त्री०) कान्त-कृत् । कान्त, मिहानत, यका-
वट । (माघ)

क्लारिनेट (अं० पु०—Clarinet) वेणु, धंशी, फलगोजा ।

क्लास (अं० पु०—Class) श्रेणी, दरजा ।

क्लिव (सं० त्रि०) क्लिद कर्तरि क्त । पाद, तर, भोगा ।

(रामायण १।४।१२)

क्लिववर्मा (सं० स्त्री०) चक्षुरोगविशेष, आंखकी एक
बीमारी क्लिववर्मा देखो ।

क्लिववर्मा (सं० पु०) क्लिववर्मा देखो ।

क्लिया (सं० स्त्री०) श्वेतकण्टकारी, सफेद कटैया ।

क्लियाच (सं० त्रि०) क्लिव अक्षिणी यस्य, बहुव्री० । क्लिद-
युक्त चक्षुर्विशिष्ट, भोगी आंखवाला, जिसके आंखसे
ढरका बहे ।

क्लियाचि (सं० स्त्री०) क्लिवचक्षु, भोगी आंख ।

क्लिप (अं० पु०—Clip) धातु प्रादिका पंजा । यह कमा-
नीदार होता है । इसके पीछेके दोनों हिस्से दवानेसे
पंजीका मुंह खुलता और छोड़ देनेसे बन्द हो जाता
है । यह चिट्ठीपत्र प्रादि कागज दबाकर रखनेके काम-
में आता है ।

क्लिव् (वै० पु०) क्लप्-क्लिप् पृष्ठोदरादिवत् साधुः ।
प्रादसी । (वागसनेयसंहिता ४०।१५)

क्लिशित (सं० त्रि०) क्लिश कर्तरि क्त विकल्पोद्भूट ।

१ क्लेशयुक्त, तकलीफमें पड़ा हुआ । २ उपतापयुक्त ।

क्लिष्ट (सं० त्रि०) क्लिश कर्तरि क्त विकल्पोद्भूट ।

१ क्लेशयुक्त, तकलीफमें पड़ा हुआ । २ पीड़ित, बीमार ।

इसका पर्याय—सङ्कुल और परस्पर पराहत है ।

(मेघदूत) ३ विरुद्ध, बेमेल । ४ कठिन, कड़ा । (स्त्री०)

५ पूर्वापर विरुद्ध वाक्य, एक दूसरेसे न मिलनेवाला
जुमला । (भागवत १।१।१२)

क्लिष्टत्व (सं० स्त्री०) क्लिष्ट भावे त्व । असह्यारशास्त्रोक्त
एक दोष । यह दोष पदों और वाक्योंमें लगा करता
है । जिस स्थल पर किसी एक शुद्ध पद द्वारा अर्थ
प्रकाश हो सकता, वहाँ उस पदका प्रयोग न करके
अर्थप्रकाशके लिये कितने ही पदोंका समास बना एक

पदरूपसे प्रयोग करने पर क्लिष्टत्व दोष लगता है ।
जैसे—‘जल’ शुद्ध पदको प्रयोग न करके ‘जीरोदजा-
वसतिजम्भू’ जैसे पदका प्रयोग ।

जहाँ प्रतिशय व्यवहित दो वा उनसे अधिक
पदोंका प्रत्यय करके अभिष्ट अर्थ लाना पड़ता, उसीको
प्रासङ्गिक वाक्यगत क्लिष्टत्व दोष कहते हैं । यह
सचराचर दूरान्वय दोष जैसा व्यवहित है । (साहित्यदर्पण ७)
क्लिष्टवर्मा (सं० स्त्री०) नेत्ररोगविशेष, आंखकी एक
बीमारी । यह क्लेशज और रक्तज नेत्रवर्माका रोग है ।
दोनों पलकोंका एक एक कुछ दुखने लगता और तब-
जैसी लाल देखा पड़ती है । (माघवनिदान)

क्लिष्टा (सं० स्त्री०) क्लिष्टं क्लेशः प्रसूयस्याम्, क्लिष्ट-प्रच् ।
पातञ्जलदर्शनके मतसे—एक चित्तवृत्ति । नैयायिका
और वैशेषिकोंने जिसे ज्ञान जैसा उल्लेख किया और
हम भी जिसे चलती बोलतीमें ज्ञान कहा करते, सांख्य
पातञ्जल मतमें वही वृत्ति नामसे उल्लिखित होता है ।
यह वृत्ति वा ज्ञान दो प्रकारका है—क्लिष्ट और अक्लिष्ट ।
अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—पांच-
को क्लेश कहते हैं । यह पञ्च क्लेश जिस वृत्ति वा ज्ञान-
प्रवृत्तिका कारण हैं, उसका नाम क्लिष्टवृत्ति है ।

(योगसूत्र १) नैयायिक वा वैशेषिक मतानुसार ज्ञान
आत्मामें होता है । सांख्यपातञ्जलने उसको अन्तः-
करण (महत्तत्त्व) का धर्म जैसा निरूपण किया है ।

अन्तःकरण सत्वमय, रजोमय और तमोमय—तीन
प्रकारका होता है । सुतरां उसकी वृत्ति भी तीन प्रकार-
की है—सत्वमयी, रजोमयी और तमोमयी । रजोमयी
और तमोमयी वृत्ति क्लिष्टा कहलाती है । (वाचस्पति)

हम इसी वृत्ति अर्थात् प्रमाण प्रभृति द्वारा विषय
निरूपण करके किसी विषयसे अनुराग और किसी
विषयसे द्वेष करते और तदनुसार कार्य करनेमें प्रवृत्त
होते हैं । इसीसे धर्म और अधर्म उत्पन्न होता है ।

धर्मधर्म ही ऊँचा आदि चोरतर दुःखोंका कारण है ।
अतएव रजोमयी और तमोमयी वृत्ति ही सकल दुःखों
का मूल कारण ठहरती है । योग अनुष्ठानसे अन्तः-
करणका रजः तथा तमोगुण दूरीभूत होने पर विवेक-
व्याप्ति नामको विशुद्ध सत्वमयी जो अन्तःकरणवृत्ति उठ

आती, वही अक्लिष्टावृत्ति कहलाती है। इस अक्लिष्टावृत्ति वा विवेकख्याति द्वारा क्लिष्टा चित्तवृत्ति निरोध करके योगी लोग अनन्त परमसुख अनुभव कर सकते हैं। योगके अनुष्ठानका यही मुख्य उद्देश्य है। यह वृत्ति पाँच प्रकारकी होती है—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, मित्रा और स्मृति। प्रमाण, विपर्यय प्रवृत्ति देखो।

क्लिष्टि (सं० स्त्री०) क्लिष्ट-क्लिन् । १ क्लेश, तकलीफ । २ सेवा, खिदमत ।

क्लीत (सं० पु०) अग्निप्रकृति कीट, एक जहरीला कीड़ा। यह उन्हीं हिंस्रक कीटोंके अन्तर्गत है, जो सर्पके शुक, विष्ठा, मूत्र, मृतदेह और पूति षण्डसे उत्पन्न होते हैं। इसके काटनेसे पित्तजन्य रोग लग जाते हैं।

(सुश्रुत कल्प ८ अ०)

क्लीतक (सं० स्त्री०) क्लीव-क्लिप् निपातनात् वकारलोपः, क्लियंतकति इसते अच् । १ यष्टिमधु, मुलहटी, मौरेठी । २ नीलमूल यष्टिमधु, काकी मौरेठी । (भावलाघन मृग-सूत्र १८/७८) यह स्त्रावर विषान्तर्गत मूल विष है।

(सुश्रुतकल्प २ अ०)

क्लीतका (सं० स्त्री०) १ नीलीवृक्ष, नीलका पेड़ । २ पुष्टि-पर्णी, पिठवन ।

क्लीतकिका (सं० स्त्री०) नीलीवृक्ष । नील देखो।

क्लीतनक (सं० स्त्री०) क्लीतं कीटविशेषं नुदति, नुद बाहुलकात् उ संज्ञार्थे कन् । जलयष्टिमधुभेद, पानीमें पेदा होनेवाली मौरेठी । मुलहटी जल स्थल भेदसे दो प्रकारकी होती है। यह मधुर, रुच्य, वज्ज, वृष्य, वृषण, शीतल, गुरु, चक्षुष्य और रक्तपित्तघ्न है। (राजनिषध्)

क्लीतनी, क्लीतका देखो।

क्लीतलक (सं० स्त्री०) यष्टिमधु ।

क्लीव (सं० पु०-स्त्री०) क्लीव-क । १ पुरुष और स्त्री भिन्न, नपुंसक, नामर्द । इसका संस्कृत पर्याय—षण्ड, नपुंसक, द्वितीयप्रकृति, शण्ड, पण्ड, मण्ड और शण्ड है। जिसके मूत्रमें फेण नहीं होती और विष्ठा जलमें डूब जाती, मिट्टी शुकहोन रहता और ऊपरकी नहीं उठता—उसीको क्लीव कहते हैं। (भावलाघन)

नारदके मतमें क्लीव १४ प्रकारके होते हैं—निसर्ग-

षण्ड, पण्ड, पक्षषण्ड, गुरु-अभिघापजनित षण्ड, रोगजनित षण्ड, देशक्लेशजनित षण्ड, ईर्ष्याषण्ड, असेक्य, वातरिता, सुखेभग, आक्षेपा, मोघवीज, शालीन और अन्यापति। माता और पिताके समान वीर्यसे निसर्ग-षण्डकी उत्पत्ति होती है। जिसके षण्ड नहीं रहता, उसीका नाम अनण्ड पड़ता है। इन दो प्रकारके षण्डोंकी कोई चिकित्सा नहीं, इनका प्रतीकार होना कठिन है। पक्षषण्ड एकपक्ष पर्यन्त चिकित्सा करनेसे पारोग्य हो जाता है। गुरुके अभिघाप, रोग वा दैवकीपसे जो षण्ड बनते, उनकी चिकित्सा एक वत्सरपर्यन्त करते हैं। ईर्ष्या षण्ड, असेक्य, वातरिता और सुखेभग—चार प्रकारके षण्ड भी अचिकित्स्य हैं, इनका कोई प्रतीकार नहीं। जिन षण्डोंका प्रतीकार असम्भव है, उनकी प्रक्रियोंकी क्षतयोनि होते भी पतितोंकी भांति उन्हें परित्याग करना चाहिये। दर्शन वा स्पर्शमात्रसे जिसका वीर्यरुक्कित हो जाता, वह आक्षेपा और जिसका वीर्य अपत्य उत्पादनके अयोग्य आता, वह मोघवीर्य कहलाता है। इस प्रकारके नपुंसक ६ मास चिकित्सा करनेसे सम्भवतः पारोग्य हो सकते हैं। पराशरसंहिताके “मृष्टे सते प्रवर्जिते क्रीवे च पतिते पती । पक्ष-लापसु गारीषा पतिरन्वी विधायते ।” वचनानुसार कोई कोई कहता कि पति क्लीव होनेसे उसको परित्याग करके स्त्री अन्य पतिको ग्रहण कर सकती है। किन्तु टीकाकार माधवाचार्यका कहना है कि “दत्ताचार्य कन्यायाः पुनर्दानं वरस्य च” आदित्यपुराणके वचनानुसार कलिकालमें स्त्रियोंका दूसरा विवाह निषिद्ध है। (वाचस्पत्य)

याज्ञवल्क्य-संहिताके मतमें सम्पत्ति विभागसे पूर्व क्लीव होने पर किसी सम्पत्तिमें उसका अधिकार नहीं रहता। परन्तु विभागके पीछे यदि किसी शीघ्रद्वारा क्लीवत्व नाश होता, तो उसका अंश उसको देना पड़ता है। क्लीवका श्वेदज पुत्र निर्दोष होने पर उक्त सम्पत्तिका अधिकारी ठहरता है। दायाधिकारियोंको क्लीवकी श्वेदज कन्याका विवाह पर्यन्त भरणपोषण करना चाहिये। उसकी विवाहका व्यय भी इसी सम्पत्तिसे दिया जाता है। जिस क्लीवपत्नीका श्वेदज पुत्र नहीं रहता और जिसके चरित्रमें भी कोई दोष न हो

मिलता उसको भी प्रतिपालन करना पड़ता है। परन्तु व्यभिचारिणी होनेसे क्षौवपक्षीको निवास देना चाहिये।

(याज्ञवल्क्य) क्लेश देखो।

२ कर्तव्यकर्ममें निवृत्ताह, काममें ठीका। ३ पक्षीर, वेशज। ४ विक्रमहीन, कमजोर। ५ शब्दका कोई चिह्न वा धर्म। ६ ऋ ऋ ऋ ऋ चारवर्ण। (तत्त्वसार)

क्षौवता (सं० स्त्री०) क्षौवस्य भावः, क्षौव-तत्। क्षौवका भाव, सन्तानोत्पादिका शक्तिका अभाव, नामर्दी। दो शिरायें शुक्लवदन करती हैं। स्तनद्वय और कोवद्वय उनका मूलस्थान है। यह शिरायें किसी प्रकार विह होने पर क्षौवता पाती है। (सुश्रुत शरीर ८ च०)

क्षौवत्व (सं० स्त्री०) क्षौवस्य भावः, क्षौव-त्वत्। क्षौवता, नामर्दी।

क्षृप्त (सं० त्रि०) क्षृप्-क्त्वा ऋकारस्य लृकारादेशः। १ रचित, रचा हुआ। २ कल्पित, माना हुआ। ३ विहित, ठहराया हुआ। ४ निर्मित, बनाया हुआ। (रघुवंश) ५ वापित, काटा हुआ। (मनु)

क्षृप्तकीला (सं० स्त्री०) क्षृप्तं कीलमत्र, बहुव्री०। निर्दिष्ट करणवृत्तके लिये भूम्यधिकारी-प्रदत्त पत्र-विशेष, पट्टा। (वाचस्पत्य)

क्लेश (सं० पु०) क्लिष्ट भावे घञ्। १ शरीरार्द्रता, प्रियङ्गुकी तरी, पसीना। २ आर्द्रता, तरी, गीलापन। (वट) ३ मल, मैल। ३ कफ, क्लेदन नामक श्लेष्मा। क्लेदन देखो। ४ पूतीभाव, सड़ाव। (त्रि०) ५ आर्द्र, भीगा, गीला।

क्लेशक (सं० त्रि०) क्लेशयति, क्लेश-णिच्-लृक्। १ क्लेशकारक, तरी या पसीना खानेवाला। (क्लो०) २ दश प्रकारके शरीररक्त अग्नियोंमें एक प्रकार अग्नि। अपि देखो। क्लेशकारक जैसे जलका नाम क्लेशक पड़ना उचित होते भी अग्निकी सहायता भिन्न जलसे क्लेश नहीं होता। इसीसे अग्नि क्लेशक कहलाता है।

क्लेदन (सं० पु०) क्लेशयति, क्लिष्ट-णिच्-लृक्। १ कफ-भेद, कोई शरीररक्त श्लेष्मा। इसीसे क्लेद उत्पन्न होता है। भावप्रकाशके मतमें—क्लेदन ही स्थानभेद और कार्यभेदसे पाँच प्रकार विभक्त है—क्लेदन, अवलम्बन, रसन, कोहन और श्लेष्मा। क्लेदन कफ आमाशयमें

उत्पन्न हो वहीं रहता है। यह निज शक्ति द्वारा भक्षित द्रव्य जीर्ण किया करता है। क्लेदन कफ ही हृदय, कण्ठ, मस्तक और सन्धिस्थानमें पहुँच हृदया-वलम्बन, त्रिकसन्धारण, रसग्रहण, इन्द्रियवृत्ति तथा सन्धिके मिलन प्रभृति कार्योंमें सहायता लगाता है। इसकी सहायता व्यतीत अवलम्बन प्रभृति श्लेष्मा उत्पन्न सकल कार्य कर नहीं सकते। (भावप्रकाश १।१ खण्ड) (त्रि०) २ क्लेदजनन, पसीना खानेवाला।

क्लेदवान् (सं० त्रि०) क्लेदयुक्त, पसीनेसे भरा हुआ। (सुश्रुत चिकित्सा)

क्लेदा (सं० पु०) क्लिष्ट-कनिन् निपातने साधुः। वनस्पत् पवनं शीघ्रं क्लेदन् चैव सूर्यं सज्जनं अयं सन् विवस्वन् परित्यजन् मातरिन् सचरति। उच २।१५८। १ चन्द्र, चाँद। २ सन्निपात, सशाम।

क्लेदु (सं० पु०) क्लिष्टयति, क्लिष्ट-उन्। मल, क्लिष्टयति वसिष्ठनिर्दिष्टविभिन्नविभक्तयः। उच २।११। १ चन्द्र। २ सन्निपात।

क्लेश (सं० पु०) क्लिष्ट भावे घञ्। १ दुःख, तकलीफ। इसका संस्कृत पर्याय—आदीनव और आरूप है। (गीता १९।५)

क्लिष्टान्ति, क्लेश-घञ्। २ पातञ्जलौक्त अविव्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश। (पातञ्जल २।१)

अविव्या, अस्मिता प्रभृति ही सांसारिक पुरुषके विविध दुःखका कारण हैं। जब तक इनका सद्भाव रहता, मनुष्य किसी प्रकार सुखी नहीं हो सकता। इसीसे इनको क्लेश कहते हैं। विपरीत ज्ञानका नाम अविव्या है। अविव्या ही अस्मिता आदिका मूल कारण है। अविव्याका नाश होनेसे अस्मिता प्रभृतिका भी नाश हो जाता है। अहङ्कारकी अस्मिता कहते हैं। सुख वा सुखसाधनकी इच्छाका नाम राग, दुःख वा दुःख कारणके दूर करनेकी इच्छाका नाम द्वेष और मरण त्रासका नाम अभिनिवेश है। क्लेशकी चार अवस्थाएँ हैं। प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार। क्लेश जब अति सूक्ष्मरूपसे चित्तमें अवस्थिति करते और कोई कार्य करनेका सामर्थ्य नहीं रखते, उसी अवस्थाको प्रसुप्ति कहते हैं। प्रतिकूल भावना करते करते क्लेशोंका जीव हो जाना तनु अवस्था है। मध्य मध्य क्लेशोंका विच्छेद

विच्छिन्न अवस्था कहलाता है। प्रकाशभावापन्न कार्य-
क्षम क्लेश जैव अविरत अपना विषय ग्रहण करने,
तब उन्हें उदार कहते हैं।

जो योगबलसे किसी तत्त्वमें लीन हो सके हैं,
उनको अविद्यादि क्लेश सभी कार्य करनेसे वंचित रहते
हैं। उन्हीं क्लेशोंका नाम प्रसृत है। जिन्होंने योग करना
पारम्भ किया है, उनमें क्लेशोंकी तनु अवस्था रहती
है। फिर संसारमें निरतिशय अभिलाष रखनेवालोंके
क्लेश विच्छिन्न और उदार कहलाते हैं। अविद्या, अज्ञिता,
राम, देव और अभिनिवेश देखो।

२ क्रोध, गुस्सा। ३ व्यवसाय, रोजगार। ४ पापेच्छा

(दिव्यादान)

क्लेशक (सं० त्रि०) क्लेश-वृज्। निन्दहिंसाक्लेश-छादविनाश-
परिधिपरिपटपरिवादिमाभावात्सूयोवृज्। पा १।१।१४६ क्लेश शील,
तकलीफदिह।

क्लेशकारी (सं० त्रि०) क्लेशं करोति जनयति, क्लेश-
क-णिनि। क्लेश उत्पन्न करनेवाला, जिससे तकलीफ
मिले।

क्लेशमार (सं० त्रि०) क्लेशं मारयति नाशयति, क्लेश-

क-णिच्-भ्। क्लेशनाशक, तकलीफ मिटानेवाला।

क्लेशवान् (सं० त्रि०) क्लेशोऽस्त्वस्य, क्लेश-मत्तुप् मस्य
वः। क्लेशविशिष्ट, तकलीफजदा।

क्लेशापह (सं० त्रि०) क्लेशं अपहन्ति, क्लेश-अप्-हन्-ड।
अपे क्लेशतमसोः। पा १।१।१४७। क्लेशनाशक, तकलीफ दूर
करनेवाला।

क्लेशित (सं० त्रि०) क्लेशत क्लेशो जातोऽस्य, क्लेश-

इतच्-वा। क्लेशयुक्त, तकलीफजदा। (प्रकाशितक)

क्लेशी (सं० त्रि०) क्लेश् ताच्छीष्णे णिनि। क्लेशशील,
तकलीफ देनेवाला। (भाव)

क्लेशा (सं० त्रि०) क्लेशकर्तरि ङच् क्लेशकारक, तक-

लीफ देनेवाला।

क्लेशिक (सं० क्ली०) क्लेशकेन यष्टिमधुकया निर्वृ-

तम्, क्लेशक-ठञ्। मध्यविशेष, मुलहट्टी-ी शराव।

क्लेश्य (सं० क्ली०) क्लेशस्व भावः, क्लेश-षण्। पुरुष-

का है—मानसज, धातुज, शक्तज, उपघातज,
सहज और स्थिरशक्तज। सङ्गमेच्छु व्यक्तिके मनमें
किसी प्रकारका अप्रिय भाव उपस्थित किंवा अप्रिय
स्त्रीके सम्भोगसे मनःकुण्ठ होनेसे जो क्लेशत्व आता,
वह मानसिक कहलाता है। कटु, अम्ल, उष्ण तथा
लवण रस अधिक परिमाणमें भोजन करनेसे सौम्य
धातुका क्षय होने पर लगनेवाला क्लेश्य रोग धातु-
ज है। वाजीक्रिया न करके प्रतिशय स्त्री सेवनमें
पड़नेसे ध्वजभङ्ग वा शुक्रक्षयज होता है। प्रतिशय
मैदरोग अथवा मर्मच्छेदसे पुरुषशक्तिका जो व्याघात
पड़ता, उसको वैद्य उपघातज क्लेश्य कहते हैं। जन्म-
से ही पुरुषशक्तिहीन होना सहजक्लेश्य है। वल्लिह
व्यक्ति यदि कामविकार उपस्थित होने पर शक्तको रोक
रखता, तो शक्त स्थिर होकर रहता और क्लेश्य रोग
लगता है, इसीका नाम स्थिरशक्तज है।

इस छह प्रकारके क्लेश्यरोगमें सहज और उप-
घातज अपाध्य होता है। अवशिष्ट चार प्रकारका
क्लेश्य रोग जिस कारणसे लगता, उसके विपरीत प्रति-
कार करना पड़ता है। क्लेश्य रोगमें वाजीकरण
पथ्य है। (सूत्र त्रिकलित १६ च०)

चरकसंहिताके मतमें शीतल तथा रुक्ष अन्न
आहार, अजीर्णमें भोजन, शोक, चिन्ता, भय, त्रास,
प्रतिशय स्त्रीसेवन, अभिचार, वात, पित्त, कफके वैधर्म्य
और अनाहारसे बीजका उपघात होता और क्लेश्य-
रोग लगता है। (चरक) ध्वजभङ्ग देखो।

क्लेशपेट—महिसूरके अन्तर्गत बङ्गलूर जिलार्के चेन्नपा-
टन तालुकका एक शहर। यह अक्षां १२° ४३' उ०
और देशां ७७° १७' पू० पर बङ्गलूर शहरसे अठ्ठाईस
मील दूर प्रारवती पर अवस्थित है। यहाँकी जन-
संख्या प्रायः ६०८८ है। यह शहर रेसिडेण्ट वेरीक्लाजने
१८०० ई०में निर्माण किया था। इसकी इसका नाम
क्लेशपेट पड़ा। यहाँके सुसलमान रेशम कीड़ाओंको
पाकते और उन्नत रेशम तयार करते हैं। इस शहर-
की चामदनी प्रायः साढ़ेतीन हजार ६० है।

क्लेश (सं० क्ली०) कोना देखो।

क्लेशमुण्डो (सं० क्ली०) प्राक्त्रिभिष, कोर्द क्लेशवर।

जिसका देहस्थ वायु, श्रीमद्भाष्य के मुखसे संशय रहता, उस प्राणीकी विद्वान्, श्रीमद्भाष्य कहता है।

श्रीमद्भाष्य (सं० पु०) त्वक्-कोष द्वारा श्वासक्रम निष्पन्न करनेवाला प्राणी, जो जानवर खाससे सांस लेता हो। श्रीमद्भाष्य प्राणियाँ ६ या ८ वस्तु होते हैं। यथा—मकड़ा और केकड़ा।

श्रीमा (सं० पु०) १ पिपासास्थान, फुफ्फुस, दाढ़ना फेफड़ा। यह हृदयके अधोभागमें दक्षिण कुक्षिका एक मांसपिण्ड है। (याज्ञवल्क्य, मिताषा) वैद्ययोग कहते हैं कि दोनों बाइर्के मध्य वक्षः, उसके मध्य हृदय और उसके पास पिपासास्थान श्रीमा है। २ मस्तिष्क, मर।

श्रीरोफार्म (सं० पु०—Chloroform) निद्राजनक औषधविशेष, बेहोश करनेकी एक दवा। यह तरल होता और मोठा मोठा महकता है। इसकी प्रायः नश्वर जगानेमें व्यवहार करते हैं। श्रीरोफार्म आघ्राण करते हो थोड़ासा नशा आता और फिर सूँघनेवाला गाढ़ी नींद सो जाता है। मात्रा अधिक होनेसे मरनेका डर है। यह भीखी खुली रखनेसे उड़ जाता है। चार-बदमाश लोगोंकी सोतेमें श्रीरोफार्म सुँघा बेहोश कर देते और उनका रूपया पैसा खींच बेखटक अपनी राह लेते हैं।

श्रीश (वे० पु०) भय, डर। (चक्र ६।४।१४)

क (सं० अथ०) किम्-अत्। किमोऽन्। पा ३।१।१३ ततः किमः स्थानं कु-आदेशः। कति। पा ३।१।१३ कर्हा, किस जगह। (सारदातिलक) दो पदार्थोंका मिलन वा सम्बन्ध निताम्ब असम्बन्ध होनेसे पण्डित लोग दो 'क' प्रयोग करते हैं। तथा—

“क सर्वप्रथमो वंशः कथाकविषया मतिः” (रघुवंश १)

कङ्क (सं० पु०) कु-अग-अण्। कङ्क, चीना घान।

कचन (सं० अथ०) १ किसी स्थान पर, कहीं। २ कहीं भी। ३ किसी अंशमें, किसी कदर। ४ कभी, किसी समयकी प्राणितिके मतमें क एक पद और वन दूसरा पद है। परन्तु मुग्धशब्दमें कचनको एक ही पद माना है। कचित्, कचन देखो।

काव (सं० पु०) कण् भावे अच्। १ शब्दविशेष, एक

आवाज। चबती बोलीमें इसे कमकल कहते हैं २ वीणाका शब्द, सितार वगैरह बाजेकी आवाज, भन-भन, टिन टिन, छम छम। ३ शब्द, आवाज। कण् कर्तरि अच्। ४ शब्दकारक आवाज करनेवाला।

काणन (सं० स्त्री०) कण् भावे क्णट्। १ भनकन। २ भन-भन। ३ छमछम। ४ शब्द, आवाज। (पु०) कर्तरि अच्। ५ जलाधारविशेष, छोटी इच्छो।

काणित (सं० त्रि०) १ काणन-शब्दयुक्त, कमकल, भन-भन या छमछमकी आवाज निकालनेवाला। (स्त्री०) २ काणन, भनभन, कमकल या छमछम।

काणितेक्षण (सं० पु०) गृध्र, मोघ।

काथ (सं० पु०) काथ-अच्। विकल्पे न ण प्रत्ययः। अवलि कसन्निभो यः। पा ३।१।१४ काथ, काटा, जोशंदा।

काथन (सं० स्त्री०) काथकरण, काटा बनानेकी क्रिया। (सुवृत्त सूत्र ४५ च०)

काथिका (सं० स्त्री०) काथ, काटा।

काथित (सं० त्रि०) कथ क्त। १ पक, सूत, पकाया हुआ, उबाला हुआ। इसका संस्कृत पर्याय—निष्पन्न, कषाय, नियुक्त, काथ और सूत है। (स्त्री०) २ माधवी-मय, महुवेकी शराब। ३ काथ, काटा, जोशंदा।

काथितजल (सं० स्त्री०) काथितश्च तदजलश्चेति, कमधोऽन्। उष्णोदक, गर्म पानी। इसका संस्कृत पर्याय—मृताम्ब, निष्पन्नाम्ब, कषायाम्ब इत्यादि है। यह पादावशेष, अर्धावशेष और त्रिपादावशेष—त्रिविध होता है। पादावशेष कफज, लघु और आग्नेय है। अर्धावशेष पित्तज और त्रिपादावशेष वातज होता है। फिर पादावशेष वसन्तमें, अर्धावशेष शरत् तथा शीतमें और त्रिपादावशेष हेमन्त एवं शिशिरमें प्रशस्त है। वर्षाके लिये षष्ठभागावशेष अच्छा होता है। जो काथ्यमान जल निर्गम, निष्फेन और निर्मल हो जाता, वही काथित कहलाता है। यह दोषज, पाचन और लघु होता है।

काथितद्रव्य (सं० स्त्री०) परिष्ट। किसी चीजको उबाल कर निकाला हुआ रस।

काथिता (सं० स्त्री०) औषधविशेष, एक दवा। चबती बोलीमें इसे कटो कहते हैं। इसको पाक करनेकी

प्रणाली यह है—एक कड़ाहीमें तैल वा घृत द्वारा हरिद्रा और चिक्कु को एकत्र भून लेना चाहिये। अच्छी तरह पक जाने पर उसमें चटनीके साथ मट्टा छोड़ पांच लगाते हैं। हलदी और होंग सिद्ध हो जानेसे उसमें क्षिप्रित् परिमाण मरिच दे देना चाहिये। इसीका नाम क्लथिता है। यह पाचक, रुचिकर, लघु, अग्नि-वृद्धिकर, कफ तथा वायुप्रशमकारी और कुछ पित्त-वर्धक होती है। (भावप्रकाश)

कथःस्य (वे० त्रि०) भूमिपर स्थित।

कल (वे० पु०) कु पल-पच्। अर्धपक्व बदरफल, प्रथ पक्का बेर। (तैत्तिरीय० २।१।१५)

क्वाचर (हि० पु०) १ गरियार बेल, कंधा डाल देनेवाला बेल। (वि०) २ निर्बल, कम कुवत।

क्वाड्रेट (अं० पु० Quadrat) एक समचतुरस्र खण्ड, कोई चौपटजूट, कड़ा। यह टाइपके अक्षर मिलानेमें रिक्त स्थान पर व्यवहृत होता है। क्वाड्रेट सीसेसे ठसता, कम्पाजमें मिलता, स्पेस (वक्फा, बिच्छा) से बढ़ता और कोटेशनसे घटता है। क्वाड्रेट टाइपके बराबर चौड़ा और १ एमसे ४ एम तक लम्बा होता है। इसको क्लाउ भी कहते हैं।

क्वाण (सं० पु०) कण भावे घञ्। १ शब्द, आवाज। (त्रि०) कण-ण। अलितिकसन्तो भो यः। पा १।१।४०। २ शब्द-कारक, आवाज निकालनेवाला।

क्वाथ (सं० पु०) कथ-घञ्। १ अतिशय दुःख, सख्त तक्र-लीफ। २ व्यसन, पादत। ३ निर्यास, दूध। ४ कषाय, काढ़ा। यह वैद्यकमतका एक पाकविशेष है। क्वाथकी प्रस्तुत-प्रणाली यह है—जिस द्रव्यका क्वाथ बनाना हो, उसको बुकनी बना लेना चाहिये। फिर एक पल परिमित बुकनी और उससे १६ गुण जल एक मृत्तिका पात्रमें डाल पांच लगाते हैं। पाठ भागोंमें एक भाग रह जानेसे उतारना पड़ता है। कर्ष परिमित द्रव्यसे पलपरिमित द्रव्य पर्यन्त क्वाथ करनेका यही नियम है। कुछवपरिमित द्रव्यका क्वाथ बनानेमें अष्टगुण और कुछवसे अधिक परिमाणके द्रव्य क्वाथमें चतुर्गुण जल लगता है। (भावप्रकाश)

क्वाथ सात प्रकारका होता है—पाचन, शोधन, क्लेदन,

संशमन, दीपन, तर्पण और शोषण। इनमें अर्धावशेष पाचन, द्वादशांशक शोधन, चतुरंशक क्लेदन, अष्टांशक संशमन, षडंशक दीपन, पञ्चमांशक तर्पण और षोड-शांशक शोषण है।

जलक्वाथ तीन प्रकारका है—पादावशेष, अर्धावशेष और त्रिपादावशेष। पादावशेष जल कफनाशक, लघु और अग्निवर्धक होता है। यह वसन्तकालकी प्रशस्त है। अर्धावशेष जलक्वाथ पित्तनाशक है और शरत् तथा शीतकालमें पीना चाहिये। त्रिपादावशेष जल वायुनाशक होता और हेमन्त तथा शिशिर ऋतुमें उपकार करता है। वर्षाकालकी अष्टमांश अवशिष्ट जल सेवनीय है। दिनका पका पानी रातको और रातका पानी दिनको गुरुपाक हो जानेसे पीना निषिद्ध है। (राजनक्षत्र)

वात, पित्त और कफातङ्गपर क्वाथमें शर्करा क्रमशः चार, आठ और सोलह अंश डालना चाहिये। इससे उलटा अर्थात् वात, पित्त और कफ रोगके लिये सोल आठ और चार अंश मधु पड़ता है। यदि क्वाथमें जीरक, गुग्गुलु, चार, लवण, शिलाजतु, चिक्कु और त्रिकटु (सीठ मिर्च पीपल) डालनेकी कड़ा जाये तो उसे शाणमित (४ मासा) लेना चाहिये। पाचन दोषोंकी पचाता, दीपनसे अग्नि बढ़ आता, शोधन मलशुद्धि लाता, शमन रोगोंकी दबाता, तर्पण धातुओंकी वृद्धि पङ्गुवाता, क्लेदी ज्वरक्लेद लगाता और विषोषी शोष बढ़ाता है। क्वाथ सन्ध्याकी शीघ्र बना लेना चाहिये। रातको दोषका बलाबल देख कर क्वाथ दिया जाता है। नवम्बरमें पीनेसे यह दोष मिटानेके बदले बढाया हो करता है। क्वाथ पानसे यदि क्लेम, मूर्च्छा, विह्वलता वा शिरोव्यथा उठे, तो शीघ्र रोगीको वमन करा देना चाहिये। (चानेयसं०)

पूर्वाह्नकी शमन, अपराह्नकी दीपन, निशीथकी शोषण और सूर्योदयसे पूर्व शोधनीय दिया जाता है। (चन०)

क्वाथि (सं० पु०) अगस्त्यका नामान्तर।

क्वाथोद्भव (सं० क्ली०) उद्भवत्वात्, उद्-भू अपादाने अच्। ततः क्वाथ उद्भवो यस्य, बहुव्री०। अर्परीतुत्यक्त कतिम रसाज्जन, कुलत्याज्जन, रसोत्त।

क़ापि (सं० अथ०) क़-अपि । कही भी, किसी भी जगह ।

क़ारण्टाइन (अ० पु०—Quarantine) गमनागमन संसर्ग निषेध, वहाँ बीमारी रोकनेके लिये सुसाफ़ी राँकी कुछ अरसेके लिये किसी खास जगहमें ठहराया जाना ।

क़ारपन (हिं० पु०) अविवाहितावस्था, जिस हालतमें शादी न हुई हो ।

क़ारापना, क़ारपन देखो ।

क़ार्टरमास्टर (अ० पु० Quartermaster.) १ पैग-खेमिका एक फौजी अफसर । यह रसदका इन्तजाम रखता है । इसी क्नेफटिनेण्टसे कम नहीं समझते । २ पतवार पर हाजिर रहनेवाला एक छोटा अफसर । यह भण्डियाँ, लालटेनें या दूसरे इशारे दिखा कर नाविकोंकी पीत चलानेमें साहाय्य पहुँचाता और उन्हें समुद्रका गान्भीर्य तथा दिशाये बताता है ।

क़ासि—एक संस्कृत पद । यह 'क़' और 'असि' के योगसे बनता है । 'क़' का अर्थ कहा और 'असि'का अर्थ 'तू है' है । अर्थात् क़ासि—तू कहाँ है ।

क़िनाइन (अ० पु० = Quinine) कुनैन देखो ।

क़िक्क (अ० पु० = Quill) पणखीखनी, परका कलम ।

क़ीन (अ० स्त्री० = Queen) राजमहिषी, महारानी, मलका ।

क़ैसारी (हिं० स्त्री०) कोइसारी ।

क़—क़कार अक्षर । क़कार और क़कार योगमें उत्पन्न होनेसे शाब्दिक लोग इसको अतिरिक्त वर्ण-जैसे स्त्रीकार नहीं करते । किन्तु तन्त्रके मतसे क़कार एक अतिरिक्त, अतुःत्रिंशत् अजन, अष्टम वर्गका पञ्चम और एक पञ्चाशत् मातृकावर्णोंका अन्तिम वर्ण है ।

“पञ्चाक्षरविभिर्मात्रा वक्षिता सर्वकंसु ।

अकारादि अकारान्ता वर्णमात्रा प्रकीर्तिता ॥” (गीतमीय तन्त्र)

इसका उच्चारणस्थान कण्ठ है । (वरदात्म १० पटल)

कामधेनुतन्त्रके मतमें क़कार कुण्डलीत्रययुक्त, अतुर्बर्गमय, पञ्चदेवस्वरूप, तीन शक्तियों तथा तीन बिन्दुवर्षे युक्त और शरच्चन्द्रके समान उज्ज्वलकान्ति-विशिष्ट है । इसके कई नाम हैं—कोप, तुम्बक, काक,

रुक्क, संवर्तक, नृसिंह, विष्णुता, माया, महातेजा, युगान्तक, परात्मा, क्रोध, संहार, वलान्त, मेरु, सर्वाङ्ग, सागर, काम, संयोगान्त, त्रिपूरक, क्षेत्रपाल, महाक्षोभ, मातृकान्त, अमल, अक्षज, सुख, कश्यपहा, अनन्ता, कालजिह्वा, गणेश्वर, छायापुत्र, सङ्घात, मलयश्री और ललाटक । (वर्णभिधानतन्त्र)

कोई कोई कहता है कि तन्त्र मतसे भी क़कार कोई अतिरिक्त वर्ण नहीं ठहरता । मातृकावर्णोंके एक पञ्चाशत् संख्यापूरण मात्रकी ही वक्ष्यपृथक् रूपसे रख लिया गया है । वरदात्मन्त्रमें आदिवर्ण क़कारके अनुसार क़कारका उच्चारण-स्थान कण्ठ कहा है । अतएव प्रसिद्ध अभिधानादिमें क़कारका कादि वर्णोंके मध्य रहना भी सङ्गत है । तन्त्रसारप्रणेता क़ल्याणन्त्रने निम्नलिखित प्रमाणके अनुसार उसको संयुक्तवर्ण-जैसा ही ग्रहण किया है—

“अकारादि लकारान्ता वर्णाः पञ्चाशदोरिताः ।

संयोगात् कश्योरिव अकारो मेरुरोरितः ॥”

वाचस्पत्यमें लिखा है, कि मातृकावर्णोंके अन्तर्गत अन्तिम क़कारकी भांति क़ और क़ के संयोगसे उत्पन्न क़कार भी अतिरिक्त नहीं । इसी कारण क़कारका एक नाम संयोगान्त पड़ा है । किन्तु यह किसी प्रकार सङ्गत-जैसा प्राप्त नहीं होता । कारण अन्य शास्त्रोंमें क़कारको अतिरिक्त वर्ण स्त्रीकार न करते भी तन्त्र-शास्त्रके मतानुसार उसको अतिरिक्त जैसा ही मानना पड़ेगा । वरदात्मन्त्रमें क़कार कण्ठ-जैसा वर्णित हुआ है । यह वर्णना आदि वर्णोंके अनुसार की गयी है । ऐसा स्त्रीकार करने पर अन्यवर्ण मूर्धन्य अकारको क्यों नहीं कहा ? इसका कोई कारण कहाँ निर्दिष्ट है । गीतमीय-तन्त्रमें भी “अकारादि अकारान्ता वर्णमात्रा प्रकीर्तिता” वचनसे क़कार अतिरिक्त वर्ण समझा गया है । क़कारका संयोगान्त नाम देख कर उसे अनतिरिक्त नहीं कहा सकते । कारण संयोगान्तकी भांति इसका एक नाम वर्णान्त भी है । प्रथमके अनुसार अनतिरिक्त कहने पर वर्णान्तके अनुसार अतिरिक्त भी कहना पड़ेगा । मातृकावर्णोंके अन्तर्गत जो दो क़कार हैं, वह भी एक नहीं । उनका उच्चारण भी

भिन्न है। उनमें एक छ और दूसरा ल है। पहलीका उच्चारणस्थान मूर्धा और दूसरेका दन्त है। “संयोगात् कवचोरेव चकारो मिवरीरितः” वचनमें अकारका अनतिरिक्त कहा जाना भी कहा जा नहीं सकता। दो वर्णोंके संयोगसे अनतिरिक्त ठहरता, तो ए, ओ, ऐ, औ, र और लको भी अनतिरिक्त वर्ण कहाजा सकता है। कारण स्वरवर्णोंकी परस्पर सन्धिसे भी यह कई वर्ण बन सकते हैं।

अ (सं० पु०) अयति लोकान् प्रलयकाले सर्वाणि भूतानि महाकालोदरं प्रेरयति, क्षि० ७ । १ प्रलय, कथामत । २ राक्षस । ३ नृसिंह । ४ विद्युत्, विजली, गाज । ५ चेत, खेत । ६ चेत्यपाल, खेतका रखवाला । ७ नाश, बरबादी ।

अण्, अण् देखो ।

अण (सं० पु०) अणोति नाशयति सर्वं यथाकालम्, अण-अण् । १ काल, वक्त । सकल अन्य पदार्थ कालमें लय हो जाते हैं। इस कारण कालका नाम “अण” पड़ा है । २ कालका अंशविशेष, वक्तका एक हिस्सा । अमरके मतमें अठारह निमेषोंकी एक काष्ठा, तीस काष्ठार्थोंकी एक कला और तीस कलाओंका एक अण होता है। शब्दार्थचिन्तामणि कहता है कि चक्षुके एक बार निमेषमें जितना समय लगता, उसके चार भागोंका एक भाग अण ठहरता है। पातञ्जलभाष्यको देखते कालका जो शेष अंश बांटनेमें नहीं आता, वही अण कहलाता है। जैसे द्रव्यके और अवयव न रखनेवाले शेष अवयवको परमाणु कहते, वैसेही कालके शेष अंशको अण समझते हैं। न्यायके मतानुसार महाकाल निख द्रव्य है। उसका कोई अवयव वा अंश नहीं होता। उपाधिभेदसे अण, सुहृत् प्रभृति शब्द व्यवहार किये जाते हैं। परन्तु वह कोई अतिरिक्त पदार्थ नहीं।

(दिनकरी १।२)

कोई कोई नैयायिक अन्वयशब्दविशिष्ट कालको भी अण-जैसा निर्देश करता है। (पचता, जानदोबी)

जैन-शास्त्रानुसार काल एक द्रव्य है। रत्नोंकी राशिके समान अलोकाकाशके प्रत्येक प्रदेश पर कालका एक २ अण अवस्थित है। इसके दो भेद हैं—एक

निश्चयकाल और दूसरा व्यवहारकाल । क्षण, समय आवली दिन रात आदि व्यवहार कालके भेद हैं और उस व्यवहारकालका उत्पादक निश्चयकाल है। संसारमें जितने भी पदार्थ पर्यायसे पर्यायान्तर होते रहते हैं। उन सबका उदासीन कारण काल है। छोटा, बड़ा, नया, पुराना, आदि विशेषण जो पदार्थोंके लगते हैं उसमें कालही कारण है। (तत्त्वार्थसूट्रीका)

१ प्रशस्त सुहृत्, पच्छी साधत । (शेषिका) ४ सुहृत्, दो दण्ड । (सिद्धान्तशिरोमणि) अणोति दुःखं नाशयति । ५ उत्सव, जलसा । (भाष १।४) ६ व्यापारशून्य अवस्थिति, बेकारी । ७ पर्व, त्योहार । ८ अवसर, मौका । ९ पराधीनत्व, दूसरेकी मातहतगी । १० मध्य, बीच । ११ धूनक, लोभान ।

अणकाल (सं० स्त्री०) १ सुहृत्काल, जरा देर । २ उत्सवकाल, जलसेका वक्त ।

अणअण (सं० अव्य०) बाहुलकात् प्रकारार्थे द्विवचन । बार बार, छिन छिन ।

अणतु (सं० पु०) अण भावे अतु । अत, जल्दम् । किसी किसी पुस्तकमें ‘अणतु’ के स्थल पर ‘आणतु’ पाठ देख पड़ता है ।

अणद (सं० पु० स्त्री०) अणं यात्रादिसुहृत् ददाति, अण-दा-क । १ मोहृत्क, गणक, जूमी । २ जल, पानी । ३ रात्र्यन्ध्र, अणदान्ध्र, रतौधी ।

अणदा (सं० स्त्री०) अणं उत्सव ददाति, अण-दा-क-टाप् । १ रात्रि, रात । २ हरिद्रा, हलदी ।

अणदाकर (सं० पु०) अणदां रात्रिं करोति, अणदा-क-ट । चन्द्र, चांद ।

अणदाचर (सं० पु०) अणदायां चरति, अणदा-चर-ट । १ निशाचर, राक्षस । (भारत २।५५ च०) (त्रि०) २ रातको चलनेवाला ।

अणदाचरी (सं० स्त्री०) राक्षसी, चुड़ैल ।

अणदान्ध्र (सं० स्त्री०) अणदायां आन्ध्रम्, अतत् । रात्र्यन्ध्रतारोग, रतौधीकी बीमारी । इसका संस्कृत पर्याय—अणद, अणान्ध्र और नक्तान्ध्र है ।

(सुश्रुत, उत्तर १० च०)

अव्युत्ति (सं० स्त्री०) अणं व्युत्तिर्यस्याः, बहुव्री० । विद्युत्, विजली ।

सुप्तावलीको देखते दत्तौय जणमें ध्वंस होनेवालेका

नाम क्षणिक है । (भाषापरिच्छेद १० मुक्तावली) भीड़ देखो ।
क्षणिका (सं० स्त्री०) क्षणिक स्त्रियां टाप् । विद्युत्,
विजली ।

क्षणित (सं० त्रि०) क्षणः सञ्जातोऽस्य, क्षण-इतच् ।
जातक्षण, जिसका जलसा वगैरह हो चुके ।

क्षणिनी (सं० स्त्री०) क्षणः उत्सवो ऽस्यस्याम्, क्षण-इनि
ङीप् । रात्रि, रात ।

क्षणौ (सं० त्रि०) क्षणौ विग्रान्तिकालः उत्सवो वा
अस्त्यस्य, क्षण-इनि । १ विग्रान्त, थकामांदा । २ उत्सव-
युक्त, जलसेदार । (भारत २।१।४४)

क्षणपाक (सं० पु०) क्षणे पच्यते, पच्-कर्मणि घञ्
चकारस्य ककारः । नृदादीनाञ् । पा ३।१।५२ । क्षणकालके
मध्य पाक किया जानेवाला, जो थोड़ी ही देरमें पका
लिया जाता हो ।

क्षत् (सं० स्त्री०) क्षण भावे सम्पदादित्वात् क्तिप् ।
१ हनन, मारकाट । २ विदारण, चीरफाड़ । ३ पीड़न,
तकलीफदिही ।

क्षत (सं० त्रि०) क्षण-क्त । १ विदारित, चीराफाड़ा ।
२ पीड़ित, माराकूटा । ३ घर्षित, घिसा हुआ । (रघु ३।५२)

क्षतियुक्त, जिसे नुकसान लगा हो । (कुमार २।२६)

(स्त्री०) भावे क्त । विदारण, चीरफाड़ । (साहित्यदर्पण ३)

६ घर्षण, घिसन । (माघ १।५०) ७ दुःख, पीड़ा प्रभृति
तकलीफ, दर्द वगैरह । (रघु०) क्षण्यते वध्यते अनेन,

कारणे क्त । ८ व्रण, ताजा जख्म । जिससे रक्त और
पौब बहता, उसे वैद्य क्षत वा सद्योव्रण कहता है ।
इसका संस्कृत पर्याय—व्रण, पक्, इर्म और क्षण्यु है ।

धर्मशास्त्रकार व्यास बताते हैं—क्षत न सुखते जिस
व्यक्तिका मृत्यु आता, उसका अशौच दो प्रकार कह-
लाता है । जिस दिन क्षत पड़ता, उस दिनसे सप्ताहके
मध्य मृत्यु होनेसे ३ दिन और इसके पीछे मरनेसे
सम्पूर्ण अशौच रहता है । (यजुतत्त्व) क्षतयुक्त व्यक्तिको
किसी वैदिक वा स्मार्त कार्यका अधिकार नहीं । वह
सर्वदा ही अशुचि है । पुनस्त्यक्ते मतसे चन्द्र किंवा सूर्य-
ग्रहणके समय, मृत व्यक्तिके पिण्डदानकाल और महा-
तीर्थमें क्षतदोष नहीं लगता । इस समय उसको कार्यका
अधिकार होता है । (प्रावचिनतत्त्व)

८ रोगविशेष, कोई बीमारी । इस रोगका
निदान, सम्प्राप्ति और लक्षण चरकमें इस प्रकार निर्णयित
हुआ है—धनुः लेकर अधिक परिमाणमें व्यायाम,
गुरुतर भारवहन, उच्चस्थानसे पतन, अधिक बल-
वान्के साथ युद्ध, दौड़ते हुये अश्व, हृष वा अन्य किसी
जन्तुको बलपूर्वक धारण, काष्ठ प्रभृतिके आघात, उच्चैः-
स्तरमें अध्ययन, दूर गमन, हृहत् नदी उत्तरण, हस्तीके
साथ द्रुतगमन, सहसा दूरके उत्पतन, अतिशय नृत्य
और अन्य प्रकार क्रूरकर्म आदि सभी कारणोंसे हृदय
क्षत होने पर क्षतरोग उठता है । यह रोग लगनेसे
चरुभङ्ग, शरीरकी शुष्कता तथा अङ्गकम्प उपस्थित
होता और दिन दिन वीर्य, बल, वर्ण, जावण्य, रुचि
एवं अग्नि घटता है । क्रमसे ज्वर, व्यथा और मनोदेन्य
या उपस्थित होता, खाँसीके साथ रक्त गिरता और कफ
पीतवर्ण वा कृष्णपीतवर्ण निकलता है । वक्षःस्थलमें
वेदना, शोणित छटि तथा कासका वेग बढ़ता है ।
जब तक लक्षण अव्यक्त रहता, उसीको इसका पूर्वरूप
समझना पड़ता है । लक्षण प्रकाश न होने और अग्नि
दीप्त रहने तक यह रोग साध्य अर्थात् चिकित्सा
करनेसे आरोग्य हो सकता है । एक वत्सर बीत जाने
पर यह आरोग्य नहीं होता, फिर भी अच्छी चिकित्सा
बलनेसे याध्य हुआ करता है । किन्तु सभी लक्षण
देख पड़ने पर कोई चिकित्सा नहीं चलती । क्षतरोगमें
अमृतप्राशप्लुत, वाङ्मय तथा शक्तप्रयोग अतिशय उप-
कारी और आशुफलप्रद है । (चरक, चिकित्सित १६।५०)

क्षतकास (सं० पु०) क्षतेन जातः कासः, मध्यपदलो० ।

पञ्च प्रकार कासरोगके अन्तर्गत एक भेद । काय देखो ।

क्षतकृत् (सं० पु०) भक्षितकृद्वा, भिक्षावोंका पेड़ ।

क्षतचर्म (सं० पु०) रक्त खदिर, लाल खैर ।

क्षतक्षीण (सं० पु०) उरःक्षतरोग, छातीके फोड़ेकी
बीमारी । क्षत देखो ।

क्षतक्षीरो (सं० स्त्री०) तूजक, रुई ।

क्षतक्षीरी (सं० पु०) अकृतक्ष, मदारका पेड़ ।

क्षतघ्न (सं० पु०) क्षतं हन्ति नाशयति, क्षत-हन्-टक् ।

अमनुष्यकर्मके ऽपि च । पा ३।२।५२। भूकदम्ब, कुकरोंधा ।

क्षतघ्नी (सं० स्त्री०) क्षतं हन्ति, क्षत-हन्-टक्-ङीप् ।

साक्षा, साह । किसी किसी स्थल पर 'क्षतज' पाठ भी है ।

क्षतज (सं० पु-ल्लो०) क्षतात् व्रणाद् जायते, क्षत-जन-उ । १ रक्त, लङ् । (रघु) २ पूय, पीय । ३ काशविशेष, एक खासी । काश देखो । ४ कुङ्कुम । (त्रि०) ५ क्षतसे उत्पन्न । क्षतवृक्षा (सं० स्त्री०) क्षतजा शस्तादिभिः क्षतात् जाता वृक्षा, कर्मधा० । अभिघातजन्य वृक्षा, जखम पानेसे पैदा होनेवाली प्यास ।

वृक्षा सात प्रकारकी है—वातजा, पित्तजा, कफजा, क्षतजा, अप्जा और अक्षजा । शस्त्रादि द्वारा वा अन्य प्रकार क्षत व्यक्तिकी वेदना वा रक्त निर्गम—दो कारणोंसे लगनेवाली पिपासा क्षतवृक्षा कहलाती है । ८ तोला खोलोंका चूर्ण ३२ तोला उष्ण जलमें भिगो कर रख छोड़ना चाहिये । परदिवस प्रातःकाल ४ मासा मधु, ४ मासा गुड़, ४ मासा गन्धारीफलचूर्ण और ४ मासा चीनी मिला कर उसकी सेवनेसे वृक्षाका उपशम होता है । गोलि कपड़े पर सीने और गोलि कपड़ेसे शरीर घावत करनेसे भी वृक्षा मिट जाती है ।

(भावप्रकाश, वृक्षाधिकार) वृक्षा देखो ।

क्षतविक्षत (सं० त्रि०) जखमीसे भरा हुआ, जिसके बहुतसे घाव लगे हैं ।

क्षतविध्वंसो (सं० पु०) क्षतं विध्वंसयति, क्षत-वि-ध्वंस-णिनि, उपपदसं० । हृद्ददारकक्षता, एक बेल ।

क्षतव्रण (सं० पु०) क्षतजन्यः व्रणः, मध्यपदलो० । आघातजन्य व्रण, चोटसे पाया हुआ जखम । यह छह प्रकार व्रणरोगोंके अन्तर्गत है । (भावप्रकाश) व्रण देखो ।

क्षतव्रत (सं० त्रि०) क्षतं भ्रष्टं व्रतमस्य, बहुव्री० । अवकीर्ण, नष्टव्रत, जिसका नियम भङ्ग हो जाये ।

याज्ञवल्करस्मृतिके मतमें स्त्रीसङ्ग करनेसे ब्रह्मचारीका नियम नष्ट हो जाता है । इसीका नाम क्षतव्रत है ।

इसका प्रायश्चित्त अङ्गिराके मतानुसार ६ मास पर्यन्त गर्दभचर्म परिधान करके ब्रह्मचर्याव्रतका आचरण है । (अङ्गिरा)

सङ्गृहकारोंका कहना है कि अनवधानतावशतः स्त्रीसङ्ग करनेपर उक्त प्रायश्चित्त होता है । परन्तु किसी

स्त्रीको उत्साहित करके प्रवृत्त होने पर गधिका चमड़ा पहन एक वर्ष रहना पड़ता है । बारंवार स्त्रीसङ्ग करनेसे एक वक्कर प्राजापत्यव्रत करते और गधेकी खाल पहनते हैं । (देवीनचि)

स्वप्नमें रेतः खलित होनेसे सूर्यकी पूजा करके "पुनर्भू" इत्यादि मन्त्र जपने पर प्रायश्चित्त हो जाता है । (मनु) प्रायश्चित्त देखो ।

क्षतशूक (सं० पु०) नेत्ररोगभेद, पांखकी एक बीमारी । क्षतहर (सं० स्त्री०) क्षतं हरति, क्षत छुट । १ अगुरु, अमर । (त्रि०) २ क्षतनाश करनेवाला, जो जखमकी मिटा देता हो ।

क्षताशौच (सं० स्त्री०) क्षतनिमित्तमशौचम्, मध्यपदलो० । क्षतनिमित्त अशौच, घायल या जखमोको छूत । जिसके किसी प्रकारका क्षत आता, वह सर्वदा अशुचि समझा जाता है । उसीके अशौचका नाम क्षताशौच है । क्षताशौचमें वैदिक वा स्मार्तकार्यका अधिकार नहीं रहता । क्षत देखो ।

"सव्रणः सृतको स्यूथी मनीष्यतरजसलाः ।

क्षतवन्धुर्वन्धुश्च वर्ज्यान्वष्टौ स्वकाकतः ॥" (देवल)

क्षति (सं० स्त्री०) क्षण-क्षिन् । १ हानि, नुकसान, घटो । २ अपचय, नाश । ३ क्षय, कमी । (भारत, ३।१०९ च०)

"ता क्षति लाभ जीर्णं धनु तोरे ।" (तुलसी)

क्षतोत्थ (सं० त्रि०) क्षतज, जखमसे उठा हुआ ।

(सुश्रुत उपतर ५२)

क्षतोदर (सं० पु०) परित्रास्यदर, पेटकी एक बीमारी ।

उदर देखो

क्षतोद्भव (सं० त्रि०) क्षतमुद्भव उत्पत्तिकारणं यस्य, बहुव्री० । १ क्षतज, जखमसे पैदा । (ल्लो०) २ रक्त, खून । (भारत, १।१५२ च०)

क्षता (सं० पु०) क्षद संश्रुतो सोत्र धातुः । क्षद संज्ञायां लृच् अणिट् च । लृच् लो शंसिचदादिभ्यः संज्ञायां चानिटो । उच् १।८४ । १ सारथि, गाड़ोवान्, कोचवान् । २ द्वारपाल, दरवान् । ३ क्षत्रिय रमणाके गर्भसे और शूद्राके औरससे उत्पन्न वर्णसङ्कर ।

"शुद्रादाद्योभवः क्षता चण्डालपापनी शुचाम् ।

वैश्यालक्ष्यविप्रासु जायन्ते वर्णसङ्कराः ॥" (मनु १०।१२)

४ दासीपुत्र, पासवान्का सङ्कल । (भारत १।२०१।१०)

५ मत्स्य, मल्लो । ६ नियुक्त । ७ ब्रह्म । ८ कोषाध्यक्ष, खाजांची । (शतपथब्रा० ११।१।१८)

सत्र (सं० पु० स्त्री०) सतस्त्रायते, स-क ५-तत्, सद् कर्तरि इति वा । १ क्षत्रिय, ठाकुर । (वाजसनेयस० १०।१५) क्षत्रिय देखो ।

क्षत्र्यते मंभ्रियते राज्ञा, सद् कर्मणि त्र । २ राष्ट्र, राज्य । (शतपथब्रा०) ३ शरीर, जिह्म । ४ तनूर । ५ जल, पानी । ६ धन, दौलत । ७ बल, ताकत । (ऋक् ५।११६)
क्षत्रकर्म (सं० स्त्री०) क्षत्रियोंका काम । शौर्य, तेजः, धैर्य, दक्षता, युद्धमें अपलायन, दान और ऐश्वर्यकी सत्र कर्म कहते हैं । (गीता)

किसी किसी पुस्तकमें “क्षत्रकर्म” जैसा पाठ भी लक्षित जाता है ।

क्षत्रधर्म (सं० पु०) क्षत्रियस्य धर्मः, ६-तत् । क्षत्रियोंका धर्म । क्षत्रियोंका अवश्य पालनीय धर्म । क्षत्रिय देखो ।

क्षत्रधर्मा (सं० पु०) क्षत्रस्य धर्मा, ६-तत् । १ क्षत्रियोंका युद्ध प्रवृत्ति धर्म । २ अनेनावंशीय कोई राजा । इनके पिताका नाम संलति था । (हरिवंश २८ च०) (त्रि०) ३ क्षत्रियधर्मयुक्त । (मनु)

क्षत्रधर्मानुग (सं० त्रि०) क्षत्रियधर्मका अनुगमन करनेवाला ।

क्षत्रधृति (सं० पु०) यज्ञविशेष । आवणमासकी पूर्णिमा तिथिकी इस यज्ञका अनुष्ठान करना पड़ता है ।

(आवणमास-श्रौतसूत्र १५।१।१४-१५)

क्षत्रप (सं० पु०) सौराष्ट्रका प्राचीन राजवंश । इसी क्षत्रपका अपभ्रंश सत्रप (Satrap) हुआ है ।

शतराजवंश देखो ।

क्षत्रपति (सं० पु०) क्षत्राणां पतिः पालकः, ६-तत् ।

१ क्षत्रियोंका पालक । (वाजसनेयस० १०।१७) २ क्षत्रप । क्षत्रप तथा क्षत्रपति देखो ।

क्षत्रपादप (सं० पु०) क्षत्रप देखो ।

क्षत्रबन्धु (सं० पु०) क्षत्रियस्य बन्धुरिव । १ निन्दित क्षत्रिय । (माकंछ्येय ८।७) २ क्षत्रिय । (मनु २।१८)

क्षत्रभृत् (सं० पु०) क्षत्रं विभर्ति, क्षत्र-भृ-क्तिप् । क्षत्रियोंका प्रतिपालक भूमि । (वाजसनेयस० १७।७)

क्षत्रयोग (सं० पु०) अथर्ववेदीय राजयोगविशेष ।

(अथर्वसं० १०।५।२)

क्षत्रवर्जि (वे० त्रि०) क्षत्रं वर्जयति, क्षत्र-वर्ज-ङ् । (कन्दवि वर्जयति रक्षिमयम् । पा ३।१।१७) १ क्षत्रिय जातिभागी, क्षत्रिय जाति अवलम्बन करनेवाला । (वाजसनेयस० ५।१७) २ पुरोडाश निष्पन्न करनेकी क्षत्रियों द्वारा स्वीकार किया जानेवाला । (वाजसनेयस० १।१७)

क्षत्रवर्धन (सं० त्रि०) क्षत्रं वर्धयति, क्षत्र-वर्ध-णिच् ल्य । धन तथा बल वृद्धिकारक, दौलत और ताकत बढ़ानेवाला । (अथर्व १०।६।२८)

क्षत्रवान् (सं० त्रि०) क्षत्रः प्रतिपाल्यत्वे नास्त्वस्य, क्षत्र-मतुप् मस्य वः । क्षत्रियप्रतिपालक ।

(आश्वलायनश्रौतसूत्र ४।१)

क्षत्रविद्या (सं० पु०) क्षत्रविद्याया व्याख्यानः, क्षत्र-विद्या अण्, (अणुगयनादिभ्यः । पा ४।१।७१) १ क्षत्रविद्याका व्याख्यान ग्रन्थ । २ क्षत्रविद्या अध्ययन कर चुकनेवाला, जो धनुर्वेद पढ़ा हो ।

क्षत्रविद्या (सं० स्त्री०) क्षत्राणां विद्या, ६-तत् । क्षत्रियोंकी विद्या, धनुर्वेद । यह शब्द ऋगयजुषादिके अन्तर्गत है ।

क्षत्रवृक्ष (सं० पु०) क्षत्रनामा वृक्षः । १ सुसुकुन्दवृक्ष, कोई पेड़ । इसका संस्कृत पर्याय—क्षित्रक और प्रतिविष्णुक है । सुसुकुन्द देखो । २ क्षीरिणीवृक्ष, खिरनीका पेड़ ।

क्षत्रवृद्ध (सं० पु०) १ आयु वंशीय कोई राजा । २ त्रयोदश मनुके पुत्र । (हरिवंश ७ च०) (त्रि०) क्षत्रेषु वृद्धः । ३ क्षत्रियश्रेष्ठ, ठाकुरोंमें बड़ा बूढ़ा ।

क्षत्रवृद्धि (सं० पु०) त्रयोदश मनुके पुत्र । (हरिवंश ७ च०) किसी किसी पुस्तकमें क्षत्रवृद्धिके स्थान पर ‘क्षत्रवृद्ध’ पाठ भी मिलता है ।

क्षत्रवृद्ध (सं० पु०) क्षत्रवृद्ध राजाका नामान्तर ।

(भागवत ८।१७।७)

क्षत्रवेद (सं० पु०) धनुर्वेद, क्षत्रविद्या । (रामायण १।६।१२)

क्षत्रश्री (सं० त्रि०) क्षत्राणि श्रयति, क्षत्र-श्री-क्तिप् दीर्घश्च । वविप्रश्चावतस्तुष्टम् गुनीषा दीर्घश्च । पा १।१।७८ । बल-सेवी, बलवान् । (ऋक् २।१५।५)

क्षत्रसव (सं० पु०) क्षत्रस्य सवः, ६-तत् । क्षत्रियोंके करनेका एक यज्ञ ।

क्षत्रान्तक (स० पु०) क्षत्रस्य अन्तकः, ६-तत् । परशुराम । (भट्टि)

क्षत्रान्तकारी (स० पु०) क्षत्रियोंका नाश कर सकने-वाला । (विष्णुपुराण)

क्षत्रि—पञ्चाव, बङ्गाल, बिहार, युक्तप्रदेश और बम्बई प्रदेशवासी एक वर्णिक सम्प्रदाय । इन्हें खत्री वा क्षत्री कहते हैं । यह स्थिर किया जा नहीं सकता—पहले इनका प्रकृत देश कहाँ था । फिर भी अनुमानसे पञ्चाव-के अन्तर्गत सुलतान प्रदेश ही क्षत्रियोंका असली देश ठहरता है । आज भी अन्यान्य स्थानापेक्षा पञ्चाव, गुजरात और बम्बई प्रदेशके उत्तरांशमें ही इनकी संख्या अधिक है ।

क्षत्रा अपनेको 'क्षत्रिय'—जैसा परिचय देते और 'खत्री' नामसे परिचित होना नहीं चाहते । बिहारके क्षत्री अपनेको 'क्षत्री' लिखते हैं । पञ्चावो क्षत्री अपने क्षत्रियत्वके प्रमाणार्थ अपने उपवीत धारण, वेदाध्ययन, धर्मग्रन्थ पाठ प्रभृति व्यवहारोंका उल्लेख करते हैं । वास्तविक क्षत्रियोंका उपवीत होता है । यह वेद-मन्त्रादि भी उच्चारण करते और पंजाबमें लुधियानाके क्षत्री अष्टम वर्षवयसको उपवीत धारण करके वेद पढ़ते हैं । सारस्वत ब्राह्मण इनके हाथकी कच्ची रसोई खाते हैं । इनका गोत्रभेद ब्राह्मणोचित होता तो है, परन्तु उससे इनका कोई कार्य नहीं चलता । यह अपने गोत्रमें विवाह नहीं करते हैं सही, किन्तु ब्राह्मणोचित गोत्रसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है । वरकन्याका ब्राह्मणोचित गोत्र एक होते भी विवाह कर लिया जाता है । क्षत्रियोंमें अग्रवालोंकी भाँति एकप्रकार गोत्रभेद है । उन्हीं सकल गोत्रोंकी लेकर स्वगोत्रादि निरूपित हुआ करते हैं ।

क्षत्री प्रधानतः पूर्वदेशी और पश्चिमदेशी दो भागोंमें विभक्त हैं । पछैहँ पूरबियोंकी कुछ हीन जैसा समझते हैं । उभय विभागोंके मध्य परस्पर सैकड़ों पीछे एक भी विवाह होते देख नहीं पड़ता । बङ्गाल देशमें जितने क्षत्री वास करते, वह औरजिबके समय साहोरसे आकर यहाँ रहें थे । यह पञ्चावो क्षत्रियोंकी रीतिनीतिकी ही अपनी विधिवद् रीतिनीति जैसी

पादरणीय समझते हैं । बङ्गालमें क्षत्री खूब सम्मानित जाति हैं । यह विशुद्ध क्षत्रियरूपसे परिचित हुए हैं ।

बङ्गालके वर्धमान-महाराज इसी जातिके गोष्ठीपति हैं । क्षत्री प्रायः व्यवसाय वाणिज्य करते हैं । बहुतेक मोहसी खेत और जमीन्दारी है । यह अपने हाथसे कभी हल नहीं चलाते, किसानोंसे खेती करा लेते हैं । यह वैष्णव, शैव और शाक्त सभी सम्प्रदायभक्त होते हैं । सारस्वत ब्राह्मण इनका पौरोहित्य करते हैं । क्षत्रियोंमें भिन्न भिन्न गोत्रोंके भिन्न भिन्न कुलदेवता हैं । पूर्ववङ्गमें चण्डिका देवी इनके मध्य सर्वापेक्षा पूजनीया है । जब महाराज मानसिंह (१५८५ ई०) ठाका जीतने गये, उन्होंने उद्दूजङ्गलमें छावनो डाली थी । वनमें उन्हें दुर्गाजीकी एक मूर्ति मिली । प्रवाद है—यह मूर्ति आदिशूरकी परित्यक्ता पत्नी वेदवती कर्तृक प्रतिष्ठित हुई थी । जो हो, महाराज मानसिंहने उक्त मूर्तिको एक मन्दिरमें प्रतिष्ठित किया । यही ठाका शहरकी ठाकेश्वरी देवी हैं । ठाकेश्वरी मन्दिरका उपस्रत्व आज भी किसी खत्री और रमना आखाड़ेके ब्रह्मचारी महन्तकी मिलता है ।

ठाकाके पायकपाड़ा नामक स्थानमें बङ्गाली क्षत्रियोंकी एक शाखा है । यह अपनेको 'रणक्षत्रि' बताते हैं । यह क्षत्रियोंसे अति नीच-जैसे गण्य हैं । अपने इस प्रदेशके वास सम्बन्ध पर यह बङ्गालसेन और मानसिंहका नाम लिया करते हैं । कनौजिया ब्राह्मण इनके पुरोहित और बङ्गाली ब्राह्मण दीक्षागुरु हैं । वह स्वजातीय गोत्र छोड़ बङ्गाली शूद्रोंके 'पालम्यान' गोत्रीय-जैसे परिचित होते और चक्रवर्ती प्रभृति उपाधि ग्रहण करते हैं । ठाकेश्वरी बङ्गाली शूद्र छिपकर इनके साथ खाते हैं । यह खेतीबारा और दूकानदारी किया करते हैं । इनमें ताल्लुकदार भी हैं । पुरबिहा और पछैहँ क्षत्री फिर ४ उपविभागोंमें बँटे हैं—बुनयाही, सरिन, बाढ़ी और थोकरन । ऐसे अनेक विभागका कारण है । अला-उद्दीन खिलजीने क्षत्रियोंमें विधवा-विवाह चलानेकी विशेष चेष्टा की थी । पछैहँ क्षत्रियोंने उसका प्रतिवाद करनेकी पूर ब्राह्मण दिक्षी भेज दिये । इसीसे उन्हें 'बुनयाही' कहते हैं । पुरबिहा उनसे अलग

रहने पर 'सरिन' (सुसलमानी चाल चलनेवाले) कहे गये। यज्ञरजाति विद्रोही होने पर उनसे मिलने-वाले 'थोकरन' नामसे विख्यात हुए। इनसे दूसरे आदान प्रादान करनेमें आशङ्का रखते हैं। महरचंद, क्षणचंद और कपूरचंद तीन क्षत्री प्रकृष्टरकी राज-पूत पत्नियोंके रक्षक बन कर दिल्ली गये थे। इसीसे वह म्रष्ट हो गये। इनके वंशधर परस्पर विवाहादि करके स्वतन्त्र श्रेणीमें गण्य हुये। इन्हींको 'बाढ़ी' कहते हैं। महरचंदके वंशीय 'महरोत्र' वा 'महरा', क्षणचंदके वंशीय 'खन्ना' और कपूरचंदके वंशीयोंने 'कपूर' उपाधि धारण किया। यही महरा, खन्ना, कपूर और सेठो उपाधिधारी क्षत्रियोंमें विशेष गण्य और सम्मान भाजन है। यह चारो श्रेणियां फिर व्यवहार भेदसे पश्चिमाञ्चल और पूर्वाञ्चलकी पांच समाजोंमें विभक्त हैं। पश्चिममें 'चारजाति' 'पांचजाति' तथा 'कहजाति' और पूर्वमें 'चारजाति' 'पांचजाति', 'कहजाति', 'बारहजाति' बावनजाति और 'पिक्वाल' हैं। इनका चारजाति समाज फिर 'ठारैचर' और 'चारचर' दो भागोंमें विभक्त है। 'ठारैचरका' अर्थ यह है कि उक्त समाजके लोग पिछवंश, माछवंश और पिछमाछवन्धुवंशमें विवाह नहीं करते पर्यात् ठारै चर छोड़ कर उनका विवाह होता है। 'चारजातिसे यह अर्थ आता कि उक्त क्षत्रियोंका विवाह केवल ४ विशिष्ट गोत्रोंमें किया जाता है। इसी प्रकार विशेष विशेष सामाजिक नियमोंसे अन्यान्य श्रेणियोंका नामकरण हुआ है। पछै हा क्षत्रियोंमें सोधी, वेदी, कपूर, खन्ना, महरा, सेठ आदि कई गोत्र हैं। पुरविहीमें निम्नलिखित गोत्र मिलते हैं—

चारजातिमें—कपूर, खन्ना महरा और सेठ; पांच जातिमें बेरो विरज, सैगल, सरवाल तथा बड़े; कह जातिमें भले, भवन, सुपत, तुलवर, भुरमन; 'बारह जाति' में चोपड़, चौई, कक्कर, मेंहदीन, सोनी, टण्डन और 'बावन जाति' में बेहल, चल अग्गो, धंकावी, नटलपुरी, हन्दी, केवली, खशाली, कुचल, मरवाही, नेयर, नन्दी, सुरी प्रभृति शाखा हैं।

गोत्र—अक्किरस, वात्स्य, भरद्वाज, हंसकृषि, कौशिक और लोमथ होता है।

सिवा इसके युक्तपदेशमें विभिन्न श्रेणियां, शाखायें प्रचलित हैं।

बुनभाही उपविभागमें वेदी और गोत्रीय सर्वपिन्ध मान्यमण्य हैं। कारण वेदीगोत्रमें सिख धर्मप्रवर्तकबाबा नानक और सोधी गोत्रमें गुरु रामदास और गुरु हरिगोविन्द दासने जन्म लिया था। सिखोंके राजत्वमें सोधी लोग बहु प्रबल रहे। यह लाहोरपति कालरायके पुत्र सोधीरायके वंशधर-जैसा अपना परिचय देते हैं। फिर वेदी अपनेकी लाहोरपति कालरायके भ्राता कसूरपति काहपतरायके पुत्र-जैसा अपनेकी बताते हैं। यदी कालपत भ्रातृपुत्र कर्तृक राख्य, त होने पर काशी गये और वहां वेदाध्ययन करके वेदी आख्याको प्राप्त हुए। गुरुदासपुरके मध्य जहां बाबा नानकका मृत्यु हुआ आजकल उसी डेरानानक नामक स्थानको यह अपना प्रधान स्थान-जैसा विवेचना करते हैं। होशियारपुरके अन्तर्गत आनन्दपुर—निहङ्ग उपासकी और सोधियोंका केन्द्रस्थान है।

व्यवसाय वाणिज्य ही खत्री लोगोंकी प्रधान उप-जीविका है। पञ्जाब अञ्चलमें यही लिखने पढ़नेका सब काम करते हैं। सरकारी विचारादि विभागोंमें भी इन्हींका आधिक्य देख पड़ता है। स्वभावतः सैनिक बननेके उपयुक्त न होते भी खत्री आवश्यकतानुसार तलवार उठा सकते हैं। यह दृढ़विश्वासी हिन्दू हैं। देखनेमें खत्री सुन्दर, गौरवर्ण, सुगठित और सत्-स्वभाव लगते हैं। इन्हींमें समग्र पञ्जाब और अफगानिस्तानके वाणिज्यका प्रायः ठेका सौ रखा है। यही वहांका हिसाब वगैरह देखने और व्यवसाय तथा क्रयविक्रयकी मंजानी करते हैं। अफगानिस्तानकी सीमा पर पेशावर और हजारा जिलेमें खत्री काबु-लियोंके साथ सद्भावसे मंजानी चलाते, व्यवसाय-यादिका हिसाब लगाते, और कारबारकी जगहमें दूकानदारी, गद्दीवाली और कोठीवालीका काम भी किया करते हैं। मध्य-एशिया और रूसमें भी यह देखे जाते हैं। तुर्कस्थानमें लोग इन्हें पीतमुख और भीतप्राण हिन्दू कहते हैं। कश्मीरकी खकर जातिकी और कांगड़ा पर्वतकी पशुपालक गच्छी जातिकी

बहुतसे लोग खत्री जातिकी एक शाखा-जैसा समझते हैं।

दक्षिणात्यके खत्री भी कहा करते—इस 'खत्री' नहीं, 'क्षत्रिय' हैं और भरद्वाज, जमदग्नि, काश्यप, कात्यायन, वासमीकि, वशिष्ठ तथा विश्वामित्र सप्तर्षि वंशमें उत्पन्न हुए हैं। इनके कौलिक देवता गणपति तथा महादेव और कौलिकदेवी तुलजाभवानी एवं येलाय्या हैं। दक्षिणी खत्रियोंमें श्रेणी वा सामाजिक भेद देख नहीं पड़ता। यह मध्यमांसाहारी, कुटिल, क्रोधी, चतुर, परिश्रमी और शुद्धाचारी हैं। इस प्रदेशमें खत्री प्रधानतः कपड़े बुनने और रेशम रंगनेका काम करते हैं। सतारा जिलेमें तुलजापुरकी सम्बा-बाई देशीका मन्दिर इनका प्रधान तीर्थस्थान है। यह शङ्कराचार्यकी विशेष भक्ति करते और पिशाचादिमें विश्वास रखते हैं। इनके सन्तान जन्म लेनेसे नाड़ी-च्छेदके पीछे उसके सुखमें दो एक बूंद शहद डाल दिया जाता है। फिर पञ्चमरात्रकी जीवती और वछीदेवीकी पूजा करते हैं। द्वादश दिनकी बालकका नामकरण और दोलारोहण होता है। अष्टम वर्षकी उसका उपवीत किया जाता है। स्मार्त ब्राह्मणोंकी भांति इनका भी विवाहादि होता है। विवाहके पूर्व गौधाल नाचकी ठहरती है। यह शवकी जलाते और ग्यारह दिन अशौच मानते हैं। अनुपवीत बालक और अविवाहिता बालिकाका शव प्रोथित किया जाता है। पाश्चिम मासके प्रथम दिन यह गृहदेवताके सम्मुख केलेके पत्ते पर थोड़ी मट्टी रखते और उसमें पञ्चशय्य वपन करते हैं। शक्ताष्टमीके दिन दुर्गाके नाम पर मेघी बलि दी जाती है। दशमीके दिन उक्त केलेके पत्ते के क्षेत्रमें शम्भाहुर प्रायः २१ या २३ इंच बड़ पाने पर स्त्रियां महासमारोहसे नदीतीर ले जाकर उक्त क्षेत्रको विसर्जन करती हैं। माघी पूर्णिमाकी स्त्रियां गृहदेवताके भवनमें जाकर नङ्गी हो जातीं और कटिदेशमें निम्बशाखा बांध कर देवताको प्रदक्षिण करतीं, चारति उतारतीं तथा रत्नचन्दनके जलसे स्नान कराके साष्टाङ्ग प्रणाम लगाती हैं। इनका जात्यभिमान बहुत तीव्र है। यह मिश्रित होते हैं। सामा-

जिक अपराधी पंचायतके विचारसे जातिशुद्ध कर दिया जाता है।

पंजाबके खत्रियोंकी एक निम्नश्रेणी है। उनको विशुद्ध क्षत्री बड़ी छुपा करते और खजाति-जैसा खोकार करना नहीं चाहते। इनमें कोई कोई अपनेको खत्रीका औरस-जात-जैसा बताता है। यह भी खत्रियोंकी भांति व्यवसाय वाणिज्य करते और वाणिज्यमें वैसे ही सुनिपुण लगते हैं। यह 'रड़' नामसे ख्यात हैं। मालूम होता है कि इसी रड़ श्रेणीके लोग बङ्गालमें रह ठाकाके पायकपाड़ा पञ्चाल पर रणक्षत्रि कहाये हैं। खत्रिणी (सं० स्त्री०) १ मन्त्रिष्ठा, मजीठ। २ क्षत्रियस्त्री, छतरानी।

शक्तिदास—धारवाड़ जिलेके भिन्नुकोंकी एक श्रेणी। यह अपनेको देवदास भी कहते हैं। इनके पूर्वपुरुष मन्दा-जके अन्तर्गत कदपा जिलेसे औविकार्जनकी धारवाड़ गये थे। इनकी भाषा कर्णाटी है। मन्दाजके अन्तर्गत तिरुपतिवाले वेङ्कटरमण, रानावेन्नूरके अन्तर्गत कदरमण्णुकी 'मावति' और कनाड़ाके अन्तर्गत उड़ु-पिवाले 'मञ्जुनाथकी' यह अपना प्रधान देवता मानते हैं। इनकी श्रेणी वा समाजमें कोई भेद नहीं और वंशगत उपाधिभेद भी देख नहीं पड़ता। यह नासिकाके अग्रभागसे कपासके मध्यस्थान पर्यन्त गोपौचन्दनका तिलक लगाते, श्रूमध्य रोलीकी पाङ्क जमाते, कपड़ेके दो टुकड़े रस्सीकी तरह लपेट पगड़ो बाँधते, शरीरमें पल्लवालक पहनते, घुटने तक लम्बा पायजामा रखते, कानमें पीतलकी सुरकी डालते, मणिवस्त्रमें पीतलका कड़ा चढ़ाते, तुलसीकी कण्ठी गलेमें झुलाते और वाम हस्तमें मयूरपुष्पका चामर तथा तान चंगोछे रखते हैं। गलेमें हनुमान्की मूर्तिसे अङ्कित पीतल वा ताँबेका एक पदक, दक्षिण हस्तमें एक शङ्ख और कंधे पर चमड़ेकी भीसी भीख माँगनेकी रहती है। यह भाँक या शङ्ख बजा स्त्रीय उपास्य देवताके नामसे जयशारण करके द्वार द्वार भिक्षा माँगते घूमते हैं। इनका कोई निरूपित वासस्थान नहीं। कोई ज्यादा नशा नहीं खाता पीता। किन्तु हरिष, मेघ एवं पक्षीमांस तथा मत्स्य खाहार करते

हैं। इनकी स्त्रियां हिन्दुस्थानियां-जैसी पोशाक पहनतीं, केवल काँह नहीं मारतीं। यह ब्राह्मणों, वैश्यों और जैनोंसे भीख मांगते हैं। सकल ही क्षत्रिदास श्रीवैष्णवसम्प्रदायभुक्त हैं। काशीनिवासी तत्त्वाचार्य नामक एक यति इनके प्रधान आचार्य हैं। क्षत्रिदास बहुत ही मस्तिनवेशी होते हैं।

सन्तान उत्पन्न होने पर नाड़ीच्छेद करके यह क्षत्रि नाड़ीको महीमें गाड़ देते हैं। रेड़ीका तेल लगा गमं पानीसे बालक नहलाया जाता है। त्रयोदश दिन-को शिशुका नामकरण होता है। क्षत्रिदास शवदाह करते हैं। रजःसाव और मृत्युको ८, ३ और ५ दिन इनका अशौच रहता है।

क्षत्रिय (सं० पु०) द्विजातियोंके अन्तर्गत द्वितीय वर्ण, ऋक्, यजुः और अथर्ववेदमें कहा है—

“ब्राह्मणोऽस्य सुखमासीवाह राजन्यः जनः।

अथ तस्य तद्वैश्वः पदभ्यां यद्री अजायत॥”

(अथर्ववेद १०।८०।१२) यजुःपुनः २।१।१२, अथर्व १८।६।६)

इस (पुरुष)-के मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे राजन्य वा क्षत्रिय, ऊरुसे वैश्य और पांवसे शूद्रने जन्म लिया है।

मनु और पुराणादिके मतमें भी विराट् पुरुषके बाहुसे क्षत्रिय वर्णकी उत्पत्ति हुई है। किन्तु महा-भारतमें लिखा है—

‘न’ विशेषोक्ति वर्णानां सर्व’ ब्राह्मिद’ जनतः।

ब्राह्मणा पूर्वं सृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥ १०

कामभोगप्रियासीत्याः क्षीयनाः प्रियसाहसः।

व्यक्तस्वधर्मा रक्षाज्ञाको द्विजाः क्षत्रतां गताः ॥ ११

मीभोगे इति समाख्याय पीताः कृष्यपजोविनः।

स्वधर्माग्रतः तिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥ १२

हिंसाऽवृत्तप्रिया कुम्भाः सर्वकर्मोपजोविनः।

कृष्णाः शौचपरिधृष्टाको द्विजाः शूद्रतां गताः ॥ १३

इत्येतेः कर्मभिव्यंशा द्विजा वर्णान्तरं गताः।

वर्णो यश्चक्षिया तेषां नित्यः न प्रतिविध्यते ॥ १४ (आनिपर्व १८८४०)

वास्तविक रूपसे इहलोकमें वर्णोंका इतर विशेष नहीं, यह सर्वजगत् ब्रह्ममय है। मनुष्य पहले ब्रह्मासे सृष्ट हुये, पीछे कर्मोंसे वर्णताको पहुँचे हैं। जो ब्राह्मण कामभोगप्रिय, तीक्ष्ण, क्षीयन, प्रियसाहस, स्वात्मस्वधर्म और रक्षाज्ञ बने, वह क्षत्रिय बन गये।

जिन्होंने रजो और तमोगुणके प्रभावसे पशुपालन और क्षत्रिकार्य अवलम्बन किया और अपने ब्राह्मण धर्मका छोड़ दिया, वही वैश्य हैं। फिर हिंसा और अनृत-प्रिय, लुब्ध, सर्वकर्मोपजोवि, क्रूर तथा शौचपरिभ्रष्ट ब्राह्मण शूद्रताको पहुँचे हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणोंने विभिन्न कर्मोंसे पृथक् पृथक् वर्ण लाभ किया है। अतएव सभी वर्णोंको नित्यधर्म और नित्य यज्ञका अधिकार है।

फिर आदिपर्व (७५ अध्याय)-में कहा है—

विवक्षान् सूर्यसे मनु एवं मनुसे ब्राह्मण तथा क्षत्रियादिने जन्मग्रहण किया है। इससे इनको ‘मानव’ कहते हैं। “ब्रह्मणोऽस्य सुखमासीवाह मनोजातास्तु मानवाः।”

जगत्के आदिग्रन्थ ऋक्संहितामें ४६ बार ‘क्षत्र’ और ८ बार ‘क्षत्रिय’ शब्द आया है। वैदिकनिघण्टुमें क्षत्र शब्दका अर्थ ‘जल’ (१।१२) और ‘धन’ (२।१०) लिखित हुआ है।

सायणाचार्यने ऋक्संहिता (१२।४।६, १।२।५, १।४।०, १।५।८, १।५।११, १।१३।१, १।१३।३, १।१५।६, १।१६।५, ४।१०।१, ४।६।६, ५।६।२, ५।६।१, ५।६।३, ६।२।८, ६।५।३, ६।६।५, ६।६।६, ७।१८।२, ७।३४।१, ७।६।१, ८।१८।३, ८।२।८, ८।३।६, ८।३।७, ९।१८।८, ९।६।०।२) के भाष्यमें क्षत्र शब्दका अर्थ ‘बल’ वा ‘शरीर’ लगाया है।

फिर १।११।६, ३।३।५, ४।४।८, ५।२।६, ५।३।८, ५।६।६, ६।८।६, ७।२।३ एवं ८।२।७ ‘धन’; १।१६।२।२ तथा ४।२।१ ‘बल वा तेज’; ३।३।३ में ‘धन वा बल’; ९।१८।८ में ‘प्रजापालनसमर्थ बल’; ७।३०।१ में ‘शत्रु हिंसक’; ७।२।७ में ‘बल एवं हिंसा’; ९।१४।३ में ‘क्षतात्तायक’; १।१५।२ में बल वा क्षत्रियजात और केवल ८।३।५। १७-मन्त्रके भाष्यमें ‘क्षत्र’ का अर्थ ‘क्षत्रिय’ किया गया है।

इसी प्रकार ‘क्षत्रिय’ शब्दके अर्थ कालका ४।१२।३ में ‘बल’ ५।६।२ में ‘इन्द्र’ ७।६।२ में ‘बलवान् युवा’ ७।१०।१ में ‘बल’; ८।२।८ में ‘बलवान्’, ९।६।६ में ‘बलार्ह’, ९।१०।२ में ‘राजा’ ४।४।२ में क्षत्रिय जात्यत्तक, और ८।६।१ मन्त्रके भाष्यमें सायणाचार्यने ‘क्षत्रिय’ का अर्थ क्षत्रियजाति लिखा है।

उपयुक्त प्रमाणोंसे जान पड़ता कि 'क्षत्र' शब्द ४६ बार ऋग्वेदमें उक्त होते भी सायण कर्तृक केवल एक बार और मूल क्षत्रिय शब्द ८ बार प्रयुक्त होते भी निःसन्देह एक ही बार 'क्षत्रियजाति' अर्थमें व्यवहृत हुआ है।

प्रथमतः जहाँ सायणने क्षत्र शब्दका अर्थ 'क्षत्रिय' किया, वह मन्त्र नीचे दिया है—

“अथ जित्तुतुत जित्तुतं नृनृत्तं रक्षांसि सेधतमनोवाः ।” (२२५।१०।

इसका भाष्य है—

‘अथ चरित्रं जित्तुतं च नृन् योद्धन् जित्तुतम् ।’ (सायण)

अर्थात् आप क्षत्रियोंकी जीतिये और (मानव) योद्धाओंकी जय कीजिये। यहाँ भिन्न भावसे 'नृन्' अर्थात् सायणके मतानुसार 'योद्धन्' रहने पर उन्होंने जा 'क्षत्रिय' अर्थ लगाया है, उसका भी बलवान् अर्थमें ग्रहण करनेसे कोई दोष नहीं आता।

द्वितीयतः—

“मम हिता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विद्याधीर्षिश्च अमृता यथा नः ।

अतुं सचमो वरुचस्य देवा राजानि कष्टेऽपमस्य वनेः ॥”

(ऋक् ४।७।१।)

अर्थात् मैं बलवान् और समस्त विष्णुका अधिपति हूँ, मेरा राज्य द्विविध है। समस्त देव मेरे हैं। मैं रूपावान् और वरुणात्मक हूँ। देव जिस प्रकार मेरी यज्ञसेवा करते हैं, मैं भी मनुष्योंका राजा हूँ।

इस अक्षरपर सायणने क्षत्रियका अर्थ 'क्षत्रियजात्युत्पन्न' लिखा है। किन्तु मन्त्रमें 'राजानि' रहनेसे फिर क्षत्रियजातीय-जैसा परिचय देनेका कोई कारण देख नहीं पड़ता। सुतरां सायणने सर्वत्र जो 'बलवान्' अर्थ ग्रहण किया है, यहाँ भी वही रखनेसे नितान्त अयोग्य नही होता। इसी प्रकार ८।६।३ मन्त्रमें भी 'बलवान्' अर्थ लगाया जा सकता है। देशीय और विदेशीय अपरापर वेदशास्त्राध्यायियोंने भी ऐसा ही अर्थ रखा है, इसमें सायणके साथ कोई विरोध नहीं पड़ता। *

*यद्यपि वेदमें भी खान खान पर चर (२।५।२, २।२।२, २।५।२, ७।८।२ और चरित्र शब्द (४।१५।२, ८।७।२ आदि) चल, बलवान् अर्थमें व्यवहृत हुआ है।

जब देखते हैं कि ऋक्संहितामें 'क्षत्र' और 'क्षत्रिय' शब्दोंका प्रयोग रहते भी वह जातिवाचक नहीं ठहरती तो ऋक्संहिताकी भांति आदिमकालको 'क्षत्रिय' नामसे कोई स्वतन्त्रवर्ण निर्णीत हुआ या नहीं? इस बात पर बड़ा सन्देह है। प्राचीनतम कालकी जातिभेद न था। यदि होता, तो ऋक्संहिता केसे सुष्ठवत् धर्म-पुस्तकमें क्षत्रियोंका विशेष परिचय अवश्य मिलता। मालूम होता है—इसी क्षिये शान्तिपर्वमें पूर्व कालकी वर्णभेद नहीं कहा गया है।

पूर्व कालकी जा बलवान्, तेजस्वी, धनवान् और प्रजापालनके उपयुक्त रहे, वही क्षत्रिय जैसे परिचित हुई। वचं देखो। इसी प्रकार गुणकर्मनुसार वर्णविभान होने पोछे, समझ पड़ता कि ऋग्वेदका उक्त पुरुषसूक्त ऋषियोंने देखा था।

महाभारतके शान्तिपर्वमें लिखा है—

“क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययनसङ्गतः ।

दानादानरतियं च स वै क्षत्रिय उच्यते ॥” (१८८।५)

क्षत्रिय वेदाध्ययन-सङ्गत कर्म किया करते हैं। दान और करग्रहणमें अनुराग रखनेवालोंका ही नाम क्षत्रिय है।

हारीतके मतमें—धर्मानुसार प्रजापालन, अध्ययन, यथाविधि यज्ञका अनुष्ठान, दान, धर्मनुष्ठान, अपनी स्त्रीमें अभिवाध, प्रजाके निजटसे उपयुक्त करग्रहण, गतिशास्त्रकी अभिज्ञता, सन्धि तथा विग्रहकी कुशलता, देव और ब्राह्मणमें भक्ति, पित्रेकार्यका अनुष्ठान, अश्वमें-का अनुष्ठान न करना आदि क्षत्रधर्म हैं। जो यह सकल धर्म प्रतिपालन करते, वह उत्तम गतिकी पङ्क्तिते हैं।

वशिष्ठके कथनानुसार क्षत्रधर्म तीन है— अध्ययन, शस्त्रविद्याभ्यास और प्रजापालन।

“नोचि राजन्स्राध्ययनं शस्त्रेण च प्रजापालनं क्षत्रधर्मो न जीवित् ।

(वशिष्ठ)

पञ्चपुराणके स्वर्गखण्डमें क्षत्रियोंका धर्म इसप्रकारसे निर्णीत हुआ है—क्षत्रियोंकी सर्वदा दान और यज्ञ करना चाहिये। प्रजापालन, नित्योत्साह, दम्बहेतु और युद्धकाकको पराक्रम प्रकाश ही क्षत्रियोंका धर्म है।

अविद्यत शरीर युद्धसे प्रतिनिवृत्त होने पर इच्छलोक और परलोकमें क्षत्रियोंकी निन्दा होती है। क्षत्रियोंकी धर्मानुसार सड़ना और प्रजावर्गकी स्वधर्ममें रखना चाहिये।

क्षत्रियोंके लिये निम्नलिखित सकल कर्म निषिद्ध हैं—कर और विवाहके यौतुक व्यतीत अपर दानग्रहण, युद्धसे पलायन, प्रार्थियोंसे कातरता, प्रजाका अपमान, दान और धर्मसे विरक्ति, राज्यके प्रति दृष्टि न रखना, ब्राह्मणोंका अनादर, अमात्यवर्गका असम्मान, कार्यके प्रति असमयोग और शत्रुके साथ परिहास।

क्षत्रियोंकी वाङ्मयाका यथानियम वेद और राजनीति अध्ययन करना चाहिये। जीवनकी राज्यभार ग्रहण करके धर्मानुसार प्रजापालन, राजसूय अश्वमेध प्रभृति यज्ञोंका अनुष्ठान, ब्राह्मणोंकी दक्षिणादान और दुर्गन्त राजाओंकी युद्धमें पराजित करके राज्य निष्कृष्टक बनानेका उनके लिये विधान है। पीछे स्त्रीय पुत्रके हस्तमें राज्यभार अर्पण करके आदि द्वारा पिछलोक, यज्ञ द्वारा देवलोक और दानसे सुनियोंकी रिक्ता अन्तःकाशका अन्तिम आश्रममें गमन करना चाहिये। जो क्षत्रिय इस नियमसे अन्तिमाश्रय ग्रहण कर सकता, वह कभी सिद्धिसे वञ्चित नहीं रहता। वानप्रस्थ अवसंन्यन करनेसे क्षत्रियका नाम राजर्षि पड़ता है। उसकी समस्त गृहधर्म छोड़के जीवनरक्षाके लिये केवल भिक्षावृत्ति पकड़ लेना चाहिये। सभी वर्णाश्रम धर्मोंमें क्षत्रियधर्म प्रधान है। क्षत्रियोंकी धर्म परित्याग करनेसे प्रथम धूलिमें मिला जाती और उनके अपने धर्ममें रहनेसे सभी लोगोंकी बग आती है। प्राचीन पौराणिकों और वेदिकोंने क्षत्रियधर्मकी जितनी प्रशंसा की है, उतनी किसी धर्मकी देख नहीं पड़ती।

(पद्मपुराण खंड २६) राजधर्म देखो।

पद्मपुराणमें और भी कहा है—

“इयाद्राजा न वापि यजेत न च वाजसेत्।

नाप्यापवेदधीवीत।” (खंड २६ पं०)

‘राजा वा क्षत्रियको दान करना, किन्तु कभी दूसरेसे याचना न चाहिये। यज्ञ करना उसका धर्म है, परन्तु अपने आप याजन (परोक्षित्य) करना निषिद्ध

होता है। उसकी अध्ययन करना, किन्तु अध्यापनासे दूर रहना चाहिये।’ यही पौराणिक कालका नियम है। किन्तु वेदिक कालकी इसका व्यतिक्रम देख पड़ता है। यास्कने निरुक्तमें कहा है—

कुशवंशीय ऋष्टिषेणके पुत्र देवापि और शन्तनु दो भाई थे। जब छोटे भाई शन्तनु राजा हुए, देवापि तप करने लगे। शन्तनुके राज्यकालकी देवताओंने बारह वर्ष जल वर्षण न किया था। ब्राह्मणोंने शन्तनुकी सम्बोधन करके कहा—तुमने अधर्माचरण किया है, ज्येष्ठ भ्राताको राजा न बना अपने आप अभिषिक्त हुए, इसीसे देवता वर्षण नहीं करते। शन्तनुने देवापिकी अभिषेक करनेके लिये प्रस्ताव उठाया था, किन्तु देवापिने उत्तर दिया—मैं तुम्हारा पुरोहित बनूंगा और तुम्हारे लिये यज्ञ करूंगा।

जगतके पादिपत्य ऋक्संहितामें भी लिखा है—ऋष्टिषेणके पुत्र देवापि देवताओंकी कक्षाणी स्तुति करके होम करने लगे। (सूक्त १०।८८।५)

“यह वापिः शन्तनुसे पुरोहितो होवायुः अपवसरोधेत्। देवयुतं वृद्धिर्वाणि रवाचो वृद्धयतिर्वाचमका अयच्छत् ॥” (सूक्त १०।८८।७) इत्यादि।

सभी लोग जानते हैं कि विश्वामित्रने क्षत्रिय हो कर ब्राह्मणत्व लाभ किया था। किन्तु इसका भी प्रमाण मिलता है कि सिवा विश्वामित्रके दूसरे भी अनेक क्षत्रिय ब्राह्मण बन गये।

महाभारतमें पृथुदकके निकटवर्ती किसी पवित्र तीर्थकी वर्णना पर लिखित हुआ है—

जहां उपतपा महायज्ञा धार्ष्टिषेणने सिद्धि लाभ और सिन्धुद्वीप, राजर्षि देवापि तथा विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व लाभ किया, वहीं वलराम जाकर उपस्थित हुए।

(अनुपर्व ४० पं०)

सिन्धुद्वीप क्षत्रियराज अम्बरीषके पुत्र थे।

भागवतके मतमें मनुके पुत्र धृष्ट थे। उन्होंने धार्ष्टि क्षत्रिय वंश निकला है। धार्ष्टिने क्षत्रिय होते भी ब्राह्मणत्व लाभ किया। (१।१।१० और नीलरटोका) मार्कण्डेय-पुराणकी देखते दिष्टके पुत्र नाभाग क्षत्रिय होकर भी वैश्वकन्यासे विवाह करके वैश्य बन गये। फिर हरिवंशमें लिखा है कि नाभागारिष्टक दो पुत्रोंने वैश्य होते भी ब्राह्मणत्व लाभ किया। (हरिवंश ११ पं०)

वायुपुराणके मतमें—युवनाम्नके पुत्र हरित थे। उनके वंशधर चारित नामसे प्रसिद्ध रहे। यह अङ्गिराके पुत्र और क्षत्रोपेत ब्राह्मण थे। (विष्णुपुराण १. ४११५ की ओरटीका देखो।)

हरिवंशकी देखते—चलवृद्धके पुत्र शुनहोत और उनके लड़के काश, शल तथा गृत्समद थे। गृत्समदके पुत्रका नाम शुनक रहा। इन्हीं शुनकसे शौनक (ब्राह्मण) का जन्म हुआ। (हरिवंश २८. ५०)

महाभारतमें लिखा है—वीतहव्यके पुत्रोंने काशिराज दिवोदासकी आक्रमण किया था। उसी युद्धमें काशिराजके आत्मीय लोग मारे गये और राजा दिवोदास भरद्वाजके आश्रममें जा कर रहने लगे। भरद्वाजने दिवोदासके लिये एक यज्ञ किया था। उससे दिवोदासके प्रतर्दन नामक एक पुत्र हुआ। यथाकाल प्रतर्दनको पिताने वीतहव्यके विरुद्ध प्रेरण किया था। वीतहव्यने भाग कर मङ्गधि भृगुका आश्रय लिया। प्रतर्दन पता लगने पर भृगुके आश्रम जा पहुँचे और वीतहव्यको दिखा देनेके लिये कहने लगे। भृगुने झूठ ही कह दिया कि वहाँ कोई क्षत्रिय न था। प्रतर्दन अपनी राह चलते बने। भृगुकी कथा पर क्षत्रिय वीतहव्य उस दिनसे ब्राह्मण बन गये। वेदवित् गृत्समद इन्हीं वीतहव्यके पुत्र थे।

(चनुशासन पर्व १०. ५०)

विष्णुपुराणमें पढ़ते हैं—ययातिवंशीय क्षत्रियराज अप्रतिरक्षसे कहने जन्मग्रहण किया था। उनके पुत्र मेधातिथि रहे। यह ब्राह्मण हो गये थे। (विष्णुपुराण ४. १८५०)

पूर्वोक्त ब्राह्मणोंके मध्य बहुतसे वेदसूक्तोंके ऋषि हैं। वहाँ तक कि ब्राह्मण-समाजमें जो गायत्री नित्य पठित होती, वह भी विश्वामित्र ऋषि दृष्ट है।

इसी प्रकार अनेक क्षत्रियोंके ब्राह्मणत्वलाभकी कथा पुराणादिमें कही है।

देवापिको भांति बहुतसे क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी तरह पौरोहित्य करते थे। वैदिक काल की इसी पौरोहित्य पर ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें घोरतरविवाद उठ खड़ा होता था।

ऋक्संहिताका कोई कोई सूक्त पढ़नेसे समझ पड़ता है—पहले वशिष्ठ ऋषि सुदासके पुरोहित रहे,

पौछे विश्वामित्रने सुदासके पुरोहित* बन कर वशिष्ठको अभिशाप दिया।

ऋग्वेदकी अनुक्रमणिकाके पाठसे जाना जाता कि सुदासके पुत्रोंने वशिष्ठपुत्र शक्ति की अग्निकुण्डमें डाला था। (अनुक्रमणिका ८. १२) कोषोतकीब्राह्मणके चतुर्थ अध्यायमें राजा सुदासके संश्रयसे वशिष्ठपुत्रके विनाशकी कथा लिखी है। सामवेदके पञ्चविंशब्राह्मणमें भी वशिष्ठ 'पुत्रहत' जैसे निर्दिष्ट हुए हैं। रामायणमें कहा है—वशिष्ठने विश्वामित्रके एक शत पुत्र मार डाले।

(रामायण १. ५१५ सर्ग) वशिष्ठ, विश्वामित्र और सुदास देखो।

महाभारतके आदिपर्वमें देखा जाता है—राजा कृतवीर्यने वेदज्ञ भृगु पुत्रोंको पौरोहित्यके लिये वरण किया और यज्ञान्तमें सोमरस पान करके उनको बहुतसा धनधान्य दिया था। राजाके स्वर्गगमन करने पर उनके पुत्रोंको पर्यंका प्रयोजन पड़ा। भृगुके पुत्रोंने महीमें धन छिपा रखा था। किसी क्षत्रियने मही खोद उसे खोज करके निकाला था। फिर क्षत्रियोंने जाकर भागवोंको विनाश किया। यहाँ तक कि भागव-रमणियोंके गर्भस्थ सन्तान भी बच न सके। (आदिपर्व १०८. ५०) भीव देखो।

उक्त भृगुवंशमें ब्राह्मणवीर परशुरामने जन्म लिया था। उन्होंने कर्तवीर्य और क्षत्रिय राजाओंको संहार करके फिर ब्राह्मणोंका प्राधान्य स्थापन किया।

परशुराम देखो।

ऋग्वेदके ऐतरेयब्राह्मणमें कहते हैं—श्लाघण* सौषघ्न विश्वन्तरके पुरोहित रहे। राजा विश्वन्तरने उनका अधिकार छीन अपने किसी जातिकी यज्ञपुरोहित बना दिया। किन्तु (यज्ञकालकी) राजाने देखा कि उनके यज्ञकी वेदोंके निकट श्लाघण* पहुँचे थे।

* ऋग्वेदोप १५ मन्त्रके ५१ सूक्तमें विश्वामित्रने वशिष्ठकी अभिशाप देनेका आभास मिलता है। शौनकने इस सूक्त पर उल्टे मतमें लिखा है—

“परायतकी वासत वशिष्ठके विषी विदुः।

विश्वामित्रे च ताः प्रोक्ता अभिशापा इति श्रुताः॥

इ वाके वासु ताः प्रोक्ता विद्याये वाभिचारिकाः।

वशिष्ठासु न प्रकृतिरता वासंतस्यतम्।

कीर्तनाच्छ्रुत्वा वापि महान् दोषः प्रजावते॥” (४. २१. २०)

उन्होंने चिढ़ कर कहा—दुष्ट ब्राह्मण चाहे हैं, शीघ्र वेदीके निकटसे चटा दो। भृत्योंने राजाका पासन की थी। श्वापचोर्ने ताड़ित होने पर कहा—हममें जो बलवान् है, वह शीघ्र इस यज्ञका सोमरस पी डाले। उस समय वेदविद् राममार्गधेयने* राजाको समझाया था—‘जिसने समस्त वेद अध्ययन किया है, उसको भी क्या भगा दीजियेगा। सोमरसमें चतुर्थिका अधिकार नहीं, ब्राह्मणका ही अधिकार है। भ्रमक्रमसे ब्राह्मणका अंग गृह्य (पान करने) पर उस चतुर्थिके वंशधर ब्राह्मण ही जाते हैं। हे राजन् ! आपके वंशधर भी ब्राह्मण होंगे। (पतरियत्रा० ७:१७-१८)

उक्त विवरण पढ़नेसे मालूम पड़ता है—पूर्वकालको जो चतुर्थि यज्ञमें ब्राह्मणोंके साथ विशेष संश्लिष्ट रहते, उनके पुत्र ब्राह्मण-जैसे गृहीत हो सकते थे। परन्तु सम्भवतः परवर्ती कालको यह प्रथा लुप्त होगी।

बहुतसे लोग कहा करते हैं—परशुरामने एक काल को पृथिवी निःचतुर्थि कर डाली थी। किन्तु इसका प्रमाण मिलता है कि परशुराम कट्टक वसुधरा एक बारगी ही चतुर्थिशून्य नहीं हुई। महाभारतमें लिखा है—

‘पृथिवी चतुर्थिशून्य बनाके परशुरामने ब्राह्मणोंका स्थापन किया था। किन्तु पृथिवी चतुर्थिशून्य बन पराजित होने पर शूद्र और वैश्य रूक्माक्रमसे ब्राह्मण पत्नीयोंके साथ गमन करने लगे। बलवानोंका दुर्वर्त्तों पर अत्याचार पारम्भ हुआ। पृथिवी नितान्त पीड़ित हो रसातलको चबाने लगी। महर्षि कश्यपने पृथिवीको रसातल जाते देख कर हारा प्रवरोध किया था। उस समय पृथिवीने प्रसन्न होकर कहा—‘भगवन् ! मैंने हेतुय-वंशीय अनेक चतुर्थिरमणियोंके गर्भमें चतुर्थि सन्तानोंको बचाया है। इस समय वही मेरी भी रक्षा करें। पौरवोंके ज्ञाति त्रिदुर्यके पुत्र वर्तमान हैं। वह कृष्ण-वान् पर्वतमें भक्षकोंके यत्नसे बच गये हैं। महर्षि पराशरने दया करके सौटासपुत्रकी रक्षा की। उन्होंने (ब्राह्मण होकर भी) स्वयं शूद्रकी भांति बालकके सब

काम ठाये थे। इसी बालकका नाम सर्वकर्मा है। प्रतर्दनके लड़के महाबल पराक्रान्त वत्स भी मौजूद हैं। वह गोष्ठमें गोश्लक्ष्णक रक्षित हुए। महाराज शिविके पुत्र भी इसी प्रकार गोसमूहके यत्नसे बच गये। उनका नाम गोपति है। दिविरक्षके पुत्र और दधिव-हमके पौत्रको गङ्गातीरमें महर्षि गौतमने बचाया है। प्रभूत सम्पद्वासी लहद्वय गृध्रकूटमें गोलाकुल कट्टक रक्षित हुए और नदीपति समुद्रने मरुत्पति सद्य बहू वीर्यवासी मरुत्तवंशीय बहुसंख्यक चतुर्थिकुमार बचा लिये हैं। इन सभी राजकुमारोंने आजकल स्थापति और सुवर्णकारजातिका आश्रय ग्रहण किया है। इनके रक्षा करने पर ही मैं सुखीर हो सकती हूँ।’ इस पर महर्षि कश्यपने पृथिवीके निर्देशानुसार उक्त सकल चतुर्थिराजकुमारों और उनके भार्य-वैद्योंको बुला रात्र्यमें अभिषिक्त किया।’ (शान्तिपर्व ४८ अध्याय)

राजा, युध, चायस्व, जाति, वचं वधति शब्द देखो।

“चतुर्थि तन्धरि समर सजाना।” (तुलसी)

२ कट्टपत्नी, कराकुल चिड़िया। ३ चौरिणीगृह्य, खिरनीका पेड़।

चतुर्थिका (सं० स्त्री०) चतुर्थि-कन्-टाप् आकारस्व अकारः। के०चः। पा० ७।४।११। विकल्पोऽन पूर्वस्व अकारस्व इकारः। उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः। पा० ७।१।४।५। चतुर्थि पत्नी, क्षत्रिया, क्षत्रानी।

चतुर्थिवरा (सं० स्त्री०) असाधुमेद, किसी किस्मका कड़, मोठी लीकी।

क्षत्रियहृत् (सं० पु०) चतुर्थिं हन्ति, चतुर्थि-हन्-अच्। परशुराम। (महाभारत ५।१०५)

चतुर्थिया (सं० स्त्री०) चतुर्थियाणां स्त्रीजातिः चतुर्थि-टाप्। अर्थचतुर्थियाणां वा। पा० ४।१।४८ वार्तिक। चतुर्थिजातीय स्त्री, क्षत्रानी।

“शरः चतुर्थिया यावत् प्रतीकी वेदकल्पया।” (सन् १।४४)

चतुर्थियाणी (सं० स्त्री०) चतुर्थियाणां स्त्रीजातिः, चतुर्थि-डीष्-आनुक् आगमश्च। चतुर्थिपत्नी, ठकुरायन।

चतुर्थियासन (सं० स्त्री०) योगाङ्ग आसनविशेष। केश द्वारा पादद्वय आवृत्य करके अधोमुख होकर रहना चाहिये। इसका नाम चतुर्थियासन है। इस आसनमें

* पत्न्यर्के सुहित पुत्रकर्म राममार्गधेय पाठ है।

उपासना करनेसे मनुष्य धनवान् होता है। (चद्रयानम्)
 अलियिका (सं० स्त्री०) अलिया-कन्-टाप् भाकारस्य
 अकारः तस्य च इकारः। अलिया, छलानी।
 अलियो (सं० स्त्री०) अलियस्य पत्नी, अलिय-हीप्।
 (प्रयोगशाखायाम्) पा ४।१।४८ अलियपत्नी, ठकुरायन।
 अली (हिं०) अलिय देखो।
 अलीपत्न (सं० पु०) अनमिल वंशीय शफरके पुत्र।
 (विष्णुपुराण ४।२४।२)
 अलीजाः (सं० पु०) वाहद्वयवंशीय मगधके एक राजा।
 यह क्षेमधन्वाके पुत्र थे। (विष्णुपुराण ४।२४।२)
 अदत् (सं० लि०) १ विभक्त, खण्डित, कटा हुआ।
 २ आहारके उपयोगी, खाने लायक।
 अदन (सं० पु०-स्त्री०) १ खण्डन, विभागकरण, बंट-
 वारा। २ अशन, खाना।
 अद्य (सं० स्त्री०) अद्य मनिन्। १ जल, पानी। (अक
 १०।१०६।१०) २ अक्ष। (निषध)
 अन्तव्य (सं० लि०) अन्त-तव्य। १ अन्तके योग्य, अन्त
 करनेके उपयुक्त, माफ़ीके लायक, जो माफ़ किया जा
 सकता हो। (अपराधमंजनस्य) (स्त्री०) क्षम भावे तव्यत्।
 २ क्षमा, माफ़ी। (मनु ८।११२)
 अन्ता (सं० लि०) अन्त-तव्य। अन्ताशील, माफ़ी देने-
 वाला। (महाभारत १।१।१०१)
 अप (सं० स्त्री०) अप-क्षिप्। रात्रि, रात। (अक ४।४।१२)
 अप (सं० पु०) अप-अप्। १ जल, पानी। (लि०) अप-
 अप्। २ अन्ताशील, माफ़ करनेवाला।
 अपय (सं० पु०-स्त्री०) अपयति विषयरामम्, अप-
 णिच्-अप्। १ बौद्धसंन्यासी, भावे अट्। २ क्षेपण,
 त्याग। ३ अश्वीच, नापाक हासत। (मनु ५।०१) ४ उप-
 वास, पाका। (मनु ४।१।१२) ५ दूरीकरण, हटाव। (भारत,
 समा) ६ अयकरण, मार। ७ दोषहरण। (लि०)
 निर्वृत्त, बेधर्म, बेइया, निवस। ८ क्षेपणकारी, हट
 देनेवाला।
 अपयक (सं० पु०) अपय स्वार्थे कन्। १ कोई बौद्ध-
 संन्यासी। (अट) २ नास्तिकमतप्रचारक। ३ निर्वृत्त,
 बेइया। ४ कोई कवि। यह नवरत्नोंमें द्वितीय रत्न-
 असे कहात है। नवरत्न देखो। अपयक अनेकार्थधनि-

मन्त्रो नामक संस्कृत अभिधान और उच्चादिस्वरको
 अपयकवृत्तिके रचयिता थे।
 अपयकता (सं० स्त्री०) अपयक-तल्-टाप्। अपयकता
 धर्म। (पञ्चतन्त्र)
 अपयी (सं० स्त्री०) अप कर्मणि अट्-हीप्। अपयी,
 एक जाति।
 अपय्य (सं० पु०) अप् बाहुलकात् अय्यः अत्यय।
 अपराध, कुर्म।
 अपा (सं० स्त्री०) क्षपयति वारयति इन्द्रियचेष्टाम्,
 अप-अप्। १ रात्रि, रात। (अक ४।५।१०) २ हरिद्रा,
 हल्दी। ३ दारुहरिद्रा।
 अपाकर (सं० पु०) अपा करोति, क्षप-अ-ट। १ चन्द्र,
 चाँद। २ कपूर, कापूर।
 अपाकृत् (सं० पु०) क्षप-अ-क्षिप् तुगागमस्य। १ चन्द्र,
 चाँद। २ कपूर, कपूर। (माघ)
 अपाचर (सं० पु०) अपायां रात्रौ चरति, अपा-चर-ट।
 १ राक्षस, शैतान्। (महाभारत १।१८८।११) (लि०)
 २ रात्रिकालको विचरण करनेवाला, जो रातको
 घूमता है।
 अपाचरी (सं० स्त्री०) राक्षसी, डाइन।
 अपाट (सं० पु०) अपायां अटति, पा-अच्। राक्षस,
 आदमखोर। (अटि १।२०)
 अपानाथ (सं० पु०) अपाया नाथः, इ-तत्। १ चन्द्र,
 चाँद। २ कपूर, कपूर। (माघ)
 अपान्ध (सं० स्त्री०) राक्षान्ध, रतौधो।
 अपापति (सं० पु०) अपायाः पतिः, इ-तत्। १ निशा-
 पति, चन्द्रमा। २ कपूर।
 अपावान् (सं० लि०) अपपति शत्रून् उदकं वा, निपा-
 तनात् साधुः। १ शत्रुओंको भगा देनेवाला, जो दुश्म-
 नोंको हटा देता हो। २ जलक्षेपण करनेवाला, जो
 पानी फेंकता हो। ३ क्षपाविशिष्ट, रातवाला।
 (अक १।५।१०)
 क्षम (सं० लि०) अन्त-अप्। १ युक्त, रखनेवाला।
 (भाट्टनल) २ शक्त, सकनेवाला। (अटि) ३ हित, भला।
 ४ अन्ताशुक्त, माफ़ करनेवाला। यह शब्द प्रायः यौनि-
 कपसे प्रयुक्त होता है। जैसे—कार्यक्षम इत्यादि।

(पु०) ५ गृहकर्ता पत्नी, बर्ष । ६ विष्णु ।

(महाभारत १३।१४।६०)

क्षमता (सं० स्त्री०) क्षमत्व भावः, क्षम-तत्-टाप् ।

१ योग्यता, सामर्थ्य, ताकत । २ शब्दके अर्थप्रकाश करनेका सामर्थ्य, श्रियाकत । (महाभारत)

क्षमणीय (सं० त्रि०) क्षम-घनीयर् । क्षमा करनेके योग्य, माफ किया जानेवाला ।

क्षमना (हिं० क्रि०) क्षमा करना, माफी देना ।

“क्षमन् महासुखी भवति” (तुलसी)

क्षमवान् (सं० त्रि०) क्षमावान्, माफ करनेवाला ।

क्षमवाना (हिं० क्रि०) क्षमा कराना, माफ करनेकी रगुषत देना ।

क्षमा (सं० स्त्री०) क्षम-घञ् । १ क्षान्ति, बुराईकी बरदाश्त । वाक्, आध्यात्मिक वा आधिदैविक दुःख उत्पन्न होने पर कोप या निवारणकी चेष्टा न करनेका नाम क्षमा है । (उच्यते)

किसी व्यक्ति कट्टर निन्दित वा अपमानित होते भी उसकी निन्दा वा हिंसा न करना और वाक्, मन तथा शरीर निर्दोष रखकर सहना ही क्षमा कहलाता है । (महापु० १२० च०)

निन्दा, अतिक्रम, अनादर, हेतु, बन्ध और वध समस्त परित्याग करनेका नाम ही क्षमा है । (कोमेपु० १४ च०)

महाराज बुधिष्ठिरने द्रौपदीको सम्मान देनके लिये यह कह कर क्षमाकी भूयसी प्रशंसा की है कि क्षमा ही गृहस्थके मङ्गलके एक माल कारण और क्षमा ही परिणामको स्वर्ग प्रवृत्ति उत्कृष्ट लोकप्राप्तिका कारण है, इत्यादि । (महाभारत १।२८।१३)

“क्षमा करहु मिय सेवक जानी” (तुलसी)

जैनशास्त्रानुसार दशधर्मोंमेंसे पहला धर्म । इसकी साधु सर्वथा और गृहस्थ एक देश पाकता है । क्रोध कषाय-को पैदा न होने देना ही क्षमा है । (तत्त्वार्थसूत्र)

क्षमते सहते आत्मोपरिस्त्रितानां जीवानां अपराधम्, क्षम-घञ्-टाप् । २ सुखी, जमीन् । (मद्रि १।२२) ३ दुर्गा । ४ खदिरवृक्ष, खेरका पेड़ । ५ राधिकाकी कोई सखी । ब्रह्मवैवर्त पुराणके प्रकृतिकण्डमें कहा है—राधिका-की सखी क्षमाके साथ क्रोधा करके विष्णु उसीके साथ

श्री गये । राधिकाने जाने पर उन्हें देख कर जगाया था । उसी क्षणासे विष्णुका रंग कासा पड़ गया । क्षमाने भी क्षमासे प्राणत्याग किया । भगवान् उसके शोकमें रोते रोते पत्थिर हुए । शेषमें उन्होंने क्षमाका मृत शरीर खण्ड खण्ड करके वेणुवी, धार्मिकी, धर्मी, दुर्बली, देवताओं और पण्डितोंको थोड़ा थोड़ा दे डाला ।

क्षमाकल्याण—एक प्रसिद्ध जैन-ग्रन्थकार । यह प्रकृत-धर्मवाचकके शिष्य थे । इन्होंने संस्कृत भाषामें प्रलय-ढतीयाव्याख्यान, अष्टाङ्गिकाख्यान, मेरुतयोदशी-व्याख्यान, आवकविधिप्रकाश, श्रीपालचरित्रकथा, साधु-विधिप्रकाश, सूत्ररत्नावली प्रभृति ग्रन्थ प्रणयन किये ।

आवकविधिप्रकाशमें जैनगृहस्थोंके दैनिक, पालिक, मासिक और वार्षासिक कृत्यादि निरूपित हुए हैं ।

साधुविधिप्रकाशमें जैन-साधुवीक्षा कर्तव्याकर्तव्य, अशन-ग्रयन और वारतिथिके अनुसार नामाविध कृत्य वर्णित हैं ।

सूत्ररत्नावली जेनोंके बड़े आदरका ग्रन्थ है । इस जैनतीर्थावली, जैनधर्मप्राप्तिका उपाय, स्वादादमाहात्म्य, आश्रवादि परिहार तथा उसका उपाय, जैनधर्मतत्त्व, कलिकालमाहात्म्य, इन्द्रिय और रिपुजयका उपाय, सन्तोष, आत्मस्वरूप, आत्मगति और आत्मज्ञानियोंकी प्रकृति सरलभावसे बताया गयी है ।

क्षमाचार (सं० स्त्री०) क्षमायां भुवोऽधो भागे चरति, क्षमा-चर-ट । पातालवासी, जमीनकी नीचे रहनेवाला ।

(वाजसनेयवर्हिता १।५०)

क्षमादेश (सं० पु०) श्रीभाष्यनवृक्ष, सर्जजनका दरखत ।

क्षमानन्द वाजपेयी—एक संस्कृत कवि । कवीन्द्रचन्द्रोदयमें इनकी कविता उद्धृत हुई है ।

क्षमाना (हिं० क्रि०) क्षमा कराना ।

क्षमापति (सं० पु०) कश्मीरके एक राजा ।

क्षमापन (हिं० पु०) १ क्षमा करनेका कार्य वा अभ्यास, माफ करनेकी आदत, माफीदिही ।

क्षमाभुज् (सं० पु०) क्षमा भुजति, क्षमा-भुज्-क्तिप् । राजा । (नाव)

क्षमावनी (हिं० क्रि०) एक जैन पर्व । भाद्रपक्षमासको

इसका पंचमीसे चतुर्दशीतक पर्यन्त पर्वका अनुष्ठान होता है। उसके बाद कहीं पूर्णमासीको और कहीं प्रतिपदको समस्त जैन एकत्र होकर गतदिनोंमें किये गये अपराधोंको एक दूसरेसे क्षमा कराते हैं। उससमय बड़ेसे बड़ा मनुष्य भी छोटे आदमीसे 'क्षमा कीजिये' आदि वचन द्वारा और हाथ जोड़ने आदि शरीर द्वारा विनय कर विनम्रभावका परिचय देता है। उत्तरमें दूसरा व्यक्ति भी अपनी मन्त्रता दिखलाता है और इस तरह पहिलेके मनमुटावको दोनों भूल खेही बन जाते हैं। जैनयोग इस दिन यह गाथा कहकर करते हैं—

“अस्मानि सर्वजीवाणि सर्वे जीवा खमंतु मे ।

मित्रो मे सर्वभूदसु वैरं मज्झम केण वि ॥”

अर्थात् मैंने अपने मन वचन काय द्वारा सबके अपराधोंको क्षमा कर दिया है, अतः सबजीवोंसे मैं भी अपने अपराधोंकी क्षमा चाहता हूँ। मेरी सब जीवोंसे मित्रता है और मैं कभी किसीके साथ वैर भाव नहीं करूँगा।

क्षमावान् (सं० त्रि०) क्षमा विद्यतेऽस्य, क्षमा-मतुप् मस्य वः। क्षमायुक्त, सहिष्णु, माफ करनेवाला, गम-खोर। (गव० १४४ ५०)

क्षमितव्य (सं० त्रि०) क्षमा करनेके योग्य, माफीके लायक।

क्षमिता (सं० त्रि०) क्षमाशील, माफ करनेवाला।

क्षमौ (सं० त्रि०) क्षमा ताच्छीष्ये घिणुन्। शमितभागे घिणुन्। पा १।१।४१। क्षमाशील, गमखोर। इसका संस्कृत पर्याय—सहिष्णु, सहन, क्षमा, तितिक्षु, क्षमिता, क्षम, शक्त, सह और प्रभुणु है। (भागवत ८।१।४०)

क्षम्य (सं० त्रि०) क्षमायां पृथिव्यां भवः, क्षमा-य।

१ पृथिवीसे उत्पन्न, पार्थिव, जमीनसे निकला हुआ।

(अ० २।१।४१) २ क्षम्य, माफ किया जानेवाला

क्षय (सं० पु०) क्षि-अच्। १ राजनीतिज्ञ राजाओंका त्रिवर्गके अन्तर्गत प्रथमवर्ग, अष्टवर्गका अपचय।

क्षयि, क्षय, दुर्ग, सेतु, हस्तिबन्धन, धातुकी खनि, करग्रहण और सैन्यसंस्थापन सबको अष्टवर्ग कहते हैं। इसीके मिटनेका नाम क्षय है।

(चमरटोका—भरत)

२ प्रलय, कथामत। इसका संस्कृत पर्याय—संबर्त, क्षय और कल्पान्त है। ३ अपचय, घटी। ४ गृह, घर। ५ निवासस्थान, ठिकाना। पाणिनिके मतसे निवासार्थमें क्षय शब्दका आदि स्वर उदात्त हो जाता है। अथ निवासे। पा १।१।२०१। (रामायण १।६।२८)

६ राजयक्ष्मारोग, तपेदिक, सूखेकी बीमारी। इसका संस्कृत पर्याय—यक्ष्मा, शोष, राजयक्ष्मा, रोम-राज, गदाघणो, उष्मा, अतिरोग, रोगाधोष और नृप-राग है। यह रोग सब क्रियाओंका क्षय कर देता है। सुतरां इसको क्षय कहते हैं। (सुप्रुत उत्तरतन्त्र ४ ५०) यथा देखो। ७ व्याधिविशेष, कोई बीमारी। यह अष्टा-दश प्रकारका होता है—वातादिका त्रिविध, रसादिका सप्तविध, मलमूलका द्विविध, पञ्चेन्द्रियमलका पञ्च और ओजःका एक विध। (चरक १० ५०)

८ षष्टि संवत्के अन्तर्गत षष्ठितम वर्ष। क्षय-वर्षमें भयानक उपद्रव उठता है। भविष्यपुराणके मतसे क्षयवर्षमें देशनाश, दुर्भिक्ष और प्रजाक्षय होता है। इससे सौराष्ट्र, मालव तथा दक्षिण कोरुषमें घोर-तर दुर्भिक्ष पड़ता और कौसुदी एवं नर्मदा-प्रवाहित देश, यमुना तथा नर्मदाका तीरस्थान और विन्ध्य-चलका निकटवर्ती सैन्धव देश एक बारगी ही मर मिटता है। सिंधु, मध्यदेश और निकटवर्ती काल-क्षर देशका भी विनाश होता है। (जीतिलज्ज)

९ ताण्ड्य-ब्राह्मणोक्त स्तोत्रसमूह। (ताण्ड्यब्राह्मण) १० देवतासमूह। (ताण्ड्यब्राह्मण) ११ ज्योतिःशास्त्रोक्त एक प्रकार मास। शुक्ल प्रतिपदसे अमावस्या पर्यन्त चान्द्रमास होता है। फिर जिस मासमें दो रविसंक्रान्तियां पड़तीं, उसीका नाम क्षयमास है। कार्तिक, अग्रहायण और पौष तीन ही मासोंमें यह आया करता है। इसको छोड़ कर दूसरे मासमें क्षयमास नहीं पड़ता।

जिस चान्द्रमासमें रविसंक्रान्ति नहीं होती, उसको अधिमास और दो रविसंक्रान्तिवाले मासको अयमास कहते हैं। यह क्षयमास बहुत कम देख पड़ता, कभी कभी हुआ करता है। कार्तिक, अग्रहायण और पौष मासको ही क्षयमास पड़ता है। अन्य मासमें यह नहीं

होता। जिस वत्सरमें अयमास आता, उसमें इसके पूर्व तीन मासोंके मध्य एक और परवर्ती तीन मासके मध्य और एक—दो अधिमास पड़ा करते हैं। (सिद्धान्तशिरोमणि) टीकाकारने इस विषयको निम्नलिखित युक्ति देखा कर प्रमाण किया है—चान्द्रमासका मान २८ दिन २६ दण्ड ५० पल और सौरमासका परिमाण ३० दिन २६ घड़ी १७ पल है। रवि मध्यगतिके अनुसार ३० दिन २६ घड़ी १७ पलमें एक एक राशि पर गमन करते हैं। ६१ कला गति होनेसे २८ दिन ३० दण्डको वह एक राशि चलते हैं। उस समय चान्द्रमाससे सौरमास घट जाता है। अतएव एक चान्द्रमासमें दो रवि संक्रान्तियां पड़ सकती हैं। सूर्यको ६१ कला गति कातिक, मगहन, और पूस तीन ही महीनोंमें होती है। अतएव इन तीन महीनोंको छोड़ कर दूसरा महीना क्षयमास नहीं ठहरता। (प्रतिपत्तरा) सिद्धान्तशिरोमणिमें लिखा कि ८७४ शकाब्दकी क्षयमास पड़ा था। उसके पीछे १११५, १२५६ और १३७८ शकाब्दकी फिर तीन क्षयमास पड़े। सुतरां १४१ वा १८ वत्सरके अन्तर क्षयमास आता है। (सिद्धान्तशिरोमणि) किसी किसी ज्योतिःशास्त्रकारने इस मासका नाम अंध-अति लिखा है—

“अन्धन् मासि न संक्रान्तिः संक्रान्तिरवशिष्यति वा।

संक्रान्तिरवशिष्यती मासावधिमासश्च निन्दितः॥” (बार्हस्पत्यज्योतिः०)

अयमास और मलमासको सकल शुभ कार्य निषिद्ध है—

“तव ते ज्योतिष्यो ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धा विवाहादौ निन्दिताः।”

(कालमाधवीय)

सुहृत्तचिन्तामणिके मतमें—गृहप्रवेश, गोदान, महीसव प्रभृति सकल मङ्गलकार्य अय मासको न करना चाहिये। मलमास देखो। १० नाश। (मोता)

अयकर (सं० त्रि०) अयं करोति, अय-क-अच्। नाश-कारी, नाशक, मिटा डालनेवाला। (सुत्र, उत्तर ४ अ०)

अयकाश (सं० पु०) धातुअयज कासरोग, तपेदिककी खासी। काय देखो।

अयकृत् (सं० त्रि०) अय-कृ-क्तिप्। अयकारक, मिटा डालनेवाला।

अयकेशरी (सं० पु०) अयरोगका एक बीवध, तपेदिककी कोई दवा। इसकी प्रसुत प्रणाली नीचे लिखी है—त्रिकटु, त्रिफला, जायफल और खवङ्गका चूर्ण प्रत्येक एक भाग और लौह, पारद तथा सिन्दूर प्रत्येक तीन भाग अच्छी तरहसे मिला डालना चाहिये। इसीका नाम अयकेशरी है। मधुके अनुपानमें अयकेशरी सेवन करनेसे अयरोग हट जाता है। (सिद्धसारसंघ)

अयक्षर (सं० त्रि०) अयं करोति, क्षय-क्ष-ख। क्षय-कारक, नाशक, दुश्मन। (महाभारत, आदि)

क्षयज (सं० पु०) क्षयात् जायते, क्षय-ज-ज-ड। क्षयकाश, एक प्रकारकी खासी। काय देखो।

अयज्वर (सं० पु०) धातुक्षयजन्य ज्वर, तपेदिकका बुखार।

क्षयण (दे० त्रि०) क्षयन्ति निवसन्ति आपो यत्र क्षयधिकरणे व्यट। स्थिरजल (प्रदेश), जहाँ बंधा पानी भरा रहता है। (वाजसनेयसंहिता १६।४३)

अयतक (सं० पु०) अयस्य तकः, तादर्थ्यं क-तत्। मन्दी-वृक्ष, बेलिया पीपल। इसका पर्याय—मन्दीवृक्ष, अश्वत्थ भेद, प्ररोह, गजपादप और क्षीरी है। (भावप्रकाश, पूर्व १)

क्षयथ (सं० पु०) क्षि-अथुच्। क्षयरोग, कासादि, खासी वगैरह बीमारियां।

अयनाग्निनी (सं० स्त्री०) जीवन्तीलता, डोडीकी बेल।

क्षयनाशो (सं० त्रि०) क्षयरोगनाशक, अयो मिटानेवाला।

अयपक्ष (सं० पु०) कृष्णपक्ष, अंधेरा पाख।

अयमास (सं० पु०) एक चान्द्रमास। जिस चान्द्रमासमें दो रविसंक्रान्तियां पड़तीं, उसीका नाम अयमास है। अय देखो।

अयरोग (सं० पु०) यक्ष्मारोग, तपेदिककी बीमारी। यक्षा देखो।

क्षयरोगी (सं० त्रि०) क्षयरोगोऽस्यास्ति, अयरोग-इति। क्षयरोगवाला, तपेदिकका बीमार। धर्मशास्त्रके मतमें ब्रह्महत्या करके उसका प्रायश्चित्त न करनेसे नरकभोगके पीछे उक्त पापका विप्लवरूप क्षयरोग लगता है।

“ब्रह्महा अयरोगी स्यात् सुरापः श्वावदनकः।”

शातातपने लिखा है—राजहत्या करनेसे नरकभोग-

के पीछे ज्वररोग होता है। गो, भूमि, सुवर्ण, मिष्टान्न, जल, वस्त्र, घृतधेनु और तिलधेनु ब्राह्मणको दान करने पर क्रमशः क्षयरोगसे निष्कृति पा सकते हैं।

ज्वरवायु (सं० पु०) प्रलयकालका वायु। (भट्ट)

क्षयान्तकलौह (सं० पु० क्ली०) क्षयरोगका एक प्रकार औषध, तपेदिककी कोई दवा। जारित लौह और उसके समान परिमाण रास्ना, ताकीशपत्र, कपूर, इन्दुरक्षणी, शिलाजतु और त्रिकटु भली भांति मिला डालना चाहिये। इसीका नाम ज्वरान्तकलौह है। यह क्षयरोगमें सेवनीय होता है। (रघुसं० १०८)

ज्वरित (सं० त्रि०) विनष्ट, बिगड़ा हुआ।

क्षयित्व (सं० क्ली०) क्षयिणी भावः, क्षयित्व। ज्वरिका धर्म, बरबादी।

ज्वरिण्यु (सं० त्रि०) जि बाहुलकात् इण्युच्। क्षयशील, बरबाद होनेवाला।

ज्वरी (सं० त्रि०) क्षयो राजयक्ष्माऽस्थस्य, ज्वर-इति। १ राजयक्ष्मारोगयुक्त, तपेदिकका बीमार। २ क्षयशील, बरबाद होनेवाला। (रघु १०८) (पु०) ३ चन्द्र, चांद। दक्षिणसे चन्द्रको राजयक्ष्मारोग लगा था। तदवधि तकका ज्वरी नाम पड़ गया। कृपिका देखो।

क्षयी (हिं० स्त्री०) क्षयरोग, तपेदिक। ज्वर देखो।

क्षरः (सं० त्रि०) क्षेतुं शक्यम्, क्षि-यत् निपातने साधुः। ज्वरज्यो शकार्थः। पा ६।१।८२। ज्वररोग, जो बरबाद किया जा सकता हो।

क्षर (सं० पु०-क्ली०) क्षरति, क्षर-चच्। १ जल, पानी। २ मेघ, बादल। ३ जीवात्मा। उपाधि अन्तःकरणके गमनागमनसे जीवात्माका भी गमनागमन होता है। इसीसे जीवात्माका नाम क्षर है। श्रीधरस्वामीके मतमें परमात्माके अतिरिक्त समस्त पदार्थ क्षर होता है। जिसका विनाश वा परिमाण है, उसीको क्षर कहते हैं। (गीता १५।१०)

जीवात्मा एक शरीर परित्याग करके शरीरान्तर ग्रहण करनेसे ही क्षर कहा जाता है। जो व देखो। ४ देह। ५ अज्ञान, नासमझी। (अथाक्षर उपनिषत्) ६ परमेश्वर। (विश्वसंहिता) ७ कार्य वा कारण। (वाचस्पत्य) (त्रि०) ८ चल, एक जगहसे दूसरी जगह जा सकनेवाला।

क्षरज (सं० त्रि०) क्षरे जायते, क्षर-जन-ड। विकल्पे अलुक्-सं०। विभावा वर्षाक्षरक्षरान्। पा ६।१।८६। मिथज, बादलोंमें पैदा होनेवाला। इसका दूसरा रूप 'क्षरज' है।

क्षरण (सं० क्ली०) क्षर भावे ल्यट्। १ मोचन, छुटकारा। २ स्त्रवण, स्त्राव, टपकाव, चूषाव। (रघु १८।१८) (त्रि०) कर्तरि ल्यट्। ३ क्षरणशील, चूने या टपकनेवाला।

क्षरणवा (सं० स्त्री०) क्षरणपुष्पो, गुमा।

क्षरित (सं० त्रि०) १ बहने या टपकनेवाला। २ निःसृत, निकला हुआ। ३ चूषाया हुआ।

क्षरी (सं० पु०) क्षरः क्षरणमस्त्यस्मिन् काले, क्षर-इति। १ वर्षाकाल, बारिसका मौसम। (त्रि०) २ क्षरणविशिष्ट, टपकने या चूनेवाला।

क्षल (सं० त्रि०) क्षल-चच्। १ शोधनकारी। २ चल, जो चल सकता हो।

क्षव (सं० पु०) क्षु-चप्। १ क्षुत, नकछिक्नी। यह तीक्ष्णगन्ध, कषाय, उष्ण, कटु और भूतपत्र तथा कफ-वातघ्न होता है। (राजनिघण्टु) २ राजमाष नाम शिखो-धान्य, कोबिया। यह कषाय, मधुर, शीतल, वृष्य, कफ-पित्तघ्न और वाताधानजनक है। (राजनिघण्टु) ३ रक्त सर्पप, लाल सरसों। ४ शिशुवृक्ष, सहिजन। ५ श्वेता-पामाग, सफेद लटजीरा। ८ कृष्णसर्पप, लाही।

क्षवक (सं० पु०) क्षव स्वार्थे कन्। ज्वर देखो।

क्षवका (सं० स्त्री०) सर्पपत्र, सरसोंका पेड़।

क्षवकत् (सं० पु०) क्षव-क-क्लिप्। ज्वर देखो।

क्षवतश्च (सं० पु०) नन्दिवृक्ष।

क्षवथु (सं० पु०) क्षु-चप्। (टितोऽच्। पा ६।१।८८) १ काष्ठ-रोग, खाँसीकी बीमारी। २ नासारोगविशेष, नाककी कोई बीमारी। यह नासागत एकतीस प्रकारके रोगोंमें एक प्रकारका रोग है। सुश्रुतके मतानुसार नासारन्ध्रका मर्मस्थान दूषित होने पर नासारन्ध्रसे जो कफयुक्त वायु शब्दके साथ निकलता, उसीका नाम क्षवथु है। तीक्ष्ण शिरोविरचन प्रयोग, कटु द्रव्यका अतिशय आघ्राण, सूर्यका निरीक्षण अथवा सूर्यादिद्वारा तरुणास्त्रि नामक मर्मस्थानका उद्घाटन करनेसे क्षवथु होता है।

(सुश्रुत उपनिषत् १२५०)

चिकित्सा यह है कि शिरोविरेचनीय द्रव्य को बुकनी नलीसे प्रयोग करने पर क्षवथु रोग अच्छा हो जाता है । (सुश्रुत उत्तर २१ अध्याय)

क्षौक पाने पर न क्षौक उसका वेग धारण करनेसे मस्तक, चक्षु, नासिका और कर्णमें रोग उत्पन्न होता है । (सुश्रुत उत्तर ५५ अ०)

जवपत्र (सं० स्त्री०) जवकपत्र, नकछिकनीका पत्र । क्षवपत्रा (सं० स्त्री०) क्षवहेतुः पल्लमस्याः, बहुव्री० । द्रोणपुष्पो, गूमा । द्रोणपुष्पौका पत्र सूंचने पर क्षौक पानेसे ही जवपत्रा नाम पड़ा है । (राजनिषध) किसी किसी स्थल पर 'क्षवपत्रा' पाठ भी देख पड़ता है ।

क्षवपत्रा, जवपत्रा देखी ।

जवस्तम्भ (सं० पु०) क्षवथु निग्रह, क्षौककी रोक ।

क्षग (सं० पु०) सर्पपक्ष, सरसीका पेड़ ।

क्षविका (सं० स्त्री०) क्षमः क्षुत्तं साध्यतया अस्यस्य, जव-ठन्-टाप् । छहती क्षुपभेद, एक प्रकारकी भटकटेया । बरहंटा । इसका संस्कृत पर्याय—सर्पेतनु, पीततण्डुला, पुत्रप्रदा, बहुफलका और गोघिना है । यह तिक्त, कटु, उष्ण और अपर गुणोंमें छहतीके समान है ।

(राजनिषध)

क्षा (वै० स्त्री०) क्षमस्त्यक्त, क्षि बाहुलकात् षड्-टाप् । १ पृथिवी, जमीन् । (चक्र० १०:१६) (त्रि०) क्षि-णिच्-क्षिप्-यकोपे साधुः यद्वा क्षे-क्षिप्-क्षिपो कोपः एकारस्य आकारः । नोदेष उपदेशमिति । पा ४।१।४५ । २ स्थापयिता, दूस्-रेको स्थापन करनेवाला ।

क्षाति (सं० स्त्री०) क्षीयन्ते दहन्तेऽस्त्रामोषधिवनस्पतयः, क्षा अधिकरणे क्तिन् । १ व्याका, कपट । (चक्र० १६:५) २ दहनमार्ग । (निघण्टोका-दुर्ग०)

क्षाल (सं० स्त्री०) क्षालस्य कर्म भावो वा क्षाल-प्रण् । १ क्षत्रिय-कर्म, ठाकुराका काम । शौर्य, तेज, धृति, दक्षता, युद्धमें अपराधमुखता, दान और ऐश्वर्यको क्षालकर्म कहते हैं । (गीता) किसी किसी पुस्तकमें "क्षाल" स्थल पर 'क्षल' पाठ भी मिलता है । २ क्षत्रियत्व, ठाकुरई । क्षाल्णां समूहः, क्षलप्रण् । ३ क्षत्रियसमूह, ठाकुरोंकी भीड़ । (मतपञ्चम्याय ११/४।१५) (त्रि०) क्षत्स्व इदम् । ४ क्षत्रियसम्बन्धी । (रघुवंश १५०)

क्षालविद्या (सं० त्रि०) क्षत्रवशां वेत्ति पधीते वा क्षत्रविद्या-प्रण् । क्षत्रविद्या पढ़ा हुआ, जो लड़नेभिड़ने-का इस्म रखता हो ।

क्षान्ति (सं० पु०) क्षत्रस्य अपत्यम्, क्षत्र-व । क्षत्रियका पुत्र, ठाकुरका लड़का । जाति अर्थमें क्षत्रिय शब्द होता है । जातिका बोध न होनेसे क्षान्ति कहते हैं ।

(सिद्धान्तकीसूची)

क्षान्त (सं० त्रि०) क्षम कर्तरि क्त । १ सहिष्णु, गमखोर । इसका संस्कृत पर्याय—सोढ़, क्षमान्वित और तितिक्षित है । (हरि ११:११) (पु०) २ इतिहासप्रसिद्ध सप्तव्याधी-के अन्तर्गत एक व्याध । यह पूर्वकी ब्राह्मण रहे और गंगासुनिके निकट अध्ययन करते थे । सुनिने इन्हें गोरक्षामें नियुक्त कर दिया । परिशेषको इन्होंने सब मवेशी मार डाले थे । सुनिको मालूम होने पर इन्हें शाप दिया । उसी शापसे इन्होंने दण्डार्ण देशमें व्याध हो जन्म लिया था । (हरिवंश ११ अ०) ३ किसी ऋषिका नाम ।

क्षान्तायन (सं० पु०) क्षान्तस्य ऋषेरपत्यम्, क्षान्त-फज् । अत्रादिभाः फज् । पा ४।१।११:१० । १ क्षान्त नामक ऋषिके पुत्र । २ क्षान्त ऋषिके वंशीय ।

क्षान्तायनी (सं० स्त्री०) क्षान्तस्य अपत्यं स्त्री, क्षान्त-फज्-ङीप् । १ क्षान्त ऋषिकी कन्या । २ क्षान्त ऋषिके वंशकी स्त्री ।

क्षान्ति (सं० स्त्री०) क्षम भावे क्तिन् । क्षमा, गमखोरी, सामर्थ्य रहते भी अपकारीको किसी प्रकारका अप-कार न पहुँचानेकी इच्छा । इसका संस्कृत पर्याय—तितिक्षा, सहिष्णुता और क्षमा है । (गीता १८:४२)

क्षान्तिपारमिता (सं० स्त्री०) सहिष्णुता, बरदाश्त ।

क्षान्तिमान् (सं० त्रि०) क्षान्तिरस्त्यस्य, क्षान्ति-मत्तुप् । क्षमाविशिष्ट, गमखोर । (राजवर्णिनी ५।५)

क्षान्तिवादी (सं० पु०) क्षान्तिं वदितुं शीलमस्य-क्षान्ति-वद-णिनि । किसी सुनिका नाम ।

क्षान्तीय (सं० त्रि०) क्षान्त चातुरर्थिक छ । उत्तरि-दिग्भाक् । पा ४।१।१० । क्षान्त नामक ऋषिका निकटवर्ती (देश आदि) ।

क्षान्तु (सं० त्रि०) क्षम्-तुन् छिञिच् । क्षमनिषधमिभ्यश्चु-

वृद्धिः। उष्णः। १ खमाशील, गमखोर । (पु०)
२ पिता, बाप ।

खाम (सं० चि०) खै कर्तरि लृट्, तकारस्य स्थानि
मकारः । (भाषा मः । पा ८।१।५१) १ क्षय, क्षीण, कमजोर,
गला हुआ । २ दुर्बल, दुबला, पतला । (भागवत १।११।७६)
(पु०) ३ विष्णु । (विष्णुसहस्रनाम) ४ अवलवान् पुरुष,
कमजोर आदमी । (क्ली०) ५ क्षय, बरबादी ।

खामदंश (सं० पु०) शिशु, सहिंजन ।

खामवती (सं० स्त्री०) खामं दोषत्रयः असत्यस्याः, क्षाम-
मत्तुप् मस्य व ततो लीप् । यागविशेष, एक यज्ञ ।
खामवती इष्टि करनेसे अनेक दोष एकवारगी हो
विनष्ट होते हैं । (भविष्यपुराण)

खामवर्धन (सं० त्रि०) क्षामं दुर्बलतां वर्धयति, खाम-
वर्ध-णिच्-ल्य, । दुर्बलता बढ़ानेवाला, जो कमजोरी
जाता हो ।

खामवान् (सं० पु०) खामं दोषत्रयः असत्यस्य, खाम-
मत्तुप् मस्य वः । अग्निविशेष, एक आग ।

(काव्यायन-श्रौतसूत्र १।५।१६)

खामा (वै० त्रि०) क्षै-ममिन् । १ क्षयशील, घटनेवाला ।
(क्ली०) २ निवास, ठिकाना । (ऋक् ६।५।११)

खामास्य (सं० क्ली०) क्षामस्य क्षयस्य आस्यं स्थानम्,
६ तत् । कुपथ्य, बदपरहेजी । किसी पुस्तकमें 'क्षामास्य'
पाठ भी दृष्ट होता है ।

खामी (सं० त्रि०) क्षामोऽस्यास्ति, क्षाम-इनि । क्षाम-
युक्त, क्षयवाला ।

क्षाम्य (सं० त्रि०) १ क्षमाके योग्य, माफीके लायक ।
(भारत सभा)

क्षार (सं० त्रि०) क्षर-ण । (ज्वलिति लसन्नेभ्यो णः । पा १।१।४०)

१ क्षरणशील, चूजानेवाला । (पु०) २ लवणरस, एक
नमक । यह क्षेदजनक, मुखकी स्वादु, उष्ण, विदाही,
शूल, स्नेहा, अरुचि, दृष्ट्या तथा मूत्रवर्धक, शोषकारी,
भूजपुरीषरोधक, शानाह्वरोगजनक और अग्निवृद्धिकर है ।
(शरीरचिकित्सा १६ पृ०) ३ क्षार पलाश काष्ठादिका दाहसम्भव

एक लवणरस भस्म है । यह दो प्रकारका होता है—
प्रतिसारघाह और पानाह । (सुश्रुत सूत्र ११ पृ०) चक्र-
दत्तने इसके बनानेकी प्रणाली इस प्रकार लिखी है—

शुभदिन और शुभनक्षत्रको पलाशकाष्ठ लाके जला
डालना चाहिये । उसको भली भाँति जल जाने पर ८
सेर भस्म उठा कर ३२ सेर जलमें डाल आँव लगाते
हैं । ८ सेर पानी बचने पर उतार कर कपड़ेसे छान
लेना चाहिये । फिर उसमें ३२ तोले शङ्खचूर्ण मिला
पुनर्বার आग पर चढ़ा देते हैं । धीमी धीमी आँचसे जब
बहु धन पड़ जाये, तब सज्जीमट्टी, शोरा, सोंठ, मिर्च,
पीपल, बच, अतौस, हींग और चीतका अष्टभाग चूर्ण
डालना चाहिये । इन्हींसे अच्छी तरह सबको चलाया
पड़ता है । पीछेको उतार कर लौहनिर्मित घटमें रख
लेते हैं । इसका नाम खार है । (चक्रदत्त)

(Alkali) एक प्रकार जातव तथा उद्भिदज पदार्थसे
उत्पन्न द्रव्य है । साधारणतः यह प्रस्तरखण्ड अथवा उद्भि-
दादिसे उत्पन्न होता है । मैल साफ करनेमें खार विशेष-
का प्रयोजन है । कदलिष्ठचकी त्वक् जलानेसे जो खार
निकलता, वह दरिद्र लोगोंके कपड़े धोनेमें लगता है ।
इस देशमें क्षारोंके मध्य सज्जीमट्टी ही प्रधान है ।
भारतके छोटी अधिकांश इसको व्यवहार करते, जिससे
अंगरेज खारको छोटीकी मट्टी कहते हैं । विलायती
सोडिमें बहुत खार होता है । सज्जीमट्टी देखो ।

कदपा, मसल्लोपत्तन और नेहरू जिलेमें खार अधिक
उत्पन्न होता है । बेकरी और हैदराबादमें नाइट्रेट
अथ सोडा मिलता है । खनिज लवण इसी जाति-
का होता है । यह कदपा, महिसुर, बेकरी, हैद-
राबाद, गण्डूर और नेहरू जिलेमें पाया जाता है ।
इसके दूसरे भी कई प्रकारके भेद हैं यथा—डला, नमक
डला, खापुल, पापड़ी, मट्टीखार इत्यादि । खारपाक देखो ।
४ धूर्त, धोकेबाज । ५ लवण, नमक । (रामायण २।७।१९)
६ काच, शीशा । ७ भस्म, खाक । ८ गुड़ । ९ चन्द्र,
चाँद । १० टङ्गण, सोहागा । इसका गुण धातुद्रावक
है । खारसे धातुद्रव्य गलाया जा सकता है । (भावप्रकाश,
पूर्व भाग) ११ सर्जिखार, सज्जीमट्टी । (क्ली०) १२
विडलवण । १२ यवखार, शोरा ।

क्षारक (सं० पु०) क्षरतीति, खर-ण्युल् । १ खरि-
जात फल । इसका संस्कृत पर्याय—जालक है ।
२ पक्षीका जाल, चिड़ियोंका फंदा । ३ मत्स्य पकड़नेका

दोरी। ४ रजक, घोबी। चार स्वार्थे कन्। ५ चार, सज्जी।

चारकदंम (सं० पु०) एक नरक। (भागवत ५।१६।०)

चारकर्म (सं० स्त्री०) चारदाहकर्म, सज्जीसे जलानेका काम।

चारकृत्य (सं० त्रि०) चार प्रयोगसे चिकित्सा किया जा सकनेवाला। जिसका इलाज सज्जीसे हो सके।

(सुश्रुत सूत्र ११ च०)

चारगुड़ (सं० पु०) चारिण पक्षी गुड़ः, मध्यपदक्षी०।

चारपक्ष गुड़विशेष, सज्जीसे पकाया हुआ एक गुड़। चक्रदत्तने इसको प्रस्तुत करनेकी प्रणाली इस प्रकारसे लिखी है—पञ्चमूल, त्रिफला, चाकनादिमूल, शतावरी, दली, चीत, अपराजिता, रास्ना, चाकनादि, गुलेचीन और शठी प्रत्येक ८० तोला परिमाणमें मिला जला खालना चाहिये। इसको २१ बार जला जला कर भस्म करना पड़ता है। पीछे इस भस्मको ३२ सेर जलमें डाल पांच लगाते हैं। एकचतुर्थांश शेष रहने पर १२ सेर गुड़ दिया जाता है। धीमी पांचसे जब गुड़ सिद्ध हो जाये, तब वृश्चिकाली, काकीली, चीरकाकीली शोरा और वच प्रत्येकका ४० तोला चूर्ण घृतक रूपसे और हरीतकी, त्रिकटु, सज्जीमट्टी, चीत, वच, हिङ्गु, तथा पञ्चवेतसका सोलह सोलह तोला चूर्ण मिलाकर ढाल देना चाहिये। पीछे उतार कर गोली बना लेते हैं। इसीका नाम चारगुड़ है।

चारगुड़ पजीर्णनाशक, पन्निवृद्धिकारक और पाण्डु, झीङ्गा, पर्श, शोथ, कफ, कास तथा अरुचि-नाशक है। जिसका पन्नि मन्द वा विषम और कण्ठ तथा वचःस्त्रलमें कफ अधिक रहे, उसको चारगुड़ न खिलाना चाहिये, खिलावे कुछ, प्रमेह वा गुल्मरोग उठ खड़ा होता है। (चक्रदत्त)

चारगुड़िका (सं० स्त्री०) औषधविशेष, एक दवा। रसेन्द्रसारसंग्रहमें चारगुड़िकाका प्रस्तुतप्रणाली इस प्रकार कही है—सर्जिचार, यवचार, विट्सवण, सैन्धव लवण, सामुद्र लवण, सौवर्चलवण, उद्भिदलवण, हरी-तकी, चामसकी, बहैरा, सीठ, पीपल, मिर्च, कान्त, वज्र, काचि, पिपरामूल, विडङ्ग, मोथा, पजबायन, देवदाह,

बेल, इन्द्रयव, चीत, चाकनादि, यष्टिमधु, प्रतीप, पसाश और हिङ्गु प्रत्येकका दो तोला चूर्ण बनाना चाहिये। ३२ सेर मूली और सीठका भस्मषष्टगुण जलमें डवा-ल कर चारजल घट्टण करते हैं। इस पानीमें सब बुकनी मिला कर फिर पांच लगाना चाहिये। घन हो जाने पर उतार कर वटिका बना लेते हैं। इसके सेबनेसे ग्रीहीदर, शिखर, हलीमक, पर्श, पाण्डु, चामय, अरुचि, शोथ, विसूचिका, गुल्म, अस्मरी, श्वास, कास, कुष्ठ इत्यादि रोग विनाश होते हैं।

चारण (सं० स्त्री०) १ भस्मक्रिया। २ मैथुनके प्रति आक्रोश।

चारणा (सं० स्त्री०) मैथुनके प्रति आक्रोश, बदचल-नाका इलजाम।

चारतेल (सं० स्त्री०) वैद्यकीय तैलविशेष, किसी किस्मका तेल। चक्रदत्तने चारतेलको बनानेके लिये यह प्रणाली बतायी है—नारियल, मूनी और सीठका क्षार, हींग, मोथा, शतपुष्प, वच, घण्टाक, देवदाह, सहजंजन, रसास्त्रज, सौवर्चलवण, यवचार, सज्जीमट्टी, उद्भिद लवण, भूजंपत्र, भद्रमुस्त, विट्सवण, चतुर्गुण मधुशुक्त, तुराज नीबुका रस और कदलीरस सबसे तेल-पाक करना चाहिये। इसको चारतेल कहते हैं। क्षारतेल सेवन करनेसे वधिरता, कर्णनाद, पूयक्षरण और दारण रोगका प्रतीकार होता है। यह तेल काममें भर देनेसे सब प्रकारके कीड़े मर जाते हैं।

(चक्रदत्त)

क्षारत्रय (सं० स्त्री०) चाराणां त्रयम्, ३-तत्। त्रिविध क्षार, तीनों क्षार। सज्जीमट्टी, शोरा और सीठका तीनोंको क्षारत्रय, त्रिचार वा क्षारत्रितय कहते हैं। (राजनिषध) क्षारत्रय छेदन पर्यात् शिष्ट कफादि दोषो-न्मूलक है।

क्षारत्रितय, चारत्रय देखो।

चारदशा (सं० स्त्री०) चिकीर्षाक, बसुई।

चारदशक (सं० स्त्री०) चाराणां दशकम्, ३-तत्। दशविध क्षार, दश तरहका क्षार। सहजंजन, मूली, पसाश, बुझिका (बुझा), चित्रक, अदरक, नीम,

ईश, लटजीरा और मोचा (केला) जलाकर बनाया जानेवाला चार क्षारदणक कहलाता है।

क्षारदाह (सं० पु०) क्षारपञ्च भस्मज क्षारसे दाह।

क्षारदेश (सं० पु०) चारप्रधानो देशः, मध्यपदलो०।

चारप्रधान देश, खारो मुष्क। (चट)

चारदु (सं० पु०) क्षारप्रधानो दुः, मध्यपदलो०।

घण्टापाटलिहृक्ष, मोला।

चारद्वय (सं० स्त्री०) दो चारोंका समूह, सर्जिंक्षार और यवचार।

चारनदी (सं० स्त्री०) चारप्रधाना नदी, मध्यपदलो०।

नरककी एक नदी। (माकण्ड्यपुराण १४।६८)

क्षारपञ्चक (सं० स्त्री०) पञ्चक्षारसमूह, पाँच खारो चीजें। यवचार, मोला, सर्जिंक्षार, पलाश और तिल-नालकी समष्टिरूपसे चारपञ्चक कहते हैं। (रात्रनिचय)

क्षारपत्र (सं० पु०) क्षारः पत्रे यस्य, बहुव्री०। १ वास्तूक-शाक, बधुवा। २ पालङ्गीशाक, पलांकी।

क्षारपत्रक (सं० पु०) क्षारः पत्रे यस्य, बहुव्री०, वा कप्। चारपत्र ईखो।

क्षारपत्रा (सं० स्त्री०) चिल्लीशाक, बधुई।

क्षारपाक (सं० पु०) चारस्य पाकः, इ-तत्। क्षार-द्रव्यका एक पाक। सुश्रुतमें क्षारकी पाक और प्रयोग करनेकी प्रणाली इस प्रकार लिखी है—

चार छेदन, भेदन एवं लेखन कार्य सम्पादन करता और विशेषरूपमें क्रियाका अवधारण होनेसे शस्त्र तथा शस्त्र सदृश सकल द्रव्यकी अपेक्षा समधिक कार्यकारी ठहरता है। इससे रक्त पूय प्रवृत्ति चरित अथवा त्रण एककाल ही विनष्ट होता है। इसी कारण प्राचीन भारतवासियोंने इसका नाम चार रखा है। नामा प्रकार औषधीजा संयोग रहनेसे यह वात, पित्त तथा श्लेष्मा त्रिदोषका शान्तिकारक है। श्वेत-वर्ण-जैसा सौम्य रहते भी क्षारमें दहन, पचन और विदारण करनेकी विलक्षण शक्ति है। उष्णवीर्यके औषध अधिक परिमाणमें पढ़नेसे यह कटु, उष्ण और तीक्ष्ण गुणविशिष्ट होता है।

चार तीन प्रकारका है—मृदु, मध्यम और तीक्ष्ण। इसकी प्रसुत करनेमें शरत्कालके प्रशस्त दिवस उप-

वासी रह पवित्र भावसे पर्वतके समुद्रदेशजात, मध्यम-वयस, श्वेतवर्ण, हृत् और अखण्ड घण्टापाटलि हृक्षकी अधिवास करके रखना चाहिये। दूसरे दिन निम्नलिखित मन्त्र पढ़के उक्त हृक्षकी उखाड़ लाते हैं—

“अग्निवीर्यं महावीर्यं मतिवीर्यं” प्रपश्यतु।

इष्टिव तिष्ठ कल्याण। मम कार्यं करिष्यसि॥

मम कार्यं कृते पश्चात् स्वर्गलोकं गमिष्यसि।”

घण्टाकी लाकर पीछे सहस्र रत्नपुष्प और सहस्र श्वेतपुष्पों द्वारा होम करना चाहिये। फिर उस हृक्ष-की टुकड़े टुकड़े करके वायुशून्य स्थानमें रख देते हैं। उसके ऊपर सुधाशर्करा (खड़िया) डाल तिल-हृक्षके काष्ठ अग्निसे फूंकना चाहिये। आग बुझ जाने पर गूमा हृक्ष और खड़ियाका भस्म घृत्यक् करके रख लेते हैं।

कुड़ची, पलाश, अश्वकर्ण, रखा हुआ मदार, बड़ेडा, सोंदाल, सोध, आकनादि, लटजीरा, पादल, बड़ी कम-रख, वासक, कदली, चित्रक, छोटी कमरख, अर्जुन, काष्ठमज्जिका, करवीर, छत्रक, गणिकारी, घुंघची और घोषाका फल, मूल, पत्र तथा शाखाके सबकी एकत्र करके पूर्वविधानके अनुसार जला देना चाहिये। ३२ सेर यह भस्म १८२ सेर जलमें डाल कर २१ बार छाना जाता है। फिर पाँच पर चढ़ा कर कड़कीसे धीरे धीरे चलाते हैं। पानी निर्मल, रक्तवर्ण, तीक्ष्ण और पिच्छल होने पर उतारना और असार भाग परित्याग करके पुनर्वार अग्नि पर पकाना चाहिये। शक्ति और शङ्ख नाभिकी आगमें जलाते और अग्निवर्ण होने पर यह दोनों द्रव्य, करीलश्रीज और पूर्वोक्त शर्करा-भस्म चारों चीजें बत्तीस बत्तीस तोले लौहपात्रमें रख आधसेर चारजलसे पेषण करते हैं। पिस जाने पर इसकी २ द्रोण परिमाण चारजलमें डाल स्थिर चित्तसे पकाना चाहिये। इस क्षारजलकी ऐसी अवस्थामें, जिसमें न तो अतिशय तरल और न अतिशय घन हो, उतार लौहपात्रमें रख उसका सुंघ बन्द कर देते हैं। इसीका नाम मध्यमचार है। प्रक्षेप द्रव्य न देने और सम्यक् रूपसे संशालित करके पाक करने पर मृदुक्षार होता है। दन्तीहृक्ष, युक्तुही, चित्रक, विषलाङ्गकी,

नाटाकरण, प्रवाल, सुरामांसो, विट्त्वण, सज्जीमहे, स्वर्णक्षीरीलता, ह्रीं, वच और मृद्गीविष द्रव्योंमें जो जो मिले, उसे समभाग लेकर उत्तम रूपसे चूर्ण करना चाहिये। यह चूर्ण २ तोला मात्रसे चारजलमें प्रक्षेप करके पाक करने पर उक्त चार पाचक गुणविशिष्ट हो जाता है। व्याधिके अवस्थानुसार इसे सेवन करना चाहिये। क्षीणवक्त्र होने पर क्षारजलके सेवनसे वक्त्र बढ़ता है।

चार गुण—श्वेतवर्ण, निर्मल, पिच्छिल, द्रवकारी, बलकार और (शरीरके मध्य) शीघ्र प्रवेशकारी है। यह अतिशय तीक्ष्ण वा अतिशय मृदु न होनेसे ही अच्छा रहता है। अतिशय मृदुता, अतिशय शीतलता, अतिशय तीक्ष्णता, अतिशय प्रवेशकारिता, अतिशय घनत्व, अपक्वता वा द्रव्यहीनता—चारके पाठ दोष हैं।

इसके सेवनसे कृमि, आम, कुष्ठ, कफ और मेद क्षय होता है। अधिक परिमाणमें चार खानेसे पुरुषत्वकी हानि पहुँचती है। कुष्ठ, कटिभ (जं), दद्रु, किलास, मण्डलाकार कुष्ठ, भगन्दर, आव, दुष्टव्रण, चर्मकील (सुंझासा), तिल, मुखका विवर्णचिह्न, वाङ्मयण-कृमि, विष आर अग्नि सकल रोगोंमें प्रतिसारणीय क्षार विधेय है। प्रतिसारणीय देखो।

आक्षिप्ताका रोग, जिह्वाका रोग, उपकुश, दन्त-वेदभ, तीनों प्रकारकी रोहिणी सात प्रकारके रोगोंमें भी प्रतिसारणीय क्षार खिलाना उचित है। गरल, गुल्म, उदररोग, अग्निमांश, अजीर्ण, अरुचि, आनाह, शर्करा अश्वरी, अन्तर्ग्रन्थ, कृमि, विषदोष और अग्निरोगमें पानीय चार व्यवहार करना चाहिये। मर्मस्थान, शिरा, ज्ञायु, धमनी, सन्धिस्थान, कीमल अस्थि, सेवनी, गल-देश, नाभि, नखमध्य और शीथ सभी स्थानोंके मांसका परिमाण अल्प है। इन सकल स्थानों पर क्षार प्रयोग न करना चाहिये। वर्तमान रोग व्यतीत अन्यप्रकार चक्षुरोगमें भी क्षार प्रयोग निषिद्ध है। जिसके समस्त शरीर वा अस्थिमें वेदना रहती, जिसकी अन्नकी रुचि नहीं लगती और जिसके हृदय वा सन्धि स्थानमें पोड़ा पड़ती; उसके लिये चारप्रयोग उपयोगी नहीं।

(सुश्रुत सूत्रस्थान ११ अ०)

चारपाणि (सं० पु०) एक आयुर्वेद तन्त्रकार।

चारपाल (सं० पु०) एक ऋषि।

चारभूमि (सं० स्त्री०) क्षारयुक्ता भूमि; मध्यपदलो०। १ जवणमृत्तिकादेश, मोना सुक्क। क्षारस्य भूमि; १-तत्। २ जवणका स्थान, नमक निकालनेकी जगह। चारमध्य (सं० पु०) क्षारी मध्ये यस्य, बहुव्री०। अपा-मार्गदक्ष, लट्जोरा।

चारमृत् (सं० स्त्री०) जवरभूमि।

चारमृत्तिका (सं० स्त्री०) क्षारयुक्ता मृत्तिका। खारी-मट्टी, मोना। यह पित्तदाहकारक और पाण्डुरोग जनक है। (आवेयसंहिता)

चारमेलक (सं० पु०) क्षाराणां मेलः सङ्घः, स्वार्थ कन्। सर्वक्षार, साबुन।

क्षारमेह (सं० पु०) पित्तजन्य प्रमेहमेद, किसी किष्किका जिरियान्। इसमें स्त्रुतक्षारप्रतिम मेह आता है। (सुश्रुत निदान १ अ०)

क्षारमेही (सं० त्रि०) क्षारमेहोऽस्यास्ति, चार-मेह-इति। क्षारमेह रोगाक्रान्त, जिसके चारमेह रहे।

“क्षारमेहिनं विफलाकषायम्।” (सुश्रुत चिकित्सित ११ अ०)

चारराज (सं० पु०) टङ्गणक्षार, सोडागा।

चारलवण (सं० स्त्री०) जवणविशेष, खारी नमक। यह शैत्यप्रद, मूत्रवर्धक, मलमेदकारी और शूल, ज्वर तथा दाहनाशक है। (भावप्रकाश)

चारवर्ग (सं० पु०) सर्जितङ्गणयवक्षार, सज्जीखार, सोडागा और शोरा। (रसेन्द्रसारसंग्रह)

चारवस्ति (सं० पु०-स्त्री०) निरुह वस्तिमेद, एक पिचकारी। सैन्यवाक्ष, शताह्वा, ८ पल गोमूत्र, २ पल अज्जीका और २ पल गुड़ सबको यक्षसे आसोड़न करके वस्त्रपूत सुखोष्ण वस्ति देना चाहिये। इससे शूल, विट्सङ्ग, आनाह, मूत्रकच्छू, उदावर्त, गुल्म आदि रोग शीघ्र पारोग्य होते हैं। (चक्रपाणिन)

चारवृक्ष (सं० पु०) चौरप्रधानो वृक्षः, मध्यपदलो०। सुष्ककवृक्ष, घण्टापाटलि।

चारश्रेष्ठ (सं० स्त्री०) क्षारेषु श्रेष्ठम्, ७-तत्। १ वज्र-क्षार। (पु०) क्षारं श्रेष्ठोऽत्र, बहुव्री०। २ पलाय। ३ सुष्ककवृक्ष, मोखा।

चारषट्क (सं० स्त्री०) चाराणां षट्कम्, ६-तत् । धव, अपामार्ग, कोरेया, लाङ्गली, तिल और मोखाके पेट्टीका नमक ।

क्षारसप्तक (सं० स्त्री०) सप्तक्षार, सात प्रकारका नमक । सजिंक्षार, यवक्षार, टक्कण, सुवर्चिका, पलाश, सौर्य और शिखरीके समूहको सप्तक्षार कहते हैं । (रायच)

क्षारसमुद्र (सं० पु०) क्षारप्रधानः समुद्रः, मध्यपदलो० । लवणसमुद्र ।

“सीता तु ब्रह्मसदनात् केशराचलादि शिखरेभ्यो ऽधोऽधः प्रसूयन्ती गन्धमादनमूर्धसु पतित्वाऽन्तरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि चारसमुद्रमभि-प्रविशति ।” (भागवत ५।१७।६)

चारसर्पि (सं० स्त्री०) चारपक्षष्टत, नमकमें तपा हुआ घी ।

क्षारसिन्धु (सं० पु०) क्षारप्रधानः सिन्धुः, मध्यपदलो० । लवणसमुद्र । सिद्धान्तशिरोमणिके मतमें यह समुद्र जम्बूद्वीपसे दक्षिण और शाकद्वीपसे उत्तर अवस्थित है । (गोलाध्याय)

क्षारसूत्र (सं० स्त्री०) मर्माश्रित नाड़ीके छेदनार्थ चार-लिप्त सूत्र, नाजुक जगहकी नस चीरनेकी नमक लगा हुआ डोरा ।

क्षारागद (सं० पु०) सुश्रुतोक्त एक औषध, कोई दवा । इसकी प्रस्तुतप्रणाली यों है—लताशाल, तिन्त्रिग, पलाश, नीम, मोखा, देवदारु, आम्र, गूजर, मैनफल, चालता, धव, अंकोड़, आमलक, छोटा सोंदाल, साई-वृक्ष, कपित्थ, अश्वकर्ष, अर्जुन, शाल, कपीतन, आम-लकुचा, बड़ी कमरुख, मनसा, भस्मातक, सोनापेड़, मधूर, लाल सहिजन, सागवन, दरिया, मूर्वा, लोध, तालमखाना, भड़बोरी और दक्षिणी बबूल सबका भस्म गोमूत्रमें डाल चारपाक-प्रणालीसे कपड़ेमें छान कर पाक करना चाहिये । फिर उसमें पिप्पलीमूल, चोराई, अम्बवेतस, गुड़त्वक, मन्त्रिष्ठा, खट्टी कमरुख, गजपिप्पली, मरिच, उत्पल, श्यामालता, विट्कवण, अमन्तमूल, सोमलता, जड़त, कुङ्कुम, शालपर्णी, केवड़ा, श्वेतसर्पप, वडचवृक्ष, सन्धवलवण, पाकर, हिज्जल, गालवपरण्ड, वेतस, मूषिकपर्णी, छातेका छण्डल,

हस्तिशुक्ली, पत्तीस, पञ्चगिरा, हरीतकी, भद्रदारु, कुष्ठ, हरिद्र, वष और लौहचूर्ण सब द्रव्य प्रक्षेप करते हैं । पाकशेष होने पर उतार कर लौहपात्रमें रख देना चाहिये । इसका पाक क्षीर-पाककी भांति प्रतिशय घन वा प्रतिशय तरल नहीं बनता । चारागदसे दुन्दुभि, पताका और तोरण प्रभृति लेपन करना चाहिये । इसके शब्दश्रवण और दर्शनसे विष नष्ट होता है । इसका नाम क्षार अगद है । यह शर्कराश्मरी, अर्श, वातजगुल्म, कास, शूल, उदरी, अजाण, ग्रहणी, अरुचि, सकल प्रकार शोथ और श्वास रोगमें भी सेवन किया जाता है । चारागद सब विषोंके प्रतिकारकी उपायकारी है । यहाँ तक कि यह तक्षक प्रभृति सर्पोंका विष भी निवारण कर सकता है । (सुश्रुत कथ ० प०)

क्षाराच्छ (सं० स्त्री०) क्षारेषु अच्छम्, ७-तत् । सामुद्र-लवण, करकच ।

क्षाराञ्जन (सं० स्त्री०) एक अञ्जन । (सुश्रुत उत्तर १२ प०)

क्षारान्त (सं० पु०) क्षारजल, खारा पानी ।

क्षाराष्टक (सं० स्त्री०) चाराणां षट्कम्, ६-तत् । षट्-प्रकार क्षार, षाठ तरहका नमक । पलाश, इड़जोड़, शिखरी, चिन्ना, अर्क, तिल, यव और सज्जीको समष्टि रूपसे चाराष्टक कहते हैं । (भाषप्रकाश)

क्षारिका (सं० स्त्री०) क्षर-ण्य ल्-टाप् भत इत्वम् । जुधा, भूक ।

क्षारित (सं० चि०) क्षर-णिच्-त्त । १ अपवादप्रस्त, दूषित, बदनाम । (भारत १।५।१०५)

२ स्नावित, टपकाया हुआ । (स्त्री०) ३ क्षार, नमक ।

क्षारीय (सं० त्रि०) क्षार चातुरर्थिक छ । उत्तरादिभाष्य वा ४।१।८० क्षारका निकटवर्ती (देशादि) ।

क्षारोत्तम (सं० पु०) चण्डापाटलिका, मोखा ।

क्षारोद (सं० पु०) क्षारं उदके यस्मि, क्षारं उदकं यस्मि-न्निति वा, बहुव्री० उदकस्य उदादेशः । लवणसमुद्र ।

(भागवत ५।१०।१५)

क्षारोदक (सं० स्त्री०) क्षारजल, खारा पानी । क्षारसे घट्टा जल डाल वस्त्रका दोसायन बना उसके नौसे पात्र रखके क्षारोदक ग्रहण करना चाहिये । इसी

प्रकार एकविंशति वार पुनः पुनः टपकाते हैं। मता-
न्तरमें चारसे चतुर्थ च जल दे चतुर्थीय अवशिष्ट रहने
पर टपका लेना चाहिये। (परिभाषाप्रदीप)

क्षारीदधि (सं० पु०) क्षारसमुद्र, लवणसमुद्र।

क्षाल (सं० त्रि०) जल ज्वलादिवात् णः। शोधनकारी,
शोधक, साफ कर देनेवाला।

क्षालन (सं० क्ली०) जल-णिच् भावे ल्युट्। १ शोधन,
शुद्धि, सफाई। २ प्रक्षालन, धोतकरण, धुलाई।

क्षालित (सं० त्रि०) क्षाल-णिच् क्त। धोत, परिष्कृत,
धुला हुआ, साफ। (माघ १०।१४)

क्षि (सं० स्त्री०) क्षि बाहुलकात् डि। १ निवास, मुकाम।
२ गति, चाल। ३ क्षय, बरबादी।

क्षित (सं० त्रि०) क्षि कमणि क्त। १ हिंसित, बरबाद
किया हुआ, (क्ली०) भावे क्त। २ हिंसा, कत्ल, मार-
पीट।

क्षिता (सं० स्त्री०) क्षिति। (भारत ११।११।१०)

क्षितायु (वै० त्रि०) क्षितं आयुर्गच्छ, बहुव्री०। क्षीणायु,
गयी होती उम्रवाला। (चक्र १०।१६।१२)

क्षिति (सं० स्त्री०) क्षियति वसत्यस्याम्, क्षि निवासे क्तिन्।
१ पृथिवी, जमीन। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें अन्यप्रकार
व्यत्यति प्रदर्शित हुयी है—

“महालक्ष्मि चयं याति क्षितियं न प्रकीर्तताः।” (प्रकृति० ७ अ०)

महाप्रलयमें जय हो जानेसे पृथिवीका नाम क्षिति
पड़ा है। (मनु ४।१।४।१)

“क्षिति जल पावक बगन समीरा।” (तुलसी)

२ वास, रहन। भावे क्तिन्। ३ क्षय, नाश। ४ रूरोचना
नामक गन्धद्रव्य। ५ मनुष्य। (चक्र ८।१।१६) ६ महा-
प्रलय। ७ खदिरवृक्ष, खैरका पेड़। (पु०) ८ किसी
वृष्टिका नाम। (प्रवराध्याय)

क्षितिकच (सं० पु०) क्षितेः कचः, इ-तत्। घूँस, गर्द।

क्षितिकच (सं० स्त्री०) क्षितिकच देखी।

क्षितिकम्प (सं० पु०) क्षितेः कम्पः, इ-तत्। भूमिकम्प,
जलजला।

क्षितिक्षम (सं० पु०) क्षितौ क्षमते, क्षिति-क्षम-अच्।
खदिरवृक्ष, खैरका पेड़।

क्षितिक्षित् (सं० पु०) क्षितिं क्षयति, क्षिति-क्षि ऐश्वर्ये
क्षिप् तुगागमश्च। पृथिवीक्षर, राजा। (माघ)

क्षितिज (सं० पु०) क्षितेर्जायते, क्षिति-जन-ञ। १ भूमि-
पुत्र, मङ्गलप्रद। (ज्योतिषाल) २ भूनाग, केसुवा। ३ मही-
रुद्ध, वृद्ध। ४ नरकासुर। (क्ली०) ५ खगोलमें आकाश-
के मध्यसे नब्बे अंश दूरकी अवस्थित तिर्यग्भुज।
(गोलाध्याय) (त्रि०) ६ क्षितिजात, जमीनसे पैदा।

क्षितिजन्तु (सं० पु०) क्षितेर्जन्तुरिव। भूनाग, केसुवा।

क्षितितलविधि (सं० पु०) पातालतलम्।

क्षितिदेव (सं० पु०) क्षितौ देव इव। ब्राह्मण।

(भागवत १।१।११)

क्षितिदेवता (सं० स्त्री०) क्षितौ देवता इव। ब्राह्मण।

क्षितिधर (सं० पु०) क्षितिं पृथिवीं धरति, क्षिति-धृ-
अच्। यद्वा क्षितिं धारयति, क्षिति-धृ-णिच् पूर्वकृत्तश्च।
१ पर्वत, पहाड़। (कुमार ७।२४) २ पृथिवीको धारण
करनेवाला, कच्छप, हस्तो वा नाग। पौराणिक मतमें
यही यथाक्रम पृथिवीको धारण किये हुये हैं। इसीसे
कहुवा, हाथी और सर्पको क्षितिधर कहते हैं।

३ राजा।

क्षितिनन्द—काश्मीरके एक राजा। यह वक्के पुत्र थे।

क्षितिनन्दने ३० वर्ष राजत्व किया। (राजतरङ्गिणी)

क्षितिनाग (सं० पु०) भूनाग, केसुवा। इसका संस्कृत
पर्याय—क्षितिज, क्षितिजन्तु, भूनाग और उपरस है।

भूनाग देखी।

क्षितिनाथ (सं० पु०) क्षितेः पृथिव्याः नाथः सहायः।
राजा।

क्षितिप (सं० पु०) क्षितिं पाति रक्षति, क्षिति-पा-ङ।
भूमिपाल, राजा। (माघ)

क्षितिपति (सं० पु०) क्षितेः पतिः पावकः, इ-तत्। क्षिति-
पाल, राजा। (रघु १।८६)

क्षितिपाल (सं० पु०) क्षितिं पावयति, क्षिति-पा-णिच्-
अच्। राजा। (प्रबोधनोदय १५६)

क्षितिपालभाक् (सं० पु०) क्षितिपालं भजते, क्षितिपाल-
भज्-बिभ। (मगीक पा १।१।६२) राजकर्तव्य दूतभोजनवादि।

(महि ३।११)

क्षितिपुत्र (सं० पु०) क्षितिः पृथिव्याः पुत्रः, इ-तत् । १ नरक-
राज, कोई असुर । नरकासुर देखो । २ मङ्गलग्रह । कुज देखो ।

क्षितिबदरी (सं० स्त्री०) भूबदरी, भडबरी ।

क्षितिभुक् (सं० पु०) क्षितिं भुज्जति, क्षिति, भुज्-क्षिप् ।
राजा ।

क्षितिभृत् (सं० पु०) क्षितिं विभर्ति, क्षिति-भृ-क्षिप्
तुगागमश्च । १ पर्वत, पहाड़ । २ राजा । (किरात०)

क्षितिरम्भ (सं० स्त्री०) क्षितेः रम्भम्, उ-तत् । गतं,
गङ्गा ।

क्षितिहृत् (सं० पु०) क्षितौ रोहति, उ-तत् । वृक्ष, दरखत ।
(विष्णुपुराण १।१५६)

क्षितिकवभुक् (सं० पु०) भूम्यधिकारी, जमीनके एक
हिस्से या बहुत छोटे टुकड़ेका मालिक ।

क्षितिवर्धन (सं० पु०) क्षितिं वर्धयति, क्षिति-वृध-षिप्-
श्च । १ नृनदेव, शिव, ज्ञान । (भट्टि) (त्रि०) २ क्षिति
वृद्धिकारी, जमीनको बढ़ानेवाला ।

क्षितिवृत्ति (सं० स्त्री०) क्षितेर्हृत्तिः, इ-तत् । सङ्घिष्णुता,
बरदाश्त, गमगोरी ।

क्षितिवृत्तिमान् (सं० त्रि०) क्षितिवृत्तिरस्यास्ति, क्षिति-
मतुप् । दूसरेका अहितचरण सहन करनेवाला, जो
चोरीकी बुराई सहता हो । (भागवत ४।१६।०)

क्षितिष्पुदास (सं० पु०) क्षितिं स्पृदस्यति, क्षिति-वि-उद्-
अस-अष्, उपपदस० । गतं स्थित पृष्ठ, गङ्गेका मकान ।

क्षितिसुत (सं० पु०) क्षितेः सुतः, इ-तत् । १ मङ्गलग्रह ।
२ नरकासुर ।

क्षितेश (सं० पु०) क्षितिमीष्टे, ईश-अष् । १ भूमिपति,
जमीनका मालिक । (रघु १।५) २ विष्णु । ३ वङ्गदेशीय
शाण्डिल्यगोत्रवाले राक्षी और वारिन्द्र ब्राह्मणोंके पूर्व-
पुरुष । यह कनौजसे आदिशूरकी सभामें आये थे ।
इनके पुत्र सुविष्णुवात भट्टनारायण रहे । इन्होंने क्षितेशका
उपपक्ष करके 'क्षितेशव' शावकी चरित्र नामक
संस्कृत ग्रन्थ रचित हुआ है । उक्त ग्रन्थमें क्षितेशका
जो सा परिचय मिलता, वह अमूल्य और कल्पित है ।

भट्टनारायणकी भाति क्षितेश भी एक कवि थे ।
श्रीधरदासके सूक्तिकर्णामृतमें इनकी कविता उद्धृत
हुई है ।

क्षितेश्वर (सं० पु०) क्षितेश्वरः, इ-तत् । पृथिवीपति ।
(रघु १।५)

क्षित्वदिति (सं० स्त्री०) क्षितौ अवतीर्णा पदितिः, मध्य-
पदलो० । देवकी, वसुदेवकी पत्नी, कश्यपकी गर्भधारिणी ।
अदितिके देवकीरूप अवतारकी कथा इस प्रकार है—
महर्षि कश्यपने एक बार किसी वृद्धत् यज्ञका अनुष्ठान
किया । इस यज्ञमें दुग्ध और दधिके लिये जलाधिपति
वरुणके निकटसे कई मवेशी मांग लाये थे । यज्ञ शेष
होने पर कश्यपने मवेशी वापस करना चाहे । किन्तु
कश्यपकी अदिति और सुरभि नामक पत्नियाँ मवे-
शियोंका ज्यादा दूध देख कर किसी प्रकार सौटाने पर
राजी न हुईं । वरुणने मवेशी वापस करनेके लिये
संवाद भेजा था । परन्तु कोई फल न निकला । वरुणको
जब मालूम हुआ कि सङ्गमें मवेशी मिल न सकेंगे, तो
वह पितामहसे नालिश करने गये और रो रो कर
कहने लगे—यदि मवेशी न मिलेंगे, तो देशको कैसे
जा सकूंगा । पितामह कश्यपके अन्याय आचरण पर
बहुत चिढ़े थे । अन्तकी विचार हुआ—'कश्यपने
अपने जिस अंशसे वरुणके गवादि पशु हरण किये हैं,
वही अपराधी है । इस लिये कश्यपका वह अंश मही-
तलकी आकर खाता बन कर जन्मग्रहण करे । निर्दोष
अपर अंश इसी स्थानमें रहेगा । फिर जिनकी इच्छासे
ऐसी घटना हुई है, उन्हीं अदिति और सुरभिका सोला
आना अपराध है । अतएव वह दोनों पूर्णरूपसे धरा-
तल पर जन्मग्रहण करके कश्यपके साथ वास करें ।'
हुक्म निकल गया और वरुण समुत्पन्न हुए । कश्यपने
वसुदेवरूप, अदितिने देवकीरूप और सुरभिने रोहिणी-
रूपसे पृथिवी पर जन्म लिया । (हरिवंश ५५ च०)

क्षित्वा (सं० पु०) क्षि-क्लिप्-तुक्-च । मोक्षप्रतिनिधि-
वृत्तः क्लिप् । उच्यते ३।१११ वायु, हवा ।

क्षिद्र (सं० पु०) क्षिद्र-रक् । १ रोग, बीमारी । २ सूर्य,
सूरज । ३ विषाण, सींग । (संक्षिप्तसार उपाधिशति)

क्षिप् (सं० स्त्री०) क्षिप-क्षिप् । अङ्गुलि, उंगली ।

(अथ १।१२३।३)

क्षिप (सं० त्रि०) क्षिप्-कः । १ चेत, फेंकनेवाला । (पु०)
२ चेषण, फेंक, चलाव ।

क्षिपक (सं० त्रि०) क्षिप स्वार्थे कन् । क्षेपक, फेंकने-वाला ।

क्षिपकादि (सं० पु०) पाणिनिका एक गण । क्षिपका, ध्रुवका, चरका, सेवका, करका, चटका, अवका, लङ्का, अलका, कथका, ध्रुवका, एङका आदि शब्द इस गणमें गिने जाते हैं । सिवा इनके दूसरे भी कई शब्द क्षिपकादि गणके अन्तर्गत हैं ; उनकी गणना नहीं की गयी है । वह प्रयोगके अनुसार द्रष्टव्य है । क्षिपकादि शब्दोंमें अकारके स्थान पर इकार नहीं होता ।

क्षिपकी (सं० त्रि०) क्षिपक चातुरर्थिक इनि । क्षिपकका निकटवर्ती (देशादि) ।

क्षिपण (सं० स्त्री०) क्षिप-क्यन् । क्षेपण, फेंकनेकी क्रिया, चलानेका काम ।

क्षिपणि (सं० स्त्री०) क्षिप्यते ऽनया, क्षिप-अनि-किञ्च (विपे: किञ्च । सप्त २।१०८) १ नौकादण्ड, डांड, पतवार । २ कोई जाल । ३ आयुध, हथियार । ४ बंसी, मछली मारनेकी कंटिया । ५ अध्वर्यु, ऋत्विक् । भावे अणि ६ क्षेपण, फेंकाव । (अक ४।४०।४)

क्षिपणु (सं० पु०) क्षिप-अनुङ् । (अनुङ् नदेश । सप्त ३।४२) १ वायु, हवा । २ व्याध, बहेलिया, चिड़मार । (अक ४।४५।६)

क्षिपण्य (सं० पु०) क्षिप-कन्यच् । १ वसन्त, बहार । २ देह, जिस्म । ३ सुरभिगन्ध, खुशबू । (त्रि०) ४ सुरभिगन्धविशिष्ट, खुशबूदार ।

क्षिपति (सं० पु०) क्षिप्यतेऽनेन, क्षिप करणे अति । बाहु, बाजू, हाथ ।

क्षिपस्ति (सं० पु०) क्षिप-अस्ति । बाहु, बाजू, बांह ।

क्षिपा (सं० स्त्री०) क्षिप्-अङ् ततः टाप् । विद्विदादिभ्योऽङ् । पा ३।१।१०४ । १ क्षेपण, फेंकाई । २ रात्रि, रात ।

क्षिप्त (सं० त्रि०) क्षिप-क्त । १ त्यक्त, छोड़ा हुआ । इसका संस्कृत पर्याय—नुक्त, नुत्त, अस्त, निष्ठ, त, विह और ईरित हैं । २ विकीर्ण, फैलाया हुआ । ३ अवज्ञात, बेइज्जत किया हुआ । ४ वायुरोगग्रस्त, जिसको बाई लगा हो । (अथर्व ६।१०८।२) उक्तीर्ण, उगला हुआ । (भाष ७।२) ६ पतित, गिरा हुआ । (भाष १०।७०) ७ हत, मारा हुआ । (भाष २।५२) ८ विस्त्रस्त, डीला किया हुआ । (भाष ४।५।२८) ९ क्षापित, रखा हुआ ।

क्षिप्तकुर (सं० पु०) क्षिप्तचासौ कुरश्चेति, कर्मधा० । अक्षक, पागल कुत्ता ।

क्षिप्तचित्त (सं० त्रि०) क्षिप्तं चित्तं यस्य, बहुव्री० । १ चञ्चलचित्त, जिसका दिल ठिकाने पर न हो । (लो०) क्षिप्तश्च तत् चित्तश्चेति, कर्मधा० । २ विषयासक्त चित्त, डोवांडोल दिल ।

क्षिप्तनिवास (सं० पु०) क्षिप्त व्यक्तियोंके रहनेका स्थान, पागलखाना ।

क्षिप्तमेघज (वै० त्रि०) निक्षिप्त अस्त्राघातका उपशम-कारी । (अथर्व वेद ६।१०८।१)

क्षिप्तयोनि (वै० त्रि०) क्षिप्ता योनि मर्त्यरूपोत्पत्तिस्थानं यस्य, बहुव्री० । जिसकी जननी प्रपर पुरुषके साथ पासक्त हुई हो । (भाषलायन गृह्यसूत्र १।२४।२८)

क्षिप्ता (सं० स्त्री०) क्षिप्त-टाप् । रात्रि, रात ।

क्षिप्ति (सं० स्त्री०) क्षिप-क्तिन् । क्षेपण, फेंकाई ।

क्षिप्र (सं० त्रि०) क्षिप्-क्त । वसग्धृषिषिषिपे: क्तः । १।२।१४० । १ क्षेपणशील, फेंकनेवाला । २ निराकरिण्य, हटानेवाला ।

क्षिप्र (सं० पु०-स्त्री०) क्षिप्र-रक् । १ ज्योतिःशास्त्रोक्त कोई गण । पूषा, अश्विनी, अभिजित् और जस्ता कई नक्षत्रोंका नाम क्षिप्रगण है । २ पादाङ्गुष्ठ और अङ्गुलिके मध्यभागका सकृधि मर्म । यह सुश्रुतोक्त १०७ मर्मोंके अन्तर्गत है । इसके पाहत होने पर आक्षेपसे प्राणवियोग होता है । (सुश्रुत शारीर ६ अ०)

३ यदुवंशीय सपासङ्गके कनिष्ठ पुत्र । (हरिवंश १६२ अ०) (त्रि०) ४ द्रुत, तेज । (अक ४।५८) ५ क्षेपक, फेंकनेवाला । (अक २।१२४।५) (अथ०) ६ जवदीसे, शीघ्र शीघ्र ।

क्षिप्रकारी (सं० त्रि०) क्षिप्रं करोति, क्षिप्र-कृ-णिनि । शीघ्र कार्य कर सकनेवाला, जल्द काम करनेवाला । क्षिप्रजव (सं० त्रि०) क्षिप्रोतिशयो जवो वेगो यस्य, बहुव्री० । अतिवेगवाली, अति द्रुतगामी, तेजस्फूर्त ।

क्षिप्रपाकी (सं० पु०) क्षिप्रं पश्यते, क्षिप्र-पच् बाहुक-कात् कर्मणि विष्णुन् । गर्दभाण्ड, पारस पोपल । क्षिप्रश्च्येन (वै० पु०) पक्षाविशेष, एक चिड़िया ।

(अतपवशात्तप १०।५।१।१०)

क्षिप्रसन्धि (स० पु०) सन्धिमेद ।

(शाङ्खायनश्रौ० सू० ११।१।५) चेप्र देखो ।

क्षिप्रहस्त (स० त्रि०) सञ्चुहस्त, जलद जलद हाथ चलानेवाला ।

क्षिप्रहोम (स० पु०) क्षिप्रं ह्वयते, क्षिप्र-ह्व-मन् । सायं और प्रातः कर्तव्य होम । संस्कारतत्त्वमें लिखा है—याज्ञिक प्रसिद्ध होम दो प्रकारका है—क्षिप्रहोम और तन्महोम । शीघ्र आहुति पड़नेकी व्युत्पत्तिसे सायं और प्रातःको कर्तव्य होमका नाम क्षिप्रहोम है । व्यासके मतानुसार क्षिप्रहोममें परिसमूहन, आस्तरण और विरुपाक्षजप करना नहीं होता, प्रणव छोड़ देना चाहिये ।

“दग्धे गृहे न कुर्वति विप्रहोमे त्विदं वयम् ।

विरुपाक्षश्च न जपेत् प्रणवश्च विवर्जयेत् ॥” (व्यास)

क्षिप्रा (सं० स्त्री०) क्षि-प्रङ् ततः टाप् । (विश्वविदादिभोगोऽङ् । पा ३।१।१०४) १ अपचय, बिगाड़, बकारवादी । २ धर्म-व्यतिक्रम । (सिद्धान्तकोशरी)

क्षियाक—सूक्तिकर्णामृतधृत एक कवि ।

क्षितिका (सं० स्त्री०) चक्रवर्मा राजाका मातामही ।
(राजतरङ्गिणी ५।१२४)

क्षीजन (सं० स्त्री०) क्षी प्र भावे ल्युट् । भूतभूतानेवाली बांसका शब्द ।

क्षीण (सं० त्रि०) क्षि-क्त इकारो दीर्घः । (निष्ठायासम्बन्धे पा ६।४।१०) निष्ठा तकारस्य नकारश्च । विधौ दीर्घात् । पा ८।१।४६ । १ सूक्ष्म, बारीक । २ दुर्बल, कमजोर । ३ क्षयप्राप्त, मर मिटा । ४ धात्वपचयवान्, जिसकी धात क्षीन हो गयी हो । दोषधातु और मलक्षयसे मनुष्य क्षीण हो जाता है । दोषधातु और मलक्षयका निदान—अस्वास्थ्यकर आहार, सर्वदा क्रोध, शोक, चिन्ता, भय, अम, अत्यन्त स्त्रीप्रसङ्ग, अनाहार, अतिरिक्त वसन प्रवृत्ति, मल वा मूत्रका वेगधारण, साहसिक कार्य और अभिधात है । इन्हीं सकल कारणोंसे दोषधातु और मलसमूहका क्षय होता है । वायुक्षय होनेसे कार्यमें अनुत्साह, वाक्की प्रत्यता और संज्ञाहीनता रहती है । पित्तक्षयसे कफ-वृद्धि, अग्निमान्द्य और शरीरकी कान्तिका क्वास लगता है । कफ विगड़नेसे शरीरसन्धिकी शिथिलता, मूर्च्छा,

रुचता और दाह उठता है । रक्तक्षय होनेसे हृदयमें वेदना, कण्ठशोष, पिपासा और चर्मकी रुक्षता दौड़ती है । रक्तक्षयसे शिरासमूहकी शिथिलता, शीतल तथा अल्पद्रव्यमें अभिलाष और चमड़े पर रुखापन आता है । मांसक्षय होनेसे गण्ड, ओष्ठ, कन्धरा, स्कन्ध, वक्षः-स्थल, उदर, सन्धि, मेढ्र और पिण्डी सकल स्थानोंमें शोथ उठता है । देह शुष्क और रुख पड़ जाता है । धमनोसमूह वेदनायुक्त होता है । मेदक्षय लगनेसे ग्रीवा-वृद्धि, सन्धिकी शून्यता, शरीरकी रुक्षता और स्निग्धद्रव्य तथा मांसमें छूट लगती है । अस्थिक्षयसे अस्थिमें वेदना, शरीरमें रुक्षता और नख तथा दन्तकी हानि होती है । मज्जाक्षय होनेसे शुक्रकी प्रत्यता, सकल पर्वोंमें वेदना, शरीरमें सूईकी जैसी चुभन और सभी अस्थियोंकी शून्यता पड़ती है । शुक्रक्षयसे अधिक रति-शक्ति, मेढ्र तथा मुष्कदेशमें वेदना और विलम्बसे रक्तके साथ शुक्रसंवलन जुवा करता है । भोजःक्षय होनेसे भय, दुर्बलता, अतिशय चिन्ता, कान्तिका मालिन्य, मनका आचक्ष्ण, कातरता, समस्त इन्द्रियोंमें वेदना और शरीरकी रुक्षता रहती है । पुरीषक्षयमें पाश्वर् तथा हृदयमें वेदना, शब्दके साथ वायुका लब्धगमन और उदर सङ्कोच करता है । मूत्रक्षयमें मूत्रकी प्रत्यता आती और वक्षि-देश पर सूचीविध-जैसी वेदना लगती है । चर्मक्षय होनेसे घर्मका क्वास, घर्म तथा चक्षुकी रुक्षता और रोमकूपकी स्तम्भता पड़ती है । आर्तवके क्षयसे यथाकाल आर्तव नहीं आता पथवा अल्पपरिमाणमें आता और योनि-देशमें वेदना भी उठती है । स्तनक्षय होनेसे स्तनदुग्धकी प्रत्यता, अथवा एक बारगी ही स्तनका प्रभाव और स्तन ह्रयका सङ्कोच होता है । गर्भक्षयसे उदर फूलता और गर्भका स्रन्दन नहीं पड़ता ।

दोष, धातु और मलके मध्य जिसका क्षय आता, उसको बढ़ानेवाला आहार विहारादि और औषधसेवन करनेसे ही क्षीयता जाती है । स्निग्धतथा मधुरद्रव्य, अम्लान्ध बलकारक पदार्थ, दुग्ध और मांसका रसा स्थानोंसे भोजःधातु वर्धित होता है । किसी किसी मतमें दोष, धातु, मल और आजःके मध्य जिसका क्षय लगता, उसका वृद्धिकारक द्रव्य ही स्थानोंको रोगी चाहता

है। अतएव धातुप्रभृतिकी क्षीणताके अनुसार रोगी जो जो द्रव्य खड़ा करता, उन्हीं द्रव्योंको सेवन करनेसे क्षीणता रोग मिटता है।

वायुक्षय होनेसे कषाय, कटु तथा तिक्त रस, दूध, शीतल एवं लघुद्रव्य, यव, मूंग और काकुन खानेकी रोगीका अभिलाष उत्पन्न होता है। अतएव धातु प्रभृतिकी क्षीणताके अनुसार रोगीका अभिलाष उठता है। पित्तकी क्षीणतामें तिल, उड़द, पिष्टक, दहीकी मलाई, अन्नशक, मट्ठा, कांजी, दही, लालमिर्च, लवणरस, और उष्ण, तीक्ष्ण एवं विदाही द्रव्य खानेकी रोगीकी स्पृहा दोड़ती और उष्णस्थान तथा उष्णकाल अच्छा लगता है। कफक्षीण होनेसे मधुर, लवण तथा अम्लरस, स्निग्ध, शीतल एवं गुरुद्रव्य, दधि और दुग्ध खानेकी रोगीकी इच्छा होती और दिवानिद्रा भी लगती है। रसक्षयमें बार बार शीतलजल पीनेकी इच्छा, रात्रि-निद्रा, हिम वा चन्द्रकिरण सेवनको अभिलाष और इच्छा, मांसरस, मत्स्य, मधु, घृत तथा गुड़का पना और गुड़मिश्रित जल पीनेकी स्पृहा बढ़ती है। रक्तक्षय होनेसे द्राक्षा, दाड़िम, मकखन, खेचयुक्त लवण और रक्तसिद्ध मांस खानेकी अभिलाष होता है। मांस क्षीण होने पर दधिसिद्ध अन्न, घाड़व और मांस सेवनको जी चाहता है। मेदक्षयमें मेदसिद्ध घाम्य, घानूप वा ओदक मांस नमकके साथ खानेकी इच्छा होती है। अस्त्रिक्षय होनेसे खेचयुक्त मांस, मज्जा और अस्त्रिसेवनकी चाह होती है। मज्जाके क्षयमें मधुर और अम्लरसयुक्त द्रव्य व्यवहार करनेको मन मांगता है। शुक्रक्षय होनेसे मयूर, सुर्गा, हंस वा सारसका पण्डा और घाम्य, घानूप तथा ओदक मांस खानेकी रोगी छटपटाता है। मल क्षीण होने पर यवका अन्न, यावक, शाक, मसूर और उड़दका रस खानेकी अभिलाष लगती है। मूत्रक्षय होने पर दूध-रस, दूध तथा गुड़ मिला बेरकी पतली चटनी, खीरा और फूट रोगीको अच्छी लगती है। स्नेह क्षीण होनेसे तेलमर्दन, गात्रमर्दन, मद्य, वायुरहित स्थानमें शयन तथा उपवेशन और मोटी चढ़र या दूसरा कोई गात्रावरण व्यवहार करनेकी जी चाहता है। चार्तव क्षयमें

लालमिर्च, खटाई और नमक, उष्ण, विदाही तथा गुरुद्रव्य, कुम्हड़ेका शाक खाने और अधिक परिमाणसे जल पीनेकी इच्छा होती है। स्तन्यदुग्ध घटनेसे मद्य, शालितण्डुलका भात, मांस, गायका दूध, शकर, दही और सुखरोचक द्रव्य खानेकी अभिलाष बढ़ता है। गर्भक्षय होनेसे सुर्गा, छागी, मेघी तथा शूकरोका गर्भ पाक करके खानेकी इच्छा और वसा, शूक्य प्रभृति विविध प्रकार सामग्री सेवन करनेकी भी स्पृहा दोड़ती है। (भावप्रकाश पूर्वखण्ड २ भाग)

(पु०) ५ यक्ष्मारोगके अन्तर्गत एक प्रकार रोग। क्षीणरोगमें मूत्रके साथ रक्त निकलता और पाश्वं पृष्ठ तथा कटीदेशमें वेदना होती है। (चरकसूत्र १६ अ०)

राज यक्षा देखो।

क्षीणकर (सं० त्रि०) क्षयताजनक, कमजोर कर देने-वाला।

क्षीणचन्द्र (सं० पु०) क्षीणखासो चन्द्रश्चेति, कर्मधा०। सातकलामात्र अवशिष्ट चन्द्र, जिस चन्द्रमामें सात या इससे भी कम कलायें हो। कृष्णपक्षकी अष्टमीके बाद शुक्लपक्षकी अष्टमीतक क्षीणचन्द्र रहता है। (श्रीतिलक)

क्षीणता (सं० स्त्री०) क्षीण-तत् ततः टाप्। १ क्षयता, दोर्बल्य, कमजोरी। २ सूक्ष्मता, बारीकी।

क्षीणमध्य (सं० त्रि०) क्षीणं मध्यं यस्य, बहुव्री०। क्षीण कटिविशिष्ट, जिसकी कमर पतली हो।

क्षीणवक्ष (सं० त्रि०) क्षीणं वक्षं यस्य, बहुव्री०। दुर्बल, वीर्यहीन, कमजोर, जिसकी ताकत घट गयी हो।

क्षीणवान् (सं० त्रि०) क्षि-क्त-वत् इकारो दीर्घः निष्ठा तकारश्च नकारश्च। क्षयविशिष्ट, क्षीण, कमजोर।

क्षीण देखो।

क्षीणवासी (सं० त्रि०) १ भग्नगृहवासी, टूटे फूटे मकानमें रहनेवाला। (पु०) २ अपोत, कबूतर।

क्षीणशक्ति (सं० त्रि०) क्षीणा शक्तिर्यस्य, बहुव्री०। वीर्य-हीन, कम ताकत।

क्षीणशरीर (सं० त्रि०) क्षीणं शरीरं यस्य, बहुव्री०। क्षय, दुबला पतला, जिसका जिम्न टूट गया हो।

क्षीणाष्टकर्म (सं० पु०) क्षीणानि अष्टकर्मणि यस्य, बहुव्री०। जिन जैन मतमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण,

मोहिनीय, अंतराय, वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र नामक षष्ठकर्म क्षय होनेसे ही मुक्ति मिलती है। कारण जीवके अनन्तज्ञान आदि गुणोंकी प्रगट न होने देनेवाले ये ही कर्म हैं। जिन देव आठो कर्म क्षय करके मुक्त हुए थे। इसीसे उनका नाम क्षीणाष्टकर्मा है। जिन देखो।

क्षीव (सं० त्रि०) क्षीरं निपातने साधुः। मत्त, मत-वाला। (रामायण ३।६०)

क्षीयमाण (सं० त्रि०) क्षि कर्मणि शानच्। अपचीय-मान, जिसका क्षय हो रहा हो, जो घटता जा रहा हो।

जैनमतानुसार ज्ञानके ५ भेद हैं—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल। इसमें तीसरे अवधि-ज्ञानके छह भेदोंमेंसे एक भेद। जिस सुनिका अवधि-ज्ञान उत्पन्न होकर घटता ही रहता है उसे क्षीयमाण अवधिज्ञानी कहते हैं।

क्षीर (सं० पु०-स्त्री०) वस्यते पच्यते, वस-ईरन् उपधा-लोपः प्रकारस्य स्थाने ककारः पत्वच्च। १ दुग्ध, दूध। २ जल, पानी। ३ सरल द्रव, पक। ४ निर्यास, गोद। ५ खीर। चीनी डालके गाढ़ा छोटा हुआ दूध बकालमें क्षीर कहलाता है।

क्षीरक (सं० पु०) क्षीरमिव कायति, कै-क। क्षीर-मोरटलता, एक वेल।

क्षीरकण्टकी (सं० स्त्री०) क्षीरप्रधानं कण्टुकं भावरणं तदिव त्वग्यस्याः, बहुव्री०। क्षीरीयवृक्ष, एक पेड़।

क्षीरकण्ठ (सं० पु०) क्षीरं कण्ठे यस्य, बहुव्री०। शिशु, बच्चा, दुधमुंहा।

क्षीरकन्द (सं० पु०) क्षीरः क्षीरप्रधानः कन्दो यस्य, बहुव्री०। क्षीरविदारो। राजनिघण्टु के मतमें यह दो प्रकारका होता है—विनाल और सनाल। नालवाला सनाल और विना नालका विनाल कहलाता है।

क्षीरकन्दा (सं० स्त्री०) क्षीरः क्षीरप्रधानः कन्दो यस्याः, बहुव्री०। क्षीरवल्ली, लक्ष्मभूमिकुशाण्ड।

क्षीरकाकोलिका (सं० स्त्री०) क्षीरवत् शुभ्रा काकोली ततः स्त्रार्थे कन्-टाप् पूर्वप्रत्यय। क्षीरकाकोली, एक जड़ी।

क्षीरकाकोली (सं० स्त्री०) १ अष्टवर्गप्रसिद्ध औषध-

विशेष, एक जड़ी। इसका संस्कृत पर्याय—महावीरा, सुकोली, पयस्विनी, क्षीरशुक्ता, पयस्या, क्षीरविवा-शिका, जीववल्ली और जीवशुक्ता है। (राजनिघण्टु) क्षीरकाकोलीका गुण काकोलीके समान है। (भावप्रकाश) काकोली देखो। इसके अभावमें अष्टवर्गका मूल पड़ता है।

चरकके मतमें क्षीरकाकोलीके सेवनसे शूलवृद्धि होती है। (चरक सूत्र ४४ प०)

क्षीरकाण्डक (सं० पु०) क्षीरान्वितं काण्डं यस्य, बहुव्री०। १ क्षुद्रोवृक्ष, यूँहर। २ पकवृक्ष, मदार।

क्षीरकाष्ठा (सं० स्त्री०) क्षीरप्रधानं काष्ठमस्याः, बहुव्री० ततः टाप्। १ वटोवृक्षा, पाकर। २ नदीवट, छोटा बर-गद।

क्षीरकीट (सं० पु०) क्षीरस्य कीटम्, इ-तत्। दुग्धजात कीट, दूधका कीड़ा।

क्षीरक्षव (सं० पु०) दुग्धपाषाण, एक पेड़।

क्षीरखजूर (सं० पु०) क्षीरवत् स्वादुः खजूरः। पिण्ड-खजूर।

क्षीरघृत (सं० स्त्री०) क्षीरजातं घृतम्। क्षीरोत्थ घृत, मधे दूधका घी। सुश्रुतके मतमें यह संपाही (मल-रोधक), रक्तपित्त, भ्रान्ति तथा मूर्छानाशक और नेत्र-रोग पर हितकर है।

क्षीरज (सं० स्त्री०) क्षीराद् जायते, क्षीर-जन-ड। १ दधि, दही। (त्रि०) २ दुग्धजात, दूधसे बना हुआ।

क्षीरजल (सं० स्त्री०) क्षीरमिश्र जल, दूध मिला पानी।

क्षीरतुम्बी (सं० स्त्री०) पलाशुविशेष, मीठी लौकी। यह मधुर, स्निग्ध, पित्तघ्न, गर्भपोषण, वृष्य, वातल और बलपुष्टिकारक होती है। (राजनिघण्टु)

क्षीरतैल (सं० स्त्री०) क्षीरपक्वं तैलम्, मध्यपदलो०। सुश्रुतके एकप्रकार औषध, कोई तेल। इसकी प्रसुत-प्रथाकी यों है—द्वयपञ्चमूल, महापञ्चमूलो, काकोली आदि तथा विदारिगन्धादिगण, जलजात मांस, जलीय देशजात मांस और जल-जात कन्दकी आहरण करके ३२ सेर दूध और ६४ सेर पानीके साथ साथ तैयार करना चाहिये। एकचतुर्थीय अव-शिष्ट रहने पर पायसे नीचे उतार उक्त जायको

कपड़ेमें भली भांति छान लेते हैं। फिर २ सिर तिल तेल उसमें मिलाकर पुनर्वार पाक किया जाता है। दूधके साथ तेल अच्छी तरह मिला जाने पर उतार लेना चाहिये। शीतल होनेसे उसको मन्थन करते हैं। मन्थनेसे जो तेल निकलता, वह दुग्ध व्यतीत मधुर द्रव्योंके साथ पाक किया जाता है। इसीका नाम क्षीरतैल है। अर्दित रोग यह तेल खाने क्षीर लगानेसे आरोग्य होता है। (सुम्नत चिकित्सित ५ अ०)

क्षीरतोयधि (सं० पु०) क्षीरस्य तोयधिः, ६-तत्। क्षीरसमुद्र।

क्षीरद (सं० त्रि०) क्षीरोत्पादक, दुधार।

क्षीरदल (सं० पु०) क्षीरं दले यस्य बहुव्री० यद्वा क्षीरं क्षीरयुक्तं दलं यस्य बहुव्री०। क्षीरवृक्ष, मदार।

क्षीरदाली (सं० स्त्री०) दुग्धवती या दुधार गाय।

क्षीरद्रुम (सं० पु०) क्षी (प्रधानो द्रुमः, मध्यपदलो०। अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़।

क्षीरधाली (सं० स्त्री०) धात्रीभेद। अपने स्तनसे शिशु-पालन करनेवाली धात्री।

क्षीरधि (सं० पु०) क्षीरः धीयतेऽस्मिन् धा पाधारे कि क्षीरसमुद्र।

क्षीरधेनु (सं० स्त्री०) क्षीरेण निर्मिता धेनुः मध्यपदलो०। दानके लिये कल्पित क्षीरनिर्मित एक गाय। स्कन्दपुराणमें क्षीरधेनुका विधान इस प्रकारसे लिखा है—जिस स्थानमें क्षीरधेनु बनाना हो, उसको गोबरसे भली भांति खीप कर गोचर्मपरिमित स्थानमें कुछ बिछा देना चाहिये। इन कुशी पर कृष्णसारका एक चर्म रखके उस पर गोबरसे एक कुण्डलो प्रस्तुत करते हैं। फिर उस पर क्षीरकुम्भ रखा जाता और उसका एक चतुर्थांश वस्त्रके लिये स्थापित होता है। क्षीरधेनुका शृङ्गाय सुवर्ण द्वारा, दोनों कर्ण किसी प्रशस्त पत्रसे, मुख शुङ्ग द्वारा, जिह्वा शर्करासे, किसी प्रशस्त फल द्वारा दन्त, मुक्ताफलसे चक्षु, हनुसे पदहय, दर्भ द्वारा रोम, कम्बल से गलकम्बल, ताम्रसे घुष्ठ और कांस्यसे देह निर्माण करना चाहिये। क्षीरधेनुका पुच्छ पशुसूत्र और स्तन नवनीत द्वारा बनते हैं। शृङ्ग सुवर्णमय, स्तुररजतमय और अपराङ्ग पञ्चरत्नमय प्रस्तुत होने पर उसकी चारो

ओर तिलपूर्ण चार पात्र स्थापन करके क्षीरधेनुको दो वस्त्रोंसे ढांक देना चाहिये। फिर गन्धपुष्प, धूप, दीप प्रभृति द्वारा अर्चना करके क्षीरधेनु ब्राह्मणको दी जाती है। इसके पीछे खड़ाऊँ, जूता और छाता भी दान करना चाहिये। “या लक्ष्मीः सर्वभूतानां” इत्यादि मन्त्रसे कामधेनुका निर्माण और “आप्ययस्य” इत्यादि मन्त्रसे दान करना पड़ता है। प्रतिग्रहीता भी भक्तिपूर्वक “गृह्णामित्वां देवि” इत्यादि मन्त्र पढ़के ग्रहण करता है। क्षीरधेनु दान करके उस दिन केवल दूध ही पीकर रहते, दूसरी कोई चीज नहीं खाते। ब्राह्मणको तीन दिन तक दुग्धपान करना चाहिये। जो व्यक्ति यथा नियम क्षीरधेनु दान करता, वह दिव्य सङ्कल वस्त्ररत्नलोकमें रह पितापितामहके साथ ब्रह्मलोक पहुँचता है। फिर वह ब्रह्मलोकमें बहुकाल पर्यन्त स्वर्गीय रथका आरोहण, स्वर्गीय मास्य, अनुलेपन प्रभृति नाना विध सुखभोग करके विष्णुलोकको चलता है। वहाँ वह राजा होकर विष्णुकी भांति अनन्तकाल अवस्थान किया करता है। (हेमाद्रि—दानकण्ठ)

क्षीरनाश (सं० पु०) क्षीरं नाशयति, क्षीर-नाश-णिच् अण्। १ शाखोटवृक्ष। इस वृक्षके क्षीरसे दुग्ध नष्ट हो जाता है। इसीसे इसका यह नाम पड़ गया है। २ दुग्ध-क्षय, दूधकी बरबादी।

क्षीरनिधि (सं० पु०) क्षीरस्य निधिः समुद्रः, ६-तत्। क्षीरसमुद्र। (रङ्ग १११२)

क्षीरनीर (सं० स्त्री०) क्षीरमिश्रं नीरमिव। १ आलिकजन, जमागोशी। क्षीरस्य नीरस्य तयोः समाहारः, समाहारद्वन्द्व। २ दुग्ध और जल, दूधपानी।

“क्षीरनीरसमं मित्रं प्रशंसन्नि विचक्षणाः।” (वेताल १२१८);

क्षीरप (सं० त्रि०) क्षीरं पिवति, क्षीर-पा-क। क्षीरपायी बाल, शीरखारा। (भारत १२१२५ अ०)

क्षीरपर्ण (पु०) क्षीरपर्णं दीक्षी।

क्षीरपर्णी (न) (सं० पु०) क्षीरपर्णं मन्त्रास्ति, क्षीरपर्ण-इति। अर्कवृक्ष, भाक, अकोड़ा।

क्षीरपर्णी (सं० स्त्री०) क्षीरं पर्णोऽस्माः, बहुव्री० गौरादित्वात् ङीष्। १ अर्कवृक्ष, मदारका पेड़।

क्षीरपलाण्ड (सं० पु०) क्षीरवत् शुभ्रा पलाण्डु। श्वेत-

पक्षाण्ड, सफेद प्याज । यह क्षिण्ड, रुचिकर, धातु-
स्थैर्यकारी, बलकर, मिधा तथा कफघ्नकारि, पुष्टिकर,
पित्तघ्न, स्वादु, गुणपाक क्षीर रक्तपित्तके लिये प्रशस्त
है । (सुश्रुतसूत्र ४६ अ०)

क्षीरपाक (सं० त्रि०) क्षीरेण पाको यस्य, व्यधिकरण-
बहुव्री० । १ क्षीरपाक, दूधमें पका हुआ । (अकृ० ८०७१०)
(पु०) क्षीरस्य पाकः, ६-तत् । घृतादिका क्षीरावशेष
पाक, द्रव्यान्तरके योगसे दूधका एक पाक । जिस द्रव्यके
साथ क्षीरपाक करना हो, उसमें अष्टगुण दुग्ध क्षीर
द्रव्यसे चतुर्गुण जल मिलाके भाँव देना चाहिये । जब
जल शेष होकर दुग्धमात्र अवशिष्ट रहता, तब यह
पाक उतार लेना पड़ता है । इसीका नाम क्षीरपाक
है । ३ जलशुक्ति ।

क्षीरपाण (सं० त्रि०) क्षीरं पानं यस्य, बहुव्री० णत्वश्च ।
(पानं दिशे १ पा ८१२) १ उष्णीर-देशवासी । यह अक्षिक
परिमाणमें दूध पीनेसे क्षीरपाण कहलाते हैं । पीयते
ऽनेनेति, पा करणे ण्यट्, क्षीरस्य पानम्, ६-तत् वा
णत्वम् । वा भावकरणयोः । पा ८१३१० २ जिससे दूध पीया
जाये । ३ दुग्धपान, दूधका पियाई ।

क्षीरपाथी (सं० स्त्री०) क्षीरपाथ-ङीष् । दुग्ध पान कर-
नेका पात्र, जिस बर्तनमें डाल कर दूध पीया जाये ।
क्षीरपायी (सं० त्रि०) क्षीरं पातुं शीलमस्य, क्षीर-पा-
थिनि । १ क्षीरपान करनेके स्वभाववाला, जिसे दूध पीनेकी
आदत रहे । २ उष्णीर देशवासी । (पु०) ३ ब्राह्मण-
भूमिका एक गण्डग्राम । (दिशावली)

क्षीरपुष्पी (सं० स्त्री०) क्षीरकाकोशी, एक जड़ी ।

क्षीरभृत (सं० पु०) क्षीरेण भृतः । गोपालक भृत्यविशेष,
एक ग्वाला । जिस भृत्यका अन्यरूप वेतन नहीं—
गायका दुग्ध ही जो वेतन स्वरूप ग्रहण करता, उसीका
नाम क्षीरभृत है । (मनु ८२२२)

क्षीरमधुरा (सं० स्त्री०) क्षीरकाकोशी, एक जड़ी ।

क्षीरमय (सं० त्रि०) दुग्धमय, दूधिया । (भागवत ३१२८)

क्षीरमोचक (सं० पु०) वृक्षभेद, कोई पेड़ ।

क्षीरमोरट (सं० पु०) क्षीरवत् स्वादुः मोरटः । लता-
विशेष, एक पेड़ । इसका पर्याय—सितद्रु, सुदल क्षीर
क्षीरक है । मोरट देखो ।

क्षीरयष्टिक (सं० पु०) मादक क्षीर दुग्ध मिश्रित पात्र,
जिस बर्तनमें नशा क्षीर दूध मिलाकर रखा गया हो ।

क्षीररस (सं० पु०) क्षीरसार, मलाई ।

क्षीरलता (सं० स्त्री०) क्षीरप्रधाना लता, मध्यपदलो० ।

क्षीरविदारी, सफेद विदारी कन्द ।

क्षीरवती (सं० स्त्री०) क्षीरवत्-ङीप् । भारतप्रसिद्ध एक
नदी । (भारत, वन ८४ अ०)

क्षीरवर्ग, दुग्धवर्ग देखो ।

क्षीरवज्रो (सं० स्त्री०) चोरा क्षीरवती वज्री, कर्मधा० ।

क्षीरविदारी, सफेद विदारी कन्द ।

क्षीरवान् (सं० पु०) क्षीरमिव निर्यासो ऽस्त्यस्य, क्षीर-
मतुप् मस्य वः । १ क्षीरमोरट । २ क्षीर-जैम निर्यासवाले
क्षीरीवृक्ष अश्वत्थ प्रभृति, दूधिया पेड़ । (त्रि०) ३ दुग्ध-
युक्त, दूधिया । (अथर्व १८४१६)

क्षीरवारि (सं० पु०) क्षीरमिव वारि यस्य, बहुव्री० । क्षीर-
समुद्र ।

क्षीरवारिधि (सं० पु०) क्षीरमिव वारि धीयते ऽस्मिन्,
धा आधारे कि । क्षीरसमुद्र ।

क्षीरविक्रति (सं० स्त्री०) क्षीरस्य विक्रतिः, ६-तत् ।
कूर्चिका, छेना ।

क्षीरविदारिका (सं० स्त्री०) क्षीरवत् शुभ्रा विदारिका ।
क्षीरविदारिका, दूधिया भुईं कुन्डड़ा ।

क्षीरविदारी (सं० स्त्री०) क्षीरवत् शुभ्रा विदारी ।

१ स्वनामख्यात महाकन्दशाक, विदारी कन्द जैसा एक
लता । इसका पर्याय—महाश्वता, कक्षगन्धिका, रज्जु-
वल्ली, रज्जुवल्ली, क्षीरकन्द, क्षीरवज्रो, पयस्विनी, क्षीर-
सुक्ता, क्षीरलता, पयःकन्दा, पयोक्तता क्षीर पयोविदारिका
है । यह मधुर, अम्ल, कषाय, तिक्त क्षीर पित्तशूल तथा
मूत्रमेह रोगनाशक होती है । विदारी देखो ।

२ लम्बा भूमिकुशाण्ड । ३ समस्त श्वेतभूमि-
कुशाण्ड ।

क्षीरविष (सं० स्त्री०) निर्यासविष, दूधिया जहर । इसमें
फेनागम, विड्मेद क्षीर जिह्वाजिह्वा आती है ।

(सुश्रुत कल्प २ अ०)

क्षीरविधातिका (सं० स्त्री०) क्षीरमिव विधातमन्-
मस्त्वस्य, क्षीर-विधात-ठन्-टाप् । १ उच्छिकाकोलता,
विह्वला । २ क्षीरकाकोशी ।

क्षीरवृक्ष (सं० पु०) क्षीरप्रधानो वृक्षः । १ उदुम्बरवृक्ष, गूलरका पेड़ । २ राजादनोवृक्ष, खिरनी । ३ अश्वत्थ-वृक्ष, पीपल । ४ क्षीरिकावृक्ष, पिण्ड खजूर । ५ न्यग्रोध । ६ मूक, महुवा । ७ घटादिपञ्चवृक्ष, बरगद वगेरह पांच पेड़ । न्यग्रोध, उदुम्बर, अश्वत्थ, पारीषत् और अक्ष पादपको क्षीरवृक्ष कहते हैं । यह हिम, वर्ण्य, योनिरोग व्रणापह, रुक्ष, कषाय, स्तन्य, भग्नास्थि-योजन और विसर्पामय, शोथ, कफ, पित्त, प्लेग तथा मेलोन्न हैं । (राजनिघण्टु) क्षीरवृक्ष देखो ।

क्षीरव्यापत् (सं० स्त्री०) अश्वका प्रतिमात्र क्षीरभोजन-जन्य विकार, बहुत ज्यादा दूध पीनेसे घोंघेको होने-वाली एक बीमारी । क्षीरव्यापत्का मारा घोड़ा धीरे धीरे खाता पीता, निद्रामें डूब जाता और वेदनासे कष्ट पाता है । (जयदत्त)

क्षीरव्रत (सं० पु०) केवल दुग्धपान करके व्रताचरण, जिस व्रतमें सिर्फ दूध पीकर ही रहें ।

क्षीरशर (सं० पु०) क्षीरं शीर्यतेऽत्र श्रु अधिकरणे अप् । दुग्धसर, आमिक्षा, मलाई । इसका संस्कृत पर्याय—आमिक्षा और पयस्या है ।

क्षीरशक (सं० स्त्री०) नष्ट दुग्ध, बेटा दूध । अपक्व अवस्था-में जो दूध बिगड़ता, उसीका नाम क्षीरशक है । (भावप्रकाश) यह शुक्लवर्धक, शरीरवृद्धिकारक, बलकर, गुरु, कफजनक, रुचिकर और वायु तथा पित्तनाशक है । जिनका अग्नि प्रदीप्त है अथवा निद्रा नहीं आती अथवा जो अतिशय स्त्रीसेवनसे क्षीण हो गये हैं, उनके लिये क्षीरशक बहुत उपकारी होता है ।

क्षीरशीर्ष (सं० पु०) क्षीरमिव शीर्षमस्य, बहुव्री० । श्रौवेष्ट नामक गन्धद्रव्य, तारपीनका तेल ।

क्षीरशक्ता (सं० स्त्री०) क्षीरकाकोली ।

क्षीरशुक्ल (सं० पु०) क्षीरवत् शुक्लः । १ राजादनवृक्ष, खिरनी । २ पानीयकफल, सिंघाड़ा । ३ भूमिकुष्माण्ड ।

क्षीरशुक्ला (सं० स्त्री०) क्षीरवत् शुक्ला । १ क्षीरकाकोली । २ क्षीरविदारो । ३ शुक्लकुष्माण्ड, पेठा । ४ राजादनी, खिरनी ।

क्षीरश्री (वे० त्रि०) क्षीरेण श्रीयते मिश्रीक्रियते, श्रि कर्मणि क्तिप् । क्षीरमिश्रित, जिसमें दूध मिला हो ।

(राजसनीयसंहिता ८५०)

क्षीरघटपलक (सं० स्त्री०) क्षीरेण पक्षां पञ्चकोलानां पक्षमत्र, बहुव्री० कप् । एक प्रकार पक्षघृत, कीर पका हुआ घी । इसकी प्रस्तुत प्रणाली यों कही है— पञ्चकोल, सैन्धवलवण और दुग्ध प्रत्येक द्रव्य एक पल परिमित लेकर उसके साथ घृतपाक करना चाहिये । इसीका नाम क्षीरघटपलकघृत है । यह घृत ग्रीवा, विषमज्वर और गुल्मरोगमें सेवनीय है ।

(चक्रदत्त)

क्षीरघटिक (सं० स्त्री०) क्षीरेण पक्वं घटिकम् । दुग्ध-पक्व साठी चावलका भात । यहयज्ञमें बुधयज्ञको क्षीर-घटिक अन्नसे पूजना पड़ता है । (धातव्यका)

क्षीरस (सं० पु०) क्षीरं स्यति, क्षीर-सो-क । क्षीरशर, दूध या दहीकी मलाई ।

क्षीरसन्तानिका (सं० स्त्री०) क्षीरस्य सन्तानोऽस्तस्याः, क्षीरसन्तान-ठन् । दुग्धविकार, छेना । यह वृष्य, स्निग्ध और पित्त तथा वायुनाशक है । (राजवल्लभ)

क्षीरसमुद्र (सं० पु०) क्षीरतुल्यः स्वादुरसः समुद्रः । दुग्धसागर, दूधका समुद्र ।

क्षीरसर्पिः (सं० पु०) क्षीरेण पक्वं सर्पिः । क्षीरघृत, दूधमें पकाया हुआ एक घी । क्षीरतेलकी भांति इसका पाक करना पड़ता है । क्षीरतेलमें तेल डालते हैं, परन्तु इसमें उसीकी बराबर घी छोड़ा जाता है । यह चक्षुके लिये अतिशय उपकारी है ।

(सुश्रुत चिकित्सित ५ अ०) क्षीरतेल देखो ।

क्षीरसागर (सं० पु०) क्षीरोदसमुद्रः । (भागवत ८.५.११)

जैनशास्त्रानुसार इस मध्य लोकमें असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं । उनमें क्षीरसागर नामका भी एक समुद्र है । इसका जल दूधकी तरह सफेद है और जब तीर्थंकर भगवान् जन्म लेते हैं तब स्वर्गसे इन्द्र सपरिवार आकर इसी क्षीरसागरके जलसे सुमेरुपर्वत पर ली जाकर उनका अभिषेक करता है ।

क्षीरसागर पण्डित—हिक्काजदोपिका नामक ज्योति-ग्रन्थकार ।

क्षीरसागरसुता (सं० स्त्री०) क्षीरसागरस्य सुता, इ-तत् । लक्ष्मी ।

क्षीरसार (सं० पु०) क्षीरं सरति कारणत्वेन प्राप्नोति,

क्षीर-सू कर्मस्थण, यद्वा क्षीरस्य सारः, इ-तत् । १ नव नीत, नैनू । २ छेना । क्षीरसार ईषत् श्लेष्मकर, गोष्ठ, पित्तघ्न, तर्पण और गुह होता है । (राजनिघण्टु) इसका पर्याय—क्षीरस है ।

क्षीरस्फटिक (सं० पु०) क्षीरवत् शुभ्रः स्फटिकः । स्फटिकविशेष, किसी किसका बिकोरी पत्थर ।

क्षीरस्वामी—एक पण्डित । यह भट्ट ईश्वरस्वामीके पुत्र थे । इन्होंने क्षीरतरङ्गिणी नाम्नी अष्टाध्यायिवृत्ति और अमरकोषकी अमरकोषोद्घाटन नाम्नी टीकाकी रचना किया । एतद्व्यतीत इनका बनाया धातुपाठ, निपाताध्ययोपसर्गपाठ और लिङ्गसूत्र भी प्रचलित है । राजतरङ्गिणीमें कहा है—क्षीरस्वामी काश्मीरराज जयादित्यके अध्यापक थे । (राजतरङ्गिणी ४४८८)

क्षीरहिण्डीर (सं० पु०) क्षीरस्य हिण्डीरः, इ-तत् । दूधका भाग ।

क्षीरज्जद (सं० पु०) क्षीरपूर्णा ज्जदः, मध्यपदको० । दुग्धपूर्ण ज्जद, दूधका भील ।

क्षीरा (सं० स्त्री०) क्षीरः क्षीरवर्णोऽस्तरस्याः, क्षीर-अच् । (अर्णादिभ्यो ऽच् पा ३।२।१२०) काकीक्षी । काकीक्षी देखो ।

क्षीराक्ष (सं० पु०) सरलद्रव, सरल पेड़का दूध ।

क्षीरात्मिका (सं० स्त्री०) दुग्धिका, दूधी ।

क्षीराद (सं० पु०) दुग्धपोष्य शिशु, शीरखारा, दुध-मुंहा ।

क्षीराब्धि (सं० पु०) क्षीरस्य क्षारतुल्यस्य जलस्य अब्धिः, इ-तत् । क्षीरसमुद्र ।

क्षीराब्धिज (सं० स्त्री०) क्षीराब्धेः जायते, क्षीराब्धि-जन-ड । १ सामुद्रजवण, करकच । २ मुक्ता, मोती । (पु०) ३ चन्द्र । (दि०) ४ क्षीराब्धिसे उत्पन्न ।

क्षीराब्धिजा (सं० स्त्री०) क्षीराब्धिज-टाप् । लक्ष्मी ।

क्षीराब्धितनय (सं० पु०) क्षीराब्धेस्तनयः, इ-तत् । चन्द्र, चांद । पञ्चम वार समुद्र मन्थनमें क्षीराब्धिसे चन्द्र निकले थे ।

क्षीराब्धितनया (सं० स्त्री०) क्षीराब्धेस्तनया, इ-तत् । लक्ष्मी ।

क्षीरामय (सं० पु०) स्तब्धदोष, दूधकी बीमारी ।

क्षीराम्बुधि (सं० पु०) क्षीरस्य अम्बुधिः, इ-तत् । क्षीरसमुद्र ।

क्षीराक्षसक (सं० पु०) बालरोगविशेष, बच्चोंकी एक बीमारी । इसमें बच्चेकी बदबूदार पानी-जैसा दस्त आता, मूत्र पीला और गाढ़ा पड़ जाता और ज्वर, परोचक, दृष्ट्या, वमन, शुष्क उद्गार, जम्बिका, अङ्गभङ्ग, अङ्गविक्षेप, वेपथु एवं भ्रमका वेग देखाता और घ्राण, शूल तथा मुख पक्क जाता है । धात्रीको उचित है कि वह शीघ्र ही बालकको वमन करा डाले । (बाभट)

क्षीराविका (सं० स्त्री०) क्षीरं अवति, क्षीर-अव-प्रण ततः ङीप् ततः स्तार्थ कन्-टाप् पूर्व ऋस्वश्च ।

क्षीरावो देखो ।

क्षीरावो (सं० स्त्री०) क्षीरं अवति, क्षीर-अव-प्रण-ङीप् । उपपदसं० । दुग्धिका, दूधी । इसका संस्कृत पर्याय—ग्राहिणी, कच्छरा, ताम्रमूला और मरुइवा है । सुश्रुतके मतमें चाराबीका पत्र वकुलके पत्र-जैसा होता है । इसकी लता तोड़नेसे दूध निकलने लगता है ।

दुग्धिका देखो ।

क्षीराक्ष (सं० पु०) सरलवृक्ष, सर्वका पेड़ ।

क्षीराक्षय, क्षीराक्ष देखो ।

क्षीरकन्द (सं० पु०) भूमिकुष्माण्ड, भुइं कुम्हड़ा ।

क्षीरकषाय (सं० पु०) वटादि क्षीरितृक्षोंका कषाय, बड़ वगैरह दूधिया पेड़ोंका काढ़ा ।

क्षीरिका (सं० स्त्री०) क्षीरमस्तारस्याः, क्षीर-ठन्-टाप् ।

१ वंशलोचन । २ दुग्धादिकृत पायस, दूध वगैरहकी खीर । यह दूध, नारियल, गोधूम आदिसे कई प्रकारका बनती है । ३ चारविदारो । ४ राजादनीवृक्ष, खिरनी । ५ पिण्डखजूर । इसका संस्कृत पर्याय—राजादन, फलाध्यक्ष, राजातन, राजादनफल, अध्यक्ष, मधुका, क्षीरवृक्ष, पलाशी, मर्कटप्रिय, गुहस्कन्ध, श्लेष्मला, अतिपत्नी, वृषा, मौलिकानाली, क्षीरवृक्ष, वानरप्रिय, राजन्य, प्रियदर्शन, दृढस्कन्ध, कपोठ, वरादन, क्षीरी और कोमला है । क्षीरिकाका फल वृष्य, वलकर, स्निग्ध, शीतल, गुह और मूर्द्धा, दृष्ट्या, भ्रान्ति, मत्तता, क्षयदोष तथा रक्तदोषनाशक है । फिर पक्क फल मुर, विष्टम्भि, शीतल, कषाय, मधुर, अम्ल और अल्प परिमाणमें वायुप्रकोपकारी है । राजादनी देखो । ६ अम्बुका गण्डखलान्तरभाग । ७ अम्बुखुर मांस, घोड़ेके सुमका गोश्त ।

क्षीरिणी (सं० स्त्री०) क्षीरं क्षीरसदृशो निर्यासोऽस्त्वस्याः, क्षीर-इति ङीप् । १ स्तनामस्यातद्वक्ष, खिरनी । इसका संस्कृत पर्याय—काञ्चनक्षीरी, कर्षणी, पटुर्णिका, तिक्तदुग्धा, हेमवती, हिमदुग्धा, हिमवती, हिमाद्रिजा, पीतदुग्धा, यवविक्षी, हिमोद्भवा, हेमी और हिमजा है । क्षीरिणी तिक्त, शीतल, रेचक, पित्तज्वरमें अतिशय उपकारी और शोथ, कृमिदोष तथा कफघ्न होती है । (राजनिघण्टु) २ वराहक्रान्ता । ३ कुटुम्बिनी । ४ गाम्भारी वृक्ष । ५ दुग्धिका, दूधी । ६ क्षीरकाकोली । ७ खेत-शरिवा, अमन्तमूल ।

क्षीरिणीवन—कावेरी नदीतीरस्थ एक पवित्र स्थान । इसका वर्तमान नाम 'तिरुवदतुर' है । स्कन्दपुराणके ब्रह्मोत्तरखण्डमें क्षीरिणीवनका माहात्म्य वर्णित हुआ है—पुराकासकी यहां वसिष्ठने तपस्या की थी । क्षीरिणीवनमें देवादिदेव महादेव रहते हैं । आज भी यहां शिवमन्दिर बना है ।

क्षीरिप्ररोह (सं० पु०) वटाश्रयाच्छङ्कर, बड़ पीपल आदिकी कोपल ।

क्षीरिवृक्ष (सं० पु०) १ क्षीरप्रधान वृक्षवर्ग, दूधिया पेड़ोंका समूह । इस वर्गके अन्तर्गत वट, गूलर, अश्वत्थ, पाकर और पाड़स पीपल पड़ता है । क्षीरिवृक्षोंका फल शीतल, कफपित्तहर, संघाही, रक्त, कषाय और मधुर होता है । (मदनपाल) इनकी त्वक् शीतल, घाही और व्रण, शोथ तथा विसर्पनाशक है । क्षीरिवृक्षका पत्ता शीतल, कषाय, कण्ठ, उदराभ्राननिवारक, विष्टम्भ और कफ तथा रक्तपित्तनाशक है । फिर क्षीरिवृक्ष शीतल, कान्तिकर, रक्त, कषाय, स्तन्यदुग्धवृद्धिकारक, भग्नास्त्रिसंयोगकारी और भेद, विसर्प, शोथ तथा रक्तपित्तनाशक है । (राजनिघण्टु)

२ उदुम्बरवृक्ष, गूलर ।

क्षीरिचूडा (सं० स्त्री०) क्षीरिवृक्ष वटादिका अविकाशित प्रवाल, दूधिया पेड़ोंकी कोपल ।

क्षीरी (सं० पु०) क्षीरं क्षीरतुल्यनिर्यासोऽस्त्वस्य क्षीर-इति । १ क्षीरीवृक्ष, खिरनी । २ कर्कवृक्ष, महार । ३ समुद्गीवृक्ष । ४ मन्दिवृक्ष । ५ दुग्ध पाषाण, खडिया । ६ गोधूम, गेहूँ । ७ वटवृक्ष, बड़, बरगद । ८ पायस, पकाव-

विशेष, कोई मिठाई । नारियलको लच्छा बनाके गोदुग्ध, शर्करा और गव्यघृतके साथ धीमी आंचसे पकाना चाहिये । इसीका नाम क्षीरी वा क्षीरिका है । यह स्निग्ध, शीतल, अतिशय पुष्टिकारक, गुरु, मधुररस, शुक्रवृद्धिकर और रक्तपित्त तथा वायुनाशक होता है ।

(भावप्रकाश, पूर्व खण्ड, प्रथमभाण)

क्षीरी (सं० स्त्री०) क्षीर अस्त्यर्थे अच्-ङीप् । १ सोमलता । २ क्षीरकाकोली । ३ वंशलोचना ।

क्षीरीश (सं० पु०) क्षीरिणां वृक्षाणां ईशः, ई-तत् । क्षीरकच्छुकी, एक छोटा पेड़ । इसका संस्कृत पर्याय—वरपर्ण, सुकच्छद, कुष्ठनाशन, वल्य, मूलक, मूला, खस-कन्द और कच्छुकी है ।

क्षीरेयी (सं० स्त्री०) क्षीर बाहुलकात् ढष्, ततः ङीप्, रद्वा क्षीरेण ईं शोभा याति, या-क-ङीप् । पायस, परमाक्ष, दुधबरी ।

क्षीरोद (सं० पु०) क्षीरमिव स्वादु उदकं यस्य, बहुव्री० । उदकस्य उदादेशः । उदकस्रोतः संज्ञायाम् । पा ७।१।५० वार्तिकः । दुग्धसमुद्र । देव और दैत्यगणने मिलकर इस समुद्रकी मथा और नानाविध रत्नादि लाभ किया था ।

समुद्रमन्थन देखो ।

क्षीरोदतनय (सं० पु०) क्षीरोदस्य तनयः, ई-तत् । चन्द्र । क्षीरोदसुत प्रभृति शब्दोंका भी यही अर्थ है ।

क्षीरोदतनया (सं० स्त्री०) क्षीरोदस्य तनया, ई-तत् । लक्ष्मी । क्षीरोदसुता आदि शब्द भी इसी अर्थमें प्रयुक्त होते हैं ।

क्षीरोदधि (सं० पु०) क्षीरस्य उदधिः, ई-तत् । क्षीरसमुद्र ।

(भाष्यत २।७२।१)

क्षीरोर्मि (सं० पु०) क्षीरस्य जर्मिः, ई-तत् । क्षीरसमुद्रका तरङ्ग । (रघु ४।२)

क्षीरोदन (सं० स्त्री०) क्षीरेण उपसिक्तः ओदनः । अन्नं न (अन्नम १। पा २।१।१४) क्षीरपक्वाक्ष, दूधमें पकाया हुआ भात । (सुश्रुत उत्तर ४० अ०)

क्षीव (सं० त्रि०) क्षीव-अच् । उन्मत्त, मतवाला ।

(रामायण ५।६०।१२)

क्षीवता (सं० स्त्री०) क्षीवस्य भावः, क्षीव-तृक्-टाप् । उन्मत्तता, मतवालापन, पागलपना ।

शु (सं० पु०-स्त्री०) शुद्ध वाङ्मयकात् डु । १ भव । शु-
डु । २ शब्दकारक, आवाज देनेवाला । (चक्र २।६०।२२)

श्रुणोति हिनस्ति जीवान् क्षण-डु । ३ सिंह, शेर ।

शुल्लनिका (सं० स्त्री०) राजिका, राई ।

शुण (सं० पु०) शु-नक् । रोठाकर चतुष्पद, रोठा ।

शुणि (सं० स्त्री०) शु-नि । पृथिवी ।

शुणो (सं० स्त्री०) शु-नि विकल्प छोप् । पृथिवी,
जमीन् ।

शुस (सं० त्रि०) शुद्ध कर्मणि क्त । १ प्रहत, चोट खाये
हुआ । २ अभ्यस्त, महावरा रखनेवाला । (माघ १।२२)

३ चूर्णीकृत, चूर चूर किया हुआ । (मार्कण्डेयपु० ८३।२४)

शुसक (सं० पु०) एक प्रकारका ढोल । यह शवको
शमशान ले जाते समय बजता है ।

शुसमनाः (सं० त्रि०) शुष्मं विहितं मनो यस्य, बहुव्री० ।
व्याकुलितचित्त, किसी कारणसे जिसका दिल घबरा
गया हो ।

शुत् (सं० स्त्री०) शु-क्लिप् तुगागमश्च । १ शूत, छींक ।
२ किसी किस्म का धान । इसका संस्कृत पर्याय—धुलक्ष,
गोजिह्वा, गुन्द्रा, गुल्मा और गवेधूका है ।

शुत् (सं० स्त्री०) शुध् सम्पदादित्वात् भावे क्लिप् ।
शुधा, भूख । (मार्कण्डेयपु० ८।१५)

शुत (सं० पु०-स्त्री०) शु भावे क्त । १ छिन्ना, छींक ।
इसका संस्कृत पर्याय—शुत्, श्रुव, श्रुता, छिन्ना और
हस्ति है । चवण्, देखो । उदान तथा प्राणके योग और
मौलिके कफ स्त्रावसे जो शब्द निकलता, उसे विद्वान्
शुत कहते हैं । (शाङ्खर)

वसन्तराज-शाकुनमें छींकका फलाफल इस प्रकार
बताया है—किसी कार्यके आरम्भ वा गमनकालको यदि
छींक पाये, तो उस कार्य वा यात्रासे विरत होना
उचित है । कितने ही शुभ चिह्न क्यों न देख पड़े, श्रुत
उन सबको नष्ट कर देता है । सकल समय और सकल
कालको यह विघ्नकारक है । इस नियमको न मान जो
व्यक्ति कार्य वा गमन करनेको प्रवृत्त होता, उसके
कार्यमें असफल और गमनमें मरण आता है । आगे या
दाहने स्थानके पास छींक होनेसे धनक्षय होता है ।
किन्तु पीछेकी छींक अच्छी है, उससे धन वृद्धि होती

है । इसी प्रकार वाम कण्ठके निकट छींक होनेसे सुख-
भोग और जय होता है । छींक आनेसे यथाक्रम यात्रामें
वाधा, विघ्न, कलह, समृद्धि, कठिन रोग, रोगक्षय, अर्थ-
लाभ और दोस्तिनाश कई फल मिलते हैं । पूर्वमुखी
होकर या किसी व्यक्तिके बार बार छींकनेसे कोई वाधा
नहीं पड़ती । वृद्ध, शिशु और कफाक्रान्तकी छींक
निर्दोष होती है । परन्तु वृद्ध वा कफाक्रान्तकी छींकसे
भी स्वर्जनोंके अनिष्टकी सूचना मिलती है । भोजनके
प्रथम छींक प्रशस्त नहीं और भोजनके अन्तको कथ-
ञ्चित् प्रशस्त होते भी पोछे उसमें विघ्न पड़ जाता है ।

(वसन्तराजशाकुन ३ प्रकरण)

गरुडपुराणके मतमें अग्निर्कोणको छींक होनेसे
शोक तथा सन्ताप, दक्षिणको हानि, नैऋतको शोक-
सन्ताप, वायुर्कोणको अन्धलाभ, उत्तरको कलह,
पश्चिमको मिष्टान्नप्राप्ति और ईशानकोणको छींक
होनेसे मृत्यु होता है । (गरुडपु० ६० प०)

वर्षाकृत्यके मतानुसार ऊर्ध्वदिक्को कार्यसिद्धि, पूर्व-
दिक् तथा अग्निर्कोणको भय, दक्षिणको अग्निभय,
नैऋतकोणको विवाद, पश्चिमदिक्को अर्थलाभ,
वायुर्कोणको उत्तम वस्त्र, गन्ध और उत्तरको छींक होने-
से सुन्दरी अङ्गनाका लाभ होता है । किन्तु ईशानकोण-
को छींक होनेसे मरना पड़ता है । (वर्षाकृत्य)

छींक आनेसे दूसरे व्यक्तिको “जीव” कहना पड़ता
है । ऐसा न कहनेसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है ।

(तिथितत्त्व)

दाक्षिणात्योंका कहना है कि उपवेशन, शयन,
दान, भोजन, वस्त्रपरिधान, कलह और विवाहमें श्रुत
दोषजनक नहीं होता ।

मुखको ढाँपकर छींकना चाहिये । असंवृत मुखसे
छींकने पर पाप पड़ता है । (विष्णुसौतर्)

श्रुतक (सं० पु०) श्रुताय साधुः, श्रुत-कन् । राजिका,
रत्नसर्पप, राई ।

श्रुतकरो (सं० स्त्री०) सर्पकहालिका, सांपकी केंचुल ।

श्रुता (सं० स्त्री०) छिन्ना, छींक ।

श्रुताभिजनन (सं० पु०) श्रुतं अभिजनयति, श्रुत-अभि-
जन-णिच्-ल्य । कण्यसर्पप, राई ।

चुति (सं० स्त्री०) छिन्ना, छींक।

चुत्करी, चुत्करो देखो।

चुत्चाम (सं० त्रि०) चुधा चामः, इतत्। चुधासे चीण, भूखका मारा। (पद्यतल)

चुत्पिपासा (सं० स्त्री०) चुत् च पिपासा च, इतरेतर-इन्द्र। चुधा और दूध, भूख प्यास।

धुद (सं० स्त्री०) धुध् सम्पदादित्वात् भावे क्तिप्। धुधा, भूक। (विष्णु० १।५।२८)

धुद (सं० पु०) धुद-क। चावलकी कनकी।

धुद्र (सं० त्रि०) धुद्र-रक्। स्थायित्वविशेषकित्वि-चुदि-चपोन्नादि। चण् २।११। १ कृपण, कंजूस। २ अधम, कमीना। (कुमार १।१२) ३ तुच्छ, नाचोज। (गीता २।३) ४ क्रूर, खोटा। ५ अल्प, थोड़ा। (भारत ३।१०।२४) ६ दरिद्र, गरीब। (पु०) ७ कैटय, एक नींव। ८ रक्त पुनर्नवा। ९ तण्डुलावयव, चावलका कन। १० डड्ड, लुकाट। ११ क्षमिशङ्क, घोंघा।

धुद्रक (सं० त्रि०) धुद्र एव स्वार्थ कन्। १ धुद्र, डकौर, छोटा। (पु०) २ कोलपरिमाण, एक तोलेकी तौल। ३ शाकविशेष, कोई सब्जी। ४ सूर्यवंशीय प्रसेनजित्के पुत्र। (भागवत २।१२।१४) युवप्रिय क्षत्रियजातियविशेष। (भारत २।५।१५) धुद्रक लोग जहां रहते उसको धौद्रक कहते हैं। टलेमिने इस जातिका धुद्रकै (Oxydrakoi) नामसे उल्लेख किया है।

धुद्रकण्टकारी (सं० स्त्री०) ऋक्षकण्टकारी, छोटी कटैया।

धुद्रकण्टकी (सं० स्त्री०) धुद्रं कण्टकं यस्याः, बहुव्री० गौरादित्वात् ङीष्। बड़ती, भटकटैया।

धुद्रकण्ठा (सं० स्त्री०) कण्टकारी, कटैया।

धुद्रकण्ठारिका (सं० स्त्री०) अग्निदमनीवृक्ष।

धुद्रकण्टिका (सं० स्त्री०) कण्टकारा, कटैया।

धुद्रकन्द (सं० पु०) शृङ्गाटक, सिंघाड़ा।

धुद्रकमानस (सं० स्त्री०) काशीरका एक सरोवर। सुश्रुत लिखने हैं कि उस तलावके पास गायत्र, वेष्टुभ, पाङ्क्त, जागत और शाङ्कर कई प्रकारका सोम मिलता है। (सुश्रुत चि० २८ अ०)

धुद्रकम्बु (सं० पु०) धुद्रकासी कम्बुचेति, कर्मधा०।

१ धुद्रकारवेल्ली, छोटी करेली। २ धुद्रगङ्ग, छोटा संख।

धुद्रकल्प (सं० पु०) एक सामान्य वैदिकक्रिया।

धुद्रकारलिका (सं० स्त्री०) धुद्रा चासौ कारलिकाचेति, कर्मधा०। धुद्रकारवेल्ली, छोटी करेली।

धुद्रकारवेल्ली (सं० स्त्री०) धुद्रा चासौ कारवेल्ली चेति, कर्मधा०। १ ऋक्ष कारवेज, छोटा करेला। इसका संस्कृत पर्याय—कुड्डुच्ची, श्रीफलिका, प्रतिपत्रफला, सुषवी, कारवी, बहुफला, धुद्रकारलिका और कन्दफला है। करेली कड़वी, गर्म, तोती, रुचिकर, दीपन, रक्तपित्त दाघनाशक और पथ्य होता है। इसको जड़ पशुरोग-नाशक, कोष्ठपरिष्कारक और विषापहारक है।

(राजनिषद्य)

धुद्रकारालिका, धुद्रकारवेल्ली देखो।

धुद्रकुलिय (सं० स्त्री०) वैक्रान्तमणि, एक कीमती पत्थर।

धुद्रकुष्ठ (सं० स्त्री०) धुद्रश्च तत् कुष्ठश्चेति, कर्मधा०।

स्वल्प कुष्ठरोग, हलकासा कोढ़। यह एकादशविध कुष्ठोंके अन्तर्गत एक कोढ़ है। यथा—खूला, रुखा, महाकुष्ठ, एककुष्ठ, चर्मदल, विसर्प, परिसर्प, सिन्ध, विच-चिंका, क्तिम, पामा और रकमा। (भावप्रकाश)

धुद्रगुर (सं० पु०) धुद्रगुरस्यैव आकारोऽस्त्यस्य, धुद्र-गुर-अच्। धुद्रगोगुर, छोटी गोखरू।

धुद्रखदिर (सं० पु०) धुद्र खदिरवृक्ष, छोटे खेरका पेड़।

धुद्रखजूरी (सं० स्त्री०) भूखजूरीका, छोटी खजूर।

धुद्रगुड (सं० पु०) स्वल्पमल गुड, थोड़ा मेला गुड।

धुद्रगोशुरक (सं० पु०) धुद्रकासी गोशुरश्चेति, कर्मधा० ततः स्वार्थ कन्। ऋक्षगोशुर, छोटी गोखरू। इसका संस्कृत पर्याय—त्रिकण्ट, कण्ट, पडङ्ग, बहुकण्टक, गुर, गोक-ण्टक, कण्टफल, पलङ्घा, धुद्रगुर, भटक, खलशृङ्गा-टक, इक्षुगन्ध और स्वादुकण्ट है। धुद्रगोशुरक अति-शय शीतल, बलकारी, मधुर, हृदय और शक्क, पशुरी तथा मेहरोगनाशक होता है। (राजनिषद्य)

धुद्रगोधूम (सं० पु०) सूक्ष्मगोधूम, पतला गीहं।

धुद्रघण्टिका (सं० स्त्री०) धुद्रा घण्टिका, कर्मधा०। अल-ङ्कारविशेष, एक गङ्गा। यह एक प्रकारकी करधनी है, जिसमें छोटे छोटे घुवरू लगे रहते हैं। पर्याय—

किङ्किणी, शुद्धघण्टी, प्रतिसरा, किङ्किनीका, कङ्कणी,
कङ्कणिका, शुद्धिका, घोर घर्घरी है।

शुद्धघण्टी, शुद्धघण्टिका देखो।

शुद्धघोषी (सं० स्त्री०) चिविङ्किनी, चिविङ्किनीशक।

शुद्धचन्दन (सं० स्त्री०) रक्तचन्दन, शालचन्दन। पर्याय—
रक्ताङ्ग, तिलपर्ण, रक्तसार।

शुद्धचम्पक (सं० पु०) नागचम्पक, नागेश्वर चंपा।

शुद्धचिर्मटा, शुद्धचिर्मटा देखो।

शुद्धचिर्मटा (सं० स्त्री०) शुद्धा चासी चिर्मटा चेति,
कर्मधा०। गोपालककंटीलता, एक जंगली ककड़ी।

शुद्धचुष (सं० पु०) स्वनामख्यात कृष्ण चुप, एक छोटी
भाड़ी। यह—मधुर, कटु, उष्ण, कषाय, दीपन, शूल,
गुल्म, अशय तथा विवन्धन होता है।

शुद्धचूड़ (सं० पु०) शुद्धा चूड़ा यस्य, बहुव्री०। सचूड़
शुद्धपत्नी, चोटीदार छोटी चिड़िया। पर्याय—श्वभङ्ग,
गूथलङ्ग, साङ्गिक है।

शुद्धजन्तु (सं० पु०) शुद्धासौ जन्तुचेति, कर्मधा०।
१ शतपदी, कनखजुरा। २ शुद्धप्राणिमात्र, कोड़ा-
मकोड़ा। जिन सकल जन्तुओंको अस्थि नहीं होती अथवा
जो सकल जन्तुःप्रतिशय शुद्ध हैं, उनका नाम शुद्धजन्तु
होता है। किंवा जिस श्रेणीके एक शत जन्तुओंको
प्रशस्तिमें रख कर ले जा सकते, उन्हें शुद्धजन्तु कहते
हैं। कोई कोई नकुल पर्यन्त छोटे जन्तुको शुद्धजन्तु
बतलाते हैं।

शुद्धजम्बू (सं० स्त्री०) शुद्धा चासी जम्बू चेति, कर्मधा०।
जलजम्बू, जंगली जामान। यह—संग्रहिणी, रुक्षा,
कफ, पित्त तथा अस्त्रदाहजित् होता है।

शुद्धजातीफल (सं० स्त्री०) शुद्धश्च तत् जातीफलचेति,
कर्मधा०। काष्ठामलक, कठपौरा।

शुद्धजीर (सं० पु०) शुद्धासौ जीरचेति, कर्मधा०।
सूक्ष्मजीरक, छोटा जीरा।

शुद्धजीवा (सं० स्त्री०) शुद्धा चासी जीवा चेति, कर्मधा०।
जीवन्तोत्पत्ता।

शुद्धज्ञान (सं० द्वि०) १ मन्दबुद्धि। (स्त्री०) २ अल्प-
ज्ञान।

शुद्धचर (सं० द्वि०) शुद्धं चरति शुद्ध-चर-पञ्च पुलक-

सं०। मन्दगामी, धीरे धीरे चलनेवाला। (भावप्रत ४१२।५५)
शुद्धतण्डुल (सं० पु०) विडङ्गा, विडंग।

शुद्धता (सं० स्त्री०) शुद्धस्य भावः, शुद्ध-तत्त्व-टाप्।

शुद्धत्व, शोकापन

शुद्धतुलसी (सं० स्त्री०) अर्जक, शुद्धपत्र तुलसीवृक्ष,
बहुई तुलसी।

शुद्धत्व (सं० स्त्री०) शुद्धत्व। १ अल्पता, शोकापन।

२ कूरता, खोटाई। ३ अधमत्व, कमीनापन। ४ दरि-
द्रता, गरीबी।

शुद्धदंशिका (सं० स्त्री०) दंशी, छोटा मच्छड़।

शुद्धदंशी, शुद्धदंशिका देखो।

शुद्धदर्भ (सं० पु०) शुद्धदर्भ, सफेद कुश।

शुद्धदुरालभा (सं० स्त्री०) स्वल्पदुरालभाशुप, छोटा
लटजोरा। पर्याय—मरुस्था, मरुस्थानवा, विशारदा,
अजभक्ष्या, अजादनी, उद्भक्षिका, कषाया, फणिकृत,
आहिणी, करभप्रिया, करभादनिका है। यह—मधुर,
अम्ल, पारदशोधनकारक; ज्वर, कुष्ठ, श्वास, कास तथा
भ्रान्तिनाशक होता है।

शुद्धदुस्पर्शा (सं० स्त्री०) अग्निदमनीवृक्ष।

शुद्धदृष्टि (सं० स्त्री०) शुद्धा चासी दृष्टिचेति, कर्मधा०।
अल्पदर्शन, ओझी निगाह।

शुद्धद्रु (सं० पु०) कुमरिचवृक्ष, लालमिर्चका पेड़।

शुद्धधात्री (सं० स्त्री०) कर्कटवृक्ष, कांकरोल।

शुद्धधान्य (सं० स्त्री०) कुधान्य अपरनाम लणधान्य, घासका
अनाज। गुण—ईषदुष्ण, कषाय, मधुर, कटुपाक, लघु,
लेखन गुणयुक्त, रुक्ष, क्षेदशोषक, वायुवृद्धिकर, मल
तथा मूत्र रुद्धकारी, पित्त-रक्त-कफनाशक। (भावप्रकाश)

शुद्धधान्यमण्ड (सं० पु०-स्त्री०) कुधान्यकृत मण्ड,
कांगनी, चैना या कोदा-जैसे कुधानका मांड। गुण-
वातहर।

कुधान्याम्ल (सं० स्त्री०) शुद्धधान्यकृत काष्ठीकविशेष,
कुधानकी कांजी। यह वातल, पित्तकारक, प्रतिश्याय
आदिका कोपन, श्लेष्मद तथा गुल्म उठानेवाला होता है

शुद्धनासिक (सं० द्वि०) शुद्धा नासिका यस्य, बहुव्री०।
नतनासिक, नकबेठा।

शुद्धपञ्चक (सं० पु०) स्वल्पपञ्चमूल।

क्षुद्रपति (सं० पु०) कुवेर ।

क्षुद्रपत्र (सं० पु०) १ श्वेतपुनर्नवा । २ शुक्लदर्भ, सफेद कुस ।

क्षुद्रपत्रा (सं० स्त्री०) क्षुद्रं पत्रं यस्याः, बहुव्री० ततः टाप् । १ चाङ्गेरी, चमलोनी । २ लघुमाङ्गी ।

क्षुद्रपत्रिका (सं० स्त्री०) श्वेतपुनर्नवा ।

क्षुद्रपत्री (सं० स्त्री०) क्षुद्रं पत्रं यस्याः, बहुव्री० ततः ङोष् । वचा, वच ।

क्षुद्रपनस (सं० पु०) १ लकुचवृक्ष, लुकाठका पेड़ । २ क्षुद्रपनस फल, छोटा कटहल ।

क्षुद्रपर्ण (सं० पु०) क्षुद्रं पर्णं यस्य, बहुव्री० । १ अर्जक-वृक्ष, बबई तुलसी । (त्रि०) क्षुद्रपत्रयुक्त, छोटी पतियों-वाला ।

क्षुद्रपाटला (सं० स्त्री०) मुष्ककवृक्ष, मोखेका पेड़ ।

क्षुद्रपाषाणभेद (सं० पु०) क्षुद्रपाषाणभेदा देखो ।

क्षुद्रपाषाणभेदा (सं० स्त्री०) ऋक्षपाषाणभेदक्षुप, छोटा पथरचटा । गुण—व्रणक्षत्, अश्वरीघ्न ।

क्षुद्रपिप्पली (सं० स्त्री०) वनपिप्पली, जङ्गली पीपल ।

क्षुद्रपृषती (वै० स्त्री०) सूक्ष्मविचित्र विन्दुयुक्त मृगो ।

(वाजसनेयसंहिता २४.२)

क्षुद्रपोतिका (सं० स्त्री०) क्षुद्रोपोदकी, छोटी पोय ।

क्षुद्रपाण (सं० त्रि०) क्षुद्राः प्राणा यस्य, बहुव्री० । अल्पपाण, बेदम, थोड़ेमें ही मर जानेवाला ।

क्षुद्रफल (सं० पु०) क्षुद्रं फलमस्य, बहुव्री० । जीवन-वृक्ष ।

क्षुद्रफलक (सं० पु०) क्षुद्रं फलं यस्य, बहुव्री० ततः विकल्पे कप् । जीवनवृक्ष ।

क्षुद्रफला (सं० स्त्री०) १ इन्द्रवारुणीसता, ककड़ी । २ गोपालकर्कटिका, जंगली ककड़ी । ३ कण्टकारी, कटेया । ४ अग्निदमनो । ५ भूमिजम्बू, कठ जासुन ।

क्षुद्रफेनी (सं० स्त्री०) देशावलौ-वर्णित एक नदी । यह मेघना नदीसे दो योजन पूर्वकी प्रवाहित है । बाज-कल इसकी छोटीफेनी कहते हैं ।

क्षुद्रबुद्धि (सं० त्रि०) क्षुद्रा बुद्धिर्यस्य, बहुव्री० । अल्प-ज्ञानविशिष्ट, कमसमझ ।

क्षुद्रहृत्ती (सं० स्त्री०) क्षुद्रा चासौ हृत्ती चेति, कर्मधा० छोटी कटेया ।

क्षुद्रभण्टाकी (सं० स्त्री०) हृत्तीक्षुप, भटकटेया ।

क्षुद्रमत्स्य (सं० पु०) क्षुद्रासा मत्स्यश्चेति । खल्ला-मत्स्य, सुरलादि, छोटी मछली । यह मधुर, त्रिदोष-नाशक, लघुपाक, रुचिकारक और बलजनक है ।

(भावप्रकाश)

क्षुद्रमाता (सं० स्त्री०) १ श्वेतकण्टकारी, सफेद कटेया । २ क्षुद्रहृत्ती, छोटी कटेया ।

क्षुद्रमीन (सं० पु०) जनपदविशेष, एक मुल्क । (इहत्-संहिता १४.२४) पुस्तकान्तरमें क्षुद्रमीन पाठ है ।

क्षुद्रमुस्ता (सं० स्त्री०) कशेरुका, कसेरु ।

क्षुद्रमूषिका (सं० स्त्री०) अस्फनिका ।

क्षुद्रमोटरक (सं० पु०) टङ्कद्वय, २ तोला ।

क्षुद्रमोरट (सं० पु०) ऋक्षमोरट, हलकी किदार ।

क्षुद्ररस (सं० पु०) अल्परस, थोड़ा अर्क ।

(भागवत ५।११।१०)

क्षुद्ररसा (सं० स्त्री०) तिक्त गुच्छासता ।

क्षुद्ररोग (सं० पु०) क्षुद्रासा रोगश्चेति, कर्मधा० ।

क्षुद्रासा, छोटी बीमारी । सुश्रुतके मतमें क्षुद्ररोग चवालीस प्रकारका होता है—१ अजगज्जिका, २ अव-प्रस्था, ३ अन्धालजा, ४ विवृता, ५ कच्छपिका, ६ वलमीक, ७ इन्द्रहृत्ती, ८ पनसिका, ९ पाषाणगर्दभ, १० जालगर्दभ, ११ कक्षा, १२ विस्फोटक, १३ अग्नि-रोहिणी, १४ चिप्य, १५ कुनख, १६ अनुशयी, १७ विदारिका, १८ शर्करावृद्ध, १९ पामा, २० विचर्चिका, २१ रकसा, २२ पाददारिका, २३ कदर, २४ अलस, २५ इन्द्रलुप्त, २६ दारुण, २७ अर्धिका, २८ पलित, २९ मसूरिका, ३० योवनपिङ्गका, ३१ पञ्चनीकण्टक, ३२ जतुमणि, ३३ मशक, ३४ चर्मकौल, ३५ तिल-कालक, ३६ न्यच्छ, ३७ व्यङ्ग, ३८ परिवर्तिका, ३९ अवपाटिका, ४० निरुद्धप्रकय, ४१ निरुद्धगुद, ४२ अहि-पूतन, ४३ वृषणकच्छ, ४४ गुदभ्रंश ।

१ अजगज्जिका—रोग बालकोंके शरीरमें हुवा करता है । कफ और वायुसे इसकी उत्पत्ति है । अज-गज्जिका देखनेमें सुन्न-जैसी चिकण यात्रियुक्त होती है । इसका वर्ण चर्मके वर्णसे मिलता है । यह अतिशय यातनादायक नहीं है ।

२ यवप्रस्था—कुद शुद व्रणविशेष हैं। इसका आकृति यव जैसी अति कठिन तथा अत्युक्त और शरीरस्थ मांसमें लिप्त होती है। कफ और वायुसे इसका जन्म है।

३ पन्थालजो—शरीरमें घन तथा सन्निविष्ट होकर उठता है। इसका आकार गोल रहता और इसमें अल्प-परिमाणसे पूय पड़ता है। कफ और वायु इसकी उत्पत्तिका कारण है।

४ विघ्नता—जातीय व्रणका मुख कुछ बड़ा होता और पक्के भूलर-जैसा आकार आता है। इसमें पपरी बहुत पड़ती है। इसका अवयव गोल और उत्पत्तिका कारण पित्त है।

५ कच्छपी—कफ तथा वायुसे उत्पन्न होती और कच्छपकी तरह धीरे धीरे उन्नत हो पांच या छह अत्युक्त बनती है। यह अतिशय कष्टदायक है।

६ बल्लोकरोग—हस्त, पादतल, सन्निस्थान, ग्रीवादेश तथा जत्रु के ऊर्ध्वभागमें बल्लोकरों भांति क्रमशः बढ कर अत्युक्त होता है। इसकी चारों ओर काटे छोटे व्रण उठ आते हैं। उन व्रणोंसे अतिशय यातना, दाह, कण्डू और रस निर्गत होता है। वायु, पित्त और कफ इसकी उत्पत्तिका कारण है।

७ इन्द्रवृद्धा—इसकी आकृति पद्मबीज-जैसी और वायु तथा पित्तसे उत्पत्ति है। इसकी चारों ओर भी छोटी छोटी फुनसियां पड़ जाती हैं।

८ पनसिका—वायु तथा कफसे उठती और आकारमें शासूक-जैसी रहती है। इस प्रकारके फोड़े पीठ और कानकी चारों ओर होते हैं। पनसिका अतिशय यातनादायक है।

९ पाषाणगर्दभ—कफ तथा वायुसे उत्पन्न होता और हनुके सन्निस्थानमें ही उठता है। यह अतिशय कठिन और अल्प वेदनादायक होता है।

१० जालगर्दभ—पित्त और कफसे उत्पन्न होता है। यह व्रण पकने नहीं आता और दाह तथा ज्वरको जाता है। अपेक्षाकृत जालगर्दभका आकार कुछ बड़ा होता है। यह अल्प परिमाणमें ही उपजता है।

११ कक्षा—पित्त बिगड़नेसे वाहू, पाख, स्तन-

देश वा कक्षदेशमें लक्ष्मण वेदनायुक्त एक प्रकारका फोड़ा निकल आता है। इसीका नाम कक्षा है।

१२ विस्फोटक—कफ और वायु कुपित होने पर सर्व शरीर वा शरीरके किसी अवयवमें अग्निदग्ध-जैसा निकलनेवाला स्फोटक विस्फोटक कहलाता है। इससे ज्वर आया करता है।

१३ अग्निरोहिणी—मांसभेदक अग्निकी भांति अग्निदीहकर जो फोड़ा कक्षाप्रदेशमें उठ आता, वह अग्निरोहिणी कहा जाता है। इसकी उत्पत्ति सन्निपातसे है। इससे अतिशय ज्वर आता और सप्ताह वा १२ दिनके मध्य रोगी मर जाता है। अग्निरोहिणी असाध्य है।

१४ चिप्य—चलती बोलती बिसहरी कहलाता है। वायु तथा पित्त बिगड़नेसे नखके मांसमें यह रोग उत्पन्न होता है। चिप्य पक जाता और वेदना तथा दाह लगता है। इसको क्षतरोग वा उपनख भी कहते हैं।

१५ कुनख—किसी प्रकार आघात लगने पर लक्ष्मण, कक्ष और खर पड़नेवाला नख कुनख कहलाता है। इसका अपर नाम कुलीन है।

१६ अनुशयी—जिस व्रणका अभ्यन्तरभाग गभीर और बाहरी भाग अल्पपरिमाण विस्तृत आता, वह अनुशयी कहलाता है। इसका वर्ण चर्मवर्ण सदृश होता है। अनुशयी उपरिभागमें तो समभाव रहता, किन्तु भीतर ही भीतर पक कर सूखने लगता है।

१७ विदारिका—कक्षादेशमें बगलके जोड़ पर लाल बिलारीकन्द-जैसा गोल गोल उठनेवाला गांठ विदारिका कहलाती है। यह वायु, पित्त और कफसे उत्पन्न होती है।

१८ शकरावुद—श्लेष्मा, मेद और वायु मांस-शिरा वा स्नायुमें जाने पर एक अन्धि उठता है। गांठ फूट जाने पर उससे मधु, घृत वा वसा-जैसा रस निकलता है। इससे वायु बढ़ कर मांस सुखाता और अत्युक्त शर्करा उत्पादन करता है। शिरासे अधिक परिमाणमें नाना वर्ण दुर्गन्ध तथा क्लेदयुक्त रक्तस्राव होता है। इसीका नाम शकरावुद है।

१८ पामा, २० विचर्चिका और २१ रक्तसा कुष्ठके मध्य परिगणित है। कुछ देखो।

२२ पाददारिका—अतिशय भ्रमणशील व्यक्तिके दोनों पद अति रुक्ष होने पर वायुके प्रकोपसे पार्श्वोंके तलवे फट जाते हैं। इसीका नाम पाददारिका (बिवांडे) है। इसमें बहुत ही दर्द उठा करता है।

२३ कदर, २४ अलस और २५ इन्द्रलुप्त है।

इनके लक्षण कदर, अलस और इन्द्रलुप्त शब्दमें देखो।

२६ दारुण—कफ और वायुके प्रकोपसे केशके स्थानमें घ्रण उत्पन्न होता है। यह फोड़ा बहुत रूखा लगता है। इसीका नाम दारुण है।

२७ अरुंधिका—रक्त, कफ और कृमि कुपित होने पर मनुष्यके मस्तक पर बहुत कृद तथा बहुत सुखयुक्त जो फोड़े उठते, उन्हें अरुंधिका कहते हैं।

२८ पलित—पित्त और शरीरकी उष्णता, क्रोध, शोक तथा परिश्रम द्वारा शिरस्थ हो कर बाल पका डालती है। इसीका नाम पलितरोग (गंज) है।

२९ मसूरिका—दाहज्वर तथा यातनादायक, ईषत् पीतयुक्त और ताम्रवर्ण जो सकल घ्रण शरीर वा मुखमें उठते, उनकी मसूरिका (मुहांसा) कहते हैं।

३० यौवनपिडका—युवकोंके मुखमण्डलमें कीलदार जो फुनसियां निकल आतीं, यौवनपिडका कहलाती हैं। वायु, कफ और रक्तसे इसकी उत्पत्ति है। यौवनपिडका मुखशोभाको हानि पहुंचाती है।

३१ पद्मिनीकण्टक—पद्मके कण्टक जैसा गोलाकार होता है। इसका मण्डल पाण्डुवर्ण लगता है। कफ और वायुसे पद्मिनीकण्टक उठा करता है।

३२ जतुमणि—ईषत् रक्तवर्ण, गोलाकार तथा कोमल रहता है। इसमें किसी प्रकारकी यातना नहीं होती।

३३ मशक—मनुष्यके शरीरमें उड़द जैसा काला, शरीरसे ईषत् उन्नत, वेदनाहीन और चिरस्थायी जो घ्रण देख पड़ता वही मशक ठहरता है।

३४ चर्मकील—चर्मकील देखो।

३५ तिलकालक—शरीरके साथ समतल पर स्थित, वेदनाहीन और कृष्णवर्ण जो तिलचिह्न मनुष्यके शरीरमें देखा जाता, वही तिलकालक कहलाता है। वायु,

पित्त और कफके उद्रेकसे इसकी उत्पत्ति है।

३६ न्यच्छ—छोटा या बड़ा, श्यामवर्ण वा शुक्लवर्ण, गोलाकार, वेदनाहीन और शरीरके साथ समकाल-जात जो चिह्न मनुष्यके शरीरमें देख पड़ता, उसीका नाम न्यच्छ है।

३७ व्यङ्ग—पित्तसे युक्त, वायु, क्रोध तथा परिश्रमसे कुपित हो कर मुखमण्डलमें गोलाकृति चिह्न उत्पादन करता है। इसीका नाम व्यङ्ग है। व्यङ्गका अवयव क्षुद्र और सुख कृष्णवर्ण होती है।

३८ परिवर्तिका—सकल शरीरसञ्चारी वायु मर्दन, पीड़न वा अत्यन्त अभिघातप्रयुक्त पुं'चिह्नका चर्म आश्रय करने पर चर्म सिकुड़ते और मणिके नीचे तथा कोषके ऊपर ग्रन्थि जैसा बढ़ता जाता है। इसीको परिवर्तिका कहते हैं। इसमें ज्वाला और वेदना उठती है। कभी कभी परिवर्तिका एक तक जाती है। यह दो प्रकारकी है—वायुजन्य और आगन्तुका। श्लेष्माजात परिवर्तिका कण्डूयुक्त और कठिन होती है।

३९ अवपाटिका—अप्रशस्तयोनि रमणी वा वालिका स्त्रोमें उपगत होने, हस्तादिके अभिघातसे बलपूर्वक पुं'चिह्नका चर्म उठ जाने या मर्दन, पीड़न और शुक्ल वेगके आघात हेतु चमड़ा छिलनेसे अवपाटिका कहलाती है।

४० निरुद्धप्रकाश—जब पुं'चिह्नका चर्म वायुयुक्त हो कर मणिस्थानको आश्रय करता, और मणिस्थान आच्छादित हो मूलस्त्रोत रुद्ध करता तब मणिस्थान विदीर्ण न होते मन्दधारामें प्रस्नाव निर्गत होता है। इसीका नाम निरुद्धप्रकाश है।

४१ निरुद्धगुद—मलवेग धारण करनेसे वायु प्रतिहत होकर गुच्छदेश आश्रय करता और मलनिर्गमका प्रधान स्त्रोत रुकता है। इसमें बड़ कष्टसे पुरीष उत्तरता है। इसीका नाम निरुद्धगुद है। निरुद्धगुद अतिशय कष्टकर होता है।

४२ अहिपूतन—अहिपूतन देखो।

४३ वृषणकण्डू—मुष्क धीत वा परिष्कृत न होनेसे उसमें मैल जमता है। पीछे घर्म आनेसे जब क्लेदयुक्त होता, कण्डू उठने लगती है। उसको खुजलानेसे फोड़ा

पड़ जाता और रक्त निकल आता है। इसीका नाम शुष्णकच्छ है। यह स्नेहा और वायुके प्रकोपसे उठती है।

४४ गुदभ्रंश—रक्त और दुर्बल व्यक्तिके गुदद्वारका मांस कांखाकूँखी और अतीसारसे बाहर निकल आता है। इसीका नाम गुदभ्रंश है। (सुश्रुत निदानस्थान १२ अ०)

शुद्रल (सं० त्रि०) शुद्राः शुद्ररोगाः सन्ध्यस्य, शुद्रलच । सिद्धादिभाष । पा ५।२८।०। शुद्ररोगयुक्त, जिसके छोटीमोटी बीमारी रहें।

शुद्रव (सं० पु०) इक्ष्वाकुवंशीय प्रसेनजित्के पुत्र।

शुद्रवंश (सं० स्त्री०) वराहक्रान्ता।

शुद्रशष्पक (सं० स्त्री०) वैक्रान्तमणि।

शुद्रवर्णा (सं० स्त्री०) वरटा।

शुद्रवर्षाभू (सं० स्त्री०) रक्तपुनर्नवा।

शुद्रवल्ली (सं० स्त्री०) मूलपोती, कच्ची मूली।

शुद्रवारुणी (सं० स्त्री०) तुषधान्यकृत वारुणीमद्य, एक शराब। कङ्गु आदि धान्यकी यज्ञसे कूटके और उसकी भूसी निकाल कर आक्रीट तक्र वा किसो अन्नमें डाल देना चाहिये। फिर उसका अर्क निकालनेसे शुद्र-वारुणी बनती है। यह बल और लुधा आदिभी बढ़ाती है। (अकंपकाश चिकित्सा)

शुद्रवार्ताकिनी (सं० स्त्री०) श्वेतकण्टकारी, सफेद कटेया।

शुद्रवार्ताकी (सं० स्त्री०) लहती, कटेया।

शुद्रवास्तूकी (सं० स्त्री०) शुद्र चिक्लीशक।

शुद्रवीन—एक देश। (मार्कण्डेयपु० ५।८४२)

शुद्रशङ्ख (सं० पु०) शङ्खविशेष, एक छोटा शंख। इसका पर्याय—शङ्खनख, शङ्खनक, लुलक, और शम्बूक है। यह कटु, तिक्त, दीपन और शूलनाशक होता है।

(राजनिषण्ड)

शुद्रशणपुष्पिका (सं० स्त्री०) ऋक्ष शणपुष्पविशेष, एक छोटी सनई। यह तिक्त, वम्य और रसनिग्रामक है।

(राजनिषण्ड)

शुद्रशर्करा (सं० स्त्री०) यावनाली शर्करा, जुपारकी चीनी। यह गोम्य, किञ्चित् उष्ण, अति तिक्त, अति पिच्छल, स्निग्ध, रुच्य, सर, दाहज और वात, पित्त तथा रक्तदोषकर होती है। (राजनिषण्ड)

शुद्रशर्करिका, शुद्रशर्करा देखो।

शुद्रशाटूँल (सं० पु०) चित्तकव्यान्न, चीता।

शुद्रशीर्ष (सं० पु०) शुद्र शीर्षे यस्य, बहुव्री०। १ मयूर-शिखा नामक वृक्ष। (ति०) २ शुद्रशीर्षयुक्त।

शुद्रशक्ति (सं० स्त्री०) ऋक्षशक्ति, छोटी सीप।

शुद्रशक्तिका, शुद्रशक्ति देखो।

शुद्रशृगाल (सं० पु०) लोमड़ी।

शुद्रश्यामा (सं० स्त्री०) कृष्णकटभातृक्ष। कटभी देखो।

शुद्रश्लेष्मान्तक (सं० पु०) ऋक्षश्लेष्मान्तकवृक्ष, छोटा लसोडा।

शुद्रश्वास (सं० पु०) शुद्रश्वासो श्वासश्चेति, कर्मधा०। श्वासरोगविशेष, दमेकी एक बीमारी। यह पञ्चविध श्वासके अन्तर्गत अन्यतम श्वासरोग है। सुश्रुतमें लिखते हैं—श्लेष्माजनक द्रव्य आहार, अधिक आहार, परिश्रमके प्रभाव और दिवानिद्रा सभी कारणोंमें मधुरतर अन्नरस उत्तम रूपसे परिपाक न होकर सर्वशरीरमें सञ्चारित होता है। इससे शरीरमें अतिशय स्नेह उत्पन्न होने लगता है। उसी स्नेह पदार्थके आधिक्यमें मेद बढ़ता और फिर शरीर अतिशय स्थूल पड़ जाता है। शरीर स्थूल पड़नेसे शुद्रश्वास उठता है। (सुश्रुत सूत्र १५ अ०)

ब्राह्मणपष्टिका, गुडत्वक्, त्रिकटु, हरिद्रा, कटुकी, पिप्पली, मरिच, वचा, गोमयूरस और तलकीटका वोज सबकी एकयोगमें मोदकपाक बना कर सेवन करनेसे श्वासकी शान्ति होता है। (सुश्रुत, उत्तर ५१ अ०) श्वास देखो

शुद्रश्वेता (सं० स्त्री०) १ रक्तापामार्ग, लाल लटजोरा।

२ शुद्रकिण्वी, छोटी सफेद अपराजिता।

शुद्रसङ्घा (सं० स्त्री०) शुद्रा चासौ सङ्घा चेति, कर्मधा०।

१ मुहपणी, मोठ। इसका संस्कृत पर्याय—मुहपणी, कामुद्गा, सिंहपणिका, वन्या, मार्जारगन्धा और सूर्प-पणी है। २ इन्द्रवारुणी, ककड़ी, कचलिया।

शुद्रसुवर्ण (सं० स्त्री०) पित्तल, पीतल।

शुद्रस्फोटा (सं० स्त्री०) शुद्रस्फोटक, फुन्सो, फुड़िया।

शुद्रहा (सं० पु०) शुद्र हन्ति, शुद्र-हन्-क्षिप्। शिव, महादेव।

शुद्रहिङ्गुलिका (सं० स्त्री०) कण्टकारी। कण्टकारी देखो।

शुद्रहिङ्गुली, शुद्रहिङ्गुलिका देखो।

शुद्रा (सं० स्त्री०) शुद्ध रक्त ततः टाप् । चक्षुः देखो । १ वेष्ट्या, रण्डी । (कादम्बरी) २ कण्टकारी, कटैया । ३ मधु-मक्षिकाविशेष, शहदकी कोई मक्खी । ४ मक्षिका, मक्खी । ५ चाङ्गेरी, अमलीनी । ६ हिंन्ता । ७ गवेषुका, कोड़ियाला । ८ वादरता, लड़ाका औरत । ९ मेड़की । १० वनपिप्पली, जंगली पीपल । ११ शुद्र उपोदकी, छोटी पोय । १२ यावनालीशर्करा, ज्वारकी चीनी । १३ हिक्का, हिचकी । १४ अश्वत्थिका, पाकर । १५ शुशुभ्रुप । १६ सुरभा ।

शुद्राग्निमन्य (सं० पु०) शुद्रासाँ अग्निमन्यचेति, कर्मधा० । ऋग्विण्कारिका । इसका संस्कृत पर्याय—तपन, विजया, गणिकारिका, अरणि, लघुमन्य, तेजोवृक्ष और तनुत्वचा है । यह अग्निमन्यके समान गुणविशिष्ट होता है । (राजनिघण्टु) अप्रिमन्य देखो ।

शुद्राञ्जन (सं० स्त्री०) नेत्ररोगका एक अञ्जन, आँखकी बीमारीका कोई सुर्मा ।

शुद्राण्डमत्स्यमहात (सं० पु०) शुद्राणां अण्डमत्स्यानां अण्डादभिनवजातानां मत्स्यानामित्यर्थः समूहः, इ-तत् । पोताधान ।

शुद्रादिकषाय (सं० पु०) कण्टकार्यादि द्रव्यचतुष्टयकृत कषाय, एक काढ़ा । प्रस्तुत-प्रणाली यों है—शुद्रा (कण्टकारी), अमृता (गुर्च), शुण्ठी और कुष्ठ सकल द्रव्य समभागमें लेकर कषाय बनाना चाहिये । इसीका नाम शुद्रादिकषाय है । यह खास, कास, अरुचि और पाण्डूवेदना, उपसर्ग युक्त वात, श्लेष्माज्वर तथा त्रिदोष ज्वरमें प्रयोज्य है । (चक्रदान)

शुद्राग्न (सं० स्त्री०) शुद्रश्च तत् अग्नश्चेति, कर्मधा० । ऋक्षान्वरूप कोठाङ्ग, कलेजेकी एक छोटी रग ।

नाको देखो ।

शुद्रापामार्ग (सं० पु०) रक्तापामार्ग, लाल खटजोरा ।

रक्तापामार्ग देखो ।

शुद्रफल (सं० स्त्री०) सुहृतीफल, भटकटैयैकी गोली ।

शुद्रामलक (सं० स्त्री०) काष्ठधात्री, जंगली पाँवला ।

शुद्रामलकसंज्ञ (सं० पु०) शुद्रामलकस्य संज्ञेव संज्ञा यस्य, बहुव्री० । ककटवृक्ष, कांकारोल ।

शुद्राग्नपण्य (सं० पु०) उडुकफलवृक्ष, लुकाटका पेड़ ।

शुद्राग्न (सं० पु०) कोषाग्न, एक पेड़ ।

शुद्राग्न (सं० पु०) कोषाग्न, एक पेड़ ।

शुद्राग्नपनस (सं० पु०) नित्यकर्मधा० । लकुचवृक्ष, लुकाटका पेड़ ।

शुद्राग्निका (सं० स्त्री०) शुद्रा चासी अग्निका अग्निरसो चेति, कर्मधा० । १ चाङ्गेरी, अमलीनी । यह अग्न, उष्ण, अग्निवर्धक, रुचिकर और शहणी, अर्श तथा कफघ्न होती है । इसका संस्कृत पर्याय—चाङ्गेरी, लुकाग्निका, लुक्किका, कोषाग्निका, चतुःपत्रा, लोणा, वोढा, अग्नपत्रिका, अश्वठा, अग्नरतो, अग्निका, दन्तशठा, शाखाग्निका और अग्नपत्री है । (राजनिघण्टु) २ शशाणुली, कचेलिया ।

शुद्राग्निका, शुद्राग्निका देखो ।

शुद्रावली (सं० स्त्री०) शुद्रावणिका, घुंघरुदार कर्धनी ।

शुद्राशय (सं० चि०) शुद्रः आशयो यस्या, बहुव्री० । नीचाशय, कमीना, समान्य विषयमें जिसको लाभ लगे, जो अतिशुद्र विषयको माया छोड़ न सकता हो ।

शुद्राशयता (सं० स्त्री०) शुद्राशयस्य भावः, शुद्राशय-तल्-टाप् । नीचस्वभाव, शुद्रप्रकृति, कमीनापन, ओछापना ।

शुद्रिका (सं० स्त्री०) शुद्रा संज्ञायां कन्-टाप् आकारस्य इकारः । एक प्रकारका हिक्कारोग, हिचकीको कोई बीमारी । यह जठ्रमूलसे उठती है । (माधव निदान) हिक्का देखो । २ दंश, मच्छड़, डाँस ।

शुद्रिय (सं० त्रि०) शुद्र चातुरर्थिक छ । उत्तरादिभाष्यः । पा ४।२।२० । शुद्रनिष्ठं त, शुद्रसन्निहित (देशादि) ।

शुद्रेङ्गदी (सं० स्त्री०) यवासलुप, जवासा ।

शुद्रेर्वाह (सं० पु०) शुद्रासाँ इर्वाहचेति, कर्मधा० । गोपालककटो, जंगली ककड़ी ।

शुद्रेला (सं० स्त्री०) शुद्रा चासी एला चेति, कर्मधा० । सूखैला, छोटी इलाची ।

शुद्रोदुम्बरिका (सं० स्त्री०) शुद्रा चासी उदुम्बरिका चेति, कर्मधा० । काकोदुम्बरिका, कठगूलर ।

शुद्रोपोदकनाम्नो (सं० स्त्री०) शुद्रोपोदकी, छोटी पोय ।

शुद्रोपोदकी (सं० स्त्री०) शुद्रा चासी उपोदकी चेति,

कर्मधा० । शुद्धपत्रोपोदकी, छोटी पत्तीकी पोय, जंगली पोय । उपोदकी देखो ।

शुद्धोलूक (सं० पु०) शुद्धपेचक, छोटा सझ ।

शुद्धबोधन (सं० पु०) चक्कवृक्ष, राईका पेड़ ।

शुद्ध (सं० स्त्री०) शुद्ध सम्पदादित्वात् भावे क्तिप् ।
१ भोजन करनेकी इच्छा, भूक ! २ अन्न, खानेकी चीज ।

शुद्धा (सं० स्त्री०) शुद्ध भावे क्तिप् ततः विकल्पो टाप् ।
बुभुक्षा, भूक ।

जिस प्रकार पृथिवीस्थित जल सूर्य द्वारा सुखाया जाता, उसी प्रकार शरीरका धातु भी जठरानलके तेजसे सुखने लगता है । धातु शुष्क होनेसे भूक लगती है । अधिक परिमाणमें भूक लगनेसे अवनयन, घ्राण-शक्ति और दर्शनशक्ति तब नहीं रहती । शरीरमें दाह और कम्प उपस्थित होता है । किसी विषयमें बुद्धि नहीं चलती । दिन दिन शरीर सूखते जाता है । उपयुक्त समय आहार करके शुद्धा न हटानेसे वाक्शक्ति, अवनयन-शक्ति, दर्शनशक्ति, घ्राणशक्ति और गमनशक्तिकी हानि होती है । (अग्निप्रमाण, प्रेतोपाख्यान)

शुद्धाकुशल (सं० पु०) शुद्धायां कुशलः, ७-तत् । विश्वान्तरवृक्ष, किसी किस्मका बेन ।

शुद्धातुर (सं० त्रि०) शुद्धया प्रातुरः कातरः ३-तत् । शुद्धातं, भूख ।

शुद्धाभिजनन (सं० पु०) शुद्धामभिजनयति, शुद्धा अभिजन-णिच्-ल्यु । १ राजिका, राई । २ राजमाषक, लोबिया ।

शुद्धामार (सं० पु०) शुद्धां मारयति नाशयति, शुद्धा-मृ-णिच्-प्रण् । शुद्धानाशक, लटजीरा । (पथर्व ४।१०।६)

शुद्धातं (सं० त्रि०) शुद्धया ऋतः, ३-तत् । ऋतकारस्य वृद्धिः । शुद्धातुर, भूकसे चबराया हुआ ।

शुद्धालु (सं० त्रि०) शुद्ध बाहुलकात् आलुच् । शुद्धायुक्त, सुक्वड ।

शुद्धावती (सं० स्त्री०) शुद्धा विद्यतेऽस्याम्, शुद्धा-मतुप् मकारस्य वकारः । १ शुद्धाजनक औषधविशेष, भूक बढ़ानेवाली कोई दवा । इसकी प्रस्तुत-प्रणाली यों है—रसायक, गन्धक, अन्न, त्रिकटु, त्रिफला, बच, अजवा-

यन, शतपुष्पा, चन्द, दोनों प्रकारका जीरा चार चार तोला, घण्टाकर्ण, पुनर्नवा, माणक, पिप्पलीमूल, कुटज, केशर, पद्मगुजस, टमोत्पल, तेवड़ी, दन्ती, गोहृदर, रक्तचन्दन, धृङ्गराज, अपामार्ग, कूलक और मण्डूक दो दो तोला कूट पीसके घट्टकरके रसमें गोली बना लेना चाहिये । सवेरेको सठके बदराण्डिके साथ शुद्धावती वटिका सेवन करने पीछे अन्न और जलपान करते हैं । यह सब प्रकारका अजीर्ण नाश करनेवाली, अग्नि बढ़ानेवाली, और अम्लपित्त तथा शूलको हटानेवाली है । इसके सेवनकाल कोई मिष्ट द्रव्य न खाना चाहिये । दूध और शकर नितान्त अहितकर है ।

२ चिकित्सारत्ननिधिके मतानुसार कोई शुद्धाजनक औषध । इसकी निम्नलिखित प्रणालीसे प्रस्तुत करते हैं—सोहागा ७ भाग, सज्जीखार ५ भाग, यवचार ४ भाग, पटु ३ भाग, मरीच २ भाग, चित्रक २ भाग, सीठ २ भाग, और लोंग २ भाग सब द्रव्योंको अन्नरसकी भावना देकर गोली बना लेना चाहिये । इसीका नाम शुद्धावती वटिका है । यह आमशूल, अम्लपित्त, पित्त-शूल, अग्नि और ग्रहणीकी नाश करती है । शुद्धावतीके सेवनेसे भूख बहुत लगती है । (चिकित्सारत्ननिधि)

शुद्धावन्त (हिं०) शुद्धावान् देखो ।

शुद्धावान् (सं० त्रि०) शुद्धा विद्यतेऽस्य, शुद्धा-मतुप् मकारस्य वकारः । शुद्धायुक्त, भूखा ।

शुद्धासागररस (सं० पु०) औषधविशेष, एक दवा । यह निम्नलिखित प्रणालीसे प्रस्तुत की जाती है—त्रिकटु, त्रिफला, पञ्चलवण, सज्जीखार, यवचार, सोहागा, पारा और गन्धक समस्त द्रव्य एक एक भाग और दो भाग विष डाल कर पञ्चलवणके साथ वटिका बना लेना चाहिये । गोलियां एक एक रत्तीकी बनती हैं । इसका नाम शुद्धासागर रस है । इसके खानेसे भूख बढ़ती है । (भैषज्यरत्नावली)

शुद्धित (सं० त्रि०) शुद्ध कर्तरि क्त यद्वा शुद्धा जाताऽस्य, शुद्धा तारकादित्वात् इतच् । जातशुद्ध, भूखा, जिसे भूख लगो हो ।

शुद्धन (सं० पु०) शुद्ध-उनन् क्तिच् । अग्निपिप्पिलिपः क्ति । उण् १.५५। स्नेहज्जातिविशेष, एक कोम ।

क्षुक्षिप्रति (सं० स्त्री०) क्षुधः क्षुधायाः निवृत्तिः, इ-तत् ।

क्षुधाकी निवृत्ति, चासूदगो, ककाहट ।

क्षुप (सं० पु०) क्षुप-कः । १ गुल्म, छोटी डालियोंका पौदा, भाड़ी । (भारत १।१७।२८) २ क्षुद्रवृक्ष, छोटा मोटा पेड़ ।

३ सत्यभामा-गर्भजात कण्णके पुत्र । (हरिवंश १६३ च०)

४ सूर्यवंशीय प्रसन्धिके पुत्र, इक्ष्वाकुके पिता । (भारत १४।१२४) ५ हारकाके पश्चिमस्थ एक पर्वत । (हरिवंश १५७ च०)

क्षुपक (सं० पु०) क्षुप स्वार्थे कन् । क्षुद्रक्षुप, छोटी भाड़ी ।

क्षुपडोडसृष्टि (सं० पु०) विषसृष्टि, एक नौम ।

विषसृष्टि देखो ।

क्षुपा (सं० स्त्री०) क्षुप्-टाप् । क्षुप, भाड़ी ।

क्षुपालु (सं० पु०) क्षुप बाहुलकात् पालुच् । पानिया-लुक ।

क्षुब्ध (सं० त्रि०) क्षुभ-क्त निपातने साधुः । क्षुब्धस्तान्ध्याल-लप्तेति । पा ७।१।८ १ विमर्श, घबराया हुआ, अधीर । (पु०) २ मन्यनदण्ड, मथानी । ३ सोलह प्रकारके रतिवर्धोर्मि एकादश रतिवर्ध ।

“पाश्चात्परि पथी कला योनौ लिङ्गे न ताडयेत् ।

बाहुभ्यां धारणं गाढं बंधो वे क्षुब्धसंज्ञकः ॥” (रतिमंजरी)

क्षुभ (सं० त्रि०) क्षुभ-क । १ प्रवर्तक, लगानेवाला । (भारत १।१।८) २ सोमकारक, सञ्चालक, चलानेवाला ।

क्षुभा (सं० स्त्री०) क्षुभ-टाप् । सूर्यकी नियन्त्राणक-कर्त्री एक पारिषद देवता । (भारत १।१।८)

क्षुभादि (सं० पु०) क्षुभ आदिर्यस्य, बहुव्री० । पाणिनिजा एक गण । क्षुभ, नृनमन, नन्दिन, नन्दननगर, हरिनन्दो, हरिनन्दन, गिरिनगर, यङ्गन्त नृतधातु, नर्तन, गहन, निवेश, निवास, अग्नि और अन्न कर्ष शब्द उत्तर पद होनेसे क्षुभादिगण होता है । किसी किसीके मतमें क्षुभना, ढप्पु, नृनमन, नरनगर, नन्दन, यङ्गन्त नृ-धातु, गिरिनन्दो, गृहगमन, निवेश, निवास, अग्नि, अन्न, आचार्य, भोगीन, चतुर्हायन और वन शब्द परकी रहनेसे हरिका, समोर, कुवेर, हरि तथा कुमार इत्यादि की क्षुभादिगण कहते हैं । क्षुभादिगणोय नकार मूर्धन्य नहीं होता ।

क्षुभा (सं० स्त्री०) क्षु-मक्-टाप् । १ अतसीक्षुप, अलसी-

का पौदा । २ शण, सनई । ३ नीलिनी, नील । ४ अमसी-पुष्पवृक्ष, एक फूलदार पेड़ । (त्रि०) क्ष्मायति शत्रून् कम्पयति, क्ष्माय-मन् पृथोदरादिवत् साधुः । ५ शत्रुओं-की कपानेवाला । (राजसूयसंहिता १०।८)

क्षुमान् (वे० त्रि०) क्षु प्रस्थार्थे मत्तुप् । १ अन्नयुक्त । २ स्तुत्य, स्तुति करने योग्य । (ऋक् ८।७०।१)

क्षुर (सं० पु०) क्षुर-क । १ नापितास्त्रविशेष, नाईका कोई औजार, कुरा । (मनु १।२२२) २ शफ, सुम, खुर । ३ कोकिलाक्षवृक्ष, तालमखानेका पेड़ । ४ गोक्षुर, गोखरु । ५ महापिण्डीतरु । ६ शर, रमसर । ७ वाण-विशेष, किसी किस्मका तीर । (रामायण ६।२९) ८ क्षुद्र-गोक्षुर, छोटी गोखरु ।

क्षुरक (सं० पु०) क्षुर क्त् । १ तिलकवृक्ष । २ कोकि-लाक्षवृक्ष, तालमखानेका पौदा । श्वेतकोकिलाक्ष, सफेद तालमखाना । ४ क्षुरकवृक्ष, लुकाटका पेड़ । ५ गोक्षुर, गोखरु ।

क्षुरकर्म (सं० स्त्री०) क्षुरेणोचितं क्षुरसाध्यं वा कर्म, मध्यपदलो० । क्षौर, हजामत, संवार । क्षौर देखो ।

क्षुरकवीज (सं० स्त्री०) कोकिलाक्षवीज, तालमखाना ।

क्षुरक्त स (सं० त्रि०) क्षुर द्वारा कमाया हुआ, जो क्षुरसे सूँडा गया हो ।

क्षुरक्रिया (सं० स्त्री०) क्षुरेण क्रिया, इ-तत् क्षुरस्य क्रिया वा, इ-तत् । क्षुरकर्म, क्षौर, हजामत, संवार ।

क्षुरधान (सं० स्त्री०) क्षुरो धीयतेऽत, धा आधारे ल्युट् । नापितका अस्त्राधार, किसबल, खुरहरी ।

(शतपथब्राह्मण १४।४।२।१६)

क्षुरधार (सं० त्रि०) क्षुरस्य धारः तीक्ष्णता इव धारा यस्य, बहुव्री० । १ क्षुरकी भांति तीक्ष्णताविशिष्ट, उत्तरे—जैसा तेज । (पु०) २ नरकविशेष, कोई दोजख । ३ अस्त्र-विशेष, एक हथियार । (भारत ४।६।२८)

क्षुरधारा (सं० स्त्री०) क्षुरस्य धारा, इ-तत् । क्षुरकी धार, उत्तरेकी बाढ़ । (भारत १।१।२०।२२)

क्षुरपत्र (सं० पु०) क्षुरस्य पत्रमिव पत्रं यस्य, बहुव्री० । १ खलशर, रमसर । २ क्षुरधार वाण, उत्तरे जैसा पेना तीर । (त्रि०) ३ क्षुर सहस्र पत्रविशिष्ट, उत्तरे जैसी पत्तियोंवाला ।

कुरपत्रिका (सं० स्त्री०) कुर इव पत्रमस्याः, बहुव्री०
ततः कर्-टाप् आकारस्य इकारः । पालङ्कशाक,
पलांकी ।

कुरपवि (वै० त्रि०) कुरवत् पविर्धाराऽस्य, बहुव्री० ।
जिसका अपभाग कुर-जैसा तोख हो ।

(शतपथब्राह्मण ३।६।२।८)

कुरप्र (सं० पु०) कुर इव पृणति द्विनस्ति, पृ कः कित्वा-
न गुणः । १ वाणविशेष, कुरे-जैसा पैना तोर । (भागवत
४।५।१।४६) २ घास छीलनेका एक षोजार, खुरपी ।
किसी किसी पुस्तकमें 'खुरप्र' पाठ दृष्ट होता है ।

कुरप्रग (सं० स्त्री०) क्षुरप्रं गच्छति, कुरप्र-गम-ङ् । कुरप्र-
सदृश अस्त्रविशेष, खुरपा-जैसा एक षोजार ।

कुरप्रप (सं० स्त्री०) १ वाणविशेष, किसी किसीका
तोर । २ घास छीलनेका हथियार, खुरपा ।

कुरभट्ट—तैत्तिरीय-संहिताके एक प्राचीन भाष्यकार ।
(माधवीय-भातुवर्णि)

क्षुरभाण्ड (सं० स्त्री०) क्षुरस्य भाण्डम्, इ-तत् । क्षुरधान,
क्षुरहरी । (पद्यतन्त्र)

क्षुरमर्दी (सं० पु०) क्षुरं मृज्जति घर्षयति, मृद-णिनि ।
नापित, नाई ।

क्षुरमुण्डी (सं० पु०) क्षुरेण मुण्डयति, मुण्ड-णिनि ।
नापित, नाई ।

क्षुरवीज (सं० स्त्री०) कोकिलाक्षवीज, तालमखाना ।
क्षुराङ्ग (सं० पु०) कुर इव अङ्गमस्य, बहुव्री० । गोकुरक,
गोखुरु ।

क्षुरार्पण (सं० पु०) गिरिविशेष, एक पहाड़ ।
(षड्वत्संहिता १।४।२०)

क्षुरिका (सं० स्त्री०) क्षुर-ङीप् स्वार्थे कन् ततः टाप
पूर्वङ्गस्त्वय । १ पालङ्कशाक, पलांकी । २ मृत्तिकापात्र
विशेष, मट्टीकी खोरिया । ३ कुरी, चाकू । ४ यजुर्वेदा-
न्तर्गत कोई उपनिषत् । मुक्तिकोपनिषद्में इसका उल्लेख
मिलता है ।

क्षुरिकापत्र (सं० पु०) क्षुरिका इव पत्रमस्य, बहुव्री० ।
शर, रमसर ।

क्षुरिणी (सं० स्त्री०) क्षुर अस्यार्थे इति ततः ङीप् ।
१ शराङ्गकान्ता । २ नापितकी भार्या, नाइन ।

क्षुरी (सं० पु०) क्षुरः क्षुरः, क्षुर-ङीप् । नापित, नाई,
हज्जाम ।

क्षुरी (सं० स्त्री०) क्षुरी ।

क्षुक्क (सं० त्रि०) क्षुदं लाति गृह्णाति, क्षुद-ला-क । १ अल्प,
थोडा, कम । २ क्षुब्ध, हलका । (भागवत ३।५।१०) ३ कनिष्ठ,
छोटा ।

क्षुक्क (सं० त्रि०) क्षुक्क स्वार्थे कन् । १ क्षुद्र, चकीर ।
२ अल्प, थोडा । ३ नोच, कमीना । ४ कनिष्ठ, छोटा ।
५ दरिद्र, गरीब । ६ पामर । ७ दुःस्मित, दुखो । (भागवत
४।१०।२८) ८ खल्ल, पाजी । शब्दरत्नावलीमें "क्षुक्क" के
स्थान पर 'खुक्क' पाठ है । (पु०) स'स्वार्थे कन् ।
८ क्षुद्रशङ्क ।

क्षुक्कतात (सं० पु०) नित्यकर्मधा० । पिताका कनिष्ठ
भ्राता, चाचा, चचा ।

क्षुक्कतातक (सं० पु०) क्षुक्कतात स्वार्थे कन् । पितृव्य,
चचा ।

क्षेडकन्द (सं० पु०) करवीरवृक्ष, कनेरका पेड़ ।

क्षेत्र (सं० स्त्री०) क्षि-त्रन् । दादिभ्यश्चन्दसि । उष्-४।१।६२ ।
१ केदार, खेत, शस्य उत्पत्तिका स्थान, अपनाज बोनेकी
जगह । इसका संस्कृत पर्याय—वप, केदार, बलज,
निष्कट, राजिका और पाटीर है । शस्य उत्पत्तिका
क्षेत्र वैहेय, शालीय, यव्य प्रभृति नाना भागोंमें विभक्त
है । २ शरीर, जिम्मा । (गोता १।१।१) ३ अन्तःकरण ।
४ कलत्र, जोड़ू । ५ सिद्धस्थान । भारत प्रभृति प्राचीन
इतिहासोंमें कई सिद्धस्थानोंकी पुण्यक्षेत्र, कइयोंकी
सिद्धक्षेत्र और कइयोंकी विष्णुक्षेत्र लिखा है । जैसे
पुण्यक्षेत्र—कुरुक्षेत्र, गयाक्षेत्र, प्रयाग, पुलहाश्रम,
नैमिष, फल्गुतीर, मेतुवन्ध, प्रभास, कुशस्थली, वारा-
णसी, मधुपुरी, पम्पा, विन्दुसर, बदरिकाश्रम, नन्दा-
क्षेत्र, सीताश्रम और सप्तकुलाचल । सिद्धक्षेत्र यथा—
कामरूप, गङ्गातीर, नारायणक्षेत्र और पुरुषोत्तम ।
विष्णुक्षेत्र यथा—कोकामुख, मन्दर, कपिलक्षीप, प्रभास,
माल्य, उदय, महेन्द्र, ऋषभ, द्वारका, पाण्ड्य, सङ्ग,
वसुकुण्ड, वन्दीवन, चित्रकूट, नैमिष, गोनिष्क, मण्ड,
शालग्राम, गन्धमादन, कुलाम्बक, गङ्गाद्वार, तोषक,
हस्तिनापुर, हन्दावन, मथुरा, केदार, वाराणसी, पुष्कर,

दृषद्दती, लणविन्दुवन, सागरसङ्गम, तेजोवन, विशाख-
सूर्य, वनवन, लोहाकुल, देवशाल, दशपुर, कुजक,
वितण्डा, देवदारुवन, कावेरी, प्रयाग, पयोष्णी, कुमार,
लोहित्य, उज्जयिनी, लिङ्गस्फोट, तुङ्गभद्रा, कुरुक्षेत्र,
मणिकुण्ड, अयोध्या, कुण्डिन, भञ्जीर, चक्रतोर्थ, विष्णु-
पद, शूकर, मानस, दण्डक, त्रिजुट, मेरुपृष्ठ, पुष्पमती,
चामोकर, विपाशा, माहिषती, क्षीरोद, विमला, शिव-
नदी और गया । (नारसिंहपुराण ६२ अ०) कुरुक्षेत्र प्रभृति शब्दोंमें इन
का विलीन विवरण द्रष्टव्य है । ६ मेघादि द्वादश राशि । राशि-
का दूमरा नाम क्षेत्र है । ७ इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख,
संस्कार, चेतन्य और धैर्य । ८ समतलभूमि, चौरस
जमीन । (लोलावतीटीका—सुनीयर) चेतन्यवहार देखो । ९ अश्व
जातिका दशविध क्षेत्र । उनमें १ क्षेत्र अयनादि ललाट,
२ क्षेत्र ललाटसे मस्तक पर्यन्त, ३ गोवा स्तम्भावधि,
४ स्तन वकुदांशकाकसानि, ५ अंसक, ६ कटि,
७ स्फिक, ८ स्थिरक, ९ जङ्घा और १० कूर्वसन्धि तथा
खुर है । (जयदत्त)

क्षेत्रकर (सं० त्रि०) क्षेत्रं करोति, क्षेत्र-क-ट । क्षेत्र प्रस्तुत
करनेवाला, जो खेत बनाता हो ।

क्षेत्रकर्कटी (सं० स्त्री०) क्षेत्रजाता कर्कटी, मध्यपदलो० ।
बालुका, फूट ।

क्षेत्रकर्म (सं० स्त्री०) क्षेत्रस्य कर्म, ६-तत् । क्षेत्रका कर्म,
खेतका काम ।

क्षेत्रकर्मकृत् (सं० त्रि०) क्षेत्रकर्म करोति, क्षेत्रकर्म-
कृप्-तुगागमश्च । क्षेत्रकर्मकारी, खेतका काम करने-
वाला ।

क्षेत्रगणित (सं० स्त्री०) क्षेत्रस्य गणितम्, ६-तत् । १ क्षेत्र
विषयक अङ्कशास्त्र, पैमायश । २ क्षेत्रश्रवणहार ।

क्षेत्रश्रवणहार देखो ।

क्षेत्रगत (सं० त्रि०) क्षेत्रं गतः, २-तत् । १ क्षेत्रको
गमन कर चुकनेवाला, जो खेत पर गया हो । २ क्षेत्र-
सम्बन्धीय, खेतसे सरोकार रखनेवाला ।

क्षेत्रगतोपपत्ति (सं० स्त्री०) क्षेत्रगता चासौ उपपत्ति
स्तेति, कर्मधा० । क्षेत्रसम्बन्धीय युक्ति, खेतकी तजवीज ।

क्षेत्रचिर्भिटा (सं० स्त्री०) क्षेत्रजाता चिर्भिटा, मध्य-
पदलो० । १ चिर्भिटाकर्कटी, फूट । २ चर्चडा ।

क्षेत्रज (सं० पु०) क्षेत्रे स्त्रीरूपक्षेत्रे जायते, क्षेत्र-जन-उ ।
१ द्वादशप्रकारके पुत्रोंमें एक पुत्र । मनुके मतमें—मृत,
नपुंसक वा राजयक्ष्मा प्रभृति व्याधिग्रस्त व्यक्तिकी स्त्री
गुरुजनकट्टक नियुक्त हो धर्मके अनुसार परपुरुष द्वारा
जो पुत्र उत्पादन करती, वही उस स्त्रीके स्वामीका
क्षेत्रजपुत्र कहलाता है । (मनु २।१२०) क्षेत्रजपुत्र औरस
पुत्रकी भांति पिताको समस्त सम्पत्तिका अधिकारी है ।
किन्तु क्षेत्रज पुत्रका जन्म होने पर यदि उसी व्यक्तिके
औरसपुत्र उत्पन्न हो, तो वह औरसपुत्र ही सम्पत्तिका
अधिकारी होगा—क्षेत्रज नहीं । (मनु २।१२१) कुल्लुकभट्टने
ऐसा ही मत प्रकाश किया है । किन्तु स्मृतिसंग्रहकार
रघुनन्दनके मतमें ऐसे स्थल पर क्षेत्रज और औरस दोनों
अधिकारी होंगे । (उदाहरण) ब्रह्मसूत्रिने क्षेत्रज पुत्रके
उत्पत्ति विषय पर लिखा है—जिस स्त्रीके कोई सन्तान
नहीं और निज स्वामी द्वारा पुत्रोत्पादनकी सम्भावना
भी नहीं, वह देवर अथवा स्वामीके सपिण्ड किसी अन्य
पुरुष द्वारा सन्तान उत्पादन कर सकती है । उसके
देवर अथवा अन्य किसी सपिण्डको भी गुरुजनकट्टक
अनुज्ञात हो उसमें सङ्गत होने पर कोई पाप नहीं
लगता । किन्तु गुरुजन कट्टक किसी विधवाके पुत्रोत्पा-
दनको नियुक्त होने पर सकल शरीरमें घी लगा और
वाग्यत हो कर रात्रिकालमें सङ्गत होना चाहिये । ऐसे
स्थलमें एक ही सन्तान उत्पादन कर सकते हैं । विधवा
इस पुरुषको गुरु-जैसा देखेगी और पुरुष भी उस
विधवाको अपनी पुत्रवधू-जैसी समझेगा । किसी प्रकार
इन्द्रियपरतन्त्र न होकर केवल धर्मबुद्धिसे ही सन्तान
उत्पादन करना चाहिये । जो इस नियमको उल्लङ्घन
करते, वधूगामी और गुरुतल्पकी तरह पतित ठहरते
हैं । सपिण्ड और देवर भिन्न अन्य पुरुषमें विधवाको
नियुक्त न करना चाहिये । क्योंकि इससे उसका धर्म
बिगड़ता है । वाग्दानके पीछे जो जिसके पति का मृत्यु
हो गया है, वही स्त्री इस भावमें देवर द्वारा पुत्रोत्पा-
दन कर सकती है । कलिकालमें क्षेत्रज पुत्र करनेका
विधान नहीं है ।

(त्रि०) क्षेत्रजात, खेतमें पैदा होनेवाला ।

क्षेत्रजा (सं० स्त्री०) क्षेत्रज-टाप् । १ खेतकण्टकारी, सफेद

कटैया । २ शशाङ्गली, कचेलिया । ३ गोमूत्रिका
लृण, एक घास । ४ चणिकालृण । ५ शिल्पनीलृण ।

क्षेत्रज्ञात (सं० त्रि०) क्षेत्रे जातः, ७-तत् । क्षेत्रमें उत्पन्न
होनेवाला, जो खेतमें पैदा हुआ हो ।

क्षेत्रजेट् (सं० स्त्री०) क्षेत्रस्य जेट्, ६-तत् । क्षेत्र-जेष-क्किर् ।
क्षेत्रपाति, खेतका मालिक । (ऋक् १।२३।१५)

क्षेत्रज्ञ (सं० पु०) क्षेत्रं शरीरं जानाति मम इत्यभि-
मानेन गृह्णाति, क्षेत्र ज्ञा-क । १ शरीरका अधिष्ठाता,
जीवात्मा । सांख्य मतानुसार—आत्मा निर्लेप, निर्गुण,
क्रियाशून्य और कवल चेतन्यस्वरूप है । अविद्याके प्रभाव-
से पाञ्चभौतिक स्थूलशरीर वा सूक्ष्मशरीर बुद्धि, अह-
ङ्कार तथा इन्द्रिय आदिकी अपना शरीर-जैसा समझता
है । इसी अभिमानयुक्त पुरुषको क्षेत्रज्ञ कह सकते हैं ।
नेयायिक और वैशेषिक मतमें जीवात्मा ही क्षेत्रज्ञ शब्द-
वाच्य है । वेदान्तके मतानुसार आत्मा वा ब्रह्मको क्षेत्रज्ञ
कहा नहीं जा सकता । कारण वह ज्ञानस्वरूप है,
उसको किसी भेदभावका ज्ञान नहीं । इसीसे वेदा-
न्तिक अविद्याविशिष्ट (अज्ञानीपण्डित) चेतन्यको
क्षेत्रज्ञ कहा करते हैं । २ सवज्ञ, परमेश्वर । गीताके
मतमें प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार और इन्द्रिय प्रभृति
समस्त जड़पदार्थको क्षेत्र कहते हैं । क्षेत्र अर्थात् समस्त
• जड़ पदार्थको जाननेवाला ही क्षेत्रज्ञ है । (गीता १३।१-२)

३ विष्णु । (विश्वसहस्रनाम) ४ साक्षी, गवाह । ५ अन्त-
र्यामी, प्राणियोंके हृदयमें रह कर उनके समस्त कार्य
अवलोकन करनेवाला । (भारत १ पर्व) ६ वटुकभैरव ।
(वटुकलव) ७ आत्मा । (त्रि०) ८ रसिक, विदग्ध ।
९ कृषक, किसान । १० क्षेत्रका विषय समझनेवाला, जो
खेतका हाल जानता हो । (छान्दोग्य उप० ८।१।२)

क्षेत्रद (सं० पु०) क्षेत्रं ददाति, क्षेत्र-दा-क । १ वटुक-
भैरव । (वटुकलव) (त्रि०) २ क्षेत्र दान करनेवाला, जो
खेत देता हो ।

क्षेत्रदूती (सं० स्त्री०) क्षेत्रकण्टकारी, सफेद कटैया ।
क्षेत्रदेवता (सं० स्त्री०) क्षेत्रस्य देवता, ६-तत् । क्षेत्रको
अधिष्ठात्री देवता । इनकी आराधना करनेसे खेतमें खूब
अनाज उपजता और किसी देव वा लौकिक कारणसे
अनिष्ट नहीं पड़ता ।

क्षेत्रप (सं० पु०) क्षेत्रं शरीरं पाति रक्षति क्षेत्र-पा-
क । १ वटुकभैरव । (वटुकलव) २ ईश्वर । (त्रि०) क्षेत्रं
शस्योत्पादनयोग्यां भूमिं पाति रक्षति । ३ क्षेत्ररक्षक,
खेतका रखवाला ।

क्षेत्रपति (सं० पु०) क्षेत्रस्य पतिः, ६-तत् । १ क्षेत्रपाल,
खेतका रखवाला । २ कृषक, किसान । ३ परमात्मा ।
(वल्गसार)

क्षेत्रपद (सं० स्त्री०) क्षेत्रस्य पदम्, ६-तत् । क्षेत्रस्थान,
हार । (भागवत ८।४।२०)

क्षेत्रपट्टी (सं० स्त्री०) क्षेत्रे पट्टीव । पट्टक, पित्त-
पाण्डा ।

क्षेत्रपाल (सं० त्रि०) क्षेत्रं पालयति रक्षति, क्षेत्र-पालि-
अण् । १ क्षेत्ररक्षक, खेतका रखवाला । (पु०) २ देवता-
शिष्य । प्रयोगसारमें क्षेत्रपालके ४८ भेद प्रदर्शित हुए
हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—१ भजर, २ पापकुल,
३ इन्द्रस्तुति, ४ ईडाचार, ५ उक्त, ६ उन्माद, ७ ऋषि-
सूदन, ८ ऋमुक्त, ९ लृप्तकेय, १० लृपक, ११ एकदंष्ट्रक
१२ ऐरावत, १३ औषवन्तु, १४ औषधीय, १५ पञ्चन,
१६ अस्त्रवार, १७ काल, १८ खड्गखानल, १९ गामुख्य,
२० घण्टाद, २१ सनः, २२ चण्डवारण, २३ कृटाटोप,
२४ जटाल, २५ भङ्गोवः, २६ अरसर, २७ टङ्गपाणि,
२८ ठाणवन्तु, २९ डामर, ३० ठकारव, ३१ लवर्, ३२ तडिह्वेज,
३३ स्थिर, ३४ दन्तुर, ३५ धनद, ३६ नत्तिह्वान्त,
३७ प्रचण्डक, ३८ फट्कार, ३९ वीरशङ्क,
४० भङ्ग, ४१ मेघासुर, ४२ युगान्तक, ४३ रौद्रक,
४४ लम्बोष्ठ, ४५ वसुगण, ४६ शूकनन्द, ४७ षडाल,
४८ सुनामा और ४९ हंस्क ।

क्षेत्रपालकी पूजाका विधान—प्रातःकाल प्रभृति
नित्यकार्यका अनुष्ठान करके क्षेत्रपालकी पूजा करना
चाहिये । प्रथम प्राणायाम और पीछे क्षेत्रपालकी पूजा
करके धर्मपीठादि स्थापन करते हैं । इनकी पूजामें इस
प्रकार न्यास करना चाहिये । इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्दः
गायत्री, देवता क्षेत्रपाल, वोज चौ और शक्ति आया
है । ऋथादि न्यास करके 'त्वां हृदयाय नमः' इत्यादि
मन्त्रों द्वारा अङ्गन्यास और करन्यास करने पर क्षेत्र-
पालका ध्यान करना चाहिये । यथा—

‘भाजस्यद्विजटाधरं त्रिनयनं नीलाक्षनाचिपमं’
 दोदण्डाक्षगदाकपालमद्वयसङ्गधमकोज्ज्वलम् ।
 चण्डामेखलवर्धनध्वजिमिलजम्भहारभीमं विभुं
 वन्दे संहितसर्पकुण्डलधरं क्षेत्रपालं सदा ॥”

क्षेत्रपालक तीन चक्षु हैं, वर्ण नीलगिरिके तुल्य, मस्तक पर उज्ज्वल चन्द्र और जटा है। इनके चारों हाथोंमें यथाक्रम गदा, कपाल, रक्तवर्ण पुष्पमाला और गन्धवस्त्र है। कटिमेखलामें बहुतसी घण्टियाँ लगी हैं। उनका घर्घरध्वनि और झङ्कार अतिशय भयङ्कर है। क्षेत्रपालके कर्णोंमें सर्पकुण्डल पड़े हैं। ऐसे क्षेत्रपालको मैं सर्वदा अभिवादन करता हूँ। इसी प्रकारसे ध्यान करके प्रथम मानसपूजा करना चाहिये। अर्घ्यस्थापन और पूर्व धर्मपीठादिकी अर्चना करके पुनर्वार ध्यान तथा आवाहन करना पड़ता है। फिर ‘क्षेत्रपालाय नमः’ मन्त्रसे पूजा करके पाँच पुष्पाञ्जलियाँ देना चाहिये। इसके पीछे आवरण-पूजा होती है। क्षेत्रपालका प्रथम आवरण अङ्ग द्वारा पूजना चाहिये। अमलाक्ष, अज्जिकेश, कराल, घण्टारव, महाक्रोध, पिशिताशन, पिङ्गलाक्ष और ऊर्ध्वकेश द्वारा द्वितीय आवरण, इन्द्रादि द्वारा तृतीय आवरण और वज्रादि द्वारा चतुर्थ आवरणकी पूजा करना पड़ती है। क्षेत्रपालका मन्त्र सक्षेप करनेसे पुरस्चरण होता और घृत तथा चक्षुसे उसका दशांश होम किया जाता है।

इनके वलिका नियम-रात्रिकालको चबूतर पर एक स्थण्डिल करके उस पर सकल परिवारके साथ क्षेत्रपालकी पूजा करना चाहिये। वलिका मन्त्र उच्चारण करके क्षेत्रपालके हाथमें तीन बार उसे देते और परिवार वर्गका नाम लेकर भी एक एक बार दिया करते हैं। वलिका मन्त्र यह है—

“एषां हि विदुषि सुख सुख सुख सुख जन्म जन्म इन इन विघ्न विघ्न-पद महाभय क्षेत्रपाल वलिं गृहं गृहं साधु ॥”

किसी किसी तन्त्रके मतमें क्षेत्रपालके वलिका मन्त्र अन्य प्रकार है—

“एषां हि सुख सुख सुख सुख जन्म जन्म इन इन विघ्न विघ्न-पद महाभय क्षेत्रपाल गृहं गृहं साधु ॥”

क्षेत्रपालकी पूजा करनेसे कान्ति, मेधा, बल,

आरोग्य, तेजः, पुष्टि, यशः, धन और सम्पत्ति वृद्धि होती है।

सभी प्रधान पण्यक्षेत्रोंमें एक एक क्षेत्रपाल हैं। उनकी विधिसे पूजा होती है। हिमालयके कुमाऊँ प्रदेशमें क्षेत्रपालको कहीं भूमिया और कहीं ‘स्वयं’ (स्वयम्भू) कहते हैं। इनके उद्देशसे कागवलि हुवा करता है।*

३ हारपाल भैरवविशेष। यह पश्चिम हारमें रहते हैं। (तन्त्रसार)

जैन शास्त्रानुसार—क्षेत्रपाल जिनशासनका भक्त है। बहुत बार जिनधर्मियोंकी आपत्ति पड़ने पर इसने साहाय्य किया है। दि० जैनोमें बहुतसे इनकी पूजते और बहुतसे नहीं पूजते हैं।

क्षेत्रफल (सं० क्ली०) क्षेत्रस्य फलम्, इतत्। क्षेत्रान्तर्गत स्थानका परिमाण, भूमिके परिमाणका फल, रकबा। यह दैर्घ्य और प्रस्थके गुणनसे निकलता है।

क्षेत्रभक्ति (सं० स्त्री०) क्षेत्रका विभाग, जमीनका बंट-वारा।

क्षेत्रभूमि (सं० स्त्री०) कर्षित वा कर्षणयोग्यभूमि; खेतकी जमीन।

क्षेत्रमालिका (सं० स्त्री०) क्षेत्रं माजयति, मल-विच्छेदक, वचा, वच।

क्षेत्रयमानिका (सं० स्त्री०) क्षेत्रे जाता यमानिका, मध्यपदको०। वनयमानिका, जंगली अजवायन।

क्षेत्ररक्षा (सं० स्त्री०) क्षेत्रे रोहति सत्पश्यते, क्षेत्र-रक्षक। बालुकी कंकटी, फट्।

क्षेत्रवित् (सं० लि०) क्षेत्रं वेत्ति, क्षेत्र-विद् क्षिप्।

१ मार्गज्ञ, राहका ज्ञान जानीवाला। (चक्र० १०८)

(पु०) क्षेत्रं शरीरं अहमिति आत्मत्वेन वेत्ति जानाति, क्षेत्र-विद्-क्षिप्। २ क्षेत्रज्ञ, जीवात्मा। (भागवत ४।२।१७)

३ परमायतनस्वज्ञान।

क्षेत्रव्यवहार (सं० पु०) क्षेत्रस्य व्यवहारं कर्णलब्ध-फलादिभिरियत्तानिर्णयः, इतत्। कर्ण और लब्धके फलादि द्वारा क्षेत्रपरिमाणका निर्णय।

ज्यामिति और परिमिति क्षेत्रतत्त्वके अन्तर्गत है। भूकी भांति ज्यामिति न समझनेसे क्षेत्रका तत्त्व कैसे हृदयङ्गम कर सकते हैं। ब्रह्मगुप्त का ब्रह्मसिद्धान्त और भास्कराचार्य की लीलावती प्रभृति ग्रन्थ पाठ करनेसे इसका विशेष प्रमाण मिलता कि हमारे प्राचीन भारतीय ऋषिओं ने क्षेत्रतत्त्वके विषयमें विशेष उन्नतिसाधन किया था।

बहुतसे लोग जानते हैं कि इसी भारतवर्षसे अङ्ग-शास्त्र की उत्पत्ति हुई है। भारतवासियोंसे अरबों और उनसे युरोपीयोंने यह शास्त्र पढ़ा है। यह देखो।

किन्तु कोई कोई यह भी कहता है—पति पूर्व-कालको क्षेत्रतत्त्वका मूल ज्यामितिशास्त्र भारतवासो जानते न थे, यह शास्त्र मिस्र और यूनानसे निकला है। युरोपीय पुरातत्त्वविदों और अङ्गशास्त्रविदों के कथनानुसार थेल्स तथा उनके शिष्य पिथागोरस ने (ई०से ५४० वर्ष पूर्व) प्रकृत ज्यामिति-शास्त्र प्रकाश किया। उसके पीछे अनाक्सागोरस, हिपक्रोटिस आदि पण्डितोंने इस शास्त्रकी उन्नति की। फिर ई०से ३०० वर्ष पूर्व असाधारण अङ्गशास्त्रविद् युक्लिड ने पूर्ववर्ती पण्डितोंका मत संकलन करके पूर्णकार ज्यामिति-शास्त्र निकाल दिया। यह ग्रन्थ अद्यापि सर्वत्र आदृत और मान्य है।

हम कहते हैं—जिस भारतवर्षसे अङ्गशास्त्रकी सृष्टि है, उसी भारतवर्षसे क्षेत्रतत्त्व वा ज्यामिति शास्त्रकी भी उत्पत्ति हुई है।

जगतके प्राचीन वैदिक ग्रन्थमें क्षेत्रतत्त्वका मूल-सूत्र प्रकटित हुआ है। बौधायन, आपस्तम्ब, मानव, मैत्रायणीय और कात्यायन-शुल्बसूत्र विद्यमान हैं। यह शुल्बसूत्र वैदिक कल्पसूत्रोंके अन्तर्गत हैं। इन सकल शुल्बसूत्रोंमें इसका मूलतत्त्व वर्णित हुआ है—कैसे भूमि, क्षेत्र, भुज प्रभृति जाना पड़ते हैं।

भिक्षाकार की यज्ञीय वेदी बनानेका नियम विधि-वह करनेके लिये शुल्बसूत्रकी सृष्टि है। फिर क्रमशः शुल्बसूत्रसे ही भारतवर्षीय क्षेत्रतत्त्व उद्भावित हुआ है।

डाक्टर बुरनेल ने लिखा है—

“We must look to the Sulva portions of

the Kalpa-sutras for the earliest beginning of Geometry among the Brahmans”*

लक्ष्मणयजुर्वेद (तैत्तिरीयसंहिता ५।४।१।१) में शुल्बसूत्रका वीज दृष्ट होता है। जो ही, किन्तु हम देखते हैं कि पिथागोरस आदिसे बहुत पहले वेदके कल्पसूत्रमें ज्यामितिका अनुशीलन लिपिबद्ध हुआ। ऐसी दशामें मानना पड़ेगा कि थेल्स, पिथागोरस आदिसे पूर्व हमारे ऋषि ज्यामिति जानते थे। पिथागोरसकी जीवनीमें लिखा है कि वह यूनानसे भारत घूमने गये। उनके जिन ज्यामिति सूत्रोंका प्रथम उद्घावन करना जैसा प्रसिद्ध है, हम उन सबका आप-स्तम्ब, बौधायन प्रभृति शुल्बसूत्रोंमें देखते हैं। इससे मालूम पड़ता कि पिथागोरसने भारतसे क्षेत्रव्यवहार सीख यूनानमें प्रचार किया होगा। हम अनुमान करते हैं कि अङ्गशास्त्रकी तरह क्षेत्रतत्त्व भी निरपेक्ष भावमें भारतवासियोंसे ही उद्भावित हुआ है। ज्यामिति, परिमिति, वीजगणित, गणित, जरीप आदि शब्दोंमें विसृत विवरण दृश्य है।

प्राचीन भारतवासियों ने क्षेत्रव्यवहारके जो उपाय स्थिर किये हैं, वही यहाँ प्रदर्शित किये जाते हैं—

लीलावती-टीकाकार सुनीश्वर गणकके मतमें समतल भूमिका नाम क्षेत्र है। यह प्रधानतः चार भागोंमें विभक्त है—त्रिकोण, चतुष्कोण, बर्तुल और चापाकार। (सुनीश्वर) भास्कराचार्य आदि प्राचीन ग्रन्थ-कारोंने त्रिकोण और चतुष्कोण क्षेत्रकी व्याख्या तथा चतुरस्र नामसे उल्लेख किया है। जिस क्षेत्रमें तीन कोण अथवा कोणोत्पादक तीन रेखायें रहतीं, उसको त्रिकोण वा त्रस्र कहते हैं। इसी प्रकार चार कोण वा कोणोत्पादक चार रेखायें रहनेसे क्षेत्र चतुष्कोण वा चतुरस्र कहलाता है। गोलाकार क्षेत्रका वर्तुल और धनुष जैसा नाम चापक्षेत्र है। इन चार प्रकारके क्षेत्रोंको छोड़ कर पञ्च कोण, षट्कोण प्रभृति भी क्षेत्र हैं। परन्तु वह त्रिकोण और चतुष्कोणके अन्तर्गत जंमे होते हैं। इसीसे प्राचीन ऋषिोंने उनको अलग नहीं लिखा।

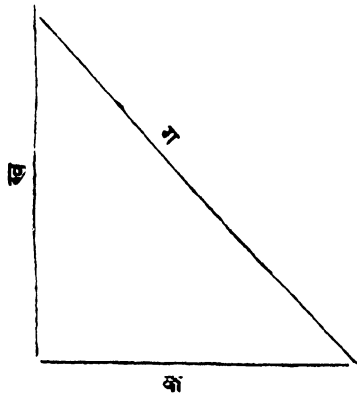
(सुनीश्वर)

* Burnell's Catalogue of a Collection of Sanskrit Mss. p. 29. पल्लव देखो।

त्रिकोण क्षेत्र आत्य और त्रिभुज दो प्रकारका होता है। जिस त्रिकोण क्षेत्रकी तीन रेखायें—भुज, कोटि और कर्ण कहलातीं, वही जात्यक्षेत्र है। फिर जिस त्रिकोणकी तीनों रेखाओंके विशेष कोई नाम नहीं और भुज जैसी लिखी जाती है, उसको त्रिभुज कहते हैं। चतुष्कोण वा चतुर्गुण क्षेत्र तीन भागोंमें विभक्त है—समचतुर्भुज, आयत और विषय चतुर्भुज। जिस क्षेत्रके चारों वाहु परिमाण समान रहते, उसको समचतुर्भुज कहते हैं। दो आयत वाहुवाले चतुष्कोणका नाम आयत है। फिर परस्पर चारों असमान वाहुओंका क्षेत्र विषमचतुर्भुज कहलाता है।

क्षेत्रव्यवहारमें वाहु जैसी ऋजुप्रदेश वा सरल रेखा वाहु नामसे उल्लिखित होती है। (सुगोचर) त्र्यक्षेत्रमें तीन और चतुर्गुणमें चार वाहु रहते हैं। कोटि और कर्ण भुजकी पारिभाषिक संज्ञा है।

त्रिकोण वा चतुष्कोण क्षेत्रके एक वाहुको दृष्ट कल्पना करना चाहिये। यही दृष्ट वाहु अपने क्षेत्रका भुज कहलाता है। दृष्टवाहु वा भुजकी प्रतिकूलदिक्की अर्थात् भुजके अग्रसे जो रेखा दूसरी ओर खिंचतो उसीका नाम कोटि है। (कोलावती) कोटि और भुज प्रदर्शन करनेके लिये एक क्षेत्र अंकित होता है—

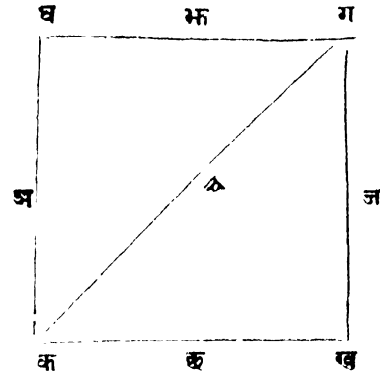


इस त्रिकोणक्षेत्रके क, ख और ग तीन वाहु हैं। उनमें यहाँ क वाहु दृष्ट है। इस लिये वही इस क्षेत्रका भुज होता है। भुज वा क वाहुके अग्रसे जो रेखा ग रेखासे मिल गयी है, उसीको इस क्षेत्रकी कोटि समझना चाहिये।

चतुष्कोण वा त्रिकोण क्षेत्रके एकान्तर कोण पर

अर्थात् एककोणसे उसके विपरीत कोण तक तिर्यक्-भावमें जो रेखा खींची जाती, कर्ण कहलाती है।

(सुगोचर)।

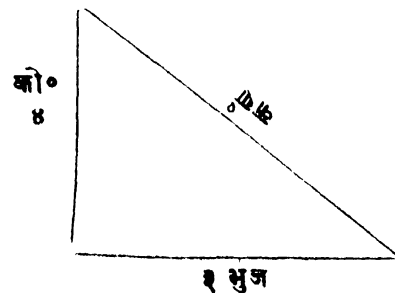


इस चतुष्कोण क्षेत्रके क, ख, ग और घ कोणोंमें क कोणसे ग कोण पर्यन्त जो रेखा खिंची है। उसीका नाम कर्ण है। आयत चतुर्भुजमें भी ऐसा ही समझ लेना चाहिये। समचतुर्भुज और आयत चतुर्भुजमें कर्ण डालनेसे दो जात्यक्षेत्र बनते हैं और वही एक कर्ण हुआ करता है। अंकित चतुर्भुज क्षेत्रकी च रेखा कर्ण होनेसे भ अ च और क ज च दो त्रिभुज बन गये हैं। इन दोनों त्रिभुजोंकी च रेखा ही कर्ण है। अतएव सम वा आयत चतुर्भुजमें दो जात्यक्षेत्र रहते हैं। (सुगोचर) लम्ब पीछे दिखलाया जावेगा।

भुज और कोटिका परिमाण अवगत रहनेसे कक्ष आनयन करनेका नियम कोलावतीमें इस प्रकार लिखा है—

पहला नियम—भुजवर्गके साथ कोटिका वर्ग योग करनेसे जो फल आयगा, उसका ही वर्गमूल अपने क्षेत्रके कर्णका परिमाण कहलायगा।

उदाहरण—जिस क्षेत्रके भुजका परिमाण ३ और कोटिका परिमाण ४ है, उसके कर्णका परिमाण कितना होगा ?

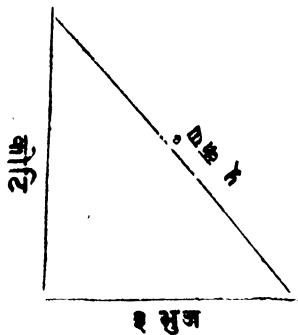


प्रक्रिया—पट्टित क्षेत्रके भुज परिमाण ३ का वर्ग ८ और कोटि ४ का वर्ग १६ है। इन दोनोंका योगफल २४ आता है। इसीका नाम भुज और कोटिका वर्गयोग है। भुजकोटिके वर्गयोग २४ का वर्गमूल ५ निकलेगा। अतएव प्रथम नियमके अनुसार इस क्षेत्रका कर्ण ५ हुआ।

वर्गयोग करनेका सहज उपाय—जिन दो राशियोंका वर्गयोग करना हो, उनके घातका द्विगुण करके उसमें दोनों राशियोंका अन्तर (वियोगफल) मिला दो। यही वर्गयोग हो जावेगा। यथा—पूर्वप्रदर्शित क्षेत्रके भुज ३ और कोटि ४ का वर्गयोग करनेको ३ और ४के घात १२को द्विगुण करनेसे २४ फल आता है। उसमें ३ और ४का अन्तर १ मिलानेसे ३ और ४का वर्गयोग २५ निकल जावेगा।

दूसरा नियम—(कर्ण और भुज अवगत रहनेसे कोटि निकालनेका नियम) कर्णके वर्गसे भुजका वर्ग अन्तर करने पर जो अवशिष्ट रहेगा, उसका वर्गमूल अपने क्षेत्रकी कोटिका परिमाण ठहरेगा।

उदाहरण—जिस क्षेत्रके भुजका परिमाण ३ और कर्णका परिमाण ५ है, उसकी कोटिका क्या परिमाण होगी ?



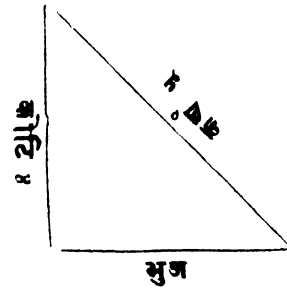
प्रक्रिया—पट्टित क्षेत्रके भुज परिमाण ३ का वर्ग ८ और कर्ण ५ का वर्ग २५ है। वर्गद्वयका अन्तर १६ होता है। इसीका नाम भुजकर्णका वर्गान्तर है। भुजकर्णके वर्गान्तर १६का वर्गमूल ४ है। अतएव द्वितीय नियमके अनुसार इस क्षेत्रकी कोटि ४ निकली।

वर्गान्तर करनेका सीधा उपाय—जिन दो राशियोंका वर्गान्तर निकालना हो, उसके योगफलको उन्हींके अन्तर (वियोगफल) से गुण करो। यह गुण-

फल ही उक्त दोनों राशियोंका वर्गान्तर होगा। जैसे—पूर्वप्रदर्शित क्षेत्रके भुज और कर्णका वर्गान्तर करनेमें भुज ३ और कर्ण ५ के योगफल ८ का ३ और ५के अन्तर २ से गुण करने पर फल १६ होता है। अतएव ३ और ५ का वर्गान्तर १६ ही है।

तीसरा नियम—कोटि और कर्ण अवगत रहनेसे भुज ठहरानेका उपाय। कर्णके वर्गसे कोटिका वर्ग घटाने पर जो बचेगा, उसका वर्गमूल ही अपने क्षेत्रका भुज ठहरेगा।

उदाहरण—जिस क्षेत्रकी कोटिका परिमाण ४ और कर्णका परिमाण ५ है, उसके भुजका परिमाण कितना होगा ?



प्रक्रिया—पट्टित क्षेत्रके कोटि-परिमाण ४ का वर्ग १६ और कर्ण ५ का वर्ग २५ है। इन दोनों वर्गोंका अन्तर ९ होता है। कर्णवर्ग २५से कोटिवर्ग १६ घटाने पर अवशिष्ट रहनेवाले ९का वर्गमूल ३ है। अतएव द्वितीय नियमके अनुसार इस क्षेत्रके भुजका परिमाण ३ हुआ।

इसी तृतीय नियमके अनुसार त्रिज्या वा चतुर्भुज क्षेत्रका भुज, कोटि और कर्ण निकाला जा सकता है।

यदि किसी क्षेत्रके भुजवर्गमें कोटि वर्ग मिलानेसे आनेवाली राशिका वर्गमूल न मिले, तो उसका विग्रह कर्ण नियम करना कठिन है। ऐसा कर्ण अपने क्षेत्रका करणीगत कर्ण कहलाता है। ऐसे स्थल पर आसन्न कर्ण समझनेका उपाय नीचावतीमें इस प्रकारसे प्रदर्शित हुआ है—

चौथा नियम—जिस पट्टका वर्गमूल निकालना हो, उसके छेद और अंश-गुणफलको कोई एक राशि दृष्ट मानके उसीके वर्गद्वारा गुण करो। फिर गुणफलके

वर्ग मूलको दृष्टवर्ग के मूलद्वारा गुणित छेदसे भाग करना चाहिये। इसमें जो लब्ध होगा, वही पूर्वराशिका पासक वर्ग मूल माना जावेगा।

उदाहरण—जिस क्षेत्रकी कोटिका परिमाण $\frac{१३}{४}$ और भुजका भी परिमाण $\frac{१३}{४}$ है, उसके कर्णका क्या परिमाण होगा ?

प्रक्रिया—पङ्क्ति क्षेत्रका भुज $\frac{१३}{४}$ और कोटि $\frac{१३}{४}$ का वर्गयोग करनेसे पूर्वप्रदर्शित नियमके अनुसार $\frac{१५८}{८}$ आता है। इस राशिका शुद्ध वर्ग मूल नहीं-जैसा रहनेसे क्षेत्रका कर्ण करणीगत है। वर्गयोग $\frac{१५८}{८}$ का छेद ८ और अंश १५८ के गुणफल १३५२ को दृष्टराशिके वर्ग १०००० से गुण करनेसे गुणफल १३५२०००० होगा। इसका पासक मूल ३६७७ है। गुणमूल १०० से छेद ८ को गुण करने पर फल ८०० होता है। इससे ३६७७ को भाग करने पर $४\frac{४००}{८००}$ लब्ध लगा। अतएव इस क्षेत्रका पासक कर्ण $४\frac{४००}{८००}$ निकला। शुद्ध कर्णकी अपेक्षा किञ्चित् ग्यून वा अधिक परिमाण कर्णको पासक कर्ण कहते हैं।

भुजका परिमाण अवगत रहनेसे उसके क्षेत्रकी कोटि और कर्णके प्रकारभेद जाननेका उपाय—

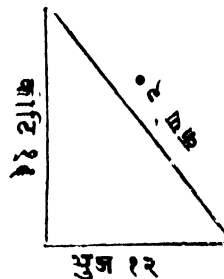
भुज एक प्रकारका रहते भी कोटि और कर्ण अनेक प्रकारका हो सकता है। यह बात केवल त्र्यस्रजाल्य क्षेत्रमें ही सम्भव है।

पाँचवां नियम—किसी एक राशिको दृष्टकल्पना करना चाहिये। दृष्टराशिको द्विगुण करके उससे भुज-परिमाणको गुण करने पर जो फल आता, वह एक स्थानमें रखा जाता है। फिर दृष्टराशिके वर्गसे १ घटाने पर जो बचेगा, उससे पूर्वस्थापित राशिको बाँटना पड़ेगा। इसमें जो लब्ध निकलता, वही अपने क्षेत्रका कोटि ठहरता है। फिर उक्त दृष्टराशिसे गुण करने पर जो फल पाते, उससे भुजपरिमाणका घटाते हैं। इसमें अवशिष्ट अङ्क ही अपने क्षेत्रका कर्ण होगा।

उदाहरण—जिस क्षेत्रके भुजका परिमाण १२ है,

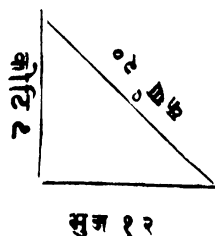
स्थिर करो, उसकी कोटि और कर्ण जितने प्रकारका होगा ?

इस स्थल पर दृष्टकल्पनाके अनुसार कोटि और कर्णका परिमाण नाना प्रकार निकलेगा। २ दृष्ट माननेसे ऐसा क्षेत्र बनता है—



प्रक्रिया—दृष्टराशि २को द्विगुण करनेसे ४ फल होता है। उससे भुज १२को गुण करने पर फल ४८ मिलेगा। दृष्टराशि २के वर्ग ४से १ निकालने पर ३ अवशिष्ट रहता है। अवशिष्ट ३से पूर्वस्थापित ४८को भाग करने पर फल १६ होगा। अतएव पूर्व नियमानुसार इस क्षेत्रकी कोटि १६ हुई। कोटि १६को दृष्टराशि २से गुण करने पर फल ३२ आता है। उससे भुज १२ अन्तर करने पर २० बचेगा। अतएव पञ्चम नियमके अनुसार क्षेत्रका कर्ण २० पड़ा। भुज और कोटि स्थिर करके प्रथम नियमके अनुसार प्रक्रिया करनेसे भी ऐसा ही कर्ण होगा। इसी प्रकार २४ और ३४ नियमके अनुसार प्रक्रिया करनेसे भी कोटि और भुज ऐसा ही आता है। सकल उदाहरणोंमें इस प्रकार समझ लेना चाहिये।

इस स्थल पर ३ दृष्ट माननेसे नीचे लिखे प्रकारका क्षेत्र उत्पन्न होता है—



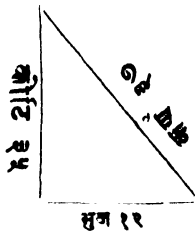
प्रक्रिया—पङ्क्ति क्षेत्रके भुजका परिमाण १२ है। दृष्टराशि ३को द्विगुण करनेसे फल ६ होगा। इससे भुज १२को गुण करने पर ७२ आता है। दृष्टराशि ३के वर्ग ९से १ निकाल आकने पर अवशिष्ट ८ बचेगा।

अवशिष्ट ८ से पूर्वस्थापित ७२ को भाग करने पर फल ८ होता है। अतएव पूर्व नियमके अनुसार क्षेत्रकी कोटि ८ हुई। कोटि ८ को इष्टराशि ३ से गुण करने पर फल २४ निकलता है। उसमें भुज १२ घटानेसे अवशिष्ट १२ रहेगा। अतएव प्रथम नियमके अनुसार कर्ण १५ लगता है। इसी प्रकारसे ५ इष्ट मानने पर कोटि ५ और कर्ण १३ होगा। अतएव इष्टके अनुसार कोटि और कर्ण नानाप्रकार बना करता है। इस स्थल पर इष्टराशि १ नहीं हो सकता। क्योंकि इष्ट १ के वर्ग १ से १ निकालने पर फल शून्य होता है। अतएव १ इष्ट कल्पना करनेसे कोटि शून्य जैसी होने पर १ इष्ट माना जा नहीं सकता। (सुगोचर)

भुज परिमाणके अनुसार जात्यत्रयकी कोटि और कर्ण लानेका उपाय अन्यप्रकारसे भी प्रदर्शित हुआ है।

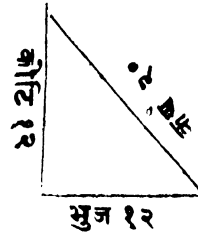
छठा नियम—भुजके वर्गकी किसी एक इष्टराशि द्वारा बांटने पर जो लब्ध होता, उसमें इष्टराशि मिला दिया जाता है। इस फलका अर्ध हो अपने क्षेत्रका कर्ण होगा। फिर इष्टगुणित भुजवर्गसे इष्टराशि अन्तर करने पर जो फल मिले, उसके अर्धकी अपने क्षेत्रकी कोटि समझना चाहिये। उदाहरण ५म नियम में बता दिया गया है।

२ इष्ट कल्पना करनेसे ६ठे नियमके अनुसार इस प्रकारका क्षेत्र बनता है।



प्रक्रिया—अङ्कित क्षेत्रके भुज १२का वर्ग १४४ है। इष्ट २से भाग देने पर फल ७२ हुआ। फिर लब्ध ७२में इष्ट २ मिलानेसे फल ७४ आता है। इसका अर्ध ३७ है। अतएव ६ठे नियमके अनुसार क्षेत्रका कर्ण ३७ पड़ेगा। एवं लब्ध ७२से २ घटाने पर ७० अवशिष्ट रहता है। इसका अर्ध ३५ है। अतएव अष्ट नियमके अनुसार क्षेत्रकी कोटि ३५ पड़ती है।

४ इष्ट माननेसे ऐसा क्षेत्र लगता है।



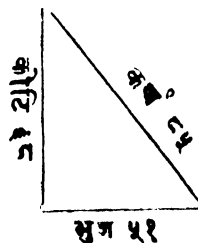
प्रक्रिया—अङ्कित क्षेत्र भुज १२के वर्ग १४४को इष्ट ४से बांटने पर फल ३६ आता है। लब्ध ३६के साथ इष्ट ४ योग करने पर ४० फल मिलेगा। इसका अर्ध २० है। अतएव ६ठ नियमानुसार क्षेत्रका कर्ण २० बनेगा। फिर लब्ध ३६से इष्ट ४ निकाल डालने पर अवशिष्ट ३२ बचता है। इसका अर्ध १६ है। अतएव अष्ट नियमके अनुसार क्षेत्रकी कोटि १६ हो गयी। ५म नियमके अनुसार २ इष्ट मानके प्रक्रिया करनेसे भी ऐसा ही क्षेत्र उत्पन्न होता है। फिर ६ इष्ट रखनेसे क्षेत्रका कर्ण १५ और कोटि ८ होगी।

कर्णके परिमाणानुसार कोटि और भुजके परिमाण स्थिर करनेका उपाय लीलावतीमें इस प्रकारसे देखाया गया है—

सातवां नियम—कर्णके परिमाणको २से गुण करने पर जो फल आये, उसको इष्टराशि द्वारा गुण करके स्थापन करना चाहिये। इष्टवर्गके साथ १ योग करनेसे जो फल आता, उससे पूर्वस्थापित राशि बांट दिया जाता है। जो लब्ध निकलता, वही अपने क्षेत्रकी कोटि ठहरता है। फिर कोटिको इष्टराशि द्वारा गुण करने पर जो फल पाया जावेगा, उससे कर्ण अन्तर करने पर अवशिष्ट रहनेवाला राशि ही अपने क्षेत्रका भुज कहलावेगा।

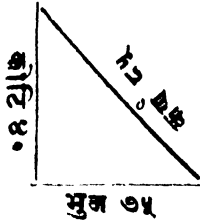
उदाहरण—जिस क्षेत्रके कर्णका परिमाण ८५ हो, बतलावो, उसका भुज और कोटि कितने प्रकारका हो सकता है—

२ इष्ट कल्पना करनेसे ७वें नियमके अनुसार इस प्रकारका क्षेत्र उत्पन्न होता है—



प्रक्रिया—अङ्कित खेलके कर्ण ८५ को द्विगुण करने से १७० फल आता है। इसको २ दृष्टि से गुण करने पर ३४० फल निकलेगा। २ दृष्टिका वर्ग ४ है। इसमें १ योग करनेसे ५ हुआ। इससे पूर्वस्थापित ३४० को भाग देने पर ६८ लब्ध होगा। अतएव ७म नियमके अनुसार इस खेलकी कोटि ६८ हुई। ६८ कोटिको २ दृष्टि से गुण करने पर १३६ फल आता है। इससे ८५ कर्ण अन्तर करने पर ५१ अवशिष्ट रहता है। इसीसे ७वें नियमके अनुसार इस खेलका ५१ भुज पड़ेगा।

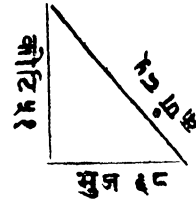
४ दृष्ट कल्पना करनेसे सप्तम नियमके अनुसार ऐसा खेल उत्पन्न होगा—



प्रक्रिया—अङ्कित खेलके ८५ कर्णको २ से गुण करने पर १७० फल होगा। फिर इसको ४ दृष्टि से गुण करने पर ६८० फल निकलेगा। ४ दृष्टिका वर्ग १६ है। इसमें १ मिलानेसे १७ फल आता है। इसके द्वारा पूर्वस्थापित ६८० बांटने पर ४० लब्ध होगा। अतएव सप्तम नियमके अनुसार इस खेलकी ४० कोटि है। ४० कोटिको ४ दृष्टि से गुण करने पर १६० फल मिलेगा। इससे ८५ कर्ण घटा देने पर ७५ अवशिष्ट रहता है। अतएव सातवें नियमानुसार खेलका ७५ भुज हुआ।

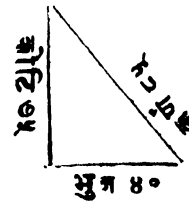
८वां नियम—कर्ण परिमाणको द्विगुणित करके स्थापन करना चाहिये। किसी एक पक्षको दृष्ट कल्पना करके उसके वर्गमें एक मिलानेसे जो लब्ध होगा उससे उससे पूर्वस्थापित पक्षको बांटने पर जो लब्ध होगा उसको कर्णसे अन्तर करने पर बचनेवाला पक्ष क्षेत्रकी कोटि और लब्ध राशिको दृष्ट राशिको गुण करने पर निष्पन्न होनेवाला फल खेलका भुज ठहरेगा।

उदाहरण—सातवें नियममें उक्त है। २ दृष्ट मानने से आठवें नियममें इस प्रकारका खेल उत्पन्न होता है—



प्रक्रिया—अङ्कित खेलके ८५ कर्णको द्विगुण करने से १७० फल होता है। २ दृष्टका वर्ग चार है। इसमें एक मिलानेसे पांच हो गया। इसके द्वारा पूर्वस्थापित १७० राशिको भाग देने पर ३४ लब्ध होगा। ३४ लब्धको ८५ कर्णसे अन्तर करने पर ५१ अवशिष्ट रहता है। अतएव अष्टम नियमसे ५१ कोटि हुई। फिर ३४ लब्धको २ दृष्टि से गुण करने पर ६८ फल आयेगा। इस लिये ८वें नियमानुसार खेलका ६८ भुज है।

४ दृष्ट लगानेसे आठवें नियममें ऐसा खेल बनता है—



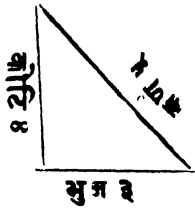
प्रक्रिया—अङ्कित खेलके ८५ कर्णको दुगुणानेसे ३४० फल आता है। ४ दृष्टका वर्ग १६ है। इसमें १ मिलानेसे १७ हो जाता है। इससे पूर्वस्थापित राशिको बांटने पर २० लब्ध होगा। इसको ८५ कर्णसे घटाने पर ७५ बचता है। अतएव आठवें नियममें ७५ कोटि हुई। एवं २० लब्धको ४ दृष्टि से गुण करने पर ८० फल मिलता है। अतएव अष्टम नियमके अनुसार ४० भुज हो गया।

२ दृष्ट कल्पना करके त्रिकोण क्षेत्रकी कोटि, कर्ण और भुज निर्णय करनेका उपाय नीचे लिखते हैं—

नवम नियम—२ दृष्ट मानके उनके घातको द्विगुण करनेसे आनेवाला फल कोटि, दोनोंका वर्गान्तर भुज और दृष्ट राशिद्वयका वर्गयोग खेलका कर्ण होता है।

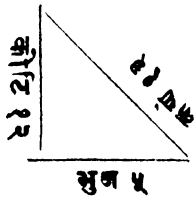
उदाहरण—कई त्रिकोण क्षेत्रोंके कर्ण, कोटि और भुज निर्णय करो ?

इस नियममें १ और २ दो राशियोंको दृष्ट कल्पना करनेसे ऐसा खेल होगा—



प्रक्रिया—१ और २ दो राशियों की दृष्ट मानके उभयके २ घातको दूना करनेसे ४ पाता है। यही कोटि है। दोनों दृष्ट राशियोंका वर्गान्तर ३ है। यही भुज है। फिर दृष्टराशिद्वयका वर्गयोग ५ क्षेत्रका कर्ण हुआ।

२ और ३ दृष्ट कल्पना करनेसे नवम नियमके अनुसार ऐसा क्षेत्र बनेगा—



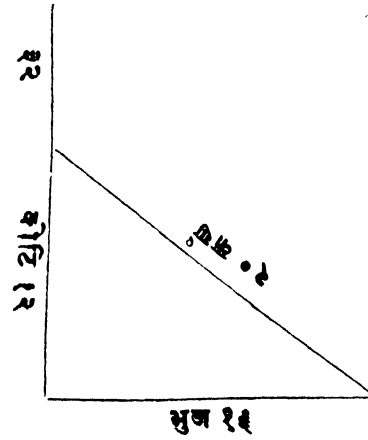
प्रक्रिया—२ और ३ दृष्टराशिके घात ६को दुगना-नेसे १२ होता है। यही कोटि है। दृष्टराशियोंका वर्गान्तर ५ है। यह भुज हुआ। फिर दृष्टराशिद्वयका १३ वर्गयोग क्षेत्रका कर्ण होता है।

प्रथम नियमके अनुसार इसका कोटिभुज लेकर प्रक्रिया करनेसे भी दूसरी बात नहीं। द्वितीयादि नियमोंमें भी ऐसा ही समझना चाहिये। दृष्टकी कल्पनाके अनुसार इस नियममें विभिन्न क्षेत्र बनते हैं। किन्तु दो समान राशियोंकी दृष्ट मान नहीं सकते। वैसा करनेसे कर्ण शून्य हो जाता है।

भुजका परिमाण और कोटि तथा कर्णका योगफल समझा रहनेसे कोटि और कर्ण पृथक् करनेका उपाय यह है—

१०वां नियम—भुजके वर्गसे कोटि और कर्णके योगफलकी भाग करनेसे जो लब्ध पाता, वह कोटि और कर्णके योगफलमें मिलाया जाता है। इसीका आधा कर्ण एवं लब्धको कोटि तथा कर्णके योगफलसे घटाने पर जो बचेगा, उसका आधा कोटिका परिमाण ठहराएगा।

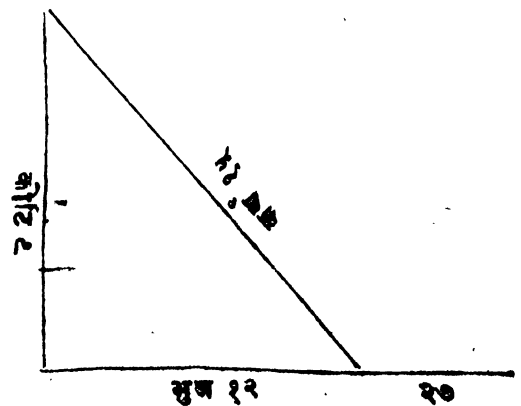
उदाहरण—जिसकी कोटि और कर्णका योगफल ३२ और भुजका परिमाण १६ है, उसकी कोटि और कर्णको पृथक् रूपसे निर्देश करो।



प्रक्रिया—भुज १६के वर्ग २५६को कोटि और कर्णके योगफल ३२से बांटने पर ८ लब्ध होगा। ८ लब्ध कोटि और कर्णके योगफल ३२में मिलानेसे ४० पाता है। इसका अर्ध २० कर्ण है। एवं लब्ध ८को कोटि और कर्णके योगफल ३२से अन्तर करने पर २४ अवशिष्ट रहेगा। इसका अर्ध १२ कोटि है।

कोटिका परिमाण और भुज तथा कर्णका योगफल मालूम रहनेसे भुज तथा कर्ण अलग करनेका उपाय आगे लिखते हैं।

एकादश नियम—कोटिके वर्गको भुज और कर्णके योगफलसे भाग करने पर जो लब्ध होगा, उसको भुज तथा कर्णके योगफलसे घटाना पड़ेगा। फिर जो बाकी बचेगा, उसका अर्ध भुज ठहराएगा। भुज और कर्णके योगफलसे भुज अन्तर करने पर जो अवशिष्ट रहेगा, उसीकी विहान् कर्णका परिमाण कहते हैं।



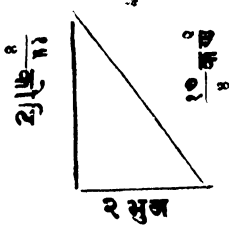
उदाहरण—जिस क्षेत्र के भुज और कर्ण का योगफल २७ और कोटिका परिमाण ८ है। उसके भुज और कर्ण को अलग अलग करके बताओ।

प्रक्रिया—कोटि ८ के वर्ग ८१ को भुज और कर्ण के योगफल २७ से भाग करने पर ३ लब्ध हुआ। फिर कोटि और कर्ण के योगफल २७ से ३ लब्ध निकाल डालने से २४ अवशिष्ट रहता है। इसका आधा १२ कर्ण हुआ। भुज १२ योगफल २७ से घटाने पर १५ बचता है। यही उक्त क्षेत्र का कर्ण है।

कोटि तथा कर्ण का अन्तर और भुज समान रहने से कोटि और कर्ण का परिमाण इस उपाय में ठहराते हैं—

बारहवां नियम—भुज के वर्ग को कोटि तथा कर्ण के अन्तर द्वारा भाग करने से जो लब्ध आयेगा उसको कोटि और कर्ण के अन्तर में मिलाने से निकलने वाले फल का अर्ध कर्ण कहलायेगा। फिर लब्ध को कोटि तथा कर्ण के अन्तर से घटाने पर जो बचता, वही भुज का परिमाण ठहरता है।

उदाहरण—जिस क्षेत्र की कोटि और कर्ण का अन्तर $\frac{1}{2}$ तथा भुज परिमाण २ है, उसकी कोटि और कर्ण को निर्देश करो।



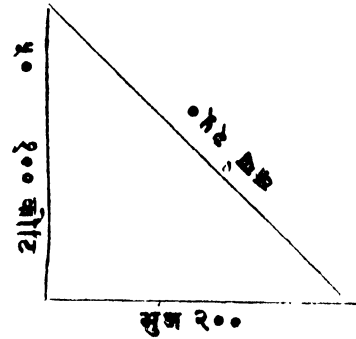
प्रक्रिया—अद्वितीय क्षेत्र के २ भुज के वर्ग ४ को कोटि और कर्ण के अन्तर $\frac{1}{2}$ से भाग करने पर ८ फल होता है। इससे कोटि और कर्ण का अन्तर $\frac{1}{2}$ निकाल डालने पर $\frac{15}{2}$ फल मिलता है। इसका अर्ध $\frac{15}{4}$ उक्त क्षेत्र की कोटि हुई। और भागफल ८ के साथ $\frac{1}{2}$ योग करने से $\frac{17}{2}$ फल आता है। इसका अर्ध $\frac{17}{4}$ उक्त क्षेत्र का वर्ग है।

भुज परिमाण और कोटिका कियदंश ज्ञात होने

और कोटिका अज्ञात अंश और भुज के योगफल के समान कर्ण रहने से कोटि के अज्ञात अंश जानने का यह उपाय है—

तेरहवां नियम—कोटि के ज्ञात अंश को भुज परिमाण द्वारा गुण करके जो फल मिलेगा, उसको भुज परिमाण के साथ मिले कोटि के ज्ञात द्विगुण अंश से भाग करना चाहिये। इससे जो जो लब्ध होगा, वह कोटि का अविदित अंश ठहरेगा।

उदाहरण—जिस क्षेत्र की कोटि के कियदंश का परिमाण १००, भुज का परिमाण २०० और कर्ण का परिमाण कोटि के अविदित अंश तथा भुज के समान है, उसकी कोटि का अविदित अंश कितना है।



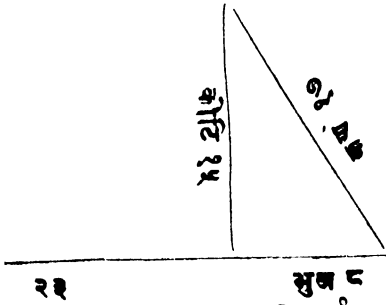
प्रक्रिया—कोटि के ज्ञात अंश १०० को २०० भुज से गुण करने पर २०००० होता है। फिर कोटि का ज्ञात अंश १०० दूना करने पर २०० हो गया। इसमें २०० भुज मिलाने से ४०० फल आता है। इससे पूर्व स्थापित २०००० को घटाने पर ५० लब्ध निकलता है। अतएव त्रयोदश नियम के अनुसार कोटि का अविदित अंश ५० ठहरा। फिर भुज और इस अंश का योग २५० कर्ण होता है।

कर्ण का परिमाण और भुज तथा कोटिका योगफल मालूम रहने से भुज और कोटि अलग अलग करने का यह उपाय है—

चतुर्दश नियम—कर्ण के वर्ग को द्विगुणित करके उससे भुज और कोटि के योग का वर्ग विधोक्त करना चाहिये। जो अवशिष्ट रहता, उसका वर्ग मूल भुज और कोटि के योगफल में मिलता है। इससे जो फल निकलता, उसका अर्ध कर्ण उक्त क्षेत्र की कोटि ठहराते हैं।

रता है। इसी प्रकार भुज और कोटिके योगफलसे उक्त वर्गमूलको अन्तरित करने पर जो बच जाता, उसका आधा भुज कहलाता है।

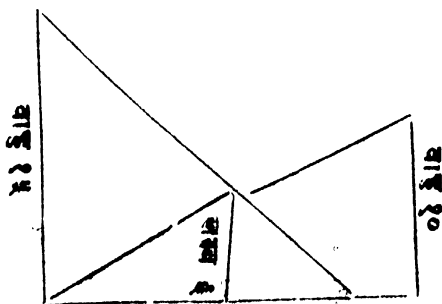
उदाहरण—जिस क्षेत्रके कर्ण का परिमाण १७ और भुज तथा कोटिका योगफल २३ है, उसके भुज और कोटिको पृथक् करो।



प्रक्रिया—जब १७के वर्ग २८९को द्विगुण करनेसे ५७८ हुआ। इससे भुज और कोटिके योगफल २३का वर्ग ५२९ घटाने पर ४८ अवशिष्ट रहेगा। इसके वर्गमूल ७को भुज और कोटिके योगफल २३के साथ योग करने पर ३० आयीगा। इसका अर्ध १५ उक्त क्षेत्रकी कोटि है। एवं वर्गमूल ७को भुज और कोटिके योगफल २३से घटाने पर १६ अवशिष्ट रहेगा। इसका आधा ८ उक्त क्षेत्रका भुज है।

क्षेत्रका लम्ब निश्चालनेका उपाय—किसी चतुष्कोण क्षेत्रके मध्य एककोणान्तरित २ रेखायें अर्थात् २ कर्ण अंकित करनेसे जिस स्थान पर दोनों रेखायें परस्पर मिलतीं, उसी स्थानसे बाहु पर्यन्त खींची जानेवाली एक सरल रेखाका नाम लम्ब है। लीलावतीमें उसके परिमाणको खिर करनेका उपाय इस प्रकारसे लिखा है—

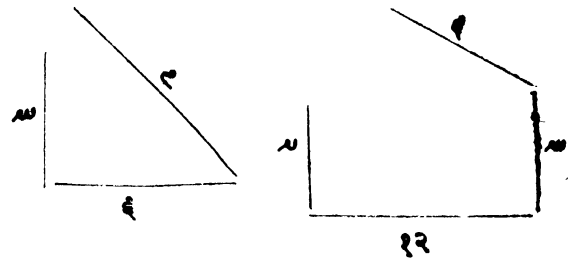
पन्द्रहवां नियम—विपरीत बाहुद्वयके घातको उनके योगफल द्वारा हरण करने पर जो लब्ध होता, वही उस क्षेत्रका लम्ब है।



उदाहरण—जिस क्षेत्रका एक बाहु १५ और दूसरा बाहु १० है, उसका लम्ब कितना होगा?

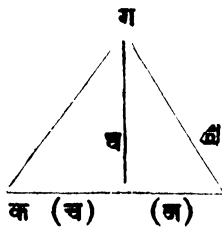
प्रक्रिया—अंकित क्षेत्रमें बाहुद्वयके घात २५० को उनके योगफल २५से भाग देने पर ६ फल होगा। अतएव ६वें नियमके अनुसार इस क्षेत्रका लम्ब ६ निकला।

त्रिकोण वा चतुष्कोण क्षेत्र २ बाहुओंके योगफलसे और कोई एक बाहु लङ्घ्य अथवा समान होनेसे अनुपपन्न क्षेत्र कहलाता है। गणितके अनुसार इस प्रकारका क्षेत्र नहीं होता और भुजपरिमाणकी सरल शलाका द्वारा भी देख पड़ता कि उसके सरल बाहु मिलनेसे क्षेत्र नहीं बन सकता।



अंकित चतुर्भुजके १२ बाहुसे अपर दो बाहुओंका योगफल ८, ८ या ५ भव्य आता है। अतएव यह क्षेत्र अनुपपन्न क्षेत्र है अर्थात् ऐसे चार बाहु मिलनेसे चतुर्सीमावद्ध क्षेत्र नहीं बनता। अंकित बाहु अपने ३ और ६ का योगफल अपर बाहु ८के बराबर रहनेसे अंकित त्रिभुज भी अनुपपन्न क्षेत्र है।

त्रिभुज—आत्मलक्ष्यमें जो ३ बाहुओंका नाम यथाक्रम भुज, कोटि और कर्ण रखा गया है, त्रिभुजमें उसका कोई नियम नहीं। दृष्टानुसार किसी एक बाहुकी भूमि और अपर दोको भुज कहा जा सकता है। त्रिभुजमें जिसकी भूमि कल्पना करते, उसको छोड़ कर अपर दो बाहुओंके द्वारा उत्पन्न कोणसे भूमि पर्यन्त खींची जानेवाली सरलरेखाको ही उक्त त्रिभुजका लम्ब कहते हैं। यह लम्ब भूमिके साथ मिश्रित होकर उसको दो भागोंमें विभक्त करता है। भूमिके यह दोनों खण्ड भुजद्वयकी आवाधायें कहलाते हैं। जो आवाधा जिस बाहुको निकटवर्ती रहती, वह उसकी आवाधा ठहरती है।

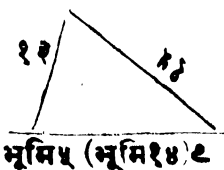


अंकित क्षेत्र क, ख और ग तीन भुज रङ्गनेसे त्रिभुज कहलाता है। इच्छानुसार क वाहु इस क्षेत्रकी मही मान लिया गया है। ख और ग वाहुओंके योगसे जो कोण निकला है उससे भूमि क रेखापर्यन्त घ सरल रेखा खिंची है। यही घ रेखा त्रिभुजका लम्ब है। इस घ रेखाने भूमिकी दो टुकड़े करके घ और ज दो आवाधायें बनायी हैं। इनमें घ खण्ड ग वाहुकी आवाधा और ज खण्ड ख वाहुकी आवाधा है। आवाधाके अनुसार लम्ब और लम्बके अनुसार त्रिभुजका क्षेत्रफल निर्णीत होता है।

त्रिभुज क्षेत्रकी आवाधाओंकी निर्णय करनेका उपाय—

सोतहवां नियम—त्रिभुज क्षेत्रके भुजद्वयका योगफल दोनोंके अन्तरसे गुण करना चाहिये। गुणफलकी भूमिपरिमाण द्वारा भाग करनेसे जो लम्ब आता, वह भूमिके साथ मिलाया जाता है। योगफलका अर्ध ही लक्ष्य वाहुकी आवाधा है। फिर लम्बकी भूमिसे अन्तरित करने पर जो अवशिष्ट रहता, उसीका आधा दूसरे वाहुकी आवाधा होती है।

उदाहरण—जिस त्रिभुजक्षेत्रकी भूमिका परिमाण १४ और दूसरे दोनों भुजाओंका परिमाण १३ तथा १५ है, उसकी आवाधायें स्थिर करो।



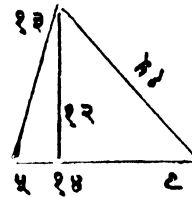
प्रक्रिया—अंकित क्षेत्रके भुजद्वय १३ और १५ हैं। इनके योगफल २८की इन्हींके २ अन्तरसे गुण करने पर ५६ फल हुआ। इसकी भूमि १४से भाग करने पर ४ लम्ब आता है। भूमि १४में ४ लम्ब मिला देनेसे १८ फल निकलेगा। इसका अर्ध ९ है। अतएव लक्ष्य

नियमके अनुसार लक्ष्य वाहुकी आवाधा ९ हुई और १४ भूमिसे ४ लम्ब निकाल डालने पर १० बचता है। इसका आधा ५ अर्ध वाहुकी आवाधा है।

लम्ब निर्णय करनेका उपाय यों बताया गया है—

सतहवां नियम—भुजके वर्गसे लीय आवाधाका वर्ग घटा देने पर जो बचेगा, उसका वर्गमूल अपने क्षेत्रका लम्ब ठहरेगा।

उदाहरण—पूर्वोक्त क्षेत्रका लम्ब स्थिर करो।



प्रक्रिया—वाहु १३के वर्ग १६९से आवाधा ५का वर्ग २५ घटाने पर १४४ अवशिष्ट रहता है। इसका वर्गमूल १२ है। अतएव १२वें नियमके अनुसार १२ लम्ब हुआ। वाहु १५ और आवाधा ९ द्वारा भी जिसाब लगाने पर लम्बा १२ होता है।

जिस स्थल पर लम्ब भूमिसे घटाया नहीं जा सकता उस स्थल पर नष्टगत आवाधा होती है।

त्रिभुजके क्षेत्रफलकी निर्णय करनेका उपाय।

अक्षरहवां नियम—भूमिके अर्धको लम्ब द्वारा गुण करने पर जो फल निकलेगा, वही त्रिभुजका क्षेत्रफल ठहरेगा।

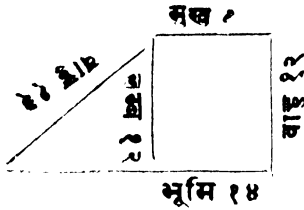
उदाहरण—पूर्वोक्त त्रिभुजका क्षेत्रफल कितना है?

प्रक्रिया—भूमि १४का अर्ध ७ है। इसकी लम्ब १२से गुण करने पर ८४ फल निकलता है। अतएव १८वें नियमके अनुसार क्षेत्रफल ८४ आता है।

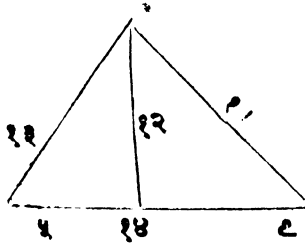
चतुर्भुजक्षेत्रके अस्फुटफल और त्रिभुजके स्फुटफल ज्ञानका उपाय।

तृतीयवां नियम—त्रिभुज वा चतुर्भुजके सकल वाहुओंके योगफलको २से भाग करने पर जो लम्ब हो, उसको ४ स्थानोंमें स्थापन करना चाहिये। फिर उसमें पृथक्पृथक् भुज अन्तरित करने पर जो अवशिष्ट रहेगा, उसकी छातका वर्गमूल चतुर्भुजक्षेत्रका अस्फुटफल और त्रिभुजका स्फुटफल ठहरेगा।

उदाहरण—जिस चतुर्भुज क्षेत्र की भूमि १४, मुख ८, बाहु १२ और १२ और लम्ब १२, उसका अस्फुटफल कितना होगा।



१८वें नियमके अनुसार प्रक्रिया करने पर १४१ अस्फुटफल निकलेगा स्फुट पीछे प्रदर्शित होगा।
द्वितीय उदाहरण—पूर्व प्रदर्शित त्रिभुजका क्षेत्रफल स्थिर करो।



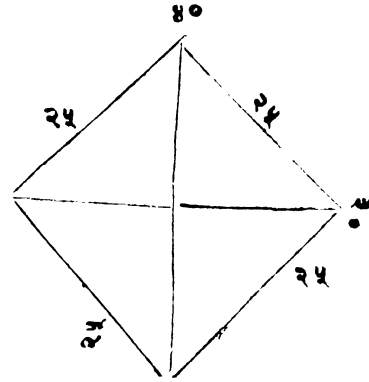
प्रक्रिया—बाहुल्यका योगफल ४२ है। इसकी २मे बांटने पर २१ फल मिलता है। इसकी चार जगह रख कर भुजलव निकाल डालने पर ८, ६, ७ और २१ अवशिष्ट रहता है। इनका घात $७ \times ६ \times ७ \times २१ = ७०५६$ है। इसका वर्गमूल ८४ आता है। अतएव १८वें नियमके अनुसार ८४ फल हुआ। १८वें नियमसे प्रक्रिया करने पर भी ८४ ही फल निकलेगा।
उदाहरण नियम देखो।

समचतुर्भुजके सूक्ष्मफल निरूपण करनेका उपाय।

बोसर्वा नियम—समचतुर्भुज क्षेत्रमें इच्छानुसार एक कर्ण कल्पना करना चाहिये। फिर भुजवग को ४ द्वारा गुण करने पर जो लब्ध आता, वह कल्पित कर्णके वर्गसे घटाया जाता है। इसमें जो बचता, उसका वर्गमूल दूसरे कर्णका परिमाण ठहरता है। इसी प्रकार कर्णद्वयको स्थिर करके उनके घात की २मे बांटने पर जो लब्ध हो, उसीको समचतुर्भुज क्षेत्र

का स्फुटफल समझना चाहिये। इस प्रकारके स्थान पर प्रथम कर्णको भुजके द्विगुणसे अधिक कल्पना नहीं करते।

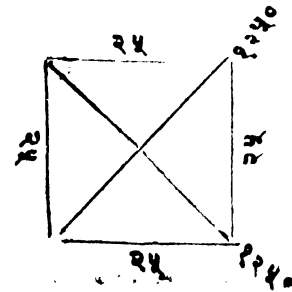
उदाहरण—जिस समचतुर्भुज क्षेत्रके प्रत्येक बाहुका परिमाण २५ है, उसके कर्णद्वयको स्थिर करके क्षेत्रफल निकालो।



प्रक्रिया—अंकित क्षेत्रका प्रथम कर्ण इच्छानुसार ३० मान लिया गया है। कर्ण ३०का वर्ग ९०० है। भुज २५के वर्ग ६२५को ४से गुण करने पर २५०० फल होता है। इससे कल्पित कर्णका वर्ग ९०० निकालने पर १६०० बचेगा। इसका वर्गमूल ४० है। अतएव द्वितीय कर्ण ४० हुआ। दोनों कर्णोंका घात १२०० है। इसको २से भाग करने पर ६०० फल मिलता है। अतएव २०वें नियमके अनुसार क्षेत्रफल ६०० है।

इसीसर्वा नियम—समचतुर्भुज क्षेत्रके दोनों कर्ण समान रहनेसे बाहुद्वयका गुणफल ही क्षेत्रफल होता है।

उदाहरण—पूर्वप्रदर्शित चतुर्भुजके समान कर्ण और क्षेत्रफलको स्थिर करो।



प्रक्रिया—प्रथम नियमके अनुसार प्रक्रिया करने

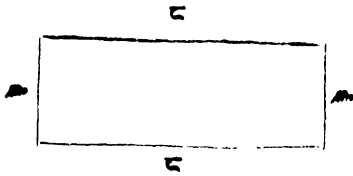
* चतुर्भुज भुजकी भूमि और भूमिके समुदायित भुजकी मुख कहते हैं। (सुनोवर)

पर कर्षण्यका परिमाण करणीगत १२५० होमा। भूज-
हयका घात ६२५ है। अतएव खेलफल भी ६२५ ही
होगा।

आयत चतुर्भुजके फल निरूपण करनेका उपाय।

चौबीसवां नियम—आयत चतुर्भुजके एक आयत
बाहु अर्थात् देव्यको लम्ब बाहु विस्तृतिद्वारा गुण
करने पर जो फल पाये, वही खेलफल हो जायेगा।

उदाहरण—जिस आयत चतुर्भुजके आयत बाहु-
का परिमाण ८ और विस्तृति ६ है, उसका खेलफल
क्या होगा ?

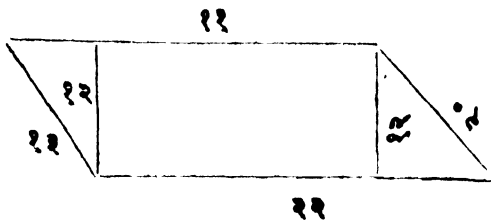


आयत बाहु वा देव्य ८को विस्तृति ६से गुण
करने पर ४८ फल आता है। अतएव २२वें नियमके
अनुसार खेलफल ४८ हो गया।

विषमचतुर्भुजके खेलफल स्थिर करनेका उपाय।

तीसवां नियम—विषमचतुर्भुज खेलके लम्ब
बराबर रहनेसे सुख और भूमिके योगफलको २से
भाग करने पर जो लम्ब हो, उसका लम्बद्वारा गुण
करना चाहिये। इसका फल ही खेलफल होगा।

उदाहरण—उस विषमचतुर्भुज खेलका खेलफल
स्थिर करो, जिसका सुख ११, भूमि २२, लम्ब १२ और
बाहुद्वय १३ तथा २० हो।



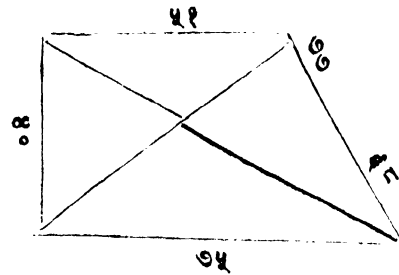
प्रक्रिया—सुख ११ और भूमि २२के योगफल
३३को २से भाग करने पर $\frac{३३}{२}$ और इसको लम्ब १२से
गुण करने पर $१६५ (\frac{३३}{२} \times १२ = १६५)$ फल होता है।
अतएव २३वें नियमसे खेलफल १६५ निकला। तीन

खेल मानके हिसाब लगा कर देखनेसे भी यही फल
आता है।

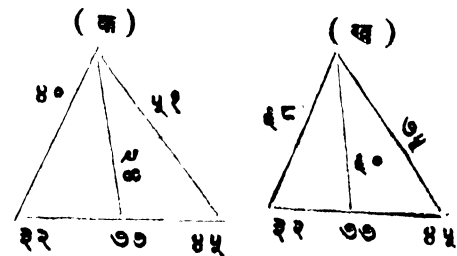
विषमचतुर्भुजके फल स्थिर करनेका उपाय।

चौबीसवां नियम—विषमचतुर्भुजका कर्ण स्थिर
करके उसकी भूमि मान लेने पर दो त्रिभुज बनेंगे।
इन दोनों त्रिभुजोंका खेलफल मिलानेसे जो आता,
वही विषमचतुर्भुज खेलका फल हो जाता है।

उदाहरण—जिस विषमचतुर्भुजके चारो बाहु
यथाक्रम ४०, ५१, ६८ और ७५ हैं; उसका खेलफल
कितना कितना होगा ?



पूर्वप्रदर्शित २०वें नियमके अनुसार लङ्घ्य कर्ण-
को ७७ कल्पना करने पर अथवा कर्ण ८५ होगा।
फिर प्रथम कर्ण ७७की भूमि मान लेनेसे २ त्रिभुज
उत्पन्न होते हैं—

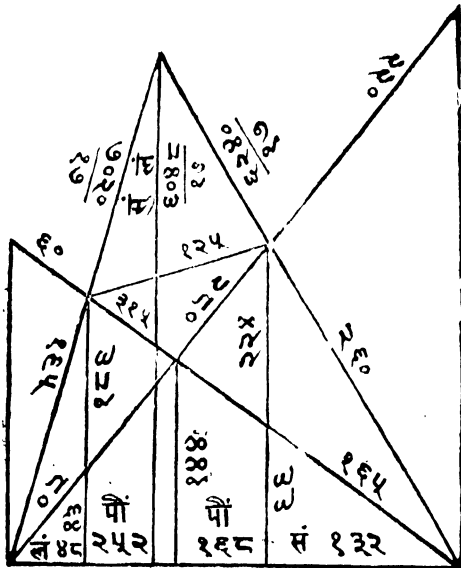


क त्रिभुजका भूमि ७७ और बाहुद्वय ४० तथा
५१ है। चौदह नियमसे प्रक्रिया करने पर आवाधार
३२ और ४५ निकलेंगे। आवाधार स्थिर करके १७वें
नियमसे हिसाब लगाने पर लम्ब २४ पड़ता है। लम्ब
निकल आने पर अष्टादश नियमके अनुसार खेलफल
८२४ होगा। ख त्रिभुजकी भूमि ७७ और बाहुद्वय
६८ तथा ७५ है। १६वें नियमसे इसकी आवाधारें ३२
और ४५ हुईं। फिर १७वें नियमसे हिसाब लगाने
पर लम्ब ६० पायेगा। अन्तको १८वें नियमसे खेल-
फल २३१० ठहरता है। क त्रिभुजके फल ८२४के साथ

जो लिभुजका फल २२१० योग करने पर २२२४ फल होता है। अतएव २४वें नियममें सेलफल २२२४ निकलता है।

सूचीक्षेत्र—विषमचतुर्भुज क्षेत्रके सुखलब्ध वाहु-द्वयका अग्रभाग सरलभावसे बटाने पर उत्पन्न होने-वाला त्रिभुज सूची कहलाता है। (सुनोहर)

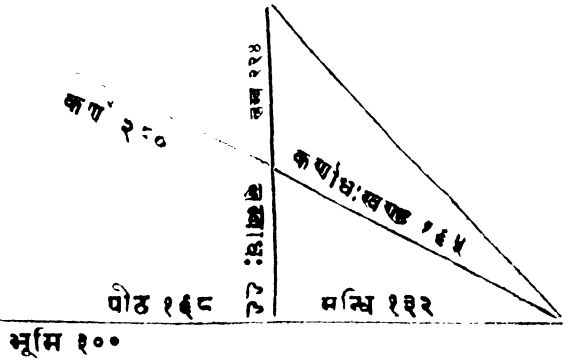
उदाहरण—उस विषमचतुर्भुज क्षेत्रका अंकित करो, जिसकी भूमि ३००, वाहुद्वयका परिमाण २६० तथा १८५, सुख १२५, कर्णोंका परिमाण २८० एवं ३१५ और लम्बद्वयका परिमाण १८८ और २२४ है। प्रथम प्रश्न—इस क्षेत्रमें कर्ण और लम्बके योगस्थानसे भूमि पर्यन्त अंशोंका परिमाण कितना है? द्वितीय प्रश्न—जिस स्थानमें दोनों कर्ण मिले हैं, वहांसे भूमि पर्यन्त एक लम्ब खींचने पर उसका परिमाण और उसके योगसे बननेवाली दो आवाधाओंका परिमाण क्या होगा? तृतीय प्रश्न—इस क्षेत्रके भुजद्वयका सुखलब्ध अग्रभाग सरलभावमें वर्धित करने पर जो सूची क्षेत्र बनेगा; उसके लम्ब, आवाधा और भुजद्वयका परिमाण क्या लगेगा?



पञ्चीसवां नियम—जिस लम्बके अधःखण्डको निरूपण करते, उस लम्ब और तदाश्रित बाहुके वर्गा-न्तर मूलको उसके सन्धि कहलाता और भूमिको सन्धि द्वारा हीन करने पर जो अवशिष्ट रहता उसको पीठ

कहलाता है। सन्धिको दो स्थानोंमें स्थापन करके एकको अपर लम्ब और दूसरेको कर्ण द्वारा गुण करना चाहिये। इसमें प्रथमको पीठसे भाग करने पर जो आता वही लम्बका अधःखण्ड हो जाता है। फिर दूसरेको कर्ण द्वारा बाँटने पर कर्णका अधःखण्ड निकलता है।

उक्त क्षेत्रके २८० कर्ण और २२४ लम्बका अधः-खण्ड यह है—



प्रक्रिया—लम्ब २२४ और तदाश्रित बाहु २६० है। इनका वर्गान्तर १७४२४ और उसका वर्गमूल १३२ होता है। अतएव सन्धि हुई १३२। भूमि ३००से सन्धि १३२ अन्तरित करने पर १६८ अवशिष्ट रहता है। यही पीठ हो गया। सन्धि १३२को पर लम्ब १८८ द्वारा गुण करके पीठसे बाँटने पर ८८ फल निकलेगा वही लम्बका अधःखण्ड है। सन्धि १३२को पर कर्ण ३१५ द्वारा गुण करके पीठ द्वारा भाग करनेसे १६५ फल निकलेगा यही कर्णका अधःखण्ड है। इन द्विसावसे द्वितीय लम्बका सन्धि ४८, पीठ २५२, लम्बका अधः-खण्ड ६४ और कर्णका अधःखण्ड ८० होगा।

छब्बीसवां नियम—उभय लम्बोंको भूमि द्वारा पक्षग पक्षग गुण करना चाहिये। गुणफलको ल ल पीठ द्वारा भाग करने पर दो राशि लम्ब बनें। इन दोनों राशियोंको दो बाहु मानके १५वें नियमसे प्रक्रिया करने पर दूसरे सवाकक्षा जवाब आ जायेगा।

प्रक्रिया—१८८ और २२४ दोनों लम्बोंको भूमि ३००से गुण करने पर ५६७०० तथा ६७२०० फल निकलेगा। इन दोनों राशियोंको अपने अपने पीठ द्वारा भाग करने पर २२५ और ४०० लम्ब होगा। इन दोनों राशियोंको दो बाहु कल्पना करके १५वें नियमके

अनुसार प्रक्रिया करने पर लब्ध १४४ और आवाधाये १०८ तथा १८२ पड़ेंगे।

सप्ताहसर्वा नियम—स्त्रीय सन्धिको पर लब्ध द्वारा गुण करके लब्ध द्वारा बाँटने पर जो लब्ध पायेगा, वह सम कटकायेगा। सम और पर सन्धिके योगफलको हार कहते हैं। सम और पर सन्धिको पृथक् रूपमें भूमि द्वारा गुण करके हारसे बाँटने पर दो राशि निकलेंगी। वही सूचीकी आवाधाये होगी। परलब्धको भूमि द्वारा गुण करके हारसे बाँटने पर जो लब्ध होता, वही सूचीका लब्ध है। भुजइयको सूचीके लब्ध द्वारा भाग करनेसे पानेवाले लब्ध सूचीके भुज होते हैं।

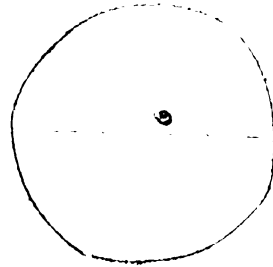
प्रक्रिया—प्रदर्शित सूचीखेतका एक लब्ध २२४ और उसका सन्धि ११२ है। ११२ सन्धिको परलब्ध १८८से गुण करके २२४ लब्ध द्वारा भाग देने पर $\frac{१८८}{२२४}$ लब्ध आगा। यही सम है। इसमें परसन्धि ४८

मिला दे पर $\frac{१८८}{२२४}$ फल निकलेगा। इसीका नाम हार है। सम $\frac{१८८}{२२४}$ को भूमि ३००से गुण करने पर $\frac{१८८ \times ३००}{२२४}$ फल आगा। इसको हार $\frac{१८८}{२२४}$ से भाग करने पर $\frac{१८८ \times ३००}{२२४}$ फल निकलता है। परसन्धि ४८को भूमि ३००से गुण करने पर $\frac{४८ \times ३००}{२२४}$ फल लगता है। इसको हार $\frac{१८८}{२२४}$ से बाँटने पर $\frac{४८ \times ३००}{२२४}$ फल पायेगा। अतएव सूचीकी आवाधाये $\frac{१८८}{२२४}$ और $\frac{४८ \times ३००}{२२४}$ हो गयीं। इस नियमसे प्रक्रिया करने पर द्वितीय सम $\frac{४८}{२२४}$ और द्वितीय हार $\frac{१८८}{२२४}$ होगी। सम परसन्धिको भूमि ३००से गुण करके हार द्वारा भाग देने पर भी सूचीकी आवाधाये $\frac{४८}{२२४}$ और $\frac{१८८}{२२४}$ होती हैं। परलब्ध २२४ को भूमि ३००से गुण करके हार $\frac{४८}{२२४}$ द्वारा भाग देनेसे $\frac{४८ \times ३००}{२२४}$ फल लगता है। अतएव सूचीका लब्ध $\frac{४८ \times ३००}{२२४}$ हो गया। भुज १८५ और २६०को सूची लब्ध $\frac{४८ \times ३००}{२२४}$ द्वारा गुण करके यथाक्रम लब्ध १८८ और २२४ द्वारा भाग करने पर $\frac{१८८}{२२४}$ और $\frac{२२४}{२२४}$ फल आता है। अतएव ३०० नियमके अनुसार सूचीके भुज $\frac{१८८}{२२४}$ और $\frac{२२४}{२२४}$ हो गये।

व्यासके परिमाण ठहरानेका उपाय।

सप्ताहसर्वा नियम—व्यासके परिमाणको ३८२० द्वारा गुण करके १२५०से भाग देनेसे जो लब्ध रहता, वही सूक्ष्म परिधि ठहरता है। व्यासके परिमाणको २२से गुण करके ७से बाँटने पर जो कुछ लब्ध आता वही परिधिका सूक्ष्म परिमाण माना जाता है। सूक्ष्म परिमाणके अनुसार ही कार्य किया करते हैं।

उदाहरण—जिस वृत्तखेतके व्यासका परिमाण ७ है, उसके सूक्ष्म और सूक्ष्म परिधि-परिमाणको स्थिर करो।

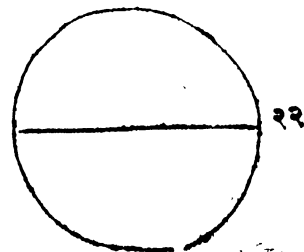


प्रक्रिया—वृद्धित वृत्तखेतके व्यास ७को ३८२०से गुण करने पर २७४८८ फल होता है। इसको १२५०से भाग करने पर $२२ \frac{१९९८}{१२५०}$ लब्ध निकलता है। अतएव २८० नियमसे इस खेतका सूक्ष्म परिधि $२२ \frac{१९९८}{१२५०}$ ठहर गया। व्यास ७को २२से गुण करने पर १५४ फल होगा। इसको ७से बाँटने पर लब्ध २२ आता है। इस लिये सूक्ष्म परिधि २२ है।

परिधिके परिमाण अनुसार व्यास स्थिर करनेका उपाय।

सप्ताहसर्वा नियम—परिधिके परिमाणको १२५०से गुण करके ३८२०से भाग देने पर जो लब्ध होता, वही व्यासका सूक्ष्म परिमाण है। फिर ७ द्वारा गुण करके २२से भाग देने पर सूक्ष्म परिमाण रूप फल मिलता है।

उदाहरण—जिस वृत्तका परिधि २२ है, उसके व्यासका सूक्ष्म और सूक्ष्म परिमाण क्या होगा?



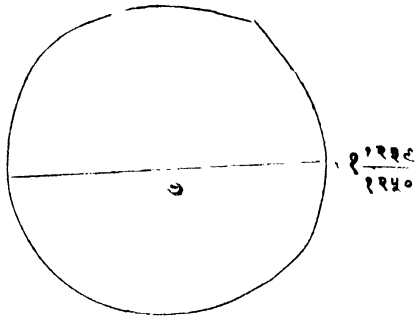
प्रक्रिया—परिधि २२को १२५०से गुण करने पर ७५२०० फल होता है। इसको ३८२७से भाग करने पर ७ $\frac{११}{३८२७}$ फल निकलेगा। अतएव व्यासका सूक्ष्म परिमाण

७ $\frac{११}{३८२७}$ हो गया। फिर परिधि २२को ७से गुण करने पर १५४ फल आता है। इसमें २२का भाग लगानेसे ७ फल मिलेगा। अतएव स्थूल परिमाण ७ है।

वृत्तक्षेत्रके फल निकलनेका उपाय।

तीसवां नियम—वृत्तक्षेत्रके व्यासको ४से भाग करने पर जो लब्ध होगा, वह परिधिसे गुण किया जावेगा। फिर यह गुणनफल ही वृत्तक्षेत्रका फल ठहरेगा।

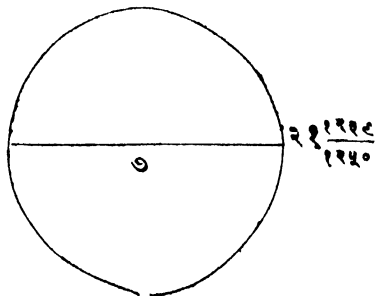
उदाहरण—जिस वृत्तका व्यास परिमाण और परिधि २१ $\frac{१२२८}{१२५०}$ है, उसका क्षेत्रफल क्या होगा ?



प्रक्रिया—व्यास ७को ४से भाग देने पर १ $\frac{७}{४}$ लब्ध हुआ। इसको परिधि २१ $\frac{१२२८}{१२५०}$ से गुण करने पर ३८ $\frac{२४२७}{५०००}$ फल आता है। अतएव वृत्तका फल ३८ $\frac{२४२७}{५०००}$ हो गया।

गोलके पृष्ठफलका निर्णय।

इकतीसवां नियम—३०वें नियमके अनुसार वृत्तका फल स्थिर करके उसको ४से गुण करने पर जा पायेगा, वही गोलपृष्ठका फल कहलावेगा।



उदाहरण—जिस गोलका परिधि २१ $\frac{१२२८}{१२५०}$ और व्यास ७ है, उसका पृष्ठफल स्थिर करो।

प्रक्रिया—३०वें नियमके अनुसार प्रक्रिया करने

पर क्षेत्रफल ३८ $\frac{२४२७}{५०००}$ होता है। इसको ४से गुण करने पर गोलपृष्ठफल १५३ $\frac{११०७}{१२५००}$ पावेगा।

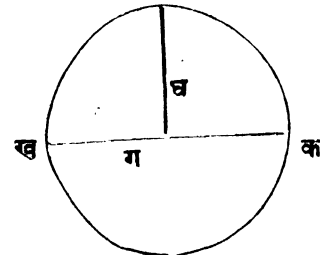
गोलात्मगत घनफल निर्णय।

बत्तीसवां नियम—गोलके पृष्ठफलको व्यास द्वारा गुण करनेसे जो फल पावे, उसको ६से बांट देना चाहिये। इसमें जो लब्ध आता, वही गोलात्मगत घनफल कहलाता है।

उदाहरण—पूर्व उक्त गोलका घनफल स्थिर करो।

प्रक्रिया—३१वें नियमसे हिमाव लगाने पर गोलका पृष्ठफल १५३ $\frac{११०७}{१२५००}$ होता है। इसको व्याससे गुण करके ६से भाग देने पर गोलका घनफल १७८ $\frac{१४८७}{२५००}$ निकलेगा।

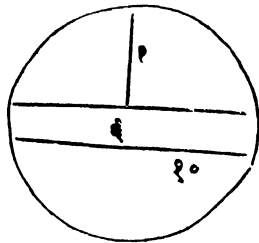
परिधिका धनुषक आकार जैसा एक देश चाप कहलाता है। चापके एक अग्रभागसे अपर अग्रपर्यन्त जो सरलरेखा खींचते, उसको ज्या कहते हैं। चापके मध्यसे ज्याके मध्य तक जानेवाली सरल रेखाका नाम शर है। (संज्ञा)



प्रकृत वृत्तके परिधिका क से ख पर्यन्त अंश चाप कहला सकता है। चापके अग्रभाग क से ख पर्यन्त सरल रेखा खिंची है। इसका नाम ज्या है। एवं चापके बीचसे ग रेखा तक की सरल रेखा शरी है, उसको शर कहते हैं।

तीसवां नियम—ज्या और व्यासके योगफलको उन्हींके अन्तरसे गुण करने पर जो लब्ध हो, उसके वर्ग मूलको व्याससे घटा देना चाहिये। इससे जो बचता वही अर्ध शरका परिमाण ठहरता है। व्याससे शर विटोम करके अवशिष्टकी शर द्वारा गुण करते हैं। इस गुणफलका वर्गमूल दुगना देनेसे ज्या निकलेगी। ज्याको २से बांटने पर जो लब्ध होता, उसके वर्गको शर द्वारा भाग किया जाता है। फिर लब्धके साथ शर योग करनेसे व्यास बनेगा।

उदाहरण—जिस वृत्तक्षत्रका व्यास १० और ज्या ६ हो, उसका शरपरिमाण निर्णय करो।



प्रक्रिया—व्यास १० और ज्या ६ का योगफल १६ है। इसके अन्तर ४ से योगफलको गुण करने पर ६४ फल होता है। इसका वर्ग मूल ८ व्याससे अन्तरित करने पर २ अवशिष्ट रहैगा। उसका अर्ध १ शर है।

उदाहरण—जिस वृत्तका शर १ और व्यास १० है, उसकी ज्याका परिमाण स्थिर करो।

व्यास १० से शर १ घटाने पर ९ बचता है। इसको शर १ से गुण करने पर भी ९ ही फल होगा। उसके वर्ग मूल ३ को द्विगुण करे पर ६ आता है। सुतरां क्षत्रकी ज्याका परिमाण ६ है।

उदाहरण—किसी वृत्तका शर १ और ज्या ६ रहने से उसके व्यासका क्या परिमाण ठहरैगा ?

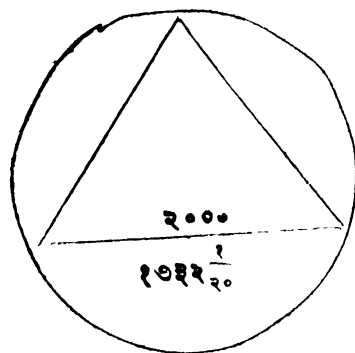
ज्या ६ को दो भाग करनेसे फल ३ निकलता है। इसके वर्ग ९ में शर १ मिलानेसे फल १० ही जायेगा। अतएव व्यासका परिमाण १० ठहरा। व्यास देखो।

वृत्तक्षेत्रके मध्यवर्ती समबाहु त्रिभुजसे नवभुज पर्यन्त क्षेत्रके भुज परिमाण निकालनेका उपाय।

चौतीसवा नियम—वृत्तके व्यासको १०३८२३, ८४८५३, ७०५३४, ६००००, ५२०५५, ४५८२२ और ४१०३१ से अलग अलग गुण करके १२०००० द्वारा भाग देने पर क्रमशः त्रिभुजसे नवभुज तक भुजपरिमाण समझ सकते हैं।

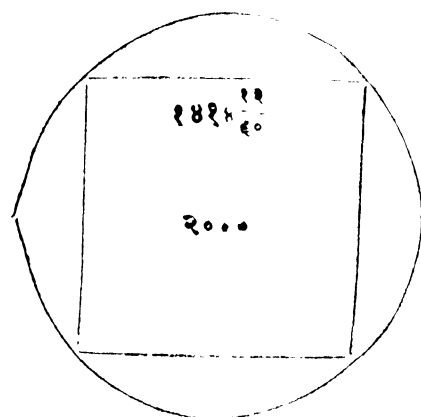
उदाहरण—जिस वृत्तके व्यासका परिमाण २००० है, उसके बीचमें बने त्रिभुजसे नवभुज पर्यन्त भुजोंका परिमाण निर्णय करो। प्रत्येक भुज परिधि-संलग्न होगी।

त्रिभुज



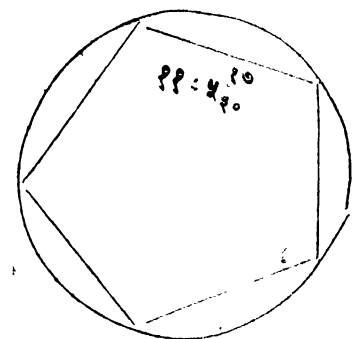
व्यास २००० को १०३८२३ से गुण करने पर फल २०७८४६००० होता है। इसको १२०००० से भाग करने पर प्रत्येक भुजका परिमाण १७३२ $\frac{१}{२०}$ निकलेगा।

चतुर्भुज



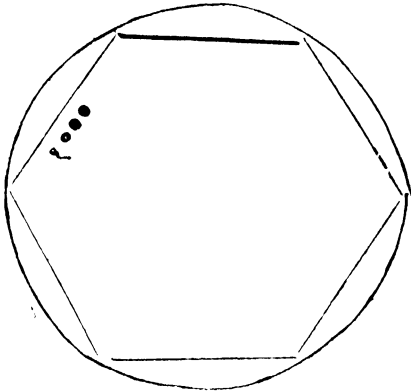
व्यास २००० को ८४८५३ से गुण करने पर फल १६८७०६००० होता है। इसको १२०००० द्वारा भाग करने पर अक्षित चतुर्भुजके प्रत्येक बाहुका परिमाण १४१४ $\frac{११}{६०}$ होगा।

पञ्चभुज



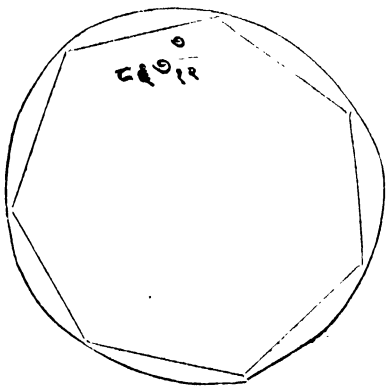
व्यास २००० को ७०५३४ द्वारा गुण करने पर १४१०६८००० फल हुआ। इसको १२०००० से भाग करने पर बाहुका परिमाण ११७५ $\frac{१०}{२०}$ आता है।

षष्ठभुज



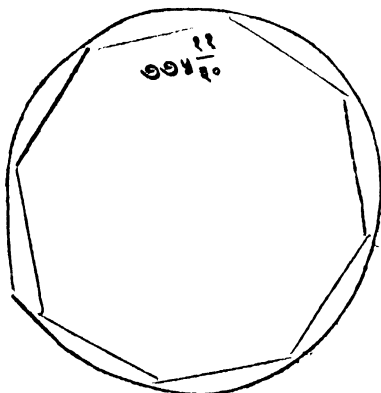
व्यास २००० को ६००० द्वारा गुण करनेसे फल १२०००००० होता है। इसको १२०००० से बांटने पर प्रत्येक भुजका परिमाण १००० पड़ेगा।

सप्तभुज



व्यास २००० को ५२०५५ द्वारा पूरण करने पर १०४१०००० फल निकला। इसको १२००० से भाग करने पर भुजका परिमाण ८६७ $\frac{१२}{१२}$ आवेगा।

अष्टभुज



व्यास २००० को ४५८८२ द्वारा गुण करके १२००० से भाग देने पर भुजफल ७७५ $\frac{११}{१०}$ होता है।

नवभुज

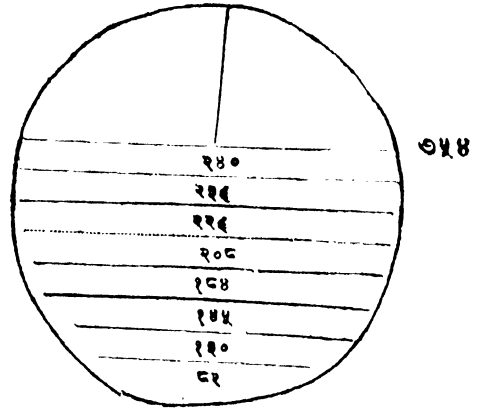


व्यास २००० को ४१०३१ द्वारा गुण करके गुणफलको १२००० से बांटने पर प्रत्येक भुजका परिमाण ६८३ $\frac{१०}{१०}$ होगा।

खूल जा निरूपण करनेका उपाय।

पैतीसवां नियम—परिधिसे चाप अन्तरित करके अर्वाशिष्टको चाप द्वारा पूरण करने पर जो फल आता वह प्रथम कहलाता है। परिधिके वर्गको ४ से बांटने पर जो लब्ध हो, उसको ५ से पूरण करना चाहिये। फिर गुणफलसे प्रथम घटाने पर जो अवशिष्ट रहेगा, उसमें चतुर्गुणित व्यास द्वारा प्रथमको गुण करने पर और राशि होगी यही ज्याका खूलपरिमाण है।

उदाहरण—जिस वृत्तका परिधि ७५४ और व्यास २४० हो, उसकी ८ ज्याओंका परिमाण खिर करो।



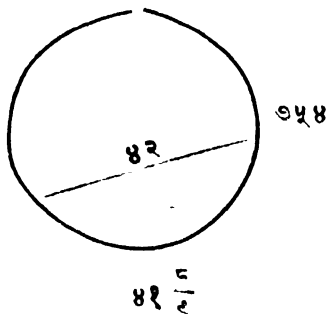
४२

प्रक्रिया ४१ $\frac{१}{२}$ को १ से ८ तक पृथक् गुण करने पर आनेवाले ८ राशि ही ८ चापोंका परिमाण है। अतएव १५वें नियमके अनुसार ज्याओंका खूल परिमाण यथाक्रम ४२, ८२, १२०, १५४, १८४, २०८, २२६, २४० आता है।

ज्याके परिमाण अनुसार चापके परिमाणका निर्णय।

हत्तीसवां नियम—आसको ४ द्वारा पूरण करके ज्वामें मिलाके रखना चाहिये। फिर परिधिके वर्गको ज्याके चतुर्थींश और ५ में पूरण करते हैं। गुणफलको पूर्वस्थापित राशि द्वारा भाग करने पर जो लब्ध होता वह परिधिवर्गके चतुर्थींशसे घटाया जाता है। फिर जो अवशिष्ट रहता, उसके वर्गमूलको परिधिके अर्धमें अन्तर्हित करना पड़ता है। अवशिष्टको चापका परिमाण समझना चाहिये।

उदाहरण—पूर्वाक्त क्षेत्रकी ज्याके अनुसार चापका परिमाण स्थिर करो।



इसमें ३६वें नियमसे चापका परिमाण $४१\frac{५}{८}$ होगा।

इसको २ प्रभृति द्वारा गुण करने पर द्वितीयादि चापों का परिमाण स्थिर होगा।

क्षेत्रसम्भव (सं० पु०) क्षेत्रे सम्भवति उत्पद्यते, क्षेत्र-सं-भू-भव । १ चक्षुःश्रुत, एक मल्ली । २ भेदनाम श्रुत, भिण्डीका पेड़ । (त्रि०) ३ भूमिजात, खेतसे पैदा ।

क्षेत्रसम्भवा (सं० स्त्री०) क्षेत्रसम्भव-टाप् । शशाङ्कजी, कहेलिया ।

क्षेत्रसम्भूत (सं० पु०) क्षेत्रे सम्भूतः, ७-तत् । १ कुन्दरुक्षण, कुंदरु । (त्रि०) २ भूमिजात, जमीनसे पैदा ।

क्षेत्रसाति (सं० स्त्री०) क्षेत्रस्य सातिः, ६-तत् । भूमि-भजन, क्षेत्रका आश्रय । (अक ७१८१)

क्षेत्रसाधाः (वै० त्रि०) क्षेत्रं साधयति, क्षेत्र-साधि-असुन् । क्षेत्रसाधक, यज्ञनिष्पादक । (अक ८१११४)

क्षेत्रसिंह—चित्तर अधिपति महाराणा हमीरके पुत्र। हमीरके साथ मालदेवकी एक विधवा कन्याका विवाह हुआ था। वहींके गर्भसे इन्होंने जन्म लिया। हमीर देखो।

यह पिताके मृत्यु पीछे १४२१ संवत्की चित्तो (के सिंह)सन पर बैठे थे। पिताकी भांति क्षेत्रसिंह भी एक विजय, दक्ष और वीरपुरुष रहे। राज्याभिषेकके अल्पकाल पर ही इन्होंने लीलापत्तनसे अजमेर और

जहाजपुर तक करतलगत कर लिया था। फिर मण्डलगढ़, दशपुर और समस्त चम्पन प्रदेश मेवाड़का अधीनस्थ हो गया। कहते हैं—वीरवर क्षेत्रसिंहने बाकरोल नामक स्थानमें दिल्लीके बादशाह हुमायुं तुगलकी पराजय किया था।

यन्त्रोपयोगे एक द्वारवंशीय सामन्तसे इनका विवाद हुआ था। उन्ही अन्तर्विवादमें (प्रायः १३०८ संवत्की) वीरगण्डी क्षेत्रसिंहने इन्हें लोको परित्याग किया।

क्षेत्रसमा (सं० स्त्री०) क्षेत्रस्य भूमेः सीमा मर्यादा, ६-तत् । अङ्गार, तुष वा वृक्ष आदिसं विहित भूमि-सीमा, खेत या जमीनकी हद्द । सीमाविवाद देखो।

क्षेत्रजोव (सं० त्रि०) क्षेत्रेण तदुत्पन्नखादिना आनोयति जोविका निर्वाहयति, आ-जोव कर्तरि अच् । क्षेत्रजोवो, कृषक, किसान, खेतसे जीने वाला ।

क्षेत्राधिदेवता (सं० स्त्री०) क्षेत्रस्य अधिदेवता, ६-तत् । सिद्धस्थान वा तीर्थस्थानकी अधिष्ठात्री देवता। इन देवताका नाम जो योग करके लेना चाहिये।

“देवं गुरुं गुरुस्थानं क्षेत्रं क्षेत्राधिदेवताम्।

सिद्धं सिद्धाधिकारार्थं और्ष्वं समुदोयेत्॥” (प्रयोगसार)

क्षेत्राधिप (सं० पु०) क्षेत्रस्य अधिपः, ६-तत् । १ भेषप्रभृति हादश राशिके अधिपति ग्रह । क्षेत्र देखो। २ क्षेत्र-स्वामी, खेतका मालिक ।

क्षेत्रामलकी (सं० स्त्री०) क्षेत्रजाता आमलकी, मध्वपदलो० । १ भूरा-मलकी, भुरई प्रांजला । २ सुवल्ली । क्षेत्रिदास, चविदास देखो।

क्षेत्रिय (सं० स्त्री०) १ शाक, सब्जी । २ घास । ३ पर-देह-चिकित्सा, दूसरे जिसका इलाज । (पु०) पर-क्षेत्र चिकित्सा, परक्षेत्रस्य क्षेत्रियच् आदेशः । क्षेत्रियच परचेत चिकित्सा । पा ५१२८१ । ४ अन्य शरीरमें चिकित्सायोग्य राग, जिस बीमारो का इलाज दूसरे शरीरमें हो सके । (त्रि०) क्षेत्र-घः । ५ क्षेत्रस्वामी, खेतवाला । ६ पर-दाररत, झिजरा ।

क्षेत्री (सं० पु०) क्षेत्रं स्त्री अस्त्वस्य, क्षेत्र-इनि । १ स्वामी, खाविन्द । (नग २१२) (त्रि०) २ कृषक, किसान ।

क्षेत्रीकरण (सं० स्त्री०) रसायन प्रयोगके योग्य बनाने का देहका पञ्चकर्मादिसं विगुहिकरण ।

क्षेत्रेष्ठु (सं० पु०) चेतने इक्षुरिव । यावनालधान्य,
ज्वार, मकई, जौहरी, जून्ही । २ शिखीधान्यभेद ।

क्षेत्रापेक्ष (सं० पु०) खफल्क के पुत्र । (भागवत. ६.१४।१६)

क्षप (सं० पु०) क्षिप्-वञ् । १ निम्दा, हिकारत, बुराई ।

“क्षेपं करोति वेदस्यापमानार्थोदगम्” (याज्ञवल्क्य १.२००)

२ विक्षेप, ठोकर । ३ प्रेरण, पहुँचावा । ४ लेपन,

लगाव, लिपवाई । ५ छेला । ६ लङ्घन, फकाकगो ।

७ गर्व, घमण्ड । ८ विलम्ब, देर । ९ गुच्छ, गुच्छा ।

(मेघदूत ४८) १० क्षिप्यमाण, फेंका जानेवाला ।

क्षेपक (सं० त्रि०) क्षिप्-ण्वल् । क्षेपणकर्ता, फेंकने-

वाला । (पु०) क्षेप स्वार्थे कन् । २ ग्रन्थमध्य पलित

पाठ, किसी किताबमें ऊपरसे मिखाया हुआ पाठ ।

३ गुच्छ, गुच्छा । ४ अङ्गविशेष, एक अदद ।

क्षेपण (सं० स्त्री०) क्षिप्-ण्वल् । १ लङ्घन, फकाकशी ।

२ अपवाद, बदनामी । ३ मारण, कत्ल । ४ विक्षेप ।

५ यापन, गुजर, गुजारा, बिताव । “आयुषः क्षेपणार्थं तु दातव्यं

स्त्रीधनं सदा” (शारीत) ६ रज्जुनिर्मित एकप्रकार शिक्छ,

रस्सीका बना हुआ एक सिकहर । इससे प्रस्तर प्रभृति

दूरदेशको भेजे जाते हैं । (भागवत १।१८।१८) ७ परित्याग,

छोड़, छोड़ाई । “उपाकर्मणि चोत्सर्गे विरागं क्षेपणं कृतम्” ।

(मनु ४।११८)

८ मर्जीका युद्धकौशलविशेष, पहलवानों की कुशली-

का एक पेंच, झटका ।

क्षेपणि (सं० स्त्री०) क्षिप् बाहुलकात् अनि वा ङीप् ।

१ नोकादण्ड, डांड, बत्ती । २ जालविशेष, एक फन्द ।

३ क्षेपणीय अस्त्रविशेष, फेंक कर मारा जानेवाला

हथियार । (रामायण ६।७।१४)

क्षेपणिक (सं० पु०) डांड चलावेवाला, जो बत्तीसे

नाव खेता हो ।

क्षेपणी (सं० स्त्री०) बन्दूककी गोली, गुला, ङीला

बगैरह । यह प्रक्षिप्त होनेसे वक्रपथमें गमन करती

है । क्षेपणि देखो ।

क्षेपणीय (सं० त्रि०) क्षिप्-णनीयर् । १ क्षेपणयोग्य,

फेंकने लायक । (पु०) २ दोष तथा हङ्गत् फलयुक्त

खड्ग, लम्बे और बड़े फलकी तलवार । इसका पर्याय

भिन्दिपाल है ।

क्षेपदिन (सं० स्त्री०) विंशति अंशयुक्त क्षयदण्ड । अङ्क-
गण स्थिर करनको इसका प्रयोजन पड़ता है ।

(सिद्धान्तशिरोमणि, गणितोपध्याय)

क्षेपपात (सं० पु०) यहकक्षा और क्रान्तिमण्डलका

योग । (गोलाध्याय)

क्षेपिमा (सं० पु०) क्षिप्रस्य भावः, क्षिप्र-इमनिच् अका-

रस्य च लोपः गुणश्च । इत्यादिमा इमनिच् वा । पा ३।१।१२२ ।

क्षिप्रत्व, शीघ्रता, फरती, जलदो ।

क्षेपिष्ठ (सं० स्त्री०) अतिशयेन क्षिप्रः, क्षिप्र-इष्ठन् अका-

रस्य रेफस्य च लोपः गुणश्च । खल्लदूरयुवकलक्षिप्रश्चद्वार्त्ता

अदिपरं पूर्वस्य च गुणः । पा ६।४।१५६ । अतिशय शीघ्र, निहायत

तेज या जलदवाज ।

क्षेपियान् (सं० त्रि०) अतिशयेन क्षिप्रः, क्षिप्र-ईयसुन्

प्रववत् साधुः । अतिशय क्षिप्र, बहुत तेज ।

क्षेप्तव्य (सं० त्रि०) क्षिप्-तव्य । क्षेपणके योग्य, फ का

जानेवाला ।

क्षेप्ता (सं० त्रि०) क्षिपति, क्षिप् कर्तरि लृच् । क्षेपण-

कारी, फेंकनेवाला । (रामायण ४।१।८४)

क्षेम (सं० पु०-स्त्री०) क्षि-मन् । १ चौर नाम गन्धद्रव्य,

चोरा । २ चण्डा नामक औषध । ३ कलिङ्गदेशको कोई

राजा । (भारत १।६।७।६५) ४ चन्द्रवंशीय शुचि राजाके

पुत्र । (भागवत ८.२१।७०) ५ शान्तिके गर्भमें धर्मके

औरससे उत्पन्न पुत्र । (विष्णुपुराण १।७।२८) ६ लम्बवस्तुका

रक्षण, मिली हुई चीजकी डिफाजत । (वाजसनेयब्रह्म

१८।७) ७ प्रवक्षीपका एक वर्ष । प्रवक्षीप देखो । ८ कोई

मठ । ९ मुक्ति, नजात, कुटकारा । १० कुशल, मङ्गल,

खैर आफियत । ११ ज्योतिःशास्त्रमें जन्मनक्षत्रसे गण-

नाका चतुर्थ नक्षत्र । यह नक्षत्र शुभ और शुभकार्यमें

प्रयुक्त है । १२ कोई सम्बन्ध । (त्रि०) १३ मङ्गलबुल,

भला ।

क्षेमक (सं० पु०) क्षेम स्वार्थे कन् । १ चौरनाम गन्ध-

द्रव्य, चोरा । २ कोई नाग । (भारत १।१५।११) ३ पाण्डु-

वंशीय शेष राजा । इनके पीछे ही पाण्डुवंशका

लोप हो गया । (भागवत ८।२१।७२) ४ शिव । ५ कोई

राक्षस । यह राक्षस वाराणसीमें रहता था । (हरिवंश

२८ अध्याय) ६ प्रवक्षीपका एक वर्ष । (विष्णुपुराण ४।१।७१)

क्षेमकर (सं० त्रि०) क्षेमं करोति, क्ष-अच् । मङ्गल-
कारक, भलाई करनेवाला । (भारत १४।३५।३०)

क्षेमकर्ण—१. अर्जुनके पौत्र और जनमेजयके सहचर ।
अवध प्रदेशमें प्रवाद है कि उन्होंने खेरी जिलेका खेरी
नगर स्थापन किया था । खेरी देखो ।

२. कोई सङ्गीतशास्त्रविद् । यह महेशपाठकके
पुत्र रहे । इन्होंने १५७० ई०की रागमाला नामक एक
सङ्गीतशास्त्र रचा था ।

क्षेमकर्मा (सं० त्रि०) क्षेमं मङ्गलजनकं पालनरूपं कर्म
येवाम्, बहुव्री० । पालनेवाला । (भागवत २।६।६)

क्षेमकल्याण, चमकल्याण देखो ।

क्षेमकाम (सं० त्रि०) क्षेमं मङ्गलं कामयति, क्षेमकामि-
अण् उपपदसं० । शुभाकांक्षी, खेरखाह । (अक १०।८४।१२)

क्षेमकार (सं० त्रि०) क्षेमं करोति, क्षेम-क्ष-अण् । मङ्गल-
कारक, भलाई करनेवाला । (भट्टि ५।७०)

क्षेमकृत् (सं० त्रि०) क्षेमं करोति, क्षेम-क्ष-कृप् । मङ्गल-
कारक, भलाई करनेवाला ।

“दुर्लभं प्राकृतं वाक्च दुर्लभः क्षेमकृत् सुतः ।

दुर्लभा सहस्रे भार्या दुर्लभः स्वजनः प्रियः ॥” (चाचक्य ५४)

क्षेमगुप्त (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा । यह अति-
शय दुश्चरित्थे । काश्मीर देखो ।

क्षेमहर (सं० त्रि०) क्षेमं करोति, क्षेम-क्ष-अच् ।
क्षेमविध्वंसक, अथवा १।१।१४।४४ । १. मङ्गलकारक, भलाई करने-
वाला । पर्याय—परिहृणाति, शिवताति, शिवहर,
क्षेममार, मङ्गहर, शुभहर । (पु०) २. बुद्धमेद ।
३. कोई संस्कृत ग्रन्थकार । इन्होंने निर्णयसार और
सारस्वतप्रक्रियाटीकाको रचना किया । ४. सिंहासन-
हार्तिशतिका नामक संस्कृत ग्रन्थरचयिता । इन्होंने
उक्त ग्रन्थ सिंहासनवत्तीसीकी मूल मराठी भाषासे
संस्कृतमें अनुवाद किया ।

क्षेमहरा (सं० स्त्री०) १. देवीविशेष, कोई देवता ।

“क्षेमान् देवेषु सा देवी कृत्वा दैत्यपतेः अयम् ।

क्षेमहरी त्रिवेनीका पूजा लोके भविष्यति ॥” (देवीपुराण ५०. च०)

२. शङ्करचिन्ती, सफेद गलेकी एक चीज । तान्त्रिक
मतमें इसकी देखके नमस्कार करनेका विधान है ।
नमस्कारका मन्त्र है—

“कुङ्कुमाक्षयसर्वाङ्गि । कुन्दं नुधवलानने ।

नक्षत्रांसप्रिये देवि क्षेमहरि नमोऽस्तु ते ॥

क्षेमहरि मङ्गाचष्टे सुक्तकेणि । वलिप्रिये ।

कुलाचारप्रसन्नास्ते नमस्ते शङ्करप्रिये ॥” (तन्त्रसार)

क्षेमजय—प्रबोधचन्द्रोदय नामक संस्कृत वेद्यक ग्रन्थ
रचयिता ।

क्षेमजित् (सं० पु०) मगधदेशीय एक राजा । इन्होंने
३६ वर्ष मगधमें राजत्व किया । यह क्षेमार्चि नामसे
प्रसिद्ध थे । मगध देखो ।

क्षेमतर (सं० त्रि०) अतिशयन क्षेमः । अतिशय हित-
कर, बहुत भलाई । (गोता १।४५)

क्षेमदर्शी (सं० त्रि०) क्षेमं द्रष्टुं शीलमस्य, क्षेम-द्रश्-
णिनि । १. मङ्गलदर्शी, भलाईकी देखनेवाला । (पु०)
२. चन्द्रवंशीय कोई राजा । इन्होंने कालकवक्षीयके
निकट योग सीखा था । (भारत १।१८।१६)

क्षेमधन्वा (सं० पु०) क्षेमं सत्वरक्षणपटु धनुर्यस्य,
बहुव्री० । १. पुण्डरीकके पुत्र सूर्यवंशीय कोई राजा ।
(हरिवंश १५।१७) २. सावर्णं मनुके पञ्चम पुत्र । (हरिवंश
४।८४) ३. षड्गुणा देवीभक्त मण्डनगोत्रीय कोई राजा ।
यह गविष्मके पुत्र थे । (सत्पाद्रिचक्ष १।११।१५६)

क्षेमधर्मा (सं० पु०) क्षेमः हितकरः धर्मी व्यव-
हारो यस्य, बहुव्री० । एक राजा । यह शिशुनागवंशीय
काकवर्णके पुत्र थे । (विष्णुपुराण ४।१४)

क्षेमधारी—अत्रिगोत्रीय एक राजा । यह वागीश्वरी-
देवीके भक्त और गांधिके पुत्र थे । (सत्पाद्रिचक्ष १।११।१३)

क्षेमधूर्त (सं० पु०) एक जनपद, कोई मुक्त । यह
कूर्म विभागकी उत्तरदिक्की अवस्थित है ।

(मार्कण्डेयपुराण ५८।४७)

क्षेमधूर्ति (सं० पु०) एकजन राजा । यह भारतयुद्ध-
में दुर्योधनके पक्ष पर थे और महातेजस्वी बृहत्क्षेत्रके
साथ घोरतर युद्ध करके निहत हुए । (भारत ७।१००. च०)

क्षेमधृत्वा (सं० पु०) पौण्डरीकका नामान्तर ।

(पञ्चविंशब्राह्मण)

क्षेममन्दनाथ—सौभाग्यकल्पलता नाम तान्त्रिक ग्रन्थके
रचयिता ।

क्षेमपाल—क्रौञ्चिन्धुगोत्रीय एक राजा । यह कालिका-

के भक्त और सुतन्त्रक पुत्र थे। (सहाद्विषय १२१/२२)
शे मफला (सं० स्त्री०) क्षेत्र में फलं यस्य, बहुव्री० ततः
टाप्। उदुस्वरक्ष, गूलरका पेड़।
शे ममूर्ति (सं० पु०) करुष देशके एक राजा।

(भारत १६७ प०)

शे मराज (सं० पु०) एक कश्चपगोत्रीय कामाक्षीदेवी-
भक्त राजा। ऐरावतके देशमें इनका जन्म हुआ था।
इनके पुत्रका नाम दारि रखा। (सहाद्विषय १२१/२२)
२ शे मवती नगरीके प्रतिष्ठाता। चे मवती देखो। ३ काश्मीर
निवासी एक प्रसिद्ध ग्रन्थकार। इनको लोग राजानक
शे मराज कहते थे। यह विख्यात दार्शनिक अभिनव-
गुप्तके शिष्य रहे। इनके रचित अनेक संस्कृत ग्रन्थ
मिलते हैं। उनमें यह कई एक प्रधान हैं—नेत्रोद्योत
(तन्त्र), भैरवानुकरणस्तोत्र, वर्णादितन्त्र, शिवस्तोत्र,
स्यन्दनिर्णय, स्यन्दसन्दोह और स्वच्छन्दोद्योत। सिवा
इसके अभिनवगुप्तरचित ईश्वरप्रत्यभिज्ञासूत्रविमर्शिनी
की 'प्रत्यभिज्ञाहृदय' नाम्नी टीका, अभिनवगुप्त रचित
परमार्थसारकी 'परमार्थसारसंग्रहनिष्ठति', उत्पलदेव
रचित परमेशस्तोत्रावलीकी विवृति, वसुगुप्तरचित शिव-
सूत्रकी 'शिवसूत्रविमर्शिनी' टीका, साय्यपञ्चाशिका-
टीका और नारायणरचित सूत्रचिन्तामणिकी टीका
भी पायी जाती है। यह ग्रन्थ ई० एकादश शताब्दीके
प्रारम्भमें लिखित हुए।

४ कोई संस्कृत ग्रन्थकार। साधारणतः यह शे म-
शर्मा कहलाते थे। इनके पिताका नाम नरवैद्य मन्मथ
रखा। इन्होंने संस्कृत भाषामें शे मकुतुहल और विकि-
त्तासारसंग्रह नामक वैद्यकग्रन्थ रचना किये।

शे मराजपुर—युक्तप्रान्तीय बसती जिलेके अमरोहा परग-
नेका एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २६° ५६' ७०
और देशा० ८२° २३' पूर्वमें अवस्थित है। घघरा नदीके
कुक्षमें रामघाट या बलुवाबाजारसे उत्तर-पूर्व शे मराज-
पुर ५॥ कोस पड़ता है। यहां T जैसी आकृतिका
एक ऋद है। पुरातन बौद्धरूपका भग्नावशेष भी देख
पड़ता है। पायर और चासोजपुरकी देखनेसे मालूम
होता कि दोनों ग्राम पुरातन भग्नावशेष पर ही बनाये
गये हैं। सम्भवतः पूर्वार्द्ध ऋदके उत्तर-पूर्व और दक्षिण-

दिक्की प्राचीन शे मवती नगरी अवस्थित रही। शे म-
राजपुरसे दक्षिण मवानवान नामक दो छुद्र ग्राम हैं।
शे मराजपुरकी पश्चिम और दक्षिणदिक्की मनोरा वा
मनोरमा नदी प्रवाहित है।

शे मराम—एक स्मृतिशास्त्रसंग्रहकार। इनकी रचित
प्रेतमुक्तिदा, रामनिबन्ध और आहपद्धति मिलती
है।

शे मवती—एक प्राचीन नगरी। बौद्धोंके ग्रन्थमें लिखा है
कि क्रकुच्छन्द बुद्ध मेखलराज क्षेत्रके कुलपुरोद्भूत थे।
“ममबुद्धस्तोत्र” में इसी मेखलाका नाम शे मवती लिखा
गया है। क्रकुच्छन्द देखो। बहुतसे लोगोंकी विश्वास है कि
वही शे मवती आजकल शे मराजपुर-जंमो कहला
सकती है। शे मवतीका थोड़ा अंश आधुनिक शे मराज-
पुर और कुछ भाग पायर तथा चासोजपुर नामक
ग्रामोंके मध्य अवस्थित था। शे मराजपुर देखो।

शे मवान् (सं० लि०) शे मं मङ्गलं अस्यास्ति, शे म
अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। मङ्गलयुक्त, भला, अच्छा।

शे मवृद्धि (सं० लि०) शे मस्य वृद्धिमस्त्यस्य, शे मवृद्ध-
इति। पतिशय मङ्गलयुक्त, बहुत भला या अच्छा।
शे मशर्मा, शे मराज देखो।

शे मसामन्त भोंसले—बम्बई-प्रान्तीय सावन्तवाडीके
एक सामन्त। इन्होंने निज बाहुबल पर सावन्तवाडी
प्रदेश सुसज्जमानोंके हाथसे उधार किया था। १६२७से
१६४० ई० तक इनका राजत्व रहा। मरने पीछे इनके
पुत्र लक्ष्मण सामन्त राजा हुये। १६६५ ई०को
लक्ष्मणने इहलोक परित्याग किया था। फिर उनके
पुत्र फन्द सामन्त राजसिंहासन पर बैठे। १० वर्ष
राजत्व करके वह भी परलोकवासी हुए और २५
शे मसामन्त राजा बने। शिवजीके पौत्र साङ्गने उन्हें
सालसी तहसीलका थोड़ा अंश दिया था। फिर १७५५
ई०को इसी वंशके ३५ शे मसामन्तने सिंहासनारो-
हण किया था। इन्होंने १७६३ ई०को जयाजी सेंधिया-
की कन्या लक्ष्मीबाईको व्याह लिया। दिल्लीके बाद-
शाहने इन्हें राजाका उपाधि दिया था। कोरहापुरके
सामन्तने ईर्ष्यापरवश हा सामन्तवाडी आक्रमण
करके कई एक पार्वतीय दुर्ग अधिकार किये। परन्तु

संधियाने मध्यस्थ बन किले वापस दिलाये थे। ३५
क्षेमसामन्त एक असाधारण वीर रहे। जलपथमें भी
उनकी दस्युवृत्ति चलती थी। इससे अंगरेज और
पोर्तगोज उनके शत्रु हो गये। स्थलपथमें कोल्हापुर-
राज और पेशवाके साथ युद्ध लगा था। एक ही साथ
जमीन और समुद्र दोनों जगह लड़ाई होती रही।
१८०३ ई० की ३५ क्षेमसामन्तका मृत्यु हुआ। उनके
सन्तानादि न थे। पत्नी लक्ष्मीबाईने ही राजकाय
परिचालन किया। लक्ष्मीबाईने प्रथमतः रामचन्द्र
सामन्त (भाऊ साहब) और उनके मरने पर फुन्द
सामन्तकी अपना पोष्यपुत्र बनाया था। इन्हीं फुन्द
सामन्तके पुत्र ४४ क्षेमसामन्त रहे। इन्होंने वस्त्रके
वयसमें राज्यभार प्राप्त हुआ। परन्तु राज्यामें नाना-
प्रकार विभ्रान्त बढनेसे ४४ क्षेमसामन्तने १८३८ ई०
की बृटिश गवर्नमेण्टके ऊपर राजभार डाल दिया।
क्षेमसंगणि—कालिदासरचित मिथदूतका एक टीका-
कार। यह जैनधर्मावलम्बी थे।

क्षेमा (सं० स्त्री०) क्षेम-टाप्। १ देवीमूर्तिविशेष,
कात्यायनी।

“निर्लिङ्गे पूजयेत् च मां सर्वकामफलप्रदाम्” (देवीपुराण ४७५०)

२ कोई अप्सरा। (भारत १।२१।५२)

क्षेमाधि (सं० पु०) मिथिलारान चित्ररथके पुत्र।

(भागवत २।१।२२)

क्षेमानन्द—१ कोई संस्कृत ग्रन्थकार। यह इष्टिकापुर-
निवासी रघुनन्दनके पुत्र थे। इन्होंने न्यायरत्नाकर और
तत्त्वसमासव्याख्याकी रचना किया।

२ कायस्थवंशीय कोई कवि। इन्होंने केतका-
दास उपाधि योगसे ‘मनसार भाषान’ नामक बंगला
पद्यग्रंथ बनाया था। उक्त पुस्तक पढ़ेसे यह वर्धमान
जिलेके वासी-जो समझ पड़ते हैं। क्षेमानन्द १४१७
शकसे पहले विद्यमान थे।

क्षेमाफला (सं० स्त्री०) क्षेमं मङ्गलकरं फलं यस्याः,
बहुव्री० पृषोदरादिवात् साधुः। उदुम्बरवृक्ष, गुलर-
का पेड़। किसी स्थल पर ‘क्षेमाफला’ पाठ भी दृष्ट
होता है।

क्षेमार्ति (सं० पु०) निमिर्वशीय सञ्जय वा संनयके
पुत्र। (विष्णुपुराण ४।५. ५०)

क्षेमासन (सं० स्त्री०) योगासनविशेष। दाहने हाथ
पर दाहना पांव रख कर बैठनेसे क्षेमासन होता है।
यह आसन लगा कर उपासना करनेसे साधक स्वर्गको
जाता है। (ब्रह्मसूत्र)

क्षेमिका (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हलदी।

क्षेमीन्द्र—कामशास्त्रप्रणीता एक प्राचीन ग्रन्थकार।

क्षेमीश्वर—एक प्राचीन संस्कृत कवि। यह कवि विजय-
कोष्ठके प्रपौत्र थे। इनका बनाया नेपथ्यानन्दकाव्य और
चण्डकौशिक नाटक मिलता है।

क्षेमेन्द्र—१ मदनमहाण्व नामक संस्कृत ज्योतिःशास्त्र-
कार। २ लोकप्रकाश नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।
इन्होंने व्यासके शिष्य-जैसा अपना परिचय दिया है। *

लोकप्रकाशमें नानाप्रकार लेखनप्रणाली और अदा-
लती कागज लिखनेकी रीति विवृत हुई है।

३ हस्तिजनप्रकाश नामक संस्कृत ग्रन्थरचयिता।
यह गुर्जरनिवासी यदुशर्माके पुत्र थे।

४ कोई ग्रन्थकार। यह राजनगरवासी नागर ब्राह्मण
थे। इनके पिताका नाम भूधर रहा। पितृवद-नरेश
शङ्करसाहबके आदेशसे क्षेमेन्द्रने संस्कृतभाषामें लिपि-
विवेक और मातृकाविवेककी रचना किया।

५ सारस्वतप्रक्रियाके कोई टीकाकार।

६ काश्मीरके कोई विख्यात कवि। इन्होंने व्यास-
दास नामसे अपना परिचय दिया है। क्षेमेन्द्र व्यासदास—काश्मीरके एक प्रसिद्ध संस्कृतकवि।
इन्होंने त्रिपुरश लखिखर पर अभ्ययहण किया था।
इनके पिताका नाम प्रकाशेन्द्र और पितामहका नाम
सिन्धु रहा। क्षेमेन्द्रने अभिनवगुप्तके निकट साहित्य
तथा अलङ्कार और भागवताचार्य सोमपादके निकट
धर्मशास्त्र अध्ययन किया। इनके उपाध्यायका नाम
गङ्गाक था।

कविवरक्षेमेन्द्रने बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ रचना किये
थे। उनमें इन ३६ पुस्तकोंका अनुसन्धान मिलता है—
अमृततरङ्ग, अवसरसार, औचित्यविचारचर्चा, कनक-

जानकी, कलाविलासकाव्य, कविकण्ठाभरण, क्षेमेन्द्र-प्रकाश, चतुर्वर्गसंग्रह, चारुचर्या, चित्रभारतनाटक, दण्डदलन, दशावतारचरित्र, दानपारिजात, देशोपदेश, नीतिकल्पतरु, नीतिलता, पद्यकादम्बरी, पवमान-पञ्चाशिका, बुधचरित, छहत्कथामञ्जरी, बोधिसत्वावदानकल्पलता, महाभारतमञ्जरी, मुक्तावलीकाव्य, मुनि-मतमौमांसा, राजावली (इतिहास), रामायणकथा-सार, ललितरत्नमाला, लावण्यवतीकाव्य, वात्स्यायन-सूत्रसार, विनयवल्ली, वेतालपञ्चविंशति, योगाष्टक, शशि-वंश, समयमाटका, सुवृत्ततिलक, सेव्यसेवकोपदेश ।

इनकी ग्रन्थावली पाठ करनेसे समझ सकते कि क्षेमेन्द्र विद्या, बुद्धि तथा पाण्डित्यमें एक असाधारण पण्डित, ऐतिहासिक और महाकवि थे । इनकी रचित समयमाटकामें काश्मीरकी तात्कालिक अवस्था अति सुन्दरभावसे चित्रित हुई है । दूसरा एक विशेषत्व यह है कि क्षेमेन्द्र निरपेक्षभावसे शैव, वैष्णव और बौद्ध ग्रन्थोंकी आलोचना कर गये हैं । इनका रचित दशावतार, मुनिमतमौमांसा और बोधिसत्वावदानकल्पलता पढ़नेसे निर्णय करना कठिन पड़ता है—क्षेमेन्द्र हिन्दू या बौद्ध थे । वास्तविक यह हिन्दू रहे और हिन्दू होते भी बौद्धशास्त्रका समादर तथा बुद्धदेवकी भगवदवतार जैसा स्वीकार करते थे ।

क्षेमेन्द्रकी बोधिसत्वावदानकल्पलता तिब्बती भोट-भाषामें अनेकवार अनुवादित हुई है । इस ग्रन्थका मूल और भोट भाषामें उसका एक प्राचीन अनुवाद (Rtogs brjod dpag hkhri Sin) कलकत्तेकी एशियाटिक सोसाइटीने कापा है ।

राजतरङ्गिणीके प्रणेता कङ्कणने पण्डित क्षेमेन्द्र-प्रणीत राजावलीका उल्लेख करके कहा है—

“क्षेमाप्यनवधानेन कविकर्मणि सत्यपि ।

अंशोऽपि नास्ति निर्दोषः क्षेमेन्द्रस्य गुणावली ॥” (१/१२)

क्षेमेन्द्र प्रकृत कवि तो थे, परन्तु अनवधानताप्रयुक्त उनकी राजावली निर्दोष नहीं । किन्तु क्षेमेन्द्र एक बहु-दर्शी और निरपेक्ष ग्रन्थकार थे । इससे उनकी असावधानी जैसा मान नहीं सकते । काश्मीरराज अगस्तके समय २५ लौकिकाब्दकी (१०५० ई०) समयमाटका

और कलशराजके राजत्वकाल ४१ लौकिकाब्दकी (१०६४ ई०) दशावतारक्षेमेन्द्रने लिखा था—

“एकाधिकान्दे विहितचत्वारिंशे स कालिके ।

राजो कलशभूतः काश्मीरेष्वप्युत्सवः ॥” (दशावतार)

इनकी ग्रन्थावली पढ़नेसे समझ पड़ता कि उन्होंने कई ग्रन्थोंकी रामयशा नामक व्यक्तिके अनुरोध और छहत्कथामञ्जरी देवधरके पादेशसे रचना की ।

क्षेय्य (सं० त्रि०) क्षेमाय साधुः, क्षेम-यत् । प्राग्वितादयत् । पा ४।४।७५। १ मङ्गलकर, हितकर, अच्छा ।

“क्षेमां शस्यप्रदां नित्यं पश्यद्विकरीमपि ।

परित्यजेत् मृगो भूमिमात्मावमविचारयन् ॥” (मनु ७।११९)

(पु०) २ एक जन राजा । यह उपायुधके पुत्र थे ।

क्षेय (सं० पु०) क्षेतुं योग्यम्, क्षि-यत् । क्षय करनेके योग्य, जो बरबाद किये जानके लायक हो ।

क्षेय्य (सं० स्त्री०) क्षायस्य भावः, क्षीण-व्यञ्ज् । क्षीणता, क्षय, बर्बादी । (राजतरङ्गिणी ५।६०)

क्षैत (वै० त्रि०) क्षितौ भवः, क्षिति-प्रण् । १ पृथिवी सम्बन्धीय, जो पृथिवीमें उत्पन्न हो । (अक् २।२०१) (पु०)

२ शुष्ककाष्ठ, सूखी लकड़ी । (अक् ६।२।१ भाष्य)

क्षैतयत (सं० पु०) ऋषिविशेष । यह शब्द पाणिनीय तिकादि गणके अन्तर्गत है ।

क्षैतवान् (वै० त्रि०) क्षैतमस्य अस्ति, क्षैत-मत्तुप्-मस्य वः ।

१ शुष्क काष्ठयुक्त, सूखी लकड़ीवाला । २ हविवाला, जिसका हविः हो । (अक् ६।२।१)

क्षैत (वै० स्त्री०) क्षेत्राणां समूहः, क्षेत्र-प्रण् । भिन्नादि-भोग्य । पा ४।२।२८। १ क्षेत्रसमूह, द्वार । २ क्षेत्र, खेत ।

(वाजसनेयसंहिता १।१।६०)

क्षेत्र (सं० स्त्री०) क्षेत्रस्य भावः, क्षेत्र-प्रण् ।

हायनात्मादयुवादिभोग्य पा ५।१।२० । क्षेत्रज्ञता, किसानी ।

क्षेत्रज्ञ (सं० स्त्री०) क्षेत्रज्ञस्य भावः, क्षेत्र-ज्ञ-व्यञ्ज् । पृथ-वचनवाङ्मनादिभ्यः कर्मणि च । पा ५।१।२२४ । क्षेत्रज्ञका भाव, क्षेत्र-ज्ञता, किसानी ।

क्षेत्रज्ञता (सं० स्त्री०) क्षेत्रज्ञस्य भावः, क्षेत्र-ज्ञ-व्यञ्ज् ।

क्षेत्रपति (सं० त्रि०) क्षेत्रपतेरपत्यम्, क्षेत्रपति-प्रण् ।

क्षेत्रपत्याविभाज्य । पा ४।१।८४ । क्षेत्रपतिका अपत्य, जमीन्दारका

लड़का । स्त्रीलिङ्गमें ङोष्-प्रानेसे क्षेत्रपती रूप होता है ।

क्षेमवृद्धि (सं० पु०-स्त्री०) क्षेमवृद्धिनोऽपत्यम्, क्षेमवृद्धि-न-

इज्ज् । वाक्कादिभ्यश्च । पा ४।१।२६ । क्षेत्रवृद्ध ऋषिके पुत्र वा
उनकी कन्या ।

शैमिक (सं० त्रि०) क्षेम-ठञ् । क्षेमसम्बन्ध द्वारा
सिद्ध । क्षेमसे सिद्ध पदार्थको शैमिक कहते हैं । जिन
सकल दार्शनिकोंने दुःखके अत्यन्ताभावको ही मुक्ति
जैसा स्थिर किया है, वह मुक्तिकी शैमिकजन्यताको
मान लेते हैं । मुक्ति देखो ।

क्षरकलम्भि—सामसूत्रप्रकाशक एक ऋषि ।

क्षीरद (सं० त्रि०) क्षीरदस्येदम्, क्षीरद-घञ् ।
क्षीरद सम्बन्धीय ।

क्षीरेय (सं० त्रि०) क्षीरे संस्कृतम्, क्षीर-ठञ् । क्षीराड्ठञ् ।
पा ४।१।१० । १ क्षीरसंस्कृत, दूधसे बना हुआ । (क्लौ०)
२ परमान्न, खीर ।

क्षीरयो (सं० स्त्री०) क्षीरसंस्कृता, खीर ।

क्षोड़ (सं० पु०) क्षोड़ते बध्यतेऽस्मिन्, क्षोड़ अधिकरणे
घञ् । गजबन्धनी, आलान, हाथी बांधनेकी जंजीर या
रस्सा ।

क्षोण (सं० त्रि०) क्षयति निवसति एकस्मिन्नेव स्थाने,
क्षि कर्तरि ल्यट् । पृषोदरादित्वात् साधुः । एकस्थानसे
अन्य स्थान न जा सकनेवाला, जो एक जगहसे दूसरी
जगह न पहुँच सकता हो । (सङ् १।१।१०८) (पु०) क्षु
शब्दे न णत्वञ् । २ कोई शब्दकारी वीणा ।

(सङ् १।१।०८ भाष्य)

क्षोणि (सं० स्त्री०) क्षौ बाहुलकात् डोनि वा डोप् ।
१ पृथिवी, जमीन् । २ एकसंख्या, अदद १ ।

क्षोणिप (सं० पु०) पृथिवीपति, राजा ।

क्षोणी, क्षोणि देखो ।

क्षोणीपति, क्षोणिप देखो ।

क्षोणीपाल—रत्नाक्षीदेवीभक्त एक भद्रगोत्रीय राजा ।
यह चक्रवर्तीके पुत्र और दमनके पिता थे ।

(सङ्गादिखण्ड १।३३।८८)

क्षोणाश—मोहिनीदेवीभक्त शास्त्रज्ञी मुनिगोत्रीय कोई
राजा । यह धुन्धमारके पुत्र थे । (सङ्गादिखण्ड १।३४।१५)

क्षोत्ता (सं० त्रि०) क्षुद-ठञ् । पेषणकर्ता, पीसनेवाला ।

क्षोद (सं० पु०) क्षुद-घञ् । १ चूर्णन, पेषण, पिसाई ।
कर्मणि घञ् । २ चूर्ण, पाटा, बुकनी । (वाशेखण्ड १।१।२३)
३ धूलि, गर्द ।

क्षोदः (वै० क्लौ०) क्षुद-असुन् । जल, पानी ।

(सङ् १।६।५।५)

क्षोदक्षम (सं० त्रि०) क्षोदं क्षमते, क्षोद-क्षम-अच् ।
विचारयोग्य । (नैषधचरित)

क्षोदित (सं० क्लौ०) क्षुद-णिच्-त् । १ चूर्ण, पाटा,
बुकनी । (त्रि०) २ चूर्णित, पिसा या बुका हुआ ।
३ खोदित, जो खोदा गया हो ।

क्षोदिमा (सं० पु०) क्षुद-इमनिच् । प्रयत्नादिभ्य इमनिच् ।
पा ४।१।१२ । अतिशय क्षुद्रता, बड़ा हो कमीनापन ।

क्षोदिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन क्षुद्रः, क्षुद्र-इष्ठन् । अति-
शय क्षुद्र, निहायत कमीना ।

क्षोदीयान् (सं० त्रि०) क्षुद्र-ईयसुन् । क्षुद्रतर, कमीनेसे
कमीना । (माघ १।१००)

क्षोद्य (सं० त्रि०) क्षोदितुं योग्यम्, क्षुद-ष्यत् । ऋक्षको-
ष्यत् । पा १।१।१२४ । चूर्ण करने योग्य, पीसा जानेवाला ।

(रामायण १।८०।१०)

क्षोधुक (वै० त्रि०) क्षुधायुक्त, भूखा । (शतपथब्राह्मण १।५।२।७)

क्षोभ (सं० पु०) क्षुभ-घञ् । १ सञ्चलन, हलचल, खल-
बली । २ चित्तचाञ्चल्य, चञ्चराहट । (उचरचरित १ अङ्क)
३ विकार, बिगाड़ । (माघ)

क्षोभक (सं० पु०) १ कामाख्यास्थित एक पर्वत ।

“दुर्जराण्यस्य पूर्वस्यां पुरं नाम वरासुनम् ।

तद्विषये महाशैलः क्षोभको नाम नामतः ॥” (कालिकापुराण ८१ अ०)

(त्रि०) २ क्षोभजनक, चञ्चराहट पैदा करनेवाला ।

क्षोभकृत् (सं० पु०) एक संवत्सर ।

क्षोभन ((सं० चि०) क्षुभ-णिच्-ल्य । १ क्षोभजनक,
चञ्चड़ा देनेवाला (क्लौ०) भावे ल्यट् । २ सञ्चालन,
समसनी । (पु०) ३ कामके पाँचमें एक वाण । (भारत
१।२।२६६ अ०) ४ विष्णु । (विष्णुसहस्रनाम)

क्षोम (सं० क्लौ०) क्षु-मन् । १ चन्द्रशाला, अटारीके
ऊपरका कमरा । २ अटालिका, अटारी । ३ अतसी-
वस्त्र, समका कपड़ा । (पु०) ४ गणहासक, चावा ।

क्षोमक (सं० पु०) चोरनामक गन्धद्रव्य, चोवी ।

क्षौणि (सं० स्त्री०) क्षु बाहुलकात् निः वृद्धिश्च । पृथिवी,
जमीन् । ब्रह्मवैवर्तपुराणके मतमें समयकालकी क्षौण-
जैसी ही जानिसे पृथिवी क्षौणि कहलाती है । इसमें

क्षौण शब्दके स्थानमें क्षौणि निपात होता है।

(भागवत १.१४।३) २ एक संख्या, अदद १।

क्षौणी (सं० स्त्री०) क्षौणि-वा डीप्। १ पृथिवी, जमीन्।

(भागवत १.१४।३) २ एक संख्या, अदद १।

क्षौणीध्रज (सं० स्त्री०) शैलज, क्रीना।

क्षौणीप्राचीर (सं० पु०) क्षौण्याः प्राचीर इव। समुद्र, सागर।

क्षौणीभुक् (सं० पु०) क्षौणीं भुनक्ति, क्षौणी-भुज्-क्तिप्। क्षितिपालक, राजा।

क्षौणीमय (सं० त्रि०) क्षौणी-मयट्। मृन्मय, मट्टीका बना हुआ। (भागवत २।७।१२) “क्षौणीमय”के स्थान पर क्षौणिमय पाठ भी दृष्ट होता है।

क्षौद्र (सं० स्त्री०) क्षुद्राभिः पिङ्गलवणं मक्षिकाभिर्निर्-
वृत्तम्, क्षुद्रा-अञ्। १ कपिलवर्णं मधुविशेष, किसी
किष्कजा शब्द। पिङ्गलवणं छोटी छोटी एक प्रकारकी
मक्खिया होती हैं। उन्हें क्षुद्रा कहते हैं। यह मक्षि-
कायें जो मधु आहरण करतीं, वह भी पिङ्गलवर्ण होता
और क्षौद्र कहलाता है। (भावप्रकाश) यह अतिशय
शीतल, लघु और क्लेदनाशक है। यह घी मिल जानेसे
विषतुल्य हो जाता है। (राजवज्रम)

२ मधु, शब्द। यह लेखन होता और देखख घातु-
मर्कोंको विशेषरूपसे छुड़ाता है। क्षौद्र मधुर रहते भी
वक्षेरीयत्वसे श्लेष्माको शमन करता है। (सुश्रुत सूत्र ४० अ०)

३ जल, पानी। ४ धूलि, गर्द। क्षुद्रस्य भावः, क्षुद्र-
अण्। ५ क्षुद्रता, ओक्षापन। (पु०) ६ मगधदेशजात
कोई वर्ण सङ्कर जाति। (भारत १।१४।२२) ७ चम्पकवृक्ष,
चम्पाका पेड़।

क्षौद्रक—एक पुराणोक्त जनपद या बसती। चद्रक देखो।

क्षौद्रकमालवक (सं० त्रि०) क्षुद्रकमालवयोरिदम्, क्षुद्रक-
मालव-बुञ्। क्षुद्रक और मालवसे सम्बन्ध रखने-
वाला। (पा ४।१।४५ भाष्य)

क्षौद्रकमालवी (सं० स्त्री०) क्षुद्रकमालवयोः सेना, क्षुद्रक-
मालव-अञ्। अञ् प्रकरणे क्षुद्रकमालवान् सेनासंज्ञायाम्। पा ४।१।४५।

क्षुद्रक और मालवकी सेना या फौज।

क्षौद्रकी (सं० स्त्री०) क्षौद्रक-डीप् यलोपथ। वाहिक-
देशीय आयुधजीवीसमूह, क्षुद्रकसमूह।

(विद्यालकीवृत्ति १।१।१४४)

क्षौद्रक्य (सं० स्त्री०) क्षुद्रकः वाहिक देशीय आयुधजीवी-
समूहः, स्वार्थे ञच्। वाहिकदेशीय समूह।

(पा ५।१।११)

क्षौद्रज (सं० स्त्री०) क्षौद्रात् जायते, क्षौद्र-जन-ड।
१ सिक्य, मोम (त्रि०) २ मधुसे उत्पन्न होनेवाला, जो
शब्दसे निकला हो।

क्षौद्रजा (सं० स्त्री०) १ मधुशर्करा, शब्दकी चानी।
२ क्षौद्रनाम मधुज शर्करा, किसी शब्दकी शर्कर।

क्षौद्रधातु (सं० पु०) क्षौद्रजातो धातुः, मध्यपदलो०।
स्वर्ण माक्षिक, सोना मक्खी।

क्षौद्रप्रिय (सं० पु०) १ जलमधूकवृक्ष, पानी का महुवा।
(त्रि०) २ मधुप्रिय, शब्दकी पसन्द करनेवाला।

क्षौद्रमेह (सं० पु०) वातजन्य प्रमेह, बाई का जिरियाम्।
इसमें रोगी मधुनिभ मेह छोड़ता है। (सुश्रुत) वैद्यक-
शास्त्रमें मधुमेह नामसे इसका उल्लेख है। प्रमेह देखो।

क्षौद्रमेही (सं० त्रि०) क्षौद्रमेहरोगयुक्त, जिसकी
मधुमेहकी बीमारी हो।

क्षौद्रशर्करा (सं० स्त्री०) क्षौद्र-मधुजत शर्करा, एक
तरहके शब्दकी शर्कर। गुणमें यह क्षौद्र मधुतुल्य होती
है। (राजनिघण्टु)

क्षौद्रसाहाय (सं० स्त्री०) वटमाक्षिक।

क्षौद्रेय (सं० स्त्री०) क्षौद्रे भवः, क्षौद्र-ठञ्। सिक्य,
मोम।

क्षौम (सं० पु०-स्त्री०) क्षु-मन्। अतिसुषुप्तवृत्ति।
वृत् १।१।३५ १ पट्टवस्त्र, रेशमी कपड़ा। (रघु १०।८) क्षुमाया
अतस्या विकारः, क्षुमा-अण्। २ शणसे उत्पन्न एक
प्रकारका वस्त्र, सनी कपड़ा। क्षौमेण दूकूलैर्न परिवृतो
रथः, क्षौम-अण्। ३ पट्टवस्त्र परिवृत रथ, वह गाड़ी
जिस पर रेशमी परदा पड़ा हो। ४ प्रासादाद्यगृह-
हवेलीके आगेका घर। ५ अट्टालिका, अटारी।

क्षौमक (सं० पु०) क्षौम नाम गन्धद्रव्य, क्षौम।

क्षौमतैल (सं० स्त्री०) क्षौमसी तैल, क्षौमसीका तैल। यह
वातघ्न, मधुर, वलावह, कट्पाक, अचक्षुष्य (आँखके
लिए खराब), गुह और पित्तल होता है।

(सुश्रुत सूत्र ४५ अ०)

क्षौममसी (सं० स्त्री०) दग्धवस्त्रमस्त्र, जले अपड़े की खाक ।

क्षौमिका (सं० स्त्री०) क्षुमानिर्मित मेखला, सन या पल्लसीके धागेकी करधनी । "क्षौमिका वैश्याय ।"

(कौशिकसूत्र ३७१२)

क्षौमी (सं० स्त्री०) क्षुमा एव, क्षुमा स्वार्थे ञण् ततः ङीप् । १ अतसी, अलसी । क्षुमा विकारः । क्षुमानिर्मित कन्या, सनकी कशरी ।

क्षौर (सं० क्ली०) क्षुरस्य कार्यम्, क्षुर-अण् । १ मुण्डन कर्म, हजामत । केश श्मश्रु और नखादिका कर्तन सम्प्रसाधन होता है । (राजनिघण्टु) इसका संस्कृत पर्याय—मुण्डन, भट्टकरण, वपन और परिवापन है । वैद्यशास्त्रमें लिखा है कि—पाँच दिनके अन्तर केश, नख, श्मश्रु और रोम कर्तन करना चाहिये । पाँच पाँच दिनमें हजामत करानेसे बाली, दाढ़ीमूँह और नाखून आदिको शोभा तथा पुष्टि होती, धन और परमायु बढ़ता और शरीरमें पवित्रता तथा सावण्य आजाता है । क्षौरकर्म मानवको प्रति हितकर है । (भावप्रकाश)

ब्रह्मवेवर्तपुराणके मतमें व्रत, उपवास और आहादि संयमके दिनको बाल बनवाना पड़ता है । उस दिन क्षौरकर्म न करानेसे पवित्र होना कठिन है । जो व्यक्ति यह नियम प्रतिपालन नहीं करता उसको नरकके नखादि कुण्डमें रहकर बाल नाखून आदि खाना और यमदूर्तोंके दण्डप्रहारका घोर दुःख उठाना पड़ता है ।

(ब्रह्मवेवर्त-प्रकृतियन्त्र २० प०)

राजमार्तण्डमें लिखा है—पादमियोंकी रोज ही हजामत बनाना चाहिये । परन्तु खानके पीछे, आहारान्तको, यात्राकालमें, युद्धके समय या तेल लगाकर क्षौरकर्म नहीं करते । पूर्वमुखी हो बैठकर बाल बनवाना उचित है । शनिवार, रविवार वा मङ्गलवार, रिक्तातिथि और सन्ध्यावेला वा रात्रिको क्षौरकर्म निषिद्ध होता है । उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, आर्द्रा, अश्लेषा और मघा आदि कई नक्षत्रोंमें बाल बनाना मना है । विवाह, मृताशौच, ज्ञातकाशौच, कारागारसे मुक्ति वा यज्ञ-दीक्षाके दिन और राजाज्ञा वा ब्राह्मणकी अनुमति

होनेसे सभी नक्षत्रों सभी वारों और सभी समयों पर क्षौरकर्म कर सकते हैं । देवपूजा वा पिछ्छाहके दिन, संक्रान्तिके दिवस, जन्ममास वा जन्म नक्षत्रको चार न करना चाहिये । वराहपुराणमें प्रथम नख और उसके पीछे श्मश्रु काटनेका विधान है । (ज्योतिषाल)

नापितके घरमें बैठ कर बाल बनवाना निषिद्ध है ; ऐसा करनेसे धनहानि होती है । रविवारको दुःख, सोमवारको सुख, मङ्गलवारको मृत्यु, बुधवारका धन-प्राप्ति, बृहस्पतिवारको मानहानि, शुकवारको शुकशय और शनिवारको क्षौरकर्म करनेसे सर्वनाश होता है ।

(कर्मलोचन) च्छाकरण देखो ।

क्षौरपथ्य (सं० क्ली०) क्षुरं पविरिव स्वार्थे ञण् । अति-शय तात्पर्य क्षुर, बहुत तेज उस्तरा ।

क्षौरिक (सं० पु०) क्षौरं शिल्पत्वेनास्त्यस्य, क्षौर-ठन् । नापित, हजाम, नाई ।

क्षुत् (सं० त्रि०) क्षु-त्त । तीक्ष्णोक्त, शानित, पैनाया हुआ, जो सान पर चढ़ाया गया हो ।

क्षौत्र (सं० क्ली०) क्षु, करणे त्रल् । तेजम, शानयन्त्र-विशेष, सान रखनेका औजार, जिससे, अस्त्रादि शानित किये जायें । (अक १।२६०)

क्ष्मा (सं० स्त्री०) क्षमते सहते भारम्, क्षम्-अच् उपधा-कोपस । १ पृथिवी, जमीन । (भारत १।२६८) २ एक संख्या, अदद १ ।

क्ष्माज (सं० पु०) क्ष्माया जायते, क्ष्मा-जन-ङ । १ मङ्गल । २ नरकासुर ।

क्ष्मातल (सं० क्ली०) क्ष्मायास्तलम्, क्ष-तल् । पृथिवीतल, जमान्की सतह । (मार्कण्डेयपुराण २।१४७)

क्ष्माधृति (सं० पु०) काश्मीरदेशीय एक राजा ।

(राजतरङ्गिणी ५।४८५)

क्ष्माप (सं० पु०) क्ष्मां पाति, रक्षति, क्ष्मा-पा-क । राजा ।

(राजतरङ्गिणी ५।४९८)

क्ष्मापति (सं० पु०) क्ष्मायाः पतिः, क्ष-तल् । राजा ।

क्ष्मापाल (सं० पु०) क्ष्मां पालयति, क्ष्मा-पालि-अण् । राजा ।

क्ष्माभुक् (सं० पु०) क्ष्मां भुनक्ति, क्ष्मा-भुज्-क्तिप् । भूमि-पाल, राजा ।

स्माभूत् (स० पु०) स्मा विभर्ति धारयति पाळयति वा,
स्माभू-क्तिप् तुगागमश्च । १ पर्वत, पहाड़ । २ राजा ।
(पञ्चतन्त्र १।६६)

स्मायित (स० त्रि०) स्माय इतच् । कम्पित, जो कांप
उठा हो ।

स्मायिता (स० त्रि०) कम्पक, कपानेवाला ।

स्विङ्गा (वै० स्त्री०) १ शब्दकारिणी, आवाज उठानेवाली,
जो चिन्ताती हो । २ पक्षविशेष, कोई चिड़िया ।

(सङ्क १०।८०।७)

स्वेड (स० पु०) स्विड भावादौ घञ् पचाद्यच् वा ।
१ अव्यक्तध्वनि, समझमें न आनेवाला आवाज । २ कण्ठ-
रोगविशेष, कानकी कोई बीमारी । इससे कानमें सन-
सनाहट भर जाती है । ३ विष, जहर । (भागवत १०।८०।७)
४ पीतवोषाकता । ५ कट, कोषातकी । ६ जीवक
नामक औषधि । ७ स्नह, चिकनाई । ८ मोचन, छोड़ ।

८ त्याग । (स्त्री०) १० लोडिताकपणफल । ११ घावा-
पुष्प । (त्रि०) १२ दुरासद, छिछोरा । १३ कुटिल,
चालबाज ।

स्वेडन (स० स्त्री०) स्विड भावे ण्ट् । १ मोचन,
रिहाई । २ त्याग । (भारत १।१७।२६) ३ वेणुघोषतुल्य स्वर,
चों, चें चें ।

स्वेडा (स० स्त्री०) स्विड भावे घञ् टाप् च । १ वास-
की छड़ । २ सिंङनाद, शेरकी गरज । ३ कोषातकी ।

स्वेडित (स० स्त्री०) स्विड भावे क्त । सिंङनाद, शेरकी
दहाड़ । (भारत १।६६।६)

स्वेला (स० स्त्री०) स्वे ल-प्र । क्रीड़ा, खेल ।

स्वेनिका (स० स्त्री०) स्वेना स्वार्थं कन् प्रत इत्वच् ।
क्रीड़ा, खेलकूद । (भागवत १।८।१८)

स्वेको (स० स्त्री०) स्वे ल गौरादित्वात् डीप् । क्रीड़ा,
खेल । (भागवत)

ख

ख — व्यञ्जन वर्णोंका द्वितीय अक्षर । इसका उच्चारण-
स्थान कण्ठ है । अ-कु-ह विसर्जनोद्यानां कण्ठः । (सिद्धान्तकौमुदी)
शिक्षा ग्रन्थमें इसका उच्चारणस्थान जिह्वामूल-जैसा
निरूपित हुआ है । यथा—“जिह्वामूलित् कुः प्रोक्तः” (शिक्षा)
शाब्दिक लोग शिक्षाके जिह्वामूल शब्दको कण्ठ पर जैसा
बतला दोनोंका विरोध भञ्जन करते हैं । खकार वर्णका
बुद्धमवर्ण-जैसा रहनेसे महाप्राण कहलाता है ।

“अयुग्मावर्गयमगाययथास्वास्वरः कृताः” (शिक्षा)

कामधेनुतन्त्रमें खकारका विषय इस प्रकारसे लिखा
है—इसका वर्ण शब्द अथवा कुन्दकुसुमकी भांति शुभ्र
और उज्ज्वल है । यह तीन कीर्णों और तीन बिन्दुओंसे
युक्त, एक शून्यस्वरूप, त्रिगुणमय, पञ्चदेवात्मक और

तीन शक्तिसम्पन्न है । तन्त्रशास्त्रमें खकारकी जो लिखन-
प्रणाली कही है, उससे नागराक्षर मालाके अन्तर्गत
खकार आकृति मिली जुली है । वर्णोद्धारतन्त्रके मतसे
इसमें सर्वसङ्गत केवल पांच रेखायें रहती हैं । पहले
शामदिककी एक रेखा लगा उसके ऊर्ध्वगामी अग्र-
भागसे अधोमुखी दूसरी रेखा खींचना चाहिये । फिर
दक्षिण दिक्की एक सरल रेखा बना उसी रेखाके
मध्यभागसे एक और कुण्डलाकाररेखा निकालते
और मात्रा लगाते हैं । ऐसे ही अक्षित वर्णका नाम
ख है । इसकी वाम रेखा शिव, दक्षिण रेखा प्रजा-
पति, अधोरेखा विष्णु, द्वितीय वामरेखा ब्रह्मा
और मात्रा माक्षात् कुण्डलिनी होती है । इसकी

अधिकांश देवताओं वस्तुतः कुसुम-जैसा रक्तवर्ण, विविध रत्नाकङ्कालोंमें परिशीभित और सहास्यवदन चिन्ता करना चाहिये। वह वामहस्तमें वर और दक्षिण हस्तमें अभय लेकर सर्वदा साधकके मङ्गलकी कामना किया करती है। खकारके यह कई नामान्तर हैं— प्रचण्ड, कामरूपी, शुद्ध ऋद्धि, वक्रि, सरस्वती, आकाश इन्द्रिय, दुर्गा, चण्डी, सन्तापिनी, गुरु, शिखण्डी, दम्भ, जातीश, कफोणि, गरुड़, गदी, शून्य, कपाली, कल्याणी, सूर्यकर्ण, अजरामर, शुभान्नेय, चण्डलिक, जन, भङ्गार और खड्गक। (वर्णमिधान) मातृकान्यासमें खकारकी वाहु पर न्यास करना पड़ता है। किसी ग्रन्थमें प्रथम श्लोक के बादियों ख रचनेसे रचयिताकी श्रीवृद्धि होती है। (अक्षरनाकरटीका)

ख (सं० पु० स्त्री०) खर्वति मनोऽस्मिन् खन्यते मनाऽनेन वा, खर्वेड पथया खल्लेड । १ इन्द्रिय ।

“विराचानिदपः पूर्वहिः प्रवृत्तान् ततो मुखम् ।

खानि चैव न्युग्रहद्विरात्मानं शिरपव च ॥” (मनु २।६०)

२ पुर, शहर, गांव । ३ क्षेत्र, खेत । ४ शून्य, सिफर । ५ विन्दु, मुकता । (लीलावती, चैवव्यवहार) ६ आकाश, आसमान । (मनु १।२।२०) ७ संवेदन, हमदर्दी । ८ देवलोका । ९ सुख, आराम । १० कर्म, काम । ११ जन्मान्तरसे दशम राशि । १२ अन्नक, अन्नरक । १३ चिटानन्दमय ब्रह्माकाश । (ब्राह्मसंहिताप्रतिपत्ति) १४ निर्गमनमार्ग । (चक्र, २।२।११) १५ सूर्य ।

खंक (हिं० वि०) खाली, खोखला, कमजोर ।

खंख (हिं० वि०) १ रिक्त, कूँछा । २ निर्जन, उजाड़ ।

खंखरा (हिं० पु०) १ पालविशेष, चावल पकानेका एक बड़ा बर्तन । (वि०) २ सूखा, खरा, कड़ा सेका हुआ ।

खंग (हिं० पु०) १ खड्ग, तलवार । २ गेंडा ।

खंगड़ (हिं० वि०) लडाका, भगड़ालू, गंवार ।

खंगना (हिं० क्रि०) पड़ना, पीछे न हटना, उठे रहना ।

खंगर (हिं० पु०) १ एक साथ पका हुई कई ईंटें । (वि०) २ सूखा ।

खंगहा (हिं० वि०) १ जिसकी दांत निकली हुए हों । २ खांगनेवाला । (पु०) ३ गेंडा ।

खंगालना (हिं० क्रि०) १ जेबल जल डाल कर धोना, पानी साफ करना । २ चोरी करना, सब कुछ उठा ले जाना ।

खंगी (हिं० स्त्री०) टुटि, कमी ।

खंगैल (हिं० वि०) १ पके खुईवाला, २ दंतैल ।

३ खांगनेवाला । (पु०) ४ खड्गरावन ।

खंगौरिया (हिं० स्त्री०) अन्नहारविशेष, हंसली ।

खंगारना (हिं० क्रि०) खंगालना, थोड़े पानीसे धोना ।

खंचना (हिं० क्रि०) खींच जाना, बनना ।

खंजर (फा० पु०) तलवार, कटार ।

खंजरी (हिं० स्त्री०) १ डफली, एक छोटा बाजा ।

इसका दाघरा ४ या ५ अंगुल चौड़ा होता है। इसको एक चोर चमड़ेसे मढ़ देते हैं। फिर कोई कोई खंजरीमें घुंघरुका गुच्छा या छोटी छोटी पतली भाँभें भी लगा लेता है। खंजरीबायें हाथमें पकड़ कर दाढ़ने हाथकी थपकीसे बजायी जाती है। इस पर प्रायः लोग भजन गाते हैं ।

खंडना (हिं० क्रि०) तोड़ना, टुकड़े टुकड़े करना ।

२ काटना, रद्द करना ।

खंडपी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मिठी पूरी। इसमें शक्कर और मेवा भर देते हैं ।

खंडर (हिं० पु०) खंडहर, टूटा फूटा मकान ।

खडरा (हिं० पु०) १ किसी किसमका बड़ा । २ टुकड़ा

खडरेचा (हिं० पु०) खज्जनपत्ती ।

खंडला (हिं० पु०) टुकड़ा ।

खंडवानी (हिं० स्त्री०) शर्वत ।

खंडसार (हिं० स्त्री०) शक्कर तैयार करनेकी जगह ।

खंडहर (हिं० पु०) टूटा फूटा मकान ।

खंडा (हिं० पु०) १ चावलका कन । २ छोटी तलवार ।

खंडिया (हिं० पु०) १ गंडेरी काटनेवाला । (स्त्री०) २ टुकड़ा ।

खंडी (हिं० स्त्री०) ग्रामके चतुःपार्श्वस्थ वृक्षसमूह, गांवकी चारो ओरके पेड़ । २ मालगुजारी वगैरहकी किस्त ।

खंडुवा (हिं० पु०) १ कूपविशेष, एक कुर्वा ।

खंडोरा (हिं० पु०) मोदकभेद, शक्करका लड्डू ।

खंडौरी (हिं० स्त्री०) चावलके बड़े बड़े कन।
 खंतरा (हिं० पु०) १ छिद्र, दरार। २ कोण, कोना।
 खंता (हिं० पु०) १ भूमि खनन करनेका कोई यन्त्र,
 बेलचा। २ कुम्हारोंके मट्टी लानेका गड्ढा।
 खंदक (अ० पु०) १ परिखा, खाई। २ बड़ा गड्ढा।
 खंदा (हिं० पु०) खनक, खोदनेवाला।
 खंधा (हिं० पु०) भार्यागोति छन्द।
 खंवापची (हिं० स्त्री०) खम्माव रागिणी।
 खंभ (हिं० पु०) १ स्तम्भ, मितून्। २ शरण, सहारा।
 खंभा, खम्ब देखो।
 खंभात (हिं० पु०) १ गुजरातका एक राज्य। २ खंभात
 राज्यका प्रधान नगर। कान्हे देखो।
 खंभार (हिं० पु०) १ चिन्ता, फिक्र। २ व्याकुलत्व, परेशानी। ३ भय, डर। ४ शोक, अपसोस।
 खंभारी (हिं०) गम्भीरी देखो।
 खंभावती (हिं० स्त्री०) एक रागिणी। यह मालकोस
 रागकी दूसरी स्त्री है। इसकी गानेका समय अर्धरात्रि
 है। खंभावती घाड़व होती है।
 खंभिया (हिं० स्त्री०) सुदृशम्भ, छोटा खंभा।
 खंवं (हिं० स्त्री०) खत्ती, अनाज भरनेका गड्ढा।
 खंवड़ा (हिं० पु०) बड़ी खत्ती।
 खकचा (सं० स्त्री०) खस्य आकाशमण्डलस्य कक्षा
 परिधिः, इ-तत्। आकाशमण्डलका परिधि, आश-
 मानका घेरा। आकाशमण्डल अनन्त है। उसकी
 सीमा वा परिधि होना नितान्त असम्भव है। परन्तु
 आकाशमण्डलमें जितनी दूर तक सूर्यरश्मियोंका प्रचार
 होता, ज्योतिर्विद् लोग उसीको खकक्षा वा आकाश-
 परिधि कहते हैं। इस परिधिनिर्णयके विषयमें प्राचीन
 ऋषियोंके बीच बहुतसा मतभेद लक्षित होता है।
 किसी ज्योतिर्विद्के कथनानुसार ब्रह्माण्डकटाहसम्पट
 आकाशमण्डलमें वेष्टनाकार जो चिन्ह पड़ गया है,
 उसीका नाम आकाशपरिधि है। फिर कोई लोकालोक
 पर्वत पर्वत ही आकाशपरिधि मानता है। ज्योतिर्विद्
 पण्डित सूर्यकरण अर्थात् सूर्यरश्मिके प्रचार
 होने तक ही परिधिस्थान स्वीकार करते हैं। प्रसिद्ध
 भारतीय गणक भास्कराचार्यके मतमें कई प्रदर्शित मत

भ्रान्तिपूर्ण हैं, उनमें कोई ठोक नहीं। उनका कहना
 है—यह पूर्वगतिसे एक कल्पमें जितने योजन अतिक्रम
 करते, उसीसे खकक्षा वा आकाशपरिधि समझते
 हैं। भास्कराचार्यने खकक्षाका परिमाण १८७१२०६-
 ८२००००००० योजन लिखा है। (गणिताध्याय)

यदकचा और खगोल देखो।

खकामिनी (सं० स्त्री०) खं सुखं आकाशं वा कामयते,
 ख-कम्-निङ्-णिनि-ङोप्। १ चर्चिका, दुर्गाको कोई
 मूर्ति। २ चिन्मयी, मादा चीज।

खकुण्डल (सं० पु०) खं आकाशं कुण्डलमिव यस्य,
 बहुव्री०। शिव।

खकेरू—युक्तप्रदेश फतेहपुर जिलेके दक्षिण-पूर्व भाग-
 की एक तहसील। यह यमुनाके कूल पर अवस्थित
 है। २ खकेरू तहसीलका एक गाँव। यह फतेहपुरसे
 १४ कोस दक्षिण पड़ता है। यहाँ रुईका व्यवसाय
 होता है। खकेरूमें एक टूटा किला, थाना और डाक-
 घर मौजूद है।

खकखट (सं० पु०) खक्ख-अटन्। खड़िका, खड़िया
 मट्टी।

खकखा (हिं० पु०) घट्टास, जोरकी हंसी। २ पंजाबी
 सिपाही। ३ अनुभव, मजबूतकार। ३ बड़ा हाथी।

खक्खासाह (हिं० पु०) १ चतुर व्यापारी। २ लाट साहब,
 नवाब।

खखरा (हिं० पु०) १ देग, चावल पकानेका बड़ा
 बर्तन। २ बांसका टोकरा। (वि०) ३ सूखा।

खखरात—एक प्राचीन राजवंश। नासिक नगरमें मिली
 एक शिलालिपि पर लिखा है—शक, यवन और पञ्चव
 वंशीय राजाओंने खखरातवंशके सब लोगोंको मार
 डाला था।*

खखरिया (हिं० स्त्री०) मेदे और बेसनकी पतली पूरो।
 इसमें नमक नहीं पड़ता। खखरिया प्रायः तिजि-
 त्योहारोंका बनती है।

खखसा (हिं० पु०) खेखसा, बनकरेला।

खखार (हिं० पु०) गाढ़ निष्ठोवन, कड़ा थक। यह
 खखारमेंसे गिरता है।

खखारना (हिं० क्रि०) १ गले पर जोर देकर खांसना, जोरसे थूकना। २ जोरसे खांसकर चेताना।

खखास (सं० पु०) वृक्षभेद। पास्तका पेड़।

खखेटना (हिं० क्रि०) १ खदेरना, भगाना। २ आहत करना, मारना। ३ दबाना।

खखोडर (हिं० पु०) १ उलूका घोंसला। २ पेड़की खोसका घोंसला।

खखोरना (हिं० क्रि०) खखोना, रत्ती रत्ती टूटना।

खखोल्क (सं० पु०) सूर्य, सूरज। (गरुड १६ अ०)
२ काशीस्थित आदित्यमूर्तिविशेष। (काशीखण्ड)

खग (सं० पु०) खे आकाशे गच्छति, ख गम-ङ।

१ सूर्य। २ ग्रह। (नीलकण्ठ) ३ देव। ४ शत्रु, वाण्यूपक्षी, चिड़िया। “खग जाने खगको भाषा।” (तुलसी) ५ वायु, हवा। ७ शलभ, टिड्डी। ८ पातालस्थ भोगवतीतीरवासी कोई नाग। (भारत ५५०) ९ अक्रवाकपक्षी, चकई, चकवा। १० पारद, पारा। (त्रि०) ११ आकाशगामी, आसमान पर चलनेवाला।

खगकेतु (सं० पु०) गरुड़।

खगखान (सं० क्ला०) खन्यते, खन कर्मणि घञ्, खगानां खानम्। वृक्षकोटर, पेड़की खोह।

खगगति (सं० स्त्री०) खगानां पक्षिणां गतिः, इ-तत्।
१ पक्षी की गति, चिड़ियाकी चाल। महाभारतके कथं-पर्वमें १०१ प्रकार पक्षिगतिकी कथा लिखी है। टीकाकार मौलकण्ठने उसका विवरण इसप्रकार दिया है—
१ ऊर्ध्वदिक्को गमनका नाम उड्डेन है। २ अधो-देशको गतिकी अवडीन कहते हैं। ३ चतुर्दिक्को गमन प्रडीन कहलाता है। ४ गमन मात्रकी डीन कहा जाता है। ५ धीरे धीरे उड़नेका नाम निडीन है। ६ ललितगमनको सण्डेन कहते हैं। ७ तिर्यक्डीन दिक्भेदसे ४ प्रकारका होता है। ११ मज्जगमनका अनुकरण विडीन कहलाता है। १२ सकल दिशायांकी गति परिडीन है। १३ पराडीन वा पश्चाद्गति। १४ उड्डेनक वा स्वर्गगमन। १५ अर्धडीन वा वारंवार गमन। १६ महाडीन अर्थात् साधो चाल। १७ निडीन अर्थात् धावेका उड़ाना। १८ प्रचण्डवेगसे उड़नेका नाम अतिडीनक है। १९ अवडीन अर्थात् नीचेकी

उतार। २० प्रडीन यानी मजेकी चाल। २१ मंडीन यानी घूम कर गिराव। २२ डीनडोनक। २३ सण्डीनो-डीन डीन वा ऊर्ध्वदिक्को सण्डेन। २४ गमन करके लणकालके मध्य घूमते हुए पक्षसम्यात करना डीन-विडीनक कहलाता है। २५ समुड्डेन अर्थात् ऊर्ध्व और अधोगति। २६ पक्षगमन। इन छत्तीस प्रकारकी गतियोंमें महाडीनकी छोड़कर पचोम प्रकारकी अवशिष्ट गतियां गमन, आगमन और प्रत्यागमन भेदसे तीन तीन प्रकारकी हैं। इसप्रकार सब ७६ गतियां हुईं। फिर निकुलीनक २५ प्रकारका होता है।

(भारत, कथं पर्व ८ अ०) निकुलीनक देखो।

२ ग्रहोंकी गति।

खगङ्गा (सं० स्त्री०) खस्य आकाशस्य गङ्गा, इ-तत्।
आकाशगङ्गा, मन्दाकिनी।

खगना (हिं० क्रि०) १ विधना, लगना। २ अच्छा लगना, पसन्द आना। ३ उटना, चिपकना। ४ उतर आना, बल जाना। ५ उटायें न उटना, खड़े रहना।

खगपति (सं० पु०) खगानां पतिः, खग-पा-क। गरुड़।
गरुड़के समस्त पक्षियों पर आधिपत्य पानेकी कथा महाभारतमें इसप्रकार लिखा है—

किसी समय प्रजापति कश्यपने पुत्रकामनासे एक बड़े यज्ञका आयोजन किया था। उनके यज्ञानुष्ठानका संवाद सुनकर देव, ऋषि, गन्धर्वप्रभृति सभी उपस्थित हो गये। कश्यप देख भास कर सबको कोई न कोई कार्य सौंपने लगे। देवराज इन्द्र और अङ्गुष्ठप्रमाण बालखिल्य मुनि काष्ठ लानेकी रखे गये थे। इन्द्रके साथ काष्ठ लेने वह सब चल दिये। बालखिल्य मुनि एकतो प्रतिशय क्षुद्र थे, उस पर कुछ खाया-पीया भी नहीं। इसीसे वह अलग अलग काष्ठ ले जानेमें असमर्थ हुए। सबने मिल कर किसी न किसी प्रकार मरते मिटते एक पत्रवृन्त कंधों पर उठाकर रखा था। फिर वह प्रति कष्टसे चलने लगे। हां, इन्द्र अवश्य एक लहत् काष्ठ ले गये। परन्तु बालखिल्य निर्विघ्न जा न सके थे। पथ पर चलते चलते किसी गोप्यदमें गिर गये खान लगे। इन्द्र यह घटना देख उनकी उपहास करके चलते बने। आकारमें छोटे होते भी मुनियोंके क्रोधकी मात्रा कुछ

अधिक थी। उन्होंने चिठ कर दूसरे यज्ञका अनुष्ठान करा दिया। यागका प्रधान उद्देश्य वर्तमान इन्द्रसे अधिक बलशाली द्वितीय इन्द्र बनानेकी था। इन्द्र यह सुनते ही डर गये और कश्यपके निकट पहुँच विवरण कहने लगे। कश्यपने बालखिल्योके यज्ञस्थान पर उपस्थित हो उन्हें सान्त्वना दी और कहा था—‘तुम्हारा प्रायोजन मिथ्या नहीं जाने देंगे। तुम्हारे यज्ञफलसे इन्द्रसे अधिक बलशाली कोई इन्द्र तो उत्पन्न हो जायेगा, परन्तु वह साधारण लोगोंका इन्द्रत्व न पा कर केवल पक्षियों पर ही आधिपत्य चलावेगा। कश्यपके कहनेसे बालखिल्य सन्तुष्ट हो गये। विनताके गर्भसे गरुड़ने जन्म लिया था। उन्होंने थोड़े दिनोंमें ही उसी यज्ञके फलसे सब पक्षियों पर अपना आधिपत्य स्थापन किया।

(भारत १।११ च०) गरुड़ देखो।

खगपति—हिन्दोभाषाके एक प्राचीन कवि। इनकी कविताका एक उदाहरण नीचे उद्धृत हुआ है—

“जारे कुंवर टुक दरम देखाय ।

जो जनतो करिया कपटो है ब्रज साखन में देतो नखाय ॥

कारे भंवर रस कदर न जाने सब फूलमें रच्यो सुमाय ॥

खगपति तोरी रीक समझतो सब सखि लीतो जूँप बनाय ॥”

खगम (सं० त्रि०) खे आकाशे गच्छति, ख-गम-अच् । १ आकाशगामी, आसमान पर चलनेवाला। (पु०) २ कोई सत्त्ववादी तपस्वी। एकदा इनके सखा सङ्खगदने इन्हें तृणनिर्मित सर्प द्वारा भय दिखाया था। प्रथम यह भयसे मूर्छित हो गये, पीछे शाप देकर उन्हें पनिष्ठा साँप बना दिया। (भारत १।११ च०) गरुड़, पाद देखो।

३ पक्षी, चिड़िया।

खगरापाड़ा—आसाम अन्तर्गत दरङ्ग जिलेका एक गाँव। यह दरङ्गके उत्तरभागमें भूटानी पहाड़के दक्षिण अन्तर्लित है। प्रतिवर्ष यहाँ एक बड़ा मेला लगता है। इस मेलेमें भोटिये सवण, कम्बल, स्वर्ण और छोड़ा आदि नानाप्रकार द्रव्य विक्रय करके चावल, मछली, सूती कपड़ा, रेशम और बर्तन वगैरह खरीद ले जाते हैं।

खगरिया—बिहार-प्रान्तके मुङ्गेर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २५° ३०' उ० और देशा० ८६° २८' पू० में मण्डक नदी किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग

११४८२ है। यहाँ बङ्गाल और मध्यवेष्टन रेलवेका स्टेशन बना और बड़ा व्यापार चलता है।

खगवक्त्र (सं० पु०) खगस्य वक्त्रमिव वक्त्रं यस्य, बहुव्री० । लकुवक्त्र, लुकाटका पेड़।

खगवती (सं० स्त्री०) खगः कमसादृश्यं पस्वत्याः, खग-मतुप् मस्य वः ततो लीप् । पृथिवी, जमीन। पृथिवी शून्यमें अवस्थित रहनेसे खगका सादृश्य रखती है। सुतरां उसका नाम खगवती है। खगोल देखो।

खगशत्रु (सं० पु०) १ पुद्गिपर्णी, पिठवन। २ श्येन, राजा शिकरा।

खगस्थान (सं० स्त्री०) खगस्य स्थानम् । वृक्षकोटर, पेड़की खोह।

खगहा (हिं० पु०) गेंडा।

खगाधिप (सं० पु०) खगानामधिपः, इ-तत् । गरुड़ । खगपति देखो।

खगान्तक (सं० पु०) खगस्य अन्तकः, इ-तत् । श्येन-पक्षी, बाज, शिकरा। २ धूम्याटपक्षी।

खगासन (सं० पु०) खगो गरुड़ आसनं यस्य, बहुव्री० । १ विष्णु। विष्णुका वाहन गरुड़ रहनेसे उसकी खगासन कहते हैं। खगराज गरुड़की विष्णुका वाहन होनेकी कथा महाभारतमें इस प्रकारसे लिखी है—

विनतानन्दन गरुड़के समस्त पक्षियों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने पर उनके असौम्य बलकी चर्चा देश देशमें फैल गयी। इन्द्रादि देव भी उनके बलकी कथा सुन कांप उठे और अमृततरुआके लिये उन्होंने बहुतसे प्रहरी नियुक्त किये तथा अपने आप भी अति सावधानसे अमृतकी देखभाल रखने लगे। किसी दिन गरुड़ स्वर्ग घूमने गये थे। देवताओंने देखते ही उनसे भगड़ा लगा दिया। गरुड़ भी डरे न थे। भयानक बुद्धिवा। देवोंकी दुँगावाकी न रहो, वह अमृत लेकर चले गये। जाते समय राहमें उन्हें विष्णु मिले थे। विष्णु गरुड़को देखते ही कहने लगे—यक्षिराज ! इस आपकी बल और साहसकी बात सुन कर सन्तुष्ट हुए हैं, हमसे वर मांगो। गरुड़ने उत्तर दिया—यदि आप वर देना चाहते हैं, तो ऐसा विधान कीजिये, जिसमें हम सदा आपके ऊपर रह सकें। विष्णुने उनकी बात मान

की। फिर गरुड़ मन की मन सोचि घे—यह कुछ अच्छा न हुआ, विष्णुसे वर मांगने पर हमारी मृत्यु समझ पड़ती है। वह एकाएक कहने लगे। नारायण आप हमसे कोई वर लें। विष्णुने कहा—आप हमारे वाहन बन जायें। गरुड़ने अज्ञान वदन उनकी बात स्वीकार की थी। वही गरुड़ही पड़ गयी। दोनों वर सत्य होना चाहिये। गरुड़को विष्णुका वाहन बनना और उनके ऊपर रहना भी था। परिशेषको खिर हुआ कि गरुड़ विष्णुके रथका ध्वज बन कर रहेंगे। दोनों बातें रह गयीं, गरुड़ वाहन भी हुए और ऊपर भी बैठ गये।

(भारत १।१२ प०)

“महा चत्वारः जगत्सु खगोल इवात्मनः” (श्रीपति)

२ सदयपर्वत। (श्री०) ३ द्रव्यामकोत्त कोई पासन। मस्तकको भूका अधोभागमें बांधके बैठनेका नाम खगोल है। यह पासन लगाकर उपवेशन करनेसे अति सत्वर आन्ति दूर जाती है। (दद्रमानल) खगुण (सं० लि०) जिसका गुणक शून्य हो, सिफरसे जरब किया जानेवाला। (कोलावती)

खगोल (सं० पु०) १ गृध्र, गीध। २ गरुड़। खगपति देखी। खगोलध्वज (सं० पु०) खगोलो गरुड़ध्वज यत्न, वहुमी० विष्णु। खगोल देखी।

खगोल, खगपति देखी।

खगोल (सं० पु०) खगोलस्थान तटविशेष, एक वास। खगोल (सं० पु०) खगोल, आकाशस्थ गोला मण्डलम्, इतत्। आकाशमण्डल, आसमानका चक्र। किसी किसी ज्योतिर्विद् के मतमें सृष्टिके प्रथम एक छुट्टा चण्ड उत्पन्न हुआ था। उसके मध्य पृथिवी, पर्वत, नक्षत्र, ग्रह, खग और पाताल आदि विश्वसंसार अवस्थित है। इसी चण्डको ब्रह्माण्ड कहते हैं। ब्रह्माण्ड गोलाकार रहनेसे उसका मध्यवर्ती आकाश भी गोलाकार हो है। इसी गोलाकार आकाशका नाम खगोल है। पौराणिक लोग लोकालोक पर्वतके मध्यवर्ती आकाशको खगोल कहते हैं। उनके मतमें इसका परिमाण १८०१२०६८२००००००००० योजन है। प्रसिद्ध गणक भास्कराचार्यने खगोल वा खगोलका कोई परिमाण नहीं ठहराया। उनका कहना है वह अपनी

अपनी गतिके अनुसार एक क्षणमें जितने योजन तक अतिक्रम करते, इसीको खगोल कह सकते हैं; सिवा इसके ब्रह्माण्डका परिमाण निर्धारित होना कठिन है। (गोलाध्याय) सूर्यसिद्धान्तके मतमें भी ब्रह्माण्डके मध्यपरिधिका नाम खगोल और उसका परिमाण १८०१२०८०८६४०००००० योजन है। वास्तविक आकाश गोलाकार हो नहीं सकता। कारण जिसका आकार वा अवयव रहता, वही गोलाकार, चतुष्कोण वा त्रिकोण बनता है। आकाशका आकार वा अवयव नहीं होता, उसका गोलाकार, चतुष्कोण वा त्रिकोण कैसे कह सकते हैं? किन्तु यह प्रकृति सत्त्वज्योतिष्क अनवरत मण्डलाकार पथमें भ्रमण करते हैं। आकाशमें यह जितनी दूर तक पहुँचते, ज्योतिर्विद् उसीको खगोल कहते हैं।

खगोल—परमेश्वरकी सृष्टिका अर्ध कौशल है। भारतीय ज्योतिर्विद्गण खगोल विषयमें जो सकल तत्त्व निर्णय किये हैं, उनमें भी मतभेद दक्षित होता है। ऐसे अनेक मत हैं, जो परस्पर एकद्वारमी ही विरुद्ध हैं और कई नितांत विरुद्ध भी नहीं। सूर्यसिद्धान्त और भास्कराचार्यका मत परस्पर मिलता जैसा है। भारतमें आजकल यही मत चलता है।

यह न समझनेसे कि भूगोल कैसे अवस्थित होता है, नक्षत्रका उदय, अस्त, वृत्तयोग और ग्रहगति जान लेना कठिन है। इन लिये यहां संक्षेपमें लिखा जाता है—भास्कराचार्य प्रकृति भारतीय ज्योतिर्विद्गणों भूगोलका कैसा अवस्थान ठहराया है। उनके मतमें पृथिवी गोलाकार है। यह किसी मूर्त पदार्थको अवलम्बन करके अवस्थित नहीं, अपने शक्तिसे ही शून्यमें बनी रहती है। पृथिवी अवलम्ब है, इसकी कोई गति नहीं। ग्रह और नक्षत्र नियमितरूपसे इसीका चक्रण लगाया करते हैं। कदम्बके फूलमें गोली कींजी जैसे चारों ओर केशर समूहसे परिवेष्टित रहती, वैसे ही इस भूगोलका चारों ओर भी पर्वत, चैत्य, मनुष्य और देव प्रकृतिकी शोभा देख पड़ती है।

(वि० शि० गोलाध्याय)

आर्यभट्टके मतमें पृथिवी अवलम्ब नहीं, बलवत्

धूम्र करती है। यह प्रकृति ज्योतिष्क जिसका है, पृथिवीकी गतिके अनुसार ही उनका दर्शन घटने और उदय चक्षु होता है। नदीमें प्रवहवेगसे नौका चलाती रहने पर नौकास्थित दर्शकको बोध होता—मानो तीरके सजल तट उसकी दृष्टिपथकी प्रतिबिम्ब करके विपरीतदिक् दौड़ जाते हैं। किन्तु वास्तविक वैसे नहीं होता। इसी प्रकार पृथिवी भी प्रवहवेगसे घूम रही है। हम उसकी गतिको अनुभव कर नहीं सकते। हमको समझ पड़ता है, मानो यह और नक्षत्र मण्डली ही पृथिवीका चक्कर काट रही है। (पापंभटा युरोपीय ज्योतिर्विद् भी पृथिवीको स्थिर नहीं मानते। उनके मतमें ज्योतिष्कोंके साथ पृथिवी भी सूर्यमण्डल घेष्टन करके घूमती है। पृथिवीकी यदि गति न होती, तो यथाकाल ऋतुपरिवर्तन कैसे पड़ता! इन्हीं देखो। परन्तु भास्कराचार्य और श्रीपति प्रकृति प्रधान ज्योतिर्वेत्ताओंने प्रमाण तथा युक्ति द्वारा इसका खण्डन किया है। भूगोल देखो।

किसी गोलकके ठीक मध्यभागको समभावसे एक कीलक द्वारा विभक्त करके रहने पर यह कीलक इसी गोलकका मिरदण्ड कहलाता है। यह पृथिवी भी इसी प्रकार मिरदण्ड द्वारा विभक्त है। भूगोलके विज्ञानको बीच बीच मिरदण्ड है। मिरका कुछ अंश पृथिवी-गोलककी सैद करके नीचेको जा निकला है। इसीको अधोभाग कहते हैं। फिर पृथिवीके ऊपर अर्थात् हमारे उत्तरको अवस्थित अंश में इसका ऊर्ध्वभाग कल्पना किया जा सकता है। मिरके ऊर्ध्वभागमें (उत्तरदिक्) रहनेवालोंकी देवता, अधोभागवालों (दक्षिणसेव) की असुर और मध्यभागवासियोंकी मनुष्य कहते हैं। इन तीनों स्थानोंका नाम भी यथाक्रम स्वर्ग, पाताल और मर्त्य है। (पृथिव्यान् ११०) देवकीय और असुरकीय के मध्य समुद्रमें मेखलाकी तरह घेष्टन करके पृथिवीको २ भागोंमें बाँट दिया है। इसीके बीच समुद्रोप आदि अवस्थित हैं। भूगोल भेद करके दण्डाकार मेख जिन दो स्थानोंमें जा निकला है, वहीसे समुद्र रख रतुं का-चार नपेटके भूखण्डको दो भागोंमें बाँटने पर चार खण्ड उत्पत्ति। मिरकी पूर्वदिक्को समुद्रकी तीर यम-

कोटी नाम्नी पुरी, दक्षिण भागमें भारतवर्षसे दक्षिण समुद्र तीरकी लङ्का, पश्चिमको केतुमानवर्षमें समुद्र-तीर रोमकपत्तन और उत्तरको कुशवर्षमें सिंधपुरी है। समुद्ररूप परिधिघेष्टित भूखण्ड ही प्रान्तसीमा पर अवस्थित यह चारो देश निरक्षदेश कहलाते हैं। यम-कोटिस्थित जोग रोमकपत्तनके लोगोंको अधःस्थित और अपनेको पृथिवीके ऊपरका रहनेवाला समझते हैं। इसी प्रकार रोमकपत्तनके लोग भी उनको अधःस्थित और अपनेको उपरिस्थित मानते हैं। वास्तविक किसी अंशको ऊर्ध्व वा अधःजैसा निर्णय कर नहीं सकते।

सूर्यसिद्धान्तके मतमें पृथिवी का परिधि ४८६७ योजन अर्थात् १८८५८ कोस और व्यास १५८१ योजन यानी ६२२४ कोस है। युरोपीय ज्योतिर्विदोंने पृथिवीका व्यास ८४४८ मील अर्थात् ४२२४ कोस माना है।

प्राचीन ऋषियोंने क्रियाभेदसे वायु का ७ भागोंमें विभक्त किया है। यथा—आवह, प्रवह, उदह, संवह, सुवह, परिवह और परावह। पृथिवीसे ऊर्ध्वको १२ योजन वा ४८ कोस तक व्यास होके जो वायु भूमण्डलका समस्त कार्य चलाता, जिनके मध्य हमारा व्यवस्थान पाया जाता और विद्युत् तथा मेघ जिसकी प्रवहस्वरूप करके आकाशपथमें चक्कर लगाता, वही आवह वा भू-वायु कहलाता है। * इसकी गतिका नियम नहीं है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिक्को सीधी या बहुत तिरछी गति लगा करती और समग्र समय अक्षि-युग्म आसतथा उच्च भी देख पड़ती है। इस प्रावह वायुसे ऊपर अर्थात् पृथिवीसे ४८ कोस ऊँचे तक प्रसारका काम है। वह सर्वदा पश्चिमको बहा करता है। उसकी चाल कभी नहीं घटती बढ़ती, सर्वदा समान रहती है। इसी वायुको प्रवह कहते हैं। पाँच प्रकारके ऊपर वायुओंको संखेख करनेका यही प्रयोजन नहीं। हम आकाशमण्डलके जिन समस्त ज्योतिष्कांका देखने, वह इसी वायुमें अवस्थित हैं। प्रवह वायु निरन्तर

* प्राचीन ज्योतिर्विदोंके मतमें यह वायु ४५ मील ऊँची तक व्यास है। उसके ऊपर फिर यह नहीं मिलता। वायु देखो।

मण्डलाकारमें पश्चिमाम्रिमुखकी गमन करके पृथिवीका चक्कर लगाती है। इसके आघातसे आहत होके ज्योतिष्कमण्डल साव ही साथ बराबर घूमा करता है।

हम जिन सकल ज्योतिष्कोंको देखते, उन्हें दो श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं। उनमें एक श्रेणीका नाम ग्रह (Planet) और अपर श्रेणीका नाम नक्षत्र (Fixed Star) है। सबके ऊपर राशिचक्र लगा है। उसको समान द्वादश भागोंमें विभक्त करके उसमें एक एकको राशि कल्पना करते हैं। उन सकल भागोंके नाम यथाक्रम यह हैं—मेष (Aries), वृष (Taurus), मिथुन (Gemini), कर्कट (Cancer), सिंह (Leo), कन्या (Virgo), तुला (Libra), वृश्चिक (Scorpio), धनु (Sagittarius), मकर (Capricornus), कुम्भ (Aquarius) और मीन (Pisces) द्वादश राशियोंके यही बारह नाम रखते और इस राशिचक्रको २७ समान भागोंमें बाँटके उनमें एक एक भागको नक्षत्र कहते हैं। जो समस्त ज्योतिष्क राशिचक्रके नक्षत्ररूप एक एक भागको सीमाबद्ध करनेमें काम आते, वह भी नक्षत्र ही कहलाते हैं। इन्हीं सकल ताराओंका नाम नक्षत्रमण्डल (Constellations) है। नक्षत्र सबके ऊपर अवस्थित हैं। पृथिवी पर उनका आलोक बहुत कम आता और अति दूर जैसे रहने पर पृथिवीसे उनका रूप भी अति क्षुद्र देखाता है। ग्रहों और नक्षत्रोंमें प्रत्येककी एक एक कक्षा है। नक्षत्रकक्षा सबके ऊपर पड़ती है। उसके नीचे यथाक्रम शनि, बृहस्पति, मङ्गल, सूर्य, बुध, शुक्र और चन्द्र चलकरत अपनी अपनी कक्षामें रह पृथिवीकी भ्रमण करते हैं। सिद्धान्तशिरोमणिको देखते पृथिवी, ग्रह और नक्षत्र अपनी अपनी आकाशगतिसे ही शून्य-मार्गमें अवस्थिति रखते हैं। (गोलाध्याय १२) राशिचक्रकी भांति ग्रहोंकी कक्षा भी द्वादश भागोंमें विभक्त है और राशिचक्रके समसूत्रपातमें उसका प्रत्येक अंश

भी मेघादि नामसे उल्लेख किया जा सकता है। राशिचक्र बराबर पश्चिमको घूमा करता है और उसके आघातसे ग्रह तथा नक्षत्रमण्डल भी पश्चिममुख चलता रहता है। ग्रहोंकी अपेक्षा नक्षत्रमण्डलकी गति अधिक होती है। नक्षत्र ग्रहोंकी अतिक्रम करके शीघ्र चले जाते हैं। ग्रह उसकी अपेक्षा पूर्वदिक् अवलम्बन करते हैं। उनकी सर्वदा पूर्वकी गति पड़ती है। किन्तु राशिचक्रकी गतिके अनुसार हमें समझ पड़ता, मानो ग्रहमण्डल भी राशिचक्रकी तरह पश्चिमको जा रहा है। ग्रहोंकी अपेक्षा राशिचक्रकी गति अधिक-जैसी रहनेसे ही हम ग्रहोंकी पूर्वगति अनुभव नहीं कर सकते। (वासनाभाष्य)

दिक्निर्णय न होनेसे ग्रहों वा राशिचक्रकी गति कैसे स्थिर की जा सकती है? इसीलिये हमारे प्राचीन ज्योतिर्विदोंने दिक् निकालनेका उपाय इस प्रकार स्थिर किया है—

जिसा समप्रदेशमें एक वृत्त अंकित करके उसके केन्द्रबिन्दु पर १२ अंगुलका एक शङ्कु (कीलक) सीधा गाड़ देना चाहिये। सूर्योदयके समय शङ्कुकी छाया बहुत बड़ी रहती है। क्रमशः सूर्य जितना ही ऊपरको चढ़ता, शङ्कुकी छायाका परिमाण भी उतना घटता रहता है। इसी प्रकार जब शङ्कुकी छायाका अग्रभाग वृत्तकी परिधि रेखासे मिलता, तब परिधिरेखाके उसी स्थान पर एक बिन्दुपात करना पड़ता है। इसीका नाम पूर्वबिन्दु है। ठीक मध्याह्न समको शङ्कुकी छाया अति-शय क्षुद्र होके फिर बढ़ने लगती है। क्रमसे वृत्त होने पर छायाका अग्रभाग जब दोबारा परिधिरेखासे मिले तब उस स्थान पर दूसरा बिन्दुपात कर दे। इसको अपरबिन्दु कहते हैं। इन्हीं दोनों बिन्दुओंके अन्तरालको व्यासार्ध और दोनों बिन्दुओंको केन्द्र कल्पना करके दो वृत्त खींच लेना चाहिये। इसमें एक वृत्तके परिधिका कुछ अंश अपर वृत्तके परिधिको भेद करके उसके मध्य प्रवेश करता है। फिर दोनों परिधियोंमें दो संयोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसमें एक संयोग-स्थानसे दूसरे संयोगस्थान तक एक सरल रेखा खींचना चाहिये। पूर्व बिन्दुके दक्षिण भागकी रेखाका अग्र

दक्षिणदिक् और अपरदक्षिणभागकी रेखाका अथ उत्तरदिक् कहा जाता है। इस रेखाको भी दक्षिणोत्तररेखा नामसे उल्लेख कर सकते हैं। इसी दक्षिणोत्तर रेखाकी व्यासार्ध और उसके दोनों अर्धविन्दुओंकी केन्द्र कल्पना करके दो वृत्त बनाना और पूर्ववत् उसके एक संयोगस्थानसे दूसरे संयोगस्थान तक एक रेखा खींचना चाहिये। इसीको पूर्वपश्चिम रेखा कहते हैं। पूर्वविन्दुका निकटवर्ती रेखाय पूर्वदिक् और पश्चिम विन्दुका निकटवर्ती अर्धभाग पश्चिमदिक् कहलाता है। इसी प्रकार अपरदिक् (कोण) को भी साधन करना चाहिये। इस वृत्तके बाहर एक चतुष्कोण अंकित करते हैं। इससे उस समयकी छाया समझी जा सकती है। पूर्वोक्त पूर्वपश्चिम रेखाको सममण्डल, उन्मण्डल वा विषुववृत्त भी लिखते हैं।

राशिचक्र ३६० भागोंमें बंटा है। इसमें एक एक भाग अंश कहलाता है। प्रत्येक अंश (Degree) फिर ६० भागोंमें विभक्त है। उसके प्रत्येक भागको कला कहते हैं। कलाका ६०वां भाग विकला कहलाता है। अतएव राशिचक्रके ३० अंशोंमें एक राशि बनता और राशिचक्रके प्रत्येक १२° अंश और २०' कलाका एक नक्षत्र पड़ता है। अश्विनीसे ७ नक्षत्र गिने जाते हैं। अतएव अश्विनी ही राशि के प्रथम १२° अंश और २०' कला कहला सकती है। इसके प्रत्येक नक्षत्रमें तारा देख पड़ता है। लोगोंने विश्वास है कि अश्विनीसे रवती पर्यन्त केवल २७ गिने नक्षत्र हैं। किन्तु फलमें यह नहीं है। खगोलवैज्ञानिकों के मतमें ३ (किसी मतमें २) नक्षत्रोंसे (b, a, Arietis) अश्विनी नक्षत्र विरचित है। इन नक्षत्रोंके अवस्थानका भाव घोड़ेके मस्तक-जैसा है। इसीसे अश्विनी नाम रखा गया। अश्विनी नक्षत्र मेषराशि के अन्तर्गत है।

द्वितीय भरणी (35, 39, 41 Arietis) में भी ३ तारायें हैं और त्रिकोणाकारसे अवस्थित हैं। भरणी नक्षत्र भी मेषराशि के अन्तर्गत है।

तृतीय कृत्तिका (Pleiades. E. Tauri etc.) ६ नक्षत्रोंसे बनी है। इसका आकार फूसके भोपड़-जैसा है। कृत्तिकाके चार भागोंमें एक भाग मेषराशि के अन्तर्गत और अपर ३ भाग वृषराशिभुक्त है।

चतुर्थ रोहिणी (a, i, g, d, e. Tauri) ४ नक्षत्र विभक्त है। यह शकटाकार अवस्थित और वृषराशिभुक्त है। इन पांच ताराओंमें पूर्वदिक्की ताराको कृत्तिकाकी योगतारा कहते हैं।

पञ्चम मृगशिरा (i, f¹ f², Orionis) हुई है। यह ३ नक्षत्रोंसे रचित हुई है। इसका अवस्थान हरिणके मस्तक जैसा है। इसी कारण मृगशिरा नाम पड़ा है। इसका एक अर्ध वृषराशि के अन्तर्गत और दूसरा मिथुन राशिभुक्त है।

षष्ठ आर्द्रा (a Orionis) एक ही नक्षत्र है। इसका आकार प्रायः रत्न की भांति लगता है। आर्द्रा मिथुनराशिमें पड़ती है।

सप्तम पुनर्वसु (b, a Geminorum) ६ नक्षत्रोंसे तैयार हुई है। इसका आकार प्रायः घड़ जैसा है। इसके चारभागोंमें तीन भाग मिथुनराशि और एक भाग कर्कटराशि के अन्तर्गत हैं। इसको पूर्वदिक्का तारा योगतारा कहलाती है।

अष्टम पुष्या (Hercules, i, d, g. Cancr.) ३ नक्षत्रोंसे बनी है। उसके मध्यकी ताराको योगतारा कहते हैं। पुष्या कर्कटराशि के अन्तर्गत है।

नवम अश्लेषा (e, d, s, E, r Hydrae) ५ नक्षत्र-युक्त है। इसका अवस्थान कुसालचक्र-जैसा है और पूर्वदिक्की तारा योगतारा कहलाती है। यह कर्कटराशि के अन्तर्गत है।

दशम मघा (a, E, g, z, m, a Leonis) ५ तारा-ओंसे बनी है। इसका आकार कल्पित घर जैसा है। दक्षिणकी तारा योगतारा कही जाती है। यह नक्षत्र सिंहराशि के अन्तर्गत है।

एकादश पूर्वफाल्गुनी (d, i, Leonis) २ ताराओंसे युक्त, खट्वाकार और सिंहराशि के अन्तर्गत है। इसकी उत्तरदिक्का तारा योगतारा कहते हैं।

द्वादश उत्तरफाल्गुनी (93 Leonis) २ नक्षत्र-

* पूर्वपश्चिमकी कृत्तिकासे नक्षत्र गणना होती थी। वैराह जोतिषमें कृत्तिकाही को प्रथम नक्षत्र गणित चला है।

युक्त और शय्याकार है। इसके चारभागोंमें एकभाग सिंहराशिके अन्तर्गत और तीनभाग कन्याराशिभुक्त हैं। इसकी उत्तर दिक्स्थ तारा योगतारा कहलाती है।

त्रयोदश हस्ता (d, g, e, a, b, Corvi) ५ नक्षत्र रखती है। इसका आकार हाथकी पांच अंगुलीयोंके सम्मिश्रण जैसा है। यही कारण है कि उक्त नक्षत्रको हस्ता कहते हैं। इसके वायुकोण की तारा योगतारा कहलाती है। हस्ता कन्याराशिमें लगती है।

चतुर्दश चित्रा (a Verginis) केवल एक ही नक्षत्र है। इसका आकार उज्ज्वल मुक्ता जैसा लगता है। चित्राका अर्धभाग कन्याराशिके अन्तर्गत और अपर अर्ध तुलाराशिभुक्त है।

पञ्चदश स्वाति (a Bootis) भी एक ही नक्षत्र है। यह प्रवाल जैसी देख पड़ती है। स्वाति नक्षत्र तुलाराशिमें लगता है।

षोडश विशाखा (i, g, b, a Lirae) ६ नक्षत्र रखित और पुष्पमालाकार है। इसके चारभागोंमें एक तुलाराशि चार अपर ३ भाग वृश्चिकराशिके अन्तर्गत हैं।

सप्तदश अनुराधा (d, b, p, Scorpionis) में ७ नक्षत्र हैं। इसका आकार जलधारा सदृश होता है। अनुराधाकी मध्यताराका नाम योगतारा है। यह नक्षत्र वृश्चिकराशिके अन्तर्गत है।

अष्टादश ज्येष्ठा (a, s, t Scorpionis) ३ तारा युक्त और कर्णकुण्डलाकार है। इसकी मध्यताराको योगतारा कहते हैं। यह नक्षत्र वृश्चिकराशिमें पड़ता है।

एकोनविंश मूला (Scorp 1 &c.) ११ नक्षत्रयुक्त है। इसका सम्मिश्रण सिंहके लाङ्गल जैसा है। पूर्वदिक्की तारा योगतारा कहलाती है। मूला धनुराशिमें लगती है।

विंश पूर्वाषाढा (d, e Sagittarii) ४ नक्षत्रयुक्त और हस्तिदन्ताकार है। इसकी उत्तरदिक्स्थ ताराका नाम योगतारा है। यह नक्षत्र धनुराशिभुक्त है।

एकविंश उत्तराषाढा ४ नक्षत्रोंसे बनी है। इसकी उत्तरदिक्स्थ ताराको योगतारा कहते हैं। इस नक्षत्र-

के ४ भागोंका एक भाग धनुराशि और तीन भाग मकरराशिभुक्त हैं।

द्वाविंश श्रवणा (a, b, g Aquilae) ३ नक्षत्रयुक्त तथा त्रिशूलाकार है। इसकी मध्य ताराका नाम योगतारा है। यह नक्षत्र मकरराशिके अन्तर्गत है।

तयोविंश धनिष्ठा (a, b, g d Delphini) ५ नक्षत्रयुक्त और ठंकाकार है। इसकी पश्चिम दिक् वाली योगतारा कहलाती है। इस नक्षत्रका अर्ध मकरराशि और अपर अर्ध कुम्भराशिभुक्त है।

चतुर्विंश शतभिषा (Aquarii 1 &c.) वा शततारका-में १०० नक्षत्र होते हैं। यह मण्डलाकार अवस्थित है। इसमें अतिशय स्थूल देख पड़नेवाली तारा ही योगतारा नामसे अभिहित होती है। शततारका कुम्भराशिके अन्तर्गत है।

पञ्चविंश पूर्वभाद्रपद (a, b Pegasi) २ नक्षत्र-विशिष्ट और घण्टाकार होती है। इसकी उत्तरदिक्स्थ ताराका ही नाम योगतारा है। इसके ४ भागोंमें ३ भाग कुम्भराशि और अपर भाग मीनराशिके अन्तर्गत है।

षड्विंश उत्तरभाद्रपद (g Pegasi, a Andromedae) २ नक्षत्रयुक्त और दो मस्तकविशिष्ट मराकार है। इसकी उत्तरस्थ ताराको योगतारा कहते हैं। उत्तरभाद्रपद मीनराशिमें लगता है।

सप्तविंश रेवती (Piscium, etc.) ३२ नक्षत्रयुक्त तथा मृदङ्गाकारसे अवस्थित है। दक्षिणदिक्की तारा योगतारा कहलाती है। रेवती नक्षत्र मीनराशिके अन्तर्गत है। (सूर्यसिद्धान्त ८ अध्याय, १३ भाग)

इसकी छोड़कर अभिजित् नामक एक और नक्षत्रका उल्लेख देख पड़ता है। किन्तु वह इन २७ नक्षत्रोंसे अतिरिक्त नहीं होता। उत्तराषाढा नक्षत्रके ४ भागोंमें शेष भाग और श्रवणाकी प्रथम ४ कलाओंको ही भारतीय ज्योतिर्विदोंने अभिजित् कहा है *

खगोलाका परिमाण प्रथम ही बता चुके हैं। सूर्य-सिद्धान्तके मतमें इस खगोलाका व्यास ५८५३८४३८११-२७२७२७ योजन और पृथिवीसे दूरी २८०६८२१८-

* पुराणे चरन, ईरानी और तुनी इसी अभिजित्को निवाके नक्षत्र नक्षत्रमें २८ नक्षत्र कल्पना करते हैं।

५५६३६३६३ योजन है। खगोलके नीचेकी कक्षा नक्षत्र-कक्षा कहलाती है। इसी नक्षत्रकक्षामें पूर्वस्थित नक्षत्र-मण्डली अवस्थित है। नक्षत्रकक्षाका परिमाण २५८८-८०००० योजन, व्यास ८२६८२२७३ योजन और पृथिवी-से उच्चता ४१३४५३३६ योजन है। खगोलकी उच्चता-से नक्षत्रकक्षाकी उच्चता घटाने पर २८७६८२१८१-१२८१*२७ अवशिष्ट रहेगा। सुतरां नक्षत्रकक्षा खगोलकक्षासे इतने ही योजन परिमाण नीचे अवस्थित है। (सूर्यविज्ञान ११८०) यह नक्षत्रमण्डल सर्वदा ही पृथिवी-को समान अन्तरालमें रह कर भ्रमण करता है। नाक्षत्रिक ६० दण्डों पर्यात् एक दिन रातमें यह एक बार पृथिवीको घूम आता है। इसीका नाम नाक्षत्रिक चक्रो-रात्र है। (सूर्यविज्ञान ११२५)

मेरुकी उभय दिशाओंको पर्यात् मेरुके दक्षिणाय तथा उत्तरायके उपरिभाग पर आकाशमें दो तारायें हैं। इन दोनों ताराओंको ध्रुवतारा (Polar star) कहते हैं। गाड़ीका पहिया जिस निखल नकड़ी को पकड़ के घूम करता, उसका नाम धुर वा चक्रदण्ड पड़ता है। इसी प्रकार उत्तर तथा दक्षिणाकायस्थित इन दोनों तारा-ओंको चक्र बनाके राशियुक्त चक्रावर घूमते रहता है। इसीसे ज्योतिर्विदोंने इन दोनों ताराओंका नाम ध्रुव लिखा है। आकाशको घोर दृष्टि उठानेसे समझ पड़ता है, मानो हमारे मस्तकके ठीक ऊपरिभागको स्थित आकाश प्रपेक्षाकृत उच्च है और उसी स्थानमें क्रमक्रम अवगत हो चारों ओर पृथिवीमें मिल गया है। आकाश जहाँ पृथिवीसे मिला, उसको दृष्टिपरिच्छेदक रेखा कहते हैं। इस दृष्टिपरिच्छेदक रेखाको परिधि समझने पर भूखण्ड एक वृत्ताकारमें परिणत होगा। यही वृत्त क्षितिज कहलाता है। जो देशवासी अपने क्षितिज वृत्तसे ध्रुव नक्षत्रको जितना ऊपर देखते, उनका अक्षांश उतना ही ऊँचा हुआ करता है। क्षितिजवृत्तसे ध्रुव-की उच्चता ही अक्षांश (Latitude) है। (सूर्यविज्ञान ११४४ रङ्गनाथ)

पूर्वकी ओर कई निरक्षदेशोंका उल्लेख किया गया है, उन देशोंके अधिवासी ध्रुव नक्षत्रको अपना क्षितिज-वृत्त देखते हैं। इसीसे उन देशोंका अक्षांश नहीं

होता। दक्षिण क्षितिज प्रदेशसे विषुवद वृत्तका जितना अन्तर पड़ता, उसको लम्ब (Co latitude) कहते हैं। (सूर्यविज्ञान ११३ रङ्गनाथ) आकाशके मध्यसे ध्रुव-निकटवर्ती क्षितिज लम्बाई कहलाता है। जिस देशका अक्षांश ८० आता, उसका लम्बाई शून्य (०) देखा जाता है। फिर जिस देशका लम्बाई ८० पड़ता, उसका अक्षांश शून्य (०) लगता है। जैसे निरक्षदेशोंका अक्षांश शून्य है, तो उनका लम्बाई नब्बे होगा। इसी प्रकार मेरुका अक्षांश ८० है, उसका लम्बाई शून्य रहेगा पर्यात् मेरुका लम्बाई नहीं और यमकोटी प्रभृतियोंका अक्षांश नहीं। (सूर्यविज्ञान १२४४ रङ्गनाथ)

हम जिस भूखण्डमें रहते हैं, उसको ज्योतिर्विद जम्बूद्वीप नामसे लिखते हैं। पूर्वकी ओर कहा जा चुका है कि समुद्रने मेरुकाकी तरफ पृथिवीको लपे के भूगोल दो भागोंमें बाँट दिया है। उन्हींमें एक खण्डका नाम जम्बूद्वीप है। प्रत्येक जम्बूद्वीपकी चारों ओरों समुद्र भरा है।* मेरुका निकटवर्ती स्थान सब स्थानोंसे ऊँचा है। फिर वहाँसे क्रमक्रम अवगत हो जो स्थान समुद्रसे मिलता, वही अतिशय नीच रहता है। समुद्र और भूखण्डकी सन्धि को भूवृत्तका परिधि कह सकते हैं। इसी परिधिवृत्तके समसूत्रमें किसी वृत्तको कल्पना करनेसे विषुवदवृत्त कहा जाता है। विषुवदवृत्तमें क्रान्तिवृत्तके दो स्थान (मेघ और तुलाका प्रायस्थान) लग्न रहते हैं। क्रान्तिवृत्त प्रवह वायुसे आहत होकर सर्वदा विषुवदवृत्तमागमें परिभ्रमण किया करता है। क्रान्तिवृत्तके मेघस्थानसे कर्कादि स्थान विषुवदवृत्तके २४० अंश उत्तर और मकरादि स्थान २४० अंश दक्षिणको अवस्थित हैं। राशियुक्तके ठीक मध्य स्थानको विषुवस्थान (Equinox) कहते हैं। मेरुके उत्तरायवासियों और बड़वानलस्थितों

* बुद्धिमान भौगोलिक यह मत स्वीकार नहीं करते, वह समुद्रको भी पृथिवीमें ही समझते हैं। समुद्रकी सीकर भी पृथिवी गोलाकार है। पृथिवी मध्यमें विस्तृत विवरण देखो।

† सूर्यविज्ञानके अनुसारमानको मालाखायाने 'बड़वानल' कहा है। (गोलाकार २१८) वर्तमान ज्योतिर्विद इसे दक्षिणमेरु (South Pole) कहते हैं।

असुरों को यह खान क्षितिजवृत्तके ऊपर देख पड़ता है। राशिचक्रका जो स्थान विषुव लिखा जाता उससे उत्तर मेघादि ६ राशियाँ उत्तर भाव और दक्षिणको तुला प्रभृति ६ राशियाँ अवनतरूपमें अवस्थित हैं। मेरुके उत्तराग्रासी मेघादि ६ राशियाँ ही देख सकते हैं। तुलादि ६ राशि उनके लिये भूवृत्तमें आच्छादित जैसे रहने पर नहीं देख पड़ते। फिर बड़वानलमें जो रहते, वह भी तुलादि प्रभृति ६ राशियाँ देखते, मेघादि ६ राशि भूवृत्तमें आच्छादित रहनेसे नहीं देख पड़ते। इसी लिये सूर्य जिन ६ मासोंमें मेघसे कन्याराशिके शेषको अतिक्रम करता, मेरुके उत्तराग्रासियोंको उन्हीं छह महीनों सर्वदा सूर्य देख पड़ता है और उतने दिनों अर्थात् इस देशके वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र और आश्विन मासकी बराबर दिन रहता है। सूर्य जिन ६ मासोंमें तुलाराशिसे मीन पर्यन्त भोग करता, उन्हें सूर्य नहीं देख पड़ता अर्थात् कार्तिक, अग्रहायण, पौष, माघ, फाल्गुन और चैत्र कई महीनों रात होती है। बड़वानलवासियोंको भी कार्तिकसे ६ मास दिन और वैशाखके ६ महीने रात रहती है। यह दोनों वर्षमें ६ मास मात्र सूर्य देख सकते हैं।

(सूर्यसिद्धान्त ११४५)

दक्षिणोत्तर अयनमण्डलके दो सम्पात स्थान होते हैं। इसी सम्पात-स्थानद्वयका नाम विषुवद् है। विषुवद्वय निरक्षदेशके ऊपर अवस्थित है। क्रान्ति और विषुवद्वृत्तका सम्पात क्रान्तिपात (Equinoctial points) कहता है। सृष्टिकालको अयनमण्डल (Solstice) मिथुनराशिके अन्तमें रहता और मेघराशिके प्रथम अंशपर क्रान्तिपात लगता था। पड़ले लिख चुके हैं कि पूर्व और उत्तर आकाशमें दो ध्रुव अवस्थित हैं, राशिचक्र इन्हीं दोनोंका ध्रुव (अक्षदण्ड) बना पश्चिम गतिसे भ्रमण करता है। किन्तु ध्रुवतारा भी अस्थानसे थोड़ा परिमाणमें पूर्वपश्चिम चलते रहती है। इससे राशिचक्र अपनी धुरके स्थानको छोड़ कर कुछ दूर सरक जाता है। सूर्यसिद्धान्तके मतमें राशिचक्र धुरके साथ २७ अंश पश्चिमकी हटता और फिर अपने स्थानपर जा पड़ता है। इसी प्रकार अपने

स्थानसे २७ अंश पूर्वकी भी जाके राशिचक्र लौट आया करता है। (सूर्यसिद्धान्त ११८-१० रजनाच) अयनमण्डल ६६ वर्ष ८ मासकी एक एक अंश चलता और राशिचक्र भी इसी नियमको पकड़ता है। इसी प्रकारकी गतिके अनुसार अयनमण्डल २६ अंश पश्चात् दिक्की हट जैसा जानेसे आजकल मिथुनके नवम अंशमें ही उत्तरायण और धनुराशिके नवम अंशमें दक्षिणायन शेष होता है। विषुवस्थानमें भी एक मीनराशि और दूसरा कन्याराशिका नवमांश लगा करता है। इसी कारणसे आजकल १० चैत्र और १० आश्विनकी दिनरात बराबर होती है। पूर्वकी वैशाख और कार्तिक मास यह समानता देख पड़ती थी। धनुके नवमांशसे मिथुनके नवमांशपर्यन्त उत्तरायण और मिथुनके नवमांशसे धनुके नवमांश तक दक्षिणायन रहता है। किसी चक्रमें शब्दाकार एक अक्षर चुभोकर दूसरे अक्षरपर कोई एक छुद्र पदार्थ बिद्ध करके रखनेसे चक्रकी गति भिन्न यह छुद्र पदार्थ चल नहीं सकता। केवल चक्र की गतिके अनुसार ही छुद्रपदार्थ एक स्थानसे दूसरे स्थानको हट जाता है। इसी प्रकार घनीभूत वायुरूप शलाका द्वारा नक्षत्र भी राशिचक्रके सभी स्थानोंमें बिद्ध हो रहे हैं। नक्षत्रोंकी कोई गति नहीं। केवल राशिचक्रकी गतिके अनुसार ही वह एक आकाशसे अन्य आकाशकी चली जाते हैं। हम रातको आकाशमण्डलमें जो सकल ज्योतिष्क देखते, वह रात की तरह दिनकी भी हमारे मस्तकके ऊपर घूमा करते हैं। किन्तु प्रबल सूर्यकिरणसे अभिभूत-जैसे होने पर वह हमें देख नहीं पड़ते।* सूर्यग्रहण बहुकाल आयी होने पर कभी कभी दिनकी भी नक्षत्रमण्डल चमक उठता है। मीनराशिके शेषसे जिस नक्षत्रकी योगतारा जितनी दूर पड़ती, वह दूरी उसी नक्षत्रकी ध्रुवक (Longitude) ठहरती है। अश्विनी नक्षत्रकी योगतारा मीनराशिके शेषसे ८ अंश दूर अवस्थित होती रहने पर अश्विनीका ध्रुवक ८ अंश है। इसी प्रकार भरणीका २०°, कृत्तिका ३८° अंश २८° कला, रोहिणीका

* आकाश ज्योतिषी जमीनकी वस्तु लीये तब खोद कर जमीनके अन्तर्गत स्थानसे दूरबीनद्वारा दिनकी भी ज्योतिष्क देखा करते हैं।

५२° अंश २८' कला, मृगशिराका ६६°, आर्द्राका ६०° २०', पुनर्वसुका ८२०°, पुष्याका १०६°, अश्लेषाका १०८°, मघाका ११८°, पूर्वफल्गुनीका १४७°, उत्तरफल्गुनीका १५५°, अस्ताका १७०°, चित्राका १८३°, स्वातिका १८८°, विशाखाका २१२° ५', अनुराधाका २२४° ५', ज्येष्ठाका २२८° ५', मूलाका २४१°, पूर्वाषाढाका २५४°, उत्तराषाढाका २६०°, अभिजित्का २६५°, श्रवणाका २७८° धनिष्ठाका २८०°, शतभिषाका ३२०°, पूर्वभाद्रका ३२३° और उत्तरभाद्रका ३३०° अंश ध्रुवक है। रेवतीका ध्रुवक नहीं होता। नक्षत्रोंकी सख्त कान्ति-के अथवा अथवा कान्तिवृत्तस्थित ध्रुवक स्थानसे विक्षेप (Celestial latitude) स्थिर होता है। किसी किसी नक्षत्रकी दक्षिणदिक् और किसी किसीकी उत्तरदिक्को विक्षेप गिना जाता है। अश्लिनी, भरणी और कृत्तिकाकी उत्तरदिक्को यथाक्रम १०, १२ और ५ अंश विक्षेप है। इसी प्रकार रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्राका विक्षेप दक्षिणदिक्को ५, १० और ८ अंश होता है। पुनर्वसुका विक्षेप उत्तरको ६ अंश है। पुष्याका विक्षेप नहीं। अश्लेषाका दक्षिणको ७ अंश विक्षेप बताते हैं। मघाके विक्षेपका अभाव है। उत्तरकी पूर्वफल्गुनीका १२° और उत्तर फल्गुनीका १३ अंश विक्षेप पड़ता है। अस्ता और चित्राका विक्षेप दक्षिणको ११ तथा २ अंश है। स्वातिका विक्षेप ३७ अंश उत्तर पड़ता है। विशाखा प्रभृति ५ नक्षत्रोंका विक्षेप उत्तरको १° ३०', ३° ४', ८', ५° ३०' और ५ अंश है। उत्तरको ६० अंश पर अभिजित् और श्रवणा तथा धनिष्ठाका ३०° और ३६° अंश विक्षेप पड़ता है। शतभिषाका विक्षेप दक्षिणको ७' कला है। पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपदका विक्षेप उत्तरदिक्को २४ तथा २६ अंश आता है। रेवती नक्षत्रका विक्षेप नहीं होता।

(सूर्यसिद्धान्त १२ ब०)

ग्रहोंकी गतिके अनुसार कभी कभी ग्रह और नक्षत्र मिल जाते हैं। सिवा इसके अमरत्व प्रभृति कई एक नक्षत्रोंका विषय भी भारतीय ज्योतिर्विदोंने निरूपण किया है। उसको यथाक्रम नीचे लिखते हैं—

अमरत्व नक्षत्र (Canopus)—उस ताराका

नाम है, जो राशिवक्रवासे मितुनराशिके अन्तर्नि ८० अंश दूर दक्षिण दिक्को अवस्थित है। इसका ध्रुवक ३ राशि और दक्षिण दिक्को विक्षेप ८० अंश है। (ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्यके मतमें अमरत्वका ध्रुवक ८७ अंश और विक्षेप ७७ अंश पड़ता है।)

मृगशिरा (Sirius) मितुनराशिके २० अंशों अर्थात् राशिवक्रके ८० अंशों पर अवस्थित है। इसका ध्रुवक २ राशि २० अंश और विक्षेप दक्षिण दिक्को ४० अंश है। (सिद्धान्तशिरोमणिको देखते—इसका ध्रुवक ८६ अंश और अश्लेषावर्गके अनुसार ८१ अंश है।) भारतीय ग्रह चलते-चलते उसको कालकुण्ठ कहते हैं।

अग्निनक्षत्र (B Tauri) वृषराशिके २२ अंशों पर अवस्थित है। इसका ध्रुवक १ राशि २२ अंश और उत्तरको विक्षेप ८ अंश है। (अश्लेषावर्गके अनुसार इसका ध्रुवक ५३ अंश बताया है।)

ब्रह्मरुद्र (a Aurigae or Capella) नक्षत्र भी वृषराशिके २२ अंशों पर अवस्थित है। इसका ध्रुवक अग्निनक्षत्रके समान रहता और विक्षेप उत्तरको ३० अंश लगता है।

रोहिणीशकट—वृषराशिके १७ अंश पर रहता है। इसका ध्रुवक १ राशि १७ अंश और २ अंश दक्षिणको विक्षेप है।

ब्रह्मनक्षत्र (Aurigae) वृषराशिके १७ अंशों पर रहता है। इसका ध्रुवक १ राशि २७ अंश और ३८ अंश उत्तरको विक्षेप है। (अश्लेषावर्गके मतमें ब्रह्मनक्षत्रका ध्रुवक और भी ४ अंश अधिक होगा।)

अर्पावस्त (Virginis) का ध्रुवक चित्रानक्षत्रके समान है और विक्षेप उत्तरदिक्को ७ अंश आता है।

आपनक्षत्र (Virginis) का ध्रुवक भी चित्रानक्षत्रके समान है और विक्षेप उत्तरदिक्को १४ अंश लगता है।

इसके व्यतीत उत्तरदिक्को और भी २ नक्षत्र हैं—उर्से सप्तर्षि (Ursa major) कहा जाता है। सूर्यसिद्धान्तमें इनके विक्षेपकी बात नहीं लिखी। (सूर्यसिद्धान्त १२ ब०) नक्षत्र प्रभृति ज्योतिर्विदोंसे सूर्यका तेज अधिक जेसा रहने पर सूर्यके निकटवर्ती ज्योतिष्का हमें दृश्य नहीं पड़ते। फिर सूर्यसे जब बड़ा दूर दृष्ट होती, तब

सबके सब देखनेमें आते हैं। इसीका नाम उदय और अस्त है। सूर्यसिद्धान्तमें इसका निर्णय किया गया है—सूर्य कितना निकट रहनेसे किस नक्षत्र का अस्त होगा। यथा—स्वाति, अश्लेष, मृगशिरा, चित्रा, अभिजित्, ज्येष्ठा, पुनर्वसु और ब्रह्मकुदय कई नक्षत्रोंका कालांश १३ है। इसी, अश्लेषा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, विशाखा और अश्लेषाका कालांश १४ लगता है। इसी प्रकार कृत्तिका, अनुराधा और मूलाका कालांश १५ है। अश्लेषा, चार्द्रा, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढाका कालांश १५ आता है। भरणी, पुष्या और मृगशिराका कालांश २१ है। इसको छोड़ कर दूसरे नक्षत्रोंका कालांश १७ ही रहता है। नक्षत्रके कालांशको १८०० द्वारा गुण करके उदयास्त द्वारा बांटेने पर जो लब्ध आता, क्रान्तिवृत्तके उतने ही अंशों पर नक्षत्रका उदय अस्त देखाता है। अल्पगति ग्रहोंका भाति नक्षत्र भी पूर्वदिक्को उदय और पश्चिमदिक्को अस्त होते हैं। परन्तु अभिजित्, ब्रह्मकुदय, स्वातो, अश्लेषा, धनिष्ठा और उत्तरभाद्रपद कई नक्षत्र सूर्यसे कितने ही उत्तरको अवस्थित जैसे रहने पर कभी सूर्य-किरणसे अभिभूत नहीं होते और न उनका अस्त ही होता है। (सूर्यसिद्धान्त २।१८) नक्षत्रोंका अन्तर्विचर नक्षत्र और चरित्र प्रकृति ग्रहोंमें द्रष्टव्य है। सूर्यसिद्धान्तके टीकाकार रङ्गनाथके मतमें ब्रह्मनक्षत्र भा कभी अस्त नहीं होता।

(सूर्यसिद्धान्त २।१८ रङ्गनाथ)

नक्षत्रमण्डलकी उस और यथाक्रम सात ग्रहकक्षायें अवस्थित हैं। फलितज्योतिषमें ८ ग्रहोंका उल्लेख है। राहु और केतु इन्हीं नक्षत्रोंमें गिन लिये गये हैं। फिर जीलकण्ठ-ताम्रकमें सिवा इसके सुन्दा नामक एक दूसरा ग्रह भी लिखा है। किन्तु आर्यभट्ट और भास्कराचार्य प्रकृति भूगोलीयताओंमें आकाशमण्डलमें इन तीनों ग्रहोंकी कक्षायें निरूपण नहीं की हैं। इससे हम समझते कि वह इन तीनोंको यह-जैसा स्वीकार न करते थे। राशिचक्रकी तरफ सब ग्रहकक्षायें भा ३६० अंशोंमें विभक्त हैं। फिर राशिचक्रके समसूत्रको वह द्वादश भागोंमें बंट भी जाती है। इनके एक एक भागको भी यथाक्रम मेषादि नामोंसे उल्लेख करते

हैं। यह अपने क्रान्तिवृत्तके जिस अंशमें रहते और उसी अंश भागके अनुसार जिस राशिमें पड़ते, वह उस राशिके उतने ही अंशमें अवस्थित रहते हैं। उपरि-स्थित कक्षाके परिमाणकी अपेक्षा अधःस्थित कक्षाका परिमाण कम है। ग्रहोंके मध्य सकलके उपरिस्थित ग्रहोंकी कक्षाका परिमाण दूसरे ग्रहोंकी कक्षासे बहुत ज्यादा सबसे अधःस्थित चन्द्रकक्षाका परिमाण थोड़ा है।* यह जितने कालको मेषराशिसे घूमना पारम्भ करके मीनराशिसे अन्त तक पहुँचते, उस समयको उनका भगण वा वत्सर कह सकते हैं। जिस ग्रहकी कक्षाका परिमाण जितना ही अधिक रहता, उसको उसके घूमनेमें भी उतना ही अधिक समय लगता है। फिर जिसकी कक्षा छोटी पड़ती, उस ग्रहको उसके घूमनेमें ज्यादा देर नहीं लगती। (सूर्यसिद्धान्त १।२०) ग्रहोंमें ग्रहोंकी कक्षा सर्वापेक्षा उच्च, अधिक और पृथिवीसे २१३१००५८ योजन ऊँचे अवस्थित है। इसके व्यासका परिमाण ४०६२०२०७ योजन और मण्डल परिमाण १२७६६८२५५ योजन है। ग्रहोंकी मध्यभुक्ति (दैनिक गति) २ कला और २३ अनुकला है। यह १ वर्षमें अपनी कक्षाके १२ अंश, १२ कला, १२ विकला और ५४ अनुकला पतिक्रम करता है। एक युगमें २४६५६८ भगण होते हैं अर्थात् ग्रहण एक युगमें २४६५६८ बार अपने चक्रको घूम आता है। ग्रहोंके नीचे वृहस्पतिकी कक्षा है। इसका परिमाण ५१३७५७६४ योजन, व्यास १६३४६८३४ योजन और पृथिवीसे उच्चता ८१७२२६१७ योजन लगते हैं। वृहस्पतिकी दैनिक गति ४ कला, ५८ विकला और ८ अनुकला है। यह एक वत्सरको अपनी कक्षाके १० अंश, २१ कला, १ विकला और ३६ अनुकला काँच जाता है। एक युगमें वृहस्पतिके ३६४२२० भगण होते हैं।

वृहस्पतिके नीचे चन्द्रोच्च की कक्षा है। उसका

* युरोपके वर्तमान ज्योतिर्विदोंने यूरैनस (Uranus) और नेपचुन (Neptune) नामक दो नवतम ग्रह प्राविचार करके उनको ग्रहकक्षा फिर की है। यह ग्रहमें विज्ञान विवरण देखो।

† युरोपीय चन्द्रकी यह-जैसा नहीं मानते। उनके मतमें यह पृथिवी कक्षा उपग्रह (Satellite) है। प्रकृति देखो।

परिमाण ३८३२८४८४ योजन, व्यास १२७४२८०८ योजन और पृथिवीसे उच्चता ६३७०६१४ योजन ठहराते हैं। चन्द्रकी दैनिक गति ६ कला और ४१ विकला है। एक वर्षमें यह ४० अंश, ४० कला, ५८ विकला और ४२ अनुकला चलता है। चन्द्रके एक युगमें ४८८१०३ भ्रमण लगते हैं।

चन्द्रके नीचे मङ्गलकी कक्षा है। उसका परिमाण ८१४६८०८ योजन, व्यास २५८२१८८ योजन और पृथिवीसे उच्चता १२८५२८८ योजन बताते हैं। मङ्गलकी दैनिक गति ३१ कला, २६ विकला और २८ अनुकला है। १ वर्षमें यह ६ राशि, ११ अंश, २४ कला, ८ विकला और ३६ अनुकला चलता है। एक युगमें इसके २२८५८३२ भ्रमण पड़ते हैं।

मङ्गलके नीचे सूर्यकी कक्षा है। हमें सभी ग्रहों और ज्योतिष्कोंकी अपेक्षा सूर्यका आलोक अधिक परिमाणमें मिलता है। सूर्यकी गतिके अनुसार ही दिन रात्रि, मास, ऋतु, अयन और वत्सरकी व्यवस्था बंधती है। जिस स्थानके अधिवासी जब सूर्यको देख पाते, उसी समयसे वह अपना दिन आगति है। फिर जब सूर्य पश्चिमाकाशमें पृथिवीके अन्तराक्ष को छू जाता और देखनेमें नहीं आता, उसी समय दिन समाप्त होता और रात्रि पड़ती है। पुनर्वात जब पूर्व आकाशमें लोहितवर्ण सूर्यमण्डल चमकने लगता, फिर दिनका आरम्भ हो जाता है। सूर्य जितने समयमें स्वीय मण्डलके द्वादश भागोंमें एक भागको प्रतिष्ठान करता, उसका नाम एक सौरमास पड़ता है। सूर्यके भिन्नराशि अर्थात् मण्डलके प्रथम ३० अंशोंमें प्रतिष्ठानकी वेशाख मास कहते हैं। इसी प्रकार ज्येष्ठ प्रथमिको भी समझना चाहिये। भास्कराचार्यने निर्णय कर दिया है—सूर्यको किस राशिमें प्रतिष्ठान करनेमें क्षितना समय लगता है। यथा—सूर्य जब एक राशिसे अन्ध राशि में जाता, तो वह समय रविसंक्रान्ति कहलाता है यह ३० दिन, ५५ दण्ड और ३३ पलमें भिन्नराशि प्रतिष्ठान

करता है। इसी प्रकार ३१ दिन २४ दण्ड ५६ पल सूर्यको छवराशि, ३१ दिन ३७ दण्ड ३२ पल मिथुन, ३१ दिन २८ दण्ड ३५ पल कर्कट, ३१ दिन २ दण्ड ५२ पल सिंह, ३० दिन २८ दण्ड ४ पल कन्या, २८ दिन ५७ दण्ड २ पल तुला, २८ दिन २७ दण्ड ३८ पल अश्वि, २८ दिन १५ दण्ड ३ पल धनु, २८ दिन २४ दण्ड मकर, २८ दिन ४८ दण्ड ४३ पल कुम्भ और ३० दिन २३ दण्ड ३१ पल मीनराशि प्रतिष्ठान करनेमें लगते हैं। सूर्यमण्डलका परिमाण ४३३१५०० योजन, व्यास १३७८२०४ योजन और पृथिवीसे उच्चता ६८८३०२ योजन है। सूर्यकी दैनिक गति ५८ कला ८ विकला और १ अनुकला होती है।

सूर्य १ वत्सरमें अपने मण्डलको एक बार परिभ्रमण करता है। एक युगमें इसके ४३२०००० भ्रमण होते हैं। सभी ग्रहविषय गोलाकार हैं। सूर्यका मध्यविषय १५२२ योजन है। आर्यभट्टकी मतमें सूर्य अतीत दूसरे ग्रहोंमें स्थिति नहीं होती। अपर ग्रहविषयका तो भाग सूर्याभिमुख रहता, वही भाग सूर्यकिरणसे चमक उठता और दूसरा भाग विवर्ण लगता है। (आर्यभट्ट) सूर्यका आलोक सर्वदा ही समान है। परन्तु निकटवर्ती होनेसे वह अतिशय तीव्र और दूर दृष्टिमानसे मृदु-जैसा समझ पड़ता है। दो मासोंमें एक ऋतु होता है। ऋतु छह हैं। नाना प्रकार ऋतु गचना करते हैं। प्राच्य कालको ऐसी गचना लगती थी—पञ्चद्वयण और पौष हेमन्त, माघ और फाल्गुन ग्रीष्म, चैत्र और वैशाख वसन्त, ज्येष्ठ और आषाढ़ शीत, आश्व और भाद्र पूर्वा तथा आश्विन और कार्तिक शरत्। शीत ऋतुको सूर्य भिन्नके उत्तराश्वसे अतिशय निकटवर्ती जैसा रहने पर वही किरण तीव्र पड़ जाता है और हेमन्त ऋतुको बड़बानसमें निकटवर्ती जैसा रहने पर सूर्यकिरण शोण्य आता है। अतएव हेमन्त ऋतुको उत्तरभिन्न और शीत ऋतुको दक्षिण भिन्न सूर्यकिरणकी मृदुता मिलती है। (वर्णविधान १५१४) भिन्नके उत्तराश्ववर्ती और बड़बानसके अधिवासी विद्वत् कालको अपने क्षितिज वृत्त पर सूर्य देख पाते हैं। जब दक्षिणभिन्नके उत्तर भागमें सूर्य अवस्थिति करता,

* पुरोपीय ज्योतिषियोंकी मतमें सूर्य एक किरणवत् है। उसकी कोई गति नहीं। पृथिवीकी गतिके अनुसार ही हम सूर्यकी गतिको अनुभव करते हैं। सूर्य ईश्वरी

मिहके उत्तरायवासियोंका दिन पड़ता है। फिर दक्षिण भागमें उसके रहनेसे उनकी रात होती है। इसी प्रकार मिहके दक्षिण सूर्य रहनेसे मिहके दक्षिणायवासियोंका दिन और उत्तर जानेसे रात पड़ती है। जब सूर्य क्रान्तिवृत्तके रेवती नक्षत्रसे निकट भिषराशि पर उदित होता, तब मिहके उत्तरायवासियोंका दिन, मिथुनराशिके शेषभाग पर जानेसे मध्याह्न और कन्याराशिके अन्तको जानेसे सायंकाल (सूर्यास्त) दिखाता है। मिहका उत्तराय और दक्षिणाय (वङ्गवानक्ष) बिककुल विपरीत पक्षात् समसूत्रमें अवस्थित जैसा रहनेसे दक्षिणायवासियोंका उपर्युक्त समय उलटा पड़ा करता है। उत्तर मिहवासियोंका जब दिन लगता, तब दक्षिणमिहवासियोंका सूर्य अस्ताचलको लगता है। फिर मिहके उत्तरायवासियोंका मध्याह्न दक्षिणायवासियोंकी मध्यरात्रि है। इसी प्रकारसे उत्तरमिहके सूर्यास्त समयको वङ्गवानक्षमें दिन चारथा हुआ करता है।

पूर्वकी जिस राशिवृत्तकी बात लिखी गयी है, वह मिहके उत्तरायवासियोंके दक्षिण, वङ्गवानक्षवालोंके उत्तर और निरक्षदेशीयोंके मस्तक पर सबंदा अभ्यस्य करता है। निरक्षदेशवासियोंका दिनरात्रि परिमाण सकल काल समान होता है, कभी नहीं घटता बढ़ता। कारण सूर्य बराबर उनके मस्तक पर घूमता रहता है। जम्बूद्वीप और समुद्रके दक्षिण देशमें दिन और रात्रिकी प्राप्ति होती है, किन्तु विषुवत् संक्रमणके दिवसकी वृत्ति भी उनमें कोई भेद नहीं पड़ता। जब जम्बूद्वीपमें दिन घटता और रात बढ़ती है, दक्षिण देशमें दिन बढ़ता और रात घटती है। सूर्यके भिषराशिसे कन्याराशि पर्यन्त अवस्थान काचको जम्बूद्वीपमें क्रमान्वयसे दितकी वृत्ति और रात्रिका अय होता और उसके तुला राशिसे मीनराशि पर्यन्त अवस्थिति करते क्रमशः रात बढ़ा और दिन घटा करता है। समुद्रसे दक्षिण भागकी इसके विपरीत पड़ता है। पृथिवी पट्टिके चतुर्थांशसे क्रान्त्वंश अन्तरित करने पर जो अवशिष्ट रहता, निरक्ष देशसे उतने योजन पर अवस्थित देवभागके (पक्षात् उत्तरमिहका) देशोंमें धनु और मकरराशिके सूर्य देख

नहीं पड़ता पक्षात् पौष और माघ की मास वहाँ रहनेवालोंकी सर्वदा रात्रि बनी रहती है। इसी प्रकार वङ्गवानक्ष (दक्षिणमिह) में निरक्षदेशीयोंसे उतने ही योजन दूर अवस्थित देशोंमें मिथुन और कर्कट राशिके सूर्य दृष्ट नहीं होता पक्षात् भाषाढ़ और आषाढ दो मास सर्वदा रात्रि देख पड़ती है। किन्तु निरक्ष देशसे उतने ही योजन उत्तर भाषाढ़ आषाढ तथा उससे उतने ही योजन दक्षिण पौष और माघ दो दो महीने सर्वदा सूर्य दिखायी देता है। (खगोलशास्त्र १२।६९-७४) क्रान्त्वंशसे भूपरिधिका चतुर्थांश निःकाश डालने पर जो अवशिष्ट बचता, निरक्षदेशसे उतने ही योजन उत्तर अष्टादश, पौष, माघ तथा फाल्गुन चार महीनों बराबर रात रहती और वैशाख, ज्येष्ठ, भाषाढ़ और आषाढ मासकी सर्वदा सूर्य उदित रहता है। फिर निरक्षदेशसे उतने ही योजन दक्षिणकी वैशाख, ज्येष्ठ, भाषाढ़ और आषाढ चार महीनों रात और अष्टादश, पौष, माघ और फाल्गुन चार मास दिन होता है। (खगोलशास्त्र १२।७६) सूर्यके भद्राश्वयुज्यके ऊपर गमन करनेसे भारतवर्षमें सूर्यका उदय, केतुमास पङ्चमनेसे रात्र्यर्थ और कुशवर्ष जानेसे भारतवर्षमें सूर्यका अस्त होता है। इसी नियमसे अन्य वर्षोंमें भी उदयास्तकी व्यवस्था लगा सकते हैं। सूर्य और ग्रहण सम्बन्ध विस्तृत विवरण देखो।

सूर्यकक्षाके नीचे शुक्रकी शीघ्रोच्चकक्षा है। इसका परिमाण २६६४६२० योजन, व्यास ८४७८२८ योजन और पृथिवीसे उच्चता ४२२११८ योजन है। शुक्रके नीचे बुधकी शीघ्रोच्चकक्षा है। इसका परिमाण १०४३-२०८ योजन, व्यास २२१८२० योजन और पृथिवीसे उच्चता १६५१६५ योजन है।

बुध और शुक्रकक्षाका परिमाण ४२६१५० योजन, व्यास १२८७७५ योजन और पृथिवीसे उच्चता ६८५८८ योजन लगती है। शुक्रकी दैनिक गति ८६ कक्षा ७ विकला और ४२ अनुकक्षा है; वार्षिक चाल ७ राशि १५ अंश ११ कक्षा ४६ विकला और १२ अनुकक्षा पड़ती है। एक युगमें २०१२३७६ भगण होते हैं। बुधकी दैनिक गति २४५ कक्षा ३२ विकला २१ अनुकक्षा है। वार्षिक गति १ राशि २४ अंश ४५ कक्षा २९ विकला

४८ अनुकला पड़ती है। एक युगमें इसके ७१८३००६० भगण होते हैं। चन्द्र पृथिवीसे प्रतिशय निकट-वर्ती है। उसकी कक्षा पृथिवीसे ५७४५ योजन मात्र ऊँचे अवस्थित है। चन्द्र कक्षाका परिमाण ३२४००० योजन और व्यास १६२४ योजन है। चन्द्र की दैनिक गति ७८० कला ३४ विकला और ५२ अनुकला पड़ती है। फिर वार्षिक गति ४ राशि १२ अंश ४६ कला ४० विकला और ४८ अनुकला है। एक युगमें ५७७५३३३६ भगण बनते हैं।*

ग्रहोंमें सूर्य और चन्द्रकी गति सर्वदा ही एक प्रकार रहती, कभी नहीं घटती बढ़ती। (१) मङ्गल प्रभृति दूसरे ग्रहोंकी गति समान नहीं। प्राचीन ज्योतिर्विदोंने उनकी पाठ प्रकार गति निरूपण की है। यथा—वक्र, अनुवक्र, कुटिन्न, मन्द, मन्दतर, सम, शीघ्र और प्रतिशीघ्र। इसमें मन्द, मन्दतर, सम, शीघ्र और प्रतिशीघ्र यह पाँच प्रकारकी गति सरलपथमें लगती और अवशिष्ट तीन प्रकारकी गति वक्रभावमें जैसी होनीसे

प्रथम पाँच प्रकारवालीको ऋजुगति और अपर तीन प्रकारवालीको वक्रगति कह सकते हैं। (सूर्यसिद्धान्त २।२-२२ रत्नमाध) पूर्वकी ग्रहादिकी जो गति लिखी गयी है, उसकी ग्रहोंमें मध्यगति ग्रहकी स्वाभाविक गति भी कह देते हैं। ग्रहोंकी विभिन्न गतियोंका कारण सूर्यसिद्धान्तमें इस प्रकार निर्योत हुआ है—राशिचक्रमें शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात नामक तीन वायवीय शरीरधारी जीव वास करते हैं। उन्हींके प्राकर्षणसे ग्रहोंकी चलन चलन चाल पड़ती है। (सूर्यसिद्धान्त २।१) टीकाकार रत्नमाध उन तीनोंको जीव जैसा नहीं मानते। उनके मतमें स्थानविशेषको ही शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात कह सकते हैं। (सूर्यसिद्धान्त २।२ रत्नमाध) ग्रहकक्षाके उस स्थानमें प्रवह वायुके अतिरिक्त कोई दूसरा वायु भी रहता है। वह सर्वदा एक स्थानमें ठहर बिना हल्ला करता है। इसी वायुरूप रज्जुमें हविस्व उभय दिक्को प्रयित जैसा हो रहा है। अपनी शक्तिद्वारा स्वीय उस स्थानसे पूर्वदिक् चलने पर ग्रहविषय को यह वायु

* वर्तमान युरोपीय गणक उपयुक्त मत नहीं मानते। उन्होंने उत्कृष्ट यन्त्रोंके साहाय्यसे ग्रहादिका परिमाण, गति और सूर्यसे दूरत्व एवं प्रकाश निर्णय किया है—

ग्रहोंका नाम	व्यास—मोल	सूर्यसे दूरत्व	सूर्य प्रदिव्यकाल	वार्षिक गति
बुध (Mercury)	३१४०	३५००००००	८८ दिन	२४ घण्टा ५ मिनट २८ से०
शुक्र (Venus)	७७०२	६६००००००	२२५ ”	२१ घण्टा २१ मिनट ७ से०
पृथिवी	७८१२	८१००००००	३६५ $\frac{1}{4}$ ”	२१ घण्टा ५६ मिनट
मङ्गल (Mars)	४१००	१५२००००००	६८७ ”	२४ घण्टा ३८ मिनट २१ से०
बृहस्पति (Jupiter)	८१०००	४७५००००००	४३३२ ”	८ घण्टा ५५ मिनट
शनि (Saturn)	७८०००	८७१००००००	१०७५८ ”	१० घण्टा १६ मिनट
यूरेनस†	१४२१७	१७५१००००००	१०६८७ ”	
नेपचुन‡		२७६००००००	६०१२७ ”	

† १७८१ ई०की विलियम हरसेलने इसकी आविष्कार किया था।

‡ यह बेरिस नामकी आत प्रसिद्ध फ्रांसीसी ज्योतिर्विद् लावेरियर और अदामने १८४६ ई०की इस आविष्कार किया।

(१) युरोपीय मतमें चन्द्र एक उपग्रह है। यह पृथिवीका पारिपरिक है। इसका आकार पृथिवीके चतुर्दश भागोंमें एक भाग लगता है। सूर्य-दृश्यमें चन्द्र पृथिवीसे २१७८४० मोल दूर है। इसकी एक बार अपनी कक्षा चक्करमें २७ दिन ७ घण्टा ४० मिनट समय बीतता है।

युरोपीय सूर्यको एक स्थिर नक्षत्र मानते हैं। इसकी कक्षाके परि-

भ्रमचक्रमें २५ दिन ८ घण्टे १० मिनट जाते हैं।

एतद्विषय युरोपीय ज्योतिर्विदोंने दूरबीनके सहारे १२६ सामान्य ग्रह और उनमें किसी किसीकी गतिभी निर्णय किया है। यह ग्रहति ग्रहोंमें विद्युत् विवरण देखी।

पश्चिमदिक् प्राकर्षण करता है। वायुके खिंचावसे ग्रह-विष्वक्की चाल घट जाती है। इसी प्रकार चलते चलते ग्रहविष्वक् जब उच्चस्थानसे ६ राशि दूरकी पहुँचता, तब फिर यह वायु ग्रहकी पूर्वदिक्, अर्थात् उच्चस्थानके अभिमुख खींचने लगता है। ग्रहकी गति पूर्वदिक्की रहने और वायु द्वारा भी उसके पूर्वदिक्की जैसा खिंचनेसे ग्रहकी गति बढ जाती है। उच्चस्थानसे पूर्व भागमें ६ राशि दूरकी अवस्थित उच्च नामक जीव ग्रह-विष्वक् पूर्वकी ओर और उच्चस्थानसे पश्चिम ६ राशि दूरकी अवस्थित उच्च जीव उसे पश्चिमकी ओर प्राकर्षण करता है। (सूर्यसि० २१४) माध्याकर्षण शब्दमें युतोवीच मत दृष्टव्य है।

सूर्य भिन्न सभी अपर ग्रहोंका पात होता है। क्रान्तिवृत्तस्थित ग्रहके भोगस्थानसे उत्तर और दक्षिणकी पात पड़ता है। यह अपनी शक्ति द्वारा चन्द्र प्रभृति-की क्रान्तिवृत्तसे विक्षिप्त कर देता है। इसीकी अपनी शक्ति द्वारा ग्रहोंके स्वस्थान परित्याग करा जैसा देने पर राहु नामसे उल्लेख करते हैं। (सूर्यसिद्धान्त २१६) ग्रह-स्थानसे पश्चिम भागकी ६ राशियों पर अवस्थित पात वा राहु ग्रहविष्वक्की उत्तरकी ओर विक्षेप करता अर्थात् ग्रहके भोगस्थानसे उत्तरकी ओर खींचता और उच्चस्थानसे पूर्व भागमें ६ राशियोंके मध्य अवस्थित राहु वा पात ग्रहविष्वक्की दक्षिणदिक् फेंकता है। इसीसे ग्रहविष्वक्के दक्षिण और उत्तरकी विक्षेप पड़ा करता है। इसमें बुध और शक्रका कुछ विशेषत्व यह है कि उनके उच्चस्थानसे उनका पात पूर्वार्ध वा परार्धके मध्य अवस्थित होने पर बुध और शक्रका यथाक्रम दक्षिण और उत्तरकी विक्षेप पाता है। ग्रहोंका उच्चस्थान दूर चले जाने पर जब दोनों ओरोंका प्राकर्षण घट जाता, तब उनकी वक्रगति घुवा करती है। इसी प्रकारके प्राकर्षणसे मङ्गल स्त्रीय १६० कोन्द्रांश, बुध १४४ कोन्द्रांश, बृहस्पति १२० कोन्द्रांश, शक्र १६१ कोन्द्रांश और शनि ११५ कोन्द्रांश पर तिरछा चलता है। फिर ग्रहोंके अपने अपने चक्र ३६० अंशोंसे उनका कोन्द्रांश घटा देने पर जो अवशिष्ट रहता, उतने ही अंश गृहगण वक्रगति की परित्याग करता है। अर्थात् शक्र और बुध

स्त्रीय स्त्रीय कोन्द्रसे सप्तम राशि पर तिरछा नहीं चलते। इसी प्रकार स्त्रीय कोन्द्रांशसे अष्टम राशिमें बृहस्पति और बुध एवं नवम राशिमें शनि वक्रगति की छोड़ देता है। (सूर्यसिद्धान्त २१५-२१६)

ग्रहोंका उदय-अस्त—ज्योतिष्क सकल समयकी समान भावसे प्राकाशमण्डलमें अवस्थिति करते हैं। वास्तविक उनका कभी ड्रास वा वृद्धि नहीं होती। राशिचक्रके साथ चलकर जब दृष्टिपरिच्छेदक रेखा द्वारा अन्तरित हो जाते, हम उनके अस्त घुवा बताते हैं और जब फिर घूमते घूमते दृष्टिपरिच्छेदक रेखा पर चढ़ पाते और प्रथम उन्हें देख पाते, तब उनका उदय लगाने हैं। इसी प्रकार सूर्यकी छोड़ कर अपर ग्रह और ज्योतिष्क सूर्यकिरणसे अभिभूत रहने और देख न पड़नेसे अस्तगत और सूर्यकिरणसे दूर चलने और प्रथम दर्शन मिलनेसे उदित कहलाते हैं। नक्षत्रोंका उदय और अस्त मन्त्रप्रस्तावमें बताया गया है। अल्पगति ग्रह सूर्यसे न्यून रहने पर पूर्वदिक्की उदित और उससे अधिक लगने पर पश्चिम दिक्की अस्त होते हैं। बृहस्पति, मङ्गल और शनि सूर्यसे छोटे हैं। उनका पश्चिमदिक्की अस्त और वक्रगति बुध तथा शक्रका पूर्वदिक्की उदय होता है। चन्द्र, बुध और शक्र सूर्यसे पक्ष्य रहने पर पूर्वदिक्की उदित और पश्चिम दिक्की निकलते हैं। इसका विधेय विवरण कटु शब्दमें दृष्टव्य है।

पहले ही बता चुके हैं कि ग्रहविष्वक् सूर्यकिरणसे प्राकीर्णित-जैसा होने पर हमें उज्ज्वल देख पड़ता है। मङ्गल प्रभृति ग्रहविष्वक्की सभी अंश सूर्यकिरणसे चमकते और सकल स्थानोंमें उज्ज्वल लगते हैं। किन्तु चन्द्रमण्डलमें ऐसा नहीं होता। कभी कभी चन्द्रमण्डलकी अस्यांश और जब जब सकलांश उज्ज्वल रहता है। सूर्यसिद्धान्तमें उसका कारण इस प्रकारसे निदय किया गया है—सूर्य और चन्द्र जब ६ राशियोंके अन्तर पर अर्थात् समसूत्रमें ऊर्ध्वाधः भावसे अवस्थान करते, इसी दिनकी चन्द्रमण्डलके सभी अंशोंमें सूर्यकिरण प्रतिफलित जैसा होने पर चन्द्रमण्डलका सकल अंश हम शक्र और उज्ज्वल देख सकते हैं। चन्द्रमण्डलका हमारा दृष्ट अर्थात् अर्ध अंश उज्ज्वल और शक्रवर्ध देख पड़-

नेसे पूर्णिमा तिथि होती है। इसकी परदिनसे चन्द्रमण्डल जितने परिमाण सूर्यका निकटवर्ती होते जाता, सूर्य-किरण भी उतनेही परिमाण चंद्रमें अपना प्रतिफलन नहीं दिखाता और चन्द्रका शुक्लत्व भी उसीके अनुसार घटता जाता है। फिर जिस दिन की चन्द्रमंडल सूर्यके साथ एक राशि पर रहता, उस दिन चन्द्रमण्डलमें सूर्यकिरण प्रतिफलित नहीं पड़ता। इसी तिथिका नाम अमावस्या है। पूर्णिमाके दूसरे दिनसे अमावस्या पर्यन्त १५ दिनोंको कृष्णपक्ष कहते हैं। अमावस्याके दूसरे दिनसे चन्द्रमंडल सूर्यसे जितना ही घटते जाता, उतना ही सूर्य-किरण उसमें अपना प्रकाश अधिक पहुँचाता और दिन दिन उसकी शुक्ला भी बढ़ाता है। अमावस्याके परदिनसे पूर्णिमा पर्यन्त शुक्लपक्ष है। हादश अंश पश्चिमकी चन्द्रका उदय और हादश अंश पूर्वकी अस्त होता है। (सूर्यसिद्धान्त १० अ०)

उद्भूतसंहिताके मतानुसार जैसे दर्पण पर सूर्य-किरण पड़नेसे उसका प्रतिबिम्ब अन्धकारमय गृहके अन्तर्गतमें प्रविष्ट होके अन्धकार विनाश करता, वैसे ही जलमय चन्द्रमें भी उसके प्रतिबिम्बित होनेसे अंधेरा दूर रहता है। (उद्भूतसं० ४१२) चंद्र देखो।

ग्रहोंकी गतिके अनुसार एक ग्रहसे अপর ग्रहका योग होता है। ग्रहयोगकी प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—ग्रहयुग्म और ग्रहसमागम * चन्द्रके साथ मङ्गल प्रभृति पाँच ग्रहोंका योग समागम कहलाता है। सूर्यसे कोई ग्रह मिलने पर अस्त हो जाता है। यही ग्रहका पूर्णास्त है। (सूर्यसिद्धान्त ८ अ०) मन्दगति ग्रहसे शीघ्रगति ग्रह अधिक रहते अल्पदिन पूर्व ही उनका योग लगा था। किन्तु शीघ्रगति ग्रहसे मन्दगति ग्रह यदि अधिक पड़ता, तो अल्पदिन पर ही उन दोनों ग्रहोंका योग हो रहता है। शीघ्रगति वक्की ग्रह मन्दगति वक्की ग्रहसे अधिक होने पर थोड़े ही

दोनोंमें वे मिल जाते हैं। किन्तु वक्की मन्दगति ग्रह वक्की शीघ्रगति ग्रहसे अधिक पड़ने पर अल्पदिन पूर्व ही उनका योग हो गया था। मङ्गल प्रभृति पाँच ग्रहोंकी प्रतिबिम्ब मात्र स्पर्श होनेसे उल्लेख युक्त कहते हैं। परन्तु इसी प्रकार स्पर्श ग्रहमण्डलसे अंश तथा दिक् भेदने होने पर भेद नामक युक्त कहलाता है। फिर दो ग्रहोंका किरणयोग अंशविमर्द युक्त है। यही किरणयोग दक्षिण वा उत्तर भागकी एक अंशमें न्यून होने पर अपमध्य युक्त और दक्षिण वा उत्तर भागकी एक अंशसे अधिक पड़ने समागम ठहरता है। (सूर्यसिद्धान्त ७१८-१९) भास्कराचार्यने ग्रहयोगके दूसरे भी बहुतसे भेद निर्णय किये हैं, किन्तु मानवचक्षुषोंसे ग्रहयुग्म जैसे रहने पर सूर्यसिद्धान्तके टीकाकार उन्हें नहीं मानते। (सूर्यसिद्धान्त ७१९ रज्जनाथ)

इस ग्रहयुग्ममें एक ग्रहका जय और दूसरेका पराजय होता है। प्रत्येक पीढ़े ग्रहोंके देख कर कह सकते कोन हारा और कौन जीता है। पूर्वकी जिस अपमध्य युग्मकी बात बतायी गयी है, उसमें पराजित ग्रह अतिशय क्षुद्र, अशक्त, प्रभाहीन, रुक्म और विषम देख पड़ता और जयी ग्रहके दक्षिण निकला करता है। जयी ग्रह दीप्तिमान्, स्वच्छ और पराजित ग्रहसे उत्तरदिशकी उदित होता है। युद्धलक्षणाक्रान्त दो ग्रहोंका एक अंश मात्र दूर अवस्थित होने और उज्ज्वल रहने पर किरण योगरूप समागम समझा जाता है। फिर दोनों ग्रह सूक्ष्म अथवा पराजयलक्षणविशिष्ट देख पड़ने पर कूट और विग्रह नामक युक्त कहलाता है। ग्रहयुग्ममें शुक्ल ग्रह अपर ग्रहसे दक्षिण वा उत्तरकी रहनेसे प्रायः जीतता है। ग्रहयुग्मसे मानवमण्डलीका शुभाशुभ हुवा करता है।

इसका कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता—ग्रहोंका स्वाभाविक वर्ष क्या है। भास्कराचार्यके मतानुसार चंद्रके जिस अंशमें सूर्यकिरण प्रवेश करता, वही शुक्लवर्ष देख पड़ता—अपराध कामिनी वेशकलापकी भांति कृष्णवर्ष रहता है। सूर्यसिद्धान्त-टीकाकार रत्ननाथ और आर्यभट्टके मतमें सूर्यकिरणसे ही दूसरे ग्रह भी आलोकित होते हैं। ऐसे स्वल्प पर कल्पना कर

* यह अर्थभी कहाँमें रह कर ही अनवरत अनन्त करती है। अपनी कक्षाकी वे कक्षा नहीं होती। यह कक्षा भी कितने ही अंतर पर अवस्थित है। इनका स्वाभाविक वार्षिक नहीं सकता। भूमण्डलसे सर्वोपरि स्थित राशिमण्डल पर्यन्त एक चक्रवर्त्तु द्वारा करनेसे अक्षिप्त कक्षिकाकी भांति ग्रहोंका एक चक्रमें आने की संभावना योग्य समझा जा सकती है।

सकते कि सूर्य व्यतीत अपर ग्रहों का किरण नहीं होता और उनका रूप क्षणवर्ण रहता है। प्राचीन कालसे ग्रहों का जसा ध्यान चला आता, उसमें सूर्य रक्तवर्ण, चन्द्र कुन्द पथवा शङ्खकी भांति धवलवर्ण, मङ्गल रक्तवर्ण, बुध प्रियङ्गु, कुसुम-जैसा श्यामवर्ण, बृहस्पति सुवर्णवर्ण, शुक्र शक्तवर्ण और शनि क्षणवर्ण जैसा कहलाता है। प्राचीन हिन्दू ज्योतिर्विद जिस यन्त्रसे साक्षात्सिद्ध गति निर्णय करते थे, उसको यन्त्र शब्दमें देखना चाहिये। गोलरचना-प्रणाली गोल शब्दमें देखो।

पुराणोंमें भी अल्पविस्तर खगोल-विवरण लिखित है। किन्तु भास्कराचार्य प्रभृति ज्योतिर्विदों ने प्रमाण और युक्ति द्वारा उसको खण्डन किया है। उनका कहना है—वर्तमान समयको जो पौराणिक खगोल वा भूगोल मिलता, वह ठीक नहीं पड़ता; खगोल वा भूगोल का लिखा हुआ विवरण कालवश लुप्त हो गया है। वैदिक वा पौराणिक मत ज्योतिष शब्दमें द्रष्टव्य है। खगोलका अपर विवरण ग्रह, राशि, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र प्रभृति शब्दोंमें देखो।

युरोपके प्रसिद्ध ज्योतिर्विज्ञा लाप्लासने सौरजगत् की गतिका सामञ्जस्य देख निर्देश किया है—आज कल जिस आकाशमें ग्रह और उपग्रह अवस्थित हैं, सौरजगत् की आदिम अवस्थाको वही आकाश केवल-मात्र गोलाकार ज्वलन्त वाष्पराशिसे व्याप्त था। यह वाष्पराशि एक आवर्तन-शक्ताकाको आश्रय करके अपनी चारों ओर घूमता था। क्रम क्रम यही उत्तम वाष्पराशि शीतल पड़के केन्द्रके अभिसुख सङ्कुचित होने लगा। सङ्कोचनानुसार गतिका वेग बढ़ने पर उसकी केन्द्रातिगति भी बढ़ी। इसी प्रकार क्रमसे वाष्पीय गोलककी केन्द्रातिगति शक्ति वृद्धि होने पर विषुवरेखा-सन्निकित खानने केन्द्रके आकर्षणको अतिक्रम करके मूलांशसे विच्छिन्न होते हुए एक स्वतन्त्र सङ्कुरीयककी तरह चक्ररूप धारण किया था। अवशिष्ट अंशसे फिर ऐसे ही विच्छिन्न होके धीरे धीरे यह विस्तृत वाष्पराशि कई स्वतन्त्र चक्रोंसे परिवेष्टित सुवृहत् गोलकमें परिणत हो गया। मध्यका सर्वापेक्षा बड़ा गोलक ही हमारा सूर्य है। प्रत्येक स्वतन्त्र चक्रके वन खान क्रमवशसे चारों ओरके सञ्चल सहस्रानुमित

कर क्रमशः फिर उन चक्रोंने एक एक प्रइका रूप बना लिया। पूर्वोक्त प्रकार परित्यक्त अति विस्तृत चक्रके भीतरसे छुद्र छुद्र चक्र स्वतन्त्र हो कर जो सञ्चल ज्योतिष्क निकले हैं, उन्हींको उपग्रह कहते हैं।

लाप्लासके इस मत पर युरोपमें हलचल पड़ गयी थी। अब बहुतसे लोग इस सिद्धान्त पर आ उपस्थित हुए हैं। युरोपीय ज्योतिर्विद बताते हैं—हमें सूर्यसे जितना उत्ताप मिलता, सूर्य उससे २२७००००००० गुण उत्ताप शून्यमें छोड़ा करता है। सूर्यके आयतनमें सूर्यव्यास प्रति वर्ष २२० फीट सङ्कुचित होता है। इस नियमसे २५ वर्षमें १ मील और एक शताब्दीकी ४ मील सूर्यके सङ्कुचित होनेकी बात है। मालूम पड़ता है—जितने दिन सूर्यका अधिकांश वाष्पमय रहेंगा, शीतलतापवश सूर्य क्रमशः सङ्कुचित होके बाहरी उत्तापशक्तिको समभावमें रखेगा। सुतरां सूर्य एकशत वर्ष पूर्व ४ मील और दो सौ वर्ष पहले ८ मील बड़ा था। किसी समय सूर्यवाष्प बुधकी कक्षा पर्यन्त और उससे पहले पृथिवीकी कक्षा तक व्याप्त रहा।

ऐसी ही गणनासे युरोपीय ज्योतिर्विदोंने लाप्लासका मत स्वीकार करके अब ठहरा लिया है कि यह पृथिवी भी सूर्यपरित्यक्त एक वाष्पचक्र है। क्रमशः यह वाष्पचक्र शीतल होके जब घन अवस्थाकी पहुँचा, तब सभी वाष्प तरल हुआ न था। जितना ही उसी अवस्थामें पृथिवीके ऊपर रह गया। आज भी उसका बहुतसा अंश पृथिवी पर बना है। उस समय पृथिवीका वाष्पावरण प्रायः चन्द्र पर्यन्त विस्तृत था। उसी तरल अवस्थाकी पृथिवीका उत्ताप २००० सेण्टिग्रेड लोगरो रहा। इसी तौर तापसे तरल पृथिवी शीतल आकाशमें घूमने लगी। धीरे धीरे शीतलताके संस्पर्शसे जितना ही ताप घटा और मोटा तथा विपविषा होके अवशेषकी वर्तमान आकार बना था।

निर्मल रजनीयोगकी आकाशकी ओर ताकने पर हमें एक दिक्से अन्य दिक् पर्यन्त शब्द वर्ण-जैसी एक आलीकमय रेखा देख पड़ती है। उसीका नाम छाया-पथ (Milky way) है। युरोपीय ज्योतिर्विदोंने दूर-

मीक्षयन्त्र द्वारा जायापत्र परीक्षा करके ठहराया है—इसमें असंख्य नक्षत्र एकत्र विद्यमान हैं। उसका कोई एक अंश पृथिवीसे छोटा नहीं। दूरबीनके सहारे उन्होंने प्रायः २००००००० नक्षत्र देखे हैं। इनसे जायापत्रमें प्रायः १८०००००० नक्षत्र हैं।

दूरबीक्षणयन्त्र द्वारा आकाशमें ज्वलन्त वाष्पमय नीहारिकाराशि (Nebulae) देख पड़ता है। इस नीहारिकाके मध्य कई ज्योतिष्क, कई हीनप्रभ विशाल वाष्पराशि आज भी ज्योतिष्कीमें परिणत नहीं हुए। फिर कई एकने अपेक्षाकृत सज्जल और छोटे वाष्पराशिके मध्यसे इतनी दूर पर घनीभाव धारण करना आरम्भ किया है, कि वह शीघ्र ही ज्योतिष्क बन जावेंगे। यूरोपीय गणकीने ऐसे वाष्पराशिको ही भविष्य जगत्का उपादान ठहराया है। ज्वलन्त नीहारिका राशिसे ही जगत् प्रकाशित होता है।

खगोलविद्या (सं० स्त्री०) खगोलस्य विद्या, इ-तत्। ज्योतिष, नक्षत्र। इस विद्यासे ग्रह नक्षत्र आदिका प्रकृत भवस्थान और गति प्रभृति निरूपित होता है।

जैन शास्त्रानुसार आकाश अनन्त अमूर्तिक निराकार है। वह गोल या तिरछा नहीं कहा जा सकता। हाँ! उपाधि भेदसे उसमें दो भेद कहे जा सकते हैं। एक लोकाकाश और दूसरा अलोकाकाश। जितने आकाशमें यह लोक (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल के पांच द्रव्य) दृष्टिगोचर होता है, वह लोकाकाश है और उसके अतिरिक्त सब अलोकाकाश है। वहाँ किसी भी पदार्थकी सत्ता नहीं, सर्वत्र निराकार आकाश (पोल) ही आकाश है। लोकाकाश श्रीदत्त राजू (प्रमाणविशेष) प्रमाण सख्या है और मुँडा या पौर पसार कर कमर पर हाथ रखे हुए खड़े पुरुषके आकार है। यह नीचे सात राजू, मध्यमें एक राजू, उपांतमें (पाँचवें स्वर्गके पास) पाँच राजू और अंतमें एक राजू प्रमाण है। इसका घन ३४३ राजू है। जिस पृथ्वीपर हम सब इस समय वास कर रहे हैं, वह एक राजू प्रमाण थालीके (गेंदके नहीं) समान चपटा गोल है। इसके समतल भूमिभागसे ७०८ योजन ऊँचे आगि पर तारका है। उससे दस योजन ऊँचे

सूर्य है। उससे अस्सी योजन ऊँचे चन्द्रमा है। उससे तीन योजन ऊँचे नक्षत्र हैं। उससे तीन योजन ऊँचे बुध है। उससे तीन योजन ऊँचे शुक है। उससे तीन योजन ऊँचे बृहस्पति है। उससे चार योजन ऊँचे अंगारक है। उससे चार योजन ऊँचे शनीवर है। इस तरह यह समस्त ज्योतिर्मण्डल ११० योजनके बीचमें ऊँचा है और असंख्यात द्वीप समुद्रोंके प्रमाण लंबा विस्तृत है। इनमें अभिजित् सबसे मध्यमें, मूल सबसे अंतमें, भरणी सबसे नीचे और स्वाती सबसे ऊपर है।

जैन शास्त्रोंमें संसारी जीवकी चार पर्याय मानी गई हैं—मनुष्य, तिर्यंच, देव और नारको। देव चार प्रकारके होते हैं—भवनवासो, व्यंतर, ज्योतिषो और वैमानिक। जिनमें ज्योतिषो देवोंके पाँच भेद हैं—सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारका। हमको जो आकाशमें ऊँचेकी ओर दृष्टिगोचर होते हैं वे ज्योतिषो देवोंके रहनेके विमान हैं। प्रत्येक विमान अपने अपने प्रमाणके अनुसार लंबाई चौड़ाईमें हीन अधिक है। ये विमान कोई स्रष्टा जातिके पुद्गल परमाणुओंके और कोई शीत जातिके पुद्गल परमाणुओंके हैं। इनमें चंद्रमा नामक विमानका स्वामी चंद्र है और वह इंद्र है। सूर्य उर्गेद्र या प्रतींद्र है। शेष होनाधिक ऋषिवाले ज्योतिषो देव हैं और चमकनेवाले या काले-जैसे दीख पड़नेवाले अपने अपने विमानोंमें ये वास करते हैं।

इनमें जंबूद्वीप, धातकोखंड और अर्ध पुष्कर-द्वीपकी बराबर आकाशमें रहनेवाले विमान भ्रमण-गोल हैं और उनकी हाथी घोड़े आदिके आकार धारण करनेवाले देव वहन किया करते हैं एवं सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिण दिया करते हैं। उक्त ठाँव द्वीपके वादमें जो ज्योतिषो देवोंके जो विमान हैं, वे नहीं घूमते सदासे स्थिर ही हैं। सूर्य, चंद्रमा आदिमें विशेष विवरण देखो।

सूर्यके बारह हजार किरण उष्ण कठोर हैं, चंद्रमाके बारह हजार शीतल किरण हैं। शुकके ठाँव हजार किरण प्रकाशशील हैं। अन्य यहाँकी किरण मन्द प्रकाशवाली हैं। इस संसारमें असंख्य ज्योतिषो देवोंके विमान हैं और जंबूद्वीपमें दो सूर्य और दो चन्द्रमाके विमान हैं। चंद्रमा विमान एक योजनके एकसठ

भागमेंसे कृष्ण भाग प्रमाण है और सूर्यका चउता-सौस भाग प्रमाण है। शुक्रके विमानका व्यास एक कोशका है, बृहस्पतिका कुछ कम एक कोशका, बुध, मंगल और शनैश्चरका आधा कोशका है। ताराओंमें सबसे छोटा तो चौथाई कोश प्रमाण है और सबसे बड़ा एक कोश तकका है। इन विमानोंका आकार कोड़ादिके गोलाके समान सब तरफसे घटता अर्थात् ऊपर विस्तृत और नीचे क्रमसे घटता है। ऊंचाई बिस्तारसे आधी और परिधि कुछ अधिक तिगुणी है। राहुका विमान चंद्रमाके नीचे और केतुका सूर्यके नीचे गमन करता है। ये दोनों विमान कुछ कम एक योजन विस्तृत हैं। राहु और केतुके विमानकी ध्वजासे चार प्रमाणगुल अंतर देकर क्रमसे सूर्य और चंद्रमाके विमान हैं। चंद्रमाका विमान प्रतिदिन अपने विस्तारसे षोडशांश जो कृष्ण वायुक्त दौखता है वह राहुके विमानकी गतिसे होता है।

सूर्यके विमानका रंग तपाये सोनेकासा, मरुका निर्मल कमलतन्तुकासा, शुक्रका चांदीकासा, बृहस्पतिका मोतीकासा, बुधका कनक जैसा, शनीश्चर और मङ्गलका तमायमान सुवर्णकासा रंग है।

इस ज्योतिर्मण्डलके गमनक्षेत्रकी चारक्षेत्र कहते हैं और वह कुछ अधिक पांचसौ दश योजन है। सूर्यके गमन करनेकी १८४ वीथी हैं। वे सब सूर्यके विमानकी समान चौड़ी हैं और प्रत्येक दो दो योजनके अंतरसे हैं। कुल १८३ अंतर हैं। जब सूर्य इनमें गमन करता हुआ जंबूद्वीपकी अभ्यन्तर परिधिमें गमन करता है तब तो दक्षिणायनका प्रारंभ और अंतर्वाह्य वीथीमें गमन करने पर उत्तरायणका प्रारंभ होता है। कर्कराशि प्राप्त होने पर सूर्य अभ्यन्तर वीथीमें मंद मन्द और मकरराशिमें प्राप्त होने पर वाह्य वीथीमें शीघ्र भ्रमण करता है। अभ्यन्तर वीथीमें गमन करने पर अठारह सुहृत्त का दिन और बारह सुहृत्त की रात्रि, एवं वाह्य वीथीमें गमन करने पर बारह सुहृत्त का दिन और अठारह सुहृत्त की रात्रि होती है। यहाँ योजनका प्रमाण दो हजार कोशका समझना चाहिये। (तत्त्वार्थ राजवार्तिक)

खगोलविवरण (६० क्री०) आकाशमण्डल और उसके ग्रह, नक्षत्र, धूमकेतु प्रभृति यावतीय पदार्थोंकी प्रकृति, गति तथा व्यवस्थान आदि समस्त विषयोंका विवरण। खगोल—पटना जिलेमें दानापुरके निकट अवस्थित एक नगर। यह अक्षा० २५° ३५' ७०" और देशा ८५° १' ५०" पर अवस्थित है। यहाँ एक म्युनिसिपालिटी विद्यमान है। पास ही दानापुर स्टेशन रहनेसे खगोलका समृद्धि आरम्भ हो गयी है। लोकसंख्या ८१२६ है।

खग (हिं० पु०) खन्न तलवार।

खगट (सं० पु०) कोकिलाचक्र, तालमखानेका पेड़।

खगड़ (सं० पु०) खे आकाश गति, गल-अच्छोदरा-दिवत् साधुः। दणविशेष, खगड़ा घास। इसका संस्कृत पर्याय—पोटगल, हड़त्काश और कावेत्तु है।

खग्रास (सं० पु०) सम्पूर्ण ग्रहण, चन्द्र वा सूर्यका वह ग्रहण जिसमें उसका सारा अंश कासा पड़ जावे और अंधिरा छा जावे।

खधोरिया—खग्रामके पार्श्व प्रदेशकी मायानी नदीके तीरका एक ग्राम। इसके निकट वेठर जङ्गल है। अंग-रेज सरकारने नेपालसे एकदल गुर्खा लाकर यहाँ बसानेकी चेष्टा की। भीषा गया था—उनके रहनेसे अपने आप जङ्गल काट डालेंगे। उनमें प्रत्येकको १००) ६००) जिसावसे इस लिये दिया गया, कि वह इस आदि कार्य करके कृषिकार्य आरम्भ करेंगे। किन्तु यहाँ उन्हें नाना प्रकार पीड़ा होने लगी। १८७७ ई०को उपनिवेश ठठा कर गुर्खा लोग रांगामही भेजे गये।

खड्ग (सं० पु०) खन्यते इति, खन-जिप आर्यते कृ-अप् ततः कर्मधा०। पूर्णकुन्तल, लुप्त।

खड्गर, खड्गर देखो।

खड्ग (सं० पु०) मृगविशेष, एक डिरन। (वागसनेवसं० २५।४०) कोई कोई 'खड्ग' स्थल पर 'खड्ग' पाठ करता है।

खड्गाह (सं० पु०) खेतपीताम्न, सफेद पीला घोड़ा।

खचना (हिं० क्री०) १ जड़ना, लगना। २ बनना, उत्पन्न। ३ रमना, टिकना। ४ रहना, विरमना।

खचमस (सं० पु०) खे आकाशे चम्यतेऽसौ, चम-पसच् चन्द्र, चांद।

खचर (सं० पु०-क्री०) खे आकाशे चरति, चर-ट।

चरेटः । पा १।१।६। १ मेघ, बादल । २ वायु, हवा । ३ सूर्य ।
४ राजस । स्त्रीलिङ्गमें छीप् लगनेसे खचरी होता है—

“खचरस्य सुतस्य सुतः खचरः खचरस्य पितान पुनः खचरः ।

खचरस्य सुतेन हतः खचरः खचरो परिरोदिति वा खचरः ॥”

(महाभारत, द्रोणप०)

५ कोई रूपकताल । जिस रङ्गतालमें प्रथम गुरु और उसके पीछे लघु नियमसे १० प्रक्षर लगते, उसको खचर ताल कहते हैं । यह शान्त अथवा हास्यरसके अनुकूल है । (सङ्गीतदामोदर) ६ कसीस । ७ पक्षी, चिड़िया । (त्रि०) ८ आकाशगामी, आसमान पर चलनेवाला ।

खचरा (हि० वि०) १ दुष्ट, पाजो । वर्षासङ्कर, बद-
जात ।

खचाखच (हि० क्रि०-वि०) १ ठसाठस, तिल तिल,
बिलकुल । २ भकाभक, जोरसे ।

खचाना (हि० क्रि०) खींचना, बनाना ।

खचारी (सं० त्रि०) खे आकाशे चरति, चर-णिनि ।
१ आकाशगामी, आसमानकी राह चलनेवाला ।
(पु०) २ कार्तिकेय । (भारत १।१२०)

खचावट (हि० स्त्री०) खींचनेकी क्रिया, बनावट ।

खचित (सं० त्रि०) खच-क्त । संयुक्त, खींचा हुआ ।
इसका पर्याय—करस्थित, रुषित, गुरुगुणित, करम्ब,
कबर, मित्र, संपृक्त, व्याप्त, गुणित और कुरित है ।
खचिया (हि० स्त्री०) छोटी टोकरी, दौरी ।
खचिख (सं० स्त्री०) खे आकाशे चलति, चल-प्रच् ।
गोखी, गोला ।

खचर (हि० पु०) अक्षतर, छोड़े बार गधेके मिलानेसे
पैदा एक जानवर । यह घोड़े-जैसा ही होता है ।
इसके कर्ण आदि अवयव गधेसे मिलते हैं, परन्तु शक्ति
घोड़ेसे कम नहीं, अधिक ही पड़ती है । खचर बहुत
दिन जीता, अधिक रुग्ण नहीं होता और खूब काम
करता है । बहुतसे मौकों पर इससे घोड़ेकी अपेक्षा
अच्छा काम निकलता है । समझवृद्धमें भी खचर
घोड़ेसे कम नहीं । उच्च नीच भूमि पर इसका पांव
खूब मजबूत जमता है ।

खज (सं० पु०) खजति मथ्नाति, खज-प्रच् । १ मन्वान

दण्ड, मथानी । (भारत १।१।१४) २ दर्वी, हत्या । ३ युद्ध,
कड़ाई । (अक् ८।१०)

खज (हिं० वि०) खाद्य, खानेकायक ।

खजक (सं० पु०) खज स्त्रार्थे कन् । १ दर्वी, हत्या ।
२ मन्वनदण्ड, मथानी ।

खजकत् (सं० त्रि०) खजं युद्धं करोति, क्त-क्तिप् तुगा-
गमश्च । युद्धकर्ता, लड़नेवाला ।

खजहर (सं० त्रि०) युद्धकर्ता, लड़नेवाला ।

(अक् १।१०१। ६)

खजप (सं० स्त्री०) खज्यते मथ्यते, खज कर्मणि कपन् ।
चक्रि-कुटि-दलि-कचि-खजिभः कपन् । उच १।१४१। छत, घी ।

खजल (सं० स्त्री०) खे आकाशे सञ्चितं जलम् ।
१ नौहार, तुषार । २ आकाशजल, मेघका पानी ।
इसको अगस्त्योदयसे पहले सेवन करना चाहिये ।
(राजवल्गव)

खजला (हिं० पु०) पञ्चाक्षविशेष, खाना नामकी
मिठाई ।

खजलिया (हिं० पु०) रोगविशेष, एक बीमारी । यह
अंगूरके पौदोंको लगता है । इससे उसके पत्र और
वृन्त कृष्णवर्ण धूलि-जैसे पदार्थसे आच्छादित हो
सूखने लगते हैं ।

खजा (सं० स्त्री०) खज भाषे अप-टाप् । १ मन्व,
भांज, मथाई । २ प्रहस्त, खुला हाथ, बिना । ३ चमस-
जैसा कोई पाकसाधन द्रव्य, किसी किस्मकी करछी ।
(भारत ४।०।१) ४ मारण, कत्ल ।

खजाक (सं० पु०) खज-पाक । खजिराकः । उच १।१२ ।
पक्षी, चिड़िया ।

खजाका (सं० स्त्री०) खजा देखो ।

खजानची (फा० पु०) कोषाध्यक्ष, खजानेका मालिक ।

खजाना (अ० पु०) १ धनागार, रुपया पैसा रखनेकी
जगह । २ भाण्डार । ३ कर ।

खजिका, खजा देखो ।

खजित् (सं० पु०) खेन शून्यभावनया जयति संसारम्,
ख-जि-क्तिप् तुगागमश्च । शून्यवादी बौद्ध । यह एक
मात्र शून्य पदार्थको ही स्वीकार करते हैं । गी० देखो ।

खजुला (हिं० पु०) १ खाना, खजला । २ भटवाँछ ।

खजुरा—उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेशके दक्षिणपश्चिमकी एक भाषा। ग्रीका, खजुरा और परनिया तीन भाषाओंमें परस्पर सीसादृश्य जगा है। आसतर, गिलगिट, बोलास, दरल, कोहली और पाकस प्रभृति सिन्धुनदके उभय तीरवर्ती क्षुद्र प्रदेशोंमें ग्रीका भाषा प्रचलित है। फिर हजरा और नागर प्रदेशमें खजुरा और यशन तथा चित्तौड़में परनिया भाषा चलती है। इसीके निकट वर्तमान दरद वा ददु देश है। प्राचीनकाल उसीको दारददेश कहते थे। वहां भी यही भाषा-बोली जाती है।

खजुरहट, खजुरहटी देखो।

खजुरहटी (हिं० स्त्री०) किसी किस्मकी खजूर। यह नेपालकी तराईमें उपजती और हाथ डढ़ हाथ ही बढ़ती है। इसके पत्ते मामूली खजूरसे कुछ छोटे पड़ते और चटाई वगैरह बनानेमें जगते हैं। खजुरहटीके फलमें सिवा विजके गूदा नहीं होता।

खजुरा (हिं० पुं०) किसी किस्मका डोरा। यह दो या तीन लरें मिला कर बटा जाता है। इसको एक और फुंदना जगा देते हैं। खजुरासे स्त्रियां अपनी वेणी गूथती हैं।

खजुराही (हिं० स्त्री०) खजूरेवृक्षप्रधान, खजूरका बाग या जंगल।

खजुराह—प्राचीन कालखर राज्यका एक पुराना नगर। इसका चलता नाम कुजरो है। यह नगर अक्षा० २४° ५१' ३०" और देशा० ७८° ५६' ५०" में कियान (केन) नदी तीरवर्ती राजनगरसे ८ मील दूर विन्ध्यपर्वतकी पश्चिम दिक्की अवस्थित है। यहां चंदेल राजाओंकी राजधानी रही। संस्कृतमें इसको खजुरवाटिक कहते हैं। महमूद गजनवीके सहयात्री अबूरेहान् कालखर-जयकालकी (१०२२ ई०) यहां उपस्थित हुए थे। उन्होंने लिखा है—यह जुम्हौतियोंकी राजधानी है, और कजुराह कहलाता है और कसौजसे ८० मील दूर पड़ता है। फिर १२३५ ई०को इब्न-बतूताने भारत घूमते समय इसका नाम कजुरा लिपिबद्ध किया। उनके समयकी यहां आध कोस लंबा चौड़ा एक सरोवर रहा और उसके तीर हिन्दुओंके अर्धसंख्य देव-मन्दिर खड़े थे।

युयनचुयाङ्ग इसको चि-चि ती (जुम्हौती) नामसे वर्णना कर गये हैं। उनके समय यह नगर २॥ कोस विस्तृत था। यहां १२ बौद्ध मठ और हिन्दुओंके १२ प्रधान मन्दिर बने और प्रायः सहस्र ब्राह्मण रहते थे। खजुराहके राजा जातिके ब्राह्मण होते भी एक बड़-विश्वासी बौद्ध थे। भूमि अतिशय उर्वरा रही। भारतके नाना स्थानोंसे विद्वान् सर्वदा यहां आया करते थे।

युयनचुयाङ्ग और अबूरेहान्के वर्णनानुसार यह यजहुति प्रदेश वर्तमान बुंदेलखण्ड-जैसा ही समझ पड़ता है। यहांके ब्राह्मण अपना यजहुति ब्राह्मणों जैसा ही परिचय देते हैं। यजहुतिका अर्थ यजुर्होता लगाते हैं। परन्तु जुम्हौतिया नामक एक जातीय वणिक् भी यहां रहते हैं। सुतरां पाश्चात्य विद्वान् अनुमान करते कि यजहुति (जुम्हौतिया) शब्द देशवाचक है। कनिङ्ग-हाम साहबको इसके निकटवर्ती ग्रामसे उत्तरपूर्व वामनदेव-मन्दिरके पास कीर्तिचर्मराजके समय किसी शिल्पलिपिमें जेज्राख्य और जेजभुक्ति दो नाम मिले थे। इससे उनके अनुमानमें जेजभुक्ति शब्द ही यजहुति नाम निकला है। फिर उनके अनुमानमें टलेमिबर्णित सन्द्वतिस वा सन्द्वतिस नामक देश और तन्मध्यस्थ कुरपोरिन, एम्प लेथरा, नदुवन्दगर, और तमसिस नामक नगर यथाक्रम यजहुति देश, खजूरपुर, महरा, नलपुर तथा तपस्वी नामक नगरियोंका विज्ञात नामान्तर माने हैं। संस्कृत शास्त्रमें भी कालखर प्रदेश तपस्वी स्थान-जैसा लिखा गया है। बालहर देखो।

वर्तमान समयकी खजुराह एक सामान्य ग्राममात्र में परिणत हो गया है। १२४२से अधिक अधिवासी देख नहीं पड़ते। कनौजिया और जिम्हौतिया दो ही श्रेणियोंके ब्राह्मण यहां मिलते हैं। ठाकुर कहलानेवाले कई चंदेल जमोन्दार भी मौजूद हैं।

यहां हिन्दुओंका विख्यात प्राचीन कौर्ति चौसठ योगिनीका मन्दिर है वह शिवसागर सरोवरसे दक्षिण-पश्चिम १६ हाथ जंघे एक छोटे पर्वत पर अवस्थित है। आज भी ६४ मन्दिर खड़े हैं। किसीकी चोटी और किसीकी सिर्फ दोवार गिर गये हैं। समस्त मन्दिर जेबीवस्वरूपसे एक आधतक्षेत्र पर अवस्थित हैं। मध्य-

खलमें विस्तृत प्राङ्मुख है। मन्दिर घनाष्ट पत्थरके बने हैं। मन्दिरका एक एक गृह छेठ हाथ लम्बा और छेठ हाथ चौड़ा है। जिस चतुरस्र क्षेत्र पर यह ६४ मन्दिर खड़े, उसकी चारो दिशाये प्राचीरसे घिरी हैं। चैरेके भीतर प्राचीरके गात्रमें मन्दिर पास ही पास निर्मित हुए हैं। प्राचीर उत्तर-दक्षिणको ४६ हाथ और पूर्व पश्चिमको ६८ हाथ दार्घ्य है। उस पर प्रत्येक मन्दिरकी चूड़ा स्वतन्त्ररूपसे अवस्थित है। उत्तरस्थ प्राचीरके मध्यस्थलमें मन्दिरके प्राङ्मुखको जानिका प्रधान पथ है। फिर दक्षिण प्राचीरके मध्यस्थलका मन्दिर सर्वापेक्षा उच्च और प्रशस्त है। आजकल सब मन्दिरोंमें प्रतिमा नहीं है। दक्षिणदिक्कं बड़े मन्दिरमें अष्टभुजा महिषमर्दिनीमूर्ति और माहेश्वरी तथा बाराहीमूर्ति अभी नहीं बिगड़ी। महिषमर्दिनीके वेदीगात्रमें हिङ्ग-काज नाम खुदा हुआ है। इसके बीचमें हनुमान्का भी एक मन्दिर है।

हम हनुमान् मूर्तिको वेदीके गात्रमें एक खोदित लिपि ढूँढते हैं। उसमें लिखा है कि गोहिलके पुत्र गोहिलने (सम्भवतः) ८४० संवत्को माघ मासकी शुक्ल नवम्योके दिन पवनात्मज गोहिलके श्रीमान् हनुमान् मूर्ति प्रतिष्ठित की।

• यहां “कुटिल” पत्थरोंमें खोदित हर्षदेव तथा ओक्षितितालदेवके नामकी एक शिलालिपि मिली है। यदि यही हर्षदेव यशोवर्माके पिता भङ्गराजके पिता-महर्षदेव हों, तो उक्त शिलालिपि ८०० ई०की मानी जा सकती है। इसकी अपेक्षा खजुराहोमें दूसरी प्राचीन शिलालिपि न मिलनेसे अनुमित होता ६४ योगिनियोंके मन्दिर अन्ततः ८०० ई०के पूर्व वा उसी समयकी वर्तमान थे। चौंसठ योगिनियोंके मन्दिरको निर्माण-प्रथाकी और शिल्पकार्यादि देखनेसे समझा जाता कि यह ६० अष्टम शताब्दीको बना था।

शिवसागरके तीरे कुछ घनाष्ट कुछ बलुवा पत्थरका बना और एक मन्दिर है। उसमें ब्रह्माकी मूर्तिकी सम्भावना मिलता है। यह चौंसठ योगिनियोंके मन्दिरकी अपेक्षा आधुनिक, किन्तु अन्धान्ध रेतोले पत्थरके बने मन्दिरोंसे प्राचीन है। चौंसठ योगिनी मन्दिरके

प्रवेशद्वारसे सम्मुख पहाड़ पर कोई दूसरा भग्नावशेष मन्दिर है। इस मन्दिरमें ४ हाथ जंचा गणेश प्रतिमा है। चौंसठ योगिनीके मन्दिरकी द्वारदिकको इस प्रतिमाका मुख पड़ता है। यह रेतोले पत्थरसे बनाया गया है। गणेशकी मूर्ति अति सुन्दर है।

खजुराहोमें कितने मन्दिर हैं, उनमें कन्दरीय महादेवका मन्दिर सर्वापेक्षा उच्च और बड़त् है। यह ७२ हाथ लम्बा, ४६ हाथ चौड़ा और प्रायः ७८ हाथ जंचा है। मन्दिर ५ भागोंमें विभक्त हुआ है। सोपानसे चढ़ते ही अर्धमण्डप, उसके पश्चात्को मण्डप, उसके आगे महामण्डप, उसके बाद अन्तराल, फिर गर्भगृह है। मन्दिरगात्रमें भीतर और बाहर नानाविध मूर्तियाँ बनी हैं। उनमें कितनी ही रतिकलाविषयक हैं। एतद्विषय देवदेवियोंकी मूर्तियाँ भी खुदी हैं। मन्दिरका काब-कार्यविशेष सुन्दर और शोभाका आधार है। इसमें महादेवकी निष्कमूर्ति विराजित है। गौरोपह पर लिङ्ग-शरीरका परिधि प्रायः २ हाथ पड़ता है। प्रतिमा सङ्गमरमरकी बनी है।

गर्भगृहद्वार उपरि भागके ठीक मध्यस्थलमें शिव उनके वाम विष्णु और दक्षिणको ब्रह्माकी मूर्ति हैं।

शिवमन्दिरसे ठीक उत्तरको एक छोटा अर्धभङ्ग मन्दिर है। कतरपुरके राजावोंने उसका जीर्णसंस्कार कराया है। यह एक शिवमन्दिर है। इसके द्वारपर भी ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी मूर्ति प्रतिष्ठित हैं।

उक्त छुट्ट मन्दिरके ठीक उत्तरको प्रायः ५१ हाथ लम्बा और ३३ हाथ चौड़ा एक और बड़ा मन्दिर है। वह देवी जगदम्बाका मन्दिर-जैसा विख्यात है। सम्भवतः प्रथम की यह विष्णुमन्दिर रहा, क्योंकि गर्भगृहके द्वार पर ठीक मध्यस्थलमें विष्णु और उभय पार्श्वकी शिव तथा ब्रह्माकी मूर्ति अवस्थित है। गर्भगृहके मध्यस्थलमें चतुर्भुजा पद्महस्ता देवीमूर्ति है। वह लम्बा देवीकी मूर्ति-जैसी अनुमित होती है। इस मन्दिरका शिल्पनेपुण्य कन्दरीय महादेवके मन्दिरसे अनेकांशमें श्रेष्ठ है। इसमें कितने ही अत्यन्त पक्षर खुदे हैं। उससे समझ पड़ता है कि मन्दिर चंदेलोंके प्रभाव समयकी अर्थात् दशम और एकादश शताब्दीके बीचका बना हुआ है।

जगदम्बा मन्दिरसे उत्तर और शिवसागरके प्राचीन गर्भसे पश्चिमकी छत्रक-पत्रक नामक एक मन्दिर है। मन्दिरके अन्तर्गतमें दानों कागोसे दो पक्ष पकड़े एक पुरुष मूर्ति खड़ी है। मूर्ति सूर्यकी प्रतिमा-जैसी समझ पड़ती है। प्रतिमाके वेदीगात्रमें सूर्यका सप्ताक्षरय कोटित है। इसकी गठन-प्रणाली बिलकुल जगदम्बाके मन्दिर-जैसी है। यह दैर्घ्यमें ५८ हाथ और प्रस्थमें ३८ हाथ पड़ता है। तोरणद्वार, अर्धमण्डप और मण्डप टूट गया है। महामंडप अष्टकोणी है, परन्तु कत सिर्फ चार स्तम्भों पर अवस्थित हो रहो है। मन्दिरकी तीन दिशाओंमें ब्रह्मा, मरस्वती, हरपार्वती और लक्ष्मीनारायणकी मूर्ति है।

शिवसागरके प्राचीन गर्भसे पूर्वदिक्की विश्वनाथका मन्दिर है। कन्दोय महादेवकी तरह इसकी गठन प्रणाली लगती है। परिमाणमें यह प्रायः छत्रकपत्रक मन्दिरके समान है। इसके चतुर्कोणोंमें और द्वारके सम्मुख दूसरे छद्राकार ५ मन्दिर हैं। गर्भगृहके द्वार पर हषारुठ शिवमूर्ति और उसके दक्षिण हंसारुठ ब्रह्मा तथा वामकी गरुडारुठ विष्णुमूर्ति विद्यमान है। मन्दिरके मध्यमें एक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित हुआ है। इस मन्दिरके अर्धमंडपमें प्रवेग करनेसे दो खोदित लिपियां देख पड़ती हैं। एकमें १०५६ संवत् (वा ८८८ ई०) और दूसरीमें १०५८ संवत् (वा १००१ ई०) लिखित है। इनमें एक शिलालिपिसे मालूम पड़ता है कि चन्द्रालेय गोव्रीय राजा धङ्गने मरकत-मय शिवलिङ्गको शम्भु नामसे अभिषेक करके उस मन्दिरमें प्रतिष्ठित किया था। धङ्गराजने यह शिलालिपि खोदित होनेसे प्रायः एकशत वर्ष पूर्व ही जीव-कीर्त्तिकाकी संवरण किया। पहिले इसे प्रमथनाथका मन्दिर कहते थे।

इस मन्दिरमें कई शिलालिपियां पड़ी हैं। उनमें एक १०५६ संवत् (वा ८८८ ई०) की है। इसमें लिखा है—'राजा धङ्गने यह मन्दिर प्रतिष्ठित किया है। धङ्गराजके पुत्र गंडदेवने उनके पीछे ही राज्य पाया। धङ्गदेवका १०० वर्ष वयसकी मृत्यु हुआ था।' अन्धान्ध लिपिसे मालूम पड़ता है कि वह ८५४ से ८८८ ई० तक

विद्यमान रहे। उसके पीछे गंडदेव राजा हुए। इन्होंने ८८८ से १०२५ ई० तक राजत्व किया था। गंडदेव १०२० ई० की कसौज पर चढ़े और १०२१ ई० महमूद गजनवी कर्त्तक आक्रान्त हुए। इन शिलालिपियोंमें चंदेल राजाओंकी वंशावली दी गयी है।

विश्वनाथ मन्दिरके नाथमन्दिरमें एक दुमरी शिलालिपि अलग लगी है। इसमें १०५८ संवत् वा १००१ ई० लिखा हुआ है। इसमें एक भी चंदेल राजाका नाम नहीं। इसमें कल्ल नाम मिलता है। किन्तु ठीक कह नहीं सकते—यह किस राजाका नाम है। उस समयका कल्लपुरि वंशमें अलविहनीके समसामयिक गाङ्गेयदेवके पिता कल्ल खराण्य शासन अवश्य करते थे।

उक्त मन्दिरके दक्षिण-पश्चिम कोणकी उमीके चबू-तरे पर और एक छोटा शिवमन्दिर है। इसके द्वार पर भी ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर मूर्ति और मन्दिरके मध्यमें अष्टभुजा त्रिशूलखपरधारिणी उपविष्टा शुद्ध दुर्गामूर्ति विद्यमान है। इसी चबूतरेके उत्तरपूर्व और दक्षिणपूर्व कोणको ऐसा ही दूसरा शुद्ध मन्दिर था। वह अब नष्ट हो गया है।

विश्वनाथ-मन्दिरके बिलकुल सामने छष मन्दिर है। छषमूर्ति ४॥ हाथ दोघं और अति मण्डप है। यह मन्दिर भी विश्वनाथ-मन्दिरका समसामयिक है।

विश्वनाथ मन्दिरकी दक्षिणदिक्की पार्वती-मन्दिर है। इसका गर्भगृह व्यतीत समस्त की भन्न हो गया है। पहिले यह भी विश्वमन्दिर-जैसा रहा समझ पड़ता है। कारण द्वार पर बिलकुल मध्यस्थलमें विष्णु-मूर्ति वर्तमान है। मन्दिरके मध्य चतुर्भुजा देवीमूर्ति दण्डायमाना है। यह ३॥ हाथ खंची है। कोई इसकी पार्वतीमूर्ति और कोई लक्ष्मीमूर्ति बताता है। इस प्रतिमाके ठीक मथ्ये पर एक विष्णुमूर्ति है। सुनरा इसका लक्ष्मीमूर्ति होना ही सम्भव है। मन्दिरमें शूकर, हस्ती, अश्व और अस्त्रधारी सैनिक दलकी मूर्तियां बनी हैं। मन्दिराभ्यन्तरमें २॥ हाथ खंची चतुर्भुज चतुर्धर एक पुरुषमूर्ति खड़ी है। इसका एक मुख मानवाकार और अन्य समस्त सिंहकार है। सम्भवतः यह नृसिंहमूर्ति का प्रतिरूप है।

विष्णुनाथके बिलकुल दक्षिण किसी छुद्र मन्दिरका गर्भमात्र अवशिष्ट है। लोग इसको पार्वतीमन्दिर कहते हैं। किन्तु द्वारके ऊपर विष्णुमूर्ति विद्यमान है। अभ्यन्तरमें ३॥ हाथ ऊंची चतुर्भुजा देवी प्रतिमा विराज करती है। इस प्रतिमाको पार्वती कहा जाता है। इस प्रतिमाके ऊर्ध्वदेशमें मध्यस्थल पर विष्णु और उसके दक्षिण ब्रह्मा तथा वामको शिवमूर्ति भी है।

शिवसागरके पूर्वतीरकी और कई मन्दिर हैं। इनमें एक सबसे बड़ा और आकारमें विष्णुनाथ-मन्दिर जैसा है। इसका लोग रामचन्द्र मन्दिर वा 'चतुर्भुज' मन्दिर कहते हैं। कनिष्कहाम साहबने १८५८ ई० की इसीकी वर्णना लक्ष्मीजीके मन्दिर-जैसी की थी। शेष की १८६४-६५ ई० की विवरणीमें उन्होंने इसे चतुर्भुज मन्दिर-जैसा ही लिखा। किन्तु हम इसे नृसिंहमन्दिर कहना चाहते हैं। विष्णुनाथ मन्दिरकी तरह इसके भी चारो कोनोंमें और सामने छंटे छोटे और पांच मन्दिर हैं। इस मन्दिरके गावमें भीतर और बाहर विष्णुनाथके मन्दिरका भांति यथेष्ट चित्र खुदे हैं। उसमें सूपर का शिकार, लोकयात्रा, सैन्यसमावेश, हाथी घोड़े की प्रदर्शन आदि तसवीरें निहायत खूबसूरत हैं। इस मन्दिरमें २॥ हाथ ऊंची एक चतुर्भुज प्रतिमा है। उसके तीन मस्तक लगे हैं। उसमें मध्यस्थलका मस्तक मनुष्याकृति और दोनों पार्श्ववाले सिंहाकार हैं। सम्भवतः यह 'नृसिंह' मूर्ति की प्रतिमा है। इसीसे हम भी इसको नृसिंह मन्दिर कहना चाहते हैं। इस मन्दिरमें एक शिलालेख है। उसमें चंदेश राजाओं की वंशावली दी गयी है और नन्नूकदेवसे धन्नदेव तक नाम मिलते हैं। उसीमें लिखा है कि-उक्त मन्दिरको राजा यशोवर्मा और उनके पुत्रने १०११ संवत् (८५४ ई०) में बनाया था। इसीसे समझ पड़ता है कि वह विष्णुनाथ मन्दिरसे ४५ वर्ष पूर्व की गठित हुआ। छुद्र मन्दिरोंमें भी विष्णु की मूर्ति रही। पञ्चाङ्गके दो मन्दिर पूर्व मुखकी स्थापित हैं। प्रत्येक मन्दिरके सामने दो लक्ष्मीका वरामदा है।

चतुर्भुज मन्दिरके ठीक पूर्व की वराह-मन्दिर है। इसका द्वार चतुर्भुज मन्दिरद्वारके बिलकुल सामने पड़ता है। इसमें प्रक्षारका एक शूकर है। वह ८ फुट

८ इंच लम्बा और साढ़े ८ फुट ऊंचा है। शूकर मूर्तिके वेदीगावमें एक सर्प बना है। इस सर्पकी पूँछ पर शूकर की पूँछ पड़ी और सर्पके मस्तक पर एक मनुष्य मूर्ति खड़ी है। इस मनुष्य मूर्तिके निकट किसी दूसरी प्रतिमाके दो टूटे पाँव पड़े हैं। सम्भवतः इस मूर्तिके दोनों हाथ वराहके गलदेशमें रहे। क्योंकि उसके गलदेशमें दो हाथोंका भी भग्नावशेष मिलता है। शूकर-गात्रमें असंख्य मनुष्य मूर्तियाँ खुदी हैं।

वराहमन्दिरसे १०॥ हाथ उत्तरकी एक छुद्र देवी-मन्दिर है। इसके बीच चतुर्भुजा देवीमूर्ति प्रतिष्ठित है। प्रवेशद्वार पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी मूर्ति हैं। यह लक्ष्मीमन्दिर-जैसा समझ पड़ता है।

चतुर्भुजामन्दिरसे २० हाथ दक्षिणकी मृत्त, क्षय महादेवका मन्दिर है। इसके मध्य मृत्त, क्षय नामकी ६ हाथ ऊंचा एक मोटी लिङ्गमूर्ति प्रतिष्ठित है। इसकी कोणाकार खूँडाके अग्रभाग पर कलपुरके महाराजने मुलम्मा खड़ा दिया है।

शिवसागरसे दक्षिण और सूर्यमन्दिरसे उत्तर भम्ब-स्तूप पड़ा है।

उत्तरांशकी पश्चिमके मन्दिरादिसे पाव कोस दूर कई भग्नस्तूप हैं। सम्भवतः यह युयनचुयाङ्ग वर्णित बौद्धमठोंका भग्नावशेष है।

एक स्तूप १३३ हाथ लम्बा, १०६ हाथ चौड़ा और प्रायः १० हाथ ऊंचा है। इसको 'शतधार' स्तूप कहते हैं। इसकी देखने पर स्वच्छन्दसे समझ पड़ता है कि वह एक बहुत बौद्ध मठका भग्नावशेष है। इससे २०० हाथ दक्षिणकी और एक छोटा स्तूप है। उसमें दोवार और अंभेजा टूटा भाग मौजूद है। ३३३ हाथ उत्तरकी ऐसा ही दूसरा कोई छुद्र स्तूप है। इन दोनोंके बीच १३३ हाथ लम्बी एक पुष्करिणी लगी है। शतधार स्तूपसे पाव मील दूर एक वैष्णव-मन्दिरका भग्नावशेष और दो कूप हैं।

ग्रामके उत्तर प्रांतकी एक बड़ा मन्दिर है। यह पूर्वोक्त स्तूपोंके दक्षिण अवस्थित है। इसकी वामनदेवका मन्दिर कहते हैं। इसकी प्रतिमा ३ हाथ ऊंची है। मन्दिरके मध्य वामनमूर्ति रहते भी गर्भगृहके

द्वार पर मध्यखलमें शिवमूर्ति और उसके दक्षिण ब्रह्मा तथा वामकी विष्णुमूर्ति है। मन्दिर ४० हाथ लम्बा और २६ हाथ चौड़ा है। पश्चिमांगके मन्दिरोंकी तरफ इसमें सुन्दर कारुकार्य नहीं है। मन्दिरके गात्रमें टेढ़े ढरफोंसे इमारत बनानेवालेका नाम खुदा है। सुतरां ज्ञात होता कि वह ई० दशम वा एकादश शताब्दीमें निर्मित हुआ है। इससे पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम की ओर दो छोटे मन्दिरोंका भग्नावशेष है। यह समस्त भग्नावशेष प्रायः १० हाथ ऊँचा होगा। मन्दिर-सं थोड़ी दूर एक भग्नावशेष पायी गयी है। इसकी समस्त पंक्तिमें श्रीहर्षदेवका नाम है। यह यशोवर्मक पिता और धृष्टदेवके पितामह थे। दशम पंक्तिमें श्री क्षितिपालदेव नामक दूसरा नाम एवं चन्देलराजाओंका भी नाममिलता है। परन्तु राजाका उल्लेख नहीं। मालूम होता कि उक्त व्यक्ति हर्षदेवके ज्येष्ठ पुत्र थे। अल्पदिन राजत्व करके अपुत्रक अवस्थामें मर जानेसे इनके कनिष्ठ भ्राता यशोवर्मा राजा हुए। सुतरां राजतानिका-में इनका नाम नहीं आया है।

ग्रामके पूर्व पार्श्वकी किसी स्तूप पर एक छोटा मन्दिर विद्यमान है। पहले इसको ठाकुरजी या लक्ष्मणजीका मन्दिर कहते थे, किन्तु आजकल किसी विशेष नामसे निर्देश नहीं करते। जुगार क्षेत्रके पास जैसा रहनेसे यह भी 'जुगार' ही कहलाता है। इसके मध्य चतुर्भुज विष्णुमूर्ति विद्यमान है।

खजूर सागरके पूर्वतोरकी पुरानी ईंटों और पत्थरोंसे सम्पत्ति एक मन्दिर निर्मित हुआ है। मन्दिरके बाहर ४॥ हाथ ऊँची एक हनुमान् मूर्ति है। उसी हनुमान् प्रतिमासे इसको हम् मन्दिर कहते हैं। इसके निकट जो सकल भग्न प्रस्तरादि हैं, उनमें एक गदाधर और दूसरी अर्धसर्पदेह नागपुरुषकी मूर्ति मिली है।

हनुमन्दिरसे अति निकट खजूर सागरके पूर्वतोर पर कोष्ठाकार बूड़ाविशिष्ट कोई मन्दिर है। इसमें चतुर्मुख ब्रह्माकी एक मूर्ति विराजित है। किन्तु द्वार पर गदाधर विष्णुकी मूर्ति है। इसकी गठनप्रणाली देख कर अनुमान किया गया है कि वह पश्चिमांगके मन्दिरादिसे भी प्राचीन और सम्भवतः ई० आठवें नवें शताब्दीका बना हुआ होगा।

दक्षिण-पश्चिमकी अधिकांश बौद्ध और जैन मन्दिरादिका भग्नावशेष पड़ा है।

इसके मध्य सर्वापेक्षा घण्टाई मन्दिर ही प्राचीन है। कोई नहीं जानता—घण्टाईके अर्थसे क्या समझ पड़ता है। इस मन्दिरका जो भग्नावशेष आजकल देखनेमें आता, उससे यह किसी बड़े मन्दिरका महा-मण्डप जैसा ही खयाल किया जाता है। इसकी लम्बाई २६ हाथ और चौड़ाई १२ हाथ है। नाव्य-मन्दिरकी भांति खंभेके ऊपर सिर्फ छत खड़ी है, परन्तु खंभेके बीच-बीच प्राचीर जैसे रहनेका अनुमान किया जाता है। मध्यखलके खंभे रैतीले पत्थरसे बने हैं इसमें बहुत अच्छी नक्काशी है। बाहरी खंभे घेनाइट पत्थरके बने हैं और उनमें कोई कारीगरी नहीं है। मालूम होता है, इन्हींमें प्राचीर संलग्न था। रैतीले पत्थरके चार खंभे अष्टकोणी वेदी पर लगे हैं। द्वारके ऊपर बीचों-बीच एक चतुर्भुजा स्त्रीमूर्ति है। सम्भवतः यह बौद्धशास्त्रकी धर्ममूर्ति होगी। बौद्धतिरज्जके मध्य यह स्मृतिस्मारिणी शक्ति है। वेदी पर एक लहदाकार उपविष्ट मूर्ति है। इसके नीचे "ये धर्महेतुप्रभवा" इत्यादि बौद्धमन्त्र लिखा है। यह ई० पञ्च षष्ठ शताब्दीकी वर्षमासा जैसा समझ पड़ता है। इसके निकट अनेक भग्न जैन मूर्तियोंका ढेर लगा है। उसमें किसी-के गात्र पर आदिनाथ मूर्तिप्रतिष्ठाकी कथा खुदी हुई है। जो वर्ष संख्या दी गयी है, उससे इस लिपिके ११४२ संवत् (१०८५ ई०) को खोदे जानेका अनुमान लगता है। आदिनाथके प्रतिष्ठाताका नाम श्रीविवत्सा और उनकी प्रधान स्त्रीका नाम गोठनी पद्मावती था। इससे भी समझ पड़ता है कि अष्टम शताब्दीका प्राचीन बौद्धमन्दिर एकादश शताब्दीकी जनोंके अधिकारमें रहा।

घण्टाई मंदिरमें दो नाम खुदे हैं—एक 'नेमिचन्द्र' और दूसरा 'क्षितिश्री साधु'। इसके पक्षरादिसे अनुमान होता कि वह ११५० ई० या उससे पहले दशम शताब्दीको खोदे गये होंगे।

घण्टाई मंदिरके निकट पार्श्वनाथका एक मंदिर है। पार्श्वनाथकी यह प्रतिमा प्राधुनिक है। किन्तु यह मंदिर किसी बृहत् प्राचीन मंदिरका गर्भगृह-जैसा

समझ पड़ता है। इसके द्वारपथ पर वामदिकों को एक नग्न पुरुषमूर्ति, दक्षिणकी एक नग्न स्त्रीमूर्ति और द्वारके ऊपर तीन उपविष्टा रमणीमूर्तियाँ हैं। मन्दिरके मध्य दिगम्बर पार्श्वनाथकी मूर्ति विद्यमान है और मन्दिरके गात्रमें कई तीर्थयात्रियोंका विवरण खुदा है। इसकी वर्षामाला ई० १०वें शताब्दी जैसी लगती है। इससे ज्ञात होता है कि दशम शताब्दीको प्राचीन मंदिर वर्तमान था।

उक्त मन्दिरके निकट ही पार्श्वनाथका दूसरा और एक आदिनाथका मन्दिर है। दोनों मन्दिरोंके द्वारों पर एक एक क्षुद्र रमणीमूर्ति वर्तमान है।

उक्त दिक्कार मन्दिरोंके मध्य सबसे बड़े और अच्छे मन्दिरकी जिननाथका मंदिर कहते हैं। यह २० हाथ लम्बा और बीस हा हाथ चौड़ा है। १८६० ई०की किसी जैन वणिकने इसका संस्कार कराया था। मन्दिर मंडप, अन्तराल और गर्भगृह तीन भागोंमें विभक्त है। इसके नाट्यमन्दिरकी छत बहुत खूबसूरत है। उसका कारुकार्य और चित्रविचित्र पुत्तलिकादि इतना सुन्दर है कि लिखकर उसका ज्ञान करा नहीं सकते। जीनेकी सिद्धियोंके सामने समुद्रमन्त्रके चित्रका एक पत्थर पर नक्शा किया गया है। फिर मन्दिरके बायें बाजू पर खुदा है—धर्म्मराजके राजत्वकाल १०११ संवत्की भव्य पांडिल नामक एक व्यक्तिने मन्दिरके लिये अनेक उद्यान समर्पण किये थे। दाहिनी ओरके बाजू पर एक चौतौसा यन्त्र खोदा गया है—

७	१२	१	१४
२	१३	८	११
१६	९	१०	५
८	६	१५	४

इसमें जिस दिक्के योग करके देखोगे, ३४ ही पायेगा। जिननाथके मन्दिरमें एक पाथ पंक्ति

खोदितलिपि प्रायः सात पाठ जगह मिलती है।

उसीके निकट 'शेठनाथ' वा शान्तिनाथ नामक एक जैन-मन्दिर है। यह अति सामान्य भग्नावशेष इष्टकादि द्वारा निर्मित और अस्तरकारी किया हुआ है। इसके अन्तरको बड़ा अन्धकार है। उसमें ८ हाथ ऊपर शान्तिनाथकी प्रतिमा वर्तमान है। प्रतिमाकी वेदीमें एक खोदित लिपि है। उसके पाठसे समझा जाता कि १०८५ संवत् या १०२८ ई०की श्रीचन्द्रदेवने शान्तिनाथकी वह प्रतिमा बनायी थी।

उसके पास आदिनाथका दूसरा कोई छोटा प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिरमें विशेष कुछ उल्लेखनीय नहीं। किन्तु इसके निकट जो सकल भग्नावशेष मूर्तियाँ, कारुकार्य विविध अस्तरखण्ड और स्तम्भाय पड़े हैं, उनसे कितनी ही बातें मालूम कर सकते हैं। उनमें कई खोदित लिपियाँ भी हैं। शम्भुनाथ नाम्नी किसी वेदीमें एक लिपि खुदी है। उससे मालूम पड़ता है कि मदनवर्मदेवके राजत्वकाल १२१५ संवत्के माघ मासकी सूर्यवंशीय पांडिलपुत्र दंड्येष्टीने उस मूर्ति की प्रतिष्ठा किया था। इस मूर्ति के निर्माताका नाम रामदेव रहा।

घण्टाई मंदिरके दक्षिण और जैनमन्दिरोंसे पश्चिम १२ हाथसे १६ हाथ तक ऊँचा एक भग्नरूप है। यह २ हाथ लम्बा, ११० हाथ चौड़ा और उपरिभागमें प्रशस्त तथा समतल है। चारों दिशाओंमें प्राचीर देखनेसे समझ पड़ता है कि वह एक बौद्धमठका भग्नावशेष है। इससे इष्टकप्रस्तरादि संप्रह करके निकट ही एक जैन-मंदिर बनाया गया है। भग्नरूपके मध्यसे अनेक जैन-मूर्तियाँ आविष्कृत हुई हैं।

ग्रामसे दक्षिण पोन कोस कुवारनालेके पास दा बड़े मन्दिरों का भग्नावशेष विद्यमान है। इसमें एक नीलकण्ठ महादेवका मंदिर और दूसरा कुनवारका मठ था। नीलकण्ठ मन्दिर विरकुल गिर गया है, केवल गर्भगृहका प्राचीर दृष्टायमान है। प्रकीर्णके ऊपर मध्यस्थलमें शिव और उभयपाशोंकी ब्रह्मा तथा विष्णुकी मूर्ति है। मध्यस्थलमें लिङ्गमूर्ति नहीं, किन्तु उसका अर्घ्यस्थान (वेदी) बना है। नीलकण्ठ महादेव और

नामसे अभिहित है। यह मंदिर भी चंदेलोंके अधिकार समय दशम और एकादश शताब्दीके मध्यको निर्मित हुआ होगा। क्योंकि मंदिरगात्रमें ११७४ संवत् खोदित और किसी तीर्थयात्रीका नाम मिलता है।

कुनवार मठ भी एक शिवमंदिर है। इसके द्वार पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी मूर्ति प्रतिष्ठित है। बहुरीका कहना है कि कुनवार शब्द संस्कृत कुमार (कार्तिकेय) से निकला है। किन्तु कमिष्णुनामके अनुमानमें वह किसी चंदेल राजकुमारका प्रतिष्ठित होगा। पश्चिमांशके मन्दिरोंकी तरह यह भी एक परम सुन्दर मन्दिर है। इसका देव्यं ४४ हाथ और प्रस्न २२ हाथ है। कुनवारमठ भी उक्त सकल मंदिरोंकी भांति पांच भागोंमें विभक्त हुआ है।

खजूर-सागरके तीर भग्नावशेषमें एक कार्तिकेय मूर्ति मिली है। उसकी वेदीमें भी देवकीशशसिंहका नाम पाया जाता है।

खजुराहो ग्रामसे ११ मील दक्षिण जाटकरी मीजमें कई एक भग्नावशेष और भग्नावशेषों पड़ी हैं। उत्तर दिक्को सङ्गमरमर पत्थरके बने शिवलिंगका एक मंदिर और उसके दक्षिण एक विष्णुमंदिर था। और भी थोड़ा दक्षिणकी किसी दूसरे विष्णुमंदिरका भग्नावशेष विद्यमान है। उसका गर्भगृह खड़ा है। गर्भगृहके द्वार पर ब्रह्मा, विष्णु, शिवमूर्ति है। अभ्यन्तरमें भी २ हाथ लंबी चतुर्भुजमूर्ति खड़ी है। कारुकाय देवनेसे यह भी चंदेलोंका प्रतिष्ठित मंदिर मालूम पड़ता है।

खजूरसागर, शिवसागर आदि दीर्घिकाओंके तीर बड़े बड़े घाटोंके नीचे निकटस्थ अधिवासियों और जैन-तीर्थयात्रियोंने भग्नावशेषके मध्यसे जो सकल मूर्तियाँ उधार करके स्थापन की हैं, उनमें बहुतायत भग्नावशेषकी एक मूर्ति उल्लेखयोग्य है। इसकी वेदीके गात्रमें ८२५ संवत् (८६८ ई०) खुदा हुआ है। क्या खजुराहो क्या महोबे कहीं भी इससे प्राचीन वर्षसंख्या नहीं मिलती। परन्तु कोई दूसरी बात लिखी न रहनेसे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? बराह-मंदिरके निकट ऐसी ही कोई दूसरी चतुर्भुज शिवमूर्ति है।

खजुराहोके स्वर्गीय राजा प्रतापसिंहका समाधिमंदिर बनानेको प्रखरादि संपन्न करते समय यह मूर्ति निकली थी।

जब महमूद गजनवीने कालखर आक्रमण किया, चंदेलवंशीय गंड या नंदराय खालखरके राजा थे। खजुराहो ही उनकी राजधानी रहा। महमूद गजनवीके भयसे उन्होंने खजुराहो छोड़ कालखर-दुर्गमें जाकर भाग्य लिया था। उसी समयसे खजुराहोकी प्रवर्तिका सूत्रपात हुआ। परवर्ती चंदेलराजाओंने महोबा नामक स्थानमें राजधानी स्थापित की थी। त्रयोदश शताब्दीके प्रथम कुतुब-उद्-दीनको महोबा और कालपी अधिकार करने पर चंदेल राजाओंने बराबर कालखरमें भाग्य लिया। ११३१ ई० को जब इल्तुतमिश इस देशमें आये, उन्होंने खजुराहोमें केवल योगी संन्यासी देख पाये थे। अकबरके समय यह धीरे धीरे जङ्गल हो गया। क्योंकि आर्यन पक्षधरोंमें इसका उल्लेख नहीं मिलता। वर्तमान शताब्दीके प्रथम भी इसका पता किसीको न रहा। १८१८ ई० को फ्रांस-लिनके मानचित्र पर असावधानि काजरी नामसे यह प्रथमतः चिह्नित हुआ। शिवरात्रिकी आजकल भी यहां संन्यासियोंका बड़ा मेला लगता है।

खजुरिया (हि० खी०) १ खजुरिका, छोटी खजूर । २ कोई मिठाई । ३ किसी किसमकी जख । यह सूत्रमें बहुत होती है।

खजुरी—मध्यप्रदेशके भंडारा जिलेमें सकोली तहसीलकी एक जमींदारी। यह अर्जुनीसे ३ कोस उत्तर है। इसका और गंद लोग यहाँ रहते हैं। इसका जातीय कोई शब्द इसका जमींदार है।

खजुरी—मध्यभारतके अन्तर्गत भूगोल राज्यकी एक जमींदारी, इसको कजुरी कहा जाता है। पिंडारी-दलपति चित्तूके भाई राजनखान्को यह स्थान अंगरेजोंने दिया था। राजनखान्को मरने पर उनके पुत्र इलाही बख्श खजुरीके अधिकारी हुए। १८५८ ई०को इलाही बख्श जब मर गये, उनके लड़के करीम बख्श इसके जमींदार हुए। खजुरीके जमींदार अपने यहां नवाब कहलाते हैं।

खजुराना (हिं० जि०) खजुराना, खजुराना ।

खजुरी (हिं० स्त्री०) खज, खजली । २ किसी किसीकी कार्य । इसके छूनेसे शरीर खजलाने लगता है । ३ कोई मिठाई । इसको खजकी तरह शक्करमें पाग लेते हैं ।

खजुरा—युक्तप्रदेशके फतेहपुर जिलेका एक नगर । यह अक्षा० २६° १' ४०" और देशा० ८०° ३२' ५०" पू० पर फतेहपुरसे १०१ कौस दूर अवस्थित है । कोड़ासे फतेहपुर तक जो सड़क गयी खजुरा नगरी उसी पर बसी है । यहाँ पीतल ताँबे कांसिके बर्तन बनते हैं । खजुरामें बड़े बड़े पुराने मन्दिरोंके भग्नक भंश देखे जाते हैं । प्रकाण्ड प्राचीरवेष्टित यहाँ एक उद्यान है । उसे 'बाग बादशाही' कहते हैं । इसकी पूर्वदिक्की बाराह द्वारी और गजगिरि पुष्करिणी है । नगरमें एक पुरानी सरायका फाटक लगा है । इसके भीतरसे भागरेसे हटावा तक मुगलोंकी भ्रमसदारीका रास्ता गया है । 'रन्दनका तलाव' नामक एक पुष्करिणी और उसीके पास एक शिवमन्दिर भी बना है । प्रति वत्सर कार्तिक मासकी यहाँ भक्तोंका मेला लगता है । खजुरामें विद्यालय, डाकघर, थाना और तहसील विद्यमान हैं । सप्ताहमें दो बार बाजार भरता है । लोकसंख्या प्रायः ३००० है । अधिवासी अनेकांश ब्राह्मण हैं ।

खजूर (हिं० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक पेड़ । यह उष्ण देशोंमें समुद्रतीरकी वा बालुकामय समतल भूमिमें उत्पन्न होता है । खजूरका वृक्ष सीधा खम्भे जैसा ऊपरकी बढ़ते जाता और चोटी पर पत्तियोंका गुच्छा दिखाता है । इसकी पत्तियाँ अति कठिन, ४।६ अङ्गुल दीर्घ और नोकदार होती हैं । वह एक सीके या छड़की दोनों और एक एक करके आमने सामने आती हैं । यह छड़ दो तीन इंच पर्यन्त दीर्घ होती है । खजूर खास कर दो तरहकी जाती है—जङ्गली और देशी । जङ्गली खजूर सेंधी, खरक आदि भी कहलाती है । यह बहुत नहीं बढ़ती और भारतमें प्रायः सर्वत्र मिलती है । इसका फल किसी कामका नहीं होता । खजूरका वृक्ष ७८ वर्षका होने पर उसमें पाँच लगा देनेसे रस निकलता है । इसकी ताड़ी कहते हैं । यह अधिक सुखादु रहती और इससे गुड़ तथा चीनी

बनती है । लगायी जानेवाली खजूर पिण्डखजूर कहलाती हैं । इसका वृक्ष ६०।७० हाथ तक बढ़ता और छह वर्षसे ऊपर उसके मूलके निकट कुछ पङ्कुरसमूह निकलता है । यह सिन्धु, पञ्जाब, गुजरात और दक्षिण में अधिक उत्पन्न होता है । उक्त देशोंमें लोग इसकी खपि किया करते हैं । वृक्षरोपणार्थ सब प्रकारकी भूमि उपयुक्त होती है, केवल उसमें चारका कुछ भंश रहना आवश्यक है । तीनसे छह वत्सर तकके पङ्कुर वृक्षके पाससे कोढ़ लेते हैं । उनके दीर्घाकार पत्त काट ली जाते हैं । फिर उन्हें ३ फुट लम्बे चौड़े गड्ढे में दो ठाँई सेर खली डाल लगा देते हैं । आठ वर्षसे अधिक पुराने पेड़ोंमें फल आ जाते हैं । माघ फाल्गुन मास मञ्जरियाँ आती हैं । यह मञ्जरियाँ पत्तावरणमें वेष्टित रहतीं और पीछे बढ़ कर फूलका गुच्छा बनती हैं । बड़े बड़े गुच्छोंमें फल आते हैं । फल अच्छी तरह न पकने तक सोंचनेकी बड़ी जरूरत रहती है । फल पकते समय पीले लगते और फूल भाने पर लाल निकलते हैं । पिण्डखजूरके फल छुहारे कहलाते हैं । छुहारे कई प्रकारके होते हैं । उनमें नूर वगैरह अच्छे समझे जाते हैं ।

किसी किसी खजूरमें चार चार तक छतरियाँ होती हैं । खजूरका काष्ठ बड़ेरमें लगता और उससे अस्त्राधी सेतु भी बनता है । पत्तियोंके छण्डलोंसे घर छाते और छड़ी भी बनाते हैं । पत्तियोंकी चटारियाँ और पङ्क्तियाँ अच्छी होती हैं । इसका अन्तःसार सिद्ध करने पर काले-जैसी एक प्रकारकी लाल चुकनी निकलती, जो चमड़ा रंगमेंमें लगती है । खजूरकी छालसे चमड़ा भी सिंकाया जाता है । खजूरका गोंद इक्षुमचिल कहलाता और औषधके काम आता है । इसके कोमल पत्र सुखा कर रख लिये जाते और पीछे तरकारीके काम आते हैं । खजूरकी छालके रेशेसे रस्सी बटते हैं । अरबमें इसके फूलसे गुलाब-केवड़े जैसा एक प्रकारका अंक उतारा जाता है । खजूर देशी ।

२ कोई मिठाई । इसकी पाटेमें ची और चीनी डाल गूँध कर बनाते हैं । खजूर खानेमें खसखसी और जायकादार होती है ।

खजूरखड़ी (हि० स्त्री०) वस्त्रविशेष, एक रेशमी कपड़ा। इस पर खजूरकी पत्तियाँ जैसी धारियाँ रहती हैं।

खजूरा (हि० पु०) मंगरा, खजूरकी बँडिर। २ कन खजूरा।

खजूरी (हि० वि०) १ खजूर सम्बन्धीय, खजूरसे ताकड़ा रखनेवाला। २ तिलड़ा, तीन लड्डोंको गूँथ कर बनाया हुआ।

खजारा (हि० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। इसकी फली रुयेंदार होती और शरीरमें छू जानेसे खुजली उठती है।

खज्योति (सं० पु०) खे आकाशे ज्योतिरस्य, बहुव्री०। खज्योत, जुगनू।

खज्ज (सं० पु०) १ वायुरोगभेद, बार्हकी एक बीमारी। २ विकलगति, लंगड़ा। इसका पर्याय—खोड़, खोल, खोर, खज्ज और खोट है। भावप्रकाशके मतमें कटि-देशान्वित वायु क्षुपित होके उर्ध्वदेशस्थ कण्डरा (महा-स्नायु) का आक्षेप लगता और मनुष्य खज्ज पड़ जाता है। कर्मविपाककी देखते की व्यक्ति प्रकारण चरण मारता, परजन्ममें खज्जका जन्म पाता है—

“इति निवृत्ते खज्जः श्वासे तु विपाकः।” (शातातप)

सुश्रुतके मतानुसार गर्भविस्थाकी गर्भिणी का अभि-क्षाप पूर्ण न होनेसे गर्भस्थित सन्तान खज्ज हो जाता है। (सुश्रुत, शरीरक १५०) खज्ज शब्द पाणिनीय कडा-रादि गणान्तर्गत है। कर्मधारय समासमें विकल्पसे इसका पूर्वनिपात होता है। जैसे—खज्जवाहु और वायुखज्ज।

खज्जक (सं० त्रि०) खज्जति, खजि कर्तरि खल्, यङ। खज्ज एव स्वार्थे कन्। खज्ज, लंगड़ा।

खज्जकारि (सं० पु०) खज्जकस्य करिः, ६ तत्। सुखा, खेसारी।

खज्जखेट (सं० पु०) खज्ज इव खेटति गच्छति, खिट्-प्रच्। खज्जनपक्षी, ममोला।

खज्जखेल (सं० पु०) खज्ज इव खेलति, खेल-प्रच्। खज्जनपक्षी, खंडरेवा।

खज्जता (सं० स्त्री०) खज्जस्व भावः, खज्ज तल्-टाप्। खज्जत्व, लंगड़ापन।

खज्जन (सं० स्त्री०) खजि भावे खट्। १ विकलगति, लंगड़ापन। (पु०) कर्तरि ख्यु। २ खनामख्यात पक्षी, खंडरेवा, ममोला (Wagtail)। इसका संस्कृत पर्याय—खज्जरीट, कणाटीन, काकच्छदि, खज्जखेल, तातन, मुनिपुत्रक, भद्रनामा, रत्ननिधि, खज्जखेट, गूढनीड़, तण्डक, चर, काकच्छद, नीलकण्ठ, कणाटीर और कणाटारक है। खज्जनकी कई एक श्रेणियाँ हैं। उनमें बहुतसे सफेद और बहुतसे काले होते हैं। फिर कितनीहीकी पूँछमें काली काली छिट्टियाँ रहती हैं। खज्जनके बहुत काले और पाँच मांसल तथा श्वेतवर्ण होते हैं। लम्बाई प्रायः १० इंच रहती है। बाजू ४ इंच, पुच्छ ५ से ६ इंच तक और बहुत पौन इंच बैठते हैं। छोटे छोटे पक्षियोंके छिट्टियाँ नहीं आती। हिमालय प्रान्तमें खज्जन बहुत देख पड़ते हैं। आसाम, आराकान और ब्रह्मदेशमें भी बहुत हैं। पूँछ हिलानेसे इनकी विशेष शोभा होती है। पहाड़से जहाँ नदी निकलती अथवा जहाँ जलप्रपात रहता है, खज्जन प्रायः देखनेमें आया करते हैं। खज्जन पक्षमें प्रकृष्टा विचरण करता हो और यदि आप उस समय जाके उपस्थित हों, तो वह शीघ्र उड़ कर नदीके किनारे या वनमें चला जावेगा। खज्जन छोटे छोटे कोंड़े पतित्ते पकड़ पकड़ खाया करते हैं। इसकी प्रायः निज्जनमें एकाकी रहना अच्छा लगता है। कभी कभी दो-तीन एकत्र भी देख पड़ते हैं। किन्तु अधिकक्षण नहीं। शीघ्र हो वह परस्पर विवाद करके एक दूसरेकी भगा देता है। अन्यान्य पक्षियोंकी तरह यह भी घास फूससे अपना बोंसला बनाते हैं। खज्जनपक्षी छोटे छोटे घासोंमें भी देख पड़ता है। इसके प्रथम दर्शनका शुभाशुभ फल बराह-मिहिरकी छहत्संहितामें इस प्रकार निर्णीत हुआ है—

खूल, उन्नत तथा क्षणवर्ण कण्ठयुक्त खज्जनको भद्र कहते हैं। इसके दर्शनसे मङ्गल होता है। सुखसे कण्ठ पर्यन्त क्षणवर्ण खज्जन सम्पूर्ण कहलाता है। इसके दर्शनसे आशा पूर्ण हो जाती है। जिस खज्जनके गर्भमें क्षणवर्ण बिन्दुओंके मध्य दो एक श्वेतवर्ण बिन्दु रहते, उसके दर्शनसे आशा निष्फल जाती है। इसीसे उसका नाम रिक्त रखा गया है। पौतवर्ण खज्जन देखने

से क्लेश मिलता है। सुमिष्ट तथा सुगन्धि फलयुक्त वृक्ष, किसी पवित्र जलाशय, हाथी घोड़ा या सांपके मखे, दासान, उपवन, वन्य, गोष्ठ, यज्ञगृह, हस्तीशाला वा पक्षशाला पर खज्जन देख पड़नेसे ओष्ठि होती है। राजा वा ब्राह्मणके निकट, कुत, ध्वज वा चामरादि पर, दधिपात्र, धान्यपुच्छ वा पद्मादि-परिशोभित सरोवर-में भी खज्जन देखनेसे ओष्ठि हुवा करती है। पक्ष पर मिष्टान्न प्राप्ति, हरितवर्णं वृक्ष पर वस्त्रलाभ और गाड़ी पर खज्जन दृष्ट होनेसे देशका विनाश होता है। घरके बरामदे या कुत पर अर्थनाश, रन्ध्र पर वन्धन और अपवित्र स्थान पर खज्जन देखनेसे रोग लगता है। परन्तु मेघादिके पृष्ठ पर खज्जन देख पड़नेसे अल्प दिन मध्य ही प्रियसमागम होता है। मण्डप, चट्ट, गर्दभ, अस्थि, श्मशान, गृहकोण, पर्वत, प्राचीर, भस्म वा केश पर खज्जन दृष्ट होनेसे अमङ्गल और अशुभ्य रहता है। खज्जन पक्षीको पक्षसञ्चालन करते देखना अशुभ है, किन्तु नदीमें जल पीते देखना शुभ होता है। सूर्य उदयके समय खज्जन दर्शन प्रशस्त है, अस्तकाल को शुभकर नहीं ठहरता। यात्राकालको खज्जन जिन दिक् चङ्कर देख पड़े, राजाको उसी ओर गमन करना चाहिये। इस प्रकारसे यात्रा करने पर शत्रु वशीभूत होता है। जिस स्थान पर खज्जन-मिथुन देख पड़े वहाँ कोई निधि मिलनेकी सम्भावना रहती है। खज्जन पक्षी जहाँ वसन करता उसके नीचे काच और जहाँ पुरीष परित्याग करता वहाँ अङ्गार (कोयला) रहता है। मृत, विकल वा रोगयुक्त खज्जन निज शरीरानुकुल फल प्रदान करता है। राजाको शुभ स्थान पर शुभ खज्जन अवलोकन करके सुगन्धि कुसुम और धूपयुक्त अर्घ्य भूमितलमें देना चाहिये। इससे समस्त मङ्गल बढ़ जाते हैं। अशुभ खज्जन देखने पर सात दिन मांस न खानेसे अशुभ फल मिटता है। प्रथम खज्जनके दर्शन का फल संवत्सरके मध्य मिला करता, किन्तु इसी बीच फिर दर्शन होनेसे उसी दिन फल मिल जाता है। (उत्तरचरिता ४५ पं०)

कहते हैं—खज्जन बरामदे पड़ाई पर रहता, केवल शीतकालके आरम्भमें नीचे उतरता है। शिर पर शिखा

धानेसे यह छिप जाता और किसीकी दृष्टिमें नहीं आता। “जानि शरदस्तु खज्जन पाये।” (मुल्लवे)

खज्जनका मांस लघु, रुच और कफ, पित्त तथा विषम्वन्ध है। (राजनिषध)

खज्जनक, खज्जन देखो।

खज्जनरत (सं० स्त्री०) खज्जनस्यैव गोप्यं रतम्। पतियोंकी गोपनीय रति।

खज्जना (सं० स्त्री०) खज्जन इवाचरति, खज्जन-ऊरच् क्षिप्-टाप्। क्षुद्र खज्जन जाति हापुत्रिका, दसदर्कोंमें रहनेवाली खज्जन जैसी एक छोटी चिड़िया।

खज्जनाकृति (सं० स्त्री०) खज्जनस्यैव आकृतियस्याः, बहुव्री०। १ खज्जनी, सर्वपी, खज्जन-जैसी एक छोटी चिड़िया। खज्जनस्य आकृतिः, ६-तत्। २ खज्जनका आकार, खंकरैकेकी सूरत-शकल।

खज्जनाशन (सं० स्त्री०) रुद्रयामकोक्त एक आसन। दोनों पैरोंको पीठ पर चढ़ाके दोनों हाथ भूमिपर रखना चाहिये। फिर दोनों हाथोंको पीठ पर डालके पैर टेढ़े कर लेते और वायु पान किया करते हैं। इसीका नाम खज्जनासन है। इस आसनमें उपासना करनेसे जय होता है। (रुद्रयामल)

खज्जनिका (सं० स्त्री०) खज्जनस्तदाकारोऽस्त्यस्याः, खज्जन-ठन्-टाप्। १ खज्जनाकार कोई मादा चिड़िया। इसकी चौवके दोनों पक्ष बहुत लम्बे होते हैं। इसकी सर्वदा कीचड़ पर रहना अच्छा लगता है। इसका संस्कृत पर्याय—हापुत्रिका, तुलिका, स्फोटिका और सर्वपी है। (त्रि०) २ खज्जनाकृति।

खज्जनी—भारतवर्षीय क्षुद्र आनन्द यन्त्रविशेष, खज्जकी। चक्राकार खोदित काष्ठके एक सुखपर जागादिज्ञा चम आच्छादन करके यह यन्त्र बनाया पड़ता है। खज्जनी तीन चार प्रकारकी होती है। अच्छे वादकके निकट इसका वाद्य सुननेमें आनन्द मिलता है। यन्त्र देखो।

खज्जरीट (सं० पु०) खज्ज इव षट्पठति, षट् गतौ बाहुल-कात् कीटन्। खज्जन, खंडरेचा।

खज्जरीटक (सं० पु०) खज्जरीट एव स्त्रायं कन्। खज्जन पक्षी।

खज्जरीटी (सं० स्त्री०) खज्जरीट जातिस्वात् स्त्री। मादा खज्जन।

खज्जवाहु (सं० पु०) एक दैत्य । (हरिवंश २०० पं०)

खज्जा (सं० स्त्री०) एक मात्रावृत्त । जिसका वृत्तके दोनो अंश बदलके रचना करनेसे खंजावृत्त कहलाता है ।

श्रिता देखो

खज्जार (सं० पु०) खज्ज इव ऋच्छति, ऋ-प्रच् यद्वा । खज्जति कुटिलं गच्छति, खज-प्रारन् । एक ऋषि । यह शब्द पाणिनीय प्रत्यादि गणके अन्तर्गत है ।

खज्जाल (सं० पु०) खजि-कालन् । खज्ज इव चलति, चल-प्रच् वा । एक ऋषि । यह शब्द पाणिनीय प्रत्यादि गणान्तर्गत है । इसके उत्तरको गोत्रापत्यर्थमें फज होता है ।

खट (सं० पु०) खट्-प्रच् । १ अन्धकूप, पंधा कुवां । २ कफ, बलगम । ३ टट्ट । ४ शस्त्रविशेष, कोई हथियार । ५ हल । ६ कर्तृण, कोई खुशबूदार घास । ७ टण, घास ।

खट (हिं० पु०) कोई राग । यह बराही, आसावरी, तोड़ी, कलित, बहुली, गन्धार अथवा सिन्धुवी, धनात्री, तोड़ी, भैरवी, रामकिरी और मल्लारके योगसे बनती है यह मध्यम वादी है । किसी किसीके मतमें खट दीपक रागका पुत्र है । प्रातःकालका १ दण्डसे ५ दण्ड तक इसको गाना चाहिये । इसका स्वरराम स ग म प ध नि स है । (सङ्गीतशानोदर)

कहते हैं पञ्चानन कार्तिकेयके मुखसे प्रथमकी यह राग निकलाया । इसीसे इसको खट् वा खट कहते हैं ।

खटक (सं० पु०) खट बाहुलकात् वृन् । १ खटक, बिचवानी । इसका संस्कृत पर्याय—नागवीट, टाङ्क और त्राक्षर है । २ कुजितपाणि, लूना ।

खटक (हिं० स्त्री०) शब्दविशेष, एक आवाज ।

खटक—पञ्जाबके कोहाट और पेशावर जिलेकी मध्यम पर्वतश्रेणी । इस पर्वत पर खटक (खड़क) नामक अफगान लोग रहते हैं । यही पर्वतमाला पेशावर जिलेकी दक्षिण सीमा और सफेदकोहसे सिन्धु तक विस्तृत है । कोहाटके मध्य खटक छुद्र छुद्र शिखरोंमें विभक्त हो गया है । उसके बीच बीच कितनी ही झुंवर उपत्यकायें हैं । तिरितीई नदीने इस पर्वत-मालाको उत्तर और दक्षिण भागमें विभक्त कर डाला

है । दक्षिण भागमें नार्ई बाहादुरखेल और खड़क प्रदेशकी विख्यात लवणखनि और उत्तरभागमें मलगिन तथा जल प्रदेशकी खनि है । कोहाटका मध्यवर्ती सोशानार्ईशीर नामक सर्वोच्च शिखर २१८० हाथ ऊंचा है । जिस तरफ बर्फ वा तुषारशिला पर्वतमालाके जम जाती, उसी तरफ इस पर्वतमालाके पूर्वोक्त सभी स्थानोंमें पत्थरजैसा लवण लगा करता है । पत्थर काटनेकी प्रणालीसे इस लवणकी भी तोड़ लेते हैं । छड़त् प्रस्तराकार ऐसा लवणक्षेत्र पृथिवी पर कहीं देख नहीं पड़ता । नमकका रंग नीलापन लिये भूरा है, परन्तु पीसनेसे सफेद पड़ जाता है । पञ्जाब, अफ-गानिस्तान और अन्धान्य देशोंकी इस नमककी रफ-तनी होती है । जावो नामक स्थानमें इस नमकका बड़ा कारखाना है ।

पेशावरके सर्वोच्च मध्यवर्ती शिखरका नाम 'जौला शीर' है । यह ३४०६ हाथ ऊंचा पड़ता है । इसी पर्वतश्रेणीमें कक्काखेल सुसज्जमान रहते हैं । यहीं कक्का साहबकी कब्र भी है । कक्काखेल लोग खटक जातीय रङ्गीमशेख नामक सरदारके वंशधर हैं । यह मध्यभारत तक व्यवसाय करने पङ्चते और लोग इन्हें धार्मिक-जैसा समझते हैं । जालाशीर पर्वतके निकट चरट नामक ग्रीष्मवास है । मोरकलान् गिरिपथ इसी पर्वत-श्रेणीमें अवस्थित है । आपाततः यहाँ सेन्धु गमनागमन-के लिये एक प्रशस्त पथ निर्मित हुआ है । इन सकल पर्वतोंमें स्लेट पत्थर यथेष्ट मिलता है । खटक प्रदेश आकोरा और टेती दो भागोंमें विभक्त है । इन दोनों भागोंमें दो सरदार हैं । यह चंगरेजोंके वशीभूत होते भी स्वाधीन रहते हैं ।

खटकना (हिं० क्रि०) १ खट-खटाखट होना, खटखट आवाज आना । २ रह रहके दुखना, तपकना । ३ पण्डा न लगना, बुरा मालूम पड़ना । ४ छटना, अलग होना । ५ भय करना, डरना । ६ भगड़ा लगाना, न बनना । ७ अनिष्टकी आशङ्का होना, दिल धड़कना ।

खटकर भौमगज—राजपूतानेका एक गाँव । इसके उत्तरपूर्वकी पर्वतश्रेणी माहज नदी पर्यन्त विस्तृत है । फिर इस गाँवके २ कोस उत्तर पूर्वकी ही नाना-

विश्व पुरातन भग्न मन्दिर देख पड़ते हैं। उनमें जो पर्वतकी दक्षिणदिक् है, सर्वापेक्षा पुरातन-जैसा मासूम होता है। सम्भवतः इसी स्थान पर पुरातन नगर रहा। परन्तु नदी पश्चिमवाहिनी हो जानेसे उसको छोड़ कर खटकर ग्राम बनाया गया है। नदी का ही वक्रगतिसे इस स्थान पर पर्वत टुकड़े टुकड़े हुआ है। आजकल यहाँ सब जगह जङ्गल है। गाँवसे दक्षिण और दक्षिणपश्चिम पत्थरके बने तीन नये मन्दिर मौजूद हैं। इन नये मन्दिरोंमें विष्णुमन्दिर सबसे बड़ा पड़ता है। यहाँ जैनो का बनाया हुआ पार्श्वनाथका भी एक मन्दिर है। उत्तरकी पूर्व दो मन्दिर और यात्रियोंका वासभवन बना है। उसकी तीर दीवारी कहते हैं। यहाँ पहाड़के बीच गुहापथ है। उसमें एक द्वारसे प्रवेश करना पड़ता है। लोग कहते हैं कि उस राहसे दश कोस दूर पाली गाँव पहुँचते हैं। भीमगज दूसरा खतखत ग्राम है। खटकरके निकट भीमगज भी रहनेसे दोनों स्थान खटकर भीमगज जैसे कहलाते हैं।

खटका (हिं० पु०) शब्दविशेष, एक भवाज, खटज, खटखट। २ पायड़ा, छर। ३ चिन्ता, फिक्र। ४ जोर पेंच जो दबानेसे खटसे होता हो। ५ विज्ञो, चिटकना, सिटकनो। ६ खटखटा, पक्षियोंकी उड़ानेके लिये पेड़में छोरीसे लगा कर बांधा हुआ फटे बांसका एक टुकड़ा।

खटकाना (हिं० क्ति०) १ खट खट करना, भावाज निक्कासना। २ बजाना, छेड़ना। ३ छराना, खटका पैदा करना। ४ बलाना, फेंकना।

खटकामुख (सं० पु०) १ तीर छोड़ते समय हाथोंका टेढ़ापन, जिसो किस्म की तीरन्दाजी। (जि०) तीर फेंकते समय हाथोंकी टेढ़ा किये हुआ।

खटकीरा (हिं० पु०) खटमल। कहते हैं—रातको नाम लेनेसे खटमल बहुत बढ़ते हैं।

खटकिता (सं० स्त्री०) खिड़कीका दरवाजा।

खटखट (हिं० स्त्री०) १ शब्दविशेष, कोई भवाज। किसी कठिन चीज पर दूसरी वही चीजका धीरे धीरे आघात लगनेसे यह शब्द निकलता है। खटखट कारोंकी बहुत बुरी लगती है। हिन्दू शास्त्रमें खटखट

करना मना है। २ फाँस, उलझन। ३ विवाद, बहसेड़ा। (जि० वि०) ४ भटपट, जल्दीसे।

खटखटा (हिं० पु०) १ खट खट शब्द करनेवाला। २ बिड़ियोंकी भगानेके लिये पेड़में बांधा हुआ बांसका एक टुकड़ा।

खटखटाना (हिं० क्ति०) १ खट खट करना, बार बार आघात लगाना। २ चेताना, सुभाना, मांगते जाना। खटखादक (सं० पु०) १ काक, कौवा। २ काचपात्र, शीशेका बर्तन। ३ मृगाल, गौदड़। (त्रि०) ४ भक्षक, खानेवाला।

खटदर्थन—सम्प्रदायविशेष, एक फिरका। इसमें हिन्दू, मुसलमान, जैन आदि साधु सम्मिलित हैं। रात्रपूताने मारवाड़ प्रान्तमें इनकी संख्या अधिक है। वहाँ इनके लिये पड़ले एक प्रदायत भी चलन लगती थी।

खटपट (हिं० स्त्री०) १ लड़ाई-भगड़ा, वादविवाद, झगड़न। २ खट खट शब्द।

खटपटिया (हिं० वि०) लड़ाका, भगड़ाल, लड़नेवाला। खटपापड़ो (हिं० स्त्री०) करमई, चमकी, एक पेड़। खटपूरा (हिं० पु०) सुंगरी, मड़ी तोड़नेका एक औजार।

खटभिलावां (हिं० पु०) पियालबूझ, एक पेड़। इसीमें चिरींजी होती है।

खटभेमल (हिं० पु०) छत्रविशेष, एक छोटा पेड़। यह हिमालयकी तराई, आसाम, बङ्गाल और दक्षिण-प्रायद्वीपमें उत्पन्न होता है। इसकी नई नई पत्तियां पशुओंकी खिलायी जाती हैं। ज्येष्ठसे आश्विन मासके मध्य फूलता फलता है। इसके फूल पीले और फल मटर-जैसे छोटे होते हैं।

खटमल (हिं० पु०) कीटविशेष, एक कीड़ा। यह छोटा और सजावी रङ्गका होता है। घीसकालकी अपविष्कृत शय्या आदिमें इसकी उत्पत्ति होती है। खटमल अपने उड़नेसे मनुष्योंका खोह चूसता है। इसकी आकृति उड़दके दाने-जैसी और अच्छा बहुत छोटा तथा सफेद रहता है। अच्छे से निजलनेके पीछे तीन महीने बाद खटमल अपने पूर्णरूपकी प्राप्त होता है। इसकी अर्थ करनेसे हाथ दुर्गन्धि हो जाता है।

कहते हैं—खटमल रत्नबीजका वंशज है। इसका रत्न भूमिमें पड़नेसे अनेक खटमल उत्पन्न हो जाते हैं। ग्रीष्म वर्षा वा शीतके आधिक्यसे इसका मूल्य आता है। भारतवासी खटमल दूर करनेको चार-पाईमें देवने या मरुवेकी पत्ती खाकर खोस देते हैं। लोगोको विश्वास है कि इसकी मछकसे खटमल भाग जाता है। यह रातको सोनेमें बड़ा दुःख देता और मनुष्य विवश हो कर इधरसे उधर करवटें लेता है। कभी कभी भुण्डके भुण्ड खटमल सोते आदमीके शिपट जाते और उसके गात्रमें सुइयाँ-कैसी चुभाते हैं।

जैन-शास्त्रानुसार यह मलसे पैदा होनेवाला सम्मूर्छन जीव है। यह नपुंसक ही होता है और अधिकसे अधिक उनवास दिन तक जीवित रहता है। उसके अर्थ, रसना और नासिका ये तीन ही इंद्रियाँ होती हैं, बाँख व काम नहीं होते।

खटमभी (हि० पु०) एक रंग।

खटमिठ्ठा (हि० वि०) मधुरास्त्र, खटाई और मिठाई दोनों का जायका रखनेवाला।

खटराग (हि० पु०) १ अर्थ वस्तु, विक्रामकी चीजें। २ भगड़ा, भण्डाट। ३ सामग्री, सामान।

खटसर (हि० पु०) यन्त्रविशेष, एक पीजार। यह काष्ठमय रहता और सान धरनेवालोंके काममें लगता है।

खटला (हि० पु०) १ खीपुवादि, बालबच्चे। २ स्त्रीयोंके काममें वाली पहननेका छेद।

खटाई (हि० स्त्री०) १ अज्झता, तुरग्री, अज्झापन। २ अज्झद्रथ, अज्झो चीज। ३ वैरभाव, अनयन। ४ काम काज, मेहनत मशकत।

खटाका (हि० पु०) १ जोरका खटका। (क्रि० वि०) २ खटसे।

खटाखट (हि० स्त्री०) १ खटखट। (क्रि० वि०) २ खट खट करके। ३ झटपट, तुरंतफुर्त।

खटाङ्ग—बङ्गालके वीरभूम जिलेका एक परगना। इसका अधिकांश जङ्गल होते भी समतल है। जहाँ जङ्गल नहीं, बहुतसे लोग रहते हैं। इस परगनेके पश्चिम भागमें पर्वतश्रेणी, उत्तर दिक्को पहाड़ोंके छोटे

छोटे टुकड़े और जङ्गल और दक्षिण तथा मध्यभाग पर जगह जगह उर्वरा भूमि है। यहाँ चावल, यम, इलु, जुपार, शहतूत और पान उपजता है। आम, कटहल, तास, बट और पीपलके पेड़ बहुत हैं। स्थान स्थान पर बड़े बड़े तालाब हैं। उनसे खेतोंमें पानी दिया जाता है। एतद्व्यतीत उच्चभूमि भी रहती है। उसका पानी निम्नभूमिको पहुँचाया जाता है। एक छुद्र नदी इसके ठीक मध्यभागमें प्रवाहित है। ग्रीष्मऋतुमें इसका जल इतना कम पड़ जाता, है कि लोग बिना रुकावटके पैदल ही पार उतरा करते हैं। इस परगनेका सिङ्गली नगर वीरभूम जिलेका प्रधान नगर है। सिमुलिया, हरिश्चकोपा, विष्णुपुर आदि कई ग्रामोंमें नीलकी कोठियाँ रहतीं।

खटाना (हि० क्रि०) १ लड़ा पड़ना, खटाई पाना।

२ निभना, टिकना। ३ लगा रहना, परीकोसीर्ण होना

४ काम लेना। ५ बिगड़ना।

खटापट (हि० स्त्री०) खटपट।

खटाल (सं० पु०) तण्डुलानुयुक्त, एक पेड़।

खटाल (हि० पु०) समुद्रका उच्च तरङ्ग। यह पूर्वोष्ण-को आता है।

खटाव (हि० पु०) १ निर्वाह, गुजारा। २ नाव बांधनेका छूँटा।

खटाव—बम्बई प्रदेशके सतारा जिलेका एक तालुक।

यह अक्षा० १७° १८' तथा १७° ४८' उ० और देशा० ७४° १४' एवं ७४° ५१' पू०के बीच पड़ता है।

लोकसंख्या प्रायः ८६४१६ है। यरला नदी इस तालुकके उत्तरसे निकल करके दक्षिणकी बहती है।

खटास (हि० स्त्री०) १ खटाई, तुरग्री, अज्झापन। २ सुशक विभाव। ३ वैरभाव, अनयन। ४ बिगाड़।

खटिक—एक हिन्दू जाति। यह प्रायः फल और भवा बेचते हैं। खटिक सूपर भी पालते हैं। इनकी स्त्रियाँ हिन्दुओंके लड़का होने पर उसको जाकर धोती पहनाती हैं। विहारके खटिकोंमें खटिक और दासी दो श्रेणियाँ हैं। यह सब अपनेको काश्यप गोत्रीय बताते हैं। कन्याओंका विवाह ५ से १२ वर्षके भीतर हुआ करता है। सपिण्ड पाँच पुत्रोंके मध्य आदान प्रदान नहीं

होता। किसी खानमें विवाहका सम्बन्ध लगनेसे ग्रामके मण्डक वा पञ्चायतसे पूछा जाता—विवाहमें कोई सम्बन्ध दोष तो नहीं आता। कोई सम्बन्ध दोष न रहनेसे पक्षोंका विवाहको मत मिलनेसे घरदेखी और वरदेखी होती और पानसुपारी तथा मिठाई बंटती है। वरके पक्षसे कन्याके घरको वस्त्र, बर्तन और एक रुपया भेजते हैं। इसीका नाम तिलकदान है। तिलकदानकी पीछे ब्राह्मण आके दिन खिर कर जाता है। फिर यथागति विवाह होता है। विवाहमें खटिक जातिके बेरागी ब्राह्मणका कार्य करते हैं। द्वितीय दारपरिग्रहका विधान नहीं है। फिर भी स्त्री वन्या होनेसे दूसरी पत्नीको ग्रहण कर सकते हैं। पक्षोंकी अनुमति ले कर विवाहके विच्छेदका नियम भी है। खटिक हिन्दू धर्म और हिन्दू व्यवस्थाके अनुसार ही चलते हैं। बुधवारके दिन बन्दी और मीरा नामक देवताके अर्घ्य छागवलि और पिष्टक तथा मिष्टान्न निवेदन किया जाता है।

खटिक (सं० पु०) कुजितपाणि, लून्ता।

खटिका (सं० स्त्री०) खट्-अच्-टाप संचायां कन् अत इत्वम् । १ कठिनी, खड़िया, कुड़ी। इसकी घोकरके बच्चे तख्तिथी पर अक्षरादि लिखनेका अभ्यास करते हैं। कहते हैं—पहले खड़ियासे लिखने पर हाथ अच्छा बैठता है। २ कर्णरन्ध्र, कानका छेद। १ गन्धवीरज, खस। ४ खड़ीलज, एक घास।

खटिनी (सं० स्त्री०) खट वाहुलकात् इनि लोपः ।
खटिका देखो।

खटिया (हिं० स्त्री०) चारपाई, खाट, खटोकी।

खटी (सं० स्त्री०) खट्-अच्-गौरादित्वात् लीप् ।
कठिनी, खड़िया, कुड़ी। खटी, मधुर, तिक्त, शीतल और पित्त, दाह तथा व्रणदोष एवं कफ, रक्त और नेत्ररोग दूर करनेवाली है। (रात्रनिबन्ध)

यह एक जातीय प्रस्तरविशेष है। भूतत्त्ववेत्ता खटीके उत्पत्ति-सम्बन्धमें जिस सिद्धान्तको उपनीत हुए हैं, उससे समझ सकते हैं कि प्राचीनदेहसे ही इसकी उत्पत्ति है। यह जनत् प्राचीनदेहसे परिपूर्ण है। क्या वाहु क्या खस क्या जब सभी खानोंमें प्राचीन प्रस्तर परिमाणसे

विद्यमान हैं। इन सकल प्राचियोंका देह मृत्तुके पीछे भूपतित होता है। मत्स्य, शम्बुक आदिके अस्त्रि जनके नीचे रहते हैं। क्योंकि वह वहीं मरते और उनके अस्त्रि भी वहीं पड़े रहते हैं। समुद्र और बड़े बड़े जलोढ़ोंके तलदेशमें इसी प्रकार अनेक प्राणीदेह जम जाते हैं। मही और दलदलसे भी यह सब जाकर नदी गर्भमें गिरता है। नदीगर्भस्थ प्रत्यान्व द्रव्योंके साथ स्त्रोतमें प्राणीदेह बह कर कभी डिट्टाकार परिणत हो जाते और कभी सागरगर्भमें समाते हैं। यह समवेत हो कर एक स्तररूपमें परिणत होते हैं। समुद्रका खारा पानी जगनेसे चूने और नाइट्रोजन की रासायनिक क्रियाद्वारा यह स्तर क्रमशः शुभ्रवर्ण धारण करते और ऊपरों स्तरोंके दबावसे कठिन पड़ते रहते हैं। इसलिये उनके पश्चिम भायर्लेण्डसे जब अमेरिकाकी समुद्रके भीतर ही भीतर तार लगा था, गम्भीर जनको मही निकाल कर देखने पर मालूम हुआ कि वह विलकुल कच्ची खड़िया-जैसी थी। चंगरीजीमें इसे 'उग्र' अर्थात् कीचड़ कहते हैं। इसका पत्थीय लेकर प्रयु-वीक्षण-यन्त्रसे परीक्षा करने पर छोटे छोटे घोंघों और शङ्खोंका चूर्ण देख पड़ता है। खड़िया पीन कर जलके ग्लासमें छोड़ देनेसे उसकी नीचे एक तह पड़ जाती है। पानी फेंक कर नीचेको तहसे थोड़ीनी निकाल खुदवीनसे देखने पर घोंघे और शङ्खपूर्ण अवयव तथा भस्म अवस्थामें पाये जाते हैं। अष्टादश शताब्दीके प्रथम स्वीडनके विद्वान् लिनियसने खटीको जीवदेह जैसा ठहराया था। आधुनिक विद्वानोंने भी विशेष प्रमाणद्वारा उसी सिद्धान्तको खिर जैसा निर्णय किया है।

आधुनिक भूवेत्ताओंने पृथिवीके जीवनको चार भागों वा युगोंमें विभक्त किया है। उनका द्वितीय युग त्रिस्तार वा नूतन कोष्ठित-प्रस्तर-अन्तरयुग, तुरासिक अन्तरयुग और खटी वा क्रिटेशस अन्तरयुग तीन भागोंमें बंटा है। खड़िया अन्तरयुगकी अधिकांश स्तर खड़िया-के बने जैसे ही कहे गये हैं। इससे पहले भी खड़िया रही। किन्तु इस समय खटीका वाहुल्य होनेसे उसका नाम पड़ा है। सर चार्ल्स लायल और अन्त्यापक रामजी-

का कहना है कि घोटघटेन पूर्वकालीन किसी महा-देशकी एक प्रकाण्ड नदीके उखा-हीपका अवशेष मात्र है। जुआर भाटेके कार्यवशतः समुद्रजलमें मिली हुई खड़िया नदीके उत्त हीपमें जमकर पर्वताकार बन गयी है। फिर उत्त महादेशके कई स्थान आजकल जलमग्न हैं। आजकल इङ्ग्लैण्डके केण्ट और ससेक्स प्रदेशमें खड़ियाके जो पहाड़ देख पड़ते इसी हीपसे निकले हैं। भारतका खसिया पहाड़ भी उसी समय बना होगा। परन्तु यहाँ उतनी खड़िया नहीं है। फ्रान्स, जर्मनी, डेनमार्क, स्वीडन, रूस और उत्तर अमेरिकाके पर्वतोंमें खटोके स्तर देख पड़ते हैं।

खटोक (हिं० पु०) खटिक, एक हिन्दू जाति।

खटिक देखी।

खटेटी (हिं० वि०) बिछीनेसे खाली, जिस पर विस्तार न हो।

खटोलना (हिं० पु०) खटोलना।

खटोला (हिं० पु०) १ बाटो चारपाई या खटिया।

२ कोई प्राचीन देश। यह बुंदेलखण्डके अन्तर्गत रहा। खटोलामें भीलोंका बाड़ा था। वर्तमान सागर और दमोह पञ्चाल इसीमें लगता था। ३ उड़न खटोला वायु-वाहन यानी हवाई जहाजको कहते हैं।

खटोरी—सन्ताल परगनेकी एक छावजीवी जाति।

खटोकी—सुलतानातीय मुजफ्फरनगर जिलेकी जानसय तहसीलका एक नगर। यह पक्षा० २८° १०' उ० और देशा० ७७° ४४' पू०में नाथ-बेहर्न-रेलवे पर अवस्थित है। यह नगर कुछ पुराना है, इसमें ४ जैनमन्दिर और शाहजहाँकी बनायी हुई एक बड़ी खराय मौजूद है। वहाँसे प्रधानतः चनाज और शकरकी रफ्तानी होती है।

खटन (सं० त्रि०) कर्ष, छोटा, बौना।

खड़ा (सं० स्त्री०) कड़-टाप्। कटा, कटोला, काट।

खड़ा (हिं० वि०) १ पक्का, तुर्ग, जिसमें कटाई हो।

(पु०) २ मसगल, मोबू जैसा एक पक्का फल।

खड़ाचूक (हिं० वि०) प्रतिग्रथ पक्का, निहायत तुर्ग, बहुत खड़ा।

खड़ाभीठा (हिं० वि०) मधुराखा, कटमिठा।

खट्टाश (सं० पु०) कट्टः सन् अन्तुते, पशु ध्यातो अच्।

सुगन्ध मार्जार, सुन्दर बिल्लाव। इसका संस्कृत पर्याय—गन्धौतु, वनवासन, खट्टाशी, वनाशु, वनम्हा, शालि और पुष्पलक है।

यह नकुलजातीय पशु है। अंगरेजीमें इसको 'सिवेट कैट' (Civet cat) कहते हैं। पाश्चात्य प्राचीन-तत्त्वविदोंने नकुलजातीय (Fam Viverridae) जीवोंके मध्य खट्टाशको नकुलशाखा (Sub Fam. Viverrinae) में गिना है। इस शाखाके जीव भी अणु-विभाग हैं। उनमें खट्टाश-अणु ही प्रधान है। इसका आकार बिड़ालकी अपेक्षा दीर्घ, पाँच अपेक्षा-कृत छोटे, चक्का-मुखी (लोमड़ी) की तरह मुँह ठलवां, कर्ण छुद्र, चक्षु सतेज, शरीर मांसल, गात्रके लोम छोटे और नेवलेके रुधेकी तरह कुछ पीले होते हैं। फिर इसके बालों पर नानाप्रकारकी रेखायें पड़ी रहती हैं। बिड़ालकी भांति इसके सुखपाशों पर भी मोटे मोटे लोम पा जाते हैं। खट्टाशका साङ्गून अपेक्षाकृत लोमश लगता है। इसीसे वह सर्वदा फूला करता है। साङ्गून देहकी अपेक्षा दीर्घ-जैसा रहनेसे वक्राप्र होता है। इसके मुखस्थान पर एक खतल चर्मकोप रहता है। इसमें नृगनाभि जैसा एक प्रकार सुमन्त्रि द्रव्य संचित होता है। बिड़ालकी भांति इसके चक्षु पोंही भी तारा दिवालो तसे विकुड़ जाती है। खट्टाश रात्रिचर मांसाशी है।

खट्टाश त्रिविध होता है—बङ्गदेशीय, मलबारी और मलकाशीपीय। बङ्गदेशीय सुन्दरबिल्लावका अंगरेजी प्राचीनतत्त्वज्ञ नाम विबेरा विबेथा अथवा बङ्गालन्सिस (Viverra Zibetha or Bengalensis) है। हिन्दीमें इसको 'खट्टाश', मैवालीमें 'निटबिडाख', मैवाली तराईकी भाषामें 'भाच', भोटानीमें 'कुङ्ग', लेपचामें 'सफोङ्ग' और अंगरेजीमें जिब्त (Zibt) कहते हैं।

इसका गालवर्ष पोताभ वा तुवाराभ धूसर होता है। गात्रमें काले काले धब्बे और धीरे पड़े रहते हैं। गला सफेद होता है। उस पर एक पार्श्वसे अपरपार्श्व पर्यन्त सफेदके बाद काला और कालेके बाद सफेद चार धीरे पड़े रहते हैं। उदरस्थित बर्ष सफेद होता

। पूंछमें कुछ काली धारियां पड़ी रहती हैं। कंधेसे गले तक बाल कुछ बड़े बड़े और विरल लगते हैं।

इसका शरीर साधारणतः ३३से ३६ इंच तक और पुच्छ १३से २० इंच तक दीर्घ होता है। बङ्गालमें इसकी अधिकांश स्त्रियोंपर 'गन्धगोकुल' (गन्धबिलाव) कहते हैं। नेपाल, सिक्किम, उड़ीसा और मध्यभारतमें भी यह देख पड़ता है। परन्तु दक्षिणात्यके मलबार उपकूलमें मलबारी श्रेणीका ही गन्ध-बिलाव अधिक होता है। आसाम, ब्रह्म, दक्षिण चीन और मलय प्रदेशमें भी इस जातिका खट्वाश मिलता है। घाट पर्वतोंमें इस श्रेणीकी जो शाखा देख पड़ती, उसका युरोपीय प्राणितत्त्वज्ञोंने विवेरा रासी (Viverra Rasse) नाम रखा है। इसका गात्रवर्ण कुछ गहरा और छोरे ज्यादा खुले रहते हैं। तृण तथा गुस्माच्छादित वन और नदीके बांध पर यह वास करता है। खट्वाश गृहपाक्षित पक्षी, मत्स्य, केंकड़ा और कीटादि खाता है। शिकारी कुत्त इसका गन्ध पानेसे सब कुछ छोड़के इसीकी पकड़ने दौड़ता है। अधिक भीत होनेसे यह पानीमें छोट प्राय रक्षा करता है।

मलबारी खट्वाशका अङ्गरेजी वैज्ञानिक नाम विवेरा सिवेटिना (Viverra Civetina) है। सामान्यतः अङ्गरेज लोग इसकी मलबारी सुशब्दबिलाव कहते हैं। इसके मस्तक पर मध्यस्थलमें बड़े सोम नहीं, कंधेके पास निकलते हैं। गात्रवर्ण कुछ मटमैला रहता है। गलेकी दोनी और दो तिरछे धब्बे और गलेके ऊपर भी दो काले दाग रहते हैं। रङ्गमें कुछ हेर फेर और गलेमें दो सफेद धब्बे रहने पर ही वङ्गदेशीय खट्वाशसे यह विभिन्न-जैसा समझ पड़ता है। मलबार उपकूल और कुमारिका अर्न्तरीपमें इसका वास है। यह वन वन और निम्न भूमिमें रहता है। त्रिवाङ्गुलमें इसकी संख्या अधिक है। मलयद्वीप और फिलिपाइन द्वीप-पुञ्जमें भी इसकी शाखा है। प्राणीतत्त्वज्ञ उसे Viverra Tangalunga कहते हैं। फिर अफ्रीकामें देख पड़नेवाली श्रेणी विवेरा सिवेटा (Viverra Civetta) कहलाती है।

मलकाद्वीपीय खट्वाशका वैज्ञानिक नाम विवेरा

मलाकोनसिस (Viverra Malaccensis) है। सामान्यतः इसे छोटा सुशब्दबिलाव कहते हैं। हिन्दोमें इसका नाम 'सुशब्दबिलो' या 'कस्तूरी' बङ्गालमें 'गन्धगोकुल', गुजरातीमें 'पिनागिनवेक' तैलङ्गीमें 'पुनागुपिजि' और नेपालीमें 'बागनेवल' है।

इसका गात्रवर्ण तरल धूसराभ पिङ्गल होता है। इसकी पीठ और पूंछ पर तिरछी लकीरें और बगलमें कतारकी कतार फुटकियां रहती हैं। मस्तकका वर्ण अधिक कृष्णभ और कानसे कन्धे तक डोरा पड़ा होता है। पूंछ कुछ बड़ी रहती और उसमें ८-९ छके पड़ जाते हैं। इस जातिका खट्वाश हिमालयसे कुमारिका पर्यन्त भारतके सब स्थलों, सिङ्गल, आसाम, ब्रह्म और भारतमहासागरीय द्वीपवासीके गर्तों, पर्वत-गङ्गरी और निविड़ भाङ्गियोंमें वास करता है। यह प्रायः अकेले शिकार ढूँढते घूमता और पक्षी, पक्षी-डिम्ब, सर्प, भेक तथा कीटादि खाता है। समय समय फल मूलादि भी खा लेता है। नेपालके पहाड़ी इसका मांस भक्षण करते हैं।

खट्वाशकी स्त्रीजातिका ६ स्तन होते हैं। ज्येष्ठ और पाषाढ मासको इसका श्रावक निकलता है। यह एक साथ ५-६ श्रावक प्रसव करती है। यह पालनेसे हिल जाता, परन्तु यशहीपका गन्धबिलाव काबूमें नहीं आता।

खट्वाशोंको पाल कर भारतीय सत्ताहमें दो बार गन्धद्रव्य संग्रह करते हैं। रङ्गलेखमें इसको एक सन्दूकमें बन्द करके एक सफ़ाईसे गन्ध निजात लिया जाता है। वैद्य-लोग इस गन्धद्रव्यको प्राकृतिकालादिमें काकते हैं। इसमें कोई चीज मित्राके प्रति सुगन्धि द्रव्य प्रस्तुत किया जाता है। यह चीज देखनेमें विश-कुल गले मोम जैसी होती है। सुशब्दबिलाव, शिकार करना सिक्किम पर पुष्करचियोंसे मत्स्य और हत्तादिसे पक्षी तथा वशीयावक पकड़ लाता है।

गन्धबिलावका पण्डा खट्वाशो कहलाता है। उसकी छवि इस प्रकार होती है—यथाकाम अपामाग वा कृशादि चारसे खट्वाशोको लेपन करके वाष्प स्नेहसे सोमरहित करना चाहिये। फिर उसे पाण्ड, जम्बू,

कपित्थ, मातुलुङ्ग और विष्णुपत्तव जलसे दोलायन्त्रमें पकाते, निःस्नेह बनाते और छागमूत्र वा शोभांजन काथकी बार बार भावना लगाते हैं। अन्तकी शिशु-मूल तथा केनकी पुष्पपत्रसे सम्पुटीकृत खट्वाभी शुद्ध मृगनाभि जैसा होता है। (चक्ररत्न)

खट्वाभी (सं० स्त्री०) खट्वाशाब्द, मुशकविलावका अण्डा।
खट्वास (सं० पुं०) खट्वाश पृषादरादिवत् शकारस्य सत्वम्। खट्वाश देखो।

खट्टि (सं० पुं०) खट्ट-रन्। शवयान, जमाजा, ठठरी, मुर्देकी खाट।

खट्टिक (सं० पुं०) खट्टनमावरणं खट्टः स शिल्पत्वेन अस्तास्य ठन्। शाकुनिक, चिड़ीमार।

खट्टिका (सं० स्त्री०) खट्टा स्वार्थे खल्पाद्यर्थे वा कन्-टाप् पत इत्वम्। १ छुद्र खट्टा, छोटी खट्टी। इसका संस्कृत पर्याय—निषट्वा, मन्दी और आसन्दी है। २ शवयान, परधी।

खट्टेरक (सं० त्रि०) खट्ट बाहुलकात् कर्मणि एरक। खट्ट, बीना।

खट्टाली (हिं० स्त्री०) एक घन यन्त्र। यन्त्र देखो।

खट्टोड़ी (हिं० स्त्री०) खट्ट और तोड़ीके योगसे बनी एक रागिणी।

खट्टयोगिया (हिं० पुं०) खट्ट और योगियाके मेलसे उत्पन्न कोई रागिणी।

खट्टवा (सं० स्त्री०) खट्टयते काङ्-क्यते शयनार्थिभिः, खट्ट-कान्। अथप्र-वि-कटिकण्डिकटिविभिः कन्। उच. १।२५। १ काष्ठादि रचित शय्याभार, पर्यङ्क, चारपाई, पलंग, खट्टीकी। इसका संस्कृत पर्याय—शयन, मञ्च, पञ्चक, तल्प और गय है। युक्तिकल्पतरु नामक संस्कृत ग्रन्थमें खट्टवाके सम्बन्ध पर लिखा है—

खाट जिन चार काठके टुकड़ों पर निर्भर करके व्यवस्थान करती, उनको चरण (पाया) कहते हैं। मस्तककी ओरका काष्ठ व्युपधान (सरवा), अधःस्थ निरूपक और दोनों ओरवाला पालिङ्गन (पाटी) कहलाता है। दोनों पालिङ्गन चार चार हाथ लम्बे रहने पड़ते हैं। निरूपक तथा व्युपधान पालिङ्गनसे आधा और चरण निरूपक तथा व्युपधानसे आधा

रहता है। इस प्रकारकी खट्टवा सर्वसमेत १६ हाथ जैसा काष्ठ रहनेसे षोडशिका कहलाती है। यह सभी विषयोंमें शुभप्रद है। पालिङ्गन ४० हाथ, व्युपधान तथा निरूपक ठाईठाई हाथ और चारो चरण एक एक हाथ परिमाण रहनेसे खट्टकी सर्वाष्टदशिका कहा जाता है। यह सकल अभीष्ट पूरण करती है। जिस खट्टाकी दोनों पालिङ्गन पांच पांच हाथ, व्युपधान तथा निरूपक तीन तीन हाथ और चरणों का परिमाण एक एक हाथ रहता, उसका नाम सर्वविंशतिका है। यह भी अच्छी होती है। जिस खट्टवाका पालिङ्गन ५० हाथ, व्युपधान तथा निरूपक उसका आधा और चरण उससे भी आधा होना, उसकी सर्वद्वाविंशिका कहते हैं। यह सर्वसम्पद प्रदान करती है। पालिङ्गन छह हाथ, व्युपधान तथा निरूपक तीन हाथ और प्रत्येक चरण १ हाथ रहनेसे खट्टवा चतुर्विंशतिका कहलाती है। इसमें शयन करनेसे सकल रोग विनष्ट होते हैं। जिस चारपाईकी पाटियां सात सात हाथ, सरवा तथा निरूपक तीन तीन हाथ और पांचे छेड़ छेड़ हाथ रहते, उसकी सर्वषड्विंशिका कहते हैं। यह सर्वभोग प्रदान करती है। पालिङ्गन ७० हाथ, व्युपधान तथा निरूपक ३० हाथ और चरण १० हाथ रहनेसे पर्यङ्क सर्वाष्टविंशिका कहलाता है। फिर पालिङ्गन ८ हाथ, व्युपधान एवं निरूपक ४ हाथ और चरण १० हाथ लगानेसे सर्वत्रिंशिका नाम पड़ता है। इन कई प्रकारकी चारपाईयोंमें सर्वषोडशिका सभीका मङ्गल करनेवाली है। भोजराजने इन आठ प्रकारकी खट्टवाओंको यथाक्रम मङ्गला, विजया, पुष्टि, चमा, तुष्टि, सुखासन, प्रचण्डा और सर्वतोभद्रा नामसे उल्लेख किया है।

वृहत्संहिताके मतमें पियासा, देवदारु, गाव, शाक, काश्मीरी, अंजन, पद्मक, शाक और शिंशपात्रुच प्रशस्त होता है। इनकी लकड़ोंसे चारपाई बनाना चाहिये। किन्तु वज्रपातसे निहत, जल, वायु वा हस्ती कर्छक निपातित और जिस वृक्षमें मक्खियों का बसाया बिड़ियोंका बोंसला हा-अच्छानहीं होता। सिवा इसके यक्षस्थान, श्मशान, पथ, मज्जानदीक सङ्गमस्थान वा

देवमन्दिरका उत्पन्न, कण्टकयुक्त और काटनेसे दक्षिण या पश्चिमदिक्को गिरनेवाला पेड़ भी बुरा ही है। जो सकल वृक्ष अप्रयत्न जैसे कटे गये हैं, उनकी बनी चारपाई या दूसरा कोई आसन व्यवहार करनेसे कुलनाश, व्याधि, भय, व्यय और कलह प्रभृति नानाप्रकारके असफल लगा करते हैं। (हनुसं० ७८ अध्याय) खट्वाका शयन वातकर है। (राजवल्लभ)

२ हनुमङ्गलका व्रणवन्धनाकृतिविशेष, सुन्तुतकी कड़ो फोड़ा वगेरह बांधनेकी १४ प्रकारका पट्टियोंमें एक पट्टी। हनुप्रदेश, गण्डदेश और ललाट पर यह चढ़ायी जाती है। (सुन्तुत सूत्र १८ पं०) ३ टण्डविशेष, कोई घास। ४ कोलशिखी।

खट्वाका (सं० स्त्री०) खट्वा स्त्रार्थे कन्-टाप् पूर्वस्वातः आकारादेशश्च। आदाचार्याचारम्। पा० ३।१।४८। १ खट्वा, खाट। अस्त्रार्थे कन्। २ छुट्ट खट्वा, खटिया। खट्वा शब्दके उत्तर कन् जानेसे खट्वाका, खट्विका और खट्वका तीन रूप होते हैं।

खट्वाङ्ग (सं० स्त्री०) खट्वाय अङ्गम्, इ-तत्। १ खट्वाका चरण, खाटका पावा। २ शिवका कोई अस्त्र। (वटुकचर) (पु०) खट्वाङ्ग इति आख्या यस्मिन्। ३ कोई राजा। भागवतके मतमें यह सूर्यवंशीय राजा विश्वसङ्गके पुत्र थे। किसी समय देवताओंका कोई उपकार करके इन्होंने उनसे अपने परमायुकी बात पूछी। उससे माहूम पड़ा कि जीवन सुज्ञते मात्र ही अवशिष्ट था। खट्वाङ्ग उसी वड्डीको हरिके शरणापन्न हुए। (भागवत अ० १२) किन्तु हरिवंशमें इनकी विश्वसङ्गका पुत्र नहीं मिलता। तदनुसार यह सूर्यवंशीय राजा अंशुमानके पुत्र और इक्ष्वाकु नामसे परिचित थे। (हरिवंश १५ पं०) ४ खट्वाङ्ग सेवा कोई पात्र। अमरशास्त्रके विधानानुसार प्रायश्चित्त करनेवालेको यह पात्र लेकर भिक्षा मांगना पड़ती है। (भारत १३।१५)

खट्वाङ्गधर (सं० पु०) खट्वाङ्ग धरति खट्वाङ्गध-अच्। १ शिव। (त्रि०) २ खट्वाङ्गधारी, खट्वाङ्ग रखनेवाला। खट्वाङ्गवत् प्रभृति शब्द भी इसी अर्थमें व्यवहृत होते हैं।

खट्वाङ्गनामिका (सं० स्त्री०) वटपत्रपात्राभेद, बड़ा पत्ररचना।

खट्वाङ्गनामिका, खट्वाङ्गनामिका देखो।

खट्वाङ्गपादौ (सं० स्त्री०) कोलशिखी।

खट्वाङ्गवन्ध (सं० पु०-स्त्री०) व्रणवन्धनाकृतिविशेष, अस्त्र पर चढ़ाई जानेवाली एक पट्टी। यह बटुपाद और बटुतसे चोरी द्वारा बाधित रहता है।

खट्वाङ्गमुद्रा (सं० स्त्री०) एक तन्त्रोक्त मुद्रा। दाहिने हाथकी पाँचों उंगलियां मिलाके ऊपरकी उठाना चाहिये। इसीका नाम खट्वाङ्गमुद्रा है। यह मुद्रा देवताओंको प्रतिग्रय प्रीति देनेवाली है। (वदयामन)

खट्वाङ्गवन (सं० स्त्री०) नित्यकर्मधा। किसी वनका नाम। (हरिवंश ७८ पं०)

खट्वाङ्गी (सं० पु०) खट्वाङ्ग अस्त्रविशेषो यस्माद्वि, खट्वाङ्ग-इति। १ शिव। २ प्रायश्चित्तके लिये खट्वाङ्ग सङ्ग्रह पात्र धारण करनेवाला व्यक्ति। (मनु ११।१०५)

खट्वाङ्गी (सं० स्त्री०) सद्याद्रिकी एक निकटस्थित नदी। (हरिवंश ८६ पं०)

खट्वाङ्गद (सं० लि०) निन्दार्थे नित्यसमासः। १ काकम्, निन्दित, बदनाम। (विद्यालकोटरी १।१।१६) २ उत्पन्न प्रस्थित, भूला भटका (भट्टि)।

खट्विका (सं० स्त्री०) खट्वा स्त्रार्थे कन्-टाप् इत्वच्। १ खट्वा, खटोसी। २ छुट्ट खट्वा, खटिया। ३ खट्वा विशेष, किसी किस्मकी चारपाई।

“अस्त्रविशेषे स्थानां चतुःषष्टिकांशिकाः।

खट्विकाः सुखसम्भूताः यत्करकाक्षिताभराः” (युक्तिचलन्तव)

खड्ग (सं० स्त्री०) खड्गते क्षियते धान्ये पक्वो सति, पुरादि खड्ग धातोर्षिजभाव पक्षे अच्। १ टण्डविशेष, खरपतवार। धान काट जाने पर बचनेवाली घास खड्ग कहलाती है। (पु०) २ पानकविशेष, पना। सुन्तुतके मतमें यह पना भाजनकालको पथरके बर्तनमें रखकर खाया जाता है। (सुन्तुत सूत्र ४६ पं०) ३ कोई वटपि। इसे अर्थमें खड्ग शब्द पाणिनीय अश्वादिगणान्तर्गत है। गोलापत्वार्यको इसके उत्तर यञ् प्रत्यय होता है। ४ खड्गदूष।

खड्गना (हिं० पु०) खड्गी ईंटीका जोड़। खड्गना अर्थ पर बांधा जाता है।

खड्गक (सं० स्त्री०) खड्ग संज्ञायां कन्। आकाश। (प्रताप वन जीतक ३।३।१।१५ पं०) खड्गईली।

खड़क (हिं० स्त्री०) खटक, धामी आवाज ।
 खड़कना (हिं० क्ति०) खड़खड़ होना, खटकना ।
 खड़का (हिं० पुं०) खड़खड़ाहट, खटका ।
 खड़काना (हिं० क्ति०) खटकाना, झड़ाना, बजाना ।
 खड़किका (सं० स्त्री०) खड़क् इत्यव्यक्तं शब्दं करोति,
 खड़क्-झड़ गौरादित्वात् ङीष् ततः स्वार्थे कान्-टाप्
 पूर्वकस्वस्य । पल्लवार, खड़की ।

खड़की (किरकी)—बम्बई प्रेसिडेन्सीके पूना जिलेका एक
 नगर । यह पश्चात् १८° ३४' उ० और देशा० ७३° ५१'
 पू०को पूनासे उत्तर-पश्चिम २ कोस दूर अवस्थित है ।
 यहां पेटे-इण्डियन-पेनिनसुला रेलवेका एक स्टेशन भी
 है । लोकसंख्या प्रायः १००८७ है । १८१७ ई०की पूर्वी
 मज्झरकी यहां महाराष्ट्राधिप पेशवा बाजीरावसे
 चंगरीजीका एक युद्ध हुआ था । खड़की उस समय एक
 सामान्य ग्राममात्र रही । चंगरीजीकी और करनल
 बुरवेके अधीन २८०० और पेशवाके पक्षमें मन्त्री गोकुल-
 के अधीन २६००० सेना थी । किन्तु लड़ाईमें चंगरीजी
 फौजकी जीत हुई । आजकल यहां एक सेनानिवास
 (छावनी) है । उसमें गोलमदान और सफरमैनाची
 पकटन रहती है । छावनीमें एक बाजार भी है ।

खड़की (सं० स्त्री०) खड़क् इत्यव्यक्तं शब्दं करोति,
 खड़क्-झड़ गौरादित्वात् ङीष् । पल्लवार, खड़की ।
 खड़खड़ा (हिं० पुं०) १ खटखटा, चिड़ियोंके छड़ानेका
 वास । २ कोई ठांवा । यह लकड़ीका बनता है ।
 इसमें जोतके छोड़ोंको निकालते हैं । (वि०) ३ खड़
 खड़ानेवाला ।

खड़खड़ाना (हिं० क्ति०) १ खड़खड़ होना । २ खड़-
 खड़ करना ।

खड़खड़ाहट (हिं० स्त्री०) खड़खड़, खटपट ।

खड़खड़िया (हिं० स्त्री०) पीनस, किसी प्रकारकी
 पालकी । इसे चार पहार बहान करते हैं ।

खड़गसेन—हिन्दूके एक विख्यात कवि । इनका जन्म
 १६०३ ई०को हुआ था । यह ग्वालियरके रहनेवाले
 एक कायस्थ थे । इन्होंने 'दानकीला' और 'दीव-
 मासिकाचरित' नामक दो प्रशंसनीय ग्रन्थ लिखे हैं ।
 इनकी कविताका एक नमूना नीचे दिखलाते हैं—

“भीरीशङ्कर राधाकृष्णकी नाम लीने सकल निरुक्त जान ।

निशदिन सुनरो छीवत जानत छठी प्रात कही सीताराम ॥

मीन कच्छप वराह नरसिंह वामनरूप परपूराम ।

हरि हनुमन्त बुध कलहो यशोदाधाम ।

एते प्रभु रचपाल खड़गसेन प्रभुत्तपाल इजिये सहाय चट याम ॥”

खड़गांव—बङ्गालके वीरभूम जिलेका एक विभाग ।
 इसमें १६ मजल लगते हैं । लोकसंख्या प्रायः ११०७२
 है । इसमें बहुतसे अच्छे अच्छे गांव हैं । भूमि प्रायः
 समतल और उर्वरा प्रायी है ।

खड़गी (हिं० पुं०) गेंडा जानवर ।

खड़जी, खड़गी देखो ।

खड़तू (सं० पुं०) खड़-भतू । बाहु और जङ्घाका
 आभरण । (संक्षिप्तसार)

खड़द—बम्बई प्रेसिडेन्सीके अहमदनगर जिलावाले
 जामखेड़ उपविभागका एक नगर । यह अहमदनगरसे
 २८ कोस दक्षिण-पश्चिम पश्चात् १८° ३८' उ० और
 देशा० ७५° ३१' पू०के मध्य अवस्थित है । लोक-
 संख्या प्रायः ५८३० है । १७८५ ई०को महाराष्ट्रोंके
 साथ निजामका एक युद्ध हुआ । निजामको पराजित
 हा खड़द भागने पर मराठाने चारों ओरसे घेर लिया
 था । निजामने चगत्वा सन्धि करके निष्कृति पायो ।
 खड़दमें पूर्वकी निजामके अधीनस्थ निम्बालकर
 नामक किसी सम्भ्रान्त व्यक्तिकी जमोन्दारी थी ।
 नगरके मध्यस्थलमें निम्बालकरके प्रकाण्ड भवनका
 भग्नावशेष आज भी देख पड़ता है । १७४५ ई०की
 लड़ोने नगरके दक्षिणपूर्व एक दुर्ग बनाया । किला
 पत्थरका चौकोर बना है । उसकी चारों ओर खाई
 खुदी है । प्रवेशद्वारमें २ बड़े फाटक हैं । बीचमें
 विस्तीर्ण पक्षलग है । गढ़का अब भग्नावशेष मात्र
 रह गया है । नगरमें बहुतसे मीनगाड़ी, सूकाभदार
 और पोहार हैं । वह नानाविध शस्त्र और देशी वस्त्र ता
 व्यवसाय करते हैं । प्रति मङ्गलवारकी गोमिवादिका
 यात्रा लगता है ।

खड़दह—बङ्गालके चौकीसपरगने जिलेका भागीरथी तीर-
 वर्ती एक ग्राम । यह पश्चात् २२° ४४' उ० और देशा०
 ८८° ३२' पू०की कलासे ५३ कोस दूर अवस्थित है ।
 लोकसंख्या १७७७ है । यहां ईष्टन-वेङ्कटेश्वरके-

का एक छेगन बना है। खड्गदह वैष्णवोंका एक तीर्थ-स्थान है। वङ्गीय वैष्णव समाजमें प्रवाद प्रचलित है—महाप्रभु चैतन्यदेवके प्रधान शिष्य नित्यानन्द-प्रभुने घूमते घूमते यहीं आकर गङ्गातीर पर अवस्थान किया था। एक दिन मन्थ्याकी किसी स्त्रीके क्रन्दनका शब्द उनके कर्णमें पड़ा। शब्दको लक्ष्य करके उन्होंने देखा कि एक पीरत एकलौतो बेटीके मर जानेसे रोती थी। कन्या भी मरे बहुत देर न हुई थी, मृतदेह पड़ा था। नित्यानन्द अवस्थाकी अवलोकन करके सब कुछ समझ गये और कन्या की मातासे कहने लगे—रोती क्यों हो, तुम्हारी लड़की तो सी रही है। माताने प्रभुकी कथाको हृदयङ्गम किया और उनसे पत्नीकिक क्षमता पर विश्वास करके कहा था—प्रभो! मेरी बेटीको बचा दीजिये, मैं आजन्म आपकी दासी बनो रहूँगी। असलमें लड़की बच गयी। ब्राह्मणकन्या होती भी वह वैष्णव नित्यानन्दकी गृहिणी बनी थी। नित्यानन्दने गृही होके स्थानीय जमींदारसे वासीपयोगी एक खण्ड भूमिको प्रायश्ना किया। जमींदारने गङ्गा किनारे खड़े हो दहके ऊपर एक टुकड़ा खड़ फेंक कर कहा था—यह स्थान आपकी रहनेके लिये मैंने दे डाला। दहके घूर्णीजनमें खड़ डूब गया। किन्तु अप्रत्यक्ष पीछे ही वहाँ रेत पड़ कर उत्तम वासीप-योगा स्थान निकला था। फिर अनेक अधिवासो पत्नी-किक महिमा देखके उनके भक्त बन गये। उसी दिनसे इस स्थानको खड्गदह कहते हैं।* परन्तु यह ठीक नहीं कि नित्यानन्दके समयसे ही खड्गदह नाम निकला है। कृत्तिवासका रामायण पढ़नेसे ज्ञानभक्त पड़ता कि नित्यानन्दके बहुत पहले वह खड्गदह नामसे प्रसिद्ध था। कृत्तिवास देखो। खड्गदहके गोस्वामी लोग नित्यानन्द-वंशोद्भव हैं। वह अनेक वैष्णवोंके दोषागुह होते हैं। शिष्य लोग उनकी बड़ा भक्ति करते हैं। होली, दीवाली और रास आदि वैष्णव पर्वोंपर यहाँ प्रभुतसे लोगोंका समागम होता है। खड्गदहमें श्यामसुन्दरकी श्रीकृष्णमूर्ति

प्रतिष्ठ है। उसके मध्यममें भी बहुतसी बातें सुन पड़ती हैं। कहा जाता है—बद्ध नामक किसी योगीने मोड़ नगरस्थ मुसलमान शासककर्ताके निकट पहुंच सूचना दी कि उस घरके द्वारदेशपर एक प्रस्तरखण्ड था। भगवान्का प्रत्यादेश रहा कि उसके वहाँ रहनेसे भयङ्गल होगा। सुतरां दिना विसम्ब उसको स्थाना-न्तरित करना विशेष आवश्यक था। इसीके अनुसार पत्थरका टुकड़ा निकाल कर बद्धको दे दिया गया। बद्ध उसको लेकर नाव पर चढ़ने चले, परन्तु इसी समय बठात् हाथसे छूट वह पानीमें डूबा था। श्रीरामपुरके निकट वल्लभपुरमें बद्धका वास रहा। उन्होंने घर आकर देखा कि गङ्गाके घाट पर वह पत्थर जाके पड़ा था। इसी प्रस्तरसे वल्लभपुरका विप्रह निर्मित हुआ है। फिर खड्गदहके गोस्वामियोंने इसी पत्थरका एक टुकड़ा लेकर श्यामसुन्दरकी मूर्ति बनवायी। खड्गदहमें मङ्गा किनारे २४ शिवमन्दिर हैं।

खड्गवट (हिं० स्त्री०) १ खटपट, खटर पटर। २ उत्तेजना, बहस पड़ल। ३ उलट पुलट, बेतरतीबी।

खड्गखड़ाना (हिं० क्रि०) १ व्याकुलत्व पाना, बधरा जाना। २ उलट-पुलट होना, बिगड़ना। ३ खटकाना, खड़खड़ाना। ४ क्रम बिगाड़ना, सिलसिला तोड़ देना। ५ बधराहटमें डालना।

खड्गखड़ावट (हिं० स्त्री०) खड़बड़, खड़खड़ावट। खड़बड़ो (हिं० स्त्री०) १ व्यतिक्रम, खड़बड़। २ चक्करावट, सनसनी।

खड़बिड़ा (हिं० वि०) उच्चनीच नाहमवार।

खड़मण्डल (हिं० पु०) व्यतिक्रम, घुटाला, गोल-मास।

खड़यवागू (सं० स्त्री०) खड़पका यवागू। पानक विशेष, किसी प्रकारका पना। पानक देखो।

खड़यूष (सं० पु०-स्त्री०) यूसविशेष, किसी किसका रसा। कपित्थ, चाङ्गेरी, मरिच, लणजीरक और चित्रकके साथ पाक करनेपर खड़यूष कहलाता है। (चमरप) भावप्रकाशके मतमें सुद्रयूषरस, तक्र, धनियाँ, जीरक और शैत्यव मिलानेसे खड़यूष बनता है।

खड्गपुर—मीठो बिरही—वन्धई मानके आदिवासी

जिलेका घामहय। यह दोनों गांव एक दूसरेसे प्रायः २ मीलके अन्तर पर अवस्थित हैं। मीठी बिरछी समुद्र किनारे और खड़पुर देगमध्यस्थ है। मीठी बिरछी अपने मीठे पानोंके कुलोंके लिये प्रसिद्ध है, जो पहाड़ पर समुद्र किनारे छोड़े जाते हैं। प्रति दिन दो बार समुद्र की लहरसे भर जाती भी इन कुलोंका जल मधुर हो बना रहता है। सिवा इन कुलोंके वैसी ही प्रकृतिक कोई एक भरने भी है। मीठी बिरछीसे प्रायः २०० और खड़पुरमें ८७८ मनुष्योंका निवास है। भावनगरसे खड़पुर २० मील पड़ता है।

खड़वान् (सं० वि०) खड़ चातुर्यिक मतुप् मस्य वः । मधादिभाः च । पा ४।२।८६। खड़ सन्निहित (देशादि), खड़के पासवाला ।

खड़ा (हि० वि०) १ दण्डायमान, सीधा उठा हुआ । २ खिर, कायम, टिका हुआ । ३ प्रस्तुत, तैयार । ४ प्रचलित, जारी । ५ स्थापित, रखा हुआ । ६ वर्तमान उपस्थित, मौजूद । ७ अपक्व, कच्चा । ८ पूरा, जो टूटा न हो । ९ अवलंब बंधा हुआ ।

खड़ाजं (हि० स्त्री०) पादुका, काठकी जूती। यह पांवमें पहनी जाती है। इसके नीचे एड़ी और पंजीकी जगह काठके दो टुकड़े लगा देते हैं, जिसमें पट्टी जमीनसे उठी रहें। फिर खड़ाजंके ऊपर आगेकी एक खूँटी लगाती, जो परके अंगूठे और उंगलीके बीच पड़ती है। इसी खूँटी पर जोर देकर लोग चलते फिरते हैं। कहा जाता है कि अधिक खड़ाजं पहननेसे स्त्रीपत्य जाता है। भारतवासी इसकी प्रायः पूजा पाठ और भोजनादिकी जाते समय व्यवहार करते हैं। खड़ाजंको पीतलका बारीक तार जड़के खूबसूरत बनाया जाता है।

खड़ाका (हि० पु०) १ खटाका, खड़खड़ाहट । (क्रि० वि०) २ खड़से ।

खड़ा दसरङ्ग (हि० पु०) कुम्होका एक दाव। इसका दूसरा नाम हनुमन्तबन्ध है। अपनी जोड़की जङ्गलमें अपना हाथ लगा उसके पेट पर रहनेवाले हाथको दबाने और उसके घुट पर उपस्थित हो उसकी मरोड़ कर निशानेसे खड़ा दसरंग होता है।

खड़ापठान (हि० पु०) नौकाके पश्चाद्भागका कुपदण्ड, अहाजका पिछला मसूला ।

खड़ायता विप्र—गुजराती सम्प्रदायभुक्त एक ब्राह्मण जाति। खेदरा, अहमदाबाद, भर्खाच आदि स्थानमें इनकी संख्या अधिक है। खांडा (तलवार) की पूजा करनेसे यह खड़ायत कहलाते हैं। इनका प्रधान कार्य पारोहित्य है। खड़ायतोंके शिष्य भा बहुत होते हैं।

खड़ाल—बम्बई प्रान्तके महीकांठा जिलेका एक राज्य। इसमें १२ गांव लगते आर कोई २२१५ लोग रहते हैं। यहांके मियाँ ४ थे दरजीके सरदार हैं और मकवानोंसे सुसलमान बने हैं। इनका धर्म हिन्दू और सुसलमान दोनों धर्मोंकी मिलावट है। बड़ोदाकी प्रायः १७५१५ रु० घास दाने और २५०० रु० जमाबन्दोका देना पड़ता है। खड़ालके राजवंशकी दत्तक पुत्र प्रहण करने का अधिकार नहीं, राज्यके उत्तराधिकारमें वयोव्यवस्थाका अनुसरण करते हैं।

खड़ि—बङ्गाल प्रान्तके वर्धमान जिलेकी एक नदी। यह बुदबुद विभागके अन्तर्गत धान्यक्षेत्रसे निकली और यज्ञपथसे भ्रमण करके बहुरी नन्दाई नामक स्थान पर भागीरथीमें जा मिली है।

खड़िक (सं० त्रि०) खड़मस्वस्व, खड़-ठन्। खड़मुक्त । खड़िका (सं० स्त्री०) खड़, गौरादिस्वात् ङीष्, ततः स्थायं कम् पूर्वप्रत्ययः । कठिनी, खड़िया ।

खड़िया (हि० स्त्री०) १ खड़ी, कुड़ी। खटी रकी। २ पड़हरका एक बड़ा छच्छल। इसमें फूल या पत्ती कुछ भी नहीं रहता।

खड़ी (सं० स्त्री०) खड़ अच् गौरादिस्वात् ङीष् । १ खटिका, खड़िया । २ पञ्चसूक्तिका, सफेद मट्टी ।

खड़ी (हि० स्त्री०) पहाड़ी। मासखन्धकी एक कसरत 'खड़ीठकी', सिकलीगरीका खुरचकर बतंगको साफ करनेवाला हथानी-जैसा एक कुन्द औजार 'खड़ीमस-कर्की' और कुश्तीका एक पेंच 'खड़ीसकी' कहलाता है। खड़ीसकी पेंचमें बाये हाथसे जोड़की दाहनी कलाई और दाहने हाथसे उसकी कुहनी पकड़ते हैं। फिर उसकी अपनी और आकर्वण करना और अपने दाहने पांवकी उसके पैरोंमें डाल उसकी पिंडकी तब।

एकीको अपनी ओर घसीटते हुए उसके वक्षःस्थल पर धक्का मारके चित्त गिराना पड़ता है।

खड्ग (सं० पु०) मृतशय्या, सुदंका विस्तार।

खड्गपा (हिं० पु०) कड़ा, खड़ा। इसे हाथ या पाँवमें पकड़ते हैं।

खड्ग (सं० स्त्री०) खड्ग-जः। खड्ग-जः वा। खड्ग-जः। मृतशय्या, सुदंका विस्तार।

खड्गुर (वै० त्रि०) खड्गमस्त्यस्य, बाहुलकात् जरच्। खड्गयुक्त। (अथर्व ११।१।१०)

खड्गीकृता (सं० स्त्री०) खड्गेन उन्मत्ता, शतत्। खड्ग दण्डे उन्मत्त हुई स्त्री। यह शब्द पाणिनीय शुभ्रादि गणके अन्तर्गत है। अपत्यार्थमें इसके उत्तर टक् प्रत्यय आता है।

खड्ग (सं० पु०-स्त्री०) खड्गति भिनत्ति, खड्ग-गम्। बाण्डविभः कित। उ० १।१२१ १ गणक, गंडा। (मनु ७. ५०) २ गणक मृग, गंडेता सौंग। ३ कोई बृह। ४ चोर नामक गन्ध द्रव्य, चोरा। ५ अस्त्र विशेष, खांडा, इसी अस्त्रसे छाग मर्द्धिष प्रभृति पशुओंका वनिदान किया जाता है। यह हिन्दूओंका एक प्राचीन युध्दास्त्र है। परन्तु आजकल खड्ग युध्दास्त्र रूपसे व्यवहृत नहीं होता। मन्त्र और पूजादिमें पशुवननको डोहसे व्यवहार करते हैं। कालीप्रतिमाके हाथमें जो अस्त्र वा खड्ग रहता, वह भी आजकलमें ऐसा ही देखा पड़ता है।

आपाततः खड्ग—कहनेसे खांडा और अस्त्र कहनेसे तलवारकी समझा जाता है। किन्तु पहले आजकल विभिन्न रहते भी अस्त्र और खड्ग दोनों शब्द एकार्थ-बोधक थे। इसी पशुच्छेदक खांडे जैसे एक अस्त्रकी उस समय 'लखित' कहते थे। लखितकी भुज्ज पर्यात् वक्र और घुठ भाग तीक्ष्ण रहते हैं। उसका व्यास ५ अङ्गुलि, वर्ष काला और मूठ बहुत बड़ी लगायी जाती है। लखितसे मर्द्धिषादि कर्तित करनेमें विशेष सुविधा पड़ती है। दोनों हाथोंको उठाके उस अस्त्रसे आघात करते हैं।

उस समय अस्त्र और खड्गका नामाविध आकार तथा परिमाण रहा। तदनुसार भिन्न भिन्न नाम भी रखे जाते थे। फिर उन सभी गिरासे नामोंसे साधारणतः

प्रत्येक अस्त्रीकी तलवारें समझी जाती थीं।

अति प्राचीन कालसे खड्ग वा अस्त्रका व्यवहार प्रचलित है। धनुर्वेदादि पुराने अस्त्रोंसे समझ पड़ता है कि उस समय भारतीयोंका ऐसा पैना खांडा बनता था, आजकल वैसा नहीं रहता। धनुर्वेदमें लिखते और बहुविध गल्पमें भी सुनते हैं कि उस समयके खड्गमें पत्थर कटते थे। पत्थर पर चोट मारनेसे वह मांस या चट्टीकी तरह दो टुकड़े हो जाता और इसकी धार पर बल न आता था। आजकल किसी देशके शिल्पी ऐसी अस्त्र नहीं बना सकते हैं। धनुर्वेदादि शास्त्रोंसे इसका संक्षिप्त विवरण नीचे प्रदत्त हुआ है—उस समय कितने प्रकारकी तलवारें रहतीं, कैसे लौहसे किस प्रदेशमें बनती थीं, क्यों कर धार चढ़ाते और कैसे कौशलसे उन्हें चलाते थे।

खड्गके नामान्तर यह हैं—अस्त्र, विशसन, तोक्ष-वर्मा, दुरासद, विजय, धर्मपाल वा धर्ममाल, श्रीगर्भ, निष्प्रिय, चन्द्रहास, रिष्टि, कोक्षेयक, मण्डलाग, करवाल, करपाल, तलवार, तलवारि। इन नामोंसे आकार और परिमाण भेदमें अस्त्रोंकी अस्त्रोंका बोध होता और साथ ही अस्त्रोंकी कोई भी अस्त्र समझ पड़ता है। एतद्भिन्न और भी कई अस्त्रियाँ हैं। वह पाँके यथास्थान विवृत होंगी।

भारतमें कहां तलवार अस्त्रों बनती थी—वह सभी देशोंमें समान न होती रही। विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न लक्षणोंकी तलवारें तैयार होती थीं।

१ खटी और खड्ग देशजात अस्त्र अति सुदृढ़ लगती हैं।

२ हिमालयके उत्तरवर्ती कठिण देशका खड्ग शरीर च्छेद-समर्थ और गुरुभारयुक्त होता है।

३ वज्रदेश—जात अस्त्र तीक्ष्ण च्छेद-भेदमें पटु है।

४ शूर्पारक देशीय अस्त्र सर्वापेक्षा कठिन होती है।

५ विदेह देशजात खड्ग अति प्रभावशाली और असह्य तेजस्वी है।

६ अज्जदेशजात तरवार अति तीक्ष्ण और दृढ़ पड़ता है।

७ मध्यम ग्राममें बननेवाली तलवारें हलकी और पैनी रहती हैं।

८ अन्तर्वेदी देशका खांडा लघुभार और तीक्ष्ण आता, किन्तु सारहीन पाया जाता है। (वर्तमान कुक्षेत्तके पास वेदी देश था।)

९ सहर ग्रामका लङ्ग भी तीक्ष्ण तथा लघु होता है।

१० कालाक्षरकी तलवार बहुत दिन चलती और पेनी तथा सुलक्ष्णयुक्त रहती है।

११ चीनका करवाल निर्मल और तीक्ष्ण आता है।

प्राचीन कालको खड्ग लोहसे प्रसृत होता था। असि-निर्माणका उपयुक्त लोह औषधके लोहसे असंग है। यह द्विविध होता है—सङ्ग और निरङ्ग। फिर यह द्विविध लोह काष्ठि, गाण्डि प्रकृति बहुतेरे भागोंमें विभक्त है। इन सभी लोहोंकी तलवारमें व्याधिविनाशक गुण होता है। परन्तु साधारणतः सङ्ग लोहकी ही तलवार बनती थी। यह भी नाना प्रकारका होता है। असिकर्ममें दश प्रकारका लोह प्रशंसाके साथ लगाते थे—रोहिणी, नीलपिण्ड, मयूर-चक्र, मयूरवज्र, तितिराङ्ग, सुवर्णवज्र, शैवल-मालान, मौषलवज्र, कङ्गोलवज्र वा खण्डक और यन्त्रिवज्र। इस दश तरहके लोहोंकी असंग असंग पड़वान है। लोहार्णव नामक लोहमास्र और वीरचिन्तामणि, शार्ङ्गधरपद्धति आदि यन्त्रोंमें इसका विस्तृत विवरण दिया है। लोह देखो।

सिवा इसके निरङ्ग लोहके अन्तर्गत रोहिणी, पाण्ड्य और रुक्म वा कान्त त्रिविध लोह भी तलवारमें लगाता था।

उक्त सक्क लोहोंसे खड्ग बनाया जाता, फिर उसमें नानाविध औशल आवष्क आता था। यही नहीं कि अच्छा लोहा मिलनेसे कारीगर अच्छी तलवार बना सकता था। परन्तु यह भी समझना पड़ता था—कोन लोहा कैसे कितने बार तपाने और किस तरह पत्थर या शान लगानेसे टिकाऊ और पेना निकलता है। इसके सम्बन्ध पर भी अनुवेदमें यथेष्ट उपदेश है। किन्तु अपने हाथों न करने और गुहके निकट प्रत्यक्ष न पढ़नेसे यह सक्क विधि सिखाये—पढ़ाये नहीं जा सकते।

असिको प्रसृत होने पर परिष्कार करना चाहिये

बाहुके ऊपर लवण वा अन्य चार परिष्कार कर्दममें मिला कर प्रलेप चढ़ाते, फिर आगमें तपा जल वा अन्य किसी तरल द्रव्यमें बुझाते हैं। महर्षि उग्रना वा शुक्राचार्यने असि बुझानेकी सक्क व्यवस्था बतायी है—त्रींसाभाषं अस्त्रको रुधिरमें बुझा लेना पड़ता है। इसी प्रकार गुहवान् पुत्र साभाषं अस्त्र घी, अथवा धनसाभाषं अस्त्र जल और अन्धान्ध उद्गृहीते अनुसार वह छोटकीदुग्ध, उद्गृग्ध, हस्तिनीदुग्ध आदिमें बुझाया जाता है। हाथीकी सूंड काटनेके लिये तलवारकी मल्लोके पित्त, हिरनोके दूध और बकरीके दूधमें बुझाते हैं। (कहते हैं—महाराणा प्रतापकी ऐसी ही तलवार रही।) इस बुझाईके पड़ले पाकनादिका गोंद, मेढ़ेका सींग, कोयल और कबूतर तथा चूड़ेकी बिछा एकत्र सानके धारके मुख पर तेज लगा कर उस पर प्रलेप चढ़ाना चाहिये। फिर पूर्वोक्त किसी द्रव्यमें तलवार बुझायी जाती है। इसके बाद सान धा लेनेसे वह हथियार पत्थर पर मारते भी धार नहीं बिगड़ती। कदलीचारमें एक दिन एक रात भिगो कर रखनेके पीछे उक्त किसी द्रव्यमें बुझा लेनेसे भी पत्थर पर मारनेसे हथियार नहीं टूटता। विष किंवा विषयत् द्रव्यमें बुझानेसे अस्त्र भीषण अमता पाता है। उस अस्त्रके सामान्य आघातमें ही मृत्यु निश्चित हो जाता है। बुझानेके समय भिन्न भिन्न गन्ध और वर्ण निकलते हैं। उन रंगों और खुशबूओंसे भी शुभाशुभ जाना जाता है। करवीर, उत्पल, हस्तिमद, हृत, कुङ्कुम, कुन्दपुष्प और चम्पक पुष्प सहस्र गन्ध उठनेसे अस्त्र शुभदायक होता है। गोमूत्र, पद्म, मेद, कूर्म, वासा, रक्त वा क्षीय गन्धसे अस्त्र अशुभदायक है। फिर बैङ्गूर्य, खर्ब वा विष्णुतकी प्रभा रहनेसे अस्त्र जय और शारीर्य करता, नहीं तो किसी अन्य वर्णसे अशुभ पड़ता है। बहुतसे लोग इन बातोंको मिथ्या बतला सकते हैं। परन्तु परीक्षा करनेका उपाय किसीकी माकूम न रहनेसे एकाएक मिथ्या कहना भी अनुचित है।

प्राचीन कालको ४ अङ्गुलि प्रत्यक्ष और ५० अङ्गुलि दीर्घ असि श्रेष्ठ और इससे अधिक परिमाण

मध्यम समझी जाती थी। २५ अङ्गुलिसे कम पङ्कने पर अक्षि न कह कर अक्षिपुत्र बोलते थे। चौड़ाईमें २ अङ्गुलिसे कम पङ्कने पर तलवार अक्षि नामसे मन्त्र न होती थी। ३० अङ्गुलिसे दीर्घ अक्षि 'निष्किंश' कहलाती है। गठनमें पञ्चपुष्पकी पञ्चुड़ीके अग्रभाग पीर करपीर पुष्पकी पञ्चुड़ी-जैसी तलवार उत्तम-जैसी विवेचित हुई है। मण्डलाग्र अर्थात् अग्रभाग सुगोत्र वा ईषत् वक्र रहनेसे अक्षि उत्तनी प्रशस्त जैसी नहीं मानी जाती थी। मण्डलाग्र अक्षिको आजकल 'बकी' कहते हैं। गोलिका, कोई, नालपुष्पकी पञ्चुड़ी, बांसके पत्ते पीर मूलके अग्रभाग-जैसा खड्ग ही प्रशस्त होता है।

तरवारिको बजानेसे जो शब्द निकलता, उससे भी भला बुरा ठहराना पड़ता है। यदि काकस्वर जैसा कर्कश शब्द वा 'अ' निकले, तो राजा महाराजाधीनो उसका परित्याग करना चाहिये। मधुर, किङ्किणी जैसा भुनभुनाता और दीर्घस्वायी शब्द उठनेसे अति अच्छा समझी जाती है।

तलवार बनाते समय उसके फलक पर अपने आप कई चिह्न उत्पन्न होते हैं। उन सभी चिह्नोंका नाम त्रयपङ्क है। त्रय पङ्कोसे भी भलाई बुराई समझी जाती है। अङ्गुलि परिमाणमें यदि युग्म अङ्गुलि परिमित स्थान पर कोई विशेष चिह्न देख पड़े, तो उसे शुभ और अयुग्म परिमित स्थानमें पानेसे अशुभ कहते हैं। सब मिलाकर १०० प्रकारके चिह्न होते हैं— १ रौप्यरेखा और २ कर्णरेखा। दोनों प्रकारके यह खड्ग अति उत्तम हैं। ३ गजशुष्काकार चिह्नाङ्क, यह भी अच्छा होता और रक्तके अर्घ्यमात्रसे अपने आप शरीरमें गहरा धस जाता है। इसका अङ्गुलीत जल पान करनेसे अनेक व्याधि नष्ट होते हैं। ४ रक्तबीज चिह्न। यह खड्ग भी बुरा नहीं। ५ दमनपत्र चिह्न-विशिष्ट खड्ग उत्तम रहता है। ६ शम्भु खूलरेखायुक्त अति उत्तम है। इसके आघातसे सारा शरीर सुन्न जाता है। ७ सूक्ष्म अक्षयवर्ण रेखाओंका खड्ग भी उत्तम है। इसमें सूर्यकिरण जगनेसे एक प्रकार तेज निःसृत होता और रातका इसके निकट पड़नेपर

रखनेसे खिल उठता है। ८ तिलविज्ञित खड्ग उत्तम होता है। इससे आहत होने पर अतस्थानमें तिल-तेलवत् पूय पड़ता जाता है। ९ पद्मविष्ठा विशिष्ट खड्ग पर जल रखनेसे उष्ण हो जाता है। १० मासा चिह्नविशिष्ट खड्ग के धीतजलमें सुगन्ध उठता और उष्ण जलमें इसकी डबानेसे बड़ गीतल पड़ता है। इसका धीतजलसे पित्तरोग नष्ट होता है। ११ जीरक चिह्नवाले खड्गके आघातसे ज्वर पाता है। १२ भ्रमर चिह्नविशिष्ट खड्ग विस्त्रिका रोग लगा देता है। १३ साङ्गूलाग्र चिह्नयुक्त खड्गके अर्घ्यमात्रसे सर्प मर जाता है। १४ मरिचचिह्न खड्गके आघातसे रक्त कटु पड़ता और इसका धीत जलसे पीनस रोग मिटता है। १५ सर्पफणा चिह्न-विशिष्ट अक्षिके आघातसे शरीरमें विषविकार लग जाता और इसके छूते ही मेंढेका प्राण निकल जाता है। १६ पञ्चसुरके चिह्नका खड्ग उत्तम है। पारोडी के कटिदेशमें यह रहनेसे घोड़ोंकी चाल बढ़ती और धीतजलसे कई प्रकारकी बीमारी मिट जाती है। १७ सरसोंके फूलजैसी निसानवाली तलवार अच्छी होती है। यह इतनी लचीली रहती कि सपेट लेनेसे कुण्डल-जैसी बनती और झाड़ देनेसे फिर सीधीकी सीधी निकलती है। १८ मयूरपुच्छ चिह्नयुक्त खड्ग उत्तम है। इसके छू जाते ही साँप मर मिटता और आघातसे निरन्तर बसी जुवा करता है। १९ मधुसुदनुद चिह्न-विशिष्ट खड्ग भी बुरा नहीं। इस पर सदा मधुमक्षि कायें बैठनेकी इच्छा रहती है। २० मखिका चिह्न युक्त अक्षि उत्तम होती है। इस पर तैल पड़ते ही सूख जाता है। २१ सिंह चिह्नकी तलवार जगनेसे आहत व्यक्ति पामन हो जाता है। २२ तच्छुल्लिखितयुक्त खड्ग अच्छा है। इसकी धीनेसे चावलके धोवन-जैसा पानी छूटता है। २३ मकर पुच्छचिह्नविशिष्ट अक्षिके अर्घ्यसे सभी मन्त्र मर जाते हैं। २४ चक्षु-जैसे चिह्नवाले खड्ग-के धीतजलसे राजान्यता दूर होती है। २५ विम्बक-युक्त अक्षिका पानी तिळाकाद होता है। उस जलसे पित्त अस्वाका विकार मिटता है। २६ अयन चिह्न-का खड्ग आमवातको नष्ट करता है। २७ मोठी

शस्त्र चिह्नविशिष्ट असि पानी पर तेरती है। यह अति दुर्लभ अस्त्र है। २८ चम्पक पुष्प चिह्नित खड़्गका जल भी पीता लगता है। २९ लोम चिह्न-युक्त तलवारकी कोटसे शरीरमें त्रण होता है। ३० मनसा पत्राकार तथा मनसाकण्टकाकार चिह्न-विशिष्ट असिके क्षतसे दाह, लम्बा और मूर्छा आती और सर्पफंसा पर इसकी रखनेसे वह विदोष हो जाती है। इस तलवारके धुले पानीसे कोढ़ अच्छा होता है। ३१ वकुलचिह्नविशिष्ट खड़्गकी शाय पर रगड़नेसे मौलसिराके फूलकी खुसबू निकलती है। एतद्विज ३२ वय, ३३ गोखुर, ३४ शिरा, ३५ उपल, ३६ काक-पद, ३७ कपाल (मुर्देकी खोपड़ी), ३८ तुषरीफल, ३९ भृङ्गराजपुष्प, ४० खुर, ४१ जलतरङ्ग, ४२ मार्जार-राम, ४३ वटारोह, ४४ ज्येष्ठो, ४५ जाल (शाय रखने पर जालचिह्न युक्त असि रखवर्ष शिखा निकलनेसे अच्छी होती है), ४६ कर्कन्धु (बेरीकी सलटी पत्तीआदि जैसे निशानवाली और निखिह्न तलवार न रखना चाहिये), ४७ कणारेखा, ४८ मूलासे अग्र पर्यन्त तीन सुन्दररेखा, ४९ पद्मदलाकार रेखा, ५० गदा, ५१ पिप्पली, ५२ अन्त्रि, ५३ शासपत्रपत्र, ५४ तित्तिर पक्षीका पत्र, ५५ अर्धगामी कपिलवण शिखा, ५६ धान्य, ५७ अतसी, ५८ शिवलिङ्ग, ५९ व्याघ्रमुख, ६० पत्रावली, (चन्दनादि द्वारा वरकन्या वा विलासिनियोंके मुख तथा वक्ष पर बनाये जानेवाले चित्रोंकी पत्रावली कहते हैं), ६१ प्रियङ्गु, ६२ नीली रसतरङ्ग, ६३ रत्नवर्ण त्रिरेखा, ६४ मञ्जिष्ठा कता, ६५ शमीपत्र, ६६ मारिषपत्र, ६७ गुल्माफल, ६८ सुख सुख वाष्पचक्र, ६९ विश्वपत्र, ७० मसूरपत्र, ७१ शय पुष्प, ७२ शटीपत्र, ७३ केतकीपत्र, ७४ मूर्वातन्तु, ७५ कलायपुष्प, ६६ बलासलापत्र, ७७ पत्रशिराका रेखा, ७८ पिपीलिका, ७९ जलपत्र, ८० कुसाण्डवीर और ८१ निर्मल चिह्न भी होता है। अर्ध तथा वक्र रेखा चिह्न युक्त तलवारोंका दुर्भाग्य शास्त्रमें निर्दिष्ट हुआ है। सिवा इसके दूसरे बाकी चिह्नोंमें धार, अम कता, समकता इत्यादिके सम्बन्धसे प्रसिद्ध रखा गया है। खजूरकी परीक्षा अष्टविध होती है। इसीसे खजूर

विज्ञानको अष्टाङ्ग कहा जाता है। खजूरका पहला अङ्ग, दूसरे रूप, तीसरे जाति, चौथे नेत्र, पांचवें परिष्ट, छठे भूमि, सातवें ध्वनि और ८ वें परिमाण देखना भावना आवश्यक है।

अङ्गपरीक्षा और कुछ नहीं, पूर्वोक्त चिह्नोंका विचारमात्र है। अङ्गमें चिह्न रखनेसे नेत्रप्रतीतिकार जो प्रतीति आती वही जाति कहलाती है। माहात्म्य सूचक चिह्नकी नेत्र कहते हैं। अष्टवृताबोधक चिह्नका नाम परिष्ट है। अङ्गादिका सन्ध्याधारण भूमि वा क्षेत्र कहलाता है। हाथके नाखून या लकड़ीसे ठीकने पर जो शब्द उठता, उससीका नाम ध्वनि पड़ता है। फिर तील, दोघंता और प्रगस्तादिके विचारको परिमाण कहते हैं।

खजूरपरीक्षा देखो।

जिसकी भूमि वा फलकगाल नीलरस, कलाय पुष्पवर्ण, गाजरके फूल जैसा और नीलमणि आभा वा मरकत वर्ण विशिष्ट आता, उसकी नीलरूप कर जाता है। कणवर्ण और मेघ, मसी, कालसर्प अङ्ग, अन्धकार, केशकपाल किंवा भ्रमरवर्णका नाम कण रूप है। जिसका वर्ण नववर्णजात भेकके गात्रवर्ण और गोमेद मणिके वर्ण जैसा रहता, उसको पिङ्गलवत् कहना पड़ता है। अनति गाढ़वर्ण और धूमपटल वा शिरीषपुष्प जैसीकी ही धूम्र कहा जाता है। एतद्विज मिश्रवर्ण भी होता है।

विशुद्ध अङ्गचिह्न, विशुद्धरूप, उत्तम नेत्र, उत्तमध्वनि कोमलस्पर्श, उत्तम गठन और उत्तम धारयुक्त खजूर ब्राह्मण जाति है। इससे अस्त्र क्षत आने पर ही सर्वाङ्गमें यत्न तथा शोध आता और मूर्छा, पिपासा, दाह एवं ज्वराभिभूत हो शीघ्र पाहत व्यक्ति मर जाता है। कच्ची हरीतकी, आमलकी और वड़िका तीन फलोंकी चूर्ण करके तलवार पर रखनेसे कषाय रसके कारण मोरचा नहीं लगता, उल्टे इसका वर्ण अधिक परिष्कृत देख पड़ता है। नवीदित सूर्यके किरणमें शुष्क लक्ष पर इस खजूरकी बीड़ी देर रखनेसे ही वास जल जायेगी। यह अति दुर्लभ है। कभी कभी कुण्डीप और शिलासय प्रदेशमें इसकी देखते हैं।

अत्रियजातीय असि धूमवर्ण, सारयुक्त, तीक्ष्णधार, कर्कशध्वनियुक्त और आघातसञ्चकारी होती है। इससे आघात लगने पर दाह, दण्डा, मलमूत्रविष्टम्भ, ज्वर, सूई और प्रसूती मृत्यु भी हो जाता है। इसकी शाणयन्त्र पर चढ़ानेसे वह अग्निकणायें निकलतीं और बिना संस्कार यह दोर्घकाल तक निर्मल रहती है।

जो तलवार कृष्ण वा नीलवर्ण युक्त रहती, संस्कार से चमकती और शाण न देनेसे खरना घटती, उसीकी संज्ञा वैश्यजातीय पड़ती है।

मेघकी भाँति वर्ण युक्त, मोटी धारवाले मृदुध्वनि, संस्कार करनेसे भी निर्मल न होनेवाले और शाण पर चढ़ते भी कुन्द रहनेवाले खज्ज का नाम शूद्रजातीय है।

यदि किसी खज्जमें दो जातियोंका लक्षण पाया जाता, तो वह जारज वा 'द्विजाति' कहलाता है। इसी प्रकार तीन जातियोंके लक्षणसे 'त्रिजाति' और चारों जातियोंका लक्षण मिलनेसे जातिसङ्कर खज्ज कहते हैं।

नेत्र तीस होते हैं। यथा—चक्र, पद्म, गदा, शङ्ख, डमरु, धनु, अङ्गुश, छत्र, पताका, वीणा, मय्य, शिव शिङ्ग, ध्वज, अर्धचन्द्र, कलस, शूल, व्याघ्रनेत्र, सिंहासन, सिंह, हस्ती, हंस, मयूर, जिह्वा, दण्ड, खज्ज, मनुष्य, पुत्रिका, चामर, शिखा, पुष्पमाला, सर्प। नेत्रविह्व शूभदायक है। किसी किसी तलवारमें एकसे अधिक नेत्र भी होते हैं।

परिष्ट तीस हैं—छिद्र (विद्रुतुष्य चिह्न), काकरद, ऊर्ध्व वा तिर्यक् रेखा, भिन्न (ऐसा निशान जिससे तलवार टूटी-जेसी मालूम पड़े), भेकगिरिः, सूषिक, विडालनेत्र, शंकरा (जिस चिह्नको छूने या देखनेसे खाँड़ा खुरखुरा लगे), नीली (नीलरमके धब्बे पड़ने जैसा निशान), मशक, भङ्गमा (बहुतसी फूटकियाँ या भौंरिके पीवके निशान), सूची (जुँची या निरखी सूई जैसी लकीर), विन्दु (पास की पास तीन फुटकियाँ या बहुतसी फुटकियोंकी कतार), कालिका (ऊपर की ऊपर तीन तीन फुटकियोंकी कतार), कपोताक्ष, काक, खपर, नाङ्गल, शकल (भीड़के टुकड़े जुड़े रहनेकासा निशान), कीड़ (सूपरकी सूरत), कुग-पत्रक, फाल, मध्यस्थान या कोई स्थान निम्न जैसा लगने-

का चिह्न, कराल (ऐसी लकीर जिससे भगला हिस्सा लम्बा और पत्तीदार देख पड़े), कङ्कपत्र, खर्जुरपत्र, गोमृङ्ग, गोपच्छ, खनित्र, वडिश प्रभृति। इन्हींका नाम परिष्ट पर्यात् अशुभ लक्षण है।

खज्जकी भूमि पर्यात् अन्वस्थान द्विविध है। दि और भीम। पूर्वकालकी देवदानव लोगोंने ही प्रथमतः खज्जका सृष्टि की थी। इन सकल खज्जोंके अनुरूप खज्ज पृथ्वी पर भी किसी किसी स्थानमें अभावनीयरूपसे उत्पन्न होता है। स्थूलधार, लघु, शुभचिह्न, निर्मल नेत्र-युक्त, परिष्टहीन, सुरूप, दुर्भेद्य, असंस्कारमें भी निर्मल, उत्तम ध्वनिविशिष्ट, टूटनेसे फिर न जुड़ सकनेवाला और जतसे दाह तथा अन्वपाक उपस्थित करनेवाला खज्ज ही दिव्य कहलता है। शुद्धलौह पर्यात् वाराणसी, नेपाल, मगध, अङ्ग, सुराष्ट्र और सिंहालदेशजात लौहकी निर्मित असि भीम तथा उत्कृष्ट होती है।

ध्वनि प्रधानतः दो प्रकारका है—घोर और भार। तलवारकी ठोकनेसे हंसध्वनि, कांस्यध्वनि, मेघध्वनि, ठकाध्वनि, काकध्वनि, तन्त्रोध्वनि, खरध्वनि, प्रस्तरध्वनि इत्यादि ध्वनि जैसे ध्वनि होते हैं। इनमें पिछले चार अशुभकर हैं। गभीर तथा तारध्वनि अच्छा और उत्तान तथा मन्दध्वनि बुरा होता है। उत्तमध्वनिरहनेसे सुचिह्नहीन खज्ज भी अच्छा है।

परिमाण प्रथमतः द्विविध है—उत्तम और अधम। विशाल तथा लघु अच्छा और खर्व तथा गुरु बुरा होता है। यह भी फिर त्रिविध है—प्रादि, अन्त्य और मध्य। जिसकी दीर्घता २० सुष्टि, विस्तृति ५ अङ्गुलि और तौल ८ पल रहती, उसको विद्वन्मणकी मध्यम कहता है। पाठ, नौ या १२ मुडे लम्बा, पाव अङ्गुल चौड़ा और एक पल वजनो अच्छा नहीं।

खज्जकी क्रिया ३२ प्रकार है—भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविष्ट, आमुत, विमुत, सूत, सञ्जात, समुदीर्ण, निप्रह, प्रप्रह, पटावकर्षण, सन्धान, मस्तकभ्रामण, भुजभ्रामण, पाश, पाद, विवन्ध, भूमि, उद्भ्रमण, गति, प्रत्यागति, आचोप, पातन, उत्थानक, झुति, लघुता, सौष्ठव, शोभा, स्थैर्य, हृदसुष्टिता, तिर्यक्प्रचार और ऊर्ध्वप्रचार। इन सब दार्थोंकी लिख कर बताना कठिन है। बिना देखे

कुछ समझ नहीं पड़ता। खड्गके यह कई एक भेद हैं—

१ धवलगिरि—पाण्डु कीड़जात और रौप्य जैसा शुभ्रवर्ण होता है।

२ काकगिरि—जिसके पङ्कमें सूक्ष्म सूक्ष्म सुवर्णाकार पद्यवा कृष्णाभ पल्लभाकार चिह्न रहते, उसीको कहते हैं।

३ कज्जलगान्—जिसकी धार सफेद, बीचका हिस्सा काजल जैसा और बिलकुल काकी तलवारका नाम है।

४ कुटीरक—रजतपत्र चिह्नयुक्त अथवा कृष्णवर्ण खड्गको कहा जाता है। इसके आघातसे शीघ्र होता है।

५ केतकीशय—केवड़ाके फूल जैसे धब्बे रहता है।

६ निरङ्ग—निरङ्ग कान्तकीड़से बनता, रौप्यपत्र चिह्न रहता और वर्ण चल्प नील लगता है। यह महामुख्य और दुर्लभ है।

७ दमनवक्र—दमनपत्र वा कुन्दपत्र चिह्नयुक्त होता है।

८ कालखड्ग वा डाहुनीवन् उसकी बोलती, जिसका फलक काला होते भी सोने जैसा चमकता और चल्प बल्यचिह्न रहता है।

९ नकुलाङ्ग—अर्धगामी कपिलवर्ण त्रिविधिष्ट दृष्ट होता है।

१० छुद्रवन्—जिसके शरीरमें कृष्णकीकृत छुद्र छुद्र असिकामासाये रहती हैं।

११ मङ्गत्—प्रति गाढ़ अन्तर्भाग, सर्वप्रकार चिह्नहीन गात्र, खूब मध्यदेश, खूबधार और साथ ही अत्यन्त तीक्ष्ण खड्गका नाम है।

१२ वामनाच—महान् खड्ग है। यह छेदन-कासकी छेद्य वस्तुमें तन्तु छटि नहीं करता।

१३ मङ्गिषाच—नील मेघ जैसा चमकता और गात्रमें एरण्ववात्र चिह्न रहता है।

१४ पङ्कपत्र—मार्जन करनेसे दर्पण जैसा प्रतिबिम्ब निकलता है।

१५ गजवन्—जिसके पङ्कमें खूबदेखाये हैं, गात्र मङ्गल रहे, धार प्रति तीक्ष्ण और पङ्कधोतजल पानसे आदि नष्ट हो जाये।

१६ पट्टिग—किन्नी प्रजारकी विशेष तरवारि है। आग्नेय धनुर्वेद, वैशम्पायनीय धनुर्वेद और शुक्लनीतिमें इसमें एक-जैसी वर्णना ही मिलती है। इनके मतमें पट्टिग नामक अस्त्र खड्गका सहीदर अर्थात् प्रायः तलवार-जैसा और पृथक् प्रमाण दीर्घ होता है। इसमें दोनों ओर धार रखी जाती है। अद्यभाग प्रति तीक्ष्ण रहता है। इसका मुष्टि हस्तत्राययुक्त लगाने हैं। इसकी क्रिया भी असि क्रियामें मिलती है। हिन्दीमें इसका दुधारा नाम है।

पङ्करीजो और नयी तलवारके बारमें तलवार शब्द दिखना चाहिये।

खड्गकोष (सं० पु०) १ खड्गजता, एक बेल। इसका संस्कृत पर्याय—खड्गपत्र, खड्गिमार और अश्वपुच्छक है। खड्गस्य कोषः, ६-तत्। २ खड्गधार, तलवारका म्यान। खड्गकोष शब्द भी इसी अर्थमें व्यवहृत होता है।

खड्गट (सं० पु०) खड्ग दब पटति, पट-पच् शकन्त्या-दित्वात् साधुः। १ छड़त् काशट्टण, बड़ा काँस। २ खड्ग-गड, लगड़ा घास।

खड्गधार (सं० पु०) खड्गं धरति, खड्ग-धृ-षण्। १ खड्ग-धारी, तलवार बांधे हुआ। २ खड्गका तीक्ष्णभाग, तलवारका पेना हिस्सा।

खड्गधेनु (सं० स्त्री०) १ खड्गपुत्रिका, छुरी। २ गण्डक-स्त्री, मादा गैंडा।

खड्गपत्र (सं० पु० स्त्री०) खड्गाकाराणि पत्राणि यस्य, बहुव्री०। १ खड्गजता, तरवार जैसी पत्तियों की एक बेल। खड्गस्य पत्रम्, ६-तत्। २ ठाक, तलवार रोकनेका एक षोडश। ३ खड्गकोष, म्यान। ४ असिफलक, तलवारका धार।

खड्गपरीक्षा (सं० स्त्री०) खड्गस्य परीक्षा, ६-तत्। चिह्नविशेष द्वारा खड्गका शुभाशुभ निर्णय, तलवारकी जाँच। युक्तिकल्पतरुमें तलवारके ८ चिह्न ठहराये हैं—अङ्ग, रूप, जाति, नेत्र, परिष्ठ, भूमि, ध्वनि और मान। इन्हीं आठों चिह्नोंसे खड्गका शुभ अशुभ सूचित होता है। तलवारकी अच्छी तरह देखनेसे मालूम पड़े कि यह दो टकड़ें मिलाकर बनायी गयी है और वास्तविक वैसा न रहे, तो इसकी पङ्कविह्न कहा जाता है। नील, पीत प्रभृति वर्णोंका रूप और इन सज्जक रूपों द्वारा

प्रतीत होनेवालेका नाम जाति है। खड्गकी माहात्म्य-सूचक चक्रातिरिक्त जातिकी नेत्र, चतुष्टयासूचक चिह्नकी परिष्ट और चक्रादि धारणकी भूमि कहते हैं। खड्ग पर नक्षत्र अथवा किसी दण्ड आदि द्वारा पाषात करनेसे उत्पन्न होनेवाला शब्द ध्वनि और तौल ही मान है। चक्र १० प्रकार, रूप तथा जाति ४ प्रकार, नेत्र तथा परिष्ट ३० प्रकार, भूमि तथा मान २ प्रकार और ध्वनि ८ प्रकारका होता है। इन सबका चिह्नोसे समझा जाता है, खड्ग अच्छा निकलेगा या बुरा। यह देखो।

खड्गपाणि (सं० त्रि०) खड्गः पाणौ यस्य, बहुव्री०। पद्मारोक्षत, तलवार हाथमें लिये हुआ।

खड्गविधान (सं० क्ली०) खड्गस्य विधानम्, ६-तत्। खड्ग-कोष, म्यान।

खड्गविधानक (सं० क्ली०) खड्गस्य विधानकम्, ६-तत्। खड्गकोष, म्यान। पर्याय-प्रत्याकार, परिवार, और कोष।

खड्गपुच्छ (सं० त्रि०) जिसके ठाककी तरह देहावरण-के निम्नभागमें दीर्घ खड्गाकार शलाका रहे।

खड्गपुत्र (सं० पु०) खड्गपुत्रिका देखो।

खड्गपुत्रिका (सं० स्त्री०) कटार, कुरिका, कुरी। इसका अपर नाम असिधेनु है। यह १ हाथ लम्बी और तरुत्ररहित होती है। परन्तु एकछेनेके लिये इसमें मूठ लगा दी जाती है। रक्त काकी, तीन धारें और २ चक्रुलि विस्तार रखा जाता है। निकटागत शत्रु विनाशके लिये यह बहुत उपयोगी है। इसी असिधेनुको मेखलामें ध्यत करनेसे खड्गपुत्रिका कहा जाता है। सुष्टिग्रहण, विदारण और विचक्षण ही इसका काम है। प्रधान प्रधान राजा इसकी सर्वदा कटिदेशमें बांधते थे।

खड्गफल (सं० पु०) खड्गः फलमिव त्वगावृतत्वाम्बुधे-बन्ध, बहुव्री०। खड्गविधान, म्यान।

खड्गफलक (सं० पु०) खड्गः फलमिव मध्ये यस्य, वा कप्। असिविधान, तलवारका म्यान।

खड्गमांस (सं० क्ली०) खड्गस्य मांसम्, ६-तत्। १ गण्डकमांस, गैडेका गोश्त। चण्डी-देखो। २ महिष-मांस, भैंसेका गोश्त।

खड्गमुद्रा (सं० स्त्री०) एक तन्वीकृत मुद्रा। शक्ति-पूजामें यह मुद्रा पावश्यक है। चक्रुष्ठ द्वारा कनिष्ठा तथा अनामिका चक्रुलि बद्ध करके अवशिष्ट चक्रुलि मिलाके फेला देना चाहिये। इसीका नाम खड्गमुद्रा है। (तन्त्रसार)

खड्गलसेन—खड्गल नगरका सूर्यवंशी चौहान जातिका राजा। इनके कोई पुत्र नहीं होता था। एक दिन किमी उत्सवमें राजाने ब्राह्मणोंको आमंत्रण दिया। उनके खाने पर राजाने उनका खूब आदर सत्कार किया, इस पर ब्राह्मण लोग बड़े प्रसन्न हुए और ऐसा वर दिया—हे राजन्! तू शिवशक्ति की सेवा कर तब तेरे बुद्धिमान और वीर पुत्र पैदा होगा। परन्तु वह सोलह वर्ष तक उत्तरमें न जाय, सूर्यकुण्डमें स्नान न करे और ब्राह्मणोंसे विद्वेष न करे, तो वह साम्राज्य (साम्राज्यवर्तिराज्य) का भोग करेगा; नहीं तो इसी देहसे पुनर्जन्मको प्राप्त हो जावेगा। राजाने उनकी आज्ञा पालन करनेका प्रण किया। इस पर ब्राह्मणलोग 'तथास्तु' कह कर चले गये। राजाके २४ रातियां थी, उनमेंसे चौपावती-के पुत्र हुआ। उसने बारह वर्ष की अवस्थामें ही घोड़े पर सवार होना, शस्त्र चलाना आदि चौदह विद्याओंको सीख लिया। यह ब्राह्मणोंको बहुत दान देने लगा; और शिवकी भक्ति करने लगा, इस प्रवृत्तिको देख कर राजा इस पर बड़े प्रसन्न हुए। किसी समय एक जैन साधु राजकुमारसे मिले और उनसे राजकुमारको पवित्र अहिंसाधर्मका उपदेश देकर जैनधर्मका उपदेश दिया। अतएव राजकुमारकी बुद्धि शिवमतसे हट कर जैनमतमें प्रवृत्त हो गई; और वह ब्राह्मणोंसे यज्ञकी हिंसाका वर्णन करने लगा तथा उसका खण्डन भी करने लगा। आक्रोशकार उसने राजधानीकी तीनों दिशाओंमें घूम घूम कर एकदम जीव-हिंसा बंद करा दी और नरमेध, पशुमेध तथा गोमेध आदि सब यज्ञोंको बंद कर दिया; तब ब्राह्मणों और ऋषिजनों ने उत्तर दिशामें जा कर यज्ञ करना शुरू किया। जब यह समाचार कुमारके पास पहुंचा, तब वह बड़ा क्रुद्ध हुआ, सिर्फ पिताकी आज्ञा न होनेसे वह संकोच करने लगा; परन्तु जैनद्वार

मिटती नहीं। उमरावों सहित वह चल दिया और सूर्यकुण्डके ऊपर ही जा खड़ा हुआ। वहाँ देखा तो, कुछ ऋषीश्वरों (पाराशर, गौतम आदि) ने यज्ञ पारम्भ कर कुश, मण्डप, ध्वजा और कलश आदि स्थापन कर रखे हैं; तथा वेदध्वनिसहित यज्ञ कर रहे हैं। राजकुमार ने उमरावोंको आज्ञा दी कि, इन “ब्राह्मणोंकी यज्ञमाम्नी छोन लो और यज्ञ नष्ट भ्रष्ट कर दो।” आगे व ना ही चाहते थे कि, इनमें ऋषियों ने इन्हें देख लिया और इन लोगोंकी राजस समझ कर यह शाप दिया कि “हे निबुद्धियो! तुम लोग पाषाण-वत् हो जाओ।” शाप देनेके साथ ही बहत्तर उमराव और एक राजकुमार छोड़ों सहित जड़ (पाषाण-वत्) हो गये। अर्थात् चलन चलन रहित जड़बुद्धि हो गये। इससे राजाकी इतनी वेदना हुई कि, वह मर गये। उनकी सोलह रानियाँ भी उनके साथ सती हो गईं तथा शेष रानियों ने ऋषि और ब्राह्मणोंकी शरण ली। राजकुमारकी स्त्री उन उमरावोंकी ७२ स्त्रियों सहित वहाँ आकर रोने पीटने लगी। उनकी देख कर ऋषियों ने शिवका अष्टाक्षरीमन्त्र दे कर उन्हें एक गुफा बतला दी और यह वर दिया कि “तुम्हारे पति महादेव पार्वतीके वरसे शुद्धबुद्धि हो जावेंगे।” इस पर वे सब शिवकी स्मरण करने लगीं। कुछ समय के बीतने पर पार्वतीको साथ लेकर महादेव जी पधारे। इनको देख कर उन्होंने चरण स्पर्श किया। इनकी भक्तिसे मुग्ध हो कर पार्वतीने उनको आशीर्वाद दिया कि—“तुम सब सौभाग्यवती हो कर अपने पतियोंके साथ संसार सुख अनुभव करती हुई चिरंजीव होओ।” और पीछे महादेवने उनकी चेतन्य कर दिया। राजकुमार पार्वती पर मोहित हो गया, यह जानकर पार्वतीने क्रोधित हो कर यह शाप दिया, अरे “मंगते। तु मांग खा।” बस। उन्ही दिनसे वह भिक्षु हो गया। उमरावोंकी महादेवने कहा कि, “तुम शस्त्र चलाना छोड़ दो और वैश्याका काम करो; तुम्हारे हाथोंकी जड़ता सूर्यकुण्डमें नहानेसे दूर होगी।” तब उन लोगों ने ऐसा ही किया। इस पर ऋषियों ने महादेव-

से शिकायत की कि, हमारे शापको भेट कर आपने वर दिया, सो भच्छा नहीं किया। हमारे वरमें ये लोग बाधा पहुँचायेंगे। शिवने इस पर यह कहा कि इन लोगोंके पास करनेको तो कुछ है नहीं, पर आप लोग इनकी भी उत्सवमें शामिल किया करें, ये यथाशक्ति द्रव्य देते रहेंगे। इधर तो शिवजीका वहाँसे पधारना हुआ और उधर उन बहत्तर उमरावोंका ऋषियोंके चरणोंमें गिरना हुआ। फिर इनमेंसे एक एक ऋषिके १२, १२ शिष्य हो गये।

कुछ दिन बाद ये खंडेलाको छोड़ कर डोडवाला में आ गये, और तबहीसे इन बहत्तर खाँपोंके डोड महे-श्वरी कहलाने लगे; फिर कालान्तरमें इनकी वृद्धि हो गई अर्थात् सब मुष्को में फैल गये। वर्तमानमें इनकी सब खाँपें ७५० हैं।

आजकल महेश्वरी देशोंमें धनवानोंकी संख्या अधिक होने पर भी विद्याकी बहुत ही कमी है।

खड़गसिंह—पञ्जाबके एक राजा। यह महाराज रणजित्सिंहके ज्येष्ठ पुत्र रहे। १८०२ ई०की लाहौरके नकीर खूजनसिंहकी कन्या राजकुमारीके गर्भसे इन्होंने जन्म लिया। यह राजकुमारी रणजित्की द्वितीया पत्नी थीं। १८११ ई०के ज्येष्ठमास रणजित्सिंहने नकीर-विपक्ष सामन्त दमन करनेके लिये ८ वर्षके बालक खड़गसिंहको सेनाका नायक बना कर भेज दिया। इसके बालक-जैसे रहने पर दीवान् माखनचन्द साथ चले। बालक खड़गसिंहने प्रथम उत्थाम में ही जय पाया और अपनेकी पिताका सुव्याति-भाजन बनाया था। १८१२ ई०की जयमल घुनियाकी कन्याके साथ इनका विवाह हुआ। यह जयमल घुनिया पठानकोट और जालन्धर तराईके अधिपति रहे। १८०८ ई०की रणजित्सिंहने यह सकल प्रदेश अपने अधिकारमें लगा लिया था। जो हो, खड़गसिंहके विवाहसे लाहौरमें बड़ी धूमधाम हुई। अफ़्ग़ानसेनापति करनेल आकटरकोनो निमन्त्रित हो लुधियानासे विवाहम गये थे। विवाह उत्सव पूरा हो जाने पर कुमार खड़गसिंह भीमवार और राजोरी (राजपुरी) जय करनेका प्रेरित हुए। यह उक्त दोनों

प्रदेश और भगत नामक स्थान अधिकार करके राजधानी लौटे थे। रणजित्सिंहने पुत्रके वीरत्वसे सन्तुष्ट हो उक्त सभी प्रदेश इनको जागीरकी तरह दे डाले।

धीरे धीरे खज्जसिंह महाराज रणजित्के बहुत ही प्रियपात्र बनने लगे। उन्होंने इन्हें और भी जागीर दी। इस समस्त सम्पत्तिके तत्त्वावधानका भार खज्जसिंहकी माताको अर्पित हुआ। दीवान् रामसिंह रामीर अधीन सारी देखभाल करनेकी रखे गये। जागीरकी प्रथाके अनुसार उन्हें अम्बारोही कितनी ही सिख सेना रखनी पड़ी। उक्त सेनाको सर्वदा इस लिये साजसज्जा और शिक्षा में प्रसूत रखते थे, कि युद्धके समय उससे राजाको साहाय्य करेंगे। कुछ दिन पीछे रणजित्सिंहने सुना कि जागीरोंका तत्त्वावधान भली भांति नहीं होता। प्रजावर्ग पर अत्याचार और उत्पीड़न पड़ा है। जो सकल सेना रखी गयी है, उसकी साजसज्जा और शिक्षा बिगड़ी है। उन्होंने लड़केकी बुना कर कितनी ही मीठी धमकियाँ दी थीं। रणजित्सिंहने कहा—अब तुम्हारा वयस आ गया है, तुम अपने आप सब कुछ देख भाल सकते हो, तुम कितने बड़े वीरके लड़के हो, तुम्हें परमुखापेकी होके रहना अच्छा नहीं लगता। परन्तु उनकी उत्तेजनासे कोई फल न निकला, माता और दीवान्क कहने पर खज्जसिंहकी चलना पड़ा। रणजित्सिंहने उस समय अपनी मूर्ति धारण की थी। उन्होंने दीवान्को कारागारमें डाल उसका हिसाब देने और खज्जसिंहको माताको सेखूपुरके दुर्गमें जाकर रखनेके लिये कहा। फिर खज्जसिंहको तीव्र भक्षण करके पेशावरके भवानीदासकी दीवान् बनाया गया। इसके बाद १८१८ ई० की जब सिखोंकी फौज राज्यके दक्षिण भागमें जाकर ठहरी, रणजित्ने कुमार खज्जसिंहकी उसका अधिनायक करके भेजा और दीवान् चन्द्रमित्रकी इनके साथ पहुँचाया गया। दीवान्चन्द्र ही प्रकृत अधिनायक रहे। परन्तु वहाँके अधिवासी उनके ऊपर विरक्तसे रहनेसे कुमार नाममात्रकी अधिनायक बन गये। १८११ ई० की २५वीं नवम्बरकी जब अंगरेजों गवर्नर जनरल साहब विलियम बेनटिङ्ग

यतद्वार रणजित्सिंहसे साक्षात्कार करने चले, खज्जसिंह ६ सिख सरदारोंके साथ उन्हें महाराज रणजित्सिंहका अभिवादन आपन करने आगे जाकर मिले थे।

मियाँ ध्यानसिंह नामक कोई व्यक्ति किसी कार्यमें विशेष दक्षता दिखाके महाराज रणजित्सिंहके प्रियपात्र बन गये और चौकीवालीके पद पर नियुक्त हुए। चौकीवालकी विना अनुमति महाराजसे कोई कैसे मिल सकता था। अन्तकी उनका प्रभुत्व इतना बढ़ा, कि महाराजके बेटोंकी भी विना उनसे पूछे महाराजसे मिलना कठिन पड़ा। ध्यानसिंहके शिष्यपुत्र हीरासिंह हमेशा रणजित्के निकट रहते थे। क्रमशः महाराज उनके प्रति इतने अनुरक्त हुए, कि उन्हें एक दण्ड न देखनेसे अस्थिर हो जाते रहे। ध्यानसिंह धीरे धीरे अपने पुत्रकी राज्यका उत्तराधिकारी बनानेका उद्योग करने लगे। पहले ही स्थिर हुआ—प्रागे खज्जसिंह पर महाराजकी विरक्ति उत्पादन करना आवश्यक था। ध्यानसिंहने महाराजकी समझाया कि खज्जसिंहकी बुद्धि बिगड़ गयी है। वह अकर्मण्य है और उन्माद होनेके लक्षण देख पड़ते हैं। इससे भविष्यकी वह कैसे राज्यग्रहण कर सकते हैं ? ध्यानसिंह खज्जसिंहकी युद्धमें भेजते तो थे, किन्तु सेना और नौकर चाकरोंका ऐसा प्रबन्ध कर देते थे कि इनका पराजय अवश्य हो जाता था। फिर खज्जसिंहका हारने पर वह महाराजके सामने बहुत भला बुरा कहते थे। वास्तविक उन्होंने वाक्यकात्तसे जैसे वीरत्वका परिचय दिया था, उससे इन्हें कापुरुष कहनेका दाव न था। वीरत्वमें पुत्र पितासे किसी अंशमें न्यून न थे। पिताकी अपेक्षा यह अधिक व्याघरायुध और धर्मभीरु थे। खज्जसिंह यह देख कर कुछ विषम रहते थे कि पिताके सम्मुख उन पर अन्याय दोषारोप होता है और पिताका भी वही ही धारणा हो गयी है। सुतरां इनकी स्मृति का नाश हुआ। इससे ध्यानसिंह और भी सुविधा पाकर सबकी समझाते थे—वास्तविक खज्जसिंहकी बुद्धि बिगड़ी है, नहीं तो सर्वदा विजित और ज्ञान क्यों रहते हैं ?

उसके बाद खज्जसिंह महाराजके पास न जाने पानी लगे। उधर हीरासिंहकी राजा उपाधि मिला था। उनकी तक्रियाके नीचे प्रतिदिन प्रातःकाल ५०० रु० इस लिये रख दिया जाता था, कि वह उठ कर गरीब लोगोंकी दान करेंगे। इसमें कोई सन्देह न रहा कि महाराजके स्वर्गवासके पीछे हीरासिंह सिंहासन अवरोधन करेंगे।

क्रम क्रम रणजित्सिंहका मृत्युकाल उपस्थित हुआ। उन्होंने खज्जसिंहकी बुलाकर ध्यानसिंहके हाथ पर उनका हाथ रख दिया और कहने लगे—इन्हे सिंहासन पर बैठाइयेगा और यथागति रक्षणवेक्षण रखियेगा, मैंने इतने दिन आपके प्रति जैसा असाधारण अनुग्रह प्रकाश किया है, उसका सिवा इसके कोई प्रतिदान नहीं चाहता कि राजभक्त विश्वस्त भृत्यकी भांति आप कुमारके प्रति व्यवहार करें। उनकी बातसे ध्यानसिंह स्तब्धित हुये और उन्होंने साथ इनकी चिरपोषित पाशा भी मिट गयी।

कहते हैं—महाराज रणजित्सिंहकी अन्त्येष्टि क्रियाके समय ध्यानसिंहने शोकसे अभिभूत हो चित्तमें देहत्यागकी चेष्टा की थी। लोगोंने अतिकष्टसे उन्हें पकड़ रखा था।



खज्जसिंह।

१८३८ ई०की २७वीं जूनको यह पञ्जाबके सिंहासन पर बैठे थे। खज्जसिंह ध्यानसिंहके प्रति यथोचित सम्मान प्रदर्शन करने लगे। रणजित्सिंह महाराजके जमाना-खानेमें रहते भी ध्यानसिंह वहाँ पहुँचते और बैठ कर परामर्शदि करते थे। इनके समय भी वह वैसा ही करने लगे। परन्तु खज्जसिंहकी वह अच्छा न मानूम होता था। इनोंने ध्यानसिंहको वैसा करनेसे रोक

दिया। ध्यानसिंहने इनसे कहा कि वैसा न करने पर सब बात बाहर फेंक जावेगी और राजकार्य चलनेमें अड़चन आयेगी। सुनसे तो उन्होंने ऐसा कहा, परन्तु मन ही मन विरक्त हो इनके अनिष्टसाधनका सङ्कल्प कर लिया।

उधर अन्यान्य मन्त्री इस कार्यके लिये खज्जसिंहकी विशेष प्रशंसा करने लगे। उन्होंने यह भी बताया कि ध्यानसिंह कहते फिरते हैं—यदि राजा हमें पहले जैसा अधिकार न देंगे, तो वह क्या राज्य कर लेगे। जो व्यक्ति वैसा कह सकता है, उसे मन्त्रित्व पद पर रखना उचित नहीं। ध्यानसिंहने उधर यह अफवाह उड़ाई थी—खज्जसिंह और उनके मन्त्री चैतसिंह राज्यभार अंगरेजोंको सौंप हमें नोवा दिवा राज्य करनेकी साजिस करते हैं। अंगरेजों ने इसमें कुछ आनन्द कर देना पड़ेगा, राज्यका सिख-सेनादल तोड़के सरदारोंकी कर्मभृत्य करना होगा इत्यादि नानाप्रकारकी बातें देशमें फैल जलपना होने लगी। ध्यानसिंह बस इतना ही करके निश्चिन्त न हुए। उस समय खज्जसिंहके छेह पुत्र नवनिहालसिंह पेशावर और वह खैबर-घाटीमें थे। दोनों पक्ष द्वारा परामर्श करने लगे। खज्जसिंहने ध्यानसिंहकी कहला भेजा था कि कुमार नवनिहालसिंहको लेकर वह शीघ्र ही लौट पड़ें। ध्यानसिंह नवनिहालके साथ मिल गये। चलते चलते राहमें दोनोंने खिर किया था कि खज्जसिंहके घोर शत्रुरूपसे लाहौरमें प्रवेश करना होगा। कुमार नवनिहालने राजधानीमें पहुँच अविलम्ब खज्जसिंहकी बन्दो बनानेके लिये ध्यानसिंह प्रभृतिसे कह दिया। ऐसी कई जाली चिट्ठियां भी दिखलायी गयीं, मानो अंगरेजोंसे लिखा पढ़ी हुई थी। नवनिहालकी अल्पमात्र भी पिछभक्ति लुप्त हो गयी। अंगरेजोंके हाथसे देशरक्षाका इतना बड़ा प्रयोजन समझ पड़ा कि नवनिहालकी माता खज्जसिंहकी पत्नी चन्द्रकुमारीने भी जामीकी कारावासकी अपमान मत प्रदान किया।

रातकी तीन बजेके बाद ध्यानसिंह, गुलाबसिंह, सुचेतसिंह और कई एक सरदार सिन्धवाड़ा किल्लेमें हुए खज्जसिंहके शयनकक्षके निकटवर्ती थी गये।

उन्हीं ने राहमें दो नौकरों को मार डाला था। खल्लसिंह उस समय शयनकक्षमें पहुँच ईश्वरकी आराधना करते थे। कोई प्रहरी दुरात्माओं का आगमन वृत्तान्त अवगत हो जैसे ही दौड़कर संवाद देने की चलागे लगा, ध्यानसिंहने उसको गोली मार दी। प्रभु भक्त भृत्य उसी समय धराशायी हुआ। इससे कुछ गड़बड़ मच गया। गुलाबसिंहने भ्राताको विलक्षण तिरस्कार किया और कहा था—जा कुछ करना होगा निःशब्द और तरवारि द्वारा करना होगा। आधी रातकी निःशब्दमें दुरात्मा आगे बढ़ने लगे। चैतसिंह उस समय खल्लसिंहके निकट रहे। वह विपद् आती देख पासकी एक अंधेरी कोठरीमें जा चुके। शयनकक्षसे अनतिदूर प्रहरी सेनादल रहा। ध्यानसिंहने अपना कुछ अङ्गुलिविशिष्ट हाथ फैला कर खल्लसिंहको देखाया था। सेना मन्त्रमुग्धवत् स्थिर हो कर रह गयी। दुरात्माओंने जाकर खल्लसिंहको बांध लिया था। रानी चन्द्रकुमारी और नवनिहालसिंहने प्रस्ताव किया कि राजाके शरीरमें कोई आघात न लगाया जावे। यदि नवनिहालसिंह उपस्थित न रहते, तो शायद उसी समय खल्लसिंह मार डाले गये होते। पार्श्वस्थ गृहसे घसीट ध्यानसिंहने अपने हाथों चैतसिंहकी छातीमें छुरी घुसेड़ दी। इसके बाद सब दुरात्मा मिल कर चैतसिंहको मारने लगे और वह अविलम्ब ही चल बसे। महाराज खल्लसिंह दुर्गमें अवलूट हुए और कुमार नवनिहालसिंह राजसिंहासन पर बैठ गये।

राज्यमें घोषणा हुई—महाराज खल्लसिंहने राज्यका शत्रुतावरण किया है, अतएव वह राज्यशासनके अनुपयुक्त है और इसीसे नवनिहालसिंहने राज्यभार ग्रहण किया है। कहते हैं—नवनिहालसिंह प्रकाशरूपसे खल्लसिंहकी निन्दा न चलाते, बीच बीच कारागारमें पितासे मिल उन्हें निर्बोध और कापुरुष जैसी भर्त्सना सुना पाते थे।

मनोदुःखसे इनका शरीर भग्न हो गया। खल्लसिंह बीमार पड़े थे। चिकित्साके लिये कई एक चिकित्सक नियुक्त हुए। उनकी चिकित्सासे पीड़ा मिटना तो दूर रहा, वकटे बढ़ती ही गयी। उधर पण्डित

कारी यह कहते घूमने लगे कि खल्लसिंह बीमारीका बहाना करके अंगरेजों राज्यको भागनेकी चेष्टामें हैं। नवनिहालसिंहने भी अपने मनमें यही बात समाजानेसे पिताको देखसे जाना छोड़ दिया और इनकी चारों ओर भी कितने ही पहरेदारोंको नियुक्त किया था। पुत्रके ऐसे व्यवहार पर भी खल्लसिंहके हृदयसे उनका खेद नहीं घटा। यह नवनिहालको देखनेके लिये जितना हो कहते, सुनते, उतना ही उनके प्रति अविश्वासी बनते थे। ध्यानसिंह भीतर ही तीन दानों का विवेचन बड़ा बाहर लोगोंसे कहते रहते—हम पिता और पुत्रमें सद्भाव उत्पन्न करने की नियत चेष्टा किया करते हैं। कभी कभी पिताके देखनेको जाननेके लिये पुत्रको अनुरोध करते करते उनकी दोनों चक्षु आंसुओंसे डूब जाते थे। इनके निकट चाकर भी वह ऐसा ही कहते कि उनमें चेष्टा काके भी वह किसी प्रकार नवनिहालसिंहको समझा न सके।

खल्लसिंहको अधिक काल यह यत्नवा न सहना पड़ी। भटपट उनका मृत्यु हो गया। कहनेमें आता कि औषधके साथ उन्हें सफेदा और रसकपूर खिलाया जाता था। मृत्युके पूर्व यह यत्नवाससे अस्थिर हो आक्षेप करते थे—हमारे एकलौते बेटे को एकबार दिखला दो, हम उसकी पापसे बचावेंगे। ध्यानसिंह पुत्रको जाकर कहते थे—खल्लसिंहकी विकार उपस्थित है, वह सीधे बेटेको गाँधी देते हैं।

१८४० ई०की पूर्वो नवम्बरकी इनका मृत्यु हुआ। मृत्युका संवाद पुत्रके पास भेजा गया। वह उस समय शिकार खेलते थे। समाचार मिलने पर भी उन्होंने शिकारको न छोड़ा। दो घण्टे पीछे शिकारसे वापस आ नवनिहालसिंहने पिछदेह भस्म करानेकी अनुमति दी थी। हजारीबागमें राजप्रासादके निकट चिता प्रज्वलित हुई। नवनिहाल और ध्यानसिंह खड़े हो कर तमाशा देखने लगे। नवनिहालसे फिर ठहरा न गया। पिताकी मृतदेह चितामें जल ही रहा था, कि वह पैदल पासके एक नालीमें जा नहाने लगे। खान करके लौटते समय वह और गुलाबसिंहके लड़के मियाँ उत्तमसिंह जैसे ही एक झुण्डके नीचेसे निकले, वह

कक्षा दोनोंके मस्तक पर टूट पड़ा। उत्तमसिंह उसी समय मर गये और पिछड़ेवो नवनिहासिंह भी कुछ क्षण पीछे छूटपटा कालधाममें पतित हुए। १७वीं नवम्बरकी यह दुर्घटना पड़ी थी।

खड्गसैन—दिगंबर जैन संप्रदायके एक भूदृश्य ग्रन्थ कर्त्ता। इनका निवासस्थान आगरा था। इनोंने आग्राधरकृत-सहस्रनामकी “पूजा” रची है और त्रिलोक दर्पण नामक छन्दोबद्ध एक कथा ग्रंथ वि० सं० १७१३में लिखा। और ग्रंथ उपलब्ध नहीं है।

खड्गहस्त (सं० त्रि०) खड्गो हस्तो यस्य, बहुव्री०। १ खड्ग धारण करनेवाला, तलवार हाथमें लिये हुआ। २ क्रुद्ध, नाराज, मारने पर उतारू।

खड्गावीट (सं० पु०) खड्गस्यारिव घटति गच्छति, इट्-क। १ चर्ममय फलक, चमड़ेकी ठाल। खड्ग तदधारात्तुल्यव्रतं आर्हति, खड्ग-आ-वृत् कीटन्। असि धारा व्रतधारी, असिधारा नामक व्रत करनेवाला।

खड्गावलोक—किसी राजाका नाम वा उपाधि। इसका अर्थ शायित खड्ग जैसा तीक्ष्ण दृष्टि है। कोल्हापुर राज्यके सम्राट् नामक स्थान पर एक पहाड़ी दुर्गमें कोई ताम्रशासन मिला है। उसमें ६७५ शककी दन्तिदुर्ग, दन्तिवर्म वा खड्गावलोकके दानकी कथा लिखी है। ताम्रशासनके लेखानुसार—गोविन्दराजके पुत्र श्रीकर्कराज, कर्कराजके पुत्र इन्द्रराज और इन्द्रराजके पुत्र श्रीदन्तिदुर्गराज वा खड्गावलोक श्रीदन्तिदुर्गराजदेव थे।

खड्गिक (सं० पु०) खड्गः खड्गाकारोऽत्यस्त्र, ठन्। १ मस्जिदीकीरफेन, भैंसके दूधका फेन। खड्गेन चरति, खड्ग-ठन्। २ शीषिक, मृगयाकारी, शिकारी।

खड्गधेनु (सं० स्त्री०) खड्गिनी चासौ धेनुवति, कर्मधा०, जातित्वात् खड्गिनीशब्दस्य पूर्वनिपातः पुंवश्च। पोटानुवतिलोककतिपयवर्षेण नृपशविहृदयस्यचोपपन्नं श्रीनिवासापनयनं-जातिः। वा २१/६५। गण्डक जातिस्त्री, मादा गेंडा।

खड्गमार (सं० पु०) खड्गमं मारयति, म-णिच्-पण्य उपपदसं०। १ खड्गकीवसता, एक वेल। २ अस्त्रविशेष, किसी किस्मका हथियार।

खड्गी (सं० पु०) खड्गस्तदाकारः खड्गं भस्त्रस्य,

खड्ग इति। १ गण्डक, गेंडा। यह सुसुतोक्त धानूप-बर्गके कुलचरोंमें पड़ता है। संस्कृत पर्याय—गण्डक, खड्ग, खड्गमृग, कोड़ी, युग्म, तुङ्गसुल, वली, वज्र-चर्मा, वार्धनस, एकचर, गणोत्साह, गण्ड और खनी-त्साह है। इसका मांस वलकारी, हंङ्गण, गुरु, कषाय, पवित्र, पित्तलोकहृत्तिकर, आयुस्कार, मूत्ररोधकारी, रुक्ष और कफ तथा वायुनाशक है। (राजवल्लभ)

गेंडा देखो। २ महादेव। (त्रि०) खड्गीऽस्त्यस्य, खड्ग इति। खड्गधारी, तलवार रखनेवाला।

खड्गक (सं० स्त्री०) खड्गे तत्कर्मणि कुशलम्, खड्ग बाहुलकात् ईकः। दात, दांता।

खड्ड (हिं० पु०) खात, गड्ढा, खाड़ा।

खड्डक (सं० पु०) देवप्ररुच, ताड़का एक पेड़।

खड्डा (हिं० पु०) १ खात, गड्ढा। २ गहरी रगड़का निशान, खासा।

खणक (हिं० पु०) चूहा, मूसा।

खणमाङ्गिका (हिं० स्त्री०) घड़ी, धर्मघड़ी।

खण्ड (सं० पु०-स्त्री०) खन-ड। जननाद उः। उच्यते, ११/११।

१ इक्षुविकारविशेष, किसी किस्मका गुड़। बलती बोलियोंमें इसे खाड कहते हैं। खण्ड अतिगम्य वृक्ष, अक्षुको हितकर, वात तथा पित्तनाशक, मधुर, हंङ्गण, शीतल, सिग्ध, वलकर और वातनाशक होता है। (भावप्रकाश) २ अंश, हिस्सा। ३ भेद, टुकड़ा (मार्कण्डेय चण्डी) “प्रसू दोड चापखण्ड मणि चारि” (तुलसी) ४ विड्-खण, काला नमक। ५ कोई देश। ६ मणिदोष, मणीनेका ऐव। ७ योगिविशेष। (हठयोगप्रदीपिका) ८ कोई असभ्य-जाति। ९ शर्करा, चीनी। १० इक्षुजातिभेद, किसी किस्मकी जख। हिन्दीमें खण्ड तलवारकी भी कहा जाता है। (त्रि०) ११ खण्डित, काटा हुआ।

खण्डक (सं० पु०) खण्डेन निहतः, खण्ड भ्रष्टादि-त्वात् क। १ खण्डनिर्मित सिताखण्ड, बताशे, इसायाधी-दाने, गट्टे आदि। (त्रि०) खण्डयति, खड़ि-खल्। २ छेदक, काटनेवाला।

खण्डकथा (सं० स्त्री०) १ खण्डकथा, थोड़ी बात। २ किसी प्रकारकी कथा। इसमें चार प्रकारका विरह और कथनप्रधान रहता है। १ कोई भूठी कहानी।

इसके प्रत्येक खण्डमें एक द्रव्य कथा रहता है ।
खण्डकर्ण (सं० पु०) खण्ड इव कर्णी यस्य, बहुव्री० ।

१ आलुक्रविशेष, शकरकन्द । इसका पर्याय वज्रकन्द है । खण्डकर्ण कफ तथा पित्तनाशक और कटुपाक होता है । २ शाकविशेष, कोई सब्जी ।

खण्डका (सं० स्त्री०) यवास्यकर्करा, खांड ।

खण्डकायलौह (सं० स्त्री०) औषधविशेष, रक्तपित्तकी एक दवा । इसकी प्रसूत-प्रणाली नीचे लिखते हैं— शतावरी, गुड़ूची, वासक, मुख्ण्ड (किसी किष्किका लोहा), बला, तालमूली, खुदिरकाष्ठ, त्रिफला, भार्गी और पुष्करमूल पांच पांच पल ६४ शरावक जलमें पाक करना और अष्टमांश अवशिष्ट रहने पर दिव्यौषध तथा माजिक द्वारा मारित रुक्मलौहका १२ पल चूर्ण डाल देना चाहिये । फिर इसको १६ पल घृतके साथ गुड़पाककी तरह पकाया करते हैं । ताम्रपात्रमें पाक करना विधेय है । पाक प्रायः शेष होने पर १ सेर मधु और शिलाजतु, दालचीनी, मूत्री, विडङ्ग, पिप्पली, शुण्ठी तथा जातीफलका आठ आठ तोले चूर्ण पड़ता है । अच्छी तरह मय्यन करके यह पाक उत्तारा और स्निग्धपात्रमें डाला जाता है । गन्धक्षीर अनुपानके योगसे खण्डकायलौह सेवनीय है ।

• मांसका यूष और दुग्ध इस पर खानेसे उपकार करता है । छाग, पारावत, तित्तिर, क्रकर, शश, हरिण और कृष्णसारका मांस सेवन करना चाहिये । नारिकेलका जल, वास्तुकशाक, पटोल, लहती, बैंगन, पका आम, खजूर, अनार और आनूपमांस एकान्त वर्जनीय है । यह औषध रक्तपित्त, क्षयरोग, कास, पंक्तिशूल, वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमि, क्लम, पाण्डूोग, कुष्ठ, मीडा, पानाह, रक्तस्त्राव और अम्लपित्त रोग पर व्यवहार किया जाता है । खण्डकायलौह चतुर्को हितकर, ठंडा, बलकर, प्रीतिवर्धक, कामद, अग्निवर्धक और लावण्यकर होता है । (चक्रवर्त)

खण्डकालु (सं० स्त्री०) खंड इव कायति, कैः क ततः कर्मधा० । खंडकर्णालुक, शकरकन्द ।

खण्डकाव्य (सं० स्त्री०) खंडं काव्यस्य एकदेशानुसारिकाव्यम्, कर्मधा० । जो काव्य सम्पूर्ण काव्य-कथनयुक्त न हो । (साहित्यदर्पण ६ पृ०)

खण्डकुष्माण्ड (सं० स्त्री०) औषधविशेष, रक्तपित्तकी एक दवा । निम्बुलीकृत पुराण कुष्माण्डके १०० पल शस्यकी टुकड़े टुकड़े करके २०० पल बारिमें डाल पकाना और १०० पल जल अवशिष्ट रहने पर नीचे उतार कुष्माण्ड खंडोंकी निकाल पीसकर धूपमें सुखाते हैं । फिर यह चूर्ण २ शरावक घीमें भुना जाता है । लाल हो जाने पर पहलेका १०० पल पानी और बराबर चीनी छोड़ इसको लेहवत् पका कर वना लेते हैं । ठंडा हो जाने पर इसमें पिप्पली, शुंठी तथा जीरक सोलह सोलह तोले, दालचीनी, एला, पत्र, मरिच एवं धान्यक चार चार तोले और मधु १ शरावक पड़ता है । दूसरा खंड-कुष्माण्ड रक्तपित्त तथा अम्लपित्तके लिये हित है— १०० पल कुष्माण्डोदक, गव्यदुग्ध १०० पल और ८ पल शर्करा एकत्र पाक करके लेह-जैसा होने पर ८ पल धात्रीचूर्ण डालके उतार लेना चाहिये । अम्लपित्तके अग्न्य अवलेहमें केवल २ पल घी ज्यादा लगता है ।

(भावप्रकाश)

खण्डकुष्माण्डक (सं० पु०) खण्डेन पक्वं कुष्माण्डमत्र, बहुव्री० कप् । चक्रदत्तोक्त औषधविशेष, एक दवा ।

कुष्माण्डरसायन देखो ।

खण्डकुष्माण्डावलेह, खण्डकुष्माण्ड देखो ।

खण्डखण्ड (सं० त्रि०) टुकड़े टुकड़े किया हुआ ।

खण्डखजूर (सं० स्त्री०) खण्डेन पक्वं खजूरम्, मध्यपदलो० । खण्डपक्व खजूर, मोड़ी खजूर ।

खण्डगिरि—उड़ीसाके पुरी जिले बीचका एक पर्वत ।

यह अक्षा० २०° १६' उ० और देशा० ८५° ४७' पू० के मध्य भुवनेश्वरसे प्रायः २ कोस पश्चिम तथा कटकसे पुरी जानेवाली राज्मार्गके ३ कोस पश्चिमकी अवस्थित है । यह पहाड़ रेतोली मटीका बना है । इसमें जो अनेक आश्चर्यजनक काण्ड देख पड़ते, वर्षमातीत हैं । इसके पार्श्ववर्ती चटकिया गांवकी ओर एक खात है । यहां ३ अनोखी गुहायें हैं । दक्षिणदिक्की गुहासे और भी दक्षिण चारो ओरसे गोल और धतूरके फूल-जैसा एक जलाशय है । इसका उपरिभाग प्रशस्त और निम्न-देश क्रमशः ढालू है । इसी जलाशयकी आकाशगङ्गा कहते हैं । पीपकासकी इसमें जल नहीं रहता । इसी

स्थानसे आरम्भ करके पर्वतकी वामदिक्की पहाड़की चारों ओर घूमने पर जहाँ जो देखनेमें आता, उसका विवरण नीचे दिया जाता है—

प्रथमतः पर्वतके निम्नदेशमें एक मन्दिर है। उसके उत्तरांशके पास ही पास दो असम्पूर्ण गुहा-मन्दिर पड़े हैं। यह खूब समझा जाता है कि दोनों गुहायें मानवनिर्मित हैं। आज भी उनमें हथियारोंके निशान बने हैं। गुहाकी मन्दिर निर्माणके लिये उपयोगी बनानेकी चलाय और दीवारसे भिड़ा कर खम्भे तथा छल्ले लगाये गये हैं। इसके सामने बरामदा और भीतर गुहा है। बरामदेकी चारों ओर वेदी बनी है। सम्मुखभागमें तीन स्तम्भ स्तम्भ हैं। एतद्व्यतीत पार्श्व भागकी भित्तिसे संलग्न और दो खम्भे खड़े हैं। स्तम्भके ऊपर छतके नीचे नानाविध मूर्तियाँ खोदित हुई हैं। बाहर वामदिक्की द्वारके उपरिभागमें एक शिल्पलिपि लगी है। स्तम्भोंके मध्य मध्य चार गृहोंके चार द्वार हैं। द्वारोंकी सम्मुखभागमें ऊपरकी ओर दोनों बगलोंमें दो दो सर्पमूर्तियाँ बनी हैं। साँव फणा फैलाये हुए हैं। द्वारकी अर्धगोलाकार भित्ति पर नाना-विध मूर्तियाँ खुदी हैं। उनका अनेक अंश टूट गया है। अवशिष्ट मूर्तियोंमें एक हस्ती, चार अश्वयुक्त रथ पर एक छत्रधारो राजा और पद्महस्ता कमलकामिनी के दोनों पार्श्वों पर दो हाथी शृङ्खल को छठा मानो उनके मस्तक पर जल छोड़ रहे हैं। कहीं बोधिवृक्ष है। उस पर राजछत्र रखा और पास ही जनसमूह खड़ा है। मेहराबके नीचे नाना मूर्तियाँ हैं। दीवारके ऊपर मध्यभागमें बोधिवृक्ष और स्वस्तिक प्रभृति जैनचिह्न विद्यमान हैं। खोदित लिपिका अधिकांश मिट गया है। पक्षर प्रति पुरातन हैं। सम्भवतः वृ १५ या १६ सी वर्ष पहलेके होंगे। इस गुहाका नाम अनन्तगुहा (गुफा) है।

उसी स्थान पर पर्वतके निम्नदेशमें एक चतुष्कोण गुहा है। यह दैर्घ्यमें १२ हाथ और प्रस्थमें ११ हाथ आती है। पूर्वोक्त अनन्तगुहाकी तरह इसमें भी ३ द्वार हैं। भारद्वाज लिपि-जैसे पक्षर खुदे हैं। भारद्वाज देखो। चौकीके धरणकी चारों ओर सीखचे लगे दरवाजे पर

खोदित पद्माक्षति है। दूसरी सब बातोंमें यह अनन्तगुहासे मिलता जुलता, केवल अष्टकोणी स्तम्भोंकी आकृतिमें ही भेद पड़ता है। बरामदेकी कुरसीमें अभ्यन्तरस्थ गृहके स्तम्भ भी अष्टकोणी ही हैं। बरामदेकी कुर्सी भीतरी घरकी कुर्सीसे लगभग १५ इंच नीची है। अनन्तगुहाकी तरह इसके बरामदेकी चारों तरफ वेष्ट जैसी वेदी लगी है। एक स्तम्भका निम्नदेश टूट गया है। ऊपरी कारनिसके नीचे एक एक करके पत्थर निकल पड़े हैं। मन्दिरके अभ्यन्तरमें चन्द्र सूर्य और नाना देवदेवियोंकी मूर्तियाँ खोदिन हैं। स्थान स्थान पर शिलालिपि है। अनेक पक्षर मिट जानेसे प्राक्कल वह अपाय्य हो गयी है। निर्णय करना बहुत कठिन है—पक्षर कितने दिनोंके हैं। इस गुहाके निम्न देशमें और एक ऐसाही मन्दिर खोदित है।

उपर्युक्त स्थानसे और कियहूर चलने पर कोई दूसरी गुहा देख पड़ती है। इसमें अधिक शिल्पांश नहीं है। यह स्वाभाविक है, परन्तु मानवहस्त द्वारा और भी वर्धितायतन हो गयी है। इसीके पास दो प्रकीर्णविशिष्ट कोई दूसरी गुहा बनी है। इसमें वैसा आश्चर्य नहीं देख पड़ता। ऊपर चढ़नेकी सुदीर्घ सोपानश्रेणी है। इसीके बगलमें और दो छोटी छोटी गुहायें हैं। बीचमें जगन्नाथदेवकी एक रङ्ग भरी मूर्ति विराजमान है। इसके बाद फिर और एक गुहा है। इसकी भी भग्नदशा है। इसके उपरिभागमें कोई दूसरी गुहा है। ऊपरसे दर्राज आने और नीचे तक फैल जाने पर इसने खण्डाकृति धारण की है। इसीसे पहाड़का नाम भी खण्डगिरि पड़ा है।

और भी थोड़ी दूर जानेसे एक बड़ी गुहा देख पड़ती है। इसके दो स्तम्भ हैं, सुतरां इसमें ३ प्रकीर्ण बन गये हैं। यह सब दालान ही दालान है, भीतर घर नहीं, बीचमें एक खोदित लिपि है, जिसका पाठ करना दुःसाध्य समझा जाता है। इससे अनन्तदूर एक ही में मिली दो गुहायें हैं। इनके बीचमें एक प्राचीर तो है, किन्तु गृहाभ्यन्तरमें एकसे दूसरीकी जानेका द्वार लगा है। इसमें भी अनेक खोदित मूर्तियाँ देख पड़ती हैं। यह मूर्तियाँ बौद्ध और जैन

देवदेवियों की है। एक एक स्थानमें युगलमूर्ति विद्यमान हैं। किसी किसीके साथ वृष, हस्ती, अश्व, वानर, पद्म, अश्वत्थ, चक्र और सर्पमूर्ति बनी है। इसके बीच आदिनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ आदि जैन तीर्थ-क्षेत्रों और शाक्य बुद्धकी मूर्ति भी है। चित्तोंमें विशेष नेपुण्य देख पड़ता है। इसके निम्नभागमें गणेश, अष्ट-शक्ति तथा बुद्धोंकी मूर्तियां हैं। गुहाकी चारो ओर घेदी बनी है। यहांसे थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर नाना-विध मूर्तिशोभित और एक गुहा मिलती है। इसके ऊपर “श्रीमदादित्येश्वरीदेवस्य प्रवर्धमानविजयराजस्य संवत्” इत्यादि लिखा है। इसकी तीन ओरों नानाविध मूर्तियां और खोदित शिलालिपियां हैं। उनमें कई समझ पड़ती और कई नहीं पड़तीं। स्थान स्थान पर अनेक रमणीमूर्तियां बनी हैं। उनमें कोई दशभुजा, कोई चतुर्भुजा, कोई अष्टभुजा वा द्वादशभुजा है। कई स्त्रीमूर्तियोंके साथ पुरुषों और उनके वाहनोंकी भी मूर्तियां बनी हैं।

उक्त गुहाके पार्श्वमें और एक गुहा है। इसकी भी पहाड़ीकी तरह देखनेसे भली भांति जाना जाता कि पुरानी गुहा टूट जानेसे स्थान स्थान पर पुनर्धार निर्माणकार्य किया गया है। यह हि० जैनोके आदि बायका मन्दिर है। आज भी दिगम्बर जैनोका ही इस पर अधिकार है। यहां चतुर्विंश तीर्थक्षेत्र और उनके चिह्नदि वर्तमान हैं।

इसी प्रकार पहाड़की चारो तर्फ गुहामन्दिरोंके चिह्न विद्यमान हैं। कहीं थोड़े सम्पूर्ण, कोई अधूरा और किसीका भग्नावशेष देख पड़ता है। किसी स्थान पर पहाड़के बीच एक जलाशय है। इसकी सोपाना-वलीका परिमर इतना छोटा पड़ता, कि उससे अवतरण करना दुःसाध्य लगता है। खण्डगिरि देखनेसे अच्छी तरह समझा जाता कि वह दिगम्बर जैनोका तीर्थस्थान रहा। पहाड़ गुफाओंसे भरा है। ठीक नहीं कह सकते, कब वह गुहायें बनी थीं। जो हो, खण्डगिरि दर्शकोंके देखनेकी एक चीज है।

खण्डधोष—१ बङ्गालके वर्धमान जिलेका एक उप-विभाग। यह वर्धमानसे सोनामुखी और बांकुड़ा जानकी

राह पर अवस्थित है। २ उक्त विभागका प्रधान नगर। यह अक्षा० २३° १२' ३०" उ० और देशा० ८७° ४४' २०" पू०में पड़ता है।

खण्डज (सं० पु०) खण्ड इव जायते, जन-उ। १ खण्ड, खांड, शकर। २ गुड़।

खण्डजा (सं० स्त्री०) यवासशर्करा, बूरा।

खण्डओडवज (सं० पु०) खण्डज उडवो यस्य तस्मात् जायते। यवासशर्करा द्वारा प्रस्तुत खण्डविशेष, पक्की शकर, घुटी हुई चीनी।

खण्डतारण—विहारके चम्पारन जिलेका एक नगर।

खण्डताल (सं० पु०) तालविशेष, एकताला।

(सङ्गीतशाला)

खण्डदेव—एक विख्यात दार्शनिक। इनका अपर नाम श्रीधरेन्द्र था। यह रुद्रदेवके पुत्र और जगन्नाथ-पण्डितराज तथा शम्भुभट्टके गुरु रहे। १६६५ ई०की इन्होंने काशीधाममें प्राणत्याग किया। इनकी विरचित भाट्टदीपिका, जैमिनीसूत्रकी मीमांसाकौस्तुभनाम्नी टीका और भाट्टरहस्य नामक संस्कृत ग्रन्थ मिलता है। भाट्टदीपिकाकी फिर अनेक टीकायें हुई हैं। उनमें १७०८ ई०की खण्डदेवके शिष्य शम्भुभट्ट कर्त्तृक रचित ‘भाट्टदीपिकाप्रभावली’ प्रधान है।

खण्डधार (कुण्डधार) स्थानविशेष, एक जगह। यह गण्डालसे ५ कोस पश्चिम पड़ता है। यहां एक दुर्ग है। वह गण्डाल-सामन्त लाखाजीके अधिकारमें था। १८०८ ई०की अंगरेजोंने उसे जय किया।

खण्डधारा (सं० स्त्री०) कर्तरी, कैचो, कतरनी।

खण्डन (सं० स्त्री०) खडि भावे ख्युट्। १ भेदन, काट-कांट। २ निराकरण, किसी सिद्धान्तकी अप्रामाणित करनेका काम। ३ छेदन, चीरफाड़। (जयदेव) खडि करणे ख्युट्। ४ परमतादि निराकरण-शास्त्रविशेष। इसका पूरा नाम खंडनखंडखाद्य है। श्रीहर्षने इसकी प्रणयन किया है। इस ग्रन्थमें सब पदार्थोंकी निरुक्तिके खंडनकी प्रणाली अति सुन्दरभावसे वर्णित है। इसके ४ परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेदमें प्रमाण तथा प्रमाणा-भाषकी निरुक्तिका खंडन, द्वितीय परिच्छेदमें हेत्वा-भाष एवं निग्रहस्थानका निरुक्तिखंडन, तृतीय परि-

च्छेदमें सर्वनामार्थकी निरुक्ति का खंडन और चतुर्थ परिच्छेदमें भाव, अभाव और सत्ता प्रभृति पदार्थों की निरुक्ति का खंडन बताया गया है। नैयायिक-शिरोमणि रघुनाथने इसकी टीका रचना की है। यह दोनों न्याय ग्रन्थ भली भाँति अभ्यास करने पर विचारनिपुण हो सकते हैं। (त्रि०) ५ खंडक, काटनेवाला।

खण्डन कवि—बुंदेलखंडके एक हिन्दी कवि। इनका जन्म १८२७ ई० की हुआ था। प्रेमियों पर इन्होंने एक अच्छी पुस्तिका लिखी है।

खण्डना (सं० स्त्री०) खंडि भावे युच्-टाप्। १ खंडन, कटाई, कटाव। २ छेदन, छिदाई, चीरफाड़।

(खण्डखण्डनाय १ परि०)

हिन्दीमें 'खंडना' क्रियारूपसे काटकूट, चीरफाड़ या तोड़फोड़के अर्थ पर व्यवहृत होता है।

खण्डनीय (सं० त्रि०) खंडि-अनीयर्। खंडनयोग्य, काटने लायक। (पक्षतन्)

खण्डनील (सं० पु०) खंडकर्णालुक, शकरकन्द।

खण्डपत्र (सं० स्त्री०) नानाविध पत्रगुच्छ।

खण्डपरशु (सं० पु०) खंडयति शत्रून् खंडः तादृशः परशुर्यस्य, बहुव्री०। १ शिव। (भारत ७ प० रुद्रसाहाय्य) २ विष्णु। (भारत १५। १४। ७४) ३ जामदग्न्य। (वीरचरित) ४ खंडामलक भेषज्य।

खण्डपशु (सं० पु०) खंडयति शत्रून् इति खंडस्तादृशः पशुरस्य, बहुव्री०। १ परशुराम। २ शिव। ३ चर्षलीपी। ४ राहु। ५ खंडामलक औषध। ६ भग्न-दन्त हस्ती, दांत टूटा हाथी।

खण्डपाड़ा—उड़ीसेका एक देशी राज्य। यह अक्षा० २०° ११' से २०° २५' ७० और देशा० ८५° से ८५° २२' ५० बीच अवस्थित है। क्षेत्रफल २४४ वर्गमील है। लोकसंख्या ६८४५० है। खंडपाड़ेके उत्तर महानदी, पूर्व कटक तथा पुरी जिला, दक्षिण पुरी तथा नयागढ़ और पश्चिम दगपाड़ा है। पहले यह नयागढ़का टुकड़ा रहा। २०० वर्ष पहले नयागढ़के किसी राजाने खंडपाड़ामें अपना अलग राज्य बनाया था। यहां राजा लोग अपनेको क्षत्रिय-जैसा बतलाते हैं।

राज्य बहुत ही उपजाऊ जैसा है। अनाजकी

कासी पैदावार होती है। कुपरिया और दोका नाम्नी महानदीकी दो शाखायें इस राज्यके भीतरसे होकर निकली हैं। समतल भूमिपर चास तथा वटवृक्ष और पहाड़ी जगहोंमें शालका पेड़ खूब देख पड़ता है।

इस राज्यमें ३२५ गांव बसे हैं। इस राज्यकी आम-दानी ३००००) ६० और मालगुजारी ४२१२) ६० गवर्न-मेण्ट को देना पड़ती है। दातव्य विकित्सालय, स्कूल प्रभृति हैं।

खण्डपाणि (सं० पु०) पुरुवंशीय एक राजा

(विष्णुप० ४.२१ अ०)

खण्डपाल (सं० पु०) खण्डं पालयति, खण्डपालि-अण्। मोदक, जलवायी।

खण्डपाश (सं० पु०) घातकीपुष्पशंकराजात मय।

खण्डप्रलय (सं० पु०) खंडस्य भूम्यादि खंडस्य प्रलयः, इ-तत्। १ कालविशेष, कयोमत। इस समय भूमि प्रभृति भूत पदार्थोंका नाश हो जाता है। ब्रह्माके दिन अवसानको क्षिति, जल, तेज और वायु चार भूत नहीं रहते, किन्तु रात्रिके बीतने पर फिर उपजा करते हैं। ब्रह्माकी रात ही खंडप्रलय कहला सकती है। वैद्वान्तिक इसकी प्राकृतिक लय बतलाते हैं।

हरिवंशमें खण्डप्रलयका विषय इस प्रकारसे कहा है—इक्कीस युगोंमें एक मन्वन्तर होता है। १४ मन्वन्तरोंमें ब्रह्माका एक दिन है। ब्रह्माका दिन बीतने पर रुद्रदेव संहारमूर्ति धारण करके प्राणियोंका शरीर विनाश आरम्भ करते हैं। देव, दैत्य, यक्ष, राक्षस, किन्नर, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, गन्धर्व, अप्सरा, पशु, पक्षी आदि सकल जातीय प्राणियोंका शरीर विनष्ट हो जाता है। धीरे धीरे नद नदी पर्वत प्रभृति भी महीमें मिलते हैं। (हरिवंश १८८ अ०)

हरिवंशके दूसरे खानमें लिखा है, कि खंडप्रलयसे पहले सूर्यका किरण भयानक रूपसे तीक्ष्ण पड़ जाता है। समझ पड़ता है, मानो साथ ही साथ सफ़ेद सूर्य निकल आये हैं। कड़ी धूपमें नदनदी, समुद्र, कूप, तड़ाग, निर्भर आदि सब जलाशय सूख जाते हैं। पृथिवीकी सुखा कर सूर्यकिरण धीरे धीरे रसातलमें घुस उसका जल भी सुखा देता है। इसी समय वायु

भी प्रतिष्ठित प्रबल ही समस्त पदार्थ विनाश करता है।
संवत्सर नामक अग्नि होय होय प्रकृतिक होके पर्वत,
पर्वत, गुल्फ, जलो आदि समस्त भौतिक पदार्थों को जला
हालता है। क्रम क्रमसे सभी भस्मीभूत हो जाती है।
कोई भौतिक पदार्थ नहीं रहता। केवल एक मात्र
हिर ही बचती है। (परिचय १२१ पं०)
दार्शनिक मतसे पृथिवी जलमें, जल तेजमें, तेज
वायुमें और वायु आकाशमें लीन होता है। फिर
आकाश और इन्द्रियगण चक्षुषारमें, चक्षुषार महत्त-
वमें और महत्तत्व प्रकृतिमें समाता है। उस समय
सत्य, राजः और तमोगुणकी साम्यावस्था आती है। इसी
अवस्था का नाम प्राकृतिक तय वा खंडप्रलय है। जब देखो,
२ विवाद, विसंवाद, कदाचुनी।

जैन शास्त्रानुसार संसारके समस्त पदार्थोंका प्रलय
कभी नहीं होता। अवसर्पिणी कालके अंतमें हम
भरतक्षेत्रके आर्यखंडमें ही प्रलय होता है। वर्तमान
काल अवसर्पिणीका पंचम दुःप्रमा नामक चक्र रहा
है। उसके बाद इठा दुःप्रमा दुःप्रमा आवेगा। उसके अंतमें
कार्तिक मासकी अमावस्याके दिन प्रातः काल धर्मका,
दुपहरकी राजः और अग्नि का नाश होगा फिर सप्त
योग मंगे मन्त्र पादि के मांसकी खानेवाली हो जायेंगी।
उस समय प्रलय (पृथ्वी जल आदि) परमाणु
होकर सबको दुःखदायी होंगी, मनुष्य पशु पक्षी
सब बंधे हो जायेंगे। संवत्सर नामका पवन चलने
लगेगा और उससे समस्त पेड़ पर्वत नष्ट भ्रष्ट हो कर
मनुष्य आदि मरे जायेंगे। उस समय का मनुष्य
विजयाध पर्वतस्थ गंगा सिंधु नदियोंकी वेदी व छोटे
२ विलोमें डुब जायेंगे व विद्याधर और देवी द्वारा
दूसरी जगह लेजाये जायेंगी वही वही रहेंगे। उन वचे
बुधे स्त्री दुर्बली से ही फिर इस क्षेत्रमें मनुष्य पशु की
संज्ञाति चलेगी।

खण्डफण (सं० पु०) दर्बीकर संप, किसी किस्म का
साप।

खण्डभट्ट—संस्कारभास्कर नामक संस्कृत ग्रन्थप्रणीता।
इसके पिताका नाम मयूरेश्वर था।

खण्डमण्डन (सं० स्त्री०) १ कटा हुआ चौरा, जो चक्कर
पूरेता है। २ काटकुटे, मटिपानिष्ट।

खण्डमय (सं० त्रि०) खंड मयट, टुकड़ा टुकड़ा।
(महर्षि शास्त्र)

खण्डमेव (सं० पु०) पिक्कलभेद। इसमें मेव वा एक-
वली विना बनाये ही उसका कार्य सिद्ध हो जाता है।

खण्डमोदक (सं० पु०) खंड इव मोदयति, मुद-विष्-
गु, सू। सितखंड, बतारा, गडा आदि।

खण्डर (सं० स्त्री०) खंड पश्मादित्वात् २। १ खंड सन्निकित
(देशादि)। २ यवास्यकरा, बतारा।

खण्डराज दीक्षित—गोदावरी नामक संस्कृत भाषा-
कार।

खण्डराजी (सं० स्त्री०) बाकुबी, एक पोषधि।

खण्डल (सं० पु० स्त्री०) खंड खाति, खंड-ला-व। खंड-
धर, खंड धारण करनेवाला। अर्थादि नवात्मर्गत
पानिसे यह शब्द अभय लिङ्ग होता है।

खण्डलवच (सं० स्त्री०) खंडते, खंडि कर्मणि वच्, खंड-
साथी लघवसेति, कर्मणा०। विङ् लवण, आत्मा नमक।

खण्डव, कण्व देखो।

खण्डवल्ली (सं० स्त्री०) कांडवल्ली, करीना।

खण्डवा—मध्यप्रदेशके नीमाक जिलेका प्रधान नगरका
मंदर। यह अक्षा० २८° ५०' ३०" और देशा० ७६° ३२'
५०" में स्थित है ३५३ मोल पड़ता है। यहां घेठ इन्डियन
पेनसुला और मज की राजपूताना मासवा रेलवेकी
गन्तवाका जङ्गल है। लोकसंख्या प्रायः बीस हजार
होगी।

यह एक प्रति प्राचीन खान है। कनिङ्गडम
साहब इसे टोलेमिका कथा Kognabanda समझते
हैं। १२वीं शताब्दीके पारश्वमें पञ्चकनीने भी इसका
संज्ञेव किया है। १२वीं शताब्दीकी खंडवा लेनीकी
पूजार्थका प्रधान खान रहा। नगरमें चार प्रस्ता
ताम्रव बने हैं। फरिश्ता नामक ऐतिहासिकने लिखा
है कि १५१६ ई० की यह मासवाके एक खानीय सूबेदार-
की राजधानी था। १८५२ ई० की जमीनदारवा होनकर-
ने खंडवा जलाया और १८५८ ई० की तमिया, दोरीने
भी फिर कुछ कुछ इसको भस्मीभूत बनाया।

१८६० ई० की यहाँ खुदिसवालिटी पक्षी बीच प्रो-
वाटसे नगरमें आनी आता है। यह यहाँ आसिद्ध

केन्द्रस्थान है। कपास चीटने और गांठ बांधनेके कई कारखाने हैं। यहां गांजिका बड़ा गुदाम है।

खण्डविन्दु (स० पु०) सपेजातिभेद, कौड़ियाला।

खण्डशर्करा (स० स्त्री०) खण्ड इव शर्करा। शर्करा, चीनी।

खण्डशाखा (स० स्त्री०) मडिपत्रलो, कोई बेल।

खण्डशीला (स० स्त्री०) दुष्टा नारी, वेष्टा, रण्डी।

खण्डशुण्ठी (स० स्त्री०) औषधविशेष, किसी किसकी बनी हुई भीठ। यह अम्लपित्त रोगमें दित है। प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकारसे बतायी जाती है—शुण्ठीचूर्ण ३२ तोला, शर्करा १२८ तोला, घृत ६४ तोला और दुग्ध ८ शरावक एक हीमें पकाते हैं। पाक घनोभूत होने पर काणा, धाली, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, वंश-लोचन, जीरा, काला जीरा, हड़, मोथा तथा धनियाका चूर्ण बारह बारह मासे, मरिचचूर्ण ६ मासा, नाग-केसर ६ मासा और मधु ३ पक या २४ तोला डालनेसे खण्डशुण्ठी बन जाती है। इसकी शुण्ठीखण्ड भी कहते हैं। (रसरत्नाकर)

खण्डसर (स० पु०) खण्ड इव सरति, सू-मच्। यवास शर्करा, चीनी।

खण्डसार, खण्डर देखो।

खण्डा (स० स्त्री०) खण्ड, खांड।

खण्डादृत—उड़ीसेकी एक योद्धा जाति। खण्ड वा खण्णाख धारण करनेसे इन्हें खण्डादृत कहा जाता है। यह अपनेको क्षत्रिय-सन्तान-जैसा बतलाते हैं।

पूर्वकी उड़ीसाके राजा अनेक योद्धा रखते थे। उनका जमीन खाने पानेके लिये दे दी जाती थी। इन सज्जन सेनिकोंके उच्चपदस्थ कर्मचारी कुलीनों और निम्नस्व पार्वत्य वा देशस्थ सामान्य लोगोंसे सङ्गृहीत होते थे। उत्तर भारतमें क्षत्रिय एक स्वतन्त्र जाति जैसे परिगणित हैं, यह वैसे नहीं, इनमें नाना श्रेणियां रहती हैं। आपाततः जैसा देखनेमें आता, उससे समझा जाता है कि खण्डादृत दक्षिणके भूभागोंके ही वंशधर हैं। किन्तु इनका आचार व्यवहार कितना ही क्षत्रियों जैसा है। छोटानागपुरके खण्डादृत कहते हैं कि वह २० पुद्गल पहले उड़ीसेसे वहां पहुंचे थे। उनमें पात्रकन भी

उड़िया भाषा प्रचलित है। यह अपनेको भुइयां पायक बतलाते हैं। सिंहभूमके भुइयांभीमें जिस प्रकार उत्तर दक्षिण और पश्चिम कवाट आदि उपाधि पाते, उड़ीसे के खण्डादृतोंमें भी देखे जाते हैं। ८० वर्ष पहले उड़ीसे के खण्डादृतोंमें भुइयां उपाधि चलता था।

छोटानागपुरके खण्डादृतोंमें निम्नलिखित उपाधि मिलते हैं—प्रभावत, भड़, बाहदार, कोतवार, गौणभू नायक, पाल, प्रधान, महापाल, मांभि, मिरदाह और रावत। उड़ीसेके खण्डादृतोंके यह उपाधि हैं—उत्तर कवाट, दक्षिण कवाट, गङ्गनायक वा सिंह, जिना, दौशरिक, नायक, पश्चिम कवाट, प्रहराज, बाघा, बाहु-बल्लभ, महारथ वा महारथी, मल्ल, मङ्गराज, रणसिंह, रावत, रुई, सामन्त, सेनापति। इनमें फिर बड़धरो और छोटधरी नामक श्रेणीविभाग भी हैं। बड़धरियोंमें दशधरिया लोग सिंहभूमके सरम्द प्रदेश, पांच धरिया छोटानागपुर तथा पचासधरिया, गाङ्गपुर, पन्द्रह धरिया गाङ्गपुर, बोनाई, बामरा तथा सम्वलपुर अञ्चल और छोट धरिया छोटानागपुर अञ्चलमें अधिकांश रहते हैं। सिवा इसके चासा वा फोड़ खण्डादृत तथा महाजनिक वा श्रेष्ठ खण्डादृत बालेश्वर और कटक, भञ्ज खण्डादृत तथा हरि-चन्दन खण्डादृत पुरी और खण्डादृत पायक और श्रेष्ठ खण्डादृत उड़ीसे करद राज्योंमें देख पड़ते हैं। खण्डा-तोंमें ककुवा, कदम, मोर, नाग, साल (मत्स्य) प्रभृति श्रेणियां भी होती हैं।

पूर्वोक्त बड़धरियोंमें आदान प्रदान होता है। पचास धरियों और पन्द्रह धरियोंकी कन्या दश धरियों तथा पांच धरियोंमें व्याही जानेसे उनका मान टूटता है। फिर स्वश्रेणीके लोग उनके हाथसे अन्नग्रहण नहीं करते। दश धरिया और पांच धरिया पचास धरियोंका बनाया भात खा लेंगे, पालु यह उनके हाथका अन्न न कुवेंगे। फिर पचास धरिया पन्द्रह धरियोंका अन्न खाते, किन्तु पन्द्रह धरिया पचास धरियोंमें उनकी भातसे हाथ लगाते जो अविवाहित हैं। छोट धरिया कुकुटमांस भक्षण और मद्यपान करते हैं। बड़धरियों और छोट धरियोंमें आदान प्रदान नहीं चलता।

उड़ीसेके खण्डादृतोंमें महानाथ वा श्रेष्ठ खण्डा-

इतने बड़ी बड़ी जागीरें पायी हैं। पूर्वकालको यह सैनिक-विभागमें सेनापतिका कार्य करते थे। चासा खण्डाहत पायक सेनाविभागकी निम्नश्रेणीमें नियुक्त रहे। यह पायकल चौकीदारों और किसानों करते हैं। ब्राह्मणोंकी तरह महानायकों या श्रेष्ठ खण्डाहतोंका भरहाज, कौण्डिल्य, नागस आदि गोत्र होते हैं।

खण्डाहतोंमें अधिकांश कन्याओंका बड़ी अवस्थामें विवाह करते हैं। उच्चश्रेणीके लोगों अर्थात् जागीरदारोंकी कन्याओंका विवाह अल्पवयसमें ही हो जाता है। किन्तु जब तक वह बयस्था नहीं होती, स्वामी सङ्वास करने या ससुराल जानेसे अलग ही रहता है। विवाह प्राजापत्य मतसे सम्पन्न होता है। दायमें कुश वा दुर्वावास रखना और गठ जोड़ देना ही विवाहका प्रधान लक्षण है। बहुविवाह निषिद्ध नहीं। फिर भी प्रथमा पत्नी यदि वन्धा वा रुग्णा नहीं होती, तो विवाहकी क्रम ठहरती है। छोटानागपुरके खण्डाहतोंमें विधवाविवाह प्रचलित है। परन्तु विधवाविवाहमें भी प्रथम विवाहका सम्पन्न निषिद्ध माना जाता है। पतिसे बड़ी उमरके लोगोंके साथ विवाह निषिद्ध और देवरके साथ प्रशस्त होता है। उड़ीसेके बड़े खण्डाहतोंमें विधवाविवाह करनेकी रीति नहीं, किन्तु निम्नश्रेणीमें ऐसा हो जाता है। विवाहके विच्छेदका भी विधान है। पत्नी व्यभिचारिणी, अवाध्य वा अन्य गुह्यतर दोषाश्रित होने पर स्वामी पक्षसे आवेदन करके उनकी सम्पत्तिके अनुसार विवाहवन्धन तोड़ सकता है। किसी किसी स्थल पर तलाक देनसे एक वत्सर काल पत्नी को खिलाना पिलाना पड़ता है। निम्नश्रेणीकी परित्यक्त पत्नी सगाई कर सकती है।

इनमें अधिकांश लोग वैष्णव हैं, शाक्त और शैवोंकी संख्या अल्प है। शासनी ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। फिर सेवक वा पण्डा चासापों (किसानों)के पुरोहित हैं। शासनी सेवकोंसे श्रेष्ठ समझे जाते हैं। उड़ीसेमें ग्राम्य देवी और छोटानागपुरमें बड़े पहाड़ प्रत्येक गृहस्वामीके उपास्य हैं। पूजामें बलिदानादि हुआ करता है। उड़ीसेके खण्डाहतोंमें तरवारिका विशेष सम्मान है। दशहराके समय गृहस्थ समस्त

भस्त्रादि सुसज्जित करके पुष्पवन्दनादिसे पूजा करता है। मृत्युके पीछे इनका देह सत्कार भस्मि और यथा-रीति आह आदि होता है।

उड़ीसेके राजपूतोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। जातिमें बड़ी श्रेष्ठ जैसे गण्य होते हैं। खण्डाहत उनके सम्बन्धित निम्नमें परिगणित हैं। श्रेष्ठ खण्डाहत विवाहके समयमें यज्ञसूत्र ग्रहण करते हैं। करणोंके साथ कभी कभी इनका आदान प्रदान हो जाता है। किसानोंमें यह बात नहीं। फिर भी ब्राह्मण इनके हाथका पानी पी सकते हैं। यह किसान हैं, गोडम्बालोंके हाथकी मिठाई वगैरह खा लेते हैं। छोटानागपुरके ब्राह्मण बड़चरियोंके हाथका जल ग्रहण करते हैं। वहां छोट चरियोंके हाथका पानी अशुद्ध समझा जाता है। कहते हैं, उड़ीसेसे जाकर उन्होंने बिरु, बासिया, बेलसियां, दिम्बा, गोवरा, लाकरा, सोधमा और शोषपुर नामक आठ गढ़ अधिकार किये थे। किसी समय उन्हें सैनिक कर्मके लिये कई एक परगने जागीरकी तौर पर मिले। अङ्गरेजोंके अधिकारमें पुरुषानुकूलकी वह सम्पत्ति हस्तान्तरित हो गयी। परन्तु उड़ीसे खण्डाहतोंने अभी अपना स्वत्व नहीं छोड़ा है। बड़े बड़े घर बेलगाम जमीन रखते हैं। निम्नश्रेणीके लोगोंके पास भी बेलगाम जमीन है, परन्तु उन्हें गोड़तो और चौकीदारों करनी पड़ती है। कोई मजदूरी करके ही अपना कार्य चलाता है। अस्त्रधारी खण्डाहत खेतों नहीं करते।

खण्डाभ्र (सं० क्री०) खण्डस्य अश्वेति, कर्मधा०।

१ खंड खण्ड मेघ, बदली, बादलके टुकड़े। खण्डः अश्वमिव। २ दन्तरोगविशेष, दांतकी कोई बीमारी।

खण्डामलक (सं० क्री०) १ आमलकचूर्ण, पाँवलेकी तुकनी। २ आमलकीखंड, पाँवलेका सुरम्बा। ३ परिणामशूलका औषधविशेष, पेटके दर्दकी कोई दवा। पिष्टनिष्पीडित पुराण कुष्माण्डस्य ५० पल और घृत १६ पल एकत्र भूतना चाहिये। फिर शर्करा ५० पल, आमलकरस ३२ पल, वारि १६ शरावक और कुष्माण्डरस ३२ पल इसमें डाल परलेह जैसा पाक करते हैं। पीछे पिप्पली, क्षीरक तथा गुण्डाचूर्ण दो-दो पल, मरिचचूर्ण १ पल और तालीण, धातक, दासरीना,

इलायची, तेजपत्र, नागकीशर^१ और 'सुरसंक्षुण्ण'^२ दो दो तोला डालनेसे यह औषध प्रसुत हो जाता है।

(कारकोंहरी)

खण्डाल—बम्बई प्रदेशके पुना जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० १८° ४६' ७" तथा देशा० ७३° २२' पू०के बीच पड़ता है। सप्तादिकी चूकासे खण्डाल १३० हाथ नीचे है। इसकी भूमि उत्तर-पश्चिमदिक्की ढलकर परब और उसका नदीकी ओर चली गयी है। खण्डालको चागे और पर्वतमाळा है। बम्बईके भूतपूर्व गवर्नर एन्फिनलोन साहब इसका सौन्दर्य देख मोहित हुए थे। पर्वतके अंशविशेषकी उसका, राजमाची, ठाकुरिया या तुफान, इन्द्राणी, भामा, उम्बागी, नागफनी* आदि कहते हैं। इसके पास ही दो जलप्रपात हैं। एक स्थान पर पानी २०० हाथ नीचे गिरता है। पर्वतमें खोदित गम्भीरनाथका मन्दिर देखने योग्य है। यहां रेलवेका एक स्टेशन बन गया है और तबसे बसती बट रही है। अधिवासियोंमें अधिकांश महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं। लोक-संख्या प्रायः २३२२ है। यहां स्कूल, होटल, गिर्जा प्रभृति हैं।

खण्डाल (सं० स्त्री०) वार्जाकरऔषधभेद- कमजोरीकी एक दवा। सुपन्न मधुर आम्लरस ६४ शरावक, शर्करा ८ शरावक, घृत ४ शरावक, गुण्ठीपूर्ण ३२ तोला पिप्पलीपूर्ण १६ तोला और जल ८ शरावक एकत्र पकाना चाहिये। खण्डपाके सिद्ध होने पर तेजपत्रचूण ३२ तोला और अन्विपर्व चिबुक, मस्तक, धान्यक, कीरकद्वय, त्रिकेटु, जातीफल, दासचानी, इलायची तथा नागकीशरचूर्ण पाठ पाठ तोला डालते हैं। फिर ठण्डा हो जानेसे ४ तोला मधु मिला देनेसे यह औषध तैयार होता है। (त्रैलोक्य)

खण्डाही (सं० स्त्री०) खण्डे प्रगादिखण्डे आलाति आलाक ततो गौरादिस्वात् ऊर्ध्व । १ सरोवर, ताकाव । खण्डे दन्तनखादिखण्डे आलाति । २ कासुकी

स्त्री, हिमाल खोरत । ३ तीक्ष्णपरिमाणविशेष, तीक्ष्ण एक नाप ।

खण्डिक (सं० पु०) खण्डीःखादि, खण्ड-ठन् ।

१ कण, कोख । २ कक्षाविशेष, चटरी प्रदलका अपर नाम क्षिपुट है। खण्डिक कक्षा शीतमधुर, ककषाय, त्रिदोषघ्न और पित्त तथा स्नेहा पर उपकारी होता है। (चक्र) ३ कोई कटि। इनके पिताका नाम उद्धरि रत्ना। (मतपत्रा० ११८भा१) (त्रि०) ४ क्रुद्ध, नाराज ।

खण्डिका (सं० स्त्री०) खण्डशर्करा, खाड़ ।

खण्डिकादि (सं० पु०) खण्डिक आदिर्यस्य, बहुव्री० ।

एक पाणिनीयगण । इसके उत्तर समुदायमें अञ् प्रत्यय लगता है। खण्डिकादि गणमें निम्नलिखित शब्द परिगणित हैं—खण्डिक, वडवा, खुद्रक (मांसव शब्दके परस्मित), सेना (संज्ञा अर्थमें), मिश्रुक, मुक, उलूक, खान्, पखन्, युगवरज और हलबन्ध ।

खण्डित (सं० त्रि०) १ भिन्न, अलग । २ बिन्न, कट हुआ । ३ द्विधाकृत, दो टुकड़े किया हुआ । इसका संस्कृत पर्याय—खिन्न, खून, क्षित, दित, छेदित, हत और हत है।

“चन्द्र कलहः सृजने इरिद्रता विकारलक्ष्मीः कमलेषु चक्षरा ।

सुखे प्रसारः मधनेषु सर्वदा यत्रो विधातुः कवचनि खण्डितम् ॥”

(शब्दां विनामनि)

४ खण्डिताङ्ग, डीनाङ्ग, टूटाफूटा, धमशाङ्गकार शातातपके मतमें दुष्टवादी परजन्ममें खण्डिताङ्ग होता है। इस पाप प्रायश्चित्तके लिये ब्राह्मणकी २ पल रीप्य और दो घट दुग्ध दिया जाता है। (शातातप) कोई कोई संप्रहकार 'खण्डित' के स्थल पर खण्डिक पाठ करते हैं।

खण्डितकर्ण (सं० पु०) खण्डिकर्ण, शर्कराकण्ड ।

खण्डिता (सं० स्त्री०) खण्डित-टाप् । किसी प्रकारकी नायिका । किसी नायिकाकी पति जब अथवा कामिनीके सम्बन्धविच्छेदसे चिड़ित हो उसकी पाले जाता, तो उस नायिकाकी हृदय प्रतिग्रथ हीनकलुषित दीजाता है। पण्डितकीर्ण उसी नायिकाको खण्डिता कहते हैं।

खण्डिता नायिकामें अस्फुट आवाज, चिन्ता, संताप, दीर्घनिद्रा, भ्रूणीभेद और अशुवातादि चिह्न प्रकटित होते हैं।

* चक्ररेज इसको 'यूक्स नोज' (Duke's nose) बनीत यक्षकी लक्ष्मी कहकरते हैं। यह केचन 'वेल्किटनकी' नासिकासे इस पराङ्गीकी तुलना की जाती है।

खण्डनी (सं० स्त्री०) खंडोऽस्या अस्तीति, खंड-इनि-
ङीप् । यद्वा खंडयति आत्मानं होपपर्वतसमुद्रादिव्य-
वच्छेदेन, खण्डि-णिनि-ङोप् । पृथिवी, जमान् ।

खण्डम (सं० पु०) खंड भावे इमनिच् । खंडता,
टुकड़े टुकड़े होनेकी हालत ।

खण्डी (सं० स्त्री०) खंडयति, खण्डि-णिनि । १ खंडक,
टुकड़े करनेवाला । खंडोऽस्यास्ति, खंड-इनि ।
२ खंडयुक्त, टुकड़ेवाला । (पु०) खंडयति आत्मानं
हिदलरूपेण । ३ वनमुह, जङ्गलो मोठ ।

खण्डी (सं० स्त्री०) खण्डि-प्रच् गौरादित्वात् ङीप् ।
वनमुह, जंगली मोठ ।

खण्डीर (सं० पु०) अपक्वश-खंडो शुंडादित्वात् रः ।
पीतमुद्ग, सोनामूंग ।

खण्डु (सं० स्त्री०) खंडयति, खण्डि-उच् । खंडक,
टुकड़े करनेवाला । यह शब्द परोक्षणादि गद्यान्तगत
है । इसके उत्तर चतुर्थमें तुञ् प्रत्यय होता है ।

खण्डुल—एक पेड़ । इससे गोंद जैसा रस निकलता है ।
गाय बखड़ेकी बीमार होनेसे इसकी पत्ती खिनायी
जाती है । खंडुलकी लकड़ी बहुत कीमत होती है ।
हालसे रस्सी बनती है । यह वृक्ष सिंचल और दक्षि-
णात्यमें ही अधिक देख पड़ता है । इसके पुष्पमें एक
प्रकार बीज रहता है । उसकी योग आदरसे खाते हैं ।
पुष्पके क्रिष्णरूपमें कण्टक और मध्य मध्य छिद्र होते
हैं । इसकी छाल कषाय और मज्जीवगुणविशिष्ट है,
मुखमें डालनेसे जाल रक्त देती है । घीसकालकी इससे
अपने आप दूध निकला करता है । उसे विलायत
भेजते हैं । दूध देखनेमें सख्ख और हरिद्राभ होता है ।
बड़ निकलने पर कुछ कड़ा हो जाता, परन्तु पानीमें
भिगोनेसे फूस उठता और नर्म पड़ता है ।

खण्डेराव गायकवाड़—बड़ोदेके एक राजा । १८५६
ई०की १८वीं नवम्बरकी पुत्रहीन राजा गणपतिराव
गायकवाड़के मरने पर उनके भ्राता खण्डेराव बड़ोदा-
के सिंहासन पर बैठे थे । थोड़े दिन पीछे ही राज्यमें
सिपाहियोंका विद्रोह पारस्य हुआ । उस समय इन्होंने
यथासाध्य अंगरेजोंकी सहायता की थी । बलवा ठण्डा
पड़ जाने पर अंगरेजोंने खण्डेराव पर विशेष अनुग्रह

प्रकाश किया । पहली सन्धिके अनुसार इन्हें अंगरेजोंकी
गुजराती अखारोही सेनाके व्ययकी प्रति वर्ष १ लाख
रुपया देना पड़ता था, परन्तु १८५८ ई० की १४वीं
जूनके पत्रमें इस व्ययभारसे अघ्याहति दी गयी ।
१८६२ ई०की ११वीं मार्चकी अंगरेजोंसे इन्होंने जो
समद पायी, उसमें गायकवाड़-राजवंशके लिये पुत्रा-
भाव पर दत्तक ग्रहणकी अनुमति आयी है । फिर
सन्धिमें गवर्नमेण्टने गायकवाड़की 'हिज हाइनेस'
(His Highness) उपाधिसे सम्बोधन भी किया है ।

१८६३ ई०की सुन पड़ा कि कोई उनके प्राण विनाश-
की चेष्टा करता है । सम्मानसे जाना गया कि वह
इनके भाई मरुहाररावका कार्य रहा । मरुहारराव
इसी पर कारागारमें डाल दिये गये और खण्डेरावकी
जीवित अवस्थामें बाहर निकल न सके ।

किसी सिपाहीकी अपमाना विद्रोही होने पर इन्होंने
हाथीके पैरके नीचे दबा कर मारनेका आदेश किया
था । इसीसे अंगरेज सरकार इन पर कुछ विरक्त हुई ।
१८६७ ई०की खण्डेरावने एक मन्त्री रखना चाहा
था । किन्तु बम्बई गवर्नमेण्टने इन्हें खेच्छामें मन्त्री
एसलिये नियुक्त न करने दिया, कि पहली अंगरेजोंसे
उसकी वास्तव कुछ कहा सुना न गया था । शेष अवस्था
पर शायद यह किसी कदर समितव्ययी और विस्वास-
प्रिय बन १८७० ई०की २८वीं नवम्बरकी कालमुखमें
पतित हुए ।

खण्डेराव होलकर—इन्दौरके प्रथम राजा । यह मरुहार-
रावके पुत्र रहे । १७५४ ई०की सूर्यमल जाटसे लोगमें
युद्ध करते समय खण्डेराव निहत हुए । मालेराव
नामक इनके एक पुत्र रहे । सुप्रसिद्ध पटवर्धनाबाई इन्होंने
खण्डेरावकी पत्नी थीं । मलहारराव देखो ।

खण्डेराय—१ परशुरामप्रकाश नामक स्मृतिसंग्रहकार ।
यह जातिके शाकदोषी ब्राह्मण, नीलकण्ठके कनिष्ठ
भ्राता और नारायण पंडितके पुत्र रहे । परशुरामके
आदेशसे निज ग्रन्थ रचना करने पर इन्होंने उसका
नाम 'परशुरामप्रकाश' रखा । ग्रन्थका दूसरा नाम
'आचारोक्त' है । २ सुभाषित-सुरद्रुमनामक संस्कृत
ग्रन्थकार । इनका अपर नाम वासवयतीन्द्र था ।

खण्डेल—राजपूताना-जयपुर राज्यकी तीरावती निजा-
मतका एक सुदूर राज्य और उसका बड़ा शहर। यह
नगर अक्षा० २७° ३७' उ० और देशा० ७५° ३०' पू० में
जयपुर शहरसे कोई ५५ मील उत्तर-पश्चिम अवस्थित
है। इसकी लोकसंख्या प्रायः ८१५६ है। खण्डेल
अपनी रंगी हुई चीजों और खिलौनों के लिये प्रसिद्ध
है। इसमें एक दुर्ग भी विद्यमान है। खण्डेल
राज्यका प्रबन्ध २ राजा करते और जयपुर-दरबार भी
७२५५०) रु० कर देते हैं।

खण्डेलवाल जैन—खण्डेला नगरमें सूर्यवंशी चौहान
खण्डेलगिरि राज्य करता था। उस समय जिनमेनाचार्य
५०० मुनियों सहित विहार करते हुए इस (खण्डेला)
नगरके अध्यानमें आ कर ठहरे। उक्त नगरकी अमल-
दारीमें ८४ गांव लगते थे। दैन्य कृष्ण दिनोंसे संपूर्ण
राजधानीमें भूग्न आर हैजा अत्यन्त फैल रहा था
जिससे हजारों आदमी मर चुके थे, और मर रहे थे।
रोगके प्रकोप और मरीको देख कर राजा बहुत भया-
तुर हो अपने ब्राह्मण गुरु तथा ऋषियोंके पास पहुँचा।
हाल सुन कर उन ब्राह्मण गुरु और ऋषियोंने उनको
नरमेधयज्ञ करनेकी आज्ञा दी और कहा कि, इसीसे
यह उपसर्ग दूर होगा। इस पर राजाने प्रियादोंकी एक
मनुष्य पकड़ लानेकी आज्ञा दी। प्रियादे ठूढ़ते ठूढ़ते
जंगलमें पहुँचे, वहाँ एक दि० जैन मुनि तपस्या कर
रहे थे। प्रियादे उन्हें ही पकड़ लाये। उनको नरका
धुलवा कर वस्त्राभूषण पहना कर यज्ञशालामें उपस्थित
किया। मुनि महाराजने उपसर्ग जान कर मौन धारण
कर लिया था। आखिर वेदोक्तमन्त्र पढ़ कर पुरोहित-
ने उन्हें हवनकुण्डमें स्नाहा कर दिया। परन्तु इससे
मरी रोग जरा भी न घटा, वल्कि दिन दूना रात
चौगुना बढ़ने लगे। नाना तरहके उपद्रव, अग्नि-
दाह, अग्निवृष्टि और प्रचंडपवन (भाँधी) चलने
लगे। प्रजा अत्यन्त व्याकुल हो राजाके पास आकर
रोने लगे। राजा भी चिन्ताके मारे बेहोश हो
गया, मूर्च्छाके होते ही राजाने स्वप्नमें उन दिगम्बर
मुनिकी देखा, जो कि अग्निकुण्डमें स्नाहा किये गये थे।
उस ही दिन वह अमीर हमरावीके साथ नगरके

बाहर निकला और वहाँ पहुँचा, जहाँ ५०० मुनि
सहित जिनमेनाचार्य विराजते थे। वहाँ दिगम्बर
मुनियोंको ध्यानाकुल देख कर उसे बड़ा विस्मय
हुआ, वह तुरन्त ही भक्तिवश होकर उनके चरणोंमें
गिर पड़ा और नगरमें शान्ति हो ऐसी प्रार्थना करने
लगा। इससे विनययुक्त और गदगद कंठसे कहे हुए
वचनोंको सुनकर जिनसेन आचार्यने कहा—“हे
राजन्! तू दया धर्मकी वृद्धि कर”। राजा बोला—
“हे महाराज, मेरे देशमें उपद्रव क्यों हो रहा है?”
तब उन अवधिज्ञानके धारक आचार्यने कहा—“हे
राजन्! तू और तेरी प्रजा मिथ्यात्वसे अन्ध हो कर
जीवहिंसा करने लगे हैं तथा मांसभक्षण और मदिरा
पान कर अनेक पापाचरण करने लगे हैं, इसीलिए तेरे
देशमें महामारी फैली थी, और उसका विशेष बढ़नेका
कारण यह है कि, तूने शान्तिके वहानेसे नरमेधयज्ञमें
दिगम्बर मुनिका होम कर सर्व प्रजाको कष्टमें डाला।
बस इसी लिए और दूसरे भी उपद्रव फैल रहे हैं।
तुझे यह भी स्मरणमें रहे कि, वर्तमानमें जो जीवहिंसासे
अनेक उपद्रव हो रहे हैं यह तो एक सामान्य बात है,
इसकी विशेषता तो तुझे दूसरे भव (परलोक) में
विदित होगी, अर्थात् दूसरे भवमें तू नरकादिके महा
कष्ट भोगेगा। क्योंकि जीवहिंसाका फल कठोर ही
होता है।” मुनिके ये वचन सुन कर राजाने अपने
क्रिये दृष्टे पापके लिये बड़ा पश्चात्ताप किया और
मुनिसे सत्यधर्म पूछा। तब दिगम्बराचार्य बोले—“हे
राजन्! तूने कामोंसे अच्छे फलकी प्राप्ति कदापि
नहीं हो सकती। तू हिंसा करना छोड़ दे। अपने
देशमें हिंसात्मक सब काम बन्द करा दे। पंच अणुव्रत
धारण कर सम्यक्ती बन कर सुखी हो। इस उपदेशको
सुन कर राजाकी बड़ा आनन्द हुआ। जिनमन्दिरोंमें
पूजा और शान्ति-विधान कराया; तथा खुद भी उसमें
शामिल हुआ। उपद्रव धीरे धीरे शांत होने लगा। बस,
उसी समय राजाने चौरासी गोत्रों सहित (८३ सम-
रावधोर १ खुद, इस प्रकार ८४) दि० जैन धर्म धारण
किया। ऊपर कहे हुए ८४ गांवोंमेंसे ८२ गांव राज-
पूतोंके और २ गांव सोनारोंके थे। वे ही लोग चौरासी

गोत्रवाले सरावगी (दिगम्बर जैन धर्मके धारक) कहाये। इन गांवोंके अनुसार ही गोत्रोंके नाम रखे गये। राजाका साह गोत्र था। येही खंडेलवाल जैन हैं।

(जे० सं० प्रि० ६७५)

खण्डेलवाल बनिया—वैश्यजातिमें। इनकी उत्पत्ति खंडेलवाल ब्राह्मणों, खण्डु, कृषि तथा खंडेल स्थानके अधिवास आदि कई प्रकारसे बतलायी जाती है। फिर एक विद्वान्ने कहा है—

चार क्षत्रिय भाई थे। उन्होंने एक दिन शिकार करने जा जङ्गलमें किसी महात्माका पालू हरिण मार डाला। महात्मा उन्हें शाप देने लगे। उस समय उन्होंने महात्माके कहनेसे क्षत्रियत्व परित्याग करके वैश्यत्वको ग्रहण किया था। खंडेलवाल बनिये ७२ गोत्रोंमें विभक्त हैं। जयपुरमें इनकी संख्या अधिक है। बहुतसे खंडेलवाल जैन सम्प्रदायभुक्त हैं।

खण्डेलवाल ब्राह्मण—एक प्रकारके गौड़ ब्राह्मण। यह जयपुरमें अधिक रहते हैं। इनका खानपान छहो ज्ञातियोंमें चलता, परन्तु आदान प्रदान चलन रहता है। किसी किसीके कथनानुसार 'खंडेल' के अधिवासी होनेसे ही वह खंडेलवाल कहलाये। एक विद्वान्ने इनके खण्डु, कृषिका सम्मान भी बतलाया है। इनके ८४ भेद तक मिलते हैं।

खण्डोपजा (सं० स्त्री०) खण्डशर्करा, चीनी।

खण्डोया (खंडवा)—मध्यभारतके नीमार जिल्लाका प्रधान-नगर। यह अक्षा० २१° ३१' एवं २२° २०' उ० और देशा० ७६° ४' तथा ७६° ५८' पू० पर अवस्थित है। क्षेत्रफल २०४६ वर्गमील है। लोकसंख्या २ लाखके करीब है। इस नगरमें एक जिला और ४३० गांव लगते हैं। पहले भारतके उत्तर और पूर्वभागसे दक्षिणात्य जानेकी यहाँ राह चलना पड़ता था। जी० आर्द० पी० रेलवेका यहाँ एक स्टेशन है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक टलेमिने खंडवेका नाम 'कम्बवन्द' लिखा है। अबू-रेहानकी 'तीवरीख' हिन्दू किताबमें यह कण्डरीहा नामसे वर्णित है। आजकल यहाँमें दो बड़े रास्ता हैं। बीचमें चौक पड़ता है। सड़ककी दोनों तरफ दो मस्जिदें मकान खड़े हैं। सिवा इसके दूसरी

छोटी छोटी गलियां भी हैं। पहाड़ पर निर्मित होनेके कारण यह पार्श्वस्थ स्थानोंसे ऊँचा है। नगरके उत्तर-पश्चिम एक समचतुष्कोण पुष्करिणी है। उसका एक एक बाहु ६८ हाथ लम्बे होगा। इस तालाबकी पश्चिम ओर कइते हैं। इसके पार्श्वमें प्रस्तरनिर्मित प्राचीर है। प्राचीरमें स्थान स्थान पर पाले (तिखास) जैसी बड़ी बड़ी जगहें हैं। उनके ऊपर छोटी छोटी शिलालिपि देख पड़ती है। उसमें ११८८ संवत् लिखा है। कहीं भेरव, कहीं नन्दीकी मूर्ति विद्यमान है। पश्चिम ओर किसी मन्दिरके एक स्थानमें कुर्सीके ऊपर एक खोदित लिपि है। वह पानीके भीतर चली गयी है। लोगोंकी विश्वास है कि उस पत्थरके नीचे धनरत्न भरा है। कहते हैं—किसी समय नागपुर, होशङ्गाबाद और खंडवेके तीन बलवान् लोग उस पत्थरको तोड़ने लगे। पत्थर तोड़ते ही तोड़ते वह पीड़ाग्रस्त हुए और मर गये। लोगोंका कहना है कि अधिष्ठात्री देवीने क्रोध हो उन्हें मार डाला था। पश्चिम ओर अनेक शिलालेख हैं। जिन्हा-वट अधिकांश मिट गयी है। "मूर्तिजलश्याम" और "मूर्तिश्री" जैसे कई एक नाममात्र पढ़े जाते हैं।

इस कुण्डके पास ही पद्मेश्वरका एक मन्दिर है। उसमें पद्मेश्वरकी मूर्तिको छोड़ कर और भी कई एक मूर्तियां देख पड़ती हैं। यह मन्दिर नया-जैसा समझा जाता है। सम्भवतः पद्मेश्वरका एक पुरातन मन्दिर रहा, उसीको तोड़ कर नया मन्दिर बनाया गया। यहाँसे उत्तर-पश्चिमदिक्की गमन करने पर भेरवताल नामक एक सरोवर मिलता है। यह तालाब एक एक ओर ४०० हाथसे कम नहीं। नगरसे दक्षिण-पश्चिम कुलालकुण्ड नामक पुष्करिणी है। इसकी एक एक दिक् ३० हाथसे अधिक न होगी। दक्षिण पश्चिमकी रेलवेके कोठे पुलके पास भीमकुण्ड और उत्तर-पश्चिमकी सूर्यकुण्ड है। कुलालकुण्डके पास तुलजा देवीका मन्दिर बना है। प्रति पौषमासकी पूर्णिमाको यहाँ मेला लगता है। इसी मन्दिरके पास एक प्रकांडगणेश-मूर्ति है। उसके शृङ्ख पर कई एक छोटी छोटी और मूर्तियां देख पड़ती हैं।

कोई कोई खंडवेको महाभारतकी "खांडव" जैसा समझता है। खण्ड देवी।

इस शहरमें १२वीं वर्ष का पुराना एक और नील कई जैन-मन्दिर भी तथा धर्मशाला है।

खण्डोर्वा—देवताविशेष। दक्षिणात्यमें इनकी उपासना विशेष प्रचलित है। पूना पञ्चलके हिन्दू विश्वास करते हैं कि खंडोवा दक्षिणात्यकी अधिष्ठात्री देवता है। क्या ब्राह्मण क्या चमार सभी इनकी उपासना किया करते हैं। खण्डोवा शब्दका अर्थ खांडा या तलवार की देवता है। अर्थात् भैरवकी भांति यह तलवार लिये देव रक्षा किया करते हैं। जेजूमें इनका बड़ा मन्दिर है। वहां लिङ्गमूर्ति प्रतिष्ठित है। एतद्व्यतीत विभिन्न मूर्तियों में भी इनकी पूजा होती है। कहते हैं कि मल्लारिरूप में अश्वारोहण पर जाके उन्होंने मणि और मल्ल नामक असुरकी मारा था। उसीसे कहीं कहीं इनकी अश्वारूढ़ मूर्ति भी है। घोड़े पर खंडोवा और पत्नी महालसा बाईं दोनों बैठे हैं। घोड़े के साथ एक कुत्ता भी रहता है। कुत्ता वाहन-जैसा रहनेसे कुक्क, खण्डि नामसे खंडोवाकी पूजा चढ़ाना पड़ती है। फिर हरिद्रामें अंश जैसा रहनेसे हरिद्रा वृक्ष भांडार नामसे भी इनकी पूजते हैं। खंडोवामूर्ति धातुसे गठित होती है, प्रस्तर वा काष्ठसे निर्माण करनेका निषेध है। इनकी पूजा करनेसे विघ्न निवारण होता और पीड़ा इत्यादि दूर रहते हैं। रामासी लोग इन देवताकी बड़ी भक्ति करते हैं। वह यदि जलदी हाथमें ले कोई बात करने कहते, तो उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं।

पूर्वकालको खंडोवा मल्लारि नामसे पूजित होते थे। आनन्दगिरिके शहरविजयमें मल्लारि-मतावलम्बियोंका प्रसङ्ग आया है। (शहरविजय २८ पं०)

खण्डौष्ठ (सं० पु०) ओष्ठरोगभेद, होठकी एक बीमारी। वातसे फट कर होठके दो टुकड़े हो जानेका नाम खण्डौष्ठ है। (वायट)

खतंग (हिं० पु०) कपोतभेद, किसी किस्मका कबूतर। इसका रंग, कुक मैला होता है।

खत (अ० पु०) १ पत्र, चिट्ठी। पत्रव्यवहारकी 'खत-किताबत' कहते हैं। २ लेखनप्रणाली, लिखावट, हफ्ते। ३ रेखा, धारी। ४ श्मश्रु, दाढ़ीके बाल। ५ क्षौरकर्म, हजामत।

खतम (अ० वि०) पूर्ण, समाप्त, पूरा।

खतमाल (सं० पु०) खे आकाशे तमाल रव। १ धूम, धूवां। २ मेघ, बादल।

खतमी (अ० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक पौदा। यह गुल-लैरुकी जातिकी रहती और काश्मीर तथा पश्चिम हिमालयमें उपजती है। इसमें नील, रक्तवर्ण आदि कई रंगके फूल आते हैं। परन्तु श्वेतपुष्पयुक्त वृक्ष सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। खतमीकी पत्ती पीस कर फोड़ें पर लगाते और बीज तथा मूलको औषधमें काम लाते हैं।

खतमीखतमा (हिं० पु०) अन्त, अखीर, काम पूरा जैसा होनेकी हालत।

खतर, खता देखो।

खतरम्मा (हिं० पु०) १ खत्रियोंका सम्प्रदाय वा समाज। २ खत्रियोंसे भरी हुई जगह, खतराना।

खतरा (अ० पु०) १ भय, खौफ, डर। २ आशङ्का, शक।

खतराना (हिं० पु०) खत्रियोंका मोहल।

खतरानी (हिं० स्त्री०) खत्रीजातीय स्त्री, खत्री कौमकी औरत।

खतरैटा (हिं० पु०) खत्री, खत्री जातिका नौजवान।

खता (अ० स्त्री०) १ अपराध, कुसूर, भूलचूक। २ छल, कपट, फरेब।

खतावार (फा० वि०) अपराधी, कुसूरवार, दोषी।

खति (हिं०) खति देखो।

खतियाना (हिं० क्रि०) रोजाना आमद-खर्च और खीद फरोखत आदिको खातेमें अलग अलग चढ़ाना।

खतियानी (हिं० स्त्री०) १ खाता, खतियानेकी बच्ची। २ खतियान, खतियानेका काम। ३ पटवारीका एक कागज। इसमें हर एक आसामीकी अमीनका रकबा और लगान वगैरह दर्ज रहता है।

खत्ता (हिं० पु०) १ गर्त, गड्ढा। २ खौं, अनाज रहनेका गड्ढा। ३ नील या शीरा भरनेकी जगह।

खत्री (हिं० पु०) भारतकी एक जाति। खत्री लोग बड़े विद्वान और धनी होते हैं। पञ्जाब इनका प्रधान निवासस्थान है, परन्तु राजपूताना, युक्तप्रदेश आदि अन्य प्रांतोंमें भी इनकी प्रधानता पायी जाती है।

खत्री अपनी सुन्दरताके लिये प्रसिद्ध हैं। यह लोग अपनेको 'क्षत्रियवर्ण' बतलाते और "खत्री" शब्दको 'क्षत्रिय' का अपभ्रंश ठहराते हैं। ध्वज देखो।

२ कपड़े पर बैल बूटे छापनेको लकड़ीका एक ठप्पा 'खत्रीपरदेदार' कहलाता है। इसकी लम्बाई तीनसे ६ इंच तक रहती है।

खत्रीब्रह्म—एक हिन्दू जाति। इनकी ब्रह्मखत्री भी कहा जाता है। यह लोग राजपूतानेमें प्रायः रहते हैं। कहते हैं, परशुरामसे डर करके कितने ही क्षत्रिय सारासुर ऋषिके पास जा छिपे थे। परशुराम जब उनके छोड़में उक्त ऋषिके पास पहुँचे, उन्होंने ब्राह्मण बतला करके इनके साथ खा लिया। छापना, रंगना आदि इनका काम है।

खद (सं० पु०) खद बाहुलकात् भावे अप्। १ स्थिरता, ठहराव। २ वध, कत्ल।

खद (हिं० पु०) सुसज्जमान।

खदन (सं० स्त्री०) भोजन, खाना।

खदबदाना (हिं० क्ति०) खदबद करना, उबलना, चुरना।

खदरा (हिं० पु०) १ गह्वा। २ बछड़ा। (वि०) ३ बेकाम, निकम्मा।

खदान (हिं० स्त्री०) खानि।

खदिका (सं० स्त्री०) छे भर्जनपात्रादूर्ध्व आकाशे दीयते, ख-दी-क टाप-ततः संज्ञार्थे कन् अत इत्वच्। लाज, लाई।

खदिजा—सुहृन्मदकी पहली पत्नी। यह एक अरब देशकी सम्प्रतिशाही विधवा रमणी रहें। अरब देशकी प्रथाके अनुसार इनका वाणिज्य व्यवसाय चलता था। खदिजाके वाणिज्यका द्रव्यादि उष्ट्रके पृष्ठ पर लद कर अरब और तुर्कस्तानके अन्तर्गत सीरिया प्रदेशके बजारोंमें जाकर बिकता था। सुहृन्मद उस समय लड़के रहे, मैदानमें पशु चराते घूमा करते थे। खदिजाने एक उष्ट्रचालकका प्रयोजन पड़ने पर सुहृन्मदकी उसी काममें लगा लिया। कार्यकी दक्षता देख कर खोले दिनों बाद उनके पदकी उन्नति की गयी। खदिजाने और और पण्डितोंका समस्त भार उन्होंने ऊपर

ढाला था। फिर सज्जनता और कर्तव्यनिष्ठासे सन्तुष्ट हो कर सुहृन्मदकी 'बल घामीन' उपाधि दिया। 'बल घामीन'का अर्थ भला आदमी है। सुहृन्मदका वयस उस समय २५ बत्सर रहा। उनका कोमल सुन्दर गठन यौवनकी पूर्णतामें विकसित हो कर मनोहर बन गया था। खदिजाने अपना वयस ४० बत्सर होते भी रूप तथा गुणसे सुन्ध हो उन्हें पतित्वमें वरण किया। विवाहके ११ वर्ष पीछे उनके फातिमा नाम्नी एक कन्या हुई। क्रमशः और भी सन्तान-सन्तति उत्पन्न हुई थी। किन्तु ३ कन्या-पौकों छोड़ कर दूसरे सभी सन्तान शोशवमें मर गये। ६१८ ई०को ६२ वर्षके वयसमें खदिजाका मृत्यु हुआ। इनका कब्रस्तान आज भी देख पड़ता है। तीर्थयात्री उसको देखने जाया करते हैं। कब्रके एक पत्थर पर कुरानकी एक आयत खुदी है। पीछेकी सुहृन्मदके अन्यान्य रमणियोंसे विवाह करते भी इसका प्रमाण पाया जाता है कि उनसे उनका बड़ा प्यार था।

सुहृन्मद देखो।

खदिर (सं० पु०) खद-किरच् निपातने साधुः। चरित-प्रियरिप्रियलखिरकिरखिरखदिराः। उष्० १।५४। १ खनामख्यात वृक्ष, खेरका पेड़। इसका संस्कृत पर्याय—मायत्री, वालतनय, दन्तधावन, तिक्तसार, कण्टकीद्रुम, वाक्-पत्र, खद्यपत्नी, सितित्तम, सुशल्य, वक्रकण्ठ, यन्त्राङ्ग, जिह्वाशल्य, कण्ठी सारद्रुम, कुष्ठारि, बहुसार, मेध, वालपत्र, रक्तसार, कर्कटी, जिह्वाशल्य, कुष्ठवृत्त, वाक्-पत्रक और यूपद्रुम है। खदिरकी दक्षिणमें कठकिर, पञ्जाबमें खरेव, तैलङ्गमें पोदलामनु, तामिलमें बोह-लय, सिन्धुमें किहिरि, ब्रह्ममें शविन और वैशालिख अफ़रिजोमें Acacia Catechu कहते हैं। यह वृक्ष १० हाथ तक बढ़ता है। खदिर भारतकी समतल भूमि और पार्वत्य प्रदेश सर्वत्र ही उत्पन्न होता है। इसका काष्ठ बहुत कडा और टिकाऊ है, जसद घुन नहीं जगता। इससे कड़ी, बरगा, ठाल और तलवारका हत्या, हथ, रुईका पेच, गाड़ी आदि नानाविध द्रव्य प्रसृत होते हैं। ज्यैष्ठ मासाद मासको इसमें फूल आता और शीतकालको बीज पक जाता है। सिन्धुखियोंकी

विश्वास है कि उसका निर्यास रक्तपरिष्कारक होता है। इसके कायसे कत्था निकलता है। अफ़ुरेजोमें इसका नाम Catechu or Terra japonica है। इसका अभ्यन्तरस्थ सार लेकर महीके बर्तनमें पकानेसे परिष्कार सुरा निकलती है। इसका सार कपड़े आदि रङ्गनेमें काम आता है। युरोपीय चिकित्सकोंके मतमें यह सङ्कीचक और व्रण, उपदंश तथा खतरोग पर फलदायक है। खदिर सविच्छेद ज्वर, शीताद, साक्षा निःसरण, गलेके कागकी शिथिलता, तालुके पार्श्व-ग्रन्थिकी विवृद्धि आदिरोगोंमें उपकारी होता है। श्वेत-प्रहर और अष्टगुदर होनेसे इससे पिचकारी लगायी जा सकती है।

वैद्यक मतमें खदिर—तिक्तारस, शीतल, पाचन और पित्त, कफ, कुष्ठ, कास, रक्तदोष, शोथ, कण्डू, तथा व्रणनाशक है। (राजनिघण्टु) राजवल्लभने इसे विसर्प, वेदना, मेह और मेदनाशक कहा है। भाव-प्रकाशको देखते खैर शीतवीर्य, दन्तहितकारक, तिक्त-कषाय रसयुक्त और कण्डू, कास, अरुचि, मेददोष, क्षिप्ति, प्रमेह, ज्वर, व्रण, शिथिल, शोथ, आमदोष, पित्त, रक्तदोष, पाण्डू, कुष्ठ तथा कफ नाशक होता है। खदिर दो प्रकारका है—रक्तसार और श्वेतसार। रक्त-सारका बात पहले ही लिख चुके हैं। श्वेतसारकी बलती बोलीमें पाण्डू कत्था कहते हैं। यह वर्ण-परिष्कारक और मुखरोग, रक्तदोष तथा कफनाशक है। (भावप्रकाश) शतपथब्राह्मण (११।४।४।८)में लिखा है कि प्रजापतिके प्राण शरीर छोड़ने पर उनके अस्थिसे खदिर उत्पन्न हुआ था; उसीसे यह इतना कठिन हो गया है।

खदिति हन्ति शत्रून्। २ इन्द्र। खे आकाशे दीर्घ्यते दृष्टापूर्तकारिभिर्यतः अपादाने किरच्। ३ चन्द्र। जी दृष्टपूर्तादि पुण्य कर्मोका अनुष्ठान करते, वे अपने उसी पुण्यबलसे जलमय शरीर धारण करके चन्द्रलोकमें जा वसते हैं। पुण्यके अवसानकी चन्द्रलोकसे आकाशमें पतित हो फिर वरुण लोकमें आ जाते हैं। इसी कारण पूर्वप्रदर्शित व्युत्पत्तिके अनुसार खदिर शब्दसे चन्द्रमण्डलका बोध होता है। अरोग देखी। ४ कोई

नृषि। यह शब्द अश्वादि गणान्तर्गत है। गोत्राप-त्यर्थमें इसके उत्तर घञ् होता है। ५ शाकमेद, कोई मन्त्री।

खदिरक (सं० पु०) खदिर एव स्वार्थं कन्। खदिर, खैर।

खदिरकषाय (सं० पु०) श्लेष्मविशेष, खैरका काढ़ा। लोह और सुस्तचूर्णके साथ इसको सेवन करने पर हृत्पीडक रोग विनाश होता है।

खदिरपत्रिका (सं० स्त्री०) खदिरस्य पत्रमिव पत्रमस्याः, बहुव्री० कप्-टाप् अत इत्वञ्। १ परिखदिर, एक पेड़। २ लज्जालुका, लाजवंती।

खदिरपत्री (सं० स्त्री०) खदिरस्य पत्रमिव पत्रं यस्यः, बहुव्री०, विकल्पेन कप् प्रत्ययः ततः ङीप्। लज्जालुका, लज्जाधुर।

खदिरमय (सं० त्रि०) खदिरस्य विकारः, खदिर-मयट्। खदिरकाष्ठनिर्मित, खैरकी लकड़ीका बना हुआ।

खदिरवटी (सं० स्त्री०) मुखरोगहरी वटिका, मुँहकी बीमारी दूर करनेवाली एक गोली। १०० पल खदिर ६४ शरावक जलमें पाक करके ८ शरावक पानी बचने-से उतार लेते हैं। फिर इसे कपड़ेसे छान दोबारा पकाया जाता है। घनीभूत होने पर इसमें जाबित्री, कर्पूर, गुवाक, काकोलो और जायफलचूर्ण आठ आठ तोले डालनेसे यह वटी तैयार होती है। (सारकोशरी)

खदिरवण (सं० स्त्री०) खदिराणां वनम्, णत्वञ् इ-तत्। खदिरका वन, खैरका जङ्गल।

खदिरवल्ली (सं० स्त्री०) १ परिखदिर, महीका फल।

खदिरसार (सं० पु०) खदिरस्य सारः निर्यासः, इ-तत्।

खदिरनिर्यास, कत्था। यह कटु, तिक्त, उष्ण, रुच्य, दोषन और कफ, वात, व्रण तथा कण्डूरोगघ्न होता है। (राजनिघण्टु)

खदिरा (सं० स्त्री०) खदिरस्तत् पत्राकारोऽस्त्यस्याः पत्ते, खदिर-अच्-टाप्। लज्जालुका, लाजवंती।

खदिराङ्गार (सं० पु०) खदिरकाष्ठाङ्गार, खैरका कोयला।

खदिरादिपञ्चतिलकघृत (सं० स्त्री०) कुष्ठका घृत, कोड़का एक घी। ४ शरावक घृत, पञ्चतिलक प्रत्येक दश दश पल और ६४ शरावक वारिको एकत्र पाक

करके ८ शरावक शेष रहने पर उतार लेना चाहिये। फिर खदिर, भारग्वध, त्रिकटु, त्रिष्ठुत, चित्रक, दन्ती, पटोल, त्रिफला, निम्ब, हरिद्रा, सोमराजी, कटुका, अतिविषा, पाठा, लायन्ती, दुरालभा, कुष्ठ, करञ्जबीज, शारिवाहय, इन्द्रयव, भस्मातकास्थि, विडङ्ग और गुग्गुलु दो दो तोले डालनेसे यह प्रस्तुत हो जाता है। खदिराष्ट (सं० पु०) औषधविशेष, कोई दवा। खदिर और त्रिफलाके काष्ठ का नाम खदिराष्ट है। महिषघृत और विडङ्गके साथ पान करने पर यह भगन्दर रोग की विनाश करता है। (वैद्यक)

खदिराष्टक (सं० पु०) मसूरिकाधिकारका एक काष्ठ। खदिर, त्रिफला, निम्ब, पटोल, अमृता और वासक आठ पदार्थोंका नाम खदिराष्टक है। इसका काष्ठ पीनेसे हाम, वसन्त, कुष्ठ, विमर्ष, विस्फोट और कण्डू, प्रभृति विनष्ट होते हैं। (चक्रवर्त)

खदिरिका (सं० स्त्री०) खदिरः खदिरसेन तुल्यो रसोऽस्यास्याः, खदिर-ठन्-टाप्। १ लाक्षा, लाह, लाख। २ लज्जालुका, लाजवंती।

खदिरौ (सं० स्त्री०) खट-किरच् गौरादित्वात् ङीष्। १ वराहक्रान्ता। २ लज्जालुका, लाजवंती। इसका संस्कृत पर्याय—नमङ्गारी, गण्डकाक्षी, समङ्गा, गंडकारी, शमीपत्ता, रत्नपत्ता, अञ्जलिकारिका और रास्ना है। ३ लताविशेष, ढङ्गजोड़।

खदिरौय (सं० त्रि०) खदिरस्य सन्निहितो देशादिः, खदिर चातुरर्थिक क। खदिरका निकटवर्ती (देशादि)।

खदिरौवोज (सं० स्त्री०) अशोकबीज।

खदिरौपम (सं० पु०) खदिर उपमा यस्य, बहुव्री०। १ वरूँरकवृक्ष, बबूलका पेड़। २ कदर, पापड़ी कत्या। खदी (हिं० स्त्री०) दृणविशेष, एक घास। यह तलाबोंमें उपजती है।

खदीव (फा० पु०) मिसरके अधिपतिकी उपाधि।

खदुका (हिं० पु०) १ ऋण लेकर व्यापार करनेवाला, जो कजेंसे रोजगार चलाता हो। २ ऋणघस्त, कर्जो।

खदुहा (हिं० पु०) तुच्छ वा कुछ व्यवसायी मनुष्य, खोटा आदमी।

खदुरक (सं० पु०) खद बाहुलजात् जरच् ततः संज्ञायां

कन्। १ ऋणविशेष। यह शब्द शिवादि गणके अन्तर्गत है। इसके उत्तरको अपत्य अर्थमें अपन् प्रत्यय आता है। २ वामन, बीना आदमी।

खदूरवासिनी (सं० स्त्री०) खे आकाशे दूरे वसति, वस-णिनि ततो ङोप्। एक बुद्धशक्ति।

खदेरना (हिं० क्ति०) भगाना, पीछे पड़ना, हटाना।

खहर (हिं० पु०) गजी। हाथसे कते सूतेसे करघासे बुना हुआ कपड़ा।

खय (सं० त्रि०) खटाय क्तिम्, खट-यत्। उगवादिभोग्यम्। पा ३।१।२। स्थिरताके विषयमें हितकर।

खयात्री (सं० स्त्री०) खयं पत्रमस्व, बहुव्री० ततो गौरादित्वात् ङीष्। खदिर, खैर।

खद्योत (सं० पु०) खे आकाशे द्योतते, द्युत-अच्। १ कौटविशेष, जुगनू। इसका संस्कृत पर्याय—ज्योतिरिङ्गण, खद्योति, प्रभाकीट, उपभूर्यक, ध्वात्मोज्ज्वल, तमोमणि, दृष्टिबन्धु, तमोज्योतिः, ज्योतिरिङ्ग और निमेषक है।

“सूर सूर्यं तुलसी शशी उदयगण केशवरास।

अथके कवि खद्योत सम जहं तदं करत प्रकाश ॥”

खं आकाशं द्योतयति प्रभायुक्तं करोति, ख-द्युत-णिच्-अच्। २ सूर्य। (भागवत ४।२।१०)

खद्योतक (सं० पु०) खद्योत इव कायति, कै-क। यहा खद्योत संज्ञार्थ कन्। १ कोई विषाल फल, किसी किस्म-का जहरीला मेवा। फलविष देखो। स्वार्थ कन्। २ सूर्य।

खद्योतन (सं० पु०) खं आकाशं द्योतयति, द्युत-णच्-व्यु। सूर्य।

खधूप (सं० पु०) खं आकाशं धूपयति, धूप-अण् उप-पदम्। आकाशगामी अग्निशिखायुक्त पदार्थविशेष।

खन (हिं० पु०) १ क्षण, सहमा। २ समय, वक्त। ३ खंड, मञ्जिल, तल्ला। ४ वृत्तविशेष, कोई पेड़। ५ अस्त्रभेद। ६ रूपयेकी आवाज।

खनक (सं० पु०) खन-वुन्। विवर्णित्वम्। पा ३।१।४५। १ मूषिक, चूहा। २ सन्धितस्कर, नक़्कजन, संध करने-वाला चोर। ३ वनमूषिक, जंगली चूहा। ४ आकर, खान, खर्चादिकी उत्पत्तिका खान। (भारत ३।१५) (लि०) ५ भूमिविदारक, जमीन खोदनेवाला।

६ भूतत्वज्ञ, जमीनका पसली डाल जाननेवाला ।

७ स्वर्णादिको उत्पत्तिका स्थान समझनेवाला, जो सोना निकालनेकी जगहकी परीक्षणता हो ।

खनकना (हिं० क्रि०) खन खन होना, खन खनाना, बजना ।

खनकाना (हिं० क्रि०) खनखन करना, बजाना ।

खनखजूरा (हिं० पु०) शतपदी, कानखजूरा ।

ख-खना (हिं० वि०) खन खन शब्दयुक्त, जिससे खन खनाहटकी अवस्था निकले ।

खनखनाना (हिं० क्रि०) १ खनकना, खन खन होना ।

२ खनकाना, खनखन करना, बजाना ।

खनन (सं० क्तो०) खन-खुट् । १ खानकरण, गड्ढा खोदना । २ पाकरसे धातु, मणि प्रभृतिका निकास ।

खनना (हिं० क्रि०) १ खनन करना, खोदना । २ कोड़ना, गोड़ना ।

खननीय (सं० क्तो०) खन-घनीयर् । खनन किया जानेवाला, जो खोदने लायक हो ।

खनपान (सं० पु०) अनुश्रवणीय एक क्षत्रिय ।

खनबाखां—पञ्जाबकी शतद्रु नदीका एक नाला । नदीमें बाढ़ आनेसे उसका पानी इसी नालेसे बहा करता है । पूर्वकी यहाँ एक स्वतन्त्र नदी रही । अब सूख गयी है । शतद्रु नदीसे एक नहर निकाल इस पुरानी नदीमें मिला दी गयी है । इससे उसका जल पुरातन नदी-गर्भमें बहता है । कहते हैं कि सम्राट् अकबरके समय खाखानन इस प्रदेशके जमीन्दार रहे । शायद उन्होंने यह नहर कटायी होगी ।

१८३८ ई०की इसका मुंहाना बन्द हो गया था । महाराज रणजितसिंहके पुत्र खड्गसिंहने अन्यान्य जमीन्दारोंमें रुपया इकट्ठा करके फिर उसे खोलवा दिया ।

१८४३ ई०की महाराज शेरसिंहने एकवार अच्छी तरह खोदवाके इसकी कृषिकार्यका व्यवहारोपयोगी बनाया था । उसी समय नहरका पानी कृषिकार्यमें व्यवहार करनेके लिये मूल्य भी निर्धारित हुआ । फिर प्रदेशके अंगरेजोंके हाथमें आनेसे यह नहरविभागकी सौंपा गया है । यह नहर लाहौर जिल्लेके बीच मामोकी

नामक स्थान पर शतद्रुनदीमें आरम्भ हो धापाई तक गयी है ।

खनयित्री (सं० स्त्री०) खन-णिच् छद्मभावः ततः लृच् डीप् । अस्त्रविशेष, खन्ता । नारदपञ्चरात्रमें याज्ञा-कालकी खनयित्री चलानेका विधान है—

“खनयित्री यथा वाता जयाय” युद्धकाण्डम् ।

पञ्चवर्षीयकयुता चालनीया पुरःस्थिता ॥” (नारदपञ्चरात्र)

खना—एक विदुषी रमणी । प्रवाद है कि उन्होंने सिंहल-द्वीपमें जन्मग्रहण किया था । फिर प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् मिहिरके साथ इनका विवाह हुआ । मिहिरके पिता ज्योतिःशास्त्रमें प्रतिशय निपुण रहे । इनके जन्म पीछे उन्होंने गणना करके देखा कि मिहिरका एक वत्सर मात्र परमायु था । उन्होंने खचलुसे पुत्रका मृत्यु देखना न चाहा और एक ताम्रपात्रमें लड़केकी रखुके समुद्रमें बहा दिया । दैवक्रमसे यही पात्र जाकर सिंहल-द्वीप पहुँचा । कई एक राजसिंघोंके साथ खना खान कर रही थीं, ठठात् एक पात्रमें सुन्दर बालकको देख खींच लायीं । उन्होंने पहिले ही राजसिंघसे ज्योतिः-शास्त्र पढ़ा और उसमें इन्हें प्रतिशय दक्षता रही । खनाने अपने विद्यावलसे गिनके निकास कि उस बालकका परमायु १०० वत्सर था, उसको पिताने भ्रममें पड़कर उसको परित्याग किया । यह बालकको प्रतिपालन करने लगीं । राजसिंघोंके पास उसने भी ज्योतिःशास्त्र अभ्यास किया था । फिर इन्होंने उससे विवाह कर लिया । बहुत दिन पीछे मिहिर इनके सुखसे अपना वृत्तान्त सुन जन्मभूमि देखनेकी उत्सुक हुए । खनाने भी उनका अनुगमन किया था । वह चलते समय ज्योतिषकी पोथियां संग्रह करके इस देशकी खेती पायी । राजसिंघोंने कितने ही दौराकर दिखाये थे, जिससे कई किताबें बिगड़ गयीं । उन्होंने इस देशमें पा पितাকে पास जाकर अपना परिचय दिया । परन्तु उन्होंने कुछ भी सुना न था । वह फिर अपने पुत्रका प्रायु गिनने लगे और १ वत्सरसे अधिक इस बार भी निकास न सके । उस समय खनाने कहा था—किसका वार और किसकी तिथि, जन्मनक्षत्रसे हिसाब लगा कर प्रायु देखिये । इनकी वैसी बातें सुन कर मिहिरके

पिताजी भ्रान्ति मिट गयी, उन्होंने मिहिर और खनाको परम समादरसे ग्रहण किया।

उपसृक्त प्रवादके मूलमें कुछ भी सत्य नहीं। खनाके नामसे जो वचन चले, सब बंगला भाषामें बने हैं। यदि यह बराहमिहिरकी पत्नी होती, कभी बंगला बोलीमें ज्योतिषकी बातें न लिखतीं। इनके प्रचन और भाषा देखनेसे समझ पड़ता है कि खना स्त्री ही या पुरुष, बङ्गाली व्यक्ति थीं, सम्भवतः तीन या चारसौ वर्षके बीच आविर्भूत हुईं। ज्योतिःशास्त्रमें यह असाधारण पांडित्य रखती थीं। इनके अधिकांश पचलित वचनों का अर्थ बराहमिहिरके जातकादि ज्योतिःशास्त्रमें मिलता है। इसीसे मालूम पड़ता है कि ज्योतिर्विदोंने खनाको मिहिरकी पत्नी जैसा कल्पना किया होगा।

खनि (वै० प्रि०) खन्-इ। (खनिकयाद्यासिबसिबनिसिभिनिप्रसि-
चरिभाष। उष० ४।१२६।) खनक, खोदनेवाला। (अथर्व १४।१।४)

खनि (सं० स्त्री०) खान, खर्पायाकर, सोने वगैरहकी खान, खदान। भूगर्भके जिस स्थानको खनन करके धातु, प्रस्तर वा मुख्यतः मृत्तिकादि उत्तोलन करते, खानि कहते हैं। बहुत पूर्वकालमें भारतवर्षमें खनिकार्य होना चला आता है। भारतवासी अति प्राचीनकालसे ही समझते, खानसे कैसे रत्नसंग्रह करते हैं। वाष्पीय-यन्त्रके प्रभावसे आजकल इस कार्यकी विशेष उत्पत्ति हो गयी है। कठिन पर्वतगात्र वा समतल भूमिको भेद करके पृथिवीके अति गभीर प्रदेशमें पहुँच आजकल लोग नाना धातु निकालते हैं। केवल खन प्रभृति अति अल्पसंख्यक धातु ही विशुद्धभावमें मिलते, दूसरे समुद्रय धातु नाना पदार्थोंके साथ रासायनिक रूप में मिश्रित रहते हैं। इसी प्रकारके अविशुद्ध धातुको आकर Ore कहते हैं। नाना उपायोंमें अपरापर पदार्थोंको पृथक् करके खालिस धातु निकाल लेना पड़ता है। भूतत्त्व विद्या (Geology) की सहायतासे मालूम किया जा सकता—कहाँ, कैसा, कितना, कौन धातु रहनेकी सम्भावना है। समस्त उपायोंको अवलम्बन करके भूगर्भसे धातुका आकर जो ऊपर उठाया सकता, उसीका नाम खनिकार्य (Mining) है। जिस विद्याकी सहायता पर आकरसे दूसरे पदार्थ अलग

करके विशुद्ध धातु निकाल सकते, उसको धातुतत्त्व (Metallurgy) कहते हैं। धातुको छोड़ कर खोटे, अपरापर प्रस्तर, पत्थरका कोयला, नाना बर्तोंसे रक्षित मृत्तिका, मट्टीका तेल आदि अन्यान्य वस्तु भी खनिसे संकृष्ट होत होते हैं।

पृथिवीके नीचे स्तरोंमें (Strata) संज्ञित हो कर खनिज पदार्थ अवस्थिति करते अथवा प्राचीन सदृश प्रस्तरराशिके मध्य शिरा (Vein) भावसे शायित रहते हैं। समुद्रय विषय निर्देश करना अति कठिन है—पृथिवीके किस स्थान पर, कैसे भावसे, कौनसे परिमाणमें खनिज पदार्थ अवस्थित है और उससे आकर उत्तोलन करनेमें लाभ हो सकता है या नहीं। इस प्रकारके अनुसन्धानको अंगरेजीमें Prospecting कहते हैं। जमीनके नीचे जो धातु छिपा है, कभी कभी उसका क्रियदंश जलस्रोत वा किसी अपर कारणसे अपने आप बाहर निकल आता है। आकर ऊपर उठ आनेसे वहिःस्थ आकर (Out-crop) कहलाता है। इस प्रकारका वहिःस्थ आकर देख कर विवेक्षण खनक उसका मूलदेश अनायास ही सिद्ध कर सकते हैं। परन्तु जिस स्थान पर खनिज पदार्थ इस तरह निकल नहीं आता, कितने ही अनुसन्धानोंके पीछे भूनिष्पन्न धातुका अस्तित्व ठहराया जाता है। किसी स्थानमें किसी प्रकारके धातु रहनेका सिद्ध भूतत्त्वविद्याकी सहायतासे निर्दिष्ट होने पर खनक जा कर वहाँ अनुसन्धान (Prospecting) आरम्भ करते हैं। पहले उस स्थानकी मृत्तिका और निकटस्थ नदी नालेकी बालुका उत्तम रूपसे परीक्षा करके देखी जाती है। अणुवीक्षण और रासायनिक परीक्षा द्वारा उस मट्टी और बालूमें यन्त्र यदि धातुकी सूक्ष्म सूक्ष्म कणों का अस्तित्व समझा जाता, तो खनक ऐसा ठहराता कि वह उपरिष्ठ पर्वत-तादिसे कूट कर चला आता है। फिर इस विषय का अनुसन्धान लगाया जाता, किस स्थानसे वह धातु कूट कूट कर आता है। पृथिवीगात्र पर नाना स्थानोंमें बहुत गहरे छोटे छोटे छिद्र करके और तल्लदेगसे मट्टी निकालके भी देखा करते हैं। इसप्रकारसे पृथिवीमें छेद करनेकी बहुतसे यन्त्र हैं। उन्हें Boring apparatus

कहते हैं। पाकरवी उसकी जगह ठीक हो जाने-से खानका काम लगाना पड़ता है। ऊपरभागसे जितना नीचे पाकर पाते, पड़ने वहाँ तक कूप खोद ले जाते हैं। पृथिवीके नीचे पाकर जिस भावमें रहता कूबा भी उसी तरह खोदना पड़ता है। यह कूप कहीं सीधा, कहीं तिरछा जमीनके नीचे चलता है। फिर पृथिवीके बहुतसे सुरङ्ग लगाके खदान खोदी जाती है।

एक सामान्य कूप खोदनमें कितना पानी निकलता है। परन्तु खानके भीतर इसकी अपेक्षा सहस्रगुण जल निकला करता है। बहुतसे खानों पर यह पानी धीरे धीरे एकत्र धाके स्त्रोतका आकार धारण करता है। खानका कूबा जितना बड़ा आवश्यक आता, बहुतसे लोग उसकी अपेक्षा अधिकतर गभीर बनाते हैं। इसी गभीर खानमें पानी जाके भर रहता है। कूपके एक पार्श्वको दमन लगाके वह जल निकाल डाला जाता है। खानके अन्दर विशुद्ध वायुका विशेष प्रयोजन है। साफ हवा न रहनेसे मजदूर काम करनेसे चूट जाते हैं। इसी लिये आजकल लगभग सब खानोंमें एकसे ज्यादा कूप रहते हैं। एक कूबेके पेटे पर रात दिन प्रखर अग्नि की प्रज्वलित रखना पड़ता है। उस खानका वायु उसका होकर ऊपर चढ़ जाता है। इसी प्रकार एक ओरसे खदानको हवा खाली होती और दूसरे कूबेसे ऊपरकी खालिस हवा भीतर पहुँचा करती है। सुतरां ऐसा उपाय अवलम्बन करनेसे खानिके भीतर विशुद्ध वायुका अभाव नहीं होता।

कोयलेकी खानमें ऐसी कितनी ही सुरङ्गे रहती हैं। महीके भीतर कोयलेकी खान एकबारगी ही उभरे हुए मैदान-जैसी नहीं होती। शहरमें जैसे चारो तर्फ राहें और गलियाँ पड़ती, वैसे ही राहों और गलियों जैसी चारो ओर सुरङ्गे लगाके लोग कोयला बाहर निकालते हैं। बीच बीच जो प्राचीर रहता, स्तम्भका कार्य करता है। इससे छत टूटने नहीं पाती। बहुतसी खानोंमें इतनी सुरङ्गे लगतीं, कि सबको एकत्र करके जोड़नेसे बीस पचीस कोस राह बन सकती है। सुरङ्गमें उत्तमरूपसे वायु-सञ्चालनकी कहीं कहीं कपाट द्वारा उसे आबद्ध रखना पड़ता है। छोड़े दिन पहले विला-

यतमें ऐसे कपाटोंके निकट एक एक लड़का बैठा रहता था। कोयला भरी गाड़ी या पट्टेचने पर वह कपाट खोल और उसके निकल जानेसे बन्द कर देता था। आजकल खानके अन्दर ऐसे बच्चोंकी किसी काममें लगाना कानूनसे रोक दिया गया है।

खानके अन्दर मजदूरोंको बहुत कठोर परिश्रम करना पड़ता है। यहां दिनकी सूर्य और रातकी चन्द्र तारादिका दर्शन नहीं होता, सर्वदा घोर अन्धकार रहता है। मशाल या बत्ती की रोशनीसे काम करते हैं। किसी किसी खनिमें दहनशील बाष्प वर्तमान रहता है। वहाँ खुली मशाल या बत्ती लेकर काम करनेका मौका नहीं मिलता। तारसे बंधी एक प्रकारकी लालटेन (Safety-lamp) होती है। उसीके आलोकसे कार्य किया जाता है। जिस खानमें जल उठने-वाली ऐसी भाप नहीं, वहाँ बारूदके जोरसे आकर और कोयला आदि पदार्थ चकनाचूर हो सकते हैं। फिर जिस खदानमें दहनशील बाष्प मिलता, बारूद काममें लानेसे घोरतर अम्यगुत्पात हो सकता है। वहाँ छोटोछोटे पाकर या कोयला तोड़ना पड़ता है। सुरङ्ग सब जगह बराबर ऊँची नहीं होती। सकल खानोंमें मजदूरोंको सीधा खड़ा होना मुश्किल है। सुतरां किसी खान पर खड़े होकर, कहीं बैठ कर, किसी जगह लेट कर आकर काटना पड़ता है।

पाकर काट जाने पर नामा उपायोंसे उसको ऊपर उठाते हैं। बड़ी बड़ी खानोंके भीतर राह और रेकवे-काइन होती है। पाकरको गाड़ीमें भरके कूपके नीचे जाते, फिर उसको ऊपर उठाते हैं। इन गाड़ियोंमें कहीं छोड़े जाते जाते, कहीं मनुष्य ही ठेलके ले जाते। जिन खानोंमें गाड़ियाँ नहीं होती, मजदूर पीठ पर रखके पाकरको कूबेके नीचे जाते अथवा पाकर पूर्ण द्रोणीमें (टब) गड़सला लगा उसको अपनी कमरमें भी बांधते और अभिलक्षित खान पर उसको खींच ले जाते हैं। विलायतमें कुछ रोज पहले इस काम पर अनेक स्त्रियाँ नियुक्त थीं। अब कानून बन गया है—ऐसे कष्टसाध्य कार्योंमें कोई स्त्रियोंकी न लगावे।

कूबेके नीचे खनिज पदार्थ या पट्टेचने पर उसको

ऊपर चढ़ाना पड़ता है। तरह तरह के उपायोंसे यह कार्य साधित होता है। जिस खनिमें कूप सरल नहीं-
तियकभावसे रहता, चाकर भरी गाड़ी एन्जिनके सहारे
एकबारगी ही ऊपर चढ़ायी जा सकती है। परन्तु
जहां कूवा बिलकुल सीधा जमीनके नीचे चला गया
है, नांदमें कच्चा धातु वगैरह रखके ऊपर पहुँचाते
हैं। नांदके कड़ेमें जखीर लाल उसको एक ऊपरी
पेंचसे मिलाया जाता है। पेंच घुमानेसे जखीर उसमें
लिपटती रहती और नांद ऊपरकी चढ़ा करती है।
फिर उसको छलटा फिरानेसे जखीर जैसे ही खुला
करती, नांद नीचेकी उतरती है। अनेक स्थलों पर
लोग हाथसे पेंच चलाते हैं।

खान बहुत ही मामूली होने पर मनुष्य इस काम-
को चला सकता है। इस कार्यमें अधिक मनुष्य आवश्यक
होने पर कलके पास काष्ठनिर्मित एक बड़ा गोला-
कार यन्त्र लगाना पड़ता है। इसीका नाम जिन है।
कलके ऊपर नांदकी जखीर लाकर जिनमें लपेटी
जाती है। फिर बहुतसे लोग पकड़के इस जिनको
घुमा सकते हैं। जिनके घूमते ही कल चलने लगती
और इससे नांद चढ़ा उतरा करती है। रानीगण्ड
प्रखण्डमें खानसे पत्थरका कोयला इसी प्रणाली पर
उत्पन्न होता है।

हमारे देशकी भाँति विस्मायतमें मजदूर सस्ते
नहीं मिलते। सुतरां इन दिनों वहाँ भापकी कलसे
यह काम होता है। लोगोंकी मजदूरी जब बढ़ी पहले
पहल घोड़ोंसे कल चलायी गयी। कलमें दो नांदोंकी
दो जखीरें इस तरह लगी रहतीं, कि उसको घुमानेसे
एक जखीर लपटती और दूसरी खुलती है। अतएव
एक नांद ऊपर चढ़ती और दूसरी नीचे उतरती जाती
है।

आजकल विस्मायतकी सब खानों, विशेषतः कोय-
लेकी खदानोंमें कल और जिन बाष्पीय यन्त्रसे परि-
चालित होता है। भापके पेंचका बड़ा चक्कर चमड़ेकी
रस्सीसे जिनके साथ संयुक्त रहता है। कलका पहिया
जैसे ही भापके जोरसे घूमता, जिन भी उसके साथ
चक्कर मारने लगता है। फिर एक नांदकी जखीर

उससे लिपटा और दूसरीकी खुला करती है। जिस
नांदकी जखीर लिपटती रहती, ऊपरकी चढ़ती और
जिसकी खुला करती, नीचेकी उतरती है। इसी
प्रकार साथ ही एक नांद चढ़ा और दूसरी उतरा
करती है। यही नहीं कि नांदसे केवल चाकर ऊपर
चढ़ाया जाता है। पहले इस नांदमें बैठ कर मजदूर
भूगर्भका कार्य करनेको अवतरण करते और काम हो
जाने पर बाहर निकलनेको फिर ऊपर चढ़ते हैं।

धातुकी अनेक खनियोंमें जहां कूप सरलभावमें
नहीं होता, बीच बीच सिद्धियाँ लगी रहती हैं। वहाँ
सिद्धियोंसे मजदूर चढ़ उतर सकते हैं। कूवेक भीतर
अनेक समय नांदसे नांद टकर खा जाती थी। ऐसी
दुर्घटना बचानेकी आजकल कूप दो भागोंमें विभक्त
किया गया है—एक चार नांद चढ़ने और दूसरा
और उतरनेके लिये। फिर कितनी ही बार नांद हिल
कर कूपचाओरके गात्रसे जोरोमें भिड़ टूट जाती
थी। इस वारदातको बचानेके लिये कूवेके बीचमें एक
लौहशालाका गाड़ी गयो है। नांदका कड़ा इसी
छड़में पिरोया रहता है। सुतरां नांद इसी सीखके
पकड़ कर चढ़ती उतरती, इधर उधर हिलडुल कर
जा नहीं सकती और न कूवेके चिरेकी उसमें टकर
लगती है। कितने ही भरतवे जखीर टूट कर नीचे
गिरने पर बहुतसे लोगोंका प्राणनाश हो जाता था।
इस विपद् निवारणके लिये भी उपाय उद्भावित हुआ
है। नांदकी जखीरमें एक कब्जा लगता है। यह
उपरिल्ल कौहदण्डके साथ कुछ कुछ संलग्न रहता
है। जब टम (नांद) चढ़ता उतरता, जखीरके खिंचा-
वसे कब्जेके दोनों मुँह खुले रहते हैं—यह प्रसंग
हो जाता, सोड़ेके साखकेका नहीं पकड़ता। परन्तु
एकाएक जखीर टूट जानेसे कब्जेके दोनों सिरे
उसी मुहूर्तको बिलकुल चिपकके बैठ जाते हैं।
टम जहाँका तहाँ शून्यमें ही रहता, कूवेके पेंदे पर
छूट कर गिर नहीं सकता।

कोयले या कच्चे धातुसे भरा टम कूवेके मुँह पर
या पहुँचनेसे तत्क्षणात् कलको बन्द कर देना और
उसको सरका लेना पड़ता है।

पत्थरके कोयले आदि पदार्थोंकी व्यवहारोपयोगी बनानेमें और अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। किन्तु अपरापर धातुके आकरसे विशुद्ध धातुको पृथक् करना बड़ी मिहनतका काम है। लौहके आकरको पत्रावे जैसी बड़ी भट्टीमें जलाना होता है। रौप्यके आकरमें गन्धक प्रभृति नाना द्रव्य मिले रहते हैं। गन्धकमिश्रित रौप्यका आकर लवणके साथ पहले भट्टीमें जलाया, फिर जल और लौहकणके साथ पीपेमें बन्द करके छिलाया जाता है। ऐसा करने पर गन्धकसे चांदी छूट पड़ती है। अवशेषकी अग्निमें उत्तापसे पारद निकालके विशुद्ध रौप्य सफ़्फ़ होत होता है। पूर्वकालकी नदीकी बालुका धोत करके लोग सोना इकट्ठा करते थे। जिन पत्थरोंसे छूट छूट कर स्वर्णकण नदीजलमें पड़चती, आजकल जमता उन्हींसे स्वर्ण उधार करती है। पहले खानसे इन पत्थरोंको निकाल करके चूर कर डाला, फिर इस पर धीरे धीरे पानी बहाया जाता है। उससे प्रस्तरचूर्णकी बालुका प्रवृत्ति धुलती और अपेक्षाकृत गुब लोहकण वा स्वर्ण नाला निकल पड़ती है। फिर इसमें पारद मिश्रणसे वह दूसरी चीजोंकी छोड़ करके स्वर्णकणके साथ मिश्रित हो जाता है। अखीरमें भाँव देकर पारिको अलग करने पर खालिस सोना निकलता है।

पहिलेकी तरह अब जीवजन्तुओंसे खानिका काम नहीं लिया जाता। आजकल खानिके तमाम काम बिजलीकी शक्तके सहारेसे होते हैं। वैद्युतिक-शक्तिसे चालित रंक्के द्वारा (Electric lift) लोग खनिमें आया जाया करते हैं। खानिके भीतर इलेक्ट्रिक ट्रॉल और मालगाड़ी द्वारा कोयला आदि खनिज द्रव्य स्थानान्तरित किये जाते हैं। पहिले अधिकांश खानोंमें अन्धकार रहता था। मशाल आदि जला कर किसी प्रकारसे काम निकाला जाता था, पर अब वह बात नहीं रही। बिजलीकी बत्तियाँ जला कर काफी प्रकाशमें काम होता है। इस बिजलीके आविष्कार होनेसे खनिवालोंके लिए बहुत सुविधा हुई है।

भारतवर्षमें कोयलेकी खानि ही अधिक है। यहाँकी

कोयलेकी खानोंमेंसे राखीगंज, बराकर, गिरिडी आदिकी खानि उल्लेखयोग्य हैं। गिरिडीमें ई० आर्० पार० कम्पनीकी भिक्टोरिया पिट नामक खानि सबसे बड़ी और अत्यन्त गहरी है। इस खानिकी सारी जगह बिजलीकी रोशनीसे आलोकित है।

कोयलेकी खानके सिवा भारतमें और भी नाना-स्थानोंमें अभ्र, लवण, गन्धक, तामा, मैंगानिस् आदि धातुओंकी खानि हैं। सन्तालपरगणामें और छोटा-नागपुरमें जगह जगह अभ्रकी खान हैं। मैंगानिस् पहिले पहल भारतमें आविष्कृत नहीं हुई। कुछ ही सालों हुई हैं। अब सिंघभूममें कई जगह मैंगानिस्का खान निकली थीं। खोज करनेसे भारतवर्षमें अब भी बहुत जगह कीमतो धातुओंकी खानें मिल सकती हैं।

खानिके भीतर हवा भी जाती आती है, हजारों आदमी दिनरात काम करते हैं, सैकड़ों जानवरोंसे उसमें काम लिया जाता है और असंख्य बस्तियाँ भी उसमें जलती रहती हैं। इन कार्योंसे खानकी वायु अत्यन्त दूषित होती है। जीवजन्तुओंकी श्वासप्रश्वाससे जिस प्रकार वायु दूषित हो जाती है, वैसे ही अधिक बस्तियोंके जलनेसे वायुकी आक्सीजन गैस जलकर तथा कार्बनिक ऐसिड गैसकी अधिकतासे वायु दूषित हो जाती है। इसके सिवा खानिके खोदनेमें तरह तरहके विस्फोरक (explosives) पदार्थ व्यवहृत होते हैं। इन सब विस्फोरक पदार्थोंसे जो गैस निकलती है, उसमें कार्बन मोनोक्साइड (Carbon monoxide) आदि अत्यन्त तीव्र विषाक्त गैस मिली हुई रहती है। यह विषाक्त गैस थोड़ीसी भी निःश्वासके साथ फेफड़ेमें चली जाय तो मनुष्य मौतका महत्मान वन बैठता है। इसके अलावा खानिके भीतर पर्वतगात्र वा खनिज धातुसे भी सर्वदा नानातरहकी गैस निकलती रहती है। इनमें कार्बनिक ऐसिड और हाइड्रोजन सल्फाइड (Carbon dioxide and hydrogensulphide) मुख्य है। अधिकांश कोयलेकी खानोंमें मार्श गैस (Marsh gas) नामकी एक प्रकारकी गैस उत्पन्न होती है। इस गैसके साथ कोयलेकी दाह्य गैस उत्पन्न होती है। किसी तरहसे उसमें आगका सम्पर्क होतेही वह गैस विस्फोरक

पदार्थकी भांति शब्दायमान हो कर समस्त खानिको उड़ा कर चूर्ण कर देती है। इस मार्स गैसके जरिये कोयलेकी खानोंमें कितना अनिष्ट हुआ और कितने हजार आदमी मरे होंगे, उसकी कोई तादाद नहीं। इन दुर्घटनाओंका विवरण पीछे लिखा गया है।

ऊपर कही हुई दूषित वायुको साफ करनेके लिए खानमें वायुचलाचककी व्यवस्था करनी पड़ती है। खानमें बाहरकी साफ हवा जितनी ज्यादा जायगी, उतनी ही वहांकी मार्स गैस आदि दूषित वायु उस वायुके साथ निकलती रहेगी। इस प्रकारसे दुर्घटनाओंका प्रतीकार करनेसे, भय कम रहता है। पहिले कहा जा चुका है कि, खानमें वायु जानेके लिए एक मार्ग और उसको निकालनेके लिए एक स्वतन्त्र मार्ग रहता है। इसके सिवा बिजलीसे चमनेवाली हवाकी दमकली, पंखे धौंकनीकी तरहके यन्त्र आदि तरह तरहके वैज्ञानिक यन्त्रोंसे आजकल वायु-चलाचक करनेका काम लिया जाता है।

खानिकी गहिराई। खान कितनी गहरी करनेसे, उसमें अच्छी तरह काम किया जा सकता है, उसका अभी तक कुछ निर्णय नहीं हुआ। खान जितनी गहरी होती जाती है, उसके भीतरका उत्ताप (Temperature) भी उतना ही बढ़ता जाता है। ज्यादा नीचेसे पानी निकाल कर फेकनेसे दिक्कत उठानी पड़ती है और गहरी खानकी जमीन बहुत कड़ी होती है, इस लिए खोदनेमें भी बहुत परेशानी उठानी पड़ती है। कभी कभी ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि, वह अण्डेवा भूमि है। मिचिगन देशके हटन (Houghton) काउण्टीकी तमरक (Tamarack) नाम की खान इस पृथिवीमें सबसे बड़ी और गहरी खान है। इसकी गहराई ५२०० फीट है। तमरक कम्पनीकी और तीन खानें हैं, उनकी तथा उनके पासकी खानोंका गहराई ४००० फीटसे लेकर ५००० फीट तक है। इङ्ग्लैण्डमें बहुतसी खानें ३००० फीट गहरी हैं, और वेल्सजियममें ४००० फीट गहरी दो खानें हैं। देखनेमें आता है कि, पृथिवीके विभिन्न देशकी खानका आन्तरिक उत्ताप गहराईके साथ समान अनुपातसे

बढ़ि नहीं होता। सचराचर प्रत्येक ५०० से १०० फीट तक नीचेमें एक डिग्री उष्माप बढ़ता जाता है। परन्तु मिचिगन देशकी खानोंमें प्रत्येक २०० फीट और कभी कभी उससे भी अधिक नीचेमें एक डिग्री मात्र उत्ताप बढ़ता है और कहीं कहीं १३० डिग्री फा० उत्तापमें खनिका काम चलता है। परन्तु ऐसी खानियोंमें बाहरसे सर्वदा प्रति मिनिटमें १००० घनफीट वायु लोड़ेकी पाइपके द्वारा खनिके भीतर पहुँचानी पड़ती है। ऐसी हवा क्रमागत भीतरमें जाती रहनेसे उत्ताप १३०° से १२०° डिग्री ही रह जाता है। परन्तु ऐसी गरममें लोग चार घण्टेसे ज्यादा काम नहीं कर सकते।

खानिकी दुर्घटना। खनिका काम निहायत खतरनाक है, किस समय क्या विपत्ति आवेगी, उसका किसीको पता नहीं। प्रायः कोयले या कोई पत्थर आदिके गिर जानेसे अथवा धसक जानेसे लोग तो मरा हो करते हैं। इसके अलावा नाना प्रकारको विस्फारक गैस और अग्निके उपद्रवसे महाविपत्तियाँ आ खड़ी होती हैं। ये दुर्घटनायें जिससे न होने पावें; इसके लिए बहुतसे कानून बने हैं तथा नियमावली प्रचलित हुई है। इतना होने पर भी बहुतसी दैवदुर्घटनाओंसे असंख्य मनुष्य मरा हो करते हैं। खानके भीतर काम करनेवाले प्रायः सापरवाहोसे काम करते हैं; इसी लिए उनके ऊपर कोयला, धातु आदिकी धरनि गिर पड़ती है और हजारों आदमियोंकी मृत्यु होती है।

पहिले लिखा जा चुका है कि, मार्स गैस वा फायर डैम्प नामक एक प्रकारकी विस्फारक गैससे खनिमें प्राग्निका उत्पात होता है। इस मार्स गैसमें किसी तरह प्राग्निका संयोग होनेसे, वह जल उठती है और साथ ही साथ भयानक शब्द करती हुई खानको उड़ा देती है वा चकना चूर कर देती है। सब हो खानोंमें ज्यादा मार्स गैस नहीं पैदा होती, पर थोड़ीसी गैसमें कोयलेकी सूक्ष्म कण मिश्रित हो जानेसे तीव्र विस्फोरककी भांतिका पदार्थ बन जाता है; वह भी मार्स गैसकी तरह विपत्ति लावेवाला होता है और कभी कभी कोयलेकी कण ही जलकर अग्निकाण्ड फैला देता है। इन सब जानाकारोंसे उत्पन्न हुई विपत्ति-

थोके निवारणार्थ बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिये और खानि-खननमें बहुत छोड़ा विस्फोरक पदार्थ काममें लाना चाहिये। जिन खनियोंमेंसे मार्स गैस निकला करती है, उसमें किसी प्रकारकी आग वा वस्ती ले जाना ठीक नहीं। वैज्ञानिक उभी साहचर्य पहले एक प्रकारकी सालटेन आविष्कार की थी। इस सालटेनके भीतर जो वस्ती रहती थी, उससे मार्स गैस नहीं निकलती थी; तथा मार्स गैस निकलती है या नहीं भी उससे जान लिया जाता था। इस सालटेनकी बहुत उत्पत्ति हुई है और संस्कार भी हुए हैं। इस सालटेनका नाम "निरापद सालटेन" (Safety-lamp) है। इस सालटेनके आविष्कार होनेसे लाखोंके प्राण बचे हैं।

मार्स गैसके बिना भी साधारण असावधानतावश खनियोंमें आग लग जाती है। भीतरमें एकवार आग लगनेसे उसका बुझाना कठिन हो जाता है, क्योंकि वह अग्नि क्षणभरमें भयानकमूर्ति धारण कर लेती है। पानीसे भी बुझाई नहीं जा सकती, क्योंकि पानीसे और भी विषाल गैस पैदा हो कर लोगोंके प्राण नष्ट करती है। खानमें जहाँकी जगह खोद ली जाती है, वह लकड़ोंसे पाट कर ठीक कर दी जाती है। आगके लगनेसे वे लकड़ें जल जाते हैं और वह जगह धसक जाती है। इसीलिए लोगोंका पानीसे बुझानेका साहस नहीं होता। कभी कभी खानमें ऐसी आग लगती है कि, वह किसी भी तरह बुझाई नहीं जा सकती, ऐसी हालतमें खनिका सुख बन्द कर दिया जाता है। फिर २३ मासमें जब ऐसा निश्चय हो जाता है कि अब आग बुझ गई होगी और कोयले आदि अन्यान्य खनिज पदार्थ ठंडे हो गये होंगे, तब दरवाजा खोल कर उसमें लोग काम करने लगते हैं। इस प्रकार दरवाजा बन्द कर देनेका मतलब यह है कि, जिससे खनिके भीतर जवा न जाने पावे। जवा भीतर न जानेसे; तथा भीतरकी वायुमें जो अक्सीजन है वह खतम हो जानेसे ही अग्नि बुझ जाती है। ऐसे खनिका सुंद बन्द कर देनेसे आग तो १०।१५ दिनमें बुझ जाती है, पर खनिज द्रव्योंके भीतर होनेसे २३ मासके कम समय नहीं लगता।

कभी कभी जलप्लावनके कारण भी खनिकी विशेष हानि होती है। बाहरके मैदानसे पानी आजाने अथवा ज्यादा वर्षात होनेसे अगर खनिमें ज्यादा पानी घुस आता, तथा जमीनसे ज्यादा पानी निकल पड़ता तो खनि जल-प्लावित हो जाती है। ऐसे जलप्लावनसे बहुतसे आदमी सहसा मर जाते हैं। खनियोंकी दुर्घटनाओंका और भी एक कारण है। खनि जितनी गहरी होगी, उसके खम्भ और खिखान भी उतने ही मजबूत होने चाहिये। पर खिखान और खम्भे हर समय मजबूत नहीं दिये जाते, इसीलिए कभी कभी खनि ऊपरसे टूट पड़ती है और उसमें दब कर हजारों आदमी मर जाते हैं। इसके सिवाय खान छोड़ते समय और लापरवाहीसे विस्फोरक द्रव्योंका व्यवहार करते रहनेसे भी बहुतसी दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। इसीलिए कौनसी विस्फोरक चीज कितनी काममें लानी चाहिये, इसके लिए कानून और नियम प्रचलित हुए हैं। परन्तु अफसोस है कि, खानवाले उन नियमोंका यथावृत्ति पालन नहीं करते, दुःसाहसके साथ असावधानीसे विस्फोरक पदार्थ ज्यादा काममें लाते हैं, और उसका भयानक फल भी हाथों हाथ भोगते हैं। इन कानूनोंकी तोड़नेसे बहुत जगह कठिन दण्ड भी दिया जाता है। धातु, धातुत्व, भूतत्व आदि शब्दोंमें विस्तृत विवरण देखना चाहिये।

खनिज (सं० त्रि०) खनि-जन-ड। खनिसे उत्पन्न, खानसे निकला हुआ। मनुष्यका व्यवहारयोगी जो पार्थिव पदार्थ मही खोद कर निकाला जाता, खनिज कहलाता है। हीरा मार्मिक आदि रत्न, खैट, रेतोला पत्थर, पत्थरका चूना, खडिया मही, गेरु, पहाड़ी नमक, सोना, चांदी, जोड़ा आदि धातु सभी खनिज हैं।

जिस शास्त्रसे खनिज पदार्थका गुणगुण देखते और परीक्षा करते, उसको खनिजतत्त्व (Mineralogy) कहते हैं। धातु, धातुत्व प्रकृति शब्द देखो।

खनिजीषध (सं० स्त्री०) पञ्चविध खनिजद्रव्य। इसके पाँची पदार्थ यह हैं—रस, उपरस, धातु, लवण और रत्न। खनित्र (सं० स्त्री०) खन-इत्र। अस्त्रविशेष, खन्ता, गंभी। खनित्रक (सं० स्त्री०) खनिज साधन कर्म। खनित्र, खन्ता, खेसवा, कुदाक।

खनित्रिम (सं० त्रि०) खननेन निवृत्तः, खन-त्रिमक् ।
खनन द्वारा उत्पन्न होनेवाला, जो खोदनेसे पैदा हो ।
खनित्र (सं० पु०) विवर्धकं ज्येष्ठपुत्र । इनके पुत्रका
नाम सुवर्चा था । (भारत भा० ४ अ०) सुवर्चा देखो । किसी
खन पर खनीनेत्र पाठ भी मिलता है ।

खनियाधान—मध्यभारत एजेन्सीमें ग्वालियर रेवी-
डेण्टके अधीन एक सुदूर राज्य । इसका क्षेत्रफल ६८
वर्गमील है । इसके पूर्व युक्तप्रान्तका भाँसी जिला और
दूसरी ओर ग्वालियर राज्य है । भौगोलिक रूपसे यह
राज्य बुंदेलखण्डमें पड़ता है और १८८८ ई० तक
उसीमें लगता भी था ।

प्रकृतरूपमें यह औरछाका एक अंग रहता । परन्तु
१७२४ ई०की औरछाके महाराज उदितसिंहने इसे
अपने बेटे अमरसिंहकी मोहनगढ़ और अहिर गाँवोंके
साथ हाँ दे डाला । मराठाओंने औरछा राज्य विभाग
करते समय १७५१ ई०की एक सनद दे अमरसिंहकी
यह जागीर बरकरार रखी । उस समय भाँसीका मराठा
राज्य और औरछा दोनों अपने अपनेको इसका प्रमुख
बतलाते थे । १८५४ ई०की जब भाँसी राज्य टूटा,
खनियाधानके राजा पृथ्वीपाल बहादुरजू देवने पूर्ण
स्वाधीनता पानेका दावा किया । १८६२ ई०की उन्हें
गोद लेने और ब्रिटिश गवर्नमेण्टके अधीन रहनेको सनद
दी गयी । यहांके राजा औरछा घरानेके बुंदेला राजपूत
हैं और जागीरदार कहलाते हैं । १८७७ ई०की राजा
चित्रसिंहका राजा उपाधि मिला ।

खनियाधानकी लोकसंख्या प्रायः १५५२८ है ।
बुंदेलखण्डी यहाँ बसती बोली है । देश पार्वत्य है ।
इस राज्यका प्रधान नगर खनियाधान है । यह अक्षा०
२५° २' ७०" और देशा० ७८° ८' ५०"में पड़ता है, लोक-
संख्या प्रायः २१८२ है । खनियाधान नगरमें एक दुर्ग
बना, जिसमें राजाका निवास है ।

खनिसम्भव (सं० पु०) १ स्वर्ण, सोना । (त्रि०) २ खनिज,
खदानो ।

खनिहाना (हिं० त्रि०) खानकी करमा, समेटना, सबका
सब ले लेना ।

खनी (सं० स्त्री०) खन इन् वा खनप् । १ धातु रख

आदिकी उत्पत्तिका स्थान, खदान । २ भूमिदारण,
खोदाई । ३ आधार, टेक, सहारा । ४ खात, गड्ढा ।

खनि देखो ।

खन्न—पञ्जाबके लुधियाना जिलेकी समराल तहसीलका
एक नगर । यह अक्षा० ३०° ४२' ७०" और देशा० ७६°
११' ५०"में नार्थ-वेष्टन रेखावे पर अवस्थित है । इसकी
लोकसंख्या लगभग ३८३८ होगी । खन्नमें २ कपास
मीटने और आटा पोसनेका कारखाना है । यहाँ अंग-
रेजी संस्कृतकी एक मध्य पाठशाला चलती और पास
पामसे खेतीकी चीज बिकती है । १८७५ ई०का खन्नमें
म्युनिसिपालिटी पड़ी थी ।

खन्न (हिं० पु०) खन खन, खनक, खनका ।

खन्न खन्न करना (हिं० त्रि०) खनकाना, खनखनाना,
बजाना

खन्ना (हिं० पु०) १ कटिया काटनेकी जगह । २ खत्री
लोगोंका एक भेद । वनजाई खत्रियोंके ठाई या चार
घरमें खन्ना एक कुल होता है ।

खन्ध (सं० त्रि०) खन्-यत् । खननीय, खोदा जानेवाला
खपची (हिं० स्त्री०) १ कमची, खपाच बांसकी पतकी
तीली । २ बांसकी पतकी पट्टी । इससे अस्त्रविक्रिया
भग्न अङ्ग बांधते हैं ।

खपटा (हिं० वि०) १ छद्म, बुद्धा । २ कुरूप, बदमूरत ।
३ दुबला पतला । (पु०) ४ खपड़ा ।

खपटी (हिं० स्त्री०) १ सुदूरखपर, छोटा खपड़ा । २
छोटे छोटे तख्ते । कढ़ियोंके बीचमें आर्धनाबन्दीके
लिये खपटी लगयी है ।

खपड़भार (हिं० स्त्री०) लपटोंकी एक रीति, किसान-
नोंकी कोई रस्म । यह हरशाल पक्षके पहल उखारी
चढ़ने पर होती है । इसमें ब्राह्मणों और दरिद्रोंकी रस
पिलाते और किसी कदर गुड़ तैयार कर देवताके
उद्देश्य प्रसाद चढ़ाते हैं ।

खपड़ा (हिं० पु०) १ मृत्तिकाका कोई पक्क लकड़ । यह
मकानकी छतमें लगाया जाता है । खपड़ा दो प्रकारका
होता है—खपुषा और गरिया । चपटे और चौकोरको
खपुषा और लम्बे और नाभी-जैसेको गरिया कहते
हैं । छतमें खपुषा बिछा कर उनके जोड़ पर गरिया

रखा जाता है। २ मृत्पात्रका निम्नस्थ अर्धभाग। यह गोख जैसा होता है। ३ भिक्षुकी भिक्षा ग्रहण करने का पात्र। ४ भग्न मृत्पात्रखण्ड, ठीकरा। ५ कच्छप-के पृष्ठका कठोरावरण। ६ चौड़ी गांसीका वाण। ७ गोधूमकीटविशेष, गेहूँका कोई कीड़ा।

खपड़ी (हिं० स्त्री०) १ भड़भूजके बहुरी भूमनका वर्तन। २ मड़ीका नांद-जैसा छोटा वर्तन। ३ खोपड़ी।

खपड़ैल (हिं० पुं०) १ खपड़ेकी छत या छाजन। २ खपड़ेकी छतका मकान।

खपत (हिं० स्त्री०) १ समाई, गुच्छायश। २ विक्रय, कटती।

खपती खपत देखो।

खपना (हिं० क्ति०) १ लगना, खर्च होना। २ चलना, निकलना। ३ बिगड़ना। ४ मरना, मिटना।

खपरा (हिं०) खपर देखो।

खपरिया (हिं० स्त्री०) १ खपरी, खानसे निकलनेवाली एक चीज। खपरी देखो। २ क्षुद्र खपरा, छोटा खपड़ा। ३ चनेकी फसलका कोई कीड़ा।

खपरैल, खपरेल देखो।

खपली (हिं० स्त्री०) गोधूमभेद, किसी किस्मका गेहूँ। यह बम्बई, सिन्धु, महिसुर आदि प्रान्तोंमें उत्पन्न होती है। खपली खरीफके साथ होनेवाला गेहूँ है। इसकी भूसी बड़ी सुत्रिकलसे छूटती है। कोई कोई इसे गोधी या कफली भी कहता है।

खपात (हिं० स्त्री०) १ यन्त्रविशेष। यह बांसकी दो तालियाँ नीचे खपर लगानेसे बनता है। रेशमवाले इस धोजारको बरतते हैं। २ खपची।

खपाची, खपाच देखो।

खपाट (हिं० स्त्री०) धौंकनीके छोटे छोटे उण्डे। यह ककड़ीकी बनती और धौंकनीके मुँह पर लगती है। खपाटके ही वल धौंकनीको उठाते और दबाते हैं।

खपाना (हिं० क्ति०) लगाना, काममें लाना, खर्च कर डालना।

खपुचा (हिं० वि०) १ भयभीत, भगोड़ा, डरपोक। (पुं०) २ ककड़ीकी कोई खपाच। यह द्वारके पक्षो-भागमें चूल्हकी छेदमें मजबूतीसे बैठानेके लिये लगती है।

खपुट (सं० पुं०) व्याघ्रनख, बघनख।

खपुर (सं० पुं० स्त्री०) खं पिपति उच्चतया, पू० क० १ गुवाक, सुपागी। खेन पाकाश गतेन हिमकरकादिना पूर्यते, कर्मणि कः। २ भद्रमुस्तक। ३ शक्तकीनिर्यास, बघनख। ४ बालक, ज़ीवर। ५ रसुन, लहसुन। खे पाकाशे उदितं पुरम्, शाकार्थिवादिवत् समा०। ६ गन्धर्वनगर। इठात् पाकाशमें गन्धर्वमण्डल देख पड़नेसे कोई न कोई अशुभ हुवा करता है। इहत्संज्ञितामें लिखा है, खपुर किस प्रकार-के भावमें कहीं उदित होनेसे क्या फल मिलता है—गन्धर्वनगर उत्तर, पूर्व, दक्षिण वा पश्चिम देख पड़नेसे यथाक्रम पुरोहित, राजा, सैन्याध्यक्ष और युव-राजका विघ्न होता है। फिर उसके खेत, रत्न, पीत वा कृष्णवर्ण जगनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्रका विनाश निश्चित है। ईशान, अग्नि और वायुकोणमें यह दृष्ट होनेसे ज्ञानजाति मर मिटते हैं। शान्तिदिक्-को तोषणयुक्त गन्धर्वनगर मजूर जानेसे राजाका विजय होता है। जिस वर्ष को गन्धर्वनगर सकल समर्थ और सभी दिशाओंमें देखा जाता, राजा और राज्यको भय आ दवाता है, किन्तु धूम, अग्नि वा इन्द्रधनुः तुल्य होनेसे चोर तथा चरणवासी मरते मिटते हैं। ईषत् पाण्डुवर्ष गन्धर्वनगर निकलनेसे अशनिपात होता और भङ्गा वायु बहता है। किन्तु इसके दीप्त होनेसे शत्रुभय बढ़ता और दक्षिण भावमें रहनेसे जय मिलता है। जिस समय अनेक वर्षाकालि प्रताका, ध्वज और तोरणादियुक्त गन्धर्वपुर पाकाशमें चढ़ पाता, चोरतार संशाम लगता और पृथिवीकी हस्त, मनुष्य तथा अश्वका रक्त पिलाता है। (इहत्सं० १६ प०)

खे पाकाशे चरं पुरम्। ७ पाकाशगामी दैत्यपुर-विशेष। दैत्यकन्या पुनीमा और कालकाने बहुत दिनों कठोर तपस्या की। उनकी तपस्याको देख कर ब्रह्मा क्रोधित हो गये थे। उन्होंने दैत्योंके दुःख निवारणकी पाकाशगामी एक नगर प्रस्तुत करनेकी प्रार्थना की। ब्रह्माने उनकी प्रार्थनाके अनुसार खपुरनगर निर्मा-कर दिया। (भारत, पृ० १९१ प०)

८ हरिश्चन्द्र राजाकी पुरी।

खपुष्प (सं० स्त्री०) खस पाकाशख पुष्पम्, १-तत् ।
 १ पाकाशकुसुम, पासमानका फल । खपुष्प वास्तविक
 कोई पदार्थ नहीं है । किसी खसीक पदार्थके उपमा
 रूपसे शास्त्रकार लोग खपुष्पका उल्लेख करते हैं ।
 इसीसे खपुष्प खनखोनी बातको कहा जाता है ।
 २ पनसहस्र, कटहलका पेड़ ।
 खप्पर (हिं० पु०) १ नृत्पात्रविशेष, महीका कोई
 बर्तन । यह तल्ला-जैसा होता है । २ कालीके बहिर-
 पानका पात्र । ३ भीख लेनेका बर्तन । ४ खोपड़ा ।
 खफगी (फा० स्त्री०) १ अपीति, नाराजगी । २ क्रोध,
 गुस्सा ।
 खफा (अ० वि०) १ अप्रसन्न, नाराज, बिगड़ा हुआ ।
 २ क्रुद्ध, गुस्सासे भरा हुआ ।
 खफीफ (अ० वि०) १ अल्प, थोड़ा । २ लघु, हलका ।
 ३ सुदृढ़, हकीर ।
 खफीफा (अ० वि०) खफीफ, थोड़ा ।
 खफा (हिं० स्त्री०) कुम्भीका एक पंच । इसमें जोड़की
 गटन पर बायें हाथसे थपका मार फौरन उसकी अपने
 दाहने हाथसे फांस लिया और अपनी कलाईको
 उसके गले पर रखा जाता है । फिर अपने बायें हाथसे
 उसका दाहना पीछे पकड़के कुछ ऊपर उठाते या
 भटका लगाते और जोड़को नीचे गिराते हैं ।
 खबर (अ० स्त्री०) १ संवाद, बात । २ सूचना, इत्तिहा ।
 ३ संदेश । ४ संज्ञा, बोध । ५ अनुसन्धान, खोज ।
 खबरगोरी (फा० स्त्री०) १ पूछताछ, देखभाल । २ सद्धानु-
 भूति तथा सहायता, हमदर्दी और मदद ।
 खबरदार (फा० वि०) सावधान, होशियार, समझने
 बूझनेवाला ।
 खबरदारी (फा० स्त्री०) सावधानता, होशियारी,
 वाहीशी ।
 खबीस (अ० पु०) शैतान, भूत, राक्षस, बदमाश और
 उरावना आदमी ।
 खब्त (अ० पु०) उन्माद, सनक, पागलपन ।
 खबूती (अ० वि०) उन्माद, पागल ।
 खब्बर (हिं० पु०) दूर्वाढक, दूब ।
 खब्बरखब्बर (हिं० पु०) शब्दविशेष, एक आवाज ।

जब जड़ पानी मंभानेसे यह शब्द निकलता है ।
 खब्बा (हिं० वि०) १ वाम, बायां । वाम हस्तसे कार्य-
 कारी, काममें जिसका बायां हाथ ज्यादा चले ।
 खबमड़ (हिं० वि०) जीर्णशीर्ण, दुबला पतला ।
 खम (सं० पु० स्त्री०) यह, नक्षत्र ।
 खभरना (हिं० क्रि०) १ मिश्रित करना, मिलाना ।
 २ उलटपुलट देना, तरतीब बिगाड़ना ।
 खभरपा (हिं० वि०) व्यभिचारिणी स्त्रीसे उत्पन्न,
 जो छिगाहसे पैदा हो ।
 खभुक् (सं० पु०) ख-भुज-क्तिप् । इन्द्र ।
 खभ्रान्ति (सं० पु० स्त्री०) खे पाकाशे भ्रान्तिर्भ्रमश्च
 मांसाव्यवसाय यस्य । चित्रपत्नी, चोख चिड़िया ।
 खम (फा० पु०) १ वक्रता, टेढ़ापन, झुकाव । २ गाने की
 एक लचक ।
 खमषि (सं० पु०) खे पाकाशे मणिरिव प्रकाशक-
 त्वात् । सूर्य, सूरज ।
 खमती—पासामके सीमान्तप्रदेशका एक पहाड़ी देश ।
 यह ब्रह्मपुत्र उपत्यकाके पूर्वप्रान्त पर पड़ता है ।
 खमतीके अधिवासी खमती हैं । उन्पती देखो ।
 खमदार (फा० वि०) वक्र, टेढ़ा, झुका हुआ ।
 खमसना (हिं० क्रि०) मिलाना, डालना ।
 खमसा (अ० पु०) १ पांच पांच शैरोके बन्दकी गजल ।
 २ कोई ताल । इसमें ५ भरी और १ खाली तालें
 लगती हैं ।
 खमा (हिं०) बना देखो ।
 खमीर (अ० पु०) १ पाटेका ; पतला सड़ाव । इससे जले-
 बिया बनायी जाती हैं । २ पदार्थविशेष, कोई चीज ।
 यह कटहल, खनकास वगैरहको सड़ा कर तैयार
 किया जाता है । खमीर पीनी तम्बाकूमें खुशबूके लिये
 पड़ता है ।
 खमीरा (अ० पु० वि०) १ खमीरसे तैयार किया
 हुआ । २ शकर या शीरेमें पकी हुई दवा ।
 खमीसन (सं० स्त्री०) जानां इन्द्रियाणां मीसनम्,
 १-तत् । तन्द्रा, उंचाई ।
 खमूर्ति (सं० पु०) खं मूर्तिरस्य, बहुव्री० । अष्ट-
 मूर्तिधर, भीमरूप, शिव ।

खमूर्ति (सं० स्त्री०) खख ब्रह्मणो मूर्तिः स्वरूपम् ।

ब्रह्मस्वरूप । (मनु २।८२)

खमूलिका (सं० स्त्री०) खं शून्यभूतं मूलमस्या, बहुव्री० तमो ङीप् क-टाप् ईकारस्य ङखत्वम् । कुम्भिका, पानीका एक पौदा ।

खमो (हि० पु०) एक चिरहरित वृक्ष । यह भारत, ब्रह्मदेश तथा अन्धमान द्वीपमें समुद्रके मृत्तमय तीरों और सन्धियोंमें उपजता है । इसकी छालमें सजी ग्यादा रहती और चमड़ा सिझानेमें लगती है । खमोके रङ्गमें कार्पासवस्त्र रञ्जित होता है । फल सुमिष्ट और स्वाद्य है । खमोदकी शाखाओंसे सूत जैसी महीन जटा निकलती है । उससे लोग किसी किसिमका नमक बनाते हैं । इसका काष्ठ भी कुछ दुरा नहीं । खमोका दूसरा नाम भीर और राई है ।

खम्पती (खमती)—भारतके पूर्वप्रान्तवासो ग्रामवंशीय लोग । आसामके लखीपुर जिले और उसके पूर्व पार्वत्यप्रदेशमें इनका वास है । षष्ठशताब्द शताब्दके मध्यभाग यह विवाद विषंवादके कारण आसामके सदिया विभागमें जाकर बसे । किसी किसीके मतमें यह इरावतीके उत्पत्तिस्थानके निकट बड़ी खम्पती नामक स्थानसे वहां गये थे । किन्तु खम्पती अपने आपकी बहुत दिनसे उक्त प्रदेशका अधिवासी बताते हैं । भाषामें अधिकांश ग्रामदेशकी भाषाके शब्द भरे हैं, वर्षमासा भी प्रायः एकही है ।

किसी समय इनका वहां विस्तृत राज्य रहा । मणिपुरवाले इस राज्यको पोङ्गराज्य कहते थे । यह त्रिपुरासे ग्राम पर्यन्त विस्तृत रहा । इसकी राजधानीको ग्राम लोग मोङ्गमारङ्ग और ब्रह्मदेशीय मोङ्गोङ्ग नामसे अभिहित करते थे । १८वें शताब्दके मध्यभाग ब्रह्मराज बालम्बराने यह राज्य ध्वंस किया । राज्य बिगड़ने पर कुछ लोगोंने जाकर आसाममें उपनिवेश लगाया था । डिङ्गि नदीतीरके फकि या फकियाल और सदियाके कनिजङ्ग लोग भी खम्पतियोंके ही अन्तर्गत हैं ।

यह बौद्ध हैं और अपनी रीतिके अनुसार मठ तथा याजक रखते हैं । अधिकांश खम्पती अपनी भाषामें

हिन्द पढ़ सकते हैं । यहां लकड़ीकी दीवार और खर पतवारका छप्पर लगा ऊंची कुरसीके मकान तैयार करते हैं । छप्पर इस प्रकार कटका देते हैं कि बाहरसे दीवार नहीं देख पड़ती । बुद्ध-मन्दिर और मठादि भी ऐसे ही होते हैं । मन्दिरोंमें किन्तु सुन्दर खोदित कारु-कार्य रहता है । खम्पती मठकी 'वापुचङ्ग' कहते हैं ।

इनके याजक मस्तकमुण्डन, मालाधारण और पीतवास परिधान करते हैं । वंशानुक्रमसे याजकता नहीं मिलती । कोई भी याजक हो सकता है । याजक बननेवालेकी केवल पवित्राहित अवस्थामें वापुचङ्गमें रहके प्राचीन याजकके पास पाठ, शिक्षा और धर्म-कर्मादि अभ्यास करना पड़ता है । याजक लोग प्रति दिन प्रातःकाल अपने बालकशिष्यों साथ लेकर भिक्षाकी निकलते हैं । बालकके हाथमें एक घण्टा और साइसे रंगी एक कठौती रहती है । वह घण्टा बजाते याजकके साथ द्रुतपदसे राहके बीच मुड़के मुड़के घूमता है । भिक्षाके लिये किसीका द्वारस्थ होना नहीं पड़ता । घरके दरवाजे पर गृहस्थ रमणियां प्रस्तुत खाद्य लिये खड़ी रहतीं और बालकोंके पङ्कचने पर उनका पात्र भर देती हैं । भाङ्गारादिके पीछे कोई दूसरा काम न लगनेसे याजक और शिष्य लोग मिल कर गजदन्त, अस्त्रखण्ड अथवा काष्ठखण्ड पर कारु-कार्य किया करते हैं । हाथीदांत पर इनकी बनायी मूर्तियां देव युरोपीय लोग चमत्कृत हुए हैं । यह अन्यान्य शिल्पकार्य भी किया करते हैं ।

खम्पती सोने, चांदी और लोहेके गहने अपने आप बनाने और हथियार वगैरह भी तैयार करते हैं । नैड़ेके चमड़ेकी नक्काशीदार बहुत बढियां टाक बनायी जाती है । स्त्रियां विशेष परिश्रम करती हैं । शिरमें यह तरह तरहका फीता बांधते हैं । खेतीके काममें औरतें भी मर्दोंकी कितनी ही मदद देती हैं ।

खम्पतियोंका प्रधान पशु गंडासा है । यह सादा और नक्काशीदार भी होता है । कसरमें इस तरह गंडासा लटका करता, कि दृष्टा होते ही दाढ़ने हाथ मूँठ पकड़के म्यानसे निकाला जा सकता है । हाथमें गंडासा और पीठ पर ढाङ्ग रखके यह प्रधानतः बुद्ध

करते हैं। आजकल बहुतेरे बन्दूक उठाना पारम्परिक किया है।

खम्पती सूती कपड़ा और छोट या रेशमी डोरिया पहनते हैं। जो लोग कुछ गन्ध मान्य और सम्पत्ति-शाली हैं, पैरों तक पोशाक लटका लेते हैं। मामूली लोगोंका पहनावा घुटनों तक ही है। फिर बच्चोंखल पर कार्पासनिर्मित और गाँवमें नीले रंगका छापा कुरता सटा रहता है। सर पर लम्बे बाल होते हैं। सफ़ेद पगड़ीमें बालोंको बाँध लिया जाता है। स्त्रियोंका पहनावा भी प्रायः पुरुषों जैसा ही है। परन्तु वह सरके बालोंको चारों ओरसे मथ्यके सामने लगा कपास पर चोटी गूँथती हैं। उसकी चारों तरफ़ तरङ्ग तरङ्गका फीता बाँधा रहता है। एक लंबा अंगरखा पैरों तक पहना जाता है। उसे छाती पर बाँध देती हैं। अल-छारोंके बीच साधारणतः गलेमें मूंगी और दूसरी चीज़ोंकी बनी माळा और कानमें छेद करके धम्मरकी पीसी सीके डाल लेती हैं।

यह देखनेमें अधिक सुन्दर नहीं हैं। शानवंशीय अन्योन्य जातियोंकी अपेक्षा इनका रङ्ग कुछ धुंधला है। परन्तु जिन्होंने आसाम जाकर आसामी रमणियोंसे विवाह कर लिया है, उनकी वंशसम्भूत सन्तानसन्तति का गठन कोमल और अपेक्षाकृत सुन्दर होता है।

षष्ठादश शताब्दके मध्यभागको खम्पतियोंमें जो आसाम गये, सदिया विभागमें बस गये। इनके प्रधान व्यक्ति सदिया-खोया गोसाईंने अंगरेजोंका अनुग्रह प्राप्त किया था। उनके मरने अंगरेज सरकारने सदिया को लिया। खम्पती लोग इससे विरक्त हो सदियाके सिपाहियोंकी फौज और अंगरेज अफसरकी मारके भाग गये। अंगरेजोंने थोड़े समय तक उनका अनुसरण किया। अब वह ठण्डे हो तिब्बतनी और नव-दिहिङ्ग नदीतीरको रहते हैं।

खम्पती आसामकी अन्योन्य जातियोंकी अपेक्षा कितने ही शिक्षित और सुसभ्य हैं। नारायणपुरमें इनका प्रधान उपनिवेश पड़ा है। यह गोमांस व्यतीत और सभी प्रकारका मांस खाया करते हैं। इनका धर्मग्रन्थ खम्पति-भाषामें लिखा है। बुद्धदेवकी यह

कदोमा (गोतम) कहते हैं। खम्पती दुर्गा वा देवी-पूजा भी करते हैं। किन्तु अपने पुरोहितों द्वारा ही पूजा सम्पन्न होती है। ब्राह्मणोंसे पूजा नहीं कराते। देवी पूजाका पुरोहित स्वतन्त्र है। उसको 'पम्' और कदोमाके पुरोहितको 'खोमन' कहा जाता है। देवी-पूजामें कुकुट, वराह, महिष प्रभृति बलि होते हैं। छाग वा हंसका बलि होते नहीं देखते। गोतमकी पूजा फूलोंसे ही की जाती है। उनके जन्म और मृत्यु उपलक्ष्यमें यह धर्मावस्य किया करते हैं।

खम्पा—कुनवारके तातारजातीय भिक्षुक। यह नाचकर और नाना भावभङ्गो बताने भिक्षासे जीविका चलाते और समय समय पर सुसलमानोंके पवित्र तीर्थ दर्शन करते चक्कर लगाते हैं।

खम्बाली—एक प्रकारके गुजराती ब्राह्मण। खड्ग रियासतमें अधिक रहनेसे इनका वह नाम पड़ा है।

खम्बू—नेपालके कोई थोड़ा जाति। यह प्रधानतः दुधकोसी तथा कर्कि नदीके मध्यवर्ती किराँतो देशमें किम्बू और याखा लोगोंके साथ रहते हैं। खम्बू बतलाते हैं—कि उनके पूर्व पुरुष कायोधाममें बान करते थे, वहाँसे आकर आसाममें बस गये। पादवङ्ग इनके आदि पुरुष और गृहदेवता हैं। सभी गृहस्थ उनकी पूजा किया करते हैं। इनसे यदि जातिकी बात पूछिये, जमोन्दारसिंह वा मण्डल बतलायेंगे। फिर नेपाल राज्यके गुर्खा दलमें जो नियुक्त हैं अपना राय-जैसा परिचय देते हैं।

यह वयस्का कन्याओंका विवाह करते हैं। मामूली तौर पर पुरुषका १५ से २० और स्त्रीका १२ से १६ वर्षके बीच विवाह होता है। २५ वर्षके लड़कों और २० वर्षकी लड़कियोंकी भी कितने ही विवाह होते देखे जाते हैं। शादीके पेशर भी कभी कभी स्त्रियाँ पुरुषोंका संसर्ग कर बैठती हैं। किन्तु कोई कुमारी गर्भवती हो जानेसे उसका प्रणवी आदरसे उसकी व्याह लेता है। विवाहमें कन्यापण पड़ता है। शादीसे पहले वरपक्षीय प्रथमतः कन्याके घरकी बांसके दो पीपोंमें भर कर महुँवेकी शराब और सुवरकी एक राग भेंजते हैं। विवाहकी रात वर कन्याकर्ताको सेमन्दी यानी बयाने-

का १) ६० देता है। कन्यापण्य ८०) ६० बंधा है। एककालकी न दे सकनेसे धीरे धीरे चुकाना पड़ता है। कन्याके सीमन्तमें सिन्दूरदान और वस्त्रदान ही विवाह का प्रधान अङ्ग है। विधवाओंका भी विवाह होता है। परन्तु उसका दहेज बहुत कम है। विधवा रमणी युवती और देखनेमें अच्छी होनेसे कोई आधा और उन्नत जरा ज्यादा बढ़ जानेसे चौथाई दहेज लगता है। स्त्री भ्रष्टा होनेसे उसको परित्याग किया जाता है। ऐसे स्त्रीके पर बिगाड़नेवाला आदमी कन्याके पण्यका रूपया वरकी देने पर बाध्य है। दहेजका भंगड़ा चुका देनेसे दोनों विवाहित हो सकते हैं। परन्तु इनमें भ्रष्टा नारियाँ नहीं-जैसी होती हैं। जिसकी कोई चरित दोष लगता, प्रणयीको लेकर दूसरी जगह भाग जाती है।

खम्बू हिन्दू ही हैं, परन्तु ब्राह्मण इनका पौराहित्य नहीं करते। इनके स्वजातियोंमें एक एक पुरोहित रहते, जिन्हें 'होमि' कहते हैं।

यह खेल और कार्तिक मासकी पादवङ्ग नामक गृहदेवताके उद्देश्य शूकर, छाग और मयकी पूजा चढ़ाते हैं। देवीके लिये मेष, मछिप, छाग, कपोत आदि बलि किये जाते हैं। खम्बू दुग्ध तथा दूर्वाधानसे सिद्ध नामक किसी देवताकी पूजते हैं।

पुरोहितकी मतानुसार गृहदेवकी अभिषेका प्रथवा समाधि होता है। मृतके उद्देश्य उसके आत्मीय आवादि करते हैं।

बहुत दिनसे यह खेतीबारी और जमीन्दारी करते आते हैं। अब कोई कोई नेपालके खेनादक्षमें बूझ गया है। फिर कोई कोई वयनादि कार्य भी करता है। खम्बू खाद्यसामग्री पर उतना कून विचार नहीं रखते। घरकी पालू सुर्गी, सुवरका गोश्र और शराब खाने पीनेमें किसीकी कोई रुचि नहीं। इनकी स्त्रियोंके नाम हैं—झाडी, कुयासब्बा, ब्हालिङ्ग, खेरिसाब्बा, सुदराका, चौरासी, सुभियङ्गे, ताङ्गबुथा, कुलुङ्ग, दिक्पाकी, दुङ्गमाकी, नरदोका, निनोका, निमामबोब्बा, नामङ्ग, निमाबोका, नोमङ्ग, पदेयाका, पसेमबोका, फुरकीकी, फुलेही, फङ्गमाका, वरकोस, बाभीका, बाङ्गदेस, बोधिनी, बोधावथा, बोयोङ्ग, बूमाकामका, मेङ्का,

मेकन मसी कुमका, मयाङ्काङ्ग, मकारब्बा, सुबुकुपास, रजविन, रबडाकी, राखाकी, रानोका, रापुङ्गका, रिमचिङ्ग, रेमासोका, रोचिङ्गाका, लाफोका, बाङ्गसक, सिलोका, साङ्गपाङ्ग, सुङ्गदेसी, सोठंगे इत्यादि।

खम्बड़—बम्बईके काठियावाड़ प्रान्तका एक ग्राम। यह स्थान अपने खम्बड़िओ नागमन्दिरके लिये प्रसिद्ध है। ग्रामके प्रवेशद्वार पर रातको प्रायः साँप पड़े रहते, परन्तु उनको छेड़ा नहीं करते हैं। ई० १२वीं शताब्दीके अन्त वा १३वीं शताब्दीके प्रारम्भकाल जालका-देवजीने सम्भवतः इसको स्थापन किया था। खम्बड़ नागकी कहानी इस प्रकार है—छावकुर्वशके ७ राज-पूत भाई भाग जिलेमें रहते थे। उनकी अकेली बहनका नाम साङ्गुवाई था। डाकुओंने उनके ग्रामको आक्रमण किया और पशुओंको हाँक करके अपना मार्ग लिया। सातो भाई सोङ्गे पर चढ़ पशु छोड़नेको चले थे, परन्तु वारी वारी मार डाले गये। मरने पर वही सर्प बने और आज भी पूजे जाते हैं। साङ्गुवाई सती हो गयी थीं। प्रत्येक सर्पको आवाहन करनेमें साङ्गुवाईका भाई कहना पड़ता है। पहले भाईका मन्दिर श्रियानीमें बना है और उन्हें श्रियानिओनाग कहते हैं। दूसरेका स्थान देवधोलेरारके निकट है। और उन्हें देवधोलेरिओनाग नामसे अभिहित करते हैं। तीसरा तलसानमें तलसानिओ नामसे प्रसिद्ध है। तावीका चौथा ताविओ कहलाता है। खम्बड़के पाँचवें को खम्बड़िओ कहा जाता है। देवरके छठेको बुचेरिओ नामसे पुकारते हैं। खवानका सातवाँ मन्दिर खवानिओ नाग नामसे प्रसिद्ध है। खम्बड़िया नागकी प्रतिष्ठाके दिनसे इस गाँवमें सोनार, रंगरेज, मोची, चमार और खटीक नहीं रह सकते और उनके आने पर, कहते हैं—साँप उन्हें बहुत तङ्ग करते हैं। फिर भी इस गाँवमें साँप काटनेका खबर सुन नहीं पड़ती। कोकसब्बा कोई ८४१ होगी। सीठाकी भाँति खम्बड़ भी अपने महीके बर्तनोंके लिये मशहूर हैं। वहाँ मोटा सूती कपड़ा भी बनता है। रुईका व्यापार बढ़ा है, परन्तु कुछ कुछ अपना भी विक्रता है। ग्रामके मन्दिरमें संवत् १५२० (१४६४ ई०) पड़ा है और खम्बड़

१५१२ (१४५६ ई०के) भी पुराने समाधिस्थान विद्यमान है ।

खम्भलाव—बम्बईके काठियावाड़ जिलेका पृथक् कर देनेवाला एक तालुक । इसमें खम्भलाव और चमारडी २ गांव लगते हैं । लिडीयका एरेशन ७ मील पश्चिम पड़ता है । लोकसंख्या प्रायः १४४८ है । भाल राज पुत और लिम्बडी घरानेके दायाद तालुकदारों करते हैं ।

खम्भात—काम्बेका प्रकृत नाम । यह 'खम्भतीर्थ' शब्दका अपभ्रंश है । कान्हे देखो ।

खम्भालिया—बम्बई-प्रांतीय काठियावाड़ जिलेके जाम राज्यका एक नगर । यह अक्षा० २२° १२' ७०" और देशा० ६८° ४४' ५०" में अपने सजाय बन्दरसे लगभग १० मील दूर पड़ता है । यहां एक न्यायाधीश और बहीवतदार रहते हैं । नवानगरके खालसा सरकार बनने पर जबतक भीरूजीव जीये, जामसाहब खम्भालियामें ही रहते रहे । पहले यहां बाधेलीका अधिकार था, जिनसे जाम रावलने इसे छीन लिया । इसमें कई एक प्राचीन देवमन्दिर हैं । खम्भालियाके लोहार अपनी कारीगरीके लिये प्रसिद्ध हैं । यहां बन्दूकें बनानेवाले कारीगर भी भोजद हैं । यहां हारका जानेवाले समस्त यात्रियों पर भीचे लिखी रीतिसे कर लगाया जाता है ।

२ पहियेकी गाड़ी—२६ कोड़ी १० पाना ।

४ " " —१२५ " ।

प्रति हाथी— १२५ " ।

एक सवारका जंठ—७ " ८ पाना ।

दो सवारका जंठ—१० कोड़ी ११ पाना ।

प्रति बुड़सवार—५ कोड़ी ४ पाना ।

प्रति सदे हुए बैल—२ कोड़ी ८ पाना ।

प्रति भैंसा—२ कोड़ी ८ पाना ।

प्रति पैदल यात्री—१ कोड़ी १३ पाना ।

पालकी—२५० से ५०० कोड़ी ।

दूसरी राह जानेवाले यात्रियोंसे यह कर वसूल करनेके लिये गुरगढ़, गाढ़, गांधवी और साम्बमें भी करिन्दे रहते हैं । खम्भालियाके प्राचीन पिण्डतारकमें

सुप्रसिद्ध प्राचीन देवमन्दिर हैं । उनके दर्शनकी जानेवाले यात्रियोंको भी कर देना पड़ता है । पिण्डतारकके एक कुण्डमें चावलका गोला डालनेसे नहीं उबता । इसकी लोकसंख्या प्रायः ८५०६ है । शहरकी दीवारके पास ही घी और तेकी नामकी २ नदियां बहती हैं । खम्भेत—हैदराबाद राज्यके वारङ्गल जिलेका दक्षिण तालुका । इसका रकबा ८८० वर्गमील और भावादी कोई १५४१५८ है । इसके सदर खम्भेतमें लगभग १००१ आदमियोंकी बसती है । यहां चावल बहुत होता है । निजामकी गारण्टीड ऐट रेलवे इस तालुक में उत्तरसे दक्षिण तक चलती है ।

खम्भाच (हि० पु०) एक रागिणी । यह मानकीस रागकी दूसरी रागिणी है । खम्भाच केवल छह स्वर लगनेसे पाड़व कहलाता और रातकी दूसरे पहर पिछली छड़ीमें गाया जाता है ।

खम्भाचक्रान्दड़ा (हि० पु०) एक राग । यह सम्पूर्ण जातीय एक सङ्कर राग है । रागिकों द्वितीय प्रहरके समय इसे गाते हैं ।

खम्भाचटोरी (हि० स्त्री०) एक रागिणी । यह संपूर्ण जातिकी होती और खम्भावती तथा टोरीसे मिलकर बनती है ।

खम्भाची (हि० स्त्री०) खम्भाच देखो ।

खय (हि०) खय देखो ।

खयानत (प० स्त्री०) १ गबन, धरोहर न देनेकी बात । २ चोरी, बर्बरानी ।

खरंजा (हि० स्त्री०) १ खूब जली हुई ईंट । पञ्चावेमें पकते समय ज्यादा पांच लग जानेसे जब दो-तीन ईंटें एक हीमें पक कर कासा पड़ जातों, खरंजा कहलाती है । २ भावां । ३ खड़जा, पक्षी गब ।

खर (सं० पु०) लं मुखकुहरं पतिग्रथेन प्रसृत्यस्त्र, यद्वा लं इन्द्रियं काति, ला-क बाहुलकात् लकारस्य रत्वम् । १ गर्दभ, गधा । २ अश्वतर, खड्गर । (नय ११/१०) ३ कोई राक्षस । यह रावणका भ्राता रहा । इसके और एक भाईका नाम दूषण था । यह दोनों रावण-भगिनी सूर्पनखाके साथ पञ्चवटी वनमें रहते थे । लक्ष्मणके हाथों सूर्पनखाके जब नाक कान काटे गये, खर दूषण

रामने लड़ पड़े और उन्हींके बाणोंसे निहत हुए।
(रामायण चरित्रावली) खर राजसने विन्धवाके औरससे
राकाके गर्भमें जन्मग्रहण किया था। (भारत, वन २०२ च०)

“खरदूषण मो सम बलवन्ता।

तिनहिं को मारे विनु भगवन्ता ॥” (तुलसी)

४ यास, जबासा। ५ काक, कौवा। ६ कङ्कपक्षी
७ कुररपक्षी। ८ ज्योतिषशास्त्रके प्रदर्शितष्टि संव-
त्सरोमें पञ्चविंशतितम वत्सर। इस वर्षमें भयानक
उपद्रव उपस्थित होती है। चांगी, चूड़ी और टिछि-
योंके उत्पातसे प्रजावर्ग पतितग्रस्त दुःख पाता और
देश भङ्ग हो जाता है। ज्योतिषान्त) ८ सूर्यके पार्श्वपर।
१० पश्चिमद्वार गृह, पश्चिम मुँह दरवाजेका घर।
११ उष्णस्मर, पाँच। (त्रि०) १२ उष्णस्मर युक्त,
गर्म। १३ कठिन, कड़ा। १४ घर्म। १५ निष्ठुर,
बैरहम।

खरक (सं० पु०) खेतपर्पटी, खेतका पित्त पापड़ा।

खरक (हिं० स्त्री०) १ खटक, खड़क, खड़ खड़ावट।

“खरक चुगौनकी” (पनाकर) २ टहर। ३ ठाढ़ा, बाड़ा, घेरा।

खरकना (हिं० पु०) पञ्चविंश, एक चिड़िया। यह
लटोरेरी जातिका होता है।

खरकदिहा—विहारप्रान्तके जेजुरीबाग जिलेका एक
परगना। पड़ले यह स्थान सिवार-मुहम्मदाबाद जमी-
न्दारीके अन्तर्गत और महाराज मोदनारायणदेवके
अधिकारभुक्त रहा। नवाब अलीउद्दीन मोदनारायणको
जटा खरकदिहा इकबाल अलीखाने दे डाला।

महाराज मोदनारायणके समय यह भूभाग ३८
विभागोंमें बंटा था और उनके अधीन प्रत्येक भागमें
एक एक संरक्षक रहा। संरक्षक लोग अर्धस्वाधीन
थे। जब कोई राजा सिंहासन पर बैठते, यह उनकी
अधीनता स्वीकार करते और प्रतिवर्ष कुछ न कुछ
कर देते थे।

मोदनारायणने राज्य खो रामगढ़ जाकर आश्रय
लिया और उनके पौत्र गिरिवरनारायणने वहाँ अंग-
रेजोंको यथेष्ट साहाय्य दिया। जब अंगरेजी फौज
खरकदिहामें घुसी, ३८ संरक्षकोंमें छत्तीसने गिरिवर-
नारायणका पक्ष लिया था। उसी समय इकबाल

अलीखाने राज्यसे ताड़ित हुए। उनके खास अपने
१० गांव रहे, जो गिरिवरनारायणको भिन्नकर दिये
गये। गिरिवर और अंगरेजोंका पक्ष लेनेवाले २६
संरक्षकोंके साथ दुबामी बन्दोबस्त हुआ। विपक्षताचरण
करनेवाले अपनी संरक्षकता खो बैठे। बाकी ५४ गांवों-
का अलग लोकोत्तरे साथ अस्थायी प्रबन्ध किया गया।
१८०८ ई०को गिरिवरनारायणने ६३१४) ८० सालाना
मालगुजारी पर बड़ेकाटसे सब गांवोंका सुदामी
पट्टा लिखा लिया। आजकल इस राज्यका कितना
ही अंश खास गवर्नमेण्टके राज्यमें आ पड़ा है।

खरकदो—बम्बई प्रादेशिक अहमदाबाद जिलेके गावा
उपविभागका एक ग्राम। यह सीहोरसे प्रायः १० मील
दक्षिण-पूर्व अवस्थित है। इसमें बालन शाहका मश-
हूर मकबरा बना है। मकबरेके शिलाफलकमें १२६६
ई०की तारीख है। उसमें लिखा है—बालन शाह अबु-
मुहम्मद जकरियाके लड़के थे। वह मुलतानसे अपने
बापसे लड़ करके शेख जमर नामक नौकरके साथ
गोवा भाग आये। फिर वह खरकदो पहुँचे और
किसी मुसलमान तेलीके पास जाकर ठहरे। वहाँ
उन्होंने उस तेलीकी अन्धी माँको अच्छा किया और
दूसरे अलौकिक कार्य भी सम्पन्न किये। अन्तर्ही वह
साधु जीवन व्यतीत करते १०० वर्षकी अवस्थामें चल
बसे। बालन शाहके मरने पर गांववाले उनके मकबरे-
को पूजने लगे। कहते हैं कि उनके भाई इब्राहीम
और भतीजी सचिन्दा उन्हें दूँटने चले थे, परन्तु जमीन-
ने फट कर उन्हें निगल डाला। बालन शाहका मक-
बरा पड़ले उक्त मुसलमान तेली और शेख जमरके
अधिकारमें रहा, फिर शेख जमरने उसको वध करके
अपना एकाधिपत्य जमा लिया। कितने ही वर्ष पोछे
खोखरा मोहोताके वाचानी गोहिलोंने खरकदिहा
आधा भाग प्राप्त किया। आजकल यहाँ वाचानी
गोहिलों और शेख जमरके वंशधरोंका सम्मिलित
अधिकार है। मकबरेके दूसरे शिलाफलकमें लिखा
है कि १२४५ ई०को उसकी मरणांत की गयी।

खरकना (हिं० स्त्री०) १ धोमी धोमी अवाज पाना,
खरखराना। २ दुखना, हँसना, तपकना। फाँस

सुभने और उसके रह रह दुखनेको 'खरकना' कहते हैं।

खरकपुर (खड़गपुर)—बिहार-प्रान्तीय मुंगेर जिलेके खरकपुर परगनेका एक शहर और सदर मुकाम। यह अक्षा० २५° ७' उ० और देशा० ८८° ३४' पू० पर अवस्थित है।

यह परगना दरभंगा महाराजके अधीन है। यहां प्रायः ३ हजार लोग रहते हैं। खरकपुरमें दरभंगा-महाराजका स्थापित औषधालय और विद्यालय वर्तमान है।

खरकपुर (खड़गपुर)—बङ्गालके मेदिनीपुर जिलेका एक गाँव। यह अक्षा० २२° २०' उ० और देशा० ८७° २१' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या कोई ३५२६ होगी। यह बङ्गाल-नागपुर-रेलवे और ईष्टकोष्ठ शाखाका बड़ा जङ्गल है। फिर बड़ी काहन कलकत्ते को बम्बईसे मिलाती और उत्तरमें एक शाखा बांजुड़ा तथा भरियाको भी जाती है। गाँवमें और सोहानीका मकबरा है।

खरकर (सं० पु०) खरस्त्रीवः करोऽस्य, बहुव्री०। सूर्य, सूरज। खरकिरण प्रभृति शब्द भी इसी अर्थमें आते हैं।

खरकर्म—जैनशास्त्रमें कूर व्यापार अर्थात् प्राणियोंको दुःख पहुंचानेवाले छोटे बजगारको खरकर्म कहते हैं। खरकर्म न करनेवाले खरकर्मव्रती कहलाते हैं। यह व्रत पन्द्रह प्रतिचारों से रहित ही पक्का होता है। वे पंद्रह प्रतिचार ये हैं,—वनजीविका, अग्निजीविका, अमोजीविका (शकटजीविका) स्फोटजीविका, भाटजीविका, यंत्रपीडन, निर्वाहण, असतीपोष, सरःशेष, दधप्रद, तथा जीवोंको पीड़ा देनेवाले विषवाणिज्य, स्नात्रावाणिज्य, दंतवाणिज्य, केशवानिज्य और रसवाणिज्य। (सागरधर्मावत, पृ० ११६)

खरकपट (हिं० स्त्री०) एक चिकनी पटरी। यह दो अङ्गुलि परिमित विस्तृत होती है। इसे करचे पर दो झुट्टियोंमें घटका कर तिरछा लगा देते और ताना फौसा कर गुलबदन आदि बुन लेते हैं।

खरका (हिं० पु०) १ सौंफ या किसी दूसरी लकड़ीका

पतला और छोटा टुकड़ा। यह भोजनोपरान्त दाँतोंमें लगी अन्नादिकी खोड़ानेके लिये व्यवहृत होता है। नीमका खरका सबसे अच्छा समझा जाता है। चाँदी, तंबू आदिके भी खरके बनते हैं। २ पक्काचविशेष। चाटा माँडके उसके बारीक बारीक लम्बे टुकड़े काट लिये जाते हैं। फिर उन्हें घीमें भूनने और चीनो पड़े दूधमें भिगोनेसे खरका तैयार होता है। यह प्रायः विवाहके समय कच्चाके दिन परोसा जाता है। ३ खरक, खरखराहट।

खरकाष्ठिका (सं० स्त्री०) खरं उप्रं काष्ठं यस्याः, बहुव्री० कप्-टाप् चत इत्वश्च। बेला, एक पौदा।

खरकुटि, खरकुटी देखी।

खरकुटी (सं० स्त्री०) खराचासो कुटी चेति, कर्मधा०। १ नापितशाला, नाईका घर। खरस्य गर्दभस्य कुटी, ६-तत्। २ गर्दभगृह, गर्धोका बाड़ा।

खरकोष (सं० पु०) खरं तोत्रं कुषति शब्दायते, खर-कुष-अण्। तित्तिरपक्षी, तोतर।

खरकोमल (सं० पु०) ज्यैष्ठमास।

खरकाण, खरकोष देखी।

खरखरा (हिं० वि०) खुरखुरा, नाहमवार, जो चिकना न हो।

खरखसा (फा० पु०) १ विवाद-विसंवाद, झगड़ा, बखेड़ा, लड़ाई। २ आशङ्का, खोफ, डर।

खरखोदा—पञ्जाबके रोहितक जिलेकी समपका तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २८° ५२' उ० और देशा० ७६° ५०' पू० पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः पाँच हजार निकलेगी। यह नगर अति प्राचीन है। आज भी इसके अनेक निदर्शन मिलते—किसी समय वह विशेष समृद्धिवाली रहा। यहां थाना, मंदरसा, डाकघर वगैरह बना है।

खरगम्भनिका, खरगम्भा देखी।

खरगम्भनिभा (सं० स्त्री०) खरं गम्भेन गौर्गम्भेन नितरां भाति, निभा-क। १ नामवला, गोरखसुखी। २ वन-तुलसी।

खरगम्भा (सं० स्त्री०) खर उपः गम्भी यस्याः, बहुव्री० ततः टाप्। १ नागवला। २ वनतुलसी।

खरगड़ (सं० ली०) गर्दभगड़, गछेके रहनेकी जगह ।
खरगीड़, खरगड़ देखो ।

खरगोन—मध्यभारतीय इन्दौर राज्यके नीमाड़ जिलेका
सदर । यह अक्षा० २१° ५०' उ० और देशा० ७५° ३७
पू०में कुन्दी नदीके वाम तट पर अवस्थित है । लोक-
संख्या प्रायः ७६२४ होगी । मालूम होता है कि मुग-
लोंने खरगोन बनाया था । यह पहले मालवा-सूबेकी
बीजागढ़ सरकारके किसी महलका प्रधान नगर रहा,
पीछे उक्त सरकारका ही सदर मुकाम बन गया । बड़े
मकानों और बहुतसी कच्चीका भग्नावशेष देखनेसे
समझ पड़ता है कि खरगोन उस समयकी एक बड़ी
चढ़ी जगह था । म्युनिसिपैलिटी स्थानीय कार्योंका प्रबन्ध
करती है ।

खरगोश (फा० पु०) एक तीक्ष्णदन्त चतुष्पद जीव,
खरहा, चौगड़ा । इसका संस्कृत पर्याय—शश, शशक,
मृगलोमक, शूलिक और लोमकणं है । खरगोशकी
हिन्दीमें 'खरहा', बंगलामें 'खरगोश' या 'ससर',
मराठीमें 'शश', तामिलमें 'मुसल', तेलगुमें 'कुण्डेलि',
कनाड़ीमें 'मक्का' और गाड़ीमें 'मोलोन' कहते हैं ।

शशकजाति (Lepus) प्रधानतः दो प्रकारके होती
हैं । कई एक अपेक्षाकृत बड़े दीखाते, जो अंगरेजीमें
'हेयर' (Hare) कहलाते हैं । फिर छोटे खरहोंका
अंगरेजी नाम 'रेबिट' (Rabbit) है ।

प्रथम अंग्रेजीके खरगोशोंमें फिर आकार गठन और
वर्षके अनुसार १५ प्रकारकी शाखायें निकाली गयी हैं ।
इस प्रकारके खरहे अपने लियेकी छोड़ कर पृथिवी पर
सर्वत्र मिलते, यहां तक कि चिरतुषारा वृत्त हैं, सुमेरु
प्रदेशमें भी वर्षके बीच देख पड़ते हैं ।

छोटे खरगोश भी पृथिवी पर सब जगह रहते हैं ।

सकल ही पशुओंके मध्य शशक अति भीरु होता
है । इसका शिर गोल और मुँह छोटा रहता और उसकी
दोनों वगलोंमें बड़े बड़े बाल आ जाते हैं । कान कुछ
कुछ बड़े लगते, जो इच्छानुसार पीछेकी सुमाये जा
सकते हैं । आँख की पुतली खूब साफ और बड़ी होती
है । बाहने पर खरगोश पीछे भी देख सकता है । अन्न
अति कोमल और चिकनेवालोंसे ढंका रहता है । यह

घने जङ्गलों और गांवके पास गड्ढे खोद कर वास करता
और रातको चरने निकलता है । शस्त्रक्षेत्र निकट होनेसे
फिर निस्तार नहीं, दलने दल खरहे जाकर उसे नष्ट
कर डालते हैं । इसलिये विलायत वगैरह बहुतसा
जगहोंमें, जहां खरगोश ज्यादा हैं, इनके मारनेकी नाना
प्रकारके उपाय अवलम्बन किये गये हैं ।



शशकके पद पद पर शत्रु हैं । ऐसा कोई अस्त्र नहीं
जिससे विपद् पड़ने पर कुटकारा मिल सके । फिर भी
ईश्वरकी कृपासे इनकी अवयवशक्ति बहुत प्रबल है ।
वायुका थोड़ासा शब्द होते और पैरका पत्ता खड़कते
ही यह सावधानी हो भाग खड़े होते हैं । पीछे शत्रुकी
आँते देख खरहे प्राण छोड़ कर दौड़ते और थोड़ी दूर
पर जा ठहरते, फिर दूसरी ओर उछल घने जङ्गलके
किसी गड्ढे में अपना मुँह छुपा रखते हैं । यह बड़े
कोमल होते और कुत्ते वगैरह दुश्मनोंका दाँत लगते
ही मरते हैं । खरगोश बाँख फाड़ कर सोते और दो
पैर उठा कर चलते हैं ।

खरहो छह महीनेमें गर्भवती होती है । यह एक
महीने पीछे साध साध सात पाठ बच्चे निकालती और
१०-१५ दिन पीछे फिर गर्भवती हो जाती है । जगतमें
इसके बहुतसे शत्रु न रहते, समझ पड़ता है, खरहोंसे
पाथी पृथिवी भर जाती । इसका मांस बहुत कोमल
और सुस्वादु होता है । विलायतमें बहुतसे आरामी मुह-
व्यतके साथ खरगोशका गोश्त खाते हैं । इसके मुलायम
क्येदार चमड़ेकी उम्दा उम्दा टोपियाँ बनती हैं ।
सुतरा व्यापारमें शशकका चर्म मूल्यवान् है ।

खरगोश पालनेसे बिल जाता, परन्तु पाँच छह
वर्षसे ज्यादा बचने नहीं पाता । ब्राह्मिचरिजके मतमें
रातको खरहके बायीं ओर बोलनेसे मङ्गल होता है ।

(इष्टव० ८८११) शशक देखो ।

खरगड़ (सं० पु०) खरस्य शशः गृहम्, ६-तत् । गर्दभ-
गड़, गदवा रहनेका घर ।

खरवातन (सं० पु०) खरमुषरोगं तन्नामकं राक्षसं वा वातयति, इन् खार्षं चिष्-न् । १ नागकेशरहस्य २ श्रीराम ।

खरच्छद (सं० पु०) खरस्तीव्रच्छदः पत्रमस्य, बहुव्री० । १ उल्लुपनामदण, एक घास । २ रक्त नाम क्षुद्र क्षुप, कोई छोटी भाड़ी । ३ कुंदुदण । ४ भूमिसहस्र, एक पेड़ । ५ शाकहस्य, सागोनका पेड़ । ६ शाखोट हस्य । ७ रत्नापामार्ग, साल लटजीरा ।

खरच्छदा (सं० स्त्री०) १ त्रिपुरमंजिका । २ चिचि-लिका ।

खरज (हि० पु०) षड्ज, गानिका प्रधान खर । ख (जको साध कर हो गाना आरम्भ करते हैं) । बहन देखी ।

खरज् (वै० त्रि०) खरं जयति, जू बाहुलकात् कुः । तीव्रगति, जख्द चलनेवाला । (सक्. १०१०६०)

खरटो (सं० स्त्री०) रङ्गधातु, रांगा ।

खरणस् (सं० त्रि०) खरस्य नासेव नासा यस्य, बहुव्री० । खरा नासा यस्य इति वा, नासाया नसादेशः विकल्प-पक्षे अजभावः । १ गर्दभ सदृश नासिकायुक्त, जिसकी नाक गधे की नाकसे मिलती है । २ तीक्ष्णनासिक, जिसकी नाक धारदार हो ।

खरणस (सं० त्रि०) खरा तीक्ष्णा नासा अस्य, बहुव्री० । अच् नासाया नसादेशश्च । खरखराभां वातसु । (पा ५।४।१८ नासिक) ततो णत्वम् । पूर्वपदात् संज्ञायामगः । पा ८।४।१ । तीक्ष्ण नासिक, तीखी नाकवाला । २ गधे जैसी नाक रखने-वाला ।

खरतर (सं० त्रि०) खर-तर । अतिशय तीक्ष्ण, जरादा पैना ।

“खरतर-वरसर-इतद्व-वदन रसगधर जनधर पञ्चधर-अयन ।

जगदधमपहर भवभय-तरण परपद-लवकर कमलजनयन ।” (उचट)

खरतरगच्छ—जेनसम्प्रदायकी एक शाखा । प्रसिद्ध जेना-चार्य मेघनद खरतरगच्छ शाखाभुक्त रहे । राज-पुतानाके राजा खरतरगच्छके यतियोंका बड़ा सम्मान करते हैं । बख् देखी ।

खरतुण्ड (सं० पु०) लज्जालका, लाजवंती ।

खरत्वक् (सं० स्त्री०) खरा तीक्ष्ण त्वक् यस्याः, बहुव्री० । अलम्बुवा, किसी किसी की लाजवंती ।

खरयुवा (हिं० पु०) १ हृषविशेष, एक घास । यह बधुवा जैसी एक घास है । पञ्चाव और मध्यप्रदेशमें खरयुवा बहुत होता है । इसका दूसरा नाम चमर-बधुवा है । यह सबसे निकट शाक समझा जाता है । २ कोई निकट व्यक्ति वा द्रव्य, खराब चीज ।

खरदंष्ट्रा (सं० स्त्री०) गोक्षुरक्षुप गोखरुका, पौदा ।

खरदण्ड (सं० स्त्री०) खर उभयः कण्ठकावृतत्वात् दण्डो यस्य, बहुव्री० । पद्म, कंवल ।

खरदला (सं० स्त्री०) खरं दलं यस्याः, बहुव्री० ।

१ श्यामाकता । २ काष्ठोदुम्बर, कठगूजर ।

खरदा (हिं० पु०) चक्रूरमें लगनेवाला एक कीड़ा या रोग । इससे चक्रूरके पत्ते साल पड़ जाते और पौड़े बढ़ने नहीं पाते ।

खरदी—बम्बई-प्रान्तके धाना जिलेका एक रेलवे स्टेशन । यहां सुसाफिरी और मानका घाना जाना बढ़ रहा है । १८२७ ई० को क्लून्सने जा कर देखा कि वहाँ एक सामान्य शहर और मामूली सराय था । खरदीमें उस समय ७५ घर, १ दुकानें, कई एक कुएँ और एक पक्का बाग रहा ।

खरदूषण (सं० पु०-स्त्री०) खरं उभं दूषणं मादकता-जनकदोषो यत्र, बहुव्री० । १ धूसूरहस्य वा फल, धतूरेका पेड़ या फल । खरख दूषणस्य, इतरतरहन् । २ खर और दूषण नामक दोनों राक्षस । खर देखी । (त्रि०) खरं तीव्रं दूषणं यस्य, बहुव्री० । १ तीव्रदोषयुक्त, बहुत बुरा ।

खरधन्विका (सं० स्त्री०) गोरक्षतण्डुला ।

खरधार (सं० त्रि०) खरा उपाधारा यस्य, बहुव्री० ।

तीव्रधार, पैना, तेज । सुश्रुतके मतमें करपत्र भिन्न दूसरा कोई खरधार अस्त्र त्रयादि पर प्रयोग करना अविधेय है ।

खरध्वंसी (सं० पु०) खरं खरनामानं राक्षसं ध्वंस-यति, खर-ध्वंस-चिष्-न् । १ श्रीराम, जिज्ञानि खर राक्षसकी मारा था । २ कंसके खर नामक चरकी ध्वंस करनेवाली श्रीकृष्ण ।

खरना (हिं० त्रि०) अर्धाको जलमें उतापन करके परि-ष्कार करना, उनको पानीमें गर्म करके साफ करना ।

खरनादिनी (सं० स्त्री०) खरनादिन् ङीप् । १ णुका नामक गन्धद्रव्य, एक खुरशूदार बीज ।

खरनादी (सं० त्रि०) खरं नदति, नद-णिनि । गर्दभ-जैसा शब्द करनेवाला, जो गधेकी तरह बोलता हो ।

खरनाल (सं० स्त्री०) खरं नालं यस्य, बहुव्री० । पद्म, कमल । (भागवत १।५।२०)

खरप (सं० पु०) खरं पिबति, पा-क । १ ऋषिविशेष । यह शब्द मराठी गणके अन्तर्गत है । गोत्रापत्य अर्थमें इसके उत्तर फल् लगनेसे 'खारपायण' शब्द बनता है ।

खरपत (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़ । यह नीलगिरि, इंडोनेशिया, अवध और ब्रह्मदेशमें बहुत उत्पन्न होता है । वैशाख ज्येष्ठ मास इसके फूलने और कार्तिक अश्विमास फलनेका समय है । खरपतका फल मकोय-जैसा आता और कच्चा ही खाया जाता है । इसकी पत्तियां खानेमें हाथीकी बहुत अच्छी लगती हैं । खरपतके बल्कलमें चमड़ा सिंकाते हैं । इससे हरा पीला एक गोद भी निकलता है । खरपतका दूसरा नाम 'धोगर' है ।

खरपत्र (सं० पु०) खरं पत्रमस्य, बहुव्री० । १ शाकवृक्ष, सागवन । २ लुद्रतुलसीवृक्ष, छोटी पत्तीकी तुलसी । ३ ताम्रतुलसीवृक्ष, खुरशूदार तुलसीका पेड़ । ४ भूज-पत्र । ५ यावनाल, किसी किष्किका रमसर । ६ मरुवक-वृक्ष, मरवा ।

खरपत्रक (सं० पु०) तिलवृक्ष ।

खरपत्री (सं० स्त्री०) खरं पत्रं यस्याः, बहुव्री० । १ गोजिह्वा नामधेय । २ काकीदुस्वरिका, कठगूलर । खरपत्रिणी, खरपत्री देखो ।

खरपत्रव (सं० पु०) शाखोटवृक्ष ।

खरपा (हिं० पु०) चौबगला ।

खरपाण्ड (सं० पु०) कपित्थवृक्ष, कैथिका पेड़ ।

खरपात (सं० स्त्री०) खरश्च तत् पातच्छेत्ति, कर्मधा० । लोहपात्र कोट्टिका बर्तन ।

खरपादाढ्य (सं० पु०) खरैः पादैर्मूर्त्तिराढ्यः । कपित्थ-वृक्ष, कैथिका पेड़ ।

खरपुष्प (सं० पु०) खरं पुष्पमस्याः, बहुव्री० । मरुवक-वृक्ष, मरवेका पौदा ।

खरपुष्पा (सं० स्त्री०) खराणि पुष्पाणि यस्याः, बहुव्री० । लीबभाव पक्षे टाप् । १ बर्वरी, एक लकी । २ वन-तुकसी, बवई ।

खरपुष्पिका, खरपुष्पा देखो ।

खरपुष्पी, खरपुष्पा देखो ।

खरप्रिय (सं० पु०) खरः धान्यकलाय प्रभृति शस्य-मर्दनस्नानं प्रियो यस्य, बहुव्री० लस्य रः । पारावत, कसूतर ।

खरव (हिं०) खरं देखो ।

खरबूजा (हिं० पु०) लताविशेष, एक बेल । यह कर्कटी जातीय एक लता है । इसके फल गोल, मीठे और सुगन्धि होते हैं । खरबूजेका बीज पौष माघ मासको प्रायः नदी किनारे गड़ खोद कर गाड़ा जाता है । फिर उसकी घास फूससे ढांक देते हैं । थोड़े ही दिनोंमें बीजसे बेल फूट आती और चारों ओर फैल जाती है । चैत्रसे प्राषाढ मास तक खरबूजा फलता है । यह कई प्रकारका होता है—सरदा, सफेदा, चितला, लखनवी, जौनपुरी इत्यादि । खरबूजीके बीजको ठण्डाईमें घोंटकर पीते या छिलका निकाल शक्करमें पागकर खाते हैं । खरबूजेके बीजका तेल खाया और उससे साबुन भी बनाया जाता है । इसके फलका खरबूजा ही कहते हैं । यह खानेमें गर्म और दस्तावर है । खरबूजा खाकर प्रायः शर्वत पी लेते हैं । लखनज और जौनपुरका फल बहुत मीठा होता है ।

खरबीजना (हिं० पु०) पातविशेष, रङ्गरीजोंका मट-छड़ा । इस पर रङ्गका माट रख कर उसको टपकाया जाता है ।

खरभर (हिं० पु०) १ खड़खड़ाहट, खटपट । २ कोला-हल, गुलगण्डा । ३ हलचल, चल फिर ।

खरभराना (हिं० त्रि०) खरभर खरभर करना, बीजोंको उलट पुलटके एक खास आवाज निकालना । २ हल्ला करना । ३ हलचल छालना । ४ चवराना ।

खरभराहट, खरभर देखो ।

खरमज्ज (वै० पु०) खरं मज्जयति, मसृज-र । अखान्त शीघ्रक । खरं देखो ।

खरमञ्जरी (सं० स्त्री०) खरा मञ्जरी यस्याः, बहुव्री० ।

समाप्त विधिरनिष्ठात् न कप् । १ अपामार्गं, विषयः । २ श्वेतापामार्गः । कृष्णान्त खरमच्छरि शब्दका प्रयोग भी देखा पड़ता है ।

खरमल्ली (फा० स्त्री०) मोटमर्दी, शरारत पाजीवन ।

खरमास (हिं० पु०) पौष तथा चैत्र मास । यह समय शुभकार्यके लिये अच्छा नहीं ।

खरमूत्र (सं० स्त्री०) गर्दभमूत्र, गधेका पेशाब । यह कटु, उष्ण, चार, तिक्त, कामोत्सादक और कफ तथा महाबातघ्न होता है । (राजनिष्य) खरमूत्र तैल और नखमें छोड़ा जाता है । (पविष्विता)

खरयष्टिका (सं० स्त्री०) लघुवाय्वाक्यक ।

खररश्मि (सं० पु०) खरस्त्रीणः रश्मियस्य, बहुव्री० । सूर्य, साफताब ।

खरराह (सं० पु०) मुखपुच्छकयुक्त खन्नाहाय, एक छोड़ा जिसके मुँहमें टीका हो ।

खररोमा (सं० त्रि०) खरं रोम यस्य, बहुव्री० । १ कठिन रोमयुक्त, जिसके बाल कड़े हों । धर्मशास्त्रकार शातातपके मतमें गर्दभकी मार डालनेसे परजन्यकी खररोमा होती है । (पु०) २ नागविशेष ।

खरख (हिं० पु०) खन, पत्थरकी एक कूँडी । यह गहरा, गोल या लम्बा होता है । इसमें घोषधियाँ घोंटते या कूटते हैं ।

खरवट (हिं० स्त्री०) यन्त्रविशेष, एक चोखार । यह लकड़ीके दो टुकड़ोंसे तिकोनी बनती है । जब किसी वस्तुकी रेतना होता, इसीमें डाल कर रेत लिया करते हैं ।

खरवज्रिका, खरवज्रिका देखो ।

खरवज्ररी, खरवज्रिका देखो ।

खरवज्रिका (सं० स्त्री०) खरा चासी वज्री चेति, कर्मधा० ततः स्वार्थ कन्-टाप् ईकारस्य कृत्त्वच् । नागबला ।

खरवज्री, खरवज्रिका देखो ।

खरवास (हिं० पु०) खरा महीना । सूर्यके धनु और मीनराशि पर जानेसे खरवास होता है ।

खरमास देखो ।

खरवाह—छोटानागपुर और बिहारमें रहनेवाली एक

जाति । कोई खरवारोंकी द्राविड और कोई कोल-जातिकी ही एक शाखा बतलाता है । पाश्चात्य विद्वानों की विचारस है कि वह मुरानी लोगोंसे उत्पन्न है । किसी किसीके कथनानुसार नेपालके खिरातोंमें इनका कितना ही साहस्य है और दोनों एक जाति भी हो सकते हैं । मुख्य बात यह है कि मालूम नहीं—वह किस जातिसे निकले हैं ।

खरवार कहा करते हैं—राजा वेणके समय जब सार्वजनिक विवाह निविद न था, खजियके खोरस और भरजातीय रमणीके गर्भसे उनकी उत्पत्ति हुई ।

यह और भी परिचय देते हैं कि सूर्यवंशीय राजा हरिश्चन्द्रपुत्र रोहिताश्वके प्रियभवन रोहितासगढ़में उनका परवास रहा; वह भी सूर्यवंशी हैं और उसीसे तब भी जन्मज पड़नते हैं ।

इनमें राजासे लेकर पति दीन दरिद्र किसान तक—सब श्रेणियोंके लोग देख पड़ते हैं । जिनकी अवस्था अच्छी है, शारीरिक गठन भी कितना ही उच्चश्रेणीके हिन्दुओं जैसा होता है । फिर केवल खेती करनेवाली निर्धन किसान सन्तालों जैसे लगते हैं । रामगढ़ और यशपुरके राजा खरवार ही हैं । दोनों राजपरिवारोंको देखनेसे फिर नीच जाति कहा नहीं जाता । अब इनके शरीरमें राजपूतोंका रक्त दौड़ गया है, रुपयेके जोरसे जंचे राजपूतोंसे आदान प्रदान होता है । रामगढ़के परकीकवासी महाराज शम्भुनाथसिंह बहुत भले आदमी थे । कसिरसारम् नामक स्थानके ठाकुर और खैरेके कुछ राजपूत भी राजाके घरमें विवाह करके अब खरवार बन गये हैं ।

पनामूं जिलेमें इस जातिकी प्रधानतः तीन श्रेणियाँ हैं—पाटवन्द, देवालवन्द और खैरी । सोहार-डोगीकी श्रेणियाँ देगवारी, खरवार, भोगता, रावत और मांभो कहलाती हैं ।

खरवारोंमें पाटवन्द ही सबसे बड़े हैं । यह यज्ञोपवीत धारण करते हैं । सोहारडोगीके भोगता भी अपने पाटवन्द श्रेणीभुक्त जैसा बतलाते हैं । जिनके पूर्वपुरुष राजपाट अर्थात् रोहितासगढ़में रहते थे, वही पाटवन्द-जैसे गिने जाते हैं । इनका आचार विचार

कितना ही उस ओधीके हिन्दुओंसे मिलता है।

पकामूँ जिलेके खरवार 'बड़ारुह हजार' भी अपनेको कहते हैं। बहुतसे लोग अनुमान करते—जब चेददलपति भगवन्तराय चेद और खरवार-सैन्य के पकामूँ पर चढ़े, सम्भवतः उनकी संख्या १८००० थी।

खरवारोंसे चेद लोग बहुत मिलते जुलते हैं और एक दूसरेके साथ आदान प्रदान भी चलता है।

चेद रीति।

खरवारोंमें कितने ही 'खर' होते हैं। कछुवा, कौम, गार्ह, बैल, बाघ, नाग, सोनार, बनिया, सुरगी आदि लोगोंको देख बहुतसे लोग समझते कि वह प्राविहीय महाजातिसे उत्पन्न हुये और भारतके आदिम अधिवासियोंमें गिने जा सकते हैं। जिसका जो खर रहता, उसी खरके जीवनन्तु वा वृक्ष आदिको सम्मान करता है—उसको कोई जानि पड़वाना या हाथ लगाना नहीं चाहता। फिर भी सर्वत्र यह नियम नहीं चलता। वरकन्या एक खर होनेसे कितने ही लोगों पर विवाह कर जाता है।

इनकी विभिन्न अणियोंमें विवाह प्रचलित रहते भी भोगता लोग देशवारियोंसे आदान प्रदान नहीं करते। परन्तु कितने ही स्थानोंमें दोनों एकत्र उठते बैठते हैं। भोगता दूधोंसे ओछ होते भी अनेक कलहोंसे शाश्वत किये जाते हैं।

इनमें वाय्विवाहका बड़ा आदर है। परन्तु दरिद्रताके कारण अनेक समय अधिक वयसमें विवाह होता है। देशवारी खरवार कन्यापण नहीं लेते। किन्तु भोगता और मांझी बिना पण लिये सर्वदा कन्यादान करनेसे दूर रहते, अन्ततः पांच सात रुपये तो प्रचण ही करते हैं।

देशवारी लोग विधवा विवाह नहीं करते। भोग-ताओं और मांझियोंकी उसमें कोई आपत्ति नहीं, फिर भी विधवाको देवरसे ही विवाह करना पड़ता है। स्त्री चरित्रमें दोष होनेसे छोड़ी जा सकती, परन्तु उसकी सगाई बक नहीं सकती। खरवार चेदों जैसे हिन्दू धर्मावलम्बी हैं। जिसकी भवसा चण्डी होती, प्रायः एकत्राग्र्य गृह रखता है। परन्तु ब्राह्मणोंकी लोग

वैसी भक्ति नहीं करते। प्रत्येक शाममें कीलीकी भाँति इनके एक पाहन या बैगा (पुरोहित) होता है।

खरवारकी परमेश्वरकी मानते हैं, किन्तु मूर्तियोंकी नहीं पूजते। दड़ा, डाकिन, गंहेल, पचियान, चेरी, चत्तर और दुर्गागिया इनकी कई एक उपास्य देवता हैं।

दुर्गागियाका दूसरा नाम मोचरानी है। इनके विवाहका इनमें प्रधान उत्सव होता है। रानीका विवाह तीन तीन वर्ष बाद आता है। खरवार कहते कि पीछे प्रतिवर्षकी रानीका विवाह होता था, किन्तु किसी समय विवाहके दूसरे दिन सबेर रानी एकाएक बैगाके घर जा पहुँचीं। उस समय बैगा घर पर न थे। बैगाकी स्त्रीने हठात् उनके जानेका कारण पूछा था। रानीने कोई उत्तर न दिया। इससे बैगानी चिढ़ गयी थीं। उसी समयसे व्यवस्था की गयी, फिर रानीका विवाह प्रतिवर्ष न होगा।

लोहारहागेके अन्तर्गत लुदयाहर गाँवमें बहुराज नामक पहाड़ पर बहुराजोका गृह है। विवाहके समय खरवारोंमें धूमधाम मच जाती है। पासके गाँवोंसे पुरुष और स्त्रियाँ नाचती गाती और बजाती बहुराज पर्वत पर चढ़ती हैं। बैगा (पुरोहित) आगे आगे चलता है। सब पहाड़ पर चढ़ एक गुहाके पास जा पहुँचते हैं। इसी गुहामें रानीका घर है। बैगा उसमें घुस कर एक लम्बा चौकोर पत्थर निकाल लाते हैं। यही पत्थर मोचक रानीकी प्रतिमा है। रेशमी कपड़ेसे प्रतिमा कपेट कर कंधे पर रख ली जाती है। फिर बड़ी धूम धामसे सब लोग समाकाण्ड गाँवके कांडो पहाड़की यात्रा करते हैं। वहाँ वरका घर है। वहाँ पहुँचनेपर गुड़, दूध और २ यैसे चढ़ाकर वरकन्याको पूजा की जाती है। वरक घरमें भी एक गुहा है। इसमें एक अतल-अर्धो गहर विद्यमान है। लोगोंकी विश्वास है कि राह लगी है। बहुरानीकी इसी गहमें डाल देते हैं। सब लोग खिर हो कर उनके गिरनेका शब्द गुन पड़नेसे समझ लेते हैं कि वरकन्याकी भेंट हो गयी। फिर अपने अपने घरोंकी जाया जाता है। लोगोंकी विश्वास

है कि वह पत्थर फिर बहुराज पहाड़ पर अपने स्थानमें जा पहुँचता है।

खरबुक (सं० पु०) मरुतकवृक्ष, मरवेका पौदा।
खरबुस, खरबुक देखो।

खरगण्ड (सं० पु०) खरः उपः शब्दो यस्य, बहुव्री०।
१ कुररपक्षी, कड़ी पावाजकी एक चिड़िया। २ गधेका रेंकना। ३ उपशब्द, तीखी पावाज।

खरशाक (सं० पु०) खरं शाकमस्य, बहुव्री०। भार्गी, भंगरेया।

खरशाका (सं० स्त्री०) खरं शाकं यस्याः, बहुव्री० टाप। भार्गी, एक औषधि।

खरशाला (सं० स्त्री०) खराणां शाला, इ तत्। गर्धका घर।

खरशूक (सं० पु०) पीतशाल, एक पेड़।

खरस (हिं० पु०) भङ्गूक, भालू।

खरसा (हिं० पु०) १ भोज्यपदार्थविशेष, खानेकी एक चीज। २ मत्स्यविशेष, कोई मछली। यह चासाम तथा ब्रह्मदेशकी नदियोंमें बहुत होता है। ३ घोष, गर्मीका मौसम। ४ दुर्भिक्ष, कष्ट। ५ कण्डू, खुजली, खाज।

खरसाइंध (हिं० स्त्री०) किसी चीजके ज्यादा पक जाने पर उसके जलनेकी खुशबू।

खरसान (हिं० स्त्री०) किसी किसीकी सान। यह बहुत तीखी रहती और इस पर तलवार चतरती है।

खरसावां—छोटानामपुरका एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० २२° ४१' तथा २२° ५३' उ० और देशा० ८५° ४८' एवं ८५° ५५' पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल १५३ वर्ग मील लगता है। इसके उत्तर रांची तथा मान-भूम जिला, पूर्व सरायकेलाराज्य और दक्षिण तथा पश्चिमकी सिन्धभूम जिला है। सोनाई नदी इस राज्यमें उत्तर-पश्चिमसे दक्षिण-पूर्वकी बहती है। इस नदीके उत्तर और दक्षिण तट पर जङ्गली पहाड़ खड़े हैं। बहुतसे पहाड़ोंमें लोहा मिलता है। सोनाई नदी तीरेतमें कुछ कुछ सोना भी है। इस राज्यमें तबिकी भी खानियां मिल सकती हैं। जङ्गलमें कई प्रकारकी लकड़ी होती है। जगह जगह कई तरहके साँप देखनेमें आते हैं।

खरसावां राजाके पोडाहाट राजवंशकी निष्काशा-से सम्बन्ध रखते हैं। अंगरेजी शासन स्थापित होनेसे बहुत पहले राजाके कनिष्ठ भ्राता कुमार विक्रमसिंहने ११ पीर अपने परवरिशके लिये पाये थे। वही वर्तमान समयकी सरायकेला और खरसावां रियासतें हैं। विक्रमसिंहकी उनकी २ पत्नियोंसे ५ पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठकी सरायकेला और द्वितीय पुत्रकी खरसावां राज्य मिला था। १७८३ ई० जब पुराने जङ्गलों मइलोंकी सीमा पर झगड़ा लगा, खरसावांके ठाकुर और सरायकेलाके कुमारको भागे हुए अपराधियोंके विषयमें छटिश् गवर्नमेण्टसे कुछ प्रतिज्ञाएं करनी पड़ीं। खरसावांके सरदार काम पड़ने पर अंगरेजोंकी सहायता करने पर उत्तररहते, किन्तु किसी प्रकारका कर नहीं देते। १८८८ ई०की उन्हें मौजूदा सनद दी गयी। ओराम-चन्द्रसिंह देवकी नाबालगोंमें छटिश् गवर्नमेण्ट अपने आप इस राज्यका प्रबन्ध करते रहो।

खरसावांकी लोकसंख्या प्रायः ३६५४० है। खरसावां नगर इस राज्यका प्रधान स्थान है। स्थानीय व्यवहारके लिये सूना कपड़े और लोहेके बर्तन बनते हैं। कुछ गाँवोंमें पत्तियोंकी चटाइयां भी तैयार की जाती हैं। चावल, दाल, तेलहन, वस्तीकी साख और लोहेकी रफ्तानी होती है। बङ्गाल-नागपुर-रेलवे खरसावांमें १२ मील तक गयी है।

खरसुमा (हिं० वि०) खड़े सुमोंवाला (चोड़ा)। इसके सुम गधेकी तरह ऊपरकी उठे हुए रहते हैं।

खरसेला (हिं० वि०) काण्डयुक्त, जिसके खुजली हो।

यह शब्द साधारणतः पशुओंके लिये प्रयुक्त होता है।

खरसोनि (सं० स्त्री०) खे पाकाशे रससुनयति, खनि हन्। लोहिकाशता, एक वेन।

खरसोन्द (सं० पु०) खं शूयभूतः रसायः रसस्नेहनमक, बहुव्री०। लोहपात्रमेद, लोहेका एक वर्तन।

खरस्त्रान्ध (सं० पु०) खरः स्त्रान्धोऽस्य, बहुव्री०।
१ पियालवृक्ष। २ खजूरीवृक्ष।

खरस्त्रान्धा (सं० स्त्री०) खरः स्त्रान्धोऽस्यः। खरकृष्णदेवो खरस्त्राय (सं० त्रि०) गोविन्दादिवत्। खर, गायकी जीभ-जैसा खरखरा।

खरस्यम् (सं० स्त्री०) खः । स्यं यच्चाः, बहुव्री० ततः
टाप् । पीतदेवदालीसता, एक पीकी बेल । चरसेखा
खरखरा (सं० स्त्री०) खरं खरति उपतापयति, ख-प्रच् ।

१ वनमल्लिका, जंगनी चमेनी । २ त्रिपुरमल्लिका ।

खरहर (हिं० पु०) १ वृक्षविशेष, एक पेड़ । वल्लत
जातिका यह पेड़ हिमालयकी तराईमें उत्पन्न होता
है । इसकी पत्तियां बेरकी पत्तियोंसे दीर्घ रहती हैं ।
फल वल्लत ही जैसे पाते हैं । खरहरका कच्चा काष्ठ
सफेद होता, परन्तु पकनेमें गाढ़ घूमरवर्ण बन जाता
है । उसमें लवियन्त्र निर्मित होते हैं । खरहरका वल्कल
घमड़ा मिश्रानमें लगता है । २ वह जगह जहां कूटा
ककईट पड़ा हो या चासफूस भरा हो ।

खरहरा (हिं० पु०) १ बरहंछा, महतर्गेका भाड़ू । यन्त्र-
विशेष, एक चोखार । यह प्रायः लोहेका बनता है ।
लोहेकी एक चौकार टुकड़े पर उसकी दांत दार
४।५ कंचियां पास ही पास जड़ दी जाती हैं और
बीचमें छोड़ी छोड़ी जगह खाली रहती है । खरहरसे
घोड़े, बैल वगैरहका जिस्म साफ किया जाता है ।
चमड़ेके एक टुकड़ेमें किसी खास तौरसे लोहेके
पतले तार लगा कर भी खरहरा बनाते हैं । इसमें
आदमी भी अपने बाल पार कपड़े साफ कर
सकता है ।

खरहरी (हिं० स्त्री०) एक फल या मेवा ।

खरहा (हिं० पु०) शयक, खरगोश, चोगड़ा । यह
चूईकी गरुडका एक जानवर है जो डालडोलमें उससे
कुछ बड़ा होता है । इसके काम लम्बे, मुंह और सर
गोल, चमड़ा सुलायम, पूंछ छोटी और पिछले पैर
पगले पैरोंसे कुछ ऊंचे पड़ते हैं । खरहेके दांत बहुत
पैने होते हैं । खरगोश और शयक देखी ।

खरही (हिं० स्त्री०) राशि, टेर । प्रायः दूध वा पखा
दिकी राशिकी ही 'खरही' कहा जाता है ।

खरा (सं० स्त्री०) खं पाकायं लाति गृह्णाति, ख-खा-क
लकारख रकारः । पीतदेवताङ्क ।

खरा (हिं० वि०) १ तीक्ष्ण, तीखा । २ विशुद्ध, खालिस ।
३ करारा, खूब पका हुआ, कुरकुरा । ४ कठिन, कड़ा ।
५ निश्चय, साफ । ६ नकद । ७ अष्टवादी, साफ साफ
कहनेवाला ।

खरांड (सं० पु०) खरखाखः अंशुयंज, बहुव्री० ।
सूर्य, सूरज ।

खराई (हिं० स्त्री०) खरापन, करारापन, सफाई ।

खरागरी (सं० पु०) खरं पागिरति, खर-पा-गृ-प्रच्
गौरादित्वात् डीप् । पीत देवताङ्कल ।

खराम्ब (सं० पु०) अर्कनिष्काशनार्थं तीक्ष्णान्निविशेष,
तेज पांच ।

खराटावाड़—काठियावाड़ प्रान्तके भावनगर राज्यका
एक नगर । यहांसे १ मील दूर पहाड़में चित्राधार
नामकी कोई बौद्धगुहा है । लोग उसे 'बवोरी बाबाकी
गुफा' कहा करते हैं । यहां एक दुर्गका भ्रंसावशेष
विद्यमान है । किसीके कूएंका नाम 'पांच बोबी नो
कुपो' है । जैन, वैष्णव और स्वामी नारायणमतानु-
यायियोंके भी मन्दिर बने हैं । यह नगर मासन नदीके
दक्षिण तट पर अवस्थित है । यहांसे पांच मील पूर्वकी
मासन, रोझकी और लिलिची तीन नदियां मिलनेसे
त्रिवेणी कहलाती है । यहां विश्वेश्वर महादेवका
मन्दिर है । प्रतिवर्ष आवचकी समावस्थाकी मेला
लगता है । आम और नारियलकी पेदावार अच्छी है ।

खराण्डक (सं० पु०) शिवके एक अनुचर ।

खराद (हिं० पु०) यन्त्रविशेष, एक चोखार । इस पर
काष्ठ वा धातु आदिकी चढ़ा कर चिकना और सुडोल
बनाया जाता है । २ खरादनेका काम । ३ गठम,
बनाव ।

खरादना (हिं० क्ति०) खराद पर चढ़ाना, चिकनाना
और सुडोल बनाना ।

खरादी (हिं० वि०) खरादनेवाला ।

खरादी—बम्बई प्रान्तके बेलगांव जिलेकी एक जाति ।
यह बेलगांव और दूसरे बड़े शहरोंमें मिलते हैं ।
औरतजीवनने इन्हें सुतारसे सुसलमान बनाया था ।
यह लोग आपसमें हिन्दू और दूसरोंके साथ भगठो
या कनाड़ी भाषा बोलते हैं । इनकी स्त्रियां हिन्दुओंकी
जैसी पोशाक और चोखी पहनती और सर्वसाधारणमें
उपजीत हो करके मुसलमानोंको साहाय्य करती हैं । यह
लोग लकड़ीके पाखे, भूले और खिकीत बनाते और
उन घर लाल, पीला, नारंगी, हरा और नीला रंग
चढ़ाते हैं ।

खरादी—खालिथीकी एक जाति। यह लोग खरीद पर लकड़ीको बढ़ा करके तरह तरहकी चीजें बनाते हैं। इनका आचार व्यवहार पवित्र है। परन्तु सुसज्जन खरादी भी होते हैं। खरादियोंकी स्त्रियां भी लकड़ी पर नकाशी करती हैं। यह वैश्ववसन्मदायभुक्त पौर्णमासी होती हैं।

खरापन (हिं० पु०) खराई, सफाई, करारापन।

खराब (अ० वि०) १ निक्षुब्ध, बुरा, जो अच्छा न हो।

२ दुरवस्था, बुरी हालतमें पड़ा हुआ। ३ पतित, कमीना।

खराबी (फा० स्त्री०) १ बुराई, ऐव, अवगुण।

२ दुर्दशा, बुरी हालत।

खराब्दाकुरक (सं० स्त्री०) खराब्दात् तीव्रगर्जनमेवात् अकुरयति, अकुरि-खुल्। वैदूर्यमणि, लहसुनियां। मधे बादलके गरजनेसे इस मणिमें अकुर उत्पन्न होता है। वैदूर्य देखो।

खरार—पञ्जाब-प्रदेशके पम्बाला जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०° १४' से ३०° ५६' ४०" और देशा० ७६° २२' से ७६° ५५' पू०के बीच पड़ती है। भूमिका परिमाण ३७० वर्गमील है। लोकसंख्या १६६२६० है। इस तहसीलसे ३ लाख ६० सालाना मालगुजारी जाती है। यहां ३६८ गाँव हैं। यहां गेहूँ, ज्वार, काबुन, चना, चावल, कपास और ईस खूब होती है। दीवानो और होइके मुकद्दमे करनेकी एक तहसीलदार और एक आगरेरी मजिस्ट्रेट रहते हैं। पुलिसके ३ थाने भी हैं। इस तहसीलके प्रधान नगरको भी खरार ही कहा जाता है। नगरमें खासकर के सिये म्युनिसिपालिटी मौजूद है।

खरार—बङ्गाल-प्रांतीय मेदिनीपुर जिलेके घाटाक उप-विभागका एक नगर। यह अक्षा० २२° ४०' ३०" और देशा० ८७° ४४' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या कोई ८५०८ होगी। यहां पीतल और पट्टधातुकी सामान बहुत बनता है। १८८८ ई०की खरारमें म्युनिसिपालिटी पड़ी।

खराक—गुजरात प्रदेशके महीकांठा विभागका मध्य-वर्ती एक छोटा राज्य। यह वातरक नदीके तीरे पर

अवस्थित है। इसमें १२ गाँव लगते हैं। सरदारसिंह खराकके सामन्त राजा थे। पहले वह हिन्दू रहे, परन्तु पीछेकी सुसज्जन बन गये। वह हिन्दू और सुसज्जन-मानी दोनों धर्मोंकी बात ठाठ देख काम करते थे। राजाका ज्येष्ठपुत्र ही राज्य पा सकता है। लहका गोद लेनेकी उन्हें क्षमता नहीं। बड़ोदेके गायकवाड़-की १७५० और अगरेजी गवर्नमेण्टकी ७६०० करकी तरह वार्षिक देना पड़ता है।

खरालिक (सं० पु०) खरं आजाति, खर-पा-ला-खिनि ततः स्त्रियं कन्। १ नापित, नाई। २ चुराधार, चुर-हरी। ३ लोहका तीर। ४ उपाधान, तकिया।

खरालिक देखो।

खराश (फा० स्त्री०) १ खराब, छिन्न, किसी तीखी चीजकी जिस पर रगड़ पड़नेसे बन जानेवाला निशान या जखम।

खराशा (सं० स्त्री०) खरैरश्नते भुज्यते, अश्व-व।

१ बट्ठनटा, मयूरशिखा। २ अजमोदा। यह कफ, वात और वस्तिरोगको दूर करती है। (चरक)

खरास (सं० स्त्री०) खरस्य अस्त्रम्, इतत्। गर्दभरक्त, गधेका खून।

खराहा (सं० स्त्री०) खरं तीव्रगन्धं आह्वयति, आ-ह्वे-कटाप्। अजमोदा।

खरिक् (हिं० पु०) इक्षुमेद, किसी किसमती जख। यह खरीफके पीछे बोया जाता है।

खरिका (सं० स्त्री०) खं राति, रा-क ततः स्त्रियं कन्-टाप् अत इत्वच्। नेपालज चूर्णाजति कस्तूरीमेद, नेपालीका बुझनी जैसा सुगन्ध।

खरिया (हिं० स्त्री०) १ पांसी, पतली रखीकी जासी। इसमें फूस बांधते हैं। २ कण्डेकी राख। ३ काष्ठ-खण्डविशेष, किसी किसमकी लकड़ी। इसके सहारे नांदमें नील कस कर दबाया जाता है। ४ खड़िया मही।

खरिया—डोटानागपुरकी एक छवित्रीकी आदिम जाति। किसीके मतमें खरिया कालोंकी एक जाति और किसीके मतमें द्राविड़जातिसम्भूत हैं। किन्तु ठीक ठीक इनका मूलनिर्णय करना दुःसाध्य है।

शारीरिक गठन किसी कदर सुष्ठा लोगें जैसा रहते भी मुंहकी आकृति उनकी देखते बुरी लगती है। कोई कोई कहता है कि धोरावन लोगोंके बाट रोड़ता-सगढ़ और पटनेमें जाकर उन्होंने वास किया। अपरा-पर अज्ञित प्रवादोंमें मालूम पड़ता कि वह पुराण लोगोंके साथ मयूरभञ्जमें एकत्र रहते थे। यह कहते हैं—मोरके पण्डके सफेद लुबावसे पुराण, उसके छिलकेसे खरिया और उसके ही फूलसे भञ्जराजवंश निकला है। मयूरभञ्जसे यह लोहारडागा जिल्लाके दक्षिण पश्चिम कायल उपत्यकामें जाकर बसे। इस असभ्य जातिमें विद्वान कोई नहीं। खरिया अक्षरादि लिखना नहीं जानते। लिखने पढ़नेकी चाल न रहनेसे इनका विशेष इतिहास कैसे मालूम कर सकते हैं ?

लोहारडागीके खरिया लोग इन कई भागोंमें बंटे हैं—देस्की खरिया, दुधखरिया, अरेंगा, सुष्ठा, बर्गा और उरावन। सिवा इनके दूसरे भी ३४ घराने हैं। सभी लोग खेतीवारी करते हैं। इनकी जमीन मोरुसी होती है। दूसरी जगहोंके खरिये भी कृषिजीवी हैं, परन्तु इच्छानुसार एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जा कर बस रहते हैं। परन्तु लोहारडागीके किसान खरिया कुछ सभ्य होते हैं। भस्मे आदिमियों जैसा उनके पहननेका कपड़ा और ठाटबाट रहता है। रहनेके घर खूब साफ और सुधरे हैं। यह स्वास्थ्यकर और सुस्वादु द्रव्य पाहार करते हैं। हिन्दूधर्मपर सभीकी आस्था है। एक बार जिसने यह धर्म ग्रहण किया, वह जन्म जैसी अपनी आदिमजातीय अवस्था भूल गया; यहाँ तक कि फिर पहचानना कठिन है—क्या वह खरिया-वंशसंभूत है। अब यह मानभूमके पहाड़ी खड़ियों, शीशों और भूमियोंके संस्त्वमें नहीं रहते।

मानभूमके दलमा पहाड़ और गाङ्गपुरके जङ्गलमें जो जङ्गली खरिये रहते, लोहारडागीवालोंकी तरह खेतीवारी पसन्द नहीं करते और लगातार एक जगहसे जाकर दूसरी जगहमें बसते हैं। पहाड़की ऊँची चोटी या बगलमें पास पास दो-तीन घर बनाये जाते हैं। वह बाँसों या कहीं कहीं सालकी छालोंसे बनते हैं। यह वनमें कुछ जगहके पेड़ पत्ते जला उसके

भस्म पर अलग अलग बाजरा, यव और कोदो बो देते और उसीकी खाकर अपना निवोड कर लेते हैं।

जङ्गली खरिये बड़े पैटू होते हैं। यहाँतक कि बन्दर, गाय, बकरी, भैंस आदि सभी प्रकारके स्तनजन्तु पाते ही खाने लगते हैं। साधारणतः यह जङ्गली फल, पत्ते और कन्दमूल आदि खाकर जीवन धारण करते हैं। सिवा इसके पासके गाँवमें जाकर जङ्गलका शहद, कोबान, काह, रेशमी कीड़ा, सालके पत्ते, बासके पैमाने वगैरसे चावल बदन खाते और लहोंकी प्रत्यक्ष खाते हैं। जङ्गली खरियाओंकी कहीं कहीं वनमानुस भी कहा जाता है। दुध खरिये गोमाँस भक्षण करते हैं। इनमें खाने दाने और पकानेकी चाल निरासी है। छोटानागपुरके निकटस्थ ग्रामोंमें उरावन लोगोंके साथ जो खरिये बसते, ब्राह्मणोंके अधीन रह कर हिन्दू हो गये हैं और उनकी अन्धा भक्ति करना सीखने लगे हैं। यह अपनी हाँडी अलग अलग पकाते और अपनी खीरे जायकी बनी चीज भी नहीं खाते। यदि कोई अपरिचित व्यक्ति इनके घर पहुँचता, ढँडिया घड़ा वगैरह महीके बर्तन फेंक दिये और कांसे पीतल आदिके पात्र माँग लिये जाते हैं। इस श्रेणीके खरियाओंका आचार विचार बहुत ही कदर्य है। अपने आप यह इतने मेले रहते कि न तो कभी नहाते और न देहकी सज्जाते हैं।

खरिया वैसे अच्छे कोढ़के बर्तन बना नहीं सकते। पहाड़ोंसे कन्दमूल निकालनेके लिये फावड़े चलाते हैं। लम्बी लम्बी घाससे पत्तोंकी गाँठ कर एक प्रकारकी धौकनी तैयार करते और उसीसे आगकी धधका लोहा तपा कर पीट लेते हैं।

खरिया स्ववंश और माई, मौसी, भानजी, आदिके साथ विवाह नहीं करते। साधारणतः ऋतुके पीछे कन्याका विवाह होता है। विवाहसे पहली स्त्री यदि किसी पुरुषके साथ गमन करती, उसकी कोई भी दोष नहीं लगता। समृद्धिगाली खरियाओंमें अब हिन्दुओं जैसा बालविवाह चल गया है। विवाहका सम्बन्ध दोनों पारके माता पिता या मामलिक ही पढ़ा करते हैं। विशाहका दिन स्थिर हो जाने पर वरके पिता का

समाईके अनुसार एकसे दस तक भाय या भैंस दहेजमें देना पड़ता है। माघ मासकी यह शुभ विवाह कार्य सम्पन्न होता है। इस मासकी छोड़ कर खरिया दूसरे महीने विवाह कर नहीं सकते। विवाहके पूर्व दिन कन्याके घरकी स्त्रियां उसको साथ लेकर वरके घर जाती हैं। फिर विवाहके दिन बड़े सबेर वर और कन्याके देहमें अच्छी तरहसे तेल लगा स्नान कराते हैं। पांच पुले चास मही पर बिछा उसके ऊपर चूल्का लुवा रखा जाता है। वर और कन्या दोनों एक दूसरेके सामने हो इसी लुवे पर खड़े होते हैं। वर कन्याके सीमन्तमें सिन्दूर चढ़ाता, कहीं कहीं कन्या भी उसके मथेमें सिन्दूरको एक टिपकी लगा देती है। इसी प्रकार विवाहका कार्य शेष हो जाता है। कन्याका पिता यदि अज्ञात पण एकबारगी ही नहीं दे सकता, एक महीनेके बीच कन्याके पहननेकी उसे ७ कपड़े और जामाताकी १ देल देना पड़ता है। विवाह के समय वरकर्ता अपने घरके पास किसी लुका तल भाड़ पोछ रखते हैं। कन्यायात्री इसी जगह पाकर डेरा डालते, फिर वरयात्री जाकर उनमें मिल जाते हैं। दोनों दलोंकी एक करके कोई कच्चा कलस लाते जिसकी चारों ओर धानकी भूसी फैलाते और मुँह पर एक दीपक जलाते हैं। सात दिन खाते, पीते, नाचते, गाते और हंसते खेलते बीत जाता है। इस भोजका सभी स्वर्च वरकर्ताकी उठाना पड़ता है। जब दोनों दलके लोग खाने लगते, उनके सामने कन्याकी ले जाकर गर्म पानीसे कपड़ा धोनेके लिये देते हैं। इससे आये हुये सब लोग समझ सकते कि वह कन्या सभी गार्हस्थ्य कार्य करनेमें निपुण निकलेगी।

खरियाघोमें विधवाविवाह प्रचलित है। स्त्रीकी मरने पर विधवा अपने देवरके साथ सगाई कर सकती है या किसी दूसरेसे भी विवाह करे, तो भी कोई हानि नहीं। विधवा-विवाहमें नूतन स्त्री विधवाकी १ कपड़ा और कन्याके पञ्चस्वरूप १ गाय दिया करता है। विधवा स्त्री अभिचारिणी होनेसे छोड़ जा सकती और कन्याके पिताकी विवाहके समय दहेजके तौर पर मिली हुई चीज वरका लौटाना पड़ती है।

अमती स्त्रीके साथ विवाह करनेमें भी दो गाय या भैंस लगती हैं।

पिताके विषयका केवल पुत्रोंको ही अधिकार होता है। दुधखरिया बतलाते कि मिताक्षराके नियमानुसार ही वह अपनी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी ठहराते हैं। किन्तु यों तो पञ्चायतसे काम चलता है। बड़े लड़के पर अपनी बहनोंके खिलाने पिलानेका भार रहता है। यदि व्यक्तिके विवाहिता पत्नीके गर्भ-जात २ पुत्र और रखी हुई स्त्रीके भी २ लड़के रहते और उही व्यक्तिके धानके १६ खेत होते, तो विवाहित रमणीके दोनों पुत्रोंकी बारह और दूसरे लड़कोंकी ४ खेत मिलते हैं। इसी हिसाबसे उत्तराधिकारी का वंश बंट कर जाता है। व्याही औरतका बड़ा लड़का ७ अंश और छोटा ५ अंश और रखी हुई स्त्रीके बेटे केवल २ अंश पाते हैं।

इनमें खजातीय पुरोहित रहता है। उसको 'कालो' कहा जाता है। यही कालो पुरोहित अपने अपने गांवोंके खरियाघो, पाहणो, मुण्डाघो और उरावणोंकी अन्त्येष्टिक्रिया करते हैं। खरियाघोमें व्याहृका शव जलाया और अविवहिताका गाड़ दिया जाता है। लाश जल जाने पर किसी महीके बर्तनमें थोड़े चावल, सूतका भस्म और अखिर रखके नदीके जल या पहाड़के गड्ढेमें डाल पाते हैं।

यह प्रकृतिके सेवक हैं। 'बड़ा पहाड़' इनके सर्व प्रधान देव हैं। उनके सामने समय समय पर भैंस भेड़ और जङ्गली मुर्ग बलि दिया करते हैं। उक्त देवताकी पूजा मुण्डाघो और उरावणोंसे खरियाघोमें चली है। इनके और भी कई देवता हैं। जैसे—जड़ो (जलदेव), नाशन देव (रोग और संहारकर्ता), गिरिजदेव (सूर्य), जैलो देव (चन्द्र), पाटदेव (पर्वत), दींगा-दाड़ा, महादान, गुमी, अजिनजड़ा (शस्यक्षक देवता)। बगरा सरना (गोमहिषादिमें रोगप्रवर्तक देवता)। इन सकल देवताओंको सम्बोध करनेके लिये खरिया पशु पक्षी माना जन्तु बलि चढ़ाते हैं।

खरियार—मध्यप्रदेशके रायपुर जिलेकी एक जमीन्दारी

यह बिन्दर-नवागढ़ के पूर्व की अवस्थित है। खरियार उत्तरदक्षिण ५३ मील और पूर्व-पश्चिम ३२ मील पड़ता है। इसमें ५०८ कसबे और १५५८७ घर आवाद हैं। प्रवाद है—पटना के किसी सामन्तराज ने अपनी कन्या के विवाह का ल दामाद को यह जमीन्दारी दहेज के तौर पर दी थी। खरियार के वर्तमान मालिक चौहान-वंशीय हैं।

खरिहट (हि० स्त्री०) एक पतली लकड़ी या तिनका इसमें कुम्हार का एक छोटा बंधा रहता, जिससे वह बने हुए कच्चे बर्तन चाख को महीसे काट कर उतारा करता है।

खरिहान (हि० पु०) खलियान, कटे हुए अनाज का टेर।

खरी (हि० स्त्री०) १ किसी किस्म की जख। २ खली। ३ खड़िया मही। ४ कराही, खूब सिंकी हुई। ५ विशद, खालिस। ६ स्पष्ट, साफ।

खरीजह (सं० पु०) खर्या गढ़ाया ईव जड़ा यस्य, बहुव्री०। १ कोई ऋषि। २ शिव।

खरोता (अ० पु०) १ थैली। २ जेब। ३ कोई बड़ा लिफाफा। इसमें कोई बड़ा हाकिम अपने मातहत की कुलनामा वगैरह भेजता है।

खरीतिया (हि० पु०) करविशेष, किसी किस्म का मह-सूल या टेक्स। यह मुसलमानों के समय लगता था। परन्तु अकबर ने खरीतिया उठा दिया।

खरीद (फा० स्त्री०) क्रय, मोल लेने की बात।

खरीदना (हि० क्ति०) क्रय करना, मोल लेना।

खरीदार (फा० पु०) १ क्रेता, मोल लेनेवाला। २ अभि-लाषी, खादिशमन्द।

खरीदारी (फा० स्त्री०) क्रेता का भाव, खरीदार की हालत।

खरीफ (अ० स्त्री०) आषाढ से अग्रहायण मास तक कटनेवाली फसल। इसमें ज्वार, मकई, बाजरा, धान, कड़द, मोठ, मूंग, मटर, लोविया आदि अनाज होते हैं। पड़ला पानी गिरने से यह बोई जाती है। प्रायः खरीफ की नहीं सींचते, वृष्टि के जल पर ही निर्भर करते हैं।

खरीम (हि० पु०) पत्तिविशेष, एक चिड़िया। यह प्रायः पानी के किनारे रहती और सुर्ग से निकली खुलती है। इसके पर तीतर की तरह चितके होते हैं।

खरील (हि० पु०) अलंकारविशेष, एक गहना। इसकी स्त्रियां बंदों की तरह सर में लगाती है।

खर (सं० पु०) खनख-कु निपातने साधुः। १ शिवः २ दर्प, शेषी। ३ अश्व, घोड़ा। ४ दन्त, दांत। ५ कामदेव। ६ शुक्लवर्ण। (त्रि०) ७ श्वेतवर्ण विशिष्ट, सफेद। निषिद्ध कार्य के अनुष्ठान की वृत्ति रखनेवाला, जिसे बुरा काम करना अच्छा लगे। ८ निर्वोध, नाखादा। ९ क्रूर, पापी। १० तात्प, पैना। (स्त्री०) १२ पति-म्बरा कन्या। इस शब्द के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में डोष् नहीं होता।

खरबक (सं० पु०) श्वेत मरुवक वृक्ष, सफेद मरवा।

खरे (हि० पु०) १ कपड़े पीछे एक आना दला ली। २ 'खरा' का बहुवचन।

खरेठ (हि० पु०) किसी किस्म का धान। यह अग्र-हायण मास की पकता है।

खरेला—युक्तप्रदेश के हमीरपुर जिले का एक नगर। यह अक्षा० २५° ३२' उ० और देशा० ७८° ५०' ४५" पू० में बसा है। यहां एक विद्यालय, बाजार, थाना और कई एक अच्छे अच्छे देवमन्दिर हैं।

खरीव (हि० स्त्री०) १ खराश, खिलन, रगड़ का चलना निशान। २ पतौर, खाने की एक चीज। यह सुरया आदिके पत्ते बेसन या पीठ से लपेटे तेल में तलने से बनती है।

खरीचना (हि० क्ति०) १ कीलना। २ खरीवा मारना। ३ जोर से खजलाना।

खरीवा (हि० पु०) खरीव, गहरी रगड़।

खरीत—एक हिन्दू जाति। यह लोग युक्तप्रदेश के बरेली जिले में बहुत पाये जाते हैं। इनके प्रधानतः ३ भेद हैं—दखिनाहा, जड़ोत और माहोर।

खरोरी (हि० स्त्री०) किसी किस्म की खूँटी। यह एकड़ में दोनों ओर रक के बांस बांधने की लगायी जाती है।

खरोशी—बम्बई के बेल्गांव जिले का एक मण्डल। यह

चिकोदीसे कोई ४ मील दक्षिण चिकोदी हुकेरी राहपर पड़ता है। लोकसंख्या लगभग २०२४ है। इसमें चण्डी वसवदाका मन्दिर बना, जो बिगड़ गया है। श्रावण मासमें प्रथम सोमवारको उक्त देवताके उपवासमें मेला लगता है।

खरोष्टी (सं० स्त्री०) लिपिविशेष, किसी किसीकी लिखावट। यह पथोकके समयसे भारतकी पश्चिमोत्तर सीमाभी घोर चलती थी। खरोष्टी फारसीकी तरफ वाम दिक्से दक्षिणकी लिखी जाती और गन्धारलिपि भी कहलाती है। ५ चरलिपि देखा।

खरोष्टी, खरोष्टी देखो।

खरोस्ति (सं० स्त्री०) जनपदविशेष, कोई मुक्त।

खरौंदा (हिं० वि०) १ खरा जैसा, खरसानेवाला, जो भुननेमें कुछ कुछ जल गया हो। २ किसी कदर ज्यादा नमकीन, जिसमें थोड़ा ज्यादा नमक पड़ गया हो। खरौंद (सं० पुं० स्त्री०) भौतिक विद्या, एक प्रकार इन्द्र-जादू, किसी किसीकी बाजीगरी।

खर्गला (सं० स्त्री०) उलूकी, फाल्गो। (चर० १०४०) खर्च (हिं० पुं०) १ व्यय, सरफा, खपत, उठाव। २ व्ययमें लगनेवाला, उठनेवाला रुपया।

खर्चना (हिं० क्रि०) व्यय करना, लगाना, उठाना।

खर्चा, खर्च देखो।

खर्ची (हिं० स्त्री०) फीस, मिहमताना, रण्डियोंरो दिया जानेवाला रुपया-पैसा।

खर्चीला (हिं० वि०) अमितव्ययी, फजूलखर्च, काफीसे ज्यादा खर्च करनेवाला।

खर्जन (सं० स्त्री०) खर्जल्युट्। कण्डूयन, खजली, चुल।

खर्जरा (सं० स्त्री०) खर्जलाति, खर्जरा-क-टाप्। खर्ज-चार, सज्जीमही।

खर्जका (सं० स्त्री०) खर्ज एवल् टाप् अत इत्यच्। अवहण, एक चरपरा खाना। इससे घ्यास बढ़ जाती है।

खर्जु (सं० पुं०) खर्ज-उन्। १ कण्डूविशेष, किसी किसीकी खारिश, चुल। २ पिण्डी खर्जुरवृक्ष, पिण्डखजूर। ३ कीटविशेष, कोई कीड़ा।

खर्जुर (सं० स्त्री०) खर्ज-उरच्। रोप्य, चादी।

खजू (सं० स्त्री०) खर्ज-ज। कृषिवनितनिधेनं सर्जिखर्जिमाजः उप० १८२। १ कण्डू, खजली। २ कीट, कीड़ा। ३ पिण्डी खजूरवृक्ष, पिण्डखजूर। (पु०) ४ वखिक्, वनिया। खर्जु (सं० पुं०) खर्जु कण्डूयनं इति, इन् ठक्। १ अकर्मदं चुप, जकौड़िया। २ अकर्मद, मदार। ३ धुस्तरवृक्ष, धतूरा।

खजूर (सं० पुं० स्त्री०) खर्ज-जर। खर्जिषादिमा जरी-लघो। उप० ४०१२०। १ खनामख्यात वृक्ष, खजूरका पेड़। खजूरख फलम्, खजूर अण् तस्य लोपः। २ खजूर-फल, खजूर, खजुरिया। इसको कहीं कहीं 'सिंद-खजूर' या 'खजी,' तामिकमें 'इतसमयेन' और तैलगुमें 'पेहा तेल' वा 'इटाचेह' कहते हैं। (Phoenix sylvestris)

खजूरका पेड़ भातरवर्षमें सर्वत्र उपजता है। एक एक वृक्ष ३२।३२ हाथ तक बढ़ता है। किसी किसी दर-खत ८ छतरियां तक देख पड़ती हैं। इसके काठकी बेंड़ी खेतोंमें पानी देनेके लिये काम आती है। उससे उठाऊ पुल भी बनाया जाता है। खजूरका पेड़ ७६ वर्षका होने पर मोचा केद देनेसे रस निकलता है। यह रस खूब सुखादु रहता और इसमें चीनी तथा बढ़िया गुड़ बनता है। इसके रेशेमें जहाजका रस्सा तैयार किये जाते हैं। खजूरका अन्तःसार पकानेसे कच्चे जैसी एक चीज निकलती, जो नमड़ा रंगमें लगती है। सर हामफ्रे डेवीने इसका अन्तःसार परीक्षा करके देखा है। उसमें मैकडे पीछे चर्मोपयोगी अंश ५४.५, द्रवणीय पदार्थ ३४, मण्ड ६५ और बालू, चुना आदि अद्रवणीय पदार्थ ५ भाग होता है।

वैद्यक मतमें खजूर—मधुर, शीतल, गुरु, क्षय, अभिघात, वृंहण तथा शक्तवृद्धिकर और दाह और वात पित्तरोगके लिये हितकर है।

भावप्रकाशके मतमें खजूर तीन प्रकारका है। सवराचर मिशने और सुद्र आकर रखनेवाला भूमि-खजूर कहलाता है। पश्चिमाम्बलमें एक प्रकारका खजूर होता है। उसका नाम पिण्डखजूर या खर्जुरिका है। सिवा इसके किसी प्रकारका दूसरा खजूर इस देशमें पड़ने बाहरसे आता-था। उसको कोहारा कहा

जाता है। अब जोहारा पश्चिमदेशमें उपजने लगा है। यह तीनों प्रकारका खजूर शीतवीर्य, मधुररस, विपाक, स्निग्ध, रुचिकारक, हृदयवाही, गुरु, तृप्तिकर, पुष्टिकर, विष्टम्भो, शुक्रवृद्धिकारक, बलकर और क्षत, क्षय, रक्तपित्त तथा कोष्ठगत वायु, वमि, कफ, ज्वर, अतिसार, क्षुधा, तृष्णा, काश, श्वास, मत्तता, मूर्च्छा एवं वातपैत्तिक और मदात्यय रोगनाशक है। खजूरका रस मत्तताजनक, पित्तकारक, वातघ्न, कफनाशक, रुचिकारक, अग्निवृद्धिकारी, बलकर और शुक्रवर्धक होता है। (भावप्रकाश)

३ रोप्य, चांदी । ४ हरिताल । ५ खल, पाजी ।

६ वृश्चिक, बिच्छू ।

खजूरक (सं० पु०) वृश्चिक, बिच्छू ।

खजूरपत्रक (सं० स्त्री०) खजूरपत्राकार वृश्चिकेद-विशेष, खजूरकी पत्ती-जैसा एक नश्वर ।

खजूरफल (सं० स्त्री०) खजूरीफल, खजूर, खजुरियां । यह रक्तपित्तमें हित होता है। (सिंहयोग)

खजूरफलक (सं० पु०) गोधूमविशेष, किसी किस्मका गेहूं ।

खजूरवेध (सं० पु०) एक योग । इसका अपर नाम एकार्गल है। खजूरवेध योगमें विवाह निषिद्ध होता है । योग देखो ।

खजूरिका (सं० स्त्री०) खजूर गौरादित्वात् ङीष् ततः संज्ञायां कन्-टाप् ईकारश्च क्लृप्तत्वम् । १ खजूरवृक्ष, खजूरका पेड़ । २ कण्ठमुसली, काली मूसर । ३ मिष्टान्न विशेष, एक मिठाई ।

खजूरी (सं० स्त्री०) खजूर गौरादित्वात् ङीष् । १ वन-खजूरवृक्ष, जङ्गली खजूरका पेड़ । २ खजूरवृक्ष, खजूरका पेड़ । इसका संस्कृत पर्याय—खरस्कन्धा, दुष्यधर्षा, दुरावहा, निःश्रवी, कषायी, यवनेष्टा और हरिप्रिया है ।

खर्पतुत्य (सं० स्त्री०) खर्परीतुत्य, खपरियाका तृतिया ।

खर्पर (सं० पु०) खर्पर पृषोदरादित्वात् ककारश्च ख । १ तस्कर, चोर । २ धूर्त, धोकेबाज । ३ भिक्षा-भाण्ड, खप्पर । ४ मृगमय भक्ष्यपात्रका अंश, महीके टूटे बर्तनका हिस्सा । ५ कपास, खोपड़ा । ६ खत,

खाता । ७ तुल्यविशेष, किसी किस्मका तृतिया । ८ उप-धातुविशेष, खपरिया । वैद्यकशास्त्रमें इसके शोधनकी प्रणाली अनेक प्रकार लिखित हुई है । रसेन्द्रसार-संग्रहके मतमें खर्पर रक्त तथा पीतपुष्पके रसमें रगड़के नरमूत्र, गोमूत्र और सेन्धवलवर्णके साथ यवकी कांजीमें ७ या ९ दिन भावना देनेसे खर्पर शुद्ध होता है । कोई कोई कहता कि वह सात बार जला कर कागजी नीबूके रसमें भिगो कर रखनेसे शुद्ध हो जाता है । खपरियाका भस्म इस प्रणालीसे बनता है—विशुद्ध खर्पर पारिके साथ घोटने और वालुकायन्त्रमें एक दिन पाक करनेसे भस्म हो जाता है । विशुद्ध खर्पर नेत्ररोगनाशक, क्लेदकर, क्षयरोगघ्न और गुरु होता है। (रसेन्द्रसारवंगह) भावप्रकाशके मतमें यह कटु, चार, कषाय, वमिकारक, क्षुधु, लेखन तथा भेदन गुणयुक्त, चक्षुको हितकर, रक्तपित्तनाशक और विष तथा कण्डू-निवृत्तिकर है। (भावप्रकाश) ८ स्वम्भाकार पूषपत्रनादि-पात्र, तथा । १० नेत्राक्षनभेद, पांखाका एक सुरमा ।

खर्परक (सं० पु०) लौहपात्र, तथा ।

खर्पराल (सं० पु०) अमृत्यविशेष, एक पीपल ।

खर्परिकातुत्य, खर्परीतुत्य देखो ।

खर्परी (सं० स्त्री०) खर्पर उपधातुभेदः कारणत्वेन अस्त्यस्वाः, खर्पर-अच्-ङीष् । खर्परीतुत्य, किसी किस्मका तृतिया ।

खर्परीतुत्य (सं० स्त्री०) तुल्यविशेष, किसी किस्मका तृतिया ।

खर्परीतुत्यक (सं० स्त्री०) १ नेत्रप्रसाधनविशेष, एक सुरमा । २ तुल्यक्षण, कृत्रिम रसाक्षन । यह कटु, तिक्त, चक्षुष्य, रसायन, त्वग्दोषघ्न, दीपन और वलपुष्टिकर होता है । ३ खर्पर, खपरिया ।

खर्परीयक (सं० स्त्री०) १ खर्परीतुत्य, खपरियेका तृतिया । २ खर्पर, खपरिया ।

खर्परोरसक (सं० स्त्री०) खर्परीतुत्य, खपरियाका तृतिया ।

खर्ब (सं० पु०) खर्ब-पच् । १ कुवेरका निधिविशेष २ कुजकपुष्पवृक्ष, कूजा पेड़ । ३ संख्याविशेष, कोई चदद । सोटिकी १० गुण करनेसे चबुंद, चबुंदकी १०

गुण करनेसे पल और पलको १० गुण करनेसे खर्व होता है। यह संख्या सहस्रकोटिके (१०००००००००) बराबर है। (जीववती)

रामायणके मतमें महापद्म को सहस्र गुण करनेसे खर्व जाता है। (रामायण ६।४।५२) (त्रि०) ४ कल, छोटा। ५ वामन, बीना।

खर्वक (सं० त्रि०) खर्व एव स्त्रिये कन्। कल, वामन, छोटा, पीना।

खर्वट (सं० पु०) खर्व-घटन्। १ चारसौ गाँवोंके बीचका गाँव। इसमें नदी और पर्वत भरे रहते हैं। (भाष्य-टोका लाली)

खर्वपत्ता (सं० स्त्री०) खर्व पत्रं यस्याः, बहुव्री० लीङ्-भाव पक्षे टाप्। द्रोणपुष्पी, देवना।

खर्वपत्रिका (सं० स्त्री०) खर्वपत्रा स्त्रिये कन्-टाप्-इत्त्वच्। द्रोणपुष्पी।

खर्ववासी (सं० त्रि०) खर्वः सन् वसति, वस-चिनि। खर्व होकर रहने या खर्वमें अधिष्ठान करनेवाला।

खर्वमाख (सं० त्रि०) खर्वा कल्ला माखास्तत्तुत्वा इस्त-पादादयो यस्य, बहुव्री०। वामन, बीना।

खर्वा (सं० स्त्री०) नागबला।

खर्वित (सं० त्रि०) खर्व कर्तरि क्त। कल, छोटा, कटा हुआ।

खर्विता (सं० स्त्री०) खर्वित-टाप्। १ अमावस्याविशेष, एक अमावसा। यदि अमावस्या चतुर्दशी मिली जाती, वह खर्विता वा गताध्या कहलाती है। (चनप्रदीप)

२ पूर्वदिनकी तिथिसे पर दिनको अल्पकालस्थित तिथि जो तिथि, पहले दिनकी तिथिसे कम पड़े।

खर्वुर (सं० पु०-स्त्री०) नदानिष्याव, किसी किस्मका अनाज।

खर्वुरा (सं० स्त्री०) खर्व उरच्-टाप्। तरदीवृक्ष, एक पेड़।

खर्वूज (सं० स्त्री०) तन्नामक फलविशेष, ककड़ीकी जातिका एक मोल मोल फल। यह मूत्रक, वष्य, कोष्ठ-शुद्धिकर, शुक्ल, क्षिण्ण, स्नायु, शीत, वृष्य और पित्त तथा वातरोगको दूर करनेवाला है। फिर जो खर्वूजा खट-मिष्टा और खरी निकसता, रक्तपित्त तथा सुलङ्गच्छुरान उल्लेख करता है। (भाष्यकाल)

खर्म (सं० स्त्री०) १ पट्टवस्त्र, रेशमी कपड़ा। २ पोद्दम, मरदानगी। ३ परम्पराशुद्धि।

खर्गिच (हिं० बि०) शङ्खर्व, खर्वोला।

खर्गि (हिं० पु०) १ लम्बाविट्ठा, बड़ा कागज जो खर्व लिखा है। २ रोगविशेष, कोई बीमारी। पृष्ठदेश पर खट्ट खट्ट पिड़का पड़ने और चर्म खरखरानेसे 'खर्गि' रोग कहलाता है। ३ सोनेमें होनेवाली गलेकी घरघराहट।

खर्गटा (हिं० पु०) मिश्रित धनस्त्रामें निकलनेवाला शब्द, जो आवाज सोनेमें नाकसे निकले।

खर्गा (हिं० पु०) नाका, पहाड़के नीचे बगनेवाली छोटी नदी।

खर्सिया भालरिया—मध्यभारतीय इन्दौर एजेन्सीका एक अधीनस्थ देशीय राज्य। खालियर और देवासकी दो हुई पड़ोसी सन्धिके अनुसार इस राज्यको १७५०, ६० खालियर और २२०, ६० देवाससे भूतकी तोर पर मिलता है। ठाकुर खरूपसिंह और फतहसिंहको उक्त वृत्ति और यह राज्य दिया गया था।

खल (सं० पु०-स्त्री०) खल-घच्। १ धान्यादिका मर्दन-स्थान, खलियान। (मनु ११।१०) २ धूलिराशि, गर्दका टेर। ३ भू, जमीन्। ४ स्थान, सुकाम। ५ तिसकच्छ, खली। खे प्रकाशे लीयते, ली-ङ। ६ सूर्य। खं तद्वचं लाति, ला-क्। ७ तमाखट्टव। ८ प्रस्तरनिर्मित धौवख छोटनेका पात्र। ९ खड़। १० धुस्तूरवृक्ष, धातुरीका पेड़। ११ मातृवदेशका कोई व्यञ्जन। (त्रि०) १२ नीच, कमोना। १३ अथम, नासायक। १४ दुर्जन, पात्री।

“कल सपडाव होत हित नीरा।

बाव कहहिं पिय बख बडोरा॥” (सुसती)

खल (हिं० पु०) १ किटबिना, सुनारोंका एक ठप्पा। २ बड़त् प्रस्तरखण्ड, पत्थरका बड़ा टुकड़ा।

खलक (सं० पु०-स्त्री०) खं शून्यं मध्ये लाति, ला-क् संज्ञार्थे कन्। १ कुम्भ, घड़ा। २ गुग्गुलु।

खलक (अ० पु०) १ प्राणिमात्र, जानवर। २ जगत्, दुनिया।

खलकत (अ० स्त्री०) १ सृष्टि, दुनिया। २ भीड़, जमाव।

खलबल (हिं० पु०) १ बलबल, दौड़धूप, गड़गड़ ।
२ कोलाहल, हल्लागुल्ला । ३ कलबल्लाहट, हिसाव

यह रायपुरसे ४५ मील उत्तरपूर्व पड़ता है। साधारणतः इस ग्रामको लोग 'खर्ता खसारी' कहते हैं। यहां पनेक देवालय हैं। उनमें गांधीजी जिसको पास छोटे

तालाव पर जो शिवमन्दिर बना, प्रधान है। यह मन्दिर पूर्वद्वारी और तीन भागोंमें विभक्त हुआ है—अन्तराल, महामण्डप और अर्धमण्डप। इसके द्वार पर गणेशकी मूर्ति है। मन्दिरकी गङ्गाशी वैसे न होते भी बनावट बहुत अच्छी है। इसी गाँवमें दूसरा भी एक ऐसा ही छोटा मन्दिर है। यह दोनों मन्दिर येनाइट पत्थरके बने हैं। छोटे मन्दिरके शिवमूर्तिके पास पङ्चनेमें बाँह और सङ्गमरमरकी एक शिला-लिपि खुदी हुई है। इसमें १४७० संवत् और १३३४ तक दो समय उल्लिखित हैं। उससे ऐहयर्ष और कलचुरि-वंश निर्णीत हो सकता है।

इसी खलाशी गाँवके पास पहाड़के नीचे औरस जमीन पर प्रतिवर्ष चैत्रपूर्णिमाके दिन मेला लगता है। किसी सतीस्नानमें अच्छी तरह सिन्दूर चढ़ा रखते और यात्री उसकी खलारीमाता जैसा पूजा करते हैं। कहते हैं कि उस दिन खलारी माता द्रव्यादि ले मेला-में बैठती और जो जो मांगता, दिया करती हैं।

खलाल (अ० पु०) चाँदी, ताँबे, पीतल आदि धातुका बना खरका, धातुकी दन्तखोदनी।

खलाल (हिं० पु०) पूरी चार या मात। यह शब्द ताशके खेलमें अधिक व्यवहृत होता है।

खलाल (अ० वि०) १ मुक्त, छूटा हुआ। २ समाप्त, खत्म। ३ खारिज।

खलासी (अ० स्त्री०) १ मुक्ति, छुटकारा।

खलासी (हिं० पु०) १ जहाजी नौकर, नावका आदमी। पाल चढ़ाना, रखे बांधना और ऐसे ही दूसरे काम करना खलासियोंका काम है। २ भृत्यविशेष, कोई नौकर। यह खेमा वगैरह लगाता और असबाब लाद ले जाता है।

खलि (सं० पु०) खल इन्। १ तिलकित, खली। (भारत १।८८) २ तालमूल।

खलिद्रुम (सं० पु०) सरल देवदारु।

खलिन (सं० पु० स्त्री०) खे अणुसुखच्छिद्रे कीनम्, पुषोदरादिस्वात् विकृष्टे क्लृप्तः। १ लगाम, बागडोर। (त्रि०) २ आकाशकीन।

खलिनी (सं० स्त्री०) खलानी समूहः, खल इनि।

खलि-ए बख्खव। पा ३।१।१। १ खलसमूह, खलियानीका ढेर। २ लण्य तालमूली।

खलियान (हिं० पु०) १ धान्यादि काटकर उनके रखने-का स्थान। खलियानमें अनाज माँडा और उड़ाया जाता है। २ राशि, ढेर।

खलियाना (हिं० क्रि०) १ खाल खींचना, चमड़ा उतारना। २ खाली करना।

खलिवर्धन (सं० पु०) मुखरोगान्तर्गत दन्तवेष्टक एक रोग, ममूड़ीकी सृजन। कुपित वायु द्वारा वर्धित दाँतोंमें प्रतिगय तीव्र वेदना उठनेका नाम खलिवर्धन है। यह रोग बिलकुल अच्छा नहीं होता। (सायप्रकाश)

खलिश (सं० पु०) खे आकाशे जलादूर्ध्वभागे लिशति, लिश क। मत्स्यविशेष, खलसा मछली। इसका संस्कृत पर्याय—कङ्कतोड, खलेशय, खलेश और खुशेट है। इसमें काँटे बहुत और मांस कम होता है। साधारणतः लाटिन भाषामें इसको Trichopodus कहा जाता है। किन्तु इसके अनेकप्रकार भेद हैं। छे साइबने इसका Trichogaster नाम लिखा है। पानीसे निकाल लेने पर भी यह बड़ी देर तक जीया करती है। भारतके सिन्धु, पञ्जाब, युक्तप्रदेश, बङ्गाल, आसाम, ब्रह्मदेश, मन्दाज, प्रान्त, सिङ्गल और चीन तक खलिश मिलता है। यह मामूली तोर पर ३। से ४। इंच तक लम्बा होता है। इसका श्वासयन्त्र छोटा रहता, किन्तु रीढ़के पास अधिक पुष्ट पड़ता है। मेरुदण्डके ऊपरीभाग और उसकी विपरीत दिक्की एक बड़ा पक्ष या बाजू आता है। यही खलिशका अङ्ग है। एकड़ते समय यही काँटा लोगोंके हाथमें चुभ जाता है। इससे मेरुदण्डसे घेठ तक तिरछी धारियाँ कटी होती हैं। रक्त मैला रहता है। धारियाँ कहीं काली और कहीं साफ लगती हैं। वैद्यकके मतानुसार यह पाही, कवाय, वातकीपकर, बन्ध, लघु, शूलहर और कुछ कुछ आम-विनायक है।

खली—एकप्रकार पर्वताकार दानव जाति। इन दानव लोगोंने मानसरोवरके तीर देवताओंके यज्ञमें विघ्न डाला था, अतः ये वशिष्ठदेव कर्दक निहत हुए।

(भारत, अ० १।५। ५०)

खली (हिं० खो०) १ खलि, तेलहन की सीडी। तेल निमक जाने पर यह बच रहती है। खली प्रायः दूध देनेवाली गायों और भैंसोंकी भूसिके साथ घोलकर दी जाती है। इससे उनका दूध बढ़ता है। स्त्रियां खलीसे अपने बाल भी धोती हैं। काले तिलकी खलीका 'पोना' नाम है। उसे लोग सूखा ही खाया करते हैं। पीले सरसोंकी खली सबसे अच्छी होती है।

खलीकार (सं० पु०) खल-चि० ख-वच्। १ अपकार, बुराई, दूसरेका नुकसान। २ भर्त्सन, भिड़की।

खलीज (सं० खो०) खात, खाड़ी।

खलीता (हिं० पु०) खरीता, जेब, घैकी।

खलीफा (सं० पु०) १ अधिकारी, हाकिम, मालिक। २ ठठ पुरुष, बड़ा बूढ़ा। ३ दरजी। ४ खानसामा। ५ नार्द। ६ पट्टेबाज। ७ सुसलमान राज्यमें सबसे उच्च पदवी। ६३२से १२८८ ई० तक खलीफा नाम-धारी जितने राजा हुए सबके नाम उनके राजत्वकालके साथ नीचे दिये हैं—

राजाका नाम	राजत्वकाल	ई०
अबूबकर	६३२	ई०
उमर	६३४	"
उसमान	६४४	"
अली	६५६	"
मुआविया	६६१	"
यज्जिद	६८०	"
मुआविया (२रे)	६८३	"
मरान (१ले)	६८३	"
अबदुल मलिक	६८५	"
वालिद	७०५	"
सुलेमान	७१५	"
उमर इब्न अबदुल अजीज	७१७	"
यज्जिद (२रे)	७२०	"
हश्शाम	७२४	"
वालिद (२रे)	७४३	"
यज्जिद (३रे)	७४४	"
मरान (२रे)	७४४	"
अब्बास वंश		
अब्दुल्ला-उमर-यफा	७५०	"

अबूजाफर अल मन्सूर	७५४	ई०
मुहम्मद अल मेहरी	७७५	"
मूसा अल हादी	७८५	"
हारुन-अल रशीद	७८६	"
मुहम्मद अल अमीन	८०८	"
अब्दुल्ला अल मामून	८१३	"
कासिम अल सुतासिम	८३३	"
हारुन अल वाकिफ	८४२	"
जाफर अल मुतवक्किल	८४७	"

(८४७से ८६० ई० तक तुर्की फौजके अत्याचारसे

कोई खलीफा न हुआ)

मुहम्मद अल मुनतसिर	८६१	ई०
अहमद अल मुस्तईन	८६२	"
मुहम्मद अल मुमताज	८६६	"
मुहम्मद अल मुहताद	८६८	"
अहमद अल पुतामिद	८७०	"
अहमद अल सुताधीन	८८२	"
अली अल मुत्तफी	८०२	"
जाफर अल मुतकादिर	८०७	"
मुहम्मद अल कबीर	८३२	"
अहमद अल रादी	८३४	"
इब्राहीम अल मुतकी	८४०	"

मोदी राजवंश

अलमुफदहल अल मूती	८४४	"
अब्दुल करीम	८७४	"
अलमुहद अलकदर	८८२	"
अब्दुल्ला अल कायम	१०३१	"

सैयदुल वंश

मुहम्मद अल मुतकादी	१०७१	"
अहमद अल मुस्ताबिर	१०८४	"
फदहल अल मुस्तारसीद	१११८	"
मन्सूर-अल-रसीद	१११८	"
मुहम्मद अल मुत्तफी	१११८	"
यूसुफ अल-मुस्तोजिद	११६०	"
इसेन अल मुस्तादही	११७०	"
अहमद अल नसर	११८०	"

महम्मद जाहिर	१२२५	ई०
अबू जाफर अबु मुस्तानजीर	१२२६	..
अबदुल्ला अबु मुस्तसिम	१२४२	..

किलाफत देखो।

खलीलावाद—युक्तप्रदेशके बसती जिलेकी दक्षिणपूर्व तहसील। यह अक्षा० २६° २५' तथा २७° ५' उ० और देशा० ८२° ५०' एवं ८३° १३' के बीच पड़ता है। इसका क्षेत्रफल ५६४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३८४६७५ है। खलीलावादकी कुवाना, अमी और कई एक छोटी नदियां पार करती हैं।

खलु (सं० अर्थ०) खल बाहुलकात् उन्। १ नहीं, अवरदार। (माघ २।०) २ वाक्यालङ्कार पूर्वक, बात बनाके। ३ क्या। (गहरव) ४ कृपा करके, मिहरबानीसे। ५ नियमितरूपसे, सोच समझके। (किरातार्जुनीय १ चर्म) ६ निश्चय, जरूर। (कुमार ४।१८) ७ अब, इस समय। खलु शब्द वाक्यका पाद पूरा करनेमें भी व्यवहृत होता है।

खलज्ज (सं० पु०) ख इन्द्रियं दर्शनेन्द्रियं लुप्तमिति, ख-लुप्त-क्षिप्। अन्धकार, तारीकी, अंधेरा।

खलुरिष (सं० पु०) खलुरिषने वध्यते ऽसी, रिष कर्मणि चञ्, सुप्, सुपेति समासः। शूराविशेष, किसी प्रकारका हिरन।

खलूरिका (सं० स्त्री०) शस्त्राभ्यासभूमि, व्यायामभूमि, अखाड़ा।

खलेकपोत (सं० पु०) खले पतन्तः कपोताः, अलु क्स०। खनमें पतित सजल कपोत, खलियानमें गिरनेवाले सारि कबूतर।

खलेकपोतन्याय (सं० पु०) खले कपोततुल्यो न्यायः, मध्यपदलो०। खले कपोतिकान्याय, एक लागू मिसाल। खलियानमें सब कबूतरोंके एकबारगी ही उतर पड़नेकी तरह समुदय पदार्थको एक ही विषय पर ढाल देनेका नाम खलेकपोतन्याय है। भाष देखो।

खलेकपोतिकान्याय, खलेकपोतन्याय देखो।

खलेधानी (सं० स्त्री०) खले धीयन्त उपभा अल, धा बाधारेण् ट्-ङीप्। १ खल पशुवन्धनदाह, खलियानमें बेल जीतनेका दांव। २ धूलि, गर्द।

खलेधानी (सं० स्त्री०) खले बाधन्त बाधन्ते उपभा यत्, बल बाधारे चञ्, गौरादित्वात् ङीप्। खलका गोवन्धनकाष्ठ, खलियानमें बेल बांधनेका बड़-छूटा जिसकी चारो ओर उन्हें मंडारके लिये घूम घूम कर चलना पड़ता है। (बाधायनगी० २२।१।४८)

खलेयव (सं० अर्थ०) खले यवो यत्र काले, बहुव्री० तिष्ठद्, प्रभृतिवत् समासः। खलस्थित यवके कालको, जब खलियानमें जो पड़ा हो।

खलेश (हिं० पु०) तेलमें भिजी हुई खली। यह निधारने या हाननेसे पृथक् होता है।

खलेवुस (सं० अर्थ०) खले वसुमत्त्र काले, तिष्ठद्, प्रभृतिवत् समासः। खलस्थित वुसके कालको, जब खलियानमें भूसा पड़ा हो।

खलेश (सं० पु०) खे जलादूर्ध्वाकाशे लिसति संज्ञियति चिच्। खलियमन्तर, एक मछली।

खलेशय (सं० पु०) खलेशं जलादूर्ध्वाकाशायसंसर्गं याति, या-क। खलियमन्तर, एक मछली।

खल्य (सं० त्रि०) खलाय हितम्, खल-यत्। खलवपनाप-तिष्ठवपनप्रत्यय। पा ५।१।०। खलकी उपकारक, खलियानके लिये अच्छा।

खल्या (सं० स्त्री०) खलानां समूहः, खल-यत्-टाप्। खलसमूह, खलियानोंका ढेर।

खल (सं० पु०) खलति, खल-क्षिप्, तं जाति, खल्-ल-क। १ बलविशेष, किसी किसका कपड़ा। २ गर्त, गड्ढा। ३ चर्म, चमड़ा। ४ चातकपत्ती, पपीहा। ५ चर्मनिर्मित पात्र, मसक। ६ शीवधमदं नपात्र, खल, खुरल। ७ बाजीके दन्ताग्रका निम्नतल्ल, घोड़ेके दांतोंकी मोकके नीचेका कात्तापन। (जयरथ)

खलकी (सं० स्त्री०) शर्करा, खांड।

खलड़ (हिं० पु०) लटकी हुई खाद्यका बड़ा पादमी।

खलड़ (हिं०) बड़ देखो।

खला (हिं० पु०) १ खल, खलियान। २ जूता। ३ नाचनेकी एक चाल। इसमें पैट खाली समझ पड़ता है।

खला (हिं० स्त्री०) जूती।

खलातक (सं० पु०) बिन्दुसार राजके पड़ले मन्त्री।

खलासार (सं० पु०-स्त्री०) ज्योतिषका कहा हुआ १०वां योग।

खल्लिका (सं० स्त्री०) खल्ल संज्ञाधि कन्-टाप् चत इत्वच् । पिष्टकादि भक्षणपात्र, कटाही ।

खल्लित (सं० स्त्री०) खल्ल-इन् खल्लि तद्धत् टलति, टल-ड । खलति, गच्छा ।

खल्लिश (सं० पु०) खल्लिशमन्त्र, एक मन्त्रली ।

खल्ला (सं० स्त्री०) खल्ल-क्लिप् तं वाति, खल्ल-वा-क । बाहुल-कात् ङीष् । १ इस्तादिका शिशमोटन, हाथ वगैरह टेटे पड़नेवा बीमारी । त्रिकुट, मेन्धव, कडू, इमली और तेज एक साथ गर्म करके मलनेसे खल्लारोग अच्छा हो जाता है । (भावप्रकाश) २ सरल देवदार ।

खल्लोट (सं० पु०) खल्लोव टलति, खल्लो-टल-ड । इन्द्र-लसुरोग, गच्छ, बाल उड़नेकी बीमारी । (हि०) २ खलति, गच्छा, जिसके सरके बाल उड़ गये हों । धर्मशास्त्रकार आतातपके मतमें जो दूसरेकी निन्दा करता, उसको यह रोग लगता है । किन्तु धेनुदान करनेसे पापका प्रायश्चित्त हो जाता है । (आतातप)

खल्लोवधेन (सं० पु०) दन्तवैजय रोगविशेष, मसुहोकी एक बीमारी ।

खल्ल (सं० पु०) खल्ल-क्लिप् तं वाति, खल्ल-वा-क । १ आभ्यधानमेद, किसी किसमका धान । (इन्द्रसुरोग पु०) २ चक्क, चना । (भावप्रकाश सं० १८१२) ३ इन्द्रलसुरोग, गच्छ ।

खल्लवट (सं० पु०) कासरोग, खांसी ।

खल्लवाट (सं० पु०) खल्ल-क्लिप् तं वटते वैद्यते, वट-चक्, उपपदसं० । १ इन्द्रलसुरोग, गच्छ । (हि०) २ इन्द्रलसुरोगयुक्त, गंजा । कहते हैं—खल्लवाट प्रायः निर्धन नहीं होता ।

खल्लवका (सं० स्त्री०) नाभिग्रह ।

खल्लो (सं० स्त्री०) खे आकाशे शून्ये वल्ली, ७-तत् । आकाशवल्ली, अमरवेल । यह याही, तीती, पनकुट, कसैली, भूक बढ़ानेवाली, हृद्य और पित्त तथा संध्याका दूर करनेवाली है । (भावप्रकाश)

खला (हि० पु०) स्वस्थ, कथा ।

खलाई (हि० स्त्री०) १ भोजनआपार, खाने पीनेका काम । २ नावमें मसूख लगानेका गड्ढा ।

खलाना (हि० स्त्री०) खिलाना, भोजन देना ।

खवारि (सं० स्त्री०) खे आकाशे खितं वारि, ७-तत् । आन्तरिक्षोदक, बादलका पानी ।

खवास (सं० पु०) एक हिन्दू जाति । राजपूतानेमें नाईको 'खवास' कहा जाता है । परन्तु यह शब्द 'खास' का बहुवचन जैसा लगता और प्रधान अर्थका अर्थ रखता है ।

खवास खान्—सलीम शाहके एक मातहत समीर । यह धन, मान, वीरत्व और युद्धकोशलके लिये विख्यात थे । इन्होंने बादशाहके विरुद्ध अपने भाई आदिल शाहका पक्ष लिया और बहुतसे स्थानोंमें विताडित होने पर अन्तकी सन्धलके शासनकर्ता ताजखान्के पास जाकर आश्रय ग्रहण किया । १५५१ ई०को ताज-खान्ने सलीम शाहकी खुश करनेके लिये बहुत बुरी तरहसे इनकी मार डाला । पीछे इनका देह दिल्लीकी भेजा और वहीं गाड़ा गया । मुसलमान तीर्थयात्रा आज भी खवासकी कब्र देखने जाते और इन्हें साधु-पुरुष-जैसा बतलाते हैं ।

खवासी (हि० स्त्री०) १ खवासगरी, खासवरदारी, नौकरी, चाकरी ।

खवाय (सं० पु०) खय आकाशस्य वायः, ६-तत् । हिम, ओस ।

खवी (हि० स्त्री०) दणविशेष, किसी किसमकी घास । यह अगिया खास-जैसा रहती और मछका करती है । इसकी लम्बी पत्तियोंका तेज दबामें डाला जाता है । खवी प्रायः रीतीली जमीनमें उपजती है । इसका पञ्जाबी नाम 'घटियारी' है ।

खवैया (हि० पु०) आहारकर्ता, खानेवाला । अधिकाधिक खानेवालेको 'खवैया वीर' कहते हैं ।

खश (हि०) अश्विनी ।

खश—१ जनपदविशेष, एक देश । मनुसंहिता प्रभृति ग्रन्थोंमें किसी स्थान पर तालख्ययुक्त और कहीं दक्ष-सकारयुक्त यह शब्द पाया है । उसीसे आभिधानिक साग दोनोंकी स्वीकार करते हैं । उक्तसंहिताके कूर्म-विभागमें लिखा है कि वह पूर्वोक्तकी बसा है । महा-भारतके मतमें यह, खान्धार-जैसा, अष्टाचारसम्पन्न है । (कथं पर्व)

खग—वर्तमान गढ़वाल और तिब्बतके नारीखोर-सुम जिलेके बीचमें रहा। २ खग देशके अधिपति, राजा। ३ कोई जाति। मनुके मतमें ब्राह्मणत्रियीसे खग लोगोंने उत्पत्ति है। ब्राह्मणदर्शनप्रयुक्त इन्हें वृषजत्व प्राप्त हुआ है। (मनु, १०।१२-४०)

हरिवंशमें लिखा है कि महाराज सगरने उन्हें पराजय किया था। (हरिवंश १४७०)

महाभारतमें लिखते हैं कि उन्होंने महाराज युधिष्ठिरकी पीलिक सोना उपहार दिया था।

काश्मीरकी राजतरङ्गिणीमें कहा है—मिहिरकुलके समय नरपुरमें खग रहते थे। राजा क्षेमगुप्तने उन्हें ३६ गांव दे डाले। काश्मीरकी अधीश्वनी देहा खग लोगों पर विशेष अनुग्रह रखती थीं। किसीके मतमें देहा महारानी भी खगवंशसम्बन्धी हो रहीं।

इन लोगोंमें भी कहीं कहीं प्रवाद है—जब परशुराम क्षत्रिय वधकी उद्यत हुए, हम लोग जल्पीश हो कर हिमशृङ्ग पर जा बसे।

भाजकल यह लोग नेपालराज्यमें रहते और अपर्णको क्षत्रिय-जैसा समझते हैं। सभी खग सनातन-धर्मावलम्बी हैं और ब्राह्मणकी विशेष श्रद्धा-भक्ति करते हैं। नेपालके ब्राह्मण भी बहुत दिनोंसे इनकी लड़कियोंके साथ विवाह करते चले आते हैं। ब्राह्मणके औरस और खग-रमणोंके गर्भसे जन्म लेनेवाला पुत्र भी द्विजोचित संस्काराधिकारी क्षत्रिय-ज से परिचित होते हैं। यह ब्राह्मणोंका गोत्र ग्रहण किया करते हैं। खग शुद्धाचारो हैं। नेपालका अधिक सैन्य खग-जातीय ही है। यह चतुर, कार्यकुशल, परिश्रमी, बलिष्ठ, साहसी और युद्धप्रिय होते हैं। इनके देहका गठन न तो बहुत स्थूल और न कमजोर ही है। यह कोई शिष्टकर्म करना नहीं चाहते, किन्तु कुछ लोग कभी कभी खेतोम लग जाते हैं।

अब खग लोगोंकी ब्राह्मणक्षत्रिय नहीं बतलाया जा सकता। क्योंकि भाजकल यह यथाकाल उपनयन ग्रहण करते और नेपालके ब्राह्मण इन्हें क्षत्रिय-जैसा समझते हैं।

नेपालमें 'एकखरिया' नामकी कोई जाति है।

राजपूत वा दूसरे क्षत्रियोंके औरस और खगकन्याके गर्भसे एकखरिया निकले हैं। यह पिताका गोत्र तो पा जाते, किन्तु क्षत्रिय हो नहीं सकते। फिर भी एकखरिया दो पीढ़ी तक खगोंके साथ आदान प्रदान करने पर खग-जैसे परिचित होते और क्षत्रिय लोगोंका कार्य करनेसे रोक नहीं जाते।

कुमार, गढ़वाल और तिब्बतके दक्षिण अंशमें बीच बीच खग लोग देख पड़ते हैं। तिब्बतके निकट रहनेवाले भाषे हिन्दू और भाषे बौद्ध होते हैं। इनकी बोली हिन्दी भाषाका ही अपभ्रंश है। आविधा देखा। खगष्ठादुर (सं० पु०-क्री०) वेदूयमणि, लहसुनिया। खगौरी (सं० त्रि०) खगौरीर आकाशरूपगौरीरमस्य भस्ति, खगौरी-इति। खमूर्तिमान्।

खगा (सं० स्त्री०) खग-टाप् १ सुरामांसो, एक खगवृद्धार चोज। २ दक्षकी कन्या। यह कश्यपकी पत्नी और यज्ञ तथा रसोगणकी जननी थीं। (गर्भपु० ६७०)

खगौर (सं० पु०) १ देशविशेष, कोई मुल्क। २ खगौर देगवासी। ३ खगौर देशके राजा (भारत १।६७०)

खशेट (सं० पु०) खं शेटति, शिट् अनादरे अण्। खलिस मत्स्य, एक कांटेदार मछली।

खशास (सं० पु०) खस्य आकाशस्य शास इव। वायु, हवा।

खष्य (सं० पु०) खन्-प निपातनात् मस्य षः। क्रोध, गुस्सा। २ वलात्कार, जबर्दस्ती। (सिंहानुलोमशे)

खम (सं० पु०) खानि इन्द्रियाणि स्यति निखलीकरोति, सोक। १ पामा, खुजली। २ देशविशेष, कोई मुल्क। ३ ब्राह्मणक्षत्रियजातिविशेष। खम देखा। ४ वीरणमूल।

खस (फा० स्त्री०) वीरणमूल, गाडरघासकी खुशबूदार जड़। यह ब्रह्मदेश, भारत और सिंघलमें मैदानों और पहाड़ियोंमें नदियों तथा पुष्करिणियोंके तट पर अधिक उत्पन्न होती है। घीसकालकी गूहादि शीतल रखनेके लिये इसकी टट्टियां हारोंमें लगा देते हैं। खसके पंखे भी बनाये जाते हैं। इसके पक्षबसनेमें पान रखनेसे महकने लगते हैं। खसका चतर भी गर्मोंके दिनों बहुत अच्छा लगता है। इसकी पीस कर मत्थे पर कोप देनेसे पागलपन अच्छा हो जाता है। चशोर देखा।

खसकंत (हिं० खी०) खसकाई, खसक जानेकी क्रिया ।

खसकना (हिं० क्रि०) १ सरकना, हटना, जगह छोड़ देना । २ चुपकेसे चल देना ।

खसकन्द (सं० पु०) खस इव खन्दोऽस्य, बहुव्री० । १ जीरीशठुष । २ वराहीकन्द । ३ क्षीरकचुकी वृक्ष ।

खसकाना (हिं० क्रि०) १ सरकाना, हटाना । २ चुपकेसे निकालना । ३ खसकानेका काम कराना ।

खसखस (फा० खो०) पोशाका दाना । यह सरसोसे भी छोटा और सफेद होता है । खसखसकी ठण्डाईमें डाल कर पीते हैं । खसतिल देखो ।

खसखस (हिं० वि०) १ भुरभुरा, सुस्वायम, मुँहमें डालनेसे अपने आप चूर चूर हो जानेवाला । २ बहुत ही छोटा ।

खसखाना (फा० पु०) खसकी टहियों का मकान, जिस घरमें बहुतसी खसकी टहियां लगी हों ।

खसखेली—भावलपुरकी राजसभाका एक वंश ।

खसगन्ध (सं० पु०) क्षीरकचुकी ।

खसतिल (सं० पु०) खसः खसपूय इव तिलति खिद्यते यकक इत्यात्, तिल खे डे क । खसखस, पोश । भाव-प्रकाशके मतमें तिलमेद, खसतिल और काखस—पोशके दानेके तीन नाम हैं । इसकी छाल शीतवीर्य, स्रु, धारक, तिक्त तथा कषायरस, वायुवृद्धिकर, मोहजनक, रुचिकारक, कफघ्न, काशनाशक, धातुशोधक, बल, मदकारक, वाक्वृद्धिकर और अधिक खानेसे पुष्ट्यवनाशक होती है । इसके फलका दूध अफीम कहलाता है । अफीम शोधककारी, धारक, कफनाशक, वायुवृद्धिकारी, पित्तवर्धक और खस फलके वल्कल तुष्य गुणविशिष्ट है । (भावप्रकाश)

खसना (हिं० क्रि०) सरकना, अपने आप नीचेकी हट जाना । “खसी माल सरति खसकानो ।” (तुलसी)

खसनीव (फा० पु०) किसी क्रिष्णका गन्धाविरोधा । यह घीराजसे पाया करता है ।

खसफल (सं० खी०) खसखस, पोश, अफीमकी बीड़ा ।

खसफेनकीर (सं० खी०) अहिफेन, अफ़ून ।

खसम (सं० प०) १ खादिन्ध, भर्तार । २ मासिक, कामी ।

खसखवा (सं० खी०) खे सखवाति, सम्-भू-पच् । आकाशमांसी, सूर्य जटामांसी ।

खसरा (सं० पु०) १ खेत्तपत्रविशेष, खेतका एक कागज । इसमें पटवारों परिक खेतका नम्बर रकबा, लगान, असामीका नाम वगैरह लिखता है । २ कच्चा चिट्ठा ।

खसरा (हिं० प०) कच्छभेद, किसी क्रिष्णकी खुनकी । इसमें बड़ी तकलीफ होती है ।

खसप (सं० पु०) खे बन्धनच्छेदेन ऊर्ध्वदेशे सर्प-मस्य, बहुव्री० । तुष्ट । तुष्ट देखो ।

खसप खवटी, खपरवटी देखो ।

खसलत (सं० खी०) खासियत, प्रकृति, स्वभाव ।

खसवज्ज (सं० पु०) सज्ज, सुकाट ।

खसवीज (सं० खी०) खसखस, पोशका दाना । यह वस्त्र, वृक्ष सुगुह, कफकर और वातशमन होता है ।

(भावप्रकाश)

खसा (सं० खी०) कश्यपपत्नी ।

खसात्मज (सं० पु०) खसायाः कश्यपपत्न्याः आत्मजः, इ-तत् । राक्षस ।

खसाना (हिं० क्रि०) खिसकाना, गिराना, नीचेकी धकियाना ।

खसिन्धु (सं० पु०) चन्द्र, चांद ।

खसिया (हिं० वि०) १ बधिया, खसी । २ नपुंसक, नामर्द । (पु०) १ जाग, बकरा ।

खसियाना (हिं० क्रि०) बधिया बनाना, नपुंसक कर डालना ।

खसीस (सं० वि०) जपण, कच्छूस ।

खसीसी (फा० खी०) कार्पस, बखीकी, कच्छूसी ।

खसूम (सं० पु०) खे आकाशे सरति गच्छति, ख-मक् । विप्रचित्ति दानवका पुत्र । (गव० १०५० ५५०)

खसोट (हिं० खी०) १ बुरी नोचड़ी, भिटकीकी तोड़ाई । २ छील, भपट ।

खसोटना (हिं० क्रि०) १ नोचना, हावके भिटकेसे तोड़ना । २ छील लेना ।

खसखस (सं० पु०) खस प्रकारि विधिवनं पृथोदरादिवत् अकारकोपः । खसतिल, पोशका पेड़ । यह पाकमें मधुर और कान्ति, वीर्य तथा बलप्रद है । (राखनिचक्र)

खखसरस (सं० पु०) खड्गफेन, अफीम ।

खखनी (सं० स्त्री०) खं आकाशः खन इव यस्या, बहुव्री० । पृथिवी, जमीन् ।

खखा (फा० वि०) भुरभुरा, लूब मोवन डाल कर सेका हुआ ।

खस्फटिक (सं० पु०) खमिव निर्मलः स्फटिकः । १ सूर्य-कान्तमणि, आतशी शीशा । २ चन्द्रकान्तमणि, चाबी शीशा ।

खस्फटिक (सं० स्त्री०) खं ऊर्ध्वोर्ध्वस्थित आकाशः खस्फटिकमिव । समसूत्रपातमें मस्तकोपरिख आकाश विभाग, खोपड़ीके ठीक ऊपरका भासमान । यह एक माना हुआ विन्दु है, जो आकाशमें शिरके ऊपर पड़ता है । इसे शीर्षविन्दु भी कहते हैं ।

खस्त्री (अ०) खसिया देखो ।

खहर (सं० पु०) खं शून्यं हरो यस्य, बहुव्री० । शून्य-हारकराशि, खाकी बटेकी अदत । जिस राशिका हर शून्य आता, खहर कहलाता है । इसका दूसरा नाम अमल है । कोई दूसरा राशि घटाने या मिलानेसे खहर नहीं घटता बढ़ता, एक ही-जैसा बना रहता है, जैसे— $\frac{1}{2}$ खहरराशिके साथ २ वियोग किंवा योग करनेसे वह अविकृत ही निकलेगा ($\frac{1}{2} + \frac{1}{2} = \frac{2}{2} = 1$, $\frac{1}{2} - \frac{1}{2} = 0$, $\frac{1}{2} \div \frac{1}{2} = 1$) (जीगचित) गणित देखो ।

खा (सं० वि०) खन-विट् आच्छ । जनसमखनकमोनस विट् । पा १।१।२७ खननकर्ता, खोदनेवाला ।

खाँ (सं० स्त्री०) नदी, दरया ।

खाँ (फा० पु०) १ सम्प्रान्त लोगोंका उपाधि, खान, बड़े आदमियोंका खिताब । २ मण्डलेखर, कई गांवोंका मुखिया । ३ मुसलमानोंकी सम्मानसूचक पदवी ।

तुर्कखान और सारे एशियाखण्डमें यह खिताब चलता है । मध्यएशियामें तातार लोगोंने सबसे पहले खाँ उपाधि ग्रहण किया था । किसीके मतमें चङ्गीज खाने यह खिताब निकाला । तुर्कखानके सुलतान चीनके राजा और ईरानके समीर उमरा भी इस पदवी को ले सकते हैं । बलूचिस्तान और अफगानिस्तानके सभी अधिनायक खाँ उपाधि लिया करते हैं । विशेषतः अफगान इसकी अपना खानदानो खिताब बतलाते हैं ।

इसलिये वहाँ जन्म लेते ही लोग खाँ कहलाने लगते हैं । मुसलमान बादशाहोंकी अमलदारीमें भारतकी सभी जातियोंके बीच जो ऊँचे राजकर्मचारी थे, उनमें कितनों ही ने यह उपाधि पाया था ।

खाँ (कान) मालवकी एक नदी । यह अक्षा० २२° १६' उ० और देशा० ७५° ५५' पू०में विन्ध्यपहाड़के उत्तर अंशसे निकल सरस्वती नदीकी जा मिली है । फिर अक्षा० २१° ८' उ० और देशा० ७५° ५०' पूर्वमें उज्जैन-के पास सिप्राणदीके साथ भी इसका मिलान हुआ है । इस नदीमें खाने खानेका बड़ा सुभोता है ।

खाँ आलम—१ बादशाह अकबरके एक सेनापति । इन्होंने दिल्लीसे १००० फौजके साथ जा कर पटनाके पास हाजीपुरका किला घेरा और उसे जीता था ।

२ कोई अमीर । इनका पूरा नाम मिर्जा बर-खुर्दार था । इन्होंने मुगलबादशाह शाहजहानके नीचे पाँच हजारों दरजा पाया, फिर सम्राट् आलमगीरके सक्तनत करते ऊहजहागी और विहारके सूबेदार हो गये । अन्तर्गतके आखीर वक्त इन्हें बादशाहसे १ लाख रुपये काजाना मिला था । आखिरकार उनके ऊहजरा देनेसे यह मर गये । आगरा शहरमें यमुना किनारे इनकी ४० बीघे एक फुलवाड़ी खगी है ।

३ श्रेष्ठ निजामके बेटे । इसका असली नाम अखलास खाँ था । बादशाह आलमगीरने १६८८ ई०की इन्हें पाँच हजारों दरजा और 'खाँ आलम' खिताब दिया । १६९८ ई०की यह ऊहजहारी हुए । सम्राट् आलमगीरके मरने पर इन्होंने बहादुरशाहके बटले उनके भाई आलम शाहको तख्त पर बैठानेकी कोशिश की थी । १७०७ ई०की लड़ाईमें यह मारे गये ।

खाँई (हिं० स्त्री०) खार, जिसो बागकी चारो ओर उसके बचावके लिये खोदा हुआ गहरा गड्ढा ।

खाँख (हिं० स्त्री०) १ खिद्र, केद । २ खितरी बिनाई । ३ खोख, पोलापन ।

खाँखर (हिं० वि०) १ खिद्रमुक्त, फूटा, जिसमें केद हों । २ दूर दूर गुना हुआ । ३ खाकी, पोला । ४ खखा, खड़ खड़ानेवाला ।

खां खानान्—दिल्ली सरकारके सबसे बड़े वजीरका एक पुराना खिताब। बहराम खां और उनके लड़के खां मिर्जाको यह उपाधि मिली थी। बहराम खां देखो।

खांगः (हिं० स्त्री०) १ कांटा, खाट। २ तीतर आदि जानवरोंके पैरका काटि-जैसा नाखून। ३ गेंड़ेका सींग। ४ जङ्गली सूअरका बड़ा दांत। यह सुंघसे बाहर निकल आता है। ५ खुरपका, सुममें जल्म आनेकी बीमारी। ६ सांडकी तीखी बोली। गुस्सा आनेसे सांड खांगता है। ७ अभाव, कमी।

खांगड़ (खानगढ़)—पञ्जाबप्रदेशके मुजफ्फरगढ़ जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २८° ५५' उ० और देशा० ६७° १०' पू०में सिन्धुकी जानेवाली सड़क पर चेनावसे ४ मील पश्चिम पड़ता है। यह मुजफ्फरगढ़ नगरसे ५॥ कोस दक्षिण और बन्दरगाहानदीके वतमान गभसे २ कोस दूर पड़ता है। यहां एक बड़ा थाना है। लोकसंख्या कोई ४ हजार निकलेगी।

मुजफ्फर खांकी बहन खान बीबीने इसको निर्माण किया था। इसकी चारो ओर प्राचीर लगा है। गत शताब्दीकी आरम्भ काल यह एक अफगान पकड़ा था। १८४८ ई०की अफ़्ग़ानिस्तान में मिलने पर खानगढ़ जिलेका सदर बना; परन्तु १८५८ ई०की चेनावमें बाढ़ आने पर छोड़ना पड़ा। १८७३ ई०का हॉ म्युनिसिपैलिटी बठी। खानगढ़की जमीन बहुत अच्छी और खूब खेती होती है।

शहरकी चारो तरफ़ पेड़ोंसे लहलहाती उपजाऊ भूमि है। खेतीका काम खूब होता है। शहरके घर अधिकांश पक्के हैं। बीचसे अच्छीसो राह निकल गयी है। खांगड़में अनाजकी मण्डी, औषधालय, सराय और स्कूल मौजूद है।

खांगड़ (हिं० वि०) १ खांग रखनेवाला, खांगी। २ सशस्त्र, हथियारबन्द। ३ बलशाली, ताकतवर। ४ उद्दण्ड, अकंसुद्ध, मनचला।

खानड़ा (हिं०) खांगड़ देखो।

खांगना (हिं० क्र०) १ खंगडाना, पांवमें जल्म होनेसे अच्छी तरह चल न सकना। २ घटना, कम पड़ना। ३ और औरसे बोलना।

खांगी (हिं० स्त्री०) १ कमी, घटती। (वि०) २ खांगड़। खांगी—बम्बई-प्रान्तके बड़ोदा राज्यका एक उपविभाग। पहले इस उपविभागके ग्राम पृथक् राज सम्पद रहे।

खांगी—एक हिन्दूजाति। यह लोग युक्तप्रान्तस्थ बहेल-खण्डमें रहते और खेती किया करते हैं। “खांगी” शब्द ‘खण्डी’ का अपभ्रंश-जैसा समझ पड़ता है। पूर्वकालको यह तलवार बजाते थे। खांगी अपनेकी चौडान राजपूत समझते हैं। इनके १३५ भेद तक मिलते हैं।

खांच (हिं० स्त्री०) १ सन्धि, जोड़। २ गठन, बनावट। खांचा (हिं० पु०) १ भावा, बड़ा टोकरा। यह पतली पतली टहनियोंसे बनाया जाता है। २ बड़ा पिंजड़ा। ३ खम्बक, गड्ढा।

खां जमान् (हंदर) सुलतान उजबकके लड़के। यह बादशाह हुमायूँके हाथ नीचे काम करते थे। इनका असली नाम अलीकुली खां रहा। सम्राट् अकबरने इनके काम पर खुश हो जौनपुर और उसके दक्षिणी प्रदेश जागीरकी तौर पर दिये थे। अखीरकी यह और इनके भाई बहादुर खां दोनोंने बलवा खड़ा किया। १५६७ ई०के जून महीने बादशाहने लड़ कर उन्हें मार डाला।

२ पाजिम खांके बेटे और आसफ खां आफर-बेगके भतीजे। इनका असली नाम मीर खलील था। यह बादशाह शाहजहानके नीचे काम करते रहे। आलमगीर बादशाहने इन्हें पांचहजारीका दर्जा दिया। फिर यह जिन्दगीके अखीर वक्त मालवके सूबेदार बनाये गये और १६८४ ई०की वहीँ इस दुनियासे चल बसे।

(फतेहजङ्ग) ३ हैदराबादके सूबेदार अहमद हुसैनके कोई अधीनस्थ कर्मचारी। इनका प्रकृत नाम शेर निजाम हैदराबादी था। बादशाह आलमगीरके नीचे काम करते वक्त यह शिबजीके पुत्र शम्शुलीकी पकड़ कर ले गये थे। उसीसे सम्राटने इन्हें सातहजारी दर्जा और खां जमान् फतेहजङ्गका खिताब दिया। १६८६ ई०की यहाँमर गये।

(बहादुर) ४ महावत खां जमाना बेगके लड़के।

इनका असली नाम अमानउल्ला था। बादशाह जहानगीरने इन्हें बङ्गालका सूबेदार बना कर भेजा, फिर उन्होंने इनकी पाँचहजारी भोइदा और खां जमान् बहादुर खिताब दिया। यह एक अच्छे कवि रहे। मुस्तलिफ मूलकीके मुसलमान बादशाहोंका हाक एकट्ठा कर 'मजमूपा' नामकी एक किताब इन्होंने फारसी जवान्में लिखी है। १६३७ ई०को इनका मृत्यु हुआ।

खां जहान्—अकबर बादशाहके एक पाँच-हजारी अमीर। इनका नाम हुसैन कुलीबेग था। १५७६ ई०को यह बङ्गालके सूबेदार बनाये गये। इन्होंने दाऊद खां बलबार्की लड़ाईमें हरा कर पकड़ लिया और उसका शिर उतार आगरामें बादशाहके पास भेज दिया। १५७८ ई०को टीहामें इनका मृत्यु हुआ।

खां जहान् अली—एक मुसलमान। यह बङ्गालके सूबेदार महमूदशाह सुलतानके समकालवर्ती थे। बागिरहाट अख्खनके खलीफतावादमें इस प्रकारका प्रवाद प्रचलित है वह गोइके शासनकर्ता हुसैन बादशाहके मरहल बरदार थे। इनका प्रजात नाम किशवर खां था। नवाब इनकी बहुत चाहते थे। उन्होंने इनकी सुन्दरवन आबाद करने भेजा और वहाँ रह कर इन्होंने बहुत रुपया कमाया। किसी रोज नौदमें इन्होंने खप देखा कि परमेश्वर उनसे सत्कार्य करने और खान्नासी पद लेनेकी कहते थे।

खां जहान् अली सुन्दरवन आबाद करने जा अपनी बहुतसी कीर्तियां छोड़ पाये हैं। साठ गुम्बज नामकी इनकी बनायी एक बड़ी मसजिद है। उसका भीतरी दाखाम १४४ फुट लम्बा और ८६ फुट चौड़ा है। मसजिदका मुँह पूर्वकी ओर है और ११ दरवाजे लगे हैं। लोगोंके साठगुम्बज कहते भी इसमें ७७ गुम्बज बने और ६० खंभे खड़े हैं। खां जहान् अलीकी बनायी दूसरी मसजिद है। वह ४७ फुट लम्बी लठी है। ऊपरी गुम्बज बहुत बड़ा है। यहाँ मृत्युके पाँके खांजाली गाड़े गये। कब्र पर चार, चारकी और एक फारसी भाषामें शिलालिपियां खुदी हैं। उसमें लिखा है कि १४५८ ई०को अकबर खां जहान्

अलीने दुनियाकी छोड़ा। यशोहरके लोग इन्हें पीर-जैसा मानते हैं। प्रति वर्ष मुसलमान इस मसजिदमें खां जहान् अलीकी कब्र देखने जाते हैं। सिवा इसके कपोतक्षेत्रदीतीरकी आमादी गाँवकी मसजिद और गम्बकेश्वपुरके पास इनकी कृत अपनेक कीर्तियां हैं। इन्होंने बागिरहाट नदी किनारेसे साठगुम्बज और सुन्दरवनसे चट्टग्राम तक एक पक्की सड़क बनवा दी थी।

पीर अली देखो।

खां जहान् कीकलतास—एक अमीर। यह सम्राट् आलम-गीरके धात्रीपुत्र थे। इनका दूसरा नाम मीर मालिक हुसैन था। १६७० ई०को यह दक्षिणके सूबेदार बनाये गये। १६७४ ई०को बादशाहने इन्हें सातहजारी भोइदा और 'खां जहान् बहादुर कीकलतास आफर जङ्ग' खिताब दिया था। १६८७ ई०को इनका मृत्यु हुआ। इन्होंने 'तारीख आसाम' (आसामका इतिहास) नामकी एक किताब फारसी जवान्में लिखी है।

खां जहान् जाफरजङ्ग—जहान्दार शाहके धात्रीपुत्र। इनका असली नाम अलीमर्द था। बादशाह बहादुर शाहने इन्हें 'कीकलतास खां' खिताब दिया। जब जहान्दार शाह दिल्लीके तख्त पर बैठे उन्हाने अपने धर्मके भाई अलीमर्दकी नौहजारी भोइदा, 'खां जहान् जाफर जङ्ग' खिताब और मीरबख्शीका काम सौंपा था। किन्तु यह जल्दा दरजा ज्यादा दिन न चला, १७१९ ई०को जहान्दार शाहके साथ होनेवाली फर्रुखसियारकी लड़ाईमें यह मारे गये।

खां जहान् बाड़ा—एक मुसलमान भोइदेदार। इनका दूसरा नाम मेयद मुजफ्फर खां था। सम्राट् शाह-जहान्की अमलदारीमें इन्हें छह-हजारी भोइदा मिला। १६४५ ई०को लाहौरमें इन्होंने प्राणत्याग किया।

खां जहान् मकबूल—दिलीसम्राट् सुलतान फीरोजशाह बारबकके बड़े वजीर। इनका खिताब 'करीमउल्ल-मुल्क' था। यह जातिके हिन्दू रहे। मुसलमान होने पर इनका नाम सुलतान मकबूलदने खां जहान् मकबूल रखा और सुलतानका सूबेदार बना दिया। फिर यह नायब वजीर हुए। सुलतान मुहम्मदके मरने पर जब

सुलतान फीरोज दिल्ली पहुँचे, इन्होंने उनकी बड़ी मदद की थी। फीरोजने खुश हो उन्हें अपना वजीर कर दिया। कहते हैं कि १३७४ ई० की उनकी मृत्यु हुई।

खां जहान लोदी—सम्राट् जहांगीर बादशाह के एक सैनिक कर्मचारी। यह जातिके अफगान थे। कोई उन्हें सुलतान बहालोल लोदी और कोई दोस्त खान लोदी-का वंशधर बताता है। इन्होंने पञ्जाबजारी छोड़दा पाया था। जहानगीरके लड़के सुलतान परवीज के साथ यह दक्षिणके सिपयसामान हो कर गये। परवीजके मरने पर भी खां जहान सेनापति हो बने रहे। शाह-जहा को दिल्ली के तख्त पर बैठनेसे इन्होंने बाजाद होनेकी कोशिश की। १६२१ ई० की इनसे दिल्लीकी फौज लड़ी गयी। इस युद्धमें खां जहान अपने लड़कों के साथ मारे गये और दोनों के सर भेंटकी तौर पर याद-शाह शाहजहान के पास दिल्लीकी प्रेरित हुए।

खांजादा—राजपूतानेका एक मुसलमान सम्प्रदाय। यह लोग अलवर और जयपुरमें रहते हैं। इनकी पैदायशके बारेमें बड़ी गड़बड़ है। बहुत फजलके मतमें यह मेवाड़के अधिपति जूना राजपूतों के वंशमें जन्म लिया था। बहुतोंकी रायमें दिल्ली-सम्राट् फीरोज शाह तुगलकके अत्याचारसे मेवाड़के जो राजा मुसलमान हो गये थे, खांजादे उन्हींकी पीलाद हैं।

ई० १६वें शताब्द तक यह मेवात राज्य शासन करते रहे। १५२८ की बाबरसे लड़ाई होनेपर इन्होंने राजपूतों का पक्ष लिया था। सामाजिकतामें यह अपने आपकी वहाँके दूसरे मुसलमानों से ज्यादा दखलदार समझते हैं।

इनका चाल चलन देखनेसे भी समझ पड़ता, किसी समय वह हिन्दू रहे। यह हिन्दुओं के किसी धर्मोत्सवमें शामिल न होते भी श्राद्धियोंमें पाते जाते और हिन्दुओंकी ही तरह अपनी श्राद्धियां रचाते हैं और ब्राह्मण भी इनकी श्राद्धियोंके वक्त बहुतसे काम चलाते हैं।

इनकी हालत वैसी अच्छी नहीं है। बहुतसे अलवर रियासतकी फौजमें भर्ती हैं। कोई कोई छटिश

गवर्नमेंण्टके नीचे भी फौजमें काम करता है। दूसरोंकी मामूली खेतीसे गुजर है। खांजादे लड़कियोंकी कभी खेत पर नहीं भेजते। मेवात देखो पयोध्या, लखनऊ वगैरह जगहोंमें भी एक प्रकारके खांजादा मुसलमान रहते हैं।

खांड (हिं० खी०) खण्ड, कच्ची शकर।

खांडा (हिं० पु०) १ खड्ग, तलवार, सुरा। २ खण्ड, टुकड़ा। विशेषतः चतुर्थांशको 'खांडा' कहा जाता है।

खांडिया—बम्बई-प्रान्तके काठियावाड़ जिलेका पृथक् कर देनेवाला एक तालुका। इसमें केवल खांडिया गांव ही अलग है। तालुकदार लिम्बडीके भयाद और भाल राजपूत हैं। लोकसंख्या प्रायः ७८१ होगी।

खांडेरी—बम्बई प्रान्तीय कुलाबा जिलेके पलोबाग तालुकका एक सुद्र द्वीप। यह प्रक्षा० १८° ४२' ४०" और देशा० ७२° ४८' पू० में बम्बई बन्दरके निकट अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १३० होगी। यह टापू डेढ़ मील लम्बा और आध मील चौड़ा है। १८६७ ई० की यहाँ एक पालोकमठ बनाया गया।

१६७८ ई० की शिवजी कोई ३०० सिपाही और उतने ही सजदूर साथ इधियाँ और सामानके खांडेरी भेज उतरनेकी जगहों पर कंगूरे बनाना शुरू किया था। इसपर अंगरेजों और पोर्तुगीजोंने आपत्ति की। दो बार मराठोंकी निवासनेकी चेष्टा व्यर्थ हुई, अंगरेज ८ जहाजोंसे ५० जहाजोंको डरा कर भी मराठोंकी खांडेरी जानसे रोक न सके। मुगलसेनापति सोदीने खांडेरी आक्रमण किया और खांडेरीको सुदृढ़ बना लिया। शिवजीके सेनापति दोस्त रावने सामने भूमि पर तोपें लगा उनके काममें बाधा डालनी चाही, परन्तु वह परास्त और घोररूपसे घाहत हुए और उनकी छोटी नावें सोदीका मुकाबला कर न सकीं। इसके बाद कुछ दिनों तक सोदी और महाराष्ट्र-दलमें इन टापुओंके अधिकार पर संघर्ष चलता रहा। १६८१ ई० की काफी खान लिखा था—कुलाबा और गण्डेरीमें शिवजीने नये किले बहुत मजबूत बनाये हैं। १७१८ ई० अक्तोबरकी अंगरेजोंने खांडेरी लेना चाहा था, परन्तु सफल न हुए। १७४० ई० की सोदी और अंगरे-

जोमें यह ठहर गया कि विजय प्राप्त होने पर खांडी की अपनी सब तोपों और सामान के साथ अंगरेजों को सौंप दिया जावेगा। परन्तु १८७५ ई० की सूरत की सन्धि के अनुसार यह ज्ञान अंगरेजों को मिला, परन्तु बोड़े की दिन पीछे पुरन्दर की जो सन्धि हुई, फिर ले लिया गया। इसके बाद मराठे खांडी के अधिकार में रहे। १८१८ ई० की यह पेशवा के राज्यांग-जैसा अंगरेजों को प्राप्त हुआ।

खांडी (हिं० पु०) जाड़व, लड़करी का राग।

खाँ दीरान् (१म) मुगल बादशाह अकबर शाह के बन्ने एक अमीर। १६०७ ई० की इन्होंने जहानगीर बादशाह से 'ग्राह-बेग खाँ काबुली' खिताब पाया और उन्होंने इन्हें काबुल का सूबेदार भी बनाया। १६२० ई० की ८० साल की उम्र पर काबूल में इनका मृत्यु हो गया।

खाँ दीरान् (२य) खाना हीसारी नवाकबन्दी के बेटे। इनका दूसरा नाम खाना साविर नसरत अफ़र रहा। यह बादशाह ग्राहजहाँ के नीचे काम करते थे। सम्राट् ने सातहजारीपन प्रदान करके इनको सम्मानित किया। १६४५ ई० की काबूल में किसी कम्मीरो ब्राह्मण के लड़के ने रात को सोते समय इनको छाती में कुरी बुझ दी। इसी कुरी के जन्म से खाँ दीरान् की मौत हो गयी। उसी ब्राह्मण बालक को कुरी लमने से पहले इन्होंने मुसलमान बनाया था। मौत के पीछे इनकी लाश न्यासियर में ले जा कर गाड़ी गयी।

खाँ दीरान् (३य) नसरत अफ़र खाँ दीरान् के लड़के। बादशाह जालमगीर की अमलदारी में इन्हें पञ्चाहजारी कोहदा मिला था। मिन्दी के अखीर वक्त सम्राट् ने खाँ दीरान् को उड़ीसे सूबेदार बना दिया। वहीं सरकारी काम में रह कर १६६७ ई० की इन्होंने प्राण छोड़ा।

खाँ दीरान् (४थ) बादशाह जहानगीर के बन्ने एक अमीर। मुहम्मद शाह की अमलदारी में खेद हुसैन अली खाँ का कत्ल और उनके भाई कुतुब-उल्ल-मुल्क की कैद हो जाने पर १७११ ई० की यह अमीर-उल्ल-उमरा बनाये गये। फिर बादशाह ने राजी हो इन्हें अमल-खाम-उल्ल-दीका खिताब दिया था। १७१८ ई० की आदिलशाह के खिलाफ लड़ने जा कर यह कुरी तीर पर

जन्मी हुए और तीन दिनों की बीमारी मर गये। इनका असली नाम खाना मुहम्मद आसिम था। कोई कोई इन्हें अल्ल-उल्ल-समद खाँ भी कहता था।

खाँपना (हिं० क्रि०) १ खींचना, पटकाना। २ जमाना, जमाना। ३ चारपाई की बुनावट को कसना। यह काम एक मोकदार कील से किया जाता है।

खाँपुर—१ पञ्जाब की भाबलपुर रियासत का एक शहर। यह अक्षा० २८° १८' उ० और देशा० ७०° ४१' पू० में पड़ता है। भाबलपुर शहर से ६२ मील दक्षिण-पश्चिम पड़ता है। लोकसंख्या ८६११ है। पहले यहां गाना प्रकार का व्यवसाय होता था, आजकल वैसी सख्ति देख नहीं पड़ती। यहां महीना एक बिस्वा, बड़ा बाजार और रेकवेका छेशन बना है।

२ बम्बई प्रदेश के शिकारपुर जिले का कोई कसबा। यह अक्षा० २८° १५' उ० और देशा० ६८° ४७' पू० में बसा है। शिकारपुर शहर से खाँपुर ४ कोस उत्तर की है। लोकसंख्या कोई २ हजार है। यहां वपर और सबर मुसलमान ज्यादा रहते हैं। खाँपुर में टप्पादारों की कच-हरी, मुसाफिरखाना और मवेशीखाना मौजूद है। यहां मही के अच्छे अच्छे बर्तन, जूते और कपड़े बनते हैं।

खाँ बहादुर—पटतावाले राजा मिर्जित् के पुत्र। इन्होंने युरोपीय गणित और विज्ञान के शास्त्रों का निबोड़ निकाख के फारसी जवानों में 'आमबहादुरखानी' नामक एक ग्रन्थ सङ्कलन किया। सिवा इसके 'इकम-उल्ल-मन-जरात' नाम की एक किताब मुसलमानों पर भी लिखी गयी।

खाँभ (हिं० पु०) १ खम्भ, लम्बा। २ खाम, लिफाफा। खाँभना (हिं० क्रि०) लिफाफे में रखना, खाम में बन्द करना।

खाँ मिर्जा—मुगल बादशाह अकबर के मुहाफिज और बहराम खाँ वजोर के लड़के। इनका असली नाम अल्ल-उल्ल-रहीम खाँ था। सम्राट् अकबर ने इन्हें प्रधान मन्त्री बनाया और खान् खानान् उपाधि दिलाया।

खाँवा (हिं० पु०) १ कूब गहरी और लम्बे खाँरी। २ पुष्पवृक्षविशेष, एक छोटा पौधा। इनमें खेतें पुष्प लगते हैं।

खानना (हि० खि०) १ खींचना, धांसना, गलेमें घटके हुए कफ या किसी दूसरी चीजका निक्काबनेके लिये हवाकी आवाजके साथ बाहर फेंकना। २ खखारना, किसीको सचेत करनेके लिये हवाके झिटकेसे गला गजाना।

खानी (हि० खी०) गलेमें घटके हुए कफ या किसी दूसरी चीजको निक्काबनेके लिये आवाजके साथ हवा छोड़नेका काम। खानी प्रायः पजीर्य होने या कड़वा चरपरा खानेसे आने लगती है। भारतवर्षमें इसे रोगका चर मानते हैं। बाघरेखी।

खारमखानी—राजपूतानेकी एक इसलाम धर्मावलम्बी जाति। पहले यह लोग चोहान राजपूत रहे, सुसलमान बने ज्यादा दिन नहीं हुए। यह कहते हैं कि शिखावाटी राज्य परकाशरी उन्हींके अधिकारमें था, जोखुजीने उनसे छीन लिया। अक्सर और जयपुरमें खारमखानी रहते हैं।

खाहरिम—ग्रासामके खासिया पहाड़का एक मध्यवर्ती छोटा राज्य। इसकी लोकसंख्या ३१३२० हजार और वार्षिक आय १२१६१, ६० है।

यहां खनिज द्रव्योंमें चूना, कोयला और लोहा निकलता है। पहले खाहरिममें लोहा गलानेका बड़ा कारखाना रहा। उसके चिक्कोके तीर पर जगह जगह बाज भी गड़े पड़े हुए हैं। यहां कच्चा लोहा बहुत साफ होता है। उसके बांट बना कर जगह जगह भेजे जाते हैं। देशके लोहार विलायती लोहेसे इसको अच्छा समझते हैं। विलायती लोहेकी चामदनीसे कीमत घट जानेपर देशी काम काज चौपट होता जाता है। किन्तु बाज भी पहाड़ी गंडासे, कुदाले, बड़ोड़े और तसले इस लोहेसे बना कर नाना देशोंको भेजे जाते हैं। सिवा इसके यहां रुई, पन्की, (रेशम) चटाई और टोहरीका भी काम होता है। धान, काजुन, कपास, पालू, नारंगी, साबुमिर्च, सुपारी और पानकी खेती की जाती है। खाहरिमके जङ्गलमें शङ्खद, काका जीरा तथा काष्ठ वगैरहकी पदार्थ हैं।

खाई (हि० खी०) खण्डक, गड्ढा। यह किसी खानकी रखावे लिये उसके चारों ओर खोद डी जाती है।

कहते हैं—खाई खनने की चढ़ाना खाईके, जिसमें खादमी का चौथाका उसपर चढ़ न सके।

खाज (हि० खि०) अधिक खानेकुला, पेट, मरमुखा। **खज** (फा० खी०) भस्म, राख, मर्द। यह शब्द किसी विशेषवक्ती भांति भी आता और उस पदमें 'कुछ नहीं' बतलाता है।

खाकरोब (फा० पु०) मिहतर, भाड़, खगानेवाला।

खाकसीर (हि० खी०) खूबकसी, एक मोषधि। खाकसीर किसी घासका दाना है। यह मैदानों, बानों, जङ्गलों और पहाड़ों पर उपजती है। खाकसीरकी लम्बी पत्तियां टहनीकी दोनों तर्फ आती हैं। फूल झड़ने पर छोटी छोटी सुष्ठियां निकलती हैं। इन्हींमें छोटे छोटे दाने आते जो भित्तीमें झिपट जाते हैं। दाने छोटे और बड़े दो किस्मके होते हैं। छोटीमें कुछ सुर्खी और बड़ीमें स्याही रहती है। छोटी खाकसीर बड़ीसे ज्यादा कड़वी है। यह चरब, फारस वगैरह मस्कांमें ज्यादा पैदा होती है।

खाका (फा० पु०) ठाँवा, डील, नकशा, रेखामात्र। २ तखमीना, खर्चके अन्दाजाका चिट्ठा। ३ मसविदा, पालेख।

खाकी (फा० खि०) १ धूसरित, भूरा, मटमैला। २ बेसोव, हुगिया।

खाकी—एक उपासक सम्प्रदाय। यह रामानन्दी सम्प्रदायसे निकले हैं। रामानन्द-प्रसिद्ध लखदासके कील नामक कोई वैष्णव भिन्न रहे। उन्होंने यह सम्प्रदाय चलाया। भक्तमाया आदि किसी ग्रन्थमें उल्लेख न रहनेके कारणसे खोब इस सम्प्रदायको अस्मत्त या भुजिक्त जैसा समझते हैं। शरीर उस पदमनेके कपड़ेमें भस्म या लहरी लगानेसे ही इनका नाम खाकी पड़ा है। भस्म और महीका खगाना ही इनकी दूसरे वैष्णवोंसे भिन्नता केला रहता है। खाजियोंमें जो घर बाँधके रहता, कच्चा खाना खीना, पकाना, खोदना वैष्णवोंसे बहुत कुछ भिन्नता है। परन्तु जगह जगह भूमने फिरलेकुले लड़के जैसी लहरी और भस्मके साथ मही मिलाकर धुव-खिड़न करते हैं। सिवा इसके खाकी शैलीकी भांति शिखी जटा भी रहते हैं।

पयोध्याके इनमानगठने खाखिरीका बड़ा मठ है।
सब लोग कहते हैं कि उनके इतने ही कील खासीका
चिंतासन जयपुरमें रहा है। फरवावाह और उसके
पासपास बहुतसे खाकी देखे जाते हैं। सीताराम
इनके सपास और इनमान भक्तिपात्र हैं।

खाखरेची—बम्बई-प्रांतीय काठियावाड़ जिलेके मांजिया
राज्यका प्रधान नगर। यह मांजियासे कोई १० मील
पूर्व लगता और एक प्राचीन नगर समझ पड़ता है
कहते हैं, पहले खाखरेचीकी भीमार्ने पुलकादार एक
बन्दरगाह था। परन्तु रानका पानी कम पड़ जानेसे
व्यापारी वहाँसे चले गये और कुनबी आकर जमीन
जोतने लगे। ई० १८वीं शताब्दीके आरम्भ काल ठाकुर
कायाजीकी माच्छावाँठा और वागड़की कुछ भूमि
मिली थी। कायाजीके मरने पर मांजिया और खाख-
रेची उनके पुत्र मोरजीको मिला। उन्होंने कहते हैं,
वागड़से मियानाभीको बुला करके मांजिया सहट-
मार्गकी रक्षामें नियुक्त किया और अपने आप खाख-
रेचीमें रहने लगे। मांजिया और मोरवीमें पुराना
भगड़ा था। १८वीं शताब्दीके पिछले भागमें मोरवीके
१म वाघजीने १५०००० रु० दे करके फतेहसिंह गायक-
वाड़की फौज अपनी सहायताको बुला ली। इस
सङ्घर्षमें गायकवाड़ और मोरवीकी फौजोंने खाखरेची
लूटा था। इस ग्रामके दक्षिण एक अच्छासा तलाव
है। लोकसंख्या प्रायः २२४१ होगी। यह रानसागर
तटसे ४ मील दक्षिण पड़ता है।

खाखस (सं० पु०) खसतिन, पोशे का दाना

खाखसतिखोड़ (सं० ली०) खखस, पोश।

खानका (हिं० पु०) खानकादर, एक घास।

खागना (हिं० लि०) १ लगना, चुभना। २ खागना।

खागर—एक हिन्दू धर्मि। यह लोग बुद्धप्रदेशमें रहते
हैं। बुद्धके समयमें खागर अधिक देखे जाते और ८४
भेदोंमें विभक्त हुए कहते हैं। किसी समय इनका
राजत्व तक रहा। यह अपनेकी चरित्रवर्ण बतलाते
हैं। कहते हैं, कि उनके पूर्व पुत्रय युद्धप्रदेशसे आकरके
बुद्धका राजपुत्रोंके पास नौकर हुए थे। उन्होंने बहुत
बार बादशाहसे भीखमगड़ राज्यके कुरारगढ़ का अधिक-

कार तो पाया, परन्तु सखसुसारी वस्तु पर न पुका।
सबनेसे अपनेको अधिकारियोंका कोपभाजन बनाया
और समस्त ज्ञान लपट मँवाया। यह चरित्र ज्ञाने
जाते हैं।

खागा—बुद्धप्रदेशके फतेहपुर जिलेका एक नगर। यह
पचा० २५° २६' तथा २६° १' उ० और देशा० ८१°
तथा ८१° २०' पू०में बसा है। यहाँ तहसीलदारी
भी लगती है। क्षेत्रफल ४८१ वर्गमील है। लोकसंख्या
प्रायः २२४३०८ है। यहाँ ४८९ गाँव हैं और कियनपुर
नामक एक शहर है। रहनेवालोंमें चमार बहुत हैं।
प्रत्येक वर्ष कार्तिकमासको खागामें एक 'मेला' लगता
है। यहाँ डाकघर, थाना, बाजार और रेलवे स्टेशन
मोजूद है।

खाचरोद—मध्यभारत-मालियर राज्यके उज्जैन जिलेका
एक शहर। यह पचा० २३° २६' उ० और देशा०
८५° २०' पू० समुद्र सतहसे १००० फुट ऊँचे बम्बई
बड़ीदा और सेण्ट्रल इण्डिया रेलवेकी रतलाम गोधरा
शाखा पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८१८६ है।
आर्देन-इ-प्रकावरीमें लिखा है कि खाचरोद माजवा सूरे-
की उज्जैन सरकारके एक महलका सदर रहा। यह
रङ्गीन लकड़ीके काम और तम्बाकूके लिये मशहूर है।
खाकाह (सं० पु०) खे आकाशे ऽऽमाहन्ति, गतिकाले,
आ-इन्-ह। श्वेतपिङ्गलाश्व, सफेद घोड़ा घोड़ा।

खाज (हिं० ली०) खुजली, एक बीमारी।

खाजा (हिं० पु०) १ खाद्य, खुराक। २ किसी किसीकी
मिठाई। यह मैदे से बनती है। पहले यह पेड़ा काट
कर सीधा बेला जाता है। फिर वी चुपड़ चुपड़ इसे
दोहरा दोहरा कर बार बार बेसते हैं। अन्तको खाजा
चीकोर बना कर वी या तेसमें तला और शक्करकी
बागनीमें पाया जाता है। यह दूधमें भिगोकर खानेसे
बहुत अच्छा लगता है। ३ लक्षविक्षेप, कोई पिक।
४ खाजा। खाजा देसी।

खजिह (सं० पु०) खि कर्जदमे आवाः क्षेपः तत् खाधुः,
खाज-ठन्। खाजा, खाई।

खखस (सं० पु०) खखनखापत्यम्, खखन-पण।
खखनके पत्य

खाङ्गार (सं० पु०) खाङ्गारखापत्तम्, खाङ्गार-पत्तम् ।
खाङ्गार नामक ऋषिके पत्तम् ।

खाङ्गास (सं० पु०) खाङ्गासखापत्तम्, खाङ्गास-पत्तम् ।
खाङ्गास नामक ऋषिके पत्तम् ।

खाट (सं० पञ्च०) पञ्चतन्त्र ग्रन्थ, समझमें न जानेवाली
भाषा ।

खाट (सं० पु०) खे अर्धमार्गे पटत्वेनेन, पट् करणे
वज् । १ श्वरव, जनाजा । २ खटोली, खटिया ।
भारतवासी मरवासक व्यक्तिको खाटके नीचे उतार
देते हैं ।

खाटवे—विहारकी एक जाति । पासकी उठाना और
खेती करना ही इनकी उपजीविका है । इनमें बड़ियो
और गौरी नामकी दो शाखाएँ हैं । सभीका गोत्र
काम्प्य और उपास्य देवता भगवती हैं । ब्राह्मण इनका
पौरोहित्य नहीं करते । इसी जातिके वैरागी पुरोहित
होते हैं । शशिया, काकी, धर्मराज, नरसिंह और मीरा
इनकी गृहदेवता हैं । देवताके उद्देश्य भेड़, बकरा,
कबूतर आदि वस्ति दिये जाते हैं । गृहदेवताकी पूजामें
पुरोहितों का कोई काम नहीं, गृहस्थ अपने आप उसे
कर लेते हैं ।

विवाहके समय गांवके मुखियासे पूछना पड़ता है ।
उनकी राय मिल जाने पर वरकी ओरसे कन्याके घर
कपड़े भेजे जाते हैं । मैथिल ब्राह्मण विवाहका शुभदिन
खिर कर देते, परन्तु विवाह आदि किसी कामके
करनेका भार अपने ऊपर नहीं लेते । इनमें विधवा-
विवाह होता है । किन्तु वह सपिण्डके साथ ऐसा कर
नहीं सकती । यह श्रव दाह करते, फिर तीसरे दिन
भस्म शमशानके पास ही माड़ देते हैं ।

खाटि (सं० स्त्री०) खट काङ्गायां बाहुलकात् इज् ।
१ किल । २ असदृश । ३ श्वरव, घरकी । ४ शुक्लवस्त्र,
सूखा जन्म ।

खाटिक (सं० स्त्री०) खाटि काङ्गे कन् ततः टाप् ।
श्वरव, जनाजा, ठठरी ।

खाटिन (हिं० पु०) धान्यविशेष, किसी किसानका धान ।
यह पञ्चायन मांसमें प्रसूत होता है ।

खाड़ (हिं० पु०) जतें, जड़ा ।

खाड़िया—एक हिन्दू जाति । यह खीन विशेषतः मार-
वाड़में रहती है । कहती है कि वह पक्षी चण्डिकर्ष
से, तुर्कोंके डरसे इबिहार छोड़ खेती करने लगी ।
जालोरके राव कानकदेवने उन्हें नवमास पर खेतनिकी
भूमि दे करके साहाय्य किया था ।

खाड़व (हिं०) गहन शब्द ।

खाड़व (सं० पु०) १ मधुर, पक्क, खवख और नाना
सुगन्धि द्रव्ययुक्त खाद्य विशेष, मीठी, खट्टी, खारी और
तरह तरहकी सुगन्धदार चीजोंसे बनी हुई खानेकी
एक चीज । २ हीपान्तरखजूर, किसी किसानका
खोहारा या पिण्डखजूर । ३ काई चूर्ण । इसके बनाने-
की रीति यह है—बेर और पांवसेकी पक्की तरह
पीस डालना चाहिये । फिर उसको सोंठ, इलायची
और थोड़ीसी मक्कर मिला कर बिकीरे नीबूके रसमें
भिगाते और धूपमें सुखाते हैं । इसी प्रकार बार बार
बिकीरे नीबूके रसमें भिगाना और धूपमें इसको सुखाना
पड़ता है । इसमें थोड़ासा नमक भी मिला लेना चाहिये,
इसी चूर्णका नाम खाड़व है । यह सुंड़की साफ
करनेवाला, बचिकर और हृदयग तथा सुंड़का फीका-
पन मिटानेवाला है । खाड़ारके पीके इसे खाना
चाहिये । (भाष्यप्रकाश)

खाड़ायन (सं० पु०) खड़ गोत्रापत्त्यार्थे फज् । खड़
नामक ऋषिके गोत्रापत्तम् ।

खाड़ायनक (सं० त्रि०) खड़ायनेन निर्मितम्, खड़ायन-
वुज् । खाड़ायनकक निर्मित, खाड़ायनका बनाया
हुआ ।

खाड़ायनभक्ष (सं० स्त्री०) खाड़ायनभक्ष विभक्तौ द्वे शब्दः
खाड़ायन-भक्षत् । गौरिकर्षवृक्षविशेषीविषयः लक्ष्मी । पृ० ३२५३
खाड़ायनका देशः ।

खाड़ायनी (सं० पु०) खाड़ायनगोत्रत्वधीयते खाड़ायन-
विनि । गोनकारिणः खड्गः । पृ० ३१५२-५३ । खाड़ायनका लक्षा
हुवा भाष्य पढ़नेवाला ।

खाड़ायनीय (सं० त्रि०) खाड़ायन-य । गौरिकर्ष-
पृ० ३१५१-५२ । खाड़ायन सम्बन्धीय ।

मसुरी
MUSSOORIE.

This book is to be returned on the date last stamped.

[illegible]

R
039-914
Enc

अवाप्ति संख्या
Acc No. 118241

पुस्तक संख्या
Book No. 15

वर्ग संख्या
Class No. _____

लेखक
Author _____

शीर्षक
Title _____

R
039-914
Enc

LIBRARY
LAL BAHADUR SHASTRI
✓ 5 National Academy of Administration
MUSSOORIE

Accession No. 118241

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving